हिन्दी विश्वकोष

द्वाविंश भाग

वीरभूम—बङ्गालके अन्तर्गत वर्द्धमान विभागका एक जिला। यह स्थान अक्षा० २३° ३४' और २४° ३५' उ० तथा देशा० ८७° १०' और ८८° २' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १७५२ वर्गमील है। इसकी उत्तर-पश्चिम-सीमा पर सन्ताल प्रगना, पूर्वभागमें मुर्शिदाबाद और वर्द्धमान तथा दक्षिणमें भी वर्द्धमान जिला है। इस जिलेकी दक्षिण-सीमा पर अजय नद प्रवाहित हो रहा है। यह अजय नद ही वीरभूमको वर्द्धमान जिलेके भूभागसे विच्छिन्न करता है। इस जिलेका प्रधान शासनकेन्द्र—सिउड़ी सहर है।

पहले वीरभूमके इलाकेका भूभाग परिमाणमें बहुत अधिक था। वीरभूमका शासनभार जब अङ्गरेजोंके हाथ आया तब इसका परिमाण ३८५८ वर्गमील था। विष्णुपुर जमीन्दारी भी उस समय इसी जिलेके अन्तर्भुक्त थी। उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भमें विष्णुपुर बाँकुड़ा जिलेके अन्तर्गत हुआ। इसके बाद इसके पश्चिम भागका कुछ अंश सन्ताल प्रगनेमें शामिल कर इसको और भी छोटा बना दिया गया। इस तरह इसका भूपरिमाण कम होते होते सन् १८८३ ई०में केवल १७५२ वर्गमील रह गया।

१६वीं शताब्दीमें वीरभूम किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणवंशके अधीन था। इसके बाद १७वीं शताब्दीके अन्तमें यह मुसलमानोंके अधिकारमें आया। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें जाफर खांने असदुल्ला पठानके हाथ वीरभूमकी जमींदारीका शासन-भार प्रदान किया। असदुल्लाके पूर्वपुरुष शताधिक वर्ष पहलेसे यहां रहते थे। सन् १७६५ ई० तक वीरभूमका शासनभार असदुल्लाके वंशधरोंके हाथमें था। सन् १७८७ ई०में वीरभूम ईष्ट इण्डिया कम्पनीके अधिकारमें आया। इसके पहलेसे ही वीरभूममें डाकुओंका उपद्रव प्रबलरूपसे वर्त्तमान था। पश्चिम प्रान्तके पहाड़ी प्रदेशसे पङ्गपालकी तरह डाकू आते और वीरभूम-वासियोंका धन आदि लूटपाट कर ले जाते थे। डाकू लोग क्रमसे क्रम ऐसे प्रबल हो उठे, कि वे वीरभूममें किलाबन्दी कर इस जिलेमें अपना प्रभुत्व विस्तार करने लगे। इन डाकुओंके उपद्रवसे सदरका खजाना राजकोषमें पहुंचने नहीं पाता था। व्यवसाय-वाणिज्यमें बाधा उपस्थित होनेके कारण ईष्ट इण्डिया कम्पनीके कई कारखाने बन्द हो गये। ये सब असीम साहससे चारों तरफ डाकेजनी किया करते थे। राजा और जमीन्दारोंके साथ

वाकायदा युद्ध चलता था। ये लूटनेवाली पहाड़ी जातिके लोग मुसलमान शासकोंके जमानेसे ही यहांके लोगोंको भयभीत कर धन लेते थे। सामान्य भय दिखलानेसे धन न देने पर ये तीर धनुष आदि अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित हो आते और जो वाधा देते थे, उन्हें मार डालते थे। ये ग्राम नगर आदि लूट कर पहाड़में चले जाते थे। इन डाकुओंके भयसे वीरभूमके उत्तर प्रदेशमें गङ्गातट पर भी प्रायः एक सौसे अधिक मील तक रातको कोई नावके साथ अवस्थान न कर सकता था। डाकुओंके आक्रमणसे अधिवासियोंकी रक्षा करनेके लिये राजा और जमीन्दार बहुत चेष्टा करते थे। और तो क्या—इसके लिये चारों बगल प्राचीर परिखा आदि तक बनाये गये थे। इनका चिन्ह कहीं कहीं आज भी दिखाई देता है। भागलपुरके दक्षिण-पश्चिम प्रान्तमें इस तरहके प्राचीरका भग्नावशेष आज भी वर्त्तमान है।

सन् १७६६ ई०में ईष्ट इण्डिया कम्पनीने यद्यपि वीरभूम जिलेमें अपने प्रभुत्व-प्रचारकी चेष्टा की थी, तथापि उस समय तक अंग्रेजोंको कोई मानता न था। सन् १७७२ ई०में वीरभूम अङ्गरेजोंके शासनाधीनमें आ जानेकी स्वीकृति हो जाने पर भी वहांके राजा ही वहांके शासनकर्त्ता थे। राजा ही इस प्रदेशका शासन करते थे। ये ईष्ट इण्डिया कम्पनीको सामान्य कर देते थे। पश्चिम सीमान्तकी रक्षाका भार राजाके ऊपर ही था। किन्तु उस समय वीरभूम और मल्लभूम (विष्णुपुर)-के राजाओंका प्रभाव खर्व हो रहा था। राजाओंके बलकी सामरिक अवस्था शोचनीय हो रही थी। अन्तमें इनकी आत्मरक्षाका उपाय भी न रहा। इधर डाकुओंके उपद्रवसे प्रजा नित्य उत्पीड़ित हो रही थी। दुर्वृत्त डाकुओंके हाथसे त्राण पानेकी जरा भी सामर्थ्य वीरभूम और मल्लभूमके राजाओंमें न थी।

सन् १७८४ ई०में डाकुओंका उपद्रव इतना बढ़ गया, कि अङ्गरेजोंसे चुपचाप बैठा न गया। उन्होंने डाकुओंके दबानेके लिये बद्धपरिकर हुए। सन् १७८५ ई०में मई महीनेमें मुर्शिदाबादके कलेक्टर एडवर्ड अर्टोआइहने अपने इलाकेके दक्षिण भागके डाकुओंके उपद्रवोंको रोकनेके लिये सकाउन्सिल गवर्नर जनरलसे ४०० सैनिकोंके भेज देनेकी प्रार्थना की। किन्तु इसका कुछ भी फल नहीं हुआ। डाकुओंने इस समाचारसे अवगत हो कर अपने दलको पुष्टि कर ली। इसके बाद पिछले वर्षमें डाकुओंने वीरभूमके समग्र जिले पर अपना प्रभुत्व विस्तार कर लिया। इस समय गवर्नर जनरल लार्ड कर्नवालिसने देखा, कि वीरभूम और विष्णुपुरके शासनका भार किसी प्रभावशाली चिन्ताशील व्यक्तिके हाथ देना चाहिये। इस समय डब्लयू पाई विष्णुपुर और वीरभूम इन दोनों स्थानोंके कलेक्टर बनाये गये। सन् १७८७ ई०में विष्णुपुर और वीरभूम उक्त कलक्टरके हाथ आये। किन्तु उन कलेक्टरसे भी काम न चला। वे तीन सप्ताह तक इस काममें रहे। सम्भवतः डाकुओंके भयसे भीत हो कर वे विष्णुपुरसे भाग गये। सरकारी कागजोंमें लिखा है, कि 'पाई' साहब पदोन्नतिका समाचार सुन कर शीघ्र और सहसा विष्णुपुरसे चले गये।

जो हो, मिष्टर सारवरण उनके स्थान पर अधिकार जमाया। इनके शासनके प्रारम्भमें ही विष्णुपुरसे सिउड़ीमें सदर स्थानान्तरित हुआ। मिष्टर सारवरणको वहांके लोग वीर ही समझते थे। इसके फलसे उनके शासनसे वहांके डाकुओंका उपद्रव कुछ शान्त हुआ था। किन्तु दूसरी ओर इनकी कृपासे विष्णुपुर और वीरभूमके देशीय राजाओंका प्रभाव सदाके लिये मिट गया। वे नाममात्रके राजा थे सही, किन्तु कार्य्यतः अति सामान्य वैभववान् भद्र पुरुषकी अवस्थामें आ पहुंचे।

जो हो, जिस उद्देशकी पूर्त्तिके लिये वे वीरभूममें भेजे गये थे, उसमें वे पूर्णरूपसे सफल न हो सके। सन् १७८८ ई०में कलकत्तेके समाचारपत्रमें प्रकाशित हुआ—"अजय नदके दक्षिण डाकू लोग भयङ्कर उत्पात मचा रहे हैं। उन्होंने सरकारी खजानेको लूट लिया है, सिपाहियोंको पराजित किया तथा पांच आदमियोंको मार डाला है। कोषागारसे ३०,००० रुपये लूट लिये गये हैं।"

सन् १७८८ ई०में सरकारने इस विषयकी जाँच करनी आरम्भ की। मिष्टर सारवरणके कार्य्य पर सन्देह कर वे वहांसे हटा दिये गये और उस जगह पर मिष्टर

क्रिष्टोफर किटिं भरती हुए। दो मास बीतते न बितते मिष्टर किटिं डाकुओंके उपद्रवको देख चकित और स्तम्भित हुए। मिष्टर किटिंने सोचा था, कि मिष्टर सारवरणके शासनसे डाकू लोग सम्भवतः उत्पीड़ित हो गये हैं। यही सोच कर वे चुपचाप बैठे रहे। किन्तु एक दिन उनके पास हृदयविदारक एक समाचार पहुंचा, कि उनके वासस्थानके निकट ही पांच सौ डाकुओंने आ कर चालीस ग्रामके अधिवासियोंको धनविहीन और प्राणहीन कर दिया। इसके कई सप्ताह बाद ही सन् १७८६ ई०के फरवरी महीनेमें पहाड़ी डाकू वीरभूम और विष्णुपुरके थाने पर भी आक्रमण किया, टोलों, महल्लों या ग्रामोंकी तो बात क्या? ग्राम-ग्राममें मारामारी और खून ख़राबी होने लगी। मिष्टर किटिं सीमान्त प्रदेशमें सैन्य संरक्षणके निमित्त विविध व्यवस्थायें कीं। किन्तु दुर्द्दान्त डाकुओंका उत्पात किसी तरहसे कम न हुआ।

इसके बाद सकौन्सिल गवर्नर जनरलने वीरभूम और विष्णुपुरके डाकुओंके उपद्रव-निवारण करनेके लिये एक छोटे समरकी व्यवस्था की। उन्होंने निकटके सब कलक्टरोंको सूचित कर दिया, कि इस विषय पर सभी मिल कर एक साथ काम करें। केवल अपने इलाकेको ही लेकर चुप न बैठें। डाकुओंका जहां उपद्रव सुनाई दे, वहां अपने सैनिकोंके साथ उपस्थित हों। इस तरह सैन्य-संग्रह कर वीरभूममें डाकुओंके साथ अंग्रेजोंका एक खण्डयुद्ध हुआ था। इस युद्धसे डाकू लोग डर गये थे सही; किन्तु इससे भी इनका उपद्रव विलकुल दूर न हुआ।

इधर उस समय वृटिश अफसरोंके दिमागमें एक और ही धुन लग रही थी। वह यह, कि यथासम्भव शीघ्र देशीय राजाओंके हाथसे शासनभार छीन लिया जाये। इसके लिये वे उस समय उन्मत्त हो उठे थे। विष्णुपुरके राजाके जिम्मे कुछ ही मालगुजारी वाकी पड़ी थी। इसी सामान्य अपराधमें अफसरोंने उनको पकड़के जेलमें ठूस दिया। दूसरे समय अफसरोंके ऐसा करने पर प्रजा और अंग्रेजोंमें युद्ध ठन जाता था। किन्तु नाना कारणोंसे उस समय देशके लोगोंने मनुष्यत्वको खो दिया था। सुतरां इस घटना पर भी कोई अशान्ति नहीं मची। फिर प्रजा डाकुओंका साथ हो अंग्रेजोंके विरुद्ध चलने लगी।

इसके बाद फिर एक बार डाकुओंके उपद्रवने जोर पकड़ा। इस समय वृटिश सरकारके तोषखानेको लूट लेनेके लिये डाकू लोग अधिकतर चेष्टा करने लगे। मिष्टर किटिंने गवर्नर जनरलके पास सुशिक्षित सैन्य भेजनेकी प्रार्थना की। उनके प्रार्थनानुसार एक फौज भेजी गई। ये विभक्त हो नाना स्थानोंमें अन्यान्य सैनिकोंके साथ एकत्र हुए। किन्तु इससे भी डाकुओंका उपद्रव नहीं रुका। और तो क्या—दिन दहाड़े डाकुदल शहरमें ढुक कर लूटपाट मचाने लगा। फलतः राजनगर पर डाकुओंका अधिकार हो गया। पांच सौ वर्षोंमें जैसी घटना न हुई थी, मिष्टर किटिंके शासनमें वैसी दुर्द्दशा हो गई। मिष्टर किटिं विष्णुपुरमें बैठे ही रह गये। इधर डाकू लोग वीरभूमके राजनगर पर प्रभुत्व विस्तार करनेमें मनोयोगी हुए। मिष्टर किटिं अप्रस्तुत हो क्रोधित हो उठे। वीरभूमसे डाकूलोगोंके भगानेके लिये विष्णुपुरसे दलके दल सैनिक भेजने लगे। इधर दूसरे डाकुदलने विष्णुपुरका अवरोध किया। निकटके ग्रामोंको वे लूटने लगे। देखते देखते वर्षाकाल आरम्भ हुआ। फलतः अंग्रेज उस समय किसी तरहसे डाकुओंको देशसे भगा न सके। डाकुओंके उत्पीड़न और शासकोंकी निश्चेष्टता तथा असमर्थताके कारण प्रजा व्याकुल हो उठी। प्रजा कहने लगी, कि हमारे राजाको दुर्बल जान कर फिरङ्गियोंने देश शासनका भार अपने हाथमें लिया था, किन्तु अब मालूम हुआ, कि हमारे राजोंकी अपेक्षा भी ये सहस्र गुणा अक्षम हैं। इनके ऊपर निर्भर करनेसे अब काम न चलेगा। प्रजा उस समय दुःसाहसी हो उठी। लोगोंने बांस काट बड़ी बड़ी लाठियां तय्यार कीं। अन्तमें उस लाठीके बलसे ही कृषक अपने गांवोंसे डाकुओंको भगाने लगे। अंग्रेजोंने तोपोंसे जो न कर सके, वह कृषक लाठियोंसे कर दिखाया। अंग्रेज अपने हाथ वीरभूमका शासन ले कर दो वर्ष तक बड़े सङ्कटमें पड़ गये थे।

इतिहास।

कहा गया है। कि उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे वीरसिंह

और चैतन्यसिंह नामके दो भ्राता वीरभूममें आये। इनके शासनसे पहाड़ी लोग परास्त हुए। इन दोनों भाईयोंने वीरभूममें अपना प्रभुत्व स्थापित किया। वीरसिंहके नाम पर वीरसिंह नगर और चैतन्यसिंहके नाम पर चैतन्यपुर नगर वीरभूममें संस्थापित हुए। आज भी ये दोनों नगर वीरभूममें वर्त्तमान हैं। वीरसिंहके भाई फतेहसिंहने मुर्शिदाबादके कुछ अंशों पर भी अपना दखल जमाया था। उनके नाम पर फतेहपुर प्रगनेकी सृष्टि हुई।

वीरसिंह ही वीरभूमके प्रबल हिन्दूराजा हैं। वीरसिंहको यथेष्ट दैहिकबल था। प्रबल-पराक्रमशाली राजा वीरसिंह अपने बलके प्रभावसे वीरभूमके बहुत स्थानोंको अपने शासनमें मिला लिया था। इन्होंने अपने भाईको उसके राज्यसे भगाया और वहां भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया। बहुतेरे राजा और जमीन्दार इनकी अधीनता स्वीकार कर इनको कर देते थे। सिउड़ीके पूर्वभागमें प्राचीन वीरसिंहपुरके ध्वंसावशिष्ट स्थानोंमें आज भी बहुतेरे दुर्ग, प्रासाद और तालावोंके चिह्न पाये जाते हैं। राजा वीरसिंहने मुसलमानोंके साथ सम्मुख समरमें प्राण परित्याग किया था। इनके मर जानेके बाद इनकी रानी तालावमें कूद कर अपने सती धर्मकी रक्षा की थी। जिस तालाव या पोखरेमें रानीने आत्मविसर्जन किया था, आज भी वह वर्त्तमान है। इस समय इसका नाम रानीदह हो गया है। वीरसिंहने एक कालीजीका मन्दिर बनवा कर उसमें श्रीकालीजीकी एक मूर्त्ति प्रतिष्ठित कराई थी।

इन्हीं राजाने वीरसिंहपुरके निकट एक गोपालमूर्त्तिकी भी प्रतिष्ठा कराई थी। इस समय वह स्थान जङ्गलके रूपमें परिणत हुआ है। वहांके लोग उसको गुप्तवृन्दावन कहा करते हैं।

वीरभूमके राजनगरके इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राजनगरमें किसी समय पालवंशकी राजधानी थी। पालवंशीय राजाओंके कीर्त्तिकलापका चिह्न राजनगरमें दिखाई देता है। पालवंशके बाद किसी समय राजनगरमें सेन राजाओंकी भी राजधानी थी, इसका भी यथेष्ट निदर्शन मिलता है। उस समय इस स्थानका नाम लक्ष्मणनगर तथा मुसलमानोंके जमानेमें उसका अपभ्रंश लखनोर हुआ।

जो हो, इसके बाद वीरभूममें वीरराजाके नामसे एक ब्राह्मण राजाने राजत्व किया। यही वीर राजा राजनगरमें रहते थे। ये प्रबल शौर्यवीर्यशाली थे। पार्श्ववर्त्ती राजा और जमीन्दार इनको चक्रवर्त्ती राजा मानते थे। जिस समय पठान अपने प्रभावसे इस देशमें अपना शासन-विस्तार कर समग्र देशको विध्वस्त कर डालने लगे, उस समय वीर राजा अपने पराक्रम प्रभावसे पठानोंके हाथसे इस देशका उद्धार किया। राढ़ीय ब्राह्मण कुलग्रन्थमें ये बसन्त चौधरीके नामसे परिचित हैं।

इस समय असदुल्ला खां और जुनीद खां नामके दो पठान उनके पास पहुंचे। इन दो पठानोंके रूप और सौन्दर्य्यको देख इनके प्रति वीरराजाका चित्त आकर्षित हुआ। उन्होंने इन दोनोंको अपने राज्यके प्रधान कर्मचारीके पद दिये। इनमें एकको प्रधान मन्त्री और दूसरेको प्रधान सेनापतिका पद दिया गया। इनके सुशासनमें वीरभूमकी यथेष्ट उन्नति हुई। किन्तु पठानका विश्वास करना बुद्धिमान्का कर्त्तव्य नहीं। वीरराजा शौर्यवीर्यशाली थे सही, किंतु वे दूरदर्शी तथा नीतिकुशल नहीं थे। इस लिये उनको विषमय फल भोगना पड़ा।

लोगोंने देखा, कि वे ही वास्तवमें देशके शासनकर्त्ता हैं। वीरराजा केवल नामके राजा हैं। वीरराजाको मार डाल कर वे सहजही इस देशके राजा हो सकेंगे। पठानोंके हृदयमें इस ऊंची आशाका आविर्भाव हुआ। वे दिन रात इसी चिन्तामें रहते थे, कि राजाका किस तरह विनाश किया जाये। असदुल्ला वीरराजाकी महिषीका सौन्दर्य्य देख विमुग्ध हुए थे। महिषीका सौन्दर्य्य राजाकी मृत्युका कारण हुआ।

एक दिन राजा अखाड़ेमें कुश्ती लड़ रहे थे। असदुल्ला वहां उपस्थित हुआ। राजाने अखाड़ेमें आनेसे उसको मना किया। इस पर क्रुद्ध हो असदुल्लाने भाई जुनीदके साथ बलपूर्वक अखाड़ेका दरवाजा तोड़ घुस गया और गुरु भावसे राजा पर आक्रमण किया। जिस समय असदुल्ला और राजामें कुश्ती हो रही थी, उस समय दुरभिसन्धिशील जुनीद खांने इन दोनोंको निकटके

एक कुएँमें ढकेल दिया। फलतः ये दोनों मर गये। जुनीदकी इस अपारमार्थिक क्रियासे वीरराजाकी मृत्यु हो जानेके बाद राजमहिषीके सम्बन्धमें बहुतेरी बातें सुनी जाती हैं। जो हो, कुछ ही दिनके बाद राजमहिषीकी भी मृत्यु हो गई। यद्यपि राजाके सन्तान थे; किन्तु पठानोंके प्रभावसे उनको कुछ अधिकार नहीं मिल सका। जुनीदकी मृत्युके बाद बहादुर खाँ नामक एक पठानके हाथ राज्यका शासनभार आया। इसी जुनीदसे फुलियामेलमें हेड़ादोष हुआ।

बहादुर खाँका दूसरा नाम रणमस्त खाँ है। सन् १६०० ई०में उन्होंने शासनभार ग्रहण किया और वे ६५ वर्ष तक राज्यशासन करते रहे।

कहा गया है, कि उनके शासनमें वीरभूमकी यथेष्ट उन्नति हुई। राज्यमें सुखशान्ति सदा विराजमान थी। जनसंख्याकी भी वृद्धि हुई थी, कृषिकार्य्यकी उन्नति कम न हुई। इनकी मृत्युके बाद, इनका एक मात्र पुत्र ख्वाजा कमल खांने पितृसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। ख्वाजा कमल खाँके सम्बन्धमें कोई विशेष बात नहीं सुनी गई। सन् १६६७ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके बाद इनका पुत्र असदुल्ला खाँ सिंहासन पर बैठे। असदुल्ला ज्ञानी और धार्म्मिक थे। इन्होंने यथेष्ट परिमाणसे सैन्यसंख्याकी वृद्धि की और अनेक तालाब आदि खुदवाये थे। इससे राज्यका जलाभाव विदूरित हुआ। इनके जमानेमें बहुतेरी मसजिदें बनीं। इन्होंने अपने दो पुत्रोंको छोड़ परलोक गमन किया। एकका नाम बादियाजमा और दूसरेका अजमत खाँ था।

सन् १७१८ ई०में बादियाजमा राज्यके सिंहासन पर बैठे और इन्होंने मुर्शिदाबादके नवाब मुर्शिदकुली खाँसे सनद पाई थी। इस समय मुर्शिदाबादके नवाबके साथ वीरभूमके शासनकर्त्ताका नया बन्दोबस्त हुआ। इसके अनुसार बादियाजमा नवाबको ३४६०००रु० कर देने लगे। इनके शासनके समय भास्कर पण्डितके अधीनस्थ मराठोंके एक दलने आ कर बङ्गालमें लूट पाट करना आरम्भ किया। इन्होंने केन्दूडङ्गा या गञ्ज-मुरशिद नामक स्थानमें अपने खेमें खड़े किये।

बादियाजमा, इनके भाई अली नकी और वर्द्धमानके राजाके साहाय्यसे मुर्शिदाबादके नवाबने अपने देशसे डाकुओंको भगा दिया। बादियाजमाकी दो स्त्रियां थीं। पहली स्त्रीके गर्भसे इनके दो पुत्र हुए—एकका नाम अहमदजमा खाँ और दूसरेका महमदअली खाँ था। दूसरी स्त्रीके गर्भसे आसदजमा नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सिवा इसके बहादुर खाँ नामके उनके और भी एक अवैध पुत्र था। पिताकी मृत्युके बाद भ्राताओंकी सम्मतिसे आसदजमा पितृसिंहासन पर बैठे।

अली नकी खाँ और अहमदजमा खाँ वीर थे। ये मुर्शिदाबादके नवाब सिराजुद्दौल्लाके अधीन सामरिक कार्य्यमें नियुक्त हुए थे। अली नकी खाँ सिराजुद्दौल्लाका सेनापति बन कर अंग्रेजोंके साथ युद्ध करनेके लिये कलकत्ते आये थे और बागबजारमें आ कर उन्होंने अपना खेमा खड़ा किया था। इनके पराक्रमके प्रभावसे अङ्गरेज बाली और हवड़ेमें भागे। इस युद्धमें विजयलाभ कर अली नकी खाँने कलकत्तेके दक्षिणमें अपना आवास बनवाया था। वर्त्तमान अलीपुर ही वह स्थान है। अली नकीके नाम पर ही अलीपुर शहरकी सृष्टि हुई।

सिराजुद्दौलाके सैनिकोंमें अली नकी और उनका भाई अहमदजमा खाँ ये दोनों ही वीर और विक्रमशाली थे। वर्त्तमान वैद्यनाथ शहरके साथ अली नकी खाँका नाम इतिहासमें विजड़ित है। गिद्धौरके राजाकी फौजने जब वीरभूममें प्रवेश कर अली नकीके पिताको परास्त किया, तब अपने पिताके शत्रुको खदेड़नेके लिये अली नकी देवघर तक अग्रसर हुए थे। इन्होंने गिद्धौरके राजसैन्यको परास्त कर वैद्यनाथ नगर पर अधिकार जमाया। इन्होंने वैद्यनाथ-देवको पण्डोंके हाथ अर्पित कर उनसे कर लेनेकी व्यवस्था कर ये लौट गये। कहा गया है, कि उस समय वैद्यनाथके पण्डोंकी आय मासिक ५००००) थी।

अली नकी खाँ यद्यपि वीर थे, तथापि इनके हृदयमें राजपदलाभकी उच्चाशा कभी जागरित नहीं हुई। इनके पिताकी मृत्युके बाद भी आसदजमा खाँ सिंहासन पर बैठे। अली नकीने जरा भी इस कार्य्यमें बाधा न दी। राजपद बहुत समयमें ही मात्सर्य और मत्तभावके साथ

विजड़ित होता है। आसदज़मा भी राजवैभवसे प्रमत्त हो उठे। मुर्शिदाबादके नवाबकी सलाहसे वे वीरभूमके राजपद पर प्रतिष्ठित हुए थे। किन्तु नवाबके पुत्र मीरजाफर अलीकी मृत्युके बाद आसदज़मा सुयोग पा कर मुर्शिदाबादके नवाबका सर्वनाश करनेके लिये समरसज्जासे सज्जित हो चूनाखाली तक यात्रा कर चुके थे। नवाबने निरुपाय हो कर सन्धिकी प्रार्थना की। किन्तु उस पर भी आसदज़मा सन्तुष्ट न हो गङ्गा पार कर मुर्शिदाबादकी ओर अग्रसर हुए।

इस समय नवाबकी पत्नी मारी बेगमने विपदके प्रतिकारके लिये सहसा एक उपाय खोज निकाला। उन्होंने अङ्गरेजोंसे एक प्रस्ताव किया, कि यदि इस युद्धमें वे मदद करें, तो उनको एक बड़ा तालुका छोड़ दिया जायेगा। अङ्गरेजोंको मौका हाथ आया। वे चट युद्धके लिये तैयार हो गये। आसदज़मा उस समय राजनगरके दुर्गमें ठहरे हुए थे। अङ्गरेजोंने कुछ दिनों तक इसी दुर्गमें रोक कर आसदज़माको परास्त किया। इस युद्धमें आसदज़माका सेनापति अफजल खां मारा गया। इस युद्धके अन्तमें जो सन्धि हुई, उसका मर्म्म इस तरह है—

(१) वीरभूमके राजस्वका एकतृतीयांश अङ्गरेजोंको मिलेगा।

(२) अङ्गरेजोंका वीरभूममें किसी व्यापारसे सम्बन्ध न रहेगा।

(३) राजा सब प्रकारके प्रयोजनीय विषयोंमें अङ्गरेजोंका परामर्श ले कर कार्य करेंगे।

इस युद्धमें आसदज़माको अच्छी शिक्षा मिली। इसके बाद वे मुर्शिदाबादके नवाबको उचित रूपसे कर दिया करते थे। मुंशी अनूपमिश्रने उनको कर्ज दिया था। ऋण शोधन न करनेसे उनको राजाने १००० बीघा ज़मीन दी थी।

सन् १७७७ ई०में वातव्याधि रोगसे आसदज़माकी कलकत्तेमें मृत्यु हुई। आसदज़मा उदारहृदयके थे। वीरत्व तथा उनकी उच्चाशाकी बात पहले ही कही जा चुकी है। समूचे बङ्गाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी प्रबल आशा उनके हृदयमें जागरित हो उठी थी। उन्होंने २६ वर्ष तक वीरभूममें राज्यशासन किया था।

आसदज़माकी मृत्युके बाद उनका भाई बहादुर खां राजपद पानेका दावा किया। किन्तु आसदज़माकी विधवा बेगम उसमें बाधा दे न्यायपूर्वक अपने पुत्र लालबिह्नीको सिंहासन पर बैठानेकी प्रार्थना अंग्रेजोंसे की। लालबिह्नी सिंहासन पर बैठे, फिर भी वे नाबालिग थे। राजकार्य्य उनकी माताको ही देखना पड़ता था। किन्तु कुचक्री बहादुरने नाना तरहसे कुचक्र चला कर राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया। सन् १७८६ ई०में बहादुरकी मृत्यु हुई। इसके बाद उनका पुत्र महम्मदज़मा खां सिंहासन पर बैठा।

सन् १७६० ई०में महम्मद जमाने राज्यभार ग्रहण किया। उनकी नाबालिगीकी हालतमें दीवान लाला रामनाथ और मिष्टर किटिं वीरभूमका राजकार्य्य करते थे। पीछे बालिग हो कर उन्होंने स्वयं बड़ी योग्यताके साथ राज्यकार्य्य संभाला। उनके राजत्वकालमें वीरभूममें सात लाख मनुष्योंका वास था। इनमें हिन्दुओंकी संख्या एकतृतीयांश थी (सच पूछिये तो दो तृतीयांश)। लाला रामनाथकी भी यथेष्ट क्षमता थी। इन्होंने सिउड़ी शहरसे ६ मीलकी दूरी पर भाण्डीरवन नामक स्थानमें भाण्डीश्वर नामक शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कराई थी।

महम्मदज़मा खांने सन् १८०२ ई०में पितृसिंहासन और सन् १८१२ ई०में अंग्रेजोंसे सनद पाई थी। सन् १८५५ ई०में जहरज़मा नामक एक पुत्रको रख कर उन्होंने इहलोकसे प्रस्थान किया।

वीरभूमका प्राचीन राजवंश और राज्यशासनके सम्बन्धमें बहुतेरी ऐतिहासिक कहानियां हैं। किन्तु ऐतिहासिक आज भी इसके सम्बन्धमें उपादान संग्रह करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं।

सिउड़ीमें ही वीरभूमका ज़िला सदर प्रतिष्ठित है। यहां ही वीरभूमका प्रधान नगर है। मयूराक्षि नदी इसके तीन मीलकी दूरी पर प्रवाहित होती है। सिउड़ीसे ११ मीलकी दूरी पर सैंथिया रेलवेका स्टेशन है। यह शहर कलकत्तेसे १३१ मीलकी दूरी पर अवस्थित है।

वीरभूम कृषिप्रधान स्थान है। वर्द्धमान विभाग कृषिके लिये चिरप्रसिद्ध है। वीरभूमके उत्पन्न द्रव्यों में धान, ईख, यव और सरसों यथेष्ट परिमाणसे उत्पन्न होता है। अन्यान्य प्रगनेोंमें रेशमका कार्य्य होता है।

वीरमणि (सं० पु०) पुराणके अनुसार देवपुरके एक प्राचीन राजाका नाम, जिसके पुत्र रुक्माङ्गदने भगवान् रामचन्द्रके यज्ञका घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर शत्रुघ्न और हनुमान् आदिने इससे युद्ध किया था। कहते हैं, कि इस युद्धमें महादेवजीने भी वीरमणिका साथ दिया था और शत्रुघ्नको अपने पाशमें बांध लिया था। इस पर रामचन्द्रजीने आ कर उनको और अपना घोड़ा छुड़ाया था।

वीरमत्स्य (सं० पु०) एक जातिका नाम।

(रामायण २।७१।५)

वीरमय (सं० त्रि०) वीरस्वरूपे मयट्। वीरस्वरूप, वीर। तन्त्रोक्त वीरभाव, वीराचार।

वीरमर्दन (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

वीरमर्दल (सं० पु०) प्राचीन कालके एक प्रकारका ढोल, जो युद्धके समय बजाया जाता था।

वीरमल्ल—संस्कृत साहित्यके सुपरिचित मानवधर्मशास्त्र-व्याख्याके रचयिता नन्दनके प्रिय मित्र।

वीरमहेश्वर (आचार्य)—संग्रह नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

वीरमाता (सं० स्त्री०) वीराणां माता। वह स्त्री, जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीरजननी। पर्य्याय—वीरसू, वीरप्रसू।

वीरमानिन् (सं० त्रि०) वीरं-मन्यते वीर-मन-णिनि। वीराभिमानी, जिसको अपने वीर होनेका घमण्ड है।

(भागवत ९।११।२८)

वीरमार्ग (सं० पु०) वीरस्य मार्गः। वीरका मार्ग, स्वर्ग।

वीरमाहेश्वरीयतन्त्र—एक तन्त्र ग्रन्थका नाम।

वीरमित्रोदय—एक सुप्रसिद्ध व्यवस्थाशास्त्र। मित्रमिश्र इसके रचयिता हैं। इस ग्रन्थमें दायभागादि विषयोंका और व्यवहारशास्त्रकी सुचारुरूपसे मीमांसा की गई है।

वीरमिश्र (सं० पु०) वीरमित्रोदयके प्रणेता मित्रमिश्रका दूसरा नाम।

वीरमुकुन्ददेव (सं० पु०) उत्कलके सुप्रसिद्ध राजा। प्राकृत-सर्वस्वके प्रणेता मार्कण्डेय कवीन्द्रके प्रतिपालक।

मुकुन्ददेव और उत्कल शब्द देखो।

वीरमुद्रिका (सं० स्त्री०) एक तरहकी अंगुठी या छल्ला, जो प्राचीन कालमें पैरकी बीचवाली उंगलीमें पहना जाता था।

वीरया (सं० स्त्री०) पुत्रेच्छा। (ऋक् ६।६४।४)

वीरयु (सं० त्रि०) युद्धेच्छु, रणदुर्मद।

वीरयोगवह (सं० त्रि०) मध्यस्थ।

वीरयोगसह (सं० त्रि०) मध्यस्थ।

वीररजस् (सं० क्ली०) सिन्दूर।

वीररस—नाटकोंमें वर्णनीय नवरसोंमें एक रस। रौद्रत्व, वीरत्व, ओजस्विता आदि जनानेके लिये इस रसका आविर्भाव होता है।

वीरराघव (सं० पु०) १ रामचन्द्र। २ अच्युतपारम्य-स्तोत्रके प्रणेता। ३ उत्तररामचरितटीका, महावीर-चरितटीका और मालविकाग्निमित्रटीकाके रचयिता। ४ प्रयोगचन्द्रिका, प्रयोगदर्पण, भागवतचन्द्रिका नामकी भागवतपुराणटीका और सच्चरित्रसुधानिधि नामक चार ग्रन्थोंके रचयिता। ५ विश्वगुणादर्शके प्रणेता। ६ प्रयोगमुक्तावलीके प्रणेता रामके पुत्र। ७ वाक्यार्थ-दीपिकाके प्रणेता हनुमदाचार्यके गुरु।

वीरराघव आचार्य—१ असम्भवपत्र नामक न्यायविषयक ग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वसारव्याख्याके रचयिता।

वीरराघव शास्त्रिन्—तर्करत्न नामक ग्रन्थके रचयिता।

वीररेणु (सं० पु०) वीरा रेणव इव यस्य। भीमसेन।

वीरललित (सं० क्ली०) वीरकी तरह फिर भी कोमल स्वभाव। बृहत्संहितामें लिखा है, कि स्वयं भीरु होने पर भी अधीनस्थ शत्रुओंको "वीरललित" नामक शूर-चरित द्वारा शासन करे। (वराहपुराण १०४।४१)

वीरलोक (सं० पु०) वीरस्य लोकः। वीरका लोक, इन्द्रलोक, स्वर्ग।

वीरवक्षण (सं० त्रि०) ऋत्विगों द्वारा वहनीय।

(ऋक् ५।४८।२ सायण)

वीरवत् (सं० त्रि०) वीर अस्त्यर्थे मतुप्। वीरविशिष्ट, वीरयुक्त, पुत्रयुक्त, पतियुक्त।

वीरवती (सं० स्त्री०) वीरवत्-ङीप्। १ मांसरोहिणी लता। (भावप्रकाश) २ विक्रमपुराधिपति विक्रमतुङ्ग नृपतिके कर्मचारी वीरवरकी कन्या। (कथासरित्सा० ५३।९०) ३ वीरविशिष्टा, वीरयुक्ता।

वीरवत्सा (सं० स्त्री०) वीरो वत्सः पुत्रो यस्याः। वीर जननी, वीरमाता।

वीरवर (सं० त्रि०) वीर-श्रेष्ठार्थे वर। वीरश्रेष्ठ, अतिशय वीर।

वीरवरप्रताप (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वीरवल्ली (सं० स्त्री०) देवदाली नामकी लता। (वैद्यकनि०)

वीरवर्मन् (सं० पु०) व्यक्तिविशेष।

वीरवह (सं० पु०) वीर-वह-ण्वि। १ स्तोत्र द्वारा वहनीय। २ वह जो घोड़ों द्वारा खींच जाये, रथ। (ऋक् ७।९०।५) ३ शूरवहनकारी।

वीरवाक्य (सं० क्ली०) वीरस्य वाक्यं। वीरकी उक्ति।

वीरवामन (सं० पु०) एक ग्रन्थकारका नाम। अभिनव गुप्तने इसका उल्लेख किया है।

वीरविक्रम (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद। (त्रि०) २ वीरदर्प।

वीरविद् (सं० त्रि०) शक्तिसम्पन्न, कर्मठ। (अथर्व ११।९।१५)

वीरविप्लावक (सं० पु०) शूद्रद्रव्य द्वारा होमकर्त्ता, वह जो शूद्रोंके द्रव्यादिसे होम करता हो।

वीरविरुद (सं० क्ली०) कृत्रिम श्लोकभेद। शूरश्लोक देखो।

वीरवृक्ष (सं० पु०) वीर नामको वृक्षः। १ भल्लातक, भिलावाँ। २ अर्जुन वृक्ष। ३ विल्वान्तर या विल्वांतर नामक वृक्ष। ४ सावाँ नामक धान्य। पर्याय—वीरतरु, वृहद्वात, अश्मरीहर।

वीरवृन्दभट्ट—वृन्द नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। वृन्द देखो।

वीरवेतस (सं० पु०) अम्लवेतस, अम्लबेंत।

वीरव्यूह (सं० पु०) वीरों द्वारा रचित व्यूह। (रामायण ६।७०।३८)

वीरव्रत (सं० त्रि०) १ दृढ़संकल्प। 'वीरव्रतः दृढ़सङ्कल्पः' (भाग० ५।१७।२ स्वामी) २ नैष्ठिक ब्रह्मचारी वह ब्रह्मचारी, जो बहुत ही निष्ठा तथा आचारपूर्वक रहता हो। (पु०) ३ पुराणके अनुसार मधुके एक पुत्रका नाम, जो सुमनाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। (भागवत ५।१५।१५)

वीरशय (सं० पु०) वीरोंके सोनेका स्थान, रणभूमि, युद्धक्षेत्र, लड़ाईका मैदान। (भागवत ३।१।७३०)

वीरशयन (सं० क्ली०) वीराणां-शयनं। वीरोंकी शय्या, वीरशय्या, रणभूमि।

वीरशय्या (सं० स्त्री०) वीराणां शय्या। रणभूमि। (भागवत १०।४०।४४)

वीरशर्मन् (सं० पु०) योद्धृभेद। (कथासरित्सा ४७।२०९)

वीरशाक (सं० पु०) वथुआका साग।

वीरशायी (सं० त्रि०) वीर-शी-णिनि। वीरशय, रणभूमि, वीर जहां सोते हैं। (भारत १३ पर्व)

वीरशुष्म, (सं० त्रि०) शत्रुओंके क्षेपण करनेमें समर्थ बलवाला, जो शत्रुओं पर शस्त्र चलानेमें बलशाली हो।

वीरशैव (सं० पु०) शिवोपासकभेद। शिव और लिङ्गायत शब्द देखो।

वीरसरस्वती—एक प्राचीन कवि।

वीरसिंह—१ तोमरवंशसम्भूत एक राजा। देववर्माका पुत्र और कमलसिंहका पौत्र। वे सन् १३७५ ई०में विद्यमान थे। दुर्गाभक्तितरङ्गिणी, नृसिंहोदय और वीरसिंहावलोक नामक तीनों ग्रन्थ इन्हींके द्वारा रचे बताये जाते हैं।

२ गढ़ादेशके सामन्त राजा। ३ गङ्गवंशीय एक राजा। ४ गुहिलवंशीय एक नृपति। ५ कच्छपघातवंशी एक राजा। ६ तोमरवंशीय एक राजा, जिनकी ग्वालियर (गोपाचल)में राजधानी थी।

७ वर्द्धमानके एक राजा। भारतचन्द्ररायने इनकी कन्याकी विद्यारूपमें विद्यासुन्दरकी कल्पना की है।

८ देवपुरके राजा वीरमणिके भ्राता। इन्होंने राजा वीरमणिकी आज्ञासे रामचन्द्रके अश्वमेधीय अश्व हरण किया था। अतएव हनुमान्‌के साथ इनका भयङ्कर युद्ध हुआ था। इस युद्धमें महादेवने स्वयं उपस्थित हो वीरसिंहका पक्ष ले कर युद्ध किया था। (पद्मपुरा० पातालख० २४, २५, २६ अ०)

वीरसिंहदेव—एक हिन्दू राजा। राजा प्रतापरुद्रका पौत्र और मधुकर साहका पुत्र। वीरमित्रोदयप्रणेता मित्रमिश्र इनकी सभामें विद्यमान थे।

वीरसिंहदैवज्ञ—ग्रन्थालङ्कार नामक ज्योतिः ग्रन्थप्रणेता।

वीरसिंहावलोकन (सं० क्ली०) वैद्यकग्रन्थभेद। वीरसिंहने यह ग्रन्थ प्रणयन किया।

वीरसुख (सं० क्ली०) वीरका आनन्द।

वीरसू (सं० स्त्री०) वीरान् पुत्रानेव सूते इति वीर सु-क्विप्। वह माता, जो वीर प्रसव करती है। २ पुत्रप्रसविनी। (ऋक् १०।८५।४४)

वीरसूत्व (सं० क्ली०) वीरप्रसवित्व।

वीरसेन (सं० पु०) वीर सेना यस्य। १ पुण्यश्लोक नल राजाका पिता। (भारत वनप० ५२ अ०) २ आरुक या आड नामकी जड़ी जो हिमालयमें होती है। ३ हस्तिवैद्यक नामक ग्रन्थके रचयिता। ४ पाटलिपुत्रराज द्वितीय चन्द्रगुप्तके मन्त्री। ये एक सुकवि थे। इनका दूसरा नाम शाव था। ५ दाक्षिणात्यके चन्द्रवंशीय एक राजा। इनका वंशधर ब्रह्मक्षत्रियकुलचूड़ा सामन्तसेनसे बङ्गालके सेनराजवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। ६ आलु बुखारा।

वीरसेनज (सं० पु०) वीरसेनात् जायते इति जन ड। वीरसेन राजाका पुत्र, नल राजा।

वीरसोम (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार।

वीरस्थ (सं० त्रि०) १ वीरकार्य्यमें प्रवृत्त। २ वह पशु, जो यज्ञके लिये लाया गया हो।

वीरस्थान (सं० क्ली०) १ वलवत्स्थान। २ साधकोंका एक तरहका आसन जो वीरासन कहलाता है। (भारतवनप०) ३ स्वर्गलोक।

वीरस्थायिन् (सं० त्रि०) वीरस्थानस्थित।

वीरस्वामिन् (सं० पु०) एक दानवका नाम। (कथासरित्सा० ४७।१५)

वीरस्वामीभट्ट—मनुसंहिता-भाष्यकार मेधातिथिके पिता।

वीरहत्या—वीरस्य पुत्रस्य हत्या। १ पुत्रहत्या। (मनु ११।४१) २ वीरकी हत्या, वीरका नाश।

वीरहन् (सं० पु०) वीरान् हन्तीति हन-क्विप्। १ नष्टाग्निब्राह्मण, वह अग्निहोत्री ब्राह्मण, जिसकी अग्नि किसी कारणसे बुझ गई हो। २ विष्णु। (त्रि०) ३ वीरहन्ता, वीरहननकारी।

वीरहोत्र (सं० पु०) एक जनपदका नाम। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार यह जनपद विन्ध्यपर्वत पर था।

वीरा (सं० स्त्री०) वीर-टाप्। १ सुरा। २ क्षीरकाकोली। ३ आमलकी, आँवला। ४ एलवालुका, एलुवा। ५ पतिपुत्रवती, वह स्त्री जिसके पति और पुत्र हों। ६ रम्भा। ७ विदारीकन्द। ८ दुग्धिका, शतावर। ९ मलपू। १० क्षीरविदारी। (मेदिनी)

किसी किसी पुस्तकमें सुरा स्थानमें सुरा और विदारी स्थानमें गम्भारी देखा जाता है।

११ काकोली, महाशतावरी। १२ गृहकन्या। १३ ब्राह्मी। १४ अतिविषा। (राजनि०) १५ सोसमका वृक्ष, शिंशिया वृक्ष। (रत्नमाला) १६ करन्धमराजपत्नी। (मार्कण्डेयपुराण १२३।१) १७ नदीविशेष। (भारत ६।९।२२) १८ विक्रमशालिनी। (मार्कण्डेयपुराण ११२५।७) १९ घिकवार। २० जटामांसी। २१ भूम्यामलकी, भूईं आँवला। २२ भूमिकुष्माण्ड। २३ पृश्निपर्णी, पिठवन। २४ गृहइला। २५ कृष्णातिविषा, काला अतिविषा।

वीराचारी (सं० पु०) एक प्रकारके वाममार्गी या शैव, जो अपने इष्टदेवताओंकी वीरभावसे उपासना करते हैं। ये लोग मद्यको शक्ति और मांसको शिवस्वरूप मानते हैं और इन दोनोंके भक्तोंको भैरव समझते हैं। ये लोग चक्रमें बैठ कर पूजन करते हैं और बीच बीच किसी स्त्रीको काली मान कर उस पर मद्य-मांस आदि चढ़ाते हैं। ये लोग प्रायः शव मुर्दा ला कर उसकी पूजा करते हैं और उसीसे अनेक प्रकारके साधन और पूजन करते हैं। विस्तृत विवरण पश्वाचारी शब्दमें देखो।

वीरान्तक (सं० पु०) १ वह जो वीरोंका नाश करता हो। २ अर्जुनवृक्ष।

वीराद्र (सं० पु०) अर्जुनवृक्ष।

वीरान (फा० वि०) १ उजाड़ा हुआ, जिसमें आबादी रह गई हो। जैसे—यह बस्ती वीरान हो गई है। २ जिसकी शोभा नष्ट हो गई हो, श्रीहीन।

वीरानक (सं० क्ली०) ग्रामभेद।

वीरापुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

वीराम्ल (सं० पु०) अमलवेत ।

वीरायतच्छदा (सं० स्त्री०) कदलीवृक्ष, केलेका वृक्ष ।

वीरारुक (सं० पु०) आरुक या आड़ू नामकी जड़ी, जो हिमालयमें होती है ।

वीराशंसन (सं० क्ली०) वीरान् अशंसयति अद्य स्थास्यामि वा नवेति चिन्तां जनयतीति आ शंस-णिच्-ल्यु । अतिभयप्रदा युद्धभूमि, वह युद्धभूमि जो बहुत ही भीषण और भयानक जान पड़ती हो ।

वीराष्टक (सं० पु०) स्कन्दानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम ।

वीरासन (सं० क्ली०) वीराणां साधकानामासनं । १ साधकों का एक आसन । इसी आसन पर बैठ कर साधक साधना किया करते हैं । २ वीरस्थान । ३ उद्धारस्थान ।

वीरिण (सं० पु०) वीरणतृण, (Andropogon-muritons) ।

वीरिणी (सं० स्त्री०) १ वीरण प्रजापतिकी कन्या असिक्री जो दक्षको ब्याही थी । वीरः पुत्रोऽस्यास्तीति वीर-इनि ङीप् । २ वह स्त्री जिसे पुत्र हों, पुत्रवती । (ऋक् १०।८६।९) ३ एक प्राचीन नदीका नाम ।

वीरुध (सं० स्त्री०) विशेषेण रुणद्धि वृक्षानन्यान् वि-रुध क्विप् । 'अन्येषामपीति दीर्घः, अथवा विरोहतीति वारुत्, विपूर्व्वस्य रुहेच क्विपि धकारो विधीयते (इति काशिका ७।३।५३) १ विस्तृता लता । पर्य्याय—गुल्मिनी, उलप, वीरुधा, प्रतना, कक्ष ।

२ ओषधि । (ऋक् १।६।५) (पु०) ३ वृक्षमात्र । (ऋक् ९।११३।२)

भागवतटीकामें लता और वीरुधका भेद इस तरह लिखा है—

"वनस्पत्योषधिलता त्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ।" (भागवत ३।१०।१)

जो बिना पुष्पके फल देती है वह वनस्पति कहलाती है । फल पकने पर जो मर जाती है, वह ओषधि, जो आरोहणकी अपेक्षा रखती है, वह लता और जो सब लतायें काठिन्य द्वारा आरोहणकी अपेक्षा नहीं करती हैं वह वीरुध कहलाती है । ४ विटपी । ५ वल्ली । ६ कक्ष ।

वीरुधि (सं० स्त्री०) लताभेद । (वराह वृ० ५४।८७)

वीरेण्य (सं० त्रि०) अतिशय वीर । (ऋक् १०।४।१०)

वीरेश (सं० पु०) वीराणामीशः । शिव, वीरेश्वर ।

वीरेश्वर (सं० पु०) वीराणामीश्वरः । १ महादेव । काशीखण्डमें वीरेश्वर शिवके विषयमें वर्णन है । (काशीख० ७९-८३ अ०)

निःसन्तान व्यक्ति यदि संकल्प कर एक वर्ष तक वीरेश्वर महादेवका स्तव सुने, तो उनको पुत्रसन्तान पैदा होता है ।

२ मैथिलोंकी दशकर्मपद्धतिके कर्त्ता । ३ मैथिलोंकी दशकर्मपद्धति । ४ जगदीशी टीकाकर्त्ता । ५ ज्येष्ठापूजाविलासके रचयिता । ६ दिवाकरपद्धतिप्रकाशविवरणके प्रणेता । ७ आह्निकमञ्जरी टीकाके रचयिता । ये हरिपण्डितके पुत्र और शिवपण्डितके पौत्र थे । पुण्यस्तम्भमें ये रहते थे । सन् १५९८ ई०में इन्होंने ग्रन्थ रचना की थी । ८ विवादार्णवभञ्जनसङ्कलयिता । ९ एक धर्मशास्त्रकार ।

वीरेश्वरपण्डित—१ रसरत्नावली नामक अलङ्कारशास्त्रके प्रणेता । २ जगन्नाथपण्डितराजके गुरु ।

वीरेश्वरभट्ट—१ संशयतत्त्वनिरुपणके प्रणेता । विश्वनाथके पुत्र । २ कवीन्द्रचन्द्रोदयधृत एक कवि ।

वीरेश्वर मौद्गल्य—अन्योक्तिशतकप्रणेता । ये द्राविड़के रहनेवाले हैं । इनके पिताका नाम हरि है ।

वीरेश्वरसूनु—दानवाक्यावलीके रचयिता ।

वीरेश्वरानन्द—योगरत्नाकरके प्रणेता । हरिहरानन्दके पुत्र ।

वीरोज्झा (सं० पु०) होमकर्त्ता, होम करनेवाला ।

वीरोपजीविक—जिनकी उपजीविका अग्निहोत्र है । अर्थात् जो अग्निहोत्र द्वारा अपनी जीविका-निर्वाह करते हों ।

वीर्त्सा (सं० स्त्री०) व्यर्थकरणेच्छा । (अथर्व ५।७।२)

वीर्य (सं० क्ली०) वीरे साधु तत्र साधुः इति यत्, यद्वा वीर्यतेऽनेनेति वीर विक्रान्तौ (अन्तो यत् । पा ३।१।९७) इति यत्, यद्वा वीरस्य भावः यत् । १ चरमधातु । पर्य्याय—शुक्र, तेजः, रेतः, बीज, इन्द्रिय । (अमर) शुक्र देखो ।

२ द्रव्यगत शक्ति, पृथिव्यादि यावतीय पदार्थके सारभागको वीर्य कहते हैं । यह दो तरहका है—चिन्त्यक्रियाशक्ति और अचिन्त्यक्रियाशक्ति ।

भावप्रकाशमें लिखा है—द्रव्यमात्रका वीर्य्य दो तरहका होता है। क्योंकि त्रिभुवन आग्नेय और सोम-गुणात्मक है। वीर्यका गुण—उष्णवीर्य, वायु और कफ-नाशक है और पित्त तथा जीर्णताका उत्पादक है; शीत-वीर्य वातश्लेष्मिक रोगजनक और पित्तनाशक है। दूसरा—उष्णवीर्य, भ्रम, पिपासा, ग्लानि, घर्म तथा दाह उत्पादक है। शीतवीर्य सुखजनक, जीवन-प्रदायक, मलस्तम्भकारक तथा रक्तपित्तका प्रसन्नता-कारक है।

सुश्रुतमें लिखा हैं, कि कुछ लोगोंका कहना है, कि वीर्य ही प्रधान है। क्योंकि वीर्यसे ही औषधकी क्रियायें सम्पन्न होती हैं। जगत्, अग्नि और सोमगुणविशिष्ट होनेकी वजह उनसे उत्पन्न औषधका वीर्य दो तरहका होता है—उष्ण और शीत। कुछ लोगोंका यह कहना है, कि वीर्य आठ प्रकारका होता है। जैसे—उष्ण, शीत, स्निग्ध, रुक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु और तीक्ष्ण। ये सब वीर्य अपने बल और गुणके उत्कर्षके कारण रसको अभिभूत कर अपने काम किया करते हैं।

उष्ण और तीक्ष्णवीर्य द्वारा वायुका, शीत, मृदु या पिच्छिल वीर्य द्वारा पित्तका और तीक्ष्ण, रुक्ष या विशद वीर्यसे श्लेष्मका नाश होता है। गुरुपाकसे वातपित्त और लघुपाकसे श्लेष्मा प्रशमित होतो है। मृदु, शीतल और उष्ण गुण स्पर्श द्वारा, स्निग्ध और रुक्ष गुण द्वारा और पिच्छिल तथा विशद गुण दर्शन और स्पर्शन द्वारा जाना जा सकता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४१ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि दूसरेके वीर्य द्वारा अकामत उदरपात करने पर प्रायश्चित्तसे शुद्ध हो जाता है। किन्तु जो इच्छापूर्वक उदरपात करते हैं, उनको कर्मभोग द्वारा ही शुद्धि होती। ये दैव और पितृकार्यके अधिकारी नहीं होते और साठ हजार वर्ष नरकमें रहनेके बाद शुद्ध होते हैं।

(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्मख० ४७ अ०)

वीर्यकाम (सं० त्रि०) प्रभावकामनाकारी। (ऐतरेयब्रा० १।५)

वीर्यकृत् (सं० त्रि०) वीर्य कृ-क्विप्। वीर्यकारी, बलकारी। (शुक्लयजुः १०।२५ महीधर)

वीर्यकृत (सं० त्रि०) प्राप्तवीर्य। बलवन्त।

(तैत्तिरीयब्रा० २।७।१७।३)

वीर्यचन्द्र (सं० पु०) राजभेद। इनकी कन्या वीरा-राजा करन्धमकी ब्याही हुई। (मार्क०पु० १२३।१)

वीर्यज (सं० पु०) वीर्याज्जायते इति जन-ड। पुत्र।

(भाग० ३।५।१६)

वीर्यतम (सं० त्रि०) वीर्यवत्तम, श्रेष्ठवीर्यशाली, वह जो बहुत बड़ा बलवान् हो।

वीर्यधर (सं० पु०) वर्षपुरुषभेद। ये प्लक्षद्वीपमें रहने-वाले क्षत्रिय हैं। (भाग० ५।२०।११)

वीर्यपन (सं० त्रि०) १ वीर्यशुल्क। २ विदर्भकन्या।

(भाग० ४।२८।२९)

वीर्यपारमिता (सं० स्त्री०) पारमिता देखो।

वीर्यप्रवाद (सं० क्ली०) जैनियोंके १४ पूर्ववादोंके अन्तर्गत तीसरा पूर्व।

वीर्यभद्र (सं० पु०) बौद्धभेद। (तारनाथ)

वीर्यमत्त (सं० त्रि०) १ बलदृप्त। २ तेजोन्मत्त।

वीर्यमित्र - एक प्राचीन कवि।

वीर्यवत् (सं० त्रि०) वीर्यमस्यास्तीति वीर्य मतुप् मस्य वत्वम्। १ बलवान्, शूर, वीर्यशाली, वीर्ययुक्त। २ मांसल। (शब्दरत्नावली)

वीर्यवत्तरत्व (सं० क्ली०) अधिकतर वीर्यवन्त।

वीर्यवत्त्व (सं० क्ली०) वीर्यवानका भाव या धर्म। बलशालीका भाव या धर्म, वीरत्व। (भारत विराटपर्व)

वीर्यवाही (सं० त्रि०) वीर्यवहनकारी।

(शार्ङ्गस० १।५।२४)

वीर्यवृद्धिकर (सं० क्ली०) वीर्याणां वृद्धिकरं। शुक्र-वर्द्धक औषधादि। पर्याय—वृष्य, वाजीकरण, बीज-कृत्। (राजनिर्घण्ट)

वीर्यशुल्क (सं० त्रि०) वीर्यपण।

वीर्यशुल्का (सं० स्त्री०) प्रतिज्ञामें आबद्ध। राजा जनकने अयोनिजा जानकीको वीर्यशुल्का (अर्थात् जो इस धनुष पर ज्यारोपण आदि कर रख सकेंगे, वही इस कन्याको लाभ कर सकेंगे। इस तरहकी पणमें आबद्ध) रखा था।

वीर्यसत्त्ववत् (सं० त्रि०) वीरत्वयुक्त। मनुष्यत्व-विशिष्ट। (भारत० वनप०)

वीर्यसह (सं० पु०) राजा सौदासका एक पुत्र।

(रामा० ७।६५।१०)

वीर्यसेन—बौद्ध यतिभेद। ये वीरसेन नामसे भी परिचित थे।

वीर्याहारी—एक यक्षका नाम, जो दुःसह नामक यक्षकी कन्याके गर्भसे किसी चोरके वीर्यसे उत्पन्न हुआ था। कहते हैं, कि जो लोग कदाचारी होते हैं या विना हाथ पैर धोये रसोई घरमें जाते हैं, उनके घरमें यह यक्ष अपने और दो भाइयोंके साथ रहता है। सिवा इसके जिसके घरमें रात दिन झगड़ा विवाद होता है, वहां और गाय आदि पशुओंके चरागाहमें तथा खलिहानमें भी इनकी गतिविधि रहती है।

वीर्यान्तराय (सं० पु०) जैनधर्मके अनुसार वह पापकर्म जिसका उदय होने पर जीव हृष्टपुष्ट रहते हुए भी शक्तिविहीन हो जाता है और कुछ पराक्रम नहीं कर सकता।

वीर्या (सं० स्त्री०) वीर्यते अनयेति वृ-यत् (अचो यत् इति यत ततष्टाप्) वीर्य। (भरत)

वीर्यावत् (सं० त्रि०) वीर्यवत्।

वीवध (सं० पु०) १ धान्यतण्डुलादि, चावल आदि अन्न। (माघ ३।६४) २ पथ। (भरत) ३ क्षीर आदिका भार। (शब्दरत्ना०) ४ वार्त्ता।

वीवधिक (सं० त्रि०) वीवधेन हरतीति विवध-ठन् (विभाषा वीवध विवधात्। पा ४।४।१७) भारवाहक, काँवरि ढोनेवाला।

वीवर (Beaver)—स्वनामख्यात जन्तुविशेष।

वीसर्प (सं० पु०) विसर्प देखो।

वीहार (सं० पु०) विहरन्त्यत्रेति वि-हृ-घञ् उपसर्गस्य दीर्घः। १ महालय, बौद्धमन्दिर। २ विहार।

वुजन—१ मुद्रित होना। २ छिद्र या गड्ढेको भरवा देना।

वुझन—१ ज्ञातकरण, जनाना। २ सान्त्वना वाक्यसे शोकाद्यभिभूत व्यक्तिको सुस्थ करना।

वुद्धि (सं० स्त्री०) वुध-क्तिन्। आत्माका गुणविशेष। पवर्गका वुद्धि शब्द देखो।

वृंहण (सं० त्रि०) वृंहि-ल्यु। पुष्टिकारक। (शब्दच०) २ एक प्रकारका धूमपान। (भावप्र०) (स्त्री०) ३ अश्वगन्धा। ४ कपिलद्राक्षा, मुनक्का। ५ भूमिकुष्माण्ड, भुँइ कुम्हड़ा। (वैद्यकनि०) ६ वराहमांसमें पकाया यवागू। (चरक सूत्रस्था० २ अ०)

वृंहणवस्ति (सं० स्त्री०) निरुह वस्तिभेद। (भावप्र०)

वृंहणीयवर्ग (सं० पु०) वृंहणजन्य हितकर कषायवर्ग, द्रव्यगणभेद, यह गण जैसे—क्षीरलता, क्षीराई, वेड़ेला, काकोली, क्षीरकाकोली, श्वेतवेड़ेला, पीतवेड़ेला, वन-कपास, भूमिकुष्माण्ड। (चरक सूत्रस्था० ४ अ०)

वृंहित (सं० क्ली०) वृंहि-क्त। हस्तिगर्जन, हाथीका चिंघाड़। पर्याय—करिगर्जित।

वृक (सं० पु०) वृणोतीति वृ (सृवृभूशुषिमुषिभ्यः कक्। उण् ३।४१) १ कुत्तेके आकारवाला हरिणको मारनेवाला जन्तुविशेष। हुंड़ार, भेड़िया। (राजनि०) २ काक। (उज्ज्वल) ३ पेचक। ४ वकवृक्ष। ५ शृगाल, स्यार, गीदड़। (मनु ८।२३५) ६ क्षत्रिय। ७ चोर। ८ वज्र। ६ अगस्तका पेड़। १० गंधाविरोजा। ११ सरल-द्रव।

वृककर्मन् (सं० पु०) एक असुरका नाम।

वृकखण्ड (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वृकगर्त्त (सं० क्ली०) एक प्राचीन जनपदका नाम।

वृकग्राह (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। वार्कग्राहिक देखो।

वृकजम्भ (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। वार्कजम्भ देखो।

वृकतात् (सं० स्त्री०) १ वृककी तरह हिंस्रस्वभावापन्न। (ऋक् ३।३४। ६ सायण)

वृकति (सं० स्त्री०) अत्यन्त कृपण। २ निष्ठुर, डाकू, हत्याकारी। ३ जीमूतके एक पुत्रका नाम। ४ कृष्णके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वृकतेजस (सं० पु०) शिलष्टिके एक पुत्रका नाम।

वृकदंत (सं० पु०) पुराणानुसार एक राक्षसका नाम। इसकी कन्या सानन्दिनी कुम्भकर्णको ब्याही थी।

वृकदंस (सं० पु०) वृकान् दशतीति दनश अण्। कुत्ता। (हेम)

वृकदीप्ति (सं० स्त्री०) कृष्णके एक पुत्रका नाम।

वृकदेव—वसुदेवके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वृकदेवा (सं० स्त्री०) वृकदेवा, देवकको कन्या और वसुदेवकी पत्नीका दूसरा नाम।

वृकद्वरस् (सं० त्रि०) संवृतद्वार। (ऋक् २।३०।४ सायण)

वृकधूप (सं० पु०) वृकोऽनेकधूप एव धूपः। वृकः सरलद्रवस्तत्प्रधानो धूपो वा। वह धूप जो अनेक प्रकारके सुगन्धि द्रव्योंकी सहायतासे तय्यार किया गया हो, दशाङ्गादिधूप। २ सरल वृक्षका निर्यास, तारपीन।

वृकधूर्त्त (सं० पु०) धूर्तो वृकः। राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। स्यार।

वृकनिवृति (सं० पु०) कृष्णके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वृकबन्धु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वृकरथ (सं० पु०) कर्णके एक भाईका नाम। (भारत द्रोणपर्व)

वृकल (सं० पु०) शिलष्टिके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

वृकला (सं० स्त्री०) १ नाड़ी। २ एक रमणीका नाम। (पा ४।१।६६)

वृकवंचिक (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

वृकस्थल (सं० क्ली०) ग्रामभेद। (भारत उद्योगपर्व)

वृका (सं० स्त्री०) १ अम्वष्ठ या पाढा नामकी लता। २ प्राचीन कालका एक परिमाण, जो दो सूर्पोंके बराबर होता था।

वृकाक्षी (सं० स्त्री०) वृकस्याक्षीव अक्षि चिह्नं यस्याः। १ त्रिवृत्। २ निसोथ।

वृकाजिन (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

वृकायु (सं० त्रि०) १ जङ्गली कुत्ता। २ चोर। (ऋक् १०।१३३।४ सायण)

वृकाराति (सं० पु०) वृकस्य अरातिः। कुत्ता।

वृकारि (सं० पु०) वृकस्यारिः। कुत्ता।

वृकाश्व (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। बहुवचनमें इनके वंशधरोंका बोध होता है।

वृकाश्वकि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

वृकास्य (सं० पु०) कृष्णपुत्रभेद। इन्हें वृकाश्व भी कहते हैं।

वृकोदर (सं० पु०) वृकस्येवोदरो यस्य यद्वा वृकः वृक नामको अग्निरुदरे यस्य। भीमसेन। कहते हैं, कि भीमके पेटमें वृक नामकी विकट अग्नि थी, इसीसे उनका यह नाम हुआ। (मत्स्यपु० ६५ अ०)

वृकोदरमय (सं० त्रि०) वृकोदरव्याप्त।

वृक्क (सं० पु०) १ गुरदा। २ आगेवाला महीना।

वृक्कक (सं० पु०) मुत्राशय। (Kidney)

वृक्का (सं० स्त्री०) हृदय।

वृक्ण (सं० त्रि०) व्रश्च-क्त। छिन्न, कटा हुआ। (अमर)

वृक्तबर्हिस (सं० त्रि०) स्तीर्णबर्हिस्। (ऋक् ३।२।५ सायण) जिसने बर्हिः परिष्कार कर दिया है या बिछा दिया है।

वृक्ति (सं० स्त्री०) बुनाई।

वृक्या (सं० स्त्री०) वृकयन्त।

वृक्ष (सं० पु०) व्रश्च छेदने (स्नुव्रश्चिकृत्युषिभ्यः कित्। उण् ३।६६) इति स-सच कित्, वृक्षवरणे, अतो ऋच्या वृणोति वृक्ष इति सिद्धे प्रपञ्चार्थं व्रश्चि ग्रहणम्। स्थावरयोनिविशेष। पेड़।

हेमचन्द्रने वृक्षलता आदिको ६ प्रकारकी जातिका निर्देश किया है। कुरण्ट आदि वृक्ष अग्रबीज, उत्पलादि मूलक, ईख आदि पर्वयोनि, सल्लकी आदि स्कन्धज, शाली आदि बीजरुह और तृण आदि संमुर्च्छजात—ये छः प्रकारके वृक्ष हैं।

खास कर वृक्ष उसे कहते हैं, जिसका एक ही मोटा और भारी तना होता है और जो जमीनसे प्रायः सीधा ऊपरकी ओर जाता है।

वृक्षकंद (सं० पु०) विदारीकन्द।

वृक्षक (सं० पु०) वृक्ष-कन्। १ क्षुद्रवृक्ष, छोटा पेड़। २ पेड़, दरख्त। ३ कुटका पेड़।

वृक्षकुक्कुट (सं० पु०) जङ्गली कुत्ता।

वृक्षखण्ड (सं० पु०) कुञ्ज।

वृक्षचन्द्र (सं० पु०) राजभेद। (तारनाथ)

वृक्षचर (सं० पु०) वृक्षे चरतीति चर-ट। वानर, वन्दर। (धनञ्जय)

ये एक वृक्षसे दूसरे वृक्ष पर सदा घूमते रहते हैं, इसीसे इनका नाम वृक्षचर पड़ा है।

वृक्षच्छाय (सं० क्लो०) बहूनां वृक्षाणां छाया, बहुत्वे नपुंसकत्वं। बहु वृक्षकी छायाका अर्थ अनेक वृक्षकी छाया है। एक या दो वृक्षकी छाया समझनेसे वृक्षच्छाया होता है। 'वृक्षाणां छाया' बहुवचनमें यह क्लीवलिङ्ग हो जाता है।

वृक्षतक्षक (सं० पु०) गिलहरी।

वृक्षतल (सं० क्ली०) वृक्षका निचला हिस्सा।

वृक्षदल (सं० क्ली०) वृक्षशाखा।

वृक्षधुप (सं० पु०) वृक्षोऽपि धुपस्तत् साधनं। सरलद्रुम, श्रीवेष्ट।

वृक्षनाथ (सं० पु०) वृक्षाणां नाथः। वटवृक्ष, बरगदका पेड़। (राजनि०)

वृक्षनिर्यास (सं० पु०) वृक्षस्य निर्यासः। वृक्षका निर्यास, वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षपर्ण (सं० क्ली०) वृक्षस्य पर्णं। वृक्षका पत्ता, पेड़की पत्ती।

वृक्षपाक (सं० पु०) वटवृक्ष, बरगदका पेड़।

वृक्षपाल (सं० पु०) जङ्गली शाल।

वृक्षपुरी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरका नाम।

वृक्षप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) स्मृतिशास्त्रविहित अश्वत्थ (पीपल) आदि वृक्षकी प्रतिष्ठा।

वृक्षभक्षा (सं० स्त्री०) वृक्षं भक्षयतीति भक्ष-अच् तत-ष्टाप्। १ बरगाछ नामका पौधा। २ वंदाक, वंदा।

वृक्षभवन (सं० क्ली०) वृक्षस्थितं भवनं। वृक्षकोटर, पेड़का खोड़ला।

वृक्षभिद् (सं० स्त्री०) वृक्षं भिनत्तीति भिद्-क्विप्। वासी, अस्त्रभेद, बढ़ईका अस्त्र।

वृक्षभेदिन् (सं० पु०) वृक्षं भिनत्तीति भिद्-णिनि। १ वृक्षादन। २ कुल्हाड़ी।

वृक्षमय (सं० त्रि०) वृक्ष मयट् स्वरूपार्थे। वृक्षस्वरूप।

वृक्षमर्कटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य मर्कटिका। जन्तु-विशेष, कठविड़ाल।

वृक्षमूल (सं० क्ली०) वृक्षस्य मूलं। वृक्षका मूल, पेड़की जड़।

वृक्षमूलिक (सं० त्रि०) वृक्ष या पेड़के मूलसे सम्बन्ध रखनेवाला।

वृक्षमृद्रु (सं० पु०) वृक्षमृदि भवतीति भू-क्विप्। जल-वेतस, जलवेंत।

वृक्षराज् (सं० पु०) वृक्षाधिप, पीपलका पेड़।

वृक्षराज (सं० पु०) वृक्षाणां राजा, समासान्त टच्। १ वृक्षोंका राजा, श्रेष्ठ वृक्ष। २ पारिजात।

वृक्षरुहा (सं० स्त्री०) वृक्षे रोहतीति रुह-क ततष्टाप्। १ रुद्रवंती, वन्दष्टा, वंदाक। २ अमृतवेल। ३ जतुका नामकी लता। ४ विदारीकन्द। ५ ककही या कंघी नामका पौधा। ६ पुष्करमूल।

वृक्षवाटिका (सं० स्त्री०) वृक्षस्य वाटिका। १ अमात्य-गणिकागेहोपवन, उपवन, निकुञ्ज, बाग, बगीचा।

वृक्षवाटी (सं० स्त्री०) अमात्यगणिकाका उपवनवेष्टित गृह।

वृक्षवास्यनिकेत (सं० पु०) एक यक्षका नाम।

वृक्षश (सं० पु०) गिरगिट।

वृक्षशायिक (सं० पु०) एक प्रकारका बन्दर।

वृक्षशायिका (सं० स्त्री०) कठविड़ाल, गिलहरी।

वृक्षसंकट (सं० क्ली०) १ वृक्षराजिवेष्टित पतला या कम चौड़ा पथ। २ वह पगडंडी जो घने वृक्षोंके बीचसे गई हो।

वृक्षसर्पी (सं० स्त्री०) वृक्ष पर रहनेवाली सांपिन या नागिन।

वृक्षसारक (सं० पु०) द्रोणपुष्पी, गूमा।

वृक्षस्नेह (सं० पु०) वृक्षस्य: स्नेहः। वृक्षनिर्गत रस, पेड़का लासा या गोंद।

वृक्षाग्र (सं० क्ली०) वृक्षका अग्रभाग या शिखरदेश।

वृक्षादन (सं० पु०) वृक्षमत्ति नाशयतीति अद्-ल्यु। १ वृक्ष-भेदी। २ अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़। ३ पियालका वृक्ष। ४ कुल्हाड़ी। ५ मधुछत्र।

वृक्षादनी (सं० स्त्री०) वृक्षादन-स्त्रियां ङीप्। १ वन्दा, बंदा। २ विदारीकन्द, भूंई कुम्हड़ा।

वृक्षादिरुहक, वृक्षादिरूढ़क (सं० क्ली०) आलिङ्गन।

वृक्षाम्ल (सं० क्ली०) वृक्षस्याम्लं। १ महाम्ल, इमली। २ चुक नामकी खटाई। ३ आमलकुटा। गुण—कटु,

कषाय, उष्ण और कफ, अर्श (ववासीर), तृष्णा, वायु, उदर, गुल्म, अतीसार और व्रणदोषनाशक है।

(पु०) वृक्षे अम्लो यस्य। ४ अमड़ा। ५ अम्लवेत।

वृक्षायुर्वेद (सं० पु०) वृक्षस्यायुर्वेदः। वृक्षोंका चिकित्सा-शास्त्र। मनुष्योंकी तरह वृक्षोंकी विकृति आदि होने पर औषध द्वारा उनकी भी चिकित्सा की जाती है।

वृहत्संहितामें वृक्षोंके रोपने, रखने और चिकित्सा आदिका विषय इस तरह लिखा है—किसी भी जलाशयके वृक्ष न रहनेसे वह मनोहर दिखाई नहीं देता, इसलिये जलाशयके निकट वृक्ष आदि लगाना उचित है। नम्र मिट्टी सब तरहके वृक्षोंके लिये हितकारी है। इसमें तिल बोना चाहिये। अरिष्ट, अशोक, पुन्नाग, शिरीष और प्रियंगु आदि वृक्ष मङ्गलजनक हैं, इससे इनको गृहके निकट या बागमें लगाना चाहिये। कटहल (पनस), अशोक, केला, जामुन, अनार (दाड़िम), द्राक्षा (अंगूर), पालोवत, वीजपूरक और अतिमुक्तक, इन सब वृक्षोंका काण्ड या मूल गोबर द्वारा लेपन कर रोपण करना चाहिये। अथवा यत्नके साथ मूल काट कर केवल स्कन्ध हीको रोपना उचित है। जिन वृक्षोंकी शाखायें नहीं हैं, उनको शिशिर ऋतुमें, शाखा पैदा होने पर हिमागममें और सुन्दर स्कन्धसम्पन्न वृक्ष वर्षाऋतुमें किसी ओर प्रति रोपण करना चाहिये। घृत, उशीर, तिल, मधु, विड़ङ्ग, क्षीर और गोवर द्वारा मूलसे स्कन्ध तक लेप कर उनको पुनः रोपना और संक्रामण रना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे वृक्ष पनप आता है।

ग्रीष्मकालमें सायं और प्रातःकालमें, शीत या जाड़ेमें दिनके मध्यभागमें और वरसातमें मिट्टी सूख जानेसे रोपे हुए वृक्षमें जल डालना चाहिये। जामुन, वेंत, वाणीर, कदम्ब, उडुम्बर (गूलर), अर्जुन, वीजपूरक, मृद्वीका, लकुच, दाड़िम, वञ्जूल, नक्तमाल, तिलक, पनस, तिमिर और आम्रातक, ये १६ प्रकारके वृक्ष अनूपज नामसे विख्यात है। उक्त वृक्ष २० हाथको दूरी पर रोपण करनेसे उत्तम, १६ हाथकी दूरी पर मध्यम, १२ हाथको दूरी पर रोपित होनेसे निकृष्ट होते हैं।

जो वृक्ष इससे कम दूरी पर रोपे जाते हैं, वे परस्पर स्पर्शी तथा मूलमें मिश्रित हो जानेके कारण सम्यक् फल नहीं देते। शीत, वात और आतप आदि द्वारा भी वृक्षोंको रोग होता है। इससे उनके पत्ते पीले और पत्तोंमें इसकी वृद्धि नहीं होती और शाखाशोष और रसस्राव होता रहता है। पहले शस्त्र द्वारा इनका विशोधन कर विड़ङ्ग, घृत और पङ्क (पांक) द्वारा प्रलेप कर क्षीरजलसे सिंचना चाहिये, जिस वृक्षका फल नष्ट हो जाता हो, उसकी जड़मे कुलथी, उड़द, मूंग, तिल और शीतल जलसे सिंचनेसे उसके फल और पुष्पको वृद्धि होती है।

वकरी और भेंड़की विष्ठाका चूर्ण दो आढ़क, तिल एक आढ़क, शक्तू एक प्रस्थ और सर्व तुल्य परिमाण गोमांस, ६४ सेर जलमें अच्छी तरह पर्यूषित कर वनस्पति, वल्ली, गुल्म और लतादिकी जड़को सिंचना चाहिये। इससे फल भी अधिक लगता है।

किसी वीजको दश दिनों तक दूधमें भावित कर पीछे हाथमें घी लगा कर मलने और पीछे गोवर वहुत वार रखने तथा सूअर और हरिणके मांसको विशेषरूपसे सुगंधित करना चाहिये। इसके बाद उसे मछली और शूकरका वसासमन्वित कर मिट्टीमें गाड़ना या रोपना चाहिये। क्षीरसंयुक्त जल द्वारा अवसेचित होने पर यह कुसुमयुक्त होगा। जौ, उड़द और तिलचूर्ण, शक्तू और पूतिमांसके जलसे सिंचन और हल्दीसे धुपित होनेसे इमली वृक्षमें फल निकल आते हैं। वन्यास्फोत, धात्री, धव और वासिकाका मूल और पलाशिनी, वेतस, सूर्य्यवल्ली, श्यामा, अतिमुक्तक और अष्टमूली—ये सब कपित्थ वृक्षमें फल उत्पन्न करनेके उपादान हैं। शुभ नक्षत्रमें वृक्षोंको रोपना चाहिये। रोहिणी, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरभाद्रपद, मृगशिरा, चित्रा, अनुराधा, रेवती, मूला, विशाखा, पुष्या, श्रवणा, अश्विनी और हस्ता—इन्हीं सब नक्षत्रोंमें वृक्ष रोपना उचित हैं। (वृहत्सं० ५५ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि भवनके उत्तर प्लक्ष, पूर्व ओर वट, दक्षिणमें आम्र और पश्चिममें अश्वत्थ वृक्ष रोपण करनेसे कल्याणकर होता है। गृहके निकट दक्षिण ओर उत्पन्न कण्टकद्रुम सबके लिये मङ्गलदायक है। गृहके समीप उद्यान रखना उचित है। द्विज और चन्द्रकी

पूजा कर वृक्ष ग्रहण या रोपण करना उचित है। वायव्य, हस्त, प्रजेश, वैष्णव और मूल इन पांच नक्षत्रोंमें वृक्ष रोपण करना चाहिये। नदीके प्रवाह उद्यानमें या क्षेत्रमें प्रवेश करना चाहिये। नदी आदि न रहनेसे पोखरेका जल जिससे उसमें प्रवेश कर सके, ऐसा उपाय करना उचित है।

अरिष्टाशोक, पुन्नाग, शिरीष, प्रियङ्गु, अशोक, कदली, जामुन, वकुल, दाड़िम, इन सब वृक्षोंको रोपण कर ग्रीष्ममें सायं और प्रातःकाल, शीत ऋतुमें एक दिनके बाद और वर्षा ऋतुमें मिट्टी सूख जाने पर जलसे सिंचना चाहिये। एक स्थानमें वृक्षको रोप कर उसके बीस हाथ दूरी पर दूसरा वृक्ष रोपना चाहिये। इस तरह रोपण करनेसे उत्तम होता है, १६ हाथ दूरी पर रोपनेसे मध्यम और १२ हाथ दूरी पर रोपनेसे निकृष्ट और फलहीन हो जाते हैं। वृक्षका फल जब सब झड़ जाये, तब उसको अस्त्र द्वारा काट छांट कर विड़ंग, घृत और पङ्क लेप कर शीतल जलसे सिंचना चाहिये और कुलथी, उड़द, मूंग, जौ और तिलके साथ घृत और शीतल जलसे सिंचनेसे सर्वदा फलफूल लगता है। बकरी और भेड़की विष्ठा चूर्ण, जौका चूर्ण, तिल, गोमांस और जल सप्तरात्ति प्रोथित करनेसे सब तरहके वृक्षोंमें फलपुष्प होता है। विड़ंग और चावल धोवा पानी, मछलीमांस वृक्षोंका रोगनाश और वृद्धिसाधन करता है।

(अग्निपुराण २६ अ०)

शूरपालने 'वृक्षायुर्वेद' नामकी एक पुस्तक भी लिख गये हैं।

वृक्षार्हा (सं० स्त्री०) वृक्षे अर्हतीति अर्ह-अच्-टाप्। महामेदा।

वृक्षालय (सं० पु०) वृक्ष आलयो यस्य। पक्षी, चिड़िया।

वृक्षावास (सं० पु०) वृक्षे आवासो यस्य। वृक्षकोटरवासी, गिलहरी।

वृक्षाश्रयिन् (सं० पु०) वृक्षमाश्रयतीति आ-श्रि-णिनि। क्षुद्रोलूक।

वृक्षीय (सं० त्रि०) वृक्षसम्बन्धीय।

वृक्षेशय (सं० त्रि०) वृक्षशायी।

वृक्षोत्पल (सं० क्ली०) कनियारी या कनकचम्पाका पेड़।

वृक्ष्य (सं० क्ली०) वृक्षका फल।

वृगल (सं० क्ली०) विदल।

वृच—१ वृति, वरण। २ वर्जन।

वृचया (सं० स्त्री०) एक रमणीका नाम।

(ऋक् १।५१।१३)

वृचीवत् (सं० पु०) वरशिख कुलोत्पन्न व्यक्तिभेद।

(ऋक् ६।२७।५)

वृज—१ त्याग। २ वृति या वरण। ३ वर्जन। ४ व्रज।

वृजन (सं० क्ली०) वृजी वर्जने वृज-क्युः। (उण् २।८१) १ अन्तरीक्ष, आकाश। २ पाप। ३ निराकरण। ४ संग्राम, युद्ध, लड़ाई। ५ बल, ताकत, शक्ति। (ऋक् १।१६६।१५) ६ प्राणिजात। (ऋक् १।४८।५ सायण) (पु०) ७ केश, बाल। (त्रि०) ८ कुटिल, वक्र। ९ बाधक, शत्रु। (ऋक् ६।३५।५) (क्ली०) १० अपराध, कसूर। ११ रंगा चमड़ा।

वृजन्य (सं० त्रि०) साधुबल, साधुश्रेष्ठ, परमसाधु।

(ऋक् ६।८७।२३)

वृजि (सं० स्त्री०) १ व्रजभूमि। २ मिथिला, तिरहुत।

वृजिक (सं० क्ली०) वृजी भव वृजि-कन्। (पा ४।२।१३१) वृजिभूमिजात, वृजोत्पन्न।

वृजिन (सं० क्ली०) वृजी वर्जने वृज इनच् वृजेः किञ्च। (उण् २।४७) १ पाप। (भागवत १०।२६।३८) २ दुःख, कष्ट, तकलीफ। (त्रि०) ३ पापविशिष्ट। ४ कुटिल, टेढ़ा, वक्र। ५ रक्तचर्म। (पु०) ६ बाल, केश।

वृजिनवत् (सं० पु०) यदुके पौत्र, क्रोष्टुका पुत्र।

(भागवत ९।२३।३०)

वृजिनवर्त्तनि (सं० त्रि०) विप्लुतमार्ग, सदाचाररहित।

(ऋक् १।३१।६)

वृजिनायत् (सं० त्रि०) पापकामी, जो पाप करनेकी इच्छा करता है। (ऋक् १०।२७।१)

वृजिनीवत (सं० पु०) वृजिनवत् देखो।

वृण—१ भक्षण। २ प्रीणन।

वृत—१ दीप्ति। २ वर्त्तन, विद्यमानता, स्थिति।

३ यापन। ४ पागल। ५ जीवन, जीविका-निर्वाह। ६ वर्णन। ७ वरण। ८ सेवा।

वृत (सं० त्रि०) वृ-क्त। १ कृतवरण, जो किसी कामके लिये नियुक्त किया गया हो, मुकर्रर किया हुआ। पर्याय—वृत्त, वावृत्त। २ आवृत, आच्छादित, छाया हुआ। ३ जिसके सम्बन्धमें प्रार्थना की गई हो। ४ स्वीकृत, जो मञ्जूर किया गया हो। ५ गोल।

वृतफला (सं० स्त्री०) वृतं आवृतं फलं यस्या। पुत्रदात्री नामकी लता।

वृता (सं० स्त्री०) आवरका, आच्छादका। (ऋक् ५।४८।२)

वृताक्ष (सं० पु०) कुक्कुट, मुर्गा।

वृतार्चिस् (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

वृति (सं० स्त्री०) वृ-क्तिन्। १ वेष्टन, वह जिससे कोई चीज घेरी या ढकी जाये। २ प्रार्थनाविशेष। ३ नियोग, नियुक्त करनेकी क्रिया, नियुक्ति। ४ गोपन। ५ आवरण। ६ वरण।

वृतिङ्कर (सं० पु०) १ विकङ्कत नामका वृक्ष। २ वृतिकारक

वृत्त (सं० क्ली०) वृत्-क्त। १ चरित, चरित्र। (कथासरित्सा० ३।१४) २ वृत्ति। (मेदिनी) ३ वेदशास्त्रके अनुसार आचार रखना। ४ वार्त्ता। (कथासरित्सा० ५८।११६) ५ आचार, चाल, चलन। (मनु ४।२६०) ६ स्तनके आगेका भाग। (पु०) ७ अंजीर। ८ सतिवन। ९ कछुआ। १० समाचार, वृत्तान्त, हाल। ११ महाभारतके अनुसार एक नागका नाम। १२ बड़ोंके आदर, इन्द्रिय निग्रह और सत्य आदिकी होनेवाली प्रवृत्ति। १३ वह छन्द जिसके प्रत्येक पदमें अक्षरोंकी संख्या और लघु, गुरुके क्रमका नियम हो, वार्णिक छन्द। जैसे—इन्द्रवज्रा, मालिनी आदि।

१४ जो चार पद या चरणोंमें पूर्ण हो, उसका नाम पद्य है। यह वृत्त और जातिभेदसे दो प्रकारका है। अक्षर संख्यामें निर्णय पदका नाम वृत्त और जो पद्य मात्रा द्वारा निर्णीत होता हो, उसको जाति कहते हैं। सम, अर्द्धसम और विषम भेदसे वृत्त तीन तरहका होता है। जिस वृत्तके चारों पद समान, समसंख्यक अक्षर हों, वह समवृत्त कहलाता है; जिसमें चारों पदोंकी अक्षरसंख्या असमान हों, वह विषमवृत्त कहलाता है और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे पद समान हों, उसे अर्द्धसमवृत्त कहते हैं।

१५ एक प्रकारके छन्द, जिसके प्रत्येक चरणमें बीवर्ण होते हैं। इसे गंडका और दंडिका भी कहते हैं। १६ वह क्षेत्र जिसका घेरा या परिधि गोल हो, मण्डल। १७ वह गोल रेखा, जिसका प्रत्येक विन्दु उसके अन्दरके मध्य विन्दुसे समान अन्तर पर हो। १८ बीता हुआ, गुजरा हुआ। १९ दृढ़, मजबूत। २० जिसका आकार गोल हो, वर्त्तुल। २१ मृत, मरा। २२ जो उत्पन्न हुआ हो, जात; २३ निष्पन्न, सिद्ध। २४ ढका हुआ, आच्छादित।

कविकल्पलतामें वृत्ताकार वस्तुका इस तरह वर्णन है—बाहु, नारङ्ग, स्कन्ध, धम्मिल्ल, मोदक, रथाङ्ग, लावक, ककुत्, कुम्भिकुम्भ और अण्डकादि, कर्णपाश, भुजापाश, आकृष्टचाप, घटानन, मुद्रिका, परिखा, योगपट्ट, हार और स्रगादि इन सब वस्तुओंको वृत्त कहते हैं।

वृत्तक (सं० पु०) १ श्रावक। (वृ० सं० ८६।६८) २ वह गद्य, जिसमें अकठोर अर्थात् कोमल तथा मधुर छोटे छोटे समासोंका पद व्यवहार किया गया हो। ३ छन्द। (साहित्यद० ५४६)

वृत्तकर्कटी (सं० स्त्री०) वृत्ता वर्त्तुला कर्कटी, गोल ककड़ी अर्थात् खरबूजा।

वृत्तकोशा (सं० स्त्री०) देवदाली नामकी लता। (राजनि०)

वृत्तकोष (सं० पु०) पीली देवदाली। (भावप्र०)

वृत्तखण्ड (सं० पु०) १ किसी वृत्त और गोलाईका कोई अंश। २ मेहराव।

वृत्तगन्धि (सं० क्ली०) वृत्तस्य पद्यस्य गन्ध इव गन्धो यस्य। वह गद्य जिसमें अनुप्रासों और समासोंकी अधिकता हो, वह गद्य जिसमें पद्यका आनन्द आता हो।

वृत्तगुण्ड (सं० पु०) दीर्घनाल और गोंदला नामकी घास। यह पतली और मोटी दो तरहकी होती है। इसका गुण—मधुर, शीतल, कफ, पित्त, अतीसार, दाह और रक्तनाशक है। इन दोनोंमें मोटी घास अधिक गुणयुक्त होती है।

वृत्तचेष्टा (सं० क्ली०) १ स्वभाव, प्रकृति। २ आचरण, चालचलन।

वृत्ततण्डुल (सं० पु०) वृत्तस्तण्डुलः। यावनाल, जवनाल।

वृत्ततस् (सं० अव्य०) वृत्त तसिल्। वृत्त द्वारा।

वृत्तनिष्पाविका (सं० स्त्री०) मटर, केराव।

वृत्तपत्र (सं० पु०) उत्तम शाकविशेष, नोनीशाक।

वृत्तपत्रा (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री।

वृत्तपर्णी (सं० स्त्री०) वृत्तं वर्त्तुलं पर्णं यस्याः ङीष् १ महाशणपुष्पिका। २ पाठा। (राजनि०)

वृत्तपुष्प (सं० पु०) वृत्तं वर्त्तुलं पुष्पं यस्य। १ सिरिस। २ कदम्ब। ३ जलवेंत। ४ भुईं कदम्ब। ५ सदा गुलाव, सेवती। ६ मोतिया। ७ मल्लिका।

वृत्तपुष्पा (सं० स्त्री०) १ नागदमनी। २ सदा गुलाव, सेवती।

वृत्तफल (सं० क्ली०) वृत्तं वर्त्तुलं फलं यस्य। १ काली या गोल मिर्च। २ गोलफल। (पु०) ३ दाड़िम। ४ वदर। ५ कपित्थ वृक्ष। ६ रक्त अपामार्ग। ७ करञ्ज का पेड़। ८ तरबूज।

वृत्तफला (सं० स्त्री०) १ वार्त्ताकी। २ शशांगुली, कड़वी ककड़ी। ३ आंवला।

वृत्तबन्ध (सं० पु०) वृत्तेन बन्धः। वह जो वृत्त या छन्दके रूपमें बांधा गया हो।

वृत्तभोजन (सं० पु०) गंडीर या गिडनी नामका शाक।

वृत्तमल्लिका (सं० स्त्री०) १ सफेद आक। २ त्रिपुरमल्लिका। महाराष्ट्रमें इसको वाटोगरे, कर्नाटमें दुन्दुभिमल्लिका और बम्बईमें वटमोगरी कहते हैं। गुण—कटु, उष्ण, व्रणनाशक, बहुगन्धि और नेत्ररोगनाशक है।

वृत्तवत् (सं० त्रि०) वृत्त अस्यर्थे मतुप् मस्य व। वृत्तयुक्त, जिसका आचरण शुद्ध हो, सदाचारी।

वृत्तवीज (सं० पु०) वृत्तं वीजं यस्य। १ शिम्बाक्षुप, भिण्डो, तरोई, खखरी, राजमाष, लोविया।

वृत्तवीजका (सं० स्त्री०) वृत्तं वर्त्तुलं बीजं यस्याः कन् ततष्टाप्। १ पाण्डुरफली। २ अरहरकी दाल।

वृत्तवीजा (सं० स्त्री०) वृत्तं वीजं यस्याः। अरहर।

वृत्तशाली (सं० त्रि०) वृत्तेन शालते शाल-णिनि। वृत्तयुक्त, वह जिसका आचरण उत्तम हो, सदाचारी।

वृत्तश्लाघी (सं० त्रि०) १ जिसको अपने कामको श्लाघा या घमण्ड हो। (पु०) २ क्षत्रिय।

वृत्तसादी (सं० त्रि०) वृत्त-सद-णिनि। कुलनाशीकारी, चरित्रनाशी।

वृत्तस्क (सं० पु०) १ वह जिसका चरित्र शुद्ध हो, सदाचारी। २ वह जो दूसरोंका उपकार करता हो, परोपकारी।

वृत्तस्थ (सं० त्रि०) वृत्ते तिष्ठति स्था-क। जो वृत्तमें अवस्थित रहते हों, सच्चरित्र, सदाचारी। गुरुपूजा, घृणा, शौच, सत्य, इन्द्रियनिग्रह और लोकहितकर कार्य्यमें जिनकी प्रवृत्ति रहती है।

वृत्ता (सं० स्त्री०) वृत्त-टाप्। १ मांसहारिणी। २ प्रियङ्गु लता। ३ सफेद सेम। ४ झिझरीट नामका क्षुप। ५ रेणुका। ६ नागदमनी। ७ हस्तिकोशातकी।

वृत्ताक्षेप (सं० पु०) अलङ्कारविशेष, प्रयोगकालमें यथार्थमें निषिद्ध न होने पर भी यदि कोई वाक्य आपाततः निषेधोक्ति मालूम हो, तो उसे ही आक्षेप कहते हैं। यह आक्षेपवृत्त भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान भेदसे तीन प्रकारका है।

वृत्ताध्ययनर्द्धि (सं० स्त्री०) वृत्ताध्ययनयोर्ऋद्धिः। ब्रह्मतेजः, ब्रह्मवर्चस, वृत्त और अध्ययनके लिये सम्पद्, वेदवोधित आचार परिपालनका नाम वृत्त, मतग्रहण कर गुरुके मुखसे वेदाभ्यासका नाम अध्ययन, वृत्त और अध्ययनका नाम ऋद्धि है। अर्थात् तत्परिपालनकृत तेजका उपचय है।

वृत्तानुवर्त्तिन् (सं० त्रि०) वृत्तमनुवर्त्तते वृत्त-अनुवृतणिनि। वृत्तस्थ, वृत्ताचारी, सद्वृत्त।

वृत्तान्त (सं० पु०) १ संवाद, किसी बीती हुई घटनाका विवरण, समाचार, हाल। जैसे,—(क) इस घटनाका सारा वृत्तान्त समाचारपत्रोंमें छप गया है। (ख) अब आप अपना वृत्तान्त सुनाइये। पर्याय—वार्त्ता, प्रवृत्ति, उदन्त, श्रुति, उदन्तक। (शब्दरत्ना०) २ प्रक्रिया। ३ कार्त्स्न्य। ४ वार्त्ताप्रभेद। ५ प्रस्ताव। ६ इतिहासाख्यान। (मनु ३।१४) ७ अवसर, मौका। ८ भाव। ९ एकान्तवाचक। (विश्व०)

वृत्ति (सं० स्त्री०) वृत क्तिन्। १ वह कार्य, जिसके द्वारा जीविकाका निर्वाह होता हो, जीविका, रोजी।

वृत्तिके सम्बन्धमें विष्णुसंहितामें लिखा है—ब्राह्मण

का याजन और प्रतिग्रह, क्षत्रियका राज्यपालन, वैश्यका खेती, वाणिज्य, गोपालन, कुसीदग्रहण और धान्यादिको बीजरक्षा तथा शूद्रका सब तरहके शिल्पकार्य्योंका करना नियत वृत्ति है। किन्तु आपत्कालमें अर्थात् जब पूर्वोक्त निर्दिष्ट वृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह न हो, तब प्रत्येक जाति ही निम्नश्रेणीकी वृत्तिका अवलम्बन कर सकेंगे। अर्थात् ब्राह्मण राज्यपालन, क्षत्रिय कृषि आदि। इससे भी जीविका-निर्वाह न हो तो ब्राह्मण कृषि आदि द्वारा भी जीविका चला सकता है। (विष्णुसंहिता २ अ०)

३ विवरण, सूत्रके अर्थके विवरण विशदरूपसे व्यक्तीकरणका नाम वृत्ति है। "सूत्रस्यार्थविवरणं वृत्तिः।" (कातन्त्र) सूत्र-सब लघु हैं अर्थात् बहुत बड़े नहीं, अल्प अक्षर और अल्प पदयुक्त हैं, सुतरां यह व्याख्यासापेक्ष हैं। व्याख्या न रहनेसे सूत्रादिका यथार्थ तात्पर्य हृदयङ्गम नहीं होता। यह व्याख्या वृत्ति, भाष्य, वार्त्तिक, टीका, टिप्पनी आदि अनेक शाखाओंमें विभक्त है।

४ विधृति। (धरणी) नाटकमें पांच प्रकारकी वृत्ति कही गई है।

वृत्ति चार प्रकारकी है, शृङ्गाररसमें कौशिकी वृत्ति वीर रसमें सात्त्वती वृत्ति, रौद्र और वीभत्स रसमें आरभटी, इनके सिवा अन्य सब स्थानोंमें भारती वृत्ति नाटकमें इन चार प्रकारकी वृत्ति जननीस्वरूपा है। अर्थात् उक्त रसके वर्णन करनेके समयमें निर्दिष्ट वृत्तिका अवलम्बन कर रचना करनी चाहिये।

इन सब वृत्तियोंके कई भेद हैं। इन भेदोंमें कौशिकी वृत्ति एक है। यह कौशिकी वृत्ति भी नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ भेदसे चार तरहकी है।

सब नायिकायें उत्तम वेशभूषासे विभूषिता, स्त्रीबहुल प्रचुर नृत्यगीतयुक्त, कामोपभोगका उपचार द्वारा परिवेष्टित और मनोज्ञ विलासयुक्त, इन सब विषयोंका वर्णन कौशिकीवृत्तिमें उत्तम रूपसे किया जाता है। शृङ्गार रसका वर्णन करनेके समय इस कौशिकी वृत्तिका अवलम्बन कर वर्णन करना चाहिये।

सत्त्व, शौर्य, दानशक्ति, दया और सरलतादि बहुल, सर्वदा सहर्ष अल्प-शृङ्गारभावयुक्त, शोकरहित और साद्भुत अर्थात् आश्चर्य भावसे वर्णनका सात्त्वती वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति भी चार प्रकारकी है—उत्थापक, संहात्य, संलाप और परिवर्त्तक।

माया, इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त आदि चेष्टाओं द्वारा संयुक्त और बन्धयादि द्वारा उद्धत—इन सब विषयोंकी वर्णना आरभटी वृत्ति कही जाती है। यह भी चार तरहकी है—वस्तूत्थापन, सम्फेट, संक्षिप्ति और अवपातन।

जिस जगह संस्कृतबहुल वाक्योंका प्रयोग होता है, उसको भारती वृत्ति कहते हैं। इन चार तरहकी वृत्तियोंको नाटकके उक्त रसोंमें वर्णन करना चाहिये।

५ व्यवहार (मनु २।२०५) वर्त्ततेऽस्मिन्निति।
६ आधेय। "साध्याभाववद्वृत्तित्व" (व्याप्तिप० १)
७ चित्तकी अवस्थाविशेष। पातञ्जलदर्शनमें चित्तकी अवस्थाको भी वृत्ति कहा है। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्धभेदसे चित्तकी वृत्ति पांच तरहकी है। चित्त और योग शब्द देखो। ८ व्यापार। ९ युक्तार्थ। १० उपजीविका। जैसे—किसीका वृत्तिहरण नहीं करना चाहिये अर्थात् किसीकी उपजीविका नष्ट करना या रोटी मारना उचित नहीं।

वृत्तिक (सं० पु०) वृत्ति स्वार्थे कन्। वृत्ति देखो।

वृत्तिकर (सं० त्रि०) कर्मकार।

वृत्तिकार (सं० पु०) वृत्तिं करोतीति अण्। वृत्तिकारक, वृत्ति ग्रन्थके प्रणेता। वह जिसने किसी सूत्रग्रन्थ पर वृत्ति लिखी हो।

वृत्तिता (सं० स्त्री०) वृत्तेर्भावः तल्-टाप्। वृत्तिका भाव या धर्म, वृत्तित्व।

वृत्तिद (सं० त्रि०) वृत्तिं ददातीति दा-क। वृत्तिदानकारी, जो वृत्ति प्रदान करते हैं।

वृत्तिदातृ (सं० त्रि०) वृत्तेर्दाता। वृत्तिदान करनेवाला।

वृत्तिमत् (सं० त्रि०) वृत्तिरस्त्यस्येति मतुप्। वृत्तिविशिष्ट, वृत्तियुक्त।

वृत्तिरुशना (सं० स्त्री०) रुद्रकी एक पत्नीका नाम। (भाग० ३।१२।१३)

वृत्तिस्थ (सं० पु०) वृत्तौ तिष्ठतीति स्था क। १ गिरगिट। २ वह जो अपनी वृत्ति पर स्थित हो।

वृत्तिहन् (सं० त्रि०) वृत्तिं हन्ति हन् क्विप्। वृत्तिहननकारी, जो वृत्तिनाश करता हो, वृत्तिच्छेदक।

वृत्तिहन्तृ (सं० त्रि०) वृत्तेर्हन्ता। वृत्तिनाशक, वृत्तिहननकारी। वृत्तिका हनन कदापि नहीं करना चाहिये। स्वदत्ता वृत्ति या परदत्ता वृत्ति हरण करनेसे नरकगामी होना पड़ता है।

वृत्तैर्वारु (सं० पु०) वृत्तो वर्त्तुल इर्वारुः। खरबूजेकी बेल।

वृत्त्यनुप्रास (सं० पु०) काव्योक्त शब्दालङ्कारभेद। पांच प्रकारके अनुप्रासोंमेंसे एक प्रकारका अनुप्रास जो काव्यमें एक शब्दालंकार माना जाता है।

वृत्त्युपाय (सं० पु०) अपने शरीर या कुटुम्बोंके भरणपोषणका उपाय।

वृत्य (सं० त्रि०) वृत-क्यप्। वरणीय।

वृत्र (सं० पु०) वृत (स्फायितञ्चिवञ्चीति। उण् २।१३) इति रक्। १ अन्धकार। २ शत्रु। (ऋक् ७।४८।२) ३ त्वष्टाका पुत्र एक दानवका नाम। इन्द्रने इसका विनाश किया था। (हरिवंश १२७।१७)

देवीभागवतमें वृत्रासुरका वृत्तान्त इस तरह लिखा है:—विश्वकर्म्माने इन्द्रके प्रति विद्वेषवशतः परम रूपवान् त्रिशिरस्क विश्वरूप नामक एक पुत्रकी सृष्टि की। ये एक मुखसे वेदाध्ययन, दूसरेसे सुरापान, तीसरेसे युगपत् समस्त दिशाओंका निरीक्षण करते थे। कुछ दिनोंके बाद मुनिवर त्रिशिरा विषयवासना परित्यागकर अत्युग्र तपस्यामें निरत हुए। उन्होंने ग्रीष्म कालमें पञ्चाग्निसाधन, पादके ऊपर पाद बांधनेके बाद अधोमुख हो अवस्थान, हेमन्त, शिशिर और शीतमें जलमें रह कर आहार निद्रापरित्याग और इन्द्रियोंको वशीभूत कर इस कठिन तपस्याका अनुष्ठान किया था। शचीपति इन्द्र इन अमिततेजः तपस्वीका तपोवीर्य और स्थिरानुराग देख कर अतिशय चिन्ताकुलित हुए। इनके तपोभङ्गके लिये उन्होंने उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची और तिलोत्तमा आदि रूपगर्वित अप्सराओंको नियुक्त किया। इन्होंने नाना शृङ्गारोंसे सुसज्जित हो विश्वरूपके समीप समुपस्थित हो कामशास्त्रोक्त विविध हावभाव प्रकाश करना आरम्भ किया। किन्तु अलौकिक तपःप्रभाव-सम्पन्न जितात्मा महर्षि त्रिशिरा उन दिव्य वाराङ्गनाओंके नाच गान-हावभाव कटाक्षसे किञ्चिन्मात्र विचलित न हो, मूक, बधिर और अन्धेकी तरह रहने लगे। यह देख कुछ दिनोंके बाद इन सबोंने लौट कर इन्द्रके सामने दीन और सन्त्रस्त भावसे हाथ जोड़ कर निवेदन किया, महाराज! आप दूसरी चेष्टा कीजिये। हम लोग किसी तरह भी उन दुर्द्धर्ष जितेन्द्रिय मुनिवरकी धैर्यच्युति करनेमें समर्थ नहीं हो सकीं। और क्या कहा जाये—हम लोग भाग्यवश ही उन अग्निसदृश तेजःसम्पन्न महात्मा विश्वरूपके अभिशापमें पतित नहीं हुई हैं। अप्सराओंके वाक्यों को सुन कर पापमति पुरन्दर अत्यन्त भीत हो कर लोकलज्जा तथा पापभयकी तिलाञ्जलि दे अन्याय रूपसे त्रिशिराके वधका उपाय सोचने लगे।

इसके बाद एक बार स्वयं इन्द्र ऐरावत पर चढ़ कर मुनिके समीप आ पहुंचे। वहां उन्होंने देखा, कि मुनिके शरीरसे सूर्य्य और अग्निकी तरह तेज बाहर निकल रहा है। उनकी वैसी अवस्था देख इन्द्रको पहले ही अत्यन्त विषाद उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा, कि मुनिवर निर्मलचेताः और प्रदीप्ततपोबलसम्पन्न हैं। इनको मार डालनेका मेरा सङ्कल्प करना अतीव गर्हित कार्य्य है। किन्तु हाय! ये मेरे सिंहासनके इच्छुक हुए हैं, अतएव ऐसे शत्रुकी उपेक्षा भी कैसे की जा सकती है। यह सोच कर देवराज इन्द्रने उन तपस्यानिरत दिनकरतुल्य दीप्यमान मुनिवर त्रिशिराके प्रति अपने शीघ्रगामी अमोघ वज्रास्त्रको चलाया। तपस्विप्रवर त्रिशिरा इस तरह कुलिशाहत हो वज्राहत सुविशाल पर्वतकी तरह जमीन पर गिर पड़े। किन्तु उनके शरीरसे प्रभा जीवितकी तरह निकल रही थी। यह देख सुरपतिके चित्तमें फिर विषण्णता और भीतिका आविर्भाव हुआ। उन्होंने तक्षा नामक शिल्पीको यज्ञमें भाग प्रदान करनेकी स्वीकृति दे अर्थात् "आजसे लोग यज्ञपशुका मस्तक तुमको सम्प्रदान करेंगे" तक्षाके समीप इस प्रकार अङ्गीकार कर उसीसे त्रिशिराके तीनों मस्तकको कटवाया।

जब इस बीभत्स समाचारको विश्वकर्माने सुना, तब वे क्रोधसे अधीर हो उठे और अत्यन्त दुःखके साथ कहने लगे, कि इन्द्रने जब मेरे ऐसे गुणवान् और तपस्यानिरत पुत्रको निरपराध मार डाला है, तब मैं उसके विनाशके लिये फिर एक दूसरे पुत्रकी सृष्टि करूंगा। विश्वकर्मा क्रोधसन्तप्त हृदयसे इस तरह नाना प्रकारसे विलाप कर पीछे अथर्ववेदोक्त विधान द्वारा पुत्रोत्पादनके लिये अनलमें आहुति देने लगे। आठ रात होम करनेके बाद उस प्रदीप्त अग्निसे द्वितीय पावककी तरह दीप्तिमान् एक पुरुष आविर्भूत हुआ। विश्वकर्माने अनलसम्भूत तेजोबलसमन्वित प्रदीप्त अनल सदृश पुत्रको सामने देख कर कहा, "इन्द्रशत्रो! तुम मेरे तपोबल द्वारा बढ़ो।" क्रोधोद्दीप्त विश्वकर्माकी इस उक्तिके बाद अनलतुल्य दीप्तिशाली वह पुत्र आकाश मण्डलको स्तब्ध कर बढ़ने लगे। और तो क्या, क्षण भरमें ही उन्होंने पर्वताकार धारण किया और अत्यन्त शोकसन्तप्त पितासे कहा,—प्रभो! आप मेरा नामकरण संस्कार कीजिये। तात! आप आज्ञा दीजिये, कौन काम करूं? आप किस लिये इतने शोकसन्तप्त और अधीर हो उठे हैं शीघ्र ही कहिये, मैं आज ही आपके इस शोकको दूर करनेका प्रयत्न करूंगा। हे पिता! जो पुत्र पिताके दुःखका मोचन नहीं करता है, उसका जन्म वृथा है। पितृप्रीत्यर्थ मैं आज ही समुद्रको पी, पर्वतमालाको चूर्ण, मेदिनीको उत्पाटन कर सारे जीवोंको समुद्रमें फेंक तिग्मतेजा तपन देवको रोक, और तो क्या यम, इन्द्र, या अन्यान्य किसी भी देवतासे विरोध कर सकता हूं।

विश्वकर्माने पुत्रके ऐसे परम प्रीतिकर सुललित वाक्य सुन हृष्टचित्त हो उससे कहा,—पुत्र! तुम इस समय वृजिन अर्थात् दुःखसे परित्राण कर सकते हो। अतएव जगत्में वृत्र नामसे तुम्हारी ख्याति होगी। हे प्रियतम! वेदवेदाङ्गपारग, सर्वविद्याविशारद नियत तपस्यानिरत, परम तत्त्वज्ञ त्रिशिरस्क विश्वरूप नामसे प्रख्यात तुम्हारे एक बड़े सहोदर था। पापात्मा इन्द्रने उसके तीनों मस्तक ही काट डाले हैं। वह भी निरपराध! अतएव तुम उस कृतापराध ब्रह्महत्यापातकी निर्लज्ज, शठ, दुष्टमति पापरूप सुरपतिका संहार कर मेरे शोककलुषित हृदयकी निर्मलताका सम्पादन करो। शिल्पिप्रवर विश्वकर्माने यह बात कह खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमर, शार्ङ्ग, धनु, वाण, तुणीर, कवच आदि यावतीय युद्धोपकरण प्रस्तुत कर वृत्रको दे इन्द्रको वध करनेके लिये उसको समरसज्जासे सुसज्जित किया।

महाबली वृत्र वेदपारग ब्राह्मण द्वारा स्वस्त्ययन करा रथारोहण कर इन्द्रके विनाशके लिये चला। इसके पूर्ववर्त्ती कालके देवनिगृहीत दनुजवर्गने भी आ कर उसका साथ दिया। वृत्रासुर भी इन दानवोंसे परिवृत हो दलबलके साथ सगर्व मानसरोवरके उत्तरी किनारे तरुराजिपरिशोभित सुरम्य पर्वत पर उपस्थित हुआ। उस मनोहर स्थानमें देवताका आवास था। देवताओंने असुरवरको इस भीषण यात्रासे अत्यन्त भीत हो कर देवराजके समीप जा कर देखा, कि इन्द्रके दूत सुरपतिसे यह भयावह संवाद कह रहे हैं।

शचीपति इन्द्रने दोनों पक्षके प्रमुखात् नाना रूप दुर्घटनाका विषय सुन कर अकस्मात् भावी महान् अत्याहित संघटनकी सम्भावना देख किंकर्त्तव्यविमूढ़ावस्थामें सुबुद्धिसम्पन्न सुरगुरु बृहस्पतिसे सत्परामर्श पूछा। इस पर बृहस्पतिने उत्तर दिया,—"सहस्रलोचन! मैं इस विषयमें क्या परामर्श दूं। अबसे पहले तुमने उस निरपराध मुनिवरको निहत कर जो घोर पाप अर्जन किया है, उसका कुत्सित फल अवश्य ही भोग करना पड़ेगा। उग्रतर पापपुण्यका फल शीघ्र ही फलता है। अतएव कल्याणकामुक लोगोंको विचार कर काम करना नितान्त कर्त्तव्य है। शक्र! तुमने लोभ और मोहके वशवर्त्ती हो कर अकारण ही ब्रह्महत्या की है, अतएव उस पापका फल सहसा ही उपस्थित हुआ। यह वृत्रासुर सभी देवताओंके लिये अवध्य है। तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं, जो उसका विनाश कर सके।" बृहस्पतिकी यह बात समाप्त न होते ही वहां ऐसा एक भयानक कोलाहल शब्द हुआ, कि गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, रक्ष, मुनि, ऋषि, नर, अमर सभी अपने अपने घर छोड़ भागने लगे। देवराज देवताओंको इस तरह भागते देख अत्यन्त चिन्तान्वित हुए।

और तुरन्त सैन्यसमावेशके उद्योगके लिये उन्होंने नौकरोंको आज्ञा दी, कि तुम लोग वसुगण, रुद्रगण, अश्विनीद्वय, आदित्यगण, पुषा, वायु, कुवेर, वरुण और यम आदि देवताओंको बुला लाओ। शत्रु पहुंच चुका है अतएव सभी अपने अपने यानवाहनों पर चढ़ कर शीघ्र आवें।

सुरराज देवताओंके प्रति इस तरह आज्ञा दे कर स्वयं ऐरावत पर सवार हुए और गुरुदेव वृहस्पतिके पुरमें रख अपने भवनसे बाहर निकले। अमरोंने भी देवराजके आज्ञानुसार अपने अपने वाहनों पर चढ़ कर युद्धके लिये कृतसङ्कल्प हो अस्त्र शस्त्र ग्रहण किया। इन्द्रके साथ सभी सरोवरके उत्तरी किनारे पर युद्धकी प्रतीक्षामें खड़े वृत्रासुरसे जा कर युद्ध करने लगे। यह नरामरभीतिप्रद घोरतर युद्ध मनुष्य परिमाणसे एक सौ वर्ष तक लगातार चला था। इसके बाद पहले वरुण, पीछे वायुगण, इसके बाद यम, विभावसु और इन्द्र आदि सभी एक एक कर रणसे भाग गये।

वृत्रासुर देवताओंको इस तरह भागते देख हृष्टचित्तसे पिताके आश्रममें गया और साष्टांग प्रणाम कर उनसे कहने लगा—पिता! मैंने आपके आज्ञानुसार सारे संग्राममें इन्द्रादि देवताओंको एक एक करके पराजित किया है। वे सबके सब भाग गये हैं। मैंने देवराजके गजराजको छीन लिया है और भीत व्यक्तिको मारना अनुचित समझ उन सबोंका विनाश नहीं किया है। इस समय आज्ञा दीजिये, कि आपके प्रीत्यर्थ मुझको कौनसा कार्य करना पड़ेगा।

विश्वकर्मा अपने पुत्रके मुखसे उनकी विजयकी बात सुन हृष्टान्तःकरणसे पुत्रसे कहने लगे, "आज मैं वास्तवमें पुत्रवान् हुआ, मेरा चिरन्तन चिन्ताज्वर जरा विदूरित हुआ, देह पवित्र हुई और जीवन सार्थक हुआ है। हृदयनन्दन! इस समय जो कह रहा हूं, उसे ध्यान दे कर सुनो। सावधान हो स्थिर आसन पर बैठ कर तपस्यामें चित्त संयम करो। तपस्या साधारण वस्तु नहीं; उससे राज्य, लक्ष्मी, वल और संग्राममें विजयलाभ होता है। अतएव तुम हिरण्यगर्भकी आराधना कर उत्तम वर लाभ करो और ब्रह्महत्यापापसमन्वित दुराचारी इन्द्रका वध करो। सुस्थिरचित्त तथा सावधानीसे चतुराननका भजन करनेसे वे मनवाञ्छित फल प्रदान करेंगे। हे पुत्र! यद्यपि तुम्हारे इस समयके कार्य्यसे कुछ मैं स्वस्थ हुआ हूं, तथापि पुत्रहत्याजनित बैरभाव मेरे मनमें सदा ही जागरित है, मैं सुखसे सो नहीं सकता और मुझे किसी तरह शान्ति नहीं मिल रही है। और अधिक क्या कहूं, मैं नित्य ही दुःखसागरमें प्रवाहित हो रहा हूं। तुम मेरा उद्धार करो।"

वृत्रासुर पितृवचनको मान गन्धमादन पर्वत पर जा कर कठोर तपस्या करने लगा। देवराज इन्द्र वृत्रासुरको इस तरह कठोर तपस्या करते देख बहुत भयभीत हुए और उन्होंने उसके तपको भङ्ग करनेके लिये अमित प्रभावशाली गन्धर्व, यक्ष, पन्नग, किन्नर, विद्याधर, अप्सरा और अन्यान्य देवताओंको उसके निकट भेजा। देवदूत गये किन्तु वे किसी तरह उसकी तपस्याको भङ्ग न कर सके। तपस्यानिरत वृत्रासुर बिन्दुमात्र भी अपनी तपस्यासे विरत न हुआ। इससे सभी लोग लौट आये।

इसी तरह ध्यानमें रत रह कर वृत्रासुरने १०० वर्ष विता दिये। इसके बाद सर्वलोकपितामह ब्रह्मा उसके प्रति अतिशय सन्तुष्ट हो हंस पर चढ़ कर उसके समीप पहुंचे और उससे वर प्रार्थना करनेके लिये कहा। वृत्रासुर सामनेमें जगत्कर्त्ता ब्रह्माको देख और उनकी सुधासरस वाक्यावली सुन कर आनन्दाश्रु बहाते हुए सहसा खड़ा हो कर उनके चरणयुगल पर गिरा, फिर हाथ जोड़ कहने लगा,—"प्रभो! मेरे मानसमें एक दुष्पूरणीय वासना जग गई है। आप सर्वज्ञ हैं, सभी जानते हैं, फिर भी मैं कहता हूं, सुनिये। हे नाथ! लौह, काष्ठ, शुष्क, आर्द्र वस्तुओं और बांस तथा अन्य अस्त्र शस्त्रोंसे मेरी मृत्यु न हो और युद्धमें मेरे वलवीर्यको वृद्धि हो।" वृत्रकी इस उक्ति पर ब्रह्मा 'तथास्तु' कह उसके आशानुरूप वर प्रदान कर ब्रह्मलोकको चले गये। असुरवर भी वर लाभ कर हर्षचित्तसे घरकी ओर चला और पिताके पास पहुंच कर उसने आद्योपान्त सब बातें कह सुनाई। विश्वकर्मा परम

आह्लादित हुए और पुत्रको शत शत धन्यवाद और आशीर्वाद दे कर कहने लगे, 'वत्स ! तुम्हारा संवर्थमें मङ्गल हो । तुम मेरे उस परम वैरी त्रिशिराविनाशकारी पापात्मा पुरन्दरको मार कर और त्रिदशोंका एकाधीश्वर बन मेरे पुत्रशोकसे प्रदीप्त हृदयमें शान्तिवारिसे सिञ्चन करो। तुम निश्चय जानना, त्रिशिरा मेरे मानसक्षेत्रसे कभी दूर नहीं रहा है, वह सुशील, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, तपस्वी, और वेदविदोंमें अग्रगण्य था। हाय ! मेरे उस गुणवान् प्रिय पुत्रको पापमति पुरन्दरने निरपराध ही मार डाला है।

वृत्रासुर पिताका इस तरह शोककातरतापूर्ण वाक्य सुन कर इन्द्रके प्रति मन ही मन अत्यन्त क्रोधित हो शीघ्र ही समरसज्जा कर दलबलके साथ इन्द्रको मारनेके लिये चला। निरन्तर दुन्दुभियोंका निर्घोष और शङ्खनाद होने लगा। असंख्य सेना-निनादसे अमरावती कांपने लगी और देवता भयभीत हो भाग जाने पर उद्यत हुए। देवराज भी चिरन्तन शत्रुको सन्निहित जान आसन्न विपद्की आशंकासे भयभीत हुए और युद्धके लिये सेनासमागमका आयोजन कर लोकपालोंको बुला गृध्रव्यूह (गृध्रपक्षीकी तरह सेनानिवेश)-की रचनाके बाद समरकी प्रतीक्षामें खड़े रहे। इधर वृत्रासुर भी तेजीसे आ वहां उपस्थित हुआ। देवदानवोंका तुमुलसंग्राम होने लगा। परस्पर विजयकी कामनासे वृत्रासुर और वासवमें घोर युद्ध होने लगा। उस भयङ्कर युद्धानलके प्रज्वलित होने पर दैत्य प्रसन्न और देवगण विमर्ष भावको प्राप्त हुए। वृत्रने इन्द्रको सहसा कवच और वस्त्रादि विरहित कर अपने मुखमें डाल लिया और पूर्व वैरताका स्मरण कर हृष्टचित्तसे अवस्थान करने लगा।

इन्द्रके वृत्र द्वारा इस तरह निगृहीत होने पर देवगण अतिशय कातर और त्रासित हो, हा इन्द्र ! हा इन्द्र ! चिल्लाने लगे तथा दीन और व्यथित मनसे सुरगुरु वृहस्पतिको प्रणाम कर सबोंने उनसे निवेदन किया, "हे द्विजेन्द्र ! आप हम सबोंके गुरु हैं, ऐसा परामर्श दीजिये, जिससे इस महाविपद्से उत्तीर्ण और वृत्रासुरके हाथसे इन्द्रका छुटकारा हो। अभिचारक्रिया द्वारा उसका उपाय कीजिये। विना इन्द्रके हम सभी निर्बल तथा हतोत्साह हो गये हैं।"

देवताओंकी ऐसी कातरोक्ति सुन सुराचार्य्यने कहा,—हे अमरगण ! तुम लोग सहसा भयभीत न हो। देवराज वृत्रके मुखमें जा कर अवसन्न हुए हैं सही; किन्तु उसके कोष्ठमें जीवित ही हैं। अतएव जीवितावस्थामें ही उसको निकालना उचित है। यह बात सुन कर देवताओंने उनकी मुक्तिका उपाय खोजना आरम्भ किया। सभीने गभीर चिन्ताके साथ मन्त्रणा कर अन्तमें महासत्वसम्पन्ना जृम्भिका (जँभाई)की सृष्टि की। इससे वृत्रासुरने भी जँभाई ली। इस अवसरमें इन्द्र अपने शरीरको सङ्कुचित कर वृत्रके मुंहसे बाहर निकले।

इन्द्रने इस तरह बाहर निकल फिर उसके साथ अयुत वर्षव्यापी निदारुण लोमहर्षण भीषण संग्राम जारी किया। पीछे जब वरमदसे मत्त वृत्रासुर क्रमशः रणमें वर्द्धित होने लगा तब उसके तेजसे धर्षित और पराजित इन्द्र अत्यन्त व्यथित हो रण छोड़ भागे। सुरपतिको भागते देख अन्यान्य देवता भी धीरे धीरे उनके अनुगामी हुए। इस अवसरमें वृत्र समस्त स्वर्गराज्य पर अधिकार कर समस्त देवउद्यान, गजराज ऐरावत, हयवर उच्चैःश्रवा, कामधेनु, पारिजात, यावतीय विमान और अप्सरायें आदि स्वर्गरत्नोंका उपभोग करने लगा। विश्वकर्मा भी पुत्र सुखसे सुखी हो वहां हीं अवस्थान करने लगे।

इधर सुरगण अपने अपने स्थानोंसे भ्रष्ट हो गिरिदुर्ग पर अवस्थान करने लगे। यज्ञभागसे वञ्चित रहनेके कारण उनको अत्यन्त कष्ट होने लगा। पीछे मुनियोंसे वे मिल कर इन्द्रके साथ कैलाशशिखर पर महादेवके पास गये और हाथ जोड़ कर अति विनीत भावसे उनके चरणोंमें गिर कर कहने लगे—"भगवन् ! आप अपार करुणानिधि हैं। आप हम लोगोंको बचाइये। हम लोग वृत्रासुर द्वारा पराजित और स्थान-भ्रष्ट हुए हैं और अत्यंत क्लेशके साथ दिन बिता रहे हैं। हे दयामय ! आप दया प्रकाश कर उस वरमदसे मत्त दुर्वृत्त वृत्रासुरका ध्वंस कीजिये और हम लोगोंको दुःखसे बचाइये।

देवताओंके इस तरह दुःखपूर्ण विनीत वाक्यावसानपर शङ्करने कहा—हे सुरगण ! ब्रह्माको आगे कर हरिके

पास जा उस दुर्वृत्तके वधका उपाय हम लोगोंको करना चाहिये। क्योंकि वासुदेव सर्व कार्य्योंमें दक्ष, बलवान्, छलज्ञ, बुद्धिमान्, दयावान् और सर्वलोक शरण्य हैं; अतएव विना उन हरिके और कोई उपाय इस विपदसे बचनेका दिखाई नहीं देता। महादेवकी इस बात पर ब्रह्माप्रमुख देवगण महादेवको साथ ले जगत प्रभु जनार्दनके सम्मुख उपस्थित हो वेदोक्त पुरुषसूक्त द्वारा स्तव करने लगे,—अन्तर्यामिन्! त्रिभुवनमें आपसे कुछ भी छिपा नहीं है। सब कुछ आप जानते हैं। सुरगण जब जब विपद्में पड़ते हैं, आप तब तब उनका उद्धार करते हैं। इस समय देव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, रक्ष आदि देवयोनिमात्र ही वरमदसे मत्त उस वृत्रासुर द्वारा विताड़ित हो गिरिगुहाका आश्रय लेने पर बाध्य हैं। अतएव हे देव! आपके सिवा इस विपद्से उद्धार पाना कठिन है और कोई उपाय दिखाई भी नहीं देता।

परम कारुणिक भगवान्‌ने देवताओंके इस तरह करुणापूर्ण वचनसे परम दयार्द्र हो उनको यथोचित अभय दान दे कर कहा,—सुरगण! आप लोग निर्भय हों। मैं उस दुर्दान्त दैत्यके विनाश करनेका उपाय जानता हूं। तत्त्वदर्शी पण्डितोंने शत्रुओंके प्रति प्रयोग करनेके लिये साम, दान, भेद और दण्ड इन चार प्रकारके उपायका निर्द्धारण किया है। अतएव पहले साम प्रयोग, बादमें प्रतारणाके सिवा इस शत्रुको जीतना कठिन है। अतएव पहले प्रलोभन दिखा उसको अपने वशमें ला कर पीछे उसका विनाश करना युक्तिसंगत है। गन्धर्व और ऋषिगण पहले उसके पास जायें, वह जो कहे, उसके अनुसार शपथपूर्वक विश्वास उत्पन्न कर कपटाचारसे केवलमात्र वाक्य द्वारा इन्द्रके साथ उसका मित्रत्व संस्थापन करें। इस कपटबन्धुतासूत्रमें सुरपतिके प्रति जब उसका विश्वास दृढ़ हो जायेगा तभी प्रतारणाका प्रकृत समय जानना। उसी समय मैं भी सुदृढ़ वज्रमें गुप्तरूपसे प्रविष्ट हूंगा, इन्द्र उसी वज्रके प्रहारसे उसका विनाश करेंगे। चाहे जो हो, इस विषयमें आपको कुछ समयकी प्रतीक्षा करनी होगी; क्योंकि, सम्पूर्ण रूपसे आयुष्काल शेष न होने पर किसी तरह उसका विनाश किया जा नहीं सकता।

इसके बाद विष्णुने और भी कहा, कि इस समय आप लोग सब मिल कर स्तोत्र मन्त्रादि द्वारा देवी भगवतीकी आराधना कर उनकी शरणमें जाइये। ऐसा होनेसे वह मोहजननी महामाया वरसे बलीयान् दुर्जय असुरको मोह पैदा कर देंगी। उससे इन्द्रके प्रति उसका विश्वास होगा और इन्द्र निश्चय ही अनायास निःसन्देह उसका वध करनेमें समर्थ होंगे।

विष्णुके परामर्शसे देवगण सुमेरुपर्वत पर जा सर्वाभीष्टप्रदायिनी जगज्जननी महामायाकी आराधना करने लगे और पीछे उन्होंने सन्तुष्ट हो उनको दर्शन दिया। देवताओंने आद्योपान्त वृत्तान्त सुना कर कहा, 'देवी! आप दया कर उस सुर-शत्रु वृत्रासुरको इस तरह विमोहित कीजिये, जिससे वह इन्द्र और देवोंका विश्वास करने लग जाये। हम लोगोंके अस्त्रोंमें ऐसी शक्ति दीजिये, कि हम लोग अनायास ही इस दुर्जय शत्रुको शीघ्र विनष्ट करनेमें समर्थ हों।' अमरोंकी इस प्रार्थना पर देवी 'तथास्तु' कह वहांसे अन्तर्हित हुई। देवगण भी वहांसे चले गये।

इसके बाद पूर्वकृत मन्त्रणाके अनुसार ऋषिगण वृत्रासुरके निकट जा देवताओंकी कार्य्यसिद्धिके लिये सामयुक्त रसात्मक प्रियवाक्यसे उसकी परितुष्टिकी चेष्टा करने लगे। सभी खुशामदियोंकी तरह कहने लगे, कि हे वृत्र! स्वर्ग, मर्त्य और रसातल—इन तीन लोकोंके लोग तुम्हारे अधीन हुए हैं। विश्वब्रह्माण्डमें सर्वत्र ही तुम्हारा आधिपत्य है, अतएव तुम्हारा यह आलय अतुल सुखका आधार है; किन्तु सामान्य विषयके लिये यहां एक विशेष दुःखका हेतु वर्त्तमान है। क्योंकि, देवदानवोंका युद्ध यद्यपि इस समय स्थगित है, तथापि विशेषरूपसे जानना, कि तुम और इन्द्रके वर्त्तमान रहने पर नर, अमर, असुर आदि प्रजावर्गके प्रत्येकके मनमें सदाके लिये त्रासके सिवा किसी प्रकार शान्ति न मिलेगी। तुम दोनोंके मनमें भी नियत वैरजात भय विद्यमान रहनेसे परस्पर कदाचित् स्थिर सुखसे कालातिपात कर न सकोगे। इसीलिये हम लोग विशेष मनःपीड़ासे पीड़ित हो तुम्हारे यहां आये हैं; क्योंकि

हमारे सामने तुम दोनों ही एक समान हो। इन दोनोंमें एक बार मित्रता स्थापन कर सकने पर हम लोग परम सुखसे जीवन बिता सकेंगे और त्रिलोककी प्रजा भी सुख चैनसे दिन बितायेगी। दैत्यराज! और अधिक क्या कहें। हम अरण्यवासी मुनि सब विषयोंकी शान्ति-कामना ही चाहते हैं। अतएव हम लोगोंका विशेष अनुरोध है, कि तुम इन्द्रके साथ मित्रता कर जगत्के सुखकी वृद्धि करो। इसके सम्बन्धमें हम और भी कहते हैं। तुम जैसा कहोगे, वैसा ही इन्द्र प्रतिज्ञा कर सकेंगे। अर्थात् जिससे तुम्हारे चित्तमें प्रीति उत्पन्न हो, हम लोग मध्यस्थ रह कर उनसे वैसा हो करा देंगे।

दैत्यपति वृत्रने महर्षियोंके वचन सुन कर पहले तो कहा, कि ऋषिगण! यह दुराचार इन्द्र निर्लज्ज, शठ, लंपट और ब्रह्मघातक है, ऐसे व्यक्तिका विश्वास कदापि नहीं करना चाहिये। आप लोग साधु और सद्गुणसम्पन्न हैं, आप लोगोंकी मतिबुद्धि दूसरेकी बुराईकी ओर कभी न जायेगी। आप लोगोंका चित्त शान्त है, इससे कपटचारियोंके मनका पता आप लोग नहीं पा सकते; अतएव दुष्टोंका मध्यस्थ करना आप लोगोंको कदापि उचित नहीं। वृत्रासुरकी इस उक्ति पर, इन्द्र किसी तरह की विश्वासघातकता न करेंगे, इस मर्मको नाना प्रकारकी युक्तियों द्वारा ऋषियोंके फिरसे विशेष अनुरोध करने पर वह उस समय सन्धि स्थापन पर सम्मत हुआ सही; किन्तु उसने उन लोगोंसे कहा, कि मुनियो! इन्द्र यदि समस्त शुष्क और आर्द्र वस्तु द्वारा अथवा काष्ठ, प्रस्तर या वज्र द्वारा दिन या रातको मुझे मार डालनेकी चेष्टा न करें, तो मैं इस शर्त्त पर उससे सन्धि कर सकता हूं। सिवा इसके अन्य किसी शर्त्त पर नहीं।

ऋषियोंने वृत्रकी यह शर्त्त स्वीकार की और इन्द्रको बुला कर अग्निकी शपथ दे दोनोंमें सख्य स्थापित करा दिया। इसके बाद दोनों एक साथ रहने लगे। एक साथ सोना, एक साथ बैठना आदि कार्य्य होने लगा। सच बात तो यह है, कि यह कपट-सम्मेलन होने पर भी असुरराजके मनमें किसी तरहका कपट न रहनेके कारण उसने इन्द्रके साथ प्रीति कर ली। दूसरी ओर इन्द्र उसके वधके लिये उत्सुक रहा करते थे।

इन्द्रके साथ यह सम्मेलन और उसके प्रति वृत्रके अकपट विश्वासका विषय ज्ञान कर विश्वकर्माने वृत्रसे कहा, 'वत्स! जिसके साथ एक बार शत्रुता उत्पन्न हुई है, उसका विश्वास करना कदापि सङ्गत नहीं। देखो, वह इन्द्र सदा लोभी, द्वेषी, परायेके दुःखमें उत्सवान्वित, परदारलम्पट, पापी, प्रतारक, छिद्रान्वेषी, हिंसक मायावी और गर्वित है; अधिक क्या कहें, उस पापीष्ठने अश्लीलाक्रमसे पापमय परित्याग कर माताके गर्भमें प्रवेश कर उसके गर्भस्थित रोते हुए बालकोंको सात सात भागोंमें विभक्त कर ४९ अंशोंमें काट दिया है। अतएव वत्स! सोचो जरा, ऐसे निर्लज्ज लोगोंको पापकार्य्यमें निरत रहनेमें लज्जा ही क्या?'

वृत्रासुरका मरणकाल निकट था; इससे पिताके इस उपदेश भरे वाक्यसे प्रबोधित हो कर भी उसने उसे शुभकर नहीं समझा। सुतरां विपद् भी उसके पीछे आ उपस्थित हुई। एक दिन तिमिरमयी सन्ध्या-मुहूर्त्तमें वृत्रासुरको निर्ज्जनमें देख इन्द्रके मनमें ब्रह्माके वरदानका विषय याद आ गया। उन्होंने सोचा, कि यही मेरा चिरानुसन्धित यथार्थ समय है। क्योंकि यह दिन भी नहीं रात भी नहीं, अतएव अब देर न कर शीघ्र ही काम करना चाहिये। कैसे क्या करें, इसको सोचमें कातर तथा भीतत्रस्त हो वे अव्ययात्मा हरिका स्मरण करने लगे। हरि भी पूर्व मन्त्रणाके अनुसार स्वयं आ अदृश्य-भावसे उनके वज्रमें घुसे, इससे इंद्रके चित्तमें जरा स्थिरता आई। इस समय फिर सामनेमें सागरवारिके पर्वत प्रमाण फेनको देख कर, यह सूखा भी नहीं और आर्द्र भी नहीं और शस्त्र भी नहीं ऐसा स्थिर किया। उस समय शक्तिसञ्चयके लिये पराशक्ति भुवनेश्वरी महामाया देवी भगवतीने इस फेनमें अपना अंश संस्थापन किया। इसके बाद नारायणाधिष्ठित वज्र भी उस फेनपिण्ड द्वारा आवृत हुआ। इन्द्रने उस फेनावृत वज्र वृत्रके प्रति फेंका। असुर अकस्मात् वज्राहत हो क्षणकालमें अचलेय पर्वतकी तरह निपतित हुआ और चिर दिनके लिये उसने इस जीवनकी यावतीय सुख समृद्धिको तिलाञ्जलि दे दी।

ऊपरमें जो पौराणिक आख्यायिका उद्धृत की गई,

वह वैदिक विवरणकी रूपकमात्र हैं। ऋग्वेदके कई स्थानोंमें वृत्र शब्द धात्वर्थगत अर्थसे प्रयुक्त देखा जाता हैं। वृत्र धातुका अर्थ आवरण है। जलको घेर करके रखता हैं, इस कारण वृत्र जलके कारागार (१।२।११, ५१) मेघरूपसे गृहीत हुआ है। (ऋक् १।५६।६, २।१४।२, ८।११।२६) इसी कारणसे वृत्र मनुष्योंके अपकार करनेवाला और शत्रु स्थानीय है। उक्त संहिताके ७ ४८।२, ८।६।४, १।७।५, १।५३।६, १।४८।१३, ३।४६।१, ४।१७।१६, ४।२८।६, ४।२४।१०, ४।४१।२, ६।१६।३, ६।२६।२, ६।२६।६, ६।३३।१, ६।४६।१, ७।८३।१, ७।३४।३ आदि स्थलोंमें वृत्र धनलाभविरोधी, शत्रु, अमित्र, अरि, रिपु, डाकू और मनुष्योंके अहितजनक, उपद्रव आदि अर्थमें प्रकटित है। ये सब प्रतिकूल उपद्रव या रिपुदलके शास्ता समझ ऋषियोंने इन्द्रकी उक्त मन्त्रोंसे स्तुति की है।

वे वज्रधारी हैं—वज्रहस्तसे मानवकुलके प्रतिकूलसाधक और अमङ्गलकर आदिम उपद्रवोंका ध्वंस करते हैं; इससे शत्रुओंके प्रति वज्रधारी "युजं वृत्रेषु वज्रिणम्" १।७।५) कह कर वर्णित हुए हैं। फिर ऋक्संहिता के ८।७८।१ और १०।५५।७ मन्त्रमें वे वृत्रहा कहके पूजित हुए हैं। शेषोक्त मन्त्रके भाष्यमें सायणाचार्यने लिखा हैं—

"वृत्रहत्याय प्राण्युपप्रकारकवृष्ट्यावरकत्वात् वृत्रः पापं। तस्य हत्याय मनुष्याणामुपद्रवशमनायेत्यर्थः तदर्थं वज्री वज्रवान् इन्द्रं उक्षत् वर्षति"

इससे स्पष्ट मालूम होता हैं, कि प्राणिगणके उपकारी वृष्टिके अवरोधकारी किसी नैसर्गिक बल या शक्ति हीकी पापरूप वृत्र है। उसको हत्या करनेके लिये इन्द्र वज्री हुआ था। इन्द्र मरुद्गणके साहाय्यसे बल पा कर वृत्रको वध पूर्वक पृथ्वीको जल वर्षण द्वारा अभिषिक्त किया। परवर्ती मन्त्रमें (१०।५५।८) सोमपानसे वर्द्धितवीर्य-शरीर इन्द्रने युद्धमें डाकुओंका विनाश किय था। यह देख मालूम होता है, कि पौराणिक रूपकमें वृत्रकी पापात्मा असुर रूपसे वर्णना नितान्त असङ्गत नहीं होती।

सच तो यह हैं, कि पुराणमें वृत्र नामक असुरके साथ इन्द्रके युद्ध सम्बन्धीय जो आख्यान है, ऋक्संहिताके १।३२ सूक्तमें उसकी उत्पत्ति और पूर्णपुष्टि देखी जाती है। मेघका नाम वृत्र या अहि है। इन्द्रदेवने वज्र द्वारा आघात कर वृष्टि अभिवर्षण किया था। वैदिक ऋषियोंकी इस कल्पना और उपमासे पुराणकारके वृत्रसंहारकी घटना है।

ऋक्संहिताके १।३२।५ मन्त्रसे हम जान सकते हैं कि अन्धकार रूपसे जगत्के आवरणकारी वृत्रको इन्द्रने महाध्वंसकारी वज्रसे भुजा काट कर उसका विनाश किया। कुठारच्छिन्न वृक्षस्कन्धको तरह अहि पृथ्वी स्पर्श कर गिरा हुआ है। यहाँ वृत्र और अहि दो असुर नहीं; किन्तु एक ही अर्थमें मेघके परिवर्त्तनमें व्यवहृत हुआ है। उन ऋक्के १।३२।१ और ४ थे मंत्रमें अहियोंकी हत्यासे आवरक मेघ निर्मुक्त कर आकाशके प्रकाशकी बात है। १।३२।६ ७ मन्त्रमें लिखा है, कि दर्पयुक्त वृत्रने अपने समान योद्धा नहीं समझ कर महावीर, विनाशी और शत्रुविजयी इन्द्रको युद्धके लिये बुलाया। किंतु इन्द्रके हाथसे उसकी रक्षा न हुई। नदीमें गिर कर नदियोंको डांवा डोल कर दिया। (अर्थात् वृष्टि होनेसे नदीतट जलप्लावनसे प्लावित हुआ था)। इस तरह हाथ पैर हीन या विच्छिन्नावयव हो कर भी जब वृत्रने इन्द्रको फिर युद्धके लिये ललकारा, तब इन्द्रने उसके प्रौढ़ स्कन्धमें वज्राघात किया था। जिस तरह पुरुषत्वहीन लोग पुरुषत्वसम्पन्न लोगोंकी बराबरीका हक पानेकी वृथा कामना करते हैं, वृत्रने भी उसी तरह अपनी स्थितिके लिये वृथा यत्न किया। अन्तमें क्षत विक्षत हो कर वृत्र भूमिमें गिर गया। वृत्रने जीवित दशामें अपनी महिमा द्वारा जिस जलको आबद्ध रखा था, उसकी मृत्यु पर वह जल वृत्रदेहको उल्लंघन कर प्रवाहित हुआ। (१।३२।८) स्थितिरहित, विश्राम रहित, जलमें निहित, नामशून्य उस शरीरसे जल बह जाता है, इन्द्रशत्रु लम्बी निद्रामें सो रहा है। (१।३२।१०, १।१२१।११, २।११।१६)

इन्द्रने जब वज्र द्वारा वृत्रको निहत किया तब वृत्रकी माता दनुने पुत्रको अस्त्राघातसे रक्षा करनेके लिये अपनी देहके नीचेमें रखा था। इस समय वृत्र पत्नियाँ अहिरक्षित हो कर निरुद्ध थीं। वृत्रको मार कर इन्द्रने उसी द्वारको खोल दिया। (ऋक् १।३२।६

और ११) ऋक् ३।४३।३ मन्त्रमें इन्द्र द्वारा वृत्रको घेरनेकी बात लिखी है।

फिर १।३२।१२-१४ मन्त्रमें लिखा है, कि 'एक देव वृत्रने इन्द्रके वज्रके प्रति जब भीमप्रहरण प्रहार किया, तब इन्द्रने अश्वपुच्छकी तरह बन कर उस अस्त्राघातका निवारण किया था। अहिको हनन करनेके समय इन्द्रके हृदयमें भयका सञ्चार हुआ था। उसमें उन्होंने वृत्रके दूसरे हन्ताको प्रतीक्षा की थी; अन्तमें वे ६६ नदियों और जलाशयोंको पार कर श्येन पक्षीकी तरह भागे थे।' सायणाचार्य्यका कहना है, कि वृत्रको हनन करनेसे पहले इन्द्रके हृदयमें वृत्रका मारना उचित है या नहीं यह भय समाया था; किन्तु मूल पढ़नेसे मालूम होता है, कि इन्द्र शत्रुके भयसे ही भागे थे। इसी बातके आधार पर पौराणिकोंने लिखा है, कि इन्द्र वृत्रके भयसे कोलमें छिपे थे।

सिवा इसके ऋग्वेदके ३।३०, १।५२।१०-१५।८।६।६, ६५।२, ८।६६।३, मन्त्रमें इन्द्र द्वारा वृत्रके हाथ पैर, मुख मस्तक घुटना आदि छिन्न भिन्न होनेकी बात है। युद्धकालमें वृत्रने भी इन्द्रके प्रति विद्युत्वर्षण, विकट गर्जन, और जल वर्षण आदि किया था। (१।८०।१२, १।३२।१२) इस समय वृत्रने नाना तरहके भयावह शब्दोच्चारण कर आकाशको कम्पित किया था। (८।८५।७, ५।२६।४, १।६१।१०, ६।१७।१०) जो वृत्र जलबन्द कर अन्तरीक्षके ऊपर सोया था और अन्तरीक्षमें जिसकी असीमव्याप्ति थी, उसी वृत्रके दोनों घुटनेको इन्द्रने शब्दायमान वज्रसे काट कर जमीनमें गिरा दिया। (१।५२।६)

१।८०।५ मन्त्रमें वृत्रको उग्रसानुरूप कह कर वर्णना की गई है। ८।३।१६ मन्त्रमें इन्द्र द्वारा उसको ऊंचेसे नीचेमें गिरा कर और ७।१६।५ और ८।८२।२, १०।८६।७ मन्त्रोंमें इन्द्र द्वारा उसके ६६ पुरियोंके ध्वंसकी बात लिखी है।

ऋक् १।३३।४ ८ मन्त्रको पढ़नेसे मालूम होता है, कि वृत्र धनवान् डाकुदलपति और उसके अनुचर सनकगण यज्ञविरोधी थे। इन्होंने इन्द्रके साथ घोर युद्ध किया था। उक्त वृत्रानुचरने (भुजाके बलसे) पृथ्वीको आच्छादन किया था और वे हिरण्य और मणि द्वारा शोभमान हुए थे। वे वर्द्धमान शत्रु इन्द्र द्वारा विजित हो भागे, इत्यादि वृत्तान्त पौराणिक आख्यानोंका पोषक है, यह कौन अस्वीकार करेगा ?

वृत्रके साथ वृत्रहन्ताके युद्धकी गल्प प्राचीन आर्य्योंमें प्रचलित थी। अतएव हिन्दुओंके सिवा अन्यान्य आर्य्य जातियोंमें भी इस कहानीका कुछ अंश पाया जाता है। इरानियोंके 'अवस्ता' शास्त्रमें वृत्रहन्ताकी उपासना लिखी है। निम्नोक्त विवरणमें उसका आभास मिलता है—

"अहुरके सृष्ट वेरेथ्रघ्नको (संस्कृत वृत्रघ्न) हम लोग यज्ञ प्रदान करते हैं"

जरथुस्त्रने अहुर मजदसे पूछा, कि हे सदयचित्त अहुरमज्द! हे जगत्के सृष्टिकर्त्ता पवित्रात्मा! स्वर्गीय उपास्योंमें कौन सर्वोत्कृष्ट अस्त्रधारी है? अहुर-मज्दने उत्तर दिया—हे स्पितम जरथुस्त्र! अहुरके सृष्ट वेरेथ्रघ्न (सर्वोत्कृष्ट अस्त्रधारी) है।"

(जन्द अवस्ता, वहराम जस्त)

फिर उक्त ग्रंथमें अहिविनाशके सम्बन्धमें अनेक बातें पाई जाती हैं, हम उनका कुछ अंश उद्धृत करते हैं—

वीर्यवान् आथ्वकुलके उत्तराधिकारी थ्रएतेनने भी (संस्कृत आप्त्य त्रित या त्रैतन) चौकोन वरुण प्रदेशमें एक सुवर्ण सिंहासन प्रदान किया। उन्होंने उससे एक वर प्रार्थना कर कहा, 'हे ऊर्द्ध्वविचारी वायु! मुझको यह वर दो, कि मैं तीन मुख और तीन मस्तक युक्त अजिदहको (संस्कृत 'अहि' 'दहक') परास्त कर सकूं।

(जन्द अवस्ता, रामजस्त)

इरानियोंके अवस्तामें वृत्र और अहिका परिचय जैसा है, यूनानी ग्रंथोंमें वैसा ही विवरण दिखाई देता है—

"Ahi reappears in the Greek Echis, Echidna, the dragon which crushes its victim with its coil" Cox's Introduction to mythology and folklore. p. 34 note) "But besides Kerberos (ऋग्वेदोक्त यमका कुकुर सरमा) there is another dog conquered by Hercules, and he (like Kerberos is born of Typhaon and Echidna (ऋग्वेद-

में अहि)........The second dog is known by the name of orthros, the exact copy, I believe of the Vedic Vritra. That too Vedic Vritra should reappear in the shape of a dog need not surprise us......Thus we discover in Hercules the victor of Orthros, a real Vritrahan"—Max Muller's Chips from a German workshop, vol. II [1897]. pp. 184 185.

वृत्रहन्ता इन्द्र हिन्दुओंके जैसे उपास्य है इरानियोंके के लिये भी वैसे ही उपास्य हैं। यह अवस्ताके उपर्युक्त उद्धृतांशसे मालूम होता है। किन्तु इरानी इन्द्रको पापमती पिशाच कह कर घृणा करते हैं। अवस्ता के दशवें फारगर्देमें लिखा है, कि 'मैं इन्द्रको, सौरुको और देवनङ्घत्यको इस गृहसे, इस ग्रामसे, इस नगरसे, इस देशसे * * इस पवित्र अखण्ड जगत्से दूर कर दूं।'

इससे मालूम होता है, कि प्राचीन आर्यगण वृत्रघ्नकी उपासना करते थे। किन्तु जब इनमें दो दल हो कर विवाद उठ खड़ा हुआ, तब एक दलने वृत्रघ्नको इन्द्र नामसे पूजा दी और दूसरा दल इन्द्रसे घृणा करने लगा।

ऊपर जन्द अवस्तासे जो अंश उद्धृत किया गया है, उसमें इन्द्रके सिवा सौरु और नङ्घत्य नामके दो देवताओंका उल्लेख है। नङ्घत्य देवका संस्कृत नाम नासत्यद्वय अर्थात् अश्विद्वय है। अतएव मालूम होता है, कि जिस समय हिन्दू और इरानी आर्योंमें विवाद चल रहा था, उस समय हिन्दू आर्यगण अश्विद्वयकी उपासना करते थे। जन्द अवस्ताके सौरुका ठीक परिचय नहीं मिलता। कुछ लोगोंका कहना है, कि वेदके 'शर्व'; दूसरे मतसे वेदके 'सरु'—जो मृत्युके वाण या निदर्शन हैं।

इन्द्रने वृत्र और वृत्रको ९९ पुरियोंके ध्वंसके (७।१९।५) साथ ८१० वृत्रोंको दधीचि मुनिकी हड्डीसे मारा था। (ऋक् १।८४।१३)

३ मेघ। "अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनां" (ऋक् ३।३३।६) 'वृत्रं वृणोति आकाशमिति वृत्रो मेघस्त' (सायण)

४ पर्वतविशेष। ५ इन्द्र। (विश्व) ६ शब्द।

(सिद्धान्तकौमुदी)

वृत्रखाद (सं० पु०) वृत्रं खादति खाद अच्। वृत्रहननकारी इन्द्र।

वृत्रघ्न (सं० पु०) १ वृत्रको मारनेवाले इन्द्र। २ एक देशका नाम, जो गङ्गातट पर था। यहां अश्वमेध यज्ञ हुआ था।

वृत्रघ्नी—पारिपात्र नामक पर्वतगात्रसे निकली हुई एक नदीका नाम। (मार्कण्डेयपु० ५७।२१)

वृत्रतर (सं० पु०) वृत्रेण आवरणेन सर्वां तरतीति पचाद्यच्। वह जो सब लोगोंके विशेष आवरक अर्थात् अन्धकार स्वरूप अथवा जो आवरण द्वारा यावतीय शत्रुओंको समाच्छन्न करते हैं।

वृत्रतुर (सं० त्रि०) वृत्रहन्ता, वृत्रासुरका नाश करनेवाले इन्द्र।

वृत्रतुर्य (सं० क्लो०) संग्राम, युद्ध, लड़ाई।

वृत्रत्व (सं० क्लो०) १ शत्रुता। २ वृत्रका भाव या धर्म। (तैत्तिरीयस० २।४।१२।२)

वृत्रद्विष् (सं० पु०) वृत्रं द्वेष्टीति द्विष-क्विप्। इन्द्र।

वृत्रनाशन (सं० त्रि०) वृत्रं नाशयतीति नाशि ल्यु। वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्र।

वृत्रपुत्रा (सं० स्त्री०) वृत्रकी माता। (ऋक् १।३२।९)

वृत्रभोजन (सं० पु०) गंडीर या गिडनी नामका साग।

वृत्रवध (सं० पु०) वृत्रहत्या, वृत्रासुरका संहार।

वृत्रवैरी (सं० पु०) वृत्रका शत्रु, इन्द्र।

वृत्रशङ्कु (सं० पु०) एक प्रस्तरस्तम्भका नाम।

वृत्रशत्रु (सं० पु०) वृत्रका वैरी इन्द्र।

वृत्रह (सं० त्रि०) वृत्रं हन्ति हन् क। वृत्रहन्ता, वृत्रको मारनेवाले इन्द्र।

वृत्रहत्य (सं० क्लो०) वृत्र-हन क्यप्; हनस्त चेति हन्तेर्भावे क्यप्, तकाराश्चान्तादेशश्च। वृत्रहनन, वृत्रवध। (ऋक् १।५२।४)

वृत्रहथ (सं० पु०) हननं हथः वृत्रस्य हथः। वृत्र हनन, वृत्रवध। (ऋक् ३।१६।१)

वृत्रहन् (सं० पु०) वृत्रं हतवान् (ब्रह्मभ्रूण वृत्रेषु क्विप्। पा ३।२।८७) इति क्विप्। इन्द्र। (ऋक् १।१०६।६)

वृत्रहन्तृ (सं० पु०) वृत्रस्य हन्ता। वृत्र हननकारी, वृत्रनाशक, इन्द्र।

वृत्रारि (सं० पु०) इंद्र।

वृथक् (सं० अव्य०) पृथक्। "यतन्ते वृथगग्नयः" (ऋक् ८।४३।४)

वृथा (सं० अव्य०) निरर्थक, निष्फल, व्यर्थ, फजूल।

वृथाजन्मन् (सं० क्ली०) वृथा निरर्थकं जन्म। निरर्थक जनन, निष्फल जन्म। अग्निपुराणमें चार प्रकारके वृथा जन्मके विषयोंका उल्लेख किया गया है। जिसके पुत्र न हो, जो अधार्मिक हैं, जो सर्वदा परपाकभोजनकारी अर्थात् नियत परप्रत्याशी हैं और जो पराधीन हैं—इन चार तरहके लोगोंका वृथा है।

वृथात्व (सं० क्ली०) मिथ्यात्व, वृथा होनेका भाव या धर्म।

वृथादान (सं० क्ली०) वृथा निरर्थकं दानं। निष्फल दान। अग्निपुराणमें १६ प्रकारके वृथादानकी बात कही गई हैं। देवपितृविहीनदान, अर्थात् जो दान पितृ और देवके उद्देशसे न किया जाये, वह वृथा है।

वृथामांस (सं० क्ली०) वृथा निरर्थकं मांसं। जो मांस देवता और पितृगणको चढ़ाया न गया हो, वह मांस वृथा है। ऐसे वृथामांसके भक्षणका निषेध किया है। अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो वृथामांस भक्षण करता है, उसे प्रेतत्व प्राप्त होता है।

मनुसंहितामें वृथामांस भोजन विशेषरूपसे निषिद्ध है। प्राणिहिंसा न करनेसे किसी तरह मांस उत्पन्न नहीं होता। प्राणिवध कार्य्य किसी तरह स्वर्गजनक नहीं हो सकता। अतएव मांस भोजन निषिद्ध है। मांसकी उत्पत्ति, जीवधारियोंका वध, और बन्धन-यन्त्रणा इन सबको विशेषरूपसे पर्य्यालोचना करने पर यह स्पष्ट है, कि वैध या अवैध सब तरहके मांसका खाना उचित नहीं।

शास्त्रविधिका त्याग कर जो निशाचरोंकी तरह मांसभक्षण नहीं करते, वे लोकसमाजमें प्रिय गिने जाते हैं और कभी किसी व्याधि या रोग द्वारा वे पीड़ित भी नहीं होते। पशुहनन करनेकी आज्ञा देनेवाला, मरे हुए पशुके मांस भाग लगानेवाला, स्वयं पशुहन्ता, मांस क्रय विक्रयकारी, मांस पकानेवाला, मांस परोसनेवाला, और मांसभक्षक, ये आठ आदमी ही घातक कहे जाते हैं। जो आदमी पितृ और देवोंकी अर्चना न कर दूसरे-के मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहते हैं उनके समान जगत्में पापकारी और कोई नहीं। जो मनुष्य सौ वर्ष तक वार्षिक अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। और जो यावज्जीवन मांस भोजन न करे ये दोनों ही समान पुण्यफलके अधिकारी हैं।

वैध मांसभक्षणमें, वैध मद्यपान करनेमें, वैध मैथुन करनेमें दोष नहीं; क्योंकि भक्षण, पान, मैथुन आदि विषयमें जीवकी प्रवृत्ति स्वाभाविकी है। किन्तु जो भाग्यवान् व्यक्ति इनसे सम्पूर्णरूपसे पृथक् रहते हैं, वह महापुण्यवान् हैं।

वृथापाह (सं० त्रि०) अनायास ही शत्रुको अभिभव-कारी।

वृद्ध (सं० त्रि०) वृध् वृद्धौ क्त, (यस्य विभाषा। पा ७।२।१५) इति नेट्। गतयौवन, बूढ़ा; पर्याय—प्रवर, स्थविर, जीन, जीर्ण, जरन्, जर्जर, पलित। राजनिर्घण्टके मतसे इक्या-वन वर्षके बाद मनुष्य बुड्ढ़ा होता है। अवस्था तीन हैं—बालक, युवा और वृद्ध। इनमें सोलह वर्षसे कम उम्रकी बाल अवस्था है। यह बाल अवस्था भी तीन प्रकारकी है दुग्धपायी, दुग्धान्नभोजी और अन्न-भोजी। एक वर्षकी अवस्था तक दुग्धपायी, दो वर्ष तक दुग्धान्नभोजी, इसके बाद अन्नभोजी है।

१६से सत्तर वर्षकी अवस्था तक मनुष्यको युवक या मध्य वयस्क कहते हैं। यह युवा चार प्रकारको है—वर्द्धनशील, युवापूर्णवीर्य और क्षयशील। इनमें २० वर्ष तक वर्द्धनशील अवस्था, युवा, पूर्णवीर्य, और क्षयशील। इनमें २० वर्ष तक वर्द्धनशील अवस्था, ३० वर्ष तक युवा और ४० वर्ष तक पूर्णवीर्यादि सम्पन्न है अर्थात् वीर्य्य रसरक्त आदि समस्त धातु इन्द्रिय बल और उत्साह आदि स्थिर भावसे पूर्ण रहता है। इसके बाद ७० वर्ष तक क्रमसे समस्त धातु इन्द्रिय, बल, उत्साह आदि किञ्चित् क्षीण होता रहता है। ७० वर्ष-के बाद रस रक्त आदि धातु, इन्द्रिय और बल क्षीण होने लगता है तथा वलि, पलित, खालित्य युक्त हो

समस्त कामोंमें अक्षम हो जाता है। खांसी, दमा, आदि रोग द्वारा आक्रान्त हो अतिशय क्लेश पाने लगता है। इस अवस्थाके लोगोंको वृद्ध कहते हैं। मानवोंके बालक कालमें कफ, मध्यवयसमें पित्त और वृद्ध अवस्थामें वायु वर्द्धित होती है। रोगादिके कारण कुछ लोगोंको अकालमें ही वार्द्धक्य प्राप्त हो जाता है। इस तरहसे वार्द्धक्य प्राप्त होने पर भी उपरोक्त लक्षण दिखाई देते हैं।

२ पण्डित। मनुमें लिखा है, कि मस्तकके केश पक जाने पर ही वृद्ध कहना चाहिये, ऐसी धारणा बिलकुल गलत है। किन्तु जो युवा हो कर भी विद्वान् हैं वह वृद्ध नामसे पुकारा जाता है। (मनु २।१५६)

ज्ञानवृद्ध ही यथार्थमें वृद्ध कहने योग्य है। हितोप देशमें लिखा है, कि आपद्काल उपस्थित होने पर वृद्धके वचनानुसार चलना आवश्यक है। ऐसा करनेसे मनुष्य सहज ही विपद्से उद्धार पाते हैं। (क्लो०) २ शैलज नामक गंधद्रव्य। (अमर) (पु०) ३ वृद्धदारक।

वृद्धक (सं० लि०) वृद्ध-स्वार्थे कन्। वृद्ध।

वृद्धकण्ट (सं० पु०) इङ्गुदीका पेड़।

वृद्धकर्मन् (सं० पु०) राजभेद।

वृद्धकाक (सं० पु०) वृद्धः काकः। काला कौवा। पर्याय—द्रोणकाक, दग्धकाक, कृष्णकाक, पर्वतकाक, वनाश्रय, काकोल।

वृद्धकाल (सं० पु०) वृद्धः कालः। वृद्धावस्था, बुड्ढा काल, प्राचीनावस्था।

वृद्धकावेरी (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

वृद्धकृच्छ्र (सं० क्लो० कृच्छ्रभेद।

वृद्धकेशव (सं० पु०) सूर्यकी एक मूर्त्तिका नाम।

वृद्धक्रम (सं० पु०) पूर्वतन पितृगणकी परम्परा।

वृद्धक्षत्र (सं० पु०) एक राजाका नाम।

वृद्धगङ्गा (सं० स्त्री०) वृद्धा गङ्गा, बूढ़ी-गङ्गा।

कालिकापुराणके ८८वें अध्यायमें इस गङ्गा नदीके सम्बन्धमें यों लिखा है:—

नाटकशैल पर मानससरोवरकी तरह स्वर्णपङ्कज शोभित एक बड़ा सरोवर था। वहां हरपार्वती नित्य जलक्रीड़ा करते थे। इसके पश्चिम, मध्य और पूर्व भागसे यथाक्रम दिक्करिका, वृद्धगङ्गा और स्वर्णग्रीवा नामकी तीन नदियां उत्पन्न हो सागरकी ओर अग्रसर हुई हैं। इनमें दिग्गज द्वारा दिक्करिकाकी, शङ्कर द्वारा वृद्धगङ्गाकी और उक्त शैलवरके पूर्व ओरसे स्वयं निकलनेवाली स्वर्णग्रीवा नदीकी उत्पत्ति हुई है। ये सभी नदियां गङ्गाकी तरह फलप्रदायिनी हैं।

वृद्धगङ्गाधर (सं० पु०) चूर्ण औषधभेद।

वृद्धगर्ग—उत्पातशान्ति, रोहिणी शान्ति और वृद्धगर्गीय नामके ज्योतिर्ग्रन्थ-प्रणेता।

वृद्धगार्गीय (सं० लि०) वृद्धगर्ग सम्बन्धीय।

वृद्धगार्ग्य (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। २ एक संहिताका नाम।

वृद्धगिरि—एक प्राचीन तीर्थका नाम। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इसका माहात्म्य लिखा है।

वृद्धगोनस (सं० पु०) मण्डली सर्पविशेष, सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका सांप।

वृद्धगौतम (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रका नाम और उसके प्रणेता।

वृद्धचाणक्य (सं० पु०) १ एक नीतिसंग्रहकारका नाम। २ एक ग्रन्थका नाम।

वृद्धता (सं० स्त्री०) वृद्धस्य भावः वृद्ध-तल-टाप्। वृद्धके भाव वा धर्म।

वृद्धतिक्ता (सं० स्त्री०) पाठा, पाढ़ा।

वृद्धत्व (सं० क्लो०) वृद्धस्य भावः वृद्ध-त्व। वार्द्धक्य। वृद्धता, वृद्धका भाव या धर्म। पर्याय—स्थाविर, वार्द्धक्य, वार्द्धक।

वृद्धदार (सं० पु०) वृद्धदारक।

वृद्धदारक (सं० पु०) वृद्धो दारको बालक इव यस्मात्। १ बीजताड़क वृक्ष। २ स्वनामख्यात लताविशेष, विधारा नामका क्षुप। यह काला, सादा और लाल रङ्गका होता है। पर्याय—ऋक्षगन्धा, छगलाङ्घ्री, छगला, अन्त्री, जुङ्गा, श्याम, ऋष्यगन्धा, छगलान्त्रिका, दीर्घवालुका, वृद्ध, कोटरपुष्पी, अजान्त्री, वृद्धदारु, वृद्धकोटरपुष्पा। गुण—मधुर, पिच्छिल, बलकारक, रसा-

यव और कफ, वात, खाँसी, सूजन और आमदोष-नाशक।

३ नीलबुहा।

वृद्धदारकादिलौह (सं० क्ली०) ऊरुस्तम्भरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। इस प्रस्तुत-प्रणाली इस तरह है—वृद्धदारक, इमली और दन्तीमूल, हस्तीकर्ण, चितामूल, मानकच्चू, सोंठ, पिपर, मिर्चा, आँवला, हरीतकी, बहेड़ा, चिता, मोथा, विड़ङ्ग, इन सब द्रव्योंके प्रत्येकको चूर्ण कर जितना चूर्ण होगा, पहले उसे अच्छी तरह मिला कर एक कर देना होगा। पीछे जलसे सान कर २ रत्ती-के प्रमाण गोली तय्यार करनी होगी। यह गोली ऊरुस्तम्भ तथा आमवात आदि रोगोंमें भी विशेष उपकार करती है।

वृद्धदारु (सं० क्ली०) वृद्धत्वनाशकं दारु यस्य। वृद्धदारक वृक्ष।

वृद्धद्युम्न (सं० पु०) अभिप्रतारि वंशीय एक ऋषिका नाम।

वृद्धधूप (सं० पु०) १ सिरिसका पेड़। २ सरलका पेड़।

वृद्धधूमा (सं० स्त्री०) श्लेष्मातक वृक्ष।

वृद्धनगर (सं० क्ली०) वड़नगर। नागर देखो।

वृद्धनाभि (सं० त्रि०) वृद्धः प्रवृद्धो नाभिर्यस्य। उन्नत नाभि, जिसका पेट निकला हो, तोंदवाला, तोन्दैल।

वृद्धपराशर (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धप्रपितामह (सं० पु०) प्रपितामहाद्वृद्धः। प्रपितामहतात, दादाका दादा, परदादाका पिता।

वृद्धवला (सं० स्त्री०) वृद्धे वला। १ महासमङ्गा, कंगही या कंघी नामका वृक्ष।

वृद्धवृहस्पति (सं० पु०) १ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकारका नाम। २ उनके बनाये ग्रन्थका नाम।

वृद्धभाव (सं० पु०) वृद्धस्य भावः। वृद्धका भाव।

वृद्धभोज (सं० पु०) एक धर्मशास्त्र संग्रहकारका नाम।

वृद्धमनु (सं० पु०) १ एक धर्मशास्त्रकारका नाम। २ एक ग्रंथका नाम।

वृद्धमहस् (सं० त्रि०) वृद्धं महो यस्य। वृद्ध तेजाः अतिशय तेजोयुक्त। (ऋक् ६।२०।४)

वृद्धयवनाचार्य (सं० पु०) यवनजातक नामक ज्योतिष ग्रंथके रचयिता।

वृद्धयागेश्वर—हिमालय शिरस्थ एक तीर्थका नाम।

वृद्धयाज्ञवल्क्य (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धयुवती (सं० स्त्री०) १ कुट्टनी, धात्री, दाई।

वृद्धराज (सं० पु०) अमलवेंत।

वृद्धवदरी—हिमालय शिखरस्थ एक तीर्थका नाम।

वृद्धवयस (सं० क्ली०) वृद्धं वयः। प्राचीन वयस, बुढ़ापा। (त्रि०) वृद्धं वयो यस्य। २ वृद्ध, बुड्ढा। ३ प्रभुतान्न, प्रचुर अन्नविशिष्ट। (ऋक् ३।२७।१३)

वृद्धवशिष्ठ (सं० पु०) १ एक धर्मशास्त्रकारका नाम। २ वशिष्ठसिद्धान्त या विश्वप्रकाश नामक ज्योतिर्ग्रंथके प्रणेता।

वृद्धवाग्भट (सं० पु०) १ एक वैद्यकग्रंथके रचयिता। २ ग्रंथभेद।

वृद्धवादसूरि (सं० पु०) एक जैनाचार्यका नाम।

वृद्धवादिन् (सं० पु०) वृद्धवादी, एक जैनाचार्यका नाम।

वृद्धवाशिनी (सं० स्त्री०) शृगाल, स्यार, गीदड़।

वृद्धवाहन (सं० पु०) आमका पेड़।

वृद्धविभीतक (सं० पु०) वृद्धः प्रवृद्धो विभीतक इव। आम्रातक, आमड़ा।

वृद्धविष्णु (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धवृष्ण (सं० त्रि०) वृद्ध वृष्णि-सम्बन्धीय।

वृद्धवृष्णिय (सं० त्रि०) वृद्ध वृष्णि-सम्बन्धीय।

वृद्धशङ्ख (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धशर्मन् (सं० पु०) भारतीय एक राजाका नाम। (महाभारत)

वृद्धशवस (सं० त्रि०) प्रवृद्धबल, अत्यन्त बलविशिष्ट। (ऋक् ५।८७।६)

वृद्धशाकल्य (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

वृद्धशातातप (सं० पु०) एक धर्मशास्त्रकारका नाम।

वृद्धशोचिस् (सं० त्रि०) अतिशय तेजोयुक्त, अति तेजस्वी।

वृद्धश्रवा (सं० पु०) वृद्धश्रवस्, इन्द्र।

वृद्धश्रावक (सं० पु०) कापालिक।

वृद्धसङ्घ (सं० पु०) वृद्धानां संघः। वृद्धसमूह, बहुतेरे वृद्ध, वार्द्धक।

वृद्धसुश्रुत (सं० पु०) १ आदि सुश्रुतसंहिताके रचयिता। २ एक ग्रन्थका नाम।

वृद्धसूचक (सं० पु०) कपास।

वृद्धसूत्रक (सं० क्ली०) वृद्धस्य सूत्रं, ततः स्वार्थे कन्। इन्द्रतुला, बुढ़ीका सूता।

वृद्धसेन (सं० त्रि०) प्रवृद्ध बलविशिष्ट।

(ऋक् १।१८६।८)

वृद्धसेना (सं० स्त्री०) देवताजित्‌की माता। चन्द्रवंशीय भरतात्मज सुमतिके औरस और इनके गर्भसे देवताजित्‌ने जन्म लिया था। (भागवत ५।१५।२)

वृद्धहारीत (सं० पु०) १ एक प्राचीन धर्मशास्त्रकारका नाम। २ एक धर्मशास्त्र।

वृद्धा (सं० स्त्री०) वृद्ध-टाप्। १ गतयौवना, बुड्ढी। पर्याय—पलिक्नी, पलिता, स्थविरा, निष्फला, जरती, गतार्त्तवा। ५५ वर्षके उपरान्त स्त्रियां वृद्धा कही जाती हैं।

"आषोड़शाद् भेवद्‌बाला तरुणी त्रिंशता मता।
पञ्चपञ्चाशतः प्रौढ़ा वृद्धा भवति तत्परम्॥"

(कालिदास)

१६ वर्ष तक बाला, ३० वर्ष तक तरुणी, ५५ वर्ष तक प्रौढ़ा और इसके बाद वृद्धा कहलाती है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि ५० वर्षके बाद स्त्रियां वृद्धा कही जाती हैं। वृद्धा स्त्रीका संसर्ग निषिद्ध है। इससे मृत्यु होती है। २ अंगुष्ठ। ३ महाश्रावणिका।

वृद्धागङ्गा—बङ्गाल त्रिपुरेके उत्तरी भागसे प्रवाहित एक नदीका नाम।

वृद्धाङ्गुलि (सं० स्त्री०) वृद्धा अङ्गुलिः। हाथ पैरकी मोटी उंगली, अंगूठा।

वृद्धाचल (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अर्काट जिलेका एक नगर। वर्त्तमान नाम—विरुधाचलम्। विरुधाचलम् देखो।

वृद्धात्रि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

वृद्धात्रेय (सं० पु०) आत्रेय ऋषि।

वृद्धादित्य (सं० पु०) आदित्यका दूसरा नाम।

वृद्धान्त (सं० पु०) १ सम्मानका पात्र या स्थान। (दिव्या०) ज्ञानवृद्धकी चरमदशा।

वृद्धायु (सं० त्रि०) प्रवृद्ध आयुयुक्त।

(ऋक् १।१०।१२)

वृद्धार्यभट (सं० पु०) एक ज्योतिःशास्त्रकार।

वृद्धि (सं० स्त्री०) वृद्ध-क्तिन्। अष्टवर्गके अन्तर्गत एक ओषधि। गौड़देशमें दक्षिणावर्त्तफला नामसे प्रसिद्ध है। पर्याय—योग्या, ऋद्धि, सिद्धि, लक्ष्मी, पुष्टिदा, वृद्धिदात्री, मङ्गल्या, श्री, सम्पद्, आशीः, जनेष्टा, भूति, मुद्, सुख, जीवभद्रा। गुण—मधुर, सुस्निग्ध, तिक्त, शीतल, रुचि, और मेधावर्द्धक, श्लेष्मा, कुष्ठ और कृमिनाशक है।

ऋद्धि और वृद्धि—ये दो तरहके कन्द कोषयामल प्रदेशमें उत्पन्न होते हैं। ये दोनों कन्द शुक्लवर्ण रोमयुक्त, छिद्रसमन्वित, और लताजात हैं। ऋद्धि रूईकी पांठके समान है; किन्तु फल वामावर्त्त है और वृद्धिका फल दक्षिणावर्त्त है। ऋद्धिके गुण—बलकारक, त्रिदोषनाशक, शुक्रवर्द्धक, मधुरस, गुरु, बल, और ऐश्वर्य्यवर्द्धक, मूर्च्छा और रक्तपित्तनाशक; वृद्धिके गुण—गर्भप्रद, शीतवीर्य्य, मांसवर्द्धक, मधुररस, शुक्रवर्द्धक रक्तपित्त, क्षत, खांसी और क्षयरोगनाशक।

परिभाषा मतसे ऋद्धिके अभावमें बला और वृद्धिके अभावमें महाबला देना होता है।

२ नीतिवेदियोंके मतसे क्षयादि त्रिवर्गके अन्तर्गत वर्गविशेष। कृषि आदि अष्ट वर्गके अपचयका नाम क्षय और उपचयका नाम वृद्धि है। कृष्याद्यष्टवर्ग यथा—कृषि, वाणिज्य, दुर्ग, सेतु (पुल), कुञ्जरबन्धन, खन्याकर, बलादान, और सैन्यसन्निवेश इस वर्गके उपचयको वृद्धि कहते हैं। पर्य्याय—वर्द्धन, स्फीति।

३ विष्कम्भ आदि २७ योगोंके अन्तर्गत-११वां योग। इस योगमें जन्म होनेसे मनुष्य सुभोगी, विनयी, धनप्रयोगमें दक्ष और क्रयविक्रयमें विचक्षण ज्ञानी होते हैं।

४ कलान्तर, सूद। वृद्धि या सूद लेनेका भी नियम है। इच्छानुसार सूद लिया जा नहीं सकता' ऐसा

करनेवाला समाजमें निंदित होता और राजाके यहां दण्ड पाता है। इसके संबंधमें याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है—जब बन्धक रख कर कर्ज लिया जाता है, तब हर महीनेमें सैकड़े अस्सी भागका एक भाग सूद या वृद्धि और जब कोई चीज बन्धक नहीं रखी जाती, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन वर्णों के अनुसार क्रमसे सैकड़े सौ भागका २, ३, ४ और पांच भाग सूद लिया या दिया जाना चाहिये। अर्थात् ब्राह्मणको एक सौ पण कर्ज देने पर २ पण और क्षत्रियको इस तरह कर्ज देने पर तीन पण वृद्धि या सूद देना पड़ता है।

जो वाणिज्यके लिये परदेशमें जाते हैं, वे यदि कर्ज ले तो उनको सैकड़े दश भागका एक भाग अर्थात् सैकड़े दश रुपयेके हिसाबसे और समुद्र पार जानेवाले वनिक्को एक सौ भागमें वीस भाग वृद्धि देंगे। सब जातियां हो ऋण ग्रहण करते समय सबको अपनी अपनी निर्दिष्ट वृद्धि दें।

नारदसंहितामें वृद्धि चार प्रकारकी कही गई है—कायिका, कालिका, कारिता और चक्रवृद्धि।

"कायिका कालिका चैव कारिता च तथा परा।
चक्रवृद्धिश्च शास्त्रेषु तस्य वृद्धिश्चतुर्विधा॥"

प्रतिदिन वृद्धि देनेके नियमसे जब कर्ज लिया जाता या दिया जाता है, तब उसका नाम कायिका, मासिक सूदको कालिका और ऋणकारी जिस नियमसे कर्ज लेता है, उसको कारिता तथा जब सूदका सूद लिया जाता है, तब उसका नाम चक्रवृद्धि हो जाता है।

ऋणादान शब्द देखो।

वृद्धिक (सं० त्रि०) वृद्धि स्वार्थे कन्। वृद्धि।

वृद्धिकर्मन् (सं० क्ली०) नान्दीमुखश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध।

वृद्धिका (सं० स्त्री०) वृद्धिरेव स्वार्थे कन् टाप्। १ ऋद्धि नामकी ओषधि। २ शङ्खपुष्पा, श्वेतापराजिता। ३ अर्कपुष्पी।

वृद्धिजीवक (सं० त्रि०) सूदखोर।

वृद्धिजीवन (सं० क्ली०) वह जो सूद ले कर अपना जीवन निर्वाह करता हो।

वृद्धिजीविका (सं० स्त्री०) वृध्या जीविका। ऋणादानजीविका, वह जो सूदखोरीसे अपना जीवन निर्वाह करता है। पर्याय—अर्थप्रयोग, कुसीद, कलाम्बिका।

वृद्धिद (सं० पु०) वृद्धिं ददातीति दा-क। १ जीवक नामका छोटा क्षुप। २ शूकरकन्द। (त्रि०) ३ वृद्धि देनेवाला। (वृहत्स० ५३।३७)

वृद्धिपत्र (सं० क्ली०) वह शस्त्र जो सात उंगली प्रमाणका होता है। यह शस्त्र चीर फाड़के काममें व्यवहृत होता है।

सुश्रुतकी टीकामें लिखा है, कि यह शस्त्र दो तरहका है। अश्रिताग्र और प्रयताग्र। ये दोनों ही शस्त्र सात अंगुल प्रमाणके होंगे। अद्धर्ध पञ्चांगुल वृत्त और सार्द्धांगुलफल। इनमें पहलेको क्षुर कहते हैं।

इसी क्षुरके आकारवाले शस्त्रका नाम वृद्धिपत्र है। चीरफाड़की सुविधाके लिये इसका अग्रभाग ऋजु और गहरा दूसरी ओर झुका हुआ रहता है।

(वाग्भट २६।६)

वृद्धिभूत (सं० त्रि०) वृद्धि-भू-क्त। वृद्धिप्राप्त।

वृद्धिमत् (सं० त्रि०) १ उत्थित, वर्धित, अंकुरित। २ वद्धर्नशील।

वृद्धियोग—फलितज्योतिषके २७ योगोंमें एक योगका नाम।

वृद्धिश्राद्ध (सं० क्ली०) वृद्धये यत् श्राद्धं। वृद्धि निमित्तक श्राद्ध, अभ्युदयक निमित्त पित्रादिके उद्देशसे श्राद्धादि पूर्वक अन्न आदिका दान। अभ्युदयके लिये ही इसका अनुष्ठान होता है, इससे इसको आभ्युदयिक श्राद्ध भी कहते हैं। दश तरहके संस्कार कार्योंमें अर्थात् गर्भाधानसे विवाह तक इन दश संस्कारोंमें से प्रत्येकमें यह श्राद्ध करना होता है। इसके सिवा देवप्रतिष्ठा, वृक्षप्रतिष्ठा, जलाशय आदिकी प्रतिष्ठा और तीर्थयात्राकालमें ; तथा तीर्थसे लौटने पर भी यह वृद्धिश्राद्ध करनेकी विधि है। प्रेतके उद्देशके सिवा अन्य वृषोत्सर्गके समय और वास्तुयागमें भी इस श्राद्धका विधान देखा जाता है।

वृद्धिश्राद्धमें सामवेदियोंको ६ पुरुषोंका अर्थात् पिता, पितामह, प्रपितामह और मातामह, प्रमातामह और

वृद्धप्रमातामह इन ६ पुरुषोंका और यजुर्वेदीयोंको ६ पुरुषों अर्थात् पूर्वोक्त ६ पुरुष और माता, पितामही और प्रपितामही इन नौ पुरुषोंका श्राद्ध करना होता है। नान्दीमुख देखो।

वृद्धीभूत (सं० त्रि०) अवृद्धो वृद्धो भवति वा अवृद्धि र्भवति। वृद्धीकृत।

वृद्धोक्ष (सं० पु०) वृद्धश्चासौ उक्षा चेति (अचतुरेत्यादिना। पा ५।४।७७) इत्यादिना अच्। वृद्ध वृष। पर्य्याय—जरद्गव। (अमर)

वृद्ध्याजीव (सं० त्रि०) वृद्ध्या आजीवतीति आ-जीव-अच्। वृद्ध्युपजीवी, जो सूदसे जीविका चलाते हैं, सूदखोर।

वृद्ध्युपजीवी (सं० त्रि०) वृद्ध्या उपजीवितुं शीलमस्य उप-जीव-णिनि। वृद्धि द्वारा जीविका निर्वाहकारी, सूदखोर।

वृधत् (सं० त्रि०) वद्धर्नकर्त्ता।

वृधसान (सं० पु०) वृध (ऋघ्यु जिवृधीति। उण् २।८७) इत्यनेन असानच्, स च कित्। १ मनुष्य। (त्रि०) २ वद्धर्नशील।

वृधसानु (सं० पु०) वृध-वाहुलकात् असानुच् स च कित्। १ पुरुष। २ पत्न। ३ कृति।

वृधस्नु (सं० त्रि०) अन्नक्षरणशील, अन्नक्षरणकारी।

वृधीक (सं० त्रि०) वद्धर्नकर्त्ता।

वृधीय (सं० त्रि०) वृद्धिसंवंधीय।

वृधु (सं० पु०) एक सूत्रधारका नाम। मनुमें लिखा है, कि भरद्वाज मुनिने वृधु नामक सूत्रधारसे अनेक गो ग्रहण किये थे। (मनु १०।१०७)

वृध्य (सं० त्रि०) वृध-(ऋदुपधाचाक्लृपिचृतेः। पा ३।१।११५) इति क्यप्। वद्धर्नीय।

वृन्त (सं० क्ली०) १ प्रसूनवन्धन, फल पुष्प और पत्रादि जिसमें अवस्थित हो। पर्य्याय—प्रसववन्धन। २ घटीधारा। ३ कुचाग्र।

वृन्ताक (सं० पु० क्ली०) १ वार्त्ताकी, वैंगन। (पु०) २ शाकश्रेष्ठ, उत्तम शाक। ३ उपोदिका, पोईका साग।

वृन्ताकी (सं० स्त्री०) वार्त्ताकी, वैंगन, भण्टा।

वृन्तितय (सं० स्त्री०) कटुका।

वृन्द (सं० क्ली०) वृञ् (भन्दादयश्चेति। उण् ४।९८) इति दन नुम् गुणाभावश्च निपात्यते। १ समूह। (पु०) २ अर्वुद, सौ करोड़। दश कोटिका एक अर्वुद और दश अर्वुदका एक वृन्द होता है—१००००:०००।

(ज्योतिष)

वृन्द—१ वृन्द टीकाके रचयिता एक आयुर्वेदाभिज्ञ। ये वीर वृन्दभट्टके नामसे परिचित हैं। वासुदेव भानुभाव और भावप्रकाशमें इनका उल्लेख है। २ वृन्दसिन्ध सिद्धयोग। ३ सिद्धयोगसंग्रह नामक वैद्यक ग्रंथके रचयिता।

वृन्दर (सं० त्रि०) वृन्दे भवः वृन्द-रक। वृन्द संघोत्पन्न।

वृन्दशस् (सं० अव्य०) वृंद चशस्। दलका दल। (भागवत १०।३५।५)

वृन्दा (सं० स्त्री०) १ तलसी, तुलसीका दूसरा नाम वृंदा है। वृन्दावन देखो। २ केदारराजकी कन्या। ३ राधाके सोलह नामोंमें एक नाम। ४ वृक्षोपरिजात लता, परगाछा।

वृन्दाक (सं० क्ली०) परगाछा।

वृन्दार (सं० त्रि०) मनोज्ञ।

वृन्दारक (सं० पु०) वृन्दमस्यास्तीति वृन्द-(शृङ्ग वृन्दाभ्यामारकन् वक्तव्यः। पा ५।२।१२२) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या आरकन्। १ देवता। २ श्रेष्ठ। ३ मनोज्ञ।

वृन्दारण्य (सं० क्ली०) वृन्दावन।

वृन्दावन (सं० क्ली०) स्वनामख्यात तीर्थ। वृन्दावन भगवान् श्रीकृष्णकी क्रीड़ाभूमि है। इसीलिये यह एक वहुत प्रधान तीर्थ है। इस तीर्थका विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस तरह लिखा है, कि श्रीकृष्णका बालचरित प्रतिपद पर नये-नये भावोंका भावमय है। श्रीकृष्णने पहले गोकुलमें रह कर दानवेन्द्रोंका विनाश किया। पीछे नंद प्रभृतिके साथ वे वृंदावनमें पहुंचे। ऋषिश्रेष्ठ नारदने एक दिन नारायण नामक ऋषिसे पूछा कि श्रीकृष्णकी क्रीड़ाभूमि इस काननका नाम वृंदावन क्यों हुआ? और इस नाममें कोई सार्थकता है या नहीं? इस पर उक्त ऋषिने कहा

था, कि प्राचीन सत्ययुगमें केदार नामके एक राजा थे। राजर्षि केदार नित्य नैमित्तिक कार्य केवल श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये करते थे। केदार जैसे राजा कोई जन्मा नहीं और न जन्मेगा। कुछ दिनोंके बाद जैगीषव्यके उपदेशके फलसे राजा राज्य और त्रैलोक्यमोहिनी प्रियतमाओंका भार पुत्रके हाथमें दे कर तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। राजा श्रीहरिका एकान्त भक्त हो कर अविरत उन्हीं श्रीहरिका ध्यान करने लगे। उस समय उनका सुदर्शनचक्र वहां उपस्थित रह कर उनकी रक्षा करने लगा। इस तरह बहुत दिनों तक तपस्या कर वे गोलोकधाममें चले गये। उनके नामानुसार यह तीर्थ केदारके नाम पर प्रसिद्ध हुआ।

केदारराजके कमलाकी अंशस्वरूप अति तपस्विनी और योगशास्त्रविशारदा वृन्दा नामकी एक कन्या थी। वृन्दाने विवाह नहीं किया था। दुर्वासा ऋषिने उनको हरिका मन्त्र दिया। पीछे वृन्दाने गृहत्याग कर वनमें जा इस हरिमन्त्रका साधन किया। भगवान् कृष्ण उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो वर देनेके लिये उनके समीप आये। वृन्दाने उस सुन्दरकाय शान्त मूर्त्ति राधाकान्त हीको अपना पति बनानेकी प्रार्थना की। कृष्ण तथास्तु कह उस निर्जन प्रदेशमें वृन्दाके साथ रहने लगे। इसके बाद वृन्दा परमानन्द श्रीकृष्णके साथ गोलोकधाममें जा राधिकाकी तरह सौभाग्यशालिनी और गोपियोंमें श्रेष्ठ हुईं। उस वृन्दाने जहां तपस्या की थी, वह स्थान वृन्दावनके नामसे विख्यात हुआ।

वृन्दावन नाम होनेका और भी एक पुण्यप्रद इतिहास है :—पहले कुशध्वज नामक राजाको तुलसी और वेदवती नामकी धर्मशास्त्रविशारदा दो कन्यायें थीं। इन दोनों कन्याओंने संसारवियोगिनी हो कर तपश्चाचरण किया। पीछे वेदवतीने नारायणको पतिरूपसे प्राप्त किया, वही जनककन्या सीताके नामसे सर्वत्र प्रसिद्ध हुईं।

तुलसीने भी हरिको पतिरूपमें पानेके लिये तपस्या की। दैवात् दुर्वासाके शापसे उन्होंने शङ्खासुरको पतिरूपमें पाया और पीछे कमलाकान्तको पतिरूपसे प्राप्त किया। वह सुरेश्वरी तुलसी ही हरिके शापसे वृक्षरूपा और हरि भी उनके शापसे शालग्राम हुए। किन्तु सुन्दरी तुलसी फिर उस शिलारूपी हरिके वक्षःस्थल पर निरन्तर अवस्थित करती हैं। उसी तुलसीका दूसरा नाम वृन्दा है। तुलसीने यहां तपस्या की थी, इसीलिये यह वृन्दावन कहलाया। उन्होंने कहा, नारद! और भी एक कथा कहता हूं, जिसके द्वारा इसका नाम वृन्दावन हुआ, सुनो! श्रीमती राधिकाके षोड़श नामोंमें वृन्दा नाम प्रसिद्ध हैं। उन्हींका रम्य क्रीड़ावन होनेसे इसका नाम वृन्दावन हुआ। पहले श्रीकृष्णने गोलोकधाममें राधिकाको प्रसन्न करनेके लिये वृन्दावनका निर्म्माण किया। पीछे पृथ्वीतलमें भी उनकी क्रीड़ाके लिये यह वन वृन्दावनके नामसे परिचित हुआ।

वृन्द शब्द सखीसमूह और आकार शब्द स्वस्तिबोधक है, इसीलिये उनके सखीसमूह हैं, इससे वृन्दा नामसे वे अभिहित हुई हैं। उन्हींकी क्रीड़ाके लिये सुन्दर वन होनेसे इसका नाम वृन्दावन हुआ है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण)

पद्मपुराणके पातालखण्डमें लिखा है, कि इस पृथ्वीमें वृन्दावनधाम स्वर्गीय गोलोकधामके तुल्य है। गोलोकमें भगवान् विष्णु अपने पूर्ण ऐश्वर्यके साथ रहते हैं और इस स्थानमें भी अपने सभी ऐश्वर्योंके साथ उन्होंने क्रीड़ा की थी और वे वहां सर्वदा अवस्थान करते थे, इसीलिये वह स्थान परम पवित्र और प्रधानतम तीर्थ समझा जाता है।

इस वृन्दावन धाममें १२ प्रधान वन हैं—भद्रवन, लौहवन, भाण्डीरवन, महावन, तालवन, खदिरवन, वकुल कुमुद, काम्य, मधु, और वृन्दावन ये बारह वन भगवान् कृष्णकी विहारभूमि है। (पद्मपु० पातालख० ३८ अ०)

इस पृथ्वी पर विष्णुपासकोंकी वासभूमियोंमें सर्व्वश्रेष्ठ परम दुर्लभ एक स्थान है, उसका नाम है वृन्दावन। गोलोकमें जो ऐश्वर्य्य है, वह गोकुलमें प्रतिष्ठित है। वैकुण्ठका वैभव द्वारकामें प्रकाशित है। भगवान्‌के जो कुछ परम ऐश्वर्य्य हैं, वह वृन्दावनमें है और उनमें कृष्णधाम ही सर्वापेक्षा श्रेष्ठ है। त्रैलोक्यमें पृथ्वी एकमात्र धन्य है क्योंकि वृन्दावन पृथ्वीमें मौजूद है यह स्थान माथुरमण्डल नामसे भी अभिहित हैं।

माथुरमण्डलकी आकृति सहस्रदल कमलकी तरह है। इसका परिमाण विष्णुके चक्रके समान है। ये सब स्थान कर्णिकादलकी तरह फैले हुए हैं। इनमें पूर्वोक्त बारह प्रधान वन हैं जिनमेंसे यमुनाके किनारे पश्चिमकी ओर ७ और पूर्वकी ओर ५ हैं। ये सब वन श्रीकृष्णकी क्रीड़ाभूमि हैं।

सिवा इसके कदम्ब, खण्डिक, नन्दवन, नन्दीश्वर, नन्दनानन्दखण्ड, पलाश, अशोक, केतक, सुगन्धि, मादन, कैल, अमृत, भोजनस्थान, सुखप्रसाधन, वत्सहरण, शेषशायन, श्यामपुर, दधिग्राम, चक्र, भानुपुर, संकेत, द्विपद, बालक्रीड़, धूसर, केलिद्रुम, सुललित, उत्सुक और नन्दन ये तीस उपवन हैं। पूर्वोक्त १२ वन ही सबसे श्रेष्ठ और नाना प्रकारकी भगवल्लीलाकी भूमि है।

मथुरा और ब्रज देखो।

वृंदावन अति मनोहर स्थान है। इसने यमुना नदीको चारों ओरसे दक्षिणावर्त्तमें घेर रखा है। गोपीश्वर नामक शिव यहांके अधिष्ठात्र देवता हैं। इसके बहिर्देशमें श्रीविशिष्ट षोड़श दल हैं प्रथम दलका माहात्म्य कर्णिकाके तुल्य है। उक्त दलमें मधुवन विराजित है। इस स्थानमें ही चतुर्भुज महाविष्णु प्रादुर्भूत हुए थे। द्वितीय दल लीलात्मका स्थान है और वह खदीरवनके नामसे प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णने इस गोवर्द्धन पर्वतकी महालीला सम्पन्न की और वे वृंदावनपति बने। तृतीय दल परम पवित्र और अतिशय पुण्यतम स्थान है। चतुर्थ दलमें नंदीश्वर वन और नंदालय उपस्थित है। पञ्चम दलमें धेनुपालनका स्थान है। षष्ठ दलमें नंदनवन अवस्थित है। सप्तम दलमें मनोहर बकुलवन है। अष्टम दलमें तालवन है। इसी स्थानमें भगवान्‌ने धेनुकका वध किया था। नवम दलमें कुमुदवन और दशम दलमें काम्यवन अवस्थित है। ग्यारवां दल वनमय है। इस स्थानमें पुल बांधा गया था। बारहवें दलमें भाण्डीरवन है, इस वनमें भगवान् श्रीकृष्ण श्रीदाम आदिके साथ क्रीड़ामें रत रहते थे। तेरहवें दलमें भद्रवन, चौदहवें दलमें श्रीवन, पन्द्रहवें दलमें लौहवन और सोलहवें दलमें महावन अवस्थित है। इस महावनमें श्रीकृष्ण वत्सपालोंके साथ मिल कर बाललीला किया करते थे। इस स्थानमें ही पूतना आदि राक्षसोंका वध और यमलार्जुनका भग्न किया गया था। पञ्चम वर्षीय बालगोपाल इस स्थानके अधिष्ठाता हैं। इस स्थानमें श्रीकृष्ण दामोदर नामसे परिचित हुए। उक्त दल ही किञ्जल्कविहार है। इस स्थानमें ही श्रीकृष्णने क्रीड़ा की थी।

वृन्दावनधाम शुद्धसत्व भक्त वैष्णवों द्वारा आश्रित और पूर्ण ब्रह्मसुखमें मग्न है। इस स्थानमें कोकिल और भ्रमर सदा अव्यक्त मधुर और मनोहर शब्द करते रहते हैं। कपोत और शुक चिड़ियां सदा अपने सङ्गीतसे लोगोंको मुग्ध करती रहती हैं और सहस्र सहस्र उन्मत्त अलि विराजित हैं। इस स्थानमें मयूर नृत्य करते रहते हैं। सब तरहके आमोद और विभ्रम पूर्णमात्रामें विद्यमान हैं। इस स्थानमें पूर्ण चन्द्र सदा उदय होते हैं। किन्तु सूर्यदेव अपनी मन्द मन्द किरणों हीको फैलाते रहते हैं। यह स्थान दुःख, जरा और मरणवर्जित है। यहां क्रोध, मात्सर्य, भेदज्ञान और अहङ्कार नहीं है, सर्वदा इस स्थानमें आनन्दामृत रसका प्रभाव रहता है और पूर्ण प्रेमसुख-समुद्र विराजित है। यह महत् धाम त्रिगुणातीत और पूर्ण प्रेम स्वरूप है। और तो क्या—यहां वृक्षोंके शरीरमें भी पुलकोद्गम होता है और ये प्रेम और आनन्दसे विभोर हो कर अश्रुवर्षण किया करते हैं। यहांके पादपोंकी जब ऐसी अवस्था है, तब वैष्णवोंकी बात ही क्या है। गोविन्दके पदरज स्पर्शसे वृंदावन पृथ्वीमें नित्य कह कर प्रतिष्ठित है।

भूमण्डलमें वृन्दावन गुह्यसे भी गुह्यतम, रमणीय, पवित्र, अक्षय, परमानन्दमय और गोविन्दका अव्यय स्थान है। वृन्दावन गोविन्ददेहसे अभिन्न है और पूर्णब्रह्म सुखाश्रित है। इसका माहात्म्य और क्या कहूं? इस स्थानकी धूलि स्पर्श करनेसे भी मुक्ति होती है। हे देवि! वृन्दावन विहारके समय बड़े यत्नके साथ वृन्दावन और कैशोरविग्रहधारी श्रीकृष्णको हृदयमें स्थापित करो। कालिन्दी इस वृन्दावनको कमलकर्णिकाकी तरह प्रदक्षिण करके विराजमान है। इस यमुना नदीके दोनों किनारे रमणीय और पवित्र हैं। इसका जल स्पर्श करनेसे गङ्गाजलकी अपेक्षा कोटि गुण अधिक

पुण्य होता है। इस स्थानमें ही भगवान् क्रीड़ामें रत थे।

रमणीय वृन्दावनके मध्य मनोहर भवनमें समुज्ज्वल योगपीठ विद्यमान है। यह अठकोना और नाना प्रकारकी दीप्तियोंसे मनोहर दिखाई देता है। इस पर मणिमाणिक्य-खचित रत्नमय मनोहर सिंहासन विराजित है। उस पर आठ दलका पद्म बैठाया गया है। इस पर ही हरिका कर्णिकास्थ सुखमय भवन अवस्थित है। इस परम स्थानमें वृन्दावनेश्वर श्रीकृष्ण दिव्य व्रजवयोधारी और नियत सकलैश्वर्यशाली और व्रजबालकोंके एकमात्र प्रिय हो कर अवस्थान करते हैं। यौवनाविर्भावचश इस समय उनका कैशोर उद्भिन्न हुआ है और उन्होंने अपूर्व मूर्त्ति धारण की है। उन अनादि फिर भी सभीके आदिभूत भगवान् श्रीकृष्णने यहां ही वास कर गोपियोंके मनको मुग्ध किया था।

भगवान् कृष्ण यहां ही नन्दनन्दन रूपसे सदा विराजमान रहते हैं। यह कृष्ण पूर्णब्रह्म निश्चल जगत्के आदिकारण हैं। उनकी प्रियतमा कृष्णवल्लभा श्रीमती राधा हो आद्या प्रकृति हैं। उन्हीं राधिकाके कोटानुकोटि कलांशसे त्रिगुणमयी दुर्गा आदि देवियोंकी उत्पत्ति हुई है। यह वृन्दावनधाम श्रीकृष्णकी लीलाभूमि है।

(पद्मपुराण पातालख० ३८।३० अ०)

पुराणवर्णित श्रीवृन्दावनवैभव इस समय कवि वर्णित काव्य राज्य ही मालूम होता है।

"वनं कुसुमितं श्रीमन्नदचित्रमृगद्विजम्।
गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलशावकम्॥"

श्रीभागवतके वर्णित श्रीवृन्दावनकी ऐसी शोभा इस समय अब दिखाई नहीं देती।

श्रीजयदेव वर्णित वसन्तशोभा इस समय केवल कविकल्पनामें रक्षित है। पौराणिक वर्णना-वैभव वर्त्तमान समयमें दिखाई न देने पर भी हम श्रीवृन्दावनधामको आज भी पुण्यमय महातीर्थके रूपमें देखते हैं। किन्तु अबसे साढ़े चार सौ वर्ष पहले श्रीवृंदावन यथार्थमें महारण्यमें परिणत हुआ था।

देवद्वेषी गजनीके सुलतान महमूदने आ कर व्रजधामकी जो दुर्दशा की थी, उसका आज भी सुधार नहीं हो सका है। इसके बाद भक्त वैष्णव अपने प्राणके भयसे फिर अपने प्रिय स्थान वृंदावनधाममें नहीं आना चाहते थे। सुलतान महमूदके लौट जानेके बाद सैकड़ों वर्ष तक हिन्दुओंका शासन रहने पर भी जहां तक हम जानते हैं, इस वृंदावनके नष्टगौरवका उद्धार न हो सका। इस ओर किसी भी राजाका ध्यान आकर्षित नहीं हुआ। मुसलमान-गुलाम राजाओंके आधिपत्यकालमें क्रमसे वह बहुजनाकीर्ण व्रजधाम जनमानवशून्य हो गया था। केवल दो एक व्रजवासी उस विजन निभृत निकुञ्जमें रह कर भगवान्की लीला भूमि पर अश्रु बरसा रहे थे। कहना न होगा, कि कई शताब्दके बाद भागवतोंकी लीलास्थली एक समय विलुप्त हुई थी। बारह योजनमें फैली हुई यह पवित्र हिन्दूकीर्त्ति भीषण अरण्यमें परिणत हुई थी। एक तो पथ ही दुर्गम था उस पर मुसलमानोंके अत्याचार और डाकुओंके डर आदि कई कारणोंसे गृहस्थ तीर्थयात्री इन पवित्र और प्राचीन स्मृतियोंके देखनेके लिये यहां आनेमें साहसी न हुए। निर्भीक भक्त संन्यासी कभी कभी दल बांध कर भगवान्के चिह्नोंका दर्शन करने आते थे।

मुगलवंशके साम्राज्य शासनके आरम्भमें हिन्दू मुसलमानोंके अत्याचारसे वञ्चित हुए थे। बङ्गालके गौड़देशमें हुसेनशाहकी तरह दिल्लीमें भी प्रजारञ्जक मुसलमान नरपतियोंका अधिष्ठान हुआ था। हिन्दुओंने इस सामान्य सुविधाके समय ही भगवान श्रीकृष्णकी लीला भूमिके उद्धार करनेके लिये उद्योग किया था। किन्तु व्रजधाममें आ कर वे भगवान्के सभी निदर्शनोंके ढूंढ निकालनेमें समर्थ हुए। यदुवंशके ध्वंसके बाद श्रीकृष्णके पौत्र (अनिरुद्धके पुत्र) वज्रनाभने मथुराका राजा बन श्रीकृष्णकी लीलाके नामानुसार ग्राम बसाये थे। वे सब पिछले समयमें प्रधान-प्रधान वैष्णव तीर्थके रूपमें गिने गये थे। और तो क्या—मुसलमानोंके दौरात्म्यसे उन सर्वप्रधान भागवततीर्थके अधिकांश ही बिल्कुल विलुप्त हुए। कृष्णप्रेमसे व्याकुल हो कर गौराङ्गदेवने जब व्रजमण्डलको प्रस्थान किया, तब वे भगवान्के लीलास्थान खोज न सकने पर पहले रो

रो कर व्याकुल हो उठे। पीछे अपनी ऐशी शक्तिके प्रभावसे उन्होंने लीलास्थानके उद्धारका पथ बना लिया। मुरारि-गुप्तके श्रीचैतन्यचरित काव्यमें और श्रीकृष्णदास कविराजके श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें उसका कुछ आभास मिलता है। अन्तमें गौराङ्गके पार्षद श्रीरूप और सनातन गोस्वामीने व्रजमण्डलमें रह कर लुप्त तीर्थ-का उद्धार कर महाप्रभुके अभिप्रायको पूर्ण किया था।

विभिन्न सम्प्रदायके वैष्णवोंका अभ्युदय।

गोस्वामीप्रवर रूप, सनातन, जीव, गोपालभट्ट, लोकनाथ, भूगर्भ, रघुनाथ, नरोत्तम ठाकुर, श्रीनिवास आचार्य आदि श्रेष्ठ गौड़ीय भागवत प्रेमिक बहुत दिनों तक वृन्दावनमें रह गये थे। उनके रहते समय व्रजधाम वैष्णवतत्त्वशिक्षाके सर्वप्रधान केन्द्रके रूपमें गिना जाता था। व्रजमण्डलमें रहते समय उक्त गोस्वामियों-ने सैकड़ों वैष्णव शास्त्रोंकी रचना कर प्रेमभक्तिकी परा-काष्ठा दिखाई थी। उनके श्रीमुखसे अपूर्व भगवत्तत्त्व सीखनेके लिये भारतके नाना देशोंसे साधुओं और पण्डितोंका वहां समागम हुआ और तो क्या—स्वयं दिल्लीश्वर अकबर अपने राजपूत सामन्तोंके साथ रूप सनातनके मुखसे वैष्णवधर्मका सारतत्त्व सुननेके लिये सन् १५७३ ई०में वृन्दावन पहुंचे थे। उन कौपीनधारी वैष्णवोंका इतना प्रभाव था, कि दिल्लीश्वरकी आँखों पर कपड़ा बांध कर वे निधुवनमें लाये गये थे। दिल्लीश्वरने यहांका अलौकिक देवप्रभाव देख इस स्थानको अत्यन्त पूर्ण तीर्थ स्वीकार किया था। उनके साथी सामन्तोंने यहां एक देवालय स्थापित करनेकी आज्ञा मांगी। दिल्ली-श्वरने खुशीके साथ एक देवालय स्थापित करनेके लिये आज्ञा प्रदान की थी। इस तरह गौड़ीय वैष्णवोंके प्राधान्य विस्तार और लुप्ततीर्थके उद्धारके साथ साथ देवभक्त हिन्दू राजाओंके यत्नसे फिर मथुरामण्डलमें नाना देवालयोंकी प्रतिष्ठाका सूत्रपात हुआ।

व्रज-वासियोंका कहना है, कि गौड़ीय गोस्वामियोंने वृन्दावनमें आ कर सबसे पहले जिन वृन्दादेवीके मन्दिर-का उद्धार किया था, उसका अब कहीं नामोनिशान नहीं मिलता। किन्तु कुछ लोग रासमण्डलके निकट-वर्त्ती सेवाकुञ्जमें उस मन्दिरका होना साबित करते हैं।

गोविन्दजीका मन्दिर।

रूप सनातनके तत्त्वावधानमें जो सब मन्दिर बनाये गये, उनमें गोविन्ददेवका मंदिर ही सर्वप्रधान और स्थापत्यशिल्प या कारीगरीका अपूर्व निदर्शन है। मथुराके पुरावृत्त-लेखक ग्राउस साहबने इस मंदिरको देख कर लिखा है, कि "इस मंदिरका आकार प्रकार गिरजासे मिलता जुलता है। इससे मालूम होता है, कि जिस कारीगरने इस मंदिरको बनाया था, उसने (यूरो-पीय) जेसुइट धर्म-प्रचारकोंका साहाय्य-प्राप्त किया था। वास्तवमें उस समय अकबर बादशाहके दरबारमें बहुतेरे जेसुइट उपस्थित थे। किन्तु अकबर बादशाह-की सभामें जेसुइटोंके रहने पर भी उन्होंने कारी-गरीमें हिन्दुओंको साहाय्य किया है, इसका कहीं कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता। विशेषतः इस तरह-के मंदिर जेसुइटोंके आनेसे बहुत पहले भारतवर्षमें कई जगहोंमें दिखाई देते हैं।

गोविन्दजीके मंदिरमें एक अस्पष्ट शिलाफलक दिखाई देता है। उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि अकबर शाहके ३४ राज्याङ्कमें श्रीरूपसनातनके तत्त्वावधानमें अम्बराधिपति मानसिंहने गोविन्दजीके मंदिरको बनाया था।

गोविंदजी । मंदिर एक समय पांच शिखरोंसे विभूषित था। उनमें सर्वोच्च शिखर बहुत दूरसे दर्शकों-की दृष्टि आकर्षित करता था। प्रवाद है, कि उस शिखरका प्रकाश दिल्लीमें बैठे औरङ्गजेबको दिखाई देता था। एक दिन विस्मयके साथ औरङ्गजेबने अपने वजीरसे पूछा, कि कहांसे यह आलोक या प्रकाश आ रहा है? इसके उत्तरमें वजीरने कहा, कि मथुरामें काफरोंका जो बड़ा मंदिर है, यह उसी मंदिरका प्रकाश है। देवद्वेषी औरङ्गजेब तुरत ही एक फौज भेज कर उस मंदिरको तुड़वाने तथा उस पर मसजिद बनवाने-का हुक्म दिया। मंदिरके पुजारी गोविंदजीको ले कर अम्बरमें भाग गये। मुसलमानोंने मंदिरके कई शिखरों-को तोड़ कर उसीमें उसीके मसालेसे मसजिद बनायी। औरङ्गजेबने स्वयं आ कर उस मसजिदमें नमाज पढ़ी। उसी समयसे गोविंददेव जयपुरमें आये। उनके सेवा-

इत यहांके गोविंददेवकी सम्पत्तिके अधिकारी हैं।

मदनमोहनका मन्दिर।

भक्तिरत्नाकरमें लिखा है, कि सनातनकी कृपा प्राप्त कर मूलतानवासी कृष्णदासने मदनगोपाल या मदनमोहनके मंदिरकी प्रतिष्ठा कराई। इस मंदिरके निर्माणके सम्बन्धमें एक प्रवाद है, कि कृष्णदास नाव बोझाई कर आगरेकी ओर जा रहे थे। कालीदहके निकट एक बालूके चट्टान-पर नाव चढ़ गई। तीन दिन अनवरत चेष्टा करनेसे भी बालूसे नाव निकल न सकी। अन्तमें वे देवताके अनुग्रहलाभ की आशासे ऊपर जा कर सनातन गोस्वामीके शरणापन्न हुए। सनातनकी प्रार्थनासे मदनगोपालका अनुग्रह हुआ। कृष्णदासकी नाव बह चली। पीछे वे आगरेमें आ कर नावमें लदी चीजोंको बेच कर लौट आये और उन्होंने सब रकम सनातनके हाथमें रख दी। उसी रकमसे मदनमोहनका मंदिर बना। इस मंदिरकी भीतरी भाग ५७ फुट लंबा, उसके साथ नाटमण्डप प्रायः २० फुट चौड़ा था। मंदिरकी ऊंचाई २२ फुट थी। इस मंदिरकी आय प्रायः १०१००) रुपये हैं।

मंदिरमें इस समय मदनमोहनकी मूर्त्ति नहीं है। औरङ्गजेबके दौरात्म्यसे यह श्रीमूर्त्ति भी जयपुर भेज दी गई थी। पीछे जयपुरके राजाने अपने साले करौली के राजा गोपालसिंहको वह मूर्त्ति दे दी थी। राजा गोपालसिंहने अपनी राजधानीमें मदनमोहनके लिये प्रायः १७४० ई०में एक सुंदर मंदिर बनवाया था। जयपुरके गोविंदजीके मंदिरके पुजारीकी तरह यहांके पुजारी भी गौड़देशके गोस्वामी या गोसांई हैं।

जब मदनमोहन वृंदावनमें थे, तब प्रसिद्ध वैष्णव-कवि सुरदास इनके प्रधान भक्त हो गये थे। अकबरके अधीन सुरदास शाण्डिलके अमीनका काम करते थे। प्रवाद है, कि वे जो कुछ वसूल करते थे वे सब मदनमोहनजीके मंदिरमें खर्च कर देते थे। इसी तरह एक बार दिल्ली रुपये न भेज सकने पर उन्होंने एक सन्दूकमें पत्थरके टुकड़े बन्द करके भेजे। शीघ्र ही इस अमितव्ययिताके लिये सुरदास दिल्लीमें कैद किये गये। अंतमें भक्तवत्सल मदनमोहन भक्तको मुक्ति दिलानेके लिये दिल्लीश्वरको स्वप्न दिया था, उसीसे कृष्णदास कैदसे रिहा हुए थे।

गोपीनाथका मन्दिर।

गोविन्दजी और मदनगोपालकी मन्दिर-प्रतिष्ठाके कुछ समय बाद ही गोपीनाथका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। दिल्लीश्वर अकबर जिस समय गोस्वामीके दर्शनके लिये वृन्दावन गये थे, उस समय कच्छवाहके ठाकुर-वंशीय रायसिंह भी साथ गये थे। ये शेखावाटीके कच्छवाह ठाकुर वंश प्रतिष्ठाताके पौत्र थे। राणा प्रतापके विरुद्ध ये भी मानसिंहके साथ भेजे गये थे। ये वृन्दावनके गोपीनाथकी भक्तिसे आकृष्ट हुए थे। अन्तमें इन्होंने गोस्वामियोंके तत्त्वावधानमें गोपीनाथके एक बहुत बड़े मंदिरकी प्रतिष्ठा करवाई। वह मंदिर इस समय नितान्त भग्नावस्थामें पड़ा है। इस प्राचीन मंदिरके मध्य: मण्डप और तीन कलसे एक समय नष्ट हुए थे। इसकी बगलमें सन् १८२१ ई०में बहुनिवासी नन्दकुमार वसु नामक एक बङ्गाली कायस्थने वर्त्तमान मदनमोहनका मंदिर बनवा दिया है।

केशीघाटमें युगलकिशोरका एक प्राचीन मंदिर है। यह मंदिर सन् १६२१ ई०में बना था। कुछ लोगोंका अनुमान है, कि यह मंदिर उक्त कच्छवाहके ठाकुर रायसिंहके बड़े भाई नूनकरणकी कीर्त्ति है। इस मंदिरका गर्भगृह भी एक ही समय नष्ट हुआ था। इसके मण्डपमें प्रचुर कारीगरीकी निपुणता दिखाई देती है। इस मण्डपके नीचे गोवर्धनधारीकी गोवर्द्धन-लीला खुदी हुई है। दुःखका विषय है, कि यह मंदिर भी इस समय परित्यक्त हुआ है। यह इस समय कबूतरों तथा उल्लू पक्षियोंका आवास बन गया है।

राधावल्लभजीका मन्दिर।

राधावल्लभजीका मंदिर भी जहाङ्गीर बादशाहके राजत्वकालमें ही बना था। राधावल्लभी सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हरिवंश गोसाईं इस मंदिरके प्रतिष्ठाता हैं। सुन्दरदास नामक एक कायस्थके धनसे सन् १६४१ संवत्में हरिवंशने मंदिर तैयार कराना आरम्भ किया। हरिवंशके दो पुत्र थे व्रजचांद और कृष्णचांद। व्रजचांदके वंशधरगण आज भी राधावल्लभके अधिकारी हैं। कृष्ण-

चांदने राधारमणका मंदिर बनवाया था। उनके वंशधर आज भी राधारमणके ही अधिकारी हैं।

पूर्व ही लिखा जा चुका है, कि जो कुछ प्राचीन कीर्त्तियाँ थीं, ११वीं सदीसे १५वीं सदीके मध्यमें एक समय ध्वंसको प्राप्त हुईं। इसके बाद १६वीं शताब्दीके पहले व्रजमण्डलमें कोई एक भी मन्दिर निर्माण करनेका साहसी नहीं हुआ। बङ्गालके गौड़देशके वैष्णव गोस्वामियोंके वृन्दावनमें वास और उनके असाधारण परमभक्ति गुणसे मुसलमान-सम्राट् अकबरके मन विचलित होनेसे फिर हिन्दू वृन्दावनमें देवकीर्त्तियोंके जगानेमें साहसी हुए थे। गौड़ीय गोस्वामियोंके प्रभावसे व्रजधामका पुनरुद्धार हुआ। इसीसे आज भी वृन्दावनमें गौड़ीय गोस्वामी प्रधान सम्मानलाभके अधिकारी हुए हैं। और तो क्या—भगवान् लीलास्थला बङ्गालियों द्वारा उद्धार हुआ है, यह बङ्गालियोंके लिये कम गौरवकी बात नहीं। गौड़ीय वैष्णवोंकी चेष्टासे ही वृन्दावनके सर्वप्राचीन गोविन्द, गोपीनाथ, मदनमोहनके मन्दिर निर्मित हुए थे। इन सब मंदिरोंमें १६श शताब्दीकी हिन्दू मुसलमान कारीगरियां आज भी विद्यमान हैं। इस समय इनके अधिकांश नष्ट होने पर भी कारीगरोंकी दृष्टिमें बड़े गौरवकी चीज और एक दृष्टान्तरूपसे आदृत होगा।

अकबर, जहांगीर और शाहजहांके राजत्व तक व्रजमण्डलमें गोवर्द्धन और गोकुलमें नाना स्थानोंमें देवमंदिर प्रतिष्ठित हुए थे। हिन्दुओंके दुर्भाग्यसे पूर्वोक्त मंदिरोंकी तरह देवालय औरङ्गजेबके दौरात्म्यसे परित्यक्त और नष्ट हुए थे। औरङ्गजेबके कराल कवलसे रक्षा करनेके लिये प्रायः प्राचीन मूर्त्तियां ही अन्यत्र भेजी गई थीं। उनमें मेवाड़के राणा राजसिंहने मथुराके सुप्रसिद्ध केशवदेवको ला कर नाथद्वारमें प्रतिष्ठित किया। सिवा इस मूर्त्तिके नाथद्वारमें मथुराके उपकण्ठसे लाई मूर्त्ति, कोटासे मथुराके मथुरानाथ, वृंदावनके मदनमोहन और गोकुलसे गोकुलनाथ और गोकुलचन्द्रमूर्त्ति तथा सूरतसे महावनके प्रसिद्ध बालकृष्णकी मूर्त्ति मंगवा कर प्रतिष्ठा कराई गई थी।

मथुरा और वृंदावनकी बहुतेरी कृष्णमूर्त्तियां और देवालय देखने पर सहज ही मालूम होता है, कि यहां वैष्णवोंके पुनरभ्युदय-कालमें पहले चैतन्य सम्प्रदायने प्राधान्यलाभ किया था। और तो क्या, दिल्लीश्वरको भी उनकी महिमा पर आकृष्ट होना पड़ा था। यह बात पहले ही कही गई है। इस सम्प्रदायका प्रभाव आज भी वृंदावनसे लुप्त नहीं हुआ है।

चैतन्य-सम्प्रदायके बाद यहां राधावल्लभी सम्प्रदायका आविर्भाव हुआ। युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलेके देववनवासी गांवके रहनेवाले एक गौड़ब्राह्मण हरिवंश इसके प्रवर्त्तक हैं। आगरेमें सन् १५५६ संवत्में इनका जन्म हुआ था। यथासमय इन्होंने अपने पुत्र-कन्याओंका विवाह दिया था। इसके बाद वैराग्यका इन्होंने आश्रय लिया और वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। होदलके निकटवर्त्ती चर्थावल नामक गांवमें एक ब्राह्मण दो कन्याओंके साथ उन्हें दिखाई दिया। उस ब्राह्मणने हरिवंशसे कहा, कि भगवान्‌का प्रत्यादेश हुआ है, कि तुमको इन दोनों कन्याओंसे विवाह करना होगा। जो हो, वृद्धावस्थामें विवाह कर वे कुछ अधिक रसिक हो गये। विवाहके बाद उनके नये ससुर उनको राधावल्लभकी मूर्त्ति दे गये। उसी राधावल्लभके नामसे किशोरीभजन और कामसाधन मतका प्रचार उन्होंने किया था। क्रमसे उनके बहुतेरे शिष्य हो गये। राधावल्लभका मन्दिर उनकी ही कीर्त्ति है।

तुजुक नामक मुसलमानी इतिहासमें लिखा है, कि उस समय उज्जयिनीसे मथुरामें यदुरूप नामक एक साधु आये। अकबर और जहांगीर दोनों ही उनके दर्शनके लिये आये थे। उनके भी कितने ही शिष्य थे। किन्तु इस समय उनके शिष्य सम्प्रदायका नामोनिशान नहीं।

अकबरके शासनकालमें वृन्दावनमें और एक साधुका आगमन हुआ था। इनका नाम था स्वामी हरिदास। कोल ग्रामके निकट वर्त्तमान हरिदासपुरमें ब्रह्मधीरके पुत्र ज्ञानधीर नामक एक धनाढ्य ब्राह्मणका वास था। वे गिरिधारीके उपासक थे। इनके पुत्रका नाम आशाधीर था। इन्हीं आशाधीरके पुत्र साधु हरिदास हैं। हरिदास एक सर्वत्यागी पुरुष थे। उनकी अपूर्व प्रेमभक्ति

देख कर मुग्ध हो बहुतेरे मनुष्य उनके शिष्य हुए थे। उनके एक क्षत्रिय-शिष्यने उनको स्पर्शमणि अर्पण की थी, किन्तु वे अकिञ्चित्कर समझ कर उसको फेंक दिया था। क्योंकि कामिनीकाञ्चनमें उनकी जरा भी आसक्ति न थी। अकबरके प्रिय गायक मियां तानसेनने अपूर्व सङ्गीतशक्ति प्राप्त की थी। ये तानसेन हरिदासके ही शिष्य थे। उक्त हरिदासके प्रभावसे ही तानसेनको गायनविद्याकी इतनी बड़ी शक्ति प्राप्त हुई थी। इन तानसेनके मुखसे हरिदासकी असाधारण शक्तिका पता पा कर स्वयं अकबर उनके दर्शनके लिये आये थे। इस समय तानसेन भी साथ थे। हरिदासने तानसेनका बड़ा आदर किया था; किन्तु बादशाह अकबरकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया। यहां अकबरने स्वामीजीकी कितनी ही अलौकिक शक्तियोंको देख कर सन्तुष्ट हो उनकी इच्छा न रहते हुए भी उनकी सेवाके लिये कुछ सम्पत्ति दान की थी।

कुञ्जविहारी हरिदासके उपास्य इष्ट देवता थे। पहले उनके शिष्योंके व्ययसे कुञ्जविहारीका मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। कुछ दिन बीते स्वामी हरिदासके वंशधर गोसाइयोंकी चेष्टासे और बहुत दूर देशवासी शिष्योंके अर्थानुकूल्यसे ७० हजार रुपयेके व्ययसे कुञ्जविहारीका वर्त्तमान मन्दिर निर्म्मित हुआ है। दासे यह मन्दिर विहारीजी वा बाँकेविहारी नामसे ख्यात हुआ है। इस मन्दिरका कारुकार्य्य तथा शिल्पनैपुण्य बहुत ही अच्छा है। इसमें सन्देह नहीं, कि वृन्दावनमें यह भी एक दर्शनीय वस्तु है। भारतवर्षके बहुत दूरदेशसे भी स्वामी हरिदासके भक्तगण इस मन्दिरके दर्शनके लिये वृन्दावन जाते हैं।

वृन्दावनके केशीघाटमें रामजीका मन्दिर दिखाई देता है। यहां मलूकदासी सम्प्रदायका एक पाट है। औरङ्गजेबके राजत्वकालमें इस सम्प्रदायका उद्भव हुआ था। स्वामी हरिदास द्वारा प्रवर्त्तित भक्ति और शान्तिवादके माननेवाले होने पर भी मलूकदासी श्रीकृष्णके बदले रामचंद्रकी उपासना करते हैं।

मथुराके ध्रुवशैल पर निम्बार्क सम्प्रदायका एक अति प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिरको देखनेसे मालूम होता है, कि गौड़ीय वैष्णवोंके अभ्युदयके साथ साथ यहां निम्बार्क सम्प्रदायका आगमन हुआ था। मथुरामण्डलमें उनकी बहुतेरी कीर्त्तियां और बहुतेरे धर्म ग्रन्थ थे। औरङ्गजेबके दौरात्म्यके कारण वे अब नष्ट हुए। वृन्दावनके नाना स्थानोंमें निम्बार्क सम्प्रदायके लोग दिखाई देते हैं। बाधी और कोकिलवनमें इस सम्प्रदायके साधुओंकी गुफा है।

रामानुज-प्रवर्त्तित श्रीसम्प्रदायका अभाव सारे दक्षिण-भारतमें बहुत दिनोंसे फैले रहनेसे भी उनका व्रजधाममें कोई पूर्व निदर्शन नहीं दिखाई देता। श्रीसम्प्रदायी प्रधानतः वड़गले और तेङ्कलई इन दो शाखाओंमें विभक्त हैं। उनमें कुछ दिन पूर्व तेङ्कलई शाखा वृन्दावनमें दिखाई दी थी। प्रसिद्ध धनकुबेर सेठ लखमीचाँद तेङ्कलई गुरुकी महिमासे मुग्ध हुए। उन्होंने जैनधर्म परित्याग कर गुरुसे वैष्णवी दीक्षा ग्रहण की। वृन्दावनके अपूर्व श्रीरङ्गजीका मंदिर सेठ लखमीचाँदकी विशाल कीर्त्ति है। साधारणतः यह "सेठका मंदिर" के नामसे प्रसिद्ध है। यह मंदिर उत्तर भारतमें बने होने पर भी इसमें दाक्षिणात्य स्थापत्यनिपुणताका कुछ आभास परिलक्षित होता है। वृन्दावनकी पूर्व समृद्धि कुछ भी नहीं है सही, किन्तु इस सेठके मंदिरने पूर्व स्मृतिका कुछ आभास जागरित कर रखा है।

इस समयकी और एक कीर्त्ति कृष्णचन्द्रका वृहत् मंदिर है। उत्तरराढ़ीय कायस्थकुलतिलक कृष्णचन्द्रसिंह उर्फ लाला बाबूने २५ लाख रुपये खर्च कर सन् १८१० ई०में उक्त प्रकाण्ड काण्ड सम्पादन और राधाकुण्डका संस्कार किया। लाला बाबूके संसार-वैराग्य और धर्मप्राणताका परिचय केवल बङ्गालमें ही नहीं, वृंदावन, मथुरा आदिमें भी कीर्त्तित हो रहा है। महातीर्थ समझ बहुत दूर देशसे वैष्णवगण लाला बाबूका कुञ्ज देखने जाया करते हैं। यहां अतिथिसेवाके लिये लालाबाबू लाखों रुपयोंकी सम्पत्ति दान कर गये हैं। उस सम्पत्तिकी आयसे यहांकी देवसेवा, सैकड़ों अतिथियों तथा तीर्थयात्रियोंके राजभोगका बंदोबस्त किया

गया है। ऐसी सेवाका बंदोबस्त दूसरी जगह विरल है।

इस समय और भी अनेक देवमंदिर निर्म्मित हुए। इनमें वृंदावनमें प्रतिष्ठित जयपुरका नव मंदिर और राधाकुण्डके राय वनमाली राजर्षि बहादुरके प्रतिष्ठित राधाविनोदका मंदिर और वृंदावनमें राधाविनोदबाग और उनमें स्थित श्रीमंदिर उल्लेखनीय हैं। राय वनमाली बहादुरने भी उक्त देवसेवाके लिये यथेष्ट भूसम्पत्ति दान की है।

गौतमीतन्त्रमें जो वृन्दावनधामका वर्णन है, वह योगियोंका ध्येय विषय है। ध्यानफलसे ही यह वृन्दावन दिखाई देता है। फलतः श्रीवृन्दावनधाम नित्य हैं, सुतरां मायाके अतीत हैं। गोकुलमें गोप गोपोंके साथ ही भगवान् श्रीकृष्णने लीला की थी। श्रीवृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णकी जो मधुर लीलायें हुई हैं, दूसरी किसी जगह भी वैसी लीलामाधुर्य्यकी वर्णना दिखाई नहीं देती। अलिकुलगुञ्जित कोकिलकूजित कुञ्जकानन और शत मधुमय लीलाका आधार सैकड़ों कवियोंके काव्यरसोंके अक्षय उत्स श्यामल यमुना-पुलिनकी वर्णना आज भी श्रीकृष्णलीलाकी स्मृति, कवि और भक्तके हृदयमें जागरित कर रही है। श्रीराधिकाकी आरामस्थली, ब्रह्मकुण्ड, केशीतीर्थ, वंशीवट, चीरघाट, निधुवन, निकुञ्जकुटीर, रासस्थली, धीरसमीर, मुञ्जाटवी, जयाटवी, दावानल, प्रस्कन्दनतीर्थ, कालीयह्रद, केलिकदम्ब, द्वादशादित्यतीर्थ, सूर्य्यघाट, गोविन्दघाट, वेणुकूप, आमलीतला, रूपसनातनके अप्रकट स्थान, गोविन्दकुञ्ज, वापीकूप, भोजनस्थान, अक्रूरघाट, गोकर्ण, ध्रुवघाट, मधुवन, शान्तनतल, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, ललिताकुण्ड, कुसुमसरोवर, गोविन्दकुण्ड, कुमुदवन, दानघाट, इत्यादि बहुतेरे दर्शनीय पुण्यस्थानोंका नाम 'श्रीवृन्दावन-परिक्रमा' ग्रंथमें लिखा है। भक्त श्रीवृंदावन-परिक्रमाके समय इन सब स्थानोंका दर्शन कर पुण्यसञ्चय किया करते हैं।

२ भगवतीके एक पीठका नाम। इस स्थानका स्वाभाविक नाम राधा है।

"रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने।"

(देवीभा० ७।३०।६६)

वृन्दावन—गोपालस्तवराजभाष्यके प्रणेता।

वृन्दावनगोस्वामी—भागवतरहस्यके रचयिता।

वृन्दावनचन्द्र तर्कालङ्कारचक्रवर्त्ती—कविकर्णपुर रचित अलङ्कारकौस्तुभके अलङ्कारकौस्तुभदीधिति-प्रकाशिका नाम्नी टीकाके रचयिता। ये राधाचरण कवीन्द्र चक्रवर्त्तीके पुत्र थे।

वृन्दावनदास—एक वैष्णव। कृष्णकर्णामृतटीका, नित्यानन्दयुगलाष्टक, रासकल्पसारस्तव, रामानुजगुरुपरम्परा आदि कई संस्कृत काव्योंको रच कर इन्होंने कविजगत्में यश अर्जन किया था।

वैष्णव साहित्यमें चैतन्य भागवतके रचयिता वृंदावन दासका उल्लेख पाया जाता है। वे श्रीनिवासकी भ्रातृकन्या नारायणीके पुत्र थे। नवद्वीपमें उनका जन्म हुआ था। महाप्रभुके अस्त होने पर उन्होंने 'चैतन्यभागवत' और 'नित्यानंदवंशमाला' प्रणयन किया। वर्द्धमान जिलेके मंतेश्वर थानेके अन्तर्गत देनुड़ ग्राममें वृंदावन दासके प्रतिष्ठित मंदिर और विग्रह है। यह वैष्णव समाजमें "देनुड़श्रीपाठ" नामसे परिचित हैं।

खेतुरीके महोत्सवमें विज्ञवर वृंदावनमें उपस्थित थे। स्वयं कृष्णदास कविराज वृंदावनदासको 'चैतन्य लीलाका व्यास' कह कर आदर कर गये हैं। वृंदावनदासके रचित गोपीकामोहनकाव्य भी वैष्णव समाजकी आदरणीय वस्तु है।

बङ्गला साहित्य देखो।

वृन्दावनदेव—निम्बार्क सम्प्रदायके एक गुरुका नाम। ये नारायणदेवके शिष्य और गोविन्ददेवके गुरु थे।

वृन्दावनशुक्ल—एक विख्यात पण्डितका नाम। इन्होंने आद्य दीपदान-विधि, ऊषाचरित, कुबेरचरित, कृतस्मरवर्णन, केशवीपद्धतिटीका, कोटिहोमविधि, गणेशार्च्चनदीपिका, गुणमंदारमञ्जरीटिप्पन, गौरीचरित, चण्डिकार्च्चनचन्द्रिका, चन्द्रोन्मीलनचन्द्रिका, ज्ञानप्रदीप तीर्थसेतु, दत्तकमीमांसाटिप्पनी, दानचन्द्रिका, दायतत्त्वटीका, प्रतिष्ठाकल्पलता, प्रश्नचूड़ामणि, प्रश्नविवेक,

भाखत्युदाहरण, मथुरा-माहात्म्यसंग्रह, मलमासतत्त्व टीका, मार्कण्डेयचरित, योगचन्द्रिका, योगविवेक, योगसूत्रटिप्पन, लीलावती टीका, वाल्मीकिचरित, षोड़शीपटल, शाम्बचरित, प्रभृति ग्रंथोंका प्रणयन किया था।

वृन्दावनेश्वर (सं० पु०) वृंदावनस्य ईश्वरः। श्रीकृष्ण।

वृन्दावनेश्वरी (सं० स्त्री०) वृंदावनस्य ईश्वरी। श्रीमती राधा।

वृन्दिन (सं० त्रि०) वृंदसंख्याविशिष्ट।

(भारत उद्योगपर्व)

वृन्दिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरेषाम्वा अतिशयेन वृंदारक इति वृन्दारक-इष्ठन् (प्रियस्थिरेति। पा ६।४।१५७) इति वृन्दारकस्य वृन्दादेशः। श्रेष्ठ।

वृन्दियस् (सं० त्रि०) अयमनयोरेषाम्वा अतिशयेन वृन्दारकः, वृन्दारक-ईयसुन् प्रियस्थिरेत्यादिना वृन्दादेशः। वृन्दिष्ठ, दो या बहुतोंमें श्रेष्ठ।

वृश (सं० पु०) वृ-शक् (जनिदाच्यु सृवृमदिति। उण् ४।१०४) १ अड़ूसा। २ चूहा।

वृशा (सं० स्त्री०) एक ओषधिका नाम।

वृश्चन (सं० पु०) वृश्चिक, विच्छू।

वृश्चि (सं० पु०) लाल गदहपुरना, रक्त पुनर्नवा।

वृश्चिक (सं० पु०) व्रश्चु छेदने (वृश्चकृष्योः किकन्। उण् २।४०) इति किकन्। १ शूक कीट। २ विच्छू। पर्याय—अलि, द्रोण, वृश्चन, द्रुण पृदाकु, अरुण, अली।

हमारे देशमें खास कर दो तरहके विच्छू देखे जाते हैं। एक तरहके विच्छूको अंग्रेजोमें Scorpion कहते हैं और दूसरेको शतपदी श्रेणिभुक्त साधारण विच्छू। प्राणितत्त्वविदोंने शेषोक्त जातीय विच्छुओंको Caterpillar जाति रूपसे निर्देश किया है। इन दोनों तरहके विच्छुओंके डूंड़ होता है। इस डूंड़से जब विशेषरूपसे मनुष्यों पर आक्रमण करता है, तब डूंडसे एक तरहका विष निकलता है। इस विषसे जीवके शरीरमें भयानक जलन पैदा होती है। प्राचीन कवियोंने निदारुण मानसिक पीड़ाकी विच्छूके डंककी ज्वालासे तुलना की है।

इस समयकी तरह प्राचीन-भारतमें भी सांप और विच्छुओंका अत्याचार प्रबलरूपसे था। ऋक् संहिताके १।१९१।१०-१६ मन्त्रमें अगस्त्य ऋषिने विष दूर करनेके लिये सर्पशत्रु सूर्य, शकुन्त, अग्नि, नदी, मयूर और नकुलको स्मरण किया है। उक्त सूक्तके ७वें मन्त्रमें लिखा है, कि विच्छूका विष रसशून्य नहीं अर्थात् असार या प्राणके व्याघातकर नहीं है। सायणाचार्यका कहना है, कि अगस्त्यने विष शङ्कायुक्त हो कर विषपरिहारके लिये इस सूक्तकी आवृत्ति की थी। शौनकके मतसे विषग्रस्त व्यक्तिके इस सूक्तके उच्चारण करने पर उसका विष उतर जाता है।

अथर्ववेदके १०।४।६, १५ और १२।१।४६ मन्त्रोंमें विच्छूके विषप्रभावका परिचय मिलता है। गोबरसे इस कर्कट जातीय विच्छूका उद्भव होता है, इससे इसको गोबर कीट कहते हैं। (अमरटीका-भरत)

यह कर्कट जातीय विच्छू Arachnida श्रेणीके Scorpionidea दलके अन्तर्भुक्त हैं। इसकी मूलदेह कर्कटाकृति है। इसके आठ पैर होते हैं। खाद्य द्रव्य और मनुष्य आदि शत्रुओंको काट कर पकड़नेके लिये दो "गोहुआ" और पीछे गांठदार एक लम्बी पूंछ रहती है। इस पूंछके अग्रभागमें टेढ़ा डूंड होता है। अंग्रेजोमें इसको Sting कहते हैं। जब कोई आदमी स्वेच्छाक्रमसे या अज्ञात अवस्थासे इनकी गति रोकता है, तब ये कुपित हो अपने प्रतिपक्ष शत्रुको गोहुआ द्वारा आक्रमण और डूंडसे डंक मारता है, उस स्थानमें ज्वाला होने लगती है। यह ज्वाला सारे शरीरमें बढ़ने लगती है।

उत्तर और दक्षिण गोलार्द्धके उष्णप्रधान स्थानमें इस जातिके विच्छू देखे जाते हैं। साधारणतः मैले या टूटे मकानके खण्डहरमें और घरमें जहां ऐसी आवर्जना है, ऐसे अन्धकारपूर्ण ठण्ढे स्थानमें विच्छू छिपे रहते हैं। ये श्वासप्रश्वासग्राही और झिङ्गुरकी तरह एक प्रकारका शब्द करते हैं। आठ पैरोंसे ये बहुत तेज चल सकते हैं। दौड़नेके समय ये अपनी पूंछको वृत्ताकारमें परिणत कर डूंडको अपने सिर पर रखते हैं।

हमारे देशके और मध्य एशियाके लोगोंका विश्वास है, कि पहाड़ी कर्कटवृश्चिक या विच्छूका डंक मारात्मक है। किन्तु वर्त्तमान समयमें विषविज्ञानको

आलोचनासे मालूम हुआ है, कि यह विष वैसा प्रखर नहीं है। फिर भी कहीं कहीं देखा गया है, कि विच्छूके डंक मारे हुए रोगी शारीरिक कृशता, अस्वस्थता और चित्तकी दुर्बलतासे भयके कारण हृद्‌रोगी हो जाते हैं और इससे उनकी मृत्यु हो जाती है। यह विष वैद्यक शास्त्रमें शिमूलक्षार नामसे परिचित है।

इस समय विच्छूके डंकसे उत्पन्न जलनको दूर करनेके लिये डाक्टर डंकस्थानमें क्लोरोफार्म, या क्षार लेपन करनेका आदेश देते हैं। कभी कभी स्वल्पमात्रामें क्लोरोफार्म खानेको भी दिया जाता है। इपिकाकका प्रलेप भी विशेष फलप्रद है। अमेरिकाके संयुक्त राज्यमें ह्विस्की नामक शराब ही विच्छूके डंकको दूर करनेकी एकमात्र औषध है। इस कारण लोग इसे Whisky cure कहते हैं। इस ह्विस्की अर्कके साथ चर्वित ताम्रकूटकी पुलटिस देनेसे जल्द आराम होता है।

सिंहलद्वीप (सिलोन)के दीर्घकाय काले विच्छुओंको वहांके लोग Buthus afer कहते हैं। इसके डंकसे मनुष्योंकी विशेष क्षति नहीं होती। किन्तु छोटी छोटी चिड़ियाँ जब इन विच्छुओंके डंकसे पीड़ित होती हैं, तब शीघ्र ही इनके शरीरसे प्राण निकल जाते हैं। सुनते हैं, कि विच्छू जब अग्नि द्वारा चारों ओरसे घेर दिये जाते हैं, तब वह स्वयं आत्मघात कर मृत्यु मुखमें पतित होते हैं।

भारतमें सब जगह विच्छू होते हैं। किन्तु पूनेके पास गोर नदीके किनारेवाले मैदानमें बहुतायतसे विच्छुओंका वास देखा जाता है। वहांके बालक विच्छुओंके रहनेकी भूमिको खोद कर उसमें बालू या धूलि झोंकते हैं। इससे अ·जिज आ कर विच्छू अपने स्थानसे बाहर निकलते हैं। तब लड़के विच्छूके बिलमें हरिण सींग छुआ देते हैं, जिससे विच्छू फिर उस बीलमें समा न सके। इस तरह लडके कई विच्छुओंको एक मोटे सूतमें बांधते हैं और विच्छू परस्पर एक दूसरेको डंक मार. करते हैं। बाइबिल ग्रन्थके Numbers xxxiv 4; Joshua xv 3 ;. Judges 36, Maccabees v, 3 आदि स्थानोंमें पेलेस्टाइन और मेसोपोटामियामें विच्छुओंकी अधिकताका पता लगता है।

नर विच्छुओंकी अपेक्षा मादा विच्छू लम्बी होती हैं। नरविच्छुओंके दो शिश्न होते हैं जो इनके माथे पर होते हैं। स्त्रीविच्छुओंके भी इसी तरह उसी स्थान पर दो योनि दिखाई देती हैं। संसर्गके समय स्त्रीविच्छूकी पीठ पर पुरुष विच्छू सवार हो जाता है। एक वर्ष तक गर्भधारण कर ४०से ६० तक अण्डे देती हैं। और अपने शरीरमें रख कर ही इस अण्डेसे बच्चा पैदा करती है। मकड़ेका अण्डा इनके खाद्यकी उत्तम सामग्री है।

शतपदी जातीय विच्छुओंमें 'तेतुंले" विच्छू ही आकृतिमें एक बिलस्त या उससे कुछ अधिक लम्बा होता है। दोनों पार्श्वमें पदश्रेणी और पीछे इसके मेरुदण्डकी चौड़ाई आध इञ्चसे भी अधिक दिखाई देती है। पद ले कर इसकी चौड़ाई १॥ इञ्चसे कम नहीं होती। वाल्यावस्थामें यह काला होता है; किन्तु वयोवृद्धिके साथ साथ देहकी गांठें सादा हो जाती हैं। लेकिन इसकी बीचकी गांठ कुछ पीली रक्ताभ होती है। इसकी ग्रन्थिविशिष्ट गठन और हरिद्रा वर्णके शरीरके साथ इमली फलका सादृश्य रहनेसे इसको बङ्गालमें 'तेंतुले विच्छा' कहते हैं। इनके मुखकी दोनों पार्श्वमें ढूंड़ होते हैं। इन्हीं ढूंड़ोंसे वह मनुष्य आदि जीवधारियोंको डंसती हैं। पूंछकी ओर भी दो ढूंड़ रहते हैं। लोगोंका विश्वास है, कि उस पूछके ढूंड़ोंमें ही विच्छुओंका विष रहता है। किन्तु यथार्थमें ऐसी बात नहीं है। यदि मुंहवाले ढूड़ोंको काट दिया जाये, तो ये दो ढेड़ महीनेमें फिर निकल आते हैं। ये पेटके बलसे चलते हैं, इससे सर्प जातिमें इसकी गणना की जाती है। गृहकी दीवार तथा पेड़ों पर यह सहज ही चढ़ जाते हैं। पैरके बल पर जैसे आगेको चलते हैं, वैसे ही यह पीछेको भी चल सकते हैं। इसके काटनेसे विशेष रूपसे जलन पैदा होती है। इस श्रेणीसे अपेक्षाकृत छोटे कदके दो तरहके और विच्छू देखे जाते हैं। उनमें जरा सादा जो होते हैं, उनको सरस्वती विच्छू कहते हैं। ये बहुत काटते नहीं हैं। दूसरे जो काले रङ्गका विच्छू होता है, वह काटता है सही, किन्तु उसकी जलन अन्यान्य विच्छुओंकी तरह भीषण नहीं

होती। इसके डूंडका विष प्याजका रस मलनेसे दूर हो जाता है। काटे हुए स्थान पर पेशाव कर देनेसे जलन नहीं देने पाती। चाहे हुक्केके जलसे धोनेसे भी उपकार होते दिखाई देता है। शतपदी देखो।

बिच्छूके डंक मारने पर तुरत ही अग्निदाहवत् ज्वाला उपस्थित होती है। डंकके स्थान पर कटनेकी तरह पीड़ाका अनुभव होने लगता है। बिच्छूका विष अतिशीघ्र ही देहके ऊपरी भागमें चढ़ने लगता है। हृदय, नाक, जिह्वामें यदि बिच्छू डंक मारे और मारे हुए स्थानसे मांस खसक जाये और रोगी वेदनासे अत्यन्त पीड़ित हो, तो यह असाध्य हो जाता है। ऐसी अवस्था होने पर उस व्यक्तिके प्राणवियोगकी आशङ्का हो जाती है।

बिच्छूके विषमें घृत और सेंधा नमक द्वारा स्वेद और अभ्यङ्गकी व्यवस्था करनी चाहिये। गर्म जलसे और गर्म भोज्य भोजन तथा घृत पान करना लाभदायक है। पांशु द्वारा प्रतिलोमभावसे उद्वर्त्तन एवं घन आच्छादन अथवा उष्ण जलसे डंक स्थानको उत्तप्त कर उसी तरहसे आच्छादन करनेसे भी विशेष उपकार होता है। कबूतरकी विष्ठा, निम्बू, सिरिसके फूलका रस, चोरपुष्पी, आकन्दका लासा, सोंठ, करञ्ज और मधु—इन चीजोंका प्रयोग करनेसे बिच्छूका विष प्रशमित होता है। फिर इसमें वातपित्त नामक क्रिया भी करनी होती है। इन्द्रयव, तगरपादुका, जालिनी (घोषाविशेष), कटकी और तितलौकी—इस योगको पान तथा नस्य लेनेसे बिच्छूका विष दूर होता है। कण्डू, सूईके चूभनेकी-सी पीड़ा, विवर्णता, शून्यता, क्लेद, शरीरका शोषण, विदाह, लौहित्य, ज्वाला, यन्त्रणा, पाक, शोथ, ग्रन्थिकुञ्चन, दंशावदरण, स्फोटोत्पत्ति, गात्रमें पद्मकी पंखड़ियों समान मण्डलकी उत्पत्ति और ज्वर विषके शरीरमें रहने पर उपर्युक्त लक्षण दिखाई देते हैं। निर्विष होने पर उसके विपरीत लक्षण दिखाई देते हैं। (चरक चिकित्सास्था० विषचि० २३ अ०)

३ मेषादि बारह राशियोंमें आठवीं राशिका नाम। इसका अधिष्ठात्री देवता वृश्चिकाकार है। विशाखा नक्षत्रके शेष पादमें अर्थात् विशाखा नक्षत्रकी स्थिति परिमाणको चार भागोंमें बांट देने पर उसके अन्तिम भागमें तथा अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रके स्थितिकाल तक वृश्चिकराशि और उसमें जिसका जन्म होता है, उसकी वृश्चिकराशि होती है। यह राशि शीर्षोदय, श्वेतवर्ण, जलचर, बहुपुत्र, बहुस्त्रीसङ्गम, चित्रतनु और विप्रवर्ण होती है। इसकी विशेष संज्ञा सौम्य, अङ्गना, युग्म, सम, स्थिर, पुष्कर, सरीसृपजाति ग्राम्य है। वृश्चिकराशि मङ्गल ग्रहका क्षेत्र है और चन्द्रके निम्न स्थान अर्थात् वृश्चिक राशिमें चन्द्र रहनेसे नीचस्थ होते हैं।

वृश्चिक राशिमें जन्म होने पर अनेक धनजनभाग्यसम्पन्न, पत्नीभाग्ययुक्त, खलबुद्धि, राजसेवानुरक्त, सदा पराधनाभिलाषी, सर्वदा उत्साही, दृढ़बुद्धिविशिष्ट और अत्यन्त वीर होता है। सिवा इनके पहले इस राशिकी जितनी संज्ञायें बता चुके हैं जातक वैसे ही गुणशाली होता है।

राशिके ये ही साधारण गुण हैं। इसके सिवा इस राशिमें रवि आदि ग्रहोंकी अवस्थिति होनेसे उसके फलकी विभिन्नता होती है।

४ लग्नभेद। दिनरातमें सूर्य्योदयकी तरह पूर्व ओर जिस समय राशिचक्रमें वृश्चिक राशिका उदय होता है, उसी समयको वृश्चिकलग्न कहते हैं। अग्रहायण मासके प्रत्येक दिनको सूर्योदयके साथ ही वृश्चिक राशिका उदय होता है। इससे इस महीनेके हरेक दिनको सवेरे वृश्चिक लग्नका होना निश्चित है। मेषादि १२ लग्नोंमें यह आठवां लग्न है। वृश्चिक लग्नका फल—जो बालक वृश्चिकलग्नमें जन्म लेता, वह बड़ा मोटा, लम्बा शरीरवाला, व्ययशील, कुटिल, पितामाताका अनिष्टकारी, गम्भीर तथा उग्र स्वभाववाला, पिङ्गल नेत्रवाला, स्थिरप्राकृतिक, विश्वासी, सदा हास्यपरायण, साहसी, गुरु और सुहृद्की शत्रुतामें निरत, राजसेवापरायण, दुःखी, लावण्यविशिष्ट, सदा परितापयुक्त, दानकरनेवाला और पित्तरोगका रोगी होता है।

इसका साधारण लग्नफल इस तरह है—लग्नमें यदि कोई ग्रह या उसकी दृष्टि न पड़ती हो, तो उक्त फल होता है। किन्तु यदि लग्नमें कोई एक ग्रह, या दो तीन ग्रह एकत्र हों, या ग्रहान्तरकी दृष्टि हो, तो उन ग्रहोंके शत्रु, मित्र और स्वभावके अनुसार आदिका विधान कर उसके फलकी कल्पना करनी चाहिये। पहले जो फल कहा

गया है, रवि प्रभृति ग्रह रहनेसे यह फल होता है। जिसकी राशि और लग्न एक है, अर्थात् एक वृश्चिक लग्नमें जिसका जन्म हुआ हो, उसकी राशि और लग्न दोनोंका फल मिला कर फलनिरूपण करना होता है।

वृश्चिकलग्नका परिमाण ५।४०।५७, पांच दण्ड चालीस पल सत्तावन विपल, होरा २।५०।२८।३०, द्रेक्काण १।५३।३६।०, नवांश ०।३७।५३।०, द्वादशांश ०।२८।२४।४५।० त्रिंशांश—०।११।२१।५४ इसी तरह वृश्चिक लग्नका षड्वर्ग स्थिर करना होगा। यह लग्नकी अपेक्षा सूक्ष्म है। इसके बाद और भी सूक्ष्म करनेमें लग्नस्फुट गणना करनी होती है। इस षड्वर्गके फल भिन्न भिन्न हैं।
(बृहज्जातक कोष्ठीप्र०)

५ एक ओषधिका नाम। ६ हालिक। ७ हाल। ८ मदनवृक्ष। ९ अग्रहायण मास।

वृश्चिकपत्रिका (सं० स्त्री०) पूतिका, पोईका साग।

वृश्चिकप्रिया (सं० स्त्री०) वृश्चिकस्य प्रिया। पूतिका।

वृश्चिकर्णी (सं० स्त्री०) आखुकर्णी लता, मूसाकानो-लता।

वृश्चिका (सं० स्त्री०) छोटा क्षुपविशेष। महाराष्ट्रमें इस क्षुपको विञ्चुक, कलिङ्गमें इङ्गुल, बम्बईमें विञ्चुका कहते हैं। संस्कृत पर्याय—नखपर्णी, पिच्छिला, अलिपत्रिका गुण—पिच्छिल, अम्ल, अन्तर्वृद्धि आदि दोषनाशक।

वृश्चिकाली (सं० स्त्री०) वृश्चिकानामलिर्यत्र। क्षुप-विशेष, वैरुटा। (Tragia involurrate) महाराष्ट्र वृश्चिकाली, कलिङ्ग हलिगुली, तैलंग दुल-गोंडी, तामील कञ्चूरि, बम्बई शेंजशिङ्गी। पर्याय—वृश्चिपत्री, विषघ्नी, नागदन्तिका, सर्पदंष्ट्रा, अमरा, काली, उग्रा, धूसरपुच्छिका, विषाणी, नेत्ररोगहा, उष्ट्रीका, अलिपर्णी, दक्षिणावर्त्तकी, कालिका, अमोमावर्त्ता, देव-लांगुलिका, करभी, भूरिदुग्धा, कर्कशा, स्वर्णदा, युग्म-फला, क्षीरविषाणिका, भासुरपुष्पा। इसके गुण—कटु, तिक्त, हृदय और वक्त्रशोधनकारक, रक्तपित्त, विषघ्न और अरुचिनाशक, बलकर। (राजनि०) राजवल्लभके मतसे यह खांसी और वायुका नाश करने-वाली है।

२ कण्टकित मेषशृङ्गके आकारका फल। गुण—वातनाशक। (सुश्रुत सू० ३८ अ०) ३ उष्ट्रधूम्रक, मेष-शृङ्गी। गुण—वातनाशक। (वाभट सूत्रस्था १५ अ०)

वृश्चिकाहिविषापहा (सं० स्त्री०) नाकुली, गन्धरास्ना।
(वैद्यकनि०)

वृश्चिकेश (सं० पु०) वृश्चिकराशिका अधिष्ठात्री देवता।

वृश्चिपत्री (सं० स्त्री०) १ वृश्चिकाली, विच्छू। २ लघु मेषशृङ्गी, छोटा मेंढ़ासिंगी।

वृश्ची (सं० स्त्री०) वृश्चिका क्षुप, पुनर्नवा, गदह-पुरना। (वाभट)

वृश्चीर (सं० पु०) सफेद गदहपुरना।

वृश्चीव (सं० पु०) गदहपुरना।

वृष (सं० पु०) १ सेचन, तर्पण। २ हिंसा। ३ क्लेश। ४ गर्भग्रहण। ५ ऐश्वर्य। ६ शक्तिबन्ध।

वृष (सं० पु०) वर्षति सिञ्चति रेतः इति वृष-क। १ बैल, साँड़। पर्याय—उक्षा, भद्र, बलीवर्द, ऋषभ, वृषभ, अनड्वत्, सौरमेय, गोशृङ्गिन्, ककुद्वत्, शिङ्गिन, गंधमैथुन, पुङ्गव।

शास्त्रोंमें लिखा है, कि अशौचान्तके दूसरे दिन मृत व्यक्तिके उद्देशसे वृषोत्सर्ग करना होता है। क्योंकि, वृषोत्सर्ग करनेसे उसकी प्रेतलोकमें गति न हो कर स्वर्गलोकमें गति होती है। सिवा इसके काम्य-वृषोत्सर्गकी भी विधि है। शुभाशुभ लक्षण देख कर वृष स्थिर करना होता है।

वृषोत्सर्ग और वृषभ शब्द देखो।

२ राशिभेद। मेषादि १२ राशियोंमें दूसरी राशि। इसकी विशेष संज्ञा—सौम्य, अंगना, युग्म, सम, स्थिर, पुष्कर। इस राशिके चार पाद होते हैं। निशाकालमें ग्राम्य, दिनमें वन्य, ह्रस्वाख्य, दक्षिण दिक्पति, निशा और पृष्ठोदयाख्य है। इसके अधिष्ठात्री देवता वृषाकृति हैं।

कृत्तिका नक्षत्रके शेष तीन पादों और सम्पूर्ण रोहिणी तथा मृगशिरा नक्षत्रके प्रथम दो पादोंमें यह राशि होती है। यह राशि सुंदर भूमि, स्वामी, वातप्रकृति, श्वेतवर्ण, वैश्यजाति, महाशब्दकर, मध्यम स्त्रीसंग, मध्यमसंतान, दाता, निर्भय, परदाराभिलाषी और वागदुःस्वर होती है। इस राशिजात व्यक्ति भी इसी

तरहका होता है। वृषराशि चन्द्रके तुङ्ग स्थान है। यदि चंद्र यहां हो, तो सब ग्रहोंसे बली हो कर रहता है।

वृषराशिका फल—वृष राशिमें जन्म होने पर कमनीय मूर्त्ति, टेढ़ी चालवाला, ऊरु और वदन मोटा; पृष्ठ, मुख और पार्श्वदेशमें चिह्नविशिष्ट, दाता, क्लेश सहनेवाला, प्रभु, ककुत् अर्थात् गरदनका निचला हिस्सा ऊंचा, कन्यासन्ततिवाला, श्लेष्म प्रकृतिका, प्रथमावस्थामें धन, बंधु और सन्ततिहीन, सौभाग्ययुक्त, क्षम शील, दीप्ताग्नि-सम्पन्न, प्रमदाप्रिय, स्थिरमित्रवाला, मध्य और अन्त्य उम्रमें सुखी होता है। (वृहज्जातक)

कोष्ठीप्रदीपके मतसे वृषराशिमें जन्म होनेसे उत्तम स्थूलजघन और कपोलयुक्त, प्रशान्त चक्ष, कम बोलने वाला, पवित्र, अत्यन्त दक्ष, मनोहर देहवाला, सुखी, देव, द्विज और गुरुभक्त, श्लेष्मवातप्रकृति, केशका अग्र भाग भी शुभ्र, कुटिल और रोमयुक्त होता है। यही राशिका साधारण फल है। इसके सिवा इस राशिमें रवि आदि ग्रहोंके रहने पर उसका फल भिन्न रूप हो जाता है।

वृषलग्न—वृषलग्नमें जन्म होने पर गाल, होंठ और नासिका मोटी होती है, ललाट चौड़ा, अत्यन्त वात-श्लेष्म प्रकृति, त्यागशील, अधिक खर्च करनेवाला, अल्प पुत्रवाला और अधिक संख्यक कन्यायुक्त, पितामाताको कष्टदायक, धनभागी, सब अकर्ममें आसक्त और सर्वदा आत्मीय हन्ता होता है। वृषलग्नजात पुरुष अस्त्र या पशु द्वारा अथवा अन्य स्थानमें देहश्रम, जलमें डूब कर या शूल, पर्यटन, निरशन, चौपाये जानवर या बलवान् मनुष्य द्वारा मृत्युमुखमें पतित होता है।

वृषलग्नके परिमाण ४।४६।५०, (चार दण्ड, उंचास पल, और पचास विपल), होरा, २।२४।५५ विपल, द्रेक्काण —१।३६।३६।४०, नवांश ०।३२।१२।१३।३३, द्वादशांश— —०।२४।६।१०, त्रिंशांश ०।६।३६।४०।

लग्नका उक्त परिमाण स्थूल और लग्न स्फुट द्वारा सूक्ष्म होता है। इन सब होरा द्रेक्काण प्रभृतिका फल भी भिन्न रूपका होता है।

वृषलग्नके प्रथम होरामें जन्म होनेसे उन्नत्त शरीर; चक्षुः ललाट, और वक्षःस्थल चौड़ा, दाम्भिक और स्थूल शरीर, द्वितीय होरामें जन्म होनेसे स्थूल और दीर्घ शरीर, उदार प्रकृति और कटिदेश (कमर) मनोहर होता है।

वृषके प्रथम द्रेक्काणमें जन्म होनेसे पानभोजनप्रिय, नारोवियोगसन्तापयुक्त, स्त्रीकर्मानुसारी, वस्त्रालङ्कारयुक्त, द्वितीय द्रेक्काणमें जन्म होनेसे अति धनी, बन्धुयुक्त, भोक्ता, भूषणरत, बलवान्, स्थिरप्रकृति, मनस्वी, लोभी, और स्त्रीप्रिय तृतीय द्रेक्काणमें चतुर, अल्पभाग्ययुक्त और मलिन होता है।

लग्न और राशि दोनों यदि एक हो, तो मिश्रित रूपमें जातकके शुभाशुभ फल निर्णीत होते हैं। लग्न, राशि या रवि आदि ग्रहका अवस्थान और उनकी दृष्टिके सम्बन्धमें—इन सबोंका मिलित रूपसे फल निर्देश करना होता है। (वृहज्जातक और कोष्ठीप्र०) इस राशिका आकार वृष (बैल)की तरह है, इसीलिये इसका नाम वृष पड़ा है।

४ चार प्रकारके पुरुषोंमें एक पुरुष। बहुगुणशाली और बहुत तरहसे रतिबंधमें अभिज्ञ, नत, शरीर, सुन्दर देह, और सत्यवादी—इन गुणोंवाला पुरुषका नाम वृष है। इस पुरुषको शङ्खिनी नारी बहुत प्रिय होती है।

(रतिमञ्जरी)

५ ग्यारहवें मन्वन्तरके इन्द्र। (गरुड़पुराण ८७ अ०) कामान् वर्षतीति वृष-क। ६ धर्म, वृषरूपी चतुष्पाद धर्म। ७ शृङ्गी। यह शब्द उत्तर पदस्थ होनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होता है। ८ मूषिक, चूहा। ९ शुक्ल। १० वास्तुस्थानभेद। (मेदिनी०) ११ वासक, अड़ूसा। (विश्व) १२ श्रीकृष्ण। १३ शत्रु। १४ काम। १५ बलवान्। १६ वृषभ नामकी औषध। १७ पति। १८ नदी भल्लातक, नदीमें होनेवाला भिलावां। १९ गोधूम, गेहूं। २० वासामूल, धमासेकी जड़। २१ वर्ह, मोरका पंख।

वृषक (सं० पु०) १ वृष, सांड़। गान्धारराजके एक पुत्रका नाम। २ सामभेद। वृष देखो।

वृषकर्णी (सं० स्त्री०) १ सुदर्शन नामकी लता। २ एक प्रकारकी विधारा।

वृषकर्मा (सं० त्रि०) धर्मकर्मा।

वृषका (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

वृषकाम (सं० त्रि०) १ धर्मकाम। २ जो वृषकी कामना करे।

वृषकृत (सं० त्रि०) वृषयुक्त।

वृषकेतन (सं० त्रि०) वृषध्वज।

वृषकेतु—१ वृषध्वज, शिव। २ कर्णके एक पुत्रका नाम।

वृषक्रतु (सं० त्रि०) वर्षा करनेवाले, इन्द्र। (ऋक् ५।३६।६)

वृषखादि (सं० त्रि०) १ सोमपायी, वह जो सोमपान करता हो। २ इन्द्र जिसके अस्त्र स्वरूप है।

(ऋक् १।६४।१० सायण)

वृषगण (सं० पु०) एक ऋषिसमूहका नाम।

(ऋक् ६।६७।८)

वृषगन्धा (सं० स्त्री०) १ ककही या कंघी नामका पौधा। २ अतिवला, एक प्रकारकी विधारा।

वृषगन्धिका (सं० स्त्री०) वृषगन्धा देखो।

वृषचक्र (सं० क्ली०) वृषाकारं चक्रं। कृषिकर्मोक्त वृषाकारचक्रविशेष। सर्वावयवयुक्त एक वृषकी प्रतिमूर्त्ति अङ्कित कर उसका मुख, आँख, कान, शीर्ष, सींग और स्कन्धदेशमें यथाक्रम कृत्तिकादि दो दो नक्षत्र रखे जाते हैं। पीछे उसकी पीठमें स्वाती, विशाखा, और अनुराधा; पूंछमें ज्येष्ठा और मूला, प्रत्येक पाद-में पूर्वाषाढ़ा तक यथाक्रमसे दो दो कर अभिजित् सहित उत्तरभाद्रपद तक आठ और उसके उदरमें रेवती, अश्विनी और भरणी; इन सब नक्षत्रोंको यथायथ स्थानमें रख कर उससे हलप्रवाह और बीज वपनादि कार्य्यके फलका शुभाशुभ निर्णय किया जाता है। अर्थात् अङ्कित वृषके मुखविन्यस्त नक्षत्रमें चन्द्रके अवस्थान कालमें हल-प्रवहनादि करनेसे कार्यकी हानि, नेत्रस्थ नक्षत्रमें चन्द्रके अवस्थानमें ये सब कर्म करनेसे सुख, कर्ण स्थित नक्षत्रमें चंद्रकी अवस्थिति कालमें भिक्षा और भ्रमण; शीर्षमें धृति; शृङ्गस्थमें सौख्य; कार्यकालमें स्कन्धदेशस्थ नक्षत्रमें कष्ट; पूंछमें मङ्गल; पादमें भ्रमण, चन्द्र रहनेसे शुभ, पृष्ठस्थित नक्षत्रमें कष्ट, पूंछमें कुशल; पादमें भ्रमण और उदरदेशविन्यस्त नक्षत्रमें चन्द्र रहते समय कार्य करनेसे सुख होता है। (ज्योतिस्तत्त्व)

वृषच्युत (सं० त्रि०) सोमदाता ऋत्विक् द्वारा परि-स्तुत।

वृषजूति (सं० त्रि०) वर्षणगमन, वर्षणकी गति।

वृषण (सं० पु०) अण्डकोष, रक्त, मांस, कफ और मेदके सार अंशसे वायुके संयोगसे इसकी उत्पत्ति है।

(सुश्रुत)

गरुड़पुराणमें लिखा है,—एक वृषण व्यक्ति अत्यन्त दुःखी होता है। जिसके दोनों अण्डकोष परस्पर समान होंगे, वही व्यक्ति राजा होगा। कोष दोनों असमान होनेसे मनुष्य स्त्रीचपल होता है। जिस मनुष्यके दोनों अण्डकोष लम्बे भावसे स्थित रहते हैं, वह अल्पायु और निर्द्धन समझा जाता है।

वृषणकच्छू (सं० स्त्री०) वृषणस्य कच्छूः। क्षुद्ररोग विशेष। स्नान अथवा पीसी हुई कच्ची हल्दी आदिकी मालिशसे शरीरका मल साफ न करनेसे यदि वह मल मुष्कदेशमें जम जाता है, तो वह स्थान अत्यन्त स्वेदयुक्त और क्लिन्न होता तथा वहां खाज उत्पन्न हो क्रमसे उससे स्फोट या फुंसियां और उनसे पीब या मवाद निकलने लगता है। श्लेष्मा और रक्तके प्रकोपवशतः रोगीके ये सब लक्षण दिखाई देनेसे उसीको वृषणकच्छु या वृषणकच्छू कहते हैं।

चिकित्सा—हिराकस (कसीस), गोरोचन, तुंतिया, हरताल और रसाञ्जन, काँजीके साथ पीस कर प्रलेप करनेसे अथवा बेरका छिलका, सेंधा नमकके साथ पीस कर लेप करनेसे अहिपूतनक और वृषणकच्छु रोगकी शान्ति होती है। सर्जरस, मोथा, कुट, सेंधा नमक, सादी सरसों उत्तमरूपसे पीस कर उबटन लगानेसे वृषणकच्छु रोगकी समाप्ति होती है। तुंतिया या जली मिट्टी अथवा खपड़ेको चूर्ण कर घिसनेसे भी यह रोग दूर होता है।

वृषणाश्व (सं० पु०) १ इन्द्रका घोड़ा। २ एक स्वनाम-ख्यात राजाका नाम। (ऋक् १।५१।१३) (त्रि०) ३ सेचनसमर्थ अश्वयुक्त, जो घोड़ा सिंचन कार्य्यमें निपुण हो। (ऋक् ८।२०।१०)

वृषणवत् (सं० त्रि०) सेचनकर्त्तायुक्त, सेचनकारी सम-न्वित।

वृषणवसु (सं० क्ली०) १ इन्द्रका धन। (त्रि०) २ वर्षण कर्त्ता। (ऋक् ३।४२।८)

वृषत्व (सं० क्ली०) सेचनसामर्थ्य । (ऋक् १।५४।२)

वृषदंशक (सं० पु०) वृष-दन्श अच् वा ण्वुल् । जो वृष अर्थात् चूहेका दंशन करे, बिल्ली ।

वृषदञ्जि (सं० त्रि०) वर्षणकारी पदार्थ द्वारा जो सिञ्चन करे ।

वृषदन्त (सं० त्रि०) वृषस्य मूषिकस्य दन्त इव दंतो यस्य । जिसके दांत चूहेके दाँतकी तरह हों ।

वृषदर्भ (सं० पु०) १ काशीराजके एक पुत्रका नाम । २ शिविके एक पुत्रका नाम । ३ श्रीकृष्णका एक नाम ।

वृषदेवा (सं० स्त्री०) वसुदेवकी एक पत्नीका नाम । (वायुपुराण)

वृषद्गु (सं० पु०) एक राजपुत्रका नाम ।

वृषद्वीप (सं० पु०) देशभेद ।

वृषधूत (सं० त्रि०) प्रस्तर द्वारा अभियुत ।

वृषध्वज (सं० पु०) वृषो वृषभो मूषिको धर्मो वा ध्वजो चिह्नं यस्य । १ शिव । २ गणेश । ३ वह जो पुण्यवान् हो, पुण्यात्मा । ४ एक राजपुत्रका नाम । ५ एक पर्वतका नाम ; ६ तांत्रिक मंत्र-रचयिताभेद । स्त्रियां टाप् । वृषध्वजा, दुर्गा ।

वृषध्वाङ्क्षा (सं० स्त्री०) नागरमोथा ।

वृषन् (सं० पु०) वृष-कनिन्, (युष वृषीति । उण् १।१५६) १ इन्द्र । २ कर्ण । ३ वेदनाज्ञान अथवा उससे उत्पन्न अचेतनता । ४ वृष । ५ अश्व । ६ विष्णु । ७ वृक्ष ।

वृषनाभि (सं० त्रि०) वर्षणक्षम नाभि अर्थात् चक्र छिद्रयुक्त जिसे नाभि या चक्रच्छिद्रकी वर्षणयोग्यता है ।

वृषनामा (सं० क्ली०) वर्षण और नमन अर्थात् नत या अधोगति होना । (ऋक् ६।६७।५४)

वृषनाशन (सं० पु०) वृषान् मूषिकान् नाशयति नश-णिच् ल्यु । १ विडङ्ग, वायविडङ्ग । २ श्रीकृष्ण, अरिष्ट रूपी वृषको श्रीकृष्णने नाश किया था, इससे भगवान् वृषनाशन कहे जाते हैं ।

वृषन्तम (सं० त्रि०) अत्यन्तवर्षणकारी । (ऋक् १।१०।१०)

वृषपति (सं० पु०) वृषस्य पतिः । १ षण्ड, क्लीव, ध्वजभङ्ग । २ शिव, महादेव ।

वृषपत्रिका (सं० स्त्री०) वत्सांत्री, छागलांती नामकी ओषधि जो विधाराका एक भेद है ।

वृषपत्नी (सं० स्त्री०) वह जिसके पतिमें वर्षण करनेकी क्षमता है ।

वृषपर्णिका (सं० स्त्री०) भारङ्गी, ब्राह्मणयष्टिका ।

वृषपर्णी (सं० स्त्री०) वृषस्य पर्ण इव पर्णमस्याः । १ आखुपर्णी, मूसाकानी । २ पुरातिका वृक्ष । ३ कृष्ण-दन्ती ।

वृषपर्वन् (सं० पु०) वृषे पर्व उत्सवो यस्य । १ शिव, महादेव । २ दैत्यका नाम । ३ एक वृक्षका नाम । ४ केशर, कसेरू । ५ विष्णुका एक नाम । ६ एक राजाका नाम । ७ भंगरा । ८ एक प्रकारका तृण ।

वृषपाण (सं० क्ली०) परिसेचनक्षम पदार्थोंका पान, जो पदार्थ सेचन कार्यमें समर्थ है, उसका पान । (ऋक् १।५१।१२)

वृषपाणि (सं० त्रि०) वृषा सेचनसमर्थः पाणिर्यस्य । जिसका हाथ परिसेचन कार्यमें निपुण है । (ऋक् ६।७५।७)

वृषप्रभर्मन् (सं० त्रि०) वर्षणशीलके प्रहर्त्ता । (ऋक् ५।३२।४)

वृषप्रयावन् (सं० त्रि०) जिसमें सेचन और गमनकर्त्ता हो । (ऋक् ७।२०।६)

वृषप्रिय (सं० पु०) विष्णु ।

वृषभ (सं० पु०) वृष-अभच् (ऋषिवृषिभ्यां कित् । उण् ३।१२३।१) वृष, बैल, वर्द, सांढ़ । २ वीर, बहादुर, श्रेष्ठ । ३ साहित्यमें वैदर्भी रीतिका एक भेद । ४ आदिजिन । ५ कर्णछिद्र, कानका छेद । ६ ऋषभ नामकी ओषधि । ७ विष्णु । ८ चार तरहके पुरुषोंमें एक पुरुष, जिसके लिये संखिनी स्त्री उपयुक्त कही गई है । वृष शब्दमें विशेष देखो ।

स्त्रियां ङीष् वृषभी । ९ विधवा स्त्री । १० कर्ण-शष्कुली, कानके भीतरका वह सूक्ष्म चमड़ा जिस पर शब्दोंका टकर लगता और उससे वर्णज्ञान होता है । ११ हाथीका कान । १२ औषध । १३ द्रव्यविशेष ।

१४ ऋषभ। १५ अष्टाविंश मुहूर्त्तभेद। १६ एक असुरका नाम। विष्णुने इसको मारा था। १७ दशवें मनुके एक पुत्रका नाम। १८ एक योद्धा। १९ कुशाग्रके एक पुत्रका नाम। २० अवसर्पिणीके १ला अर्हत्। २१ गिरिव्रजके अन्तर्गत एक पर्वत। २२ कार्त्तवीर्यके पुत्रका नाम। २३ महाभद्र सरोवरके उत्तरस्थ एक पर्वत। यह रुद्रक्षेत्रके नामसे पूजित हैं।

(लिङ्गपुराण ४९।५४)

वृषभकेतु (सं० पु०) शिव।

वृषभगति (सं० पु०) वृषभेण गतिर्यस्य। १ शिव, महादेव। २ वह सवारी जो बैलके द्वारा खींची जाती है।

वृषभचरित (सं० त्रि०) ज्योतिषशास्त्रोक्त दोषविशेष। जन्म राशिसे बारहवीं राशिमें चन्द्रके अवस्थान कालमें जीवको यह कष्ट होता है अर्थात् व्ययके साथ जीव उस समय उन सब दोषपूर्ण कार्य्योंको करता है।

(बृहत्स० १०४।१०)

वृषभतीर्थ—एक प्राचीन तीर्थका नाम। वृषभतीर्थ माहात्म्य और वृषभादिमाहात्म्यमें इसका परिचय दिया गया है।

वृषभत्व (सं० क्ली०) वृषभका भाव या धर्म, वृषभता।

वृषभध्वज (सं० पु०) वृषभः ध्वजो वाहनं यस्य। १ शिव। (रघु २।३६) स्त्रियां टाप्। वृषभध्वजा। २ वृहद्दन्ती वृक्ष, बड़ी दंती। ३ एक पर्वतका नाम। ४ शिवका वाहन।

वृषभपल्लव (सं० पु०) अडूसका वृक्ष।

वृषभवीथि (सं० स्त्री०) सूर्य्यकी विथियोंमें एक वीथिका नाम। वीथि शब्द देखो।

वृषभस्वामी (सं० पु०) इक्ष्वाकुवंशीय राजपुत्रभेद।

वृषभसेन—जैनभेद।

वृषभा—एक प्राचीन नदीका नाम।

वृषभाक्ष (सं० पु०) विष्णु।

वृषभाक्षी (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी लता, ग्वालककड़ी।

वृषभाङ्क (सं० पु०) शिव।

वृषभानु (सं० पु०) सुरभानके पुत्र। इनकी माताका नाम पद्मावती था। यह नारायणके अंशसम्भूत तथा जातिस्मर तथा श्रीराधिकाके पिता थे।

(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्म० ख० १७।१०७।१३१)

वृषभानुपुर—व्रजमण्डलके अन्तर्गत एक ग्राम। संकेतग्रामसे एक कोस पर यह अवस्थित है।

वृषभानुनन्दिनी (सं० स्त्री०) श्रीराधिका।

वृषभानुसुता सं० स्त्री०) वृषभानुकी पुत्री श्रीराधिका।

वृषभासा (सं० स्त्री०) वृष्णा इंद्रेण भासते भास-अच् ततष्टाप्। अमरावती।

वृषभेक्षण (सं० पु०) वृषभो वेदः ईक्षणं ज्ञापको यस्य। वेद ही जिसका ज्ञापक है, विष्णु।

वृषमणस् (सं० त्रि०) कामाभिवर्षकमनस्क, जिसका मन कामाभिवर्षण करे। (ऋक् १।६३।४)

वृषमण्यु (सं० त्रि०) जो अभिमत वर्षणके लिये मान्य करे। (ऋक् १।१२१।२)

वृषमूल (सं० क्ली०) वासकमूल, अडूसेकी जड़।

वृषय (सं० पु०) वृ-कयन् वृङ्गोः पुगुकौ च। (उण् ४।१००) आश्रय।

वृषयु (सं० त्रि०) सन् शब्दकारी, जो 'सन्' ऐसा शब्द करे। (ऋक् ६।७३।५)

वृषरथ (सं० त्रि०) वर्षणकारक रथयुक्त, जिसको वर्षणकारक रथमें जुता गया हो। (ऋक् १।७३।२)

वृषरवि (सं० पु०) वृषभानु देखो।

वृषरश्मि (सं० त्रि०) जिसको रश्मि अर्थात् प्रग्रहरज्जु कामाभिवर्षणकारी हो।

वृषराजकेतन (सं० पु०) वृषकेतन, शिव।

वृषलक्ष्म (सं० पु०) शिव, महादेव।

वृषल (सं० पु०) वृष-कलच् वृषादिभ्यश्चित् (उण् १।१०८) १ शूद्र। २ गृञ्जन अर्थात् शालगम, गजरा। ३ घोटक, घोड़ा, अश्व। ४ सम्राट् चन्द्रगुप्तका एक नाम। वृषं धर्मं लुनातीति। ५ अधार्मिक, पाप या दुष्कर्म करनेवाला। मनुका कहना है, कि जो वृष अर्थात् कामवर्षी धर्मको अलं अर्थात् व्यर्थ या निरर्थक करता है, उसको देवता लोग (वृष + अलं = वृषल) वृषल कहते हैं। (मनु ८।१६)

वृषलक (सं० पु०) वृषल एव वृषल स्वार्थे कन्। वृषल।

वृषलक्ष्मन (सं० पु०) वृषो वृषभः स एवं लक्ष्म चिह्नं यस्य। वृषलांछन, महादेव, जिनको वृष पर देख कर पहचाना जाये।

वृषलता (सं० स्त्री०) वृषलका भाव या धर्म।

वृषलत्व (सं० क्ली०) वृषलता।

वृषलाञ्छन (सं० पु०) महादेव, वृषभाङ्क।

वृषलात्मज (सं० पु०) शूद्रोद्भव, शूद्रजात। २ अधार्मिकोत्पन्न, पापोत्पन्न।

वृषली (सं० स्त्री०) १ अविवाहिता रजःस्वला कन्या, जिस कन्याका विवाह न हुआ हो पर रजस्वला हो चुकी हो। अत्रि और कश्यपका कहना है, कि पिताके घर अविवाहिता अवस्थामें जो कन्या रजोदर्शन करती है, वह वृषली कही जाती है। ऐसी कन्याके पिता पातकी होता है और उसको भ्रूणहत्याका दोष लगता है। (उद्वाहतत्व) २ वह स्त्री जो अपने पतिको त्याग दूसरे पुरुषसे प्रेम करती हो। काशीखण्डमें लिखा है, कि केवल शूद्राको ही वृषली नहीं कहते, वरं चाहे जिस वर्णकी हो, जिसने अपने पतिको त्याग दूसरे पुरुषको प्रेमी बनाया, वह वृषली कही जायगी।

"स्ववृषं या परित्यज्य परवृषे वृषायते।
वृषली सा हि विज्ञेया न शूद्री वृषली भवेत्॥"
(काशीखण्ड)

३ शूद्रा। ४ वृषल जातियां स्त्री अर्थात् अधार्मिका, पापिष्ठा, या दुष्कर्म करनेवाली स्त्री। ५ नीचकी स्त्री। ६ ऋतुमती स्त्री। ७ मृतसन्तानप्रसवकारिणी, वह स्त्री जो मरी हुई सन्तान उत्पन्न करती हो।

वृषलीपति (सं० पु०) वृषली कन्याका विवाह करनेवाला, वह जिसने वृषली कन्याका विवाह किया हो। वृषली कन्याका विवाह करनेवाला शास्त्रानुसार श्राद्धादि कर्मोंके अधिकारी नहीं होता। अपनी जाति में वह पंक्तिमें भोजन करनेका अनधिकारी होता है।
(उद्वाहतत्त्व)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि शूद्रा स्त्रीसे सहवास करे, तो उसको भी वृषलीपति कहते हैं।

"यदि शूद्रां व्रजेत् विप्रो वृषलीपतिरेव सः।" (ब्रह्मवै० पु०)

वृषलोचन (सं० पु०) वृषस्य लोचने इव लोचने यस्य। १ चूहा। २ वृषके नेत्र, बैलकी आंख।

वृषवत् (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

वृषवासी (सं० पु०) केरलदेशके वृषपर्वत पर बसनेवाले, शिवजी। २ शङ्कर।

वृषवाह (सं० त्रि०) वृषारोही।

वृषवाहन (सं० त्रि०) वृषो वाहनं यस्य। १ शिव, महादेवजी। २ वृषरूपवाहन अर्थात् यान।

वृषवोमस्स (सं० पु०) एक प्रकारकी कौंछ या केवांच।

वृषवृष (सं० क्ली०) एक प्रकारका साम।

वृषव्रत (सं० त्रि०) वृषकर्मा, वर्षणकारी।
(ऋक् ६।६२।११)

वृषव्रात (सं० त्रि०) सेचनसमर्थ, जो सेचन करनेमें समर्थ हो। (ऋक् १।८५।४)

वृषशत्रु (सं० पु०) १ विष्णु। २ वृषका शत्रु।

वृषशिप्र (सं० पु०) वैदिककालका एक असुर।

वृषशील (सं० त्रि०) वृषल। (निरुक्त ३।१६)

वृषशुष्ण (सं० पु०) वातावत महर्षिके अपत्य।

वृषशुष्म (सं० त्रि०) १ वृषकी तरह बलशाली, बलवानोंके शोषणकारी। २ एक प्राचीन ऋषिका नाम, जो जतुकर्णके पोते थे। (ऐतरेयब्रा० ५।२९)

वृषषण्ड (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

वृषसव (सं० पु०) वह जिसने यज्ञ करनेके लिये मंगल स्नान किया हो। (ऋक् १०।४२।८)

वृषसार (सं० पु०) १ शुक्लवट, सफेद बड़। २ देवकुम्भी, बड़ा गूमा।

वृषसाह्वया (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें मिलता है।

वृषसाह्वा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

वृषसृक्की (सं० पु०) भृंगरोल नामका कीड़ा, वृषशृङ्गिन्।

वृषसेन (सं० पु०) १ कर्णके पुत्रका नाम। २ सह्याद्रि वर्णित एक राजा। (सह्याद्रि ३४।६)

वृषस्कन्ध (सं० पु०) वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य। १ जिसका कंधा बैलके कंधेके समान हो। (रघु १।१३) २ शिव। (भारत शान्तिपर्व)

वृषस्यन्ती (सं० स्त्री०) १ अतिशय कामुकी। २ शुक-शिम्बी। ३ वृषार्थिनी गाय।

वृषा (सं० स्त्री०) १ लघुमूषिकपर्णी नामकी लता, मूसाकानी, आखुकर्णी। २ द्रवन्ती, बड़ी दन्ती। एरण्ड वृक्षकी तरह इसके पत्ते और शाख होते हैं। ३ अश्वगन्धा, असगंध। ४ महाज्योतिष्मती नामकी लता। ५ शुकशिम्बी, कपिकच्छु। ६ गौ, गाय।

वृषाकपायी (सं० स्त्री०) वृषाकपेः विष्णोः शिवस्य अग्नेरिन्द्रस्य वा भार्य्या। १ लक्ष्मी। २ गौरी। ३ स्वाहा। ४ शची, इन्द्राणी। ५ जीवन्ती, डोडी। ६ शतावर।

वृषाकपि (सं० पु०) वृषः कपिरस्येति अन्येषामपीति दीर्घः (उण् ४।१४३ उज्ज्वलदत्त) १ विष्णु। २ शिव। ३ अग्नि। ४ इन्द्र। ५ सूर्य्य।

वृषाकार (सं० पु०) उड़द, माष।

वृषाकृति (सं० त्रि०) विष्णु। (भारत १३।१४६।२५)

वृषाक्ष (सं० पु०) १ विष्णु। २ वह जिसकी वृषकी तरह आंखें हों।

वृषाख्य (सं० पु०) वृष नामका ऐन्द्रजालिक।

वृषागिर (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। वार्षागिर देखो।

वृषाङ्क (सं० पु०) वृषोऽङ्कोऽस्य। १ शिव। २ साधु। ३ पानीका भिलावां। ४ हिजड़ा, नामर्द। ५ धार्मिक मनुष्य।

वृषाङ्कज (सं० पु०) डमरू।

वृषाञ्चन (सं० पु०) वृषेण अञ्चति गच्छतीति अन्च् ल्यु। शिव।

वृषाणक (सं० पु०) १ शिव। २ शिवके अनुचरका नाम।

वृषाणी (सं० पु०) ऋषभक नामकी ओषधि जो अष्ट-वर्गमें है।

वृषाण्ड (सं० पु०) एक असुरका नाम।

वृषादनी (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी, इनारू।

वृषादर्भ (सं० पु०) यदुवंशीय शिविके पुत्र।

वृषादर्भि (सं० पु०) शिविका पुत्र।

वृषादित्य (सं० पु०) वृष राशिके सूर्य, ज्येष्ठमासके संक्रान्तिके सूर्य।

वृषाद्रि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम जो केरलदेशमें है।

वृषान्तक (सं० पु०) वृषस्यासुरस्यान्तकः। विष्णु।

वृषामित्र (सं० पु०) महाभारतोक्त एक ब्राह्मण।

वृषामोदिनी (सं० स्त्री०) पति अनुरागिणी।

वृषायण (सं० पु०) १ शिव। गौरैया नामकी चिड़िया।

वृषायुध (सं० त्रि०) सेचनसमर्थ वीरके साथ युद्ध करनेवाला। (ऋक् १।३३।६)

वृषारणी (सं० स्त्री०) गङ्गा। (का० ख० २९।११२)

वृषारव (सं० पु०) १ कर्कश शब्दकारी, जिसके मुंहसे कर्कश शब्द निकलता है। २ झिंगुर, झिल्ली आदि। (ऋक् १०।१४६।२)

वृषाशील (सं० त्रि०) वृषल। (निरुक्त ३।१६)

वृषाश्रिता (सं० स्त्री०) गङ्गा। (काशीखण्ड २९।१२७)

वृषाहार (सं० पु०) वृषा मूषिकः आहारो यस्य। बिल्ली। (हारावली)

वृषाही (सं० पु०) वृषाहिन्, विष्णु।

वृषिन् (सं० पु०) मयूर।

वृषिमन् (सं० पु०) वृष-इमनिच्। (पा ५।१।१२२) वृषका भाव या धर्म।

वृषी (सं० स्त्री०) व्रतियोंके कुश आदिके बने आसन।

वृषेन्द्र (सं० पु०) १ सांड़। २ नन्दी।

वृषोत्सर्ग (सं० पु०) वृषस्य उत्सर्गः। वृषत्याग, सांड़ दागना। मृत व्यक्तिके उद्देशसे उसके पुत्र आदि व्यक्तियों द्वारा शास्त्रोक्त विधिपूर्वक सांड़ दाग कर छोड़ना। प्रेतके उद्देशसे अशौचान्तमें दूसरे दिन अर्थात् ब्राह्मणोंको ११ दिन पर, क्षत्रियोंको १३ दिन, वैश्योंको १६ और शूद्रोंको ३१ दिन पर यह वृषोत्सर्ग करना चाहिये। जिस प्रेतके उद्देशसे वृषोत्सर्ग किया जाता है, वह प्रेतत्वसे विमुक्त हो स्वर्ग गमन करता है, इसलिये पुत्रको वृषोत्सर्ग जरूर करना चाहिये। अशौचान्तके दूसरे दिनके बाद भी वृषोत्सर्ग किया जा सकता है। इसके सम्बन्धमें यही नियम है, कि प्रथम कल्प अशौचान्तके दूसरे दिन यदि किसी तरह यह कार्य न हो सके, तो तीसरे पक्षमें, छठें महीने तथा सपिण्डीकरणके दिन वृषोत्सर्ग किया

जा सकता है। सपिण्डीकरणके बाद फिर कभी वृषोत्सर्ग नहीं हो सकता।

अशौचान्तके दूसरे दिन जिस प्रेतके उद्देशसे वृषोत्सर्ग नहीं किया गया, उसके उद्देशसे सैकड़ों श्राद्ध करनेसे उसकी मुक्ति नहीं होती। अर्थात् जिस प्रेतके उद्देशसे वृषोत्सर्ग नहीं किया जाता, उसकी प्रेतलोककी गति होती है। सुतरां उसकी मुक्ति नहीं है। केवल वृषोत्सर्गसे ही मुक्ति और स्वर्गगति प्राप्त होती हैं।

पिताके एकसे अधिक लड़के हों, उनमें यदि एकने श्राद्ध किया, तो केवल वह श्राद्ध करनेवाला लड़का ही वृषोत्सर्गका अधिकारी नहीं; बाकी सभी लड़के वृषोत्सर्ग कार्य कर सकते हैं। और तो क्या, पुत्री भी इस कार्यको कर सकती है। किन्तु विशेषता यह है कि जब कन्याको वृषोत्सर्ग करना हो तो वह केवल अशौचान्तके दूसरे दिनको ही कर सकती है, इसके बाद नहीं। जैसे लड़के तीन पक्ष पर, छः मास या सपिण्डीकरणके दिन वृषोत्सर्ग कर सकते हैं, वैसे कन्या नहीं कर सकती।

पुत्रके सम्बन्धमें पूर्वोक्त नियम लागू होता है। यह भी बात है, कि सभी प्रेतोंके उद्देशसे वृषोत्सर्ग न किया जाये इसके लिये नियम हैं। जब पतिपुत्रवती स्त्रीकी मृत्यु हो, तब वृषोत्सर्गकी आवश्यकता नहीं। उसके लिये वृषोत्सर्गके बदले चन्दनधेनुकी प्रक्रिया करनी चाहिये। इसमें भी एक नियम है, जो पतिपुत्रवती स्त्री रजःस्राव बन्द होनेके पहले ही मरे उसीके उद्देशसे चन्दनधेनु और जो पतिपुत्रवती रमणी रजःस्राव बन्द हो जानेके बाद अर्थात् वृद्धावस्था उपस्थित होने पर मरती है, उसके लिये वृषोत्सर्ग ही उचित है चन्दनधेनुकी प्रक्रिया न होगी।

पुत्र ही चन्दनधेनुकी प्रक्रिया कर सकेगा, पुत्री या कन्या नहीं, किन्तु इन चार दिनोंके भीतर कन्या पतिपुत्रवती मृत स्त्रीके उद्देशसे वृषोत्सर्ग ही करेगी, चन्दनधेनु नहीं। वृषोत्सर्ग तथा चन्दनधेनुका एक ही फल होता है इन दोनों कर्मोंसे प्रेतत्वविमुक्त हो कर स्वर्ग पाता है।

कन्या उक्त चार दिनके भीतर वृषोत्सर्ग कर सकती है, इसके बाद नहीं। किन्तु इन चार दिनोंके भीतर यदि किसी दिन वह ऋतुमती या अशौचापगम हो जाय तो वह जिस दिन अशौचका अन्त हो, उस दिनके बादवाले दिनको कर सकती है। इस दिन वह यदि वृषोत्सर्ग किसी तरह न कर सके तो वह फिर उस प्रेतके लिये वृषोत्सर्ग करनेकी अधिकारिणी न रह जायगी।

प्रेतके उद्देशके सिवा भी वृषोत्सर्ग किया जा सकता है। कार्त्तिकी पौर्णमासी और रेवती आदि नक्षत्रोंमें ऐसे वृषोत्सर्ग करनेका विधान है। इस वृषोत्सर्गमें वृद्धिश्राद्ध करना होगा। किन्तु प्रेतोद्देशसे वृषोत्सर्ग करनेमें वृद्धिश्राद्ध करनेकी जरूरत नहीं।

वृषोत्सर्गमें चार वत्सतरी (बछिया) के साथ वृषोत्सर्ग करना होता है। वत्सतरी और वृषका लक्षण निर्दिष्ट है। इसके अनुसार लक्षणाक्रान्त वृष और सुलक्षणा वत्सतरीके साथ वृषोत्सर्ग करना चाहिये।

जिस वृष या बैलके किसी अङ्गमें दोष न हो अर्थात् जो अङ्गहीन नहीं हो और वह जीववत्सा और पयस्विनी गायकी सन्तान हो और जो बैल एक या दो अङ्गका हो तथा यूथसे भी ऊंचा हो, ऐसा बैल ही उत्सर्ग किये जाने योग्य है।

और भी लिखा है, लोग इसीलिये बहुत पुत्रकी कामना करते हैं कि उनमें कोई भी पुत्र ऐसा निकले जो गया जा कर पिण्डदान कर देगा, या गौरी अर्थात् अष्ट वर्षीया कन्यादान कर देगा तथा नीलवृष उत्सर्ग करेगा, जिससे उसकी मुक्ति हो जायेगी।

जिस वृषका पैर, मुख, पुच्छ सादा और उसका रङ्ग लाहक्षारके समान हो, जिसे देहातोंमें "सोकना" बैल कहते हैं, उसीका नाम नीलवृष है। इस तरहका बैल यदि उत्सर्ग किया जाये, तो प्रेतको शीघ्र ही मुक्ति मिलती है। भोजराजकृत युक्तिकल्पतरु और मत्स्यपुराणमें वृष और वत्सतरीकी परीक्षाका विषय वर्णित है।

वृषोत्सर्ग करनेके समय पहले वत्सतरी और वृष उल्लिखित लक्षणोंके अनुसार ठीक करना चाहिये। जिस

वत्सतरीको कोई अङ्गहानि न हो, जो जीववत्सा गोसे उत्पन्न हुई हो, जिसका रङ्ग, खुर और सींगे स्निग्ध हों, जिसकी आकृति मनोहर हो, जो सौम्या, अरोगिणी, अनुद्धता, ताम्रौष्ठी, रक्तजिह्वा, विस्तर्ण जघना हो, वही वत्सतरी ग्रहण करनी चाहिये। इस पर यदि षड़ुन्नता, पार्श्वोरुसुन्दर पञ्चपृथु, अष्टायता वत्सतरी मिल सके, तो और भी उत्तम हो। उरः, पृष्ठ, शिर, कुक्षि और श्रोणिद्वय जिसके उन्नत हों वह षड़ुन्नता कही जाती है। सिवा इसके दोनों कान, दोनों नेत्र और ललाट ये पांच सम और आयत तथा पूंछ, साखा और सक्थिनीद्वय ये चार सम और शिर तथा ग्रीवादेश आयत होने पर भी उत्तम गाय कही जाती है।

वृषलक्षण—जिसके कन्धा और ककुत् उन्नत हो, पूंछ और कम्बल ऋजु, वैदूर्यमणिकी तरह लोचन, प्रवालगर्भकी तरह शृङ्गाग्र, सुदीर्घ और पृथु वालधियुक्त और जिसके ६ या ८ दाँत हों, वह बैल ही उत्तम कहा जाता है। ताम्रकपिल या श्वेत, रक्त, कृष्ण, गौर या परवलकी तरहका बैल ब्राह्मणोंके लिये उत्तम है। उपरोक्त लक्षणयुक्त वृष या बैल तथा वत्सतरी या बछिया वृषोत्सर्गमें प्रशस्त है। सामवेद, ऋग्वेद और यजुर्वेदभेदसे वृषोत्सर्गकी पद्धति भी तीन तरहकी है।

वृषोत्सर्गके स्वस्तिवाचनके बाद महाभारत नामोच्चारण करना होता है और राढ़देशवासी महाभारतके विराटपर्वका पाठ किया करते हैं। वृषोत्सर्गके लिये निम्नलिखित वस्तुओंकी आवश्यकता होती है। सबसे पहले गोशाला, या किसी पुण्यभूमिमें चौकोन और चार हाथका एक मण्डप तय्यार करना होता है। मण्डपान्तवितान १ प्रस्थ, पञ्चगव्य, ५ घड़े, १ शान्तिकुम्भ, घटाच्छादनवस्त्र ५ प्रस्थ, शान्तिकुम्भका युग्मवस्त्र १ प्रस्थ, चन्द्रातप और उष्णीष वस्त्र, गणेश और ग्रहविष्णुपूजाके षोड़शोपचार द्रव्य, १ वृष, ४ वत्सतरी, (लोहित, नील, पाण्डुर और कृष्ण होनेसे और भी अच्छा) वृषका काञ्चनशृङ्ग, काञ्चनवीर पट्टक, रजतक्षुर, दर्पण, लौहघण्टा, ताम्रपृष्ठ, कांस्यक्रोड़, लौहनूपुरचतुष्टय, चामर, मुकुट, सोपकरणपेटिकाचतुष्टय, अङ्कनार्थ, सिन्दूरादि वा कुंकुम (अभावमें हरिद्रा) दण्डोत्पलदण्ड, लौहविदाह, स्नानार्थ सर्वौषधि, कलसद्वय, ओखल, मूसल, जलधारार्थ चमस, औडुम्बर समिध, कुशतिल, वरणवस्त्र,—१ ब्रह्मवरण, २ होतृवरण, ३ आचार्य, ४ सदस्य और ५ विराटवरण। गोपालकवस्त्र, बिल्वनृक्षयूप, उपयूपचतुष्टय, यूपाच्छादन, ब्रह्मदक्षिणार्थ पूर्णपात्र, पञ्चवर्ण गुण्डिका, पञ्चपल्लव, होमका घृत, शालि, चरुकादुग्ध, आज्यस्थाली, चरुस्थाली, ताम्रघट, टाट आदि। इन सब द्रव्योंको एकत्र कर वृषोत्सर्ग करना चाहिये। उक्त वेदोंकी पद्धतियोंमें विशेष विवरण लिखा गया है।

यजुर्वेदी और ऋग्वेदी लोगोंकी वृषोत्सर्गकी प्रणाली प्रायः ही एक तरहकी है। सामान्य सामान्य मन्त्रोंका प्रभेद है। यजुर्वेदियोंके वृषोत्सर्गमें वृषके कर्णमें समग्र रुद्राध्यायका पाठ करना होता है। मन्त्र में भी कहीं कहीं प्रभेद है। ऋग्वेदियोंके वृषोत्सर्गमें सङ्कल्प और वरणादिके बाद पावमानी और पुरुषसूक्त पाठ करना होता है। पद्धतियोंमें विशेष विवरण देखना चाहिये।

स्वार्थमें अर्थात् जब काम्य वृषोत्सर्ग करना हो, तब कार्त्तिक मास, वैशाखमास और पौर्णमासी आदि तिथियोंमें भी करनेका विधान है।

वृषोत्साह (सं० पु०) विष्णुका नाम। 'वृषोत्शाह' भी होता है।

वृषोदर (सं० पु०) विष्णुका एक नाम।

वृष्ट (सं० पु०) कुत्ता।

वृष्टि (सं० स्त्री०) वृष-क्तिन्। मेघोंसे जल टपकना। पर्याय,—वर्षा, गोधृत, परामृत, वर्षण।

मनुका कहना है,—

"अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥"

अग्निमें आहुति देने पर सब रसके चूसनेवाले सूर्यदेवको ही वह अदृश्य भावमें प्राप्त होता है। सूर्यसे वही रस वृष्टि रूपसे पतित होता है। वृष्टिसे अन्न उत्पन्न होता है और इस अन्नसे प्रजा उत्पन्न होती है। अतएव यज्ञादि ही वृष्टिके कारण है। बहुत परिमाणसे यज्ञ करनेसे बहुत वृष्टि भी होती है।

रघुवंशमें लिखा है, कि सूर्य्य पृथ्वीके रसको चूस

लेते और उस रसको सहस्र गुणामें वर्षण कर देते हैं।
"सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।" (रघु १ मं)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि नन्द आदि गोपोंने इन्द्रके लिये महोत्सव और पूजा करनेका आयोजन कर श्रीकृष्णसे कहा था,—वत्स कृष्ण! महेन्द्रकी यह पूजा हमारी पुरुषानुगत और सुवृष्टिकरण है। वृष्टिसे ही इस जगत्‌की रक्षा होती है। इन्द्रदेव यह वृष्टि किया करते हैं। सुतरां उनकी पूजा करना सर्वतोभावसे कर्त्तव्य है। कृष्णने यह सुन कर कहा था, कि पितः! आपके मुखसे आज बड़ी विचित्र तथा आश्चर्यजनक बात सुनी। इन्द्रदेवकी वृष्टि करनेकी बात लोक और शास्त्र दोनों मतोंसे उपहासास्पद और देवविगर्हित है। कहीं ऐसा विधान नहीं, कि इन्द्र द्वारा वृष्टि होती है। आपके मुखसे आज यह अपूर्व नीतिवाक्य सुना। आप फिर इस तरहकी बात न कहें। इस समय पण्डितोंकी नीतिके वाक्य सुनिये। भगवान् सूर्यसे वृष्टि हुआ करती है और इसी वृष्टिसे शस्य (फसल) और वृक्ष, पीछे वृक्षसे फल, और शस्यसे अन्नकी उत्पत्ति होती है तथा अन्न और फलों द्वारा ही जीवधारी जीवधारण करनेमें समर्थ होते हैं। समय पर सूर्य ही जलग्रास करते हैं और समय पर उन्हीं सूर्यसे उसका उद्भव होता है। सूर्य मेघादि सभी विधाताने निरूपण किये हैं। हस्ती अपने शुण्ड द्वारा समुद्रसे इच्छानुरूप जल ग्रहण कर मेघको देता है। मेघ वायु द्वारा चालित हो कर समय समय उसी जलको पृथ्वी पर चारों तरफ बरसाता है। यह सब घटना ईश्वरकी इच्छाके अनुरूप हुआ करती है। इसमें कुछ भी प्रतिबन्धक नहीं होता। भूत, भविष्यत वर्त्तमान, महत्, क्षुद्र और मध्यम चाहे जो हो, सभी एकमात्र भगवत्‌की इच्छासे ही होता है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण श्रीकृष्णजन्मख० २१ अ०)

वृहत्‌संहितामें लिखा है—मार्गशीर्ष महीनेकी शुक्ला प्रतिपदासे जिस दिन चन्द्र पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें सङ्गत होता है उसी दिनसे वृष्टिके गर्भके लक्षण दिखाई देते हैं। चन्द्रके जिस नक्षत्रमें आनेसे मेघका गर्भ होता है, चन्द्रवशमें अर्थात् चन्द्रके दिनानुसार १९५वें दिन उस गर्भका प्रसवकाल है अर्थात् उसी दिन वृष्टि होती है।

सितपक्षजातगर्भ कृष्णपक्षमें, कृष्णपक्षसम्भव गर्भ शुक्लपक्षमें, दिवाजात गर्भ रात्रिकालमें और रात्रिप्रभव सन्ध्याकालमें प्रसवकाल होता है अर्थात् उसी समय वृष्टि होती है।

मार्गशीर्ष मासजात गर्भ और पौष शुक्लपक्षजात गर्भ मन्दफलयुक्त होता है। माघमासके शुक्लपक्षका गर्भ श्रावणके कृष्णपक्षमें, माघमासके कृष्णपक्षके गर्भका प्रसवकाल भाद्रमासके शुक्लपक्षमें अर्थात् इसी समय वृष्टि होती है। फाल्गुन शुक्लपक्ष जात गर्भमें भाद्रमासके कृष्णपक्षमें और फाल्गुन कृष्णपक्षीय गर्भ आश्विनमासके शुक्लपक्षमें, चैत्रके सितपक्षजात गर्भ आश्विनके कृष्णपक्षमें और कृष्णपक्षजात गर्भ कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षमें प्रसूत होता है अर्थात् उसी समय वृष्टि होती है।

पूर्वसे उठा हुआ मेघ पश्चिम दिशामें जाता और पश्चिमसे उठा हुआ मेघ पूर्व दिशामें जाता है। उत्तर और दक्षिण वायुका भी इसी प्रकार विपर्य्यय होता है। ईशाण कोण और पूर्वकी वायुसे आकाश साफ, आनन्दकर और मृदु मृदु वृष्टि होती है। चन्द्र और सूर्य स्निग्ध और बहुल शुक्लमण्डलोंसे परिव्याप्त होते हैं। मार्गशीर्षमें अति शीत और पौषमें अत्यन्त हिमपात होनेसे गर्भकी पुष्टि नहीं होती। फाल्गुनमें यदि हवा तेज और रूखी बहती हो, मेघ सञ्चय स्निग्ध, परिवेष असम्पूर्ण, सूर्य अग्निकी तरह पिङ्गल और ताम्रवर्ण हो, तो मेघका गर्भ शुभ समझना चाहिये। चैत्रमें गर्भ यदि पवन, मेघ, वृष्टि और परिवेषयुक्त हो, तो शुभ जानना चाहिये। वैशाखमासमें यदि मेघ वायु, जल और शब्दित विद्युत्‌युक्त हो, तो गर्भ द्वारा शुभ होता है।

मुक्ता वा रौप्यसन्निभ या तमाल, नीलोत्पल और अञ्जनकी द्युतिविशिष्ट या जलचर प्राणियोंकी तरह आकारवाले मेघ बहुत वृष्टि करनेवाले होते हैं। फिर गर्भ सूर्यके तीव्रकिरणमें अतितापित और मन्दमारुत समन्वित होने पर मेघ मानो प्रसवकालमें अत्यन्त कुपित हो बहुत वृष्टि करते है।

अशनि, उल्का, पांशुपात, दिग्दाह, भूमिकम्प, गन्धर्व नगर, कीलक, केतु, ग्रहयुक, निर्घात, रुधिरादि वृष्टिविकृति, परिघ, इन्द्रधनु और राहुदर्शन—इन सब उत्पात

और अन्य विविध उत्पात द्वारा गर्भ नष्ट होता है।

ऋतुस्वभावजनित जिन सब समान सामान्य लक्षणों द्वारा जो गर्भ वृद्धिप्राप्त होता है, उसके विपरीत लक्षणों द्वारा उनका विपर्य्यय होता है। सब ऋतुओंमें पूर्व-भाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा और रोहिणी आदि नक्षत्रमें वर्द्धित गर्भ बहुत जल प्रदान करता है। शत-भिषा, अश्लेषा, आर्द्रा, स्वाति और मघा नक्षत्रका गर्भ शुभप्रद है। यह बहुत दिनों तक पोषण करता है और विविध उत्पातों द्वारा हत होने पर भी हनन करता है।

चन्द्र इन पांचों नक्षत्रोंके किसी एकमें जब अवस्थान करते हैं, तब मार्गशीर्षसे वैशाख तक ६ मासमें यथाक्रम ८, ६, १६, २४, २० और तीन दिन उपर्युपरि वर्षण करता है। क्रूर ग्रहयुक्त होनेसे गर्भ करका, अशनि और मत्स्यवृष्टि होती रहती है। चन्द्र या सूर्य शुभ ग्रह वीक्षित होने पर गर्भ बहु वृष्टिकर होता है। गर्भके समयमें अकारण जब बहुत वृष्टि होती है तब गर्भका अभाव होता है। द्रोणपरिमाणके अष्टांशसे अधिक वर्षण होने पर भी गर्भ नष्ट हो, तो प्रसवकालमें करका-मिश्र वृष्टि होती है।

जो गर्भ पांच प्रकारके निमित्तोंसे पुष्ट होता है, वही गर्भ शत योजन विस्तृत भूमिमें वर्षण करता है। इन पांच निमित्तमें यदि एक-एक निमित्तका अभाव हो, तो शत योजनमें आधा कम कर देता है। जैसे—चार निमित्तों-में ५० योजन, तीन निमित्तोंमें २५ योजन और दो निमित्तोंमें १२॥ योजन और एक निमित्तमें ६। योजन तक वर्षा करता है। पञ्चनिमित्तिक गर्भ १ द्रोण परिमित जल, पवन-निमित्तिक गर्भ ३ आढ़क और विद्युन्निमि त्तिक ६ आढ़क जल वर्षण करता है।

पवन, सलिल, विद्युत्, गर्जित और मेघरूप इन पांचों निमित्तोंका गर्भ बहुत जल बर्षाता है। यदि गर्भ-कालमें अतिवृष्टि हो, तो प्रसवकाल अतिक्रम कर जल कणा वर्षण करता है।

ज्येष्ठमासके शुक्ल पक्षके अष्टम्यादि चार दिन वायु द्वारा मेघका गर्भ स्थिर करना होता है। इन दिनों मृदु शुभ वायु या स्निग्ध मेघाच्छन्न आकाश हो तो शुभ है। इन चार दिनोंमें यदि स्वाति आदि चार नक्षत्र हों, तो श्रावण आदि मासोंमें उत्तम वृष्टि होगी।

ज्येष्ठी पूर्णिमा पार कर जाने पर यदि पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्रोंमें वृष्टि हो, तो उसके द्वारा शुभाशुभ निरूपण करना आवश्यक है। एक हाथ परिमित परिधि-विस्तृत कुण्डधारण कर जलका परिमाण निर्देश करना होता है। उक्त पात्रका परिमाण १ आढ़क है। जिससे पृथ्वी मुदिता या तृणाग्रमें बिन्दु पड़, उसी वृष्टि द्वारा जलका प्रथम परिमाण निरूपण करना होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि जितना देखा जाता है, उतनी दूर अतिवृष्टि और कुछ लोग उक्त लक्षणसे दश योजन मण्डलमें अतिवृष्टि होना कहते हैं। किन्तु गर्ग, वशिष्ठ और पराशरके मतसे एक मेघ १२ योजनसे अधिक दूर वृष्टि नहीं कर सकता। जिन सब नक्षत्रोंमें बहुत वृष्टि होती है, प्रायः उन्हीं सब नक्षत्रोंमें ही वृष्टि होती है। किन्तु यदि पूर्वाषाढ़ासे मूला तक सब नक्षत्रोंमें वृष्टि न हो, तो सब नक्षत्रोंमें अनावृष्टि ही होती है। यदि निरुपद्रव चन्द्र पूर्वाषाढ़ा, मृगशिरा, हस्ता, चित्रा, रेवती और धनिष्ठामें हो तो १६ द्रोण परिमाण वृष्टि होती है। शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वातिमें ४ द्रोण, कृत्तिका आदिमें १० द्रोण, फल्गुनीमें २५ द्रोण, पुनर्वसु, विशाखा, और उत्तराषाढ़ामें २० द्रोण, अश्लेषा नक्षत्रमें १३ द्रोण, उत्तरभाद्रपद, उत्तर फल्गुनी और रोहिणीमें २५ द्रोण, पूर्वभाद्रपद, पुष्या और अश्विनी नक्षत्रमें १२ द्रोण और आर्द्रा नक्षत्रमें १८ द्रोण परिमाण वृष्टि होती है। सब नक्षत्र यदि सूर्य, शनि या केतु द्वारा पीड़ित और मङ्गल द्वारा त्रिविध अद्भुत द्वारा आहत हो, तो वृष्टि नहीं होती। किन्तु शुभयुक्त और निरुपद्रव होने पर पूर्वोक्त फल होता है।

सद्योवृष्टि लक्षण—जिस समय वृष्टिविषयक प्रश्न किया जाये, उस समय यदि चन्द्र सलिलालय (अर्थात् जल-आनयनकारी) राशिको अर्थात् कर्कट, कुम्भ, मीन, कन्या और मकरकी अर्द्धार्द्ध राशिका आश्रय कर यदि लग्नगत या शुक्लपक्षमें केन्द्र और शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो शीघ्र ही बहुत वृष्टि होगी। पापग्रह द्वारा दृष्ट होने पर अल्प वृष्टि होती है। शुक्र भी चन्द्रकी तरह जो

फल देनेवाला है। यदि प्रश्नके समय प्रश्नकर्त्ता आर्द्र द्रव्य या जल या जलवत् कोई वस्तु स्पर्श करे अथवा जलके निकट या जल सम्बन्धीय किसी काममें लगा हो और पूछनेके समय जल या जलवाचक शब्द श्रुत हो तो समझना चाहिये, कि शीघ्र ही जल होगा।

वर्षाकालमें जिस दिन सूर्य दीप्ति द्वारा दूषितसन्तापक, द्रवीभूत कनक सदृश या वैदूर्यकी तरह स्निग्ध कान्ति विशिष्ट हों, उस दिन वृष्टि होगी। विरस जल, गोनेत्र सदृश गगन, विमल दिक्, लवण, जलकी तरह विकृति, काकाण्डसदृश वर्णविशिष्ट मेघोदर, निश्चल पवन, मछलियोंका जल्द-जल्द कूदना और मण्डुकों (मेढ़कों)की बारंबार ध्वान आदि लक्षण शीघ्र वृष्टिकारक हैं। इन लक्षणोंको देखनेसे समझना चाहिये, कि शीघ्र ही वृष्टि होगी। बिल्लीके नख द्वारा मिट्टी कोड़ने, लोहारके मलोद्भवमें कच्चे मांसकी तरह गन्ध निकलने और राहमें लड़कोंके पुल बनानेकी क्रीड़ा देखनेसे शीघ्र ही वृष्टि होती है ऐसा जानना चाहिये।

पहाड़ यदि अञ्जनपुञ्जसदृश या बाष्पनिरुद्ध कन्दर और चन्द्रके परिवेष मूर्गेकी आंखकी तरह हो, तो शीघ्र ही वृष्टि होगी। उपघातके सिवा चींटियोंके अण्डे, सर्पोंका स्त्रीप्रसंग, भुजङ्गोंका वृक्ष पर चढ़ना और गौओंका कूदना शीघ्र वृष्टिकारक है। यदि कृकलास वृक्षकी चोटी पर उठ कर गगनकी ओर देखें और गौयें ऊद्ध्वं-नेत्रसे सूर्य देखें, तो शीघ्र ही वृष्टि होती है। यदि पशु घरसे बाहर निकलनेकी इच्छा न करे तथा कान और खुर कंपाते हों और कुत्ते भी इन पशुओंकी तरह कार्य करें, तो शीघ्र ही वृष्टि होगी, समझना चाहिये।

जब गृहपटलमें कुत्ते अवस्थान करें, या ऊपरको मुख करें और जब दिनको ईशाणकोनमें तड़ित् उत्पन्न हो, तो अतिवृष्टि होती है। जब चन्द्र शुक या कपोतलोचन सदृश और मधुसन्निभ हो और जब आकाशमें प्रतिचन्द्र विराजित हों, तब आकाशसे शीघ्र ही वारिपात होता है। रातको जब विद्युत्का शब्द हो और दिनमें रुधिरसदृश या दण्डवत् विद्युत् हो और पवन पहले शीतल हो जाय तो उसी समय वृष्टि होती है। लताओंके पत्तोंका मुख यदि गगनतलकी ओर हो, विहङ्गम यदि जलमें स्नान करे, सरीसृप तृणके अग्र भागमें विचरण करे, तो शीघ्र वृष्टि होती है। जब ग्रामके मेघ मयूर, शुक, नीलकण्ठ या गौरैया पक्षीको तरह वर्णके हों अथवा जवाकुसुम और पद्मकी द्युतिको हरण करनेवाले हों, तो शीघ्र वृष्टि होती है।

यदि सूर्यके उदय या अस्तकालमें इन्द्रधनु, परिघ, प्रतिसूर्य, दण्डाकृति इन्द्रधनु या विद्युत्का परिवेष प्रकाशित हो, तो शीघ्र वृष्टि होगी। सूर्यके उदयास्तके समय यदि गगन तित्तिरके पांखका रङ्ग धारण करे और पक्षी आनन्दित हो कलरव करें, तो दिनरात प्रचुर वृष्टि होती है।

वर्षाकालमें चन्द्र यदि शुभ ग्रहदृष्ट शुक्रसे सप्तम राशिगत या शनिसे नवम, पञ्चम, या सप्तम राशिगत हो, तो वृष्टि होती है। ग्रहोंके उदयास्त समयमें मण्डलके संक्रमण और समागम होने पर तथा दो पक्षमें अयनान्तमें और सूर्य आर्द्रानक्षत्र गत होने पर नियमके अनुसार प्रायः वृष्टि होती है। जब सूर्यावलम्बी ग्रह सूर्यके पूर्व और पश्चिममें हों, तब प्रभूत वृष्टि होती है। इसके सिवा स्वातियोग, रोहिणी योग, आदि योगोंमें भी अति वृष्टि होती है। (वृहत्स० २१-२५ अ०)

वृष्टिजलके गुण आदि विषयोंमें वैद्यकमें यह लिखा है, कि जल दो तरहका है—*आन्तरीक्ष जल और भौम जल*। इनमें जो आन्तरीक्ष जल है, वह चार प्रकारका है। यथा—धाराभव, करकाजात, तौषार और हैम। वृष्टिका जो जल धारावाही रूपसे स्फीत वस्त्र पर या सुधौत प्रस्तर या भूमि पर पतित होता है, सुवर्ण, रौप्य, ताम्र, स्फटिक, कांच या मट्टीके वर्त्तनमें रखनेसे उसको धाराभव जल कहते हैं। यह जल त्रिदोषनाशक है, फिर लघु, सौम्य, रसायन, बलकारक, तृप्तिकर, आह्लादजनक, प्राणधारक, पाचक, बुद्धिजनक और मूर्च्छा, तन्द्रा, श्रान्ति, क्लान्ति और पिपासानाशक भी है। वर्षाकालमें यह जल विशेष उपकारक है।

वृष्टिका धाराजात जल फिर दो तरहका है, गाङ्गेय और सामुद्र। मेघाभ्यन्तरस्थ दिग्गज आकाशगङ्गासम्बन्धीय जल ग्रहणपूर्वक वर्षण करते हैं। इससे इसका नाम गङ्गाजल है। मेघ प्रायः आश्विन मासमें

ही यह जल वर्षण किया करते हैं। यह जल सब प्रकारके हितजनक है। सुवर्ण, रौप्य या मृत्पात्रमें स्थापित अन्नके ऊपर वृष्टिका जल पतित होने पर यदि यह अन्न क्लिन्न या विवर्ण न हो, तो उसको ही गङ्गाजल कहना चाहिये। उक्त जल समस्त दोषनाशक है। इसके विपरीत लक्षण दिखाई देने पर समझना होगा, कि वह समुद्रका जल है। यह जल क्षारयुक्त, लवणरस, शुक्र नाशक, नेत्रहानिकारक, बलापहारक, आमगन्धि, दोष प्रदायक और तीक्ष्ण है। यह सब कामोंके लिये अहित-जनक है। यह समुद्रजल-आश्विन मासमें गाङ्गे जलके समान गुणकारी हो जाता है। अगस्त्य नक्षत्रके उदय होने पर जो वृष्टिका जल पतित होता है, वह सभी निर्मल, निर्विष, मधुररस, शुक्रजनक और दोषप्रदायक नहीं।

दूसरे ग्रन्थमें लिखा है, कि गगनविहारी नागोंके फुत्कारके लिये सविष वायुसंस्पृष्ट हो पतित होने पर आश्विनमासके जलको छोड़ अन्य वर्षा ऋतुका वृष्टिजल विपाक्त होता है।

मेघ अकालमें जो जल वर्षाते हैं वह समस्त देह-धारियोंके लिये त्रिदोषप्रकोपक कहलाते हैं। अकाल शब्दसे पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र ये चार मास समझना होगा। इन चार मासोंका वृष्टिजल त्रिदोषप्रकोपक है। ओलो या शिलाका जल जो दिव्यवायु और तेजःसंयोगसे संहत हो आकाशसे शिलाके आकारमें नीचे गिरता है उसको शिलाजल या बनौरीका जल कहते हैं। यह जल अमृत तुल्य गुणकारक, रुक्ष, अपिच्छिल, गुरु, स्थिर-गुणयुक्त, अतिशय शीतल, कठिन, पित्तनाशक, और कफ तथा वायुवर्द्धक है।

नदीसे समुद्र तक सब जलाशयोंके अन्तर्वर्त्ती तेज-संयोगमें धूमके अवयव सदृश या वाष्पाकारमें उठता और नीचे जल रूपमें पतित होता है, उसको तुषारजल कहते है। यह जल प्राणियोंके लिये अहितकर है। किन्तु वृक्षोंके लिये विशेष हितकारी है। यह शीतल, रुक्ष, वायुवर्द्धक, पित्तनाशक, कफ, ऊरुस्तम्भ, कण्ठरोग, मन्दाग्नि, मेद और गलगण्डादि रोगनाशक है।

हिमालयके शृङ्ग आदि हिमाच्छन्न प्रदेशोंसे द्रव हो कर जो जल पतित होता है, उसको हैमजल कहते हैं। यह जल शीतल, पित्तनाशक, गुरु और वायु-वर्द्धक है। वृष्टिके इन चार तरहके जल उक्त गुणविशिष्ट होते हैं।

पाश्चात्यमत।

पाश्चात्य मतसे पार्थिव जलराशि सूर्यालोकसे उत्तप्त हो कर वाष्पमें परिणत होता है। भूवायुमें प्रतिदिन ही यह जलीय वाष्प मिश्रित होता रहता है। स्थलभाग और समुद्रसे अनवरत ही इस तरहका वाष्प उठता है। वाष्पो-त्पादन प्रभृतिकी एक नित्य क्रिया है। हम जहां जलका लेशमात्र अनुभव नहीं कर सकते, सूक्ष्मक्रियामयी अघटन घटन-पटीयसी प्रकृति देवी वैसे स्थलसे भी वाष्पोत्पादन पूर्वक भूवायुसे विमिश्रित कर रखती है। मैदान, रास्ता, बाजार, अरण्य, कानन, मरुभूमि, कूप, नद नदी, समुद्र, सब स्थानोंसे ही वाष्प निकलता है। वर्त्तमान पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका कहना है कि वाष्प कभी दृश्यभाव या अदृश्य भावसे वायुराशिका आश्रय ले कर शून्य देशमें विचरण करता है। ओस, कुहासा, तुषार, मेघ और वृष्टि इसी वाष्पोद्गम घटनाकी परिणति हैं। ऊर्द्ध्व आकाशमें यह वाष्पराशि मेघाकारमें परिणत हो जाती है। आकाशके निम्न प्रदेशमें सञ्चित जलीय वाष्पसमूह कुज्झटिका नामसे पुकारा जाता है। मेघसे भूपृष्ठ पर जो जलधारा पतित होती है, उसका नाम वृष्टि है। भारतीय आर्य-ऋषियोंने भी सहस्राधिक वर्ष पूर्व इस तरह वृष्टिकी उत्पत्तिकी घोषणा की है—

विज्ञानकी उन्नतिके साथ मेघसे जलधारा गिरनेके कारणोंके सम्बन्धमें भी बहुतेरी गवेषणायें चल रही हैं। आणविक जड़विज्ञानमें (Molecular physics) और सूक्ष्म वायवीय विज्ञानशास्त्रमें (Dynamic meteo-rology) मेघ वृष्टिके सम्बन्धमें अधुना इन सब विषयों-की वैज्ञानिक आलोचना चल रही है।

मेघसे वृष्टिविन्दुओंके गठन तथा वृष्टिधारा पतन-के सम्बन्धमें पाश्चात्य विज्ञान बहुत दिनोंसे कई तथ्योंका अनुसन्धान कर रहा है। सूक्ष्म वाष्पाणु वशीभूत हो कर वृष्टिविन्दुका आकार धारण करता है। वाष्प क्यों घनी-

भूत होती है इसके सम्बन्धमें भी बहुतेरे सिद्धान्त दिखाई देते हैं। जैसे—

(१) मेघसे तापराशि विकीर्ण हो जाने पर शीतल हो जाती है। यह शीतलता ही घनकी कारण है।

(२) वायु द्वारा मेघाकार वाष्पराशि विभिन्न शीतातप प्रदेशमें परिचालित होती है और भिन्न भिन्न प्रदेशकी वाष्प राशिके साथ मिश्रित हो जाती है। इसके फलसे भी घनत्व साधित होता है।

(३) उष्ण देशके वाष्प स्वभावतः ही ऊपरकी ओर या शीतप्रदेशमें परिचालित होता है। ऊपर शीतल वायुके स्पर्शसे वाष्पराशि घनीभूत हो कर वृष्टिवुन्दके रूपमें परिणत होती है।

(४) भूवायुके अधिक दवावसे भी वाष्प घनीभूत हो जाता है।

(५) वाष्पराशिके सङ्ख्याधिक्य अथवा पर्वतादि द्वारा इनकी गतिके रोकनेमें भी ये सत्वर घनीभूत हो जाते हैं।

कई वर्ष पहले ये सब सिद्धान्त प्रचलित थे, किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक इससे और भी आगे बढ़ गये हैं। वाष्पराशिमें जब तक ताप वर्त्तमान रहता है, तव तक अणु आयतनमें छोटे और लघु होते हैं। इस अवस्थामें ये गगनपथमें स्वच्छन्दभावसे विचरण कर सकते हैं। किन्तु शैत्यसंस्पर्शादि या जब इनका क्षुद्रत्व दूर होता है, अथवा ये घनीभूत हो कर परस्पर मिल कर वृहदाकार धारण करते हैं, तब भूवायु इनको अपने दवावमें रख नहीं सकती। ये माध्याकर्षणसे आकृष्ट हो भूपृष्ठ पर पतित होते हैं। वृष्टिविन्दु गठन और वृष्टिपातके सम्बन्धमें आधुनिक विज्ञानमें अभी भी कोई निश्चयात्मक सिद्धान्त स्थिर नहीं हुआ है। इस समय इसके सम्बन्धमें जो कई सिद्धान्त प्रचलित हैं, नीचे उनके सार मर्म प्रकाशित किये जाते हैं।

(क) सूक्ष्म सूक्ष्म वाष्पकणा वायुराशिमें प्रवाहित होते रहते हैं। वायु द्वारा ये आकाशपथमें परिचालित होते रहते हैं और ये आपसमें मिल जाते हैं। यहाँ वायुका वेग ही विच्छिन्न वाष्पाणुसमूहके मिल जानेका कारण है। इस तरह सम्मिलित हो कर वाष्पविन्दुका आयतन बड़ा हो जाता है। इस अवस्थामें ये आकाशकी वायुराशिमें घूमनेमें असमर्थ हो जाते हैं और ये भारी वृष्टिविन्दु नीचेकी ओर पतित होते हैं। अधःपतित होनेके समय इनकी प्रवल गतिमें निम्नस्थ वाष्पविन्दु भी इनके साथ मिल जाते हैं। इससे ये आकारमें और बड़े हो जाते हैं। इस तरह ये बड़े बड़े वृष्टिके वुन्दोंमें परिणत हो पृथ्वी पर गिरते हैं।

(ख) विकिरणवशतः ही हो या दूसरी वाष्पकणाओंके साथ मिल जानेके कारण हो—मेघके उपरांशकी वाष्पकणा निम्नभागकी वाष्पकणाओंकी अपेक्षा बहुत जल्द शीतल हो जाती है। छाया या रात्रिकालकी ऐसी शीतलतासाधनी प्रक्रियाकी प्रधानतम हेतु है। शीतल वाष्पकणा संस्पृष्ट भूवायु-स्तर भी शीतल होता है। इसी शैत्यके फलसे वाष्पकणाओंकी अन्तर्भूत वायु अपसृत हो जाती है। ये आपसमें मिल कर वृष्टिविन्दुमें परिणत होते हैं। इसी तरह बड़े बड़े वृष्टिविन्दु गठित होते रहते हैं।

(ग) वृष्टिविन्दुगठनमें तड़ितका भी यथेष्ट प्रभाव है। तड़ित्शक्तिके स्पर्शका प्रभाव दो तरहका होता है। एक तरहके प्रभावका नाम 'पोजिटिव' (Positive) और दूसरी तरहके प्रभावका नाम 'निगेटिव' (Negative) है। मेघका एक स्तर वाष्प पोजिटिव भावसे तड़ितस्पृष्ट होता है। और दूसरा एक स्तर वाष्प निगेटिव भावसे। इससे दोनों स्तरोंमें एक प्रबल तड़िताकर्षण संघटित होता है। इस आकर्षणके फलसे वाष्पविन्दु परस्पर सम्मिलित हो कर वृहदाकार धारण करते हैं।

(घ) नाना कारणोंसे वायुराशिमें तरङ्ग उठ सकती है। वज्रध्वनि निमित्त शब्दतरङ्गसे वायुराशि आन्दोलित होती है, तोपोंकी ध्वनिसे भी वायुराशिमें भीषण तरङ्ग आदि उठ सकते है। इन्हीं सब कारणोंसे वायुराशिस्थित जलीय वाष्प आन्दोलित हो कर आपसमें मिल जाते हैं। इस तरह परस्पर मिल कर क्षुद्र क्षुद्र वाष्प विन्दु वृहदाकार धारण कर वृष्टिविन्दुमें परिणत होते हैं।

(ङ) कुज्झटिका या मेघकी अन्तर्निहित वाष्पराशि साधारणतः ही साधारण वाष्पकी अपेक्षा अधिकतर

गुरु होता है। ये कणा ऊपरमें उठ कर अधिक शीतल होती हैं। इस अवस्थामें ये अपने अपने आणविक पार्थक्यके संरक्षणप्रयास (Moleculor strain) स्थिर नहीं रख सकते। अतएव ये अपने गुरुत्वसे दूसरी देहमें ढल जाते हैं ; लघुवाष्पकणा इनका गुरुवेग-धारण न कर सकनेसे उनकी देहमें ही आत्मविसर्जन करती है। सुतरां मेघकणा और साधारण वाष्पकणा मिल कर शीघ्र ही वृष्टिविन्दुमें परिणत होती है। मिश्रण-प्रक्रियाकी अधिकतासे (Super saturation) इसी तरह वृष्टिविन्दु वनते हैं।

(च) वृष्टिविन्दुके उत्पादनके सम्बन्धमें केम्ब्रिजके प्रोफेसर मिष्टर सी० टी० आर० विलसनने बहुत गवेषणा की है। इनका कहना है, कि वायुराशिमें बहुत सूक्ष्म धूलिकणा वर्त्तमान रहती है। वायुके शीतल होने पर इस धूलिकणा पर सूक्ष्मतम जलीयवाष्पकणा घनीभूत और सञ्चित होती है। भूवायुमें धूलिकणा विमिश्रित न रहने पर जलीय सूक्ष्म वाष्पकणा सहसा घनीभूत नहीं हो सकती। किंतु अधिकतर स्थानव्यापी वायुराशि यदि अधिकतर शीतल हो, तो ऐसी अवस्थामें वायवीय वाष्पका घनीभूत होना असम्भव हो जाता है। धूलि-समन्वित वायुराशि धूलिकी अपेक्षा डेढ़ गुणा अधिक विस्तृत न होनेसे निर्मल वायुमें वाष्प घनीभूत नहीं हो सकता। मिष्टर विलसनने परीक्षा कर देखा है, कि जिस नलिकाके भीतर वायुकी इस अवस्थाकी परीक्षा की जाती है उसी नलिकामें रणजेन-आलोकप्रवेश, युरे-नियम विकिरणी प्रक्रियासाधन अथवा सूर्यालोक प्रवे-शन द्वारा वायुराशिको जलीय वाष्पमें घनीभूत बनानेके लिये उपयुक्त बनाया जा सकता है।

विलसनने इसके सम्बन्धमें और भी बहुत सूक्ष्म-परीक्षा की है। अन्तमें उन्होंने सिद्धान्त किया है, कि वायुराशिमें अवस्थित धूलिकणा निगेटिव भावसे ताड़ित शक्तिविशिष्ट होनेसे इन जलीय वाष्पको घनीभूत करनेका प्रकृष्ट बीजीभूत हेतु (Muclei) होता है। पजिटिव भावसे तड़ितविशिष्ट धूलिकणाको इस सम्बन्धमें ऐसी शक्ति परिलक्षित नहीं होती। उनका और भी कहना है, कि यह मृन्मय धरणीमण्डल निगेटिव तड़ित्‌की क्रोड़ाभूमि है। वृष्टिविन्दु आकाशके निगेटिव तड़ित्‌को (Positive Electricity) ले कर ही धरोधाम पर अवतीर्ण होता है।

वृष्टिपातका स्थाननिर्णय।

जिस स्थानसे जिस परिमाणमें वाष्प उपस्थित होता है, उस स्थानमें उतनी ही वृष्टि होती है। ग्रीष्म-मण्डलमें जैसी वृष्टि होती है, सममण्डलमें वैसी वृष्टि नहीं होती। फिर सममण्डलकी अपेक्षा शीतमण्डलमें वृष्टिका परिमाण बहुत कम है। वृष्टितत्त्वविदोंने गणनासे स्थिर किया है, कि ग्रीष्ममण्डलमें कुल प्रति-वर्ष ८० बुरुल गभीर जल वाष्पमें परिणत होता है, और इस प्रदेशमें वृष्टि प्रति वर्ष कुल १००।११० बुरुल होती है। किन्तु उत्तर सममण्डलमें ३० बुरुलसे अधिक वाष्प नहीं उठ सकता। सुतरां यहां वृष्टिका परिमाण ३५ बुरुलसे अधिक नहीं। सिवा इसके ग्रीष्ममण्डलमें वृष्टिका जैसा समय निर्दिष्ट है, वैसा और कहीं दिखाई नहीं देता। समुद्रमें वाणिज्यवायु नियमित रूपसे प्रवाहित होती है, अतएव समुद्रमें बहुत कम ही वृष्टि होती है। सममण्डलमें समय समय पर जैसी वृष्टि हुआ करती है, वैसे तूफान भी आया करता है। ग्रीष्म-मण्डलमें ग्रीष्मवर्षादि ऋतुओंका नियमपूर्वक आविर्भाव तथा तिरोभाव दिखाई देता है। दृष्टान्तस्थलमें दक्षिण अमेरिकाका नाम उल्लेख किया जा सकता है। यहां शीतकालमें आकाशमण्डल साफ रहता है, वसन्तकाल-में भूवायु आर्द्र होती है। मार्च मासके प्रारम्भसे आंधी बहने लगती है। अफ्रिका आदि विषुव रेखाके निकट-वर्त्ती स्थानोंमें अप्रेल महीनेसे वर्षाकालका आरम्भ होता है। इसके उत्तरांशमें जूनसे अक्टोबर तक वर्षाका प्रभाव सम्यक् रूपसे दिखाई देता है। भारतवर्षमें वायुकी गतिके साथ वृष्टिपातका सम्बन्ध बहुत घनिष्ट है।

हिमालयके ढालुए स्थानोंमें तथा उपत्यकाओंमें अधिक वृष्टि होती है, किन्तु अधित्यकामें वैसी वृष्टि नहीं होती। इरान भी इसका दृष्टान्तस्थल है। इरान देशमें प्रायः ही मेघ दिखाई नहीं देते। फिर भी उसके निकटके माजें-न्द्रम प्रदेशमें प्रचुर परिमाणसे वृष्टि होती है। समुद्रतटों पर वाष्प अधिक परिमाणसे उत्थित होता है और वृष्टि

भी अधिक परिमाणसे होती है। सुवृहत् भूखण्डके मध्य-भागमें अधिक वाष्पोत्पत्तिकी सम्भावना नहीं; ऐसे स्थलोंमें वृष्टि भी अधिक नहीं होती। सममण्डलमें भूमिके पश्चिम पार्श्वमें और ग्रीष्ममण्डलमें भूमिके पूर्वपार्श्वमें अधिक वृष्टि होती है। वायुको गतिके भेदसे ही वृष्टिका ऐसा परिमाणभेद हुआ करता है।

किसी किसी स्थानमें वारह महीने ही कुछ न कुछ वृष्टि हुआ करती है। कहीं तो वर्ष भरमें न हो २ या ३ मास खूब जोरोंकी वृष्टि होती है। कहीं शीतकालमें, कहीं ग्रीष्मकालमें, कहीं हेमन्तमें, कहीं वर्षा कालमें वृष्टिपात होता है। ग्रीष्ममण्डलमें निरक्षवृत्तके उत्तर उत्तरायण समयमें और उसके दक्षिण दक्षिणायन समयमें वृष्टि होती है। फलतः पृथ्वीके स्थान स्थानमें जिस नियमसे वृष्टि होती है वह देख कर वर्षाकालकी एक ऋतुमें गणना की नहीं जाती। ऋतु विभागमें शीत और ग्रीष्म ही प्रधान विभाग है और यह विभाग अति सुस्पष्ट है। स्पेन, पुर्त्तगाल और इटली प्रभृति देशोंके दक्षिण भागमें तथा सिसिलो और मेसिना द्वीपमें अमेरिकाके उत्तरी भागमें समग्र यूनानमें और एशिया भूभागके उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें भयानक शीतके समय भी प्रवल वृष्टिपात होता है। फिर अल्पस पर्वतके उत्तर-भागस्थ जर्मनी देशमें, फ्रान्सके पूर्व भागमें, नेदरलैण्ड प्रदेश, स्वीजरलैण्ड देशके उत्तरी भाग, डेनमार्क और ओराल पर्वतके पूर्व साइवेरिया देश तकके स्थानोंमें ग्रीष्म कालमें वृष्टि होती है। इन सव स्थानोंमें शीतके मौसममें कुछ भी वृष्टि नहीं होती। युरोपखण्डके पश्चिम पार्श्वस्थ देशोंमें और वृटिशद्वीपपुञ्ज प्रभृति स्थानोंमें वर्षाकालमें वृष्टि होती है। अफ्रिकाके दक्षिण भागमें और अष्ट्रे लिया द्वीपमें वर्षा और शीतकाल वृष्टिका समय है।

ग्रीष्ममण्डलमें दो मास जिस परिमाणसे वृष्टि होती है, शीतमण्डलमें दो वर्षमें भी वैसी वृष्टि नहीं होती। जुटलैण्डके निकट सिटका द्वोपमें सारे वर्षमें ४० दिन ही आकाशमण्डल परिष्कृत देखा जाता है। यहां नित्य वृष्टि होती है। किन्तु इससे क्या होता है, कलकत्तेमें एक वर्षमें जितनी वृष्टि होती है सिटका द्वीपकी वृष्टिका परिमाण इसका एकचतुर्थांश भी नहीं। जगत्‌में वृष्टिपातका प्रधानतम स्थान चेरापुञ्जी है। चेरापुञ्जीमें जितनी वृष्टि होती है इतनी अधिक वृष्टि और कहीं नहीं होती। चेरापुञ्जीमें प्रायः तीन मासमें २५०से ५५० वुरुल परिमित वृष्टि होती है। फिर भी समूचे वर्षमें नौ महीनेसे अधिक समय तक चेरापुञ्जीका आकाश निर्मल और सुनील सौन्दर्यकी लीलास्थली है।

सेण्टपिटर्सवर्ग (पेट्रोग्राड)में प्रतिसप्ताह ही कुछ न कुछ वृष्टि होती है। यहां वर्षमें ६ माससे अधिक समय वृष्टि होती है। किन्तु वृष्टिका परिमाण १७ वुरुलमात्र है वृष्टितत्त्वविदोंने इसी तरह वृष्टिका स्थान निर्देश किया है। उनके मतसे कोई प्रदेश "शीतवृष्टिमण्डल" कोई प्रदेश "ग्रीष्मवृष्टिमण्डल" कोई स्थान "प्रावृट् वृष्टिमण्डल" कोई स्थान "सामयिक वृष्टिमण्डल" और कोई स्थान "चिरवृष्टिमण्डल" कहा जाता है।

भारतवर्षमें मौसमी वायु (Monsoon)का प्रभाव अत्यधिक है। इसीलिये भारतवर्षमें अयनभेदसे वृष्टिका तारतम्य नहीं होता। मौसमके अनुसार ही वृष्टि हुआ करती है। अग्निकोणके मौसममें मलवारके तट पर, ईशाणकोणके मौसममें चोरमण्डलतटमें वर्षाका प्रादुर्भाव होता है। घाटपर्वतकी वाधासे समुद्रकी वाष्पपूर्ण वायु दक्षिण देशमें सर्वत्र प्रवाहित नहीं होती। इसीलिये भिन्न भिन्न ऋतुओंमें इन सव स्थानोंमें वर्षा उपस्थित होती है। नीचे कई स्थानोंके वार्षिक वृष्टि-परिमाणकी एक फिहरिस्त दी जाती है।

स्थानका नाम	वुरुल।
चेरापुञ्जी	५००
अराकान	१५०
दार्जिलिङ्ग	१२५
वम्बई	८०
मन्द्राज	४८
काशी	४३
मथुरा	२७
कलकत्ता	६५
दिल्ली	२३
सानगुइमारनही	२८०

सेण्टमोमिन्दोद्वीप	१२०
मेपेडाद्वीप	११२
रोम	३६
लिवरपुल	३४
लण्डन	२३
पेरिस	२१
सेण्टपिटर्सवर्ग	१७
आपसाला	१६

फिर निर्वर्ष प्रदेशमें कभी वृष्टि होती ही नहीं। तिब्बत देशकी अधित्यका, पारसका मध्य भाग, मङ्गोलिया, गोबिमरुभूमि, अरबदेशके उत्तर और मध्यभाग मिस्रदेश, सहारा मरुभूमि आदि स्थान "निर्वर्ष देश" कहे जाते हैं। इन सब देशोंमें वृष्टि नहीं होती। और तो क्या यहांके आकाशमण्डलमें मेघ भी दिखाई नहीं देते। यहांके किसी किसी स्थानमें २०।३० वर्षमें एक बार थोड़ी वृष्टि, कहीं वर्षमें दो एक बार थोड़ी वृष्टि होती है। फिर कोई स्थान तो ऐसे हैं, कि युग पर युग बीत जाता है, किन्तु वहां वृष्टि नहीं होती। अनन्तयुगव्यापिनी तृष्णाकुला वसुन्धरा कभी भी एक विन्दु जल नहीं पाती। फिर किसी स्थानमें वृष्टि नहीं होने पर भी नदनदियोंके प्रवाहसे वसुमतीका तृष्णार्त्त प्राण शीतल होता है। मिस्रदेशमें वृष्टि होती नहीं, किन्तु नील नदकी बाढ़से उसके निकटके प्रदेश जल सिक्त होनेसे खेत शस्यशाली होते हैं।

उत्तर अमेरिकाके मेक्सिकोकी अधित्यका, गोयाटीमाला, और कालीफोर्नियामें वृष्टि नहीं होती। फिर दक्षिणी अमेरिकाके पश्चिम भागमें वृष्टिका अत्यन्त अभाव है। इस देशमें दैवात् कभी मेघगर्जन या वृष्टि हो, तो शताधिक वर्ष तक वह घटना विशेष स्मरणीय घटनामें परिगणित होती है। लाइमा प्रदेशमें १६५२ ई०को १३वीं जुलाईके प्रातःकाल आठ बजे, इसके बाद सन् १७२० ई०में, इसके बाद सन् १७४७ ई०में, इसके बाद १८०३ ई०की १९वीं एप्रिलको मेघगर्जन हुआ था। इस अञ्चलमें मेघगर्जन एक अद्भुत स्मरणीय घटना होनेसे ऐतिहासिक इसे विशेषरूपसे लिख रखते हैं। पेरुदेशवासी जीवनमें कभी कभी चपला की चमक देख लेते हैं, किन्तु मेघगर्जन किसको कहते हैं, उसे वे जानते ही नहीं। सैकड़ों वर्षमें भी यहां दो एक बार वृष्टि होती है, या नहीं इसमें सन्देह है। देश और कालभेदसे वृष्टिपातका ऐसा प्रचुर तारतम्य उपस्थित होता है। पूर्वोद्धृत उदाहरणोंसे प्रमाणित होता है, कि—

१। वायु और शैत्योष्णताके साथ वृष्टिपातका सम्बन्ध है।

२। अयन और ऋतुभेदसे देशविशेषमें वृष्टिका तारतम्य होता है।

३। पर्वत और अरण्य आदि द्वारा वृष्टिपातका न्यूनाधिक्य होता है।

कृत्रिमतासे वृष्टि-उत्पादन—हमारे देशमें वृष्टिके लिये याग यज्ञकी व्यवस्था है। ऋग्वेदमें इन्द्रही वृष्टिके देवता कहे गये हैं। वृष्टिपातके लिये तथा अधिक वृष्टिपातको रोकनेके लिये इंद्रकी उपासना की जाती है। यह काम बहुत प्राचीन कालसे होता चला आया है। वृत्रासुर वृष्टिको रोकता था, इसीलिये इंद्रका उसके साथ युद्ध हुआ। ऋग्वेदमें इन सब विषयोंके बहुतेरे मंत्र दिखाई देते हैं। इस समय भारतके नाना स्थानोंमें निम्नजातीय एक श्रेणीके लोग देखे जाते हैं, जो मन्त्र प्रक्रिया द्वारा मेघ चलाते और वृष्टिपात करते हैं। यह व्यवसाय उनकी जीविका है। कहीं कहीं ये "शिरेल" कहे जाते हैं। खेतोंमें जो शिला वृष्टि होती है, उसके निवारण करनेमें ये दक्ष हैं इससे इनका नाम "शिरेल" हुआ है। इस देशके जनसाधारणमें ऐसा एक विश्वास है, कि मन्त्र द्वारा वर्षण संघटित और वृष्टि स्तम्भित की जा सकती है।

मानव-समाजके नित्यनैमित्तिक बहुत कार्योंके साथ वृष्टिका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। सुतरां इसके सम्बन्धमें मनुष्यके किसी तरह शक्ति सञ्चालनके उपाय मनुष्यके आयत्ताधीन होने पर मनुष्यको अनेक विषयमें सुविधा होती है। मानवसमाज इस सुविधाकी मोहिनी आशामें विमुग्ध हो इन सब कामोंमें विश्वासी होगा, इसमें विचित्रता ही क्या है? किन्तु इस समयके शिक्षित सम्प्रदाय मंत्रादिके साहाय्यसे वृष्टिपात या वृष्टिस्तम्भन पर विश्वास

करनेको राजी नहीं है। फिर भी, विज्ञानकी दुहाई दे कर इस सम्बन्धमें उनसे कोई बात कहने पर वे उसको वैज्ञानिक सोच सादरसे मान लेते हैं। किन्तु प्राकृतिक नियमके सम्बन्धमें जिनका विशिष्ट ज्ञान है, उनको इन सब बातों पर पद पदमें अविश्वास और सन्देह होता है। इटली, अष्ट्रिया और फ्रान्स देशमें हालमें एक श्रेणीके वैज्ञानिक मेघोंके साथ युद्ध कर वृष्टि उत्पादनका उपाय उद्भावन कर रहे हैं। ये मेघकी और तोपकी आवाज करनेका आदेश देते हैं। इस तरह इस श्रेणीके लोगोंने बहुत लोगोंके बहुत धन विनष्ट किये हैं। किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। घास, ताप, ताड़ित् भीषण निनादजनक प्रस्फोटन आदि विविध उपायों द्वारा वृष्टिपातकी चेष्टा की जा रही है। डिनामाइट अग्निसंयोगसे जला कर आकाशमार्गमें कृत्रिम मेघके उत्पादनकी चेष्टा हो रही है। किन्तु ये सब उपाय केवल वैज्ञानिक भित्तिपर प्रतिष्ठित नहीं हैं। फलतः आधुनिक विज्ञान तूफान वृष्टि और वज्रपातादि अनिष्ट निवारणके निमित्त अभी भी किसी प्रकारका उपाय उद्भावन कर न सके हैं।

वृष्टिका जल अति पवित्र है। इसमें उत्पादिका शक्ति भी यथेष्ट हैं। वृष्टिके जलसे हमारे खेत बहुत शस्यशाली हो उठते हैं, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। आधुनिक विज्ञान द्वारा इस वृष्टिके जलमें बहुतेरे गुण निर्द्धारित किये गये हैं। इसके पहले इस प्रबंधके आरम्भमें वृष्टिजलकी आयुर्वेदशास्त्रसम्मत जो गुणावली कही गई है, आधुनिक वैज्ञानिक परीक्षालब्ध गुणावली भी वैसी ही है।

२ ऊपरसे एक साथ बहुतसी चीजोंका गिराया जाना। जैसे—पुष्पवृष्टि।

वृष्टिका (सं० स्त्री०) शणपुष्पी, बनसनई।

वृष्टिकाम (सं० त्रि०) वृष्टिकामनाकारी। (तैत्तिरीयस० ६।५।६।५)

वृष्टिघ्न (सं० त्रि०) वृष्टिं हन्तीति हन् टक्। १ वृष्टिनाशक। स्त्रियां ङीप्, वृष्टिघ्नी। २ भृङ्गपर्णिका, छोटी इलायची, गुजराती इलायची।

वृष्टिजीवन (सं० त्रि०) वृष्टिः वृष्टिजलमेव जीवनं पालनो पायो यस्य। १ चातकपक्षी। इस पक्षीको केवल वृष्टिके जल पर ही जीवन निर्भर करना पड़ता है, क्योंकि नदी, तालाब आदि जलाशयोंसे ये पानी पीनेमें अक्षम हैं। २ देवमातृकदेश, जिस देशमें वृष्टिके जल पर ही कृषिकार्य्य अवलम्बित है।

वृष्टिद्यावन (सं० त्रि०) वृष्ट्यर्थं स्तुत, वृष्टिके लिये जिसकी स्तुति की जाये। (ऋक् ५।६८।५)

वृष्टिद्यु (सं० त्रि०) वृष्टिको लक्ष्य कर जिन्होंने द्युलोक अर्थात् अन्तरीक्षकी सृष्टि की है। (ऋक् ६।१०६।६)

वृष्टिभू (सं० पु०) मण्डूक, मेढक। वर्षाभू देखो।

वृष्टिमत् (सं० त्रि०) वृष्टियुक्त, वर्षणशील।

वृष्टिमानयन्त्र—वह यन्त्र, जिसके द्वारा यह जाना जाता है, कि कितनी वृष्टि हुई। इसको अंग्रेजीमें Pluviometer कहते हैं।

वृष्टिमारुत (सं० पु०) तूफान, वृष्टि।

वृष्टिवनि (सं० त्रि०) वृष्टिप्रार्थी, जो वृष्टिके लिये प्रार्थना करे।

वृष्टिवात (सं० पु०) वृष्टिमारुत।

वृष्टिवैकृत (सं० क्ली०) वृहत्संहिताके अनुसार बहुत अधिक वृष्टि होना, या बिलकुल वृष्टि न होना, जो उपद्रव आदिका सूचक समझा जाता है।

वृष्टिसनि (सं० त्रि०) वृष्टिवनि।

वृष्ण (सं० पु०) ऋषिभेद।

वृष्णि (सं० पु०) वृष-नि। (सुवृषिभ्यां कित्। उण् ४।४९) १ मेघ। २ यादव, यदुवंश। (महाभारत ५।७२।४) ३ श्रीकृष्ण। ४ इन्द्र। ५ अग्नि। ६ वायु। ७ ज्योतिः। ८ गो। (त्रि०) ९ पामर। १० प्रचण्ड, उग्र।

वृष्णिक (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वृष्णिगर्भ (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

वृष्णिगुप्त—एक प्राचीन कविका नाम।

वृष्णिन् (सं० पु०) वृष्णि देखो।

वृष्णिमत् (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वृष्णिय (सं० त्रि०) वृष्णिवंशभव।

वृष्ण्य (सं० त्रि०) वीर्य्य। (ऋक् ६।८।२)

वृष्ण्यावत् (सं० त्रि०) १ वर्णकर्मवान्, वर्णकर्मविशिष्ट। २ बलवान्। (ऋक् ६।२२।१)

वृष्य (सं० क्ली०) वृष क्यप्। (विभाषाकृवृषोः। पा

३।१।१२०) १ वाजीकरण वस्तु, शुक्रपदार्थ, जिन सब पदार्थोंके सेवन करनेसे शुक्रकी वृद्धि होती है। सेमल-का मूल आदि। २ चित्तकी हर्षोत्पादक वस्तु, जिसके सेवनसे चित्तमें हर्षोदय होता है, मोदक आदि। ३ ओज स्कर द्रव्य, जिससे वल और वीर्य बढ़े। (चरक चि०)

चरकमें जो द्रव्य मधुर, स्निग्ध, जीवनीय, वृंहण, गुरु और मनके लिये हर्षजनक है, उनको वृष्य कहते हैं। इन चीजोंके साथ जो सब औषध प्रस्तुत होता है, उसको वृष्य योग कहते हैं। जैसे—

वृष्यक्षीर—खर्जुरवृक्षका मस्तक, उड़द, क्षीर काकोली, शतमूली, खर्जुर, मौलफूल, किसमिस और अलकुशीका फल—इनके प्रत्येक १-१ पल। पाकार्थ जल १६ सेर। इसके क्वाथमें चार सेर मिलाना और दुग्धावशेष रहे तो उतार लेना। उसमें उपयुक्त मात्रामें चीनी मिलानी चाहिये। इस क्षीर या दुग्धके साथ घृतवहुल षष्टिकान्न भोजन करना चाहिये। यह अतिशय वृष्य है।

वृष्यघृत—गायका घृत ४ सेर। कल्कार्थ जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, श्रावणीद्वय; (हंसपदी और वड़ी हंसपदी), खर्जुर, मुलेठी (यष्टिमधु); द्राक्षा (अंगुर), पिपुल, २ सोंठ, पानीफल या सिंघाड़ा और भुइं कुम्हड़ा, ये सब मिल कर १ सेर। घृतावशेष रह जाने पर उतार लेना चाहिये, पीछे इसको छान कर उसमें चीनी आध सेर मिलाना होगा। इस घृतको भोजनके साथ उपयुक्त मात्रामें खाने पर अत्यन्त वृष्य होता है। यह वलवर्द्धक, कण्ठका सुस्वरदायक और वृंहण है।

वृष्यघृततलितमांस—रेहू मछली या ताजा मांस घृतमें भुन कर वृष्यघृतलित मांस कहलाता है।

वृष्यदध्यादि—निर्मल और दोषरहित दधि ले कर उसमें यथोपयुक्त चीनी मिला कर मधु, मिर्च, वंशलोचन और इलायचीका चूर्ण मिलाना चाहिये। पीछे इसे छान कर नये मिट्टीके वरतनमें रखना चाहिये। घृतयुक्त अन्नके साथ इसका सेवन कर पीछे रसाल द्रव्य भोजन करना चाहिये। इस वृष्यदधिके सेवनसे वल, वर्ण, स्वर और शुक्र वर्द्धित होता है।

वृष्यदुग्धादि—दुग्धके साथ चीनी और मधु मिला कर घृताक्त अन्नके साथ सेवन करनेसे अतिवृष्य होता है।

मत्स्यका डिम या अण्डा, हंस, मयूर या मुर्गेका अण्डा, इन्हें जलमें सिद्ध कर घृतमें तल कर भक्षण करनेसे भी वृष्य होता है।

वृष्यलप्सी—चीनी १०० पल, घृत ५० पल, मधु २५ पल और जल २५ पल, इन सब द्रव्योंके साथ गेहूं-का चूर्ण २५ पल मिला कर एक चिकने खलमें रख कर उत्तमरूपसे मर्दन करना होगा। उससे अति शुभ्र उत्कारिका (मोहनभोगवत् पदार्थ) प्रस्तुत होगी। यह अग्निके वलके अनुसार सेवन करनेसे अतिशय वृष्य होगा।

यह सब वृष्ययोग स्वस्थ शरीरको छोड़ दुर्बल शरीरमें सेवन करना न चाहिये। अस्वस्थ शरीरमें सेवन करनेसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। स्वस्थ शरीरमें संशोधन द्वारा शरीरके रसादिस्थ स्रोतःसंशुद्ध अर्थात् मल निर्हरण हेतु शरीर शुद्ध रहनेसे उस समय यदि पूर्वोक्त सेव्य वृष्ययोग सेवन कराया जा सके तो शरीर दृढ़, वलवान् और वृषवत् मैथुनमें समर्थ हो सकता है। शुद्ध शरीरमें सेवित वृष्ययोग ही वृंहण और वलप्रद होता है। अतएव वृष्य सेवनसे पहले वलानुरूप संशोधन कर्त्तव्य है। मलिन वस्त्रमें लाल रङ्ग रंगनेसे वह जिस प्रकार चमकता, उसी प्रकार अशुद्ध शरीरमें या असंशोधित शरीरमें इन सब योगोंका प्रयोग करनेसे ये कार्य्यकारी नहीं होते। (चरक-चिकित्सा २ अ०) (पु०) ४ ऊख। ५ उड़द। ६ ऋषभ नामकी ओषधि।

वृष्यकन्दा (सं० स्त्री०) वृष्यं वलकारकं कन्दं यस्याः। १ विदाराकन्द, भुइंकुम्हड़ा। २ मूली।

वृष्यगन्धा (सं० स्त्री०) वृष्यो गन्धो यस्याः। १ वृद्ध-दारक, विधारा। अजान्त्र नामकी लता। ३ ककही, अतिवला।

वृष्यगन्धिका (सं० स्त्री०) ककही, अतिवला।

वृष्यचण्डी (सं० स्त्री०) मूसाकानी, आखुकर्णी।

वृष्यपर्णी (सं० स्त्री०) भुइंकुम्हड़ा।

वृष्यफला (सं० स्त्री०) आंवला।

वृष्यवल्लिका (सं० स्त्री०) विदारीकन्द, भुइंकुम्हड़ा।

वृष्यवल्ली (सं० स्त्री०) विदारीकन्द।

वृष्या (सं० स्त्री०) १ ऋद्धि नामको ओषधि। २ शतावर। ३ आंवला। ४ भुइंकुम्हड़ा। ५ अतिबला। ६ वृहद्दन्ती, बंगडेरा। ७ केवांच, कौंछ। ८ विदारीकन्द।

वृह—१ वृद्धि। भ्वादि० परस्मै० सक० सेट्। लट् वर्हति। लुङ् अवर्हीत, अवृहत। वृह—२ उद्यम। तुदादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृहति लिट् ववर्ह। ३ शब्द। ४ ऋद्धि। भ्वादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृहति। वृद्धि अर्थमें यह धातु आत्मनेपदी भी होता है। लट् वृंहते चुरादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृंहयति।

वृंह,—१ ध्वनि। २ हाथीकी चिंघाड़। ३ वृद्धि, भ्वादि० परस्मै० अक० सेट्। लट् वृंहयति। लुङ् अववृंयत्।

वृहच्चञ्चु (सं० पु०) वृहतीचञ्चुः शाकविशेषः। १ महाचञ्चु शाक। (त्रि०) २ दीर्घचञ्चुयुक्त, लम्बो चोंचवाला।

वृहच्चक्रभेद (सं० पु०) जयन्ती, जैंत।

वृहच्चित्त (सं० पु०) फलपुर, बिजौरा नीबू।

वृहच्छद (सं० पु०) अखरोट।

वृहच्छतावरीघृत (सं० क्ली०) प्रदररोगाधिकारोक्त घृतौषध विशेष।

वृहच्छद (सं० पु०) अक्षोट वृक्ष, अखरोटका वृक्ष।

वृहच्छफरी (सं० स्त्री०) महाप्रोष्ठी, मत्स्यविशेष, सफरी नामकी मछली। इसका गुण—स्निग्ध, मुख और कण्ठरोगनाशक।

वृहच्छल्क (सं० पु०) वृहन् शल्को यस्य। भिंगा नामकी मछली।

वृहच्छालपर्णी (सं० पु०) महाशालपर्णी, बड़ी सरिवन, इसे बम्बईमें तौड़ोला कहते हैं।

वृहच्छिम्बी (सं० स्त्री०) सेम।

वृहज्जीरक (सं० क्ली०) मोटा जीरा, मंगरेला।

वृहज्जीवन्ती (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात औषधविशेष, बड़ी जीवन्ती। पर्याय—पत्रभद्रा, प्रियङ्करी, मधुरा, जीवपुष्पा, वृहज्जीवा, यशस्करी। गुण—बहुवीर्यप्रद, भूतविद्रावणकारी अर्थात् भूतोन्मादादि रोगमें ग्रहादिका अपसारक रसनियामक अर्थात् पारद आदिसे होनेवाली विकृतिका विनाशक है।

वृहज्जीवा (सं० स्त्री०) बड़ी जीवन्ती।

वृहड्ढक्क (सं० स्त्री०) वाद्ययन्त्रविशेष, ढक्का, ढाक।

वृहत् (सं० त्रि०) वृह-अति (वर्त्तमाने पृषद्वृहन्महज्जगच्छतृवच्च। उण् २।८४) निपातनात् साधु। महत्, विपुल, बड़ा, प्रकाण्ड, भारी, महान्। जैसे—आपने यह बहुत वृहत् कार्य्य उठाया है।

वृहतिका (सं० स्त्री०) वृहती देखो।

वृहती (सं० स्त्री०) वृहती-कन्-वृहत्या आच्छादन (पा ५।४।६।१) उत्तरीयवस्त्र, चद्दर, दुपट्टा। २ कण्टकारी, छोटी कंटाई। ३ वनभण्टा, बड़ी कंटाई। ३ बैंगन। ४ वैद्यकके अनुसार एक मर्मस्थान, जो छातियोंके ठीक पीछे पीठमें दोनों ओर होता है। इस मर्मस्थानमें चोट लगनेसे अधिक खून गिरता है और मृत्यु भी होनेका डर रहता है। ५ विश्वावसु नामक गन्धर्वकी वीणाका नाम। ६ वाक्य। ७ एक प्रकारका छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें भगण, मगण और सगण होता है। जैसे—भाव सुपूजा कारज जू। प्रात गई सीता-सरजू। कण्ठमणि मध्ये सुजला। टूट परीं खोजैं अबला। (काव्यप्रभाकर) ८ महती। ९ वारिधानी।

वृहतीकल्प (सं० पु०) चिकित्साका कल्पभेद।

वृहतीद्वय (सं० पु० क्ली०) १ वृहती और कण्टकारी। २ मोटे और पतले फलोंके अनुसार दो तरहकी वृहती।

वृहतीपति (सं० पु०) वृहतीनां वाचां पतिः। वृहस्पति।

वृहतीफल (सं० क्ली०) वनभण्टा, वृहतीका बीज।

वृहत्क (सं० त्रि०) वृहत्-कन् (चञ्चद्वृहतोरुपसंख्यानम्। पा ५।४।३ वार्त्तिक) वृहत् देखो।

वृहत्कट्वरतैल—ज्वराधिकारोक्त औषध विशेष।

वृहत्कन्द (सं० पु०) १ गृञ्जन, गाजर। २ विष्णु।

वृहत्कस्तूरीभैरव रस—ज्वराधिकारी रसौषधविशेष। इसका सेवन करनेसे ज्वर आदि विविध पीड़ाओंका उपशम होता है।

वृहत्कालशाक (सं० पु०) महाकासमर्द नामका क्षुप, कसौंदी।

वृहत्काश (सं० पु०) उलूक नामका तृण, झगड़ा।

वृहत्कुक्षि (सं० त्रि०) तुन्दिल, वह जिसका पेट आगेको निकला रहता है, तोंदल।

वृहत्कोशातकी (सं० स्त्री०) तरोई, नेनुआँ।

वृहत्ताल (सं० पु०) श्रीताल या हिंतालका वृक्ष।

वृहत्तिक्ता (सं० स्त्री०) पाठा, पाढ़ा।

वृहत्तृण (सं० पु०) बाँस।

वृहत्त्वक् (सं० पु०) सप्तपर्णवृक्ष या सतावनका पौधा।

वृहत्त्वच (सं० पु०) निम्बवृक्ष।

वृहत्पञ्चमूल (सं० क्ली०) बेल, सोनापाठा, गभारी, पाँडर और गनियारी-इन पाँचोंका समूह।

वृहत्पत्र (सं० पु०) वृहत् पत्रं यस्य। १ हस्तिकन्द। २ श्वेतलोध्र, पठानी लोध। स्त्रियाँ टाप्। वृहत्पत्रा। ३ त्रिपर्णिका। ४ कासमर्दक्षुप।

वृहत्पर्ण (सं० पु०) शुक्ललोध्र, पठानी लोध।

वृहत्पर्णी (सं० पु०) महाशणपुष्पी, वनसनई।

वृहत्पाटली (सं० स्त्री०) धतूरा।

वृहत्पाद (सं० पु०) वृहन् पादो यस्य। वटवृक्ष।

वृहत्पारेवत (सं० क्ली०) वृहत् महत् पारेवतम्। महापारेवतफल, बड़ा कबूतर।

वृहत्पाली (सं० पु०) वनजीरक क्षुप, वनजीरा।

वृहत्पिप्पलाद्य तैल—ज्वराधिकारोक्त तैलौषध विशेष। इस तेलको मालिश करनेसे कई तरहके विषमज्वर नष्ट होते हैं।

वृहत्पीलू (सं० पु०) वृहन् पीलुः। महापीलूका वृक्ष, पहाड़ी अखरोट।

वृहत्पुष्प (सं० पु०) १ महाकुष्माण्ड, सफेद कुम्हड़ा। (क्ली०) २ बड़ा फूल। (स्त्री०) कदलीवृक्ष।

वृहत्पुष्पी (सं० स्त्री०) सन, सनई।

वृहत्फल (सं० पु०) वृहत् फलं यस्य। १ चिचड़ा। २ कुम्हड़ा। ३ कटहल, पनस। ४ जामुन।

वृहत्फला (सं० स्त्री०) १ अलाबू, लौकी। २ तितलौकी। ३ महेन्द्रवारुणी, इनारुन। ३ सफेद कुम्हड़ा। ५ बड़ा जामुन।

वृहत्यादि (सं० पु०) एक प्रकारका पाचन। जैसे—वृहती, पुष्कर, भार्गी, शठी, शृङ्गी, दुरालभा, वत्सक बीज, परवल और कटुकी—इन सब द्रव्योंको आध सेर जलमें पका कर आध पाव उतार कर सेवन करना चाहिये। यह पाचन सेवन करने पर सन्निपात ज्वर प्रशमित होता है।

वृहदङ्ग (सं० पु०) वृहत्मङ्गं यस्य। हाथी।

वृहदम्ल (सं० पु०) वृहन् अम्लो यस्य। कर्मरङ्गवृक्ष, कमरखका पेड़।

वृहद्गङ्गाधरचूर्ण—ग्रहण्यधिकारोक्त चूर्णौषधविशेष।

वृहद्गुल्मकालानलरस—गुल्म और हृद्रोगाधिकारोक्त रसौषधविशेष।

वृहद्गृह (सं० पु०) वृहद् गृहं यस्मिन्। कारुषदेश। यह देश विन्ध्यपर्वतके पश्चात् भागमें मालवाके निकट अवस्थित है। कहीं-कहीं यह वृहत्गृहके नामसे भी उल्लिखित है।

वृहद्गोल (सं० क्ली०) वृहत् गोलं गोलाकारफलं यस्य। शीर्णवृन्त, तरबूज।

वृहद्ग्रहणीमिहिरतैल—ग्रहण्यधिकारोक्त तैलौषधविशेष।

वृहज्जीरकादिमोदक—एक तरहका मोदक। इसके सेवनसे अतीसार, प्रदर और सूतिकादि नाना रोग दूर होते हैं।

वृहद्दन्ती (सं० स्त्री०) एरण्डके पत्र और शाखाके समान पत्रशाखाविशिष्ट, दन्तीविशेष, द्रवन्ती।

वृहद्दल (सं० पु०) वृहद्दलं स्य। १ पट्टिकालोध्र, पठानी लोध। २ सप्तपर्ण, सतीवन। ३ हिन्ताल वृक्ष। ४ लाल लहसून। ५ लज्जालू, लज्जावती।

वृहद्द्रोणी (सं० स्त्री०) द्रोणी परिमाण।

वृहद्धल (सं० क्ली०) वृहत् हलं यस्य। बड़ा हल।

वृहद्धात्रीघृत—मेदोधिकारोक्त घृतौषधभेद।

वृहद्धात्र्यादि—मूत्रकृच्छ्राधिकारोक्त औषध भेद। इस क्वाथके पान करनेसे मूत्रकृच्छ्र और उससे उत्पन्न जलन आदि निवारण होते हैं।

वृहद्धान्य (सं० पु०) क्षेत्रेक्षु, यावनालवृक्ष, ज्वार।

वृहद्वदर (सं० पु०) बड़ी बेर। गुण—कफ और पित्तवर्द्धक, गुरु।

वृहद्वला (सं० स्त्री०) १ पीतपुष्पा, सहदेई। २ पठानी लोध। ३ लज्जावन्ती।

बृहद्वासावलेह—यक्ष्मारोगाधिकारोक्त अवलेहभेद। इसके सेवन करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और श्वासादि नाना रोग नष्ट होते हैं।

बृहद्वीज (सं० पु०) बृहत् बीजं यस्य। आम्रातक, आमड़ा।

बृहद्भट्टारिका (सं० स्त्री०) दुर्गा।

बृहद्भण्डी (सं० स्त्री०) त्रायमाणा नामको लता।

बृहत्भानु (सं० पु०) १ अग्नि। २ चित्रकवृक्ष, चीता। ३ सूर्य। ४ सत्यभामाके एक पुत्रका नाम। ५ सत्रायणके एक पुत्रका नाम। ६ पृथूलाक्षके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ७ बृहत्रश्मिविशिष्ट, प्रवृद्ध रश्मियुक्त।

बृहद्रथ (सं० पु०) बृहन् रथो यस्य। १ इन्द्र। २ यज्ञपात्र। ३ मन्त्रविशेष। ४ सामवेदका अंश। ५ वसुदामके पिता, तिग्मका पुत्र। (मत्स्यपु० ५०।८५) ६ शतधन्वाका पुत्र। (भागवत १२।१।१३) ७ देवरातका पुत्र। ८ तिमिराजपुत्र। ९ पृथुलाक्षके एक पुत्रका नाम। १० मौर्यराजवंशका अन्तिम राजा। (त्रि०) ११ प्रभूत रथविशिष्ट, जिसके पास अनेक रथ हों। (ऋक् ८।८०।२) स्त्रियां टाप् बृहद्रथा। १२ एक नदीका नाम।

बृहद्राव (सं० पु०) उल्लू पक्षी।

बृहद्वर्ण (सं० पु०) सोनामक्खी।

बृहद्दल—आनर्त्तराजभेद।

बृहत्वल्क (सं० पु०) बृहन् वल्कः वल्कलं यस्य। १ पठानी लोध। २ सप्तपर्ण, छतिवन।

बृहद्वल्ली (सं० स्त्री०) करैला।

बृहद्वात (सं० पु०) बृहन् वातो यस्मात्। देवधान्य, यह अश्मरीरोगनाशक है।

बृहद्वारुणी (सं० स्त्री०) महेन्द्रवारुणी लता, इनारू।

बृहन्नल (सं० पु०) १ बाहु, बांह। २ अर्जुन।

बृहन्नला (सं० स्त्री०) १ अर्जुन, अर्जुनका उस समयका नाम जब वे वनवासके उपरान्त अज्ञातवासके समय राजा विराट यहां स्त्रीके वेशमें रह कर उसकी कन्या उत्तराको नाच गान सिखाते थे।

बृहन्निम्ब (सं० पु०) महानिम्ब, बकायन।

बृहन्नारायणोपनिषद्—एक उपनिषद्का नाम। यह याज्ञिकी उपनिषद् नामसे विख्यात है।

बृहन्मरिच (सं० पु०) काली मिर्च, गोलमिर्च।

बृहन्मेथीमोदक—ग्रहणीरोगकी एक औषधका नाम। इस दवाके सेवन करनेसे अग्निमान्द्य और ग्रहणी प्रभृति बहुतेरे रोग दूर होते हैं।

बृहस्पति—१ बृहस्पतिसंहिता नामक ग्रन्थके रचयिताका नाम।

बृहस्पति (सं० पु०) बृहतां वाचां पतिः। (पारस्करेति। पा ६।१।१५७ इति सुट् निपात्यते) अङ्गिराके पुत्र। ये देवोंके गुरु हैं, धर्मशास्त्र प्रयोजक और नवग्रहोंमें पञ्चम ग्रह हैं। पर्याय—सुराचार्य, गीष्पति, धीषण, गुरु, जीव, आङ्गिरस, वाचस्पति, चित्रशिखण्डिज, उतथ्यानुज, गोविन्द, चारु, द्वादशरश्मि, गिरीश, दिदिव, पूर्वफल्गुनीभव, सुरगुरु, वाक्पति, वचसाम्पति, इन्द्रेज्य, देवेज्य, बृहताम्पति, इज्य, वागीश, चक्षाः, दीदिवि, द्वादशकर, प्राक्फाल्गुन और गोरथ।

यह ग्रह पीला, सूर्यास्य, चतुर्भुज और पद्महस्त है। इनका शरीर ६ अंगुल लम्बा है। चार हाथोंमें क्रमसे अक्ष, वर, कमण्डलु, और दण्ड धारण किये हुए हैं। ब्रह्मा इनके अधिदेवता और इन्द्र प्रत्यधिदेवता हैं। ये ईशानकोण, पुरुष, ब्राह्मण जाति, ऋग्वेद, सत्वगुण, मधुररस, धनु और मीनराशि, पुष्यानक्षत्र, वस्त्र, पुष्परागमणि और सिन्धुदेशके अधिपति हैं। प्रातःकालमें ये प्रबल शुभग्रह, देवगृहस्वामी, वृद्ध, रक्तद्रव्यस्वामी; वातपित्तकफात्मक और वणिक् कर्मकर्त्ता रूपसे फलदाता हैं।

पुराणादिमें बृहस्पतिको देवगुरु, देवकुल, पुरोहित, मन्त्रपालक और त्रिदशचण्डी कहा है। इस कारण दानव द्वारा सुरनिग्रहकालमें उन्हें भी यथेष्ट कष्ट भुगतना पड़ा था।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणादिमें लिखा है, कि अङ्गिरामुनिपत्नी अपने कर्मके दोषसे मृतवत्सा हुई थी। उन्होंने ब्रह्माके आदेशानुसार सनत्कुमारके द्वारा श्रीकृष्णके उद्देशसे पुंसवन नामका व्रत किया। इस पर सन्तुष्ट हो सर्वयज्ञेश्वर हरि उस व्रतक्षीणा मुनिपत्नीके समीप

आ कर बोले, सुव्रते! यज्ञफलस्वरूप मेरे वरसे तुमको मेरे वंशका एक पुत्र होगा। तुम्हारे गर्भमें मेरा यह पुत्र चिरञ्जोवी, देवताओंका गुरु और ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ होगा। (ब्रह्मव० पु० प्रकृतिख० १६ अ०) ज्योतिर्विज्ञानका यह शुभग्रह बहुत दिनोंसे ही आर्य समाजमें परिचित और उनके द्वारा पूजित है। पुराणशास्त्रमें वृहस्पति जिस तरह देवगुरु रूपसे सम्मानित होता है सुप्राचीन ऋग्संहितामें भी वे उसी तरह देवशक्तिमें विराजित हैं। ११वें सूक्तके किसी किसी मन्त्रमें वे अकेले और किसीमें इन्द्रके साथ देवतारूपमें स्तुत हुए हैं। समग्र संहितामें प्रायः १२० बार वृहस्पति और प्रायः ५० बार ब्रह्मणस्पति नाम पाये जाते हैं। ऋक् ४।४९।१—६ मन्त्रमें इन्द्र और वृहस्पतिको सोमपानके लिये आह्वान किया गया है। ४।५०।१-११ मन्त्रमें वृहस्पतिको फिर यज्ञरक्षाकर्त्ता, शब्द द्वारा बलका नाशकारी और भोगप्रदाती और हव्यप्रेरिका गौओंके आह्वानकारी, सर्वमय पिता, सर्वदेवतास्वरूप और अभीष्टवर्षी आदि विशेषणोंसे अलंकृत देखते हैं। उक्त संहितामें उनकी मूर्त्तिका जो रूप अभिव्यक्त है, उससे हम जान सकते हैं, कि वृहस्पति सप्तमुख और गमनशील तेजोविशिष्ट (४।५०।४), आह्लादक जिह्वाविशिष्ट (४।५०।१, १।१९०।१), तीक्ष्णशृंग (१०।१५५।२), नीलपृष्ठ या स्निग्धाङ्ग, हिरण्यवर्ण और अग्निवर्ण (५।४३।१२), शतपक्ष या वाहनयुक्त, दीप्तिमान्, हित और रमणीय वाक्यविशिष्ट, शुचि (७।९७।५-७), वे बाणश्रेणी, सत्यरूप ज्याविशिष्ट, धनुर्द्धारी (२।२४।८) अथर्व (५।१८।८-९), हिरण्यवर्ण इस्पात निर्मित कुठाराकृति आयुधधारी (७।९।७।७), त्वष्टा कर्त्तृक शाणित लौहमय कुठार-व्यवहारकारी हैं। (१०।५३।९)। वे रथमें आरोहण कर राक्षसोंको वध और शत्रुओंको निर्जित करते हैं (१०।१०३।४); ये रथ ज्योतिविशिष्ट यज्ञप्रापक, भयानक, शत्रु हिंसक, राक्षस, नाशक, मेघभेदक और स्वर्गप्रदायक (२।२३।३) हैं। उज्ज्वल, वहनशील और आदित्यकी तरह ज्योतिःपूर्ण घोड़े उनको इस रथमें वहन करते हैं (७।९७।३)।

वृहस्पति महान् आदित्यके परम उच्च आकाशमें आलोकसे प्रथम उत्पन्न हुए थे और शब्द द्वारा उन्होंने अन्धकारको दूर किया था (४।५०।४, १०।६८।१२), द्यावापृथ्वी वृहस्पतिदेवकी माता है (७।९७।८ और त्वष्टा उनके उत्पादक हैं (२।२३।१७)। दूसरी ओर वे देवोंके पिता हैं (२।२६।३) और उन्होंने कर्मकारकी तरह देवताओंको उत्पन्न किया था (१०।७२।२)।

वृहस्पतिका पौरोहित्य सब पर विदित है (५।४।६ ऐतरेय ब्रा०) ८।२६।४, तैत्तिस ६।४।१०, शुक्लयजु २०।११ और ऋक् २।१ ३ मन्त्रमें उनको मन्त्रके अधिपति ब्रह्मणस्पति देव कहा गया है। प्राचीन द्युतिमान् मेधावियोंने उनको सबके "पुरोधा" रूपसे स्वीकार किया है (४।५०।१)। वे सोमके पुरोहित (शतप० ब्रा० ४।१।२।४) हैं, देवोंके स्तुतिवाक्यरूप ब्रह्म (तैत्तिरीयसं० २।२।९।१) हैं। उनके प्रसादके सिवा यज्ञफल लाभ नहीं होता (१।१८।७) उनके पठित मन्त्रमें इन्द्र, अग्नि; वरुण; मित्र, अर्यमा सदा सन्तुष्ट होते हैं। वे मन्त्र और छन्द गान कर धुलोकको व्यवस्त करते रहते हैं, अङ्गिराओंके साथ स्तोत्रकीर्त्तन करते हैं इससे वे गणपति कहलाते हैं। (२।२३।१) मन्त्राधिपति और स्तोत्रकर्त्तासे ही वे वाचस्पति हैं।

वेदमें उनका अग्निके साथ स्तव किया गया है। (३।२६।२)। वे बलके पुत्र हैं (१।४०।२); अङ्गीरस तनय होनेसे आङ्गिरस (२।१०।४) हैं; वे अन्नदाता, आकाश पथमें परमधाममें निवासभूत (१०।६७।१०), अङ्गिरावंशीय वृहस्पति पर्वत द्वारा आवृत गौओंको बाहर कर देते हैं। उन्होंने इन्द्रकी सहायतासे वृत्र द्वारा आक्रान्त जलकी आधारभूत जलराशिको अधोमुख कर दिया था। (२।२०।१८) गोधनमुक्तिके समय उन्होंने ही पहले अन्धकारमें ऊषा और आलोक देखा था (१०।२८।४); पूरीको ध्वंस कर गुहा द्वारा उन्मोचन कर उन्होंने प्रातःकालमें सूर्य और सब गौओंको देखा था। वे असुरहन्ता असूर्य हैं (२।२३।२), वे जगतके नियन्ता हैं (२।२३ १८); उनकी ही आज्ञासे सूर्य और चन्द्र यथासमय विकसित होते हैं (१०।९८।१०), वे ही वृक्षोंके रसदाता हैं। (१०।९७।१५)

वेदके ये देवता ही पिछले युगमें ग्रहाधिकारी हुए थे ऋग्वेदमें उसका आभास मिलता है। ऋक १०।६८।११

मन्त्रमें लिखा है, कि "जैसे पिङ्गलवर्ण घोड़ेको विविध भूषणोंसे सज्जित करते हैं, उसी तरह पितास्वरूप देवताओंने गगनको सुसज्जित किया। उन्होंने अन्धकारको रात्रिमें रखा था और आलोकको दिनमें कर दिया। वृहस्पतिने पर्वत तोड़ कर गोधन प्राप्त किया।" तैत्तिरीय संहितामें (४।४।१०) वे तिष्यनक्षत्रके अधिष्ठातृ देवता रूपसे गृहीत हैं। वैदिककालके वृहस्पति जुपिटर ग्रहके प्रतिनिधित्वमें कल्पित हुए हैं। वे ही वृहस्पति ग्रहके (Jupiter) नेता हैं और कभी कभी स्वयं ग्रहरूपसे कीर्त्तित होते हैं। ग्रहपरिचालनके लिये उनके नीतिघोष नामका एक रथ है। यह रथ आठ घोड़ोंसे परिचालित होता है। वृहस्पति ग्रहका एक राशिमें भ्रमण करते करते ६० वर्ष (60 Year's cycle of Jupiter) अतिवाहित होता है। ज्योतिषशास्त्रमें यह वृहस्पतिचक्र नामसे विदित है। ग्रह देखो।

पौराणिक युगमें वृहस्पति ऋषिरूपसे वर्णित है। अङ्गिरा ऋषिके पुत्र होनेके कारण वे आङ्गिरस नामसे विख्यात हैं। देवताओंके उपदेष्टा आचार्य होनेसे वे अनिमिषाचार्य, त्वष्टा, इज्य और इन्द्रेज्य आदि नामोंसे पूजित हैं। सोम कौशलसे उनकी पत्नी तारादेवीको हरण कर ले गये। इसके लिये "तारकामय" युद्धका आरम्भ हुआ। उशना, रुद्र और दैत्य दानव सोमको पक्ष और इन्द्रके अधीन देवोंने वृहस्पतिका पक्ष अवलम्बन किया। उस युद्धमें वसुन्धरा कम्पित होने लगी। उन्होंने ब्रह्मासे जा कर अपनी दुरवस्थाकी बात कही। ब्रह्माकी मध्यस्थतामें तारा स्वामीके पास लौट आई। किन्तु तारा इस समय गर्भवती थी। वृहस्पति और सोम दोनोंने ताराके गर्भसे उत्पन्न बालकको पानेका दावा किया। फिर विरोधकी सम्भावना देख ब्रह्मा वहां आये और उन्होंने तारासे पुत्रके प्रकृत पिताकी बात पूछी। उस समय ताराने सोमको ही गर्भज सन्तानका पिता कहा। इसी पुत्रका नाम बुध है। बुध देखो।

स्कन्दपुराणमतसे वृहस्पति पीले हैं। वे देवोंके पुरोहित हो एक बार देवोंको विपद्ग्रस्त करनेमें कुण्ठित नहीं हुए। मत्स्यपुराण, भागवतपुराण और विष्णुपुराण आदिमें वृहस्पतिके पृथ्वीदोहनकी बात है। उतथ्य-

वनिता ममताके गर्भमें उनको भरद्वाज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। भरद्वाज देखो।

द्वितीय मन्वन्तरमें वृहस्पति नामक और ऋषिका नाम मिलता है। यह एक धर्ममतका प्रवर्त्तक है।

अन्यान्य विवरण पवर्गके वृहस्पति शब्दमें देखो।

वृहस्पतिचक्र (सं० क्ली०) वृहस्पतेश्चक्रम्। लोगोंके शुभाशुभके निर्णयार्थ वृहस्पतिके सञ्चारकालीन अश्विन्यादि २७ नक्षत्रयुक्त नराकृति चक्रविशेष। सञ्चार अर्थात् एक राशिसे दूसरी राशिमें या नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें जानेके समय वृहस्पति पहले जा कर जिस नक्षत्रमें अवस्थित होते हैं, उन नक्षत्रोंको ले कर चार नक्षत्र चक्रांकित पुरुषके शीर्षदेशमें विन्यास करना होगा। उसके बादके चार उसके दक्षिण हाथमें, उसके उत्तर कण्ठमें, उसके बाद पांच वक्षमें, इस तरह यथाक्रम दक्षिण और वाम पैरमें तीन तीन करके छः, इसके बाद बाएं हाथमें चार और नेत्रमें तीन यथायथभावसे विन्यस्त करना।

वृहस्पतिचार (सं० पु०) वृहस्पतिग्रहका सञ्चार।

वृहस्पतिसूत्र (सं० क्ली०) चार्वाकोंका मूलशास्त्र।

वृ, वरण या आवरण करना। क्र्यादि० उभ० सक-सेट्। लट् वृणाति, वृणीते।

वे—'वे' हिन्दीमें बहुवचन सर्वनाममें व्यवहृत होता है। 'वह' एकवचन, इसका बहुवचन वे होता है। आधुनिक हिन्दीजगत्में वे की जगह कुछ लोग वह ही व्यवहार करते हैं। जैसे हिन्दी बङ्गवासी, यह पत्र बहुत पुराना है। इसमें सदासे वे की जगह वह ही व्यवहृत किया जाता है। ऐसे ही और भी कितने ही लोग हैं, कि 'वे' को 'वह' ही लिखा करते हैं।

वेआवर (व्यावर)—राजपूतानेके अजमेर मेरवाड़विभागका एक नगर।

वहांके लोग इसको नया नगर भी कहते हैं। अजमेर मेरवाड़ा विभागके अंग्रेज कमिश्नरने सन् १८३५ ई०में इस नगरको सेनानिवासके सन्निकट बसाया था। मेवाड़ राजधानी उदयपुर और मारवाड़ राजधानी योधपुरके मध्य स्थानमें रहनेसे यह स्थान बहुत जल्द एक प्रधान वाणिज्यकेन्द्रमें परिणत हो गया और धनजनसे पूर्ण हो कर शीघ्र ही श्रीवृद्धिसम्पन्न हो उठा।

नगरके चारों ओर पत्थरकी चहारदीवारी है और इसके भीतरकी प्रायः सभी इमारतें पक्की हैं। राह, घाट सभी परिष्कार हैं। राहोंके दोनों ओर शायेदार पेड़ लगाये गये हैं। नगरमें नानाश्रेणीके दुकानदारों और व्यवसायियोंका वास है। नगरकी प्रतिष्ठाके समय दुकानदारोंके सुभीतेके लिये उनके आवेदनके अनुसार ही श्रेणी विभागके साथ दुकानोंको भी पृथक् पृथक् स्थापित किया गया है।

यहां कपासका बहुत बड़ा कारबार है। यहां रूईकी गांठ बांधनेके लिये हाइड्रालिक मशीनें हैं, जिसे 'कटनप्रेस' (Cotton Press) कहते हैं। सिवा इसके लौहनिर्माण के लिये भी बहुत बड़ा कारखाना है। यह लौहपात्र और यहांके छपे कई तरहके रङ्गीन कपड़े यहांसे बाहर रफ्तनी किये जाते हैं। पहले वहां अफीम भी पैदा की जाती थी। यहांका व्यवसाय ही मुख्य है।

वेकट (सं० पु०) १ एक तरहकी मछली, भाकुर। २ युवक। ३ वैकटिक। ४ मसखरा, विदूषक। ५ जौहरी।

वेकास (वैकास्)—पाश्चात्य जगत्की प्राचीन जातियोंकी पूजित एक देवमूर्त्ति। प्राचीन यूनानियोंमें ये ज्यूसके पुत्र देवनिसस, लेटिन जातिके वेकास (Bacchus) और मिस्रवासियोंके ओसिरिस हैं। पाश्चात्य जगत्में वेकासके सम्बन्धमें प्रचलित किंवदन्तियोंकी पर्यालोचना करने पर मालूम होता है, कि मानो वहां बहुतेरे वेकास विद्यमान हों। वेकासने कादमास राजतनया सिमिलीके गर्भसे और 'जुपिटर' वृहस्पतिके औरससे जन्म लिया था। मिस्रीय किंवदन्तियोंका अनुसरण करनेसे मालूम होता है, कि युवराज वेकास यौवनकालमें नाक्सस द्वीपमें एक दिन सो रहे थे। इस अवस्थामें कितने ही मल्लाह उनको अपहरण कर ले गये। इस पर उन्होंने क्रुद्ध हो कर उन मल्लाहोंको शाप दिया, इसलिये वे सबके सब मछली हो गये। यहांसे ही वेकासकी ऐशीशक्तिका परिचय मिला। उन्होंने अपने पुण्यबलसे और पिताकी सम्मतिक्रमसे माता सिमिलीको नरकसे उद्धार कर स्वर्ग भेजा था। उस समयसे वे 'साइओन' नामसे विख्यात हुए। इसके बाद वेकास पूर्वाभियानमें गमन कर उस देशके अधिवासियोंको द्राक्षाकर्षण और मधु आहरण करनेकी शिक्षा दे गये। इसी कारण वे मद्यपायी जाति द्वारा देवता रूपसे पूजित हुए। वेकासके उत्सव अर्गिज, केनिफोरिया, फालिका, वाकानालिया या देवनिसिया नामसे पाश्चात्यजगत्में विदित हुए। दनायुस और उनकी कन्याओंने मिस्रसे यह पूजा यूनानमें जारी की। इस उत्सवमें लोग अत्यधिक मद्यपान करते थे। और तो क्या—वे आत्मविस्मृत हो अनेक निन्दित कर्म करनेमें भी कुण्ठित होते न थे। ईसासे १८० वर्ष पहले वेकासप्रवर्त्तित उत्सवकी दुर्दशाका अवलोकन कर रोमगवर्नमेण्टने इसको बन्द कर देनेकी आज्ञा प्रचारित की।

वेकासपूजामें जो रमणियां पुरोहितके कार्यमें -लिप्त रहती थीं, उत्सवभेद और देशभेदसे वे विभिन्न वस्त्र पहनती थीं। परिच्छदके तारतम्यानुसार वे मेनाडिस, थायाडिस, वेकाण्टिस, मिमालोनाडिस, वासाराइडिस आदि नामोंसे विदित थीं। मिस्रवासी उनकी तृप्तिके लिये गृहके द्वार पर शूकरकी बलि देते थे। अधिकांश स्थलोंमें बकरेकी ही बलि देखी जाती थी। क्योंकि बकरेका वंश द्राक्षालताके नाश करनेमें सदा ही तैयार रहते थे। प्लिनिका कहना है, कि देवताओंमें इनका मस्तक मुकुटालंकृत, कामदेवकी तरह सुरम्य और कुञ्चित केशकलापमें मस्तक समाच्छादित रहता था, मानो चिरयौवन इस मुखचन्द्रमें सदा विराजमान था। कभी तो वे शृङ्ग हाथमें विराजित देखे जाते थे। इस शृङ्गके सम्बन्धमें पाश्चात्य जगत्में किंवदन्ती है, कि वेकासने बैलोंसे भूमिकर्षण (खेत जोत कर) किया था, उसीके निदर्शन-स्वरूप उन्होंने हाथमें शृङ्ग धारण किया है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि लाइबियाके मरुस्थलमें जब वे ससैन्य उपस्थित हो निदारुणतृष्णासे कातर और मृतप्राय हुए थे, उस समय उनके पिता जुपिटर (वृहस्पति) ने भेड़का रूप धारण कर उनके जलपानकी सुविधा कर दी थी। उस घटनाके कृतज्ञतास्वरूप वे शृङ्गधारी हुए हैं। दियोदोरसने जो तीन तरहकी वेकासकी मूर्त्तिका उल्लेख किया था, उनमें (१) भारतविजयी वेकास दीर्घश्मश्रुसमन्वित अर्थात् लम्बी दाढ़ीदार, (२) जुपिटर और प्रसार्पाइनके पुत्र शृङ्गधारी वेकास और

(३) जुपिटर और सिमिलिके पुत्र थेबिसका बेकास। सिसरोके लिखे अनुसार (१) प्रसार्पाइनके पुत्र, (२) नेसुसके पुत्र, (३) केप्रियासके पुत्र। इन्होंने भारतमें अपना प्रभुत्व विस्तार किया था। (४) थिओनी और नेसुसके पुत्र, (५) जुपिटर चन्द्रके पुत्र।

वर्त्तमान मिस्रकी राजधानी कायरो नगरसे ३ सौ मील दक्षिण-उत्तर मिस्रके शिवा नामक ओयसिसमें अनुमान १८०० ईसासे पूर्व प्रतिष्ठित जुपिटर (वृहस्पति)-के मन्दिरका ध्वस्तनिदर्शन निपतित है।

पाश्चात्य-जगत्में नानारूपसे लिङ्गरूपकी उपासना होती है। कभी तो वे भीरु रमणीजनोचित सुकुमार युवक, मस्तकमें द्राक्षा या आइभि लताका किरीट, हाथमें त्रिशूल रहता है। व्याघ्र और सिंह उनके प्रियवाहन और मागदाई पक्षी उनकी अतिप्रिय वस्तु है। उन्होंने व्याघ्रचर्मसे आवृत हो कर भारतविजयके लिये यात्रा की थी। कभी तारकामण्डित भूगोल पर उपविष्ट मूर्त्तिमें वे सूर्य या ओसिविस कह कर पूजित होते हैं। भारत-भ्रमणकारी अनेक यूनानी ग्रन्थकारोंने हिन्दू जातिके उपास्य एक बेकासका उल्लेख किया है। हो सकता है, कि वे भारतवर्षमें महादेवको लिङ्गपूजाके साथ यूनानी बेकासको लिङ्गमयी देवमूर्त्तिका सादृश्य देख कर ऐसा निर्णय कर गये हों।

बेकासी (मौलाना)—एक मुसलमान-कविका नाम। ये सम्राट् अकबरके समय जीवित थे।

वेकुक—मुसलमानोंके एक फिर्केका नाम। धर्मप्रतारक एक मुसलमान नकली फकीर इसके चलानेवाले थे। १८वीं सदीके पहले भागमें इस व्यक्तिने दिल्ली राजधानीमें उपस्थित हो कर जनसाधारणमें घोषणा प्रचारित की; कि मैंने ही यह अभिनव कुरान पाया है। इसमें धर्मका सार लिपिबद्ध है। इस कुरानका भाव स्वयं ईश्वरने व्यक्त किया है, इत्यादि। लोग यह बात सुन और ग्रंथके मर्म और मूलतत्त्वसे अवगत हो कर शीघ्र उसके चेले बन गये। देखते देखते इस नये कुरानवालोंका एक सम्प्रदाय कायम हुआ। इस सम्प्रदायके गुरु या आचार्य वहांके मौलवी वेकुक नामसे पुकारे जाते हैं और इनके चेले फरायुद। उक्त नकली मुसलमान फकीरने प्राचीन फारसीकी एक किताबसे कितने ही वचन उद्धृत कर जो अपने मतके अनुकूल थे, अपनी कल्पनासे इस नकली कुरानकी सृष्टि की थी।

वेक्षण (स० क्ली०) अव-ईक्ष-ण्वुल् अवस्यादिलोपः। अवेक्षण, अच्छी तरह खोजना या ढूंढ़ना।

वेग (सं० पु०) विज-घञ्। १ प्रवाह। पर्याय—ओघ, वेणी, धारा, जव, रंह, तर, रय, स्यद। २ महाकालफल। ३ रेतः, शुक्र। (हेम) ४ मूत्रविष्ठादिकी निर्गम प्रवृत्ति। ५ न्यायके अनुसार २४ गुणान्तर्गत गुणविशेष, संस्कार गुण, वेगाख्य संस्कार। क्षिति, जल, तेज, वायु और मनः इनमें वेगाख्य संस्कारकी विद्यमानता देखी जाती है। (भाषापरिच्छेद)

वेग शब्दका साधारण अर्थ गति है। न्यायके अनुसार नौ द्रव्योंमें उक्त क्षित्यादि पांच ही गतिशील हैं अर्थात् जगत्में जितने प्रकारके गतिविशिष्ट पदार्थ दिखाई देते हैं, उन सबोंमें उल्लिखित पांच द्रव्योंका वेग अन्यतम अंश है। यह वेग स्थूलदृष्टिमें कुछ तो जागतिक पदार्थमें स्वतःप्रवृत्त और कुछ काल और कारणान्तर सापेक्ष अवस्थामें विद्यमान देखा जाता है। ग्रहनक्षत्रादिका वेग मूलमें स्वतःप्रवृत्त है। किन्तु कारणान्तरमें इनमें किसी किसीके वेगकी ह्रास-वृद्धि होती रहती है। क्षिति, जल, वायु और अग्नि आदि तेजः हैं, इन सबोंका वेग कारणान्तरसापेक्ष है। शरीर, मन और मनका वेग काल और कारणान्तरसापेक्ष है। जलका वेग साधारणतः नीचेकी ओर, कारणान्तरमें ऊपरको और तिर्य्यग्भावसे भी हो सकता है। मूल बात है, कि कारणान्तरसे जिन वेगोंकी उत्पत्ति होती है, उनकी ह्रास-वृद्धि और दिक्विदिक्के सम्बन्धमें कुछ निर्देश नहीं है। वे नियत ही तत्प्रवर्त्तक कारणके अनुवर्त्ती हैं।

सुविधाके अनुसार सांसारिक और शारीरिक कार्यके उन्नतिसाधनके लिये हमें कितने वेगोंकी परिवृद्धि और कितने ही वेगोंका निरोध करना पड़ता है। सोच-विचार कर देखनेसे जगत्की उन्नतिका कारण भी वेग है और अवनतिका कारण भी है। यथार्थ दिग्निर्णय कर वेगके प्रवर्त्तन कर सकने पर ही जगत्में उन्नति-

लाभ किया जा सकता है। दिग्हारा हो कर अयथाभावसे वेगका परिचालन ही अवनतिका कारण है। दिग्निरूपण करनेमें समर्थ हो कर ही आर्य ऋषियोंने जगत्में शीर्षस्थान अधिकार किया था और वर्त्तमान पाश्चात्य विज्ञानविद् पण्डित एकमात्र तेजोवेगके कार्यकारित्वकी पर्यालोचना करके ही आज शिल्पनैपुण्यमें जगत्के शीर्षस्थान पर चढ़नेमें उद्यत हो रहे हैं।

किसी अभिलषित वस्तुके प्रति मनका एकान्त वेग होने पर यदि कारणान्तरसे वह अप्रतिहत हो, तो लोगोंके मनमें उस समय क्रोधवेगकी उत्पत्ति होती है, क्रोधप्रदर्शनका स्थानाभाव होनेसे मोह उपस्थित होता है। इससे ही स्मृतिभ्रंश होता है, स्मृतिभ्रंशसे बुद्धिनाश और अन्तमें जीवन तक नष्ट हो या न हो लोगोंको मृत्यु तुल्य होना पड़ता है। अतएव इन सब अवस्थाओंमें मनको क्रम क्रमसे संयत कर विषयान्तरमें अर्थात् सद्विषयमें लिप्त करना कर्त्तव्य है। सिवा इसके शास्त्रान्तरमें और भी जिस जिस विषयके वेगनिरोधसे जो सब अनिष्ट हो सकता है, नीचे क्रमशः उनका उल्लेख किया जाता है।

चरकमें लिखा है, कि मल, मूत्र, शुक्र, वायु, कै, हफानी, उद्गार, जुभांई, क्षुधा, पिपासा, अश्रु, निद्रा और श्रम जनित विश्वास—इन सबका वेग रोकना न चाहिये; मलवेग रोकनेसे पक्वाशय और मस्तकमें शूलवत् वेदना होती है। मल और अधोवायुके रोधमें पैरकी पिंडलियोंमें दर्द और उदराध्मान—ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। इससे स्वेदक्रिया, अभ्यङ्ग, अवगाहन, गुह्यमें फलवर्त्तिप्रयोग, वस्तिकर्म और वातानुलोमक अन्नपानादि हितकर है। मूत्रवेग धारण करनेसे मूत्राशयमें और लिङ्गमें शूलवत् वेदना, मूत्रकृच्छ्र, शिरःपीड़ा व्यथा निबन्धन देहमें नमन (झुकना) और वङ्क्षणद्वयमें आकर्षणवत् यन्त्रणा, ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें स्वेदक्रिया, अवगाहन, अभ्यङ्ग, घृतका अवपीड़ (नस्यविशेष) और अनुवासन, निरूहण और उत्तरवस्ति—ये तीन तरहके वस्तिकर्म करने चाहिये। शुक्रवेग धारण करने पर लिङ्गमें और अण्डकोषमें वेदना, अङ्गमर्द, हृदयमें व्यथा और मूत्रकी विबद्धता होती है। इन सब लक्षणोंके दिखाई देने पर अभ्यङ्ग, अवगाहन, मदिरापान, कुक्कुटमांस, शालीधानका चावल, दुग्ध और निरूह हितकर है। अवस्थाविशेषमें इसमें मैथुन क्रिया भी प्रशस्त है।

अधोवायुका वेगधारण करने पर वात, मूत्र और पुरीषके अप्रवर्त्तन, उदराध्मान, क्लान्ति, उदरमें वेदना और तोंद शूलादि अन्यान्य वातज पीड़ा होती है। इस रोगमें स्नेह, स्वेद, फलवर्त्ति और वातानुलोमक अन्नपान और वस्ति प्रशस्त है। वमनका वेगधारण करनेसे कण्डु, कोठ, अरुचि, व्यङ्ग, शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ वमनवेग और विसर्प—ये सब उपद्रव उपस्थित होते हैं। इस अवस्थामें भोजनके बाद वमन, धूमपान, उपवास, रक्तमोक्षण, रुक्ष अन्न और पानीय, व्यायाम और विरेचन (जुलाब लेना) कर्त्तव्य है। क्षाव अर्थात् हफनीका वेग धारण करनेसे मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्दित रोग, अर्द्धावभेदक, (अधकपारी) और इन्द्रियदौर्बल्य—ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। इससे मस्तकमें तैलाभ्यङ्ग और वातघ्न धूम, नस्य और खाद्य तथा आहारके बाद घृतपान हितकर है। उगारवेगेरद् निरोधमें हिचकी, खांसी, अरुचि, कम्प, हृदय और वक्षस्थलकी विबद्धता, ये लक्षण उपस्थित होते हैं, किन्तु इनमें हिचकी रोगकी चिकित्सा करनेसे सब उपसर्ग ही नष्ट हो जाते है। जुभाई रोकनेसे देहके विनमन, आक्षेप, पर्वोंके आकुञ्चन, स्पर्शशक्तिका विलोप, शीतजनित कम्पन, और विना शीतके भी हाथ पैरमें कंप कपी आदि लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोगमें वातघ्न औषध और पाचनादि व्यवस्थेय है। क्षुधाका वेग रोध करनेसे देहकी कृशता, दुर्बलता, विवर्णता, अङ्गमर्द, अरुचि और देहका घूमना, ये सब लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें स्निग्धाक लघु भोजन करना चाहिये। पिपासा रोकनेसे कण्ठ और मुख सूख जाता, बधिरता, श्रान्तिबोध, श्वास और हृदयमें व्यथा उपस्थित होती है। इस अवस्थामें शीतल तर्पण अर्थात् मन्थ, यवागू आदि शीतल पथ्य देना चाहिये।

शोकादिजनित अश्रुवेग धारण करनेसे नासास्राव,

चक्षुका लाल होना, हृदुरोग, अरुचि और गात्रघूर्णन आदि लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें निद्रा, मद्य और प्रिय वाक्य हितकर है। निद्राका वेग संवरण करनेसे जुमाई, अङ्गमर्द, तन्द्रा, शिरोरोग और नेत्रमें भारीपन, ये लक्षण दिखाई देते हैं। ऐसी अवस्थामें निद्राकी चेष्टा और हाथ पैर पर हाथ फेरना, या सब अङ्गोंको मर्दन करना उचित है। श्रमजनित निश्वासवेग धारण करनेसे गुल्म, हृदुरोग और सम्मोह उत्पन्न होता है। इसमें विश्राम और वातघ्न क्रिया हितकर है।

जिनका वेग धारण करना आवश्यक है, अब उनका उल्लेख किया जाता है। यथा—अनिष्टकर साहस, लोभ, शोक, भय, क्रोध, द्वेष, अभिमान, परनिन्दा, निर्लज्जता, किसी विषयके प्रति अत्यन्त आसक्ति, परधन-विषयक स्पृहा, अतिकर्कश, दूसरेके विशेष अनिष्ट-सूचक, मिथ्या और अनुपयुक्त स्थलमें वाक्यप्रयोग, स्वभावतः या परपीड़नार्थ चौर्य, परस्त्रीसम्भोगेच्छा, और हिंसादिकी प्रवृत्ति, इन यथानिर्दिष्ट कायिक, वाचिक और मानसिक वेगोंको ऐहिक और पारत्रिक सुखाभिलाषी व्यक्ति मात्रको यथायथ भावसे मनको क्रम क्रमसे संयत कर धारण करना चाहिये।

(चरक सू० ७ अ०)

द्यूतक्रीड़ा आदिका परिवर्जन, शिक्षाके लिये उत्साह, परोपकार आदि सदनुष्ठानमें प्रवृत्ति आदि मानसिक वेगकी यथोचित परिवृद्धि करना आवश्यक है। क्योंकि, ऐसा होनेसे इहकालमें क्यों, परकालकी उन्नतिका पथ लोगोंके लिये साफ होता है।

विज्ञानमें वेग गतिके शक्तिपर्याय रूपसे निरूपित हुआ है। इससे वेगके बलाबलका वर्णन करनेसे पहले गति और उसकी शक्तिका न्यूनाधिक जानना आवश्यक है। विज्ञानमें प्रत्येक पदार्थकी एक स्थिति और गति निर्द्धारित है। एक स्थानसे दूसरे स्थान जानेको गति कहते हैं और उसका अभाव ही स्थिति है। किसी निर्दिष्ट वस्तुके सम्बन्धमें किसी वस्तुकी स्थिति परिवर्त्तित हो तो उसको सचल कहा जाता है। यदि कोई वस्तु एक स्थानमें ही जड़की तरह निश्चेष्ट भावसे रहे, तो उसको निश्चल समझा जाता है।

सापेक्ष और निरपेक्ष भेदसे गति और स्थिति दो तरहकी है। किसी एक वस्तुके साथ तुलना कर अन्य किसी वस्तुकी गतिका अनुभव किया जाता है। यदि वस्तु वास्तविक निश्चल हो, तो उस वस्तुकी गति निरपेक्ष गति है और इसके विपरीत यदि किसी वस्तुको निश्चल समझ अन्य किसी वस्तुकी निरूपण किया जाय, वह यदि यथार्थमें निश्चल न हो, तो उक्त गतिको सापेक्ष गति कहते हैं।

यदि कोई वस्तु अनन्त आकाशके सम्बन्धमें नियत एक स्थानमें ही स्थिर हो, तो उसकी उस स्थितिको निरपेक्ष स्थिति और यदि किसी वस्तुको चारों ओरसे वस्तुसम्बन्धमें निश्चल समझने पर भी अनन्त आकाशके सम्बन्धमें उसकी अवस्थितिका हमेशा परिवर्त्तन होते देखा जाय, तो ऐसी दशामें उसकी वैसी निश्चलता या स्थितिको सापेक्ष स्थिति कहते हैं। निरपेक्ष गति या निरपेक्षस्थिति कहीं भी देखी नहीं जाती। क्योंकि, हम लोग जहां जहां स्थिति और गति देखते हैं, वे सभी आपेक्षिक कही जाती हैं।

रेलगाड़ीमें इधर उधर आने जानेके समय हम गाड़ीके गति-निरूपण करनेमें गाड़ीको निश्चल समझ कर ही इसके द्रुतगामीकी धारणा करते हैं और इस गाड़ीमें जो सब मनुष्य, बैल तथा वस्तुएं रखी रहती हैं, वे जो वास्तविक स्थिर नहीं हैं, यह भी हम समझ सकते हैं। क्योंकि, गाड़ीकी गतिके साथ उसको अन्तर्गत वस्तु या व्यक्तिकी भी गति सिद्ध समझी जाती हैं।

पर्वत, वृक्ष और अट्टालिका आदि स्थावर पदार्थ गाड़ीको गतिके सम्बन्धमें निश्चल हैं ऐसा प्रतीत होने पर भी वे यथार्थमें निश्चल नहीं। क्योंकि पृथ्वी उनको वक्ष पर धारण कर नियत ही पूर्वकी ओर दौड़ रही है। सूर्य भी पृथ्वी आदि ग्रहोंके साथ-एक दूसरे विशाल सूर्यके चारों ओर तथा वह सूर्य भी सम्भवतः हमारे इस सौरजगत् और अन्यान्य जगत् ले कर एक महान् सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण कर रहे हैं। मालूम होता है, कि इसी कारणसे इस विश्व संसारमें किसी पदार्थको एक मुहूर्त्तके लिये भी निरपेक्ष गति या स्थिति प्राप्त नहीं होती।

पाश्चात्यजगत्‌में पहले गैलिलिओ, पीछे न्यूटन और इसके बाद हुक्, हुगेन और रेन् आदि वैज्ञानिक धीरे धीरे गतिका एक बल या शक्ति निर्द्धारण कर निम्नलिखित नियमावली (Laws of motion) अवधारण कर गये हैं। ये नियम तीन हैं—

१. प्रत्येक वस्तु ही निश्चल भावसे विद्यमान है, ऋजु अथवा एक सीधी रेखा पर सर्वदा एक भावसे गति हो रही है। केवल अनिर्दिष्ट कोई शक्तिरूप ही इसका यह भाव परिवर्त्तन करनेमें बाध्य होता है।

२. गतिका परिवर्त्तन केवल बलके दबावके अनुपातसे ही संघटित होता है और जिस सीधी रेखा पर बलका कार्य्य सम्पादित होता है, उस रेखाकी ओर ही कार्य्य सम्पादित हुआ करता है।

३. प्रत्येक कार्यके ही सब समयमें सम और विषम फलोत्पत्ति होती रहती है। अथवा किन्हीं दो वस्तुएं के परस्परके कार्य्य समान होने पर भी एक ही सीधी रेखा पर उनकी विपरीत गति सूचित होती है।

इस शेषोक्त नियमके उदाहरण स्वरूप कहा जाता है, कि जैसे घोड़ेको लगाम पकड़ कर खींचनेसे घोड़ा पीछे हट आता है, फिर उसी तरह खींच कर एक नावको भी सामनेकी ओर ले आया जाता है। ठीक उसी भावसे ही पृथ्वी सूर्यको और सूर्य पृथ्वीको अपनी अपनी ओर खींचते हैं और उसी एक नियमसे विद्युत् और चुम्बक (Electricity and magnetism) आकर्षण और विकर्षण शक्तिकी क्रिया उपलब्ध होती है।

जड़ वस्तुकी गतिका उत्पादन, परिवर्त्तन या निवर्त्तन जिससे साधित होते हैं, उसको शक्ति (Force) कहते हैं। निश्चल वस्तुको चलानेमें जैसे बल या शक्तिकी आवश्यकता है, उसी तरह सचल वस्तुको निश्चल करनेमें भी बलप्रयोगकी आवश्यकता है। बलप्रयोगसे ही गतिके दिग् या परिमाणका परिवर्त्तन उपलब्ध होता है। सुतरां गति और स्थितिसाधन एकमात्र बलका ही कार्य्य है। किसी निर्दिष्ट संख्यक बलको एकाई (Unit) स्वरूप अवलम्बन कर बलका परिमाण निर्द्धारित होता है। किसी जड़बिन्दु पर दो विपरीत दिशासे यदि दो बल प्रयुक्त हो और यदि यह बिन्दु किसी ओर न हट कर स्थिर रहे, तो इस बलको समान बल कहा जाता है। इस तरह दो या उससे अधिक बलके संघातसे जो कार्य्य होता है, एकमात्र बलसे उसी परिमाणका फल उत्पादन करनेमें जिस बलका प्रयोग आवश्यक होता है, उसको इस समष्टिका संघात बल कहते हैं। जैसे दो बलोंके संघातसे एक बल उत्पन्न होता है उसी तरह दो बलके विघातसे भी भिन्न भिन्न दो बल पाये जाते हैं। शक्ति देखो।

जड़ वस्तुकी गतिके बलानुसार ही वेग निरूपित होता है। यह वस्तु कैसे पथमें और कैसे वेगसे चलती है, इसका जानना प्रथम आवश्यक है। यदि अचल वस्तु एक सीधी रेखा पकड़ कर एक ही ओर दौड़ती है, तो उसको सीधी रेखा सम्बन्धीय या ऋजुगति कहते हैं। फिर यदि उसी वस्तुको नियत ही दिक्‌परिवर्त्तन करते देखा जाये, तो उसको वक्रगति कहते हैं।

वैज्ञानिकोंने वेगकी विभिन्नता देख उसके प्रकारका निर्देश किया है। एक गतिशील वस्तुको जड़ अवस्थासे पहले जो गति होती है, उसको Intial velocity कहते हैं। जैसे तोपके मुंहसे निकलते ही गोलेको वेग प्राप्त होता है। जिस वेगमें एक वस्तु अन्य दिशाकी ओर अग्रसर होती है या पीछेकी ओर लौटती है और जब दोनों प्राप्त गति होती है, अथवा एक स्थिर रहती है, तब उसको Relative velocity कहते हैं। एक परिमित एकाई संख्या (Number of units of space) प्रतिबादके दूसरे एकाई समयमें जिस वेगसे दौड़ती है, उस वेगको Unifom velocity कहते हैं। यदि उक्त एकाई संख्या पुनः पुनः गति परिवर्त्तन करती हो अर्थात् एक बार बढ़ती और दूसरी बार घटती हो, तो वह Veriable velocity कहलाती है। यह दो तरहकी है—१ वर्द्धित वेग या Accelerating velocity और २ ह्रासमान वेग या Retarded velocity। जहां बलसंघात होता है और यथार्थ वेगके परिमाणमें वैषम्य नहीं होता, उसको Virtual velocity कहते हैं।

गतिशक्तिके परिमाणको ही वेग कहते हैं। जो एक घंटेमें एक मील जाता है, उसका वेग घण्टेमें १ मील है। इसी तरह जो वस्तु एक घण्टेमें ५ या १० मील चलती

है, उसका वेग उसके अनुपातसे जानना। अर्थात् यदि कोई वस्तु ५ घण्टे में ५० मील पथ तय करती है, उसके वेगका परिमाण १ घण्टे में १० मील कहना होगा। अतएव घंण्टा और मील यदि क्रमसे काल और दूरत्वका एकाई ज्ञापक हो, तो १ घण्टेमें जो १ मील चलता है उसका वेग १ है। मिनटको कालका एकाई माननेसे उसका वेग ६० है। किन्तु साधारणतः १ सेकेण्डमें १ फुट चले, ऐसे एक सिद्धमानको (Standard measure) वेगकी एकाई कल्पना कर वेगका परिमाण गिना जाता है।

वेग दो प्रकारका है—सम और विषम। कालका परिमाण अल्प होने पर भी यदि जड़विन्दु समानकालमें समान दूर जाये, तो उस गतिके वेगको समवेग और उसको अन्यथाको विषमवेग कहते हैं। समवेगका परिमाण निर्देश करनेमें जड़विन्दु कितने समयमें कितनी दूर जाता है, पहले वह जानना आवश्यक है। मान लो, कि एक जड़विन्दु १ मिनटमें २०० गज जाये, तो पूर्वसिद्धान्तके अनुसार १ सेकेण्डको कालकी और १ फुटको दूरत्वकी एकाई स्थिर कर अङ्कपात करनेसे मालूम होता है,—

$$\frac{२००\times३}{१\times६०}=१०$$; फिर जो जड़विन्दु १५ घण्टेमें ४४० मील जाये, उसके वेगका परिमाण

$$=\frac{४४०\times१७६०\times३}{१५\times६०\times६०}=४३\frac{१}{४५}$$

इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि एकाई परिमित कालमें जड़वस्तु वेगपरिमित दूरत्वकी एकाई गमन करती है, अर्थात् दूर=वेग×काल। अतएव दूरत्व, काल और वेग इन तीनोंके बीच दो मालूम रहनेसे अनायास ही तीसरा जो मालूम नहीं है, जाना जा सकता है।

समगतिसम्पन्न सब वस्तुएं प्रति कालकी एकाईमें समान समान दूर गमन करती है, किन्तु विषमगतिसम्पन्न वस्तुओंके गमनमें वैसा कोई नियम नहीं है। इसीलिये समगतिके स्थानमें दूरत्वकी संख्यासे भाग देने पर वेगकी संख्या मिलती है। नियत परिवर्त्तनीय विषमगतिविशिष्ट कोई वस्तु किसी निर्दिष्ट समयमें जिस भावसे गमन करती है, ठीक उसी भावसे चलनेसे वह वस्तु प्रतिकालकी एकाई जितना दूर गमन करती है, वही उसका उस निर्दिष्ट क्षणके वेगका परिमाण है।

क्षेत्रके न्यूनाधिकके अनुसार यदि किसी सचल जड़विन्दुका वेग उत्तरोत्तर वर्द्धित होता है, तो उसको वर्द्धनशील या उपचीयमान वेग और उसके विपरीत अर्थात् जहां सचल वस्तुका वेग क्रमशः वर्द्धित न हो क्रमागत क्षय प्राप्त होता रहे, वहां उसको अपचीयमान या क्षयशील वेग कहा जाता है।

यदि किसी जड़विन्दुका वेग समान कालमें समान परिमाणसे हमेशा बढ़ता रहे तो वह समवर्द्धमान वेग कहा जाता है। इसको अन्यथा होनेसे उसी वेगको विषम वर्द्धमान वेग कहते हैं। समवर्द्धमानके स्थानमें एकाई परिमित कालमें जो वेग बढ़ता है, वही वेग वृद्धिका मान है और विषम-वर्द्धमान-वेगके स्थानमें किसी निर्दिष्ट समयमें जिस परिमाणसे वेग रहता है लगातार उसी एकाई परिमित काल तक उसी तरहका वेग उपस्थित रहनेसे जिस परिमाणसे वेगकी वृद्धि हो सके, वही उस निर्दिष्ट क्षणका वेगमान है।

पतनशील वस्तु समवर्द्धमान वेगका एक उत्कृष्ट उदाहरण है। जब एक वस्तु आश्रय-भ्रष्ट हो कर ऊपरसे नीचेको गिरती है, तब उसका वेग धीरे धीरे समभावमें बढ़ता है। पतनशील वस्तु साधारणतः एक सेकेण्डके अन्तमें जितना वेग होता है, दो सेकेण्डमें उसका दुगना और तीन या चार सेकेण्डके अन्तमें उसकी अपेक्षा तीगुना या चौगुना वेग उत्पन्न होता है। उसको कालकी संख्यासे गुणा करनेसे उस कालके अन्तमें जो वेग उत्पन्न हुआ है, वह मालूम हो जाता है। परीक्षा कर देखा गया है, कि पतनशील द्रव्य पहले सेकेण्डमें ३२·२ परिमित वेग पाता है; सुतरां २, ४, ५, ७, १० प्रभृति सेकेण्डमें पतनशील वस्तुका तद्गुणक अर्थात् ३२·२×२ इत्यादि वेगफल लाभ होता है।

पतनशील वस्तुका वेग जैसे कालकी वृद्धिके अनुसार वर्द्धित होता है वैसे दूरत्व नहीं होता अर्थात् कोई वस्तु एक सेकेण्डमें जितनी दूरमें गिरती है, दो सेकेण्डमें उससे

दुगुनी दूर और तीन सेकेण्डमें उससे तीगुनी दूरमें नहीं गिरती। वस्तुतः १ सेकेण्डमें कोई वस्तु जितनी दूर आ जाती है, दो सेकेण्डमें उसका चौगुना और तीन सेकेण्डमें उसका नौगुना आ कर गिरती है। अर्थात् कालके वर्गानुसार ही दूरत्वकी वृद्धि होती है।

परीक्षासे स्थिर हुआ है, कि पतनशील वस्तु मात्र ही पहले सेकेण्डमें १६'१ फुट नीचे गिरती है, सुतरां यह वस्तु २, ४, ५, ७, सेकेण्डमें कितनी दूर गिरेगी, उसका निरूपण करनेमें कालके वर्गसे गुणा करनेसे प्रयोजनीय फल मिलता है।

एक पर्वत-शिखरसे एक टुकड़ा पत्थर नीचे गिराया गया। यह टुकड़ा २॥ सेकेण्डमें जमीन पर आ गिरा। ऐसा होने पर उस पर्वतशिखरकी ऊंचाई कितनी होगी? वह टुकड़ा २॥ सेकेण्डमें $१६'१ \times (२॥)^2 = १६{\cdot}१ \times \frac{२५}{४} = \frac{४०२{\cdot}५}{४} = १००'६२५$ फीट ऊंचाईसे गिरा था अर्थात् शिखरकी ऊंचाई प्रायः १०१ फीट है।

फिर कोई वस्तु यदि ऊपरको फेंकी जाये, तो मध्याकर्षणकी प्रतिकूलता वशतः वह समान वेगसे न उठ कर प्रति सेकेण्डमें क्रमशः ३२'२ फुटके क्रमसे ह्रास को प्राप्त होती है। इससे क्रमशः समूचा वेग नष्ट हो जाता है और फेंकी हुई वस्तु ऊपर न उठ कर फिर नीचेकी ओर गिरती है। यदि कोई द्रव्य ऐसे वेगसे फेंका जाय, कि प्रति सेकेण्डमें १६१ फुट ऊंचा जा सके और मध्याकर्षणकी प्रतिवन्धकता न हो, तो भी प्रथम सेकेण्डके अन्तमें उसका वेग $१६१ - ३२'२ = १२८'८$ और पांचवें सेकेण्डके अन्तमें ही उसका वेग $१६१ - ५ \times ३२'२ = ०$ होगा। सुतरां यह वस्तु ५ सेकेण्डके बाद और ऊपर न जा कर नीचे गिरेगी। इससे समझाया गया, कि पतनशील वस्तुका वेग प्रति सेकेण्ड ३२'१ परिमाणसे वर्द्धित होता है और उत्पतनशील वस्तुका वेग वैसे ही प्रत्येक सेकेण्डमें इसी परिमाणसे कम हो जाता है।

यदि कोई जड़विन्दु भिन्न-भिन्न ओर एक ही समय दो समवेगको प्राप्त हो, तो इनके संघातवेगका दिक् और परिमाण एक समान्तर क्षेत्रके विपरीत कोनेमें प्रकट होगा।

यदि क नामक विन्दुको इस जड़विन्दुका स्वरूप पकड़ कर उससे क्रमसे क ख और क ग दो वेगकी दिशा और परिमाण प्रकट किया जाये, तो इन दो रेखाओं पर अङ्कित समान्तराल क्षेत्रके जिस कोणमें क विन्दु अवस्थित है ठीक उसके विपरीत कोणको ओर वेग दौड़ेगा।
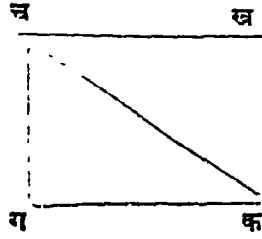
उदाहरण स्वरूप कहा जा रहा है, कि क विन्दु समतल जलराशिकी एक नाव है; यह ख और ग तक एक ही समयमें पहुंच सकती है; किन्तु यदि युगपत् यह दोनों ओरसे समान वल प्रयुक्त हो, तो यह नाव इन दोनों ओरमें किसी ओर न जा कर 'क च' वर्ण रेखा अवलम्बन कर उसी ओर जायेगी। उसका वेग उसी ओर प्रवाहित होगा।

यदि कोई जड़विन्दु एक ही समय दो भिन्न भिन्न दिशासे दो भिन्न भिन्न परिमाण समवर्द्धन वेगको प्राप्त हो और यदि किसी विन्दुको इस विन्दुके स्वरूपकी कल्पना कर उससे दो सीधी रेखायें खींच कर उनकी वेगवृद्धिका वेग और परिमाण निर्देश किया जाये, तो उस समान्तराल क्षेत्रके जिस कर्णका एक प्रान्त उस विन्दुमें संलग्न है, उसके द्वारा उनके संघात समवर्द्धमान वेगवृद्धिका दिक् और परिमाण प्रकाशित होगा।

यदि 'ख क ग' कोई एक समकोण हो, और यदि 'क ख' और 'क ग' का परिमाण क्रमशः ३ और ४ के समान हो, तो 'क च' का परिमाण ५ के बराबर होगा। सुतरां वल समान्तराल क्षेत्रस्थलमें ऐसा समझना होगा, कि क विन्दुमें प्रयुक्त क ख और क ग की ओर कार्यकारी ३ सेर और ४ सेर परिमित दो वल कार्यतः क च की ओर कार्यकारी ५ सेर परिमित एक वलके समान है। फिर वेग समान्तराल क्षेत्रस्थलमें ऐसा समझना होगा, कि क विन्दुमें यदि एक समय ऐसे दो वेग प्रयुक्त हों, कि उनमेंसे एकके प्रभावसे वह विन्दु किसी निर्दिष्ट कालमें क ख की ओर ३ फुट और दूसरेके प्रभावसे उसी समयमें ४ फुट जा सके, तो यह विन्दु उक्त समयमें क च की ओर ५ फुट जायेगा। फिर वेग

वृद्धिविषयक समान्तराल क्षेत्रस्थलमें ऐसा समझना होगा, कि क बिन्दु यदि क ख और क ग की ओर इस तरह दो समवर्द्धमान वेगको प्राप्त हों, कि उनके प्रभावसे किसी निर्दिष्ट समयमें क ख और क ग की ओर क्रमशः वेगके ३ और ४ एकाई परिमाणसे उसके वेगकी अधिकता हो, तो कार्यतः इस बिन्दुका वेग क च की ओर वेगके ५ एकाई परिमाणसे वेगकी वृद्धि होगी।

वेग और वेगवृद्धि संघात और विघातविषयक प्रक्रियाएं सर्वतोभावसे बलसंघात और बलविघात-घटित प्रक्रियाके अनुरूप हैं। इसीलिये उनका विशेष विवरण यहां लिखा न गया। शक्ति शब्द देखो।

६ त्वरा, शीघ्रता। ७ आनन्द, आह्लाद। ८ दृढ़ प्रतिज्ञा। ९ उद्यम। १० प्रणय। ११ आम्रविशेष। १२ वाणपति। १३ वृद्धि। १४ प्रवृत्ति। १५ महाज्योतिष्मती लता। (वैद्यक नि०)

वेगग (सं० त्रि०) वेगेन गच्छतीति गम-ड। १ तेजीसे चलनेवाला।

वेगगा (सं० स्त्री०) वेगवती नदी, जिस नदीकी धारा तेज हो।

वेगदर्शी (सं० पु०) एक बन्दरका नाम।

वेगधारण (सं० क्ली०) मल आदिका वेग रोकना।

वेगनाशन (सं० क्ली०) वेगस्य नाशनं येन। श्लेष्मा। इसके द्वारा देहके स्रोत रुद्ध हो मल आदिके निकलनेमें रुकावट आती है, इससे इसका वेगनाशन नाम हुआ।

वेगनिरोध (सं० पु०) वेगधारण।

वेगनूरिन खां कुचीन—एक मुगल सेनापतिका नाम। उन्होंने मुगल सम्राट् अकबरशाहके एक सेनापति मुइजूलमुल्कके अधीन खैराबादके युद्धमें विशेष प्रसिद्धि लाभ की थी। इसके बाद सम्राट्के राजत्वमें ३२वें और ३३वें वर्षमें यथाक्रम अबुल मतलब और कादिक खांके अधीन उन्होंने तारकियोंके साथ युद्ध किया था। उनके अधीन एक सहस्र सैनिक रहते थे। १००१ हिजरीमें उनकी मौत हो गई।

वेगम—(बेगम) उच्चकुलोद्भव मुसलमान रमणियोंकी एक उपाधि। साधारणतः मुगल बादशाहकी पत्नियां इसी उपाधिसे सम्मानित होती हैं। मुगल बेगकी उपाधि पुरुषके लिये और बेगम उपाधि स्त्रीके लिये व्यवहृत होती है। पठानोंमें बीबी, निसा, खनुम, खतुस, बानु आदि उपाधियां 'बेगम' की तरह ही सम्मान-सूचक हैं। इसलिये बेगम या बेगम साहबा कहनेसे साधारणतः बादशाहकी पत्नी तथा रानीका बोध होता है।

वेगमगञ्ज—(बेगमगञ्ज) बङ्गालके नोआखाली जिलेका एक ग्राम। यहां एक थाना है। स्थानीय वाणिज्यकी समधिक उन्नति देखी जाती है।

वेगमपुर—(बेगमपुर) हुगली जिलेके अन्दर एक ग्राम इस ग्राममें रूईके व्यवसायकी उन्नति देखी जाती है।

वेगमपुर—(बेगमपुर) बम्बई प्रेसिडेन्सीके सोलापुर तालुकका एक ग्राम। यह भीमा नदीके किनारे अवस्थित है। यहां सम्राट् औरङ्गजेबकी क्वांरी कन्या बेगामोका समाधिमन्दिर है। जब औरङ्गजेब दाक्षिणात्य विजय करनेके लिये यहां आया था, तब गांवके निकट मचान-पुरमें उसने छावनी डाली थी। उसी समय इस कन्याकी मृत्यु हुई थी।

वेगमपुर—(बेगमपुर) यशोहर जिलेके अन्तर्गत एक समृद्धिपूर्ण ग्राम। यहां देशी खृष्टानोंका वास है। यहांके अधिकांश लोग वस्त्र बुननेका ही काम करते हैं।

वेगमशमरू—काश्मीरवासिनी एक मुसलमान-रमणी। यह पहले नर्तकी अर्थात् नाचनेवाली वेश्या थी। लेकिन अपने भाग्यके बलसे पीछे एक राजाकी रानी बन गई। फ्रान्स राज्यके ट्रिवस ग्रामवासी वाल्टर रिनहार्ड नामक एक फ्रान्सीसी युवक नौसेनादलमें बढ़ईके काममें नियुक्त हो कर भारत आया था। इसके बाद इसने जलविभाग परित्याग कर विभिन्न स्थानोंमें देशी सामन्त रजवाड़ोंके अधीन काम किया था। बङ्गाल-के नवाब मीरकासिमके अधीन गिगरी नामक जो अर्मे-नियन सेनापति था, मौका देख कर रिनहार्डने उसके अधीन भी सेनाविभागमें काम किया। मीरकासिमके कौशलसे पटनेमें घिरे अङ्गरेजोंकी हत्या कर रिनहार्ड नवाबके प्रिय हो उठे। किन्तु शीघ्र ही वह अङ्गरेजोंके हाथ नवाबकी दुर्दशा और पतन अवश्यम्भावी समझ

कर बङ्गाल छोड़ कर भरतपुरराजको शरणमें आया। अन्तमें भरतपुरके सरदारका काम छोड़ कर उसने नजफ खांके अधीन सेनानायकका कार्य किया। सन् १७७८ ई०में उसकी मृत्यु हुई। नजफ खां देखो।

कुछ लोगोंका कहना है, कि रिनहार्डने अङ्गरेजी समार्स (Summers) नाम ग्रहण किया था। उसने पूर्वोक्त कई जगहोंमें कार्य कर बहुत धन एकत्र कर लिया था। एक दिन काश्मीरमें एक मुसलमान युवती नर्त्तकीसे उसका प्रेमालाप हुआ। कुछ ही समयके बाद उससे उसकी शादी हो गई। फलतः युवतीने अपना नाम बेगम शमरू रखा।

स्वामीकी मृत्युके बाद बेगम शमरु स्वामी द्वारा अर्जित सरदाहान राज्यकी अधीश्वरी हुई। सन् १७८१ ई०में इसने कैथलिक गिरजेमें खृष्टधर्म ग्रहण किया और सन् १७९२ ई०में फिर मुसो ले वाइसिउ नामक एक फ्रान्सीसीसे विवाह कर लिया। यह मनुष्य अपने स्वभाव दोषसे प्रजावर्गसे अप्रिय हो उठा और प्रजा विद्रोही हो रिनहार्डके पुत्र जाफर याब खाँके नेतृत्वमें वाइसिउको मारनेके लिये आगे बढ़ी। सुचतुरा समरूने प्रजावर्गके मनोवादमें अपना सर्वनाश उपस्थित देख कौशलसे नवपरिणत स्वामीको आत्महत्या कर लेनेका परामर्श दिया। वाइसिउ मारे गये। इसके बाद जार्ज टामसने जो बेगमका एक कर्मचारी था, इस विद्रोहका दमन किया। सन १८०२ ई०में जाफरको मृत्यु हुई। समरूने अपनी मृत्युके पहले अपनी नाती डेविड अकुर्लोनी डाइस सोम्ब्रेको उत्तराधिकारी बनाया। इसने केथलिकधर्मके गिरजे और विद्यालयोंको ३७४०००) रु० दान किया था।

वेगम सुलतान—एक मुगल-राजकुलललना। आगरेकी इतिमाद उद्दौलाकी मसजिदकी बगलमें इसका मकबरा मौजूद है। उस मकबरेमें जो शिलाफलक है उसमें लिखा है, कि सम्राट् हुमायूंके राजत्वकालमें १५३८ ई० को उसकी समाधि हुई। यह सेख कमालकी बेटी थी।

वेग महम्मद—सम्राट् अकबर शाहका एक सेनानायक।

वेगमाबाद—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेका एक नगर। यह मीरट शहरसे १४ मील तथा दिल्लीसे २८ मील दूर अक्षा० २८° ५५´ उ० तथा देशा० ८१° ५४´ पू०के मध्य अवस्थित है। करीब डेढ़ सौ वर्ष हुए ग्वालियरकी राजमहिषी रानी बालाबाईने यहां एक सुन्दर देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की। नगरके बाहर नगरस्थापयिता नवाब जाफरअलीकी प्रतिष्ठित एक मसजिद अभी भग्नावस्थामें पड़ी है। नगरकी श्रीवृद्धिके लिये १८५६ ई०की २०वीं धाराके अनुसार मैला फेंकने और पुलिस रखनेके लिये कुछ राजस्व वसूल होता है।

वेगराज वेगराजसंहिताके रचयिता। इन्होंने १४९४ ई०में उक्त ग्रन्थ की रचना की।

वेगरोध (सं० पु०) वेगविधृति, वेगधारण। मल, मूत्र या शरीरके इसी प्रकारके और किसी वेगको रोकना जो स्वास्थ्यके लिये हानिकारक होता है।

वेग शब्द देखो।

वेगवत् (सं० त्रि०) वेगोऽस्त्यस्येति वेग मतुप् मस्य वत्वम्। १ वेगविशिष्ट, वेगवाला। (पु०) २ विष्णु। (भागवत १३।१४९।५।३)

वेगवती—दाक्षिणात्यके काञ्चीपुर जनपदमें प्रवाहित एक नदी। काञ्चीपुरके समीप वेगवती और पलाड़के सङ्गमस्थलमें अवस्थित चिल्लिवलमको कोई कोई प्रत्नतत्त्वविद् प्राचीन पल्लवराजधानी विलवल नगर बतलाते हैं।

वेगवान् (सं० त्रि०) वेगपूर्वक चलनेवाला, तेज चलनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

वेगवाहिनी (सं० स्त्री०) १ गङ्गा। (रामा० १।४५।८) २ पुराणानुसार एक प्राचीन नदीका नाम। (मार्कण्डेयपु० ५७।२७) (त्रि०) ३ वेगपूर्वक चलनेवाली, तेज चलनेवाली।

वेगविघात (सं० पु०) शरीरसे निकलते हुए मलमूत्र आदि वेगोंको सहसा रोक लेना जो स्वास्थ्यके लिये हानिकारक समझा जाता है।

वेगवृष्टि (सं० स्त्री०) तीव्रवेगसे वर्षण, बड़ी तेजीसे बरसना।

वेगसर (सं० पु०) वेगेन सरति गच्छतीति सृ ट। १ वेगगामी अश्व, तेज चलनेवाला घोड़ा। २ खच्चर। (त्रि०) ३ वेगगामी, तेज चलनेवाला।

वेगा (सं० स्त्री०) बड़ी मालकंगनी, महाज्योतिष्मती।

वेगातिग (सं० त्रि०) वेगातिशय्य। वेगवशतः जो अतिक्रम किया जाय।

वेगानिल (सं० पु०) वेगविशिष्ट वायु, प्रवल वायु, तूफान।

वेगायम्मापेट—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलेका एक वडा गाँव जो रामचन्द्रपुर तालुकाके अन्तर्गत है। यह द्राक्षारामसे २ मील तथा रामचन्द्रपुरसे ५ मील दक्षिण पूर्व पड़ता है। ग्रामके पश्चिमांशस्थ ग्राम्यदेवीपीठके समीप बौद्ध प्रतिमूर्त्तिका निदर्शन पाया जाता है।

वेगित (सं० त्रि०) वेगः सञ्जातोऽस्य तारकादित्वादितच् (पा ५।२।३६) वेगविशिष्ट, जिसमें वेग हो।

वेगिन् (सं० त्रि०) वेग अस्त्यस्येति वेग इनि। १ वेगवान्, जिसमें वहुत अधिक वेग हो। पर्याय—जङ्घाकारिक, जाङ्घिक, तरस्वी, त्वरित, प्रजवी, जवन, जन। (पु०) २ श्येनपक्षी, वाज नामकी चिड़िया।

वेगिहरिण (सं० पु०) वेगी वेगवान् हरिणः। श्रोकारी मृग।

वेगी—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह इल्लोर नगरसे ६ मील उत्तर अवस्थित है। जनसाधारणका विश्वास है, कि वेङ्गीके तेलिङ्ग राजाओंने पहले यहां राजधानी वसाई थी। ६०५ ई०में चालुक्य-विजयके वादसे ही उस वंशका प्रताप जाता रहा। ४थी सदीमें उत्कीर्ण एक ताम्रफलकमें उस वंशको शालङ्कायणराजवंश कह कर वर्णित देखा जाता है।

शिलालिपि-प्रमाणसे और भी जाना जाता है, कि वेङ्गीराज्य दाक्षिणात्यका एक अति प्राचीन देश है। पल्लवगण यहां राजत्व करते थे। काञ्चीपुरके पल्लवराजाओंके साथ इनका नैकट्य सूचित होता है। प्रत्नतत्त्वविद् वुर्नेलका कहना है, कि यह राज्य २री सदीमें प्रतिष्ठित हुआ। चालुक्यराजाओं द्वारा वेङ्गीका अधःपतन होनेके बाद काञ्चीपुर ही पल्लवराजाओंकी राजधानी हो गया।

उक्त पेद्दवेगी नगर ही में प्राचीन राजधानी थी, यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती। क्योंकि, उसीके पास छिन्नवगी नामका एक और ग्राम देखा जाता है। वेगी नगरसे ५ मील दक्षिण पूर्व देण्डलूरु ग्राम तक पुराने महानोंका खण्डहर पड़ा है। वह प्रायः पेद्दवेगी और छिन्नवेगी तक विस्तृत है। यह विस्तृत ध्वंसावशेष प्राचीन वेङ्गी राजधानीको समृद्धकीर्त्ति है। इसीसे नगरकी प्राचीन वाणिज्य समृद्धि और श्रीसौन्दर्य्यकी कल्पनाकी जा सकती है। किंवदन्ती है, कि मुसलमानोंने वेगी और देण्डलूरके ध्वंसप्राय मन्दिरादिका प्रस्तर ले कर इलोरेका दुर्ग वनवाया था।

वेगूसराय—विहार और उड़ीसाके मुङ्गेर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २५° १५´ से २५° ४६´ उ० तथा ८५° ५१´ से ८६° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७६६ वर्गमील है।

विशेष विवरण वेगूसराय शब्दमें देखो।

वेगूर—वम्बईप्रदेशके महिसुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां पल्लवराजाओंको शिलालिपि विद्यमान है।

वेधराम—एक प्राचीन नगर। वर्त्तमान समयमें यह ध्वंसावस्थामें पड़ा है। यह अक्षा० ३४° ५३´ उ० तथा देशा० ६९° १६´ के मध्य कावुल नगरसे २५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। इस नगरके चारों ओर ईंटकी दोवार खड़ी है। मुद्रातत्त्वज्ञ भ्रमणकारी चार्लस मेसनने इस नगरको पर्य्यवेक्षण कर Alaxandria ad Caucasum नामसे इसकी तुलना की है। नगरके ध्वंसावशेषका अनुसन्धान कर मेसन और अन्यान्य प्रत्नतत्त्वविदोंने यहांसे प्रथम वर्षमें १८६५ ताम्र और कुछ रौप्य मुद्रा तथा अंगूठी, ताविज, कवच और अन्यान्य स्मृति निदर्शन पाये हैं। दूसरे वर्ष १६०० और उसके बाद २५००, फिर १३४७४ और सबसे पीछे १८३७ ई०में ६० हजार ग्रीक और रोमन, ग्रोकवाह्लिक, वाह्लिक, हिन्दूपारद, हिन्दू शक, शासनीय-हिन्दू और हिन्दू मुसलमान मुद्रा पाई गई। अध्यापक विलसनने अपने Ariana Antiqua ग्रन्थमें उन सव मुद्राओंसे अफगानिस्तान, मध्यएशिया और भारतका ऐतिहासिक सम्बन्ध निरूपण किया है। स्थानीय प्रवाद है, कि इस नगरमें मुसलमान राजाओंकी राजधानी थी। आगे चल कर महामारीसे यह नगर वीरान हो गया है। आज कल हिन्दुओंने इस नगरका वलराम नाम रखा है।

वेङ्कट (सं० पु०) द्राविड़ देशस्थित पर्वतभेद ।
(भागवत १०।१६।१६)

वेङ्कट—१ दाक्षिणात्यवासी एक पण्डित। इन्होंने रघुवीर गद्य नामक एक ग्रन्थकी रचना की थी। २ उत्तर रामचम्पूके प्रणेता, रघुनाथके पुत्र और अप्पयके पौत्र। ३ विजयनगरके एक राजा। आप अप्पय दीक्षितके प्रतिपालक थे। ४ शब्दार्थकल्पतरु नामक अभिधानके प्रणेता। १६वीं सदीके आरम्भमें इन्होंने उक्त ग्रन्थ सङ्कलन किया। ये मन्द्राजवासी वेङ्कटके पुत्र और सूर्यनारायणके पौत्र थे। ५ दाक्षिणात्यका एक प्राचीन तीर्थक्षेत्र। भागवतादिमें इस पुण्यमय क्षेत्रका परिचय है। भाग० ५।६।६ और १०।६।१३, भविष्योत्तरपुराणके तथा स्कन्दपुराणके वेङ्कटमाहात्म्यमें इसका विशेष विवरण दिया गया है।

वेङ्कट १म और २य—कर्णाटकके दो राजा। इनका दूसरा नाम वेङ्कटदेव भी था।

वेङ्कट अध्वरिन्—१ विधित्रयपरित्राणके प्रणेता। २ शृङ्गारदीपकभाण और श्रवणानन्दस्तोत्रके रचयिता। ३ श्रीनिवासचम्पूके प्रणेता। इनके पिताका नाम मशक था।

वेङ्कटआचार्य्य—१ तत्त्वमार्त्तण्ड नामक ग्रन्थके रचयिता। कोई कोई इन्हें वेंगट आचार्य्य भी कहते हैं। २ अद्वैतविद्याविचार। ३ अशौचदशकके रचयिता। ४ अलङ्कारकौस्तुभ, गजसूत्रवादार्थ, णत्वखण्डन, तात्पर्य्यदर्पण, नञ्सूत्रार्थवाद, पुच्छब्रह्मवादखण्डन, प्रच्छन्नब्रह्मवादनिराकरण, वेदान्तकौस्तुभ, वेदान्ताचार्य्यचरित्रवैभवप्रकाशिका, शिवादित्यमणिदीपिकाखण्डन, शृङ्गार-तरङ्गिणी नाटक और षष्ठ्यर्थदर्पणके प्रणेता। ये सुरपुरवासी थे। ५ अशौचशतकटीकाके कर्त्ता। ६ आचार्य्यचम्पूके रचयिता। ये परवस्तु वेङ्कटाचार्य्य नामसे प्रसिद्ध थे। ७ उत्तरचम्पूके प्रणेता। ८ जयतीर्थकृत कर्मनिर्णयटीकाकी टिप्पनीके प्रणेता। ये रोटि वेङ्कटाचार्य्य नामसे परिचित थे। ९ चिदानन्दस्तवराजटीकाकार। १० जैमिनिसूत्रटीका नाम्नी ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ११ तत्त्वचिन्तामणिदीधितिक्रोड़के रचयिता। १२ पादुकासहस्रके प्रणेता। १३ प्रणवदर्पणके प्रणेता। १४ प्रद्युम्नानन्द भाण और सुभाषितकौस्तुभके प्रणेता। ये अरशानिपाल वेङ्कटाचार्य्य नामसे प्रसिद्ध थे। १५ मैमीपरिणय नाटकके रचयिता। १६ मीमांसामकरन्दके प्रणेता। १७ यादवराघवीय नामक ग्रन्थके रचयिता। १८ योगग्रन्थका प्रणेता। १९ राघवपाण्डवीयकाव्यके प्रणेता। २० रामायणसारसंग्रहके प्रणेता। २१ वृत्तदर्पणके रचयिता। २२ वेदपादस्तवके रचयिता। २३ श्लेषचम्पूरामायणके प्रणेता। २४ सात्विकपुराणके प्रणेता। २५ सिद्धान्तसंग्रह नामक वेदान्त ग्रंथके रचयिता। २६ स्मार्त्तप्रायश्चित्तविनिर्णयके प्रणेता। २७ हयग्रीवदण्डक नामक ग्रंथके रचयिता। २८ संकल्पसूर्योदय नाटकके प्रणेता। ये अनन्तसुरके पुत्र और वेङ्कटनाथ नामसे भी परिचित थे। २९ कोकिलसन्देशकाव्यके प्रणेता। इनके पिताका नाम तातय था। ३० सिद्धान्तरत्नावली नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम ताताचार्य था। ३१ लक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्र, विश्वगुणादर्श और हस्तिगिरिचम्पू नामक तीन ग्रन्थोंके प्रणेता। काञ्चीनगरमें इनका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम रघुनाथ दीक्षित और पितामहका नाम अप्पय दीक्षित था। ३२ अघनिर्णय और तट्टीका, रहस्यत्रयसार तथा शतदूषणी नामक ग्रन्थके कर्त्ता। ये श्रीरङ्गनाथके पुत्र तथा वेङ्कटेश आचार्य नामसे भी परिचित थे।

वेङ्कटकवि—१ काञ्चीपुरनिवासी एक कवि। इन्होंने कन्दर्पदर्पण नामक एक भाणकी रचना की थी। २ नरसिंह भारतीविलासके प्रणेता। ३ वेङ्कटकवीय नामक काव्यके प्रणेता।

वेङ्कटकृष्ण—१ पद्मनाभके पुत्र और जयकृष्णके गुरु। २ एक धर्मशास्त्रकार। ३ विवृति और शब्दभेदनिरूपण नामक व्याकरणद्वयके प्रणेता।

वेङ्कटकृष्णदीक्षित—उत्तरचम्पू, कुशलवविजय नाटक, नटेश विजयकाव्य और रामचन्द्रोदयकाव्यके प्रणेता। ये वेङ्कटाद्रि उपाध्यायके पुत्र तथा यज्ञरामके पुत्र रामभद्रके समसामयिक व्यक्ति थे।

वेङ्कटगिरि—१ दाक्षिणात्यके मन्द्राजप्रदेशके नेल्लूर जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील है। २ उक्त जिलेका एक नगर, वेङ्कटगिरि तालुक और उसी

नामकी जमींदारीका विचारसदर। यह अक्षा० १३° ५८' उ० तथा देशा० ७९°३८' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक डिपटी तहसीलदार हैं।

३ उक्त जिलान्तर्गत एक विस्तृत भूसम्पत्ति। भूपरिमाण २११७ वर्गमील है। समस्त वेङ्कटगिरि, दर्शि पेदिलो, पोल्लूर तालुका, गुडूरकनिगिरि और अङ्गोल तालुकका कुछ अंश ले कर यह बड़ी जमींदारी बनी है। यहांके जमींदार गवर्मेण्टको वार्षिक ३७४३१०) रु० पेशकस देते हैं। इस जमींदारीके प्रतिष्ठातासे वर्त्तमान वंशधर २८वीं पीढ़ीमें हैं।

वेङ्कटगिरि—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आरकट जिलेके चित्तूर तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह पामन जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां एक प्राचीन देवमन्दिर और उस मन्दिरके समीप एक पुष्करिणी है। लोगोंका विश्वास है, कि पुष्करिणी पुण्यतोया है तथा उसमें मानसिक करके स्नान करनेसे मनस्कामना सिद्ध होती है।

वेङ्कटगिरि—दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध गण्डशैल। यह स्थान देवताओंका पुण्यक्षेत्र है। इसका दूसरा नाम वेङ्कटाद्रि और वेङ्कटाचल है। गरुड़पुराण, मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वामनपुराण, वराहपुराण, भविष्योत्तरपुराण, हरिवंश आदिके अन्तर्गत वेङ्कटगिरि-माहात्म्यमें वेङ्कटाचलमाहात्म्य वा वेङ्कटाद्रिमाहात्म्यमें इस स्थानका विशेष परिचय है।

वेङ्कटगिरिकोट—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आरकट जिलेके पामन तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा गाँव। एक समय यह स्थान समृद्धिसम्पन्न था। यहां पोलेगारोंने एक दुर्ग बनाया था।

वेङ्कटगिरिनाथ—यतीन्द्रमतदीपिकाके रचयिता श्रीनिवासदासके गुरु। ये वेङ्कटेश नामसे भी पूजित हैं।

वेङ्कटगुरुवाधूल—तत्त्वसंग्रहदीपिका नामक तत्त्वार्थदीपिका-टीकाके प्रणेता। ये श्रीशैलदेशिक (श्रीनाथ)-के पुत्र थे।

वेङ्कटनाथ—१ शरणागतिटीकाके प्रणेता। २ अशौचशतक, गृह्यरत्न और विबुधकण्ठभूषण नामको उसकी टीका, दशनिर्णय, पितृमेधसार और स्मृतिरत्नाकर नामक ग्रन्थके प्रणेता, रङ्गनाथके पुत्र और सरस्वतीवल्लभके पौत्र। ३ सर्वदर्शन संग्रहके मध्यगत रामानुजदर्शनोक्त एक प्राचीन पण्डित। ४ अभयप्रदानसार, अभयप्रदान, अभयप्रदानसार, गोपालविंशति, निक्षेपरक्षा, प्रसन्नमालिका और लक्ष्मीस्तोत्रके रचयिता तथा गोपालपञ्चाशत् और दयाशतकके प्रणेता। ५ प्रह्लादविजयकाव्यके प्रणेता। ६ ब्रह्मानन्दगिरिविरचित भगवद्गीताकी टीकाके टिप्पनीकार। ७ यमुनाचार्यकृत स्तोत्रके टीकाकार।

वेङ्कटनाथ वेदान्ताचार्य—१ अधिकारसंग्रह, तत्त्वमुक्ताकलाप, न्यायसिद्धाञ्जन, पादुकासहस्र, यदुवंशाविपञ्च-काव्य, रहस्यत्रयसार, संकल्पसूर्योदय और सुभाषितनीवि नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये द्राविड़वासी थे तथा १३वीं सदीके शेषभागमें विद्यमान थे। २ यतिराजसप्ततिके प्रणेता। ३ हयग्रीवस्तोत्रके रचयिता।

वेङ्कटपति देवराय—दाक्षिणात्यके एक हिन्दू राजा। विरिञ्चिपुरी इनकी राजधानी थी।

वेङ्कटपुर—मन्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलेमें भीमवरम् तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यहां सात सौ वर्षका एक देवमन्दिर है। स्थलपुराणमें उन देवमूर्त्तिका विशेष परिचय पाया जाता है।

मन्द्राज प्रदेशके सलेम जिलेमें उतङ्कराई तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम।

वेङ्कट वाजपेयी—१ शुल्वकारिकाके प्रणेता। २ प्रायश्चित्तशतद्वयीके रचयिता।

वेङ्कटविजयी—कर्मप्रायश्चित्तके प्रणेता।

वेङ्कटबुध, राविल्लु—चिन्नमभट्ट प्रणीत तर्कभाषाप्रकाशिकाके टिप्पनप्रणेता। दूसरे ग्रन्थमें इनका रोम्विल्लु वेङ्कटबुध नाम मिलता है।

वेङ्कटभट्ट—१ वेतालविंशतिके प्रणेता। २ भोंसलेवंशावलीके रचयिता। ३ अनुमध्वविजयके गूढ़ार्थप्रकाशिका नाम्नी टीकाकर्त्ता।

वेङ्कट-यज्वन्—१ कालामृत और उसकी टीकाके प्रणेता। यह ग्रन्थ ज्योतिषविषयक है। किसी किसी पुस्तकमें इसका कर्णामृत नाम मिलता है। २ यतिप्रतिवन्दनखण्डनके रचयिता।

वेङ्कट-योगिन्—क्रियायोगरामतारकमन्त्रटीकाके प्रणेता।

वेङ्कटराज—चतूरराशिभूवलिप्रकरणके प्रणेता।

वेङ्कटराजदीक्षित—चम्पूरामायण लङ्काकाण्डके रचयिता।

वेङ्कटराम—न्यायकौमुदीके प्रणेता।

वेङ्कटराय—सर्वपुराणार्थसंग्रहकार।

वेङ्कटराय—१ विजयनगरके एक राजा। अच्युतरायके पुत्र। विजयनगर देखो। २ नरगुण्डके एक सामन्त राजा। टीपूसुलतानने जब इनसे अधिक कर मांगा, तब इन्होंने पहले अङ्गरेजों और पीछे फरासीसियोंसे सहायता मांगी थी। टीपूने नानाफड़नविशकी बात न मान कर नरगुण्ड पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें वेङ्कटराय परास्त और वन्दी हुए तथा उनकी कन्या टीपूके अन्तःपुरमें लाई गई। यह घटना १७८५में हुई है। इस युद्धमें टीपूकी सेनाने रामदुर्ग पर अधिकार जमाया।

वेङ्कट शर्मा—शब्दार्थचिन्तामणिके प्रणेता।

वेङ्कटशास्त्री—अद्वैतानन्दलहरीके प्रणेता।

वेङ्कटशिष्य—वेदान्ततत्त्वसारके रचयिता।

वेङ्कटसमुद्रम्—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्काट जिलेके पालमन तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां पोलेगारोंका प्रतिष्ठित एक मन्दिर है।

वेङ्कटसुब्बाशास्त्री—भाषामञ्जरीके प्रणेता।

वेङ्कटाचल सूरि—१ सुवोधिनी नाम्नी काव्यप्रकाशटीकाके रचयिता। २ सुधापूर नामक टिप्पनके प्रणेता। यह ग्रंथ भास्कराचार्यकृत शिवाष्टोत्तरशतनाम ग्रंथकी टीका है।

वेङ्कटाचल—दाक्षिणात्यके उत्तर आर्काट जिलेके तिरुपति-के अन्तर्गत एक पवित्र तीर्थक्षेत्र। वेङ्कटगिरि देखो।

वेङ्कटाचलेश्वर—वेङ्कटगिरिस्थित शिवलिङ्गभेद।

वेङ्कटाचार्य—१ वेङ्कटाचार्यवादार्थ नामक न्यायशास्त्रके रचयिता। २ यादवाभ्युदय और वेङ्कटेश्वरमाहात्म्यके प्रणेता। शेषोक्त ग्रन्थ तेलगू भाषामें लिखा है।

वेङ्कटाद्रि—१ वेङ्कटगिरि। २ एक मराठा सरदार, रामराजके भाई।

वेङ्कटाद्रिनाथ—शिवगीताटीकाकार। ये वेङ्कटाद्रि नामक वा वेङ्कटेश्वर नामसे भी परिचित थे।

वेङ्कटाद्रिपालेम—मन्द्राजप्रदेशके कर्नूल जिलान्तर्गत मार्कापुर तालुकका एक बड़ा गांव। मार्कापुरसे यह २१॥० मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां एक सुप्राचीन विष्णुमन्दिर है। उक्त मंदिरके गर्भमें विजयनगरराज वेङ्कटपतिके शासनकालमें १५३६ ई०को उत्कीर्ण एक शिलाफलक देखा जाता है। १५४४ ई०में उक्त राज-वंशके राजा रामदेवकी भी एक शिलालिपि उस मन्दिरगात्रमें उत्कीर्ण देखी जाती है।

वेङ्कटाद्रिभट्ट—दाक्षिणात्यवासी एक पण्डित, तिरुमल भट्टके पिता।

वेङ्कटाद्रियज्वन्—एक पण्डित, सुरभट्टके पुत्र और मयूख-मालिकाके प्रणेता सोमनाथभट्टके भाई।

वेङ्कटाद्रियस—अशौचनिर्णय या स्मृतिकौस्तुभके प्रणेता।

वेङ्कट पेशवराय—एक मराठावीर। ये विजापुरराजके सेनापति थे।

वेङ्कटेश—१ जैमिनीसूत्रटीकाके प्रणेता, गङ्गाधरके पुत्र। २ स्मृतिसंग्रह और तदन्तर्भुक्त अशौच नामक दो ग्रंथों-के प्रणेता। ३ कालचक्रजातक, ताजिकसार, भाव-कौमुदी, मुहूर्त्तचिन्तामणि, योगार्णव और सर्वार्थ-चिन्तामणि नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ४ चतुः-श्लोकीटीकाके प्रणेता। ५ वृत्तरत्नावलीके प्रणेता। ६ स्मृतिसंग्रहके प्रणेता। ७ स्मृतिसारसंग्रहके रच-यिता। ८ हंससंदेशकाव्यके प्रणेता। ९ श्रीनिवास-विलासचन्द्रके प्रणेता।

वेङ्कटेश—दाक्षिणात्यस्थ सुप्रसिद्ध विष्णुमूर्त्तिभेद। इन देवताका मंदिर दाक्षिणात्यवासीका परम पवित्र तीर्थ है। यहां प्रति वर्ष सैकड़ों तीर्थयात्री इकट्ठे होते हैं। आदित्य-पुराण, पञ्चरात्र, ब्रह्माण्डपुराण, मार्कण्डेयपुराण और वराहपुराणके अन्तर्गत वेङ्कटेशमाहात्म्यमें इनका विशेष विवरण उल्लिखित है।

वेङ्कटेशकवच—धारणीय मन्त्रौषधभेद। अग्निपुराणमें इस कवचका विषय वर्णित है।

वेङ्कटेशकवि—उन्मत्तप्रहसन, कृष्णराजविजय, चित्रबन्ध-रामायण, भानुप्रबन्धप्रहसन, राघवानन्दनाटक, रामाभ्यु-दयकाव्य और वेङ्कटेश्वरीय काव्यके प्रणेता।

वेङ्कटेश शोभवोल—कृष्णामृततरङ्गिकाके रचयिता। राधागङ्गाधरके पुत्र और विनायकके शिष्य।

वेङ्कटेशपण्डित—१ जातकचन्द्रिकाके रचयिता। २ सन्मार्गमणिदर्पणके प्रणेता।

वेङ्कटेशपुत्र—त्रिपथगानाम्नी परिभाषेन्दुशेखरटीकाके प्रणेता।

वेङ्कटेश्वर—१ राघवाभ्युदयनाटकके प्रणेता। २ वेङ्कटेशप्रहसनके रचयिता।

वेङ्कटेश्वरकौण्डिन्य—शाब्दिक विद्वत्कविप्रमोदक और ललिता नाम्नी पतञ्जलिचरितटीकाके प्रणेता। ये दाक्षिणात्यमूर्त्तिके पुत्र और रामभद्रके शिष्य थे। ये १७वीं सदीके शेष भागमें विद्यमान थे। कुप्पुस्वामीने पतञ्जलिचरितकी अणुक्रमणिकामें इनका उल्लेख किया है।

वेङ्कटेश्वरदीक्षित—आग्नीध्रप्रयोग, दर्शपूर्णमासप्रयोग, वौधायनकर्मान्तसूत्रमीमांसा, वौधायनचयनमन्त्रानुक्रमणि, वौधायनमहाग्निचयनप्रयोग, वौधायनशुल्वमीमांसा, वौधायनसोमप्रयोग और टुप्टीकाके वार्त्तिकाभरण नामक टिप्पनके रचयिता।

वेङ्कप्प—कामविलासभाणके रचयिता।

वेङ्कप्पय्यप्रधान—अलङ्कारमणिदर्पण और चिदद्वैतकल्प तथा चिदद्वैतकल्पवल्ली नामक तीन ग्रन्थके प्रणेता।

वेङ्कय्यप्रभु—कुशलचम्पूके रचयिता।

वेङ्काजी—महाराष्ट्रपति शिवाजीके वैमात्रेय भाई। इन्होंने शिवाजीकी ओरसे अनेक वार युद्ध किया था।

वेङ्गवह—२४ परगनेके अन्तर्गत एक नदी। यह सोवनाली नामसे प्रसिद्ध है।

वेङ्गा—यशोर जिलेमें प्रवाहित नवगङ्गा नदीकी एक शाखा।

वेङ्गी—दाक्षिणात्यका एक प्राचीन देश। यह पूर्वघाट या करनण्डलके किनारे अवस्थित है। इसके पश्चिममें पूर्वघाट पर्वतमाला, उत्तरमें गोदावरी और दक्षिणमें कृष्णा नदी है। गोदावरी जिलेके इल्लोर तालुकके वेगी या पेड्डवेगी ग्रामका ध्वंसावशेष ही प्राचीन वेङ्गी राजधानीकी नष्टकीर्त्ति समझी जाती है। वेगी देखो।

चालुक्यराज २य पुलकेशीके भाई कुब्जविष्णुवर्द्धनने करीब ६१७ ई०में यहां पूर्वचालुक्य राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी। इसके बाद ७३३-७४७ ई०के मध्य पल्लव-सेनापति उदयचन्द्रने अश्वमेधयज्ञकारी निषादसरदार पृथ्वीव्याघ्रको परास्त कर वेङ्गी-राज्यसे मार भगाया। पूर्व-चालुक्यराज ३य विष्णुवर्द्धनने राजा नन्दिवर्माकी वश्यता स्वीकार की। इसके बाद ७६९-८४३ ई० तक वेङ्गी-सिंहासन पर चालुक्यराज नरेन्द्र मृगराज २य विजयादित्य अधिष्ठित थे। राष्ट्रकूटपति ३य गोविन्द इसे परास्त कर अपने राज्यके समीप लाये। उक्त वेङ्गीराज नौकरकी तरह सर्वदा गोविन्दके निकट रहते थे तथा इन्होंने मालखेड़ दुर्गप्राचीर बनवानेमें राजा गोविन्दकी विशेष सहायता की थी। ९३३ ई०में राष्ट्रकूटराज १म अमोघवर्षने फिरसे वेङ्गीराज्यको पददलित किया तथा विङ्गवल्ली ग्राममें चालुक्य-सेनाको हराया। चालुक्यराज विजयादित्यने ३य गोविन्दके लिये मान्यखेटपुरीका जिस दुर्गप्राचीरकी नींव डाली थी उसे अमोघवर्षने ९४० ई०में समाप्त किया।

एक दूसरी शिलालिपिसे मालूम होता है, कि पूर्व-चालुक्यराज गुणक विजयादित्य ३य (८४४-८८८ ई०में) रट्ट और गङ्गराजाओंको परास्त किया तथा राष्ट्रकूट-२य कृष्णको परास्त कर मोलखेड़ नगरको जला डाला। राजा २य कृष्ण इस अपमानका अधिक दिन सहन न कर सके। उन्होंने वेङ्गीराज्यको लूट कर बदला चुका लिया। किन्तु चालुक्यराज १म भीमने अपने बाहुबलसे पितृराज्यका उद्धार किया।

१०१२ ई०में चोलराज राजदेवने वेङ्गी देशको फतह कर वहां पञ्चवमहाराय नामक एक महादण्डनायक नियुक्त किया था।

इसके बाद कल्याणके पश्चिम चालुक्यराज छठें विक्रमादित्यने यह राज्य जय किया (१०७६-११२६ ई०)। इस समय वेङ्गीराज राजीव वा कुलोत्तुंग चोड़देवने काञ्चीपुर राज्य पर आक्रमण किया। राजा विक्रमादित्यके भाई २य सोमेश्वरने राजेन्द्रचोड़की सहायता की। यह संवादसे विचलित हो कर राजा विक्रमादित्य दल-बलके साथ अग्रसर हुए। युद्धमें विक्रमादित्यकी जीत होने पर राजीवने भाग कर आत्मरक्षा की तथा सोमेश्वर बन्दी हुए।

वेङ्गीपुर—वेङ्गीनगर।

वेङ्गीराष्ट्र—दाक्षिणात्यका एक देश। पल्लव-राजाओंकी दशनपुर-प्रशस्तिमें इसका उल्लेख है। सम्भवतः वेङ्गी-राज्य वेङ्गीराष्ट्र नामसे प्रसिद्ध था।

वेचराजी—बम्बई प्रदेशके बड़ौदा राज्यके पत्तन उप-विभागके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध देवमन्दिर और तत्-संलग्न एक बड़ा ग्राम। अहमदाबाद जिलेके विरम गांवसे यह २५ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहां प्रति वर्षके आश्विन मासमें एक मेला लगता है जिसमें प्रायः २०।२६ हजार यात्रियोंका समागम होता है।

वेचा (सं० स्त्री०) वि-अच्-तत्‌टाप्। १ मूल्य, वेतन। २ विक्रय करना, बेचना।

वेचाराम—कविकल्पलताटीकाके प्रणेता।

वेचाराम न्यायालङ्कार—आनन्दतरङ्गिणी और सिद्धान्ततरि नामक उस ग्रन्थकी टीकाके रचयिता। ग्रन्थकर्त्ताने उस ग्रन्थमें स्वकृत काव्यरत्नाकर, चैतन्यरहस्य, भैषज्य-रत्नाकर और सिद्धान्तमनोरम नामक ग्रन्थका उल्लेख किया है। इनके सिवा सिद्धान्तमणिमञ्जरी नामक इनका बनाया हुआ एक ज्योतिर्ग्रन्थ भी मिलता है।

वेचुराम—स्मृतिरत्नावलीके रचयिता।

वेजण्डला—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलेके गुण्टुर तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहांके गोपाल स्वामीके मन्दिरके प्रवेशद्वार पर एक प्रस्तरलिपि खुदी है।

वेजनवत् (सं० त्रि०) कम्पनयुक्त। (निरुक्त ३।२८)

वेजनोनेस—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेल-वाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा सामन्तराज्य। भूपरिमाण २६ वर्गमील है। यहांके सामन्त बड़ौदाके गायकवाड़-को वार्षिक ३१) रु० कर देते हैं। वेजनोनेस ग्राममें ही सरदार रहते हैं।

वेजवाड़ा (बेजवाड़ा) १ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कृष्णा जिलेका एक तालुका। भूपरिमाण ५३४ वर्गमील है। यहां चार नगर और १०७ ग्राम हैं। इनमें आटुकुरु, छिगिग रेड्डीपाडु, गनपवरम्, कोण्डपल्ली, कोण्डरु, मल्कापुरम्, मोगलराजपुरम्, पोतवरम्, ताड़ेपल्ली, वेल-गलेरु, येनिकेपाड़, जकमपुडी और जुपुड़ी आदि स्थान प्राचीनत्वके निदर्शनपूर्ण हैं। कोण्डपल्ली नगरके गिरि-दुर्ग उल्लेखयोग्य है। कोण्डपल्ली देखो।

इस उपविभागमें ७ थाने, १ दीवानी और ३ फौज-दारी कचहरियां हैं।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° ३०' ५०" उ० तथा देशा० ८०° ३६' पू० कृष्णानदीके उत्तरी किनारे मछलीपत्तन बन्दरसे २० कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। मन्द्राज, कलकत्ता, इल्लोरा, मछलीपत्तन, कोकनाड़ा, राजमहेन्द्री, आदि नगरोंके साथ यहांका वाणिज्यविनिमय चलता है। यह स्थान वर्त्तमान समय-में भी दक्षिणभारतका एक वाणिज्यकेन्द्र कहा जाता है। इतिहासमें यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है। यहांके प्राचीन राजवंशोंकी कीर्त्तियोंका अनुसरण करनेसे स्पष्ट ही जाना जाता है, कि ईसाके जन्म समयमें इस अञ्चलमें इस नगरने विशेष समृद्धिलाभ किया था। यहां वेङ्गीराजाओंका धर्मकेन्द्र प्रतिष्ठित था। ये वेङ्गीराजे एक समय वेङ्गीराज्य पर शासन करते थे। सन् ६१५-७ ई०के निकटवर्त्ती किसी समय कल्याणराज कुब्ज विष्णु-वर्द्धनने अपने चालुक्य सैनिकोंके साथ आक्रमण कर राज्य पर अधिकार कर लिया और ये पूर्वचालुक्य राज-वंशकी स्थापना कर गये। चीनपरिव्राजक यूएनचवङ्ग भारत भ्रमणके समय सन् ६३६ ई०में इस नगरके पूर्व शिला सङ्घाराममें कई महीना वास किया था। उनकी लिखी विवरणीसे हम जान सकते हैं, कि उस समय इस देशमें बौद्धोंका प्रभाव प्रायः नष्ट हो चुका था। सन् १०२३ ई०में चोलराजाओंने "वेङ्गीदेश" पर अधिकार कर सन् १२२८ ई० तक शासन किया है। इसके बाद यहां वरङ्गलके गणपति राजाओंका अधिकार हुआ। सन् १३२३ ई०में मुसलमानोंने गणपतियोंको पराभूत कर राज्याधिकार कर लिया और राज्यशासन करते रहे। मुसलमानोंकी शक्तिका ह्रास होनेसे वहांके रेड्डी (रट्ट) सरदारोंने इस देश पर अपना शासनदण्ड फैलाया। उन्होंने कोण्डविडु में राजधानी स्थापित कर सन् १४२७ ई० तक राज्यशासन किया था। उक्त वर्षमें ही गोल-कुण्डाके कुतुबशाही वंशीय मुसलमान राजाने रट्टोंको पराजित कर राज्यसे भगा दिया।

सचमुच इस समयसे सन् १५१५ ई० तक इस देशका

कोई यथार्थ इतिहास नहीं मिलता। इस समय यहां मुसलमानोंका राज्यशासन अक्षुण्ण था। किन्तु यह जाननेका कोई उपाय नहीं, कि यहांके किसी दूसरे हिन्दू-राजवंशने इस स्थान पर अधिकार कर हिन्दूशासन-भित्ति सुप्रतिष्ठित की थी।

हम हिन्दू राजाओंकी वंशमालासे जान सके हैं, कि इस समयके प्रथमांशमें लांगुलिया नामके गजपतिराज यहांके राजा हुए। इसके बाद विजयनगरके दो राजाओंने यहां राजत्व किया था। उनका राज्य भ्रष्ट कर फिर यहां गजपति-राजवंशीय ४ राजे यथाक्रम राज्यशासन करते रहे। इसके बाद सन् १५१५ ई०में राजा कृष्णदेवरायने गजपति राजाको पराजित कर इस राज्य पर अधिकार किया। सन् १५६५ ई०में तालीकोटके युद्धमें मुसलमानोंने विजयनगरपतिको पराजित कर यह राज्य फिर हस्तगत कर लिया। निकटवर्त्ती कोण्डपल्लीके गिरिदुर्गमें मुसलमानोंकी राजधानी कायम हुई थी। पीछे इनके हाथसे अङ्गरेजोंने इस स्थानको ले लिया।

सन् १७६० ई०में ईष्ट-इण्डिया कम्पनीने यहां एक किला बनवाया। किन्तु सन् १८२० ई०में आवश्यकता न देख उस किलेको तोड़ दिया गया।

यहां प्रत्नतत्त्वके और स्थापत्यशिल्पके (कारीगरीके) बहुतेरे आदरणीय निदर्शन मिलते हैं। चीनपरिव्राजक यूएनचवङ्ग इस स्थानको धनाककट (धान्य कटक) कहा है। यहां बौद्ध युगके अनेक पार्वत्य गुहा-मन्दिर और प्राचीन हिन्दू-शासनकालके बहुतेरे पागोड़ा देखे जाते हैं। नगरके पश्चिमके पर्वतको इन्द्र और अर्जुनका युद्धस्थल वहांके लोग कहते हैं। यहां कृष्णा नदी पर जहां एनिकट निर्मित हुआ है, उसके स्थानमें और नहर खोदनेके समय मृत्तिकागर्भसे बहुसंख्यक प्राचीन कीर्त्तियोंके ध्वंसावशेष आविष्कृत हुए थे। नीचे बेजवाड़ेकी प्राचीन कीर्त्तियोंकी फिहरिस्त देते हैं—

१ नगरके पूर्वपार्श्वस्थ पर्वतगात्रमें खोदित "पूर्वशिला" बौद्धसंघारामकी सोपान श्रेणी।

२ पश्चिमके इन्द्रनीलाद्रि शैलके गात्रखोदित कीर्त्तियां। इस पर्वतको वहांके लोग अर्जुनकोण्ड और अङ्गरेज Telegraph hill कहते हैं।

३ पूर्वशैलश्रृङ्गसे प्राप्त दानादार पत्थरकी एक मूर्त्ति।

४ पश्चिमशैलके पश्चिम प्रान्तमें प्राप्त बुद्ध मूर्त्ति।

५ पश्चिम पार्श्वके शैलोपरिस्थ कई शिलालिपियां।

६ ब्रह्मण्य प्रभावकालके प्रतिष्ठित मल्लेश्वर, अर्जुन, कनकदुर्गा मन्दिर और उनमें खुदी शिलालिपियां।

७ शिल्पनैपुण्यपूर्ण स्तम्भराजि, मण्डप और उसमें रखी प्रतिमूर्त्तियां।

८ छोटे छोटे गुहा-मन्दिर आदि।

वर्त्तमान नगरके नीचेसे खोद कर मृत्तिकागर्भसे कितनी ही प्राचीन कीर्त्तियोंके निदर्शन पाये गये हैं। इनसे बौद्धयुगके इतिहासके बहुतेरे विषय जाने जा सकते हैं। नगरके उत्तर अंशमें एक प्राचीन दुर्गका भी निदर्शन मिलता है। मल्लेश्वर स्वामीके मंदिरमें १३३१ शकमें रेड्डी सरदारोंके राजत्वकालके खुदी शिलालिपिमें इस स्थानका नाम श्रीविजयवाड़पुर लिखा है।

बेजा खाँ—सिन्धुप्रदेशका एक विख्यात डाकू सरदार। ये मुसलमान थे। डाकेजनी इनकी जीवनवृत्ति थी। फिर भी ये निष्ठुर हृदयके नहीं थे। अपनी दयाके कारण ही ये दूसरोंको अपने साथमें ले लेते थे। और तो क्या जनसाधारणमें वे एक परम दयावान् योद्धा कहे जाते थे।

सन् १८४४ ई०में सरचार्लस् नेपियरने अपने पैतृकराज्य पुलाजीगढ़ पर आक्रमण करनेके उद्योगी हो कप्तान टेट्को ५०० घुड़सवार तथा २०० उष्ट्रारोही सैनिकोंके साथ लेफटनेण्ट फिटस्जिराल्डको पर्वतप्रदेश पर विजय करनेके लिये भेजा। अङ्गरेज दोनों सेनापतिने मरुप्रदेशको पार कर देखा, कि बेजा खां सुसज्जित सेनाके साथ अङ्गरेजोंकी सैन्यको रोकनेके लिये खड़े हैं। उभय दलमें संघर्ष हुआ। टेट् क्षतिग्रस्त और पराजित हो कर भाग गया। इस समय बेजा खांने कुओंको भर दिया। इससे अङ्गरेज सैनिक बहुत जल विना ही मर गये। किन्तु अङ्गरेजके सौभाग्यसे एक कूआं बच गया था, इससे कुछ अङ्गरेजोंके प्राण बच गये।

बेजा खांके इस विजयलाभसे बहुतेरे मुसलमान

उनके दलमें आ कर शामिल होने लगे। उन्होंने घोषणा प्रचारित की, कि वे अमीर शेर महम्मदको बुला कर फिर सिन्धु पर राज्य स्थापित करेंगे।

इधर दुमकी और जाकरानी जाति सीमान्त पर विद्रोही हो उठी। इस समय शिकारपुरमें ६४ देशी पैदल सैन्यदलमें भी विद्रोहिताके लक्षण दिखाई दिये। यह देख सर चार्लस स्वयं शीघ्र सन् १८४५ ई०की १८वीं जनवरीको विद्रोहियोंको दण्ड देनेके लिये चले। ब्रिगे-डियर हण्टरने थोड़े ही समयमें सिपाहियोंको परास्त किया। कप्तान सल्टरने दरिया खांके अधीन ७०० जक-रानी डाकुओंको परास्त किया। ठीक इसी समय कप्तान जेकवने वेजा खांके पुत्रके अधीन सेनाओंका नाश किया।

अङ्गरेजमित्र सरदार कुली चाँदने इसी समय पुलाजी दुर्गमें वेजा खांको परास्त किया। उपर्युपरि तीन युद्धोंमें पराजित हो वेजा खांने क्रोधसे अधीर हो कर उक्त पर्वतके पश्चिम पार्श्वमें गमन किया। इधर सल्टर उच्छकी ओर खड़े थे और जेकव और कुलीचांदने फिर पुलाजी-दुर्ग पर आक्रमण किया। इधर नेपियरने भी सदलवल जा कर उसको घेर लिया। उस समय निरुपाय हो कर वेजा खांने सन् १८४५ ई०की ६वीं मार्चको अङ्गरेजके हाथ आत्मसमर्पण किया।

वेजानी (सं० स्त्री०) वि-अन्त् तमानयनीति आ-नी ड गौरादित्वात् ङीप्। सोमराजी। (शब्दचन्द्रिका)

वेजापुर—बम्बई प्रदेशके महीकान्था राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका संस्कृत नाम विजयपुर है। कच्छराज्य, पञ्चमहल और बड़ोदाराज्यमें बहुतसे वेजा-पुर, विजापुर वा विजयपुर हैं। विजापुर देखो।

वेजित् (सं० त्रि०) विज-णिच्-क्त। भीत, डरा हुआ।

वेञ्जिलैवीर—पञ्चपल्लीके एक सामन्तराज। ये उदैयाके श्रीराजेन्द्र चोलदेवके समसामयिक थे।

वेट् (सं० पु०) स्वाहाकार शब्द। वैदिक कालमें यज्ञो आदिमें स्वाहाके स्थानमें वेट् शब्दका व्यवहार होता था। (शुक्लयजुः १७।१५)

वेटक (सं० पु०) माधवदेवके पिता। (नैषध)

वेटवत् (सं० त्रि०) वेटयुक्त।

वेट्टचन्दन (सं० क्ली०) श्रीखण्डचन्दन भिन्न अन्य चन्दन, मलयागिरि चन्दन। इसे महाराष्ट्रमें वेट्टश्रीखण्ड और कर्णाटमें वेतृपञ्चेगन्ध कहते हैं। यह चन्दन मलय-पर्वतके समीपस्थ वेट्टगिरिसे उत्पन्न होता है, इस कारण इसका नाम वेट्टचन्दन पड़ा है। इसका गुण—तिक्त, अतिशीतल तथा दाह, पित्त, ज्वर, मित्र, तृष्णा, कुष्ठ, चक्षुरोग और उत्कास आदि रोगनाशक।

(राजनि०)

वेड़ (सं० क्ली०) १ सार्द्र विच्छिन्न, श्वेतचन्दन। २ वेष्टन, घेरा। ३ वृत्तकी परिधि। ४ वगीचों अथवा खेतोंका घेरा।

वेड़सा—बम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत मावल तालुक-का एक ग्राम। यहां बहुतसे बौद्धगुहामन्दिर विद्यमान हैं।

वेड़ा (सं० स्त्री०) नौका, नाव। बेड़ा देखो।

वेढ़मिका (सं० स्त्री०) कृतान्नभेद, वह रोटी या कचौड़ी जिसमें उड़दकी पीठी भरी हो। इसकी प्रस्तुत-प्रणाली राधावल्लभी-सी है।

उड़दकी भूसी निकाल कर उसे पीसे। पीछे गेहूं-की बनी हुई लोईमें उसे भर कर रोटी बनावे, इसीका नाम वेढ़मिका है। रोटी बेलते समय विशेष ध्यान रखना चाहिये जिससे उड़द बाहर निकल न आवे। इसका गुण—उष्ण, सन्तर्पक, गुरु, वृंहण, शुक्रप्रद, बल-कारक, वीर्य्यवर्द्धक, रोचक, वातघ्न, मूत्रनिःसारक तथा स्तन्य, मेद, पित्त और कफवर्द्धक। फिर अर्श, अर्द्दित, श्वासरोग और यकृत्शूलमें भी यह विशेष लाभ-जनक है। (भावप्रकाश)

वेण—१ गति। २ ज्ञान। ३ चिन्ता। ४ निशामन, प्रत्यक्षज्ञान। ५ वादित्रग्रहण, बजानेके लिये वाद्ययन्त्र लेना।

वेण (सं० पु०) वेण-अच्। १ वर्णसङ्कर जातिविशेष। इसकी उत्पत्ति वैदेहक माता और अंवष्ठ पितासे मानी गई है। (मनु० १०।१९)

२ सूर्यवंशीय राजा पृथुके पिताका नाम।

(विष्णुपुराण) वेण देखो।

वेण—पञ्जाबके हुशियारपुर और जालन्धर जिलेमें प्रवाहित एक मन्दस्रोता नदी। कपूरथाला राज्यमें प्रवाहित वेणनदीसे इसकी स्वतन्त्रता निर्देश करनेके लिये वहांके लोग इसको पूर्ववेण वा सफेदवेण कहते हैं। शिवालिक पर्वतपादसे निकले कुछ झरने एकत्र मिल कर इस नदीमें परिणत हो गये हैं। हुशियारपुर और जालन्धर जिलेकी सीमाके रूपमें रहते समय उत्तरकी ओरसे कुछ पहाड़ी सोतें इसके कलेवरको पुष्ट करते हैं। मलकपुर नगरके समीप यह पश्चिममुखी गतिमें अग्रसर हो कर समतलक्षेत्रमें टेढ़ो चालवाली हो गई है। पीछे विपाशा-सङ्गमसे ४ मील उत्तर शतद्रु में मिलती है। जालन्धर सेनानिवाससे ३ मील दूर इस नदीमें एक पुल है। उस पुलके ऊपरसे ग्राण्डट्राङ्क रोड चली गई है। शीतऋतुमें इस नदीकी स्रोत बहुत कम हो जाता है। नदीके दोनों किनारे ऊंचे हैं इस कारण यहांसे नहर काट कर निकटवर्त्ती शस्यक्षेत्रमें जल नहीं लाया जाता। किन्तु वर्त्तमानकालमें "पारसीकचक्र" नामक यन्त्र द्वारा क्षेत्रादिमें जल सींचनेकी व्यवस्था हुई है।

पश्चिम वा कृष्णवेण शिवालिक पर्वतके दसुय्यें परगनेसे निकली है। हुशियारपुर और कपूरथलाके मध्यसे बह कर यह शतद्रु और वेण्वासङ्गमसे ५ कोस उत्तर विपाशा नदीमें मिली है। कपूरथला-राज्यके दलालपुरसे उत्तर इस नदीमें पुल है।

२ पञ्जाबके गुरुदासपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। सुकुचक नगरके चारों ओरके कुछ छोटे छोटे सोतोंको ले कर इस नदीका कलेवर परिपुष्ट होता है। गुरुदासपुरसे सखरगढ़ और सिवालकोट आ कर यह नदी देरानानकके दूसरे किनारे इरावतीमें मिली है। इसकी स्रोतोगति प्रायः २५ मील है। ग्रीष्मकालमें इसमें बहुत थोड़ा जल रहता है, किन्तु वर्षाऋतुमें यह पूर्ण कलेवरको धारण करती है। इसका जल कृत्रिम उपायसे क्षेत्रादिमें लाया जाता है।

वेणकणकोण्ड—बम्बई प्रदेशके रानीबेन्नूर तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह रानीबेन्नूरसे ५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां कलमेश्वर महादेवका एक प्राचीन मन्दिर है। स्थानीय कल्लेश्वर मन्दिरके दक्षिण ६५५ और ११२४ शकमें उत्कीर्ण दो शिलालिपि हैं। निकटस्थ पुष्करिणीमें १२०६ शककी उत्कीर्ण एक वीरगल प्रतिष्ठित है।

वेणकुलम्—मन्द्राज प्रदेशके त्रिचिनपल्ली जिलान्तर्गत पेरम्बलूर तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह पेरम्बलूर सदरसे ११ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां एक मन्दिर है। मन्दिरगात्रमें बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं। वे सब शिलालिपियां बहुत पुरानी हैं।

वेणगानूर—मन्द्राज प्रदेशके त्रिचिनपल्ली जिलान्तर्गत पेरम्बलूर तालुकका एक बड़ा गांव। स्थानीय शिवमन्दिर बहुत प्राचीन तथा नाना शिल्पनैपुण्यसे परिपूर्ण है। मन्दिरगात्रस्थ शिलालिपियां उसके प्राचीनत्वका साक्ष्यप्रदान करती हैं।

वेणगांव—बम्बई प्रदेशके कोङ्कण-राज्यान्तर्गत एक ग्राम। यहीं पर सिपाही-विद्रोहके सुप्रसिद्ध नानासाहबका जन्म हुआ था। पीछे उस दरिद्र ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न बालकको पेशवा बाजीरावने गोद लिया था। बाजीराव, पेशवा और महाराष्ट्र शब्द देखो।

वेणगुरला—बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ६५ वर्गमील है। १ नगर और ६ ग्राम ले कर यह उपविभाग बना है। इसकी दक्षिणी-सीमा पर पुर्त्तगीजोंका गोआराज्य और उत्तरी-सीमा पर पर्वतमाला विराजित है। बीच बीचमें छोटी छोटी उपत्यकायें हैं। वे सभी उपत्यकायें उर्वरा और शस्यशालिनी हैं। यहां नारियल और सुपारी बहुतायतसे पैदा होती है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और उपविभागका विचार-सदर। समुद्रके किनारे स्थापित होनेके यह बन्दररूपमें गिना जाता है। यह अक्षा० १५° ५२´ उ० तथा देशा० ७३° ४०´ पू०के मध्य रत्नगिरिसे ८४ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक दुर्ग है।

पहले समुद्रके किनारे विचरनेवाले जल डकैत यहां अड्डा दे कर रहते थे। १८१२ ई०में सावन्तवाड़ीके सामन्त सरदारने इसे अङ्गरेज गवर्मेण्टके हाथ समर्पण किया। यहां १८६६ ई०में बन्दर आदिकी सुविधाके लिये बहुतसे आलोकभवन (Vengurla port's lighthouse)

बनाये गये हैं। यह वेणगुरला रकलाइट हाउससे स्वतन्त्र है।

उक्त पोर्टलाइट हाउस उपकूलके उत्तरी पर्वतके ऊपर चूड़ाकार आलोकभवनमें बने हैं। ज्वारकी जलरेखासे उसकी ऊंचाई २५० फुट है।

१६३८ ई०में ओलन्दाजोंने यहां एक वाणिज्यकेन्द्र स्थापन किया। गोआनगरमें जब आठ माल तक घेरा डाला गया था, उस समय वे लोग इसी नगरसे खाद्य-द्रव्य संग्रह कर पोतादिको पूर्ण कर जाते थे। १६६० ई०में पाश्चात्य वणिकोंने इस नगरका मिङ्ग्रेला नाम रखा। वे लोग इस नगरकी समृद्धि तथा पथघाटकी श्रीसौन्दर्यकी यथेष्ट सुख्याति कर गये हैं। उक्त वर्ष महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने यहां सेनादल रखा था। १६६४ ई०में स्थानीय विद्रोहियोंको दण्ड देनेके लिये उन्होंने सारे नगरको आगसे छारखार कर डाला। १६७५ ई०में मुगल-सेनाने फिरसे नगरमें आग लगा दी। १६९६ ई०में सावन्त वाड़ीके क्षेमसावन्तने इस नगरको लूटा और ओलन्दाजों-के सर्वप्रधान कर्मचारीसे मिलनेके बहाने कोठीमें घुस उसे दखल कर लिया। क्षेमसावन्तके समय दस्युसर-दार अङ्ग्रियाने इस नगरको आक्रमण किया और लूटा। १७७२ ई०में अंगरेज कम्पनीने वेणगुरलामें एक कोठी खोली। १८१२ ई०में सावन्तवाड़ीकी रानीने इसे अंग रेजोंके हाथ सौंप दिया।

वेणगुरला रक लाइट हाउस १८७० ई०में समुद्रवक्षो-परिस्थ एक पर्वतके ऊपर बनाया गया। यह अक्षा० १५° ५४´ उ० तथा देशा० ७३° ३०´ पू०के मध्य अवस्थित है। वेणगुरलासे ६ मील पश्चिम उत्तर वेणगुरला पर्वत माला वा दग्ध द्वीपपुञ्ज है। समुद्रके किनारे विस्तृत पहाड़ी द्वीप उत्तर-दक्षिणमें ३ मील तथा पूर्व पश्चिममें १ मील है। समुद्रकी ओर जो तीन बड़े द्वीप हैं उनमेंसे आगेवाले द्वीपके ऊपर यह आलोकभवन स्थापित है। इसकी रोशनी ७२ वर्गमील तक फैलती है। उपकूलसे १५ मील दूरवर्त्ती जहाजके ऊपरी तलसे इसका आलोक दिखाई देता है।

वेणतट (सं० पु०) वेण्वानदीके किनारे अवस्थित एक देश और वहांके अधिवासी।

वेणनगर—अयोध्या प्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह गोमती नदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक ध्वस्त स्तूप पड़ा है। स्थानीय लोग इसे राजा वेणका राजप्रासाद कहते हैं।

वेणम शर्म्मन्—एक वेदज्ञ ब्राह्मण। वेद, वेदाङ्ग और हिरण्यकेशीसूत्रमें इनकी विलक्षण व्युत्पत्ति थी। ये कौशिक-गोत्रीय थे। पूर्व-चालुक्यवंशीय महाराज विजयादित्यने इनको ग्राम दान किया था।

वेणयोनि (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी लता।

वेणविन् (सं० त्रि०) १ वेणुयुक्त, जिसके पास वेणु हो। (पु०) २ शिव, महादेव।

वेणा—रामायणके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। इसका दूसरा नाम पर्णासा भी है।

वेणा (सं० स्त्री०) स्वनामप्रसिद्ध सुगन्ध तृण, उशीर, खस। यह भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है, जैसे—पञ्जाब—पन्नि; दाक्षिणात्य—वालेको वास; बङ्गाल—वाला, खसखस, कुश, सनदकी भाड़; अरब—उशीर; पारस्य—खस; सिङ्गापुर—सवन्द्रमूल; ब्रह्म—मिया-सोई; मराठी—वाला; बम्बई—खसखस, वाला; कच्छ—वाला; अयोध्या—तिन; गुजरात—वालो; सन्थाल—शिराम; कणाड़ी—लावञ्चा; मलयालम—वेत्तिवेर, रमच्छम वेर; तामिल—वेत्तिवेर, इलामिछम्वेर, वीरणम्; तेलगू—वेत्तिवेरत, लामज्जकमूत्रेरत; संस्कृत—उशीर, वीरण। यह साधारणतः बङ्गाल, ब्रह्म, महिसुर, करमण्डल उपकूल तथा कटक विभागके निम्न भूमिमें और नद्यादिके किनारे प्रचुर परि-माणमें उत्पन्न होते देखा जाता है। पञ्जाब और युक्त-प्रदेशके कुमायूं प्रदेशमें प्रायः २०० फुट ऊंची भूमि पर यह पैदा होता है। राजपूताना और छोटानागपुरके गोविन्दपुर विभागमें इसकी खेती होती है।

बहुत पहले हीसे इस देशके लोग वेणके व्यवहारसे अवगत हैं। वैद्यकशास्त्रमें यह ओषधिरूपमें गिनी जाती है। इसके रेशेको सिद्ध कर चुआनेसे एक प्रकारका सुग-न्धित तेल निकलता है। वही खसखसका इतर कह-लाता है। मूलसे निष्पेषण द्वारा बड़े कष्टसे एक प्रकार-का निर्यास (Resin) और तेल (Volatile oil) पाया

जाता है। किन्तु यह विशेष कार्यकर नहीं होता। वेणाके मूलसे पंखे, चटाई, परदे आदि बुने जाते हैं। ग्रीष्मकालमें इसको जलसिक्त कर घरके दरवाजे पर लटकानेसे एक प्रकारकी सुगन्ध निकलती है। कड़ी धूपके मारे कितना ही लोथ पोथ क्यों न हो जाये, खसखसके नीचे आनेसे ही तरावट आ जाती है। टट्टर, पंखा, परदा आदिको छोड़ कर कागज बनानेके लिये प्रतिवर्ष ७० हजार मन खसके मूलकी एकमात्र पञ्जावके हिसार जिलेसे रफतनी होती हैं। प्रायः सभी खेतोंमें धान्यादि शस्यके मध्य वेणाघास उत्पन्न होती है। खेतमें यह इतनी मजबूतीसे जड़ पकड़ती है, कि सहजमें उखड़ नहीं सकती। कहीं कहीं खसकी घाससे रस्सी बना कर उसे देशान्तरमें भेजते हैं। कई जगह तो खसके पत्तोंसे घर छाये जाते हैं। इसके मजबूत रेशोंसे पंखा, झाड़ू, बकुस आदि बनते हैं। वर्षाऋतुके बाद जब घास बढ़ती है, तब उसे काट कर अस्तबलमें बिछा देते हैं।

वीरण शब्दमें इसका आयुर्वेदिक गुण लिखा जा चुका है। यह षडङ्ग पानीय आदिमें दाह-पिपासा-निवर्त्तक शैत्यकर भैषजरूपमें व्यवहृत हुआ है। शरीरकी जलन और चमड़े पर का असह्य ताप दूर करनेके लिये इसकी जड़को पीस कर प्रलेप देना होगा। पुराने समयके लोग सुगन्धवाला, रक्तचन्दन, पद्मकाष्ठ और खसखसकी जड़को चूर्ण कर एक जलसे भरे बरतनमें डाल देते थे, पीछे उस सुगन्धित जलसे स्नान करते थे। इससे शरीर ठंढा रहता था। यह शैत्यकारक, पिपासानिवारक, ज्वर, प्रदाह और उदरवेदनानाशक है। वेञ्जोयिन (Benzoin) द्वारा सिगारेट बना कर पीनेसे सिरका दर्द जाता रहता है। खसके पत्ते और मूलको जलमें सिद्ध कर विषम वा जीर्ण ज्वरमें रोगीको उसके वाष्प द्वारा भाफ देनेसे पसीना बहुत निकलता है। विसूचिका रोगमें वमनका वेग दूर करनेके लिये इसका दो विन्दु इतर खानेको दिया जाता है।

विज्ञानविद् भास्कुलिनने खसखसका विश्लेषण कर उसमें प्रायः धूनेकी तरह गाढ़े लाल रंगका एक प्रकारका लासा पाया है। उसका स्वाद कटु वा कसैला तथा गन्ध मुसब्बर नामक द्रव्यकी तरह है। इसके सिवा उन्हें इसके मध्य एक प्रकारका रंग (जो पानीमें गल जाता है), अम्ल, लवण (Salt of lime) अक्साइड आव आयरण (Oxide of iron) और काष्ठ मिला है।

वेणि (सं॰ स्त्री॰) वी-नि वीज्याज्वरिभ्यो निः (उण् ४।४८) पृषोदरादित्वात् णत्वम्। १ प्रोषितभर्त्तृकादि कर्त्तृक केशरचनाविशेष, स्त्रियोंके बालोंकी गूथी हुई चोटी। २ विरहिणी कर्त्तृक केशविन्यास। (जटाधर) पर्याय—प्रवेणि, वेणी, प्रवेणी, वेणिका। ३ जनसमूह। ४ जलप्रवाह, पानीका बहाव। ५ भीड़भाड़। ६ देवदाली, घंदाल। ७ मेषी, भेंड़ी। ८ एक प्राचीन नदीका नाम। ९ देवताड़।

वेणिक (सं॰ पु॰) १ जनपदभेद। २ इस देशका निवासी।

वेणिका (सं॰ स्त्री॰) केशबन्धनविशेष, स्त्रियोंके बालोंकी गूथी हुई चोटी।

वेणिन् (सं॰ पु॰) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

वेणिवेधनी (सं॰ स्त्री॰) जलौका, जोंक।

वेणिमाधव (सं॰ पु॰) प्रयागस्थ पाषाणमय चतुर्भुज देवमूर्त्तिविशेष।

वेणिराम—मनोरमापरिणयनचरित और सुदर्शनसुकर्णकचरित नामक दो ग्रन्थोंके प्रणेता।

वेणी (सं॰ स्त्री॰) कबरी, बालोंकी गूथी हुई चोटी। वेणि देखो।

वेणी—मध्यप्रदेशके भंडारा जिलेकी तिरोड़ा तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह वेणगङ्गा नदीके किनारे अवस्थित है और सदरसे ५० मील उत्तर-पूर्वमें पड़ता है। यहां कपास बिननेका एक छोटा कारखाना है जिसमें अच्छे अच्छे गलीचे तैयार होते हैं तथा वस्त्रादिमें रंग चढ़ानेमें वे विशेष पारदर्शिता दिखलाते हैं।

वेणी—बङ्गालके यशोर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। फटकी और यदुखाली नहरसे मिल कर यह विशखालीसे बुनागातिके समीप चित्रा नदीमें गिरती है।

वेणीग (सं॰ क्ली॰) उशीर, खस।

वेणीगञ्ज—अयोध्या प्रदेशके हर्दोई जिलान्तर्गत एक नगर।

यहां प्रायः २५०० अहीरोंका वास है। नगर खूब साफ सुथरा है।

वेणीदत्त—१ औदीच्यप्रकाश नामक दीधितिके प्रणेता। २ तत्त्वमुक्तावली टीकाको वालभाषा नाम्नी टिप्पणीके प्रणेता। ३ शतश्लोकी चन्द्रकलाटीकाकी भावार्थदीपिका नाम्नी टिप्पणीके प्रणेता। ४ पञ्चतत्त्वप्रकाश नामक अभिधान और पद्यवेणीके सङ्कलयिता। जगज्जीवनके पुत्र और नीलकण्ठके पौत्र थे। १६४४ ई०में इन्होंने उक्त अभिधान सङ्कलन किया।

वेणीदत्त वागीशभट्ट—तर्कसमयखण्डनके रचयिता।

वेणीदत्ततर्कवागीश भट्टाचार्य—अलङ्कारचन्द्रोदय और रसिकरञ्जिनी नाम्नी रसतरङ्गिणी टीकाके प्रणेता। इन्होंने १५५३ ई०में शेषोक्त ग्रन्थ समाप्त किया था। इनके पिताका नाम विश्वेश्वर और पितामहका नाम लक्ष्मण था।

वेणीदास—एक बुन्देला सेनापति। ये मुगल सम्राट् शाहजहां वादशाहके अधीन ५०० और २०० घुड़सवार-सेनादलके नायक थे। उक्त सम्राट्के शासनकालके तेरहवें वर्षमें वे राजपूतोंके हाथसे मारे गये।

वेणीफल (सं० क्ली०) देवदालीका फल।

वेणीमाधव—१ शब्दरत्नाकर नामक व्याकरणके प्रणेता। २ होलिकोत्पत्तिके रचयिता।

वेणीमाधव—प्रयागस्थ देवमूर्त्तिभेद। वेणीमाधवका ध्वजादर्शन पुण्यजनक है।

वेणीमूल (सं० पु०) उशीर, खस।

वेणीमूलक (सं० क्ली०) उशीर, खस।

वेणीर (सं० पु०) १ अरिष्ट वृक्ष, नीमका पेड़। २ रीठा।

वेणीरसुलपुर—विहारके पूर्णिया जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २५° ३७' उ० तथा देशा० ८७° ५२' पू०के मध्य पूर्णिया सदरसे १० कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहां समृद्धिशाली कुछ मुसलमान जमींदारोंका वास है।

वेणीरामधर्माधिकारी—पण्डिताह्लादिनी नाम्नी वालभूषासारटीकाके प्रणेता।

वेणीराम शाकद्वीपी—जातिसङ्कर्य्यवाद और मांसभक्षणदीपिकाके प्रणेता।

वेणीराय—गुजरातके एक सामन्त राजा।

वेणी वहादुर (राजा) अयोध्याके नवाव सुजा उद्दौलाका एक विश्वस्त मन्त्री। यह एक दरिद्र गृहस्थका लड़का था। राजा महानारायणने इसे पहले जल ढोनेके काममें नियुक्त किया। पीछे इसकी शिक्षा और सद्गुणोंका परिचय पा कर राजाने इसे उक्त नवाव-सरकारका वकोल वनाया। किन्तु अभागे वेणीने अपने मालिकका निन्दा शिकायत करके नवावके कान भर दिये तथा वह उनका अनुगत और प्रिय वन गया। नवावने इसे पहले कुछ जिलोंका शासनकर्त्ता वनाया। इसकी तकदीर खुल गई। इस काममें वड़ी दक्षता दिखा कर यह अभिलषित पद पानेके लिये अग्रसर हुआ। कुछ समय वाद ही इसने राजा वेणी वहादुरकी उपाधिके साथ नायव नाजिमके पद पर अभिषिक्त हो महामुरातिके नौवतखाना और रोशनचौकी आदि राजसम्मानके द्रव्यादि पाये। इसी वेणी वहादुरने, अङ्गरेजोंके साथ नवावकी जो लड़ाई हुई थी उसमें अङ्गरेजोंका पक्ष ले कर विश्वासघातकताका चूड़ान्त दिखलाया था। इस दोषसे नवावने इसकी दोनों आंखें फोड़ डालीं।

वेणाविलास—लक्ष्मीविलासकाव्य और वृत्तवुधोदय नामक दो ग्रंथोंके रचयिता।

वेणीसंवरण (सं० क्ली०) वेणीसंहार।

वेणीसंहरण (सं० क्ली०) वेणोसंहार।

वेणोसंहार (सं० पु०) वेण्याः द्रौपदीवेणिकायाः संहारो भीमेन मारित-दुर्योधनशोणितेन मोचनं यत्र। १ भट्टनारायणकृत सप्ताङ्कयुक्त नाटकविशेष। इसमें द्रौपदीके केशाकर्णणसे ले कर भीमकर्त्तृक दुर्योधनका वध तथा द्रौपदीका वेणीवन्धन पर्य्यन्त विवरण लिखा है। २ वेणोवंधन, केश वांधना।

वेणोस्कन्ध (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

वेणु (सं० पु०) अज-णु. (अजिवृरीभ्यो निच। उण् ३।३८) अजेर्वी भावो गुणश्च। १ वंश, वांस। २ वांसकी वनी हुई वंशी। पद्मपुराणके पातालखण्डमें वेणुकी उत्पत्तिके संबंधमें यों लिखा है, पुराकालमें देवव्रत नामक एक सान्तपनादि व्रताचारी शान्तदान्तद्विज हरिनामविरहित पतित-ब्राह्मणमण्डलीमें रहते हुए भी

सर्वदा सत्कर्म किया करते थे। एक दिन एक वैदान्तिक ब्राह्मण इनके घर आये। इन्होंने परम भक्ति और प्रीतिसे पाद्य अर्घ्य आदि द्वारा उनका स्वागत किया। किन्तु उक्त वेदान्तविद् ब्राह्मणने उस घरमें किसी विष्णुभक्तको तुलसी द्वारा पूजा करते देख देवव्रतके दिये हुए फलमूलादिको बड़ी अश्रद्धासे ग्रहण किया। इसी पापके कारण वे वेणुत्वको प्राप्त हुए। ३ नृपभेद।

वेणुक (सं० क्ली०) वेणुरिव वेणोर्विकारो वा कन्। गजादिताड़नदण्ड, वह लकड़ी या छड़ी जिससे गौओं, बैलों आदिको हांकते हैं। २ अंकुश, आंकुस। (पु०) ह्रस्वो वेणुः संज्ञायां कन् (पा ५।३।८७) ३ क्षुद्र वेणु, छोटी वंशी। ४ एला, इलायची। किसी किसी ग्रन्थमें रेणुक पाठ भी देखा जाता है।

वेणुकर्कर (सं० पु०) कर्वीरवृक्ष, कनेरका पेड़।

वेणुका (सं० स्त्री०) १ वंशी, बाँसुरी। २ एक प्रकारका वृक्ष। इसका फल बहुत जहरीला होता है। ३ हाथीको चलानेका प्राचीन कालका एक प्रकारका डंड जिसमें बांसका दस्ता लगा होता था।

वेणुकार (सं० पु०) वंशीनिर्माणकारक, वंशी बनानेवाला।

वेणुकीय (सं० त्रि०) वेणुकाज्जातं वेणुक-छ नड़ादीनां कुक् च। (पा ४।२।९१) वेणुसे उत्पन्न, वेणुका।

वेणुगढ़—बिहारके पूर्णिया जिलान्तर्गत कृष्णगञ्ज उपविभागका एक दुर्ग और तत्संलग्न एक नगर। इसकी पूर्ण समृद्धि जाती रही। वर्त्तमान समयमें उस दुर्गके प्राकार और प्राचीरादिका ध्वंसावशेष मात्र देखा जाता है। दुर्गभित्तिका कुछ अंश तथा ध्वस्त अट्टालिकादिका निदर्शन नगरकी अतीत स्मृतिको आज भी दिखा रहा है। किन्तु दुःखका विषय है, कि किस समय यह दुर्ग बनाया गया और कौन इसके निर्माता हैं इसका आज तक पता नहीं लगा है। स्थानीय प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्यके शासनकालमें ५७ वर्ष ईसा-जन्मके पहले पांच भाइयोंने एक रात्रिके मध्य जो पांच दुर्ग बनवाये, यही उनमेंसे एक दुर्ग है।

वेणुगोपालपुर—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत मन्दसा जमींदारीका एक बड़ा ग्राम। यह सोम्पेटसे ६ मील दक्षिण-पश्चिम तथा बड़े रास्तेसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। मन्दसा जमींदारवंशके किसी व्यक्तिने प्रायः ४०० वर्ष पहले यह मंदिर बनवाया।

वेणुगोपालस्वामी—दाक्षिणात्यको एक सुप्रसिद्ध विष्णुमंदिर। यह मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलेके सिद्धवट्टम तालुकके सदरसे ७ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह मंदिर दाक्षिणात्यवासियोंका एक पवित्र पुण्यतीर्थ समझा जाता है। मंदिर बहुत पुराना है। यहांके लोग इसे गोपालस्वामीका पागोडा कहते हैं।

वेणुग्रथ (सं० पु०) एक प्रकारकी ओषधि।

वेणुग्राम—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक स्थान। अभी यह बेलगाम् नामसे मशहूर है। प्राचीन शिलालिपिमें यह प्रदेश वेणुग्रामसप्तति नामसे उल्लिखित देखा जाता है। ११६६ ई०में सौन्दत्तिके रट्ट सरदार ४र्थ कार्त्तवीर्य्य यहां राज्य करते थे। गोआके कादम्ब वंशीय राजा ३य जयकेशी इस स्थानके शासनकर्त्ता थे। उन्हें परास्त कर रट्ट लोगोंने यह स्थान दखल किया।

वेणुज (सं० पु०) वेणोर्जायते जन ड। १ वेणुयव, बांसके फूलमें होनेवाले दाने जो चावल कहलाते हैं और जो पीस कर ज्वार आदिके आटेके साथ खाये जाते हैं, बांसका चावल। २ मरिच, गोलमिर्च। (त्रि०) ३ वंशजात द्रव्यमात्र, जो बांससे उत्पन्न हुआ हो।

वेणुजमुक्ता (सं० स्त्री०) वंशजात मुक्ताभेद, बांसमें होनेवाला एक प्रकारका गोल दाना जो प्रायः मोती कहलाता है।

वेणुजङ्घ (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक मुनिका नाम।

वेणुजह्नन् (सं० पु०) वेणुयव, बांसका चावल।

वेणुथली—वन्थलीका प्राचीन नाम। वन्थली देखो।

वेणुदत्त (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

वेणुदारि (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राजकुमारका नाम।

वेणुध्म (सं० त्रि०) वेणुं धमतीति ध्मा-ड। वेणुवादक, वंशी बजानेवाला।

वेणुन (सं० क्ली०) मरिच, गोल मिर्च। किसी किसी ग्रन्थमें रेणुज पाठ भी देखा जाता है।

वेणुनिःसृत (सं० पु०) इक्षु, ईख।

वेणुनिर्लेखन (सं० क्ली०) वंशत्वक्, बांसकी छाल।

वेणुप (सं० पु०) १ महाभारत उद्योगपर्वके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी। रैणुप और रैणुक पाठ भी देखा जाता है।

वेणुपत्र (सं० क्ली०) बांसका पत्ता।

वेणुपत्रक (सं० पु०) मण्डली सर्पविशेष।

(सुश्रुत कल्प ४ अ०)

वेणुपत्रिका (सं० स्त्री०) वंशपत्री वृक्ष। पर्याय—हिंगुपर्णी, नाड़ी, हिंगुशिराटिका। (रत्नमाला)

वेणुपुर (सं० क्ली०) वेणुग्राम, आधुनिक बेलगांवका प्राचीन नाम। शिलालिपिमें वेणुग्राम नाम भी पाया जाता है।

वेणुबीज (सं० क्ली०) वेणोर्बीजं। वेणुयव, बांसका चावल।

वेणुमण्डल (सं० क्ली०) कुशद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष। (महाभारत भीष्मपर्व)

वेणुमत् (सं० त्रि०) वंशविशिष्ट। २ पर्वतभेद। ३ अरण्यभेद।

वेणुमती (सं० स्त्री०) नदीभेद। (मार्क०पु० ५८।३५)

वेणुमय (सं० त्रि०) वेणु-मयट् स्वरूपार्थे। वेणुका स्वरूप, बांसका बना हुआ।

वेणुमान्—वेणुमत् देखो।

वेणुमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्राविशेष। मुद्रा शब्द देखो।

वेणुयव (सं० पु०) वेणोर्यवः। वंशफल, बांसका चावल। यह ज्वार आदिके साथ पीस कर खाए जाते हैं। संस्कृत पर्याय—वेणुज, वेणुबीज, वंशज, वंशतण्डुल, वंशधान्य, वंशाह्व। इसे महाराष्ट्रमें वेणुजव, कर्णाटमें विदरकी, तेलगूमें वेदेरु और विरयमु कहते हैं। इसका गुण—रूक्ष, शीत, कषायानुरसमधुर; कफ, पित्त, मेद, क्रिमि, विष और मूत्रनाशक, बल, पुष्टि तथा वीर्यप्रद, कटुपाकी, मूत्रविबन्धक, सारक, वातविवर्द्धक।

वेणुवंश (सं० क्ली) १ वंशीका बांस, वह बांस जिससे वंशी बनाई जाती है। २ पुराणानुसार एक राजाका नाम।

वेणुवन (सं० क्ली०) १ अरण्यभेद। राजगृहके पासका एक उपवन। राजा बिंबिसारने गौतम बुद्धको बुला कर यहीं ठहराया था।

वेणुवाटिका—चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

(भ० ब्रह्मख० १३।१७-१८)

वेणुवाद (सं० पु०) वेणुं वादयतीति वद-णिच्-अण्। वेणुक, वह जो वंशी बजाता हो, बांसुरी बजानेवाला।

वेणुवीणाधरा (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर-मातृभेद।

(भारत शल्यपर्व)

वेणुहय (सं० पु०) यदुवंशीय सहस्रजित्‌के एक पुत्रका नाम। (भागवत ९।२३।२१) किसी किसी ग्रन्थमें रैणुकहय पाठ भी देखा जाता है।

वेणुहोत्र (सं० पु०) धृष्टकेतुके एक पुत्रका नाम।

वेण्टिक (लार्ड विलियम, जी, सी, बी)—भारत-राजप्रतिनिधि। इनका पूर्व नाम लार्ड विलियम हेनरी कावेण्डिस वेण्टिङ्क था। ये पोर्टलैण्डके ३य ड्यूकके द्वितीय पुत्र थे। विद्याशिक्षाके बाद सेनाविभागमें प्रवेश कर इन्होंने पहले फ्लाण्डर्स, रूस और मिस्रके युद्धमें अच्छी ख्याति पाई थी। धीरे धीरे उच्च पद पा कर ये अङ्गरेज कम्पनीके सेनापतिके वेशमें भारतवर्ष आये। १८०३ ई०की ३०वीं अगस्तसे १८०७ ई०की १०वीं सितम्बर तक ये मन्द्राजके फोर्ट सेण्ट जार्ज दुर्गके गवर्नर रहे। १८०६ ई०में मन्द्राजी सिपाहीदलमें इन्होंने मूंछ दाढ़ी और शिरस्त्राणके संस्कारके लिये एक नया कानून निकाला। इससे सिपाही दल बागी हो गया। यही इतिहासमें "भेलोर विद्रोह, १८०६ ई०" नामसे मशहूर है।

इस गोलमालको अङ्गरेज-शासनका अनिष्टकर समझ कर कम्पनीके डिरेक्टरोंने इन्हें इङ्गलैण्ड वापस जानेका हुकुम दिया। विलायत लौटनेके बाद इन्होंने राज-सरकारसे सम्मानसूचक उपाधि पाई। पीछे ये राजनैतिक क्षेत्रके कुछ प्रसिद्ध राजकीय कर्मोंमें नियुक्त रह कर फरासीसियोंके साथ ग्रेट ब्रिटेन युद्धके समय स्पेन और इटलीमें प्रेरित सेनादलके नायक बन कर वहां गये। इसके बाद कैनिङ्गके प्रमुख कालमें ये १८२८ ई०की ४थी जुलाईको भारतवर्षके राजप्रतिनिधि हो कर यहां आये।

इस बार भी इन्होंने सेनाविभागके संस्कारमें ध्यान दिया। इससे सेनादलमें असन्तोषका लक्षण दिखाई दिया सही, पर पहलेकी तरह विद्रोहवह्नि धधक न उठी। वे भारतवासीके पूज्य हुए थे। और तो क्या, सतीदाह तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें हिन्दू ललनाओंको बलपूर्वक जीतेजी जला देनेकी निष्ठुर प्रथाको इन्होंने महात्मा राममोहन राय आदिकी सहायतासे भारतवर्षसे बिलकुल उठा दिया। राममोहन राय देखो।

१८२६ ई०की १७वीं दिसम्बरमें सहमरणप्रथाको नीतिविरुद्ध बतला कर राजविधिमें विघोषित किया। सहमरण देखो।

मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता तथा ठगी डकैती आदि अत्याचारनिवारण इनके भारतशासनकालकी प्रधान घटना है। मुद्रायन्त्र और ठगी देखो।

इसके सिवा कुर्गपतिको युद्धमें परास्त कर इन्होंने उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली और अंगरेज साधारणको भारतवर्षमें उपनिवेश स्थापन करनेका अधिकार दिया। शिक्षाविषयकी उन्नति करना, अंगरेजीविद्यालय खोलना और देशी शिक्षित व्यक्तियोंके हाथ धर्माधिकार देना, ये सब महान कार्य इन्हीं महात्मा द्वारा किये गये हैं। इनके समय प्रत्येक प्रेसिडेन्सीमें एक एक व्यवस्थापक सभा (Legislative Council) हुई थी। १८३० ई०में इनका स्वास्थ्य खराब हो गया और भारत-राजप्रतिनिधित्वका पद स्वेच्छासे परित्याग कर वे उसी सालकी २०वीं मार्च तक भारतका शासन कर स्वदेशको लौट गये।

उनके भारत छोड़नेसे देशी प्रजा बहुत दुःखित और कातर हुई थी। उन लोगोंने इनके सुशासनका स्मरण रखनेके लिये एक अश्वारोही प्रतिकृतिकी प्रतिष्ठा की।

स्वदेश जा कर १८३६ ई०में ये ग्लासगो नगरवासीको ओरसे पार्लियामेण्ट महासभाके हाउस आव कामन्सके सभ्य चुने गये। इस पद पर रह कर १८३९ ई०को १७वीं जूनको इन्होंने इस लोकका परित्याग किया।

वेण्णा (सं० स्त्री०) नदीभेद। इसका दूसरा नाम कृष्णा-वेण्णा या वेण्वा है।

वेण्णिकल्लू—मन्द्राज प्रदेशके बेलुरी जिलान्तर्गत कुड़लिपि तालुकका एक ग्राम। यहां भास्कर्यशिल्पसमन्वित एक प्राचीन शिवमन्दिर विद्यमान है।

वेण्णिहल्ली—मन्द्राज प्रदेशके बेलुरी जिलान्तर्गत हर्पणहल्ली तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहांके विरूपाक्षेश्वर मन्दिरमें पांच शिलाफलक देखे जाते हैं।

वेण्य (सं० स्त्री०) विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई एक नदी। (मार्क०पु० ५७।२४)

वेण्वा (सं० स्त्री०) पारिपात्र पर्वतसे निकली हुई एक नदी। (मार्क०पु० ५७।१९)

वेण्वातट (सं० क्ली०) १ वेण या वेण्वानदीको तीरभूमि। २ उसके किनारे अवस्थित एक देश। (भारत २।३१।१२)

वेण्वातीर्थ—वेण्वा नदीतीरस्थ तीर्थभेद।

वेत (सं० पु०) वेतसलता, बेंत। वेत्र शब्द देखो।

वेतचेरवु—मन्द्राज प्रदेशके कर्नूल जिलान्तर्गत नन्द्याल तालुकका एक बड़ा ग्राम। मानचित्रमें यह वैमूमचेलू नामसे उल्लिखित है। यहांके आञ्जनेय मन्दिरमें १४७० शक और १५६७ ई०में उत्कीर्ण दो शिलाफलक देखे जाते हैं। ये फलक विजयनगरराज सदाशिवके राज्यकालमें किसी राजवंशीय द्वारा दिये गये थे। इसके सिवा ग्रामके अन्यान्य स्थानोंमें और भी कितनी शिलालिपियां हैं।

वेतङ्गा—बङ्गालके फरीदपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २३ उ० तथा देशा० ८९ ५७ पू०के मध्य चन्दना-नदीके किनारे अवस्थित है। यहां चावल और उड़द आदि अनाजोंका जोरों कारबार चलता है।

वेतण्ड (सं० पु०) १ हस्ती, हाथी। २ वह व्यक्ति जो ताड़नेके योग्य हो।

वेतन (सं० क्ली०) वी-तनन् (वीपतिभ्यां तनन्। उण् ३।१५०) १ कर्मदक्षिणा, वह धन जो किसीको कोई काम करनेके बदलेमें दिया जाय। २ वह धन जो बराबर कुछ निश्चित समय तक, प्रायः एक मास तक, काम करने पर मिले, तनखाह, दरमाहा। २ जीवनोपाय, जीवनका सहारा। ३ रौप्य, चांदी।

वेतनभुज् (सं० लि०) वेतनभोगी, जो तनखाह ले कर काम करता हो।

वेतनानपाकर्म्मन् (सं० क्ली०) व्यवहारभेद। कृतकर्मके भृतिदानके सम्बन्धमें नियम और व्यवस्था या विचार। वीरमित्रोदयमें इस प्रकार लिखा है,—

"भृतानां वेतनस्योक्तो दानादानविधिक्रमः।
वेतनस्यानपाकर्म तद्विवादपदं स्मृतम्।" (नारद)

नारदका कहना है, कि भृत्योंके वेतन वा कर्ममूल्यके दानादानके सम्बन्धमें जो विधि निर्दिष्ट हो रही है, यदि उस वेतनका अनपाकर्म हो अर्थात् भृत्योंको उचित प्राप्य न दिया जाय अथवा भृत्य यदि अपने मालिकसे पेशगी ले कर काम पूरा न करे तो वह विवादका कारण होता है।

वेतना—बङ्गालके २४ परगना जिलेमें प्रवाहित एक छोटी नदी। यह बुधाटा नामसे भी परिचित है।

वेतना—बङ्गालके दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम।

वेतनिन् (सं० त्रि०) वेतनग्राही। (भारत वनपर्व)

वेतमङ्गला—१ दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यान्तर्गत कोलर जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण २६० वर्गमील है। पालर नदी इस उपविभागके मध्यसे बहती है और इसीसे तालुकके सदर वाउरिंपेट नगरके समीप रामसागर ह्रद बनता है। इस उपविभागके पश्चिम स्वर्णमयीभूमि है तथा मार्कुपम ग्रामके समीप सोनेकी खान है। इसकी दक्षिणी सीमाको पूर्वघाटपर्वतमाला छूती है।

२ उक्त उपविभागके अन्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० १३ १´ ३० तथा देशा० ७८° २२´ पू०के मध्य पालर नदीके दहिने किनारे कोलरसे १८ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। प्रवाद है, कि किसी चोलराजाने इस नगरकी प्रतिष्ठा की। अभी नगरका पूर्व सौन्दर्य देखनेमें नहीं आता। १८१४ ई०में वाउरिंपेट नगरमें उपविभागका विचारसदर उठ जानेसे तथा रेलगाड़ीके खुल जानेसे, नगरवासियोंके दूसरे देशमें चले जानेसे नगर अभी एक बड़े ग्राममें परिणत हो गया है।

वेतवोलु—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह नन्दिग्राम तालुक सदरसे १५ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। इस नगरके निकटवर्त्ती पहाड़के ऊपर जो बड़ा खंडहर है उसकी गठनप्रणाली देखनेसे वह एक बौद्धस्तूप सा मालूम होता है। उसका व्यास प्रायः ६६ फुट और चारों ओर भास्करशिल्पबहुल मर्मर पत्थर जड़ा है। प्राचीन समाधियोंके ऊपर बहुतसे पत्थरके बने चक्र दिखाई देते हैं। एक चक्रके नीचे घोड़ेकी कुछ हड्डियां पाई गई हैं। वह देखनेसे मालूम होता है, कि समाधिके पहले घोड़ेको दो टुकड़े कर एक गड्ढेमें गाड़ दिया गया था। क्योंकि घोड़ेके मस्तककी हड्डियां दूसरी जगह रखी गई हैं तथा उस गड्ढेके चारों कोनमें चार बड़े बड़े पात्र रखे हुए हैं। घोड़ेकी वह हड्डियां अभी आक्सफोर्ड नगरीके Ashmolean Museum गृहमें रखी हैं।

वेतस (सं० पु०) वे (वेञस्तुट्च्। उण् ३।११८) इति असच्, तुडागमश्च। १ स्वनामख्यात पत्रशाकलता, वेंत। इसे महाराष्ट्रमें वेड़िसु, कलिङ्गमें वेतपू, तैलङ्गमें जोतयुरकुली कहते हैं। संस्कृत पर्याय—रथ, अभ्रपुष्प, विदुल, शीत, वानीर, वञ्जुल, प्रिय, गन्धपुष्प, रथाभ्र, वेतसी, निचुल, दीर्घपत्रक, कलम, मञ्जरी, नम्र, सुषेण, गन्धपुष्पक। गुण—स्वादु, कटु, शीतल, भूत, रक्त, पित्तोद्भव रोग और कुष्ठदोषनाशक है। (राजनि०) इसके फलका गुण—वातनाशक, अम्लपित्त और श्लेष्मदोषनाशक। शाकका गुण—कटु, तिक्त, अम्ल और अधोमार्गप्रवर्त्तक। (चरक सूत्र २३ अ०) २ जलवेतस, जलवेंत। पर्याय—निकुञ्चक, परिव्याध, नादेय। गुण—शीतल, संग्राही और वातवर्द्धक। (भावप्र०) ३ जलजात अग्नि, वडवानल।
(ऋक् ४।५८।५)

वेतसक (सं० पु०) जनपदभेद। (भारत द्रोणपर्व)

वेतसकीय (सं० त्रि०) वेतवृक्षसम्बन्धीय वा इससे उत्पन्न।

वेतसपत्रक (सं० क्ली०) व्यधनार्थक शस्त्रविशेष, सुश्रुतके अनुसार प्राचीन कालका एक शस्त्र। यह प्रायः एक अङ्गुल मोटा और चार अंगुल लंबा होता था। इसका व्यवहार चीरफाड़में करते थे।

वाग्भटकी टीकामें अरुणदत्तने व्याख्या की है। कि यह शस्त्र वेंतके पत्तेके आकारका, छः अंगुल लंबा और व्यधनकार्यमें व्यवहृत होता है। 'वेतसं वेतसपत्राकारं

शस्तं षड्गुलं पूर्वोक्तफलं तच्च व्यधने योज्यम्'

(अश्वायुर्वेद)

वेतसाम्ल (सं० पु०) वेतसप्रधानोऽम्लः। अम्लवेत।

वेतसिनी (सं० स्त्री०) नदीभेद। (वायुपुराण)

वेतसी (सं० स्त्री०) वेतस।

वेतसु (सं० पु०) असुरभेद। (ऋक् ६।२०।८ सायण)

वेतस्वत् (सं० त्रि०) वेतसाः सन्त्यत्र (कुमुदनड़वेतसेभ्यो ड्मतुप्। पा ४।२।८७) इति ड्मतुप्, मादुपधायाः, इति मस्य वत्वं (पा ८।२।९)। १ वेतसलताबहुल देश, वह देश जहां वेत बहुत होता है। २ नगरभेद।

(पञ्चविंशब्रा० २१।२४।२०)

वेता (सं० स्त्री०) वेतन, तनखाह। (हलायुध ४।४३)

वेतागड़ि—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंका वाणिज्यकेन्द्र है तथा २५° ५२' उ० और देशा० ८९° ११' पू०के मध्य पड़ता है। यहां प्रधानतः चावल, तमाकू और पटसनकी आमदनी होती है।

वेतागांव—अयोध्या प्रदेशके रायबरेली जिलेका एक ग्राम। यह भितरगांव नगरका एक अंश है। यहां अन्नदादेवीका मन्दिर है। प्रति वर्ष देवीमन्दिरके सामने एक मेला लगता है। भितरगांव देखो।

वेताल (सं० पु०) १ द्वारपालक, संतरी। २ भूताधिष्ठित शव, वह शव जिस पर भूतोंने अधिकार कर लिया हो। ३ मल्लभेद। ४ शिवगणाधिप विशेष। ५ छप्पयके छठे भेदका नाम। इसमें ६५ गुरु और २२ लघु कुल ८७ वर्ण या १५२ मात्राएं अथवा ६५ गुरु और १८ लघु कुल ८३ वर्ण या १४८ मात्राएं होती हैं।

वेताल—पुराणोक्त भूतयोनिविशेष। वेताल भूतोंमें प्रधान है। समाधिस्थलमें या जहां मुर्दा रखा जाता है वहीं वेतालका आगमन होता है। प्रवाद है, कि महाराज विक्रमादित्य किसी योगीके उभाड़नेसे प्रान्तरस्थित वृक्ष पर स्थापित राजा चन्द्रकेतुका शव लानेके लिये गये। यहीं वेतालके साथ राजाको भेंट हुई। वेतालके कुछ प्रश्नोंका सदुत्तर देनेके कारण वेताल राजा पर बड़ा प्रसन्न हुआ और बोला, 'राजन्! विपदमें पड़ कर आप जहां भी मेरा स्मरण करेंगे वहीं मैं आपकी सहायता करूंगा। इस घटनाके बादसे राजा तालवेताल सिद्ध हुए और उनकी सहायतासे अनेक अलौकिक कार्य किये।

वेतालकवच—धारणीय मन्त्रौषधभेद।

वेतालग्रह (सं० पु०) भूतग्रह विशेष। वेतालग्रहाविष्टको गन्धमाल्यादिमें अत्यन्त आसक्ति होती है। वे सत्यवादी, कम्पयुक्त और बहुदोषदुष्ट होते हैं।

वेतालपञ्चविंशति (पचीसी)—एक अति उपादेय संस्कृत ग्रन्थ। वेताल और राजा विक्रमादित्यके प्रश्न २५ विभिन्न गल्पाकारोंमें लिखे गये हैं, वही वेतालपचीसी नामसे मशहूर है। लोगोंका विश्वास है, कि जम्भलभट्टने पहले पहल इसकी रचना की। क्षेमेन्द्र (बृहत्कथामञ्जरीमें), वल्लभ, शिवदास और सोमदेव (कथासरित्सागरमें) इस गल्पकी स्वतन्त्र रचना कर गये हैं। भारतवर्षकी प्रायः सभी भाषाओंमें इस गल्पका अनुवाद हुआ है। वेङ्कटभट्टविरचित वेतालवीसी नामक एक और ग्रन्थ मिलता है।

वेतालभट्ट (सं० पु०) राजा विक्रमादित्यके नवरत्नोंमेंसे एक। आप एक कवि कह कर परिचित हैं। नीतिप्रदीप नामक ग्रन्थ आप हीका बनाया हुआ था।

वेतालभैरवरस—वैद्यकोक्त रसौषधविशेष। यह ज्वरादि रोगमें विशेष फलप्रद है।

वेतालरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, विष, मिर्च, हरिताल, समान भागमें मर्दन कर कज्जली करे और १ रत्तीकी गोली बनावे। इस गोलीका सेवन करनेसे साध्यासाध्य ज्वर और सुदारुण सन्निपात ज्वर नष्ट होता है।

दांतमें दर्द होने, आंख आने, इन्द्रियोंके विचल होने तथा विषम अज्ञानावस्थामें यह वेतालरस शरीरमें लगाने या इससे स्नान करानेसे विशेष उपकार होता है।

(रसेन्द्रसारस० ज्वरचि०)

वेतावाद—बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत भूसावाल उपविभागका एक नगर। यह अक्षा० २१° १४' उ० तथा देशा० ७५° ५७' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां पहले उपविभागका सदर था। म्युनिस्पलिटी रहनेके कारण नगर खूब साफ सुथरा है।

वेताहाजोपुर—युक्तप्रदेशके मीरट जिलेका एक बड़ा गाँव। वह लोशी नगरसे ३ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां मुसलमान फकीर अवदुल्ला शाहकी दरगाह और सम्राट औरङ्गजेबकी बनाई हुई एक मसजिद है।

वेति—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। वर्त्तमान समयमें यह एक बड़े गाँवमें परिणत हो गया है। यह ग्राम एक सुविस्तीर्ण ह्रदके किनारे अवस्थित है। ह्रदका आयतन वर्षाकालमें १० वर्गमील और ग्रीष्म ऋतुमें ३ वर्गमील रहता था। अभी गङ्गाके साथ जो एक नहर काट कर मिला दी गई है, उससे तथा जलोत्तोलक वाष्पयन्त्रकी सहायतासे उसके जलका परिमाण बहुत घटा दिया गया है। ह्रदके उत्तरी किनारे अच्छे अच्छे वृक्षोंका उपवन है तथा अन्यान्य किनारे खेतीवारी होती है। कहते हैं, कि अयोध्याके किसी राजाने यहां यज्ञकुण्ड खुदवाया था। आज भी उसका पार्श्ववर्त्ती स्थान कोड़नेसे यज्ञीय दग्ध शस्यादि मिलते हैं। ह्रदमें बहुतसी बड़ी बड़ी मछलियाँ रहती हैं तथा इसके तीरवर्त्ती वनभागमें अपर्य्याप्त जंगलीमुर्ग देखे जाते हैं। ह्रदके मध्यस्थित छोटे द्वीपके बीचमें एक छोटा प्रासाद निर्मित है। उस स्थानसे राजपुत्रगण पक्षी आदिका शिकार करते थे। इसके सिवा यहां दो प्राचीन हिन्दूदेवालय हैं।

वेतीकलान—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलेका एक नगर। यहां एक सुन्दर महादेवका मन्दिर है। मन्दिर बहुत पुराना है।

वेतीगेड़ा—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १५° २६′ उ० तथा देशा० ७५° ४१′ पू०के मध्य गड़गसे १ मील दूर अवस्थित है। गड़ग और वेतीगेड़ी नगर एक म्युनिस्पलिटीके अधीन है। यहां सप्ताहमें एक दिन हाट लगती है। हाटमें काफी रूई, कपास और रेशमी कपड़े बिकने आते हैं। प्रायः लाखसे अधिक रुपयेकी रूई बिकती है।

वेतुगीदेव—चालुक्यवंशीय एक राजा। सङ्गमेश्वरमें इन लोगोंकी राजधानी थी।

वेतुल—मध्यप्रदेशके छिन्नवाड़ा विभागके अन्तर्गत एक जिला। यहा अक्षा० २१° २१′ से २२° २५′ तथा देशा० ७७° ८′ से ७८° २०′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर और पश्चिममें होसङ्गावाद जिला, पूर्वमें छिन्दवाड़ा और दक्षिणमें अमरावती तथा इलिचपुर जिला है। भूपरिमाण ३८०५ वर्गमील है। वदनूर नगर इसका विचारसदर है। इसका शासनकार्य मध्यप्रदेशके कमिश्नर द्वारा परिचालित होता है।

जिलेका समस्त स्थान पहाड़ी अधित्यकासे पूर्ण है तथा समुद्रकी तहसे प्रायः २००० फुट ऊँचा है। भूपञ्जर मृत्तिका तथा प्राकृतिक दृश्यकी पर्यालोचना करनेसे यह प्रकृति द्वारा दो भागोंमें बंटा-सा मालूम होता है। इसका प्रधान नगर वेतुल है जो जिलेके ठीक मध्यस्थलमें समतल और पलिमय अववाहिकादेशमें अवस्थित है। इस अववाहिका प्रदेशमें माछना और सापना नदियाँ बहती हैं जिससे खेतोंकी उर्वराशक्ति खूब बढ़ गई है। नदीतट या उसके निकटवर्त्ती ग्राम शस्यसमृद्धिसे श्रीसम्पन्न हो रहा है। दोनों नदीके पश्चिम भागमें ज्वालामुखी पहाड़ है। उसीके पश्चिम निविड़ जङ्गलके मध्यसे तासी नदी बह गई है। जिलेके दक्षिण भागमें एक पर्वत है जिसकी चोटी पर पवित्र मूलताई नगर विद्यमान है। इस मूलताईकी अधित्यका भूमिसे तासी, वर्द्धा और बेल नदी निकल कर पूर्व और पश्चिमकी ओर बह गई है। तपनदी जिलेके उत्तर-पूर्व कोणमें बहती है। पूर्वकथित माछना, सापना और मोरन नदियोंको छोड़ कर पर्वतके उपत्यकादेशमें और भी कितने पहाड़ी सोते बहते हैं। पश्चिमके पार्वत्य वनभागमें शाल, शीशम, अर्जुन, देवदार आदि वृक्षोंका वन है। वनमें गोंड़ और कुकुजातिका वास है।

अति प्राचीनकालसे वेतुल नगर खेरलाके गोंड़राज्यका शासनकेन्द्र था। फिरिस्ताके विवरणसे किसी किसी गोंड़राजाका इतिहास छोड़ कर और कहींका भी धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। उक्त ग्रन्थसे मालूम होता है, कि १५वीं सदीमें खेरलाके गोंड़राजके साथ मालवराजका घोर युद्ध हुआ था। उस युद्धमें कभी मालवराजकी और कभी गोंड़राजकी जीत हुई थी। इसके बाद गौलि राजाओंने प्राचीन गोड़राजवंशको परास्त किया। किन्तु थोड़े ही समयके मध्य उस गोंड़जातिने फिरसे

शक्तिसञ्चय कर अपने पूर्व राज्यको अधिकार कर लिया। जो हो, प्रायः १७०० ई०में हम लोग गोंडसरदार राजा भकत बुलन्दको वेतुलके सिंहासन पर अधिष्ठित देखते हैं। राजा गोंड़ जातिके होने पर भी इसलामधर्ममें दीक्षित हुए थे। देवगढ़ राजधानीमें रह कर राजा भकत बुलन्द घाटपर्वतमालाके निम्नवर्त्ती कुल नागपुर राज्यका शासन करते थे। उनकी मृत्युके बाद उनके एक-मात्र पुत्र ही राजा हुए। किन्तु १७३६ ई०में उनका देहान्त हो गया। पीछे उनके दो राजकुमारोंमें राज्याधिकार ले कर झगड़ा खड़ा हो गया। वेरारके महाराष्ट्र-सरदार रघुजीभोंसले उस विवादको निवटानेके लिये मध्यस्थ हुए। किन्तु दोनोंके वीच राज्य बांट देनेके बदले उन्होंने वेतुल राज्यको भोंसले अधिकृत नागपुर राज्यमें मिला लिया। १८१८ ई०में अप्पा साहबकी पराजय और पलायनके बाद अङ्गरेज कम्पनीने युद्धके व्ययस्वरूप दाक्षिणात्यमें जो प्रदेश पाया था, वर्त्तमान वेतुल जिला उसीका एक अंश है। १८२६ ई०की सन्धिके अनुसार वेतुल भूभाग वृटिश अधिकारभुक्त हुआ। १८१८ ई०में अप्पा साहबके साथ अङ्गरेजोंका जब युद्ध होता था उस समय अङ्गरेजोंने मूलताई, वेतुल और शाहपुरमें सेनाकी छावनी डाली थी। अप्पा साहब, अङ्गरेजी सेनाको अतिक्रम कर, पांचमाढ़ीसे पश्चिमकी ओर दलबलके साथ भाग गये। १८६२ ई० तक वेतुलमें अङ्गरेजी सेना रखी हुई थी।

इस जिलेके वेतुल, मूलताई, बदनूर, मेसदेही और अतनेर नगरमें दो हजारसे अधिक लोगोंका वास है।

यहां गेहूं, धान, उड़द, तेलहन, ईख, रूई, पटसन, तमाकू तथा अन्यान्य अनाजोंकी खेती होती है।

यहांका जलवायु उतना खराब नहीं है। वृष्टि प्रायः प्रति दिन हुआ करती है। चैत्रमासके शेष पर्य्यन्त यहां गरमी रहती है। खामलाशैलका अधित्यका देश अङ्गरेजोंके लिये विशेष मनोरम है। उदरामय रोग यहांका मारात्मक है।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१° २१'से २२° २१' उ० तथा देशा० ७७° १४'से ७८° १५' पू०के मध्य अवस्थित है।

३ उक्त जिलेका एक नगर। यहांसे ५ मील दूर बदनूर नगरमें जिलेका सदर उठ जानेके पहले वेतुल नगरमें ही अङ्गरेजोंका आवास था। यह अक्षा० २१° ५२' उ० तथा देशा० ८७° ५८' पू०के बीच पड़ता है। यहांका प्राचीन दुर्ग और अंग्रेजोंका समाधिउद्यान देखने लायक है। यहांके लोग एक तरहका बढ़िया मट्टीका बरतन तैयार करते हैं तथा वह नाना स्थानोंमें बेचनेके लिये भेजा जाता है।

वेतुलप्पुदङ्गडी—मन्द्राजप्रदेशके मलबार जिलान्तर्गत एक नगर। यह तिरुर रेलष्टेशनसे २ मील पूरब अक्षा० १०° ५३' उ० तथा देशा० ७५° ५६' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां वेतुलनाद-राजवंशका एक प्रासाद था। १७८४ई०में टीपू सुलतानने उसे तहस नहस कर डाला। उस खंडहरका मालमसाला ले कर यहांकी जज-अदालत और कलक्टरी कचहरी बनाई गई है।

वेत्तुर—मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत वल्लवनाड़ तालुकका एक प्राचीन बड़ा ग्राम।

वेत्तवलम—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण आर्कट जिलान्तर्गत कल्लकुर्चि तालुककी एक जमींदारी।

वेत्ता (सं० त्रि०, वेत्तृ देखो।

वेत्तादपुर—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके अन्तर्गत महिसुर जिलेका एक पर्वत। यह समुद्रकी तहसे ४३५० फुट ऊंचा है और अक्षा० १२° २६' उ० तथा देशा० ७६° ६' पू०के मध्य विस्तृत है। पर्वत कोणाकार है। उसकी चोटीके ऊपर सुप्रसिद्ध मल्लिकार्जुन महादेवका मन्दिर है। पर्वतके नीचे वेत्तादपुर नगर बसा हुआ है। यहां सङ्केति ब्राह्मणोंका वास है। १०वीं सदीमें मेङ्गलराम नामक एक जैन राजाने लिङ्गायत धर्ममतका अनुकरण कर इस देवमन्दिरका संस्कार किया। टीपू सुलतानके अभ्युदय तक यह स्थान देशी सामन्तराजके अधीन रहा।

वेत्तिया—बङ्गालके पश्चिमदेशवासी असभ्य जातिविशेष।

वेत्तु—दक्षिण भारतका जैन देवस्थानविशेष। यहां मन्दिर या तीर्थङ्करोंकी प्रतिमूर्त्ति नहीं है। यह केवल एक प्राचीरवेष्टित विस्तृत प्राङ्गण है। यहां गोमती या गोतमराजकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित रहती है। यहांके लोग उन्हींकी पूजा करते हैं।

वेत्तुर—महिसुर राज्यके देवनगर तालुकान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० १४° १६' उ० तथा देशा० ७६° पू०के मध्य अवस्थित है। किंवदन्ती यह है, कि १३वीं सदीमें यहां देवगिरिके यादव राजाओंकी राजधानी थी।

वेत्वा——मध्यभारत एजेन्सीके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक नदी। इसका प्राचीन नाम वेत्रवती है।

वेत्रवती देखो।

वेत्तृ (सं० त्रि०) वेत्तीति विद्-तृण्। ज्ञाता, जाननेवाला।

वेत्र (सं० पु०) वो (गु-भृ-वी-पटीति। उण् ४।१६६) इति त्र। स्वनामख्यात वृक्ष, बेंत। पर्याय—वेत, योगिदण्ड, सुदण्ड, मृदुपर्वक। यह पांच प्रकारका है। गुण—शीतल, कषाय, भूत और पित्तहर। इसका अगला भाग वेताक् कहलाता है। गुण—दीपन, रुचिकर, तिक्त, पित्त और कफनाशक। फलका गुण—वातपित्तनाशक और अम्ल।

इस स्वनामप्रसिद्ध वृक्षको अंगरेजीमें Canes वा Rattans कहते हैं। उद्भिद्विज्ञानमें इसको तालवृक्ष जाति (Calamus) में माना गया है। भिन्न भिन्न देशमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। यथा,—फरासी—Canne, rosaau; Baton, Raton; जर्मनी—Rohrt. मलय रोतन; इटली—Canna, bastone, स्पेन—Canao, Junco de Indias, तामिल—पत्त्रम्बुगल; तेलगू—बेत्तमुलु; पारस्य—वेद, गुजरात—नाथुर, संस्कृत—वेत्र; वङ्गाल—वेतृ, वेत, वेत्र।

भारतीय द्वीपपुञ्ज, मलय प्रायोद्वीप, मन्द्राज प्रसिडेन्सी के जलमय भूभागमें तथा करमण्डल उपकूलमें, चट्टग्राम, श्रीहट्ट, आसाम और पूर्ववङ्गके वनोंमें तथा छोटे जंगलोंमें, हिमालय पर्वतके देरादून अञ्चलमें नाना श्रेणीके वेत्र देखे जाते हैं। चीनदेशमें एक प्रकारका मोटा बेंत मिलता है जो पण्यद्रव्यके हिसाबसे 'चैना केन' नामसे प्रसिद्ध है। इसी प्रकार 'मलक्का केन' भी स्वतन्त्र परिचित हुआ है। वाणिज्यके पण्यहिसाबसे 'Dagon's blood' और 'Malacca' जातिका बेंत विशेष आदरणीय है।

हम लोगोंके देशमें 'कृष्ण वेत्र' नामक एक जातिका बेंत है जिसका अग्रभाग पाचनादिमें व्यवहृत होता है।

इसके पत्ते बाँसके पत्तोंके समान और कंटीले होते और उन्हींके सहारे यह लता ऊंचे ऊंचे पेड़ों पर चढ़ती है। इसके डंठल बहुत मजबूत और लचीले होते हैं और प्रायः छड़ियाँ, टोकरियाँ तथा इसी प्रकारके दूसरे सामान बनानेके काममें आते हैं। डंठलोंके ऊपरकी छाल कुर्सियाँ, मोटे पलंग आदि बुननेके काममें भी आती है। हमारे यहांके प्राचीन कवियों आदिका विश्वास था कि बेंत फूलता या फलता नहीं। पर वास्तवमें यह बात ठीक नहीं है। इसमें गुच्छोंमें एक प्रकारके छोटे छोटे फल लगते हैं जो खाए जाते हैं। इसकी जड़ और कोमल पत्तियाँ भी तरकारीकी तरह खाई जाती हैं।

वङ्गदेश, ब्रह्म और भारतीय द्वीपपुञ्जमें बेंतका बहुत व्यवहार देखा जाता है। पर्वतगात्रस्थ नदीको पार करनेके लिये जगह जगह केवल बेंत या बाँसका बना हुआ पुल है। बेंतके छिलकेसे बनी हुई रस्सी श्रीहट्ट, नोआखाली, चट्टग्राम और ब्रह्मराज्यके उपकूलवर्त्ती देशोंमें व्यवहृत होती है। जहां खारे जलके कारण लौहबन्धनी द्वारा नावकी लकड़ी आपसमें नहीं जोड़ी जाती वहां बेंतके बन्धनसे नाव बनाई जाती है। ब्रह्मकी बड़ी बड़ी नावोंके एक मस्तुलसे दूसरे मस्तुल बांधनेकी रस्सी बेंत ही की होती है। मलक्का द्वीपजात C. Rudentum जातिके बेंतसे एक प्रकारका मोटा रस्सा बनाया जाता है। इससे स्टीमरके साथ मोटी लकड़ी और बड़े बड़े पत्थर खींचे जाते हैं। उस मोटे रस्सेसे कभी कभी जंगली हाथी भी बांधा जाता है।

ब्रह्मराजके वनभागमें नाना प्रकारका बेंत उत्पन्न होते देखा जाता है। करेन जातियाँ प्रायः १७ प्रकारके बेंतोंके नाम जानती हैं। जो सब बेंत लताकी तरह बढ़ते हैं उनमें Calamus Verus श्रेणी १०० फुट तक, C. Oblongus ३००से ४०० फुट; C. Redentum ५०० फुटसे भी अधिक; Extensus ६०० फुट तक बढ़ती है। रम्फियसने अपने ग्रन्थमें १२०० फुट लम्बे एक प्रकारके बेंतका उल्लेख किया है।

यूरोपमें बेंतकी छड़ी, छत्रदण्ड, सोक, सेनाओंकी टोपी, घोड़ेका साज, घरका असबाब, झरोखेके किवाड़

आदि बनाये जाते हैं। नागा लोग बेंतके छिलकोंको तरह तरहके रंगोंसे रंगाते और उसीको हाथ और पैरमें अलङ्कार स्वरूप पहनते हैं। नागा, कुकी आदि असभ्य जातियाँ तथा प्राचीन बङ्गालकी ढाली सेना बेंतका बना हुआ ढाल व्यवहार करती थी। बेंतके ऊपरकी छाल अलग कर भीतरमें जो गूदा या तन्तुमय दण्ड रहता है उससे शीतप्रधान देशोंमें एक तरहकी चटाई बनती है। इन सब कारणोंसे बेंत पण्यद्रव्यरूपमें नाना स्थानोंमें भेजे जाते हैं। बेंतका अग्रदण्ड तीक्त और पका फल खट्टा होता है।

२ असुरविशेष, वेत्रासुर।

वेत्रक (सं० पु०) रामशर, सरपत।

वेत्रकार (सं० पु०) वेत्र द्वारा द्रव्य प्रस्तुतकारी, वह जो बेंतके सामान बनाता हो। (राम० २।६०।१६)

वेत्रकीय (सं० त्रि०) वेत्र-छ (नड़ादीनां कुक् च। पा ४।२।६१) इति कुक् च। वेत्रसमूहयुक्त देशादि, वह देश या स्थान जहाँ बेंतकी अधिकता है। यह स्थान शाहाबाद जिलेमें अवस्थित है। अभी यह बिहुता कहलाता है।

वेत्रकूट—पुराणानुसार हिमालयकी एक चोटीका नाम।

वेत्रगङ्गा—हिमगिरिपादसे निकली हुई एक नदीका नाम। (हिम० ख० ४५।३६)

वेत्रग्रहण (सं० क्ली०) १ दण्डधारण। २ दौवारिकत्व। (रघु ६।२६)

वेत्रग्राम—बङ्गालके चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। (भविष्य ब्रह्मख० १३।१८)

वेत्रधर (सं० पु०) वेत्रस्य धरः। १ द्वारपाल, संतरी। २ यष्टिधारक, लठैत, लठबंद।

वेत्रधारक (सं० पु०) वेत्रस्य धारकः। द्वारपाल, संतरी।

वेत्रनगर—चम्पारणके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मख० ४१।४६) उक्त ग्रन्थमें यहांके राजवंशका परिचय है। (ब्रह्मख० ४३।८७)

वेत्रमूला (सं० स्त्री०) यवतिक्ता, शंखिनी।

वेत्रवत् (सं० त्रि०) वेत्र अस्त्यर्थे मतुप्-मस्य वः। वेत्रविशिष्ट, वेत्रयुक्त।

वेत्रवती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। यह नदी मालवदेशसे निकल कर कालवी नामक नगरमें यमुनानदीके साथ मिली है। (मार्कण्डेयपु० ५७।२०)

इसका वर्त्तमान नाम बेतवा नदी है। यह अक्षा० २२° ५' से २५° ५५' उ० तथा देशा० ७७° ४०' से ८०° १६' पू०के मध्य बुन्देलखण्ड राज्यमें बहती है। मध्यभारतकी भूपाल राजधानीसे १।। मील दक्षिणमें अवस्थित बड़े ह्रदसे निकल कर दक्षिण-पूर्वकी ओर २० मील तक बहती हुई शतपुरमें आई है। पीछे उत्तर-पूर्व गतिसे ३५ मील प्रवाहित हो ग्वालियरराज्य अतिक्रम कर ललितपुर, झांसी और हमीरपुर जिलेमें चली गई है। इसके बाद ३६० मीलका रास्ता तै कर नगरसे ३ मील दक्षिण यमुना नदीमें मिली है। यमुना, दशान, कोलाहु, पावन और ब्रह्मन् नदी नामकी शाखाएं इसके कलेवरको पुष्ट करती हैं। उत्पत्तिस्थानसे वेत्रवती नदी पहले विन्ध्यगिरिके वालुकामय प्रस्तरखण्डको धोती हुई झांसी जिलेमें दानेदार पत्थरोंके ऊपर बह गई है।

निमाच, कानपुर और गुणासे इस नदीके ऊपरसे एक रास्ता सागरमें, झांसीसे नन्दगाँवमें और बांदासे काल्पीमें चला गया है। उन सब स्थानोंमें नदीको पार करना असम्भव और विपज्जनक है। ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़ी नदियोंमें प्रायः जल नहीं रहता। वह सूक्ष्म जलरेखा जब पहाड़ी देशका परित्याग कर समतल भूमिमें आती है, तब उसके जलका वेग प्रति सेकेण्डमें २ लाख क्युबिक फुट होता है। अत्यन्त बाढ़के समय वह वेग प्रति सेकेण्डमें ५ लाख फुट हो जाता है। झांसी जिलेमें इस नदीसे एक नहर काटी गई है।

२ वेत्रासुरकी माता। (वराहपुराण)

वेत्रराज्य—जनपदभेद। वेत्रनगर देखो।

वेत्रशङ्कुपथ—जनपदभेद। (मत्स्यपुराण १२१।५६)

वेत्रहन् (सं० पु०) वेत्रं हतवान्, हन-क्विप्। इन्द्र। (अमर)

वेत्रावती (सं० स्त्री०) वेत्रवती नदी। इस नदीका जल मधुर, कान्तिप्रद, पुष्टिकारक, बलकर, वृष्य और पाचन है। (राजनि०)

वेत्रासन (सं० क्ली०) वेत्रस्यासनं। वेत्रनिर्मित आसन, बेंतका बना हुआ किसी प्रकारका आसन। पर्याय—आसन्दी।

वेत्रासुर (सं० पु०) वेत्रनामकोऽसुरः। स्वनामख्यात असुर। इस असुरकी उत्पत्तिका विवरण इस प्रकार लिखा है—पूर्व समयमें सिन्धुद्वीप नामक एक प्रतापशाली राजा थे। वरुणके अंशसे इनका जन्म हुआ था। उन्होंने एक ऐसे पुत्रके लिये तपस्या आरम्भ कर दी जो किसी समय इन्द्रका वध कर सके। जब वे घोरतर तपस्यामें नियुक्त थे, उस समय वेत्रवती नदी रमणीका रूप धारण कर वहां आई। राजाने उस स्त्रीको देख कर बड़े क्रोधसे कहा, 'तुम कौन हो? यहांसे चली जावो, मेरी तपस्यामें बाधा न डालो।' वेत्रवतीने जवाब दिया, 'राजन्! मैं जलपति महात्मा वरुणकी पत्नी हूं। मेरा नाम वेत्रवती है। मैं आपको पानेके लिये यहां आई हूं, मुझे निराश न लौटावें। जो पुरुष साभिलाषा और भजमाना परस्त्रीका परित्याग करते हैं, वे पाप पुरुष कहलाते हैं तथा ब्रह्महत्याका उन्हें पाप लगता है।' राजाने भीतिप्रद वाक्य सुन कर उसके साथ सहवास किया। इससे उसी समय वेत्रवतीके गर्भसे बारह सूर्यकी तरह कान्तियुक्त, अति बलवान् और तेजस्वी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रका नाम वेत्रासुर रखा गया। वह प्राग्ज्योतिषपुरका अधिपति था। वेत्रासुरने पहले समस्त वसुन्धराको जीत कर पीछे इन्द्र, अग्नि और यम आदिको परास्त किया। (वराहपु० देवोत्पत्तिनामाध्याय)

इसके बाद इन्द्रने उस असुरका वध किया।

वेत्रिक (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार प्राचीनकालका एक जनपदका नाम। २ इस जनपदका निवासी। ३ वेत्रधारी, द्वारपाल, संतरी।

वेत्री (सं० पु०) वेत्रोऽस्यास्तीति वेत्र-इनि। १ द्वारपालक, संतरी। २ चोवदार, असा बरदार।

वेत्रीय (सं० त्रि०) १ वेत्र सम्बन्धीय, वेंतका। (पु०) २ ब्राह्मणभूमिके अन्तर्गत ग्रामभेद। यह शिलावती नदीके किनारे रसकुण्डसे २ योजन पश्चिममें अवस्थित है। यहां सर्वमङ्गला देवीमूर्त्ति है।

वेथिया—वेतिया देखो।

वेथिलेह (सं० क्ली०) नगरभेद।

वेद (सं० पु०) विद्-वृत्त वा विन्त-घञ्। १ विष्णु। २ वृत्त। ३ वित्त। ४ यज्ञाङ्ग। ५ धर्म ब्रह्मप्रतिपादक अपौरुषेय वाक्य। (वेदान्त) ६ मीन शरीरावच्छिन्न भगवद्वाक्य। (न्यायशास्त्र) ७ ब्रह्ममुखनिर्गत धर्मज्ञापक शास्त्र। (पुराण) पर्याय—श्रुति, आम्नाय, छन्दः, ब्रह्म, निगम, प्रवचन। (जटाधर)

अमरकोषके अनुसार इसके तीन पर्याय हैं—श्रुति, वेद, आम्नाय। 'श्रूयते धर्मोऽनया संज्ञायां क्तिन् श्रुतिः। आम्नायते उपदिश्यते धर्मोऽनेनेति आम्नायः।'

त्रयी शब्दोंसे फिर युगपत् ऋक्, साम और यजु इन तीन वेदोंका अर्थ समझा जाता है। यथा—

"स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी।" (अमर)

किन्तु शतपथ-ब्राह्मणमें लिखा है:—

"त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि॥" (४।६।७।१)

त्रयी।

कुछ लोगोंका कहना है, वेद रचनामें गद्य, पद्य और गान ये तीन तरहकी प्रणाली अवलम्बित है, इससे इसका नाम "त्रयी" है। जो सब अंश पद्यमें रचे गये थे, पुराकालमें उनको ऋक्, जो अंश गद्यमें रचा गया था उसको यजुः और जो सब रचनायें गानोंमें हुई, उनको साम कहा गया। जब गद्य, पद्य और गानातिरिक्त रचनाकी दूसरी कोई प्रणाली नहीं, तब ऋक्संहितामें सामसंहिताका अथवा अथर्वसंहितामें इन ऋक्, यजुः और सामके सिवा दूसरा किसी तरहका वेदमन्त्र नहीं है। गद्य, पद्य और गानके अतिरिक्त दूसरी किसी तरहकी रचनाप्रणाली पहले भी न थी और अब भी नहीं है। ऋक्, यजु और साम ये तीन नाम केवल वैदिकी मन्त्ररचनाप्रणालीके नाममात्र हैं। भगवान् जैमिनीकी उक्ति ही इस विषयका प्रमाण है। यथा—

"तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या शेषे यजुः शब्दः।"

(मीमांसादर्शन २।१।३२, ३३, ३४)

अर्थात् इन तीनों वेदोंके मध्य जहां अर्थवश पादव्यवस्था होती है, उसे ऋक्, जहां जहां गान है, उसको साम और अपरांशको यजुः कहते हैं। माधवाचार्यने न्यायमालाविस्तर नामक ग्रन्थमें इस विषयकी सविस्तार आलोचना की है।

मन्त्रोंकी रचनाके नियमानुसार ही त्रयी नामकी उत्पत्ति हुई है। सुतरां प्रचलित वेदके मन्त्रभागको ही त्रयी कहा गया है। ब्राह्मणभाग मुख्य अर्थमें त्रयी नहीं है। तैत्तिरीयब्राह्मणमें लिखा गया है—

"अहे बुध्नीय मन्त्र मे गोपाय य मृषय स्त्रैविदा विदुः। ऋचः सामानि यजुंषि।" (१।२।१।२६)

माधवाचार्यने अधिकरणमालाके उद्धृतांशकी व्याख्या कर प्रमाणित किया है,—मन्त्रभाग ही त्रयी शब्दका वाच्य होने पर भी मन्त्रभागानुगत ब्राह्मणांश व्यवहारिक भावसे त्रयीशब्द वाच्य है। ब्राह्मणभाग भी वेदसंज्ञासे संज्ञित हुआ है। क्योंकि, संज्ञा चिर दिन ही व्यवहारनियमके अधीन है। किन्तु सच पूछिये, तो मन्त्रभागका ही वेदत्व, श्रुतित्व, आम्नायत्व वा त्रयीत्व मुख्यार्थ सिद्ध है। ब्राह्मणभागको वेद या त्रयी कहा जाता है सही; किन्तु वेदसंज्ञाधिकारमें इसका प्राधान्य नहीं है। त्रयी ही वेद है। वह वेदका अर्थान्तर नहीं है।

वेद शब्दकी व्युत्पत्ति।

प्राचीन पण्डितोंने बहुत स्थलोंमें बहुत तरहसे वेदशब्दका व्युत्पत्यर्थ प्रकाश किया है। कुछ लोगोंका कहना है, "विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभन्ते वा एभि धर्मादि पुरुषार्था इति वेदाः।" अर्थात् इसके द्वारा धर्मादि पुरुषार्थ समूह जाना जाता या लाभ किया जाता है, इसीसे ये वेद नामसे ख्यात है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमविषय समूहमें जो अन्तिम या चरम स्थानीय है वही सर्वविषय मूल वेदशास्त्र है। अथवा "समयबलेन सम्यक् परीक्षानुभवसाधनं वेदः।" अथवा "अपौरुषेयं वाक्यं वेदः"। सायणाचार्य ऋग्वेदके भाष्यमें वेदकी ये सब निरुक्तियां लिख गये हैं। यहां और भी एक व्युत्पत्तिका उल्लेख किया जाता है। यथा—

"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो वेदयति स वेदः।" अर्थात् जिससे इष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहारके सम्बन्धका अलौकिक उपाय ज्ञान जाये, वही वेद है; यह भी सायणोक्त व्युत्पत्ति है। सायण और भी कहते हैं—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

अर्थात् प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा जो उपाय नहीं जाना जाता, वेद द्वारा वह उपाय लाभ किया जाता है। यही वेदका वेदत्व है।

आपस्तम्ब यज्ञपरिभाषासूत्रमें वेदके स्वरूप सम्बन्धमें कहते है—"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों ही वेद नामसे अभिहित होते हैं। सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्यने और भी आपस्तम्बकी उक्तिकी प्रतिध्वनि कर कहा है—

"मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशिर्वेदः।"

अर्थात् मन्त्रब्राह्मणात्मक शब्दराशि ही वेद है। सर्वानुक्रमणीवृत्तिकी भूमिकामें षड्गुरुशिष्यने लिखा है—

"मन्त्रब्राह्मणयो राहुर्वेद शब्दं महर्षयः।
विनियोक्तव्यरूपे यः स मन्त्र इति चक्षते॥
विधिस्तुतिकरं शेषं ब्राह्मणं कथयन्ति हि।
विनियोक्तव्यरूपश्च त्रिविधं सम्प्रदर्श्यते॥
ऋक्-यजुःसामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये।
अहे बुध्नीय मन्त्रं मे गोपायेत्यभिधीयते॥"

इसके बाद एक टीका है, यथा—

"ऋक् पादबन्धो गीतस्तु साम गद्यं यजुर्मन्त्रः"

ग्रन्थकारने इसके बाद लिखा है—

"चतुर्ष्वपि हि वेदेषु त्रिधैव विनियुज्यते।
वेदैरशून्य इत्यादौ मन्त्रे त्रैविध्यमुच्यते॥
सर्वब्रह्मेति (यं पं २२) सूत्रेऽपि चतुर्भिरिति निर्णयः
प्रस्तुतर्कादिवाचित्वोवामन्त्रे सूत्रकारयोः।
ऋग्रूप मन्त्र वाहुल्याद् ऋग्वेदः स्यात् तथेतरौ।
शान्तिपुष्ट्याभिचारार्थ ब्रह्मचर्या प्रयाव त्रिधया।
ऋचाञ्च यजुषां तूर्यो वाहुल्येन विधायकः॥"

इसका अर्थ यही है, कि मन्त्र और ब्राह्मण इन दोनोंको ही महर्षिगण वेद शब्दसे अभिहित कर गये हैं। जो विनियोगका विषय है, वही मन्त्र तथा जो विधि और स्तुतिकर है वह ब्राह्मण है। विनियोक्तव्यरूप मन्त्र तीन है—ऋक्, साम और यजुः। अर्थात् वेदचतुष्टयमें जो जो स्थल पदबद्ध या पद्यमय हैं वे सभी ऋक् हैं, जो

जो स्थल गीतमय है, उस स्थलमें साम, दूसरे जो गद्यमय है उसे यजुः समझना चाहिये। वेदोंके तीन प्रकारकी रचनायें हैं। वर्त्तमान विभागकी मूलप्रणाली यह है, कि जिसमें पद्यांश अधिक है, वह ऋक्, जिसमें गानका अंश अधिक है, वह साम और जिसमें गद्यांश अधिक है, वह यजुर्वेद नामसे अभिहित है।

कुछ लोगोंका कहना है, कि प्राचीन कालमें वेद-शब्द विद्या शब्दके दूसरे पर्यायरूपसे व्यवहृत होता था। सब मन्त्र-सर्वविद्याके निधान हैं। ये मन्त्र तीन प्रणालियोंमें रचे जाते थे, इससे वेद त्रयी नामसे ख्यात होते थे। मन्त्रभागप्रकाशके समयमें त्रिविध प्रणालीसे रचित मन्त्र त्रयी नामसे ख्यात हुए। ब्राह्मणप्रकाशके समय ब्राह्मणने भी वेद या त्रयी नाम प्राप्त किया। सूत्रकालमें मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों ही वेद या त्रयी संज्ञासे संज्ञित होते थे। इससे तीन पक्षकी सृष्टि हुई।

(१) मन्त्र और ब्राह्मण—इन दोनोंके वेदत्व।

(२) ब्राह्मण ग्रन्थोंके ही मुख्यभावसे वेदत्व।

(३) सर्वविद्याविधान मन्त्रोंका वेदत्व।

बहुत प्राचीन कालमें मंत्र ही वेद नामसे विख्यात थे।

वेद शब्दका प्राचीनत्व।

शुक्लयजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखामें इसका उल्लेख है, कि वेद शब्द त्रयी शब्दार्थवाच्य है। जैसे—

"वेदेन रूपे व्यपिबत् सुतासुतौ प्रजापतिः।" (१९।७८)

यहां महीधरने वेद शब्दके दो अर्थ किये हैं—एक अर्थज्ञान और दूसरा त्रयीविद्या। शेषोक्त अर्थ ही सुसङ्गत है। पाणिनिके उञ्छादिगणमें भी (पा ६।१।१६०) वेद शब्द पठित हुआ है। वृषादिगणमें भी (पा ६।१।२०३) वेद शब्द है। इन सब स्थानोंमें भी त्रयी अर्थमें वेद शब्द व्यवहृत हुआ है। तैत्तिरीय-संहितामें भी त्रयी शब्दार्थवाचक वेद शब्दका उल्लेख देखा जाता है। यथा—"यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनाति तराणि मृत्युम्" (४।७।५६) सब संहिताओंमें ही त्रयी शब्दार्थवाचक वेद शब्दका उल्लेख है।

सभी ब्राह्मण-ग्रंथोंमें "त्रयी" अर्थमें ही वेद शब्दका व्यवहार देखा जाता है। बह्वृच-ब्राह्मणमें "त्रयो वेदा अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात् तान् वेदानभ्यतपत्" (ऐतरेय ब्राह्मण ५।५।६) तैत्तिरीय-ब्राह्मणके तृतीय काण्डमें (१०।११।४) उक्त अर्थमें वेद शब्दका उल्लेख है।

छान्दोग्य ब्राह्मणमें भी वेद शब्दका उल्लेख दिखाई देता है—"स होवाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदं अथर्वणं चतुर्थम्" (७।१।२) अथर्व-ब्राह्मणमें भी वेद शब्द दिखाई देता है। यथा—"इमे सर्वे वेदाः" (गोपथब्राह्मण १।२।३) इस तरह सब ब्राह्मण-ग्रंथोंमें ही त्रयी अर्थवाचक वेद शब्द दिखाई देता है।

आपस्तम्बादि सूत्ररचनाके समय ब्राह्मण-ग्रंथादि भी वेद नामसे अभिहित होना आरम्भ हुआ। जैसे—"मन्त्रब्राह्मणयो र्वेदनामधेयम्" (यज्ञपरि० ३८ सू०)। इसी समयसे धर्मसंहिता मंत्रमें ही मंत्र और ब्राह्मण वेदसंज्ञासे संज्ञित होते आ रहे हैं।

श्रुति।

इससे पहले त्रयी शब्दकी आलोचना की गई है। वेद शब्दकी भी आलोचना हुई। अब श्रुति शब्दकी कुछ आलोचना की जाती है। श्रुति वेद शब्दका ही नामान्तर है। श्रवणात् श्रुतिः। जो श्रुत होता आ रहा है, वही श्रुति है। श्रुति शब्द श्रवणेन्द्रियपर है। श्रु + क्तिन् = श्रुति। वेद सदासे गुरुपरम्पराके अनुसार श्रुत होता आ रहा है। कोई भी आज तक इसके एक मन्त्रके प्रणयनकालके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हुआ। इसीलिये वेदको अनादि और अपौरुषेय कहा जाता है।

वेदार्थवाचक श्रुति शब्द किस समयसे प्राचीन संस्कृत साहित्यमें व्यवहृत हो रहा है, उसका स्पष्ट इतिहास नहीं मिलता। किन्तु यह निश्चित है, कि मन्त्रकालमें इस अर्थमें श्रुति शब्दका प्रयोग दिखाई नहीं देता था। मंत्रसंहितामें वेदके अर्थमें श्रुति शब्दका प्रयोग दिखाई नहीं देता है। वैदिक साहित्य कालका विभाग करनेमें निम्नलिखित रूपसे श्रेणीविभाग किया जाता है। यथा—

प्रथमतः—मन्त्रकाल।

द्वितीयतः—यज्ञादिमें मंत्रका व्यवहारकाल।

तृतीयतः—तादृश प्रवादका श्रुतिकाल।

चतुर्थतः—गाथाकाल।

पञ्चमतः—ब्राह्मणकाल, गाथामूल बहुल ब्राह्मण-वचन।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें इस श्रेणी विभागका बीजस्वरूप प्रमाण मिलता है। यथा—

"तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेत्। तदेषाभियज्ञगाथा गीयते,—यनेत् सौत्रामण्या अपत्नीकोऽप्यसोमपः। मातापितृभ्यामनृणार्थजेति वचनाच्छ्रुतिः इति। तस्मात् सौम्यं याजयेत्।" (ऐ०ब्रा० ७।४।८)

ब्राह्मणकालान्तरमें मंत्र और ब्राह्मण इन दोनोंके प्रवाद अर्थमें श्रुति शब्दका व्यवहार दिखाई देता है। यास्क अपने निरुक्तग्रन्थमें लिखते हैं—

"सेयं विद्याश्रुतिमविबुद्धिः।" (१३।२।१३)

इसके बाद हम मनुस्मृतिमें वेदार्थश्रुति शब्दका प्रयोग देखते हैं, यथा—

"श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।"

(मनुस० २।९)

मनुने और भी स्पष्ट भाषामें लिखा है—"श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः।" (मनु २।१०) मनुका और भी कहना है—

"उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥"

(मनु २।१५)

दर्शनादि शास्त्रोंमें "अनुश्रव" शब्दका प्रयोग है। वह भी वेदार्थवाचक श्रुति शब्दमूलक है। यथा—सांख्यकारिकामें—

"दृष्टवदानुश्रविकः"

इसकी टीकामें वाचस्पतिमिश्र महाशयने लिखा है—

"गुरुमुखादनुश्रूयते इत्यनुश्रवः वेदः इति" अर्थात् गुरुके मुखसे अनुश्रुत हुआ, इसलिये इस विद्याका नाम अनुश्रव अर्थात् वेद है।

लौकिक प्रवादवाक्य भी "श्रुति" आख्यासे अभिहित होता है।

१। द्वे चास्य भार्ये गर्भिण्यौ बभूवतुरिति श्रुतिः।
(रामायण २।११०।१८)

२। एष मे कृष्ण सन्देशः श्रुतिभिः ख्यातिमेष्यति।
(महाभारत १।५०)

३। इति सत्यवती श्रुतिः।
(श्रीमद्भागवत ४।२२।४५)

इसी तरह बहुत स्थलोंमें श्रुतिशब्दका प्रयोग दिखाई देता है। इसका फलितार्थ यह है, कि जिन सब वाक्योंका प्रचारकाल निर्णीत नहीं होता, किस समय किसने कहा है, यह भी नहीं मालूम होता, फिर भी वाक्य प्रामाणिकरूपसे गुरुपरम्परासे उपदेशरूपमें चले आ रहे हैं, वे ही वैदिक या तान्त्रिक वचन श्रुति नामसे अभिहित होते हैं।

इसीलिये मनुकी टीकामें कुल्लूकने उद्धृत किया है।—

"वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा श्रुति कीर्त्तिता।"

एतद्देशीय स्मृतिनिबन्धमें ऐसे अनेक विधान दिखाई देते हैं, कि साक्षात् सम्बन्धमें उन सब विधानोंके वैदिक प्रमाण नहीं मिलते। किन्तु ऐसा न होने पर भी ये सब विधान श्रुतिमूलक हैं, इसलिये इनको "स्मृति" कहा जाता है। जिन सब प्रामाणिक श्रुतिवचनोंके मूलस्वरूप साक्षात् वैदिकवचन नहीं मिलते, उनके मूलमें वैदिकवचन प्रकल्पित होते हैं। वे कल्पित वचन भी श्रुति कह कर रघुनन्दन आदिने ग्रहण किये हैं। वेदके मन्त्रभागका श्रुतित्व सर्ववादिसम्मत है—ब्राह्मणभागका श्रुतित्व मन्वादि स्मृतिनिबन्धकारों द्वारा स्वीकृत है। प्रवादवाक्य और लौकिक वाक्यका श्रुतित्व व्यवहारिक मात्र है। रघुनन्दन प्रभृति बहुतेरे कल्पित श्रुतिके स्रष्टा और समर्थक हैं।

आम्नाय।

वेद शब्दका और एक पर्याय है—"आम्नाय"। आम्नाय शब्दका दूसरा एक प्रति शब्द "समाम्नाय" है। नागेशभट्टने लघुशब्देन्दुशेखरमें लिखा है—"आम्नायसमाम्नायशब्दौ वेदे एव रूढ़ौ" अर्थात् आम्नाय और समाम्नाय ये दोनों शब्द रूढ़ भावसे 'वेद' शब्दार्थवाचक है। सूत्रकालसे मन्त्र और ब्राह्मण वेद शब्दके वाच्य हैं। भगवान् जैमिनीकृत मीमांसादर्शनके बहुत स्थानोंमें वेदार्थमें आम्नाय शब्दका प्रयोग दिखाई देता है। यथा—

१। "आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्।" (१।२।१)

२। "उक्तं समाम्नायेदमर्थम्।" (१।४।१)

वाजसनेय संहिताके प्रातिशाख्यसूत्रकी व्याख्यामें एक जगह लिखा है—"आम्नायो वेदः।"

अथर्ववेदीय कौशिकसूत्रमें और भी स्पष्टतर प्रमान वचन है—यथा—

"आम्नाय पुनर्मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च"

यास्कीय निरुक्तमें "आम्नाय" शब्दमें मन्त्र और ब्राह्मण ये दोनों गृहीत हुए हैं और बहुत स्थानोंमें वेद अर्थमें आम्नाय शब्दका प्रयोग है। निरुक्तकारने, वेदाङ्गको भी आम्नाय कहा है। यथा—

"समाम्नासिषु वेदश्च वेदाङ्गानि च।" (१।६।५)

इस वचनमें देखा जाता है, कि मन्त्र, ब्राह्मण और वेदाङ्ग ये तीनों ही आम्नाय पदवाच्य है। नागेश-भट्टने पाणिनि व्याकरणको भी वेदान्तके अन्तर्गत कह कर इसका आम्नायत्व प्रमाणित किया है। भट्टोजी दीक्षित आदि "आम्नाय" शब्दका प्रचार और भी बढ़ा गये हैं।

छन्दः।

वेदका बहुत प्राचीन दूसरा नाम छन्दः है। प्राचीन संस्कृत साहित्यमें हम अथर्ववेदसंहितामें सबसे पहले छन्दः शब्दका प्रयोग देखते हैं। यथा—

'त्रीणि छन्दांसि कवयो * * आपो वाता ओषधयः।' (१८।१।२।७)

यहां छन्दःका अर्थ जगद्बन्धन है। निरुक्त-कारका कहना है,—'छन्दांसि छादनात्।' (७।३।६)

छादन अर्थात् बन्धन। विषय मात्र ही बन्धन है। सांख्यतत्त्वकौमुदीकारने लिखा है—

"विषिण्वन्ति विषयिणमनुबध्नन्ति स्वेन रूपेण निरूपणीयं कुर्वन्तीति यावत् विषयाः पृथिव्यादयः सुखा-दयश्चास्मदादीनाम्।" (५ श्लोक)

जो विषयियोंको अनुबन्ध अर्थात् स्वीय रूपसे निरूपणयोग्य करता है, वह विषय कहलाता है। जैसे, पृथिव्यादि और हमारे सुख दुःख आदि। फलतः अति प्राचीनतम संस्कृत साहित्य आदिमें इस तरह विषयबन्धन और पृथिव्यादि अर्थमें ही छन्दःका प्रयोग दिखाई देता है।

किन्तु कहीं कहीं केवल सामवेदीयचर्चाको ही छन्दः कहा है। अथर्ववेदसंहितामें—"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे" इत्यादि। (अ० सं० ११।४।२।५)

"तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि यज्ञिरे। छन्दांसि यज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥" (ऋक् सं० १०।६०।८)

इन सब स्थानोंमें "छन्दांसि" पदका अर्थ सामवेदी चर्चा है। सामवेदियोंका संहिताग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है,—गान और छन्दः। गानग्रन्थ भी फिर चार श्रेणियोंमें विभक्त है, गेय, आरण्यक, उह और उह्य।

छन्दोग्रन्थ दो भागोंमें विभक्त है, योनि और उत्तरा, ये दोनों ही आर्चिक कहलाते हैं। उद्धृत ऋक्का अर्थ यह है, कि उस यज्ञसे ऋक्वेदीय, सामवेदीय, अथर्ववेदीय, वृत्तगीतविवर्जित यजुर्वेदीय वाक्य तथा छन्दः समूह उत्पन्न हुए थे। यहां छन्दः शब्दका अर्थ है—सामवेदीय गानादि मूलीभूत छन्दो नामक मन्त्र समूह।

दूसरा नाम।

वेदका दूसरा नाम "स्वाध्याय है, यथा—

"स्वाध्यायोऽध्येतव्य" (तै: आ० २।१५।७)

श्रुति और स्मृतिमें कई जगह "स्वाध्याय" शब्दका प्रयोग देखनेमें आता है। वेदशास्त्रका सम्यक् रूपसे अध्ययन करना ब्राह्मणोंके लिये अति कर्त्तव्य है, इस कारण वेद 'स्वाध्याय' शब्दवाच्य है।

वेदका दूसरा नाम "आगम" है। पाणिनिके वार्त्तिककार कात्यायनने लिखा है—"रक्षोहागम लघ्व-सन्देहाः प्रयोजनम्।"

भाष्यकार पतञ्जलि मुनिने लिखा है—"आगमः—खल्वपि ब्राह्मणेन षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च।"

कुमारिलभट्टने स्वकृत श्लोकवार्त्तिक प्रश्नकी भूमिका-में लिखा है—

"आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि"

सांख्यकारिकाकार ईश्वरकृष्णने लिखा है—

"तस्मादपि चासिद्ध' पौरुषमासागमात् सिद्धम् ।"

इससे साबित होता है, कि वेदका यह 'आगम' नाम भी अति प्राचीन है। इसका दूसरा नाम 'निगम' है।

यास्कीयनिरुक्तमें निगम शब्दका बहुत उल्लेख है तथा वेदसे इनके अनेक उदाहरण दिये गये हैं। यथा—

१। "तत्र खल इत्येतस्य निगमा भवन्ति खलेन पर्षान् ।"
(ऋक्स० ८।१।६।२)

२। "अथापि नैगमेभ्यो भाषिकाः उष्णं घृतमिति ।"
(ऋक्स० २।१।२)

प्रथमतः निगम शब्द मन्त्रभागके दूसरे नामरूपमें व्यवहृत होता था। निरुक्त ग्रन्थमें सभी मन्त्र निगम नामसे अभिहित हुए हैं, ब्राह्मण निगम नहीं कहलाते। यथा—

"निघण्टवः कस्मात् ? निगमा इमे भवन्ति" (१।१।१)

मनु कहते हैं, "निगमांश्च वैदिकान्" इसकी व्याख्यामें कुल्लूकने लिखा है-"तथा पर्यायकथनेन वेदार्थाववोधकान् निगमाख्यांश्च ग्रन्थान्" इति। परवर्त्ती कालमें ब्राह्मण भी निगम कहलाने लगे।

हमने उल्लिखितांशमें वेदके कई पर्यायोंकी आलोचना की है। आलोचित पर्यायके नाम ये हैं—(१) वेद, श्रुति, (३) आम्नाय (४) समाम्नाय (५) छन्दः (६) स्वाध्याय (७) आगम और (८) निगम।

संहितालक्षण

अभी संहितालक्षणके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। श्रीभागवतने वेदको निगमकल्पतरु कहा है। वेद यथार्थमें निगमकल्पतरु हैं। गद्य, पद्य और गान त्रिविध रचनात्मक होनेके कारण वेद त्रयी नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु त्रयी होने पर भी वेदसंहिताके चार भेद हैं, ऋक्संहिता, यजुःसंहिता, सामसंहिता और अथर्व्वसंहिता। प्रातिशाख्यादिमें संहिता लक्षणका उल्लेख इस प्रकार है—

१। पद-प्रकृतिः संहिता (ऋक् प्रा० २।१)

२। वर्णानामेकप्राणयोगः संहिता।
(यजुःप्रा० १।१५८)

३। परः सन्निकर्षः संहिता। (पा १।४।१०८)

यद्यपि चारों संहितामें ऋग् लक्षण पद्यात्मक मन्त्रका उल्लेख देखनेमें आता है, किन्तु जिस ग्रन्थमें इस ऋग्लक्षण (मन्त्रात्मक) मन्त्रको छोड़ दूसरे कोई लक्षणविशिष्ट अर्थात् पद्य भिन्न गद्य वा गीतात्मक पद मन्त्र भी नहीं देखा जाता उसका नाम ऋक्संहिता है।

अन्य प्रकारकी रचनाप्रणाली रहने पर भी जिस संहितामें केवल गद्यकी प्रधानता है वही यजुर्वेदसंहिता है तथा जिस संहितामें केवल गानकी ही प्रधानता है उसीका नाम सामवेदसंहिता है। पहले कहा जा चुका है, कि त्रिविध रचनाप्रणालीके भेदसे ही त्रिविध संहिताका नामकरण हुआ है। चतुर्थसंहिताका नाम अथर्वसंहिता है। किस प्रकार अथर्व्वसंहिताका नामकरण हुआ, उसकी कुछ आलोचना करना आवश्यक है। कोई कोई कहते हैं, कि अथर्व्व नामक ऋषिके नामानुसार अथर्व्वसंहिता नाम रखा गया है। अथर्व्वऋषि ही यज्ञप्रक्रियादिके प्रथम प्रकाशक हैं। इन्होंने ही होत्रादि कार्यके सौकर्य्यार्थ सबसे पहले यज्ञादि क्रियाका सूत्रपात किया।

ऋक्संहितामें लिखा है—

१। यज्ञैरथर्व्वा प्रथमः पथस्तते।
(ऋक्सं १।६ ४।५)

२। अग्निर्जातो अथर्व्वणा। (ऋक्सं ७।७।४।५)

३। त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्व्वा निरमन्थत।
(ऋक्सं ४।५।२३।३)

इन सब मन्त्रोंसे स्पष्ट है, कि अथर्व्वा ऋषि ही यज्ञप्रक्रियाके आदि आविष्कर्त्ता हैं।

इससे साफ साफ मालूम होता है, कि यज्ञकार्यके सौकर्यके लिये वेद विभागकी जरूरत होती है। ऋग् द्वारा होत्र, यजुः द्वारा अध्वर्यु और साम द्वारा यज्ञको उद्गीथ क्रियाका विधान किया जाता है तथा समस्त त्रयी ही ब्रह्मत्वकरणमें साधिकारूपसे निर्दिष्ट होते हैं। अथर्वसंहिताका अध्ययन नहीं करनेसे समस्त त्रयीमें ज्ञानलाभ नहीं होता। होता, अध्वर्यु और उद्गाताके व्यवहारको छोड़ कर उसमें ऋक् और यजुःके अनेक मन्त्र हैं। अथर्ववेद ही ब्रह्मा होते हैं। वे ही यज्ञकी रक्षा करते हैं। यास्कका कहना है, "ब्रह्मा सर्वविद्यः सर्वं वेदितुमर्हति।" (१।३।२) गोपथब्राह्मणमें यह अधिकतर परिस्फुटरूपसे दिखलाया गया है। यथा—"तस्माद् ऋग् विदमेव

होतारं वृणीष्व यजुर्विदमध्वर्युं सामविदमुद्गातारं अथर्वाङ्गिरोविदम् ब्रह्माणम् ।"

(गोपथपूर्वार्द्धमें १।३।१, २)

अतएव अथर्व्वसंहिता सर्वतोभावमें आदरणीय है।

वेदविभाग ।

यज्ञीय होत्रादि कार्यानुसार ही चार वेदका विभाग सम्पन्न होता है। सर्वानुक्रमणीवृत्तिकी भूमिकामें लिखा है—

"विनियोक्तव्यरूपो यः स मन्त्र इति चक्षते ।
विधिस्तुतिकरं शेषं ब्राह्मणं कथयन्ति हि ॥"

वेदकी जो सब उक्तियां विनियोगकी योग्य हैं वही मन्त्र हैं तथा जिसमें विधानादि हैं वही ब्राह्मण है। फलतः यज्ञार्थमें एक वेद ही चार भागोंमें विभक्त है। होता, अध्वर्य्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, ये चारों यज्ञ-पुरोहित हैं। होताके व्यवहार्य मन्त्र मात्र ही ऋक् है। इन ऋक् मन्त्रोंको संहनन वा एकत्र कर जो ग्रन्थ बनाया गया है उसका नाम ऋक्संहिता है। ऋक् मन्त्रके विनियोगादि अभिधायक ग्रन्थका नाम ऋग् ब्राह्मण है। ऋक्संहिता और ऋग् ब्राह्मण ये दोनों ही एकत्र ऋग्वेद नामसे प्रसिद्ध हैं। अध्वर्य्युके व्यवहार्य्य मन्त्रोंका अधिकांश यजुः हैं, परन्तु इसमें ऋक् भी है। इस ऋग् यजुःके एकत्वसे निवद्ध ग्रन्थ हो ऋक्संहिता है। इसके विनियोगादि अभिधायक ग्रंथका नाम यजु-र्ब्राह्मण है। ये दोनों ग्रन्थ एकत्र यजुर्व्वेद नामसे प्रसिद्ध हैं। उद्गाताके व्यवहार्य्य मन्त्र हैं, ऋक्, यजुः और साम। इनके संग्रहसे निवद्ध ग्रंथका नाम सामसंहिता है। इसके ब्राह्मण और मन्त्र दोनों ही एकत्र सामवेद संहिता नामसे प्रसिद्ध हैं। जो ऋग्वेदका अध्ययन कराते हैं, ऋग्वेदका कार्य्य करते हैं, वे ऋग्वेदी हैं।

जो यजुर्वेदमन्त्रका अध्ययन कराते हैं तथा यजुर्वेद मन्त्रका कार्य्य निष्पन्न करते हैं वे यजुर्वेदी हैं। यजु-र्वेदमें ऋक् और यजुः ये दोनों ही वेद रहनेसे यजुर्वेदी द्विवेदी भी कहलाते हैं। वोलचालमें इन्हें 'दूवे' कहते हैं। जो केवल सामवेदका अध्ययन कराते हैं और सामवेदीय कार्य्य करते हैं वे सामवेदी हैं। सामवेद-में ऋक्, यजुः और साम ये तीनों ही वर्त्तमान हैं, इस कारण सामवेदियोंको "त्रिपाठी" वा त्रिवेदी कहते हैं। वोलचालमें ये तिवाड़ी कहलाते हैं।

अथर्व्ववेदसंहिता अवशिष्ट मन्त्रोंका पेटिकास्वरूप है। अथर्व्ववेदसंहितामें ऋक् और यजुः दोनों ही हैं। अथर्वमन्त्रके प्रयोग और अभिधायक ग्रंथका नाम अथर्व्वब्राह्मण है। अथर्वमन्त्र और अथर्वब्राह्मण इन दोनोंकी एकत्र निवद्ध संहिताका नाम अथर्व्व-वेदसंहिता है। यज्ञमें ब्रह्मत्व कार्य्यमें अथर्वमन्त्र और अथर्वब्राह्मणका ज्ञान रहना आवश्यक है। अतएव ऋक्, यजुः और सामवेदसंहिता पढ़े जाने पर भी यदि अथर्व्ववेदका ज्ञान न रहे, तो वेदविषयमें सर्व्व-मन्त्रवेत्तृत्व सम्भवपर नहीं होता। होतृकार्य्यमें ऋग्वेद-का ज्ञान, अध्वर्य्युके कार्य्यमें यजुर्वेदका ज्ञान और उद्गातृ कार्य्यमें सामवेदका ज्ञान प्रयोजनीय है। इस कारण ऋग्वेद होतृवेद, यजुर्व्वेद अध्वर्य्युवेद और सामवेद उद्गातृवेद नामसे पुकारे जाते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मकार्य्यके निष्पादनार्थ अथर्ववेद प्रयोजनीय है। इसी कारण अथर्ववेद 'ब्रह्मवेद' कहलाते हैं। वोलचालमें इन्हें 'चौवे' कहते हैं। अथर्वसंहिताभाष्यमें सायणने लिखा है—

"यमृषयः त्रैविदा विदुः। ऋचः सामानि यजुंषि।"

(तै० ब्रा० १।२।१।२६)

इस त्रैविध्यका उल्लेख वेदगत मन्त्ररचनाका त्रैविध्य ही अभिप्रेत है। जैमिनिने स्पष्ट कहा है, "तच्चोदकेषु मन्त्राख्या। तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। गीतिषु सामाख्या। शेषे यजुः शब्दः"

(जै० सू० २।१।३२, ३५, ३६, ३७)

गोपथब्राह्मणमें लिखा है—

"चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्व्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति।" चतस्रो वा इमे होत्राः। हौत्रमाध्वर्य्य-वमौद्गात्रं ब्रह्मत्वमिति। तदप्येतदृचोक्तम्—चत्वारि शृङ्गास्त्रयो ऽस्य पादाः द्वे शीर्षे, सप्त हस्तासोऽस्य। त्रिधा वद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यामाविवेशः (ऋक्सं० ४।५८।३) चत्वारि शृङ्गेति वेदा वा एत उक्ताः।"

(१।२।१७)

गोपथब्राह्मण और ऋग्वेदसंहिताके उक्त प्रमाणों

द्वारा चार वेदका विषय सायणने स्पष्टरूपसे प्रमाणित किया है। अतएव चारों ही वेद "त्रयी" हैं।

मन्त्र।

पहले ही कहा जा चुका है, कि चतुर्वेद मन्त्र और ब्राह्मणके भेदसे दो भागोंमें विभक्त है। यज्ञपरिभाषासूत्रमें आपस्तम्बने कहा है—

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्।" मन्त्र किसे कहते हैं? यास्कने कहा है—

"मन्त्रा मननात्।" (७।३।६)

दुर्गाचार्यने उसकी वृत्ति कर लिखा है—

"तेभ्यः (मन्त्रेभ्यः हि अध्यात्माधिदैवाधियज्ञादि-मन्तारो मन्यन्ते तदेषां मन्त्रत्वम्।" अर्थात् मन्त्रप्रयोगकारी मन्त्रोंसे अध्यात्म, अधिदैव और अधियज्ञादि मनन करते हैं; इस कारण इनका नाम मन्त्र हुआ है। यास्कने और भी कहा है—

"यत्कामऋषिर्यस्यां देवतायामर्थापत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तत् दैवतः स मन्त्रो भवति।"

(निरुक्त ७।१।१)

अर्थात् कामनावान् ऋषिने किसी देवताके निकट अर्थापत्य प्रभृतिके लिये जो स्तुति-पाठ किया वही देवताका मन्त्र है।

भाष्यकार उवटने यजुर्मन्त्रभाष्यकी भूमिकामें तेरह प्रकारके मन्त्रभेदकी बातोंका उल्लेख किया है। यथा—

१। विधिवाद (परमेष्ठ भिहितः) अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते। (वा० स० २४।१)

२। अर्थवाद—देवा यज्ञमतन्वत। (वा०स० १६।१२)

३। याच्ञा—तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।

(वा० स० ३।१७)

४। आशीः—आ वो देवास इमहे।

५। स्तुति—अग्निमूर्धा दिवः ककुत्।

६। प्रैष—होता यक्षत् समिधाग्निम्।

७। प्रवह्लिका—इन्द्राग्नी आपादियम्।

८। प्रश्न—कः स्विदेकाकी चरति।

९। व्याकरण—सूर्य एकाकी चरति।

१०। तर्क—मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

११। पूर्ववृत्तानुकीर्त्तन—औषधयःसमवदन्त।

१२। अवधारण—तमेव विदित्वातिमृत्युमेति।

१३। उपनिषत्—ईशावास्यमिदं सर्वम्।

शबरभाष्यमें भी तेरह प्रकारके मन्त्रभेद स्वीकृत हुए हैं। किन्तु वे सब दूसरे प्रकारके हैं।

यास्कने ऋकोंको इसके तीन भागोंमें विभक्त किया है—

१ परोक्षकृत, २ प्रत्यक्षकृत, ३ आध्यात्मिक।

परोक्षकृत और प्रत्यक्षकृत मंत्रकी संख्या अनेक है, आध्यात्मिक मन्त्रकी संख्या बहुत थोड़ी है।

संहिताभेद।

संहिता साधारणतः दो प्रकारकी है, निर्भुजसंहिता और प्रतृणसंहिता।

यथायथ पाठ ही निर्भुजसंहिताका पाठ है; इस निर्भुजसंहिताको आर्षीसंहिता भी कहते हैं। इसमें यथायथ पाठ रहता है। जैसे "अग्निमीड़े पुरोहितम्।"

प्रतृणसंहिता दो प्रकारकी है—पदसंहिता और क्रमसंहिता। पदसंहिताका पाठ इस प्रकार है—अग्निम्, ईड़े, पुरःऽहितम्।

क्रमसंहिताका पाठ अन्य प्रकार है, यथा—"अग्निम्, ईड़े, ईड़े पुरोहितम्; पुरोहितमिति पुरःऽहितम्।"

इस क्रमसंहिताका अवलम्बन कर आठ प्रकारकी विकृति पाठका विषय विकृतिवल्ली नामक ग्रंथमें लिखा है। जैसे—

"जटा माला शिखा लेखा ध्वजो दण्डो रथोघनः।
अष्टौ विकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वं मनीषिभिः॥"

वेदशाखा-परिगणना।

एक एक मंत्रके ग्यारह प्रकार संहिता-पाठ हैं। संहिताएं बहु प्राचीन हैं। इस कारण कालभेद; देशभेद और व्यक्ति आदि भेदोंसे तथा अध्यापना और अध्यापनीयके उच्चारणादि भेदसे पाठभेद हुआ है। पाठमें कुछ कुछ कमीवेशी भी हुई है। आचार्योंके प्रकृतिवैलक्ष्यके कारण तथा उनके अपने अपने देश और समयभेदके कारण बहुल अनुष्ठेय भेद तथा प्रयोगभेद भी हुआ है। इस प्रकार एक एक संहिता अनेक शाखाओंमें विभक्त हुई है। षड्गुरुशिष्य कहते हैं—

ऋग्वेद विंशतिशाखायुक्त, सामवेद सहस्रसाखा-

युक्त, यजुः एकशतशाखायुक्त और अथर्ववेद नवशाखायुक्त है। कोई कोई कहते हैं, कि अथर्व्ववेद पन्द्रह शाखाओंमें विभक्त है।

शौनकीय प्रातिशाख्यके मतसे यह वेद शाकल, वास्कल, आश्वलायन, सांख्यायन और माण्डूक नामक पांच शाखाओंमें विभक्त है।

सबसे पहले शाकलमुनिने बड़े यत्नसे ऋग्वेदका अभ्यास किया था। सांख्यायन, आश्वलायन, माण्डूक और वास्कल, ये लोग भी ऋग्वेदियोंके आचार्य तथा सबके सब एक वेदी थे। शौनकके मतसे ये ऋषि थे, किन्तु आश्वलायनगृह्यके मतसे ये आचार्य थे, ऋषि नहीं। आश्वलायनने जहां देवता, ऋषि और आचार्यों-का तर्पण सूत्रवद्ध किया है, वहां इन्हें आचार्य्य ही माना है।

ऋग्वेदकी उल्लिखित पांच शाखा प्रधान है। इनके सिवा ऐतरेय, कौषीतक, शैशिर, पैङ्ग इत्यादि और भी कई शाखाएं देखी जाती हैं, वे प्रधान शाखा नहीं हैं। प्रातिशाख्यके मतसे ये उपशाखा मानी गई हैं। विष्णुपुराणमें भी ऐसा ही आभास मिलता है। यथा—

"मुद्गलो गोकुलः वात्स्यः शैशिरः शिशिरस्तथा।
पञ्चैते शाकलाः शिष्याः शाखाभेदप्रवर्त्तकाः॥"

मुद्गल, गोकुल, वात्स्य, शैशिर, (शिशिर) ये सब शाकलके शिष्य तथा शाखाविशेषके प्रवर्त्तक हैं। अतएव कुल मिला कर ऋग्वेद २१ शाखाओंमें विस्तृत हैं।

"यजुर्वेदस्य षड़शीतिर्भेदा भवन्ति। तत्र चरका नाम द्वादश भेदा भवन्ति—चरकाः, आह्वरकाः, कठाः, प्राच्यकठाः, कपिष्ठलकठाः, आष्ठलकठाः, चारायणीयाः, वारायणीयाः, वार्त्तान्तवेयाः, श्वेताश्वतराः, औपमन्यवः, मैत्रायणीयाः।"

इनमेंसे शेषोक्त मैत्रायणीय भी फिर सात भागोंमें विभक्त है, यथा—मानव, दुन्दुभ, चैकेय, वाराह, हारिद्रवेय, श्याम, श्यामायनीय।

वाजसनेय सत्तरह भागोंमें विभक्त है—जाबाल, गोधेय, काण्व, माध्यन्दिन, शापीय, तापनीय, कापाल, पौण्ड्रवत्स, आवटिक, परमावटिक, पराशरीय, वैरेय, वैनेय, औधेय, गालव, वैजक और कात्यायनीय। इनके सिवा ४४ उपग्रन्थ भी हैं।

यह मैत्रायणीय शाखा छः प्रकार की है—मानव, वाराह, दुन्दुभ, छागलेय, हारिद्रवीय और श्यामायनीय। चरकशाखाकी २ श्रेणियां हैं, औखीय और खाण्डकीय। यह खाण्डिकीय शाखा भी फिर ५ प्रशाखाओंमें विभक्त हैं। यथा—आपस्तम्बी, बौधायनी, सत्याषाढ़ी, हिरण्यकेशी और शाट्यायनी।

वारतन्तवीय, औखीय तथा खाण्डिकीय और तैत्तिरीय ये सब पद पाणिनिसूत्रके 'तित्तिरि वरतन्तु-खण्डिकोखाच्छण्" द्वारा निष्पन्न होते हैं। आपस्तम्ब इत्यादि पांच शब्द भी "कलापिवैशम्पायनान्तेवासिभ्यश्च" णिनिप्रत्यय द्वारा निष्पन्न है।

शुक्ल यजुर्वेदकी १५ शाखाएं हैं। काण्व, माध्यन्दिन, जाबाल, बुधेय, शाकेय, तापनीय, कपोल, पौण्ड्रवत्स, आवटिक, परमावटिक, पाराशरीय, वैनेय, वौधेय, औधेय और गालव इन सब शाखाओंको वाजसनेयी शाखा भी कहते हैं।
दो हजारसे सौ मन्त्र कम मन्त्र वाजसनेय अर्थात् शुक्ल यजुर्वेदमें हैं। वालखिल्य शाखाका भी यही परिमाण है। दोनोंसे ४ गुण अधिक इनके ब्राह्मण हैं।

सामवेद—पौराणिक मतसे पहले सामवेदकी हजार शाखाएं थीं। इन्द्रने वज्राघातसे बहुतोंका ध्वंस किया। जो कुछ गई वह इस प्रकार है- राणायनीय, शाट्यमुग्रय, कापोल, महाकापोल, लाङ्गलिक, शार्दूलीय, कौथुम। इस कुथुम शाखाकी छः उपशाखाएं हैं। यथा—आसुरायण, वातायन, प्राञ्जलीय, वैनधृत, प्राचीनयोग्य, नैगेय।

सामवेदकी शाखा—आसुरायनीय, वासुरायनीय, वार्त्तान्तवेय, प्राञ्जल; इनमेंसे फिर राणायनी नामक नौ प्रकार देखे जाते हैं। यथा—राणायनीय, शाट्यायनीय, सात्यमुद्गल, मुद्गल, महास्कन्द, याज्ञल, कौथुम, गौतम, जैमिनीय।

इनमेंसे सोलह शाखाओंके मध्य अभी सिर्फ तीन शाखा विद्यमान हैं—गुर्जरदेशमें कौथुमी शाखा, कर्णाटकमें जैमिनीय शाखा और महाराष्ट्र देशमें राणायनी शाखा।

अथर्व्ववेद—९ भागोंमें विभक्त है। यथा—

पैप्पलाद, शौनकीय, दामोद, तोत्तायन, जामल, ब्रह्मपालास, कुनखा, देवदर्शी, चरणविद्या। एक दूसरे ग्रन्थके मतसे अथर्ववेदको ६ शाखाएं हैं, यथा—पैप्पलाद, आन्ध्र, प्रदात्त, स्नात, स्नौत, ब्रह्मदावन, शौनक, देवदर्शति, चारणविद्या। इनके सिवा तैत्तिरीयक नामक दो प्रकारके भेद देखे जाते हैं। यथा—औख्य और काण्डिकेय। काण्डिकेय भी फिर पांच भागोंमें विभक्त है। यथा—आपस्तम्ब, बौधायन, सत्यावाची, हिरण्यकेशी, औधेय।

वेदकी किस प्रकार अनेक शाखाएं हुई? इस सम्बन्धमें सभी पुराणोंमें थोड़ा थोड़ा प्रसङ्ग देखनेमें आता है। परन्तु ब्रह्माण्डपुराणमें कुछ विस्तृत विवरण लिखा है।

पराशरके पुत्र व्यासने ब्रह्माके कथनानुसार वेदविभागके लिये चार शिष्य ग्रहण किये। इनमेंसे पैलको ऋग्वेदके, वैशम्पायनको यजुर्वेदके, जैमिनिको सामवेदके और सुमन्तुको अथर्ववेदके कर्त्तारूपमें नियुक्त किया। उन लोगोंने यजुर्वेदसे अध्वर्यु, ऋक्से होत्र, सामसे उद्गात्र और अथर्ववेदसे यज्ञमें ब्रह्मत्वका निर्देश किया था। इससे सभी ऋक् उद्धृत कर ऋक्संहिता की गई, उससे जगत्‌हितकर यज्ञवाह होता कल्पित हुआ था। सामसे सामवेद और उससे उद्गात्र रचा गया था तथा अथर्ववेदके अनुसार राजाओंको यज्ञ कर्ममें नियुक्त किया गया।

यजुर्वेदके अनेक पद उठा दिये गये थे, इस कारण वह विषम अर्थात् छन्दोहीन हुआ। उससे वेदपारग ऋत्विगों द्वारा उद्धृतवीर्य अश्वमेधयज्ञ प्रयुक्त हुआ। अथवा अश्वमेध यज्ञ द्वारा ही वेदयुक्त हुआ है।

पैलऋषिने मन्त्रोंको ले कर दो भागोंमें विभक्त किया। इसके बाद उन्होंने फिर उन्हें दो भागोंमें विभाग तथा पुनः संयोग कर दोनों शिष्योंको अर्पण कर दिया था। इन्द्रप्रमति नामक शिष्यको पहला और वास्कलको दूसरा अर्पण किया गया। द्विजश्रेष्ठ वास्कलने चार संहिता करके शुश्रूषानिरत हिताकाङ्क्षी शिष्योंको उन्हें पढ़ाया था। बोध नामक शिष्यको प्रथम शाखा, अग्निमाठरके शिष्यको द्वितीय शाखा, पराशरको तृतीय शाखा और याज्ञवल्क्यको चतुर्थ शाखा पढ़ाई गई।

ब्राह्मणश्रेष्ठ इन्द्रप्रमतिने महाभाग यशस्वी मार्कण्डेयको एक संहिता पढ़ाई। महायशस्वी मार्कण्डेयने ज्येष्ठ पुत्र सत्यस्रवाको, सत्यस्रवाने सत्यहितको, सत्यहितने अपने पुत्र सत्यतरको तथा विभु सत्यतरने महात्मा सत्यधर्मपरायण सत्यश्रीको अध्ययन कराया था। तेजस्वी सत्यश्रीके शाकल्य, रथीतर, वास्कलि और भरद्वाज ये चार विद्वान् शिष्य थे। ये सभी अध्ययननिपुण और शाखाप्रवर्त्तक हैं। शब्दशास्त्रज्ञ देवमित्र और महात्मा शाकल्यने पाँच संहिता प्रकाशित कीं। महर्षि शाकल्यके मुद्गल, गोलक, खालीय, मत्स्य और शैशिरेय ये पांच शिष्य थे।

द्विजवर शाकपूणी रथीतरने तीन संहिता और एक निरुक्तकी रचना की। उनके केतव, दालकि, धर्मशर्मा और वेदशर्मा ये चार व्रतधारी ब्राह्मणशिष्य थे।

भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, गालकि, सालकि और धीमान् शतवलाक, ये लोग भी संहिताकर्त्ता हैं। द्विजोत्तम नैगम, वास्कलि और भरद्वाजने तीन संहिता प्रणयन कीं। रथीतरने पुनः चतुर्थ निरुक्तकी रचना की थी। उनके गुणवान् तीन शिष्य थे। धीमान् नन्दायनीय प्रथम, बुद्धिमान् पन्नगारि द्वितीय और आर्य्यव तृतीय थे। ये सभी तपस्वी व्रतधारी विरागी, महातेजस्वी और संहिताज्ञानमें विशेष पारदर्शी थे। ये संहिताप्रवर्त्तक बह्वृच कहे जाते हैं।

महर्षि वैशम्पायनके शिष्योंने यजुर्वेदके भेदकी कल्पना की। उन्होंने ८६ अच्छी अच्छी संहिता प्रणयन कर शिष्योंको प्रदान की थी। शिष्योंने भी उनका विधिपूर्वक अध्ययन किया। इनमेंसे महातपा याज्ञवल्क्य परित्यक्त हुए थे। उक्त शिष्योंने उपरोक्त ८६ संहिताओंका भेद किया था। वे सभी संहिताएं तीन भागोंमें विभक्त हुईं। उन तीनोंमेंसे प्रत्येक फिर तीन तीन भागमें विभक्त हो नौ प्रकार हुए हैं।

उत्तरदेश, मध्यदेश और पूर्वदेशमें पृथक् पृथक् यजुःसंहिता पढ़ी जाती है। उनमेंसे उत्तर प्रदेशमें श्यामायनि, मध्यदेशमें आरुणि और पूर्वदेशमें आलम्बि प्रधान

रूपमें गिनी जाती हैं। ये संहितावादी सभी विप्र चरक कहलाते हैं। अथवा जिन्होंने ब्रह्मवध्या व्रतका आचरण किया था वे ही "चरक" कहलाये। इसी कारण वैशम्पायनके शिष्य चरक नामसे विख्यात हैं।

अश्वरूपमें याज्ञवल्क्यको यजुः दिया गया था, इस कारण जिस किसीने यजुःका अध्ययन किया था वे वाजी कहलाये। अतएव वाजिगण याज्ञवल्क्यके शिष्य हैं; कण्व, वैधेय, शाली, मध्यन्दिन, शापेयी, विदिग्ध, उद्दाल, ताम्रायण, वात्स्य, गालव, शैशिर, आश्व, पर्ण, वीरण और परायण ये पन्द्रह वाजी कहलाते हैं। इस प्रकार एक सौ एक यजुर्वेदके विभागकर्त्ता हुए।

जैमिनिने अपने पुत्र सुमन्तुको, सुमन्तुने अपने पुत्र सुत्वाको और सुत्वाने अपने पुत्र सुकर्माको संहिता पढ़ाई थी। सुकर्माने सहस्र संहिताको शीघ्र अध्ययन कर सूर्यवर्चा सहस्रको अध्ययन कराया। अनध्यायके दिन अध्ययन किया था, इस कारण देवराज इन्द्रने उन्हें मार डाला। अनन्तर सुकर्माने शिष्योंके लिये प्रायोपवेशनव्रत अवलम्बन किया। उन्हें क्रुद्ध देख कर इन्द्रने वर दिया और कहा, 'आपके ये दोनों महाभाग महावीर्य शिष्य सहस्र संहिताका अध्ययन कर महाप्राज्ञ और अनलतुल्य तेजस्वी होंगे, अतएव हे द्विजसत्तम! आप क्रोध न करें। देवराजने यशस्वी सुकर्माको इतना कह कर उनका क्रोध शान्त किया और पीछे आप अन्तर्हित हो गये। उनके शिष्य धीमान् पौष्यञ्जी थे। पौष्यञ्जीके हिरण्यनाभ और कौशिक्य नामक दो शिष्य थे (दोनों ही राजपुत्र थे)। पौष्यञ्जीने उन्हें पांच सौ संहिता पढ़ाई थी, इस कारण पौष्यञ्जीके उदीच्य-सामान्य शिष्य हुए थे।

कौशिक्यने पांच सौ संहिता की थीं। हिरण्यनाभके शिष्य प्राच्य सामग नामसे प्रसिद्ध हैं।

लोकाक्षी, कुथुमि, कुशीती और लाङ्गलि, पौष्यञ्जीके ये चार शिष्य संहिताकर्त्ता हैं।

तण्डिपुत्र राणायनीय, सुविद्वान्, मूलचारी, सकेतिपुत्र, सहसात्य पुत्र, ये सब लोकाक्षीके शिष्य हैं। कुथुमिके तीन पुत्र थे। औरस, रसपासर और तेजस्वी भागवित्ति। ये सभी कौथुम कहलाते हैं।

शौरिद्यु और शृङ्गिपुत्र इन दोनोंने व्रतका आचरण किया था। राणायनीय सौमित्रि ये दोनों सामवेदमें विशेष पारदर्शी थे।

महातपस्वी शृङ्गिपुत्र तीन संहिता प्रणयन कीं। चैल, प्राचीनयोग और सुराल इन द्विजोत्तमोंने छः संहिता बनाई थीं। पाराशर्य्य कौथुम थे। आसुरायण और वैशाख्य ये दोनों द्विज वेदपरायण और वृद्धसेवी थे। प्राचीन-योगके बुद्धिमान् पुत्रका नाम पातञ्जलि था। पाराशर्य्य कौथुमके छः प्रकारके भेद हैं। लाङ्गलि और शालिहोत्रने छः संहिताएं प्रणयन कीं।

भालुकि, कामहानि, जैमिनि, लोमगायनि, कण्ड और कोहल ये छः लाङ्गल कहलाते हैं। ये सभी लाङ्गलिके शिष्य और संहिताके संस्कारक हैं।

हिरण्यनाभके शिष्य कृताात्मज थे। उन्होंने चौबीस संहिताएं प्रकाशित कीं। उन्होंने जिन सब शिष्योंको उसका पाठ कराया था उनके नाम ये हैं—

राढ़, महावीर्य, पंचम, वाहन, तालक, पाण्डक, कालिक, राजिक, गौतम, आजवस्त, सोमराज, अपतस्तत, पृष्ठघ्न, परिकृष्ट, उलूखलक, यवीयस, वैशाल, अंगुलीय, कौशिक, सालिमञ्जरी, सत्य, कापीय, कानिक और धर्मात्मा पराशर। ये २४ व्यक्ति २४ संहिताका पाठ कर सामग हुए थे।

सामगोंके मध्य सभी संहिताओंके प्रभेदकारक पौष्यञ्जि और कृति ये दोनों सर्वापेक्षा प्रधान हैं।

सुमन्तुने अथर्व्ववेदको दो भागोंमें विभक्त कर कबन्धको प्रदान किया। उन्होंने यथाक्रम उनका अध्ययन किया था।

फिर कबन्धने भी उसके दो भाग कर एक भाग पथ्यको और दूसरा भाग वेदस्पर्शको प्रदान किया। वेदस्पर्शने उसे चार भागोंमें बाँट कर चार शिष्योंको दे दिया। ब्रह्मपरायण मोद, पिप्पलाद, धर्मज्ञ शौकायनि और तपन ये चारों वेदस्पर्शके शिष्य थे।

पथ्यने फिर उसे तीन भागोंमें विभक्त कर जाजलि, कुमुदादि और शौनकको प्रदान किया। शौनकने उसे दो भाग करके बभ्रु और धीमान् सैन्धवायनको पढ़ाया। सैन्धवने मञ्जुकेशको प्रदान किया। इससे वह दो

भागोंमें बंट गया। नक्षत्रकल्प, वैतान, तृतीय संहिता-विधि, चतुर्थ अङ्गिरसकल्प तथा पञ्चम शान्तिकल्प अथर्व्ववेदज्ञोंके मध्य इन सब संहिताओंके प्रभेदकारक ऋषिगण ही प्रधान हैं।

इसके सिवा यजुर्व्वेदको लोमहर्षिका प्रथम, काश्यपिका द्वितीय और सावर्णिका तृतीय शाखा कहलाती है। अन्य प्रकार शांशपायनिका हैं। आठ हजार छः सौ, अन्य प्रकार पन्द्रह और फिर दश प्रकारकी ऋक् कही जाती हैं। इनके सिवा वालखिल्य, समग्रंथ और सावर्णा कहे गये हैं। आठ हजार साम और चौदह साम तथा सहोम आरण्यक ये सब सामग ब्राह्मण गान करते हैं। व्यासदेवने यजुः और ब्राह्मणके आरण्यकको तथा मन्त्रकरणकके साथ वारह हजार आध्वर्य्यीव वेदका विभाग किया। ऋक् ब्राह्मण और यजुः ये तीन ग्रामारण्य हैं तथा समन्त्रके भेदसे दो प्रकारके हैं। फिर हारिद्रवीयसमूहके खिल और उपखिल ये दो प्रकारके प्रभेद हैं। तैत्तिरीय समूहके वाद भी दो भेद कल्पित हुए हैं पर और क्षुद्र। (ब्रह्माण्डपु० पूर्व ६५।६६ अ०)

यथार्थमें ऋग्वेदको दो ही शाखा प्रधान हैं शाकल और शाङ्खायन। यह शाकल शाखा ही शिष्योंके उच्चारणादि भेदसे पांच भागोंमें विभक्त हुई है। विकृतिकौमुदीकारने लिखा है, कि शैशिरीय, वाष्कल, सांख्य, वात्स्य और आश्वलायन,—शाकलशाखाकी यही पांच उपशाखा हैं। व्याड़ि प्रणीत 'विकृतिवल्ली' नामक ग्रन्थमें इन पांच शाखाओंकी जटादि आठ प्रकारकी पाठप्रणाली लिखी है। शाङ्ख्यायनके भेदसे दूसरी सोलह शाखाएं हैं। इनके भी पाठनियामक ग्रन्थ हैं। उक्त ग्रन्थ माण्डूकेयका वनाया है।

यजुःसंहिता भी पहले तीन भागोंमें विभक्त थी। पीछे वह चरक अध्वर्य्यु उन्नीस शाखाओंमें, वाजसनेय सत्तरह शाखाओंमें तथा तैत्तिरीय ६ शाखाओंमें विभक्त हुई। वेदका शाखाभेद मन्वादि ग्रंथके अध्ययनभेद जैसा नहीं है। प्रत्युत वह भिन्न कालमें लिखित भिन्न देशियोंके उच्चारणादि भेद-जनित तथा अनेक आदर्श पुस्तकोंके पाठादि भेदजनित हैं। शाखाप्रवर्त्तकोंके प्रवचनमें कुछ कुछ स्वतन्त्रता है।

ऐसा होने पर भी यजुर्व्वेदके वाजसनेय और तैत्तिरीय शाखामें सचमुच पृथकता है। इस कारण प्राचीनोंने इस भेदको शुक्लयजुर्वेद और कृष्णयजुर्वेद नामसे अभिहित किया है। जावाली आदि सत्तरह वाजसनेय शाखा शुक्लयजुर्वेद तथा औख्यादीय तैत्तिरीय छः शाखा कृष्णयजुर्वेद नामसे पुकारी जाती है। वैदिक मन्त्रभाग ऋक्, यजुः और साम यह त्रिविध रचनात्मक होने पर भी होत्र, आध्वर्य्यव, औद्गात्र और ब्राह्म यह चतुःसंहितात्मक है। पीछे यजुःसंहिता शुक्ल और कृष्ण इन दो भागोंमें विभक्त होनेके वाद वेद पांच शाखाओंमें विभक्त हुआ—यथा, ऋग्वेदसंहिता, शुक्लयजुर्व्वेदसंहिता, कृष्णयजुर्व्वेदसंहिता, सामवेदसंहिता और अथर्व्ववेदसंहिता।

इन पांच वेद संहिताओंमें कौन पहले और कौन पीछे प्रकाशित हुई, पाश्चात्य अध्यापकोंने यह ले कर अपना वहुत दिमाग लड़ाया है।

जगत्सृष्टिके पहले ब्रह्माके चारों मुखसे चार वेदोंकी सृष्टि हुई थी, यही पौराणिकोंका अभिप्राय है। सायणने भी पौराणिकमतको ही ग्रहण किया है। अतएव आधुनिक अध्यापकोंकी विचारप्रणालीकी ओर ध्यान देना भी सायणके लिये असम्भव है। वरं पुराणका मत लेनेसे यजुर्वेदको ही आदि मान सकते हैं तथा उसीके आगे चल कर चार भागोंमें विभक्त होनेसे चार वेदोंकी उत्पत्ति हुई।

"एक आसीत् यजुर्व्वेदस्तच्चतुर्धा तं व्यकल्पयत्।"

(विष्णुपु०)

फिर एक वात यह है, कि जो सब गवेषणापरायण सूक्ष्मदर्शी पण्डित कहते हैं, ऋक्संहिता ही वेदका प्रथम ग्रन्थ है, साम और यजुः इसके पीछेका है वे क्या ऋक्संहितामें यजुः और सामका उल्लेख देख नहीं पाते? साम और यजुः यदि ऋक्संहिताके वादकी है, तो ऋक्संहितामें इन दोनों नामोंका उल्लेख क्यों आया? ऋक्संहितामें क्या है निम्नलिखित ऋचाओंसे उसका पता चलेगा—

१। "यजुस्तस्मादजायत। (१०।९०।९)

२। गायत्साम नभन्यम्। (१।१७३।१)

३। यजुषा रक्षमाणः। (५।६२।५)

४। तमु सामानि यन्ति। (५।४४।१४)

इस प्रकार और भी कितने उदाहरणका उल्लेख किया जा सकता है। फलतः जो इस प्रकार ऐतिहासिक कालनिर्णय करनेकी कोशिश करते हैं, उनकी उक्तियाँ स्वकपोलकल्पित मात्र हैं।

इन लोगोंने और भी कहा है, कि ऋग्वेदका द्वितीय-मण्डल अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। ऋक्संहिताके द्वितीय-मण्डलके सायणभाष्यमें लिखा है—

"यः आङ्गिरसः शौनहोत्रः भूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत्।"

इन लोगोंने इस अनुक्रमणी वचनको उद्धृत किया है। किन्तु इनकी बात पर थोड़ा विचार करना उचित है। इन लोगोंका कहना है, कि द्वितीयमण्डल जो शौनकीय है वह इस उक्तिसे स्पष्ट मालूम होता है। पाणिनिसूत्रमें भी इसका उल्लेख है। यथा—

शौनकादिभ्यश्छन्दसि। (पा ४।३।१०५)

पाणिनिके सूत्रमें जो शौनककी बात लिखी है, शौनक-प्रोक्तग्रन्थ ही उक्त सूत्रका विषय है। शौनकप्रोक्त अथर्व-वेदीय संहिता ग्रन्थ जो अध्ययन करते हैं वे शौनकिन कहलाते हैं। शौनकदृष्ट ग्रन्थ इस सूत्रका विषय नहीं है।

अनुक्रमणिकामें लिखा है—

"द्वितीयमण्डलमपश्यत्।"

यहां "अपश्यत्" क्रिया है, "अवोचत्" क्रिया नहीं अतएव द्वितीय मण्डल शौनकप्रोक्त है ऐसा अर्थ लगाना गलत है।

वे लोग द्वितीयमण्डलसे दो एक यज्ञीय शब्द उद्धृत कर प्रमाणित करना चाहते हैं, कि इस मण्डलमें यज्ञीय शब्द है। अतएव यह यज्ञके समय विरचित हुआ है। यह एकदेशदर्शिताका भ्रान्तिमय फल मात्र है। ऋक्संहिताके प्रत्येक मण्डलमें ही यज्ञीय शब्दका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा—

१। होत्रम्, पोत्रम्। (१।७६।४) २ ऋत्वियम्। (८।४०।११) ३ नेष्टः। (१।१५।३) अग्निध्रम्। (१०।१४।२०) ५ प्रशास्ता। (१।६४।६) ६ अध्वरीयताम्। (१।२३।१५) ७ ब्रह्मा। (१।८०।१) ८ गृहपति। (१।१३।६) ९ इमे। (१।३।८)

वे लोग दशम मण्डलको ऋक् परिशिष्ट मानते हैं। उनकी युक्ति यह है, कि दशम मण्डलकी भाषा पृथक् है। किन्तु जो वेदाध्ययनमें निपुण हैं, संस्कृत भाषा जिनकी मातृभाषा स्वरूप है, वे अन्यान्य मण्डलोंकी भाषासे दशम मण्डलकी भाषामें जरा भी पृथक्ता देख नहीं पाते। पाश्चात्य संस्कृत पण्डितोंने इस भाषाकी पृथक्ता किस प्रकार की उसे इस देशके सुपण्डित भी समझ नहीं सकते हैं।

सामवेदियार्च्चिक ग्रन्थका मन्त्र ऋग्वेदसे उद्धृत नहीं है।

पाश्चात्य वैदिक गवेषणाकारियोंका और भी एक भ्रमसिद्धान्त यह है, कि सामवेदीयार्च्चिक ग्रन्थके मन्त्र ऋग्वेदसे उद्धृत हैं। यह पौढ़िवादमात्र है। क्योंकि, स्वरिदसूक्तमें स्पष्टतः सामवेदीय छन्दोंका पृथक् उल्लेख है। यथा—

"तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

(ऋक् संहिता १०।९०।९)

इस ऋक्में "छन्दांसि" कह कर जो पद है वह सामवेदीयचर्चा भिन्न और कुछ नहीं है। सामवेदीयचर्चा ही छन्दःशब्दका वाच्य है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। पाणिनिने भी सामवेदीय छन्दोग्रन्थके मंत्रोंको छन्द कहा है। यथा—

सोऽस्यादि छन्दसः प्रगाथेषु। (४।२।५५)

प्रगाथ केवल सामवेदमें ही देखा जाता है, अन्यत्र नहीं। सामवेदीय ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें प्रगाथका उल्लेख है। सामवेदियोंको छन्दोग कहा जाता है। इन्हें कभी भी कोई "ऋग" नहीं कहते। सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थ और उपनिषद् ही छान्दोग्य कहलाते हैं। पाणिनिने छान्दोग्य शब्दकी जो व्युत्पत्ति की है वह इस प्रकार है—छन्दोगौक्थिक। (४।३।१२९)

इन सब उक्तियों द्वारा उद्धृतत्वदोषारोप सहजमें ही निरस्त होता है। पाश्चात्यने स्वकपोलकल्पनाके बल इसी प्रकार वेदके पौर्वापर्य सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी कल्पना कर रखी है। किन्तु सारसिद्धान्त यह है, कि

ऋक् और यजुर्व्वेद एक ही समयमें उत्पन्न हुए हैं। यथा अथर्व्ववेदमें—

"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषासह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः ॥"

(११।७।२४)

पूर्वकालमें मन्त्रसमूह इधर उधर बिखरे हुए थे। पीछे उनका संग्रह और विभाग किया गया।

सायणने कहा है, कि ब्राह्मण दो प्रकारके हैं—विधि और अर्थवाद। अन्यान्य मतसे भी अर्थवाद ब्राह्मण-काण्डके अन्तर्गत है। आपस्तम्बने अर्थवादको चार भागोंमें विभक्त किया है, यथा—निन्दा, प्रशंसा, परकृति और पुराकल्प। निरुक्तकारने भी अर्थवादका ब्राह्मणत्व स्वीकार किया है। यथा—"प्राशित्र मस्याक्षिणी निर्जघानेति च ब्राह्मणम्" (१२।२।३)

जैमिनिका कहना है—

"शेषे ब्राह्मणशब्दः।" (२।१।३३)

भाष्यकार शबरस्वामीने लिखा है—

"मन्त्राश्च ब्राह्मणानि च वेदः। तत्र मन्त्रलक्षणे उक्ते परिशेषसिद्धत्वात् ब्राह्मणलक्षणमवचनीयम्। मन्त्रलक्षणेनैव सिद्धम्। यस्यैतल्लक्षणं न भवति तदा ब्राह्मणमिति परिशेषसिद्धं ब्राह्मणम्।"

अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण इनकी समष्टि ही वेद है। मन्त्रके लक्षण कहे जानेसे यदि परिशेषसिद्धताके कारण ब्राह्मण लक्षण न कहा जाय, तो कोई हर्ज नहीं। मन्त्रके लक्षण कहे जाने पर उसके बाद जो अवशिष्ट रहता है, वही ब्राह्मण है।

हेतु, निर्वचन, निन्दा, प्रशंसा, संशय, विधि, परकृति, पुराकल्प, व्यवधारणकल्पना और उपमान यही ब्राह्मण ग्रन्थके लक्षण हैं। नीचे उनके उदाहरण दिये जाते हैं—

१ हेतु—"शूर्पेण जुहोति, तेन ह्यन्नं क्रियते"
२ निर्वचन—"तद्दध्नो दधित्वम्।"
३ निन्दा—"उपवीता वा एतस्याग्नयः।"
४ प्रशंसा—"वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता।"
५ संशय—"तद्व्यचिकित्सन् जुहवाणीमा हौषाम्।"
६ विधि—"यजमानसम्मिता औदुम्बरी भवति।"
७ परकृति—"माषानेव मह्यं पचति।"
८ पुराकल्प—"पुरा ब्राह्मणा अभैषुः।"
९ व्यवधारण-कल्पना—"यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात् तावतो वारुणांश्चतुष्कपालान् निर्वपेत्।"

उपमानका उदाहरण जैमिनिभाष्यकार शबरस्वामी द्वारा दिखलाया नहीं गया। फलतः ब्राह्मणग्रंथमें उपमानका उदाहरण इतना स्पष्ट और अधिक है, कि उसके उदाहरणका उल्लेख करना उन्होंने कुछ भी प्रयोजनीय न समझा।

इतिहास और पुराण।

ब्राह्मणग्रंथमें इतिहास और पुराणको उल्लेखनीय कुछ घटनाओंका विवरण देखा जाता है। वह इतना अपरिस्फुट है, कि उससे कोई विशेष तत्त्व सङ्कलन नहीं किया जा सकता। परन्तु इतिहास और पुराणका उल्लेख देखनेसे मालूम होता है, कि प्राचीन ऋषियोंमें भी इतिहास पुराणका प्रचलन था। यथा—

१। "स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि * * इतिहासपुराणम्।" (छान्दोग्य ७।१।२)

२। "अथाष्टमेऽहन् * * तानुपदिशतीतिहासो वेदः सोऽयमिति किञ्चिदितिहासमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति।" (शतपथ-अश्वमेधप्रकरण १३।४।३।१२)

३। "अथ नवमेऽहन् * * तानुपदिशति पुराणं वेदः। सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीतैवमेवाध्वर्युः सम्प्रेष्यति।" (शतपथब्रा० १३।४।३।१३)

४। "यद् ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीर्मेदाहुतयः।" (तैत्तिरीय आर० २।९।२)

नाराशंसी।

ब्राह्मणग्रंथमें एक और विषयका उल्लेख है, उसका नाम है "नाराशंसी"। नरस्तुति-विषयक श्रुतियां नाराशंसी वा नाराशंस्य कहलाती हैं। नाराशंसी तीन प्रकार की है—मन्त्रात्मिका, गाथात्मिका और ब्राह्मणात्मिका।

गाथा।

ब्राह्मणग्रंथमें गाथा भी दिखाई देती है। गाथा श्लोकबद्ध और प्रवादवाक्यस्वरूप है। गाथा ब्राह्मणग्रंथसे भी बहुत प्राचीन है। ब्राह्मणग्रंथके अनेक

स्थानोंमें गाथाका उल्लेख है। यह पूर्वकालमें गाई जाती थी। यथा—

१। "यमगाथाभिः परिगायति।" (तै०स० ५।१।८।२)

२। "तदेपाभियँज्ञगाथा गीयन्ते—यजेत् सौत्रामण्या सप्त्नीकोऽप्यसोमपः। मातापितृभ्यामनृणार्थाद्यजेति वचनाच्छ्रुतिः।" (ऐतरेयब्रा० ७।२।६)

ब्राह्मण-ग्रन्थ।

प्रत्येक शाखाके भिन्न भिन्न ब्राह्मणग्रंथ है। फिर सभी शाखाओंका भी एक ब्राह्मणग्रंथ नहीं है। किन्तु ऋग्वेदके शैशिरीय, वास्कल, सांख्य, वात्स्य और आश्वलायन शाखाका सिर्फ एक ब्राह्मणग्रंथ है। उसका नाम है ऐतरेयब्राह्मण। इसे वहृग्-ब्राह्मण भी कहते हैं। फिर कौषीतकी आदि सोलह शाखाओंका एक ब्राह्मण है। उसका नाम कौषीतकी-ब्राह्मण है। उसे शाङ्खायन या साङ्खायन भी कहते हैं। यजुर्वेदकी मैत्रायणी आदि उन्नीस चरकाध्वर्यु शाखाका एक ब्राह्मण है जिसका नाम मैत्रायणी-ब्राह्मण है। यह अध्वर्यु-ब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। वाजसनेयादि १७ शाखाओंका एक ब्राह्मण है। वाजसनेयक-ब्राह्मण उसका नाम है। इसका दूसरा नाम शतपथब्राह्मण भी है। तैत्तिरीय छः शाखाओंका एक ब्राह्मण है। उसका नाम है तैत्तिरीय-ब्राह्मण। साम वेदकी इदानी जैमिनि, कौथुम और राणायनीय ये तीन शाखाएँ पढ़ी जाती हैं। इन तीन शाखाओंके ब्राह्मण का नाम छान्दोग्य-ब्राह्मण है। वर्त्तमान सामवेदके ८ ब्राह्मण देखे जाते हैं। यथा—सामविधान, मन्त्र, आर्षेय, वंश, दैवताध्याय, संहितोपनिषत्, तलवकार और ताण्ड्यब्राह्मण। अथर्ववेदका सिर्फ एक गोपथ-ब्राह्मणप्रचररूप देखनेमें आता है। इसके अन्यान्य ब्राह्मण शायद लुप्त हो गये हैं।

प्राचीन भाष्यकारोंने स्वीकार किया है, कि आरण्यक अति प्राचीन और वेदके अन्तर्भुक्त है।

उपनिषद्।

यूरोपीय पण्डित उपनिषदोंको भी अप्राचीन मानते हैं। उपनिषद् वेदांशवाचक है। पाणिनिमें इसका कोई प्रयोग देखनेमें नहीं आता, अतएव पाणिनिके पूर्व उपनिषद् बिलकुल न था, यही पाश्चात्य पण्डितोंका सिद्धान्त है। परन्तु यह सिद्धान्त वैदिक साहित्याभिज्ञ व्यक्तियोंके लिये बड़ा ही विस्मयजनक है।

उपनिषत्के सम्बन्धमें यास्क क्या कहते हैं, वही देखना चाहिए। यास्कने एक ऋक्का भी विचार किया है। वह ऋक् यह है—

"यत्रा सुपर्णा।" (ऋक् १।१।२८।१)

यास्क इसकी व्याख्या करके कहते हैं,—"इत्युपनिषद्वर्णो भवति।" (३।२।६)

दुर्गाचार्यने भी इसके भाष्यमें कहा है—"यया ज्ञानमुपगतस्य सतो गर्भजन्मजरामृत्यवो निश्चयेन सीदन्ति। सा रहस्यं विद्या उपनिषदित्युच्यते। उपनिषद्भावेन वर्ण्यंत इति उपनिषद्वर्णः।"

अतएव उपनिषदोंको आधुनिक वा अप्राचीन नहीं कह सकते।

वेदोत्पत्तिकालका विचार।

वेदोत्पत्ति-कालनिर्णयके सम्बन्धमें यूरोपीय पण्डित अनेक प्रकारकी कल्पना कर गये हैं। किन्तु पहले हम लोगोंके हृदयमें इस बातका प्रश्न न उठा, कि हम वेदोत्पत्तिके काल निर्णयमें समर्थ हैं वा नहीं?

१। अपौरुषेयोऽयं वेदः।

२। नित्यावागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।

३। अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धार्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥

(मनु १।२३)

ये सब वचन देखनेसे मालूम होता है, कि प्राचीनगण वेदको अपौरुषेय और नित्य समझते थे। उनके इन सब सिद्धान्तोंसे जाना जाता है, कि वेद मनुष्यरचित ग्रन्थ नहीं है। अतएव ग्रन्थमें व्यक्तिनिर्णयकी आशा करना विडम्बना मात्र है। किन्तु यह बात निश्चय है, कि वेद आर्योंका आदि धर्मग्रन्थ है।

मीमांसादर्शनका अभिप्राय।

मीमांसकोंने वेदको ले कर यथेष्ट परिश्रम किया है। उनका सिद्धान्त यह है—

"न केन चिदपि पुरुषेण प्रणीतो वेदः।"

अर्थात् कोई मनुष्य वेदके प्रणेता नहीं हैं। वेद

अपौरुषेय है। यह सिद्धान्त स्थिर रखनेके लिये मीमांसा दर्शनके प्रणेताने यथेष्ट प्रयत्न किया है।

"वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः। अनित्यदर्शनात्" वादिपक्षके इस पूर्वपक्षका विचार करते हुए उन्होंने लिखा है, कि यह उक्ति युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि—"उक्तन्तु शब्दपूर्वत्वम्। आख्या प्रवचनात्। परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्। कृते वा विनियोगस्यात् कर्मणः सम्बन्धात्।" (मीमांसादर्शन १।१।२६—३२)

इन सब सूत्रोंका अवलम्बन कर शास्त्रदीपिकामें वेदके अपौरुषेयत्वविषयमें यथेष्ट विचार है।

वेदान्तदर्शनका अभिप्राय।

भगवान् वादरायणने वेदान्तदर्शनमें भी वेदको "अपौरुषेय" अभिप्राय कहा है। कोई भी व्यक्ति वेदके प्रणेता नहीं हैं, इस बातकी उन्होंने स्पष्टरूपसे घोषणा कर दी है। वेदान्तसूत्रमें लिखा है,—

"शास्त्रयोनित्वात्।" (१।१।३)

इसका अर्थ यह है, कि ब्रह्म ऋग्वेदादि शास्त्रके कारण स्वरूप हैं, अतएव वे सर्वज्ञ हैं। इस सूत्रके अनुसार वेदका मनुष्यप्रणेतृत्व सूचित नहीं होता। वेद अपौरुषेय है, ब्रह्मसूत्र भी इसे स्वीकार करता है। अतएव वेदका काल निर्णय करना कठिन है। कालनिर्णय उसीका हो सकता है जो मनुष्यकृत है, अपौरुषेय ग्रन्थका कालनिर्णय हो नहीं सकता।

वैशेषिक, न्याय, सांख्य और पातञ्जलदर्शनमें भी वेदका प्रामाण्य स्वीकृत हुआ है। किन्तु वेद अकर्तृक वा ईश्वरकृत हैं, ऐसी कोई बात नहीं कही गई है। कोई कोई कहते हैं, कि उन्होंने वेदको ऋषिकृत कहा है। किन्तु हम लोग इसे विश्वास नहीं करते। ऋषिगण ही वेदके कर्त्ता हैं, यह बात किसी भी दर्शनमें देखी नहीं जाती। ऋषियों द्वारा वेद प्रकाशित हुए, यही दार्शनिकोंका अभिप्राय है। वेदको सबोंने 'सिद्ध' कह कर स्वीकार किया है। पतञ्जलि कहते हैं—

"नित्यपर्यायवाची सिद्धशब्दः।"

अर्थात् सिद्धशब्द नित्यपर्यायवाची है। अतएव पतञ्जलिकी उक्तिमें भी वेदको नित्य माना है।

किसी किसी मन्त्रमें ऋषिकृत निरुक्त और ऐतरेयब्राह्मणमें उसका प्रमाण मिलता है। यथा—

१। 'विश्वामित्रऋषि ** नदीस्तुष्टाव गाथा भवतेति।' (निरु० २।७।२)

२। "ऋषिपुत्रा विलपितं वेदयन्ते।" (निरु० ५।१।२)

३। "गृत्समदमर्धमभ्युत्थितं कपिञ्जलोऽभिववाशे तदभिवादिन्येषग् भवति।" (निरु० ६।१।४)

निरुक्तके इन सब वचनों द्वारा कोई कोई कहते हैं, कि वेद ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ हैं। इसके सिवा ऐतरेय ब्राह्मणमें भी ऐसे प्रमाण देखनेमें आते हैं। यथा—

"सर्पं ऋषिर्मन्त्रकृत्।" (ऐतरेयब्रा० ६।१।१)

उनका यह भी कहना है, कि मन्त्रोंकी समालोचना करनेसे देखा जाता है, कि वेद धीमत्पुरुषकृत है। वेद-मन्त्रके कर्त्ता एक हैं, यह भी प्रतीत नहीं होता। वेद-मन्त्रमें ही उसका प्रमाण है। यथा—

"सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वा मक्रत।
अत्र सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधिवाचि॥"
(ऋक्सं० ८।२३।२)

ये सब वचन देख कर इन्होंने यह स्थिर किया है, कि वेद ऋषि-प्रणीत है। दूसरे पक्षका कहना है, कि आदि कविके हृदयमें नित्य सत्य ब्रह्मने वेद प्रकाश किया था। वेद अपौरुषेय है।

जो हो, वेद ऋषिप्रणीत ग्रन्थ होने पर भी अब देखना चाहिये, कि हम लोग उसके कालनिर्णयमें समर्थ हैं वा नहीं। आधुनिक लोगोंने बड़े कष्टसे पाणिनिकालका निर्णय किया है। यास्क पाणिनिसे भी पहलेके हैं। बाभ्रव्यादि क्रमकारगण यास्कसे प्राचीन हैं। पदकार शाकल्यादि उससे पूर्वतन हैं। ऋक्-तन्त्रके प्रणेता शाकटायनादि इनसे भी पहले विद्यमान थे। कल्पसूत्रकार लाट्यानादि शाकटायनादिके भी पूर्वतन हैं। इनके भी पहले कुसुरविन्धादि ऋषियोंने अनु-ब्राह्मण ग्रन्थ प्रकाश किया। इसके भी पूर्व समयमें महीदासादिने श्लोकानुश्लोकशाखादिका संग्रह कर तदनुसार ऐतरेयब्राह्मणादि लिखे। इसके भी पहले प्रवादका अवलम्बन कर श्लोकानुश्लोक शाखा प्रकाशित हुई। उसके पूर्व समयमें सभी प्रवाद विकीर्ण भावमें विद्यमान थे। ये सब विकीर्ण प्रवाद आज

भी श्रुति नामसे प्रसिद्ध है। इसके भी पहले यज्ञप्रयोग आरम्भ हुआ। इसके भी बहुत पहले अथर्व वा व्यास द्वारा चार संहिताएं संगृहीत हुईं। इसके पूर्व समयमें सूक्तमण्डलादि संगृहीत हुए। इसके भी बहुत पहले भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न ऋषियोंने वैदिक मन्त्र धीरे धीरे प्रकाश किये। अतएव वेद कब रचा गया, इसका पता लगाना बहुत कठिन है। व्यक्तिनिर्णय द्वारा कालका निर्णय होता है। यहां पर व्यक्तिनिर्णय बिलकुल असम्भव है। जहां ऋषि-विशेषको किसी मन्त्रका द्रष्टा कहा गया है, वहां द्रष्टा शब्दका अर्थ यदि प्रणेता लिया जाय, तो कालनिर्णय सम्भवपर नहीं होता। किसी मन्त्रके द्रष्टा अग्नि हैं। इस प्रकार नाम द्वारा क्या कालनिर्णय हो सकता है?

इसके सिवा मनुने स्पष्ट लिखा है—

'अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम्" (१।२३)

इस वचन द्वारा जाना जाता है, कि अग्नि, वायु और रविसे ही वेद प्रकाशित हुए हैं।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें जनमेजय परीक्षित् आदि नामोंका उल्लेख है। इसे देख कोई कोई समझते हैं, कि यह ग्रन्थ अवश्य ही महाभारतके पीछे वर्णित हुआ है। ऐसी उक्ति बिलकुल अयौक्तिक है। जनमेजय परीक्षित आदि नामविशेष हैं। ये सब नाम महाभारतके पहले थे वा नहीं, इसका भी क्या परिमाण है? फिर ऐतरेय आदि ग्रन्थोंमें वे सब नाम देख कर ही परवर्त्तीकाल-में ऐसे नाम नहीं रखे जाते थे, इस पर फिर अविश्वास ही क्यों किया जाये? पाणिनिके व्याकरणमें भी ब्राह्मण ग्रन्थके प्राचीनत्वका प्रमाण मिलता है। जनमेजय परीक्षित नाम देख कर ही पाश्चात्य पण्डितोंने जो काल-निर्णयका उपाय निकाला है, उस पर भी विश्वास किया नहीं जा सकता।

हम ऋग्वेद संहितामें "भोज" नाम देखते हैं। यथा—

"भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म" (ऋक् ८।६।४।५)

इससे इस श्रेणीके पण्डित समझ सकते हैं, कि सुविख्यात भोजराजके बाद ही वेद रचा गया है। इन भोजराजके समयमें ही वेदभाष्यकार उव्वटका जन्म हुआ। सुतरां उव्वट भी वेदरचनाके समसामयिक व्यक्ति हैं। इस प्रकार नाम देख कर कालनिर्णयका उपाय आविष्कार करना जो उपहासका विषय है यह सब कोई समझ सकते हैं।

वेद अति गम्भीर है। इसका अर्थबोध सहजमें नहीं होता। वेदका अर्थ समझनेके लिये ही षड्ङ्गकी सृष्टि हुई है। यह चतुर्वेदके साथ षड्ङ्ग "वेदका षड्ङ्ग" और अपरा विद्या कहलाता है। मुण्डक उप-निषद्में लिखा है—

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ऽस्मायद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च। तत्र परा ऋग्वेदो यजुर्वेदः साम-वेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथापरा यया तदक्षरमधिगम्यते।"

(१।१।४-५)

अर्थात् ब्रह्मविद्गण कहते हैं, कि अपरा और परा ये दोनों विद्या ही ज्ञेय है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों वेद तथा शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः और ज्योतिष यह षड्ङ्ग है। ये सब अपरा विद्या कहलाते हैं। जिस विद्या द्वारा वह अक्षर पदार्थ जाना जाता है वही परा विद्या है। मंत्र और ब्राह्मणसंहिताकारमें ग्रथित होनेके बाद इस षड्ङ्गकी सृष्टि हुई। षड्ङ्ग शब्द देखो।

वेदका मंत्र समझनेमें पहले ऋषि, छन्दः और देवता इन तीन विषयका ज्ञान होना आवश्यक है।

ऋषि, छन्दः, देवता और विनियोगके विषयमें ज्ञान रहना यज्ञवित् ब्राह्मणके लिये नितान्त प्रयोजनीय है। वैदिक निबन्धकारोंने इस सम्बन्धमें बहुल अनुशासन किया है।

वेदपाठकोंको मंत्रादिके ऋषि, छन्द, देवता और विनियोगके विषयका ज्ञान न रहना दुःखकी बात है। शास्त्रकार कहते हैं, कि वैदिक मंत्रादिके ऋषि, छन्दः, देवता और विनियोगका विषय जाने बिना जो वेदका अध्यापन, अध्ययन या मंत्रादिका जप करते हैं उन्हें प्रत्यवायग्रस्त होना पड़ता है। किंवा हेतु ऋषि, छन्द, देवता और स्वरादिकों न जान कर यदि ब्राह्मण मंत्रका प्रयोग करें, तो वह प्रयोग मंत्रकण्टक कहलाता है। महाभाष्य भी इस बातको समर्थन करते हैं। यथा—

"मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा ।"

इस सम्बन्धमें और भी शास्त्रीय विधिवाक्य है। यथा—

"स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगोऽर्थ एव च ।
मन्त्रजिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे ॥"

अर्थात् मंत्रपाठार्थके लिये स्वर, वर्ण, अक्षर, मात्रा, विनियोग और अर्थ पद पदमें वेदितव्य है ।

ऋषि ।

यहां ऋषि प्रभृतिके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है—"ऋषि ऋषगतौ सर्वधातुभ्य इन् ।" (उणा० ४।११) "इगुपधात् कित् ।" (उणा० ४।१२१) इसी प्रकार "ऋषि" शब्द "व्युत्पादित" हुआ है । तैत्तिरीय आरण्यकमें लिखा है—"अजान् ह वै पृश्नींस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्तदृषयोऽभवन् ।" (२।९०।१)

जिन्होंने ईश्वरकी कृपासे पहले पहल अतीन्द्रिय वेदके दर्शन पाये थे, वे ही ऋषि हैं । यथा स्मृति—

"युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा ॥"

युगान्तमें इतिहासके साथ जब समस्त वेद अन्तर्हित हुए, तब स्वयम्भुके कहनेसे महर्षियोंने तपस्या द्वारा इतिहासके साथ समस्त वेदोंको पाया था ।

मन्त्रकृत् ऋषिगण ।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि ईश्वरगण, ऋषिकगण और उन्हींकी तरह जो हैं, वे ही मन्त्रकृत् ऋषि हैं ।

"ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः ।
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ॥"
(अनुषङ्ग ६४।६५)

ब्रह्माके मानससे जो स्वयं उत्पन्न हुए हैं वे ही ईश्वर हैं। इनकी संख्या १० है। यथा—भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वशिष्ठ और पुलस्त्य ।* उक्त १० ईश्वरके पुत्र ही ऋषि † तथा ऋषिपत्नियोंके गर्भसे उत्पन्न ऋषिपुत्रगण ऋषिक नामसे प्रसिद्ध हैं ।¶ शुक्र, वृहस्पति, कश्यप, उशना, उतथ्य, वामदेव, अपोज्य, उशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, वालखिल्यगण और धरगण ऋषि हैं । वत्सर, नग्नहु, भरद्वाज, वृहदुक्थ, शरद्वान्, अगस्त्य, औशिज, दीर्घतमा, वाजश्रवा, सुवित्त, सुवाश्वेय, परायण, दधीच, शङ्खमान् और राजा वैश्रवण ये सब ऋषिक हैं । ब्रह्माण्डपुराणकारने इन सब ऋषियों और ऋषिकों तथा दूसरे जिन सब वेदमंत्रकारकोंका उल्लेख किया है, उनके नाम ये हैं—

भृगु, काव्य, प्रचेताः, आत्मवान्, और्व, जमदग्नि, विद, सारस्वत, आर्ष्टिषेण, अरूप, वीतहव्य, सुमेधाः, वैण्य, पृथु, दिवोदास, प्रश्वार, गृत्समद और नमः ये उन्नीस ऋषि मंत्रवादी हैं । अङ्गिरा, मेधस, भारद्वाज, वास्कलि, अमृत, गार्ग्य, शैनी, संकृति, पुरुकुत्स, मान्धाता, अम्बरीष, आहार्य, आजमीढ़, ऋषभ, वलि, पृषदश्व, विरूप, कण्व, मुद्गल, युवनाश्व, पौरुकुत्स, त्रसदस्यु, सदस्युमान्, उतथ्य, वाजश्रवा, आयास्य, सुवित्त, वामदेव औशिज, वृहदुक्थ, दीर्घतपा और कक्षीवान् ये तेंतीस अङ्गिरसके पुत्र हैं । ये श्रेष्ठ ऋषिपुत्रगण मंत्रप्रणयनकर्त्ता हैं ।

कश्यपपुत्रगण, यथा—काश्यप, वत्सार, विभ्रम, रैभ्य, असित और देवल ये छः काश्यप हैं ; ये सभी ब्रह्मवादी हैं । अत्रि, अर्चिर्ष्यन्, श्यामवान्, निष्ठुर, वलगूतक, धीमान् और पूर्वातिथि ये सभी अत्रिके पुत्र हैं, महर्षि और मंत्रद्रष्टा हैं ।

वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, चतुर्थ इन्द्रप्रमति, पञ्चम भरद्वसु, षष्ठ मैत्रावरुण, सप्तम कुण्डिन, अष्टम सुद्युम्न, नवम वृहस्पति और दशम भरद्वाज ; इन्होंने मंत्र और ब्राह्मणका संकलन किया। ये ही मंत्रादिके कर्त्ता और विधर्मके ध्वंसकारक हैं । इन्होंने मिल कर ब्रह्म (वेद) और वेदशाखाका लक्षण किया है ।

(ब्रह्माण्डपु० ६४—६५ अ०)

---

* "भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराःपुलहः क्रतुः ।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश ॥
ब्रह्मणो मानसाह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः ॥"
(ब्रह्माण्डपु० अनु० ६४।८८)

† "ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्तान्निबोधत ।"
(ब्रह्माण्डपु० अनु० ८९ श्लोक)

¶ "ऋषिपुत्रान् ऋषिकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ।"
(ब्रह्माण्डपु० अनु० ९२ श्लोक)

वैदिक देवता।

ऋक, साम, यजुः और अथर्ववेदमें हम मंत्रात्मक अनेक देवताओंका उल्लेख पाते हैं। उनकी शक्ति कैसी कार्यकारी है तथा मानवजातिमें उनका प्रभाव कैसा पड़ता है, मंत्र पढ़नेसे ही उसका पता चलेगा।

किन्तु वेदका देवतत्त्व एक प्रकाण्ड घटना है। सब प्रकारके यज्ञों और यज्ञाङ्गोंमें फलदानके लिये जिस किसी पदार्थकी स्तुति की जाती है, वे ही उस मंत्रके देवता हैं।

वेदमें आकाशमण्डलवासी देवताओंकी ही अधिक प्रधानता तथा गुणकीर्त्तन देखा जाता है। देवतत्त्व इस प्रकार विशाल होने पर भी इसमें यथेष्ट विशिष्टता है। यास्कका कहना है, कि देवगण त्रिस्थानवासी हैं—अग्नि पृथिवीवासी, वायु अन्तरीक्षवासी और सूर्य्य द्युस्थानवासी। कोई कोई वायुको ही इन्द्र कहते हैं, यथा "वायु र्वैइन्द्रः।" किन्तु ये सब पदार्थ जब वैदिक मन्त्र द्वारा द्योतित होते हैं, तब वे देवता कहलाते हैं। देवता मन्त्रमयी हैं, यही मीमांसकोंका सिद्धान्त है।

यद्यपि तेंतीस कोटि देवताओंका प्रवाद है, तथापि वेद पढ़नेसे मालूम होता है, कि वेदमें प्रधानतः तेंतीस देवता कल्पित हुए हैं।

ऐतरेयब्राह्मणमें तेंतीस देवताओंका विभाग इस प्रकार है, ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, १ प्रजापति, और १ वषट्कार यही तेंतीस देवता हैं।

अब प्रश्न होता है, कि उक्त अष्ट वसु कौन कौन है? निरुक्तकारका कहना है, रश्मियोंके असु ही वसु कहलाते हैं। फिर निघण्टुके दूसरे स्थानमें (५।६।२८) लिखा है, कि द्युस्थानवासी देवताओंके असु ही वसु नामसे प्रसिद्ध हैं।

निरुक्तके मतसे पार्थिव अग्निशिखासमूह, वैद्युताग्निप्रभा और सूर्य्यरश्मि वसु कहलाते हैं तथा पृथ्वी, अन्तरीक्ष और द्यु ये त्रिविध स्थान इनके वासस्थान कल्पित हुए हैं। शतपथब्राह्मण कहते हैं कि अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरीक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र ये ही वसु हैं। इन सबोंके मध्य जगत्के सभी पदार्थोंका वास है, अतएव ये वसु हैं। (शतपथब्राह्मण १४।५।७।४) अष्टविध अग्नि ही अष्ट वसु हैं, यही सार वैदिक सिद्धान्त है।

कहीं कहीं अग्निको भी रुद्र कहा है, फिर कहीं कहीं इन्द्रको ही रुद्रकी कल्पना की गई है। शतपथ ब्राह्मणमें रुद्रगणको वायु कहा है। यथा—

"कतम रुद्रा इति, दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदस्मान्मर्त्याऽच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रु रोदयन्ति तस्माद् रुद्रा इति।" (१४।५।७।५)

तैत्तिरीय आरण्यकमें वायुके ग्यारह भेद कहे गये हैं।

आदित्यसमूह—आदित्यगण द्युस्थानस्थित देवता हैं। निरुक्तकारने आदित्य शब्दका जो निर्वचन किया है वह विज्ञानसिद्धान्तसम्मत है। यथा—"आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषाम्, आदीप्तो भासा इति वाः अदितेः पुत्र इति वा"—(२।४।१२)

इस निरुक्ति द्वारा जाना जाता है, कि जो रस ग्रहण करते हैं अथवा ज्योतिर्मय पदार्थकी प्रभा ग्रहण करते हैं अथवा जो अदितिके पुत्र हैं वे ही आदित्य हैं।

इसके सिवा इसका और भी एक निर्वचन है जिसका अर्थ है, जो द्युनिवासी देवताओंके अग्रगामी हैं वे ही आदित्य हैं। शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"कतमे आदित्या इति; द्वादश मासाः, संवत्सरस्यैत आदित्याः, एते हीदं सर्वमाददाना यन्ति, तस्मादादित्याः इति।" (१४।५।७।६)

शतपथब्राह्मणमें जिस प्रकार द्वादश आदित्योंका उल्लेख है, अन्यान्य वैदिक ग्रन्थमें भी वैसा ही देखा जाता है। वैदिक साहित्यमें द्वादश आदित्यके द्वादश नाम देखनेमें आते हैं। यथा—

सविता, भग, सूर्य्य, पूषा, विश्वानर, विष्णु, वरुण, केशी, वृषाकपि, वर्त्तिता, यम, अजैकपाद और समुद्र।

द्वादश मासके लिये द्वादश आदित्यकी कल्पना की गई थी। अभिधानभेद और कर्मभेदसे देवताभेदकी कल्पना होती है, यह निरुक्तसम्मत है। अतएव एक तेज पदार्थ ही अभिधानभेद और कर्मभेदसे अग्नि, विद्युत् और सूर्य्य इन तीन नामोंसे अभिहित हुए हैं। फिर एक अग्नि ही अग्नि, जातवेदा, द्रविणोद और

वैश्वानर इन चार देवतारूपमें विभक्त हुए हैं।

वेदमें प्रजापति देवताका नाम ब्राह्मणकाण्डमें विवाह स्थलमें कई जगह आया है। निरुक्तकार कहते हैं—

"प्रजापतिः प्रजानां पाता वा पालयिता।"

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है—"प्रजापति र्वा इदमेक एकाग्र आस, सोऽकामयत प्रजायेय भूयान्त्स्यामिति" (ऐतरेयब्राह्मण २।५।७)

यह श्रुति पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्रजापति देवताको वेदमें परमेश्वर कहा है। इसके सिवा अन्यान्य स्थानोंमें और भी अनेक अर्थोंमें प्रजापति शब्दका व्यवहार है। यास्कने इस सम्बन्धमें एक विशद व्याख्या की है। यथा—

"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तां मनसा ध्यायेद् वषट्करिष्यन्निति ह विज्ञायते।" (निरुक्त ८।२।७)

ऐतरेय ब्राह्मणमें इसकी और भी सुस्पष्ट और पूर्ण व्याख्या देखनेमें आती है। यथा—"यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात्, तां मनसा ध्यायेद् वषट्करिष्यन् साक्षादेव तद्देवतां प्रीणाति प्रत्यक्षाद्‌ देवतां यजति।" (३।१।८)

अर्थात् जिस देवताके लिये हविः गृहीत होता है, यजमान वषट् ध्वनि करके साक्षात् सम्बन्धमें उन्हें परितुष्ट करते हैं तथा प्रत्यक्षमें देवताको यजन करते हैं। (उच्चध्वनिको "वौषड्" कहते हैं।) वही उच्च ध्वनि वषट्कार देवता हैं।

शतपथब्राह्मणमें लिखा है—

"प्राणो वै वषट्कारः।" (४।२।१२६)

यद्यपि शतपथब्राह्मणमें वषट्कारकी कथा उल्लिखित है, किन्तु ऐतरेयब्राह्मणकी तरह शतपथब्राह्मणमें वषट्कारको तेंतीस देवताओंके अन्तर्भुक्त नहीं किया गया है। शतपथब्राह्मणमें वषट्कारको जगह "इन्द्र" शब्द देखनेमें आता है। यथा—

"अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्या स्तु एकत्रिंशत् इन्द्रश्च प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशौ।" (११।६।३।५)

शतपथब्राह्मणमें वैदिक इन्द्र देवताकी भी संख्या की गई है। शतपथब्राह्मण कहते हैं—

"स्तनयित्नुरेव इन्द्रः"

अर्थात् स्तनयित्नु ही इन्द्र है। यहां पर स्तनयित्नु शब्दका अर्थ मेघचालक वायु विशेष है।

वेदमें इन ३३ देवताओंको "सोमपा" अर्थात् सोमरस-पानकारी देवता कहा है। किन्तु इनके सिवा वेदमें और भी अनेक देवताओंका उल्लेख है। वे 'सोमपा' नहीं कहलाते हैं।

बर्हि, इध्म, ऊषा, नक्ता, त्वष्टा, तनुनपात्, इडा, स्वाहाकृत्, नराशंस, वनस्पति और स्विष्टकृत् ये ग्यारह असोमपा देवता कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त तैत्तिरीयमें उपयाजदेवताओंका नामोल्लेख देखनेमें आता है। यथा—समुद्र, अन्तरीक्ष, सविता, अहोरात्र, मित्रावरुण, सोम, यज्ञ, छन्दः, द्यावापृथिव्यौ, दिव्य, नभः और वैश्वानर। इन सब देवताओंकी संख्या ६४ वा ६५ है। इनके अतिरिक्त वेदमें जिन सब पारिभाषिक देवताओंका उल्लेख देखनेमें आता है उनकी गणना करना यद्यपि बिलकुल असम्भव नहीं है तो सहजसाध्य भी नहीं।

यास्कने स्वर्गीय, अन्तरीक्ष और मर्त्य इन त्रिविध देवताका उल्लेख किया है। यथा—

१ द्यौः, २ वरुण, ३ मित्र, ४ सूर्य, ५ सवितृ, ६ पूषा, ७ विष्णु, ८ विवस्वत्, ९ आदित्यगण, १० दक्ष ११, ऊषा, १२ अश्विद्वय ये स्वर्गीय देवता कह कर पूजित हैं, १३ इन्द्र, १४ त्रित आप्त्य, १५ अपांनपात, १६ मातरिश्वा, १७ अहिर्बुध्न्य, १८ अजएकपाद, १९ रुद्र, रुद्रगण, २० मरुद्गण, २१ वायु-वात, २२ पर्जन्य, २३ आपः, ये आन्तरीक्ष हैं तथा २४ नदी और जल, २५ पृथिवी, २६ अग्नि, २७ बृहस्पति २८, सोम ये मर्त्य हैं।

एतद्भिन्न विश्वकर्मा, प्रजापति, मन्यु, श्रद्धा, अदिति, दिति, विश्वदेवा, सरस्वती, सुनृता और इला आदि देवियाँ, ऋभुगण, त्वष्टा, इन्द्राणी आदि देवियाँ, पृश्नि, यम, आर्य्यमा, वसुगण, उशना, वैश्वानर, ३३ देवता, आप्रीदेवता, रोदसी, ऋभुक्षा, राका, सिनीवाली, गुङ्गु, रात्रि, धिषणा आदि देवताओंके नाम भी ऋग्वेदमें देखे जाते हैं। ऋग्वेदमें कहीं कहीं द्यावापृथिवी, मित्रावरुण आदि कुछ देवद्वयकी शक्तिपूजा भी एकत्र प्रचलित देखी जाती है। विशेष विशेष गन्धर्व और अप्सरोगण तथा

उर्व्वरापति और वास्तोस्पति आदि क्षेत्र एवं गृहरक्षक देववृन्दने भी वैदिक ग्रन्थादिमें अपेक्षाकृत निम्नस्तरमें स्थान पाया है। इन सब देवताओंका विवरण यथा-स्थानमें लिपिबद्ध हो चुका है, इस कारण यहां उनका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है।

यद्यपि वेदमें इस प्रकार असंख्य पारिभाषिक देवताओंका उल्लेख देखनेमें आता है, तथापि वेदके मन्त्र भागमें अग्नि, वायु, इन्द्र और सूर्यके ही अनेक स्तोत्र देखे जाते हैं। किन्तु निरुक्तकारने तीन मुख्य देवताओं की बात लिखी है। यथा—"तिस्रो देवता इति"

ये तीन देवता अग्नि, वायु और सूर्य हैं। इसी कारण निरुक्तकारने कहा है—

"अग्नि पृथिवीस्थानो वायुर्वे इन्द्रो वान्तरीक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः।" (७।२।१)

इससे जाना जाता है, कि पृथिवीमें अग्नि ही मुख्य देवता है। यहां जलादि अप्रधान देवता हैं। अश्वादि चेतनदेवता तथा इध्मादि अचेतनदेवता यहां पर पारिभाषिक देवता माने गये हैं। अन्तरीक्षमें वायु वा इन्द्र ही मुख्य देवता, पर्जन्यादि अप्रधान देवता, श्येनादि अन्तरीक्षचर चेतन देवता तथा वागादि अचेतन देवता अन्तरीक्षके पारिभाषिक देवता हैं। फिर द्युलोकमें सूर्य ही मुख्य देवता, अश्वि प्रभृति अप्रधान देवता, हैं। द्युलोकसे पारिभाषिक देवताकी बात देखी नहीं जाती।

वैदिक साहित्य।

वैदिक साहित्य अतिप्राचीन आर्योंकी विशाल ज्ञान-गरिमाका विपुल भाण्डार है। वैदिक साहित्यकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि प्राचीनकालमें इन निगमकल्पतरुकी जो सैकड़ों शाखाएं थी, उनका अधिकांश विलुप्त हो गया है। इस महा विलुप्तके बाद आज भी वैदिक साहित्यके जो सब ग्रन्थ वर्त्तमान हैं उनकी सम्यक् आलोचना करना भी असम्भव है। हम नीचे कुछ प्रधान प्रधान वैदिक ग्रन्थोंका परिचय देते हैं।

ऋग्वेद।

ऋग्वेदसंहिता एक बृहत् ग्रन्थ है। प्राचीन वैदिक साहित्यके पण्डितोंने इस ग्रन्थके दो भाग कर रखे हैं। इस प्राचीन विभागका फिर दो नाम रखा जा सकता है। यथा—अतिप्राचीन और अनतिप्राचीन। अनतिप्राचीन-के मतसे ऋग्वेदसंहिता प्रथमतः आठ अष्टकमें विभक्त हुई है। प्रत्यक अष्टक प्रायः समपरिमित है। फिर एक एक अष्टक आठ अध्यायमें विभक्त है, प्रत्येक अध्यायमें ३३ वर्ग हैं। वर्गकी कुल संख्या २००६ है। पांच पांच ऋकका एक एक वर्ग कल्पित हुआ है। यह विभाग केवल ग्रन्थका बाह्य विभागमात्र है। ग्रन्थगर्भविषयके विचारसे यह विभागकल्पना नहीं होती। किन्तु अति प्राचीन विभागकल्पना अन्य प्रकारकी है। इस विभाग-के अनुसार ऋग्वेदसंहिता दश मण्डलोंमें विभक्त हुई है। इसमें ८५ अनुवाक (परिच्छेद) तथा १०१७ सूक्त हैं। प्रचलित सभी ग्रन्थोंकी ऋक्-संख्या १०५८० है। ऋग्वेद देखो।

मण्डलोंका श्रेणीविभाग; ऐतरेय आरण्यकमें तथा आश्वलायन और शाङ्खायन इन दो गृह्यसूत्रोंमें सबसे पहले दिखाई देता है। प्रातिशाख्य और निरुक्तमें इसके सिवा और कोई विभाग कल्पित नहीं हुआ है। शेषोक्त दो ग्रन्थोंमें ऋग्वेदसंहिताका अध्याय विभाग 'दशति' नामसे अभिहित हुआ है। समानमन्त्रमें भी ऋग्वेदकी यह आख्या देखनेमें आती है। कात्यायनकी अनुक्रमणिकामें मण्डलविभागका उल्लेख नहीं है। कात्यायनने अनतिप्राचीन विभागका अनु-सरण कर अष्टक और अध्यायकी बात लिखी है। शुक्ल यजुर्व्वेदके ब्राह्मणकाण्डके द्वितीय भागमें हम 'सूक्त' शब्दका प्रयोग देखते हैं। ऐतरेयब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यक आदिमें भी 'सूक्त' शब्दका प्रयोग है। वर्त्त-मान कालमें ऋग्वेदकी शाकल्य शाखाके अन्तर्गत शैशिरीय उपशाखा ही प्रचलित है। जगह जगह वास्कल शाखा-का भी उल्लेख है। इन दोनोंका पार्थक्य उतना जटिल नहीं है। एक प्रधान पार्थक्य यह देखा जाता है, कि वास्कल शाखाके ८म मण्डलमें आठ मन्त्र अधिक हैं, किन्तु बहुतेरोंकी धारणा है, कि यह वालखिल्य भी है। शाकल्य एक ऋषिका नाम है। ब्राह्मणकाण्ड और सूत्रादिमें यह नाम देखा जाता है। यह शाकल्य ही ऋग्वेदसंहिताके 'पदपाठ' के प्रवर्त्तक हैं।

(पदपाठ और क्रमपाठादिका विषय इसके पहले लिखा जा चुका है।) शतपथब्राह्मण शुक्ल यजुर्वेदका एक ब्राह्मण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थमें शाकल्यका दूसरा नाम विदग्ध लिखा है। ये विदेहराज जनकके सभापण्डित थे। शाकल्य याज्ञवल्क्यके प्रतिद्वन्द्वी कह कर प्रसिद्ध हैं।

ऋग्वेदसंहिताके क्रमपाठके प्रवर्त्तक पञ्चाल बाभ्रव्य हैं। ऋक्प्रातिशाख्यमें (११।३३) ये केवल 'बाभ्रव्य' नामसे ही अभिहित हैं। इससे जाना जाता है, कि कुरुपञ्चालगण जिस प्रकार क्रमपाठके प्रवर्त्तक थे, कोशलविदेहगण अर्थात् शाकलगण भी उसी प्रकार पद पाठके प्रचारक।

ऋग्वेदसंहितामें अग्निका स्तोत्र ही सर्वापेक्षा अधिक है। अग्नि पार्थिव देवता हैं। ये देवता और मनुष्यके मध्यवर्ती हैं। अग्निकी सहायतासे ही दूरस्थ अन्यान्य देवताओंका आह्वान होता है। अग्निके बाद ही ऋग्वेदमें इन्द्रस्तोत्रका बाहुल्य देखा जाता है। इन्द्र अति शक्तिशाली हैं, वे मेघचालक और वज्री हैं। मेघद्वारा वृष्टि होनेसे ही धरा शस्यशालिनी होती है। इन्द्र वृष्टिके कर्त्ता हैं। वृत्रासुरके युद्धव्यापार और मेघवृष्टि वज्रपात आदि वर्णनासूचक अनेक ऋक् हैं। ऊषाका स्निग्धमधुर कनककिरण देख कर आर्यों के हृदयमें जिस कोमल कवित्व भावका सञ्चार होता था, तथा वे ऊषाके उस तरुण सौन्दर्य्य पर मुग्ध हो जिस भावमें पद्य लिखते थे, ऋग्वेदमें उसका यथेष्ट परिचय है। इस सम्बन्धमें काव्यसुधारसमय अनेक ऋक् देखनेमें आती हैं। ऊषा सूर्यके आगमनकी सूचना करती है। सूर्य अंधकारको विनष्ट करते हैं, प्रकाश देते हैं, आत्यन्तिक शैत्यको विनष्ट कर जीवशक्तिको कर्ममें प्रवर्त्तित करते हैं, सूर्य द्वारा शस्यबीज अङ्कुरित होता है, सूर्य ही प्राणशक्तिके मूल निदान और बुद्धिवृत्तिके प्रेरक हैं, यही सब जान कर आर्य ऋषियोंने सूर्यके अनेक स्तोत्र प्रकाश किये हैं।

ऋग्वेदके आलोच्य विषय।

इसके सिवा मित्र, वरुण, अश्विद्वय, विश्वदेवगण, सरस्वती, सुनृता, मरुद्गण, अदिति और आदित्यगण, ऋतुगण, ब्रह्मणस्पति, सोम, ऋभुगण, त्वष्टा, इन्द्राणी, होता, पृथिवी, विष्णु, पृश्नि, नदी, जल, यम, पर्जन्य, अर्यमा, पूषा, रुद्रगण, वसुगण, उशना, त्रित, वैश्वानर, मातरिश्वा, इला, आप्री, रोदसी, अहिर्बुध्न, अजएकपात्, ऋभुक्षा, राका, सिनीवाली और गुंगु आदि देवताओंका स्तोत्र है। कृषिकार्य, मेषपालन, देशभ्रमण, वाणिज्य, समुद्रगमन, नदी आदिका भौगोलिक विवरण, ऋक्ष, सौरवत्सर, चान्द्रवत्सर, देवताओंको गाभी और अश्व, पञ्चकृष्टि, प्राचीन कालके मनुष्यकी परमायु, अविवाहिता कन्या, तन्तुवाय और वस्त्रनिर्माण, नापित, वर्म, शिरस्त्राण, तनुत्राण, वाद्ययन्त्र, अनार्यके साथ युद्ध, सर्पका उत्पात और सर्पका मन्त्र, पक्षीको अमङ्गल, ध्वनिका मन्त्र, सूर्यकी दैनिक गति, शस्यादिका विवरण, खदिर और शिंशुकाष्ठकी गाड़ी, रथनिर्माता शिल्पी, सुवर्णसज्जा विशिष्ट अश्व, युद्धका अश्व, अमात्यवेष्टित गजस्कन्ध पर आरूढ़ राजा, प्रस्तरनिर्मित नगर, सरयूके पूरब आर्यराज्यका विस्तार और आर्यराजाओंका युद्ध, दृषद्वती, आपया, यमुना, रसा, कुभा, सरस्वती, परुष्णी, सिंधु, गोमती, हरियुपिया वा यव्यावती, विपाशा और शतद्रु नदी, शर्य्यणावती, जह्नुकन्या वा जाह्नवी, आर्जीकिया नदी, अनार्य्य वर्वरजाति, कीकटदेश (दक्षिण मगध) वर्णगण, सूर्यग्रहण, ऐश्वरिक बलकी एकता, एक ईश्वरका अनुभव, सर्पनागकी कथा, दिति और अदिति, स्वर्ग और पृथ्वीकी सिर्फ एक बार सृष्टि, ऋषियोंकी प्रतिद्वन्द्विता, ऋषियोंका संसार और युद्धव्यापारमें प्रवृत्ति, ऋषियोंको वंशानुक्रमसे मन्त्ररक्षा, मुद्राका प्रचलन, लौहकलस, स्वामीके साथ स्त्रीका यज्ञसम्पादन, विवाहके समय वरका वेश, कर्मकारका भस्त्रा यन्त्र, त्रिधातुका गृह, दशयन्त्र उत्स, दीर्घसुरा आदि रखनेका चर्माधार, हिरण्मय कवच, विविध आभरण, भाषारहित और नासिकारहित अनार्योंका विवरण, युद्धमें अश्व व्यवहार, गो-चर्म द्वारा आवृत युद्धरथ, युद्धदुन्दुभि, नदीकूल और उर्वरा भूमि ले कर विवाद, मरुभूमि, भेकस्तुति, पर्वत, नदी, वृक्ष, गो और अश्व आदिकी स्तुति, सर्पविषका मन्त्र, सुदासराजाका विवरण, युद्धास्त्र और आयोजन, स्वर्ग और अमरत्वलाभ, कृष्ण नामक अनार्य योद्धा, सोमरस प्रस्तुत करनेकी पद्धति, विविध वैदिक उपाख्यान,

समुद्रमन्थनसे अमृतलाभ, गरुड़कर्त्तृक अमृत आहरण, अमृतपानसे देवताओंका अमरत्व, नवम मण्डलके शेषभागमें ऋतुकी वर्णना, यमयमीका जन्म, यमयमीका कथोपकथन, अन्त्येष्टिक्रियाका मन्त्र, (पुण्यात्मा) पूर्वपुरुषोंका स्वर्गमें वास और यज्ञभाग ग्रहण, सत्यका सम्मान, पञ्चजनवासकी कथा, स्तोता, वैद्य, कर्मकार आदिका भिन्न भिन्न व्यवसाय, कन्याविवाहमें अलङ्कारदान, अग्निदाहप्रथा, मृतदेह, मृत्तिकाका स्थापन, कूपखनन, पशुचारण, मेषलोमका वस्त्रवयन, सिंह, हरिण, वराह, शृगाल, शशक, गोधा, हस्ती और सर्पादिका उल्लेख, संसारी ऋषियोंकी सम्पत्ति, सृष्टिकी कथा, प्राचीनकालमें आर्योंका निवासस्थान, शोकप्रकाशकी प्रथा, भाषाकी आलोचना, छन्दःज्योतिषकी कथा, सपत्नियोंके ऊपर प्रभुत्वलाभका मन्त्र, गर्भसंस्कार और गर्भरक्षाका मन्त्र, रोगारोगका मन्त्र, अमङ्गलनाशका मन्त्र, पेचक डाकके अमङ्गलनाशका मंत्र, राज्याभिषेकका मन्त्र इत्यादि अनेक सामाजिक, वैज्ञानिक, गृह्य और धर्मविषयक विविध विषय न्यूनाधिक परिमाणमें ऋग्वेदमें देखनेमें आता है।

वेदार्थप्रकाशक ग्रन्थ।

ऋग्वेदार्थप्रकाशकके सम्बन्धमें निघण्टु और यास्कके निरुक्त ये दोनों ग्रन्थ अति प्राचीन हैं। देवराज यज्वा निघण्टुके टीकाकार हैं। दुर्गाचार्यने निरुक्तकी सुप्रसिद्ध वृत्ति प्रणयन की। निघण्टुकी टीकामें वेद भाष्यकार स्कन्दस्वामीका नाम देखा जाता है। सायणाचार्य वेदके आधुनिक भाष्यकार हैं। यास्कके समयसे ले कर सायणके समय तक वेदके किसी भी भाष्यकारका नाम सुननेमें नहीं आता। शङ्कराचार्य और उनके शिष्योंने उपनिषद्का भाष्य और व्याख्या की। वेदके भाष्य वा टीकाकी रचनाके लिये वेदान्तवादियोंकी प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। परन्तु शङ्करशिष्य आनन्दतीर्थने ऋक्संहिताके कुछ अंशोंका श्लोकमय भाष्य किया था। रामचन्द्रतीर्थने फिर श्लोकमय भाष्यकी टीका की। हम सायण-कृत विस्तृत ऋग्भाष्य देखते हैं। उस भाष्यमें भट्टभास्कर मिश्र और भरतस्वामीको वेदका भाष्यकार बताया है। चण्डूपण्डित, चतुर्वेदस्वामी, युवराज, रावण और वरदराजकृत भाष्यका कुछ अंश पाया गया है। इनके सिवा मुद्गल, कपर्दी, आत्मानन्द और कौशिक आदि कुछ भाष्यकारोंके नाम सुननेमें आते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि भट्टभास्कर कृष्णयजुर्वेदके भाष्यप्रणेता हैं। निघण्टुके टीकाकार देवराजने भी अपनी टीकामें भट्टभास्कर मिश्र, माधवदेव, भवस्वामी, गुहदेव, श्रीनिवास और उवट आदि भाष्यकारोंका नामोल्लेख किया है। उवटने ऋक्संहिताकी कोई भाष्य किया है वा नहीं, कह नहीं सकते। किन्तु उवट-कृत शुक्लयजुर्वेद-संहितामें एक भाष्य देखनेमें आता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने ऋक्प्रातिशाख्यका भी भाष्य किया है।

ऋग्ब्राह्मण ग्रन्थ।

ऋग्वेदके दो ब्राह्मण ग्रंथ हैं। उनमेंसे एकका नाम ऐतरेयब्राह्मण और दूसरेका नाम शाङ्ख्यायन ब्राह्मण है। शाङ्खायनका दूसरा नाम कौषीतकि ब्राह्मण है। इन दोनों ग्रंथोंका सम्बंध अति घनिष्ट है। दोनों ग्रन्थमें जगह जगह एक ही विषयकी आलोचना की गई है, किन्तु कहीं कहीं उन्होंने एक ही विषयको एक दूसरेके विपरीत अभिप्रायका प्रकाश और प्रचार किया है। कौषीतकि-ब्राह्मणमें जैसी सुप्रणालीसे आलोच्य विषयकी आलोचना की गई है, ऐतरेयब्राह्मणमें वैसी सुप्रणाली दिखाई नहीं देती। ऐतरेयब्राह्मणके अन्तिम दश अध्यायमें जिन सब विषयोंकी आलोचना की गई है, शाङ्खायन ब्राह्मणमें उसका कुछ भी उल्लेख नहीं है। किन्तु इस अभावकी शाङ्ख्यायन ग्रन्थमें पूर्त्ति हुई है। प्रचलित ऐतरेय ब्राह्मणमें ४० अध्याय हैं। ये चालीस अध्याय ८ पञ्चिकामें विभक्त हैं। शाङ्खायन ब्राह्मणमें सिर्फ ३० अध्याय हैं जिनसे ऐतिहासिक घटना अच्छी तरह जानी नहीं जाती। किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण पढ़नेसे ऐतिहासिक विवरण अच्छी तरह जाना जाता है। उसमें अनेक भौगोलिक विवरण हैं। भारतवर्षका उत्तरी प्रदेश जिस किसी समय भाषाशिक्षाका केन्द्रस्थल था, कौषीतकि या शाङ्खायन ब्राह्मण पढ़नेसे उसका भी विवरण जाना जाता है। शुक्लयजुर्वेदमें

पैङ्ग ऋषिका नामोल्लेख है। अन्यान्य ग्रंथोंमें भी यह नाम देखनेमें आता है। निरुक्त और महाभाष्यमें पैङ्गि-कल्प ग्रंथका नाम दिखाई देता है। सायणके समय भी पैङ्गिब्राह्मण प्रचलित था। कौषीतकका नाम शाङ्खायन ब्राह्मणमें बार बार आया है। फलतः शाङ्खायन-ब्राह्मणमें कौषीतकियोंका ही सिद्धान्त आलोचित हुआ है। शाङ्खायन ब्राह्मणके भाष्यकारने इसीलिये इस ग्रंथका कौषीतकि-ब्राह्मण नाम रखा है।

शाङ्खायन और ऐतरेय-ब्राह्मणमें अनेक प्रकारके आख्यान वर्णित हुए हैं। किस प्रकार किस मंत्रका आविर्भाव हुआ वह इन सब आख्यानोंसे मालूम हो गया है।

गोविंदस्वामी और सायणाचार्यने ऐतरेय-ब्राह्मणका भाष्य किया है। माधवपुत्र विनायक नामक एक पण्डित कौषीतकि ब्राह्मणके एक भाष्यके प्रणेता हैं।

आरण्यक।

इन दोनों ब्राह्मणके ही आरण्यक ग्रंथ है। निर्जन निभृत अरण्यको निस्तब्धतामें रह आर्यऋषिगण जो शास्त्र अध्ययन कर गभीरभावसे ब्रह्मचर्च्चामें निमग्न रहते थे वही आरण्यक नामसे प्रसिद्ध है। आरण्यक ग्रंथमें उपनिषदका अंश ही अधिक है। हम यहां सबसे पहले ऐतरेय आरण्यककी आलोचना करते हैं।

ऐतरेय आरण्यक।

ऐतरेय आरण्यकके पांच ग्रंथ प्रचलित देखे जाते हैं, प्रत्येक ग्रंथ "आरण्यक" कहलाता है। द्वितीय और तृतीय आरण्यक एक स्वतन्त्र उपनिषत् है। द्वितीय भागका अवशिष्ट परिच्छेद-चतुष्टय वेदान्तग्रंथके अंतर्भुक्त है, इस कारण वह ऐतरेय उपनिषद् कहलाता है। द्वितीय और तृतीय भाग महीदास ऐतरेय द्वारा सङ्कलित हुआ है। महीदासने विशालके औरस और इतराके गर्भसे जन्मग्रहण किया। माताके नामानुसार इन्हें ऐतरेयकी उपाधि दी गई।

कौषीतकि आरण्यक।

कौषीतकि आरण्यकके तीन खण्ड हैं। प्रधान दो खण्ड कर्मकाण्डसे परिपूर्ण है। इसका तृतीय खण्ड उपनिषत् ग्रंथ है। यह ग्रंथ कौषीतकि उपनिषद् कहलाता है। कौषीतकि उपनिषत् एक सारगर्भ उपादेय ग्रंथ है। किस प्रकार आनन्दमय ध्यानमें प्रवेश किया जाता है तथा किस प्रकार वह आनन्द उपभोग किया जाता है इस ग्रंथके प्रथम अध्यायमें उसकी आलोचना की गई है। गृहकृत पारिवारिक बंधनादिके लिये उस समयके सामाजिकोंके हृदयमें किस प्रकार कुसुम-कोमला हृद्वृत्तियोंका विकाश हुआ था, द्वितीय अध्यायमें उसका परिस्फुट चित्र देखनेमें आता है। तृतीय अध्यायमें ऐतिहासिक वृत्तान्त, इंद्रके युद्धादिका उपाख्यान लिपिबद्ध हुआ है। चतुर्थ अध्याय भी आख्यान-से परिपूर्ण है। काशीराज वीरेंद्रकेशरीने एक ज्ञानी ब्राह्मणको जो उपदेश दिया था इस अध्यायमें वह भी लिखा है। इसमें नाना प्रकारके भौगोलिक विवरण हैं। हिमवत् और विन्ध्य आदि पर्वतोंके नाम तथा पहाड़ी जातिके लोगोंके नाम इस ग्रंथमें दिखाई देते हैं। सायणाचार्यने ऐतरेय आरण्यक और कौषीतकि आरण्यकका भाष्य किया है।

श्रीमच्छङ्कराचार्य कौषीतकि उपनिषत् और ऐतरेय उपनिषद्के भाष्यकर्त्ता हैं। शङ्करशिष्य आनन्दज्ञान, आनन्दगिरि और आनन्दतीर्थ, अभिनवनारायण, नारायणेन्द्र सरस्वती, नृसिंहाचार्य और बालकृष्णदास, शाङ्करभाष्यकी टीका लिख गये हैं।

इनके सिवा वास्कल-उपनिषत् और मैत्रायणी-उपनिषत् भी ऋक् उपनिषत् कहलाता है। वास्कल श्रुतिकी कथाका सायणने भी उल्लेख किया है। ऋग्वेदकी वास्कल शाखा विलुप्त होने पर भी वास्कल उपनिषत्ने उस विलुप्त शाखाकी अन्तिम स्मृतिको आज भी कायम रखा है।

श्रौतसूत्र।

ऋग्वेदीय श्रौतसूत्र ग्रन्थोंमें सबसे पहले आश्वलायन श्रौतसूत्रकी बात ही उल्लेखनीय है। यह ग्रंथ बारह अध्यायमें विभक्त है। शाङ्खायन-श्रौतसूत्रकी अध्याय संख्या १८ है। ऐतरेयब्राह्मणके साथ आश्वलायनका घनिष्ट सम्बन्ध है। फिर उधर शाङ्खायनब्राह्मणके साथ शाङ्खायनश्रौतसूत्रका सम्बन्ध अति स्पष्ट है। अश्वल ऋषि विदेहराज जनकके होता थे। कुछ लोगोंका कहना

है; कि अश्वलने यह श्रौतसूत्र प्रवर्त्तित हुआ है, इस कारण इसका नाम आश्वलायनसूत्र पड़ा है।

शाङ्खायन-श्रौतसूत्रका १५वां और १६वां अध्याय ब्राह्मण ग्रन्थकी भाषामें लिखा है। उसकी रचना प्रणालीको बहुतेरे प्राचीन समझते हैं। उसका सत्तरहवाँ और अट्ठारहवाँ अध्याय स्वतन्त्र है। उनकी भाषा भी स्वतन्त्र है। कौषीतकि आरण्यकके प्रथम दो अध्यायके साथ इन दोनों अध्यायोंका सम्बन्ध अति घनिष्ठ है। आश्वलायन श्रौतसूत्रमें शाट्यायन ब्राह्मणका उल्लेख है। आश्वलायन श्रौतसूत्रके ११वें भाष्यका सन्धान पाया गया है। भाष्यकारोंके नाम ये हैं—नारायणगर्ग, देवत्रात, विद्यारण्य मुनि, कल्याणश्री, दयाशङ्कर, मञ्जनभट्ट, मथुरानाथ शुक्ल, महादेव, मल्लभट्टसुत, षड्गुरुशिष्य और सिद्धान्ती। वाजपेय, राजसूय, अश्वमेध, पुरुषमेध और सर्वमेध यज्ञ शाङ्खायन और आश्वलायन दोनों ही सूत्रोंमें दिखाई देता है। किन्तु इन सब यज्ञोंका विषय शाङ्खायनमें ही सविस्तार वर्णित है। नारायण नामक एक दूसरे सुपण्डितने शाङ्खायन-श्रौतसूत्रका भाष्य किया है। यह नारायण और आश्वलायनके भाष्यकार नारायण दो भिन्न भिन्न व्यक्ति थे। नारायणगर्ग कृष्णजीके पुत्र और श्रीपतिके पौत्र थे। किन्तु शाङ्खायनके भाष्यकार नारायणके पिताका नाम पशुपति शर्मा था। नारायणका ग्रन्थ शाङ्खायनका भाष्य नहीं है, पद्धति मात्र है। ब्रह्मदत्तके आधार पर यह ग्रंथ रचा गया है। श्रीपतिपुत्र विष्णुने भी क्रतुरत्नमाला नामक इस श्रौतसूत्रका एक भाष्य किया है। मलयदेशवासी वरदत्तपुत्र पण्डित आनर्तीयने शाङ्खायनसूत्रका एक भाष्य प्रणयन किया। इसके तीन अध्याय-(९वां, १०वां और ११वां) का भाष्य नष्ट हो गया। दासशर्माने मञ्जूषा लिख कर इन तीन अध्यायोंका भाष्य पूर्ण किया। १७वें और १८वें अध्यायका भाष्य गोविन्दकृत है।

गृह्यसूत्र।

ऋग्वेदके गृह्यसूत्रके मध्य आश्वलायन-गृह्यसूत्र तथा शाङ्खायनगृह्यसूत्रका नाम ही विशेष उल्लेखनीय है। शौनकगृह्यसूत्र है, इस कारण ऋग्वेदके एक दूसरे गृह्यसूत्रका भी नाम सुननेमें आता है। किन्तु वह अभी कहीं भी नहीं मिलता। आश्वलायन गृह्यसूत्र चार अध्यायमें विभक्त है, शाङ्खायनकी अध्यायसंख्या छः है। इन सब गृह्यसूत्रोंमें विवाह, गर्भाधान, जातकर्म, चूड़ा, उपनयन, वर्णाश्रमधर्म और श्राद्धादि दशकर्मोंका विधान सूत्रकारमें लिखा है। फलतः मनुष्यके आश्रमधर्मके विषयकी आलोचना ही गृह्यसूत्रका आलोच्य विषय है। शाङ्खायनगृह्यसूत्रके हम अनेक भाष्यकारोंके नाम सुनते हैं। यथा—सुमन्तुसूत्रभाष्य, जैमिनीयसूत्रभाष्य, वैशम्पायनसूत्रभाष्य और पैलसूत्रभाष्य गृह्यसूत्रादि स्मरणीय अनेक वैदिक ग्रन्थ हैं। रामचन्द्र नामक एक सुपण्डितने नैमिषारण्यमें रह कर शाङ्खायनगृह्यसूत्रका एक भाष्य किया है। कुछ लोगोंका ख्याल है, कि नैमिषारण्यमें ही ये सब सूत्र संगृहीत हुए हैं। इसके अतिरिक्त दयाशङ्करने गृह्यसूत्रप्रयोगदीप नामसे, रघुनाथने अर्थदर्पण नामसे, रामचन्द्रने गृह्यसूत्रपद्धति नामसे, वासुदेवने गृह्यसंग्रह नामसे तथा कृष्णजीपुत्र नारायणने भी एक शाङ्खायनगृह्यसूत्रका भाष्य रचा।

प्रातिशाख्यसूत्र।

ऋक्संहिताका एक प्रातिशाख्यसूत्र है। प्रातिशाख्यसूत्र शौनकप्रोक्त कह कर प्रसिद्ध है। ये शौनक आश्वलायनके गुरु समझे जाते हैं। ऋक्प्रातिशाख्यसूत्र एक बड़ा ग्रन्थ है। यह तीन काण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक काण्डमें छः छः पटल हैं। इसमें कुल १०३ कण्डिका देखी जाती है। इस ग्रन्थके प्रथम भाष्यकार विष्णुपुत्र हैं। इसके बाद उवटने इस भाष्यका संस्कार कर अभिनव भाष्य प्रणयन किया। प्रातिशाख्यसूत्रके आधार पर उपलेख नामक प्रातिशाख्यसूत्रका एक संक्षिप्त ग्रंथ रचा गया। यह ग्रंथ प्रातिशाख्यसूत्रका परिशिष्ट भी कहलाता है। प्रातिशाख्य और वेदाङ्ग देखो।

अनुक्रमणी नामक एक श्रेणीका ग्रन्थ वैदिक साहित्यके अन्तर्भुक्त है। इसमें छन्दः, देवता और मन्त्रद्रष्टा ऋषिकी पर्यायक्रमसे आलोचना की गई है। ऋक्संहिताकी अनेक अनुक्रमणिका हैं। शौनक प्रणीत अनुवाकानुक्रमणी तथा कात्यायन प्रणीत एक सर्वानुक्रमणी ग्रन्थ है।

इन दोनों ग्रन्थोंकी अति विस्तृत और सुलिखित

टीका है। इस टीकाकारका नाम षड़्गुरुशिष्य है। षड्गुरुशिष्यका प्रकृत नाम क्या है अथवा किस समय उन्होंने यह ग्रन्थ लिखा, कह नहीं सकते। षड़्गुरुशिष्यका असल नाम प्रकाशित नहीं रहने पर भी इस ग्रन्थकारने अपने ग्रन्थमें षड़्गुरुका नामोल्लेख किया है। जैसे—विनायक, त्रिशूलान्तक, गोविन्द, सूर्य, व्यास और शिवयोगी, इनके सिवा ऋग्वेद सम्बन्धीय और भी एक ग्रन्थ है। उसका नाम है बृहद्देवता। बृहद्देवता ग्रन्थमें वैदिक आख्यानादि विस्तृतरूपमें वर्णित हैं। यह ग्रन्थ शौनकरचित कह कर प्रसिद्ध है। इसकी प्राचीनता भी सर्वसम्मत है। यह ग्रन्थ श्लोकोंमें लिखा है। ऋग्वेदसंहिताके साथ साक्षात् सम्बन्धमें इसका परिस्फुट सम्बन्ध है। ऋकसंहिताकी प्रत्येक ऋक्‌का देवता निर्देश करना ही इस ग्रन्थका उद्देश्य है। किन्तु यह कार्य करनेमें बृहद्देवताके ग्रंथकारको देवता सम्बन्धीय विचित्र आख्यानोंसे वह ग्रंथ पूर्ण करना पड़ा है। यह ग्रंथ निरुक्तके बाद रचा गया है, ऐसा बहुतोंका विश्वास है। अतएव एक श्रेणीके पण्डित इस ग्रंथको शौनक प्रणीत नहीं मानते। उनका कहना है, कि बृहद्देवता ग्रन्थ शौनक सम्प्रदायके किसी व्यक्ति द्वारा रचा गया है। इसमें माधुरी और आश्वलायनका नाम है। इसमें वलभी-ब्राह्मण तथा निदानसूत्रका नाम भी पाया जाता है। बृहद्देवता ग्रंथ शाकल शाखाके आधार पर नहीं लिखा गया है। उसमें शाकल शाखाका नाम अनेक बार आया है। वर्त्तमान कालमें प्रचरद्रूप शाकल शाखाके साथ कई जगह उसका मेल नहीं है। इसके सिवा शौनक सङ्कलित ऋग्विधान आदि नामोंके और भी कितने ग्रंथ हैं। इसके बाद बहवृच परिशिष्ट, शाङ्खायनपरिशिष्ट और आश्वलायनगृह्यपरिशिष्ट नामके और भी अनेक ग्रंथ हैं।

सामवेदसंहिता।

गीतामें भगवान्‌ने कहा है, "वेदानां सामवेदोऽस्मि" अर्थात् वेदमें मैं सामवेद हूं। श्रीपाद रामानुजने इस भगवदुक्तिके भाष्यमें लिखा है, "वेदानां ऋग्यजुःसामाथर्व्वाणां यदुत्कृष्टः सामवेदसोऽहमस्मि" अर्थात् ऋग्, यजुः, साम और अथर्ववेदके मध्य सामवेद जो उत्कृष्ट है तथा मैं हो वह सामवेद हूं। सामवेद उत्कृष्ट क्यों है, टीकाकार श्रीमधुसूदन सरस्वती महोदयने उसका कारण इस प्रकार बताया है—

"वेदानां मध्ये सामो माधुर्य्येणातिरमणीयः।"

अर्थात् वेदोंमें सामवेद माधुर्यके कारण अति रमणीय है। इसका कारण यह है, कि सामवेदके संहिताग्रंथ गीतसे भरे हैं, गीतिमाधुर्य्यो स्वभावतः ही रमणीय होता है। गीतके उद्देशसे ही गाने योग्य ऋक् सामवेदमें सङ्कलित हुई हैं। शवरस्वामीने कहा है, कि आभ्यन्तर प्रयत्नके लिये क्रियाविशेष हो गीति है। इन गीतोंके आश्रय स्वरूप कुछ अगीत वाक्य द्वारा भी सामवेदसंहिताका कलेवर पूर्ण किया गया है। इन अगीति वाक्योंमें गद्य और पद्य दोनों ही है। उक्त पद्योंको ऋक् तथा गद्योंको यजुः कहते हैं। इस प्रणालीसे संगृहीत ऋक् मंत्र "आर्च्चिक" कहलाते हैं। पूर्वमीमांसाको अधिकरणमालाके नवम अध्यायके द्वितीय पादमें एकादशाधिकरणमें "स्तोभ"की एक संज्ञा लिखी है। उसका मर्म यह है, कि सामके आश्रय ऋगतिरिक्त अथयागीतिका साधक जो शब्द है वही स्तोभ कहलाता है। यह स्तोत्र तीन प्रकारका है—वर्णस्तोभ, पदस्तोभ और वाक्यस्तोभ। सामवेदके स्तोभका स्वतंत्र ग्रंथ है। न्यायमाल विस्तर ग्रंथकारका कहना है, कि ऋक्‌का वर्ण विकृत हो कर यद्यपि रूपांतरित नहीं होता, तो वर्णकी संख्या बढ़ सकती है। इन बढ़े हुए वर्णोंको 'स्तोभ' कहते हैं। यह वर्णस्तोभका लक्षण हैं। पदस्तोभ दो प्रकारका है। अनिरुक्त और निरुक्त। पदस्तोभ सर्व साकल्यमें पन्द्रह और वाक्यस्तोभ नौ प्रकारका है। यथा।

"आशास्तिः स्तुतिसंख्याने प्रणयः परिदेवनम्।
प्रैषमन्वेषणाश्चैव सृष्टिसख्यानमेव च॥"

साम आर्चिक ग्रन्थ प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है। द्वितीय भाग "उत्तरा" वा उत्तरार्च्चिक नामसे प्रसिद्ध है। कुछ लोगोंका कहना है, कि भागका कोई नाम नहीं है। यह साधारणतः छन्दः आर्च्चिक और छन्दसिका नामसे परिचित है।

सामवेदकी शाखासंख्या एक हजार होने पर भी अभी सिर्फ तेरह शाखा प्रचलित हैं। कोई कोई कहते

हैं, कि वेदकी यथार्थमें तेरह शाखाएं हैं। वे अपनी उक्तिके प्रमाण स्वरूप कहते हैं, कि 'सहस्र' गीत्युपायाः' अर्थात् सामवेदके गीति-उपाय हजार प्रकारके हैं, इस कारण सामवेद हजार शाखाओंमें विभक्त है। जो हो, प्रचरद्रूप शाखाओंमें अभी सिर्फ दो शाखाका अध्ययन और अध्यापना देखनेमें आती है। काशी, कान्यकुब्ज, गुर्जर, नागर और वङ्गमें कौथुमी शाखा तथा द्राविडमें राणायनी शाखा ही प्रचलित है।

पहले कहा जा चुका है, कि सामवेद दो भागोंमें विभक्त है, पूर्वार्द्ध और प्रपाठक। प्रत्येक प्रपाठकमें दश करके 'दशत्' हैं। प्रत्येक दशत् दश करके मन्त्र की समष्टि है। शतपथब्राह्मणके समयसे सामवेदके भाष्यकार सायणाचार्यने कहीं भी 'प्रपाठकों पदका व्यवहार नहीं किया। उन्होंने 'प्रपाठक' पदकी जगह 'अध्याय' पदका व्यवहार किया है। अर्द्धप्रपाठक नामक जो वेदसंहिता-ग्रन्थका अन्यविध छेद है वह भी सायणभाष्य पढ़नेसे मालूम नहीं होता।

आर्च्चिक भागमें जो 'दशत्' नामक छेदकी बात पहले लिखी जा चुकी है, सायणने उसी दशत्‌की जगह 'खण्ड' शब्दका प्रयोग किया है। अधिकांश स्थलोंका ग्रन्थ ही छन्द आर्च्चिक और प्रपाठकमें विभक्त है तथा आरण्यक ग्रंथ भी उससे पृथक् समझा जाता है। किन्तु सायणभाष्यमें लिखा है, कि उन्होंने छन्द आर्चिकको पांच भागोंमें विभक्त किया है तथा आरण्यकको उस आर्च्चिक ग्रन्थके ही छठे अध्यायरूपमें माना है। प्रथम द्वादश दशत्‌में अग्निका तथा अन्तिमके दशत्‌में सोमका और मध्यवर्त्ती ३६ दशत्‌के अधिकांश मन्त्रोंमें ही इन्द्रका स्तव किया गया है।

द्वितीय भाग नौ प्रपाठकोंमें समाप्त है। प्रत्येक प्रपाठक दो या तीन अध्यायमें विभक्त है। इसका प्रत्येक अध्याय एक एक करके सूक्तमें विभक्त हो गया है। प्रत्येक सूक्तमें तीन वा तीनसे अधिक ऋक् हैं। सामवेदसंहितामें जो सब ऋक् हैं, उसका अधिकांश ऋग्वेदसंहितामें दिखाई देता है। किन्तु सामवेदगृहीत ऋकोंके-वर्ण और पदन्यासमें उच्चारणका स्वतन्त्र नियम है।

छन्दः वा आर्च्चिक।

आर्चिक ग्रन्थकी संख्या तीन है, छन्दः, आरण्यक और उत्तरा। छन्द आर्चिकमें जितनी ऋक् हैं उनमेंसे प्रत्येकके समान और भी दो ऋक् उसके साथ उत्तरार्च्चिकमें सुनी जाती हैं। उत्तरार्च्चिकमें एक छन्दकी, एक स्वरकी और एक तात्पर्यकी तीन तीन ऋकोंमें एक एक सूक्त गठित हुआ है। यह सूक्त "तृच" नामसे भी प्रसिद्ध है। इस प्रकार सम्भावापन्न जो दो ऋकोंकी एक एक समष्टि "प्रगाथ" कहलाती है। यथा तृच, यथा प्रगाथ इनमेंसे प्रत्येकको प्रथम ऋक् छन्द आर्चिकमें निकली है। उस छन्द आर्च्चिककी एक ऋक् मिला कर एक "तृच" होता है। फिर इसी प्रकार प्रगाथकी भी सृष्टि होती है। यही कारण है, कि इनकी प्रथम ऋक् योनिऋक् कहलाती है। यह योनि ऋक् सभीको पेटिकास्वरूप है। "आर्च्चिक" योनिग्रन्थ नामसे भी प्रसिद्ध है।

योनि ऋक्‌के उत्तर ही उसी तरहकी दो या एक ऋक् जिस ग्रन्थमें देखी जाती है, उसीका नाम उत्तरा है। अरण्यमें अध्येय एकाध्यायविशिष्ट ग्रन्थ आरण्यक कहलाता है। सभी वेदोंमें एक एक आरण्यक है। योनि, उत्तरा और आरण्यक इन तीन ग्रन्थोंका साधारण नाम आर्च्चिक अर्थात् ऋक्‌समूह है। छन्दोग्रन्थके आधार पर जो सब साम हैं उनका गान करनेके कारण सामवेदीयगण छन्दोग कहलाते हैं। इन छन्दोगोंके कर्मकाण्डके लिये व्यवहृत आठ ब्राह्मण ग्रंथ छान्दोग्य नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके आरण्यक ग्रंथ भी छान्दोग्यारण्यक कहलाते हैं।

गानग्रन्थ।

इन तीन छन्द ग्रंथके आधार पर जो सब साम गाये जाते हैं वह सामगान नामसे प्रसिद्ध है। सामवेदीय गीतिग्रंथ चार भागोंमें विभक्त हैं, यथा—गेय, आरण्य, ऊह और ऊह्य। गेय गीतिकाका दूसरा नाम "ग्रामगेयगान" है। गेय शब्द अपभ्रष्ट हो कर "गे गान" नामसे भी प्रचलित है। गेय गानको गुर्जरवासी 'वेयगान' भी कहते हैं। गुर्जरवासियोंका इस प्रकार कहनेका एक कारण भी है। वे लोग यद्यपि समस्त वेद पढ़ने-

मे समर्थ नहीं हैं, फिर भी ब्राह्मयज्ञ पढ़नेमें एकान्त यत्नवान् हैं।

ग्राम्यगेय गान।

ब्रह्मयज्ञका मन्त्र आरण्यगानमें है। अतएव उन्होंने पहले आरण्यगानका अध्ययन किया। पीछे समर्थ होने पर वे गेय गानके अध्ययनमें प्रवृत्त हुए। गुर्जरवासियोंके लिये इसी कारण गेयगान द्वितीय है। अतः वे लोग उसे "वेयगान" कहते हैं। 'वेय' शब्द गुर्जर भाषामें द्विवाचक है। वेयगान शब्दका अर्थ द्वितीय गान है। आरण्यगानके विपरीत होनेके कारण इसका दूसरा नाम "ग्राम्यागेय गान" है। गेयगान ग्रंथमें योनिऋकोंका व्यवहार हुआ है। अतएव ब्राह्मणग्रंथमें यह ग्राम्यगेय गान "योनिगान" नामसे भी अभिहित हुआ है। किन्तु सायणने इसका 'वेदसाम' नाम रखा है। छन्द आर्च्चिकमें जिस ऋक्के बाद जो ऋक् है, गेय गानमें भी उस ऋङ्मूल गानके बाद ही वही ऋङ्मूल गान है।

सामवेदका आरण्यक सामसंहिताके अन्तर्भुक्त है। आरण्यक आर्च्चिक तथा आनुषङ्गिक अन्यान्य ऋकोंके आधार पर जो सब साम गाये गये हैं वह प्रपाठकषट्कमें और द्वादश प्रपाठकार्द्धमें विभक्त है। आरण्यक अरण्यगान नामसे अभिहित हुआ है। आरण्यक आर्च्चिक और उसके अवलम्ब पर गीत अरण्यगान ही सामवेदका आरण्यक है। सामवेदी ब्राह्मण छन्दोमय मंत्रोंका गान करते हैं, इस कारण उनका "छन्दोग" नाम हुआ है तथा उसीके अनुसार उनका व्यवहार्य्य यह आरण्यक ग्रंथ "छन्दोगारण्यक" कहलाता है। ब्रह्मचर्यावस्थामें अरण्यमें रह कर यह साधित होता है, इसीसे आरण्यक नामकी उत्पत्ति हुई है। तैत्तिरीय आरण्यक भाष्यमें लिखा है—

> "अरण्याध्ययनादेतदारण्यकमितीर्य्यते।
> अरण्ये तदधीयेतेत्येवं वाक्यं प्रचक्षते॥"

यह ग्रंथ छन्द आर्च्चिकमें गाया जाता है और गेयगानसे सम्पूर्ण विभिन्न है। इस कारण इसको द्वितीय गानग्रंथ कहा जा सकता है। प्रथम गानग्रंथ जिस प्रकार प्रथम आर्च्चिक ग्रंथका अनुसारी है यह वैसा नहीं है। इस आरण्यक ग्रंथके ऋक् सन्निवेश क्रमके साथ सामसन्निवेशक्रमका अधिकांश स्थलमें ही अनैक्य दिखाई देता है। और तो क्या, इस आरण्यक गानमें ऐसे अनेक साम हैं जो सबोंके मूलस्वरूप ऋक् आरण्यक नामक द्वितीय आर्चिक ग्रंथमें बिलकुल दिखाई नहीं देते। छन्दो नामक एक प्रथम आर्चिक ग्रंथ है। सामवेदका आरण्यक तथा आरण्यकगान यथार्थमें पृथक् होने पर भी ये दोनों ही ग्रंथ मिल कर सामवेदका आरण्यक कहलाते हैं। यह आरण्यक गान छः प्रपाठकोंमें विभक्त है।

ऊह और ऊह्यगान।

छन्द आर्चिकके साथ गेयगानका सम्बंध जिस क्रमसे विद्यमान है, आरण्यकके साथ अरण्यगान वा उत्तरार्चिकके साथ ऊह और ऊह्यगानका उसी क्रमानुसार संबंध दिखाई देता है। अधिकंतु अरण्यगानमें ऐसे अनेक गान देखे जाते हैं जिनका मूल ऋक् आरण्यकमें दिखाई नहीं देता। किंतु छन्द आर्चिकमें दिखाई देता है। फिर ऐसे अनेक गान हैं, जो ऋक्से उत्पन्न हुए ही नहीं, किंतु स्तोभग्रंथमें उसकी उत्पत्तिका बीज देखनेमें आता है। ऊह और ऊह्य गानमें जो सब गीत हैं उनकी मूलस्थिति यद्यपि आरण्यगानकी तरह विकीर्ण नहीं है और वह एक उत्तरार्चिकमें ही सीमाबद्ध है, तथापि उत्तरार्चिकके ऋक् सन्निवेश क्रमानुसार इन सब गानोंमें सामसन्निवेशक्रम नहीं है; वह उसके सम्पूर्ण विपरीत है। गेयगानकी तरह तीन तीन सामोंको एकत्र कर सबसे पीछे एकमात्र निधनके योगसे एक एक स्तोत्र सम्पन्न होता है। ऊह गानमें प्रायः सभी इसी प्रकारके स्तोत्र हैं। उत्तरार्चिकके प्रत्येक ऊहकी प्रथम ऋक् छंद आर्चिकसे उद्धृत है। उसी प्रकार ऊह और ऊह्य गानके भी प्रत्येक स्तोत्रका प्रथम साम गेय गानसे उद्धृत माना जाता है। इसी कारण ताण्ड्य ब्राह्मणमें लिखा है—

> "यद्योन्यां तदुत्तरयोर्गायति"

अर्थात् उत्तरार्च्चिकके तृचसूत्रकी प्रथम ऋक् पूर्वपरिचित है। परवर्त्ती दो ऋक् उत्तरा कहलाती है। इस योनि ऋक्के आधार पर गेय गानसे जो स्वर

निकलता है, ऊह और ऊह्य गानमें दोनों ऋक्में भी उसी स्वरसे गान करना होगा, अतएव ऊह और ऊह्य इन दोनों गानोंके प्रायः प्रत्येक स्तोत्रका ही प्रथम साम पूर्वपरिचित है, यही छान्दोगोंका अभिप्राय है। ऊहगान २३ प्रपाठकमें तथा ऊह्यगान ६ प्रपाठकमें विभक्त है। ऊह्यका दूसरा नाम रहस्यगान है। ऊह और ऊह्य गान गेय गानकी तरह आर्चिक क्रमानुसार प्रकाश योग्य नहीं है। ये दोनों गान मिलनेसे गेय और आरण्यगान ग्रन्थसे प्रायः दूने होते हैं। यहां यह भी कह देना आवश्यक है, कि यद्यपि समस्त गान शीघ्र ही गेय है, तथापि प्रथम गान ग्रन्थका विशेष नाम न रहनेके कारण वह साधारण "गेय" गान नामसे पुकारा जाता है। हम इसके पहले इसका दूसरा नाम भी निर्देश कर चुके हैं। यथा "ग्रामगेय" गान। आरण्यक गानके साथ पृथक्ता दिखलानेके लिये इस श्रेणीका गान "ग्राम्यगान" नामसे अभिहित हुआ है। सुप्रसिद्ध सायणाचार्यको छोड़ भरतस्वामी, महास्वामी और नारायणपुत्र माधवने भी एक एक सामसंहिताभाष्यकी रचना की है।

सामवेदीय ब्राह्मण।

सामवेदीय ब्राह्मण ग्रन्थोंमें सबसे पहले ताण्ड्य महाब्राह्मणका नाम उल्लेखनीय है। निरुक्तिके पचीस अध्याय हैं, इस कारण इसका दूसरा नाम पञ्चविंश-ब्राह्मण है। इसके प्रथम अध्यायमें यजुरात्मक श्रुति-मन्त्र सन्निविष्ट हैं। द्वितीय और तृतीय अध्यायमें अनेक स्तोमविषय, चतुर्थ और पञ्चममें गवामयन नामक संवत्सर सत्रप्रकरण और षष्ठाध्यायमें अग्निष्टोमकी प्रशंसा लिखी गई है। इस तरह अनेक प्रकारके याग यज्ञका विवरण इस ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें वर्णित है। पर्णन्याय, प्रकृतिविकृत लक्षण, मूलप्रकृतिविचार, भावनाका कारणादि ज्ञान, षोड़शर्त्विक् परिचय, सोम-प्रकाशपरिचय, सहस्रसंवत्सरसाध्य विश्वसृट् साध्य सत्र किस प्रकार मनुष्यके सम्पाद्य हैं इस विषयमें विचार आदि ताण्ड्यमहाब्राह्मणमें दिखाई देते हैं। इसके सिवा इसमें अनेक प्रकारके उपाख्यान तथा ऐतिहासिकोंके ज्ञातव्य अनेक विषयोंका उल्लेख है। इस ग्रन्थमें सोमयागकी कथा तथा तत्सम्बन्धीय सामगानका उल्लेख विशेषरूपसे किया गया है। विविध समय-व्यापी सत्रोंकी व्यवस्था ताण्ड्यब्राह्मणमें दिखाई देती है। कोई सत्र एक दिन स्थायी, कोई सौ दिन स्थायी, कोई वर्ष भर स्थायी, कोई सत्र सौ वर्ष, यहां तक कि हजार वर्ष स्थायी इत्यादि अनेक प्रकारके सत्रोंकी प्रणाली और व्यवस्था है। इस प्रकार सभी सत्रोंमें सामगानकी पवित्र झङ्कारके उत्सवपूर्ण विवरण ताण्ड्यब्राह्मणमें आलोचित हुए हैं। सायणाचार्यने ताण्ड्यब्राह्मणके भाष्यके तथा हरिस्वामीने वृत्तिकी रचना की है।

सामवेदीय द्वितीय ब्राह्मणग्रन्थका नाम षड्विंश ब्राह्मण है। सायणने ब्राह्मण ग्रन्थके भाष्यके प्रारम्भमें लिखा है, कि पञ्चविंश ब्राह्मणमें जिन सब क्रियाओंका उल्लेख नहीं है, इसमें उन सब कर्मोंका भी उल्लेख है तथा उसमें जिन सब कर्मोंका उल्लेख है, क्या क्या पृथक्ता है, वह भी इस ग्रन्थमें दिखलाया गया है। सुब्रह्मण्य, सवनत्रय, ब्रह्मकर्त्तव्य, स्वाहुति होमादि, नैमित्तिक प्रायश्चित्त, सौम्य चरुविधि, बहिष्पवमान कर्म, होत्रादि उपद्रव, ऋत्विगादि विधान, नैमित्तिक होम, अध्वर्यु प्रशंसा, देवयजनमें विधेय कर्म, अवभृत, अभिचार संबंधीय विवृति, द्वादशाहस्तुति, श्येनादि विधि, वैश्वदेवसत्र, अद्भुत समूहकी शान्ति, इन सब विषयोंका उल्लेख है।

तृतीय ब्राह्मणका नाम सामविधान है। सामविधानब्राह्मण सामवेदीय तृतीय ब्राह्मण कहलाते हैं। इस ब्राह्मणमें अधिकारभुक्त और अनक लोगोंकी शुद्धिके लिये कृच्छ्रादि प्रायश्चित्त और अन्याधान अग्निहोत्रादिका सामविधान संगृहीत हुआ है।

आर्षेय ब्राह्मण सामवेदका चतुर्थ ब्राह्मण है, सायणाचार्यने इसका भी भाष्य किया है। इस ग्रन्थमें ऋषि-सम्बन्धीय उपदेशोंका विवरण है। ऋषिनामधेय गोत्र छन्दोदेवादि वाचक शब्द द्वारा सामसमूहका वाच्यत्व-ज्ञान रखना ही इस ब्राह्मणका आलोचित विषय है।

पञ्चम—देवताध्यायब्राह्मण है। इस ग्रन्थमें देवता सम्बन्धीय अध्ययनादि हैं, इस कारण इसका नाम देवताध्याय हुआ है। इसके आद्य अध्यायमें

सामवेदीय देवताओंका विविध देवताप्रीतिकीर्त्तन है। द्वितीय अध्यायमें वर्ण और वर्णदेवताकी तथा तृतीय अध्यायमें इनकी निरुक्तिकी आलोचना की गई है।

सामवेदीय षष्ठ ब्राह्मणका नाम मन्त्रब्राह्मण है। इस ब्राह्मणमें सिर्फ १० प्रपाठक हैं। गृह्यकर्म्म विहित प्रायः सभी मन्त्र इस ग्रन्थमें संगृहीत हुए हैं। यह उपनिषत् और संहितोपनिषत् ब्राह्मण वा छान्दोग्य ब्राह्मण नामसे भी परिचित है। इसमें सामवेदाध्येतृगणकी प्रकृति उत्पादनके लिये सम्प्रदायप्रवर्त्तक ऋषियोंकी बातें लिखी गई हैं। इस ब्राह्मणका ८मसे १०म प्रपाठक ही छान्दोग्योपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है।

सामवेदका ब्राह्मण ग्रन्थ आठ भागोंमें प्रकाशित हुआ है, किन्तु प्रत्येक शाखाका एक एक ब्राह्मण ग्रन्थ ही दिखाई देता है, यथा—शाकलोंका ऐतरेयब्राह्मण, वाजसनेयोंका शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयोंका तैत्तिरीय ब्राह्मण, इसी प्रकार कौथुमोंका ताण्ड्य ब्राह्मण है। महर्षि तण्ड द्वारा सङ्कलित होनेके कारण इसका ताण्ड्यब्राह्मण नाम हुआ है। यह छन्दोगोंका ब्राह्मण है, इससे इसका दूसरा नाम छान्दोग्यब्राह्मण भी है। पहले कह आये हैं, कि ताण्ड्यब्राह्मण पचीस अध्यायमें विभक्त है, किन्तु यथार्थमें यह चालीस अध्याययुक्त है। षड्विंश ब्राह्मणका पञ्चाध्याय तथा पञ्चविंश-ब्राह्मणका पञ्चविंशाध्याय, इनके मिलनेसे कौथुमशाखीय ब्राह्मणका श्रौतकर्मविषयक एकत्रिंशाध्यायात्मक जो भाग प्रकल्पित हुआ है, वही ताण्ड्य ब्राह्मणका प्रथम या श्रौत भाग है। यद्यपि षड्विंश-ब्राह्मणमें षष्ठ अध्याय नामका एक और अध्याय है, पर दूसरी जगह इस अध्यायका उल्लेख देखनेमें नहीं आता। यह अध्याय अद्भुतब्राह्मण नामसे प्रसिद्ध है। सायणने सामवेदीय सभी ब्राह्मणोंका भाष्य किया है। उन्होंने ब्राह्मणभाष्य भूमिकामें अन्यान्य जिन सब ब्राह्मणोंका नामोल्लेख किया है, उन सब मन्त्रों और उपनिषदोंकी समष्टिको ताण्ड्यब्राह्मणका द्वितीय भाग कह सकते हैं। श्रौत और गृह्य दोनों प्रकारके विषय द्वारा जो ब्राह्मणग्रन्थकी पूर्णता सिद्ध होती है, उसके प्रमाणका भी अभाव नहीं है। जैसे—ऐतरेय ब्राह्मणके पूर्व भागमें श्रौतविधि और द्वितीय भागमें अन्यान्य विधि है। तैत्तिरीयब्राह्मणमें भी ऐसी ही व्यवस्था देखी जाती है। उसके प्रथम भागमें श्रौतविधिकी अवतारणा की गई है, द्वितीयमें गृह्य, मन्त्र और उपनिषद् भाग है। इस श्रेणीका विभाग कल्पनाकारियोंने सामविधिको अनुब्राह्मणसंज्ञामें शामिल किया है। उनका कहना है, कि पाणिनि सूत्रमें (अनुब्राह्मणादिभ्यो। ४।२।६२) अनुब्राह्मणका उल्लेख है। किन्तु सायणीय विभागकल्पनामें अनुब्राह्मणका उल्लेख नहीं है। किन्तु अनुब्राह्मण नामक और किसी भी ग्रन्थका उल्लेख देखने नहीं आता। अतएव 'विधान' ग्रंथोंका अनुब्राह्मणके अंतर्भुक्त होना सुसङ्गत है।

उपनिषद्।

सामवेदीय उपनिषद् ग्रंथके मध्य छान्दोग्य उपनिषद् और केनोपनिषद्का नाम दिखाई देता है। छान्दोग्य उपनिषद् एक प्रधान उपनिषद् है। यह उपनिषद् आठ अध्यायमें विभक्त है। यह छान्दोग्य ब्राह्मणका अंश विशेष है। छान्दोग्य-ब्राह्मण दश अध्यायमें विभक्त है। इसके आदिके दो अध्यायोंमें ही ब्राह्मणका विषय आलोचित हुआ है। अवशिष्ट आठ अध्याय ही छान्दोग्य-उपनिषद् कहलाता है। छान्दोग्य-ब्राह्मणके प्रथम अध्यायमें आठ सूक्त उद्धृत हुए हैं। इन सब सूक्तोंका जन्म और विवाहकी मङ्गल प्रार्थनाके लिये छान्दोग्य प्रमाणमें व्यवहार हुआ है। इस उपनिषद्का पारसी, फरासी, अङ्गरेजी, जर्मन आदि अनेक विदेशीय भाषामें अनुवाद किया गया है।

सामवेदका दूसरा उपनिषद् केनोपनिषद् है। 'केन' पदसे इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, इसलिये इसको केनोपनिषद् कहते हैं। इसका दूसरा नाम तलवकारोपनिषद् है। सामवेदका तलवकार शाखासम्मत है, इसी कारण इस उपनिषद् भी है। यह उपनिषद् तलवकार-ब्राह्मण ग्रन्थके अन्तर्भुक्त है। डाक्टर बुर्नेल ने तञ्जोरमें जो तलवकार ब्राह्मणग्रन्थ पाया है, उसे देख उन्होंने कहा है, कि तलवकार ब्राह्मणके १३से १४५ अर्थात् दश खण्ड तक तलवकार उपनिषद् वा केनोपनिषद् है। अन्यान्य पाण्डुलिपिमें परिच्छेद और अध्याय

निर्वाचनके सम्बन्धमें मतभेद है। इस ग्रन्थका भी पारस्य, फरासी, जर्मन और अङ्गरेजी आदि भाषाओंमें अनुवाद हुआ है।

छान्दोग्योपनिषद्के अनेक भाष्य और भाष्यटीका देखी जाती हैं। उनमेंसे शङ्कराचार्यका भाष्य ही प्रधान है। आनन्दतीर्थ, ज्ञानानन्द, नित्यानन्दाश्रम, बालकृष्णानन्द, भगवद्भावक, शङ्करानन्द, सायण, सुदर्शनाचार्य तथा हरिभानुशुक्लकी वृत्ति और संक्षिप्त भाष्य मिलता है। आनन्दतीर्थके संक्षिप्त भाष्यके ऊपर वेदेश भिक्षु और व्यासतीर्थ आनन्दभिक्षुने विस्तृत टीका की है।

सामवेदीय केनोपनिषत् वा तलवकार उपनिषद् पर शङ्कराचार्यकृत भाष्य, आनन्दतीर्थकृत भाष्यटीका और एक स्वतन्त्र वृत्ति, वेदेश और व्यासतीर्थकी उक्त वृत्तिकी टीका, इसके सिवा दामोदराचार्य, बालकृष्णानन्द, भूसुरानन्द, मुकुन्द, नारायण और शङ्करानन्द रचित वृत्ति वा दीपिका पाई जाती हैं।

सामश्रौतसूत्र।

सामवेदके जितने सूत्रग्रंथ हैं, उतने और किसी भी वेदके देखनेमें नहीं आते। पञ्चविंशब्राह्मणके एक श्रौत सूत्र तथा एक गृह्यसूत्र है। सामवेदीय पहले श्रौतसूत्रका नाम माशक है। लाट्यायनने इसका मशकसूत्र नाम रखा है। कोई कोई इस ग्रंथको कल्पसूत्र नामसे पुकारते हैं। सोमयागके स्तोत्रमन्त्र धारावाहिकरूपसे सूत्रमें संगृहीत हुए हैं। पञ्चविंशब्राह्मणकी प्रणालीके अनुसार प्रार्थनास्तोत्रोंको श्रेणीबद्ध किया गया है। अन्यान्य ब्राह्मण और क्रियाकाण्डकी बातें कुछ कुछ इस सूत्रग्रन्थमें दिखाई देती हैं। इस ग्रन्थमें 'जनकसप्तरात्र' यज्ञका भी उल्लेख है। एकादश प्रपाठकमें एकाहयागविवरण प्रथम पांच अध्यायमें तथा कुछ दिवसव्यापी यागोंका विवरण छठेसे नवें तक चार अध्यायोंमें दिया गया है। द्वादशाहसे अधिक कालस्थायी याग सत्र कहलाते हैं। शेष दो अध्यायमें सत्रोंका विवरण देखा जाता है। वरदराजने इस ग्रंथका भाष्य किया है।

लाट्यायनसूत्र ही द्वितीय सामश्रौतसूत्र है। यह श्रौतसूत्र कौथुम शाखाके अन्तर्गत है। यह ग्रंथ भी पञ्चविंश ब्राह्मणके अनुगत है। उक्त ब्राह्मणसे अनेक वाक्य इस ग्रंथमें उद्धृत किये गये हैं। इस ग्रंथके प्रथम प्रपाठकमें सोमयागका साधारण नियम सन्निविष्ट किया गया है। अष्टम और नवम अध्यायके कुछ अंशोंमें एकाहयागकी प्रणाली देखी जाती है। नवम अध्यायके शेषांशमें कुछ दिवसस्थायी (अर्थात् अहिन) श्रेणीका यज्ञविवरण लिपिबद्ध किया गया है। दशम अध्यायमें सत्रका विवरण दिखाई देता है। इस ग्रंथके रामकृष्ण दीक्षित, सायण और अग्निस्वामिकृत एक उत्कृष्ट भाष्य है।

तृतीय श्रौतसूत्रका नाम द्राह्यायण है। लाट्यायन श्रौतसूत्रसे इसका प्रभेद बहुत थोड़ा है। यह सूत्र ग्रंथ सामवेदकी राणायनी शाखाके अन्तर्भुक्त है। इसका दूसरा नाम वसिष्ठसूत्र है। माधस्वामीने इसका भाष्य किया। रुद्रस्कन्दस्वामीने औद्गात्रसारसंग्रह नामक निबंधमें फिर उक्त भाष्यका संस्कार किया है। धन्विनने भी फिर द्राह्यायना श्रौतसूत्रकी छान्दोग्यसूत्रदीप नामकी एक वृत्तिकी रचना की।

चतुर्थ सामसूत्रका नाम है अनुपदसूत्र। यह ग्रंथ १० प्रपाठकमें विभक्त है। अनुपदसूत्र किसके द्वारा संकलित हुआ है, मालूम नहीं। पञ्चविंशब्राह्मणके दुर्बोध्य वाक्योंकी व्याख्या इस ग्रंथमें देखी जाती है। इसमें षड्विंशब्राह्मणका भी उल्लेख है। इस ग्रंथसे अनेक ऐतिहासिक उपकरण और अन्यान्य अनेक प्राचीन ग्रंथोंके नाम संगृहीत हो सकते हैं।

इसके सिवा स्वतंत्र भावमें और भी कुछ सामवेदीय श्रौतसूत्र सङ्कलित हुए थे। उनमेंसे निदानसूत्र एक है। यह ग्रंथ १० प्रपाठकमें विभक्त है। इसमें भिन्न भिन्न सामवेदीय उक्थ, स्तोम और गानके सम्बन्धमें पर्यालोचना दिखाई देती है। छन्दः और शब्दव्युत्पत्ति, ये दोनों ही निदान शब्दके वैदिक पर्याय हैं। इस ग्रंथमें अनेक वेदशाखाओं और वेदोपदेष्टाओंका विविध सिद्धांत संगृहीत हुआ है। इसके सम्बन्धमें अनुपदसूत्रके साथ इसका यथेष्ट सादृश्य है। इस ग्रंथमें लाट्यायन और द्राह्यायणोक्त धनञ्जय, शाण्डिल्य और गौचिवृक्षी आदि धर्मशास्त्र प्रवक्ताओंके नाम दिखाई देते हैं। परन्तु अनुपदसूत्रमें इन सब नामोंका कुछ भी उल्लेख दिखाई नहीं देता।

इसी प्रकार एक श्रौतसूत्रका नाम पुष्पसूत्र है। यह पुष्पसूत्र गोभिलकृत कह कर प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थके प्रथम चार प्रपाठक नाना प्रकारके पारिभाषिक और व्याकरणशब्दसे भरे हैं, इस कारण इसका मर्म सहजमें हृदयङ्गम करना कठिन है। इन चार प्रपाठकोंकी वैसी टीका देखनेमें नहीं आती, किन्तु अवशिष्टांशका एक बड़ा भाष्य है। भाष्यकारका नाम है अजातशत्रु। ऋक्-मन्त्रकलिका किस प्रकार सामरूप पुष्पमें परिणत हुई, इस ग्रन्थमें वह सङ्केत दिखलाया गया है। इसी कारण इसका नाम पुष्पसूत्र है। दाक्षिणात्यमें इसे फुल्लसूत्र भी कहते हैं। वहां यह ग्रन्थ वररुचिप्रणीत समझा जाता है। किन्तु यह उक्ति अप्रामाणिक है। इसका शेष अंश श्लोकोंसे भरा हुआ है। दामोदर-पुत्र रामकृष्णरचित पुष्पसूत्रकी एक वृत्ति पाई गई है।

इस तरहका एक और भी ग्रन्थ देखा जाता है, उसका नाम सामतन्त्र है। यह ग्रन्थ तेरह प्रपाठकोंमें विभक्त है। किस प्रकारसे सामगान करना होता है, इसमें उसका सङ्केत और प्रणाली दी गई है। ग्रन्थके शेषमें जो परिचय दिया गया है उससे जाना जाता है, कि यह सामवेदका व्याकरणविशेष है। कैयटने लिखा है, कि यह ग्रन्थ "सामलक्षणं प्रातिशाख्यशास्त्रम्" है। ऋक्मन्त्र साममें परिणत करनेकी प्रणालीके सम्बन्धमें सामवेदीय अनेक सूत्रग्रन्थ हैं। इनमेंसे एकका नाम पञ्चविधिसूत्र और दूसरेका नाम प्रतिहारसूत्र है। यह ग्रन्थ कात्यायन कृत समझा जाता है। मशकसूत्रके वृत्तिकार वरदराजने इसकी एक वृत्ति की, उसका नाम दशतयी है। इसके सिवा 'ताण्ड्यलक्षणसूत्र', 'उपग्रन्थसूत्र, 'कल्पानुपदसूत्र' 'अनुस्तोत्रसूत्र' और 'क्षुद्रसूत्र' आदि सामवेदीय सूत्रग्रंथ हैं। ऋग्वेदकी अनुक्रमणिकाके षड्गुरु शिष्यने कात्यायनको उपग्रंथसूत्रका प्रणेता बताया है। पञ्चविध सूत्र दो प्रपाठकमें विभक्त है। कल्पानुपद सूत्रके भी सिर्फ दो प्रपाठक हैं। क्षुद्रसूत्र तीन प्रपाठकमें विभक्त है। उपग्रंथसूत्रमें प्रायश्चित्तकी व्यवस्था देखी जाती है। दयाशङ्कर और पूर्वोक्त रामकृष्ण दीक्षित ने भी इस सामतंत्रमें वृत्ति की है।

साम-गृह्यसूत्र।

अभी सामवेदीय "गृह्यसूत्र"की बातें लिखी जाती हैं। गोभिलकृत गृह्यसूत्र ही विशेष उल्लेखयोग्य है। यह ग्रन्थ चार प्रपाठकमें विभक्त है। कात्यायनने इस ग्रन्थका एक परिशिष्ट लिखा है। उसका नाम है कर्म-प्रदीप। यद्यपि इस ग्रन्थकारने इसको गोभिलगृह्यसूत्रका परिशिष्ट बताया है, किन्तु यह ग्रन्थ द्वितीय गृह्यसूत्र और स्मृतिशास्त्ररूपमें समादृत होता आ रहा है। आशादित्य शिवरामने इस कर्मप्रदीप ग्रन्थकी टीका लिखी है। वे कहते हैं, कि गोभिलगृह्यसूत्र सामवेदके कौथुम शाखीय और राणायनी शाखीय इन दोनों ब्राह्मणोंका अनुमोदित है। भट्टनारायण, सायण और विश्रामसुत शिवने 'सुबोधिनीपद्धति' नामक गोभिलगृह्यसूत्रकी वृत्ति लिखी है। इसके सिवा खादिरगृह्यसूत्र नामक और एक गृह्यसूत्र देखनेमें आता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि खादिर ही द्राह्यायणगृह्यसूत्रके कर्त्ता हैं। रुद्रस्कन्दस्वामीने इसकी वृत्ति की है।

खादिरगृह्यसूत्रकी एक कारिका भी देखी जाती है। वह वामनकी बनाई हुई है। 'पितृमेधसूत्र' नामक सामवेदीय और भी एक गृह्यसूत्र है। इसके प्रणेता गौतम हैं। इस ग्रन्थके टीकाकार अनन्तज्ञानका कहना है, कि न्यायसूत्रके प्रणेता महर्षि गौतम ही इस गृह्यसूत्रके प्रणेता हैं। इसके अतिरिक्त गौतमका बनाया हुआ एक और धर्मसूत्र है, जो 'गौतमधर्मसूत्र' कहलाता है।

साम पद्धति।

सामवेदीय विविध पद्धति ग्रंथ हैं। ये सब पद्धतियां सूत्रग्रन्थके साथ घनिष्ठ सम्बंध रखते हुए क्रियाके प्रमाणके सम्बंधमें शिक्षा और व्यवस्था देती हैं। फिर सामवेदीय परिशिष्ट ग्रंथकी संख्या भी उतनी कम नहीं है। पद्धतिकार गण सूत्रग्रंथका अनुसरण कर चलते हैं। किंतु परिशिष्टमें वार्त्तिक ग्रंथकी तरह बहुत-सी नई नई बातें जोड़ी गई हैं। यहां 'ताण्ड्यपरिशिष्ट' ग्रंथका नाम भी उल्लेखयोग्य है। इसके अतिरिक्त सामवेदीय और भी अनेक ग्रंथ हैं।

यजुर्वेद-संहिता।

वाजसनेय-संहिताके वेददीप नामक भाष्यके प्रारम्भमें भाष्यकार श्रीमन्महीधरने लिखा है,—महर्षि वेदव्यासने ब्राह्मण-परम्परासे प्राप्त वेदको मन्द बुद्धिवाले मनुष्योंके प्रति कृपा कर ऋक्, यजुः, साम, अथर्व इन चार भागोंमें विभक्त किया तथा सशिष्य पैल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु इन चारोंको उपदेश दिया। विष्णुपुराणने भी इसका समर्थन किया है।

महीधर व्यासदेवके जो चार शिष्य थे, आश्वलायन-गृह्यसूत्रमें भी उनका नामोल्लेख है।

विष्णुपुराणके मतसे वैशम्पायन ही यजुर्वेदके प्रथम प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने तैत्तिरीय-संहिता नामकी यजुर्वेदसंहिता प्रवर्त्तन की। इसका दूसरा नाम कृष्ण-यजुः है। तैत्तिरीयसंहिता २७ शाखाओंमें विभक्त है। वैशम्पायनने याज्ञवल्क्यादि शिष्योंको वेदाध्ययन कराया। किन्तु इस समय एक विचित्र घटना उपस्थित हुई। महीधरने अति संक्षेपमें उसका उल्लेख किया है। उसका मर्म इस प्रकार है,—किसी कारणवश वैशम्पायन अपने शिष्य याज्ञवल्क्यके प्रति क्रोध करके बोले, "तुमने मुझसे जो वेद सीखा है, उसे लौटा दो।" याज्ञवल्क्य परम योगी थे। उनके योगका प्रभाव भी यथेष्ट था। गुरुकी आज्ञासे उन्होंने योगके बल पढ़ी हुई विद्याको मूर्त्तिमती करके वमन कर दिया। इस समय वहां वैशम्पायनके अन्यान्य शिष्य भी उपस्थित थे। वैशम्पायनने शिष्योंको सम्बोधन कर कहा, "तुम लोग इस वान्त अर्थात् उगले हुए यजुःको ग्रहण करो।" वैशम्पायनके शिष्योंने तित्तिर पक्षी बन कर उन्हें (यजुओंको) चुग लिया। इसी कारण यजुर्वेदसंहिता का तैत्तिरीयसंहिता नाम हुआ है। बुद्धिमालिन्यवशतः वे सब यजुः काले हो गये। अतः यह यजुःसंहिता कृष्णयजुर्वेद नामसे भी पुकारी जाने लगी। किंतु योगी याज्ञवल्क्य वेद खो कर निश्चिन्त बैठनेवाले आदमी नहीं थे। उन्होंने सूर्यके उद्देशसे कठोर तपस्या ठान दी। भगवान् सूर्यदेवकी कृपासे उन्हें दूसरे प्रकारका यजुः प्राप्त हुआ। उनसे जाबाल आदि पन्द्रह शिष्योंने इस वेदका उपदेश लिया। सूर्यसे उन्हें यह अति शुद्ध यजुः मिला था, इस कारण यह शुक्लयजुर्वेद नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसका दूसरा नाम वाजसनेयसंहिता है। महीधरने वाजसनेय पदका इस प्रकार अर्थ किया है। यथा—

'वाजस्य अन्नस्य सनिर्दानं यस्य'=वाजसनिः अर्थात् अन्नदान ही जिसका व्रत है वे वाजसनि हैं। उनके पुत्रने इस अर्थमें तद्धित प्रत्यय "वाजसनेय" पद सिद्ध किया है। याज्ञवल्क्यके पिताका नाम वाजसनि था। वे अपने पिताके नामसे भी वैदिक साहित्यमें परिचित होते आ रहे हैं। इसी कारण शुक्लयजुर्वेद वाजसनेय-संहिता नामसे प्रसिद्ध है। याज्ञवल्क्यके पन्द्रह शिष्योंमें माध्यन्दिन एक थे। माध्यन्दिनसे ही यजुर्वेदकी माध्यन्दिन शाखा प्रचलित हुई। हम अभी वाजसनेयसंहिता-की माध्यन्दिन शाखा ही प्रचलित रूप देखते हैं।

कृष्णयजुर्वेद वा तैत्तिरीयसंहिता तथा शुक्लयजुर्वेद वा वाजसनेयसंहिता कार्यतः एक होने पर भी दोनोंमें पृथक्ता है। इससे मालूम होता है, कि आपसमें यथेष्ट शत्रुता थी। कृष्णयजुर्वेद मंत्रोंके साथ साथ क्रियाप्रणाली विवृत हुई है तथा जिस उद्देशसे जो मंत्र व्यवहार होता है, उसका भी उल्लेख है। कृष्णयजु-र्वेदके ब्राह्मणग्रंथको उसका परिशिष्ट भी कह सकते हैं। फलतः यह संहिता एक प्रकारके ब्राह्मणकी प्रणाली-से ही प्रचलित है। वाजसनेयसंहिता वैसी नहीं है। इसमें मंत्र और ब्राह्मणोचित क्रियाकलापका एक ही स्थानमें समावेश नहीं हुआ है। मंत्रभाग स्वतंत्र है। यही मंत्रभाग वाजसनेयसंहिता कहलाता है। इसमें क्रियाप्रणालीका संधान नहीं दिया गया है। ऋग्वेद संहितामें जिस प्रकार मंत्र और ब्राह्मणकाण्डकी पृथ-क्ता है, वाजसनेयसंहिताके सम्बन्धमें वैसी ही प्रणाली अवलम्बित हुई है। इन दोनों संहिताओंमें पृथक्ता इतनी ही है, कि कृष्णयजुर्वेदमें होता और उनके कर्त्तव्य कार्यके सम्बन्धमें सविशेष आलोचना देखी जाती है। शुक्लयजुर्वेदमें इस विषयकी आलोचना बहुत कम है। कृष्णयजुर्वेदके चरकशाखी केवल शुक्लयजुर्वेदके अध्वर्यु ही नहीं कहलाते, बल्कि उनकी निन्दा भी की गई है।

कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीय-संहिता।

तैत्तिरीय शब्द कृष्णयजुर्वेदके प्रातिशाख्यसूत्र तथा सामसूत्रमें दिखाई देता है। पाणिनिका कहना है, कि तित्तिरी ऋषिके नामसे ही तैत्तिरीय शब्दकी उत्पत्ति हुई है। आत्रेय शाखाकी संहितानुक्रमणिकामें भी यही व्युत्पत्ति देखनेमें आती है। किन्तु पहले हमने महीधरके भाष्य-प्रारम्भमें देखा है, कि वैशम्पायनके शिष्योंने तित्तिर पक्षी बन कर याज्ञवल्क्यके उगले हुए यजुओंको ग्रहण किया था। परवर्त्ती साहित्यमें इसी आख्यायिकाका प्रचार देखा जाता है। कृष्णयजुर्वेदकी शाखाओंमें एक चरक सम्प्रदायकी ही बारह शाखाएं थीं। यथा—चरक, आह्वरक, कठ, प्राच्यकठ, कपिष्ठलकठ, आष्ठलकठ, चारायणीय, वारायणीय, वार्त्तान्तवेय, श्वेताश्वतर, औपमन्यु और मैत्रायणि। शेषोक्त मैत्रायणिसे फिर सात शाखाओंकी उत्पत्ति हुई है। यथा—मानव, दुन्दुभ, एकेय, वाराह, हारिद्रवेय, श्याम और शामानयीय। कृष्णयजुर्वेदका एक सम्प्रदाय खाण्डकीय कहलाता है। पाणिनिका कहना है, खण्डिक ऋषिसे ही खाण्डिकीय सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ है। कुछ लोगोंका कहना है, कि कृष्ण यजुर्वेद खण्डशः विभक्त हैं, इसी कारण कृष्णयजुर्वेद-संप्रदायिओंको खाण्डिकीय कहते हैं। कृष्णयजुर्वेद या तैत्तिरीयसंहिता ७ काण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक काण्ड फिर अनेक प्रपाठकोंमें विभक्त है। सभी काण्ड समभावमें विभक्त नहीं हैं, किसी काण्डमें सात, किसीमें आठ, इस प्रकार प्रपाठक हैं। ऋग्वेदीय दशकर्मके मन्त्र और विधिकी इस संहितामें आलोचना हुई है। कृष्ण यजुर्वेदके एक और सम्प्रदायके ग्रन्थका नाम आपस्तम्ब यजुःसंहिता है। यह ग्रन्थ ७ अष्टकोंमें विभक्त है। ये अष्टक ४४ प्रश्नमें, ये प्रश्न फिर ६५१ अनुवाकोंमें और ये अनुवाक २१९८ काण्डिकाओंमें विभक्त हैं। साधारणतः ५० शब्दोंमें एक एक काण्डिका गठित हुई। आत्रेय शाखाका यजुर्वेद काण्ड, प्रश्न और अनुवाक इन तीन प्रकारके परिच्छेदोंमें विभक्त है। काठकोंकी संहिताका विभाग अन्य प्रकारका है। यह पांच भागोंमें विभक्त है। प्रथम तीन भाग ४० स्थानकमें विभक्त हैं। पञ्चम भागमें अश्वमेधयज्ञका विवरण है। चरक शाखाके प्रथम तीन भागका नाम इथिमिका, मध्यमिका और ओरिमिका हैं। आत्रेय ऋषि पादकर्त्ता थे। कुण्डिन वृत्तिकार कहलाते हैं। उक्त आत्रेयके गुरु माने जाते हैं।

इसके सिवा यजुर्वेदकी मैत्रायणी शाखा भी मिलती है। इसमें ५ काण्ड हैं। सम्भवतः यजुर्वेदके और भी भिन्न भिन्न शाखाके संहिताग्रन्थ हो सकते हैं। यजुर्वेद यागयज्ञक्रियाबहुल है। इसी कारण यजुर्वेद सर्वदा अति प्रयोजनीय समझा जाता था और इसकी भिन्न भिन्न शाखाके अनेक संहिताग्रन्थ प्रचारित थे। सायणाचार्यने तैत्तिरीयसंहिताका भाष्य किया है। इसके अतिरिक्त बालकृष्णदीक्षित और भास्कर मिश्र-रचित छोटे भाष्य भी मिलते हैं।

यजुर्ब्राह्मण।

सामवेदीय ब्राह्मणग्रन्थमें आपस्तम्ब ब्राह्मण और आत्रेय ब्राह्मण ही विशेष प्रसिद्ध हैं। अनुक्रमणिकामें संहिता और ब्राह्मणकी कुछ भी विभिन्नता नहीं की गई हैं। कोई कोई शाखा जो संहिताग्रन्थमें नहीं है, ब्राह्मणमें उसका उल्लेख है। जैसे पुरुषमेध यज्ञका विवरण संहितामें नहीं दिखाई देता, किन्तु ब्राह्मणांशमें दिखाई देता है।

तैत्तिरीयब्राह्मण आपस्तंब और आत्रेय शाखाका ब्राह्मण ग्रन्थ कहलाता है। तैत्तिरीयब्राह्मण-ग्रंथका भी भाष्य है। इस भाष्यकी भूमिकामें संहिता और ब्राह्मणका पार्थक्य विचार किया गया है। ब्राह्मणग्रंथमें स्पष्टरूपसे मन्त्रका उद्देश्य और व्याख्या की गई है। सायणाचार्य और भास्करमिश्र तैत्तिरीय ब्राह्मणके भाष्यकार हैं। तैत्तिरीयब्राह्मणका शेषांश तैत्तिरीयआरण्यक है। यह आरण्यक ग्रंथ दश काण्डोंमें विभक्त है। काठकमें परिकीर्त्तित आरणीय विधि भी इसमें आलोचित हुई है। इसका प्रथम और तृतीय प्रपाठक यज्ञाग्निस्थापनके नियमसे लिखा गया है। द्वितीय प्रपाठकमें अध्यायका नियम, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठमें दर्शपूर्णमासादि तथा पितृमेध आदि विषयोंकी आलोचना की गई है।

उक्त सायण, भास्करमिश्र और वरदराजने तैत्तिरीय

आरण्यकका भाष्य लिखा है। तैत्तिरीय आरण्यकका सप्तम, अष्टम और नवम उपनिषद्में पर्यवसित हुआ है। ये तीन प्रपाठक तैत्तिरीय उपनिषद् कहलाते हैं। दशम प्रपाठकके भाष्यारम्भमें लिखा है—

"वारुण्युपनिषद्द्युक्ता ब्रह्मविद्या ससाधना।
याज्ञिक्याः खिलरूपायां सर्वं शेषोभिधीयते॥"

अतएव दशम प्रपाठक याज्ञिकी वा नारायणीयोपनिषद् नामसे प्रसिद्ध है। तैत्तिरीयोपनिषद्के बहुतसे भाष्य और वृत्ति दिखाई देती हैं। इनमेंसे शङ्कराचार्यरचित भाष्य ही प्रधान है। आनन्दतीर्थ और रङ्गरामानुजने उस भाष्यके ऊपर टीका की है। सायणाचार्य और आनन्दतीर्थने भी इस उपनिषद्का भाष्य प्रकाशित किया। अप्पण्णाचार्य, ज्ञानामृत, व्यासतीर्थ और श्रीनिवासाचार्य, इन्होंने फिर आनन्दभाष्यकी टीका लिखी है। इनके सिवा कृष्णानन्द, गोविन्दराज, दामोदराचार्य, नारायण, बालकृष्ण, भट्टभास्कर, राघवेन्द्रयति, विज्ञानभिक्षु और शङ्करानन्द आदि तैत्तिरीयोपनिषद्की दीपिका या वृत्ति लिख गये हैं। सायणाचार्य याज्ञिक्युपनिषद्का भाष्य और विज्ञानात्मा, इसकी एक स्वतन्त्र वृत्ति तथा 'वेदशिरोभूषण' नामक इसका एक व्याख्यान ग्रन्थ मिलता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् तीन भागोंमें विभक्त है। प्रथम भाग संहितोपनिषद् अथवा शिक्षावल्ली कहलाता है। इस अंशमें व्याकरण सम्बन्धीय कुछ आलोचना है। इसके बाद अद्वैतवादकी श्रुति आदि आलोचित हुई हैं। द्वितीय भागका नाम आनन्दवल्ली और तृतीय भागका नाम भृगुवल्ली है। ये दोनों भाग एकत्र वारुणी उपनिषद् नामसे प्रसिद्ध हैं। इस उपनिषद्में औपनिषदी ब्रह्मविद्याकी पराकाष्ठा दिखलाई गई है।

इसके बादके अध्याय याज्ञिक्युपनिषद् वा नारायणीय उपनिषद्में मूर्तिमान् ब्रह्मतत्त्व विवृत हुआ है। श्रीशङ्कराचार्यने तैत्तिरीय उपनिषद्का भाष्य किया है।

फलतः तैत्तिरीय आरण्यकमें एक और वेदके अनेक विषयोंका विचित्र समावेश देखा जाता है। श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण और ब्रह्मविद्याका सारतत्त्व इस ग्रन्थमें आलोचित हुआ है। नारायणी उपनिषद् भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न नामसे प्रचलित है। द्राविड़, अन्ध्रदेश और कर्णाटक आदि स्थानोंमें यह उपनिषद् अथर्व्वोपनिषद् नामसे भी परिचित है। प्रत्येक स्थलमें इसके पाठकी कुछ कुछ पृथक्ता देखी जाती है।

वल्लभी और सत्यायनी नामक यजुर्वेदके और भी दो ब्राह्मण ग्रन्थोंकी बातें सुनी जाती हैं। पाणिनिसूत्रमें और बृहद्देवता ग्रंथमें वल्लभी-श्रुतिका नाम दिखाई देता है। सुरेश्वराचार्य और सायणाचार्यने इस वल्लभी श्रुतिका उल्लेख किया है। श्वेताश्वतर और मैत्रायणीयोपनिषद् यजुर्व्वेदीय उपनिषद् कहलाता है। शङ्कराचार्य उक्त दोनों उपनिषदोंका भाष्य, विज्ञानभिक्षु 'उपनिषदालोक' नामकी विस्तृत टीका, नारायण, प्रकाशात्मा और रामतीर्थ दीपिका लिख गये हैं। इनके अतिरिक्त केवल श्वेताश्वतरके ऊपर रामानुज, वरदाचार्य्य, सायणाचार्य और शङ्करानन्दके भाष्य तथा नृसिंहाचार्य, बालकृष्णदास और रङ्गरामानुजकृत शङ्करभाष्यकी टीका मिलती है। श्वेताश्वतर, छागली और मैत्रायणी आदि भिन्न भिन्न यजुर्व्वेदी शाखाका नाम वैदिक साहित्यके इतिहासमें किसी समय बहुत प्रसिद्ध हुआ था।

सूत्रग्रन्थ।

यजुर्वेदीय सूत्रग्रंथकी संख्या भी यथेष्ट है। पहले श्रौतसूत्रकी बातें लिखी जाती हैं। कठसूत्र मानवसूत्र, लौगाक्षिसूत्र और कात्यसूत्र आदि यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रोंके नाम सुने जाते हैं। किन्तु कल्पसूत्रके भाष्यकार महादेवने अपने भाष्यमें इन सब सूत्रोंका नामोल्लेख नहीं किया है। उनके भाष्यमें यजुर्वेदीय बौधायन, भारद्वाज, आपस्तम्ब; हिरण्यकेशी, वाधूल और वैखानससूत्रका नामोल्लेख है। आपस्तम्बसूत्रके अनेक भाष्यकारोंके नाम जाने जाते हैं। यथा—धूर्त्तस्वामी, कपर्द्दिस्वामी, रुद्रदत्त, गुरुदेव स्वामी, करविन्द स्वामी, अहोवल [illegible]रि, गोपाल, रामाग्निज, कौशिकाराम, ब्रह्मानंद आदि। तालवृन्तवासी नामक एक दूसरे भाष्यकारका नाम देखा जाता है। फलतः तालवृन्तवासी व्यक्ति विशेषका नाम क्या है और उनका आवासस्थान कहां है, ठीक ठीक मालूम नहीं होता।

आपस्तम्ब-श्रौतसूत्रमें ये सब विषय देखे जाते हैं—

१—३ अध्यायमें दर्शपूर्णमास, ४ याजमान, ५ अग्न्याधानकर्म, ६ अग्निहोत्रकर्म, ७ पशुबन्धयाग, ८ चातुर्मास्य, ९ विध्यपराधनिमित्त प्रायश्चित्त, १०—१७ सोमयाग, १८ वाजपेय और राजसूय, १९ सौत्रामणी, काठक चिति और काम्येष्टि, २० अश्वमेध और पुरुषमेध, २१ द्वादशाह और महाव्रत, २२ उत्सर्गिणोंका अयन, २३ सत्रायण, २४ परिभाषासूत्र, प्रवरखण्ड और हौत्रक, २५—२६ गृह्यमन्त्र, २७ गृह्यतन्त्र, २८—२९ सामयाचारिक धर्मसूत्र, ३० शुल्वसूत्र।

मनुरचित मानवश्रौतसूत्र भी विशेष प्रसिद्ध है। इसमें १ प्राक्सोम, २ अग्निष्टोम, ३ प्रायश्चित्त, ४ प्रवर्ग्य, ५ इष्टि, ६ चयन, ७ वाजपेय, ८ अनुग्रह, ९ राजसूय, १० शुल्वसूत्र और ११ परिशिष्ट ये सब हैं। अग्निस्वामी, कुमारिलभट्ट और बालकृष्ण मिश्र मानव-श्रौतसूत्रके भाष्यकार हैं।

बौधायन श्रौतसूत्रका सम्पूर्ण ग्रंथ नहीं मिलता, जहां तक मिला है उसमें इस प्रकार है—

१ दर्शपूर्णमास, २ आधान, ३ पुनराधान, ४ पशु, ५ चातुर्मास्य, ६ सोमप्रवर्ग्य, ७ एकादशिणीपशु, ८ चयन, ९ वाजपेय, १० शुल्वसूत्र, ११ कर्मान्तसूत्र, १२ द्वैधसूत्र, १३ प्रायश्चित्तसूत्र, १४ काठकसूत्र, १५ सौत्रामणीसूत्र, १६ अग्निष्टोम, १७ धर्मसूत्र।

केशव कपर्दिस्वामी, केशवस्वामी, गोपाल, देवस्वामी, धूर्त्तस्वामी, भवस्वामी, महादेव वाजपेयी और सायण रचित बौधायन श्रौतसूत्रका भाष्य देखा जाता है।

गोपीनाथभट्ट, महादेव दीक्षित, महादेव सोमयाजी, मातृदत्त और वाञ्छेश्वर आदिने हिरण्यकेशि-श्रौतसूत्रका और गोपालभट्ट भारद्वाज-श्रौतसूत्रका भाष्य रचा है। मैत्रायणी और छागलका श्रौतसूत्र भी प्रकाशित हुआ है।

गृह्यसूत्र।

पूर्वोक्त जिन सब महात्माने कृष्णयजुर्वेदीय श्रौतसूत्रकी रचना की, उन्होंका रचा गृह्यसूत्र तथा उन सब गृह्यसूत्रोंके ऊपर बहुतसे भाष्य और वृत्ति देखी जाती हैं। उनमेंसे कर्काचार्य, सुदर्शनाचार्य, तालवृन्तवासी, हरदत्त, कृष्णभट्ट, रुद्रदेव, धूर्त्तस्वामी आदि आपस्तम्ब-गृह्यसूत्रका, केशवस्वामी और कनकसभापति बौधायन-गृह्यसूत्रका; कपर्दिस्वामी, रङ्गभट्ट आदि भारद्वाज गृह्यसूत्रका और मातृदत्त हिरण्यकेशि गृह्यसूत्रका भाष्य लिख गये हैं। इनके अतिरिक्त मानवगृह्यसूत्र तथा अष्टावक्र-रचित उनकी वृत्ति, लौगाक्षिरचित काठकगृह्यसूत्र और देवपालरचित काठकगृह्यवृत्ति तथा मैत्रायणीय गृह्यसूत्र पाये गये हैं। कृष्णयजुर्वेदीय बहुसंख्यक शुल्वसूत्र और धर्मसूत्र हैं। आपस्तम्ब, बौधायन आदि श्रौतसूत्रकारोंने ही उन सब शुल्वों और धर्मसूत्रोंकी रचना की है। शुल्वसूत्र ज्यामिति (Geometry) शास्त्रका तथा धर्मसूत्र प्रचलित स्मृतियोंका मूल है।

शुल्वसूत्रके मध्य शङ्कर और शिवदास मानवशुल्वसूत्रका; कपर्दिस्वामी, करविन्दस्वामी, सुन्दरराज प्रभृति आपस्तम्ब शुल्वसूत्रका; द्वारकानाथ और वेङ्कटेश्वर दीक्षितने बौधायनीय शुल्वसूत्रका भाष्य वा वृत्ति लिखी है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र 'सामयाचारिकसूत्र' भी कहलाता है। हरदत्त, अड्डील, धूर्त्तस्वामी और नृसिंहने इस धर्मसूत्रकी वृत्ति लिखी है। गोविन्दस्वामिरचित बौधायन-धर्मसूत्रकी तथा महादेव-रचित हिरण्यकेशि-धर्मसूत्रकी वृत्ति है।

मैत्रायणीय यजुर्वेदपद्धति नामका एक और ग्रंथ पाया गया है। इसके बाद कृष्णयजुर्वेदीय प्रातिशाख्यसूत्र और अनुक्रमणिका ग्रंथका नाम भी उल्लेखयोग्य है। अनुक्रमणीके मध्य आत्रेय और काठक शाखाके चारायणीय सम्प्रदायके कृष्णयजुर्वेदकी अनुक्रमणी प्रचररूप देखी जाती है।

शुक्लयजुर्वेद वा वाजसनेय संहिता।

यजुर्वेदकी और एक संहिताका नाम शुक्लयजुर्वेद वा वाजसनेयसंहिता है। हम अभी जो वाजसनेयसंहिता देखते हैं, वह माध्यन्दिनीय वाजसनेयसंहिता नामसे प्रसिद्ध है। मध्यन्दिन ऋषिने सबसे पहले इसको पाया था, इसीसे यह शाखा माध्यन्दिन कहलाती है। आलोच्य-संहिता माध्यन्दिन शाखासे प्रवर्त्तित है। यह संहिता ४०

अध्याय, ३०३ अनुवाक और १६७५ कण्डिकामें विभक्त हैं। अध्याय अनुवाक तथा अनुवाक् कण्डिकामें विभक्त हुए हैं। पहला पचीस अध्यायमें दशपूर्णमासादि विविध प्रकारका यज्ञमन्त्र, अग्निस्थापनादि और सोम-यागका मन्त्र, सोमपानके आतिशय्यसे उत्पन्न दोष-शान्तिके लिये सौत्रामणी मंत्र आदि और अश्वमेध यज्ञ-का मन्त्र लिखा हुआ है। कात्यायनकी अनुक्रमणिका, परिशिष्ट तथा महीधरका भाष्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि पचीस अध्यायसे पैंतीस तक अर्थात् १५ अध्याय 'खिल' अर्थात् परवर्त्ती कह कर प्रसिद्ध है।

१५ अध्यायके प्रथम चार अध्याय पूर्ववर्त्ती अध्यायमें आलोचित यज्ञादिका मन्त्र लिखे हुए हैं। तत्परवर्त्ती दश अध्यायमें पुरुषमेधयज्ञ, सर्वमेधयज्ञ, पितृमेधयज्ञ और प्रावर्ग्य आदि विषयके मन्त्रादि लिखे हुए हैं। अन्तिम अध्यायके साथ यज्ञक्रियादिका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह अध्याय ईशोपनिषत् है। "ईशावास्यमिदं सर्व" इत्यादि सुविख्यात औपनिषद् वाक्यमें इस अध्यायका आरम्भ है। यहां यह भी कह देना उचित है, कि सोलहवें अध्यायको शतरुद्रीय, इकतीसवें अध्यायको पुरुषसूक्त और बत्तीसवें अध्यायको तद्देव कर्मकाण्डीय नहीं कह सकते। कर्मकाण्डीय विषय प्रायः इसी तरह तैत्ति-रीय संहितामें भी आलोचित हुए हैं। शुक्ल यजुर्वेदमें ब्राह्मणकी प्रणालीके अनुसार कही गई अनेक कण्डिका देखा जाता है, किन्तु वे सब कण्डिका मन्त्रकी व्याख्या नहीं है, स्वतन्त्र मन्त्र हैं। यजुर्वेदमें भी ऐसी अनेक ऋक् हैं, जो ऋग्वेदसंहिताके मन्त्रोंसे बिलकुल मिलती जुलती हैं। वाजसनेयसंहिताका माध्यन्दिन और काण्वशाखीय संहिता ग्रंथ अभी प्रचलित है।

वाजसनेयसंहिताके कुछ भाष्यकारोंके नाम प्रसिद्ध हैं। यथा—उवट, माधव, अनन्तदेव, आनन्द भट्ट और महीधर। अभी महीधरका भाष्य ही पूर्णाङ्ग देखनेमें आता है।

शतपथब्राह्मण।

वाजसनेयसंहिताके ब्राह्मणमें शतपथब्राह्मण सुप्र-सिद्ध है। यहां तक, कि समग्र ब्राह्मणग्रंथोंके शतपथ ग्रंथ ही सर्वापेक्षा समादृत और सुविख्यात है। माध्यन्दिन और काण्व इन दोनों ही शाखाओंका शत-पथब्राह्मण मिलता है। माध्यन्दिन शाखाका शतपथ-ब्राह्मण चौदह काण्डोंमें विभक्त है। ये चौदह काण्ड फिर १०० अध्याय (या ६८ प्रपाठक) में विभक्त हुए हैं। इसमें आलोचित सभी ब्राह्मणोंकी संख्या ४३८ है। ये ब्राह्मण फिर ७६२४ कण्डिकामें विभक्त हुए हैं। किंतु काण्वशाखाके शतपथब्राह्मणमें सतरह काण्ड हैं। उसका पहला, पांचवां और चौदहवां काण्ड दो दो भागोंमें विभक्त हैं। आज तक उसके साढ़े तेरह काण्ड मिले हैं। इसमें ८५ अध्याय, ३६० ब्राह्मण और ४६६५ कण्डिका हैं। किंतु एक दूसरी पाण्डुलिपि-से जाना जाता है, कि इस ग्रंथमें कुल १०४ अध्याय, ४४६ ब्राह्मण और ५८६६ कण्डिका विद्यमान हैं। शतपथ-ब्राह्मणके प्रथम नौ काण्डोंमें, संहिताके १८ काण्डोंके यजुः उद्धृत किये गये हैं तथा जिस जिस क्रियाकर्म-में उनका व्यवहार होता है, उसे व्याख्या करके अच्छी तरह समझा दिया गया है। दशम काण्डमें अग्नि-रहस्य विवृत हुए हैं। इसमें बहुतसे छोटे छोटे उपा-ख्यानोंके साथ अग्निस्थापनप्रणाली आलोचित हुई है। ग्यारहवां काण्ड ८ अध्यायमें विभक्त है। इस अध्यायके पूर्ववर्णित क्रियाकाण्डोंके संक्षिप्त विवरण छोटे छोटे यागयज्ञीय उपाख्यान आदि विवृत हुए हैं। बारहवें काण्डमें प्रायश्चित्त और सौत्रामणी क्रियाकी आलोचना, तेरहवें काण्डमें अश्वमेध और संक्षेपमें पुरुष-मेध, सर्वमेध और पितृमेधका उल्लेख किया गया है। चौदहवां काण्ड 'आरण्यक' कहलाता है। इसके प्रथम तीन अध्यायमें 'प्रवर्ग' क्रियाका उल्लेख है। इसके सिवा संहिताके ३७से ३६वें अध्यायमें संहिता-की बातें अच्छी तरह उद्धृत की गई हैं। विष्णु जो सभी देवताओंमें श्रेष्ठ हैं, यहां उसका भी उल्लेख है। इसके अवशिष्ट छः अध्याय सुविख्यात बृहदारण्यक उपनिषद् हैं। इस ब्राह्मणमें १२००० ऋक्, ८००० यजुः तथा ४००० सामसंगृहीत हुए हैं। महाभारत-के अनेक आख्यानोंका संक्षिप्त विवरण तथा महाभारत वर्णित अनेक नाम तथा रामसीताका नाम शतपथब्राह्मण-में देखा जाता है। कद्रु और सुपर्णाके युद्धकी कथा,

पुरूरवा तथा उर्वशीके प्रेम और विरहकी कथा, अश्वि-द्वय कर्त्तृक च्यवनऋषिके युवकत्व प्राप्तिकी कथा इत्यादि उपाख्यान भी शतपथब्राह्मणमें संक्षेपसे वर्णित हैं। उग्रसेन और श्रुतसेन आदि नामोंका उल्लेख है। कुरु-पाञ्चाल आदि ऐतिहासिक नामादि भी इस ग्रन्थमें दिखाई देते हैं।

माध्यन्दिन शाखाके शतपथब्राह्मणके तीन भाष्य देखनेमें आते हैं। एक हरिस्वामिकृत, दूसरा सायणकृत तथा तीसरा कवीन्द्राचार्य सरस्वती-रचित है। माध्य-न्दिन शाखाके वृहदारण्यक उपनिषद्के भाष्यकार द्विवेद गङ्ग है। ये गुजरातके रहनेवाले थे। श्रीमच्छङ्करा-चार्यने जो वृहदारण्यक उपनिषद्का भाष्य लिखा है, वह काण्वशाखाके अन्तर्गत है। शङ्करके शिष्योंने शाङ्कर भाष्यकी कुछ टीकाएं प्रणयन की हैं। उनमेंसे आनन्द तीर्थ, रघुत्तम और व्यासतीर्थका नाम उल्लेखनीय है। सिवा इसके गङ्गाधरकी दीपिका, नित्यानन्दाश्रमकी मिताक्षरा वृत्ति, मथुरानाथकी लघुवृत्ति, राघवेन्द्रका खण्डार्थ, रङ्गरामानुज और सायणका भाष्य है।

श्रौतसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय श्रौतसूत्रोंमें "कात्यायन श्रौतसूत्र" का नाम ही उल्लेखयोग्य है। यह ग्रन्थ २६ अध्यायमें विभक्त है। शतपथब्राह्मणके प्रथम नौ काण्डोंमें जिन सब क्रियाओं की आलोचना हुई है, इसके प्रथम १८ अध्यायमें उन सब क्रियाओंकी आलोचना है। नवें अध्यायमें सौत्रा-मणी, विंश अध्यायमें पुरुषमेध, सर्वमेध और पितृमेध, बाईसवें, तेईसवें और चौबीसवें अध्यायमें एकाह, अहीन और सत्र आदि याज्ञिकक्रिया, पचीसवें अध्यायमें प्राय श्चित्त तथा छब्बीसवें अध्यायमें प्रवर्गकी आलोचना की गई है।

कात्यायनसूत्रके अनेक भाष्यकार वा वृत्तिकार हैं। उनमेंसे यशोगोपी, पितृभूति, कर्क, भर्तृयज्ञ, श्रीअनन्त, गङ्गाधर, गदाधर, गर्ग, पद्मनाभ, मिश्राग्निहोत्री, याज्ञिकदेव, श्रीधर, हरिहर और महादेवका नाम ही विशेष उल्लेख योग्य है। यजुर्वेदीय श्रौतसूत्रकी अनेक पद्धति और परिशिष्टग्रंथ हैं। इन सब ग्रंथोंका अधिकांश कात्या-यनके नामसे ही परिचित हैं। इनके अनेक टीकाकारके नाम भी सुननेमें आते हैं। यहां निगमपरिशिष्ट और चरणव्यूहग्रंथका नाम भी देखा जाता है।

वैजवापश्रौतसूत्र नामक एक सूत्रग्रन्थ है। वैज-वापकृत गृह्यसूत्रका भी एक ग्रन्थ देखनेमें आता है।

कातीयगृह्य ग्रन्थ ३ काण्डोंमें विभक्त है। वह ग्रन्थ पारस्करकृत है। वासुदेवने इसकी पद्धति प्रण-यन की है। जयरामकृत उसका एक टीकाग्रन्थ है। किन्तु रामकृष्ण उर्फ शङ्करगणपतिने इसकी जो टीका की है, वह टीका सम्पूर्ण पाण्डित्यपूर्ण। इस ग्रंथकी भूमिकामें वेदसम्बन्धमें विशेषतः यजुर्वेद सम्बंधमें विशेष आलोचना है। रामकृष्णने यजुर्वेदीय काण्व शाखाको ही श्रेष्ठ बताया है। इसके सिवा कर्क, गदा-धर, जयराम, मुरारिमिश्र, रेणुकाचार्य, वागीश्वरी दत्त, वेदमिश्र आदिके भाष्य भी प्रचलित हैं। पारस्कर स्मृति भी इस देशमें प्रचलित है। वह पारस्करगृह्य-सूत्रका ही पदानुयायी है। याज्ञवल्क्य स्मृतिसंहिता आदि और भी कितने यजुर्वेदीय गृह्यसूत्रानुयायी स्मृति-संहिताशास्त्र प्रचलित हैं।

प्रातिशाख्यसूत्र।

शुक्लयजुर्वेदीय प्रातिशाख्यसूत्र और इसका अनु-क्रमणी ग्रंथ कात्यायन-कृत समझा जाता है। इस प्रातिशाख्यसूत्रमें वैयाकरण शाकटायन, शाकल्य, गार्ग्य और काश्यपके नाम हैं। दाल्भ्य, जातुकर्ण, शौनक और औपशिवीका नाम भी देखनेमें आता है। यह ग्रंथ आठ अध्यायमें विभक्त है। इसके प्रथम अध्यायमें "संज्ञा" और "परिभाषा" की आलोचना, द्वितीय अध्यायमें "स्वर" और "उच्चारण", तृतीय, चतुर्थ और पञ्चममें "संस्कार", पञ्चममें क्रियापदका क्रमविनिर्णय, अंतमें स्वाध्यायका क्रम और नियम आलोचित हुआ है। उपसंहारमें कुछ श्लोकोंमें वर्ण और शब्दके देवताओंकी कथा उल्लिखित हुई है। उवटने इस ग्रन्थकी एक सुन्दर टीका लिखी है। कात्यायनकृत अनुक्रमणी ग्रंथ पांच अध्यायमें विभक्त है। श्रीहलधरकृत इस अनुक्रमणीकी एक उपादेय पद्धति है।

अथर्व्ववेद।

अथर्व्ववेदसंहितामें वीस काण्ड हैं। ये बीस

काण्ड फिर ३८ प्रपाठकोंमें विभक्त हैं। इनके ७६० सूक्त और ६००० मन्त्र हैं। किसी किसी शाखाके ग्रन्थमें अनुवाक-विभाग भी देखनेमें आता है। अनुवाककी संख्या ८० है। शतपथब्राह्मणमें अथर्व्ववेदके 'पर्व' विभागका उल्लेख है। किन्तु अभी जो हस्तलिपियां मिली हैं, उनमें कहीं भी पर्व-विभाग देखा नहीं जाता। शौनकशाखाकी संहिता और पिप्पलाद्-शाखाके संहिताग्रन्थकी हस्तलिपि अभी भी प्रचलित है। वाजसनेयसंहिता, शतपथब्राह्मण, छान्दोग्य-उपनिषद् तथा तैत्तिरीयआरण्यकमें अथर्व्ववेदका उल्लेख दिखाई देता है। ऋग्वेदमें भी जो अथर्व्ववेदका आभास है, वह इसके पहले वेदप्रबन्ध-प्रारम्भमें लिखा जा चुका है।

हौत्र, आध्वर्य्यव और उद्गात्र इस आख्या द्वारा तीन वेदोंके प्रति सर्वदा होत्रादि कर्त्तव्य प्रतिपादन-परत्व ही जाना जाता है। इसका ब्रह्म कर्त्तव्य प्रतिपादन तात्पर्य्य सम्भावित नहीं होता। होतृकर्त्तव्य विषयमें जिस प्रकार दूसरे विषय-मूलक यजुर्वेदका तात्पर्य्य नहीं है, अग्निहोत्र जिस प्रकार ऋग्वेदका तात्पर्य्य नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मत्व भी बाकी तीन वेदोंका तात्पर्य्य नहीं समझा जाता। परन्तु ब्रह्मत्वविषयमें दूसरे वेदमें भी उसका कुछ न कुछ उल्लेख अवश्य है। किन्तु ब्रह्मत्वको इन तीन वेदोंका तात्पर्य्य नहीं मान सकते। अन्यान्य तीन वेदोंमें जो ब्रह्मत्व विषयका उल्लेख देखा जाता है, वह उन तीन वेदोंका अतात्पर्य्य-विषयत्व और असम्यक्त्वनिबन्धन आदरणीय नहीं है। अकृत्स्नत्व एक प्रधान दोष है। आश्वलायनका कहना है, कि अकृत्स्न दोषदुष्ट शाखापरोक्त होत्र-भी अनुष्ठेय नहीं है, यथा—सामवेद वा यजुर्व्वेदमें होतृकर्मके जो सब अंश हैं, उन्हें नहीं करना चाहिये। क्योंकि, वे सम्यक् नहीं हैं। (आश्व० ८।१३) वाङ्मनस निर्वर्त्य यज्ञशरीरका अर्द्ध तीन वेद द्वारा ही निष्पन्न होता है। किन्तु अर्धान्तरकी व्यवस्था अथर्ववेद द्वारा ही कही गई है; गोपथब्राह्मणमें—"प्रजापतिने यज्ञ विस्तार किया, उन्होंने ऋक् द्वारा हौत्र, यजु द्वारा आध्वर्य्य, सामद्वारा औद्गात्रका तथा अथर्ववेद द्वारा ब्रह्मत्व निष्पन्न किया।"

इस प्रकार प्रक्रम करके गोपथब्राह्मण यह भी कहते हैं, कि वेद द्वारा यज्ञका अन्यतर पक्ष संस्कृत होता है, किन्तु मन द्वारा ब्रह्मा यज्ञके दूसरे पक्षका संस्कार करते हैं। (गोपथ ३।२)

इस वेदके सभी मन्त्र ऋग्वेदोक्त मन्त्रलक्षणसमायुक्त। अन्यतम दो वेदोंके भी उपदेशोंसे वे भरे हुए हैं। यह वेद अथर्वाख्य ऋषि द्वारा देखा गया है, इस कारण इसका नाम अथर्ववेद है। फिर कोई कोई ब्रह्मकार्य-के लिये इस वेदकी प्रयोजनीयता बतलाते हुए इसे ब्रह्मवेद भी कहते हैं। अथर्व ऋषिके दृष्ट मन्त्रोंको ले कर इस वेदकी सृष्टि हुई, इस सम्बन्धमें एक पौराणिक किंवदन्ती इस प्रकार है। पुराकालमें स्वयम्भु ब्रह्माने सृष्टिके लिये कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। उसी समय उनके लोमकूपोंसे स्वेदधारा बह चली। उस स्वेदजात जलमें अपनी छाया देखनेसे उनको रेतःस्खलित हो गया। उस रेतके साथ जल दो भागोंमें विभक्त हुआ। एक भागसे भृगु नामक महर्षि उत्पन्न हुए। वह भृगु अपने उत्पादक ऋषिप्रवरको न पाकर उनके दर्शनके लिये बड़े उत्सुक हुए। इसी समय आकाश वाणी हुई। "अथर्व्वाग् एनं एतास्वेवाप् स्विच्छ" (गोपथब्रा० १।४) इसी कारण उन्हें अथर्व्वाख्याकी प्राप्ति हुई। अवशिष्ट रेतोयुक्त जलसे आवृत वरुणशब्द-वाच्य तप्यमान ऋषिके सारे अंगका रस टपक गया जिससे अङ्गिरा नामक महर्षिकी उत्पत्ति हुई। इसके बाद उन कारणभूत ब्रह्माने अथर्व्वा और अङ्गिराको अभ्यतप्त किया था। उससे क्रमशः एक दो आदि ऋक्मन्त्रद्रष्टा बीसवां अथर्वाङ्गिरस उत्पन्न हुआ।

तप्यमान उन ऋषियोंके समीप स्वयम्भु ब्रह्माने जो सब मन्त्र देखे थे वे ही 'अथर्व्वाङ्गिरस' शब्दवाच्य वेद कहलाये। एकर्चादि ऋषियोंकी संख्या बीस रहनेके कारण उस वेदके बीस काण्ड हुए। सभी वेदोंका सारतत्त्व इस वेदमें है, इस कारण यह सभी वेदोंमें श्रेष्ठ माना गया है। यथा—गोपथब्राह्मणमें लिखा है, "श्रेष्ठोहि वेदस्तपसोधि जातो ब्रह्मज्ञानं हृदये सम्बभूव।" (१।९)

"एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वङ्गिरसः। येऽङ्गिरसः स रसः। येऽथर्वाणस्तद्भेषजम्। यद्भेषजम् तदमृतम्। यदमृतं तद्ब्रह्म।" (३।४)

सभी वेदोंका सारभूत ब्रह्मात्मिक और ब्रह्मकर्त्तव्यता का प्रतिपादक है, इस कारण यह ब्रह्मवेद नामसे प्रसिद्ध हुआ।

"चत्वारो इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः।" (गोपथ २।१६)

सारवत्वके कारण इसके मन्त्र भी सिद्धमंत्र समझे जाते हैं। यथा—

"न तिथि र्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमन्त्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥"

(अथर्वपरि० २।५)

इस वेदके पांच अङ्ग हैं। ब्रह्मा ही उसके स्रष्टा हैं। वे यथाक्रम सर्पवेद, पिशाचवेद, असुरवेद, इतिहासवेद और पुराणवेद नामसे प्रसिद्ध हैं। (गोपथब्रा० १।१०)

गोपथ-ब्राह्मण।

अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें गोपथब्राह्मण ही प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ पूर्व और उत्तर इन दो खण्डोंमें तथा समस्त ग्रन्थ ग्यारह प्रपाठकमें विभक्त है। पूर्वार्द्धमें ६ और उत्तरार्द्धमें ५ प्रपाठक हैं। पूर्वार्द्धमें नाना प्रकारके आख्यान और अन्यान्य विषयकी आलोचना है। उत्तरार्द्धमें कर्मकाण्डकी आलोचना देखी जाती है।

अथर्ववेदका प्रतिपाद्य विषय।

श्रुतिविहित दशपूर्णमासादि कर्मका अपेक्षित ब्रह्मत्व अन्य वेदमें अलभ्य है, केवल अथर्ववेदका ही समधिगम्य है। शान्ति और पुष्टिकर्म, राजकर्म और तुलापुरुष महादानादि तथा पौरोहित्य और राज्याभिषेकादि विषय देखे जाते हैं।

इस अथर्ववेदकी नौ शाखाएं हैं। यथा—

"पैप्पलादा स्तौदा मौदाः शौनकीया जाजला जलदा ब्रह्मवदा देवदर्शा श्चारणवैद्याश्चेति।"

इन सब शाखाओंमें शौनकादि चार शाखाओंकी अनुमोदित अथर्ववेदसंहिताके अनुवाक, सूक्त और ऋगादिके कर्मकाण्डीय विनियोगके लिये गोपथब्राह्मण का अवलम्बन कर पांच "सूत्रग्रन्थ" कल्पित हुए हैं; यथा—कौशिकसूत्र, वैतानसूत्र, नक्षत्रकल्पसूत्र, आङ्गिरसकल्पसूत्र और शान्तिकल्पसूत्र।

आथर्वण सूत्र।

कौशिकसूत्रकी जगह "संहिताविधि" नामका उल्लेख किया गया है। सायणाचार्यने संहिताविधि नामकी व्याख्या कर लिखा है,—"तत्र साकल्येन संहितामंत्राणां शान्तिपौष्टिकादिषु कर्मसु विनियोगविधानात् संहिताविधिर्नाम कौशिकसूत्रम्।"

अर्थात् शान्ति और पुष्टि कर्मादिके सम्बन्धमें संहिता मन्त्रोंके साकल्यमें विनियोग-विधान, इस सूत्रग्रन्थमें आया है। इससे इसका नाम संहिताविधिसूत्र वा कौशिकसूत्र हुआ है। अनेक सूत्रग्रन्थोंमें अथर्ववेदके प्रतिपाद्य कर्मोंका विधान विप्रकीर्ण भावमें व्यवहित हुआ था। उसमें ये सब विषय यथार्थमें दुर्बोध्य समझे जाते थे। उन सब कर्मकाण्डीय विधानकी सुविधाके लिये सभी इसी ग्रन्थमें संगृहीत हुए हैं। यह कौशिकसूत्र ग्रन्थ बहुतसे दूसरे दूसरे सूत्रग्रन्थोंके कोशवत् उपजीव्य स्वरूप है, इसलिये यह सूत्रग्रन्थ अथर्ववेदीय सूत्रग्रन्थोंमें प्रधान है।

इस कौशिक सूत्रग्रन्थमें जो जो कर्म करनेका विषय लिखा है, वह इस प्रकार है,—

१ स्थालीपाकविधानमें दर्शपूर्ण-मासविधि, २ मेधाजनन, ३ ब्रह्मचारिसम्पद्, ४ ग्रामदुर्गराष्ट्रादि लाभविषय, ५ पुत्र-पशु-धनधान्य-प्रजा स्त्री-करि-तुरग-रथान्दोलिकादि सर्वसम्पत्साधक, ६ मानवोंके ऐकमत्य सम्पादक साम्मनस्यादि।

इसके बाद सभी राजकर्म कहे गये हैं; यथा—शत्रुहस्तित्रासन, संग्राम-विजयसाधन, इषु अर्थात् वाणनिवारणार्थ खड्गादि सर्वशस्त्रनिवारण, शत्रुपक्षीय सेनाका मोहन, उद्वेजन, स्तम्भन और उच्चाटन, अपनी सेनाका उत्साहवर्द्धन और अभयरक्षा, संग्राममें जय और पराजयकी परीक्षा, सेनापति आदि प्रधान नायकोंको जीतना, दूसरी सेनाके सञ्चरण प्रदेशमें अभिमन्त्रित पाशासि-काशादि फेंकना, जयकामी राजाका रथ पर आरोहण और रणक्षेत्रमें अभिमन्त्रित भेरी पटहादि सभी प्रकारके बाजे बजाना, सपत्नक्षयकर्म, शत्रु कर्तृक

उत्सादित राजाका स्वराष्ट्रप्रवेशोपाय और राज्याभिषेक ; पापक्षय, निर्ऋतिकर्म चित्राकर्मादि, पौष्टिककर्म, गो-समृद्धि कर्म, लक्ष्मीकर कार्य, पुष्टिके लिये मणिबन्धनादि कृषिपुष्टिकर कर्म । अनडुत्समृद्धिकर कार्य, गृहसम्पत् कर कार्य, नवशालानिर्माणविषय, वृषोत्सर्ग, आग्रहाय णीय कर्म, जन्मान्तरकृत पापजन्य दुश्चिकित्स्य विविध-रोगकी चिकित्सा (उनमेंसे ज्वर, अतिसार, बहुमूत्र और सर्वव्याधि विशेषरूपसे वर्णित है), शस्त्रादिके अभि घातसे प्रवाहित रुधिरका निरोधकर्म, भूत-प्रेत पिशाचाप स्मार-ब्रह्मराक्षस वालग्रहादि निवारण, वात-पित्त श्लेष्माकी औषध व्यवस्था, हृद्रोग और कामला-श्वित्र निवारण, सन्तत ज्वर, एकाहिकादि विषमज्वर, राज यक्ष्मा और जलोदर निवारण, गवाश्वादिका कृमिहरण, कन्दमूल, सर्पवृश्चिक आदि स्थावर और जङ्गम विषनिवारण, शिरः, अक्षि, नासिका, जिह्वा, कर्ण और ग्रीवादिरोगकी औषधव्यवस्था, ब्राह्मणादिका आक्रोश निवारण, गण्डमालादि विविधरोगकी चिकित्सा, पुत्रा-दिकाम स्त्रीकर्म, सुखप्रसव कर्म गर्भाधान, गर्भदृंहण और पुंसवनादि कर्म, सौभाग्यकरण, राजादिका मन्यु निवारण, अभीष्टसिद्धयसिद्धिविज्ञान, दुर्दिनाशन्यति-वृष्टिनिवारण, सभाजय, विवादजय, और कलह-शमन, स्व-इच्छासे नदी प्रवाहकरण, वृष्टिकर्म, अर्थोत्थापन कर्म ; द्यूतजयकर्म, गोवत्सविरोध निवारण, अश्वशान्ति वाणिज्यलाभ कर्म, स्त्रीका पापलक्षण निवारण, वास्तु संस्कारकर्म, गृहप्रवेशकर्म, कपोत वायसादि कर्तृक उपहत गृहकी शान्तिविधि दुष्प्रतिग्रह और अयाज्यया-जनादि दोषनिवारण, दुःस्वप्न निवारण, पुत्रके पापनक्षत्र-जन्मकी शान्ति, ऋणापनोदन, दुःशकुनशान्ति, आभि-चारिकादि कर्म, परकृताभिचार निवारण, स्वस्त्ययनादि, आयुष्य कर्म, जातकर्म, नामकरण और चूडाकरणोप नयनादि, एकाग्निसाध्य काम्ययागसमूह ; ब्रह्मौदन स्वर्गौदनादि द्वविंशति सव यज्ञ, कन्याच्छमन, आव-सथ्याधान, विवाह, पितृमेधिककर्म, पिण्डपितृयज्ञ, मधु-पर्क, पांशुरुधिरवर्णण, यक्ष-राक्षसादि दर्शन, भूकम्प, धूमकेतु और चन्द्रार्कोपप्लवादि अनेक प्रकारके उत्पात-की शान्ति, आज्यतन्त्रविधि, अष्टकाकर्म, इन्द्रमह तथा सबके अंतमें अध्ययनविधि ।

वैतानसूत्रमें अयनांतनिष्पाद्य त्रयीविहित दर्शपूर्ण-मासादि कर्मके ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, आग्नीध्र और पोता इन चार ऋत्विक् कर्मोंकी कर्त्तव्यता प्रतिपादित हुई है। इस विषयमें अनुष्ठान मन्त्रादि ब्रह्मका, शस्त्रादि ब्राह्मणाच्छंसीका, अन्वाहार्य्यश्रपणप्रस्थित आज्यादि आग्नीध्रका तथा प्रस्थित आज्यादि पोताका, ये चार विभाग देखे जाते हैं। इस विषयमें कर्मक्रम कैसा है वही पीछे यथाक्रम वर्णित हुआ है। यथा—प्रथम दर्श पूर्णमास, इसके बाद अग्न्याधान, अग्निहोत्र, आग्रयणेष्टि, चातुर्मास्य, विश्वदेव, वरुणप्रघास, शाकमेध, शुनासीरी, पशुयाग, अग्निष्टोमोक्थ्य, षोडशअतिरात्रात्मक, प्रकृति-भूत और चतुःसंस्थ सोमयाग, वाजपेय, अप्तोर्याम, अग्नि-चयन, पुरुषमेध, सर्वमेध, बृहस्पतिसव, गोसवादि एकाह, सोमयाग, व्युष्टिद्विरात्र, प्रकृति और अहीन यज्ञ, रात्रिसत्रसमूह, साम्वत्सरिक अयन, दर्शपूर्णमासायन ।

नक्षत्रकल्पमें पहले कृत्तिकादि नक्षत्रोंकी पूजा और होम ; उसके बाद अद्भुत महाशान्ति, नैर्ऋतकर्म, अमृतसे अभयपर्यन्त तीस महाशान्तिकी निमित्तभेदसे कर्त्तव्यता है। यथा—दिव्यान्तरिक्षभूमिमें उत्पातसे अमृताख्य महाशान्ति । गतायुकी पुनर्जीवनप्राप्तिके लिये वैश्व-देवी ; अग्निभय निवृत्ति और सर्वकामना प्राप्तिके लिये आग्नेयी। नक्षत्र और ग्रहोपद्रुत भयार्त्त रोगीकी रोग-मुक्तिके लिये भार्गवी। ब्रह्मवर्च्चसकामीके वस्त्रशयन और अग्निज्वलनके लिये ब्राह्मी। राज्यश्री और ब्रह्म-वर्च्चसकामीके लिये बार्हस्पती। प्रजा, पशु और अन्नलाभ तथा प्रजाक्षय निवृत्तिके लिये प्राजापत्य। शुद्धि कामीके लिये सावित्री। छन्दः और ब्रह्मवर्च्चकामीके लिये गायत्री। सम्पत्कामी और अभिचारक कर्तृक अभिचर्य्यमाण व्यक्तिके लिये आङ्गिरसी। विजयबल-पुष्टिकामी और परचक्रोद्वेजनकामीके लिये ऐन्द्री। अद्भुतविकारनिवृत्ति करनेमें इच्छुक और राज्य-कामनाकारीके लिये माहेन्द्री। धनकामी वा धनक्षय निवृत्तिकामीके लिये कौवेरी। विद्या, तेज और धनायुष्कामीके लिये आदित्य, अन्नकामीके लिये वैष्णवी। भूतिकाम और वास्तुसंस्कार कर्ममें वास्तोष्पत्या। रोगार्त्त और आपद्ग्रस्तके लिये

रौद्री। विजयकामनाकारीके लिये अपराजिता। यम भयमें याम्या। जलभयमें वारुणी। वात्याभयमें वायवी। कुलक्षयनिवृत्तिके लिये सन्तति। वस्त्रक्षयनिवृत्तिके लिये त्वाष्ट्री। बालककी व्याधिनिवृत्तिके लिये कौमारी। निर्ऋतिग्रस्तके लिये नैर्ऋती। बलकामीके लिये मारुद्गणी। अश्वक्षयनिवृत्तिके लिये गान्धर्वी। गजक्षयशान्तिके लिये पारावती। भूमिकामनाकारीके लिये पार्थिवी और भयार्त्तके लिये भया नामक महाशान्ति।

आङ्गिरसकल्पमें—अभिचार-कर्मकालमें कर्त्ता और कारयिता सदस्योंकी आत्मरक्षाकरण विधि कीर्त्तित हुई है। इसके बाद अभिचारके उपयुक्त देश, काल, मण्डप, कर्त्ता और कारयिताके दीक्षादिधर्म, समिध और आज्यादिसम्भारके निरूपण आदि विषय वर्णित देखे जाते हैं। अनन्तर अभिचारकर्म तथा परकृताभिचार निवारण और अन्यान्य कर्मादि हैं।

शान्तिकल्पके आरम्भमें वैनायकग्रहगृहीत लक्षण हैं। उसकी शान्तिके लियेद्रव्यसम्भारके आहरणकी व्यवस्था है। अभिषेक और वैनायक होमादि, तत् पूजाविधान और आदित्यादि नवग्रहयज्ञादि कर्म इस कल्पमें सन्निविष्ट हैं।

इन सब कल्पोंमें जो राज्याभिषेकका व्यापार वर्णित हुआ है उससे उपयुक्त द्रव्य-प्रकृति, द्रव्यपरिग्रह और पुरोहितवरणादि शेष पर्यन्त सभी कार्य समझे जाते हैं। पहले राज्याभिषेक—प्रातःकालमें प्रातर्वस्त्र, गंध, अलङ्कार, सिंहासन, अश्व, गज, आन्दोलिका, खड्ग, ध्वज, चामरादि तथा मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर राजाको देना ही पुरोहितका कर्म है। सुवर्णधेनु, तिल और भूमिदानादि राजाकी दैनिक कर्त्तव्य है। पूजित पिष्टमय सदीप रात्रिप्रतिमा द्वारा राजाका नीराजन है। रक्षाकरण इत्यादि पुरोहितका रात्रिकर्म है। राजाका पुष्याभिषेक, रात्रिमें राजाका आरात्रिकविधान, प्रातःकालमें प्रातर्घृत दर्शन, कपिलादान, तिलधेनुदान, रसादि धेनु, कृष्णाजिन दान, तुलापुरुषविधि, आदित्यमण्डलाकार अपूपदान, हिरण्यगर्भविधि, हस्तिरथदान, वृषोत्सर्ग, कोटिहोम, लक्षहोम, अयुतहोम, घृतकम्बलविधि, तड़ागप्रतिष्ठा, पाशुपतव्रत इत्यादि अन्यान्य दानव्रत हैं।

किस प्रकार, किस ओर और कहां पर ये सब कार्य करने होते हैं वह भी उक्त ग्रन्थमें लिखा है। नित्य नैमित्तिक और काम्य भेदसे यह तीन प्रकारका है। यथा—जातकर्मादि नित्य, दुर्दिनाशनिनिवारणाश्वशान्त्यद्भुत कर्म नैमित्तिक तथा मेधाजननग्रामसम्पदादि काम्य है। यह नित्य और नैमित्तिक कार्य ग्रामके बाहर पूर्वोत्तर महानदी वा तड़ागके उत्तरीकिनारे करना होता है।

"पुरस्तादुत्तरतोऽरण्ये कर्मणां प्रयोग उत्तरत उदकान्ते"
(कौशिकसूत्र १।७)

पुंसवनादि नित्य कर्म गृहमें तथा आभिचारिक कर्म ग्रामके दक्षिणदेशमें कृष्णपक्षमें कृत्तिकानक्षत्रमें होगा। (कौशिकसूत्र६।१)

शुभ नित्यकर्मोंका काल दोनों पर्व और पुण्य नक्षत्रयुक्त तिथि है।

"अमावस्या पौर्णमासी पुण्यनक्षत्रयुक्तिथिः।
एतएव त्रयः कालाः सर्वेषां कर्मणां स्मृताः॥
अद्भुतानां सदाकालं आरम्भः सर्वकर्मणाम्॥'
(रुद्रभाष्य)

आथर्वणा उपनिषत्।

दूसरे सभी वेदोंसे अथर्ववेदीय उपनिषद्की संख्या ही अधिक है। ब्रह्मतत्त्वप्रकाश ही उपनिषद्का उद्देश है। अतएव अधिकांश उपनिषत् ब्रह्मवेदका अङ्ग समझा जायेगा, इसमें सन्देह ही क्या! विद्यारण्य स्वामीने सर्वोपनिषदर्थानुभूति प्रकाश" नामक ग्रन्थमें मुण्डक, प्रश्न और नृसिंहोत्तर तापनीय इन तीन उपनिषदोंको ही अथर्ववेदीय आदि उपनिषद् कहा है। किंतु शङ्कराचार्यने मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्न और नृसिंहतापिनी इन चारोंको ही प्रधान आथर्वण उपनिषद् कहा है। यहां तक कि बादरायणने अपने वेदांतसूत्रमें इन चार उपनिषदोंके प्रमाण अनेक बार उद्धृत किये हैं। मुण्डित मस्तक एक श्रेणीके भिक्षुसे ही मुण्डकोपनिषद्का नामकरण हुआ है। कोई कोई पाश्चात्य पण्डित इसके छांदोग्यापनिषद्का पूर्ववर्त्ती तथा श्वेताश्वतर और बृहदारण्यकका समकालीन मानते हैं। ब्रह्म क्या है, किस प्रकार उनका ज्ञान होता है और किस उपायसे

वे पाये जाते हैं, इस उपनिषद्में उसका विस्तृत विवरण दिया गया है। शङ्कराचार्य, आनन्दतीर्थ, दामोदराचार्य, नरहरि, भट्ट भास्कर, रङ्गरामानुज, नारायण, व्यासतीर्थ, शङ्करानन्द, विज्ञान भिक्षु और नरसिंह यति ने इस उपनिषद्का भाष्य या वृत्ति प्रकाश की है। इसके शङ्करभाष्य पर भी बहुत सी टीकाएं देखी जाती हैं। उनमेंसे आनन्दतीर्थ और अभिनव नारायणेन्द्र सरस्वती रचित भाष्यटीका ही प्रधान है।

प्रश्नोपनिषद् गद्यमें लिखा गया है। ऋषि पिप्पलादके ब्रह्मजिज्ञासु छः शिष्योंने गुरुसे वेदान्तके मूल परतत्व का प्रश्न किया। उन्हीं छः प्रश्नोत्तरको ले कर प्रश्नोपनिषद् बना है। प्रजापतिसे असत् और प्राणकी उत्पत्ति दूसरी चित्तशक्तिसे प्राणकी श्रेष्ठता, चित्तशक्तियोंके लक्षण और विभाग, सुषुप्ति और तुरीयावस्था, ओम्कारध्यान निर्णय और षोड़शेन्द्रिय ये ही छः विषय प्रश्नोपनिषद्के प्रतिपाद्य हैं। शङ्कराचार्य प्रश्नोपनिषद्के भाष्यकार हैं। आनन्दतीर्थ, श्रीनिवास, ज्ञानेन्द्र सरस्वती, दामोदराचार्य, धर्मराज, बालकृष्णानन्द, रङ्गरामानुज, रामानुजमुनि, नारायण, विज्ञानभिक्षु और शङ्करानन्द ये सब वृत्तिकार हैं। आनन्दतीर्थ नारायणेन्द्र सरस्वती आदिने उक्त शाङ्करभाष्यकी टीका की है।

माण्डूक्योपनिषद् बहुत छोटा गद्य ग्रन्थ है। छोटा होने पर भी सर्वप्रधान समझा जाता है। मैत्रायणोपनिषद्के साथ इसके प्रतिपाद्य विषयका मेल रहनेके कारण बहुतेरे इसे मैत्रायणोपनिषद्का परवर्त्ती समझते हैं। गौड़पादाचार्य इस उपनिषद्की कारिका, शङ्कराचार्य भाष्य और विज्ञानभिक्षु, 'आलोक' नामकी व्याख्या, आनन्दतीर्थ, मथुरानाथशुक्ल और रङ्गरामानुज भाष्यटोका, आनन्दतीर्थ क्षुद्रभाष्य, राघवेन्द्र, व्यासतीर्थ और श्रीनिवासतीर्थ उक्त आनन्दभाष्यकी टीका, इनके अतिरिक्त नारायण, शङ्करानन्द, ब्रह्मानन्द सरस्वती, राघवेन्द्र आदि दीपिका वा वृत्तिकी रचना कर गये हैं।

नृसिंहतापनी पूर्व और उत्तर इन दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वतापनीका सिर्फ शाङ्करभाष्य मिलता है। किंतु गौड़पादने उत्तरतापनीकी कारिका, शङ्कराचार्य और पुरुषोत्तम इन दोनोंने भाष्य तथा नारायण और शङ्करानन्दने, 'दीपिका' नामकी वृत्ति लिखी है।

उक्त चारोंको छोड़ कर मुक्तिकोपनिषद्से और भी ९३ आथर्वण उपनिषदोंके नाम पाये गये हैं। यथा—५ अक्ष, ६ अक्षमालिका, ७ अद्वय, ८ अध्यात्म, ९ अन्नपूर्णा, १० अथर्वशिखा, ११ अथर्वशिरः, १२ अमृतनाद, १३ अमृतविन्दु, १४ अवधूत, १५ अव्यक्त, १६ आत्मा, १७ आत्मबोध, १८ आरुणि, १९ एकाक्षर, २० कठरुद्र, २१ कलिसन्तरण, २२ कालाग्निरुद्र, २३ कुण्डिका, २४ कृष्ण, २५ कैवल्य, २६ क्षुरिक, २७ गणपति, २८ गर्भ, २९ गारुड़, ३० गोपालतापनी, ३१ चूड़ा, ३२ जालदर्शन, ३३ जावाल, ३४ जावालि, ३५ तापनी, ३६ तारसार, ३७ तुरीयातीत, ३८ तेजोविंदु, ३९ त्रिपुरा, ४० त्रिपुरातापन, ४१ त्रिशिखा, ४२ दत्तात्रेय, ४३ दक्षिणामूर्त्ति, ४४ देवी, ४५ ध्यानविंदु, ४६ नादविंदु, ४७ नारायण, ४८ निरालम्ब ४९ निर्वाण, ५० पञ्चब्रह्म, ५१ परब्रह्म, ५२ परमहंस, ५३ परमहंस परिव्राजक, ५४ परिव्राज, ५५ पाशुपत, ५६ पैङ्गल, ५७ प्राणाग्निहोत्र, ५८ बृहज्जावाल, ५९ ब्रह्म, ६० भस्मजावाल, ६१ भावना, ६२ भिक्षु, ६३ मण्डल, ६४ मंत्रिक, ६५ महत्, ६६ महानारायण, ६७ महावाक्य, ६८ मुक्तिका, ६९ मुद्गल, ७० मैत्रेयी, ७१ याज्ञवल्क्य, ७२ योगकुण्डली, ७३ योगतत्त्व, ७४ योगशिक्षा, ७५ रहस्य, ७६ रामतापनी, ७७ रामरहस्य, ७८ रुद्राक्ष, ७९ वज्रसुचि, ८० वराह, ८१ वासुदेव, ८२ विद्या, ८३ शरभ, ८४ शाट्यायणी, ८५ शाण्डिल्य, ८६ शरीर, ८७ संन्यास, ८८ सरस्वतीरहस्य, ८९ सर्वसार, ९० सावित्री, ९१ सीता, ९२ सुवाल, ९३ सूर्य, ९४ सौभाग्य, ९५ स्कन्द, ९६ हयग्रीव और ९७ हृदय।

इनके सिवा और भी कितने आथर्वण उपनिषद्के नाम सुने जाते हैं। सबोंको एकत्र करनेसे दो सौसे अधिक हो सकते हैं। वे सब आधुनिक हैं, विस्तार हो जानेके भयसे उनके नाम नहीं लिखे गये।

वैदिक आर्यावास।

आर्य्यावर्त्त ही आर्य्योंकी आदि आवासभूमि है। यहां एकमात्र आर्य्यजाति ही प्रधान थी तथा वे लोग बार बार इस स्थानमें जन्म ले कर लीला कर गये हैं, इसीसे इसका नाम आर्यावर्त्त हुआ है। मनु २।२२ टीकामें कुल्लूकने लिखा है—"आर्य्या अत्रावर्त्तन्ते

पुनः पुनरुद्भवन्तीत्याय्यावर्त्तः ।" "आर्य्याः ईश्वरपुत्राः" (यास्क ६।५।३) वेदके शाखाविभागप्रसङ्गमें लिखा जा चुका है, कि ब्रह्माण्डपुराणानुसार आदि ऋषिगण ही ईश्वर कहे गये हैं। उनके पुत्रगण ही यास्कके मतसे आर्य्य हैं। जहां वे आर्य्यगण जन्मग्रहण और वास करते थे वही स्थान आर्यावर्त्त है।

यह आर्यावास कहां है ? ऋक्संहितासे हमें मालूम होता है, कि हिमवत्पृष्ठके दक्षिण भागमें बसा हुआ सुवास्तु जनपद प्रकृत आर्यावर्त्त पूरबमें अवस्थित था। यास्कने लिखा है; "सुवास्तुर्नदी तुग्व तीर्थ भवति तूर्ण मेतदायन्ति ।" (४।२।७)

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि भी "सुवास्त्वादिभ्योऽण्" (४।२।७७) सूत्रमें सुवास्तुजनपदका परिचय दे गये हैं। पाणिनिके समय यह जनपद जो आर्योंका वासस्थान कह कर प्रसिद्ध था उक्त सूत्र ही उसका प्रमाण है। आर्य्यावर्त्त शब्दमें दिखला चुके हैं, कि वर्त्तमान स्वात् वा सुवात् नदी ही वैदिक सुवास्तु है।

ऋक्संहिताके ५।५३।६ मन्त्रमें लिखा है, कि रसा, अनितभा, कुभा, सिन्धु और जलमयी सरयू जिससे जलप्लावनादि द्वारा विहरणमें बाधा न पहुंचावें। उक्त मन्त्रोक्त नदियोंका संस्थान निर्णय करके हम पूर्वतन आर्यावर्त्तकी एक सीमा निर्देश कर सकते हैं। उल्लिखित प्रदेशकी सुवास्तु नदीतीरस्थ सुवास्तु जनपदसे बहुत दूर उत्तर रसा नदी बहती है। वही नदी आर्य्यावासकी उत्तरी सीमा, वर्त्तमान समयमें काबुल नदी नामसे प्रसिद्ध हीनप्रभवा कुभा पश्चिमी सीमा, तक्षशिला प्रदेशीय सरयू नदी पूर्वी सीमा और कुभाके दक्षिण क्रमु सिन्धु-सङ्गम ही इसकी दक्षिणी सीमा है।

इस सुवास्तुप्रदेशके पश्चिममें अवस्थित निषध पर्वत पर भी आर्य्यगण वास करते थे। १।१०४।१ मन्त्रके "योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि"से निषदमें आर्याधिकार साबित होता है। शतपथब्राह्मणके ३।३।२।१-२ मन्त्रमें "नड़ो नैषिध" पदका उल्लेख है। फिर १।१०४।४ ऋङ् मन्त्रमें अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्नी नामकी तीन नदियोंके प्लावनसे राजाकी नाभि (अर्थात् प्रधानावास वा राजधानी)-रक्षा करनेकी कथा है। वे सब नदियां कहां बहती थीं ? अञ्जसी सुवास्तुसे ईशानकोणमें और कुलिशी सुवास्तुसे वायुकोणमें दक्षिणकी ओर तथा वीरपत्नी अग्निकोणसे दक्षिणकी ओर बहती थी।

इस प्रकार क्रमशः सुवास्तुसे पूर्वकी ओर बहुत दूरमें अवस्थित श्रीकण्ठशैलसे निकली हुई जहनुमुनिकी आश्रमतलवाहिनी जाह्नवी नदीके तट पर्यन्त आर्यावास विस्तृत था। ऋक्संहितोक्त "पुराणमोकः सख्यं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।" (३।५८।६) मन्त्रोक्त जाह्नवी प्रदेश जाह्नवीके किनारे अवस्थित था। यह पञ्जकोराके पूर्व, सिन्धुके पश्चिम और वनूके उत्तर तथा सुवास्तु जनपदके समीप था।

आर्य्य और आर्यावर्त्त देखो।

इसके बाद यहांसे आर्यावास क्रमशः सारस्वतप्रदेशमें फैल गया। यह शस्यबहुल उत्कृष्ट प्रदेश यज्ञभूमिके लिये प्रशंसनीय था। आर्यऋषिगण यहां बहुतसे यागयज्ञ कर गये हैं। अनेक ऋङ्मन्त्रोंमें इस स्थानकी यागविषयक परिपुष्टिका उल्लेख है। ऋक् ३।२३।४ मन्त्रके "दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि" वचनमें दृषद्वती तीरसे ले कर सरस्वती तीर तक तीन नदीका तट सारस्वतक्षेत्र नामसे प्रसिद्ध था। इस स्थानका दूसरा नाम ब्रह्मावर्त्त है। हम मनुसंहितामें उसका उल्लेख देखते हैं—

"सरस्वती दृषद्वत्यो र्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥" (मनु २।१७)

इसके बाद ही मनुने लिखा है, ब्रह्मावर्त्तके बाद कुरुक्षेत्रादि आर्य जनपद महापुण्य देश है;—

"कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एषो ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरम् ॥"

(मनु० २।१९)

अभी पाठकोंको मालूम होगा, कि आर्यावास किस प्रकार धीरे धीरे उत्तरभारतमें फैल कर ब्रह्मर्षिदेश नामसे प्रसिद्ध हुआ था। आश्वलायन शाखा १।३।१०-१२, २।३०।८, २।३१।१६-१८, ६।६१, ८।८५।१-२, १०।१७।७६ ऋक् आदिकी आलोचना कर देखते हैं, कि यथार्थमें वह

स्थान ब्रह्मर्षियोंका निवासकेन्द्र था। यज्ञीय धूमसे वह स्थान परिव्याप्त रहता था। इस सारस्वत प्रदेशमें पहले ही आर्य्यसाम्राज्य प्रतिष्ठित हुआ था। ऋक् ८।२१।१८ मन्त्रमें सारस्वतप्रदेशके राजा चित्रके यज्ञ और धनदानादि के महत्त्वका परिचय वर्णित है। यास्कने लिखा है, "विश्वामित्रऋषिः सुदासः पैजवनस्य पुरोहितो बभूव। स वित्तं गृहीत्वा विपाट्छुतुद्र्योः सम्भेद माययावनुय युरितरे।" (२।७।२) राजा सुदासके यज्ञकी बात किसीसे छिपी नहीं है, विश्वविख्यात है। विश्वामित्र और सुदास देखो।

इस आर्य्यदेशमें बहुतसी नदियां बहती थीं। सिन्धुनदके पूर्वी किनारे जो नदियां वैदिक युगमें बहती थीं, उनका उल्लेख निम्नोक्त ऋङ्मन्त्रमें है—

"इमं मे गंगे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्णया।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥"
(ऋक् १०।७५।५)

इस गङ्गानदीका परिचय किसीको भी देनेकी जरूरत नहीं। इसीके पश्चिममें यमुना, यमुनाके पश्चिममें सरस्वती और सरस्वतीके पश्चिममें शुतुद्रु वा शतद्रु है। शतद्रुके पश्चिममें परुष्णी नदी बहती है। यास्कके समय वह इरावती नामसे प्रसिद्ध थी। (निरुक्त ९।३।५) पीछे वह ऐरावती कहलाने लगी। उसीके पश्चिम असिक्नी है जो अभी चन्द्रभागा कहलाती है। असिक्नीके पश्चिम वितस्ता नदी अवस्थित है। उक्त ऐरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता नामकी नदियां सम्मिलित हो कर पञ्जाबके कश्यपपुरके पश्चिम दक्षिणमें जो महानदीके आकारमें बह रही है, उसीका प्राचीन नाम मरुद्वृधा है। उक्त कश्यपपुरके पूरबमें प्रवाहित शतद्रु-नदीकी कलेवरपुष्टकारिणी पश्चिमी शाखाका नाम आर्जीकीया है। यास्कके समय यह विपाड् तथा उसके पहले उरुञ्जिरा नामसे प्रसिद्ध थी। (निरुक्त ९।३।५) अभी इसका नाम विपाशा हो गया है। तक्षशिलाप्रदेशके निम्नदेशमें प्रवाहिता सुषोमा नदी सिन्धुसङ्गममें मिल गई है। यह सप्त नदीमय भूभाग सप्तनद वा सप्तसिंधु नामसे परिचित है। गङ्गा और यमुनाप्रवाहितप्रदेशको छोड़ देनेसे उक्त भूभागको पञ्चनद प्रदेश वा सारस्वत प्रदेश कह सकते हैं।

सिन्धुनदके पूर्वी किनारे जिस प्रकार सात नदियां बहती हैं उसी प्रकार उसके पश्चिममें भी सात नदी आर्यावासमें बहती थीं। ये सब नदियां अभी आर्यावर्त्तके बहिर्भागमें चली गई हैं, किन्तु वैदिक युगमें आर्य्यावर्त्तके अन्तर्भुक्त थी। ऋक्संहिताके १०।७५।६ मन्त्रमें लिखा है, कि तृष्टामा, सुसर्त्तु, रसा, श्वेती, कुभा, गोमती और मेहत्नुसंयुत क्रुमु ये सात नदियां पूर्वपश्चिमाभिमुखी हो पीछे पूर्वदक्षिणमें सिन्धुनदके पश्चिममें मिली है। ये सभी नदियां मध्य हिमालयसे निकली हैं। वर्त्तमान चित्रल प्रदेशके पूरब पञ्जकोर प्रदेशमें जो तत्रयत्र नदी बहती है उसीका नाम तृष्टामा है। सुसर्त्तुका दूसरा नाम सुवास्तु है। रसाकी बात पहले ही लिखी जा चुकी है। वर्त्तमान डेरा इस्माइल खाँ प्रदेशकी तलवाहिनी बर्ज्जुनी नदी ही श्वेती कहलाती थी। कुभा काबुलनदी और क्रुमु बर्न्नुप्रदेशमें प्रवाहित वर्त्तमान कुरम नदी है तथा गोमती अभी गोमल नामसे प्रसिद्ध है। ये सातों नदियां सिन्धुमें मिली हैं।

अतएव इससे साबित होता है, कि चित्रलप्रदेशके पूर्व और बेलुचिस्तानके ऊर्द्ध्व पश्चिमोत्तरभागमें जो पुरातन आर्य्यावासांश था वही पश्चिम सप्तनद प्रदेश है। इस पश्चिम सप्तनदके अन्तर्गत अफगानपञ्जकोर प्रदेश है। अतएव प्राचीन गान्धार राज्य भी आर्य्यावासके अन्तर्भुक्त था। ऋक् १।१२६।७, ऐतरेयब्राह्मण ७।५।८, पाणिनिका "साल्वेय-गान्धारिभ्याञ्च" (४।१।१६९) तथा "मद्रेभ्योऽञ्।" (४।२।१०८) सूत्रमें गान्धार और मद्रदेशका परिचय है। उन दो जनपदोंके साथ जो आर्य संस्रव था, वह महाभारत पढ़नेसे ही अच्छी तरह मालूम होता है। कुरुराज धृतराष्ट्रपत्नी गान्धारी देवी दुर्योधनादिकी माता और पाण्डुराजपत्नी माद्री देवी नकुल और सहदेवकी माता थीं। पाणिनिने पौर्वमद्रपदसिद्ध करनेके लिये (४।२।१०८) सूत्रका संकलन किया था। इसीसे अनुमान होता है, कि पारस्यके उत्तर प्रान्तवर्त्ती वर्त्तमान मिदिया नामक साम्राज्यका उत्तरांश मद्रराज्य समझा जाता था।

इस पूर्वापर सप्तनद प्रदेशके मध्यस्थलमें मध्यहिमा-

लयपादसे निकली हुई सिन्धु नदी ही प्राचीन-आर्य्यावर्त्तको दो खण्ड करके वह रही है। उसीके उत्तर पास हीमें और भी सात नदियोंका उल्लेख ऋक्संहिताके १०।७५।७-८ मंत्रमें देखा जाता है—

"ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परिज्रयांसि भरते रजांसि।
अदब्धा सिन्धुरप सामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता।
स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगामधु वृधम्॥

(ऋक् १०।७५।७।८)

उन नदियोंमें ऊर्णावती कैलासनिम्नस्थ ऊर्णा प्रदेशमें वहती है। हिरण्मयी, वाजिनीवती और सीलमावती नामकी तीन नदियां उत्तरदेशमें वह गई हैं। पनाः नदी आज भी निम्नवेलुचिस्तानमें मौजूद है। चित्रा चित्रल प्रदेशसे निकल कर कुभामें मिलती है। ऋजीती एक समय उसीके पास पास वहती थी।

इन ७३ नदियोंका उल्लेख हम ऋक् १०।७।१ मन्त्रमें पाते हैं। उन नदियोंमें सिंधु ही प्रधान हैं तथा उन सब नदियोंसे इसका कलेवर पुष्ट होता है। (ऋक् १०।७५।४) अतएव उक्त २१ नदियां सिंधुशिशु हैं। उनके मानों श्रवण हैं, यह सोच कर ऋक् १०।६४।८-६ मंत्रमें "त्रिः सप्त सस्रा नद्यः" इत्यादि वाक्योंसे उनकी स्तुति की गई है।

अभी देखा गया, कि त्रिसप्त नदियोंसे परिवृत्त सिन्धु मध्यप्रदेश ही प्राचीन कालकी आर्यभूमि है। इस आर्यावासमें कहां क्या मिलता था तथा किस किस विशेष विषयके साधनके लिये कौन कौन स्थान निर्दिष्ट था, वह ऐतरेयब्राह्मणके "यस्तेजो ब्रह्मवर्चसमिच्छेत् * * प्राङ् स इयात्। योऽन्नाद्यमिच्छेत् * दक्षिणा स इयात्। यः सोमपीथमिच्छेत् * * उदङ् स इयात्।" (१।२।२) मंत्रमें लिखा है।

ऋक्संहिताके वर्णनानुसार सिंधुको ही प्राचीन आर्य्यभूमिका मध्यकेन्द्र माननेसे देखा जाता है कि सिन्धुके पूर्वमें ही सरस्वत्यादि तीरभूमि हैं। वही स्थान यज्ञानुष्ठान द्वारा ब्रह्मचर्य्य-तेज-लाभ करनेके योग्य है। शतद्रु और सिंधुसङ्गमके दक्षिण-हिम-प्राचुर्य्य न रहने तथा प्रबल तापके कारण वहां काफी फसल लगती है। अतएव जिन्हें अन्नलाभ करनेकी इच्छा हो वे दक्षिण दिशामें ही जायें। सिंधुके पश्चिम बहुतसे जंगल हैं, इस कारण यहां पशुलाभकी अधिक सम्भावना है तथा शतद्रु सिंधुसङ्गमके उत्तर शीतकी अधिकता रहनेसे सोमवल्लीकी वृद्धि और बाहुल्य सूचित होता है।

ऊपरमें द्वितीय नदी सप्तकके अंतर्गत जिस रसा नदीका उल्लेख किया गया है वह आर्यावासकी उत्तरी सीमा है। ऋक्संहिताके १०।१०८ सूक्तके ग्यारहवें मंत्रमें सरमा और पणियोंके कथोपकथनप्रसङ्गमें अनार्यों द्वारा आर्योंका गोहरण-वृत्तांत सूचित हुआ है। पणिगण वणिक् जातिके थे। वे आर्योंके साथ ही रहते थे; इस कारण उनकी भी गिनती आर्यों में की गई है। असुर वा बलशाली अनार्यगण आर्योंकी गौ चुरा कर ले गये थे, पीछे कुत्तोंकी सहायतासे उनकी पुनः प्राप्ति हुई थी। इस समय अनार्यवासमें उन्हें रसा नदीको पार करना पड़ा था। (ऋक् १०।१०८।१) ऋक्संहिताके ८।४६।२ मन्त्रमें तथा १०।१२१।४ मन्त्रमें दो विभिन्न रसा नदियोंका उल्लेख है। निरुक्तके मतसे रसा नदी शब्दकारिणी है। पर्वतवक्षको भेद कर कलकलनदसे वहती है अथवा पर्वतगात्रसे प्रपाताकारमें गिरती है। १०।७५।६ मन्त्रमें एक रसाको सिन्धुसङ्गत तथा १०।१२१।४ मन्त्रमें दूसरी रसाको समुद्रसङ्गत कहा है। वह आर्यावर्त्तके बाहर और वर्त्तमान खोराशान राज्यके अन्तर्गत है। अवस्ता ग्रन्थमें रंहा नामसे यह वर्णित है।

ऋक्संहताके ८।६६।१३ १५ मन्त्रमें अंशुमती नदीके किनारे आर्यप्रभाव फैलनेकी कथा है। उक्त अंशुमती नदी यमुनामें गिरती है और दृषद्वतीके पूर्वमें अवस्थित है। १०।५३।८ मन्त्रमें अश्मन्वती नदीतीरको छोड़ कर और नदीको पार कर आर्योंके दूरान्तर जानेका उल्लेख देखा जाता है। यह अश्मन्वती शतद्रुके पूर्व और घर्घराके पश्चिम विनशन प्रदेशमें वहती थी। इससे प्रमाणित होता है, कि पूर्वतन आर्यगण मध्यएशियासे नहीं आये, वे हिन्दूकुश पर्वतके समीपवर्त्ती विस्तृत स्थानमें ही रहते थे।

१।१०४।१ ३ मन्त्रमें शिफा नदी निषद प्रदेशमें वहती थी, निषध शब्दके साहचर्यसे ही इसका अनुमान

होता है। ऋक् ६।२७।६ मन्त्रमें "हरियूपीया" "यव्या-वती" नदीके किनारे तीन सौ वर्मधारी वृचीवत् पुत्र एक साथ मारे गये थे। जिस नदीके किनारे यह महायुद्ध हुआ था, वह नदी कहां है? सम्भवत अफगान राज्य ही उसकी स्थिति है। वहांके हजारा प्रदेशमें अभी जो हरिरुद नदी बहती है उसीको वैदिककालका हरियुपीया नदी मान सकते हैं। ऋक् १०।२७।१७ मन्त्रमें जिस वक्षा नदीका उल्लेख देखा जाता है वही अफगानिस्तान-के उत्तरमें प्रवाहित आक्सस नदी है। श्वेतपर्वतपादसे निकली हुई श्वेती नदी अर्जुनी नामसे प्रसिद्ध थी (शत-पथ १४।६।८।६) इस श्वेतपर्वतसे श्वेतयावरी नामकी एक और नदीका वर्णन देखा जाता है। (ऋक् ८।२६।१८१) यह श्वेतयावरी और ऋक् १०।७५।६ मन्त्रमें वर्णित श्वेनी, क्या एक है?

ऋक्संहिताके ४।३०।१८, ५।५३।६, और १०।६४।६ मन्त्रमें जिस सरयूका उल्लेख है वह सिन्धुसङ्गत और तक्षशिला प्रदेशवाहिनी है। किन्तु वाजसनेयसंहितामें (२३।१८) "काम्पिल्यवासिनी"का उल्लेख देख कर मालूम होता है, कि उत्तर पाञ्चालके अंतर्गत काम्पिल्य नगर होती हुई २य सरयू चली गई है। बृहदारण्योक्त कपि प्रदेश (३।३।१, ७।१।६, ७।५१) उसके पास ही अवस्थित था। साङ्काश्य (वर्त्तमान संकिश) नगरी उसके नैऋतमें पड़ती थी। आर्यपरिव्राजकोंकी वर्णित चक्षु, वक्षु, सीता, गौरी आदि नदियां भी आर्यनिकेतनभूमिमें बहती थीं। हिमालयके पूर्व और पश्चिम भूखण्डसे दक्षिणकी ओर प्रवाहित सभी नदियाँ तथा विन्दुसर, मानससर और रावणह्रदादि आर्योंके परिज्ञात थे। ऋक् संहिताके १।८४।१४ मन्त्रमें जिस शर्य्यणावत् सरोवरका उल्लेख है, शाट्यायनके वचनोद्धारमें सायणने उसके विषयमें कहा है, "शर्य्यणावद्ध वै नाम कुरुक्षेत्रस्य जघ-नार्द्धे सरः स्यन्दते"

फिर ऋक् १०।३४।१ मन्त्रमें "प्रवातेजा इरिणे वर्वृ-तानाः" और "सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो" पदमें इरिण और मूजमान् शब्दका व्यवहार देखनेसे मालूम होता है, कि उस समय आर्यगण कैलासके समीप मुजवान् पर्वत पर और वर्त्तमान इरान् नामक देशमें बस गये थे।

अथर्वसंहिताके पञ्चम काण्डकी चतुर्दश अर्थात् बाईसवें सूक्तके ३य मंत्रमें परुष जनपद, ४र्थ मंत्रमें महावृष प्रदेश, ५म और ७म मंत्रमें मूजवत् प्रदेशान्तर्गत वह्लिकदेश, अष्टममें महावृष और मूजवान्, नवममें फिरसे वाह्लिक, सबसे पीछे १४वें मंत्रमें अङ्ग, मगध, मूजवद्, गांधार आदि देशोंका उल्लेख रहनेसे अनुमान होता है, कि उस समय उन सब प्रदेशोंमें आर्यावास प्रतिष्ठित था।

उक्त परुष देशका पौराणिक नाम पुरुषपुर है। अभी इसे पेशावर तथा गान्धार कन्धार कहते हैं। शतपथ ब्राह्मणमें (१२।३।३।३ "वह्लीकः प्रातिपीय शुश्राव "वचनसे प्रमाणित होता है, कि पूर्वकालमें यहां भी आर्योंका वास था। यह वह्लिकदेश श्वेत पर्वत-के पश्चिममें अवस्थित है।

अङ्ग और मगधराज्य प्राचीन कालमें आर्योंके लिये निन्दनीय था। उस समय उक्त दोनों स्थानोंमें अना-र्योंकी ही प्रधानता दिखाई देती है। यथा—

"किं कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति घर्मम्।"
(ऋक् ३।५३।१४)

कीकटका दूसरा नाम मगध है। निरुक्तकार उसे अनार्योंका वासस्थान बतलाते हैं। महाभारतीय युग-में महाराज दुर्योधनके समय मगध और अङ्गराज्य आर्या-वासरूपमें परिगणित हुआ था।

उक्त मूजवान् नामक नगराज प्राचीन कालमें आर्या-वर्त्तके उत्तर सीमरूपमें हिमालयपृष्ठ पर अवस्थित था। यहां आर्य और अनार्य दोनों ही जातियां रहती थीं। वाजसनेय-संहिताके ३।६१ मंत्रमें तथा शतपथब्राह्मणके २।६।२।१७ मंत्रमें उक्त यजुर्वेदोक्त वाक्यकी विवृतिमें मूजवान् पार करनेकी प्रार्थना की गई है। इससे अनुमान होता है, कि उस समय आर्यगण मूजवान पर्वतके बहिर्भागको आर्यावर्त्तसे बाहर समझते थे। इसीसे हम सकते हैं, कि पारस्यराज्यके पश्चिमोत्तरस्थ एशियामाइनर राज्यके पूरब तथा अनुगङ्ग प्रदेशके पश्चिम, सिंधुसागर सङ्गमके उत्तर तथा मूजवान् पर्वतके दक्षिण वेदसंहिताकालीन आर्यावर्त्त फैला हुआ था।

इस प्रकार उस संहिता कालसे ही धीरे धीरे आर्यनिवास एक देशसे दूसरे देशमें फैल गया। ऋक्

संहिताके ७।१८ सूक्तमें इन्द्रको सम्राट्, सुदास राजाके यज्ञकी कथा, तृत्सुगणका इन्द्रके साथ युद्धमें परास्त हो निम्नगामी जलकी तरह धावन तथा बाधा पा कर सुदास-को समस्त भोग्य वस्तु देनेकी कथा है। ७।१८।१७ मन्त्रमें इन्द्रने दरिद्र सुदासकी सहायतासे एक कार्य किया था। उन्होंने सूची द्वारा युपादिका कोण काट डाला और सुदास राजाको समस्त धन दान किया था। ७।१८।११ मन्त्रमें लिखा है, "यमुना" "तृत्सवः" "अजास" "शिग्रवः" "यक्षवः" आदि यामुनप्रदेशादि निवासी सामन्तराजोंने घोड़े, या मनुष्यके शिर पर उपढौकन लाद कर इन्द्रको उपहारस्वरूप भेजा था। यहां इन्द्रको सम्राट् कहा जा सकता है तथा अज, शिग्रु, यक्षु और यामुन जनपदादिके सामन्तराजोंने उसकी अधीनता स्वीकार कर यज्ञमें वलि भेजी थी।

उक्त यामुनादि जनपद पूर्वतन या अधुनातन आर्यावर्त्तके वहिर्भागमें था। यह यमुना गङ्गाके पश्चिम पार्श्ववाली है या दूसरी ? अभी इसी पर विचार करना चाहिये। जह्नावी प्रदेश वर्त्तमान गाङ्गेय प्रदेशसे जिस प्रकार बहुत दूरमें अवस्थित था, उसी प्रकार यह यामुन प्रदेश भी संहिताकालमें उत्तरी सीमा पर ही वर्त्तमान था। शिग्रु जनपद चन्द्रभागा-प्रवाहित देशके ऊद्धर्ध्वदेशका एक करदराज्य था।

ऐतरेय कालमें अर्थात् ब्राह्मण-युगमें इस आर्यावर्त्तका आयतन कहां तक फैला था वह उक्त ग्रंथके अभिषेकप्रकरणमें लिखा है, "प्राच्यां दिशि ये के च प्राच्यानां राजानः ** दक्षिणस्यां दिशि ये के च सत्वतां राजानः ** प्रतीच्यां दिशि ये के च नीच्यानां राजानो येऽपाच्यानां ** उदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तं जनपदा उत्तरकुरव उत्तरमद्रा ** ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि ये के च कुरुपञ्चालानां राजानः सवशोशीनराणां राज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते।" (ऐतरेयब्रा० ८।३।२)

यहां "प्राच्यानां राजानः" इस सामान्योक्ति द्वारा अनुमान किया जाता है, कि उस समय पूर्वदेशमें बहुतसे छोटे छोटे राजाओंमें एक प्रबल पराक्रान्त राजा भी थे। अन्य मंत्रमें भी (३।४।६) "प्राच्यो ग्रामता बहुलाविष्टाः" उक्ति द्वारा भी इसका समर्थन किया गया है। संहिताकालमें पूर्वदेशीय जो सब पहाड़ी जनपद विद्यमान थे, वही अभी प्रसिद्ध नेपालादि किरात नगरी है। पाणिनिके (१।१।७५) सूत्रसे भी हमें मालूम होता है, कि प्राच्यभूममें कान्यकुब्ज, अहिच्छत्रादि प्रसिद्ध पुरी विद्यमान थी। ऐतरेय-ब्राह्मणकालमें वे सब स्थान ग्रामरूपमें थे, ऐसा ही प्रतीत होता है।

उस समय दक्षिण देशमें जो वलवत्तम सत्वत् राज्य था, वह परवर्त्तिकालमें छत्रपुरी नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऐतरेयब्राह्मणमें तथा शतपथब्राह्मणके "आदत्त यज्ञं काशीनां भरतः सत्वतामिव" (शतपथब्रा० १३।४।५।२१) गाथावचनमें भरताधिकृत इस प्राचीन राज्यका अस्तित्व दिखाई देता है। दौष्मन्ति भरत तथा उनके वंशधरगण जो इस प्रदेशके राजा थे वह ऐतरेयब्राह्मण (८।४।६)के निम्नोक्त श्लोकसे स्पष्ट मालूम होता है। यथा—

"अष्टासप्ततिं भरतो दौष्यन्तिर्यमुना मनु।
गङ्गायां वृत्रघ्नेऽवध्नात् पञ्चपञ्चाशतं हयान॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं राजाश्वान् वध्वाय मेध्यात्।
दौष्यन्तिरत्यगाद्राज्ञो मायां मायिवत्तरः॥"

शतपथब्राह्मणके १३।५।११-१४ मंत्रमें यह विषय अच्छी तरह समझाया गया है।

प्रतीच्यदेश बहुत सी नदियोंसे परिपूर्ण था। यहां एक भी सुसमृद्ध राज्य न था। इसके उत्तरी भागमें पर्वतपादस्थ भूमिपगण 'नीच्य' कहलाते थे। दक्षिण भागमें अवाच्य और मध्यभागमें केवल आरण्यदेश था। वहां अपाच्य और नीच्यगण रहते थे। यह प्रत्यग्देश जो अरण्यमय था, ३।४।६ मंत्रमें उसका उल्लेख है।

उत्तरदेश अर्थात् हिमालय पृष्ठदण्डके उत्तरी भागमें और प्राचीन आर्यावर्त्तके वहिर्देशमें आर्यमित जनपद उत्तरमद्र और उत्तरकुरु विद्यमान था। मालूम होता है, कि हिमालयके दक्षिण आर्यावर्त्तके अन्तर्गत मद्रदेश और कुरुदेश उस समय दो भागोंमें विभक्त हुआ था तथा आर्यावर्त्तके अन्तर्गत मद्रदेशके उत्तर जो देश था वही उत्तरमद्र और कुरुदेशका उत्तरी देश उत्तरकुरु था। आर्यावर्त्तके प्रत्यन्तदेशके वाद जो सब देश और महादेश हैं, वहां आर्य वा अनार्यका कोई विचार न था।

मनुकी उक्ति ही इस बातको समर्थन करती है। परन्तु इस उत्तर-कुरुदेशमें उस समय आर्यगण क्यों जाते थे उसकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि उत्तर-कुरुका नैसर्गिक सौन्दर्य और स्वास्थ्य ही उनके चित्तको आकर्षण करता था। वहांके लोग भी शान्तिप्रिय, तपःपरायण और देवस्वभावसम्पन्न थे। इस कारण वह पुण्यमय देवक्षेत्र जनसाधारणके लिये अजेय है, क्योंकि, वे लोग दैवशक्तिमें प्रबल थे। ऐतरेयब्राह्मणके ८।४।६ मंत्रमें "देवक्षेत्रं वै तन्न वैतन्मर्त्यो जेतुमर्हति।" इस प्रकार देवक्षेत्रका उल्लेख है। ये देवक्षेत्रवासी कैसे महाबलिष्ठ थे; वह महाभारतके सभापर्वमें अर्जुन-दिग्विजयप्रसङ्ग पढ़नेसे ज्ञात होता है।

"तांस्तु सान्त्वेन निर्जित्य मानसं सर उत्तमम्।
ऋषिकल्पांस्तथा सर्वान् ददर्श कुरुनन्दनः॥ **
तत एवं महावीर्य्यं महाकाया महाबलाः।
द्वारपालाः समासाद्य हृष्टा वचनमब्रुवन्॥
पार्थ नेदं त्वया शक्यं पुरं जेतुं कथञ्चन।
उपावर्त्तस्व कल्याण पर्याप्तमिदमच्युत॥ **
नचापि किञ्चिज्जेतव्यमर्जुनात्र प्रदृश्यते।
उत्तराः कुरवो ह्येते नात्र युद्धं प्रवर्त्तते॥"

(भारत २।२८।४-१३)

यही उत्तरकुरु अभी रूस कहलाता है। यहांके राजाने युधिष्ठिरको करपण्यस्वरूप दिव्य वस्त्र और आभरणादि तथा दिव्य क्षौमाजिनादि दिये थे।

एक दूसरे देशका नाम कुरुवर्ण है। वहां भी आर्यगण जाते आते थे। अभी वह साइबेरिया नामसे प्रसिद्ध है। रामायण और महाभारतमें यह देश स्वर्गरूपमें वर्णित हुआ है।

'अहो सहशरीरेण प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम्।
उत्तरान् वा कुरून् पुण्यनथवाप्यमरावतीम्॥'

(भारत १३।५४।१६)

फिर उक्त पर्वके ५७वें अध्यायके ३३वें श्लोकमें लिखा है, कि स्वाध्यायचरित सर्वगुणान्वित ब्राह्मणोंको सर्वगुणसम्पन्न नैवेशिक प्रदान करनेसे परलोकमें सुख संभोगका अधिकारी होता है।

इसके बाद मध्यदेश है। कुरु, पञ्चाल, शिवि और सौवीर ये चारों प्रदेश "मध्यमायां दिशि" कहलाते हैं, प्रत्येक राज्यका एक एक राजा शासन करते थे। श्रुतिमें जिस वशोदेशका उल्लेख है वही महाभारतप्रसिद्ध शिवि जनपद है।

इससे अच्छी तरह समझमें आता है, कि ऐतरेय-ब्राह्मणकालमें आर्यनिवासकी सीमा बहुत दूर तक फैली हुई थी। उस समय हिमालयके दक्षिण पार्श्वकी निम्नभूमिमें किरातजातिकी वासभूमि जो किरातनगरी विद्यमान थी वही आर्यावर्त्तकी पूर्वसीमा है। दक्षिण और भरतवंशधरोंका अधिकृत सत्वत राज्य आर्यावर्त्तके अन्तर्गत था। पश्चिममें गिरि और गिरिनदी समाकीर्ण गान्धार देशादिके अन्तर्भुक्त बहुतसे ग्राम ही आर्यावर्त्तकी सीमा तथा उत्तरमें अजेय उत्तरकुरु ही आर्य्यावर्त्तकी उत्तरी सीमा है। उक्त ब्राह्मणके "एतेऽन्ध्राः पुण्ड्राः शवराः पुलिन्दाः मुतिबा इत्युदन्त्या बहवो भवन्तीति, (ऐतरेयब्रा० ७।३।६) वचनसे उक्त अन्ध्रादि जाति प्रत्यन्तदेशवासी अनार्य समझी जाती हैं। अतएव उन सब देशोंकी मध्यस्थित भूमि ही आर्यभूमि थी, इसमें जरा भी संदेह नहीं। प्रत्नतत्त्वविदोंकी आलोचनासे जाना गया है, कि अन्ध्रजाति एक समय दक्षिण भारतमें प्रबल थी। पुण्ड्रदेश कहनेसे वर्त्तमान बगुड़ा, मालदह दिनाजपुरके निकटस्थ देश समझे जाते हैं। शवर, पुलिन्द और मुतिब जाति विन्ध्यगिरिवास म्लेच्छ जातिविशेष है, अतएव उस समय विन्ध्यगिरिके उत्तर, दिनाजपुरके पश्चिम और गान्धरादि देशके पूर्व जो विस्तीर्ण उत्तरभारत-भूभाग है, वही आर्यावर्त्त नामसे प्रसिद्ध था।

शतपथब्राह्मणके १।३।३।१०-१६ मन्त्रमें विदेघ और माथव नामके दो जनपदका उल्लेख है—"विदेघोह माथवोग्नि वैश्वानरं मुखे बभार। * * तत एतर्हि प्राचीनं बहवो ब्राह्मणस्तद्धा क्षेत्रतरमिवास स्रावितवमिवास्वादितमग्निना वैश्वानरेणेति। तदु हैतर्हि क्षेत्रतरमिव * * * सैवाप्येतर्हि कोशलविदेहानां मर्यादा। ते हि माथवा।"

इस आख्यानसे ज्ञात होता है; कि विदेह नामक मैथिल जनपद प्राचीन कालमें आर्यभूमिके अन्तर्गत था, किन्तु

उस समय भी दक्षिण-मगध आर्यावर्त्तके अन्तर्भुक्त न हुआ। परवर्त्ती कालमें पतञ्जलिकृत महाभाष्यसे मालूम होता है, कि दक्षिण मगध आर्यावर्त्तकी सीमाके अन्तर्गत हुआ था।

पतञ्जलिने आर्यावर्त्तकी जो सीमा निर्देश की है वह इस प्रकार है,—

"कः पुनरार्य्यावर्त्तः? प्रागादर्शात् प्रत्यक्कालकवनात् दक्षिणेन हिमवन्तं उत्तरेण पारियात्रम्।" (२।४।१०) टीकाकार कैयटके मतसे आदर्श नामका एक पर्वत था। वह आर्यावर्त्तकी पश्चिमी सीमा तथा पूर्वोक्त श्वेत पर्वतका दक्षिणांश सीमापर्वत था। इसे लोग अञ्जन पर्वत भी कहते थे। वर्त्तमान कालमें वह सुलेमान पर्वतश्रेणी कहलाता है। आर्यावर्त्तकी पूर्वी सीमा पर कालकवन था। वही कालकवन धर्मारण्यके पूर्व और दक्षिण मगधके पश्चिममें अवस्थित बकासुर (वर्त्तमान बक्सर) प्रदेशका सुप्रसिद्ध ताड़कवन है। प्राचीन कालमें वह वन कालयवनके अधिकारमें रहनेसे कालवन वो कालकवन कहलाता था। हरिवंश और विष्णुपुराणमें (५।२३।५) कालयवनके साथ मगधराज जरासन्धकी मित्रताकी बातें लिखी हैं। उससे कालकवन और मगधका सामीप्य ही समझा जाता है। उस समय पूर्व मगधमें अनार्यगण रहते थे। पतञ्जलिने लिखा है—

"हम्मतिः सुराष्ट्रेषु रंहतिः प्राच्य मगधेषु। गमिमेव त्वार्य्याः प्रयुञ्जते।" (महाभाष्य प॰प॰आ॰)

इससे जाना जाता है, कि सौराष्ट्रजनपद और प्राच्यमगधीय कुसुमपुर आर्यावर्त्त सीमाके बहिर्भूत था। इसके सिवा शतपथमें वाह्लीक (१।६।३।३) और कम्बोज (२।१।३।४) शब्दका उल्लेख है। पाणिनिके ५।३।११७; ४।१७५ और ४।३।६३ सूत्रमें तथा महाभारतके द्रोणपर्व—११७वें और १५५वें अध्यायमें कम्बोज और वाह्लिकोंका विवरण वर्णित है। वह जनपद पहले आर्यावर्त्तके अन्तर्गत था।

प्रोक्त भृगुसंहितामें मनुने आर्यावर्त्तकी सीमा इस प्रकार निर्दिष्ट की है—

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥"
(मनु २।२२)

अर्थात् उत्तर और दक्षिणमें विन्ध्यागिरिका मध्यवर्त्ती भूभाग आर्यावर्त्त है। यह आर्यभूमि ब्रह्मावर्त्त, ब्रह्मर्षिदेश, मध्यदेश और यज्ञिय देश नामक चार भागोंमें विभक्त है। उसकी प्रान्तभूमि म्लेच्छभूमि कहलाती है।

"सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते॥
कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरम्॥
हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग् विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयोगाच्च मध्यदेशः प्रकीर्त्तितः॥
कृष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः।
स ज्ञेयो यज्ञियो देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परम्॥"
(मनु २।१७, १९, २१, २३)

यही तो आर्यावर्त्त है। इसके बहिर्भागमें अनार्य और यवनोंका वास है। वामनपुराणमें लिखा है, "पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः। आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे।" (वामनपुराण १३।४०) अतएव उस समय खोरासान, तुरुस्क, आन्ध्र आदि प्रदेश म्लेच्छदेश हुए थे। उसके साथ साथ दक्षिणवङ्ग, अङ्ग, पूर्वमगधादि देश भी कृष्णसारविहीन अयज्ञियत्वके कारण म्लेच्छदेश समझा जाता था।

इसी कारण—

"अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्राविना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति॥"

इस स्मृति वचनसे वहां अवैदिक प्रभावका होना साबित होता है। इन सब देशोंमें जन्म होने पर भी द्विजके यज्ञार्थ उक्त ब्रह्मावर्त्तादि चार देशोंका आश्रय लेना कर्त्तव्य है। (मनु २।२४)

प्राच्यमगध अर्थात् पटना अञ्चलमें, अङ्ग प्रदेश अर्थात् भागलपुर-आदि स्थानोंमें पीछे शाकलद्वीपिब्राह्मण बङ्गमें

आ कर बस गये हैं। कुलप'जी ग्रंथ ही उसका प्रमाण है। उसी प्रकार आगे चल कर कलिङ्ग और सौराष्ट्र प्रदेशमें ब्राह्मण बस गये थे। पाणिनिके ३।२।११४ सूत्र-भ ष्यमें भगवान् पतञ्जलिने कहा है, "नो कलिङ्गान् जगाम" कलिङ्गराज्यमें तीर्थयात्राको छोड़ कर जाना निषिद्ध था। वर्त्तमान मेदिनीपुरसे ले कर तैलङ्ग देशांत पर्यन्त त्रिकलिङ्ग है अर्थात् उत्कलिङ्ग, मध्यकलिङ्ग और कलिङ्ग है।

अपेक्षाकृत परवर्त्ती समयमें अर्थात् अमरकोषके प्रणेता अमरसिंहके साथ भी आर्यावर्त्त प्राच्य, उदीच्य, प्रत्यन्त और म्लेच्छ देशमें विभक्त था।

'आर्यावर्त्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः।" (अमर-कोष २।१।८)

अमरसिंहके समय शरावती नदी प्राच्य और उदीच्य सीमामें पड़ती थी। उस आर्यावर्त्तका पूर्वदक्षिणदेश प्राच्य, पश्चिमोत्तर उदीच्य, प्रत्यन्त म्लेच्छ और मध्य-देश मध्यांशमें ही अवस्थित था। (२।१।६।७)

इस शरावतीके बाद जो अनार्यावास था वह काशिकावृत्तिके श्लोकोंसे स्पष्ट प्रमाणित होता है।

''प्रागुदञ्चौ विभजते हंसः क्षीरोदके यथा।
विदुषां शब्दसिद्ध्यर्थं सा नः पातु शरावती।"
(१।१।७५ वृति)

इसीसे पाठक समझ सकेंगे, कि आर्योंने वाणिज्य-केही ले अनार्यादि निवासमें पदार्पण कर उस स्थानको अधिकार कर लिया था। जब पश्चिम गान्धारसे पारस्य सीमा तक आर्यावास यवनोंके दखलमें आ गया, तब उन लोगोंने जह्नावी, यमुना और सार-स्वत आदि प्रवाहित प्रदेशमें अपने लीलाक्षेत्रको दुर्भेद्य कर रखा था। इसके बाद वे लोग दक्षिणमें विन्ध्य-पादमूलस्थ नर्मदा तट तक पहुंच गये। ऋक्संहिताके १।३०।६ मन्त्रमें "अनुप्रत्नस्योकसो हुवे तुविं प्रतिं नरम्।" वाक्यमें पुराने आवासका उल्लेख रहनेसे पाश्चात्य पण्डितोंका कहना है, कि सारस्वत प्रदेशवासी आर्योंके आदिपुरुषोंका वास मध्यएशियाखण्डमें था, पीछे उन्होंने भारतमें आ कर उपनिवेश स्थापित किया है। किन्तु ऊपर कहे गये परिमाणसे हम इसको कभी भी युक्तिसंगत नहीं मान सकते।

वेद—एक कवि। इन्होंने सङ्गीतपुष्पाञ्जलि और सङ्गीत-मकरन्द नामक ग्रन्थ राजा मकरन्द श्रीसाहके लिये लिखे थे।

वेद—निम्न श्रेणीकी एक जाति।

वेदक (सं० त्रि०) ज्ञापक, परिचय करानेवाला।

वेदकट्टमड़ गु—मन्द्राज प्रदेशके सलेम जिलान्तर्गत उत्तङ्-रई तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहां तथा इसके चारों ओर बहुतसे प्राचीन निदर्शन दिखाई देते हैं।

वेदकर्त्ता (सं० पु०) १ वेदरचयिता, वह जिसने वेदोंकी रचना की। २ सूर्य। (भारत वनपर्व) ३ शिव। (पञ्चरत्न १।६।१५) ४ विष्णु। (पञ्चरत्न ४।३।५५) ५ वर पक्षके बड़े बूढ़े जो विवाह हो चुकनेके उपरान्त वेदी पर बैठे हुए वर और वधूको आशीर्वाद देनेके लिये जाते हैं।

वेदकविस्वामी—विद्यापरिणयनाटकके रचयिता।

वेदकार (सं० पु०) वेदकर्त्ता। (कुसुमा० ३७२)

वेदकारणकारण (सं० क्ली०) श्रीकृष्ण।
(पञ्चरत्न १।१२।७५)

वेदकुम्भ (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

वेदकौलेयक (सं० पु०) शिवका नामान्तर। (शब्दार्थचि०)

वेदगङ्गा—दाक्षिणात्यमें प्रवाहित एक नदी। यह बम्बई प्रदेशके कोल्हापुर राज्यसे निकल कर दुधगङ्गाकी शाखा रूपमें धीरे धीरे बेलगाम् जिलेके उत्तरसे आ कर (अक्षा० १६° ३५' उ० और देशा० ७४° ४२' पू०) कृष्णानदीमें मिली है।

वेदगर्भ (सं० पु०) वेदा गर्भे अन्तरे यस्य। १ ब्रह्मा। (भाग० ३।४।२४) २ ब्राह्मण।

वेदगर्भा (सं० स्त्री०) १ सरस्वती नदी। २ रेवा नदी।

वेदगर्भापुरी—एक प्राचीन देवक्षेत्र। ब्रह्माण्डपुराणोक्त वेदगर्भापुरी माहात्म्यमें इसका विशेष विवरण दिया गया है।

वेदगाथ (सं० पु०) ऋषिभेद। (हरिवंश)

वेदगुप्त (सं० त्रि०) वेदो गुप्तो येन। १ श्रीकृष्ण। २ पराशरके एक पुत्रका नाम।

वेदगुप्ति (सं० स्त्री०) वेदानां गुप्तिः। ब्राह्मणादि कर्तृक वेदरक्षा।

वेदगुह्य (सं० पु०) विष्णु ।

वेदघोष (सं० पु०) ब्रह्मघोष, वेदध्वनि ।

वेदचक्षुस् (सं० क्ली०) ज्ञानचक्षु ।

वेदजननी (सं० स्त्री०) वेदस्य जननी माता । वेदमाता, सावित्री ।

वेदज्ञ (सं० त्रि०) वेदं जानातीति ज्ञा-क । १ वेदविद्, वेदविहित कर्म जाननेवाले । २ ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मज्ञानी । (मनु १२।१०१)

वेदतत्त्व (सं० क्ली०) वेदस्य तत्त्वं । वेदका तत्त्व, वेद निहिततत्त्व ।

वेदतत्त्वार्थ (सं० पु०) वेदनिहित विषयोंका तात्पर्यज्ञान । (मनु ४।९२)

वेदता (सं० त्रि०) स्तुतिकारक । (ऋक् १०।९०।११)

वेदतीर्थ—पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

वेदत्व (सं० क्ली०) वेदका भाव या धर्म । (हरिवंश)

वेददर्श (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषिका नाम । अथर्ववेदविद् मुनि सुमन्तुने वेददर्शको अथर्ववेद पढ़ाया था । (भागवत १२।७।१)

वेददर्शन (सं० क्ली०) १ वेदमन्त्रदृष्टि । २ वह जो देखनेमें वेदोंका स्वरूप ज्ञान पड़े ।

वेददर्शी (सं० त्रि०) वेदं वेदार्थं पश्यति दृश-णिनि । वेदार्थद्रष्टा, वह जो वेदोंका ज्ञाता हो ।

वेददान (सं० क्ली०) वेदविषयक उपदेश दान, वेद पढ़ाना ।

वेददीप (सं० पु०) महीधरकृत शुक्लयजुर्वेदका भाष्य ।

वेदधर (सं० पु०) वासवदत्तावर्णित व्यक्तिभेद ।

वेदधर्म (सं० पु०) वेदविहितः धर्मः । १ वेदोक्त या वेदविहित धर्म । २ पैलके एक पुत्रका नाम ।

वेदध्वनि (सं० पु०) वेदस्य ध्वनिः । वेदघोष ।

वेदन (सं० क्ली०) वेदना देखो ।

वेदना (सं० स्त्री०) विद-ल्युट्, पक्षे (घट्टिवन्दिविदिभ्य उपसंख्यानं । पा ३।३।१०७) १ दुःख या कष्ट आदिका होनेवाला अनुभव, व्यथा, तकलीफ । पर्याय—अनुभव, संवेद, ज्ञान, दुःख । २ बौद्धोंके अनुसार पांच स्कन्धोंमेंसे एक स्कन्ध । ३ विवाह । ४ चिकित्सा, इलाज । ५ त्वक्, चमड़ा ।

वेदनावत् (सं० त्रि०) वेदना-अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वत्वं । वेदनायुक्त ।

वेदनिन्दक (सं० पु०) वेदं निन्दतीति निन्द-ण्वुल् । १ वह जो वेदोंकी निन्दा करता हो, वेदोंकी बुराई करनेवाला । २ नास्तिक । ३ भगवान् बुद्धका एक नाम । ४ बौद्धधर्मका अनुयायी ।

वेदनिधितीर्थ—आनन्दतीर्थ-प्रवर्त्तित सम्प्रदायके एक गुरु । ये पहले प्रद्युम्नाचार्य नामसे प्रसिद्ध थे । विद्याधीश तीर्थके बाद इन्होंने आचार्यपद पाया ।

वेदनिर्घोष (सं० पु०) वेदस्य निर्घोषः । वेदघोष, वेदपाठ ध्वनि ।

वेदनीय (सं० त्रि०) १ ज्ञातव्य, जानने योग्य । २ वेदनायोग्य, कष्टदायक ।

वेदनूर—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यान्तर्गत एक नगर । यह समुद्रकी तहसे ४ हजार फुट ऊंचेमें अवस्थित है । इसका दूसरा नाम हैदर नगर भी है । एक समय यह नगर धनजनसे परिपूर्ण था । १७६३ ई०में हैदर अलीने इस नगरको अधिकार किया और लूटा । प्रवाद है, कि उसने इस नगरसे १२० करोड़ रुपयेका धनरत्न संग्रह किया था । हैदरने यहां टकसाल घर खोला और अपने नाम पर सिक्का चलाया । वह सिक्का हैदरी-पगोडा कहलाता था । १७८३ ई०में अङ्गरेज सेनापति जेनरल माथिउसने यह स्थान दखल किया । किन्तु कुछ समय बाद ही टीपूसुलतानकी सेनाने नगरको आक्रमण कर तहस नहस कर डाला । उस समय सभी नगरवासी टीपूके हाथ बन्दी हुए थे । तभीसे यह नगर क्रमशः श्रीहीन होता आ रहा है । यहांकी जनसंख्या डेढ़ हजारसे ऊपर है ।

वेदनूर—राजपूतानेके आरावल्ली पर्वतपादमूलस्थ एक सामन्त-राज्य और नगर । यह मेवार राज्यकी सीमाके अन्तर्गत है । यहांके एक प्राचीन सरदारका नाम रावसुरतान था । राजस्थानका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि राव सुलतान सोलङ्की वंशीय राजपूत तथा अनहलवाड़के सुविख्यात बलहरा राजवंशके वंशधर थे । १३वीं सदीमें वे पितृराज्यसे विताड़ित हो मध्यभारत आये और टङ्कथोड़ प्रदेश तथा बूनास् नदी तीर-

वहाँ स्थानको जीत कर राज्यशासन करने लगे। इसके बाद अफगान सरदार लिल्लाने उनसे थोड़ा राज्य छीन लिया। अब केवल वेदनूर ही उनके अधिकारमें रह गया। उनकी कन्या पृथ्वीराजपत्नी तारावाईने कैसी वीरतासे चौहानकुलगौरवकी रक्षा की थी, भारतके इतिहासपटमें उसका पूर्ण चित्र अङ्कित है।

पृथ्वीराज और ताराबाई देखो।

वेदपथ (सं० पु०) वेदस्य पन्था, पच् समासान्तः। वेद विहितमार्ग, वेदनिर्दिष्ट पथ।

वेदपाठ (सं० पु०) वेदस्य पाठः। वेदाध्ययन।

वेदपारग (सं० पु०) वेदस्य पारं गच्छतीति गम ड। १ वेदवेत्ता, वह जो वेदोंका ज्ञाता हो। २ वैदिक कर्ममें पारदर्शी, वह जो वैदिक कर्मोंका ज्ञाता हो।

वेदपुण्य (सं० क्ली०) वेदपाठेन जातः पुण्यं। वेदाध्ययन-जात पुण्य, वह पुण्य जो वेद पढ़नेसे होता है।

वेदपुर—दाक्षिणात्यका एक प्रधान नगर। (दिग्विजयप्र०)

वेदपुरुष (सं० पु०) १ वेदरूप पुरुष। २ मूर्त्तिमान् वेद।

वेदप्रदान (सं० क्ली०) वेदस्य प्रदानं। वेददान। उपनयनके बाद आचार्य वेददान करते हैं, इसीसे वे पिता स्वरूप हैं।

वेदप्रपद् (सं० स्त्री०) वेदवचन।

वेदफल (सं० क्ली०) वेदविहित कर्मानुष्ठानके लिये फल. वेदविहित यागयज्ञादि कर्म करनेसे जो फल-लाभ होता है, आचारभ्रष्ट ब्राह्मण वेदनिर्दिष्ट वह फल नहीं पाते। (मनु १।१०९)

वेदबाहु (सं० पु०) १ पुलस्त्यके एक पुत्रका नाम। २ श्रीकृष्ण। ३ रैवत मन्वन्तरोक्त सप्तलोकभेद।

(मार्कण्डेयपु० ७५।७३)

वेदबीज ((सं० पु०) श्रीकृष्ण। (पञ्चरत्न ११२१७५)

वेदब्रह्मचर्य (सं० पु०) वेदोपदेशलाभार्थं माणवकका ब्रह्मचर्य। (आश्व० गृह्य० १।२२।३)

वेदब्राह्मण (सं० पु०) १ वेदज्ञ ब्राह्मण। २ वेदान्तर्गत ब्राह्मणभाग।

वेदभाष्यकार (सं० पु०) वह जिन्होंने वेदमंत्रादिकी भाष्य रचना की है। सायणाचार्य, महीधर, प्रभृति।

वेदभू (सं० पु०) देवगणभेद। (भारत अनुशासनपर्व)

वेदभृत् (सं० पु०) ऋषिभेद।

वेदमंत्र (सं० पु०) वेदस्थोः मंत्रः। १ वेदोंमें आए हुए मंत्र। २ पुराणानुसार एक जनपदका नाम। ३ इस जनपदका निवासी। (मार्क०पु० ५८।६)

वेदमय (सं० पु०) वेद स्वरूपार्थं मयट्। वेदस्वरूप।

वेदमातृ (सं० स्त्री०) वेदानां माता। १ गायत्री, सावित्री। २ दुर्गा। (देवीपु० ४५ अ०) ३ सरस्वती।

वेदमातृका (सं० स्त्री०) वेदानां मातृका। सावित्री।

वेदमित्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

(ऋक्प्राति० १।११)

वेदमित्र—ऋक्-प्रातिशाख्यभाष्यके प्रणेता, विष्णुमित्रके पिता, उवटने इनका नामोल्लेख किया है।

वेदमिश्र—१ पारस्करगृह्यप्रकाश और वशिष्ठस्मृति-टीकाके रचयिता। २ शान्तिभाष्यके प्रणेता।

वेदमुख्या (सं० स्त्री०) सपक्षमत्कुण, पंखदार खटमल।

वेदमुण्ड (सं० पु०) असुरभेद।

वेदमूर्त्ति (सं० पु०) १ सूर्यदेव। (मार्क०पु० १०९।२२) २ वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सम्मानसूचक उपाधि। ३ वह जो वेदोंका बहुत बड़ा ज्ञाता हो।

वेदमूल (सं० त्रि०) वेद जिसकी भित्ति है, वेदमूलक।

वेदयज्ञ (सं० पु०) वेदाध्ययनरूप यज्ञ, वेदपाठ।

(मनु ४।१८३)

वेदयितृ (सं० त्रि०) विद् णिच् तृच्। ज्ञापयिता, जाननेवाला।

वेदर—हिन्दूकवि सनाथ सिंहका मुसलमानी नाम। ये १७५० ई०में विद्यमान थे।

वेदर—एक मुसलमान ऐतिहासिक। इनका असल नाम इमाम बक्स था। ये अम्बालाके रहनेवाले थे। "तारीख सआदत्" नामक इतिहास इनका लिखा हुआ है। उक्त ग्रन्थमें इन्होंने अयोध्याके सुप्रसिद्ध नवाब सुजा उद्दौलासे ले कर सआदत अली खाँ तक शासनकर्त्ताओंकी वंशकहानी और वीरताका वर्णन किया है। इन्होंने अयोध्याके नवाब नासिर उद्दीन हैदरके शासनकालमें १८१२ ई०को उक्त ग्रन्थ समाप्त किया था। इनकी बनाई "गुलशन-ई-सआदत" आदि अनेक मसनवी पाई जाती हैं।

वेदरक्षण (सं० क्ली०) वेदकी रक्षा ।

वेदर वख्त—दिल्लीश्वर अहमदशाहके पुत्र । १७८८ ई०में गुलाम कादर शाहने आलमको कैद किया और १ली सितम्बरको वेदरको सम्राट् बनाया । उन्होंने सिर्फ एक मास बारह दिन राज्य किया था । उसी सालकी १२वीं अक्टूबरको मराठा सेना जब दिल्ली पहुंची, तब वेदर बखत भयसे भाग गये । पीछे शाह आलमके हुकुमसे वे पकडे, और मार डाले गये ।

वेदर वखत्—दिल्लीश्वर आदिल शाहके पुत्र । १७०७ ई०की ८वीं जूनको आजिम शाहके सिंहासनाधिकार ले कर सम्राट् वहादुरके साथ युद्ध छिड़ गया । आगरा और ढोलपुरके मध्यवर्त्ती जजोवान नामक स्थानमें दोनों दलमें मुठभेड़ हुई । इस रणक्षेत्रमें वेदर और उनके भाई वलाजा पिताके साथ यमपुरको सिधारे ।

वेदरहस्य (सं० क्ली०) वेदानां रहस्यं । उपनिषद् ।

वेदराशि (सं० पु०) वेदानां राशिः । वेदसमूह । (मनु १।२१ कुल्लूक)

वेदराजस्वामी—महाभारत तात्पर्य निर्णयके प्रणेता ।

वेदवत् (सं० ति०) वेदं ज्ञानं अस्त्यस्य मतुप् मस्य व । ज्ञानयुक्त, ज्ञानी । २ वेदविशिष्ट ।

वेदवती (सं० स्त्री०) वेदवत् स्त्रियां ङीप् । १ कुशध्वज राजकन्या । यही दूसरे जन्ममें सीतादेवीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि राजा कुशध्वजने लक्ष्मीको कन्यारूपमें पानेके लिये कठोर तपस्या की । इस तपोवलसे कुशध्वजको पत्नी मालावतीने कालक्रमसे लक्ष्मोकी अंशरूपिणी एक कन्या प्रसव की थी । यह कन्या भूमिष्ठ होनेके बाद ही सूतिकागृहमें वेदध्वनि करने लगीं, इसलिये इनका वेदवती नाम हुआ । वालिकाने उत्पन्न होते ही स्नान कर तपस्याके लिये वनमें जा कर पुष्करतीर्थमें एक मन्वन्तर काल कठोर तपस्या की । इस तपस्यामें उनको जरा भी क्लेश नहीं हुआ । वरं नवयौवनसम्पन्ना हो उनका शरीर हृष्ट पुष्ट हो गया । उस समय वेदवतीने एकाएक आकाशवाणी सुनी—तुम जन्मांतरमें हरिको पतिरूपमें पाओगी । यह दैववाणी सुन कर वेदवती गन्धमादनपर्वत पर आ कर फिर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुई । इसी अवस्थामें लङ्केश्वर रावण एक दिन अकस्मात् उनके समीप आया । वेदवतीने अतिथिके ख्यालसे उसकी अर्घपाद्यादिसे पूजा की । रावणने वेदवती द्वारा दिये हुए फलमूलका भोजन न कर उनके निकट जा उनसे पूछा, 'कल्याणि! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो?' यह कह कर पापिष्ठ रावण कामबाणसे पीड़ित और मूर्च्छितप्राय हो कर उन मनोहारिणी पीनोन्नतपयोधरा वेदवतीको पकड़ कर उसी जगह विहार करने पर उद्यत हुआ ।

सती वेदवतीने कोप दृष्टिसे रावणको स्तम्भित कर दिया । इससे रावणका हाथ, पैर, मुख आदि सभी जड़ीभूत हुए । उस समय रावण उनका मन ही मन स्तव करने लगा । देवीने उसके स्तवसे सन्तुष्ट हो उसको पुनः प्रकृतिस्थ कर यह अभिशाप दिया, कि तुम मेरे लिये ही सवान्धव विनष्ट होगे । तुमने मेरा शरीर स्पर्श किया है, मैं इस देहको त्याग करती हूं, देखो । यह कह कर सतीने योगवलसे देहको परित्याग कर दिया । फिर रावण उस देहको उठा कर गङ्गामें डाल अपने स्थानको चल दिया ।

कालान्तरमें यह साध्वी जनकात्मजा रूपमें जन्म ग्रहण कर सीता नामसे ख्याता हुई । रावण इनके लिये सवंश नष्ट हुआ । देवीके अभिप्रायसे प्रकृत सीता अग्निके समोप रहीं और रावण छाया-सीताको हरण कर लङ्कामें ले गया । रावण-वधके बाद अग्निपरीक्षाके समय अग्निदेवने प्रकृत सीताको अर्पण किया ।

राम और अग्निके उपदेशानुसार इसे छाया सीताने भी पुष्करतीर्थमें तीन लाख वर्ष तक तपस्या की । इस तपोवलसे वे यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हो पाण्डव-रमणी द्रुपदात्मजा द्रौपदी नामसे प्रसिद्ध हुईं । (ब्रह्मवै०पु० प्रकृतिख० १३-१४) २ पारिपात्रपर्वतस्थ नदीविशेष । ३ एक अप्सराका नाम ।

वेदवती—दक्षिणभारतमें प्रवाहित एक नदी । इसके उत्तर ओर काराष्ट्र नामक विस्तृत जनपद है । यहांके ब्राह्मण काराष्ट्र ब्राह्मणके नामसे परिचित हैं । (सह्या० २।२।३)

सम्भवतः पुराणवर्णित यह वेदवती नदी इस समय वेदावती नदीके नामसे विख्यात है और तुङ्गभद्राकी शाखा रूपसे विद्यमान है। महिसुर राज्यके कदूर जिलेमें वावा बूदन पर्वतके पश्चिम ढालू देश हो कर वेद और अवती नामक दो पर्वतोंके बीचसे वहनेवाली स्रोतस्विनी धीर मन्थर गतिसे वहती है। उत्पत्तिस्थानसे वेद नदी गौरीहल्ल नामसे परिचित हुई है। यह अपने गर्भदेशमें अय्यङ्करे नामक सुवृहत् झीलका आकार परिणत कर फिर आगे वढ़ी है। इसके वाद इसने वेद नाम धारण किया है। इसी तरह अवती शाखा भी मध्यस्थलमें इसी तरह झीलका आकार वना कर उत्तर-पूर्वको ओर आ कर आपसमें कदूर नगरके दक्षिण मिल गई है। सङ्गमके वाद वेदावती नामसे यह नदी उत्तरपूर्वगतिसे प्रवाहित हो चित्तलदुर्ग जिलेमें होती हुई क्रमसे माड़िकनिवे गिरिकन्दर और हरियुर नगरको पार कर मन्द्राज प्रेसीडेन्सीके वेल्लरी जिलेमें आ गई है। यहां दोनों किनारेसे कई शाखा नदियोंसे पुष्ट हो कर वेदावती अघारी (पापवन्ध मुक्तकारिणी) नामसे उत्तरको ओर प्रवाहित हो कर वेल्लरी नगरके १० मील पश्चिममें हुचहल्ली ग्रामके निकट तुङ्गभद्रामें मिल गई है।

वर्षाऋतुके सिवा प्रायः सव समयमें ही इस नदीको पार किया जाता है। हरियुर जानेके रास्तेमें तथा परमदेवनहल्ली ग्राममें वेल्लरी व्राञ्च रेलपथके लिये नदी वक्ष पर पुल वना है।

वेदवदन (सं० क्ली०) वेदानां वदनमिव। १ व्याकरण। (गोलाध्याय) (पु०) वेदा वदने यस्य। २ ब्रह्मा। (देवीभाग० ७।३०।८)

वेदवाक्य (सं० पु०) १ वेदका कोई वाक्य। २ ऐसी वात जो पूर्ण रूपसे प्रामाणिक हो और जिसका खण्डन न हो सकता हो।

वेदवाद (सं० पु०) वेदस्य वादः। वेदवाक्य।

वेदवादिन् (सं० त्रि०) वेदं वदति वद-णिनि। वेदविद्, जो वेदोंका अच्छा ज्ञाता हो। (भागवत १५।२३)

वेदवास (सं० पु०) वेदानां वासो यस्मिन्। ब्राह्मण, वेद ब्राह्मणमें अवस्थान करते हैं, इसीसे ब्राह्मणका नाम वेदवास है।

वेदवाह (सं० त्रि०) वेदपाठक। (नीलकण्ठ)

वेदवाहन (सं० पु०) सूर्यदेव।

वेदवित्त्व (सं० क्ली०) वेदविदो भावः त्व। वेदवित्का भाव या धर्म, वेदज्ञान।

वेदविद् (सं० पु०) वेदान् वेत्तीति विद्-क्विप्। १ विष्णुका एक नाम। २ वेदज्ञ, वह जो वेदोंका ज्ञाता हो।

वेदविद्या (सं० स्त्री०) वेदरूपा विद्या। वेदरूप विद्या, वेदज्ञान।

वेदविद्वस् (सं० त्रि०) वेदं विद्वान्। वेदविद्, वेदज्ञ, जो वेदका ज्ञाता हो।

वेदविलासिनी—एक तन्त्रग्रंथ।

वेदविहित (सं० त्रि०) वेदसिद्ध।

वेदवृत्त (सं० क्ली०) वेदधर्म।

वेदवृद्ध (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

वेदवैनाशिका (सं० स्त्री०) नदीभेद।

वेदव्यास (सं० पु०) वेदं व्यासति पृथक् करोतीति वि-अस-अण्। मुनिविशेष, कृष्णद्वैपायन नामक प्रसिद्ध वेदविभागकर्त्ता।

एक वेदको जिन्होंने चार भागोंमें विभक्त किया था, वे ही वेदव्यास हैं।

ये साधारणतः माठर, द्वैपायन, पाराशर्य, कानीन, वादरायण, व्यास, कृष्णद्वैपायन, सत्यभारत, पाराशरि, सात्यवत, वादरायणि, सत्यवतीसुत, सत्यरत नामसे भी परिचित हैं।

महाभारतमें वेदव्यासका जन्मवृत्तान्त इस तरह लिखा है—एक दिन मत्स्यगंधा पिताकी आज्ञासे नाव खेनेमें लगी हुई थी। ऐसे समय तीर्थयात्राके लिये निकले पराशर मुनिने उसको देखा। अत्यंत रूपवती मधुरहासिनी मनोरमा उस वसुकन्याको देखते ही मुनिवर कामाभिभूत हो गये। मुनिने कहा, 'कल्याणि! मेरा मनोरथ पूर्ण करो।' इस पर कन्या बोली, 'हे भगवन्! देखिये, नदीके दोनों किनारे ऋषि लोग वर्त्तमान हैं, वे हम लोगोंको देख रहे हैं, इस समय हम लोगोंका समागम कैसे हो सकता है?' मत्स्यगंधाके इस तरह आपत्ति करने पर भगवान् पराशरने कुहासेकी सृष्टि की। अब समूचा देश अंधकारसे ढक गया।

किसीको कोई देख नहीं सकता था। इसके बाद महर्षि द्वारा सृष्ट इस अन्धकारको देख कर तपस्विनी कन्या विस्मित और लज्जित हुई। धीरे धीरे सत्यवतीने ऋषिवरसे कहा, 'भगवन्! मेरा विवाह नहीं हुआ है। आपके समागमसे मेरा कन्याभाव दूषित होगा। ऐसा होनेसे मैं किस तरह पितृकुलमें अवस्थान कर सकूंगी। आप इन सब बातों पर विचार कर जो उचित समझें, करें।'

सत्यवतीके ऐसे कहने पर पराशर परम सन्तुष्ट हो कर कहने लगे—मेरे सहयोगसे तुम्हारा कन्याभाव दूषित नहीं होगा। तुमको जो इच्छा हो, वरकी प्रार्थना कर सकती हो। मेरी प्रसन्नता कभी निष्फल नहीं जाती। इस पर सत्यवतीने अपनी देहमें सौगन्ध्य होनेकी प्रार्थना की। मुनिवरने तथास्तु कहा।

इसके बाद सत्यवतीने ऋतुमती और वरलाभसे सन्तुष्ट हो कर पराशर मुनिके साथ संगम किया। उसी समयसे उसका नाम गन्धवती हुआ। मनुष्य चार कोससे ही उसके शरीरकी गन्धका अनुभव करने लगे। इससे इसका दूसरा नाम योजनगन्धा भी है।

सत्यवतीने इस तरह उत्तम वर पा कर पराशरके मनोरथको पूर्ण किया और आप उसी समय गर्भवती हो गई। उचित समय पर उसने प्रसव किया। उस गर्भसे पराशरनन्दन उत्पन्न हुए। यह पुत्र कृष्णकाय थे और यमुनागर्भस्थ द्वीपमें जन्मे थे, इससे कृष्ण द्वैपायन कहलाये। वे जन्मते ही माताकी आज्ञासे तपस्या करने लगे। जाते समय वे मातासे कह गये थे, कि जब तुमको कोई जरूरत हो, मुझे स्मरण कर लेना। तुम्हारे स्मरण करते ही मैं आ जाऊंगा।

द्वैपायनने इसी तरह पराशरके औरस तथा सत्यवतीके गर्भसे जन्म लिया था। उन्होंने देखा, कि प्रत्येक युगमें धर्मका एक पैर कम होता जा रहा है और परमायु क्षीण हो रही है। तब उन्होंने वेदकी रक्षा और ब्राह्मणोंके प्रति अनुग्रह दिखलानेके लिये वेदका व्यास अर्थात् विभाग किया। इसीसे उनका नाम वेदव्यास पड़ा। उन्होंने सब वेदोंको विभाग कर शिष्य सुमन्तु, जैमिनी, पैल, वैशम्पायन और पुत्र शुकदेवको अध्ययन करा कर महाभारतका उपदेश दिया था। उन्होंने महाभारतकी एक संहिता प्रकाशित की थी।

(भारत आदिपर्व ६२ अ०)

कालक्रमसे सत्यवतीके साथ चन्द्रवंशीय क्षत्रिय राजा शान्तनुसे विवाह हुआ। कुरुकुल पितामह भीष्मने इस विवाहको स्वार्थ त्याग कर किस तरह सम्पन्न किया था, महाभारतके पढ़नेवालोंसे यह छिपा नहीं है। इसके बाद शान्तनु-तनय विचित्र वीर्यकी मृत्यु हो जाने पर सत्यवतीने व्यासको बुलाया और उन्हें विधवा पुत्रवधुओंसे नियोग करा कर धृतराष्ट्र और पाण्डुको उत्पन्न कराया था। धर्मात्मा विदुर भी व्यासनन्दन कहलाते हैं। भीष्म, पाण्डु और शान्तनु देखो।

हम पुराणोंसे जान सकते हैं कि वेदव्यासके पहले भिन्न भिन्न कल्पमें भिन्न भिन्न व्यास आविर्भूत हुए थे। कूर्म, वायु, और विष्णुपुराणमें २८ व्यासोंका उल्लेख है। वे विष्णु और ब्रह्माके स्वरूप कहे गये हैं। कल्प कल्पमें धर्मका अपलाप देख कर धर्मरक्षाके लिये स्वयं भगवान् ब्रह्माने कई व्यास रूपमें अवतीर्ण हो वेदकी रक्षा और विभाग किया था। व्यास व्यक्तिविशेषका नाम नहीं है। यह वेदविभागकारी ऋषियोंकी सम्मानजनक एक उपाधि है।

हमारे देशमें वेद-विभागकारियोंके लिये जैसे व्यास उपाधि है, वैसे ही यूनानियोंमें ज्ञानगरिमाव्यञ्जक होमरस (Homoros) उपाधि विद्यमान है; किन्तु हमारे व्यास शाश्वत है। वेदांतदर्शनकार, महाभारतकार, अष्टादश महापुराणकार और चारों वेदोंके विभागकर्त्ता व्यासदेवको एक व्यक्ति समझना भूल है। किन्तु इतना जरूर स्वीकार किया जा सकता है, कि किसी एक कल्पमें एक व्यास जो सम्पादन कर गये, दूसरे कल्पमें उसे लुप्तप्राय देख एक दूसरे ऋषिने उस शास्त्रकी मर्यादारक्षा करनेके लिये व्यास उपाधि धारण कर उस शास्त्रकी रक्षा की थी। वेदान्त, पुराण या महाभारत शास्त्र उनमेंसे एकका प्रणयन है।

नीचे २८ व्यासोंके नाम दिये जाते हैं—ये प्रथमादि द्वापरमें एकके बाद एक समुद्भूत हुए थे। जैसे—१ स्वयम्भू। २ प्रजापति या मनु। ३ उशना। ४ बृहस्पति।

५ सवितृ। ६ मृत्यु या यम। ७ इन्द्र। ८ वशिष्ठ। ९ सारस्वत। १० त्रिधामन्। ११ ऋषभ या त्रिवृषन्। १२ सुतेजा या भारद्वाज। १३ आन्तरिक्ष वा धर्म। १४ वपृश्रवन् या सुचक्षुः। १५ त्र्यारुणि। १६ धनञ्जय। १७ कृतञ्जय। १८ ऋतञ्जय। १९ भरद्वाज। २० गौतम। २१ उत्तम। २२ वाचश्रवस, वेण या नारायण। २३ सोमशुष्मायन या तृणविन्दु। २४ ऋक्ष वा वाल्मीकि। २५ शक्ति। २६ पराशर। २७ जातूकर्ण। २८ कृष्ण-द्वैपायन। व्यास देखो।

वेदव्यास—अन्नपूर्णास्तोत्र, प्रणवकल्प, माधवस्तवराज और वक्रतुण्डाष्टक नामक ग्रन्थके प्रणेता।

वेदव्यासतीर्थ—माध्वसम्प्रदायके एक गुरु। इनका असल नाम व्यासाचार्य था। ये रघूत्तमतीर्थके शिष्य थे। १५६० ई०में इनका देहान्त हुआ।

वेदव्यास स्वामी—एक स्मृतिशाखाके प्रवर्त्तक, स्मृत्यर्थ सागरमें इनका उल्लेख है।

वेदव्रत (सं० क्ली०) वेदाध्ययनानुरक्त, वह जो वेदोंका अध्ययन करता हो।

वेदशर्मन्—राजपूतानावासी एक कवि। १२७४ ई०में इन्होंने अर्बुद पर्वत परकी राणा समरसिंहकी शिला-लिपि लिखी थी।

वेदशब्द (सं० पु०) वेदोक्त शब्द, वेदध्वनि। (मनु १।२१)

वेदशाखा (सं० स्त्री०) वेदस्य शाखा। वेदकी शाखा।

वेदशास्त्र (सं० क्ली०) वेद एव शास्त्र। वेदरूप शास्त्र।

वेदशिर (सं० पु०) १ कृशाश्वके पुत्र। (भागवत ६।६।२०) २ अस्त्रविशेष। (लिङ्गपु० २४।६८)

वेदशिर—राजपूतानेके बीकानेर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ४६′ उ० तथा देशा० ७४° २२′ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां बहुतसे अग्रवाल वंशीय सेठ और अग्रवाल वणिकोंका वास है। यहां १० मन्दिर और कुछ छत्र भी देखे जाते हैं।

वेदशिरस् (सं० क्ली०) मार्कण्डेय और मूर्द्धण्याके गर्भजात पुत्र। कहते हैं, कि भार्गव लोगोंका मूल पुरुष यही था।

वेदशिरा—पन्द्रहवें द्वापरमें भगवान् रुद्र ब्राह्मणकुमार वेदशिराके रूपमें अवतीर्ण हुए। (लिङ्गपु० २४।६८)

वेदशीर्ष (सं० पु०) पर्वतभेद। (लिङ्गपु० २४।६८)

वेदश्रवा (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

वेदश्री सं०पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। (मार्कण्डेयपु० ७५।७३)

वेदश्रुत (सं० पु०) वसिष्ठके एक पुत्रका नाम। (भागवत ८।१।२३)

वेदश्रुति (सं० स्त्री०) १ वेदमन्त्रका श्रवण। २ वेदध्वनि। ३ नदीभेद। (रामायण २।४६।६)

वेदस् (सं० पु०) यज्ञभागप्रापक कर्मविषयक ज्ञान। (ऋक् ३।६०।१ सायण)

वेदस (सं० क्ली०) धन। (ऋक् १।७०।१०)

वेदसंन्यासिक (सं० त्रि०) वेदविहिताग्निहोत्रादि कर्मत्यागी। (मनु ६।८६)

वेदसंस्थित (सं० त्रि०) वेदयुक्त। (मार्क०पु० १०१।२०)

वेदसंहिता (सं० स्त्री०) वेदस्य संहिता। वेदकी संहिता, मन्त्र-ब्राह्मण। (मनु ११।२५६)

वेदसमाप्ति (सं० स्त्री०) वेदाध्ययनशेष। (आश्व० गृह्य० १।२२।१८)

वेदसम्मत (सं० त्रि०) वेदोक्त मतानुरूप।

वेदसम्मित (सं० त्रि०) वेदानुरूप परिमाणविशिष्ट।

वेदसार (सं० पु०) विष्णु।

वेदसिनी (सं० स्त्री०) नदीभेद। (वायुपुराण)

वेदसूत्र (सं० क्ली०) वेदमन्त्रानुरूप सूत्र।

वेदस्तुति (सं० स्त्री०) ब्रह्मस्तुति। भागवतका १०।८७वां अध्याय वेदस्तुति कह कर प्रसिद्ध है।

वेदस्पर्श (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

वेदस्मृता (सं० स्त्री०) नदीभेद। (भारत भीष्मपर्व)

वेदस्मृति (सं० स्त्री०) वेदस्मृता, नदीभेद। (भाग० ५।१६।१८)

वेदहीन (सं० त्रि०) वेदेन हीनः। वेदरहित, जो वेद नहीं जानते या जिन्हें वेदमें अधिकार नहीं है।

वेदाग्रणी (सं० स्त्री०) वेदानामग्रणी। सरस्वती। (राजनि०)

वेदाङ्ग (सं० क्ली०) वेदस्य अङ्गः। १ श्रुत्यवयव पद॰

प्रकार शास्त्र, वेदोंके अङ्ग या शास्त्र जो छः हैं और जिनके नाम इस प्रकार हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द।

"शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः।
छन्दोविचितिरित्येतैः षड़ङ्गो वेद उच्यते ॥" (शिक्षा)

इनमेंसे व्याकरणको लोग वेदोंका मुख, शिक्षाको नाक, निरुक्तको कान, ज्योतिषको आँख, कल्पको हाथ और छन्दको पैर मानते हैं। वेद देखो।

२ सूर्यदेव। (भारत वनपर्व) ३ द्वादश आदित्य-भेद, बारह आदित्योंमेंसे एक आदित्य।

वेदाङ्गतीर्थ—मध्वविजयटीकाके प्रणेता।

वेदाङ्गराय—१ अशौचचन्द्रिकाके रचयिता। २ महारुद्र-पद्धतिके प्रणेता। ३ पारसीप्रकाश और श्राद्धदीपिका-के रचयिता। ये गुजरातप्रदेशके श्रीस्थलवासी तिण्डल-भट्टके पुत्र थे। मुगल-सम्राट् शाहजहांके आदेशसे इन्होंने १६४३ ई०में पारसीप्रकाशकी रचना की।

वेदाचार्य (सं० पु०) वेदशास्त्रोपदेष्टा।

वेदाचार्य आवसथिक—स्मृतिरत्नाकरके प्रणेता।

वेदात्मन् (सं० पु०) १ विष्णु। २ सूर्यदेव।

वेदादि (सं० क्ली०) वेदानामादि, क्वचिदौपचारिकाः शब्दाः स्वलिङ्गमपि त्यजन्ति इति न्यायादस्य क्लीवत्वं। १ प्रणव, ओङ्कार। २ वेदका आदि।

वेदादिबीज (सं० क्ली०) वेदस्य आदौ प्रयुक्तं बीजं। प्रणव।

वेदाद्रि—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नन्दीग्राम तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह कृष्णा नदीके किनारे अवस्थित है। यहां एक प्राचीन दुर्ग तथा अन्यान्य अट्टालिकाओंका ध्वंसावशेष दिखाई देता है।

वेदाधिगम (सं० पु०) वेदस्य अभिगमः। वेद स्वीकरण, वेदविद्यालाभ। (मनु २।२)

वेदाधिदेव (सं० पु०) ब्राह्मण।

वेदाधिप (सं० पु०) वेदानामधिपः। चतुर्वेदका अधि-पतिग्रह। ऋग्वेदके अधिपति बृहस्पति, यजुर्वेदके अधिपति शुक्र, सामवेदके मङ्गल और अथर्ववेदके अधि-पति बुध हैं।

वेदाध्यक्ष (सं० पु०) श्रीकृष्ण। (हरिवंश)

वेदाध्ययन (सं० क्ली०) वेदस्य अध्ययनं। वेदपाठ, वेद पढ़ना।

वेदाध्याय (सं० पु०) वेदोपदेश।

वेदाध्यायिन् (सं० त्रि०) वेदमध्येति वेद-अधि-इ-णिनि। वेदपाठकारी, वेद पढ़नेवाला।

वेदानुवचन (सं० क्ली०) वेदवाक्य।

वेदान्त (सं० क्ली०) वेदानां अन्तः वेदान्तः। वेदका अन्त अर्थात् शेष भाग ही वेदान्त है। इस प्रकार अर्थ करके कोई कोई वेदके अवशिष्ट अंशको ही वेदान्त कहते हैं। उनका कहना है, कि ब्राह्मणग्रंथके साथ जो उपनिषद् अंश है, वही वेदान्त है; आभिधानिक हेम-चन्द्रका यही अभिप्राय है। फिर वैदान्तिक लोग कहते हैं, "वेदस्यान्तः चरमोद्देश्यः प्रदर्शिता यत्र स एव वेदान्तः।" अर्थात् जिसमें वेदका चरम उद्देश दिखाया गया है, वही वेदांत है। परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रीसदानंद योगीन्द्रने स्वरचित सुविख्यात वेदांतसार ग्रंथमें लिखा है, "वेदांतो नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुप-कारिणि शारीरकसूत्रादीनि च।"

श्रीमन्नृसिंह सरस्वतीने इस वेदांतसारकी टीकामें उक्त उद्धृत अंशकी जो व्याख्या की है, उसका अर्थ इस प्रकार है;—"उपनिषद् ही प्रमाण है" इस अर्थसे उपनिषत् प्रमाण अथवा उपनिषद् ही प्रमाणस्वरूप व्यवहृत हुआ है जिस शास्त्रमें वही उपनिषत् प्रमाण है। तदुपकारक शारीरकसूत्रादि भी वेदांत कहलाते हैं। अतएव उपनिषद् और शारीरकसूत्र ही वेदांत-शास्त्र है। अतएव वेदांतके सम्बन्धमें आलोचना करते समय उपनिषद् और सभाष्य ब्रह्मसूत्रकी आलोचना करना कर्त्तव्य है। उपनिषत्के सम्बन्धमें दूसरी जगह आलोचना की गई है। उसमें उपनिषद्के प्रतिपाद्य विषयका कुछ कुछ उल्लेख है। ब्रह्मविद्या ही उपनिषद् का विषय है। उप पूर्व नि पूर्व वध गति और अव-सादनार्थ सद् धातुके उत्तर क्विप् प्रत्यय करके यह शब्द बना है। धातुगत व्युत्पत्तिके अनुसार उपनिषत् शब्दका निम्नलिखित अर्थ प्रतिपन्न होता है। यथा—

(१) जो ब्रह्मविद्यामें आसक्त नहीं, उपनिषद् द्वारा उनके संसारकी सारत्व बुद्धि विनष्ट होती है, इसीलिये

इसका नाम उपनिषद् है। यहां "सद्" धातुका "वध" अर्थ लिया गया।

(२) इससे परम श्रेयःस्वरूप प्रत्यगात्म ब्रह्मपदार्थकी उपलब्धि होती है, इसीसे इस शास्त्रका नाम उपनिषद् हुआ है। यहां गत्यर्थमें (प्राप्त्यर्थः) सद् धातुका अर्थ गृहीत हुआ है।

(३) यह शास्त्र दुःख-जन्म-प्रवृत्तिमूलक अज्ञानको नष्ट करता है, इसीसे इसका नाम उपनिषद् है। यहां अवसादन अर्थ लिया गया है।

(४) सद् धातुके अवसादन अर्थमें यास्ककृत निरुक्तके भाष्यमें दुर्गाचार्यने भी उपनिषद् शब्दका एक व्युत्पत्तिगत अर्थ इस प्रकार किया है। यथा—"यया ज्ञानमुपगतस्य सतो गर्भजन्मजरामृत्यवो निश्चयेन सीदन्ति सा रहस्यं विद्या उपनिषदित्युच्यते।"

अर्थात् जिस विद्या द्वारा ज्ञानियोंके गर्भजन्मजरामृत्यु दोष सचमुच अवसन्न होते हैं, वही विद्या उपनिषद् कहलाती है।

यह औपनिषदी विद्या बहुत पुरानी है। किन्तु पाश्चात्य पण्डितोंमेंसे कोई कोई उपनिषदोंके पाणिनिके पीछेके ग्रन्थ बतलाते हैं। उनका कहना है, कि उपनिषद् पद पाणिनिके व्याकरणमें साधित नहीं हुआ है, इसलिये पाणिनिके समय उपनिषद् वा वेदान्तसाहित्यका बिलकुल प्रचार न था।

पाश्चात्य पण्डितोंका यह अभिनव सिद्धान्त हम लोगोंके लिये सचमुच बड़ा ही विस्मयजनक है। जिन्होंने पांच वैदिकसंहिता और ब्राह्मणग्रन्थको बड़े ध्यानसे पढ़ा है, उन्होंने अच्छी तरह देखा है, कि उन सब साहित्योंमें जगह जगह उपनिषद् लक्षणके वचन विकीर्ण हैं। फिर यह भी जाना जाता है, कि बहुतसे उपनिषद् ही ब्राह्मण और आरण्यकग्रन्थके अन्तर्भुक्त हैं। पाश्चात्य पण्डित ब्राह्मण-ग्रन्थको पाणिनिके पहलेके मानते हैं।

पाणिनीय गणपाठमें उपनिषत् पदका उल्लेख देखनेमें आता है—

(१) अनुगवनादिभ्यः (४।३।७३)

(२) वेतनादिभ्यो जीवति (४।४।१२)

इन दोनों सूत्रीय "ऋगयनादि" गणमें तथा 'वेतनादि' गणमें उपनिषत् शब्दका पाठ भी देखा जाता है। यह गणपाठ आज कल प्रचलित है, वह पाणिनीय नहीं है, यदि इस बातको स्वीकार किया जाय, तो पहले कोई भी पाणिनीय गणपाठ था, इसे अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। अन्यथा "ऋगयनादिभ्यः" तथा "वेतनादिभ्य" इत्यादि सभी जगह जो 'आदि' शब्दका व्यवहार देखा जाता है, उसकी सार्थकता नहीं रहती।

उपनिषत् शब्दसाधनप्रक्रिया केवल पाणिनीयमें नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते। वार्त्तिक वा महाभाष्यमें भी यह शब्द नहीं है। यहां तक कि, आधुनिक अनेक व्याकरणोंमें भी इस शब्दका उल्लेख नहीं है। इससे क्या समझा जायेगा, कि उपनिषत् शब्द आधुनिक समयसे भी अप्राचीन है?

पर हां, इतना जरूर है, कि अभी हम जो सर्व साकल्यमें २३५ उपनिषद्ग्रन्थके नाम पाते हैं, वे सबके सब वेदोपनिषत् नहीं हैं। किन्तु नहीं होने पर भी वेदज्ञगण शिष्योंके लिये वेदार्थबोधक अनेक उपनिषत् ग्रथित कर गये हैं। परवर्त्ती सभी उपनिषत् वेदोपनिषत् नहीं होने पर भी वे उपनिषद्के समान हैं, इसीसे इनका उपनिषद् नाम हुआ है। रामतापनी आदि कुछ साम्प्रदायिक उपनिषद् उन्हीं सब सम्प्रदायोंके ग्राह्य हैं। अल्लोपनिषत् नामक एक अति आधुनिक उपनिषद्का विषय दूसरी जगह विस्तृत भावमें आलोचित हुआ है जो नितान्त अग्राह्य है। उपनिषद् शब्द देखो।

परन्तु मन्त्ररूप और ब्राह्मणरूप उपनिषत् पाणिनीयके बहुत पहले थे, इसमें सन्देह नहीं। इसके बाद उपनिषत्के समान अनेक उपनिषत् ग्रथित हुए। यह बात पाणिनीय सूत्रपाठसे भी जानी जाती है। यथा—

"जीविकोपनिषदावौपम्ये।" (१।४।७९)

भट्टोजी दीक्षितने इस सूत्रकी जो व्याख्या की है उससे जाना जाता है, कि पाणिनिके समयसे पहले भी एक श्रेणीके वेदवित् पण्डित उपनिषद्ग्रंथ ग्रथित कर जीविका निर्वाह करते थे। भट्टोजी दीक्षितने लिखा है "उपनिषत्कृत्य" इसका अर्थ है "उपनिषद् ग्रन्थतुल्यग्रन्थकारणान्तरं"। पाणिनिके उक्त सूत्रका यह अर्थ सर्व वैयाकरणसम्मत है। जिन्होंने अपने सूत्रमें 'उपनिष-

तुल्य' आधुनिक उपनिषद्ग्रंथकी बात कही है, वे प्राचीन तम उपनिषद्की बात अच्छी तरह जानते थे, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

पाणिनिका और भी एक सूत्र है। यथा—

"पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः।" (४।३।११०)

पाणिनि जो भिक्षुसूत्रका विषय जानते थे, यह सूत्र ही उसका प्रमाण है। यह भिक्षुसूत्र ही वेदान्तदर्शनका बीजभूत है। भिक्षुसूत्र उपनिषद्के आधार पर लिखा गया है।

यास्कके निरुक्त ग्रन्थमें भी हम "उपनिषद्" शब्द देखते हैं। ऋग्वेदमें "यत्रा सुपर्णा" (ऋ० सं० २।२।१८।१) इत्यादि एक मन्त्र है। इस मन्त्रके अधिदेवता व्याख्यानमें यास्कने लिखा है—"इत्युपनिषद्वर्णा भवति।" (निरुक्त ३।२।६)

निरुक्तके भाष्यकार दुर्गाचार्यने इसीकी व्याख्या करनेमें उपनिषत् शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ किया है। इसके पहले उसका उल्लेख हो चुका है। अतएव वेदोपनिषद्ग्रन्थोंकी प्राचीनतामें सन्देह करनेका कोई भी कारण नहीं।

वैदिक उपासना और उपनिषत्।

उपनिषद् जो आधुनिक वा अनतिप्राचीन नहीं है, यह पूर्वलिखित युक्तियोंसे अच्छी तरह जाना जा सकता है। हम लोगोंका विश्वास है, कि वैदिक मन्त्रयुगके समय भी औपनिषदी शिक्षा तथा औपनिषदी उपासना इस देशमें प्रचलित थी। बहुत पहलेसे ऋषिगण ऋक्मन्त्रसे उपास्य देवताकी उपासना करते थे। संहितायुगके बहुत पहले वैदिक मन्त्र प्रचलित और प्रचारित था। उन सब मन्त्रोंमें भी उपनिषद्का मूलवीज निहित देखा जाता है। अतएव वेदान्तके उद्भवकालका निर्णय करना सहज नहीं है।

ऋक्संहितामें ऊषाकी स्तुति यथार्थमें ही कवित्वमयी है। जिन्होंने वेदान्तशास्त्रका उपनिषत-अंश पढ़ा नहीं केवल ब्रह्मसूत्र मन्त्र पढ़ा है, वे समझ सकते हैं, कि वेदान्तमें उषा और अग्नि आदि देवताओंके नामका बिलकुल उल्लेख नहीं है अथवा ये सब देवता कह कर स्वीकृत नहीं हुए हैं। किन्तु यह सिद्धान्त सम्पूर्ण भ्रमात्मक है। उपनिषद् वेदान्त शास्त्र होने पर भी इसमें वैदिक देवताओंकी मर्यादा अस्वीकृत नहीं हुई है। ब्रह्मज्ञानलाभ जीवकी मुक्तिका उपाय होने पर भी उषा और अग्निकी कथा उपनिषद्में भी आई है। उपनिषद् और वेदका वाह्यावयव भिन्न होने पर भी दोनोंके अभ्यन्तर एक महान् अखण्ड्य उपास्य पदार्थ स्वीकृत हुए हैं, वेदके साथ यह जो एक ही सम्बन्धमें सूत्रित है, इसमें जरा भी संदेह नहीं। वेदमें जिन सब देवताओंके स्तोत्र दिखाई देते हैं, वेदान्त वा उपनिषद्में भी उन सब देवताओंके नाम आये हैं। प्रथम उषाकी बातें ही लिखी जाती हैं। यथा—बृहदारण्यकोपनिषद्में—

(१) "ऊषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः"

(बृ० आ० उ० १।१।१)

(२) "मधुनक्तमुतोषसः" (बृ० आ० उ० ६।३।६)

वेदान्तमें सूर्यकी गायत्रीमें स्तुति की गई है, वेदसंहितामें भी उनके सैकड़ों स्तोत्र देखनेमें आते हैं। वेदके इन प्रधान देवताका उपनिषद्में भी बड़े आदरसे पूजित देखते हैं। यथा—

१। देवो वरुणः प्रजापतिः सविता।

(छा० १।१२।५)

२। तत्सवितुर्वृणीमह इत्याचामति।

(छा० ५।२।७)

३। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

(बृ० आ० ६।३।६, मैत्रा० ६।७)

श्वेताश्वतर प्रभृति उपनिषद्में भी इस देवताका उल्लेख है। सूर्य प्रभृति अन्यान्य पदार्थका उल्लेख छान्दोग्य, बृहदारण्यक, तैत्तिरीय, कठ, मुण्डक, महानारायण और प्रश्नोपनिषद्में कई जगह दिखाई देता है। सामवेदीय ब्राह्मण संध्यावन्दनके समय इस प्रकार पढ़ते हैं—"सूर्ये ज्योतिषि परमात्मनि स्वाहा"

यह वैदिक उपास्यदेव उपनिषद्में भी उपासित हुए हैं। यथा—"सूर्ये ज्योतिषे जुहोमि।" इस मन्त्र द्वारा भी सूर्यमण्डलस्थित परमात्माकी ही उपासना की गई है।

वेदमें जो अग्नि साक्षात् सम्बन्धमें एक पार्थिव देवता कह कर पूजित होते थे, वेदान्तके ब्रह्मज्ञानके प्रबल प्रभावके समय भी उस अग्निका अनादर वा परित्याग नहीं हुआ। औपनिषद्-ज्ञानोज्ज्वल ऋषियोंने उस अग्निमें भी ब्रह्मसत्ताका अनुभव कर उच्चैःस्वरसे कहा है—

(१) "एतद्वै ब्रह्म दीप्यते यदग्निर्ज्वलति"

(कौषितकीउपनि० १२)

(२) "अग्निर्वा अहमस्मि।" (केन १७)

यहां 'अहं' शब्द परमात्मवाचक है। किन्तु फिर दूसरी जगह देखा जाता है, कि उपनिषत्प्रवक्ताओंने अग्निमें ही ब्रह्मकी सत्ताका अनुभव कर अग्न्यधिष्ठित ब्रह्मकी उपासना की है। ऐतरेय, कौषितकी, केन, तैत्तिरीय, कठ, श्वेताश्वतर और प्रश्न, विशेषतः छान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदमें कई जगह इसी प्रकार अग्निमें अधिष्ठित ब्रह्मका उल्लेख कर अग्निको ही आत्मा और अग्निको ही ब्रह्म कहा गया है। अन्यान्य देवताओंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार उल्लेख देखनेमें आता है।

असल बात यह है, कि वेदमें ब्रह्मतत्त्व विकीर्ण था; परवर्त्ती ऋषियोंने उन वाजोभूत मन्त्रोंका अवलम्बन कर अथच वैदिक देवताओंके मध्य उस "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थके अधिष्ठानकी उद्घोषणा कर वेदान्तशास्त्रका प्रसार किया है और उसके कलेवरको नये भावमें संगठित और सम्पुष्ट कर डाला है। हम क्रमशः वेदान्तकी उत्पत्ति, विकाश और विवर्त्तनका इतिहास लिखते हैं।

वेदमें एकेश्वरवाद।

वैदिक मन्त्रकी पर्यालोचना करनेसे देखा जायेगा, कि वैदिक युगके ऋषियोंकी उपासनामें भी एकेश्वरवाद है। जब जिस देवताके निकट प्रार्थना की गई तब उसी देवताको प्रधान समझ कर एकनिष्ठभावमें उन्हींकी प्रार्थनाका मन्त्र ऋक्संहितामें दिखाई देता है। ऋग्वेदके ७म मण्डल ३२वें सूक्तमें लिखा है—

"न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।"

(२३ ऋक्)

अर्थात् हे इन्द्र! तुम्हारे सिवा मेरे और कोई मित्र नहीं है, न सुख है और न कोई जन्मदाता ही है। स्वर्गमें या पृथिवी पर तुम्हारे जैसे शक्तिशाली कोई भी दिखाई नहीं देता।

"इन्द्र क्रतुं न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि॥"

अर्थात् हे शक्तिशाली इन्द्र! पिता जिस प्रकार पुत्रको ज्ञान देते हैं, तुम भी उसी प्रकार हम लोगोंको ज्ञान देते हो। तुम भी दुष्टोंके हाथसे बचाओ। हम लोग तुम्हारे हैं, तुम्हें छोड़ कर हमारे और कोई भी नहीं हैं। फिर हम लोगोंके कोई बल भी नहीं है। उपनिषद्के ब्रह्मकी और वेदके इन सब स्तुतिग्राही देवताओंकी जगह जगह एक ही प्रकारसे स्तुति की गई है। १म मण्डलके दशम सूक्तकी नवम ऋक्में लिखा है—

"आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः।
इदं स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम्॥"

अर्थात् हे इन्द्र! तुम्हारे कान सभी विषय सुननेमें समर्थ हैं। तुम हमारी प्रार्थनाकी रक्षा करना।

फिर १म मण्डलके १६०वें सूक्तमें सूर्यके स्तोत्रमें कहा गया है, "सूर्यने द्यूमण्डल और पृथ्वीको उत्पादन किया है, वे सभी जीवोंके उपकारी हैं। वे अनन्त ब्रह्माण्डके परिमापक हैं, हम उनका स्तव करते हैं।"

इस प्रकार अन्यान्य देवताके स्तोत्र भी ऋग्वेदमें देखे जाते हैं। वेदमन्त्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि ऋषिगण जड़के साथ चिन्मयतत्त्व और चिन्मयके साथ जड़तत्त्वको विजड़ित करके ही उपासना करते थे। किन्तु ऐसा होने पर भी वे जड़के उपासक न थे। ऋकोंका "मन्त्र" नाम रखा जाता था। यास्कने कहा है, "मननात् मन्त्रः" अतएव मन्त्र मानसिक व्यापार है। आर्यऋषिगण इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके प्रत्येक पदार्थमें ही चेतना और ज्ञानका प्रभाव देख कर विस्मित होते थे तथा मन्त्र द्वारा उनकी उपासना करते थे। सुतरां हम वैदिक उपासनाको सिर्फ प्राकृत उपासना नहीं कह सकते और न वैदिक स्तुतिको अच्छी तरह आलोचना करनेसे हम लोगोंको ऐसी धारणा ही हो सकती है, कि केवल स्वार्थ वा अभावको पूरण करनेके

लिये हो वे वैदिक देवताओंके निकट भिक्षाके लिये जाते थे अथवा यज्ञमें घृतके आहुतिरूप उत्कोच प्रदान कर देवताओंको वशीभूत करनेकी चेष्टा करते थे। नीलाकाशमें ऊषाकी उज्ज्वल किरण देखनेसे वे फूले न समाते थे। उनका हृदय आनन्दसे विवश हो जाता था, उसी आनन्दके मारे वे बहुत स्तव किया करते थे। प्रकृतिके सौन्दर्य पर विमुग्ध हो वे आह्लादसे नाच उठते थे। इस प्रकार ऋषियोंके हृदयमें क्रमशः औपनिषदी प्रतिभाका आविर्भाव होने पर एक दिन उन्होंने सारे संसारके सामने एक महासत्य उद्घोषित कर कहा—

"ओं सत्यं शिवं सुन्दरम्"

इसके स्वार्थ नहीं है, कामना नहीं है और न किसी भी इतररागका आभास हो है, केवल सौन्दर्यप्रियता और सौन्दर्यानुराग है। इस उपासनाका मर्म बड़ा ही गभीर है। इसके माधुर्यसे इस मरलोकमें रह कर मनुष्य भूमानन्द लाभ करते हैं, इसी कारण ऋषियोंने अनुभवानन्दकी घोर गम्भीर भाषामें कहा है—

"सत्यं ज्ञानममृतमानन्दरूपं यद्विभाति।"

वेदके मन्त्र और उपनिषद्वाक्यमें जगह जगह इसी तरह आनन्द-ध्वनि सुनाई देती है।

वेदकी स्तुति पढ़नेसे मालूम होता है, कि वैदिक ऋषिगण जो अनेक देवताओंके नाम करते थे, वह केवल नाममात्र है। किन्तु सर्वत्र ही वे देवशक्तिका अनुभव करते थे, भक्ति और श्रद्धाका भाव सर्वत्र ही उनके हृदयमें जागरुक रहता था। समस्त प्रकृति उनके सामने सजीव और सामर्थ्यशील मालूम होती थी। इस महाशक्तिका भिन्न भिन्न प्रकाश देख कर वे कभी अग्नि, कभी इन्द्र, कभी सूर्य्य, कभी विष्णु, कभी मरुत् नाम रख कर भिन्न भिन्न मन्त्रसे स्तव करते थे। किन्तु उनके स्तोत्र मन्त्रमें सभी जगह एकेश्वरवाद झलकता था। अग्निसे ये लोग जिस विषयके लिये प्रार्थना करते थे, सूर्य्य, वायु, इन्द्र आदिसे भी उसी विषयकी प्रार्थना की जाती थी। इन्द्रकी प्रार्थनाके समय जिस प्रकार सर्व सर्वा कह कर उनकी स्तुति करते थे, दूसरे दूसरे देवताओंके गौरवकीर्त्तनमें भी वहां किसी भी अंशमें त्रुटि नहीं होती थी।

किसी एक देवताकी प्रार्थनाके समय वे अन्य देवताकी बात भूल कर एक मनसे एक प्राणसे एक ही भावसे स्तूयमान देवताका गुणकीर्त्तन करते थे। उनके उपासित सभी देवता सत्यसङ्कल्प, उदार, परोपकारी, सर्वदर्शी और सर्वशक्तिमान्, दानदाता, सत्य, नित्य, जगत्स्रष्टा और समुज्ज्वल थे। सभी जीवोंके हितकारी थे। यहां तक, कि जब एक देवता दूसरे देवताके प्रतिद्वन्द्विरूपमें प्रतिभात होते हैं, तब जगत्के जीवोंकी भलाईके लिये कार्यतः उनका एकत्व ही सूचित होता है। इन्द्रने जब मरुत्को निहत किया, तभी इस एकत्वका भाव ही प्रदर्शित हुआ। यथा—

"किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव" (१।१७०।२)

हे इन्द्र! मरुत्गण तुम्हारे ही भाई हैं, अतएव हम लोगोंके प्रति हिंसा न करो।

फिर दूसरी जगह देखिये। ऋषि कहते हैं, कि हे देवगण! तुम लोगोंमें कोई छोटा बड़ा नहीं है तुम सभी समान हो, सभी प्रधान हो।

हम यद्यपि वेदमें प्रधानतः तेंतीस देवताओंका परिचय पाते हैं; परन्तु उपासनाका मन्त्र और भाव देख कर यह सहज ही स्थिर कर सकते हैं, कि वैदिक ऋषियोंने ज्ञानशक्तिके दिव्यचक्षुसे इन सब देवताओंको "एकमेवाद्वितीयम्" कह कर ही उनका स्तव किया है। एक देवतामें ही उन्होंने सर्वदेवाधिष्ठानकी कल्पना की है। यथा—ऋक्संहितामें—

"त्वमग्ने इन्द्रो वृषभः सतामसि त्वं विष्णुरुरुगायो नमस्यः।
त्वं ब्रह्मा रयिविद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्त्तः सचसे पुरन्ध्या ॥३
त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४
त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम्।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरुवसुः ॥५
त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्गयस्त्वं पूषा विधतः पासि नु त्मना ॥"६

(ऋक् २।१।३-६)

अर्थात् हे अग्ने! तुम इन्द्र हो, तुम विष्णु हो, तुम वरुण हो, तुम मित्र हो, तुम ही रुद्र हो, इत्यादि। द्वितीय मण्डलके १म सूक्तकी सभी ऋकोंमें इसी प्रकार

अग्निका स्तव किया गया है। यह एकेश्वरवादका ही प्रतिपादक है।

फिर एक अग्निका ही जो कार्यभेदसे भिन्न भिन्न देवताके रूपमें नाम रखा गया है, वैसे मन्त्रका भी अभाव नहीं है। यथा—

"त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवा स्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय॥
त्वमर्यमा भवसि यत् कनीनां नाम स्वधावन्गुह्यं बिभर्षि।
अञ्जन्ति मित्रं सुधितं न गोभिर्यद्दम्पती समनसा कृणोषि॥
तव श्रिये मरुतो मर्जयन्त रुद्र यत्ते जनिम चारु चित्रम्।
पदं यद्विष्णोरुपमं निधायि तेन पासि गुह्यं नाम गोनाम्॥"
(ऋक् सं० ५।३।१-३)

इसमें हम "एको बहुस्याम" इस औपनिषदी श्रुति की स्पष्ट व्याख्या पाते हैं। वैदिक मंत्रके साथ उपनिषद्का सम्बंध कितना घनिष्ट है, इससे सहजमें मालूम होता है। नवम मण्डलके ८६ सूक्तमें भी सोम-स्तुतिमें सोमको भी अद्वितीय ब्रह्मके पद पर आरूढ़ किया गया है। "सोम ही अनन्त जगत्में स्रष्टा है, सोम से ही अन्यान्य देवताओंकी उत्पत्ति हुई है" ऐसी ऋक् भी देखी जाती है।

इससे जाना जाता है, कि वैदिक ऋषियोंने यद्यपि भिन्न भिन्न देवताका नाम उल्लेख किया है, किन्तु जब वे भक्तिभावसे किसी देवताकी उपासनामें प्रवृत्त होते थे, तब विशुद्ध एकेश्वरवादसे ही उनका उपासना-कार्य सम्पादित होता था, उसी देवताको वे "एकमेवाद्वितीयम्" समझते थे। सुतरां वेद वेदांतकी उपासना-प्रणालीमें जो मूलतः बहुव्यवधानता थी, उसका अनुमान नहीं होता। परन्तु अवान्तर रूपमें उपासनाका प्रणाली-भेद यथेष्ट था, वह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु वैदिक मंत्र जो उपनिषद् वाक्यके बीजीभूत तथा वैदिक उपासनाके मूलसूत्र हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। सूक्ष्मभावसे वैदिक उपासनाकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि एक देवता ही अनेक नामों और अनेक भावोंमें उपासित हुए हैं। महीधरने गायत्री की जो व्याख्या की है, उसमें परब्रह्मको ही गायत्रीका प्रतिपाद्य बताया है।

एक उपास्य देव ही जो अनेक नामोंसे परिचित और अनेक प्रणालीसे उपासित हैं; यह हम लोगोंकी कल्पित वा आनुमानिक कथा नहीं है। ऋक्संहितामें इसका प्रमाण स्पष्ट देखनेमें आता है। यथा—

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥"
(ऋक् १।१६४।४६)

अर्थात् सद्विप्रगण ही एक देवताको इन्द्र, मित्र, वरुण, वायु, यम आदि नामोंसे पुकारते हैं।

ऋग्वेद—१०म मण्डलके १२६ सूक्तमें ठीक उपनिषद्-की श्रुतिकी तरह मन्त्र देखनेमें आते हैं। वह गुह्यतत्त्व और चरमकारणतत्त्वके सम्बन्धमें वैज्ञानिक युक्ति और दार्शनिक तत्त्व प्रतिष्ठित तथा गम्भीर भावद्योतक हैं। यह विद्वानोंसे छिपा नहीं है, कि हमारे दर्शनशास्त्र केवल मनस्तत्त्व (Metaphysics) नहीं है, उसमें पदार्थविज्ञानकी भी आलोचना है। क्योंकि, प्रत्येक दर्शनमें ही सृष्टितत्त्वके सम्बन्धमें थोड़ी बहुत आलोचना की गई है। वेदान्तशास्त्रमें भी वैज्ञानिक और दार्शनिक तत्त्वका समावेश है। वेदान्तशास्त्रके बीजस्वरूप वेदसंहितामें भी वैज्ञानिक और दार्शनिक तत्त्वके मन्त्र देखनेमें आते हैं। यहां ऋग्वेदके १०म मण्डलका १२६-वां सूक्त उद्धृत किया जाता है। यथा—

"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥१
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं च नास॥२
तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम्॥३
कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा॥४
तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्॥५
को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग् देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव॥६
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद॥"७

१। उस समय जो नहीं, वह भी नहीं था। जो है, वह भी नहीं था। पृथ्वी भी नहीं थी, बहुत दूर तक विस्तृत आकाश भी न था। आवरण करनेवाला ऐसा कौन था? कहां किसका स्थान था? दुर्गम और गभीर जल क्या उस समय था?

२। उस समय मृत्यु भी न थी, अमरत्व भी न था, रात्रि और दिनका प्रभेद न था। केवल वही एकमात्र पदार्थ बिना वायुकी सहायताके आत्मामात्र अवलम्बन कर निश्वास प्रश्वासयुक्त हो जीवित थे। उनके सिवा और कुछ भी न था।

३। सबसे पहले अन्धकारके द्वारा अन्धकार आवृत था। सभी चिह्नवर्जित था और चारों ओर जलमय था। अविद्यमान वस्तु द्वारा वह सर्वव्यापी आच्छन्न थे। तपस्याके प्रभावसे वे उत्पन्न हुए थे।

४। सबसे पहले मनके ऊपर कामका आविर्भाव हुआ, उससे सर्व प्रथम उत्पत्ति-कारण निकला। बुद्धिमानोंने बुद्धि द्वारा अपने हृदयमें पर्यालोचना कर अविद्यमान वस्तुमें विद्यमान वस्तुको उत्पत्तिका स्थान निरूपण किया।

५। रेतोधा पुरुष उत्पन्न हुए। उनकी रश्मि दोनों बगल और नीचे तथा ऊपरकी ओर फैल गई है।

६। कौन प्रकृत जानता? कौन वर्णन करेगा? कहांसे इन सबकी सृष्टि हुई? देवगण इन सब सृष्टिके पीछे हुए हैं। कहांसे हुआ, इसे कौन जानता?

७। यह विविध सृष्टि कहांसे हुई, किसीने सृष्टि की, क्या नहीं की, यह वे ही जानते हैं, जो इसके प्रभुस्वरूप परमधाममें हैं। अथवा वे भी नहीं जानते होंगे।

परमात्माको ही इस सूक्तका देवता कहा गया है। यह सूक्त देख कर प्रतीत होता है, कि अति प्राचीन ऋग्वेदसंहितामें भी उपनिषद्का भाव विस्तृत रूपसे विद्यमान था।

कुछ लोगोंका कहना है, कि ऋग्वेदके दशम मण्डलका कोई कोई सूक्त संयोजित हुआ है। इस प्रकार आपत्तिका खण्डन 'वेद' शब्दमें लिखा जा चुका है। वस्तुतः समग्र ऋग्वेदमें ही औपनिषदी श्रुति विकीर्ण भावमें दिखाई देती है। यहां १म मण्डलके १६४वें सूक्तसे तीन ऋक् उद्धृत कर वैदिक ब्रह्मतत्त्वका निदर्शन दिखलाया जाता है—

"को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था विभर्त्ति।
भूम्या असुर सृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुपगात् प्रष्टुमेतत् ।४
पाकः पृच्छामि मनसा विजानन्देवानामेना निहिता पदानि।
वत्से बष्कयेऽधि सप्ततन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ।५
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान्।
वि यस्तस्तम्भ षड़िमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ।६

अर्थात् प्रथम जायमानको किसने देखा था? जब अस्थिरहिताने अस्थियुक्तको धारण किया। भूमिसे प्राण और शोणित निकला, लेकिन आत्मा कहांसे निकली? कौन विद्वानोंके निकट यह बात पूछनेके लिये गया? (४)

मैं अपक्व बुद्धिवाला हूं, कुछ भी समझ न सकनेके कारण पूछता हूं। यह सब संदेहपद देवताओंके निकट भी निगूढ़ है। एक वर्षके बछड़ेको घेरनेके लिये मेधावियोंने जो सप्ततन्तु फैलाया है वह क्या है? (५)

मैं अज्ञान हूं, कुछ भी ज्ञान न रहनेसे ही मेधावियोंसे पूछता हूं। जिन्होंने इन छः लोकोंका स्तम्भन किया है, क्या वही एक हैं जो जन्मरहित रूपमें निवास करते हैं? (६)

यहां भी हम उपनिषद्के भावापन्न गूढ़गभीर प्रश्नावली देखते हैं। यहां उस उपनिषद्के ब्रह्मकी तरह एक "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थ ही व्यक्त हुए हैं।

द्वितीय मण्डलके १२वें सूक्तमें जहां इंद्रका स्तवकीर्त्तन है, वहां इंद्रको ही सूर्यका उत्पादक कहा है तथा इस सूक्तकी २।७।६ और १३ ऋक्में एकेश्वरवादका भाव प्रतिफलित हुआ है।

तृतीय मण्डलके ५५वें सूक्तमें समस्त देवोंके महत् बल वा ऐश्वर्य एक है, यह बार बार उद्घोषित हुआ है। यह सूक्त भी वेदान्तशास्त्रके बीजीभूत कह कर यहां इसके सम्बन्धमें कुछ आलोचना की जाती है। इस सूक्तके २२ ऋक्के प्रत्येकके अन्तमें ही "महद्देवानामसुरत्वमेकम्" लिखा है।

इस सूक्तमें प्राकृतिक कार्य-परम्परामें जो ईश्वरका एक मङ्गलमय भाव अनुस्यूत है वही दर्शित हुआ है।

अग्नि वेदीमें विराजते हैं, वनमें प्रज्वलित होते हैं, आकाशमें उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीमें विकशित होते हैं (४ ऋक्); वे उत्तमरूपसे शस्य (फसल) उत्पादन करते हैं; (५ ऋक्) सूर्यरूपसे पश्चिम दिशामें अस्त हो कर पूर्व दिशामें उदित होते हैं (६ ऋक्), आकाशमें विचरण करते हैं, भूमिमें वास करते हैं (७ ऋक्), रात दिन आपसमें मिल कर आते जाते हैं (११ ऋक्); आकाश और पृथ्वी परस्परको वृष्टि और वाष्प रूपसे रसका आदान प्रदान कर रहे हैं (१२ ऋक्), जिस नैसर्गिक नियमसे एक ओर वृष्टि हो रही है, फिर उसी नैसर्गिक नियमसे दूसरी ओर वृष्टि हो रही है (१७ ऋक्)। एक ही निर्माणकर्त्ताने मनुष्य, और पशु पक्षीकी सृष्टि की है (१६ और २० ऋक्), वे ही शस्य उत्पादन करते हैं; वृष्टि करते हैं, धनधान्य उत्पादन करते हैं (२२ ऋक्); प्रकृतिके अनन्तकार्य्य परस्परको ही भिन्न भिन्न देवोंके नामसे स्तुति की गई है। उसी कार्य्य-परम्परामें एकता देख इस सूक्तमें कहा गया है, कि जिन देवोंके कार्य्य भिन्न नहीं, उनका महदैश्वर्य्य एक है। प्राकृतिक कार्योंमें मङ्गलमय स्रष्टाके इस तरह एक उद्देश्य और एक भावका अस्तित्व अनुभव करना आधुनिक विज्ञान और दर्शनका स्थिर सिद्धान्त है। यह सूक्त वैज्ञानिक तत्वका भी बीजीभूत है। हम पहले ही कह आये हैं, कि उपनिषदमें एक ओर जैसे सृष्टितत्वकी आलोचना हुई है, वैसे ही दूसरी ओर इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके अनन्तद्रव्य और अनन्तकार्य्य-परम्परा देख इन सब द्रव्य और क्रियाओंके कारणतत्त्व-का निश्चय किया गया है। किन्तु उपनिषद् शास्त्रका मुख्य प्रयोजन है—जीवके अशेष क्लेशबीजोंका विनाश कर चरम श्रेय साधन।

ऋक्संहितामें जिन विश्वकर्माकी बात आई है, ऋक्मन्त्रानुसार वे भी जगदीश्वर या परमात्मा समझे जा सकते हैं। ऋग्वेदके १० मण्डलके ८१ और ८२ सूक्तमें इन विश्वकर्माके स्वरूप और कार्य आदि विवृत हुए है। जो इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके कर्त्ता और नियन्ता हैं, जो परमात्मा और परब्रह्म हैं, वे ही विश्वकर्मा हैं। ऋषि कहते हैं—

"य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आविवेश ॥ १ ॥
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित्कथासीत्।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४॥
या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥५॥
विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयंयजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६॥
वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा" ॥७॥

१। अर्थात् हम लोगोंके पिता वही ऋषि हैं, जो विश्व भुवनमें होम करने बैठे थे, उन्होंने अभिलाषके साथ धनकी कामना कर प्रथमागत व्यक्तियोंको आच्छादन कर पीछे आनेवालोंमें अनुप्रवेश किया।

२। सृष्टिकालमें उनका अधिष्ठान, अर्थात् आश्रय स्थलमें कहा था? किस स्थानसे किस तरह उन्होंने सृष्टिकार्य्य आरम्भ किया? उस विश्वकर्मा, विश्वदर्शनकारी देवने किस स्थानमें रह पृथ्वी निर्माण कर अनन्त आकाशमें विस्तारित किया।

३। वे ही एक प्रभु हैं, उनकी सब दिशाओंमें आंखें हैं, सब ओर मुख, सब ओर हाथ, सब ओर पैर है, उन्हों-ने दो हाथोंसे और विविध पक्ष सञ्चालन कर निर्माण किया, उससे वृहत् द्युलोक और भूलोक रचित हुए ?

४। वह कौन वन है ? किस वृक्षकी लकड़ी है ? जिससे द्युलोक और भूलोक गठित हुआ है। हे विद्वान्‌गण! तुम लोग एक बार अपने अपने मनसे पूछो और देखो, कि वे किस वस्तु पर खड़े हो कर विश्व-ब्रह्माण्डको धारण करते हैं।

५। हे विश्वकर्मा! हे यज्ञभाग लेनेवाले! तुम्हारे जितने उत्तम, मध्यम और निम्नवर्त्ती धाम हैं, यज्ञके समय उन सबोंका वर्णन करो, तुम स्वयं अपने ही यज्ञ कर अपने शरीरको पुष्ट करो।

६। हे विश्वकर्मा! पृथ्वी या स्वर्गमें तुम स्वयं यज्ञ कर अपने शरीरको पुष्टि करो। चारों ओरके तावत् लोक निर्बोध हैं। इन्द्र हम लोगोंके प्रेरणकर्त्ता हो अर्थात् बुद्धिस्फुर्त्ति कर दें।

७। आज इस यज्ञमें उन विश्वकर्माकी रक्षाके लिये पुकार रहा हूं। वे वाचस्पति हैं, अर्थात् वाक्यके अधिपति हैं, मन उनमें संलग्न होता है। वह सब कल्याणोंके उत्पत्तिस्थान हैं, उनके कार्य्यमात्रमें ही चमत्कार है, वे हम लोगोंके तावत् यज्ञ स्वीकार कर हमलोगोंकी रक्षा करें।

इस स्तोत्र द्वारा भी हम विश्वके आदि कारणका तत्त्व जान रहे हैं। ऋग्वेदके ऋषियोंने प्राकृतिक कार्यों-का पर्य्यवेक्षण करते करते जड़ प्रकृतिमें विभिन्न शक्तिकी लीला देखी, अन्तमें उनकी यह ज्ञानविज्ञानमयी धारणा उत्पन्न हुई, कि ये सब भिन्न भिन्न शक्तियाँ एक ही परम पुरुषकी शक्ति हैं। वे प्राकृत जगत्‌के चम-त्कार कार्य्य देखते देखते इस विश्वकार्य्यके परमकर्त्ताका अस्तित्व अनुभव करने लगे। ऋग्वेदके ऋषिने एक दिन इस सम्बन्धमें जिस तरह तत्त्वानुसंधान किया था, आधुनिक पाश्चात्य कवि अपने काव्यमें उसी बात-की घोषणा कर रहे हैं।

"From Nature to Nature's God"

सूक्तसे जो ऋक् उद्धृत की गई हैं, उनकी तृतीय ऋक्‌के अनुरूप और एक ऋक् १०म मण्डलके ९०वें सूक्तमें है। ९०वें सूक्त पुरुषसूक्त कह कर परिचित है। यह सूक्त कर्मकाण्डमें समधिक आदरके साथ व्यवहृत हुआ है। अहिन्दू समालोचक इसे अनादर कर इसके प्राचीनत्वमें संदेह करने पर भी वेदाधिकारी वेदज्ञ ब्राह्मणसमाज चिरदिनसे ही इसका आदर और व्यवहार करता आया है। इस पुरुषसूक्तकी प्रथम ऋक् और दशम मंडलके ८१वें सूक्तकी तृतीय ऋक् एक ही भावात्मक हैं। इनमें सगुण ब्रह्मके सविशेषत्वकी आलोचना हुई है। इस सूक्तके पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह विशाल विश्व-ब्रह्माण्ड उनका अवयवमात्र तथा वे असीम शक्तिशाली और असीम प्रभावशाली हैं। ऋग्वेदमें एकेश्वरवादका यथेष्ट प्रमाण है। उनमें यह सूक्त भी अन्यतम है। जैसे,—

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥१॥
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥२॥
एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥३॥
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥४॥
तस्माद्विराड़जायत विराजो अधिपूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥५॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥१२॥
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥१३॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन्" ॥१४॥

(१०।९०)

१। पुरुषके सहस्र मस्तक, सहस्र नेत्र और सहस्र चरण हैं। वे पृथ्वीको सर्वत्र व्याप्त कर दश उंगली परि-माण अतिरिक्त हो कर अवस्थान करते हैं।

२। जो हो गया है अथवा जो होगा, वे सब वही पुरुष हैं। वे अमरत्वलाभके अधिकारी होते हैं क्योंकि वे अन्न द्वारा अतिरोहण करते हैं।

३। उनकी ऐसी महिमा है, किन्तु वे इससे भी बृहत्तर हैं। विश्वजीवसमूह उनका एकपाद मात्र है, आकाशमें अमर अंश उनके तीन पाद हैं।

४। पुरुष अपना तीन पाद (या अंश) ले कर ऊपरको चढ़े। उनका चतुर्थ अंश यहां ही रहा। तदनन्तर वे भोजनकारी और भोजनरहित (चेतन और अचेतन) तावत् वस्तुमें व्याप्त हुए।

५। उनसे विराट् तथा विराट्से वही पुरुष उत्पन्न हुए। उन्होंने जन्म ले कर पश्चाद्भाग और पुरोभागमें पृथिवीको अतिक्रम किया।

१२। इनका मुख ब्राह्मण हुआ, दो बाहु राज्यन्य हुई, जो उरु था वह वैश्य हुआ, दो चरणसे शूद्र उत्पन्न हुआ।

१३। मनसे चन्द्र, चक्षुसे सूर्य, मुखसे इन्द्र और अग्नि तथा प्राणसे वायु उत्पन्न हुई।

१४। नाभिसे आकाश, मस्तकसे स्वर्ग, दो चरणोंसे भूमि, कर्णसे दिक् और सभी भुवन बनाये गये।

ऋग्वेदके यह पुरुष कभी 'विश्वकर्मा', कभी हिरण्यगर्भ, कभी इन्द्र, अग्नि और वरुण आदि नामोंसे अभिहित हुए हैं। उपनिषद्में जिस प्रकार सृष्टिविवरण है,—ऋग्वेदके केवल एक सूक्तमें नहीं—अनेक सूक्तोंमे उसी प्रकार सृष्टिका विवरण लिखा है। यहां भी हम इस सम्बन्धमें एक ऋक् उद्धृत करते हैं—

"चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम्॥१॥
(१०म। ८२ सूक्त)

उस सुधीर पिताने उत्तमरूप दृष्टि करके मन ही मन आलोचना कर जलाकृति परस्पर सम्मिलित इस द्यावा पृथिवीकी सृष्टि की। जब इसकी चतुःसीमा क्रमशः दूर हो गई, तब द्युलोक और भूलोक पृथक् हो गया।

इसमें प्रगाढ़ वैज्ञानिक सत्य निहित है, इसमें संदेह नहीं। इसकी परवर्त्ती ऋक्में इस परम पुरुषके चिन्मयधामका निर्णय हुआ है। उस धाममें वे अकेले विराजमान हैं। यहां भी एकेश्वरवादका तत्त्व परिस्फुट हुआ है। इस सूक्तकी तृतीय ऋक् भी उस विषयकी एक प्रमाण है, यथा—

"यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।३

अर्थात् जो हम लोगोंके जन्मदाता पिता हैं, जो विधाता हैं, जो विश्वभुवनके सभी धामोंसे अवगत हैं, जो एक हो कर भी सभी देवोंका नाम धारण करते हैं, दूसरे भुवनके लोगोंमें भी उनका विषय जिज्ञासायुक्त होता।"

"जो अनेक देवोंके अनेक नाम धारण करके भी एक" वे ही वेदान्तोंके परमब्रह्म हैं। वेदांतके मूल वैदिक प्रमाणके सम्बन्धमें इससे परिस्फुट वाक्य और क्या हो सकता? इस सूक्तकी छठी ऋक्में लिखा है—

"अजन्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः"

अर्थात् उसी 'अज' पुरुषके नाभिदेशमें समग्र विश्वभुवनने अवस्थान किया था।

यह सब ऋक् समस्वरमें एक महान् पदार्थ 'पक्षी' भी कहलाता है। यथा—

"एकः सुपर्णः स समुद्रमाविवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम्।"
(१०।११४।४।)

एक पक्षी समुद्रमें घुसा, उसने इस समस्त विश्वभुवनको देखा। परिणत बुद्धि द्वारा मैंने उन्हें देखा है। वह निकटवर्त्तिनी माताको चाटता है, माता भी उसको चाटती है।

यह पक्षी एक है, उसका भी प्रमाण इसके बाद १०।११४।५ मन्त्रमें वर्णित है। यथा—

"सुपर्णं विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।"

यह पक्षी एक ही है, दो नहीं, किन्तु पण्डितोंने वाक्य द्वारा इसके बहुत्वकी कल्पना की है।

इस सुपर्ण या पक्षीका विषय उपनिषद् और तत्परवर्त्ती साहित्यमें भी यथेष्ट देखनेमें आता है। मुण्डकोपनिषद्में लिखा है—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य पिप्पलं स्वाद्वत्त्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥"
(मुण्डकोपनिषद् ३।१।१)

श्वेताश्वतरमें भी यह प्रमाण-वचन मुण्डककी भाषा में लिखा है। बृहदारण्यकोपनिषद्‌में भी लिखा है—

"तानिन्द्रो सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्।" (३।३।२)

इसका अर्थ यह है, कि इन्द्रने (अश्वमेघ यज्ञको अग्नि) पक्षीका रूप धारण कर पारीक्षितोंको वायुके निकट समर्पण किया था।

इस उपनिषद्‌का "सुपर्ण" परमात्मा अर्थबोधक मालूम नहीं होता, इस उपनिषद्‌के दूसरे स्थानमें भी (४।३।१०) "सुपर्ण" शब्दका प्रयोग है। इसका भी ऋग्वेदके मतानुयायी मुण्डकमें और श्वेताश्वतरमें व्यवहृत सुपर्ण शब्दकी तरह परमात्मा अर्थमें व्यवहार नहीं हुआ। किन्तु मुंडककी उक्त श्रुति परवर्त्तीकाल में श्रीमद्भागवतमें भी गृहीत हुई है। ऋग्वेदमें इसका केवल परमात्मा-अर्थमें ही व्यवहार हुआ है। सुतरां ऋक्‌मन्त्रमें "एक सुपर्ण" कहा गया है। उपनिषदमें परमात्मा जीवात्मा दोनों ही अर्थमें "सुपर्ण" शब्दका व्यवहार है।

ऋग्वेदसंहिताके दशम मण्डलका १२१वां सूक्त हिरण्यगर्भ स्तोत्रमय है। 'क' नामधारी प्रजापति ही इस सूक्तकी ऋकोंके देवता हैं। इस सूक्तमें दश ऋक् हैं। प्रत्येक ऋक्‌में एकेश्वरवाद सूचित हुआ है तथा उस एक अद्वितीय देवताकी महिमा कीर्त्तन की गई है। उपनिषद्‌की श्रुतिकी तरह इस सूक्तके ऋषि कहते हैं, सबसे पहले केवल हिरण्यगर्भ ही विद्यमान थे। वे ही सर्वभूतके अधीश्वर हैं। यह पृथ्वी और आकाश उन्हींके द्वारा अपने अपने स्थानमें स्थापित हुआ। उन्होंने 'जीवात्मा' दिया है, मन दिया है, उनकी आज्ञा सभी देवता पालन करते हैं। उनकी छाया अमृतस्वरूप है। मृत्यु उन्हींकी अधीन हैं। वे अपनी महिमाके दर्शनेन्द्रियसम्पन्न और गतिसम्पन्न सभी जीवोंके 'अद्वितीय' राजा हैं। उन्हींके द्वारा हिमवन्त पर्वत उत्पन्न हुए हैं। ससागरा धरा उन्हींकी सृष्टि है। दिक् विदिक् सभी उनके बाहुस्वरूप हैं। इस समुन्नत आकाश और इस पृथ्वीको उन्होंने दृढ़ कर रखा है, स्वर्गलोक और नागलोग उन्हींके द्वारा स्तम्भित होते हैं। उन्होंने ही अन्तरीक्ष लोकका परिमाण किया है। उन्हींका आश्रय कर सूर्यादि आकाशमें चमकते हैं। इस सूक्तके हिरण्यगर्भने ही उपनिषद्‌में ब्रह्मपदको प्राप्त किया है।

ऋग्वेदके अनन्तभाण्डारमें वेदान्तशास्त्रका इस प्रकार कितने असंख्य बीज छिपे हैं, कि वेदाध्ययननिपुण सूक्ष्मदर्शी सुपण्डितोंको भी उनका पता न लगा है। यहां एक बहुत छोटा उदाहरण दिया गया। अन्यान्य संहिताके भी वेदान्तकी बीजीभूत वैदिक श्रुति उदाहरणरूपमें उद्धृत की जा सकती है। किन्तु विस्तार हो जानेके भयसे यहां उसका जिक्र नहीं किया गया।

कहनेका तात्पर्य यह, कि सुप्राचीन वैदिक युगके ऋषियोंके हृदयमें जिन परम तत्त्वोंका सूक्ष्मज्ञान आविर्भूत हुआ था, उपनिषद्‌में उसीका विवरण है, वही अनेक प्रकारसे कहा गया है। इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि विविध देवता भिन्न भिन्न नामोंसे उपासित होने पर भी उनमेंसे प्रत्येक जो कार्य-भेदसे दूसरे दूसरे नामोंसे अभिहित होते थे अर्थात् एक इन्द्र ही जिनको कभी वायु, कभी अग्नि आदि नामोंसे स्तुति की जाती थी, ऋग्वेदसे उसका यथेष्ट प्रमाण दिखलाया गया है। बृहदारण्यकोपनिषद् आदिमें भी एक देवता दूसरे देवताके नाम पर संज्ञित होनेका विषय देखा जाता है। एक परम तत्त्व ही जो कार्य-भेदसे भिन्न भिन्न नामों पर अभिहित होते थे, ऋग्वेदसे उसका भी प्रमाण दिखलाया गया है। यह देवता जो अनन्त शक्तिशाली हैं तथा इनसे किस प्रकार यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड प्रादुर्भूत हुआ है, ये दो तत्त्व भी ऋग्वेदमें आलोचित हुए हैं। जीवतत्त्वके सम्बन्धमें भी दशममण्डलके १२१वें सूक्तमें हमने संक्षिप्त भावसे दो एक बातें उद्धृत की हैं। अधिक क्या, ब्रह्मतत्त्व, सृष्टितत्त्व और जीवतत्त्व ये तीनों ही तत्त्व वेदान्तके प्रतिपाद्य हैं तथा इन तीनों तत्त्वका बीज अति प्राचीन कालमें ऋक्‌संहितामें आलोचित हुआ था।

आर्यऋषिगण अनेक देवताओंमें एक परमतत्त्वस्वरूप देवताका अनुसन्धान पा कर भी उन्हें कभी अग्नि, कभी इन्द्र और कभी वायु नामसे पुकारते थे तथा कभी एक साथ सभी देवताओंका स्तव करते थे तथा

पवित्र होमानलमें पवित्र वैदिक मन्त्रसे इनके नामगुण लीलादिका उल्लेख करते हुए घृताहुति देते थे। इस प्रकार कब तक चला कह नहीं सकते। किन्तु परवर्त्ती समयमें एक श्रेणीके ऋषि अति प्रगाढ़भावमें "एकमेवाद्वितीयम्" तत्त्वके अनुसन्धानमें प्रवृत्त हुए। इस अनुसन्धानके फलसे ऋषियोंके हृदयमें जो तत्त्व परिस्फुटरूपमें प्रकाशित हुआ, वही ब्रह्मतत्त्व है, औपनिषद ज्ञान ही इसका साधन है। ऋषियोंके हृदयमें जब यह ज्ञान समुज्ज्वल भावमें उदय हुआ, तब वे जगत्के सामने एक विशाल तत्त्व व्यक्त कर कहने लगे।

१। "यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।४।

२। यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम्
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।५।

३। यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।६।

४। यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।७।

५। यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राण प्रणीयते
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।८।

(केनोपनिषत् प्रथम खण्ड)

अर्थात् जो वाक्य द्वारा साफल्यरूपमें उक्त नहीं हुए, किन्तु जिनसे अभ्युदित हो कर पुरुष वाक्योच्चारण करते हैं, तुम उन्हींको ब्रह्म मानना, जिनको उपासना की जाती है, वह ब्रह्म नहीं हैं। (४)

मन द्वारा जिनका मनन नहीं होता, किन्तु जिनसे मनका विषय जाना जाता है, उन्हींको ब्रह्म जानना, जिनकी उपासना की जाती, वह ब्रह्म नहीं हैं। (५)

जिनको चक्षु द्वारा देखा नहीं जाता, किन्तु जो चक्षुके भी स्रष्टा हैं, उन्हींको ब्रह्म जानना, जिनकी उपासना होती है, वे ब्रह्म नहीं हैं। (६)

जो हमारे श्रवणेन्द्रियके विषय नहीं; किन्तु जो श्रवणशक्तिके प्रेरयिता हैं, उन्हींको ब्रह्म जानना, जिनकी उपासना होती है, वह ब्रह्म नहीं। (७)

जो प्राणके विषयीभूत नहीं, किन्तु जो प्राणके प्रेरयिता हैं, उन्हींको ब्रह्म जानना। जिनकी उपासना की जाती है, वे ब्रह्म नहीं हैं। (८)

केनोपनिषद्में ब्रह्मतत्त्व निरूपित हुआ है। इसी उपनिषद्में ऋषिने कहा है, "श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मना यद्वाचोऽवाचम्, प्राणस्य प्राण श्चक्षुस श्चक्षु रतिमुच्य धाराः प्रेत्या स्मालोकादमृता भवन्ति" अर्थात् जो श्रोत्रादिके प्रेरक और प्रकाशकस्वरूप हैं, उनको ज्ञान लेनेसे मनुष्य इस धामसे अमृतलोकमें जाते हैं।

बृहदारण्यक कहते हैं—

"सोऽत एकैकमुपास्ते न स वेदाकृत्स्नो ह्येषोऽत एकैकेन भवत्यात्मेत्येवोपासीतात्र ह्येते सर्वं एकं भवन्ति—तदेतत्पदनीयमस्य सर्वस्य यदयमात्मानेन ह्येतत् सर्वं वेद यथाह वै पदेनानुविन्देदेवं कीर्त्तिं श्लोकं विन्दते य एवं वेद।" (बृ० आ० उ० १।४।७)

अर्थात् जो एक एक क्रियाविशिष्ट प्राणादिको एक एक संज्ञासे अभिहित कर उनकी उपासना करते हैं, वे परम तत्त्वके सम्बन्धमें अनभिज्ञ हैं। उपाधि सम्बन्धविशिष्ट परिच्छिन्न आत्मा एक एक विशेषणसे विशेषित होती है। सुतरां उपाधि नाम परित्याग कर केवल एक आत्माकी ही उपासना करना कर्त्तव्य है। आत्मा ही सबोंकी बीजस्वरूप हैं। आत्मामें ही सभी प्रतिष्ठित हैं। जिस प्रकार पदचिह्नसे पशुका पता चल जाता है, उसी प्रकार सभी पदार्थोंसे आत्माका अनुसन्धान कर लेना होता है। आत्माको प्राप्त करने हीसे सभी प्राप्त होते हैं। जो ऐसा जानते हैं, वे कीर्त्तिलाभ करते हैं और कवियोंके वर्णनीय होते हैं।

बृहदारण्यक और भी कहते हैं—"तदेतत् प्रेयः पुत्रात् प्रेयो वित्तात् प्रेयोऽन्यस्मात् सर्वस्मादन्तरतरं यदयमात्मा स योऽन्यमात्मनः प्रियं ब्रुवाणं ब्रूयात् प्रियं रोत्स्यतीतीश्वरोह तथैव स्यादात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्यप्रियं प्रमायुकं भवति।" (बृ० आ० उ० १।४।८)

यह सारी वस्तुओंसे अन्तरतर है, अतएव यह पुत्रसे प्रियतर, वित्तसे प्रियतर तथा अन्यान्य सब वस्तुओंसे प्रियतर है। जो अनात्माको आत्मासे प्रियतर कहा करते हैं, जो व्यक्ति कहते हैं, कि तुम्हारा अभिमत यह प्रिय वस्तु तुम्हारे स्वरूपका आवरण है अर्थात् नष्ट करेगी, वे यथार्थ वक्ता हैं, यह कहनेका उनका अधिकार है।

यह यथार्थ वक्ता जो कहते हैं, वह सफल भी होता है। आत्माको ही प्रिय बुद्धिसे उपासना करेगी। जो आत्माको ही प्रियबुद्धिसे उपासना करते हैं, उनकी प्रियवस्तु कभी भी मरणशील हो नहीं सकती।

इसके बाद जो लिखा गया है, उसका मर्म इस तरह है—'ब्रह्मविषयिणी ब्रह्मविद्या द्वारा सब मनुष्य सफल होंगे अर्थात् सर्वभूतमें आत्माका दर्शन करें, ऐसा ही आचार्यगण समझते हैं, वह ब्रह्म क्या है? और वे क्या वह ज्ञानलाभ कर चुके हैं, जिस ज्ञानसे वे सफल हुए हैं?' ॥६॥

"सृष्टिके पहले ये सभी ब्रह्ममय थे। ब्रह्म अपनेको मैं ब्रह्म हूं अर्थात् सर्वशक्तिसमन्वित जानते थे। वे अपनेको ऐसा ब्रह्म समझते हैं, इसलिये वे सर्वमय होते हैं। देवताओंमें भी जो अपनेको उसी ब्रह्मको शक्ति कह कर विदित होते हैं, ऋषियों और मनुष्योंमें भी आत्मतत्त्वका सर्वमयत्व सिद्ध होता है। अतएव उसी ब्रह्मका दर्शन कर तदायत्तवृत्तिकत्व प्रयुक्त होता रहता है। अतएव उसी ब्रह्मको दर्शन कर तदायत्तवृत्तिकत्व प्रयुक्त अर्थात् अपनी निखिलवृत्तिको तदधीनत्ववशतः उनसे अभेदज्ञानमें वामदेव ऋषिने 'मैं मनु हुआ था, मैं सूर्य हुआ था' इस तरह वाक्य प्रयोग किया था।

'अतएव इस समय भी जो ब्रह्मशक्तिरूप मैं शक्तिमत् ब्रह्मसे अभिन्न हूं, इस प्रकार विदित होते हैं, वे अपनेको सर्वमय देखते हैं। उनके सामने देवता भी महावीर्य नहीं विवेचित होते और उनके किसी कार्यमें विघ्न और बाधा डालनेमें समर्थ नहीं होते। क्योंकि वे सर्वात्माके साथ मिल कर इन सबकी आत्मा हो जाते हैं। जिसमें मैं, दूसरा इस तरहका भेदज्ञान है और इसी ज्ञानसे जो देवतांतरकी उपासना करते हैं, वह अतत्त्वज्ञ व्यक्ति है। मनुष्यके लिये जैसे गाय आदि पशु हैं, वैसे ही देवताओंके लिये अतत्त्वज्ञ व्यक्ति हैं। पशु जैसे मनुष्योंके कार्यसाधक हैं, अतत्त्वज्ञ व्यक्ति भी देवताओंके वैसे ही कार्यसाधक हैं। एक पशु खो जानेसे जैसे अनिष्ट होता है, वैसे ही एक मनुष्यके तत्त्वज्ञ होनेसे देवताओंका अनिष्ट होता है। इसीलिये देवता अपने अप्रिय बोधसे ऐसा नहीं चाहते, कि मनुष्य तत्त्वज्ञ हों। किन्तु उनकी अवज्ञा न कर ब्रह्मशक्तिज्ञानसे यदि कोई यथायोग्य श्रद्धा करें, वे भी उनके कार्यमें किसी तरहका विघ्न न डाल तत्त्वज्ञानोपयोगी उपदेश दे कर अभीष्ट सिद्धिके लिये साहाय्य करते हैं' ॥१०॥

"ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव" इत्यादि वृहदारण्यक श्रुतिका भाव हमने इससे पहले ऋग्वेदसे बहुत बार उद्धृत किये हैं। फिर इसके बाद ही कहा गया है "आत्मैवेदमग्र आसीदेक एव" सुतरां जो ब्रह्म है, वे आत्मा हैं। आत्मतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व एक ही है, ऐसा उपनिषद्का सिद्धान्त है। "अहं ब्रह्म अस्मि" ऐसा ज्ञान ही आत्मा और ब्रह्ममें अभेददर्शनका मूल साधन है। उल्लिखित छत्रोंमें इन उपनिषद् तत्त्वकी संक्षिप्त व्याख्या की गई है। वृहदारण्यक उपनिषद् शुक्लयजुर्वेदके अन्तर्गत है। इसका सविशेष परिचय वेद शब्दमें देखना चाहिये। फिर ईशोपनिषद्में भी हम ऐसी ही भावात्मक श्रुति देखते हैं। इस उपनिषद्का सोलहवां मन्त्र यह है—

"पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्यव्यूहरश्मीन् समूह तेजो।
यत्ते रूपङ्कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः
सोऽमस्मि ॥"

अर्थात् हे पूषन्, हे यम, हे सूर्य, हे प्रजापते, आलोक का विस्तार करो। मुझको उसी आलोकमें प्रविष्ट करो। मानो मैं तुम लोगोंमें ही प्रविष्ट होऊं। जिससे मैं तुम्हारी मङ्गलमयी मूर्त्ति देख सकूं। वहाँ जो पुरुष हैं, वे पुरुष ही मैं हूं।

यहाँ आत्मा या ब्रह्मके परिवर्त्तनमें पुरुषको बात कही गई। हम ऋग्वेदके दशम मण्डलके ६० सूक्तमें इस पुरुषका परिचय पाते हैं। सुविख्यात भाष्यकार रामानुजने भी इस उपनिषद्को "ब्रह्मविद्या" कहा है। उन्होंने कहा है, कि यद्यपि "ईशावास्य" उपनिषद्में किसी मन्त्रमें १८ श्लोक ही श्रीमद्भगवद्गीताके १८ अध्यायके बीजस्वरूप हैं। किस प्रकारसे वेदोक्त परमपुरुषको जाना जाता है और किस तरह उसको प्राप्त किया जा सकता है, इस उपनिषद्में उसका उपदेश है। ईशोपनिषद् वाजसनेय-संहिताके अंतर्भुक्त

है। वह उक्त संहिताका ४०वां अध्यायमात्र है। ब्रह्मतत्त्व, जीवतत्त्व और जगत्तत्त्व, अन्यान्य उपनिषदोंका जैसा प्रतिपाद्य है, इस उपनिषद्में इन तीन विषयोंकी उसी तरह आलोचना हुई है। ईश्वर, जीव, प्रकृति, विद्या, अविद्या, कर्म और ज्ञान इन सब विषयोंकी आलोचना ही उपनिषद्का लक्ष्य है। इन सब विषयोंके तत्त्वज्ञान द्वारा जीवोंका कर्म्म बंधन मुक्त होता है और आनन्दसाक्षात्कार होता है। यह आनन्दसाक्षात्कार ही जीवोंका पुरुषार्थ है। ईशोपनिषद्में ऋषिने कहा है, "सूर्य-मण्डलस्थ पुरुष ही मैं हूं।" यह श्रुति श्रीमच्छङ्करा-चार्यके अभेदवादकी पोषिका है। श्रीमद्रामानुजने यद्यपि विशिष्टाद्वैतवादके मतकी व्याख्या की है, फिर वह व्याख्या कल्पना-प्रसूत ही मालूम होती है।

यद्यपि वेदांत या ब्रह्मविद्याके शिक्षास्थान ही उपनिषद्का प्रधान लक्ष्य है, फिर भी, बृहदारण्यक और छान्दोग्य आदि कई उपनिषदोंमें वेदके ब्राह्मण भागके यज्ञ आदिकी कर्त्तव्यताके सम्बन्धमें भी बहुतेरे तथ्य आलोचित हुए हैं। सिवा इनके कई छोटे छोटे उपनिषदोंको छोड़ कर अन्यान्य वैदिक उपनिषदोंमें छोटे छोटे आख्यान भी यथेष्ट परिमाण-से दिखाई देते हैं। ये सब उपाख्यान रूपकके आकारमें गठित हुए हैं, किन्तु उनका उद्देश्य इसी ब्रह्मविद्याका उप-देश देना ही है। छान्दोग्य उपनिषद्को वेदान्ततत्त्व-की खान कहनेसे भी कोई अत्युक्ति नहीं कही जा सकती। इसके प्रारम्भमें केवल 'ओम्' शब्दका माहात्म्य वर्णित हुआ है। यह सामवेदीय उपनिषद् है। सुतरां सामवेदकी महिमा भी इसमें बहुत गाई गई है। अतःपर आकाशादि पदार्थ तत्त्वके सम्बन्धमें आलोचना हुई है। फिर यज्ञादिका विषय आलोचित हुआ है। वैदिक देवताओंकी स्तुति आदि भी प्रचुर परिमाणसे इस उप-निषद्में दिखाई देती है। छान्दोग्य उपनिषद्में वैदिक उपा-सनाका सम्मान यथेष्ट संरक्षित हुआ है। हम इस ग्रन्थमें गायत्रीका माहात्म्य-कीर्त्तन भी यथेष्ट देखते हैं। तृतीय प्रपाठकके शेषांशमें ब्रह्मतत्त्वके संबंधमें उपदेश है। चतुर्थ प्रपाठकके आरम्भमें गणश्रुतिप्रत्यायनके प्रसङ्ग-में वेदान्तिक तत्त्व विवृत हुआ है। इसी तरह सत्य-काम, उपकोशल, कामलायन और श्वेतकेतु आरुणेय प्रभृतिके प्रस्तावमें वैदिक यज्ञ और ब्रह्मतत्त्वकी मीमांसा, ४थे प्रपाठकके १५ खण्डमें मृत्युके बाद जीवात्माका देवपथसे गमनका विषय, पञ्चम प्रपाठकमें सगुण ब्रह्मतत्त्वके निरूपणके उद्देश्यसे इस प्रपाठकके प्रथम खण्डमें पञ्चेन्द्रियोंकी अपनी अपनी श्रेष्ठता कथन और उसकी मीमांसाके लिये प्रजापतिके पास गमन और उनके साथ मन्त्रणा और उसके फलसे प्राण वायुका माहात्म्य और श्रेष्ठता कीर्त्तनके प्रसङ्गमें एकेश्वरवादका समर्थन किया गया है। इस प्रपाठकके दशवें खण्डमें कर्मभेदसे जीवकी पारलौकिक गति और आत्यन्तिक परिणतिका उपदेश है। पांचवें प्रपाठकके ११वें खण्डके प्रारम्भमें प्रकृत वेदान्तकी सूचना दी गई है। जैसे—

"प्राचीनशाल उपमन्यवः सत्ययज्ञः पौलुषिरिन्द्रद्युम्नो भाल्लवेयो जनः शार्कराक्षो बुडिल आश्वतराश्विस्ते हैते महाशाला महाश्रोत्रियाः समेत्य मीमांसां चक्रुः को न आत्मा किं ब्रह्मेति। १।"

अर्थात् उपमन्युपुत्र प्राचीनशाल, पुलुषपुत्र सत्य-यज्ञ, भल्लवीपौत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्षपुत्र जन और अश्व-तरके पुत्र बुडिल ये सब प्रधान धार्म्मिक गृहस्थ एकत्र हो आत्मा कौन है और ब्रह्म कौन है इनके सम्बन्धमें आलोचना आरम्भ करते हैं। ये इस तत्त्वकी मीमांसा-के लिये आत्मस्वरूप वैश्वानरके तत्त्वाभिज्ञ उद्दालकके समीप गये। उद्दालक इस प्रश्नकी मीमांसामें अपनेको असमर्थ जान इन सबोंको ले कर अश्वपति कैकेयके समीप गये। पञ्चप्राणकी तृप्तिसे ही जगत् तृप्त होता है और यह न जान कर अग्निहोत्र करने पर वह अग्निहोत्र सिद्ध नहीं होता, अश्वपतिने इन्हें यह तत्त्व अच्छी तरह समझा दिया। इसीसे इतना भी आभास दिया जाता है, कि जगत् आत्ममय है।

इसके बाद ही श्वेतकेतु और उनके पिताकी तत्त्व-जिज्ञासा है। षष्ठ प्रपाठकके प्रथमकाण्डसे ही इस प्रसङ्गमें प्रकृत वेदांतका तत्त्व आलोचित हुआ है।

इस प्रपाठकके प्रथम अध्यायमें श्वेतकेतुके प्रति प्रश्न कर उनके पिताने वेदांतके निगूढ़तत्त्वकी कथा उठाई।

श्वेतकेतुके पिताने कहा, 'श्वेतकेतो ! तुम बारह वर्ष तक वेद पढ़ कर सर्ववेदविद् कह कर अहङ्कृत होते आ रहे हो। तुमसे मैं आज एक बात पूछता हूं। तुमने क्या अपने गुरुसे प्रकृत शिक्षा पाई है जिस शिक्षासे अश्रुत-श्रुत, अननुभूत, वस्तुअनुभूत और अज्ञात ज्ञात होते हैं ?' जैसे—

"येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातमिति ?"

इस पर श्वेतकेतुने विस्मित हो कर कहा—"वह क्या भगवन् ! वह शिक्षा कैसी है ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें श्वेतकेतुके पिताने कहा—मृत्पिण्ड देखते ही मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत सब द्रव्योंका तत्त्व जाना जाता है। मृत्तिका द्वारा प्रस्तुत भिन्न भिन्न नामों द्वारा जितनी वस्तुएं चाहे क्यों न हो, ये सब पदार्थ मृत्तिकाके सिवा कुछ नहीं है। नाम केवल वाचारम्भण-विकार हैं—केवल मृत्तिका ही सत्य है।

"यथा सौम्येकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद् वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।" (छाः उः ६।१।४)

इसी तरहके और भी तीन उदाहरण दे पिताने पुत्रको सारतत्त्व समझा दिया। पुत्र श्वेतकेतु इस विषय पर और भी सुननेके लिये उत्सुक हुए। इस पर पिताने कहा,—

"सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तस्माद-सतः सज्जायते।"

अर्थात् आदौ यह एक अद्वितीय वस्तु थी। कुछ लोग कहते हैं, पहले कुछ भी न था। इसके बाद असत्से सत् हुआ। इसके बाद कहा जाता है, कि यह किस तरह सम्भव हो सकता है, कि असत्से किस प्रकार सत्की उत्पत्ति होती है। असल बात यह है, कि इसमें सन्देह नहीं, कि सृष्टिसे पहले एक अद्वितीय पदार्थ ही विद्यमान था। इसके बाद यह "एकमेवाद्वितीयम्" पदार्थसे किस तरह इस विश्वकी सृष्टि हुई ? छान्दोग्य उपनिषद्में इसकी आलोचना की गई है। जैसे—

"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत। तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते।"

छठे प्रपाठकसे हमने यहां जो श्रुतियां उद्धृत की हैं, वे ही ब्रह्मसूत्रके प्रथम कई सूत्रकी अवलम्बन हैं। इससे "जन्माद्यस्य यतः" और "ईक्षतेर्नाशब्दम्" इन दो सूत्रोंका अनुसन्धान मिल रहा है।

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किञ्चन मिषत् स ऐक्षत लोकान्नुसृजा इति" इस तरहकी श्रुति अन्यान्य उपनिषद्में भी दिखाई देती हैं। ये सब श्रुतियां उपनिषदोंमें विकीर्ण भावसे वर्त्तमान हैं। भगवान् ब्रह्मसूत्रकारने इन सब श्रुतियोंको सूत्राकारमें संग्रह किया था। इसके बाद इस विषयमें विस्तृत रूपसे आलोचना की जायेगी। इस प्रपाठकके आठवें खण्डके अन्तमें श्वेतकेतुके पिता कहते हैं,—

"स एषोऽणिमैतदात्म्यमिदं सर्वं तत् सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति।"

यही औपनिषद् ब्रह्मतत्त्व है, यही औपनिषद् आत्मतत्त्व है। छान्दोग्य औपनिषद्में वेदान्तके गूढ़ गम्भीर उच्चतम तत्त्व विदित हैं। नीचे कई श्रुतियां उद्धृत की गईं, —

१। "यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्" (७म प्र० २३ खण्ड। १)

अर्थात् भूमा ही सुखस्वरूप है, अल्पमें सुख नहीं है, भूमा ही सुख है।

२। "यत्र नान्यत् पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यत् विजानाति, स भूमाऽथ यत्रान्यत् पश्यत्यन्यत् शृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पम्। यो वै भूमा तदमृत मथ यदल्पं तन्मर्त्त्यम्।" (७म प्रपाठक २४ ख० १)

अर्थात् जहां जिसके सिवा अन्य कुछ दिखाई नहीं देता, अन्य शब्द सुनाई नहीं देता, जिसके सिवा और कुछ जाना नहीं जाता, वही भूमा हैं। इसके विपरीत अल्प हैं। भूमा ही अमृत और अल्प ही मर्त्य है।

३। "स एवाधस्तात् स उपरिष्टात् स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेदं सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश, एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वं सर्वमिति।" (७म प्र० १५ खण्ड। ६)

अर्थात् यह भूमा अधोदेशमें, ऊर्द्ध्वदेशमें, पश्चात् देशमें, सम्मुख, दक्षिण, उत्तर, सर्वत्र ही विराजमान है। इसी तरह 'मैं' भी सर्वत्र विराजित हूं। सुतरां इसके द्वारा आत्माका भी सार्वत्रिकत्व सूचित हुआ है।

४। "तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति नरोगं नोत दुःखताम् सर्वं ह पश्यः पश्यति सर्व्वमाप्नोति सर्वश इति।" (७म प्रपाठक १९ ख० २)

जो ज्ञानी पुरुष इस तरह आत्मतत्त्व सन्दर्शन करते हैं, वे क्लेश, रोग और मृत्युके हाथसे छुटकारा पाते हैं, वे सर्वदर्शिता पाते हैं, सभी सर्व प्रकारसे उनके करतलगत होते हैं।

५। "मघवन् मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्यु ना तदस्यामृतस्या शरीरस्याऽस्यात्मनोऽधिष्ठानमात्तोवै स शरीरः प्रियाप्रियाभ्यां नवै शरीरस्य सतः प्रियाप्रिय योरपहति रस्त्यशरीरं वाव सन्त न प्रियाप्रिये स्पृशतः।" (प्रपा० ८।१२।१)

अर्थात् हे इन्द्र! यह देह मृत्युके हाथमें है, यह अनश्वर अशरीरी आत्माका आवासस्थल मात्र है। इस देहमें सुख दुःख है। क्योंकि यह सुख दुःखके अधीन है। किंतु अशरीरी आत्माको सुखसे दुःखसे स्पर्श नहीं कर सकता।

छान्दोग्य उपनिषदुमें आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें इसी तरहकी उच्चतम शिक्षा और उपदेश दिखाई देते हैं। औपनिषदी श्रुतियोंको निविष्टभावसे अध्ययन करने पर सहजसे यह प्रतिपन्न होता है, कि ब्रह्मसूत्र प्रधानतः छान्दोग्य आदि उपनिषदोंके अवलम्बनसे सङ्कलित किया गया है। यहां छान्दोग्य उपनिषद्से संक्षिप्तरूपसे जो श्रुतियां उद्धृत की गई, अन्यान्य उपनिषदोंमें भी वैसी श्रुतियां दिखाई देती हैं। भगवान् सूत्रकारने इन सब श्रुतियोंका सार संग्रह कर सूत्मसूत्रमें औपनिषदी श्रुतिका सार ग्रथित किया है। विश्वतत्त्व, जीवतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व इन तीन तरहके तत्त्वोंके अनुसंधानमें भारतीय ऋषियोंके मनमें किस परिमाणसे प्रगाढ़ स्पृहा उत्पन्न हुई थी, छोटे बड़े प्रत्येक उपनिषदुमें ही उसका यथेष्ट परिचय मिलता है। हारबर्ट स्पेनसार आदि श्वेतकेतुकी तरह अपरा विद्याका अनुसंधान करने गये थे। इसीलिये वे अज्ञात या अज्ञेयको (unknowable) जान नहीं सके हैं। श्वेतकेतु भी इस तरह वेदादि शास्त्र पढ़ कर भी अश्रुत, अननुभूत और अज्ञातको कुछ भी जान नहीं सके थे। किंतु उनके ब्रह्मनिष्ठ पिताकी कृपासे अंतमें उनका ब्रह्मतत्त्वज्ञान या उस अज्ञेय अज्ञाततत्त्वका ज्ञान परिस्फुट हो उठा।

इस अज्ञात या अज्ञेय पदार्थके (unknowable) विशेष ज्ञानका उपदेश करना ही उपनिषदुशास्त्रका एक प्रधान लक्ष्य है। इसके संबंधमें भारतवासी जिस तरह अग्रसर हुए थे, मानव-जगत्‌की अन्य कोई जातियां उसके अंशकलाज्ञानलाभमें भी समर्थ न हो सकीं। यह सभी स्वीकार करते हैं, कि इस तरहका ज्ञानलाभ करना बहुत साधन सापेक्ष है।

ऐतरेय-उपनिषदुकी जो कई श्रुतियां वेदांतशास्त्रके वीजरूपसे कही गई हैं, वे ये हैं—

१। "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् नान्यत् किञ्चनमिषत्। स इक्षत लोकन्नु सृजा इति। (१।१)

२। स इक्षत मेनु लोका लोकपालान्नु सृजा इति। (१।३)

३। स एतेन प्रज्ञेनात्मनेनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुस्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानापत्वाऽमृतः सम भवत् समभवत्। (५।८)

४। स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत्।" (४।६)

छान्दोग्य-उपनिषदुमें जैसे प्रणव शब्दका बहुत माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है, तैत्तिरीय उपनिषदुके अष्टम अध्यायमें भी उसी तरह प्रणवकी माहात्म्य सूचक एक श्रुति दिखाई देती है। इसी एक श्रुतिमें अध्याय समाप्त हुआ है। भाष्यकार भगवान् शङ्कराचार्यने कहा है, कि यह प्रणव ही ब्रह्मका स्वरूप है। इसी एक शब्दमें ही विश्वतत्त्व और ब्रह्मतत्त्व भरा पड़ा है। इस उपनिषदुके प्रारम्भमें नाना प्रकारके कर्त्तव्य-परिपालनके निमित्त "सत्यं वद" "धर्मं चर" "मातृदेवो भव" "पितृदेवो भव" "अतिथिदेवो भव" इत्यादि उपदेश

दिये गये हैं। इनके सिवा "एषः आदेशः। एषः उपदेशः। एषा वेदोपनिषत् इत्यादि।" नाना प्रकारके गुह्याचारके उपदेशकी दृढ़ता प्रदर्शित हुई है।

इस उपनिषद्में सर्वतश्रुत सुप्रसिद्ध कई ब्रह्म-निरूपणलक्षणश्रुति देखते हैं; जैसे—

"यतो वाचा निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कदाचन॥"

विस्तार हो जानेके भयसे अधिक नहीं लिखा गया। फलतः तैत्तिरीय उपनिषद्के ब्रह्मानन्दवल्ली और भृगु-वल्ली ये दोनों ही अंश उच्चतम औपनिषदी श्रुतिसे परिपूर्ण हैं। इस उपनिषद्की आनन्दतत्त्व श्रुति अति उपादेय है। हम नीचे दो श्रुतिको उद्धृत कर इस उप-निषद्का विशेषत्व दिखलाते हैं।

१। 'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।'

२। "आनन्दो ब्रह्मेति व्यजनात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि जीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।"

तैत्तिरीय उपनिषद्की ये दो उत्कृष्ट श्रुतियां वेदान्त ग्रन्थमें अनेक बार आई हैं। ब्रह्मसूत्रका "आनन्दमयो-भ्यासात्" सूत्र इस आनन्दश्रुतिकी ही प्रतिध्वनि है। ये दो श्रुतियां वैष्णव धर्मकी मूल वीज हैं। इन्हीं दो श्रुतियोंसे वैष्णवोंके रसिकशेखर आनन्दमय श्री-भगवान् हैं, इन्हींसे उनका रास है और इन्हींसे उनकी आनन्दलीलाकी सैकड़ों उत्ताल तरङ्ग हैं! वेदान्तसूत्रके वैष्णव भाष्यकारोंने कई जगह ये दो उपनिषद्वाक्य उद्धृत किये हैं। मूलतत्त्वाभिव्यञ्जक प्रणवके माहात्म्यकीर्त्तनसे इस उपनिषद्का प्रारम्भ है, किन्तु ऋषि, अनुभवानन्दके गम्भीर, गम्भीरतर और गम्भीरतम स्तरमें जहां तक गये हैं, वहीं साङ्केतिक अभिव्यक्तिसे प्रगाढ़तर भावरसमें निमज्जित हो आनन्दलीलारसके चिर सुधास्वादके आस्वादनमें विभोर हुए हैं। इस अवस्थामें ब्रह्मपृच्छा स्वभावतः ही तिरोहित हो जाती है, केवल आनन्द-आस्वादनके लिये ही प्राण व्याकुल हो उठते हैं। साधनाके अनुसार ही सिद्धि है। ब्रह्मा-नन्दवल्लीमें ऋषि सचमुच आनन्दसागरमें निमज्जित हैं। अन्यान्य स्थानोंमें हम ब्रह्मको विविध नामोंसे अभिहित देखते हैं, कहीं वे पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ, कहीं वैश्वानर इत्यादि विविध नामोंसे अभिहित हुए हैं। किंतु ऋषिगण जब ब्रह्मतत्त्वके गभीर स्तरमें पहुंचे, तब उन्होंने "ब्रह्मैव सुखम्" "आनन्दं ब्रह्म" "रसो वै सः" इत्यादि अनुभूतिमयी श्रुति द्वारा ब्रह्मस्वरूप अभिव्यक्त करनेकी चेष्टा की। बाह्य जगत्से किस प्रकार अन्तर्जगत्के गभीरतर प्रदेशमें प्रवेश कर ब्रह्मा-नन्दका उपभोग करना होता है, किस प्रकार ऐहिक जगत्के सुखभोगकी कामनाका परित्याग कर रससुधा-निधिके आनन्दरसमें निमज्जित होना पड़ता है, वैदिक साहित्यकी आलोचनाके बाद औपनिषद-साहित्यके आलोचना-क्षेत्रमें प्रवेश करनेसे उस ब्रह्मानन्दकी विमल प्रतिच्छवि सहसा मानसनेत्रके सामने प्रतिभात होती है। वैदिक उपासनासे वेदान्तकी उपासनाके अनन्त आकाशमें हम उपास्यके जो अभिनव वस्तु देखते हैं, वह अभिनववत् प्रतीयमान होने पर भी वैदिक मन्त्रके अभ्यन्तर हमने उसको अति सूक्ष्म वीज देखा है; एकेश्वर-वादका विपुल तत्त्व वैदिक ऋषियोंके हृदयमें नित्य प्रतिष्ठित था। सुतरां वैदिक उपासना और वेदान्तकी उपासनामें यह पार्थक्य आकस्मिक नहीं है। बहुत दिनोंसे तत्त्वज्ञ ऋषियोंके हृदयमें ब्रह्मतत्त्वकी प्रतिच्छवि धीरे धीरे समुद्भासित होती थी। उपनिषद् युगमें यह प्राकृतिक नियमकी तरह क्रमविकाशकी प्रणाली क्रमसे भारतीय ऋषिसमाजमें धीरे धीरे अभिव्यक्त होता था। हम तैत्तिरीय उपनिषद्में ही उसका पूर्ण विकाश देखते हैं।

बृहदारण्यकसे हम लोगोंने सुना है, "ये हमारे वित्तसे प्रिय हैं, पुत्रसे प्रिय हैं, जगत्में हम लोगोंका प्रियतम जो कुछ है, सबोंकी अपेक्षा ये हमारे प्रिय हैं।" मुण्डकका कहना है, "सत्यकी ही जय है, ब्रह्म उसी सत्यका परम निधान है। सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर, दूरसे दूर, फिर निकटसे भी सन्निकट, वे आत्मारूपमें हम लोगोंके अति निकटवर्त्ती है, उनके समान निकटवर्त्ती और कुछ भी नहीं है।" मुण्डकने सत्यकी महिमा घोषित करते हुए कहा है—

"सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येना क्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥"
(३।१।६)

इस उपास्य पदार्थकी अचिन्त्य महिमाकी कथा प्रकट न कर ऋषिने कहा है—

"बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥"
(३।१।७)

महानारायण उपनिषद्में हम सत्यका प्रगाढ़ सम्मान देखते हैं। इस उपनिषत्कारका कहना है, कि सत्यसे ही वायु प्रवाहित होती है, सत्यसे ही सूर्य रोशनी देते हैं, सत्यसे ही यह विश्व स्थिर है, सत्य सर्वोपरि है। यथा "सत्येन वायुरावाति, सत्येनादित्योरोचते दिवि, सत्यं वाचः प्रतिष्ठा, सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात् सत्यं परमं वदन्ति ।"

(महानारायणोपनिषत् २२।१)

"ऋतं सत्यं परं ब्रह्म" यह भी महानारायणोपनिषद्की उक्ति है (१।६)। महानारायणोपनिषत्ने ऋग्वेदके दशममण्डलके १९० सूक्तका "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायते" मन्त्र भी ग्रहण किया है। छान्दोग्यने कई जगह लिखा है, "तत्सत्यं आत्मा ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ।" बृहदारण्यक उपनिषत्में भी अनेक स्थलोंमें ब्रह्मके सत्यस्वरूपत्वका उल्लेख देखनेमें आता है—"सत्यं सर्वेषां भूतानां मधु" "सत्यं ब्रह्म" इत्यादि उक्ति सभी जगह देखी जाती है। सर्वोपनिषद्की सार बात—"सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दंब्रह्म" श्रीभागवत आदि पुराणोंके उपक्रमसे ले कर उपसंहार तक प्रतिध्वनित हुई है। वेदान्तशास्त्रने इस सत्यतत्त्वको ले कर गभीर साधना की है। फलतः "सत्यज्ञान आनन्द और ब्रह्म है" यह बात महावाक्यरूपमें चली आती है। हम लोग अभी बात बातमें वेदान्तके उत्तम तत्त्वमय "सच्चिदानन्द" वाक्यका व्यवहार करते हैं। फलतः इस देशमें इस प्रकार वेदांतके अनेक मूलतत्त्व घर घरमें प्रचारित हुए हैं। मुण्डकोपनिषद्के सम्बन्धमें दो एक बातें लिखी जाती हैं।

मुण्डकोपनिषद्के वाक्य एक ओर जिस प्रकार भावगम्भीर हैं, दूसरी ओर उसी प्रकार सुगम्भीर भाषामें ग्रथित हैं। ग्रंथमें ब्रह्मधाम और उसकी प्राप्तिका उपाय वर्णित हुआ है। ऋषि कहते हैं—

१। "स वेदैतत् परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामा स्ते शुक्रमेतदति वर्त्तन्ति धीराः ॥ (३ मुण्ड २य खण्ड ।१)

२। "तत्र न सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्ति मनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्व मिदं विभाति ॥"
(२य मु० २।१०)

३। "नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम् ॥" (३य मुण्ड २।३)

हम पहले लिख चुके हैं, कि वैदिक ऋषिगण प्राकृतिक पदार्थमें देवमूर्त्तिको प्रत्यक्ष करते थे, वे साक्षात् सम्बन्धमें देवताओंको आह्वान करते थे। इस समय ऋषियोंके भाव और भाषा प्रसन्न और प्रशांत गाम्भीर्यमें परिणत हुई थी। उनकी आकांक्षा दूर हो गई थी, बहिर्विषयमें सुखानुसंधानके दूर हो जानेसे ब्रह्मानुसंधान उत्पन्न हुआ था। उपास्य-दर्शनसे उनके चर्मचक्षुकी क्रिया बंद हो गई थी। किंतु इससे भी उनके प्रत्यक्षकी हानि न हुई, वे चर्मचक्षुसे आकाशकी ओर सूर्यको देखते थे, मरुद्गणका अस्तित्व जानते थे। पार्थिव अग्नि जला कर अग्निहोत्रादि कार्यमें निरत रहते थे। किंतु वेदांत युगमें ऋषियोंकी दूसरे प्रकारकी दिव्य दृष्टि खुल गई, वे साधकोंको उपदेश दे कर कहने लगे—

"न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचानान्यैर्देवै स्तपसा कर्मणा वा ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्व स्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमाना ॥"

अर्थात् चक्षु उन्हें खोज कर निकाल न सके, वाक्य उन्हें खोल कर कह न सके, वे अन्यान्य इन्द्रियोंके भी अग्राह्य हैं, तप और कर्म द्वारा भी उन्हें पा नहीं सकते। वे केवल ज्ञानप्रसन्न विशुद्ध ध्यायमान चित्तके ही ज्ञेय हैं।

उस सर्वभूतमें विराजमान कूटस्थ पुरुष चर्मचक्षुके अगोचर होने पर भी धीर प्रशान्त ध्यायमान ऋषियोंने ज्ञानचक्षुसे उन्हें प्रत्यक्ष साक्षात् पाया। इस प्रकार प्रत्यक्ष करके उन लोगोंने शिष्योंको उपदेश दिया—

"तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीराः
आनंदरूपममृतं यद्विभाति।" (मुण्डक २।२।७)

धीरगणने विज्ञाननेत्रसे देखा, कि वह आनन्द रूप अमृत वस्तु ऊपर, नीचे, बायें, दाहिने, आगे, पीछे सभी जगह विराजमान हैं। इस प्रकार ब्रह्मदर्शन होनेसे ही हृदयग्रन्थि भिन्न होती है, सभी संशय जाता रहता है, कर्मराशि क्षय होती है, यहां तक कि अविद्या वा कर्मबीज सदाके लिये विनष्ट हो जाता है।

उपनिषद् मात्रसे ही हम इस प्रकार शिक्षा पाते हैं। उपनिषद्के इन सब सारतत्त्वके आधार पर ही वेदान्त-सूत्र ग्रथित हुआ है। ब्रह्मसूत्रकी आलोचना करनेमें सबसे पहले उसके मूलावलम्बन उपनिषद् शास्त्रको आलोचना करना कर्त्तव्य है। हम इसके पहले कुछ सुप्रसिद्ध उपनिषदोंकी बात लिख चुके हैं। अभी कठोपनिषद्की दो एक बातोंकी आलोचना की जाती है। मृत्यु और नाचिकेत संवादप्रसङ्गमें कठोपनिषद्का उपदेश दिया गया है। अचिन्त्यकैश्वर्य ब्रह्मके अद्भुत प्रभावका विषय इस उपनिषद्में दिखाई देता है। ऋषि कहते हैं—

"आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातु मर्हति।" (२।२१)

वे बैठे रहने पर भी बहुत दूर तक जाते हैं, शयन करने पर भी सभी जगह उनकी गतिविधि है, वे हर्षा-हर्ष उभय भावविशिष्ट हैं, "अहं" छोड़ कर कौन उन्हें जानेगा? इस शरीरमें जो अशरीरी हैं, अनवस्थित अनित्य पदार्थमें जो अवस्थित और अनित्य हैं, ऐसे ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान हो जानेसे किसीको भी शोक नहीं रह सकता। पाश्चात्य दार्शनिक पण्डित हार्वर्ट स्पेन्सर-ने अनेक वैज्ञानिक युक्तिकी सहायतासे यह साबित करनेकी चेष्टा की है, कि इस अनन्त परिवर्त्तनमय विश्वके अन्तरालमें एक अद्वितीय अपरिवर्त्तनीय महाशक्ति अवश्य है। उस शक्तिके अवलम्बन पर ही इस विश्वजगत्का अस्तित्व है, यह विश्वजगत् उसी शक्तिका प्रकाश है तथा उसी शक्ति पर इस विश्वका विश्राम है। हारवर्ट स्पेन-सरने यह कह कर अज्ञातसारसे कठोपनिषद्के वाक्योंको प्रतिध्वनित किया है। हम कठोपनिषद्में इन वाक्योंको परिस्फुट श्रुति उद्धृत कर वेदान्तशास्त्रकारोंको गभीर गवेषणाका उदाहरण प्रकट करते हैं। ऋषि कहते हैं—

"एकोवशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं योऽनुपश्यन्ति धीरा स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥"

"नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनाना
मेको बहूनाम् यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं योऽनु पश्यन्ति धीराः
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥" (५।३०-३१)

आधुनिक विज्ञान सभी जगह शक्तिका एकत्ववाद स्थापन करनेकी चेष्टा करता है। हम इस उपनिषद्वाक्यमें इसका सुदृढ़ सिद्धान्त सूत्राकारमें देखते हैं। इस बालूके कणमें जिस शक्तिका अस्तित्व नित्यरूपसे प्रतिष्ठित है, वह विशाल हिमगिरि भी उसी शक्तिकी अभिव्यक्ति है। एक बिन्दु जलमें जिनकी सत्त्वा विद्य-मान है, उत्तालतरङ्गमालामय असीम अनन्त महासागर भी उन्हींकी सत्त्वाका साक्ष्यप्रदान करता है, लता पत्ता-में ग्रह नक्षत्रमें कीट पतंगमें जड़ और चेतनमें इस एक ही शक्तिका भिन्न भिन्न प्रकाश है। कोकिलके कल कूजनमें, शिशुकी कोमल कलध्वनिमें जिस शक्तिके श्रवणहारि माधुर्य पर हम विमुग्ध होते हैं, वज्रके गर्जनसे भी उसी शक्तिकी लीला प्रकट होती है। जो शक्ति कुसुममें कोमलता कह कर अनुभूत होती है, वह शक्ति वज्रकी भी कठिनताका हेतु है। जो "आनन्दममृतरूपं विभाति" हैं, वे ही फिर "महद्भयं वज्रमुद्यतम्" है, भयभीत शिशुके अन्तर जो भयकी सङ्कोच मूर्त्तिके रूपमें प्रत्यक्ष होते हैं, वे फिर "भयानां भयम्" "भयादग्निज्वलति, भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" है। प्रस्तरमें जो अचेतन रूप हैं,—मानव हृदयमें वे ही ज्ञानभक्तिरूपमें विराजमान हैं। दार्श-निक पण्डित हारवर्ट स्पेनसरने इस ब्रह्मविभुत्व ज्ञानका लेशाभास प्राप्त कर कहा है, कि शक्ति जड़ विश्वके

चिद्वृत्ति रूपमें प्रकटित है।* अभिव्यक्ति अनन्त हैं, किन्तु ब्रह्म एक है तथा यह सभी ब्रह्मकी ही अभिव्यक्ति है। चेतनाचेतनोद्भिद्मय यह विशाल विश्व ब्रह्माण्ड अनन्त अगण्य दृश्यका विपुल रङ्गालय है, किन्तु इसका प्रत्येक पदार्थ एक अद्वितीय शक्तिकी क्रीड़ापुत्तली है। समग्र विश्व उन्हींकी मूर्त्ति हैं, किन्तु वे इससे पृथक् हैं। शिष्यने इस पदार्थका तत्त्व जाननेके लिये श्रीगुरुके चरणतलमें बैठ कर प्रार्थना की थी—

"अन्यत्र धर्मादन्यत्रा धर्मादन्यत्रास्मात् कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत् पश्यसि तद्वद ॥"

(कठवल्ली २।१४)

यही पदार्थ वेदान्तका आलोच्य है तथा वेदान्तका उपास्य है, इसमें ही अनन्त विश्व प्रतिष्ठित है। इससे कोई भी पदार्थ स्वतन्त्र नहीं रह सकता। सूर्य जिस प्रकार हम लोगोंके नयन हैं, किन्तु नेत्रकी त्रुटि वा दोषसे जिस प्रकार सूर्य कलुषित नहीं होते, उसी प्रकार विश्वकी मलिनता भी विश्वेश्वरको स्पर्श नहीं कर सकती।" हम श्वेताश्वतर उपनिषद्में भी इसी प्रकार ब्रह्मतत्त्व देखते हैं। श्रीभगवद्गीतामें इस तरहका वेदान्त विज्ञानात्मक सारसत्य अनेक प्रमाणोंमें दिखाई देता है।

वस्तुतः स्वरमें जैसे शब्द है और तिलमें जैसे तैलका अस्तित्त्व विद्यमान है, ब्रह्म भी इस विश्वमें वैसे ही भावसे विद्यमान हैं। जगत्में अनन्त परिवर्त्तन प्रतिमुहूर्त्तमें साधित होता है, किन्तु वे चिर अपरिवर्त्तनीय हैं। किस प्रकार इस नियम परिवर्त्तनके शासनदण्डके हाथसे जीव बच सकता है, किस प्रकार जीव शोक और मृत्युसे छुटकारा पा सकता है, उपनिषद् युगमें भारतीय आर्य नरनारियोंके हृदयमें यह वासना बहुत बलवती हुई थी। इस समय जीवन-मरणका रहस्य जाननेके लिये कौतूहल ज्ञानियोंका हृदय अधिकार कर बैठा था। मृत्यु क्या है, मृत्युके पीछे जीवकी क्या गति होती है, इत्यादि विषयमें ज्ञान लाभ करनेके लिये गार्गी आदि महिलायें भी उपनिषद्का प्रश्न उठाती थीं। उपनिषद्में हम इन सब प्रश्नोंकी ही मीमांसा देखते हैं।

उपनिषद् ही ब्रह्मविद्या है। यह विद्या सभी विद्याका सार है। मुण्डकोपनिषद्में ऋषि कहते हैं, कि दो ही विद्या हम लोगोंकी ज्ञातव्य है—एक अपरा और दूसरी परा। वेदवेदाङ्ग आदि अपरा विद्या और वेदान्त वा ब्रह्मविद्या ही परा विद्या है। इस ब्रह्मविद्यामें सभी विद्या निहित है। इस कारण आर्यगण वेदान्तका इतना आदर कर गये हैं। उपनिषद्कारोंने इस ब्रह्मविद्याके शिक्षाप्रचारके लिये अधिक नहीं कहा है,—उपनिषद्वाक्य सूत्राकारमें रचित नहीं होने पर भी यह सूत्रको तरह सारगर्भ है, सूत्रकी तरह विश्वतोमुख है। वेदान्तकी शिक्षा अति उदार है। शिष्य बड़े, नम्रसे गुरुसे कहते हैं,—गुरुदेव, आप उपनिषद् कहिये। परम कारुणिक गुरुदेवने उसी समय कहा, "तुम लोगोंसे ब्रह्मविषयिणी उपनिषत् कहता हूं"—इतना कह कर वे ब्रह्मतत्त्व समझाने लगे। दो चार बातोंसे ही शिष्योंके चित्तमें ब्रह्मज्ञान उमड़ आया, उनका हृदय प्रसन्न हो गया, सभी भूतोंमें ब्रह्मज्ञान फैल गया। शिष्योंने समझा, कि यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड बिलकुल ब्रह्ममय है। उन्हें बड़े छोटे ब्राह्मण शूद्र आदिका भेद-ज्ञान है। गुरुदेवने समझा दिया—

"यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्व मनुपश्यतः ॥"

(ईशोपनिषद् ६,७)

वे सर्वभूतको अपनी आत्मामें देखते हैं, इस जगत्का कोई भी पदार्थ उस समय उनके निकट क्षुद्र होनेके कारण हेय नहीं समझा जाता था। सबोंको जो अपनी आत्मामें देखते हैं यथा सभी जगह जो एकत्वका अनुभव करते हैं, उन्हें शोक मोहादि कहां?

---

* "The Power manifested throughout the universe, distinguished as material, is the same Power which in ourselves wells up under the form of consciousness" (Religion, a Retrospect and Prospect.)

ब्रह्म या आत्माका स्वरूप ।

वाजसनेय-उपनिषत् कहते हैं,—आत्मा प्रकाशरूप अखण्ड, अशरीरी, विशुद्ध, अपापविद्ध, कवि, त्रिकालज्ञ, मनीषी, अन्तर्यामी, विभू, सर्वोत्तम और स्वयम्भू हैं। बृहदारण्यक उपनिषत्का कहना है, कि वे सबसे प्रियतम हैं, ज्योतिके ज्योति हैं। विश्वब्रह्माण्ड उन्हीं पर स्थिर है। मुण्डक इस प्रकार कहते हैं—वे अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय, अरस, नित्य अगन्धवत्, अनादि अनन्त और परात्पर हैं। इन्हें जान लेनेसे मनुष्य मृत्युमुखमें पतित नहीं होते। श्वेताश्वतर उपनिषत्ने कहा है,—वे बृहत् होने पर भी बृहत्तर हैं, महत् होने पर भी महत्तर हैं, पूर्ण आनन्दमय हैं, विश्वके कर्त्ता और गोप्ता हैं। विश्वमें कोई भी उनसे बड़ा नहीं है और न कोई उनके समान ही है। वे चर्मचक्षुके अदृश्य हैं। उनके हाथ पैर नहीं हैं, किन्तु वे ग्रहण कर सकते हैं। उनके कान नहीं हैं, पर सुनते हैं, चक्षु नहीं है, पर देखते हैं, वे सर्वज्ञ हैं, फिर भी उन्हें कोई देख नहीं सकता। वे अक्षय अज और सर्वव्यापी है। जो उन्हें जानते हैं, वे ही अनन्तशांतिलाभ करते हैं, दूसरा कोई भी शांति लाभ नहीं कर सकता।

साक्षात्कारका साधन।

अन्यान्य वेदोपनिषदमें इसके स्वरूपको जो वर्णना की गई है तथा इन्हें लाभ करनेका जो उपाय दिखलाया गया है, पहले तो इसकी आलोचना हो चुकी है। किस प्रकार मनुष्य विमल आनन्दपथके पथिक होंगे, उसके लिये क्या उपाय अवलम्बन करना उचित है, बृहदारण्यकमें उसका एक उपदेशवाक्य कहा गया है। ऋषि कहते हैं, पवित्र कार्य द्वारा ही मनुष्य पवित्र होते हैं, कुत्सित कार्यसे अन्तरात्मा कुत्सित और कदर्य्य हो जाती है। जिसकी जैसी वासना है उसका वैसा ही सङ्कल्प है; जैसा सङ्कल्प वैसा ही कार्य्य और जैसा कार्य्य वैसा ही फल है; यथा—"यथाकारी यथाचारी तथा भवति काममय एवायं पुरुष इति, स यथाकामो भवति तत्क्रतुर्भवति तत् कर्म कुरुते। यत् कर्म कुरुते। तदभि सम्पद्यते।" (४ अ० ४ ब्रा० ५)

कठोपनिषदमें लिखा है—

"नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः।
ना शान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥" (२।२४)

अर्थात् कुकर्मसे अनिवृत्त, अशांत, असमाहित, अशांतमानस (सकाम द्वारा उद्विग्नचित्त) व्यक्ति आत्मज्ञान लाभ नहीं कर सकते।

ब्रह्मदर्शन ही जीवका पुरुषार्थ है—उपनिषद्ज्ञान उसका प्रधान है। किंतु सूर्यकी किरण अंधकारको दूर करनेमें समर्थ होने पर भी जिस प्रकार प्रतिबंधकताके लिये हम लोगोंको अंधकारका भोग करना पड़ता है, इस प्रकार उपनिषद्वाक्यके आधार पर साधनपथसे पदार्पण करने पर भी पद पदमें हम लोगोंके सामने बाधा उपस्थित होती है। जिससे कुत्सित कर्मकी वासना त्याग नहीं करनेसे, ब्रह्मसाधनामें एकाग्र नहीं होनेसे, केवल शास्त्र पढ़नेसे विमल ब्रह्मज्ञान लाभ नहीं हो सकता। इस कारण साधनप्रिय ऋषिगण सरल प्राणसे देवताके निकट कातरकण्ठसे प्रार्थना करते थे—

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा
ज्योतिर्गमय मृत्युर्मामृतं गमय।" (बृहदा० उ० १।३।२८)

अर्थात् 'हे देव! तुम मुझे असत् पथसे सत्-पथमें ले जाओ। अंधकारसे उजालेमें ले जाओ तथा मरणके शासनसे अमृतके पथ पर ले जाओ।' फलतः वेदांतके सच्चिदानन्दमय राज्यमें घुसनेके लिये इस प्रकार विषयवैराग्यजनित आकुल प्रार्थना ही प्रधानतम प्रथम साधन है। शिष्यगण इस प्रार्थनाको अवलम्बन करके ही आगे बढ़ते थे।

औपनिषदी उपासना।

उपास्यके स्वरूपके अनुसार ही उपासनासिद्धि होती है। उपासकके भाव और आत्मोत्कर्षके अनुपातसे उपास्यदेव उपासकके हृदयमें प्रकट होते हैं। उपनिषद् युगके ऋषियोंको ज्ञाननेत्रके सामने जो उपास्य प्रतिभात हुआ, उसकी उपासनाविधि स्वतन्त्र हो उठी। नाना प्रकारके बलिदान, होमाग्निकी पवित्र आहुति अथवा कण्ठयंत्रकी स्तुतिमय वाक्यावली उपासनाकी योग्य न समझी गई। एक श्रेणीके ऋषि उन्हें "अवाङ्मनसगोचरः" कह कर नीरव हो गये, उनका कण्ठ

रुक गया, आंखें बंद हो गईं, शरीर निस्पन्द हो उठा, वे ब्रह्मानन्दके ध्यानसागरमें निमज्जित हो गये। उन्होंने तदाकारकारित चित्तवृत्ति द्वारा ब्रह्ममहासागरमें आत्म निर्झरिणीको एकदम विमिश्रित कर दिया। निर्झरिणी जिस प्रकार गिरिचरणप्रान्तमें अपना रूप अभिव्यक्त करके विशाल आयतन धारण करती है तथा तरङ्ग रङ्गमें कलकल निनादसे सागरकी ओर दौड़ती है, आखिरको अपना नाम रूप छोड़ कर अनन्त असीम सागरके साथ मिल जाती है, इस श्रेणीके साधकगण भी उसी प्रकार उपासनाके रससे दिनों दिन संपुष्ट हो कर आखिर ब्रह्म-सागरमें आत्मविसर्जन करते हैं तथा अपनी निखिल उपाधि छोड़ कर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। इसी कारण ऋषि कहते हैं—

"यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे स्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय।
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥"
(तृतीय मुण्डक ३।८)

अर्थात् जिस प्रकार स्पन्दमान नदियां नानारूप त्याग कर समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार ब्रह्मसाधक विद्वान् पुरुष नामरूपादि उपाधिका परित्याग कर परात्पर ब्रह्ममें विलीन होते हैं। इसके बाद ही कहा गया है—

"स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याऽब्रह्मवित्कुले भवति।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति॥"

इससे जाना जाता है, कि यह ब्रह्मविद् ब्रह्मत्वको प्राप्त होते हैं। ये शोकमोहपापादिसे विमुक्त हो अमृत धाममें जाते हैं। ये पुनः पुनः जन्ममृत्युके शासनसे सम्पूर्ण रूपसे मुक्तिलाभ करते हैं, केवल ध्यान ही उनकी प्राप्तिका साधन है। यथा—

"न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।"
(कठवल्ली ६।९)

अर्थात् ये चक्षुके अगोचर हैं, इन्हें चक्षुसे देखा नहीं जाता, बुद्धिपूर्ण चित्तसंयम ध्यान द्वारा वे मानस-नेत्रके सामने प्रकाशित होते हैं। जो इन्हें जानते हैं, वे अमरत्वको लाभ करते हैं।

जो चाहे जिस तरह ब्रह्मलाभ क्यों न करे, उपासना सभीके लिये प्रयोजनीय है। विना उपासनाके उस अपापविद्ध विशुद्ध पदार्थकी धारणाके निमित्त चित्त-भूमि बिलकुल प्रस्तुत नहीं होती। निर्विशेषमें ब्रह्मवादियोंके मतसे "सोऽहं" ध्यानसे ही ब्रह्मोपासना साधित होती है, परन्तु एक दूसरी श्रेणीके वेदान्ती उस ब्रह्मको "सत्यं शिवं सुन्दरम्" कह कर ही विश्वास करते हैं।

शतपथब्राह्मणमें भी हम रूपादिविवर्जित अध्यात्म-भावकी श्रेष्ठताका कीर्त्तन देखते हैं। रूपसम्भारसे उपासनाको शतपथब्राह्मणमें वैश्यवृत्तिका प्रणोदित कार्य कहा है। चित्तसंयम, चित्तकी सद्वृत्तिका उत्कर्ष साधन और शम दम आदि द्वारा चित्तको उपासना लायक करनेका उपदेश प्रायः सभी उपनिषदोंमें दिखाई देता है। नैतिक वृत्तियोंके उत्कट साधन द्वारा चित्त-पापप्रलोभनके आक्रमणसे बचाना जो कर्मकाण्डीय कार्यप्रणालीकी अपेक्षा अधिक प्रयोजनीय है। उपनिषद्मुखमें ऋषियोंने उसके अनेक उपदेश दिये हैं। क्षमा, सत्य, दम और शम द्वारा चित्तवृत्तिके उत्कर्ष साधनके सम्बन्धमें श्रीभगवद्गीतोपनिषदमें बहुतसे भगवद्वाक्य हैं। मुण्डकमें साफ साफ लिखा है—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्॥
नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायै र्यतते यस्तु विद्वान् स्तस्यैष आत्मा विशति ब्रह्मधाम।" (मुण्डक ३।१३-४)

फलतः इस आत्माको वक्तृता द्वारा और मेधा (ग्रन्थार्थधारणाशक्ति) वा अनेक श्रुत (अध्ययन) द्वारा लाभ नहीं किया जाता। यह आत्मा केवल ज्ञानादि-परत्वमय निष्काम तपस्या द्वारा तथा अनात्म वासना त्याग द्वारा एकनिष्ठ भजनसे ही लभ्य है। ज्ञानतृप्त वीतराग कृतात्मा प्रशान्तचित्त युक्तात्मा वेदांतविज्ञान-सुनिश्चितार्थ संन्यासीगण ही ब्रह्मलाभके अधिकारी हैं। यथा—

"संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागा प्रशान्ताः ।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवा विशन्ति ॥
वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।"
(तत्रैव ५।६)

मुण्डकोपनिषद्के बहुत पहले भी 'वेदान्त' शास्त्र था, अभी वह जाना जाता है। वस्तुतः प्राचीन वेदान्ती किस प्रकार ब्रह्मसाधना करते थे तथा ब्रह्मसाधनाके लिये वे अपनी चित्तभूमिको किस प्रकार उपयुक्त करते थे, इन दो श्रुतिवाक्योंसे उसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है। मुण्डकोपनिषद्के प्रथम मुण्डकके द्वितीय काण्डमें ज्ञानियोंके कर्मकाण्डीय विधि छोड़नेका उपदेश दिखाई देता है। इस काण्डकी एक श्रुतिमें इन सब कार्योंके यजमानको "अन्धनीयमान अन्ध" कहा है। ब्रह्मचर्य, सत्य, शान्ति वैराग्य, औदार्य्य, शम, दम, त्यागस्वीकार, श्रद्धा, ब्रह्मनिष्ठता और ध्यान धारणा आदि द्वारा ब्रह्मोपासनाके लिये चित्त उपयुक्त हो जाता है। श्रद्धा और निष्ठादि जो ब्रह्मसाधनाका विशेष अङ्ग है, छान्दोग्य उपनिषद्में वह साफ साफ लिखा है।

प्रस्थान-त्रयभाष्य ।

हम पहले लिख चुके हैं, कि ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डुक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, कौषितकी और श्वेताश्वतर ये सब उपनिषद् ही इस देशमें अधिकतर प्रचारित हुए थे। इन सभी उपनिषदोंका वेदान्तीगण अधिक आदर करते हैं। ये सब उपनिषद् "प्रस्थानत्रय"-के अन्तर्गत हैं। "प्रस्थानत्रय" किसे कहते हैं, यहां उसका आभास देना प्रयोजनीय है। उपनिषद्, वेदान्तसूत्र और श्रीमद्भगवद्गीता इन तीनोंकी समष्टि ही वेदान्तशास्त्र-नामसे प्रसिद्ध हैं। ये सब "प्रस्थानत्रय" भी कहलाते हैं। उपनिषत् श्रुतिप्रस्थान, ब्रह्मसूत्र न्यायप्रस्थान और श्रीभगवद्गीता स्मृतिप्रस्थान नामसे परिचित हैं। भिन्न भिन्न वेदान्ति-सम्प्रदायने इस "प्रस्थानत्रय"-का भिन्न भिन्न भाष्य किया है। इन तीन श्रेणीके ग्रन्थ भिन्न वेदान्तकी पूर्णता नहीं होते। अतएव भिन्न भिन्न सम्प्रदायके पण्डितोंने अपने अपने सिद्धान्तके अनुयायी उपनिषत् या "श्रुतिप्रस्थान", ब्रह्मसूत्र या "न्यायप्रस्थान" तथा भगवद्गीता या "स्मृतिप्रस्थान"-का भाष्य किया है। एक ही ब्रह्म जिस प्रकार उपासकोंके साधनानुसार भिन्न भिन्न रूपमें प्रकाश पाते हैं, उसी प्रकार एक ही वेदान्त भिन्न भिन्न सम्प्रदायप्रवर्त्तकोंके ज्ञान, बुद्धि और पाण्डित्यकौशलसे भिन्न भिन्न रूपमें विख्यात हुआ है तथा भिन्न भिन्न दार्शनिक सिद्धांतोद्भावनामें वेदांत-वैचित्र्यकी भिन्न भिन्न प्रतिच्छवि ऐतिहासिक द्रष्टाके सामने प्रतिभात होती है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीताके अनेक भाष्य हैं। अति प्राचीन भाष्यकारोंका नाममात्र सुननेमें आता है, किंतु उनका कृतभाष्य आज भी हम लोगोंके नयनगोचर नहीं हुआ है। इन सब भाष्यकारोंमें हमें भगवान् श्रीरामानुज-कृत वेदार्थसंग्रह ग्रंथमें बौधायन, टङ्क, द्रमिड़, गुहदेव, कपर्द्दी और भारुकी आदि पूर्वाचार्योंके नाम दिखाई देते हैं। इनके सिवा यादवभाष्यकी बात भी सुनी जाती है। इन सब भाष्यकारोंने प्रस्थानत्रयका भाष्य किया था अथवा एक ब्रह्मसूत्रका, यह अच्छी तरह मालूम नहीं। किंतु परवर्त्ती भाष्यकारोंने पूर्वभाष्य देख कर "प्रस्थानत्रय" का भाष्य कर रखा है। इससे मालूम होता है, कि इन्होंने भी सम्भवतः पूर्वाचार्यगणका ही पदानुसरण किया था। भिन्न भिन्न वेदांति-सम्प्रदायके प्रवर्त्तकोंने वेदांतभाष्य कर अपने सम्प्रदायका सिद्धांत वेदांतसम्मत कर लिया है। हमने जो ऊपरमें कुछ पूर्वाचार्योंका नामोल्लेख किया है, उनके भाष्यको छोड़ कर दूसरे और कोई पूर्वाचार्य थे वा नहीं, कह नहीं सकते। गौड़पादमुनि और शङ्कराचार्य श्रीरामानुजके पूर्ववर्त्ती थे। इनके अभेदवादके साथ श्रीमद्रामानुजके मतकी एकता नहीं है, इसीसे शायद श्रीमद्रामानुजने इन्हें पूर्वाचार्य न कहा हो। कुछ लोगोंका कहना है, कि सूत्रकारके समयसे ले कर शङ्करके समय तक वेदांत एक ही भावमें व्याख्यात होता आ रहा था, यह बात जो युक्तिसंगत नहीं है, उसका प्रमाण श्रीरामानुज-कृत

वेदांतसारसंग्रह है। इसी ग्रंथमें भिन्न मतावलम्बी दूसरे दूसरे भाष्यकारों और वृत्तिकारोंके नाम देखनेमें आते हैं। शङ्करके पहले जो सब भाष्यकार थे उनमेंसे अधिकांश शङ्करके मतावलम्बी नहीं थे, रामानुजाचार्य्यने इसे भी प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। फलतः शङ्करसे भी बहुत पहले, यहां तक कि ब्रह्मसूत्र संग्रहसे भी बहुत पहले वेदांतशास्त्र ले कर ऋषियोंमें जो बड़ा मतभेद था, ब्रह्मसूत्रमें भी उसका स्पष्ट प्रमाण है। ऋषियोंका जो मतभेद था, वह केवल अवान्तर विषय ले कर नहीं, प्रधान प्रधान वैदान्तिक सिद्धांत सम्बन्धमें भी मतद्वैधका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। आत्रेयी, आश्मरथ्य, औडुलोमि, कार्ष्णाजिनि, काशकृत्स्न, जैमिनि और बादरि आदि ऋषियोंके वैदान्तिक सिद्धांतमें प्रचुर मतभेद देखा जाता है।

चतुर्थ अध्यायके चतुर्थपादसे यहां इस विषयके दो एक उदाहरण दिये जाते हैं—

१। ब्राह्मेण जैमिनिरूपन्यासादिभ्यः ।५

२। चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ।६

३। एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ।७

यहां पर मुक्तात्माके लक्षणके संबंधमें औडुलोमि कहते हैं, मुक्तात्मा चितितन्मात्रमें अवस्थान करती हैं, क्योंकि जीवात्मा तदात्मक है। जैमिनि कहते हैं, कि मुक्तात्माके सर्वज्ञत्व आदि कुछ उच्चतम गुण हैं। बादरायणका कहना है, कि मुक्तात्मा चिन्मय हैं और ऐश्वर्य्यमयत्वादि जनित गुणमय भी हैं।

वेदान्तियोंके मध्य ऐसे मतभेदका विषय ब्रह्मसूत्रमें और भी देखनेमें आता है। यथा—४र्थ अध्यायके तृतीय पादमें (७-१४ सूत्रमें) जैमिनिने कहा है, कि सगुणब्रह्मज्ञानी परब्रह्मको लाभ करते हैं; ("परं"—जैमिनिर्मुख्यत्वात् ४।३।१२—"स एतान् ब्रह्मप्रापयति" जैमिनिराचार्य्यः) किन्तु बादरि कहते थे, कि इसका कार्य्य ब्रह्मप्राप्ति है। शङ्करने बादरिका सिद्धान्त ही ग्रहण किया है।

"स एतान् ब्रह्म गमयति" उपनिषद्की इस श्रुतिके विचारसे ही इन दो परस्पर विरुद्धमतकी अवतारणा की गई है।

प्राचीन वैदान्तिकोंके और भी एक विवादस्थलमें ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायके चतुर्थ पादमें इस प्रकार देखा जाता है—

१। प्रतिज्ञा सिद्धे लिङ्गमाश्मरथ्य। (१।४।२०)

२। उत्क्रमिष्यत एवम्भावादित्यौडुलोमिः।

(१।४।२१)

३। अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः। (१।४।२२)

जीव और ब्रह्मका सम्बंध निर्णय करनेमें यहां पर तीन प्राचीन वेदांतीका मतभेद दिखलाया गया है। इनके नाम ये हैं—आश्मरथ्य, औडुलोमि और काशकृत्स्न। शङ्कर कहते हैं, कि आश्मरथ्यके मतसे ब्रह्मके साथ जीव भेदाभेद सम्बंध है अर्थात् जीव ब्रह्मसे बिलकुल अभिन्न भी नहीं है। अर्थात् अग्निके साथ अग्निके स्फुलिङ्गका जैसा सम्बंध है ब्रह्मके साथ जीवका भी वैसा ही सम्बन्ध है। औडुलोमि कहते हैं, कि जब तक जीव मोक्ष पा कर ब्रह्ममें एकदम मिल नहीं जाते, तब तक जीव ब्रह्मसे अवश्य पृथक् है। काशकृत्स्नका कहना है—जीव ब्रह्मसे सम्पूर्ण अभिन्न हैं, लेकिन न मालूम पृथक् क्यों प्रतीत होते हैं।

इससे स्पष्ट प्रतिपन्न होता है, कि वेदांतसूत्र रचे जानेके बहुत पहलेसे उपनिषद्की व्याख्या ले कर ऋषियोंमें भिन्न भिन्न सिद्धांत प्रचलित था तथा भिन्न भिन्न रूपमें उपनिषद्की व्याख्या की जाती थी। शङ्कर स्वयं भी अपने भाष्यमें कई जगह उनके स्वीकार्य्य सिद्धांतके विरुद्ध प्रतिवादियोंके अभिप्रायकी बात स्वीकार कर गये हैं। यथा—"अपरे तु वादिनः पारमार्थिकमेव जैवं रूपमिति मन्यन्ते अस्मदीयाश्च केचित्।" (१।३।१९ सूत्रका भाष्य) फिर कई जगह शङ्करने प्राचीन वेदान्तियोंके ऐसे मतभेदका प्रमाण भी दिखलाया है। सुतरां शङ्कर वा रामानुजको भिन्न भिन्न वेदांतिक सम्प्रदायका आदिप्रवर्त्तक नहीं कहा जा सकता। परंतु इतना जरूर है, कि शङ्कराचार्य्यने सिर्फ उसका बहुत दूर तक विस्तार और प्रचार किया था।

श्रीरामानुजके बहुत पहले एक श्रेणीके प्राचीन वेदांतीने जिन सब सिद्धांतोंको सूत्ररूपमें अतिसंक्षेपसे प्रचार किया था, रामानुज भी शङ्करकी तरह उसी प्राचीनसिद्धांत

का प्रचार कर गये हैं। रामानुजने ब्रह्मसूत्रको बौधायन वृत्तिके आधार पर भाष्य लिखा था। उन्होंने स्वयं लिखा है, "भगवद्‌ बौधायनकृतं विस्तीर्णं ब्रह्मसूत्रवृत्तिं पूर्वाचार्याः संचिक्षिपुः तन्मतानुसारेण सूत्राक्षराणो व्याख्या स्यन्ते" अर्थात् भगवद्‌ बौधायन कृत विस्तीर्ण ब्रह्मसूत्र वृत्तिको पूर्वाचार्योंने संक्षेप किया था। तदनुसार सूत्राक्षरोंकी व्याख्या को जातो है। श्रीभाष्यमें कई जगह बौधयनवृत्तिका स्थलविशेष उद्‌धृत हुआ है। शङ्करने वृत्तिकारके मतका खण्डन किया है, वह वृत्तिकार कौन है? वे क्या बौधायन हैं वा उपवर्षाचार्य्य कोई कहते हैं, कि वे बौधायनका खण्डन करनेमें ही प्रयासी हुए थे। वेदार्थसंग्रह नामक ग्रंथमें श्रीरामानुजाचार्यने जो बौधायन, टङ्क आदि पूर्वाचार्योंका नामोल्लेख किया, इसके पहले वह लिखा जा चुका है। भाष्यके कई स्थानोंमें द्रमिड़ाचार्य्य भाष्यकार और टङ्क वाक्यकार कह कर अभिहित हुए हैं। द्रमिड़ाचार्य्य जो शङ्कराचार्य्यके पूर्ववर्त्ती थे, शङ्करशिष्य आनन्दगिरिके वचनसे वह जाना जा सकता है। शङ्कराचार्य्यने छान्दोग्य उपनिषद्‌की जो भाष्य किया है, उसके ३।१०।७ भाष्यको टोकामें आनन्दगिरिने लिखा है, कि श्रीमत्‌शङ्कराचार्य्य उपनिषद्‌के सृष्टिका तत्त्व और स्मृतिके सृष्टितत्त्वका सामञ्जस्य करनेमें प्रयासी हुए हैं। उनके पहले द्रमिड़ाचार्यने इस प्रणालीका अवलम्बन किया। श्रीमत्‌शङ्कराचार्यने उनकी प्रणालीका ही अनुसरण किया हैं। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामानुज वा शङ्करके पहले बहुतोंने उपनिषद्‌का भाष्य लिखा था, किन्तु अभी वे सब भाष्य नहीं मिलते। शङ्कर, रामानुज और मध्वाचार्यके प्रस्थानत्रयका भाष्य देखनेमें आता है। ये तीनों ही उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और भगवद्गीताके भाष्यकार हैं। गीता और ब्रह्मसूत्रके भाष्यकारकी संख्या भी अनेक है। श्रीगौराङ्ग सम्प्रदायके सुविख्यात दार्शनिक पण्डित बलदेव विद्याभूषण महाशयने भी प्रस्थानत्रयका भाष्य किया है। निम्बार्क सम्प्रदाय तथा वल्लभाचार्य सम्प्रदाय भी प्रस्थानत्रयके भाष्य हैं। किन्तु इनके उपनिषद्‌ भाष्यका बहुत कम प्रचार है, केवल ब्रह्मसूत्रभाष्य और गीताभाष्य सभी जगह प्रचलित है। रामानुजका ब्रह्मसूत्रभाष्य 'श्रीभाष्य', वल्लभाचार्यका भाष्य 'अणुभाष्य', निम्बार्काचार्यका भाष्य 'वेदान्तपारिजातसौरभ' और बलदेव विद्याभूषणका भाष्य 'गोविन्दभाष्य' कहलाता है। इनके सिवा विज्ञानभिक्षुका भी ब्रह्मसूत्रभाष्य है, इसमें कर्मकी प्रधानता बतलाई गई है। श्रीकान्ताचार्यका एक और भाष्य है जो शैवमतका पोषक है। इन सब भाष्यादिका विशेष परिचय 'ब्रह्मसूत्रभाष्य' प्रकरणमें आलोचित होगा।

भिक्षुसूत्र।

वेदान्तग्रन्थके सूत्रयुगके ग्रन्थमें केवल एक ब्रह्मसूत्रका नाम ही सुप्रसिद्ध है। किन्तु इसके पहले भी वेदान्त सम्बन्धीय सूत्रग्रन्थ प्रचलित था। फलतः ब्रह्मसूत्रकी आलोचनासे ज्ञात होता है, कि प्राचीनोंने वेदान्तशास्त्रके सम्बन्धमें अनेक भिन्न भिन्न सिद्धान्त किये थे। ब्रह्मसूत्रकारने साक्षात् सम्बन्धमें सचमुच उनके मुखसे वे सब अभिप्राय संग्रह नहीं किये। शायद इस सम्बन्धमें बहुतसे छोटे छोटे सूत्रग्रन्थ थे। जिस प्रकार सूर्योदय होने पर आकाशके अगण्य तारे बिलकुल अदृश्य हो जाते हैं, शायद ब्रह्मसूत्ररूप वेदान्त सूर्यके उदय होने पर वे सब छोटे छोटे सूत्र उसी प्रकार अदृश्य हो गये हैं। किन्तु 'भिक्षुसूत्र' नामक एक वेदांतसूत्र ग्रंथका नाम आज भी विद्यमान है। भिक्षुसूत्रको एक टोका भी है। भिक्षुसूत्र प्राचीन ग्रंथ है, इसका प्रमाण भी मिलता है। पाणिनिने कहा है—

"पाराशर्य्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः" (४।३।११०)

काशिकावृत्तिमें लिखा है—"सूत्रशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते।"

अर्थात् भिक्षु और नट इन दोनों शब्दोंके साथ सूत्र शब्दका सम्बन्ध है। अतएव 'भिक्षुसूत्र प्राचीन ग्रंथ है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। भिक्षुके पर्याय परिव्राट, कर्मंदी, मस्करी और पाराशरी हैं।

"पराशरेण प्रोक्तं भिक्षुसूत्रं पाराशरि तदधीते पाराशरी।"

इससे जाना जाता है, कि पराशर और कमन्द दोनोंने पृथक् पृथक् भिक्षुसूत्रकी रचना की थी। श्री-

भद्भगवद्गीताके १३वें अध्यायके ४थे श्लोककी टीकामें रामानुजने लिखा है—"ऋषिभिः पराशरादिभिर्बहुप्रकारं गीत" पराशरादिने भी जो कई तरहसे ब्रह्मतत्त्वकी आलोचना की थी, इससे भी वह जाना जाता है।

कोई ऐसा भी कह सकते हैं, कि यह भिक्षुसूत्र बौद्ध-ग्रन्थ है। क्योंकि, बौद्ध लोग ही भिक्षु कहलाते हैं। परन्तु हम इसे युक्तिसंगत नहीं मान सकते।

संन्यासाश्रम ही भिक्षु आश्रम है। पराशर और कर्मनन्द ये दो नाम बौद्धाचार्योंके नामकी तालिकामें नहीं देखे जाते। सुतरां भिक्षुसूत्र हिन्दुओंका शास्त्र-ग्रन्थ है। चतुराश्रमका अन्तिम आश्रम ही भिक्षु आश्रम है, संन्यासी ही भिक्षु हैं। वेदान्त ही संन्यासियोंका शास्त्र है। अतएव 'भिक्षुसूत्र' वेदान्तसूत्र है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं हो सकता।

ब्रह्मप्रतिपादक शास्त्रादि पढ़ना भिक्षुओंका कर्त्तव्य है। वानप्रस्थाश्रमसे ही इसके आरम्भकी कथा है। मनुसंहितामें लिखा है—

"एताश्चान्याश्च सेवेत दीक्षा विप्रो वने वसन्।
विविधाश्चौपनिषदीरात्मसंसिद्धये श्रुतीः॥"

(मनु ६।२९)

भिक्षुका लक्षण और वेदान्तशास्त्रका अधिकारि-लक्षण समान है। असत्शास्त्र पढ़ना भिक्षुका अ-कर्त्तव्य है। वेदान्त ही सारगर्भ सत्शास्त्र है। अत-एव वेदान्त ही भिक्षुओंका अधीतव्य है। भिक्षुगण उपनिषत्शास्त्र अध्ययन करते थे, किन्तु उपनिषद्में बहुत उपदेश थे, उनका सारगर्भ उपदेश संक्षेपमें पाना कठिन था, इसी कारण भिक्षुसूत्रकी रचना हुई थी। हमें केवल पूर्वोक्त दो भिक्षुसूत्रके नाम मालूम हैं। इसके सिवा और भी भिक्षु थे, ऐसी ही हम लोगोंकी धारणा है। इन सब भिक्षुसूत्रोंमें भिन्न भिन्न वेदांति-सम्प्रदायने अपने अपने सम्प्रदायके लिये वेदांतका उप-देश सूत्राकारमें लिपिबद्ध किया था। पीछे अन्यान्य मूल्यवान् ग्रंथकी तरह ये सब सूत्रग्रंथ भी कालगर्भमें विलीन हो गये हैं। किंतु यह निश्चय है, कि शास्त्रोक्त भिक्षुगण वेदांत प्रतिपाद्य ब्रह्मसाधनामें प्रवृत्त रहते थे तथा वेदान्त ही उनका अधीतव्य शास्त्र था। श्रीमाग-वतके ग्यारहवें स्कन्धके अठारहवें अध्यायमें भिक्षु आश्रमकी कर्त्तव्यता विशेषरूपसे वर्णित है। टीका-कारोंने उपनिषत्से यतिधर्मके अनेक प्रमाणोंका उल्लेख किया है। संन्यासाश्रमका दूसरा नाम यति-आश्रम और भिक्षु आश्रम है। ब्रह्मसूत्र रचे जानेके बहुत पहले भिक्षुगण उपनिषद् और भिक्षुसूत्र अध्ययन कर अपने आश्रमके धर्मोपदेश सीखते थे। उपनिषद् वाक्य उस समय भी संक्षिप्त भावमें रचा जाता था। भिक्षुगण इन सब सूत्रोंसे ही वेदांतका उपदेश पाते थे। किन्तु अभी ब्रह्मसूत्रके प्रबल प्रभावसे भिक्षुसूत्र विरल वा विलुप्तप्राय हो गये हैं।

ब्रह्मसूत्र।

हम पहले लिख चुके हैं, कि ब्रह्मसूत्र वेदांतका "न्यायप्रस्थान" है। वेदांति-समाजमें इस ग्रंथका आदर है। अतएव बहुसूत्र सम्बंधमें हम कुछ विस्तृत-रूपसे आलोचना करेंगे। कहना नहीं पड़ेगा, कि ब्रह्मसूत्र भारतवर्षका एक चिर गौरवस्तम्भ है। भारतवर्ष ही क्यों कहा जाय, समस्त मानव समाजका ही यह गौरवकीर्त्तिस्वरूप है। मनुष्यकी आत्मा चिन्मय राज्यका अनुध्यान करते करते कितने ऊंचे प्रदेशमें विचरण कर सकती है तथा उस सूक्ष्मतम अनुध्यानके फलको सुंदर प्रणालीसे सारगर्भ संक्षिप्त भावामें ग्रथित कर परवर्त्ती मानवोंके शिक्षाविधानमें किस प्रकार यत्नवान् हैं ब्रह्मसूत्र उसीकी चिरउज्ज्वल शाश्वती प्रतिच्छवि है। ब्रह्मसूत्र 'वेदांतदर्शन' कहलाता है। इसके और भी अनेक पर्याय हैं। हम एक एक कर सभी नामोंकी आलोचना करते हैं।

१। ब्रह्मसूत्र। श्रीमद्भगद्गीताके तेरहवें अध्यायके ४थे श्लोककी टीकामें भी स्वामीने लिखा है—

"ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव—ब्रह्मसूच्यते सूच्यते। किञ्चिद्व्य-वधानेन प्रतिपाद्य अतिरिक्त ब्रह्मसूत्राणि"

मधुसूदन सरस्वती महाशयने भी श्रीधरस्वामीका व्याख्यानुकरण कर ब्रह्मसूत्रकी व्युत्पत्ति और व्याख्या की है। श्रीधरने गीताटीकामें साफ साफ कहा है, "ब्रह्मसूत्र" पद सुविख्यात वेदांत सूत्रार्थवाचक है।

जैमिनिका सूत्र 'धर्मसूत्र' कहलाता है ; यह कर्मकाण्ड प्रधान। कर्मका परवर्त्ती ज्ञानकाण्ड ही इस सूत्रग्रंथका आलोचित विषय है। अतएव धर्मसूत्रके साथ पृथक्ता सूचित करनेके कारण ही इसका नाम 'ब्रह्मसूत्र' हुआ है।

२। "वेदांत-सूत्र"—वेदांतवाक्योंका सूत्रस्वरूप होनेके कारण ही ग्रंथको वेदांतसूत्र कहते हैं।

३। 'वादरायणसूत्र'—वादरायण इस सूत्रग्रंथके प्रणेता हैं, इसीसे यह ग्रंथ 'वादरायणसूत्र' कहलाता है।

४। 'व्याससूत्र'—व्यास वादरायणका दूसरा नाम है।

५। 'शारीरक-मीमांसा'—शङ्करभाष्यके टीकाकार गोविन्दानंदने 'रत्नप्रभा' टीकामें लिखा है—

"शरीरमेव शरीरकं कुत्सितत्वात् तन्निवासी शारीरको जीवस्तस्य ब्रह्मत्वविचारो मीमांसा तस्यामित्यर्थः।"

अर्थात् शरीर और शरीरक एक ही बात है। शरीर शब्दके उत्तर कुत्सित अर्थमें 'क', शरीरमें वास करते हैं 'जीव' ही शारीरक शब्दका वाच्य है। जीवका ब्रह्मत्व विचार जिस ग्रन्थमें प्रतिपाद्य हुआ है वही 'शारीरक-मीमांसा' नामसे प्रसिद्ध है। इस कारण इसका दूसरा नाम 'शारीरकसूत्र' है।

६। 'उत्तर-मीमांसा'—जैमिनिकृत मीमांसाग्रंथका नाम 'पूर्वमीमांसा' है, कर्मकाण्डप्रोक्त क्रियानुशीलनके बाद भी ब्रह्मप्राप्तिके लिये वासना होती है। इसीसे ब्रह्मविचारात्मक सूत्र उत्तरमीमांसा नामसे अभिहित हुआ है।

७। 'वेदान्तदर्शन'—शारीरक सूत्र वा ब्रह्मसूत्रका दूसरा नाम वेदान्तदर्शन है। वेदान्तदर्शन कहनेसे उपनिषद्के दार्शनिक तत्त्वका आलोचनापूर्ण ग्रंथ मात्र ही समझा जाता है। इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रका शाङ्करभाष्य, रामानुजभाष्य और अन्यान्य भाष्य भी 'वेदान्तदर्शन' कहलाते हैं। 'वेदान्त' कहनेसे ही 'वेदान्तदर्शन' नहीं समझा जाता। उपनिषद्को श्रुतियां वेदांतश्रुति कहलाती हैं। इन सब श्रुतियोंके आधार पर युक्ति द्वारा जो विचार वा मीमांसा और सिद्धान्त प्रदर्शित हुआ है, तदात्मक ग्रंथ वेदांतदर्शन नामसे प्रसिद्ध हैं। किन्तु साधारणतः ब्रह्मसूत्र ग्रंथ वेदांतदर्शन कहलाता है।

सूत्रकार।

महर्षि वादरायण शारीरक मीमांसाके सूत्रकार कह कर प्रसिद्ध हैं। इसीसे शारीरक-मीमांसाका दूसरा नाम 'वादरायणसूत्र' है। वादरायणका दूसरा नाम 'व्यास' है, इससे ब्रह्मसूत्र 'व्याससूत्र' नामसे भी परिचित है। किन्तु 'वादरायण' और 'व्यास' किसी व्यक्ति विशेषका नाम नहीं है। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि प्रति मन्वन्तरमें द्वापर युगमें एक एक व्यासने जन्म ले कर वेदको विभाग किया, इसीसे वे वेदव्यास नामसे अभिहित हुए। वादरायण भी व्यक्तिविशेषका नाम नहीं है। 'बदरे बदरिकाश्रमे अयनं वासो यस्य सः वादरायणः' अर्थात् बदरिकाश्रममें जिनका वास है, वे ही वादरायण हैं। वादरायण ही वेदव्यास हैं, इसमें जरा भी संदेह नहीं। किंतु ऐसे वादरायण और वेदव्यासकी संख्या अनेक हैं। यहां तक, कि हम ब्रह्मसूत्रमें भी कई जगह 'वादरायण' नामका उल्लेख पाते हैं।

(१) तदुपर्य्यपि वादरायणसम्भवात्। (१।३।२६)

(२) पूर्वन्तु वादरायणो हेतुव्यपदेशात्। (३।२।४२)

(३) पुरुषार्थतः शब्दादिति वादरायणः। (३।४।४२)

(४) अधिकोपदेशात्तु वादरायणस्यैवं तद्दर्शनात्। (३।४।८)

(५) अनुष्ठेयं वादरायणः साम्यश्रुते। (३।४।१९)

(६) अप्रतिकालम्बनान्नयतीति वादरायण उभयथाऽदोषात् तत् क्रतुश्च। (४।३।१५)

(७) एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं वादरायणः। (४।४।७)

हम सामविधानब्राह्मणमें 'वादरायण' शब्दका उल्लेख देखते हैं। सामविधानब्राह्मणके वंशप्रकरणमें यह नाम दिखाई देता है। यह वादरायण पाराशरायणके शिष्य थे और व्यासपाराशर्य्यसे चार पीढ़ी नीचे थे। जैमिनिसूत्र और शाण्डिल्यसूत्रमें वादरायण शब्दका उल्लेख है। अब प्रश्न यह होता है, कि कृष्णद्वैपायन

वेदव्यास ही ब्रह्मसूत्रके प्रणेता वादरायण थे या नहीं और ये वादरायण शुकदेवके पिता कृष्ण-द्वैपायन थे या नहीं ? हम शाङ्करभाष्यमें वेदव्यास कृष्णद्वैपायनके सम्बंधमें एक कहानी देखते हैं ; वह कहानी यह है, कि अपान्तरतमा नामक एक पुराणर्षि थे, वे ही विष्णुके नियोगसे कलि और द्वापरकी संधिसे कृष्णद्वैपायन नामसे आविर्भूत हुए थे। यथा—

"अपांतरतमा नाम वेदाचार्य्यः पुराणऋषिर्विष्णु नियोगात् कलिद्वापरयोः सन्धौ कृष्णद्वैपायन संवभूवेति स्मरणम्।" -(ब्रह्मसूत्रभाष्य ३।३।३२)

यह कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ब्रह्मसूत्रकार वादरायण थे या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस पर कोई कोई समझते हैं, कि व्यास वादरायण और व्यास कृष्णद्वैपायन दोनों ही पृथक् व्यक्ति थे। महाभारत पढ़नेसे जाना जाता है, कि जो व्यास पाराशर्य हैं वे ही कृष्णद्वैपायन वेदव्यास हैं तथा शुकदेव इन्हींके पुत्र है। व्यास वादरायण स्वतन्त्र व्यक्ति थे। किन्तु श्रीमद्भागवत तथा अन्यान्य ग्रन्थोंमें 'शुकदेव' वादरायणके अपत्य हैं, इसी अर्थमें वे 'वादरायणि' नामसे अभिहित हुए हैं। इन वादरायणका नाम श्रीभागवतमें कई जगह आया है।

ब्रह्मसूत्र-ग्रन्थका विभाग।

ब्रह्मसूत्र ग्रन्थ चार अध्यायमें विभक्त है। प्रत्येक अध्याय फिर चार चार 'पाद'में विभक्त हुआ है।

सूत्रसंख्या इस प्रकार है—

१म अध्याय	१म पाद	३१ सूत्र
	२य ,,	३२ ,,
	३य ,,	४३ ,,
	४र्थ ,,	२८ ,,
२य ,,	१म ,,	३७ ,,
	२य ,,	४५ ,,
	३य ,,	५३ ,,
	४र्थ ,,	२२ ,,
३य ,,	१म ,,	२७ ,,
	२य ,,	४१ ,,
	३य ,,	६६ ,,
	४र्थ ,,	५२ ,,
४र्थ ,,	१म ,,	१९ ,,
	२य ,,	२१ ,,
	३य ,,	१६ ,,
	४र्थ ,,	२२ ,,
		५५५

समस्त सूत्रकी संख्या पाँच सौ पचपन है। किसी किसीने और भी तीन सूत्र बढ़ा कर ५५८ कर दिया। किन्तु प्रायः सभी मुद्रित ग्रन्थोंमें ५५५ संख्या ही देखी जाती है।

अधिकरण।

वेदान्तसूत्रोंको 'अधिकरण' संज्ञाकी एक दूसरी श्रेणीमें शामिल किया गया है, वह दार्शनिक विचारसम्मत है। न्यायदर्शनमें पञ्चावयव द्वारा विचारपद्धति निर्दिष्ट है, यह पाठकोंको अच्छी तरह मालूम है। वेदान्त विचारमें भी पञ्चावयव है। हम पहले लिख चुके हैं, कि वेदान्तसूत्र वेदान्तशास्त्रके न्याय-प्रस्थान नामसे अभिहित है। यह सूत्र-ग्रन्थ विचारपद्धतिसे ग्रथित है। न्यायके पञ्चावयवकी तरह इसके जो पञ्चावयव हैं, वही अधिकरण कहलाता है। यथा—

"एको विषयसन्देहपूर्वपक्षावभासकः।
श्लोकोऽपरस्तु सिद्धान्त वादी सङ्गतयः स्फुटाः।"

अर्थात् अधिकरण पञ्चावयवविशिष्ट है यथा, विषय, सन्देह, सङ्गति, पूर्वपक्ष और सिद्धान्त। साधारणतः दो श्लोकोंमें एक अधिकरण संगृहीत होता है। उनके आद्य श्लोकके पूर्वार्द्धमें दो अवयव, उत्तरार्द्धमें एक अवयव, द्वितीय श्लोकमें एक अवयव, इन चार अवयवोंके अनुसन्धानके पीछे सङ्गति देखनी होगी। यह तीन प्रकारकी है, शास्त्र-सङ्गति, अध्यायसङ्गति तथा पादसङ्गति, इस अवयव द्वारा सूत्रार्थका विचार किया जाता है। वेदान्तसूत्र पढ़नेमें सबसे पहले इस अधिकरणमालाका ज्ञानसञ्चय करना आवश्यक है। भारतीतीर्थकृत व्यासाधिकरणमाला नामक एक ग्रन्थमें वेदान्तसूत्रके अधिकरणके सम्बंधमें अति परिस्फुट आलोचना देखी जाती है।

वेदान्त सूत्रका प्रतिपाद्य

ब्रह्मसूत्रके प्रत्येक सूत्रका प्रतिपाद्य एक एक विषय है तथा कौन सूत्र किस अधिकरणके अंतर्गत है उसका निरूपण किया गया है। संक्षेपमें उसकी तालिका नीचे दी जाती है।

समन्वयभाष्य प्रथम अध्याय प्रथम पाद।—

	प्रतिपाद्य विषय	सूत्राङ्क	अधिकरण
१।	ब्रह्मका विचार्य्यत्व	१	१
२।	ब्रह्मका लक्ष्यत्व	२	२
३।	ब्रह्मका वेदकर्त्तृत्व (२ वर्णक) ब्रह्मकी वेदैकमयता (२ वर्णक)	३	३
४।	वेदांतका ब्रह्मबोधकत्व (१ वर्णक) ब्रह्ममें ही वेदांतका अवसितत्व (२ वर्णक)	४	४
५।	प्रधानके जगत्कर्त्तृत्वका अभाव (यह साङ्ख्यदर्शनका प्रतिवाद है)	५-११	५
६।	आनन्दमय कोषका परमात्मत्व (२ वर्णक) ब्रह्मका आनन्दमय जीवाधारत्व (२ वर्णक)	१२-१६	६
७।	आदित्यके अंतर्गत हिरण्मय पुरुषका ईश्वरत्व	२०-२१	७
८।	परब्रह्मका आकाश शब्दवाच्यत्व	२२	८
९।	ब्रह्मका आकाश शब्दवत् प्राणशब्द वाचकत्व	२३	९
१०।	परब्रह्मका ज्योतिशब्द वाच्यत्व	२४-२७	१०
११।	ब्रह्मका प्राणशब्द वाच्यत्व	२८-३१	११

प्रथम अध्यायका द्वितीय पाद।

	प्रतिपाद्य विषय	सूत्राङ्क	अधिकरण
१।	ब्रह्मका उपास्यत्व	१-८	१
२।	ब्रह्मका जगत्कर्त्तृत्व	९-१०	२
३।	चेतनजीवेश्वरका हृद्गुहागतत्व	११-१२	३
४।	छाया जीवादि अदेवसमूह त्याग कर परब्रह्मका ही उपास्यत्व	१३-१७	४
५।	प्रधान जीवेतर ईश्वरका अन्तर्यामित्व शब्द वाच्यत्व	१८-२०	५
६।	प्रधान और जीव निराकरण कर ईश्वरका भूतयोनित्व	२१-२३	६
७।	ब्रह्मका वैश्वानर शब्द वाच्यत्व	२४-३२	७

प्रथम अध्यायका तृतीय पाद।

	प्रतिपाद्य विषय	सूत्राङ्क	अधिकरण
१।	आत्मा हिरण्यगर्भ प्रधान भोक्तृजीव और ईश्वरके मध्य केवल ईश्वरका ही सर्वाधिष्ठानभूतत्व	१-७	१
२।	प्राण और परेश इन दो शब्दोंके मध्य सत्य शब्द द्वारा परेशका ही श्रेष्ठत्व	८-९	२
३।	प्रणव और ब्रह्मके मध्य ब्रह्मका ही अक्षरशब्दवाचित्व	१०-१२	३
४।	अपर और परब्रह्मके मध्य त्रिमात्र प्रणव द्वारा परब्रह्मका ही धेयत्व	१३	४
५।	दहराकाश रूपमें प्रतीयमान वियज्जीव और ब्रह्मके मध्य ब्रह्मका ही तदाकाश वाच्यत्व	१४-१८	५
६।	अक्षिपुरुषरूपमें आपाततः प्रतीयमान जीव और परेशके मध्य परेशका ही अक्षिपुरुष शब्दका वाच्यत्व	१९-२१	६
७।	जगत् प्रकाशत्वरूपमें उपलब्ध सूर्यादि तेज पदार्थ और चैतन्यके मध्य चैतन्यका ही तत्प्रकाशत्व	२२-२३	७
८।	जीवात्मा और परमात्माके मध्य परमात्माका ही अङ्गुष्ठ मात्र पुरुष कह कर प्रतिपादन	२४-२४	८
९।	देवताओंका निर्गुण विद्यामें अधिकार निरूपण	२६-३३	९
१०।	शूद्रोंका वेदमें अनधिकारकथनपूर्वक शोकाकुलत्वव्युत्पत्ति द्वारा शूद्रनामधारीका जानश्रुतिका वेदविद्याधिगम	३४-३८	१०
११।	प्राणत्वरूपमें आख्यात वज्र वायु और परेशके मध्य परेशका ही तादृश प्राणशब्द वाच्यत्व	३९	११
१२।	ब्रह्मका परत्व ज्योतिस्त्व	४०	१२
१३।	ब्रह्मका आकाश शब्द वाच्यत्व	४१	१३
१४।	ब्रह्मका विज्ञानमय शब्द वाच्यत्व	४२-४३	१४

प्रथम अध्यायका चतुर्थ पाद।

१। कारणावस्थापन्न स्थूल शरीरका अव्यक्त

(अविरोध आख्या द्वितीय अध्याय प्रथम पाद)

द्वितीय अध्यायका द्वितीय पाद।

द्वितीय अध्यायका तृतीय पाद।

तृतीय अध्यायका तृतीय पाद।

तृतीय अध्यायका चतुर्थ पाद।

प्रतिपाद्य विषय	सूत्रांक	अधिकरण
नहीं है	१-१७	१
२। ऊर्द्ध्वरेता उपाश्रमणोंका अस्तित्व व्यवस्थापन और लोककामी आश्रमियोंकी ब्रह्मनिष्ठामें अयोग्यता	१८-२०	२
३। उद्गीथाके अवयव स्वरूप ओङ्कारका ध्येयत्व	२१-२२	३
४। उपनिषद् आख्यानोंकी विद्या स्तावकता	२३-२४	४
५। आत्मबोध व्यक्तिके कर्मकी अनपेक्षता	२५	५
६। विद्याकी उत्पत्तिके विषयमें कर्मसापेक्षता	२६-२७	६
७। आपत्कालमें सबोंकी अन्नकी ही व्यवहार्यता	२८-३१	७
८। विद्यार्थी और आश्रमधर्मियोंके यज्ञादिका सकृदनुष्ठान	३२-३५	८
९। अनाश्रमीका ज्ञान सम्भावन	३६-३९	९
१०। आश्रमियोंका अवरोहअभाव निरूपण	४०	१०
११। भ्रष्ट ऊर्द्ध्वरेताओंका प्रायश्चित्त विधान	४१-४२	११
१२। भ्रष्टरेताओंका प्रायश्चित्त केवल आमुष्मिक शुद्धिजनक है, वे व्यवहारके योग्य नहीं	४३	१२
१३। उपासनाका ऋत्विक् कर्मत्व	४४-४६	१३
१४। मौनकी विधेयता	४७-४९	१४
१५। बाल्यभावशुद्धिकी प्रयोजनीयता	५०	१५
१६। इहकाल वा जन्मान्तरमें ज्ञानोत्पत्ति	५१	१६
१७। सालोक्यादि मुक्तिका जन्यत्व विधाय होनेके कारण सातिशयत्व, निर्वाणमुक्तिका निरतिशयत्व	५२	१७

फलाख्यं चतुर्थ अध्यायका प्रथम पाद।

प्रतिपाद्य विषय	सूत्रांक	अधिकरण
१। श्रवणादिका आवर्त्तनीयत्व	१-२	१
२। ज्ञाता जीवका ब्रह्म ग्राह्यत्व	४	२
३। प्रतीकमें अहं दृष्टि अभाव	४	३
४। ब्रह्मेतर प्रतीकमें ब्रह्मज्ञानकी कर्त्तव्यता	५	४
५। कर्माङ्गमें आदित्यादिदृष्टीकी कर्त्तव्यता	६	५
६। उपासनामें आसनका नित्यत्व	७-१०	६
७। एकाग्र ध्यान साधनकी प्रधानतामें दिग्देश और कालादिका नियम नहीं है	११	७
८। उपास्थियोंकी आमरण आवृत्तिकी व्यवस्था	१२	८
९। ज्ञानियोंका पापलेपाभाव	१३	९
१०। ज्ञानियोंका पुण्यलेपाभाव	१४	१०
११। सञ्चित और आरब्ध पापपुण्यके ज्ञानोदयके समय विनाशाभाव	१५	११
१२। अग्निहोत्रादि नित्य कर्मके विद्योपयोगि अंशका विनाश	१६-१७	१२
१३। उपासनाशील और निरुपासना व्यक्तिके नित्य कर्मका तारतम्यसे विद्यासाधनत्व	१८	१३
१४। अधिकारियोंकी मुक्तिकी निश्चयता	१९	१४

४र्थ अध्यायका द्वितीय पाद।

प्रतिपाद्य विषय	सूत्रांक	अधिकरण
१। मनमें रागादिका वृत्ति-प्रविलय स्वरूपतः नहीं है	१-२	१
२। वृत्ति द्वारा प्राणमें मनका प्रविलय	३	२
३। जीवमें प्राणका लय, पुनर्वार भूतमें लय	४-६	३
४। उत्क्रान्त ज्ञानी और अज्ञानीका साम्य	७	४
५। तेजः प्रभृति भूतोंका परमात्मामें वृत्ति द्वारा लय	८-११	५
६। देहसे प्राण उत्क्रान्तिका निषेध	१२-१४	६
७। तत्त्वज्ञानी व्यक्तिके रागादिका परमात्मामें लय	१५	७
८। तत्त्वविद्के रागादिका निःशेष रूपसे परमात्मामें लय	१६	८
९। उपासकका उत्क्रान्ति विशेषत्व	१७	९
१०। निशिमें मृतोंकी रश्मि-प्राप्ति	१८-१९	१०
११। दक्षिणायनमें मृत उपासककी ज्ञानफलप्राप्ति	२०-२१	११

चतुर्थ अध्यायका तृतीय पाद।

प्रतिपाद्य विषय	सूत्रांक	अधिकरण
१। ब्रह्मलोकमार्गानुसन्धानतत्पर अर्च्चिरादिओंका एकत्व	१	१
२। संवत्सर और आदित्यके मध्य देवलोक और वायुलोक सन्निवेशयितव्य	२	२

इसके सिवा एक और स्थूल तालिका दी जाती है। इस तालिकासे प्रत्येक अध्यायके प्रत्येक पादका प्रतिपाद्य विषय जाना जायेगा। यथा—

प्रथम अध्याय।

१म पादमें—सुस्पष्ट ब्रह्मबोधक श्रुतिवाक्यका समन्वय।

२य पादमें—उपास्य ब्रह्मवाचक अस्पष्ट श्रुतिवाक्यका समन्वय।

३य पादमें—ज्ञेय ब्रह्मप्रतिपादक अस्पष्टश्रुतिवाक्यका समन्वय।

४र्थ पादमें—अव्यक्तादि सन्दिग्ध पदोंका समन्वय।

द्वितीय अध्याय।

१म पादमें—सांख्ययोगकाणादादि स्मृति द्वारा सांख्यादि प्रयुक्त तर्क द्वारा वेदान्त समन्वयका विरोध-परिहार।

२य पादमें—सांख्यादि मतका दुष्टत्व दर्शन।

३य पादमें—पूर्वभागमें पञ्चमहाभूत श्रुतियों तथा उत्तरभागमें जीवश्रुतियोंका परस्पर विरोध परिहार।

४र्थ पादमें—लिङ्गशरीर श्रुतिका विरोध परिहार।

तृतीय अध्याय।

१म पादमें—जीवका परलोक गमनागमन विचारपूर्वक वैराग्य निरूपण।

२य पादमें—पूर्वभागमें त्वं पदार्थका और उत्तर भागमें तत्पदार्थका शोधन।

३य पादमें—सगुणविद्यामें गुणोपसंहारका और निर्गुणब्रह्ममें अपुनरुक्त पदोपसंहारका निरूपण।

४र्थ पादमें—निर्गुण ज्ञानका बहिरङ्गसाधनभूत आश्रम यज्ञादिका तथा अन्तरङ्ग साधनभूत शमदम श्रवण मननादिका निरूपण।

चतुर्थ अध्याय।

१म पादमें—श्रवणादिवृत्ति द्वारा निर्गुणब्रह्म, उपासना द्वारा सगुण ब्रह्मसाक्षात्कार जीवकी पुण्यपापलेपविनाशलक्षणा मुक्तिका अभिधान।

२य पादमें—म्रियमाणका उत्पत्ति प्रकार दर्शन।

३य पादमें—सगुणका ब्रह्मविद्मृतका उत्तरमार्गाभिगमन।

४र्थ पादमें—पूर्वभागमें निर्गुणब्रह्मविद्की विदेहकैवल्यप्राप्ति तथा उत्तरभागमें सगुणब्रह्मविद्का ब्रह्मलोकमें स्थिति निरूपण।

श्रीमत् शङ्कराचार्यके भाष्यानुमोदित प्रतिपाद्य विषयोंमें ही यह तालिका दिखलाई गई। श्रीमत् शङ्कराचार्य केवलाद्वैतवादी या मायावादी थे। उन्होंने जिस भावमें ब्रह्मसूत्रका भाष्य किया है, उसका यद्यपि बहुत प्रचार है, फिर भी ऐसा समझना गलत है, कि वही ब्रह्मसूत्रका सर्वसम्मत तात्पर्य है तथा उन्हींका भाष्य अविसम्वादित यथायथ भाष्य है। अतएव ऊपरकी तालिकामें हमने वेदांतको प्रतिपाद्य कह कर जो तालिका दी उसे शाङ्कर भाष्य अनुमोदित समझ लेना होगा। वेदांतसूत्रके अवलम्बन पर शङ्कर जिस पथसे चले हैं वह यद्यपि बिलकुल अदृष्टपूर्व नहीं है, फिर भी इसमें जरा भी संदेह नहीं, कि शङ्कराचार्यने ही उसका प्रसार

किया तथा लाखों मनुष्योंके लिये सुगम बनाया तथा आज भी हजारों मनुष्य शाङ्कर भाष्यको ही वेदांत समझते हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी श्रीमद्रामानुजका भाष्यपाण्डित्य तथा तर्कविचार किसी अंशमें शाङ्करभाष्यसे कम नहीं है। अतएव रामानुजीय मतके प्रतिपाद्य विषयकी एक तालिका भी यहां संक्षिप्तभावमें दी जाती है। वह इस प्रकार है।

स्वतन्त्रप्रधान कारणवादनिरास, आनन्दमयादि वाक्योंका ब्रह्मपरत्व, ब्रह्मकी स्मृतियोंका ब्रह्मपरत्व, ब्रह्मोपासनाओंमें देवताओंका अधिकार सम्पादन, ब्रह्मोपासनामें शूद्रका अनधिकार, अंगुष्ठ मात्र आदि श्रुतिका ब्रह्मपरत्व, प्रकृतिवाद निरसन, हिरण्यगर्भादि जीवोंका परमेश्वरत्वनिरास, योगमत निरास, ब्रह्मका प्रपञ्चउपादानत्व, समस्त विरुद्धमत निरास उपसंहार, सांख्य स्मृतिका अप्रामाण्य, प्रकृतिका प्रपञ्च उपादानत्व-निरास, सभी प्रपञ्चका परमात्मकार्यत्व, परमात्मकार्यत्व प्रतिपादन, प्रपञ्चका ब्रह्मण्यत्व, अन्य कारणकलाप अनपेक्ष ब्रह्मका स्रष्टृत्व, निरंश परमात्माका परिणाम उपपादन, कर्मापेक्षामें सृष्ट विषयवैषम्य, प्रकृतिकारण-वादनिरास, परमाणुकारण-वादनिरास, क्षणिकवाद निरास, जैनमत निरास, पशुपतिमत निरास, भागवतमत संस्थापन, आकाशकी उत्पत्तिका निरूपण, जीवका कर्त्तृत्व परमात्माके अधीन उस विषयका निरूपण, जीवका ब्रह्मांशत्व निरूपण, इन्द्रियोंका एकादशत्वकथन, इन्द्रियका अणुत्व निरूपण, प्राणका अणुत्वकथन, प्राणेन्द्रियोंके अधिष्ठातियोंका अधिष्ठातृत्व ब्रह्माधीन, व्यष्टि सृष्टिके सम्बन्धमें चतुर्मुखका कर्त्तृत्व निरास, सूक्ष्मभूतस्वरूप जीवका प्रयाण, विहित प्रतिसिद्ध कर्म नहीं करनेसे नरकप्राप्ति, जीवका आकाशादि भाव उसीको तरह, आदित्यकी स्थिति. नियम, सुषुप्ति, उत्थान विचार, परमात्मामें जीवदोषका असम्बन्ध, अचिदुर्गका ब्रह्मांशत्व, जगत्कारण स्वरूप परमात्मासे परतत्त्वका परशोध, परमात्मा ही कर्मफल प्रदान करते हैं, विद्याओंका भेदाभेद विचार, ब्रह्मगुण चिन्तनकालमें ब्रह्मचिन्तनकी आवश्यकता, अन्तरात्मरूपमें जीवचिन्तन, वैश्वानर विद्या, ब्रह्मविद्यासमूह परस्पर अभिन्न ब्रह्मप्रापक विद्याओंमें एकका उपादान, विद्या द्वारा पुरुषार्थ लाभ, गृहस्थानुष्ठेय विद्याओंका कर्मापेक्षत्व, गृहस्थके लिये भी शमदमादिकी अपेक्षा, अमुमुक्षुओंकी भी यज्ञादिकी कर्त्तव्यता, आश्रम भ्रष्टका विद्यामें अनधिकार, विद्यासिद्धिविचार, निदिध्यासनका विहितत्व, जीवात्माका आत्मत्व स्वीकार ब्रह्मोपासना नहीं है, प्रतीक उपासना विचार, ब्रह्मोपासनामें देशकालादि विचार, मरणकालमें इन्द्रियादिलय विचार, भूतोंकी परमात्म-सम्पत्ति, परमात्मसम्पत्तिकी अविभागरूपता, अर्च्चिरादि मार्गनिरूपण, आत्मा और परमात्मा दोनोंके उपासककी मुक्ति, मुक्तका स्वयं असाधारण आविर्भाव, आविर्भूतमुक्तस्वरूपविचार, मुक्तके स्वसंकल्पसे समोहित प्राप्ति, मुक्तकी स्वेच्छापूर्वक शरीरादि समस्या, स्वर्गादिव्यापारहीन मुक्तका ऐश्वर्य, इत्यादि विषय श्रीरामानुजके भाष्यानुसार वेदान्तसूत्रके प्रतिपाद्य हैं। शाङ्करभाष्यको अनुमोदित जिस प्रकार अधिकरणमाला है उसी प्रकार रामानुजभाष्यकी अनुमोदित अधिकरणमाला भी देखी जाती है। श्रीरामानुजके मतसे वेदान्तसूत्रके प्रत्येक सूत्रका प्रतिपाद्य विषय अधिकरणके साथ दिखलाया जा सकता है, किन्तु इसमें अति बाहुल्यकी आशङ्का है।

श्रीरामानुजभाष्य अति विस्तृत है, शङ्कर भाष्यके बाद यह भाष्य रचा गया है, इस कारण इसमें शङ्करभाष्यके अनेक सिद्धान्तोंका खण्डन किया गया है। श्रीरामानुज बौधायन वृत्तिके अवलम्बन पर मूल वेदांतसूत्रके प्रति लक्ष्य रख कर ही भाष्य कर गये हैं। भगवान् शङ्कराचार्यके भाष्यमें उन्नतम अभिनव दार्शनिक सिद्धांत स्थापन करनेके लिये जिस प्रकार विपुल प्रयास देखा जाता है, वेदांतसूत्रका प्रकृत तात्पर्य प्रकाश करनेके लिये वैसी चेष्टा देखी नहीं जाती। शङ्कर केवल अद्वैतवाद संस्थापक थे, उन्होंने वेदांतको दर्शनके उच्चतम चिन्ताक्षेत्ररूपमें प्रतिष्ठित किया है। रामानुज विशिष्टाद्वैतवादके प्रवर्त्तक थे। उन्होंने उपास्य उपासककी पृथक्ताको कायम रखा है। रामानुजीय भाष्य अतीव पाण्डित्यपूर्ण है। इसकी तर्कप्रणाली शङ्करकी तर्कप्रणालीसे अधिक युक्तिसङ्गत है। रामानुजने मूलसूत्रकी ओर तीव्र दृष्टि रखते हुए वेदांतकी प्राचीन

वृत्तिकाकी बोधायन-वृत्तिका अवलम्बन कर श्रीभाष्य प्रणयन किया है। सुतरां वेदांतसूत्रका प्रकृत मर्म समझनेमें शाङ्करभाष्य पढ़ना जैसा प्रयोजनीय है, रामानुजका श्रीभाष्य पढ़ना तथा उनके अनुमोदित प्रतिपाद्य विषयकी आलोचना करना किसी अंशमें तुच्छका विषय नहीं है। प्रत्युत श्रीरामानुजने वेदांतसूत्रके आधार पर एक स्वतन्त्र दार्शनिक प्रणाली गठित करनेकी कोशिश नहीं की। शाङ्करभाष्यके पदपदमें वैसा स्वतन्त्र अभिनव प्रयास देखनेमें आता है। शङ्करने कई जगह मूलसूत्रके तात्पर्यकी ओर लक्ष्य नहीं रखा है, किन्तु श्रीरामानुज उस विषयमें सर्वदा सतर्क हैं। इस कारण वेदान्तसूत्रका मूल तात्पर्य समझनेमें श्रीभाष्य ही विशिष्टरूपसे आलोच्य है।

स्मृतिप्रस्थान वा भगवद्गीता।

हम पहले लिख चुके हैं, कि वेदान्तशास्त्र तीन प्रस्थानमें समाप्त है। श्रुति और न्याय प्रस्थानका परिचय दिया जा चुका है। दूसरे प्रस्थानका नाम स्मृतिप्रस्थान है। श्रीमद्भगवद्गीता ही वेदान्तशास्त्रके स्मृतिप्रस्थानके अन्तर्गत है। श्रीमद्भगवद्गीताका विशेष परिचय देनेकी जरूरत नहीं। यह सार्वभौम ग्रन्थ सर्वजनपरिचित है, जगत्की अनेक भाषाओंमें इस ग्रन्थका अनुवाद और विभिन्न स्थानमें प्रचार हुआ है।

गीता देखो।

शङ्करका वस्तुविचार।

इस विशाल विश्वब्रह्माण्डके सभी पदार्थोंको तीन प्रधान भागोंमें विभक्त कर वेदान्तदर्शनमें तत्त्वनिरूपण किया गया है। ब्रह्म, जीव और विश्व इन तीन पदार्थोंकी आलोचना ही वेदान्तदर्शनकी प्रतिपाद्य है। भिन्न भिन्न आचार्योंने वेदान्तदर्शनके सम्बन्धमें आलोचनामें प्रवृत्त हो इन तीन विषयोंकी ही आलोचना की है, किन्तु वेदान्ती आचार्योंकी इन त्रिविध वस्तुओंके निरूपणमें अधिक पृथक्ता देखी जाती है। वह पृथक्ता केवल अवान्तर नहीं है, मूल विषयमें भी यथेष्ट मतभेद दिखाई देता है। शङ्कराचार्य केवलाद्वैतवादी थे, उनके मतको एक सार बात यह है, कि ब्रह्म ही एकमात्र अद्वितीय वस्तु है, जीव ब्रह्मवस्तु छोड़ कर और कुछ भी नहीं है, जगत् मायाकी प्रहेलिका है। ब्रह्म, जीव और माया इन तीनोंके सम्बन्धमें शङ्कराचार्यने अतीव पाण्डित्य प्रतिभाके साथ दार्शनिक विचार किया है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है और सभी माया कल्पित और मिथ्या है। जीव और ब्रह्ममें कुछ भी विभिन्नता नहीं है। अविद्याके विनष्ट होनेसे ही जीव और ब्रह्मका पार्थक्यज्ञान विनष्ट होता है। ब्रह्म निर्गुण हैं। वे ज्ञानमय नहीं हैं, किन्तु ज्ञानस्वरूप हैं। यह चिन्मात्र ज्ञान स्वगतादि त्रिविध भेदरहित है। यह चिदेक वस्तु और जीवात्मा एक ही पदार्थ है। अविद्याकी आवरणी और विक्षेपिका शक्ति ही जीववैचित्रीकी हेतु है। इस अविद्या मायासे ही पञ्चतन्मात्राकी और पञ्चतन्मात्रासे स्थूल पञ्चभूतकी उत्पत्ति है। पञ्चदशी और वेदान्तसार ग्रन्थमें वेदांत सम्मत पञ्चीकरण प्रणाली लिखी है। इसके सिवा अन्नमयादि पञ्चकोषका विवरण भी इन दो ग्रन्थोंमें विस्तृतरूपसे आलोचित हुआ है। मायाका विशेष विवरण पञ्चदशी पढ़नेसे जाना जाता है। कहीं प्रकृति नामसे, कहीं अविद्या नामसे, कहीं ब्रह्मशक्ति नामसे मायाके सम्बन्धमें आलोचना की गई है। यह माया गुणमयी, कार्यानुमेया, सदसद्विलक्षण है, (अर्थात् माया सद्वस्तु नहीं है, असद्वस्तु भी नहीं है। वेदांत ज्ञानोदयके पहले मायाके अस्तित्वमें मायाके कार्य प्रकृत समझे जाते हैं, इसी कारण माया सत् है। फिर जब विज्ञानका उदय होनेसे मायाका विनाश होता है, इस जगत् प्रपञ्चका ज्ञान विनष्ट हो जाता है। इसलिये माया अनिर्वचनीया है) माया अव्यक्ता है। भगवद्गीतामें इसी मायाको प्रकृति बताया है—

"विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान्।"

(१३।१९)

अपितु "मायां तु प्रकृतिं विद्यान्, मायिनन्तु महेश्वरम्" इस श्लोकार्द्धको बहुतोंने उद्धृत किया है। पञ्चदशी ग्रंथके चित्रदीपमें माया और ईश्वरकी विशेष आलोचना देखी जाती है। यह माया ही जगत्की उपादान है। यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड केवल मायाका ही वैचित्र्यमय इन्द्रजाल है। जीव तुरीयचैतन्यका

ही अविद्ययोपहत अंशवत् है। मायाकी उपाधि नष्ट होने पर इस विश्वब्रह्माण्डका इन्द्रजालमय दृश्यजाल जिस प्रकार तिरोहित होता है, जीवके अनन्तत्व ज्ञानका भी उसी प्रकार तिरोधान होता है। मायाके साथ प्रतिभात ब्रह्म ही ईश्वर कहलाते हैं। ज्ञानकाण्डकी प्रणालीकी तरह तत्त्वज्ञान लाभ करने होसे माया दूर होती और विशुद्ध ज्ञानका उदय होता है। उस समय चिदैकज्ञान भी उदय होता है। शाङ्कर-दर्शनका संक्षिप्त तात्पर्यसूचक एक श्लोक इस प्रकार है—

"श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥"

अर्थात् कोटिग्रन्थमें जो कहा गया है, श्लोकार्द्धमें वही कहा जाता है,—ब्रह्म सत्य है, जीव और ब्रह्म एक ही वस्तु है। "शङ्कराचार्य" शब्दमें इस विषयकी गहरी आलोचना की गई है।

रामानुजदर्शनका सिद्धान्त

इसके बाद श्रीरामानुजका संक्षिप्त मर्म कहा जाता है। रामानुज भी अद्वैतवादी थे। एक अखण्ड अद्वितीय ब्रह्म ही रामानुजका भी प्रतिपाद्य है। अतएव रामानुज अद्वैतवादी थे। किन्तु अद्वैतवादी होने पर भी रामानुज शंकरकी तरह केवलाद्वैतवादी नहीं थे, विशिष्टाद्वैतवादी थे। रामानुजका ब्रह्म 'चिन्मात्र' नहीं है। रामानुजका ब्रह्म चिदचित् विशेषपदार्थसमन्वित है। यह विशेष पदार्थ भी ब्रह्मके ही शरीरवत् है। शङ्करने माया द्वारा विश्वप्रपञ्चको इन्द्रजालकी तरह अलीकरूपमें दिखलाया है। रामानुजने जीवका नाम चित् और ब्रह्मजीवके अतिरिक्त पदार्थोंका नाम अचित् रखा है। ये सब पदार्थ उनके मतसे नित्य और ब्रह्मके अङ्गस्वरूप हैं। यथा—"प्रकृतिपुरुषमहदहङ्कारतन्मात्रभूतेन्द्रिय-चतुर्दशभुवनात्मक ब्रह्माण्डतदन्तर्वर्त्तिदेवतिर्यङ्मनुष्य स्थावरादि सर्वप्रकारसंस्थानसहितं कार्यमपि सर्वं ब्रह्मैव इति।"

रामानुजने इस निखिल कल्याणद्रव्यगुणकर्म-विशिष्ट ब्रह्मका वासुदेव नाम रखा है। यथा—

"वासुदेवः परं ब्रह्म कल्याणगुणसंयुतः।
भुवनानामुपादानं कर्त्ता जीवनियामकः।"

परमब्रह्म वासुदेव अनेक कल्याणगुणयुक्त हैं। ये चतुर्दश भुवनके कर्त्ता और उपादान तथा जीवोंके अन्तर्यामी और नियामक हैं। ये परमब्रह्म परमकारुणिक भक्तवत्सल परमपुरुष सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् तथा सर्वव्यापी हैं। निखिल चित् अचित् पदार्थ इन्होंका प्रकार है। ये सब पदार्थ नित्य हैं। ये ब्रह्ममें लीन हो कर भी कभी भी अपना अस्तित्व त्याग नहीं करते। ये दो अवस्थामें रहते हैं। प्रलयमें इनके समरूपगुणादि अभिव्यक्त नहीं हो सकते, उस समय वे अव्यक्त अवस्थामें रहते हैं, जीवात्मा भी सङ्कोचभावमें अवस्थान करता है। ब्रह्म उस समय कारणावस्थामें रहते हैं। इसी कारण श्रुतिने कहा है—

"सदेव सौम्यमिदमग्रमासीदेकमेवाद्वितीयमिति"

किन्तु इस अवस्थामें भी ब्रह्म विशेष विवर्जित नहीं हैं। विशेष पदार्थ उस समय अव्यक्तावस्थामें रहता है, इस कारण उनकी स्फूर्त्ति नहीं होती। प्रलयके अवसान पर ब्रह्मकी इच्छासे फिर उसकी अव्यक्त प्रकृतिसे अनन्त ब्रह्माण्डका आविर्भाव होता है।

रामानुजने अपने वेदान्तदीपमें लिखा है, कि जीव अचित् पदार्थसे भिन्न है, ब्रह्म जीवसे भिन्न हैं। ब्रह्म इस विश्वके स्रष्टा हैं। यह विश्व चिदचिदात्मक है। चिदचिदात्मिका प्रकृति ब्रह्मकी ही देह है। अचित् पदार्थ चित्पदार्थके सञ्चारसे सजीव हो उठता है। ब्रह्म चिदचित्पदार्थमें प्रकाश पा कर उन्हें शक्तिप्रदान करते हैं। ब्रह्म सभी पदार्थोंके मध्य अन्तर्यामिरूपमें विद्यमान हैं। विश्वब्रह्माण्डके सभी पदार्थोंके अभ्यन्तर वे सर्वव्यापिरूपमें विराज करते हैं। उसके प्रभावसे ही अन्यान्य सभी पदार्थ प्रकाश पाते हैं। विश्व ब्रह्मकी ही कार्यावस्था है—ब्रह्मका ही परिणाम है। गीतामें श्रीभगवान्ने कहा है—

"मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्त्तते॥"

ध्यान और भक्ति द्वारा ही यह पुरुषोत्तम पाये जाते हैं। श्रीमद्रामानुजने जिस ध्यानका लक्षण कहा है, वह इस प्रकार है—

"ध्यानञ्च—तैलधारावदवच्छिन्नस्मृतिसन्तानरूपा वा

स्मृतिः" श्रीमद्रामानुजने गीतासे भगवद्वाक्य उद्धृत कर ब्रह्मप्राप्तिके उपाय दिखलाये हैं। यथा—

"तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकः।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।
पुरुषः स परः पार्थ! भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।"

भक्ति किसे कहते हैं, रामानुजने उसकी भी व्याख्या कर लिखा है।

भक्तिस्तु—"निरतिशयानन्दप्रियानन्यप्रयोजनसकलेतरवैतृष्ण्यवद् ज्ञानविशेष एव।"

किस प्रकार मुक्तिलाभ होता है, उसका उपाय भी दिखलाया गया है। इन सब विषयोंकी विस्तृत आलोचना "रामानुजाचार्य और पूर्णप्रज्ञ" शब्दमें हो चुकी है।

शङ्कर और रामानुज मतका पार्थक्य।

शङ्कर और रामानुज दोनों ही अद्वैतवादी थे। ये दोनों सांख्यकी तरह प्रकृतिपुरुषवादी नहीं थे और न न्याय वैशेषिक आचार्योंकी तरह बहुपदार्थवादी ही थे। वे एकमात्र अद्वय ब्रह्मवादी थे। किन्तु फिर भी दोनोंमें बहुत पृथक्ता थी। शङ्कर चिन्मात्र ब्रह्मवादी थे। रामानुजका ब्रह्म निर्विशेष नहीं—विशेष (चित् और अचित्) सम्वलित था।

शङ्करके मतसे चिन्मात्र ब्रह्मको छोड़ कर और सभी पदार्थ मायिक इन्द्रजालवत् प्रतीयमान हैं। रामानुजने भी 'सर्व ब्रह्ममय' कह कर स्वीकार किया है, किन्तु यह ब्रह्म स्वजातीय विजातीय और स्वगत भेदविवर्जित नहीं है। विश्वब्रह्माण्डका अनन्त सृष्ट पदार्थ इस ब्रह्मके ही अन्तर्गत है,—इस ब्रह्मके ही शरीरस्वरूप है। यह अनन्त जगत् शङ्करके मतसे मायाकल्पित है, अतएव मिथ्या है। किन्तु रामानुजके मतसे ये अवास्तव नहीं—यथार्थमें वास्तव हैं। शङ्करका ब्रह्म निर्गुण, निर्विशेष और चिदेकमात्र है। किन्तु रामानुजका ब्रह्म सृष्ट असृष्ट जीव और समस्त वस्तुसमन्वित गुणमय पुरुष है। शङ्करने जो ईश्वर स्वीकार किया है वह मायाविलसित है, अतएव वह मायिक और अलीक हैं। रामानुजका ब्रह्म सर्वशक्तिमान्, सर्वस्रष्टा और सर्वकर्त्ता हैं। शङ्करके मतसे केवल माया उपाधि भिन्न जीव और ब्रह्ममें कुछ भी पृथक्ता नहीं है। रामानुजके मतसे प्रत्येक जीव विलक्षण है तथा ब्रह्मका ही अंशस्वरूप है। किंतु ऐसा होने पर भी इसकी स्वतंत्र सत्ता है तथा यह पृथक् सत्ता सर्वदा वर्त्तमान रहती है। शङ्करके मतसे मुक्ति—ब्रह्मनिर्वाण अर्थात् जीव और ब्रह्मके भेदज्ञानका अत्यन्त तिरोधान है। रामानुजके मतसे जीवकी भगवद्धाममें नित्य प्रतिष्ठा ही परममुक्ति है। रामानुज शङ्करकी तरह निर्गुण सगुण भेदसे दो प्रकारके ब्रह्म स्वीकार नहीं करते। शङ्कर विवर्त्तवादी और रामानुज परिणामवादी थे। इस सम्बन्धमें और भी कई बातें कही जा सकती हैं, किन्तु बढ़ जानेके डरसे केवल प्रयोजनीय बातोंका उल्लेख कर शेष कर दिया गया।

मध्वाचार्यका द्वैतवाद।

वेदांतदर्शनके चिरवैचित्रीमय अनन्त आकाशमें एक और समुज्ज्वल ग्रहका उदय हुआ। इनका युक्तितर्क सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। ये शुष्क ज्ञानी नहीं थे, शुष्क तार्किक भी नहीं थे, श्रीभगवान्में इनका प्रगाढ़ विश्वास था, अथच ये षड्दर्शनमें अति श्रेष्ठ पण्डित थे। श्री भगवत् साधनामें ही ये जीवन बिता कर पूर्णप्रज्ञ नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका दूसरा नाम मध्वाचार्य और संन्यासनाम आनन्दतीर्थ था। इनका परिचय 'मध्वाचार्य' में आ गया है। इनका असल नाम वासुदेव था। ये ही द्वैतमतके प्रवर्त्तक हैं। इनका दार्शनिक अभिमत पूर्णप्रज्ञदर्शन कहलाता है। इनके उपनिषद्भाष्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य और गीताभाष्यका पण्डितसमाजमें बड़ा आदर है। भाष्यको छोड़ कर वेदांतसूत्रके सम्बंधमें ये और भी तीन ग्रन्थ लिख गये हैं। इनके वेदांतसूत्रभाष्यमें दार्शनिक तत्त्वकी यद्यपि गहरी आलोचना नहीं है, फिर भी इनके बनाये अणुभाष्यमें पाण्डित्यकी पराकाष्ठा दिखलाई गई है। ये ३७ ग्रंथ लिख गये हैं। शायद १२वीं सदीके प्रारम्भमें ये प्रादुर्भूत हुए थे।

श्रीमद्आनन्दतीर्थ श्रीमद्रामानुजकी तरह विशिष्टाद्वैतवादी नहीं थे। यद्यपि जीवका अणुत्व, दासत्व, वेदका अपौरुषेयत्व, स्वतःप्रामाण्यत्व, प्रमाणत्रित्व और पञ्चरात्र उपजीव्यत्व आदि विषयोंमें श्रीरामानुज सिद्धान्तके साथ इस दार्शनिक मतका कुछ कुछ साम्य दिखाई देता है, किन्तु रामानुजके सिद्धान्तानुयायी परस्पर भेदादि

तीन पक्षोंके साथ अर्थात् श्रीरामानुजने जो ब्रह्म जीव और अचित् इन तीन पदार्थोंको अद्वैततत्त्वके नामसे प्रसिद्ध किया है, श्रीमद्आनन्दतीर्थ इस सिद्धान्तसे सम्पूर्ण भिन्न प्रस्थानावलम्बी हुए हैं। उनके मतसे तत्त्वपदार्थ दो है, स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र। निर्दोष अशेष सद्गुण सम्पन्न भगवान् विष्णु ही स्वतन्त्र पदार्थ हैं, इनके अतिरिक्त और सभी अस्वतन्त्र हैं। सर्वदर्शनसंग्रहकार पूर्णप्रज्ञने दर्शननिबन्धके आरम्भमें ही इस दर्शनसम्मत भेदतत्त्व निरूपणकी विशुद्ध विचार प्रणालीकी आलोचना कर इस प्रकार सिद्धान्त किया है—

"परमेश्वरो जीवाद्भिन्नः तं प्रतिसेव्यत्वात् यो यं प्रतिसेव्यः स तस्माद्भिन्नो यथा भृत्याद्राजा।"

अर्थात् परमेश्वर जीवसे भिन्न हैं। क्योंकि, परमेश्वर सेव्य हैं। जो जिनकी सेव्य वस्तु है, वह उससे भिन्न है। जैसे भृत्यसे राजा भिन्न हैं। भृत्य यदि राजपद पानेकी आशा करे, तो वह पद पदमें ठोकर खाता है। भृत्य राजाके आज्ञानुसार चलनेसे सुखी होता है। जो भृत्य राजाके समीप अपनेको राजा बतलानेकी कोशिश करता है, राजा वैसे भृत्युको यमपुर भेजते हैं। फिर जो उनका गुणानुकीर्त्तन करता है वह राजाकी कृपासे सुखसे दिन विताता है।

इस प्रकार अद्वैततत्त्वका खण्डन करनेके लिये साधारण लोगोंके उपयोगी विचारको पहले दिखलाया गया है। इसके बाद शाकल्यसंहितापरिशिष्टसे तथा तैत्तिरीय उपनिषद्से द्वैतवादको समर्थक श्रुति उद्धृत की गई है। अनन्तर अग्निपुराणसे स्वसम्प्रदायमें व्यवहृत चक्रादि धारणके नियमोंका उल्लेख कर भेदप्रमापक श्रुतिका उल्लेख किया गया है।

"सत्यमेतमनुविश्वे मदन्विरातिं देवस्य गृणतो मघोनः सत्यासो अस्य महिमागृणे शवोयज्ञेषु विप्रराज्ये सत्य आत्मा सत्य जीवः सत्यंभिदा सत्यंभिदा मयिवारुण्यो मयि वारुण्यो मयि वारुण्य इति।"

यह श्रुति भेदवादको समर्थक है। श्रीभगवद्गीतामें भी कहा है—

> "इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम सामर्थ्यमागताः।
> सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलयेन व्यथन्ति च॥"

द्वैतपोषक एक ब्रह्मसूत्र इस प्रकार है—

"जगद्व्यापारवर्जप्रभुकारणासन्निहितत्वात्" दूसरे पक्षमें "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इस श्रुतिके बल जीव कभी भी पारमैश्वर्य्यका अधिकार स्थापन नहीं कर सकता। भक्तिपूर्वक ब्राह्मणसेवी शूद्र भी ब्राह्मणकी तरह पूज्य हो सकता है, इस वाक्यकी तरह उक्त श्रुतिको केवल अर्थवादपर ही समझना होगा।

इस सम्प्रदायके मतसे भेद पांच प्रकारका है—(१) जीवेश्वरभेद, (२) जड़ेश्वरभेद, (३) जीव जीवमें भेद, (४) जड़ जीवमें भेद तथा जड़ जड़में भेद। यह भेदपञ्चक अनादि और नित्य है।

इनका नाश नहीं है, ये भ्रान्तिकल्पित भी नहीं है। अतएव द्वैत नहीं, यह अज्ञानियोंका सिद्धान्त है। सभी श्रुति भगवान्‌की ही श्रेष्ठताको कीर्त्तन करती है। यथा—

> "न च नाशं प्रयात्येष न चासौ भ्रान्तिकल्पितः।
> कल्पितश्चेन्निवर्त्तेत न चासौ विनिवर्त्तते॥
> द्वैतं न विद्यते इति तस्मादज्ञानिनां मतं।
> मतं हि ज्ञानिनामेतदिदं ततं हि विष्णुना॥
> तस्मान्मात्रमिति प्रोक्तं परमो हरिरेव तु॥"

श्रीभगवद्गीतामें भी लिखा है—

> "द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च।
> क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥" इत्यादि

"तत्त्वमस्यादि" श्रुति भी तादात्म्यकी समर्थक नहीं है। इस सम्बन्धमें श्रीमदानन्दतीर्थकी आपत्ति इस प्रकार है।

> आह नित्यपरोक्षन्तु तच्छब्दोह्यविशेषितः।
> त्वं शब्दश्चापरोक्षार्थं तयोरैक्यं कथं भवेत्॥"

इस श्रुतिमें "आदित्य युपवत्" सादृश्यमात्रको दिखलाया गया है, तादात्म्यका समर्थन नहीं हुआ है।

जीवका परम ऐक्य चाहे बुद्धिसारूप्यमात्र हो या एक स्थान सन्निवेशमात्र अथवा व्यक्तिस्थानसम्बन्धीय हो; यहां तक कि जीव जब मुक्त होते हैं, तब भी यह पृथक्ता रह जाती है।

पूर्णप्रज्ञका कहना है, जगत्‌को जो मिथ्या बतलाया

जाता है, उसका प्रमाण कहीं भी नहीं मिलता, द्वैतवाद के प्रवर्त्तक श्रीमदानन्दतीर्थ और उसके परवर्ती सम्प्रायके पण्डितोंने न्यायदर्शनकी सहायतासे द्वैतवादकी युक्तियोंकी पुष्टि की है। उन लोगोंका कहना है, कि इस जगत्‌को मिथ्या नहीं कहा जा सकता। वे लोग न्यायनिर्वाणसे एक नित्यानित्यके विचार सिद्धान्त द्वारा इस उक्तिको प्रमाणित करते हैं। यथा-

"नित्यमनित्यभावादनित्यनित्यत्वोपपत्तेर्नित्यसम इति।"

अर्थात् अनित्य पदार्थं जो नित्य और अनित्य है, ऐसे अनित्यकी नित्यताका प्रमाण नित्यसम है। तर्करक्षा नामक ग्रन्थसे भी इस विषयका प्रमाण उद्धृत हुआ है। यथा—

"धर्मस्य तदतद्रूपविकल्पानुपपत्तितः।
धर्मिणस्तद्विशिष्टत्वभङ्गो नित्यसमो भवेत्॥"

इस प्रकार अनेक युक्ति द्वारा जगत्‌के नित्यत्व और अनित्यत्वके सम्बन्धमें आलोचना की गई है। फलतः नैयायिकोंकी तरह जगत्‌की नित्यता दिखलाना ही इनका उद्देश्य है, ऐसा भी प्रतीत नहीं होता। क्योंकि, ऐसा होने पर भी वह जो मिथ्या वा ब्रह्मसे अभिन्न है, इसे वे लोग माननेको तय्यार नहीं। इनके सिद्धान्तकी सार बात यह है, कि नारायण स्वतन्त्र पदार्थ हैं, नारायण भिन्न और सभी पदार्थ अस्वतन्त्र हैं, इस प्रकार वे लोग दो तत्त्वको स्वीकार करते हैं। श्रीरामानुज सम्प्रदाय चित् और अचित् इन दोनों जातिके पदार्थोंको ब्रह्मत्वके अन्तर्गत मानते हैं। यही उन लोगोंके तत्त्वज्ञानकी विशिष्टता है। ये दोनों ही सम्प्रदाय वैष्णव हैं। उपासना और साम्प्रदायिक चिह्नादिमें यथेष्ट पृथकता है। मायावादशतदूषणी वा तत्त्वमुक्तावली आदि ग्रन्थोंमें द्वैतवादके समर्थन और अद्वैतवादके खण्डनके सम्बन्धमें अनेक युक्तियाँ दिखलाई गई हैं।

श्रीकण्ठभाष्य।

शैवमत-समर्थक एक ब्रह्मसूत्रभाष्य हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ है। यह भाष्य श्रीकण्ठाचार्यका बनाया है। श्रीकण्ठाचार्य श्रीमत् शङ्कराचार्यके परवर्ती समयके व्यक्ति थे। यहाँ तक कि, हम लोग उन्हें श्रीरामानुजके परवर्त्ती ही समझते हैं। श्रीकण्ठने रामानुजकी विचारप्रणालीका अवलम्बन किया है। इन्होंने स्वप्रणीत वेदांतसूत्रभाष्यके प्रथम सूत्रभाष्यमें जो ब्रह्मतत्त्वका निरूपण किया है, वह श्रीमद्रामानुजके सिद्धांतकी ही स्पष्ट प्रतिध्वनि है—

"सकलचिदचित् प्रपञ्चाकारपरशक्तिविशिष्टाद्वितीयवैभवस्य सकलनिगमसाररहस्यनिधानस्य सर्वशिवशर्वपशुपतिपरमेश्वरमहादेवरुद्रशम्भुप्रभृतिपर्यायवाचकशब्दसारप्रकाशितपरममहिम-विलासस्य अशेषभूतनिखिलचेतनसमुपासनानुगुणसमुदितनिजप्रसादसमर्पितपुरुषार्थसार्थस्य परब्रह्मणः।"

इससे स्पष्ट देखा जाता है, कि ये विशिष्टाद्वैतवादी थे। भक्ति इस मतका साधनोपाय है। फलतः दक्षिण भारतमें श्रीरामानुजके भाष्यकी यथेष्ट प्रधानता देखी जाती है। श्रीकण्ठाचार्य शैवसम्प्रदायके पण्डित थे। उन्होंने शैवसम्प्रदायके वेदांतसूत्रके भाष्यका अनुभव करके ही इस भाष्यकी रचना की है। बहुतेरे ऐसा समझ सकते हैं, कि शैवसंप्रदायके भाष्यमें शङ्करके अद्वैतवादका ही समर्थन होना उचित था। श्रीकण्ठने उस पथका अवलंबन क्यों नहीं किया? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि शङ्करका अद्वैतवाद मायावादमात्र है। इस मतका अवलंबन करनेसे उपास्य उपासक संबंध विनष्ट हो जाता है। अतएव पञ्चोपासकके संबंधमें मायावाद केवल विरुद्ध सिद्धांत स्थापित करता है। शैवभाष्यकार श्रीकण्ठने इसीसे ग्रंथावतरणिकामें साफ साफ कहा है—

"व्याससूत्रमिदं नेत्रं विदुषां ब्रह्मदर्शने।
पूर्वाचार्यैः कलुषितं श्रीकण्ठेन प्रसाद्यते॥"

हम श्रीमाधवाचार्यविरचित सर्वदर्शनसंग्रहमें जो शैवदर्शन देखते हैं वह विशिष्टाद्वैत नहीं होने पर भी शङ्करके अद्वैतवादका विरोधी है। उसमें चित् और अचित् पदार्थका नित्यत्व और सत्यत्व स्वीकृत हुआ है। शैवदर्शनमें साधारणतः तीन पदार्थ स्वीकृत हुए हैं—पति (ईश्वर), पशु (आत्म) और पाश (अचित् वा जड़)। ज्ञानरत्नावलीग्रंथमें भी छः प्रकारका उल्लेख देखनेमें आता है। यथा—

"पतिविद्ये तथाविद्या पशुः पाशश्च कारणम्।
तन्निवृत्ताविति प्रोक्ताः पदार्थाः षट् समासतः॥"

अर्थात् ईश्वर, विद्या, अविद्या, आत्मा, पाश और कारण।

शैववेदान्ती कहते हैं, कि पति, पशु और पाश ये तीन प्रकारके पदार्थ तथा विद्या, क्रिया, योग और चर्या ये चार पाद हैं। पशु वा जीव अस्वतन्त्र है, पाश वा जड़पदार्थ अचित् है। अतएव पति इन दोनों प्रकारके पदार्थसे भिन्न हैं। किन्तु भिन्न होने पर भी शैववेदान्ती द्वैतवादीकी तरह प्रथक्त्व सूचित नहीं करते। वैष्णवकी तरह शैववेदान्ती भी भगवद्विग्रहका नित्यत्व मानते हैं। भगवद्विग्रह अप्राकृत है इसे शैववेदान्ती भी स्वीकार करते हैं।

श्रीभगवद्देह मनकर्मादिपाशजाल द्वारा उत्पन्न नहीं है। वह शक्ति और मंत्ररूप है। किंतु उपासनाके लिये उनके आकारका प्रयोजन होता है। यहां पर उसका भी प्रमाण दिया गया है। यथा—

"आकारवांस्त्वं नियमादुपास्यो
न वस्त्वनाकारमुपैति बुद्धिः।"

अर्थात् विना आकारके तुम्हारी उपासना नहीं हो सकती। क्योंकि, निराकार बुद्धिकी धारणासे अतीत है।

इसके पहले शैवमतमें ब्रह्मतत्त्व निरूपित हुआ है। जीवतत्त्वके संबंधमें अभी कुछ कहना आवश्यक है। शैवदर्शनके मतमें जीवको 'पशु' कहा है। इसीसे शिव "पशुपति" नामसे प्रसिद्ध हैं। जीव अनणु और क्षेत्रज्ञ है।

बृहदारण्यकके मतसे ब्रह्म अनणु है। शैवदार्शनिकने जीवका अनणु नाम रखा है। ये चार्वाकादिकी का तरह देहात्मवादी नहीं हैं। नैयायिकोंकी तरह ये आत्माको प्रकाश्य भी नहीं मानते। क्योंकि ऐसा होनेसे अनवस्थादोष लगता है। ये आत्माको जैनोंके व्यापक वा बौद्धोंकी तरह क्षणिक भी नहीं मानते। इनके मतसे जीवात्माका लक्षण इस प्रकार है—

"चैतन्यं दृक्क्रियारूपं तदस्त्यात्मनि सर्वदा।
सर्वतश्च यतो मुक्तौ श्रूयते सर्वतोमुखम्॥"

श्रीकण्ठभाष्यसे शैवदर्शनके अनेक तथ्य संग्रह किये जा सकते हैं। शैवसम्प्रदायके लोग श्रीकण्ठभाष्यको प्राचीन भाष्य मानते हैं। किसी किसीने तो इसे बहुत ही प्राचीन कहा है। किंतु ग्रंथ पढ़नेसे ऐसा मालूम नहीं होता। यह ग्रंथ सुप्रसिद्ध श्रीरामानुज आचार्यके बाद रचा गया है, यही हम लोगोंकी धारणा है। इसकी लिपिप्रणाली अति प्राञ्जल और पाण्डित्यपूर्ण है। युक्ति, शास्त्रीय प्रमाण और सिद्धान्तपरिपक्व पण्डितोंका पाण्डित्यसम्मत है। श्रीमदप्पय दीक्षितकी शिवार्कमणिदीपिका नाम्नी इसकी एक व्याख्या है। उसकी भाषा प्राञ्जल और गभीर गवेषणापूर्ण है। शाङ्करभाष्यमें गोविन्दानन्दने, रामानुजभाष्यमें सुदर्शनने, मध्वभाष्यमें जयतीर्थने, श्रीकण्ठभाष्यमें अप्पयदीक्षितने तथा निम्बार्कभाष्यमें श्री श्री निवासाचार्यने भाष्यकी व्याख्या लिख कर दार्शनिक जगत्में ऊंचा स्थान पाया है।

निम्बार्क सम्प्रदाय भाष्य।

वैष्णव सम्प्रदायके वेदांतियोंमें निम्बार्क सम्प्रदाय भेदाभेदवादी हैं। इनका वेदांतव्याख्यान द्वैताद्वैतपर है। श्रीरामानुजने जिस प्रकार बौधायन वृत्तिके आधार पर श्रीभाष्यकी रचना की, चतुःसन सम्प्रदायी प्राचीन वैष्णवाचार्य श्रीमन्निम्बार्कने भी उसी प्रकार औडुलोमि-प्रणीत वेदांतसूत्रवृत्तिके आधार पर वेदांतपारिजात सौरभाख्य ब्रह्मसूत्रका एक वाक्यार्थ ग्रंथ प्रणयन किया। निम्बार्क सम्प्रदायका प्रकृत भाष्यग्रंथ श्रीश्रीनिवासआचार्यकृत वेदांतकौस्तुभ है। श्रीनिवास श्रीमन्निम्बार्कके शिष्य थे। श्रीनिवासका वेदांतकौस्तुभ ग्रंथ असाधारण पाण्डित्यपूर्ण है। केशवकाश्मीरीकृत कौस्तुभप्रभावृत्ति और भी विस्तृत तथा यथेष्ट विचारपूर्ण ग्रन्थ है। निम्बार्क सम्प्रदायके परपक्षगिरिव्रज आदि और भी अनेक पाण्डित्यपूर्ण वेदांत ग्रंथ हैं। इन्होंने इसके व्याख्यारम्भमें इस प्रकार लिखा है,—

भगवान् वासुदेव पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने भ्रान्त सभक्तिविवर्जित जीवोंके हृदयमें अपनी भक्ति दृढ़ करनेके लिये कृष्णद्वैपायणरूपमें परतत्त्वप्रकाशक, समन्वय, अविरोधसाधन और फल इन चार अध्यायवाले

वेदांतसूत्रको प्रकाशित किया। सुदर्शनावतार श्रीमन्निम्बार्कने वेदांतपारिजात नामक एक वाक्यार्थ लिखा। इसके बाद शङ्करावतार श्रीश्रीनिवास आचार्यने उसके एक भाष्यकी रचना की।

इस सम्प्रदायका ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है, कि भगवान् औडुलोमि ऋषि ही द्वैताद्वैतवादके प्रवर्त्तक थे। हम श्रीनिवास आचार्यके वेदान्तकौस्तुभमें द्वैताद्वैतवादका उल्लेख देखते हैं।

इनके मतसे तत्त्व तीन प्रकारका है, चित्, अचित् और ब्रह्म। किन्तु चित् और अचित् ब्रह्मसे भिन्न हो कर भी अभिन्न हैं। यथा—

"भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा।
सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म एतत्॥"

ब्रह्मका स्वरूप—अचिन्त्य, अनन्त, निरतिशय स्वाभाविक, बृहत्तम, स्वरूप गुणादिका आश्रयभूत, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर, सर्वकारणरूप, समानातिशयशून्य, सर्वव्यापक, सर्ववेदैकवेद्य श्रीकृष्ण ही परम ब्रह्म हैं। ये सर्वज्ञ और सर्वेश्वर हैं। श्रुतिने कहा है—"पराऽस्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते। स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" श्रुतिने और भी कहा है।

"तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमञ्च दैवतं।
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।"

इत्यादि अनेक श्रुतियोंका उल्लेख कर भाष्यकारने परब्रह्मके स्वरूपका निर्द्धारण कर श्रीकृष्णका उक्त नाम रखा है। वेदान्तके मतसे ज्ञान ही इस ब्रह्मसाक्षात्कारका उपाय है। ध्यान ध्रुवास्मृति और पराभक्ति आदि ही ज्ञान शब्दके पर्याय हैं। श्रवण, मनन और निदिध्यासन उनकी प्राप्तिके उपाय हैं।

इसके बाद जीवका लक्षण कहा जाता है। अचिद्वर्ग भिन्न ज्ञानस्वरूप, ज्ञातृत्व कर्त्तृत्वादि धर्मविशिष्ट, भगवदायत्तस्वरूपस्थितिप्रकृतिशील, अणुपरिमाण, प्रतिशरीरमें भिन्न, मोक्षार्ह चितपदार्थ ही जीव है।

श्रुतिने कहा है—

"अणुर्ह्येष आत्माऽयं वा एते सिनीतः पुण्यं पापम्।"

भाष्यकारने जीवसम्बन्धमें ऐसे कितने प्रमाण उद्धृत कर जीवतत्त्वका निर्णय किया है।

इसके बाद अचित् पदार्थकी बात लिखी जाती है—

अचित् पदार्थ तीन प्रकारका है, प्राकृत, अप्राकृत और काल। ये सभी अचेतन पदार्थ माया और प्रधानादि भी कहलाते हैं। गुणत्रयाश्रयभूत द्रव्य प्राकृत है, यह नित्य और परिणामादिविकारी है। "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां" श्रुति भी गृहीत हुई है। इत्यादि प्राकृत अचित् पदार्थ है। अप्राकृत अचित् पदार्थका लक्षण इस प्रकार है—यह त्रिगुण प्रकृति और कालसे अत्यन्त भिन्न और अचेतन है। प्रकृतिमण्डलभिन्नदेशवृत्ति, नित्यविभूतिविशिष्ट परव्योम, परमपद, ब्रह्मलोकादि ही अप्राकृत अचित् पदार्थ है। इस सम्बन्धमें अनेक श्रुतिस्मृति प्रमाणोंका भाष्यकार श्रीनिवासाचार्यने अपने ग्रंथमें उल्लेख किया है। ये सब धाम अप्राकृत तथा कालके प्रभावातीत हैं।

प्राकृत अप्राकृतको छोड़ कर और भी एक अचित् द्रव्यका उल्लेख है जिसका नाम है काल। यह काल नित्य और विभु है। श्रुतिका कहना है, "अथ नित्यानि ह वै पुरुषः प्रकृति कालः॥"

इस भाष्यमें कालकी नित्यताके सम्बंधमें श्रुति और स्मृतिके अनेक प्रमाण दिये गये हैं। न्याय दर्शनमें भी काल नित्य पदार्थरूपमें आलोचित हुआ है। सभी प्राकृत पदार्थ कालतन्त्र हैं।

भेदाभेदवादकी युक्ति।

अभी भेदाभेदवादका श्रुति-प्रमाण दिखलाया जाता है। ये कहते हैं, कि ब्रह्म जो चिदचित्से अभिन्न हैं, श्रुतिमें उसके भी अनेक प्रमाण हैं। फिर ब्रह्म जो इन सबोंसे भिन्न है उसके भी कितने प्रमाण दिखाई देते हैं। पहले अभिन्नताका प्रमाण उद्धृत किया जाता है। यथा—

(१) सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।
(२) आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्।
(३) तत्त्वमसि।
(४) अयमात्मा ब्रह्म।
(५) त्वं वा अहमस्मि भगवो देवते।
(६) तदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मि।

ये सब वाक्य चित् और अचित् पदार्थोंकी ब्रह्मता-

तात्म्यका ही है। अर्थात् चिदचित् पदार्थ जो ब्रह्मसे अभिन्न है, इन सब श्रुतियों द्वारा वह प्रमाणित होता है। फिर चित् और अचित् पदार्थ जो ब्रह्मसे भिन्न है, तन्निर्देशक श्रुतिका भी अभाव नहीं है। यह पहले भी लिखा जा चुका है। यथा—

(१) अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णामित्यादि।

(२) त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवोऽव्ययम्।
अचेतना परार्था च नित्या सततविक्रिया।

(३) तदधीनत्वादर्थवत्।

(४) आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

(५) अणुर्ह्येष आत्मा।

(६) अस्ति खल्वपंव परो भूतात्मा।
योऽयं सितासितैः कर्मफलैरभिभूयमानः।

(७) अथ नित्यानि ह वै पुरुषः। प्रकृतिः, कालः।

इस प्रकार दोनों प्रकारके वाक्योंसे यद्यपि चित् और अचित्की भिन्नता देखी जाती है, तथापि ऊपर कही गई श्रुतियों द्वारा चिदचित् और ब्रह्मका अभिन्नत्व प्रमाणित हुआ है। इन दोनों प्रकारके श्रुतिवाक्योंके प्रति दृष्टि रख कर श्रीमन्निम्बार्कसम्प्रदायने जो सिद्धान्त किया है उसका मर्म इस प्रकार है—

छान्दोग्यके प्राणेन्द्रियसंवादके प्रमाणमें ब्रह्म और चिदचित् पदार्थका भिन्नत्व और अभिन्नत्व दोनों प्रकारके प्रमाण देखनेमें आते हैं, अतएव 'भिन्नाभिन्न-जिज्ञास्य' ही ब्रह्मसूत्रकारका अभिमत है। भाष्यकार श्रीनिवासाचार्यने वेदान्तका जो 'विषय' निर्देश किया है, उसमें भी यह भेदाभेद सूचित हुआ है।

इस सम्प्रदायके मतसे भेदाभेदाश्रय श्रीकृष्ण ही वेदान्तका विषय है तथा श्रीभगवद्भावलक्षण मोक्ष ही वेदान्तशास्त्रका प्रयोजन है। इस सम्प्रदायके ग्रन्थ अनेक पाण्डित्यपूर्ण हैं जिनमेंसे 'परपक्षगिरिवज्र' ग्रन्थका नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस सम्प्रदायके श्रीमत् शुकदेव नामक एक महात्माने श्रीमद्भागवतकी टीका लिखी है।

विशुद्धाद्वैतभाष्य।

इसके बाद विशुद्धाद्वैत सिद्धान्तकी बात लिखी जाती है। श्रीमद्वल्लभाचार्यने अपने मतसे वेदांतका भाष्य किया। वेदांतमत 'विशुद्धाद्वैतवाद' नामसे प्रसिद्ध है। उनका बनाया हुआ भाष्य "अणुभाष्य" कहलाता है। केवल द्वैतवादी श्रीमत् शङ्कराचार्यने ब्रह्मको अत्यंत निर्धर्मक, निर्विशेष, निराकार और निर्गुण बताया है। श्रीवल्लभाचार्य सम्प्रदायोंका कहना है, कि केवलाद्वैतवाद वेदांतसूत्रका शुद्धसिद्धांत नहीं है। क्योंकि, ब्रह्मसूत्रकारने ब्रह्मस्वरूप लक्षणमें लिखा है, "सर्वधर्मोपपत्तेश्च" "सर्वोपेता च तद्दर्शनात्"। ऐसे सूत्रोंसे जाना जाता है, कि ब्रह्म निर्धर्मक, निर्विकार और निर्विशेष नहीं हैं। केवलाद्वैतवाद ब्रह्मसूत्रका विशुद्ध सिद्धांत नहीं हो सकता। ब्रह्म जो एक और अद्वैत है इसमें इस सम्प्रदायका मतभेद नहीं है। किंतु शङ्कराचार्यका अद्वैतवाद सूत्रसम्मत नहीं है, उनका अद्वैतवाद भी शुद्ध नहीं है। अतएव शङ्करके अशुद्ध केवलाद्वैतवादको खण्डन कर विशुद्धाद्वैतवाद संस्थापन करना ही इस सम्प्रदायका अभिप्राय है। श्रीमद्वल्लभाचार्यने अपने भाष्यमें ब्रह्मका सर्वधर्मवत्त्व, विरुद्धसर्वधर्माश्रयत्व, ब्रह्मसर्वकर्तृत्व, ब्रह्मगतवैषम्य, नैर्घृण्यदोषपरिहार, ब्रह्मसे जगत्का अनन्यत्व, अक्षरब्रह्मरूप, जीवस्वरूप, जीवका ज्ञातृत्व, जीवका परिणाम, जीवका कर्तृत्व भोक्तृत्व, जीवका अंशत्व, जीवब्रह्मका अभेदत्व, जगत् सत्यत्व, जगत् संसारभेद, अविकृत परिणामवाद, आविर्भाव-तिरोभाववाद, भक्तिसाधनत्व और पुष्टिमार्ग आदि विषयोंकी आलोचना की है।

ब्रह्मलक्षण।

इनके मतसे परब्रह्म सर्वधर्मविशिष्ट, सच्चिदानन्द, व्यापक, अव्यय, सर्वशक्तिमान्, स्वतन्त्र, सर्वज्ञ, निर्गुण (अर्थात् प्राकृत धर्मरहित) है, देशकाल-वस्तुस्वरूप ये चार प्रकारके परिच्छेदसे रहित हैं। स्वजाति-विजातीय-स्वगतभेद-विवर्जित हैं, अन्तर्यामी, अनन्त स्वाभाविक गुणविशिष्ट मायाधीश हैं। अभिन्ननिमित्तकारणोपादानस्वरूप, निराकार लौकिक प्राकृत आकार रहित हैं, किन्तु सच्चिदानन्दमूर्त्ति, आनन्दाकार, रसाकार, विरुद्धसर्वधर्माश्रय, जैसे श्रुति एक बार कहती है, "यतो वाचा निवर्त्तन्ते, अप्राप्य मनसा सह" फिर भी कहती है, "आनन्दं ब्रह्मणो न बिभेति कुतश्चन।" ब्रह्म

निर्धर्मक हो कर भी सधर्मक हैं, निराकार हो कर भी साकार हैं, निर्विशेष हो कर भी सविशेष हैं, निर्गुण हो कर भी सगुण हैं। आत्मराम हो कर भी रमण हैं, शिशु हो कर भी रसिकशेखर हैं, इत्यादि ; उनके समान वा उनसे बढ़ कर कोई भी नहीं है, फिर भी वे "समो मशकेन समो नागेन" है, ब्रह्म सर्वमय हैं। शुद्धाद्वैत सिद्धान्तके मतसे ईश्वरका कर्त्तृत्व मायाकृत नहीं है, आरोपित भी नहीं है—वह स्वकीय पूर्ण-माहात्म्यप्रदर्शन-मात्र है। निर्गुण ब्रह्मका जगत्कर्त्तृत्व असम्भव है, सगुणब्रह्म परतन्त्र हैं, परतन्त्रका भी कर्त्तृत्व नहीं रह सकता। उससे ब्रह्मकी स्वतन्त्रताकी हानि होती है।

"बहु स्याम् प्रजायेय" "स ह एतावान् आस" "तत् आत्मानं स्वयमकुरुत" "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते" इत्यादि श्रुति द्वारा प्रमाणित होता है, कि ब्रह्मके सर्गकर्त्तृत्व है, वेदान्त भी यही कहते हैं "जन्माद्यस्य यतः।" श्रीभगवद्गीतामें लिखा है, "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" इन सब प्रमाणोंसे ही ब्रह्मके कर्त्तृत्वका उपदेश दिया गया है।

जीवतत्त्व।

विशुद्धाद्वैत भाष्यमें जीवका चित्कण नाम रखा गया है। जीव अति सूक्ष्म, परिच्छिन्न चित्प्रधान और आनन्द स्वरूप हैं। किन्तु मायाके अनादिप्रभावसे वह जीव आनन्दस्वरूपत्वको खो कर सांसारिक क्लेश पाता है। इसीसे जीवकी दीनता, जीवका दुःख, जीवके शरीरादिमें अहंबुद्धि हुई है। जीव नित्य है, इसकी अनित्यता अलीक है। श्रुति कहती है, "अयमात्मा अजड़ः अमरः" जीव ज्ञाता है। "ज्ञः अतः एवच" इस सूत्रमें आत्माका ज्ञातृत्व आलोचित हुआ है। मायावादी जीवको ब्रह्म समझते हैं, उनके मतसे जीव विभु है। किन्तु विशुद्धाद्वैतवादिगण कहते हैं, कि जीव अणु है। जीवकी उत्क्रान्ति, गति, आगति आदिकी बातें शास्त्रमें आलोचित हुई हैं। जीवका कर्त्तृत्व भोक्तृत्व और जीवांशत्व आदि विशुद्धाद्वैतवादमें स्पष्टरूपसे स्वीकृत हुआ है। किन्तु याद रखना होगा, कि विशुद्धाद्वैतवाद वैष्णव-सम्प्रदायका वेदान्तसिद्धान्त होने पर भी दूसरी तरहसे अद्वैतवाद है। इसमें जीव और ब्रह्मका अभेद कल्पित हुआ है। ब्रह्म चित् और पूर्णप्रकटानन्द है और जीव तिरोहितानन्द है। तिरोहितानन्द होने पर भी शुद्धजीव और ब्रह्म वस्तुतः एक ही पदार्थ है। विशुद्धाद्वैतके मतसे जीवब्रह्ममें अभेद स्वीकृत हुआ है।

जगत्सत्यत्व।

श्रीमत् शङ्करके मायावादमें जगत्को मिथ्या बताया है। विशुद्धाद्वैतवादका सिद्धान्त इस पक्षमें उसके विपरीत है। विशुद्धाद्वैतवादियोंका कहना है, कि जगत् सत्य और नित्य है। जगत् भगवद्रूप और भगवान्से अनन्य है। इस सम्बन्धमें ये लोग "भावे च उपलब्धेः" इस ब्रह्मसूत्रको प्रमाणस्वरूप मानते हैं। इसके सिवा उनके और भी अनेक श्रुत प्रमाण हैं। यथा—

(१) सदेव सौम्य इदमग्र आसीत्।
(२) यदिदं किञ्च तत् सत्यमिति आचक्षते।
(३) असद्वा इदमग्र आसीत्।
(४) पूर्णमिदं पूर्णमदः इत्यादि।
(५) तदेतदक्षयं जगत्।

इन सब श्रुतियों द्वारा जगत् नित्य और सत्य है, ऐसा स्थिर हुआ है। इनके मतसे भक्ति ही परमतत्त्व श्रीकृष्णको पानेका एक साधन है। फलतः श्रीमद्रामाके विशिष्टाद्वैतवादके साथ इस सम्प्रदायका मतपार्थक्य है। वह यह है, कि विशिष्टाद्वैतवादी स्थूल और सूक्ष्म अचित् पदार्थोंको अचित् मानते हैं तथा प्रलय कालमें भी वे सूक्ष्माकारमें अचिद्भावमें ही वर्त्तमान रहते हैं। स्थूल और सूक्ष्म जीवके सम्बन्धमें भी वही बात है। किन्तु विशुद्धाद्वैतवाद इन दोनों पदार्थोंको भी ब्रह्मसे अभेद मानते हैं। श्रीरामानुजीयगण केवल ब्रह्मके पूर्णत्व और अखण्डत्वको नहीं मानते। किन्तु विशुद्धाद्वैतवादियोंका जीव और जगत् पृथक्रूपमें नित्य और सत्य कह कर प्रकल्पित होने पर भी ब्रह्मसे अभिन्न माना गया है। ये लोग रामानुजीयगणकी तरह जीव और जगत्को ब्रह्मका शरीर नहीं मानते, ब्रह्मके अभेदको नित्य पदार्थ मानते हैं। विशिष्टाद्वैतवादी सालोक्यादि चार प्रकारके भेदात्मकको मोक्ष स्वीकार करते हैं। किन्तु विशुद्धाद्वैतवादी अभेदात्मक सायुज्यमोक्षको भी अस्वीकार करते हैं।

अचिन्त्यभेदाभेदवाद और गोविन्दभाष्य।

इस प्रकार भारतवर्षके भिन्न भिन्न सम्प्रदायके सुपण्डिताग्रगण्य सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्यों ने ब्रह्मसूत्र-भाष्य प्रणयन कर अपने अपने सम्प्रदायकी दार्शनिक भित्तिको प्रतिष्ठित किया। पाठकवर्ग श्रीशङ्करके अद्वैतवाद, श्रीरामानुजके विशिष्टाद्वैतवाद, श्रीमन्निम्बार्कके भेदाभेदवाद और श्रीमद्वल्लभाचार्यके विशुद्धाद्वैतवाद कथाएं सुन चुके हैं। अब हम श्रीगौराङ्गमहाप्रभुके अचिन्त्य भेदाभेदवादका कुछ परिचय दे कर इस प्रबंधको शेष करते हैं। अवतारी श्रीगौराङ्गमहाप्रभुने संप्रदाय-प्रवर्त्तक अन्यान्य आचार्योंकी तरह वेदांतभाष्यको प्रणयन नहीं किया, वह कार्य भी उनका नहीं है, भाष्य प्रणयन करनेकी प्रयोजनीयता भी उस समयके भक्त-समाजमें समझी नहीं जाती थी। श्रीमहाप्रभुके मतसे श्रीमद्भागवत ही वेदांतसूत्रका अकृत्रिम भाष्य है।

गरुड़पुराणमें लिखा—

"अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः॥"

श्रीपाद श्रीजीव गोस्वामीने श्रीमद्भागवतकी क्रमसन्दर्भ-टीकाके उक्त श्लोकको व्याख्यामें लिखा है, कि श्रीभागवत ही ब्रह्मसूत्रोंका अकृत्रिम भाष्य है। अतएव यह स्वतःसिद्ध भाष्यभूत श्रीमद्भागवतके सामने अन्यान्य भाष्य स्वकपोलकल्पितमात्र है, किंतु भागवतके अनुगत भाष्यमात्र ही आदरणीय है।

इस कारण श्रीमहाप्रभुके पार्श्वचर भक्तोंने वेदांत-सूत्रका भाष्य प्रणयन करनेको चेष्टा नहीं की। किंतु श्री महाप्रभुने उस समयके प्रधानतम वेदांतियोंके सामने सभी जगह वेदांतके अभिनव सिद्धांत अचिन्त्य-भेदाभेदवादका प्रचार किया था। काशीधाममें मायावादी पण्डितोंके सर्वपूज्यगुरु श्रीमत्प्रकाशानन्द सरस्वती, नवद्वीपके अद्वितीय सर्वदर्शनवित् नैयायिक पण्डित श्रीमद्वासुदेव सार्वभौम आदि वेदांतसूत्रकी अभिनव व्याख्या और सिद्धांत श्रवण कर श्रीगौराङ्गकी अमानुषी प्रतिभाके महामंत्र पर विमुग्ध हुए थे तथा उन्होंने महाप्रभुके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर अपने जीवनको साफल्य किया था।

गौड़ीय वैष्णवसमाजके स्वीकृत वेदांतसिद्धांतको श्रीवृन्दावनमें श्रीपाद सनातनादि गोस्वामिवर्गने अपने अपने ग्रंथमें सन्निविष्ट कर रखा है। श्रीपाद श्रीजीव गोस्वामिकृत श्रीभागवतकी क्रमसन्दर्भटीकामें तथा तत्कृत षट्सन्दर्भमें वह लिपिबद्ध किया गया है।

किंतु फिर भी परवर्त्ती वैष्णवोंके मध्य स्वसम्प्रदायमें वेदांतभाष्यग्रंथका अभाव था। कहते हैं, कि वाञ्छाकल्पतरु स्वयं भगवान् श्रीगोविंदने उस अभावकी पूर्त्ति कर एक श्रेणीके भक्तोंका चित्त परितृप्त किया। विस्तृत विवरण वैष्णव शब्दमें देखो।

विज्ञानामृतभाष्य

ब्रह्मसूत्रका एक भाष्य ग्रंथ हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुआ है। इसका नाम है विज्ञानामृतभाष्य। विज्ञान-भिक्षु इस ग्रंथके रचयिता हैं। जो सांख्यप्रवचनभाष्य लिख कर जगत्में प्रसिद्ध हो गये हैं, सम्भवतः ये वही विज्ञानभिक्षु हैं। इस भाष्यका स्वयं ग्रंथकारने "ऋजुव्याख्या" नाम रखा है। योगसंरुग और कर्मकाण्डीय मतको दृढ़ताप्रतिष्ठा ही इस भाष्यका उद्देश है। इसमें विवर्त्तवाद और परिणामवाद निराकरणकी प्रतिज्ञा और चेष्टा दिखाई देती है।

इस भाष्यके अधिकांश स्थानोंमें स्मृतिवचन ही प्रमाणरूपमें माने गये हैं। स्मार्त्तसांख्य और योगमतके समर्थनमें ही इस ग्रंथकारका युक्तितर्क व्यवहृत हुआ है। प्राचीन भाष्यके मध्य भास्कर मत प्रभृति और भी अनेक प्रकारके वेदांतका आज भी प्रचार देखा जाता है।

आज तक दो हजारसे अधिक वेदांत ग्रन्थ आविष्कृत हुए हैं; उनमेंसे उत्कृष्ट जितने ग्रन्थों और उनके प्रणयनकर्त्ताओंके नाम जहां तक मिले हैं, नीचे अकारादि वर्णानुक्रमसे लिखे गये हैं—

अंशुमद्भेदसंग्रह—काश्यप, अखण्डविषय, अखण्डात्मदीपिका, अखण्डात्मप्रकाश, अखण्डार्थनिरूपण, अणुभाष्य (माध्व), अद्वैतगीता—दत्तात्रेय, अद्वैतकामधेनु—उमामहेश्वर, अद्वैतकालानल—माध्वनारायण, अद्वैतकालामृत—नारायण पण्डित, अद्वैतकौस्तुभ—भट्टोजिदीक्षित, अद्वैतकौस्तुभ—महादेव सरस्वती, अद्वैत-

चन्द्रिका—अनन्तभट्ट, अद्वैतचन्द्रिका—नरसिंहभट्ट, अद्वैतचिन्ताकौस्तुभ—महादेवानन्द, अद्वैतचिन्तामणि—रङ्गनाथ, अद्वैतजलजात—पाण्डुरङ्ग, अद्वैतज्ञान-सर्वस्व—मुकुन्दमुनि, अद्वैततत्त्वदीप, अद्वैततरङ्गिणी—रामेश्वर शास्त्री, अद्वैतदर्पण—भजनानन्द, अद्वैत-दीपिका—विद्यारण्य, अद्वैतदीपिका—नृसिंहाश्रम, अद्वैतनिर्णय—अप्पयदीक्षित, अद्वैतनिर्णयसंग्रह—तीर्थस्वामी, अद्वैतपञ्चदशी, अद्वैतपञ्चपदी—शङ्कराचार्य, अद्वैतपञ्चरत्न—नरसिंह मुनि, अद्वैतपरिशिष्ट—केशव, अद्वैतप्रकाश—रामानन्दतीर्थ, अद्वैतप्रकाश—वासुदेवज्ञान, अद्वैतब्रह्मसिद्धि—मधुसूदन सरस्वती, अद्वैतब्रह्मसिद्धि—सदानन्द काश्मीर, अद्वैतब्रह्मसिद्धि-विनियोगसंग्रह, अद्वैतब्रह्मसुधा, अद्वैतभूषण, अद्वैत-मकरन्द—लक्ष्मीधर कवि, अद्वैतमकरन्दसंग्रह, अद्वैत-मकरन्दसार, अद्वैतमतसार, अद्वैतमुक्तासार, अद्वैत-मुकुर—रङ्गराज, अद्वैतरत्न, अद्वैतरत्नकोश—अखण्डानन्द, अद्वैतरत्नकोश—नृसिंहाश्रम, अद्वैतरत्नकोशपूरणी, अद्वैतरत्नकोशविवरण—भट्टोजि, अद्वैतरत्नतत्त्वदीपिका, अद्वैतरत्नरक्षण—मधुसूदन सरस्वती, अद्वैतरसमञ्जरी—नल्लापण्डित, अद्वैतरहस्य—रामानन्दतीर्थ, अद्वैतरीति—नरसिंह पद्माश्रमी, अद्वैतवाद—नृसिंहाश्रम, अद्वैतविद्या-विचार—वेङ्कटाचार्य, अद्वैतविद्याविनोद, अद्वैत-विवेक—आशाधरभट्ट, अद्वैतविवेक—रामकृष्ण, अद्वैतवेदान्तसार—नरसिंह, अद्वैतशास्त्रसारोद्धार—रङ्गोजिभट्ट, अद्वैतसंग्रह, अद्वैतसार, अद्वैतसिद्धान्त, अद्वैतसिद्धान्तचन्द्रिका, अद्वैतसिद्धान्तविद्योतन—ब्रह्मानन्द सरस्वती, अद्वैतसिद्धि—सहजानन्दतीर्थ, अद्वैता-दित्य—गोविन्द वक्षः, अद्वैताधिकरणचिन्तामणि, अद्वैतानन्द—ब्रह्मानन्द, अद्वैतानन्द लहरी—वेङ्कटशास्त्री, अद्वैतानन्दसागर—रघूत्तमतीर्थ, अद्वैतानुभूति, अद्वैता-नुभूषण, अद्वैतानुसन्धान, अद्वैतामृत—जगन्नाथ सरस्वती, अधिकरणचिन्तामणि—वेदान्त नयनाचार्य, अधिकरणमाला—भारतीतीर्थ, अधिकरणमाला—देव-रामभट्ट, अधिकरणयुक्तिविलास, अधिकरणवाक्यार्थ, अधिकरणार्थसंग्रह, अधिकारमाला, अधिकारसम्प्रदाय-व्याख्या, अध्यात्मकल्पद्रुम, अध्यात्मचन्द्रिका—अद्वैतानन्द, अध्यात्मचिन्तामणि—सौम्यजामातृ, अध्यात्म-प्रकाश—शङ्कराचार्य, अध्यात्मप्रदीपिका, अध्यात्म-वासुदेव—राममणि दास, अध्यात्मबिन्दु—रामानन्दतीर्थ, अध्यात्मबोध—शङ्कराचार्य, अध्यात्ममीमांसा, अध्याय-पञ्चपादिका—वाचस्पति, अध्यारोपप्रकरण, अनुत्तर-तत्त्वविमर्शिनी, अनुबन्धदर्शन—हरियशाः अनुभवप्रकाश, अनुभवादर्शार्थ्या, अनुभूतिप्रकाश—सायणाचार्य, अनु-भूतिरत्नमाला, अनुयागपद्धति—आनन्दतीर्थ, अनुयाग-प्रयोग, अनुवेदांत—आनन्दतीर्थ, अनुव्याख्यान—आनन्दतीर्थ, अनेकार्थध्वनि, अन्तर्भावप्रकाशिका, अप-रोक्षचूडामणि, अपरोक्षानुभव—वासुदेवेन्द्र, अपरोक्षानु-भूति—शङ्कराचार्य, अपरोक्षानुभूति—शङ्कराचार्य, अप्पय्यकपोलचपेटिका, अभिनवगदा—सत्यनाथ, अभि-नवचन्द्रिका—सत्यनाथ यति, अभिनवतर्कताण्डव—सत्यनाथ, अभिनवताण्डवपट्कण्ठ, अभिन्ननिमित्त—अनन्ताचार्य, अभेदखण्डन, अभ्यागताचार, अरणी, अर्थदीपिका, अर्थसंग्रह, अवधूतगीता—दत्तात्रेय, अवधूत-मंश, अवधूतयोगिलक्षण, अवधूतषट्क—शङ्कराचार्य, अवधूतार्या, अविद्याप्रकरण, अविद्यालक्षणोपपत्ति—त्र्यम्बकशास्त्री, अष्टब्रह्मविवेक, अष्टादशसंवाद, अष्टावक्र-गीता—अष्टावक्र, अष्टावक्रदीपिका या वेदान्तरहस्यदीपिका, अष्टोत्तरशतमहावाक्यरत्नावली—रामचन्द्र सरस्वती, अनङ्गात्मप्रकरण और उसकी टीका—शङ्करभारतीतीर्थ, आकाशाधिकरणवाद—अनन्ताचार्य, आक्षेपन्यास—चित्सभेशानन्दतीर्थ, आक्षेपसार—वर्दाद्रितिम्मण्ण, आगमप्रामाण्य—यामुनाचार्य, आचार्यव्याख्या—सच्चिदानन्द सरस्वती, आत्मतत्त्व—रामानन्दतीर्थ, आत्मतत्त्वप्रकाश—नन्दराम, आत्मतत्त्वप्रकाशकी टीका—काशीराम, आत्मतत्त्वप्रदीप—भूदेवशुक्ल, आत्मनिरूपण—शङ्कराचार्य, आत्मनिर्णय, आत्मपुराण या उपनिषद्रत्न—शङ्करानन्द, आत्मपूत, आत्मप्रकाशव्याख्या—चिदानन्द सरस्वती, आत्मप्रकाशिकाविवरण, आत्मबोध—शङ्कराचार्य, आत्मबोध—मुकुन्दमुनि, आत्मबोधसार—वासुदेवेन्द्र, आत्मलिङ्गपूजापद्धति, आत्मवाद—पार्येश्वर, आत्मविद्या-वली—सदाशिव ब्रह्म, आत्मविद्याविलास—शम्भूराम, आत्मविद्याविलास—सदाशिवब्रह्म, आत्मविवेक,

आत्मशुद्धि, आत्मषट्क—शङ्कराचार्य, आत्मसिद्धि, आत्मानात्मविवेक—शङ्कराचार्य, आत्मानात्मविवेककी टीका—पद्मपाद, आत्मनात्मविवेक—सायण, आत्मानात्मविवेक—स्वयंप्रकाशयतीन्द्र, आत्मानुभाव, आत्माकंबोध—गोविन्दभट्ट, आत्मावबोध या आत्मबोधटीका—पूर्णानन्द, आत्मोपदेशविधि—शङ्कराचार्य, आत्मोपदेशशक्तिविचार, आत्मोल्लास, आदेशकौमुदी—रङ्गाचार्य, आदेशकौमुदीखण्डन—गोपालाचार्य, आनन्दकलिका, आनन्दतारतम्य, आनन्दतारतम्यखण्डन—सुरपुरवेङ्कटाचार्य, आनन्दतारतम्यवाद—विजयेन्द्रभिक्षु, आनन्ददीपिका भूषणटीका—वासुदेवेन्द्र, आनन्दाधिकरण—वल्लभाचार्य, आम्नायक्रियार्थत्वादिसत्रविचार, आर्यापञ्चाशत्, आर्यापञ्चाशीति वा परमार्थसार—शेष, आविर्भावतिरोभाववाद—पुरुषोत्तम, इष्टसिद्धि—विमुक्ताचार्य, ईश्वरसिद्धि, उत्तमश्लोकचन्द्रिका, उत्तरपरिभेद, उत्तरपाराशर्य्यभाष्य, उत्तरषट्क, उत्तरसारास्वादिनी—रामानुजस्वामी, उपदेशविधि, उपदेशव्याख्यान—अप्पाचक्र उपदेशषोडशक, उपदेशसहस्रकतुव्याख्या—नामतीर्थ, उपदेशसार—विश्वनाथ, उपदेशसाहस्री—शङ्कराचार्य, उपदेशसूत्रव्याख्या, उपनिषत्कला, उपनिषत्प्रकाशिका—रङ्गरामानुज, उपनिषत्प्रस्थान—आनन्दतीर्थ, उपशमप्रकरण, उपसंहारविजय—विजयेन्द्रभिक्षु, उपादानत्वसमर्थन—सुरपुर श्रीनिवास, उपाधिखण्डन—आनन्दतीर्थ, उपाधिखण्डनपरशु, ऋभुगीता, ऋष्यशृङ्गसंहिता. एकश्रुत्युपदेश—शङ्कराचार्य, एकश्लोकव्याख्या—स्वयंप्रकाशमुनि, एकश्लोकीव्याख्या—शङ्कराचार्य, ऐश्वर्यविवरण—हरिदास, ओंकारवाद—अनन्ताचार्य, कण्टकोद्धार—रामानुज, कथालक्षण—आनन्दतीर्थ, कमलापूर्वपक्ष, कमलासिद्धान्त, करणप्रकाशिका, करणप्रबोध—गोकुलनाथ, कर्मनिर्णय—आनन्दतीर्थ, कल्पलता—भवानन्द, कारिका—हरिराय, कारिकादर्पण—वरदकवि, कारिकावली—श्रीनिवास, कालतत्त्वनिरूपण, कालतत्त्वनिरूपणप्रकरण, कालवञ्चन—योगिनां, काशीमोक्ष—विश्वेश्वराचार्य, काश्मीरपुष्पाञ्जलि, किरणवोध, कुलतत्त्वनिरूपण, कुलरहस्य, कुरेशविजय—श्रीवत्साङ्क, कुरेशविजय—श्रीवत्साङ्क, केवलाद्वैतवादकुलिश—कृपापात्र, कैवल्यसौधनिःश्रेणिका, कोशरत्नप्रकाश—अनुभवानन्द, कौस्तुभदूषण—भास्करदीक्षित, खण्डन—भीष्ममिश्र, खण्डनभूषामणि—रघुनाथ, खण्डव्याख्यानमाला—नारायण, गीतात्रय, गुणत्रयविवरण, गुरुशिष्यसंवाद, गोपीरसविवरण—घनश्याम, चकारसमर्थन, चण्डभास्कर—अमरेश्वर शास्त्री, चण्डमारुत—रामानुजदास, चण्डातप, चतुर्मतसार, चतुर्मतसारसंग्रह—अप्पय्यदीक्षित, चतुर्वर्गचिन्तामणि—गङ्गेशमिश्र, चतुर्वेदतत्त्वार्थसारसंग्रह, चतुर्वेदतात्पर्य्य, चतुर्वेदतात्पर्यप्रकाश—हरदत्त, चतुर्वेदसार, चन्द्रिका (लघु)—गौड़ ब्रह्मानन्द, चन्द्रिकाखण्डन, चित्तानुबोधटीका—भास्करकण्ठ, चित्तरक्षपट, चित्सुधा, चिदचिद्विवेक, चिदद्वैतकल्पवल्लि—प्रधानो वेङ्कट, चिदम्बरकला, त्रिदिवलास, चिन्मात्रकाशिका, छलारीय—छलारि, जगदुत्पत्तिप्रकरण, जलस्नान, जलभेद—वल्लभाचार्य, जीवन्मुक्तलक्षण, जीवन्मुक्तिविलास, जीवन्मुक्तिविवेक—सायण, ज्ञानतिलक, ज्ञानदीपिका, ज्ञानप्रकाशिका, ज्ञानप्रबोध, ज्ञानप्रबोधमञ्जरी, ज्ञानप्रभाव, ज्ञानबोध—शुकयोगी, ज्ञानबोधिनी, ज्ञानमयूख, ज्ञानमुद्रा, ज्ञानरत्नप्रकाशिका, ज्ञानरत्नावली, ज्ञानशास्त्र, ज्ञानषट्क, ज्ञानसंन्यास—शङ्कराचार्य, ज्ञानांकुश, ज्ञानानन्दतरङ्गिणी—हेमकर मैथिल, टिप्पन्याशय—हरिदास, तत्त्वगुरुकाण्डीय, तत्त्वचन्द्रिका—उमामहेश्वर, तत्त्वचन्द्रिका—महादेव सरस्वती, तत्त्वचन्द्रिका—पञ्चीकरणविवरणटीका (जगन्नाथाश्रमशिष्य), तत्त्वटीका, तत्त्वत्रयगीर्वाणप्रतिपद, तत्त्वदीप—कविराज भिक्षु, तत्त्वदीप—वल्लभाचार्य, तत्त्वदीप—सौम्यजामातृमुनि, तत्त्वदीपन—जगन्नाथ सरस्वती, तत्त्वदीपन—अमृतानन्द, तत्त्वप्रदीपन—नृसिंह, तत्त्वप्रदीपन—पञ्चपादिका विवरण (अखण्डानन्द मुनि), तत्त्वदीपिका—रामदेव, तत्त्वनवनीत, तत्त्वनिर्णय—वरदराज, तत्त्वपदवी, तत्त्वपदार्थविभाग, तत्त्वपरिशुद्धि—ज्ञानघनाचार्य, तत्त्वपाद, तत्त्वप्रकाशिका, तत्त्वप्रकाशिकातत्त्वालोकटीका—प्रज्ञानानन्द, तत्त्वप्रकाशिका विवरण, तत्त्वप्रक्रिया, तत्त्वबिन्दु—वाचस्पतिमिश्र, तत्त्वबोध—वासुदेवेन्द्र, तत्त्वमञ्जरी, तत्त्वमातृका, तत्त्वमार्गसन्दर्शनी, तत्त्वमार्तण्ड—

वेङ्कटाचार्य, तत्त्वमार्त्तण्ड—श्रीनिवासाचार्य, तत्त्वमुक्ताकलाप, तत्त्वमुक्ताकलापकान्ति—नैनाराचार्य, तत्त्वमुक्तावलि—अप्पयदीक्षित, तत्त्वमुक्तावली—गौड़पूर्णानन्द, तत्त्वरत्नप्रकाशिका, तत्त्वरत्नावलि, तत्त्वरत्नावलिसंग्रह, तत्त्ववाक्यसुधा, तत्त्वविचारमाला, तत्त्वविवेक—आनन्दतीर्थ, तत्त्वविवेक—नृसिंहाश्रम, तत्त्वविवेक—विद्यारत्न, तत्त्वविवेककी टीका—रामकृष्ण, तत्त्वविवेक—पूर्णानन्द सरस्वती, तत्त्वविवेकटीका—जयतीर्थ, तत्त्वविवेकटीका—व्यासराजस्वामी, तत्त्वविवेकटीका—भट्टोजि, तत्त्वविवेकसार—क्रतुभूषण, तत्त्वविवेकसार—व्रजभूषण, तत्त्वविवेचन (अद्वैतरत्न कोशटीका) अग्निहोत्रसूरि, तत्त्वशिक्षोपन्यास, तत्त्वशिखामणि—चूड़ामणि दीक्षित, तत्त्वसंख्यान—आनन्दतीर्थ, तत्त्वसंख्यानटीका—जयतीर्थ, तत्त्वसंख्यानटीका—यदुपति, तत्त्वसमीक्षा (ब्रह्मसिद्धिटीका)—वाचस्पतिमिश्र, तत्त्वसंग्रह—शङ्कराचार्य, तत्त्वसंग्रह—राधामोहनगोस्वामी, तत्त्वसार—चैतन्यमुनि, तत्त्वसार—रघुनाथ यतीन्द्र, तत्त्वसारटीका—नन्ददास, तत्त्वसूत्ररत्न (इसकी टीका)—रामानन्दतीर्थ, तत्त्वसूत्र, तत्त्वादिलक्षण, तत्त्वानुसन्धान—महादेव सरस्वती, तत्त्वाभरण—रामचन्द्र भट्ट, तत्त्वार्थपरिशुद्धि, तत्त्वार्थाधिगम, तत्त्वालोक—जनार्दन, तत्त्वचंद्रिकापञ्चीकरणप्रक्रियाटीका, तत्त्वबोधिनी पञ्चदशीटीका, तत्त्वोद्योतपञ्जिका, तत्त्वोपनिषद्, तन्त्रसार—भगवत्पादाचार्य, तन्त्रसार टीका—जनार्दनसुत व्यास, तन्त्रसार—आनन्दतीर्थ, तन्त्रसारकी टीका—मधुमाधवसहाय, तन्त्रसारकी टीका—नृसिंहाचार्यशिष्य, तन्त्रसारकी टीका—बलारिशेषाचार्य, तन्त्रसारकी टीका—श्रीनिवासतीर्थ, तरङ्गिणी—रामाचार्य, तर्कताण्डव (द्वैत)—व्यासतीर्थ, तात्पर्यचन्द्रिका—व्यासतीर्थ, तात्पर्यदर्पण—वेङ्कटाचार्य, तात्पर्यदीपिका—अमृतानंदतीर्थ, तात्पर्यदीपिका (रामानुजकी वेदार्थसंग्रहटीका)—सुदर्शनसूरि, तात्पर्यनिर्णय, तात्पर्यबोधिनी (पञ्चदशीटीका)—रामकृष्ण, तात्पर्यरत्नावली, तात्पर्यसंग्रह—श्रीशैलताताचार्य, तारकनिर्णय, तारतम्यस्तव—विट्ठलाचार्य, तिरुमल्लकारिका (द्वैत), त्र्यक्षरिभाष्य, दत्तात्रेय—गोरक्ष, दशप्रकरण—त्रिविक्रमाचार्य, दशश्लोकी या सिद्धानन्द-दशश्लोकी, दशश्लोकी या सिद्धान्तरत्न—निम्बार्क, दशश्लोकी टीका—पुरुषोत्तम आचार्य, दशश्लोकी टीका—हरिव्यास, दुर्गापूर्वपक्ष, दुर्मतखण्डन, द्वादशसिद्धान्त, द्वादशान्तप्रकरण, द्वैतसिद्धि—तिरुमल्लाचार्य, नयद्युमणि, नयनप्रसादिनी—प्रत्येकस्वरूप भागवत, नयमार्त्तण्ड, नामचन्द्रिका—रघुनाथ, नामधेय पादकौस्तुभ, नामरत्नविवरण—देवकीनन्दन, नामसिद्धान्त, नारायण शब्दार्थ, निकाममाम-भाष्य—निकामम म, निक्षेप-चिन्तामणि—गोपालदेशिकाचार्य, निक्षेपदीप, निक्षेपरक्षा—वेङ्कटनाथ, निगमान्तार्थरत्नाकर, निगूढार्थमञ्जुषिका, निरालम्ब, निरुक्तिलक्षण, निरोधलक्षण—रघुनाथ, निरोधलक्षण—वल्लभाचार्य, निर्गुणतत्त्व, निर्विशेषनिरास, न्यायकल्पलता—प्रमाणलक्षणटीका जयतीर्थ, न्यायतत्त्वविवरण—नरसिंह यतीन्द्र, न्यायदीपावली—आनंदबोध, न्यायपरिशुद्धि—रामानुज, न्यायभास्कर—अनन्ताचार्य, न्यायमकरन्द—आनंदबोध परमहंस, न्यायमकरन्द—लक्ष्मीधर, न्यायमहोदधि, न्यायविवरण—आनन्दतीर्थ, न्यायसिद्धाञ्जन—वेदान्ताचार्य, न्यायसिद्धाञ्जन—रामानुज, न्यायसिद्धाञ्जन—रामकृष्णाचार्य, न्यायस्वरूपनिरूपण, न्यायामृत—व्यासतीर्थ, न्यायार्थदीपिका, न्यासखण्डन, न्यासतूलिका, न्यासविद्यादर्पण, न्यासविद्याविलास, पक्षधर व्याख्या, पञ्चग्रन्थी—अप्पय्य दीक्षित, पञ्चदशी—सायण (विद्यारण्य), पञ्चदशीटीका—सदानन्द, पञ्चदशीप्रकरण—धर्मराजाध्वरिन्, पञ्चप्रकरण, पञ्चप्रकरणदीपिका, पञ्चप्रकरणी—शङ्कराचार्य, पञ्चमिथ्यात्वटीका, पञ्चरक्षा, पञ्चरत्नकका, पञ्चरत्नकिरणावली, पञ्चरत्नप्रकाश—पाण्डुरङ्ग, पञ्चविजय, पञ्चविधनामभाष्य, पञ्चशर-व्याख्या—माधवाचार्य, पञ्चश्लोकी, पञ्चसार—शङ्करभट्ट, पञ्चाशिका, पञ्चाशीति, पञ्चीकरण—मुकुन्दराज, पञ्चीकरणप्रक्रिया—शङ्कराचार्य, पञ्चीकरणप्रक्रिया विवरण—स्वयंप्रकाशमुनि, पञ्चीकरणप्रक्रियाविवरण—आनंदतीर्थ, पञ्चीकरण-भावप्रकाशिका, पञ्चीकरणतात्पर्यचन्द्रिका—रामानंद सरस्वती, पञ्चीकृत टीका, पत्रावलम्बन—वल्लभ दीक्षित, पत्रावलम्बनटीका—पुरुषोत्तम, पदपञ्चक,

पदयोजन—रामचंद्र सरस्वती, पद्धतिप्रकाशिका—प्रमाणपद्धतिटोका (अनन्तभट्ट), पद्यमाला—जयतीर्थ, परतत्त्वनिर्णय—वरदाचार्य, परब्रह्मानंदवोध, परमतखण्डन-संग्रह, परमतत्त्वप्रकाशिका, परमतभञ्जन, परमपदनिर्णायक—अयुतानन्दतीर्थ, परमपदसोपान, परमरहस्यवाद, परमहंसनिर्णय, परमहंसपद्धति ज्ञानसागर, परमहंससंहिता—लक्ष्मण, परमात्मगतिप्रकाश—नञ्जगूडु रामय्य, परमार्थप्रकाश, परमार्थवोध, परमार्थविवेक—गोविंद, परमुखचपेटिका—कृष्णताताचार्य, परिभाषार्थसंग्रह—वैद्यनाथ शास्त्री, परिभाषासार, परिमल—पद्मपादाचार्य, पल्लवीटीका, पुच्छब्रह्मवाद, पुच्छब्रह्मवादखण्डन—वेङ्कटाचार्य, पुरुषार्थाकार, पुरुषार्थकौमुदी—रघुपति, पुरुषार्थप्रबोध—ब्रह्मानंद, पुरुषार्थरत्नाकर, पुरुषार्थसूत्रवृत्ति—राम ज्योतिर्विद, पुरुषोत्तमवाद, पूर्णाश्रमीय—पूर्णाश्रम, प्रकाशसतति सूत्राणि, प्रच्छन्नब्रह्मवादनिराकरण, प्रत्यकतत्त्वचिन्तामणि—सदानन्द, प्रत्यक्-तत्त्वदीपिका या चित्सुखी—चित्सुख, प्रत्यकतत्त्वदीपिका या चित्सुखी टोका—सुखप्रकाश मुनि, प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमान, प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डन—आनन्दतीर्थ, प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डनटीका—जयतीर्थ, प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमान-खण्डन-परशु, प्रपञ्चसार—शङ्कराचार्य, प्रपञ्चसारटोका—सिम्भराज, प्रपत्ति-परिशीलन, प्रपन्नगतिदीपिका, प्रबोध—विट्ठलेश, प्रबोधचन्द्रोदयहस्तामलक—प्रह्लाद, प्रबोधमञ्जरी—वैकुण्ठ विष्णु, प्रबोधमानसोल्लास, प्रबोधरत्नाकर, प्रमाणपद्धति—जयतीर्थ, प्रमाणपद्धतिटोका—विट्ठलभट्ट, प्रमाणपद्धतिटीका—वेदेशतीर्थ, प्रमाणपद्धतिटीका—सत्यनाथ, प्रमाणभाष्यटोका, प्रमाणलक्षण—आनन्दतीर्थ, प्रमाणलक्षणपरीक्षा, प्रमाणसंग्रह, प्रमाणसार—शठारि मुनि, प्रमेयसंग्रह—वरदाचार्य, प्रमेयसंग्रह—विष्णुचित्त, प्रमेयसार, प्रमेयसारसंग्रह—विद्यारण्य, प्रश्नोत्तरमालिका—मेघवर्ण, प्रश्नोत्तररत्नावली, प्रस्थान-रत्नाकर—पुरुषोत्तम, प्रहस्तवाद—पुरुषोत्तम, प्राकृतपञ्चीकरण, प्रागुद्धारसंग्रह—रामानन्द तीर्थ, प्रौढ़व्यञ्जक—कृष्णाचार्य, बालबोध—देवकीनन्दन, बालबोध—त्र्यम्बक, विम्बतत्त्वप्रकाशिका—देवराज, बिम्बप्रतिबिम्बवाद—पुरुषोत्तम, बुद्धिप्रदीप, बृहदीश्वर दीक्षितीय—ईश्वरदीक्षित, बोधप्रक्रिया—दिगम्बरानुचर, बोधसार—नरहरि, बोधसार—नित्यमुक्ति, ब्रह्मकारणवाद, ब्रह्मचन्द्रिका—भैरवदत्त, ब्रह्मचिन्तन—निराकरण, ब्रह्मजीवनिर्णय—मनोहर, ब्रह्मज्ञानविप्रतिपत्ति, ब्रह्मज्ञानोपदेश, ब्रह्मतत्त्वप्रश्नोत्तररत्नावली, ब्रह्मतत्त्वविवरण, ब्रह्मतत्त्वसंहितोद्दीपनी—वाचस्पति मिश्र, ब्रह्मतत्त्वसुबोधिनी, ब्रह्मतर्कस्तव—अप्पयदीक्षित, ब्रह्मनिरूपण, ब्रह्मनिर्णय, ब्रह्मबोध—रघुनाथ, ब्रह्मबोधिनी—योगेश्वर, ब्रह्मरहस्यसंहिता, ब्रह्मविद्यामहोदधि, ब्रह्मविद्याविजय, ब्रह्मविद्याविलास, ब्रह्मशब्दवाद—अनन्ताचार्य, ब्रह्मशब्दशक्तिवाद—अनन्ताचार्य, ब्रह्मशब्दार्थवाद, ब्रह्मशब्दार्थविचार—कृष्णताताचार्य, ब्रह्मसिद्धि—मण्डनमिश्र, ब्रह्मसूत्र, ब्रह्मसूत्रकारिका, ब्रह्मसूत्रतन्त्रदीपिका, ब्रह्मसूत्रलघुवार्त्तिक, ब्रह्मसूत्रसङ्गति, ब्रह्मसूत्राणुभाष्य—वल्लभाचार्य, ब्रह्मसूत्रानुभाष्य—आनन्दतीर्थ, ब्रह्मसूत्राणुव्याख्यान—आनन्दतीर्थ, ब्रह्मानन्द—आनन्दतीर्थ, ब्रह्मानन्द—रामकृष्ण, ब्रह्मानन्दीयखण्डन—वनमालिमिश्र, ब्रह्मामृत—रामभट्ट, ब्रह्मामृतवर्षिणी ब्रह्मसूत्रटीका—रामानन्द सरस्वती, ब्रह्मावबोध—रघुनाथशेष, ब्रह्मावबोधविवेकसिन्धु, ब्रह्मावलीभाष्य, भगवद्गीतासार—कैवल्यानन्द सरस्वती भञ्जन, भावदीपिका—विजयध्वज, भावद्योतनिका—सुखप्रकाशमुनि, भावप्रकाशिका—प्रपञ्चसिद्धान्तानुमानखण्डनटीका, विवृत्ति—व्यासयति, भावप्रकाशात्मबोधटीका, भावविवेक, भावसारविवेक—गङ्गाधर, भाष्यचन्द्रिका—देशिक, भाष्यटीप्पनी—शिवपल्ट, भाष्यटीका—शङ्कराचार्य, भाष्यदीपिका, भाष्यप्रत्यय, भाष्यप्रत्ययोद्बोध, भाष्यप्रदीप, भाष्यप्रदीपोद्योतन, भाष्यभानुप्रभा, भाष्यरत्नप्रकाशिका, भाष्यरत्नप्रभा (वेदांतसूत्रभाष्य)—गोविन्दानन्द, भाष्यरत्नावली, भाष्यवार्त्तिक, भाष्यविषयवाक्यदीपिका, भाष्यव्याख्या, भाष्यावतारिका, भास्करभाष्य—अनन्ताचार्य, भृगुगीता, भेदखण्डन, भेददर्पण, भेददीपिका—माधवमिश्र, भेदधिक्कार—नृसिंहाश्रम, भेदधिक्कार-न्यक्कार-निरूपण—नरसिंहदेव, भेदधिक्कार-न्यक्कार-हुंकृति, भेदधिक्कृतितत्त्वविवेचन—नरसिंहमुनि, भेदप्रकार, भेदप्रकाश—शङ्करमिश्र,

भेदविभीषिका, भेदाभेदवाद—भगवदास, भेदोज्जीवन, भेदोज्जीवन—व्यासतीर्थ, भ्रष्टवैष्णवखण्डन—श्रीधरमिश्र' मङ्गलवाद—वल्लभाचार्य, मणिदर्पण—रामानुजाचार्य, मणिमञ्जरी—नारायण, मणिरत्नमाला—तुलसीदास, मणिरत्नमाला—शङ्कराचार्य, मतभेदन, मध्वतन्त्रचपेटा प्रदीप—रामकृष्णभट्ट, मध्वतन्त्रदूषण, मध्वमतप्रकरण, मध्वमतविध्वंसन—श्रीनिवास, मध्वमुखमर्द्दन—निम्बार्क, मध्वमुखमर्द्दन—अप्पय दीक्षित, मध्वसिद्धान्त—आनन्दतीर्थ, मननग्रन्थ—वासुदेव यतिशिष्य, मनोपापञ्चक—सदाशिव, मनोदूतिका, मनोरञ्जनी (वेदांत सारटीका) रामतीर्थ, मनोलक्षण, मन्त्रशारीरक—नीलकण्ठ, मन्दारमञ्जरी प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डनटीका विवृत्ति—व्यासतीर्थ, मानसदीपिका, मानसवैराग्य, मानसनयनप्रसादिनी (चित्सुखीटीका)—प्रत्यक्स्वरूप, मानसोक, मानसोल्लास—गोविन्द, मानसोल्लास—सुरेश्वर, मायावादखण्डन—आनंदतीर्थ, मायिमत खण्डन, मितप्रकाशिका, मितभाषिणी—आनंदतीर्थ, मुक्तावली—(ब्रह्मसूत्रवृत्ति), मुक्तावली—कल्याणराय, मुक्तित्रयभेद निरूपण, मुक्तिसप्तशती, मुक्तिसार, मुनिभावप्रकाशिका—कृष्णगुरु, मुमुक्षुजनकल्प, मूलभावप्रकाशिका—रङ्गरामानुज, मूलमंत्रसार, मूलमंत्रार्थसार, मोक्षनिर्णय—शिवयोगींद्र, मोक्षलक्ष्मीविलास—वल्लभ, मोक्षराज—अनंताचार्य, मोक्षसाधनोपदेश, मोक्षसाम्राज्यसिद्धि—गङ्गाधर सरस्वती, यतिराजीय, यतींद्रमतभास्कर—श्रीनिवास दास, यथार्थमञ्जरी—रामानंद तीर्थ, यमकरत्नाकर—वेदांतदेशिक, युक्तिमल्लिका—वादिराज, योगदीपिका—त्रिविक्रमशिष्य, योगिनां फालवञ्जनं, रत्नकोष—अखण्डानंद यति, रत्नपरीक्षा, रत्नावली—ब्रह्मानन्द स्वामी, रससंग्रह, रसाद्वैत, रहस्यनवनीत, रहस्यपदवी, रहस्यमञ्जरी, रहस्यमातृका, रहस्यषोडशीटीका, रहस्यसन्देशविवरण, रहस्यसार, राजमार्त्तण्ड—भोज, रामानन्दीय—रामानन्द, रामायणतात्पर्यदीपिका, लक्ष्मीपुरुषकार, लघुविन्दुशेखर, लघुभावप्रकाशिका—लक्ष्मीकुमार ताताचार्य, लघुमञ्जुषा—निम्बार्क, लघुविमर्शिनी, ललितत्रिभङ्ग—मजनाथ, लोकायतिकपक्षनिरास, वचनभूषण—लक्ष्मीदण्डाचार्य, वज्रसूची—सिद्धाचार्य घोषपाद, वाक्यदीपिका, वाक्यप्रकरण—शिवयोगीन्द्र, वाक्यसंग्रह, वाक्यसुधा—भारतीतीर्थ विद्यारण्यस्वामीके शिष्य, वाक्यार्थचन्द्रिका, वाक्यार्थदर्पण—रामतीर्थ, वाक्यार्थदीपिका, वाक्यार्थबोध, वाचारम्भण—नृसिंहाश्रम, वाणीपूर्णपक्ष, वादकथा—गोपेश्वर, वादनक्षत्रमालासूर्योदय, वादावली—जय तीर्थ, वादिखण्डन, वादिभूषण—पुरुषोत्तमाचार्य, वार्त्तिकसार—सुरेश्वर, वार्त्तिकसारसंग्रह—सुरेश्वर, वासिष्ठसार—रामानन्दतीर्थ, वासिष्ठसारगूढार्थ, वासुदेवमनन—वासुदेव यति, विचारमाला—नरोत्तमपुरी, विचारार्कसंग्रह—रामानन्दतीर्थ, विजयेन्द्र पराभव, विज्ञानतरङ्गिणी—महारुद्र सिंह, विज्ञाननौका—शङ्कराचार्य, विज्ञानविलास, विज्ञानशास्त्र, विज्ञानशिक्षा, विज्ञानसंज्ञाप्रकरण, विद्यागीता—दत्तात्रेय, विद्याप्रबोध, विद्यासागरवार, विद्वत्सन्यासलक्षण, विद्वद्विनोदमञ्जूषा विद्वद्विवाद, विद्वन्मनोरञ्जिनी—रामतीर्थकृत-वेदांत...रटीका, विरोधवरूथिनी, विरोधवरूथिनीटीका, विरोधवरूथिनीनिरोध—श्रीनिवासभट्ट, विरोधवरूथिनीभञ्जनी, विरोधिपुरुषकार, विरोधोद्धार, विलक्षणमोक्षाधिकार, विवरण—विद्यारण्य, विवरणदर्पण, विवरण प्रमेयसंग्रह भारतीतीर्थ विद्यारण्य, विवरणप्रस्थान, विवरणभावप्रकाशिका—परिव्राजकाचार्य, विवरणव्रण—वादिराज, विवरणसंग्रह, विवरणोपन्यास—विद्यारण्य, विवेकफल, विवेकमकरन्द-वासुदेवेन्द्र, विवेकमार्त्तण्ड, षड्गुणाचार्य, विवेकशतक—प्रबोधानन्द सरस्वती, विवेकसार—रामेन्द्र यति, विवेकसार—सायण, विवेकसारसिन्धु या वेदान्तार्थ विवेचन महाभाष्य—मुकुन्द मुनि, विवेकामृत—गोपाल, विशिष्टाद्वैतचन्द्रिका, विशिष्टाद्वैतवादार्थ, विशिष्टाद्वैतविजयवाद—नरहरि, विशिष्टाद्वैतसमर्थन, विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त—श्रीनिवास दास, विषयवाक्यसंग्रह, विषयासिद्धदीपिका, विष्णुसिद्धान्त, वीतमहोपाख्यान, वीरमहेश्वराचार-नीलकण्ठनाथ, वीरमहेश्वरीय, वृत्तिप्रभाकर (पञ्चदशीटीका) निश्चलदास स्वामी, वेददीपिका—रामानुजाचार्य, वेदानुस्मृति, वेदान्त—स्वात्मानन्दोपदेश, वेदान्तकल्पतरु-नीलकण्ठ, वेदान्तकतक,

तरु—अमलानन्द, वेदान्तकल्पतरुपरिमल—अप्पयदीक्षित, वेदान्तकल्पलतिका—मधुसूदन सरस्वती, वेदान्तकारिकावलि—वरददेशिकाचार्य, वेदान्तकौमुदी—रामाद्वय या रामपण्डित, वेदान्तकौस्तुभ—श्रीनिवास, वेदान्तकौस्तुभ—वेङ्कटाचार्य, वेदान्तकौस्तुभप्रभा केशवदत्त, वेदान्तग्रन्थ—सदानन्द सरस्वती, वेदान्तचंद्रिका—रामेश्वर दत्त, वेदांत चिंतामणि—गोवर्द्धन, वेदांतचिंतामणिप्रकाश—शुद्धभिक्षु, वेदांतडिण्डिम, वेदांततत्त्व, वेदांततत्त्वकौमुदी—वाचस्पति मिश्र, वेदांततत्त्वदीपन—अमृतानंद, वेदांततत्त्वबोध—निम्बार्क, वेदांततत्त्वबोध—शङ्कराचार्य, वेदांततत्त्वसार—रामानुज, वेदांततत्त्वसार—विद्येंद्र सरस्वती, वेदांततत्त्वोदय—आनन्दमन्नाचार्य, वेदांतदीप रामानुज, वेदांतदीप—वनमाली, वेदांतदीपिका—गङ्गादास, वेदांतदीपिका—ब्रह्मदत्त, वेदांतनयनभूषण—स्वयम्प्रकाशानंद, वेदांतनामसहस्रव्याख्यान-स्वरूपानुसंधान—शिवेंद्र सरस्वती, वेदांतनिर्णय, वेदांतन्यायमाला—रामानुज, वेदांतन्यायरत्नावली ब्रह्माद्वैतामृतप्रकाशिका पुरुषोत्तमानंदतीर्थ, वेदांतपदार्थसंग्रह—नञ्जगूडुरामप्प, वेदांतपरिभाषा—धर्मराज अध्वरींद्र, वेदांतपरिभाषा—काशीनाथ शास्त्री, वेदांतपरिभाषा, नृसिंह यतींद्र, वेदांतपरिभाषा—ब्रह्मेन्द्र सरस्वती, वेदांतपारिजातसौरभ—निम्बार्क, वेदांतप्रकरण, वेदांतप्रकरण—वाक्यामृत, वेदांतप्रक्रिया—शङ्कराचार्य, वेदांतभाष्य, वेदांतभूषण, वेदार्थमङ्गलदीपिका, वेदांतमनन—संक्षेपेयाचार्य, वेदांतमंत्रविश्राम—शङ्कराचार्य, वेदान्तमाला—पुरुषोत्तम, वेदान्तमुक्तावली—ब्रह्मानन्द सरस्वती, वेदान्तरत्नकोष—नृसिंहमुनि, वेदांतरत्नमंजुषा—पुरुषोत्तमाचार्य, वेदान्तरहस्य—वेदांतवागीश भट्टाचार्य, वेदान्तवाक्यार्थ, वेदान्तपदावली—जयतीर्थ, वेदान्तवार्त्तिक—आनन्दतीर्थ, वेदान्तवार्त्तिक—विद्यारण्य, वेदान्तविलय—माधवाचार्य, वेदांतविजय—रामानुजदास। वेदांतविज्ञाननौका—शङ्कराचार्य, वेदान्तविभावना—नारायणाचार्य, वेदान्तविभावना—नारायण तीर्थ, वेदान्तविवेक—नृसिंहाश्रम, वेदान्तविवेकचूड़ामणि—शङ्कराचार्य, वेदान्तशास्त्रसंक्षिप्तप्रक्रिया—शङ्कराचार्य, वेदांतशास्त्राम्बुधिरत्न—रामेश्वर, वेदांतशिखामणि—रामकृष्ण, वेदान्तश्रुतिसारसंग्रह—गङ्गाधर, वेदांतसंग्रह—शिवराम भट्ट, वेदांतसंग्रह—श्रीनिवास राघवाचार्य, वेदांतसंग्रह—स्वयम्प्रकाश; वेदांतसंग्रहटीका—योगीन्द्र, वेदान्तसंज्ञा टीकाकार—आदित्यपुरी, वेदांतसंज्ञानिरूपण, वेदांतसंज्ञाप्रक्रिया, वेदांतसम्मत कर्मतत्त्व, वेदान्तसार-नील, वेदान्तसार—रामानुज, वेदांतसार—शङ्कराचार्य, वेदांतसार—सदानन्द योगीन्द्र, वेदांतसारपद्यमाला, वेदांतसारसंग्रह—भट्टगोवर्द्धन, वेदांतसारसंग्रह—सदानन्द स्वामी, वेदांतसारसंग्रह—धर्मशास्त्री काण्डद्वयातीत योगी, वेदांतसारसार, वेदांतसारसिद्धांततात्पर्य, वेदांतसिद्धांत—टीकाकार शङ्कराचार्य, वेदांतसिद्धांतचन्द्रिका—रामानन्द सरस्वती, वेदांतसिद्धांतदीपिका—वैकुण्ठशिष्य, वेदांतसिद्धांतप्रदीप—नियमानन्द, वेदांतसिद्धांतमुक्तावली—प्रकाशानन्द, वेदांतसिद्धांतरत्नाञ्जलि—हरिव्यासदेव, वेदांतसिद्धांतसूक्तिमञ्जरी—गङ्गाधर सरस्वती, वेदांतसुधारहस्य—शिवकोप मुनि, वेदांतसूत्र, वेदान्तसूत्रवृत्ति, वेदान्तस्यमंतक—राधा दामोदर, वेदान्ताधिकरणमाला—विद्यारण्य, वेदान्तामृत, वेदान्तामृतचिद्रत्नचषक—गोपालेंद्र सरस्वती, वेदान्तार्थविवेचन-महाभाष्य, वेदांतार्थसंग्रह—रामशर्मा, वेदान्तार्थसारसंग्रह—धर्मशास्त्री, वेदांतालोक, वेदान्तोपनिषद्, वेदांतोपन्यास, वैकुण्ठदीक्षितीय—वैकुण्ठदीक्षित, वैकुण्ठदीपिका, वैजयंती—त्र्यम्बक शास्त्री, वैदिकविजय, वैदिकसिद्धांत—ब्रह्मानंद योगी, वैराग्यपञ्चाशीति—काशीनाथ, वैयाकरणाभरणसंग्रह, वैष्णवशरणागति, व्यवहारिकतत्त्वखण्डन, व्यामोहविद्रावण—गोवर्द्धनाचार्य, व्यासदर्शनप्रकार—विद्यारण्य, व्यासाद्वैतरङ्गिणी—व्यासाद्रि, शङ्करपादभूषण—रघुनाथ, शङ्करभाष्यन्यायसंग्रह, शतदूषणी—रामानुज, शतदूषणी—वेङ्कटाचार्य, शतदूषणी-श्रीनिवास, शतदूषणी—मुद्गलाचार्य, शतदूषणीखण्डन, शरच्चंद्रिका, शरीरवाद—अनंताचार्य, शांतनवषट्सूत्र, शारीरकन्याय; शारीरकमीमांसा, शारीरकमीमांसान्यायसंग्रह—प्रकाशात्मन, शास्त्रदर्पण, शङ्कराचार्य, शास्त्रदर्पण अमलानन्द, शास्त्रसिद्धांतलेशसंग्रह या सिद्धांतलेश—अप्पयदीक्षित, शास्त्रारम्भसमर्थन—अनंता-

चार्य,—शङ्कारम्भसर्थन त्र्यम्बक, शिवादित्यप्रकाशिका, शिवादित्यमणिदीपिका—अप्पयदीक्षित, शिवोत्कर्ष, शुकोर्व्वशीसंवाद, शुष्कज्ञाननिरास—श्रीधरमिश्र, शैवत्वविचार, शैववाक्यार्थचन्द्रिका, शैवनवदशप्रकरण, शैवपञ्चक, शैवभाष्य—श्रीकण्ठशिवाचार्य, शैववैष्णव, शैववैष्णववाद, शैववैष्णववादार्थ, श्रीकण्ठनाथीय, श्रीखण्डीवेदान्तसार, श्रीधरीपञ्चदशी, श्रीभाष्य—रामानुज, श्रीहर्षखण्डन, श्रुतदीप, श्रुतप्रकाशिका—सुदर्शनाचार्यकृत श्रीभाष्यटीका, श्रुतप्रकाशिकाखण्डन, सिद्धाञ्जन, श्रुतप्रकाशिका संग्रह, श्रुतप्रदीप, श्रुतप्रदीपिका, श्रुतभावप्रकाशिका—रङ्गरामानुजस्वामिन् श्रुतिकल्पद्रुम—हरिदास, श्रुतिकल्पलता श्रीपति, श्रुतिगीता, श्रुतिचिकित्सा, श्रुतितत्त्वनिर्णय, श्रुतितात्पर्यनिर्णय, श्रुतिप्रकाशिका, श्रुतिमतानुमान—त्र्यम्बकशास्त्री, श्रुतिमितप्रकाशिका—त्र्यम्बक शास्त्री, श्रुतिवाक्सारसंग्रह, श्रुतिसंक्षिप्तवर्णन—सुब्रह्मण्य, श्रुतिसंग्रह, श्रुतिसार—तोटकाचार्य, श्रुतिसार—पूर्णानन्द, श्रुतिसार—वल्लभाचार्य श्रुतिसारसमुच्चय—पूर्णानन्द, श्रुतिसारसमुद्धरणप्रकरण—तोटकाचार्य, श्रुतिस्मृत्यादितात्पर्य, श्लोकद्वयव्याख्या, श्लोकपञ्चक विवरण—हरिदास, षट्पदार्थ विवरण, षड्दर्शनीप्रकरण, षोडशमहावाक्यानि, षोडशवर्ण वासुदेवेन्द्रशिष्य, सम्वित्प्रकाश—वामनदत्त, सम्वित्सिद्धि—यमुनाचार्य सगुणनिर्गुणवाद, संक्षेपशारीरक सर्वज्ञात्मन् महामुनि, संक्षेपशारीरकभाष्य—शङ्कराचार्य, संक्षेपाध्यात्मसार—रामानन्दतीर्थ, संग्रह—वीरमहेश्वराचार्य, संग्रहविवरण, संज्ञाप्रकरण, सच्चिदानन्दानुभवदीपिका (पञ्चप्रकरणी टीका)—शङ्कराचार्य, सत्तत्त्वरत्नमाला—ताम्रपर्णीचार्य, सत्सिद्धान्तमार्तण्ड, सत्सुखानुभव—इच्छारामस्वामी, सदाशिव ब्रह्मन्, सद्विद्याविजय—दोड्डयाचार्य, सद्वृत्तरत्नावली, सनकसंहिता—गौरीकान्त, सन्धानकल्पवल्ली सच्चिदानन्द भारती, सन्न्यासाश्रमविचार, सन्न्यासस्तक, सप्तग्रन्थी, सप्तभङ्गीतरङ्गिणी, समाधिप्रकरण, समीचीनभाष्यटीका, सम्प्रदायचन्द्रिका, सम्प्रदायपरिशुद्धि, सम्बन्धोद्द्योत—रमसनन्दी, सरस्वतीय—स्वयम्प्रकाश सरस्वती, सर्वलिङ्गसन्न्यास, सर्वसार, सर्वसिद्धान्तसंग्रह, सर्वाङ्गयोगदीपिका—सुन्दरदास, सर्वार्थसिद्धि—वेदान्ताचार्य, सहस्रकिरणावली सहस्राख्य वोधिसिद्धि, सात्वतसिद्धान्तशतक, साम्राज्यसिद्धि—गङ्गाधरसरस्वती, सारचुलुक—वैयन नरचार्य, सारदीपिका—श्रीनिवासाचार्य, सारप्रकाशिका—श्रीनिवासाचार्य, सारभोग, सारसमुच्चय, सारासारविवेक, सारास्वादिनी गोपालदेशिकाचार्य, सारास्वादिनी—रामानुज स्वामी, सिद्धान्तकल्पलता, सिद्धान्तकल्पवल्ली - षड्गुरुशिष्य, सिद्धान्तगीता, सिद्धान्तग्रन्थ, सिद्धांतचन्द्रिका अनंतभट्ट, सिद्धांतचंद्रिका—रामानंद, सिद्धांतचंद्रिका—शिवचंद्रसिद्धांत, सिद्धांतचंद्रिकाखण्डन, सिद्धांतचिंतामणि - कृष्णभट्ट, सिद्धांतचूड़ामणि, सिद्धांतजाह्नवी—श्रीदेवाचार्य, सिद्धांततत्त्व—अनंतदेव, सिद्धांततत्त्वदीप, सिद्धांततत्त्वप्रकाशिका, सिद्धांतदीप—विश्वदेव, सिद्धांतदीपमें तत्त्वप्रकाश—हयग्रीव, सिद्धांतदीपिका नाना दीक्षितकृत वेदांतसिद्धांतमुक्तावलीटीका, सिद्धांतन्यायचंद्रिका, सिद्धांतमकरन्द, सिद्धांतमञ्जरी, सिद्धांतमंजुषा शिवभारती, सिद्धांतमुक्तावली, सिद्धांतरत्न, (निम्बार्क) सिद्धांतरत्नमाला—श्रीवत्स शर्मन्, सिद्धांतरत्नाकर, सिद्धांतरत्नावली—वेंकटाचार्य, सिद्धांतरहस्य,—कल्याणराय, सिद्धांतरहस्यवृत्तिकारिका—हरिदास, सिद्धांतवेद, सिद्धांतशतक, सिद्धांतशिरोमणि—राघवेंद्रसरस्वती, सिद्धांतसंग्रह—अप्पयदीक्षित; सिद्धांतसंग्रह—वेंकटाचार्य, सिद्धांतसारसंग्रह, सिद्धांतसारावली—आनंदभट्ट, सिद्धांतसिद्धाञ्जन - अनंताचार्य सिद्धांतसिद्धाञ्जन—कृष्णानंद, सिद्धांतसिंधु, सिद्धांतसूक्तिमञ्जरी, सिद्धांतसेतुका—सुंदरभट्ट, सिद्धांतार्णव—रघुनाथसार्वभौम, सिद्धित्रय—यमुनाचार्य सिद्धित्रसाधक, सुज्ञानविंशति—मुकुंदकवि, सुबोधपञ्जिका—मानतुङ्ग, सुबोधिनी—गङ्गाधर, सुबोधिनी—नृसिंहसरस्वती, सुबोधिनी—पुरुषोत्तम, सूत्रपाद—काशीनाथ, सूत्रप्रकाशिका, सूत्रार्थचंद्रिका—केशवशेष, सूत्रोपन्यास, सेश्वरमीमांसा, सोपदेशधारण, सोपानपञ्चरत्न, स्थूलप्रकरण- शङ्कराचार्य, स्थूलसूक्ष्मप्रकरण, स्फुरद्बोध, स्वप्रभा—प्रत्यक्तत्त्वचिंतामणिटीका—

सदानंद, स्वमार्गमर्म्मविवरण—हरिदास, स्वयंबोध, स्वरूपनिरूपण, स्वरूपनिर्णय, स्वरूपप्रकाश—सदानंद काश्मीर, स्वल्पाद्वैतप्रकाश (ब्रह्मसूत्रटीका)—रामानंदतीर्थ स्वात्मनिरूपण या स्वात्मानंदप्रकाश—शङ्कराचार्य, स्वात्मपूजा—शङ्कर, स्वात्मप्रयोगप्रदीप—अमरेन्द्रयोगीन्द्र, स्वात्मसंवित्यूपदेश—दत्तात्रेय, स्वात्मानंदोपदेश, स्वानंद चंद्रिका, स्वानुभवादर्श—माधवाश्रम, स्वानुभूतिप्रकाश—देवेंद्र, स्वाराज्यसिद्धि, हंसमौन—सत्यजननानंदतीर्थ, हंसविवेक—सत्यजननानंदतीर्थ, हरिगुणमणिदर्पण—सुरपुर श्रीनिवास, हरिहराधिकार बोधेंद्र, हरिहरोपाधिविवेचन—अमृतानंदतीर्थ, हस्तामलकस्तोत्र या हस्तामलकसंवादस्तोत्र।

वेदान्तचूड़ामणि—दाक्षिणात्यवासी एक सुपण्डित ब्राह्मण।

वेदान्तदेशिक—अच्युतशतक और यमकरत्नाकरके रचयिता।

वेदान्तनयनाचार्य—अधिकरणचिंतामणिके प्रणेता।

वेदान्तवागीश भट्टाचार्य—१ वेदांतरहस्य और वेदांतसारभावार्थदीपिकाके प्रणेता। २ हरितोषण नामक भक्तिग्रंथके रचयिता।

वेदान्तसूत्र (सं० पु०) महर्षि बादरायणकृत सूत्र जो वेदांतशास्त्रके मूल माने जाते हैं। विशेष विवरण वेदान्त शब्दमें देखो।

वेदान्ताचार्य—बहुतसे ग्रंथ रचयिताकी उपाधि। संस्कृत साहित्यमें लक्ष्मण, वेङ्कटनाथ, श्रीनिवास, आदि पण्डितोंकी वेदांताचार्य उपाधि दिखाई देती है, किंतु निम्नोक्त ग्रंथ किस वेदांताचार्यके रचित हैं, उसका पता नहीं। नीचे कई ग्रंथकर्त्ता वेदांताचार्यका उल्लेख किया जाता है

१ अधिकरण-सारावली, तत्त्वमुक्ताकलाप, न्यायपरिशुद्धि, न्यायरत्नावली, पञ्चरात्ररक्षा, भगवद्गीतातात्पर्यचंद्रिका, रङ्गनाथपादुकासहस्र, रहस्यत्रयसार, शतदूषणी, सच्चरित्ररक्षा, सर्वार्थसिद्धि और हंससंदेशके रचयिता।

२ अभयप्रदानसार, दशदोपनिघण्टु और यतिराजसप्ततिके प्रणेता।

३ गुणरत्नकोषटीकाके प्रणेता।

४ प्रमेयटीका और बहुव्रीहिवादके रचयिता।

५ यादवाभ्युदयकाव्यके रचयिता।

६ "अनुमानस्य पृथक्प्रामान्यखण्डनम्"-के रचयिता। ये वल्लभनृसिंहके पुत्र थे।

वेदान्तिन् (सं० पु०) वेदांतोऽस्यास्तीति वेदांत-इनि। वेदांतशास्त्रवेत्ता, वह जो वेदांतका अच्छा ज्ञाता हो, ब्रह्मवादी।

वेदाप्ति (सं० स्त्री०) वेदज्ञानप्राप्तकाम।

वेदाभ्यास (सं० पु०) वेदस्य अभ्यासः। वेदपाठ, वेदानुशीलन। शास्त्रमें लिखा है, कि वेदाभ्यास पाँच प्रकारका है। ब्राह्मणका वेदाभ्यास ही परम तपस्या है। दिनके दूसरे भागमें वेदाभ्यास करना होता है। पहले षड्ङ्गके साथ वेदस्वीकरण, पीछे वेदविचार, वेदाभ्यास, वेदजप और वेददान ये पाँच प्रकारके वेदाभ्यास हैं।

वेदाम—मन्द्राज प्रेसिडेंसीके गञ्जाम जिलेका एक छोटा सामंत-राज्य। वेदाम ग्राम दो वर्गमील विस्तृत है।

वेदार (सं० पु०) कृकलास, गिरगिट।

वेदार—एक प्राचीन जनपद। प्राचीन विदर्भराज्य धीरे धीरे वेदार कहलाने लगा है। यह स्थान महिसुर, हैदराबाद और महाराष्ट्र प्रदेशके मध्यस्थलमें अवस्थित था। विदर्भराज नलके बाद इस स्थानको समृद्धि वा विशेष इतिहासका परिचय नहीं पाया जाता। दाक्षिणात्यके हिन्दूराजाओंके प्रभावकालमें भी यह सुप्रतिष्ठित न हो सका था। इसके बाद मुसलमानी अमलसे इसका इतिहास मिलता है। आज भी इस देशमें विस्तृत स्थानोंमें वेदारी जातिका वास देख कर अनुमान किया जाता है, कि प्राचीन वेदार जनपद बहुत दूर तक फैला हुआ था।

१८३६ ई०के पूर्वपर्यन्त वेदारीगण छोटे छोटे कितने हिन्दू और मुसलमान राजाओंके शासनाधीन था। उनमेंसे बङ्गनपल्लीके सैयद-वंशीय नवाब 'सिडेड डिष्ट्रिक्ट्'के पूर्वांशमें, कर्नूलके पठान नवाब तुङ्गभद्राके दक्षिणा किनारेके देशोंमें तथा पश्चिमभागमें गद्वालके रेड्डीगण, सन्दूरके घोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र सरदार

और आनगुड़ीके क्षत्रियराज राज्य करते थे। राजा विजयनगरराज रामचंद्रके वंशधर हैं। गोलकुण्डा, कुलवर्गा, विजापुर और अहमदनगरके मुसलमान-राजाओं के अभ्युदय पर विजयनगर जब श्रीभ्रष्ट हो गया, तब उनके वंशधर सन्दूरमें आ कर बस गये।

इसके सिवा शाहनूरके पठान सरदार, गजन्धर (गदाधर) गढ़के घोड़पड़े वंशीय महाराष्ट्र-सामन्त तथा अकालकोट, घोरखंड और वेदार जोरापुरके सामन्तोंने इस राज्यका एक एक अंश ग्रहण किया था। शेषोक्त तीन सामंत पीड़ नायक नामक एक वेदारवासीके सैनिकके वंशधर थे। विजापुर अवरोधके समय इस व्यक्तिने मुगल बादशाह औरङ्गजेबकी सहायता की थी, इस पुरस्कारमें उन्होंने रायचूड़ नामक अन्तर्वेदीको जागीरमें पाया था। आज भी उनके वंशधर वेदार-राज्यके दो स्थानोंका शासन करते हैं।

वेदारराज्यके अधिवासी वेदार वा वेदारी कहलाते हैं। जोरापुरके वेदारी बहुत मजबूत होते हैं। ये तथा घोरखण्डवासी वेदारी शराब पीते तथा सूअर, वराह, गाय, भैंस आदिका मांस खाते हैं।

ये लोग साहसी तथा शिकार और दस्युवृत्तिमें बड़े विलक्षण होते हैं। जिस पिण्डारी दलने एक समय ५० वर्ष तक मध्यभारतको थर्रा दिया था उस दलमें वेदारी जातिकी संख्या ही बलवती थी तथा उसीसे इस दलका पिण्डार नाम हुआ। जोरापुर नगर पर्वतके ऊपर स्थापित होनेके कारण डकैतोंके रहनेका उपयुक्त स्थान था।

महिसुर राज्यमें भी अनेक वेदारियोंका वास है। उनमेंसे बहुतेरे शिकार कर अथवा पक्षीको पकड़ कर अपना गुजारा चलाते हैं। कुछ लोग तो छोटे छोटे घोड़े रखते और उनकी पीठ पर अनाज लाद कर दूसरी जगह ले जाते हैं। १९वीं सदीके मध्यकालमें वेल्लरी जिलेमें जिस वेदार-थानल्लू अर्थात् वेदार जातिका वास था, वह भी इसी तरह घोड़ेकी पीठ पर माल असबाब लाद कर दूसरी जगह ले जाता था। अनेक समय युद्ध क्षेत्रमें रसद पहुंचानेके लिये सामरिक विभागसे इन्हें नियुक्त किया जाता था। रमणमल्ल पर्वत पर भी एक दल वेदारीका वास है। इनमेंसे महिसुरवासी वेदार ही सबसे अधिक उन्नत हैं।

महिसुर और वेल्लरीवासी वेदारोंके अधिकांश मनुष्य इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए हैं।

हिन्दू वेदारियोंमें जब कोई कन्या जन्म लेती है, तब वे लोग उसे किसी देवताके नाम पर उत्सर्ग कर देते हैं तथा वह कन्या देवरक्षिता है, इस बातको जतानेके लिये वे कन्याके शरीरमें मुद्रा या छाप लगा देते हैं। इसीसे वह कन्या बसवी या मुरली कहलाती है। पुरुष लोग "दशारी" हो ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर भिक्षासे जीविका चलाते हैं।

वेदार—दाक्षिणात्यका प्राचीरद्वारा वेष्टित एक प्राचीन नगर। यह हैदराबाद नगरसे ७५ मील उत्तर-पश्चिम मञ्जिरा नदीके दाहिने किनारे (अक्षा० १७°५४' उ० तथा देशा० ७७° ३५' पू०के मध्य) अवस्थित है। नगरभाग समुद्र-पृष्ठसे २२५० फुट और तोरणचूड़ा २३५० फुट ऊंची है। १५वीं सदीके मध्यकालमें यह बाह्मनी-राजवंशकी राजधानी रूपमें गिना जाता था। उस समय इसकी श्रीवृद्धि भी यथेष्ट थी। जिस प्रकाण्ड प्राचीर और बुर्जसे एक समय इसके चारों ओर घिरा था, वह अभी तहस नहस हो गया है।

मुगल बादशाह बाबरके भारत पर चढ़ाईके समय वेदार राज्य पार्श्ववर्त्ती राजाओंके हाथ था। १५१२ ई०-में निजामशाही राजाओंने इस देशमें अपना शासन फैलाया। १७५१ ई०में पेशवा बाजीराव और सलावत्-जङ्गके साथ इस नगरमें सन्धि हुई थी।

वेदारमें एक प्रकारके बढ़िया मिट्टीके बरतन तथा तरह तरहकी धातुओंके बरतन तैयार होते थे। यूरोपीय वाणिज्य पण्यमें वह 'वेदार वेयर' (Beder-ware) नामसे प्रसिद्ध है। डा० हाइन, बुकानन हमिल्टन इस मिश्रधातुकी प्रस्तुत प्रणाली देख कर जो लिपिबद्ध कर गये हैं, वह परस्पर स्वतन्त्र है।

डा० हाइनके मतसे—१६औंस तांबा, ४ औंस सीसा और २ औंस टीन इन्हें एकत्र गला कर प्रत्येक ३औंसमें १६औंसके हिसाबसे रांगा (zink) मिलावे। पीछे आँचमें पर चढ़ा कर गलानेसे वह धातु पायी

बनाने लायक हो जाती है। उसका रंग प्युटर या जिंककी तरह सफेद होता है, किन्तु कारीगर बरतनको तैयार कर उस पर काला रंग चढ़ा देते हैं। वह रंग सोरा, लवण और तूतियाके योगसे बनाया जाता है। डा० हमिल्टन-ने परीक्षा कर देखा है, कि १२३६० ग्रेन जिन्क, ४६० ग्रेन तांबा और ४१४ ग्रेन सीसा इन्हें कुठालीमें रख कर गलाते हैं। आंच लगने पर वे सब कुठालियां नष्ट हो जाती हैं, इस कारण गलानेके समय उसमें थोड़ा मोम और रजन लगा दी जाती है। पीछे उस गली हुई धातुको सांचेमें ढालते हैं। ठंढा होने पर मट्टोके सांचे-को धीरे धीरे फोड़ कर बरतन बाहर निकाल लेते हैं। पीछे बाहरी हिस्सेको साफ करनेके लिये रेंतीसे रेंत देते हैं। इसके बाद बरतनको तूतियेके जलमें डुबो रखते हैं, इससे उसके ऊपर काले रंगका दाग पड़ जाता है। नक्काशको नक्काशी करनेमें इससे बड़ी सुविधा होती है। ये सब बरतन साधारणतः वेदारी बरतन कहलाते हैं।

ऊपर जिस बरतनकी बात लिखी गई, उसे प्रधानतः तीन श्रेणीके लोग बनाते हैं। एक श्रेणीके लोग सांचे बनाते हैं। वह सांचा बड़ी अनूठी प्रथासे बनाया जाता है। वे मिट्टीका सांचा बना कर उसके भीतर मोम और रजन भर देते हैं। द्रव धातु ढालनेके समय उस सांचेको थोड़ा गरम कर लेते हैं जिससे भीतरका मोम धीरे धीरे गल कर बाहर निकल आता और भीतरमें शून्य स्थान बन जाता है। पीछे उसमें द्रव पदार्थ ढाल देते हैं। इस धातुमें कभी भी मोर्चा नहीं लगता। हथौड़ेसे पीट कर इसे बढ़ानेका भी उपाय नहीं है। जोरसे चोट देने पर वह टुकड़े टुकड़े हो जाती है। डा० हमिल्टनका कहना है, कि यह मिश्रधातु आंच लगने पर भी रांगे और सीसेकी तरह जल्द नहीं गलती, किंतु उसमें तांबेका जो भाग है वह जल्द गल जाता है। अभी यह कारबार कारीगर-के अभावसे लुप्तप्राय हो गया है। सिर्फ दो एक घर लिङ्गायत वा जैन आज भी पूर्वस्मृतिकी रक्षा करते आ रहे हैं।

वेदारण्य—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नागपत्तनके निकटवर्त्ती एक प्राचीन तीर्थ। ब्रह्माण्डपुराणके अंतर्गत वेदारण्य-माहात्म्य और स्कन्दपुराणकी सनत्कुमार-संहितामें इसका विषय लिखा है।

वेदार्ण (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

वेदार्थ (सं० पु०) वेदस्य अर्थः अभिधेयः प्रयोजनं वा। १ वेदप्रतिपाद्य विषय, वेदबोधित विषय। २ वेदका प्रयोजन, वेदकी आवश्यकता। ३ वेदके निमित्त, वेदके कारण।

वेदा वेदौना—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद विभागके कानपुर जिलांतर्गत एक गांव। यहां नाना शिल्पोंसे युक्त एक प्राचीन ईंटका मंदिर है।

वेदाश्वा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम। इसका उल्लेख महाभारतमें आया है।

वेदि (सं० स्त्री०) विद्यते पुण्यं अस्यामिति विद-इन् (उण् ४।११८) १ यज्ञार्थं परिष्कृता भूमि, यज्ञ कार्यके लिये साफ करके तैयारकी हुई भूमि। इसके आकारादि देश और कार्यभेदसे विभिन्न प्रकारके हैं, जैसे देशभेदसे अंतर्वेदि, उत्तरवेदि, दक्षिणवेदि इत्यादि। कार्यभेदमें भी बहुत विभिन्नता है, परंतु प्रायः डमरूकी तरह आकार वाली और चौकोन वेदी ही देखी जाती है।

तुलादानादिके अङ्गयज्ञकी मण्डपस्थ वेदीका लक्षण यों है मण्डपका तिहाई भाग वेदीकी लम्बाई, चौड़ाई निरूपण करे। पीछे उसके तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, नवम वा एकादश भाग परिमाणमें उच्छ्रायविशिष्ट वेदी बनावे। यह तुलादानादि कार्यमें व्यवहृत वेदी ईंटकी बनानी होती है।

नीचे कात्यायन-श्रौतसूत्रोक्त वैदिक कर्माङ्गमें आवश्य-कीय कुछ वेदीका लक्षण कहा जाता है।

"त्र्यङ्गुलखाता" (कात्या० श्रौ० २।६।१)

"त्र्यरत्नि प्राचीम्" "अपरिमिता वा

तीन उंगलीका गड्ढा बना कर आहवनीय वेदि बनानी होती है।

वेदिमण्डपके पूर्व पार्श्वमें मुठली हाथकी तीन रेखासे त्रिकोणाकार क्षेत्र अङ्कित कर उसीके सदृश वेदि बनानी होगी। दूसरेके मतसे क्षेत्राङ्कित करनेके समय किसी प्रकारका निर्दिष्ट परिमाण न दे कर केवल उक्त आकारमें

आवश्यकतानुसार कुछ अधिक परिमाणमें बनानेसे भी काम चल जायेगा।

किसी किसी वेदिके पूर्व ओर, किसीके उत्तर ओर निम्न अर्थात् ढालवाँ रखना होता है।

२ अंगुलिमुद्राविशेष, उँगलीकी एक प्रकारकी मुद्रा। ३ गृहोपकरणविशेष, घरका सामान आदि। ४ गृहमध्यस्थित मृत्तिकास्तूपविशेष, घरकी पिंडी। ५ अम्बष्ठा। ६ नामाङ्कित अंगुरि, वह अंगूठी जिसमें नाम अंकित हो। ७ पण्डित, विद्वान्।

वेदिका (सं० स्त्री०) वेदि स्वार्थे कन्। १ किसी शुभ कार्यके लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि। पर्याय—वितर्दि, वितर्दी, वेदि, वेदी। वेदि देखो।

२ जैन पुराणोंके अनुसार एक नदीका नाम।

(जैनहरि०)

वेदिजा (सं० स्त्री०) वेद्या जायते इति जन-ड। द्रौपदी।

(हेम)

वेदित (सं० त्रि०) विद-णिच्-क्त। १ ज्ञापित, जो कुछ बतलाया या सूचित किया गया हो। २ साक्षात्कृत; दर्शित, जो देखा गया हो।

वेदितव्य (सं० त्रि०) विद-तव्य। वेद्य, ज्ञातव्य; जो जाननेके योग्य हो।

वेदितृ (सं० त्रि०) विद-तृच्। ज्ञाता। पर्याय—विदुर, विन्दु। (हेम)

वेदित्व (सं० क्ली०) वेदिनो भावः त्व। विदित होनेका भाव, ज्ञान।

वेदिन् (सं० पु०) वेत्तीति विद-णिनि। १ पण्डित, विद्वान्। २ ब्रह्म। (त्रि०) ३ ज्ञाता, जानकार। ४ परिणेता, विवाह करनेवाला।

वेदिमती (सं० स्त्री०) राजपुराङ्गणाभेद।

(दशकुमार ११८।३)

वेदिमेखला (सं० स्त्री०) उत्तरवेदीका सीमासूत्र।

(भागवत ४।५।१५)

वेदिया—छोटानागपुरवासी कृषिजीवी जातिविशेष। ये लोग कुर्मीजातिके मसेरे भाई समझे जाते हैं। इनके शरीरकी गठन देख कर पाश्चात्यजातियां कहती हैं, कि यह जाति द्राविड़ीय वंशसे उत्पन्न हुई है। इन दो श्रेणियोंकी वर्त्तमान पृथक्ताके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार है। पहले कुर्मी और वेदिया लोगोंमें आदान-प्रदान चलता था, किन्तु जब कुर्मियोंने देखा, कि वेदिया लोग गो-मांस खाते हैं, तब उन्होंने नीच जान कर वेदियोंका संस्रव छोड़ दिया। इनमें भी श्रेणीगत विभाग है। वह विभाग साधारणतः जीवजन्तु और वृक्षादिके नाम पर प्रसिद्ध है।

इन लोगोंके विवाहमें नाई ही पुरोहिताई करता है। ये लोग कुर्मियोंके हाथकी कच्ची रसोई खाते हैं।

चम्पामें परित्यक्त १२ घर संथाल मूलजातिसे पृथक् रह कर वेदिया नामसे परिचित हैं। छोटानागपुरके वेदिया उसीकी एक शाखा हैं। ये लोग आदिवाससे पूर्वकी ओर न आ कर इधर ही बस गये हैं। इस वेदिया जातिके साथ बङ्गालकी वेदिया जातिका कोई सम्पर्क नहीं है।

वेदिया—बङ्गालदेशवासी जातिविशेष। यथार्थमें ये लोग एक जातिके नहीं हैं। निम्न श्रेणीके हिन्दू, अर्द्ध सभ्य आदिम तथा बाजीगिया, लावा, बानुआ आदि कुछ निकृष्ट जातियाँ वेदिया नामसे जनसाधारणमें परिचित हैं। शेषोक्तमें बहुतेरे अपनेको मुसलमान कहते हैं। आहार विहारमें वे लोग मुसलमानका आचार पालन करते हैं तथा सभी जानवरोंके मांस खाते हैं। फिर कहीं कहीं वे फलमूलादि बेचनेके कारण फड़िया नामसे प्रसिद्ध हैं। कोई-कोई हिन्दू-शास्त्र उद्भिज्ज मूलादि, ओषधि, मन्त्रौषधि तथा अनेक वस्तुओंके मेलसे हातुरिया वैद्यकी तरह चिकित्सा करते हैं। बहुतोंका कहना है, कि चिकित्सानत्त्वज्ञ वैद्य जातिका अनुकरण करनेके कारण इनका वेदिया नाम हुआ है।

इनमें बहुतोंका वासस्थान निर्दिष्ट नहीं है। कभी कभी ये लोग एक गांवसे दूसरे गांवमें जाते हैं और किसीके बाग या मैदानमें खेमा खड़ा कर स्त्रीपुत्रके साथ रहते हैं। जाड़े की मौसिममें इन्हें किसी प्रकारका कष्ट या रोग नहीं होता। ये लोग कभी अकेला बाहर नहीं निकलते, पांच सात घरके साथ बाहर निकलते हैं।

इनमें कृषिजीवोंकी संख्या बहुत कम है। जो एक घर सभ्यताके आलोकमें सभ्य जातिका अनुकरण करते

हुए घर बांध कर खेतीबारी करते हैं सही, पर उन्होंने अपना जातिगत व्यवसाय छोड़ा नहीं है। जो घरसे बाहर निकलते हैं, वे दिनको रामलक्ष्मणकी कीर्त्ति-गाथा गान कर ग्रामवासीसे भिक्षा मांगते हैं तथा जङ्गली औषधादि संग्रह कर उनके हाथ बेचते हैं। स्त्रियां भी उसी प्रकार महलमें घुस कर हनूमान तथा अन्यान्य पौराणिक चित्रोंको दिखा कर पैसा कमाती हैं।

इसके सिवा दौर्बल्यनाश, वातकी व्यथा तथा बालरोग दूर करनेके विषयमें इस जातिकी स्त्रियां बड़ी निपुण हैं। कलकत्तेमें वेदिया रमणियां औषधकी थैली-को गलेमें लटकाये गली गली घूमती हैं। 'दांतका कीड़ा' 'वातकी व्यथा' दूर करनेके लिये वे जो औषध और मंत्रप्रक्रिया दिखाती हैं वह आश्चर्यजनक है।

वेदिया-रमणियां और बालक तरह तरहके खेल दिखलाते हैं। पुरुष गोलक अथवा ५।६ छुरी ले कर खेल करते हैं तथा शून्यमार्गमें दो बांसके ऊपर रस्सी लगा कर उस पर चढ़ते तथा तरह तरहके खेल दिख-लाया करते हैं। पश्चिम बङ्गालके मलजाति ही साधा रणतः ये सब व्यायामकौशल दिखा कर अर्थोपार्जन करते हैं।

इनमें कोई कोई श्रेणी चिड़ीमार या मीर-शिकार नामसे मशहूर है। वस्तुतः पक्षी मारना ही इनका व्यवसाय है। जिस पक्षीको शौकीन आदमी खाते या पोसते हैं उसे वे बाजारमें बेचते हैं, किंतु जिनकी हड्डी वा मांस औषधके काममें आता है उन्हें वे बेचते नहीं, अपने पास ही रख लेते हैं। कोई कोई हड्डी भौतिक वा ऐन्द्रजालिक खेल करनेमें बड़ी उपयोगी है। जैसे वान-राहु वा वज्रकीट। इसका छिलका कवचरूपमें धारण करनेसे हृद्रोग आरोग्य होता है। उंगलीमें अंगूठी-की तरह पहननेसे यह उपदंशजनित रोगका प्रतिषेधक होता है। मङ्गल वा शनिवारको पानकौड़ी मार कर उसका मांस खानेसे प्लीहा और सूतिका रोग दूर होता है। उल्लूकी आंख, नाखून वा मल अनेक कार्योंमें व्यवहृत होता है। उल्लूकी विष्ठा सुपारीके चूरके साथ पीस कर वशीकरणौषधरूपमें तथा डाकपक्षीका सूखा मांस वातनाशकरूपमें ये व्यवहार करते हैं। एक और श्रेणीके वेदिया हैं जो मंत्रके बल वा कौशलसे सांप पकड़ने निकलते हैं। गोखुर वा केउटा सांप पकड़नेमें ये ज़रा भी नहीं डरते। विषधर सांपको पकड़ कर वे विष-दांतको तोड़ देते और विषकी थैलीको बाहर निकाल लेते हैं तथा उसे आयुर्वेदवित् कविराजोंके निकट बेचते हैं। सांपके चक्रके मध्य एक प्रकारका छोटा कीड़ा रहता है। उस कीड़ेको भी वे बेच लेते हैं। कहते हैं, कि वह कीड़ा साथमें रहे तो सांपके काटनेका भय नहीं रहता।

ये लोग सांप भी पोसते हैं। मछली, मूसा, बेंग आदि पकड़ कर सांपोंको खिलाते हैं तथा मेले या किसी देवदेवीकी पूजाके समय वहां सांप ले जा कर खेल दिखाते हैं। उस समय पुरुष वंशी बजाते और स्त्रियां एक प्रकारका गान करके सांपोंको नचाती हैं। उस समय सांप तर्जन गर्जन करते हुए काटनेके लिये दौड़ते हैं। उनके काटने पर ये मन्त्र पढ़ कर विष उतारनेकी कोशिश करते हैं।

रसिया-वेदिया रांगेके बाला, हंसुली आदि बनाते हैं। वह कम मोलका अलङ्कार गरीब हिन्दू और मुसल-मान अपनी पुत्रीको पहनाते हैं। रस या पारेकी तरह रांगेकी आकृति होती है, इस कारण इनका रसिया नाम हुआ है। ये प्रायः ही कृषिजीवी हैं। उत्तर-पश्चिम-के इस श्रेणीके वेदिया प्रायः मुसलमान और फराजी-मतावलम्बी हैं। इनमेंसे बहुतेरे नाव खे कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। उनकी नावोंकी आकृति स्वतन्त्र होती हैं।

वेदिया जातिके दूसरे सभी दलोंमें सानदार ही सभ्य और शिक्षित होते हैं।

वेदिलमीर्जा—मुसलमान कवि साइदाई गिलानीकी उपाधि। मुगलसम्राट् जहांगीर बादशाहके समय ये भारत पधारे तथा सम्राट्के अनुग्रहसे जार्गर-खानाके दारोगा नियुक्त हुए। इसी काममें इन्हें वेदिलकी उपाधि मिली थी। इसके बाद इन्होंने तुकात् वेदिल, तुकायत् वेदिल और चहार आनसुर नामके दो दीवान काव्योंकी रचना की। ११९६ हिजरीमें इनकी मृत्यु हुई।

वेदिपद् (सं० त्रि०) १ वेदिमें बैठनेवाला । (पु०) २ अग्नि । (ऋक् १।४०।१) ३ प्राचीन बर्हिः ।
(भागवत ४।२४।२७)

वेदिष्ठ (सं० त्रि०) सर्वज्ञ । (ऋक् ८।२।२४ सायण)

वेदी (सं० स्त्री०) कृदिकारादिति-ङीप् । १ किसी शुभ कार्यके लिये तैयार की हुई भूमि । जैसे विवाहकी वेदी, यज्ञकी वेदी । २ सरस्वती ।

वेदी—गुरु नानकके वंशधरगण । ये लोग सिख-सम्प्रदायके मध्य 'वेदी' नामसे सम्मानित हैं । ये लोग पहले नानककी वेदी (गद्दी) पर बैठते थे, इस कारण इनका वेदी नाम पड़ा है, अथवा गुरु नानकके प्रवर्त्तित धर्ममतको अच्छी तरह जानते थे, इससे सभी उन्हें वेदी कहा करते थे । अभी ये लोग वंशपरम्परासे सिखोंके मध्य वेदी नामसे पुरोहित रूपमें पूजित हैं । केवल नानकके वंशधर ही वेदी नामसे सर्वसाधारणमें सम्मानित थे, सो नहीं । नानकने जिस वंशमें जन्म लिया उस वंश वा जातिका नाम भी वेदी है । परवर्त्ती कालमें नानकवंशीय वेदीने सिखसमाजमें बड़ा आदर पाया था, किन्तु उनकी अन्यान्य शाखाओंके वेदी मर्यादाहीन हो कर समाजमें लुप्तप्राय हो गये हैं । इस शेषोक्त दलमें बहुतेरे सिख सम्प्रदायभुक्त नहीं हैं ।

वर्त्तमान कालमें पञ्जावके वेदी प्रायः सभी जगह फैले हुए हैं । कांगरा पर्वतके पाददेशस्थ भूभागमें, रेकना दोआवके गुजरानवाला विभागमें, इरावती तीरवर्त्ती गोगैरा नगरमें, झेलम तीरस्थ शाहपुरमें तथा रावलपिण्डीमें उसका वास देखा जाता है ; किन्तु शतद्रुके दक्षिण बहुत थोड़े वेदियोंका वास है । इरावती तीरस्थित बताला नगरके निकटवर्त्ती देरावाली नामक स्थान ही उसका आदि वासस्थान है ।

वेदी लोग पहले कन्याकी हत्या करते थे, इस कारण 'कुमारीमार' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी । राजपूतकी तरह कन्याविवाहमें अधिक खर्च होनेके डरसे ये लोग यह जघन्य कार्य करते थे, सो नहीं । पुरोहित वा गुरुवंशधरकी हैसियतसे ये सिखोंसे यथेष्ट धन और अनेक प्रकारके उपढौकनादि पाते थे, जिससे ये स्वच्छन्दतासे कन्याका विवाह कर सकते थे, इसमें संदेह नहीं । परन्तु उनका कहना है, कि पूर्वपुरुषोंकी अनुज्ञाके वशवर्त्ती हो कर ये लोग यह कार्य करते आ रहे थे । यह उन लोगोंका एक कौलिक नियम था ।

प्रवाद है, कि इस वंशके धरमचाँद नामक किसी आदिपुरुषकी कन्याके विवाहमें जब वर और बरात कन्याको ले कर घर लौट रही थी, तब धरमचाँदके दो पुत्र सौजन्य दिखानेके लिये कुछ दूर उनके साथ गये । ज्येष्ठका महीना था, उस दिन बड़ी गर्मी पड़ी थी । सभी लोग विवाहके आमोद और मद्यपानसे मतवाले हो नीच प्रकृतिके आमोद दिखलाते हुए बालक वेदीको नियमित स्थानमें न ले जा कर उन्हें वृथा कष्ट दे बहुत दूर पैदल ले गये । जब वे दोनों भाई क्षत विक्षत पदसे घर लौटे तब धरमचाँद उनकी दुर्दशा और कष्ट देख कर बड़े दुःखित हुए । उन्होंने अपने पुत्रोंसे पूछा, 'बरकन्ताने तुम दोनोंको शीघ्र लौट जानेका क्यों नहीं हुकुम दिया ?' पुत्रोंके मुखसे यथायथ विवरण सुन कर ये बड़े बिगड़े और बोले, "आजसे कोई भी वेदी अपनी कन्याको जीवित नहीं रख सकता, पैदा होते ही उसे यमपुर भेज देना होगा ।"

पिताका कठोर आदेश सुन कर पुत्रगण भयसे विह्वल हुए और उन्होंने पितासे कहा, "शास्त्रमें पुत्रहत्याको महापातक बताया है, अतएव इस नियमका प्रतिपालन करनेमें वेदियोंको सदाके लिये पापपङ्कमें निमज्जित रहना पड़ेगा ।" इस पर धरमचाँदने जवाब दिया, 'यदि वेदीगण सत्य धर्मका आश्रय कर अपना समय बितावें तथा असत्य वचन वा प्रवञ्चना अथवा मद्यपान द्वारा अपनेको कलुषित न करें तो उन्हें पुत्र छोड़ कर कभी भी कन्या पैदा न होगी, किन्तु वर्त्तमान कालमें वह पाप मैं अपने माथे पर लेता हूं ।' इतना कहते ही धरमचाँदका शिर धड़से अलग हो उसकी छाती पर आ गया । जो हो, इसी अनुज्ञाके वशवर्त्ती हो वेदी लोग ३ सौ वर्षसे कन्या हत्या करते आ रहे थे । अभी वृटिश शासनसे वह प्रथा दूर हो गई है । इस समय यदि कोई वेदी स्नेह वशतः कन्याको न मार कर चुपकेसे उसका प्रतिपालन करता और पीछे समाजमें यह बात खुल जाती थी, तो उसे समाजसे भगा दिया जाता था और सभी उसे भंगीके समान मानते थे ।

वेदोतीर्थ (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम ।
(भारत वनपर्व)

वेदीयस् (सं० त्रि०) अतिशय विद्वान् । (ऋक् ७।९८।१)

वेदीश (सं० पु०) वेदानां पण्डितानामीशः । ब्रह्मा ।
(त्रिका०)

वेदुक (सं० त्रि०) १ वेत्ता, जाननेवाला । (तैत्तिरीयसं० ५।१।५।३) २ प्रापक, पानेवाला । ३ प्राप्त, जो कुछ मिला हो । (तैत्तिरीयब्रा० ३।६।२२।२)

वेदुर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके दक्षिण आर्कट और पुदिचेरो जिलेके विल्लुपुरम् तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम । यह विल्लुपुरम् सदरसे ११ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है । यहां एक जैनमन्दिर है ।

वेदुरावलपाडु—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नेल्लुर जिलेके पोदिले तालुकके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम । पोदिले नगरसे यह ११ मील पश्चिमोत्तरमें पड़ता है । इस ग्रामके उत्तरमें तथा गड्डिपलो जानेके रास्तेके पूर्वमें एक शिलाफलक मौजूद है, जिसकी लिपि बहुत प्राचीन है ।

वेदुरु—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलेके अन्तर्गत कड़ापा तालुकका एक ग्राम । यह कड़ापा सदरसे १५ मील उत्तरपश्चिममें अवस्थित है । यहां पेनेरु और पापघ्नाके संगम पर संगमेश्वरस्वामीका मन्दिर विद्यमान है । यह मंदिर हजार वर्षका है ।

वेदुल्लवलस—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजगापट्टम जिलेके अंतर्गत जगपतिनगरम् तालुकका एक गण्डग्राम । यहां एक प्राचीन देवमंदिर है । देवपूजाका खर्च चलानेके लिये राजप्रदत्त एक ताम्रशासन मंदिरमें रखा हुआ है ।

वेदुवाली—युक्तप्रदेशके बलिया जिलांतर्गत एक बड़ा ग्राम । यह बलिया सदरसे एक मील उत्तरमें अवस्थित है । यहां एक प्राचीन नगरका ध्वस्त स्तूप पड़ा हुआ है ।

वेदेश (सं० पु०) १ वेदधर । २ ब्रह्मा ।

वेदेशभिक्षु (सं० पु०) एक ग्रंथकारका नाम । ये व्यासतीर्थके शिष्य थे । इन्होंने आनन्दतीर्थकृत ऐतरैयोपनिषद्भाष्यकी टोका, काठकोपनिषद्भाष्यटोका, केनोपनिषद्भाष्यटोका, पदार्थकौमुदो नामक छांदोग्योपनिषद्भाष्यको टोका, तत्त्वोद्योतविवरणकी टोका और प्रमाणपद्धतिकी टोका लिखो । इनका दूसरा नाम वेदेशतीर्थ था ।

वेदेश्वर (सं० पु०) ब्रह्मा ।

वेदोक्त (सं० त्रि०) वेदे उक्तः । श्रुतिकथित, जो वेदमें कहा गया है ।

वेदोजोपुरम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेको आर्णिजागीरके अंतर्गत एक बड़ा ग्राम । यह आर्णिसे ८ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है । यहांके राजनाथेश्वर स्वामीका मंदिर प्रायः पाँच सौ वर्षका है । मंदिरगात्रमें बहुत सी शिलालिपियाँ हैं ।

वेदोदय (सं० पु०) वेदः विषयज्ञानमुदये यस्य । सूर्य ।
(त्रिका०)

वेदोदित (सं० त्रि०) वेदे उदितः । वेदोक्त ।

वेदोपकरण (सं० पु०) वेदाङ्ग । (मनु २।१०५)

वेदोपग्रहण (सं० क्ली०) वेदपरिशिष्ट ।
(रामायण १।४।४)

वेदोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम ।
(तैत्तिरीय उप० १।११।४)

वेदोपबृंहण (सं० क्ली०) वेदपरिशिष्ट । (वेदान्त)

वेदोपस्थानिका (सं० स्त्री०) वेदरक्षाका स्थान ।
(हरिवंश)

वेदौयिन् (वेदावी) अरबजातिकी एक शाखा । येमेन, हेजाज, पालेस्तिन, सिरिया, युफ्रेतिस और नाजद नदी तोरवर्त्ती प्रदेशमें तथा मध्य अरबके प्रदेशोंमें इनका वास देखा जाता है । ये लोग प्रायः एक स्थानमें नहीं रहते, वासस्थान बदल कर घूमा करते हैं । इसके सिवा ऊंट पर पण्यद्रव्यादि लाद कर मरुप्रदेशसे देशांतर ले जाना ही इनका प्रधान कर्म है ।

विभिन्न स्थानमें वास होनेके कारण इनके नाममें भो पृथकता हुई है । जबल-सम्माके रहनेवाले सम्मार कहलाते हैं । वे लोग १७वीं सदीमें आदि वासभूमिका परित्याग कर उत्तर मरुमें आ कर बस गये । पीछे अनाजा जातिने उन्हें युफ्रेतिस नदीके दूसरे किनारे मार भगाया । उनमें जेरबा, फदाघा, सलामा और एससाफुक नामके पांच वंश हैं ।

बेदीयी लोगोंमें अनाजा हो विशेष प्रबल और संख्यामें अधिक हैं। ये मरुदेशमें ऊंट आदि पशुओंको चराते हैं तथा जरूरत पड़ने पर एक देशसे दूसरे देशमें चले जाते हैं। पहले ये लोग नाजद प्रदेशमें रहते थे। १६वीं सदीके आरम्भमें ओहावियोंने इन्हें उक्त प्रदेशसे मार भगाया। तभीसे ये ग्रीष्मके समय सिरिया और युफ्रेतिसके मध्यवर्त्ती मरुदेशमें आ कर रहते हैं तथा शीतकालमें दक्षिण नाजद तक चले जाते हैं। इस समय ये लोग दमस्कस, हामा, होमस, अलेपो आदि सिरिया प्रान्तवर्त्ती नगरवासी वणिकोंके साथ पण्यद्रव्यादिका विनिमय करते हैं।

इनमें भी बहुत-सी शाखाएं हैं। वे शाखाएं बिशार तथा वालद और जेलस नामक दो बड़े विभागके अन्तर्भुक्त हैं। मेकरान वंशसम्भूत धर्मसंस्कारक आवद उल् हाव मेसालिक अनाजा शाखाभुक्त थे। उत्तरदेशमें जा कर इन्होंने सम्मारोंके साथ युद्ध ठान दिया तथा घोरयुद्धके बाद उन्हें युफ्रेतिस नदीके दूसरे किनारे मार भगाया। कुछ तो नाजद प्रदेशमें, कुछ दक्षिणमें और कुछ पालेस्तिनके पूर्वांशमें जा कर बस गये। वालाद अलीगण खैबरमें रहते हैं। सिरिया हो कर जो सब 'हाज' पथ गये हैं उन्हींके वे लोग अधिकारी हैं। अनेक समय वे लोग वणिकोंका माल असबाब लूट लेते हैं। वे स्वभावतः ही चोर और साहसी होते हैं। फरासी सेनापति क्लेवर (Kleber) उन लोगोंसे परास्त हुए थे। वे लोग घोड़े पर चढ़ कर युद्ध करनेमें बड़े निपुण होते हैं, इसीसे वे अच्छे अच्छे घोड़े भी रखते हैं।

वानीशहर,आमूर अमराह, परफुद, मउल्ला और जेलस, शेमिलात, हिससा, आदजादजारा, आलघायुन, जेदाआ, सत्त सवाआ जाति, फादान, आवादात्, दुआम आदि शाखाएं भी आनजा शाखाकी संश्लिष्ट हैं।

ओबैद और ताई शाखा बहुत प्राचीन और अत्यन्त शक्तिशाली योद्धा हैं। ये लोग मोसलके निकट वास करते हैं तथा पशम वेचनेके लिये छागादि रखते हैं। ताई जाति येमेनसे ताइग्रीसके किनारे आ कर बस गई है। इनमें ७ स्वतन्त्र वंश हैं। हातेम जाति दानशीलताके कारण विख्यात है। मन्तिफितन, अलहिन्दी और इजाद जातियां इराक प्रदेशमें रहती हैं। ये लोग अरबमें नहीं रहते। मन्तिफिसगण मत्स्यजीवी हैं। वे लोग घोड़े भी पालते हैं। अलहिन्दी कृषिजीवी हैं। शस्यादि बोना और काटना तथा गाय चराना, इनका एकमात्र कार्य है। ये लोग धनी हैं। इजादजाति कृषिजीवी है। माल असबाब ढोनेके लिये सफेद गदहे पालते हैं।

उत्तर मरुभागके मयाली हेजाजसे आये हैं। इनके शेख अपनेको अब्बासी खलीफाके वंशधर बतलाते हैं। सम्मार और मयालियोंकी वासभूमिके मध्यवर्त्ती इस भागको ले कर इनमें ५०-६० वर्ष तक विवाद चला था।

वाहादिन धनवान् और मेषपालक हैं। ये शान्तिप्रिय होते हैं। युफ्रेतिसके तीरवर्त्ती वेलदीजाति कृषिजीवी हैं। पहले ये लोग मिसोपोटेमियामें रहते थे। आबू-वेहैनगण कृषिजीवी, धनशाली और मेषपालक हैं, ये लोग तंबूमें रहते हैं। वेनीग्रालिदगण हास्सामें मरुभूमिके विभिन्न स्थानोंमें फैल गये हैं। सोहनी सोडा नामक क्षार बनाते हैं। फादुन, येस और लाहेप खेतीबारी करके अनाज उपजाते हैं, परन्तु एक जगह वे चिरस्थायी नहीं हैं, जमीनकी उर्वरता कम होनेसे उस स्थानका परित्याग कर अन्यत्र चले जाते हैं। वानू सैयद घोड़े पर चढ़ कर केवल दस्युवृत्ति द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। युफ्रेतिस नदीके दाहिने किनारे इनका वास है। ये लोग किसी तरहका वाणिज्य नहीं करते और न घोड़े आदि ही पालते हैं। सुमागण बकरे, ऊंट और घोड़े आदिका पालन करते हैं। ये लोग युद्धविद्यामें भी निपुण हैं। अलजाजिरावासी सम्मारोंके साथ इनका सर्वदा युद्ध हुआ करता है। आलरलाल, आल-मेदजादमा, आल-बोला, आल-मेयदा, आलवासोब, आलवासालिम आदि शाखाएं अपेक्षाकृत बहुत कम हैं। ये लोग युद्धविद्यामें सुदक्ष नहीं हैं। इनके सिवा करेज जातिके हेरनन्दि तथा अवेलजाति वेदीयिन जातिमें गिनी जाती हैं। प्रथमोक्त शाखाके लोग सिरियामें रह कर घुड़सवार सेनादलमें नियुक्त हैं।

पहाड़ी प्रदेशमें जो सब वेदीयिन रहते हैं, वे बकरे पालते हैं। सभी वेदीयिन बड़े बड़े चूल रखते हैं।

व्रतपनमें हो सिर नहीं मुड़वाते। ये लोग तमाकू खूब पीते हैं। पढ़े लिखेकी संख्या इनमें नहींके समान है।

वेद्दनोल—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गोदावरी जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह निजामराज्य सीमासे ४ मील दूर तथा राजमहेन्द्रीसे ३८ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। इसके चारों ओर कोयलेका गड्ढा और पहाड़ है। गाँवका मध्य भाग साढ़े पाँच वर्गमील है।

वेद्दव्य (सं० त्रि०) जो वेधने या छेदनेके योग्य हो, वेधा जानेके योग्य, वेध्य।

वेद्धृ (सं० त्रि०) वेधकारी। (भारत आदिपर्व)

वेदुनोर—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। उदयपुर राजधानीसे यह ६३ मील उत्तर-पश्चिम पड़ता है। नगराधिपति एक प्रधान सामन्त है। ये साठ गाँवका उपसत्त्व भोग करते हैं।

वेद्य (सं० त्रि०) विद्-ण्यत। १ वेदितव्य, जो जानने या समझनेके योग्य हो। २ धनके विषयमें हितकर। (ऋक् २।२।३)
३ स्तुत्य, जो स्तुति करनेके योग्य हो। (ऋक् ५।१५।१) ४ लब्धव्य, जो प्राप्त करनेके योग्य हो। ५ वेदहित, वेदप्रतिपाद्य।

वेद्यत्व (सं० क्ली०) ज्ञान, जानकारी।

वेद्या (सं० स्त्री०) वेदितव्या। विद्या। (ऋक् १०।७१।८)

वेद्दुला—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह उदयपुरसे ३ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहांके सामन्त ६१ गाँवोंके उपसत्त्वभोगी हैं।

वेध (सं० पु०) विध-घञ्। १ किसी नुकीली चीजसे छेदनेकी क्रिया, वेधना, विद्ध करना। २ गमीरता, गहरापन। ३ यन्त्रों आदिकी सहायतासे ग्रहों, नक्षत्रों और तारों आदिको देखना। ४ ज्योतिषके ग्रहोंका किसी ऐसे स्थानमें पहुंचाना जहांसे उनका किसी दूसरे ग्रहमें सामना होता हो। जैसे,—युतवेध, सप्तशलाकावेध, पताकीवेध इत्यादि।

वेधक (सं० क्ली०) विध-ण्वुल्। १ धान्यक, धनियाँ। (राजनि०) २ कर्पूर। (त्रिका०) ३ अम्लवेतस। (पु०) ४ वह जो मणियों आदिको वेध कर अपनी जीविका चलाता हो। (त्रि०) ५ वेधकर्त्ता, वेध करनेवाला। वेधशाला देखो।

वेधनिका (सं० स्त्री०) विध्यतेऽनयेति विध-करणे-ल्युट्, ततः स्वार्थे-कन्। वह औजार जिससे मणियों आदिमें छेद करते हों। पर्याय—आस्फोटनी, लास्फोटनी, स्फोटनी, वृषदंशिका। २ सूची, सुई।

वेधनी (सं० स्त्री०) विध्यतेऽनयेति विध-ल्युट्, स्त्रियां ङीष्। १ वेधनिका, वह औजार जिससे मणियों आदिमें छेद करते हों। २ हस्तिकर्णवेधनास्त्र, अंकुश। (त्रिका०) ३ मेथिका।

वेधमय (सं० त्रि०) छिद्रयुक्त, छेदवाला।

वेधमुख्य (सं० पु०) वेधे वेधने मुख्यः श्रेष्ठः। कचूर। (राजनि०)

वेधमुख्यक (सं० पु०) वेधमुख्य स्वार्थे कन्। हरिद्राक्षुप, हल्दीका पौधा। पर्याय—कर्च्चूरक, द्राविड़क, काल्पक, काल्य। (अमर)

वेधमुख्या (सं० स्त्री०) वेधे मुख्या। कस्तूरी। (राजनि०)

वेधशाला (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां ग्रहों और नक्षत्रों आदिका वेध करनेके यन्त्र आदि रखे हों, वह स्थान जहां नक्षत्रों और तारों आदिको देखने और उनकी दूरी गति आदि जाननेके यन्त्र हों। अंगरेजीमें इसे Observatory कहते हैं। मानमन्दिर और वेधालय देखो।

वेधस् (सं० पु०) विदधातीति वि-धा (विधाञो वेधच। उण् ४।२२४) इति असि वेधादेशश्च। १ ब्रह्मा। २ विष्णु। (अमर) ३ शिव। ४ सूर्य। (शब्दरत्ना०) ५ पण्डित। (विश्व) ६ श्वेतार्क वृक्ष, मदारका पौधा। (शब्दच०) ७ अनंतपुत्र। (अग्निपुराण सागरोपाख्यान नामाध्याय) ८ प्रजापति दक्ष आदि। (त्रि०) ९ मेधावी। (निघण्टु) १० विविध कर्त्ता। (ऋक् ५।४२।१२)

वेधस (सं० क्ली०) अङ्गुष्ठमूल, हथेलीके अंगूठेकी जड़के पासका स्थान। इसे ब्रह्मतीर्थ भी कहते हैं। आचमनके लिये इसी गड्ढेमें जल लेनेका विधान है।

वेधसी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थका नाम।

वेधस्या (सं० स्त्री०) यागविधानकी इच्छा। (ऋक् ६।८२।२)

वेधा (सं० पु०) वेधस् देखो।

वेधालय (Observatory)—एक शलाका या यष्टि अथवा अन्य किसी पदार्थमें सूर्यादि आकाश-मण्डलस्थ ग्रहादि और धराको वेध कहते हैं। उक्त शलाका आदिमें लक्ष्य पदार्थका विम्ब विद्ध होता है, इससे वेधसंज्ञा पड़ी है। यष्टि या शलाकादि यन्त्रों द्वारा नक्षत्रादिके संस्थान और गतिनिर्णयको ही वेध (Observation) कहते हैं और जिस घरमें इस तरहके यन्त्र आदि रक्षित और कार्य साधित होता हो, उस गृहको प्राचीन पुरुषोंने वेधशाला या वेधालय कहा है, इस समय जनसाधारणमें यह 'मानमन्दिर' (Observatory) नामसे परिचित है।

यूरोपियोंका विश्वास है, कि इस देशमें बहुत पहले से ज्योतिषकी चर्चा रहने पर भी यहांके लोगोंमें वेध-ज्ञान न था। सुतरां प्राचीनकालमें यहां कोई वेध-शाला भी न थी। यूनानियोंसे ही भारतवासीने वेधज्ञान सीखे हैं। किन्तु यह बात सच नहीं। इसमें सन्देह नहीं, कि भारतवासी ईसाके जन्मसे बहुत पहले अर्थात् सहस्र सहस्र वर्ष पहलेसे वेधोपाय जानते थे। जगत्के आदि ग्रंथ ऋक्संहितासे ही २७ नक्षत्र और सप्तर्षिका संधान मिलता है। तैत्तिरीयसंहितामें नक्षत्र तारेमें रोहिणीके प्रति चंद्रकी अतिशय प्रीति है या चंद्र रोहिणीके निकटयुति ऐसा कहा है। आश्वलायन श्रौतसूत्रमें ध्रुव और अरुन्धतीके शनिकृत रोहिणीशकटभेद, रामायण और महाभारतमें नाना नक्षत्र और तिथिवर्णना तथा नाना प्राचीन स्मृतियोंमें नक्षत्रवीथिके उल्लेखसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि भारतीय आर्योंने उस ऋक् संहिताके समयसे ही अर्थात् सात हजार वर्षसे भी पहलेसे वेधशिक्षा की थी। वराहमिहिरने वृहत्संहिता में केतुचारके प्रसङ्गमें लिखा है—

"गार्गीयं शिखिचारं पराशरमसितदेवलकृतं च।
अन्यांश्च बहून् दृष्ट्वा क्रियतेयमनाकुलाचारः॥"

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि गर्ग, पराशर, असित, देवल आदि बहुतेरे ऋषियोंने केतुचार निर्णय किया है। उक्त वृहत्संहिताकी टीकामें भट्टोत्पलने भी इस तरह पराशरकी बात प्रकाशित की है—

"पैतामहश्चलकेतुः पञ्चवर्षशतं प्रोष्य उदित।... अथोद्दालकः श्वेतकेतुर्दशोत्तरं वर्षशतं प्रोष्य दृश्यः।... शूलाग्राकारां शिखां दर्शयन् ब्राह्मनक्षत्रमुपसृत्यमनाक् ध्रुवं ब्रह्मराशिं सप्तर्षीन् संस्पृश्य......काश्यपः श्वेतकेतुः पञ्चदशं वर्षशतं प्रोष्यैन्द्र्यां पद्मकेतोश्चारान्ते...... नभस्त्रिभागमाक्रम्यापसव्यं निवृत्यार्द्धं प्रदक्षिण जटाकारशिखः स यावन्तो मासान् दृश्यते तावद्वर्षाणि सुभिक्षमावहति॥ अथ रश्मिकेतुर्विभावसुज प्रोष्य शतमावर्त्तकेतोरुदितश्चारान्ते कृत्तिकासु धूमशिखः।" (पराशर)

अर्थात् पैतामह केतु पांच सौ वर्ष प्रवासमें रह कर उदित होता है। इस तरह उद्दालक श्वेतकेतु ११० वर्ष, शूलाग्राकार, शिखाधारी, काश्यप श्वेतकेतु १५०० वर्ष और विभावसुज रश्मिकेतु १०० वर्ष प्रवासके बाद कृत्तिकामें धूमशिखवत् उदय होता है।

इस समय जैसे यूरोपियोंके आविष्कर्त्ताके नामानुसार Halley's Comet आदि विभिन्न केतुके नाम सुनाई देते हैं वैसे ही अतिप्राचीन कालमें इस भारतवर्षमें जिन सब ऋषियोंने वेधज्ञानबलसे विभिन्न केतुचारका आविष्कार किया है, उनके नामानुसार ही उन केतुओं-का नामकरण हुआ था। वह भट्टोत्पलधृत पराशरोक्ति-से जाना जाता है।

आर्यभट, ब्रह्मगुप्त आदि प्राचीन ज्योतिषाचार्यगण स्वाधीनभावसे अपने अपने उद्भावित यंत्रसाहाय्यसे अत्यन्त पूर्वकालसे आज पर्यन्त वेध करते आते हैं। आठगढ़के राजकुमार चन्द्रशेखर सिंहकी जीवनीसे उसका विलक्षण परिचय मिलता है।

विस्तृत विवरण चन्द्रशेखर सिंह शब्दमें देखो।

वेधके लिये वेधशालाकी आवश्यकता है। वराह मिहिर आदिके ज्योतिर्ग्रन्थसे जाना जाता है, कि राज-निर्देशसे कितने ही नक्षत्रद्रष्टा दिन रात निभृत कक्षमें बैठ कर नक्षत्रादिकी गतिविधि पर्यवेक्षण और उनके दर्शनका फलाफल लिपिबद्ध करते थे। भोजराजकृत राजमृगाङ्ककरण और वल्लभवंशीय दशबलराजके करणकमलमार्त्तण्डग्रन्थ इस तरह राजज्योतिषियोंके पर्यवेक्षणका फल है। केवल राजज्योतिषी ही क्यों

अनेक स्थलोंमें कितने स्वाधीन ज्योतिर्विंदु अपनी क्षुद्र कुटिमें बैठ कर भी वेधज्ञानका परिचय दे गये हैं। नाना वैदेशिकोंके आक्रमण और सैकड़ों राष्ट्रविप्लवसे भारतकी कितनी ही प्राचीन वेधशालायें विलुप्त हुई हैं, किन्तु भारतको उत्तर सीमाके बाहर चीनदेशमें ऐसे राष्ट्रविप्लव और ध्वंसकाण्ड न हो सकनेसे आज भी वहां सहस्र वर्षोंके वेधालय दिखाई देते हैं। इनमें चीन-राजधानी पेकिङ्ग शहरका वेधालय जगत्प्रसिद्ध है। पहले यहां एक छोटा वेधालय था; किंतु सन् १२७९ ई०में को-सौकिंने वर्त्तमान वृहत् वेधालयका निर्माण किया था। सन् १६७३ ई०में उक्त मानमन्दिरमें ही वार्विएष्ट (Verbiest) प्रमुख जेसुइटधर्मप्रचारकोंके यत्नसे बहुतेरे नये यन्त्र निर्मित हुए। आज भी उसमें काम हो रहा है।

भारतवर्षमें जभी किसी श्रेष्ठ ज्योतिर्विंदुका आविर्भाव हुआ है, तभी उन्होंने वेध द्वारा पूर्ववर्त्ती ज्योतिषिक मत शोधन करनेका यत्न किया है। बहुत अधिक दिनकी बात नहीं, ग्रहलाघव नामके प्रसिद्ध ज्योतिर्ग्रन्थ-प्रणेता गणेश दैवज्ञके पिता केशवाचार्यने १५वीं शताब्दीमें जिस तरह वेधका परिचय दिया है, उसके पढ़नेसे विस्मित होना पड़ता है। उनके ग्रहकौतुककी स्वरचित मिताक्षराटीकामें लिखा है—

"ब्राह्मार्यभटसौराद्येष्वपि ग्रहकरणेषु बुधशुक्रयोर्महदन्तरं अङ्कतया दृश्यते। मन्दे आकाशे नक्षत्रग्रहयोगे उदयेऽस्ते पञ्चभागा अधिकाः प्रत्यक्षमन्तरं दृश्यते।...... एवं क्षेपेष्वन्तरं वर्षभोगेष्वपि अन्तरमस्ति। एवं बहुकाले बह्वन्तरं भविष्यति। यतो ब्राह्मोद्येष्वपि भगणानां सावनादीनां च बह्वन्तरं दृश्यते एवं बहुकाले बह्वन्तरं भवत्येव।......एवं बह्वन्तरं भविष्यैः सुगणकैः नक्षत्रयोगग्रहयोगोदयास्तादिभिर्वर्त्तमानघटनामवलोक्य न्यूनाधिकभगणाद्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि। यद्वा तत्कालक्षेपक वर्षभोगान् प्रकल्प्य लघुकरणानि कार्याणि।... एवं मया परमफलस्थाने ग्रहणतिथ्यन्ताद्विलोमविधिना मध्यश्चंद्रो ज्ञातः तत्र फलह्रासवृद्ध्यभावात्। केंद्रगोलादिस्थाने ग्रहणतिथ्यन्ताद्विलोमविधिना चंद्रोच्चकलितं। तत्र फलस्य परमह्रासवृद्धित्वात्। तत्र चंद्रः सूर्यपक्षात् पञ्चकलो नो दृष्टः। उच्चं ब्रह्मपक्षाश्रितं। सूर्यः सर्वपक्षेष्वेवदन्तरः स सौरो गृहीतः। अन्ये ग्रहा नक्षत्र-ग्रहयोगग्रहयोगास्तोदयादिभिर्वर्त्तमानघटनामवलोक्य साधितः। तत्रेदानीं भौमेज्यौ ब्राह्मपक्षाश्रितौ घटतः। ब्राह्मो बुधः। ब्राह्मार्यमध्ये शुक्रः। शनिः पक्षत्रयात् पञ्चभागाधिको दृष्टः। एवं वर्त्तमान घटनामवलोक्य लघुकर्मणा ग्रहगणितं कृतं।"

ब्राह्म, आर्यभट और सौरादिके सिद्धान्त ग्रन्थमें ग्रहकरणमें बुध और शुक्रका बड़ा अन्तर दिखाई देता है। मन्दाकाशमें नक्षत्र ग्रहयोगमें, उदय और अस्तमें पञ्चभाग अन्तर अधिक है, यह प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई देता है। इस तरह वर्षभोग क्षेपमें भी विशेष अन्तर है और इसी तरह बहुत कालमें बहुत अन्तर हो जाता है; क्योंकि, ब्राह्मादिमें और सावनादि भगणमें बहुत अन्तर दिखाई देता है, और इसके भी बहुत कालमें बहुत अन्तर हो जाता है। सुगणकोंने नक्षत्रयोग ग्रहयोग और उदयास्तादि वर्त्तमान घटनाका अवलोकन कर न्यूनाधिकभावसे भगणादि द्वारा ग्रहगणित करना चाहिये, ऐसा स्थिर किया है। अथवा तत्कालक्षेपक वर्षभोगकी कल्पना कर लघुकरण करना।

परमफलस्थानमें चन्द्रग्रहण तिथिके अन्तसे विलोम विधि द्वारा मध्य चन्द्र द्वारा मध्यचन्द्र ज्ञात होगा। इसमें फलकी ह्रास वृद्धि नहीं होती। केन्द्रगोलादि स्थानमें और ग्रहणतिथिके अन्तसे विलोमविधि द्वारा चन्द्रोच्च कल्पित हुआ है। उसमें फलका परम, ह्रास और वृद्धि होती है तथा चन्द्रसूर्यपक्षसे पञ्चकला कम भावसे दिखाई देती है। यह ब्रह्मपक्षाश्रित जानना होगा। सूर्यका सब पक्षोंमें ही जरा अन्तर रहता है और यह सौर कह कर गृहीत हुआ है। अन्य सब ग्रह नक्षत्रग्रहयोग और नक्षत्र ग्रहयोगास्त तथा उदयादि वर्त्तमान घटनाका अवलोकन कर साधन करना उचित है। अधुना भौम और इज्य ब्राह्मपक्षाश्रित है। ब्राह्म अर्थात् बुध, ब्रह्मार्यमें शुक्र, शनि पक्षत्रयसे पञ्च भाग अधिक दिखाई देता है। इस तरह वर्त्तमान घटना देख कर लघुकर्मा द्वारा ग्रहगणना करनी चाहिये।

इसी तरह प्रसिद्ध ज्योतिषी कमलाकरने भी अपने सिद्धान्ततत्त्वविवेक नामक ग्रन्थमें पूर्वाचार्योंके सिद्धा-

न्तोंका खण्डन कर ध्रुवनक्षत्रकी गति प्रकाशित की है। महामहोपाध्याय चन्द्रशेखरकी बात पहले ही कही जा चुकी है। अभी थोड़े ही दिन हुए, कि उन्होंने परलोक गमन किया है। उन्होंने अपनी चेष्टा और अपने रचित यन्त्रके साहाय्यसे कैसी वेध-दक्षता दिखाई है, उनके सिद्धान्तदर्पण ग्रन्थके पढ़नेसे उसका यथेष्ट परिचय मिलता है। उनकी असाधारण शक्ति देख इस देश या विदेशके ज्योतिषियोंने इनको "टाइको ब्राही" उपाधि दी है।

इस देशमें ऐसे भी कई ज्योतिषी देखे गये हैं, जो संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषा नहीं जानते। अथच उनको नक्षत्र देख कर ऐसा ज्ञान उत्पन्न हुआ है, कि वह अनायास ही कह सकते हैं, कि कौन कौन तारा पूर्वसे पश्चिम और कौन कौन पश्चिमसे पूर्व अस्त हुए।

प्राचीन कालमें भारतवर्षमें वेधशालामें कौन कौन यन्त्र व्यवहृत होते थे, भास्कराचार्यने अपने यन्त्राध्यायमें उन यंत्रोंका इस तरह नामोल्लेख किया है—१ चक्रयंत्र, २ चाप, ३ तुर्यगोल, ४ गोलयंत्र, ५ नाड़ीवलय, ६ घटिका, ७ शंकु, ८ फलकयंत्र, ९ यष्टियंत्र और १० स्वयंवहयंत्र। भारतीय ज्योतिर्विद् लल्लाचार्य और ब्रह्मगुप्तके समयसे आज तक इन सब यंत्रोंके साहाय्यसे ही वेध कार्य साधन करते आ रहे हैं। १८वीं शताब्दीमें जयपुराधिप सवाई जयसिंहने तत्कालीन भारतके प्रधान नगरोंमें वेधशाला या मानमन्दिर प्रतिष्ठित कर उनमें ये सब यंत्र रखे थे। उन्होंने फारसी भाषामें ऐसा विवरण लिख कर रख दिया है, जिससे उनके नये उद्भावित यंत्रोंका व्यवहार सहज ही समझमें आ जाता है।

जब यूरोपीय ज्योतिष शास्त्रकी आलोचनामें और यन्त्रादि साहाय्यसे ज्योतिष्कमण्डली अर्थात् ग्रहनक्षत्रादि गतिस्थितिनिर्णयके विषयमें जगत्‌में अभिनव-पन्थाकी प्रसारवृद्धि कर रहे थे, जब कोपर्णिकासके (१४७३-१५४३ ई०) आलोकित ज्योतिष्मार्गमें विचरण कर हर्सेल (Sir William Herschel 1738-1822 A D) आदि ज्योतिर्विद् ग्रहनक्षत्र आदि आविष्कार और गति-निर्णय द्वारा जगत्‌में अशेष ख्याति उपार्जन कर रहे थे, उससे भी कुछ पहले अर्थात् १८वीं शताब्दीके प्रथममें भारतवर्षमें भी ज्योतिष शास्त्रविशारद एक अद्वितीय पुरुषने जन्मग्रहण किया था। केशव दैवज्ञ और गणेश दैवज्ञके ज्योतिःशास्त्र-सागरको मन्थन कर उसके सारोद्धार सर्वांशमें तद्ग्रन्थनिचयकी विशुद्धिता सम्पादन करने पर भी वास्तवमें वे जयसिंहकी तरह ज्योतिषशास्त्रालोचनाका पथ उन्मुक्त कर नहीं सके हैं।

राजपूतानेके अन्तर्गत अम्बरराज्यके अधीश्वर जयसिंह संवत् १७५० विक्रमीय (१६९३ ई०)में पैदा हुए थे। वयोवृद्धिके साथ साथ उन्होंने भारतीय, मुसलमानी, यावनी और यूरोपीय नाना ज्योतिर्ग्रन्थोंको आलोचना की। इन सब ज्योतिष ग्रंथोंको पढ़ कर जब वह समझ गये, कि हिपार्कास, टलेमी, युक्लिड, जमसेद कासि और नासिर तुषी आदिके ग्रंथ प्रमाणसे दिक्प्रत्यय करनेको जब सुस्पष्ट सुविधा नहीं दिखाई देती, तब उनके ये परिश्रम व्यर्थ हुए, यह सहज ही अनुमान किया जाता है। सिवा इसके ग्रहनक्षत्र आदिकी स्थिति-गणनामें सैयद गुर्गानि और खकानाकी प्रवर्त्तित सूची, तूपिलात् मूलचाँद अकबरशाही, संस्कृत ज्योतिर्ग्रन्थ और यूरोपीय गणना-सूची आदि प्रचलित थीं, उसके साथ प्रकृत गणनामें अनेक वैषम्य रहनेसे वे स्वतः प्रवृत्त हो वेधयन्त्र स्थापन कर प्राचीन पद्धतिके संस्कारसे नये ग्रंथ और तालिका प्रणयनमें यत्नशील हुए।

इस समय दिल्लीके बादशाह महम्मद शाहने उनके ज्योतिष विषयक ज्ञानका परिचय पा कर और वेधशाला स्थापनमें उनका उद्यम और आग्रह जान कर उनको दिल्ली दरबारमें बुलाया और उनके आने-जानेका व्ययभार अपने ऊपर लिया था। इसके अनुसार जयसिंहने दिल्ली राजदरबारमें आ कर मुसलमान ज्योतिर्विद् और ज्यामितिज्ञोंके, ज्योतिशास्त्राभिज्ञ ब्राह्मण पण्डितोंके और कई यूरोपीय ज्योतिर्विदोंके साहाय्यसे कई ग्रहोंका गति काल प्रत्यक्ष कर आपसमें परामर्श किया और गणनामें जो भ्रम था, उसका संशोधन कर लिया। इस समय सुशृङ्खला पूर्वक कार्य निर्वाह करनेके लिये वैदेशिक यन्त्रादिका अनुकरण कर उनको भी कई यन्त्र निर्माण कर लेना पड़ा था।

राजा जयसिंहने मुसलमानी ग्रंथोंके अनुसार समरकन्दमें प्रतिष्ठित मानमन्दिरका अनुकरण कर दिल्लीमें उन सब यन्त्रादिको स्थापित कर सबसे पहले वेधशाला की भित्ति कायम की। समरकन्दमें उस समय तीन गज परिमित व्यासविशिष्ट जात् उल-हलक और जात्-उल सोवेतिन्, जात्-उल-फस वेतिन्, सादस फकेरी और मशालाआदि कई पीतलके बने यन्त्र थे। ये सब यन्त्र छोटे आकारके थे। इससे इनमें मिनट विभागकी सुविधा न थी। फिर स्थानमें वैषम्य होनेके कारण यन्त्रोंके स्थापनमें गड़बड़ीसे अनेक समय गणनामें विभ्राट् उपस्थित होता था। कभी तो मध्यदण्ड (axes) क्षयप्राप्त हो या कम्पित हो वृत्तोंका केन्द्रस्थानच्युत हो जाता था, उससे भी गणनामें गड़बड़ी उपस्थित होती थी। इन्हीं सब कारणोंसे हिपार्कास आदि प्राचीन ज्योतिर्विदों की गणना सर्वाङ्ग सुन्दर नहीं हुई। यह विचार कर उन्होंने अपने इच्छानुसार राजधानीके नामानुसार "दर-उल-खलिफात् शाह-जहानावाद," "जयप्रकाश" "राम-यन्त्र" और "सम्राट्यंत्र" निर्माण किया था। इसका व्यासार्द्ध प्रायः १८ हाथ, १ मिनटके निरूपणका अंशांश-परिमाण १॥ जौ था। यंत्र पत्थर और चूने आदिके संयोगसे बने थे। चौड़े होनेसे इनमें गति और दूरत्व-का परिमाण निर्दोष करनेकी विशेष सुविधा है।

इस तरहकी प्रणालीसे वेधशाला स्थापित हुई सही; किन्तु निरूपित गृहनक्षत्र आदिको स्थान और वर्त्तमान यंत्रके साहाय्यसे अधःपतित इन सब स्थानों-को प्रकृत स्थितिनिर्णय द्वारा इन दोनोंमें दूरत्व या कालका व्यवधान करनेके लिये जयसिंहने विशेष अध्य-वसायके साथ सवाई जयपुर, मथुरा, बनारस, और उज्जैन नगरीमें और भी चार स्वतन्त्र वेधालय स्थापन किये। इन सब स्थानोंमें स्वतन्त्र भावसे ग्रह-नक्षत्रादिका सञ्चालन और गणना की गई थी। उसी गणनाका फल ले कर उन्होंने दोनों नक्षत्रोंके अक्षांशका व्यवधान छोड़ सामञ्जस्य द्वारा इन सब गणनाओंको भ्रमविहीन और सर्वाङ्ग सुन्दर सिद्धान्त किया था। आज भी इन सब स्थानोंमें वेधालय विद्यमान हैं। किंतु वे आलोचनाके अभावमें अनादृत अवस्थामें निपतित और ध्वस्तप्राय हैं। जनसाधारणकी जानकारीके लिये एक एक करके कई वेधालयोंके यन्त्रादिका उल्लेख किया गया है।

दिल्ली नगरके प्राचीरके वहिर्भागमें १। मील दूर पर जुम्मा मसजिदके ३२° दक्षिण-पश्चिममें दिल्लीका मानमन्दिर अवस्थित है। इङ्गलैण्डके ग्रीनवीच (Greenwich) मानमन्दिरसे यह स्थान अक्षा० २८° ३८′ ३० तथा देशा० ७७° २′ पू० दूरवर्त्ती है। ये कई खण्ड खण्ड अट्टालिकामें विभक्त हैं। एक एक अट्टालिकामें एक या अधिक यन्त्र रखे हुए हैं। इन सब यन्त्रोंके कुछ विवरण यन्त्रशब्दमें लिखा जा चुका है। इससे यहां अधिक नहीं लिखा गया। केवल नाम और परिमाण निर्देश कर संक्षेपमें उनका परिचय दिया जाता है।

(१) सम्राट् यन्त्र (Equatorial dial) वा नाड़ी-वलय। इसका शंकु ११८ फीट ७ इञ्च लम्बा, मूल-देश १०४ फीट १ इञ्च और ऊंचाई ५६ फीट ६ इञ्च है। यह प्रस्तरग्रथित है। किन्तु स्थान-स्थानमें टूट गया है।

(२) उक्त यन्त्रसे कुछ दूर उत्तर-पश्चिममें और एक अपेक्षाकृत छोटा नाड़ी वलय है। इसके बीचमें शङ्कु है। इस पर चढ़नेके लिये सीढ़ी लगी है। इसके शङ्कुके दोनों पार्श्वमें ही समकेन्द्रके अर्द्धवृत्त है। शङ्कु वहिर्वृत्तके व्यास स्वरूप ३५ फीट ४ इञ्च लम्बा है। वहिर्गोलकका एक एक अंश $३\frac{७४}{१००}$ इञ्च है। वहिर्वृत्तसे मध्यवृत्तकी व्यवधान रेखा २ फीट ६ इञ्च है। प्रत्येक अंश १० भागमें और प्रत्येक भाग ६ कला (Minute) में विभक्त है।

इस गृहके उत्तरी प्राचीरमें और पश्चम ओर को एक स्वतन्त्र अट्टालिकामें खगोलस्थ नक्षत्रोंकी ऊंचाईके निरू-पणार्थ याम्योत्तररेखाविलम्बित एक यन्त्र है। यह द्विवृत्तपाद (Double quadrant) है। इसका एक एक अंश $२\frac{५}{६}$ इञ्च है और उसमें कलाविभाग है।

(३) वृहन्नाड़ीवलय-यंत्रके दक्षिण कुछ दूर पर "उसतुयाना" नामकी दो अट्टालिकायें है इनसे खगोलस्थ

नक्षत्रोंके उन्नतांश और दिगंश (azimuth) निरूपण किया जाता है।

(५) इन दो गृह और वृहन्नाड़ीवलयके मध्यस्थलमें शाम्ला नामक यंत्र प्रतिष्ठित हैं। यह कुब्ज (Conc-ave)-पृष्ठ अर्द्धवृत्त है। इसमें खगोलके निम्नार्द्धकी रेखा अङ्कित है। याम्योत्तररेखायें १५ अंशकी दूरी पर स्थापित हैं।

जयपुरनगरमें इस समय जितने ज्योतिषिक यंत्र विद्यमान हैं, उनमें निम्नलिखित यंत्र प्रधान हैं—

१, याम्योत्तरभित्तियंत्र (Meridianal wall) । इस यंत्रके द्वारा ज्योतिष्कोंके याम्योत्तर अतिक्रमकालीन (Transit on the meridian) उन्नतांशमें, सूर्यकी महत्तम क्रांति (greatest declination) और स्थानीय अक्षांश (Latitude) निर्णीत होता है। वर्त्तमानकालमें यूरोप आदि स्थानोंमें Mural circle नामक यंत्र द्वारा ये सब उद्देश्य साधित होते हैं। पर्यवेक्षणिका भूमिके ऊपरी भागमें एक प्राचीर है। यह प्राचीर सम्पूर्ण रूपसे याम्योत्तर रेखा पर अवस्थित है। प्राचीरके पूर्व गात्रमें २० फुट व्यासार्द्ध विशिष्ट दो वृत्तपाद (Quadrant) और पश्चिमगात्रमें १६ फीट १० इञ्च व्यासार्द्ध विशिष्ट एक वृत्तार्द्ध चित्रित है। परिधियां मर्म्मर पत्थरसे निर्मित हुई हैं और अंश (Degree), कला (Minute) प्रभृतिमें विभक्त है। पत्थरमें खोद कर उसमें सीसा प्रविष्ट करा कर विभागोंकी रेखायें अङ्कित हुई हैं। वृत्तके केन्द्रस्थानमें एक कील गड़ी हुई है। उसमें सूत बांध कर सारे विभागांशों पर उस सूतके अग्रभागको घुमाया जा सकता है। यदि किसी ज्योतिष्कके उन्नतांश निर्णय करनेकी आवश्यकता होती है तब इसकी याम्योत्तर रेखा अतिक्रम करनेके समयकी प्रतीक्षा करनी होती है। जब ज्योतिष्क याम्योत्तर रेखा पर उपस्थित होता है, तब सूतका अग्र भाग किसी विभागांशमें पकड़नेसे कील और यह ज्योतिष्क समसूत्रपात पर अवस्थित दिखाई देगा, तब यह विभागांश वृत्तार्द्धके निकटकी सीमासे कई अंश दूर पर देख लेगा। यह अंश संख्या उक्त ज्योतिष्ककी उन्नतांशद्योतक है।

निम्नलिखित उपायसे जयपुरमें अक्षांश निर्णीत हुआ है। प्रतिदिन मध्याह्नकालमें याम्योत्तर रेखा अतिक्रमकालीन सूर्यका उन्नतांश देख लेना होता है। ९० अंशसे वह बाद देनेसे खस्वस्तिकसे दूरत्व अर्थात् नतांश मिलता है। लगातार कई महीने तक इस तरह उन्नतांशसे निर्णय करते करते सबसे जो कम और सबसे जो अधिक है, उन दोनोंका अन्तर ले कर उसका आधा ग्रहण करना होगा। यही विषुवरेखा और राशिवलयके अंतर्गत कोणका परिचायक है। अर्थात विषुवरेखा लघुतम नतांशमें अवस्थित है और महत्तम नतांशमें अवस्थानके मध्य विंदुसे हो कर गई है।

सन १७२७ ई०में महाराज जयसिंहने जयपुरकी रविपरमाक्रान्ति (Obliquity of the ecliptic) २३ डिग्री २८ मिनट निर्णय की है। उस समय वह यथार्थमें २३ डिग्री २८ मिनट २६ सेकेण्ड (विकला) थी। अतएव यह गणनाका सामान्य व्यतिक्रम मात्र जानना होगा। परमाक्रांतिमें सूर्यका लघुतम नतांश जोड़ देनेसे जयपुरका अक्षांश (Latitude) मिल जाता है। लघुतम नतांश किञ्चिदधिक साढ़े तीन अंश मात्र है। इसीलिये जयपुरका अक्षांश २७ डिग्री है। इससे पाठक समझ सकते हैं, कि सूर्य जयपुरके खस्वस्तिकमें अर्थात् शिर पर कभी उपस्थित नहीं होता। उसका चूड़ांत उत्तर प्रभृति जयपुरके ख मेंसे ३॥ डिग्री दक्षिणमें ही रह जाता है। अतएव जयपुर समकटिबंध (Temperate zone)में अवस्थित है।

भित्तियंत्रकी ऊंचाई प्रायः १४ हाथ है और लम्बाई इसके दुगुनेसे भी कुछ अधिक है। अतएव पर्यवेक्षणकी सुविधाके लिये सारी वृत्तपरिधियोंकी बगलमें सीढ़ियां बनी हैं। इन्हीं सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़ा जा सकता है।

२, "नाड़ीवलययंत्र"—इसके विषयमें पहले कुछ वर्णन लिखा जा चुका है। जयपुरके नाड़ीवलयकी पीठ पर लिखी कवितासे यंत्रालयका आरम्भकाल निर्णीत होता है, इसीसे वह कविता यहां उद्धृत कर दी जाती है।

"धर्मग्लानिम धर्मवृद्धिमवलोक्यात्मा जगचक्षुषोः।
राजेन्द्रो जयसिंह इत्यभिधयाविर्भूय वंशे रवेः॥

लुप्त्वा धर्मविरोधिनोऽम्बरमुखैर्म्वाचीर्यं वेदाब्वभि-
धंर्म्मं न्यस्य धरातले रचितवान् यन्त्रान् सुबोधान् बहून् ॥
गोलप्रवृत्तेर्गगने चराणां जिज्ञासया श्रीजयसिंहदेवः ।
आज्ञासवान् यन्त्रविदः पुनस्ते चक्रुर्हि याम्योत्तरभित्तिसंज्ञम् ॥
सवज्रलेपांशुविशुद्धपार्श्व-द्वयस्थ-नाड़ीवलयैककेन्द्रम् ।
ध्रुवाभिकेन्द्रश्रुतिमार्गकील' कीलाग्रभासूचिनाड़ीकाद्यम् ॥
पितामहोच्छिष्टमयाश्र मार्गा रोहवरोहान् नवनन्दनवृत्तान् ।
प्रतापसिंहश्च विज्ञुष्य विद्भ्यस्तान् कारयामास सुपार्श्वयुग्मे ॥
भारोपमम्लेच्छगणस्य वृद्ध-भूभारशान्त्यै पुनरादिदेवः ।
इक्ष्वाकुवंशेऽप्यवतीर्य पूर्वावतारितान् देवगणानयुङ्क्त ॥
धर्माधिकारी विधिदेवकृष्णः प्रायुङ्क्त संरोहितधर्मपादाः ।
यन्त्रेषु वेदाङ्गविभूषणेषु द्वितीय यन्त्रोद्धरणाञ्चकार ॥
यस्मिन्नह्नि चतुर्षु पक्षतिथिवारर्क्षेषु पक्षोपनिघ्न-
श्चान्यैस्त्रिभिरन्वितः स्मृतिलवः स्यात् साष्टिशाकस्य सः ।
नन्दघ्नस्थितिरपययुक् स च लवो विश्वघ्नवारोपययुक्
वातत्वघ्न भमन्ययुक्तमथवैषाऽस्योद्धृतस्योत्थितिः ॥"

अब यंत्रस्थापनका पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र द्वारा सिद्ध होता है, कि इस दिन कृष्णपक्ष, नवमी, शुक्रवार और कृत्तिका नक्षत्र विशिष्ट तथा १६४० शक (अर्थात् १६१८ ई०) की घटना है।

उपर्युक्त कवितासे मालूम होता है, कि यन्त्रालयके वर्त्तमान सब यंत्र अकेले जयसिंह द्वारा ही नहीं बने हैं, उनके पौत्र प्रतापसिंहने अनेक यंत्र बनवाये थे। जयसिंहके समयसे श्रीमाधोसिंहके समय तक प्रत्येक राजाने ही अल्पाधिक परिमाणसे यंत्रालयकी श्रीवृद्धि और उन्नतिसाधन-करनेमें अर्थ व्यय किया है। उक्त यंत्रालयोंमें जिस उद्देश्यसे जो यंत्र निर्मित और जिस राजाके समयमें स्थापित या संस्कृत हुए हैं, उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

वेधालयके यन्त्रोंकी सूची।

संख्या	नाम	किससे निर्मित	कहां रखे गये	कैसा व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके राजत्वमें पुनः संस्कृत या संवर्द्धित
१	याम्योत्तरभित्तियंत्र	इमारत	ज्योतिषिक यन्त्रालय	उन्नतांशनिर्णय	सवाई जयसिंह	सवाई रामसिंह
२	षष्ठांशयंत्र	"	"	"	"	
३	रामयंत्र	"	"	उन्नतांश और दिगंशनिर्णय	"	सवाई माधवसिंह (२य)
४	दिगंशयंत्र (Azimuth circle)	"	"	दिगंशनिर्णय	"	
५	सम्राट्यंत्र	"	"	कालनिरूपण, नतकाल (hour angle) क्रान्ति	"	
६	नाड़ीवलय (Equatorial dial)	"	"	कालनिरूपण, नतकाल	"	
७	राशिवलय	"	"	खगोलीय शर, द्राघिमा	"	सवाई प्रतापसिंह
८	क्रांतिवृत्त	" और पीतल	"	" "	"	
९	कपालीयंत्र (Clepsydra)	इमारत	"	" "	"	सवाई माधवसिंह (२य)
१०	जयप्रकाश	"	"	" "	"	
११	उन्नतांशयंत्र	पीतल	"	उन्नतांशनिर्णय	"	
१२	चक्रयन्त्र (Vertical circle)	"	"	क्रांति नतकाल	"	
१३	यंत्रराज	"	" और जादूघर	उन्नतांश और अन्यान्य गणना	"	

संख्या	नाम	किससे निर्मित	कहां रखे गये	कैसा व्यवहार	किस राजाके राज्यमें	किस राजाके राजत्वमें पुनः संस्कृत या संवर्द्धित
१४	यष्टियंत्र (Graduated staff)	पीतल या काष्ठ	ज्योतिर्विदोंके घरमें	कालनिरूपण	सवाई माधवसिंह (१म)	
१५	ध्रुवभ्रमयंत्र और तुरीय-यंत्र (Quadrant)	पीतल	जादूघर	„ और क्रांतिवृत्त-का स्थान	पण्डितगण	
१६	गोलबंध (Armillary sphere)	"	"	"	सवाई माधवसिंह (१म)	

१७ अन्यान्य बहुतेरे यन्त्र जैसे···जयसिंहका चतुरभा, पलभायंत्र या धूपघड़ी, अग्रयंत्र (अंतिम दो इस समय उखाड़ दिये गये हैं)

सूचीमें जो कई यंत्रोंके नाम उल्लेख किये गये, उनके सिवा और भी कई पीतल या काठके बने यंत्र जादूघरमें और ज्योतिर्विदोंके घरमें रखे हुए हैं। सूचीमें निर्दिष्ट उद्देश्यके सिवा और भी अनेक विषयों की गणना एक यंत्र द्वारा साधित होती है। उक्त यंत्र आदिके सिवा जयसिंहने 'ज़ीज मुहम्मद' सूची संग्रह की है। वह ग्रहनिर्णयके लिये विशेष फलप्रद है।

अन्यान्य विवरण यन्त्र शब्दमें देखो।

जयपुरके राजमहलके त्रिपोलिया दरवाजा नामक तोरण द्वार पार कर कई पैर उत्तर ओर जाने पर प्राचीर वेष्टित एक चबूतरा दिखाई देता है। इसकी लम्बाई चार सौ हाथ और चौड़ाई दो सौ साठ हाथ होगी। इसी जगह ज्योतिषिक यंत्र बनते हैं। इसके उत्तर ओर राजभवन और कचहरी इमारत है, पश्चिम ओर कई देवालय, पूर्व ओर अश्वशाला और दक्षिण ओर कई देवमंदिर हैं। इस अश्वशाला और मंदिरके बाद ही बाजार है। कोलाहलपूर्ण नगरके केंद्रभागमें ही यह अवस्थित है; किंतु चबूतरेके मध्यमें उपस्थित होने पर किसी तरहका शोरगुल या कोलाहल सुनाई नहीं देता, बिलकुल शांत और नीरव निस्तब्ध। रात्रि-को महाराज जयसिंह राजकार्यकी झंझटोंसे छुटकारा पा कर इस विबुध-सेव्य स्थानमें समागत हो कर गभीर गवेषणामें समय बिताते थे।

महाराज सवाई जयसिंहने जयपुर नगरके निर्माण और ज्योतिषिक यंत्रालय-प्रतिष्ठाके विषयमें शिल्पनैपुण्य (Engineering skill) का यथेष्ट परिचय दिया है। ज्योतिषके सम्बंधमें जगन्नाथ आदि पण्डितोंकी गणना आदि और ग्रंथ प्रणयन आदि कार्योंमें आदिष्ट रहने पर भी यंत्रालयका तत्त्वावधानभार वे स्वयं निर्वाह करते थे। कहा गया है, कि उनके बंगाली दीवान विद्याधर इस विषयमें विशेष उद्योगी थे। जयपुरके ज्योतिषिक यंत्रालय भारतवर्षकी अद्वितीय कीर्त्ति है।

महाराज जयसिंहने जयपुरके सिवा दिल्ली, मथुरा, बनारस और उज्जैन नगरमें भी अल्पाधिक परिमाणसे ज्योतिषिक यन्त्रादि निर्माण किये थे। काशीरके मानमंदिरके यन्त्र आदि जयसिंह द्वारा स्थापित हैं। बहुतेरे समझते हैं, कि काशीरके मानमंदिरके यंत्र महाराज मानसिंहके द्वारा स्थापित हैं, किंतु यह बात ठीक नहीं। मानमन्दिरका प्रासाद अवश्य ही महाराज मानसिंहने तीर्थयात्रियों तथा विद्यार्थियोंको सुविधा-के लिये तय्यार कराया था। महाराज जयसिंहने उसमें ही यन्त्र स्थापन किया था। जयसिंहके पहले जयपुरसे वेदवेदांतादि शास्त्र अध्ययन करनेवाले यहां आ कर इसी प्रासादमें ठहरते थे।

पाश्चात्य वेधालय।

ज्योतिष्कमण्डलीकी गतिविधिकी पर्यालोचनाके विषयमें पाश्चात्य जगत्वासी प्राचीनकालमें विशेषरूपसे अग्रसर हो नहीं सके हैं। इतिहासकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि ईसासे ३०० वर्ष पूर्व यूरोपमें कहीं भी वेधालय प्रतिष्ठित नहीं थे। फिर भी

दो एक दार्शनिक सर्वसाधारणको जगत्की गठनके सम्बन्धमें ज्योतिष्क तत्त्व वितरणके मानससे कभी कभी ग्रहनक्षत्रादिकी गति और स्थिति लक्ष्य कर वह विषय लिपिबद्ध कर रखते थे। वे गतिनिर्णयके लिये अति सामान्य भावसे यंत्रादिका व्यवहार करते थे। इसके बाद ये इन सब खण्डखण्ड विषयोंको एकत्र कर जगत्की गठन और ग्रहस्थान-निर्णयविषयमें साधारणकी प्रयास वृद्धि हुई और धीरे धीरे ज्योतिषशास्त्रकी ज्ञानोन्नति होती रही। इसी उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अलेकजेन्ड्रियामें सबसे पहले विद्यालय प्रतिष्ठित हुआ। चार सदी तक तो विशेष उद्यमके साथ इस मानमन्दिरमें ग्रहस्थान निरूपण कार्य चलता रहा। इसके बाद अर्थात् २री शताब्दीमें किसी समय यह विलुप्त हो गया।

यहां यूरोपीय ज्योतिषशास्त्रके प्रतिष्ठाता हिपार्कासने (Hiparchus) पूर्ववर्त्ती दार्शनिकों द्वारा आलोचित ग्रह-वेधादिकी आलोचना कर उनका याथार्थ्य निर्णय किया था। इनके बाद और भी कई ज्योतिर्विदुने इन सब ग्रहोंका पर्यायिक तत्त्व उद्घाटन कर ज्योतिषशास्त्रा-लोचनाकी और भी उन्नति और प्रसारवृद्धि की। ई०सन्‌की दूसरी शताब्दीमें भौगोलिक टलेमोकी गवेषणाके फलसे अलेकजेन्ड्रियाका वेधालय उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंचा था।

यथार्थमें इसी समयसे ज्योतिषशास्त्रकी आलोचना-का पथ तय्यार हुआ। उसीके फलसे अरबी राजाओंके उत्साहसे पहले पहल बुगदाद नगरमें और दमस्कसमें वेधालय स्थापित हुए। ९वीं शताब्दीके प्रारम्भमें खलीफा अलमामूनने बहुत अर्थ व्यय कर इन दो अट्टालिकाओंका निर्माण किया। इसके बाद करीब १००० ई०में प्रसिद्ध ज्योतिषीने इवनुखुनिशके ज्योतिर्विषयक ज्ञानचर्चाके लिये खलीफा हकीम कायरो नगरके समीप मोकट्टमके ऊपर एक वेधमन्दिर बनवाया। इस मन्दिरमें ही सूर्य, चन्द्र और ग्रहोंकी गति और दूरत्व परिमापक सूची (Hakimite table) सङ्कलित हुई थी।

अरबोंको ज्योतिषविषयमें आगे बढ़ते देख मुगल-वंशीय खां लोगोंने उनके पदका अनुसरण किया और उनके यत्नसे फारसके उत्तरपश्चिम मेराघा नगरमें १२६० ई०में एक सर्वोत्कृष्ट वेधशाला निर्मित हुई। हलाकू खां इस मन्दिरके प्रतिष्ठाता और प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् नाशिर उल दीन् तुषा इसके परिदर्शक हैं। तुषीके यत्नसे यहां "इलोह खानिक" सूची (Ilobkhanic tables) तय्यार हुआ। इसके बाद १५वीं शताब्दीमें राजैश्वर्यपरि-त्यागी मुगल-राजकुमार मीरजा उलघबेगने समरकन्द-में एक वेधमन्दिरकी प्रतिष्ठा कर ग्रहसम्बन्धीय एक नई सूची (Planetary tables) और नक्षत्रसूची तय्यार की। अम्बरराज जयसिंहके संगृहीत "जीज-महम्मद" नामकी ग्रहगणनाकी सूची इस विषयमें बड़ी उपयोगी है।

१५वीं शताब्दीमें यूरोपमें विज्ञान चर्चाका सूत्रपात हुआ। उस समय नक्षत्रोंकी गतिनिर्णयके लिये ज्योति-षोक्त ग्रहवेधके निरूपणकी आवश्यकता जान पड़ी। यद्यपि उसके दो सौ वर्ष पहलेसे कोई कोई आदमी स्वतः प्रवृत्त हो ग्रहगतिका प्रदर्शन करते थे और विश्व-विद्यालयोंमें अध्यापक भी उस विषयमें वक्तृता देते थे, फिर भी, उस समय स्वतंत्र वेधशाला निर्माणके साथ ज्योतिष्कमण्डलीका पर्यवेक्षण कार्य्य निर्वाह होता था। सन् १४७२ ई०का नूरेम्बार्ग नगरमें यूरोपमें सर्वप्रथम वेधशाला निर्मित हुई। वार्नो हार्ड वेल्थर एक धनी व्यक्ति इसके प्रतिष्ठाता हैं। सन् १५०४ ई०में प्रतिष्ठाताके मृत्युकाल तक इस वेधमन्दिरमें विशेष उद्यमके साथ परिदर्शन कार्य्य चला था। विख्यात ज्योतिषी रेजि-ओमण्टानाके सहयोगसे वेलथरने ग्रहगतिगणनाके विषयमें कई अभिनव तत्त्वोंका आविष्कार किया। यथार्थमें इस वेधालयकी प्रतिष्ठा ही यूरोपमें प्राकृत ज्योतिष (Practical Astronomy) आलोचनाके पुनरभ्युदयका समय है।

इसके बाद १६वीं शताब्दीमें यूरोपमें दो प्रसिद्ध वेधमन्दिरोंकी प्रतिष्ठा हुई। उनमें एक टाइको ब्राहि (Tycho Brahe) द्वारा डेनमार्कवालोंके अधिकृत ह्वेन द्वीपमें (१५७६-१५९७ ई० तक विशेष-उद्यमसे परिदर्शन हो रहा था) और दूसरा कासेल नगरमें ४थे लैण्डग्रेभ विलियम द्वारा (१५६१-१५९७ ई०) प्रतिष्ठित हुआ था। इन दो वेधमन्दिरोंके वेधोपलक्षमें यूरोपमें

नये युगकी अवतारणा हुई है। इस समय कई नये यन्त्र आविष्कृत हुए। इसके लिये स्वयं ताइको-ब्राहि और लैण्डग्रेभके ज्योतिर्विद् बुर्गी (Burgi) ही विशेष प्रशंसाके पात्र हैं। ताइकोब्राहि वेधशालाका नाम युरानिवर्गम है। यह स्थान वर्त्तमान कई वेधालयोंसे भी उत्कृष्ट था। ताइकोब्राहिकी गवेषणाके फलसे ज्योतिषशास्त्र विज्ञानकी दृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित हुआ था और उससे ही वह विश्वविद्यालयके आलोच्य विषय रूपसे गृहीत हुआ। लिनडेन और कोपेनहेगेनके विश्व विद्यालयके अध्यक्षने ज्योतिषशिक्षाका सिद्ध साधनके लिये सबसे पहले विद्यालयोंके साथ एक एक वेधमंदिर संगठन किया था।

इसके बाद धीरे धीरे नाना स्थानोंमें वेधमन्दिर प्रतिष्ठित होने लगे। १७वीं शताब्दीके मध्यभागमें डानजिक् नगरमें जोहानस् हेमेलियस नामक एक व्यक्तिने एक वेधशाला स्थापित की। इसके बाद ही राजानुग्रहसे पेरिस नगरमें और ग्रीनवीच (Greenwich) शहरमें जगत्की विख्यात वेधशाला प्रतिष्ठित हुई। इसके उपरान्त प्राच्य और प्रतीच्य जगत्में बहुतेरे वेधालय प्रतिष्ठित हुए थे।

पाश्चात्य और प्राच्यजगत्में सभी प्रधान शहरोंमें अभी यूरोपीय प्रणालीकी वेधशालायें दिखाई देने लगीं। किस स्थानमें किस समय वेधशाला प्रतिष्ठित हुई है, नीचे उनकी अकारादि क्रमसे सूची दी जाती है—

किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
आक्सफोर्ड	इङ्गलैण्ड	१७७१
अन्नपोलिस	अमेरिकाके मेरीलैण्ड	
अन्न आरवर	„ मिचिगन	१८५४
आदेलेड	दक्षिण-अष्ट्रेलिया	१८६१
आथेन्स	यूनान	१८४५
आपसला	स्कन्दनाभ	१७३०
आवो	रूस-फिनलैण्ड	१८१६
आमहर्ष्ट	अमेरिका-मासचुसेट	१८५०
आलजियर्स	अफ्रिका-अलजिरिया	१८७२
आलवानी	अमेरिका-न्यूयार्क	१८५१
आलतोना	जर्मनी	१८२३
आलीघेनी	अमेरिका-पेन्सिलवानीया	१८६०
इलिङ्ग	इङ्गलैण्ड-लण्डनके पश्चिमांशमें	१८३६
एडिनवर्ग	स्काटलैण्ड	१८११
एटना	इटली	१८७६
उत्तमाशा अन्तरीप	अफ्रिकाके केपटाउनके निकट	१८२०
उगिला	हङ्गरी	१८७१
ओडेसा	रूस	१८७२
ओरवेलपार्क	इप्सविच	१८७३
कर्क	इङ्गलैण्ड	१८७८
कर्डोबा	दक्षिण-अमेरिका	१८७१
कलोकजा	अष्ट्रोहङ्गरी	१८७५
कसान	रूस	१८१४
काकफिल्ड	इङ्गलैण्ड	१८६०
केडिज	स्पेन	१७६७
किफ	रूस	१८४०
किल	जर्मनी	१८७२
केउ	रिचमण्ड	१८४२
केम्ब्रिज	अमेरिका संयुक्तराज्य	१८३९
„	इङ्गलैण्ड	१८२०
कोइम्ब्रा	पुर्त्तगाल	१७९२
कोनिग्सवर्ग	जर्मनी	१८१३
कोपेनहेगेन	डेनमार्क	१६४१
क्लिण्टन	न्यूयार्क	१८५२
क्रेमसमुनष्टार	उत्तर-अष्ट्रिया	१७४८
खारकफ	रूस	
गटिङ्गन	जर्मनी	१८११
गलपरैत	इटली	१८६०
ग्रेटसहेड	इङ्गलैण्ड	१८७०
गोथा	जर्मनी	१७९१
ग्रीनविच	इङ्गलैण्ड	१६७५
ग्लासगो	इङ्गलैण्ड	१८४०
„	अमेरिका-युक्तराज्य	१८३६
चापुल्तेपेक	मेक्सिको	१८७३
जार्ज टाउन	अमेरिका युक्तराज्य	१८४४

किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
जूरिच	स्वीजरलैण्ड	१७५६
जेनोवा	"	१७७३
ट्यू रिन (तुरीन)	इटली	१७६०
टिफलिस्	रूस	१८६३
डबलिन	आयर्लैंण्ड	१७८५
डरहम्	इङ्गलैण्ड	१८४१
डानएक्	स्काटलैण्ड	१८७२
डोरपाट	रूस	१८०८
ड्रेसडेन	जर्मनी	१८८०
तासकन्द्	तुर्किस्थान	१८७४
तौलोस	फ्रान्स	१८४०
त्रिवन्द्रम	भारत-त्रिवांकुर राज्य	१८३६
दशेलदफ	जर्मनी	१८४०
दरबन	अफ्रिका	१८८२
नार्थफिल्ड	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७८
नाइस्	फ्रान्स	१८८०
न्यूयार्क	अमेरिका-युक्तराज्य	
न्यूहेवेन	"	१८३०
न्यूसाटेल	स्वीजरलैण्ड	१८५८
निकोलेफ	रूस	१८२४
नेपल्स	इटली	१८१२
पादुया	"	१७६१
परामत्ता	अष्ट्रेलिया	१८२१
पेरिस	फ्रान्स	१६६७
पालकोवा	रूस	१८३६
पालेर्मो	इटली	१७६०
पेकिङ्ग	चीन	१२७६
पोटस्डम	जर्मनी	१८७४
पोला	अष्ट्रिया	१८७१
प्रिन्सटन	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७७
प्रेग	अष्ट्रोहङ्गरी	१८५१
प्लनस्क	पोलैण्ड	१८७५
फ्लोरेन्स	इटली	१७७४
बन (Bonn)	जर्मनी	१८४५
बर्लिन	"	१७०५

किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
बारमारसाइड	इङ्गलैण्ड	१८७१
बोरकासल	आयर्लैंण्ड	१८३६
बुडापेस्त	अष्ट्रोहङ्गरी	१७७७
बोथकम्प	जर्मनी	१८७०
बोलोग्ना	इटली	१७२४
ब्रुसेल्स	बेलजियम	१८२६
ब्रेमेन	जर्मनी	१८३५
ब्रेसलड	"	
मास्को	रूस	१८२५
माउण्ट हेमिल्टन	अमेरिका-युक्तराज्य	१८७६
मादिसन	"	१८७८
माद्रिद	स्पेन	
मान्द्राज	भारतवर्ष	१८३१
मान्हिम	जर्मनी	१७७२
मारक्रोकासल	आयर्लैंण्ड	१८३४
म्यूनिक	जर्मनी	१८०६
मिलान	इटली	१७६३
म्यूदन	फ्रान्स	१८७५
मेलबोरन	अष्ट्रेलिया	१८५३
मेदिना	इटली	१८१६
मोनपुरिस्	फ्रान्स	१८७५
रागबी	इङ्गलैण्ड	१८७२
रिउडीजानरो	दक्षिण-अमेरिका ब्रेजिल	१८४५
रोचेष्टर	अमेरिका युक्तप्रदेश	१८७६
रोम	इटली	१८४८
लखनऊ	भारतवर्ष	१८४१
लान्द्	नारवे	१७६०
लिओनस्	फ्रान्स	१८७७
लिपजिक्	जर्मनी	१७८७
लिवरपुल	इङ्गलैण्ड	१८३८
लिमा	दक्षिण-अमेरिका पेरू	१८६६
लिलिएनथल	जर्मनी	१७७६
लेडेन	हालेण्ड	१६३२
वारसा	रूसिया	१८२०
वासिङ्गटन	अमेरिका-संयुक्तराज्य	१८३८

किस नगरमें वेधशाला है	किस राज्यमें	कब प्रतिष्ठित हुई
विण्डसर	न्यूसाउथवेल्स	१८६१
विलियमसटाउन	अमेरिका-मासचुसेटस	१८३१
विल्हियमसाफेन	प्रुसिया	१८७४
वियना	अष्ट्रिया	१७५६
विलना	रूस	१७५३
ष्टाकहोलम	स्वीडेन	१७५०
ष्टोनीहार्ष्ट	इङ्गलैण्ड	१८६७
ष्ट्रासवर्ग	जर्मनी	१८८१
सान्तियागो	दक्षिण-अमेरिका चिली	१८४६
सिडनी	अष्ट्रेलिया	१८५५
सेण्टहेलना	अफ्रिका	१८२६
सेण्टपिटर्सवर्ग	रूस	१७२५
स्पीरैल	जर्मनी	१८२७
स्लाफ (हर्सेलमन्दिर)	इङ्गलैण्ड चूण्डसरके समीप	१७८६
हाङ्गकङ्ग	चीन	१८८३
हनोवर	अमेरिका-युक्तराज्य	१८५३
हमवर्ग	जर्मनी	१८२५
हेरिणी	हङ्गरी	१८८१
हेलसींफोर्स	फिनलैण्ड	१८३२
हेप्रिङ्गस्	अमेरिका-युक्तराज्य	१८६०

यूरोपके वेधालयोंमें ग्रहवेधार्थ जो सब यन्त्र व्यवहृत होते हैं, उनमें टाइकोवाहिके आविष्कृत Muralquadrant और Sextant नामके दो यन्त्र प्रधान हैं। परवर्त्तीकालमें गणना और परिदर्शनकी सुविधाके लिये सेक्सटेण्टयन्त्रके साथ टेलिसकोप और माइक्रोमिटर नामके दो यन्त्रोंको संयोग कर दिया जाता है। इसके बाद जब पाश्चात्य जगद्वासी माध्याकर्षणतत्त्व जान गये, तब सौरजगत्‌के ग्रहनक्षत्रादिकी गतिकी सूक्ष्मता जाननेके लिये उत्तरोत्तर यन्त्रादिकी उन्नति और परिशुद्धिकी आवश्यकता हुई और ट्रानजिट नामक यन्त्र सेक्सटेण्टकी अपेक्षा अधिक उपयोगी समझा गया। इस यन्त्रके साहाय्यसे निरक्षोदयको (Right ascension) विभिन्नता सहज ही मालूम होती है। इसी समयमें घटिका (Clocks) और क्रणमिटर (Chronometer) यन्त्रको संस्कार हुआ। इसके बाद १६वीं शताब्दीमें सूक्ष्मगणनासे भ्रमनिवारणाके लिये जब उत्तरोत्तर परिदर्शनफलका अनुशीलन आवश्यक हो जाये, तब म्युरलकोयाड्राण्टके साथ ट्रानजिट् यन्त्र मिला कर एक नया यन्त्र गठित हुआ। वह "ट्रानजिट् या मेरिडियन सर्कल" नामसे पुकारा जाता है।

इसके उपरान्त स्थिर तारकाओं (Fixed stars) की प्रकृत गति अवधारित हुई, तब दूरवीक्षण यन्त्र और याम्योत्तर भित्तिमूलक यन्त्रोंकी (*Meridian* Instruments) उन्नतिकी चेष्टा की गई और उससे ही इन सब यन्त्रोंके नाना तरहसे संस्कार करनेकी आवश्यकता हुई।

यूरोपीय वेधालयोंके परिदर्शन कार्यमें नियुक्त एक एक सहकारी एक एक यन्त्रके निकट रह कर अपने अपने कर्त्तव्य पालन करते रहते हैं। वे सभी एक ज्योतिपराज (Astronomer Royal)के अधीन हैं। हमारे देशमें सवाई जयसिंह द्वारा स्थापित वेधालयोंके अध्यक्षरूपसे भी एक एक पण्डित ज्योतिष-राज नियुक्त थे। अमेरिकाके युक्त राज्यान्तर्गत वासिङ्गटन और फुलकेवा वेधालयमें एक एक यन्त्रकी परिदर्शन-व्यवस्था एक एक ज्योतिषीके ऊपर छोड़ी गई है और उनके इच्छानुसार ही कार्य परिचालित होता है। कई छोटी छोटी वेधशालाओंमें भी इसी तरह शेषोक्त व्यवस्था ही दिखाई देती है।

वेधित (सं० त्रि०) विध णिच्-क्त। छिद्रित, जिसमें छेद किया गया हो, जो वेधा गया हो।

वेधित्व (सं० क्ली०) वेधनका भाव या धर्म।

वेधिन् (सं० त्रि०) विध्यतीति विध छिद्रीकरणे णिनि। १ वेधकर्त्ता, वेध करनेवाला। २ वेधविशिष्ट। (पु०) अम्लवेतस। (राजनि०)

वेधिनी (सं० स्त्री०) वेधिन्-ङीप्। १ रक्तपा, जलौका, जोंक। २ मेथिका, मेथी। (त्रि०) ३ वेधकर्त्री, वेधनेवाली।

वेध्य (सं० क्ली०) विध-ण्यत्। १ लक्ष्य, वेध करनेका विषय। (त्रि०) २ वेधनीय, जो वेध करनेके योग्य हो।

वेन (सं० पु०) अजतीति अज गतौ (धापृवस्यज्यतिभ्यो नः। उण् ३।६) इति न, अजतेर्वीभावः। १ प्रजापति, पृथुराजके पिता। हरिवंशमें इसका विषय यों लिखा है—प्राचीनकालमें अत्रिवंशमें अत्रितुल्य गुणशाली अङ्ग नामक एक प्रजापति थे। धर्मराजकी दुहिता सुनीथाके गर्भसे इन महात्माको वेन नामक एक दुरात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ। कालक्रमसे वेन इस तरह कामासक्त और धर्मविद्वेषी हो उठा, कि उसके शासनकालमें वैदिक कार्यकलाप बिलकुल वन्द हो गया। वह धर्मविगर्हित लोकनिन्दित असदनुष्ठानको ही गौरवका आस्पद और पुरुषकार समझने लगा। इससे ब्राह्मणोंको स्वाध्याय और वषट्कार अर्थात् वेदाध्ययन तथा यागानुष्ठानसे वञ्चित रहना पड़ा। इससे पहले जो देवता सोमरसके पिपासु हो यज्ञभूमिमें आहूत होते थे; इसके राजत्वकालमें उनका नामोनिशान न रहा "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः।" विनाशकाल उपस्थित होने पर दुरात्माओंकी दुर्मति स्वतः ही ऐसी हो जाती है। वेनके भाग्यमें भी ऐसा ही हुआ। वेन अपने मनमें समझने लगा, कि इस त्रिभुवनमें मेरे सिवा और कोई पूज्य नहीं है। अतः देवोद्देशसे यागयज्ञ करना निष्फल आडम्बरमात्र है। फिर भी; जिनको ऐसा करनेकी प्रवृत्ति हो, उनको चाहिये, कि वे मेरे उद्देशसे ही यागयज्ञ करें, क्योंकि मैं इसका अद्वितीय पात्र और लक्ष्य हूं, मैं यष्टा और यज्ञ हूं।

एक बार मरीचि आदि महर्षि इसकी दुर्वृत्ततासे नितान्त असहिष्णु हो उस अतिक्रान्तमर्याद अनुचित कार्यप्रवर्त्तयिता वेनसे कहने लगे, "वेन! हम लोगोंने इच्छा की है, कि बहुवत्सरसाध्य यज्ञ करेंगे, तुम निरस्त हो। अब तुम अधर्माचरण करना छोड़ दो, यह सनातन धर्म भी नहीं है। तुम अत्रिवंशमें जन्म ग्रहण कर प्रजापति हुए हो, इसमें जरा भी संशय नहीं। अतएव यथाधर्म प्रजापालन करना स्वीकार भी तुमने किया है।" दुर्बुद्धि वेनने इन महर्षियोंकी बात पर हंस कर उत्तर दिया, कि ऋषिगण! मेरे सिवा धर्मके सृष्टिकर्त्ता और कौन है, मैं किससे धर्मकथा सुनने जाऊं। इस पृथ्वीमें ज्ञान, वीर्य, तपोवल तथा सत्यमें मेरे समान और कौन है? तुम लोग नितान्त मूर्ख हो और तेजहीन हो, इसीलिये मुझको निखिल प्राणीके, विशेषतः सर्वधर्मके स्रष्टा नहीं समझ रहे हो। इच्छा करने पर मैं पृथ्वीको दग्ध या जल द्वारा डुबा सकता हूं, स्वर्ग तथा मर्त्यको सहज ही अवरुद्ध कर सकता हूं।

महर्षिगण मोहान्ध और नितान्त गर्वित वेनको इस तरह विविध मधुर अनुनय वाक्योंसे भी जब शान्त नहीं कर सके, तब उनका क्रोधानल प्रज्वलित हो उठा। वे क्रोधित मुनिगण समवेत हो कर इस महावल गर्वित वेनको निग्रह कर उसके वायें ऊरुको मन्थन करने लगे। उस मध्यमान ऊरुसे एक कृष्णवर्ण छोटे आकारका पुरुष उत्पन्न हुआ। इस तरह काला पुरुष जन्म ग्रहण कर डरता हुआ हाथ जोड़ ऋषियोंके सामने खड़ा हुआ। ऋषिश्रेष्ठ अत्रिने उसको भयभीत देख 'निषीद' बैठो, यह कह कर उसका भय दूर किया। यह पुरुष ही निषादवंशका आदि पुरुष है। इससे धीवर सम्प्रदायकी सृष्टि हुई है। सिवा इसके विन्ध्य गिरिमें जो अधर्मरति तुम्बरु और तुषार नाम्नी असंख्य जातियां हैं, वे भी इस वेनके वंशसे उत्पन्न हैं।

इसके वाद महात्मा ऋषियोंने जातमन्यु हो वेनके दक्षिण हाथको मन्थन किया। इस मध्यमान बाहुसे हुताशनकी तरह तेजःपुञ्ज शरीर ले कर पृथु पैदा हुए। इन पृथुकी उत्पत्तिसे जगतीतलके लोग सन्तुष्ट हुए। पीछे इन्हीं पृथु द्वारा पुन्नाम नरकसे परित्राण पा कर वेन त्रिदिवधाममें गया। (हरिवंश ५ अ०) २ देवविशेष। ३ यज्ञ। (त्रि०) ४ मेधावी। ५ कामयमान। (ऋक् ८।८६।४)

वेनकूलेन—अंगरेजोंका एक प्रधान उपनिवेश। १८२५ ई०में मलक्का-प्रणालीके किनारे कुछ स्थानोंको जीत कर अंगरेजोंने यह स्थान ओलन्दाजोंको दे दिया था।

वेनवंश—राजपूत जातिकी एक शाखा। मिर्जापुर और रीवा अञ्चलमें इन लोगोंका वास है। दो पीढ़ी पहले ये लोग खारवाड़ नामसे परिचित थे, किन्तु अवस्था परिवर्त्तनके साथ साथ उनकी जातिगत और सामाजिक बड़ी उन्नति हुई। खारवाड़गण द्राविड़ीय वंशसम्भूत थे। उस वंशका कोई एक व्यक्ति भाग्यवशतः उक्त प्रदेशका सरदार बन बैठा। उसके बादसे ही इस वंशकी क्रमिक

उन्नति हुई। वर्त्तमान सरदार राज-उपाधिधारी हैं। एक सम्भ्रान्त चन्देलवंशकी कन्यासे इनका विवाह हुआ है।

वेनावा—मुसलमान फकीर सम्प्रदायविशेष। ख्वाजा हसन वसरी इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। भिक्षा ही इन लोगोंकी एकमात्र उपजीविका है। जब ये भिक्षाको निकलते हैं, तब गृहस्थके साथ अभद्रजनोचित वाक्योंका प्रयोग करते हैं। प्रत्येक वेनावाई कमरमें चमड़ेके तसमे पहनता है। वह तसमा खोल देना उनके लिये लज्जाका विषय है।

वेनून—इलाहावाद विभागके फतेपुर जिलान्तर्गत गाजीपुर तहसीलका एक प्राचीन ग्राम। यहां एक प्राचीन खंडहर दिखाई देता है। स्थानीय लोग इसे प्राचीन राजवंशका प्रतिष्ठित दुर्ग कहते हैं।

वेन्नूर—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिणकनाड़ा जिलान्तर्गत मङ्गलूर तालुकका एक नगर। यह मङ्गलूरसे २४ मील पूर्व-उत्तर तथा मूदुविद्रि (मैनुन) से १० मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां ३५ फुट ऊँची एक जैनमूर्त्ति चबूतरे पर खड़ी है। वह मूर्त्ति कारकलकी मूर्त्तिसे छोटी होने पर भी उसमें बड़ी कारीगरी दिखलाई गई है तथा वह उससे प्राचीन और श्रेष्ठ भी है। पास ही में एक मन्दिर, मन्दिरद्वार और सामनेमें एक प्रस्तर-स्तम्भ भास्कर शिल्पसे परिपूर्ण है। मूल मन्दिरकी बगलमें और भी एक जैन मन्दिर है। उसके चारों ओर स्तम्भ खड़े हैं। इसके मूलदेशमें कुछ नागकल और एक वीरकल है। यहांके विमन्नर वस्ती नामक जैनमन्दिरमें १५३६ शकको उत्कीर्ण एक शिलालिपि संलग्न है। गोमतेश्वरदेव नामकी उक्त बड़ी प्रतिमूर्त्तिके शरीरमें एक शिलालेख दृष्टिगोचर होता है। इसके सिवा वेनूरके गोमतेश्वर, अक्कङ्गल और तीर्थङ्कर वस्तीमें १६०४ से १६२४ ई०के मध्य प्रदत्त कुछ शिलालिपियां नजर आती हैं। वे सभी शिलालिपियां मन्दिरके व्ययभारवहनके लिये दान उपलक्षमें खोदी गई हैं।

वेनोविशाले (सं० क्ली०) साममेद।

वेन्तिपुर—उत्तर-भारतके काश्मीर राज्यका एक बड़ा गांव। यह काश्मीर उपत्यकाकी प्राचीन राजधानी समझा जाता है। आज भी यहां उस प्राचीन कीर्त्तिकी परिचय स्वरूप अनेक भग्न अट्टालिकादि देखनेमें आती हैं। यह नगर झेलम नदीके किनारे श्रीनगरसे १६ मील दक्षिणपूर्व इसलामाबाद जानेके रास्ते पर अक्षा० ३०° ५४´ उ० तथा देशा० ४५° ६´ पू०के मध्य अवस्थित है। काश्मीरके इतिहाससे जाना जाता है, कि राजा अवन्तिवर्माने (८५६ ई०में) अपने नाम पर अवन्तिपुर नगरको बसाया। वही पीछे वन्तिपुर कहलाने लगा है। यहां वेङ्कटादेवी और वेन्तिमदांती नामकी दो बड़ी अट्टालिकाका खंडहर दिखाई देता है। शायद उक्त दो देवमन्दिर संलग्न प्राचीन कोई अट्टालिका होगी। उनके बिलकुल नष्ट हो जाने पर भी उसमें काश्मीरके प्राचीन स्थापत्य-शिल्पका अद्भुत निदर्शन देखनेमें आता है।

वेनौधा—उत्तर-भारतका प्राचीन देशविभाग। यह वेनावत नामसे भी मशहूर है। जौनपुरका पश्चिमांश, आजमगढ़, वाराणसी और अयोध्या प्रदेशका दक्षिणांश ले कर यह विभाग संगठित हुआ है। कोई कोई कहते हैं, कि वाईसवाड़से बीजापुर तथा गोरखपुर तकका स्थान इसी नामसे परिचित था। इसमें अभी ५२ परगने लगते हैं। १२ देशीय राजाओंसे यह स्थान परिचालित होता है। उनमेंसे बीजापुरके गहरवाड़गण, खानजादे और वत्सगोती आदि जमींदार ही प्रसिद्ध हैं।

वेन्दकार—उड़ीसावासी शवर जातिकी एक शाखा। केउँझर, वामड़ा और दक्षिणगड़जात महलके नाना स्थानोंमें इस जातिका वास है। केउँझर और जामदापीरके उत्तर कोलहान पहाड़ी प्रदेशके निविड़वनमें तथा वेन्दकार-वुरु नामक शैलशृङ्गके वनमें वेन्दकार जाति रहती है। शवर लोग साधारणतः पर्वतशाद्वल गोदावरी नदीकी तीरभूमि पर्यन्त विस्तृत स्थानमें वास करते हैं सही पर वह वेन्दकारोंकी वासभूमिकी तरह निविड़ जङ्गलावृत नहीं है। शवर लोग अपनी आदि भाषा बोलते हैं, किन्तु वेन्दकार शवरोंकी कोई निजस्व भाषा नहीं है और न उनके मध्य किसी प्रकारकी वंशगत किंवदन्ती ही है। उनकी भाषा उड़िया भाषासे मिलती है। जो समतल क्षेत्रमें अथवा अपेक्षाकृत वनहीन प्रदेशके प्रान्तरादिमें अन्यान्य

जातियोंके साथ रहते हैं, उन्होंने निम्न श्रेणीके उड़िया लोगोंके आचार व्यवहारका बहुत कुछ अनुकरण किया है। वे वाशुली वा बाँसुरी देवी नामकी एक स्त्रीमूर्त्तिकी उपासना करते हैं तथा ठाकुरानी कह कर उनके प्रति बड़ी श्रद्धा भक्ति दिखलाते हैं। प्रति वर्ष वे उस देवी मूर्त्तिके सामने मेड़ा और मुर्गीको बलि देते हैं। किन्तु प्रत्येक दश वर्षके अन्तर पर वेन्दकार-दल अपने वंशगत मङ्गलके लिये इस देवीके सामने भैंस, जंगली सूअर, बकरे और १२ मुर्गेकी बलि चढ़ाते हैं।

विवाहके समय कन्याके आत्मीय उसे ले कर वरके घर आते हैं, वहीं पर नव दम्पतीको आम्रपल्लवसे समाच्छादित पूर्ण कलसके चारों ओर ढाई बार घुमाते और बादमें स्नान कराते हैं। स्नानके बाद वर और कन्याका हाथ एक साथ बांध दिया जाता है। वही विवाहबन्धनकी समाप्ति है।

ये लोग वृक्षकी डाल पत्ती और घास आदिसे अपना अपना घर तय्यार करते हैं जंगली फल मूलादि ही उनका प्रधान खाद्य है। कभी कभी जंगली जानवरका शिकार कर उसका मांस खाते हैं। किसी किसी नदी वा झोराके किनारे वेन्दकार लोग थोड़ी मिट्टी कोड़ कर उसमें धान, जुनहरी आदि बो देते हैं। यही फसल उनकी उपजीविका है। इसके सिवा वनजात द्रव्योंका संग्रह कर वे निकटवर्त्ती ग्रामवासियोंके साथ विनिमय करते हैं।

वेन्द्रामूलङ्का—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ३५´ उ० तथा देशा० ८२°२´ पू० के मध्य गोदावरीकी कौशिकी शाखाके किनारे अवस्थित है।

वेन्दी—मन्द्राज प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत तेक्कलि राज्यका एक नगर। यह बुब्बलु बन्दरसे ४ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर है जिसमें अच्छी कारीगरी दिखलाई गई है।

वेन्न—कोणमण्डलके एक सामन्त। ये मुम्मड़ी भीम १मके पुत्र थे।

वेन्ना (सं० स्त्री०) एक पवित्र नदी। इस नदीमें स्नान करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं।

"वेन्ना भीमरथी चोभौ नदी पापभयापहौ।"

(भारत ३।८८।३)

वेन्य (सं० त्रि०) १ कमनीय, खूबसूरत। (ऋक् २।२४।१०) २ वेन नामक ऋषिके पुत्र।

(ऋक् १०।१४८।५)

वेपथु (सं० पु०) वेपनमिति वेप (ट्वितोऽथुच्। पा ३।३।८९) इति अथुच्। कम्प, कांपनेका क्रिया, कँपकँपी।

वेपथुमत् (सं० त्रि०) वेपथु अस्त्यर्थे मतुप्। कम्पयुक्त

वेपन (सं० क्ली०) वेप-ल्युट्। १ कम्पन, काँपना। २ वातव्याधि।

वेपमान (सं० त्रि०) वेप-शानच्। कम्पमान।

वेपस (सं० क्ली०) वेप कम्पने (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उणा् ४।१८८) इत्यसुन्। १ अनवद्य। २ विरेप। ३ कर्म।

(निघण्टु २।१।५)

वेपिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय स्तुतिकारी।

(ऋक् ६।११।३ सायण)

वेपुर—मन्द्राज प्रदेशके मलबार जिलान्तर्गत एक छोटा नगर और बन्दर। यह अक्षा० ११° १०´ उ० तथा देशा० ७५° ५´ पू०के मध्य कालीकटसे ७ मील दक्षिण वेपुर नदीके किनारे अवस्थित है। १८५८ ई०में इस नगरमें मन्द्राज रेलपथका टर्मिनस स्थापित हुआ जिससे वाणिज्य-समृद्धिके साथ साथ इस स्थानकी बड़ी उन्नति हुई है। पुर्त्तगीजोंने यहांके कल्याण नामक स्थानमें एक कोठी बनाई, किन्तु उस कोठीका कार्य्य अधिक दिन सुश्रृङ्खलासे न चला। टीपू सुलतानने इस स्थानको मलबारकी राजधानी बना कर इसका 'सुलतान पत्तनम्' नाम रखा। आज भी उसके कितने निदर्शन दृष्टिगोचर होते हैं।

१७९७ ई०में यहाँ आरेकी कल (Saw mill), १८०५ ई०में कैम्बिस बनानेका कारखाना, १८४८ ई०में लोहेका कारखाना, पीछे जहाज बनानेका डक और १८५८ ई०में रेल खुली जिससे इस स्थानकी दिनोंदिन उन्नति होती जा रही है। भाटेके समय भी इस नदीमें १२ वा १४ फुट जल रहता है। अतएव नाव पर ३ सौ टन माल लाद कर इस नदीमें सब समय ले जा सकते हैं।

अक्करलोनी उपत्यका और वैनादके दक्षिणपूर्वमें

उत्पन्न सभी प्रकारके कहोवे और चावलकी आमदनी इस बन्दरमें होती है। इसके सिवा घाट-पर्वतमालासे शालकी लकड़ी ला कर यहां उसको चिराई होती और बादमें अन्यान्य स्थानोंमें रफ्तनी होती है। यहां लोहा और लिगनाइट नामक खनिज पदार्थ मिलता है।

नगरके पास ही फेरोख नगरका परित्यक्त वास-भवनादि मौजूद है। टीपू सुलतान इस नगरकी श्री-वृद्धि करनेके लिये बड़े यत्नवान् थे। नगरसे ५ मील पूरब 'छातपरम्बा (मृतक्षेत्र) नामक मैदान है। यहां बहुतसे प्राचीन प्रस्तरस्तम्भ तथा जगह जगह वृत्ताकार-सज्जित पत्थरके टुकड़ोंसे घिरी हुई भूमि है। यहांके लोग उसे समाधिक्षेत्र कहते हैं।

यहां एक प्राचीन दुर्ग था। निकटवर्त्ती चालियम नामक स्थानमें अली अबदुल्लाकी १३०२ ई०की बनाई हुई मसजिद और पुर्त्तगीजोंका एक दुर्ग था। १५७० ई०में कालीकटके सामरीने उस दुर्गको अधिकार कर लिया। पुर्त्तगीज गवर्मेण्टके हुकुमसे दुर्गाध्यक्ष डि कैप्टरका शिर काट डाला गया था।

वेपुर—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके मलबार जिलेमें प्रवाहित एक नदी। वहांके लोग इसे पुण्यपयः वा पौनपूय कहते हैं। नेड्डिवत्तम् गिरिसङ्कटकी दक्षिणस्थ शैल-मालासे यह निकल कर अकलोंनी उपत्यकामें चली गई है। पीछे कार्कूर सङ्कटके उत्तर घाटपर्वतपृष्ठ पर होती हुई समतलक्षेत्रमें आई है। पर्वतपृष्ठ पर नदीतटकी वनशोभा, रजताकार प्रपातोंका समूह देखने लायक है, उस ओर देखते ही पथिकोंका मन आकृष्ट हो जाता है।

पर्वत परसे जब यह नीचे उतरी है, तब बहुत-सी छोटी छोटी स्रोतस्विनीने मिल कर इसके कलेवरको बढ़ाया है। उनमेंसे करीमपुया स्रोत ही प्रधान है। यहां नदीके ऊपर एक सुन्दर काठका पुल है। इस नदीके आरिकोद नगर तक आने पर कोदियातुर नामकी एक दूसरी शाखा नदी इसमें मिल गई है। वेपुर नदीकी बगल हो कर जहां यह समुद्रमें मिलती है वहां इससे एक दूसरी शाखा मिल गई है। दोनोंके सङ्गम-पर जो बालू इकट्ठा हो गया है उससे चालियम द्वीपकी उत्पत्ति हुई है। यहीं पर मन्द्राज रेलपथकी दक्षिण-पश्चिम शाखाका "टर्मिनस" स्थापित है।

सभी ऋतुओंमें इस नदी हो कर बड़ी बड़ी नावें आरिकोद तक जाती आती हैं। वर्षाकालमें नदीका जल बहुत बढ़ जाता है जिससे नावें और भी दूर तक जा सकती हैं। मुहानेका बालूचर ज्वारके समय १८ फुट और भाटेके समय १२ फुट निम्न रहता है।

वेपेरि—मन्द्राज शहरका उपकण्ठस्थित एक नगर। यह अक्षा० १३° ६' ३० तथा देशा० ८०° १६' पूके मध्य विस्तृत है। अभी यह मन्द्राजके साथ मिल गया है।

वेप्पत्तुर—मन्द्राज-प्रदेशके तंजोर जिलान्तर्गत कुम्भकोनम् तालुकका एक नगर। नगर हिन्दू प्रधान है, पांचहजारसे अधिक हिन्दुओंका वास होगा।

वेप्पु—मन्द्राज प्रदेशके कोचीन राज्यका एक उपविभाग। कुछ नदियोंसे जो बालू समुद्रके किनारे जमा हो गया है उससे चर बना है, वह चर धीरे धीरे द्वीपके आकारमें परिणत हो गया है। मलयालम् भाषामें ऐसे चरको वप्पु कहते हैं। पुर्त्तगीजोंने इसका वाइपिन (Vypin) शब्दमें उल्लेख किया है। तभी-से यह स्थान इतिहासमें वाइपिन नामसे ही लिखा जाता है। अभी नदीके मुहाने और समुद्रकूलके स्थिर जलमें वीप्पु एक छोटे द्वीपमें विराज कर रहा है। खास कोचीनसे यह समुद्र जल द्वारा विच्छिन्न है।

कोचीन राजसरकारके प्राचीन कागजातोंसे जाना जाता है, कि १३४१ ई०में यह पुतुवेप्पू समुद्रपृष्ठसे उन्नत हो कर देशरूपमें गिना गया। इसका दक्षिणांश अङ्गरेजोंके दखलमें आयकोट्ट दुर्ग स्थापित था। १६६ ई०में यहां एक छोटा रोमन कैथलिक गिरजा स्थापित हुआ था। कालीकटके सामरीराज यहां १५०३ ई०में पराश्त हुए थे।

वेप्पुर—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलांतर्गत गुड़ियातम्-तालुकका बड़ा ग्राम। यह गुड़ियातम्से ३॥ मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन गणेशका मन्दिर है।

वेप्पूर—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलांतर्गत आर्कट

तालुकका एक प्राचीन नगर। यह आर्कट सदरसे २ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां चोलराजाओंका प्रतिष्ठित आरु-काडू वा षड्वनमंदिर विद्यमान है। यह वशिष्ठमंदिर नामसे परिचित है। मंदिरगात्रमें बहुत-सी शिलालिपियां देखी जाती हैं।

वेप्पमवट्ट—मन्द्राज प्रदेशके सलेम जिलांतर्गत उत्तङ्गराई तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह वेलूरके पास अवस्थित है। विजयनगरराज वीर प्रताप बुक्क २य (१४०६ ई में) मन्दिरमें कुछ दान कर एक शिलाफलक उत्कीर्ण कर गये हैं।

वेभारिज—भारतवर्षके सुप्रसिद्ध अङ्गरेजी इतिहास लेखक।

वेम—कोण्डविड़के रेड्डीवंशीय एक राजा।

वेम (सं० पु०) वे-मन् न आत्व'। वापदण्ड।

वंमक (सं० पु०) एक स्वर्गीय ऋषि। (हरिवंश)

वेमचित (सं० पु०) असुरराजके एक पुत्रका नाम। (ललितविस्तर)

वेमन (सं० पु०) वयत्यनेनेति वे (वेञः सर्वत्र। उण् ४।१४६) इति रमनिन्। वापदण्ड। (शुक्लयजुः १६।८३)

वेमपल्ली—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलांतर्गत पुलिवेण्डला तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १४° २२' उ० तथा देशा० ७७° ५०' पू० के मध्य पापघ्नी नदीके किनारे अवस्थित है। यहां वृषभाचलेश्वरस्वामी नामक एक प्राचीन शिव वा नन्दोके उद्देशसे स्थापित मंदिर है। प्रवाद है, कि राजा जनमेजयने यह मन्दिर बनवाया था। मन्दिर नदीतीरस्थ एक बड़े पहाड़की चोटी पर स्थापित है। इससे इसकी शोभा और भी मनोरम है। मन्दिरगात्रमें कुछ शिलालिपियां भी देखी जाती हैं। यहांके अधिवासियोंमें अधिकांश हिन्दू हैं।

वेमपल्ल—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलांतर्गत मदनपल्ली तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह मदनपल्लीसे ३ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। गाँवके एक मन्दिरमें १६७८ शकको उत्कीर्ण एक शिलाफलक दिखाई देता है।

वेमरविल्ली—मंद्राज प्रेसीडेंसीके गञ्जाम जिलांतर्गत श्रीकाकोल तालुकका एक बड़ा ग्राम। यह श्रीकाकोलसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। प्रायः तीन सौ वर्ष बीत गये, यहां एक टीलेसे पचास छोटी छोटी देवमूर्त्तियाँ निकाली गई हैं। प्रति वर्ष उन देवमूर्त्तियोंके उद्देशसे भंडारा होता है और बहुतसे मनुष्य देवप्रसाद पानेकी आशासे यहां आते हैं।

वेमराज—१ दाक्षिणात्यका रेड्डीवंशीय एक सरदार। यह प्रोलका लड़का था। २ शृङ्गारदीपिका नाम्नी अमरुशतकटीकाके प्रणेता। इनका दूसरा नाम वेमभूपाल भी है।

वेमवरम्—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत नरसरावूपेट तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहां एक अति प्राचीन विष्णुमन्दिर विद्यमान है।

वेमवरम्—मन्द्राज-प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक नगर। यहां रेड्डी सरदारोंका (१३२८-१४२७ ई०) प्रतिष्ठित एक प्राचीन मन्दिर है।

वेमानभैरवार्य—वर्णक्रमदर्पणके रचयिता।

वेमुला—मन्द्राज-प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत पुलिवेण्डला तालुकका एक नगर। यह पुलिवेण्डलासे ७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां पोलिगारोंका एक दुर्ग विद्यमान है।

वेम्बकोट्टई—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके तिन्नेवल्ली जिलान्तर्गत सतुर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ६° २०' उ० तथा देशा० ७७° ५०' पू०के मध्य सतुर सदरसे १० मील पश्चिममें अवस्थित है।

वैयत—बम्बई प्रदेशके कच्छोपसागरस्थ एक द्वीप। यह अक्षा० २२° २५' से २२° २६' उ० तथा देशा० ६६° से ६६° १२' पू०के मध्य अवस्थित है। यह द्वीप उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिममें ५ मील लंबा है। इसका दक्षिणपश्चिमांश प्रायः ६० फुट ऊँची एक पहाड़ी अधित्यका भूमि है। इसका पूर्वांश पगानामक वालुकाचरसे ३ मील दूर पड़ता है। यह स्थान हनूमान-पाथेण्ट वा हनूमत् अन्तरीप नामसे प्रसिद्ध है। अन्तरीपके मुखसे थोड़ी ही दूर पर हनूमानका मन्दिर है। उसी मन्दिरसे इस स्थानका नामकरण हुआ है। यहांका दुर्ग अक्षा० २२° २८' उ० तथा देशा० ६६° ५' पू०के बीच पड़ता है। यहां कृष्णोपासनाका प्रादुर्भाव अधिक है। बहुतसे मन्दिरोंमें आज भी कृष्णकी माधुर्यमयी मूर्त्ति विराज रही हैं। पंडा ब्राह्मण यहांके प्रधान अधिवासी हैं। प्रति वर्ष

बहु संख्यक यात्री द्वारका सन्निधिस्थ भगवान्‌के इस लीलाक्षेत्रमें आते हैं।

१८५६ ई०में अंगरेज-राजने जब वाघिरोंसे यह छीन लिया; तब दोनोंमें घमसान युद्ध चला था। उसी युद्धमें यहांका दुर्ग और प्रधान प्रधान मन्दिर तहस नहस हो गये।

वेर (सं० क्ली०) अज-रन्। अजेर्वीभावः। १ शरीर, देह, वदन। २ वार्त्ताकु, बैंगन। ३ कुंकुम, केसर।

वेरक (सं० क्ली०) कर्पूर, कपूर।

वेरट (सं० पु०) १ मिश्रित, मिलाया हुआ। २ नोच। (क्ली०) ३ वदरीफल, वेर नामक फल।

वेरद—बम्बई प्रेसिडेन्सीके कोल्हापुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ३६´ उ० तथा देशा० १४° ११´ पू०के मध्य पञ्चगङ्गा नदीके किनारे कोल्हापुर सदरसे ६ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इस नगरका दूसरा नाम वोड़ भी है। एक समय इस नगरमें कोल्हापुर और पनालाके अधीनस्थ किसी सरदारकी राजधानी थी। अभी यह श्रीभ्रष्ट हो कर एक छोटे गांवमें परिणत हो गई है। गांवमें जहां तहां प्राचीन इमारतका खंडहर दिखाई देता है। गांवमें पत्थरका बना एक प्राचीन मन्दिर है। खंडहर देखनेसे मालूम होता है, कि १२०० ई०में उसका निर्माण हुआ था। नगरमें जो प्राचीन मिट्टीका किला है उसमें आज भी प्राचीन मुद्रा पाई गई है। उक्त मन्दिरकी देवमूर्त्तिके पादप्रदेशमें एक प्राचीन प्रस्तरफलक उत्कीर्ण है।

वेरनाग—उत्तर भारतके काश्मीर राज्यान्तर्गत एक सोता। यह श्रीनगर उपत्यकाके दक्षिण-पूर्व अक्षा० ३३´ उ० तथा देशा० ७५° १५´ पू०के मध्य बहता है। १२० गज परिधियुक्त भूमिके मध्यसे यह जलराशि निकल कर झेलम नदीके कलेवरको बढ़ाती है। मुगल-सम्राट् जहाँगीरने इसको चारों ओरसे बंधवा दिया था।

वेरवाड़—राजपूत जातिकी एक शाखा। गाजियाबाद, आजमगढ़ और फैजाबाद आदि जिलोंमें इन लोगोंका वास है। गाजियाबादके वेरवाड़ा लोगोंका कहना है, कि शुभक्षणमें नरौलियाकी सहायताके लिये उन्होंने अपनी वासभूमि दिल्लीके समीपस्थ वेरनगरका परित्याग किया था तथा चेरो जातिको परास्त कर वे उस प्रदेशके अधिवासी हुए। आजमगढ़के वेरवाड़का कहना है, कि वे लोग राजपूत हैं सही, पर भूमिहारोंके साथ भी उनका संस्रव है। दुःखका विषय है, कि उक्त दोनों जातियाँ किस पुरुषसे उत्पन्न हुई, उसे आज तक वे स्थिर न कर सके हैं। भूमिहारोंके वंशाख्यानसे केवल इतना ही जाना जाता है, कि वे लोग पश्चिमाञ्चलसे इस देशमें आये हैं। छत्रियोंका कहना है, कि वे लोग दिल्लीके निकटवर्त्ती नगरमें रहते थे। वे लोग तोमरवंशीय हैं, अपने देशका परित्याग कर सरदार गोरक्षदेवके अधीन आजिमगढ़ आ कर बस गये। १३६३-१५१२ ई०के मध्य गोरक्षदेव जीवित थे। फैजाबादके रहनेवाले अपनेको घुण्डियाखेरावासी वाई वंशसे उत्पन्न बतलाते हैं।

छत्रि और भूमिहारगण एक शाखासे उत्पन्न हुए हैं। विवाह वा अन्यान्य भोजके समय ये लोग एक दूसरेके यहां बड़ा नहीं खाते।

वेरसोवा—बम्बई प्रेसिडेन्सीके ठाना जिलान्तर्गत एक नगर और बन्दर। इसका दूसरा नाम वेसावा भी है। यह अक्षा० १९° ९´ उ० तथा देशा० ७२° ५´ पू०के मध्य विस्तृत है। बम्बई शहरसे १२ मील उत्तर समुद्रकी एक खाड़ीके मुहाने पर यह बसा हुआ है। इसके पास ही माध नामक द्वीप है। यह द्वीप दुर्ग द्वारा सुरक्षित है। वेरसोवा ग्राम और माधद्वीपके मध्यस्थल में प्रस्तरमय भूमिके ऊपर वेसवा दुर्ग है। पुर्त्तगीजोंने समुद्रके किनारे अपनी कोठी जमानेके लिये शायद यह दुर्ग बनाया होगा। इसके बाद मराठोंने उस दुर्गका पुनः संस्कार कर उसमें सेना रखनेकी व्यवस्था कर दी थी। यहांका सामुद्रिक वाणिज्य आज भी अप्रतिहतभावमें चलता है।

वेरानिले—मन्द्राज प्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत मालुर तालुकका एक नगर। यहां प्रायः ६ हजार लोगोंका वास है।

वेरापोली—मन्द्राज-प्रदेशके त्रिवांकुड़ राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १०° ४´ उ० तथा देशा० ७६° २०´ पू०के मध्य कोचीनसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है।

यह स्थान कर्मेलाइट मिशनका प्रधान केन्द्र है। यहां खृष्टतन्त्रका एक भिकार एपाष्टलिक हैं। १६५६ ई०में उस एपस्टोलिक (Vicariate Apostolic of Verapoli) प्रतिष्ठासे ही वेरापालिकी प्रसिद्धि है। यह ईसाई-मठ बहुत दूर तक फैला हुआ है। इसके बाद १६७३ ई०में यहां एक गिरजा बनाया गया। उस समय इस द्वीपमें एक भी आदमी नहीं रहता था तथा यह द्वीप कोचीनराजके अधिकारमें था।

गिरजा-घरको छोड़ कर मठ-वाटिकाका दृश्य भी मनोरम है। यह ईंटका बना हुआ है और तीन खण्डोंमें विभक्त है। इस मठवाटिकाके उत्तरी प्रान्तमें गिरजा-घर अवस्थित है। उसकी आकृति छोटी होने पर भी वह वेरमकी राजधानीके सेण्टपीटर गिरजा-घरसे कम नहीं है। इसके विभिन्न भजन-मन्दिरोंमें (Chapel) ईसाईसाधुओं और नाना पौराणिक चित्रकी प्रतिमूर्त्ति ग्रथित और रक्षित है।

भारतवर्षके अन्यान्य स्थानोंमें प्रतिष्ठित १७वीं सदीके मठसे यह छोटा होने पर भी यहां बहुतसे देशी ईसाई पादरी और रोमन कैथलिक ईसाई सम्प्रदायका वास है। यहांके रोमनकैथलिकको संख्या २ लाख ८० हजारसे भी ज्यादा है। धर्मयाजककी संख्या प्रायः ४ सौ है। रोमन-कैथलिक ईसाइयोंमें तृतीयांश प्रायः सिरिय मतानुसरण करके ही चलते हैं। उनमें २ विशप और १४ प्रिष्ट हैं। ये लोग यूरोपीय तथा कर्माइट मतानुसरणकारी हैं। ऊपर कहे गये रोमन कैथलिकोंको छोड़ कर यहां साइरो-नेष्टोरियन वा जेकोबाइट मतावलम्बी और भी बहुतसे लोगोंका वास है। ये लोग साधारणतः सिरियन खृष्टान नामसे परिचित हैं।

वेरामपुर (वहरमपुर)—वङ्गालके दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

वेरार—मध्यभारतके अन्तर्गत एक स्वतन्त्र प्रदेश। यह वेरार राज्यके नामसे प्रसिद्ध था। हैदराबादके राजा निजामने जब इस प्रदेशका कर्त्तृत्व अंग्रेजोंके हाथ सौंपा, तबसे यह हैदराबाद एसाइण्ड डिष्ट्रीक्ट नामसे विख्यात हुआ। हैदराबादके रेजिडेण्ट वेरारके चीफकमिश्नरके पद पर रह कर शासनकार्य निर्वाह करते थे। इस समयसे वेरारराज्य अकोला, बुलदाना, वासिम, अमरावती, इलिचपुर और वुन नामके ६ जिलेमें बंट गया। इसकी उत्तरी और पूर्वी सीमा पर मध्यप्रदेश, दक्षिणमें निजाम राज्य और पश्चिममें बम्बई प्रेसिडेन्सी मौजूद है। इसका भूपरिमाण १६७१० वर्गमील है।

समूचा वेरार राज्य पूर्वपश्चिममें विस्तृत एक सुदीर्घ उपत्यका भूमि है। इसके उत्तर भागमें सतपुरेकी पहाड़ियां और दक्षिणमें अजण्टा शैलश्रेणी है। वहांके लोग सतपुरेके सन्निहित उपत्यका देशको वेरार पयानघाट और अजण्टाशैल तथा उसके अन्तर्गत अधित्यका देशको वेरार बालाघाट कहते हैं। इन दो भागोंमें उत्तरांश ही अपेक्षाकृत उर्वर और शस्यशाली है। यहां ताप्तीकी शाखा स्वरूप पूर्णा आदि कई छोटे छोटे पहाड़ी जलप्रवाह आ कर ताप्तीमें मिल गये हैं। यहां नियमित भावसे और यथेष्ट परिमाणसे वृष्टिपात होता है। इन सब कारणोंसे यहाँ कभी भी जलाभाव नहीं होता। इससे सदा यहाँकी पृथ्वी शस्यशालिनी दिखाई देती है। शरत्कालमें शस्यपूर्ण खेतोंकी श्रीशोभा बड़ी ही आनन्दप्रद है। अधिकांश स्थान ही खेतीबारीके लिये उपयोगी हैं और उद्यमशील कृषिजीवी अधिवासी विशेष परिश्रमके साथ भूमिकर्षण और बीजवपन किया करते हैं। कुनवी, भील आदि दृढ़काय पहाड़ी लोग यहां कृषिकार्य करते हैं।

भूपरिमाणकी तुलनामें वेरारप्रदेश आयर्लियन द्वीपको छोड़ यूनानके बराबर है। किन्तु यहांकी लोकसंख्या वहांसे दूनी है। इसके पूर्व पश्चिमकी लम्बाई प्रायः १५० मील और चौड़ाई प्रायः १४४ मील है। यहां कुल मिला कर ५५८५ ग्राम हैं। ताप्ती, पूर्णा, वर्द्धा और पेनगङ्गा या प्राणहिता नदी ही यहांकी प्रधान हैं। किन्तु इन सबोंमें वर्द्धा नदी द्वारा ही यहांका काम अधिकतासे निकलता है। बुलदाने जिलेकी लोनार नामकी लवणाक्त झील पहाड़ी सौन्दर्यसे पूर्ण है। इस झीलके चारों ओर ही पहाड़ हैं, मानो गोलाकार झील चारों ओर इनसे घिरा हो। ये पर्वतगात्र नाना जातीय वृक्षोंसे परिशोभित हैं। झीलका जलभाग ३४५ एकड़ है; किन्तु तीरभूमिकी परिधि ५॥ मील है।

कुछ दिन पहले यहां जो पैमाइश हुई थी, उसके अनुसार यहांका वनभाग ४३५४ वर्गमील अवधारित हुआ था। उनमें ११'६ वर्गमील राजरक्षित, २८३ वर्गमील जिलेसे रक्षित और २१५५ मील अरक्षित अवस्थामें पड़ा हुआ है। इन सब वनमालामें गाविलगढ़ शैलका वन ही उत्कृष्ट है। यहां बेरार वासियोंका नित्यव्यवहार्य और गृहनिर्माणकी उपयोगी वस्तु लकड़ी और बांस अधिक परिमाणसे उत्पन्न होते हैं। दक्षिण बेरारकी गांरा उपत्यकाके मेलघाट नामक पार्वत्य प्रदेशमें सेगुनकी लकड़ी बहुतायतसे होती है। यहां पशुओंकी चराईके लिये घास भी अधिक उत्पन्न होती है। अमरावतीके उत्तरी तटके अधिवासी और पूर्णानदीके उत्तरी तटके ग्रामवासी यह लकड़ी और घास घर बनानेके काममें लाते हैं।

बेरारराज्यके पूर्वांशमें और वहांके करञ्ज पर्वत पर प्रचुर परिमाणसे खनिज लौह पाये जाते हैं। दुर्भाग्यका विषय है, कि देशीय लोग इस लौहको गला कर कोई काम नहीं करते। अथवा किसी धातुविद् वैज्ञानिक परीक्षा द्वारा उसका लौहांश निरूपण नहीं करते। वुन जिलेके वर्द्धाके उपत्यकादेशमें उत्तर-दक्षिणमें फैली हुई कोयलेकी एक खान (Coal-field) मिली है। उत्तरमें वर्द्धासे दक्षिण पेनगङ्गा तक यह क्षेत्र विस्तृत है। सन् १८७५ ई०में इसकी बातकी परीक्षा भूगर्भ खोद कर की गई, कि इस क्षेत्रमें कितना कोयला है। इस समय कई जगहसे कोयला निकाला गया था। किन्तु उपस्थित कोयलेकी बिक्रीकी सुविधा न रहनेसे यह कार्य स्थगित रखा गया। नागपुरसे भुसावल और बम्बई जानेके लिये रेलपथ इस प्रदेशके बीचसे पूर्व पश्चिम गया है जिससे कपास आदि वाणिज्यकी विशेष उन्नति हुई है। भारतके अन्यान्य स्थानोंकी रूईकी अपेक्षा यहांकी रूई उत्कृष्ट और यहां प्रभूत परिमाणसे इसकी खेती होती है।

यहांका जलवायु नितान्त खराब नहीं है। दाक्षिणात्यके सर्वत्र ही जिस तरह नातिप्रखर ग्रीष्म और मलयानिल सञ्चालित मृदुमन्द शैत्य अनुभूत होता है यहां भी प्रायः वैसा ही है। किन्तु पयानघाट उपत्यकामें ग्रीष्म ऋतुमें भयानक ग्रीष्म मालूम होता है। मार्च महीनेके अन्तसे ही यहां ग्रीष्म ऋतु आरम्भ होती है। अप्रिल महीने तक किसी तरह यहांकी धूप सही जाती है। किन्तु मईसे जूनके मध्य तक धूप बड़ी प्रखर और असह्य हो उठती है। इसके बाद जब वृष्टि होने लगती है, तब वहांकी वसुन्धरा शीतल हो जाती है। रातमें यह स्थान स्वभावतः ही शीतल है। चारों ओर पर्वत और उपत्यका सूर्य्यत्ताप द्वारा दारुण उत्तप्त होनेसे भी वहांकी मिट्टी काली होनेके कारण धूपका असर अधिक स्थायी नहीं होता। वर्षाके समय चारों ओर ठण्डा रहता है। अजण्टा शैलके ऊपर बालाघाट शैल पर समतल क्षेत्रकी अपेक्षा उत्ताप कम है। सर्वोच्च गाविलगढ़ शैलका तापप्रभाव नातिशीतोष्ण है। इस पर्वतकी पीठ पर ३७७७ फीट ऊंचे स्थान पर चिकालदा नामक स्वास्थ्यावास है। इलिचपुरसे यह बीस मीलकी दूरी पर है।

बेरार देशका इतिहास बहुत अधिक दिनका पुराना नहीं है। नर्मदातट तक समग्र दाक्षिणात्य जब जिस भावसे जिस राजाके अधीन शासित हुआ है, यह बेरार भी उसके किसी न किसी राजाके अधीन शासित हुआ है। किन्तु इसके प्राचीनतम इतिहासका उद्धार करना कठिन है। शिलालिपियोंसे मालूम होता है, कि इस प्रदेशमें बहुतेरे सामन्त राजे थे, किन्तु यह बात मालूम नहीं होती, कि वे किस किस राजाके अधीन थे।

ऐतिहासिक आलोचना करनेसे यह दिखाई देता है, कि ११वीं और १२वीं शताब्दीमें यहां कल्याणके चालुक्य राजे राजत्व करते थे। १३वीं शताब्दीमें यहां देवगिरि (दौलताबाद)-के यादववंशीय राजाओंका प्रभाव फैला, ऐसा ही अनुमान है। क्योंकि, उक्त शताब्दीके अन्तमें पठानराज अलाउद्दीनने देवगिरिके हिन्दू-राज रामदेवको रणमें परास्त किया था। रामदेव एक विख्यात और प्रबलप्रतापी राजा थे। उस समय इस देशमें यादववंशीय प्रभूत क्षमताशाली हो उठे थे, इसकी शिलालिपि और इतिहास साक्ष्य दे रहा है।

कल्याणके चालुक्यराज और देवगिरिके यादवनृपतियोंके यहां एकादिक्रमसे राजत्व करने पर हम प्राचीन देवकीर्त्तियोंके ध्वंसावशेष आदिसे अनुमान कर

सकते हैं, कि बेरारप्रदेशके दक्षिणपूर्व जिले वरङ्गुल-के प्राचीन हिन्दू-राजवंशके अधीनमें शासित होते थे।

यहांकी किम्वदन्ती यह है, कि इलिचपुर राजधानीके स्वाधीन नरपतिगण यहांके अधिपति थे। इस वंशमें इल नामक एक राजा हो गये हैं उन्हींके नामानुसार इलिचपुरका नामकरण हुआ है। यही राजवंश दाक्षिणात्यमें मुसलमान प्रभावके अभ्युदयसे पहले वेरारका शासनकर्त्ता था। वहांकी कारीगरीकी कीर्त्तियोंको आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि वे जैन-धर्मावलम्बी थे, किन्तु इन सब ध्वस्त कीर्त्तियोंकी पूरी पूरी छान-बीन न होनेके कारण उक्त ऐतिहासिक तत्त्वकी पुष्टि नहीं होती।

सन् १२९४ ई०में दिल्लीश्वर फिरोज शाह घिलजाईके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन् पहले दाक्षिणात्य पर विजय करने आये। उन्होंने देवगिरिके यादवराजको युद्धमें पराजित कर कैद कर लिया। कुछ लोगोंका कहना है, कि रामदेव कैद करके मार डाले गये। कुछ लोगोंका यह भी कहना है, कि अलाउद्दीनने बहुत रुपया ले कर रामदेवको छोड़ दिया था। किन्तु इलिचपुर राज्यको उन्होंने नहीं लौटाया अर्थात् अर्थके साथ इलिचपुर पर कब्जा कर लिया।

अलाउद्दीन्ने दिल्लीमें लौट कर अपने चाचाको मार दिल्लीका सिंहासन अपने कब्जेमें कर लिया। उनके राजत्वकालमें उत्तर-भारतसे मुसलमान सेनाओंने दक्षिण-भारतमें वारंवार आ कर देशी रजवाड़ोंको तहस नहस कर दिया था।

अलाउद्दीन्की मृत्युके बाद देवगिरिके अधीनस्थ दाक्षिणात्य प्रदेश फिर स्वाधीनता अर्जन करनेमें समर्थ हुआ। किंतु वह उस स्वाधीनताको अधिक दिनों तक कायम न रख सका। १३१८-१९ ई०में मुबारक खिलजीने उस हिन्दू विद्रोहका दमन किया। उसने मुसलमानोंका कठोर प्रभाव दिखानेके लिये देवगिरिके अन्तिम राजाको खाल उतरवा ली थी। इस समयसे सन् १९०६ ई० तक वेरार-मुसलमानोंके हाथ शासित होता रहा। उक्त वर्षमें भारतके राजप्रतिनिधि लार्ड कर्जनने राजनीतिक कारणोंसे निजामसे वेरारको निकाल लिया। उस समयसे हैदराबाद एसाइण्ड डिष्ट्रिक्ट स्वतन्त्ररूपसे 'वेरार प्रदेश'-के नाम विघोषित हुआ।

मुसलमान-शासनकर्त्ताओंके अधीन वेरार स्वतन्त्र नामसे परिचित था। किन्तु शासकोंके सामर्थ्यानुसार कभी कभी इसकी सीमा घटती बढ़ती थी। सन् १३५० ई०में दिल्लीके मुसलमान-सम्राट् महम्मद तुगलककी मृत्युके बाद वेरार राज्य दिल्लीके तुगलकवंशकी अधीनतासे विच्युत हुआ और इसके बाद प्रायः २५० वर्ष तक यहांके मुसलमान शासनकर्त्तागण दिल्लीश्वरका प्रभुत्व अग्राह्य कर स्वाधीन नरपतिकी तरह राज्य-शासन करते रहे। इसके बाद प्रायः १३० वर्ष तक यह दाक्षिणात्यके वाह्मनी राजवंशके हाथ आया। अलाउद्दीन हुसेन शाहने अपने राज्यको ४ प्रदेशोंमें विभक्त किया। उनमें माहुर, रामगढ़ और वेरारका कुछ अंश ले कर एक प्रदेश संगठित हुआ था।

सन् १५२६ ई० में उक्त वाह्मनी वंशका अधःपतन होने पर यथार्थमें दाक्षिणत्य पांच मुसलमान राजवंशके अधीन शासित होता था। इस समय इमादशाही राजे वेरारके अधीश्वर थे। इलिचपुरमें उनकी राजधानी थी। प्रवाद है, कि इस राजवंशके अधिष्ठाता एक कनाड़ी हिन्दू हैं। वे युद्धमें कैद किये जा कर वेरारके शासनकर्त्ता खां जहांके सामने लाये गये। खां जहांने उनकी बुद्धिशक्तिका परिचय पा कर उनको राजकीय उच्च पद पर नियुक्त कर लिया। क्रमशः वे इमाद-उल्मुल्क उपाधिके साथ साथ सेनानायकके पद पर अधिष्ठित हुए। इमादशाह पीछे वेरारके स्वाधीन राजा हुए थे। इमादके वंशधर वैसे शक्तिशाली और सौभाग्यवान् नहीं थे। उनको राज्य रक्षामें असमर्थ जान सन् १५७२ ई०में वीजापुर और अहमदनगरराज दोनोंने एकत्र वेरार पर आक्रमण किया और वेरार राज्य अहमदनगर-राजके करतलगत हुआ। किन्तु अहमदनगर-राज राज्यका उपभोग बहुत दिनों तक कर नहीं सके। सन् १५९६ ई०में अहमदनगरराजने आत्म-रक्षाके लिये वेरार प्रदेशको मुगलसम्राट् अकवर-शाहके हाथ सौंप दिया। सन् १५९९ ई०में दाक्षिणात्यके लब्ध राज्योंमें प्रबन्ध करनेके लिये सम्राट् स्वयं बुरहान-

पुर नगरमें उपस्थित हुए। उन्होंने अपने पुत्र दानियाल को बेरार और अन्यान्य प्रदेशके नवाब बना कर इस अञ्चलकी शासनव्यवस्था की। आईन-इ-अकबरी नामक ग्रन्थमें बेरार सूबेका राजस्व और परिमाण आदि निर्द्धारित है।

सन् १६०५ ई०में सम्राट् अकबरकी मृत्यु हो जाने पर मुगल-राजसरकारमें राजव्यवस्थाका विभ्राट् उपस्थित हुआ और मुगल दरवारने उत्तर भारतमें शृङ्खला स्थापन करनेमें फंसे रहनेके कारण दक्षिण भारतके नवाधिकृत प्रदेशके शासनमें ध्यान न दिया। इस समय बेरारको अरक्षित देख कर दौलतावादके स्वाधीनता प्रयासी निजामशाही राजा अम्बरने बेरारके कुछ अंशों पर कब्जा कर लिया। सन् १६२८ ई०में उनकी मृत्युके समय तक बेरार निजामशाहीवंशके अधिकारमें था। इसके बाद सन् १६३० ई०में मुगलोंने इस पर अधिकार कर वहां दिल्लीश्वरका शासन-शक्तिका विस्तार किया। मुगल-सम्राट् शाहजहांने अपने दाक्षिणात्यराज्यको दो पृथक् शासनकर्त्ताओंके अधीन रखा था। उस समय बेरार, पयानघाट, जालना, खानदेश एक विभागमें थे। किन्तु यह व्यवस्था विशेष सुविधाजनक न होनेसे उसे फिर एक ही शासनकर्त्ताके अधीन कर दिया गया। सन् १६१२ ई०में पहले पहल कर उगाहनेकी व्यवस्था हुई। पीछे शाहजहांके समयमें उसका बहुत कुछ सुधार हुए। सन् १६३७-३८ ई०में वहां फसली साल प्रवर्त्तित हुआ।

इसके बाद सन् १६५० ई० तक बेरारका प्रादेशिक कोई स्वतन्त्र इतिहास नहीं मिलता। इस समय दक्षिण भारतमें मुगल, मराठे और मुसलमान राजाओंमें युद्ध विग्रह चल रहा था। सन् १६५०-१७०७ ई० तक मुगल बादशाह औरङ्गजेब दाक्षिणात्य अभियानमें लिप्त थे। उस समयका बेरारका इतिहास औरङ्गजेबकी दाक्षिणात्यविजयसे संश्लिष्ट है। सन् १७०७ ई०में अहमदनगरमें औरङ्गजेबकी मृत्यु हुई। इसके बाद बेरार प्रदेश मराठे और मुगलसेनाओंके लूट खसोट तथा अग्निकाण्डका केन्द्र बना हुआ था। इस समयसे ही यथार्थमें इस देशमें महाराष्ट्रगण सरदेशमुखी और चौथ अदा करते थे। सन् १७१७ ई०में सम्राट् फर्रुखसियरके सैयदवंशी मन्त्री भी यह कर देने पर बाध्य हुए थे।

सन् १७२० ई०में दाक्षिणात्यके मुगल राजप्रतिनिधि चीन किलिच खाँ निजाम उलमुलक् नाम रख कर स्वाधीनताके प्रयासी हुए। इस समाचारसे दोनों सैयद मन्त्रीने उनके विरुद्ध फौजें भेजीं। उन्होंने इन सेनाओंको तीन युद्धोंमें पराजित कर अपना प्रभुत्व विस्तार किया था। इस समय बेरारके सुबेदारने उनका साथ दिया। सन् १७२१ ई०में बुरहानपुरमें पहला युद्ध हुआ और इसके खतम होते ही बालापुरमें दूसरा युद्ध हुआ। इसके बाद सन् १७२४ ई०में बुलढाना जिलेके सखरखेलदा नामक स्थानमें तीसरा या अन्तिम युद्ध छिड़ा। उसी समयसे सखरखेलदा 'फतेह खेलदा'के नाम विख्यात हुआ है। इस युद्धसे बेरार प्रदेश १६वीं शताब्दी तक नाममात्रको हैदराबाद राजवंशके अधीन रहा।

१७वीं शताब्दीके अन्त भागसे ही बेरार राज्यकी पूर्व समृद्धिका ह्रास होने लगा। सन् १५६७ ई०में फ्रान्सीसी भ्रमणकारी Mr. de Thernot ने इस देशका परिदर्शन कर लिखा है, कि मुगलसाम्राज्यमें यह स्थान धनधान्य और जन-संख्यामें परिपूर्ण था। इसके बाद वहाँके राजस्व संग्रह करनेवालोंके विद्रोहसे ही यह स्थान शस्यशून्य और जनहीन हुआ। इसके बाद राजाओंके युद्ध विग्रहसे यह श्रीभ्रष्ट हो गया। इस समय मराठोंने बेरार राज्यको लूट पाट कर और भी नष्ट कर दिया। उनको डाकेजनीके भयसे वहाँका वाणिज्य लुप्त हो गया। इससे बहुतेरे लोग देश छोड़ कर वहाँसे चले गये। मुगलसम्राट्ने यहाँ एक जागीरदार नियुक्त कर राजस्वसंग्रहकी व्यवस्था की। इसी समय मराठोंने भी एक स्वतन्त्र जागीरदार नियुक्त कर अलग राजस्व वसूल करनेके लिये व्यवस्था की थी। इस तरह वहाँकी प्रजाने करभारसे पीड़ित हो जमीनको छोड़ दिया। निरन्तर लूट और दूसरेका सर्वनाश आँखोंसे देखते देखते उनका हृदय भी कलुषित हुआ, सुतरां वे स्थायी बन्दोबस्तको पक्षपाती न रह सके।

सन् १८०४ ई०में हैदराबादकी सन्धिशर्त्तसे, वहां

नदीके पूर्ववर्त्ती जिले समेत समग्र बेरार राज्य (नाग-पुरका कुछ अंश भोंसले वंशके और पेशवाओंके अधीन रहा) निजामके हाथ आया । गाविलगढ़ नरनाला दुर्ग नागपुरके महाराष्ट्र सरदारके अधीन था । फिर सन् १८२२ ई०में और एक सन्धि हुई । उस सन्धिके अनुसार बेरारकी सीमा जो निर्द्धारित हुई उसके अनुसार वर्द्धाके पश्चिमका सारा प्रदेश निजामके अधीन हो गया और नागपुरराजने नदीके पूर्वस्थित देश भागको नाममात्रके लिये पाया । सन् १७९५ ई०में पेशवाने जिन जिलों पर अधिकार रखा था और सन् १८०३ ई० तक नागपुरराजने जिन स्थानोंको अधिकार किया था, वे सभी निजामको लौटा देने पड़े थे ।

उपर्युक्त कारणोंसे अनेक राजाको ही सैन्यसंख्याका ह्रास करना पड़ा । निकाले हुए सिपाही खेतीबारी न कर डाकेजनीसे अपना जीवन निर्वाह करने लगे । इन डाकुओंके अत्याचारसे राज्यरक्षा करनेमें निजामको बहुत कष्ट सह्य तथा प्रचुर धनव्यय करना पड़ता था । इस अयथा धनव्ययके कारण निजाम ऋणग्रस्त हो गये और अङ्गरेजराज १८०० ई०की सन्धिशर्त्तोंके अनुसार वृटिशराजकोषसे सेनाको वेतन देते थे । इस तरह उत्तरोत्तर विप्लवसे निजामके अधिकृत प्रदेश नष्टप्राय होने पर अङ्गरेज शान्तिस्थापनके लिये आगे बढ़े । अङ्गरेजोंने सन् १८४९ ई०मे अप्पासाहबको कैद कर उसके अधीनस्थ सिपाहियोंको भगा दिया ।

अंग्रेजोंकी इस सहायताके बदले निजाम "हैदराबाद कण्टिञ्जेण्ट" सेनादलका खर्च देते थे । किन्तु उस समय यह व्ययभार असह्य हो उठा था, इससे निजामने इस व्ययभारको अंग्रेजोंके हाथ अर्पण किया । बहुत दिनों तक उसके प्रतिकारका अर्थात् उस रकमकी वसूलीका उपाय अंग्रेजोंको दिखाई नहीं दिया । उधर निजामका धनाभाव बढ़ने लगा था । एक तरहसे निजाम सरकार दिवालिया हो गई थी । अतएव अन्य उपाय न देख अंग्रेजोंने सन् १८५३ ई०में निजामके साथ एक नई सन्धि की । इस सन्धिके अनुसार अंग्रेजोंको पूर्व-प्रदत्त ऋणपरिशोध करनेके लिये और हैदराबाद कण्टिञ्जेण्ट फौजोंके व्ययभार निर्वाहके लिये ५० लाख आमदनीके कई जिले प्राप्त हुए । वे सभी जिले (धराशियो और रायचूड़ दोआब छोड़ कर) "हैदराबाद एसाइण्ड-डिष्ट्रिक्ट" नामसे उसी समयसे अंग्रेजोंके अधीन आ गये । इस सेनादलका मूलांश इलिचपुरमें और अकोला तथा अमरावतीमें कुछ पैदल सैनिक रखे गये ।

इस संधिकी शर्त्तोंमें एक शर्त्त यह भी थी कि अङ्गरेज निजामको वार्षिक हिसाब देंगे और राजस्वमें अपना किस्त काट कर जो बाकी निकलेगा, वह भी देंगे । उनकी और अङ्गरेजोंकी सहायताके लिये युद्धके समय सेना भेजनी न पड़ेगी । ये सैन्यदल अब उनके सेना-विभागके अधीन रहेंगे । केवल उन्हींके कार्यके लिये ये सेनायें अङ्गरेजोंके अधीन रहेंगी ।

पीछे सन् १८५३ ई०में जो सन्धि हुई, उसके अनुसार अंग्रेजोंको वार्षिक हिसाब दाखिल करनेमें असुविधा मालूम हुई । इस पर सन् १८०२ ई०की सन्धि शर्त्तके अनुसार ५ रुपये सैकड़े शुल्क वसूली देनेकी बात थी, उसके सम्बन्धमें दोनों पक्षमें गड़बड़ी चलने लगी । उस समय अंग्रेजोंने इस विपत्तिसे छुटकारा पानेके लिये और सन् १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समय निजामके स्वीकृत पुरस्कार देनेके लिये सन् १८६० ई०के दिसम्बर महीनेमें निजामके साथ एक सन्धि की । इससे अंग्रेजोंने निजामको ५० लाख रुपयेका माफी दे दी । सुरपुरके विद्रोही राजाका राज्य छीन कर अंग्रेजोंने निजामको दे दिया । इसके साथ ही धराशियो और रायचूड़ दोआब निजामको लौटा दिया गया । निजामको अंग्रेजोंसे सम्पत्ति मिली सही ; किंतु निजामको भी इसके बदलेमें अंग्रेजोंको गोदावरी नदीके बायें किनारेके कई जिले और उस नदीमें वाणिज्यके लिये जो शुल्क वसूल होता था, उसको छोड़ देना पड़ा ।

इस तरह बदलेमें निजामसे अंग्रेजोंको जो सम्पत्ति मिली, उसका राजस्व प्रायः १२ लाख रुपया था । अंग्रेज सरकार इस रुपयेसे १८५३ ई०की संधिके अनुसार कार्य करने लगी । निजाम सरकारको अब वार्षिक हिसाब देनेको आवश्यकता न रह गई । उक्त एसाइण्ड डिष्ट्रिक्टके मध्य फौजोंके वेतनके लिये निजामप्रदत्त जो सब जागीर और निजामके स्वयं व्ययके लिये जो सम्पत्ति

था, उनको अंग्रेजोंके शासनाधीन करनेके अभिप्रायमें अंग्रेजोंने अन्य स्थलमें सम्पत्ति दे कर अदलाबदली कर ली।

सन् १८६१ ई०में इस परिवर्त्तनके सिवा सन् १८५३ ई०से बेरारके राजनीतिक-संक्रांतमें और कुछ भी परिवर्त्तन नहीं हुआ। सन् १८५७ ई०में सिपाही-विद्रोहके समयमें भी यहां विप्लवकी विशेष सूचना न हुई। सन् १८५८ ई०में तांतियाटोपी दल-बलके साथ सतपुरेके पहाड़ पर आ उपस्थित हुए थे सही; किन्तु वे बेरार-उपत्यकामें प्रवेश कर न सके। ग्रेट इण्डियन-पेनिनशुला और निजामस्टेट रेलवेके खुल जाने पर यहांके वाणिज्यमें बड़ी उन्नति हुई है।

यहां नाना जाति तथा नाना वर्णके लोगोंका वास है। उनमें हिन्दू प्रायः २८॥ लाख, मुसलमान प्रायः २ लाख और भील, गोंड़, कुर्कु आदि असभ्य जातियोंकी संख्या प्रायः १ लाख सत्तर हजार होगी। जैन, ईसाई, सिक्ख और पारसी भी रहते हैं; किन्तु इनकी संख्या कम है। यहां जो लोग वास करते हैं, उनमें अधिकांश कृषिजीवी हैं। यहां मकई, गेहूं, चना, बाजरा, धान, तिल, पाट, सन, तम्बाकू, ऊख, रुई, सरसों और गांजा, अफीम आदिका खेती होती है। यहांके अधिवासी मोटी रकमके सूती कपड़े, गलीचा और चारजाम बेचते हैं सही; किन्तु ये चीजें आदृत नहीं होतीं। रेशमी वस्त्र तैयार करनेका साधन खूब सामान्य है। स्थान स्थानमें वस्त्र बुननेका काम भी खोला गया है और बुलडानेके निकटवर्त्ती देवलवाटमें इस्पातके बने अस्त्रादिका भी कारोबार देखा जाता है। नागपुरसे बारीक कपड़े और अन्यान्य आवश्यक सामग्री बम्बईसे मंगाई जाती हैं।

अमरावती, अकोला, आकोट, अञ्जनगांव, बालापुर, बासिम, देवलगांव, इलिचपुर, हिवारखेद, जालगांव, करिञ्जा, खामगांव, फरासगांव, मालकापुर, परातवाड़ा, पाथुर, सेन्दुरजना, सेगांव और जेठमलनगर बेरार प्रदेशकी समृद्धिके परिचायक हैं। अमरावती, अकोला, खामगांव, सेगांव और वासिम नगरोंमें म्युनिसिपलिटियां हैं।

भारतके राजप्रतिनिधि लार्ड कर्जनके राजनीतिक कौशलसे सन् १९०६-७ ई०में बेरारप्रदेशके निजामके अधिकारसे च्युत होनेसे पहले ही यह प्रदेश एक चीफ कमिश्नरके द्वारा शासित होता था, जिसका विवरण ऊपर लिखा गया है। उनके अधीनमें एक जुडिशियल कमिश्नर और एक राजस्व विभागीय कमिश्नर, छः डिपटी कमिश्नर, १७ एसिस्टेण्ट कमिश्नर और ६ इन्सपेक्टर जेनरेल आव पुलिस, जेल और रजिष्ट्रेशन, ६ डिष्ट्रिक्ट सुपरिंडेण्ड आव पुलिस, २ एसिस्टेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट आव पुलिस, १ सेनिटरी कमिश्नर (ये इन्सपेक्टर-जनरल आव डिस्पेन्सरी और भेक्सिनेशन पद पर भी काम करते थे) ६ सिविल सर्जन, १ डिरेक्टर आव पवलिक इन्सट्रक्सन, १ कनजरवेटिव आव फारेष्ट और १ असिस्टेण्ट कनजारवेटिव थे। इन सबको दीवानी आदिके मुकद्दमे विचार करनेकी क्षमता थी।

१९०३ ई०से बेरारका शासन-कार्य हैदराबादके रेसिडेण्टसे मध्यप्रदेशके चीफ-कमिश्नरके हाथ आया। शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह अभी पांच जिलोंमें विभक्त है, यथा—अमरौती, इलिचपुर, ऊन, अकोला, बुलदाना और वसिम। प्रत्येक जिला एक एक डिपटीकमिश्नरके और प्रत्येक ताल्लुक एक एक तहसीलदारके अधीन है। पुलिस-विभागमें एक सुपेरिण्टेण्डेण्ट और उनके सहकारी डिपटी कमिश्नर तथा तीन तीन असिष्टेण्ट सुपेरिण्टेण्डेण्ट हैं। डिष्ट्रिक्ट जेलका कार्यभार सिविल सरजनके हाथ सपुर्द है। ग्राम्य कर्मचारी पटेल वा पटवारी कहलाते हैं। यह पद उनका वंशपरम्परासे आता है। ग्रामका राजस्व वसूल करना ही उनका काम है। वे ग्राम्य चौकीदारके कामोंका भी निरीक्षण करते हैं। उन्हें अपराधीको पकड़ कर अदालत भेजनेकी भी क्षमता है।

बेरारमें एक भी कालेज नहीं है, परन्तु हाई स्कूल, सिकेण्ड्री, प्राइमरी और शिक्षक-ट्रेनिङ्ग स्कूल बहुत हैं। स्कूलके अलावा ४३ अस्पताल और चिकित्सालय हैं।

बेरावल (बलावल, बेरोल)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके जूनागढ़ सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक नगर और बन्दर। यह मङ्गरोलसे २० मील दक्षिण-पूर्व सूत्रपाड़ेसे ८॥ मील और सोमनाथ मन्दिरसे २ मील

उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। अक्षा० २०° ५३´ उ० तथा देशा० ७२° २६´ पू०में अवस्थित है। मस्कट, बम्बई और करांची नगरसे यहांका प्रचुर वाणिज्य चलता है। वर्त्तमान समयमें इस बन्दरकी अच्छी उन्नति हुई है। विभिन्न स्थानोंसे प्रचुर परिमाणमें माल असबाब यहां आता है।

प्राचीन शिलालिपियोंमें इसका नाम वेरावलपत्तन लिखा है। निकट ही सोमनाथपत्तनका सुविख्यात मन्दिर है। यह प्राचीन मन्दिर समुद्रके किनारे अवस्थित है। इसके ध्वस्त स्तूपोंसे प्रस्तर आदि ले कर वहांके लोगोंने मकान आदि बनवाये हैं। अवशिष्ट जो दो घर मौजूद हैं, उनके गुम्बजकी छतों पर नाना पौराणिक चित्र अङ्कित हैं। पहला गुम्बज ६५ स्तम्भों पर बना है। द्वितीय गुम्बज एक शिखरमात्र है। जो इस समय है, उसकी लम्बाई १०॥ फुट, चौड़ाई ६८ फुट और ऊंचाई ४८ फुट है। प्रवाद है, कि ८५० वल्लभी अब्दमें यह मन्दिर निर्मित हुआ था।

सोमनाथका वर्त्तमान मंदिर इन्दोर राजपत्नी अहल्याबाई द्वारा सन् १८०६ संवत्‌में पुनः निर्मित हुआ। इसके प्राङ्गणकी लंबाई १२२७ फुट और चौड़ाई ८२ फुट है। किंतु मूलमंदिरकी लंबाई और चौड़ाई ३६ फुट और ऊंचाई ४२ फुट है। इस मंदिरमें गायकवाड़के दीवान विट्ठलदेवाजीने एक धर्मशाला बनवाई है। इसके निकट ही अन्नपूर्णा और गणपतिजीका मन्दिर है। मूलमंदिरभीतरमें पहले शंकरेश्वर लिङ्ग और उसके नीचे १२ फुट लम्बे चौड़े गह्वरमें सोमनाथलिङ्ग स्थापित है। इसके ऊपर गुम्बज ३२ स्तम्भों पर रक्षित है। यह पत्तन पवित्र तीर्थ गिना जाता है। सरस्वती, हिरण्या और कपिला नदीका सङ्गम हो यहांकी त्रिवेणी है। पत्तनके बाजारके किनारे जो जुमा मसजिद है, वह हिन्दू मन्दिर पर स्थापित है। अब भी मन्दिरगात्रमें प्रस्तरखोदित सुन्दर सुन्दर मूर्त्ति सटी दिखाई देती हैं। ये १११ फुट×१७१ फुट और इसकी छत २५१ स्तम्भों पर खड़ी है। प्राचीन सूर्यकुण्ड अब हौजमें परिणत हो गया है।

इस मसजिदके निकट जो मुसाफिरखाना है वह भी एक जैन मन्दिरका भग्न निदर्शन है। इसकी छतका गुम्बज भाग और स्तम्भ आदि भास्कर शिल्प समन्वित हैं। इस अट्टालिकाके निम्न भागमें ३५×४७॥ की एक गुहा है। यह प्रस्तर द्वारा ६ गृहोंमें विभक्त है।

पत्तन और वेरावलके बीच समुद्रके किनारे भिदिया मन्दिर है। अधिक सम्भव है, कि भिडभंजन महादेवके नामसे अपभ्रंशमें भिदिया हो गया है। यह मन्दिर ४० फुट ऊंचा और १३७ फुट लम्बा और २२ फुट चौड़ा है। यह प्रस्तरनिर्मित है और इसका गुम्बज २० स्तम्भों पर खड़ा है।

वेरावल और पत्तनके बीचे भालका कुण्ड है। उसका परिमाण २५×३७ फुट हैं। भालोदा या भूल्ल (तीरयष्टि) शब्दसे इसका नाम हुआ है। यहां वाल नामक एक भीलने श्रीकृष्णको तीरसे मारा था।

पत्तनसे १० मील दूर दो प्राचीन कुण्ड हैं। इसी कुण्डसे सरस्वती नदी निकली हुई है। कुण्डके किनारे प्राची-पीपल नामका एक पीपलका पेड़ है। दोनो कुण्डोंके उत्तर सरस्वतीके गर्भमें तीरस्थ जम्बू वृक्षकी छायाके नीचे माधवरायजीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

पत्तनसे ३०० गज पूर्व हिङ्गलाज माता नामकी गुहा है। इस गुहाकी लम्बाई ३६॥ फुट, चौड़ाई २८ फीट और गहराई १० फुट है। यह अति प्राचीन है, और दो प्रकोष्ठोंमें विभक्त है। एकमें हिङ्गलाज देवीकी मूर्त्ति स्थापित है। वेरावलके हरसद मन्दिरमें श्रीधवलेश्वर मूर्त्तिकी पूजा और गृहादि निर्माणके व्ययविषयक और श्रीगोवर्द्धन मूर्त्तिमें (६२७ वल्लभी संवत्) तथा १४४२ सं०में सङ्गमेश्वरीमूर्त्ति स्थापना सम्बन्धीय शिलाफलक उत्कीर्ण हैं।

चोरवाड़के निकटके नागनाथ मन्दिरमें भी १४४६ संवत्‌में उत्कीर्ण एक शिलालिपि है। उसमें रानी विमला देवी द्वारा चार चरणीय विप्र प्रतिष्ठाकी बात है।

वेराशेरुण—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत भीमवर मूतालुकका एक नगर। इसका असल नाम वीरवासरम् है। यह नगर बहुत पुराना है। प्राचीन ऐतिहासिकोंने इस नगरका वेराशेरुण नामसे उल्लेख

किया है। १६३४ ई०में यहां अङ्गरेजोंकी एक कोठी और उपनिवेश स्थापित हुआ। १६६२ ई०में अङ्गरेजोंने इसे छोड़ दिया सही, पर १६७७ ई०में फिरसे वे यहां आ कर प्रतिष्ठित हुए। १७०२ ई०से अङ्गरेजोंने इसका बिलकुल परित्याग कर दिया है।

यहांके विश्वेश्वरस्वामीमन्दिरके समीप एक ध्वज-स्तम्भ है। उसकी बगलमें ही नन्दीमूर्त्ति है। मन्दिर-गात्रस्थ शिलाफलक अस्पष्ट हैं। इसके सिवा यहां एक और अतिप्राचीन मन्दिर है। स्थानीय पूर्वतन जमींदारों द्वारा प्रतिष्ठित एक पुराना दुर्ग भी नजर आता है।

वेरि (सं० स्त्री०) वेंत आदिसे बुन कर बना हुआ पह नावा या बकतर।

वेरि—१ मध्यभारत एजेन्सीके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यह अक्षा० २५° ५५' से २५° ५७' पू० तथा देशा० ७६° ५५' से ८०° ४' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३० वर्गमील है।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर; वेतवा नदीके बाएं किनारे कालपीसे २० मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। यहांके सरदार पूआर वंशीय राजपूत हैं। दत्तक लेनेकी सनद इन्हें वृटिश गवर्मेण्टसे मिली है।

वेरि—पञ्जावके रोहतक जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २८° ४२' उ० तथा देशा० ७६° ३७' पू०के मध्य अवस्थित है। ६३० ई०मे दोगरावंशीय वणिकोंके द्वारा यह नगर प्रतिष्ठित हुआ। यहां प्रति वर्ष आश्विन और माघके महीनेमें देवीके उद्देशसे दो मेले लगते हैं। अन्तिम मेलेमें गाय, घोड़े और गदहे आदि बिकनेको आते हैं। जार्ज टामस नामक एक अंगरेजपुङ्गवने जाट और राजपूत सेनाओंसे यह स्थान दखल किया था। मराठोंने उक्त जार्ज टामसको जो जागीर दी, वह वेरीनगर उसीके अन्तर्भुक्त है।

वेरि-वेरि—रोगविशेष (Beri-Beri)। यह रोग दुश्चिकित्स्य है। काले ज्वरकी तरह कभी कभी यह दिखाई देता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके अनेक अस्वास्थ्यकर स्थानोंमें इस रोगका प्रादुर्भाव है। डेंगू ज्वरकी तरह इसने १८०७-८ ई०में कलकत्ते और उसके निकटवर्ती स्थानवासियों पर आक्रमण किया। बहुतेरे अच्छे हो गये, परन्तु पूर्ववत् स्वास्थ्य और बल उन्होंने फिर नहीं पाया। इसमें थोड़ा थोड़ा ज्वर आता है। सूर्योदय होने पर पैरका अगला हिस्सा धीरे धीरे फूलता जाता है तथा उस अङ्ग में ज्वरकी मात्रा भी अधिक होती है। सन्ध्याके समय सूजन कम हो जाती है तथा ज्वर भी उतर आता है।

वेरिकिद—मन्द्राज-प्रदेशके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक भू सम्पत्ति और उसके अन्तर्गत एक नगर।

वेरिया—मध्यप्रदेशके निमार जिलांतर्गत एक प्राचीन नगर। मालवके घोरी वंशधरोंने इसे बसाया है। १४वीं सदी से ले कर १६वीं सदीके मध्य उक्त राजाओंने नगरके दक्षिण २ मील विस्तृत एक चहबच्चा बनाया। १८०६ ई०में उसका जीर्णसंस्कार हुआ। नगरमें एक सुन्दर जैनमन्दिर और जैन-वणिकसम्प्रदायका वास है।

वेरुआ—पूर्व वङ्गवासी निम्नश्रेणीकी जातिविशेष। ये लोग कृषिजीवी हैं और धीवरका भी कार्य करते हैं। चण्डालोंके ही साथ खाते पीते हैं, इस कारण इन्हें उक्त जातिकी ही एक शाखा माना गया है। किंतु उनमें आदान-प्रदान नहीं चलता। ये लोग मल्लाहकी तरह जाल फैला कर मछली पकड़ते हैं।

बाँस या सरकण्डेका 'बेड़ा' बना कर उसीसे नहर वा सोतेका जल बांध देते हैं। इससे मछली बांधसे बाहर निकल नहीं सकती, बेड़ेके ही चारों तरफ रह जाती हैं। इस प्रकार वे आसानीसे उन मछलियोंको पकड़ लेते है।

सभी वेरुआ काश्यप गोत्रीय हैं। इनका दलपति वा मण्डल पात्र वेरुआ कहलाता है। चण्डालोंका पुरोहित ही इनका पुरोहित होता है। कहते हैं, कि ये लोग सगोत्रमें विवाह नहीं करते, किन्तु यथार्थमें यह नहीं है, उसके बिना काम चलता ही नहीं।

वेरुर—मन्द्राज-प्रदेशके मलबार जिलान्तर्गत पोनानी तालुकका एक प्राचीन नगर। यह कुट्टिपुरम् रेल स्टेशनसे ३ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहांके एक प्राचीन मन्दिरके सामनेवाले स्तम्भमें शिलालिपि उत्कीर्ण है।

वेरोन्दा—मध्यभारत एजेंसी बुंदेलखण्डके अंतर्गत एक सामंत राज्य। बरौण्डा देखो।

वेर्णि—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यहां एक बड़ा स्तूप है। स्थानीय लोग इसे राजा वेनका प्रासादावशेष बतलाते हैं।

२ युक्तप्रदेशमें एटा जिलान्तर्गत एक नगर। यह स्थानीय वाणिज्य-केन्द्र समझा जाता है।

वेहिँ—मध्यप्रदेशमें छिन्दवाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर।

वेल (सं० क्लो०) उपवन, बाग। (हेम)

वेलका—बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक वाणिज्यप्रधान ग्राम। यहां पटसन और सरसोंका जोरों वाणिज्य चलता है।

वेलकुचि—बङ्गालके पबना जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षां० २४° २०´ उ० तथा देशा० ८९° ४८´ पू०के मध्य यमुना नदीके किनारे अवस्थित है। यहां पटसन, सूती कपड़े, चावल तथा अन्यान्य द्रव्योंका वाणिज्य चलता है।

वेलखार—युक्तप्रदेशके मिर्जापुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अहरौया नगरसे दक्षिणमें अवस्थित है। गांवके पासवाले एक मैदानमें ११। फुट लंबा और १५ इञ्च चौड़ा एक मीनार है। उस मीनारके ऊपर एक छोटी गणेशकी मूर्त्ति स्थापित है। मीनारमें कुछ शिलालिपियाँ भी देखी जाती हैं, उनमेंसे ऊपरकी लिपि १२५३ संवत्में कन्नौजराज लक्ष्मणदेवके राज्यकालमें उत्कीर्ण है। उस लिपिसे जाना जाता है, कि कन्नौजके राठोरराज जयचन्द्रके मुसलमानों द्वारा पराभव और मृत्युके ३ वर्ष पीछे वह मीनार खड़ा किया गया था। स्तम्भलिपि मुसलमान अभ्युदयका उल्लेख न करके हिन्दू राजत्वकी गरिमा ही कीर्त्तन करती है।

वेलखेरा—मध्यप्रदेशके जब्बलपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह एक स्थानीय वाणिज्यकेन्द्र है।

वेलगांव—(वेलगाम) बम्बई प्रेसिडेन्सीके दक्षिण विभागका एक जिला। अक्षा० १५° २२´ से १६° ५८´ उ० और देशा० ७४° ४´ से ७५° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण करीब पांच हजार वर्गमील है। इसके उत्तरकी सीमा पर निजाम और जातराज्य, उत्तर-पूर्व सीमा पर कलादगी जिला, पूर्व सीमा पर जामखण्डी और मुधोल राज्य, दक्षिण और दक्षिणपूर्व सीमा पर धारवाड़, उत्तर कणाड़ा और कोल्हापुरराज्य, दक्षिणपश्चिममें गोआराज्य तथा पश्चिम सावन्तवाड़ी और कोल्हापुरराज्य है। उत्तरपूर्वसे दक्षिणपश्चिम तक लम्बाई १२० मील और चौड़ाई ८० मील है।

यह जिला गण्डशैल मालासे विभूषित हो स्थान-स्थानमें उपत्यका, अधित्यका और अत्युच्च श्रृङ्गावलीसे परिशोभित है। एक ओर जैसे शस्यपूर्ण समतल प्रान्तरवक्षमें नदीमालाकी शान्तिमयी शोभा है, दूसरी ओर वैसे ही अत्युन्नत शैल श्रृङ्गोंमें दुर्भेद्य गिरिदुर्गोंका धीर गम्भीर दृश्य है। यह शैलश्रेणी पश्चिमघाट या सह्याद्रिशैलकी एक शाखा है। जिलेके पश्चिम और दक्षिणांशके पार्वत्यप्रदेश अपेक्षाकृत उन्नत और क्रम-निम्नभावसे पूर्वाभिमुख कलादगी जिले तक आया है। दक्षिणमें सह्याद्रि-शैलके सशिखर शाखाप्रशाखाओंके इधर उधर फैले रहने पर भी बीच-बीचमें निविड़ वन-माला और जनहीन समतल भूमि दीखती है। इसके दक्षिण भागमें बड़ी बड़ी नदीके किनारे आम, जामुन, कटहल, इमली आदि वृक्ष फलके बोझसे अवनत हो उस जनहीनताके बीचमें भी वहांकी सौन्दर्य-वृद्धि कर रहे हैं। जिलेके उत्तर और पूर्व अंश शस्य-पूर्ण श्यामल प्रान्तरमय है और उसमें छोटे छोटे कृषकोंके गांव हैं।

इस जिलेके उत्तर कृष्णा, बीच भागमें घाटप्रभा और दक्षिणमें मानप्रभा नदी सह्याद्रिपादसे निकल कर पूर्वा-भिमुख धीरे मन्थर गतिसे वङ्गोपसागरसे गिरती है। इन तीन नदियोंके पश्चिमांशकी जलराशि मधुर है; किन्तु पूर्वांशका जल समुद्रस्रोतके साथ मिले रहनेसे कुछ लवणाक्त हो गया है।

इस पार्वतीय प्रदेशके स्थान-स्थानमें लौह, अभ्र, (अबरक), वेलपत्थर, दानादार और स्फटिक पत्थर आदि पाये जाते हैं। वनभागमें शाल, श्वेत शाल, इन्नि, हरीतकी और कटहल आदि पेड़ और जीव-जन्तुओंमें नाना जातिके हरिण, बनैले सूअर, व्याघ्र, लकड़बग्घा और नाना तरहके पक्षी दिखाई देते हैं।

यहांका इतिहास महाराष्ट्र-इतिहासके साथ संश्लिष्ट रहनेसे स्वतंत्र भावसे लिखा न गया। सन् १८१८

ई०में पूनेकी सन्धिकी शर्त्तके अनुसार पेशवाने अङ्गरेजोंके हाथ धारवाड़ विभागके साथ यह जिला दान दे दिया था। उस समयसे यह धारवाड़ जिला नामसे अंगरेजों द्वारा शासित होने लगा। पीछे शासनकार्यकी सुविधाके लिये सन् १८३६ ई०में उक्त विभागके दक्षिणांशमे धारवाड़ और उत्तरांशमें बेलगांव नामसे दो स्वतन्त्र जिलोंमें विभक्त हुआ। सन् १८४८-४६ ई०में यहां पहली बार और १८८१-१८८२ ई०में दूसरी बार बन्दोवस्त हुआ। इस जिलेमें बेलगांव और उसके निकट छावनी, गोकक, अथनि, निपाणि, सौन्दती और यमकणमर्दी प्रधान नगर हैं। यहांके अधिवासी साधारणतः लिङ्गायत शैव हैं। सिवा इनके अन्यधर्मके मतावलम्बी भी हैं। कैकारि नामकी दस्युजाति ही यहां प्रसिद्ध है।

यह जिला अथनी, बेलगांव, बिदी, चिकोड़ी, गोकक, परेशगढ़ और साम्पगांव नामक उपविभागोंमें विभक्त है। परेशगढ़ उपविभागके पर्वत पर यल्लमादेवीका प्रसिद्ध तीर्थ है। यहां प्रतिवर्ष कार्त्तिक और चैत्रके महीनेमें देवीके उद्देशसे महासमारोहसे पूजा और तीन दिनस्थायी मेला लगता है। इस मेलेमें प्रायः ४० हजार तीर्थयात्री एकत्र होते हैं। कार्त्तिकमें यल्लमादेवीके स्वामीकी मृत्युका पर्व और चैत्रमें उसका पुनर्जीवन समाधान है। कार्त्तिक मासमें मूलमन्दिरसे कुछ दूर पर एक छोटे पीठ पर जा मारणक्रियाबोधक पूजनादि किये जाते हैं। कुछ काल बीत जाने पर समागत स्त्रियां यल्लमादेवीके स्वामीके वियोगदुःखमें समवेदना प्रकट करनेके लिये रो उठती हैं। बीस या ३० हजार स्त्रियोंकी रोदन ध्वनि कितनी हृदयविदारक होती होगी, यह सहज ही अनुमेय है। इसके बाद सभी स्त्रियां देवीके वैधव्यकी समवेदनामें अपने हाथको चूड़ियां फोड़ डालती हैं।

२ बम्बई प्रेसिडेन्सीके बेलगाम जिलेका एक उपविभाग। इसका भूपरिमाण ६६२ वर्गमील है।

इस उपविभागमें निम्नोक्त गिरिदुर्ग विद्यमान है—

१ बेलगाम गिरिदुर्ग। २ महीपतगढ़ गिरिदुर्ग, बेलगाँवसे ६ मील पश्चिमोत्तर सुन्दी नामक स्थानमें अवस्थित हैं। ३ कलानिधिगढ़—बेलगामसे १७ मील पश्चिम कलिवेड नामक स्थानमें है। ४ गन्धर्वगढ़—बेलगामसे १६ मील पश्चिमोत्तर कोरज नामक स्थानमें है। ५ पारगढ़—बेलगामसे ३२ मील पश्चिम-दक्षिण पारगढ़ शैलश्रृङ्ग पर अवस्थित है। ६ चाँदगढ़—बेलगाँवसे २२ मील पश्चिम है। (अक्षा० १५° ५६' उ० और देशा० ७४° १५' पू०) यहाँ रेवलनाथका मन्दिर विद्यमान है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर। समुद्रपृष्ठसे २५००० फुटकी ऊंचाई पर बेल्लरी नाला नामकी मार्कण्डी नदीके एक शाखा स्रोतके ऊपर स्थापित है। मार्कण्डीके-धाराप्रभामें मिलनेसे ही कृष्णा नदीका कलेवर पुष्ट हुआ है। यह अक्षा० १५° ५२' एवं देशा० ७४° ३४' पू०में विस्तृत है। नगरके पूर्व दुर्ग और पश्चिमांशमें सेनानिवास है। आकृति असमवृत्त है। यहां बाँस बहुत होते हैं। इसीलिये कनाड़ी भाषामें इस नगरका नाम वेणुग्राम है और उससे ही वेणु, वेलु या बेलग्राम रूपान्तरित हुआ है। यहांका गिरिदुर्ग छोटा होने पर भी सुरक्षित है। आयतन १००० गज लम्बा और ७०० गज चौड़ा है। प्रस्तरवक्ष काट कर इस दुर्गके चारों ओर खाई तय्यार की गई है। सन् १८१४ ई०में पेशवाके पतन होनेके बाद अंग्रेजोंने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। २१ दिन तक अवरोध करनेके बाद दुर्गस्थ सैन्योंने अंग्रेजोंके हाथ आत्मसमर्पण कर दिया।

किम्वदन्ती है, कि सन् १५१६ ई०में यह दुर्ग बना था। इसमें आसद खाँकी दरगाह या मसजिदका सफा और १२ या १३वीं सदीमें स्थापित दो जैनमन्दिर हैं। मसजिद सफाके प्रवेशद्वार पर १५३० ई०का एक शिलाफलक है।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें आ जानेके बादसे बेलगाँवके नाना विषयोंमें उन्नति हुई है। वाणिज्यप्रभासे यह नगर धनसे पूर्ण हुआ है। सेनानिवास स्थापनके साथ साथ देशीय बालकोंकी शिक्षाकी व्यवस्था हुई है। विनगुरला बन्दर यहांका प्रधान वाणिज्य-केन्द्र है। इस स्थानसे ही यहांकी आमदनी रफतनी होती है। यहां सूती कपड़ा बुननेका बहुत बड़ा कारोबार है। अभी हालमें एक आर्ट कालेज खोलनेका निश्चय हो चुका हो है। इसके लिये लिङ्गायत सम्प्रदायके

किसी देशाई महाशयने एक लाख रुपया सालाना आमदनीकी सम्पत्ति दान की है।

वेलगावि—महिसुर राज्यके शिमागो जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० १४° २३' उ० तथा देशा० ७५° १८' पू०के मध्य अवस्थित है। पहले इस नगरमें कदम्ब-वंशीय राजाओंकी राजधानी थी। १२वीं सदी तक यह दाक्षिणात्यके सभी नगरोंसे उन्नत रहा। दाक्षिणात्य-वासी इसे 'नगरमाता' कहते थे। यहां अनेक ध्वस्त देवमन्दिर और तत्संलग्न खोदित स्तम्भादि दृष्टिगोचर होते हैं। सारे महिसुर राज्यमें ऐसा भास्करशिल्पपूर्ण कीर्त्तिनिदर्शन और कहीं भी नहीं है। यहांसे अनेक शिलालिपियाँ पाई गई हैं, उनमेंसे कुछका पाठोद्धार भी हुआ है। वे सब शिलाफलक प्राचीन राजवंशके गौरव व्यञ्जक हैं। वल्लालवंशीय राजाओंके अधिकारकालमें भी यहांकी समृद्धि अक्षुण्ण थी, पीछे १३१० ई०में मुसलमानों द्वारा जब उक्त राजवंशका अधःपतन हुआ तब उसके साथ साथ हिन्दूकीर्त्तिका विलोप हो गया। वर्त्तमान कालमें उस भग्नावशेषका कुछ अंश महिसुरके जादूघरमें रखा हुआ है।

वेलघरिया—बङ्गालके २४ परगना जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह कलकत्तेसे ७ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहां इष्टर्न बेङ्गाल रेलवेका एक स्टेशन है।

वेलजियम—यूरोपके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। यह हालेण्डके दक्षिणमें अवस्थित है। इसके उत्तर-पश्चिममें, उत्तर सागर, दक्षिणपश्चिम और दक्षिणमें फ्रान्स, पूर्वमें लकजमवर्ग और वेनिस प्रुसिया है। इसकी लम्बाई १७४ मील और चौड़ाई १०६ मील है।

ब्रुसलेस नगरी इसकी राजधानी है इसके सिवा एण्टोयेर्स, घेण्ट, लिज, ब्रुजेस, वावियार, त्रुर्ने, मालिन्स लौमेन, आर्लोन, और नामूर नगर वाणिज्यके लिये प्रसिद्ध है। इस छोटेसे राज्यमें प्रायः दो हजार मील रैल पथ फैला हुआ है। इस रैलपथमें तथा स्केल्ड मिउज और येजार नदीसे यहांका वाणिज्य चलता है। यहां सूत, सूतीवस्त्र, गलीचे, पशमीने, लिलेन, फीता, टोपी, मोजा, चमड़ा, आयल क्लाथ, कागज, कांचकी वस्तुएं, पोर्सिलेन द्रव्य, बीजपुत्तली काँटापिरेक, रासायनिक द्रव्य, बियार मद्य, अन्यान्य स्पीरिट, चीनी तथा वैज्ञानिक और वाद्य यन्त्रादि यहाँ प्रस्तुत हो नानास्थानोंमें भेजे जाते हैं।

प्राचीन बेलजी (Belgae) जातिकी वासभूमि होनेसे इस स्थानका नाम वेलजियम हुआ है। १५वीं सदीसे विभिन्न समयोंमें वेलजियम राज्य अष्ट्रिया और स्पेनराज्यके शासनाधीन हुआ था। सन् १७९५ ई०में फ्रान्सीसियोंने इस पर अधिकार किया और सन् १८१४ ई०की सन्धिके अनुसार यह हालण्डके साथ मिल कर नदरलैण्डके नामसे प्रसिद्ध हुआ। वर्त्तमान वेलजियमके अन्तर्गत फ्लाण्डार्स नामक प्रदेश जिसने एक समय स्वाधीन भावसे एक छोटे राज्यके रूपमें शासनकार्य परिचालन किया था वह यूरोपीय-इतिहासमें "The Cockpit of Europe" नामसे लिखा है। सन् १८३० ई०की २५वीं अगस्तको ब्रुसेलस नगरमें एक राजविद्रोह उपस्थित हुआ। उसके फलसे उक्त वर्षसे ४थी अक्तूबरको उक्त प्रदेशको विच्युति हुई थी। सन् १८३२ ई०की ४थी जूनको यहां एक जातीय महासमितिका अनुष्ठान हुआ। उसमें साक्सेकोवर्गके युवराज लिओ गोल्ड वेलजियनोंके राजा चुने गये। १२वीं जुलाईको वे राजपद स्वीकार कर २१वीं तारीखको सिंहासन पर विराजमान हुए। इससे पहले फ्रान्सीसी राज लुई फिलिपके द्वितीय पुत्र ड्यूक डोनिमूरको उक्त राजपद देनेकी इच्छा प्रकट की गई किन्तु उन्होंने राजपद लेनेसे इन्कार कर दिया। जो हो, सन् १८३९ ई०को १९वीं अप्रिलको लण्डन शहरकी सन्धिके अनुसार राजा १म लिओपोल्ड और नेदरलैण्डके राजाके साथ शान्ति और सौहार्द स्थापित हुआ। इसके बाद यूरोपके अन्यान्य राजाओंने वेलजियमको एक स्वतन्त्र राज्य कह कर घोषित किया।

वेलडङ्गा—बङ्गालके मुर्शिदाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २३° ५७' उ० तथा देशा० ८८° १८' पू०के मध्य विस्तृत है।

वेलदार—हिन्दूराजाओंके अधीन रक्षित एक श्रेणीकी सेना। ये लोग कुदाल आदि यन्त्र ले कर रणक्षेत्रमें जाते और आवश्यकतानुसार मिट्टी खोद कर दुर्ग प्राचीर आदि तोड़नेके लिये सुरंग बनाते हैं।

बेलदार—विहार और पश्चिम बङ्गालमें रहनेवाली निम्न-श्रेणी की एक जातिका नाम । बेल (कुदाली) ले कर मिट्टी खोदा करती रहती है, इससे इस जातिका नाम बेलदार हुआ । रानीगञ्ज और बराकरकी कोयलेकी खानोंमें ये काम करते हैं ।

विहारवासी बेलदारोंमें चौहान और कथौसिया या कथवा नामके दो वंश या दल और कश्यप गोत्र प्रच-लित है । इनमें बाल्य विवाह मौजूद हैं; किन्तु अनेक स्थलोंमें युवती कन्याका विवाह भी देखा जाता है। ममेरा, चचेरा प्रथाके अनुसार यह विवाह सम्पन्न होता है। विवाहका नियम निम्नश्रेणीकी तरह ही है।

मैथिलब्राह्मण इनका पौरोहित्य किया करते हैं। धर्म, कर्म, श्राद्ध और अन्त्येष्टि क्रिया आदि निम्नश्रेणीके हिन्दुओंकी तरह ही होती है । मुसलमानोंके विवाहमें मसालचीका काम करके जो कुछ पाते हैं, उसीसे ये अपना जीवन निर्वाह करते हैं ।

उत्तर-पश्चिम भारतमें और दाक्षिणात्यमें भी बेलदार देखे जाते हैं । इनका कोई वासस्थान निर्दिष्ट नहीं है। साधारणतः तम्बूमें ही ये वास करते हैं। जहां जब यह कामका समाचार पाते हैं, उसी समय उस देशमें ये चले जाते हैं। कहीं कहीं मिट्टीकी जगह ये पत्थर भी काटा करते हैं । कुएं या तालाब आदि खोदा करते हैं और चहारदीवारी भी बनाते हैं। पूनाके बेलदार हिन्दी और मराठीमें बातचीत किया करते हैं। वे प्रायः १५० हाथकी पगड़ी बांधते हैं। ये बड़ी माई या शीतला माताकी पूजा करते हैं तथा इनकी मृत्युकी अधिष्ठात्री समझ कर मड़ी आई कहते हैं। सिवा इनके माता, आई, देवी, भवानी, आदि विभिन्न शक्ति-मूर्त्तियोंकी उपासना करते हैं। देवीपूजामें ये बकरेकी बलि चढ़ाया करते हैं।

हिन्दूराजाओंके पास पहले बेलदार फौजें रहा करती थीं। राजा सीतारामकी बेलदार फौज कभी मिट्टी कोड़ती और आवश्यक होने पर युद्ध भी करती थी। उस समय इस निम्न श्रेणीके हिन्दुओंसे फौजें एकत्र की जाती थीं ।

उत्तर-पश्चिमके बेलदारोंमें बाछल, चौहान और खरोत वंश विद्यमान है। प्रथम दो राजपूत जातिका अनुकरण करते हैं। खर या खड़ नामक तृणसे चटाई तय्यार करनेके कारण खरोत इनकी शाखा हुई है। सिवा इसके बरेलीमें मांडुल और ओरा हैं; गोरखपुरमें देशी खरविन्द और सरवरिया; बस्ती जिलेमें खारविन्द और मोसखावा आदि दल दिखाई देते हैं । वर्त्तमान समय-में सुसभ्य हिन्दुओंके सहवाससे वे बछगोती, बाछल, बहेलिया बिन्दवार, चौहान, दीक्षित, गहरवाड़, गौड़, गौतम, घोषी, कुर्मी, नोनियो, ओरा, राजपूत, ठाकुर आदि वंशगत नाम तथा अमरवाला, अग्रहवंश, अयोध्यावासी, भदौरिया, दिल्लीवाला, गङ्गापारी, गोरख-पुरी, कनौजिया, काशीवाला, सरवरिया (सरयूतीर-वासी) और उत्तराई आदि नामोंसे विख्यात हैं ।

जिस स्त्रीको स्वामी छोड़ देता है, वह दूसरा विवाह करती है। ये पांचों पीरको पूजा चढ़ाते हैं। शिवरात्रि-के पर्व पर महादेवजीकी पूजा तथा उपवासव्रत करते हैं।

उड़ीसेके बेलदार केवल तालाब पोखरे खोदते हैं। इनमें एक जमादार रहता है। जमादारके अधीन कई नायक रहते हैं। इन नायकोंके अधीन दलके दल बेलदार रहते हैं। इनका भी कोई निर्दिष्ट वासस्थान नहीं है।

वेलन (सं० क्ली०) हिंगु, हींग ।

वेलनाड़—दाक्षिणात्यवासी तैलङ्गी ब्राह्मणकी एक शाखा। इनकी संख्या अन्यान्य सम्प्रदायसे कहीं अधिक है। १५ वीं सदीमें जिन वल्लभाचार्यको प्रतिभाने सारे संसारको उज्ज्वल कर दिया था, जो एक दिन वैष्णव-समाजमें भगवदवतार कह कर पूजित हुए थे, जिनके वंश-धर आज भी राजपूताना, गुजरात और बम्बई प्रदेशमें आदर पाते हैं, उन्होंने ही इस ब्राह्मणकुलमें जन्मग्रहण किया है। महिसुरमें प्रायः सभी जगह तथा गोदावरी और कृष्णा जिलेमें बहुसंख्यक वेलनाड़ ब्राह्मणोंका वास देखा जाता है।

वेलपुर—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत तनुक तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १६° ४१´ उ० तथा देशा० ८१° ४५´ पू०के मध्य अवस्थित है ।

शिलालिपिमें होयशालकी राजधानी वेलपुरका उल्लेख

है। १म परमर्द्दिदेवने द्वारसमुद्र और बेलफुर राजधानी-को अधिकार किया था।

वेलवती—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलांतर्गत हाङ्गल तालुकका एक नगर। यह अक्षा०१४° ५४' उ० तथा देशा० ७५° १५' पू० के मध्य हङ्गलसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यह प्राचीन लीलावती नामक नगरका एकांश माना जाता है। यहां गोलकेश्वर शिवमूर्त्ति विद्यमान है। मन्दिर काले पत्थरोंका बना हुआ है। यह वृहदाकार और नाना शिल्पयुक्त है। मन्दिरगात्रमें २ शिलालिपियां हैं।

वेलवा—महिसुरवासी जातिविशेष। ताड़ और खजूरका रस संग्रह कर बेचना इनका व्यवसाय है। ये लोग मलयालम् भाषामें बोलचाल करते हैं।

वेलवाटगी—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत नवलगुण्ड तालुकका एक बड़ा गांव। यह नवलगुण्डसे ३ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामलिङ्गदेवका टूटा फूटा मन्दिर विद्यमान है।

वेलवाड़ी—बम्बईप्रदेशके बेलगाम जिलान्तर्गत सांपगांव तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १५° ४२' उ० तथा देशा० ७४°५६' पू०के मध्य सांपगांवसे १२ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां वीरभद्रदेवका एक बहुत प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। स्थानीय लोग उसकी गठनप्रणालीको "जखनाचार्य्यप्रथा" कहते हैं। कित्तुर देशाईके समय उसका संस्कार हुआ। यहां ६६२ शकमें उत्कीर्ण पश्चिमचालुक्य राजवंशका एक शिलालेख दिखाई देता है।

वेलवार—अयोध्यावासी कृषिजीवी जातिविशेष। इनमें सुनाढ, बघेल, भोएडा और गौड़ नामके श्रेणीविभाग दिखाई देते हैं।

वेला (सं० स्त्री०) वेलयतेऽनयेति वेल 'गुरोश्च हलः' इति अ, तत टाप्। १ काल, वक्त। पर्याय—समय, क्षण, वार, अवसर, प्रस्ताव, प्रक्रम। २ मर्यादा। ३ समुद्रकूल, समुद्रका किनारा। ४ समुद्रकी लहर। ५ अक्लिष्ट-मरण। ६ रोग, बीमारी। ७ होरात्मक कालभेद, समयका एक विभाग जो दिन और रातका चौबीसवां भाग होता है। कुछ लोग दिनमानके आठवें भागको भी वेला मानते हैं। ८ वाक्, वाणी। ९ बुधकी स्त्री। (विश्व) १० दन्तमांस, मसूड़ा। (हारावली) ११ भोजन, खाना। (त्रिका०)

वेला—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह इलाहाबादसे (फैजाबाद जानेके रास्ते पर) ३६ मील और प्रतापगढ़से ४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। शहरमें दो देवमन्दिर और एक मसजिद है।

बेला—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह बोरिसे १० मील दक्षिण अक्षा० २०° ४७' उ० तथा देशा० ७९° ४' पू०के मध्य अवस्थित है। गौली जमींदारोंके आधिपत्यकालमें यह नगर स्थापित हुआ है। रायसिंह चौधरी नामके एक जमींदारने यहां एक दुर्ग बनवाया था। अभी यह टूटीफूटी अवस्थामें पड़ा है। पिंडारी युद्धके समय यह नगर उक्त डकैतोंके उपद्रवसे दो बार नष्टप्राय हो गया था। आज भी यहां मोटा सूती कपड़ा और त्रद बुननेका कारबार है। उस देशी चटसे थैले बनाये जाते हैं। बंजारा वणिक् उस थैलीमें माल भर कर यहांसे दूसरी जगह ले जाते हैं। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्यविक्रयकी एक बड़ी हाट है।

वेला—बेलुचिस्तानके लास-विभागका एक प्रधान नगर। पुरली नदी तीरवर्त्ती पहाड़ी अधित्यकाभूमि पर यह नगर बसा हुआ है। प्राचीन अरबी कवियोंने इसका आर्मा बेल वा फाड़ाबेल नामसे उल्लेख किया है। यह नगर ध्वस्त और जनशून्य अवस्थामें पड़ा रहने पर भी इसकी पूर्व स्मृति लुप्त नहीं हुई है। प्राचीन मुद्रा, नाना अलङ्कार, खिलौने और तरह तरहके पात्रादि इस जनपदकी अतीत समृद्धि घोषित करते हैं। इसकी पार्श्ववर्त्ती शैलश्रेणीमें आज भी असंख्य गुहाएं तथा पर्वतगात्र पर खोदित देवमन्दिरें दिखाई देते हैं। ये सब कीर्त्तियां यहांके हिन्दू प्राधान्यकी परिचायक हैं। किन्तु मुसलमानोंका कहना है, कि यह फरहद और परियोंकी कीर्त्ति और वासभूमि है। यथार्थमें यह एक समय स्थानीय प्राचीन शासनकर्त्ताओं वा विभिन्न सरदारोंका विश्रामस्थान था, इसमें जरा भी संदेह नहीं। मुसलमानी अमलमें यह स्थान उनके हाथ आया था। उस समय यहां बहुतसे मकबरे बनाये गये थे।

आज भी यहांके अधिवासियोंका एक तृतीयांश हिन्दू है।

वेला—युक्तप्रदेशके आगराविभागके अन्तर्गत इटावा जिलेका एक प्राचीन नगर। यह अभी एक छोटे ग्राममें परिणत हो गया है। आज भी नाना स्थानोंमें ध्वंसत-कीर्त्ति और नगरके तोरणादि भग्नावस्थामें पड़े दिखाई देते हैं।

वैलावर—भोज प्रदेशके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां कुशकी जड़से एक मुनि उत्पन्न हुए थे।

(भविष्य ब्रह्मखण्ड० ३०।२१)

वेलाकूल (सं० क्ली०) वेला एव कूलं यस्य। ताम्रलिप्त देशका एक नाम।

"वेलाकूलं ताम्रलिप्तं ताम्रलिप्ती तमालिका।" (त्रिका०)

२ समुद्रकूल, समुद्रका किनारा।

वेलाज्वर (सं० पु०) ज्वरविशेष। लक्षण—शोक, क्रोध, अजीर्ण, सन्ताप या बलहानिके कारण अन्तकालमें मानवोंको जो दारुण ज्वर होता है उसे वेला कहते हैं।

वेलाजलपान (सं० क्ली०) वेलायां जलपानं। समय पर जलपीना। राजनिघण्टुके मतसे यह बड़ा स्वास्थ्यकर है। इस जलपानसे पानदोष, कफ और अरुचि विनष्ट होती और भुक्त अन्नका परिपाक होता है। (राजनि०)

वेलाधिप (सं० पु०) वेलायाः अधिपः। फलित ज्योतिषमें दिनमानके आठवें भाग या वेलाके अधिपति देवता। रवि, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, वृहस्पति और मंगल ये क्रमशः वेलाधिप होते हैं। जिस दिन जो वार होता है, उस दिनकी पहली वेलाका वेलाधिप उसी वारका ग्रह होता है और पीछेकी वेलाओंके अधिपति उक्त क्रमसे शेष ग्रह होते हैं। जैसे—रविवारको पहली वेलाके वेलाधिप रवि, दूसरीके शुक्र, तीसरेके बुध, चौथीके चन्द्र होंगे। इसी प्रकार बुधवारकी पहली वेलाके वेलाधिप बुध, दूसरीके चन्द्र, तीसरीके शनि, चौथीके वृहस्पति होंगे।

वेलापुर—बम्बई प्रेसिडेन्सीके थाना जिलेका एक बन्दर।

वेलामारपलवलास—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गञ्जाम जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। गांवका भूपरिमाण ३ वर्गमील है।

वेलायनि (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि।

वेलावलि (सं० पु०) रागिणीभेद।

वेलावित्त (सं० पु०) प्राचीनकालके एक प्रकारके राजकर्मचारी। (राजतरङ्गिणी ६।७३)

वेलि (Sir Stuart Colvin Bayley)—बङ्गालके अङ्गरेज-शासनकर्त्ता, साधारणतः छोटे लाट या लेफ्टेनाण्ट गवर्नर नामसे प्रसिद्ध। ये माननीय इष्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारी और भारतके अस्थायी गवर्नर जनरल विलियम वाटरवर्थ वेलीके पुत्र थे। इटन और हेलिवारि कालेजमें शिक्षालाभ कर ये १८५६ ई०की ४थी मार्चको भारतवर्ष आये और २४ परगनेके असिष्टाण्ट मजिष्ट्रेट कलेक्टर हुए। पीछे उन्होंने यथाक्रम निम्नलिखित पद पर विशेष दक्षताके साथ कार्य करके बङ्गालके छोटे लाटके पद पर तरक्की पाई थी। १८५६-५६ ई०में कलरोया बाँरुई उपविभागके कलक्टर; १८६२-६३में जुनियर सिक्रेटरी बेङ्गाल गवर्मेण्ट; १८६५ और १८६७में गवर्मेण्टके अस्थायी सिक्रेटरी; १८६७ ई०में शाहाबादके दीवानी और सेसन जज तथा मुङ्गेरके मजिष्ट्रेट कलक्टर; १८६८ ई०में बंगाल गवर्मेण्टके अतिरिक्त सिक्रेटरी, पटनाके कलक्टर; १८७० ई०में सिभिलसेसन जज तिरहुत; १८७१ ई०में चट्टग्रामके कमिश्नर और बंगाल-गवर्मेण्टके अस्थायी सिक्रेटरी, उसी सालके नवम्बर मासमें स्पेसियल ड्युटी पर; १८७२ ई०में प्रेसिडेन्सी कमिश्नर, चट्टग्रामके कमिश्नर और पटना विभागके कमिश्नर; C. S, I, उपाधि-प्राप्ति (१८७५ ई०के सितम्बरसे १८७६ ई०के अक्तूबर तक छुट्टी), फिर पटनामें उक्त पद पर नियुक्ति; १८७७ ई०में बंगाल गवर्मेण्टका सिक्रेटरी पद, भारतगवर्मेण्टके आयव्यय विभागके अतिरिक्त सिक्रेटरी, दुर्भिक्षके कारण भारत प्रतिनिधि लार्ड लीटनके पर्सनल असिस्टाण्ट तथा कार्यके ऊपर भारत-गवर्मेण्टके पूर्त्तविभागकी दुर्भिक्ष शाखाके अतिरिक्त सिक्रेटरी; १८७८ ई०में भारत-गवर्मेण्टके होम डिपार्टमेण्टके सिक्रेटरी; K, C. S, I की उपाधि, आसामके अस्थायी चीफ कमिश्नर और बंगालके अस्थायी छोटे लाट (१५वीं जुलाई—१ली दिसम्बर १८७६), फिरसे आसामके

चोफ कमिश्नर ; १८८१ ई०में हैदराबादके रेसिडेंट C. I, E, की उपाधि ; १८८२ ई०में वड़े लाटकी सभाके मेम्बर और १८८७ ई०की २री अप्रिलको बंगालके छोटे-लाट हुए।

इनके शासनकालमें चट्टग्राम पार्वतीय सीमान्तका उपद्रव दूर करनेके लिये सीमान्तदेशमें सिपाही रखनेकी व्यवस्था हुई। इसके सिवा लुसाई और सिक्किम जीतनेकी इच्छासे इन्होंने सेना भेजी थी। १८८८ ई०की ७वीं अप्रिलको ढाकाके सुप्रसिद्ध टरनार्डो और हुगली-तीरवर्त्ती टरनार्डो नामक तूफानने लोगोंको वड़ा नुकसान पहुंचाया। इन्हींके शासनकालमें ३री जनवरी १८९० ई०को हिज रायेल हाइनेस प्रिन्स अलवर्ट भिकृरने कलकत्तेमें पदार्पण किया।

आवकारी और पुलिस-विभागका संस्कार, लोकल टैक्स, कलकत्ता पोर्ट और अन्यान्य विषयोंका राजनैतिक परिवर्त्तन करके इन्होंने १८९० ई०में कार्यसे छुट्टी ले ली। उनके प्रति कृतज्ञता दिखानेके लिये कलकत्तेकी वृटिश-इण्डियन-सभाने उनकी एक मूर्त्ति स्थापन की है।

इसके वाद इन्होंने Secretary in the Political and Secret department of the India office पद पर कार्य किया। १८९५ ई०को वे इण्डिया कौन्सिल (Council of India)के मेम्बर हुए।

वेलिका (सं० स्त्री०) १ वेलाभूमि। २ नदीतटके आस पासका प्रदेश। ३ ताम्रलिप्ति।

वेलिकेरि—वम्बई-प्रदेशके उत्तर कनाड़ा जिलान्तर्गत एक वन्दर और गण्डग्राम। यह धारवाड़ नगरसे १३ मील दक्षिण अक्षा० १४° ४२' ४५" उ० तथा देशा० ७४° १६' पू०के वीच पड़ता है। गांव स्थानीय स्वास्थ्यनिवासमें गिना जाता है। इस कारण यहां समुद्रके किनारे वहुतसे वंगले हैं।

वेलिभुक्प्रिय (सं० पु०) सौरभयुक्त आम्र, वह आम जिनमें खूब सुगंध हो।

वेलियानारायणपुर—वङ्गालके मुर्शिदावाद जिलान्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम। यह पगला नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। पहले यह वीरभूम जिलेके अन्तर्गत था। १८५७ ई०में यहां खनिज लौह गलानेका कारखाना था।

वेलियापाटम्—१ मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलेमें प्रवाहित एक नदी। भारतीय मानचित्रमें यह विल्लीपटम नामसे उल्लिखित है। कुर्ग सीमान्त पर घाटपर्वतमालाके कुछ सोते तथा उत्तर-पूर्वमें मनत्तानसे एक वड़ी शाखा नदी इसमें मिल गई है। पीछे यह पुष्ट कलेवर धारण कर इरिकुड़से पश्चिम इरवपुरको चली गई है। यहां उसमें एक और शाखा नदीके मिल जानेसे उसका आकार वड़ा हो गया है। वादमें यह वेलियापाटम् नगरको पार कर उक्त नगरसे ४ मील दक्षिण-पश्चिम समुद्रमें मिलती है। समुद्रसन्निहित नदीके किनारे वहुतसे नारियल और सुपारीके पेड़ उत्पन्न होते हैं।

२ मन्द्राजप्रदेशके मलवार जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ११° ५५' उ० तथा देशा० ७५° २५' पू०के मध्य मुहानेसे ४ मील दूर वेलियापाटम् नामकी नदीके वाएं किनारे अवस्थित है। मलयालम् भाषामें यह वलारपत्तनम् नामसे मशहूर है। भौगोलिक इवनवतूताने इस नगरका 'जरफत्तन' नाम रखा है।

१७३५ ई०में कोलगिरिके राजाने अङ्गरेज कम्पनीको इस नगरके समीप मादक्कर दुर्ग स्थापन करनेकी अनुमति दी। राजाको नत्थीमें लिखा है, "वड़ी सावधानीसे देखना जिससे हमारे शत्रु कनाड़ाराजका कोई भी आदमी इस नदीमें घुस न सके" सुप्रसिद्ध मुसलमान-सैनिक हैदर अलीने मलवार विजयमें आ कर यहां प्रथम जय लाभ किया था। नगरके दक्षिण एक देवमन्दिर है। श्रीकुपडपुरम् देखो।

वहुत प्राचीन कालसे यह नगर वाणिज्यसमृद्धिके लिये प्रसिद्ध था। अभी उस वाणिज्य प्रभावकी स्मृतिमात्र रह गई है। कोन्ननूर सेनानिवाससे यह स्थान ४ मील दूर पड़ता है।

वेलुड़—कलकत्तेके उत्तर गङ्गाके पश्चिमी किनारे अवस्थित एक वड़ा ग्राम। यहां परमहंस श्रीरामकृष्णदेवका एक मठ विद्यमान है। रामकृष्णदेव देखो।

वेलुन—वंगालका एक गण्डग्राम। यहां गोपीनाथ-मन्दिर विद्यमान है। (देशावली)

वेलुव—उच्च संख्याभेद।

वेलुवाई—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलान्तर्गत

मङ्गलोर तालुकका एक बड़ा ग्राम। यहांके एक खेतमें प्राचीन कनाड़ी भाषामें उत्कीर्ण शिलालिपि देखी जाती है। वह लिपि इस स्थानकी प्राचीनता सूचित करती है।

वेलुर—१ मन्द्राज प्रदेशके महिसुर राज्यके अन्तर्गत हसन जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ३ सौ वर्गमील है।

२ उक्त तालुकका एक नगर। वर्त्तमान कालमें यह श्रीभ्रष्ट अवस्थामें पड़ा है, फिर भी इसके प्राचीन गौरवके अनेक निदर्शन आज भी दिखाई देते हैं। यह नगर हसनसे २३ मील उत्तरपश्चिम यगाही नदीके दाहिने किनारे अक्षा० १३°१०´ उ० तथा देशा० ७५° ५५´ पू०में अवस्थित है। पुराणादि तथा प्राचीन शिला-लिपियोंमें यह स्थान वेलपुर नामसे उल्लिखित है। यहांके लोग इसे दक्षिण वाराणसी समझ कर भक्तिदृष्टि-से देखते हैं। यहां छिन्नकेशवका पवित्र मन्दिर है। इसी कारण यह दाक्षिणात्यवासीके पवित्र तीर्थरूपमें माना गया है। प्रसिद्ध भास्कर-शिल्पविद् जखनाचार्य-ने उस मन्दिरके शिल्पनैपुण्यपूर्ण चित्रादि खुदवाये थे। १२ सदीके मध्य भागमें होयसाल वल्लालवंशीय राजाने पूर्वपुरुषके आचरित जैन धर्मका परित्याग कर वैष्णव-धर्मका आश्रय लिया। उन्होंने ही अपने इष्ट देवकी प्रतिष्ठाके लिये विष्णुमन्दिर बनवाया था। यहां प्रति वर्ष वैशाखके महीनेमें ५ दिन तक मेला लगाता है। इस मेलेमें बहुतसे आदमी एकत्र होते हैं।

वेलुर तालुकका विचार-सदर इसी नगरमें अवस्थित है।

वेलूर—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके सलेम जिलान्तर्गत होसुर तालुकका एक नगर। यह होसुरसे ११ मील उत्तरपूर्व-में अवस्थित है। यहां महिसुरराज दोड्डदेव (चिक्क-देवराज)-के राज्यकालमें कुमार राय दलवाय द्वारा निर्मित १६७२ ई०में एक आनिकट है।

वेलूर—बम्बई प्रदेशके कालादगी जिलान्तर्गत वदामी तालुकका एक नगर। यह वदामीसे ७ मील दक्षिण-पूर्व-में पड़ता है। इस दुर्गमें नरनारायणमन्दिर स्थापित है।

वेलूर—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण आर्कट और पुदिचेरी जिलान्तर्गत तिरुवन्नमलय तालुकका एक प्राचीन नगर। यहां एक भग्नप्राय दुर्ग और प्राचीन देवमन्दिर है।

वेलूरु—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिणकनाड़ा जिलांतर्गत उडिपि तालुकका एक नगर। यह उडिपिसदरसे १७ मील उत्तरमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर है। मन्दिरके भीतरकी दीवालमें उत्कीर्ण महादेव उदैयाकी जो शिलालिपि है उससे जाना जाता है, कि १५६१ ई०में उन्होंने मन्दिरके अर्चनार्चके लिये सम्पत्ति दे दी थी।

वेलो—बम्बई प्रदेशके सिंधुविभागके करांची जिलांतर्गत सुजावल तालुकका एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २०° ४४´ उ० तथा देशा० ६८° ८´ पू०के मध्य सिन्धुतट और तालुकके विचारसदरसे ४ मील दूरमें अवस्थित है। यहां लोहाना और भाटिया नामक हिन्दू तथा सैयद और मुहाना नामकी मुसलमान श्रेणीका वास है।

वेलोना—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेके कतोल तालुकका एक नगर। यह मोवार नगरसे ४ मील उत्तर-पश्चिम वर्द्धा नदीकी एक छोटी शाखाके ऊपर अवस्थित है। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्योंका वाणिज्य होता है।

वेल (सं० क्ली०) वेल्लतीति वेल्ल चलने पचाद्यच्। १ विड़ंग। (अमर) वेल्ल भावे घञ्। (पु०) २ गमन, जाना।

वेल्लक (सं० क्ली०) विड़ंग।

वेल्लकोविल—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतोर जिलेके अन्त-र्गत एक प्राचीन बड़ा गांव। यह अक्षा० १०° ५७´ उ० तथा देशा० ७७° ४१´ पू०के मध्य धारापुरम्‌से १८ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर और शिवमन्दिरमें प्राचीन शिलालिपि है। गांवकी बगलमें एक प्राचीन स्मृतिस्तम्भ दिखाई देता है।

वेल्लङ्कोविल—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतोर जिलेका एक प्राचीन गण्डग्राम। यह सत्यमङ्गलम्‌से १८॥ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां पुराने मठकी दीवालमें एक प्राचीन तामिल शिलालिपि दिखाई देती है।

वेल्लगिरिका (सं० स्त्री०) प्रियंगु।

वेल्लज (सं० क्ली०) वेल्लवत् जायते इति जन-ड। मरिच, मिर्च।

वेल्लतङ्गड़ि—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण-कनाड़ा जिलान्तर्गत उप्पिनङ्गड़ि तालुकका एक प्राचीन नगर। यह मङ्गलोरसे ३२ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। यहांके राजाओंका प्रतिष्ठित दुर्ग और जैनमन्दिर विद्यमान है। इस नगरमें जो एक समय राजधानी थी, उसके भी अनेक निदर्शन पाये जाते हैं।

वेल्लन (सं० क्ली०) वेल्ल-ल्युट्। १ घोड़ोंका जमीन पर लेटना। (त्रि०) २ सञ्चालन।

वेल्लनी (सं० स्त्री०) वेल्लति लुठति अश्वादि रत्रेति वेल्ल-ल्युट् ङीप्। माला दूर्वा, वल्ली दूब। (राजनि०)

वेल्लन्तर (सं० पु०) वीरतरु, विल्मान्तरवृक्ष, बरवेल। यह वेल्लन्तर वृक्ष जगत्में वीरतरु नामसे मशहूर है। इसका फूल सफेदी लिये कुछ काला और आकारमें जाति फूलके समान होता है। इसके पत्ते शमी पत्तेके समान होते हैं। यह पेड़ कांटोंसे भरा रहता तथा जलविहीन स्थान पर लगता है। इसका गुण—तिक्तरस, कटुविपाक, धारक, तृष्णा, कफ, मूत्राघात, अश्मरी, योनिरोग, मूत्ररोग और वायुरोगनाशक माना गया है। (भावप्र०)

वेल्लन्तरादिगण (सं० पु०) वेल्लन्तर आदि करके द्रव्यवर्ग। वाभटके सूत्रस्थानमें इसका उल्लेख है। वातरोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोगमें यह बड़ा फायदा पहुंचाता है। (वाभट सूत्र० १५ अ०)

वेल्लभव (सं० क्ली०) मरिच, मिर्च। (वैद्यकनि०)

वेल्लमूकोण्डा—मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक पर्वत। यह समुद्रपृष्ठसे १५६६ फुट ऊंचा है। तेलगू भाषामें इसे विल्लमकोण्डा (गुहा-गिरि) कहते हैं। इस पर्वतके ऊपर एक टूटा फूटा गिरिदुर्ग है। करीब १५१५ ई०में कृष्णदेवरायने तथा १५३१ और १५७८ ई०में गोलकोण्डाधिपति सुलतान कुलीकुतव शाहने इस पर अधिकार जमाया।

यह गुण्टूरसे नेलकोण्डा जानेके रास्ते पर अक्षा० १६° ३१´ उ० तथा देशा० ८०°४´ पू०के मध्य अवस्थित है।

वेल्लर (वशिष्ठ नदी)—मन्द्राज प्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह सलेम जिलेके पहाड़ी प्रदेशसे निकल कर पत्तुर गिरिसङ्कट होती हुई दक्षिण आर्कटके समतलक्षेत्रमें चली गई है। पीछे इस जिलेको पार कर पोर्टोनोवोके समीप समुद्रमें गिरती है। इस नदीकी लम्बाई प्रायः १३५ मील है। वृद्धाचलम्के समीप मणिमुक्ता नामक एक नदी आ कर इसमें मिल गई है। इस नदीके ऊपर एक रेलवे पुल है।

वेल्लरी (बल्लारि, प्राचीन नाम वलहरि)—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीका एक जिला। यह अक्षा० १४° १४´ से १५° ५७´ उ० तथा देशा० ७५° ४५´ से ७७° ४०´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके मध्यगत सन्दूर सामन्तराज्यको ले कर भूपरिमाण ६ हजार वर्गमील है।

इसके उत्तरमें खरप्रवाहा तुंगभद्रा नदीने निजाम राज्यको पृथक् कर रखा है। पूर्वमें अनन्तपुर और करनूल जिला, दक्षिणमें महिसुर राज्यके अन्तर्गत चित्तलदुर्ग जिला तथा पश्चिममें तुङ्गभद्राने बम्बई प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलेको इस जिलेसे विच्छिन्न किया है। इसके कुछ अंशको ले कर अनन्तपुर गठित हुआ है। उसके पूर्वमें इसका आयतन और भी विस्तृत था।

यह ८ तालुकों और संदूर नामक एक सामंत-राज्यमें विभक्त है। यहाँ कुल ११७४ ग्राम १० नगर हैं।

इस जिलेमें अधिकांश स्थान कपासकी खेतीके लिये उपयुक्त अर्थात् काली मिट्टीसे युक्त है। वृक्ष लतादि न होने तथा बीच बीचमें ऊँची ऊँची पहाड़ियोंके होनेसे सारा देश मरुमय प्रांतर प्रतीत होता है। इसका पश्चिमांश घाटपर्वतमालाकी अधित्यका भूमि तथा पूर्वांश क्रमशः नीचा होता गया है। पश्चिममें बेलगाम जिलेके सीमांतदेशमें इसका अधित्यकादेश समुद्रपृष्ठसे २५८६ फुट ऊँचा है, पर पूर्वकी तरफ मन्द्राज रेलपथके गेमटकल-जंगशन नामक स्थानकी उच्चता १४५१ फुट है।

अधित्यका-भूमिके इस प्रकार समुन्नत होनेसे यहां विशेषरूपसे जलका अभाव तथा उसी कारण अन्यान्य वृक्षोंकी उत्पत्तिकी सम्भावना भी बहुत कम है। जिलेकी उत्तर सीमामें एकमात्र तुङ्गभद्रा नदी है। वर्षाके समय दोनों किनारे डूब जाते हैं, जिससे अधिवासियोंको विपद्ग्रस्त होना पड़ता है। दक्षिणभागमें उक्त नदीकी हागरी,

वेदवती आदि शाखाएं हैं। उनके किनारे हम्पसागर, होसपेट, श्रीगूपा, हम्पी और काम्पिली नगर है। रामपुरके पास वेदवतीके ऊपर ५२ खम्भोंका एक पुल है जिस परसे रैल चला करती है। १८५१ ई०में वेदवतीकी बाढ़से गुलियम् नगर बह गया था। वेदवती इस जिलेमें १२५ मील तक बहती हुई हलिकोटाके पास तुंगभद्रामें जा मिली है। वेदवती देखो।

सन्दूर और काम्पिलीके बीचकी पर्वतश्रेणी और पूर्वकी ओरका लङ्कामल्ल पर्वत उल्लेख-योग्य है। इन स्थानोंमें लोहा, तांबा, रसाञ्जन, सीस, माङ्गानीज, चून, फिटकरी पायी जाती है। कहीं कहींसे सोरा और नमक भी निकाला जाता है। वनोंमें जन्तुओं पक्षियोंका अभाव नहीं है। बबूल, वट और वनखजूर बहुत है। जगह जगह आम्र, तिन्तिड़ी, नारिकेल, ताड़, अश्वत्थ और नीमके पेड़ लगा कर उद्यानकी शोभा भी बढ़ाई गई है।

पूर्वमें अनन्तपुर जिला-विभागके समस्त जिले जिस रूपमें थे, उन स्थानोंके साथ इस जिलेका इतिहास विशेष सम्बन्ध रखता है। होसपेट तालुकमें विजयनगर-राज्यकी प्राचीन राजधानी प्रतिष्ठित थी, इसलिए उस देशका इतिहास १४वीं शताब्दीमें प्रथम मुसलमान आक्रमणसे पहलेका है। विजयनगर देखो।

उसके बाद महाराष्ट्रकेशरी वीर शिवाजीके अभ्युदयके साथ साथ इस जिलेका इतिहास महाराष्ट्र-इतिहासमें संश्लिष्ट हुआ। १६४० ई०में शिवाजीको बीजापुरके सुलतानसे बेल्लरी दुर्ग, अदोनी दुर्ग और उसके पासकी जागीर प्राप्त हुई। गुटीके चारों तरफका प्रदेश गोलकुण्डाके राजाके अधीन रहा। रायदुर्ग, अनन्तपुर और हर्पणहल्लीके पलीगर सरदारगण महाराष्ट्रोंके अधीनस्थ सामन्त थे। १६८० ई०में शिवाजीकी मृत्युके बाद मुगल सम्राट् औरङ्गजेबने दाक्षिणात्य-विजयके लिए आ कर जिलेको जीता और लूटा तो सही, परन्तु वास्तवमें मुगलशासनकी प्रतिष्ठा वे न कर सके। उन्हें बाध्य हो कर पलीगर-राजाओं पर इस देशके राजस्वकी वसूली और शासनका भार सौंपना पड़ा था। ये पलीगर सरदार स्वेच्छासे दिल्ली राजकोषको जो भी राजस्व भेज देते थे, दिल्लीश्वरको उतने ही ले कर संतुष्ट होना पड़ता था।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद, दाक्षिणात्यमें निजामकी शक्ति प्रतिष्ठित हुई। उस समय गुटी, सन्दूर आदि बेल्लरीके सरदारगण अर्द्ध-स्वाधीनरूपमें राज्यशासन करते रहे। कुछ ही समय बाद महिसुर-राज प्रबल हो उठे और बेल्लरी कुछ दिनोंके लिये उनके हस्तगत हुआ। निजामकी मृत्युके बाद हैदर अलीने महिसुर अधिकार किया। उन्होंने अदोनीके शासनकर्त्ता बसालतजङ्गके आमन्त्रणसे बेल्लरीको लूट कर महाराष्ट्रोंको परास्त कर दिया। महाराष्ट्रगण तैयार न थे, इसलिए वे दुर्गकी रक्षा न कर सके थे। किन्तु बादमें शीघ्र ही दलबल बाँध कर वे रणक्षेत्रमें दिखाई दिये। हट्टिहल्ली रणक्षेत्रमें हैदरअली परास्त हो गये और लब्ध राज्यको छोड़ छाड़ कर भाग चले। सिर्फ रायदुर्ग, चित्तलदुर्ग और हर्पणहल्लीदुर्ग उनके अधिकारमें रहा।

१७६७ ई०में प्रसिद्ध महिसुर-युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस समय हैदरअलीने अर्थ-संग्रहके अभिप्रायसे निकटवर्त्ती जिलोंसे बलपूर्वक चन्दा वसूल किया था। गुटीके सरदारने उनकी इस अन्याय प्रार्थनाकी पूर्त्ति नहीं की थी। आदोनी राजके अधीन होने पर भी बेल्लरीसे वे विशेष कुछ न ले सके थे।

१७७४ ई०में बेल्लरीके पलीगर बसालतजङ्गने जब निजामको कर देना बन्द कर दिया तो निजामके आदेशसे उनके विरुद्ध मूंसो लालीने युद्ध यात्रा की। उस समय उपायान्तर न देख बसालतजङ्गने हैदराबादसे सहायता मांगी। हैदरअलीने शठतापूर्वक अदोनी सेनादलको पराजित कर बेल्लरीको अपने अधिकारमें ले लिया।

इसके बाद हैदरने तीसरी बार गुटी पर आक्रमण किया। अबकी बार युद्धमें उनकी विजय हुई और गुटी पर उनका कब्जा हो गया। गुटीमें अपना राज्यकेन्द्र स्थापित कर दो वर्ष तक हैदर महाराष्ट्र और निजामके विरुद्ध लड़ते रहे। इस समय चित्तलदुर्ग, रायदुर्ग, हर्पणहल्ली और इस जिलेके अन्यान्य अंशोंके पलीगरोंने महिसुरके राजाके यहां सामन्त रूपमें कार्य किया था।

हैदरकी मृत्युके बाद इन पलीगरोंने स्वाधीनता

प्राप्त की। हैदर-वंशधर दुर्द्धर्ष टीपू सुलतानने सामन्तोंका ऐसो व्यवहार देख क्रुद्ध हो उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। उन्होंने एक एक कर पलीगरोंके द्वारा रक्षित दुर्गोंको हस्तगत कर लिया और रायदुर्ग तथा हर्पणहल्लीके दो सामन्तोंको यमपुर पहुंचा दिया। इससे अन्यान्य सरदारोंने डर कर फिर टीपू सुलतानके विरुद्ध आचरण नहीं किया। टीपूने उनके अधिकृत अस्त्रशस्त्र, धनरत्न और रसद वगैरहको इकट्ठा कर अपने गुटो और वेल्लरी दुर्गमें रख दिया था।

धीरे धीरे इस प्रदेशमें टीपूके प्रभाव और अत्याचारोंकी वृद्धि होने लगी। टीपू मदमत्त हो कर अङ्गरेज गवर्नमेण्टके विरुद्ध भी आचरण करते रहे। इसी सूत्रसे १६८६ ई०में अंग्रेजोंके साथ उनका युद्ध हुआ। युद्धके बाद दोनों पक्षोंमें सन्धि हुई। उस सन्धिके अनुसार टीपूको शेष-लब्ध राज्य दूसरेको लौटा देनेके लिए बाध्य होना पड़ा, तदनुसार वेलरि जिला निजामके राज्य-भुक्त हुआ।

उसके बाद फिर युद्धकी सूचना हुई। श्रीरङ्गपत्तन-रणक्षेत्रमें टीपू बन्दी हो कर मारे गये (१७६६)। उससे फिर वेलरी जिलेको निज़ाम और पेशवा दोनोंने बांट लिया। १८०० ई०में अंग्रेजोंने पेशवासे वेलरी ले लिया। १७६२ और १७६६ ई०की सन्धिमें निज़ामने अदोनी और वेलरीका जो अवशिष्टांश प्राप्त किया था, वह भी सेनाके व्यय-वहनार्थ अंग्रेजोंके हाथ लग गया।

इस प्रकार सम्पूर्ण वेलरी जिला अंग्रेजोंके हाथ लगने पर उन्होंने कर वसूलीके लिये प्रयत्न किया, इस पर पलीगर सरदारोंने एक साथ मिल कर अंग्रेजोंके विरुद्ध विद्रोह करनेकी चेष्टा की। तब अङ्गरेजोंको बाध्य हो कर जेनरल कैम्बेलको सेना-सहित भेजना पड़ा। दुर्द्धर्ष पलीगरोंने अङ्गरेजो सेनासे डर कर उसकी वश्यता स्वीकार की।

उस समय अङ्गरेजोंने पलीगरोंके हाथसे प्रदेशके राजस्व वसूलीका भार छीन लिया और उन्हें सेनादल रखनेके लिये निषेध कर दिया। इससे पलीगरगण क्रमशः कमजोर हो गये। इधर अङ्गरेजोंने राजस्व वसूलीकी सुविधाके लिए प्राप्त जिलोंको एक कमिश्नरके शासनाधीन रखा।

१८०० ई०में कर्नल मनूरो यहांके प्रथम कलकृर नियुक्त हुए; परन्तु १८०७ ई०में उनके अवसर ग्रहण करने पर उक्त प्रदेशको कड़ापा और वेलरी इन दो जिलोंमें विभक्त कर दो कलकृरोंके हाथ सौंप दिया गया। तबसे यहां कर वसूलीके सम्बन्धमें फिर कोई विभ्राट नहीं हुआ।

अङ्गरेजोंके अधिकारमें वेलरीमें शान्ति स्थापन होने पर भी १८१४ ई०में पिंडारी दस्युदलने हर्पणहल्ली लूट लिया था। उसीके साथ साथ उन्होंने रायदुर्ग और कुदलिघी पर आक्रमण किया था, किन्तु विशेष कुछ क्षति नहीं कर सके। दस्युदलके दमनार्थ वेलरोसे एक अङ्गरेजी फौज भेजी गई, जिसने बड़ी आसानीसे डकैतोंको भगा दिया। १८५० ई०में सिपाही-विद्रोहकी विद्वेषाग्नि धारवार जिलेमें फैल गई और क्रमशः चारों ओर व्याप्त हो गई। हर्पणहल्लीके तहसीलदार भी उस समय दलबल-सहित विद्रोही हो गये। रामणदुर्ग आक्रमण करने पर अङ्गरेजी सेनाने उनकी गति रोक दी और कोपिला नामक स्थानमें ७४ नं०के हाइलैण्डर-दलने उन्हें पराजित और विध्वस्त कर देशमें पुनः शान्ति स्थापित की।

१८८२ ई०में प्राचीन वेलरी जिला पुनः दो भागोंमें विभक्त हो कर गठित हुआ तथा विचारकार्यकी सुविधाके लिए नव-विभक्त वेलरी जिला अदोनी, अल्लूर, वेलरी, हर्पणहल्ली, हविनहड्गल्ली, होसपेट, कुदलिघि और रायदुर्ग इस प्रकार उपविभागोंमें विभक्त किया गया।

यहांके दश नगरोंमें वेलरी, अदोनी, हासपेट, कम्पती, रायदुर्ग, हर्पणहल्ली जनसंख्यामें सबसे बड़े शहर हैं। यहां नाना श्रेणीके लोग रहते हैं। किसान लोग चना, रागी और जुनहरो नामक फसल पैदा करते हैं। उसीसे जन-साधारणकी गुजर होती है। दलदल-भूमिमें धान्य और ईखकी खेती ही अधिकतासे होती है। जलाभाव होने पर वे अन्य स्थानसे नाले काट कर पानी लाते हैं और उसीसे खेतोंमें पानी देते हैं। ऊंची जमीन पर सिर्फ नारियल, सुपारी, केला, पर्ण, तम्बाकू, मिर्च, हल्दी और नाना प्रकारकी सब्जियोंकी खेती होती है। यहां कपास काफी तादादमें होता है।

अनावृष्टि पड़ने पर यहां प्रायः दुर्भिक्ष और साथ ही

महामारी हुआ करती है। १७९२-९३ ई०में यहां जो दुर्भिक्ष हुआ था उसमें रुपयेमें २ सेर चावल और ।२ सेर चना बिका था। १८०३ ई०में अनाजकी कीमत ३० गुनी बढ़ गई थी, जिससे लोग देश छोड़ कर भाग गये थे। १८३३ ई०को गुण्टुरमें अकाल पड़ा, जिसमें ५ लाख अधिवासियोंमेंसे १॥ लाख भूखों मर गये थे और उसके साथ ही विसूचिकाका प्रादुर्भाव हुआ, जिससे वेल्लरी और गुटी नगरमें लगभग १२ हजार लोग मर गये। १८५१ ई०में यहां भारी तूफान हुआ, जिससे बाँध, तालाब और नालेको मरम्मत न होनेसे और १८५२ ई०में अत्यधिक वर्षा होनेसे सब बह गया, जिससे प्रजाको इससे बड़ा कष्ट सहना पड़ा था। उसके बाद कुल ६ इञ्च पानी पड़ा, जिससे फसल सूख कर जल गई। लगातार ३ वर्ष तक इसी तरह फसल बिगड़ जानेसे यहां फिर अकाल पड़ा। अबकी बार अङ्गरेजकी सहायतासे ज्यादा आदमी नहीं मरे, परन्तु गाय भैंस आदि पशु प्रायः सभी मर गये। १७६६ ई०के दुर्भिक्षमें राजाकी सहायता पानेकी अभिलाषासे १ हजार आदमी इकट्ठे हुए थे। उस समय हैजाकी बीमारी ऐसी प्रबल हो उठी थी कि लोगोंको अपने आत्मीयोंका संस्कार करनेको भी फुरसत नहीं मिली थी, डरके मारे सब मुर्दे छोड़ छोड़ भाग गये थे।

१८५१ ई०में यहां जो भीषण तूफान उठा था, उसमें मूसल धारसे वर्षा होनेसे यहांके अनेक ग्राम नगर आदि बह गये थे। गुलियम और नागरदोना नगर तथा अन्यान्य अनेक ग्रामोंका पता भी न था। लोगोंने गाय भैंस आदि पशुओं-सहित उस स्रोतमें डूब कर प्राण गमाये थे। बहुतोंका यथासर्वस्व ही नष्ट हो गया था। सड़क, नहर और बांधोंके टूट जानेसे लोगोंकी बहुत हानि हुई थी। बालुकापातसे बहुतसे उर्वरा क्षेत्र मरुभूमि सदृश हो गये थे। ये सब दृश्य वर्णनातीत हैं, जिन्होंने आंखोंसे देखा है, वे ही असली चित्र सामने रख सकते हैं। उसका स्मरण होते ही आंखोंमें पानी भर आता है। १७७६-७७ ई०में फिर भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। पूर्त्त विभागका काम करके अबकी बार बहुतोंने अपनी उदरपूर्त्ति की थी।

२ उक्त जिलेका एक तालुक। इसका भूपरिमाण १०० वर्गमील है। अक्षा० १४° ५७´से १५° ४२´ उ० तथा देशा० ७६° ४४´से ७७° १६´के मध्य अवस्थित है।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० १५° ६´ उ० तथा देशा० ७६° ५८´ पू०के मध्य ४४० फुटकी ऊंचाई पर एक दानादार पत्थरके नीचे अवस्थित है। इसकी परिधि लगभग दो मील है। चारों ओर वृक्षहीन प्रान्तर है। पर्वतके ऊपर एक दुर्ग और समतल प्रदेशमें भी एक किला है। गिरिदुर्ग छोटा होने पर भी प्राचीरादिसे ऐसा सुरक्षित है कि शत्रुपक्ष सहजमें उस पर आक्रमण या जय नहीं कर सकते। पूर्व प्रान्तके समतल क्षेत्रमें जो दुर्ग है, उसके पास ही अस्त्रागार (Arsenal), सेना रसदका गोदाम और अन्यान्य राजकीय अट्टालिकाएं हैं। दक्षिण भागमें देशीयोंकी वासभूमि है। यह कावलीबाजार, ब्रुसपेट्टा और मेल्लरपेट्टा नामक तीन ग्रामोंमें विभक्त है। पश्चिम भागमें सुविस्तृत सेनावास है। यहां दो यूरोपीय और दो देशीय सेनादलके वास करने योग्य स्थान है। कभी कभी यहां तोपवाली फौज भी रखी जाती है। नगरके उत्तरी भागमें यूरोपियनोंका निवास है। यहां गिर्जा, रेलवे स्टेशन, स्कूल, टेलिग्राफ आफिस आदि हैं। पूर्वोक्त गण्डपर्वतके नीचे एक बाँध है, वर्षाके समय उसका घिराव करीब ३ मील होता है। मन्द्राजसे रेल द्वारा वेल्लरी सदर ३५ मील है।

यहांका जलवायु विशेष स्वास्थ्यप्रद है। वायु शुष्क होनेसे ग्रीष्मका प्रकोप अधिक होता है। चैत्र वैशाखमें लगभग ९३° F. ताप होता है। यहां दो प्रस्रवण थे, जो अब प्रायः सूख से गये हैं। इसका जल अङ्गारीय चून और क्लोरिन-क्षार मिश्रित है।

विजयनगरराज कृष्णरायके समयसे इस स्थानकी श्रीवृद्धि हुई। उक्त राजवंशके अधीन एक सामन्तने यहाँ एक दुर्ग बनवाया था। उनके वंशधरोंने राजसरकारमें कर दे कर बहुत समय तक दुर्गकी रक्षा की थी। तालिकट-युद्धके बाद, यह बीजापुरके मुसलमान राजाके शासनाधीन हुआ, किंतु उक्त सामन्तगण मुसलमान-शक्तिकी उपेक्षा करते हुए

स्वाधीनभावसे राज्य करते रहे। १५५० ई०में विजयनगरके राजाने वेल्लरीके राजासे पहलेकी भांति कर मांगा, वीर गर्वसे मत्त वेल्लरीके राजाने हीनशक्ति विजयनगराधिपतिको कर देना अस्वीकार किया। इसी सूत्रसे दोनोंमें युद्ध हुआ। विजयनगरके राजा पराजित हुए। इसके बाद भी दोनों राज्योंके बीच कुछ समय तक युद्ध-विग्रह चलता रहा था।

उसके बाद इस देशमें निजामका प्रभाव विस्तृत हुआ। दोनों राज्य निजामने अपने राज्यमें मिला लिए और अपने भाई बसालतजङ्गको अदोनीके साथ वेल्लरी राज्य प्रदान किया। परंतु निजामने जब कर मांगा, तो अदोनीके राजाने अपनी दुर्बलता-वश हैदरसे सहायता मांगी। मौका समझ हैदर ससैन्य अग्रसर हुए। उन्होंने निजामकी सेनाको परास्त तो कर दिया, पर स्वयं दुर्ग अधिकार कर बैठे। हैदरअलीने फरासीसियोंकी सहायतासे पुनः इस दुर्गकी मरम्मत कराई थी। प्रवाद है, कि दुर्ग समाप्त होने पर हैदरने स्थपतियोंको मरवा दिया था। १७९२ ई० तक वह टीपूके अधिकारमें रहा। इसी वर्षकी सन्धिके (Partition treaty) अनुसार वह निजामके हाथ लगा। १८०० ई०में निजामने उसे अङ्गरेजोंको सौंप दिया।

वेल्लरी (सं० स्त्री०) १ काला विधारा। २ माला दूर्वा, वल्ली दूब।

वेल्लहल (सं० पु०) केलिनागर; लंपट, बदचलन।

वेल्लि (सं० स्त्री०) वेल्लति सञ्चलतीति वेल्ल-इन्। लता, बेल।

वेल्लिका (सं० स्त्री०) इन्दुपोदकी, पोईका साग।
(राजनि०)

वेल्लिकाख्या (सं० स्त्री०) वेल्लिका आख्या यस्याः। १ वृक्षविशेष, बेलका पेड़। २ बिल्वशलाटु, बेलके फलका गूदा।

वेल्लित (सं० त्रि०) १ कम्पित, कांपा हुआ, डोला हुआ। २ लुण्ठित, लूटा हुआ। ३ वक्र, कुटिल, टेढ़ा। (क्ली०) ४ चलन, डोलना।

वेल्लितक (सं० पु०) वेकरञ्ज सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप।

वेल्ली (सं० स्त्री०) बेल, लता।

वेल्लूर—मन्द्राजप्रदेशके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत वेल्लूर तालुकके अधीन एक प्रसिद्ध शहर। यह अक्षा० १२° ५६´ उ० तथा देशा० ७९° ११´ पू०के मध्य पाला नदीके किनारेके मन्द्राजसे ८० मील तथा आर्कटसे १५ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां सेनानिवास, सबकलक्टरकी कचहरी, अदालत, सेनाविभागीय कार्यालय, जेल, गिर्जा, अस्पताल, डाकघर, तारघर और गवर्मेण्टका भिन्न भिन्न कार्यालय तथा म्युनिसपलिटी और मन्द्राज रेलवेका एक स्टेशन है। इसी कारण शहरकी आबादी ज्यादा है, ५० हजार आदमीसे कम नहीं होगा। यहांका दुर्ग अति प्राचीन है। प्रवाद इस प्रकार है—भद्राचलवासी एक व्यक्तिने १२७४से १२८३ ई०के मध्य उक्त दुर्गका निर्माण कर विजयनगरराजवंशको अर्पण किया। प्रायः १५वीं सदीके मध्यभागमें बिजापुरके सुलतानने उस दुर्ग पर चढ़ाई कर दी। १७७३ ई०में महाराष्ट्रनायक तुकाजिरावने ४॥ मास घेरा डालनेके बाद वेल्लूरको अधिकार किया था। १७०८ ई०में दिल्लीसे दाऊद खाँ आ कर मराठोंको मार भगाया। इस समय कर्णाटके मध्य वेल्लूर दुर्ग ही सबसे अधिक दुर्भेद्य समझा जाता था। दोस्त अलीने पीछे यह दुर्ग अपने दामादको दे दिया। उसके लड़के मूर्त्तिजा अलीने यहां १७४१ ई०में सबदर अलीकी हत्या की। मूर्त्तजा अपने अधिनायक आर्कटके नवाबका आदेश उल्लङ्घन कर यहां स्वाधीन भावसे राज्य करने लगा। इस समय अंगरेज आर्कटके नवाबके मित्र थे। वे १७५५ ई०में मूर्त्तजा पर शासन करनेके लिये वेल्लूर आये, किन्तु अकृतकार्य हो लौट गये। १७६० ई०में अङ्गरेज लोग फिरसे वेल्लूर दुर्ग पर आ धमके। इस बार भी उन्हें निराश लौट जाना पड़ा था। जो हो, कुछ वर्ष बाद अंगरेजोंने वेल्लूरको दखल कर लिया। १७६८ ई०में हैदर अलीने वेल्लूर दुर्गमें घेरा डालनेका आयोजन किया। आखिर १७८० ई०में बहुतसे सैन्य सामन्तोंको ले कर उसने दुर्गको अवरोध कर लिया। प्रायः दो वर्ष तक यह अवरोध चला था। इससे दुर्गके अङ्गरेज सैनिकोंको नाकोदम

आ गया था। यहां तक कि वे आत्मसमर्पण करने तय्यार हो गये थे, किन्तु हैदर अलीकी मृत्यु होने तथा मन्द्राजसे अंगरेजी सेनाके पहुंच जानेसे अंगरेजोंकी मानरक्षा हुई थी। १६६१ ई०में लार्ड कार्नवालिसने इस दुर्गको केन्द्र बना कर रंगपुरकी यात्रा कर दी। १७६६ ई०में श्रीरङ्गपत्तनके अधःपतनके बाद टीपू सुलतानके परिवार-वर्ग इस वेल्लूर दुर्गमें आवद्ध रहे। १८०६ ई०में यहां जो सिपाहीविद्रोह हुआ था, उसमें बहुतोंका विश्वास है, कि उक्त सुलतानके परिवार भी शामिल थे। इस विद्रोहमें सभी अङ्गरेज पुरुष और यूरोपीयगण विद्रोहीके हाथसे यमपुर सिधारे थे। कर्नल जिलेस्पीकी चेष्टासे विद्रोहियोंका शीघ्र ही दमन हुआ। टीपूके परिवार-वर्ग कलकत्ते में भेज दिये गये।

उक्त दुर्गको छोड़ कर यहां एक सुन्दर विष्णुमन्दिर है। इस मन्दिरका कारुकार्य और शिल्पनैपुण्य देख कर बहुतेरे मुग्ध हो गये हैं। मन्दिरके बाहरी चबूतरे पर जो अश्वारोही मूर्त्ति है उसमें ऐसी कारीगरी दिखलाई गई है, कि उसकी तुलना दूसरी जगह दुर्लभ है। उक्त मन्दिरको छोड़ कर यहांकी चांदसाहबकी मसजिद भी देखने लायक है।

यह शहर गरम होने पर भी स्वास्थ्यकर है। यहां सुगन्धित पुष्पकी खेती होती है। प्रतिदिन रेलवे द्वारा टोकरी टोकरी फूल मन्द्राज भेजा जाता है।

वेवुर—बम्बईप्रदेशके कालादगी जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह बागलकोटसे १२ मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां रामेश्वर, नारायण और कालिका-भवानीका सुन्दर मन्दिर है। प्रवाद है, कि वे सब देवालय प्रसिद्ध स्थपति यखनाचार्यके बनाये हुए हैं।

वेश (सं० पु०) विशन्ति नयनमनांस्यत्रेति विश अधिकरणे घञ्, यद्वा विशति अङ्गमिति (पदरुजविशस्पृशो घञ्। पा ३।३।१६) इति घञ्। १ कपड़े लत्ते और गहने आदि पहन कर अपने आपको सजाना। २ किसी के कपड़े लत्ते आदि पहननेका ढंग। ३ पहननेके वस्त्र, पोशाक। पर्याय—आकल्प, नेपथ्य, प्रतिकर्म, प्रसाधन, वेष। (भरत) विशन्ति कामुका यत्रेति, अधिकरणे घञ्। ४ वेश्याका घर। ५ गृह, घर। ६ वस्त्रगृह, तंबू, खेमा। ७ प्रवेश। ८ पण्यस्त्री आदि।

(मनु ४।८५)

वेशक (सं० पु०) वेश एव स्वार्थे कन्। १ गृह, घर। (त्रि०) २ वेशकारक।

वेशकुल (सं० क्ली०) कुलटा स्त्री, दुश्चरित्रा स्त्री। २ वेश्या, रंडी।

वेशता (सं० स्त्री०) वेशका भाव या धर्म, वेशत्व।

वेशत्व (सं० क्ली०) वेशस्य भावः त्व। वेशका भाव या धर्म, वेशता।

वेशदान (सं० पु०) सूर्य-शोभा। (शब्दच०)

वेशधर (सं० पु०) १ वह जिसने किसी दूसरेका वेश धारण किया हो, वह जो भेष बदले हुए हो, छद्मवेशी। २ जैनोंका एक सम्प्रदाय। १५३४ संवत्में यह सम्प्रदाय प्रचलित हुआ। जैन देखो।

वेशधारिन् (सं० पु०) वेशं तापसलिङ्गं धरतीति धृ-णिनि। १ छलतपस्वी, कपट तपस्वी, वह जो तपस्वी न हो पर तपस्वियोंका-सा वेश धारण करता हो। २ सङ्कर जातिविशेष। गङ्गापुत्रकी कन्याके गर्भसे वेशधारीके औरससे वेशधारी जातिकी उत्पत्ति हुई तथा उनके पुत्र जुङ्गी कहलाये। (ब्रह्मवैवर्त्तपु० ब्रह्मख० १० अ०) (त्रि०) ३ वेशधारक, वेश धारण करनेवाला।

वेशन (सं० क्ली०) विश-ल्युट्। प्रवेश करना।

(भागवत १०।१३।२६)

वेशनद (सं० पु०) प्राचीनकालकी एक नदीका नाम।

वेशन्त (सं० पु०) वेशन्त्यत्र भेकादय इति विश (तृ विशिभ्यां झच्। उण् ३।१२६) इति झच्। १ क्षुद्र सरोवर। २ पल्वल, कर्दम। ३ अग्नि।

वेशभाव (सं० पु०) वेशसज्जाकी परिपाटी।

वेशयुवती (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

वेशयोषित् (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

वेशर (सं० पु०) अश्वतर, खच्चर।

वेशवधू (सं० स्त्री०) वेशयोषित्, वेश्या, रंडी।

वेशवनिता (सं० स्त्री०) वेशस्त्री, रंडी।

वेशवत् (सं० त्रि०) वेश अस्त्यर्थे मतुप मस्य वः।

१ वेश्याके धनसे अपनी जीविका चलानेवाला ; २ वेश विशिष्ट ।

वेशवार (सं० पु०) नीमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले ।

वेशवास (सं० पु०) वेश्याका घर, रंडीका मकान ।

वेशस (सं० पु०) वेश-असुन । १ वेश । (अथर्व० २।३२।५) २ वल ।

वेशस्त्री (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेशान्त (सं० पु०) वेशन्त देखो ।

वेशि (सं० क्लो०) सूर्यका अवस्थानगृह ।

(लघुजातक ६।६)

वेशिक (सं० क्लीं०) शिल्पविद्या, हाथकी कारीगरी ।

वेशिन् (सं० लि०) १ वेशधारी, वेश धारण करनेवाला । २ आवेशकारी ।

वेशी (सं० स्त्री०) सूची, सूई ।

वेशीजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामकी लता ।

वेशीक—सदुक्तिकर्णामृत धृत एक प्राचीन संस्कृत कवि ।

वेशोभगीन (सं० लि०) वेशो वलं अस्त्यस्य वेशस-ख (पा ४।४।१३२) वलशाली ।

वेश्म (सं० क्लो०) गृह, घर ।

वेश्मक (सं० लि०) गृहसम्बन्धीय ।

वेश्मकलिङ्ग (सं० पु०) वेश्मनः कलिङ्गः । चटक, गौरैया । इसका मांस सन्निपातनाशक तथा अतिशय शुक्रवर्द्धक माना गया है ।

वेश्मकुलिङ्ग (सं० पु०) गृहकुलिङ्ग ।

वेश्मकूल (सं० पु०) वेश्म गृहं कूलयतीति-कूल-क । चिर्चिड़ा, चिचड़ा ।

वेश्मन् (सं० क्लो०) विशन्त्यत्रेति विश-मनिन् । गृह, घर, मकान ।

वेश्मनकुल (सं० पु०) वेश्मनो गृहस्य नकुलः । गन्धमूषिक, छछूंदर ।

वेश्म-पुरोधक (सं० पु०) दूसरेके मकानको तोड़ कर या उसमें सेंध लगा कर चोरी करनेवाला ।

वेश्मभू (सं० स्त्री०) वेश्मनो भूः । गृहकरणयोग्य भूमि, वह स्थान जो मकान बनानेके उपयुक्त हो अथवा जिस पर मकान बनाया जाय ।

वेश्मवास (सं० पु०) वासगृह, रहनेका घर, मकान ।

वेश्मस्त्री (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी ।

वेश्मादीपिक (सं० पु०) मकानमें आग देनेवाला ।

वेश्मान्त (सं० पु०) गृहान्तःपुर, घरके अंदरका वह भाग जिसमें स्त्रियां रहती हैं, जनानखाना ।

वेश्य (सं० क्लो०) वेशो भगं वेश (दिगादित्वात् यत् । पा ४।३।५४) यद्वा वेश्यायै हितं वेश्या-यत् । १ वेश्यालय, रंडीका घर । (लि०) २ प्रवेशार्ह, प्रवेश करनेके योग्य ।

वेश्या (सं० स्त्री०) वेशमर्हति वेशेन दीव्यति आचरति, वेशेन पण्य योगेन, जायति वा वेश-यत्-टाप । वेश्या, रण्डी, कस्बी, गणिका ।

परपुरुषगामिनी स्त्री साधारणतः वेश्या कह कर पुकारी जाती है । किन्तु शास्त्रमें इसका भेद इस तरह कहा गया—

"पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीये कुलटा स्मृता ।
तृतीये वृषली ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चली मता ॥
वेश्या तु पञ्चमे षष्ठे युङ्गी च सप्तमेऽष्टमे ।
तत ऊर्द्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्व जातिषु ॥"

(ब्रह्मवैं०पु० प्र० ख० ३१ अ०)

जो स्त्री एक पतिकी सेवा करती है, उसको पतिव्रता, दो पुरुषोंको सेवन करनेवाली स्त्री कुलटा, तीन पुरुषोंकी सेवा करने वाली स्त्री वृषली, चार पुरुषोंसे रमण करनेवाली स्त्री पुंश्चली, पांच और छः पुरुषोंको सेवा करनेवाली वेश्या और सात आठ पुरुषोंसे सङ्गम करनेवाली स्त्री युङ्गी और इससे अधिक पुरुषोंकी सेवा करनेवाली स्त्री महावेश्या कहलाती है । यह महावेश्या सर्व जातिके लिये अछूत है । ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें और भी लिखा है,—

जो द्विज कुलटा, वृषली, पुंश्चली आदि स्त्रियोंसे रमण करते हैं, वह अवटोद नामक नरकमें जाते हैं ।

वेश्या मृत्युके बाद वेधन नरकमें, युङ्गी दण्डताडन नरकमें, महावेश्या जलबन्ध नरकमें, कुलटा देहचूर्णक नरकमें पुंश्चली दलन नामक नरकमें और वृषली शोषक नरकमें वास कर अशेष यन्त्रणा भोग किया करती है ।

प्रायश्चित्त विवेकमें लिखा है, कि वेश्यागमन करने-

वाले पुरुषको प्राजापत्यव्रतका अनुष्ठान करनेसे पापक्षय होता है। इसमें अशक्त होनेसे एक धेनु दान कर दे। यह प्रायश्चित्त सकृत् अर्थात् एक बार गमनकी बात कही गई। अभ्यासी लोगोंके लिये नहीं। अर्थात् क्रमागत वेश्यागमन करनेवालोंको इस प्रायश्चित्तसे वेश्यागमनका पाप नहीं छुटता। उनको कृच्छ्रसाध्य चान्द्रायण मतानुष्ठान करना होगा। चान्द्रयणसे यह पाप विदूरित होगा। (प्रायश्चित्तवि०)

वेश्याका अन्न भोजन करना न चाहिये। जो द्विज वेश्याका अन्न खाते हैं, वह कालसूत्र नामक नरकमें जाते हैं और सौ वर्ष तक नरकमें वास कर शूद्र रूपसे जन्म लेते हैं। उस जन्ममें नाना रूप क्लेश भोग कर शुद्धिलाभ करते हैं। (ब्रह्मवै०पु० प्र० ख० ३१ अ०) वेश्यादर्शन करके यात्रा करनेसे शुभ होता है।

वेश्यागण (सं० पु०) वेश्यानां गणः। वेश्याओंका समूह।

वेश्याङ्गना (सं० स्त्री०) कुलटा स्त्री, बदचलन औरत।

वेश्याचार्य (सं० पु०) वेश्यानामाचार्यः। पीठमर्द, वह जो वेश्याओंके साथ रहता और उन्हें परपुरुषोंसे मिलाता हो, रंडियोंका दलाल।

वेश्याजनसमाश्रय (सं० पु०) वेश्याजनानां समाश्रयः आश्रयस्थानं। वेश्यालय, रंडीका मकान। पर्याय—वेश, वेश्याश्रय, पुर, वेश्य। (जटाधर)

वेश्वर (सं० पु०) अश्वतर, गदहा। (भूरिप्र०)

वेष (सं० पु०) वेवेष्टि व्याप्नोति अङ्गं वेषः, पचादित्वादच्। १ वेश देखो। २ नेपथ्य, रंगमंचमें पीछेका वह स्थान जहां नट लोग वेश रचना करते हैं। ३ वेश्यागृह, रंडीका मकान। ४ संस्थानविशेष। (रामा० २।१७।१६) वेवेष्टि व्याप्नोति कर्तृनिति, पचाद्यच्। ५ कर्म। (निघण्टु २।१) विष व्याप्तौ घञ्। ६ व्याप्ति। (शुक्लयजु० १।६) ७ कार्य परिचालन, काम चलाना।

वेषकार (सं० पु०) वेष्टन, किसी चीजको लपेटनेका कपड़ा।

वेषण (सं० पु०) विष व्याप्तौ ल्युः। १ कासमर्द, कसौंदी। (हारावली) (क्ली०) विष-ल्युट्। २ प्रवेषण। ३ परिचर्या, सेवा। (ऋक् ५।७।५)

वेषणा (सं० स्त्री०) वेवेष्टि व्याप्नोतीति विष-युच्-टाप्। वितुन्नक, धनियां।

वेषदान (सं० पु०) सूर्यशोभा।

वेषधारिन् (सं० पु०) वेष-धृ-णिनि। वेशधारिन् देखो।

वेषवत् (सं० त्रि०) वेष-मतुप् मस्य व। वेशयुक्त, वेशविशिष्ट।

वेषवार (सं० पु०) नमक, मिर्च धनियां आदि मसाले।

वेषश्री (सं० त्रि०) जिसमें सुन्दर और ललित वाक्य हों। (शतपथब्रा० ८।५।८३)

वेषिका (सं० स्त्री०) चमेली।

वेषिन् (सं० त्रि०) वेशधारी, वेश धारण करनेवाला।

वेष्क (सं० पु०) जीवननाशक फंदा। (शतपथब्रा० ३।८।१।१५)

वेष्ट (सं० पु०) वेष्ट-घञ्। १ वेष्टन देखो। २ श्रीवेष्ट, गंधाविरोजा। ३ वृक्षका किसी प्रकारका निर्यास। ४ गोंद। ५ धूपसरल। ६ सुश्रुतके अनुसार मुंहमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। (सुश्रुत २।१६)

वेष्टक (सं० क्ली०) वेष्टते इति वेष्ट-ण्वुल्। १ उष्णीष, पगड़ी। २ वृक्षका किसी प्रकारका निर्यास। ३ गोंद। ४ श्रीवेष्ट, गंधविरोजा। (पु०) प्राचीर, परकोटा, चहारदीवारी। ५ कुष्माण्ड, कोंहड़ा। ६ वल्कल, छाल। (त्रि०) ७ वेष्टनकारक, घेरनेवाला।

वेष्टकापथ (सं० पु०) एक प्राचीन शिवस्थान। (सह्याद्रि ३।२६।१४)

वेष्टन (सं० क्ली०) वेष्टते इति वेष्ट-ल्युट्। १ कर्णशष्कुली, कानका छेद। २ उष्णीष, पगड़ी। ३ मुकुट। ४ वृति, वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज लपेटी जाय, बेठन। ५ वलयन, घेरने या लपेटनेकी क्रिया या भाव। ६ गुग्गुलु, गुग्गुल। ७ सर्पपोलिका। (वैद्यकनि०)

वेष्टनक (सं० पु०) वेष्टनेन कायतीति कै-क। रतिबन्धविशेष, स्त्रीप्रसंग करनेका एक प्रकार।

"कान्तकक्षाश्रितां नारीं बन्धो वेष्टनकः स्मृतः॥" (रतिमञ्जरी)

वेष्टनवेष्टक (सं० पु०) वेष्टनेन वेष्टते इति वेष्ट-ण्वुल्। रतिबन्धविशेष।

"ऊर्द्ध्वं पादद्वयं नार्या भुजाभ्यां वेष्टयेद् यदि ।
कराभ्यां कण्ठमालिङ्ग्य बन्धो वेष्टनवेष्टकः ॥"
(रतिमञ्जरी)

वेष्टपाल (सं० पु०) बौद्धभेद। (तारनाथ)

वेष्टवंश (सं० पु०) वेष्टः वेष्टनकारो वंशः। रन्ध्रवंश, एक प्रकारका बांस जिसे बेडर बांस कहते हैं।

वेष्टव्य (सं० त्रि०) वेष्टनयोग्य, बेठन आदिसे लपेटने लायक।

वेष्टसार (सं० पु०) वेष्टानां सारो यत्र। १ श्रीवेष्ट, गंधविरोजा। २ सरलकाष्ठ, धूपसरल, धूपका पेड़।

वेष्टा (सं० स्त्री०) हरीतकी, हर्रे। (वैद्यकनि०)

वेष्टित (सं० त्रि०) वेष्ट-क्त। १ नदी या परकोटे आदिसे चारों ओर घिरा हुआ। २ कपड़े आदिसे लपेटा हुआ। ३ रुद्ध, रुका हुआ।

वेष्टितक (सं० त्रि०) वेष्टित स्वार्थे कन्। वेष्टित देखो।

वेष्प (सं० पु०) वेवेष्टीति विष व्याप्तौ (पानीविषिभ्यः पः। उण् ३।२३) इति प। पानीय।

वेसन (सं० क्ली०) वेस-ल्युट्। १ मटर, चने आदिकी दाल पीस कर तैयार किया हुआ आटा, बेसन। २ गमन।

वेसर (सं० पु०) अश्वतर, गदहा।

वेसवार (सं० पु०) १ पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला। पर्याय—उपस्कर, वेषवार, वेशवार। २ एक प्रकारका पकाया हुआ मांस। पहले हड्डियां आदि अलग करके खाली मांस पीस लेते हैं और तब गुड़, घी, पीपल, मिर्च आदि मिला कर उसे पकाते हैं। यही पकाया हुआ मांस वेसवार कहलाता है। यह गुरु, स्निग्ध और बलोपचयकारक होता है।

वेसवारीकृत (सं० त्रि०) वेसवारों द्वारा संस्कृत।

वेसारा—रङ्गपुरवासी एक मुसलमान सम्प्रदाय।

वेसुक—देवगिरिके यादववंशीय एक राजा।
देवगिरि, यादवराजवंश देखो।

वेसुगि—वेसुक देखो।

वेस्ट (अं० पु०) पश्चिम दिशा।

वेस्टकोट (अं० पु०) एक प्रकारकी अङ्गरेजी कुरती या फतुही जिसमें बांहें नहीं होतीं और जो कमीजके ऊपर तथा कोटके नीचे पहनी जाती है।

वेहत (सं० स्त्री०) विशेषेण हन्ति गर्भमिति वि-हन-अति संज्ञायां पृषोदरादित्वात् साधुः। (उण् ३।८५) १ गर्भोपघातिनी गौ, वह गाय जो ऋतुकालको छोड़ अन्य समयमें सांढ़से जोड़ खा गर्भ नष्ट करती है। २ झेलम या वितस्ता नदी। वितस्ता देखो।

वेहला—२४ परगनेके अन्तर्गत एक वर्द्धिष्णु ग्राम। यहां सब-रजेष्ट्री, डाकघर और स्कूल हैं।

वेहिर—१ मध्यप्रदेशके बालाघाट जिलान्तर्गत एक तहसील। भूपरिमाण १४५१ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलके अधीन एक बड़ा ग्राम। यह बालाघाट शहरसे ४१ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां अधिकांश गोंड और प्रधानका वास है। अभी वैसा समृद्धिशाली नहीं होने पर भी एक समय यहां जो बहुत लोगोंका वास था, उसका काफी प्रमाण मिलता है। दानेदार पत्थरके बने सुन्दर भास्कर शिल्पसमन्वित अति प्राचीन और अति वृहत् १३ मन्दिरोंका भग्नावशेष विद्यमान है।

वेहिस्तुन—पारस्य देशकी सीमा पर किरमाणशाहसे २१ मील पश्चिममें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यह नाना भास्करशिल्पयुक्त प्रस्तरखोदित एक गिरिशैलके नीचे बसा हुआ है। इस ग्राममें कई जगह सुन्दर मर्मर पत्थरके खंभे इधर उधर पड़े हैं। इसके सिवा अखमनीवंशके समय उत्कीर्ण बहुत-सी कीलरूपा शिलालिपियाँ विद्यमान हैं। उनमें वाह्लिकमद्रवासी दारयुसके अधिकारभुक्त अनेक इरानीय जातियोंके नाम देखे जाते हैं। यहांकी दो शिलालिपि विशेष उल्लेखयोग्य हैं। एकमें गोतार्जके समयकी भग्न ग्रीकलिपि और दूसरीमें पार्लिपोलिसका भास्कर्यशिल्प अलंकृत है। दूसरी लिपिमें १००० पंक्तियुक्त कीललिपि है जिसमें दारयुस विस्तास्पका धर्ममत, बबेरुध्वंसकी कथा तथा उनके हाथ उत्पत्ति या शासनकर्त्ता नेबुनेतके पुत्र नेबुकाद्नेजारकी शासन कहानी लिखी है।

कीलरूपा शिलालिपिमें यह स्थान 'बघिस्थान' नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि यहां रानी सेमिरामिसका प्रमोद-उद्यान था।

यहां दारयुस विस्तापकी जो बड़ी शिलालिपि

आविष्कृत हुई है, वह तीन भाषामें लिखो है—प्राचीन पारस्य, बावेरु (Babylonian) और शाक। किस प्रकार तीनोंने अपने साम्राज्यमें जरथुस्त्रधर्मको पुनः प्रतिष्ठित किया, किस प्रकार तीनोंने अवस्ता शास्त्र और उसकी टीकाका उद्धार किया, उसका परिचय उक्त लिपिमें दिया गया है।

भाषाविद्गण उक्त शाकलिपिकी भाषाको ईसाजन्मके पहले ५वीं सदीमें व्यवहृत मद्रोंकी भाषा मानते हैं, फिर भी उस भाषाके साथ द्राविड़ीय भाषाकी उपश्रेणीके साथ यथेष्ट सौसादृश्य है। इस कारण बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि मद्र-पारस्य (Medo Persians) जातिके अभ्युदयके पहले उसी भाषामें ही शाकलोग बातचीत भी करते थे, तुर्की वा मोङ्गलीय भाषामें नहीं।

वैंशतिक (सं० त्रि०) विंशत्या क्रीत विंशतिक अण् (५।१।२७) विंशति द्वारा क्रीत, जो बीससे खरीदा गया हो।

वैँचि—बंगालके हुगली जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह कलकत्तेसे ४४ मील दूर ग्रांडट्रंकरोड नामक रास्ते पर अक्षा० २३° ७´ ३० तथा देशा० ८८° १५´ ३५´´ पू०के बीच पड़ता है। यहां ईष्ट इण्डिया रेलवेका स्टेशन है। एक समय यहां मशहूर डकैतोंका दल था।

वैकक्ष (सं० क्ली०) विशेषेण कक्षति व्याप्नोति वि-कक्ष-अण्। १ वह हार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथके नीचे रहे, जनेऊकी तरह पहना जानेवाला हार या माला। २ इस प्रकार माला पहननेका ढंग। (पु०) ३ पर्वतभेद। (भागवत ५।१६।२६)

वैकक्षक (सं० क्ली०) वैकक्ष-कन् स्वार्थे। वैकक्ष देखो।

वैकङ्कत (सं० पु०) १ वृक्षविशेष। पर्याय—स्रुतिक्षर, श्रुवावृक्ष, ग्रन्थिल, स्वादुकण्टक, व्याघ्रपात्, कण्टकारी, विकङ्कत। (त्रि०) विकङ्कतस्यावयवो विकारो वा विकङ्कत-अण् पलाशादिभ्यो वा (पा ४।३।१४१) जो विकङ्कतकी लकड़ी आदिसे बना हो, विकङ्कतका।

वैकटिक (सं० पु०) १ रत्नपरीक्षक, जौहरी। (त्रि०) २ विकट सम्बन्धीय, विकटका।

वैकट्य (सं० क्ली०) विकट होनेका भाव या धर्म, विकटता।

वैकतिक (सं० पु०) वह जो रत्नोंको परीक्षा करता हो, जौहरी।

वैकथिक (सं० पु०) वह जो अपने सम्बन्धमें बहुत बढ़ा कर बातें कहा करता हो, शेखीबाज, ओछनेवाला।

वैकयत (सं० पु०) जातिविशेष।

वैकयतविध (सं० पु०) वैकयतानां विषयोदेशः इति विधल्। वैकयतोंका देश। (पा ५।२।५४)

वैकर (सं० त्रि०) विकरात् प्राक्दीव्यति विकर-अञ् (पा ४।१।८६)। विकरके पहले क्रीड़ित आदि।

वैकरञ्ज (सं० पु०) संकर जातिका एक प्रकारका सांप। दर्वीकर (फणायुक्त), मण्डली (फणाहीन) और राजिमान् (रेखायुक्त), इन तीन प्रकारके सांपोंके परस्पर योगसे जो सांप उत्पन्न होता है उसीको वैकरञ्ज कहते हैं। ये फिर माकुलि, पोटगल और स्निग्धराजिके भेदसे तीन प्रकारके हैं। कृष्णसर्प और गोनसके संगमसे माकुलि, राजिल और गोनसके संगमसे पोटगल तथा कृष्णसर्प और राजिमानके संगमसे स्निग्धराजि उत्पन्न होता है। माकुलिका विष पिताके समान तथा पोटगल और स्निग्धराजिका विष माताके समान होता है। फिर ये दिव्यलेप, रोध्रपुष्प, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प और वेल्लितकके भेदसे सात प्रकारके हैं, जिनमेंसे पहलेके तीन राजिमानकी तरह हैं।

वैकर्ण (सं० पु०) विकर्णस्यापत्यमिति विकर्ण-अण् (विकर्णशुङ्गच्छगलात् वत्सभरद्वाजात्रिषु। पा ४।१।११७) १ वात्स्य मुनि। (सिद्धान्तकौमुदी) २ एक प्राचीन जनपद। (ऋक् ७।१८।११) ३ अक्षचक्र। (पार० गृह्य० ३।४)

वैकर्णायन (सं० पु०) वह जो वैकर्ण या वात्स्य मुनिके वंशमें उत्पन्न हुआ हो।

वैकर्णि (सं० पु०) विकर्णका अपत्य, वात्स्य। (पा ४।१।१२७)

वैकर्णेय (सं० पु०) काश्यपके वंशधर। (पा ४।१।१२४)

वैकर्स (सं० क्ली०) प्रौढ़ मांसखण्ड। (ऐत०ब्रा० ७।१)

वैकर्त्तन (सं० त्रि०) १ सूर्यके पुत्र। २ कर्ण। ३ सूर्यवंशीय। ४ सुग्रीवके पूर्वपुरुष। (त्रि०) ५ सूर्यसम्बन्धी, सूर्यका।

वैकर्म (सं० पु०) विकर्म या अपकर्मका भाव, दुष्कृत्य।

वैकर्य (सं० क्ली०) विकरका भाव या धर्म, करहीनता।

वैकल्प (सं० पु०) विकल्पका भाव।

वैकल्पिक (सं० त्रि०) विकल्पेन प्राप्तः तत्र भवो वा विकल्प-ठक्। १ एकाङ्गी, जो किसी एक पक्षमें हो। २ संदिग्ध, जिसमें किसी प्रकारका संदेह हो। ३ जो अपने इच्छानुसार ग्रहण किया जा सके, जो चुना जा सके।

वैकल्य (सं० क्ली०) १ विकल होनेका भाव, विकलता, घबराहट। २ कातरता। ३ विकृत भाव, टेढ़ापन। ४ अक्षता। ५ अङ्गहीनता। ६ न्यूनता, कमी। ७ अभाव न होना। (त्रि०) ८ अपूर्ण, अधूरा।

वैकायन (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। (संस्कारकौ०)

वैकारिक (सं० त्रि०) १ विकारप्राप्त, जिसमें किसी प्रकारका विकार हुआ हो, बिगड़ा हुआ। (क्ली०) विकार एव विकार-ठक्। २ विकार, बिगाड़।

वैकारिमत (सं० क्ली०) विकारप्राप्तमत, मतका विकार भाव। (पा २।२।३१)

वैकार्य (सं० क्ली०) १ विकारका भाव या धर्म। (त्रि०) २ विकारके योग्य, जिसमें विकार हो सकता या होता हो।

वैकाल (सं० पु०) विकाल, अपराह्न।

वैकाल—रूसके अधिकृत एशियाके मंगोलिया विभागमें अवस्थित एक विस्तृत ह्रद। यह लम्बाईमें ४०० मील और चौड़ाईमें सर्वत्र ही प्रायः ४५ मील है। समुद्रकी तहसे यह १७१५ फीट ऊंचा है। यहां शील आदि नाना जातिकी मछलियाँ पाई जाती हैं। इस कारण कई एक जहाज इसके किनारे हमेशा यातायात किया करते हैं। विगत रूस जापानकी लड़ाईके समय इस ह्रदके बरफके ऊपरसे रूसगण रेलवे लाइन् ले गये थे। किन्तु दुःखका विषय है—बरफके टूट जानेसे सेनासे लदी एक गाड़ी नीचे जलमें गिर पड़ी। इसके पास ही धातव जलपूर्ण बहुतेरे प्रस्रवण हैं। ह्रदके उत्तर-पूर्व कोने पर ओलिओहन नामक द्वीप है। भ्रमणकारी मंगोल और पुलाते जातियाँ यहां आया करती हैं।

वैकालिक (सं० त्रि०) विकाले भवः विकाल-ठक्। १ अपने उपयुक्त समय पर न हो कर असमयमें उत्पन्न हो। २ विकल सम्बन्धीय।

वैकाशेय (सं० पु०) १ विकाशके अपत्यादि। (पा ४।१।१२३)

(त्रि०) २ विकाशके उपयुक्त, प्रकाशके योग्य।

वैकि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

वैकिर (सं० त्रि०) विकि या प्रस्रवणादिका जल। (सुश्रुत)

वैकुस्यासीय (सं० त्रि०) विकुस्यास सम्बन्धीय। (पा ४।२।८०)

वैकुण्ठ (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। (भागवत १।१५।४६)

इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस तरह है—चाक्षुस मन्वन्तरमें पुरुषोत्तमदेवने वैकुण्ठमें विकुण्ठके गर्भसे जन्म ग्रहण किया था, इसीलिये उनका वैकुण्ठ नाम हुआ है।

"चाक्षुस्यान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः।
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठे दैवतैः सह॥"
(विष्णुपुराण)

और भी लिखा है, कि कुण्ठा शब्दका अर्थ माया है, जिसकी कई प्रकारकी माया विद्यमान है, वे वैकुण्ठ नामसे अभिहित होते हैं। कुण्ठत्यनया, कुण्ठा माया विविधा कुण्ठा माया विद्यतेऽस्य वैकुण्ठः (विष्णुसहस्रनाम टीकामें शङ्कराचार्य)।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें वैकुण्ठ नामकी व्युत्पत्ति इस तरह लिखी हुई है—कुण्ठ शब्दसे जड़ या विश्वसमूह, इनको जो विशिष्ट करते हैं, वेद चतुष्टयने उन्हींको विकुण्ठा या प्रकृति कहा है। भगवान् निर्गुण होने पर भी गुणका आश्रय ले कर अपनी सृष्टिके संस्थापन करनेके लिये उसमें उत्पन्न होते हैं। इससे पण्डितगण परिपूर्णतम ईश्वरको वैकुण्ठ नामसे पुकारते हैं।

श्रीमद्भागवतमें अजामिलके उपाख्यानमें लिखा है, कि वैकुण्ठ नाम लेनेसे अशेष पाप कट जाता है।

२ विष्णुधाम विशेष, विष्णुलोक, भगवान् जहां वास करते हैं, उसका नाम वैकुण्ठ है।

इस लोकका विषय पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें इस तरह लिखा है। क्षितितलके ऊपरीभागमें ८ करोड़ योजन ऊपर सत्य लोक है, सत्यलोकके ऊपर वैकुण्ठ-लोक है। यह लोक भूलोककी अपेक्षा अष्टादश कोटि अधिक है। इस लोकमें स्वयं भगवान विष्णु विराजमान हैं। वैकुण्ठके उत्तर शिवलोक है। (पद्मपु० स्वर्गख० ६ अ०)

विष्णुका यह लोक शाश्वत, नित्य, अनन्त, ब्रह्मानन्द, सुख और मोक्षप्रद है। शतकोटि कल्पमें भी इस स्थान-का वर्णन किया जा नहीं सकता। यह स्थान नाना जना-कीर्ण, रत्नमय प्राकार, सिंहासन और सौधयुक्त है। इस वैकुण्ठलोकमें अयोध्या नामकी दिव्य एक नगरी है। इस नगरीमें हेमगोपुर आदि मणियुक्त चार द्वार हैं। इन द्वारोंमें पूर्वद्वार पर चण्ड और प्रचण्ड, दक्षिण द्वार पर भद्र और सुभद्रक, पश्चिम द्वार पर जय और विजय और उत्तर द्वार पर धाता और विधाता नामके पहरेदार पहरा दिया करते हैं। (पद्मपु० उत्तरख० २६ अ०) पद्म पुराणके उत्तरखण्डमें २६ और ३० अध्यायमें वैकुण्ठका वर्णन आया है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि वैकुण्ठधाम सब धामोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। यह धाम ब्रह्माण्डके ऊपर वायु द्वारा धार्यमान और जरामृत्युनिवारक है। यह नित्यधाम ब्रह्मलोकसे कोटि योजन ऊपर विराजित है। विचित्र रत्ननिर्मित और कवियोंके भी वर्णनातीत है, उसका राजमार्ग पद्मराग और इन्द्रनीलमणि द्वारा भूषित है। इस धाममें स्वयं विष्णु पीताम्बर धारण कर रत्नकेयूर, रत्नवलय, रत्ननूपुर और रत्नालङ्कारसे भूषित हो कर रत्नसिंहासन पर अवस्थित हैं। चतुर्भुज भग-वान् सहास्य वदनसे कोटिकन्दर्पोंकी शोभा पा रहे हैं। कमला उनके चरणकमलकी सेवा करती है। इस धाममें गमन करने पर फिर लौटना नहीं पड़ता।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्म ख० ४ अ०)

अन्यान्य पुराणोंमें वैकुण्ठका वैभ्र नाम भी मिलता है। कुछ लोग इस पुरीको मेरुशिखर पर, कुछ लोग उत्तर सागरमें अवस्थित कहते हैं।

(पु०) ३ वैकुण्ठमें स्थित देवगण। ४ इन्द्र। ५ श्वेत-पत्र तुलसी। ६ छोटी तुलसी।

वैकुण्ठ—कविराज भिक्षुके गुरु। वैकुण्ठशिष्य देखो।

वैकुण्ठत्व (सं० क्ली०) वैकुण्ठका भाव या धर्म।

वैकुण्ठनाथ आचार्य—गृह्यपरिशिष्टके प्रणेता।

वैकुण्ठपुर—पटना जिलान्तर्गत एक नगर। पीनपुना सङ्गमसे ५ मील दक्षिणमें यह गंगातीर पर अवस्थित है। यह नगर एक शैवतीर्थ है। शिवरात्रि पर्वमें यहां बहुत लोग समागम होते हैं। बाढ़ और फतुआमें यहां ईष्ट-इंडियन रेलवेका एक स्टेशन तथा शहरमें म्युनिसि पलिटि है। पूर्वमें यह नगर अपेक्षाकृत बड़ा और धन-जनपूर्ण था। यहांकी तन्तुवायसमिति उत्कृष्ट वस्त्र बुनती थी। अभी वह कारबार बन्द-सा हो गया है।

वैकुण्ठपुरी—एक ग्रन्थकार। विष्णुपुरी देखो।

वैकुण्ठविष्णु—प्रबोधमञ्जरी नामक वेदान्तग्रन्थके रच-यिता।

वैकुण्ठशिष्य—एक ग्रन्थरचयिता। इनका दूसरा नाम कविराज भिक्षु था। इन्होंने विद्वच्चित्तप्रसादिनी नामकी षट्पदीटीका और सांख्यतत्त्वप्रदीप नामक ग्रन्थ लिखे हैं।

वैकुण्ठाश्रमिन्—वैद्यवल्लभ नामक ग्रन्थकार।

वैकुण्ठीय (सं० त्रि०) वैकुण्ठ सम्बन्धी, वैकुण्ठका।

वैकृत (सं० क्ली०) विकृतमेव (सान्नायानुजीति। पा ५।४।३६) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अण्। १ विकार, खराबी। (रामायण ६।४८।३२) २ दुर्निमित्त, दुर्लक्षण। (भारत ३।१३७.३) ३ वीभत्स रस। ४ वीभत्स रसका आल-म्बन। जैसे,—खून, गोश्त, हड्डी आदि। (त्रि०) ५ विकारजात, जो विकारसे उत्पन्न हुआ हो। (भागवत २।१०।४५) ६ विकृतिसम्पन्न, जो सहजमें ठीक न हो सके। ७ दुःसाध्य।

वैकृतज्वर (सं० पु०) अप्रकृत कालजात ज्वर, वह ज्वर जो ऋतुके अनुसार स्वाभाविक न हो, बल्कि किसी और ऋतुके अनुकूल हो। साधारणतः वर्षा ऋतुमें वायु, शरद ऋतुमें पित्त और वसन्त ऋतुमें श्लेष्मा (कफ) कुपित होता है। यदि वर्षा ऋतुमें वायुके प्रकोपसे ज्वर हो, तो वह वैकृत ज्वर कहा जायगा।

वैकृतवत् (सं० त्रि०) विकृत अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वैकृतविशिष्ट, वैकृतयुक्त।

वैकृतिक (सं० त्रि०) नैमित्तिक।

वैकृत्य (सं० क्ली०) विकृतमेव स्वार्थे ष्यञ्। १ बीभत्स रस। २ उसका आलम्बन।

'त्रिषु बीभत्सविकृतं वैकृत्यं विततन्था।' (शब्दरत्ना०)

वैक्रमीय (सं० त्रि०) विक्रम सम्बन्धी, विक्रमका। जैसे,—वैक्रमीय संवत्।

वैक्रान्त (सं० क्ली०) विक्रान्त्या दीव्यति विक्रान्ति-अण्। स्वनामख्यात मणिविशेष, चुन्नी। पर्याय—विक्रान्त, नीचवज्र, कुवज्रक, गोनास, क्षुद्रकुलिश, जीर्णवज्र, गोनस। यह वज्र (हीरक) के गुणके समान होता है। (राजनि०)

वैक्रान्तक (सं० क्ली०) वैक्रान्त स्वार्थे कन्। वैक्रान्त देखो।

वैक्रिय (सं० त्रि०) विक्रिया सम्बन्धी, विक्रीका, जो विकनेको हो।

वैक्लव (सं० क्ली०) विक्लव-अण्। विक्लव सम्बन्धी।

वैक्लव्य (सं० क्ली०) विक्लव-ष्यञ्। विक्लवता, जड़ता।

वैक्लव्यता (सं० स्त्री०) वैक्लव्यस्य भावः तल्-टाप्। वैक्लव्य, जड़ता।

वैखरी (सं० स्त्री०) १ बुद्ध्युत्थित कण्ठगत नादरूप वर्ण, कण्ठसे उत्पन्न होनेवाले स्वरका एक विशिष्ट प्रकार। ऐसा स्वर उच्च और गंभीर सुनाई पड़ता है। (अलङ्कारकौस्तुभ)

२ वाक्-शक्ति। ३ वाग्देवी।

वैखानस (सं० पु०) विखानसं ब्रह्माणं वेत्ति तपसा, विखनस-अण्। १ वानप्रस्थ। २ वनचारी ब्रह्मचारी विशेष। (लिङ्गपु० १०।६) (त्रि०) वैखानसस्येद-मित्यण्। ३ वैखानस सम्बन्धी।

वैखानस—१ एक आयुर्वेदवित्। टोडरानन्दमें इसका उल्लेख है। २ एक शिल्पशास्त्रके रचयिता। ३ श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र नामक ग्रन्थोंके प्रणेता।

वैखानसतन्त्र—तन्त्रग्रन्थभेद।

वैखानसि (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि।

वैखानसीयोपनिषद्—एक उपनिषद्। गोपाल-पूर्वताप नीयोपनिषद्के साथ इसका बहुत कुछ सादृश्य देखा जाता है।

वैग—छोटा नागपुरवासी धनुआ जातिकी एक शाखा। ये लोग जादूगिरी विद्या दिखा कर रुपये कमाते हैं। उस देशके खरवाड़ भी वैग वा वैगाग उपाधिसे परिचित हैं। जनसाधारणकी धारणा है, कि ये लोग भौतिक प्रक्रिया द्वारा स्थानीय देवताओंको शान्ति देनेमें समर्थ हैं। बहुतेरे इन्हें स्थानीय आदिम अधिवासी भी मानते हैं।

मण्डलाके आदिम अधिवासी वैग वा वैगा नामसे परिचित हैं। कहीं कहीं ये लोग गोंड़ जातिको पुरो-हिताई करते हैं। ये साधारणतः भूमिज उपाधिधारी हैं। बिझवार, मण्डिया और भिरोतिया नामके तीन दलोंमें ये विभक्त हैं। इन तीन दलोंमें फिर सात वंश-विभाग हैं। ये लोग एक ग्राममें गोड़ोंके साथ वास तो करते हैं, पर कभी उनका संसर्ग नहीं करते, सर्वदा पृथक् रहते हैं। इनकी भाषा विशुद्ध हिन्दी है। ये लोग निर्भीक, विश्वासी, स्वाधीनचेता, कर्मठ, कार्या-तत्पर और बलिष्ठ होते हैं।

वैगन्धिक (सं० पु०) गन्धक। (वामट उ० २६ अ०)

वैगलेय (सं० पु०) भूतगणविशेष। (हरिवंश)

वैगुण्य (सं० क्ली०) विगुणस्य भावः विगुण ष्यञ्। १ विगुणता, गुणहीन होनेका भाव। २ अपराध, दोष। ३ गुणविसम्वाद। ४ नीचता, वाहियातपन।

पूजादि कार्यमें भूलसे यदि कोई वैगुण्य हो जाय तो पूजादिके शेषमें वैगुण्य समाधान करना होता है। पूजाके अन्तमें भगवान् विष्णुका नाम स्मरण करनेसे सभी दोष विनष्ट होते हैं।

वैग्रहिक (सं० त्रि०) शरीर सम्बन्धी, शरीरका। (पा ४।३।८०)

वैग्रेय (सं० पु०) विग्रका अपत्य। (पा ४।१।१२३)

वैघस (सं० पु०) हरिवंश वर्णित एक व्याध। (हरिवंश)

वैघात्य (सं० पु०) वह जो घात करनेके योग्य हो, मार डालने लायक।

वैङ्कि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। (पा १।४।६१)

वैङ्कि (सं० पु०) प्राच्यगोत्रके अपत्य। बहुवचनमें वैङ्कीया होता है।

वैङ्गेय (सं० क्ली०) वङ्गदेश ।

वैचक्षण्य (सं० क्ली०) विचक्षणस्य भावः । विचक्षण या निपुण होनेका भाव, निपुणता, होशियारी ।

वैचित्य (सं० क्ली०) चित्तभ्रान्ति, भ्रम ।

वैचित्र (सं० क्ली०) विचित्रस्य भावः अण् । विचित्रता, विलक्षणता ।

वैचित्रवीर्य (सं० पु०) विचित्रवीर्यका अपत्य, धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरादि ।

वैचित्रवीर्यक (सं० त्रि०) विचित्रवीर्य सम्बन्धीय ।

वैचित्रवीर्ययिन (सं० पु०) विचित्रवीर्यवंशीय, वैचित्रवीर्य ।

वैचित्र्य (सं० क्ली०) विचित्रस्य भावः ष्यञ् । १ विचित्रता, विलक्षणता । २ विभिन्नता, भेद । ३ नाना रूपता । ४ सौन्दर्य, सुन्दरता ।

वैच्छन्दस् (सं० त्रि०) विच्छन्दः सम्बन्धीय ।

(लाट्या ७।७।३३)

वैच्युत (सं० पु०) मुनिभेद ।

वैच्युति (सं० स्त्री०) स्खलन, पतन, गिरना ।

वैजग्ध (सं० त्रि०) विजग्धका भाव, जो खाया गया हो ।

वैजनन (सं० पु०) विजायतेऽस्मिन्निति जन आधारे ल्युट्, ततः स्वार्थे अण । प्रसवमास, वह मास जिसमें किसी स्त्रीको संतान हुआ हो ।

वैजन्य (सं० क्ली०) जनशून्य, एकान्त ।

वैजयन्त (सं० पु०) वैजयन्ती अस्त्यत्रेति अर्श आद्यच् । १ इन्द्रप्रासाद, इन्द्रपुरी । २ इन्द्रध्वज । ३ इन्द्र । ४ गृह । ५ अग्निमन्थवृक्ष, अरणी ।

वैजयन्तिक (सं० त्रि०) वैजयन्त्यस्त्यस्येति व्रीह्यादिभ्यश्चेति ठन् यद्वा वैजयन्त्या चरतीति ठक् । पताकाधारी, झंडा उठानेवाला ।

वैजयन्तिका (सं० स्त्री०) वैजयन्ती स्वार्थे कन् । १ जयन्तीवृक्ष । २ पताका, झंडा । ३ अग्निमन्थ, अरणी ।

वैजयन्ती (सं० स्त्री०) १ पताका, झंडा । २ जयन्ती वृक्ष । ३ एक प्रकारकी माला जो पांच रंगोंकी और घुटनों तक लटकी हुई होती थी । कहते हैं, कि यह माला श्रीकृष्णजी पहना करते थे ।

वैजयन्ती—दाक्षिणात्यका एक बड़ा गांव । प्रत्नतत्त्वविदोंके मतसे यही ग्रीक भौगोलिकोंका वाणिज्य-प्रधान Buzantion नगरी है । फिर कोई कोई गुजरातके बलेभीको Byzantium कहते हैं ।

वैजयि (सं० त्रि०) १ मघवा, इन्द्र । २ जैनोंके बारह चक्रवर्त्तियोंमेंसे एक ।

वैजयिक (सं० त्रि०) विजयस्य निमित्तं विजयिना संयोग इति वा विजय (तस्य निमित्तमिति । पा ५।१।३८) इति ठञ् । विजयसम्बन्धीय, विजयसूचक ।

वैजयिन् (सं० त्रि०) विजयी एव स्वार्थे अण् । विजयी ।

वैजर (सं० पु०) ऋषि प्रवर्त्तित शाखाभेद ।

वैजल—प्रबोधचन्द्रिका नामक व्याकरणके प्रणेता । इनके आश्रयमें संस्कृत राजावलि रची गई ।

वैजवन—वैदिक शाखाप्रवर्त्तक ऋषिभेद । पैजवन, वैजन आदि पाठ भी देखा जाता है ।

वैजात्य (सं० क्ली०) वि-जाति भावे ष्यञ् । विजातीय होनेका भाव । २ विलक्षणता, अद्भुतता । ३ स्वभाव-का प्रभेद । ४ लाम्पट्य, बद-चलनी ।

वैजान (सं० पु०) वृषके अपत्य ऋषिभेद ।

वैजापक (सं० त्रि०) विजापक देशभव ।

वैजाबाई—महाराष्ट्र-सरदार महाराज दौलतराव सिन्देकी महिषी । ये महाराष्ट्र-मन्त्री श्रीजीराव घटगेकी पुत्री थीं । १८वीं सदीके शेषभागमें इनका जन्म हुआ था । हिन्दूराव इनके भाई थे ।

बचपनसे ही वैजाकी प्रकृति दाम्भिकतासे भरी थी । जो उनने एक बार कह दिया यदि उसका पालन न होता तो वह क्रोधित हो उठती थी । पिताके आदरसे लालित पालित तथा अपनी प्रकृतिवशतः परिचालित हो इनका चरित्र धीरे धीरे पुरुषोचित बुद्धि और विक्रमसे परिपूर्ण हो गया था । स्वामीके ऐश्वर्य और वीरत्वने इनके हृदयमें राजशक्तिके प्रभुत्व प्रभावको सम्पूर्णरूपसे अङ्कित कर दिया था ।

१८२७ ई०में स्वामीकी मृत्यु होने पर इन्होंने राज्यभार अपने हाथ लिया । कुछ समय बाद जनकजी नामक स्वामीके एक आत्मीयको इन्होंने गोद लिया और उसीको राजसिंहासनका भावी उत्तराधिकारी बनाया । जनक

जो नाबालिग थे, इस कारण वे ही राजकार्यकी देखभाल करती थीं। किन्तु नाबालिगके ऊपर कठोर व्यवहार और अत्याचार करनेसे वे बाज भी नहीं आती थीं। इस प्रकार माताका बार-बार प्रपीड़न जनकजीके लिये असह्य हो गया। उत्याचारोंसे छुटकारा पानेके लिये अंगरेज-राजकी शरण ली। फलतः अंगरेजराजने १८३३ ई०में उन्हें सिन्देराजको गद्दी पर बैठाया। इससे वैजावाईका प्रभुत्व जाता रहा। अब वे हीनतासे राजप्रासादमें रहना नहीं चाहती। आगरेमें आ कर निर्विवाद-पूर्वक रहना ही उन्होंने स्थिर कर लिया। वहां कुछ दिन ठहर कर वे फर्रुखाबादको चली गईं। आखिर दाक्षिणात्यमें जहां उनको जागीर थी, वहीं जा कर बड़े कष्टसे उन्होंने जीवन व्यतीत किया था।

वैजावी—मुसलमान ऐतिहासिक। सिराजके निकटवर्त्ती वैज्ञा नामक ग्राममें इनका जन्म हुआ था, इस कारण ये वैजावी नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका पूरा नाम था नासिर उद्दीन् अबुल् खैर अबदुल्ला इब्न उमर अल वैज्ञावी। ये कुछ दिन सिराज नगरीके काजी पद पर अधिष्ठित थे। १२८६ ई०में (दूसरेके मतसे १०९२ ई०में) इनका देहान्त हुआ। तफसिर वैआवि वा अनवर उल् तांजिल नामकी कुरानकी टीका तथा असवर उल ताविल नामके दो ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं।

निजामत तवारिख नामक एक इतिहास ग्रन्थ इन्हींका रचित है। इस ग्रन्थमें आदमसे तातार जातिके हाथ खलीफाओंकी पतन-कहानी लिपिबद्ध है। कुछ लोगोंका कहना है, कि आबु सैयद वैजावीने शेषोक्त ग्रन्थकी रचना की।

वैजिक (सं० क्ली०) बीजाद् उत्पन्नं बीज-ठक्। १ शिग्रु-तैल। २ हेतु, कारण। ३ आत्मा। ४ सद्योङ्कुर, हालका अंकुर। (त्रि०) ५ बीज सम्बन्धी। ३ वीर्य-सम्बन्धी।

वैजू—भारतके एक प्रसिद्ध सङ्गीतवेत्ता। उस समय नायक गोपाल और तानसेन नामक और भी दो गायक इनके जोड़के थे।

वैज्ञानिक (सं० त्रि०) विज्ञाने युक्तः विज्ञान (तत्र नियुक्तः। पा ४।४।६९) इति ठक्। १ निपुण, दक्ष। २ विज्ञान सम्बन्धीय। ३ विज्ञानविद्।

वैटप (सं० पु०) विटपका अपत्य। (पा ४।१।११२)

वैट्टालिक (सं० पु०) रुद्रपूजकविशेष।

वैड़व—वीड़का अपत्य। (पञ्चविंशब्रा० ११।८।६)

वैड़ालव्रत (सं० क्ली०) वैड़ालं विड़ालसम्बन्धि व्रतम्। दुष्टाचारविशेष, कपटाचार, पाप और कुकर्म करते हुए भी ऊपरसे साधु बने रहना।

वैड़ालव्रति (सं० पु०) अङ्गनादिके अभावके कारण कृत-ब्रह्मचर्य।

वैड़ालव्रतिक (सं० पु०) विड़ालव्रतेन चरतीति विड़ाल-व्रत-ठक्। छद्मतपस्वी। पर्याय—छद्मतापस, सर्वाभि-सन्धी। शास्त्रमें लिखा है, कि इनके साथ बातचीत तक भी नहीं करनी चाहिये।

वैड़ालव्रतिन् (सं० पु०) वैड़ालव्रतमस्त्यस्येति इनि। भण्ड तापस, वह तपस्वी वा साधु जो वास्तवमें पापी और कुकर्मी हो।

वैडूर्य (सं० क्ली०) वैदुर्यमणि।

वैडूर्यकान्ति (सं० त्रि०) वैदुर्यकी तरह कान्तिविशिष्ट।

वैडूर्यप्रभ (सं० पु०) नागभेद।

वैडूर्यमणिमत (सं० त्रि०) वैदुर्यमणि सदृश।

वैडूर्यमय (सं० त्रि०) वैदुर्य स्वरूप।

वैडूर्यशिखर (सं० पु०) पर्वतभेद। (भारतवनपर्व)

वैडूर्यशृङ्ग (सं० क्ली०) नगरभेद। (कथासरित्सा० ६५।५७)

वैण (सं० पु०) वेणु-अण् उकारस्य लोपः। वेणु-सम्बन्धी, बाँसका।

वैणव (सं० क्ली०) वेणोरिदं वेणु-अण्। १ वेणुफल, बाँसका फल। (पु०) २ वेणोरवयो विकारो वा वेणु (बिल्वादिभ्योऽण्। पा ४।३।१३६) इत्यण्। ३ उपनयन-में वेणुदण्ड, बाँसका वह डंडा जो यज्ञोपवीतके समय धारण किया जाता है। ४ वेणु, बंशी। (भारत ५।५०।१६) (त्रि०) ५ वेणुसम्बन्धी, बाँसका।

वैणविक (सं० त्रि०) वैणवो वेणुस्तद्वादनं शीलमस्य वैणव ठक्। (पा ४४।५५) वेणुवादक, वंशी बजाने-वाला।

वैणविन् (सं० त्रि०) १ वेणुवादक, वंशी बजानेवाला। (पु०) २ शिव। (भारत १३ पर्व)

वैणवी (सं० स्त्री०) वेणोर्विकृतिः वेणु (बिल्वादिभ्योऽण्

पा ४।३।१३६) इत्यण्-ततो ङीप् । १ वंशलोचन । (त्रि०) २ वेणु सम्बन्धी, बांसका ।

वैणसोमकतवीय (सं० क्लो०) सामभेद ।

वैणहोत्र (सं० पु०) १ वेणुहोत्रका वंश । २ धृष्टकेतुकी सन्तति परम्परा ।

वैणावत (सं० त्रि०) धनुषकी तरह वक्रताविशिष्ट, जो धनुषकी तरह टेढ़ा हो । "वैणावताय प्रतिघनल-शङ्कुम् ।" (शाख्या० ३।१०।६)

वैणिक (सं० त्रि०) वीणावादनं शिल्पमस्य, वीणा (शिल्पं । पा ४।४।५५) इति ठक् । वीणावादक, वंशी बजानेवाला ।

वैणुक (सं० पु०) वेणुना कायति शब्दायते इति कै-क, ततः स्वार्थे अण् । १ वेणुवादक, वंशी बजानेवाला । २ गजका तोदनदण्ड, हाथीका अंकुश ।

वैणुकीय (सं० त्रि०) वेणुकस्यायमिति (वेणुकादिभ्य-श्छण् । पा ४।२।१३८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्याच्छण् । वेणु सम्बन्धीय, बांसका ।

वैणुकेय (सं० पु०) वेणुवंश सम्बन्धीय ।

वैणेय (सं० पु०) वैदिक शाखाभेद ।

वैण्य (सं० पु०) वेणोरपत्यमिति वेण-ष्यञ् । पृथु, राजा वेणके पुत्र । ये सूर्यवंशीय पञ्चम राजा थे ।

वैतंसिक (सं० त्रि०) वीतंसो मृगपक्ष्यादि बन्धनोपाय-स्तेन चरतीति वितंस (चरति । पा ४।४।८) इति ठक् । मांसविक्रेता, मांस बेचनेवाला, बूचड़, कसाई । पर्याय— कौटिक, मांसिक । (अमर)

वैतण्डिक (सं० त्रि०) वितण्डायां साधुः वितण्डा (कथादिभ्यष्ठक् । पा ४।४।१०२) इति ठक् । जो बहुत अधिक वितण्डा करता हो, व्यर्थका झगड़ा या बहस करनेवाला ।

वैतण्डी (सं० पु०) ऋषिभेद ।

वैतण्ड्य (सं० पु०) आपके एक पुत्रका नाम । (विष्णुपुराण)

वैतथ्य (सं० क्लो०) वितथ-ष्यञ् । १ विफलत्व, विफलता । २ उपनिषद्भेद, वैतथ्योपनिषद् ।

वैतनिक (सं० त्रि०) जो वेतन ले कर काम करता हो, तनखाह ले कर काम करनेवाला । पर्याय—भृतक, भृति-भुक्, कर्मक भुकेर, ।

वैतरणा—दाक्षिणात्यके कोङ्कणप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी । यह पुर्त्तगीजोंके अधिकृत बसाई और दमन प्रदेशकी उत्तरी और दक्षिणी सीमा हो कर चली गई है । इसके किनारे सायवान नामक स्थानमें शिवजीने एक दुर्ग बनवाया था ।

वैतरणी (सं० स्त्री०) वितरणीविमुच्यें पापानि यया वैतरणी इत्यस्य । वितरणि विर्जीका, तरणान्तैर्येभिः, स्वार्थे ष्णि वैतरणीत्येके । १ नरकसिन्धु । नरकद्वार-स्थित नदी । इस नदीका वेग अत्यन्त प्रबल है । जल बहुत उष्ण और अति दुर्गन्ध है । यह अस्थि, केश, और रक्तसे परिपूर्ण है । यमद्वार पर यह नदी है । मृत्युके बाद इस नदीको पार कर यमसदनमें जाना होता है ।

कालिकापुराणमें इस नदीका विवरण इस तरह लिखा है,—महादेव सतीके वियोगमें जब रो रहे थे, तब उनकी आँखोंसे अश्रुपात हुआ । यह अश्रुपात होते देख देवता सोचने लगे, कि यदि महादेवके नेत्रोंसे गिरा जल पृथ्वी पर गिरेगा, तो उसी समय पृथ्वी भस्मीभूत हो जायेगी, यह सोच कर सभी देवता शनिके स्तवमें प्रवृत्त हुए,—"हे शनैश्चर ! तुम प्रसन्न हो, शिवके शोकसम्भूत नेत्रजलसे पृथ्वीकी रक्षा करो । जैसे तुमने पहले एक सौ वर्ष वृष्टिका जल धारण कर अनावृष्टि की थी वैसे ही शिवके नेत्रोंका जल भी धारण करो । तुम जल धारण कर रहे हो, यह देख कर पुष्कर आदि मेघदल इन्द्रकी आज्ञासे सतत वृष्टि करने लगे थे, किन्तु तुमने उन सब जलको आकाशमें ही नष्ट किया था । उसी तरह अब शूलपाणिका अश्रु विनष्ट करो । तुम्हारे सिवा यहां ऐसा कोई नहीं जो इसका निवारण कर सके । फिर इस अश्रुजलके पतित होने पर देवलोक, गन्धर्वलोक, ब्रह्मलोक और पर्वतके साथ पृथ्वी दग्ध हो जायेगी । अतएव तुम अपने मायाबलसे इसे धारण करो ।" देवोंके इस तरह कहने पर शनिदेवने कहा, "हे देवगण ! मैं यथाशक्ति तुम लोगोंका कार्य करूंगा । किन्तु देवादि-देव महादेव मुझको जान न सकें, ऐसा उपाय आप लोग कीजिये । यदि वह देख लें, तो उनके क्रोधसे मेरा शरीर विनष्ट हो जायेगा ।

इसके बाद ब्रह्मादि सभी देवगण शङ्करके समीप गये । उन्होंने शङ्करको योगमाया द्वारा सम्मोहित किया। शनिने भूतनाथके निकट आ कर अश्रुवृष्टिको मायाबलसे धारण किया। जब शनि अश्रुवृष्टि धारण करनेमें असमर्थ हुए, तो उन्होंने जलधर नामक महागिरिमें उसे निक्षेप कर दिया। जलधरगिरि लोकालोक पर्वतके निकट पुष्करद्वीपके पश्चाद् भागमें और जलसागरके पश्चिम अवस्थित है। यह पर्वत सर्वतोभावसे सुमेरु तुल्य है। यह पर्वत भी शङ्करके अश्रुजल को धारण करनेमें अक्षम हो उठा, शीघ्र ही इसका मध्य भाग विदीर्ण हो गया। इसके बाद वह नयनाम्बु गिरि भेद कर जलसमुद्रमें प्रविष्ट हुआ। समुद्र इस जलराशिको धारण करनेमें असमर्थ हुआ। इसके बाद सागरको पार कर यह जलसमुद्रके पूर्वीय किनारे पर आया और स्पर्शमात्रसे ही उसे भेद कर दिया। वह पुष्करद्वीपमध्यगत अश्रुजल वैतरणी नदी हो कर पूर्वकी ओर चला। यह जलधारा गिरिभेद और सागरसंसर्गवशतः किञ्चित् सौम्यताको प्राप्त हुआ था, इससे पृथ्वी भेद कर न सका। इस नदीका विस्तार २ योजन है।

नौका, द्रौणी, रथ या विमान किसीके भी द्वारा इस नदीको पार नहीं किया जा सकता। इस प्रतप्त जलपूर्ण अति भीषण नदीके ऊपरसे देवता लोग भी नहीं जा सकते। यह नदीने यमद्वारको हवाकी तरह घेरे हुए है। (कालि०पु० १८ अ०)

पापी मृत्युके बाद इस नदीको पार करनेके समय अशेष प्रकारके कष्ट सहन करते हैं। इसीलिये शास्त्रमें लिखा है, कि यमद्वार पर अवस्थित वैतरणी नदी सुखसे तैरनेके लिये मुमूर्षु व्यक्ति सवत्सा काली गो दान करे, इसी दान पुण्यके फलसे मृत व्यक्ति सुखसे इस नदीको पार करते हैं। यदि मुमूर्षु कालमें वैतरणी अर्थात् गो दान आदि न कर सके हों, तो उनके उद्देशसे श्राद्ध करनेवालेको उचित है, कि अशौचान्त द्वितीय दिनको पहले वैतरणी कर पीछे तिल दान आदि करें। फलतः यह कार्य अवश्य कर्त्तव्य है।

आसन्नमृत्यु व्यक्ति वैतरणीके लिये सवत्सा गो दान करेंगे। अशक्त होनेसे एक गाय ही केवल दान की जाती है। गोके अभावमें गोमूल्य दान करनेकी भी व्यवस्था है।

गोदान करते समय निम्नलिखित मन्त्र पढ़ना चाहिये—

"यमद्वारे महाघोरे तप्ता वैतरणी नदी।
तांश्च तर्त्तुं ददाम्येनां कृष्णां वैतरणीञ्च गाम्॥"

(शुद्धितत्त्व

पीछे दक्षिणान्त करना होता है। २ पितृकन्या। ३ कलिङ्ग देशस्थित नदीविशेष। (भारत ३।१४४।४)

वैतरणी—उड़ीसेमें प्रवाहित एक नदी। यमद्वारस्थ तप्तस्रोता वैतरणीकी तरह यह भी पापमोचनकारी और उसकी तरह इहलोकमें पवित्र तीर्थ है।

उड़ीसेके केउञ्झर राज्यके उत्तर-पश्चिम लोहारदगा जिलेके शैलपादसे (अक्षा० २३° २६' उ० और देशा० ८४° ५५' पू०) निकल कर दक्षिण-पूर्व और पीछे पूर्वकी ओर केउञ्झर, मयूरभञ्जराज्य, कटक और बालेश्वर जिलाकी सीमा रूपसे प्रवाहित हो शेषोक्त जिलेको ब्राह्मणी नदीमें मिल गई है। मूलनदी अक्षा० २४° ४४' ४५" से २१° २७' १५" उ० और देशा० ८५° ३५' से ८६° ५१' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। बालेश्वर जिलेमें ब्राह्मणी और वैतरणीके सङ्गमके बाद यह नदी धामरा नामसे प्रसिद्ध हुई है और बङ्गोपसागरमें मिल गई है। समूची नदीकी गति प्रायः ३४५ मील है।

नदीके मुहानेसे ओलख तक प्रायः १५ मील नदी वक्षमें पण्यवाही नौका आ जा सकती है। ग्रीष्म ऋतुमें इस नदीमें अधिक जल नहीं रहता। पैदल पार किया जा सकता है। हिन्दुओंके लिये यह अति पवित्र तीर्थ है। सुप्रसिद्ध विरजाक्षेत्र इसके निकट ही अवस्थित है। याजपुर देखो। प्रवाद है, कि अयोध्यापति रामचन्द्र जब सीता देवीके उद्धारके लिये लङ्कापुरीमें गये थे, तब उन्होंने केउञ्झरके अन्तर्गत वैतरणी नदीके किनारे विश्राम किया था। इस घटनाका स्मरण कर बहुतेरे आदमी माघ महीनेमें आ कर यहां स्नान करते हैं और पितृपुरुषके उद्देशसे पिण्ड चढ़ाते हैं।

इसकी अन्यान्य शाखाओंमें बालेश्वर जिलेकी शाल नदी और मलय उल्लेखयोग्य है। शङ्ख नामकी शाखा

६५ मीलका पथ तय कर इसके साथ आ मिली है। वैतरणीके किनारे आनन्दपुर, औलख और चांदवाली नामक प्रसिद्ध बन्दर और नगर अवस्थित हैं।

गरुड़पुराणमें यह नदी गयाक्षेत्रके अन्तर्भुक्त गिनी गई है। इसका भौगोलिक विवरण सर्वमतसम्मत न होने पर भी इस स्थानको गयातीर्थकी तरह तुल्यफल-प्रद माना जाता है। यहां पिण्डदान करनेसे पितृलोक स्वर्गवासी और आनन्दित होते हैं।

(गरुड़पुराण ८३।४४ ४०)

वैतस (सं० पु०) वेतस एव स्वार्थे अण्। १ अम्लवेतस, अमलवेंत। २ शिश्नदण्ड, लिङ्ग। (निघण्टु ३। ६) (त्रि०) ३ वेतस सम्बन्धी।

वैतसक (सं० त्रि०) वैतससम्बन्धीय। (पा ६।४।१५६)

वैतसकीय (सं० त्रि०) वैतससम्बन्धीय (पा ६।४।१५३)

वैतसेन (सं० पु०) राजा पुरूरवाका एक नाम जो वीतसेनाके पुत्र थे।

वैतस्त (सं० त्रि०) वितस्तदेशमें होनेवाला।

वैतस्तिक (सं० त्रि०) वितस्ति परिमाणसम्बन्धीय।

वैतहव्य—वीतहव्यके अपत्य वेदमन्त्रद्रष्टा अरुण ऋषि।

वैताढ्य (सं० पु०) पर्वतभेद।

वैतान (सं० त्रि०) वितान-अण्। वितान सम्बन्धी, वैतानिक।

वैतानिक (सं० पु०) विताने भवः, वितान, ठक्। १ श्रौतहोम, यह हवन या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानोंके अनुसार हो। २ अग्निहोत्रादि कर्मसाधन अग्नि, वह अग्नि जिससे अग्निहोत्र आदि कृत्य किये जायँ।

(आश्व० गृ० सू० नारा०)

(त्रि०) ३ वितान सम्बन्धीय, यज्ञादि कार्यकारी। (भागवत १०।४०।५) वितानेन निर्वृत्तः ठक्। ४ वितान साध्य अग्न्याधेय प्रभृति। (आश्व० गृ० श्रौ० २ स०)

वैतायन (सं० पु०) वैतानका अपत्य।

वैताल (सं० त्रि०) वेताल अण्। १ वेतालसम्बन्धीय, वेतालका। २ स्तुतिपाठक, वैतालिक।

वैतालकि (सं० पु०) ऋग्वेदशाखाप्रवर्त्तक आचार्यभेद।

वैतालरस—ज्वराधिकारोक्त रसौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—रस, गन्धक, विष, मिर्च और हरताल समान भाग ले कर जलसे अच्छी तरह पीसे। जब वह काजलके समान दिखाई देने लगे, तब २ रत्तीकी गोली बनावे। सान्निपातिक ज्वरमें मूर्च्छा और वमनादि उपद्रव रहने पर इसका प्रयोग किया जाता है। ग्रन्थविशेषमें यह श्रीवेतालरस नामसे भी लिखा गया है।

(भैषज्यरत्ना० ज्वराधिकार)

वैतालिक (सं० पु०) विविधेन तालेन चरतीति विताल-ठक्। १ बोधकर, प्राचीन कालका वह स्तुतिपाठक जो प्रातःकाल राजाओंको उनकी स्तुति करके जगाया करता था। 'विविधो मङ्गलगीतिवाद्यादिकृतस्तालशब्दः तेन व्यवहरन्ति वैतालिकाः' (भरत)

विविध प्रकारके मंगलगीत और वाद्यादिको विताल कहते हैं। इससे जो जीविका निर्वाह करते, वे ही वैतालिक कहलाते हैं। २ खेट्टिताल। खेट्टितालको जगह खड्गताल भी लिखा गया है।

वैतालिक—सह्याद्रिवर्णित राजभेद।

वैतालिन (सं० पु०) स्कन्दानुचरभेद। (भारत ६ पर्व)

वैतालि भाट—वाराणसीवासी भाटोंकी एक स्वतन्त्र शाखा। ये लोग गोंसाई उपाधिधारी हैं। प्रवाद है, कि राजा विक्रमादित्यकी सभामें वेताल नामक एक भाट था। राजवंशानुकीर्त्तनमें अतिशय दक्ष रहनेके कारण राजभाटकी उसे पदवी दी गई। पीछे वह राजा-का आचरित हिन्दुधर्म और राजकर्मका परित्याग कर गोंसाई सम्प्रदाययुक्त हुआ। तभीसे उसके वंशधर गोंसाई कहलाते आ रहे हैं। वेतालके वंशधर होनेके कारण वे भाट नामसे प्रसिद्ध हैं।

ये लोग भीख मांग कर अपना गुजारा चलाते हैं, किन्तु वैष्णव गोंसाईको छोड़ कर और किसीका भी दान ग्रहण नहीं करते। उन गोंसाइयोंका वंशकीर्त्तन ही इनका कार्य है।

वैतालीय (सं० पु०) १ मात्रावृत्तभेद। जिसके प्रथम और तृतीय पादमें चौदह तथा द्वितीय और चतुर्थ पादमें सोलह मात्रा रहती है, उसको वैतालीय वृत्त कहते हैं। किन्तु इसमें विशेषता यह है, कि इसकी मात्रा केवल लघु या केवल गुरु होनेसे काम नहीं चलेगा, वह मिश्र होनी चाहिये। फिर युग्म मात्रा पराश्रिता नहीं होगी,

अर्थात् ३, ५ ७ इत्यादि मात्रा युक्तवर्ण हो कर पूर्वमात्राको गुरु न करे। इसके चरणके अन्तमें र, ल और गगण अवश्य रहेगा। (त्रि०) २ वैतालका।

वैतुल (सं० क्ली०) वितुलसम्बन्धीय। (पा ६।२।१२५)

वैतृण्य (सं० क्ली०) वितृष्णा-ष्यञ्। तृष्णाराहित्य, लोभसे रहित होनेका भाव।

वैत्तपाल्य (सं० त्रि०) वित्तपाल वा कुबेरसम्बन्धीय।

वैत्रक (सं० त्रि०) वेत्र-कन्। वेत्रसम्बन्धी।

वैत्रकीयवन (सं० क्ली०) एकचक्रा। (भारत वन०)

वैत्रकेय (सं० त्रि०) वेत्र सम्बन्धीय।

वैत्रासुर (सं० पु०) वृत्रासुरका अपत्य असुरभेद।

वैद (सं० त्रि०) १ पण्डितसम्बन्धी। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम जो विद ऋषिके पुत्र थे।

(ऐतरेयब्रा० ३।६)

वैदक (सं० पु०) वैद्यक देखो।

वैदग्ध (सं० क्ली०) १ विदग्धत्व, पूर्ण पण्डित होनेका भाव। २ पटुता, कार्यकुशलता। ३ चतुरता, चालाकी। ४ रसिकता। ५ शोभा। ६ भङ्गि, हावभाव।

वैदग्धक (सं० त्रि०) वैदग्ध स्वार्थे कन्। विदग्ध-सम्बन्धीय।

वैदग्धी (सं० स्त्री०) विदग्धस्येयमिति विदग्ध अण् स्त्रियां ङीप्। भङ्गि, हावभाव।

वैदग्ध्य (सं० क्ली०) विदग्ध-ष्यञ्। विदग्धका भाव, पाण्डित्य, चतुरता।

वैदत (सं० त्रि०) विदत् (प्रज्ञादिभ्यश्च। पा ५।४।३८) इति स्वार्थे अण्। विदत्, जो किसी विषयका अच्छा ज्ञाता हो।

वैदथिन (सं० पु०) विदथीके अपत्य ऋषि।

(ऋक् ४।१६।१३)

वैददश्वि (सं० पु०) विददश्वके अपत्य ऋषिभेद।

(ऋक् ५।६१।१०)

वैदनृत (सं० क्ली०) सामभेद।

वैदन्वत (सं० क्ली०) विदन्वतके अपत्य।

(पञ्चविंशब्रा० १३।११।६)

वैदभृत (सं० पु०) विदभृतके अपत्य। स्त्रियां ङीप् वैदभृती।

वैदभृतीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

(शतपथब्रा० १४।६।४।३२)

वैदभृत्य (सं० पु०) विदभृतका गोत्रापत्य।

(पा ५।३।१०४)

वैदभ (सं० पु०) शिवका एक नाम। (भारत १३ पर्व)

वैदर्भ (सं० पु०) विदर्भो निवासोऽस्येति विदर्भ अण्। १ विदर्भदेशीय राजा। २ दमयन्तीके पिता भीमसेन। ३ रुक्मिणीके पिता भीष्मक। ४ वाक्चातुर्य, बातचीत करनेकी चतुराई। ५ वह जो बातचीत करनेमें बहुत चतुर हो। ६ दन्तशूलरोग, एक रोग जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है। (सुश्रुत नि० १६ अ०) (त्रि०) ७ विदर्भदेश सम्बन्धीय। ८ विदर्भ-देशजात।

वैदर्भक (सं० पु०) विदर्भदेशवासी।

वैदर्भि (सं० पु०) विदर्भका अपत्य। (प्रवराध्याय)

वैदर्भी (सं० स्त्री०) वैदर्भ-ङीप्। १ वाक्यकी एक रीति, वह रीति या शैली जिसमें मधुर वर्णों द्वारा मधुर रचना होती है। यह सबसे अच्छी समझी जाती है। रीति देखो। २ अगस्त्य ऋषिकी स्त्री। ३ दमयन्ती। ४ रुक्मिणी।

वैदर्य (सं० क्ली०) बालककी क्रीड़ा, लड़कोंका खेल।

वैदल (सं० क्ली०) १ भिक्षुकके मृण्मयादि पात्र, मिट्टीका वह बरतन जिसमें भिखमंगे भीख मांगते हैं। (पु०) विदलो दालिस्तस्माज्जातः विदल अण्। २ पिष्टकभेद, एक प्रकारकी पीठी। गुण—गुरु, विष्टम्भी और वायुकर।

(राजनि० १०)

वैदलान्न (सं० क्ली०) वैदलयुक्त भक्त, दलपीठी। यह रुचिकारक और गुरु होता है।

वैदलिकशिम्ब (सं० पु०) वैदलकशिम्बी। यह रुचिप्रद और दुर्जर होता है।

वैदायन (सं० पु०) विदका अपत्य। (पा ४।१।११०)

वैदारिक (सं० पु०) सन्निपात ज्वरविशेष। इसमें वायुका प्रकोप कम, पित्तका मध्यम और कफका अधिक होता है। रोगीकी हड्डियों और कमरमें पीड़ा होती है। उसे भ्रम, क्लान्ति, श्वास, खांसी और हिचकी होती है और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा सन्निपात जल्दी अच्छा

नहीं होता। यदि अच्छा भी हो जाय, तो कानकी जड़में एक बड़ा फोड़ा निकल आता है। उसमें बहुत पीड़ा होती है, रोगीके प्राण जानेका भय बना रहता है। इस दारुण सन्निपातका नाम वैदारिक है। इस रोगमें तीन रात्रिके बाद औषधादिकी सभी कल्पना व्यर्थ होती है। अर्थात् रोगी कराल कालका शिकार बन जाता है।

वैदि (सं० पु०) विदभृषिका अपत्य। (पा ४।१।१०४)

वैदिक (सं० पु०) वेदं जानातीति वेद-ठञ्। १ वेदज्ञ ब्राह्मण, वेदविद् ब्राह्मण वह ब्राह्मण जो वेद जानता हो। (त्रि०) २ वेदोक्त। ३ वेदोक्त क्रियाकाण्डका अनुष्ठाता।

किसी समय ब्राह्मण कहनेसे ही वैदिक समझा जाता था। क्योंकि, प्राचीनकालमें वेदपाठ और वेदोक्त क्रियादि न कर सकनेसे कोई ब्राह्मण नहीं हो सकता था। भारतवर्षमें जब नाना अवैदिक सम्प्रदायका अभ्युदय हुआ, तबसे ही ब्राह्मणोंमें भी उनके धर्म और क्रियाके अनुसार कई आख्यायें हो गईं। जैसे—बौद्ध, श्रावक, निर्ग्रन्थ, शाक्त, आजीवक और कापिल आदि*। इस समय जो वेदपाठ और वेदोक्त क्रियादि करते, वे ही केवल वैदिक कहे जाते थे। इसी समयसे ही गौड़वङ्गमें वैदिक शब्द पारिभाषिक हो गया। किसको यथार्थमें वैदिक कहा जायेगा, इसके विषयमें सुप्रसिद्ध धर्माधिकारी हलायुधने अपने ब्राह्मण सर्वस्वमें इस तरह विचार किया है—

"वेदः कृत्स्नोऽधिगन्तव्यः सरहस्यो द्विजन्मनेति तदित्थं इत्यनेन कृत्स्न एव वेदो ब्राह्मणेनार्थतो ग्रन्थतश्चाध्येतव्य इति स्थिते वेदाध्ययनवेदार्थज्ञानमन्तरेण गार्हस्थ्याश्रमाधिकार एव न स्यात्। तदनधिकारे च सकलकर्मानधिकार एव। यतः--

"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमं।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥"

इति वदता मनुना वेदोऽध्येतव्य इत्यनेन वेदार्थज्ञानपराङ्मुखस्य ब्राह्मणस्य शूद्रत्वमेव प्रतिपादितं। अत्र च कलौ आयुःप्रज्ञोत्साह-श्रद्धादीनामल्पत्वात् तद्-केवलोत्कल-पाश्चात्यादिभिर्वेदाध्ययनमात्रं क्रियते। राढीय-वारेन्द्रैस्तु अध्ययनं विना क्रियतेव वेदार्थस्य कर्म मीमांसा द्वारेण यज्ञेति कर्त्तव्यताविचारः क्रियते। न चैतेनापि मन्त्रार्थकवेदार्थज्ञानं मन्त्रार्थज्ञानस्यैव च प्रयोजनं। यतस्तत्परिज्ञान एव शुभफलं तदज्ञाने च दोषः श्रूयते। तथा च योगियाज्ञवल्क्यः—

"यस्तु जानाति तत्त्वेन आर्षं छन्दश्च दैवतम्।
विनियोगं ब्राह्मणञ्च मन्त्रार्थज्ञानकर्म च॥
एकैकस्या ऋचः सोऽभिवन्द्यो अतिथिवद्भवेत्,
देवतायाश्च सायुज्यं गच्छत्यत्र न संशयः॥
पूर्वोक्तेन प्रकारेण ऋष्यादीन् वेत्ति यो द्विजः।
अधिकारो भवेत् तस्य रहस्यादिषु कर्मसु॥
मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नेन ज्ञातव्यं ब्राह्मणेन च।
विज्ञाने परिपूर्णे तु स्वाध्यायफलमश्नुते॥
छन्दांस्ययातयामानि भवन्ति फलदान्यपि॥"

तथा व्यतिरेके योगियाज्ञवल्क्य—

"अविदित्वा तु यः कुर्याद् याजनाध्यापने जपं।
होममन्तर्जलादीनितेभ्योऽल्पाल्प फलं भवेत्॥
आपद्यते स्थाणुगर्त्तं श्वभ्रं वापि प्रमीयते।
अन्तर्जलादिकं लभ्ये इतरेषामजानतां॥
नाधिकारोऽस्ति मन्त्राणामेतः स्मृति निश्चयं नमिति॥"

अतो वेदाध्ययने वेदमन्त्रार्थज्ञाने हि तात्पर्यं। पदैस्तु राढीयवारेन्द्रैरर्थविचार एव केवलः क्रियते। एवं चोभयोरपि ग्रन्थार्थतो वेदज्ञानं नास्त्येव। तद्वरं वेदैकदेशस्यापि यथाविध्यध्ययनं कृत्वार्थविचारः क्रियते। इत्युचित भवति। तथा च यमः—

"न शूद्रा वृषलो नाम वेदो हि वृष उच्यते।
तस्य विप्रस्य तेनालं स वै वृषल उच्यते॥
तस्माद् वृषलभीतेन ब्राह्मणेन प्रयत्नतः।
एकदेशोऽप्यध्येतव्यो यदि सर्वो न शक्यते॥

तथा व्यासः—

"अधीत्य यत्किञ्चिदपि वेदागोचिगमे रतः।
स्वर्गं लोकमवाप्नोति धर्मानुष्ठानविद्द्विजः॥
तथा—समुचितं स्तोकमपि श्रुतार्थतं विशिष्यते।
चतुर्णामपि वेदानां केवलाध्ययनाद्विजः॥"

---

* "बौद्धश्रावकनिर्ग्रन्थशाक्ताजीवककापिलान्।
ये धर्माननुवर्त्तन्ते ते वै नग्नादयो जनाः॥".
(हेमाद्रि परिशेषखण्ड-श्राद्धकल्प ७ अध्याय)

तत्रश्चैकदेशस्याप्यध्ययनेन गार्ह स्थ्याश्रमाधिकारो भवत्येव। इत्थमेकदेशाध्ययने कर्त्तव्ये संशयः। किं तृतीयोभागश्चतुर्थो भागो वा अध्येतव्य उभानुष्ठानोचित-भागो वा। तत्र च यदि पाठक्रमानुरोधेन प्रथमो भाग एकोऽधीयते। तदा तस्मिन् भागे सन्ध्यास्नानाद्याह्निकगर्भाधानादिकसंस्काराग्न्याधानादिक्रियाकाण्डोपयुक्तमन्त्राणां सर्वेषामसम्भवात्तदनुष्ठानं न सम्भवति। तद्वरं सन्ध्यास्नानाद्याह्निकगर्भाधानादिसंस्काराग्न्याधानादिक्रियाकाण्डोपयुक्त-मन्त्रभाग एवाध्येतुं युज्यते। अस्यै वाध्ययनेन वेदैकदेशाध्ययनं पर्यवस्यति।

यत्तु केचित्,—

"गायत्री मात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः।
नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥"

इति मनुवचनदर्शनादेकदेशशब्देन गायत्रीमात्रमेवेच्छन्ति। तदयुक्तं। स्नानाद्यनुष्ठानसन्ध्यानभिज्ञस्य स्नानादिष्वेवायोग्यत्वात् तेषां गायत्री जपाधिकारितैव न भवतीति सुदूरं निरस्तं गायत्रीमात्रसारत्वं। गायत्रीमात्रसार इति वचनस्य तु निन्दितप्रतिग्रहाद्यसत्क्रिया निवृत्तस्य स्नानसन्ध्याद्यनुष्ठानशालिनो विज्ञातार्थगायत्रीजपनिरतस्य निन्दितप्रतिग्रहाद्यसत्क्रियायुक्तत्रिवेदविद्ब्राह्मणाच्छ्रेष्ठत्वप्रतिपादने तात्पर्यं। न तु सकलवेदानुष्ठानरहितस्य गायत्रीमात्रसारत्वे तात्पर्यमिति।

तथा कात्यायनः—

"वेदे तथार्थज्ञाने च ब्राह्मणो यत्नवान् भवेत्।
एव धर्मस्य सर्वस्य चतुर्वर्गस्य साधकः॥"

तथा व्यासः—

'अतः स परमो धर्मो यो वेदादवगम्यते।
अधरः स तु विज्ञेयो यः पुराणादिषु स्थितः॥'

तथा "एकदेशोऽप्यध्येतव्यो" अत्रैकदेशशब्देन यावदनुष्ठानोपयुक्तवेदभागोऽपेक्षितः।

मनुः—"यथाकाष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयोमृगः।
यश्च विप्रो नाधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति॥"

तथा—"योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमं
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥"

मनुः—"ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात्।
स ब्रह्मस्तेय संयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते॥"

व्यास संहितायां कूर्म पुराणे च—

योऽधीत्य विधिवद्विप्रो वेदार्थं न विचारयेत्।
स सान्वयः शूद्रसमः पात्रतां न प्रपद्यते॥
यथापशुर्भारवाही न तस्य भजते फलं।
द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेदफलमश्नुते॥"

(ब्राह्मणसर्वस्व)

अर्थात्—सरहस्य समस्त वेद ही ब्राह्मणोंको अध्ययन करना कर्त्तव्य है। इसी वाक्यके अनुसार 'रहस्य' शब्दके रहनेसे सारा वेद ही ब्राह्मणके अर्थानुसार और ग्रन्थानुसार अध्ययन करना कर्त्तव्य है, यही स्थिर हुआ है। अतः वेदाध्ययन या वेदार्थज्ञानके सिवा ब्राह्मणोंको गार्हस्थ्याश्रममें कभी अधिकार नहीं होता। गार्हस्थ्याश्रमका अधिकारी न होनेसे सब कर्मोंमें अनधिकारी रहना पड़ता है। किसी कर्ममें हो अधिकार नहीं होता। क्योंकि, शास्त्रमें कहा गया है, कि जो द्विज वेद अध्ययन न कर शास्त्रान्तर अध्ययन करते हैं, वे जीवित दशामें ही अति शीघ्र सवंश शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं।

इस मनुके वाक्यके अनुसार वेद अध्ययन करना हो होगा। इस तरहके अनुशासनसे वेदार्थज्ञान पराङ्मुख ब्राह्मणोंका शूद्रत्व ही प्रतिपादित हुआ है। ऐसी अवस्थामें इस कलिमें आयु, प्रज्ञा, उत्साह और श्रद्धा आदिकी ह्रासताके कारण केवल उत्कल और पाश्चात्यादि ब्राह्मण ही वेदाध्ययन मात्र करते हैं। किन्तु बङ्गालके राढ़ीय और वारेन्द्रगण अध्ययनको छोड़ केवल कुछ अंशका वेदार्थकी कर्ममीमांसाके अनुसार जो इतिकर्त्तव्यता विचारमात्र करते हैं, उसमें मन्त्रार्थ या वेदार्थज्ञान कुछ भी नहीं होता। फिर भी, मन्त्रार्थज्ञानका ही विशेष प्रयोजन है। क्योंकि, उसके परिज्ञानसे ही शुभ फल और उसके अपरिज्ञानसे दोष ही सुना जाता है।

इस विषयमें योगियाज्ञवल्क्यने लिखा है,—जो व्यक्ति प्रत्येक मन्त्रके दैवत, आर्ष, छन्दः, विनियोग, ब्राह्मण, मन्त्रार्थज्ञान और कर्म यथार्थ रूपसे जानते हैं, वे गुरुवत् पूज्य हैं। निःसन्देह उनको देवताका सायुज्य प्राप्त होता है। पूर्वोक्त प्रकारसे जो द्विज ऋषि प्रभृतिको जानते

हैं, उनका रहस्य आदि सब कर्मोंमें ही अधिकार रहता है। ब्राह्मण यदि प्रयत्नके साथ प्रत्येक मन्त्रमें ज्ञान प्राप्त करे, तो सर्व विधानमें परिपूर्ण हो वह स्वाध्यायजनित फललाभ करनेमें समर्थ हैं। अयातयाम छन्दः उनके लिये फलदायक होते हैं। इसके सिवा अन्य विषयोंमें योगियाज्ञवल्क्यने कहा है,—जो न जान कर न समझ कर याजन, अध्यापन, जप, होम और अन्तर्जल आदिका अनुष्ठान करता है, उसके इन कर्मोंके अनुष्ठानजनित फल अति अल्प ही संघटित होते हैं और वह व्यक्ति ऊद्ध्र्व या अधःपतनमें विपन्न होता है अथवा स्वयं ही आत्महत्या करता है। दूसरे वचनोंसे मालूम होता है,—अन्तर्जलादि विषयोंमें जो सब मन्त्र हैं, उसमें इतर वेदानभिज्ञ व्यक्तियोंका अधिकार नहीं ऐसा ही स्मृतिनिदर्शन है—

सुतरां देखा जाता है,—वेदाध्ययन विषयोंमें वेद-मन्त्रार्थज्ञान ही तात्पर्य्य है। किन्तु राढ़ीय और वारेन्द्र-गण केवल अर्थ विचार ही करते हैं। इस तरह अर्थ विचारमें राढ़ीय और वारेन्द्र इन दोनों श्रेणियोंके ब्राह्मणोंको ही ग्रन्थानुसार वेदज्ञान बिलकुल ही नहीं है। ऐसे स्थलमें वेदके एकदेशका भी यथाविधि अध्ययन कर यदि अर्थ विचार किया जाय, तो वह वदिक अच्छा है और ऐसा करना अनुचित या अशास्त्रीय भी भी नहीं। इसके सम्बन्धमें यमने कहा है, कि शूद्रको ही केवल वृषल कहा नहीं जाता, वेद ही वृष कहा जाता है। जो विप्र उस वेद या वृषसे हीन होते हैं, वे भी वृषल नामसे विख्यात हैं। सुतरां इस वृषलत्वभीतिके लिये ब्राह्मण प्रयत्नसे यदि सब वेद अध्ययन कर न सकें तो भी अन्ततः एकदेशका भी अध्ययन करना उनके लिये अवश्य कर्त्तव्य है। इस सम्बन्धमें स्मृतिकार व्यासने भी कहा है—यत्किञ्चित अध्ययन कर ही द्विज यदि वेदार्थाधिगमविषयमें अभिनिविष्ट हों, तो धर्मानुष्ठान-विषयमें अभिज्ञान वशतः उनको स्वर्गलोक प्राप्त होता है और चतुर्वेदके केवल अध्ययनकी अपेक्षा समुदाय अथवा अत्यल्प श्रुताध्ययन भी समीचीन कह कर निर्दिष्ट है।

और एक बात है, कि वेदके एकदेशके अध्ययन द्वारा गार्हस्थ्याश्रममें भी अधिकारी होनेके लिये कोई बाधा नहीं। यह अधिकार अवश्य ही होता है। किन्तु इस तरह एकदेश अध्ययनकी कर्त्तव्यता विषयमें संशय हो सकता है। वह संशय यह है, कि वेदका कौन भाग अध्ययन करना कर्त्तव्य है? तृतीय भाग, चतुर्थ भाग अथवा दोनों भागोंके अनुष्ठानोचित भाग, इन सबोंका कौन भाग और कौन अंश अध्ययन करना कर्त्तव्य है? यदि पाठके क्रमानुरोधसे एकमात्र प्रथम भाग अध्ययन किया जाये, तो उस भागमें सन्ध्या स्नानादि आह्निक, गर्भाधानादि संस्कार और अग्न्याधानादि क्रियाकाण्डके उपयोगी सब मन्त्रोंके असद्भाव होनेसे तत्तत् सभी अनुष्ठान सम्भव नहीं होते। सुतरां इसकी अपेक्षा सन्ध्या स्नानादि आह्निक, गर्भाधानादि संस्कार और अग्न्याधानादि क्रियाकाण्ड इन सबोंमें मन्त्रभाग ही अध्ययन करना युक्तियुक्त है। इस मन्त्रभागके अध्ययन करनेसे ही वेदके एकदेश अध्ययनका फल होता है। किन्तु कुछ लोगोंका कहना है, कि बाह्य और अभ्यन्तर इन दोनों तरहके शौच और नियमादिसम्पन्न ब्राह्मण केवल गायत्री अध्ययनमें रत रहने पर भी उनके ब्राह्मणत्वकी श्रेष्ठताहानि नहीं होती और नियमादि शून्य विप्र त्रिवेदज्ञ होने पर भी ब्राह्मणत्व लाभमें समर्थ नहीं। मनुवचनमें भी जो एक देश शब्दमें केवल गायत्री ग्रहणकी इच्छा प्रकाशित हुई है, फल वह नहीं है। स्नानादिका अनुष्ठान और सन्ध्यादि विषयोंमें अनभिज्ञ होने पर प्रथमतः स्नानादिमें अधिकार नहीं होता, सुतरां गायत्री जपकी अधिकारिता तो बिलकुल ही असम्भव है। इसीसे गायत्रीमात्र सारत्व कथाकी यहां निराशा हुई। किन्तु गायत्रीमात्रसार इस वचनका तात्पर्य यह है, कि जो सब ब्राह्मण निन्दित प्रतिग्रहसे निवृत्त हैं, स्नानसन्ध्यादिके अनुशीलनमें निरत और अर्थज्ञानपूर्वक गायत्रीजपमें तत्पर हैं, वे निन्दित प्रतिग्रहादि असत्क्रियान्वित त्रिवेदज्ञसे श्रेष्ठरूपसे प्रतिपन्न हैं। अर्थात् त्रिवेदज्ञ हो कर भी जो असत् कार्यमें लिप्त होते हैं, सत्कर्म-परायण ब्राह्मण सम्पूर्ण वेदज्ञ न होनेसे भी केवल गायत्रीजपकारी होनेसे उनकी अपेक्षा श्रेष्ठ माने जाते हैं। उक्त वचनोंका तात्पर्य यह नहीं, कि निखिल अनुष्ठान-

वर्जित ब्राह्मणके गायत्रीमात्र रहनेसे ही हुआ। कात्यायनका कहना है—वेदमें और उसके अर्थज्ञान विषयमें ब्राह्मण यत्नवान् हों। सब धर्म और चतुर्वर्गका यही साधक है।

व्यासने कहा है—जो वेदसे जाना जाता है, वही परमधर्म है और जो पौराणिक है, वह अधम धर्म है। "वेदका एक देश भी अध्ययन करना उचित है।" इस तरहके वचनोंसे अनुष्ठानोपयोगी सब वेदभागोंकी ही प्रयोजनीयता कही गई है।

मनुने लिखा है—जैसे काष्ठमय हस्ती और चर्ममय मृग हैं, वैसे ही वेदानध्यायी ब्राह्मण हैं—ये केवल तीन नाममात्र ही धारण करते हैं। सचमुच जो द्विज वेदाध्ययन न कर शास्त्रान्तरमें यत्नवान् होते हैं, वे जीवित अवस्थामें ही पुत्रपौत्रादिके साथ शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं। वेद जिसका अनुमोदित नहीं, जो वेदाध्यायीसे वेदाभ्यास नहीं करते, उन वेदचोर ब्राह्मणोंको नरकमें स्थान मिलता है।

व्याससंहिता और कूर्मपुराणमें लिखा है, कि जो विप्र विधिवत् अध्ययन कर वेदार्थ विचार नहीं करते, वे सवंश शूद्र तुल्य हो प्रकृत ब्राह्मणत्वलाभ करनेसे वञ्चित होते हैं। पशु जैसे भार ही वहन करता है, किन्तु उसका फल उसको नहीं मिलता; वेदाध्ययन कर वेदका अर्थ न जाननेसे ब्राह्मणको भी उसी तरह वञ्चित होना पड़ता है। (ब्राह्मणसर्वस्व)

हलायुधकी युक्ति क्या हम लोग समझ नहीं रहे हैं, कि उस समय राढ़ीय और वारेन्द्र समाजसे वेदलोपके साथ ब्राह्मणत्वलोपकी सम्भावना हुई थी। वैदिक कुलग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे भी हलायुधकी युक्तिका याथार्थ्य अनायास ही निर्णय किया जा सकता है।

राढ़ीय और वारेन्द्र-समाजसे वेदधर्म और वैदिक अनुष्ठान आदि एक तरहसे विलुप्त होने पर फिर वैदिक कार्य्य समाधान करनेके लिये जो सब ब्राह्मण पीछे वङ्गमें बुलाये गये थे, समय पा कर वे ही वङ्गदेशमें वैदिक कहलाये।

पाश्चात्य वैदिककुल-पञ्जिकामें लिखा है—

"वेत्ति यो विविधान् वेदानधीते वा यथाविधि।
स्वधर्मनिरतो विप्रो वैदिकः परिकीर्त्तितः॥"

जो नाना वेद जानते हैं या यथाविधि अध्ययन जिन्होंने किया है, ऐसे स्वधर्मनिरत ब्राह्मण ही वैदिक कहे जाते हैं।

"ये साङ्गवेदान् विधिवद्विदन्ति ते ब्राह्मणा वैदिक नामधेयाः।
वेदेन हीना यदि केऽपि सन्ति ते शूद्रतुल्या भुवि सञ्चरन्ति॥"

जो षडङ्गवेद विधिवत् जानते हैं, वे ही ब्राह्मण वैदिक नामसे पुकारे जाते हैं। जो वेदहीन ब्राह्मण हैं, वे शूद्रतुल्य जीवन निर्वाह करते हैं।

वङ्गालमें इस समय दो तरहके वैदिक ब्राह्मण दिखाई देते हैं, वे पाश्चात्य और दाक्षिणात्य नामसे विख्यात हैं। इसमें सन्देह है, कि पहले ये दो श्रेणियोंके ब्राह्मण 'वैदिक' नामसे परिचित थे या नहीं। क्योंकि, हलायुधके समयमें भी पाश्चात्य वैदिकगण केवल पाश्चात्य नामसे विख्यात थे, यह पूर्ववर्णित ब्राह्मणसर्वस्वसे मालूम होता है। जब राढ़ीय और वारेन्द्रश्रेणीने वैदिक क्रियाकलापोंको छोड़ दिया, केवल पाश्चात्य और दाक्षिणात्य ब्राह्मण ही श्राद्धादि वैदिक कार्य्य सम्पन्न करने लगे, तबसे ही ये दो श्रेणियां वैदिक नामसे वङ्गसमाजमें प्रथित हुईं। दोनों श्रेणियोंके वैदिक आख्यासे विभूषित होने पर भी परस्पर किसीके साथ किसीका कोई सम्बन्ध नहीं।

हलायुधकी उक्तिसे प्रतिपन्न होता है, कि ब्राह्मणमात्रको ही वेदाध्ययन और वेदका अर्थ ग्रहण, दोनों ही एकान्त कर्त्तव्य है। यदि साङ्ग चतुर्वेदाध्ययनमें सुविधा नहीं होती, तो अन्ततः एकदेश भी अध्ययन करना होगा। सन्ध्या स्नानादि आह्निक, गर्भाधानादि दशविध संस्कार और अग्न्याधानादि क्रियाकाण्डोंमें जो सब मन्त्र प्रयोग किये जाते हैं, वे सब मन्त्रभाग अर्थतः और ग्रन्थतः अध्ययन करनेको ही एकदेश अध्ययन करना कहा जाता है।

उक्त प्रमाणके अनुसार पाश्चात्यगण "वैदिक" गिने जाते हैं। किन्तु इसके पहले अर्थात् गौड़ेश्वर आदि शूरके समयमें पञ्चसाग्निक विप्र आदि वैदिक गिने जाते थे। कुलीन, राढ़ीय और वारेन्द्र शब्द देखो।

नीलकण्ठ वैदिक रचित यशोधरवंशमाला नामक कुलग्रन्थमें लिखा है:—

"आसीद् गौड़े महाराजः श्यामलो धर्मतत्परः।
प्रचण्डाशेषभूपालैरर्चितः स महीपतिः॥
वेदग्रहग्रहमिते स बभूव राजा
गौड़े स्वयं निजबलै परिभूय शत्रून्।
शूरान्वयानतिमदान् विजितान्तरात्मा
शाके पुनः शुभतिथौ श्रीजातस्य सूनुः॥
तस्मै ददौ सुतां भद्रां काशीराजो महाबलः।
गजाश्वरथरत्नाढ्यै राज्यैरपि पुरस्कृतः॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं याचे वेदविदाम्वरं।
यशोधरं महात्मनं शाखोपशाखपारगम्॥
तस्मै समादिशद्राजा गौड़ानां पावनाय सः।
प्रासादं रत्नघटितं शाकुनपातदूषितम्॥
दृष्ट्वा सुविस्मितो राजा यज्ञं कर्त्तुं मनो ददौ।
वव्रे यशोधरं तत्र स राजा यज्ञकर्मणि॥
शाकुनेन च सूक्तेन समाहूतं पतत्रिणं।
जुहाव खण्डशश्छिन्नं संस्कृतेऽग्नौ यथाविधि॥
तमेवाद्भुतकर्माणं दृष्ट्वा प्रीतो महामतिः।
राज्यमर्द्धञ्च रत्नानि दक्षिणार्थेन कल्पितम्॥
भूमिं प्रतिग्रहे पापं नास्तीति स द्विजाग्रणीः।
प्रत्यग्रहीत् समस्यानां ग्रामाणां द्वादशैव च॥
ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य विवाहाय स भूपतिः।
आनीतवान् द्विजान् पञ्च पञ्चगोत्रसमुद्भवान्॥
शौनकश्चैव शाण्डिल्यो वशिष्ठश्च तथापरः।
सावर्णोऽथ भरद्वाजः पञ्चगोत्राः प्रकीर्त्तिताः॥
आदौ शौनकशाण्डिल्यौ वशिष्ठो मध्यमस्तथा।
सावर्णोऽथ भरद्वाजः कनिष्ठः परिकीर्त्तितः॥
धनुर्धरः शाण्डिल्यश्च वशिष्ठः शास्त्रभृद्वरः।
सावर्णोऽथ भरद्वाजो देवतां दोलयानयत्॥
पञ्चगोत्रद्विजैः सार्द्धं वेदाध्ययनतत्परः।
यशोधरो वङ्गदेशे कुन्तलात्त् समागतः॥
शौनकश्चैव शाण्डिल्यः सुसिद्धः परिकीर्त्तितः।
भरद्वाजो वशिष्ठश्च सावर्णः सिद्ध एव हि॥
पञ्चगोत्राद्बहिः साध्या वत्सवात्स्याश्च काश्यपाः
भट्टो यशोधरश्चैव ततश्चावट्ट वैदिवित्॥
श्रीकृष्णो वेदगर्भश्च वेदाध्यायी च शङ्करः।
राज्ञः समाज्ञया विप्रा आगताः कुन्तलात्ततः॥"

गौड़देशमें प्रबलप्रतापान्वित अशेषभूपालवृन्दपूजित स्वधर्मतत्पर श्यामलवर्मा नामके एक महीपति थे। उनके पिताका नाम श्रीजात था। उन्होंने ६६४ शकमें अतिदुर्द्धर्ष शूरवंशीय राजाओंको पराभूत कर शुभतिथि नक्षत्रमें उक्त गौड़सिंहासन पर उपवेशन किया। महाबल काशिराजने उनको राज्य, धन, हाथी, घोड़े और धन-रत्नोंके साथ अपनी भद्रानाम्नी कन्याको सम्प्रदान किया। कुछ दिनके बाद गौड़नरेशके यहां अशुभ शकुन हुआ। इस अपशकुनके दोषको प्रशमन करनेकी इच्छासे इन्होंने एक यज्ञ करनेकी कामना की। इस यज्ञके लिये इन्होंने काशिराजके पास एक वैदिक ब्राह्मण भेज देनेकी प्रार्थना की। इस पर काशिराजने वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञ शाखोपशाखपारग वैदिकश्रेष्ठ महात्मा यशोधरको गौड़राजकी हितकामनासे वहां जानेके लिये आज्ञा दी। गौड़राजने भी यथासमय आये यशोधरको सादर सम्मान पूर्वक यज्ञकार्यमें व्रती बनाया।

ऐसे यज्ञकार्यमें व्रती हो यशोधरने शाकुनसूक्त पाठ द्वारा पतत्रियोंको आकर्षण कर उनको खण्ड-खण्डमें विभक्त कर सुसंस्कृत यज्ञाग्निमें यथाविधि आहुति प्रदान की। महामति श्यामलवर्मा यशोधरकी इस तरहकी अद्भुत घटनाको देख परम आह्लादित हो यज्ञके दक्षिणास्वरूप आधा राज्य तथा प्रचुर धनरत्न देनेका सङ्कल्प किया। यशोधरने भी भूमि प्रतिग्रह लेनेमें कोई आपत्ति नहीं समझ कर निकटके ग्रामोंसे १२ ग्राम लिये थे।

इसके बाद महीपतिने ब्रह्मचर्यावलम्बी यशोधरके विवाहके लिये चेष्टा की और शौनक, शाण्डिल्य, वशिष्ठ, सावर्ण और भरद्वाज, पञ्चगोत्रसम्भूत पांच ब्राह्मणोंको बुलाया। इनमें शौनक और शाण्डिल्य पहले, वशिष्ठ मध्यमें, सावर्ण और भरद्वाज अन्तमें आये। कुलश्रेष्ठ शाण्डिल्य, शास्त्रप्रवर वशिष्ठ, सावर्ण और भरद्वाज ये सभी झूलेमें अपने अपने घरके देवताओंको भी साथ ले आये। ये शौनक और शाण्डिल्य सुसिद्ध और भरद्वाज, वशिष्ठ और सावर्ण

सिद्ध कहे गये। सिवा इनके वत्स, वात्स्य और काश्यप आदि पञ्चगोत्रेतर गोत्र साध्य कहे गये थे।

वेदाध्ययनतत्पर यशोधर इन पञ्चगोत्रोंको साथ ले कुन्तलसे वङ्गदेशमें आये। इसके बाद राजाकी आज्ञासे अवट्ट यशोधर भट्ट, वेदवित् श्रीकृष्ण, वेदगर्भ और वेदाध्यायी शङ्कर कुन्तलसे वङ्गालमें आये।

इन पञ्च गोत्रोंके सम्बन्धमें ईश्वर वैदिकने लिखा है—

शाण्डिल्य, वशिष्ठ, सावर्ण, भरद्वाज और एक शौनक ये पञ्चगोत्र हैं। इन पञ्चगोत्रोंमें वशिष्ठ तपनके पुत्र गोविन्द, शाण्डिल्य ईशपुत्र वेदगर्भ, सावर्ण रविके पुत्र पद्मनाभ, भरद्वाज कमलासनके पुत्र विश्वजित् और शौनक मनुके पुत्र यशोधर ये सभी पुत्रोंके साथ आये थे। इनको राजाने बुला कर यथायोग्य ताम्रशासन द्वारा विभिन्न ग्राम दान किया था।

राजा श्यामलवर्मा उन पञ्च-ब्राह्मणपुङ्गवको १४ ग्राम प्रदान किये थे। इन ग्रामोंके नाम इस तरह हैं—आलाधि, जयाड़ी, गौराली, कुमारहट्ट, पानिकुण्ड, आखोड़ा, सातौरा, ब्रह्मपुर मरीचिका प्रसार, दधिवामन, चन्द्रद्वीप, नवद्वीप, कोटालिपाड़ और सामन्तसार।

इन सब ग्रामोंमेंसे आलाधि, जयाड़ो और गौराली—ये तोन ग्राम वशिष्ठको ; कुमारहट्ट, पानिकुण्ड, आखोड़ा और सातौरा—ये चार शाण्डिल्यको ; मरीचिका प्रसार और दधिवामन—ये दो सावर्णको ; चन्द्रद्वीप, नवद्वीप और कोटालिपाड़—ये तीन ग्राम भरद्वाजको और केवल सामन्तसार ग्राम शुनकको मिले थे। यह एक एक ग्राम समाजके नामसे विख्यात था। ये चौदह समाज इन पाश्चात्य वैदिकोंको इसी तरह मिले थे।

पञ्चगोत्रका समाज।

उक्त १४ समाजोंके अवस्थानके सम्बन्धमें ईश्वरने भी इस तरह निर्देश किया है,—

कोटालिपाड़ और चन्द्रद्वीप ये दो स्थान पूर्व-वङ्गमें हैं। ये दोनों स्थान नारियलके वृक्षों और गुवाकादि द्वारा वेष्टित हैं। नवद्वीप गङ्गाके किनारे पर है। इस समाजमें चैतन्य-महाप्रभुने जन्मग्रहण किया था। सामंतसार ब्रह्मपुत्रके निकट और नवद्वीपसे बहुत पूर्वकी ओर अवस्थित है। इसका भूभाग खजूर, कटहल आदि वृक्षों और कई छोटी छोटी नदियोंसे घिरा हुआ है। आलाधि आत्रेयी और प्राची नदियोंकी बगलमें अवस्थित है। इस स्थानमें बहुतेरे वेदविद् वैदिकोंका वास था। जयाड़ी अति समृद्धिशाली स्थान है। यह स्थान देवपुरी तुल्य है। यहां पुरश्री, देवश्री और हरिहर विरञ्चि आदिके बहुतेरे मन्दिर विद्यमान हैं। गौराली सर्वगुणसम्पन्न सुरम्य स्थान है। यहां बहुतेरे गुणसम्पन्न ब्राह्मणोंका वास है। कुमारहट्ट गङ्गाके किनारे अवस्थित है। यहां बहुतेरे वेदज्ञ ब्राह्मण रहते हैं। गङ्गाके पवित्र वारिके स्पर्शसे यह निर्दोष स्थान सदा ही पवित्र है। आखड़ा पूर्वदेशीय वैदिक-समाजके निकट है। पानिकुण्ड भाग्यदह झीलके निकट है। ब्रह्मपुर आखड़ाके अन्तमें है। यह स्थान शाण्डिल्य गोत्रीय वैदिकोंका समाज है।

सामन्तसार—सामन्तसार इस समय फरीदपुर जिलेकी मेघना नदीके किनारे गोसाईंहाट पोष्टाफिसके अन्तर्गत है। इसकी पूर्वीय सीमा पर नागरकुण्डा ग्राम था, इस समय नदीके गर्भमें है। दक्षिणी सीमा पर धीपुर, पश्चिमीय सीमा पर चोंया और उत्तरमें कुलकण्ठी ग्राम है। इस समाजके वैदिक निकटके वेजिनीसार, सिङ्गारडाहा, काकैसार, शीतल बुढ़िया, टेङ्गरा आदि स्थानमें भी वास करते हैं।

कोटालिपाड़—कोटालिपाड़ पूर्वमें चन्द्रद्वीप राज्यके अन्तर्गत था। इस समय यह फरीदपुर जिलेमें आ गया है। इस समाजके लोग मुख्य कोटालिपाड़, पश्चिमपाड़, मदनपाड़, डहरपाड़ा आदि ग्रामोंमें वास करते हैं।

चन्द्रद्वीप—यह ग्राम वरिशाल जिलेके वाकला परगनेके अन्तर्गत है। इस समाजके वैदिक चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत वजीरपुर, शिकारपुर, रामचन्द्रपुर आदि स्थानोंमें अवस्थान करते हैं।

मध्यभाग—मध्यभाग समाजके वैदिकके मतसे फरीदपुर जिलेके अन्तर्गत पाटगांवके निकटवर्त्ती मदारिया ग्राम ही प्राचीन मध्यभाग है। इस समय यह ग्राम पद्माके गर्भमें है। इस समाजके लोग धुल्ला और और कुछ लोग इदिलपुरमें और कुछ लोग पाटगांवमें वास कर रहे हैं।

आखोड़ा—ढाके जिलेके माणिकगञ्ज महकमेके अधीन है। इस समय यह ग्राम भी पद्माके गर्भमें है। इस समाजके लोग भी निकटके नयाकाण्डी, दुलारडाङ्गी आदि ग्रामोंमें रहते हैं।

पानिकुण्डा—यह भी ढाके जिलेके माणिकगञ्ज महकमेके अधीन है। कई आदमियोंका ऐसा ही मत है। किन्तु ईश्वरके मतसे भाग्यवृहके निकट है और पाश्चात्य-कुलपञ्जिकाके मतसे गङ्गातीर पर अवस्थित है।

जोयारी (जयाड़ी)—राजसाहा जिलेमें है। नाटोर राज्यसे प्रायः ६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। पहले इस ग्रामको बगलमें आत्रेयी नदी थी। इस समय वह बहुत दूर हट गई है।

गौरालि या गौराङ्ग—ढाकेके राजनगरके निकट है। इस समाजके लोग निकटके मसुड़ा, आकसा, धानुका, आदि स्थानोंमें वास करते हैं।

आलाधि—राजसाही जिलेकी आत्रेयी और प्राची नदीके पार्श्वमें जलालपुरके निकट अवस्थित था। इस समय नदीके गर्भमें अवस्थित है, चिह्नमात्र भी नहीं दिखाई देता।

दधीचि और मरीचि—नवद्वीपके पूर्वोत्तर ओर अवस्थित हैं। इस समय अब इन दो स्थानोंमें पाश्चात्य वैदिकोंका वास नहीं है।

नवद्वीप सुविख्यात प्राचीन नदिया ही पाश्चात्य वैदिकोंका नवद्वीप समाज है, किन्तु प्राचीन स्थानका अधिकांश गङ्गागर्भमें जा चुका है। जहां इस समय लोग बल्लालभवन दिखाते हैं, उसके कुछ दूर पर यह समाज अवस्थित था। इस समय वैदिकोंका वास रहने पर भी नवद्वीपमें पञ्चगोत्रके श्रेष्ठ पाश्चात्य वैदिकोंके साथ प्रायः उनका सम्बन्ध नहीं होता।

शान्तर या सातोर—अब साँतिर नामसे विख्यात है। फरीदपुर जिलेकी भूषणाके निकट सुविस्तृत 'हावेली साँतिरा' नामक परगनेके अन्तर्गत है। किसी समय यह स्थान एक प्रधान वैदिक समाज गिना जाता था।

बहपुर—इस समय बरिशालजिलेके अन्तर्गत है।

दाक्षिणात्य वैदिक।

हरिनाभिनिवासी प्राणकृष्ण विद्यासागर रचित "दाक्षिणात्य-वैदिक-कुल-रहस्य" नामक एक कुलग्रन्थ १७४५ शकमें रचा गया।

प्राणकृष्णने लिखा है, कि पुराणादिमें कान्यकुब्ज आदि जिन दश तरहके ब्राह्मणोंका उल्लेख है, उनमें द्राविड़श्रेणी एक है। बङ्गदेशमें जो सब दाक्षिणात्य वैदिक ब्राह्मण दिखाई देते हैं, वे सभी उस द्राविड़ श्रेणीके हैं। दक्षिणदेशसे आनेवाले दाक्षिणात्य और वेद जाननेवाले वैदिक कहलाये।

प्रवाद है, कि काल पा कर इस प्रदेशमें वेदादिचर्चा और वैदिक क्रियाकलापका लोप होनेसे द्राविड़ देशसे इस श्रेणीके ब्राह्मण यहां लाये गये। मालूम होता है, कि राढ़ी और वारेन्द्र श्रेणीके बाद यहां यह आये। उक्त श्रेणीके ब्राह्मणोंने इन्हें गुरु और पुरोहितके पद पर अभिषिक्त किया था। दाक्षिणात्यके वैदिकोंमें बहुतेरे कृतविद्य और ग्रन्थप्रणेता थे। स्मार्त्त रघुनन्दन भट्टाचार्यने अपने रचे मलमासतत्त्वमें "कालादर्श-कालमाधवीय आदि दाक्षिणात्य वैदिक ग्रन्थेषु" जो पाठ रखा है, उसमें सायणाचार्य, शङ्कराचार्य आदि महात्मा भी दाक्षिणात्य वैदिक होते हैं।

भ्रान्त मत।

इसका ठीक कुलग्रन्थमें उल्लेख नहीं, कि दाक्षिणात्य वैदिकगण किस समय इस देशमें आये। राढ़ीय और वारेन्द्र श्रेणीके ब्राह्मणके बाद ये आये हैं, केवल इतना ही प्रवाद है। फिर कितनों होका मत है, कि उत्कलके सूर्यवंशीय राजाओंने जिस समय त्रिवेणी तक अधिकार फैलाया। उस समय याजपुर आदि ब्राह्मण शासनोंके विशिष्ट वेदपारग सात्त्विक वैदिकगण त्रिवेणी-तीरस्थ बङ्गदेशमें सर्वदा आया करते थे। क्रमसे बङ्गीय ब्राह्मणके निकट सम्मान लाभ कर उनमें किसी किसीने यहां वासस्थापन किया।* इस तरह उत्कलके वैदिक इस देशमें वास कर दाक्षिणात्य वैदिक नामसे विख्यात हुए।

उत्कलके इतिहासमें लिखा है, कि सूर्यवंशीय राजा मुकुन्ददेवने त्रिवेणी तक राज्य विस्तार किया

* सम्बन्धनिर्णय (२य संस्करण) ३५ पृष्ठ।

था . इन्होंने १५५०ई०में सिंहासन पर आरोहण किया।* उक्त प्रवाद-वाक्यको स्वीकार करने पर साढ़े तीन सौ वर्ष पहले बङ्गमें दाक्षिणात्य वैदिकागम स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु उसके बहुत पूर्व उत्कलसे वैदिक ब्राह्मण आ कर इस देशमें वास करते थे, इस बातका प्रमाणाभाव नहीं। साढ़े तीन सौ वर्ष पूर्व वैष्णव कवि जयानन्दने (महाप्रभुके याजपुर आगमन-उपलक्षमें) अपने बङ्गला चैतन्यमङ्गलमें (उत्कलखण्डमें) लिखा है,—

'चैतन्यगोसाईंके पूर्व पुरुष याजपुरमें आये; किन्तु राजा भ्रमरके डरसे श्रीहट्टदेशमें भाग गये। उसी वंशमें एक वैष्णव हो गये हैं, जिनका नाम कमललोचन था। पूर्व जन्मके तपसे चैतन्य गोसाईंने, उनके घर विश्राम किया।'

सुतरां चैतन्यदेवके आविर्भावसे बहुत पहले उनके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे। वैदिक मधुकर मिश्र राजा भ्रमरवरके भयसे श्रीहट्ट भाग गये, किन्तु महाप्रभुने जब याजपुर पदार्पण किया तब भी यहाँ उन जातिवालोंका वास था। श्रीहट्टवासी प्रद्युम्नमिश्रके मनःसन्तोषणी और चैतन्योदयावली आदि ग्रन्थानुसार चैतन्यदेवके प्रपितामह मधुकर मिश्र श्रीहट्टवासी हुए थे। इधर उड़ीसेके इतिहासमें और गोपीनाथपुरकी शिलालिपिमें उत्कलपति कपिलेन्द्रदेवकी 'भ्रमरवर' उपाधि दिख पड़ती है†। सन् १४५१ ई०में उनका राज्याभिषेक सम्पन्न होने पर भी उसके बहुत पूर्वसे ही उनका अभ्युदय हुआ था। ऐसे स्थलमें १५वीं शताब्दीके मध्य भागमें उनके उत्पातसे मधुकर मिश्र पुत्र परिजनके साथ श्रीहट्टवासी हुए थे। सन् १४७२ ई०में बङ्गालमें शान्ति स्थापित हुई थी×। इसके कुछ ही समय बाद मधुकर मिश्रके गोत्र और चैतन्यदेवके पिता जगन्नाथ मिश्र नवद्वीपवासी हो यहाँके वैदिक समाजभुक्त हुए थे*।

चैतन्यदेवके पूर्वपुरुष याजपुरवासी थे; सुतरां वे उत्तर श्रेणी या पञ्चगौड़ ब्राह्मणोंके अन्तर्गत हैं। गङ्गवंशीय राजकर्तृक कन्नोजसे ब्राह्मण लानेका प्रवाद यदि सत्य हो, तो यशोधरादिकी तरह महाप्रभुके पूर्व पुरुष भी पाश्चात्य वैदिक हैं। फिर उत्कल या दक्षिण देशसे श्रीहट्टमें आगमनप्रयुक्त वे दाक्षिणात्य वैदिक भी कहे जा सकते हैं। इसी कारणसे ही महाप्रभुकी जीवनी-लेखकोंमेंसे कोई उनके पूर्वपुरुषको "पाश्चात्य वैदिक" कोई "दाक्षिणात्य वैदिक" कहते हैं। इस तरह दोनों समाजमें किसी समयमें सम्बंध स्थापित होना भी कुछ आश्चर्यकी बात नहीं। कटक और मेदिनीपुर जिलेमें दोनों श्रेणियोंका संमिश्रण दिखाई देता है। वहां षट् कुल या षड्गोत्र वैदिक ही सम्मानित हैं। यथा—

"करशर्मा भरद्वाजो घरशर्मा च गौतमः।
आत्रेयो रथशर्मा च नन्दिशर्मा च काश्यपः॥
कौशिको दासशर्मा च पतिशर्मा च मुद्गलः।"

भरद्वाजगोत्रमें करशर्मा, गौतमगोत्रमें घरशर्मा, काश्यप गोत्रमें नन्दिशर्मा, कौशिक गोत्रमें दासशर्मा और मुद्गलगोत्रमें पतिशर्मा (ये ६ घर) हैं। सिवा इनके उत्कल श्रेणीके कुलग्रंथमें घृतकौशिक और कात्यायन गोत्र आदि भी वैदिक कहे गये हैं। याजपुरके पण्डोंका कहना है, कि उत्कल, द्राविड़, ताम्रपर्णी, कामरूप (योनिपीठ), सागरसङ्गम, चन्द्रनाथ और सुह्म देशमें जो सब वैदिक हैं, वे दाक्षिणात्य गिने जाते हैं।† जो हो, उत्कल छोड़ कर इस समय बङ्गालका अनु-

---

* Sterling's Orissa (in Asiatic Researches, Vol xv, p. 287)

† Asiatic Researches Vol, xv, p, 275, और विश्वकोषमें गोपीनाथपुर शब्द देखो।

× बङ्गेर जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड १म अंश, १६६-६७ पृष्ठा द्रष्टव्य)

* जातीय इतिहास (ब्राह्मणकाण्ड) २य भाग ३यांश ६२ पृष्ठमें जगन्नाथ मिश्रका जातिवंश द्रष्टव्य।

† "उत्कली ताम्रपर्णी च योनिपीठी तु सागरी।
चन्द्रनाथी तथा सूह्मी दाक्षिणात्या वैदिकाः स्मृताः"

स्मरण किया जावे। इस देशमें किस समय दाक्षिणात्य वैदिक आये ? यही आलोच्य है।

वङ्गमें दाक्षिणात्य वैदिकागमन-काल।

सन् १४३२ शकमें रचित आनन्दभट्टके वल्लाल चरित-में लिखा है, गौड़ाधिप वल्लालसेनने गौतम गोत्रीय अनंत शर्मा नामक एक द्राविड़ श्रेणीके ब्राह्मणको सुवर्ण-भुक्तिके अंतर्गत सर्वशस्यसमन्वित 'कासार' ग्राम दान किया था। उस सुधाधवलित सर्वोपस्करसंयुत आनायनादि परिशोभित गृहपूर्ण राजदत्त ब्राह्मण-शासनमें दाक्षिणात्य विप्रगण वास करते रहे।

वल्लालचरितके रचयिता आनन्दभट्टने पूर्वोक्त अनंत शर्माके वंशधरको भी दाक्षिणात्य ब्राह्मण कहके परिचय दिया है। उनके मतसे दाक्षिणात्य ही द्राविड़ श्रेणी हैं*। अतएव वल्लालसेनके समयमें इस देशमें दाक्षिणात्य वैदिक थे, यह प्रमाणित हुआ। गौड़ाधिप वल्लाल-पिता विजयसेनके शिलाफलकमें उनके पूर्वपुरुष "दाक्षिणात्यक्षौणीन्द्र" कह प्रख्यात हुए और वे गौड़, कामरूप और कलिङ्ग पर विजय कर राजचक्रवर्त्ती हुए थे। वरेन्द्रभूमिस्थ "प्रद्युम्नेश्वर" मन्दिर-प्रतिष्ठाके उपलक्षमें महाकवि उमापतिधरने उक्त 'विजयप्रशस्ति'-रचना की थी। यह भी देवपाड़ास्थ विजयसेनकी शिलालिपिके रूपमें प्रसिद्ध है।

प्राणकृष्णके वैदिक-कुलरहस्यमें लिखा है, कि किसी कारणसे कितने ही वैदिक द्राविड़ देशसे उत्कल देशमें आ कर बस गये। यहां कुछ दिनों तक वे सुखसे रहे थे। इसके बाद विरूपाक्ष नामक एक वामाचारी सिद्धपुरुषने आ कर भारी अनिष्ट किया। उन्हों ने योगबलसे सारे देशको मदिरामय बना दिया। नदमें, झीलमें, कूपमें, सरोवरमें, तमाम जलाशयोंमें जलके बदले शराब ही शराब दिखाई देने लगी। इस तरहकी विपद में पड़ कर कई प्रधान वैदिक उत्कलसे वङ्गदेशमें चले आये। उनके सदाचार, विद्याबुद्धि और क्रियादिको देख वङ्गज कायस्थ विक्रमादित्यसुत राजा प्रतापादित्यने सन् १५४२ शकमें उनकी सम्बर्द्धना की थी। उन्होंने ही दाक्षिणात्योंको नाना सुखैश्वर्य प्रदान कर वङ्गमें वास कराया। जहां पहला वास उन्होंने किया था, उसका नाम डोमुड़ा है, दाक्षिणात्य वैदिकोंकी यही वृत्तिभूमि है। दाक्षिणात्य कुलीनोंके बीजपुरुषने सदाचार और स्वधर्मनिष्ठ हो कर वहां बहुत काल तक वास किया था। गङ्गा यमुना और सरस्वतीकी त्रिधारा एकत्र हो कर प्रयाग जैसे पुण्यमय हुआ है, वहां उसी तरह वैदिक वंशीय लोगोंकी तीन धारायें वर्द्धित हुई थीं। किन्तु सदा एक समान नहीं बीतता है। यहां वनके जन्तुओंका उपद्रव हुआ। कोई भी वहां रहनेमें समर्थ नहीं हुआ। वह वासस्थान वन्यभूमिमें बदल गया। कोई वङ्गमें, कोई अङ्गमें, कोई गौड़में, कोई राढ़में इस तरह नाना स्थानोंमें दाक्षिणात्यगण चले गये।

अब मालूम हुआ, कि सेनवंशीय राजाओंके समयमें कई बार दाक्षिणात्यके वङ्गमें आ कर वास करने पर भी फिर बहुत दिनोंके बाद यशोराधिप प्रतापादित्यके समयमें भी तीन बार वैदिकोंने आ कर राजप्रदत्त डोमड़ा ग्राममें वास किया।

गोत्र और उपाधि-निर्णय—कुलरहस्यके मतसे १ गौतम, २ काश्यप, ३ वात्स्य, ४ काण्वायन, ५ वृतकौशिक, ६ कृष्णात्रेय, ७ भरद्वाज और ८ कौशिक, ये आठ गोत्र ही महाकुल हैं। इनमे इस समय छः गोत्र केवल दिखाई देते हैं। कृष्णात्रेय और भरद्वाज—ये दो गोत्र अब देख नहीं पड़ते*।

फिर पाश्चात्य वैदिक कुलपञ्जिकामें लिखा है,—१ जातुकर्ण, २ सावर्ण, ३ काश्यप, ४ वृतकौशिक, ५ वात्स्य, ६ काण्वायन, ७ कौशिक और ८ गौतम। दाक्षिणात्योंमे ये आठ गोत्र विख्यात हैं। इनमें दो प्रकारके

* "केचित् विप्रा आगताश्च वैदिका वेदपारगाः।
पाश्चात्या दाक्षिणात्याश्च शब्दिता द्राविड़ा स्मृताः॥"
(वल्लाल-चरित पूर्व खण्ड)

* "गौतमः काश्यपो वात्स्यः काण्वायनवृतकौशिकौ।
इत्यष्टगोत्रे त्वधुना गोत्रषट्कं प्रदृश्यते।
कृष्णात्रेयभरद्वाजौ दृश्यते न च कुत्रचित्॥"
(कुलरहस्य १-३६-३७)

यजुर्वेदी और दो प्रकारके सामवेदीय हैं*। प्राणकृष्णने जातुकर्ण और सावर्ण, इन गोत्रोंका उल्लेख नहीं किया है। फिर उनके मतसे कृष्णात्रेय और भरद्वाज ये दो गोत्र विलुप्त हुए हैं। किन्तु वर्त्तमान कालमें दाक्षिणात्य वैदिकोंमें घृतकौशिक, गौतम, कौशिक, काश्यप, काण्वायन, वात्स्य, भरद्वाज, कृष्णात्रेय और जातुकर्ण ये नौ गोत्र ही दिखाई देते हैं।

इस श्रेणीके बीच यजुर्वेदीकी संख्या ही अधिक है। सामवेदियोंकी संख्या अपेक्षाकृत कम है। ऋग्वेदियोंकी संख्या उससे भी कम है। अथर्ववेदीय यत्सामान्य हैं, और तो क्या, आज कल ये दिखाई भी नहीं देते।

इस श्रेणीमें आचार्य, भट्टाचार्य, चक्रवर्त्ती, मिश्र, भद्र, धर, कर, नन्दी, पति आदि उपाधियां दिखाई देती हैं। इनमें मर्यादाके अनुसार कुलीन, वंशज और मौलिक—ये तीन भेद हैं।

कुलप्रथा—आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, तीर्थदर्शन, निष्ठा, आवृत्ति, तपः और दान ये नौ कुलीनके लक्षण हैं। कन्याके जन्मते ही जो वाग्दान करते हैं अर्थात् जिनमें ऐसी वाग्दान-प्रथा प्रचलित है, वे कुलीन हैं। कुल कन्यागत है, इसलिये कन्याके आदान प्रदानसे ही कुलकी ह्रास-वृद्धि हुआ करती है। कुलीनोंमें जो कुलीनदौहित्रको कन्याका वाग्दान कर सके और जिनके लगातार सात पुरुष तक वंशज और मौलिक संस्रव नहीं हुआ, वे ही मुख्य और प्रधान कुलीन कहलाते हैं। वंशज आदि संस्रव होने पर भी प्रधान कुलीनोंके साथ जिनका कुटुम्ब संस्रव है, वे मध्यम कुलीन हैं। वाग्दत्ता कन्याके साथ जिसका विवाह होनेकी बात हो, उसके साथ विवाह न हो, किसी द्वितीय कुलीन पात्रको यह कन्या दी गई हो, तो उसको अन्यपूर्वा कहते हैं। इस तरह अन्यपूर्वाकी गर्भजात कन्यासे जो विवाह करते हैं, वही कुलीन-अधम कहलाते हैं। इस तरह आदान-प्रदानके गुण-दोषोंके कारण ढकाकृति, मृदङ्गाकृति और धतूरेकी आकृति—ये तीन भाव भी दिखाई देते हैं। सिवा इसके कुल-संबंधके अनुसार क्षम्य, उचित और आर्त्ति—ये तीन तरहके भेद भी सुने जाते हैं। अपने घरसे उत्तम घरमें कन्यादान करनेसे आर्त्ति, समान समान घरमें करनेसे उचित और अपने घरसे निकृष्ट घरमें कन्यादान करनेसे क्षम्य कहा जाता है। आर्त्ति-संबंध ही प्रशस्त है। आर्त्ति मिलने पर उचित संबंध करनेकी आवश्यकता नहीं। अकुलीन कभी कुलीन नहीं हो सकता। किन्तु कुलीन कुलधर्मविरोधी कार्य करनेसे अकुलीन हो सकता है। यदि कोई कुलीन अपने पुत्र या कन्याकी वाग्दान-संबंधप्रथा तोड़ कर विवाह करे या अन्यपूर्वासे विवाह कर ले, तो उसका कुलीनत्व नष्ट हो जाता है और वह बहुत निन्दित गिना जाता है। वाग्दत्ता-कन्याकी मृत्यु हो जाने पर वंशज कन्याका पाणिग्रहण करना उचित है। किन्तु मौलिक कन्या ग्रहण करना कर्त्तव्य नहीं। मौलिक कन्या ग्रहण करने पर कुल दुर्बल हो जायेगा। जिसके सात पुरुष तक अविरोध कुलक्रिया चल रही है और मौलिक संबंध नहीं, वही कुल पवित्र है। यदि सात पुरुष तक क्रमागत मौलिकक्रिया चले, तो शूद्रकन्या विवाहवत् कुल नष्ट होता है। अन्यपूर्वागर्भजाता, रुपयासे खरीदी गई कन्या, रजस्वला, रोगिणी और नीचकुलजाता—ये पांच तरहकी कन्या कुलाधम हैं। अन्यपूर्वा-कुलीन कन्या मौलिकको दान करनेसे कोई दोष नहीं होता। किन्तु ऐसी कुलीन कन्याके हाथसे अन्न ग्रहण नहीं कर सकते।

वंशज—जो कुलीनके द्वितीय पुत्रको कन्या देते हैं और मौलिक कन्या ग्रहण करते हैं, वे वंशज हैं। कुलरहस्यमें लिखा है,—"वंशज कुलीनोंके आश्रय स्वरूप हैं। सत्कुलीनको कन्यादान और श्रेष्ठमौलिकसे कन्या ग्रहण—इस तरह कन्यागत भाव रहना वंशजका लक्षण है। कुलीन वंशमें जन्म और कुलविप्लवके कारण वंशमात्रमें प्रतिष्ठित रहनेसे वंशज ख्याति होती

---

* "जातुकर्णश्च सावर्णः काश्यपो घृतकौशिकः।
वात्स्यः काण्वायनश्चैव कौशिको गौतमस्तथा॥
अष्टावेते दाक्षिणात्ये गोत्राः संपरिकीर्त्तिताः।
द्वौ यजुः सामवेदौ च तेषां ज्ञेयौ विशेषतः॥"
(पाश्चात्य वैदिक कुलपञ्जिका ६।२-६३)

है। वंशजोंकी नव गुणोंकी अपेक्षा नहीं है। उनको वाग्दानकी यन्त्रणा सहनी नहीं पड़ती। कुलीनको कन्या देनेसे ही उनके स्वर्गका द्वार खुल जाता है। वंशज कभी भी मौलिकको कन्यादान न करें। अन्य-पूर्वा-कन्या ग्रहण और मौलिकको कन्यादान—इन दो कामोंसे ही वंशजधर्म नष्ट होता है।

वंशज फिर दो प्रकारके हैं—प्रकृत और विकृत। कुलविधिस्थापन-कालमें जिनके पूर्वपुरुष वंशज हुए हैं, वे प्रकृत या आदिवंशज हैं और वाग्दान न करनेके कारण जो कुलसे च्युत हुए हैं, वे विकृत वंशज हैं। विष्णुधर, वत्सधर, शैवपति और शूलपाणि—ये चार आदमी पूर्वज अर्थात् पहले वंशज कहलाये। इन लोगोंके वंशधर ही आदिवंशज हैं। विष्णुधर वत्सधरके सन्तान घृतकौशिक और शैवपति और शूलपाणिके वंशधर वात्स्य कहलाये। राढ़ अञ्चलमें ही ये प्रसिद्ध हैं। विकृत वंशजके नाना गोत्र हैं और वे नाना स्थानोंमें वास करते हैं। इनके मध्य जो पुरुषानुक्रमसे कुलीनको कन्यादान करते हैं, वे ही श्रेष्ठभावापन्न हैं।

मौलिक—जो अन्यपूर्वा कन्या ग्रहण करते हैं, वे ही मौलिक हैं। मौलिकके सिवा कुलीनोंकी अन्य गति नहीं। मौलिकको ही अन्यपूर्वा-कन्या दान की जाती है। इसलिये सन्मौलिक ही कुलीनके निकट भी सम्मानित हैं। मूल या आदिसे ही ये अन्यपूर्वा ग्रहण करते आ रहे हैं। इसलिये इनका नाम मौलिक हुआ है। मौलिक अर्थ ले कर कभी विवाह सम्बन्ध न करें। जो धन लेंगे, या धन देंगे, वे दोनों ही पतित होंगे। कन्या दे कर कन्याग्रहण करनेको परिवर्त्त कहते हैं। दाक्षिणात्य-समाजमें यह भी कन्या विक्रयकी तरह निन्दित कर्म है; किन्तु अर्थ ले कर कन्या-विक्रयकी तरह पापजनक नहीं। किन्तु परिवर्त्त तथा शुल्कविक्रय दोनों ही गर्हित कार्य्य समझ कर छोड़ देना चाहिये। मौलिकमें भी आर्त्ति, उचित और क्षम्य भेदसे तीन तरहके दान हैं। कुलीनको कन्यादान करनेको आर्त्ति, वंशजको दान करनेको उचित और मौलिकको मौलिकके कन्यादान देने पर वह क्षम्य कहलाता है। आर्त्ति दानमें यश, उचितदानमें समुचित मान और क्षम्यदान अत्यन्त गर्हित दान है। सात पुरुष तक जिन्होंने आर्त्तिदान किया है, वे ही यथार्थमें मौलिक कहलाने योग्य हैं। मौलिक भी दो तरहके हैं—सन्मौलिक और असन्मौलिक। गङ्गाधर, रायवार, जटाधर भाण्डारी, कविमुकुन्द और गाढ़मिश्र, ये ही चार आदि मौलिक थे। इन चारोंके ही वंशधर सन्मौलिक कहलाते हैं। सिवा इनके दूसरे जो अन्यपूर्वा कन्या ग्रहण कर मौलिक हुए हैं, वे असन्मौलिक हैं।

समाज-स्थान,—पहले गङ्गा कालीघाटसे पूर्व दक्षिणाभिमुखी हो राजपुर, हरिनाभि, कोदालिया, चिंड़ीपोता, मालञ्च, माहिनगर, शासन, वारुईपुर, मयदा, वारासात, जयनगर, मजिलपुर, विष्णुपुर, आदि ग्रामोंमें होती हुई सागरमें मिली थीं—इसीसे गङ्गावासके उपलक्षमें इन सब ग्रामोंमें ही दाक्षिणात्य वैदिकोंने वास किया था। वर्त्तमान समयमें गङ्गाके इन सब स्थानोंसे अन्तर्हिता होने पर भी ये सब ग्राम आज भी दाक्षिणात्य वैदिकोंके समाज कहलाते हैं। इन सब स्थानोंके दाक्षिणात्य वैदिक वङ्गदेशके सब स्थानोंमें सम्मानित होते हैं और नो क्या, राढ़ी, वारेन्द्र, पाश्चात्य वैदिक प्रभृति ब्राह्मणोंसे यह दाक्षिणात्य वैदिक-श्रेष्ठगण ही आचार्य्य-वरण किये जाते थे। आज भी ढाका, विक्रमपुर आदि स्थानोंमें अनेक ब्राह्मणोंके घर भी यह वैदिक भिन्न वृषोत्सर्ग आदि वैदिक कर्म सम्पन्न नहीं होते।

ऊपर जिन समाजोंका उल्लेख किया गया, उन सब स्थानोंके वैदिकवंश ही श्रेष्ठ और सम्मानित हैं। उनके आत्मीय कुटुम्बगण नानास्थानोंमें फैल गये हैं।

चांड़िपोता और तन्निकटस्थ कोदालिया ग्राममें कई घर मध्यकुलीन घृतकौशिकका वास है, वे अपने समाजमें विशेष सम्मानित हैं। ये सुप्रसिद्ध सार्वभौम भट्टाचार्य्यके कनिष्ठ विद्याधर वाचस्पतिके सन्तान कह कर अपना परिचय दिया करते हैं। ये और भी कहते हैं, कि चैतन्य महाप्रभु आदिके तिरोधन होने पर क्षुब्धचित्त हो विद्याधर श्रीपुरीधाम परित्याग कर कलकत्तेके दक्षिणपूर्व वांशड़ाके निकटवर्त्ती नदीके किनारे सुजला सुफला ब्रह्मोत्तर भूमि पा कर वहां ही रह गये। कुलरहस्य-वर्णित दाक्षिणात्योंकी वृत्तिभूमि 'होमड़ा' वांशड़ासे अधिक दूर

नहीं है। विद्याधरवंशका विश्वास है, कि वांशड़ाके पार्श्वसे जो प्रकाण्ड नदी प्रवाहित हो सागरमें मिली है, वह नदी उक्त विद्याधर विद्यावाचस्पतिके नामानुसार आज भी "विद्याधरी" नामसे विख्यात है। विद्याधरके परवर्त्ती वंशधर उक्त स्थानका परित्याग कर कोदालिया और इसके निकटके चांड़िपोता ग्राममें आ कर वास करते हैं।

सुप्रसिद्ध सोमप्रकाशके सम्पादक द्वारकानाथ विद्याभूषणने भी उक्त विद्याधरवंशमें जन्म लिया था। वे नैयायिक हरचन्द्रन्यायरत्नके पुत्र हैं। इन आसाधारण गुणावली नानाशास्त्रोंमें सुपण्डित "विश्वेश्वरविलास", "ग्रास" और "रोमका इतिहास" आदि बहुत ग्रन्थोंके प्रणेता विद्याभूषण महाशयका सम्यक् परिचय देना यहां असम्भव है। उनको बङ्गीय संवाद पत्रोंके आदर्श सम्पादक कहनेमें अत्युक्ति नहीं होती।

दाक्षिणात्य वैदिकोंके वर्त्तमान वासस्थान।

२४ परगना और नदिया जिलेमें है—१ राजपुर, २ २ हरिनाभि, ३ मालञ्च, ४-५ मल्लिकपुर, ६ गोविन्दपुर, ७ लाङ्गलवेड़, ८ श्रीरामपुर, ६ वारद्रोण, १० वोलसिद्धि, ११ वारकुञ्जो, १२ वुड़ुन, १३ पाकुड़तला, १४ पाइकान १५ हांसुड़ा, १६ सेओड़दह, १७ मुल्लाका चक, १८ नितरा, १६ खनातपुर, २० रङ्गीलावाद, २१ विष्णुपुर, २२ घाटेश्वरा, २३ वनमालीपुर, २४ जयनगर, २५ मजिलपुर, २६ दुर्गापुर, २७ वड़ु, २८ वारासत, २६ गोकर्ण, ३० वेलेचण्डी, ३१ तसरखला, ३२ वारुईपुर, ३३ धवधवि, ३४ रामनगर, ३५ मयदा, ३६ कोदालिया, ३७ चिंड़िपोता, ३८ गाजीपुर, ३६ सोनारपुर, ४० वोड़ाल, ४१ जगद्दल, ४२ सापुर, ४३ खिदिरपुर, ४४ कालीघाट।

श्रीहट्ट वैदिक-समाज।

वैदिक पुरावृत्त और "वैदिक संवादिनी" नामक कुलग्रन्थसे विदित होता है, कि त्रिपुराके राजासन पर आदि धर्मपा नामक एक नृपति अधिष्ठित थे। उनके राजप्रासादके ऊपर एक अशुभ पक्षी बैठा था, यह अमङ्गल समझ कर उसकी शान्तिके लिये उन्होंने अपने मंत्रियोंके साथ परामर्श किया। उस समय श्रीहट्टमें वैदिक ब्राह्मण नहीं थे। वैदिक ब्राह्मण ही अमङ्गल दूर करनेमें समर्थ हैं, यह समझ कर मन्त्रियोंने राजाको उपदेश दिया, कि मिथिलासे १४ गुणोपेत क्रियावान् वेदविद् पञ्चगोत्रीय पांच ब्राह्मण मंगा कर उनके द्वारा शाकुनिक और अग्निष्टोम यज्ञ करानेसे आपका यह अमङ्गल सर्वाङ्गीन दूर होगा। मन्त्रियों द्वारा ऐसा परामर्श पा कर राजाने मिथिलापतिसे पांच वैदिक कर्मतत्पर ब्राह्मण भेज देनेके लिये प्रार्थना-पत्र भेजा।

मिथिला देशमें उस समय बलभद्र नामके राजा राज्य कर रहे थे। उन्होंने त्रिपुराके प्रार्थना-पत्र पा कर हर्षान्वित हो वात्स्यगोत्रीय श्रीनन्द, वात्स्यगोत्रीय आनन्द, भरद्वाजगोत्रीय गोविन्द, कृष्णात्रेयगोत्रीय श्रीपति और पराशर गोत्रीय पुरुषोत्तम—इन पांच वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बङ्गालके त्रिपुरामें जानेको आदेश दिया। सदाचारवहिर्भूत देश बङ्गाल जानेसे पहले ब्राह्मणोंने हिला हवाला किया; किंतु पीछे लोकतः और शास्त्रतः अनुसन्धान कर जब उन्होंने यह जान लिया, कि वह देश नीलपर्वतके सिद्धक्षेत्र कामरूप सीमांतवर्त्ती है और वहांके राजा चंद्रवंश-सम्भूत हैं और विविध गुणशाली हैं, तब वे वहां जाने पर राजी हुए। इसके बाद किसी शुभ दिन और शुभ नक्षत्रमें यात्रा कर त्रिपुरामें वे पहुंच गये। वहां पहुंच उन्होंने यथासमय और यथारीति यज्ञ-सम्पन्न किया। श्रीहट्टके अन्तर्गत भानुगाछ परगनेके अधीन मङ्गलपुर ग्राममें उस प्राचीनतम यज्ञकुण्डका चिह्न आज भी दिखाई देता है।

यज्ञसम्पन्न होनेके बाद ब्राह्मणके यात्रा करनेकी तैयारी करने पर राजाने हाथ जोड़ कर कहा,—आप लोग स्थायीरूपसे यहां बस जायें तो मैं नितान्त कृतार्थ हूंगा। राजाकी प्रार्थना पर ब्राह्मण अत्यन्त संतुष्ट हो वहां बस जाने पर सम्मत हो गये। उस समय राजाने अत्यन्त आनन्दित हो कर अपने राज्यमें त्रिपुराब्द ५१में (६४१ ई०) उनको अपने राज्यमें ब्रह्मोत्तर दान किया। इस प्रदत्त भूमिखण्डकी पश्चिमी और उत्तरी सीमा पर कौशिरा नदी, दक्षिणमें हाङ्गाला और पूर्वमें फौकिकापुरी है। टेङ्गरी कुकी जातिके कर्षितस्थान होनेसे इसका नाम टेङ्गरी या टङ्गरी था।

उक्त श्रीनन्दादि पांच ब्राह्मण एक वर्ष तक वहां

वास कर स्वदेशमें लौट आये और वहांसे स्त्री-पुत्र आदि और आत्मीय-कुटुम्बके साथ फिर श्रीहट्ट अपने अपने अधिकृत स्थानको चले आये। जब वे अपनी अपनी भार्याको ले आये, तब पहले टङ्कुरी पर्वत पर वास करते रहे। टङ्कुरी पर्वतस्थ अपने अपने अधिकृत स्थान पांच भागोंमें विभक्त होनेसे "पञ्चखण्ड" नामसे विख्यात हुआ। शास्त्रीय क्रियाकाण्डमें तथा आदान-प्रदानमें सुविधा होनेके लिये उन्होंने अपने देशके कात्यायन, काश्यप, मौद्गल्य, स्वर्णकौशिक और गौतम इन पञ्चगोत्रीय ब्राह्मणोंको भी बुलाया। उन सभी ब्राह्मणोंका क्रिया-कलाप मैथिल-कुलाचार और प्राचीन प्रथाके अनुसार होता था और आज भी हो रहा है। वङ्गके अन्यान्य स्थानोंकी तरह श्रीहट्टमें रघुनन्दनकी स्मृतयुक्त व्यवस्था वैसी प्रचलित नहीं है। क्योंकि, यहां मैथिल विप्रोंका ही प्राधान्य है।

वैदिका (सं० स्त्री०) भूमिजम्बूवृक्ष, वनजामुन।

वैदिश (सं० पु०) १ विदिशाका अधिवासी। २ विदिशाका निकटवर्त्ती नगर। इसका वर्त्तमान नाम वेशनगर है।

वैदिश्य (सं० त्रि०) विदिशाके समीप होनेवाला।
(सिद्धान्तकौ०)

वैदु (वैद्य)—वम्बई प्रेसिडेन्सीकी एक श्रेणीके वैद्य। हातुड़िया वैद्यकी तरह या वेदे जातिके समान चिकित्सा करना ही इनका व्यवसाय है। ये पथ, घाट और एक ग्राम-से दूसरे ग्राममें जा कर भेषज और नानाविध औषधादि वेच कर ही अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। यथार्थमें इनको भ्रमणशील तेलगू भिक्षुक कहनेमें भी कोई हर्ज नहीं। अहमदनगरवासी वैदुओंमें भोई वैदु, घाड्गड़ वैदु, कोली वैदु और माली वैदु नामके चार दल हैं। ये अपनी अपनी श्रेणीमें प्रधान हैं। एक श्रेणीके लोग अन्य श्रेणीकी कन्या नहीं लेते। अथवा एकत्र आहार विहार नहीं करते। इनमें वंशगत कोई उपाधि नहीं है। एक ही वंशमें निकट सम्बन्ध और स्मर्य कुटुम्बिता परित्याग कर ये परस्परमें आदान-प्रदान करते हैं। ऊपर कथित कई दलोंमें आकृतिगत, आहार्य-सम्बन्धी, स्वभावगत, आचारगत और जातीय व्यवसायगत विशेष कोई पार्थक्य नहीं।

पूनेके वैदुओंमें झोलीवाले, चटैवाले, दाढ़ीवाले, नामसे तीन दल हैं। झोलीवालोंमें आकशा, अम्बिले, चिटकल, कोड़घण्टी, मानपाति, मेटकल, परकाँचा और सिन्धाड़े नामसे कई वंशगत उपाधियाँ दिखाई देती हैं। इनमें एक तरहकी उपाधिवाले लोगोंमें विवाहादि नहीं होता।

ये घरमें तेलगू और बाहर अर्द्ध-मराठी भाषा बोलते हैं उत्तर-अर्काट जिलेके तिरुपतिके वेङ्कट-रमण और पूनेके चतुश्शृङ्गी देवताकी ये विशेष भक्ति करते हैं। सिवा इनके घरमें स्वतन्त्र कुलदेवता भी हैं। प्रति वर्ष आश्विन महीनेमें दशहराके उत्सवके समय ये भेड़का मांस रन्धन कर कुल-देवताको भोग लगाते हैं और इसके बाद वहां प्रसाद-रूपसे भक्षण करते हैं। सिवा इसके इनके यहाँ और कोई पर्व या उपवास व्रत आदि नहीं हैं। निषिद्ध मांस (गो-शूकर)के सिवा ये अन्य सभी पशुपक्षियोंके मांस खाते हैं। मांसके अभावमें शाक सब्जीकी तरकारी, अन्न और जौ (यव) की रोटी इनका प्रधान खाद्य है। ये स्त्री-पुरुष सभी गांजा, मद्य और तम्बाकू पीते हैं। किन्तु, भाँग और अफीम नहीं खाते।

ये साधारणतः शिरमें चोटी और दाढ़ी रखते हैं। यदि इनमें कोई दाढ़ी कटवा दे या छँटवा दे, तो वह जातिच्युत किया जाता है। पुरुष शिर पर पगड़ी, देहमें कुरता और पैरमें जूता या खड़ाऊं पहनते हैं। रमणियाँ घाँघरा और काँचली धारण करती हैं। गहनेमें ये हाथ-में काँचकी चूड़ी और गलेमें प्रवालकी माला पहनती हैं।

ये काले, लम्बे और बलिष्ठ होते हैं। ये दूसरा कोई काम नहीं करते। केवल वनमें जाते और वनस्पतियां चुन चुन कर ले आते और औषध बना कर घर घर और ग्राम ग्राममें जा कर बेचते हैं। हमारे देशमें जैसे वैद्य—कानका वैद्य, घावका वैद्य, सब बीमारी दूर करनेका वैद्य, तुम्बी लगानेका वैद्य कह कर घूमते फिरते हैं, उसी तरह ये भी वहां घूमते फिरते तथा औषध बेचा करते हैं या यों कहिये, कि ये वैद्य वम्बई आदिमें ही नहीं, युक्त-प्रदेश विहार आदिके गाँवों और शहरोंमें घूमते फिरते हैं। आवश्यक होने पर ये जोंक लगा कर फोड़े आदि आराम करते हैं। ये तुम्बी लगा कर विकृत खूनको

मुंहसे खींच लेते हैं। कभी-कभी मन्त्रसे उपस्थित जनताको संमोहित कर अपना काम बना लेते हैं। औषधी विक्रयके समय ये विशेष कौशलके साथ लोगोंको ठगते हैं। इनका स्वभाव मलिन है। पुरुष कभी औषधी वेचते, कभी वनमें शिकार खेलते फिरते हैं। रमणी और बालक इस समय राह-राह भीख मांगते फिरते हैं। पैसा अधिक मिलनेसे स्त्रीपुरुष मद्यपान और गीतवाद्यमें लिप्त होते हैं।

इनमें बाल-विवाह, बहु-विवाह और विधवा-विवाह प्रचलित है। प्रसवके बाद रमणीको कच्चे जौका आटा चूर्ण कर गुड़के साथ खानेको दिया जाता है। जातबालकको १२ या १३ दिनके बाद सब कोई गोदमें लेने लग जाते हैं और उसका नामकरण होता है। पुत्र-सन्तान होनेसे उस दिन नाई आ कर मस्तक मुण्डन कर स्नान करा देता है।

साधारणतः बालक २५ वर्ष और बालिका युवती होने पर इनका विवाह होता है। साधारणतः पुत्र-कन्याका शैशवकालमें ही सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

विवाहके समय कन्याका पिता यदि वरके पितासे कन्या-पण वसूल करे; तो वह समाजसे बहिष्कृत होगा। इनके विवाहमें मन्त्र तथा देवपूजाका व्यवहार नहीं होता; केवल विवाहके दिन वर और कन्या-पक्षके लोग अपने अपने गांवके मारुति मन्दिरमें आ कर उस मूर्त्तिमें तेल और सिन्दूर मालिश करते हैं और एक नारियलके जलसे देवताके दोनों पैर धोते हैं। इसके बाद वर बाँसुरी बाजाके साथ बारात ले कर कन्याके घर जाता है। तदनन्तर वर और कन्या दोनों एक चटाई पर बैठाये जाते हैं। इसके उपरान्त नाई आ कर पहले मोचनेसे वरके शिरके कई बाल उखाड़ पीछे शिखाको छोड़ कर मुण्डन करता है और दाढ़ी भी चिकना करता है। फिर वर-कन्याको उष्ण जलसे स्नान कराया जाता है। इसके बाद ब्राह्मण या कोई घरका विवाहित पुरुष दोनोंका गठबन्धन करते हैं। फिर वरके गलेमें पुष्पमाला और स्त्रीके गलेमें पवित्र सूत्र मालाके रूपमें पहना दिया जाता है।

ये शवदेहको जमीनमें गाड़ते हैं। इस समय दो व्यक्ति एक बांसके डण्डेमें लगे हुए झूलेमें शवदेहको बैठा कर समाधिक्षेत्रमें लाते और कब्रमें डाल कर ऊपर-नमक और मिट्टी डाल उस गड्ढेको भर देते हैं। इसके बाद मृतकके उद्देशसे भातका पिण्ड बना कर कब्र पर रख कर चले आते हैं। कोई कोई मृतकके लिये अशौच मानते हैं। कोई मृतकके लिये अशौच मानते ही नहीं। इनके यहां प्रेतोद्देशसे कोई श्राद्ध नहीं होता। बारहवें दिन ये स्वजातिके लोगोंको भात खिला देते हैं। वैदुओंमें जो दांत मांगते या सिलाई करते हैं, वे शीघ्र ही जातिसे च्युत किये जाते हैं। इनमें जातीयता कूट कूट कर भरी है। प्रति वर्ष फाल्गुनमासमें सेष गांवके माधि नगरमें जो इनकी सामाजिक बैठक होती है, उनमें पातिल (मोड़ल) आ उपस्थित होते हैं। निजाम राज्यमें इनका वास है, ये ही पातिल सामाजिक विवादोंको मिटाया करते हैं।

वैदुरिक (सं० त्रि०) विदुर द्वारा कृत। (भागवत० ११२०)

वैदुल (सं० क्ली०) वेतसमूल, वेंतकी जड़।

वैदुष (सं० पु०) विद्वस् (प्रज्ञादिभ्यश्च। पा ५।४।३८) इति स्वार्थे अण्। विद्वान्, पण्डित।

वैदुष्य (सं० क्ली०) विदुषः कर्म भावो वा विद्वस् ष्यञ्। विद्वत्ता, पाण्डित्य।

वैदूर—मन्द्राज-प्रदेशके दक्षिण-कनाड़ा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १३° ५२' १५" उ० तथा देशा० ७४° ३७' ३०" पू०के बीच पड़ता है।

वैदूरपति (सं० पु०) वैदूर जनपदके अधिपति।

वैदूर्य (सं० क्ली०) विदूरात् प्रभवतीति विदूर (विदूरात् ञ्यः। पा ४।३।८४) इति ञ्य। मणिविशेष। यह मणि कृष्ण-पीतवर्ण है और इसके अधिष्ठात्री देवता केतु हैं। केतु ग्रह विरुद्ध रहनेसे इस मणिके धारण करनेसे केतुका दोष शान्त हो जाता है। पर्याय—बालवायज, केतुरत्न, कैतवप्रावृष्य, अभ्ररोह, खराङ्कुर, विदूररत्न, विदूरज। गुण—अम्ल, उष्ण, कफ और वायुनाशक, गुल्म और शूलप्रशमक। इसके धारण करनेसे भी शुभ फल होता है।

वैदूर्य रत्न महारत्नोंमें गिना जाता है। किसी किसी-के मतसे यह रत्न विदूर पर्वत पर उत्पन्न होता है इसीसे इसका नाम वैदूर्य हुआ है। 'विदूरे भव' वैदूर्य' इस व्युत्पत्तिके अनुसार भी विदूरजात मणि ही वैदूर्य नामसे ख्यात है।

शुक्रनीतिमें दिखाई देता है, कि "वैदूर्यं केतुप्रीति कृतं" "वैदूर्यं मध्यमं स्मृतं" यह रत्न केतुग्रहका प्रीतिकारी है और हीरक रत्नापेक्षा मध्यम रत्न कहा जाता है। राजवल्लभमें लिखा है,—मुक्ता, विद्रुम और वैदूर्य आदि रत्न सारक गुणविशिष्ट, शीतल, कषाय रस, स्वादु पाकी, उल्लेखनकर, चक्षुहित कारी है; इस रत्नके धारण करनेसे पाप और दरिद्रता दूर होती है। उर्दूमें इस रत्नको लहसुनिया रत्न या लश-नीय कहते हैं।

राजनिर्घण्टके मतसे यह रत्न साधारणतः कृष्ण-पीतवर्ण है, किन्तु शुक्रनीतिके मतसे यह रत्न नीलरक्त-वर्ण है।

इस रत्नका रङ्ग चाहे जो भी हो, किन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं, कि इसकी छाया या कान्तिगत विशेष वैलक्षण्य है। राजनिर्घण्टमें लिखा है—

वैदूर्य तीन तरहके होते हैं—पहला वेणुपलाश अर्थात् बाँसकी पत्तीकी तरहका, मयूरकण्ठकी तरहका दूसरा, तीसरा मार्जार आंखकी तरहका है। इनमें जो बड़ा, स्वच्छ, स्निग्ध और वजनमें भारी हो, वह उत्तम है।

जो त्रिच्छाय अर्थात् विवर्ण और जिसके भीतर मिट्टी या शिलाका दाग दिखाई देता है, जो वजनमें हलका, रूखा, क्षतयुक्त, त्रासचिह्नसे चिह्नित, कर्कश और कृष्णाभ है, वह वैदूर्य निन्दित है, इसको दूर फेंकना चाहिये। इस तरहका निन्दित वैदूर्य धारण करनेसे अशुभ फल होता है।

इसकी परीक्षा—कसौटी पर वैदूर्य घिसनेसे जिस-की छाया और स्वच्छता परिस्फुट होती है, वही वैदूर्य उत्तम है।

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि दैत्योंके महाप्रलय-क्षुभित समुद्रगर्जनकी तरह अथवा वज्रनिर्घोष शब्दसे अनेक रङ्गके वैदूर्योंकी उत्पत्ति हुई थी, वे सब वैदूर्य शोभायुक्त, मनोहर आभा और वर्णविशिष्ट थे। विदूर नामक पर्वत-के उच्च प्रदेशके निकट अर्थात् प्रान्तदेशमें कामभूति नामक स्थानमें इस रत्नका आकर है। दैत्यध्वनिसमुत्थ होनेसे उसका आकार सुन्दर और महागुणविशिष्ट हुआ था। उस महागुण आकारसे उद्भूत या उत्पन्न होनेके कारण यह त्रैलोक्यका भूषण हुआ है। उस दानव राजके गर्जनके अनुरूप वर्षाकालके मेघराजकी तरह विचित्र मनोहर वर्णविशिष्ट और नाना प्रकार भास अर्थात् दीप्तियुक्त वैदूर्य मणि उन आकरोंसे अग्नि-स्फुलिङ्गोंकी तरह आविर्भूत हुई।

वैदूर्य कई तरहके होने पर भी मयूरकण्ठके रङ्गकी तरहका और बांसके पत्तेके रङ्गका वैदूर्य प्रधान या उत्कृष्ट है। जिसका वर्ण या चाणीकण्ठ पक्षीके पक्षाग्र भागकी तरह है, उस वैदूर्य मणिके धारण करनेवालेको और उसके मालिकको वह सौभाग्यशाली बनाता है। फिर कोई वैदूर्य दोषपूर्ण हो, तो वह दोष ही बुलाता है। इसलिये इसकी विशेषरूपसे परीक्षा करनेकी आवश्यकता है।

गिरिकाँच, शिशुपाल, कांच और स्फटिक आदि कितनी ही मणि वैदूर्य मणिकी तरह जमीनमें विद्यमान हैं। इन सब मणियोंका आकार वैदूर्यकी तरह होने पर भी परीक्षामें वैसी नहीं हैं। अतएव ये सब मणि वैदूर्यसे इतर जातिकी हैं।

लिख्यभाव अर्थात् प्रमाणकी क्षुद्रता हेतु काँच, वजनमें हलका होनेकी वजह शिशुपाल, दीप्तिहीनता प्रयुक्त गिरिकाँच, रङ्गकी उज्ज्वलता रहनेसे स्फटिक, विजातीय वैदूर्य कई तरहके होते हैं। अन्यान्य मणिकी तरह वैदूर्य मणि भी विजातीय हैं। समस्त विजातीय मणि ही सजातीय मणिकी समान वर्णयुक्त होती है। नाना तरह-के प्रमाणों द्वारा उनका प्रभेद स्थिर करना होता है। स्नेह प्रभेद अर्थात् लावण्यकी त्रुटि, लघुता (वजनमें हलका) मृदुत्व (अकठिनता) ये सब प्रधान चिह्न हैं।

सुनार, घन, अत्यच्छ, कलिल और व्यङ्ग ये पांच वैदूर्य महागुणसम्पन्न होते हैं। उनमें बिल्लीके नेत्रकी तरह या लहसुनके रङ्गका कलिल, निर्मल और व्यङ्गगुण-

विशिष्ट जो वैदूर्य है, उसे देवगण भूषणरूपसे व्यवहार करते हैं।

यह मणि यदि दीप्ति हो अर्थात् उससे तेजः निकलता हो, तो वह सुनार कहलाती है। आकारमें देखने पर छोटी किन्तु वजनमें भारी ऐसी मणिको घन कहते हैं। जो मणि कलङ्क आदि दोषसे शून्य है, वह अत्यच्छ है। जिसमें चन्द्रकलाको तरः एक तरहका चञ्चलवत् पदार्थ दिखाई देता है, वह कलिल कहलाती है। यह राजाओंको भी सम्पत्तिदायक है। जो अवयव-विशिष्ट अर्थात् विशेषरूपसे असंहत है, वह व्यङ्ग है।

इस मणिके जैसे पांच गुण हैं, वैसे ही इनके पांच महा दोष भी हैं। दोष, जैसे—कर्कर, कर्कश, त्रास, कलङ्क और देह। जो देखनेमें शर्करायुक्त अर्थात् कंकरयुक्त दिखाई दे, वह कर्करदोष है। इसके धारण करने पर बन्धुनाश होता है। जिसके देखते ही टूटनेकी भ्रान्ति उत्पन्न होती है, वह त्रास नामक दोषयुक्त है। इसके धारण करनेसे वंशनाश होता है। जिसकी गोदमें विजातीय घन दिखाई दे, उस दोषका नाम कलङ्क है। इसका धारण करनेवाला नाशको प्राप्त होता है। जिसमें देखनेसे मालूम हो, कि मललिप्त है, वह भी सदोष है। इस दोषको देहदोष कहते हैं। इस देहदोषदुष्ट वैदूर्य-को धारण करनेसे शरीर क्षयरोगयुक्त होता है।

(युक्तिकल्पतरु)

इस तरह वैदूर्यके गुणदोषका विचार कर धारण करना चाहिये। वैद्यकग्रन्थमें औषध प्रस्तुतके स्थानमें जहां वैदूर्य मणिका उल्लेख है, वहां उसे शुद्ध कर लेना चाहिये। शोधनप्रणाली हीरेकी तरह है। अर्थात् जिस तरह हीरा शुद्ध किया जाता है, उसी तरह वैदूर्य भी शुद्ध किया जाता है।

वैदूर्य कर्कोतन मणिका प्रकारभेद है। प्रकृत वैदूर्य सदा नहीं मिलता। इस जातिके जितने पत्थर हम देखते हैं, वह उतना पक्का दाना या कठिन नहीं है। साधारणतः हरिद्रा (जर्द), कटा, सब्ज और कभी काले रङ्गका वैदूर्य मिलता है। मयूरकण्ठकी तरह रङ्गविशिष्ट नीलाभकृष्णकाय प्रस्तर सर्वापेक्षा उत्कृष्ट है। प्रस्तर चाहे जिस-जिस वर्णके क्यों न हों, उनके बीचमें बिल्लीकी आंखकी पुतलीके समान-उज्ज्वल श्वेत वर्ण एक रेखा या आलोकज्योतिः है। इस रेखाकी दीप्ति कभी इन्द्रधनु-की तरह विभिन्न वर्ण धारण करती है, कभी वह कुछ उज्ज्वल आलोक विकिरण करती है। पत्थरके दानेका गठनवैचित्र और निर्मलता ही इसका एकमात्र कारण है।

आलोकविहीन स्थानमें वैदूर्य पर दृष्टिनिक्षेप करनेसे एक सादा दागके सिवा पत्थरका कोई दूसरा विशेषत्व दिखाई नहीं देता। गैसका आलोक अथवा प्रदीप्तसूर्या-लोक इस पर पड़नेसे इस रेखाको आभ्यन्तरिक दीप्ति उद्भासित हो उठती है। पत्थरको जितना ही इस ओर उस ओर झुकाया जाता है, उतनी ही आलोक रेखा दौड़ती है। किन्तु आलोकको ओर रखनेसे इसका आलोक सङ्कुचित हो कर बिल्लीकी आँखकी पुतलीकी तरह दिखाई देता है।

भारतवासी ऐसे वैदूर्यको बहुत पसन्द करते हैं जो ओलिभ फलके रङ्गकी तरह काला हो और जिसके दोनों कोनोंसे दीप्ति उज्ज्वल और आलोक रेखा दूनी दिखाई दे। पाश्चात्य देशवासी सेवकी तरह सब्ज या गाढ़े ओलिभकी तरह रङ्गदार वैदूर्य ही उत्तम सम-झते हैं।

वैदूर्यके दृढ़त्वका परिमाण ८'५; नीलां, चुन्नी आदिके द्वारा उस पर आँचड़ दिया जाता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ३'८ है; नलसे अग्न्युत्ताप प्रदान करनेसे यह गल जाता है। किन्तु अम्ल आदि उसके शरीरमें किसी तरहकी विकृति सम्पादन कर नहीं सकते। रासायनिक परोक्षा द्वारा जाना जाता है, कि उसमें ८० भाग एलुमीना और २० भाग ग्लूसिना है। इसका वर्णांश प्रोटक्साइड आयरन है।

स्फटिककी तरह वैदूर्यके भी दाना होता है। यह त्रिपहल और चौपहल होता है। प्रस्तरकी प्रकृतिके अनुसार अर्थात् स्वच्छता और अस्वच्छताके कारण आलोककी दीप्तिका तारतम्य भी है। आलोकपात भी दोनों ओर प्रतिफलित होता है। घर्षण द्वारा यह वैद्युतिक शक्ति आकर्षण करती है और अधिक क्षण स्थायी होता है।

उत्तर अमेरिका, मोराभिया, यूराल पर्वत, भारत और सिंहलमें नीले पत्थरोंके साथ वैदूर्य दिखाई देता है। वर्त्तमानमें सिंहलद्वीपमें सुन्दर रूपसे वैदूर्य काटा जाता है। वे कभी एक, कभी दो पृष्ठ न्युब्जाकार बनाते हैं, पाश्चात्य जौहरियोंकी भाषामें उस प्रथाको en cabochon कहते हैं।

शिरके पीन तथा अंगूठीके लिये इसका प्रधान व्यवहार होता है। हीरेकी तरह इस पर कभी खुदाई नहीं होती। प्रस्तरका आकार और औज्ज्वल्यके न्यूनाधिकके अनुसार उसके मूल्यमें कमी बेशी होती है। वर्णविभेदमें इसके दाममें उतनी कमी बेशी नहीं होती। क्योंकि, लोग अपनी पसन्दके अनुसार वैदूर्य खरीदते हैं। किन्तु जिस पत्थरकी आलोक रेखा एक कोनके बीचसे दूसरे कोने तक प्रतिफलित होती है और निर्दिष्ट सीमाद्वयके नीचेमें भासमान होती है और जिसके औज्ज्वल्यके बीच कोई दाग या काला चिह्न प्रतिबिम्बित नहीं होता, ऐसे ही प्रस्तरोंका मूल्य अधिक है। साधारणतः १००) से १०००) मूल्यका वैदूर्य अंगूठीमें लोग व्यवहार करते हैं। सुना गया है, कि किसी-किसी राजाके घर लाखों रुपये मूल्यके वैदूर्य हैं। प्रायः अर्द्ध इञ्च व्यासयुक्त अर्द्धवृत्ताकार वैदूर्य मिला है। मणिके इतिहासमें ये होप (Hope) नामसे प्रसिद्ध हैं। सन् १८१५ ई०में यह मणि सिंहलद्वीपके राजासे प्राप्त हुई है। काण्डी राजधानीके अधीश्वर इस मणिको विशेष सावधानीसे रखते आ रहे हैं। कई शताब्दीके इतिहासमें इस मणिकी प्रसिद्धिका जिक्र है। रिबिरो (Bibiero)-के रचित सिंहलके इतिहासमें इस मणिका उल्लेख है। यह १६वीं शताब्दीमें राजा उराके अधिकारमें थी। उन्होंने विशेष यत्नके साथ इस मणिको स्वर्णके ऊपर पद्मराग मणिमण्डित करा कर सुसज्जित कर लिया था। यह "en cabochon" प्रथासे काटी गई है। पण्डित लक्ष्मीनारायणके पास और एक वृहत् वैदूर्य था। प्रवाद है, कि एक समय १००००) रुपये मूल्य पर भी उक्त पण्डित महाशय देना नहीं चाहते थे। अन्तमें इन्होंने इस पत्थरको ६०००) रुपये पर मैमनसिंहके एक जमीन्दारके हाथ बेच दिया। मुर्शिदाबादके प्रसिद्ध महाजन बाबू धानसिंहवैद्यके पास एक काला वैदूर्य था। राय बद्रीदास मुकीमके घर नाना रत्नोंके वैदूर्योंके गठित एक कण्ठा है। मृत महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर बहादुरके एक पानदान पर एक कबूतरके अण्डेके समान एक वैदूर्य अङ्कित या जड़ित है। इसका वर्ण कुछ पिङ्गलवर्ण है और ज्योतिरेखा अत्यन्त स्पष्ट है।

इस मणिकी आलोकरेखा एक कोनसे दूसरे कोनमें चली जाती है। इससे बहुतेरोंका यह ख्याल है, कि अपदेवताके अधिष्ठानके कारण इस मणिके भीतर आलोक प्रभाव होता है। प्राचीन आसीरीय इस मणिको देवता बेलास (Belus)-के प्रिय कहते थे। इसीलिये ये Oculus Beli नामसे परिचित हैं। कोई कोई तो wolf's eye कहते हैं। कोई कोई जाति इसको पवित्र और भौतिक प्रभावनाशक समझती हैं।

प्रकृत वैदूर्यकी तरह एक तरहका नकली वैदूर्य भी बाजारमें दिखाई देता है। इसको स्फटिक वैदूर्य या Quartz Cats' eye कहते हैं। यह उज्ज्वलता और कठिनतामें पूर्वोक्त मणिकी अपेक्षा बहुत न्यून है। यह साधारणतः पिङ्गलवर्णका होता है। यह काठिन्यमें ६ से ६.५ है। आपेक्षिक गुरुत्व २.६५। इससे काँचके पात्रमें छिद्र किया जा सकता है। फ्लुरिक एसिडसे यह द्रव किया जाता है और सोडेके योगसे अग्निमें सहज ही गल जाता है। इसमें ६४ भाग सिलिकाम, ५१ अंश आक्सिजन और सामान्य परिमाणसे चूना तथा आयरन अक्सिड है।

अरबी इस मणिको लुआ कहते हैं। अरबी विवरणोंसे मालूम होता है, कि यमन देशमें अकिक खानमें हाउस, अम्बायत और गुजरातमें किसी समय अधिकतासे वैदूर्य उत्पन्न होता था। वे साधारणतः सादा, लाल, जर्द और काले होते थे। अरबी जौहरी अकीककी तरह पहले वैदूर्य काट कर गर्म जलमें डालते थे। इससे मणिकी उज्ज्वलता कई अंशमें बढ़ जाती थी। बाबागुरी नामक पत्थरोंका रङ्ग बाहरमें एक तरहका और भीतरका रङ्ग दूसरी तरहका होता है। सुलेमानी पत्थर साधारणतः लाल और काला दिखाई देता है। आय-

नेलहार (हिङ्गुलोह सानिया) पत्थर सब्ज और हरिद्रा रङ्गका होता है। अतिशय स्वच्छ आलोक प्रतिफलिका शक्तिविशिष्ट है।

इसके धारण करनेसे स्वभावतः हो मनमें हर्ष उत्पन्न होता है। शरीर पीला पड़ जाये, तो इस मणिके धारण करनेसे उपकार होता है। गुर्विणी प्रसव वेदनासे बहुकाल तक कष्ट भोगती हो, तो उसके शिरके केशमें इसकी अंगूठी बांध देनेसे तुरन्त प्रसव वेदनासे मुक्त हो सन्तान प्रसव करती है। यदि बालकोंको खांसी हो, तो उसके गलेमें बांध देनेसे तुरन्त कफ काट कर फेंक देता और रोग आराम होता है। यह भूतभयनाशक और भौतिक प्रभाव अपनोदक है। इसकी भस्म क्षत निवारक है। दन्तमञ्जनमें काम लानेसे दांतकी जड़को मजबूत करती और आँखमें सुरमेकी तरह लगानेसे जलका गिरना बन्द होता है। इसके धारण करनेसे अशुभ स्वप्नका अशुभ फल भी नहीं होने पाता।

वैदेशिक (सं० त्रि०) १ विदेश सम्बन्धी, विदेशका। २ विदेशसे आया हुआ।

वैदेश्य (सं० त्रि०) वैदेशिक देखो।

वैदेश्यसार्थ (सं० पु०) विदेशी माल।

वैदेश्वर—उड़ोसा-विभागस्थ गवर्नमेण्टकी बङ्कि जमींदारोके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २०° २१′ १५″ उ० तथा देशा० ८५° २५′ ३०″ पू० महानदीके तट पर अवस्थित है। यहाँ नमक, मसाले, नारियल और पीतलके बरतनका विस्तृत कारबार है। सभी पदार्थ सम्बलपुरसे यहां लाये जाते हैं। रूई, गेहूं, चावल, तेलहन बीज, लोहा, तसरका कपड़ा आदि यहां बहुतायतसे उत्पन्न होता है। सम्बलपुरके व्यवसायी अपना द्रव्य बदल तथा खरीद कर उक्त द्रव्य ले जाते हैं।

वैदेह (सं० पु०) विदेहस्यापत्यमिति विदेह-अञ्। १ राजा निमिके पुत्रका नाम। इनका उत्पत्तिविवरण विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—जब राजा निमि निःसन्तान मर गये, तब धर्मका लोप हो जानेके भयसे ऋषियोंने अरणीसे मथ कर इन्हें राज्य करनेके लिये उत्पन्न किया था। इनके पुत्र उदावसु थे। (विष्णुपु० ४।५ अ०) २ वणिक्, सौदागर। (अमरटीका भरत) ३ प्राचीन कालकी एक वर्णसंकर जाति। मनुके अनुसार इस जातिकी उत्पत्ति ब्राह्मणी माता और वैश्य पितासे है। इसका काम अन्तःपुरमें पहरा देना था।

(मनु १०।११)

वैदेहक (सं० पु०) वैदेह एव स्वार्थे कन्। १ वणिक्, व्यापारी। २ वैदेह नामक वर्णसंकर जाति।

वैदेहक व्यञ्जन (सं० पु०) व्यापारीके वेशमें गुप्तचर। ये समाहर्त्ताके अधीन काम करते थे और व्यापारियोंमें मिल कर उनकी कारवाइयोंकी सूचना दिया करते थे।

वैदेहिक (सं० पु०) १ वणिक्, सौदागर। (अमरटीका सारसु०) २ एक वर्णसंकर जाति। (मनु १०।३६)

वैदेही (सं० स्त्री०) विदेहेषु भवा विदेहस्यापत्यं स्त्री वा विदेह-अण् ङीप्। १ विदेह राजा जनककी कन्या, सीता। २ वैदेह जातिकी स्त्री। (मनु १०।३७) ३ रोचना। ४ पिप्पली, पीपल।

वैद्य (सं० पु०) विद्यां वेद विद्या-अण (तदधीते तद्वेद। पा ४।२।५९) १ पण्डित। २ वासकवृक्ष, अड़ूस। ३ आयुर्वेद वेत्ता, चिकित्सावृत्तिक। पर्याय—रोगहारी, अगदङ्कार, भिषक्, चिकित्सक, स्रष्टा, विधि, विद्वान्, आयुर्वेदी। यह चार प्रकारके हैं—रोगहर, विषहर, शल्यहर और कृत्याहर। (महाभारत) वैद्यजाति शब्दमें विशेष विवरण देखो।

वैद्यके दोष और गुणकी आलोचना वैद्यक ग्रन्थमें (संस्कृत) विशेषरूपसे की गई है। संक्षिप्तरूपसे यहां उसकी आलोचना करते हैं—

वैद्य-लक्षण—जो चिकित्साकार्य करते हैं, उन्हें वैद्य कहते हैं। इनमें जो प्रशंसनीय हैं, उनकी बात कही जाती है। जो वैद्य, शास्त्रार्थमें विशेष व्युत्पन्नमति, दृष्टकर्म्मा, स्वयं चिकित्साकुशल, सुप्रसिद्धहस्त, शुचि, कार्यदक्ष, अभिनव औषध और चिकित्साके उपयोगी उपकरणोंसे सुसज्जित, सहसा उपस्थितबुद्धि, धीशक्तिसम्पन्न, चिकित्साव्यवसायी, मिष्टभाषी, सत्यवादी और धर्मपरायण हैं, वे ही वैद्य यथार्थ वैद्य कहलानेके पात्र हैं।

निषिद्धवैद्य,—कुत्सित वस्त्रपरिधानकारी, अप्रियभाषी, अभिमानी, लोगोंके साथ व्यवहारमें अनभिज्ञ और बिना बुलाये आ जानेवाला वैद्य यदि धन्वन्तरीके समान भी हो, तो किसी तरह वह प्रशंसनीय नहीं हो सकता।

वैद्यका कर्म—लक्षणादि द्वारा सम्यक्‌रूपसे रोग और रोगका उपशम करना ही वैद्यका कर्म है। किन्तु वैद्य आयुप्रदाता नहीं है। कुछ लोग कहते हैं, कि सम्यक् प्रकारसे व्याधिका निर्णय और उसको उपशम करना ही वैद्यका कर्म नहीं, वरं परमायु दान करनेमें समर्थ होना चाहिये। क्योंकि १०० तरहकी अपमृत्युसे बचानेवाला वैद्य ही है।

जैसे दीपकमें बत्ती रहते हुए भी प्रबल वायुके झोंकेसे दीपक बुझ जाता है, उसी तरह आगन्तु हेतुजनित मृत्यु दुर्निर्मित्त उपसर्गके प्राबल्यके कारण परमायु रहते हुए भी प्राणियोंका प्राण विनष्ट हो जाता है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि रसक्रियाविशारद वैद्य दोष निमित्त और आगन्तु निमित्त वेदनासे राजाको मुक्त करनेमें समर्थ हैं।

चरकमें लिखा है, कि वैद्य, द्रव्य, रोगीका परिचारक और रोगी ये चार उपयुक्त गुणविशिष्ट होनेसे ही रोगका उपशमित होता है। नहीं तो रोग प्रबल हो जानेसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

वैद्य तीन प्रकारके हैं—छद्मचर, सिद्धसाधित और वैद्यगुणयुक्त भिषक्। जो अज्ञ चिकित्सक औषधाधार, औषध, पुस्तक और चातुर्यावलम्बन आदि द्वारा वैद्योंका अनुकरण कर भिषक् नामसे अपना परिचय देते हैं, उन अज्ञ वैद्यप्रतिरूपोंको छद्मचर भिषक् कहते हैं। जो मूर्ख चिकित्सक श्री, यशः, ज्ञान और कार्यसिद्धि प्रभृति गुणशून्य हो कर भी अपनेको श्रीसम्पन्न, यशस्वी, ज्ञानवान् और कृतकर्मा समझ मिथ्या परिचय देते हैं, उनको सिद्धसाधित भिषक् कहते हैं। जो औषध प्रयोग-शास्त्रज्ञान, व्यवहारकुशल और कार्यसिद्धि द्वारा सुप्रतिष्ठित और रोगीके लिये आरोग्यप्रद तथा जीवनरक्षक हैं, उनको वैद्यगुणयुक्त भिषक् कहते हैं।

वैद्य ही सारे शरीरके ज्ञानमें, शरीरकी उत्पत्तिके ज्ञानमें और प्रकृति विकृति-ज्ञानमें संशयशून्य होते हैं। इसी तरह वैद्य ही सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य, याप्य और प्रत्याख्येय रोगोंके निदान, पूर्वरूप, वेदना और उपशय विज्ञानमें सन्देहशून्य हैं। ये ही त्रिविध आयुर्वेद सूत्रके हेतु हैं। लिङ्ग और औषधज्ञानके और ईश्वपाथयादि विविध औषध ग्रामके व्याख्याता, ३५ प्रकार मूलफलके, १६ प्रकार मूलप्रधान, १९ प्रकार फलप्रधान वृक्षके, ४ प्रकार महास्नेहके, ५ प्रकार लवणके, ८ प्रकार मूत्रके, ८ प्रकार दुग्धके, क्षीरप्रधान और त्वक्‌प्रधान, ६ प्रकार अन्यान्य वृक्षोंके शिरोविरेचनादिके, पञ्चकर्माश्रय औषधोंके, २८ प्रकार यवागूके, ३२ प्रकार चूर्ण और प्रलेपके, ६०० विरेचनके, ५०० कषायके व्याख्याता और स्वस्थ वृत्तिविषयमें भोजन, पान, नियम, स्थान, भ्रमण, शय्या, आसन, मात्रा, द्रव्य, अञ्जन, धूम, अभ्यङ्ग, परिमार्जन, वेगविधारण, व्यायाम, सात्म्येन्द्रिय परीक्षा, चिकित्सा और सद्वृत्त इन सब विषयोंके विज्ञानमें पण्डित; ये ही सोलह गुणवाले चतुष्पादरूप भेषज और विनिश्चय, त्रिविध एषणा और वातकलाज्ञान विषयोंमें संदेह रहित हैं।

ये २४ प्रकारके स्नेह विचारणा, ६४ प्रकार रस और बहुत तरहके स्नेहन, स्वेदन, वमन और विरेचन औषध विषयमें कुशल और शिरःपीड़ादि रोगोंके दोषांश, विकल्पज व्याधियोंकी क्षय पिड़का और विद्रधिरोगके त्रिविध शोथके बहुत तरहके शोथानुबन्धके, १४८ प्रकारके रोगाधिकरणके, १४० प्रकारके नानात्मज रोगके, ८० प्रकार वात और ४० प्रकार पित्तज रोगके, २० प्रकार श्लेष्मजरोगके और २० प्रकारके नानात्मज रोगोंके निवारणमें कुशल हैं। इसी तरहके वैद्य विगर्हित, अतिस्थौल्य और अतिकार्श्य रोगके निदान, लक्षण और चिकित्साके व्याख्याता हैं। ये ही हिताहित, निद्रा, अनिद्रा और अतिनिद्रा आदिके चिकित्साविज्ञानमें कुशल हैं। इत्यादि गुणयुक्त वैद्य ही स्मृति, मति और शास्त्रयोजनाज्ञानसम्पन्न हो अपने सत्‌स्वभावके गुणसे सब प्राणियोंको माता, पिता और भाईके समान ही जगत्‌का हितसाधन करते हैं। उक्त गुणयुक्त चिकित्सक ही प्राणाभिसर और रोगहन्ता कहलाते हैं।

उक्त प्रकारके गुणोंके विपरीत गुणविशिष्ट वैद्योंको रोगाभिसर और प्राणहन्ता समझना चाहिये। ये वैद्यवेशधारी लोककण्टक, अधार्मिक वञ्चक राजाकी असावधानीके कारण ही राज्यमें घूमते फिरते हैं। इनका उद्देश्य है—चिकित्सा द्वारा धन लाभ करना। इसी

लोभके कारण वैद्यवेशको धारण कर अपनी अत्यन्त श्लाघा करते हुए राहमें विचरण करते हैं। किसीकी पीड़ाकी बात सुन लेने पर वह उस व्यक्तिके घरके चारों ओर घूमता रहता है और श्रवणयोग्य प्रदेशमें खड़ा हो कर ऊंचे स्वरसे अपनी चिकित्साकी बड़ाई किया करता है। फिर जो चिकित्सा कर रहा है, वारंवार उसके दोषको घोषणा करता है। यह प्रहर्षण, उपजल्पन और सेवादि द्वारा रोगीके आत्मीय स्वजनको स्वपक्षमें लानेकी कोशिश करता है और अपनी स्वल्पाकांक्षा दिखलाता है चिकित्साका भार सौंप देने पर वह अपनी अज्ञानताको छिपा रखनेके अभिप्रायसे दक्षतासूचक चतुरताके साथ वारंवार रोगीको देखता है। रोगप्रशमनमें असमर्थ होने पर रोगी पर "कुपथ्य" करता है, "बड़ा खाई" दोषारोप करता है। रोगीकी शेष दशामें वह स्थान छोड़ कर दूसरे स्थानमें भाग जाता है। अर्थात् जहां मूर्ख हैं, वहां जाता है और उनसे अपनी चिकित्सा-कुशलताका वर्णन करता है तथा पण्डितोंके पाण्डित्यका दोष वर्णन करता है। ये कभी पण्डित समाजमें नहीं जाते। जैसे भयङ्कर दुर्गम पथ देख कर पथिक दूरसे ही उस पथको त्याग देता है, वैसे ही वञ्चक वैद्यवेशधारी वैद्य भी दूरसे ही पण्डित-समाजका परित्याग करते हैं। यदि दैवात् किसी तरह इनकी चिकित्सासे कुछ भी रोग आरोग्य हो जाता है, तो यह उसकी वारंवार प्रशंसा किया करते और अपने यशका पुल बांधा करते हैं। ये किसीके भी अनुयोगकी इच्छा नहीं करते और किसीका अनुयोग करते भी नहीं। अनुयोगसे यमकी तरह भय करते हैं। इनके कोई आचार्य नहीं, शिष्य भी नहीं और साहाय्य भी नहीं है।

व्याध जैसे फाँदा लगा कर पक्षियोंको फंसाया करते हैं, वैसे ही वैद्यरूप धारण कर जो रोगियोंका अन्वेषण करते हैं, वे शास्त्रज्ञान, बहुदर्शन, मात्राज्ञान और देशज्ञान-हीन हैं, अतएव इस तरहके वैद्य वर्जनीय हैं। ऐसे वैद्य यमके अनुचरकी तरह पृथ्वीमें विचरण करते हैं।

जो सामान्य जीविकाके लिये वैद्याभिमानी हैं, उन मूर्ख विशारदोंको विद्वान् रोगी परित्याग करें। क्योंकि वे वायुभक्षी सर्प हैं। सर्प जैसे वायु भक्षण करते हैं, वे भी वैसे ही जीवोंकी प्राणवायुका भक्षण किया करते हैं। ऐसे वैद्योंको दूरसे ही प्रणाम करना चाहिए।

यथार्थ वैद्य सबके ही पूजनीय हैं। रसायन, वृष्ययोग और जो कुछ रोगोंकी औषध है, वे सभी वैद्योंके अधीन है। अतएव देवराज इन्द्रने जैसे स्ववैद्य अश्विनीकुमारद्वयकी पूजा की थी, पण्डित व्यक्ति भी वैसे ही बुद्धिमान् वेदपारग प्राणाचार्य वैद्यकी पूजा करें।

चिकित्सक जब जरामरण-रहित देवोंके भी पूज्य हैं, तब इसमें कौन-सा आश्चर्य है, कि वे जराव्याधि-मरणशील दुःखी सुखार्थी मानवोंके पूज्य हों। जो वैद्य सत्त्वभाव, मतिमान्, शास्त्रज्ञ और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य हैं, उसी वैद्यकी प्राणिगण प्राणरक्षार्थ आचार्यवत् पूजा किया करते हैं। अतएव ऐसे गुणयुक्त वैद्य प्राणाचार्य नामसे अभिहित होते हैं।

ब्राह्मणोंके उपनयन संस्कार होनेसे उनको द्विजाति और वेदाध्ययन सम्पन्न होने पर त्रिजाति कहा जाता है। जब तक वे अनधीतवेद रहते हैं, तब तक उनको त्रिजाति अर्थात् वैद्य नामसे अभिहित नहीं किया जाता। जन्मसे ही वैद्य संज्ञा नहीं होती। ब्राह्मणोंके जन्म होनेके बाद जितने दिन उपनयन संस्कार नहीं होता, उतने दिन उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा ही रहती है। उपनयन होने पर वे द्विजाति और वेदाध्ययन समाप्त होने पर त्रिजाति अर्थात् त्रिजन्मा वैद्य संज्ञासे अभिहित होते हैं। विद्या समाप्तिके बाद तत्त्वज्ञान हेतु "ब्राह्मयमनः" या "आर्षमनः" उनका आश्रय करता है। ब्राह्मणादि द्विजोंका इसी तरहसे वैद्यत्वरूपसे जन्मान्तर होता है और वे त्रिज नामसे अभिहित होते हैं।

जो बुद्धिमान् पुरुष दीर्घायुः लाभ करनेकी इच्छा करें, वे प्राणाचार्य वैद्यके धन आदि विषयमें स्पृहा या उसके प्रति क्रोध न करें तथा उसका कोई अहित न करें। जिस वैद्य द्वारा जो व्यक्ति चिकित्सित हुए हैं, उस वैद्यकी कोई उपकार-जनक बातें सुन कर या न सुन कर यदि वह उसका उपकार नहीं करता, तो उस मनुष्यकी इहजगत्‌में निष्कृति नहीं है। फिर वैद्य भी

यदि परम धर्म पानेके अभिलाषी हों, तो उनको चाहिये, कि अपने सन्तानकी तरह रोगियोंकी पीड़ाको दूर करनेमें यत्नवान् हों।

जो वैद्य रोगीके घर पूजित नहीं होते, उसका रोग नष्ट नहीं होता। रोगी या दूत शून्य हाथसे वैद्यका दर्शन न करें। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि राजा, वैद्य और गुरुका शून्य हाथसे दर्शन न करना चाहिये।

वैद्य निम्नोक्त व्यक्तियोंको छोड़ कर चिकित्सा करें। जो व्यक्ति अत्यन्त क्रोधी, अविचारितकार्यकारी, भयशील, वैद्य द्वारा उपकृत होने पर भी उसे अग्राह्यकारी, व्याकुलचित्त, शोकाभिभूत, जिसकी मृत्यु निकट हो, इन्द्रियशक्तिरहित, वैद्योंके प्रति शठताचरणकारी, चिकित्सकके प्रति अविश्वासी या वैद्यके वाक्यकी अवहेला करनेवाला और जो व्यक्ति चिकित्साव्यवसायी हो, वैद्य इन व्यक्तियोंको चिकित्सा न करें। क्योंकि इनकी चिकित्सा करनेसे कई तरहके दोषोंकी आशंका है। (भावप्रकाश) २ जातिविशेष। वैद्यजाति देखो।

वेद-ष्यञ्। ३ वेद-सम्बन्धीय।

वैद्यक (सं० क्ली०) आयुर्वेद, चिकित्साशास्त्र। अष्टाङ्ग चिकित्साशास्त्र, या दशाङ्ग वैद्यशास्त्र। आयुर्वेद शास्त्रको ही वैद्युक कहते हैं। सुश्रुतके मतसे शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतन्त्र, रसायनतन्त्र और वाजीकरणतन्त्र इन अष्टाङ्ग चिकित्साशास्त्रको वैद्युक कहते हैं।

वैद्युकनिघंटुके मतसे द्रव्याभिधान, गदविनिश्चय, कायसौख्यसम्पादन, शास्त्रविद्या, पञ्चाक्षरीप्रभाव द्वारा भूतनिग्रह, विषप्रतीकार, बालोपचार, रसायन, शालाक्य और वृष्य—इन दशाङ्ग शास्त्रको वैद्युक कहते हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, पहले प्रजापति ब्रह्माने ऋक्, यजुः, साम, अथर्व नामक चार वेदों के दर्शन किये। पीछे उनके अर्थोंकी पर्यालोचना कर आयुर्वेद नामसे एक पांचवें वेदकी सृष्टि की। इसके बाद भगवान् ब्रह्माने उक्त पांचवां वेद भास्करदेवको दान किया। भास्करने भी इस आयुर्वेदसे स्वतन्त्र एक संहिता बनाई। अन्तमें अपनी बनाई संहिताके साथ उक्त आयुर्वेद अध्ययन करनेसे उन सबोंने दोनों शास्त्रोंका दर्शन कर एक संहिता तैय्यार की। इन सब संहिताओंका विवरण इस तरह लिखा है,—धन्वन्तरी, दिवोदास, काशीराज, अश्विनीकुमारद्वय, नकुल, सहदेव, यमराज, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, कथय, अगस्त्य, ये सोलह भास्करके शिष्य हैं। पहले भगवान् धन्वन्तरिने अति सुन्दर "चिकित्सातत्त्वविज्ञान" नामक एक संहिता रची, पीछे दिवोदासने चिकित्सादर्शन और काशीराजने 'चिकित्साकौमुदी, नामक अति उत्तमशास्त्रकी रचना की। अश्विनीकुमारद्वयने 'चिकित्सासारतन्त्र', नकुलने 'वैद्युक सर्वस्व', सहदेवने 'व्याधिसिन्धुविमर्द्दन,' यमराजने 'ज्ञानार्णव' च्यवनने 'जीवदान', जनकने 'वैद्युकसन्देहभञ्जन', बुधने 'सर्वसार', जाबालने 'तन्त्रसारक,' जाजलिने 'वेदाङ्गसारतन्त्र', पैलने 'निदान', कथयने 'सर्वधरतन्त्र' और अगस्त्यने 'द्वैधनिर्णय' नामको संहिता रची। ये षोड़शतन्त्र ही चिकित्साशास्त्रके बीज स्वरूप हैं और व्याधिनाशके कारण तथा बलाधानकारी हैं। इन वैद्यक ग्रन्थोंमें रोगोंकी चिकित्साका वर्णन किया गया है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ब्र०ख० १६ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि पहले ब्रह्माने आयुर्वेदका प्रचार करनेके लिये लक्ष श्लोकात्मक ब्रह्मसंहिता नामको एक आयुर्वेदसंहिता रची और दक्षको इस संहिताका उपदेश दिया। पीछे राजर्षि दक्षसे अश्विनी-कुमारद्वयने आयुर्वेद अध्ययन कर चिकित्सकोंके कर्त्तव्यज्ञानवर्द्धनके निमित्त अपने नामसे अश्विनीकुमारसंहिता बनाई।

अश्विनीकुमारद्वयसे इन्द्रने इस आयुर्वेदको सीखा। पीछे आत्रेयने जगत्को व्याधिग्रस्त देख कर अत्यन्त दयार्द्र हो इन्द्रसे इस आयुर्वेद शास्त्रकी शिक्षा पाई। इसके बाद भरद्वाजने सुरपुरमें जा कर इन्द्रसे इस आयुर्वेद शास्त्रको अध्ययन किया।

जब नारायणने मत्स्यावतारमें वेदका उद्धार किया, तब अनन्तदेवने उस स्थानमें षड़ वेद और अथर्ववेदके अन्तर्गत सब अनुवेद पाये। इसके बाद एक दिन अनन्तदेवने भूतलकी अवस्थाका दर्शन कर चररूपसे

पृथ्वीमें आ कर देखा, कि भूमण्डलके लोग व्याधिग्रस्त हो वेदनासे पीड़ित हो रहे हैं तथा स्थान स्थानमें अत्यन्त उत्कण्ठित और मुमूर्षुप्राय हो रहे हैं। अनन्तदेव मानवोंको इस तरह दुरवस्थाग्रस्त देख कर अतिशय कृपावशतः उनके दुःखसे दुःखित हो व्याधि दूर करनेकी चिन्ता करने लगे। इसके बाद विशेष विवेचना कर स्वयं अनन्तदेव मुनिपुत्ररूपसे पृथ्वी पर आविर्भूत हुए। यह कोई जान न सका, कि भगवान् अनन्तदेव चररूपसे पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। इसलिये वे चरक नामसे विख्यात हुए। चरकाचार्य मानवोंको व्याधि विनाश कर वृहस्पतिके पूजनीय हुए।

आत्रेय मुनिके शिष्य अग्निवेश आदि मुनियोंने अपने अपने नामसे जिन तन्त्रोंकी रचना की थी, चरकने उन तन्त्रोंका जीर्णोद्धार कर चरकसंहिता प्रणयन की। यह संहिता वैद्यकशास्त्रोंमें सर्वोत्कृष्ट है।

चरकके प्रादुर्भाव होनेके बाद धन्वन्तरि आविर्भूत हुए। इस विषयमें लिखा है, कि एक बार पृथ्वीमें देवराज इन्द्रने मनुष्यकी ओर देखा। मनुष्योंका दर्शन कर कृपावशतः उनका हृदय व्यथित हुआ। इसके बाद दयालु इन्द्रने धन्वन्तरिसे कहा,—तुम भूलोकमें जा कर काशीधामका राजा बन व्याधियोंकी चिकित्साके लिये वैद्यकशास्त्र प्रकाशित करो। धन्वन्तरि काशीमें एक क्षत्रियके घर जन्मग्रहण कर दिवोदास नामसे प्रसिद्ध हुए। दिवोदासने राजपद पर अधिष्ठित हो जगत्के उपकारके लिये धन्वन्तरि-संहिता प्राणयन की।

विश्वामित्र आदि मुनियोंने ज्ञानचक्षुःसे जान लिया, कि काशीधाममें धन्वन्तरिने दिवोदास नामसे जन्म ग्रहण किया है। तब विश्वामित्रने अपने पुत्र सुश्रुतसे कहा, कि तुम जीव लोगोंके उपकारके लिये काशीधाममें जा कर आयुर्वेदशास्त्रका अध्ययन करो। सुश्रुत अपने पिताके आज्ञानुसार काशीधाम चले गये। उनके साथ अन्यान्य १०० मुनि-पुत्र भी गये। इन सबोंने दिवोदाससे आयुर्वेद अध्ययन किया। यथा शास्त्र आयुर्वेदका अध्ययन कर सबोंने एक एक संहिता बनाई। इन सब संहिताओंमें सुश्रुत-संहिता सर्वोत्कृष्ट है। इस तरह क्रमसे वैद्यकशास्त्रका बहुत प्रचार हुआ। (भावप्र०)

वैद्यकशास्त्रमें चरक और सुश्रुत ही उत्तम हैं और इन्हींसे नाना वैद्यक ग्रन्थ उत्पन्न हुए हैं।

जो आयुर्वेदशास्त्र जानते हैं, या चिकित्साका व्यवसाय करते हैं, वे ही वैद्य या वैद्यक हैं। वैद्यक शब्द साधारणतः आयुर्वेद अर्थमें ही व्यवहृत होता है, आयुर्वेद शब्दमें वैद्यक शब्दके आलोच्य कई विषयोंकी आलोचना की गई है। वेदविभागके बहुत पहलेसे ही जो इस देशमें चिकित्सा-व्यवसाय प्रचलित था, जगत्‌के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद पाठ करनेसे उसके सम्बन्धमें धारणा उत्पन्न होती है। अथर्ववेदकी बात पीछे कहेंगे। पहले ऋग्वेदसे ही उस प्राचीनतम कालके चिकित्सा-विज्ञानके प्रकर्षके कई प्रमाण यहां प्रकाशित किये जाते हैं।

भैषज्यतत्त्व या Pharmacology।

१। ऋग्वेदके समयमें भी आर्यगण शत सहस्र ओषधि-द्रव्योंका व्यवहार जानते थे। यथा—

"शतं ते राजन भिषजः सहस्र मुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु।"

(ऋग्वेद १।२४।९)

अर्थात् हे राजन वरुण! तुम्हारी शत सहस्र ओषधियाँ हैं, तुम्हारी सुमति विस्तीर्ण और गभीर हो। उसी प्राचीन समयमें फार्मोकोलोजी (Pharmiacology) या मेटेरिया मेडिका (Materiamedica) आदि शास्त्रकी भी यथेष्ट आलोचना हुई थी, इसका भी यथेष्ट प्रमाण मिलता है।

ऋग्वेदके दशवें मण्डलका ९७वां सूक्त ओषधिका स्तोत्रमय है। इसमें २३ ऋक् हैं, इस सूक्तका देवता ओषधि, ऋषि भिषक् है। प्रत्येक ऋक् औषधके माहात्म्य-सूचक और गभीर अर्थव्यञ्जक है। इन सब ऋकोंका मर्म इस तरह है—पूर्वकालमें तीन युगोंसे देवताओंने जिन सब प्राचीन ओषधियोंकी सृष्टि की है, उन सब पिङ्गलवर्ण औषधके एक सौ सात स्थान विद्यमान हैं और तो क्या, सहस्र स्थान है। ये जननीस्वरूपा हैं, इनकी क्रिया एक सौ तरहकी हैं। रोगीको रोगसे बचाती है। ये फलपुष्पवती, दीप्तिशालिनी और जयशालिनी रोगोके प्रति अनुग्रहकारिणी और कृतज्ञताभाजन हैं। अश्ववती, सोमवती, उर्ज्जयन्ती, उदोजस आदि ओषधिका संग्रह

और उसके द्वारा रोगोंके आरोग्यका विधान किया जाता था। ओषधियोंका गुण प्रत्यक्ष होता था। औषधका फल प्रत्यक्ष दिखाता था। औषध द्वारा दुर्बल देह सबल होती थी, मृतदेहमें प्राण सञ्चार होता था। बारहवीं ऋक्‌में लिखा है, "जिस तरह बलवान् और मध्यवर्त्ती व्यक्ति सबको ही आयत्त करनेमें समर्थ होता है, हे ओषधियां! जिसके अङ्गमें, प्रत्यङ्गमें तथा गांठ गांठमें विचरण करो, उसके रोग उस स्थानोंसे दूर कर दो।" ओषधिके गुणसे चिड़ियेकी तरह रोग द्रुतवेगसे भागता है। औषध आपसमें मिल कर काम करती थी। १४ ऋक्‌के पढ़नेसे मालूम होता है, कि वैदिक समयमें भी बहुतेरी ओषधियां एकमें मिलाई जाती थीं। जैसे—'इस तरह सब परस्पर एक मत हो कर और एक कार्यकारिणी हो कर मेरी इस बातको रखो।' इत्यादि। फलतः ऋग्वेदके समयमें सहस्र सहस्र उद्भिद् रोग आरोग्यके लिये व्यवहृत होते और वे सब ओषधियां यथेष्ट सुफल प्रदान करती थीं।

शारीरविद्या या Anatomy और Physiology

२। एनाटमी और फिजिओलजीका सूत्रपात भी ऋग्वेदमें दिखाई देता है। ऋग्वेदके १०वें मण्डलके १३३ सूक्तमें नाक, कान, गाल, मस्तिष्क, जिह्वा, ग्रीवा, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि, बाहु, हस्त, स्कन्ध, अन्त्र-नाड़ी, क्षुद्रनाड़ी, वृहदन्त्र, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत्, ऊरु, जानु, पार्ष्णि, नितम्ब, मलद्वार, मूत्रद्वार, लोम, नख, आदि नाम दिखाई देते हैं।

क्षिति, अप्, तेजः, मरुत् व्योम—इन पञ्चभूतों द्वारा मनुष्योंकी देह गठित है। ऋक्‌संहिताके १० मण्डल १६वें सू० ३ ऋक्‌में उसका उल्लेख मिलता है। मृत्‌की दाह करते समय कहा जाता है—

"सूर्य' चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधिषु प्रतितिष्ठा शरीरैः॥"

अर्थात् हे मृत! तुम्हारे चक्षु (अर्थात् चक्षुओंकी ज्योतिः) सूर्यलोक जाये, तुम्हारा श्वास वायुमें मिल जाये, तुम्हारा पुण्यफल आकाशमें मिल जाये, जलमें मिल जानेसे यदि हित हो, तो जलमें जाये, तुम्हारी देहके अवयव ओषधिवर्गमें जा कर अवस्थान करें। "त्रिधातु शर्म्म वहतम्" इत्यादि उक्तियोंसे मालूम होता है, कि वात, पित्त और कफ भी ऋग्वेदके समय चिकित्सकोंके सुपरिचित थे। आहार्य द्रव्योंके पाक, धमनी स्पन्दनके साथ जीवनीक्रियाका सम्बन्ध इत्यादि बहुत तरहके शरीर-विज्ञानशास्त्रका आलोच्य विषय बीजाकारमें ऋग्वेदमें दिखाई देता है

भ्रूणतत्त्व या Embryology

ऋग्वेदके दशवें मण्डलके १७४ सूक्तमें लिखा है, 'विष्णु स्त्रीअङ्गको गर्भधारणके उपयोगी बनायें, प्रजापति शुक्रपात करें, धाता गर्भधारण करें, हे सिनीवालि, हे सरस्वति! तुम लोग गर्भको धारण करो, पद्ममालाधारी देव अश्विद्वय गर्भोत्पादन करें। हे पत्नि! अश्विद्वय तुम्हारे गर्भस्थ जिस सन्तानके लिये सुवर्णनिर्मित दो अरणि घर्षण कर रहे हैं, दशवें महीनेमें प्रसूत होनेके लिये हम तुम्हारे उस गर्भस्थ सन्तानका आह्वान करते हैं।' वैदिक साहित्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि विष्णु जैविक ताड़ितके देवता, त्वष्टा जैविक तापके अधिष्ठाता और प्रजापति आर्त्तव शोणितके देवता हैं। उक्त वैदिक गर्भाधानमन्त्रका तात्पर्य यह है, कि गर्भधारणोपयोगी जरायुमें विष्णु (वायुके अधिदेवता) द्वारा पितृबीज लाया जाता है और प्रजापति द्वारा मातृबीज संचित होता है। सिनीवाली और सरस्वती गर्भकी रक्षा करती हैं और अश्विद्वय भ्रूणकी देह निर्म्माण करते हैं।

ऋक्‌संहिताका अनुसन्धान करनेसे इसके सम्बन्धमें और भी प्रमाण मिल सकते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थमें लिखा है,—

"तस्मात् परां वो गर्भाजीयन्ते पारां न सम्भवति ***
तस्मान्मध्ये गर्भा धृता।" (ऐतरेयब्राह्मण ६।१०)

इसमें इसका भी प्रमाण मिलता है, कि गर्भ शिशुसन्तान अधोमुख रहती है और उसके ऐसे स्थित रहनेसे प्रसवके समय बड़ी सुविधा होती है।

अश्विनीकुमारद्वय और Surgery

ऋग्वेदके ११२।१मण्डलके एवं ११६-१२० सूक्त तक हम अश्विद्वयकी स्तुति देखते हैं। इन सब स्तोत्रोंमें ऋग्वेदके मन्त्र समयके चिकित्साशास्त्रने किस तरह उत्कर्ष लाभ किया था, चिकित्साके सम्बन्धमें ऋग्वेदकी कैसी

धारणा थी, किस किस व्यापारमें चिकित्सक और चिकित्साका प्रयोजन होता था इत्यादि चिकित्सा सम्बन्धीय ऐतिहासिक तथ्यका बहुल सन्धान इन कई सूक्तों में दिखाई देता है। अमरकोषमें लिखा है:—

"* * * स्वर्वैद्यावश्विनीसुतौ।
नासत्यावश्विनौ दस्रावाश्विनेयौ च तावुभौ॥"

अर्थात् अश्विनीकुमारद्वय स्वर्गवैद्य, नासत्य, अश्वी, दस्र और आश्विनेय इन कई पर्यायोंसे अभिहित होते हैं। सूर्यकी भार्या अश्विनीके गर्भसे इनका जन्म है।

भावप्रकाशसे जाना जाता है, कि पहले ब्रह्माने अथर्ववेदके ऐश्वर्यस्वरूप आयुर्वेदका प्रचार करनेमें इच्छुक हो ब्रह्मसंहिता नामसे लाख श्लोकोंकी एक आयुर्वेदसंहिताकी रचना की। उन्होंने दक्ष प्रजापतिको आयुर्वेद सम्बन्धीय उपदेश दिया। दक्ष प्रजापतिने फिर सूर्य-वंशसम्भूत विद्वान् और देवताओंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमारद्वयको आयुर्वेदकी शिक्षा दी थी।

भावप्रकाशसे जाना जाता है, कि ब्रह्मसंहिताके बाद ही अश्विनीसंहिता नामकी एक आयुर्वेद सम्बन्धिनी संहिता अश्विनीकुमारद्वय द्वारा लिखी गई। भावप्रकाशमें और भी लिखा है, कि शिवने क्रोधित हो ब्रह्माका मस्तक काट डाला। अश्विनीकुमारद्वयने इस मस्तकको जोड़ दिया। इसी कारण अश्विनीकुमारद्वय उस समयसे यज्ञांशके भागी हुए। कटे शिरको जोड़ देनेमें अश्विनीकुमारोंकी यथेष्ट दक्षता थी। सुश्रुतके सूत्रस्थानमें भी इसके सम्बन्धमें प्रमाण मिलता है, यथा—

"अथ तयोरर्थे देवा इन्द्रं यज्ञभागेन प्रसादयन् ताभ्यां शिरः संहितमिति।"

सुश्रुतका कहना है, कि देवासुरके संग्राममें शल्यतन्त्रकी (Surgery विशेषतः military surgery) उत्पत्ति हुई। अश्विनीकुमारद्वय शल्यतन्त्रके अधिष्ठात्री देवता हैं। यज्ञके कटे शिरको जोड़ देनेके कारण ही ये यज्ञभागके अधिकारी हुए। दैत्योंके साथ युद्धमें देवगण क्षतविक्षत हुए थे। अश्विनीकुमारद्वयने असाधारण क्षमताके प्रभावसे एक दो दिनमें सबको आरोग्य कर दिया। वज्रधारी इन्द्र भुजस्तम्भ रोगग्रस्त और निशापति चन्द्रमण्डलसे पतित हो प्रपीड़ित हुए थे। अश्विनीकुमारोंने शीघ्र ही इनका आरोग्य कर दिया। सूर्यका दन्तरोग, भगदेवका चक्षुरोग और चन्द्रका राजयक्ष्मा रोग अश्विनीकुमारद्वयकी चिकित्सासे शीघ्र ही प्रशमित हुआ था। भृगुमुनिके पुत्र च्यवन अतिशय इन्द्रियासक्त हो ज्वराग्रस्त हुए और विकृत हो उठे। अश्विनीकुमारद्वयने इनकी चिकित्सा की। उस चिकित्सासे ही उन्होंने चिरकुमार अवस्था पाई थी। राजयक्ष्मा चिकित्साके सम्बन्धमें दशवें मण्डलके अन्तमें जो एक सूक्त है, वह इससे पहले उल्लिखित किया गया है।

अश्विनीकुमारद्वय केवल मनुष्योंकी ही चिकित्सा नहीं करते थे, वरं गाय आदि पशुओंकी चिकित्सामें भी इनकी यथेष्ट क्षमता थी। जो गाय प्रसव करनेमें असमर्थ है, उन गायको भी दुग्धवती बना देते थे। (ऋक् १।११२।३; १।११६।२२) इसके सिवा युद्धमें आहत घोड़ोंकी चिकित्सा कर शीघ्र ही उनको युद्धमें भेजनेके लिये उपयोगी बना देते थे। पक्षियोंकी चिकित्सामें भी अश्विनीकुमारद्वय सिद्धहस्त थे। (१।११२।८)

कुएंमें फेंके हुए और पाशबद्ध रेभवन्धन, अनन्तक, कर्वन्ध और भुज्यु आदि बहुत ऋषियोंको मृत प्राय अवस्थामें उठा कर अश्विनीकुमारद्वयने जीवन दान किया था। यह कहा जा नहीं सकता, कि सिलवेष्टरकी तरह कृत्रिम श्वास प्रश्वासका उपाय उन्होंने किया था या नहीं। किन्तु जलमग्न श्वासरुद्ध लोगोंको भी वे अनायास बचा देते थे। (११।१२।५-६)। रेभऋषिकी स्वर्गतिकी बात ११६ सूक्तकी २४वीं ऋक्में विशेष रूपसे विवृत हुआ है। इनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तक विनष्ट हो गये थे। ये दश रात नौ दिनों तक जलमें थे।

Occulist

प्रथम मण्डलके ११२ सूक्तकी ८वीं ऋक्को पढ़नेसे मालूम होता है, कि ऋज्राश्व ऋषि अंधे थे। अश्विनीकुमारद्वयने अपनी चिकित्सासे नेत्र अच्छे कर दिये। इसके बाद ११६ सूक्तसे १२० सूक्त तक और भी कई अंधे ऋषियोंके नेत्रप्रदान करनेकी बात देखी जाती है। ऋज्राश्वके सम्बन्धमें सायणने उपाख्यान इस तरह

लिखा है,—ऋज्राश्व वृषगिरिके पुत्र हैं। ये एक राजर्षि हैं। अश्विद्वयका वाहन गर्दभ है। यह एक बार भेड़िया बन कर ऋज्राश्वके पास आया था। ऋज्राश्वने इसके भोजनके लिये १०१ नागरिकके भेषको खण्ड-खण्ड किया था। इस अपराधमें पिताने ऋज्राश्वको नेत्रहीन बना दिया। उन्होंने अश्विद्वयकी स्तुति की। इस पर अश्विद्वयने आ कर उनको नेत्र प्रदान किया।

Military surgeon ।

परावृज और श्रोण ये दोनों ही पंगु हुए थे। अश्विद्वयने इनको अति शीघ्र फुर्तीसे चलने लायक बना दिया। प्रथम मण्डलके ११२वें सूक्तकी २१वीं और २२वीं ऋक् पढ़नेसे मालूम होता है, कि अश्विद्वय समर-क्षेत्रमें आहत व्यक्तियोंकी चिकित्सा किया करते थे। प्रथम मण्डलके ११६वें सूक्तकी १५वीं ऋक्‌को पढ़नेसे मालूम होता है, कि खेल राजाकी पत्नी विश्पला युद्धमें गई थीं। उस युद्धमें उनका एक पैर कट गया था। रात्रिको आ कर अश्विद्वयने कटे हुए पैरमें लोहेका पैर जोड़ दिया। विश्पला इस "आयसी जङ्घा"के साहाय्यसे न्यस्तधनलाभार्थ फिर युद्धमें गईं।

पुनर्यौवनदान या Rejuvenation ।

१म मण्डलके ११६वें सूक्तकी १०वीं ऋक्‌में लिखा है,—"हे नासत्यद्वय! शरीरके आवरणको उतार कर फेंक देनेकी तरह तुम लोगोंने जीर्ण च्यवन ऋषिके शरीरसे जरा उतार कर उनको नवयौवन प्रदान किया था और तुम लोगोंने उन पुत्रादि त्यक्त ऋषिका जीवन बढ़ा दिया था और इसके उपरान्त तुम लोगोंने ही उनको कई स्त्रियोंका स्वामी बनाया था।" ऋग्वेदमें दूसरी जगह भी यह आख्यान दिखाई देता है। शतपथ-ब्राह्मणमें भी यह आख्यान है। महाभारत वनपर्वके च्यवन ऋषिका आख्यान किसीसे छिपा नहीं है।

विनष्टको प्राणदान या Resuscitation ।

उक्त ११६वें सूक्तकी २३वीं ऋक्‌में लिखा है, कि कृष्णके पुत्र स्तुतिपरायण विश्वकाय नामक ऋषिपुत्रकी मृत्युसे व्याकुल हो मृतपुत्र विष्णापुको ले अश्विद्वयके शरणापन्न हुए। इन्होंने उस विष्णापुकी मृतदेहमें प्राण डाला था।

मधु व अश्वविद्या ।

११६वें सूक्तकी १२वीं ऋक्‌के भाष्यमें सायणने लिखा है, कि इन्द्र दधीचिको प्रवर्ग्यविद्या और मधुविद्याका उपदेश दे कर गये थे, कि यदि तुम यह विद्या किसी दूसरेको कहोगे, तो तुम्हारा शिरश्छेदन करूंगा। अश्विद्वयने दधीचिका मस्तक काट कर उसको अन्य स्थानमें रख उस पर घोड़ेका शिर जोड़ दिया। इस तरह अश्विद्वयने दधीचिसे प्रवर्ग्य अर्थात् ऋक् साम यजु और मधुविद्याका अध्ययन किया था। इन्द्रने यह बात जान ली और दधीचिका घोड़ेका मस्तक काट डाला। अश्विद्वयने फिर मानवीय मस्तकको जोड़ दिया। दधीचिकी एक पौराणिक कथा प्रायः सभी जानते होंगे। आत्मत्यागी दधीचिने अपनी हड्डी इन्द्रको दी थी और उस हड्डीसे वज्र प्रस्तुत कर इन्होंने वृत्रका संहार किया था।

नामर्दको पुत्र ।

उक्त सूक्तकी १३वीं ऋक्‌के भाष्यमें सायणने लिखा है,—किसी एक राजर्षिकी वध्रिमती नामकी एक पुत्री थी। इसका स्वामी नामर्द था। वध्रिमतीने पुत्रके लिये अश्विद्वयको बुलाया। वे वहां आये और इन्होंने उसको हिरण्यहस्त नामक पुत्र दान किया।

वैज्ञानिक परिचय ।

अश्विद्वयने कौशलसे नदीका जल खींच कर कूप प्लावित किया था (१म। ११२ सू०)। ऋचत्कके पुत्र शर नामक स्तोताके पीनेके लिये इन्होंने कूपका जल ऊपर उठा दिया। गौतम ऋषिके पास कुआं ले गये, उसका तल भाग ऊंचा और मुख नीचा कर दिया था। उस कूपसे तृषित गौतमके पीनेके लिये और सहस्र धनलाभार्थ जल ऊंचा उठ आया था।
(११६ सू० ९ ऋक्)

कुष्ठरोगकी चिकित्सा ।

११७वें सूक्तकी ७वीं ऋक्‌के भाष्यमें सायणने लिखा है, कि घोषा नाम्नी ब्रह्मवादिनी कक्षीवानकी दुहिता थी, वह कुष्ठरोगग्रस्त थी। इससे उसका विवाह नहीं हुआ। इस कारण वह अधिक उम्र तक पिताके घरमें अविवाहिताके रूपमें पड़ी रही। पीछे अश्विद्वयकी

चिकित्सासे वह रोगमुक्त हो गई और उसका विवाह भी हो गया। कुष्ठो श्याध्या नामक ऋषिने भी अश्विद्वयकी चिकित्सासे आरोग्य लाभ कर दीप्तिमती त्वचा पाई थी।

अन्ध और बधिरचिकित्सा।

इसी सूक्तकी ८वीं ऋक्‌से यह भी मालूम होता है, कि कण्व ऋषिकी आंखें न रहनेसे वह चल फिर नहीं सकते थे। अश्विद्वयने उनको नेत्र प्रदान किया था। नृषत्-पुत्र बधिर हो गये थे। किसीकी बात सुन नहीं सकते थे। वे भी अश्विद्वयकी चिकित्सासे आरोग्य हुए थे।

त्रिखण्डित देहमें प्राणदान।

११७वें सूक्तकी २४वीं ऋक्‌में लिखा है, कि श्याध्या ऋषिको शत्रुओंने तीन टुकड़े कर दिये थे। अश्विद्वयने उस त्रिखण्डित देहको जोड़ कर सजीव किया था। शल्यतन्त्र या सर्जरीमें अश्विद्वयका जैसा प्रभाव और प्राधान्य कहा गया है, अन्यान्य चिकित्सामें भी उसकी अपेक्षा उनके चिकित्सागौरवमें कमी नहीं पाई जाती। आधुनिक चिकित्साविज्ञान जिन सब अद्भुत कर्म-साधनके निमित्त धीरे धीरे आशान्वित हो रहा है, ऋग्वेद चिकित्सक अश्विनीकुमारद्वय उन सब विषयोंमें विशेष दक्ष थे।

वैदिक ऋषि इसके लिये प्रार्थना करते रहते थे, जिससे उनकी देह नीरोग रहे और सुदृष्टिके साथ एक सौ वर्षसे अधिक दिनों तक वे जीते रहें। जैसे—

"उत् पश्यन्नश्नुवन्दी र्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम्।"

(१।११६।२५)

स्वास्थ्यतत्त्व या Hygiene।

ऋग्वेदके समयमें इसलिये लोग औषधकी व्यवस्था करते थे, जिससे आजीवन जरा द्वारा आक्रान्त न होना पड़े। इसका दृष्टान्त च्यवन ऋषिके प्रसङ्गमें दिया गया है। सूर्य जगत्‌के पवित्रतासाधक हैं, सूर्यकी किरणोंसे जगत् शुचि होता है। साथ ही कई तरहके दोष सूर्य द्वारा विनष्ट होते हैं। आर्य ऋषियोंने ऋग्वेदीय स्तोत्रमें सूर्यके इस तरहके विविध गुणोंको जान कर उनका स्तव किया है। सूर्य कर विस्तार कर विश्वका पुष्टिसाधन करते हैं।

"विश्वस्य हि पुष्टये देवा ऊर्द्ध्वं प्रवाह वा पृथुपाथि विपार्त्ते"

(१।३८।२)

अग्निका दूसरा नाम पावक है। ऋग्वेदमें इस अर्थसे बहुत स्थानोंमें अग्निका स्तोत्र है। मरुद्गण हमारे प्राण हैं और मरुद्गण हो हमारे जीवनके सहायक है, इस स्तोत्रका भी ऋग्वेदमें अभाव नहीं है। जिस जलके गुणकी व्याख्याको ले कर आज कलके वैज्ञानिकगण निरन्तर विव्रत हैं, एलोपेथिक चिकित्साविज्ञानमें जो जल औषध कह कर कल्पित हुआ है, जर्मनदेशके आधुनिक हाइड्रोपैथिकोंने जिस जलको रोग-प्रतीकारका एकमात्र उपाय निर्देश किया है, ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋषियोंने उस जलकी नैरुज्यसम्पादनी शक्ति (Vismedicatrix Naturae)के सम्बन्धमें कैसा अभिप्राय प्रकाश किया है, वह भी देखिये—

"आपः इद्वा उ भेषजी रापो अमी वचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वं तु भेषजम्॥"

(१०।१३७।६)

अर्थात् जल ही औषध, जल ही रोगशान्तिका कारण और जल सब रोगोंकी औषध है। जल तुम लोगोंकी औषध विधान करे।

"अप्सु अन्तः अमृतम्, अप्सु भेषजम्, अपां उत प्रशस्तये देवाः भवत वाजिनः।" (१।२३।१९)

जलमें अमृत है, जलमें हो औषध है, इसकी ऋक्‌में भी देखिये,—

"अप्ऽसुमें सोमः अब्रवीत् अन्तः विश्वानि भेषजाः।
अग्निं च विश्वऽशम्भूवं आप च विश्वऽभेषजाः॥"

अर्थात् जलमें सब औषध है। सोमने हमसे ऐसी बात कही है और जगत्‌के सुखके लिये अग्नि है।

(तैत्तिरीयसं० २।६।६।७)

ऋग्वेदमें और भी लिखा है—

"आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ज्योक च सूर्यं दृशे।"

(१।२३।२०)

हे आपः! मेरे शरीरके लिये रोगनिवारक भेषज परिपुष्ट करो।

सामवेदीय सन्ध्यावन्दनके प्रारम्भभागमें भी इसी तरह जलके गुणका कीर्त्तन है—

तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें भी लिखा है —

"अश्वातवाही भेषजम् त्वंहि विश्वभेषजः ॥"

(तै० ब्रा० २।४।१।७)

"आपो वचामि भेषजम्"—(तै० ब्रा० २।५।८।२)

स्नान, आहार, पान, निद्रा, वायुसेवन और देहसञ्चालन विषयमें भी यथेष्ट हितकर वैदिक उपदेश हैं। कल्प, गृह्यसूत्र और स्मृतियोंमें वे सब वैदिक उपदेश भरे पड़े हैं।

वायुके सम्बन्धमें भी १०वें मण्डलके १३७वें सूक्तमें ऐसा स्तोत्र है—

"द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥
आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥"

अर्थात् समुद्र तक और तो पथा दूरवर्ती स्थान तक ये वायु बहती हैं। एक वायु तुम्हारे बलाधान करनेमें आगमन करे; दूसरी वायु तुम्हारे पाप ध्वंसके लिये बहती रहे। हे वायु! तुम इस ओर ओषधियोंको उड़ा लाओ, जो वस्तु हमारे लिये अहितकर है, उसे यहांसे ले जाओ। क्योंकि, तुम ही संसारके ओषधिस्वरूप हो। तुम्हीं देवताओंके दूत बन जाओ।

इसके बाद और भी लिखा है—हे यजमान! तुम्हारे मङ्गलके लिये मैंने शान्ति स्वस्त्ययन किया है, तुम्हारे मङ्गलके निवारणके लिये कार्य भी किया है, जिससे तुम्हारा उत्तम बलाधान हो, वह भी किया है। तुम्हारा रोग मैं अभी दूर कर देता हूं। देवता तुम्हारी रक्षा करें, मरुद्गण तुम्हारी रक्षा करें, चराचर रक्षा करें, यह व्यक्ति नीरोग हो।

इसी तरह बहुतेरे स्तोत्रोंमें स्वास्थ्यरक्षाके शक्ति-विशिष्ट प्राकृत पदार्थोंका स्तव ऋग्वेदमें मिलता है। १०वें मण्डलके १८६वें सूक्तको भी देखना चाहिये। ऐसा मालूम होता है, कि इन सब स्तोत्रोंमें यथेष्ट वैज्ञानिक तथ्य निहित हैं।

विषतत्त्व और विषचिकित्सा Toxology

१म मण्डलके १९१वें सूक्तमें विषतत्त्व और विष-चिकित्साकी विस्तृत आलोचना देखी जाती है। जल, तृण और सूर्य इस सूक्तके देवता अल्पविष प्राणी, महा-विषप्राणी (जलचर और स्थलचर) शङ्कर प्राणी और अदृश्यरूप (Pathogenic germs) विषकी बात हम इस सूक्तकी पहली ऋक् में देखते हैं। अदृष्ट विषधर-की बात स्पष्टतः इस ऋक् में उल्लिखित है। जैसे—

"नि अदृष्टाः अलिप्सत"

इस ऋक् से जान्तवविष और अदृष्ट (जान्तव और उद्भिज) की बात जानी जाती है। इस सूक्तकी दूसरी ऋक् में अदृष्ट विष प्रशमनकी बात कही गई है। औषध आ कर अदृष्ट विषको नाश करती है। जिसके द्वारा रोग आरोग्य होता है, वही भेषज है। जल, वायु ताप, उपवास, मन्त्र ये सभी भेषजकी संज्ञामें आ जाते हैं। तीसरी ऋक् में उद्भिज आदिमें विषका स्थान निर्धारित किया गया है। शर, कुशर, दर्भ, शैर्य, मुञ्ज, वीरण, आदिमें विषधर अवस्थान करते हैं। पांचवीं ऋक्में लिखा है:—

"एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन् प्रदोषं तस्करा इव।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥"

रातमें ये सब विष तस्करकी तरह दिखाई देते हैं, ये अदृश्य होने पर भी सारे जगत्को देखते हैं। सुतरां हे जन! सावधान हो।

कहनेका प्रयोजन नहीं, कि इसका अर्थ गभीर वैज्ञानिक तथ्य मूलक और निगूढ़ है।

८वीं ऋक्में लिखा है, पूर्व ओर सूर्य उदित होते हैं, वे सारे विश्वको देखते हैं और अदृष्टवैरियोंका विनष्ट करते हैं। वे समस्त अदृष्ट दिक्का और यातुधानोंका नाश करते हैं। सूर्यके उत्तापसे जो तरह तरहके वीजाणु (Pathogenic germ) विनष्ट होते हैं, यह आधुनिक चिकित्साविज्ञान आकाङ्क्ष्य सिद्धान्त है। आर्द्र अन्धकार स्थानमें ही अदृष्ट विषका प्रादुर्भाव है। पूर्व ऋक्में इसका परिचय मिलता है। फलतः प्लेग आदि भयङ्कर संघातक रोगके वीजाणु ऐसे स्थानोंमें ही प्रभाव उत्पादन करते हैं, यह नये विज्ञानका भी दृढ़

सिद्धान्त है। मलेरिया प्रभृति विष रात्रिकालमें ही प्रभाव प्राप्त करता है। वैदिक ऋषिने इस सूक्तकी ९वीं और १०वीं ऋकोंमें दृढ़ताके साथ सूर्यका विनाशकता-गुणके सम्बन्धमें उल्लेख किया है। शकुन्तिका नामके छोटे छोटे पक्षी भी अनेक प्रकारके विषोंका नाश करते हैं। १२वीं ऋक्‌में लिखा है,—इक्कीस अग्निस्फुलिङ्ग विष नाश करे। यह भी वैज्ञानिक सिद्धान्त सम्मत है। १३वीं ऋक्‌में लिखा है,—"मैं सब विषविनाशक नवों नदियोंका नाम लेता है।' नदी-प्रवाहमें विष नाश होता है। यह भी आधुनिक चिकित्साविज्ञानके सिद्धान्तित सत्य है। नकुल, इक्कीस तरहकी मयूरियों और सात नदियोंके विषनाशक गुणका कीर्त्तन किया गया है।

७वें मण्डलके ५०वें सूक्तमें सर्पविष और अन्यान्य विषका उल्लेख है। नाना प्रकारके विषका उल्लेख इस सूक्तमें दिखाई देता है। यथा—"कुलायकारी और सर्वदा वर्द्धमान विष", "अजका नामक रोगजनक दुर्दर्शन-विष", वृक्षादिके पर्ण स्थानमें उद्भूत "जानु और गुल्फ-स्फीतिकर वन्धनविष", "शाल्मलीमें उत्पन्न विष", "नदीजलस्थ उद्भिदुत्पन्न विष" इत्यादि बहुतेरे विषोंकी बात लिखी है। परवर्त्ती चिकित्सा शास्त्रमें "अगदतन्त्र" नामक चिकित्साङ्ग विभागमें विष और विष चिकित्सा-का वर्णन है।

यजुर्वेदमें भी वैद्यकशास्त्रका पूरा उल्लेख है।

आयुर्वेद शब्दमें देखो।

अथर्ववेद और आयुर्वेद।

यद्यपि ऋग्वेद और यजुर्वेदमें वैद्यकशास्त्रका यथेष्ट उल्लेख दिखाई देता है तथापि यथार्थमें अथर्ववेद ही वैद्यकशास्त्रका मूलग्रन्थ है और आयुर्वेद अथर्ववेद-का उपवेद है। ऐसा चरक और सुश्रुतने अपने अभि-मत प्रकाश किये हैं। "आयुर्वेद" शब्दमें इसका पूर्ण रूपसे विचार किया गया है। यहां अथर्ववेदसे वैद्यक के सम्बन्धमें कुछ अलोचना की जाती है।

अथर्ववेदके भैषज्य, आयुष्य, आभिचारिक, कृत्या-प्रतिहरण, स्त्रीकर्म्म, सामनस्य, राजकर्म और पौष्टिक आदि व्यापार वैद्यक शास्त्रके बीजस्वरूप हैं। शान्ति स्वस्त्ययन और माङ्गल्य कर्मादि भी "भैषज्यों" के अन्तर्गत है। अथर्ववेदके अधिकृत कौशिकसूत्रके २५ से ३२ अध्याय तक वैद्यकशास्त्रकी आलोचनासे परिपूर्ण है। अथर्ववेदके ब्राह्मण ग्रन्थमें और अन्यान्य सूत्र-ग्रन्थमें भी वैद्यकके आलोचित विषयका उल्लेख है। इन सब विषयोंमें अथर्ववेदमें बहुप्रकार औषध और बहुप्रकार-की चिकित्साका विवरण दिखाई देता है। अथर्ववेदके मन्त्रोंमें जो अस्पष्टरूपसे उल्लिखित हुआ है, सूत्र-ग्रन्थमें वे सब विषय विवृत हुए हैं। फलतः जगत्‌के अति प्राचीन कालमें चिकित्साप्रणाली कैसी थी, अथ-र्ववेद और तदन्तर्भुक्त ब्राह्मण और सूत्र ग्रन्थ आदिमें उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है।

प्राचीन अथर्ववेदमें ज्वर, यक्ष्मा, अतिसार आदिका लक्षण है। वर्त्तमान आयुर्वेदमें भी ये दिखाई देते हैं। अथर्ववेदमें ज्वर "तक्मन" नामसे और अतिसार "आस्रव" नामसे अभिहित हुआ है। अथर्ववेदमें जिन सब रोगों और उद्भिदोंके नाम आये हैं, उनमें सबका सम झना बड़ा कठिन है। रोग और भूतादि ग्रस्त रोगोंकी पृथक्‌रूपसे आलोचना नहीं की गई है। जो सब रोग औषध आदि द्वारा चिकित्सायोग्य हैं, उन सब रोगों-में भी मन्त्र और यन्त्र (तावीज़) द्वारा चिकित्सादिकी व्यवस्था की गई है। ये सब तावीजे प्रायः उद्भिज्ज द्रव्यसे ही प्रस्तुत होते थे। अथर्ववेदकी चिकित्सा-प्रणाली बहुत अद्भुत थी। कामलारोगमें देहका रंग पीला हो जाता है। सुतरां पीत पदार्थोंमें ही रोगोंके पीत वर्ण भेजनेके लिये प्रार्थना की जाती थी। तक्मन या ज्वर होने पर शरीर गर्म हो जाता है। सुतरां शीतल पदार्थ ही उसे भेजना कर्त्तव्य है। इसके लिये मेढ़ककी देहमें ज्वरोत्ताप प्रेरण करनेके लिये मन्त्र पढ़ा जाता था। (अथर्ववेदका १।१२ और ७।११६ सूक्त देखो) अथर्ववेदके ५।४ और १६।३६ मन्त्रमें ज्वररोगके प्रतिकारके लिये कुष्ठ नामक उद्भिद्‌के आह्वान और स्तोत्र दिखाई देता है। इसी तरह क्षत रोगके प्रतीकारके लिये काली मिर्चकी स्तुति भी (६।१०९) है।

तक्मन या ज्वर रोगी अथर्ववेदके समय यथेष्ट सु-विदित थे। ज्वर उस समय भी ज्वर नामसे विख्यात

नहीं हुआ था। इसका 'तक्मन' नाम अथर्ववेदके बाद दूसरे किसी ग्रन्थमें दिखाई नहीं देता।

अथर्ववेदमें ज्वररोगचिकित्साके चार स्तोत्र (१।२५, ५।२२, ६।२०, ७।११६) और इसलिये कुष्ठ वृक्षके दो स्तव (५।४, १९।३९) हैं। सुश्रुतने ज्वरको रोगका राजा कहा है। अथर्ववेदमें भी ज्वरका स्थान ऐसा ही उच्चतम कहा गया है। ज्वररोग मनुष्योंके लिये अति भयानक रोग है, ऐसी धारणा उस प्राचीन समयके ऋषियोंकी भी थी।

अथर्ववेदमें ज्वरके लक्षण।

इस समय मलेरिया ज्वरके जो लक्षण देखे जाते हैं, अथर्ववेदके ज्वरके वैसे ही लक्षण हैं। रोगोंका कम्प द्वारा ज्वर चढ़ना था। इसके बाद देहमें ज्वाला होती थी, प्रत्येक दिन निर्दिष्ट समयमें ज्वर आना या एक दिन पीछे दूसरे दिन अथवा दो दिनके बाद एक दिन—इस तरह ज्वर आता था। इस ज्वरमें कामलारोग हो जाता था। वर्षाकालमें ही ऐसे ज्वरका प्रादुर्भाव होता था। इसके साथ शिरमें पीड़ा, खाँसी, श्वास, उद्युग और पामा (खोप) रोग भी दिखाई देते थे। ज्वरका प्रधान लक्षण उत्ताप है। अग्नि ही इसका हेतु है। स्तव स्तुति और कुष्ठ वृक्षके और जङ्गिड़ वृक्षके द्वारा प्रस्तुत ताबीजसे ही इस "तक्मन" रोगका प्रतिकार किया जाता था। भेकका स्तव भी (७।११६) अनेक समय ज्वर-चिकित्सामें प्रयोजनीय होता। कौशिक सूत्रमें भी इसका उल्लेख दिखाई देता है।

जलोदर।

अथर्ववेदमें जलोदर रोगका भी वर्णन आया है। यह रोग वरुणका दिया हुआ है। जो अनृतवादी हैं, उनके पापके लिये ही वरुणने इस रोगका प्रेरण किया (१।१०; ७।८३; ६।२४)। शेषोक्त मन्त्रमें यह भी कहा गया है, कि यह रोग हृद्रोगका सहचर है। यह रोग-निर्णय आधुनिक विज्ञानके सिद्धान्तसे मिलता है। मन्त्रमें और सूत्रमें जल ही इस रोगकी औषध कही गई है। यह अवश्य होमिओपैथिके सिद्धान्तके अनुकूल है। हेतुसदृशचिकित्सा परवर्त्ती समयमें आयुर्वेदमें भी स्वीकृत हुई है।

आस्रव—अतिसार

अथर्ववेदमें आस्रव या अतिसारकी चिकित्सा भी (१।२) देखी जाती है। इसीलिये "विघातकार" स्तोत्र (२।३, ६।४४) है। भाष्यकारने आस्रवरोगको अतिसार रोग कह कर व्याख्या की है। आस्रव शब्द मूत्रातिक्रम या इसी तरह शरीरके किसी प्रकारके रसके क्षरणातिक्रम-में व्यवहृत होता था। कोष्ठबद्ध या मूत्रबद्धरोगकी चिकित्सा भी उक्त हुई है (१।३)। कौशिकसूत्रमें भी (२५।१०-१९) इन दोनों रोगोंकी चिकित्सा है। शूलकी चिकित्सा (६।९०) एवं कौशिक सूत्रको (३१।१) देखो। वल्कमसे छेदनेकी तरह कथा होता है, इससे वल्कम आकारका ताबीज बनानेकी व्यवस्था है।

क्षयरोगकी पीड़ा।

अथर्ववेदके ऋषियोंने विविध पीड़ाओंके नाम और चिकित्साका उल्लेख किया है। श्वास (६।१४) खाँसी (६।१०५, ७।१०७), यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, अज्ञात-यक्ष्मा, पापयक्ष्मा आदिका उल्लेख (२।३३, ३।११, ६।८, १९।३६), पक्षाघात (लकवा)की चिकित्सा भी देखी जाती है। "क्षेत्रिय" नामकी एक पीड़ाका (२।८-१०, ३।७) उल्लेख है। सम्भवतः उपदंश आदि रोग इस श्रेणी-के अन्तर्भुक्त है। सिवा इसके जो सब रोग वंश-परम्परासे उद्भूत होता आता है, वे भी 'क्षेत्रिय' रोग कहा गया है। "सर्वभैषज्य" और भी कितने ही रोगोंका उल्लेख (२।३३; ६।८; १९।२४) है।

चर्म पीड़ा।

किलासरोग कुष्ठका ही दूसरा नाम है। रजनी और श्यामा उद्भिद्से यह रोग प्रशमित होता है। अन्यान्य रोगोंके साथ विद्रधि-रोगकी चिकित्सा भी (१।२३, २ और ८, २०) अथर्ववेदमें दिखाई देती है। अपचित अर्थात् अपची रोगकी चिकित्साका यथेष्ट बाहुल्य ६।२५, ६।५७, ७।१४, १।२, ७।७६, १।२, ७।७८ में दिखाई देता है। गण्डमाला, अर्बुद आदि इसी नामसे अभि-हित होते हैं। ये सब रोग मन्त्रसे विताड़ित किये जा सकते हैं, इसके विधान हैं। पक्षी जैसे वृक्ष पर आश्रय लेते हैं, वैसे ही ये सब रोग भी मनुष्योंके शरीरमें अव-

स्थान करते हैं, ऐसा ही ऋषियोंका विश्वास था। मन्त्रसे इनको उड़ा देनेके लिये बहुतेरे स्तव स्तुति दिखाई देते हैं।

अथर्ववेदमें सर्जरीकी चिकित्सामें क्षतचिकित्सा और भग्न (Tractures) चिकित्साका भी विधान है। वह विधान केवल मंत्र ही है (४।१२; ५।५) अरुन्धति और लाक्षी वृक्षके स्तोत्र द्वारा क्षत और भग्न (टूटने)की चिकित्सा की जाती है। रक्तप्रवाह निरोधके लिये भी मन्त्र है (१।१७)।

सिवा इसके सर्पविद्या और विषविद्याका उल्लेख भी अथर्ववेदमें (५।१३, ५।१६, ६।१२, ७।५६, ७।८८) दिखाई देता है। अथर्ववेदके अन्तर्गत गरुड़ उपनिषद् सर्पविषका ही प्रतिषेधक मन्त्र और उपायस्वरूप है।

क्रिमी (मनुष्यकी क्रिमी, पशुओंकी क्रिमी और शिशुओंकी क्रिमी) चिकित्सा (२।३१, २।३२ और ५।३३) अथर्ववेदमें आलोचित हुआ है। अथर्ववेदमें अनेक तरहकी क्रिमियोंका उल्लेख है। शिरकी जूँ भी क्रिमीके नामसे अभिहित होता है। परवर्त्ती चिकित्सा शास्त्रमें बीसों प्रकारकी क्रिमियोंका उल्लेख दिखाई देता है। चक्षुरोगमें भी (आँखका आना) अलपायु सर्षपका स्तोत्र है। कर्णरोगके नाम भी (६।८, १।२) अथर्ववेदमें उल्लिखित हैं।

अथर्ववेदके पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस समय केशका बहुत आदर था। उससे शिरमें सुदीर्घ घनकृष्ण कुन्तल राशि जनती है। उसके लिये मंत्रस्तोत्र भी यथेष्ट (६।२१, १३६, १३७ और ६।१३७।३) है। नितनी नामके एक प्रकारके उद्भिद्‌का उल्लेख है, इससे केशवृद्धिके उपायकी कल्पना होती थी।

शोक हर्षणके लिये भी कितने ही मंत्रोंका उल्लेख है (४।४, ६।७२, और ६।१०१)। उन्मादरोग गंधर्व, अप्सरा, राक्षस आदिकी दृष्टि बाँध दी जाती थी। बकरेका सींग, मेड़का सींग और विशाली प्रभृति द्वारा राक्षस आदिकी दृष्टि दूर या भगाई जा सकती है। शांत काष्ठका ताबीज (२।६) धारण करनेके लिये उपदेश दिया गया है। सिवा इसके भूतादि ग्रहशांतिके और राक्षस और पिशाचादिके उत्पात-प्रशमनके लिये भी मंत्रादि हैं (४।३६ और ३।३२)। इस तरह चिकित्सादिकी व्यवस्था की गई है।

आयुष्याणि

इसके लिये औषधका प्रयोग किया जाता है, जिससे आयुकी वृद्धि हो सके। जल, वृक्ष आदिसे सब तरहके रोगोंसे देह विमुक्त रहनेकी प्रार्थना की जाती (६।२५, ६।६५, ६।१२७, १६।३८, ६।६१, १६।५४, ।६६, ८।७) थी।

आयुर्वृद्धिके लिये अग्निसे भी प्रार्थना की जाती थी। अग्नि ही आयुके देवतारूपसे गिनी जाती (२।१३।२८, २६, ७।३२) थी। आयुर्वृद्धिके लिये सोनेका ताबीज व्यवहृत होता (१६, २६) था; अञ्जनका भी प्रचलन (४।६, १६, ४४—४५) था। आयुष्य स्तवोंमें १।३०, ३।११, ५।२८, ३०, ६।४१, ५२, १६, २४, २७, ५८, ७० आदि स्तोत्रोंको देखना चाहिये।

सिवा इसके भूत प्रेत पिशाच दैत्य दानवादि दूर करनेके लिये भी अथर्ववेदमें कई तरहके मन्त्र और प्रक्रियायें दिखाई देती हैं। शत्रुदमनके लिये भी कई तरहकी आभिचारिक प्रक्रियायें थीं। स्त्री-वशीकरण और पुरुष-वशीकरण आदि प्रक्रियायें भी देखी जाती थीं, सब विषय वैद्यकके अन्तर्गत नहीं। किन्तु इन सब बातोंके लिये भी औषध आदि व्यवहृत होती थी।

ब्राह्मण ग्रन्थमें और उपनिषद्‌में भी देहविज्ञानका सूक्ष्मतत्त्व आलोचित हुआ है। अन्न प्राण मन आदि कोष सूक्ष्मतत्त्वोंसे परिपूर्ण है। हम उपनिषद्‌में सूक्ष्म शरीर बहुत तथ्य देखते हैं। सिवा इसके हृत्पिण्ड और धमनी प्रभृतिके भी यथेष्ट तथ्य हैं। विषय बढ़ जानेसे यहां उपनिषद्‌के शरीर-विज्ञानकी आलोचना न की गई। छान्दोग्य उपनिषद्‌से हृत्पिण्ड और धमनी प्रभृतिके केवल एक उदाहरणका उल्लेख किया जाता है—"अथ या एता हृदयस्य नाड्यस्ताः पिङ्गलस्याणिम्नस्तिष्ठन्ति नीलस्य पीतस्य लोहितस्येत्यसौ वा आदित्यः पिङ्गल एषः शुक्ल एषः नील एषः पीत एषः लोहितः" (छान्दोग्य ८।६।१) अर्थात् हृत्पिण्डकी नाड़ियां पिङ्गल, श्वेत, नील, पीत और लोहित हैं। इस श्रुतिके

शाङ्कर भाष्यमें शरीर विषयक या फिजिओलजीका अद्भुत तत्त्व दिखाई देता है।

छान्दोग्य उपनिषद्के उक्त खण्डके अन्तिम मन्त्रमें लिखा है—

"शतं चैका हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभि निःसृतैका। तयोर्द्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्त्युत्क्रमणे भवन्ति। ६।"

अर्थात् हृत्पिण्डकी १०१ धमनियां हैं। इनमेंसे एक मस्तिष्कमें फैली है। इस नाड़ीके पथमें ही अमृत धाम प्राप्तिका पथ प्राप्त होता है। अन्यान्य नाड़ियाँ अन्यान्य कई ओरके उत्क्रमणके पथ हैं। इनके भाष्यमें शङ्करने कहा है, कि मानवदेहमें असंख्य नाड़ियां हैं, इनमें १०१ ही प्रधान हैं। इन नाड़ियोंके पथमें जीवात्मा उत्क्रमण करती है। इनमें एक ही ब्रह्मनाड़ी है; उसी ब्रह्मनाड़ीके पथसे जीव अपनी साधनाके फलसे ब्रह्मलोकमें गमन करता है।

अन्यान्य उपनिषदोंमें भी देहतत्त्वकी आलोचना दिखाई देती है।

आयुर्वेद-युग (आचार्य-युग)।

भरद्वाज, अङ्गिरा, जमदग्नि, आत्रेय, गौतम, अगस्त्य, वामदेव, कपिष्ठली, असमर्थ, कुशिक, भार्गव, काश्यप, काप्य, शर्कराक्ष, शौनक, मैत्रेय, मन्मतायनि, अग्निवेश, सुश्रुत, नारद, पुलस्त्य, असित, च्यवन, पैङ्गी, धौम्य आदि बहुतेरे आचार्योंने चिकित्सा-संहिता ग्रन्थ प्रणयन किये थे। सुश्रुतसंहितामें जरायु भ्रूण विकाशमें इन सब आचार्योंका नाम दिखाई देता है। पाणिनिके व्याकरणमें पतञ्जलिके महाभाष्यमें और पुराणोंमें भी इन सब संहिताओंका नाम दिखाई देता है। पाणिनिके पूर्व समयमें इस देशमें आयुर्वेदकी यथेष्ट उन्नति हुई थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। पाणिनिके व्याकरणमें अनेक सूत्रोंमें भी इसका परिचय मिलता है। जैसे,—

(१) शिशुक्रन्दयमसभद्वन्द्वेन्द्रजननादिभ्यश्छः ४।३।८८
(२) परिमाणान्तस्यासंज्ञाशाणयोः। ७।३।१७
(३) क्वार्याः प्राचाम् ५।४।१०
(४) प्रार्या ईकन् ५।१।३३
(५) आढकाचितपात्रात् खोऽन्यतरस्याम् ५।१।५३
(६) लोमादि पामादि पिच्छादिभ्यः शनेलचः ५।२।१००
(७) सिध्मादिभ्यश्च ५।२।९७
(८) रोगाच्चापनयनमें ५।४।४९
(९) कालप्रयोजनाद्रोगमें ५।२।८१
(१०) अर्श आदिभ्योऽच् ५।२।१२७
(११) रोगाख्यायां ण्वुल् बहुलम् ३।३।१०८
(१२) कथादिभ्यष्ठक् ४।४।१०२

वैदिकयुगके बहुत बाद आयुर्वेद युगका सूत्रपात हुआ। किस युगसे चिकित्साशास्त्र शृङ्खलाबद्ध आकारमें प्रवर्त्तित हुआ, इसका निर्णय करनेका ऐतिहासिक कोई उपाय नहीं। किन्तु इसमें जरा भी सन्देह नहीं, कि चरक सुश्रुत आदिसे बहुत पहले ही आयुर्वेद सुप्रणालीबद्ध हो गया था।

चरक नाम अवश्य ही बहुत प्राचीन है। यजुर्वेदकी शाखा-गणनामें चरकशाखाका उल्लेख है। चरकशाखाके अन्तर्गत यजुर्वेदकी १२ शाखायें हैं। "चरक" पहले व्युत्पादनके लिये पाणिनीय व्याकरणमें भी एक सूत्र है। जैसे—"कठचरकाल्लुक्" ४।३।१०।

चरक-संहिता।

फलतः चरकसंहिता नामसे हम जो प्राचीन चिकित्साशास्त्र ग्रन्थ देखते हैं यह चरकवंशीय व्यक्तिविशेषका प्रवर्त्तित है। हम नागेशभट्ट रचित लघुमञ्जूषाको पढ़नेसे जान सके हैं, कि महाभाष्यकार पतञ्जलिने चरककी एक टीका लिखी थी। यथा—

"आप्त नाम अनुभवेन वस्तुतत्त्वस्य कात्स्न्येन निश्चयवान्।
रागादिवशादपि नान्यथावादी यः स इति चरके पतञ्जलिः॥"

भोज और चक्रपाणि दोनों ही इसके समर्थक हैं। चरककी आयुर्वेददीपिका नाम्नी टीकाके रचयिता चक्रपाणिदत्तने लिखा है,—

"पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हर्त्रेऽहिपतये नमः॥"

चरकके पूर्ववर्त्ती ग्रन्थ।

चरक-संहितामें वैदिक देवताके सिवा पौराणिक देवताका नाम नहीं मिलता। इससे भी मालूम होता है, कि यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन है। चरकसंहिता अतिप्राचीन होने पर भी इसके पूर्ववर्त्ती और भी छः संहिताओंका उल्लेख मिलता है। जैसे—

अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि—ये सभी आत्रेय मुनिके शिष्य हैं।

चरकने अग्निवेशका अनुसरण कर ही इस संहिताका प्रणयन किया। वाग्भटने भी अपने ग्रन्थमें हारीत और भेलके नामोंका उल्लेख किया है। भेल मुनिका दूसरा नाम "वेढ़" था। वेढ़संहिता अब भी प्रचलित है। चरकसंहिताका दूसरा नाम अग्निवेशसंहिता है। काश्मीरके चिकित्सक चरक इस संहिताको समाप्त नहीं कर सके। इसका शेष तृतीयांश कई शताब्दके बाद काश्मीरके दूसरे चिकित्सक दृढ़बल द्वारा रचित हुआ। दृढ़बल कपिलबलके पुत्र हैं। चक्रपाणिदत्तने चरककी टीकामें लिखा है, कि वर्त्तमान चरकसंहिताके चिकित्सित स्थानका १७वां अध्याय और कल्प स्थानका ७वां और ८वां अध्याय दृढ़बल द्वारा रचित हैं। चरकसंहितामें ३६० हड्डियां गिनी गई हैं। शतपथब्राह्मणमें भी इतनी ही हड्डियां बताई गई हैं। चरकसंहिता सर्वत्र प्रचलित ग्रन्थ है।

सुश्रुत संहिता।

सुश्रुत किसी व्यक्तिविशेषका नाम है या चरक शब्दकी तरह उपाधिविशेष है—इसका निर्णय करना कठिन है। अस्त्रोपचारमें इन्होंने ही आचार्ययुगके आचार्योंमें सविशेष पारदर्शिताके साथ ग्रन्थ लिखा है। ये शवव्यवच्छेद करते थे। इनकी संहितामें वस्त्रमय पुत्तलिका, अलाबु कर्दमपूर्ण भस्त्रिका प्रभृतिके साहाय्यसे अस्त्र या शस्त्रक्रियाके व्यवहारका उपदेश है। टूटी हुई हड्डियोंका जोड़ना, प्रणष्ट शल्यका खोजना और निकालना, व्रणका शोधन, रोपण, उत्सादन, अवसादन आदि सुश्रुतसंहितामें विशदरूपसे वर्णित है। प्रलेप द्वारा लुक्कायित शैल्यविनिर्णय करनेका उपाय था। विद्रधि या प्लीहाकी विद्रधि भेद करना, मूत्राशयसे अश्मरी (पथरी) काट कर फेंकना, यंत्र साहाय्यसे मूढ़गर्भ आहरण करना, आघात लगनेके कारण अंतड़ीके बाहर निकल आने पर उसे पुनः यथास्थान रखना और सिलाई करनेका उपाय सुश्रुतसंहितामें विवृत है। विवर्त्तन आवर्त्तनक्रमसे गर्भिणीके सुखप्रसवका उपाय लिखा हुआ है। धात्री परीक्षा, सन्तान परीक्षाके सम्बन्धमें विशेष उपदेश है। क्षतरोगमें धूपनकी व्यवस्था है। क्षतरोगीके शय्यासनादि तक धूपित होता था। सुश्रुतके मतसे राजयक्ष्मा, २१४ प्रकारके ज्वर, कई पापज व्याधि ये संक्रामक हैं। गर्भावस्थामें पाण्डुरोगमें रक्तकी लाल कणिकायें कम हो जाती हैं। रक्तातिसार और उरःक्षतमें आभ्यन्तरिक क्षतकी चिकित्सा करनी पड़ती है। राजयक्ष्मामें हृत्पिण्डमें कोटर उत्पन्न होता है। विसर्पकी अंतिम अवस्थामें रक्त विपाक हो जाता है। शस्त्रसाध्य रक्तार्बुद पक जाने पर जीवन कठिन, दर्वीकर (काले सांप) के काटने पर हृदयमें रक्तशून्यता होती है, इसलिये श्वास कृच्छ्रतासे मनुष्य मर जाता है। सन्निपात या विसूचिका रोगमें हृदयके रक्तका दबाव होते रहने पर चिकित्सातत्वके अनुसार सर्पविष उसकी महौषध है। इसके सिवा हृदयमें रक्त सञ्चालन क्रिया, शिरा, धमनी, स्नायु आदिका प्रसार या संस्थिति, रसादि धातुओंकी परस्पर परिणति, वातवाही शिरामण्डलीका कार्य्य आदि अतीव दक्षताके साथ सुश्रुतसंहितामें आलोचित हुए हैं। सुश्रुतसंहितामें लिखा है, कि रश्मिविन्दु अक्षितारकाके ऊपर पतित होता है, वही पदार्थकी रूपानुभूतिमें परिणत होता है। अर्थात् जैसे दो समकालांतर खद्योतस्फुलिङ्ग युगपत् खद्योतके अंतर और बहिर्जगत्को आलोकित करते हैं, आलोकरश्मि अक्षितारका पर पड़ कर उसी तरह बहिर्जगत्में रूप और अंतर्जगत्में रूपानुभूति हो जाती है। यह समकालांतरिन् है। यह सिद्धांत विज्ञानसम्मत है।

हम जो इस समय सुश्रुत प्रचलित देखते हैं, बौद्ध रसायनविद् नागार्जुन ही इसके संस्कारक हैं। डल्लनाचार्यने सुश्रुतकी टीकामें साफ तौर पर लिखा है—

"यत्र तत्र परोक्षे नियोग स्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्त्तृ सूत्रं ज्ञातव्यमिति प्रतिसंस्कर्त्तापीह नागार्जुन एव।"

सुश्रुतके उत्तरतंत्र नागार्जुन-रचित हैं। डल्लनाचार्यका कहना है, कि बौद्ध और हिन्दुओंमें जब घोरतर विवाद चल रहा था, तब सिद्ध नागार्जुनने सुश्रुत ग्रंथका उत्तरतंत्र प्रणयन किया। इसके पहले यह ग्रंथ सुश्रुत तंत्र नामसे विख्यात था। नागार्जुनके संस्कारके बादसे ही यह सुश्रुत तन्त्र सुश्रुतसंहिता नामसे प्रसिद्ध हुआ।

चरकसंहिता जैसी चिकित्साप्रधान है, सुश्रुत-संहिता वैसी ही फिर अस्त्रोपचार प्रधान है। चरक कायचिकित्सक-सम्प्रदायके अत्युज्ज्वल रत्न है, दूसरी ओर सुश्रुत धन्वन्तरि सम्प्रदायके गौरव उज्ज्वलतर रत्न है। धन्वन्तरि सम्प्रदायने अश्विनीकुमारद्वयसे शल्य और शालाक्य विद्याकी शिक्षा की। महाभारतके पढ़नेसे मालूम होता है, कि सुश्रुत विश्वामित्रके पुत्र हैं। भावप्रकाशमें चरक, सुश्रुत आदिके प्रादुर्भावके विषयमें विस्तृत विवरण लिखा है। टीकाकारोंने वृद्ध सुश्रुत नामसे प्राचीन सुश्रुत ग्रन्थकी बातोंका उल्लेख किया है।

सुश्रुतके सूत्रस्थानके सप्तम और अष्टम—इन दो अध्यायोंमें अस्त्रोपचारके यन्त्रविवरण और पचीस अध्यायमें अस्त्रोपचारकी प्रणाली लिखी हुई है। चरकसंहिताके भी दो स्थानोंमें अस्त्र-चिकित्साका उल्लेख दिखाई देता है। चरकके चिकित्सित स्थानमें उदरव्यवच्छेदकी प्रणाली लिखी हुई है। इसके शारीरस्थानके आठवें अध्यायमें मृतभ्रूण बाहर निकालनेकी प्रक्रिया विशदरूपसे विवृत हुई है। किन्तु इन दो स्थानोंमें कहीं कोई भी अस्त्रका नाम नहीं लिखा गया है। अष्टादश अध्यायमें उदररोगकी चिकित्सा कुल चरककी लिखी नहीं; वरं दृढ़बलकी लिखी है। दृढ़बल सुश्रुत पढ़ कर ही जलोदरके अस्त्रोपचारकी प्रणाली लिख गये हैं। जलोदरीका जल निकालनेके लिये सुश्रुतमें व्रीहिमुख नामक एक तरहके ट्रोकार (Trocar)का उल्लेख किया है। चरकमें जिस अस्त्रोपचारकी बात लिखी हुई है, यह सम्भवतः दृढ़बलके प्रतिसंस्कारका ही फल है।

सुश्रुतका टीकाकार।

चक्रपाणिदत्तने चरककी टीका और सुश्रुतकी भी एक टीका की थी। शेषोक्त टीकाका नाम भानुमती टीका है। सुश्रुतकी टीकाके दूसरे रचयिता डल्लनाचार्य हैं। डल्लनकी टीकाका नाम निबन्धसंग्रह है। डल्लनाचार्य सहानपाल राजाके समसामयिक थे। डल्लनने जेज्झन, गयदास और भास्करसे कृतज्ञता स्वीकार की है। इन सब व्यक्तियोंने डल्लनके पहले सुश्रुतकी टीका की थी।

बौद्धयुग।

बौद्धयुगमें इस देशमें चिकित्साशास्त्रकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। जीवोंके दुःख निवारणके लिये शाक्यसिंहका प्राण व्याकुल हो गया था। उनके शिष्यों और उस धर्मके धर्मावलम्बी विषयी व्यक्तियोंने मनुष्य और पशुओंकी चिकित्साके निमित्त स्थान स्थानमें चिकित्सालय संस्थापन किया। प्रियदर्शी राजा अशोकके राजानुशासनमें लिखा है, कि उन्होंने मनुष्य और पशु दोनोंके लिये चिकित्सालय स्थापन किये थे। अशोकके राजत्वकालसे ७५० ई० तक बौद्धोंका काल माना जाता है। इस समय आयुर्वेदकी उन्नति हुई थी। यूनान, मिस्र, एशिया-माइनर आदि दूर दूरान्तरमें आयुर्वेदकी महिमा प्रचारित हुई थी। नालन्द, राजगृह, गया, विहार, वैशाली आदि प्रधान प्रधान नगरोंमें चिकित्सागार, रुग्नावास (अस्पताल) और चिकित्साशिक्षालय (मेडिकल कालेज) संस्थापित हुए थे। इन सब चिकित्सालयोंमें बहुतेरी नई नई औषधियां आविष्कृत होती थीं। महावग्ग नामके पालि बौद्धग्रन्थमें दिखाई देता है, कि शाक्यसिंहके समयमें जीवक कोमरभच्चा नामके शाक्यसिंह एक चिकित्सक थे। यह जीवक अत्यन्त दरिद्रके सन्तान थे। बाल्यकालमें दारिद्र्यके कारण आहार और सुचिकित्साके अभावसे जीवक उदरामयरोगसे बहुत कष्ट पाते थे। इस अवस्थामें जीवकने विचारा, कि जगत्में ऐसे बहुत लोग हैं, जिन्होंने मेरे समान बहुत कष्ट भोग किया है। मैं यदि चिकित्साविद्या सीख सकूं, तो बहुत गरीबोंका कष्ट दूर करनेमें समर्थ हूंगा। यह सोच कर जीवक आयुर्वेद शिक्षार्थ तक्षशिलामें आ उपस्थित हुए। उस समय तक्षशिलामें आयुर्वेदीय विश्वविद्यालय था। प्रतिभावान् मेधावी जीवकने अत्यल्प समयमें (४ वर्षमें) आयुर्वेदमें अधिकार प्राप्त कर लिया। जीवकके आचार्यने जीवकके औषधि-ज्ञानकी परीक्षा करनेके लिये जीवकसे कहा, "जीवक ! इस थैलीको हाथमें ले कर एक योजन घूम आओ, राहमें जितनी औषधियां मिले, उनको इसमें संग्रह करते जाना।" चार पांच दिनके बाद राहके दोनों किनारोंके लतागुल्मोंको एकत्र कर जीवक ले

आये थे। जीवक साकेत नगरीमें आ कर एक विधवा रमणीके असाध्य शिरोरोगकी चिकित्सा करने लगे। विधवाने कहा, "बहुतेरे विज्ञ, बहुदर्शी, वृद्ध वैद्य मेरी इस व्याधिको आरोग्य कर न सके हैं। तुम बालक हो, तुम इस असाध्य रोगको कैसे दूर कर सकोगे।" जीवकने जवाब दिया, "विज्ञान बालक भी नहीं और न वृद्ध ही है।" उनकी चिकित्सासे विधवाको बड़ा उपकार हुआ या यों कहिये, कि वह पूर्ण आरोग्य हो गई। काशीमें एक आदमीको सन्निरुद्धगुद (Intersusception of the bowels) हुआ था। जीवकने उसके उदरमें अस्त्र (Laparatomy Operation) चिकित्सा कर अन्त्राव-रोध आरोग्य किया। राजगृहमें एक धनवान् वणिक्-के मस्तकका खर्पर खोल कर उसकी शिरःपीड़ाको शान्त किया। इस चिकित्सामें उन्होंने ऐसी दक्षता-से अस्त्र सञ्चालन किया था, कि उसका एक बाल भी स्पृष्ट नहीं हुआ था, मस्तकके सेवनी-(Suture) त्रयमें एक सेवनी भी आहत नहीं हुई थी। इस समय बुद्ध-देवका शरीर अस्वस्थ हुआ। प्रधान शिष्य आनन्दने जीवकको बुलाया। तीन खिले हुए पद्मपुष्पोंके पत्तों पर औषधचूर्ण छींट उसे सुंघा कर ही उनका रोग जीवकने दूर किया था। इस समय काङ्गालके पुत्र जीवकने बुद्धदेवको वैद्य होनेका सौभाग्य प्राप्त किया था।

वाग्भट

बौद्धयुगके ग्रन्थकारोंमें वाग्भटका नाम यहां प्रथम उल्लेख्य है। चरक और सुश्रुतके बाद ही वाग्भटका नाम आता है। वाग्भट या वाभट बौद्ध थे। ये सिन्धु-देशवासी थे। वाग्भटने चरक और सुश्रुतका सार संग्रह किया है। सिवा इन दो ग्रन्थोंके इन्होंने भेल और हारीतके ग्रन्थोंसे भी कुछ लिया है। ग्रन्थके उपसंहारमें वाग्भटने लिखा है,—

"ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद्ग्राह्यं सुभाषितम्॥"

अर्थात् प्राचीन ऋषिप्रणीत ग्रन्थ ही यदि प्रीतिजनक हो, तो केवल चरकसुश्रुत पढ़नेके सिवा भेलाद्य ऋषि प्रणीत ग्रन्थ क्यों नहीं पढ़ा जाता?

वाग्भटके ग्रन्थका नाम "अष्टाङ्गहृदय" है। अष्टाङ्ग हृदयका अर्थ यह है, कि आयुर्वेदी चिकित्साप्रणाली आठ भागोंमें विभक्त हुई है। उनके नाम इस तरह हैं,—

(१) कायचिकित्सा (Internal medicine) (२) शल्य (Major surgery) (३) शालक्य (Minor surgery) (४) भूतविद्या (Demonology) अथर्ववेदमें यह चिकित्सा विशेषरूपसे दिखाई देती है। (५) विष (Toxicology) (६) रसायन (Tonics) (७) वृष्य (Aphrodisiacs) (८) कौमारभृत्य (Paedotrophy)—ये सब विभाग चिकित्सामें अष्टाङ्गके नामसे प्रसिद्ध हैं।

वाग्भटने शल्यतन्त्रमें बहुतेरे नये तथ्योंका समावेश किया है। खनिज और समुद्रज लवणों (नमक)का उल्लेख भी इनके चिकित्साग्रन्थमें दिखाई देता है। क्वचित् कुत्रचित् पारदके व्यवहारका भी उल्लेख है। किसी किसी धातव औषधका व्यवहार भी अष्टाङ्गहृदयमें है। वाग्भट पहले ब्राह्मण थे। पीछे बौद्धधर्मावलम्बी हुए, ऐसा ही सुना जाता है। उनके ग्रन्थके प्रारम्भमें नमस्कारसूत्रसे ही इसका प्रमाण मिलता है, कि वह बौद्ध थे। मृगाङ्कदत्तके पुत्र अरुणदत्तने अष्टाङ्गहृदय-वाग्भटकी एक टीका की। इसका नाम "सर्वाङ्गसुन्दरी" है। सुप्रसिद्ध चतुर्वर्गचिन्तामणि नामक स्मृतिग्रन्थ-कार सुपण्डित हेमाद्रिने वाग्भटके सूत्रस्थानकी 'आयु-र्वेद रसायनाख्य' एक टीका की।

निदान।

माधवकर द्वारा संगृहीत सुप्रसिद्ध निदान ग्रन्थका परिचय देनेका कोई विशेष प्रयोजन नहीं। यह ग्रन्थ सर्वत्र ही सुप्रसिद्ध है। कविराजमात्र ही माधव-निदान पढ़ते हैं और तो क्या, वैद्यक शास्त्रमें जिनका कुछ भी पाण्डित्य नहीं है, वे भी माधवकरके निदानको पढ़ते हैं। विजयरक्षित इस ग्रन्थके 'मधुकोष' नामकी जो टीका कर गये हैं, वह अत्यन्त उपादेय और यथेष्ट पाण्डित्यपूर्ण है। सम्भवतः ८वीं शताब्दीमें यह ग्रन्थ रचा गया था। वाचस्पतिकृत "आतङ्कदर्पण" नामकी इसकी एक और भी टीका है।

सिद्धयोग।

वृन्द नामक एक चिकित्सक सिद्धयोग ग्रन्थके

रचयिता हैं। वृन्दने चरक, सुश्रुत और वाग्भटका पदाङ्क अनुसरण कर उद्भिज्ज औषधका व्यवहारजनक सिद्धयोग ग्रन्थ प्रणयन किया था। हम इसके बाद चक्रपाणिदत्त-के लिखे चक्रदत्त ग्रन्थमें भी इसका परिचय पाते हैं। जैसे-

"यः सिद्धियोगलिखिताधिकसिद्धयोगा।
नत्रैव निक्षिपति केवलमुद्धरेद्वा।"

वृन्दने माधवकरके निदानका अनुसरण कर सिद्ध-योग ग्रन्थ लिखनेका क्रमावलम्बन किया था।

चक्रदत्त।

चरक और सुश्रुतके टीकाकार चक्रपाणिदत्तने "चक्र-दत्तसंग्रह" नामक चिकित्सासम्बन्धमें एक उपादेयग्रन्थ-की रचना की। वृन्द और चक्रपाणि दोनों ही धातव द्रव्यादि औषधार्थ व्यवहार कर गये हैं। यद्यपि वाग्भटके समयसे ही धातव द्रव्य औषध रूपमें प्रचारित होना आरम्भ हुआ था, किन्तु वृन्द और चक्रदत्तने अधि-कतासे धातव पदार्थको औषधरूपमें व्यवहार किया था। ईसाके जन्मसे दश शताब्द बाद प्रायः प्रत्येक चिकित्सा-ग्रन्थमें न्यूनाधिक परिमाणसे धातव पदार्थका व्यवहार दिखाई देता है। चक्रपाणिदत्तके पिता महीपालके उत्तराधिकारी नेपालके राजचिकित्सक थे। ११वीं शताब्दीके प्रारंभमें चक्रपाणिदत्त ग्रन्थादि प्रणयन करने-में प्रवृत्त हुए। चक्रदत्तने चरक, सुश्रुत और वाग्भट-का पदाङ्क अनुसरण कर ग्रन्थ रचना की। इसी समय से वैद्यक चिकित्सामें तन्त्रका प्रभाव प्रचलित होने लगा। मन्त्रपाठ द्वारा भी औषधके गुण और क्रियादि वर्द्धित होती हैं, इनके ग्रन्थमें उसका भी उल्लेख दिखाई देता है। जैसे--

"अयं मन्त्रः प्रयोक्तव्यः भिषजाप्यभिमन्त्रणे। ॐ नमो विनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष, मम फलसिद्धिं देहि देहि रुद्रवचनेन स्वाहा॥"

चक्रपाणिके रसायनाधिकारसे भी इस तरहके कितने ही मन्त्र उद्धृत किये जा सकते हैं। चक्रदत्तकी व्यवस्थित औषधियां परमदृष्टफल कह कर किसी भी समयमें भिषकसमाजमें विख्यात थीं। इनके ग्रन्थमें इनके समय और इनके वंशादिका परिचय दिया हुआ है।

तान्त्रिक युग।

बौद्धयुगका प्रभाव और प्रतिपत्ति होनेके बाद ही तान्त्रिकयुगका आरम्भ हुआ। प्राचीन अथर्ववेदके समय लोगोंके हृदयमें जिन सब विषयोंकी प्राप्तिके लिये वासनाका अनल सर्वदा प्रज्वलित रहता था। तान्त्रिकयुगमें भी वे ही सब भाव दिखाई देने लगे। इन्द्रजाल, भूतविद्या और डामर आदिकी ओर लोगोंका ध्यान आकर्षित हुआ। एक श्रेणीके पण्डित रात दिन अपना मस्तिष्क सञ्चालन करने लगे, जिससे अन्यान्य धातुओंको सहज ही स्वर्णमें परिणत किया जाये। इस उद्देश्यसे वे कई तरहके धातव पदार्थ की परीक्षा करनेके लिये रात दिन मूषा जलाए रखते थे। अनुक्षण प्रज्वलित इस मूषेसे स्वर्ण, रौप्य, ताम्र और लौह, विशे-षतः पारद आदि विविध धातुओंकी परीक्षा की जाती थी धोखा दे कर प्रकृतिसे मूल्यवान् द्रव्य वसूल कर रातों रात धनी हो जानेकी इच्छा किसको नहीं है। फलतः तान्त्रिकयुगमें प्रकृतिके रत्नभण्डार पानेके लोभमें इस तरहकी एक साजिश चलने लगी।

दूसरी ओर रक्तचन्दनचर्चित रक्तवस्त्र और रक्तमाल्य-परिधायी, कृष्णशिरस्त्राणशोल भीषण भैरवाचार्य श्मशानमें पड़ी शवके वृक्ष पर बैठ शवसाधनमें प्रवृत्त हुए। सिवा इसके पञ्चमकारका प्रादुर्भाव भी यथेष्ट रूपसे प्रवर्त्तित हुआ। इन सब घटनाओंके बीचसे उसी समय तान्त्रिकचिकित्साका एक खर प्रवाह भी सहसा इस देशमें प्रवाहित होने लगा। इस समय शैव-तन्त्रके प्रादुर्भावसे बहुतेरे चिकित्सक पारदके तथ्यानु-सन्धानमें अधिकतर मनोयोगी हुए। उन्होंने पारदमें बहुतेरे गुण देखे। पारदका दूसरा नाम रस है। इस रसके सम्बन्धमें ऐसी विपुल आलोचना होने लगी, कि इस रसको लक्ष्य कर धातव द्रव्यादिकी परीक्षा और प्रयोगके सम्बन्धमें बहुतेरे ग्रन्थोंकी सृष्टि की गई। रस रत्नाकर, रसहृदय, रसेश्वर सिद्धांत, रसार्णव, रस-कौमुदी, रसेन्द्रचिंतामणि, रसेन्द्रसारसंग्रह और रसरत्न-समुच्चय आदि बहुतेरे ग्रन्थोंके आविर्भावसे तान्त्रिक चिकित्साका ग्रन्थाङ्ग परिपुष्ट हुआ। और तो क्या — सर्वदर्शनसंग्रहमें भी हम "रसेश्वरदर्शन" नामक पारद-माहात्म्यपूर्ण एक दर्शन शास्त्र भी देखते हैं।

यद्यपि पारद-चिकित्साका प्राधान्य प्रदर्शनार्थ इन सब ग्रन्थोंके नामकरणमें ग्रन्थके नामके पहले 'रस' शब्द प्रयुक्त होता है; किन्तु हीरा, ताम्र, रौप्य, अभ्र और लौह आदि विविध धातुओंके जारण, मारण और शोधन औषधार्थमें व्यवहार-प्रयोग अतीव विस्तृत रूपसे लिखा हुआ है। इन सब ग्रन्थोंमें आधुनिक विज्ञानकी आलोचनाके उपयोगी भी कई विषय दिखाई देते हैं। इस प्रणालीकी चिकित्सा क्रमसे अरबमें और पारसमें प्रवर्त्तित हुई। बहुतेरे ग्रन्थ अरबी और पारसीमें अनुवादित हुए हैं।

मुसलमानी युग।

महम्मदके समयमें अरबके सीना नगरमें एक चिकित्सा-शिक्षालय या हकीमी मकतब था। इस शिक्षालयके प्रधान शिक्षक थे हारि-वेल-कानदा। ये इस देशसे आयुर्वेदकी शिक्षासे शिक्षित हो कर गये थे। ८वीं शताब्दीमें हारुन-अलल-रसीदके पुत्र खलीफा अलमामुनने सबसे पहले फारसी भाषामें चरक और सुश्रुतका अनुवाद कराया। पीछे इनके द्वारा अरबी भाषामें इन ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ। बोगदादके खलीफोंकी राजसभामें बहुतेरे संस्कृतज्ञ भारतीय पण्डित रहते थे। इबन आबु तसेबिया द्वारा रचित एक इतिहास ग्रन्थमें इनका नाम मिलता है। ११वीं शताब्दीमें इसी ग्रन्थकारने उक्त ग्रन्थका प्रणयन किया। इसमें कङ्क, जेजर, सञ्जय, शनक और माङ्क आदि भारतीय आयुर्वेदविद् पण्डितोंके नाम लिखे हुए हैं। ये सब भिषक् खलीफाके राजवैद्य पद पर नियुक्त थे। जो सब मुसलमान सम्राट् भारतका शासन कर गये हैं, हिन्दुओंके वेदके प्रति उनमें किसी किसीके विद्वेष रहने पर भी आयुर्वेदके प्रति किसीका भी विद्वेष था; ऐसा मालूम नहीं होता। प्रत्यूत कितनी ही राजसभाओंमें आयुर्वेद वैद्य नियुक्त रहते थे। चक्रदत्तके टीकाकार शिवदास तत्सामयिक बङ्गालके नवाबके राजवैद्य थे। माधवीय निदानके "आतङ्कदर्पण" नामकी टीकाके रचयिता वाचस्पतिने अपनी ग्रन्थ-भूमिकाके ५वें श्लोकमें लिखा है, उनके पिता प्रमोद महम्मद हम्मीरके राजवैद्य थे। महम्मद हम्मीरका दूसरा नाम मैजुद्दीन महम्मद था। ये महम्मद गोरीके नामसे परिचित हैं। ये ११९३ से १२०५ ई० तक दिल्लीके राजा थे। १२३० ई०में आतङ्क-दर्पण रचा गया। इसके २७ वर्ष पहले विजय रक्षितने माधवीय निदानकी मधुकोषव्याख्या समाप्त की। सम्भवतः इससे भी २० वर्ष पहले अरुणदत्तने वाग्भटकी टीका की थी। मुसलमानी अमलके समय अनेक टीका रची गई। मूलग्रन्थ भी बहुतेरे रचे गये थे। नीचे कितनोंके नाम उल्लेख किये गये,—

१। भावप्रकाश—लटकनके पुत्र भावमिश्र प्रणीत (१५५० ई०)
२। वैद्यामृत—भट्ट महेश्वर प्रणीत (१६२७ ई०)
३। योगचन्द्रिका—पण्डितदत्तके पुत्र लक्ष्मणकृत (१६३३ ई०)
४। वैद्यजीवन—लोलिम्बराजकृत (१६३३ ई०)
५। वैद्यवल्लभ—हस्तिसूरिकृत (१६७० ई०)
६। योगरत्नाकर—जैनाचार्य्य नारायणशेखरकृत (१६७६ ई०)
७। वैद्यरहस्य—वंशीधरके पुत्र विद्यापतिकृत (१६९८ ई०)
८। चिकित्सासंग्रह—वङ्गसेनकृत
९। आयुर्वेदप्रकाश—काशीके श्रीमाधवकृत (१७५१ ई०)
१०। ज्वरपराजय—जयरविकृत (१७६१ ई०)

ग्रन्थोंकी सूची।

इन कई ग्रन्थोंके सिवा और भी कितने ग्रन्थोंके नाम प्रकाशित नहीं किये गये। इन सब ग्रन्थोंमें मौलिक प्रतिभाका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। बहुतेरे ही पाण्डित्य लाभ कर टीका और संग्रह ग्रन्थ लिखते थे। किन्तु प्राचीन आयुर्वेदकी सीमाके बाहर जा नये तत्त्वोंका उद्भावन करनेका प्रयास इस समय केवल एक तान्त्रिक चिकित्सामें ही कुछ कुछ दिखाई देता है। हम नीचे आयुर्वेदके चरक, सुश्रुत और वाग्भटको छोड़ कर कई प्रधान प्रधान ग्रन्थोंकी सूची भी दे रहे हैं। नीचे जो अकारादि क्रमसे सूची दी गई है, उसे आयुर्वेदके सम्पूर्ण ग्रन्थोंकी सूची न समझना चाहिये।

अगस्त्यसूक्त, अग्निकर्म्म, अग्निवेशसंहिता, अङ्गक्रम-

लक्षण, अङ्गादिवृत्ति, अजीर्णमञ्जरी—काशीनाथ, अजीर्णमञ्जरी—काशिराज, अजीर्णमञ्जरीटीका—रमानाथ वैद्य, अजीर्णामृतमञ्जरी, अञ्जननिदान—अग्निवेश, अनवलोममन्त्र, अनिरुद्ध, अनुपानमञ्जरी—पीताम्बर, अनुभवसार—सच्चिदानन्दयति, अन्तर्यामी ब्राह्मण, अमृतचिकित्सा, अन्नपानविधि, अमृतमञ्जरी या अजीर्णमञ्जरी—काशीनाथ और काशिराज, अशोतवादनिदान, अष्टधातुमारणविधि, अष्टाङ्गनिघण्टु, अष्टाङ्गसंग्रह, अष्टाङ्गहृदयनिघण्टु, अष्टाङ्गहृदयसंहिता—वाग्भट, इसकी टीकाकार अरुणदत्त, आशाधर, चन्द्रचान्दन, रामनाथ और हेमाद्रि, अष्टाङ्ग हृदयसंग्रह, आत्रेयसंहिता, आत्रेयसंहितासार, आनन्दमाला—आनन्दसिद्ध, आयुर्वृद्धि, आयुर्वेद,—श्रीसुख लता, आयुर्वेददीपिका, आयुर्वेदप्रकाश—माधव उपाध्याय, आयुर्वेदप्रकाश—वामन, आयुर्वेदप्रकाश—सुश्रुत, आयुर्वेदमहोदधि—श्रीसुख, आयुर्वेदमहोदधि—सुषेण, आयुर्वेदरससार—माधव, आयुर्वेदरसायन, (अष्टाङ्गहृदयटीका)-हेमाद्रि। आयुर्वेदसर्वस्व—भोजराज, आयुर्वेदसिद्धांतसम्बोधिनी—रामेश्वर, आयुर्वेदसुधानिधि, आरोग्यदर्पण, आरोग्यमाला, उदकमञ्जरी, उदकलक्षण, उन्मादचिकित्सापटल, उमामहेश्वरसंवाद-(तन्त्रोक्त) उपानिदान, उग्रपयःकल्प,—आत्रेय, ऋतुचर्या, ऋतुसंहार, औषधकल्प, औषधग्रन्थ, औषधप्रयोग—धन्वन्तरि, कङ्कालाध्याय—अञ्जनाचार्य, कणादसंहिता—कणाद, कनकसिंहप्रकाश—रामकृष्णवैद्यराज, कनकसिंहविलास, कर्पूरप्रकाश, कर्मदीपवृत्ति, कर्मप्रकाश—नारायणभट्ट, कर्मविपाक, कल्पखण्ड, कल्पतरु—मल्लिनाथ, कल्पभूषण, कल्याणकारक—उग्रादित्याचार्य, कल्याणघृत, कामदेववटीसारसंग्रह, कामभूप, कामरत्न (बृहत् और लघु), कामरत्नटीका—श्रीनाथ, कापालिकग्रन्थ, क्वाथाधिकार, क्षेमकुतूहल—क्षेमराज या क्षेमशर्मा, गणाध्याय—परमेश्वररक्षित, गदनिग्रह—सोढ्ल, गदराजरत्न, गदविनिश्चय—वृन्द, गदविनोदनिघण्टु, गन्धकरसायन, गन्धदीपिका, गुटिकाधिकार, गुटिकाप्रकार, गुड़ूच्यादि—धन्वन्तरि, गुणज्ञान, गुणज्ञाननिघण्टु, गुणपटल, गुणपाठ—वाग्भट, गुणपाठ—धन्वन्तरि, गुणमाला, गुणयोगप्रकाश, गुणरत्नमाला, गुणरत्नाकर—व्रजभूषण, गुणसंग्रह—सोढ्ल, गुणागुणी—सुषेण, गुणादर्श, गूढ़बोधकसंग्रह—देवसेन, गृहनिग्रह, गोविन्दप्रकाश, गोविन्दसोमसेतु, गौरीकाञ्चीशिव, चान्द्रकला, चान्द्रोदयविधान, चमत्कारचिन्तामणि—ओलिम्बराज, चरकसंहिता—चरक, चारुचर्या—धन्वन्तरि, चिकित्साकलिका—तीसट, चिकित्साकलिका—दयाशङ्कर, चिकित्साकलिका-टीका—तीसटपुत्र चन्द्रट, चिकित्साकौमुदी—काशीराज, चिकित्साचिन्तामणि, चिकित्साञ्जन, चिकित्सातत्त्वज्ञान—धन्वन्तरि, चिकित्सातन्त्र, चिकित्सादर्पण—दिवोदास, चिकित्सादीपिका—धन्वन्तरि, चिकित्सानागार्जुनीय, चिकित्सापद्धति—काशीराज, चिकित्सापरिभाषा—नारायणदास, चिकित्सामालिका, चिकित्सामृत—गणेश, चिकित्सामृतसार—देवदास, चिकित्सायोगशत, चिकित्सारत्न, चिकित्सार्णव—सदानन्दशुक्ल, चिकित्सालेश—गोवर्द्धन, चिकित्साशतश्लोक, चिकित्सासंग्रह—धन्वन्तरि, चिकित्सासंग्रह—चक्रपाणिदत्त चिकित्सासंग्रहटीका—शिवदाससेन, चिकित्सासर्वसंग्रह, चिकित्सासर्वसागर—परमेश्वर, चिकित्सासार—धन्वन्तरि, चिकित्सासार—हरिभारती, चिकित्सासारसंग्रह—क्षेमशर्माचार्य, चिकित्सासारसंग्रह—वङ्गसेन, चिकित्सासारसमुच्चय, चिकित्सास्थानटिप्पन—चक्रपाणिदत्त, चिकित्सित, चोबचीनीप्रकाश, चोबचीनीसेवनविधि, जगद्वैद्यक, जराचिकित्सा, जल्पकल्पतरु—(चरक टीका) गङ्गाधर कविरत्न, जीवदान—च्यवन, ज्योतिष्मतीकल्प, ज्वरकल्प, ज्वरचिकित्सा, ज्वरतिमिरभास्कर—चामुण्डकायस्थ (१६२३) ज्वरत्रिशती—शार्ङ्गधर, ज्वरदर्पणमाला, ज्वरनिर्णय—नारायण, ज्वरपराजय—जयरार, ज्वरशान्ति, ज्वरस्तोत्र, ज्वरहरस्तोत्र, ज्वरांकुश, ज्वरादिरोगचिकित्सा, तत्त्वकणिका—भारतकर्ण, तन्त्रराज—जावाल, तन्त्रोक्तचिकित्सा, तैलोपवेशनविधि, त्रिशती, त्रैलोक्यडम्बर, दशपरीक्षा, दिव्यरसेन्द्रसार—धनपति, दूतपरीक्षा, देहसिद्धिसाधन, द्रव्यगुण—गोपाल, द्रव्यगुणदीपिका—कृष्णदत्त, द्रव्यगुणराजवल्लभ—नारायणदास कविराज, द्रव्यगुण-

रत्नमाला—माधव, द्रव्यगुणविवेक, द्रव्यगुणशतश्लोकी—तिमलभट्ट, द्रव्यगुणसंग्रह—चक्रपाणिदत्त, द्रव्यगुणसंग्रहटीका—निश्चलकर, द्रव्यगुणसंग्रहटीका—शिवदास, द्रव्यगुणाकर, द्रव्यगुणादर्शनिघण्ट, द्रव्यगुणाधिराज, द्रव्यरत्नावली, द्रव्यशुद्धि, द्रव्यादर्श, धन्वन्तरिग्रंथ, धन्वन्तरिनिघण्टु, धन्वंतरिपञ्चक, धन्वंतरिविलास' धन्वंतरिसारनिधि, धातुनिदान, धातुमञ्जरी—सदाशिव, धातुमारण—शार्ङ्गधर, धातुरत्नमाला—देवदत्त, नयबोधिका, नागराजपद्धति, नागार्जुनीय—नागार्जुन, नाड़ीग्रंथ, नाड़ीनिदान, नाडीपरीक्षा—दत्तात्रेय, नाड़ीपरीक्षा—मार्कण्डेय, नाड़ीपरीक्षादिचिकित्साकथन—रत्नपाणि, नाडीप्रकरण, नाडीप्रकाश—गोविन्द, नाडीप्रकाश—रामराज, नाड़ीप्रकाश—शङ्करसेन, नाड़ीविज्ञान - गोविन्दरामसेन, नाड़ीविज्ञानीय, नाडीशास्त्र, नानौषधविधि, नानाशास्त्रनाममाला—धन्वन्तरि, नारायणविलास—नारायणराज, निघण्ट—राधाकृष्ण, निघण्टुराज (राजनिघण्ट), निघण्टुशेष, निघण्टुसंग्रहनिदान, निघण्टुसार, निदान—माधव, निदान—वाग्भट, निदान (गरुड़पुराणोक्त), निदानप्रदीप—नागनाथ, निदानसंग्रह, निदानस्थान—अग्निवेश. निबन्धसंग्रह, निबन्ध (सुश्रुतटीका) डल्लनाचार्य, निबन्धसंग्रह—लङ्कानाथ, नृसिंहोदय—वीरसिंह, नेत्राञ्जन—अग्निवेश, पञ्चकर्मविधि, पञ्चकर्माधिकार—वाग्भट, पञ्चमविलास, पञ्चसायक, पथ्यनिदान, पथ्यापथ्य—रघुदेव, पथ्यापथ्य निघण्ट—कैयदेव पण्डित, पथ्यापथ्यनिर्णय, पथ्यापथ्यविधान, पथ्यापथ्यविधि—दक्षरूप, पथ्यापथ्यविनिश्चय, पथ्यापथ्यविबोध (कैयदेव पण्डित), पदार्थगुणचिन्तामणि, पदार्थचंद्रिका - वाग्भट, पदार्थचंद्रिका (अष्टाङ्गहृदयटीका) चंद्रचन्दन—वा आयुर्वेदरसायण—हेमाद्रि परहितसंहिता—श्रीनाथ पण्डित, परिभाषासंग्रह—श्यामदास, पर्यायमुक्तावली, पाकादिसंग्रह, पाकाध्याय, पाकावली, पारदकल्प, पालास कल्प, पीयूषसागर, पीयूषसार, पुरातन योगसंग्रह, पुरुषार्थप्रबोध, प्रबोधचंद्रोदय—क्षेमजय, प्रयोगसार, प्रयोगामृत—वैद्यचिंतामणि, वसवराजीय—वसवराज, बालचिकित्सा—कल्याण भट्ट, बालचिकित्सा—धन्वन्तरि,

बालचिकित्सा - वन्दि मिश्र, बाल या (शिशुरक्षारत्न)—पृथ्वी मल्ल, बालतंत्र—कल्याण, बालबोध—वानराचार्य, बिन्दुसंग्रह, बृहतीकल्प, बृहत्कल्पज्ञान, भारद्वाजीय, भावप्रकाश—भावमिश्र, भावप्रकाश—वाग्भट, भावप्रकाशकोष, भावस्वभाव—माधवदेव, भास्वती—शतानन्द भिषक्चक्रचित्तोत्सव—हंसराज, भिषक्चक्रनिदान, भीमविनोद, भेड़संहिता, भेषजकल्प, भेषज कल्पसार संग्रह, भेषजतर्क, भेषजसर्वस्व, भैरवप्रसाद, भैषज्यरत्नाकर—वेचाराम, भैषज्यरत्नावली—गोविन्ददास विशारद, भैषज्यसार—उपेंद्रमिश्र, भैषज्यसारामृतसंहिता—प्राणनाथवैद्य, भोजनकुतूहल, मगधपरिभाषा, मणिरत्नाकर—कैयदेव, मतिमुकुर, मधुकोष—जयपालदीक्षित, इसकी व्याख्या—मधुकोष, (माधवनिदानटीका) विजयरक्षित, मधुमती—नारायण कविराज, मनोरमा—शिल्हन, महाप्रकाश, महाराजनिघण्टु, मातङ्गलीला, मातङ्गलीलाप्रकाशिका, मात्राप्रयोग, माहेश्वरकवच, मुग्धबोधाख्या ज्वरादि रोगचिकित्सा, मुण्डीकल्प, मूत्रपरीक्षा और नाड़ीपरीक्षा, मृतवत्साचिकित्सा, मृतसञ्जीवना, यन्त्रोद्धार, योगचन्द्रिका—लक्ष्मण, योगचन्द्रिकाविलास, योगचिकित्सा, योगचिन्तामणि—गणेश, योगचिन्तामणि—धन्वन्तरि, योगचिन्ता (वैद्यक संग्रह)—हर्षकीर्त्तिसूरि, योगतरङ्गिणी (बृहती और लघ्वी)—तिमल्लभट, योगदीपिका—धन्वन्तरि, योगप्रदीप, योगमाला—गोगसिद्ध, योगमुक्तावली—(वैद्यचिन्तामणि उद्धृत) योगमुक्तावली वल्लभदेव, योगरत्न, योगरत्नमाला, उसकी टीका—गुणाकर (१२४०), योग रत्नावली—गङ्गाधर, योगशतक—वररुचि, योगटीका - अमितप्रभ, योगटीका—पूर्णसेन, योगटीका—रूपनारायण, योगशतक—मदनसिंह, योगशतक—लक्ष्मीदास, योगशतक—विदग्धवैद्य, योगसार—अश्विनीकुमार, योगसारसंग्रह—तुलसीदास, योगसारसमुच्चय - गणपतिव्यास, योगसुधानिधि—वन्दिमिश्र, योगाञ्जन—मणि, योगाधिकार, योगामृत—गोपालदास (१७७२ ई०) योगामृतटीका सुबोधिनी—(१७७२ ई०) योनिव्यापद्, रत्नकलाचरित्र लोलिम्बराज, रत्नदीपिका, रत्नमाला—राजवल्लभ, रत्नसारचिन्तामणि, रत्नाकर, रत्नावली—कवीन्द्रचन्द्र,

रत्नावली—राधामाधव, रसकङ्कालि—कङ्कालि, रसकल्पलता—काशीनाथ, रसकषाय—वैद्यराज, रसकौतुक, रसकौमुदी—माधवकर, रसकौमुदी—शक्तिवल्लभ, रसगोविन्द—गोविन्द, रसचन्द्रिका—नीलाम्बरपुरोहित, रसचिन्तामणि, रसतत्त्वसार, रसदर्पण, रसदीपिका—आनन्दानुभव, रसदीपिका—रामराज, रसनिबन्ध, रसपद्धति—विन्दु, रसपद्धति टीका—महादेवपण्डित, रसपद्मचन्द्रिका, रसपारिजात, रसप्रकाशसुधाकर—यशोधर, रसप्रदीप—प्राणनाथ, रसप्रदीप—रामचन्द्र, रसप्रदीप-वैद्यराज, रसभस्मविधि, रसभेषजकल्प—सूर्यपण्डित, रसभोगमुक्तावली, रसमञ्जरी—शालिनाथ, रसमञ्जरी-टीका—रमानाथ, रसमणि—हरिहर, रसमुक्तावली, रसयामल, रसयोगमुक्तावली—नरहरिभट्ट, रसरत्न—श्रीनाथ, रसरत्नप्रदीप—रामराज, रसरत्नप्रदीपिका, रसरत्नमाला—नित्यनाथ, रसरत्नसमुच्चय—नित्यनाथसिद्ध, रसरत्नसमुच्चय—नित्यानन्द, रसरत्नसमुच्चय—सिंहगुप्त पुत्र वाग्भट वाहट, रसरत्नाकर, रसरत्नाकर—आदिनाथ, रसरत्नाकर—नित्यनाथसिद्ध, रसरत्नाकर—रेवणसिद्ध, रसरत्नाकर—शुक्रपाणि, रसरत्नावली—गुरुदत्तसिंह, रसरसार्णव, रसरहस्य, रसराज, रसराजलक्ष्मी—रामेश्वरभट्ट, रसराजशङ्कर, रसराजशिरोमणि—परशुराम, रसराजहंस, रसवैशेषिक, रसशब्दसारणिनिघण्टु, रसशोधन, रससंस्कार, रससंकेत, रससंकेतकलिका—चामुण्डकायस्थ, रससंग्रहसिद्धान्त—अच्युत गोणिगपुत्र, रससागर, रससार—गोविन्दाचार्य, रससारसंग्रह—गङ्गाधरपण्डित, रससारसमुच्चय, रससारामृत—रामसेन, रससिद्धान्तसंग्रह, रससिद्धान्तसागर, रससिद्धिप्रकाश, रससिंधु, रससुपकर, रससुधानिधि—व्रजराजशुक्ल, रससुधाम्भोधि, रससूतस्थान, रसहृदय—गोविन्द, उसकी टीका—चतुर्भुजमिश्र, रसहेमन् या कङ्कालीय रसहेमन्, रसादिशुद्धि, रसाधिकार—हरिहर रसाध्याय (कङ्कालाध्याय वार्त्तिक), रसाध्याय—जयदेव, रसाम्भोधि, रसायनतरङ्गिणी, रसायनविधि, रसार्णव, रसार्णवकला, रसालङ्कार, रसावतार, रसेन्द्र, रसेंद्रकल्पद्रुम—रामकृष्णभट्ट, रसेंद्रकल्पद्रुम—रमानाथगणक, रसेन्द्रचूड़ामणि—सोमदेव, रसेन्द्रमङ्गल, रसेन्द्रसंहिता, रसेन्द्रसारसंग्रह—गोपालकृष्ण, रसेश्वरसिद्धान्त रसोपरस—माधवोपाध्यायकृत आयुर्वेदप्रकाशोक्त रसोपरसशोधन, राजवल्लभ (पर्यायरत्नमाला), राजहंस, राजहंससुधाभाष्य, रावणी चिकित्सा (अर्कप्रकाश)—लङ्केश्वर रावण, रुग्विनिश्चय (निदान)—माधवकर, रुग्विनिश्चयटीका सिद्धान्तचन्द्रिका, रुग्विनिश्चय—गणेशभिषज् रुग्विनिश्चय—(निदानप्रदीप)—नागनाथ, रुग्विनिश्चय—भवानीसहाय, रुग्विनिश्चय—रामनाथवैद्य, रुग्विनिश्चय (आतङ्कदर्पण) वैद्यवाचस्पति, रुग्विनिश्चय (मधुकोष)—विजयरक्षित, रुद्रनीकल्प, रुद्रदन, रुद्रयामलीयचिकित्सा, रूपमञ्जरी—रोगनिर्णय, रोगप्रदीप—गोवर्द्धनवैद्य, रोगमूर्तिदानप्रकरण, रोगलक्षण, रोगविनिश्चय (रुग्विनिश्चय), रोगान्तकसार; रोगारम्भ, रोलिम्बराजीय, लक्षणरत्न, लक्षणोत्सव—लक्ष्मण, लघुनिदान—सुरजित्, लघुरत्नाकर, लङ्घनपथ्यनिर्णय, लोहचिन्तामणि, लोकप्रदीपान्वयचन्द्रिकानिदान, वसंतराजचिकित्सा; वाजीकरण, वाजीकरणतंत्र, वाजीकरणाधिकार, वातज्वरादिनिर्णय—नारायण भिषक्, वातप्रमेहचिकित्सा, वातरोगहरप्रायश्चित्त, वासिष्ठी, वासुदेवानुभव—वासुदेव, विचारसुधाकर—राजज्योतिर्विद्, विज्ञानानन्दकरी (वैद्यजीवनटीका), प्रयागदत्त, विश्वकोष वा विश्वप्रकाशकोष—महेश्वर, विषतंत्र, विषमञ्जरी, विषवैद्य, विषहरचिकित्सा, विषहरमंत्रप्रयोग, विषहरमंत्रौषध, विषोद्धार, वृत्तरत्नावली—मणिराम, वृद्धयोगशतक, वृन्द—वीरवृन्दभट्ट, वृन्दटीका, वृंदमाधव, वृंदसंहिता, वृन्दसिंधु—वृंद, वैद्यकग्रंथपत्राणि और टीका, वैद्यकपरिभाषा, वैद्यकयोगचन्द्रिका—लक्ष्मण, वैद्यकरत्नावली—कविचंद्र, वैद्यकल्पतरु, वैद्यकल्पद्रुम—शुकदेव, वैद्यकशास्त्रवैष्णव—नारायणदास, वैद्यकसर्वाङ्ग—नकुल, वैद्यकसार—राम, वैद्यकसारसंग्रह (रायसिंहोत्सव) वैद्यकसारसंग्रह (वैद्यहितोपदेश)—श्रीकण्ठशम्भू, वैद्यकानन्त, वैद्यकुतूहल—वंशीधर, वैद्यकौस्तुभ, वैद्यचंद्रोदय—त्रिमलवैद्य वैद्यचिकित्सा, वैद्यचिंतामणि—नारायणभट्ट, वैद्य

चिन्तामणि—रामचन्द्र, वैद्यचिन्तामणि—वल्लभेन्द्र; वैद्यजीवन—चाणक्य, वैद्यजीवन—लोलिम्बराज; वैद्यजीवनटीका—ज्ञानदेव या दामोदर, वैद्यजीवन (विद्वानान्दकरी)—प्रयागदत्त, वैद्यजीवन—भवानी-सहाय, वैद्यजीवन—रुद्रदत्त, वैद्यजीवन—हरिनाथ वैद्यविंशट्टीका—चन्द्रट, वैद्यदर्पण—दलपति, वैद्यदर्पण—प्राणनाथ, वैद्यनयबोधिका, वैद्यप्रदीप—उद्धवमिश्र, वैद्यबोधसंग्रह—भीमसेन, वैद्यमनोत्सव—वंशीधर, वैद्यमनोत्सव—बालकराम, वैद्यमनोत्सव—रामनाथ, वैद्यमनोत्सव—श्रीधरमिश्र, वैद्यमनोरमा, वैद्यमहोदधि—वैद्यराज, वैद्यमालिका, वैद्ययोग, वैद्यरत्न, वैद्यरत्नमाला—मल्लिनाथ, वैद्यरत्नाकर भाष्य—रामकृष्ण, वैद्यरसमञ्जरी—शालिनाथ,वैद्यरसरत्न, वैद्यरसायन, वैद्यराजतन्त्र, वैद्यवल्लभ—उदयरुचि, वैद्यवल्लभ—वल्लभ, वैद्यवल्लभ—हस्तिरुचि, वैद्यवल्लभ वा ज्वरत्रिशती—शार्ङ्गधर, वैद्यटीका—नारायण, वैद्यटीका—मेघभट्ट, वैद्यवल्लभा—शतश्लोकीटीका वैद्यविनोद—शङ्करभट्ट, वैद्यविनोद—शिवानन्द, वैद्यटीका—रामनाथ, वैद्यविलास—रघुनाथ, वैद्यविलास—राघव, वैद्यविलास—लोलिम्ब, वैद्यवृन्द—नारायण, वैद्यशास्त्रसारसंग्रह—व्यासगणपति, वैद्यसंक्षिप्तसार—सोमनाथमहापात्र, वैद्यसंग्रह, वैद्यसर्वस्व—मनुज, वैद्यसर्वस्व—लक्ष्मणकायस्थ, वैद्यसार—हर्षकीर्त्ति, वैद्यसारसंग्रह—गोपालदास, वैद्यसारोद्धार, वैद्यसूत्रटीका, वैद्यहितोपदेश—शिवपण्डित, वैद्यामृत, वैद्यामृत—मोरेश्वर, वैद्यामृत—श्रीधर, वैद्यामृतलहरी—मथुरानाथशुक्ल, वैद्यालङ्कार, वैद्यावतंस—लोलिम्बराज, व्याधिसिद्धाञ्जन, व्याध्यर्गल—दामोदर, व्रणचिकित्सा, शतश्लोकी—अवधानसरस्वती, शतश्लोकी—त्रिमल्ल, शतश्लोकी—वाहट, शतश्लोकी—बोपदेव, शतश्लोकीटीका—वैद्यवल्लभ, शतश्लोकी टीका—कृष्णदत्त, शतश्लोकी (भावार्थदीपिका) वेणीदत्त, शतश्लोकी (शतश्लोकी चन्द्रकला)—बोपदेव, शब्दचन्द्रिका—वैद्यचक्रपाणिदत्त, शब्दरत्नावली, शरीरलक्षण; शरीरविनिश्चयाधिकार—गङ्गाराम दास, शरीरस्थानभाष्य, शल्यतन्त्र, शाकनिघण्टु (उद्भिज्जविद्या)—सीतारामशास्त्री, शारीरिव—श्रीमुख, शारीरवैद्य, शार्ङ्गधरसंहिता—शार्ङ्गधर, शार्ङ्गधरसंहिताटीका, शार्ङ्गधरटीका (शार्ङ्गधरशारीरटीका)—आढमल्ल, शार्ङ्गधरटीका (गूढार्थदीपक) काशीराम, शार्ङ्गधर—रुद्रधर भट्ट, शार्ङ्गधरटीका—बोपदेव, शालिहोत्र (अश्व और गजचिकित्सा)—शालिहोत्रमुनि, शालिहोत्र—नकुल शालिहोत्र—भोजराज, शालिहोत्रसार, शालिहोत्रोन्वय, शाल्मलीकल्प, शास्त्रदर्पण—वाग्भट्ट, शिलाजतुकल्प, श्लेष्मज्वरनिदान, श्वेतार्ककल्प, षड्रसनिघण्टु, षड्रसरत्नमाला, संख्यानिदान, संज्ञासमुच्चय—शिवदत्तमिश्र, सन्निपातकलिका—रुद्रभट्ट, सन्निपातकलिका—शम्भूनाथ, सन्निपातचन्द्रिका—भवदेव, सन्निपातचिकित्सा, सन्निपातनाड़ीलक्षण, सन्निपातमञ्जरी, सम्पत्सन्तानचन्द्रिका, सर्वसारसंग्रह—चक्रदत्त, सहस्रयोग, सारकलिका—उदयङ्कर, सारकौमुदी, सारसंग्रह—कालीप्रसाद-वैद्य, सारसंग्रह—चक्रपाणि, सारसंग्रह—रघुनाथ, सारसंग्रह—विश्वनाथ, सारसंग्रह (अश्वचिकित्सा)—गण, सारसंग्रहनिघण्टु, सारसमुच्चय (अश्वचिकित्सा) सारसिन्धु, सारावली, सारोद्धारसंग्रह, सिद्धमन्त्र -केशव, सिद्धटीका (सिद्धमन्त्रप्रकाश) बोपदेव, सिद्धयोग—वृन्द, सिद्धयोगसंग्रह (अश्वायुर्वेद)—गण, सिद्धयोगसंग्रह—शालिहोत्र, सिद्धयोगसंग्रह—वृन्द, सिद्धसारसंहिता, सिद्धांतचन्द्रिका (रुग्विनिश्चयटीका) सिद्धान्तमञ्जरी—बोपदेव, सिद्धौषधसंग्रह (तत्त्वकणिका) सुधासागर, सुवर्णसार, सुश्रुतसार, सूतमहोदधि, सूतार्णव, सौभाग्यचिन्तामणि, स्तम्भनप्रकार, स्वप्नपरीक्षा, स्वरविधि, स्वरस्वरूप, हंसनिदान, हरप्रदीपिका, हिकमतप्रकाश (अरवी ग्रंथका अनुवाद)—महादेवपण्डित, हिकमतप्रदीप (अरवी ग्रंथका अनुवाद), हितोपदेश—वैद्यहितोपदेश। वैद्यचिन्तामणि—एक आयुर्वेदविद्, वैद्यरत्नके पुत्र और नारायण कविराजके छात्र। इन्होंने प्रयोगामृत नामक एक वैद्यक ग्रन्थकी रचना की थी।

वैद्यजाति—वैद्य कहनेसे पहले चिकित्सक मात्र ही समझे जाते थे। सब जातियोंमें जो व्यक्ति या वंश चिकित्सा व्यवसाय करता था, वह वैद्य नामसे पुकारा जाता था। इस तरह ब्राह्मणसे ले कर चण्डाल बहुत जातियोंमें

वैद्योपाधि देखी जाती है। किन्तु कुछ दिनके बाद यह वैद्य शब्द किसी जातिविशेषके प्रति व्यवहृत होने लगा। चिकित्सा-व्यवसायी वैद्य जाति पूर्व समयमें अम्बष्ठ नामसे ही प्रसिद्ध थी। वैद्य कहनेसे इसी अम्बष्ठ जातिका ही बोध होता था। यह अम्बष्ठ जाति भी एक तरहकी नहीं है।

तरह तरहके अम्बष्ठोंकी उत्पत्ति।

इन अम्बष्ठोंकी उत्पत्तिको ले कर नाना मुनियोंके नाना मत हैं। नीचे वे सब प्राचीन मत उद्धृत किये जाते हैं—

१। गौतम धर्मसूत्रमें लिखा है—

"अनुलोमा अनन्तरैकान्तरद्व्यन्तरासु जाताः।
सवर्णाम्बष्ठोग्रनिषाददौष्यन्तपारशवाः।" (४।१६)

अर्थात् अनन्तरज, एकान्तरज, और द्व्यन्तरज, क्रमसे जात अनुलोम ही सवर्ण, अम्बष्ठ, उग्र निषाद, दौष्यन्त और पारशव जाति हैं। बौधायन-धर्मसूत्रमें भी उक्त मतका समर्थन हुआ है। जैसे—

"ब्राह्मणात् क्षत्रियायां ब्राह्मणो वैश्यायामम्बष्ठः शूद्रायां निषादः।" (९।३)

अर्थात् ब्राह्मणके औरससे और विवाहिता क्षत्रियकन्याके गर्भसे ब्राह्मण, ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे अम्बष्ठ और शूद्रसे निषाद।

भगवान् मनुने भी धर्मसूत्रानुसार ही लिखा है—

"ब्राह्मणात् वैश्यकन्यायामम्बष्ठो नाम जायते।" (१०।८)

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्यकन्याके गर्भसे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है।

२। महर्षि याज्ञवल्क्यने लिखा है—

"विप्रान् मूर्द्धावसिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियम्।
अम्बष्ठः शूद्र्यां निषादो जातः पारशवोऽपि वा॥" (१।९२)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस तथा क्षत्रियाके गर्भसे मूर्द्धावसिक्त, ब्राह्मणसे वैश्यकी स्त्रीके गर्भसे अम्बष्ठ* और ब्राह्मणसे शूद्राके गर्भसे निषाद या पारशव जाति उत्पन्न हुई है।

३। औशनस धर्मशास्त्रमें है—

"वैश्यायां विधिना विप्रात् जातो ह्यम्बष्ठ उच्यते।
कृष्याजीवो भवेत् तस्य तथैवाग्नेयवृत्तिकः॥ ३१
ध्वजिनी जीविका वापि ह्यम्बष्ठाः शस्त्रजीविनः।"

ब्राह्मणसे विधिपूर्वक वैश्यामें जो उत्पन्न हुआ है, उसको अम्बष्ठ कहते हैं। वह कृषिजीवी है, बाजी करना और ध्वजा पकड़ना ही उसकी जीविका है। अम्बष्ठ शस्त्रजीवी हैं—

४। महर्षि नारदके मतसे—

"उग्रः पारशवश्चैव निषादश्चानुलोमतः।
अम्बष्ठो मागधश्चैव क्षत्ता च क्षत्रियात्मजः॥"

उग्र, पारशव और निषाद अनुलोमक्रमसे इनकी उत्पत्ति हुई है। अम्बष्ठ, मागध और क्षत्ता—ये कई जातियां क्षत्रियसे उत्पन्न हुई हैं।

५। पीछे फिर उन्होंने कहा है—

"अम्बष्ठोग्रौ तथा पुत्रावेवं क्षत्रियवैश्ययोः
एकान्तरस्तु चाम्बष्ठो वैश्यायां ब्राह्मणात् सुतः॥
शूद्रायां क्षत्रियात् तद्वत् निषादो नाम जायते।
शूद्रा पारशवं सूते ब्राह्मणादुत्तमं सुतम्॥" (१२।१०७-१०८)

क्षत्रिय और वैश्यसे अम्बष्ठ और उग्र जाति हुई है। ब्राह्मण द्वारा वैश्यामें एकान्तर अम्बष्ठ, क्षत्रिय द्वारा वैश्यामें इस तरह निषाद नामकी जाति और ब्राह्मण द्वारा शूद्राके गर्भसे पारशव पुत्रकी उत्पत्ति हुई है।

६। मनुटीकाकार रामचन्द्रने एक स्थानमें लिखा है—

'नृप कन्यायां वैश्ये उत्पन्ने शूद्रे उत्पन्ने सति उभौ अम्बष्ठौ भवतः।' (मनु टी० १०।७)

वैश्यके औरस तथा क्षत्रियकन्याके गर्भसे और शूद्रके औरस और क्षत्रियकन्याके गर्भसे दो प्रकारके अम्बष्ठ होते हैं।

७। स्मार्त्त रामचंद्रने "अम्बष्ठानां चिकित्सितम्" इसकी टीकामें लिखा है—

"अम्बष्ठानां शूद्रादम्बष्ठा जाताः चिकित्सनं शास्त्रं वैद्यकं॥ (१०।४७)

---

* मिताक्षराकार विज्ञानेश्वरने यहां पर 'विशः स्त्रियां' अर्थमें 'विवाहित वैश्यकन्या' अर्थ किया है।

अर्थात् अम्बष्ठोंकी चिकित्सा अर्थात् वैद्यकशास्त्र ही उपजीविका है। यह अम्बष्ठ शूद्रोंसे उत्पन्न हैं।

८। बृहद्धर्मपुराणके उत्तरखण्डमें (१०।३३—३६) लिखा है—

"अयमन्यः सङ्करो हि वेणस्य वशगः पुरा।
वैश्यां समुपसंगम्य चक्रेऽन्यमपि सङ्करम्॥
तस्मादम्बष्ठनाम तु सङ्करोऽयं धरापते।
अस्माभिरस्य संस्कारः कर्त्तव्यो विप्रजन्मनः।
येनासौ संस्कृतो भूत्वा पुनर्जात इवास्तु च॥
व्यास उवाच।
इत्युक्त्वा ते द्विजगणाः स्मृत्वा नासत्यदस्रकौ।
तयोरनुग्रहाद्विप्र दयावन्तो द्विजातयः॥
आयुर्वेदं ददौ तस्मै वैद्यनाम च पुष्कलम्।
तेनासौ पापशून्योऽभूदम्बष्ठख्यातिसंयुतः॥
चारुरूपधरो भूत्वा विप्राज्ञां शिरसाकरोत्।
प्रणम्य भक्तितो विप्रान् सोऽम्बष्ठो विप्रसत्तम॥
कृताञ्जलिपुटस्तस्थौ ब्राह्मणाश्च तदाब्रुवन्॥
ब्राह्मणा ऊचुः।
अस्माभिर्यानि शास्त्राणि कृतानि सङ्करोत्तम।
तानि तुभ्यञ्च दत्तानि गृहीत्वा कुशलीभव॥
चिकित्साकुशलो भूत्वा कुशली तिष्ठ भूतले।
शूद्रधर्मान् समाश्रित्य वैदिकानि करिष्यथ॥
इत्युक्तस्तैस्तदाम्बष्ठस्तथेति कृतवानभूत्।"

हे भूपते! यह और एक सङ्कर है, यह जाति भी वेणकी वशीभूत थी। ब्राह्मणने वैश्यामें उपगत हो कर इस संकरकी सृष्टि की है। इसीसे इस जातिका अम्बष्ठ नाम पड़ा है। विप्रसे इसका जन्म हुआ है, इससे हमें इसका कुछ संस्कार करना चाहिये। जिसके द्वारा संस्कृत हो कर ये पुनर्जातिके समान हों। व्यासने कहा,—विप्रोंने यह कह कर अश्विनीकुमारद्वयका स्मरण किया। स्वर्वैद्यके अनुग्रहसे दयावान् विप्रोंने अम्बष्ठका आयुर्वेद दे उसका वैद्य नाम रखा, उसी समयसे इस जातिकी दो उपाधियां हुईं—वैद्य और अम्बष्ठ। अम्बष्ठगण सुन्दर मूर्त्ति धारण कर ब्राह्मणोंकी आज्ञा शिरोधार्यपूर्वक भक्तिभावसे प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़े हुए। इस पर विप्रोंने कहा—हे वर्णसंकरोंके प्रधान! हम लोगोंने जितने सब शास्त्रोंकी रचना की है, उन्हें भी तुम लोगोंको हम दे रहे हैं। तुम लोग इन सबका अध्ययन कर चिकित्सा विद्यामें पारदर्शी बन कुशलसे रहो। तुम शूद्रधर्मका आश्रय ले तदुपयोगी वैदिककार्योंका अनुष्ठान करो। ब्राह्मणोंके ऐसा कहने पर अम्बष्ठ "जो आज्ञा" कह कर अपनेको कृतार्थ बोध करने लगे।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके ब्रह्मखण्डमें दो तरहसे वैद्य जातिकी उत्पत्तिकी बात लिखी है। जैसे—

९। "इत्येवमाद्या विप्रेंद्र सच्छूद्राः परिकीर्त्तिताः।
शूद्राविशोस्तु करणोऽम्बष्ठो वैश्याद्विजन्मनोः।"
(१०।१८)

हे विप्रेंद्र! ये ही आदि सत्शूद्रके नामसे ख्यात हैं। शूद्रागर्भसे तथा वैश्यके औरससे करण और द्विजातिसे वैश्यागर्भसे अम्बष्ठ हुए हैं।

१०। "वर्णसंकरदोषेण बह्वश्च श्रुतजातयः।
तासां नामानि संख्याश्च कोवा वक्तुं क्षमो द्विज॥
वैद्योऽश्विनीकुमारेण जातश्च विप्रयोषिति।
वैद्यवीर्य्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥
ते च ग्राम्यगुणज्ञाश्च मंत्रौषधिपरायणाः।
तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालग्राहिणो भुवि॥
शौनक उवाच।
कथं ब्राह्मणपत्न्यास्तु सूर्य्यपुत्रोऽश्विनीसुतः।
अहो केन विपाकेन वीर्य्याधानं चकार ह॥
सौतिरुवाच।
गच्छन्तीं तीर्थयात्रायां ब्राह्मणीं रविनन्दनः।
ददर्श कामुकः शान्तां पुष्पोद्याने च निर्जने॥
तया निवारितो यत्नात् बलेन बलवान् सुरः।
अतीव सुन्दरीं दृष्ट्वा वीर्य्याधानं चकार सः॥
द्रुतं तत्याज गर्भं सा पुष्पोद्याने मनोहरे।
सद्यो बभूव पुत्रश्च तप्तकाञ्चनसन्निभः॥
सपुत्रा स्वामिनो गेहं जगाम व्रीड़िता तदा।
स्वामिनं कथयामास यन्मार्गे दैवसङ्कटम्॥
विप्रो रोषेण तत्याज तञ्च पुत्रं स्वकामिनीम्।
सरिद्बभूव योगेन सा च गोदावरी स्मृताः॥
पुत्रं चिकित्साशास्त्रञ्च पाठयामास यत्नतः।
नानाशिल्पञ्च मंत्रञ्च स्वयं स रविनन्दनः॥"
(ब्र०ख० १०।१२२-१३१

अर्थात् वर्णसंकर दोषसे नाना जातियोंका नाम सुना जाता है। उनके नाम और संख्या बतलाना किसका साध्य है। अश्विनीकुमारके औरस तथा ब्राह्मण-पत्नीके गर्भसे वैद्य जातिकी उत्पत्ति हुई है। वैद्योंसे तथा शूद्राके गर्भसे नाना जातियां हुईं। वे नाना वृक्ष वनस्पतियोंको जानते हैं, झाड़फूंक करते हैं तथा रोग निवारण करते हैं। फिर इन सब (वेदिया)से और शूद्राके गर्भसे व्यालग्राही या संपेरोंका जन्म हुआ है। शौनकने पूछा, कि सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारने किस तरह किस दुर्विपाकसे ब्राह्मणपत्नीके गर्भमें वीर्यपात किया था? सौतिने कहा, एक ब्राह्मणी तीर्थ-यात्रामें गई थीं। निर्जन पुष्पोद्यानमें उस श्रान्ता ब्राह्मणीको देख कर अश्विनीकुमार कामविह्वल हो गये। ब्राह्मणीने भर सक निवारण किया, फिर देवताने उसके रूप पर मोहित हो बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया। ब्राह्मणीने उस मनोहर पुष्पोद्यानमें ही गर्भ त्याग कर दिया। उससे तप्तकाञ्चन तुल्य शीघ्र ही एक बालक उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणी उस बालकको ले कर घर गई और उस पर पथमें जो दैवी संकट उपस्थित हुआ था, उसने उसका सब हाल स्वामीसे कह सुनाया। ब्राह्मणने अत्यन्त क्रोधित हो कर पुत्रके साथ भार्याका त्याग किया। उस समय ब्राह्मणीने योगबलसे देह-त्याग कर गोदावरी नदीका रूप धारण कर लिया। अश्विनी-कुमारोंने आ कर पुत्रको भलीभांति चिकित्साशास्त्र, शिल्पकार्य तथा मन्त्र सिखाया।

११। निर्णयसिन्धुकार प्रसिद्ध स्मार्त्त कमलाकरने प्राचीन स्मृति वचनोंको उद्धृत कर दिखाया है।

"ब्राह्मणेनाम्बकन्यायामम्बष्ठ नाम जायते।
स करोति मनुष्याणां चिकित्सां रोगिणामपि॥"

(शूद्रकमलाकर)

अर्थात् ब्राह्मणके औरस और आसुरी कन्याके गर्भसे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है। यह जाति मनुष्य और अन्यान्य रोगियोंकी चिकित्सा किया करती है।

१२।१३।—कमलाकर भट्टने इसके बाद भी दो तरहके अम्बष्ठोंका उल्लेख किया है,—"विप्रात् वैश्याजः क्षत्रात् शूद्राजश्च इति द्वौ अम्बष्ठौ" अर्थात् ब्राह्मण और वैश्याके संसर्गसे तथा क्षत्रिय और शूद्राकन्याके संसर्गसे जो पुत्र उत्पन्न होते हैं—ये दोनों अम्बष्ठ कहे जाते हैं।

१४। मेधातिथिने मनुसंहिताके १०।८ श्लोककी भाष्यमें लिखा है—

"एकान्तरा ब्राह्मणस्य वैश्या तत्र जातोऽम्बष्ठः।
स्मृत्यन्तरे भृज्जकण्टक इत्युक्तः"

इसके बाद १०।२१ श्लोकके भाष्यमें मेधातिथिने फिर कहा है—

"स ह्यनुलोमत्वान्नपापात्मा अयं चासंस्कृतात्मनो व्रात्याज्जायतोऽनधिकारित्वाद्यक"

अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्याके गर्भसे अम्बष्ठ हुआ है, अन्य स्मृतिमें उसका नाम भृज्जकण्टक लिखा है। यह जाति अनुलोम रूपसे पापात्मा नहीं है। किन्तु असंस्कृतात्मा व्रात्यसे उत्पन्न गर्भजात होनेसे यह वैदिक कार्यके अनधिकारी है।

१५। कविराज राघवने अपने वैद्यकुलदर्पणमें लिखा है,—"अपि च स्कन्दपुराणे,—

युधिष्ठिर उवाच।

धन्वन्तरिर्महाभागः समुत्पन्नः कथं भुवि।
अभवन् सर्वतत्त्वज्ञ! तन्मे वद महामुने।

मैत्रेय उवाच।

शृणु राजन् कथं जातो धन्वन्तरिरिहैव तु।
महर्षि गालवो नाम कश्चिदर्भाहरो वनम्॥
जगाम तत्र भ्रमणादतिश्रान्तकलेवरः।
ततो निर्वृत्ते तस्मात् तृष्णया परिपीड़ितः॥
ततो मुनिवर्हिर्देशे कन्यामेकां ददर्श सः।
तां दृष्ट्वा हृष्टचित्तोऽसौ बभाषे मुनिपुङ्गवः॥
हे कन्ये त्वं जलं देहि प्राणरक्षा कुरुष्व मे।
अवश्यंया तु मे प्राणास्तस्माद्देहि जलं शुभे॥
ततः सा कलसं भूमौ निधायातिष्ठदुत्तमा।
गालवस्तेन तोयेन स्नात्वा तोयं पपौ च तु॥
प्राणान्तकोऽपि दोषोऽत्र नास्तीति चिन्तयन् मुनिः।
प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चादस्य कुकर्मणः॥
एवं विधाय प्रोवाच तां कन्यामतितोषिताम्।
शतपुत्रं वै ते कन्या जायतां मम तोषणात्॥

ततः प्रोक्तवती कन्या न मे पाणिग्रहोऽभवत् ।
वीरभद्राभिधानां हि जानियान्मुनिसत्तम ।
विचिन्त्य मुनिस्तामादायाजगामाश्रमकं ततः ॥
मुनीनामाश्रमे नीत्वा उवाच हृष्टमानसः ।
भद्रं कृतं मुने कर्म कन्यामानयता त्वया ॥
वैश्यायां वीरभद्रायां धन्वन्तरिर्भविष्यति ।
इति चिन्ताकुला ह्येते वयमद्याधुना त्वया ॥
चिन्ता दूरीकृतास्माकं यदानीतेयमद्भुता ।
इत्युक्त्वा ते महाराज कुशपुत्तलिका ततः ॥
कृत्वा क्रोड़ेऽदद्स्तस्या वेदमुच्चार्य्य तत्कुशे ।
प्राणप्रतिष्ठां चक्रुस्ते साभवत् पुरुषाकृतिः ॥
ततोऽभवत् काञ्चनराशिगौरो बालोऽभिरामाकृतिरेव तस्याः ।
क्रोड़े समालोक्य सुतं मुनीन्द्राः प्रापुर्मुदं वेदवलाच्च जातः
वैद्यः सुतोऽयं जननीकुले च स्थाता ततोऽम्बष्ठ इति प्रसिद्धः ।
एवमूचुस्ततः सर्वे मुनयो वेदरूपिणः ।
अमृताचार्य इत्येवं चक्रुर्वर्त्याभिधानकः ॥
पितालयं याहि भद्रे त्वमक्षतभगासि वै ।
इत्याकर्ण्य वीरभद्रा चचाल पितृमंदिरं ।
विलम्बकारणं सा तु कथयामास मातरि ।
ततो हि मुनयस्तस्य चक्रुः सर्वाः क्रियाः क्रमात् ॥
तमप्यध्यापयामासुरायुर्वेदं क्रमेण तु ।
सिद्धविद्यां साध्यविद्यां तथा कष्टकुलोद्भवां ॥
विवाहं कारयामासुस्तिस्रः कन्या नराधिप ।
तासु त्रयोदश सुता बभूवुस्तस्य केवलं ।
पृथक् कुलानि जातानि तेषाञ्चैव त्रयोदश ॥
सेनो दासश्च गुप्तश्च देवो दत्तो धरः करः ।
कुण्डश्चन्द्रो रक्षितश्च राजः सोमस्तथैव च ॥
नन्दी चैव कुलान्येतान्यम्बष्ठानां कुलाः नृप ।
उत्तमौ सेनदासौ च गुप्तश्चैव तथा परे ॥
मध्यमो देवदत्तौ च शेषाः करधरादयः ।
स्थानदोषात् क्रियालोपात् अधमास्तास्थितास्तु वै ।
वैश्यवत् शुद्धिकर्माणि निर्दिष्टानि मुनीश्वरैः ।
अम्बष्ठानांतु सर्वेषां यतो मातृकुले स्थितिः ॥
आराध्या शूद्रजातानां नमस्यश्च विशेषतः ॥
वेदवाक्ययोद्भवत्वाच्च तैश्च पालितमौषधम् ।
मासादिकं तु यत्शुद्धं ब्राह्मणादिभिरेव च ॥
इतीव कथितं राजन् तवभावे यथापुनः ।
धन्वन्तरिः भगवान् विष्णुं स्मर्त्वा दिवं गतः ॥"

(स्कन्दपु० वैद्योत्पत्तिविवेचनम्)

स्कन्दपुराणमें युधिष्ठिर मैत्रेयका सम्बोधन कर पूछते हैं—"हे महामुनि! सर्वतत्त्वज्ञ! धन्वन्तरिका जन्म किस तरह हुआ, आप कहिये।" मैत्रेयने कहा,—हे राजन्! धन्वन्तरिकी जन्म-कथा मैं तुमसे कहता हूं। तुम ध्यान लगा कर सुनो। गालव नामक एक मुनि जङ्गलमें दर्भा या कुशा लानेके लिये गये। वहां घूमते घूमते वे थक गये। इसके बाद प्याससे व्याकुल हो वाहर निकले। बाहर आ कर उन्होंने एक कन्याको देखा। मुनिवरने उस कन्यासे हृष्टचित्त हो कर कहा—हे कन्ये! शीघ्र जल पिला कर मेरी प्राण-रक्षा करो। मेरा प्राण छट पट कर रहा है। शरीर अवश होता आ रहा है। शीघ्र तुम जल दो। उस समय कन्या शिरसे घड़ा उतार भूमि पर रखके खड़ी हुई। गालवने उस जलसे स्नान कर पीछे उससे बचे जलको पान किया। प्राणान्तकालमें इस तरहके कार्यमें दोष नहीं—समझ कर ही उन्होंने ऐसा कर्म किया और उस कुकर्मका प्रायश्चित्त करना स्थिर कर अति तुष्ट हो उस कन्यासे कहा—हे कन्ये! तुमने आज मुझको बहुत ही परितृप्त किया है। इससे तुमको मेरे आशीर्वादसे १०० पुत्र प्राप्त हों। कन्याने कहा,—महाराज! मैं अविवाहिता हूं। इस पर मुनिने उसका नाम पूछा। उत्तरमें उसने अपना नाम वीरभद्रा बताया। उसको लिये सोचते सोचते मुनि आश्रममें चले आये। वहां पहुंच मुनिने अन्यान्य मुनियोंसे सब हाल कहा। उन्होंने कहा, आपने कन्याको आश्रममें ला कर हम लोगोंका बड़ा उपकार किया। एक तरहसे आपने हम लोगोंकी एक चिन्ता दूर कर दी है। क्योंकि वैश्या वीरभद्रासे ही धन्वन्तरि जन्म ग्रहण करेंगे। हम लोग इसी चिन्तासे चिन्तित थे। यह कह कर उन्होंने एक कुशकी पुत्तली बना कर वीरभद्राकी गोदमें रखा और उसे वेदमन्त्रोंसे अभिमंत्रित किया। इसके बाद उसमें प्राणप्रतिष्ठा की गई। उस समय सुवर्णकांति गौरवर्ण मनोरम बालकको देख मुनियोंने आनन्दित हो कर कहा,

कि वेदप्रभावसे इसका जन्म हुआ, इसलिये वैद्य और अम्बाकुलमें स्थिति होनेसे अम्बष्ठ नाम हुआ। तब मुनियोंने उसको अमृताचार्यकी उपाधि दी। वीरभद्रासे कहा, 'वीरभद्रे! तुम अक्षतयोनि हो कर पिताके घर जाओ।' इसके बाद वीरभद्रा पिताके घर आई और उसने विलम्बका कारण कह सुनाया। इसके बाद मुनियोंने उस बालकका जातकर्म संस्कार सम्पन्न कर यथासमय आयुर्वेद पढ़ाया और उनको सिद्ध-विद्या, साध्यविद्या और कष्टकुलोद्भवा—तीन कन्याओंका पाणिग्रहण कराया।

उन तीन कन्याओंसे १३ पुत्र उत्पन्न हुए। इन १३ पुत्रोंसे सेन, दास, गुप्त, देव, दत्त, धर, कुण्ड, चंद्र, रक्षित, राज, सोम, नन्दी, इन पृथक् १३ अम्बष्ठोंकी उत्पत्ति हुई। इनमें सेन, दास और गुप्त सर्वोत्कृष्ट देव, दत्त मध्यम; अवशिष्ट धर, कर आदि स्थानदोष तथा क्रियाकलाप लोप होनेसे अधम कहलाये। मुनियोंने इन अम्बष्ठोंका शुद्धिकर्म वैश्यकी तरह निर्देश किया है। क्योंकि सब अम्बष्ठोंका मातृकुलमें अवस्थान है, सुतरां मातृकुलके आचारनुष्ठान ही करणीय निर्दिष्ट हुआ है। वेदमंत्रोच्चारणसे इनके बीजपुरुषका जन्म हुआ है, इससे ये सम्यक् प्रकारसे शूद्र जातिके आराध्य और नमस्य हैं और वेदविहित औषधादिके परिचालक हैं। इनके मासादिमें जो परिशुद्धि होती है, वह भी ब्राह्मणों द्वारा ही निर्दिष्ट हुई है। हे महाराज! आपके सम्मुख इस समय फिर निवेदन कर रहा हूं, कि वे भगवान् धन्वंतरि इस तरहसे विष्णुका स्मरण कर स्वर्गत हुए।

१६। वैद्यकुलतिलक भरत मल्लिकने अपने चंद्रप्रभामें लिखा है—

"सत्यत्रेताद्वापरेषु युगेषु ब्राह्मणाः किल।
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रकन्यका उपयेमिरे॥
तत्र वैश्यसुतायां ये जज्ञिरे तनया अमी।
सर्वे ते मुनयः ख्याता वेदवेदाङ्गपारगाः॥
तेषां मुख्योऽमृताचार्यास्तस्याथाम्बाकुले हि तत्।
अम्बष्ठ इत्यसावुक्तस्ततो जातिप्रवर्त्तनात्॥
परे सर्वेऽपि चाम्बष्ठा वैश्या ब्राह्मणसम्भवाः।
जननीतो जनुर्लब्ध्वा यज्जाता वेदसंस्थितेः॥
अम्बष्ठास्तेन ते सर्वे द्विजा वैद्याश्च कीर्त्तिताः।
अथ रुक्प्रतिकारित्वात् भिषजस्ते प्रकीर्त्तिताः॥
सत्ये वैद्यः पितुस्तुल्याः त्रेतायां क्षत्रवत्स्मृताः।
द्वापरे वैश्यवत् प्रोक्ताः कलौ शूद्रसमा मताः॥"

अर्थात् सत्य, त्रेता, द्वापर युगमें ब्राह्मण चार जातिकी कन्याओंसे विवाह करते थे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। इनमें ब्राह्मणके औरस तथा वैश्यकन्याके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हुए, वेदवेदाङ्गपारग मुनि कहलाये। उनमें अमृताचार्य (धन्वन्तरि) प्रधान थे। अर्थात् जननीकुलमें जन्म होनेकी वजह जाति प्रवर्त्तनके समय उनका नाम अम्बष्ठ हुआ, पीछे ब्राह्मण-वैश्या सम्भूत जो पुत्र हुए, वे सभी अम्बष्ठोंकी श्रेणीमें गिने गये। जननीसे जन्मलाभ और वेदमन्त्रके प्रभावसे स्थितिलाभ हुआ था, इससे वे सभी "अम्बष्ठ" और "वैद्य" नामसे ख्यात हुए। रोग अच्छा करते थे, इससे भिषक् भी कहलाते थे। वैद्य सत्ययुगमें पितृ सदृश, त्रेतामें क्षत्रियवत्, द्वापरमें वैश्यवत् और कलिमें शूद्रके समान परिचित हैं।

सिवा इसके महाभारतमें और एक तरहके वैद्योंका उल्लेख है—

"चाण्डालो व्रात्यवैद्यौ च ब्राह्मण्यां क्षत्रियासु च।
वैश्यायाञ्चैव शूद्रस्य लक्ष्यन्तेऽपसदास्त्रय॥"

(भारत अनुशासन ४८।६)

अर्थात् शूद्रके औरस तथा वैश्याके गर्भसे वैद्य नामक अपसद जातिकी उत्पत्ति हुई है।

ऊपर जो कई प्रमाण उद्धृत किये गये, उन कई प्रमाणोंसे हम १५ तरहके अम्बष्ठ या वैद्योंका पता पाते हैं।

मनुसंहिता और महाभारतके प्रधान प्रधान टीकाकारोंने अधिकांश ही अम्बष्ठको अपसद या अपध्वंसज रूपसे ही ग्रहण किया है। मनुमें अम्बष्ठोंकी वृत्तिका निर्दिष्ट करनेके लिये कहा है—

"ये द्विजानामपसदा ये चापध्वंसजाः स्मृताः।
ते निन्दितैर्वर्त्तयेयुर्द्विजानामेव कर्मभिः॥
सूतानमश्वसारथ्यमम्बष्ठानां चिकित्सितम्।"

(१०।४६)

द्विजातियोंमें जो अपसद और अपध्वंसज हैं, वे द्विजोंके निन्दित कर्म द्वारा जीविका निर्वाह करें। (इनमें) सूत जातिकी वृत्ति अश्वसारथ्य और अम्बष्ठों-की चिकित्सा है।

मनुटीकामें (१०।४६) नंदनाचार्यने लिखा है—

"अथ दस्यूनां साधारणीं वृत्तिमाह-। ये द्विजानामपसदाः इति। अपसदाः चौर्यजाता अनुलोमजाः अपध्वंसजाः प्रतिलोमजाः सूतादयः अनुलोमजेष्वप्यनन्तराः पुत्रव्यतिरिक्ता अम्बष्ठादयश्च सजातीयेष्वपि कुण्डगोलकादयश्च द्विजानामेव कर्मभिर्द्विजार्थैरेव कर्मभिः चिकित्साश्वसारथ्यादिभिर्वर्त्तयेयुर्जीवेयुः।"

अर्थात् दस्युओंकी साधारण वृत्ति कही जाती है। द्विजातियोंमें अपसद हैं अर्थात् चौर्यजात अनुलोमज अम्बष्ठादि और अपध्वंसज वा प्रतिलोमज सूत आदि। अनुलोमज होने पर भी अनन्तर पुत्रको छोड़ कर अम्बष्ठादि और सजातिमें जन्म होने पर भी कुण्डगोलकादि द्विजातियोंके लिये ही चिकित्सा अश्वसारथ्यादि निंदित कर्म द्वारा जीविका निर्वाह करें।

उद्धृत वचनानुसार अम्बष्ठ दस्यु और चौर्यजात हैं अर्थात् बलात्कार द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वेदव्यासने महाभारत-अनुशासनपर्वके ४९वें अध्यायमें अम्बष्ठको अपध्वंसज कहा है। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वरने "अपध्वंसज" शब्दका 'व्यभिचारजात' अर्थ किया है। (याज्ञवल्क्य टीका १।९०) है। मनुटीकामें सर्वनारायणने भी लिखा है—

"विप्राद्वैश्यायां यथाम्बष्ठो यथा वा क्षत्रियाच्छूद्रायामुग्रः पुत्र आनुलोम्येन जातोऽप्यनन्तरस्त्रीजातपुत्रापेक्षया निन्दितस्तथा वैश्याद्विप्रायां जातो वैदेहः शूद्रात् क्षत्रियायां जातश्च क्षत्ता। अनंतरप्रतिलोमजातापेक्षयैकांतरितजातत्वान्निंदित इत्यर्थः। यथा स्मृतौ निन्दिताविति शेषः।" (मनुटीका १०।१३) अर्थात् ब्राह्मणसे वैश्याका गर्भज अम्बष्ठ और क्षत्रियके औरससे शूद्राका गर्भज उग्रपुत्र अनंतर-स्त्रीजात पुत्रोंपेक्षा निंदित हैं। इस तरह वैश्यसे ब्राह्मणीका गर्भज वैदेह, शूद्रसे क्षत्रियाका गर्भज क्षत्ता भी निंदित है, अनंतरज-प्रतिलोम अपेक्षा एकांतरज-प्रतिलोमगण भी निंदित हैं। क्योंकि स्मृतिमें है, कि अम्बष्ठ और उग्र दोनों जातियां ही निंदित हैं।

प्रसिद्ध टीकाकार सर्वज्ञनारायणने मनुके १०।५० श्लोककी टीकामें—"एते सूतादय विज्ञाताश्चिह्नितः" अर्थात् सूत, अम्बष्ठसे वेण तक चिह्नित जातियोंको धर लेना होगा। अर्थात् उनके मतसे ये सब जातियां समाजसे बाहर हैं। उक्त श्लोककी टीकामें रामचन्द्रने लिखा है "स्वकर्मभिर्वर्त्तयन्तो विज्ञाता एते पौण्ड्रकादयः वसेयुः" अर्थात् रामचन्द्रके मतसे पौण्ड्रक, द्राविड़, कम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खश और द्विज तथा शूद्रोंमें जो बाह्यजाति या दस्यु (डाकू) नामसे प्रसिद्ध हैं, अपसद तथा अपध्वंसज जो निर्दिष्ट हुए हैं, वे निन्दित कर्म द्वारा ही जीविका निर्वाह करें।

मनूक्त पौण्ड्रकादि क्षत्रिय जाति क्रमसे जिस तरह क्रियालोप और ब्राह्मणादर्शन हेतु वृषलत्व प्राप्त हुई थी, उसी तरह निन्दित कार्य द्वारा अम्बष्ठादि भी क्रियालोप हेतु पौण्ड्रकादिकी तरह वृषलत्वप्राप्त और बाह्यजातिमें गिने गये थे। वास्तविकतया आज भी दाक्षिणात्यमें त्रिवांकुरराज्यमें इस तरह समाजबाह्य अम्बष्ठ वैद्योंका वास है। इस जातिके सम्बंधमें त्रिवांकुरराज्यके दीवान पेस्कार सुब्राह्मण्य अय्यरने लिखा है—"In their dress, ornaments and festivals they do not differ from the Malayal Sudras, of whom according to the Keralotpatti, they form one of the lowest subdivisions. The niece is the rightful wife of the son and the daughter that of the nephew............Among the Ampaitans (Ambastham) fraternal polyandry seems to be common.*"

अर्थात् वेशभूषा और उत्सवोंमें मलयाल शूद्रोंके साथ कोई पार्थक्य दिखाई नहीं देता। केरलोत्पत्तिके मतसे यह जाति नीचतम शूद्रोंमें गिनी जाती है। ... भागिनेयी ही उपयुक्तपुत्रवधू है। इस अम्बष्ठ जातिमें बहुभ्राताओं-

---

* Census Report of Travancore 1901, by N. Subrahmanya Aiyar, M, A, M, B, C, M Part 1 p, .271

के साथ मिल कर साधारणतः एक पत्नी ग्रहण किया करते हैं।

सम्भवतः इस तरह अम्बष्ठ जातिको निकृष्ट देख कर ही स्मार्त्त रघुनन्दन, वाचस्पति मिश्र आदि स्मार्त्त "एवं अम्बष्ठादीनामपि कलौ शूद्रत्वमिति" लिखने पर वाध्य हुए हैं। सिवा इनके महाराष्ट्र और कर्णाट अञ्चलकी वैदु और वेद् जातिकी अवस्था आलोचना करने पर भी उनको द्राविड़ अम्बट जातिकी तरह हीन समझते हैं। वैदु शब्द देखो। बङ्गीय वेदेजातिके साथ उनकी तुलना हो सकती है।

उशनाने जिस अम्बष्ठका उल्लेख किया है, वह अम्बष्ठ जाति भागवतमें (१०।४३।४) हस्तिपकरूपसे अर्थात् हाथीके महावत कही गई है।

"अम्बष्ठाम्बष्ठमार्गं नो देह्यपक्रम मा चिरम्।
नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम्।"
'अम्बष्ठो हस्तिपः' इति श्रीधर।

हिन्दू-राजत्वकालमें हस्तीपक खेतीदारी करते थे, हाथी पर ध्वजा कन्धे पर धर कर चलते थे। रणक्षेत्रमें उनको अस्त्रधारण करना पड़ता था तथा नाना उत्सवोंके समय हाथी पर आगे आगे जा नाना अग्नि क्रीड़ा प्रदर्शन करते थे। भागवतमें निषादी अम्बष्ठ हो शास्त्रजीवि अम्बष्ठ हैं। यह हाथीकी भी चिकित्सा करते थे, इससे नीच वैद्यको हाथुड़िया कहते हैं। नारदने क्षत्रियकन्याके गर्भजात जिस अम्बष्ठका उल्लेख किया है, मनुके प्रसिद्ध टीकाकार रामचन्द्रने उस अम्बष्ठको दो भागोंमें विभक्त किया है। एक वैश्यसे क्षत्रियकन्याजात। सुतरां यहां दोनों प्रकारके अम्बष्ठ ही क्षत्रियाजात प्रतिलोम जाति हो रही है। वैश्य और शूद्रके लिये क्षत्रियकन्या अविवाह्य है, सुतरां इन दोनों तरहके अम्बष्ठोंको ही हीन वर्णसंकर स्वीकार करना होगा।

कमलाकरने दो प्रकारके अम्बष्ठोंकी बात लिखी है, ब्राह्मणके औरस तथा आगुरीके गर्भसे उत्पन्न तथा क्षत्रिय औरस तथा शूद्रासे उत्पन्न दोनों अम्बष्ठ कहे जाते हैं। वह व्यभिचार और अवैधावेदन कहा जाता है। अतएव ब्राह्मण-उग्राज या क्षत्रिय-शूद्राज—ये दोनों प्रकारके अम्बष्ठ ही हीन कहके निन्दित हैं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकी वैद्यजातिको कुछ लोग वेदे समझते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणकारने अश्विनीकुमारके औरस और ब्राह्मणीके गर्भसे अम्बष्ठोंकी उत्पत्ति बतला कर अन्तमें कहा है—

"पुत्रं चिकित्साशास्त्रञ्च पाठयामास यत्नतः।
नाना शिल्पञ्च मन्त्रञ्च स्वयं स रविनन्दनः॥"
(ब्र० ख० १०।१३१)

अर्थात् अश्विनीकुमारने अपने बलात्कार जात पुत्रको चिकित्साशास्त्र पढ़ाया था और नाना शिल्प तथा मन्त्रोंको सिखाया था।

जब 'वेदे' जातिको कभी चिकित्साशास्त्र अध्ययन करते देखा नहीं गया, तो चिकित्साशास्त्रमें अधिकारी ब्रह्मवैवर्त्तोक्त वैद्य जाति 'वेदे' जातिके साथ निश्चय ही अभिन्न नहीं है। ब्रह्मवैवर्त्तकारने वैद्य जातिकी उत्पत्तिका वर्णन कर कहा है—

"वैद्यवीर्येण शूद्रायां बभूवुर्बहवो जनाः॥
ते च ग्राम्यगुणज्ञाश्च मन्त्रौषधिपरायणाः।
तेभ्यश्च जाताः शूद्रायां ये व्यालग्राहिणो भुवि॥"
(ब्र० ख० १०।१३३)

अर्थात् वैद्यवीर्यसे शूद्राके गर्भसे ग्राम्यगुणज्ञ मन्त्रौषधपरायण बहुत जातियोंकी उत्पत्ति हुई है। इन्हीं सब जातियोंसे शूद्राके गर्भसे सपेरे या व्यालग्राही जातिकी सृष्टि हुई है।

ब्रह्मवैवर्त्तके वैद्यसे शूद्राके गर्भजात मन्त्रौषधपरायण जाति ही वेदे या वेदिया है।

मनुभाष्यकार मेधातिथिने स्मृति पर निर्भर कर ही लिखा है, कि जिस वैश्यका द्विजोचित संस्कार नहीं हुआ हो, इस तरहकी व्रात्य वैश्यकी कन्यासे ब्राह्मण वीर्यसे भूर्जकण्टक नामकी एक जाति उत्पन्न हुई है। मनुने जिस पापात्मा भूर्जकण्टकका उल्लेख किया है उससे वैश्यकन्याके गर्भजात भूर्जकण्टक भिन्नरूप हैं। किन्तु व्रात्यकन्याके गर्भजात होनेसे ये समाजनिन्दित और पतित हैं। ब्राह्मण-वैश्याज कह कर इनको भी मेधातिथिने स्मृत्यन्तरके प्रमाणानुसार अम्बष्ठ हो धर लिया है।

राढ़ीय और बङ्गज वैद्यकुलज्ञ प्रायः सभी कहा

करते हैं, कि अमृताचार्य धन्वन्तरि महाराजसे ही वैद्य-जातिकी उत्पत्ति हुई। गर्भाकुरमें स्थिति हेतु (कानीन पुत्र) अमृताचार्य अम्बष्ठ नामसे ख्यात हुए हैं, उसीसे ही वैद्यजातिका नाम अम्बष्ठ हुआ है।

अम्बष्ठ धन्वन्तरिको अमृताचार्य उपाधि दे कर बहुतेरे यह ख्याल करते हैं, कि समुद्रमन्थनकालमें अमृतकुम्भ हाथमें ले कर जो धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे, जो वासुदेवके अंशरूपसे भागवत आदि ग्रन्थोंमें वर्णित हुए हैं, वैद्य जातिके आदिपुरुष धन्वन्तरि और वे अभिन्न हैं। वास्तवमें यह ठीक नहीं है।

महाभारतके मतसे देवोंके आदिरोगहर धन्वन्तरि समुद्रमन्थनकालमे अमृतकुम्भ हाथमे लिये निकले थे। (आदिपर्व १८ अ०) यह सागरसम्भूत धन्वन्तरि सर्ववैद्य नामसे विख्यात हैं। इनको छोड़ कर सुप्रसिद्ध क्षत्रियवंशमें और एक धन्वन्तरि आविर्भूत हुए थे। ये मर्त्यलोकमें आयुर्वेद-प्रवर्त्तक और विष्णुके अन्यतम अवतोर कहे गये हैं। भागवतमें इन धन्वन्तरिका वंशपरिचय इस तरह दिया गया है—

पुरूरवाके पुत्र आयु थे, इनके पांच पुत्र हुए—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, बलवान् राभ और अनेना। क्षत्रवृद्धका पुत्र सुहोत्र है। उनके तीन पुत्र हुए :—काश्य, कुश और गृत्समद। इन गृत्समदके पुत्र शुनक और शुनकके पुत्र बह्वृचश्रेष्ठ शौनक मुनि हैं। काश्यके पुत्र काशि, काशिके पुत्र राष्ट्र, राष्ट्रके पुत्र दीर्घतमा, दीर्घतमाके पुत्र आयुर्वेद-प्रवर्त्तक धन्वन्तरि हैं। ये यज्ञभुक् और वासुदेवके अंश हैं, इनके स्मरणमात्रसे सब रोग दूर होता है। धन्वन्तरिके पुत्रका नाम केतुमान, केतुमान्के पुत्र भीमरथ और भीमरथके पुत्र दिवोदास हैं।

(भागवत ९।१७।१-५)

चरकादि ग्रन्थोंसे भी जाना जाता है, कि उक्त क्षत्रिय काशीराज दिवोदासने नाना आयुर्वेदशास्त्र इस देशमें प्रचार किये। नाना वैद्यकग्रन्थोंमें ये "धान्वन्तर दिवोदास" नामसे भी विख्यात हुए हैं। हिंदूशास्त्रके अनुसार क्षत्रियराज धन्वन्तरिसे ही मर्त्यलोकमें सबसे पहले आयुर्वेद शास्त्र प्रचारित हुआ। इनके वंशधर दिवोदासने भी कई आयुर्वेद तत्त्वोंका प्रचार किया था। चरक सुश्रुत आदि ऋषियोंने क्षत्रियराज धन्वन्तरि और उनके वंशजोंके प्रवर्त्तित आयुर्वेदीय मत ग्रहण कर अपने अपने चिकित्साशास्त्रका प्रचार किया था। उक्त धन्वन्तरि द्वारा सर्वप्रथम आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार और जगत्का अशेष कल्याण साधित हुआ। इससे वे भी भागवतमें परशुरामके पूर्ववर्त्ती विष्णुका एक अवतार कहे गये हैं। जैसे—

"धन्वन्तरिश्च भगवान् स्वयमेव कीर्त्ति-
र्नाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति।
यज्ञे च भागममृतायुरवावरुन्ध
आयुष्य-वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके॥" (२।७।२१)

धन्वन्तरिने सबसे पहले आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार किया और उनके औषध प्रभावसे सैकड़ों व्यक्तियोंने जीवन लाभ किया है। इससे परवर्त्तीकालमें जिस व्यक्तिने आयुर्वेदशास्त्रमें विशेष पारदर्शिता दिखाई है और औषधप्रभावसे जो बहुतेरे लोगोंके जीवनदान करनेमें समर्थ हुए हैं, ऐसे वैद्य भी द्वितीय धन्वन्तरि कहके सम्मानित हुए। वीरभद्राके गर्भसे उत्पन्न अम्बष्ठको भी एक चिकित्सक जातिका अग्रणी सोच कर परवर्त्तीकालमें धन्वन्तरि उपाधि दी गई थी और उसीके साथ साथ अम्बष्ठ समुद्रमंथनोद्भूत धन्वन्तरिकी अमृताचार्य उपाधिको ले कर सम्भवतः उनके नामके साथ जोड़ दिया था।

चारों जातियोंमें अम्बष्ठ।

जो हो, उपरोक्त नाना तरहके शास्त्रवाक्य, कुलग्रन्थ, दाक्षिणात्यके अम्बष्ठोंकी वर्त्तमान अवस्थाको देख कर समझमें आता है, कि अम्बष्ठ जाति एक तरहकी थी ही नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णोंमें ही विभिन्न अम्बष्ठ जातियोंका वासस्थान था, इसमें सन्देह नहीं। पहले जो प्रमाण उद्धृत किये गये हैं, उनमें वैश्य और शूद्रधर्मा अम्बष्ठोंका ही परिचय मिलता है। इस समय हम अम्बष्ठ क्षत्रियका भी परिचय देते हैं—

अम्बष्ठ क्षत्रिय।

माकिदनवीर सिकन्दर जब पञ्जाबमें आ पहुंचा, उस समय दक्षिण पञ्जाबमें अम्बष्ठ (Ambastai of Arian) नामकी वीर जाति राजत्व कर रही थी। इस जातिने

इस सिकन्दरसे घोर युद्ध किया था। पुराणकार और पाणिनिने भी इस क्षत्रिय जातिका उल्लेख किया है। सुतरां इस जातिको नितान्त अप्राचीन कहा जा नहीं सकता। इनकी अध्युषित वासभूमि पुराणमें अम्बष्ठ नामसे विख्यात है।

शाक्य बुद्धके आविर्भावके समय अम्बष्ठ नामक एक ब्राह्मण कापिलवस्तु अञ्चलमें वास करते थे। दो हजार वर्ष पहले रचित दीघनिकायके अन्तर्गत "अम्बट्ठ-सुत्त" नामक पाली ग्रन्थमें उस अम्बष्ठ ब्राह्मण और उस समयके ब्राह्मणोंकी सामाजिक अवस्थाका खूब पता लगता है।

अम्बष्ठ कायस्थ।

इसके सिवा उत्तर-पश्चिम प्रदेशीय कायस्थोंके कुलग्रन्थधृत पद्मपुराणीय वचनोंसे मालूम होता है, कि चित्रगुप्तके पुत्र हिमवान्‌से अम्बष्ठ नामक कायस्थ श्रेणीकी उत्पत्ति हुई है। इस जातिमें बहुतेरे लोगोंने चिकित्साशास्त्रमें पाण्डित्य दिखाया है। आज भी इनका आहार-विहार ब्राह्मण क्षत्रियोंके समान ही है।

उपरोक्त विभिन्न अम्बष्ठों और वैद्योंको छोड़ बङ्गदेशमें और एक वैद्य जातिकी बस्ती है। साधारणतः वैद्य कहनेसे इसी वैद्य जातिका ज्ञान होता है।

बङ्गालका वैद्यसमाज।

बङ्गालकी वैद्य जाति भी अपनेको अम्बष्ठ सन्तान कहके परिचय देती है। बङ्गालके वैद्यसमाजकी पूर्वापर सामाजिक अवस्था, विद्या, बुद्धि और धर्मनिष्ठाकी आलोचना करनेसे इस जातिको कभी भी मनूक्त समाज बाह्य अम्बष्ठ कहा जा नहीं सकता।

इनकी उत्पत्ति।

बङ्गालके उच्च श्रेणीके ब्राह्मण-कायस्थके साथ श्रेष्ठ वैद्य समाजके आचार-व्यवहारका कुछ भी पार्थक्य दिखाई नहीं देता। वर्त्तमान बङ्गीय वैद्यसमाज अपने अपने वर्णधर्मके संबन्धमें तीन तरहके मत प्रकाशित किया करते हैं—

१। बङ्गीय भिषक्‌शिरोमणि गङ्गाधर-कविराज प्रमुख वैद्योंका कहना है, कि पूर्व समयमें असवर्ण विवाह-प्रथा प्रचलित थी। उस समय ब्राह्मण ब्राह्मणकन्याके सिवा अजातिकी अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यकी कन्याओंसे विवाह कर लेते थे। अतएव ब्राह्मणके औरससे विवाहिता वैश्यकन्याके गर्भजात सन्तान अम्बष्ठ भी एक ब्राह्मण हैं।

२। राढ़ीय वैद्य-समाज और राजा राजवल्लभके दलभुक्त बङ्गज वैद्यसमाज अपनेको वैश्य समझते हैं। इसके सम्बन्धमें राजा राजवल्लभने उस समयके भारतवर्षके नाना स्थानोंके प्रधान प्रधान पण्डितोंको बुला कर जो व्यवस्थायें संग्रह की थीं, वही व्यवस्था वे प्रमाणस्वरूप व्यवहार करते हैं। वे साधारणतः—

"वैश्यकन्यकायां विन्नायामम्बष्ठोनाम भवति।
यस्तु ब्राह्मणेन…वैश्यामुत्पादितो वैश्य एव भवति ॥"
(मिताक्षरा)

अर्थात् "विवाहिता वैश्यकन्यासे अम्बष्ठ नामकी जाति हुई है। ब्राह्मण द्वारा वैश्यासे उत्पन्न होनेसे यह जाति वैश्यकी समान होगी।" इत्यादि मिताक्षराकी उक्ति दिखाते हैं।

३। स्मार्त्त रघुनन्दनके मतानुवर्त्ती कोई कोई प्राचीन वैद्य भरतमल्लिकधृत वचन उद्धृत कर अपनेको शूद्र भावापन्न ही समझते हैं। जैसे—

"शनैः शनैः क्रियालोपादेष ता वैद्यजातयः।
कलौ शूद्रसमा ज्ञेया यथा जना यथा विशः ॥" (हरिविष्णुः)

'युगे जघन्ये द्वे जाती ब्राह्मणः शूद्र एव च' इति यमः। 'शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च।' इति मनुवचनं धृत्वा एवमम्बष्ठादीनामपि कलौ शूद्रत्वमिति स्व स्व ग्रन्थेषु वाचस्पतिमिश्रादिभिस्तथा शुद्धितत्त्वे स्मार्त्त भट्टाचार्येणाप्युक्तम्। अतएव कुलपञ्जिकायामुक्तम्—

"अतिदिष्टं हि वैश्यस्य शूद्रत्वं चक्रिपादिवत्।
तस्मात् नृपविशस्तुल्यो वैद्यः शूद्रस्य पूजितः ॥"
(चन्द्रप्रभा ५ पृ०)

अर्थात् क्रमसे क्रियालोपके कारण वैश्य जातिकी तरह वैद्य जाति भी कलिमें शूद्रत्वको प्राप्त हुई है। यमने कहा है, कि इस जघन्य कलियुगमें ब्राह्मण और शूद्र केवल यही दो जातियां रहेंगी। ब्राह्मणके अदर्शन और

क्रमसे क्रियालोप होनेसे ये सब क्षत्रिय जातियां शूद्रत्व-को प्राप्त करेंगी। मनुका वचन उद्धृत कर स्व स्व ग्रंथमें वाचस्पतिमिश्र आदि और शुद्धितत्त्वमें स्मार्त्त भट्टाचार्य्य द्वारा कलिकालमें अम्बष्ठादिका भी शूद्रत्व प्रतिपादित हुआ है। इसी कारण प्राचीन कुलपञ्जिका-में लिखा है, कि क्षत्रियोंकी तरह वैद्य भी अतिदिष्ट शूद्र हैं। (चन्द्रप्रभा) प्रायः १५६७ शक (१६७५ ई०)में राढ़ीय वैद्यकुलतिलक भरतमल्लिकने लिखा है,—

'अतिदिष्टं हि वैद्यस्य शूद्रत्वं क्षत्रियादिवत्।"

उक्त प्रमाणके अनुसार कहा जा सकता है, कि महामति भरत मल्लिकने जिस समाजमें जन्म लिया था, उस प्रथित राढ़ीय वैद्य समाजमें उनके समय उपवीत प्रचलित न था। साधारणतः वे शूद्राचारी ही गिने जाते थे। राजा राजवल्लभके अभ्युदयसे हो राढ़ीय और वङ्गज दोनों वैद्य समाजमें ही पुनः संस्कार या वैश्याचारग्रहणका सूत्रपात हुआ। राजा राजवल्लभने राढ़ीय वैद्य समाजके प्रधान समाजस्थान श्रीखण्डमें विवाह किया और अपने मुर्शिदावादके भवनमें काशी, काञ्ची, द्राविड़ आदि भारतीय सभी प्रधान पण्डितोंको आह्वान कर पुनः संस्कारग्रहणकी व्यवस्था ली थी। उस व्यवस्थापत्रमें लिखा है—

"कड़इधादि ग्रामनिवासिनामम्बष्ठानां यज्ञोपवीतादिकामिति लोकदर्शनेन च" अर्थात् कड़इधादि ग्राम-निवासी अम्बष्ठोंका यज्ञोपवीत अभी भी दृष्टिगोचर होता है। इससे भी जाना जाता है, कि इस व्यवस्थाके ग्रहणके समय श्रीखण्ड आदि प्रधान प्रधान वैद्य-समाजमें यज्ञोपवीत प्रचलित न था। ऐसी दशामें उक्त व्यवस्थापत्रमें ऐसा नितांत अप्रसिद्ध ग्रामका उल्लेख कदापि न रहता*।

ब्राह्मणाभ्युदयके बाद यह जाति ब्राह्मणसमाजसे सम्पूर्ण भिन्न हो जाने पर भी कौलिन्यप्रथाके कठोर शासन पर भी कायस्थ समाजसे वैद्यसमाज अलग न हो सका। आश्चर्य्यका विषय है, कि शक्ति गोत्रीय वङ्गज कुलीन कविराज राघवने अपने सद्वैद्यकुलदर्पणमें अपने पूर्व-पुरुषोंके परिचय प्रारम्भमें—

'गणेशरामकृष्णश्च गङ्गादित्य महेश्वर।
पितागुरू परंब्रह्म चित्रगुप्त नमोऽस्तु ते॥"

इत्यादि श्लोकोंके द्वारा आदि कायस्थ चित्रगुप्तका स्मरण किया है।

राजपूत सम्बन्ध।

पहले ही कह आये हैं, कि बौद्धाधिकारकालमें वैद्यसम्प्रदायका क्षत्रियोंसे सम्बंध था। पाली अम्बष्ठसूत्रसे उसका आभास मिलता है। जैन और बौद्धाधिकारमें क्षत्रिय प्रधानताका ही निदर्शन है। इसीसे सुप्राचीन जैन और बौद्धग्रंथोंमें ब्राह्मणसे क्षत्रिय श्रेष्ठ कहे गये हैं। इसी प्राधान्यको लोप करने-के उद्देशसे पुनर्व्राह्मणाभ्युदय-कालमें ब्राह्मणनिबंधकार क्षत्रिय जातिके विलोपसाधनमें प्रवृत्त हुए थे। इसीके फलसे यहाँ 'युगे जघन्ये द्वे जाती ब्राह्मणःशूद्र एव च" इत्यादि कल्पित श्लोकोंकी सृष्टि हुई थी। इसी लिये ब्राह्मणाभ्युदयके बहुत पीछे वैद्यकुलग्रंथोंमें असिजीवी कायस्थोंका सम्बन्ध विवृत होने पर भी जो असिजीवी जाति ब्राह्मणोंके विरुद्ध अभ्युदित हुई थी, उनके संस्रवकी बातको स्थान नहीं मिला। किंतु वैद्य जातिमें जो पूर्वतन क्षत्रियवृत्ति सम्पूर्णरूपसे विलुप्त नहीं हुई थी, वह सेनभूमके राजवंशके क्रियाकलापसे स्पष्ट प्रमाणित होगा जो हो, १७वीं शताब्दीके पहले उक्त वैद्यजातिके साथ राठोर शाखाके राजपूतोंका विशेष रूपसे सम्बंध हुआ था। सभी कुलग्रन्थोंसे इसका प्रमाण मिलता है।

बड़े ही आश्चर्यकी बात है, कि बङ्गालकी अन्यान्य जातियोंका अस्तित्व भारतके प्रायः सब स्थानोंमें है; किन्तु वैद्य जातिका अस्तित्व बङ्गाल छोड़ और कहीं भी दिखाई नहीं देता। उत्तर-पश्चिम और विहार प्रदेशमें शकद्वीपी ब्राह्मण और कायस्थ साधारणतः चिकित्सा

---

* राजा राजवल्लभके समय जो गौड़वङ्गके वैद्यसमाजमें द्विजाचार पुनः प्रवर्त्तित हुआ, उस समयके थोड़े समय बाद रचित श्री मृत्युञ्जय विद्यालङ्कारके राजावली और Ward's Hindoos नामक ग्रंथके पढ़नेसे जाना जाता है।

वृत्ति करते हैं, फिर भी, उनके साथ वङ्गीय वैद्योंके कुछ सम्बन्ध होनेका कोई प्रमाण नहीं। वैद्य कुल-ग्रन्थके अनुसार नन्दी आदि महाराष्ट्रमें जा कर बस गये। किसी किसीका ख्याल है, कि वहांके सेनवी ब्राह्मण ही यहांकी वैद्य जातिकी अवान्तर शाखा है; किन्तु सेनवियोंमें तो चिकित्सा वृत्ति देखी ही नहीं जाती। वास्तवमें इस उन्नत जातिकी यथार्थ उत्पत्तिका इतिहास घोर तमसाच्छन्न है। पूर्व भारतमें बौद्धप्रभावके समय इसमें सन्देह नहीं, कि इस जातिका स्वतंत्र समाज गठित हो रहा था।

इस समय वङ्गालमें वैद्योंके साधारण चार समाज हैं—पञ्चकोट, राढ़ीय, वङ्गज, वारेन्द्र। पञ्चकोट समाज दो प्रधान शाखामें विभक्त हुआ है—सेनभूम और वीरभूम। मानभूम जिलेके वैद्य सेनभूम समाजके अंतर्गत हैं और वीरभूम जिलेके वैद्य वीरभूम समाजके अंतर्गत हैं।

राढ़ीय समाज प्रधानतः तीन शाखाओंमें विभक्त है—श्रीखण्डसमाज, सातशैका समाज और सप्तग्राम समाज। त्रिवेणी, काँचड़ापाड़ा, कुमारहट्ट, सोमड़ा, सुकड़े, नाटागढ़, दिगड़े, वलागढ़, गुप्तिपाड़ा आदि भागीरथी तीरवर्ती स्थानोंके वैद्य सप्तग्राम समाजके अन्तर्गत हैं। पूर्वसीमा कालना, पश्चिमसीमा वर्द्धमानका पश्चिम प्रांत, उत्तरीसीमा काँटोया और दक्षिणसीमा पाण्डुआ इन चारों सीमाके भीतरके वैद्य सात शैका-समाजके अंतर्गत हैं। काँटोयाके उत्तर अवस्थित स्थानके वैद्यगण अहङ्कारपूर्वक अपनेको श्रीखण्ड समाजके वैद्य कहते हैं। ये सबकी अपेक्षा सदाचार-सम्पन्न हैं।

राढ़ीय कुलग्रंथ।

राढ़ीय सद्वैद्य या कुलीन समाजका परिचय देनेके लिये वहुतेरे वैद्य पण्डितोंने लेखनी उठाई थी। उनमें भूरिश्रेष्ठी-राजसभापण्डित प्रसिद्ध टीकाकार श्रीभरत मल्लिक-रचित कुलग्रंथ ही राढ़ीय वैद्योंका प्रामाणिक ग्रंथ कहा जाता है। ये दो कुलग्रंथ रख गये हैं—चन्द्रप्रभा और रत्नप्रभा। चन्द्रप्रभा वहुत बड़ा ग्रंथ है। इसमें राढ़ागत बीजपुरुषसे भरतके समय तक सब सद्वैद्योंकी वंशावली और कुलपरिचय दिया गया है। रत्नप्रभामें केवल शुद्ध कुलीनोंका परिचय है। भरत मल्लिकके ग्रन्थमें दुर्जयदास चिरञ्जीव, सञ्जय, यादवराय, जगदीश, घटकराय, नारायणदास, अंतरङ्ग खाँ आदि कुलग्रंथकारोंके वचन उद्धृत किये गये हैं। सम्भवतः भरतमल्लिकका ग्रंथ विशेष आदृत हुआ जिससे अन्यान्य कुलग्रंथोंका प्रचलन बंद हो गया।

वैद्योंका गोत्र।

वैद्यपण्डित भरतमल्लिकने चन्द्रप्रभामें इस तरह लिखा है—

सेन दास आदि वैद्योंके २८ गोत्रोंका पृथक् पृथक् भावसे क्रमशः उल्लेख किया जाता है। यथा—धन्वंतरि, शक्ति, वैश्वानर, आद्य, मौद्गल्य, कौशिक, कृष्णात्रेय और आङ्गिरस, सेनोंके ये आठ गोत्र है।

मौद्गल्य, भरद्वाज, शालङ्कायन, शाण्डिल्य, वशिष्ठ और वात्स्य, दासोपाधिधारी वैद्योंके ये छः गोत्र हैं।

गुप्तोंके काश्यप, गौतम और सावर्णि, केवल तीन गोत्र हैं।

कौशिक, काश्यप, शाण्डिल्य और मौद्गल्य दत्तोपाधिक वैद्योंके ये चार ग्रंथ हैं।

वैद्योंमें जिनकी देव उपाधि हैं, उनके आत्रेय, कृष्णात्रेय, शाण्डिल्य और आलमान—ये चार गोत्र हैं।

करोंके गोत्र—भरद्वाज, पराशर, वशिष्ठ, शक्ति।

राजोंके वात्स्य और मार्कण्डेय। सोमोंके कौशिक और काश्यप। नन्दियोंका मौद्गल्य। चंद्रोंका वशिष्ठ। धरोंका काश्यप। कुण्डोंका भरद्वाज। रक्षितोंका काश्यप।

किसी-किसी देशमें पूर्वोक्त दत्तोंके आद्य गोत्रीय और देश भेदसे आत्रेय और कृष्णात्रेय गोत्रीय वहुतेरे वैद्य संतान दिखाई देते हैं। अतएव दत्तवंशीय वैद्योंमें कुल सात गोत्र हैं। इसी तरह करोंमें भी देश-भेदसे काश्यप, वात्स्य और मौद्गल्य गोत्रीय अनेकानेक वैद्यसंतति विद्यमान रहनेसे वे भी सात गोत्रोंमें विभक्त हुए हैं। राजोंमें भी किसी किसी स्थानमें

काश्यपगोत्र हैं। सुतरां वे भी कुल तीन गोत्रोंमें विभक्त हैं। इसी तरह धरोंमें भी जामदग्न्य और रक्षितोंमें भरद्वाज गोत्रकी बात सुनी जाती है।

पूर्वोक्त उपाधियोंके सिवा वैद्योंमें इंद्र और आदित्य—ये दो उपाधियां भी दिखाई देती हैं। उनकी भी संख्याका पृथक् रूपसे उल्लेख किया जाता है—

इन्द्रके—काश्यप और आदित्यके आदित्य और कौशिक गोत्र हैं।

इस समय देखा जाता है, कि वैद्योंमें कुल पचास गोत्र हैं, इनके सिवा देशांतरमें भी इनके अन्य गोत्रका उल्लेख नहीं मिलता। यद्यपि दत्त आदि उपाधिधारी वैद्यके किसी देशमें कोई गोत्र विद्यमान हो, तो यह कहना होगा, कि वह समाजमें अप्रसिद्ध है।

कुलपञ्जिकान्तरोक्त राढ़ीय वैद्यकुलोंका उत्तमाधम गोत्र।

काञ्जोशा ग्राम-निवासी सेनवंशीय वैद्योंके आठ गोत्र हैं। उनमें शक्ति और धन्वन्तरि श्रेष्ठ हैं। वैश्वानर और आद्य—ये दो गोत्र मध्यम हैं, मौद्गल्य, कौशिक, कृष्णात्रेय और आङ्गिरस ये चार गोत्र अधम माने जाते हैं। गोनगरीय दासोंके १६ गोत्रोंमें मौद्गल्य और भरद्वाज ही श्रेष्ठ हैं। शालङ्कायन और शाण्डिल्य मध्यम हैं। वशिष्ठ, वात्स्य—ये दो गोत्र नितान्त अधम हैं। करङ्कोठके रहनेवाले गुप्तवंशोंमें काश्यपगोत्रीय ही उत्तम हैं। गौतम गोत्रीय मध्यम तथा सावर्णि अधम हैं। मोरशासन ग्रामके दत्तोंमें कौशिक सर्वोत्तम; मौद्गल्य, काश्यप और शाण्डिल्य मध्यम और आद्य गोत्रीय सर्वापेक्षा निन्दनीय हैं। इनमें कान्तरवासी करोंमें पांच गोत्र हैं। इनमें शक्ति, वात्स्य और मौद्गल्य निकृष्ट हैं। समग्रस्थान-निवासी देववंशियोंके चार गोत्रोंमें शैयालात्रेय गोत्र ही उत्तम हैं। कृष्णात्रेय मध्यम और आलमान तथा शाण्डिल्य ये दोनों हीनगोत्र हैं। राढ़ीय वैद्योंमें मेढ़ुशासनवासी राज उपाधिधारी वात्स्य गोत्रीय सर्वश्रेष्ठ और मार्कण्डेय गोत्र सर्वापेक्षा निकृष्ट हे। मणिग्रामके सोमोंमें जो कौशिक गोत्रीय है, कुलज्ञने उनको श्रेष्ठ और काश्यप गोत्रियोंको हीन निर्देश किया है,

नारायण दासान्तरङ्गखाने-दास, नन्दी आदि आठ प्रकार वारेन्द्र श्रेणीके वैद्योंका इस तरह गोत्रनिर्णय किया है।

दास और नन्दी—ये मौद्गल्यगोत्रीय हैं।

धर और रक्षित—काश्यपगोत्रीय।

कर और चन्द्र—पराशर और वशिष्ठ गोत्र।

कुण्ड—भरद्वाज गोत्र। दत्त—शाण्डिल्य गोत्र।

वारेन्द्रोंमें इन कई गोत्रोंका आनुपूर्विक उल्लेख किया गया। उक्त उपाधिधारियोंके श्रेष्ठत्वका ज्ञापक है, किन्तु इसका व्यतिक्रम होनेसे ये सब गोत्र इनके हीनतासूचक हैं। जैसे दास और नन्दीके शाण्डिल्य, भरद्वाज, काश्यप आदि।

पञ्जिकान्तरमें वारेन्द्र वैद्योंका स्थान और गोत्र इस तरह है—

दास और नन्दी—इनका वासस्थान जासूगाँ तथा चम्पाटी और गोत्र मौद्गल्य है।

धर और रक्षित—ये काश्यप गोत्रीय हैं और वन्धावनी और करञ्ज ग्राममें रहते हैं।

कर और चन्द्र—भेड़ी और मोरशासन ग्राममें वास है। पराशर और वशिष्ठ गोत्र हैं।

कुण्ड—भरद्वाज गोत्रीय और नागशासनमें वास है।

दत्त—वटग्राम और लोध्रवलीमें वास है और शाण्डिल्य गोत्र है।

राढ़ीय अम्बष्ठ वैद्योंका प्रवर।

धन्वन्तरिगोत्रीय सेनोंके—धन्वन्तरि, अपसार, नैध्रुव, आङ्गिरस और वार्हस्पत्य—ये पाँच प्रवर हैं।

शक्ति गोत्रीय सेनोंके—शक्ति, पराशर और वशिष्ठ ये तीन हैं।

मौद्गल्य गोत्रीय दासोंके—और्व, च्यवन, भार्गव, जामदग्न्य और आप्नुवान—ये पाँच प्रवर हैं।

काश्यपगोत्रीय गुप्तके—काश्यप, अपसार और नैध्रुव।

कौशिक गोत्रीय दत्तोंके—शाण्डिल्य, असित और देवल।

कृष्णात्रेय गोत्रीय दत्तोंके—कृष्णात्रेय, वशिष्ठ और आत्रेय।

आत्रेय गोत्रीय देवोंके—आत्रेय, आङ्गिरस और वार्हस्पत्य।

वात्स्य गोत्रीय राजोंके—वात्स्य, असित और मार्कण्डेय।

कौशिक गोत्रीय सोमोंके—कौशिक, काश्यप और भार्गव ये तीन प्रवर हैं।

राढ़ीयादि भेद।

सेन, दास, गुप्त, दत्त, देव, कर, राज और सोम ये आठ घर राढ़ीय वैद्य हैं।

नन्दी, चन्द्र, धर, कुण्ड, रक्षित, दास, दत्त और कर ये वारेन्द्र कहलाते हैं।

उक्त राढ़ीय वैद्योंमें प्रायः बहुतेरे बङ्गदेशमें आ कर ब॰॰ गये। और नन्दी आदि वारेंद्र वैद्योंमें कुछ लोग महाराष्ट्र चले गये।

सेन आदि वैद्योंका पूर्व स्थान।

काञ्जीशा, गोनगर, करङ्कोट, मोरशासन, कान्तार, मल्लभूम, मेढूशासन और मणिग्राम—ये आठ सेन-प्रमुख राढ़ीय वैद्योंके पूर्व स्थान हैं।

कुलीन और मौलिक कथन।

बीजपुरुषसे अब तक जिनका कुलकार्य उचित रीतिसे चला आ रहा है, वे ही कुलीन हैं। महाकुल, मध्यकुल और अल्पकुल भेदसे कुल सम्बन्ध आदिके दोषसे नष्ट होता है। उनके मूल वंश सुप्रसिद्ध रहने पर भी वैद्य सम्प्रदायमें वे मौलिक नामसे प्रसिद्ध हैं।

कुलका गरिष्ठादि भाव।

मालञ्च, धलहण्ड और वेतड़ समाजके कायुत्र गोत्र-गण गरिष्ठ कुलीन हैं। अल्प दोषसे इनकी कुलीनतामें किसी तरहका हीनता नहीं होती। खाना, मङ्कलकोट और नरहट्ट समाजके कायु और पन्थवंशीय कुलीन कोमल कह कर विख्यात हैं और सामान्य दोषसे भी पतित होते हैं। गरिष्ठोंमें जो विशेष ख्यातिमान हैं, वे अति गरिष्ठ हैं और जो अप्रसिद्ध हैं, वे कोमल आख्यासे आख्यात होते हैं। इसी तरह कोमलोंमें भी जिनकी अशेष सुख्याति है, वे गरिष्ठ हैं और जिनकी किसी तरह प्रतिपत्ति नहीं, वे अति कोमल कहके विश्रुत हैं। फलतः यह गरिष्ठत्व और कोमलत्व दोनों ही कुलक्रियादि अच्छे होनेसे ही कुल का गौरव और खराब होनेसे कुलका लाघव होता है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं।

वैद्योंके पूज्यापूज्य और पौर्वापर्य विचार।

सेन, दास और गुप्त ये क्रमसे पूज्य हैं अर्थात् माननीय हैं। किसी सभामें गोष्ठी अर्चनाके समय उक्त तीन वंशीय कुलीनोंके उपस्थित रहने पर उनमें सेन ही पहली अर्चनाके योग्य होंगे। उनके नहीं रहनेसे वहां दास और दास जहां नहीं रहेंगे, वहां गुप्त पूज्य होंगे। पहलेसे अब तक इसी तरहसे पूजनक्रम चला आ रहा है। पीछे किसी समय इनमें परस्पर प्रतिद्वन्द्विता होनेसे विज्ञोंके विचारसे पितृ-पितामहादि क्रमसे और ज्ञाति कुटुम्ब आदिके प्राचुर्यसे भरण कर ही प्रथम पूजनीय स्थिर हुए। इस कारणसे तद्वंशीयगण ही सर्वत्र पूजित होते आ रहे हैं। इसके बाद सागरगुप्तका जो कोई उप-स्थित रहता था, वही पूजित होता था। उनमें भी उपस्थित होनेसे पण्डित लोग कहीं सम्बन्धादिकी उच्च नीचता विचारपूर्वक, कहीं पर्यायकी गुरु लघुता निर्देशान्तर प्रतिद्वन्द्वियोंमें पूज्यापूज्य ठीक कर देते थे। जिस समय ऐसी व्यवस्थाका लोप हो गया, उस समय ख्याति ही बलवती हो उठी अर्थात् अब उनमें जो प्रसिद्ध होते, जिनकी दश पांच आदमी पूछताछ करते, वे ही पूज्य गिने जाते थे।

दुर्जयदासके मतसे पूज्यापूज्य निर्णय।

दुर्जयदासका कहना है, कि पहले जैसे प्रथम विना-यक, पीछे आयु, इसके बाद कायु पूज्योंमें गिने जाते थे, इस समय भी वैसे ही कुमार, विश्वम्भर और विश्वनाथ ये तीन यथाक्रमपूज्य हैं। जहां इन तीनोंका अभाव हो या इनके वंशधर उपस्थित नहीं रहें वहां वैद्यगण प्राचीन कुलज्ञोंके विचार मेरे वाक्योंके प्रामाण्य ले कर पूज्य निर्णय करें।

जिनके पिता दत्तके दौहित्र हैं, जिन्होंने दत्तवंशको कन्यादान किया है, जिनके भ्राता दत्तवंशके जामाता हैं, वे कुमारसेन किस तरह महद्व्यक्ति कहे जा सकते हैं? इस तरहका प्रश्न युक्तिसंगत कहा जा नहीं सकता। क्योंकि कुलमें और पौरुषमें कुमारसेनके समान कोई नहीं है। ये सर्वगुणसम्पन्न सर्वलोकपुरस्कृत हैं

सब जातियोंके प्रधान, आत्मीय कुटुम्ब सब इनके वशीभूत हैं, अतएव ऐसे महान व्यक्तिके यद्यपि कोई सामान्य दोष दिखाई दे, उस पर किसीको ध्यान न देना चाहिये। क्योंकि कभी कोई बड़ेका सामान्य दोष नहीं देखता। इस कारण सर्वसम्मति-क्रमसे कुमारसेन अर्चनामें सर्वाग्र हुए। इसी तरह विश्वम्भर स्वयं आपके दौहित्र होने और उनके ज्येष्ठ भ्राता नन्दीकन्यासे विवाह करनेसे इनके भी बहुविध गुण होनेसे दास वंशमें ये ही प्रथम पूजनीय हैं। विश्वनाथ भी देवकन्या समुद्भूत गङ्गाधर गुप्तके वंशधर होनेकी वजह कुछ दोषान्वित होने पर भी अपने सत्स्वभाव गुणोंसे वैद्य-समाजमें सर्वत्र पूजित हैं।

कुलाचार्यने सञ्जय और विनायक-वंशीय भास्करको गोष्ठीपति और उनके विश्वविख्यात तीनों पुत्रोंको महाकुलीन कह कर निर्वाचन किया है। इस कारणसे तत्तद्वंशीयगण भी वैद्यसमाजमें सर्वाग्र पूज्य होते हैं। इनके अभावमें विचारसे जो श्रेष्ठ होंगे, वे ही समाजके पूजनीयोंमें गण्य होंगे।

घटकरायके मतसे—विनायकवंशके जगद्विख्यात कृष्ण खाँ और हरिहर खाँ दोनों ही महाकुलीन कहे जाते हैं। इनके वंशधर चाहे कोई हों, वे निश्चय ही सर्वाग्र पूजनीय होंगे। कायुवंशीय वनमाली आदि सभी महाकुलीनोंमें गिने जाते हैं और उनके वंशजात कोई यथासमय उपस्थित हों, तो वे ही समाजमें पूजित होंगे। इनके अभावमें विचारसे जो कुलमें श्रेष्ठ है, वे ही पूजनीय होंगे।

राढ़ीय वैद्यग्रन्थकार।

राढ़ीय वैद्यवंशमें संस्कृत या वङ्गभाषाके बहुतेरे कवि तथा ग्रन्थकार हो गये हैं। यहां उनका परिचय देना असम्भव है। उनमें महाकवि दामोदर सेन, चैतन्य पार्षद नरहरि सरकार ठाकुर, सदाशिव कविराज, आत्माराम दास, गोपीरमणदास, लोचनदास, कविकर्णपुर, परमानन्दसेन, रामचन्द्र कविराज, पदकर्त्ता गोविन्द दास, कविराज घनश्याम दास, बलराम दास, यदुनन्दन दास, गोकुलानन्दसेन, उद्धवदास, पीताम्बर दास, गौरीकान्तराय, साधक कविरञ्जन रामप्रसाद सेन, कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त, निधूबाबू, कृष्णकमल गोस्वामी, ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेन, वाग्मी परिव्राजक प्रसन्नसेन आदिका नाम उल्लेखयोग्य है।

वङ्गज वैद्य समाजका परिचय।

राढ़ीय वैद्यसमाजकी तरह वङ्गज वैद्यसमाजमें भी बहुतेरे कुलग्रंथ रचे गये थे। प्रथम चायुदासवंशीय दुर्जयदास और बादमें चतुर्भुजने वैद्यसमाजका परिचय संस्कृत-भाषामें रचा, इसके बाद कविचंद्र भाषामें लिख गये. अंतमें कविकङ्कणने एक कुलग्रंथ प्रकाशित किया। इन सब ग्रंथोंकी आलोचना कर राघव कविराजने अपना वैद्यकुलदर्पण प्रकाश किया है। राघवके बाद कविकङ्कणके भांजे राधाकान्त कविकण्ठहारने अपनी सुप्रसिद्ध (संस्कृत) सद्वैद्यकुलपञ्जिका लिपिबद्ध की है। इसके बाद घटक विशारद रामकांत दास वङ्गभाषामें 'ढाकुर' या 'ठाकुर' और जगन्नाथने भावावली और दोषावली प्रकाशित की। ये सब ग्रंथ ही वङ्गज वैद्यसमाज-कुलेतिहासके निर्णय करनेमें एकमात्र सहायक हैं। इन्हीं सब ग्रंथोंके साहाय्यसे वङ्गजसमाजका संक्षिप्त परिचय लिखा गया।

"राढ़ीया भिषजो ये ये प्रायास्ते वङ्गजा अपि।"

(भरत-चन्द्रप्रभा)

उक्त वचनोंके अनुसार राढ़ीय वैद्यगण ही वङ्गदेशमें जा कर बस गये हैं। वे ही कुछ दिन बस जाने पर वङ्गज नामसे परिचित हुए।

यशोर जिलेमें इतना और खुलना जिलेमें सेनहाटी, पयोग्राम, मूलघर, भट्टप्रताप; बाकरगञ्ज जिलेमें सिद्धकाटी; फरीदपुर जिलेमें सेनदिया, काजलिया, खन्दारपाड़, कायारिया आदि स्थानोंमें श्रेष्ठ कुलीनोंका वास है। आश्चर्यका विषय है, कि सेनहाटी और पयोग्रामको छोड़ और एक कुलीनका स्थान भी २७ समाजके अन्तर्वर्त्ती दिखाई नहीं देता। इस कई ग्रामके अधिवासी आज भी समान भावसे कार्य कर रहे हैं। कालीया किञ्चित् न्यून है। यशोर जिलेमें कालीया, होगलडांगा, आड़ारखादा, मघीया, मागुरा, राजशाही, मामूदपुर, दौलतपुर, उत्कुन आदि स्थानोंमें नाना-श्रेणीके वैद्योंका वास है।

फतेहाबाद या भूषणा समाजमें, तेलाई, पाँचथूपी

और वाणीवह प्रधान स्थान है। इसके बाद फरीदपुर जिलेमें पांचचर, वेलदा खाल, काशीयानी, वल्लभदी, खालिया, कोटालीपाड़ आदि स्थानोंमें भी बहुतेरे वैद्यों-का वास है।

वाकलासमाजमें पोणावालिया, फुलकाटी, वरैकरण, उत्तर-साहबाजपुर, लक्ष्मीदिया, कीर्त्तिपाशा, वासण्डा, साहिनाड़ा, गैला, फुल्लश्री, भाटीया, सरमहल, तेवना, वाउकाटी, नलचिरा, देवरी, खलीसाकोटा, वाउकाटी, लाथुरिया, केतरा, नारायणपुर आदि स्थानोंमें भी बहुतेरे वैद्योंका वास है।

यशोर समाजके कुलीनोंमें बहुतेरे वालु और वाकला समाजमें वास करते हैं। विक्रमपुरमें भी इनकी बस्ती देखी जाती है। इस तरह कुलज या मौलिकोंकी संख्या नाना स्थानोंमें विस्तृत होने पर भी विक्रमपुरमें ही उनकी संख्या अधिक है।

मत्त, वायरा, तेवता, सुयापुर, हासोरा आदि स्थानों-में अनेक सामाजिक वैद्य वास करते हैं।

वालुसमाज—वङ्गप्रताप, सोन वालु, दशकाहनीया, सलीमप्रताप, इनके सिवा मैमनसिंह और पवनेका कुछ अंश ले कर यह समाज गठित हुआ है। इनमें मैमन-सिंहका अधिकांश और ढाका महेश्वरदी और सोनारंगके वैद्य सम्पूर्णरूपसे समाजभुक्त नहीं हुए।

हमने जिन पांच प्रधान समाजोंका नामोल्लेख किया है, उन सब स्थानोंमें जो जो महत् वंश वास कर रहे हैं, आदान-प्रदानके भावसे उन्होंने बहुत कुछ अपनी वंशमर्यादाको बचाया था।

यशोहर प्रदेशसे ही क्रमसे वैद्य पूर्वाभिमुखी हो कर फतेहाबाद और विक्रमपुर तक आये। इन दोनों तरहके वैद्योंके वंशधर वाकला और वालुमें जा कर वस गये, इससे वे भी समाजमें परिगणित हुए।

समाजमें जो प्रधान कुलीन वास करते हैं, उनके साथ सेनहाटी, मूलघर, खन्दारपाड़ आदि समाजोंके श्रेष्ठ कुलीन समभावसे कार्य करनेमें कुण्ठित नहीं होते।

पावना, राजशाही अञ्चलमें जो सब वैद्य वास करते हैं, वे वारेन्द्रसमाजके नामसे विख्यात थे। अन्तमें संख्यामें बहुत कम होनेकी वजह वङ्गजसमाजमें मिल गये।

सैकड़ों वर्ष बीत गये, कृष्णनगर जिलान्तर्गत दाइपुर वङ्गीय वैद्योंका एक समाजस्थान हो रहा है। नेनाई-से कई गणसेनके सन्तान कार्यके उपलक्षमें वहां जा कर वस गये हैं। पीछे उन्होंने पाना श्रेणीके उच्च वैद्योंके साथ कार्य कर अपने ग्राममें ला कर उनको संस्थापित किया। इस समय उनका प्रसार बढ़ रहा है।

पूर्वमें श्रीहट्ट और चट्टग्राम समाज राढ़ीय और वङ्गजसमाजके साथ चल रहा था, यह बात प्राचीन कुलग्रन्थोंमें दिखाई देती है। जब राढ़ीय और वङ्गज-समाजका कायस्थ-सम्बन्ध छोड़ कर स्वतन्त्र हुए, तब श्रीहट्ट और चट्टग्राम समाजमें ऐसे स्वतंत्रलाभकी सुविधा न रहनेसे उन्होंने आदि वैद्यसमाजसे सम्बन्ध विच्छिन्न कर लिया। परवर्त्तीकालमें राढ़ीय और श्रेष्ठ वङ्गज वैद्योंने एक ही समयमें चट्टग्राम और श्रीहट्ट-संस्रव त्याग कर दिया, इसीसे राढ़ीय और वङ्गजसमाजमें श्रीहट्ट समाज विशेष भावसे निन्दित है।

वैद्योंके समाजपति।

अन्यान्य समाजोंकी तरह वैद्योंके पूर्वसे समाज-पति थे। सेनभूमके राजवंश ही वैद्यसमाजके आदि समाजपति हैं। समाजके प्रवीण और समाज-पति एकत्र बैठ कर अपराध शासनके अधिकारी थे। पहले लिख आये हैं, कि विनायक सेन राढ़ीय वैद्य समाजके आदि गोष्ठीपति हैं। कुलग्रन्थसे हम जान सकते हैं, कि उन्हींके वंशके कुमारसेन, वायुकुलके विश्वम्भर और दुर्लभदास और गुप्तकुलके विश्वनाथ गोष्ठीपति हुए थे।

ये सभी शाखा-समाजमें कभी कभी एक एक आदमी गोष्ठीपति होते थे, किंतु उस समय सेनभूमके राजवंश ही समूचे वैद्यसमाजके समाजपति थे। १४वीं शताब्दी तक उनका समाजपतित्व अक्षुण्ण था। पूर्ववङ्गके वैद्यसमाजमें भी एक एक आदमी समाजपति थे, यह बात कण्ठहारकी उक्तिसे जानी जाती है। विनायक-सेनवंशमें रविसेन महामण्डल, धन्वन्तरि वंशोद्भव उचली सेनकसे विजयसेन वैद्यातरङ्गओं और विजय-

सेनके पौत्र धनञ्जयके पुत्र रामचन्द्रसेन समाजपति हुए थे।

इस वंशका इस समय विलोप हो गया है। इसके बाद और किसीको भी समग्र वैद्यका समाजपति नहीं बनाया गया। केवल ढाका माणिकगञ्जके अन्तर्गत दासोराके दत्तवंशका बाजुसमाजका, विक्रमपुरके नौपाड़ाका भरद्वाज चौधरीवंशका विक्रमपुर ढाका समाजका और साहजादपुरके भरद्वाजोंको वाकलाका समाजपति होना मालूम होता है।

राजा राजवल्लभके अभ्युदयकालमें दासोराका दत्तवंश पूर्व वङ्गमें कुछ समाजपतित्व कर रहा था। इस वंशने ही शक्ति दुहिसेन वंशीयगण सेनको ६४ ग्राम दान दे सपरिवार विक्रमपुरमें बुला कर प्रतिष्ठित किया। गणसेन एक समय कुल स्थान परित्याग कर आने पर ही स्थानत्यागवशतः कुलहीन हुए।

इसके पिछले समयमें विक्रमपुर राजनगर-निवासी धन्वन्तरि गोत्रज राजा राजवल्लभसेन सामाजिक क्रियाके बलसे और सेनहाटी और विक्रमपुर अञ्चलके वैद्योंकी सम्मतिसे समाजपति हुए। राजवल्लभने जिस समय सेनहाटी-निवासी कन्दर्परायकी कन्याके साथ अपने तीसरे पुत्र राजा गङ्गादासका विवाह किया, उसी समय उन्होंने समुदाय कुलीन और घटकोंको बुला कर एक चन्दन कार्यका अनुष्ठान किया। इसके बाद सेनहाटी-निवासी हिंगुवंशीय रूपेश्वर सेनके साथ उनकी कनिष्ठा कन्या अभयाके विवाहके समय भी उन्होंने इसी तरह एक चन्दनका अनुष्ठान कर वैद्य समाजपतित्व प्राप्त किया। पीछे उनके भतीजे दीवान बहादुरने अपने पुत्र रायवृन्दावनचन्द्रका विवाह अरविंद विश्वनाथ मजुमदारकी कन्याके साथ किया। उस समय भी उन्होंने एक चंदनका अनुष्ठान कर समुदाय कुलीन और घटकोंको एकत्र किया था; इस सभामें राजा राजवल्लभ समाजपति और रायमृत्युञ्जय सहकारी समाजपति कहके सम्मानित हुए थे। वङ्गज समाजमें जयसारके सुप्रसिद्ध लाला रामप्रसाद रायने पयोग्राम-निवासी हिंगुप्रभाकरवंशीय रामधन सेनके साथ अपनी कन्या सर्वेश्वरीका विवाह किया। इस विवाहमें भी एक चंदनका अनुष्ठान हुआ था। उस समय समवेत कुलीन और घटकोंने रामप्रसादको उपसमाजपति स्वीकार किया था। कहनेकी जरूरत नहीं, कि इस कार्यमें भी राजवल्लभ वैद्यसमाजपति और रायमृत्युञ्जय सहकारी समाजपति माने गये थे।

वङ्गज वैद्यग्रन्थकार।

वङ्गज वैद्यसमाजमें भी संस्कृत और बंगला बहुतेरे कवियों और ग्रंथकारोंने जन्मग्रहण किया था। राघव कविराजके सद्वैद्यकुलदर्पण और कविकण्ठहारकी सद्वैद्यकुलपञ्जिकामें अनेक महात्माओंके नाम दिखाई देते हैं। सिवा इनके विजयगुप्त, षष्ठीवरसेन, गंगादाससेन, वैद्यजगन्नाथ, लाला रामगति राय, लाला जयनारायण राय, आनंदमयी, मुक्ताराम सेन, अनंतराम दत्त, जगदीश गुप्त, अंधकवि भवानी प्रसाद, शिवचंद्रसेन, रामलोचन दास, पत्रनवीस रामकुमारसेन, नीलमणिदास, काली नारायण गुप्त, चट्टग्रामी दाससेन, पत्रनवीस रामकुमार सेन, मुंशी शम्भूनाथ दास, नीलमणि दास, गोलोकचन्द्रसेन, ईश्वरचंद्रसेन, जगद्बंधुदास, कालीनारायण गुप्त, मुंशी रामनाथ सेन, कालीकुमारदास, दुर्गापति सेन, पण्डितवर गङ्गाधर कविराज, कृष्णचंद्र मजुमदार, दीननाथ सेन, दुर्लभचंद्र सेन, रजनीकांत गुप्त, रोहिणीकुमार रायचौधरी आदि कवि तथा ग्रन्थकार वङ्गज वैद्यसमाजका मुखोज्ज्वल कर गये हैं।

वैद्यजीवन दास—एक प्राचीन कविका नाम।

वैद्यनरसिंह सेन (सं० पु०) वासवदत्ताटीकाके रचयिता।

वैद्यनाथ—सन्थाल परगनेका प्रसिद्ध शैवतीर्थ। अङ्गरेज अधिकारमें भी यह एक समय वीरभूम जिलेमें, पीछे शाहाबाद जिलेके एक छोटेसे ग्रामके रूपमें परिगणित था। प्राचीन तीर्थमाहात्म्य आदि ग्रन्थोंमें वैद्यनाथक्षेत्र वीरभूमके अन्तर्गत कहा गया है।

देवघर देखो।

यह स्थान कलकत्तेके हावड़ा स्टेशनसे इष्ट इण्डिया रेलके कार्ड लाइनके पथसे २०१ मील पर अवस्थित है। यहांसे देवघर मह्कमे तक एक शाखा रेल विस्तृत है। जबसे यह रेल खुली, तबसे वैद्यनाथधाम जानेमें

यात्रियोंको बड़ी सुविधा होती है। पहले यात्री पैदल चल कर पार्वतीय प्रान्तरको तय करते थे। पथमें डाकुओंका पूरा भय था। सिवा इसके कभी कभी सह-गामी पण्डोंके साथी भी मौका पा कर यात्रियोंको लूट लेते थे। इस समय वे सब उपद्रव अत्याचार लुप्त हुए हैं।

रेलपथके फैल जानेसे अब यात्रियोंको पैदल चलनेका मौका ही नहीं आता, फलतः डाकुओंका उपद्रव आप ही आप शान्त हो गया। अब यात्रियोंको विशेष कष्ट नहीं भोगना पड़ता। अभीष्ट पूजादि कर यात्री उसी दिन लौट भी आ सकते हैं।

वैद्यनाथक्षेत्र समुद्रपृष्ठसे ८७४ फीट ऊँचा है। उच्चताके कारण ही यहांकी मिट्टी रसदार नहीं और वायु भी रूखी और जलीय रसवर्जित है। यहांकी अधित्यकाभूमिके प्रवाहित जलमें नाना धातव पदार्थ मिश्रित होने और वायु साफ रहनेसे यह स्थान बड़ा ही स्वास्थ्यप्रद है। विशेषतः यह एक तीर्थक्षेत्र है। धर्मप्राण भारतवासी विशेषतः बङ्गाली वार्द्धक्यमें उपस्थित होने पर तीर्थवासके हेतु और वृद्धावस्थामें स्वास्थ्य-रक्षाके लिये यहाँ आ कर बसते हैं। इस समय यहां बहुतेरे लोगोंने बस्ती कर ली है। आदि वैद्य-नाथ तीर्थ अर्थात् देवघरमें केवल तीर्थयात्री बङ्गालियों और पण्डोंका वास है। जो जलवायु परिवर्तन-के लिये देवघरमें आ कर वास करते हैं, वे देवमन्दिरके दक्षिण ओर कर्सटेयर्स टाउन भागमें रहते हैं। ये दोनों स्थान वर्त्तमान देवघर नगरके अन्तर्गत हैं। पहले यहां बस्ती न थी, अब क्रमसे बढ़ रही है।

देवघरसे कुछ पश्चिम वैद्यनाथ जंकशन स्टेशन है। स्टेशनसे सटा ग्राम भी वैद्यनाथके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ प्राचीनत्वके निदर्शनस्वरूप मैदानमें घाटमें अनेक ध्वस्त स्तूप पड़े हुए हैं।

देवघरमें सुप्रसिद्ध वैद्यनाथका मन्दिर है। उसमें देवादिदेव महादेवका अनादि वैद्यनाथलिङ्ग स्थापित है। इस मन्दिरके प्राचीरके मध्य और भी दो मन्दिर हैं। उनके गठनशिल्प वैसी निपुणताके परिचायक नहीं। फिर भी, मन्दिरसे सटी हुई कितनी ही शिला-लिपियोंका अनुशीलन करने अथवा उसकी स्थापत्य-प्रणालीकी पर्यालोचना करने पर मालूम होता है, कि मन्दिर मुसलमानोंकी अमलदारीमें बनाया या उसका संस्कार हुआ है। साधारणकी अवगतिके लिये इन मन्दिरोंकी सूची नीचे दी गई—

१ श्याम-कार्त्तिक	११ देवी सिंहवाहिनी
२ पार्वती	१२ सूर्यनारायण
३ नीलकण्ठ महादेव	१३ सरस्वती
४ लक्ष्मीनारायण	१४ हनुमान और कुवेर
५ अन्नपूर्णा	१५ कालभैरव
६ भोगमन्दिर (भग्न)	१६ सन्ध्यामाई
७ काली	१७ ब्रह्मा और गणेश
८ समाधि	
९ आनन्दभैरव	१८ वैद्यनाथ
१० रामलक्ष्मण	१९ गङ्गा।

सिवा इनके कालभैरव, सन्ध्यामाई और ब्रह्मा तथा गणेश-मन्दिरके सम्मुख नेपालराजका दिया हुआ बड़ा घण्टा लटकता है। मन्दिरमें प्रवेश करनेके लिये प्राचीरगात्रमें ४ दरवाजे हैं। उत्तरके द्वारके पार्श्वमें एक पक्का कुंआ है। इसको बगलमें ही लक्ष्मी-नारायणका मन्दिर है। इसके उत्तर द्वारके बाहर बाजार और नाना प्रकार खाद्यकी दुकानें हैं। मन्दिरके सम्मुख भी दुकान और बाजार हैं। मन्दिरके उत्तर-पश्चिम कोने पर भोगमन्दिर और समाधिके बीचमेंसे बाहर आनेका एक पथ है। इस पथसे बंगाली टोलेमें शीघ्र आना जाना होता है। इस पथके किनारे भी दो एक टूटे-फूटे मन्दिर दिखाई देते हैं।

उत्तरके मूलद्वारसे बाजार पथमें और भी कुछ आगे बढ़ने पर बूढ़ी गङ्गाके निकट आया जाता है। तीर्थ-यात्री इसी बूढ़ी गङ्गा या झीलमें स्नान कर देवताकी अर्च्चनाके लिये मन्दिरमें आते हैं। यहां पण्डोंका वास-गृह है और यात्रियोंके ठहरनेके लिये बड़े बड़े मकान हैं। ये सब मकान निरापद नहीं समझे जाते हैं। क्योंकि ये नगरके उत्तर-पूर्व कोने पर अवस्थित हैं।

वैद्यनाथलिङ्ग भारतके द्वादश अनादिलिङ्गका एकतम कहा जाता है। इस लिङ्गकी प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें

कई पौराणिक आख्यान मिलते हैं। पद्मपुराणके अन्तर्गत वैद्यनाथ माहात्म्य और हरिहरसुत मुकुन्दद्विजविरचित 'वैद्यनाथमङ्गल' नामक भाषाग्रन्थमें रावण द्वारा देवादिदेवका वहां आना और वनदेशमें रखनेकी बात लिखी है। यह प्रसङ्ग पीछे कहा गया। इस समय यह वर्णन किया जाता है, कि इस देशमें वैद्यरूपी वैद्यनाथकी मंदिर-प्रतिष्ठा किस तरह हुई थी। प्रवाद है—

"प्राचीन समयमें ब्राह्मणोंका एक दल इस पुण्य क्षेत्रमें आया। दल वासभूमिकी खोजमें घूमते घूमते वर्त्तमान मंदिरके निकट जो जलाशय है, उसके निकट पहुंचा। इस स्थानका जल सुपेय और वायु सुशीतल देख कर उन लोगोंने वहां ही डेरा डण्डा डाल दिया। उस समय इस झीलके चारों ओरकी भूमि घोर जङ्गलसे परिपूर्ण थी। अनार्य (संथाल) यहां ही वास करते थे। ब्राह्मण शिवोपासक थे। वे उसी झीलके किनारे अपने अभीष्ट देवकी मूर्त्ति स्थापित कर पूजा करते थे। ब्राह्मण देवताके उद्देश्यसे यथायोग्य बलि भी देते थे। अनार्य संथाल भी वहां आ कर अपने पितृपुरुषोंके पूजित तीन खण्ड प्रस्तरकी पूजा कर जाते थे। किंतु ये ब्राह्मणोंकी तरह बलि नहीं चढ़ाते थे। ये तीन खण्ड प्रस्तर आज भी देवघरके पश्चिम प्रवेशद्वार पर रखे हुए हैं।

धनधान्यसे भाण्डार पूर्ण हो जाने पर ब्राह्मण आलसी तथा भोगविलासी हो उठे। उस समय वे अपने अनादि देवकी पूजामें वैसी तत्परतासे मन नहीं लगाते थे। यह देख अनार्य सन्थाल ब्राह्मणोंके आचरणसे श्रद्धारहित हो गये तथा देवशक्तिको अमूलक समझ देवमूर्त्तिके प्रति अश्रद्धा प्रकट करने लगे।

अन्तमें वैजू नामका एक धनवान् अनार्य मन ही मन चिन्ता करने लगा, कि जब ब्राह्मणोंके देवताका कुछ प्रभाव ही नहीं, तो अब भय काहे का? वैजूने मन ही मन संकल्प किया, कि प्रति दिन देवमूर्त्ति पर डण्डा जमानेके बाद ही जलस्पर्श करूंगा। इस प्रतिज्ञाके कारण क्रमसे शिवमूर्त्ति स्पर्शके लिये उसका एक अनुराग उत्पन्न होने लगा, वह आघातके बदले प्रतिदिन निराहार अवस्थामें एक बार शिवलिङ्गको स्पर्श कर जाता। दैवात् एक दिन वनमें उसके गोवंश खो गये, उनके खोजनेमें उसका सारा दिन बिना खाये तमाम हो गया, संध्या समय जब वह लौटा, तब उस झीलमें स्नान आदि कर भोजन करने चला। क्षुधासे कातर हो रहा था। घर जाते ही वह भोजन करने बैठा। थाली उसके आगे रखी गई। उसने भोजनका प्रथम ग्रास उठाया, किंतु उसको स्मरण हो आया, कि अभी तो शङ्कर पर डण्डा जमाया ही नहीं। प्रतिज्ञा भङ्ग हो जानेके भयसे हाथका लिया हुआ ग्रास थालीमें डाल हाथ धो कर शङ्कर पर लट्ठ जमानेके लिये वह चला। क्षुधा-कातर वैजूने मानसिक मर्मवेदनाके साथ देवमूर्त्तिका दर्शन करनेके बाद हाथमें लिये हुए डण्डेसे मूर्त्ति पर प्रहार किया।

अनार्य वैजूका ऐसा अनुराग देख कर दयानिधान भाग्यवान् शङ्कर वैजूके प्रति दयार्द्र हुए। वे मन ही मन 'जो व्यक्ति मुझ पर प्रहार करनेके लिये आहार निद्रा परित्याग करता है, वह मेरा भक्त है। क्योंकि मेरी चिन्तामें उसकी एकाग्रता है और मेरे उपासक निश्चिन्त हो संसारमदसे मत्त हो रहे हैं' इत्यादि चिंता करने लगे। इसके बाद उन्होंने उस जलाशयसे दिव्यमूर्त्तिमें उसको दर्शन दिया और वैजूको सम्बोधन कर कहा, 'वत्स! तुम वर मांगो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा।' देवमूर्त्तिका दर्शन कर भयविह्वल हो वैजूने जवाब दिया,—प्रभो! मेरे पास धन सम्पत्ति यथेष्ट है और मैं सन्थालोंका अधिपति हूं, इससे राजा बननेकी लालसा नहीं है, मेरी भी इच्छा है, लोग मुझे वैजूकी जगह वैजनाथ या वैद्यनाथ कहें और आपका जो मन्दिर मैं बनवाऊंगा, वह मन्दिर मेरे नामसे ही विख्यात हो। उसकी बात पर प्रसन्न हो शङ्करने 'तथास्तु' कहा। तबसे ही उसका नाम वैजूके बदले वैद्यनाथ हुआ और मंदिर भी वैद्यनाथके नामसे ही प्रसिद्ध हुआ।

उस दिनसे वैद्यनाथका प्रभाव दिग्दिगंतमें फैल गया। नाना देशोंसे वणिक्सम्प्रदाय, राजन्यवर्ग, ब्राह्मण और अन्यान्य वर्णोंके लोग वहां आ कर उत्कृष्ट-

तर मंदिर बना कर देवस्थानकी महिमा कीर्त्तन करने लगे। महादेवने स्वयं जहाँ बैजूको दर्शन दिया था, वहाँ ही ये सब मंदिर प्रतिष्ठित हुए। इस तरह धीरे धीरे स्थानका माहात्म्य, देवक्षेत्रका पुण्यप्रदत्व और बैद्युरूपी बैद्युनाथका रोगहरत्व चारों ओर फैल गया और उससे नाना देशोंसे तीर्थयात्री रोग-मुक्तिकी कामनासे इस तीर्थमें आने लगे। भाद्र मासकी पूर्णिमाके दिन बैद्युनाथका एक पुण्याह आता है। इस दिन यहां एक मेला लगता है जो तीन चार दिन तक रहता है।

प्राचीर परिवेष्टित वर्त्तमान मंदिर-प्राङ्गणतल चूनेके पत्थरोंसे आच्छादित है। मिर्जापुर-वासी एक वणिकने एक लाख रुपया खर्च कर यह पत्थर जड़ाया था। उसके पूर्व यह स्थान जल और कूड़ेसे कर्द्दमाक्त (पङ्कीली मिट्टी) था। इससे यह स्थान भीषण अस्वास्थ्यकर प्रतीत होता था। मंदिरोंमेंसे तीनमें महादेवजीकी मूर्त्ति तथा तीनमें पार्वती देवीकी मूर्त्ति विराजती हैं। ४० या ५० गज लम्बी रेशमकी डोरीसे भैरव और भैरवी रूपसे मंदिरोंके शिखर आपसमें बंधे हुए हैं। यह डोरी नाना रङ्गके पताका, वस्त्र और पुष्पमालाओंसे परिशोभित रहती हैं।

मन्दिरके पश्चिम द्वारसे नगरमें आने पर ६ फीट ऊंचा और २० फीट चौकोन एक पत्थरका चबूतरा दिखाई देता है। इसी चबूतरे पर लम्बे भावसे दो १२ फीट ऊंचे प्रस्तरस्तम्भ खड़े हैं और इन प्रस्तरस्तम्भोंके शिर पर एक प्रस्तरस्तम्भ समान्तरालभावसे रखा हुआ है। इस ऊपरवाले स्तम्भके दोनों मुख पर हाथी या घड़ियालके मुंहका चिह्न खुदा हुआ जान पड़ता है। किन्तु खड़े इन दो स्तम्भों पर कुछ भी खुदा हुआ नहीं है। अर्थात् उनसे विशेष कोई शिल्पनैपुण्यका परिचय नहीं मिलता। इन तीन खण्ड प्रस्तरोंका वजन प्रत्येक १६० मनके हिसाबसे होगा। किस उद्देश्यसे किसने इन प्रस्तरत्रयको इस तरह रखा, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इसके समीप ही बौद्धविहारके ध्वस्त-निदर्शन मौजूद हैं।

प्रत्नतत्त्वविदोंका अनुमान है, कि यहां जितने मन्दिर हैं, उनमें रावणेश्वर, वैद्युनाथ, पार्वती और लक्ष्मीनारायणका मन्दिर अपेक्षाकृत प्राचीन है। उनका कहना है, कि पहले यहां बौद्धोंका वास था। हिन्दुओंने बौद्धोंकी कीर्त्तियोंका लोप करनेके लिये उन्हींकी बगलमें इन मन्दिरोंका निर्माण किया था। आज भी बुद्ध और बौद्ध-मूर्त्तियाँ और उनके पादमूलमें खोदित लिपियां उस प्राचीन बौद्ध-प्रभावका परिचय देती हैं। सूर्यमूर्त्तिके पदतलमें "ये धर्म" इत्यादि प्रसिद्ध मन्त्र खोदित देखा जाता है। इन सब और अन्यान्य स्थानोंमें पड़ी बौद्ध-प्रस्तर-मूर्त्तियोंके देखनेसे निःसन्देह कहा जा सकता है, कि प्राचीनकालमें यहां बौद्धोंका एक सुविस्तृत सङ्घाराम स्थापित था।

पालिग्रन्थमें विझ्झके अरण्य प्रदेशमें उत्तानिय नामक एक संघारामका उल्लेख दिखाई देता है। विझ्झ संस्कृत विन्ध्य शब्दका प्राकृत रूप है। सम्भवतः विन्ध्यपर्वतके उत्तर दिग्विस्तृत पार्वत्य प्रदेशमें ही पालिग्रन्थोक्त विझ्झवन है। इसी वनमें उत्तानिय-मठ है।

उक्त ग्रन्थमें लिखा है, "राजा पाटलिपुत्रसे विझ्झवन होते हुए तमलित जनपदमें सातवें दिन पहुंचे थे।" अन्यत्र "नाना देशोंसे श्रमण विझ्झ संघाराममें आते थे।" फिर उक्त ग्रन्थकी दूसरी जगहमें लिखा है, कि "उत्तर षष्टि सहस्र धर्मयाजकोंको साथमें ले कर विझ्झवनके अन्तर्गत उत्तानीय-मठमें उपस्थित हुए थे।" इन तीन उक्तियोंसे राजसेनादल और पुरोहितोंकी संख्याका अनुमान करनेसे बौद्ध-संघारामके आयतनका सहज ही अनुभव होता है।

पालिग्रन्थकी वर्णनासे हम जान सके हैं, कि पाटलिपुत्रसे विझ्झवन होते हुए ताम्रलिप्त (तमलुक) तक एक चौड़ा रास्ता था। आज भी तमलुकसे बाँकुड़ा तक और वहांसे भागलपुर जानेके लिये जो प्राचीन रास्ता है, वह सिउड़ी, मन्दार और वासकीनाथ हो कर गया है। वासकीनाथसे देवघर-वैद्यनाथ तक प्राचीन पथका निदर्शन आज भी वर्त्तमान है। यह रास्ता कहलकोल पर्वत-श्रेणीकी पूर्वशाखाको अतिक्रम कर अफसन्द, पार्वती और बिहार हो कर पटने तक गया है। इन सभी कारणोंसे संथाल परगनेके अन्तर्गत इस विन्ध्यपर्वतके अधित्य-

कांशको ही पालिग्रन्थोक्त विङ्कवन कह कर ग्रहण किया जा सकता है। क्योंकि देवघर-वैद्यनाथके सिवा इस देशके और किसी भागमें ऐसो बौद्धकीर्त्तियोंका निदर्शन नहीं मिला है। सिवा इसके देवघर नगरके वैद्यनाथ मन्दिरके निकट ही उत्मुरिया नामका एक छोटा ग्राम है। बहुतेरे लोग उसको पालि उत्तम शब्दका अपभ्रंश और उत्तानि संघारामका शेष स्मृतिज्ञापक समझते हैं।

यहां अन्यान्य जो सब मन्दिर हैं, वे उक्त तीन मंदिरोंसे दूर पर और ये नये ढंगसे निर्मित हुए दिखाई देते हैं। सुतरां उनका विवरण लिपिबद्ध करनेका प्रयोजन नहीं जान पड़ता।

मंदिर-प्रांगणके ठीक बीचमें एक प्रस्तर-निर्मित एक बड़े मंदिरमें वैद्यनाथकी लिंगमूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। वैद्यनाथ मंदिरके उपरिदेशमें कुछ दवा हुआ है। हिंदुओंका विश्वास है, कि लङ्काका रावण जब बहुत स्तव-स्तुति करके भी देवादिदेव महादेवको लङ्कामें ले जा न सका और देवादिदेवका रथ पातालगामी होने लगा, तब उसने क्रोधसे रथके शिखरको दवा कर लिङ्गको पातालमें भेजनेकी इच्छा की थी, उसी समयसे इस मन्दिरका उपरिदेश रावणके अंगूठेके दवावका चिह्न रह गया।

वैद्यनाथ रावणेश्वर लिङ्गके सम्बन्धमें वैद्यनाथ-माहात्म्यमें इस तरहका आख्यान मिलता है,—लङ्केश्वर रावण नित्य उत्तरखण्डमें कैलास-शिखर पर आ कर अपने इष्टदेवकी पूजा किया करता था। प्रति दिन उसकी इस तरह पूजा करनेसे उसके प्रति भगवान् सन्तुष्ट हुए। शिवकी कृपासे रावण स्वर्गस्थ देवताओंके पीड़न करनेमें भी समर्थ होगा, इसकी आशङ्का कर इन्द्र शीघ्रतासे ब्रह्मलोकमें आये, ब्रह्माने उनके विप्रद्रोह करनेसे मना किया और शिवलिङ्ग उठानेको पाप बता कर रावणके भविष्यमें वंशनाशकी बात कही। फल भी वैसा ही हुआ। कुछ दिनोंके बाद रावणकी कैलासपर्वतसे शिवलिङ्ग उठा कर लङ्कामें स्थापन करनेकी इच्छा हुई। उसकी इच्छा थी, कि स्वयं महेश्वर लङ्कापुरीमें विराजित न होनेसे सोनेकी लङ्काका गौरव ही वृथा है। मन ही मन ऐसी चिन्ता कर रावणने भगवान् महेश्वरके समीप जा कर उनसे अपनी इच्छा प्रकट की। भगवान् उस पर सन्तुष्ट हो रहे थे, उन्होंने कहा, 'रावण तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूं। तुम मेरी मूर्त्ति छल कर लङ्कामें स्थापन करो। उसमें मेरी कोई आपत्ति नहीं। किन्तु एक बातका ख्याल रखना, कि कैलाससे लङ्का ले आते समय बीच रास्तेमें कहीं रखना न होगा। यदि भ्रमवश ऐसा करोगे, तो तुम जहां रखोगे, मैं वहीं बैठ जाऊंगा। शिर पर रख कर तुमको ले चलना होगा।' बलदर्पसे मत्त रावणने शिवलिङ्गका वाक्य सुन कर कहा—प्रभो! ऐसा ही होगा। रावणका बात पर परितुष्ट हो भगवान्ने कहा, 'तुम मुझको कैलासके साथ लङ्का ले चलो।'

शिव-कथित शुभ दिन आने पर रावण सानन्द चित्तसे कैलासकी ओर चला और रातको वहां पहुंचा। पहले अपने बलका अन्दाजा लगानेके लिये गिरिवरको सञ्चालित किया। दुर्वृत्त रावणके निशाकालमें इस व्यवहारसे पार्वती कुपिता हुईं, किन्तु भगवान् हरके मुखसे सब बातें सुन कर उन्होंने शान्तभाव धारण किया।

इसके बाद रावण शिवपूजाके लिये शिवमन्दिरमें गया। द्वार पर नन्दी बैठा था, उसने कहा, कि इस समय शङ्कर-पार्वती शयन कर रहे हैं, भीतर मत जाओ। रावण मना करने पर भी नन्दीको धक्का दे कर यह कहता हुआ चला गया, कि मैं शङ्करका पुत्र हूं, वहां जाना मेरे लिये निषेध नहीं। रावणकी भक्तिको देख सन्तुष्ट हो शिवने कहा, 'वत्स! वर मांगो।' रावणने कहा, 'प्रभो! लङ्कामें चलिये, यही एकमात्र मेरी इच्छा है।' शिव पूर्व प्रस्तावके अनुसार लङ्का चलनेको तैयार हुए।

रावणने प्रसन्न चित्तसे लिङ्गमूर्त्तिको शिर पर उठा लिया और धीरे धीरे लङ्काकी ओर चला। जब वह लाकुरो (वर्त्तमान नाम हरलाजुरि) ग्रामके निकट पहुंचा, तब उसको पेशाव करनेकी आवश्यकता हुई। रावण अब स्थिर न रह सका। इधर भगवान् मूर्त्तिमें भार बढ़ा रहे थे। रावण शिवको मिट्टी पर रख कर पेशाब कर नहीं सकता। यदि ऐसा करे, तो उसको

भय था, कि शिव वहीं रह जायेंगे। इधर देवताओंने ख्याल किया, कि रावण यदि शिवको लङ्कामें ले जायेगा, तो अजेय हो जायेगा, इसलिये इसमें बाधा देनेके लिये विष्णुको उन लोगोंने भेजा। विष्णु वृद्ध ब्राह्मणरूपमें वहां उपस्थित हुए। रावणने उनको एकाएक वहां आते देख कर कहा, कि आप इन शिवलिङ्गको कुछ देरके लिये थांभ लीजिये। इस पर विष्णुने ले लिया। विष्णुको शिवमूर्त्ति दे कर रावण पेशाब करनेके लिये कुछ दूर चला गया।* इस समय जहां मन्दिर है, वहां ही विष्णु शिवलिङ्ग और रथको रख कर चले गये।

देवताओंकी दुरभिसन्धिसे रावणके पेटमें वरुणदेव घुस गये थे। इससे उसके पेशाब करनेमें देर हुई। लौट कर उसने देखा, कि वहां ब्राह्मण नहीं है। केवल रथ पड़ा है। उस समय वह रथ खींचने लगने लगा, किंतु रथ इससे मस नहीं हुआ। फिर शिवका स्तव किया। शिवने पूर्व बातका स्मरण दिलाया।

जब इतनी आरजू मिन्नत पर भी शिवको दया न आई, तब रावण कुपित हुआ और क्रोधित हो लिङ्गको जमीनमें दबा कर कहने लगा,' हे देव! जब तुम लङ्कामें नहीं जाओगे, तो तुम्हें पाताल जाना उचित है।' उस पर भी जब शिवको दया न आई, तो रावण दूसरा उपाय न देख निकटवर्त्ती जलाशयसे जल ला कर पुनः उनकी पूजामें प्रवृत्त हुआ, किंतु रावणके पेशाबसे वहांका जल दूषित हो गया था, इससे वहांके जलसे पूजा लेना शिवको नापसंद हुआ। तब रावणने एक कूप खोद कर उससे जल निकाल शङ्करकी पूजा की। उक्त झील रावण द्वारा ही खुदवाई गई थी। इसमें पातालगङ्गासे जल आता है। रावणने जिस कूप जलसे पूजा की थी, आज भी उसी जलसे वैद्यनाथ महादेवकी पूजा होती है।

झील खुदवा कर एक भक्तका परिश्रम व्यर्थ होगा, इससे शिवने कहा, 'जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक यहां मेरी पूजा करेगा, वह पहले इस झीलमें स्नान करेगा।' उस समयसे लाखों तीर्थयात्री इस जलमें स्नान कर रहे हैं।

रावण द्वारा लाये शिव पहले रावणेश्वर महादेवके नामसे प्रसिद्ध हुए। रावण महादेवकी पूजा कर लङ्काको लौट गया। कुछ समयके बाद ही यह स्थान जङ्गलसे भर गया। उस निबिड़ वनमें महादेवकी मूर्त्ति स्थापित है। बहुत दिनों तक यह बात किसीको मालूम न हुई। केवलमात्र बैजू नामका एक अहीर महादेवके अस्तित्वकी बात जानता था। वह उसी वनके फलमूलको खा कर जीवन धारण करता था। एक दिन भगवानने स्वप्नमें दर्शन दे कर बैजूसे कहा,—बैजू! तुम्हारे सिवा यहां मेरी पूजा करनेके लिये दूसरा कोई नहीं है। तुम नित्य सवेरे उठ स्नानादि कर बिल्वपत्र ले कर मेरी पूजा करो। निद्रा भङ्ग होनेके बाद बैजू स्वप्न पर विचार करने लगा और परीक्षाके लिये जङ्गलमें लिङ्गमूर्त्ति खोजनेके लिये निकला। थोड़ी देरके बाद उसे लिङ्गमूर्त्ति दिखाई दी। अब स्वप्नाज्ञाके अनुसार बिल्वपत्र ढूंढने चला। बिल्वपत्र भी मिल गया। अब जल लानेके लिये उसके पास कोई पात्र न था, इससे उसने अपने मुंहमें जल ला कर शङ्करको स्नान कराया। देवादिदेव अम्लान बैजूके इस कवल जलसे पूजा पा कर सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने बैजूके दुर्व्यवहारका रावणको स्वप्न दिया। रावणने हरिद्वारसे गङ्गाजल ला कर फिर उनकी प्रतिष्ठा की और पञ्चतीर्थोंका जल ला कर अपने खोदे हुए कूपमें डाल दिया। रावणके आदेशसे उस समयसे ही इस पञ्चतीर्थ जलसे लिङ्गमूर्त्तिकी पूजा होती आ रही है।

इसके बाद जब भगवान् रामचन्द्र रावणको खोजनेके लिये निकले थे, तब उन्होंने इस लिङ्गमूर्त्तिकी पूजा की थी। (वैद्यनाथ-माहात्म्य ७वां अ०)

जो हो 'बैजू अहीर नियमितरूपसे लिङ्गपूजा करने लगा। उसकी इस अविचलित भक्तिसे सन्तुष्ट हो

---

* रावण विष्णुके हाथमें शिवलिङ्ग दे कर जहां पेशाब करने बैठा, वहांसे ही कर्मनाशा नदीकी उत्पत्ति हुई है। आज भी वैद्यनाथके निकट ही कर्मनाशा विद्यमान है। वर्षा ऋतुमें इसमें जल रहता है। ग्रीष्म ऋतुमें नदीगर्भसे बालू हटाने पर मीठा जल निकल आता है।

भगवान् भूतभावनने उसको सम्बोधन कर कहा,—वत्स! तुम्हारी एकाग्रता और भक्तिसे मैं प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुमको तुम्हारा अभीष्ट दूंगा। लोभशून्य और स्वाधीनचित्त गोपने शिववाक्यका उत्तर दिया,—तुम और मुझको क्या दोगे? मेरे भक्ष्यके लिये यहां यथेष्ट द्रव्य हैं, मेरा कोई अभाव नहीं। सुतरां आकांक्षाकी इच्छा नहीं रखता। हां यदि तुम मुझको कुछ देना ही चाहते हो, तो मैं इतना ही चाहता हूं, कि तुम्हारे नाम लेनेसे पहले लोग मेरा नाम लिया करें। उसी दिनसे रावणेश्वरलिङ्ग वैजनाथ या वैद्यनाथके नामसे प्रख्यात हुआ।

ऊपर वैद्यनाथदेवके प्रतिष्ठा-प्रसङ्गमें वैजूकी जो किंवदंती उद्धृत की गई, उसमें पौराणिक बातोंका संस्रव होने पर भी इसने इतना विकृत भाव धारण किया है, कि वह एक अजनबी किस्सेके और कुछ नहीं। राढ़में तारकेश्वर मूर्त्ति स्थापन प्रसङ्गमें मुकुन्द घोषके साथ वैद्यनाथके वैजूका अनेक सादृश्य है।

दक्षयज्ञके बाद सती-देहत्यागकी घटना हुई। इस समय विष्णुने हरस्कन्धस्थित सतीदेहको सुदर्शन चक्र द्वारा खण्ड खण्ड कर दिया। देवीका हृदय-वैद्यनाथमें पतित हुआ। उसी समयसे यह एक देवी पीठके नामसे प्रसिद्ध है। पीठकी देवीमूर्त्तिका नाम जयदुर्गा तथा भैरव वैद्यनाथ है। यहां बाणगङ्गामें स्नान कर पूजा की जाती है। यह बाणगङ्गा शिवगङ्गाके नामसे भी प्रसिद्ध है।

मत्स्यपुराणके अनुसार इस पीठस्थानकी शक्तिका नाम आरोग्या है।

"करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके।
आरोग्या वैधनाथे तु महाकाले महेश्वरी।"
(मत्स्यपु० १३ अ०)

२ भैरवविशेष। भैरव नामानुसार इस स्थानका नाम वैद्यनाथ हुआ है। यहां भगवतीका हृदय पतित हुआ था। तन्त्रचूडामणिके मतसे इस शक्तिका नाम जयदुर्गा है।

"हार्दपीठं वैद्यनाथे वैद्यनाथस्तु भैरवः।
देवता जयदुर्गाख्या नेपाले जानुनी मम॥"
(तन्त्रचूड़ामणि पीठनि०)

वैद्यनाथसे आरम्भ हो कर भुवनेश्वर तक अङ्गदेश है। अंगदेश तीर्थयात्राके लिये दूषित नहीं।
(शक्तिसंगमतन्त्र ७ प०)

वैद्यनाथसे कई मील उत्तर-पूर्व हरलाजुरी नामक ग्राम मौजूद है। यहां कई आधुनिक मन्दिर और कई प्राचीन मूर्त्तियोंके भग्नावशेषके सिवा और कुछ दिखाई नहीं देता। दो प्रतिमूर्त्तियोंमें एक योगीका नाम खुदा हुआ है। ऊपर कहे हुए मन्दिरोंका अधिकांश श्रीचिन्तामन् दासके व्ययसे निर्मित हुआ। राजा श्रीमन्नयपाल-देवके (?) समयमें क्रिमिल दास द्वारा उत्कीर्ण शिलालिपिके सिवा यहां प्रत्नतत्त्वविदके आदरणीय और कुछ नहीं है। जहां यह फलकलिपि विद्यमान है, साधारणका विश्वास है, कि रावणने विष्णुके हाथ यहां ही शिवलिंग दिया था। तीर्थयात्री इस स्थानको देखनेके लिये आते हैं।

देवघर-वैद्यनाथसे ६ मील दक्षिण-पूर्व वाल्मीकीय प्रसिद्ध तपोवन है। यह एक गण्डशैल शिखर पर अवस्थित है। इस शैलमें एक गुहा है, उसमें शिवलिंग स्थापित है। यात्री यहां भी आ कर तपोवनका दर्शन करते हैं। प्रवाद है, कि तपस्विश्रेष्ठ वाल्मीकि इस गुहामें वास करते थे। गुहाके निकट दो शिलाफलक हैं—एकमें श्रीदेवरामपाल नाम मिलता है। दूसरा फलक अस्पष्ट है। इसके निकटके कुण्डमें यात्री स्नान किया करते हैं।

वैद्यनाथसे ८ मील उत्तर-पश्चिममें त्रिकुटशैल है। भारतीय मानचित्रमें (नकशेमें) तिउर-या तिर पहाड़ लिखा है। इस पर्वतपृष्ठ पर भी एक गुहा है। इसमें कोई देवमूर्त्ति नहीं है। केवल अन्धकारमय शून्य गह्वर मात्र है। निकट ही कुछ नीची भूमिमें भग्नदुर्गका ध्वंसावशेष है। यहां त्रिकुट नाम महादेवलिंग प्रतिष्ठित हैं।

वैद्यनाथ—बिहार-शाहाबाद जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० २५° १७' उ० और देशा० ८३° ३६' १५" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां नाना प्रतिमूर्त्ति स्तम्भसम्वलित एक विस्तृत ध्वंसावशेष दिखाई देता है। यहांके लोग उसको शिविरा-राज मदनपालकी कीर्त्ति ही निर्देश करते हैं।

वैद्यनाथ—नामविशेष। इस नामके कितने ही सुपरिचित विद्वान् तथा ग्रन्थकार हो गये हैं। १ एक प्राचीन कविका नाम। २ एक प्रसिद्ध ज्योतिषीका नाम। श्रीपतिजातकपद्धति-टीकामें भूधरने इनका उल्लेख किया है। ३ अर्द्धचन्द्रिकाके प्रणेता। ४ कृष्णलीला-नाटकके रचयिता। ५ जातकपारिजात, श्रीपतिकृत ज्योतिष रत्नमालाकी टीका, ताराविलास, ध्रुवनाड़ी, पञ्चस्वर टिप्पन, भावचन्द्रिका, शुक्रनाड़ी और सारसमुच्चय नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। यह एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् थे। ६ तर्करहस्यके रचयिता। ७ तिथिनिर्णयके प्रणेता। यह इनके रचे चमत्कारचिन्तामणिका एकांश है। ८ दत्तविधिके रचयिता। ९ पद्धति और श्रीसंख्या नामके दो ग्रन्थोंके प्रणेता। दोनों ग्रन्थ वाजसनेयशाखा-सम्मत हैं। १० परिभाषार्थसंग्रह नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ११ प्रायश्चित्तमुक्तावलीके रचयिता। १२ मिथ्याचार-प्रहसनके प्रणेता। १३ रामायणदीपिकाके प्रणेता। यह तामिल ब्राह्मण थे। १४ वंगसेनटीका नामक वैद्यक-ग्रन्थके रचयिता। १५ वृत्तवार्त्तिकके रचयिता। १६ वैद्यनाथ भैट् नामक वैदिक शास्त्रके प्रणेता। १७ मौरभ नामक कुसुमाञ्जलिकारिका-व्याख्या टीका-कर्त्ता। १८ स्मृति-सारसंग्रहकार। १९ एक अच्छे योग्य पण्डित। यह दिवाकरके पुत्र, महादेवके पौत्र और बालकृष्णके प्रपौत्र थे। इन्होंने अपने पिताके रचित दानहारावली और श्राद्धचंद्रिका दो ग्रंथोंकी उपक्रमणिका लिखी थी। २० नैषधीय दीपिकाके रचयिता, चण्डु पण्डितके गुरु।

वैद्यनाथ कवि—सत्सङ्गविजयनाटकके प्रणेता।

वैद्यनाथ गाडगिल—तर्कचन्द्रिका नामकी तर्कसंग्रहटीकाके रचयिता।

वैद्यनाथ दीक्षित—१ वेदान्तकल्पतरुमञ्जरी और वेदान्ताधिकरणमालाके प्रणेता। २ शतक नामक दीधितिके रचयिता। ३ तत्त्वचिन्तामणि-प्रकाशटीकाके प्रणेता। ४ स्मृतिमुक्ताफलके प्रणेता।

वैद्यनाथदेव शर्म्मन्—काव्यरत्नावली नामकी घटकर्पर-टीकाके रचयिता। ये सर्व्वेश्वरके पुत्र और शम्भूरामके पौत्र थे।

वैद्यनाथ पायगुण्डे—१ दाक्षिणात्यवासी एक प्रसिद्ध पण्डित। ये जनसाधारणमें बालम्भट्ट नामसे परिचित थे। इनके पिताका नाम माधव और माताका वेणी था। प्रसिद्ध पण्डित नागेश भट्टके निकट ये पाठाध्ययन करते थे।

अर्थसंग्रह नामक व्याकरण, छाया नामक महाभाष्य-प्रदीपोद्योतके प्रथमाह्निककी टीका, काशिका और गदा नामकी परिभाषेन्दुशेखरटीका, परिभाषेन्दुशेखरसंग्रह, भक्तितरङ्गिणीभूषण, अत्याहारखण्डन, वृहच्छब्दशेखर, कला या वृहन्मञ्जूषाविवरण नामक वैयाकरणसिद्धान्त मञ्जूषाटीका, शब्दकौस्तुभटीका प्रभा, लघुशब्दरत्नटीका भावप्रकाश, लघुशब्देन्दुशेखरटीका, विद्वद्धिमाला और सर्व्वमङ्गला नामक व्याकरण ग्रन्थ तथा मिताक्षराके व्यवहारखण्डकी टीका, पराशरस्मृतिकी टीका और भरद्वाज-स्मृतिटीका आदि ग्रन्थ इनके बनाये हैं।

२ एक पण्डित। ये रामचन्द्र (रामभट्ट)के पुत्र और विट्ठलके पौत्र थे। इन्होंने अग्निहोत्रमन्त्रार्थ-चन्द्रिका, अलङ्कारचन्द्रिका, कुवलयानन्दटीका, कादम्बरी टीका, कालमाधवकारिकाटीका, काव्यप्रकाशोदाहरण-चन्द्रिका (१६८३ ई०), काव्यप्रदीपप्रभा, चन्द्रालोक-टीका, दर्शपूर्णमासमंत्रार्थचंद्रिका, वैद्यनाथपद्धति, दशोषि, न्यायबिन्दु नामक मीमांसासूत्रटीका, न्याय-मालिका (मीमांसा-पाषण्डखण्डन), पितृपशुनिर्णय, बौधायनदर्शपूर्णमासव्याख्या, विषमश्लोकव्याख्या, शास्त्र दीपिका व्याख्या-प्रभा और सीतारामविहारटीका नामक बहुत-से ग्रंथ प्रणयन किये थे। इनके अलावे चतुरङ्ग विनोद नामक इनका एक और ग्रंथ मिलता है। यह ग्रन्थ इनका बनाया है उपरोक्त ग्रंथकारका उसका निर्णय किया नहीं जाता।

वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य—चित्रयज्ञनाटकके प्रणेता।

वैद्यनाथ मैथिल—केशवचरित और ताराचंद्रोदय नामक दो ग्रंथके रचयिता।

वैद्यनाथवटी—ज्वराधिकारमें व्यवहार्य्य एक प्रकारकी औषध। इससे शूल, तथा ज्वर, पाण्डुता, अरुचि और शोथ नष्ट होता है। (भैषज्यरत्ना० ज्वराधि०)

वैद्यनाथवटी—शोथरोगनाशक औषधभेद। इसका प्रस्तुत

भी कहते हैं। इसमें नमक और जल खाना मना है।

वैद्यनाथवटी (सं० स्त्री०) १ औषधविशेष। इसका सेवन करनेसे उदावर्त्त, गुल्म, पाण्डु, कृमि, कुष्ठ, गात्र-कण्डू और पीड़का आदि रोग शीघ्र जाते रहते हैं। (रसेन्द्रसारसं)

२ ज्वराधिकारोक्त औषधविशेष। (रस० व०)

वैद्यनाथ शास्त्रिन्—रामोपासनक्रमके प्रणेता।

वैद्यनाथ शुक्ल—शब्दकौस्तुभोद्योतके रचयिता।

वैद्यनाथसूरि—एक जैन पण्डित।

वैद्यबन्धु (सं० पु०) वैद्यानां बन्धुरिव। १ आरग्वध वृक्ष, अमिलतासका पेड़। (शब्दच०) २ वैद्योंका बन्धु।

वैद्यमातृ (सं० स्त्री०) वैद्यानां मातेव। १ वासक, अड़ूसा। २ वैद्योंकी माता, भिषग्जननी।

वैद्यरत्न—एक प्रसिद्ध चिकित्सक, प्रयोगामृतके प्रणेता, वैद्यचिन्तामणिके पिता।

वैद्यराज—१ रसकषाय, रसप्रदीप और वैद्यमहोदधि नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ वैद्यवल्लभके रचयिता, सुप्रसिद्ध शार्ङ्गधरके पिता। ये चिकित्सा-शास्त्रमें सुपण्डित थे। कोई कोई इन्हें देवराज भी कहते थे।

वैद्यराज (सं० पु०) वैद्यानां राजा, टच् समासान्त। वह जो अच्छा वैद्य हो, वैद्योंमें श्रेष्ठ।

वैद्यवाचस्पति—एक सुप्रसिद्ध चिकित्साशास्त्रविद्।

वैद्यवाटी—बङ्गालके हुगली जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° ४८' उ० तथा देशा० ८८° २०' के मध्य कल-कलकत्तेसे २५ मील उत्तरमें अवस्थित है। यह नगर म्युनिसपलिटीको देखरेखमें रहनेके कारण खूब साफ सुथरा है, किसी प्रकारके रोगका उपद्रव नहीं है; पर मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव प्रायः देखा जाता है।

यहां बाजार और हाट है। वैद्यवाटी हाट बङ्गप्रसिद्ध है। इतनी बड़ी हाट बङ्गालमें और कहीं भी नहीं है। निकटवर्त्ती स्थानके क्षेत्रजात द्रव्योंकी विशेषतः पटसन, आलू, कुम्हड़ा आदिकी यहां खासी आमदनी होती है। फिर वहांसे कलकत्ता, हुगली, वर्द्धमान आदि प्रधान प्रधान नगरोंमें रफतनी होती है।

यहां इष्ट-इण्डिया रेलवेका एक स्टेशन है। तार-केश्वरको रेलवे लाइन खुलनेके पहले तारकेश्वरके तीर्थ-यात्रिगण इसी स्टेशनमें उतर कर बैलगाड़ीसे तारकेश्वर-को जाते थे।

वैद्यसिंही (सं० स्त्री०) वैद्ये व प्रशास्तोक्तौषधादौ सिंहीव प्रभूतवीर्यवत्वात्। वासक वृक्ष, अड़ूसा।

वैद्या (सं० स्त्री०) काकोली।

वैद्याधर (सं० त्रि०) विद्याधर-सम्बन्धी।

वैद्यानि (सं० पु०) वैदिक कालके एक ऋषि-पुत्रका नाम। (काठक)

वैद्यावृत्य (सं० पु०) फुटकर, थोकका उलटा। जैसे,—वैद्यावृत्य विक्रय।

वैद्युत (सं० त्रि०) १ विद्युत्-सम्बन्धी, बिजलीका। (पु०) २ विद्युत्का देवता। (शुक्ल यजु० २४।१०) ३ पुराणानुसार शाल्मलि द्वीपके एक वर्षका नाम। (लिङ्गपु० ४६।४०)

वैद्युतगिरि (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक पर्व्वतका नाम। (ब्रह्माण्डपु० ४७।१४)

वैद्युती (सं० त्रि०) विद्युत्के समान शक्ति या प्रभा-विशिष्ट।

वैद्येश्वर—उड़ीसा प्रदेशके गवर्नमेण्टके अधीनस्थ बांकी भू-सम्पत्तिके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २०° २१' ४५" उ० तथा देशा० ८५° २५' ३०" पू० महानदीके तट पर अवस्थित है।

वैद्यश्वर कोविल—मन्द्राज-प्रेसिडेन्सीके तंजोर जिलेके शियाली तालुकके अंतर्गत एक नगर। यह शियाली स्टेशनसे साढ़े तीन मील दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। यहां एक सुप्राचीन और सुवृहत् शिव-मंदिर दिखाई देता है, जिसमें बहुतेरे शिलाफलक उत्कीर्ण हैं।

वैद्रुम (सं० त्रि०) विद्रुम-सम्बंधी, मूंगेका।

वैध (सं० त्रि०) विधिना बोधितः विध-अण्। विधि-बोधित, जो विधिके अनुसार हो, कायदे या कानूनके मुताबिक।

वैधर्म्य (सं० क्ली०) विरुद्धो धर्मो यस्य, तस्य भावः ष्यञ्। १ विधर्मी होनेका भाव। २ नास्तिकता। (पु०) ३ विभिन्न धर्मवेत्ता, वह जो अपने धर्मके अतिरिक्त अन्यान्य धर्मोंके सिद्धान्तोंका भी अच्छा ज्ञाता हो।

वैधव (सं० पु०) विधु अर्थात् चन्द्रमाके पुत्र, बुध।

वैधवेय (सं० पु०) विधवायाः अपत्यं पुमान् विधवा (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) ढक्। वह जो विधवाके गर्भसे उत्पन्न हुआ हो, विधवाका पुत्र।

वैधव्य (सं० क्ली०) विधवायाः भावः ष्यञ्। विधवा होनेका भाव, रँडापा।

वैधस (सं० त्रि०) १ विधि-सम्बन्धीय, अदृष्टजात। २ ब्रह्मसम्बन्धीय। (पु०) ३ राजा हरिश्चन्द्रका एक नाम जो राजा वेधसके पुत्र थे। (ऐतरेयब्रा० ७।१३)

वैधहिंसा (सं० स्त्री०) वैधी विधिबोधिता या हिंसा। विधिबोधित हिंसा, वेदविहित हिंसा। शास्त्रानुसार जो हिंसा की जाती है या वेदमें जिन सब हिंसाओंका विधान है, उसे वैधहिंसा कहते हैं। यज्ञादिमें पशुवधका विधान है, यज्ञमें पशुवध करनेसे जो हिंसा की जाती है, उसका नाम वैधहिंसा है। हिंसामात्र ही पापजनक है। किन्तु वैधहिंसा पापजनक है वा नहीं? इस विषयमें विशेष मतभेद है। किसीके मतसे वैधहिंसा पापजनक नहीं है, फिर कोई इसे पापजनक बतलाते हैं। रघुनन्दनने तिथितत्त्वमें दुर्गोत्सवके वैधहिंसा-विचार स्थलमें विचार कर स्थिर किया है, कि वैधहिंसा पापजनक नहीं है, यज्ञादिमें जो पशुवध होता है, उससे पाप नहीं होगा। वैधके सिवा अन्य हिंसासे पाप होगा। किन्तु वाचस्पति मिश्रने सांख्यतत्त्व कौमुदीमें विचार करके स्थिर किया है, कि हिंसामात्र ही पापजनक है, वैध और अवैध सभी हिंसासे पाप होगा। नीचे इसकी संक्षिप्त आलोचना की जाती है।

एक श्रुति है, कि "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" (श्रुति) किसी भी जीवकी हिंसा न करे, इस श्रुति द्वारा प्राणिमात्रकी ही हिंसा निषिद्ध बतलाई गई है। इस सामान्य विधि द्वारा हिंसामात्र ही पापजनक है, यही प्रतिपादित हुआ है, जो हिंसा करेंगे, वे पापभागी होंगे। फिर दूसरी श्रुति इस प्रकार है, "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" (श्रुति) अग्निषोमीय यज्ञमें पशुवध करे। एक श्रुतिमें हिंसा निषिद्ध और दूसरीमें नहीं है अर्थात् यज्ञमें पशुवध किया जा सकता है। हिंसा न करे, यह सामान्य विधि और यज्ञमें हिंसा करे यह विशेष विधि है। इस विशेष विधि द्वारा सामान्य विधि बाधित होगी।

वैध-हिंसामें पाप नहीं है, न्याय और मीमांसा शास्त्रका यही सिद्धान्त है। उनका कहना है, कि वैधके अतिरिक्त रागप्राप्त अवैध हिंसामें पाप होता है। 'मा हिंस्यात्' इस शास्त्रका विषय अवैध हिंसा है, "अपवादविषयं परित्यज्य उत्सर्गः प्रवर्त्तते" अर्थात् विशेष विधिका विषय छोड़ कर सामान्य विधिकी प्रवृत्ति होती है। विशेष शास्त्रका स्थल परित्याग कर अन्य स्थलोंके सामान्यशास्त्रका बोध होता है। अतएव वैध हिंसा करनेसे पाप होगा, सामान्य शास्त्र ऐसा नहीं कहता। वैधको छोड़ दूसरी हिंसासे पाप होता है, यही उनकी उक्ति है। किन्तु इस पर सांख्यकार कहते हैं, कि तुम्हारी यह उक्ति ठीक नहीं है, वैधहिंसासे भी पाप होगा, परन्तु पापकी अपेक्षा पुण्यका भाग अधिक है, इस कारण उसमें सर्वसाधारणकी प्रवृत्ति होती है। अग्नीषोमीय शास्त्रका कहना है—पशुवध करके यज्ञ समाप्त करे, पर उस पशुवधसे पाप नहीं होगा, सो नहीं।

यज्ञ करनेसे पाप और पुण्य दोनों ही होते हैं, पापकी अपेक्षा पुण्यका भाग अधिक रहता है। पुण्यके फलसे स्वर्गभोग और पापके फलसे नरक होता है। किन्तु वे अधिक सुखभोग करके थोड़ा दुःख आसानीसे सहन कर सकते हैं। पुण्यराशि द्वारा समुत्पन्न स्वर्गसुधा-महाह्रदमें जो सब पुण्यात्मा गोते लगाते हैं, वे थोड़े पापसे उत्पन्न दुःखरूपी अग्निकणाको विना कठनाईके सहन कर सकते हैं। (सांख्यतत्त्वकौमुदी)

वैधातनिक (सं० पु०) वैधात्र देखो।

वैधात्र (सं० पु०) विधातुरपत्यं पुमान् विधातृ-अण्। सनत्कुमार। ये विधाताके पुत्र माने जाते हैं। (अमर)

वैधात्री (सं० स्त्री०) विधातुरियं विधातृ-अण् ङीप्। १ ब्राह्मी नामकी जड़ी। (राजनि०) (त्रि०) २ विधातृ-सम्बन्धी।

वैधुमाग्नी (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नगरीका नाम जो शाल्व देशमें थी। (सिद्धान्तकौमुदी)

वैधूर्य (सं० क्ली०) १ विधुर होनेका भाव, हताश या

कातर होनेका भाव, कातरता। २ भ्रम, संदेह। ३ कम्पित होनेका भाव, कम्पमानता।

वैधृत (सं० पु०) १ वह जो विधृतिका पुत्र या संतान हो। २ ग्यारहवें मन्वन्तरके एक इन्द्रका नाम।

वैधृतवाशिष्ठ (सं० पु०) वैधृतं वासिष्ठं। साममेद।

वैधृति (सं० पु०) १ विष्कम्भ आदि सत्ताइस योगोंमेंसे एक योग। ज्योतिषके मतसे यह योग अशुभ माना जाता है। इसमें यात्रा अथवा कोई शुभ कार्य करना मना है। वैधृति और व्यतिपात योगका समस्त ही परित्याग करना होता है।

अमृतयोगसे वैधृति और व्यतिपात योगका दोष नष्ट होता है सही, पर विभिन्न वचनोंमें फिर लिखा है, कि अमृतयोगमें सभी दोष विनष्ट होते तो हैं, लेकिन वृष्टि, वैधृति और व्यतिपात योगोंका दोष नष्ट नहीं होता।

कोष्ठीप्रदीपमें लिखा है, कि इस योगमें जन्म होनेसे जातक मित्रताविहीन, कुटिल, खल, मूर्ख, दरिद्र, परवञ्चक, कुकर्मकारी और परदाररत होता है।

२ देवताविशेष। ये विधृतिके पुत्र हैं। (भागवत ८।१।२९) (स्त्री०) ३ आर्यकी कन्या और धर्मसेतुकी माता। (भागवत ८।१३।२७)

वैधृत्य (सं० क्ली०) वैधृत देखो।

वैधेय (सं० त्रि०) विधिं पद्धतिमेवानुसृत्य व्यवहरति विधि-ढक्, यद्वा विधेये कर्त्तव्ये अनभिज्ञः, विधेय-अण्, यद्वा विरुद्धं धेयमस्य ततः स्वार्थे अण्, पद्धतिमाश्रित्य क्रियाकारित्वात् युक्तायुक्तविवेकशून्यत्वाच्च तथात्वमस्य। १ विधि-सम्बन्धी, विधिका। २ सम्बन्धी। ३ मूर्ख, वेवकूफ, ना-समझ।

वैध्वत (सं० पु०) यमके एक प्रतिहारका नाम। (हेम)

वैनंशिन (सं० त्रि०) विनाशशील पदार्थभव।

वैन (सं० पु०) राजा वेनके पुत्र पृथुका एक नाम। (ऋक् १।११२।१५ सायण)

वैनतक (सं० क्ली०) प्राचीन कालका एक प्रकारका पात्र जिसमें घी रखा जाता था और जिसका व्यवहार यज्ञोंमें होता था।

वैनतीय (सं० त्रि०) १ विनत-सम्बन्धी। २ विनता कर्तृक सम्पादित या विनताजात (पा ४।२।८०)

वैनतेय (सं० पु०) विनताया अपत्यमिति विनता (स्त्रीभ्यो ढक्। पा ४।१।१२०) इति ढक्। १ गरुड़। (अमर) २ अरुण (मत्स्यपु०) ३ विनताकी संतान।

वैनतेयी (सं० क्ली०) एक वैदिक शाखाका नाम।

वैनत्य (सं० त्रि०) जिसका स्वभाव विनीत हो, नम्र।

वैनद (सं० स्त्री) एक प्राचीन नदीका नाम।

वैनभृत (सं० पु०) १ एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि। २ वैदिक शाखाविशेष।

वैनयिक (सं० पु०) विनय एव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक्। १ विनय, प्रार्थना। २ शास्त्राभ्यासरत, वह जो शास्त्रों आदिका अध्ययन करता हो। ३ प्राचीन कालका एक प्रकारका रथ जिसका व्यवहार युद्धमें होता था। (त्रि०) ४ विनय-सम्बन्धी, विनयका। ५ धर्माधिकरण-सम्बन्धी।

वैनायक (सं० त्रि०) १ विनायक या गणेश-सम्बंधी। (पु०) २ भागवतके अनुसार भूतोंका एक गण। (भागवत ६।८।२२)

वैनायिक (सं० त्रि०) १ विनायक-सम्बंधी। (पु०) २ वह जो बौद्धधर्मका अनुयायी हो, बौद्ध।

वैनाशिक (सं० क्ली०) विनाशं सूचयतीति विनाश-ठक्। १ नाड़ी नक्षत्रविशेष। यह नक्षत्र जन्मनक्षत्रसे तेईसवां नक्षत्र है। जिस नक्षत्रमें जन्म होता है, उस नक्षत्रसे तेईसवें नक्षत्रको वैनाशिक कहते हैं। यह नक्षत्र जिस किसी नक्षत्रसे हो सकता है, क्योंकि यह जातकके जन्मनक्षत्रसे स्थिर करना होता है। जातकका चाहे जिस नक्षत्रमें जन्म क्यों न हुआ हो, उससे तेईसवां नक्षत्र होने पर ही वह वैनाशिक नक्षत्र होगा। जन्मकालीन इस नक्षत्रमें जो ग्रह रहता है, वह अशुभफलप्रद है। इसमें ग्रह रहनेसे उसका फल विनाश है। गोचरमें भी इस नक्षत्रमें ग्रहोंके उपस्थित होनेसे उसका फल अशुभ होता है।

२ निधनतारा। यह तारा जन्म नक्षत्रसे गणनामें ७वां, १०वां और १९वां नक्षत्र है। यह भी अनेक प्रकारके अनिष्ट देनेवाला है। इस तारेमें यात्रादि करनेसे नाना प्रकारके रोग, क्लेश और वित्तक्षय होते हैं।

(पु०) विनाशो मतमस्य विनाश ठक्। सर्वं दृश्यं

क्षणिकमिति क्षणिकविज्ञानवादित्वादस्य तथात्वं। ३ क्षणिकवादी, बौद्ध । ४ ऊर्णनाभ, मकड़ी, लूता। (त्रि०) ५ परतन्त्र, पराधीन। ६ विनाश-सम्बन्धी।

वैनीतक (सं० पु० क्ली०) विशेषेण नीतं तेन कायति कै क, स्वार्थे अण्, यद्वा आरूढं वाह्यं यत् साक्षात् वहति परम्परयैव वहति तद्वैनीतकं, यथा दोलां वहन् दोला-वाहकः विनीयते स्मेति क्तात् विकारसंज्ञेति के विनीतकः तेनैव स्वार्थे ष्णे वृद्धौ वैनीतकं। ऐसी सवारी जिसे कई आदमी मिल कर उठाते हों। जैसे,—डोली, पालकी, तामझाम आदि।

वैनेय (सं० पु०) वैदिक शाखाभेद।

वैन्दव (सं० पु०) विन्दुका अपत्य।

वैन्दवी (सं० पु०) वह जाति जो युद्ध बहुत पसन्द करती है।

वैन्दवीय (सं० पु०) वैन्दवी जातिके राजा।

वैन्ध्य (सं० पु०) १ विन्ध्यप्रान्तभव। २ विंध्य पर्वत-सम्बन्धी।

वैन्य (सं० पु०) वेनस्यापत्यं पुमान् वेन (कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५२) इति ण्य। १ राजा वेनके पुत्र पृथुका एक नाम। (ऋक् ८।९।१०) २ ऋक् १०।१४८ सूक्तके मंत्रद्रष्टा पृथुके पूर्वपुरुष। ३ पृथुराजके पूर्वपुरुष।

वैन्यदत्त (सं० पु०) वेणुदत्तके पुत्र।

वैन्यस्वामिन् (सं० पु०) एक पवित्र देवस्थानका नाम।

वैन्यगुप्त—ई० खृष्टशतकके प्राच्य भारतके सम्राट्।

वैपञ्चिक (सं० पु०) गणक।

वैपथक (सं० त्रि०) विपथ-सम्बन्धी।

वैपरीत्य (सं० क्ली०) विपरीतस्य भाव ष्यञ्। विपरीत होनेका भाव, विपरीतता, प्रतिकूलता।

वैपरीत्यलज्जालु (सं० पु०) लघुलज्जालुका। इसका गुण कटु, उष्ण और कफनाशक होता है। (राजनि०)

वैपश्चित (सं० पु०) विपश्चित नामक ऋषिके वंशधर, तार्क्ष्य ऋषि। (आश्व० श्रौ० १०।७।६)

वैपश्यत (सं० पु०) वैदिक कालके एक ऋषिका नाम। (शतपथब्रा० १३।४।३।१३)

वैपात्य (सं० क्ली०) विपातस्य भावः कर्म वा (गुण-वचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति विपात ष्यञ्। विपातका भाव या धर्म।

वैपादिक (सं० त्रि०) १ विपादिका रोग सम्बन्धी। २ जो विपादिका रोगसे ग्रसित हो। (पा ५।२।१०३ वार्त्तिक)

वैपादिका (सं० स्त्री०) विपादिका नामक रोग।

वैपार (सं० क्ली०) व्यापार देखो।

वैपारी (सं० पु०) व्यापारी देखो।

वैपाश (सं० पु०) विपाट् या विपाशानदीसम्भव।

वैपाशायन (सं० पु०) विपाशस्य गोत्रापत्यं विपाश (गोत्रे कुञ्जादिभ्यश्च्फञ्। पा ४।१।९८) इति फञ्। विपाशके गोत्रापत्य।

वैपाशायन्य (सं० पु०) विपासके गोत्रापत्य। विपाशायन देखो।

वैपाशक (सं० त्रि०) १ विपाशासे निर्वृत्त या उत्पन्न। २ कृतबन्धन।

वैपित (सं० पु०) विपितुरपत्यं विपितृ अण्। वे भाई बहन आदि जिनकी माता तो एक ही हो पर पिता अलग अलग हों।

वैपुल्य (सं० क्ली०) विपुलस्य भावः ष्यञ्। विपुल होनेका भाव, विपुलता, अधिकता।

वैप्रकर्णिक (सं० त्रि०) नित्यं विप्रकर्णमर्हति (छेदादिभ्यो-नित्यं। पा ५।१।६४) इति विप्रकर्ण-ठञ्। नित्य विप्र-कर्णके योग्य।

वैप्रचिति (सं० त्रि०) विप्रचित-इञ्। विप्रचितभव। (पा ४।२।८०)

वैप्रचित्त (सं० पु०) विप्रचित्त नामक दानवका अपत्य।

वैप्रयोगिक (सं० त्रि०) विप्रयोगं नित्यमर्हति विप्रयोग (पा ५।१।६४) इति ठञ्। नित्य विप्रयोगार्ह।

वैप्रश्निक (सं० त्रि०) नित्यं विप्रश्नमर्हति विप्रश्न-ठञ्। नित्य विप्रश्नार्ह।

वैफल्य (सं० क्ली०) विफलस्य भावः विफल-ष्यञ्। विफल होनेका भाव, विफलता।

वैबाध (सं० पु०) १ प्राचीन कालका एक प्रकारका सिक्का। २ वह अश्वत्थ वृक्ष जो खैरके वृक्षमेंसे निकला हो। (अथर्व ३।६।२)

वैबुध (सं० त्रि०) विबुध अण्। १ विबुध सम्बन्धी। (क्ली०) २ विबुधका भाव या कर्म।

वैबोधिक (सं० पु०) प्रहरी, वह जो रातमें घण्टा बजा कर समय जताता तथा सोये हुएको जगाता है।

वैभक्तक (सं० त्रि०) विभक्तभव। (पा ४।२।८०)

वैभण्डि (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम। इन्हें विभाण्डि भी कहते हैं। (प्रवराध्याय)

वैभव (सं० क्ली०) विभोर्भावः विभु-अण्। १ विभव, दौलत, धन-सम्पत्ति। २ अतिशय। ३ विभुता, सामर्थ्य, शक्ति, ताकत। ४ महिमा, महत्त्व, बड़प्पन।

वैभवशाली (सं० त्रि०) जिसके पास बहुत अधिक धन-सम्पत्ति हो, विभववाला, मालदार।

वैभविक (सं० त्रि०) वैभव-सम्बन्धी, जो कोई काम करनेकी अच्छी सामर्थ्य रखता हो, समर्थ।
(मार्क०पु० २३।४४)

वैभाजन (सं० त्रि०) विभाग-संबन्धी।
(आपस्तम्ब १।२२।७)

वैभाजित्र (सं० क्ली०) विभाजयितुर्धर्म्यं विभाजयितृ (ऋतोऽञः। पा ४।४।४९) इति अञ्, विभाजयितुर्णि-लोपश्चाञ्चेति काशिकोक्त्या णिलोपः। विभागकारी-का धर्मयुक्त। (सिद्धान्तकौमुदी)

वैभाज्यवादिन् (सं० पु०) बौद्धसम्प्रदायभेद।

वैभाण्डकि (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।
(रामायण १।९।३१)

वैभार (सं० पु०) राजगृहके पासके एक पर्वतका नाम। इसे वैहार भी कहते हैं। राजगृह देखो।

वैभाषिक (सं० त्रि०) १ विभाषा-सम्बन्धी। २ वैक-ल्पिक। (पु०) ३ बौद्धोंके एक सम्प्रदायका नाम। "विभाषया दिव्यन्ति चरन्ति वा वैभाषिकाः। विभाषां वा वदन्ति वैभाषिकाः।" (अभिधर्मकोष) बौद्ध देखो।

वैभाष्य (सं० क्ली०) विभाषा।

वैभीतक (सं० त्रि०) विभीतक-सम्बन्धी।
(आश्व० श्रौ० ६।७।७)

वैभीदक (सं० त्रि०) विभीतक-सम्बन्धी।
(षड्विंशब्रा० ३।८।४४)

वैभूतिक (सं० त्रि०) विभूति-सम्बन्धी, विभूतिका।

वैभूवस (सं० पु०) विभूवसुके अपत्य, त्रित।
(ऋक् १०।४६।३)

वैभोज—एक प्राचीन जाति। महाभारतके अनुसार द्रुह्युके वंशज वैभोज कहलाते थे। ये लोग सवारी आदिका व्यवहार करना नहीं जानते थे और न इन लोगोंमें कोई राजा हुआ करता था।

वैभ्राज (सं० क्ली०) १ देवताओंका उद्यान या बाग। २ पुराणानुसार मेरुके पश्चिममें सुपार्श्व पर्वत परके एक जंगलका नाम। (मार्कण्डेयपु० ५५।२) ३ विभ्राज राजका तपस्यास्थान। (हरिवंश २३।१३) (पु०) ४ पर्वतविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५६।१३) ५ लोकविशेष।
(हरिवंश १८।४६)

वैभ्राजक (सं० क्ली०) वैभ्राज स्वार्थे कन्।
वैभ्राज देखो।

वैभ्राजलोक (सं० पु०) स्वर्गस्थ लोकभेद। यहां बर्हि-षद्गण वास करते हैं।

वैम (सं० त्रि०) वेमन्-अञ्। तांत-सम्बन्धी।

वैमतायन (सं० पु०) विमत ऋषिके गोत्रापत्य।

वैमतायन (सं० त्रि०) वैमतायन।

वैमत्य (सं० पु०) विमते गोत्रापत्यं विमति (कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति ण्य। १ विमतिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। विमतेर्भावः विमति (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। २ विमतिका भाव।

वैमद (सं० त्रि०) विमदऋषिदृष्ट। (सूक्त)

वैमन (सं० त्रि०) वेम-सम्बन्धी।

वैमनस्य (सं० क्ली०) विमनसो भावः विमनस् (वर्णदृढा-दिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति ष्यञ्। १ विमना या अन्यमनस्क होनेका भाव। (भागवत १०।५४।५०) २ बैर, द्वेष, दुश्मनी।

वैमन्य (सं० त्रि०) वेमनि साधुः (ये चाभावकर्मणोः। पा ६।४।१६८) इति वेमन्-य। वेम विषयमें साधु।

वैमल्य (सं० क्ली०) विमलस्य भावः विमल-ष्यञ्। विमल होनेका भाव, विमलता।

वैमात्र (सं० त्रि०) विमातुरपत्यमिति विमातृ-अण्। विमातासे उत्पन्न, सौतेला। जैसे,—वैमात्र भाई।

वैमात्रा (सं० स्त्री०) विमातुरपत्यं स्त्री, वैमात्र-टाप्। विमातृकन्या, सौतेली।

वैमात्रेय (सं० त्रि०) विमातुरपत्यं विमातृ ढक् (शुभ्रादिभ्यश्च।

पा.४।१।१२४) विमातासे उत्पन्न, सौतेला। पर्याय—विमातृज, वैमात्र। (जटाधर)

वैमात्रेयी (सं० स्त्री०) वैमात्रेय-ङीप्। विमातृकन्या, सौतेली।

वैमानिक (सं० त्रि०) १ विमानचारी, जो विमान पर चढ़ कर अन्तरीक्षमें विहार करता हो। (मनु १२।४८) २ उड़नेमें समर्थ, जो उड़ सकता हो। ३ आकाशचारी, आकाशमें विहार करनेवाला। (पु०) ४ देवयोनिविशेष।

वैमित्रा (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम। (भारत वनपर्व)

वैमुक्त (सं० क्ली०) विमुक्तस्य भावः विमुक्त-अण्। १ विमुक्तका भाव। (त्रि०) २ विमुक्तिविशिष्ट।

वैमुख्य (सं० क्ली०) विमुखस्य भावः विमुख ष्यञ्। १ विमुख होनेका भाव, विमुखता। २ अप्रसन्नता, नाराजगी। ३ निरनुकूलता, विपरीतता। ४ पलायन, भागना।

वैमूल्य (सं० क्ली०) अन्यान्य मूल्य, विभिन्न मूल्य। (मनु ६।२८७)

वैमूल्यतस् (सं० अव्य०) विभिन्न मूल्यमें, अन्यान्य दाम पर।

वैमृध (सं० त्रि०) युद्ध करनेवाले, इन्द्र। (शतपथब्रा० ८५।२।५)

वैमृध्य (सं० त्रि०) रणकुशल। (आश्व० श्रौ० २।१०।१३)

वैमेय (सं० पु०) विनिमय, परिवर्त्तन, बदला।

वैम्य (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम। (संस्कारकौ०)

वैम्बकि (सं० पु०) विम्बके अपत्य।

वैयग्र (सं० क्ली०) १ विरक्ति, मानसिक चांचलता। (त्रि०) २ वैरताजनक। (मनु ६।२२७)

वैयधिकरण्य (सं० क्ली०) व्यधिकरणत्व या समानाधिकरणका विपरीत भाव। व्याप्ति और व्यधिकरण देखो।

वैयमक (सं० पु०) जातिविशेष। (भारत सभापर्व)

वैयर्थ्य (सं० क्ली०) व्यर्थ होनेका भाव, व्यर्थता। (मनु २।१३८ कुल्लूक)

वैयल्कश (सं० त्रि०) विविध शाखाविशिष्ट। (वोपदेव ७।४)

वैयशन (सं० त्रि०) एक प्रकारका साम।

वैयश्व (सं० पु०) १ अश्वविरहित। २ एक वैदिक ऋषिका नाम जो विश्वमनसके पिता थे।

वैयश्वि (सं० पु०) वैयश्व या व्यश्वका गोत्रापत्य।

वैयसन (सं० त्रि०) व्यसने भवं अण्, (न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वौ तु ताभ्यामैच। पा ७।३।३) इति यस्य ऐच्। व्यसनभव, व्यसनसे उत्पन्न, व्यसनका।

वैयाकरण (सं० पु०) व्याकरणं वेत्ति अधीते वा व्याकरण (ऋगयनादिभ्यः। पा ४।३।७३) इति अण् (न य्वाभ्यां पदान्ताभ्यामिति। पा ७।३।३) इति यकारात् पूर्वं ऐच्। १ वह जो व्याकरणशास्त्रका अच्छा ज्ञाता हो, व्याकरणवेत्ता। (त्रि०) २ व्याकरणसम्बन्धी, व्याकरणका।

वैयाकरणपाश (सं० पु०) कुत्सित अर्थात् अज्ञ व्याकरण।

वैयाकरणभार्य (सं० पु०) वैयाकरणी भार्या यस्य। वह जिसकी पत्नी वैयाकरणमें अभिज्ञा या तदध्ययनकारिणी हो। (मुग्धबोध)

वैयाकृत (सं० त्रि०) व्याकृत स्वार्थे अण् यस्य ऐच्। व्याकृत।

वैयाख्य (सं० स्त्री०) व्याख्या देखो।

वैयाघ्र (सं० पु०) व्याघ्रस्य विकारः (प्राणिरजतादिभ्यः। पा ४।३।१५४) इति अञ्, ततः वैयाघ्रेण चर्मणा परिवृतो रथः (द्वैपवैयाघ्रादञ्। पा ४।२।१२) इति अञ्। १ व्याघ्रचर्माच्छादित रथ, प्राचीन कालका एक प्रकारका रथ जिस पर शेर या चीतेकी खाल मढ़ी होती थी। इसे द्वैप भी कहते थे। (त्रि०) २ व्याघ्र-सम्बन्धी, व्याघ्रका।

वैयाघ्रपदी (सं० त्रि०) व्याघ्रपद ऋषिकी अपत्यपत्नी।

वैयाघ्रपदीपुत्र (सं० पु०) व्याघ्रपद मुनिका दौहित्र। ये एक वैदिक आचार्य थे। (वृहदारण्यक उप० ६।५।१)

वैयाघ्रपद्य (सं० पु०) व्याघ्रपदोऽपत्यमिति व्याघ्रपद-यञ् यद्वा व्याघ्रस्येव पादावस्य इति बहुव्रीहौ (पादस्य लोपः इति। पा ५।४।१३८) इति अकारलोपे गर्गादित्वात् यञ् "पादः पत्" (पा ६।४।१३०) इति पदादेशः

ततो यकारात् पूर्व्वमैच् । (पा ७।३।३) गोत्रकारक मुनिविशेष। महामति भीष्म इस गोत्रके थे।

वैयाघ्रपरिच्छद (सं० त्रि०) द्वीपिचर्माच्छादित।

वैयाघ्रपाद (सं० पु०) १ वैयाघ्रपद्य गोत्रकारक मुनि। २ वैयाघ्रपाद विरचित एक वैयाकरण।

वैयाघ्र (सं० क्ली०) १ व्याघ्रका भाव या धर्म। २ एक प्रकारका आसन।

वैयात (सं० त्रि०) वियात स्वार्थे अण् आद्यचो वृद्धिः। (पा ५।४।३६) वियात देखो।

वैयात्य (सं० क्ली०) वियातस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च। पा ५।१।१२३) इति वियात-ष्यञ्। १ वियातका भाव, धृष्टता। २ प्रागल्भ्य, चतुरता। ३ निर्लज्जता। ४ औद्धत्य।

वैयाद्गी—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक नगर। यहां म्युनिसिपलिटी है।

वैयावृत्ति (सं० स्त्री०) व्यावृत्ति, व्यावस्था।

वैयावृत्य (सं० क्ली०) यतियों और साधुओं आदिकी सेवा।

वैयावृत्यकर (सं० पु०) जैनमतानुसार मठस्थ धर्मोपदेशक कर्मचारिभेद।

वैयास (सं० त्रि०) व्यास-सम्बन्धी, व्यासका।

(शिशुपालवध २०।८२)

वैयासकि (सं० पु०) व्यासस्यापत्यं (व्यासवरुड़निषादेति। पा ४।१।९७) इत्यस्य काशिकोक्त्या इञ्, अकणादेश्च, यकारात् पूर्व्वमैच्। व्यासके अपत्य।

(भागवत १०।१।१४)

वैयासि (सं० पु०) व्यासके अपत्य।

(भागवत ३।२२।३७)

वैयासिक (सं० त्रि०) व्यासेन कृतः व्यास-ठञ् तत ऐच्। व्यासका बनाया हुआ।

वैयास्क (सं० क्ली०) एक प्रकारका वैदिक छन्द।

(ऋक्प्राति० १७.२५)

वैयुष्ट (सं० त्रि०) व्युष्टे दीयते कार्यं (व्युष्टादिभ्योऽण्। पा ५।१।९७) इति अण् तत ऐच्। प्रातर्भव, जो सवेरे होता हो।

वैर (सं० पु०) वीरस्य कर्म भावो वा वीर-अण्। विरोध, द्वेष, शत्रुता, दुश्मनी। महाभारतमें लिखा है, कि पांच कारणसे विरोध खड़ा होता है। यथा, स्त्रीकृत—जैसे शिशुपाल और कृष्णका; वास्तुज—जैसे कुरु पाण्डवका; वाग्ज—बातबातमें जहां विवाद होता है, उसे वाग्ज कहते हैं, जैसे द्रोण और द्रुपदका; सापत्न—जैसे मूसे और बिल्लीका; अपराधज—जैसे पूजनीय और ब्रह्मदत्तका। (महाभारत)

वैरक (सं० पु०) वैर देखो।

वैरकर (सं० त्रि०) करोतीति कर वैरस्य करः। विरोधकारक, दुश्मनी करनेवाला।

वैरकरण (सं० क्ली०) वैरस्य करणं। दुश्मनी करना।

वैरकार (सं० त्रि०) वैरं करोति कृ-अण्। वैरकर, दुश्मनी करनेवाला।

वैरकारक (सं० त्रि०) वैरस्य कारकः। वैरकार देखो।

वैरकारिता (सं० स्त्री०) वैरकारिणो भावः तल्-टाप्। विरोधकारीका भाव या धर्म, विरोध, दुश्मनी।

वैरकि (सं० पु०) वीरकके अपत्य। (पा २।४।६१)

वैरकृत् (सं० त्रि०) वैरं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च। शत्रुताकारी, दुश्मनी करनेवाला।

वैरक्त (सं० क्ली०) विरक्तस्य भावः विरक्त-अण्। विरक्तता, विराग।

वैरङ्कर (सं० त्रि०) शत्रुताकारी, द्वेष करनेवाला।

(भागवत ६।५।३६)

वैरङ्गिक (सं० त्रि०) विरङ्गं नित्यमर्हति (छेदादिभ्यो नित्यं। पा ५।१।६४) इति ठञ्। विरागार्ह, विरागके योग्य। (हेम)

वैरट (सं० पु०) राजभेद। वैराट देखो।

वैरम्भी (सं० स्त्री०) बौद्ध-रमणीभेद।

वैरणक (सं० त्रि०) वीरण-सम्बन्धी। (पा ४।२।८०)

वैरणी (सं० स्त्री०) वीरणकी कन्या। (हरिवंश)

वैरण्डेय (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। (प्रवराध्याय)

वैरत (सं० पु०) जातिविशेष। "सिन्धुकालकवैरताः।"

(मार्क०पु० ५८।३२)

वैरता (सं० स्त्री०) वैरस्य भावः तल् टाप्। वैरका भाव या धर्म, शत्रुता, दुश्मनी।

वैरत्य (सं० क्ली०) १ विरतका भाव। (त्रि०) विरत-सम्बन्धीय या तत्कर्तृक निवृत्त।

वैरदेय (सं० क्ली०) १ प्रतिहिंसाजनित शत्रुता या पीड़न, वह वैर या शत्रुता जो किसीके शत्रुता करने पर उत्पन्न हो। २ असुरभेद। (काठक २३।८)

वैरनिर्यातन (सं० क्ली०) वैरस्य निर्यातनं। शत्रुताका प्रतिशोध लेना।

वैरन्त्य (सं० पु०) राजपुत्रभेद। देवीने इसे नूपुरसे मारा था। (काम० नीति० ७।५३)

वैरपुरुष (सं० पु०) शत्रु, दुश्मन।

वैरप्रतिक्रिया (सं० स्त्री०) वैरस्य प्रतिक्रिया। वैरनिर्यातन।

वैरभाव (सं० पु०) शत्रुभाव, शत्रुता, दुश्मनी।

वैरम खाँ—वैराम खाँ देखो।

वैरमण (सं० त्रि०) विराम-सम्बन्धी।

वैरयातन (सं० क्ली०) वैरस्य यातनं। वैरनिर्यातन।

वैरल्य (सं० क्ली०) विरलस्य भावः ष्यञ्। १ विरलका भाव, विरलता। २ एकान्त।

वैरवत् (सं० त्रि०) वैर अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। वैर-विशिष्ट, शत्रुतायुक्त।

वैरविशुद्धि (सं० स्त्री०) वैरस्य विशुद्धिः। वैरनिर्यातन, दुश्मनीका बदला लेना।

वैरशुद्धि (सं० स्त्री०) वैरस्य शुद्धिः। वैरनिर्यातन, किसीके वैरका बदला चुकाना।

वैरस (सं० क्ली०) विरसस्य भावः विरस-अण्। वैरस्य, विरसता।

वैरस्य (सं० क्ली०) विरस-ष्यञ्। १ विरस होनेका भाव, विरसता। २ अनिच्छा, इच्छाका न होना।

वैरहत्य (सं० स्त्री०) वीरहत्या या शत्रुहत्या।

वैराग (सं० पु०) वैराग्य देखो।

वैराग—बम्बई प्रेसिडेन्सीके शोलापुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १८°३´४२´´ उ० तथा देशा० ७५°५०´४५´´ पू० शोलापुरसे बार्सि जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यह एक वाणिज्यकेन्द्र है। यहां प्रति सप्ताहमें बुधवारको हाट लगती है।

वैरागिक (सं० त्रि०) विरागं नित्यमर्हति विराग-ठञ्। विरागार्ह, जिसके कारण विराग उत्पन्न हो। (सिद्धान्तकौमुदी) वैरङ्गिक देखो।

वैरागिन् (सं० त्रि०) विरागस्य भावः वैरागं, तदस्यास्तीति इनि। वैरागी देखो।

वैरागी—उदासीन वैष्णव-सम्प्रदायभेद। इन लोगोंने विषय-कामनाको तिलाञ्जलि दे कर संसारधर्मका त्याग किया है। इस सम्प्रदायके सभी रामानुज या रामानन्दी मतका अनुसरण करते हैं। अन्यान्य वैष्णव-सम्प्रदायमें भी वैरागी देखे जाते हैं। ये लोग श्रीकृष्ण या श्रीरामचन्द्रको अपना उपास्य देवता मानते हैं तथा उदासीन संन्यासीकी तरह राह राह भीख मांगते फिरते हैं। 'श्रीरामाय नमः' इनका मूलमन्त्र है। ये लोग श्रीकृष्णका भजन तो करते हैं, पर श्रीराधाको उनकी शक्ति कह कर उपासना नहीं करते। राधाको ये लोग श्रीकृष्णकी अनुगता भामिनी समझते हैं। रुक्मिणी देवी ही इनके मतसे भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिस्वरूपिणी हैं। जो लोग अयोध्यापति रामचन्द्रके उपासक हैं, वे सीतादेवीको लक्ष्मीस्वरूपिणी कह कर उनकी पूजा करते हैं।

पश्चिमाञ्चलवासी वैरागियोंमें साधारणतः रामानुज या श्रीवैष्णव, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी और निम्बार्क मतानुसारी वैष्णव ही देखे जाते हैं। दाक्षिणात्यमें मध्वाचार्य, निम्बार्क और विष्णुस्वामी दलकी संख्या ही अधिक है। ये सभी श्रीकृष्णके उपासक हैं। पञ्जाब प्रदेशमें रामानन्दी और निमानन्दी सम्प्रदायी वैरागी हैं। रामानन्दी रामकी और निमानन्दी कृष्णकी उपासना करते हैं। श्रीरामनवमीमें श्रीरामचन्द्रके और भाद्रकी कृष्णाष्टमीमें श्रीकृष्णके जन्मोपलक्षमें ये लोग उपवास और पारणादि करते हैं। स्वधर्मावलम्बियोंके मध्य किसीके मरने पर बड़ा धूमधामसे भोज होता है।

रामानन्दी धर्मशास्त्ररूपमें रामायणका पाठ करते हैं तथा अयोध्या और रामनाथ पवित्रतीर्थ समझ कर धर्म कमानेके लिये उस देशमें जाते हैं। निमानन्दी श्रीकृष्णके भक्तिविषयक ग्रन्थादि पढ़ते हैं तथा मथुरा, वृन्दावन, द्वारकादिमें देवदर्शनके लिये गमन करते हैं। इन सब विभिन्न सम्प्रदायी वैष्णवोंके तिलकादि धारण करनेका भिन्न भिन्न रूप निर्दिष्ट है।

रामानुज सम्प्रदायके वैरागियोंमें तेङ्गलई और

बड़गलई नामक दो श्रेणीगत विभाग देखे जाते हैं। इनमें धर्ममतका कोई विशेष पार्थक्य नहीं रहने पर भी तिलकधारणके विषयमें यथेष्ट पार्थक्य दिखाई देता है। तेङ्गलईगण कहते हैं, कि देवताकी स्त्रीशक्ति असीम जीव है, उनके भावसे (पुरुषकार द्वारा) आत्मा ईश्वरके समीप लाई जाती है। उधर बड़गलईगण उक्त शक्तिको असीम और अनन्त तथा मुक्तिके एकमात्र उपाय मानते हैं। अन्यान्य विषयोंमें भी दोनों दलमें थोड़ा थोड़ा प्रभेद है, वह खृष्टानमतावलम्बी कनभिनिष्ट और आर्मेनियोंकी तरह है। बड़गलईगण मानवकी इच्छाको ही मुक्तिको एकमात्र सहाय मानते हैं तथा वानरका बच्चा जिस प्रकार निरापद स्थानमें जानेके लिये माताको मजबूतीसे पकड़े रहता है, उसी प्रकार आत्मा भी जगदीश्वरका आश्रय करके मुक्तिपथकी आकांक्षी होती है। तेङ्गलईका कहना है, कि आत्मा निष्क्रिय और शक्तिहीन है; बिल्ली जिस प्रकार अपने बच्चेको दाँतोंसे पकड़ कर निरापद स्थानमें ले जाती है, आत्माको उसी प्रकार ईश्वरकी दयासे परिचालित नहीं करने पर वह कभी भी निराश्रयताको अतिक्रम नहीं कर सकती; इस कारण इस सम्प्रदायमें 'मर्कटकिशोरन्याय' और 'मार्जारकिशोरन्याय' मतकी उत्पत्ति हुई है।

इनमेंसे अधिकांश शूद्रवर्णके होते हैं। ये लोग विवाहादि नहीं करते। किन्तु वङ्गालके चैतन्य-सम्प्रदायी वैष्णव वैरागियोंमें सेवादासी रखनेकी व्यवस्था देखी जाती है। इनको शवदेह गाड़ी जाती है।

वैराग्य (सं० क्ली०) विरागस्य भावः विराग-ष्यञ्। विषयतुच्छधी, मनकी वह वृत्ति जिसके अनुसार संसारको विषयवासना तुच्छ प्रतीत होती है और लोग संसारकी झंझटें छोड़ कर एकान्तमें रहते और ईश्वरका भजन करते हैं, विरक्ति।

वैराज (सं० पु०) १ विराट् पुरुष, परमात्मा। (भागवत २।१।२५) २ एक मनुका नाम। ३ सत्ताइसवें कल्पका नाम। ४ सामभेद। ५ तपोलोकमें रहनेवाले एक प्रकारके पितृ। कहते हैं, कि ये कभी आगसे नहीं जल सकते। ६ अजितके पिताका नाम। (भाग० ८।५।९) ७ वैराज्य देखो।

वैराजक (सं० त्रि०) उन्नीसवें कल्पका नाम।

वैराज्य (सं० क्ली०) विविध राजते विराट् तस्य भावो वैराज्यं, अणिमादिसिद्धिभाक्त्वमित्यर्थः। १ प्राचीन कालकी एक प्रकारकी शासनप्रणाली जिसमें एक ही देशमें दो राजा मिल कर शासन करते थे, एक ही देशमें दो राजाओंका शासन। २ वह देश जहां इस प्रकारकी शासन-प्रणाली प्रचलित हो। ३ विदेशियोंका राज्य, विदेशियोंका शासन। वैराज्य और द्वैराज्यके गुणदोषका विचार करते हुए कहा गया है, कि द्वैराज्यमें अशान्ति रहती है और वैराज्यमें देशका धन धान्य निचोड़ लिया जाता है। दूसरी बात यह कही गई है, कि विदेशी राजा अपनी अधिकृत भूमि कभी कभी बेच भी देता है और आपत्तिके समय असहाय अवस्थामें छोड़ भी देता है।

वैराट (सं० त्रि०) विराट्-अण्। १ विराटसम्बन्धी। २ विस्तृत, लम्बा चौड़ा। (पु०) ३ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी। ४ विराटराजपुत्र। ५ महाभारतका विराट पूर्व। (स्त्री०) ६ वैराटी, विराटकी कन्या।

वैराट—राजपूतानेके जयपुर राज्यान्तर्गत तोंड़वाटी जिलेका एक नगर। यह भीमगुफा पहाड़के नीचे जयपुरसे ४१ मील उत्तर तथा अलवारसे २५ मील पश्चिममें अवस्थित है। यह नगर बहुत पुराना है। पाण्डुपुत्रोंने वनवासकालमें यहां अज्ञातवास किया था। यही प्राचीन विराट् जनपद है। यहां बौद्ध सम्राट् अशोकके समय उत्कीर्ण दो अनुशासन देखे जाते हैं। यहां तांबेकी खान है।

वैराटक (सं० क्ली०) सुश्रुतके अनुसार शरीरमें किसी स्थान पर होनेवाली वह गाठ जो जहरीली हो। अङ्गरेजीमें इसे Poisonous Tubercle कहते हैं। (सुश्रुत २५ स्थान)

वैराटपुर—दाक्षिणात्यके वम्बई-प्रदेशके अन्तर्गत धारवाड़ जिलेका एक प्राचीन नगर। इसका वर्तमान नाम हङ्गल है। यहां कदम्वराजगण राज्य करते थे। शिलालिपिमें यह स्थान पन्थीपुर, वैराटपुर, विराटकोट और विराटनगर नामसे अभिहित हुआ है।

वैराटि (सं० पु०) विराटके पुत्र। (भारत विराटपर्व)

वैराट्या (सं० स्त्री०) जैनियोंके अनुसार सोलह विद्यादेवियोंमेंसे एक विद्यादेवीका नाम।

वैराणक (सं० त्रि०) वीरानक-निर्वृत्त। (पा ४।२।६०)
वैराधय (सं० क्ली०) विराधय-सम्बन्धी।
(पा ५।१।१२४)
वैरातङ्क (सं० पु०) अर्जुन या कोह नामक वृक्ष।
(राजनि०)
वैरानुबन्ध (सं० पु०) वैरसंस्रव, वैरसम्बन्ध।
(भागवत ७।१।२५।
वैरानुबन्धिन् (सं० त्रि०) वैरसंस्रवविशिष्ट।
(काम० नीति० १४।४५)
वैराम (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन जाति। (भारत वनपर्व)
वैराम—कुस्तुनतुनियावासी तुर्कजातिका धर्मसंक्रान्त एक उत्सव। जि-उल-हज्ज मासकी १०वीं तारीखको यह उत्सव मनाया जाता है। इस्लाम धर्मशास्त्रमें यह इद-इ आधा और इद-उल-कोरबस नामसे कथित है, किन्तु तुर्कोंने इसका 'केबाररा वैराम' नाम रखा है।
वैराम खां—मुगल राजमन्त्री। तुर्कमानवंशमें इसने जन्मग्रहण किया था। खानखानाकी उपाधि पा कर यह मुगल-राजदरबारमें ऊंचे ओहदे पर काम करता था। इसके पूर्वपुरुष तैमूरके समयसे मुगल राजसरकारमें काम करते थे। उसी सूत्रसे यह भी मुगल दरबारमें घुसा। कुछ ही दिनोंके बाद इसकी तरक्की हो गई। मुगल-सम्राट् हुमायूं शाह जब पारस्य हो कर भारतवर्ष आये थे, उस समय वैराम भी उनके साथ था।

हुमायूंके लड़के अकबर जब दिल्लीके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए, तब उन्होंने अपने अभिभावक राजमन्त्रि-प्रवर वैरामको खानखानाकी उपाधि दे कर सम्मानित किया था। उस समय मुगल-साम्राज्यके सामरिक-विभागका तथा दीवानी राजकार्यका परिचालनभार वैरामके ऊपर सपुर्द था। वैराम इस पद पर नियुक्त रह कर अपनी मर्यादाको अक्षुण्ण रख न सका। वह युवक अकबरके ऊपर अन्यायपूर्वक अपनी प्रभुता फैलानेमें कोई कसर उठा न रखता था। इस कारण वह अकबरकी आंखोंमें गड़ गया। १८५८ ई०में सम्राट् अकबर शाहने जब अपनेको राजकार्य चलानेमें उपयुक्त समझा, तब बड़े कौशलसे वैरामको राजकार्यसे अलग कर दिया। मन्त्रित्व और दरबारमें अपना प्रभाव नष्ट हुआ देख वैराम पहले सम्राट्के विरुद्ध साजिश करके विद्रोहवह्नि प्रज्वलित करनेमें उद्यत हो गया था। किन्तु इससे जब कोई फल न हुआ, तब वह दूसरा उपाय सोचने लगा। आखिर आत्मरक्षाका कोई उपाय न देख सम्राट्से क्षमा-प्रार्थना की। उदारमति बादशाह अकबरने उसके सब दोष माफ कर दिये तथा उसके भरण-पोषणके लिये वार्षिक ५० हजार रुपयेकी वृत्ति कायम कर दी।

इसके कुछ समय बाद वैरामने मक्का जानेके लिये सम्राट्से विदाई ली। गुजरातमें आ कर ज्यों ही वह जहाज पर चढ़ने जा रहा था, त्योंही मुबारक खाँ लोहानी नामक एक मुसलमानने उसका काम तमाम किया। मुबारक अपने पिताकी मृत्युका बदला चुकानेके लिये बहुत दिनोंसे मौका ढूंढ़ रहा था, आज उसका मनोरथ सिद्ध हुआ। सम्राट् हुमायूं शाहके राज्यकालमें वैराम ने रणक्षेत्रमें अपने हाथोंसे मुबारकके पिताको यमपुर भेजा था। १५६१ ई०की ३१वीं जनवरीमें यह घटना घटी थी। गुजरातके शेख हिसामके मकबरेके पास ही इसका मकबरा तैयार किया गया, पीछे वह लाश फिर मसहदमें ला कर दफनाई गई।
वैराम बेग—एक मुगलराजकर्मचारी। इसके लड़के मुनीम खांने हुमायूं बादशाहसे जागीर पाई थी।
वैरामघाट—मध्यभारतमें बेरार प्रदेशके इलिचपुर जिलेका एक बड़ा गांव। यह अक्षा० ११° २३´ उ० तथा देशा० ७७° ३६´ पू०के मध्य इलिचपुर नगरसे १४ मील पूर्व करिञ्जा सीमान्तमें अवस्थित है। यहां पर्वतके ऊपर एक देवस्थान शोभा दे रहा है। प्रति वर्षके कार्त्तिक मासमें यहां एक मेला लगता है जिसमें ५० हजार हिन्दू-मुसलमान एकत्र होते हैं। तीर्थयात्रियोंके पर्वत पर चढ़नेकी सुविधाके लिये सीढ़ी काटी गई है। हिन्दू एक बगलसे और मुसलमान दूसरी बगलसे सीढ़ी पर जाते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उस देवतीर्थमें पर्वतकी सामनेवाली समतल भूमिमें मानसिक पशुबलि चढ़ाते हैं। उस वार्षिक उत्सवमें प्रायः दो हजारसे ऊपर पशु मारे जाते हैं, किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि उस समय वहां रक्तकी नदी बह जाने पर भी एक भी मक्खी दिखाई नहीं देती।

वैरि (सं० पु०) वैरी, शत्रु, दुश्मन।

वैरिञ्च (सं० त्रि०) विरिञ्चि या ब्रह्मा-सम्बन्धी, ब्रह्माका। स्त्रियां ङीष्। २ वैरिञ्ची। (भागवत ११।१७।१५)

वैरिञ्च्य (सं० पु०) विरिञ्चि-ष्यञ्। ब्रह्माके पुत्र सनकादि।

वैरिण (सं० क्ली०) शत्रु, दुश्मन।

वैरिणि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। (प्रवराध्याय)

वैरिता (सं० स्त्री०) वैरिणोभावः तल्-टाप्। शत्रुता, दुश्मनी।

वैरित्व (सं० क्ली०) शत्रुता, दुश्मनी।

वैरिन् (सं० पु०) १ वैरमस्यास्तीति वैर-इनि। १ शत्रु, दुश्मन। (त्रि०) २ वीरसम्बन्धी, वीरविशिष्ट।

वैरिवीर (सं० पु०) पुराणानुसार दशरथके एक पुत्र। इनका दूसरा नाम इलविल भी है। (विष्णुपुराण)

वैरिस—राजपूतानेके उदयसागर नामक ह्रदसे निकली एक नदी। यह चित्तोर राजधानीसे १ मील दूरमें बहती है। उदयसागरसे ६ मीलकी दूरी पर पेशोला नामका बाँध है। इसकी ऊँचाई ८० फुट होनेके कारण जल उदयसागरमें आ गिरता है। 'सुहेलियाकी वाड़ी' नामक ग्राममें इस प्रकारका एक और बाँध है। उस बाँधमें अरावल्ली पर्वतकी कुछ नदियोंका जल गिरता है। पीछे वह जल वहांसे सञ्चालित हो कर पेशोला और उदयसागरमें दौड़ता है।

वैरिसिंह (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

वैरूप (सं० पु०) १ विरूपके अपत्य, ऋषिभेद। (प्रवराध्याय) २ विरूपके गोत्रापत्य अष्टादंष्ट्र। (पञ्चविंश ब्रा० ८।९।२१) ३ सामवेद।

वैरूपाक्ष (सं० पु०) विरूपाक्षस्य गोत्रापत्यं विरूपाक्ष (शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२) इति अण्। विरूपाक्षके गोत्रापत्य।

वैरूप्य (सं० क्ली०) विरूपस्य भावः ष्यञ्। १ विरूपका भाव या धर्म, विरूपता, कदर्यता। २ असाधारणत्व। ३ विसदृशत्व। ४ अयथाभाव।

वैरेकीय (सं० त्रि०) विरेक-सम्बन्धी, विरेचन-सम्बन्धी। (सुश्रुत)

वैरेचन (सं० त्रि०) विरेचन-सम्बन्धी, विरेचनका। (सुश्रुत)

वैरेय (सं० त्रि०) वीरसम्बन्धी, वीरका। (पा ४।२।८०)

वैरोचन (सं० पु०) विरोचनस्यापत्यं विरोचन-अण्। १ बुद्ध। २ राजा वलि। ३ अग्निके पुत्र। ४ सूर्यके पुत्र। ५ सिद्धगण। (शब्दरत्ना०)

वैरोचन-निकेतन (सं० क्ली०) वैरोचनस्य वलेर्निकेतनं। पाताल। (हलायुध)

वैरोचनभद्र (सं० पु०) बौद्ध धर्माचार्यभेद। (तारनाथ)

वैरोचनरश्मिप्रतिमण्डित (सं० पु०) बौद्धमतसे जगद्भेद।

वैरोचनि (सं० पु०) विरोचनस्यापत्यं विरोचन-इञ्। १ बुद्ध। २ राजा वलि। ३ सूर्यके पुत्र।

वैरोचि (सं० पु०) वलिके पुत्र बाणदैत्य। (मेदिनी)

वैरोट्या (सं० स्त्री०) जैनियोंकी सोलह विद्यादेवियोंमेंसे एक विद्यादेवीका नाम। (हेम)

वैरोद्धार (सं० पु०) वैरस्योद्धारः। वैरशुद्धि, किसीके वैरका बदला चुकाना।

वैरोवाल—पञ्जाब प्रदेशके अमृतसर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३१° ५६' उ० तथा देशा० ७४° ४०' पू०के मध्य विपाशा नदीके दाहिने किनारे अमृतसरसे २६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। इसके दूसरे किनारे कपुरथला राज्य है। म्युनिसपलिटी रहनेके कारण नगर खूब साफ सुथरा है। यहां शालकी लकड़ीका थोड़ा वाणिज्य चलता है। पर्वतसे लकड़ी काट कर विपाशा नदीमें लाई जाती है।

वैरोहित (सं० पु०) विरोहितके गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।२।१११ वैरोहित्यगण)

वैरोहित्य (सं० पु०) वैरोहितके अपत्य। (पा ४।१।१०५)

वैल (सं० पु०) बेल नामक वृक्ष या उसका फल।

वैलक्षण्य (सं० क्ली०) विलक्षणस्य भावः विलक्षण-ष्यञ्। १ विलक्षण होनेका भाव, विलक्षणता। २ विभिन्न या अलग होनेका भाव, पृथकता, विभिन्नता। ३ अन्य प्रकार।

वैलक्ष्य (सं० क्ली०) विलक्ष भावे ष्यञ्। १ लज्जा, संकोच, शर्म। २ विस्मय, आश्चर्य, ताज्जुब। ३ स्वभावकी विलक्षणता।

वैलगाँव—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागके अन्तर्गत उन्नाव जिलेका एक बड़ा गाँव। यह उन्नाव नगरसे ८ कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। एक ध्वस्त दुर्गावशेष स्थानीय समृद्धिका परिचायक है। यहां प्रति सप्ताहमें दो दिन हाट लगती है। उस हाटमें लकड़ी, लोहेकी बनी वस्तु, कृषिकर्मके उपयोगी यन्त्रादि तथा वस्त्र बिकनेको आते हैं। गाँवके चारों ओर आम और महुएका वन है।

वैलमेल—युक्तप्रदेशके अयोध्या विभागके रायबरेली जिलेका एक नगर। यहां प्रायः पांच हजार आदमियोंका वास है। सभी शैव धर्मावलम्बी हैं। स्थानीय महादेवका मन्दिर विशेष प्रसिद्ध है।

वैलस्थान (सं० क्ली०) श्मशान, मरघट। (ऋक् १।१३२।१)

वैलहोङ्गल—बम्बई-प्रदेशके साँपगाँव जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह एक बड़ी दीघीके पूरब एक विस्तीर्ण मैदानमें अवस्थित है। साँपगांव और परशगढ़ उपविभागके सीमान्तदेशमें होनेके कारण यह स्थान एक वाणिज्यकेन्द्ररूपमें गिना गया है। यहां प्रति शुक्रवारको हाट लगती है। उस हाटमें स्थानीय सूते कपड़े बिकनेको आते हैं। स्थानीय तथा पार्श्ववर्त्ती ग्रामवासी कृषकों और छोटे छोटे व्यवसायियोंके अलावा बेलगांव और वेनगुरलावासी वणिक् भी वे सब वस्त्र खरीदने आते हैं। फिर गड़ग (धारवाड़), गुलेड़गढ़ (बीजापुर), हुबली (धारवाड़), वेल्लपुर (कनाड़ा) तथा बम्बई और मन्द्राज-बन्दरसे तरह तरहके रेशमी और सूती कपड़े, सुपारी, गुड़ आदि भी काफी परिमाणमें यहां बिकनेको आते हैं।

नगर-प्राचीरके वहिर्भागमें उत्तरकी ओर बसवेश्वरका प्राचीन मन्दिर है। मन्दिरकी बाहरी बनावट और शिल्पकार्य देखनेसे मालूम होता है, कि जैनप्राधान्य कालमें यह बनाया गया था। दाक्षिणात्यमें लिङ्गायत मतका प्रादुर्भाव होनेसे इस मन्दिरमें लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। प्रति वर्ष कार्त्तिक मासमें यहां देवताके उद्देशसे एक मेला लगता है। मन्दिरगात्रमें रट्टसरदारोंकी (८७५-१३५० ई०) १२ सदीमें कनाड़ी भाषामें उत्कीर्ण दो शिलाफलक दिखाई देते हैं। मन्दिरके सामने दाईं ओर जो शिलालिपि है, वह इतनी अस्पष्ट है, कि पढ़ी नहीं जाती। बाईं ओर की लिपि रट्टसरदार कार्त्तवीर्यके राज्यकालमें १७६४ ई०को खोदी गई है। उसके ऊपरी भागमें ठीक बीचमें जिनेन्द्रकी मूर्त्ति बैठी हुई है। उसके दक्षिण भागमें दण्डायमान नरमूर्त्ति और उसके शिरका चक्र तथा वाम पार्श्वमें सवत्सा गाभी और उसके ऊपर सूर्यकी मूर्त्ति है। इस शिलाफलकमें जिनवस्ति और सम्भवतः जैनमन्दिरकी प्रतिष्ठाका उल्लेख है।

वैलात्य (सं० क्ली०) विलात-सम्बन्धी। (पा ५।१।१२३)

वैलुर—बम्बई प्रदेशके वेङ्गांवसे १४ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। समुद्रकी तहसे यह ३४६१ फुट ऊंचा और प्रायः ५ मील चौड़ा है। इसके ऊपर लोहा मिली मिट्टी पाई जाती है। यहां त्रिकोणमितीय सर्वे स्टेशन प्रतिष्ठित है।

वैलेपिक (सं० त्रि०) विलेपिकाका धर्म।

वैल्व (सं० क्ली०) विल्वस्येदं अण्। १ विल्व या बेल नामक फलके सम्बन्ध, बेलका।

वैवक्षिक (सं० त्रि०) विवक्षा-सम्बन्धी।

वैवधिक (सं० पु०) विवधेन धान्यतण्डुलादिना व्यवहरति (विभाषा विवधवीवधात्। पा ४।४।१७) इति पक्षे ठक्। १ वह जो अनाज आदि बेच कर अपना निर्वाह करता हो, गल्लेका व्यापारी। २ वार्त्तावह, दूत। ३ नैगमिक। ४ बोझ ढोनेवाला, मजदूर।

वैवर्ण (सं० क्ली०) विवर्णस्य भावः विवर्ण ष्यञ्। १ विवर्ण या मलिन होनेका भाव, मलिनता। २ कालिका, सौन्दर्य या लावण्यका अभाव। ३ स्त्रियोंके आठ प्रकारके सात्विक भावोंमेंसे एक प्रकारका भाव।

वैवर्त्त (सं० क्ली०) चक्रवत् परिवर्त्तन, किसी पदार्थका चक्र या पहिएके समान घूमना।

वैवश्य (सं० क्ली०) १ विवश होनेका भाव, विवशता, लाचारी। २ दुर्बलता, कमजोरी।

वैवस्वत (सं० पु०) विवस्वतोऽपत्यमिति विवस्वत् अण्। १ सूर्यपुत्र। (ऋक् १०।१४।१) २ रुद्रविशेष। ३ शनि। ४ सप्तम मनु। आज कलका मन्वन्तर इन्हीं मनुका माना जाता है। इस मन्वन्तरमें अवतार वामन, पुरन्दर, इन्द्र, आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, विश्वदेवगण,

मरुद्गण और अश्विनावृषभ आदि देवता, कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गोतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सप्तर्षि, इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नाभाग और कवि ये दश मनुके पुत्र हैं।

(भागवत)

हरिवंशमें लिखा है, कि वैवस्वत सप्तम मनु हैं। आज कल यही मन्वन्तर चल रहा है। इस मन्वन्तरमें अत्रि, वशिष्ठ, काश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचीकपुत्र जमदग्नि ये सप्तर्षि हैं। साध्यगण, रुद्रगण, विश्वगण, वसुगण, मरुद्गण, आदित्यगण, अश्विनीकुमारद्वय ये देवता तथा इक्ष्वाकु आदि दश वैवस्वत मनुके पुत्र हैं। इनके पुत्र पौत्र आदि सन्तान-सन्ततिगण कालक्रमसे दिग्दिगन्तरमें व्याप्त हैं। मन्वन्तरके प्रारम्भमें लोगोंकी सम्यक् व्यवस्था और संरक्षणके लिये सात सात ऋषि व्यवस्थापित होते हैं। (हरिवंश ७ अ०)

वैवस्वततीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

वैवस्वतद्रुम (सं० क्ली०) मोगरा चावल।

वैवस्वती (सं० स्त्री०) वैवस्वतस्य इयं अण् ततो ङीप्। दक्षिण दिशा, इस दिशाके अधिपति यम हैं। यह दिशा वैवस्वत मनुकी मानी गई है।

वैवस्वतीय (सं० त्रि०) वैवस्वत मनु सम्बन्धी।

वैवाह (सं० त्रि०) विवाह-अण्। विवाह-सम्बन्धी, विवाहका।

वैवाहिक (सं० पु०) विवाहाद्भवः विवाह-ठञ्। १ कन्या अथवा पुत्रका श्वशुर, समधी। (त्रि०) २ विवाहसम्बन्धी, विवाहका।

वैवाह्य (सं० त्रि०) १ विवाह सम्बन्धी, विवाहका। २ विवाह्य, जो विवाहके योग्य हो। (क्ली०) ३ वह समारोह या उत्सव जो विवाहके अवसर पर हो।

वैविक्त (सं० क्ली०) विविक्तका भाव।

वैवृत्त (सं० त्रि०) १ विवृत्ति सम्बन्धी। (पु०) २ उदात्त आदि स्वरोंका क्रम। (ऋक्प्राति०)

वैश—बङ्गाल और पश्चिमाञ्चलवासी वैश्य-जाति। वैश्य शब्दके अपभ्रंशसे हिन्दीमें वैश शब्द हुआ है। मारवाड़ी वणिक् सम्प्रदाय अपनेको बाईस वा वैश कहते हैं। उत्तर भागलपुरमें इस श्रेणीके एक दल पण्यजीवी हैं जो अपनेको आदि वैश्यजातिके वंशधर बतलाते हैं, किन्तु वैश बनियोंके साथ कोई सम्पर्क स्वीकार नहीं करते। ये लोग मूलवंशसे तीसरी पीढ़ीको बाद दे कर पुत्रकन्याका विवाह सम्बन्ध स्थिर करते हैं। बाल्यावस्थामें ही ये अपनी कन्याका विवाह करते हैं। इनमें विधवा-विवाह वा स्वामित्याग प्रचलित नहीं है। इनकी सामाजिक अवस्था बड़ी उन्नत है। वैश्य देखो।

वैशद्य (सं० क्ली०) विशदस्य भावः ष्यञ्। १ विशद होनेका भाव, विशदता। २ निर्मल या स्वच्छ होनेका भाव, निर्मलता।

वैशन्त (सं० त्रि०) वेशन्त-अण्। अल्प सरोवरोद्भूत, जो अल्प सरोवरमें हो। (शुक्लयजुः २४।३३)

वैशम्पायन (सं० पु०) विशम्पस्य गोत्रापत्यं (अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति फञ्। एक प्रसिद्ध ऋषिका नाम जो वेदव्यासके शिष्य थे। कहते हैं, कि महर्षि व्यासदेवकी आज्ञासे उन्होंने जनमेजयको महाभारतकी कथा सुनाई थी। पुराणमें लिखा है, कि जैमिनि, सुमन्त, वैशम्पायन, पुलस्त्य और पुलह ये पाँच मुनि ही व्रतधारक हैं।

वैशली—वैशाली देखो।

वैशल (सं० क्ली०) विशलस्य भावः स्वार्थे अण्। १ विशसन, हिंसन। (पु०) २ हिंसक।

वैशस्त्य (सं० क्ली०) विशस्ति (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। विशसितका भाव या कर्म।

वैशस्त्र (सं० क्ली०) विशसितुर्धर्म्यं विशसितृ (ऋतोऽञ्। पा ४।४।४९) इति अण्, तत्र विशसितुरिङ्लोपश्चाञ् च, इति काशिकोक्त्या इञ्लोपः। १ अधिकार। २ शस्त्राभावविशिष्टत्व। विगतं शस्त्रं यत्र, विशस्त्र अण्। (त्रि०) ३ जहांसे शस्त्र छूटा हो।

वैशाख (सं० क्ली०) विशाख-एव-स्वार्थे अण्। १ धनुर्विदोंका संस्थानभेद। (पु०) २ पुरविशेष।

(कथासरित्सागर० ६७।५)

विशाखा प्रयोजनमस्य (विशाखादिति। पा ५।१।११०) इति अण्। ३ मन्थनदण्ड, मथानीमेंका डंडा। (शिशुपालवध)

वैशाखी ; पौर्णमासी अस्मिन् (सास्मिन् पौर्णमासीति । पा ४।२।२१) इति अण् । ४ द्वादश मासोंमें प्रथम मास । पर्याय—माधव, राध । (अमर)

चन्द्र और सौर वैशाखका लक्षण—विशाखा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमाका नाम वैशाखी है । यह वैशाखी जिस मासमें होती है, उसी मासका नाम वैशाख है । फिर सूर्य जितने दिन मेषराशिमें अवस्थान करते हैं अर्थात् सूर्य मीनराशि अतिक्रम कर जितने दिन तक मेषराशिमें रहते हैं, उस सम्पूर्ण समयको सौर वैशाख कहते हैं । इस मासमें प्रति दिन सूर्य मेषलग्नमें उदित होते हैं । वैशाख मास अत्यन्त पुण्य मास है, कृत्यतत्त्वमें लिखा है,—

तुला, मकर और मेष अर्थात् कार्त्तिक, माघ और वैशाख इन तीन मासोंमें प्रातःस्नान, हविष्य और ब्रह्मचर्य करनेसे महापातक नष्ट होता है । वैशाख मासमें गङ्गा स्नान करनेसे अर्द्धप्रसूत लक्ष गोदानका फल लाभ होता है । यदि इस मासमें प्रातः गङ्गा स्नान करना हो, तो संकल्प करके करना चाहिये । क्योंकि संकल्प बिना किये कोई काम होता नहीं । इस मासमें सत्तूके साथ भरा घट दानका बड़ा महत्त्व लिखा है । यह घटदान संक्रान्तिके दिन, अक्षयतृतीया या पूर्णिमाके दिन करनेकी विधि है । यह दान पितृलोकके उद्देशसे करना चाहिये । पादुका और छत्रदानकी भी व्यवस्था है ।

वैशाख मासमें विषभय निवारणके लिये निम्बपत्रके साथ मसूरकी दाल भक्षण करना चाहिये । शास्त्रमें लिखा है, कि जो निम्बपत्रके साथ मसूर भक्षण करते हैं, तक्षक उनका क्या बिगाड़ सकता है ?

इस मासकी शुक्ला तृतोया ही *अक्षयतृतीया* कही जाती है । यह युगाद्या है, इससे इस तिथिमें स्नान दान करना चाहिये । अक्षयतृतीया देखो ।

इस मासमें यवश्राद्ध करनेका विधान है । पितृगणके उद्देशसे यवान्न द्वारा श्राद्ध करना होता है । इस मासके शुक्ल पक्षमें मङ्गल, शनि और शुक्रवारको नन्दा, रिक्ता और त्रयोदशी भिन्न तिथिमें, जन्मचन्द्र, अष्टमचन्द्र, जन्मतिथि, जन्म और उससे तृतीया और पञ्चम भिन्न ताराको, पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, पूर्वाषाढ़ा, मघा, भरणी, अश्लेषा और आर्द्रा भिन्न नक्षत्रमें यह श्राद्ध करना चाहिये । यह अक्षयतृतीया और विषुवसंक्रान्तिमें भी किया जा सकता है । यह श्राद्ध अवश्य कर्त्तव्य है । यदि किसी तरह वैशाख मासमें यह श्राद्ध न किया जाये, तो ज्येष्ठ और आषाढ़ मासके शुक्ल पक्षमें करे किन्तु विष्णुशयनमें नहीं करना चाहिये ।

पद्मपुराणके उत्तरकाण्डमें भी वैशाख मासके माहात्म्यका विवरण लिखा है । वैशाख मास सब मासोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है ।

इस मासमें यदि कोई व्यक्ति जन्म ले, तो वह जातक विनयी, द्विजदेवताका भक्त, धार्मिक, सुजनपालक, गुणाभिराम और जगत्प्रिय होता है ।

इस मासमें जातबालकका रविग्रह तुङ्गगत होता है, कारण इस मासमें रवि मेषराशिमें रहता है । मेष रविका तुङ्गस्थान है ।

३ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना । ४ अश्वके वैशाख नामक ग्रह । इस ग्रहसे अश्वके निम्नलिखित लक्षण दिखाई देते हैं—अश्वका गात्र स्तब्ध, गुरु और कम्पयुक्त हो जाता है । (जयदत्त ५७ अ०)

वैशाखी (सं० स्त्री०) विशाखया युक्ता पौर्णमासी (नक्षत्रेण युक्तः कालः । पा ५।२।३) इति अण् ततो ङीप् । १ वह पूर्णिमा जो विशाखा नक्षत्रसे युक्त हो, वैशाख मासकी पूर्णिमा । इस पूर्णिमा तिथिमें तिल और मधु द्वारा यम, देवता और पितरोंके उद्देश्यसे तर्पण करनेसे यावज्जीवनकृत पाप विनष्ट होता है और अन्तमें दश हजार वर्ष तक स्वर्गमें वास होता है । २ रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना । (राजनि०) ३ पुराणानुसार वसुदेवकी एक स्त्रीका नाम ।

वैशाख्य (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

वैशारद (सं० त्रि०) विशारद-अण् स्वार्थे । विशारद, पण्डित ।

वैशारद्य (सं० क्ली०) विशारदस्य भावः (वर्णदृढादिभ्यः ष्यञ् च । पा ५।१।१२३) इति ष्यञ् । विशारदता, निपुणता ।

वैशाल (सं० त्रि०) १ विशालदेश-सम्बन्धी । (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

वैशालायन (सं० पु०) विशालस्य गोत्रापत्यं विशाल (अश्वादिभ्यः फञ् । पा ४।१।११०) इति फञ् । विशालके गोत्रापत्य ।

वैशालि (सं० पु०) विशालके अपत्य, सुशर्मा ।

वैशालिक (सं० त्रि०) विशाल या वैशाली जनपद-सम्बन्धी ।

वैशालिनी (सं० स्त्री०) विदिशाराजकुमारी । (मार्क० पु० १२३।२०)

वैशाली—एक प्राचीन जनपदका नाम । विशाल नगरी विशालपुरी नामसे भी विख्यात है। पुराणोंसे मालूम होता है, कि राजा तृणविन्दुके पुत्र विशालने इस नगरीकी प्रतिष्ठा की थी। इस नगरीकी समृद्धिका परिचय नाना पौराणिक उपाख्यानों और किम्वदन्तियोंसे जाना जाता है। बहुतेरे इसको विशाल राज्य (प्राचीन उज्जयिनी) समझते हैं और उसकी ही समृद्धिका स्मरण कर वर्त्तमान वैशालीकी गौरव-घोषणा करते हैं। किन्तु वास्तवमें यह ठीक नहीं।

यह विशालपुरी गङ्गाके बायें किनारे अवस्थित है और यह तिरभुक्ति (तिरहुत)-के अन्तर्गत है। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमके मतसे वैशाली नगरी पटना-राजधानीसे २७ मील दूर पर अवस्थित थी। बौद्ध और जैन-ग्रन्थोंसे वैशालीका प्राचीन इतिहास मिलता है और बौद्धप्राधान्यके पहलेसे ही यह नगर वाणिज्य-समृद्धिसे पूर्ण था, इसका भी उक्त ग्रन्थोंमें प्रमाण मिलता है। शाक्य बुद्धके जन्मसे पहले जैन-तीर्थङ्कर महावीरने वैशाली राजधानीके उपकण्ठस्थ कोल्लग नामक ग्राममें जन्म लिया था। इसी कारणसे वे भी वैशाली नामसे विख्यात हुए थे। शाक्यसिंहके जन्मकालसे सम्राट् अशोकके समय तक बौद्धधर्म उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच चुका था। शेषोक्त समयमें पाटलिपुत्र (पटना) नगर बौद्धधर्मका केन्द्र मनोनीत हुआ और उस समयसे ही वैशालीकी समृद्धि घटने लगी। फिर भी उस समय तक वैशालीमें बौद्ध संघाराम आदि और श्रमणोंका अभाव नहीं था और इसका वाणिज्य प्रभाव खर्व होने पर भी नगरके श्रीसौन्दर्यका विशेष कोई विपर्यय साधित नहीं हुआ था। पीछे वह ध्वंसप्राप्त हुआ और वर्त्तमान समयमें उसका चिह्नमात्र भी विलुप्त हो गया है।

कनिंहम, फूसे, विन्सेण्ट स्मिथ, फिजट, डाकूर ब्लच आदि प्रत्नतत्त्वविदोंने प्राचीन जैन और बौद्ध ग्रन्थोंसे तथा फाहियान, यूएनचुवङ्ग, इत्सिं आदि चीनपरिव्राजकोंके भ्रमण-वृत्तान्तकी आलोचना कर मुजःफर जिलेके बसाड़ ग्रामको ही प्राचीन वैशालीका स्मृतिनिकेतन होना स्थिर किया है। वर्त्तमान शताब्दके प्रारम्भमें डाकूर ब्लचने बसाड़ ग्रामके विध्वस्त स्तूपोंको खुदवाया था। भूगर्भसे जो सब मोहराङ्कित मृत्खण्ड निकले हैं, उनसे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि यह बसाड़ ग्राम ही प्राचीन वैशाली है। यूएनचुवङ्गने लुप्तप्राय वैशालीको देखा था। उस समय भी बौद्धधर्मका चिराग कुछ टिमटिमा रहा था। इसके बाद ब्राह्मण्य-धर्मका विस्तार और बौद्ध-प्रभावका विलोप तथा पाटलिपुत्र राजधानीकी उत्तरोत्तर समृद्धि वृद्धि ही वैशाली-ध्वंसकी क्रमिक कारण हुई।

महावंश, *वायु* और *मत्स्यपुराण* आदि ग्रंथोंके पढ़नेसे मालूम होता है, कि बिम्बिसारके पुत्र अजातशत्रु या कुणिक बुद्ध-निर्वाणके आठ वर्ष से पहले ही पितृसिंहासन पर बैठे। उन्होंने पहले तो बौद्धोंका विशेषरूपसे निर्यातन किया; किन्तु पीछे उन्होंने स्वयं भी बौद्धधर्म ग्रहण किया था। राजगृह-स्थापन और वैशाली-आक्रमण उनके जीवनकी दो प्रधान घटनायें हैं। वैशालीकी समृद्धिने ही उस समय उनके चित्तको आकर्षित किया था, वह उनके वैशाली पर आक्रमण करनेसे ही मालूम होता है।

विनयपिटकम् नामक बौद्ध पालीग्रन्थमें लिखा है, कि बुद्धप्रवर्त्तित दश तरहके संस्कारके दोषगुणविचारके लिये वैशालीमें एक बौद्ध-सङ्गम बुलाया गया था। सिंहलीय आख्यायिकाके अनुसार मालूम होता है, यह सम्राट् अशोकके सिंहासनारोहणके ११८ वर्ष पहले संघटित हुआ था।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि जिस स्थानमें किसी समय प्रधान बौद्ध-सङ्गम प्रतिष्ठित हुआ था, वह स्थान उस समय बौद्धधर्मका केन्द्र-स्थल कहा जाता था। बौद्धगण इस स्थानको पवित्र तीर्थ मानते थे।

उस समय यहां सैकड़ों बौद्धमठ और संघाराम प्रतिष्ठित हुए थे और असंख्य बौद्ध-विहार और स्तूप स्थानीय पवित्रता और बौद्धप्रभावके प्रकृष्ट परिचय देनेमें समर्थ थे। इस समय उन सब कीर्त्तियोंका चिह्नमात्र भी नहीं है। केवल भूगर्भसे निकले कुछ इष्टकस्तूप, गृह-भित्ति, प्रस्तरनिर्मित पयःप्रणाली, मोहराङ्कित लिपियां, प्राचीन राजाओंकी शिलालिपियां और उक्त चीनपरिव्राजकोंके भ्रमणवृत्तान्तके सिवा वैशालीके बौद्धकीर्त्ति-संग्रहका दूसरा कोई उपाय नहीं।

कुशीनगरसे हिरण्यवती तट और लिच्छविराज्य परिदर्शन कर फाहियान वैशाली पहुंचा। उस समय वैशाली नगरके उत्तर मर्कट झीलके किनारे दोमंजिला और ऊंचा चूड़ावाला महावन-विहार था। स्वयं बुद्धदेवने इस विहारमें कुछ दिनों तक वास किया था। इसके निकट ही आनन्दको अर्द्धदेह पर बना एक स्तम्भाकृति गोपुर विद्यमान था।

नगरके मध्यमें नगरनिवासिनी आम्रपाली नाम्नी एक बौद्ध-दारिकाके व्ययसे विनिर्मित शाक्यबुद्धका स्मृति स्तम्भ और उनके रहनेके लिये इस आम्रपालीका दिया हुआ एक उद्यान था। ५वीं शताब्दीमें फाहियानने आम्रपालीकारित उक्त स्तूपको ध्वंसावस्थामें देखा था। उन्होंने यह भी लिखा है, कि बुद्धनिर्वाणके सौ वर्ष पीछे वैशालीमें कितने ही भिक्षु दश संस्कारोंके प्रकृततत्त्वसे अनभिज्ञ हो विनयसूत्र-विधिका उल्लंघन-जनित कार्य करते थे। इस विषयकी मीमांसाके लिये ७०० अर्हतोंने और भिक्षुओंने वैशालीमें एकत्र हो कर विनयपिटक संस्कार किया था। इस घटनाका स्मरण रखने लिये यहांके लोगोंने उस सङ्गम स्थानमें एक स्तूप निर्माण किया था। वह उस समय विद्यमान था। फाहियानने और भी लिखा है,—बुद्धका भिक्षापात्र पहले वैशालीमें रखा गया था, पीछे वह गान्धार राज्यमें लाया गया।

यूएनचुवङ्गने लिखा है,—वे गण्डकी (गङ्गा ?) अतिक्रम कर १४० या १५० लो० पैदल चल कर वैशालीमें पहुंचे थे। इस राज्यकी परिधि प्रायः ५ हजार लो थी। यह स्थान शस्यशाली और आम्र आदिके वृक्षोंके उद्यानोंसे पूर्ण था। यहांका जलवायु नाति शीतोष्ण, मनोरम और सुखप्रद है। इस स्थानके अधिवासी विशुद्धचित्त, सरल और धर्मान्वेषी हैं। यहां बौद्धमतके विश्वासी और इसके विपरीत मतवाले दोनों तरहके लोग हैं। इस समय बौद्धोंका वैसा प्रभाव नहीं रहा। सैकड़ों संघाराम ध्वंसावस्थामें पड़े हैं। ३ या ५ इस समय भी साबित बच गये हैं और उनमें केवल कई धर्मयाजक बौद्धधर्मके क्रियाकाण्डका पालन कर रहे हैं। उस समय भी अन्यान्य सम्प्रदायके लाखों मन्दिर वैशालीकी शोभा बढ़ा रहे थे। इन मन्दिरोंमें रह कर लोग अपने धर्मका विस्तार करनेमें लगे हुए थे। उस समय इस देशमें निर्ग्रन्थ सम्प्रदायके लोगोंकी संख्या बढ़ी चढ़ी थी।

'इस समय प्राचीन वैशाली-राजधानी ध्वंसप्राय थी। नगर-सीमाकी परिधि प्रायः ६०-७० लो और राजपुरीकी सीमा ४।५ लो होगी। यहां इस समय सुधिमेय लोगोंका वास था। इस राजपुरीके उत्तर-पश्चिम एक संघाराम था। इस मठमें बौद्ध-श्रमण सम्मतीय शाखानुसार हीनयान मतकी आलोचना करते थे। इसकी बगलमें एक स्तूप था। यहां आर्य विमलकीर्त्तिने सूत्रकी व्याख्या की और रत्नाकर आदि नगरवासी गृहस्थसन्ततियोंने इस स्थानमें बुद्धको बहुमूल्य छत्र प्रदान किया था। इसके पूर्व एक स्तूप बना है। कहते हैं, कि इस स्थानमें शारिपुत्र आदि बौद्धयतियोंने अर्हत् पद लाभ किया था। शेषोक्त स्तूपके दक्षिण-पूर्व एक दूसरा वैशालीराज द्वारा प्रतिष्ठित स्तूप है। बुद्ध-निर्वाणके कुछ दिन बाद इस राजवंशके एक राजाने शाक्य-शरीरका कोई चिह्न पा कर उस पर एक गृह या स्तूप निर्माण किया था*। इस स्तूपके उत्तर-पश्चिम अशोकराजके द्वारा प्रतिष्ठित एक दूसरा स्तूप

---

* बौद्ध पाली और संस्कृत ग्रन्थोंमें लिखा है—वैशालीके लिच्छवि राजाओंने बुद्धके चिह्नोंका संग्रह कर उन पर एक स्तूप निर्माण किया था। उत्तर भारतकी बौद्ध-किंवदन्तीसे जाना जाता है, कि सम्राट् अशोकने उक्त स्तूपको तुड़वा कर बौद्ध चिह्नोंका अंश ले कर अन्य स्तूपमें निहित किया था।

हैं। उसकी ही बगलमें ५०-६० फीट ऊंचा प्रस्तर-स्तम्भ है। इस स्तम्भके शिर पर सिंहमूर्त्ति बनी हुई है। इस स्तम्भके दक्षिण मर्कट झील है। प्रवाद है,—बुद्धदेवके व्यवहारार्थ वानरसंघने इस झीलको कटवाया था। मर्कट झीलके दक्षिण एक स्तूप है। यहां वानर बुद्धके भिक्षापात्रको ले कर वृक्ष पर चढ़ गया था और उनके पीनेके लिये उसने उस पात्रमें भर कर मधु ला कर दिया था। इसके ही दक्षिण जहां वानरने बुद्धको पीनेके लिये मधु दिया था, इस घटनाको स्मरण रखनेके लिये वहां भी एक स्तूप बना था। आज भी मर्कट झीलके उत्तर-पश्चिम कोनेमें प्रतिष्ठित एक वानरकी मूर्त्ति उस स्मृतिका परिचय दे रही है।

वैशालीके प्रधान संघाराम ३।४ ली (या कुछ अधिक एक पाव जमीन) उत्तरपूर्वमें विमलकीर्त्तिका प्राचीन मकान विद्यमान है। विमलकीर्त्तिने बौद्धधर्म ग्रहण किया था। यहां अब भी उनकी बौद्ध धर्मचर्याके बहुतेरे निदर्शन देखे जाते हैं। इसके निकट ही प्रेतभवन है। इसका आकार ईंटके पजावेकी तरह है। प्रवाद है, कि विमलकीर्त्तिने पीड़ितावस्थामें इस प्रस्तरमण्डपसे धर्मशास्त्रकी व्याख्या की थी। इसके निकट ही एक स्तूप मौजूद है, यह पूर्वकथित रत्नाकरकी आवासभूमि पर बना है। इस स्तूपके निकट एक दूसरा स्तूप दिखाई देता है। यहां वैशाली-निवासी बुद्धभक्ता आम्रपाली नामकी रमणीका वासभवन है। यहां ही बुद्धकी चाची और अन्यान्य भिक्षुणियां निर्वाणप्राप्त हुई थीं। यहां पूर्वकथित आम्रपालीका उद्यान था। यह उद्यान आम्रपालीने बुद्धदेवको रहनेके लिये दिया था।

इस उद्यानके पार्श्वमें एक स्तूप है। यहां खड़ा हो कर तथागत आनन्द और मारको अपने इहलोक-त्यागकी वासना बताई थी। इसीके पार्श्वमें एक स्तूप था, तथागत इसी स्थानमें वायुसेवनार्थ भ्रमण किया करते थे और बौद्धोंको उपदेश देते थे। * इस स्तूपमें आनन्दका देहचिह्नावशेष निहित है। इसके ही समीप बहुसंख्यक स्तूप हैं। ये संख्यामें इतने अधिक हैं, कि इनका गिनना सहज बात नहीं। यहां सहस्र प्रत्येक बुद्धने† निर्वाण लाभ किया था।

नगरके मध्यस्थलमें और बाहरी प्रदेशमें बुद्ध और बौद्धोंका इतना अधिक पवित्र चिह्न या कीर्त्तियाँ दिखाई देती हैं, कि उनका गिनना असम्भव है। प्रत्येक पद पर प्राचीन गृहस्थान या गृहभित्तिका अवशेष नेत्रोंके सामने आ जाता है। इसमें सन्देह नहीं, कि ये सब किसी समय प्राचीन कीर्त्तियोंमें परिगणित होते थे। ऋतुपरिवर्त्तन तथा वर्ष पर वर्ष, युग पर युग बीत जानेके बाद ये सब अब विलुप्त हो गये। किसी किसी विध्वस्त स्थानमें निविड़ वनमाला जाग उठी है। झील प्रायः सूख गये हैं। चारों ओर दुर्गन्ध उत्पन्न हो गई है।

फाहियान (४०५ ई०) और यूएनचुयङ्गने (६२६-६४५ ई०) जिन सब बौद्ध कीर्त्तियों और ध्वस्त निदर्शनोंका सन्दर्शन किया था, वही उनके भ्रमण-वृत्तान्तसे उद्धृत किया गया। चीनपरिव्राजक इत्सिंने भी ६७३ ई०में ताम्रलिप्ति जनपदमें पदार्पण कर नालन्दामें बौद्धकी शिक्षा ली। इसके बाद वे बोधगया, वाराणसी, श्रावस्ती, कान्यकुब्ज, राजगृह, वैशाली और कुशीनगर होते हुए ६९५ ई०में श्रीभोग (वर्त्तमान नाम पालेमबङ्ग) होते हुए चीन चले गये। उनकी विवरणीमें भी इस तरह कई ध्वंसावशिष्ट बौद्ध कीर्त्तियोंका परिचय मिलता है।

ऊपर जिन कीर्त्तियोंका उल्लेख किया गया, डाक्टर कनिंहम और ब्लचने वर्त्तमान बसाढ़ ग्रामके चारों ओर खुदवा कर इन सब कीर्त्तियोंका स्थान सामञ्जस्य साधनमें भी प्रत्नतत्त्वकी गभीर गवेषणाके विशेष अध्यवसायका परिचय दिया था। यूएनचुवङ्ग वर्णित कीर्त्तियोंके सिवा महात्मा ब्लचने प्रत्नतत्त्वके और बौद्धप्रभावके अनेक निदर्शन पाये हैं। ब्लचकी आविष्कृत मृत्तिकाजात प्राचीन मोहरोंमें वैशाली नगरीका नाम और कई राजाओंका परिचय मिलता है। नीचे वैशाली राजाओंकी नामावली दी गई।

* फाहियानने लिखा है, कि बुद्धदेवने यहां अपना धनु और गादी रखी थी।

† हरिणाकन्याके गर्भसे उत्पन्न बालकका नाम सहस्र प्रत्येक बुद्ध था।

(१) "महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त पत्नी महाराज श्रीगोविन्दगुप्तमाता महादेवी श्रीध्रुवस्वामिनी।"

श्रीध्रुवदेवीने ३८० से ४१३ ई० तक राजत्व किया था। राजा द्वितीय चन्द्रगुप्तकी महिषी थी।

(२) "श्रीघटोत्कचगुप्तस्य।"

महाराज घटोत्कचगुप्त ३०० ई०में विद्यमान थे। ये महाराज १म चन्द्रगुप्तके पिता थे। गुप्तराजवंश देखो।

सिवा इनके डाक्टर ब्लचने और भी कितने ही मोहराङ्कित मृत्खण्डोंका आविष्कार किया है, इनमें कुमारामात्याधिकरण, युवराज भट्टारकपादीय बलाधिकरण प्रभृति मन्त्रिगण, महाप्रतिहार, रणभाण्डागाराधिकरण, दण्डपाशाधिकरण, महादण्डनायक, अश्वपति आदिकी नामयुक्त मोहर विशेष आदरकी वस्तु है। उनकी प्रकाशित २५वीं मोहरमें "वैशाल्याधिकरण" शब्द देख कर अनुमान होता है, कि यह मोहर वैशालीराज्यके शासनकर्त्ता (City-magistrate) की थी। २६वें "वैशालग्रामर प्रकृतिकुटुम्बिनां" और २७वें "वैशालविषये" पदका उल्लेख रहने पर ये सब वैशालीराज्यकी नित्य वस्तु मालूम होती है। इसके सिवा "श्रेष्ठिसार्थवाहकुलिकनिगम" अङ्कित जो दो मोहर पाई गई हैं, उससे वहांका वाणिज्य-प्रभाव और समृद्धिकी कल्पना की जा सकती हैं।

देवोपासना और धर्मप्रभावज्ञापक और भी कई मुद्रित मृत्खण्ड मिले हैं। इन सबकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि यहां वाराणसीके अष्टगुह्यलिङ्गका अन्यतम आम्रातकेश्वर और गयाके श्रीविष्णुपदस्वामी नारायणकी उपासनामें इस देशके अधिकारी विशेष भक्तिमान थे। सिवा इसके भगवान् अनन्त और पशुपति (शिव) और अम्बादेवी नन्देश्वरी (दुर्गा) के उपासक शैव और शाक्तोंका प्रभाव वैशालीमें विद्यमान था। इस बातका प्रमाण उक्त मृत्फलकोंसे मिलता है। दो शङ्खयुक्त चित्रित चक्र, दो शङ्खसमन्वित चित्रित त्रिशूल और दो शङ्खयुक्त और वेदी पर स्थापित ढालि (?) विशिष्ट मोहराङ्कित मृत्खण्ड किसी विशेष सम्प्रदायके परिचायक हैं, इसमें सन्देह नहीं। सिवा इनके और भी कितने ही साधारण व्यक्तिके नामाङ्कित और भी अनेक मोहर मिली हैं। मालूम होता है, कि ये सब व्यक्ति उस समयके वणिक् सम्प्रदायके अग्रणी थे।

बौद्धकीर्त्तियोंमें यहां अब भी सिंहस्तम्भ, अशोकस्तूप और मर्कट भील दिखाई देते हैं। मर्कट भील इस समय रामकुण्डके नामसे विख्यात है। सिंहस्तम्भ इस समय ३० फीट ६ इञ्च ऊंचा है। इसके गात्रमें अशोकका अनुशासन था। स्तम्भगात्र झड़ जानेसे यह शासन नष्ट हो गया है, ऐसा अनुमान होता है। अशोकस्तूपकी ध्वस्त इष्टकस्तूप पर जो मन्दिर या कुटि बनी है, उनके भूमिस्पर्शमुद्रामें उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति स्थापित हैं। बुद्धदेवके गलेमें माला और माथेमें मुकुट है। इससे मूर्त्तिके नीचे एक मुकुटमूर्त्ति है। इससे वानर द्वारा बुद्धको मधुदान-प्रसङ्ग सूचित हो रहा है। यह मूर्त्ति माणिक्यपुत्र उत्साहकरणिक द्वारा प्रतिष्ठित हुई है।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने विहार तथा उसके निकटके जिन सब स्तूपोंका विवरण प्रकाशित किया है, डाक्टर ब्लचने इन सबकी अवस्थितिको मञ्जूर कर उनकी ईंटोंसे गृहान्तरका व्यवहार निरूपित किया है। सिंहस्तम्भसे आध मील उत्तर-पश्चिम भीमसेन-का-पल्ला नामके दो बड़े मृत्तिकास्तूप दिखाई देते हैं। कुल्हुआ ग्रामके पूर्व जहां नीलकी खेती होती थी, वहां ईंटकी बनी अट्टालिकाका ध्वंसावशेष अभी भी विद्यमान है। मिष्टर विनसेण्ट स्मिथ उसको कुटागारगृहका अनुमान करते हैं। मर्कट भीलसे इसका पूर्व-वर्णित दूरत्व और वर्त्तमान दूरत्वमें कुछ न्यूनाधिक होने पर भी इस तरहका अनुमान असङ्गत नहीं जंचता।

नगरके दक्षिण भागमें 'राजा विशाल-का गढ़' नामक जो स्थान दिखाई देता है, उसको गुप्तसम्राटोंका प्रासाद और दुर्ग कहा जा सकता है। क्योंकि इसकी भित्तिसे पूर्वोक्त राजाओंको मोहर समन्वित मुद्रा पाई जाती है। इसके दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक ईंटोंका बना प्राचीन स्तूप है। इस समय यह मुसलमानोंकी दरगाहके रूपमें परिणत है। चीनपरिव्राजकोंने इस स्तूपका उल्लेख नहीं किया है। इसके पश्चिम बाभन-पोखर (ब्राह्मण पोखर या तालाव) के किनारे एक मन्दिर वर्त्तमान है। इस मन्दिरमें दो उपविष्ट बुद्धमूर्त्ति, एक बोधसत्त्वमूर्त्ति, एक

गणेशमूर्त्ति, एक विष्णुमूर्त्ति, एक पत्थरके टुकड़ेमें खोदित सप्तमातृकामूर्त्ति स्थापित हैं। ये मूर्त्तियां उस तालावसे निकाली गई हैं।

सिवा इनके नाना स्थानोंमें असंख्य बौद्ध और हिन्दू-कीर्त्तियोंके निदर्शन पाये जाते हैं। उनका उल्लेख निष्प्रयोजन है। गुप्त राजाओंकी कीर्त्तियोंसे अनेक विषय आविष्कृत हुए हैं। इन सबकी विशेष आलोचना आवश्यक है।

वैशालीय (सं० त्रि०) १ विशाल देशोद्भव, विशाल देशका। (पु०) २ महावीर।

वैशालेय (सं० पु०) विशालके गोत्रापत्य, तक्षक। (अथर्व० ८।१०।२६)

वैशिक (सं० पु०) वेशेन जीवतीति वेश (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्। १ नायकभेद, तीन प्रकारके नायकमेंसे एक। पति, उपपति और वैशिक ये तीन प्रकारके नायक हैं। जो अनेक वेश्याओंके साथ भोग-विलास करता है, उसे वैशिकनायक कहते हैं। यह वैशिक नायक फिर तीन प्रकारका है—उत्तम, मध्यम और अधम। जो दयिताके श्रम और प्रकोपमें उपचारपरायण होते हैं, उन्हें उत्तम; जो प्रियाके कोपमें कोप वा अनुराग प्रकाश नहीं करते और चेष्टा द्वारा मनोभाव प्रकट करते हैं, उन्हें मध्यम और जो भय, कृपा, लज्जाशून्य और कामक्रीड़ामें कृत्याकृत्य-विचारशून्य हैं, उन्हें अधम वैशिकनायक कहते हैं। ज्ञानी, चतुर और शठ इन तीनोंको इसीके अन्तर्भुक्त जानना होगा।

(त्रि०) २ वेश सम्बन्धी।

वैशिक्य (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन जातिका नाम। (मार्क० पु० ५७।४७)

वैशिख (सं० त्रि०) विशिखा शील-मस्य (छत्रादिभ्यो णः। पा ४।४।६२) इति ण। विशिखायुक्त।

वैशिजाता (सं० स्त्री०) पुत्रदात्री नामकी लता।

वैशिष्ट (सं० क्ली०) विशिष्टस्य भावः विशिष्ट-अण्। १ विशिष्टत्व, विशिष्टता। २ असाधारणत्व।

वैशिष्ट्य (सं० क्ली०) विशिष्ट-ष्यञ्। विशिष्टत्व, वैशिष्ट।

वैशीति (सं० पु०) विशीतके गोत्रापत्य। (पा १।४.६१)

वैशीपुत्र (सं० पु०) वेश्याका पुत्र। (शतपथ-ब्राह्मण १३।२।६।८)

वैशेय (सं० पु०) विशस्य गोत्रापत्यं (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ठक्। विशके गोत्रापत्य।

वैशेषिक (सं० पु०) विशेषं वेत्ति अधीते वा विशेष-ठक्। १ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रवेत्ता, वह जो वैशेषिक दर्शन जानता हो, औलूक्य। (हेम) विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष (अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) इति ठक्। २ कणादमुनिकृत दर्शनशास्त्रविशेष। ३ न्यायमतसे आत्मादिकृत पारिभाषिक गुण। (भाषापरिच्छेद)

(त्रि०) विशेष एव (विनयादिभ्यष्ठक्। पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक्। ४ असाधारण।

वैशेषिकदर्शन (सं० क्ली०) षड्दर्शनके अन्तर्गत दर्शनशास्त्रविशेष। यह निर्णय करनेके लिये प्रमाणोंका संग्रह करना अत्यन्त कठिन है, कि किस समय वैशेषिकसूत्र रचे गये थे। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये कणादसूत्र ही दार्शनिक सूत्रग्रन्थोंके आदि हैं। कुछ लोग इसके बदले सांख्यसूत्रको ही यह आसन प्रदान करते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, कि वैशेषिकसूत्र अति प्राचीन है। क्योंकि इससे बौद्धमत निरास का कोई भी प्रयास परिलक्षित नहीं होता। यद्यपि महर्षि कणादके सूत्रावलम्बित दर्शनशास्त्र सर्वदर्शनसंग्रहोंमें "औलूक्यदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है। साधारणतः यह औलूक्यदर्शन वैशेषिकदर्शन नामसे परिचित है।

(विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः विशेष-ठक्। अधिकृत्य कृते ग्रन्थे। पा ४।३।८७) विशेष पदार्थको अधिकार कर यह बना है, इसीलिये इसका नाम वैशेषिक है। यह विशेष किसको कहते हैं, हम वैशेषिकसूत्रमें द्वितीय अध्यायके द्वितीय आह्निकके छठें सूत्रमें उसका आभास पाते हैं। जैसे—"अन्यत्रान्त्येभ्यो विशेषेभ्यः।"

जो अन्त्य है, वह नित्य है, नित्य द्रव्योंमें इस अन्त्यका अवस्थान है। प्रत्येक परमाणु अन्त्यविशिष्ट है। यह अन्त्य ही विशेष पदार्थ है। प्रत्येक परमाणुमें विशेष

है। इसलिये समग्र जगत्में एक अनन्त सृष्टि-वैचित्र और अनन्त विभिन्नता रूप (Heterogeniosity) "विशेष" की विद्यमानता अनुभूत होती है और वही सृष्टिके विभिन्नता-साधनका (Differentiation) मूल कारण है। परमाणु ही इस दर्शनका 'विशेष' पदार्थ है। इसमें 'विशेष' पदार्थका प्राधान्य स्वीकृत हुआ है। इसीसे यह ग्रंथ "वैशेषिकदर्शन" नामसे अभिहित हुआ है।

महर्षि कणाद इस दर्शनशास्त्रके प्रणेता हैं। कणाद ऋषिके और भी कितने ही नाम हैं। इनमें एक नाम उलूक भी है।

इसी नामके अनुसार माधवाचार्य ने सर्वदर्शन-संग्रहमें इनके रचे ग्रन्थका "औलूक्यदर्शन" नाम लिखा है।

महर्षि कणाद नाम होनेका हेतु यह है, कि कृषकोंके खेतसे शस्य (फसल) काट कर ले जानेके बाद खेतमें जो दाने झड़ कर गिर पड़ते थे, वे उन दानोंको चुन लेते थे और उन्हीं दानोंका आहार भी करते थे। इस तरह शस्यका कण भक्षण कर जीविका निर्वाह करते थे। इसीसे वे कणाद नामसे विदित हुए थे। इसीलिये किसी किसी दार्शनिकने 'कणभक्ष' कह कर कटाक्ष किया है। किन्तु ब्राह्मणोंके लिये इस तरहकी जीविका निन्दित नहीं, वरं उत्कृष्ट तपस्या कह कर प्रशंसित है। अब समझमें आता है, कि वैशेषिकदर्शनके प्रणेताका यह यथार्थ नाम नहीं है। जीविकाके लिये वे इस नामसे प्रसिद्ध हुए थे, उनका प्रकृत नाम 'उलूक' ही है। वे कश्यपवंशी थे।

न्यायदर्शन-प्रणेता गौतम और कणाद समसामयिक हैं, ऐसी बहुत लोगोंकी धारणा है। लिङ्गपुराणमें इसका प्रमाण भी मिलता है। लिङ्गपुराणके रचयिताका कहना है, कि दोनों ही शिवावतार सोमशर्माके शिष्य हैं,—अक्षपाद प्रथम और उलूक तृतीय शिष्य हैं, यथा—

"जातुकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः।
तदाप्यहं भविष्यामि सोमशर्मा द्विजोत्तमः॥
अक्षपादः कुमारश्च उलूको वत्स एव च।
तत्रापि मम ते शिष्या भविष्यन्ति तपोधनाः॥"
(२४ अध्याय)

एक किम्वदन्ती है, कि महर्षि कणादने महेश्वरकी प्रसन्नता लाभ कर उनके ही आज्ञानुसार वैशेषिकदर्शन प्रणयन किया था। उदयनाचार्यने भी इस किम्वदन्तीका अस्तित्व स्वीकार किया है।

कणाद ६ या ७ पदार्थवादी।

महर्षि कणाद षट्पदार्थवादी थे या सप्तपदार्थवादी, इसके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। कुछ लोगोंने इनको षट्पदार्थवादी और कुछने सप्तपदार्थवादी कहा है। किन्तु उनके उद्देशसूत्रमें ६ पदार्थोंका ही उल्लेख दिखाई देता है। (वैशेषिकदर्शन १।१।४)

अर्थात् निवृत्ति लक्षण धर्मसे समुत्पन्न द्रव्य, गुण, कर्म सामान्य, विशेष और समवाय पदार्थके साधर्म्य और वैधर्म्यरूपसे अर्थात् कौन कर्म है, किस पदार्थका समान धर्म है और कौन कर्म ही है या किस पदार्थका विरुद्ध धर्म है, यह जान कर तत्त्वज्ञान लाभ करनेसे अर्थात् इन सब तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान या तत्त्व साक्षात्कार होनेसे निःश्रेयस लाभ होता है। कणादने यद्यपि उद्देशसूत्रमें अभावका उल्लेख नहीं किया है, किन्तु स्थलान्तरमें अभाव सम्बन्धमें उन्होंने विशेषरूपसे आलोचना की है। उद्देशसूत्रमें षट्पदार्थवादी और स्थलान्तरमें अभावके विषयकी आलोचना हुई है, यह देख कर कोई कोई उनको सप्तपदार्थवादी भी कहते हैं। न्यायभाष्यकार वात्स्यायनने कणादको षट्पदार्थवादी ही निश्चय किया है। न्यायदर्शनके प्रमेयसूत्रके भाष्यमें भाष्यकारने लिखा है,—

"अस्त्यन्यदपि द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाः प्रमेयं।"

सूत्र निर्दिष्टके अतिरिक्त भी द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय प्रमेय है। वैशेषिकदर्शनके प्रति लक्ष्य कर ही अधिक सम्भव है, कि न्यायभाष्यकारने इस तरह व्यक्त किया है।

सांख्यदर्शनके मतसे भी कणाद षट्पदार्थवादी हैं, क्योंकि प्रचलित सांख्यदर्शनके एक सूत्रमें लिखा है—

"न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिकादिवत्।"
(सांख्यदर्शन १ अ०)

अर्थात् वैशेषिकादिकी तरह हम षट्पदार्थवादी

नहीं हैं। सांख्यसूत्रकारके मतसे भी स्पष्टरूपसे प्रतिपन्न होता है, कि वैशेषिक षट्पदार्थवादी हैं।

सांख्य और मीमांसादि दर्शनकारोंके मतसे भी अभाव नामसे कोई अतिरिक्त पदार्थ स्वीकृत नहीं हुआ। फिर भी, इनके दर्शनमें अभावका यथेष्ट उल्लेख देखा जाता है। किंतु मीमांसाचार्य भट्टने इस प्रश्नकी जो मीमांसा की है, वह इस तरह है,—

"भावान्तरमभावो हि कयाचित्तु व्यपेक्षया।"

किसी तरह वैलक्षण्यके अभिप्रायसे एक भाव पदार्थ ही दूसरे भावपदार्थके अभावरूपसे व्यवहृत होता है। अभाव आकाशकुसुमकी तरह अलीक भी नहीं है, पदार्थान्तर भी नहीं है, कुछ लोगोंने ऐसा ही उदाहरण दे कर सुस्पष्ट कर दिया। यथा—जिस समय घड़ेका अभावका व्यवहार नहीं होता, उस समय घड़ेका अभावका व्यवहार नहीं होता। भूतलमें घट है, ऐसा ही व्यवहार होता है। किन्तु यह घट भूतलसे हटा लेने पर भूतलमें घट नहीं है या घटाभाव है, ऐसा अनुभव या व्यवहार दिखाई देता है। भूतलमें घट रहनेसे घटका व्यवहार होता है। अतएव घटका अभाव केवलमात्र भूतल या भूतलकी कैवल्यावस्थाके सिवा और कुछ नहीं है। अतएव प्रतिपन्न हुआ, कि अभाव पदार्थ है सही, किन्तु अभाव नामका कोई पदार्थ नहीं है। एक तरह भावपदार्थ हो केवल अन्यविध भावपदार्थके अभावरूपसे व्यवहृत होता है।

इस तरह युक्तिबलसे एक श्रेणीके पण्डितने कणादको षट्पदार्थवादी कह कर अभिहित किया है। फिर इसी तरहसे प्रशस्तपादाचार्य आदिके मतसे महर्षि कणाद सप्तपदार्थवादी हैं। प्रशस्तपादका कहना है,—"द्रव्य-गुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां षण्णां पदार्थानामभाव सप्तमानामित्यादि।"

अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, यह छः पदार्थ और अभाव सप्तम पदार्थ है। इन सात पदार्थोंका महर्षिने एक बार ही एक ही स्थानमें उल्लेख न कर एक स्थलमें ६ पदार्थोंका स्पष्टरूपसे उल्लेख किया है और सूत्ररचना भङ्गिमें अन्यत्र अभाव पदार्थका भी आभास दे रखा है। उद्दिष्ट षट्पदार्थ पहले ही पृथकरूपसे अभिहित हुआ है। कणादसूत्रकी आलोचनामें अभाव पदार्थका भी स्पष्ट आभास प्रतीयमान होता हो। बल्लभाचार्यने कणादके उद्देशसूत्रमें षट्पदार्थोंके उल्लेख के प्रति लक्ष्य कर वार्त्तिक प्रणालीसे लिखा हो,—

"अभावश्च वक्तव्यो निःश्रेयसोपयोगित्वात् भावप्रपञ्चवत्।

कारणाभावेन कार्याभावस्य सर्वसिद्धत्वादुपयोगित्वसिद्धेः॥"

मुक्तिलाभके लिये ही षट्पदार्थोंका तत्त्वोपदेश प्रदत्त हुआ है, भावप्रपञ्च अर्थात् द्रव्यादिकी तरह अभाव भी निःश्रेयसका उपयोगी है। अतएव, भावप्रपञ्चकी तरह अभाव भी स्वीकार करना होगा। कारणके अभाव स्थलमें कार्यका भी अभाव दिखाई देता है। जैसे मृत्तिकाके अभावमें घटका अभाव सुवर्णके अभावमें कुंडलका अभाव इत्यादि। इसी तरह मिथ्याज्ञानके अभावसे दुःखका अभाव होता है। दुःखके अभावका नाम मुक्ति है। मिथ्याज्ञान ही दुःखका कारण है। तत्त्वज्ञान द्वारा मिथ्याज्ञान निराकृत होने पर दुःखका अभाव होता है। सुतरां भावप्रपञ्चकी तरह अभाव भी वक्तव्य है। कणादने अभावपदार्थके सम्बन्धमें स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है सही; किन्तु उनके सूत्रपाठसे यह स्पष्ट हो जाता है, कि अभाव भी उनका वक्तव्य है।

पदार्थधर्मसंग्रहके टीकाकार उदयनाचार्यने किरणावली नाम्नी टीकामें अभाव ले कर सात पदार्थ कणादका अभिप्रेत कह कर इस मतका समर्थन किया है। जैसे—

"एते च पदार्थाः प्रधानतयोद्दिष्टाः अभावस्तु स्वरूपवानपि। नोद्दिष्टः प्रतियोगिनोरूपणाधीन निरूपणत्वान्न तु तुच्छत्वात्।"

ये षट्पदार्थ प्रधानरूपसे उक्त हुए हैं। अभाव पदार्थ वस्तुगत्या विद्यमान रहने पर भी यहां उसका उद्देश नहीं किया गया। क्योंकि द्रव्यादिकी तरह स्वरूपतः अभावका निरूपण नहीं होता। प्रतियोगिनिरूपण द्वारा ही अभावका निरूपण होता है। घटका अभाव, पटका अभाव इत्यादि स्थलमें प्रतियोगिभेद हो अभावका भेद हो जाता है। इसीलिये अभावके प्रतियोगी स्वरूप षट्पदार्थोंका उद्देश किया गया है। अभावनिरूपण

प्रतियोगनिरूपणके अधीन है अर्थात् अभावके प्रतियोगी स्वरूप षट्पदार्थ निरूपित होने पर सहज ही अभावका निरूपण होता है। इसीलिये उद्देशसूत्रमें अभावका उल्लेख करना निष्प्रयोजन समझा गया था। सुतरां कणाद सप्तपदार्थवादी रूपसे ही समाजमें स्वीकृत हैं। पिछले सभी ग्रन्थोंमें ही अभावका सप्तम पदार्थत्व स्वीकृत हुआ है। सुतरां यह प्रधानतः सिद्धान्त है, कि कणाद सप्तपदार्थवादी थे।

इस दर्शनके प्रणयनका उद्देश्य मुक्ति है। मुक्तिके लिये आत्माका श्रवण मनन आदि विहित हुआ है।

यह मनन अनुमान साध्य या अनुमान रूप है। यह अनुमान भी फिर व्याप्तिज्ञानके अधीन है। व्याप्ति ज्ञान पदार्थ तत्त्वज्ञान सापेक्ष है। सुतरां पदार्थतत्त्व ज्ञान साक्षात् नहीं परम्परा निःश्रेयस या मुक्तिका कारण है। इस वैशेषिकोक्त पदार्थतत्त्वका ज्ञान होने से निःश्रेयोलाभ होता है। इसीलिये इनके पदार्थका यथार्थ तत्त्व अभिहित हुआ है।

इस दर्शनमें ३७० सूत्र हैं। ये सूत्र १० अध्यायोंमें बटे हुए हैं। प्रत्येक अध्यायमें दो आह्निक हैं। आह्निक और कुछ नहीं केवल परिच्छेद हैं। दर्शनकारने एक दिनमें जितने सूत्रोंकी रचना की है, उन सबोंको एक आह्निक नामसे अभिहित किया है। "अह्ना निर्वृत्तो ग्रन्थ आह्निकः" इसके द्वारा प्रतीयमान होता है, कि महर्षि कणादने २० दिनमें ही इतने बड़े दर्शनकी रचना की थी।

इन सब आह्निकोंमें निम्नोक्त विषय अभिहित हुए हैं। प्रथमाध्यायके प्रथम आह्निकमें जाति, मान, द्रव्य, गुण, कर्म; द्वितीय आह्निकमें सामान्य या जाति और विशेष पदार्थ निरूपित हुए हैं। द्वितीय अध्यायके प्रथम आह्निकमें भूत पदार्थ है, अर्थात् पृथ्वी, जल, तेजः, वायु और आकाश। द्वितीय आह्निकमें काल और दिक्, तृतीय अध्यायके आह्निकद्वयमें ही आत्माका निरूपण और द्वितीय आह्निकमें मनका भी निरूपण किया गया है। चतुर्थ अध्यायके प्रथम आह्निकमें जगत्का मूल कारण और कई प्रत्यक्ष कारण, द्वितीयाह्निकमें शरीर विवेचित हुआ है। पञ्चमाध्यायके प्रथमाह्निकमें शारीरिक कर्म, द्वितीयाह्निकमें मानसिक कर्म, षष्ठाध्यायके प्रथमाह्निकमें दान और प्रतिग्रह, द्वितीयाह्निकोंमें आश्रम चतुष्टयका धर्म, सप्तमाध्यायके प्रथम दो आह्निकमें रूपादि गुण और द्वितीयाह्निकमें समवाय निरूपित हुआ है। अष्टमाध्यायके प्रथमाह्निकमें प्रत्यक्ष ज्ञान, द्वितीयाह्निकमें ज्ञानसापेक्ष ज्ञान और ज्ञानसाधन इन्द्रिय, नवमाध्यायके प्रथमाह्निकमें अभाव और कई प्रत्यक्ष कारण, द्वितीयाह्निकमें लैङ्गिक या अनुमान और स्मृति, प्रभृति, दशमाध्यायके प्रथम आह्निकमें सुख, दुःख और द्वितीयाह्निकमें समवायि आदि कारणत्रय विवेचित हुआ है। प्रसङ्गक्रमसे और भी अनेक विषय इसमें आलोचित और मीमांसित हुए हैं। जैसे—

प्रथम अध्यायके प्रथम आह्निकमें धर्मनिरूपणप्रतिज्ञादि, धर्मलक्षण, वेदप्रामाण्य, संस्थापन, प्रयोजन, अभिधेय सम्बन्धप्रदर्शन, पदार्थोद्देश, द्रव्यविभाग, गुणविभाग, कर्मविभाग, द्रव्यसाधर्म्य, गुणसाधर्म्य और कर्मसाधर्म्यद्रव्यादित्रयके सामान्य लक्षण, द्रव्य और कर्मके सामान्य लक्षण।

द्वितीयाह्निकमें—कार्यकारण-भाव-विचार, सत्ता प्रभृति जातिकथन, द्रव्यादिमें जातिका पार्थक्य संस्थापन, सत्ताका एकत्व संस्थापन और सत्ताका नानात्व निराकरण।

द्वितीयाध्यायके प्रथमाह्निकमें—पृथ्वीका लक्षण, जललक्षण, तेजोलक्षण, वायुलक्षण आदि, वायुसाधन प्रकरण, ईश्वरानुमान-प्रकरण और आकाश-निरूपण। द्वितीयाध्यायके द्वितीय आह्निकमें—गंधका स्वाभाविक औपाधिकत्व कथन, उष्णस्पर्शके तेजोमात्रनिष्ठत्वकथन, शीतस्पर्शके जलमात्रत्वकथन, कालनिरूपण, दिग्लक्षणादि शब्दपरीक्षार्थ संशय-व्युत्पादन और शब्द व्यवस्थापनादि।

तृतीयाध्यायके प्रथमाह्निकमें—आत्मपरीक्षाप्रकरण, व्याप्तिज्ञानके न्यायोपयोगित्व, प्रसङ्गतः हेत्वाभासनिरूपण, आत्मसाधनमें ज्ञानहेतुका अनाभासत्वकथन, परात्मानुमान प्रकार। इसके द्वितीयाह्निकमें—मनो निरूपण, आत्मसाधका लिङ्गान्तरकथन, नित्यज्ञानके आत्मतानिराकरण और आत्माका नानात्वप्रकरण।

चतुर्थ अध्यायके प्रथम आह्निकमें परमाणुके मूलकारणता-व्यवस्थापनादि, परमाणुकी अनित्यादि निराकरण, परमाणुके अतीन्द्रियत्वोपपादनादि, गुणप्रत्यक्षताप्रकरण, परमाणुरसादिकी अप्रत्यक्षता, गुरुत्वादिका अप्रत्यक्षताप्रतिपादन, दो इंद्रियग्राह्य गुणकथन, अयोग्यवृत्ति इंद्रियका अप्रत्यक्षत्व प्रतिपादन, सत्ता और गुणका सर्वेन्द्रिय ग्राह्यत्व-प्रतिपादन।

चतुर्थ अध्यायके द्वितीयाह्निकमें—अनित्यद्रव्यविभाग, शरीरका चातुर्भौतिकत्व, पाञ्चभौतिकत्वका निराकरण, शरीरके भूतत्रय आरब्धताका निराकरण, शरीरविभाग, अयोनिज शरीरविशेषमें उत्पत्तिप्रकार, अयोनिजशरीर विशेष वड़ विमानाधिकथन।

पञ्चमाध्यायके प्रथम आहि्नकमें—कर्मपरीक्षा आरम्भ, प्रयत्ननिष्पाद्य कर्मप्रतिपादन चेष्टाधीन कर्मप्रतिपादन, चेष्टा व्यतिरेकमें जायमान कर्मप्रतिपादन प्रतिबन्धकके अभाव सहकृत गुरुत्वके पतनकारणत्व, लोष्ट्रादि क्रियाविशेषमें हेतुविशेषकथन, आततायिवधजनक कर्ममें पुण्यपापहेतुत्व, यत्नाधीन कर्म, वाणक्षेपादि स्थलमें उपरम तक कर्मोंके नानात्व, वेगजनक कर्म, वेगनाशके बाद शरीरादि पतनका कारण।

पञ्चम अध्यायके द्वितीय आह्निकमें नोदनादिकी (संयोग-विशेषके) कर्म हेतुता, भूकम्पादिका हेतुविशेष, द्रवद्रव्य, कर्म परीक्षा, जलाभिस्पन्दनकी हेतुता, पृथ्वीस्थ जलके औदुर्ध्व गमनकी हेतुता, वृक्षमूलमें सिक्त जलसे वृक्षके भीतरमें ऊर्द्ध्व गमनका हेतु, हिमकरकादिकी उत्पत्तिका प्रकार, वज्रनिर्घोषका हेतु, दिग्दाहभूकम्पादिका हेतु, ऊर्द्ध्व ज्वलनादिका हेतु, इन्द्रियसंयोगजन्य मनका कर्म हेतु, मरणके समयमें मनके देहान्तरमें प्रवेश, अन्धकारकी अभावस्वरूपता, आकाशादिकी निष्क्रियता, गुणादिके असमवायि-कारणत्व इत्यादि। कणादसूत्रके इस प्रथम पांच अध्यायमें पदार्थविज्ञान-सम्बन्धमें आलोचित हुआ है। सुतरां इन पांचों अध्यायोंको हम पदार्थ-विज्ञान या Physics कह सकते हैं। अवशिष्ट पञ्चाध्यायमें धर्म विज्ञान Theology, मनोविज्ञान (Metaphysics), न्याय (Logic) और स्थान स्थानमें पदार्थविज्ञानका आभास मिलता है।

नीचे किञ्चित् विस्तृतरूपसे इनका उल्लेख किया जाता है। जैसे—षष्ठाध्यायके प्रथमाह्निकमें वेदका प्रामाण्य उत्पादन, धर्मादिके स्वीयाधिकरणमें स्वर्गादिजनन, श्राद्धादिमें दुष्ट ब्राह्मण-भोजनका फलाभाव, दुष्ट-ब्राह्मण-लक्षण, दुष्ट ब्राह्मण द्वारा कर्म बाधित होनेसे पुनराय अच्छे ब्राह्मणों द्वारा उस कर्मकी इति कर्त्तव्यता।

षष्ठाध्यायके द्वितीय आह्निकमें—वैधकर्मफल विवेचना, अदृष्टफल कतिपय कर्मप्रदर्शन, अधर्मसाधनकथन, दोषनिदान, धर्मादिका प्रेत्यभाव-निदान, मुख्योपाय कथन।

सप्तमाध्यायके प्रथम आह्निकमें—नित्य रूपकादिकथन, पार्थिव परमाणुरूपादिका पाकजत्वसाधन, परिमाणपरीक्षा, परिमाणमें अनित्यता, आकाशादिका परिमाण, मनमें महत्त्वका अभाव, दिगादिका परम महत्त्व।

सप्तमके द्वितीय आह्निकमें—संख्यापरीक्षा, पृथक् त्वपरीक्षा, गुणादिका निःशङ्कत्व, गुणादिका एकत्व ख्याल कर बुद्धिके भ्रममात्र अवयव-अवयवीका अभेद निराकरण, संयोगपरीक्षा, पदपदार्थके साङ्केतिक सम्बन्धसाधन प्रकरण, परत्व अपरत्व-परीक्षा, समवायपरीक्षा आदि। इसके बाद अष्टम अध्यायसे हम वैशेषिकसूत्र मनोविज्ञान (Meta-physics) और तर्कशास्त्रकी (Logic) आलोचना देखते हैं।

अष्टमाध्यायके प्रथम आह्निकके प्रारम्भमें ही बुद्धिपरीक्षा आरम्भ हुई है। पाश्चात्य-मनस्तत्त्वमें (Sensation) या इन्द्रियजन्य उपलब्धि (Perception), या बुद्धिजन्य उपलब्धि (Intellection) या ज्ञानविशेषजन्य उपलब्धिकी आलोचना इस अध्यायमें हम सूत्राकारमें देखते हैं। प्रत्यक्षहेतु सन्निकर्षविशेषमें इनके बाह्य विषयका विशेषत्व और अर्थपदपरिभाषा इस अष्टमाध्यायके प्रथम और द्वितीय आह्निकमें आलोचित हुई है।

नवमाध्यायके प्रथम आह्निकमें—अभावप्रत्यक्षकथनका भूमिकाध्वंस, प्रत्यक्ष सामग्रीकथन, प्रागभावमें इसका अतिदेश, अन्यान्य अभाव प्रत्यक्षप्रकार, योगज सन्निकर्षजन्य प्रत्यक्षकथन इत्यादि। नवमाध्यायके

द्वितीयाह्निकमें लैङ्गिकज्ञाननिरूपण शब्दबोधकी अनुमिति-में अन्तर्भाव, उपमिति आदिकी अनुमितिमें अन्तर्भाव, स्मृतिनिरूपण, स्वप्नहेतुनिरूपण, स्वप्नान्तिक ज्ञानहेतु-कथन, भ्रमज्ञानका हेतुत्व, अविद्यालक्षण, विद्यालक्षण, आर्षज्ञानविशेषका हेतुकथन इत्यादि।

दशमाध्यायके प्रथमाह्निकमें—सुखदुःखका भेद प्रति-पादन, इनका अन्तर्भावकथन, शरीर अवयवका परस्पर भेदसंस्थापन इत्यादि। इस अध्यायके द्वितीय आह्निकमें त्रिविध कारणोंके विविध विवेचन और वेदके प्रामाण्य संबंधमें दृढ़ता-सम्पादन इत्यादि विषयक सूत्र हैं। ये सब सूत्र,भाष्य, वार्त्तिक, वृत्ति और टीका आदि ग्रन्थोंमें बहुलरूपसे विस्तृत हो वैशेषिकदर्शन, भारतीय पण्डितोंके ज्ञानगौरवकी समुज्ज्वल विजय-पताका अब भी समग्र सुसभ्य जगत्में उड़ा रहा है।

इस दर्शनमें उक्त विषय विशेषभावसे आलोचित हुए हैं। हम यहां संक्षेपतः वैशेषिकसूत्रोक्त विषयोंकी आलोचना कर रहे हैं। इस दर्शनमें सप्त पदार्थोंका उल्लेख किया गया है। उनमें सूत्रोद्दिष्ट द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छः भावपदार्थ और अनुद्दिष्ट सप्तम पदार्थ अभाव है, ये कई पदार्थ नैयायिकोंके भी अविरुद्ध हैं। भावपदार्थ छः हैं, अभाव एक, ये सात पदार्थ वैशेषिकोंके द्वारा स्वीकृत हैं। नैया-यिक किन्तु षोड़श पदार्थका उल्लेख करते हैं। आज कलके नैयायिक वैशेषिक द्वारा स्वीकृत सात पदार्थोंको स्वीकार कर प्राचीन न्यायके उक्त षोड़श पदार्थ इस सात पदार्थके अन्तर्भुक्त या अन्तर्निविष्ट समझते हैं। प्रशस्तपादाचार्यके ग्रन्थमें और उपमानचिन्तामणिमें भी नैयायिकोंके षोड़श पदार्थ इन सात पदार्थोंके अन्त-र्निविष्ट कहके गिने गये हैं।

द्रव्य।

जिस पदार्थमें कोई न कोई एक गुण अवश्य हो हो, उसका नाम द्रव्यपदार्थ हैं। अथवा जिस पदार्थमें द्रव्यत्व जाति है, उसका नाम द्रव्य है। जो सामान्य या जातिगुणवृत्ति नहीं, अथच गगनवृत्ति है, वह सामान्य या जाति ही द्रव्यत्व नामसे अभिहित है। सत्ता नामसे एक सामान्य जाति है, ये सामान्य गगनवृत्ति है सही; किन्तु गुणवृत्ति होनेसे वह द्रव्यत्व नहीं।

द्रव्यपदार्थ ६ तरहके हैं,—क्षिति, अप्, तेजः, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मनः। क्षिति, अपः, तेज, वायु और आकाश ये पांच द्रव्य पञ्चभूत नामसे अभिहित हैं। अर्थात् इन सब द्रव्योंकी साधारण संज्ञा भूत है। जिसमें बहिरिन्द्रियग्राह्य विशेष गुण हो, उसकी साधारण संज्ञा भूत है। अर्थात् बहिरिन्द्रिय ग्राह्य विशेष गुणविशिष्ट वस्तु ही भूत नामसे अभिहित है। पृथ्वीका गन्ध, जलका रस, तेजका रूप, वायुका स्पर्श, आकाशका शब्द विशेष विशेष गुण है। अथच ये सब गुणोंके बहिरिन्द्रियके ग्राह्य हैं। सुतरां पृथ्वी, जल, तेजः, वायु और आकाश ये भूतके नामसे अभिहित हैं। ज्ञान आत्माका विशेष गुण है सही; किन्तु मनोग्राह्य है, यह बहिरिन्द्रि-का ग्राह्य नहीं है। इसीलिये आत्माको भूत नहीं कहा जाता।

क्षिति पदार्थ दो तरहका है—नित्य और अनित्य। परमाणु ही क्षितिका नित्यपदार्थ है, इसकी उत्पत्ति या विनाश नहीं; परन्तु यहां स्वतःसिद्ध है। सिवा इसके समस्त पृथ्वी ही अनित्य है। अन्यान्य सब तरहके पार्थिव पदार्थकी उत्पत्ति और विनाश होता है। पर-माणु प्रत्यक्ष नहीं, वरं अनुमानग्राह्य हैं।

सावयव क्षिति पदार्थका विभाग करते करते सूक्ष्म से सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतरसे सूक्ष्मतम अवयवमें उपनीत होने पर भी ऐसा अवयव उपस्थित होता है, कि जिसका विभाग करना एकान्त असम्भव हो जाता है। इस तरह जिसके विभागकी किसी तरह कल्पना नहीं की जा सकती अर्थात् जो नितान्त ही अविभाज्य हो जाता है, वही परमसूक्ष्म या परमाणुके नामसे अभिहित होता है। अवयव संयोग ही उत्पत्तिका कारण है। परमाणुका अव-यव नहीं है। सुतरां न इनकी उत्पत्ति ही है और न मनका विनाश ही है।

अनित्य पृथ्वी भी तीन प्रकारकी है—शरीर, इन्द्रिय और विषय। शरीर भोगायतन, शरीरको छोड़ किसी तरह भोग नहीं हो सकता। इन्द्रियां उसी भोगकी साधनस्वरूपा हैं। विषयकी उपलब्धि ही भोग है। यह शरीर भी दो तरहका है—योनिज और अयोनिज। शुक्रशोणित संयोगजन्य शरीर योनिज और इसके

सिवा अयोनिज हैं। योनिज शरीर भी दो तरहका है,—जरायुज और अण्डज। मनुष्यादिका शरीर जरायुज, पक्षी और सर्पादिका शरीर अण्डज है। अयोनिज शरीर भी दो तरहका हैं,—स्वेदज और उद्भिज। मच्छड़ आदिका शरीर स्वेदज और वृक्षादिका शरीर उद्भिज है। शास्त्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि वृक्षादिमें जीवात्मा हैं। पापकर्म विशेषके फलस्वरूप जीव स्थावर योनि प्राप्त होता है।

वृक्षादिमें जीवात्मा है, इसके प्रमाणमें शङ्करमिश्रका मत लिखा जाता है। "वृद्धिक्षतभग्नसंरोहणे च" अर्थात् वृक्षादिका कोई स्थान भग्न तथा कोई स्थान क्षत होनेसे समय आने पर उसका जोड़ा लगता तथा वह क्षत शुष्क हो जाता है। इसीलिये उसको भग्नक्षत संरोहण कहते हैं। अतएव वृक्षादिमें भी जीवनीशक्ति है, वह इससे जाना जाता है। वृक्ष आदि अपनी पुष्टिके उपकरण रस आदिका आकर्षण कर परिपुष्ट होते हैं। यह भी इनकी जीवनीशक्तिके अस्तित्वके परिचायक हैं। सिवा इसके देवर्षियोंके और नारकीके शरीर भी अयोनिज है।

घ्राणेन्द्रिय पार्थिव और गन्धका अनुभव होनेसे यह गन्धकी उपलब्धि-क्रियाविशेष है। यह क्रिया गन्धकी है, इसलिये यह कर्म भी पार्थिव है;

स्नेहगुणविशिष्ट पदार्थ ही जल है। जिस गुणके प्रभावसे चूर्ण पिण्डकारमें परिणत हो सकता है, उस गुणविशेषका नाम स्नेह है। स्नेहगुण 'स्निग्धं जलं' जल स्निग्ध है, यह बात अनुभवसिद्ध है। जलके सिवा अन्य किसी द्रव्यमें स्नेहगुण नहीं। तैलादिका स्नेह गुण भी जलीय है। तैलादिका स्नेह उत्कृष्ट है, इस लिये वह दहनके प्रतिकूल है। जलको एक और संज्ञा है। वह यह कि जिस द्रव्यमें जलत्व जाति है, उसका नाम जल है। पृथ्वीवृत्तिविवर्जित है; फिर भी हिमकरकादिवृत्ति-जातिविशेषका नाम जलत्व है। सत्ता और द्रव्यत्व जाति पृथ्वीवृत्ति, तेजस्त्व आदि जाति हिमकरकादि वृत्ति नहीं है, इसलिये उनको जलत्वमें नहीं लाया जाता। जल दो प्रकारका है—नित्य और अनित्य। जलीय परमाणु नित्य है, उसको छोड़ कर सब तरहका जल अनित्य है। अनित्य जल तीन तरहका है—शरीर, इन्द्रिय और विषय। वरुणलोकके जीवोंका शरीर जलीय है, यह शास्त्र पढ़नेसे मालूम होता है।

तेजः—जिस द्रव्यमें रस नहीं है, फिर भी रूप है, उसका नाम तेजः है। पृथ्वी और जलमें रूप है, सही; किन्तु उनमें रस भी है, वायुप्रभृतिका रूप नहीं है। अथवा जिस द्रव्यमें तेजस्त्व है, उसका नाम तेजः है। करकादिमें अवृत्ति है, फिर भी, वित्तःप्रादिमें वृत्ति जातिविशेषका नाम तेजस्त्व है। तेजः दो प्रकारका है,—नित्य और अनित्य। परमाणुरूप तेजः नित्य है, इसको छोड़ कर सभी अनित्य हैं। अनित्य तेजः भी तीन तरहके होते हैं—शरीर, इन्द्रिय और विषय। सूर्यलोकस्थित प्राणियोंका शरीर तैजस हैं। चक्षुरिन्द्रिय तैजस है। रूपमात्रके अभिव्यञ्जक है। अतएव यह भी तैजस है। शरीर और इन्द्रिय भिन्न समस्त तेजः विषय कहे गये हैं।

वायु—जिस द्रव्यमें रूप नहीं, स्पर्श है, उसका नाम वायु है। पृथ्वी, जल और तेजोद्रव्यमें रूप है, आकाशादि द्रव्योंमें स्पर्श नहीं है, इसीलिये वे वायुके नामसे अभिहित नहीं हो सकते। वायु दो प्रकारको है,—नित्य और अनित्य। अनित्य वायु भी तीन प्रकारकी है,—शरीर, इन्द्रिय और विषय। वायुलोकस्थित जीवोंके शरीर वायवीय है। व्यञ्जनवायु अङ्गसङ्गी जलके शीतल स्पर्शकी अभिव्यक्ति करती, त्वगिन्द्रिय भी स्पर्श मात्रके अभिव्यञ्जक है, अतएव यह वायवीय है। शरीर और इन्द्रियको छोड़ सब वायुका साधारण नाम विषय है। जन्यद्रव्यमात्रमें ही पृथ्वी, जल, तेजः और वायु इन भूतचतुष्टयके साथ अल्पाधिक परिमाणसे सम्बन्ध है, अतएव इस भूतचतुष्टय जन्य द्रव्यमात्र ही आरम्भक या समवायिकारण है।

आकाश—शब्दाश्रय वस्तुका नाम आकाश है। शब्दकी उत्पत्ति वायुसापेक्ष होने पर भी वायु शब्दका आश्रय नहीं। वायुका एक विशेष गुण स्पर्श है। वायु जब तक रहती है, तब तक उसका स्पर्श गुण भी रहता है। शब्द वैसा नहीं। वायु रहने पर भी शब्द नष्ट हो सकता है। वायुके विशेष गुण स्पर्शके साथ इस-

के इस तरह वैलक्षण्य रहनेसे शब्द वायुका विशेष गुण नहीं।

काल—जिस द्रव्यके द्वारा ज्येष्ठत्व-कनिष्ठत्व व्यवहार निर्वाहित होता है, उसका नाम काल है। पूर्ववर्त्ती कालमें उत्पन्न व्यक्ति ज्येष्ठ और परवर्त्ती कालका उत्पन्न व्यक्ति कनिष्ठ है।

दिक्—दूरत्व और अन्तिकत्व या नैकट्य और पूर्व-पश्चिम आदि व्यवहारका कारण द्रव्यविशेषका नाम दिक् है।

आकाश, काल, दिक् प्रत्यक्ष नहीं। कार्य्य द्वारा अनुमेय है। ये प्रत्येक एक हैं, अनेक नहीं। एक होने पर भी उपाधि भेदसे भिन्न भिन्न है। घटाकाश, पटाकाश आदि आकाशका औपाधिक भेद है। क्षण, दिन और मास आदि भेदसे काल भी अनेक प्रकारका है। क्रियारूप उपाधिभेदसे इसका ऐसा भेद प्रतीत होता है। वस्तुतः काल एक है। इसी तरह दिक् भी एक है। उपाधिभेदसे यह पूर्व पश्चिमके नामसे पुकारा जाता है।

आत्मा—ज्ञानका आश्रय द्रव्य आत्मा है। आत्मा दो तरहकी है—परमात्मा और जीवात्मा। ईश्वरको अनुमान द्वारा जाना जाता है।

एक देवता हैं, जो इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, वे और दूसरा कोई नहीं—एकमात्र ईश्वर हैं।

जीवात्मा—"मैं जानता हूं" "मैं सुनता हूं" इत्यादि मानस प्रत्यक्षसिद्ध होता है। किसी एक विशेष गुणके साथ जीवात्माका मानस प्रत्यक्ष होता है। जीवात्मा एक नहीं अनेक हैं या प्रति शरीरमें भिन्न भिन्न है। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, भावनाख्यसंस्कार, धर्म और अधर्म जीवात्माके ये चौदह गुण हैं।

जिसके द्वारा जीवात्मा और तन्निष्ठ सुखदुःख आदिका अनुभव होता है, उसका नाम मन है। जीवात्मा भी अपने सुखदुःख मनके द्वारा प्रत्यक्ष करती है। इस कारण जैसे चक्षुरादि वहिरिन्द्रियको वहिःकरण कहा जाता है, वैसे ही मनको भी अन्तःकरण वा अन्तरिन्द्रिय कहते हैं।

रूप आदि विषयोंके साथ चक्षुः आदि इन्द्रियोंका सन्निकर्ष या सम्बन्ध होने पर भी तत्तद्विषयकी उपलब्धि होती है। किन्तु एक समयमें रूप आदि पांच विषयोंके साथ चक्षु आदि पञ्चेन्द्रियका सन्निकर्ष होने पर भी एक कालमें ही पञ्चेन्द्रियजनित चाक्षुषादि पांच प्रकारके ज्ञान नहीं होते। केवल उनमें एक प्रकारका ज्ञान होता है। विषयके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष ही ज्ञानका साधन और पांच ज्ञान ही एक समय होनेका कारण है, तब पांचों ज्ञान एक समय क्यों नहीं होते? इसके उत्तरमें कहना होगा, कि विषयके साथ इन्द्रियके सन्निकर्षको छोड़ कर अन्य कोई सहकारी कारण भी है। जिसकी सन्निधि होनेसे ज्ञान उत्पन्न होता है, सन्निधि ही उस समय ज्ञानका कारण है। अर्थात् जिस इन्द्रियके साथ आगे मनःसंयोग होता है, वही इन्द्रियज्ञान प्रथम ही उत्पन्न होता है। जिस इन्द्रियके साथ मनःसंयोग नहीं होता या पीछे होता है, विषय सन्निकर्ष रहने पर भी वह इन्द्रियजन्य ज्ञान उस समय भी नहीं होता। यह सर्ववादिसम्मत स्वीकार्य विषय है।

जिसके धर्म हैं, वह धर्मी है, मनका धर्म अणुत्व है, सुतरां मन धर्मी है। जिस प्रमाणके बलसे अस्तित्व स्वीकार किया जाये, उसका नाम धर्मिग्राहक प्रमाण है। जिस प्रमाणके बलसे मन सिद्ध हुआ है, उस प्रमाणके बलसे मनका अणुत्व भी सिद्ध हुआ है, अतएव मनके महत्त्वकी कल्पना की नहीं जा सकती। मनके महत्त्वकी कल्पना करनेसे ही धर्मिग्राहक प्रमाणके हितमें विरोध होता है।

इस पर आपत्ति हो सकती है, कि नर्त्तकी नृत्य करनेके समय दर्शकोंके दर्शन, गेयपदका स्मरण, वाद्यशब्दका श्रवण, वस्त्राञ्चलका स्पर्शन और पादन्यास, हस्तचालन, शिरश्चालन आदि कार्य्य एक समयमें करती है। अतएव मन अणुपरिमाण होनेसे एक समयमें उनका एकाधिक इन्द्रियका संयोग किसी तरह हो नहीं सकता। सुतरां मनके अणुत्व स्वीकार करनेसे एक समयमें एकाधिक ज्ञान या क्रिया कभी भी नहीं हो सकती।

इस आपत्तिके खण्डनमें वक्तव्य यह है, कि मनः अति शीघ्र शीघ्र सञ्चरणशील है। अत्यन्त द्रुतभावसे एका-

धिक इन्द्रियके साथ मनका संयोग होता है, इससे यौगपद्य भ्रम होता है। अर्थात् एक समयमें एकाधिक ज्ञान और एकाधिक क्रियायें हो रही हैं, ऐसा भ्रम होता है। वस्तुतः ज्ञान और क्रियापरम्परा क्रमशः होती रहती है। एक समयमें नहीं होती। सुतरां एक इन्द्रियके साथ संयुक्त हो कर दूसरे क्षण ही और एक इन्द्रियके साथ संयुक्त होता है। किन्तु मनका संयोगक्रम और उसके लिये ज्ञानकर्म इतना दुर्लक्ष्य है, कि वह वोधगम्य नहीं होता, इसीलिये एक समयमें एकाधिक ज्ञान होता है। ऐसा जान पड़ता है। यह जानना या ऐसा विवेचन भ्रमात्मक है। शीघ्र शीघ्र ज्ञान होता है, इससे क्रमिक ज्ञानका यौगपद्य भ्रम अन्यत्र भी होता है।

कई पद्मपत्र एकके बाद दूसरा रख कर एक सूईकी नोकसे छेद दिया जाये, तो कहा जाता है, कि एक वार ही सभी पत्र छेदे गये। किन्तु ऐसी बात नहीं, वह एक समयमें ही नहीं छेदे गये वरं सबसे ऊपरवाला पत्र ही पहले छेदा गया, इसके बाद उसके नीचेका, पीछे उसके नीचेका, इसी तरह एकके बाद दूसरा छेदा गया। किन्तु छेदनेका काम शीघ्रतापूर्वक हुआ है, इसीलिये क्रमलक्ष्यका वोध नहीं होता। इसीलिये वेध या छेदनेकी क्रियाका यौगपद्य भ्रम होता है।

कणादसूत्रके तीसरे अध्यायके दूसरे आह्निकमें इसी तरह मनोपरीक्षाकी अवतारणा की गई है। उपस्कारकार शङ्करमिश्रने इस आह्निककी व्याख्या उदाहरण आदि दे कर अतीव प्राञ्जल भाषामें की है। उन्होंने दीर्घाङ्गुली (लम्बाकारका पिष्टक) भक्षणका उदाहरण दे कर कहा है, कि इस स्थलमें यद्यपि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, आदिकी युगपत् प्रतीति हो तथापि वह मनका अनुव्यवसाय (Gradual perception) मात्र है, क्योंकि मन शीघ्र सञ्चारी है। इस शीघ्र सञ्चालनके निमित्त युगपत् विविध इन्द्रियज्ञानकी प्रतीति होती है। दर्शनशास्त्रमें यह घटना यौगपद्याभिमानके नामसे अभिहित की जाती है। भगवान् सूत्रकार भी इस आह्निकके तीसरे सूत्रमें कहते हैं—

"प्रयत्नायौगपद्यात् ज्ञानायौगपद्याच्चैकम्।"

प्रत्येक देहमें एक मनके सिवा बहुतेरे मन नहीं हैं। इस तरह युक्ति द्वारा प्रमाणित किया गया है, कि एक शरीरमें एकाधिक मन नहीं है। अन्यथा कल्पना गौरवदोषप्रसङ्ग होता है। इस तरह यौगपद्य भ्रान्तिका उत्कृष्ट उदाहरण आज कलका वायस्कोप है। पाठक शङ्करमिश्रके उपस्कारमें और भाषापरिच्छेद नामक ग्रन्थमें वैशेषिकोक्त इन नौ द्रव्योंका सविशेष विवरण सहज ही देख सकेंगे।

इस दर्शनके मतसे चार तरहके परमाणु और आकाशादि पञ्चद्रव्य नित्य हैं। सिवा इनके द्व्यणुक अवधि महाभूत चतुष्टय अर्थात् क्षिति, जल, तेजः और वायु अनित्य है। सब अनित्य द्रव्योंकी सृष्टि और संहार या प्रलयका क्रम प्रदर्शित हो रहा है। ब्रह्माके देहविसर्जनके समय समागत होने पर सब भुवनोंके अधिपति महेश्वरकी सञ्जिहीर्षा अर्थात् संहारेच्छा प्रादुर्भूत हुई। इसके बाद समस्त जीवात्माके अदृष्टके वृत्तिनिरोधहेतु अदृष्ट द्वारा सृष्टि और स्थितिके निमित्त अदृष्टका कार्य्य प्रतिवद्ध होता है। प्राणियोंके भोगके लिये जगत्की सृष्टि और स्थिति है। भोग प्रयोजक या भोगहेतु अदृष्ट, प्रलयप्रयोजक अदृष्ट द्वारा प्रतिवद्ध होने पर भोगप्रयोजक अदृष्ट फिर भोग सम्पादन कर नहीं सकता। उस समयके प्रलयनिबन्धन अदृष्टयुक्त प्राणियोंके संयोगमें शरीर और इन्द्रियके आरम्भक परमाणुओंसे कर्मकी उत्पत्ति होती है। इस कर्मके कारण आरम्भक संयोगकी निवृत्ति हो जाती है। उस समय देह और इन्द्रिय विनष्ट हो कर तदारम्भक परमाणुमें कर्म हो कर आरम्भक-संयोग निवृत्तिक्रमसे महापृथ्वी नष्ट हो जाती है। इस प्रणालीसे पृथ्वी पर जल, जल पर तेज, तेज पर वायु नष्ट होती है। तब चतुर्विध महाभूतके चतुर्विध-परमाणुमात्र विभक्तरूपसे अवस्थान करता है तथा धर्म, अधर्म और भावनाख्य संस्कारयुक्त सब आत्मा और आकाशादि नित्यपदार्थ अवस्थित रहते हैं।

प्रलयकालके अवसानमें प्राणियोंके भोगके लिये महेश्वरकी सृष्टि करनेकी इच्छा होती है। तब प्रलयहेतु अदृष्टके होनेसे वह फिर भोगप्रयोजक अदृष्टकी वृत्ति निरोध नहीं कर सकता। सुतरां फलोन्मुख होता है।

उस अदृष्टयुक्त आत्माके संयोगसे प्रथमतः वायवीय परमाणुमें कर्मकी उत्पत्ति और इन सब परमाणुके संयोगसे द्व्यणुकादि क्रमसे महान् वायुकी उत्पत्ति होती है और वह अनवरत कम्पमान रह कर आकाशमें अवस्थित रहता है। तिर्यक्गमन वायुका स्वभाव है। इस समय किसी दूसरे द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती, जिसके द्वारा वायुका वेग प्रतिहत हो सके। सुतरां वायु नियत कम्पमान अवस्थामें रही। वायुकी सृष्टिके बाद इस तरहके जलीय परमाणुमें कर्मकी उत्पत्ति हो कर वह भी द्व्यणुकादि क्रमसे महान् सलिल राशि हुई और वायु वेगसे कम्पमान हो वायुमें रही। इसके बाद इस क्रमसे पार्थिव परमाणु संयोगसे निविड़ावयव महापृथ्वी हुई और वह भी इसी जलराशिमें रही। इस तरह दीप्यमान महातेजोराशि समुत्पन्न हो कर इस जलराशिमें ही अवस्थित रही। पीछे महेश्वरके संकल्पमात्रसे ब्रह्माण्ड और ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई।

प्राणी जैसे दिन भर परिश्रम कर रातको विश्राम करते हैं, उसी तरह जगत्की सृष्टिके समय पुनः पुनः दुःखादि भोगमें परिक्लिष्ट प्राणियोंके कुछ कालके विश्रामके लिये महेश्वरके अभिप्रायसे प्रलयका आविर्भाव होता है। इसीलिये पुराणादिमें सृष्टि और प्रलय रात और दिनरूपसे कीर्त्तित हुए हैं। देखते हैं, कि घट आदि पार्थिव वस्तु चूर्णीकृत होती है, पर्वत भी पार्थिव हैं, अतएव वे भी एक दिन चूर्णीकृत होंगे। जलाशय सूख जाते हैं। समुद्र भी एक जलाशय ही है। प्रदीप तेज हैं, वे भी बुझ जाते हैं। इस तरह प्रलयके साधक बहु प्रकार अनुमान प्रदर्शित हुए हैं। जागतिक वस्तुमात्र ही क्षिति, अप्, तेज और वायु इस भूतचतुष्टयका कार्य है। आकाश किसी द्रव्यका आरम्भक नहीं। किन्तु आकाश विभु और सर्वगत है। जागतिक कोई पदार्थ ही आकाशसम्पर्कवर्जित नहीं। सुतरां जागतिक पदार्थ निर्वाचन करनेके समय आकाशको छोड़नेसे नहीं बनता और भी कहा जा सकता है, कि कणाद आदिके मतसे आकाश शब्दका आश्रय है। आकाशके सिवा शब्द हो नहीं सकता। सुतरां जगत्में आकाशकी उपयोगिता निःसन्देह है।

कणादने काल और दिक् पदार्थ माना है। यह क्यों मानना होगा? इसका भी उन्होंने कारण दिखाया है। किन्तु इस विषयमें सन्देह करनेका यथेष्ट कारण है, कि काल और दिक् पदार्थमें कणादके मतसे पञ्चभूतोंके अतिरिक्त हैं या नहीं? कणादने पहले पृथ्वी, अप्, तेजः और वायुके लक्षण निर्देश और अप्रत्यक्ष वायु पदार्थके साधन और उसके नानात्वसंस्थापन पूर्वक शब्द और गुणके अधिकरणरूपसे आकाशके साधन या अनुमान किया है और आकाश एक है, कई नहीं, यह भी प्रतिपादन किया है। वायुका लक्षण स्पर्शविशेष, वायुसाधन प्रसङ्गमें परीक्षित हुआ है। इसके बाद, पृथ्वी, अप् और तेजके लक्षण गन्धादि द्वारा परीक्षा कर काल और उसका एकत्व और दिक् तथा उसका एकत्व संस्थापन कर एक पदार्थके भी कार्यभेदमें औपाधिक भेद होता है। इससे दिक्पदार्थ एक होने पर भी उपाधि भेदसे पूर्व दक्षिणादि व्यवहार भेद समर्थन कर आकाशके विशेष गुण शब्दकी परीक्षा की गई है। इस समय विवेच्य विषय यह है, कि दिक् पदार्थकी तरह काल पदार्थमें भी भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान भेदसे औपाधिक नानात्वका व्यवहार प्रचुर परिमाणसे है। सूत्रकारने भी भविष्यत् आदिका व्यवहार किया है।

आकाशके भी घटाकाश, महाकाश इत्यादि रूपसे औपाधिक भेदका अभाव नहीं है। ऐसी अवस्थामें कणादने केवल दिक्पदार्थमें ही औपाधिक भेद क्यों प्रदर्शन किया? काल और आकाशके औपाधिक भेद क्यों प्रदर्शन नहीं किया? यह प्रश्न आप ही आप उठता है। केवल यही नहीं, काल और आकाशके औपाधिक भेद नहीं करनेसे सूत्रकारकी न्यूनता भी अपरिहार्य हो उठती है। किन्तु जरा विशेष रूपसे प्रणिधान करनेसे मालूम होता है, कि सूत्रकारका अभिप्राय स्वतन्त्र है। कणादके मतसे आकाश, काल और दिक् एक पदार्थ है। कार्यभेदसे केवल नाम भेदमात्र है। जैसे एक ही व्यक्ति प्रतियोगिभेदसे पिता, पुत्र, भ्राता, बन्धु आचार्य आदि नाना आख्याओंसे आख्यात होता है, उसी तरह एक ही पदार्थ कार्य भेदसे आकाश,

काल और दिक् नामसे अभिहित होता है। यथार्थमें काल और दिक् आकाशसे स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है।

कणादने आकाशका अनुमान कर पृथिव्यादि लक्षणको या विशेष विशेष गुणोंकी परीक्षा कर "तत्राकाश न विद्यते" इस सूत्र द्वारा दिखाया है, कि ये आकाशगत नहीं हैं। पृथिव्यादिके लक्षण आकाशमें नहीं हैं अर्थात् आकाश पृथिव्यादिके अन्तर्गत हो नहीं सकता। यह पृथ्वी आदिसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र पदार्थ है। पीछे आकाशके प्रकारभेदस्वरूप काल और दिक् पदार्थ और उनका एकत्व निरूपण कर आकाश-निरूपणकी पूर्णता सम्पादन कर कार्य्य भेदसे एक पदार्थके नानात्व अङ्गीकार कर उदाहरण स्वरूप दिक्पदार्थके कार्य्यभेदसे नानात्व दिखाया है। इस तरह उन्होंने आकाश पदार्थका वक्तव्य विषय अन्त कर आकाशमें विशेष गुण शब्दकी परीक्षा की है। क्योंकि धर्म्मिनिरूपणके बाद धर्मनिरूपण सर्वथा समीचीन है। सूत्रकारके इस तरह अभिप्राय न होनेसे पञ्चभूत निरूपणके बाद पृथिव्यादि भूत चतुष्टयके गुणकी परीक्षा और इसके बाद काल और दिक् निरूपण कर आकाशगुण शब्दको परीक्षा करना असम्बन्ध और असङ्गत हो जाता है। अर्थात् पञ्चभूतका गुण परीक्षामें काल और दिक् पदार्थका निरूपण किसी तरह ही सङ्गत नहीं हो सकता।

काल और दिक् वास्तविक आकाशसे अतिरिक्त नहीं, सूत्रकारके इस तरह अभिप्राय वर्णन करनेका और भी विशिष्ट हेतु है। वह यह, कि शब्दके अधिकरण या आश्रय रूपसे आकाशका जो अनुमान किया गया है, उसको प्रणाली भी प्रकाशित हुई है। यथा—

"कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।"
"कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः॥"

इन दो सूत्रों द्वारा पृथ्वी, अप्, तेजः और वायुके गुण नहीं हो सकते, यह समर्थन किया गया। क्योंकि कार्य्यभूत पृथिव्यादिका गुण उसका कारण पूर्वक होता है, यह देखा गया है। वीणा, वेणु और मृदङ्ग आदिके शब्द कारण गुणपूर्वक नहीं। क्योंकि वीणादिके शब्द एक समान नहीं होता। वीणादिके शब्द कारण गुणपूर्वक होनेसे रूप आदिकी तरह अच्छा खराब भाव भी उसमें नहीं हो सकता।

उक्त दो सूत्रों द्वारा शब्द पृथिव्यादिके गुण नहीं हैं। यह स्थिर कर

"परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुणः।"

इस सूत्रसे शब्द आत्मा या मनका गुण नहीं है। यह समर्थन किया गया है। क्योंकि आत्माके गुण ज्ञान सुखादि, आत्मसमवेत है, किन्तु शब्द आत्मसमवेत नहीं। सुतरां शब्दमें आत्माका गुण नहीं हो सकता। शब्द आत्मसमवेत होनेसे "अहं जानामि" "अहं सुखी" मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं आदिकी तरह "अहं शब्दवान्" मैं शब्दयुक्त हूं, मुझमें शब्द हो रहा है। इस तरहकी प्रतीति होती, किन्तु ऐसा नहीं होता। अतएव शब्द आत्माका गुण नहीं। शब्द मनका भी गुण नहीं। कारण शब्दका प्रत्यक्ष है। मनका गुण होनेसे प्रत्यक्ष हो नहीं सकता। क्योंकि मन अणु है।

इन तीन सूत्रों द्वारा शब्द, पृथ्वी, अप्, तेजः, वायु, आत्मा और मनके गुण हो नहीं सकते, यह प्रतिपन्न करके ही सूत्रकारने कहा है—"परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य" अर्थात् शब्द जब पृथ्वी, अप्, तेजः वायु, आत्मा और मनके गुणसे नहीं हो सकता है, तब परिशेषयुक्त यह आकाशके ही गुण होते हैं। इससे विलक्षण रूपसे समझा जाता है, कि काल और आकाशसे अतिरिक्त नहीं। ऐसा होनेसे शब्द क्यों काल और दिक्के गुण नहीं हो सकते, यह समझा देना अवश्य कर्त्तव्य था। यह न कर "परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य" यह बात कहना नितान्त असङ्गत और असम्बन्ध हो जाता है।

काल और दिक् आकाशसे अतिरिक्त नहीं है यह कल्पनामात्र है, ऐसा समझ उपेक्षा करना असङ्गत नहीं होगा। कारण सांख्याचार्य्योंके मतसे भी दिक् आकाशसे अतिरिक्त नहीं।

"दिक्कालावाकाशादिभ्यः" यह सांख्यसूत्र ही इसका उत्कृष्ट प्रमाण है। दिक् और काल आकाशसे उत्पन्न हुए हैं। नैयायिकने और भी आगे बढ़ कर कहा है, कि आकाश भी ईश्वरसे अतिरिक्त नहीं।

गुण।

जिस पदार्थमें गुणत्व जाति है, उसका नाम गुण

है। संयोग और विभाग इन दोनोंकी समवेत सत्ताके भिन्न जातिका नाम गुणत्व है। संयोगत्व और विभागत्व यथाक्रम संयोग और विभाग ये दोनों समवेत नहीं हैं। सत्ता जाति संयोग विभाग दोनों समवेत होने पर भी सत्ता भिन्न नहीं। इसीलिये उनको गुणत्व कहा जाता है।

गुण चौबीस तरहके हैं—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म और अधर्म।

शब्द दो तरहका है—ध्वनि और वर्ण। मृदङ्ग आदिके शब्दका नाम ध्वनि है। कण्ठ और तालुप्रदेशमें आभ्यन्तरीण वायुके अभिघातसे जो शब्द होता है, उसका नाम वर्ण है। एकत्वसे परार्द्ध तक संख्या प्रकार है; उसमें द्वित्वादि संख्या अपेक्षा बुद्धि जन्य है; अपेक्षा बुद्धिका नाश होने पर ही द्वित्वादिका विनाश है। बहुत एकत्वविषयक बुद्धिका नाम अपेक्षाबुद्धि है। परिमाण चार प्रकारका है, अणु, महत्, ह्रस्व और दीर्घ। शङ्कर मिश्रके मतसे प्रत्येक वस्तुमें द्विविध परिमाण हैं। जिसमें अणुत्व परिमाण है, उसमें ह्रस्वत्व परिमाण भी है। इस तरहका महत्त्व और दीर्घत्व समदेशवर्त्ती है। परमाणु और मनः पदार्थोंमें परम अणुत्व अथवा अणुपरिमाणके चरम उत्कर्ष और आकाश, काल, दिक् और आत्मामें चरमोत्कर्ष या परम महत्त्व है। जिस गुणके अनुसार घटसे पट पृथक्, पृथ्वीसे जल पृथक् है। इत्यादि प्रतीति होती है, उसका नाम पृथक्त्व है। एकाधिक जो सब वस्तुएं परस्पर (संधाया-सम्बन्धका शून्य हो कर भी) मिलितभावसे रहती हैं, उनके सम्बन्धका नाम संयोग है। कार्य्य और कारण कभी भी सम्बन्धशून्य नहीं होता, इसीलिये उनका सम्बन्ध संयोग नहीं है, यह समवाय है। संयोग तीन प्रकारका है—अन्यतर कर्मजन्य, उभय कर्मजन्य और संयोग जन्य। जिन दो वस्तुओंका संयोग होता है, उनमें केवल एक क्रियाके लिये जो संयोग है, वह अन्यतर कर्म जन्य है। जैसे पर्वत पर किसी पक्षीके बैठने पर पर्वत और पक्षीमें जो संयोग होता है, वह केवल पक्षीके क्रियाजन्य है। युद्धके समयमें मल्लद्वय (दो पहलवानों)-में जो संयोग होता है, वह उभय क्रियाजन्य है। हस्तस्थित कुठारके साथ वृक्षका संयोग होने पर उसमें वृक्ष और हाथका भी परस्पर सम्बंध होता है, इसमें सन्देह नहीं। यह हस्तवृक्ष-संयोग कुठारवृक्ष संयोगजन्य है।

संयोगके प्रतिद्वन्द्वी या प्रतिपक्ष अर्थात् जो गुण उत्पन्न होनेसे संयोग विनष्ट होता है, उसका नाम विभाग है। विभाग भी संयोगकी तरहसे तीन तरहका है—पर्वतसे पक्षीका विभाग, पक्षीके कर्मजन्य है। मल्लद्वय और मेषद्वयका विभाग दोनों कर्मजन्य है। वृक्षसे हाथका विभाग वृक्षसे कुठार विभागजन्य है। परत्व और अपरत्व कालिक और दैशिकभेदसे दो प्रकारका है। कालिक परत्व और अपरत्व ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्वरूप है। दूरत्व और अन्तिकत्व ही दैशिक परत्व और अपरत्व है।

बुद्धिका अर्थ ज्ञान। ज्ञान अनेक रूपमें विभक्त है। उनमें पहले निर्विकल्प और सविकल्पभेदसे दो प्रकारका है। जिस ज्ञानमें विशेष्य विशेषणभाव नहीं उत्पन्न होता, उसमें केवल वस्तुका स्वरूप भासमान होता है, यह निर्विकल्प है। निर्विकल्पक ज्ञान अतीन्द्रिय है, यह प्रत्यक्ष नहीं, अनुमेय है। जिस ज्ञानमें विशेष्य विशेषणभाव भासमान है, उसका नाम सविकल्पक है। 'अयं घटः' यह घट, यह प्रत्यक्ष सविकल्पक है।

निर्विकल्पक ज्ञानमें ऐसी विशेष रूपकी कल्पना नहीं है। इससे यह निर्विकल्पक अर्थात् विकल्पशून्य है। निर्विकल्पक ज्ञान ही अनुमान-प्रणाली ऐसी ही निर्दिष्ट हुई है। विशिष्टज्ञान विशेषण ज्ञानशून्य है। नील न जाननेसे नीलोत्पलका ज्ञान नहीं होता, खड्ग न जाननेसे खड्गका ज्ञान नहीं हो सकता। सुतरां घटत्वज्ञान होनेसे घटत्वविशिष्टका ज्ञान हो नहीं सकता। इसलिये 'अयं घटः' इस तरह विशिष्टज्ञान होनेसे पहले विशेषणीभूत घटत्वका ज्ञान हुआ है, यह अनुमेय है। जिस निर्विकल्पक ज्ञानने घटत्वको विषय किया है, उसी ज्ञानने अवश्य घटको भी विषय किया है। क्योंकि घटत्व और घट दोनों विषय दोनोंका कारण एक रूप है। घटत्व और घट ये दोनों ज्ञानका

विषय होने पर भी वह स्वरूपमें ही विषय हुए हैं; विशेष्य-विशेषण भावमें नहीं। इसीलिये वह निर्विकल्पक है। पहले विशेषण ज्ञान न होनेसे विशिष्टज्ञान या विशेष्य विशेषणभावसे ज्ञान नहीं हो सकता। सुतरां निर्विकल्पक ज्ञान विशेष्य-विशेषणभावमें हो नहीं सकता। इसीलिये निर्विकल्पक शब्द द्वारा ज्ञानका आकार प्रकाश किया नहीं जाता। क्योंकि शब्दके द्वारा जो प्रकाशित होगा, वह अवश्य ही विशेष्य विशेषण-भावापन्न होगा। निर्विकल्पक ज्ञानका विषय विशेष्य-विशेषण-भावापन्न नहीं।

अनुभूति या अनुभव और स्मृति या स्मरणरूपसे भी ज्ञान दो प्रकारके हैं। अनुभूति दो तरहकी है—प्रत्यक्ष और लैङ्गिक या अनुमिति। प्रत्यक्ष छः प्रकारका है,—घ्राणज, रासन, चाक्षुष, स्पार्शन, श्रावण और मानस। संस्कारजन्य ज्ञानविशेषका नाम स्मृति या स्मरण है। विद्या या प्रमा और अविद्या या अप्रमा-भेदसे भी ज्ञान दो प्रकारका है। जो वस्तु वस्तुगत्या जैसी है उस वस्तुके ठीक उसी तरहका ज्ञान ही विद्या या प्रमा है। जो वस्तु जैसी है, अन्य रूपसे उस वस्तुका ज्ञान होनेको अविद्या या अप्रमा कहते हैं। अविद्या दो तरहकी है—संशय और विपर्य्यास। एकधर्मीमें नाना धर्मके ज्ञानका नाम संशय है, जैसे इसे स्थाणु या पुरुष—इस तरह जो अनिश्चयात्मक ज्ञान होता है, वही संशय है। क्योंकि एक स्थाणुरूपी धर्मीमें परस्पर विरुद्ध स्थाणुत्व और पुरुषत्वरूप धर्मद्वयका ज्ञान हुआ है। निश्चयात्मक भ्रमका नाम विपर्यास है। जैसे देहादिमें आत्मबुद्धि, पित्तदोष दुष्ट-व्यक्तिके शंखसे पीतवर्ण बुद्धि, शुक्तिकामें रजतबुद्धि, मरीचिकामें जलबुद्धि इत्यादि।

जिस ज्ञानका विषय वस्तुतः विद्यमान नहीं, वही मिथ्याज्ञान या अविद्या है। स्वप्नज्ञान और अविद्या स्वप्नकालमें भी जाग्रदवस्थाकी तरह सब विषयोंका अनुभव होता है। परन्तु उस समय इन्द्रियोंको कार्य-कारिता नहीं रहती। विषयमें भी विद्यमानता नहीं। सुतरां मिथ्याज्ञान या अविद्या है। किसी किसी आचार्यके मतसे स्वप्नज्ञान पूर्वानुभवका स्मरणमात्र है। स्वप्नमें अपने शिरका काटा जाना देखा जाता है सही, किन्तु उसका कोई पदार्थ ही अनुभूत कहा नहीं जाता। स्व अर्थात् स्वयं अनुभूत है। शिर भी अनुभूत है, काटना भी अनुभूत है। दोषाधीन परस्पर सम्बन्धका केवल प्रतिभास होता है। कोई कोई स्वप्न धातुवैषम्य-जनित होता है। आकाशगमन, वसुन्धरा पर्यटन, व्याघ्रादिका भय आदि स्वप्नवात दोषजन्य है। अग्निप्रवेश, दिग्दाह, कनकपर्वत, विद्युद्विस्फुरण प्रभृति स्वप्नपित्तदोषजन्य है, समुद्रका तैरना, नदीका स्नान, वृष्टिपात तथा रजतपर्वतका दर्शन आदि श्लेष्मदोषजन्य है। अर्थात् वातपित्तादि धातुदोषसे ये सब स्वप्न देख पड़ते हैं। इसके सिवा अन्य स्वप्न अदृष्ट जन्य होते हैं। उनमें धर्मजन्य स्वप्न शुभसूचक और अधर्मजन्य स्वप्न अशुभसूचक है।

सुख दुःख इच्छा द्वेष आदिकी व्याख्या अनावश्यक है। इन सबोंके अनुभवसिद्ध हैं। यत्न तीन प्रकारका है—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि। इष्टसाधनता ज्ञान, चिकीर्षा अर्थात् यह मेरा कर्त्तव्य—इस तरहकी इच्छा, कृतिसाध्यत्वज्ञान और उत्पादनप्रत्यक्ष, ये सब प्रवृत्तिके कारण हैं। इष्टसाधनता-ज्ञानकी कारणता पहले ही समर्थित हुई है। जो करनेकी इच्छा नहीं होती, वह करनेके लिये कोई प्रवृत्त नहीं होता। इच्छा होने पर भी यदि विवेचना हो, कि यह कार्य मेरे करने योग्य नहीं, यानी यह निर्वाह करना मेरे साध्यातीत है, ऐसा होने पर भी उस कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती। असाध्य विषयमें प्रवृत्ति होना असम्भव है। ये सब होने पर भी जिस उपादानसे कार्यसम्पादन करना होगा, उस उपादानका प्रत्यक्ष न होनेसे उस कार्य सम्पादनमें प्रवृत्त हो नहीं सकता। मृत्तिकाका प्रत्यक्ष न होनेसे घट ढकना आदिके बनानेमें, चावलके प्रत्यक्ष न होनेसे पाकमें कोई प्रवृत्त नहीं होता। निवृत्तिका कारण पहले प्रदर्शित हुआ है। शरीरमें प्राणवायुके सञ्चरण (अर्थात् निश्वास प्रश्वास आदि जो यत्नप्रभावसे सम्पन्न होते हैं)का नाम जीवनयोनि-यत्न है।

गुरुत्व ही पतनका कारण होता है। पृथ्वीकी आकर्षणशक्तिके प्रभावसे वस्तुके पृथ्वीकी ओर आकृष्ट होने पर भी गुरुत्व या गुरुत्वका पतनहेतुत्व प्रत्याख्यात नहीं हो सकता। क्योंकि वस्तुके गुरुत्वके अनुसार आकर्षणशक्तिकी कार्यकारिताका न्यूनाधिक्य अवश्य का

करनेका उपाय नहीं है। गुरु वस्तु पृथ्वी द्वारा आकृष्ट होती है, कणादने इस बातको स्पष्ट भाषामें कहा है। स्पन्दनका हेतु, ऐसे गुणविशेषका नाम द्रवत्व है। जलमें द्रवत्व है, इससे जल स्थिर भावसे नहीं रहता। संस्कार तीन प्रकारका है—वेग, भावना और स्थिति-स्थापक। धनुर्यन्त्र परिमुक्त वाण दूरस्थ लक्ष्यका भेद करता है। धनुःसे लक्ष्य तक वाणकी गतिक्रिया एक नहीं। क्योंकि वैशेषिकके मतसे क्रिया क्षणचतुष्टय-मात्र रहती है। प्रथम क्षणमें क्रियाकी उत्पत्ति, द्वितीय क्षणमें विभाग, तृतीय क्षणमें पूर्वसंयोगनाश; चौथे क्षणमें उत्तर संयोगकी उत्पत्ति, पांचवें क्षणमें क्रियानाश। उत्तर संयोग क्रियानाशक है। फिर भी, धनुःसे लक्ष्य तक वाण पहुंचानेमें लक्ष्यका दूरत्वके अनुसार बहु-क्षणकी आवश्यकता है। वैशेषिकाचार्योंका कहना है, कि धनुके नोदन या निपीड़नमें वाणकी गतिक्रिया जन्मती है। उस गति-क्रियाका वेगाख्य संस्कार वाण-गत एकके बाद दूसरी गतिक्रिया उत्पन्न कर देती है। इस तरह वाण लक्ष्यस्थानमें पहुंच लक्ष्यभेद करता है। भावनाख्यसंस्कार स्मरणका कारण है। यह भी निश्चयके लिये। निश्चय होने पर भी उस विषयमें उपेक्षा बुद्धि रहनेसे वह भावनाख्य संस्कारका कारण होता है। जिस संस्कार या गुणसे आकृष्ट वृक्ष शाखादि छोड़ देते हो पूर्ववत् अवस्थित हो जाते हैं, उसका नाम स्थिति-स्थापक संस्कार है। पुण्य और पापका नाम धर्म और अधर्म है। विहित अभिहित क्रियाके अनुष्ठानमें यथाक्रम धर्म और अधर्म उत्पन्न होता है और वे यथाक्रम दुःख और सुखके कारण बनते हैं। धर्म और अधर्मका साधारण नाम अदृष्ट है। रूप, रस गन्ध, स्पर्श, शब्द, बुद्धि, सु, ख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, स्नेह, स्वाभाविक द्रवत्व, भाव-नाख्य संस्कार और अदृष्ट इन सबोंका नाम विशेष गुण है।

कर्म।

उत्क्षेपणादि कर्ममें सत्ताभिन्न जो जाति है, उसका नाम कर्मत्व है।

कर्म पांच प्रकारका है;—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकु-ञ्चन, प्रसारण और गमन। उत्क्षेपणक्रिया द्वारा लांगूलादिका अधोदेशसे संयोग ध्वंसानन्तर ऊर्द्ध्वदेशमें संयोग स्थापन किया जाता है। अवक्षेपण—उत्क्षेपण-के विपरीत अर्थात् इस क्रिया द्वारा द्रव्यके ऊर्द्ध्वदेशस्थ संयोग नाश और अधोदेशके साथ संयोग-सम्बन्ध होता है। जैसे—किसी वस्तुका मकानकी छतसे या किसी ऊंचे स्थानसे नीचे फेंकना। आकुञ्चनका साधारण नाम सङ्कोचन या सिकुड़ना है। जैसे वस्त्र आदिका पिण्डित भाव सम्पादन इत्यादि। इसको द्रव्यके एक तरहका आगन्तुक परस्पर संयोग-जनक कर्म कहते हैं। आकुञ्चनका पूर्णतः विपरीत प्रसारण है अर्थात् जिस क्रिया द्वारा द्रव्यकी यथावदवस्थिति अथवा विस्तृति सम्पादित होती है, उसका नाम प्रसारण है। उक्त चार प्रकारकी क्रियाके सिवा अन्यान्य सब कर्म ही कहा गया है। भ्रमण, उन्नमन, चक्रादिका परिभ्रमण, अग्निका ऊर्द्ध्व ज्वलन, द्रवद्रव्यका क्षरण प्रभृति भी गमनके अन्तर्भुक्त हैं।

जाति।

जो पदार्थ नित्य हैं और अनेकके साथ समवाय सम्बन्धमें अवस्थित हैं, उनका नाम सामान्य या जाति है। संयोगगुणकी नित्यता न रहनेसे वह अनेक वस्तुओंमें समवेत हो कर भी जातिमें परिगणित नहीं है। जलीय परमाणुके रूप और आकाशके महत् परिमाण नित्य और समवेत हो कर भी अनेक समवेत न रहनेसे वे सामान्य या जातिमें गण्य नहीं हैं। परा और अपरा-भेदसे जाति दो तरहकी है। जो जाति अधिक देशव्या-पिनी हो कर रहती है, उसका नाम परा है और जो अल्पदेशमें रहती है, उसको अपरा कहते हैं। द्रव्य, गुण और कर्म इन तीनोंमें अवस्थित होनेसे सत्ता जाति परा और घटत्वादि जातिका सर्वापेक्षा अल्पदेशवृत्तित्व रहने से वह अपरा नामसे कथित होती है। सत्ताभिन्न अन्य कोई जातिको सर्वापेक्षा अधिक देशवृत्तित्व नहीं है। सिवा इसके द्रव्यत्वादि जातिको परापर जाति भी कहा जाता है। क्योंकि द्रव्यत्व आदि जातिमें क्षिति-त्वादि जाति अपेक्षा अधिक देशवृत्तित्व रहनेसे परा और सत्ता अपेक्षा अल्पदेशवृत्तित्व रहनेसे वह अपरामें परिगणित हो सकती है। सुतरां इस आकारकी जाति मात्र ही परापर जाति निर्दिष्ट हुई है।

विशेष।

गुण और कर्म भिन्न एकमात्र द्रव्य समवेत पदार्थान्तरका नाम विशेष है। यह लक्षणमें 'गुण और कर्म भिन्न' कहने पर जलीय परमाणु रूप आदि और उत्क्षेपणादि कर्म द्रव्य समवेत रहने पर भी उनकी विशेष संज्ञा हो नहीं सकती। फिर जाति या सामान्य पदार्थ गुण कर्म भिन्न और द्रव्य समवेत होने पर भी केवलमात्र द्रव्य समवेत न होनेसे उक्त गुण और कर्ममें समवेत रहने पर भी उसे विशेष पदार्थ कहा जा नहीं सकता। इस तरह किसी अभावके गुण कर्म भिन्नत्व और एकमात्र वृत्तित्व दिखाई देने पर भी कोई द्रव्य उसके समवेत न रहनेके कारण वह विशेष पदार्थमें गण्य नहीं हो सकता।

समवाय।

अवयवीमें अवयव; द्रव्यमें गुण कर्म; द्रव्य, गुण और कर्ममें जाति और परमाणु प्रभृति नित्य द्रव्यमें विशेष पदार्थ जिस सम्बन्धमें अवस्थिति करता है, उसका नाम समवाय है। जैसे घटमें (अवयवीमें) कपालद्वय; वस्त्रमें तन्तु समूह। अर्थात् कपालद्वयके समवायसे घट तन्तुसमूहके समवायसे वस्त्र प्रस्तुत होता है। द्रव्य गुण यथा—"शुक्लो घटः" शुक्ल गुण विशिष्ट घट अर्थात् घटमें शुक्लगुण समवाय सम्बन्धमें है। इस तरहसे जहां जहां क्रिया है, जाति और विशेष पदार्थकी अवस्थिति देखी जाती है, वहां वहां इन सबोंका समवाय सम्बन्ध निर्देश करना होगा।

अभाव।

संसर्गाभाव अन्योन्याभाव भेदसे अभाव दो प्रकारका है। संसर्ग अर्थात् सम्बन्धके अभावको ही संसर्गाभाव कहते हैं; यह प्रागभाव भी है, ध्वंसाभाव और अत्यन्ताभाव भेदसे तीन प्रकारका है। प्रागभाव अर्थात् वस्तु उत्पन्न होनेसे पहले उसकी अविद्यमानता, जैसे—"घटो भविष्यति" घट होगा, यहां यदि कपालद्वय तक भी प्रस्तुत हो, तो भी घट प्रस्तुत नहीं होता, यह स्वीकार करना होगा, सुतरां घट प्रस्तुतके मननसे कपालद्वयकी संयोगजातक घटकी अविद्यमानता है, वही उसका प्रागभाव है। दण्डादि द्वारा आघात होने पर जो अभाव होता है, वही ध्वंसाभाव है, जैसे—"घटो नष्टः" घट नष्ट हुआ। यहां ध्वंसाभाव हुआ, यह ध्वंसाभाव आदि या उत्पत्ति और प्रागभाव है; ध्वंस या अन्त नहीं। किन्तु प्रागभावसे उसके विपरीत अर्थात् उस प्रागभावका फिर प्रागभाव या आदि नहीं है। फल उसका अन्त और ध्वंस है। क्योंकि घटकी उत्पत्ति होनेसे ही उसके प्रागभावका ध्वंस देखा जाता है।

अत्यन्ताभाव प्रागभाव और ध्वंसातिरिक्त संसर्गाभावविशेष है। यह अभाव किसी विशेष कालके लिये सीमाबद्ध नहीं है। यह सर्वकालमें ही विद्यमान रहता है। जैसे वायुमें जीव नहीं, घटमें चैतन्य नहीं, भूतलमें घट नहीं इत्यादि। आपाततः मालूम होता है, कि भूतलमें घट लाते ही मानो उसका अत्यन्ताभाव मोचन हो गया; किन्तु अनुधावन कर देखनेसे मालूम होगा, कि जब 'इस भूतलमें' यहां (किसी निर्दिष्ट भूमिमें) घट लाया गया, तब वहांका घटात्यन्ताभाव विदूरित हुआ सही, किन्तु प्रदेशान्तरमें अवश्य ही उसका अत्यन्ताभाव रहा, सुतरां इसमें यह कुछ विशेष हो सकता है।

अन्योन्याभाव—अन्योन्ये अर्थात् परस्पर परस्परका अभाव। फल जो वस्तु नहीं, उसमें उसका न रहना वस्तुका जो अभाव है, वही अन्योन्याभाव है। जैसे 'घटो न पटः' घट, पट नहीं अर्थात् घट कभी भी पट नहीं, यह बात स्वतःसिद्ध है, वैसे इससे यह भी मालूम होता है, कि जिस घटमें पट नहीं या पटका अभाव है, अर्थात् घट संज्ञक वस्तु जितने स्थानमें फैलती है, उसमें पट नहीं है या रह भी नहीं सकता, सुतरां वहां अवश्य ही पटका अभाव स्वीकार करना होगा। अतएव इस आकारके अभावको ही अन्योन्याभाव कहते हैं। क्योंकि जैसे घटमें पटका अभाव दिखाया गया, वैसे ही ठीक इसी आकारमें ही अर्थात् "पटो न घटः" पट कभी भी घट नहीं इत्याकारमें भी उक्त अभाव प्रतिपादित होता है। सुतरां उक्त विषयमें परस्परमें (घटमें और पटमें) परस्परका अभाव प्रतीत हुआ। अन्योन्याभावका दूसरा एक नाम भेद है। इस कारण "घटः पटादन्यः घटः पटाद्भिन्नः" पटसे घट अन्य या भिन्न है, इस तरहके प्रयोगसे भी इनके परस्परके अन्योन्याभाव या भेद दिखाया गया है।

कारण।

समवायी, असमवायी और निमित्तभेदसे कारण तीन तरहका होता है। जो सब कारण अर्थात् अवयव या उपादानादि, कार्योंमें या अवयवोंमें, समवाय-सम्बंधमें अवस्थान करें, उनको समवायीकारण कहते हैं। जैसे घट और पट कार्योंके प्रति यथाक्रम कपालद्वय और तंतुसमूह समवायीकारण हैं। जो सब कारण उक्त समवायी कारणोंमें समवेत रहते हैं, उनको असमवायी कारण कहते हैं। जैसे—कपालद्वय और तन्तुओंका संयोगक्रमसे घट और पट कार्यका असमवायी कारण है, क्योंकि इन समवायी कारणोंका यथायथ भावसे संयोग द्वारा ही उक्त कार्यद्वय सम्पन्न हुए हैं और उक्त संयोग साक्षात् सम्बन्धमें या समवाय-सम्बन्धमें ही कपालद्वय और तंतुसमूहमें विद्यमान है। कारण, गुण और गुणीका सम्बन्ध समवाय है। यहां संयोगगुण और कपालद्वय और तंतुसमूह गुणी हैं, सुतरां यह संयोग ही उक्त कार्यद्वयका असमवायी कारण है। इस समवायी कारणके नाशसे कार्यका भी नाश होता है। कथित समवायी और असमवायी कारणद्वयके सिवा जो सब अवान्तर कारण हैं या उपादान कार्यसमापनान्तमें उनमें लिप्त नहीं रहते, उन्हीं सब कारणोंका नाम निमित्तकारण है। जैसे दण्ड चक्र आदि घटके और तुरी वेमादि पटके निमित्त कारण हैं।

प्रमाण।

वैशेषिक मतसे प्रमाण दो तरहका है—प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रत्यक्षप्रमाण ६ प्रकारका है, अतः प्रत्यक्षप्रमाण भी ६ प्रकारका है। चक्षु, घ्राण, रसना, श्रोत्र, त्वक् और मन—ये छः इन्द्रियां ही प्रत्यक्षप्रमाणकी कारण हैं; अतएव ये प्रत्यक्ष-प्रमाण हैं। जो कारण किसी भी एक घटनाके साहाय्यमें कार्य सम्पादन करता है, उसका नाम कारण है। जो पदार्थ यज्जन्य हो कर यज्जन्यका जनक होता है, वह उसका व्यापार या घटना है। अर्थात् जो पदार्थ जिससे (कारण) उत्पन्न हो उसका ही कर्त्तव्य अर्थात् उसी कारण द्वारा वह करणीय कार्य सम्पादन करता है। अथवा उसका उस कार्यके सम्पादनमें सहायता करता है, उस पदार्थको उसका व्यापार या घटना कहा जाता है। जैसे "असिना छिनत्ति" अर्थात् असि द्वारा काटता है. यहां असि काटनेकी क्रियाका कारण है। यथार्थ स्थलमें विषयके साथ जिस इन्द्रियकी प्रत्यासत्ति या सन्निकर्ष या संबंध है अथवा संयोग है, वही इंद्रियका व्यापार है। क्योंकि विषयके साथ इन्द्रियके सन्निकर्ष या संयोग न होनेसे विषयका प्रत्यक्ष होना असम्भव है। विषयके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष इन्द्रियजन्य है और इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञानका जनक है। अतएव विषयके साथ इन्द्रियका सन्निकर्ष इन्द्रियका व्यापार है। इन्द्रियगण इस व्यापारकी सहायतासे प्रत्यक्षज्ञानका कारण या उसके सम्पादनमें समर्थ होते हैं, इससे उनको करण कहते हैं।

लौकिक सन्निकर्ष ६ प्रकारका है। संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्त-समवेत-समवाय और विशेषणता वा स्वरूप है। चक्षुरिन्द्रिय घटके साथ संयुक्त होनेसे घटका प्रत्यक्ष होता है। यहां विषयके साथ इन्द्रियका संबंध संयोग है। घटके साथ चक्षुरिन्द्रियका संयोग होनेसे जैसे घटका प्रत्यक्ष होता है, उसी तरह घटत्व जाति घटगत शुक्लनीलादि रूप है और उस शुक्लनील आदि रूपगत शुक्लत्व नीलत्वादि जातिके भी प्रत्यक्ष होता है। यह अनुभवसिद्ध है। इसका अपलाप किया जा नहीं सकता। क्योंकि जो व्यक्ति घटका प्रत्यक्ष कर चुका है, घटका क्या रंग है, यह भी उसने प्रत्यक्ष कर लिया है, उसमें सन्देह नहीं हो सकता। सुतरां घटत्वादि विषयके साथ चक्षुरिन्द्रियका किसी तरहका संबंध अवश्य ही है। क्योंकि यह न होनेसे घटत्वादि प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। इन्द्रियके साथ असंबंध वस्तुका प्रत्यक्ष असम्भव है। घटत्व जाति और शुक्लरूप घटसमवेत अर्थात् घटमें स वाय संबंधमें इनकी वृत्ति है। सुतरां घटत्व जाति और घटगत शुक्लरूपके साथ चक्षुका संबंध होने पर संयुक्त समवाय हो जाता है। शुक्लरूपसे घट समवेत है। अर्थात् शुक्लत्व जाति शुक्लरूपसे समवाय संबंधमें है। किन्तु शुक्लत्व जातिके साथ चक्षुका संबंध होता है—संयुक्त समवेत-समवाय है। क्योंकि घट चक्षुसंयुक्त है, शुक्लरूप घटसम-

वेत है; शुक्लत्व जाति शुक्लरूप-समवेत है। इसी तरह घ्राण भी रसनाके साथ संयुक्त होनेसे द्रव्यके गन्ध और रसका प्रत्यक्ष होता है, अतएव गन्ध और रसके साथ आश्रय या अधिकरण द्रव्य रूपसे घ्राण और रसनेन्द्रियका संबंध-संयुक्त-समवाय है। क्योंकि गन्ध और रसका आश्रय या अधिकरण द्रव्यक्रमसे घ्राण और रसनेन्द्रिय संयुक्त है। गन्ध और रस ये द्रव्यसमवेत हैं। गन्धत्व रसत्वके साथ घ्राण और रसनेन्द्रियका संबंध संयुक्त-समवेत-समवाय है। शब्द आकाश-समवेत है। कर्णप्रदेशावच्छिन्न आकाश ही श्रवणेन्द्रिय है, अतएव शब्दप्रत्यक्षका संबंध समवाय है। शब्दत्व, कत्व, गत्वादि प्रत्यक्षका संबंध-विशेषणता या स्वरूप है। भूतलमें घटाभावके प्रत्यक्षस्थलमें विशेषणता ही सन्निकर्ष है। क्योंकि भूतलके विशेषण रूपसे ही घटाभावका प्रत्यक्ष होता है। जो वस्तु जिस इन्द्रियका ग्राह्य है, उसी वस्तुका धर्म और उसी वस्तुका अभाव भी उस इन्द्रियका ग्राह्य है। घट चक्षुरिन्द्रियका ग्राह्य है अतएव घटवृत्ति गुणक्रियादि धर्म और घटका अभाव और चक्षुरिन्द्रियग्राह्य है।

उद्भूतरूप और महत्त्व, वहिंद्रव्य और तद्गतक्रिया-गुण आदिके प्रत्यक्षका कारण है। उत्तप्त भर्ज्जनकपालमें हाथ छू जाने पर हाथ दग्ध या जल जाता है। अतएव इसमें जरूर अग्नि है। किन्तु इस अग्निके रूपमें उद्भूतत्त्व नहीं है, इससे वह दिखाई नहीं देती। परमाणुका महत्त्व नहीं है। इसीलिये परमाणु दिखाई नहीं देता। किसी किसी यूरोपीय पण्डितोंके मतसे वस्तुके गुणमात्र ही प्रत्यक्ष होता है। वस्तुका प्रत्यक्ष नहीं होता। कणादके मतसे वस्तुका भी प्रत्यक्ष होता है, क्योंकि वस्तुगुण समष्टिमात्र नहीं है।

वस्तुगुणका आधार है। किसी भी वस्तुको नष्ट करनेसे गुणका नाश करना नहीं होता। जलपानके गुण द्वारा जलका गुणपान करना नहीं होता। घोड़े या शकट आदि पर चढ़ कर चलना पड़ता है। उनके गुण पर चढ़ कर चलना नहीं होता। दीर्घ वस्त्र परिधान किया जाता है। किन्तु दीर्घता जो वस्त्रका गुण है, उसको कोई नहीं पहनता।

और एक बात यह है, कि महत्त्व प्रत्यक्षका कारण है। जिसमें महत्त्व नहीं है, उसका प्रत्यक्ष हो नहीं सकता। परमाणुमें महत्त्व नहीं है, इसीलिये परमाणु अप्रत्यक्ष है। महत्त्व गुण गत नहीं द्रव्यगत है। द्रव्यगत जो महत्त्व है, द्रव्यगत गुणके प्रत्यक्षका कारण है, वह द्रव्यके प्रत्यक्षका कारण न होगा, यह समीचीन कल्पना नहीं है। इससे यह भी सिद्ध होता है, कि परिदृश्यमान घटादि द्रव्य परमाणुपुञ्जस्वरूप नहीं; परमाणुपुञ्जसमारब्ध द्रव्यान्तर है। इस द्रव्यान्तरका नाम अवयवी है। जिसके अवयव हैं, उसका नाम अवयवी है। घट-पटादिका अवयव है अतएव ये अवयवी हैं। जो जातीय परमाणु अवयवीके आरम्भक या जनक होता है, अवयवी भी उस जातिका होगा। जैसे मृदारब्ध घट मृज्जातीय, रजतारब्ध घट रजतजातीय इत्यादि। परमाणुपुञ्जके अतिरिक्त अवयवी स्वीकार न करनेसे घटादि द्रव्य परमाणुपुञ्जस्वरूप होनेसे घटादि द्रव्यका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

अब आपत्ति हो सकती है, कि जैसे दूरस्थ एक केश (बाल) प्रत्यक्ष न होने पर यह जरूर दिखाई देता है, कि उस बालके गुच्छोंमें एक बाल होगा। इसी तरह एक परमाणु प्रत्यक्ष न होने पर भी परमाणुपुञ्ज प्रत्यक्ष हो सकता है। इसके उत्तरमें हमारा वक्तव्य है, कि यह दृष्टान्त ठीक नहीं हुआ। कारण, एक एक केश भी तो अतीन्द्रिय नहीं। क्योंकि निकटस्थ व्यक्ति वह देख सकता है। दूरस्थ व्यक्ति उसे नहीं देख सकता, इसका एक एक केशका अतीन्द्रियत्व कारण नहीं; क्योंकि एक एक केश अतीन्द्रिय होने पर निकटस्थ व्यक्ति भी उसे देख नहीं सकता था। किन्तु दूरस्थ व्यक्ति जो एक केश नहीं देख सकता, उसका कारण दूरत्वरूप दोष है। जैसे कोई पक्षी उड़नेके समय प्रत्यक्ष होने पर भी आकाशके दूरतर प्रदेशमें उत्पतित अवस्थामें वह प्रत्यक्ष या दृष्टिगोचर नहीं होता। दूरत्व ही उसका कारण है। उसी तरहका दूरस्थ एक केश न दिखाई देनेका कारण भी दूरत्व है, केशकी अतीन्द्रियता नहीं। एक केश जैसे दूर रहनेके कारण दिखाई नहीं देता, उसी परिमाण दूरसे केशगुच्छ दिखाई देता है। कारण यह दूरत्व एक

केश पर अपने प्रभावका विस्तार कर सकने पर भी केशगुच्छ पर अपना प्रभाव विस्तार कर न सका। इसकी अपेक्षा अधिक दूरत्व होनेसे केशगुच्छ भी दृष्टिगोचर नहीं होता। यथार्थमें प्रत्येक परमाणु एक एक केशकी तरह है, किसी समय भी दृष्टिगोचर नहीं होता। सुतरां परमाणु अतीन्द्रिय है। परमाणु अतीन्द्रिय होनेसे परमाणुपुञ्ज भी दृष्टिगोचर हो नहीं सकता। क्योंकि अतीन्द्रिय या नहीं, इन्द्रियके अतीत अर्थात् अविषय है। स्वविषयमें प्रत्यक्ष ही कारणवशतः इन्द्रियके पटु-मन्द-भाव हो सकता है। किंतु अविषयका ग्रहण किसी समयमें नहीं होता। एक खूब पका आम आंखसे दिखाई देने पर उसका रंग और आकार भी दिखाई देता है। इस आम फलकी दूरता और सन्निधान न्यूनाधिक दर्शनकी अव्यक्त परिस्फुट अवस्था हो सकती है। किन्तु आम फलमें प्रचुर परिमाणसे मधुररस रहने पर भी किसी तरह वह दिखाई नहीं देता। क्योंकि रूप चक्षुरिन्द्रियका विषय है। रस चक्षुरिन्द्रियका विषय नहीं। उसी तरह जब परमाणु चक्षुरिन्द्रियका विषय नहीं, तब प्रचुरपरिमाणसे परमाणु-मिलित होने पर भी वह अर्थात् परमाणुपुञ्ज दृष्टिगोचर हो नहीं सकता।

एक न्याय है, कि "शतमप्यन्धानां न पश्यति"। अर्थात् एक अन्धा जैसे देख नहीं सकता, उसी तरह सैकड़ों अन्धे एकत्र होने पर भी वे देख नहीं सकेंगे। क्योंकि उनकी दृष्टिशक्ति नहीं। एकके बाद एक विंदु देनेसे दश होता है सही, किंतु एक संख्याको उठा लेने पर दश विंदु देने पर भी कुछ नहीं होता। क्योंकि एकके संयोग बिना विंदुकी कुछ भी कार्यकारिता नहीं रह जाती। उसी तरह महत्त्वकी सहायताके बिना इन्द्रियशक्ति कार्य नहीं कर सकती है। एक परमाणु दिखाई नहीं देता, उन अन्धोंकी तरह सैकड़ों परमाणुओंके एकत्र होने पर भी वे दिखाई नहीं देंगे इसीलिये अवयव अर्थात् परमाणुके अतिरिक्त अवयवारब्ध अर्थात् परमाणु द्वारा समारब्ध अवयवी अङ्गीकृत हुआ है। "स्थूलो महान् घटः" यह प्रत्यक्ष अनुभव उसका प्रमाण है।

बौद्ध अदृश्य परमाणु-पुञ्जसे दृश्य परमाणुपुञ्जकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं। नैयायिकोंने इस मतका प्रत्याख्यान किया है। उनका कहना है, कि जो अदृश्य हैं, जो सूक्ष्म हैं, वह दृश्य और दृश्यका उपादान और महत् हो नहीं सकता। वह दृश्य या महत् होनेका कारण नहीं। दृश्य और महान् परमाणुपुञ्ज अदृश्य और सूक्ष्म परमाणुपुञ्जसे वस्त्वन्तर स्वीकृत होने पर सूक्ष्म और अदृश्य परमाणुपुञ्जसे दृश्य और स्थूल परमाणुपुञ्जकी उत्पत्ति हो सकती है सही; किन्तु ऐसा होने पर उत्पन्न पुञ्जके अंतर्गत प्रत्येक परमाणु अदृश्य और स्थूल कह कर स्वीकार करना होगा। क्योंकि जो प्रत्येकके अदृश्य और सूक्ष्म हैं, उसकी समष्टि और दृश्य स्थूल हो नहीं सकते। यह स्वीकार करने पर किन्तु परमाणुसे वस्त्वन्तरकी उत्पत्तिकी तरह और बौद्ध इन दोनों मतसे सिद्ध हो रहा है। उस वस्त्वन्तरका नाम न्याय मतसे अवयवी है। बौद्धमतसे दृश्य परमाणुपुञ्ज है, इतना ही प्रभेद है; अर्थात् वस्त्वन्तरकी उत्पत्ति दोनों मतसे स्वीकृत हो रही है। किन्तु उस वस्तुकी संज्ञा या नाम ले कर विवादका केवल पर्यवसान होता है। नैयायिक यह भी कहते हैं, कि न्याय मतसे 'एको घटः'—इस प्रतीतिकी विषयता एक पदार्थमें स्वीकृत होना ही संगत है। अनेक पदार्थोंमें स्वीकृत होने पर असङ्गत और गौरवजनक होता है।

अलौकिक सन्निकर्ष तीन प्रकारका है—सामान्य लक्षण, ज्ञानलक्षण और योगज। सामान्य लक्षण अर्थात् जो सामान्य जिसमें स्थित है, वह सामान्य ही उसके आश्रयका या उसका प्रत्यक्ष सन्निकर्ष स्वरूप होता है। इस सामान्यके किसी एक आश्रय चक्षुः संयोग होने पर यह सामान्य रूप सम्बन्धसे समस्त उसके आश्रयके अलौकिक या चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। किसी भी एक घटमें चक्षुःसंयोग होने पर घटत्व सम्बन्धमें निखिल घटका अलौकिक चाक्षुष प्रत्यक्ष इसका उदाहरण है। ज्ञान लक्षण है अर्थात् ज्ञान ही सन्निकर्ष स्वरूप है। जिसका ज्ञान होता है, वह ज्ञान उसीके अलौकिक प्रत्यक्षके सन्निकर्ष स्वरूप होता है। चन्दनखण्डमें चक्षुःसन्निकर्ष होने पर 'सुरभि चन्दन' अर्थात् सुगन्धयुक्त

चन्दन है—यहां ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष वशतः सौरभके अलौकिक चाक्षुष प्रत्यक्ष हो रहा है। योगज-धर्म-प्रभाव से योगी अतीत अनागत सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्ट सर्व प्रकारके पदार्थको प्रत्यक्ष करते हैं।

अनुमितिका करण अनुमान है। साध्य, हेतु और व्याप्तिका परिचय पहले प्रदत्त हुआ है। हेतुका दूसरा नाम लिङ्ग है। क्योंकि उसके द्वारा साध्य-लिङ्गित अर्थात् ज्ञात होता है। जिसमें साध्यकी अनुमिति होती है, उसका नाम पक्ष है। पर्वतमें वह्निकी अनुमिति होती है, इससे पर्वत पक्ष है। सिद्धिका अर्थात् साध्य-निश्चयका अभाव पक्षता है। अनुमिति-से पहले पर्वतमें वह्निका निश्चय नहीं हुआ। अतएव पर्वतमें पक्षता है। सुतरां पर्वत पक्ष है। सिद्धि अर्थात् साध्य-निश्चय रहने पर भी 'सिषाधयिषा' अर्थात् साधनकी इच्छा या अनुमित्सा या नहीं। अनुमिति-की इच्छा होने पर अनुमिति हो सकती है। आत्माका श्रवण और मनन आदि मुमुक्षुके कर्त्तव्य है, ऐसा वेदमें विहित है। वेदवाक्य सुन कर आत्माके विषयमें जो अवरोध या ज्ञान होता है, उसका नाम श्रवण है। यहां वेदवाक्य-श्रवणमें आत्माकी सिद्धि अर्थात् निश्चय होनेसे यद्यपि सिद्धिका अभाव नहीं, तथापि सिषाधि-यिषा या अनुमित्सा द्वारा आत्माका मननरूपी अनुमान होता है। अनुमानकी प्रणाली इस तरह है—पहले तो पर्वतमें धूम दर्शन होता है। इसको प्रथम लिङ्ग परामर्श कहा जाता है। लिङ्गहेतु है, परामर्श उसका ज्ञान है। पर्वतमें धूमदर्शन प्रथम लिङ्गज्ञान है। पीछे "धूमो वह्निव्याप्यः"—अर्थात् धूम वह्निका व्याप्य है, इस तरह व्याप्ति-स्मरण होता है। यही अनुमान है अर्थात् अनुमितिका कारण है। यह द्वितीय लिङ्ग-परामर्श है। इसके बादके क्षणमें "वह्निव्याप्य धूमवान् पर्वतः" अर्थात् वह्निव्याप्य धूमपर्वतमें है, इस तरहका ज्ञान होता है। यह तृतीय लिङ्ग-परामर्श है। तृतीय-लिङ्ग परामर्शका दूसरा नाम पक्षधर्मताज्ञान है। केवल परामर्श शब्द द्वारा भी इसका निर्देश किया जाता है। इसके बादके क्षणमें 'पर्वतो वह्निमान्' इस तरह अनुमिति होती है। व्याप्तिज्ञान अनुमितिका करण है। परामर्श उसका व्यापार है। क्योंकि परामर्श व्याप्तिज्ञानजन्य है, फिर भी, व्याप्ति-ज्ञान-जन्य अनुमितिका जनक है। पहले तो लिङ्गपरामर्श अनु-मितिका कारण नहीं हो सकता। क्योंकि कार्यकी उत्पत्तिका अव्यवहित पूर्व क्षणमें कारणकी विद्यमानता न रहने पर कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कार्य-उत्पत्तिका अव्यवहित पहले क्षणमें कारण न रहने पर भी कार्यकी उत्पत्ति स्वीकार करने पर निष्कारण कार्यो-त्पत्ति स्वीकार करनी पड़ती है। ज्ञानमात्र ही प्राय द्वि-क्षण-स्थायी है। प्रथम क्षणमें ज्ञानकी उत्पत्ति, दूसरे क्षणमें स्थिति और तीसरे क्षणमें उसका विनाश है। प्रथम लिङ्गपरामर्श अर्थात् धूम दर्शनके द्वितीय क्षणमें व्याप्ति-स्मरण, तृतीय क्षणमें तृतीय लिङ्ग परामर्श और चतुर्थ क्षणमें अनुमिति होती है। प्रथम लिङ्गपरामर्श है, किन्तु तृतीय लिङ्गपरामर्श क्षणमें अर्थात् अनुमिति-के पूर्व क्षणमें विनष्ट हो जाता है। जिस क्षणमें जो वस्तु विनष्ट होती है, उस क्षणमें उस वस्तुकी सत्ता रह नहीं जाती। कार्योत्पत्तिके अव्यवहित पूर्वक्षणमें कारणकी सत्ता न रहने उस पहली सत्ताका रहना दिनान्तरमें सत्ताके रहनेके तुल्य है। ऐसी सत्ता कार्यो-त्पत्तिमें कोई भी उपकार कर नहीं सकती। प्रथम लिङ्ग परामर्श या प्राथमिक धूमज्ञान अनुमितिका करण या साक्षात् हेतु न होने पर भी परम्परा हेतु या प्रयो-जक जरूर है। क्योंकि प्रथम लिङ्ग-परामर्श व्याप्तिज्ञान-के, व्याप्तिज्ञान तृतीय लिङ्गपरामर्श अनुमितिके हेतु या कारण हैं।

जिस कारणके बलसे अनुमिति होगी, उस कारण या हेतुमें पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व और विपक्षासत्त्व—इन तीन रूपों या धर्मोंका होना आवश्यक है। जिस अधि-करणमें साध्यकी अनुमिति होती है, उसका नाम पक्ष है। जिस अधिकरणमें साध्यका निश्चय है, उसका नाम सपक्ष है। जिस अधिकरणमें साध्यके अभावका निश्चय हो, उसका नाम विपक्ष है। पर्वतमें वह्निकी अनुमितिके स्थलमें पर्वत पक्ष, महानस सपक्ष और जल-ह्रद विपक्ष है। हेतु रूप धूम, पक्ष पर्वत और सपक्ष जलह्रद नहीं है। इसीलिये धूममें तीन हैं। इस रूप-

त्रयका नाम गमकतौपायिकरूप है। गमकता है या नहीं, अनुमापकता है, उसका औपायिक है या नहीं— उपायस्वरूप है। धूम जो परम्परा सम्बन्धमें वह्नि अनुमितिका कारण है, उसका उपायभूत होते हैं, ये रूपत्रय। क्योंकि हेतुपक्षमें न रहनेसे अनुमिति हो ही नहीं सकती, यह कहना अनावश्यक है। हेतुसपक्ष न रहनेसे भी अनुमिति हो नहीं सकती है। क्योंकि जिस अधिकरणमें साध्यका निश्चय है, उस अधिकरणमें हेतु न रहनेसे इस हेतुमें साध्यकी व्याप्ति ही रह नहीं सकती है। हेतुमें साध्यकी व्याप्ति न रहनेसे इस हेतुके बलसे साध्यकी अनुमिति होना एकान्त ही असम्भव है।

हेतुमें साध्यकी व्याप्ति रहनेसे यह हेतु सपक्षमें अर्थात् जिस अधिकारमें साध्यका निश्चय है, उसमें न रहना चलेगा ही नहीं। विपक्ष अर्थात् जिस अधिकरणमें साध्यके अभावका निश्चय होता है, उसमें हेतु रहने पर भी हेतुमें साध्यकी व्याप्ति रह नहीं सकती। कारण, जहां साध्यका अभाव है, वहां हेतु रहनेसे इस हेतुमें साध्यकी व्याप्ति नहीं रहती। क्योंकि जहां साध्यका अभाव रहता है, वहां हेतुका न रहना ही हुई व्याप्ति। सुतरां उक्त तीनों रूप गमकताका उपायभूत हैं, इसमें सन्देह नहीं उक्त तीनों रूप या इनमें एकः रूप हेतुमें रहनेसे ही यह गमकतौपायिक रूप शून्य होगा। सुतरां वह आपाततः हेतु कहके बोध होने पर भी यथार्थमें हेतु नहीं होता। इसीलिये ऐसे हेतुका नाम हेत्वाभास है। जो केवल हेतुकी तरह भासमान होता है, किन्तु यथार्थ हेतु नहीं है, वही हेत्वाभास है। दुष्ट हेतुका नामान्तर हेत्वाभास है। वैशेषिक दर्शन-प्रणेता कणादके मतसे हेत्वाभासका नाम अनपदेश है। जो हेतु नहीं है, फिर भी, हेतु सदृश है, वही अनपदेश या हेत्वाभास है। कणादके मतसे हेत्वाभास तीन प्रकारका है,—अप्रसिद्ध, असन् और सन्दिग्ध। जिस हेतुकी प्रसिद्धि नहीं है, उसका नाम अप्रसिद्ध है। प्रसिद्धि है या नहीं, प्रकृष्टरूपसे सिद्धि अर्थात् व्याप्ति है। जिस हेतुमें साध्यकी व्याप्ति नहीं है अथवा व्याप्ति रहने पर भी किसी कारणवश उसका ज्ञान नहीं होता, वह हेतु अप्रसिद्ध है। अप्रसिद्धका दूसरा नाम व्याप्यत्वासिद्ध है। 'धूमवान् वह्नेः' यहां धूमकी अनुमिति विषयमें वह्निरूप हेतु अप्रसिद्ध या व्याप्यत्वासिद्ध है।

असन् अर्थात् जो हेतुके पक्षमें या साध्यके अधिकरणमें नहीं रहता, उसका नाम असन् है। इसका दूसरा नाम विरुद्ध है। 'गोत्ववान् अश्वत्वात्' गोत्वसाध्य अश्वत्व हेतु है या 'नश्वो विषाणित्वात्' अश्वत्व साध्य विषाणित्व अर्थात् शृङ्गयुक्त हेतु है। इन दोनों उदाहरणोंसे ही हेतु असन् या विरुद्ध है। क्योंकि गोपिण्डमें अश्वत्व नहीं, अश्वपिण्डमें शृङ्ग नहीं है। शङ्कर मिश्रके मतसे विरुद्ध भी अप्रसिद्धके अन्तर्गत है। जो हेतुपक्षमें विद्यमान नहीं रहता वह असन् है। "ह्रदो द्रव्यं धूमात्"—यहां धूमरूप हेतु विद्यमान नहीं है अतएव वह असन् है।

जिस हेतुमें साध्यव्याप्तिका सन्देह होता है या जो हेतु साध्यका निश्चायक हो नहीं सकता, पक्षमें साध्यका सन्देहमात्र उत्पादन करता है, उसका नाम सन्दिग्ध है। सन्दिग्धका दूसरा नाम अनैकान्तिक है। क्योंकि साध्य भी एक अन्त है, साध्याभाव भी एक अन्त है। एक अन्तके साथ अर्थात् केवल साध्यके साथ या केवल साध्याभावके साथ सम्बन्ध जिस हेतुका है, वह हेतु ऐकान्तिक है। जो हेतु ऐकान्तिक नहीं, अर्थात् साध्य और साध्याभावके साथ जिसका सम्बन्ध है, वह हेतु अनैकांतिक है। विषाणित्व हेतु मान गोत्व साधन करनेसे विषाणित्व हेतु सन्दिग्ध या अनैकांतिक है। क्योंकि गोत्व साध्य है, विषाणित्व हेतु है। गो पशुका जैसा विषाण अर्थात् शृङ्ग है, भैंस आदिका भी वैसा ही शृङ्ग है। सुतरां विषाणित्व हेतु है, गोत्व रूपसाध्यका अधिकरण गो पशुमें है। इससे जैसे साध्यके साथ सम्बन्ध है, वैसे ही साध्यके अर्थात् गोत्वके अभावका अधिकरण भैंसमें है, इससे साध्यभावके साथ भी सम्बन्ध है। सुतरां विषाणित्व हेतु अनैकान्तिक है। विषाणित्व हेतु द्वारा गोत्वका निश्चय नहीं हो सकता, गोत्वका केवल सन्देह हो सकता है। इसीलिये यह हेतु संदिग्ध

है। वैशेषिक मतसे प्रत्यक्ष और अनुमान ये दो प्रमाण हैं। शब्दादि स्वतन्त्र प्रमाण नहीं। यह अनुमानके ही अन्तर्गत है। "गौरस्ति"—अर्थात् गो है—यह शब्द सुननेसे गो पदार्थमें अस्तित्वकी अनुमिति होती है। यह वैशेषिक आचार्योंका मत है। प्रत्यक्ष धूम देखनेसे जैसे अप्रत्यक्ष वह्निकी अनुमिति होती है, वैसे ही प्रत्यक्ष शब्द श्रवणमें अप्रत्यक्ष पदार्थकी अनुमिति होती है। लिङ्ग दर्शनमें हो या शब्दश्रवणमें अप्रत्यक्ष पदार्थका ज्ञानमात्र ही अनुमिति है। सुतरां नैयायिक सम्मत उपमान भी वैशेषिक मतसे अनुमानके अन्तर्गत है।

वैशेषिक ग्रन्थावली।

वैशेषिकदर्शनका प्राचीन भाष्य इस समय बहुत खोजने पर भी कहीं नहीं मिलता। कहा गया है, कि लङ्केश्वर रावणने इस दर्शनका भाष्य किया था। वेदान्तदर्शनमें वैशेषिक-मत निरसन प्रसङ्गमें पूज्यपाद शङ्कराचार्यने रावण कृत भाष्यके मतका खण्डन किया है। अनेकोंका मत है, कि प्रशस्तपादाचार्य कृत पदार्थधर्मसंग्रह ग्रन्थ ही वैशेषिकदर्शनका एक भाष्य है, किन्तु यह यथार्थ नहीं। पदार्थधर्मसंग्रहमें मूल कणादसूत्र व्याख्यात नहीं हुए। केवल सूत्रमात्र ही आलोचित हुए हैं। प्रशस्तपादाचार्यने भी अपने ग्रन्थको संग्रहआख्या प्रदान की है—भाष्य नाम नहीं रखा है। पदार्थधर्मसंग्रहके टीकाकार उदयनाचार्यने अपनी की हुई टीकामें कहा है, कि सूत्र अत्यन्त कठिन हैं। भाष्य अति विस्तृत है, इसीलिये सरल और संक्षेप करनेके उद्देशसे ही पदार्थधर्म संग्रह रचा गया है। सुतरां पदार्थधर्मसंग्रहके भाष्य न होनेका प्रमाण उदयनाचार्यकी उक्तिसे ही मिलता है।

पदार्थधर्मसंग्रह वैशेषिक ग्रन्थावलीमें सबसे प्राचीन प्रामाणिक तथा अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें वैशेषिकदर्शनका कुल तात्पर्य अति संक्षिप्त, फिर भी सारप्रक्रमसे और योग्यताके साथ लिपिबद्ध किया गया है। मूल दर्शनमें जगत्की सृष्टि और संहार-प्रणाली उक्त न होने पर भी इस ग्रन्थमें ये विषय जरा विशद भावसे विवृत हुए हैं। उदयनाचार्यकी किरणावली और श्रीधराचार्यकी न्यायकन्दली पदार्थधर्मसंग्रहकी उत्कृष्ट टीका है। परवर्त्ती ग्रंथोंमें वल्लभाचार्यकी न्यायलीलावतीका नाम सविशेष उल्लेखयोग्य है। वर्द्धमानोपाध्यायकृत किरणावलीप्रकाश और लीलावतीप्रकाश तथा मथुरानाथ तर्कवागीशकी किरणावलीरहस्य और लीलावतीरहस्य नामकी टीका प्रशंसनीय है। शङ्कर मिश्रकृत वैशेशिक सूत्रोपस्कार बहुत प्राचीन न होने पर भी अति समीचीन है। जयनारायण तर्कपञ्चाननने कणादसूत्रविवृति नामसे वैशेषिक दर्शनकी एक संक्षिप्त व्याख्या प्रणयन की है। उन्होंने अपने व्याख्याग्रन्थके अन्तमें भाषापरिच्छेद और सिद्धांतमुक्तावलीका पंथानुसरण कर वैशेषिक दर्शनके प्रतिपाद्य विषयके सारसंग्रहकी संयोजना की है। उपस्कार ग्रंथमें वृत्तिकारने अपना मत प्रकट किया है। विज्ञानभिक्षु-विरचित एक वैशेषिक वार्त्तिक है। शेषोक्त दो ग्रंथोंका प्रचार विरल हो गया है।

नव्यन्यायके प्रादुर्भावसे और उत्तरोत्तरप्रसारवृद्धिसे इन सब प्राचीन दर्शनग्रंथका हतादर उपस्थित हुआ और इसके साथ ही दर्शन अध्ययन या अध्यापना न रहनेके कारण असंख्य प्राचीन और समीचीन ग्रंथ विलुप्त हो गये हैं। नीचे अकारादिक्रमसे कई वैशेषिक सूत्रभाष्य, वृत्ति या टीकाका उल्लेख किया गया—

अपशब्दखण्डन—कणादमुनि, अहेतुसमप्रकरण, कणादरहस्यसंग्रह, कणादरहस्य—पद्मनाभमिश्र, (यह ग्रन्थ उनके अपने रचे हुए सिद्धान्तमुक्ताहार ग्रंथकी टीका है) कणादरहस्य—शङ्करमिश्र, कणादसंग्रहव्याख्या, कारिकावली—विश्वनाथ, किरणावली—उदयनाचार्य, (यह प्रशस्तपादभाष्यकी एक वृत्ति है, द्रव्यकिरणावली और गुणकिरणावली नामसे इसके और भी दो भाग हैं), किरणावलीकी टीका—उदयन, किरणावलीकी टीका—कृष्णभट्ट, किरणावलीकी टीका (किरणावलीभास्कर)—पद्मनाभ, किरणावलीकी टीका—वरदराज, किरणावलीकी टीका (किरणावलीप्रकाश)—वर्द्धमान, किरणावलीकी टीका (किरणावलीप्रकाशकाशिका)—मेघभगीरथ, किरणावलीकी टीका (द्रव्यकिरणावली शब्दविवेचन)—चन्द्रशेखरभारती, किरणा-

वलीकी टीका (द्रव्यकिरणावलीप्रकाश)—वर्द्धमान, मेघमगीरथ, किरणावलीकी टीका (द्रव्यकिरणावली-परीक्षा)—रुद्र वाचस्पति, (यह रघुनाथकृत द्रव्यप्रकाश-विवृतिकी टिप्पनी है), किरणावलीकी टीका (गुण-किरणावली टीका), किरणावलीकी टीका (रससार)—माधवादीन्द्र, किरणावलीकी टीका (गुणरहस्य)—राम-भद्र, किरणावलीकी टीका (गुणरहस्यप्रकाश)—माधव-देव (इसका गुणरहस्यप्रकाश और गुणसारमञ्जरी नाम भी पाया जाता है), किरणावलीकी टीका (गुणकिरणा-वलीप्रकाश)—वर्द्धमान, किरणावली (टिप्पन)—भगीरथ ठाकुर, किरणावली—मथुरानाथ, किरणा-वली (गुणप्रकाशदीधिति, गुणप्रकाशविवृति, गुणशिरोमणि)—रघुनाथ, किरणावली—जयराम भट्टाचार्य, किरणावली (गुणप्रकाशदीधितिमाथुरी)—मथुरानाथ, किरणावली—रामकृष्ण भट्टारक, किरणावली (गुणप्रकाशविवृतिभावप्रकाशिका)—रुद्रभट्टाचार्य, कोमलाटीका—विश्वनाथ, गुणकिरणावली—किरणावली देखो। गुणशिरोमणि और गुणशिरोमणि टीका, गुण-सारमञ्जरी—किरणावली देखो। जातिषट्कप्रकरण—विश्वनाथ पञ्चानन, तत्त्वज्ञानविवृद्धिप्रकरण—विश्वनाथ पञ्चानन, तत्त्वानुसन्धान, तर्कप्रदीप—कोण्डभट्ट, तर्क-भाषा (?)—विश्वनाथ पञ्चानन, तर्करत्न (?)—कोण्डभट्ट, तर्करत्न—वीरराघव शास्त्री, द्रव्यगुणपर्याय, द्रव्यनिरू-पण, द्रव्यपताका, द्रव्यपदार्थ—पक्षधर, द्रव्यप्रकाशिका, द्रव्यसारसंग्रह—रघुदेव, द्वन्द्वविचार—गोकुलनाथ मैथिल, न्यायतत्त्वबोधिनी—विश्वनाथ, न्यायतरङ्गिणी—केशव, न्यायपदार्थदीपिका—कोण्डभट्ट, न्यायसार (संग्रह)—माधव देव, पदसंग्रह—कृष्णमिश्र, पदार्थ-खण्डन या पदार्थतत्त्वविवेचन—रघुनाथ, पदार्थखण्डन-टीका—गोविन्द भट्टाचार्य, पदार्थखण्डनटीका—माधव-तर्कसिद्धान्त, पदार्थखण्डनटीका—रघुदेव, पदार्थखण्डन-टीका—रुचिदत्त (मार्कण्ड), पदार्थखण्डनटीका राम-भद्र सार्वभौम, पदार्थखण्डनटीका (पदार्थतत्त्वाव-लोक)—विश्वनाथ, पदार्थखण्डनटिप्पनव्याख्या—कृष्ण-मिश्राचार्य, पदार्थचन्द्रिका—मिसरु मिश्र, पदार्थधर्म-संग्रह (प्रशस्तपादभाष्य), पदार्थनिरूपण—न्याय-वाचस्पति, पदार्थपारिजात—कृष्णमिश्र, पदार्थप्रबोध—शङ्कराचार्य, पदार्थबोध, पदार्थमणिमाला या पदार्थ-माला—जयराम, पदार्थविवेक (सिद्धांततत्त्व), पदार्थ-विवेककी टीका—गोपीनाथ मौनी, परिमाणविवेक, प्रमाणमञ्जरी—सर्वदेवपुरी, बाह्यार्थभङ्गनिराकरण—विश्वनाथ पञ्चानन, मायापरिच्छेद—विश्वनाथ पञ्चानन, मिथ्यात्ववादरहस्य—गोकुलनाथ, मुक्तिवादटीका—विश्वनाथ, रत्नकोष—पृथ्वीधराचार्य, रत्नकोषप्रामाण्य-वाद, रत्नकोषकारपदार्थ, रत्नकोषकारिकाविचार, रत्न-कोषमतरहस्य, रत्नकोषवाद या विचार—हरिराम, रत्न-कोषवादरहस्य—गदाधर, राधान्तमुक्ताहार—पद्मनाथ, राधान्तमुक्ताहारकी टीका (कणादरहस्य)—पद्मनाथ, लक्षणावली—उदयनाचार्य, लक्षणावलीकी टीका न्याय-मुक्तावली—शेषशार्ङ्गधर, वादसुधाटीका रत्नावली—कृष्ण मिश्र, वैशेषिकरत्नमाला—सवदेव पण्डित कवि, वैशेषिकसूत्र—कणाद, वैशेषिकसूत्रकी टीका—उदयना-चार्य, वैशेषिकसूत्रकी टीका—चन्द्रानन्द, वैशेषिकसूत्र की टीका—जयनारायण, वैशेषिकसूत्रका भाष्य (प्रशस्त-पादभाष्य) प्रशस्तपादाचार्य—रघुदेव, वैशेषिकसूत्रो-पस्कार—शङ्करमिश्र, वैशेषिकादि षड्दर्शनविरोध-वर्णन, व्याख्यापरिमल, शब्दप्रामाण्यवाद, शब्दार्थ-तर्कामृत—जयकृष्ण, सम्बन्धोपदेश—वल्लभ, सम्बन्ध-घोपदेशकी टीका—गोवर्द्धन, सिद्धान्ततत्त्वविवेक (पदार्थविवेक)—गोकुलनाथ, सिद्धान्ततत्त्वविवेककी टीका (सिद्धांततत्त्वसर्वस्व)—गोपीनाथ मौनी।

वैशेष्य (सं० क्ली०) विशेषका भाव, विशेषता।

वैश्मीय (सं० त्रि०) वेश्म-सम्बन्धी, गृह सम्बन्धी।

वैश्य (सं० पु०) विश-ष्यञ्। तृतीय वर्ण। पुरुष-सूक्तको छोड़ कर वेदसंहितामें वैश्य शब्दका उल्लेख नहीं है। 'विश्' शब्द है।

विश् कहनेसे आदि वैदिक युगमें प्रथमतः किसी निर्दिष्ट वर्ण या जातिका ज्ञान नहीं होता था—प्रजा साधारणको ज्ञान होता था। विश् और वर्ण देखो।

महाभारतकारने इस आदि वैदिक युगको बात पर लक्ष्य रख कर घोषणा की है,—

"न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्॥

कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः।
त्यक्त्वा स्वधर्मान् रक्ताङ्गास्ते द्विजाः क्षत्रतां गताः॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीता कृष्युपजीविनः।
स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः॥"
(शान्तिपर्व १८६ अ०)

वर्णका इतर विशेष नहीं है, यह समूचा ब्राह्म या ब्रह्माका सन्तान है। पहले समयमें ब्रह्म द्वारा सृष्ट हो कर कार्य द्वारा क्रमसे भिन्न भिन्न वर्णमें परिणत हुआ है। जिस द्विज (आर्य)ने रजोगुणप्रभावसे कामभोग प्रिय, क्रोधपरतन्त्र, साहसी और तीक्ष्ण हो कर स्वधर्म त्याग किया है, वह क्षत्रियत्व; जिसने रजः और तमोगुण प्रभावसे पशुपालन और कृषिकार्यका अवलम्बन किया है; वैश्यत्व और जो केवल तमोगुणप्रभावसे हिंसापर, लुब्ध, सर्व कर्मोपजीवी, मिथ्यावादी और शौचभ्रष्ट हो गये हैं, वे शूद्रत्व प्राप्त हुए हैं।

उक्त प्रमाणसे अच्छी तरह मालूम हो रहा है, कि बहुत पूर्व समयमें एक आर्य जाति थी। उसके बाद ही अन्यान्य वर्णोंका उद्भव हुआ। रामायण, महाभारत और ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि सत्ययुगमें सभी ब्राह्मण थे। त्रेतायुगमें क्षत्रिय तथा उसके बाद द्वापरमें वैश्योंकी उत्पत्ति हुई।

ऋग्वेद-पुरुषसूक्तके मतसे "ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत" (१०।९०।१२) अर्थात् जिससे वैश्य उत्पन्न हुए हैं, वह पुरुषके ऊरुयुगल हैं। अथर्ववेदमें "ऊरु" स्थानमें "मध्य तदस्य यद्वैश्यः" ऐसी उक्ति है। तैत्तिरीय-संहिता या कृष्ण यजुर्वेदमें (७।१।१।४-६) ऐसा विवृत हुआ है—

"मध्यतः सप्तदशं निरमिमीत तं विश्वेदेवा देवता अन्वसृज्यन्त जगतीच्छन्दो वैरूपं नाम वैश्यो मनुष्याणां गावः पशूनां तस्मात्त आद्या अन्नाधानाद्ध सृज्यन्त तस्माद्भूयांसोऽन्येभ्यो भूयिष्ठा देवता अन्वसृज्यन्त।"

अर्थात् प्रजापतिने इच्छाक्रमसे उसके बीचसे सप्तदश (स्तोम) निर्माण किया। इसके बाद विश्वदेव देवता, जगतीच्छन्दः वैरूप साम, मनुष्योंमें वैश्य और पशुओंमें गोगण सृष्ट हुए। अन्नाधारसे उत्पन्न होनेसे वे अन्नवान् हैं। इनकी संख्या बहुत है, कारण बहुसंख्यक देवता भी पीछे उत्पन्न हुए थे।

शतपथब्राह्मणमें कहा गया है (२।१।४।१३)—

"भूरिति वै प्रजापतिर्ब्रह्म अजनयत्
भुवः इति क्षत्रं स्वरिति विशं।
एतावद्वै इदं सर्वं यावद्ब्रह्मक्षत्रं विट्।"

अर्थात् 'भूः' यह शब्द उच्चारण कर प्रजापतिने ब्राह्मणको जन्माया था, 'भुवः' यह शब्द कर क्षत्रिय एवं 'स्वः'यह शब्द उच्चारण कर वैश्यकी सृष्टि की थी। यह समस्त मण्डल ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं।

तैत्तिरीयब्राह्मणमें (३।१२।९।३) कीर्त्तित हुआ है—

"सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टं ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः।
यजुर्वेदं क्षत्रिय स्याहुर्योनिं सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः॥"

यह समस्त (विश्व) ब्रह्म द्वारा सृष्ट हुआ है। कोई कहता है, ऋक्से वैश्यवर्ण उत्पन्न हुए हैं; यजुर्वेद क्षत्रियकी योनि या उत्पत्ति स्थान है, सामवेद ब्राह्मणोंकी प्रसूति है।

उपरोक्त वैदिक प्रमाणसे मालूम होता है, कि आदिकालमें आर्यप्रजासाधारण 'विश' 'अर्य' या वैश्य-रूपसे परिगणित रहने पर भी कार्यानुरोधसे अति पूर्व-कालसे ही उनमें वर्णभेद हुआ है। कृष्णयजुर्वेदसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि जो अन्नादि वैश्यके सहजात हैं अर्थात् आर्य जातियोंमें जो गोरक्षा और अन्नादि या आहार्य द्रव्योंका उपाय कर देता, वही वैश्य नामसे पुकारा जाता था। यजुर्वेदमें स्पष्ट निर्दिष्ट है, कि इन्हींकी संख्या अधिक थी। पुरुषसूक्तके मतसे पुरुषका ऊरु या मध्यस्थान ही वैश्य है। यास्कके निरुक्त मतसे ऊरु या मध्यस्थानका अर्थ भूमि या पृथ्वी है। इसीसे अथर्ववेदमें उक्त हुआ है, मध्य या भूमि ही वैश्य अर्थात् भूमि जोतनेके लिये ही वैश्यकी सृष्टि है। कृष्णयजुर्ब्राह्मणमें निर्देश है, वैश्यवर्णको ऋक्से जात समझना। फिर कृष्णयजुर्वेदमें उक्त हुआ है, कि विश्वदेव देवता और जगतीछन्दःसह वैश्यवर्ण हुआ है। पारस्करगृह्यसूत्रमें (२।३।७।६) है—"सद्यस्त्वेव गायत्रीं ब्राह्मणायानुब्रूयादाग्नेयो वै ब्राह्मण इति श्रुतेः। त्रिष्टुभं

राजन्यस्य। जगती वैशस्य।" अर्थात् अग्निदेवताको ब्राह्मण उच्चारण करें, क्योंकि श्रुतिने निर्देश किया है, ब्राह्मण ही आग्नेय है। 'देव सवितः' इत्यादि त्रिष्टुप्-छन्दोविशिष्ट सावित्री क्षत्रियके तथा जगतीछन्दोयुक्त सावित्री वैश्यके उच्चार्य है। जगतीच्छन्दकी सावित्री क्या है? पारस्करगृह्यसूत्रके भाष्यकार गदाधरने लिखा है,—

"जगतीच्छन्दस्कां विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते इत्यृचं वैश्यस्यानुब्रूयात्" अर्थात् जगतीछन्दोयुक्त 'विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते' इत्यादि ऋक् वैश्यकी उच्चार्य है। ऋग्वेदमें उक्त जगती छन्दकी सावित्री इस तरह पूर्णाकार दृष्ट होती है। (इस ऋक्के देवता सविता हैं, ऋषि आत्रेय श्यावाश्व।)

"विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।
वि नाकमख्यत सविता वरेण्यो ऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति॥"*
(५।८१।२)

अर्थ—ज्ञानवान् सविता स्वयं विश्वरूप धारण करते रहते हैं। वे द्विपद और चतुष्पदोंके सब कल्याणोंका विधान करते हैं। उन वरणीय सविताने स्वर्गलोकको प्रकाशित किया है और ऊषाके पीछे विराजित हुए हैं।

उक्त ऋक् मंत्र वैश्यका अवलम्बन है, इससे तैत्तिरीयब्राह्मणमें वैश्यको ऋक्जात और विश्वदेव सविता मन्त्रात्मक जगतीछन्दः ही वैश्य वर्ण ग्राह्य है। इससे कृष्णयजुर्वेदमें विश्वदेव और जगती छन्दःके साथ वैश्यकी उत्पत्ति कल्पित हुई है।

वैश्यवर्णप्राप्तिके सम्बन्धमें ऋग्वेदके ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है—

"त्रयाणां भक्षाणामेकमाहरिष्यन्ति सोमं वा दधि वाऽपो वा स यदि सोमं ब्राह्मणानां स भक्षो ब्राह्मणांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि ब्राह्मणकल्पस्ते प्रजायां माजनिष्यत आदाय्यापाय्यावसायी यथाकामप्रयाप्यो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति ब्राह्मणकल्पोऽस्य प्रजायामाजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा ब्राह्मणतामभ्युपैतोः स ब्रह्मबन्धवेन जिज्यूषितोऽथ यदि दधि वैश्यानां स भक्षो वैश्यांस्तेन भक्षेण जिन्विष्यसि वैश्यकल्पस्ते प्रजायां माजनिष्यतेऽन्यस्य बलिकृदन्यस्याद्यो यथाकामज्येयो यदा वै क्षत्रियाय पापं भवति वैश्यकल्पोऽस्य प्रजायां माजायत ईश्वरो हास्माद् द्वितीयो वा तृतीयो वा वैश्यतामभ्युपैतोः स वैश्यतया जिज्यूषितः"
(ऐतरेय ब्रा० ७।५.३)

अनभिज्ञ ऋत्विक् क्षत्रियके तीन हेय भक्षके बीचसे एक अंश लेते हैं। हय, सोम, या तो दधि, या जल।

---

* सायनाचार्यने उक्त सूक्तका इस तरह भाष्य किया है,—कवि मेधावी सविता विश्वा सर्वाणि रूपाण्यात्मनि प्रति मुञ्चते बध्नाति धारयति। किञ्च भद्रं कल्याणं गमनादिविषयं प्रासावीत् अनुजानाति। कस्मै द्विपदे मनुष्याय चतुष्पदे गवाश्वादिकाय। किञ्च सविता सर्वस्य प्रेरको देवो वरेण्यो वरणीयः सन् व्यख्यत् ख्यापयति प्रकाशयति। किं नाकं नास्मिन्नकं दुःखमस्तीति नाकः स्वर्गः। यजमानार्थं स्वर्गं प्रकाशयतीत्यर्थः। स देव उषसः प्रयाणमुदयमनु वि राजति प्रकाशते। सवितुरुदयात् पूर्वं ह्युषा उदेति।

शुक्लयजुर्वेदमें भी (१२।३) उक्त वैश्यसावित्री दिखाई देती है। भाष्यकार महीधरने वैश्यसावित्रीकी ऐसी व्याख्या की है।

(का० १६।५।६) 'शिक्यपाशं प्रतिमुञ्चते षड्व्यामं विश्वा रूपाणीति। उत् ऊर्ध्वं यम्यते नियम्यते यैस्ते उद्यामा रज्जवः षड्व्यामा रज्जव ऊर्ध्वाकर्षणहेतवो यस्तेदृशमासन्दीस्थं शिक्यपाशं यजमानः कण्ठे बध्नातीति सूत्रार्थः। सवितृदेवत्या जगती श्यावाश्वदृष्टा। कविः विद्वान् क्रान्तदर्शनः। वरेण्यः श्रेष्ठः सविता सर्वस्य प्रसविता सूर्यः विश्वा विश्वानि सर्वाणि रूपाणि प्रतिमुञ्चते द्रव्येषु प्रतिबध्नाति रात्रितमोऽपहृत्य रूपाणि प्रकाशयतीत्यर्थः। यश्च द्विपदे चतुष्पदे द्विपाद्भ्यश्चतुष्पाद्भ्यो मनुष्यपश्वादिभ्यो भद्रं कल्याणं स्वस्वव्यवहारप्रकाशनरूपं श्रेयः प्रासावीत् प्रसौति प्रेरयति। यश्च नाकं स्वर्गं व्यख्यत् विख्याति प्रकाशयति अस्यतिवक्तिख्यातिभ्योऽङ् इति च्लेरङ्। यश्च उषसः उषःकालस्य प्रयाणं गमनमनु पश्चात् उषःकाले व्यतीते सति विराजति विशेषेण दीप्यते। ऊषाः सवितुः पुरोगामिनीति सवितुः स्तुतिः। ईदृशः सविता शिक्यं प्रतिमुञ्चत्विति शेषः।'

अनभिज्ञ ऋत्विक् ब्राह्मणभक्ष सोम जब ग्रहण करेंगे, अपने ब्राह्मण लोगोंको ही जीत लेंगे, अपने ब्राह्मणकल्प होंगे, वे आदायी या प्रतिग्रहशील, आपायी या सोमपानमें आग्रहान्वित और आवसायी या परगृहमें सर्वदा यात्रा-कारी होंगे और इच्छानुसार सर्वदा कालयापन करेंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष हो जाये, (अर्थात् यज्ञकालमें क्षत्रिय यदि ब्राह्मणका अंश ले) तो उसकी सन्तति भी ब्राह्मणकल्प होगी! द्वितीय या तृतीय पुरुषमें (पुत्र या पौत्र) सम्पूर्ण ब्राह्मण्यलाभके उपयुक्त होगा और ब्राह्मणो-चित भिक्षादि द्वारा जीविकानिर्वाह करनेकी इच्छा करेगा। जब अनभिज्ञ ऋत्विक् वैश्यका अंश दधि आहरण करें, तब वैश्यों पर उसकी मतिगति फिरेगी। उसका वंश कल्प हो कर जन्म ग्रहण करेगा। दूसरे राजाको कर देगा। राजाकी इच्छानुसार वे तिरस्कारका भागी होंगे। जब क्षत्रियको कोई दोष होगा (अर्थात् यदि यज्ञकालमें क्षत्रिय वैश्यका अंश दधि ले ले), उसका सन्तान वैश्य हो कर जन्मेगा। द्वितीय या तृतीय पुरुष (पीढ़ीमें) (पुत्र या पौत्र) वैश्य जाति होनेके उपयुक्त होगा और वैश्यरूपसे जीविका निर्वाह करनेकी इच्छा करेगा।

उद्धृत वैदिक प्रमाणादि अवलम्बनमें आभास मिल रहा है, कि प्रजा साधारणका भूमिकर्षण, गोरक्षा और अन्नाधान ही उपजीविका थी। जो राजकर देते और राजपीड़ित होते तथा जगतीछन्दःविशिष्ट ऋग्मन्त्र ही जिनके सावित्री या आर्यत्वका निदर्शन निर्दिष्ट थे, वैदिक युगमें वे 'अर्य्य' या वैश्य नामसे अभिहित होते थे।

एक-एक वर्णके लिये एक एक यज्ञीय द्रव्य ग्रहणकी व्यवस्था थी। एक वर्ण दूसरे वर्णके ग्राह्य द्रव्यके ग्रहण करने पर उसको उसीके समाजमें मिल जाना पड़ता है और उसके वंशधर उस वर्णके नाममें पुकारे जाते थे। ऐसी अवस्थामें दिखाई देता है, कि वैश्यरूपसे एक भिन्नवर्ण रहने पर भी उनके कार्य और धर्मके अनुसार वे अन्य-वर्णमें मिल सकते थे। उस समय इस समयकी तरह कठोरता नहीं थी। वृत्ति ही वर्णवाची थी।

मगोंके (पारस्यदेशके) आदि धर्मशास्त्र 'जन्द अवस्ता'-के अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ आथ्रव, २ रथ-एस्तास्रो, ३ वास्त्रिय-फ्सुयण्ट और ४ हूइति इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यश्न १९।४६) यश्नके संस्कृतटीका-कार नेरिओ सिंहने उक्त चार शब्दोंका यथाक्रम अर्थ किया है—१ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन्, ४ प्रकृतिकर्मन्। यहां कुटुम्बीसे वैश्य ही समझा जाता है।

वेदमें चार वर्णोंके मध्यमें "आर्यास्त्रै वर्णिकः" अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण आर्य और शूद्र अनार्य या डाकुओंमें गिने जाते थे। आर्य, दास, दस्यु आदि शब्द देखो। उक्त चार वर्णोंका उल्लेख रहने पर भी तदुत्पन्न विभिन्न जातिके प्रसङ्ग वेदमें नहीं। वरं शुक्लयजुःसंहितामें—

"नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमोनमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः" (१६।२७) इस मन्त्रमें तक्षा या शिल्पी, रथकार या सूत्रधार, कुलाल या कुम्भकार, कर्मार या कमार (लोहार), निषाद या मांसाशी गिरिचर, पुंजिष्ठ या बहेलिया, श्वन्य या कुत्तेका पालन करनेवाला (शिकारी), मृगयु या व्याध इत्यादि विभिन्न शब्दोंका उल्लेख रहने पर भी ये सब कर्मवाची जातिवाची नहीं।

स्मृतिसंहिता-प्रचारके समय नाना जातियोंकी उत्पत्ति हो रही थी सही, किन्तु उस समय भी आर्य-समाजमें समाजबन्धनकी कठोरता न थी। इस समय भी एक वर्ण गुणकर्मके अनुसार वर्णान्तर आश्रय कर सकते थे। मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर याज्ञवल्क्य-संहिताका उद्देश्य इस तरह समझा गये हैं—

व्यवस्था च—"ब्राह्मणेन शूद्रामुत्पादिता निषादी सा ब्राह्मणेनोढ़ा काञ्चिज्जनयति। सापि ब्राह्मणे-नोढ़ा अन्यामित्यनेन प्रकारेण षष्ठी सप्तमं ब्राह्मणं जन-यति। ब्राह्मणेन वैश्यायामुत्पादिता अम्बष्ठा साप्यनेन प्रकारेण पञ्चमो षष्ठं ब्राह्मणं जनयति। एवमुग्रा क्षत्रियेनोढा माहिष्या च यथाक्रमं क्षत्रियं षष्ठं पञ्चमं जनयति।"

अर्थात् ब्राह्मण द्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या निषादी। यह कन्या यदि ब्राह्मणसे व्याही जाये और उससे भी कन्या हो और उस कन्याको फिर यदि

ब्राह्मणसे ही विवाह हो और उसके गर्भसे भी कन्या उत्पन्न हो, तो इस तरह षष्ठकन्या सप्तम पुरुषमें ब्राह्मण जन्मा सकेगी। ब्राह्मण द्वारा शूद्रासे उत्पन्ना कन्या अम्बष्ठा होती है, किंतु उपरोक्त प्रकारसे यह कन्या भी षष्ठ पुरुषमें ब्राह्मण उत्पन्न कर सकती है। इस क्षत्रिय विवाहिता उग्रा या माहिष्या यथाक्रम षष्ठ या पञ्चम पुरुषमें क्षत्रिय उत्पादन करती है।

पुराणमें भी हम वेदस्मृतिवचनोंके समर्थक अनेक प्रमाण पाते हैं। कितने ही क्षत्रियराजवंश वैश्यत्व प्राप्त हुए हैं और कितने ही वैश्य कर्मबलसे ब्राह्मणत्व लाभ कर चुके हैं।

सब प्रधान पुराणोंमें क्षत्रियराज नेदिष्ट या दिष्टके पुत्र नाभाग हैं। विष्णु और भागवतपुराणके मतसे नाभागने कर्मके अनुसार ही वैश्यत्व प्राप्त किया था।

"नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः॥"

(भागवत ९।२।२३)

मार्कण्डेयपुराणके अनुसार नाभाग वैश्यकन्याका पाणिग्रहण कर वैश्यत्व प्राप्त हुए थे। फिर हरिवंशमें लिखा है, कि नाभागारिष्टके दो पुत्र वैश्य हो कर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त हुए थे।

"नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।"

(हरिवंश ११ अ०)

मत्स्यपुराणसे जाना जाता है, कि भलन्द, वन्ध और संस्कृति ये तीन आदमी वैश्य वेदके मंत्र प्रकाश करते हैं*।

महाभारतमें भगवान् व्यासने भी लिखा हैः—

"भार्याश्चतस्रो विप्रस्य द्वयोरात्मा प्रजायते।
आनुपूर्व्याद्द्वयोर्हीनौ मातृजात्यौ प्रसूयतः॥ ४
तिस्रः क्षत्रियसम्बन्धाद्द्वयोरात्मास्य जायते।
हीनवर्णास्तृतीयां शूद्रा उग्रा इति स्मृतिः॥ ७
द्वे चापि भार्ये वैशस्य द्वयोरात्मास्य जायते।
शूद्रा शूद्रस्य चाप्येका शूद्रमेव प्रजायते॥" ८

ब्राह्मणोंके लिये चार वर्णोंकी भार्या विहित है। इन चार भार्याओंमेंसे जो ब्राह्मणकन्या और क्षत्रियकन्यासे उत्पन्न हैं, वे उनको आत्मा या तत्सदृश ब्राह्मण ही होते हैं। इसके बाद अनुलोमक्रमसे अन्यान्य दो पत्नियों (अर्थात् वैश्य और शूद्रकन्या)के गर्भसे उत्पन्न पुत्र मातृजाति (वैश्यकन्याका पुत्र वैश्य और शूद्रकन्याका पुत्र शूद्र) होता है। इस तरह क्षत्रियके तीन (क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा) भार्याओंमें प्रथम दो अर्थात् क्षत्रिय और वैश्यकन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्र क्षत्रिय और तृतीय हीन वर्ण शूद्राके गर्भसे उत्पन्न उग्र शूद्र गिना जाता है। वैश्यके भी (वैश्या और शूद्रा) दो भार्या निहित है। इन दोमें ही उनकी आत्मा या तत्सदृश वैश्य वर्ण जन्मता है। शूद्रके लिये एक शूद्रा ही निर्दिष्ट और उसमें शूद्र वर्ण ही जन्मते हैं।

मनुस्मृतिमें लिखा है, कि पशुपालन, कृषि और वाणिज्य वैश्यकी जीविका है। दान, याग और अध्ययन इनका धर्म है। वैश्यके स्वकर्मोंमें वाणिज्य और पशुपालन ही प्रशस्त है आपत्काल उपस्थित होने पर वैश्य शूद्रवृत्ति द्वारा जीविका अर्जन कर सकता है। किन्तु जब आपद्‌से मुक्त हो जायेगा, तब उनको शूद्रवृत्ति छोड़ देना होगा। वैश्योंका उपनयन संस्कार होता है। इसीसे यह द्विजाति कहे जाते हैं। इनका वेदमें अधिकार है। गर्भकालसे गणना कर १२ वर्ष पर उपनयन होना चाहिये। यदि इस समय वैश्योंका उपनयन न हो, तो २४ वर्ष तक उपनयन हो सकता है। इस २४ वर्षके भीतर किसी समय भी उपनयन हो सकता है। २४ बीत जाने पर इनको पतितसावित्रीक होना पड़ता है। अतएव इनको इस समयके भीतर ही उपनयन करा डालना एकान्त कर्त्तव्य है। इनका अशौच पन्द्रह दिनका है। (मनु)

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि गर्भाधानसे ले कर श्राद्धपर्यन्त वैश्योंके सब काम वेदमन्त्रोंसे ही होते हैं। वैश्योंका धर्म, यजन, अध्ययन और पशुपालन है। वृत्ति—कृषि, वाणिज्य, गोपोषण, कुसीदग्रहण और धान्यादि बीज रखना। आपद्‌काल उपस्थित होने पर वैश्य अन्य वृत्ति अर्थात् शूद्रवृत्तिसे भी अपनी जीविका चला सकता है। क्षमा, सत्य, दम, शौच, दान, इंद्रियसंयम,

---

* "भलन्दश्चैव वन्धश्च संस्कृतिश्चैव ते त्रयः
ते च मन्त्रकृतो ज्ञेयाः वैश्यानां प्रवराः सदा।
इत्येकनवतिः प्रोक्ताः मन्त्राः यैश्च बहिष्कृताः"
(मत्स्यपु० १३२ अ०)

अहिंसा, गुरुसेवा, तीर्थ पर्यटन, दया, सरलता, लोभ-त्याग, देवब्राह्मणपूजा और असूया परित्याग, ये ही इनके सामान्य धर्म हैं। (विष्णुसं० ३ अ०)

धर्मसूत्रमें हम पहले विभिन्न वर्णके संस्रवसे भिन्न भिन्न जातिकी उत्पत्ति और विस्तृति देखते हैं। फिर भी उस समय भी यहांकी तरह सहस्र सहस्र जातिकी सृष्टि नहीं हुई। मूल वर्णको छोड़ कर वशिष्ठधर्मसूत्रमें १०, बौधायन-धर्मसूत्रमें १४ और गोतम धर्मसूत्रमें १६ मिश्र जातियोंका उल्लेख दिखाई देता है*। धर्मसूत्रमें कुल चार मूल वर्ण हैं और २४ मिश्र जातियोंका उल्लेख है।† इन २४ में वैश्य वर्णके संस्रवसे माहिष्य, अम्बष्ठ, करण, रथकार और मूर्जकण्टक, ये पांच अनुलोमज हैं और अन्त्यावसायी, आयोगव, धीवर, पुक्कश, वैदेह, मागध और रामक ये ७ प्रतिलोमज सङ्करजातियोंकी उत्पत्ति हुई थी। अथच कर्मकार, कांस्यकार, कुम्भकार, चित्रकार, पर्णकार, या पर्णजीवी, शङ्खकार, स्वर्णकार, सूत्रकार, स्थपति और नाना प्रकारके व्यवसायी वणिक् भी स्वतंत्र जाति नहीं गिने जाते। इसमें सन्देह नहीं, कि इन सब वृत्ति-जीवियोंमें बहुतेरे वैश्य समाजके अन्तर्भुक्त थे, किन्तु वे उस समय एक एक भिन्न जाति नहीं कहे जाते थे। सम्भवतः उक्त जनसाधारण वैश्य-वर्णोचित आर्य धर्मका ही आश्रय ले कर चलते थे। प्रायः ३००० वर्ष पहले तक भारतमें ऐसी ही व्यवस्था थी। इसके बाद भारतवर्षमें सौर, जैन और बौद्ध-प्रभाव विस्तृत हुए। प्रजासाधारण या वैश्यसमाज प्रधानतः नव प्रवर्त्तित धर्मसम्प्रदायके पृष्ठपोषक हुआ था।

क्षत्रियसमाज भी उनके अनुकूल ही था ; किन्तु उक्त सम्प्रदायके साथ वैदिक आचार्योंके यथेष्ट मतभेद हो जानेसे आर्यसमाजमें प्रथमतः एक घोरतर समाज विप्लव उपस्थित हुआ था। इस समय जनसाधारणने क्षत्रियको ही ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ माना। नाना प्राचीन जैन और बौद्धोंके ग्रन्थोंसे उस समयके जनसाधारणका मत मालूम होता है। भारतवर्ष शब्दमें देखो। इस समय क्षत्रिय और वैश्य समाज प्रचलित आचार-व्यवहारमें भी कुछ परिवर्त्तन हो रहा था। साधारणका विश्वास है, कि क्षत्रिय-प्राधान्यमें ही जैन और बौद्धोंका अभ्युदय है। अवश्य ही क्षत्रियके ज्ञानबल और बाहुबलसे उक्त समय धर्मकी प्रतिष्ठा हुई थी, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु वैश्यके अर्थबलने भी इन दो साम्प्रदायिक धर्मका सुप्रतिष्ठित करनेके पक्षमें यथेष्ट साहाय्य किया था। वणिक् शब्दसे धनवान् और वैश्य जाति समझी जाती थी। वणिक् और पणिक वैश्य शब्दका पर्याय है। वैदिक समयसे यह वर्ण वाणिज्यके लिये सभ्यजगत्में सभी जगह जाता और व्यवसाय वाणिज्य कर पैसा कमाता था।

आदि सभ्यजगत्के इतिहासमें फिणिक् (Phoenician) नामक जो प्राचीन वणिक् जातिका उल्लेख हम पाते हैं, ऋक्संहितामें वे ही पणि नामसे प्रथित हैं। उस आदि वैदिक युगसे ही वे गो-रक्षा, कृषि और वाणिज्य अर्थात् मुख्य वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका-निर्वाह करते थे।

आर्यवणिक् देश और विदेशमें समुद्रपथसे नाना स्थानोंमें जा कर चीजोंकी खरीद फरोख्त करते थे। वेद देखो।

ऋक् संहिताके १।५६।२ मन्त्रमें धनार्थी पणियोंके समुद्रगमनके और ५।२४।७ मन्त्रमें आहरणका उल्लेख है। उक्त वेदके ४।२४।९ मन्त्रमें द्रव्यमूल्य और क्रय-विक्रय (खरीद फरोख्त)की प्रथाका आभास पाया जाता है।

अथर्ववेदसे भी हम जानते हैं, कि वैदिक युगमें

---

* गौतम धर्मसूत्रके मतसे—१ अम्बष्ठ, २ उग्र, ३ करण, ४ चण्डाल, ५ दौष्यन्त, ६ धीवर, ७ निषाद, ८ पारशव, ९ पुक्कश, १० वेण, ११ मूर्द्धकण्टक, १२ मागध, १३ माहिष्य, १४ मूर्द्धावसिक्त, १५ यवन, १६ सूत।

† वशिष्ठ धर्मसूत्रके मतसे—१ अन्त्यावसायी, २ अम्बष्ठ, ३ उग्र, ४ चण्डाल, ५ निषाद, ६ पारशव, ७ पुक्कश, ८ वेण, ९ रामक और १० सूत्र।

बौधायन धर्मसूत्रके मतसे—१ अम्बष्ठ, २ आयोगव, ३ उग्र, ४ कुक्कुटक, ५ चण्डाल, ६ निषाद, ७ पारशव, ८ पुक्कश, ९ वेण, १० मागध, ११ रथकार, १२ श्वपाक, १३ सूत, १४ क्षत्ता।

वाणिज्य उद्द ेश्यसे विदेश जानेके समय वणिक् अपनी मङ्गलकामनाके लिये इन्द्र, अग्नि आदि देवताओंकी स्तुति करते थे। इन सब मन्त्रोंमें क्रय-विक्रय और लाभकी बातें प्रकट हुई हैं।

कृषिवृत्तिके सम्बन्धमें भी ऋग्वेदमें भी बहुतेरे प्रमाण मिलते हैं। ऋक् संहिताके १।२३।१५ मंत्रमें कृषक द्वारा बैलकी सहायतासे जौकी खेती करनेकी बात मिलती है। उक्त संहिताके ४र्थ मण्डलके ५७ सूक्तमें क्षेत्रपतिकी स्तुतिके प्रसङ्गमें बलीवर्द ले कर कृषकों द्वारा भूमिकर्षण और बलीवर्द ले कर हल और उसके फालसे (फार) सुखपूर्वक भूमि पर गमन और पर्जन्य द्वारा मधुर जलसे पृथ्वीके जलमयी होनेकी बात विवृत हुई है। सिवा इसके १०।१०१ सूक्तमें कृषिकार्य-विषयक अनेक तथ्य मिलते हैं।

वैदिक आचार्य्य बड़े ही मांसप्रिय थे। किन्तु पणिगण एक समयमें निरामिषाशी थे, इसीसे शुरूसे ही इन दोनों श्रेणियोंमें बहुत मतविरोध था।

यद्यपि वणिकोंको पाश्चात्य भूखण्डमें वाणिज्य-प्रसङ्गमें आर्यसभ्यता विस्तार और सुविस्तृत राज्य-प्रतिष्ठामें सुयोग मिलता था, किंतु उनकी जन्मभूमि भारतवर्षमें उनके साथ आचार्य और याज्ञिक राजन्य-वर्ग द्वारा पहले उपयुक्त अच्छा व्यवहार नहीं हुआ था। ऋग्वेदके ऐतरेय-ब्राह्मणसे ही उद्धृत करते हैं—

'ते प्रजाया माजनिष्यतेऽन्यस्य वलिकृदन्यस्याद्यो यथा-कामज्येयः"* (७।५।३)

अर्थात् करप्रदान, पराधीनता और तिरस्कार-भागिता ये वैश्योंके गुण वेदके प्राचीनतम ब्राह्मणमें निर्दिष्ट हुए हैं। राजाको वैश्य कर प्रदान करेंगे और उसके अधीन रहेंगे, यह अवश्य न्याय है, किंतु वे तिरस्कारभागी होंगे क्यों? यह क्या वैश्योंके प्रति वलिप्रिय ब्राह्मणकारकी विद्वेषदृष्टि नहीं? साधारण कृषिसमाज पर कृपादृष्टि रहने पर भी परवर्ती स्मृति, पुराण और नाना संस्कृत ग्रंथोंसे भी पणिक् या प्रकृत वैश्यसमाज पर बराबर ब्राह्मणशास्त्रकारगणकी कृपा-दृष्टिका अभाव था।

जो हो, क्षत्रिय राजाओंके दक्षिण हस्तस्वरूप श्रेष्ठी (सेठ) या धनी वणिक्गण राजा द्वारा वैसा निग्रह-भागी नहीं हुए। राजसभामें वे बहुत सम्मान पा गये हैं।

नाना जैन, बौद्ध और शैवग्रन्थोंमें इसका यह यथेष्ट प्रमाण है, कि वैश्य वणिकोंसे शैव, सौर, जैन या बौद्ध-धर्म विशेषरूपसे परिपुष्ट हुए थे। उनके यत्नसे बौद्ध-धर्म भारतवर्षको छोड़ बहुत दूर देशान्तरोंमें प्रचारित हुआ था। उनके द्वारा प्रतिष्ठित नाना शैव और बौद्ध देवोंके मन्दिर केवल भारतवर्षमें नहीं सुदूर चीन, कम्बोज, यवद्वीप, सुमात्रा आदि भारत महासागरीय द्वीपों और अनुद्वीपोंमें सुशोभित हुए थे। आनाम, श्याम, कम्बोज, सिंहल आदि स्थानोंमें उन सब प्राचीन वणिकोंके वंशधरगण आज भी वास कर रहे हैं। श्याम देशके इतिहास-लेखक बाउरिङ्ग साहबने लिखा है—

"The forefathers of these people (of Anam, Siam, Cambodge) came from the Ganges valley, and probably they were the people of Bengal....The cut of the face is like that of a Bengali..At one time Cambodia was a powerful Hindoo kingdom and the Bengali merchants and traders used to frequent the Island....The descendants of the Bengali Baniks (traders and navigators) are found in Ceylon, Siam, Anam and Borneo."•

पहले ही देखा चुके हैं, खेतिहर और वणिक् इन दो श्रेणियोंके मनुष्योंसे ही वैश्य-समाज या प्रजासाधा-रण था। इनसे कर ले कर राजा राजत्व करता था। कारण शूद्रोंसे कर वसूल करनेकी प्रथा ही न थी।

* सायणाचार्यने इस तरह भाष्य किया है—"वैश्यश्च वाणिज्यं कुर्वन् अन्यस्य राज्ञो वलिकृत् वलिपूजां करोति, करं प्रयच्छतीत्यर्थः। अतएव अन्यस्य राज्ञः आद्यः भक्ष्योऽधीनो भवतीत्यर्थः। तस्य राज्ञः काममिच्छामनतिक्रम्य ज्येयः अभि-भवनीयो भवति। ज्या अभिभवे इति धातुः। त एते करप्रदान पराधीनत्वतिरस्कार्यत्वाख्या वैश्यगुणाः।" (सायण ७।५।३)

• Bowring's Siam, Vol II

गौतम-धर्मसूत्रसे हम जानते हैं, कि कृषक राजाको एक दशमांश, एक अष्टमांश या एक षष्ठांश कर देते थे। गाय आदि पशु और सुवर्ण पर ५०वां अंश, पण्यद्रव्य पर शुल्क हिसाबसे २० अंश, मूल फल, फूल, मेवज लता गुल्म आदि, मधु, मांस, तृण और जलानेकी लकड़ी पर ६०वां अंश कर वसूल होता था। कर्मकार और शिल्पियोंको मासमें एक दिन राजाका काम कर आना पड़ता था।

पाटलिपुत्रवासी यूनानी दूत भारतीय प्रजासाधारणके सम्बन्धमें दो हजार वर्ष पहले लिख गया है—

"They live happily enough, being simple in their manners and frugal. They never drink wine, except at sacrifices. Their beverage is a liquor composed from rice instead o b-rley, and their food is principally a rice pottage. The simplicity of their laws and their contracts is proved by the fact that they seldom go to law. They have no suits about pledges and deposits, nor do they require either seals or witnesses, but make their deposits and confide in each other. Their house and property they generally leave unguarded. These things indicate that they possess sober sense. Truth and virtue they hold alike in esteem. Hence they accord no special privileges to the old unless they possess superior wisdom."†

इस समयके कुछ दिनों बादके रचे जैनियोंके 'उपाशकदशा सूत्र'से मालूम होता है, कि आनन्द नामक एक वैश्य गृहस्थ था। जैनधर्मके अनुसार यतिधर्म न ग्रहण करने पर भी पञ्च अनुव्रत उसने ग्रहण किया था। उसने सब तरहकी जीवहिंसा, सब प्रकारकी मिथ्या प्रवञ्चना (ठगना) एक समयमें ही छोड़ दी थी। वह शिवनन्दा नामकी एक स्त्रीसे प्रेम करता था। ४ करोड़ सुवर्ण उनके कोषागारमें रक्षित था, ४ करोड़ कुसीदके लिये चल रहा था और ४ करोड़ सोनेकी ज़मींन्दारी भी थी। यही उसकी आयकी सीमा थी। अब इस धनको बढ़ानेकी इच्छा उसको न थी। इसको छोड़ उसके पास ४ दल गौ भैंसें थीं। एक दलमें १०००० गाय भैंस होती थीं। ५०० हल और प्रत्येक हल पर उपयुक्त १०० निवर्त्तन जमीन थी। ५०० शकट, इसके सिवा जलपथसे वैदेशिक वाणिज्यके लिये चार जहाज और देशके व्यवसायके लिये दूसरे ४ जहाज मौजूद रहते थे।

उपासकसूत्रसे जिस एक सामान्य वणिक्‌का परिचय दिया गया, उससे समझना होगा, कि भारतीय वैश्यसमाज किस तरह उन्नत था। मृच्छकटिक नाटकसे भी राजधानीमें "श्रेष्ठी चत्वर" पाते हैं; यहां धनकुबेर वास करते थे। भारतके सभी बड़े शहरोंमें उनकी कोठियां थीं। कई तरहके जवाहर, नाना प्रकारके रेशमी और मूल्यवान् द्रव्य और स्तूपाकार धनराशि बहुजनपूर्ण शहरकी निभृत गलियोंकी अन्धकारपूर्ण कोठीमें पड़ी रहती थी प्रयोजन होने पर राजाधिराजको भी उनसे कर्ज लेना पड़ता था। उनको अहङ्कार और गौरवस्पृहा न थी, वे स्वजातिपोषण, प्रकाण्ड प्रकाण्ड देवालय स्थापन और देवगुरुमें भक्तिप्रदर्शन द्वारा अक्षय नाम अर्जन कर गये हैं। आज भी उनके वंशधर श्रेष्ठियोंमें भी वह पूर्वस्मृति जागरित है। भारतवर्षके सब जैन तीर्थ आज भी इस उदार चरित श्रेष्ठियोंके यत्न और व्ययसे विद्यमान हैं। आज भी सैकड़ों जैन और हिन्दू देवालय भारतीय वणिक् समाजके महत्त्वकी घोषणा कर रहे हैं। उन सब श्रेष्ठी और शिल्पियोंके प्रभावसे पाश्चात्य जगत् भी चमत्कृत हुआ था। ऐतिहासिकोंने लिखा है—

"These artists are marked all through the known world, and the products of their skill were appreciated in the court of Harun-al-Rashid in Baghdad, and astonished the great Charlemagne and his rude barons, who as an English poet has put it, raised their visors and looked with wonder on the silks

† Bohn's Translation of Strabo, Vol, III

and brocades and jewellary which had come from the far East to the infant trading marts of Europe "¶

प्राचीन वैश्य समाजका विशेषत्व—सरलता और आडम्बर हीनता, लक्ष्य—वाणिज्य और कृषि। जिन करोड़पति आनन्दकी बात हम पहले कह आये हैं, उन आनन्दका आहार-व्यवहार नितान्त सामान्य था। किसी विषयमें उनके सुख भोगकी लालसा न थी, उनके नित्य आवश्यकीय खाद्य और व्यवहार्य्य द्रव्यकी जो सूची उक्त जैन शास्त्रकारने उद्धृत की है, वह यहां उद्धृत कर दी गई।

"आनन्द नित्य निद्रा त्याग कर लाल गमछा और ताजा दतवन ले कर मुख धोते थे। इसके बाद एक फल और आँवलेका श्वेतांश गूदा भक्षण कर दो तरहके तेल शरीरमें मालिश कराते थे। इसके बाद शरीरमें एक प्रकारका सुगन्धित चूर्ण लेप कर ८ घड़े जलसे शरीर धो कर एक जोड़ा सूती कपड़ा पहनते थे। उनके नित्य व्यवहारके लिये कुंकुम, चन्दन, मुसब्बर, कस्तूरी आदि द्रव्य अङ्गमें लेपन करते और घरमें धूप आदि जलाते थे। उनकी पूजाके लिये श्वेत पद्म और दूसरे एक तरहका फूल आता था। उनके कानमें अलङ्कार और हाथमें अंगूठी थी।

"खाद्य द्रव्यके उपभोगमें भी वे विशेष आडम्बरी नहीं थे। कई तरहके शीतल पानीय, चावल दालकी खिचड़ी, घीमें पकाया चीनीकी चासनीमें डुबोया पीठा, नाना प्रकारके चावलका अन्न, उड़द, मूंग और सोना मूंगकी दाल, शरत्ऋतुका संगृहीत गायका घी, साधारण व्यञ्जन आदि और पलङ्ग उनके नित्यका व्यवहार्य्य था। सुपरिस्कृत पानीयके लिये वे वृष्टि-जल धरते थे। पांच तरहके मसालोंका पान उनकी मुखशुद्धिके लिये प्रस्तुत होता था।" (उपासकदशासूत्र)

एक करोड़पतिका कैसा सरल और आडम्बरहीन आचरण है? इसीलिये ही भारतीय वणिक्गण समय पर महान और साधु आख्यासे अभिहित हुए थे। वैश्य साधारणमें क्या क्या व्यवसाय करते थे और उनमें कौन निन्दित और कौन उत्तम था, मनुसंहिताके आपद्धर्ममें उसका कुछ आभास मिलता है।

मनुसंहिताके दशवें अध्यायमें लिखा है—ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी अपनी वृत्तिकी असम्भावना होने पर और धर्मनिष्ठामें व्याघात होने पर निषिद्ध वस्तु परित्र्जनपूर्वक वैश्यके विक्रेतव्य वस्तुजात विक्रय कर जीविका निर्वाह करे। किन्तु उनके लिये सब तरहके रस, तिल, प्रस्तर, सिद्धान्न, लवण, पशु और मनुष्य इन सब द्रव्योंका विक्रय निषेध है। कुसुम्भादि द्वारा रक्तवर्णका सूत निर्मित सब तरहके वस्त्र, शण और अतसी तन्तुमय वस्त्र और रक्तवर्ण न होने पर भी मेषलोमविनिर्मित कम्बल आदि भी विक्रय करना निषेध है। जल, शस्त्र, विष, मांस, सोमरस, सब तरहके गन्धद्रव्य, क्षीर, दधि, सोम, घृत, तैल, मधु, गुड़ और कुश—ये सब वस्तुएं भी निषेध हैं। सब तरहके आरण्य पशु, विशेषतः हाथी या दंष्ट्री पशु अखण्डित खुर अश्वादि, इनके अलावे पक्षी, नील, मद्य और लाह—ये सब चीजें भी विक्रय करना मना है। स्वयं कर्षण द्वारा तिल उत्पादन पूर्वक अचिरकालमें विशुद्धावस्थामें बेच सकता है। किन्तु लाभकी आशासे अधिक दिन घरमें रख छोड़ कर फिर वह उसे बेच न सकेगा। भोजन, मर्दन एवं दान को छोड़ यदि कोई तिल बेचे, तो वह पितृपुरुषोंके साथ कृमित्व प्राप्त हो कर कुक्कुरविष्ठामें निमग्न होता है। ब्राह्मण मांस, लवण और लाह बेचते ही पतित होता है। किन्तु दुग्ध क्रमागत तीन दिनों तक बेचनेसे शूद्रत्व प्राप्त होता है। मांस आदिको छोड़ अन्यान्य निषिद्ध वस्तुओंको लगातार सात दिनों तक बेचने पर ब्राह्मण वैश्यत्व को प्राप्त होता है। रसद्रव्य लिया जा सकता है, किन्तु रसद्रव्यके साथ लवणका परिवर्त्तन नहीं होता। सिद्धान्न का विनिमय आमान्नके साथ हो सकता है, किन्तु समान परिमाणसे।

ब्राह्मणके आपद्कालकी जो जीविका कीर्त्तित हुई, क्षत्रिय भी वैसी ही जीविकासे अपना

¶ R, C, Dutt's Civilisation in Ancient India, Vol, II p, 312

निर्वाह करें। किन्तु वह कभी भी विप्रवृत्ति अवलम्बन कर न सकेंगे। यदि कोई अधम जातीय व्यक्ति उत्तम व्यक्तियोंकी वृत्तिसे अपनी जीविकानिर्वाह करे, तो राजाका कर्त्तव्य होगा, कि उसकी सम्पत्ति जब्त कर उसको देशसे निकाल दे। स्वधर्म निकृष्ट होने पर भी लोगोंके अनुष्ठेय नहीं। जात्यन्तर धर्म द्वारा जीवन धारण करने पर भी मनुष्य तत्क्षणात् स्वजातिसे परिभ्रष्ट होता है। वैश्य स्वधर्म द्वारा जीविका निर्वाहमें असमर्थ होने पर झूठा भोजनादि अनाचार परिहार पूर्वक द्विजशुश्रूषादि द्वारा जीविका निर्वाह करें। किन्तु आपद्मुक्त होने पर शूद्रवृत्ति त्याग कर दे।

मनुवचनोंसे मालूम है, कि वैश्य निम्नलिखित चीजोंका व्यवसाय करते थे—

सब तरहके रस, (गुड़, अनार, आंवला, किरात तिक्त आदि), सिद्धान्न (तण्डुलादि), तिल, पाषाण, लवण, कई तरहके पशु, मनुष्य, सब तरहके तांतके कपड़े, लाल वस्त्र, शणका कपड़ा, क्षौम वस्त्र, कम्बल आदि, फल मूल, ओषधि, जल, लौह, विष, सोमरस, क्षीर, दधि, घी, तैल, गुड़, कुश, कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्य, मद्य, माक्षिक, मधु, मोम, शस्त्र, आसव, सब तरहके वन्य पशु, दंष्ट्री या वन्य शूकर आदि, पक्षी, सब तरहके घोड़े, गदहे, खच्चर आदि, नील, लाह, इत्यादि। किन्तु इन सबोंमें कई चीजोंका व्यवसाय श्रेष्ठ वणिकोंके लिये निन्दित था, विशेषतः तैल, दुग्ध, लाह, लवण, मांस, गुड़ और सिद्धान्न जो विक्रय करते थे, वे हेय समझे जाते थे—इसलिये आपद्कालमें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय कभी भी उक्त चीजोंका व्यवसाय न करें।

साधारणतः शूद्र जातिके लिये द्विजसेवाको छोड़ अन्य वृत्तियोंका निषेध होने पर भी विपन्न शूद्र पुत्रदारादिके परिपालनके लिये कारुकार्य और शिल्प कर्म कर सकता था। (मनु १०।९९) यह कारु और शिल्प क्या है? इसके सम्बन्धमें मनुभाष्यकार मेधातिथिने लिखा है:—

"कारुकाः शिल्पिनः सूदतन्तुवायादस्तेषां कर्माणि पाकवयनादीनि प्रसिद्धानि" अर्थात् कारुकर और शिल्पिगण कहनेसे सूपकार या पाचक, तन्तुवाय आदि समझना होगा। उनके कार्य्य पाक या वयन आदि हैं।

परवर्त्ती श्लोकके भाष्यमें भी मेधातिथिने लिखा है,—"तक्षकि वर्द्धकि प्रभृतयः कारवस्तेषां कर्माणि तक्षण वर्द्धनादीनि शिल्पानि यत्र छेद्‌रूपकर्माण्यालेख्यानि।"

प्रसिद्ध मनुटीकाकार सर्वज्ञ नारायणने लिखा है, "कारुकाणां विशिष्टकर्मकराणां चित्रकरादीनां"—कारुकरका अर्थ—प्रथित कमार और चित्रकर भी समझना चाहिये।

सुतरां देखा जाता है, पाचक,* तन्तुवाय, कमार, चित्रकर या पटुआ प्रभृतिका कार्य भी वैश्य या द्विजातिवृत्ति नहीं थी—यह शूद्रवृत्ति थी।

अब समझमें आया, कि कृषि द्वारा सब तरहके अन्न उत्पादन करना, गो भैंसका पालन और अर्थकरा अन्तर्वाणिज्य और वहिर्वाणिज्य ही वैश्य जातिकी उपजीविका है। आश्चर्यका विषय है, कि कृषि और गो-रक्षा वैश्य जातिकी प्रधान वृत्ति कही जाने पर भी समय पर यह वृत्ति हीनवृत्ति गिनी जाती थी। उसका कारण क्या? मनुसंहितामें देखते हैं—

ब्राह्मण और क्षत्रियको यदि वैश्यवृत्ति द्वारा ही जीविका निर्वाह करना हो, तो दोनों ही हिंसा बहुल बलीवर्दादि पश्वाधीन कृषिकार्य यत्नपूर्वक छोड़ दें। यद्यपि कोई कोई कृषिको प्रशंसा करते हैं, फिर भी, यह सज्जननिन्दित है। क्योंकि, हलकी नोकसे जमीनमें

---

* इस समय इस पाचकवृत्तिको ब्राह्मणोंने अपनाया है, किन्तु वास्तविकमें है यह शूद्रवृत्ति। शूद्र जातिमें कौन कौन पाचक हो सकता है अर्थात् किस किसके हाथका सभी द्विजाति भोजन कर सकते हैं, सब स्मृतियोंमें उसका भी उल्लेख है। जैसे—

मनु—"आर्द्धिकः कुलमित्रश्च गोपालो दासनापितौ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥"

(४।२।५३)

याज्ञवल्क्य—शूद्रेषु, दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः।
भोज्यान्ना नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत्॥

(१।१६६)

यमसंहिता—(२०) और पराशरसंहितामें—(११।२०) ऐसे श्लोक दिखाई देते हैं।

तृण जलूका आदि प्राणी मर जाते हैं। (१०।८३-८५)

जिस दिन आर्यसमाजमें कृषिकार्य इस तरह निन्दित हुआ, उसी दिनसे ही वैश्यवर्णकी प्रधान उपजीविका कृषिवर्जनका सूत्रपात हुआ। जो कृषि-वृत्ति वेदवेदाङ्गमें और धर्मसूत्रमें अत्यन्त प्रशस्त गिनी गई है, राजर्षि जनक आदि बहुतेरे आर्य ऋषियोंने समादर से कृषिकार्य किया था, वह कृषिवृत्तिके निन्दित होनेका क्या कारण है? आश्चर्यका विषय है, कि मानवकल्प सूत्रमें, मानवश्रौतसूत्रमें या मानवगृह्यसूत्रमें ऐसी व्यवस्था न रहने पर भी भृगुप्रोक्त मनुसंहितामें ऐसी बातके स्थान पानेका क्या कारण है? इसमें सन्देह नहीं, कि यह जैन और बौद्धोंके प्रभावका ही फल है। "अहिंसा परमो धर्मः" रूपी मूलमन्त्रमें दीक्षित होनेके साथ वैश्य-समाजने भी कृषिवृत्ति छोड़ दी, दृषि और दूसरा व्यवसाय भी ऊंची श्रेणीके लिये निन्दित समझ कर गोरक्षा, पशुपालन आदि कार्योंको भी वैश्योंने छोड़ दिया।

इन वृत्तियोंके त्यागके संबंधमें बङ्गालके एक बहुभाषाभिज्ञ बहुदर्शी पण्डितने कहा था,—"चार वर्णोंके गठित होनेके पहले वैश्य 'विश्' अर्थात् आर्यप्रजासाधारण रूपसे समाजके सब कर्त्तव्य कार्य करते थे। पशुपालन और कृषिकार्यका भार उन पर ही था। जीवनयात्रा निर्वाहके सभी कार्य और अर्थकरी महाजनोंके कर्म भी वे सम्पादन करते थे। जो सब नीच और दासत्वज्ञापक कार्य थे, जिन कामोंमें शारीरिक परिश्रमकी बहुत आवश्यकता होती थी, शूद्रोंकी सृष्टि होनेके बाद उन सब कामोंसे उन्हें फुरसत मिल गई। पीछे नाना मिश्रजातियोंकी सृष्टि होने पर वैश्योंको कारु और शिल्पकर्मोंसे भी अवसर मिल गया। शिल्पकार्यका भार सूत्रधर, तन्तुवाय, स्वर्णकार, कर्मकार, कुम्भकार आदि पर अर्पित हुआ। इस समय वैश्य केवल महाजन और वणिकोंका ही काम करनेमें व्यस्त हैं। इसी कारणसे वैश्य वणिक् नामसे ही विख्यात हुए। रामायणकी फलश्रुतिसे भी यह बात स्पष्ट हो जाती है।*

ईसासे पूर्व ६ठी शताब्दीसे ८वीं शताब्दी तक भारतके जैन और बौद्धधर्म निकट निकट खूब प्रबल भावसे चल रहे थे। इस समय वैश्यसमाज दोनों सम्प्रदायके दाहने हाथ स्वरूप थे, यह कहनेमें अत्युक्ति न होगी। वैशाली, श्रावस्ती, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, उज्जयिनी, सौराष्ट्र, पौण्ड्रवर्द्धन, ताम्रलिप्त आदि बहुजनाकीर्ण और वाणिज्य-प्रधान शहरके प्रत्नतत्त्वसे जो ढेरके ढेर निदर्शन पाये गये हैं, उनसे भारतीय वैश्य समाजकी उन्नत-अवस्थाका परिचय मिलता है।

और तो क्या, ४थी और ५वीं शताब्दीमें वैश्यशक्ति ही क्षत्रियशक्तिको खर्व कर सिर उठानेमें समर्थ हुई थी। जब ब्राह्मण-समाजने देखा, कि जैन और बौद्ध धर्मी क्षत्रिय राजाने ब्राह्मण-शक्तिको विपर्यस्त कर दिया है, ब्राह्मणोंके अभ्युदयकी आशा नहीं, तब उन्होंने वैश्य-शक्तिका आश्रय लिया था और तो क्या—एकमात्र क्षत्रियोंके अनुष्ठेय अश्वमेधयज्ञ वैश्यशक्ति द्वारा सम्पन्न करानेमें अग्रसर हुए थे। गुप्त-सम्राट् समुद्रगुप्तकी बात कहते हैं। गुप्तवंशके अभ्युदयके समय ब्राह्मणोंने उनका आश्रय लिया था। उनको तृप्तिके लिये ही सम्राट् समुद्रगुप्तने* भारतके प्राचीन बौद्ध-राजधानी पाटलीपुत्रमें ब्राह्मण मर्यादा स्थापित करनेके लिये अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान किया था। हिन्दूशास्त्रके मतसे निम्नवर्ण अपने ऊंचे वर्णकी वृत्ति ग्रहण कर नहीं सकता था। इससे ब्राह्मण-शास्त्रकारोंने घोषणा की, कि पृथ्वी निःक्षत्रिय हुई है। इसीसे इन लोगोंने क्षत्रियका काम वैश्यसे कराया। उक्त अश्वमेधयज्ञ भी प्रकारान्तरसे मानो द्वितीय परशुराम द्वारा निःक्षत्रिय-यज्ञ कहनेसे भी अत्युक्ति नहीं

* Rev. K. M. Banarji's Lecture in Bengal Social Science Association.

* गुप्तवंश किस वर्णके थे। इस विषयमें कई मत सुने जाते हैं। इसका प्रमाण भी बहुत मिलता है, कि गुप्तवंश वैश्यवर्णके थे। पारस्करगृह्यसूत्रमें लिखा गया है, "शर्म्म ब्राह्मणस्य वर्म क्षत्रियस्य गुप्तेति वैश्यस्य" (१।१७।४) अर्थात् वैश्यके नामके अन्तमें गुप्त उपाधि रहेगी। जिन्होंने अश्वमेधयज्ञ किया था, वे क्षत्रिय होने पर कभी भी वंशोचित उपाधि त्याग नहीं करते।

कही जा सकती। वैश्य-सम्राट् समुद्रगुप्तने उस समयके भारतके सब क्षत्रिय-राजवंशको पराजित कर सभीको वशमें कर लिया था। किन्तु इच्छा रहने पर वे उस समय भारतमें स्थायी भावसे धर्म या ब्राह्मण-प्रतिष्ठा नहीं कर गये। वे एकान्त ब्राह्मणभक्त होने पर भी उनके अन्यान्य आत्मीय स्वजन बौद्धधर्मानुरागी थे। इस कारण उनके वंशधर गुप्तसम्राट्‌गण ब्राह्मण और श्रमण दोनोंके सम्मानकी रक्षा करने पर बाध्य हुए थे। जो हो, ७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कर्णसुवर्ण अधीश्वर शशाङ्कने ब्राह्मणभक्तिकी पराकाष्ठा और बौद्ध-विद्वेषका जलन्त दृष्टान्त दिखाया था। उनके ब्राह्मण्य-प्रतिष्ठामें अग्रसर होने पर भी और एक अन्य वैश्य-सम्राट्‌ने उनका गर्व खर्व करनेके लिये अस्त्र धारण किया था। वह और कोई नहीं,—कन्नौजके हर्षवर्द्धन थे। हर्षवर्द्धन शशाङ्क नरेन्द्रगुप्तको पराजय कर आर्यावर्त्तके सम्राट् हुए थे। बहुतेरे इन हर्षवर्द्धनको क्षत्रिय या वैश्य राजपूत कह कर परिचित करनेमें अग्रसर हो रहे हैं। किन्तु इन सम्राट्‌ने भी अपनेको क्षत्रिय कह कर परिचय नहीं दिया है। इस वंशकी लगातार 'वर्द्धन' उपाधि ही वैश्यवर्णकी परिचायक है।

पहले ही कह आये हैं, कि गुप्तवंशका अभ्युदय सच पूछिये तो वैश्यवर्णका अभ्युत्थान है। इस तरह महाशक्तिलाभ थोड़े ही दिनोंमें नहीं हुआ था। बहुत पहले से धीरे धीरे वैश्य-समाजने शक्तिका सञ्चय किया था, उसीका वह विकाश है। किस तरह वैश्य-समाजने ऐसी महाशक्ति लाभ की थी? इस समय जैसे अंग्रेज वणिक् पृथ्वीके चारों ओर अपनी शक्ति सञ्चालन कर अत्यंत प्रभावशाली हो गये हैं, उसी तरह भारतीय वणिक्-समाज चारों दिशाओंमें फैल कर शक्ति सञ्चय कर रहे थे। उसका उज्ज्वल दृष्टान्त भारयीत वणिक्‌गण (Phoenician) है। वाणिज्य-प्रभावसे उन्होंने सुदूर यूरोप-खण्ड अधिकार कर सुसभ्य राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, किन्तु भारतीय दूसरे वणिक् समाजकी ऐसे राज्य विस्तार-की प्रवृत्ति थी नहीं। वे जानते थे, कि उनकी जन्म-भूमि सुवर्णप्रसू भारतभूमिसे श्रेष्ठस्थान जगत्‌में नहीं है। इस कारण महाद्वीपान्तरसे आहृत रत्नराजि ला कर अपनी जन्मभूमिको अशेष समृद्धिशाली बना दिया था। ये वाणिज्यकी लाभाशासे कितनी दूरके देशोंमें आते जाते थे? हम तासितासके अनुवादसे ऐसा प्रमाण पाते हैः—

"Pliny the elder relates the fact, after Cornelius Nepos, who, in his account of a voyage to the North, says, that in the consulship of Quintus Metellus Celer, and Lucius Afranius (A, U, C, 694, before Christ 60), certain Indians, who had embarked on a commercial voyage, were cast away on the coast of Germany, and given as a present by the King of the Suevians, to Metellus, who was at that time proconsular Governor of Gaul, "Cornelius Nepos de Septentrionali circuitu tradit quinto Metello Celeri, Lucii Afranii in Consulatu Collegæ, sed tum Galliae procunsuli, Indos a rege Suevorum dono datos, qui ex India commercii Causa navigantes, tempestatibus essent in Germanian abrepit." Pliny, lib, ii, s, 67, The work of Cornelius Nepos has not come down to us; and Pliny, as it seems, has abridged too much. The whole tract would have furnished a considerable event in the history of navigation. At present we are left to conjecture, whether the Indian adventurers sailed round the cape of Good Hope, through the Atlantic Ocean, and thence into the Northern Seas; or whether they made a voyage still, more extraordinary, passing the island of Japan, the coast of Siberia, Kamschatska, Zembla in the Frozen Ocean, and thence round Lapland and Norway, either into the Baltic or the German ocean."*

दो हजार वर्ष पहले भारतीय वणिक् जर्मनीके किनारे

* Tacitus, translated by Murphy, Philadephia. 1836, p. 606,

जा कर चीजें बेच आते थे। इसीसे अति प्राचीनकालमें उत्तालतरङ्गसङ्कुल जापान उपसागरको पार कर या अटलाण्टिक महासागर होते हुए वे लोग उस दूर देश जर्मनीमें कैसे पहुंचे थे। यह निश्चय न कर सकने पर (*Murphy*) साहब बहुत विस्मित हुए थे। उसकी अपेक्षा प्राचीनकालसे ही यहां वणिक् मिश्रके रत्नाहरणके लिये वहां वाणिज्य करने जाते थे, यह बात भी कही गई है। *

अब विचार कीजिये, कि भारतीय वैश्य समाजने साम्राज्य लाभको उपयुक्त महाशक्ति किस तरह अर्जन की थी? और अल्प समयमें ही समस्त भारतवर्ष ही क्यों गुप्तवंशके हाथ आ गया था?

हिन्दू-वैश्यसमाजमें जो जैन या बौद्ध थे, ब्राह्मण-भक्त गुप्त सम्राट्की चेष्टासे वे सब पीछे हिन्दू हो गये थे। ५वीं शताब्दीमें चीन-परिव्राजक फाहियान भारतमें बुद्ध-स्मृति तथा बौद्ध-कीर्त्तियोंको देखनेके लिये आये थे। वे आर्यावर्त्तमें ब्राह्मण्यधर्म तथा बौद्ध धर्मका समान प्रभाव देख कर गये थे। वे सिंहल जानेके समय ताम्रलिप्त बन्दरमें हिन्दुओंके जिस जहाज पर चढ़े थे, उसमें दो हजार आरोही चढ़ते थे। इस फाहियानके भारतभ्रमण-वृत्तान्तसे आपको पता चलेगा, कि भारतीय वणिक् केवल सिंहल ही नहीं, वरं भारतके प्रायः बहुत जनाकीर्ण भारतमहासागरीय द्वीपोंमें अपनी चीजोंको ले कर बेचने जाते थे। उस प्राचीन कालमें भी फाहियानने यवद्वीप और वालीद्वीपमें हिन्दू वणिकोंके उपनिवेश देखे थे। उस समय वणिक् कहनेसे वैश्य जातिका अर्थबोध होता था। इस समय उन्नत वैश्य समाज कृषि और पशुपालन इन दो वृत्तियोंका त्याग कर चुका है।

गुप्तसम्राटोंके यत्नसे भारतके नाना स्थानोंमें ब्राह्मण प्रतिष्ठाका आयोजन होने पर भी वैश्य सम्राट् हर्षवर्द्धनकी चेष्टासे आर्यावर्त्तमें कुछ दिन बौद्ध प्रतिष्ठाका ही अनुराग देखा गया था। जो ६१, ६४८ ई०में सम्राट् हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद बौद्धधर्मका अवसान होने लगा। कुछ दिनोंके बाद ८वीं शताब्दीके प्रथमांशमें कन्नौजके सिंहासन पर क्षत्रियवीर यशोवर्म्मदेव अधिष्ठित हुए। उनके समयसे ही ब्राह्मणाभ्युदयका स्थायी सूत्रपात हुआ। यशोवर्मदेवके यत्नसे वैदिक धर्म प्रचारका यथेष्ट आयोजन हुआ था। इस समयमें भी पाटलिपुत्र, गौड़ और ताम्रलिप्तिमें वैश्यसमाज बहुत प्रबल था। उनमें हिन्दुओंकी संख्या बहुत कम थी और बौद्धोंकी अधिक। पाटलिपुत्रमें वैश्योंकी चेष्टासे गोपाल मगधके अधीश्वर हुए। उनके पुत्र धर्मपालकी शिलालिपिसे यह बात जानी जाती है। यशोवर्माकी तरह उनके समसामयिक आदिशूर गौड़मण्डलमें साग्निक ब्राह्मणोंको बुला कर वैदिक धर्म प्रचारमें मनोयोगी हुए थे। किन्तु उनके देहत्यागके बाद ही गोपालके पुत्र धर्मपालने आ कर गौड़ राज्य पर अधिकार कर लिया। यह पालवंश किस जातिके थे, इसका पता नहीं लगता। किन्तु इस वंशके साथ वणिक् जातिका यौन सम्बन्ध था, इसका कुछ आभास गौड़ीय सुवर्ण वणिकोंके कुल-इतिहाससे मिलता है। प्रायः ४ सौ वर्ष तक बौद्ध पालराजवंशने गौड़ और मगधमें अपना राज्य विस्तार किया था। इस समय भी गौड़ वङ्गालका बौद्ध धर्मावलम्बी वैश्य समाज बहुत कुछ उन्नत था। उस समय भी यहांके वणिक् उत्तर चीन, तिब्बत, पूर्व आसाम, कम्बोज, दक्षिण यव, वाली, बोर्नियो, सुमात्रा आदि द्वीपोंमें और पश्चिम सूरत, गुजरात तथा सुदूर मिश्र राज्य तक जाते आते थे। वे समुद्रयात्राके उपयोगी नाना आकारके जहाज तैयार करते थे। कविकङ्कणके चण्डीमङ्गलसे उसका कुछ आभास मिलता है।

मुसलमानों तथा अङ्गरेजोंकी अमलदारीमें भी भारतीय वणिक् समाजकी पूर्व रीति एक समय परित्यक्त नहीं हुई। आधुनिक स्मार्त्तनिबन्धकारोंके हिन्दुओंके लिये समुद्रपथको बन्द कर देने पर भी तैलङ्ग, तामिल, गुजराती, मराठी और पञ्जाबी वणिक् आज भी सुदूर अफरिका, अमेरिका और यूरोपके नाना स्थानोंमें जा कर पण्य विक्रय करनेमें कुण्ठित नहीं होते। किंबहुना कहें तो कह सकते हैं, कि जिस दिन हिन्दू स्मार्त्त समुद्र

* Asiatic Researches, vol. xvii p, 619-620.

यात्राके विरुद्ध खड़े हुए, उसी दिनसे भारतके धर्मभीरु उन्नत वणिक् समाजको उन्नतिके मूलमें कुठाराघात हुआ। उनके कुछ ही दिन बादसे समुद्र वाणिज्य भारतीय वणिकोंके लिये कविकी कल्पना हो उठी, किन्तु इस समय अब देखा जाता है, कि समुद्रयात्राका बन्धन बहुत ढोला पड़ गया है। कितने ही सुविज्ञ वणिक् भारतीय द्वीपपुञ्जोंमें तथा जापान, चीन और जर्मनी आदि देशोंमें जा कर आमदनी-रफतनी (Export-import) का व्यवसाय करते हैं। इधर यूरोपीय महासमरके बाद यह बन्धन तो बिलकुल ढीला पड़ गया है।

आज भी भारत भरमें वैश्य जातिका सर्वत्र वास दिखाई देता है।

वर्त्तमान उत्तर पश्चिम प्रदेशमें जिन सब वणिकोंका वास है, वे सैकड़ों श्रेणियोंमें विभक्त हो गये हैं। राजस्थानके इतिहास लेखक टाड साहबने लिखा है, कि एक जैन यति वणिक् जातिकी सूची संग्रह कर रहे थे। प्रायः १८०० श्रेणियोंका नाम संग्रह होनेके बाद उन्होंने दूरवासी और एक दूसरे यतिसे १५० और वणिक् श्रेणीकी सूची पायी। इस पर उन्होंने असम्भव सोच कर स्थगित कर दिया। यदि सच पूछिये, तो जातिकी संख्या उतनी अधिक नहीं, उनमें निम्नलिखित जातियां ही प्रधान हैं; उस वणिक् सम्प्रदायके नाना व्यवसाय नाना धर्मके अनुसार हैं, नाना पारिवारिक विशेषत्वोंसे बहुत श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई होगी। जैसे—

अग्रवाल।

उत्तर पश्चिममें अग्रवाल, खण्डेलवाल और अश्ववाल या ओसवाल आदि प्रभुत धनशाली वणिकों या बनियोंका आवास है। बहुत दिनोंसे भारत इतिहासमें इनकी प्रतिष्ठाका परिचय मिलता है। अग्रवाल बनिया अग्रसेन नामक एक राजाके वंशधर हैं। पञ्जाबके हिसार जिलेमें अग्रहा नगरमें उनकी राजधानी थी। अग्रसेन किस समय सरहिन्द विभागका राज्यशासन करते थे, यह पता नहीं लगता। किन्तु उनके वंशधरोंने हिन्दूविद्वेषी हो कर जैन धर्मको ग्रहण कर लिया। सन् ११९४ ई०में साहबुद्दीन घोरीने अग्रहा पर अधिकार कर अग्रवालोंको वहांसे भगा दिया। इस विपद्पातसे गृहशून्य हो कर अग्रवाल व्यवसाय वाणिज्यमें लग गये।

इनमें इस समय वैष्णवोंकी संख्या अधिक है। सामान्य संख्यक जैन भी देखे जाते हैं। किन्तु फिर वह अग्रवाल नहीं रहे, जिन अग्रवालोंने जैनधर्म अख्तयार कर लिया है। किन्तु अग्रवाल प्रायः वैष्णव या शैव दिखाई देते हैं। इस समाजमें कुछ ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो शिव और कालीकी तो पूजा करते हैं सही; किन्तु वे शैव और शाक्त नामसे परिचित नहीं हैं। कुरुक्षेत्र और गङ्गानदी इनके पवित्र तीर्थ है। वणिक् वृत्ति अवलम्बन करनेके बाद महा धूमधामसे दीपावलीके अवसर पर लक्ष्मीदेवीकी पूजा करते हैं।

किम्वदन्ती है, कि किसी अग्रवालने घटनाक्रमसे एक नागवंशी या राजकन्याका पाणिग्रहण किया, उसी घटनाका स्मरण कर प्रत्येक हिन्दू (वैष्णव) धर्मावलम्बी अग्रवाल गृहद्वारमें नागमूर्त्ति अङ्कित कर फल फूलसे उनकी पूजा करते हैं। बहुतेरे ही उपवीतधारी हैं; किन्तु जो शास्त्र निर्द्दिष्ट द्विजाचार पालनमें पराङ्मुख हैं, वे कभी भी यज्ञसूत्र धारण नहीं करते।

इनमें १८ गोत्र हैं। सगोत्र तथा सपिण्ड दोष रहने पर ये पुत्र-कन्याका विवाह नहीं करते। जैन तथा वैष्णवमें भी इनका विवाह नहीं होता। किंतु जो अग्रवाल जैन मत ग्रहण कर चुके हैं, उनके साथ वैष्णवी अग्रवाल विवाह कर सकता है। गौड़ ब्राह्मण विवाहादिमें पौरोहित्य करते हैं। ये सभी निरामिष हैं।

वर्त्तमान अग्रवालोंका विश्वास है, कि वे ही आर्य्य वैश्योंके वंशधर हैं। इनकी सामाजिक अवस्था भी बड़ी उन्नत है। सवर्णा पत्नीजात संतान विश-नामसे ख्यात हैं। साहबुद्दीन द्वारा भगाये अग्रवाल नाना स्थानोंमें जा व्यवसाय वाणिज्यमें लिप्त होने पर भी कोई कोई अपने प्रतिभाबलसे दिल्लीके मुसलमानसम्राटोंके अनुग्रहभाजन हुए थे।

अश्ववाल या ओसवाल।

अश्ववाल या ओसवाल, श्रीमाल या श्रीमाली नामसे परिचित हैं। श्रीमालीसे ये पूर्णतः स्वतन्त्र हैं

और उनसे आदान-प्रदान भी नहीं होता। इनमें जैनियों-की ही संख्या अधिक है या यों कहिये, कि ओसवाल नामसे जैन धर्मी का ही बोध होता है। हीरे जवाहर आदिका बेचना, रुपयेका लेन देन या महाजनी इनका प्रधान व्यवसाय है। राजपूतानेमें किसी समय यह ओसवाल वणिक्-सम्प्रदाय विशेष प्रतिष्ठित था। राजस्थानका इतिहास पढ़नेसे यह स्पष्ट मालूम होता है। मुर्शिदाबादके जगत्सेठ परिवार, अजीमगञ्जके राय धनीतसिंह और लक्ष्मीपत सिंह आदि धनशाली महाजन अग्रवाल वंशसम्भूत हैं। 'उत्तर-पश्चिम भारतमें इस श्रेणीके अनेक धनवान् और बुद्धिमान् व्यक्तियोंका परिचय मिलता है। उक्तप्रदेशके राजा शिवप्रसाद, उदयपुरके दीवान बाबू पन्नालाल और जयपुरके प्रधान राजस्वसचिव नाथमल जो प्रभृति कई व्यक्तियोंने राजकार्यमें विशेष ख्यातिलाभ किया था।

इस श्रेणीके बहुतेरे लक्ष्मीके वरपुत्र हैं। ये वाणिज्य द्वारा प्रभूत अर्थ उपार्जन करते हैं सही; किन्तु विशेष वाणिज्यकुशली नहीं हैं।

ये जैसे ही धनशाली हैं, वैसे ही धर्मप्राण हैं। पालिताना और गिरिनार मन्दिरके सभी मंदिर इन्हीं लोगोंके द्वारा बनाये गये हैं। कलकत्ता और बङ्गलके अन्यान्य स्थानोंमें ओसवालों द्वारा प्रतिष्ठित नाना शिल्पकार्ययुक्त मन्दिर हैं। भोजक ब्राह्मण इनके पौरोहित्य करते हैं। सब श्रेणीके ब्राह्मण इनसे दान लेते हैं। ओसवालों और अग्रवालोंकी समतुल्य मर्यादा है। इनके भी असवर्णा पत्नीका जातपुत्र दास और सवर्णापत्नीज तनयगण बिश् नामसे परिचित हैं। उक्त दोनों सन्तानोंने ही वाणिज्यमें लिप्त रह कर सामाजिक अवस्थाकी विशेष उन्नति की है।

खण्डेलवाल बनिया।

धनगरिमा तथा आचार-व्यवहारमें खण्डेलवाल किसी अंशमें ओसवालों और अग्रवालोंसे कम नहीं हैं। जयपुर राज्यमें खण्डेल नगरके नामसे इस वणिक् सम्प्रदाय खण्डेलवालोंका नाम हुआ है। किसी समय यह खण्डेलनगरी शेखावती राजपूतोंका शासनकेन्द्र बनी थी।

ये जैन और वैष्णवधर्मावलम्बी हैं। मथुराके लक्षपति सेठगण खण्डेलवाल-वंशसम्भूत और जैन हैं। इनकी ही एक शाखाने रङ्गाचारी स्वामीके निकट रामानुज वैष्णव मतकी दीक्षा ग्रहण की है। अजमेरके सुप्रसिद्ध वणिक् मूलचाँद सोनी जैन हैं।

श्रीमाली बनिया।

राजपूतानेके मारवाड़ विभागके झालर नगरके निकटवर्त्ती श्रीमाल (वर्त्तमान नाम भीमाल) नगरवासी होनेसे इस सम्प्रदायका नाम श्रीमाली हुआ है। यह स्थानवासी ब्राह्मण भी साधारणमें श्रीमाली ब्राह्मण नामसे मशहूर हैं। इस नगरमें १५०० घर लोगोंका वास था। धनवान् महाजनगण यहां रह कर पण्यद्रव्य क्रयविक्रय करते थे। यहांकी हाटमें सर्वदा माल जमा रहता था, इससे इस श्रेणीका नाम श्रीमाल पड़ा। *

अग्रवालोंकी तरह श्रीमालीसे भी दास श्रीमाली वंशकी उत्पत्ति हुई है। इस दाससन्ततिमें जैन और वैष्णव मत प्रचलित है। किन्तु इनके बिशसन्तानगण एकमात्र जैनधर्मावलम्बी हैं।

पल्लीवाल बनिया।

मारवाड़ और योधपुरराज्यके अन्तर्गत पल्ली नगरवासी होनेकी वजह यह सम्प्रदाय पल्लीवालके नामसे परिचित है। सन् ११५६ ई०में राठोर राजने पल्ली नगर पर अधिकार कर लिया¶। उसके बहुत पहलेसे यह नगर एक वाणिज्य-केन्द्रके नामसे विख्यात था।

ये जैन और वैष्णव-मतावलम्बी हैं। आगरा और जौनपुरमें बहुतेरे पल्लीवालोंका वास है।

पुरवाल बनिया।

गुजरातके पोर या पुरबन्दरमें वासनिबन्धन यह गुजराती वणिक् सम्प्रदाय पोरवाल नामसे ख्यात हुए। वर्त्तमान समयमें ललितपुर, झांसी, कानपुर, आगरा, हमीरपुर और बांदा जिलेमें इन लोगोंकी वस्ती है।

भाटिया।

भाटिया राजपूतानेके रहनेवाले हैं और अपनेको

* Tod's Annals of Rajasthan Vol, II p. 332

¶ Hunter's Imperial Gazatteer Vol, xi p, I

राजपूत कह कर परिचय देते हैं; किन्तु भाटियाजातीय राजपूतसे यह सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। विलायती कपड़े-का यह व्यवसाय करते हैं। किन्तु इस समय वर्त्तमान राजनीतिक आन्दोलनके कारण प्रायः सभी वस्त्र व्यवसायीने विलायती वस्त्रोंका अस्थायीरूपसे बहिष्कार किया है। बम्बई, पञ्जाब और करांची बन्दरमें ही इनका प्रधान वास है।

माहेश्वरी या माहेश्वरी।

युक्तप्रदेश, राजपूताना, बिहार और नागपुर अञ्चल-में इस वणिक् जातिका वास देखा जाता है। इन्दौर राजधानीके निकटस्थ सुप्राचीन महिष्मती या माहेश्वर पुरसे यह सम्प्रदाय माहेश्वरी नामसे परिचित हुआ है, ऐसा ही अनुमान होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि बीकानेरमें ही इनका आदि वास है। फिर मुजफ्फर पुरके माहेश्वरियोंका कहना है, कि भरतपुर राजधानीके निकटवर्त्ती महेशन नगरीमें उनका आदिवास था। इनके अधिकांश ही वैष्णव मतावलम्बी हैं। अति अल्प संख्यक माहेश्वरी जैन दिखाई देते हैं।

अग्रहारी बनिया।

बनारसमें बहुतेरे अग्रहारियोंका वास देखा जाता है। ये निरामिषाशी और जनेऊधारी हैं। आराके अग्रहारी सिख धर्मावलम्बी हैं।

धुनसर बनिया।

दिल्ली और मिरजापुरके बीच गाङ्गेय अन्तर्वेदीमें इन-का वास है। गुड़गांव जिलेके बेरारी नगरके निकटस्थ 'धूसी' नामक गण्डशैलदेशके नामसे परिचित हैं। ये सभी वैष्णवमतावलम्बी हैं। इनमें कोई वाणिज्य नहीं करता। बहुतेरे ही धनशाली भूम्याधिकारी हैं और अवशिष्ट लोगोंमें कुछ कायस्थ और कुछ वैश्य वृत्तिसे जीविका चलाते हैं।

उम्मार बनिया।

आगरा और गोरखपुरके मध्यभागमें तथा कानपुरके चारों तरफ निकटवर्त्ती जिलोंमें इस श्रेणीके बनियोंका वास है। बिहारमें इनके दो एक घरकी बस्ती दिखाई देती है। पिताकी मृत्यु न होने तक ये उपवीत धारण नहीं करते।

रस्तोगी बनिया।

उत्तर अन्तर्वेदी और लखनऊ, फतेहपुर, फर्रुखाबाद, मेरठ, आजमगढ़ आदि युक्तप्रदेशके प्रधान प्रधान नगरों-में इस श्रेणीके बहुत लोगोंका वास है। कलकत्ता और पटना नगरमें कितने ही रस्तोगी व्यवसाय वाणिज्यके लिये बस गये हैं। ये सभी वल्लभाचारी हैं। ये भी पिताकी मृत्युके बाद जनेऊ धारण करते हैं।

कसरवानी बनिया।

युक्तप्रदेशके पूर्वीय प्रान्त तथा बिहारके पश्चिमीय प्रदेशमें इनका वास है। यह चावल दाल अर्थात् खिचड़ फरोसीकी दुकान करते हैं।

काशी आदिके कसरवानी बनिया रामोपासक हैं और निरामिषाशी हैं। मिर्जापुरकी विन्ध्यवासिनी देवीक ये लोग पूजा करते हैं। किन्तु देवीको बकरेकी बलि नहीं चढ़ाते वरं उनके उद्देशसे छोड़ देते हैं।

लोहिया बनिया।

प्रधानतः लौह निर्मित द्रव्यादिका वाणिज्य करते हैं, इसी लोहिया नामसे ये परिचित हैं। इनमें कोई कोई यज्ञसूत्र भी धारण करते हैं। अधिकांश ही वैष्णव हैं, फिर दो एक घर जैनी भी हैं।

सोनिया बनिया।

सुवर्ण वणिक्—बङ्गालके सुवर्णवणिकोंकी तरह ये लोग धनी नहीं हैं। वाराणसीवासी सोनिया गुजरात-से आ कर वहां बस गये। स्वर्णालङ्कार बनाना या सोना चाँदीका बेचना उनका व्यवसाय है।

शूरसेनी बनिया।

मथुरा जिलेका प्राचीन नाम शूरसेन है। सम्भवतः उसीसे ये शूरसेनी नामसे परिचित हैं।

बरसेनी बनिया।

मथुराके उपकण्ठस्थ वर्षाणानगरके नामसे ये वर्षाणी या बरसेनी नामसे परिचित हैं। ये धनशाली हैं। मथुरा और तत्पार्श्ववर्त्ती जिलोंमें इनका बहुत वास दिखाई देता है।

बरणवाल बनिया।

बुलन्दशहरका नाम बरण है। उस देशके रहने-वाले होनेकी वजह ये बरणवाल कहलाते हैं। पाठान-

सम्राट् मुहम्मद तुगलकके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर ये जन्मभूमि त्याग करने पर बाध्य हुए थे और एटावा; आजमगढ़, गोरखपुर, मुरादाबाद, जौनपुर, गाजीपुर, विहार और तिरहुत आदि स्थानोंमें फैल गये।

यह कट्टर हिन्दू हैं। गौड़ ब्राह्मण और मैथिल ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं। इनमें कितने ही उपवीतधारी हैं। कितने ही दुकान करते हैं।

अयोध्यावासी बनिया।

अयोध्या प्रदेशवासी बनिया होनेसे ये इस नामसे ख्यात हैं। युक्तप्रदेशके कई स्थानोंमें और विहार अञ्चलमें इनका वास है।

जैसवार बनिया।

रायबरेली जिलेके सालोन विभागके जैस परगनेमें वास होनेकी वजह ये जैसवारा कहलाये।

महोविया बनिया।

हमीरपुर जिलेके महोबा नगरके पूर्वतन अधिवासी होनेके कारण ये महोविया कहलाये।

मडुरिया बनिया।

विहार और गङ्गा यमुनाके बीच रहनेवाले बनिया बहुतेरे इनको रस्तोगीको शाखा समझते हैं। ये हिन्दू और वैश्य हैं। ये कृषकोंको पेशगी दे कर ईखकी खेती कराते हैं। ये चीनीका एकान्त व्यवसाय करते हैं। सिक्खोंकी तरह इनमें भी तम्बाकू पीना मना है। यदि छिप कर कोई पीता है, तो वह जातिच्युत होता है।

वैश बनिया।

विहारमें इनका वास है। ये पीतल और कांसेके बरतन बेचनेके लिये दुकान रखते हैं। कोई खेती भी करते हैं। कुमायूंके वैश या वाईजाति सामाजिकतामें तुल्य मर्यादा होने पर भी भिन्न जाति कहके परिचित हैं।

काठ बनिया।

विहारमें इनका भी वास है, दुकानमें पण्य द्रव्य रख कर बेचना, ऋण देना और खेती करना—इनका प्रधान व्यवसाय है। ये शवदेहको जलाते और १२वें दिन श्राद्ध करते हैं। मैथिल ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं।

शैनियार बनिया।

गोरखपुर, तिरहुत और विहार प्रदेशमें इस श्रेणीका वास है। अन्यान्य वणिक् सम्प्रदायकी तरह ये वैष्णव नहीं हैं। ये परम शैव हैं। अग्रवालोंकी तरह ये भी धनाधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवीकी पूजा विशेष धूमधामसे करते हैं। ये नोनिया नामसे भी परिचित हैं।

जमैय बनिया।

युक्तप्रदेशके इटावा जिलेमें इनका वास है। ये अपनेको दैत्यपति हिरण्यकशिपुके पुत्र परम भक्त प्रह्लादके वंशधर बतलाते हैं।

सोहना बनिया।

ये भाटिया जातिकी अन्यतम शाखा हैं। सिन्धुप्रदेशमें इनका वास है।

कांदू बनिया।

ये सामान्य दुकानदार हैं और तरह तरहकी मिठाइयाँ तयार कर बेचते हैं। ये हलवाई नामसे भी परिचित हैं।

गुजराती बनिया।

श्रीमाली, ओसवाल और खण्डेलवालको छोड़ कर गुजरातके विभिन्न प्रदेशमें और भी कई श्रेणीके बनिया देखे जाते हैं। जैसे—१ नागर (दास और विश) २ देशवाल, ३ पोरवाल (दास और विश), ४ गुजर, ५ मोध, ६ लड़, ७ करोल, ८ सोरठिया, ९ खड़ैता, १० हर्षोरा, ११ कपोल, १२ उरवल, १३ पटोलिया और १४ वयाद बनिया।

ये सब बनियां सम्प्रदायके प्रत्येकके तन्नामक एक ब्राह्मण-सम्प्रदाय याजकता करता है।

गुजराती बनियामात्र ही वैष्णव और वल्लभाचारी मतावलम्बी हैं। वैष्णव बनियामात्रको ही उपवीत है। किन्तु जो जैनमतानुसारी हैं, वे यज्ञसूत्र धारण नहीं करते।

दक्षिण भारतके बनिया।

दक्षिण भारतके पण्यजीवी जातियोंमें मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके शेट्टी और लिङ्गायत वणिक् ही प्रधान हैं। नाघत्तां और कोमती वणिकोंकी संख्या अत्यल्प है। इनके सिवा तेलगू देशमें भी कई प्रकारके पण्य व्यवसायियोंका वास है।

शेठी ही प्राचीन ग्रन्थोक्त श्रेष्ठी हैं। ये प्रभूत धनशाली हैं और सदा ही नाना वाणिज्योंमें लिप्त रहते हैं। इनमें कुछ लोग निरामिषभोजी हैं और कुछ लोग शास्त्रनिर्दिष्ट शुद्धमांस और मत्स्य भक्षण करते हैं। नाना श्रेणीमें विभक्त होनेकी वजह इनमें आदान-प्रदानमें भयानक विभ्राट् उपस्थित होता है। सभी उपवीतधारी नहीं। जो जनेऊ ग्रहण करते हैं, वे अपनेको वैश्य कहा करते हैं। किन्तु वहांके ब्राह्मण उनको शूद्र कहके उनसे घृणा करते हैं। और तो क्या, द्राविड़ वैदिकब्राह्मण तो उनसे न दान लेते और न उनका कर्मकाण्ड ही कराते हैं।

नटकुटाई शेठी सब श्रेणियोंमें प्रधान हैं। इनका मथुरा नगरमें आदिवास था। ये अङ्गरेजी भाषाके विशेष पक्षपाती नहीं हैं। व्यवसाय वाणिज्यके लिये ये सामान्य तेलगू या तामिलका ज्ञान ही यथेष्ट समझते हैं। पुत्रके जरा सयान होने पर ही यह अपने काममें नियोजित करते हैं। इनकी कोई कोई शाखा अपने विद्या या ज्ञानबलसे ब्राह्मण और वेल्लाल जातिके नीचे आसन पानेके उपयुक्त हैं।

इस समय कृष्णा, नेलूर, कड़ापा, कर्णूल, मन्द्राज, कोयम्बटूर आदि जिलोंमें लाखों श्रेष्ठियोंका वास है। केवल मन्द्राजमें ७ लाख श्रेष्ठियोंका वास है, सिवा इसके महिसुर, कलकत्ता, बम्बई, मलवारके किनारे भी श्रेष्ठी वणिकोंका आभास मिलता है।

महिसुरमें लिङ्गायत वणिकोंकी ही संख्या अधिक है। लिङ्गायत वणिक् कृषिजीवी हैं। ये कहीं भी स्वतः प्रवृत्त हो कर क्षेत्रकर्षण करा कर शस्य उत्पादन कराते हैं।

तेलगूदेशमें कोमतियोंकी ही संख्या अधिक है। ये वैश्य कहलाते और जनेऊ धारण करते हैं। इनमें १ गावुरी, २ कलिङ्ग कोमति, ३ वेरिकोमति, ४ बालजी कोमती, ५ नागर कोमती नामके पांच दल हैं। गावुरी निरामिषभोजी हैं, किन्तु दूसरे चार मांसाहारी हैं।

कलिङ्गकोमति और गावुरी शङ्कराचार्यके अद्वैतमत मान कर ही चलते हैं। दूसरे लिङ्गायत या रामानुज मतावलम्बी हैं। वेरिकोमतियोंमें अधिकांश ही लिङ्गायत हैं। कोमति सभी वेलुरी जिलेके गुटी नगरके प्रधान मठाध्यक्ष भास्कराचार्यको अपने सामाजिक गुरु मानते हैं। ब्राह्मण इनके पौरोहित्य करते हैं सही, किन्तु वैदिक मन्त्र इनसे उच्चारण नहीं कराते। ये मामाकी लड़कीसे व्याह करने पर बाध्य हैं।

उड़ीसेके बनिये।

उड़ीसेमें दो तरहके बनियोंका वास है। १ सोनार बनिया और २ पुटली बनियाँ। पुटली बनिया बङ्गालके गन्धबनियोंके समान हैं। ये पुटली बाँध कर द्रव्यादि विक्रय करते हैं। इसीसे लोग इन्हें पुटली बनिया कहते हैं। बङ्गालकी तरह उड़ीसेके सोनार बनिया जलाचरणीय नहीं। किन्तु मसाले आदिके बेचनेवाले पुटली बनियोंका जल चलता है। पुटली बनियोंकी अपेक्षा वहांके सोनार बनिया अधिक धनवान् हैं।

बङ्ग वैश्य।

यहांकी गन्ध वणिक्, सुवर्ण वणिक्, ताम्बूल वणिक् (पनेरी) तम्बोली, बरई, साहावणिक् * तथा तेली आदि जातियां भी वैश्य समाजकी अन्तर्गत हैं।

गन्धी या गन्धवणिक्।

जो पहले नाना प्रकारके गन्धद्रव्य बेचते थे, वे ही गन्धवणिक् या गन्ध बेणे कह कर पुकारे जाते थे। गन्धवणिक् समाजमें "गन्धिककल्पवल्ली" नामक एक संस्कृत कुलग्रंथ देखा जाता है। इसमें लिखा है- ब्रह्माकी बात सुन कर शिव ध्यानमग्न हुए। शिवके ललाटसे देश दास, वक्षस्थलसे शङ्खभूति, नाभिसे आवट् दत्त और पादमूलसे विश्वट गुप्त उत्पन्न हुए।

गन्धवणिक् जातिकी इस अपरूप उत्पत्तिकथा प्राचीन किसी हिन्दू या जैन शास्त्रमें नहीं मिलता।

तम्बोली।

गन्धवणिक् जैसे शिवाङ्गसे उद्भूत कह कर कल्पित हैं, ताम्बूल वणिक् भी तथा पान बेचनेवाले तम्बोली भी शिवके पसीनेसे उत्पन्न हैं। ऐसा ही इनके कुलग्रन्थमें लिखा है।

* सुबर्ण जातिसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

तेली, बरई आदि जातियोंकी भी उत्पत्तिके सम्बन्धमें ऐसे ही उपाख्यान मिलते हैं। वास्तवमें इन सब उपाख्यानोंके मूलमें किसी ऐतिहासिक कोई भित्ति नहीं है। मालूम होता है, कि बौद्धयुगके अवसानमें वङ्गके अनेक वैश्य सन्तान शैवधर्म या शिवोपासना ग्रहण कर हिन्दू समाजमें मिल गये थे। उनकी शिवभक्ति देख शास्त्रज्ञ ब्राह्मण पण्डितोंने उनमें किसीको शिवघर्मसम्भूत, किसीको शिवाङ्गसम्भूत कहके प्रचार किया। धर्म-भीरु वणिक् सम्प्रदायने उन सब कल्पित उपाख्यानोंको ही शास्त्रवाक्य रूपमें विश्वास किया। इसीलिये आज उनके कुलग्रन्थोंमें ये उपाख्यान दिखाई देते हैं।

सुवर्णवणिक् और गन्धवणिकोंका कहना है, कि गौड़ाधिप वल्लालसेनने वङ्गकी सारी वणिक् जातिको शूद्रत्वमें परिणत किया।

अवश्य ही वङ्गके वणिक समाजमें वल्लालसेनके समयमें जो द्विजोचित यज्ञसूत्रका लोप तथा शूद्राचार-प्रवर्त्तनका प्रवाद चला आ रहा है, वह बिलकुल झूठ कह कर उड़ा दिया जा नहीं सकता।

तम्बोली और बरई—ये दोनों जातियां बौद्ध भावापन्न हैं। धर्मठाकुरके ये विशेष रूपसे भक्त थीं। नाना कवियोंका कविताओंमें इसका प्रमाण मिलता है। किन्तु प्रसङ्गमें बौद्धके होनेका कोई निदर्शन नहीं मिलता। सम्भवतः बहुत दिन पहले ये शैव थे। मालूम होता है, कि इसी जातिको चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने "हिन्दू वणिक्" नामसे उल्लेख किया है। ये पूर्वापर हिन्दू थे। इसीसे बङ्गालमें ब्राह्मणोंके जमानेमें वङ्गीय वणिकोंमें गन्धवणिक् ही शुद्धाचारी और सर्वश्रेष्ठ कहे जाते थे। और तो क्या, मनसामङ्गल, चण्डीमङ्गल आदि शाक्तप्रभावसे रचित ग्रन्थमें भी गन्धवणिक् सौदागर स्पष्ट वैश्यके नामसे अभिहित किये गये हैं। इन सब मङ्गल ग्रन्थोंमें गन्धवणिक् जातिका ऐश्वर्य्य, प्रभाव और असाधारण शिवभक्तिका परिचय मिलता है। वंगला-साहित्य शब्द देखो।

गन्धवणिक् शुरूमें शैव रहने पर भी सभी शाक्त हो गये थे। इस जातिको तान्त्रिक शक्तिभक्त बनानेमें शक्ति उपासकोंको यथेष्ट यत्न और क्लेश सहन करना पड़ा था। यह हम मनसा-मङ्गलके नायक चांद और चण्डीमङ्गलके नायक श्रीमन्तके पिता धनपति सौदागरके उज्ज्वल चरित्रसे जान सके हैं।

इस समय इस जातिके अनेक मनुष्य श्री गौराङ्ग प्रवर्त्तित वैष्णवधर्म ग्रहण करने पर भी किसी समयमें जो शक्तिमन्त्रसे दीक्षित हुए थे, इसमें तनिक सन्देह नहीं। गन्धेश्वरी नाम्नी उनकी कुलदेवीकी पूजा ही उसका स्पष्ट प्रमाण है।

वङ्गके विराट् वैश्य समाजको क्षीण स्मृति ले कर आज भी हजार हजार मनुष्य पूर्व वङ्गमें वास करते हैं और वे "वैश्य" नामसे ही परिचित हैं। आश्चर्य्यका विषय है, कि यह जाति बल्लाली व्यवस्था अमान्य कर आज भी यज्ञसूत्र धारण करती है और इसी कारणसे ही वे आज भी बल्लाली नियमाधीन वङ्गकी श्रेष्ठ जातियोंके निन्दित हैं।

पूर्व वङ्गके ढाका जिलेके भावाल परगनेमें और मैमनसिंहके जहाङ्गीरपुरमें वैश्य नामक सुजातिका वास है।

ये अपनेको वैश्य कहते और त्रिसूत्र अर्थात् जनेऊ पहनते हैं, किन्तु कुछ स्मृतिसम्मत वैश्य धर्मको नहीं मानते। साधारणतः ये १२ वर्षसे पहले ही पुत्रोंका चूड़ाकरण और उपनयन समाप्त कर देते हैं। इनको गायत्री और यजुर्वेदके पढ़नेका अधिकार है, किन्तु ब्राह्मण इनको फिर पूर्ण गायत्री दान नहीं करते।

ये हिसाब किताब करनेके लिये सामान्य वङ्ग भाषा जान कर ही अपने कार्य्यमें प्रवृत्त हो जाते हैं। वर्त्तमान समयमें अति अल्प लोगोंने ही अंग्रेजीमें मन लगाया है। मैमनसिंह जिलेमें इस जातिके इस समय कितने ही वकील, मुख्तार, तहशीलदार, अमीन आदि राजकीय कार्य्य कर रहे हैं। यह पहले हल चलाते थे, अब उसे निन्दित समझते हैं। ये १५ दिन तक मृताशौच मानते हैं। ये सब हिन्दू देवदेवियोंकी पूजा करते हैं।

यह वैश्य साधारणतः खर्वाकार और दृढ़काय, नासिका उच्च और तिलपुष्पको तरह जरा टेढ़ी होती है।

अक्षिणद्वय अपेक्षाकृत उच्च होता है। ये बुद्धिमान् और चतुर हैं। (त्रि०) २ वैश्य-सम्बन्धी।

वैश्यता (सं० स्त्री०) वैश्यस्य भाव तल्-टाप्। वैश्य-का भाव या धर्म, वैश्यत्व। (ऐतरेयब्रा० ७।२९)

वैश्यत्व (सं० क्ली०) वैश्यता देखो।

वैश्यवनिया—बम्बई प्रदेशके पूना जिलावासी वणिक् जातिविशेष। ये लोग यहांके गुजरात-वाणी या मारवाड़ वासी वैश्यवणिक्-सम्प्रदायसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र हैं। यहां तक, कि एक साथ आहार व्यवहारादि भी नहीं करते। इस जातिका आदिनिवास कहां है तथा किस समय वाणिज्य-सूत्रसे वहां आये उसकी कोई किंवदन्ती नहीं मिलती। जातीय नामसे अनुमान किया जाता है, कि ये लोग वैश्यवर्ण हैं तथा वणिग्वृत्ति ही इनकी उपजीविका है। किन्तु दुःखका विषय है, कि इनकी उत्पत्तिका कोई उपाख्यान नहीं।

ये लोग मध्यमाकृति और दृढ़काय होते हैं। पुरुष-की अपेक्षा स्त्रियां श्रीमती और सुन्दरी होती हैं। शराव, मछली और मांस खानेमें इन्हें विशेष अनुराग है, किन्तु देवद्विजमें भक्ति भी अचला है। ये लोग हिन्दूके सभी तीर्थोंमें जाते हैं तथा प्रायः देवदेवीकी भी पूजा करते हैं। वेशभूषा दाक्षिणात्य ब्राह्मणकी तरह है। शास्त्रोक्त क्रियाकलापमें देशस्थ ब्राह्मण ही इनकी पुरोहिताई करते हैं। ये लोग भी उन पुरोहितोंके प्रति भक्ति दिखलाते हैं।

ये लोग चतुर, कर्मठ, स्थिरमति और आज्ञावाही हैं। वाणिज्य, कृषि अथवा सामान्य दुकानदारी ही इनकी उपजीविका है। सामाजिक विवाद मिटानेके लिये इनकी जातीयसभा होती है। उसी सभाके मीमांसित विचारको ये लोग मानते हैं।

वैश्यभद्रा (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी वैश्य और भद्रा नाम-की दो देवियां। (तारनाथ)

वैश्यभाव (सं० पु०) वैश्यस्य भावः। वैश्यता। (मनु १०।९३)

वैश्यसव (सं० पु०) एक प्रकारका सव या यज्ञ। (तैत्तिरीय-ब्राह्मण)

वैश्यस्तोम (सं० पु०) एक प्रकारका यज्ञ। (षड्विंशब्रा० ४।३)

वैश्या (सं० स्त्री०) वैश्य टाप्। १ वैश्यजातिकी स्त्री। पर्याय—अर्याणी, अर्या। (जटाधर) २ हल्दी।

वैश्रम्भक (सं० पु०) १ पुराणानुसार देवताओंके एक उद्यान या बागका नाम। (भागवत ३।२३।४०) २ विश्वासोपाय। (भागवत ५।२६।३२)

वैश्रवण (सं० पु०) विश्रवणस्यापत्यं (शिवादिभ्योऽण्। पा ४।१।११२) इति अण्। १ कुवेर। २ शिव। (भारत १३।१७।१०३)

वैश्रवणालय (सं० पु०) वैश्रवणस्यालयः। १ कुवेर-पुरी। २ वटवृक्ष, वटका पेड़, वरगद।

वैश्रवणावास (सं० पु०) वैश्रवणस्यावासः। वैश्रवणालय देखो।

वैश्रवणोदय (सं० पु०) वैश्रवणस्योदयो यस्मिन्। वट-वृक्ष, वरगदका पेड़।

वैश्रेय (सं० पु०) विश्रिके गोत्रापत्य। वैसेय देखो।

वैश्लेषिक (सं० त्रि०) विश्लेष सम्बन्धी।

वैश्व (सं० त्रि०) १ विश्वदेव सम्बन्धी, विश्वदेवका। (पु०) २ उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

वैश्वकथिक (सं० त्रि०) विश्वकथायां साधु (कथादिभ्य-ष्ठक्। पा ४।४।१०२) इति ठक्। विश्वकथा-विषयमें साधु।

वैश्वकर्मण (सं० त्रि०) विश्वकर्मन्-अण्। विश्वकर्मा-सम्बन्धी।

विश्वजनीन (सं० त्रि०) विश्वजने साधुः (प्रतिजनादिभ्यः खञ्। पा ४।४।९९) इति विश्व खञ्। १ विश्व भरके लोगोंसे सम्बन्ध रखनेवाला, समस्त संसारके लोगोंका। (पु०) २ वह जो समस्त विश्व या संसारके लोगोंका कल्याण करता हो।

वैश्वजित (सं० त्रि०) विश्वजित् नामक होतृ-सम्बन्धी। (ऐतरेयब्रा० ६।३०)

वैश्वज्योतिष (सं० क्ली०) सामभेद।

वैश्वदेव (सं० पु०) विश्वदेवस्यायं विश्वदेव-अण्। विश्वदेव-सम्बन्धीय होमादि। मनुमें लिखा है, कि वैश्वदेवादि कार्यके लिये ब्राह्मण-भोजनकी आवश्यकता नहीं है। द्विजोंको प्रतिदिन संस्कृत अग्निमें वैश्वदेवो-द्देश्यसे सिद्ध अर्थात् पक्व अन्न द्वारा विधिपूर्वक होम करना चाहिये।

वैश्वदेव होमकी विधि इस प्रकार है—अग्नये स्वाहा, सोमाय स्वाहा, अग्निषोमाभ्यां स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यो: स्वाहा, धन्वन्तरये स्वाहा, कुह्वै स्वाहा, अनुमत्यै स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, द्याव्यापृथिवीभ्यां स्वाहा और अन्तमें अग्नये स्विष्टिकृते स्वाहा यह कह कर होम करे। उक्त प्रकारसे अनन्यमना: हो कर प्रति देवताके उद्देशसे हविर्द्वारा होम कर पूर्वादि दिक्-क्रमसे इन्द्र, यम, वरुण, सोम इन्हें तथा इनके अनुचर देवताओंको वलिप्रदान करे यथा—पूर्वको ओर इन्द्राय नमः इन्द्रपुरुपेभ्यो नमः, दक्षिणमें यमाय नमः, पश्चिममें वरुणाय नमः वरुणपुरुपेभ्यो नमः, उत्तरमें सोमाय नमः सोमपुरुपेभ्यो नमः, यह कह कर वलिप्रदान करना होगा। पीछे मण्डलके वाहर मरुद्भ्यो नमः, जलमें अद्भ्यो-नमः और मूषल वा ऊखलमें वनस्पतिभ्यो नमः यह कह कर वलि चढ़ाना होगा। वास्तुपुरुपके शिरःप्रदेशमें उत्तरपूर्वकी ओर श्रियै नमः कह कर लक्ष्मीको, उसके पाद-देशमें दक्षिण-पश्चिमको ओर भद्रकाल्यै नमः, कह कर भद्रकालीको, गृहमें ब्रह्मणे नमः कह कर ब्रह्माको और वास्तोस्पतये नमः कह कर वास्तु देवताको वलि चढ़ाना होगा। इसके वाद विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नक्तञ्चारिभ्यो नमः यह कर सभी देवता, दिवाचर और रात्रिचर भूतोंके उद्देशसे ऊद्दर्ध्व आकाशमें वलि उत्क्षेप करे। आखिर अपने पृष्ठदेश पर भूभागोपरि सर्वात्मभूताय नमः, कह कर सभीभूतोंको वलि देनी होगी। ये सव वलि देकर जो अन्न वचेगा, उसे दक्षिण-की ओर दक्षिणामुख और प्राचीनावीती हो कर पितरोंको स्वधा पितृभ्यः कह कर पितरोंको वलि दे। पीछे कुत्ते, पतित, कुक्कुरोपजीवो, पापरोगी, काक और कृमियोंके लिये दूसरे अन्नके पात्रमें ग्रहण कर धीरे धीरे जमीन पर इस तरह रख दे, कि धूल लगने न पावे।

ब्राह्मण इसी प्रकार प्रति दिन वैश्वदेवका अनुष्ठान करेंगे। जो ब्राह्मण इस प्रकार प्रति दिन अन्नदानादि द्वारा वैश्वदेवका अनुष्ठान करते हैं, वे सभो पापोंसे मुक्त हो अन्तमें स्वर्गलोकको जाते हैं। (मनु ३ अ०)

वैश्वदेव अवश्य कर्त्तव्य है, नहीं करनेसे प्रत्यवाय होता है।

वैश्वदेवक (सं० क्ली०) विश्वदेवस्य भावः कर्म वा (मना-ज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३) इति वुञ्। विश्वदेवका भाव या कर्म।

वैश्वदेवकर्मन् (सं० क्ली०) विश्वदेवकी पूजादि।

वैश्वदेवत (सं० क्ली०) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र। इसके अधिष्ठाता विश्वदेव माने जाते हैं। (वृहत्संहिता ६।६)

विश्वदेवस्तुत् (सं० पु०) एकाहभेद।

(शाङ्खायनश्रौ० १४।६०।१)

वैश्वदेवहोम (सं० पु०) वैश्वदेवताकी प्रीतिके लिये प्रदत्त होमविशेष।

वैश्वदेविक (सं० त्रि०) १ विश्वदेवसम्बन्धी, विश्वदेवका। (मार्क०पु० ३१।३८।५७) (पु०) २ वैश्वदेव।

वैश्वदेव्य (सं० त्रि०) जो विश्वदेवकी प्रीतिके लिये उत्सर्ग किया गया हो।

वैश्वदैवत (सं० क्ली०) वैश्वदेवत देखो।

वैश्वदैविक (सं० त्रि०) वैश्वदेविक देखो।

वैश्वध (सं० त्रि०) विश्वधा शीलमस्य। विश्वधारक।

वैश्वधेनव (सं० पु०) विश्वधेनु सम्बन्धी।

वैश्वधेनव (सं० पु०) वैश्वधेनवानां विषयो देशः। विश्वधेनु वहुलदेश। (पा ७।३।२५)

वैश्वन्तरि (सं० पु०) विश्वन्तरके गोत्रापत्य।

(संस्कारकौमुदी)

वैश्वमनस (सं० क्ली०) सामभेद।

(पञ्चविंशब्रा० १५।४।१६)

वैश्वमानव (सं० क्ली०) विश्वमानवानां विषयो देशः। देशविशेष, वह देश जहां विश्वमानव हो।

(पा ४।२।५४)

वैश्वयुग (सं० पु०) फलितज्योतिषके अनुसार वृहस्पति-के शोभकृत्, शुभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु और पराभव नामक पाँच संवत्सरोंका युग या समूह। इनमेंसे पहले दो संवत्सर शुभ और शेष दो अशुभ माने जाते हैं। (वराहवृहत्० ८।४१)

वैश्वरूप (सं० त्रि०) विश्वरूप-अण्। १ विश्वरूप सम्वन्धी। (क्ली०) २ विश्वरूप।

वैश्वरूप्य (सं० त्रि०) विश्वरूप-सम्बन्धी।

वैश्वलोप (सं० त्रि०) विश्वलोप भवं या तज्जात।
(कौषीतकी १७)

वैश्वव्यचस (सं० त्रि०) विश्वव्यचस्-अण्। रविसे उत्पन्न। "तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसम्"
(शुक्लयजु० १३।५६)

वैश्वसृज (सं० त्रि०) विश्वस्रष्टा-सम्बन्धी।
(तैत्तिरीयआर० १।२१।११)

वैश्वानर (सं० पु०) विश्वश्चासौ नरश्चेति (नरे संज्ञायां। पा ६।३।१२९) इति दीर्घः ततो विश्वानर एव स्वार्थे अण्। १ अग्नि। (गीता १५।१४) २ चित्रक या चीता नामका वृक्ष। ३ परमात्मा। (वाजसनेयस० २०।१३) ४ चेतन। ५ पित्त, पित्ता।

वैश्वानरचूर्ण (सं० क्ली०) चूर्णौषधविशेष। यह सेंधा नमक, अजवायन और हरें आदिसे बनाया जाता है। इसका सेवन करनेसे आमवात, गुल्म और शूल प्रभृति नाना प्रकारके रोग शीघ्र विनष्ट होते हैं। यह वायुका अनुलोमकारक है। (भैषज्यरत्ना० आमवातरो०)

वैश्वानरज्येष्ठ (सं० पु०) जाठराग्निके परवर्त्तिकालमें जात अग्नि, उक्षान्नादि। उक्षान्न, वशान्न और सोमपृष्ठ आदि ही वैश्वानरज्येष्ठ कहलाता है; क्योंकि ये सभी जाठराग्निके परवर्त्ति कालमें उत्पन्न होते हैं।
(अथर्व ३।२१।६ सायण)

वैश्वानरज्योतिष (सं० पु०) परब्रह्म। (शुक्लयजुः २०।२३)

वैश्वानरपथ (सं० पु०) वैश्वानरस्य पन्थाः, अच् समासान्तः। वैश्वानरमार्ग। (रामा० १।६०।३०)

वैश्वानरमार्ग (सं० पु०) अग्निकोण या पूर्व और दक्षिणके बीचका कोण। यह वैश्वानरका मार्ग माना जाता है।

वैश्वानरलौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—इमलीकी छालकी भस्म, अपाङ्ग भस्म, शामुक मुण्डिभस्म, सेंधा नमक प्रत्येक एक पाव, लोहा एक सेर, इन सबोंको एक साथ पीस ले। शूलरोगमें वेदना होने पर २ मासे भर यह औषध सेवन करे। इससे साध्यासाध्य सभी तरहके शूल जल्द आराम होते हैं। (भैषज्यरत्ना० शूलरोगाधि०)

वैश्वानरवटी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी गोली। यह पारे, गंधक, तांबे, लोहे, शिलाजीत, सोंठ, पीपल, चित्रक तथा मिर्च आदिके योगसे बनाई जाती है और यह पेटके रोगोंमें उपकारी मानी जाती है। (रसेन्द्रसारस० उदरोगाधि)

वैश्वानर विद्या (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

वैश्वानरायण (सं० पु०) विश्वानरके गोत्रापत्य।
(पा ४।१।११०)

वैश्वानरीय (सं० त्रि०) वैश्वानर-सम्बन्धी।
(ऐतरेयब्रा० ३।१४)

वैश्वामनस (सं० क्ली०) सामभेद।

वैश्वामित्रि (सं० पु०) विश्वामित्रके गोत्रापत्य, त्रिमित्र ऋषि। (भारत वनपर्व)

वैश्वामित्रिक (सं० त्रि०) विश्वामित्र-सम्बन्धी।

वैश्वावसव (सं० क्ली०) १ वसुओंका समूह। (त्रि०) २ विश्वावसु-सम्बन्धी।

वैश्वावसव्य (सं० पु०) विश्वावसो र्गोत्रापत्यं (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। विश्वावसुके गोत्रापत्य।

वैश्वासिक (सं० पु०) वह जिस पर विश्वास किया जाय एतबार करनेके काबिल, विश्वस्त।

वैश्वी (सं० स्त्री०) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र। (हेम)

वैषम (सं० क्ली०) विषम-अण्। विषम होनेका भाव, विषमता।

वैषमस्थ्य (सं० क्ली०) विषमस्थस्य भावः कर्म वा (गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) इति ष्यञ्। विषमस्थितका भाव या कर्म।

वैषम्य (सं० क्ली०) विषमस्य भावः विषम-ष्यञ् भावे। विषम होनेका भाव, विषमता।

वैषय (सं० क्ली०) विषयाणां समूहः (भिक्षादिभ्योऽण्। पा ४।२।३२) इति अण्। विषय समूह।

वैषयिक (सं० त्रि०) १ विषय-सम्बन्धी, विषयका। (पु०) २ वह जो सदा विषयवासनामें रत रहता हो, विषयी, लंपट।

वैषुवत (सं० त्रि०) विषुवसंक्रान्ति। "उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्गतिभिः।" (भागवत ५।२१।३)

वैषुवतीय (सं० त्रि०) वैषुवत देखो।

वैष्किर (सं० पु०) वह पशु पक्षी जो चारों ओर घूम फिर कर आहार प्राप्त करता हो।

वैष्टप (सं० त्रि०) विष्टप-सम्बन्धी। (अथर्व १६।२७।४)

वैष्टपुरेय (सं० पु०) विष्टपुरस्य गोत्रापत्यं विष्टपुर (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। विष्टपुरके गोत्रापत्य।

वैष्टम्भ (सं० क्ली०) सामभेद। (पञ्चविंशब्रा० १२।३।१६)

वैष्टिक (सं० पु०) दुर्वृत्त, दुराशय।

वैष्टुत (सं० पु०) होमकी भस्म।

वैष्टुभ (सं० क्ली०) वैष्टुत देखो। (त्रिकाण्ड० २।७।७)

वैष्ट्र (सं० क्ली०) विश (भ्रमभिगमिनमिर्हानिविश्यशां वृद्धिश्च। उण् ४।१५६) इति ष्ट्रन् वृद्धिश्च। १ पिष्टप। (पु०) २ द्यौ, स्वर्ग। ३ वायु। ४ विष्णु। (संक्षिप्तसा० उणादि)

वैष्णव (सं० क्ली०) विष्णोरिदं विष्णु-अण्। १ होम-भस्म, यज्ञकुंडकी भस्म। २ महापुराणविशेष, विष्णु पुराण।

"त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम्।"

(देवीभागवत ३।३।८)

(त्रि०) ३ विष्णुसम्बन्धी।

"गां गतस्य तव धाम वैष्णवं कोपितो ह्यसि मया दिदृक्षुणा।"

(पु०) विष्णुर्देवताऽस्य अण्। ४ विष्णुमन्त्रो-पासक, विष्णुभक्त। पर्याय—कार्ष्ण, हार।

नीचे वैष्णव शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

वैष्णव (सं० पु०) विष्णुर्देता अस्य विष्णु-अण्; विष्णु यजते वा। विष्णु हो जिसके आराध्य देवता हैं, अथवा जो विष्णु यजन करते हैं, वे ही वैष्णव हैं।

(पद्मपु० उ० ख० ६६ अ०)

प्राचीन ऋक् मन्त्रमें ऋषि उपासना करते थे। भोगैश्वर्य्य प्रदानके निमित्त विष्णुकी प्रार्थना करते, विपदसे उद्धार पानेके लिये विष्णुकी शरण लेते फिर कभी कभी निष्काम भावसे विष्णुकी महिमा गा गा कर हृदयेश्वरके चरणोंमें आत्मसमर्पण करते थे।

हम ऋग्वेदके १ मण्डलके २२वें सूक्तके १६वीं ऋक्-में सर्वप्रथम विष्णुका उल्लेख देखते हैं। इस १६वीं ऋक्से परवर्त्ती ६ ऋकोंमें विष्णुकी जो महिमा कीर्त्तित हुई है, उससे ही वैदिक कालमें भी हम विष्णुकी आरा-धनाका प्रभाव, प्रसार और प्रतिपत्तिका यथेष्ट आभास पाते हैं। प्राचीन और आधुनिक जो २३१ उपनिषद् हैं, उनमें अधिकांशसे विष्णु-माहात्म्यकीर्त्तन उद्धृत किया जा सकता है।

वैष्णव सम्प्रदायकी उपनिषदोंमें तैत्तिरीयसंहिताके अन्तर्गत नारायणोपनिषद् ही प्राचीनतम है। ऐसा यूरोपीयनोंने भी स्वीकार किया है। शतपथब्राह्मणमें भी नारायणका नाम दिखाई देता है। बृहन्नारायणोप-निषद् अथर्ववेदके अन्तर्गत है। इसमें हरि, विष्णु और वासुदेव आदि शब्दमें भी देखे जाते हैं। महोपनिषद्में भी नारायण ही परब्रह्म कह कर स्वीकृत हुए हैं। अथर्व-शिरः उपनिषद्में "हम देवकी-पुत्र मधुसूदन" नाम देखते हैं। छान्दोग्यमें भी "देवकीपुत्र कृष्ण अङ्गिरस" नाम मिलता है। आत्मप्रबोध उपनिषद् और गर्भोपनिषद्में भी नारायण ही परमतत्त्व कहे गये हैं। मैत्रेयोपनिषद्, वासुदेवोपनिषद्, स्कन्दोपनिषद्, रामोपनिषद्, रामतापि-नियोपनिषद् और मुक्तिकोपनिषद्में भी नारायणका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। इन सब उपनिषदोंमें कई उपनिषद् प्राचीन न होनेसे भी बहुत आधुनिक नहीं है। साम्प्रदायिक उपनिषद् अपेक्षाकृत अप्राचीन होने पर इन-में कई पाणिनिके पहले ही रची गई थी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

जो हो, नारायणोपनिषद् अति प्राचीन और वैदिक है, इसमें विन्दुमात्र भी सन्देह नहीं। हम महाभारतके मोक्षधर्म अध्यायमें "नारायणीय" अध्याय देखते हैं। इन सब अध्यायोंमें प्राचीन कालके नारायण उपासक वैष्णवोंका कुछ विवरण दिखाई देता है।

महाभारतको इस उक्तिसे हम समझते हैं, कि यह वैदिक आख्यान है। उपरिचर वसु देवराज इन्द्रके मित्र थे। इनको सूर्य्यसे नारायणकी अर्चनाके संबन्धमें "सात्त्वतविधान" मिला था। इस "सात्त्वत" शब्दका अर्थ टीकाकार नीलकण्ठने लिखा है,—"सात्त्वतानां पाञ्चरात्राणां हितं।" इसके बाद और भी लिखा है:—

"पाञ्चरात्रविदो मुख्यास्तस्य गेहे महात्मनः।
प्रायणं भगवत्प्रोक्तं भुञ्जते चाग्रभोजनम्॥ २५"

अर्थात् वे समाहित हो कर काम्य और नैमित्तिक

याज्ञीय क्रिया समुदय "सात्वत" विधिके अनुसार निर्वाह करते थे। पञ्चरात्रमुख्य ब्राह्मणगण भगवत् प्रोक्त सोऽयादि ग्रहण करते थे।

चित्रशिखण्डी शास्त्र।

वेदके समयमें भी 'सात्वत' विधि पाञ्चरात्र संप्रदायमें प्रचलित था। महाभारतके इस आख्यानसे मालूम होता है, कि "सात्वत" विधान ही वैष्णव मत है। मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ—ये सात ऋषि चित्रशिखण्डी नामसे विख्यात थे। ये ही "सात्वत विधि" प्रवर्त्तक हैं।

(शान्तिपर्व ३३५।२८-२६)

राजा उपरिचर वसुने अङ्गिराके पुत्र बृहस्पतिके सम्मुख 'सप्त चित्रशिखण्डिज' शास्त्र पाठ किया। वे याग यज्ञादि भी करते थे। शान्तिपर्वमें इसका उल्लेख है।

देवताओंने द्विजोत्तमोंसे कहा था, अज द्वारा यज्ञ करना होगा। अजका अर्थ बकरा है। सुतरां बकरे द्वारा यज्ञ करना होगा। यही वैदिक श्रुति है। अज शब्दका अर्थ वीज होता है। सुतरां बकरेकी हत्या करना असङ्गत है। जिसमें पशु मारे जाते हैं, वह साधुओंके लिये धर्म नहीं गिना जा सकता है।

(शान्तिपर्व ३३७।३-४-५)

यही सात्वत विधि है। पूर्वाध्यायमें इसकी एक और विशिष्टता बताई गई है। जैसे—

"भक्त्या परया युक्तो मनोवाक्कर्मभिस्तदा।" ४७॥

"नारायणपरोभूत्वा नारायणजपं जपन्।" ६४॥

यह जो यहां भक्तिकी बात कही गई, यही भक्ति ही वैष्णव धर्मकी-उपासनाकी एक प्रधान विशिष्टता है। जो हो, महाभारतके पढ़नेसे मालूम होता है, कि श्रीभगवान् नारायण ही इस सात्वतधर्मके आदि उपदेष्टा हैं। जैसे महाभारतमें—

"आराध्य तपसा देवं हरिं नारायणं प्रभुम्।
दिव्यं वर्षं सहस्रं वै सर्वे ते ऋषिभिः सह॥
नारायणानुशिष्टा हि तदा देवी सरस्वती।
विवेश तान् ऋषीन् सर्वान् लोकानां हितकाम्यया॥
ततः प्रवर्त्तिता सम्यक् तपोविद्भिर्द्विजातिभिः।
शब्दे चार्थे च हेतौ च एषा प्रथमसर्गजा॥
आदावेव हि तच्छास्त्रमोङ्कारस्वरपूजितम्।
ऋषिभिः श्रावितं तत्र यत्र कारुणिको ह्यसौ॥
ततः प्रसन्नो भगवाननिर्दिष्टशरीरकः।
ऋषीनुवाच तान् सर्वानदृश्य पुरुषोत्तमः॥"

(शान्तिप० ३३५।३४-३८)

फिर श्रीमद्भागवतमें भी सात्वत् तन्त्रके प्रकाश-सम्बन्धमें पौराणिक इतिहास देखा जाता है। जैसे—

"तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥"

फिर, तृतीय ऋषिसर्गमें देवर्षित्व अर्थात् नारद रूप ग्रहण कर पञ्चरात्र नामक वैष्णव तन्त्र प्रकाश किया गया है। ये पञ्चरात्रोक्त कर्म करनेसे जीव कर्म बन्धनसे मुक्त होता है

उक्त श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीका कहना है:—

"सात्वतं वैष्णवतन्त्रं पञ्चरात्रागमं आचष्ट।" यह सात्वत धर्म भगवद्धर्म नामसे भी अभिहित होता है। श्रीमद्भागवतमें ही यह भगवद्धर्म उक्त हुआ है। स्वयं भगवान् नारायण ही इस धर्मके प्रकाशक हैं। उन्होंने पहले ब्रह्माके सम्मुख "भागवतधर्म" प्रकाश किया। इसके बाद ब्रह्माने नारदको और नारदने व्यासको इसकी शिक्षा दी।

हमने महाभारत और श्रीमद्भागवतसे वैष्णधर्मके इतिहासके सम्बन्धमें जो सब प्रमाण संगृहीत किये, उससे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि प्राचीनतम कालमें वैष्णव धर्म "सात्वत धर्म" "भागवत धर्म" और "पञ्चरात्र धर्म" नामसे अभिहित होता था।

पञ्चरात्र।

भागवतधर्म या सात्वतधर्म बहुत प्राचीन समयसे आलोचित होता आ रहा है। भागवत् सम्प्रदायकी प्रवृत्ति और प्रसार किस तरह संगठित हुआ,-इससे पहले इसका आभास दिया गया है। समय पा कर यह पञ्चरात्र मतके नाम प्रसिद्ध हुआ। इसका सविस्तार वर्णन पञ्चरात्र शब्दमें देखो।

शङ्कराचार्य जब मायावाद संस्थापनमें प्रवृत्त हुए, तब उन्होंने ब्रह्मसूत्रके २।२।४३-४४-४५ सूत्रकी व्याख्यामें

पञ्चरात्र और भागवत मतका अवैदिकत्व-सिद्ध करनेकी चेष्टा की थी। रामानुजस्वामी शङ्कराचार्यके इस मतका खण्डन कर गये हैं। पञ्चरात्र शब्दमें वह दिखाया गया है। शङ्कराचार्यके बहुत पहले बौधायन, गुहदेव, द्रमिड़ाचार्य आदिने ब्रह्मसूत्रको जो व्याख्या की है, वह भी वैष्णवसिद्धान्तके अनुकूल है। सुतरां शङ्कराचार्यके बहुत पहले इस देशमें पञ्चरात्र नामक वैष्णव धर्म प्रचलित था, वह शङ्कराचार्यको भी स्वीकार्य्य होगा और तो क्या महाभारतमें भी पञ्चरात्रागमकी बात स्पष्टतः लिखी है। इन प्रमाणों पर ही निर्भर कर अनायास ही कहा जा सकता है, कि ब्राह्मण ग्रन्थ रचित होनेके पहले पञ्चरात्र मत या सात्वत वैष्णव धर्म इस देशमें यथेष्ट प्रचलित था।

मध्य युगमें वैष्णव सम्प्रदाय।

वैदिक समयमें वैष्णव सम्प्रदायमें जैसा आचार व्यवहार रीति नीति और उपासना या यज्ञकी पद्धति प्रचलित थी, कालके साथ साथ क्रमशः वे सब प्रणालियां बदलती आ रही हैं। आचार-व्यवहार और उपासनाप्रणालीमें परिवर्त्तन सङ्घटनमें भिन्न भिन्न संप्रदायोंको सृष्टिमें देश-काल-पात्रके भेदसे और प्रणाली भेदसे और भिन्न भिन्न आचार्यों के अभ्युत्थानसे भिन्न भिन्न सिद्धान्त संस्थापित हो कर वैष्णवधर्म महामहीरुह समय पाने पर बहुशाखामें विभक्त हो जायेगा, इसमें आश्चर्य ही क्या? भिन्न भिन्न प्रतिकूल वादियोंके तर्क निरसनके साथ साथ भी वैष्णवधर्मके भिन्न भिन्न संप्रदाय और सिद्धान्त प्रवर्त्तित हुए हैं।

हमने इससे पहले श्रीमद्भागवत और महाभारतसे प्राचीन वैष्णव संप्रदायका परिचय प्रदान किया है। शङ्कराचार्यके समयमें जो सब वैष्णव-संप्रदाय थे, शङ्कर-शिष्य आनन्दगिरि-लिखित शङ्करदिग्विजय ग्रन्थमें हम कुछ परिचय पाते हैं। इस ग्रन्थके छठवें प्रकरणसे जाना जाता है—

शङ्कराचार्यके समय इस देशमें भक्त, भागवत, वैष्णव, पाञ्चरात्र, वैखानस और कर्महीन—साधारणतः ये छः प्रकारके वैष्णव थे। किन्तु ज्ञान और क्रियाभेदसे इस छः सम्प्रदायके अन्तर्गत और भी छः प्रकारके वैष्णवोंका परिचय पाते हैं। शङ्करविजयके आनन्दगिरिने इन छः साम्प्रदायिक वैष्णवोंकी उपासना-प्रणालीके संबंधमें संक्षेपमें कुछ वर्णना की है। किंतु यह कहा जा नहीं सकता, कि यह वर्णना कहां तक प्रामाणिक है।

भक्त।

वासुदेव ही भक्तोंके मतसे महापुरुष हैं। इस जगत्के रक्षाकर्त्ता, सर्वज्ञ और सर्वदेवकारण हैं। वासुदेव ही शिष्टपालन और दुष्टदमनके लिये तथा भूभार उतारनेके लिये रामकृष्ण आदिका अवतार लिया करते हैं। पुण्यस्थलमें निजाविर्भूत मूर्त्ति प्रतिष्ठा करते हैं। इनकी पदपङ्कज-सेवा ही भक्तोंके जीवनकी पुरुषार्थ है। भक्तगण अनन्तमूर्त्तिके सेवक हैं, श्रीमन्दिरादिका सम्मार्जन और प्रोक्षण आदि इनके कार्य हैं। ये दास्यरूपसे उपासना, ऊद्‌ध्वपुण्ड्र तिलकादि धारण और ब्राह्ममुहूर्त्तमें स्नानाह्निक करते हैं। स्मार्त्तविहित नित्यकर्म इनके लिये अप्रामाणिक है। ज्ञानक्रियाभेदसे इनका आचार विविध है। ज्ञानी कर्मानुष्ठान नहीं करते। ज्ञानी और कर्मी भक्त भेदसे यह सम्प्रदाय दो तरहका है। कर्मीभक्त स्मार्त्तमार्गमें काम करते हैं। किन्तु उस कर्मफलको भगवान्‌को ही समर्पण करते हैं।

भागवत।

श्रीभगवान्‌की स्तोत्रवन्दना और कीर्त्तनादि ही भागवत मतकी उपासना है। ये कहते हैं—

सर्ववेद-विनिश्चित आचरण करने पर जो फल होता है, सर्व तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे जो फल होता है, जनार्दनके स्तव करनेका भी वैसा ही फल हुआ करता है। "कलौ संकीर्त्य केशवम्" यही इनकी उपासनाको सार बातें हैं। स्मार्त्तविहित कर्मानुष्ठान इनके मतसे बिलकुल अत्याज्य न होने पर भी ये उसके अनुष्ठानमें तत्पर नहीं हैं। ऊद्‌ध्वपुण्ड्र, तिलक और नारायण-चिह्न शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि द्वारा तिलकाङ्कन, कण्ठमें तुलसीमाला धारण और सब समयमें उच्चस्वरसे नारायणका नामकीर्त्तन आदि इनके धर्मसङ्गत कार्य हैं। पर, व्यूह, विभव और आर्च्चा—भगवान्‌की ये चार मूर्त्तियां इनको स्वीकार है। परवर्त्तीकालमें श्रीरामानुजस्वामीने इसको उज्ज्वल बनाया।

वैष्णव।

वैष्णव नारायणके उपासक हैं, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि नारायणके चिह्न देहमें अङ्कित करते हैं। "ओं नमो नारायणाय" इसी मन्त्रसे विष्णुकी उपासना करते हैं। वैकुण्ठ इनका धाम है।

ये भी तप्तमुद्राचिह्न धारण करते हैं। अर्थात् शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, मुद्रा तप्त कर इसके द्वारा चर्ममें स्थायी भावसे चिह्न आदि धारण करते हैं।

पञ्चरात्र।

जो सब विष्णुभक्त पञ्चरात्र आगमके मतसे उपासना और उसके अनुसार आचार-व्यवहार करते हैं, वे ही पञ्चरात्र नामसे अभिहित होते हैं और ये भगवदर्च्चा-मूर्त्ति प्रतिष्ठादि कर उसकी उपासनामें रत रहते हैं। "पञ्चरात्र" शब्दमें इसका विस्तार वर्णन देखना चाहिये। इस श्रेणीके वैष्णव बहुत प्राचीन हैं। महाभारत-रचनासे पहले पञ्चरात्रविधिका प्रवर्त्तन हुआ। ये भी नारायण या वासुदेवके उपासक हैं। चक्रादि चिह्न व्यवहार और तुलसीमाला धारण प्रभृति भी इनका कर्त्तव्य कार्य है।

आदित्यपुराण, गरुड़पुराण, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, वराहपुराण, गोतमीयतन्त्र, यजुर्वेदीय हिरण्यकेशीय शाखा, कठशाखा और अथर्ववेदमें भी उपक्रम चिह्नादि धारण करनेकी व्यवस्था है।

वायुपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, ऋग्वेदीय आश्वलायन-शाखा, ऋक्परिशिष्ट, यजुर्वेद और छान्दोगपरिशिष्ट, अथर्वपरिशिष्ट आदि विविध शास्त्रमें इसके संबंधमें अनेक प्रमाण मिलते हैं। सुविख्यात शाण्डिल्य भक्तिसूत्र इस पाञ्चरात्र सम्प्रदायका ग्रंथ है। अनेकोंका मत है, कि यह सूत्रग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीतामूलक है।

वैखानस।

वैखानस भी शङ्ख, चक्र आदि चिह्न तिलक-स्वरूप धारण करते हैं। नारायण ही इनके उपास्य देवता हैं। इनके मतसे विष्णु सर्वोत्तम हैं। श्रुतिप्रमाण दे कर ये कहते हैं,—

"तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रसो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते॥" (ऋक् १।२२।२०-२१)

इस तरह श्रौत प्रमाणानुसार ये विष्णुको ही सर्वोत्तम कह कर भजन करते हैं। नारायणोपनिषद् इनके मतसे अति प्रामाणिक वेदान्त श्रुतिग्रन्थ है। ये तप्तचक्रादि चिह्न अङ्गमें नित्यरूपसे धारण करते हैं।

कर्महीन या निष्काम।

कर्महीन वैष्णव कर्मकाण्डत्यागी है। यह कर्महीन वैष्णव केवलमात्र विष्णुको ही गतिमुक्ति समझ एक समयमें अशेष कर्म परित्याग करते हैं। ये अन्य देव, अन्य मन्त्र, अन्य साधन या अन्य किसी सम्प्रदायके आचार्य या गुरुको नहीं मानते। ये जगत्को विष्णुरूप मानते हैं—(सियाराममय सब जग जानी, करौं प्रणाम जोरि युग पाणि। ये चौपाई भी एक भक्त वैष्णवका ही है।) अपने सम्प्रदायके गुरुको ये एकमात्र मोक्षपथ-प्रदर्शक समझते हैं। ये सन्ध्या-गायत्री आदिकी मर्यादा-रक्षा नहीं करते हैं। इन सब सम्प्रदायोंके आचार-व्यवहार और दार्शनिक तत्त्व आदिका मर्म सात्त्वत शब्दमें देखो।

शङ्कराचार्यके कुछ काल पहले इस देशमें ये सब वैष्णव संप्रदाय विद्यमान थे और उनके तिरोधानके बाद इनमें कोई सम्प्रदाय किस आकारमें प्रवर्त्तित हुआ था, उसका इतिहास अस्पष्ट है। महाभारतके रचनाकालमें बहुत पहले भी कृष्ण और वासुदेवकी अर्चना प्रचलित थी। महाभारत पढ़नेसे यह सहज ही हृदयङ्गम होता है। किन्तु शङ्करदिग्विजय ग्रन्थमें अथवा शङ्करभाष्यमें हम श्रीकृष्णोपासक संप्रदायका नाम दिखाई नहीं देता है। श्रीमद्भागवत-ग्रन्थको श्रीमच्छङ्कराचार्य उत्तमरूपसे ही अध्ययन किया था, शङ्करदिग्विजय ग्रंथ पाठ करनेमें उसका परिचय पाया जाता है। वे शुद्ध भक्तके विशुद्ध सिद्धान्त संस्थापन करनेके लिये वैखानस-मत निरसन प्रसङ्गमें श्रीमद्भागवतसे एक श्लोक उद्धृत कर रहे हैं, वह इस तरह है—

"कर्मवहिष्कृतस्य विष्णुभक्तावपि अधिकारो नास्त्येव। उक्तञ्च भागवतभगवद्भक्तस्य लक्षणम्—

"न चलति निजवर्णधर्मतो यः सम मतियात्मसुहृद्विपक्षपक्षे।
न हरति न चलति किञ्चिदुच्चैः सततमन्युं तमवेहि विष्णुभक्तम्॥"

(दशम प्रकरण)

जिनकी मधुर लीलासे श्रीमद्भागवतका प्रति छत्र सुधाधारासे परिप्लुत है, जिनके कीर्त्तिमाहात्म्यकी उद्घोषणासे सारा भारतवर्ष मुखरित है, श्रीमद्भागवद्गीता जिनके श्रीमुखका विश्वतोमुख सनातन-धर्मोपदेश है, मध्ययुगमें उन श्रीकृष्णकी नामगुण ध्यानधारणा पूजा-अर्चना नहीं होती थी, यह बात कौन विश्वास करेगा ? इसीसे मालूम होता है, कि शङ्करविजयमें जिन थोड़े वैष्णव-संप्रदायका उल्लेख है, उनको छोड़ और भी कितने वैष्णव संप्रदाय भारतवर्षमें विद्यमान थे।

वर्त्तमान वैष्णव संप्रदाय।

जो हो, अभी हम लोग भारतवर्षमें जो चार शास्त्रीय वैष्णव मूलसंप्रदाय देखते हैं, पद्मपुराणमें भी उन चार संप्रदायोंका उल्लेख दिखाई देता है। यथा—

"अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः संप्रदायिनः।
श्रीब्रह्मरुद्रसनको वैष्णवा क्षितिपावनाः॥"

अर्थात् कलिकालमें चार संप्रदाय क्षितिपावन वैष्णव प्रकट हो कर श्री, ब्रह्म, रुद्र और सनक नामसे परिचित होंगे। इसका अभिप्राय यह कि लक्ष्मीसे एक संप्रदाय, ब्रह्मसे एक सम्प्रदाय, रुद्रसे एक संप्रदाय और सनकसे एक संप्रदाय वैष्णव प्रादुर्भूत होंगे। इन चार संप्रदायको गुरुप्रणालिका आज भी प्रचलित है। भगवदवतारके सदृश आचार्यों के प्रत्येक संप्रदायमें आविर्भूत होनेसे अभी उन्हींके नाम पर ये संप्रदाय पुकारे जाते हैं। यथा—

"रामानुजं श्रीः स्वीचक्रे मध्वाचार्यं चतुर्मुखः।
श्रीविष्णुस्वामिनंरुद्रो निम्बादित्यं चतुःसनं॥"

अर्थात् श्रीठाकुरानीने श्रीमद्रामानुजाचार्यको, ब्रह्माने मध्वाचार्यको, रुद्रने विष्णुस्वामीको और चारसनने निम्बादित्यको अपने अपने सम्प्रदायका अभिनव प्रवर्त्तक स्वीकार किया। अभी इन चारों सम्प्रदायके वैष्णव भारतवर्षमें अधिक संख्यामें देखे जाते हैं। किन्तु श्रीगौराङ्गदेवने मध्वाचार्य सम्प्रदाय हो कर भी वैष्णव-धर्मका अभिनव समुज्ज्वल सिद्धान्त प्रकट किया है। यह संप्रदाय मध्वाचार्य-संप्रदायभुक्त कह कर प्रसिद्ध था, परन्तु अभी यह सभी विषयोंमें मध्वाचार्य-संप्रदायसे विभिन्न है तथा श्रीगौड़ेश्वर संप्रदाय नामसे ख्यात है।

श्रीसम्प्रदाय।

श्रीरामानुजाचार्यने इस सम्प्रदायका नाम जगद्विख्यात कर दिया है। किन्तु उनके आविर्भावके बहुत पहलेसे ही श्रीसम्प्रदायका वैष्णवधर्म प्रचलित था तथा पूर्वाचार्यगण धर्ममतका संरक्षण करते आ रहे थे।

श्रीसम्प्रदाय शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

रामानुजकी शाखा-सम्प्रदाय।

रामानुजके शाखा-संप्रदायमें रामातोंका नाम ही विशेष उल्लेखनीय है। भारतवर्षके उत्तर-पश्चिम अञ्चलमें रामात्-संप्रदायका वैष्णव सुप्रसिद्ध है। यह संप्रदाय रामानन्दी कहलाता है।

रामानन्द शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

कबीरपन्थी।

शास्त्रपथका परित्याग कर व्यक्तिविशेषके स्वेच्छानुसार जब धर्ममत प्रवर्त्तित हुआ, तब उस संप्रदायके उपासक पन्थी कहलाने लगे। रामानन्दके सुप्रसिद्ध शिष्य कबीरने धर्ममत चलाया। वही मत उत्तर-पश्चिमाञ्चलमें यथेष्ट प्रचलित हुआ था। कबीरकी जीवनी और उनका धर्ममत 'कबीर' शब्दमें लिखा जा चुका है।

कबीर देखो।

खाकी।

रामानुज-संप्रदायकी दूसरी शाखा खाकी-संप्रदाय है। ये लोग रामानन्दी संप्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। कील नामक एक भगवद्भक्त वैष्णव इस संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। अयोध्याके निकटस्थ हनूमान्‌गढ़में इनका प्रधान मठ है। जयपुरमें खाकीकुलगुरु कीलका प्रधान मठ संस्थापित है। फरक्काबाद प्रदेशमें खाकी-संप्रदाय देखनेमें आता है।

मूलुकदासी।

मूलुकदासी नामक रामानुज-संप्रदायकी एक और शाखा है। मूलुकदास इस संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। रामानन्दी-संप्रदायकी गुरुप्रणालीमें मूलुकदासका नामोल्लेख है। काशी, इलाहाबाद, लखनऊ, अयोध्या, वृन्दावन और जगन्नाथक्षेत्रमें इस संप्रदायके छः मठ हैं।

दादुपन्थी।

रामानुजकी शाखा-प्रशाखाको छोड़ कुछ शाखा भी वर्त्तमान है। दादुपन्थी हो रामानुजीय संप्रदायको

वृद्धशाखा है। रामानन्द रामानुज-संप्रदायसे प्रादुर्भूत हुए हैं। कवीर रामानन्दके शिष्य हैं। दादुपन्थी फिर कवीरपन्थीसे उत्पन्न हैं। दादु इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। कवीरपन्थियोंको गुरुप्रणालीमें दादुका नाम आया है।

रयदासी।

रामानन्दस्वामीके दूसरे शिष्य रयदास वा रुईदास रयदासी-संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। रुईदास जातिके चमार थे, वैष्णवधर्मके प्रभावसे एक चमारने भी धर्माचार्यकी पदवी पाई थी। चित्तोरराजकी आलि नाम्नी महिषीने भी रयदाससे दीक्षा ली थी, इससे और आश्चर्य क्या हो सकता है?

सेनपन्थी।

रामानन्दके शिष्य सेन नामक एक नापित सेनपंथी संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। सेन और उनके वंशधरगण गन्दोयानाके बन्धगढ़ राजवंशके कुलगुरु थे। भक्तमालमें सेनका चरित और उनकी अद्भुत आख्यायिका प्रचलित है। सेनपन्थियोंका अभी कोई संधान नहीं मिलता।

रामसनेही।

रामचरण नामक एक व्यक्ति रामसनेही संप्रदायके प्रवर्त्तक थे। रामसनेही संप्रदाय रामात् वैष्णव हैं। ये लोग मूर्त्तिपूजा नहीं करते। यह संप्रदाय नितान्त आधुनिक है, १८२८ संवत्‌में प्रवर्त्तित हुआ है। ये लोग गलेमें माला पहनते और ललाटमें श्वेत दीर्घपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं।

ब्रह्मसंप्रदाय।

हम पहले लिख चुके हैं, कि श्रीसंप्रदाय श्री वा लक्ष्मीठाकुरानीसे चलाया गया है तथा ब्रह्मा ही ब्रह्मसंप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। पद्मपुराणमें प्रागुक्त वचन ही इसका प्रमाण है। ब्रह्मासे जो एक वैष्णव-संप्रदाय-प्रवृत्ति है, श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धकी टीकाके प्रारम्भमें श्रीधरस्वामीने भी वह स्वीकार किया है। परवर्त्ती आचार्य कहते हैं—

"रामानुजानां सरण्यीरमातो गौरीपतेर्विष्णुमताऽनुगानाम्।
निम्बार्कगानां सनकादितश्च मध्वानुगानां परमेष्ठितश्च॥"

(प्रामञ्जन १३३ पृ०)

ब्रह्मासे जिस वैष्णव संप्रदायको प्रवृत्ति हुई, दक्षिणापथके अन्तर्गत तुलवदेशवासी मध्विजीभट्टके पुत्र वासुदेव (मध्वाचार्य)-ने उस संप्रदायमें नवजीवन प्रदान किया। इस कारण ब्रह्मसंप्रदाय अभी माध्वसंप्रदाय नामसे भी अभिहित हुआ है। ये साधनासे सिद्धिलाभ करके पूर्णप्रज्ञ कहलाने लगे। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ है। इनकी जीवनी और धर्ममत 'मध्वाचार्य' शब्दमें लिखा जा चुका है। मध्वाचार्यने वेदांतका द्वैतभाष्य रचा जो "पूर्णप्रज्ञदर्शन" नामसे प्रसिद्ध है। नारायण उपनिषद् ही इस संप्रदायको श्रुतिसम्बन्धिनी भित्ति है। माध्वगणने गुरुप्रणाली इस प्रकार स्वीकार की है।

शेषोक्त इन्हीं पुरुषोत्तमसे श्रीगौराङ्ग-संप्रदायको गुरुप्रणालीका प्रारम्भ निर्देश किया जा सकता है।

रुद्रसम्प्रदाय।

रुद्रने भी एक वैष्णव-संप्रदाय चलाया। परवर्त्ती

कालमें श्रीविष्णुस्वामीने इस सम्प्रदायके धर्ममतका प्रचार किया। इस कारण लिखा है—"श्रीविष्णुस्वामिनं रुद्रः।"

अर्थात् रुद्रने श्रीविष्णुस्वामीको अपने संप्रदायका धर्माचार्य कह कर स्वीकार किया। महादेव सदाशिव जो भक्तिदाता और भक्तिधर्मप्रचारक थे, यह बात अनेक शास्त्रोंमें लिखी है। वल्लभाचार्य मतानुग प्राभञ्जनग्रन्थ-टीकाकारने अपने 'मारुत-शक्ति" नामक टीका-ग्रन्थमें लिखा है—

"तत्र अस्माकम् रुद्रसम्प्रदायः" अतएव तस्य भक्तिदातृत्वं तत्र तत्र वर्णयन्ति श्रीमदाचार्याः। यथा पुरुषोत्तमनामसहस्रे—

"महादेव स्वरूपश्च भक्तिदाता कृपानिधिः।"

निबन्धे चतुर्थस्कन्ध विवरणेऽपि सायुज्याधिकारिणां प्रचेतसां श्रीशिवकर्तृकोपदेशादेव सिद्धिर्दर्शिता।

"तपसा साधने तस्य न बन्धो भवतीति हि।
तथापि कृष्णसेवायां कृतार्थत्वं हि सर्वथा॥
इति तान् सर्वथा शुद्धान् विलोक्येशो हरिप्रियः।
प्रोवाच सर्वसन्देहवारकं सर्वबोधकम्॥
अपि च द्वादशस्कन्धनिबन्धे श्रीमदाचार्याः।
'भक्तियुक्तो महादेवस्तां दातुं शक्नुयात्तथा।'
एतेन महादेवे गुरुत्वबोधनाय तदुपानिबन्धन
मित्युक्तम्॥'

इस व्याख्यामें हम रुद्रप्रवर्त्तित वैष्णव-सम्प्रदायकी उत्पत्तिका इतिहास और हेतु स्पष्ट देख पाते हैं। अतएव ब्रह्मसम्प्रदायकी तरह रुद्रसम्प्रदाय भी प्राचीन है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। चार सौ वर्ष पहले वल्लभाचार्यने इस सम्प्रदायका प्रसिद्ध आचार्य पद पाया। उस समयसे यह सम्प्रदाय वल्लभाचारी भी कहलाता आ रहा है।

हम इस मारुतशक्तिटीका ग्रन्थमें ही इस सम्प्रदायकी प्रणाली देख पाते हैं। यथा—

"आदौ श्रीपुरुषोत्तमं पुरहरं श्रीनारदाख्यं मुनिं।
कृष्णं व्यास गुरुं शुकं तदनु विष्णुस्वामिनं द्रविड़म्॥
तच्छिस्यं किल विल्वमङ्गलमदं वन्दे महायोगिनं।
श्रीमद्वल्लभनाम धाम च भजेऽस्मत् सम्प्रदायाधिपम्॥"

इससे निम्नलिखित गुरुप्रणालिका मिलती है—

यह गुरुप्रणालीका धारावाहिक नहीं है। इसमें सिर्फ सम्प्रदाय-प्रवर्त्तकोंके प्रधान प्रधान आचार्योंके नामोंका उल्लेख किया गया है।

वल्लभाचार्य सम्प्रदायके गोस्वामी 'गोकुलस्थ गोसांई' कहलाते हैं। प्राभञ्जनग्रन्थके मारुतशक्तिटीकाकारने इस सम्बन्धमें भी ऐतिहासिक और पौराणिक उपाख्यानोंका उल्लेख किया है।

शाण्डिल्यसंहितासे वल्लभाचार्यने अपने सम्प्रदायकी उत्पत्तिके इतिहासका आनुपौर्विक परिचय दिया है। एक दिन शङ्करदेवने गोकुलमण्डलमें जा श्रीवृन्दावनमें सच्चिदानन्द मन्दिरमें कोटिमन्मथसुन्दर व्रजश्रीगण-सेवित श्रुतिगण-पूजित ललितत्रिभङ्ग श्याम सुन्दरको प्रणाम कर सामगानसे उन्हें प्रसन्न किया तथा भक्ति-धर्म और सम्प्रदाय स्थापनके लिये उनसे प्रार्थना की। तदनुसार श्रीपतिने उन्हें सद्धर्म स्थापन करनेका उपदेश दिया। नारद मुनिकी सेवासे संतुष्ट हो शङ्करने नारदसे वह उपदेश कह सुनाया। पीछे नारदने वह वेदव्यासको सिखाया। विष्णुने कौण्डिन्य गर्गाचार्य महात्माओंको वह उपदेश प्रदान किया। व्यासने अपने पुत्र शुकको उस धर्मकी शिक्षा दी। शुकदेवने विष्णु अर्थात् विष्णुस्वामीको वह धर्मतत्त्व सुनाया।

इसके बाद इस शाण्डिल्यसंहिताकी भविष्य वाणीके रीत्यानुसार वल्लभाचार्यके प्रादुर्भावका स्पष्ट प्रमाण दिया गया है अर्थात् पूर्वाचार्योंके अभावमें आगे चल कर भक्ति

लुप्तप्राय होगी। उस समय श्रीपति हरिके अनुग्रहसे मथुर मण्डलके अन्तर्गत गोकुलमें एक महापुरुषका आविर्भाव होगा। वे पराभक्तिको पुष्टि और सम्प्रदाय प्रवर्त्तन कर पृथ्वीकी रक्षा करेंगे। वे श्रीभगवान्‌के वदनसे निकलेंगे। सर्वश्रुतिमें उनका ज्ञान रहेगा, योगी भी योगीश्वर समझ कर उनका मान्य करेंगे। वे गोवर्द्धनाञ्चलमें आ भक्तिका प्रचार करेंगे। भगवद्रसाप्लुत व्यक्तियोंके हृदयमें वे प्रेमरसका सञ्चार कर देंगे, स्वसम्प्रदायका आचार विस्तार करेंगे। इनका विविध आश्चर्य चरित देख कर सभी मनुष्य चमत्कृत होंगे। वे जीवोंको हरिभक्ति प्रदान करेंगे, इत्यादि। इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्यके चरितका प्रागाभास दिया गया है। इनका चरित्र-वर्णन वल्लभाचार्य शब्दमें किया गया है। वल्लभाचार्य देखो।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय।

चतुःसनसे निम्बार्क-सम्प्रदायकी उत्पत्ति है। प्राचीन कालमें चतुःसन नामक एक वैष्णवसम्प्रदाय थे। परवर्त्तीकालमें चतुःसनने श्रीनिम्बादित्याचार्य्य वा निम्बार्काचार्य्यको अपने सम्प्रदायका आचार्य्य बनाया। इस कारण चतुःसम्प्रदायज्ञापक सुविख्यात श्लोकका अन्तिम यह है—"निम्बादित्यं चतुःसनः"

अर्थात् चतुःसनने निम्बादित्यको अपने सम्प्रदायके आचार्य्यरूपमें स्वीकार किया। निम्बार्कसंप्रदायका वैष्णवधर्म यदि जानना हो, तो सबसे पहले चतुःसनके धर्ममतके सम्बन्धमें कुछ ज्ञानलाभ करना आवश्यक है। श्रीभागवत पढ़नेसे जाना जाता है, कि हरि चतुःसनरूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। यथा—

"तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया यः
आदौ सनात् स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत्।" (२।७।५)

इसकी टीकामें श्रीधरस्वामीने लिखा है—

"स हरिः चतुःसनोऽभूत्—सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातन इति चत्वारः सनशब्दा नाम्नि यस्य सः। कथम्भूतात स्वतपसः सनात् अखण्डितात् यद्वा स्वतपसः सनात् दानात् समर्पणादित्यर्थः सनु दाने।"

चतुःसन मोक्षधर्मावलंबी और वासुदेवपरायण थे। सांख्ययोगतपोवैराग्यसम्पन्न हो कर भी भक्तिमान् थे। सात्वतधर्मके प्राचीनतम चतुःसन ही निंबार्क संप्रदायके आदिप्रवर्त्तक हैं। इसके बाद नारद, व्यास और शुकादि क्रमसे चतुःसन-प्रवर्त्तित सात्वतधर्म धीरे धीरे प्रचारित हुआ। इसके बाद श्रीमन्निम्बार्क इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तकरूपमें स्वीकृत हुए। इनका प्रकृत नाम श्रीमन्नियमानन्द था। इसके बाद इन्होंने भास्कराचार्य-निम्बादित्य वा निम्बार्क नामसे प्रसिद्धि लाभ की। ये निम्बार्कसंप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। निम्बार्कसंप्रदायको चलित भाषामें निमात्संप्रदाय कहते हैं। भक्तमालमें लिखा है, कि ये सूर्यावतार थे, पाषण्डोंका दमन करनेके लिये भूमण्डलमें अवतीर्ण हुए। इनका निम्बादित्य नाम क्यों पड़ा? इसके विषयमें एक आख्यान है जो निम्बार्क शब्दमें लिखा जा चुका है। निम्बार्क देखो।

कोई कोई कहते हैं, कि इनका असल नाम भास्कराचार्य्य था। किन्तु हम "परपक्षगिरिवज्र" नामक निंवार्कसंप्रदायके एक सुप्रसिद्ध वेदान्तविचारग्रन्थमें इन्हें नियमानन्दाचार्य्य नामसे प्रसिद्ध देखते हैं।

उक्त ग्रन्थसे ज्ञात होता है, कि श्रीनिवासाचार्य्य इस संप्रदायके शङ्करावतार कह कर समादृत थे। इन्होंने अपने गुरु नियमानन्दके वाक्यार्थके अवलंबन पर वेदान्तसूत्रका एक बड़ा भाष्य किया है।

यह संप्रदाय जो श्रीकृष्णके लीलागुणवैभवादिको स्वीकार करता है, परब्रह्मकी विशेषणावलीमें उसका भी स्पष्ट प्रमाण दिखाई देता है।

देवपूजा।

इनमें बहुतेरे बाल-गोपाल मूर्त्तिके उपासक हैं। ये 'जयगोपाल' 'जयगोपाल' की ध्वनि किया करते हैं। राधाकृष्ण-युगल भी इनके उपास्य हैं। अन्यान्य वैष्णव संप्रदायकी पूजाकी साधारण विधिकी तरह इनकी भी पूजाकी विधि है। पूजा, भोग, आरत्रिक, स्तवपाठ इनके मन्दिरमें यथाशास्त्र हुआ करता है। इनका 'श्रीनिंवार्कव्रतनिर्णय' नामक एक स्मृतिग्रन्थ दिखाई देता है।

धर्मग्रन्थ।

वेदान्तसूत्र, उसका भाष्य, श्रीभागवत और भगवद्गीता आदि इनके प्रामाणिक ग्रन्थ हैं।

शाखा।

निम्बादित्यके दो शिष्योंसे दो शाखाकी उत्पत्ति है। एक शिष्यका नाम हरिव्यास और दूसरेका नाम केशवभट्ट है। इनमें एक श्रेणी गृहस्थ हैं। मथुराके समीप यमुनाके किनारे ध्रुवक्षेत्रमें निम्बादित्यकी गद्दी है। पश्चिमाञ्चल और मथुरामें बहुतसे निमात् हैं।

विस्तृत विवरण धर्ममत सात्वत शब्दमें देखो।

श्रीगौरांग संप्रदाय।

नवद्वीपमें १४०७ शकमें श्रीगौराङ्ग आविर्भूत हुए। इसके कई वर्ष बादसे ही बङ्गालमें भक्तिधर्मका सिन्धूच्छ्वास कल कल नादसे बहने लगा। चैतन्य देखो।

श्रीकविकर्णपुर गोस्वामिकृत गौरगणोद्देश-दीपिकामें श्रीगौराङ्ग संप्रदायकी गुरुप्रणालिका देखी जाती है। वह इस प्रकार है—

"परव्योमेश्वरस्यासीच्छिष्यो ब्रह्मजगत्पतिः।
तस्य शिष्यो नारदोऽभूत् व्यासस्तस्यापि शिष्यताम्॥
शुको व्यासस्य शिष्यत्वं प्राप्तो ज्ञानाववोधनात्।
तस्य शिष्यप्रशिष्याश्च बहवो भूतले स्थिताः॥
व्यासाल्लब्ध्वा कृष्णदीक्षां मध्वाचार्यमहाशयः।
चक्रे वेदान् विभज्यासौ संस्थितां शतदूषणीम्॥
निर्गुणाद्ब्रह्मणो यत्र सगुणस्य परिक्रिया।
तस्य शिष्योऽभवत् पद्मनाभाचार्यो महाशयः॥
तस्य शिष्यो नरहरिस्तच्छिष्यो माधवो द्विजः।
अक्षोभ्यस्तस्य शिष्योऽभूत् तच्छिष्यो जयतीर्थकः॥
तस्य शिष्यो ज्ञानसिन्धुस्तस्य शिष्यो महानिधिः।
विद्यानिधिस्तस्य शिष्यो राजेन्द्रस्तस्य सेवकः॥
जयधर्ममुनिस्तस्य शिष्योऽभूद्गणमध्यतः।
श्रीमद्विष्णुपुरी यस्य भक्तिरत्नावलीकृतिः॥
जयधर्मस्य शिष्योऽभूद् ब्रह्मणः पुरुषोत्तमः।
व्यासतीर्थस्तस्य शिष्यो यश्चक्रे विष्णुसंहिताम्॥
श्रीमल्लक्ष्मीपतिस्तस्य शिष्यो भक्तिरसाश्रयः।
तस्य शिष्यो माधवेन्द्रो भक्तिधर्मप्रवर्त्तकः॥
कल्पवृक्ष स्यावतारो व्रजधामनि निष्ठितः।
प्रीतिप्रियो वत्सलतोज्ज्वलाख्यगुणधारिणः॥
तस्य शिष्योऽभवत् श्रीमानीश्वराख्य पुरी यतिः।
कलयामास प्रेमाणं श्रीमाधुर्यरसात्मकम्॥
उज्ज्वलं शुचिनामानमात्मामोदादिवर्जितम्।
परिणामे कृष्णप्रेममालाकांक्षी सदाशयम्॥
प्रेम्णोरीकृत्य श्रीगौरः श्रीईश्वरपुरीं स्वयम्।
जगदाप्लावयामास प्राकृताप्राकृतात्मकम्॥
स्वीकृत्य राधिका-भावकान्ती पूर्ण सुतुलेमे।
अन्तर्बहीरसांभोधिः श्रीमन्मदनमोहनः॥" इत्यादि

हम इसके पहले इस तालिकासे मध्वाचार्य संप्रदायकी गुरुप्रणाली दिखला चुके हैं। उसमें दिखलाया गया है, कि राजेन्द्रके शिष्य जयधर्म थे। इन जयधर्मके दो शिष्य थे—एक भक्तिरत्नावलीके प्रणेता विष्णुपुरी और दूसरे पुरुषोत्तम। पुरुषोत्तमसे ही श्रीगौराङ्ग संप्रदायके पूर्व आचार्योंका उद्भव हुआ है। अतएव निम्नलिखित रूपसे गौड़ीय वैष्णवोंकी गुरुपरम्पराका अवशिष्टांश दिखलाया जाता है—
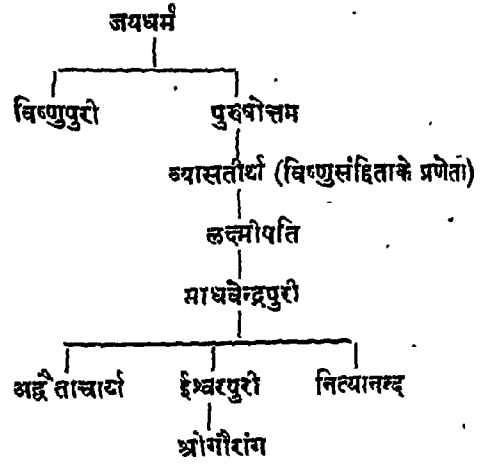
श्रीगौराङ्ग-संप्रदायके भक्तगण श्रीगौराङ्गदेवको ह्लादिनीशक्तिसमन्वित साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन समझते हैं। परमभक्त अद्वैताचार्यकी प्रार्थनासे गोलकेश्वर धराधाममें श्रीगौरांग मूर्त्तिमें प्रकट हो विमल भक्ति सिद्धांत और अटूट कृष्णप्रेमकी शिक्षा इस जगत्में फैला गये हैं, श्रीगौरांग संप्रदायके वैष्णवमात्र ही इसे विश्वास करते हैं।

श्रीगौरांगके प्रियतम भक्त वयोवृद्ध प्रवीण पण्डित सर्वसम्मानित अद्वैताचार्य और नित्यप्रेममय कलेवर श्रीमन्नित्यानन्द भी श्रीगौरांगके अंश और अवतार माने जाते हैं और इसी कारण उनका सम्मान है। नित्यानन्द बलराम और अद्वैताचार्य महाविष्णु होनेसे

इस संप्रदायके आराध्य हैं। इनके सिवा उक्त श्रीवासाचार्य श्रीपाद् गदाधर पण्डित भी इन सांप्रदायिक वैष्णवोंके निकट ऋषि और भगवत् शक्ति-रूपमें पूजनीय हैं।

नित्यानन्दचरित 'नित्यानन्द' शब्दमें देखो।

पञ्चतत्त्व।

श्रीगौरांग, नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, गदाधर पण्डित और श्रीवासादि भक्तवृन्द ले कर ही वैष्णव समाजका पञ्चतत्त्व है। श्रीचरितामृतकार श्रीकृष्ण दास कविराज गोस्वामीने लिखा है—

"पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम्।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम्॥"

अवतारका कारण।

श्रीचरितामृतकारका कहना है, कि श्रीकृष्ण रसिकशेखर और परम करुण हैं; ये दोनों गुण ही उनके इस अवतारके कारण हैं। परम करुण दयामय भगवान्ने मनुष्यके वेशमें आ कर प्रेम और नामका प्रचार कर मनुष्यके उद्धारका पथ देखा। यह केवल उनकी करुणाका परिचय है। किन्तु यह बहिरङ्ग है। अन्तरङ्गका उद्देश यह है, कि श्रीपाद स्वरूपदामोदरने अपने कड़चा ग्रन्थमें बहुत ही संक्षेपसे यह प्रकाश किया। यथा—

"श्रीराधायाः प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा-
स्वाद्यो येनाद्भुतमधुरिमा कीदृशो वा मदीयः।
सौख्यं चास्या मदनुभवतः कीदृशं वेति लोभात्
तद्भावाढ्यः समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दुः॥"

अर्थात् श्रीराधाकी प्रणयमहिमा कैसी है, जिस प्रणय महिमा द्वारा ये माधुर्य आस्वादन करते हैं, मेरी वह मधुरिमा ही कैसी है और मेरे अनुभवसे ये कैसा सुख पाते हैं, इन तीन विषयोंके लोभके कारण श्रीराधाभावमें भावित हो स्वयं हरिने शचीगर्भमें जन्मग्रहण किया।

अवतारका प्रमाण।

श्रीचरितामृतमें तथा उसकी टीकामें श्रीगौराङ्ग अवतारके अनेक पौराणिक वचन उद्धृत हुए हैं। श्रीमद् बलदेव विद्याभूषणने लघुभागवतामृतकी टीकामें इस सम्बन्धमें अनेक प्रमाणोंका उल्लेख किया है।

श्रीगौराङ्गसंप्रदायमें श्रीमन्नित्यानन्द और अद्वैताचार्य प्रभु कह कर सम्मानित हैं। इनके वंशधरगण आज भी वर्त्तमान हैं। ये दोनों प्रभु महाप्रभुके अङ्गके स्वरूप हैं। किन्तु श्रीमन्नित्यानन्दका नाम ही महाप्रभुके नामके साथ सर्वदा उच्चारित होता है। कनाई बलाई नामकी तरह गौरनिताई नाम भी वैष्णवोंके मुखसे हमेशा उच्चारित होता है। गौरनिताईका नामसङ्कीर्त्तन गाया जाता है, इनकी युगलमूर्त्ति वैष्णवोंके घरमें अर्चित होती है, तिलकमुद्रामें भी बङ्गालके वैष्णव "गौरनिताई" वा "गौरनित्यानन्द" नामाङ्कित मुद्रा धारण करते हैं। गौड़ीय वैष्णवोंमें इस युगल नामका बहुत प्रभाव है।

गौरभक्त वृन्द।

श्रीगौरनित्यानन्द अद्वैत गदाधर और श्रीवासको छोड़ ब्रह्महरिदास, स्वरूप दामोदर, रायरामानन्द आदि श्रीगौराङ्गके सहचरगण भी गौड़ीय वैष्णववृन्दकी भक्तिके पात्र हैं। इनके सिवा चौंसठ महन्त, बारह गोपाल, छः गोस्वामी, छः चक्रवर्त्ती, आठ कविराज तथा महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु और अद्वैतप्रभुके असंख्य अनुचरोंके पवित्र और भक्तिप्रद नाम इस वैष्णव सम्प्रदायमें कीर्त्तित होते हैं। देवकीनन्दनकी वैष्ण वन्दनामें अनेक वैष्णव महानुभवके नाम और संक्षिप्त पुण्यकीर्त्तिका वर्णन किया गया है। कविकर्णपुरके गौरगणोद्देशदीपिकाग्रन्थमें, श्रीचैतन्य भागवतका उपसंहार तथा श्रीचरितामृतकी आदि लीलाके ६वेंसे ११वें परिच्छेदमें बहुतेरे भक्तवृन्दोंके नाम और संक्षिप्तचरित वर्णित हैं। ये सभी महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु और अद्वैत प्रभुके सम सामयिक सहचर अनुचर थे। इन सब भक्तोंकी असंख्य शाखा, शिष्य और परिवारमें १५०० शकके मध्यभागसे श्रीगौराङ्ग सम्प्रदायका बहुत प्रसार हो गया। बङ्ग, विहार, आसाम, उत्कल, वृन्दावन, मथुरा आदि उत्तर-पश्चिमाञ्चलके विविध स्थानोंमें तथा मन्द्राज और बम्बई प्रदेशमें श्रीगौराङ्ग सम्प्रदायकी विजय-पताका उड़ने लगी। अभी यूरोप और अमेरिकामें बहुतेरे लोग श्रीगौराङ्गप्रवर्त्तित वैष्णवधर्मका स्वीकार करते हैं।

छः गोस्वामी।

श्रीचैतन्यके भक्तोंमें छः गोस्वामीके नाम विशेष उल्लेखयोग्य हैं, यथा—श्रीसनातन गोस्वामी, श्रीरूप

गोस्वामी, श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी और श्रीरघुनाथदास गोस्वामी,। प्रत्येक शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

वैष्णव ग्रन्थ।

महाप्रभु तथा दो और प्रभुका लिखा हुआ कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। किन्तु उक्त छः गोस्वामीमें सभी ग्रन्थ लिख कर वैष्णव समाजका बहुत उपकार कर गये हैं। वैष्णवदर्शन, वैष्णवस्मृति वैष्णव साहित्य और अलङ्कारादि ग्रन्थ इन्हीं गोस्वामीके रचित हैं।

श्रीहरिभक्तिविलास।

श्रीपाद सनातन और श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीका लिखित हरिभक्तिविलास तथा सनातन लिखित इसकी दिक्‌दर्शनीटीका आज भी गौड़ीय वैष्णव समाजकी नित्य नैमित्तिक धर्मक्रियादिकी व्यवस्था प्रदान कर वैष्णवोंको उपासनाविधिकी शिक्षा देती है। इसके सिवा बहुतेरे शास्त्रग्रन्थ भी हैं।

द्वादश गोपाल।

जो सब भक्तमहानुभाव, श्रीगौराङ्गमहाप्रभु और श्रीमन्नित्यानन्दके साथ सख्यसूत्रमें आवद्ध थे, 'गोपाल' नामसे उनकी प्रसिद्धि थी। गोपालका अर्थ है व्रजका ग्वाला। श्रीचैतन्यलीलाके प्रधान प्रधान पात्र श्रीकृष्ण-लीलाके पात्रपात्रीरूपमें अवतीर्ण हुए, यही वैष्णवोंका विश्वास है।

नीचेकी तालिकामें श्रीगौराङ्गलीलामें प्रादुर्भूत गोपालोंके नाम और पाट दिखलाये गये हैं।

कृष्णलीलामें	गौरलीलामें	पाट
१। श्रीदाम	अभिराम ठाकुर	खानाकुल
२। सुदामा	सुन्दर ठाकुर	महेशपुर
३। वसुदाम	धनञ्जय पण्डित	शीतलग्राम
४। सुवल	गौरीदास पण्डित	अम्बिका
५। महाबल	कमलाकर पिप्पलाई	माहेश
६। सुबाहु	उद्धारण दत्त (स्वर्णवणिक्)	त्रिशविघा
७। महाबाहु	महेश पण्डित	मशिपुर
८। दाम	पुरुषोत्तम नागर	नागर
९। स्तोक कृष्ण	ठाकुर-पुरुषोत्तम	सुखसागर
१०। अर्जुन	परमेश्वर ठाकुर	विशखाना
११। लवङ्ग गोपाल	कानाईठाकुर या काला कृष्णदास	बोधखाना
१२। मधुमङ्गल	श्रीधर	नवद्वीप

ये सब गोपाल नित्यानन्द-शाखाभुक्त हैं। गोपालोंकी सन्तति और शिष्यगण अनेक शाखाओंमें विभक्त हैं। गोपालपरिवारके शिष्योंकी संख्या भी थोड़ी नहीं है। इनके सिवा उपगोपालगण भी हैं। जैसे—

कृष्णलीला	नवद्वीपलीला	शाखा	पाट
१। सुवल गोपाल	हलायुध पण्डित	चैतन्य	रामचन्द्र-पुर।
२। वरुथप गोपाल	रुद्रपण्डित	नित्यानन्द	वल्लभपुर
३। गन्धर्व गोपाल	मुकुन्दानन्द पण्डित	चैतन्य	नवद्वीप
४। किङ्किणीगोपाल	काशीश्वर पण्डित	"	वल्लभपुर
५। अंशुमान गोपाल	ओझा वन-माली दास	"	कुल्लापाड़ा
६। भद्रसेन गोपाल	सखठाकुर	नित्यानन्द	रोकोण-पुर
७। वसन्त गोपाल	मुरारी महान्ति	चैतन्य	वंशीटोटा
८। उज्ज्वल गोपाल	गङ्गादास	नित्यानन्द	नैहाटी
९। कोकिल गोपाल	गोपाल ठाकुर	"	गौराङ्गपुर
१०। विलासी गोपाल	शिवाई	"	बेलून
११। पुण्डरी गोपाल	नन्दाई	"	शालिग्राम
१२। कलविङ्क गोपाल	विष्णाई	"	झामटपुर

इनके भी सन्तान, शाखा और परिवार हैं।

चौंसठ महन्त।

पूर्वलीला	नवद्वीपलीला	शाखा	पाट
१। नारद	श्रीवास	चैतन्य	नवद्वीप
२। हनूमान्	मुरारि गुप्त	"	"
३। अङ्गद	पुरन्दर पण्डित	"	"
४। सुग्रीव	गोविन्दानंद	"	"

५। वशिष्ठ	गङ्गादास पण्डित	चैतन्य	विद्यानगर
६। विभीषण	रामचंद्रपुरी	”	नवद्वीप
७। ऋचीक-पुत्र (ब्रह्मा)	हरिदास ठाकुर	”	बूढ़न
८। वेदव्यास मुनि	वृंदावन दास	नित्यानंद	कुमार-हट्ट
९। सङ्कर्षणव्यूह	मीनकेतन रामदास	”	झामटपुर
१०। प्रद्युम्नव्यूह	श्रीरघुनंदन	चैतन्य	श्रीखण्ड
११। अनिरुद्धव्यूह	वक्रेश्वर पण्डित	”	गुप्तिपाड़ा
१२। ब्रह्मा	गोपीनाथा-चार्य	”	नवद्वीप
१३। शुकदेव गोस्वामी	वल्लभभट्ट	”	कर्णाट
१४। गरुड़	गरुड़ पण्डित	”	टोटाग्राम
१५। शङ्खनिधि	आचार्यरत्न	”	नवद्वीप
१६। दुर्वासा	जगन्नाथ आचार्य	”	श्रीहट्ट
१७। इन्द्रद्युम्न	प्रतापादित्य	”	पुरीधाम
१८। चंद्रकांति गंधर्व	गदाधर दास	नित्यानंद	पड़दह
१९। विश्वामित्र	वनमाली आचार्य	चैतन्य	नवद्वीप
२०। अर्जुन	राय रामा-नन्द	”	पुरीधाम
२१। माधुरी	देवानन्द पण्डित	”	कुलिया
२२। चन्द्रावली	सदाशिव	नित्या-नन्द	कुमार-हट्ट
२३। भद्रा	शङ्कर पण्डित	चैतन्य	पहाड़पुर
२४। सख्या	दामोदर पण्डित	”	अभिराम-पुर

२५। ललिता	ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी	चैतन्य	रामचन्द्र-पुर
२६। विशाखा	स्वरूप-दामोदर	”	नवद्वीप
२७। चित्रा	वनमाली कविराज	”	गरीफा
२८। चम्पकलता	राघव-गोसांई	”	रामनगर
२९। तुङ्गविद्या	प्रबोधानन्द सरस्वती	”	काशी
३०। इन्दुरेखा	कृष्णदास ब्रह्मचारी	”	गुप्तिपाड़ा
३१। रङ्गदेवी	गदाधरभट्ट	”	हनूमानपुर (तैलङ्ग)
३२। सुदेवी	अनन्त-आचार्य महन्त उपमहन्त।	”	अनन्त-नगर
३३। रत्नरेखा	कृष्णदास (कुलीन ब्राह्मण)	”	सात-गाछिया
३४। धनिष्ठा	राघव-पण्डित	”	पाणिहाटी
३५। माधवी	माधवा-चार्य	नित्यानन्द	नन्यापुर
३६। सुकेशी	मकरध्वज	”	बड़गाछी
३७। मधुरा	विद्यावाच-स्पति	चैतन्य	काँउगाछी
३८। मधुरेक्षणा	वलभद्र भट्टाचार्य	”	नवद्वीप
३९। कलकण्ठी	रामानन्द वसु	”	कुलीनग्राम
४०। नान्दीमुखी	सारङ्ग ठाकुर	”	माउगाछी
४१। सुकण्ठी	सत्य-राज खाँ	”	कुलीनग्राम
४२। मधुमती	नरहरि सरकार	”	श्रीखण्ड

४३ । वीरा	शिवानन्द-सेन	चैतन्य	काँचड़ापाड़ा
४४ । वृन्दादेवी	मुकुन्ददास	,,	श्रीखण्ड
४५ । कलावती	गोविन्द घोष	,,	अग्रद्वीप
४६ । श्रीप्रेममञ्जरी	भूगर्भ-ठाकुर	,,	काञ्चननगर
४७ । लीलामञ्जरी	लोकनाथ गोस्वामी	,,	तालखड़ी (यशोर)
४८ । रासोल्लासा	माधवघोष	,,	दाँईहाट
४९ । गुणतुङ्गा	वासुघोष	,,	तमलुक
५० । रागरेखा	शिखि-महान्ति	,,	वंशीटोटा
५१ । यज्ञपत्नी	शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी	,,	चट्टग्राम
५२ । चन्द्रलतिका	जगदीश पण्डित	,,	यशोड़ा
५३ । रत्नावली	भगवान् आचार्य	,,	मालीपाड़ा
५४ । गुणचूड़ा	परमानंद सेन (कविकर्णपुर)	,,	कांचड़ापाड़ा
५५ । कर्पूरमञ्जरी	रमाई ठाकुर	,,	बाघनापाड़ा
५६ । श्याममञ्जरी	द्विज हरिदास	,,	ब्रह्मपुर
५७ । कामलेखा	छोटे हरिदास	,,	वाखरगञ्ज
५८ । काममञ्जरी	नन्दन ब्रह्मचारी	,,	नवद्वीप
५९ । कलभाषिणी	वाणीनाथ पण्डित	,,	गादिगाछी
६० । कलकण्ठी	चिरञ्जीव-दास	,,	श्रीखण्ड
६१ । खञ्जनी	सुन्दरानन्द ठाकुर	,,	वराहनगर
६२ । नीलकान्ति	नवाईहोड़	नित्यानन्द	रोकणपुर
६३ । कलापिनी	जगदानन्द	,,	नवद्वीप
६४ । सुकेशी	कंसारिसेन	,,	गुप्तिपाड़ा

बत्तीस उपमहन्त ।

पूर्वलीला	नवद्वीपलीला	शाखा	पाट
१ । कलावती	सुलोचन ठाकुर	चैतन्य	श्रीखण्ड
२ । सौरसेनी	भागवताचार्य	नित्यानन्द	वराहनगर
३ । इन्दिरा	श्रीजीव पण्डित	,,	अकाईहाट
४ । मनोहरा	कविचन्द्र	चैतन्य	आकना
५ । कात्यायनी	श्रीकान्तसेन	,,	गरिफा
६ । वंशी	वंशीदास	,,	खरग्राम
७ । कुब्जा	काशीमिश्र	,,	पुरीधाम
८ । मालती	यदुनाथ आचार्य	,,	चन्द्रपुर
९ । कमला	मुकुन्द ठाकुर	,,	रामचन्द्रपुर
१० । चन्द्रिका	परमानन्द गुप्त	,,	अम्बिका
११ । सुधीरा	माधवाचार्य	विष्णुप्रिया	नवद्वीप
१२ । कस्तूरीमञ्जरी	कृष्णदास कविराज	नित्यानन्द	झामटपुर
१३ । नागरी	द्विज शुभानन्द	चैतन्य ,,	श्यामपुर
१४ । सुरङ्गिणी	श्रीधर ब्रह्मचारी	,,	पांचड़ानगर
१५ । कलहंसी	रघुनाथ द्विज	,,	त्रिवेणी
१६ । सुमुखी	जगन्नाथ	,,	नपाड़ा
१७ । शशीमुखी	सुबुद्धि मिश्र	,,	अम्बिका
१८ । सुरङ्गिणी	श्रीहर्ष	,,	शान्तिपुर
१९ । सम्मोहिनी	कृष्णदास सरखेल	नित्यानंद	अम्बिका

२०। विलासिनी	श्रीपुर पण्डित	चैतन्य	आलुड़
२१। गोपालिका	गोपाल आचार्य	अद्वैत	शान्तिपुर
२२। गौरशान्ति	यदुनन्दन	,,	घाटाल
२३। विमलादासी	श्रीराम-ठाकुर	चैतन्य	श्रीहट्ट
२४। सुशीला	गोविन्द-दत्त	,,	सुखचर
२५। विद्युल्लता	विहारी कृष्णदास	नित्यानन्द	आटपुर
२६। रत्नावली	हरिदास-होड़	चैतन्य	पँड़ेदह
२७। चित्राङ्गी	श्रीनाथ पण्डित.	,,	कांचड़ापाड़ा
२८। सुकपाणि	गालिम-जगन्नाथ	नित्यानन्द	वाकला-चन्द्रद्वीप
२९। आह्लादिनी	पुरुषोत्तम ब्रह्मचारी	अद्वैत	जयनगर
३०। सुखमयी	मधु पण्डित	नित्यानन्द	साकिवनग्राम
३१। रसवती	काशीश्वर	चैतन्य	वल्लभपुर
३२। प्रेमवती	शङ्करारण्य	नित्यानन्द	चातराग्राम

इनके सन्तान, शाखा और परिकर गौड़ीय वैष्णवोंके सम्प्रदायपोषक हैं।

अष्टसखी।

१। ललिता	श्रीरूप गोस्वामी
२। विशाखा	श्रीरामानन्द राय
३। सुमित्रा	श्रीशिवानन्द सेन
४। चम्पकलता	श्रीराघव पण्डित
५। रङ्गदेवी	श्रीगोविन्द घोष
६। सुन्दरी	श्रीवासुघोष
७। तुङ्गदेवी	श्रीमाधव घोष
८। इन्दुरेखा	श्रीगोविन्दानन्द

नवमञ्जरी।

१। श्रीरूपमञ्जरी	श्रीरूपगोस्वामी
२। जीवमञ्जरी	श्रीसनातन गोस्वामी
३। श्रीअनङ्गमञ्जरी	गोपालभट्ट गोस्वामी
४। श्रीरसमञ्जरी	श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी
५। श्रीविलासमञ्जरी	श्रीजीव गोस्वामी
६। प्रेममञ्जरी	श्रीभूगर्भ गोस्वामी
७। रागमञ्जरी	श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी
८। लीलामञ्जरी	श्रीलोकनाथ गोस्वामी
९। कस्तूरीमञ्जरी	श्रीकृष्णदास गोस्वामी

अष्ट कविराज।

कृष्णलीला	गौरलीला
१। सुलोचना	रामचन्द्र कविराज
२। माण्डोदरी	गोविन्द ,,
३। गोपाली	कर्णपुर ,,
४। सुचण्डिका	नरसिंह ,,
५। सरस्वती	भगवान् ,,
६। बाला	वल्लभदास ,,
७। सुतारा	गोकुलचन्द्र ,,
८। कस्तूरी	कृष्णदास ,,

इसके बाद गौड़ीय वैष्णव क्षेत्रमें तीन सरित्धारा पूर्वप्राप्त प्रेमभक्तिसुधासे परिपुष्ट हो बङ्गाल और उत्कलमें बह गई। इन तीनोंका नाम था श्रीनिवासाचार्य प्रभु, नरोत्तम ठाकुर महाशय और श्रीमत्श्यामानन्द। श्रीनिवास आचार्य प्रभु और ठाकुर महाशयने बङ्गदेशमें भक्तिरसका प्रचार किया। श्यामानन्दके द्वारा उत्कल प्रेमभक्तिकी सुधा-धारासे परिषिक्त हुआ था। ठाकुर महाशय कायस्थ कुलमें जन्म ले कर भी ब्राह्मणादिके गुरु हुए थे। इनका ब्राह्मण परिकर आज भी मुर्शिदाबाद और ढाका जिलेके वेतिया ग्राममें वर्त्तमान है। ये लोग वारेन्द्र ब्राह्मण हैं। विशेष विवरण नरोत्तम, श्रीनिवास आचार्य और श्यामानन्द शब्दमें देखो।

सदाचार।

श्रीमन्महाप्रभु सदाचारके साक्षात् समुज्ज्वल विग्रह हैं। उनके आदेशमें श्रीपादने सनातन हरिभक्तिविलास ग्रन्थ लिख वैष्णवसदाचारका विधान किया है। उसमें बाह्यशुद्धि और आभ्यन्तर शुद्धिका अति उत्कृष्ट विधान है। ऐसा शास्त्रसम्मत सदाचार दूसरे सम्प्रदायमें कम देखनेमें

आता है। हरिभक्तिविलासमें चित्तशुद्धिके बहुतसे उपाय कहे गये हैं। इस ग्रन्थमें गुरुपदाश्रय दीक्षा, प्रातःस्मृतिकृत्य दीक्षा, शौच, आचमन, दण्डधारण, स्नान, सन्ध्यावन्दन, गुरुसेवा, ऊद्र्ध्वपुण्ड्र और चक्रादि धारण, मालाधारण, तुलसीचयन, देवगृहसंस्कार, कृष्णप्रबोधन, छः सौ छप्पन प्रकारके उपचारोंसे भगवदर्चन, पञ्चकालपूजा, आरति, कृष्णका भोजन और शयनतीर्थयात्राका प्रयोजन, कृष्णमूर्त्तिदर्शन, नाममहिमा, नामापराधवर्जन, वैष्णवलक्षण, जप, स्तुति, परिक्रमा, दण्डवत्, वन्दन, प्रसादभक्षण, अनिवेदितत्याग, वैष्णवनिन्दावर्जन, साधुलक्षण, साधुसङ्ग, साधुसेवा, असत्सङ्गत्याग, इन्द्रियदमन, श्रीभागवतश्रवण और एकादश्युपवासादि व्रतपालन, अति विस्तृतरूपसे इस ग्रन्थमें है। शमदम वैराग्यादिकी पराकाष्ठा दिखलाई गई है। इन्द्रियपरायणताका मूलोच्छेद कर भगवल्लाभके लिये किस प्रकार वैराग्यका अवलम्बन करना होता है, इस ग्रन्थमें उसका विस्तृत उपदेश दिया गया है। सत्यवाक्य, असत्कर्शत्याग, इन्द्रियसंयम आदि प्रयोजनीय कह कर उपदिष्ट होने पर भी वैष्णवधर्मसे ये सब विषय बाहर हैं। भगवदुपासनाके लिये चित्तभूमिको प्रस्तुत करना ही इस सम्प्रदायका सार उपदेश है। भक्तिरसामृतसिन्धुमें इस विषयमें दार्शनिक प्रणालीसे अति उच्च उपदेश दिया गया है। यह ग्रन्थ भी वैष्णवाचारके स्मृतिग्रन्थके साथ अवश्य पढ़ने योग्य है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी संक्षेपतः इन दोनों ग्रन्थका मर्म उल्लिखित हुआ है। इस सम्प्रदायका सदाचार हिन्दूशास्त्रका साररूप है।

वैष्णव-चिह्न।

ऊद्र्ध्वपुण्ड्रादितिलकधारण और जपके लिये तुलसी मालाका व्यवहार इस सम्प्रदायका वैष्णव चिह्न है। हरिभक्तिविलासके चतुर्थविलासमें ऊद्र्ध्वपुण्ड्रादिधारणकी विधि और माहात्म्य सविस्तार वर्णित है। केशवादि नामका उच्चारण कर ललाट, पेट, वक्षःस्थल, कण्ठ, दोनों पार्श्व, दोनों बाहु, दोनों स्कन्ध, पीठ और कटि बारह स्थानमें बारह तिलक लगानेको कहे गये हैं।

उपास्य देवता।

"कृष्णस्तु भगवान् स्वयं" श्रीभागवतपुराणके इस सिद्धान्तानुसार श्रीकृष्ण ही इस सम्प्रदायके उपास्य देवता हैं। राधाकृष्ण और श्रीगौराङ्ग इस संप्रदायके निकट अभिन्नतत्त्व हैं। निष्ठानुसार कोई राधाकृष्ण युगलकी, कोई श्रीगौराङ्गकी अर्चना करते हैं। श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलमूर्त्ति प्रायः सभी स्थानोंमें देखी जाती है। श्रीगौराङ्गकी श्रीमूर्त्ति अर्चाना सभी जगह देखी नहीं जाती। पौराणिक उपास्य देवताकी अर्चनापद्धति जिस आसानीसे प्रवर्त्तित और गृहीत होती है, अभिनवाविर्भूत श्रीभगवान् उतनी आसानीसे गृहीत नहीं होते। किन्तु फिर भी हम लोग अभी अनेक स्थलोंमें श्रीश्रीराधाकृष्णकी युगल मूर्त्ति और श्रीश्रीगौरनित्यानन्दका विग्रह एक ही आसन पर पूजित होते देखते हैं।

उपासना-प्रणाली।

भगवदर्च्चनारूप निष्काम कर्म वा विधिसङ्गत भक्ति ही इस संप्रदायकी उपासनाका आरम्भ है। चित्त-शुद्धिके लिये विधानानुयायिनी भक्तिका अनुशीलन अवश्य कर्त्तव्य है। हरिभक्तिविलास और भक्तिरसामृतसिन्धुमें यह वैधभक्तिप्रणाली और भक्तिविभाग अति विस्तृत रूपसे लिखा गया है। किन्तु व्रजरसकी उपासना ही इस संप्रदायकी मुख्य-उपासना है। भक्ति ही प्रधान साधन है, रसामृतसिन्धुग्रन्थमें भक्तिका विशेष विवरण है।

"रसो वै सः" ही इनके उपास्य देवता हैं। अतएव भावरसमें उनकी उपासना ही उपासनाका चरम सिद्धांत है। भावरसका उदाहरण व्रजगोपियोंकी श्रीकृष्णप्रीतिमें दिखाई देता है। यही चरम भजनका आदर्शस्वरूप है। उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थमें उनका भावरस दार्शनिक प्रणालीसे विवृत हुआ है।

रागानुगा भक्तिमें व्रजवासियोंके भावका अनुसरण कर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी उपासना-प्रणालीके सम्बन्धमें गोस्वामियोंने भक्तिरसामृतसिन्धुमें सविस्तार वर्णन किया है। श्रीचरितामृत ग्रन्थकी मध्यलीलामें रामानन्द-राय-मिलनमें तथा श्रीरूपसनातनकी शिक्षामें इस सम्बन्धमें अनेक उपदेश दिये गये हैं। ये सब ग्रन्थ सर्वत्र प्रचारित हैं।

श्रीमद्भागवत ही इस सम्प्रदायका ब्रह्मसूत्रभाष्य माना गया है। (भागव० १२।१३।१५)

वेदान्त तत्त्व।

श्रीजीवगोस्वामीकी क्रमसन्दर्भ टीकामें तथा षट्-सन्दर्भमें इस सम्प्रदायका दार्शनिक सिद्धांत हुआ है। ये लोग लीलारसमय श्रीकृष्णको अद्वयतत्त्व मानते हैं।

वैष्णव-उपसम्प्रदाय।

पूर्वोल्लिखित वैष्णव-सम्प्रदायके अंतर्गत अनेक उपसम्प्रदाय हैं। ये सब सम्प्रदाय कितने हैं उसका पता लगाना सहज नहीं है। नीचे कुछ उपसम्प्रदाय-के नाम दिये गये हैं—

अतिवड़ी—गौड़ीय वैष्णव समाजके अंतर्भुक्त है। गौड़ीय वैष्णवोंके आचार-व्यवहार और उपासनासे इनका आचार व्यवहार स्वतन्त्र है। प्रवाद है, कि जगन्नाथ नामक एक विरक्त वैष्णवने महाप्रभुके निकट श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। उनकी व्याख्याको शङ्करकी अद्वैतमतानुसारिणी समझ कर महाप्रभुने उनके प्रति कटाक्ष कर कहा, 'तुम इस तृणसे भी नीच, वैष्णव समाजकी साम्प्रदायिक गण्डीमें आने योग्य नहीं हो, तुम अतिवड़ अर्थात् बहुत बड़े हो।' इस 'अतिवड़' बातसे ही 'अतिवड़ी' उपसम्प्रदायकी सृष्टि हुई। इनके साथ गौड़ीय वैष्णवोंका साम्प्रदायिक मेल नहीं है। इस श्रेणीका उत्कलमें वास है और पुरीमें मठ है। जगन्नाथदासने उत्कल भाषामें भागवतका अनुवाद किया।

अनंतकुली—ये लोग उत्कली गृहस्थ वैष्णव हैं।

अवधूती—अवधूती शब्द देखो।

अमहदपन्थी—बङ्गालके बाउलोंकी तरह ये लोग निरञ्जन उपासक वैष्णव हैं। ये लोग प्रतिमाकी पूजा नहीं करते, किंतु गलेमें तुलसीमाला पहनते हैं। ये मूंछ दाढ़ी रखते हैं। ये रामात्के ही उपसम्प्रदाय हैं।

आउल—गौड़ीय वैष्णव संप्रदायका उप-संप्रदाय।

आउल शब्द देखो।

आखड़ा—आखड़ा वैष्णव रामानन्द संप्रदायके उप-संप्रदाय हैं। ये लोग प्रचलित सात शाखाओंमें विभक्त हैं। यथा—निर्वाणी, खाकी, संतोषी, निर्मोही, बलभद्री, टाटंबरी और दिगम्बरी।

आपापंथी—मल्लारपुर जिलेके अधिवासी मुन्नादास नामक एक स्वर्णकार आपापंथी संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। अयोध्यासे बहुत दूर पश्चिम आखड़ा नामक स्थानमें इनकी गद्दी है। पश्चिमदेशके वैरागियोंका कहना है—

"रामानुजके फौजमें बारा गाड़ी पोल।
आपापंथी मनसुखा फिरे टोले टोल॥"

अर्थात् रामानुज सैन्यदलमें अनेक भग्न शकट हैं। मनसुखी आपापंथी जाति गलीमें भ्रमण करते हैं। जो अपने मनसे कार्य्य करते, किसीको भी गुरु नहीं मानते, वे मनसुखी हैं। यह पंथी रामानुजको उप-संप्रदाय है।

कबीरपन्थी—कबीर शब्दमें देखो।

कर्त्ताभजा—गौड़ीय संप्रदायका उप संप्रदाय।

कर्त्ताभजा शब्द देखो।

कामधेन्नी—रामात् निमात् दोनों ही संप्रदायमें यह उप-संप्रदाय दिखाई देता है। कामधेन्नी शब्द देखो।

कालिन्दी—उत्कलके चमार हाड़ी आदि इतर जातिके वैष्णव कालिन्दी वैष्णव कहलाते हैं। इनके अन्य गुरु नहीं हैं। ये लोग शवदाह नहीं करते।

किशोरीभजनी—विक्रमपुरके कालाचांद विद्यालङ्कार किशोरीभजन इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। कृष्णलीला-के अनुकरण द्वारा मुक्तिलाभ करना इस सम्प्रदायका अभिप्राय है। ये लोग तीर्थयात्रा नहीं मानते। इस सम्प्रदायके पुरुष अपनेको कृष्ण तथा स्त्री अपनेको राधा समझती है। किशोरी आद्याशक्ति है। अतएव एक स्त्रीको किशोरी समझ कर ये उसकी पूजा करते हैं। विना दोके ये दीक्षित नहीं हो सकते। नायकके एक नायिका रहना जरूरी है। 'मैं कृष्ण तुम राधा' इत्यादि वाक्योंका दीक्षाके समय प्रयोजन होता है। इस सम्प्रदायके पुरुष और स्त्री दोनों रातको इकट्ठे होते तथा उक्त कल्पित किशोरीकी पूजा करते और प्रसाद खाते हैं। इनमें जाति-विचार बिलकुल नहीं है। सभी सबोंका जूठा खाते हैं। किन्तु मछली आदि कोई भी नहीं खाता। ये लोग श्रीगौराङ्गका नाम ले कर गानादि करते हैं। पूर्ववङ्गके अनेक स्थानोंमें इस उपसम्प्रदायके लोगों-का वास है। इसमें भद्रपुरुषोंकी संख्या बहुत थोड़ी है।

सहजिया शब्द देखो।

कुड़ापन्थी—प्रायः ७५ वर्ष हुए आगरा जिलेके अधीन हातरास नगरमें तुलसी नामक एक अन्ध वणिक्ने कुड़ापन्थी सम्प्रदायका प्रवर्त्तन किया। सबोंने मिल कर एक कुण्डमें भोजन किया था इसीसे वे कुड़ापन्थी कहलाये। ये लोग जातपांत नहीं मानते और न किसी मूर्त्तिकी उपासना ही करते हैं। रातको स्त्रीपुरुष एकत्र हो भजन करते हैं। ये लोग भी कर्त्ताभजाकी तरह गुरुके प्रति अचल भक्ति दिखलाते हैं। निराकार निरञ्जनका ध्यान ही इनकी उपासना है। इनके कार्यादि किशोरी-भजनियोंके जैसे हैं।

खाकी—रामात्-सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त।

खाकी शब्द देखो।

खुशी विश्वासी—कृष्णनगरके अन्तर्गत देवग्रामके निकट भाङ्गाग्राममें खुशी विश्वास नामक एक मुसलमान इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इनमें बहुत कुछ सहजिया भाव है। ये लोग श्रीगौराङ्गका नाम कीर्त्तन करते हैं। किन्तु साकार ईश्वरको नहीं मानते।

गिरि—गौड़ेश्वर सम्प्रदायके वैष्णव श्रेणीभुक्त संन्यासी।

गुरुदासी—ये लोग उत्कल बासी एक श्रेणीके गृहस्थ वैष्णव हैं।

गोबराई—एक मुसलमान। इस व्यक्तिने कर्त्ताभजा सम्प्रदायकी तरह जिस सम्प्रदायकी सृष्टि की, उसीका नाम गोबराई है।

चतुर्भुजी—रामात्‌संप्रदायके अन्तर्भुक्त। इनका तिलक रामानन्दियोंके समान किन्तु बीचमें श्रीरेखा नहीं होती। चतुर्भुजी शब्द देखो।

चरणदासी—चरणदास नामक दिल्लीका एक धूसर जातीय वणिक् इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तक है। द्वितीय आलमगीरके समय इस सम्प्रदायकी उत्पत्ति है। ये लोग राधाकृष्णके उपासक हैं और वैष्णवीय तिलक मालादि यथारीति धारण करते हैं। दिल्लीमें ही इस सम्प्रदायकी प्रधान गद्दी है। चरणदासी शब्द देखो।

चामरवैष्णव—चामर वैष्णव शब्द देखो।

चूहरपन्थी—यह सम्प्रदाय अति आधुनिक है। ये लोग वल्लभाचार्य सम्प्रदायके ही उप-सम्प्रदाय हैं। करीब ६० वर्ष हुए, आगरेके एक वणिक्‌ने इस सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा की। गुजरातके 'नाथजी' इनके उपास्य हैं। ये लोग सर्वदा कृष्ण नामका कीर्त्तन किया करते हैं। नाम भजन ही इनका धर्म है। स्त्रीपुरुष एकत्र हो कर नृत्य करते हैं। ये सभी जातिका अन्न खाते हैं। इन्होंने कीर्त्तनप्रथाको महाप्रभुके सम्प्रदायसे ग्रहण किया है।

चूड़ाधारी—ये गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायभुक्त हैं। मैमनसिंह अञ्चलमें यह संप्रदाय देखा जाता है। ये गोपालके वंशमें चूड़ादि धारण करते हैं। शुद्ध-वैष्णवोंके साथ इनका मतसामञ्जस्य नहीं है।

जगन्मोहिनी—जगन्मोहन गोसांई इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने उत्कलके किसी रामानन्दी वैष्णवसे दीक्षा ली। जगन्मोहनके शिष्य गोविन्द, गोविन्दके शिष्य शान्त गोसांई और शान्तके शिष्य रामकृष्ण गोसांई हैं। रामकृष्णके समय यह धर्म मत बहुत दूर तक फैल गया। ये ही लोग 'गुरु सत्य' सम्प्रदाय नामसे पूर्व बङ्गमें विख्यात हैं। इनमें गृही और उदासीन दो श्रेणीके लोग हैं।

तिङ्गल—मन्द्राज और बम्बई अञ्चलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं। ये लोग शास्त्रके युक्तिप्रमाणको मान कर चलते हैं। काञ्चीपुर-निवासी वेदान्त तेसिकार नामक एक ब्राह्मणने रामानुजी-सम्प्रदायसे स्वतन्त्र हो कर एक वैष्णव सम्प्रदायकी सृष्टि की। उसीसे पीछे वड़गल और तिङ्गल नामक दो सम्प्रदायकी सृष्टि हुई। वेदान्त तेसिकारने यह घोषणा की, कि आचार और धर्मसंस्कारके लिये वे ईश्वरसे भेजे गये हैं। धर्ममत और तिलकसेवा ले कर इन दोनोंमें बहुत विरोध है।

तेङ्गल शब्द देखो।

तिलकदासी—एक सद्‌गोप इस सम्प्रदायका प्रवर्त्तक है। यह व्यक्ति पहले कर्त्ताभजा था। पीछे इसने स्वसंप्रदायका परित्याग कर अपने नाम पर मुरादपुरमें एक धर्मसंप्रदाय प्रवर्त्तित किया। यह व्यक्ति अपनेको विष्णुका अवतार कहा करता था। यह संप्रदाय अभी विलुप्त हो गया है।

दरवेश—अज्ञ लोगोंका कहना है, कि श्रीपाद सनातन

गोस्वामी इस दलके प्रवर्त्तक हैं। किन्तु यह एक-दम असत्य है। यह संप्रदाय वाउल और न्याड़ोंकी एक शाखा है और सर्वदा 'दीन दरदी' नाम उच्चारण करता है। मुसलमान और हिन्दूधर्मके संस्रवसे इस संप्रदायकी उत्पत्ति है। ये हरि और गौरनिताई नामका कीर्त्तन करते हुए घूमते हैं, किन्तु खुदा अल्लाह शब्द भी इनके गानमें है।

दादुपन्थी—रामात्‌संप्रदायके अन्तर्भुक्त है।

दादुपन्थी देखो।

दुयारा—रामात् निमात् आदि पश्चिम देशके वैष्णवोंके ५२ दुयारा हैं। पृथक् समयमें प्रादुर्भूत तेजियान् व्यक्तियोंने अपने प्रभावसे जो दल संगठित किया, उसीका नाम दुयारा है जैसे वामन दुयारा, अग्रदास दुयारा, श्रमणजी दुयारा, कुयाजी दुयारा, चिनाजी दुयारा इत्यादि।

नागा—ये लोग शैव और वैष्णवभेदसे दो प्रकारके हैं। वैष्णव नागा रामात् संप्रदायभुक्त हैं।

नागा शब्द देखो।

निरञ्जनी साधु—निरञ्जन स्वामी इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। ये लोग रामातोंकी तरह साकार उपासक उदासीन वैष्णव हैं; कौपीन, कण्ठी और रक्तवर्ण श्रीयुक्त तिलक धारण तथा राम, सीता, शालग्राम आदि विग्रहोंकी पूजादि भी करते हैं। निरञ्जनी देखो।

निहङ्ग वैष्णव—उत्कल प्रदेशके निःसङ्ग वैष्णव इसी नामसे पुकारे जाते हैं। ये लोग मठधारी और सम्मानी हैं।

न्याड़ा—अनभिज्ञ निरक्षर लोगोंकी धारणा है, कि श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्रने ढाकाप्रदेशमें जा कर इस धर्मसंप्रदायका प्रवर्त्तन किया, किन्तु यह नितान्त भ्रम है। न्याड़ा, वाउल संप्रदायका ही शाखाविशेष है। प्रकृतिसाधन ही इनका भजन है। इनके मतसे श्रीराधाकृष्ण मानवदेहमें ही विराजित हैं, उपवासादि आत्माका क्लेशजनकमात्र है। ये वाहुमें लोहे वा तांबेका एक कड़ा पहनते हैं, वैष्णवोंकी तरह कौपीन, तिलक, स्फटिकमाला, शङ्खादिका गला व्यवहार करते हैं। ये दाढ़ी मूंछ रखते हैं। ये शरीरमें तेल खूब लगाते, झोरी और लाठी ले कर भ्रमण करते तथा श्रीगौराङ्गका गुणानुवाद करते हैं। मुखसे 'हरिबोल' या 'वीर अवधूत' ध्वनिका उच्चारण करते हैं।

पञ्चधुनी—जो सब रामात् और निमात् पञ्चधूना करके तपस्या करते हैं, वे पञ्चधुनी कहलाते हैं।

पन्थदासी—पन्थदास इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। ये तुलसीकी माला और तिलक धारण करते, राम-कृष्णादिका अवतार मानते और राममन्त्र जपते हैं। ये लोग एक तरहके आध्यात्मिक भावापन्न रामात् हैं। पन्थदासी देखो।

फकीरदासी—छद्मवेशी कर्त्ताभजा।

फकीरी शब्द देखो।

फराची—रामात्-निमात् दलके कठोरतावलंबी तपस्वी।

मटुकधारी—जो मटकेको कंधेमें बांध कर अथवा राम या कृष्णका नाम उच्चारण कर भीख मांगते हैं, वे मटुकधारी कहलाते हैं। मटुकधारी शब्द देखो।

महापुरुषी—शङ्करदेव नामक एक महापुरुष इसके प्रवर्त्तक हैं। सिख लोग जिस प्रकार ग्रन्थसाहबकी पूजा करते हैं, ये लोग भी उसी तरह श्रीमद्भागवतग्रंथकी पूजा करते हैं। राम, कृष्ण और हरि-नाम कीर्त्तन भी किया करते। आसाम कुचविहार अञ्चलमें इस सम्प्रदायके अनेक लोग रहते हैं।

महापुरुषीय धर्मसंप्रदायी शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

माधवी—माधो नामक एक उदासीने इस संप्रदायका संस्थापन किया। कान्यकुब्जवासी माधोदास इस संप्रदायके प्रवर्त्तक थे, यह भी प्रवादसे जाना जाता है। ये लोग गौड़ीय वैष्णव हैं।

मानभवी—ये कृष्णोपासक हैं। कृष्णाम्भटयोगी इस संप्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इनके मतसे कृष्ण ही परम देवता हैं तथा जीवहिंसा महापाप है। कृष्णका प्रसादान्न सभी एकत्र भोजन करते हैं। मानभवी शब्द देखो।

मार्गी—द्वारका अञ्चलमें मार्गी साधु नामक एक श्रेणीका वैष्णव हैं। ये गृही और रामानन्दी सम्प्रदायके उपसम्प्रदायभेद हैं। एक वैष्णव तीर्थयात्राको गये थे,

राहमें उनकी मृत्यु हो गई। उनके साथ कुछ धर्मग्रन्थ थे। कुछ लोगोंने उस धर्मग्रन्थको पा कर तदनुष्ठान किया। मार्ग अर्थात् राहमें प्राप्त ग्रन्थानुसार धर्मानुष्ठान करनेसे ये मार्गी कहलाये।

मीराबाई शब्द देखो।

मुलूकदासी—रामात् सम्प्रदायकी शाखा।

मुलूकदासी शब्द देखो।

योगी—गौड़ेश्वर सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त। यशोर और उत्कलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं।

योगी वैष्णव शब्द देखो।

रातभिखारी—बङ्गालमें एक श्रेणीके भिखारी वैष्णव शुक्ल पक्षीय पञ्चमीसे पूर्णिमा पर्यन्त शामसे एक पहर रात तक भीख मांगते हैं, पर ये किसीके दरवाजे पर नहीं जाते। कलकत्तेके निकटवर्त्ती उत्तरपाड़ा श्रीरामपुर और वैद्यवाटी अञ्चलमें इस श्रेणीके वैष्णव हैं। रातभिखारी शब्द देखो।

रुद्रदासी—रामात् सम्प्रदायके वैष्णव। रुद्रदास देखो।

राधावल्लभी—हरिवंश गोस्वामी इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक हैं। इन्होंने वृन्दावनमें १६४१ सम्वत्‌को राधावल्लभजीका मठ खोला। इस संप्रदायकी श्रीमती राधिका ही प्रधान उपास्या हैं। श्रीवृन्दावनमें इस संप्रदायका मठ है। इनके आचरण और वैष्णव चिह्नादि भी वैष्णव जैसे हैं। सेवासखीवाणी नामक एक ग्रन्थमें इनकी उपासना और क्रिया-कलापादिका विशेष विवरण लिपिबद्ध है। इस संप्रदायकी और भी अनेक शाखाएं हैं। व्रजभाषामें लिखे हुए इनके अनेक ग्रन्थ हैं।

रामवल्लभी—रामवल्लभी शब्द देखो।

रामसनेही—रामात्‌संप्रदाय विशेष। रामसनेही देखो।

रामसाधनीय—रामानन्द संप्रदायका उपसंप्रदाय।

रूप-कविराजी—गौड़ीय संप्रदायच्युत एक कण्ठी वैष्णव। स्पष्टदायक शब्द देखो।

लस्करी—रामानन्दी संप्रदायके अन्तर्गत। रामानन्दी तिलक लगाते हैं, किन्तु लाल श्रीरेखा नहीं देते। अयोध्यामें इनका मठ है।

वड़गल—मन्द्राज और बम्बई अञ्चलके एक श्रेणीके शास्त्राचारपालक वैष्णव। वड़गल शब्द देखो।

वलरामी—वलरामहाड़ी नामक एक बङ्गाली द्वारा प्रतिष्ठित। यह एक छोटा धर्मसंप्रदाय है।

वलरामी शब्द देखो।

वाउल—बङ्गीय वैष्णव संप्रदायकी शास्त्राचार विवर्जित एक शाखा। राधाकृष्ण इनके उपास्य हैं, किन्तु उपासनाप्रणाली अति गुह्य है। गौर नित्यानन्द नामका भी ये कीर्त्तन करते हैं। वाउल शब्द देखो।

वाणशायी—रामात् निमात्‌संप्रदायका कठोरताचारी संप्रदायभेद। ये लोग वाण पर शयन करते हैं।

विन्दुधारी—उत्कलका वैष्णवभेद। विन्दुधारी देखो।

विट्ठलभक्त—महाराष्ट्र प्रदेशमें विट्ठलभक्त नामक एक संप्रदाय है। वे लोग गुजरात, कर्णाट और भारतवर्षके मध्यखण्डमें भी रहते हैं। विठोबा नामक विष्णु ही इनके उपास्य हैं। इनका दूसरा नाम पाण्डुरङ्ग है। ये लोग उन्हें विष्णुका सम अवतार मानते हैं। पण्ढरपुरमें इनकी गद्दी है तथा 'हरिविजय' आदि नामों पर सांप्रदायिक ग्रन्थ है।

बीजमार्गी—बीजमार्गी शब्द देखो।

बेरकारी—बम्बई अञ्चलमें बेरकारी नामक एक प्रकारके भिक्षुक वैष्णव हैं। ये गले और दोनों बाहुमें तुलसीकी माला पहनते हैं तथा गेरुआ वस्त्र और झोली ले कर घूमते हैं।

वैरागी—वैरागी शब्द देखो।

वैष्णवतपस्वी—जो काठके कौपीन पहनते हैं, कमरमें काठ बाँधते हैं, वे काठिया और जो पिञ्जिका व्यवहार करते हैं, वे लोहिया कहलाते हैं, इत्यादि।

वैष्णवदण्डी - ये रामानुज संप्रदायी ब्राह्मण कुलोद्भव दण्डीसंप्रदाय हैं। ये त्रिदण्डी हैं और गेरुआ वस्त्र पहनते, शिर मुंड़वाते तथा यज्ञोपवीत और कमल या तुलसीकी माला पहनते हैं। ये शुद्धाचारी हैं तथा रात-दिन वेदाध्ययन और नित्य क्रियादिका अनुष्ठान करते हैं।

वैष्णव ब्रह्मचारी—यह श्रेणी रामानुजादि सम्प्रदायमें देखो जाती है।

वैष्णवपरमहंस—रामानुजादि सम्प्रदायसम्मत दीक्षामें दीक्षित हो परमहंसवृत्तिका अवलम्बन करनेसे लोग वैष्णवपरमहंस कहलाते हैं। योग साधन द्वारा सायुज्य मुक्तिलाभ इनका परम पुरुषार्थ है। ये लोग अपने हाथसे रसोई नहीं बनाते।

वैष्णव भाट—ये लोग रामानुज आदि वैष्णवोंकी गुरु प्रणाली लिखते हैं तथा उनका यश गान किया करते हैं।

इनके सिवा संयोगी, सखिभावुकी, सत्कुली, सत्‌नामी, सध्नपन्थी, सहजिया, साजि, साध्विनीपन्थी, साहेबधनी, सेनपन्थी, हजरती, हरिबोला, हरिव्यासी, हरिश्चन्द्र आदि उपसम्प्रदायका विषय इन्हीं सब शब्दोंमें देखना चाहिये।

वैष्णवतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद, विष्णु-सम्बन्धी तीर्थ।

वैष्णवत्व (सं० क्ली०) वैष्णव होनेका भाव या धर्म, वैष्णवता। (राजत० ४।१२४)

वैष्णवदास—अष्टश्लोकीविवरणके प्रणेता।

वैष्णवदास कर्णाटक—कर्णाटदेशवासी एक कवि।

वैष्णवायन (सं० पु०) वैष्णवस्य गोत्रापत्य वैष्णव (हरितादिभ्योऽञ्। पा ४।१।१००) इति फक्। वैष्णवके गोत्रापत्य।

वैष्णवी (सं० स्त्री०) विष्णोरियं विष्णु-अण्, स्त्रियां ङीप्। १ विष्णुकी शक्ति। २ दुर्गा। (शब्दरत्ना०) ३ गंगा। गंगा विष्णुके पादपद्मसे निकली हैं, इसलिये उन्हें वैष्णवी कहते हैं।

"विष्णोः पादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता।
पाहिनस्तेनस्तन्मादाजन्मभरयान्तिकात्॥"

(आह्निकतत्त्व)

४ अपराजिता। ५ शतावरी। ६ तुलसी। ७ मनसा। ८ पृथिवी। ९ श्रवणा नक्षत्र। १० सामभेद।

वैष्णवीतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

वैष्णव्य (सं० त्रि०) १ यज्ञ-सम्बन्धी। "पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ" (शुक्लयजु० १।१२) 'वैष्णव्यौः यज्ञसम्बन्धिनो' 'यज्ञो वै विष्णुः'। (महीधर) २ विष्णुसम्बन्धी, विष्णुका।

वैष्णावरुण (सं० त्रि०) वैष्णववारुण। स्त्रियां ङीप्। (तैत्तिरीयसं० २।१।५।४)

वैष्णुवारुण (सं० त्रि०) वैष्णववारुण। स्त्रियां ङीप्। (ऐतरेयब्रा० ३।३८)

वैष्णुवृद्धि (सं० पु०) विष्णुवृद्धके गोत्रापत्य। (प्रवराध्याय)

वैष्वक्सैन्य (सं० पु०) विष्वक्सेनके अपत्यादि।

वैस—अयोध्याप्रदेशवासी राजपूतजातिकी भिन्न भिन्न शाखा। वैश्यवर्णसे जो सब राजपूत उत्पन्न हुए हैं, वे ही प्रधानतः वैसराजपूत हैं। इनकी वासभूमि होनेसे ही युक्तप्रदेशके वैसवाड़ा जिलेका नामकरण हुआ है। यह जाति एक समय राजपूतजातिके इतिहासमें विशेष प्रसिद्ध हो गई थी। इस इतिहासके विभिन्न स्थानमें वाई वा वाईस शब्दसे इस वैसोंका परिचय दिया गया है।

इनमें प्रवाद है, कि दक्षिण भारतके मञ्जी-पैठान नामक स्थानसे आ कर ये लोग उत्तर-भारतके नाना स्थानोंमें बस गये हैं। इनका कहना है, कि शालिवाहन राजाकी ३६० महिषीकी सन्तानसन्ततिसे ३६० घर वैसजातिकी उत्पत्ति हुई है। ये लोग ३६ राजपूतकुलके अन्तर्भुक्त हैं तथा चौहान और कच्छवाह जातिके साथ आदान-प्रदान करते हैं।

वैस राजपूतोंकी वीरताके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार सुनी जाती है। १२५० ई०में अर्गलराज गौतमने दिल्लीके लोदी सम्राटोंकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वे जब दिल्लीश्वरको राजकर देनेसे इनकार चले गये, तब सम्राट्‌के आदेशसे अयोध्याका मुसलमान शासनकर्त्ता उनके विरुद्ध भेजा गया। इस युद्धमें मुसलमानी सेनाकी हार हुई। इसके कुछ समय बाद ही गौतमराजकी महिषी गङ्गास्नानके उपलक्षमें दुण्डिया खेराके निकटवर्त्ती बगसर नगरमें आ ठहरीं। बहुतोंका कहना है, कि रानी प्रयागतीर्थ त्रिवेणीमें स्नान करने आई थीं। मुसलमानोंने उनका संधान पा कर दलबलके साथ रानीको आक्रमण करके कैद करनेकी चेष्टा की। इस समय रानीने ललकार कर कहा था, कि यहां एक भी क्षत्रिय नहीं जो राजकुल-ललनाके मानकी रक्षा कर सके। इतना सुनते ही अभयचाँद और निर्भयचाँद नामक दो वैसराजपूत भाई दलबलके साथ आ धमके और मुसलमान-सेनादलको निहत कर रानीको फतेपुर जिलेके अन्तर्गत अर्गल नगरमें ले गये।

मुसलमानोंके साथ युद्धमें आहत हो निर्मलचाँद परलोक सिधारे। अभयचाँद जब रानीको ले कर राजाके समीप गये, तब राजाने कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे अपनी कन्याके साथ अभयचाँदका विवाह कर दिया तथा यौतुक स्वरूप गङ्गाके उत्तर अपने राज्यका कुछ अंश तथा रावकी उपाधि दी।

करीब १४०० ई०में इस वंशमें राव तिलकचाँदने जन्म ग्रहण किया। उन्होंने अपने बाहुबलसे अनेक स्थान जीत कर राज्य फैलाया। प्रवाद है, कि उन्होंने २२ परगनेके अधिकारी हो काफी धन जमा किया था। उन्हींके समय वैंसवाड़ा विभागमें वैंस जातिका प्रभाव फैला था।

जो हो, तिलकचाँदने जो एक समय अपने बाहुबलसे अयोध्या-विभागके राजाओंका नेतृत्व ग्रहण किया था इसमें संदेह नहीं। वे अपने पालकी ढोनेवाले कहारों-को राजपूत बना गये तथा फैजाबादकी वीरजाति उन्हीं-के अनुग्रहसे भले सुलतान नामसे प्रसिद्ध हुई।

मैनपुरी जिलेके वैंसोंका कहना है, कि वे १३९१-९२ ई०में राठोर राजपूतोंके साथ डुण्डिया-खेरासे इस देशमें आ कर बस गये। तारीख-ई-मुबारक-शाही पढ़नेसे जाना जाता है, कि यहांके वैंसगण १४२० ई०में भयानक अत्याचारी हो उठे। दिल्लीश्वरने उनका दमन करनेके लिये सुलतान खिजिर खाँको भेजा। खिजिर खाँने वैंस-शक्तिको जड़से उखाड़ दिया था।

फैजाबाद और फर्रुखाबादमें भी वैसोंका उपनिवेश स्थापित हुआ। फर्रुखाबाद आनेके सम्बन्धमें वहांके वैस कहते हैं, कि हंसराज और वत्सराज नामके दो वैस भाई डुण्डियाखेरा होते हुए इस प्रदेशमें आये। पहले वे लोग भर नामक वहांके आदिम अधिवासी के अधीन थे, पीछे उनके साथ शत्रुता करके शकतपुर और सौरिख नामक स्थानोंको जीत वहीं बस गये। धीरे धीरे उन्होंने ईशान नदीतीरस्थ कुछ ग्रामोंको दखल कर वहां अपनी गोटी जमा ली थी।

बुदाउन जिलेके वैसोंमें किंवदन्ती है, कि वैशपाड़ा-से दलीपसिंह नामक एक वैस सरदार इस अञ्चलमें आ कर बस गये। उन्हींके दो पुत्रोंसे उनमें चौधरी और राय वंशकी उत्पत्ति हुई है। गोरखपुरके वैसोंका कहना है, कि वे लोग नागवंशी हैं तथा वशिष्ठ ऋषिकी कामधेनुकी नाकसे उत्पन्न हुए हैं। गाजीपुरी वैस अपनेको वैसवाड़ासे आये हुए बघेल रायके वंशधर बतलाते हैं। मुगल सम्राट् अकबर शाहके समय उनकी एक शाखा रोहिलखण्डमें जा बस गई थी।

बहुत-सी छोटी छोटी जातियोंके इस सुविस्तृत वैस जातिमें आ कर मिल जानेसे वैंस समाजमें अनेक दलोंकी सृष्टि हुई है। फैजाबाद और पोरता जिलेमें गंधारिया, नाईपुरिया, बारवर और बाहुगण अपनेको वैंस जातिसे उत्पन्न बतलाते हैं। रायबरेली जिलेके पूरब भराभिवैंस श्रेणीका वास है। भितरिया और बहा-रिया वैंसोंके संबंधमें किंवदन्ती है, कि राजा तिलक-चांदकी बहुत-सी स्त्रियां थीं। उनमें रेवा और मैनपुरी राजकन्या राजाके यहांसे भाग गईं। उन्हींसे भितरिया और बहरिया दलकी उत्पत्ति हुई है। तिलकचांदी वैसोंमें राव, रावत, नैहाटा और साहवंशी प्रधान हैं। वैंससे नीच जातिकी स्त्रीके गर्भसे काठवैसोंकी उत्पत्ति है। तिलकचांदी इनकी कन्याको ग्रहण नहीं करते और न उनके साथ खान पान ही करते हैं।

ऊपरमें शालिवाहनराजको ३६० स्त्रियोंसे जो ३६० घर वैंस जातिकी बात लिखी गई है, उनमें तिलसारी, चकवैंस, नानवाग, भानवाग, वत्स, पराशरिया, पट-सरिया, विभोनिया, भटकारिया, छनमिया और गर्ग-वंश ही प्रधान हैं।

तिलकचन्द्र नामकी शाखाके सभी लोग कपालमें अर्द्धचंद्राकृति तिलक लगाते हैं।

वैंसवार—मिर्जापुर जिलेकी पहाड़ी देशवासी जाति विशेष। ये लोग अपनेको डुण्डियाखेरावासी राजपूत वैंस (बाईस) जातिकी एक शाखाके बतलाते हैं। प्रवाद है, कि वैंस जातीय दो भाईको राजाने प्राणदण्ड का हुकुम दे दिया, इस पर वे बहुत दूर रेवा राज्यमें भाग गये। यहां उन्होंने राजानुग्रह पा कर बहुत भूसम्पत्ति सञ्चय की और दोनों प्रतिष्ठित समझे जाने लगे। ८।९ पीढ़ी यहां रहनेके बाद उन्होंने मिर्जापुरमें आ कर उप-निवेश बसाया। वैंसवारोंका कहना है, कि वैंसवाड़ा

जातिके साथ इनका कोई सम्पर्क नहीं है, आपसमें आदान-प्रदान भी नहीं चलता।

ये लोग अपनेको राजपूत जातिकी शाखा बतलाते हैं सही, पर इनमें राजपूत रक्त बहता है ऐसा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि, इनकी बाह्य आकृति और प्रकृति देखनेसे मालूम होता है, कि वे प्राचीन द्राविड़ीय शाखासे उत्पन्न हुए हैं।

इनमें सात विभाग हैं जिनमेंसे खण्डाइत और बंशोत् प्रधान हैं। इन दो श्रेणियोंसे और पांच श्रेणी उत्पन्न हुई हैं। वनभूमिमें वास करनेके कारण एक शाखा वननैत कहलाती है। रौतिहा, सोहागपुरिया और पिपराह ग्राममें रहनेसे तीन शाखाका इसी प्रकार नाम हुआ है। रैवती, सोहागपुर और पिपरा ग्राम बुन्देलखण्डमें अवस्थित है।

उक्त सात शाखाओंमें खण्डाइत प्रधान है। दूसरी शाखावालेको खण्डाइतकी कन्या लेनेमें पण देना होता है। खण्डाइतोंमें जो व्यक्ति पञ्चायतका सरदार होता है। उसे महतो कहते हैं।

बैसवारोंमें व्यभिचार उतना दोषजनक नहीं है, किन्तु स्वजातिमें यदि कोई अन्य जातिका अन्न ग्रहण करे, तो उसकी जात चली जाती है। जातिनाश या पाप क्षालनके लिये भागवतका ७ श्लोक-पाठ, गङ्गास्नान अथवा वाराणसी, प्रयाग वा मथुरामें तीर्थयात्रा करनी होती है। पञ्चायतके विचारसे दूसरा दण्ड नहीं है।

इन लोगोंमें बहु-विवाह प्रचलित है, किंतु साधारणतः एक पत्नीग्रहण करना ही नियम है। जिसे दो वा दोसे अधिक स्त्री रहती हैं, उसकी पहली स्त्री ही घरकी मालकिन और देवपूजादिकी अधिकारिणी होती हैं। सगाईकी तरह विधवाका विवाह होता है। इस समय सत्यनारायणकी पूजा और स्वजातीय स्वजनके सामने दोनोंके ग्रंथिबंधन सिवा और कोई काम नहीं होता। देवर यदि भौजाईसे विवाह करना न चाहे, तो वह विधवा दूसरेसे भी विवाह कर सकती है। स्वामी या स्त्री यदि अन्य जातिका हुक्का तमाकू पीवे, तो एक दूसरेको छोड़ सकता है। हिन्दूशास्त्रानुसार बैसवार लोग दत्तक ग्रहण कर सकते हैं।

संतानके जन्म लेने पर छः दिन तक चमारिन सूतिकागारमें प्रसूतिकी सेवा-शुश्रूषा करती है। छः दिनके बाद नाइन उसकी जगह पर आती है। बारहवें दिन प्रसूति शौचादिसे सम्पन्न हो घरमें आती है, परन्तु छः मास तक वह स्वामीके समीप नहीं आ सकती। बच्चा जब चलने लगता है, तब उसका कर्णवेध और अन्नप्राशन होता है।

विवाह संबंध स्थिर होने पर एक भोज होता है तथा कन्याका पिता पात्रके कपालमें टीका दे विवाह ठीक कर जाता है। विवाहके पांच दिन पहले मटमङ्गला होती है। इस समय स्त्रियां एक ढोलको सिन्दूरसे रंगा लेती हैं। घरमें जो बूढ़ी है, वह मिट्टी कोड़ कर घर लाती और उसे विवाहमण्डपके मध्यस्थलमें रख एक वेदी बनाती है। वेदीके ऊपर सेमर पेड़की डाल और पवित्र जलपूर्ण कलस रहता है।

विवाहसे पूर्व दिन गंतिपूजा होती है। इस समय एक घरकी दीवालमें गोबरकी लोई लगा कर उसमें दूब और आमका पल्लव खोंस देते हैं और ऊपरसे हल्दीका रंगा कपड़ा ढक दिया जाता है। कन्या उसके ऊपर घी डालती है, पीछे खड्गकी पूजा होती है। कन्यापक्षका कोई आत्मीय इस समय अपने हाथसे खड्ग पकड़ कर खड़ा रहता है तथा वरकी माता आ कर उसमें चावलका पिठारा और हल्दी लगा देती है। इसके बाद वह तलवारकी मूंठसे एक शस्यपूर्ण कलस फोड़ देती है। प्रवाद है, कि वरपक्षका कोई आदमी यदि इस विवाहमें शत्रुताचरण करे, तो उसे शस्यकी तरह दूर किया जायेगा।

अनन्तर वह तलवार विवाह-मण्डपकी वेदीके मध्यस्थलमें ला कर रखी जाती है। पीछे उस तलवारसे एक बकरा मार कर रातको खिचड़ी और बकरेके मांसका भोज होता है। इस भोजको वे लोग 'भातवान' वा आइवड़ कहते हैं।

घरसे बारात निकलनेके पहले नाई कन्याके घरसे लाये हुए जलसे वरको स्नान कराता है। यात्राकालमें वरकी माता 'परछन' कार्य करती है। पीछे बारात जब कन्याके घर पहुंचती है, तब वहां उन्हें स्वागत कर दर-

बाजे पर लाते हैं। इस समय कन्याकी ओरसे नाई हल्दीसे रंगा कपड़ा ला कर पालकीको ढक देता है।

कन्यागृहके द्वार पर बैठनेके लिये आसन बिछाया रहता है। उस आसन पर बैठ कर वर गौरी और गणेशकी पूजा करता है। पूजा समाप्त होने पर कन्याका पिता वरके कपालमें दही और चावल लगाता है। पीछे कन्यागृहसे वर और वरपक्षीय बालिकाओंका जलपान आता है। इसके बदले वरका पिता कन्या और कन्याकी माताके लिये साड़ी और अलङ्कार तथा वरका स्नान किया हुआ जल भेज देता है। उस जलसे फिरसे कन्याको स्नान कराया जाता है। पीछे उसे नववस्त्र और अलङ्कारादि पहना कर विवाह-मण्डपमें लाते और वरको ला कर विवाहकार्य शुरू कर देते हैं।

वर और कन्या दोनों सामने रखी हुई गृहदेवता मूर्त्तिकी पूजा कर कलस और सेमरके डंठलमें सिन्दूर लगाते हैं। इसके बाद गांठ बांध कर वर और कन्याको उस वेदीके चारों ओर पांच बार प्रदक्षिण कराया जाता है। प्रदक्षिणकालमें वरके हाथमें सूप रहता है; कन्याका भाई उस सूप पर चावल देता जाता और कन्या उसे फेंकती जाती है। अनन्तर वरकन्याको वासरगृह (कोहवर) ला कर रखा जाता है। विवाहके दूसरे दिन बारात विदा होती है। द्विरागमनके बाद वरके घरमें स्थानीय देवताकी पूजा और होम होता है।

हिन्दूकी तरह ये लोग शवदाह करते हैं। शवदाहके बाद शवदाहकगण गृह लौट अष्टाङ्गसे अग्नि स्पर्श कर शुद्ध होते हैं। दूसरे दिन सबेरे मृतका निकटसंबंधीय दाह स्थानमें जा शवकी हड्डी और भस्मको ले कर पासवाली नदीमें फेंक देता है। पीछे वे लोग एक पीपल पेड़के नीचे आत्माकी प्यास बुझानेके लिये एक घड़ा जल रख छोड़ते हैं। मृतकका निकट आत्मीय प्रतिदिन सबेरे प्रेतके उद्देशसे एक एक पिण्ड देता है और दशवें दिन दूध और चावल उत्सर्ग कर निकटवर्त्ती जलाशयमें फेंक आता है। ग्यारहवें दिन महापात्रको मृतका वस्त्रभूषण दान किया जाता है। उनका विश्वास है, कि दान की हुई वस्तु प्रेतलोकमें जाती है। बारहवें दिन षोड़श पिण्डदानके बाद महापात्रको भोजन कराया जाता है तथा दक्षिणास्वरूप उसके हाथमें एक गाय और वस्त्र दिया जाता है। तेरहवें दिन ब्राह्मणभोजन होता है। ये लोग देवीदुर्गा और वहीं भवानीकी पूजा करते हैं।

वैसर्गिक (सं० त्रि०) विसर्गाय प्रभवति विसर्ग (तस्मै प्रभवति सन्तापादिभ्यः। पा ५।१।१०१) इति ठञ्। जो विसर्जन करने या त्यागने योग्य हो, त्याज्य।

वैसर्ज्जन (सं० पु०) १ विसर्जन करने या उत्सर्ग करनेकी क्रिया। २ वह जो विसर्जित या उत्सर्ग किया जाय। ३ यज्ञकी बलि।

वैसर्ज्जनीय (सं० त्रि०) उत्सर्गके योग्य। (शतपथब्रा० ३।६।३।१)

वैसर्ज्जिन (सं० क्ली०) वैसर्ज्जन देखो।

वैसर्प (सं० पु०) विसर्प-अण्। १ विसर्प रोग। (क्ली०) २ विसर्प रोग सम्बन्धी।

वैसा (हिं० क्रि० वि०) उस प्रकारका, उस तरहका।

वैसादृश्य (सं० क्ली०) विसदृश भावे घञ्। असदृश या असमान होनेका भाव, असमानता, विषमता।

वैसारिण (सं० पु०) विशेषेण सरतीति विसारी मत्स्यः स एव (विसारिणो मत्स्ये। पा ५।४।१६) इति अण्। मत्स्य, मछली।

वैसूचन (सं० क्ली०) विशेषेण सूचयतीति विसूचनम्, तदेव स्वार्थे अण्। नाटकमें पुरुषोंका स्त्री बनना।

वैसूप (सं० पु०) दानवभेद। (हरिवंश)

वैस्तारिक (सं० त्रि०) विस्तार-सम्बन्धी, विस्तारका।

वैस्पष्ट्य (सं० क्ली०) परिष्कार, परिच्छन्नता।

वैस्रेय (सं० पु०) विस्रि ऋषिके अपत्य। (पा ४।१।२०)

वैस्वर्य (सं० क्ली०) स्वरका विकृत होना, गला बैठना।

वैहग (सं० त्रि०) विहग-अण्। विहग-सम्बन्धी। (कथासरित्सा० ५६।१७८)

वैहङ्ग (सं० त्रि०) विहङ्ग-अण्। विहङ्ग-सम्बन्धी, विहङ्गका। (सुश्रुत)

वैहति (सं० पु०) विहतके गोत्रापत्य।

वैहायन (सं० पु०) विहत ऋषिके अपत्यादि। (संस्कारकौमुदी)

वैहायस (सं० त्रि०) विहायस-अण्। विहायस-सम्बन्धी, आकाशका।

वैहार (सं० पु०) मगधके अन्तर्गत एक पर्वत। यह वैभार नामसे प्रसिद्ध है। राजगृह देखो।

वैहार्य (सं० पु०) विशेषेण ह्रीयते इति वि ह्र ण्यत् विहार्य एव स्वार्थे कन्। वह जिसके साथ हंसी मजाक आदिका संबन्ध हो। जैसे,—साला, सरहज, साली आदि।

वैहासिक (सं० पु०) विहासं करोति ठक्। वह जो सबको हंसाता हो, विदूषक, भाँड़। पर्याय—वासन्तिक, केलिकिल, प्रहासी, प्रीतिद। (हेम)

वैह्वल्य (सं० क्ली०) विह्वलस्य भावः विह्वल-ष्यञ्। विह्वलता, विह्वल होनेका भाव या धर्म।

वोकाण (सं० पु०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी (वृहत्संहिता १८।२०)

वोखारा—प्राचीन तुर्किस्तानके अन्तर्गत एक छोटा सामंत राज्य। यह अक्षा० ३७° से ४३° उ० तथा देशा० ६०°से ६८° पू०के मध्य अवस्थित है। खां उपाधिधारी मुसलमान राजा द्वारा इसका शासन होता है।

इस राज्यके चारों ओर मरुभूमि रहने पर भी मध्यवर्त्ती यह देशभाग अधिक शस्यशाली है। आमू या अक्षु नदी, सैर या जाकजार्तिस, कोहिक या जार अफसान तथा कर्शी और वाह्लिकराज्यप्रवाहित नदियां इसके बीचसे बह गई हैं। इससे इस स्थानकी उर्वरता दूनी बढ़ गई है। यहांके अधीश्वर अमीर उपाधिधारी हैं।

यहां पहले ताजक जाति आ कर बस गई। हिजरीकी प्रथम सदीमें महम्मदके अनुचरोंने वोखारामें प्रवेश कर सामनिद्-वंशीय शासनकर्त्ताओंको हराया और इसलाम धर्ममें दीक्षित किया। १०वीं सदीमें इस वंशके राजे जब कमजोर हो गये, तब उजबक जातिने उन्हें परास्त कर सिंहासनको अपना लिया था। पीछे १२वीं सदीमें चेङ्गीजखांके अधीनस्थ मुगलसैन्यने इस राज्य पर आक्रमण कर उजबकोंको मार भगाया।

जार-अफसान नदीके पूर्वी किनारेसे ७ मील दूर वोखारा नगर अवस्थित है। यह नगर एक प्रधान वाणिज्य-केंद्र है। भारतवर्ष, रूस, खासगार और तुर्किस्तानके नाना स्थानोंके लोग यहां आ कर पण्यद्रव्य खरीद ले जाते हैं। राजा मलप आर्सलानने यहां एक बड़ा महल बनवाया था। उसके बादसे ही यहां बड़ी इमारतें बनने लगीं। अभी असंख्य मसजिद, स्कूल और वणिक्‌सम्प्रदायके रहनेके लिये अच्छी अच्छी सरायें विद्यमान हैं।

१८६८ ई०में वोखारा रूससाम्राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ।

वोखारी—महम्मदकी मृत्युके बाद जिन छः मुसलमानोंने धर्मोचार्य रूपमें महम्मदके चलाये हुए धर्ममतका संग्रह किया था, उनमें यह एक हैं। इसका असल नाम आबू अबदुल्ला महम्मद इसमाइल है।

वोगदाद—तुरुष्कराज्यके अन्तर्गत वोगदाद प्रदेशका प्रधान नगर। यह अक्षा० ३३°२०´ उ० तथा देशा० ४४°२३´ पू०के मध्य अवस्थित है। ७६० ई०में यह नगर स्थापित हुआ तथा मुसलमान खलीफाओंके समय इसकी यथेष्ट उन्नति हुई थी। १२५७ ई०में तातार-दलके नेता हालाकूने और १४०० ई०में तैमूरलङ्गने बहुतसे अधिवासियोंको ध्वंस कर यह नगर फतह किया। १५०८ ई०में शाह इसमाइल सुफीके आक्रमणसे यह पारस्यके शासनभुक्त हुआ। पीछे १५३४ ई०में सुलेमानने इसको पारस्यसे निकाल कर तुरुष्कमें मिला दिया। इसके बाद शाह अब्बासने इसे पुनः पारस्यके अधीन कर लिया था। १६३८ ई०में यह फिर तुर्कों के हाथ आया। तभीसे यह उन्हीं के दखलमें है।

यह नगर खलीफाओंके अधिकारमें दर-उश-सलाम और मदिनात्-अल-खलीफा नामसे परिचित था। ८वीं सदीमें मङ्क और साली नामके दो चिकित्सकोंने खलीफा हारुण अल रसीदकी सभामें प्रतिपत्ति लाभ की थी।

वोट (अं० पु०) वह सम्मति जो किसी सार्वजनिक पद पर किसीको निर्वाचित करने या न करने अथवा सर्वसाधारणसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी नियम या कानून आदिके निर्धारित होने या न होने आदिके विषयमें प्रकट की जाती है, किसी सार्वजनिक कार्य आदिके होने अथवा न होने आदिके संबंधमें दी हुई अलग अलग राय। आज कल प्रायः सभा-समितियोंमें निर्वाचनके संबंधमें या और किसी विषयमें सभासदों अथवा उपस्थित लोगोंकी सम्मतियां ली जाती हैं। यह

सम्मति या तो हाथ उठा कर या खड़े हो कर या कागज आदि पर लिख कर प्रकट की जाती है। इसी सम्मतिको वोट कहते हैं। आज कल प्रायः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्टबोर्डों तथा काउन्सिलों आदिके चुनावमें कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगोंसे वोट लिया जाता है। भारतवर्षमें प्राचीन बौद्धकालमें और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देनेकी प्रथा थी जिसे छन्दस् या छन्द कहते थे।

वोट आव-सेंशर (अं० पु०) निन्दाका प्रस्ताव, निन्दात्मक प्रस्ताव। जैसे,—परिषद्‌ने बहुमतसे सरकारके विरुद्ध वोट आव सेंशर पास किया।

वोटर (अं० पु०) वह जिसे वोट या सम्मति देनेका अधिकार प्राप्त हो, वोट या सम्मति देनेवाला।

वोटर लिस्ट (अं० स्त्री०) वह सूची जिसमें किसी विषयमें वोट देनेके अधिकारियोंके नाम और पते आदि लिखे रहते हैं, वोट देनेवालोंकी सूची।

वोटा (सं० स्त्री०) दासी, मजदूरनी, दाई।

"पोटा वोटा च चेटी च दासी च कूटहारिका।" (हेम)

वोड़ (सं० पु०) गुवाक, सुपारी।

वोड़ (सं० पु०) १ गोह नामक जन्तु, गोनस सर्प। २ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

वोड़ी (सं० स्त्री०) पणचतुर्थांश, पणके चार भागका एक भाग। इसे वौड़ी भी कहते हैं।

वोढ़ (सं० पु०) १ वोढ़ ऋषि। २ कदमका पेड़।

वोढ़व्य (सं० त्रि०) वह-तव्य, अकारस्योकारः। १ वहनीय, वाह्य, ढोनेके लायक। (हरिवंश ७५।८८) २ परिणेतव्य, विवाहके योग्य। (भारत १२।४४।४५)

वोढ़ (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि। इनके नामसे तर्पणके समय जल दिया जाता है।

वोढ़ृ (सं० पु०) वहतीति वह-तृच् (सहिवहोरोदवर्णस्य। पा ६।३।११२) इति अकारस्यौकारः। १ भारिक, भार ले जानेवाला। (भागवत ५।१०।२) २ मूढ़, मूर्ख। ३ परिणेता, विवाहकर्त्ता। (मनु ८।२०४) ४ सूत। ५ अनड्वान्, ऋषभ नामकी ओषधि। ६ सारथि। ७ पथदर्शक, राह दिखानेवाला।

वोण्ट (सं० पु०) वृन्त, वौंड़ी, ढेंडी।

वोद (सं० पु०) आर्द्र, गीला।

वोदाल (सं० पु०) वोदः आर्द्रः सन् अलतीति अल-अच्। मत्स्यविशेष, बोआरी मछली। पर्याय—सहस्रदंष्ट्र, पाठीन, वदालक। यह मछली खानेमें बड़ी स्वादिष्ट होती है।

वोनाई—छोटा नागपुर विभागके अन्तर्गत एक सामन्त-राज्य। यह अक्षा० २१° ३६´ से २२° ८´ उ० तथा देशा० ८४° ३२´ से ८५° २५´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें सिंहभूम और गाङ्गपुर राज्य, दक्षिण और पश्चिममें बामड़ा सामन्तराज्य तथा पूर्वमें केउञ्झर राज्य है।

१८२६ ई०से यह अङ्गरेजोंके दखलमें आया है। यहांके राजा ब्रिटिश सरकारको सेनादलसे सहायता पहुंचानेमें वाध्य हैं।

वोनाईगढ़—उक्त प्रदेशका एक नगर। यह अक्षा० २१° ५०´ उ० तथा देशा० ८५° १´ पू०के मध्य समुद्रपृष्ठसे ५०५ फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। यहां वोनाई राज्यका राजप्रासाद है। राजदुर्ग प्रायः तीन ओर नदीसे घिरा है।

वोनाईशैल—वोनाई सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक विस्तृत शैलश्रेणी। यह वोनाई मध्य उपत्यकासे २००० से ३००० फुट ऊंचो है। मानकारमाचा, वादामगढ़, कुमरिताड़, चेलियाटोका और कोण्डाधर नामक शिखर यथाक्रम ३६३६, ३५२५, ३४९०, ३३०८, ३००० फुट तक ऊंचे हैं।

वोप्यादेवी (सं० स्त्री०) राजपत्नीभेद।

वोपदेव—एक विख्यात पण्डित। इन्होंने सुप्रसिद्ध मुग्धबोध व्याकरण प्रणयन कर संस्कृत साहित्यमें अच्छा नाम कमाया है। ये जातिके ब्राह्मण तथा देवगिरिके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम था केशव। धनेश पण्डितके निकट ये पाठाध्ययन करते थे। ये यादवपति महाराज महादेवके सभापण्डित थे। कविकल्पद्रुम, काव्यकामधेनु, त्रिंशच्छ्लोकी, अशौचसंग्रह, धातुकोष और धातुपाठ, परमहंसप्रिया, परशुरामप्रतापटीका (श्राद्धखण्ड), भागवतपुराण द्वादश स्कन्धानुक्रम, महिम्नःस्तवटीका, मुक्ताफल, रामव्याकरण, शतश्लोकी और

शतश्लोकीव्रूकला नामकी टीका, शार्ङ्गधरसंहिता, गूढ़ार्थदीपिका और सिद्धमंत्रप्रकाश (वैद्यक), हरिलीला, हृदयदीपनिघण्टु (वैद्यक) आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं। इनके सिवाय निर्णयसिन्धु, आचारमयूख और श्राद्धमयूख ग्रंथोंमें इनके रचे एक धर्मशास्त्रका उल्लेख मिलता है।

वोपदेवशतक नामक एक काव्य भी पाया जाता है। इसके रचयिता वोपदेव खुद हैं या दूसरे कोई कह नहीं सकते। यादव-राजवंश देखो।

वोपालित (सं० पु०) एक आभिधानिक।

वोपालित सिंह—एक आभिधानिक। अभिधानरत्नमालामें हलायुध तथा महेश्वर, मेदिनीकर, उज्ज्वल दत्त आदिने इनके अभिधानका उल्लेख किया है।

वोम्—त्रिपुरा पार्वत्य प्रदेशवासी एक जाति। ये बुन्जु या वोन्-जु नामसे भी परिचित थे। कुकि, लङ्गथा और क्युङ्गोरा इसी जातिके अन्तर्गत है।

वोरक (सं० पु०) वह जो लिखता हो, लेखक।

वोरट (सं० पु०) कुंदका फूल या पौधा।

वोरपट्टी (सं० स्त्री०) मंदुरा, चटाई।

वोरव (सं० पु०) धान्यविशेष, वोरो धान। इसका गुण—त्रिदोषवर्द्धक, मधुर, अम्लपाक और पित्तजनक। (राजवल्लभ)

वोरुखान (सं० पु०) पाटलवर्ण- अश्व।

वोर्णिओ—भारत महासागरस्थ भारतीय द्वीपपुञ्जके अंतर्गत एक सुवृहत् द्वीप। यहां असभ्य जातिका वास है। १५१८ ई०में सेंट सिवाष्टियन जहाज पर चढ़ कर पुर्त्तगीज नाविक लरेंजो डि गामेज वोर्णियो द्वीपमें समागत हुए। तभीसे विभिन्न समयमें पुर्त्तगीज वनिये यहां वाणिज्य करनेके हेतु आ कर अपना अपना अधिकार विस्तार कर रहे हैं।

वोल (सं० क्ली०) वोलयति प्रायशो निमग्नं भवति बुल अच्, यद्वा वा गतौ पिञ्जादित्वादूलच्। स्वनाम ख्यात वणिक् द्रव्य (Balsamodendron myrrh) महाराष्ट्र—वोल, तैलङ्ग—वालिम् त्रिपोलम्, तामिल—वेलइयपोलम्, वम्बई—रक्तयावोल। संस्कृत पर्याय—रक्तापह, मुण्ड, सुरस, पिण्डक, विष, निर्लोह, वर्व्वर, पिण्ड, सौरभ, रक्तगन्धक, रसगन्ध, महागन्ध, विश्वा, शुभगन्ध, विश्वगन्ध, गन्धरस, व्रणारि। इसका गुण कटु, तिक्त, उष्ण, कषाय, रक्तदोषनाशक, कफपित्त तथा प्रदरादिरोगनाशक माना गया है। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे गुण—रक्तहर, शीतल, मेध्य, दीपन, पाचन, मधुर, कटु तिक्त, त्रिदोषनाशक, ज्वर, अपस्मार, कुष्ठरोगनाशक तथा गर्भाशय-विशुद्धिकारक। (भावप्र०)

वोलक (सं० पु०) वह जो लिखता हो, लेखक।

वोल्लासक (सं० क्ली०) नगरभेद।

वोल्लाह (सं० पु०) अश्वविशेष, वह घोड़ा जिसकी दुम और अयालके बाल पीले रंगके हों।

वोहित्थ (सं० क्ली०) यानपात्र, अर्णवपोत, जहाज।

वौषट् (सं० अव्य०) उह्यतेऽनेन हविरिति वह वाहुलकात् डौषट्। देवताओंको हविः अर्थात् यज्ञीय घृतादि देनेका मंत्र। इस मंत्रसे देवताओंके उद्देशसे घृत आदिकी आहुति देनी होती है। पर्याय—स्वाहा, श्रौषट्, वषट्, स्वधा। इन पांच शब्दोंसे देवताओंके उद्देशसे अग्निमुखमें आहुति दी जाती है।

व्यंश (सं० पु०) सिंहिकागर्भजात विप्रचित्तिका पुत्रभेद। (हरिवंश)

व्यंशक (सं० पु०) पर्वत, पहाड़।

व्यंस (सं० पु०) १ राक्षसभेद। (त्रि०) २ स्कन्धहीन, छिन्नवाहु। (ऋक् १।३२।५ सायण)

व्यंसक (सं० पु०) वि-अंस-ण्वुल्। धूर्त्त, चालाक।

व्यंसन (सं० क्ली०) पवञ्चना, ठगने या धोखा देनेकी क्रिया।

व्यंसनीय (सं० त्रि०) प्रतारणाके योग्य।

व्यंसयितव्य (सं० त्रि०) प्रवञ्चनाके योग्य, जिसको ठगा जाय।

व्यंसित (सं० त्रि०) वि-सस्-क्त। प्रतारित, प्रवञ्चित।

व्यक्त (सं० त्रि०) अञ्जु व्यक्तौ वि-अञ्जु-क्त। १ प्राज्ञ। २ स्फुट, स्पष्ट। ३ प्रकट। ४ स्थूल, बड़ा। ५ दृष्ट, देखा हुआ। ६ अनुमित। ७ प्रकाशित। (पु०) ८ कृत्य, कार्य। ९ मनुष्य, आदमी। १० व्यक्तिविशेष। ११ विष्णु। १२ सांख्यके मतसे प्रकृतिके स्थूल परि-

माणका नाम व्यक्त है। प्रधान, अहङ्कार, एकादश-इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्र और पञ्चमहाभूत इन चौबीस तत्त्व को व्यक्त कहते हैं। अव्यक्त प्रकृति तथा व्यक्त पुरुष है।

व्यक्तगणित (सं० क्ली०) अङ्कविद्या, हिसाब।

व्यक्तगन्धा (सं० स्त्री०) १ नीली अपराजिता। २ स्वर्णयूथिका, सोनजूही। ३ पिप्पली, पीपल।

व्यक्तता (सं० स्त्री०) व्यक्तस्य भावः तल्-टाप्। व्यक्त होनेका भाव।

व्यक्ततारक (सं० त्रि०) पूर्णप्रकाशमान तारकाविशिष्ट।

व्यक्तदृष्टार्थ (सं० पु०) व्यक्तं स्फुटं यथास्यात् तथा दृष्टोऽर्थो येन। वह जो देखी हुई बात कहे, चश्मदीद गवाह। पर्याय—प्रत्यक्षी, प्रत्यक्षदर्शी।

व्यक्तभुज (सं० पु०) काल, समय, वक्त।

व्यक्तमय (सं० त्रि०) वचनशील, वाक्यविशिष्ट।

व्यक्तरसता (सं० स्त्री०) स्वादग्रहणकी तीक्ष्णता, परिष्कार भावसे रसानुभवकी शक्ति।

व्यक्तराशि (सं० स्त्री०) अंकगणितमें वह राशि या अङ्क जो व्यक्त किया या बतला दिया गया हो, ज्ञात-राशि।

व्यक्तरूप (सं० पु०) व्यक्तं रूपं यस्य। १ विष्णु। (त्रि०) २ स्पष्टरूपयुक्त।

व्यक्तरूपिन् (सं० त्रि०) ऐसी आकृतिवाला जो पह-चाना जा सके।

व्यक्ति (सं० स्त्री०) व्यज्यतेऽनयेति वि-अञ्ज-क्तिन्। १ पृथगात्मिका, मनुष्य या किसी और शरीरधारीका सारा शरीर जिसकी पृथक् सत्ता मानी जाती है और जो किसी समूह या समाजका अङ्ग समझा जाता है, समष्टिका उलटा, व्यष्टि। २ स्पष्टता। (रघु १।१०) ३ भूतमात्र। (गीता ८।१८) ४ न्यायशास्त्रोक्त तत्तद्-पदार्थ। ५ मनुष्य, आदमी। जैसे,—कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदा दूसरोंका अपकार ही किया करते हैं। यद्यपि यह शब्द संस्कृतमें स्त्रीलिङ्ग है, तथापि हिन्दीमें 'मनुष्य' या 'आदमी' के अर्थमें यह प्रायः पुल्लिंग ही बोला और लिखा जाता है। ६ जीव। ७ शरीरी। ८ द्रव्य, वस्तु, पदार्थ। ९ प्रकाश।

व्यक्तिग्राहिता (सं० स्त्री०) जिस वृत्ति द्वारा एक एक वस्तुकी सत्ता उपलब्धि होती है।

व्यक्तीकृत (सं० त्रि०) १ प्रकाशित, जो व्यक्त किया गया हो, प्रकट किया हुआ। २ उद्घाटित, स्पष्टीकृत।

व्यक्तीभाव (सं० पु०) प्रकाशीभाव। जो पहले व्यक्त न था पीछे व्यक्त हुआ है, उसीको व्यक्तीभाव कहते हैं।

व्यक्तीभूत (सं० त्रि०) जो व्यक्त किया गया हो, प्रकट किया हुआ।

व्यक्तोदित (सं० त्रि०) साफ साफ कहा हुआ।

व्यक्ष (सं० त्रि०) अक्षरेखावर्जित।

व्यग्र (सं० त्रि०) विरुद्धं अगतीति अग ग्रन् इति साधुः। १ व्यासक्त, व्याकुल, घबराया हुआ। २ व्यस्त, काममें फंसा हुआ। ३ त्वरित। ४ त्रस्त, भीत, डरा हुआ। ५ उत्साही, उद्यमी, उद्योगी। ६ आग्रही। ७ आसक्त। ८ससंभ्रम। (भागवत ३।१६।५ स्वामी) (पु०) ९ विष्णु। (विष्णुका सहस्रनाम)

व्यग्रता (सं० स्त्री०) व्यग्रस्य भावः तल्-टाप्। १ व्यग्र होनेका भाव। २ व्याकुलता, घबराहट।

व्यग्रमनस् (सं० त्रि०) चिन्ताविह्वल मानस।

व्यङ्कुश (सं० त्रि०) विगतः अंकुशो यस्मात्। निरंकुश।

व्यङ्ग (सं० पु०) विकृतानि अङ्गानि यस्य। १ भेक, मेंढक। (मेदिनी) विकृतानि अङ्गानि यस्मात्। २ मुख-रोगविशेष। भावप्रकाशके मतसे क्रोध या परिश्रम आदिके कारण वायु कुपित होनेसे मुंह पर छोटी छोटी काली फुंसियाँ या दाने निकल आते हैं, इसीको व्यङ्ग-रोग कहते हैं। बड़का नया पत्ता, मालती, रक्तचन्दन, कुट और लोध इन सबोंको एकत्र पीस कर प्रलेप देनेसे व्यङ्ग और नीलिका रोगमें बहुत फायदा पहुंचता है। कुंकुमाद्यतैल भी इस रोगमें बड़ा उपकारी है। ३ विक-लाङ्ग, वह जिसका कोई अंग टूटा हुआ या विकृत हो। ४ उपहास, विद्रूप।

व्यङ्गक (सं० पु०) पर्व्वत, पहाड़।

व्यङ्गता (सं० स्त्री०) व्यङ्गका भाव।

व्यङ्गत्व (सं० क्ली०) किसी अङ्गका न होना या खण्डित होना, खञ्जता, अङ्गहीनता।

व्यङ्गार्थ (सं० पु०) व्यंग्य देखो।

व्यङ्गार (सं० त्रि०) अङ्गार या अग्निवर्जित।

व्यङ्गित (सं० त्रि०) विकलीकृत।

व्यङ्गिन (सं० त्रि०) व्यङ्गरोगविशिष्ट, जिसे व्यङ्गरोग हुआ हो।

व्यङ्गीकृत (सं० त्रि०) खण्डित, काटा हुआ।

व्यंगुल (सं० पु०) १ अंगुलकी विस्तृतिके परिमाणका षष्टितम अंशविशेष। (त्रि०) २ विकृतांगुल, जिसकी अंगुली विकृत हो गई हो।

व्यंगुलि (सं० त्रि०) विकृतांगुलि।

व्यंगुष्ठ (सं० त्रि०) १ विकृतांगुष्ठ। (पु०) २ गुल्मभेद।

व्यङ्ग्य (सं० पु०) वि-अनज्-ण्यत्। १ व्यञ्जना वृत्ति द्वारा बोध्य अर्थ, तात्पर्यार्थ, निगूढ़भाव। शब्दकी शक्ति तीन प्रकार है—वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य; इनमेंसे व्यञ्जना-वृत्ति द्वारा जिन सब शब्दोंका अर्थ प्रकाश पाता है, उन्हें व्यङ्ग्य कहते हैं। (सा० द० २ परि० ११) २ वह लगती हुई बात जिसका कुछ गूढ़ अर्थ हो, ताना, बोली, चुटकी।

व्यचस् (सं० क्ली०) १ व्याप्ति। "समुद्रो न व्यचदधे" (ऋक् १।३०।३)

२ आदित्य। "व्यचश्छन्दः" (शुक्लयजु० १५।४)

व्यचस्वत् (सं० त्रि०) व्याप्तियुक्त। "व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या" (ऋक् २।३।५)

व्यचिष्ठ (सं० त्रि०) व्याप्त। "वयसा वृहन्तं व्यचिष्ठ" (ऋक् २।१०।४)

व्यच्छ (सं० त्रि०) गमनशील। (शुक्लयजु० ३०।१८)

व्यज (सं० पु०) व्यजत्यनेनेति वि-अज (गोचरसञ्चरेति। पा ३।३।११९) इति घञ्, निपातनादजे र्व्यघञपोरिति वीभावो न भवति। व्यजन, हवा करनेका पंखा।

व्यजन (सं० क्ली०) व्यजत्यनेनेति वि-अज-ल्युट्, (वो यौ। पा २।४।५७) इति पक्षे वी भावो न भवति। तालवृन्तक, हवा करनेका पंखा। इसका सामान्य गुण—मूर्च्छा, दाह, तृष्णा, घर्म्म और श्रमनाशक। तालव्यजनका गुण—त्रिदोषनाशक और लघु। वंशव्यजनका गुण—रुक्ष, उष्ण, वायुपित्तकारक, वेत्र, वस्त्र और मयूरपुच्छव्यजनका गुण—त्रिदोषनाशक। चामरव्यजनका गुण—तेजस्कर और मक्षिकादि निवारक।

भावप्रकाशके मतसे इसका साधारण गुण दाह, स्वेद, मूर्च्छा और शान्तिनाशक है। तालवृन्तव्यजन त्रिदोषनाशक है। वंशव्यजन—उष्ण तथा रक्तपित्तप्रकोपक। चामर, वस्त्र, मयूरका पंखा तथा वेतज व्यजन त्रिदोषनाशक, स्निग्ध और हृदयग्राही है। व्यजनोंके मध्य यही व्यजन प्रशस्त है। (भावप्र०)

व्यजनक (सं० क्ली०) व्यजन-स्वार्थे कन्। व्यजन देखो।

व्यज्य (सं० त्रि०) १ जिसका बोध शब्दकी व्यञ्जना शक्तिके द्वारा हो। (पु०) २ व्यङ्ग्य देखो।

व्यञ्जक (सं० पु०) व्यनक्तीति वि-अञ्ज-ण्वुल्। १ हृद्गतभावादि प्रकाशक अभिनय। यह आङ्गिक, सात्त्विक, वाचिक और आहार्य भेदसे चार प्रकारका है। (भरत) २ व्यञ्जनाप्रतिपादक। (साहित्यद० २।११) (त्रि०) ३ प्रकाशक। (मनु २।९८)

व्यञ्जन (सं० क्ली०) वि-अञ्ज-ल्युट्। १ तरकारी और साग आदि जो दाल, चावल, रोटी आदिके साथ खाये जाते हैं। पर्याय—तेमन, निष्ठान, तेम। (ऋक् ८।९७।२) इसका गुण—हृद्य, वृष्य और पुष्टिप्रद। मछली और मांसादिका व्यञ्जन जिस जिस द्रव्यके साथ भोजन किया जाता है, उस उस द्रव्यके दोष और गुणानुसार दोष और गुण स्थिर करना होता है। (राजवल्लभ)

२ चिह्न। ३ व्यञ्जनाशक्ति। (साहित्यद० ३।५९) ४ श्मश्रु, मूँछ। ५ अवयव, शरीर। ६ दिन। ७ पेड़ूके नीचेका स्थान, उपस्थ। ८ साधारण बोलचालमें पका हुआ भोजन। ९ वर्णमालामेंका वह वर्ण जो बिना स्वरकी सहायतासे न बोला जा सकता हो। हिन्दीवर्णमालामें "क" से "ह" तकके सब वर्ण व्यञ्जन हैं। १० व्यक्त अथवा प्रकट करने अथवा होनेकी क्रिया। ११ गुप्तचर या गुप्तचरोंका मंडल।

व्यञ्जनसन्निपात (सं० पु०) व्यञ्जनसङ्गम कितने व्यञ्जनवर्णोंका एकत्र समावेश।

व्यञ्जनहारिका (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक प्रकारकी अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहिता लड़कियोंके बनाये हुए खाद्य पदार्थ उठा ले जाती है।

व्यञ्जना (सं० स्त्री०) वि-अञ्ज-णिच्-युच्-टाप्। १ प्रकट करनेकी क्रिया। २ शब्दकी वृत्तिविशेष। शब्दकी तीन वृत्ति है—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। (साहित्यद० २ परि०)

व्यड़ (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। व्याड़ि देखो।

व्यड़म्बक (सं० पु०) एरण्डवृक्ष, रेंड़ीका पेड़।

व्यति (सं० पु०) अश्व, घोड़ा। (ऋक् ५।३२।१७)

व्यतिकर (सं० पु०) वि-अति-कृ-अप्। १ व्यसन। २ व्यतिषङ्ग। ३ विनाश, बरबादी। (भागवत १।७।३२) ४ मिश्रण, मिलावट। (माघ ५।५३) ५ व्याप्ति। ६ सम्पर्क, सम्बन्ध। ७ परस्पर काम करना। ८ समूह, झुंड।

व्यतिक्रम (सं० पु०) वि-अति-क्रम-घञ्। १ क्रममें होनेवाला विपर्यय, सिलसिलेमें होनेवाला उलट-फेर। २ बाधा, विघ्न।

व्यतिक्रमण (सं० क्ली०) वि-अति-क्रम ल्युट्। क्रममें विपर्यय करना, सिलसिलेमें उलट-फेर करना।

व्यतिक्रान्त (सं० त्रि०) वि-अति-क्रम-क्त। विपर्ययप्राप्त, जिसमें किसी प्रकारका विपर्यय हुआ हो।

व्यतिक्रान्ति (सं० स्त्री०) वि-अति क्रम क्तिन्। व्यतिक्रम, क्रममें होनेवाला विपर्यय।

व्यतिगत (सं० त्रि०) प्रस्थित, जो अतिक्रम कर गया हो।

व्यतिचार (सं० पु०) १ दोष, ऐब। २ पापाचरण, पाप कर्म करना।

व्यतिचुम्बित (सं० त्रि०) अति सन्निकटमें स्पर्शन।

व्यतिपात (सं० पु०) वि-अति-पत-घञ्। १ महोत्पात, भारी उपद्रव या खराबी। २ अपमान। ३ योगभेद। व्यतीपात शब्द देखो।

व्यतिभेद (सं० पु०) वि-अति भिद्-घञ्। अतिक्रम करके भेद, एक एक करके भेद।

व्यतिमर्श (सं० पु०) विहारविशेष। वैदिक यज्ञादिमें वालखिल्य स्तोत्रके प्रथम या द्वितीय मन्त्रका बहुत-सा पाद-वा मन्त्राङ्ग एक के बाद एक परस्परमें एकयोगसे उच्चारणरूप प्रयोग।

व्यतिमर्शम् (सं० अव्य०) त्यक्त, अतिक्रान्त।

व्यतिमिश्र (सं० त्रि०) और भी अनेक मिश्र चिह्नयुक्त। (बृहत्स० ६७।३)

व्यतिमूढ़ (सं० त्रि०) अत्यन्त विरक्त या चिन्ताविजड़ित।

व्यतिमोह (सं०) अतिशय मुग्ध।

व्यतियात (सं० त्रि०) अतिक्रम करके गया हुआ।

व्यतिरिक्त (सं० त्रि०) वि अति-रिच्-क्त। १ व्यतिरेकविशिष्ट, विभिन्न, अलग। २ वर्द्धित, बढ़ाया हुआ। ३ पृथक् कृत, अलग किया हुआ। (क्रि० वि०) ४ अतिरिक्त, सिवा, अलावा।

व्यतिरिक्तता (सं० स्त्री०) व्यतिरिक्त होनेका भाव या धर्म, विभिन्नता।

व्यतिरेक (सं० पु०) वि-अति रिच्-घञ्। १ विना। २ अभाव। ३ प्रभेद, विभिन्नता। ४ वृद्धि, बढ़ती। ५ अतिक्रम। ६ अर्थालङ्कारविशेष। जहां उपमानसे उपमेयकी अधिकता या न्यूनता वर्णन किया जाता है, वहां यह अलङ्कार होता है। इस अलङ्कारके ४८ भेद हैं। उदाहरण—उसका मुख अकलङ्क है, कलङ्की चंद्रमाके समान नहीं। उसके मुख पर तो कोई कलंक नहीं है, पर चंद्रमाका कलंक है, कलङ्की चन्द्रमाकी अपेक्षा उसके मुखसौन्दर्यकी अधिकता वर्णन होनेसे यहां व्यतिरेक अलङ्कार हुआ। इस प्रकार उपमेयकी न्यूनता होने पर भी यह अलङ्कार होगा। (साहित्यद०)

व्यतिरेकव्याप्ति (सं० स्त्री०) जिसमें जो गुण नहीं है उसमें वही गुण देनेके लिये युक्ति देना।

व्यतिरेकिन् (सं० पु०) १ वह जो किसीको अतिक्रम करके आता हो। २ वह जो पदार्थोंमें विभिन्नता उत्पन्न करता हो।

व्यतिरेकिलिङ्ग (सं० क्ली०) अतिरिक्त चिह्न।

व्यतिरेचन (सं० क्ली०) विभिन्नताप्रदर्शन। (साहित्यद० १०६।१४)

व्यतिलङ्घिन् (सं० त्रि०) स्वस्थानभ्रष्ट, जो अपने स्थानसे च्युत हो गया हो। (रघु ६।१९)

व्यतिषक्त (सं० त्रि०) वि अति-षञ्ज-क्त। १ आसक्त। २ मिला हुआ। ३ ग्रथित।

व्यतिषङ्ग (सं० पु०) वि-अति-षञ्ज घञ्। १ मिला हुआ। २ विनिमय, बदला।

व्यतिहार (सं० पु०) वि-अति-हृ-घञ्। १ विनिमय,

बदला। २ पर्यायकरण, नाम लेना। ३ गाली गलौज। ४ मारपीट।

व्यतीकार (सं० पु०) वि अति-कृ-घञ्, वञि उपसर्गस्य दीर्घः। १ व्यसन। २ व्यतिषङ्ग। ३ विनाश, बरबादी। ४ मिश्रण।

व्यतीत (सं० त्रि०) वि-अति इ-क्त। अतीत, बीता हुआ, गत। (तिथितत्त्व)

व्यतीपात (सं० पु०) वि-अति-पत-घञ् (उपसर्गस्य घञीति। पा ६।३।१२२) इति उपसर्गस्य दीर्घः। १ महोत्पात, अमङ्गलजनक उत्पात, धूमकेतु, भूकम्प आदि। २ अपमान। ३ विष्कम्भ प्रभृति सत्ताईस योगोंके अन्तर्गत सत्तरहवां योग। ज्योतिषके मतसे इस योगमें कोई भी शुभकर्म नहीं करना चाहिये, करनेसे अशुभ होता है।

संक्रान्ति, विष्टि, व्यतीपात, वैधृति और केन्द्रस्थानके शुभग्रहहीन होने पर भी पापदिन वर्जन करके शुभकार्य करे। व्यतीपात सभी शुभ कार्योंमें निषिद्ध होने पर भी इसका प्रतिप्रसव देखनेमें आता है। चन्द्र तारा यदि शुद्ध रहे, तो व्यतीपात दुष्ट नहीं होता। यात्राकालमें अमृतयोग होनेसे व्यतीपातदोष विनष्ट होता है अर्थात् व्यतीपातयोग होनेसे ऐसी हालतमें यात्रा की जा सकती है। (ज्योतिस्तत्त्व)

इस योगमें यदि कोई बालक जन्म ले, तो वह कर्कशभाषी, दुष्ट, सदा पीड़ित, माताका हितकारी और दूसरेके कार्यमें पक्षपाती होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

४ पारिभाषिक योगविशेष, जैसे अर्द्धोदययोग, व्यतीपातयोग। इस योगमें गंगास्नान करनेसे कोटिकुलका उद्धार होता है। अमावस्याके दिन रविवार, श्रवणा, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा और मृगशिरा नक्षत्र होनेसे यह योग होता है।

चतुर्दशीके दिन यदि व्यतीपात तथा आर्द्रा नक्षत्रका योग हो, तो वह दिन भी अति पुण्यतम काल है। यह देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। इस दिन गंगास्नान करनेसे पूर्वोक्त फललाभ होता है। (प्रायश्चित्ततत्त्व)

५ सूर्यसिद्धान्तोक्त क्रान्तिसाम्यात्मक योगवियोगरूप वह्निभेद।

व्यतीहार (सं० पु०) वि-अति-हृ-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः। १ परिवर्त्त, बदला। २ आपसमें गाली गलौज, मारपीट या इसी प्रकारका और कोई काम करना।

व्यत्यय (सं० पु०) व्यत्ययनमिति वि-अति-इ। (एरच्। पा ३।३।५६) इति अच्। व्यतिक्रम। पर्याय—विपर्यास, व्यत्यास, विपर्यय।

व्यत्यस्त (सं० त्रि०) वि-अति-अस-क्त। विपरीतभावमें अवस्थित, उलटा पलटा।

व्यत्यास (सं० पु०) व्यत्यसनमिति वि-अति-अस्-घञ्। विपर्याय, व्यतिक्रम, वैपरीत्य।

व्यथ—१ भय, डर। २ चलना। ३ व्यथा।

व्यथक (सं० त्रि०) व्यथयति पीड़यति व्यथ णिच्-ण्वुल्। व्यथाकारी, पीड़ा देनेवाला।

व्यथन (सं० क्ली०) व्यथ-भावे ल्युट्। १ व्यथा, पीड़ा, तकलीफ। (त्रि०) व्यथयतीति व्यथ-ल्यु। २ व्यथक, तकलीफ देनेवाला।

व्यथयितृ (सं० त्रि०) व्यथ-णिच्-तृच्। व्यथाकारक, पीड़ा देनेवाला।

व्यथा (सं० स्त्री०) व्यथ-घञ्-टाप्। १ दुःख, पीड़ा, तकलीफ। २ भय, डर। (उत्तर च० १ अ०)

व्यथित (सं० त्रि०) व्यथ-क्त। १ पीड़ित, जिसे किसी प्रकारकी व्यथा या तकलीफ हो। ४ जिसे शोक प्राप्त हुआ हो।

व्यथिष् (सं० त्रि०) १ व्यथिता। २ बाधक।

(ऋक् ४।४।३)

व्यथ्य (सं० त्रि०) व्यथ-यत्। १ दुःखार्ह, व्यथा देने योग्य। २ भयानक, भय उत्पन्न करनेवाला।

व्यद्वर (सं० त्रि०) दंशक।

व्यध (सं० पु०) व्यधनमिति व्यध-ताड़े (व्यधजपोरनुपसर्गे। पा ३।३।६१) इत्यप्। १ वेध, बींधना। २ व्यथा। ३ भेदना। ४ प्रहार।

व्यधन (सं० क्ली०) व्यध-ल्युट्। वेधन, विद्ध करना, बींधना।

व्यधिकरण (सं० क्ली०) अधिकरणाभाव।

व्यधिक्षेप (सं० पुं०) निन्दा, शिकायत।

व्यध्य (सं० पु०) वधाय हितः व्यध यत्। १ धनुर्गुण,

धनुषकी डोरी । (त्रि०) २ वेधनाई, बींधनेके योग्य ।

व्यध्व (सं० पु०) विरुद्धो अध्वा, प्रादि समासः, 'उपसर्गादध्वनः' इत्यच् । कुत्सित पथ । पर्याय—दुरध्व, विपथ, कदध्वा, कापथ, कुपथ, असत्पथ, कुत्सितवर्त्म ।

व्यध्वन् (सं० त्रि०) कुत्सित पथयुक्त ।

व्यध्वर (सं० त्रि०) संक्रामक ।

व्यन्त (सं० त्रि०) दूरवर्त्ती ।

व्यन्तर (सं० त्रि०) १ व्यवहित । २ सर्वधर्मसाम्य । (नीलकण्ठ भारतटीका) (पु०) ३ जैनोंके अनुसार एक प्रकारके पिशाच और यक्ष आदि ।

व्यपगम (सं० पु०) वि-अप-गम-अप् । व्यतीत ।

व्यपत्रपा (सं० स्त्री०) लज्जा ।

व्यपदेश (सं० पु०) वि-अप-दिश-घञ् । १ कपट, छल । २ नाम । ३ कुल, वंश । ४ वाक्यविशेष । ५ नामोल्लेख-कथन । ६ मुख्य व्यवहार । ७ निंदा, शिकायत ।

व्यपदेशक (सं० त्रि०) १ नामक । २ प्रकाशक ।

व्यपदेशिन् (सं० त्रि०) मुख्य व्यवहारविशिष्ट ।

व्यपदेष्टृ (सं० त्रि०) वि-अप-दिश-तृच् । १ कपटी, छली । २ नामोल्लेखकारी ।

व्यपदेश्य (सं० त्रि०) वि-अप-दिश-यत् । १ व्यपदेशार्ह, व्यपदेशके योग्य । २ उल्लेखयोग्य ।

व्यपनय (सं० पु०) वि-अप-नी-अप् । १ विनाश, बरबादी । २ त्याग, छोड़ देना ।

व्यपनयन (सं० क्ली०) वि-अप-नी-ल्युट् । त्याग, छोड़ देना ।

व्यपनीत (सं० त्रि०) वि-अप-नी-क्त । अपसारित, दूर किया हुआ ।

व्यपनुत्ति (सं० स्त्री०) अपसारित, दूर करना, अलग करना ।

व्यपनेय (सं० त्रि०) वि-अप-नी-यत् । व्यपनयनयोग्य, छोड़ देने लायक ।

व्यपमूर्द्धन् (सं० त्रि०) मस्तकहीन, विना शिरका ।

व्यपयन (सं० क्ली०) निःशेष ।

व्यपयान (सं० क्ली०) १ प्रयाण । २ पलायन, भागना ।

व्यपरोपण (सं० क्ली०) वि-अप-रुह-णिच्-ल्युट् 'रुहेः पोवा, इति पस्य पः । १ अवतारण, झुकाना । २ छेदन, काटना । ३ मूलोच्छेदन, जड़से काटना । ४ दूरीकरण, दूर कराना, हटाना । ५ आघात पहुंचाना, पीड़ा पहुंचाना ।

व्यपरोपित (सं० त्रि०) वि-अप-रुह-णिच्-क्त, पस्य पः । १ अवतारित, झुकाया हुआ । २ छेदित, काटा हुआ । ३ मूलोत्पाटित, जड़से काटा हुआ । ४ दूरीकृत, दूर किया हुआ, हटाया हुआ । ५ उत्पाटित, उखाड़ा हुआ ।

व्यपवर्ग (सं० पु०) १ विच्छेद, अलग होना । २ त्याग, छोड़ना ।

व्यपवर्जन (सं० क्ली०) वि-अप-वृज-ल्युट् । १ त्याग । २ दान । ३ निवारण ।

व्यपवर्जित (सं० त्रि०) वि-अप-वृज-क्त । १ परित्यक्त, छोड़ा हुआ । २ दत्त, दिया हुआ । ३ निराकृत, निषिद्ध ।

व्यपवर्त्तित (सं० त्रि०) वि-अप-वृत-णिच्-क्त । प्रत्यावर्त्तित ।

व्यपसारण (सं० क्ली०) १ विनाश करना । २ दूर करना, हटाना ।

व्यपाकृत (सं० त्रि०) वि-अप-आ-कृ-क्त । १ अपनीत । २ अस्वीकृत । ३ निरस्त । ४ निह्नुत । ५ दूरीकृत ।

व्यपाकृति (सं० स्त्री०) वि-अप-आ-कृ-क्तिन् । १ अपह्नव । २ अस्वीकार । ३ निवारण । ४ निराकरण । ५ निह्नव ।

व्यपाय (सं० पु०) वि-अप-इ-घञ् । विनाश ।

व्यपाश्रय (सं० पु०) वि-अप-आ-श्रि-अप् । आश्रय, अवलम्बन ।

व्यपेक्षक (सं० त्रि०) वि-अप-ईक्ष-ण्वुल् । व्यपेक्षाकारी ।

व्यपेक्षा (सं० स्त्री०) वि-अप-ईक्ष-अङ्-टाप् । १ आकांक्षा, स्पृहा । २ विशेष अनुरोध । ३ अपेक्षा ।

व्यपेत (सं० त्रि०) वि-अप-इ-क्त । १ अपगत । २ दूरीकृत । ३ प्रतिरुद्ध । ४ विरुद्ध ।

व्यपोढ़ (सं० त्रि०) वि-अप-वह-क्त । १ विपरीत । २ घूर्णित । ३ ताड़ित ।

व्यपोह (सं० पु०) वि-अप-ऊह-घञ् । विनाश, बरबादी । "सुखदुःखव्यपोहकृत् ।" (सुश्रुत)

व्यपोह्य (सं० त्रि०) विनाशके योग्य ।

व्यभिचरित (सं० त्रि०) वि-अभि-चर-क्त । किया हुआ व्यभिचार ।

व्यभिचार (सं० पु०) वि-अभि-चर-घञ्। १ कदाचार, कुक्रिया, बदचलनी। २ भ्रष्टाचार, खराब चालचलन। ३ स्त्रीका परपुरुषसे अथवा पुरुषका परस्त्रीसे अनुचित सम्बन्ध, छिनाला। शास्त्रानुसार व्यभिचार विशेष पापजनक है।

"व्यभिचाराद् भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥"

(मनु ५।१६३)

जो स्त्री परपुरुषसे सम्भोग करती है, वह इस संसारमें निन्दनीय और मरने पर शृगालयोनिमें जन्म लेती है तथा तरह तरहके पापरोगोंसे आक्रान्त हो अत्यन्त कष्ट भोग करती है।

व्यभिचार स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये ही समान पापजनक है।

४ न्यायादि प्रसिद्ध हेतुदोषभेद। साध्यका अधिकरण मात्रमें हेतुका अवस्थान नियमित होना ही सङ्गत है, क्योंकि, ऐसा होनेसे ही उसके द्वारा साध्यकी अनुमिति हो सकती है। जिस हेतुकी गति वा सम्बन्ध अर्थात् अवस्थिति उक्त रूपसे नियमित नहीं है, जिसकी गति वा सम्बन्ध सर्वतोमुखी है अर्थात् जो हेतु साध्यके अधिकरणमें और साध्याभावके अधिकरणमें भी समानरूपसे रहता है, उस हेतुके बलसे साध्यकी अनुमिति नहीं हो सकती। ऐसे दुष्ट हेतुको सव्यभिचार नहीं कहते।

व्यभिचारवत् (सं० त्रि०) व्यभिचार अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। व्यभिचारविशिष्ट, व्यभिचारयुक्त।

व्यभिचारिता (सं० स्त्री०) व्यभिचारिणो भावः, व्यभिचारिन्-तल्-टाप्। व्यभिचारित्व, व्यभिचारीका भाव या धर्म।

व्यभिचारिन् (सं० पु०) व्यभिचरतीति वि-अभि-चर-णिनि। चतुस्त्रिंशत् प्रकार शृङ्गार भावविशेष, चौंतीस प्रकारके शृंगारभावमेंसे एक।

साहित्यदर्पणके मतसे यह व्यभिचारिभाव ३३ प्रकारका है, यथा निर्वेद, आवेग, दैन्य, मद, जड़ता, औग्र्य, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, अलसता, अमर्ष, निद्रा, अवहित्थ, औत्सुक्य, उन्माद, शङ्का, स्मृति, मति, व्याधि, त्रास, लज्जा, हर्ष, असूया, विषाद, धृति, चपलता, ग्लानि, चिन्ता और वितर्क।

साहित्यदर्पणमें इनमेंसे प्रत्येकका भिन्न भिन्न लक्षण दिया गया है। तत्तद् शब्द देखो।

(त्रि०) २ व्यभिचारविशिष्ट, व्यभिचार करनेवाला। ३ स्वमार्गच्युत। जो अपने मार्गसे भ्रष्ट हुआ है, उसे व्यभिचारी कहते हैं। ४ आगमाचारी।

(भागवत ११।३।३८)

व्यभिचारिणी (सं० स्त्री०) व्यभिचरति या वि-अभि-चर-णिनि, ङीप्। परपुरुषगामिनी स्त्री, भ्रष्ट चारिणी। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि जो स्त्री अपने पतिको त्याग कर इच्छापूर्वक दूसरे पुरुषका आश्रय लेती है, उसे व्यभिचारिणी कहते हैं। ऐसी भ्रष्टाचारिणीको भृत्याभरणादि अधिकारसे च्युत करना चाहिये, अलङ्कार पहननेको न देना चाहिये, जिससे केवल जीवन पालन कर सके, उतना ही आहार उसे देना उचित है। उसे बार बार धिक्कार देना और सर्वदा जमीन पर सुलाना कर्त्तव्य है। ऐसी व्यभिचारिणी स्त्रीको अकार्य्यसे विरक्त करनेके लिये अपने घरमें ही रखना चाहिये।

स्त्रियोंको चन्द्रमाने शौच प्रदान किया है, गन्धर्वने मधुरभाषिता दी है तथा पावकने सभी वस्तुओंकी अपेक्षा उसे पवित्र बनाया है। अतएव स्त्रियां अति पवित्र हैं। इन स्त्रियोंके मानस व्यभिचार होनेसे रजोदर्शन द्वारा उसकी शुद्धि होती है। फिर यदि हीनवर्णके संसर्गसे यदि उसे गर्भ रह जाय अथवा वह शिष्ट संसर्गादि करे, तो उसे छोड़ देना ही उचित है।

(याज्ञवल्क्यसंहिता १।७०-७२)

शूद्र यदि बलपूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी स्त्रीके साथ संभोग करे, और उससे यदि पुत्र सन्तान उत्पन्न न हो, तो वह स्त्री प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि लाभ करती है। इनके सिवा दूसरोंकी शुद्धि नहीं होती।

व्यभिचारिणी स्त्री दान, उपवास और व्रतादि जिस किसी पुण्य कर्मका अनुष्ठान क्यों न करे, वे सभी निष्फल होते हैं। व्यभिचारिणी स्त्री धनाधिकारिणी नहीं होती।

व्यभिहास (सं० पु०) विद्रूप, ठट्ठा, मजाक।

व्यभीचार (सं० पु०) वि-अभि-चर-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घः। व्यभिचार।

व्यभ्र (सं० त्रि०) मेघशून्य।

व्यय (सं० पु०) वि-इ-अच्। १ अर्थापगम, वित्तसमुत्सर्ग, खर्च। २ नाश। ३ परित्याग। ४ दान। ५ वृहस्पतिचारगत वर्षविशेष। (वृहत्संहिता ८।३६) ६ नागविशेष। (भारत १।५७।१६) (त्रि०) व्ययति गच्छतीति व्यय-गतौ-अच्। ७ नश्वर। (मनु १।१६)

(क्ली०) व्यय गतौ अच्। ८ लग्नसे बारहवां स्थान, व्ययस्थान। लग्न, धन, भ्राता, बंधु, पुत्र, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और व्यय यही बारह स्थान हैं। लग्नसे इन सब स्थानोंका निर्णय करना होता है। जिसकी जो राशि लग्न है उसी राशिसे बारहवीं राशि व्ययस्थान कहलाती है।

व्ययस्थानमें यदि शुभग्रह रहे, तो अशुभ और यदि अशुभ ग्रह रहे, तो शुभ होता है। (दीपिका)

त्याग, आदिभाग, अस्त, विवाह, दान, कृष्यादि कार्य, व्यय, पितृभ्राता, मातृभगिनी, मातुलानी, युद्धमें विनाश और युद्धमें पराजय, इन सभी विषयोंके शुभाशुभका विचार व्ययस्थानमें करना होता है।

(होराषट्पञ्चाशिका)

षष्ठीदासके मतमें भी त्याग, भोग, विवाद, दान, कृषिकर्म और समस्त व्यय विषयमें वृद्धि, इनके शुभाशुभका विचार व्ययस्थानमें करना होता है।

सूर्य यदि पापग्रहयुक्त वा पापग्रह कर्तृक दृष्ट हो कर व्ययस्थानमें रहे, तो उत्तम सद्वंशसम्भूत व्यक्ति भी गोलके बाहर होता है। फिर यह भी लिखा है, कि सूर्य यदि व्ययस्थानमें रहे, तो जातक मूर्ख, कामुक, क्रूर चेष्टायुक्त, कुत्सित शरीरवाला, अल्पधनसम्पन्न, जंघारोगविशिष्ट और पंगु होता है।

चन्द्रके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य पद पदमें अविश्वासी और कृपण होते हैं। वह चन्द्र यदि कृष्णपक्षके हों, तो जातक अति कृपण होता है। किसीके मतानुसार चन्द्रके व्ययस्थानमें रहनेसे जात बालक दुबला पतला, रोगी, क्रोधी और निर्धन होता है। वह चन्द्र यदि अपने भवनमें या पुत्रके भवनमें अथवा वृहस्पतिके भवनमें हों, तो वह दाम्भिक, त्यागी कमजोर, धनवान् और सर्वदा नीच संसर्गमें आसक्त होता है।

वह चन्द्र यदि व्ययस्थानस्थित हो तुङ्गगत हों, तो मानव धनाढ्य, अनेक स्त्रियोंके पति और पुत्रभृत्यादि सम्पन्न होते हैं। किन्तु उस चन्द्रके नीचस्थ, क्षीण, शत्रुगृहगामी और पापग्रहगामी होनेसे मनुष्य बहुरोगयुक्त और अशेष दुःखसन्तप्त होते हैं।

मङ्गल और राहुके व्ययस्थानमें रहनेसे मानव पापासक्त होते तथा उनकी भार्या व्यभिचारिणी होती है। ऐसा व्यक्ति कदापि सुखी नहीं होता।

बुधके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य विकलाङ्ग, लज्जाशील, परस्त्री द्वारा धनवान्, व्यसनासक्त, पापी और कुहकी होते हैं।

वृहस्पतिके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य सत्यवादी, दानी, शुचि, दुष्टजनपरित्यागी, अप्रमादी और साधु स्वभावके होते हैं।

शुक्रके व्ययस्थानमें रहनेसे मनुष्य प्रथम अवस्थामें रोगी, पीछे दुबला पतला, मलिन, कृषिकर्मकारी और अतिशय दाम्भिक होते हैं।

शनिके व्ययस्थानमें रहनेसे चञ्चल भार्यायुक्त, रोगविशिष्ट, अल्प धनवान्, अत्यन्त दुःखी, अङ्गदेशमें व्रणविशिष्ट, क्रूरमतिसम्पन्न, कृशाङ्ग और सर्वदा पक्षिवधमें निरत रहता है।

राहुके व्ययस्थानमें रहनेसे धर्महीन, अर्थहीन, दुःखित, पत्नीसुखरहित, विदेशवासी, दाम्भिक और पिङ्गलनयनके होते हैं। (ज्योतिःकल्पलता)

व्ययस्थानके अधिपति ग्रह द्वारा भी फल निरूपण करना होता है। व्ययपतिके लग्नमें रहनेसे मानव अपव्ययी, सतत विपदापन्न और अल्पायु होता है। द्वितीय स्थानमें रहनेसे विविध प्रकारसे धन नाश, तृतीय स्थानमें रहनेसे भ्रातृनाश और यात्रादिमें अशुभ, चतुर्थ स्थानमें रहनेसे पिताका अशुभ तथा मानव पितृसम्पत्तिविनाशकारी, परगृहवासी और नाना कष्टयुक्त; पञ्चम स्थानमें रहनेसे सन्तानके लिये शोक और दुर्भावना, दुर्बुद्धि अथवा बुद्धिवृत्तिका सङ्कोच तथा विलासके कारण अर्थकी हानि होती है।

षष्ठ स्थानमें रहनेसे जातक रोगार्त्त और शत्रु द्वारा पीड़ित; सप्तम स्थानमें रहनेसे भार्यानाश वा रुग्नस्त्री, परिजनके मध्य कलह तथा व्यवसाय वा मुकद्दमेमें अनिष्ट; अष्टम स्थानमें रहनेसे जातक क्षीण देहविशिष्ट, प्राप्य सम्पत्तिसे वञ्चित और सर्वदा विपदापन्न; नवम स्थानमें रहनेसे विद्या और धर्मानुशीलनमें प्रतिबन्धक और वाणिज्य वा नौकायात्रामें अनिष्ट तथा मनुष्य भाग्यहीन, विपदापन्न, साधु व्यक्तियोंका अप्रियभाजन; दशम स्थानमें रहनेसे अपमान और कार्यनाश; एकादश स्थानमें रहनेसे अर्थशाली, बन्धुनाश अथवा प्रतारक बन्धु द्वारा अनिष्ट होता है। व्ययपतिके व्ययस्थानमें अर्थात् द्वादश स्थानमें रहनेसे जातक शत्रुग्रस्त, शोकसन्तप्त, ऋणग्रस्त, कारारुद्ध, वधबन्धनरत अथवा निर्वासित होता है।

व्ययक (सं० त्रि०) व्ययकारक, व्यय करनेवाला।

व्ययकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-ट, व्ययस्य करः। व्ययकारक, व्यय करनेवाला।

व्ययगत (सं० त्रि०) व्ययं गतः। १ व्ययप्राप्त, व्ययित। २ ज्योतिषोक्त व्ययस्थानगत। जो ग्रह व्ययके स्थानमें रहता है, उसको व्ययगत कहते हैं।

व्ययन (सं० क्ली०) वि-अय-ल्युट्। विविध प्रकारसे जाना। (ऋक् १०।१६।५)

व्ययवत् (सं० त्रि०) व्ययोऽस्त्यस्य मतुप् मस्य व। व्यययुक्त, व्यय करनेवाला। (याज्ञवल्क्य २।२७१)

व्ययशील (सं० त्रि०) व्यय एव शीलं यस्य। जो बहुत अधिक खर्च करता हो, खर्चीले स्वभावका, शाह-खर्च।

व्ययित (सं० त्रि०) व्यय क्त। कृतव्यय, खर्च किया हुआ।

व्ययिन् (सं० त्रि०) व्ययोऽस्त्यास्तीति व्यय-इनि। व्ययुक्त, खूब खर्च करनेवाला, शाह-खर्च।

व्यर्क (सं० त्रि०) सूर्यविरहित।

व्यर्ण (सं० त्रि०) वि-अर्द्द-क्त। पीड़ित, विशेषरूपसे दुःखी।

व्यर्थ (सं० त्रि०) विगतोऽर्थो यस्मात्। १ निरर्थक, जिसका कोई अर्थ या प्रयोजन न हो, विना मतलबका। २ अर्थशून्य, जिसका कोई अर्थ या मतलब न हो। विना मानेका। ४ लाभशून्य, जिसमें किसी प्रकारका लाभ न हो। (क्रि० वि०) ४ विना किसी मतलबके, फजूल, यों ही।

व्यर्थक (सं० त्रि०) व्यर्थ स्वार्थे कन्। व्यर्थ, निष्फल।

व्यर्थता (सं० स्त्री०) व्यर्थस्य भावः तल्-टाप्। व्यर्थ होनेका भाव, निष्फलता, विफलता।

व्यलीक (सं० क्ली०) विशेषेण अलतीति वि-अल (अलीकादयश्च। उण् ४।२५) इति कीकन् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। १ वह अपराध जो कामके आवेगके कारण किया जाय, कामज अपराध। २ वैलक्षण्य, विलक्षणता, अङ्गता। ३ प्रतारणा, डाँट डपट, फटकार। ४ दुःख, कष्ट, तकलीफ। (वैजयन्ती) ५ कपट, छल। (त्रि०) ६ अप्रिय, जो अच्छा न लगे। ७ अकार्य्य, विना कामका। ८ कष्टदायक, दुःख देनेवाला। ९ अपरिचित, विना जान पहचानका। १० आश्चर्य्य, अद्भुत, अजीब। (पु०) ११ नागरविशेष, विट्। पर्याय—पिङ्ग, षट्प्रज्ञ, कामकेलि, विदूषक, पीठकेलि, पीठमर्द्द, भङ्गिल, छिदुर, विट। (त्रिका०)

व्यल्कशा (सं० स्त्री०) विविध शाखायुक्त। "रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा" (ऋक् १०।१६।१३)

व्यवकलन (सं० क्ली०) वि-अव-कल ल्युट्। एक अंक या रकममेंसे दूसरा अंक या रकम घटाना, बाकी निकालना। (लीलावती)

व्यवकलना (सं० स्त्री०) व्यवकलन-टाप्। व्यवकलन।

व्यवकलित (सं० त्रि०) वि-अव-कल-क्त। १ कृतव्यवकलन, घटाया हुआ, वियोग किया हुआ। (क्ली०) २ व्यवकलन, वियोग।

व्यवकिरणा (सं० स्त्री०) संयोग, मिश्रण। (व्युत्पत्ति)

व्यवकीर्ण (सं० त्रि०) वियुक्त, विमिश्रित।

व्यवच्छिन्न (सं० त्रि०) वि-अव-छिद्-क्त। १ विभिन्न, अलग, जुदा। २ विभक्त, विभाग करके अलग किया हुआ। ३ विशेषित। ४ मोचित। ५ निर्द्धारित।

व्यवच्छेद (सं० क्ली०) वि-अव-छिद्-घञ्। १ बाणमुक्ति, बाणमोचन। २ पृथकत्व, पार्थक्य, अलगाव। ३ भेद, विभाग, खण्ड। ४ विभेद। ५ विराम, ठहरना। ६ निवृत्ति छुटकारा। (भागवत० ४।२६।३२)

व्यवच्छेदक (सं० त्रि०) व्यवच्छेदयति ण्वुल्। व्यवच्छेदकारी, जो व्यवच्छेद या अलग करता हो।

व्यवच्छेद्य (सं० त्रि०) वि-अव-छेद्-यत्। व्यवच्छेदार्ह, व्यवच्छेद या अलग करने लायक।

व्यवदान (सं० क्ली०) परिशोधन, संस्कार।

व्यवदेश (सं० पु०) व्यपदेश।

व्यवधा (सं० स्त्री०) वि-अव-धा 'आतश्चोपसर्गे' इत्यङ् टाप्। व्यवधान, परदा।

व्यधातव्य (सं० त्रि०) वि-अव-धा-तव्य। व्यवधानीय, व्यवधानके योग्य।

व्यवधान (सं० क्ली०) वि-अव-धा ल्युट्। १ आच्छादन। पर्याय—तिरोधान, अन्तर्द्धि, अपवारण, छदन, व्यवधा, अन्तर्धा, पिधान, स्थगण, व्यवधि, अपिधान। २ भेद, विभाग, खण्ड। ३ विच्छेद, अलग होना। ४ समाप्ति, खतम होना। (भागवत ४।२६।७७)

व्यवधानवत् (सं० त्रि०) व्यवधानमस्त्यस्य व्यवधान-मतुप्, मस्य व। व्यवधानविशिष्ट।

व्यवधायक (सं० त्रि०) व्यवधातीति वि-अव धा-ण्वुल्। १ जो आड़में जाता हो, छिपनेवाला, गायब होनेवाला। २ जो किसी को ढकता या छिपाता हो, आड़ करने या छिपानेवाला।

व्यवधारण (सं० क्ली०) वि-अव-धृ-णिच् ल्युट्। अच्छी तरह अवधारण या निश्चय करना। "अर्थबलाद् व्यवधारण" (वृह० उप०)

व्यवधि (सं० पु०) वि अव-धा-(उपसर्गे घोः किः। पा ३।३।९२) इति कि। व्यवधान, परदा, ओट।

(नैषध २।१६)

व्यवलम्बिन् (सं० त्रि०) वि अव-लम्ब-इनि। विशेषरूप अवलम्बनविशिष्ट, अवलम्बनयुक्त।

व्यववद्य (सं० त्रि०) लिख कर वर्णन किया हुआ।

(पञ्चविंशब्राह्मण १५।७।३)

व्यवशाद (सं० पु०) १ परित्याग। २ पीछेकी ओर गिरना या हटना। (शतपथब्रा०)

व्यवसर्ग (सं० पु०) १ विभाजन, किसी पदार्थके विभाग करनेकी क्रिया, बाँट। २ मुक्ति, छुटकारा।

(शतपथब्रा० ६।२।२।३८)

व्यवसाय (सं० पु०) वि-अव-सो-घञ्। १ उपजीविका। जिससे जो जीविका निर्वाह करता है, वह उसका व्यवसाय है; जिसकी जो जीविका है; शास्त्रमें वह निर्दिष्ट है, वह वर्ण यदि अपना व्यवसाय छोड़ कर दूसरेका व्यवसाय अवलम्बन करे, तो उसे प्रत्यवायभागी होना पड़ता है। आपद् कालमें व्यवसायका परित्याग किया जा सकता है, पर उसकी भी व्यवस्था है, उसी व्यवस्थाके अनुसार चलना होगा।

२ अनुष्ठान। (रामायण २।३०।४१) ३ निश्चय। (गीता २ अ०) ४ यत्न। ५ उद्यम। ६ कल्पना, इच्छा। ७ व्यवाय। ८ कार्य। ९ अभिप्राय। १० विष्णु। (भारत १४।१४९।५५) ११ महादेव। (भारत १३।१७।५०)

व्यवसायिन् (सं० त्रि०) व्यवसायोऽस्यास्तीति इनि। १ जो किसी प्रकारका व्यवसाय करता हो, व्यवसाय करनेवाला। २ रोजगार करनेवाला, रोजगारी। ३ अनुष्ठाता, जो किसी कार्यका अनुष्ठान करता हो।

व्यवसित (सं० त्रि०) वि-अव-सो-क्त। १ प्रतारित। (भूरिप्रयोग) २ अनुष्ठित, जिसका अनुष्ठान किया गया हो। ३ चेष्टित। ४ उद्यत, तत्पर। ५ स्थिरीकृत, निश्चित।

व्यवसिति (सं० स्त्री०) वि-अव-सो-क्तिन्। व्यवसाय, रोजगार।

व्यवस्था (सं० स्त्री०) वि-अव-स्था, आतश्चोपसर्गे इत्यङ्, ततष्टाप्। १ शास्त्रनिरूपित विधि। शास्त्रमें जो सब विधान कहे गये हैं उन्हें शास्त्रीय व्यवस्था कहते हैं।

प्रायश्चित्त वा चान्द्रायण करनेमें शास्त्रज्ञ ब्राह्मणसे लिखि हुई व्यवस्था ले कर उसीके अनुसार प्रायश्चित्तादि आचरण करने होते हैं। यदि कोई ब्राह्मण धर्मशास्त्रका सिद्धान्त न जान कर व्यवस्था दें, तो जो व्यवस्थाके अनुसार कार्य करेंगे, वे पवित्र होंगे। किन्तु जिन्होंने व्यवस्था दी है, वह पाप उसीको होगा। अतएव धर्मशास्त्रका सिद्धान्त अच्छी तरह जाने विना व्यवस्था देना उचित नहीं।

"अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं वदेत्तु यः।
प्रायश्चित्ती भवेत् पूतं तत्पापं तेषु गच्छति ॥"

(प्रायश्चित्तवि०)

२ नियम। (कथासरित्सा० १०९।७१) ३ पृथक् पृथक् स्थापन, अलग अलग रखना। ४ स्थिति, स्थिरता।

व्यवस्थातृ (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-तृच्। १ व्यवस्थापक, व्यवस्था या इन्तजाम करनेवाला। २ शास्त्रीय व्यवस्था देनेवाला, जो यह बतलाता हो कि अमुक विषयमें शास्त्रोंकी क्या आज्ञा है।

व्यवस्थान (सं० क्ली०) वि-अव-स्था-ल्युट्। १ व्यवस्थिति, उपस्थित या अस्थिर होना।

"चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते।
तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्य्यावर्त्तस्ततः परम्॥"
(अमरटीकामें भरतधृत स्मृतिवचन)

(पु०) २ विष्णु। (भारत ३।१४६।५५)

व्यवस्थानप्रज्ञप्ति (सं० स्त्री०) बौद्धोंके अनुसार एक बहुत बड़ी संख्याका नाम। शततितिलम्भकी एक व्यवस्थानप्रज्ञप्ति होती है। ललितविस्तरमें इस गणनाका विषय यों लिखा है,—सौ कोटीका एक अयुत, सौ अयुतका एक नियुत, सौ नियुतका एक कङ्कर, सौ कङ्करका एक विवर, सौ विवरका एक अक्षोभ्य, सौ अक्षोभ्यका एक विवाह, सौ विवाहका एक उत्सङ्ग, सौ उत्सङ्गका एक बहुल, सौ बहुलका एक नागवल, सौ नागवलका एक तितिलम्भ, सौ तितिलम्भकी एक व्यवस्थानप्रज्ञप्ति। (ललितविस्तर १६८ पृ०)

व्यवस्थापक (सं० त्रि०) व्यवस्थापयति वि-अव-स्था-णिच्-ण्वुल्। १ व्यवस्था देनेवाला। २ नियामक, जो किसी कार्य आदिको नियमपूर्वक चलाता हो। ३ प्रबन्धकर्त्ता, इन्तजामकार।

व्यवस्थापकमण्डल (सं० पु०) वह समाज या समूह जिसे कानून कायदे बनाने और रद्द करनेका अधिकार प्राप्त हो।

व्यवस्थापत्र (सं० क्ली०) व्यवस्थाविषयकं पत्रं। वह पत्र जिसमें किसी विषयको शास्त्रीय व्यवस्था या वह विधान लिखा हो, कि अमुक विषयमें शास्त्रकी क्या आज्ञा या मत है।

व्यवस्थापद्धति (सं० स्त्री०) व्यवस्थायाः पद्धति प्रणाली। नियम-प्रणाली।

व्यवस्थापन (सं० क्ली०) वि-अव-स्था-णिच्-ल्युट्। १ व्यवस्थाप्रणयन, किसी विषयमें शास्त्रीय व्यवस्था देना या बतलाना। २ निर्द्धारण, निरूपण। ३ निश्चितकरण।

व्यवस्थापनीय (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-णिच् अनीयर्। व्यवस्थापन करनेके योग्य।

व्यवस्थापिका परिषद् (सं० स्त्री०) वह सभा या परिषद् जिसमें देशके लिये कानून कायदे आदि बनते हैं. देशके लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा, लेजिस्लेटिव एसेम्बली। ब्रिटिश भारत भरके लिये कानून कायदे बनानेवाली सभा व्यवस्थापिका सभा या लेजिस्लेटिव एसेम्बली कहलाती है। आज कल इसके सदस्योंकी संख्या १४३ है जिनमेंसे १०३ लोकनिर्वाचित और ४० सरकार द्वारा मनोनीत (२५ सरकारी और १५ गैर-सरकारी) सदस्य हैं।

व्यवस्थापिका सभा (सं० स्त्री०) वह सभा जिसमें किसी प्रदेश विशेषके लिये कानून कायदे आदि बनते हैं, कानून कायदे बनानेवाली सभा, लेजिस्लेटिव कौंसिल।

व्यवस्थापित (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-णिच्-क्त। १ स्थिरीकृत, जिसके विषयमें कुछ निश्चय या निरूपण किया गया हो। २ निर्द्धारित। ३ प्रकृतिप्रापित। ४ नियमपूर्वक स्थापित। ५ नियमित।

व्यवस्थाप्य (सं० त्रि०) वि-अव-स्थापि-यत्। व्यवस्थापनार्ह, जो व्यवस्थापन करनेके योग्य हो।

व्यवस्थित (सं० त्रि०) वि-अव-स्था-क्त। व्यवस्थापित, जिसमें किसी प्रकारकी व्यवस्था या नियम हो, जो ठीक नियमके अनुसार हो, कायदेका।

व्यवस्थिति (सं० स्त्री०) वि-अव-स्था-क्तिन्। १ व्यवस्थान, उपस्थित या स्थिर होना। २ व्यवस्था, इन्तजाम।

व्यवहरण (सं० क्ली०) वि-अव-हृ-ल्युट्। अभियोगों आदिका नियमानुसार विचार, मुकदमेकी सुनाई या पेशी, व्यवहार।

व्यवहर्त्तव्य (सं० क्ली०) वि-अव-हृ-तव्य। व्यवहार दिखानेके उपयुक्त।

व्यवहर्त्तृ (सं० पु०) वि-अव-हृ-तृच्। वह जो व्यवहारशास्त्रके अनुसार किसी अभियोग आदिका विचार करता हो, न्यायकर्त्ता, जज।

व्यवहार (सं० पु०) वि-अव-हृ-घञ्। १ विवाद। २ वृक्षभेद। ३ न्याय। ४ पण। ५ स्थिति। ६ कर्म, क्रिया, कार्य। ७ मुकदमा।

अष्टादश पद विवादविषयका नाम व्यवहार।

व्यवहारमाह कात्यायनः—

"वि-नानार्थेऽव सन्देहे हरणं हार उच्यते ।
नानासन्देहहरणात् व्यवहार इति स्थितिः ॥"

विशब्द नानार्थवाचक है, अव शब्दका अर्थ संदेह तथा हार शब्दका अर्थ हरण है, बहुतसे सन्देहोंका हरण होता है, इसीसे उसको व्यवहार कहते हैं। नाना विवादविषयक सन्देह जिसके द्वारा हरण होता है, उसका नाम व्यवहार है। विवाद विषयके सम्बन्धमें जो कुछ भी सन्देह उपस्थित क्यों न हो, जिससे वे सब सन्देह दूर होते हैं, उसीका नाम व्यवहार है। भाषोत्तर क्रियानिर्णयकत्व ही व्यवहारत्व है अर्थात् कहनेके बाद उसका कर्त्तव्य निर्णय करना ही व्यवहारका कार्य है। वादी और प्रतिवादीके बीच जो विवाद उपस्थित होता है, उसीको व्यवहार कहते हैं।

राजाको चाहिये, कि वे क्रोध और लोभरहित हो कर धर्मशास्त्रानुसार विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ स्वयं व्यवहार (मुकदमा) देखें अर्थात् आप ही विचार करें। मीमांसा व्याकरणादि तथा वेदशास्त्रमें अभिज्ञ धर्मशास्त्रविद्, धार्मिक, सत्यवादी तथा पक्षपातवर्जित ब्राह्मणको समासद् बनावें। राजा यदि किसी कार्यवशतः स्वयं व्यवहार देख न सकें, तो पूर्वोक्त गुणसम्पन्न सभासद्के साथ एक सर्वधर्मज्ञ ब्राह्मणको व्यवहार देखनेमें नियुक्त करें। (याज्ञवल्क्य) कात्यायनमें लिखा है,—

"ब्राह्मणं यत्र न स्यात् तु क्षत्रियं तत्र योजयेत् ।
वैश्यं वा धर्मशास्त्रज्ञं शूद्रं यत्नेन वर्जयेत् ॥"

अर्थात् उपयुक्त ब्राह्मणके अभावमें क्षत्रिय अथवा धर्मशास्त्रज्ञ वैश्य नियुक्त करें, किन्तु शूद्रको कदापि नियुक्त न करें।

स्मृति और आचार विरुद्ध पद्धतिके अनुसार शत्रु-कर्त्तृक उत्पीड़ित हो व्यवहार-दर्शकके निकट अपना दुखड़ा रोनेको व्यवहार कहते हैं अर्थात् एक आदमी शास्त्र और आचारविरुद्ध नियमानुसार दूसरेको कष्ट पहुंचाया, और उस उत्पीड़ित व्यक्तिने राजाके निकट इस बातकी नालिश की, इसीका नाम व्यवहार है। यही व्यवहारका विषय है। उक्त निवेदन और प्रतिवादीके सामने लिखनेका नाम भाषा या प्रतिज्ञा है। वादीके विवाद निवेदन करने अर्थात् मुकदमा खड़ा करनेके समय उसने जो कहा था, प्रतिवादीके सामने वही लिखा जायगा तथा उसी लेखमें यथायोग्य वर्ष, मास, तिथि और वारादि, वादी प्रतिवादीकी जाति तथा उनके नाम लिखे रहेंगे।

भाषार्थ श्रवण कर प्रतिवादी जो कुछ कहेगा वह सभी वादीके सामने लिखना पड़ेगा। इसके बाद वादी अपने पक्षका प्रमाण देगा। प्रमाण यदि ठीक होगा तो उसकी जीत और यदि ठीक नहीं होगा, तो हार होगी।

व्यवहार चतुष्पाद है अर्थात् चार भागोंमें विभक्त है, यथा—भाषापाद, उत्तरपाद, क्रियापाद और साध्य सिद्धपाद। ये सब भी पारिभाषिक शब्द हैं, इनका अर्थ भी इस प्रकार कहा गया है। भाषापाद अर्थी है अर्थात् वादीने जो कुछ कहा है, प्रतिवादीके सामने ठीक वही लिखना होगा, इसीको भाषापाद कहते हैं। भाषार्थ सुननेके बाद प्रतिवादी जो कहेगा, वादीके सामने वह कुल लिखना पड़ेगा। यही उत्तरपाद है। भाषापाद और उत्तरपाद इन दोनोंको अर्जी और जवाब कहते हैं। वादी उसी समय जो प्रमाण लिखायेगा उसीका नाम क्रियापाद है। प्रमाण ठीक होने पर जयलाभ अन्यथा पराजय, यही साध्यसिद्धिपाद है। यही चतुष्पाद व्यवहार है।

जब तक अपने ऊपर लगाये गये दोषकी एक मीमांसा न हो जाये, तब तक और मीमांसा हो जाने पर भी दूसरे यदि वादीके नाम पर कोई अभियोग लगावे, तो जब तक उस अभियोगका शेष न हो लेगा, तब तक प्रतिवादी वादीके नाम पल्टा अभियोग नहीं ला सकता। फिर प्रतिवादी भाषार्थ सुन कर जो उत्तर देगा वह एक दूसरेके विरुद्ध न देना चाहिये।

यह साधारण नियम है। किन्तु कुछ विशेषता यह है, कि वाक्पारुष्य (गालीगलौज), दण्डपारुष्य (मारामारी), साहस (विष शस्त्रादि द्वारा प्राणनाशादि इन सब स्थानोंमें पल्टा अभियोग लाया जा सकता है।

अभियुक्त व्यक्तिके अभियोग अपलाप करनेके बाद

वादी यदि साक्षी आदि द्वारा अपलापित अभियोगको प्रमाणित करा दे, तो उक्त अभियुक्त व्यक्ति वादीका कथित धन वादीको तथा उतना ही धन राजाको दण्ड-स्वरूप देगा। फिर वादी यदि उसे प्रमाणित न कर सके, तो मिथ्याभियोगी वादी अपने उल्लिखित धनका दूना देगा।

साहस, चोरी, वाक्पारुष्य, दण्डपारुष्य तथा दुधारिन गाय आदि द्वारा लाये गये अभियोग, पातकाभियोग और प्राणनाश तथा धनक्षतिकी सम्भावना होने पर, कुलस्त्रीके चरित्र घटित तथा दासीके स्वत्व घटित अभियोग पर प्रतिवादीको चाहिये, कि भावार्थ सुननेके बाद ही वह तुरत उत्तर दे दे।

विचारक और सभ्यगण वादी प्रतिवादीदुष्ट है वा नहीं उस ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये। जो एक स्थानमें स्थिर नहीं रह सकता, जो होंठ चाटता है, जिसके ललाटसे पसीना छूटता है, मुख फीका पड़ जाता है, कण्ठस्वर क्षीण तथा वद्ध हो जाता है, जो पूर्वापर विरुद्ध बहुतसी बातें कहता है, मीठा वचन नहीं कह सकता, ऐसे व्यक्तिको दुष्ट अर्थात् दोषी समझना होगा।

भावार्थ श्रवणके बाद प्रतिवादी जो कहेगा, वह सभी वादीके सामने लिखना पड़ेगा। इसके बाद वादी साक्षी आदि द्वारा आत्मपक्षका समर्थन करेगा। पीछे प्रतिवादीके साक्षी आदि विचारक सभ्योंके साथ कर्त्तव्य विधारण करें।

मत्त, उन्मत्त, पीड़ित, व्यसनासक्त, बालक, भीत, नगरादिविरुद्ध तथा सम्बन्धशून्य व्यक्ति जो व्यवहार या मुकदमा खड़ा करेगा, वह असिद्ध है।

बल वा भयनिष्पन्न, स्त्रीकृत, निशाकालकृत, गृहाभ्यन्तरकृत, ग्रामबहिर्देशकृत तथा शत्रुकृत व्यवहार श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा हुए होने पर भी परिवर्जित होगा।

तपोनिष्ठ, दानशील, सद्वंशीय, सत्यवादी, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान्, सम्पत्तिशाली, यथासम्भव श्रौतस्मार्त्त नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठायी तथा व्यवहर्त्ताका सजाति या सवर्ण, ऐसे कमसे कम तीन साक्षी देने होंगे। सजाति वा सवर्ण साक्षी नहीं मिलने पर सभी जातिके, सभी वर्णके व्यक्ति साक्षी हो सकते हैं।

दोनों पक्षसे गवाही लेने पर जिस पक्षमें अधिक आदमी रहेंगे उसी पक्षकी बात ग्राह्य होगी। दोनों पक्षमें समान आदमी रहने पर गुणवान् व्यक्तियोंकी और दोनों पक्षमें समान गुणवान्के रहने पर जो अधिक गुणवान् हैं उन्हींकी बात ग्राह्य करनी होगी। साक्षिगण जिसकी लिखी प्रतिज्ञाको सत्य ठहरायगा, उसकी जीत और जिसकी प्रतिज्ञाको सत्य नहीं ठहरायगा, उसकी हार होती है।

कुछ साक्षियोंके इस प्रकार कह देने पर भी यदि अन्य पक्षीय वा स्वपक्षीय अपरापर अत्यन्त गुणवान् व्यक्ति या बहुतसे आदमी दूसरी तरहकी गवाही दे, तो पूर्व साक्षिगण कूटसाक्षियोंके प्रत्येक व्यक्तिको इस विवादपराजित व्यक्तिको जो दण्ड मिलेगा उसका दूना दण्ड मिलना चाहिये। ब्राह्मण यदि कूटसाक्षी हों, तो राजा उन्हें राज्यसे निकाल दें।

पहले साक्ष्यदान स्वीकार करके पीछे वह यदि न दे, तो विवादमें पराजित व्यक्तिको जो दण्ड मिलेगा, उससे दूना दण्ड उसको देना पड़ेगा। ब्राह्मणका दण्ड निर्वासन कहा गया है। जिस विवादमें सच्ची बात कहने पर ब्रह्मचारीको प्राणदण्ड मिलता हो, वहां साक्षी झूठी बात कह सकता है। किन्तु द्विज साक्षिगण झूठ बोलनेसे जो पाप होगा, उस पापसे बचनेके लिये सारस्वत चरु निर्वपन करेंगे। विचारकको इसी प्रकार विचारकार्य करना चाहिये। (याज्ञवल्क्यसंहिता २ अ०)

व्यवहार अठारह प्रकारके हैं, यथा—१ ऋणादान, २ निक्षेप, ३ अस्वामिविक्रय, ४ सम्भूयसमुत्थान, ५ दत्ताप्रादानिक, ६ वेतनादान, ७ सम्विद्व्यतिक्रम, ८ क्रयविक्रयानुशय, ९ स्वामिपालविवाद, १० सीमाविवाद, ११ वाक्पारुष्य, १२ दण्डपारुष्य, १३ स्तेय, १४ साहस, १५ स्त्रीसंग्रहण, १६ विभाग, १७ द्यूत, १८ आह्वय। इनमेंसे कोई एक विषय ले कर यदि विवाद खड़ा हो और राजाके पास इसकी नालिश की जाय, तो राजाको चाहिये कि वे उसका साक्षी आदि ले कर शास्त्रानुसार विचार करें। प्रत्येक व्यवहारका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

इन अठारह विषयोंको ले कर प्रायः विवाद हुआ करता है। इन सब विषयोंका विवाद उपस्थित होने पर राजाको चाहिये, कि वे लोकस्थितिके लिये शाश्वतधर्म-का आश्रय करके ये सब निरूपण करें।

राजा यदि अपने किसी अनिवार्य कारणसे ये सब कार्य्य न देख सकते हों, तो वे विद्वान् ब्राह्मणको उस कार्य्यमें नियुक्त करें। वे विद्वान् ब्राह्मण तीन सभ्योंके साथ धर्माधिकरण-सभामें प्रवेश कर उपविष्ट या उत्थित भावमें कार्य्य करेंगे।

जिस सभामें ऋक्, यजुः और सामवेदवेत्ता ऐसे तीन सभ्य ब्राह्मण तथा राजप्रतिनिधि रहते हों उसे ब्रह्मसभा कहते हैं। विद्वानोंसे परिवृत सभामें जिससे अन्याय विचार होने न पावे, सभ्यगणको वैसा ही करना चाहिये। सभामें न जाय वह अच्छा पर वहां जा कर अन्याय विचार करना बिलकुल निषिद्ध है। उप-स्थित रह कर चुप रहनेसे या झूठ बोलनेसे पापभागी होना पड़ता है।

विचारकके सामने ही जहां अधर्म द्वारा धर्म और मिथ्या द्वारा सत्य नष्ट होता है वहां विचारकगण ही नष्ट होते हैं। जो व्यक्ति धर्मको नष्ट करता है, धर्म ही उसको नष्ट कर डालता है। धर्मकी रक्षा करनेसे धर्म रक्षा करता है। अतएव धर्म किसी भी प्रकार अतिक्रम-णीय नहीं है।

सभी कामनाओंको देते हैं, इस कारण शास्त्रमें धर्मका वृष नाम रखा गया है। जो व्यक्ति उस धर्मको 'अलं' अर्थात् निवारण करता है, वही यथार्थमें वृषल है, जातिवाचक वृषल वृषल नहीं है, धर्म ही जीवका एकमात्र सुहृद् है। मृत्युके बाद सभी नष्ट हो जाता है, एक धर्म ही साथ साथ जाता है।

अतएव विचारकको चाहिये कि वे धर्मके प्रति विशेष लक्ष्य रखें, जिससे अन्याय विचार न हो वही करें। अन्याय विचार करनेसे जो पाप होता है, उसके चार भागमें एक भाग मिथ्याभियोगीको प्राप्त होता है। मिथ्या साक्षी एक भाग, सभी सभासद् एक भाग तथा राजा भी एक भाग पाते हैं। इस कारण बड़ी सावधानी-से विचार करना कर्त्तव्य है। जहां न्यायविचार होता है, पापी उपयुक्त दण्ड पाता है, वहां राजा निष्पाप रहते हैं, सभ्यगण भी पापमुक्त होते हैं। पाप केवल पाप करनेवालेको ही होता है।

राजा धर्मासन पर बैठ कर सम्यक् आच्छादित देह और एकाग्रचित्त हो लोकपालोंको प्रणाम कर विचा-रादि कार्य आरम्भ कर दें। राजप्रतिनिधिको भी इसी प्रकार विचार करना होगा। अर्थ और अनर्थ दोनों ही समझ कर धर्म और अधर्मके प्रति विशेषरूपसे दृष्टि रखते हुए ब्राह्मणादि वर्णक्रमसे वादी प्रतिवादीके सभी कार्य्य देखेंगे। पहले बाह्य चिह्न द्वारा उनका मनो-गत भाव जाननेकी चेष्टा करनी चाहिये। उनके स्वर, वर्ण, इङ्गित, आकार, चक्षु और चेष्टा इन सबके प्रति लक्ष्य रखना भी आवश्यक है। आकार, इङ्गित, गति, चेष्टा, कथावार्त्ता और नेत्रमुखविकार द्वारा मनोगतभाव जाना जा सकता है।

पितृ-मातृविहीन अनाथ बालकका धन राजा तब तक अपने निरीक्षणमें रखें, जब तक वह बालीग न हो जाय। वन्ध्या स्त्री, परित्यक्ता स्त्री अर्थात् वह स्त्री जिसके स्वामीने दूसरा विवाह कर लिया है और उसे सिर्फ खाने पहननेका खर्चा देता है, पुत्रहीन, प्रोषित-भर्तृका तथा जिस स्त्रीके सपिण्डादि कोई अभिभावक नहीं है तथा साध्वी विधवा और रोगिणी स्त्री, इनके धनकी रक्षा अनाथ बालकके धनकी तरह करनी चाहिये। यदि उनके जीवित रहते ही सपिण्डगण उक्त धन ले लें, तो धार्मिक राजाको चाहिये, कि वे चौर-दण्डसे उन्हें दण्डित करें।

अज्ञान स्वामीका धन मिलने पर राजा इस बातकी सर्वत्र घोषणा कर तीन वर्ष तक अपने खजानेमें रखें। तीन वर्षके भीतर धनस्वामी आ जावे, तो वह धन उसे मिलेगा। तीन वर्ष बीतने पर राजा उस धनको अपने काममें ला सकते हैं। जो व्यक्ति उस धनको अपना बतला कर दान करता है, राजा उससे उपयुक्त प्रमाण ले कर वह धन उसे दे दें। यदि कोई झूठ दावा करे और उपयुक्त प्रमाण न दे सके, तो राजा उसको उस द्रव्यका उपयोगी दण्ड देंगे।

वर्णधर्म, जिस देशका जो धर्म है, गुरुपरम्परासे

प्रचलित है, अथच जो वेदविरुद्ध नहीं है, जानपदधर्म, श्रेणीधर्म और जिस कुलका जो धर्म अनादि कालसे चला आता है वह कुलधर्म, इन सब धर्मोंके प्रति विशेष दृष्टि रख कर राजा अपने धर्मनियमकी व्यवस्था दें तथा विचारकालमें इन सबके प्रति विशेष दृष्टि रखें।

धनके लोभसे एक दूसरेमें विवाद खड़ा कर देना या दूसरेके प्राप्य अर्थमें लोभ करना राजा वा राजपुरुषका कर्त्तव्य नहीं है। राजा व्यवहार विधिमें आस्थावान् हो कर देश, पात्र, काल आदिके ऊपर लक्ष्य रख कर सत्य और धर्मका अवलम्बन करते हुए विचार करें। साधुओं और धार्मिक ब्राह्मणोंने जैसा आचरण किया है, वह यदि देश, कुल और जातिधर्मके विरुद्ध न हो, तो उसी मतकी व्यवस्था दें।

उत्तमर्ण अधमर्णसे यदि रुपयेके लिये प्रार्थना करे तो राजा साक्षी और लेख्यादि द्वारा प्रदत्त धनको प्रमाणित करके अधमर्णसे वह धन दिला दें। उत्तमर्ण जिस जिस उपाय द्वारा अधमर्णसे अपना प्राप्य पा सकते हैं, राजा उन सब उपायोंका अनुमोदन करके उत्तमर्णको उसका प्राप्य दिलावें।

यदि अधमर्ण कहे, कि मैंने तुम्हारा नहीं लिया और उत्तमर्ण साक्षी और लेख्यादि द्वारा उसे प्रमाणित कर सके, तो राजा उत्तमर्णको धन दिला देवें और अधमर्णको इसके लिये शक्तिके अनुसार दण्ड देवें।

विचारस्थलमें विचारक अर्थी और प्रत्यर्थीके सामने साक्षियोंको खड़ा करके प्रिय वचनसे कहें, 'तुम वादी-प्रतिवादीके उपस्थित विषयमें जो जानते हो वह सच सच कहो। क्योंकि, तुम्हें इस विषयमें साक्ष्य माना गया है।' साक्ष्यस्थलमें सत्यवचन कहनेसे परलोकमें उत्तमगति और इस लोकमें अनुत्तमा कीर्त्ति प्राप्त होती है। ब्रह्मा भी सत्य वचनकी पूजा करते हैं। साक्ष्यस्थलमें झूठी बात कहनेसे वह वरुणपाशसे बद्ध हो सौ जन्म तक कष्ट पाता है। अतएव सर्वदा सच्ची गवाही देनी चाहिये। सच वचन कहनेसे साक्षी पापसे मुक्त होता है। सत्य द्वारा धर्मकी वृद्धि होती है।

साक्षी शब्द देखो।

विचारक शुचि हो कर पूर्वाह्णकालमें देवताप्रतिमाके समीप अथवा ब्राह्मणके समीप साक्षियोंमेंसे ब्राह्मणको 'कहो', क्षत्रियको 'सच सच कहो', वैश्यको 'गो, बीज और सुवर्ण द्वारा शपथ करके कहो' तथा शूद्रको 'सभी पातकके द्वारा शपथ खा कर कहो' इस प्रकार पूछें।

ब्राह्मणहन्ता, स्त्रीहन्ता, बालकहन्ता, मित्रद्रोही और कृतघ्नके लिये जो जो लोक शास्त्रमें कहा गया है साक्ष्यस्थलमें झूठ कहनेसे उन्हीं सब लोकोंकी प्राप्ति होती है। साक्षीको इस प्रकार झूठी गवाही देनेका दोष दिखलाते हुए कहें, 'तुम झूठ न कहो, जो कुछ अपनी आंखोंसे देखा है वा कानोंसे सुना है, वही कहो।

गोरक्षक, वाणिज्यजीवी, पाचक, नर्त्तकादि दासकर्मजीवी और वृद्धिजीवी ब्राह्मणको शूद्रके समान साक्ष्यप्रश्न करें। स्थान विशेषमें यह है, कि जिसमें एक तरहसे जान कर धर्मबुद्धि द्वारा अन्य प्रकारसे कहो, तो उसकी स्वर्गहानि नहीं होती। ऐसे वाक्यका नाम देववाक्य है। जहां सत्य वचन कहनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी प्राणरक्षा हो, वहां झूठी बात कही जा सकती है। ऐसे स्थलमें मिथ्याकथन सत्यसे बढ़ कर है। जो इस प्रकार असत्य वचन कहते हैं, उन्हें पापशान्तिके लिये चरुपाक करके वाग्देवता सरस्वतीके उद्देशसे याग अथवा यजुर्वेदीय कुष्माण्डमन्त्र द्वारा वह्निस्थापन कर होम करना चाहिये।

आपसमें झगड़नेवाले दो पक्षमें यदि किसी पक्षका साक्षी न रहे तो विचारक दोनों पक्षको शपथ खिला कर सत्यनिर्णय करें। सप्तर्षि और देवताओंने आत्मशुद्धिके लिये शपथ किया था। वशिष्ठ ऋषिने भी आत्मशुद्धिके लिये पैयवनके पुत्र सुदासराजके निकट शपथ खाया था। ज्ञानी पुरुष छोटीसी बातके लिये वृथा शपथ न करें, करनेसे इस लोकमें अकीर्त्ति और परलोकमें नरक होता है।

ब्राह्मणको सत्य द्वारा, क्षत्रियको उसके हाथी घोड़े और आयुध द्वारा, वैश्यको उसके गो बीज या काञ्चन द्वारा तथा शूद्रको सभी पातक द्वारा शपथ करना होता है। अथवा शूद्रको अग्निपरीक्षा, जलपरीक्षा या स्त्रीपुत्रादिके मस्तक छुला कर परीक्षा करावें। जलती हुई आग

जिसे जला न सके, जल जिसको शीघ्र वहा न सके और स्त्रीपुत्रादिके मस्तकस्पर्शसे यदि उन्हें किसी प्रकारकी पीड़ा न हो, तो जानना चाहिये उन्होंने ठीक शपथ खाया है।

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये तीन वर्ण यदि वार बार झूठी गवाही दे, तो राजाको चाहिये, कि वे उन्हें उचित सजा दे कर देशसे निकाल दें। किन्तु ब्राह्मणको अर्थ-दण्ड न दे कर सिर्फ निर्वासन दण्ड देना उचित है। स्वायम्भुव मनुने दण्ड देनेके दश स्थान निर्देश किये हैं। यथा—उपस्थ, उदर, जिह्वा, दो हाथ, दो पैर, चक्षु, कर्ण, नासिका और धन तथा महापराध स्थलमें सारी देह। यह दैहिकदण्ड क्षत्रियादि तीन वर्णोंके लिये जानना चाहिये। ब्राह्मणके लिये यह दण्ड उचित नहीं। ब्राह्मणको शारीरिक कोई दण्ड न दे कर अक्षत शरीरसे देश-निकाला कर दे।

विचारक विचारकालमें अच्छी तरह सोच विचार कर देखें, कि अपराधीने इस प्रकारका अपराध कितनी वार किया है तथा अपराधके सम्बन्धमें देशकाल, अपराधीका वलावल, अपराधका स्वरूप इन सबका अच्छी तरह विचार कर उसका दण्डविधान करें। अन्यायरूपसे यदि दण्ड दिया जाये, तो जीवितावस्थामें यश और परलोकमें स्वर्गको हानि होती है। अतएव अन्याय दण्ड कदापि देना न चाहिये।

जो दण्डनीय नहीं है उसको दण्ड देनेसे तथा जो दण्डयोग्य है उसे दण्ड नहीं देनेसे राजाको भारी अपयश होता है तथा वे नरकको जाते हैं। विचारक पहले मीठे वचनसे शासन करें, पीछे धिक्कार वा भर्त्सना दण्ड, तृतीय धनदण्ड और सबके अन्तमें अङ्गच्छेदादि शारीरिक दण्ड विधान करें। अङ्गच्छेदादि शारीरिक दण्डसे भी दुरात्मा यदि प्रशमित न हो, तो वाक्‌दण्डादि पूर्वोक्त चार दण्डका ही उसके ऊपर प्रयोग करें।

मद्यादिमें मत्त, उन्मादग्रस्त, व्याधिपीड़ित, दासादि, अधीन, नावालिग, अस्सी वर्षसे अधिकका बूढ़ा तथा अनियुक्त व्यक्ति इनके किये हुए ऋणदानादि व्यवहार-सिद्ध नहीं हैं।

जहां छलसे वन्धक, विक्रय दान वा प्रतिग्रह करता है अथवा छलसे निक्षेप आदि कोई भी कार्य्य किया जाता है वहां विचारक विचारको वदल दें। यदि कोई व्यक्ति सर्वसाधारण कुटुम्बोंके लिये ऋण करके मरे, तो अविभक्त वा विभक्त परवारमें सभीको वह ऋण चुकाना होगा। कुटुम्ब भरणपोषणके लिये यदि दास भी ऋण करे, तो धनस्वामी चाहे देशमें हों या विदेशमें, उन्हें वह ऋण देना होगा।

वलपूर्वक जो कुछ दिया जाता है, जो कुछ लिखा जाता है और जो कुछ किया जाता है वह सभी अकृत है अर्थात् असिद्ध होता है। छल, वल और कौशलसे भी जो कुछ किया जाता है वह असिद्ध होगा।

काम क्रोधको संयम कर जो राजा धर्मतः व्यवहार करते हैं उन्हें इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है। नदियां जिस प्रकार समुद्रकी अनुगामी होती है, उसी प्रकार प्रजा राजाकी अनुगामी हैं। अतएव राजाके धर्मानुसार चलनेसे प्रजा भी धार्मिक होगी।

जो गृहदाह, डकैती आदि साहसी कार्य करता है उसे साहसिक कहते हैं। वाक्‌पारुष्यकारी, तस्कर और दण्डपारुष्यकारी व्यक्तिकी अपेक्षा साहसिकको अत्यन्त पापकारी समझना होगा। जो राजा साहसिकको दण्ड न दे कर उसकी उपेक्षा करते हैं वे शीघ्र ही नाशको प्राप्त और लोगोंके विद्वेषभाजन होते हैं। राजा इसी प्रकार सभी व्यवहारोंका निरूपण करें।

(मनु ८ अ०)

ऋणदान आदि जिन अठारह व्यवहारका उल्लेख किया जा चुका है, उनका विशेष विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखना चाहिये।

रघुनन्दनने व्यवहारतत्त्वमें व्यवहारका विषय मन्वादिके नियमानुसार विशेषरूपसे आलोचना की है। उन्होंने पहले विचारक और उसके दोष गुणोंका उल्लेख कर वादी जो अभियोग करेंगे अर्थात् जिस विषयकी नालिश होगी उस विषयका नाम भाषा रखा है। वादी उसका अभियोग लिख कर राजा वा राजप्रतिनिधिके निकट उपस्थित करे तो विचारक यह अभियोग सुन कर जिसके नाम अभियोग लगाया गया है, उसे इस अभियोगका विषय कह कर उसी समय उससे जवाव मांगे और स्वयं वादी प्रति-

वादीके सामने उसे लिख डाले। इसके बाद साक्षी द्वारा उक्त वाक्यका सत्यासत्य निरुपण करे। यदि साक्षी न रहे, तो दिव्य, विष और अग्नि आदिकी परीक्षा द्वारा उक्त विषय प्रमाणित करें। इसी प्रकार प्रमाण प्रयोग ले कर फल निरूपण करना होता है। यदि प्रतिवादी दण्डनीय हो, तो उसे दण्ड और दण्डनीय न हो तो छोड़ दे। अभियोग यदि मिथ्या साबित हो, तो वहां मिथ्या अभियोग लगानेवाला भी दण्डनीय होगा।

प्रतिवादी वादीकी नालिशका जो जवाब देता है उसे उत्तरपाद, साक्षी ले कर विचारकार्यको क्रियापाद और विचारफलको निर्णयपाद कहते हैं। (व्यवहारतत्त्व) व्यवहारके निश्चयकालमें मन्वादिशास्त्रमें जो सब नियम निर्दिष्ट हुए हैं उनके प्रति विशेष लक्ष्य रखना आवश्य है। क्योंकि जिससे अदण्ड्य दण्ड न पावे तथा दण्ड्य व्यक्ति दण्डभोग करे वही करना कर्त्तव्य है। ऐसा करनेसे इस लोकमें यश और परलोकमें स्वर्गलाभ होता है। इससे प्रकृतिपुञ्जकी उन्नति और राज्यकी श्रीवृद्धि होती है।

व्यवहारक (सं० त्रि०) १ जिसकी जीविका व्यवहारसे चलती हो, जो न्याय या वकालत आदि करता हो। २ प्राप्तवयस्क, जो वयस्क हो गया हो, बालिग।

व्यवहारजीविन् (सं० त्रि०) व्यवहारं जीवति जीव-णिनि। जो व्यवहार या वकालत आदिके द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

व्यवहारज्ञ (सं० पु०) व्यवहारं जानाति ज्ञा-क। १ वह जो व्यवहारशास्त्रका ज्ञाता हो, व्यवहार जाननेवाला। २ वह जो पूर्ण वयस्क हो गया हो, बालिग।

व्यवहारदर्शन (सं० क्ली०) व्यवहारस्य दर्शनं। किसी अभियोगमें न्याय और अन्याय अथवा सत्य और मिथ्याका निर्णय करना।

व्यवहारनिर्णय (सं० पु०) व्यवहारस्य निर्णयः। व्यवहार-निरूपण।

व्यवहार-पद (सं० क्ली०) व्यवहारस्य पदम्। वादी द्वारा राजासे निवेदन। वादी राजा या राजप्रतिनिधिके निकट जो नालिश करता है, उसे व्यवहारपद कहते हैं। स्मृति और आचारविरुद्ध पद्धतिके अनुसार अर्थात् यदि कोई स्मृतिशास्त्रके नियम तथा सदाचारपद्धति लङ्घन कर किसीको पीड़ा देता है, पीड़ित व्यक्ति उसको उत्पीड़न राजासे कहता है, यही व्यवहार-पद कहलाता है।

व्यवहार शब्द देखो।

व्यवहार-पाद (सं० पु०) व्यवहारस्य पादः। १ व्यवहारके पूर्वपक्ष, उत्तर, क्रियापाद और निर्णय इन चारोंका समूह। २ इन चारोंमेंसे कोई एक जो व्यवहारका एक पाद या अंश माना जाता है।

व्यवहार-मातृका (सं० क्ली०) व्यवहारस्य मातृकेव। व्यवहारोपयोग क्रिया, वे क्रियाएं जिनका व्यवहारमें उपयोग होता है, व्यवहार शास्त्रके अनुसार होनेवाली कार्रवाइयाँ। मिताक्षरामें ३० प्रकारकी व्यवहारमातृका कही है। यथा,—१ व्यवहारदर्शन। २ व्यवहार लक्षण। ३ समासद। ४ प्राड् विवाकादि। ५ व्यवहार विषय। ६ राजाका कार्यानुत्पादकत्व। ७ कार्यार्थीका प्रतिप्रश्न। ८ आह्वान-समूहका आह्वान। ९ आसेध। १० प्रत्यर्थी आने पर लेख्यादि कर्त्तव्यता। ११ पञ्चविधहीन। १२ कीदृश लेख्य। १३ पक्षाभास। १४ अनादेय। १५ आदेय। १६ नियुक्त जयपराजयमें वादीकी जय और पराजय। १७ शोधित लेख्य निवेशन। १८ उत्तरावधिशोधन। १९ शोधित पत्रारूढ़विषयमें उत्तर कर्त्तव्य। २० उत्तर-लक्षण। २१ सत्योत्तर-लक्षण। २२ मिथ्योत्तरलक्षण। २३ प्रत्यवस्कन्दनोत्तर। २४ प्राङ्न्यायोत्तर। २५ उत्तराभास। २६ सङ्करानुत्तर। २७ प्रत्यर्थीका क्रियानिर्देश। २८ उत्तरपत्र अभिनिवेशित होनेसे साधननिर्देश। २९ उसकी सिद्धिके विषयमें सिद्धि। ३० चतुष्पाद व्यवहार। (मिताक्षरा)

व्यवहार-विषयमें अर्थात् विचार-कार्यमें इन ३० प्रकारकी व्यवहार-मातृकाके प्रति लक्ष्य कर विचार करना होता है।

व्यवहारमार्ग (सं० पु०) व्यवहारस्य मार्गः। व्यवहार विषय, व्यवहार-पद। (मिताक्षरा)

व्यवहारमूल (सं० पु०) अकरकरा, अकर-करहा।

व्यवहारविधि (सं० क्ली०) व्यवहारस्य विधिः। वह शास्त्र जिसमें व्यवहार-सम्बन्धी बातोंका उल्लेख हो,

वह शास्त्र जिसमें व्यवहार या मुकदमों आदिका विधान हो।

व्यवहारविषय (सं० पु०) व्यवहारस्य विषयः। व्यवहार-पद। व्यवहार शब्द देखो।

व्यवहारशास्त्र (सं० क्ली०) विवाद आदि निष्पत्ति विषयक आर्यजातिका विधिग्रन्थ। मनु, याज्ञवल्क्य, आदि स्मृति और गृह्यसूत्रादि तथा दायभाग, मिताक्षरा और नीतिग्रन्थ विषय हिन्दू व्यवस्थाशास्त्रके अन्तर्भुक्त है। प्राड्विवाकगण इस विधिकी सहायतासे वादी और प्रतिवादीके विवादका निर्णय किया करते हैं। इसे धर्मशास्त्र भी कहते हैं।

व्यवहारसिद्धि (सं० स्त्री०) व्यवहारस्य सिद्धिः। व्यवहारशास्त्रके अनुसार अभियोगोंका निर्णय करना।

व्यवहारस्थान (सं० क्ली०) व्यवहारस्य स्थानं। १ व्यवहारका विषय या पद। २ लेन-देन, इकरारनामे आदिके सम्बन्धमें यह निर्णय, कि वे उचित रूपमें हुए हैं या नहीं। चन्द्रगुप्तके समयमें तीन धर्मस्थ और तीन अमात्य व्यवहारोंकी निगरानी करते थे।

व्यवहारासन (सं० क्ली०) वह आसन जिस पर अभियोगोंका विचार करते समय विचार करनेवाला बैठता है, विचारासन, न्यायासन।

व्यवहारास्पद (सं० पु०) वह निवेदन जो वादी अपने अभियोगके सम्बन्धमें राजा अथवा न्यायकर्त्ताके सम्मुख करता हो, नालिश, फरियाद।

व्यवहारिक (सं० त्रि०) व्यवहारमर्हतीति व्यवहार-ठक्। १ जो व्यवहारके लिये उपयुक्त या ठीक हो, व्यवहारयोग्य। बुद्धि ज्ञानेन्द्रियके साथ युक्त हो कर विज्ञानमय कोष कहलाती है, यह विज्ञानमय कोष व्यवहारिक जीव नामसे कथित है तथा जब तक मुक्ति नहीं होती, तब तक यह व्यवहारिक इहलोक और परलोकगामी होता है। २ इंगुदी, हिंगोट।

व्यवहारिक जीव (सं० पु०) वेदान्तके अनुसार विज्ञानमयकोष जो ज्ञानेन्द्रियके साथ बुद्धिके संयुक्त होनेसे होता है।

व्यवहारिका (सं० स्त्री०) व्यवहारेण चरतीति ठक्, स्त्रियाँ टाप्। १ लोकयात्रा, संसारमें रह कर उसके सब व्यवहार या कार्य करना। २ सम्मार्जनी, झाड़ू। ३ इंगुदीवृक्ष, हिंगोटका पेड़।

व्यवहारिन् (सं० त्रि०) व्यवहारोऽस्यास्तीति इनि। व्यवहारविशिष्ट, व्यवहार करनेवाला।

व्यवहार्य (सं० त्रि०) वि अव हृ-ण्यत्। व्यवहरणीय, जो व्यवहार करनेके योग्य हो, काममें लाने लायक।

व्यवहित (सं० त्रि०) वि-अव-धा-क्त। व्यवधानविशिष्ट, जिसके आगे किसी प्रकारका व्यवधान या परदा पड़ गया हो, आड़ या ओटमें गया हुआ।

व्यवहृत (सं० त्रि०) वि-अव-हृ-क्त। १ आचरित, जिसका आचरण या अनुष्ठान किया गया हो। २ विचारित, जिसका व्यवहार शास्त्रके अनुसार विचार किया गया हो।

व्यवहृति (सं० स्त्री०) १ वह लाभ जो व्यापारमें होता है, रोजगारमें होनेवाला नफा। २ वाणिज्य, व्यापार। ३ कुशलता, होशियारी।

व्यवाय (सं० क्ली०) वि-अव-अय-अच्। १ तेज। (पु०) विशेषेण अवायणं अधः संश्लेषणम्, वि-अव-इ-घञ्। २ मैथुन, स्त्री-प्रसंग। ३ अन्तर्धान। ४ शुद्धि। ५ परिणाम, नतीजा। ६ विघ्न, बाधा, खलल। ७ आड़, ओट, परदा।

व्यवायशोष (सं० पु०) एक प्रकारका राजयक्ष्मा या तपेदिक जो बहुत अधिक स्त्री प्रसंग करनेसे होता है।

व्यवायिन् (सं० पु० स्त्री०) व्यवैतुं शीलमस्य णिनि। १ व्यवाययुक्त, वह जिसे स्त्रीप्रसंगकी बहुत अधिक कामना रहती हो, कामुक। श्राद्ध करके या श्राद्धमें भोजन करके संभोग नहीं करना चाहिए। यदि कोई करे, तो उसके पितृगण रेतोगर्त्तमें निमज्जित होते हैं। (श्राद्धतत्त्व) २ व्यवधानकर्त्ता, वह जो बीचमें किसी प्रकारका व्यवधान या परदा करता हो, आड़ या रोक करनेवाला। 'व्यवायिनोऽन्तरं' (पा ६।१।१३६) 'व्यवायी व्यवधाता' (काशिका) ३ वह औषधि जो शरीरमें पहुंच कर पहले सब नाड़ियोंमें फैल जाय और तब पचे। जैसे—भाँग या अफीम।

व्यवेत (सं० त्रि०) पृथक् कृत, अलग किया हुआ। (ऋक्प्राति० ११।६)

व्यशन (सं० त्रि०) भोज्ययुक्त।

व्यश्निय (सं० पु०) वैदिक मन्त्रोक्त विषय विशेष। (तैत्तिरीयसं० १।७।६।१)

व्यश्नुविन् (सं० पु०) अश्वावोशभेद। (शुक्लयजुः २२।३२)

व्यश्व (सं० त्रि०) १ अश्वशून्य। (पु०) २ एक प्राचीन ऋषिका नाम। ये ऋग्वेदके ४।२२ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा हैं। ये आङ्गिरस गोत्रज थे। इनके वंशधर वैयश्व नामसे परिचित हैं। वैयश्व देखो। ३ राजभेद। (भारत सभापर्व)

व्यष्टक (सं० पु०) मुष्टक।

व्यष्टका (सं० स्त्री०) कृष्णपक्षकी प्रतिपदा। (तैत्तिरीयसं० ७।५।७।१)

व्यष्टि (सं० स्त्री०) वि अश-क्तिन्। समूह या समाजमेंसे अलग किया हुआ प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थ, वह जिसका विचार अकेले हो औरोंके साथ न हो।

व्यसन (सं० क्ली०) वि-अस-ल्युट्। १ विपद्, आफत। २ दुःख, कष्ट। ३ पतन, गिरना। ४ विनाश, नष्ट होना। ५ पाप, अमङ्गल। ६ निष्फलोद्यम, वह प्रयत्न जिसका कोई फल न हो। ७ विषयासक्ति, विषयवासनाके प्रति होनेवाला अनुराग। ८ दुर्भाग्य, बदकिस्मती। ९ अयोग्यता, अक्षमता। १० काम और क्रोधजनित दोष। व्यसन अठारह प्रकारका है, जिनमेंसे कामज १० प्रकारका और क्रोधज ८ प्रकारका है। (मनु ७।४५-४८)

ये सभी व्यसन अति भयानक हैं, अतएव यत्नपूर्वक इन सब व्यसनोंका परित्याग करना उचित है। राजा यदि कामजव्यसनमें आसक्त हो, तो वे धर्म और अर्थसे वञ्चित होते हैं तथा क्रोधज व्यसनमें आसक्त होनेसे यहां तक कि उनका जीवन तक भी विनष्ट होता है।

मृगया, पाशक्रीड़ा, दिवानिद्रा, परदोषकथन, रमणीसम्भोग, मदजनित मत्तता, तौर्यत्रिक अर्थात् नृत्यगीत और वाद्यादि तथा वृथा भ्रमण ये दश कामज व्यसन हैं अर्थात् ये दश दोष कामसे उत्पन्न होते हैं।

पिशुनता, दुःसाहस, द्रोह, ईर्षा, असूया, परस्वापहरण, आक्रोश अर्थात् वधार्थ अस्त्रादि प्रदर्शन और दण्डपारुष्य अर्थात् संहार ये ८ प्रकारके व्यसन क्रोधज हैं। पण्डितोंने एकमात्र लोभको ही कामज और क्रोधज इन दोनों प्रकारके व्यसनोंका मूलीभूत कारण बताया है। इसलिये बड़े यत्नसे इसका परित्याग करना उचित है।

दश प्रकारके कामज व्यसनोंमें सुरापान, पाशक्रीड़ा, रमणीसंभोग और मृगया ये चार विशेष दोषावह तथा अनिष्टजनक है। क्रोधज ८ प्रकारके व्यसनोंमें निष्ठुर कथन, प्राप्य धनप्रवञ्चना और निर्घातप्रहार ये तीन विशेष अनिष्टकारक हैं। सात व्यसनोंमें प्रायः सभी राजे आसक्त होते हैं। इनमेंसे पिछलेकी अपेक्षा पहले व्यसनको गुरुतर जानना होगा। क्रोधज अथवा कामज व्यसन मृत्युसे भी बढ़ कर कष्टजनक है। यही कारण है, कि व्यसनी पापी व्यक्ति मरने पर नरक जाता है। (मनु ७ अ०)

व्यसनमात्र ही विशेष अनिष्टजनक है, अतएव व्यसनका परित्याग करना सबोंका कर्त्तव्य है। व्यसनासक्त होनेसे कोई भी काम सफल नहीं होता। देवीपुराणमें लिखा है, कि एक एक व्यसनासक्त व्यक्ति मृत्युवशवर्त्ती होता है तथा जो सभी प्रकारके व्यसनोंमें रत हैं वे छिन्नमूल वृक्षकी तरह महदैश्वर्यसे पतित और विनष्ट होते हैं। (देवीपुराण ८ अ०)

व्यसनवत् (सं० त्रि०) व्यसनमस्यास्तीति व्यसनमतुप् मस्य व। व्यसनविशिष्ट, व्यसनासक्त।

व्यसनार्त्त (सं० त्रि०) व्यसनेनार्त्तः। जिसे किसी प्रकारकी दैवी या मानुषी पीड़ा पहुंची हो।

व्यसनिता (सं० स्त्री०) व्यसनिनो भावः व्यसनिन् तल्-टाप् नस्य लोपः। व्यसनी होनेका भाव या धर्म, व्यसनित्व।

व्यसनिन् (सं० त्रि०) व्यसनमस्यास्तीति व्यसन-इनि। १ व्यसनविशिष्ट, जिसे किसी प्रकारका व्यसन या शौक हो। पर्याय—पञ्चभद्र, विप्लुत। २ वेश्यागामी, रंडीबाज।

व्यसि (सं० पु०) १ असिशून्यकोष। (त्रि०) २ असिशून्य।

व्यसु (सं० त्रि०) विगताः असवः प्राणाः यस्य। विगत प्राण, मरा हुआ। (राजतरङ्गिणी ५।२४१)

व्यसुत्व (सं० क्ली०) व्यसोर्भावः व्यसुत्व। विगत प्राणका भाव, प्राणहानि। (बृहत्संहिता ७१।७)

व्यस्त (सं० त्रि०) वि-अस क्त। १ व्याकुल, घबराया हुआ। २ व्याप्त, फैला या छाया हुआ। ३ प्रत्येक, अलग अलग। ४ काममें लगा या फंसा हुआ। ५ उत्क्षिप्त, फेंका हुआ। ६ विपर्यस्त, इधर उधर, आगे पीछे या ऊपर नीचे किया हुआ।

व्यस्तक (सं० त्रि०) जिसमें हड्डी न हो, बिना हड्डीका।

व्यस्तपद (सं० क्ली०) व्यस्तं पदं यस्मिन्। व्यवहार-शास्त्रमें नालिश होने पर ऋण न चुकाना, बल्कि कुछ उज्र करना। (मिताक्षरा)

व्यस्तार (सं० क्ली०) हस्तिमदप्रयोग। (त्रिका०)

व्यस्थक (सं० त्रि०) अस्थिहीन, बिना हड्डीके।

व्यहन् (सं० पु०) व्यह्न देखो।

व्यह्न (सं० पु०) गत दिन, कलका बीता हुआ दिन।

व्याकरण (सं० क्ली०) व्याक्रियन्ते अर्था येनेति वि-आ-कृ-ल्युट्। वेदाङ्गविशेष। यह साध्य, साधन, कर्त्तृ, कर्म, क्रिया समासादि निरूपण रूप है। इसकी व्युत्पत्ति—

'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधु शब्दा अस्मिन् अनेनेति वा' जिससे या जिसके द्वारा साधु शब्द व्युत्पादित हो उसका नाम व्याकरण है। यह शब्द-व्युत्पादक शास्त्र है। इसके द्वारा कर्त्ता, कर्म, क्रिया समासादि निरूपित होते हैं।

२ विस्तार। (भारत १२।२५१।११)

वेदसंहिताकी सुग्रथित और सुमार्जित भाषा पढ़नेसे आपे आप मनमें एक ऐसी धारणा उत्पन्न होती है कि बहु प्राचीन कालमें वैदिक युगमें अवश्य ही व्याकरणकी सृष्टि हुई थी। जब तक कोई भाषा सुगठित और सुमार्जित नहीं होती तब तक व्याकरणकी सृष्टि हो नहीं सकती, यह स्वतःसिद्ध है। पहले भाषाका विकाश और पीछे व्याकरणका प्रकाश होता है यह सभीको स्वीकार करना पड़ेगा। भाषाका नियम देखना ही व्याकरणका कार्य है। इसी कारण व्याकरणका दूसरा नाम शब्दानुशासनशास्त्र रखा गया है। शब्दका पार नहीं है—शब्द असीम और अनन्त है। भगवान् पतञ्जलिने जनश्रुतिके आधार पर कहा है, कि बृहस्पतिने इन्द्रको दिव्यसहस्र वर्ष तक प्रतिपदोक्त शब्द-पारायण कहा था, फिर भी उन्हें शब्दोंका अन्त न मिला। (१)

अतएव व्याकरण भाषाके शासनके उद्देशसे या भाषा पढ़नेके उद्देशसे सृष्ट हुआ। केवल साधुशब्दोंका व्युत्पादन ही व्याकरणका विषय है। महाभाष्यकारने भी स्पष्टतः इसे स्वीकार किया है।

व्याकरण वेदाङ्गशास्त्रोंका प्रधान अङ्ग है। भगवान् पतञ्जलिने कहा है, "प्रधानं च षड़ङ्गेषु व्याकरणं।" वेदसंहिताकी सृष्टिके समय अथवा उसके पहले भी व्याकरण था, ऐसा अनुमान करना युक्तिसंगत नहीं है। ऋक् यजु आदि मन्त्र जब विकीर्ण अवस्थामें पढ़े जाते थे, भिन्न भिन्न शाखाप्रवर्त्तकगण जब भिन्न भिन्न नामपाठ पदपाठ और संहितापाठमें वेदाध्ययन करते थे, उसके भी बहुत पहले वैदिक संस्कृत भाषामें व्याकरणकी सृष्टि हुई थी। वैदिक ऋषियोंके सुनियमबद्ध सुग्रथित मन्त्रोंमें सभी विषयोंकी उन्नत अवस्थाके इतिहासका बीज देखनेमें आता है। वेदमें उच्चतम दार्शनिकतत्त्व, उच्चतम समाजतत्त्व और विज्ञानतत्त्वका यथेष्ट परिचय है। उस समय भाषा-विज्ञानने जो यथेष्ट उन्नति की थी, मन्त्रादि पढ़नेसे ही उसका प्रमाण मिलता है। इस अवस्थामें वैदिक युगमें व्याकरण नहीं था यह समझना भी असङ्गत है। हम यजुर्वेदमें (तैत्तिरीय संहितामें) व्याकरणका स्पष्ट उल्लेख पाते हैं। वह इस प्रकार है—

"वाग् वै पराची अव्याकृता अवदत्। ते देवा अब्रुवन इमां नो वाचं व्याकुरु। सोऽब्रवीत् वरं वृणे मह्यं चैव वायावच सह गृह्यता इति। तस्मादैन्द्रवायवः सहातः। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। तस्मा दियं व्याकृता वागुद्यते तदेतत् व्याकरणस्य व्याकरणत्वम्।

(१) "एवं श्रूयते बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम।"

भावार्थ—पुरातनी वाक् अर्थात् वेदरूप वाक्य पहले मेघगर्जनकी तरह अखण्डाकारमें आविर्भूत था। उनमें कितना वाक्य और कितना पद था, वह कोई नहीं समझता था। इस पर देवताओंने वाक्य प्रकाश करनेके लिये प्रार्थना की। इन्द्रने वेदरूप वाक्योंको बीच बीचमें विच्छिन्न कर वाक्य, पद और प्रत्येक पदकी प्रकृति स्पष्ट कर दी थी। वाक्य, पद और पदके अन्तर्गत प्रकृति प्रत्यय निष्पन्न शब्दको विशेषरूपसे व्यक्त करना ही व्याकरणका कार्य है।

ऐसा ख्याल हो सकता है, कि इन्द्र ही मानो वेद-समयके आदि वैयाकरण हैं। किन्तु महाभाष्यकारके वचनोंसे जाना जाता है, कि इन्द्रने बृहस्पतिसे व्याकरण सीखा। फलतः वैदिकयुगके वैयाकरण महोदयोंके नाम और इतिहासका पता लगाना बहुत कठिन है। पाणिनीय व्याकरणके प्रथम चौदह सूत्र माहेश्वरसूत्र कह कर प्रसिद्ध हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि माहेश व्याकरण नामक एक बड़ा व्याकरण था, पाणिनीके व्याकरणसे कहीं बढ़ा चढ़ा था, दोनोंमें जमीन आसमानका फर्क था। किन्तु इस उक्तिकी कोई मूलभित्ति नहीं। प्रतिवादियोंका कहना है, कि पाणिनीय व्याकरणके उक्त प्रत्याहार कुछ सूत्रोंको छोड़ स्वतंत्र कोई माहेश व्याकरण नहीं था। पाणिनि शब्दमें इसकी विस्तृत आलोचना देखो।

जो हो, पाणिनिके पहले भी बहुतसे वैयाकरण थे, जिनमें प्रधान प्रधान वैयाकरणके नाम हम पाणिनिके सूत्रमें भी देखते हैं। यथा—अत्रि, आङ्गिरस, आपिशलि, कठ, कलापी, काश्यप, कुत्स्य, कौण्डिन्य, कौरव्य, कौशिक, गालव, गौतम, चरक, चक्रवर्मा, छागलि, जावाल, तित्तिरि, पाराशर्य, पीला, बभ्रु, भारद्वाज, भृगु, मण्डूक, मधुक, यस्क, वड़वा, वरतन्तु, वशिष्ठ, वैशम्पायन, शाकटायन, शाकल्य, शिपालि, शौलक और स्फोटायन।

प्रातिशाख्य।

गोल्डष्टुकारने आपिशलि, काश्यप, गार्ग्य, गालव, चक्रवर्मा, भारद्वाज, शाकटायन, शौनक और स्फोटायन इन्हें पूर्वाचार्य बताया है। गोल्डष्टुकार प्रातिशाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्त्ती नहीं मानते। किन्तु रुडलफरोट और वेवर आदि पाश्चात्य पण्डितोंके ग्रंथमें प्रातिशाख्योंको पाणिनिके पूर्ववर्त्ती तथा प्राचीन वैदिक व्याकरणके अङ्गविशेष कहा है। अभी ये प्रातिशाख्य ग्रंथ लुप्तसे हो गये हैं। शौनक-रचित ऋग्वेदीय शाकल शाखाका ऋक्प्रातिशाख्य, यजुर्वेदीय तैत्तिरीय शाखाका तैत्तिरीय प्रातिशाख्य, वाजसनेय शाखाका कात्यायन रचित वाजसनेय-प्रातिशाख्य तथा सामवेदकी माध्यन्दिन शाखाका पुष्पमुनि रचित सामप्रातिशाख्य और शौनकीय आथर्व प्रातिशाख्य ग्रन्थ पाये गये हैं।

इनका विवरण प्रातिशाख्य और वेद शब्दमें देखो।

प्रातिशाख्यमें पदच्छेद, सन्धिच्छेद, उच्चारणके प्रकार (नतिप्लुति) आदि विषयोंकी आलोचना की गई है। इससे सन्धि और समास आदिके विच्छिन्न होनेसे प्रातिशाख्यमें भी व्याकरणका परिचय मिलता है। फिर उच्चारणप्रणालीके निर्दिष्ट रहनेसे उसमें षड़ङ्गके अन्तर्गत शिक्षाके आलोच्य विषय भी देखनेमें आते हैं। यह विषय भी व्याकरणमें आलोचित होता है। फिर प्रातिशाख्यमें छन्दके संबंधमें भी आलोचना देखी जाती है। फलतः षड़ङ्गके विषय प्रातिशाख्यमें न्यूनाधिक परिमाणमें दिखाई देते हैं। रुडल्फ रोट साहबका कहना है, कि ईसा-जन्मसे सात सौ वर्ष पहले प्रातिशाख्यकी सृष्टि हुई। ये सब प्रातिशाख्य इतने प्राचीन हैं वा नहीं, इस विषयमें सन्देह रहने पर भी उनमेंसे कितने प्रातिशाख्य पाणिनिके पहले रचे गये थे, इसमें सन्देह नहीं। प्रातिशाख्यमें सन्धिविच्छेद और पदविच्छेद आदि देख कर मालूम होता है, कि प्रातिशाख्य व्याकरणकी आलोचनासे एकदम परिवर्जित नहीं है। इससे यह भी जाना जाता है, कि व्याकरणकी आलोचनाके बिना वेदाध्ययन करना कभी सम्भवपर नहीं होता। शाखाप्रवर्त्तकोंने अपनी अपनी शाखाके अन्तर्गत वेद पठनपाठनके लिये प्रातिशाख्य ग्रंथकी सृष्टि कर ली थी। ये सब शाखा पाणिनिके बहुत पहले प्रवर्त्तित हुई थीं। अतएव पाणिनिके बहुत पहले वैयाकरणोंने वैदिक साहित्यके व्याकरणकी उन्नति करनेमें हाथ बंटाया था। पाश्चात्य पण्डितोंमें प्रोफेसर मूलर और वेवर आदि इस मतके समर्थक हैं। गोल्डष्टुकार इस सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करते।

ब्राह्मणग्रन्थमें व्याकरण।

हम ब्राह्मणग्रन्थमें भी व्याकरणके आलोचनाजात अनेक शब्दप्रयोग देखते हैं। ऐतरेय-ब्राह्मणमें लिखा है, "अथास्यैष स्वो भक्षो न्यग्रोधस्यावरोधाश्च फलानि चौदुम्बराण्याश्वत्थानि प्लाक्षाण्यभिषुणुयात्तानि भक्षयेस्य सोऽ स्वो भक्षो यतो वा अधि देवा यज्ञेनेष्ट्वा स्वर्गं * * * * * * एतद्ध्याचक्षते कुरुक्षेत्रे ते ह प्रथमजा न्यग्रोधानां तस्यो हान्येऽधिजातास्ते यन्न्यञ्चोऽरोहंस्तस्मान्न्यङ्रोहति न्यग्रोहो न्यग्रोहो वै नाम तन्न्यग्रोहं सन्तं न्यग्रोधं इत्याचक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः।" (ऐतरेयब्राह्मण ७।३०)

उद्धृत अंशमें न्यग्रोध शब्दकी व्युत्पत्ति साधित हुई है। अपरन्तु यहां पर एक 'परोक्ष' शब्द है। यह परोक्ष शब्द शब्दशास्त्रके गूढ़ भावका अभिव्यञ्जक है।

निरुक्तके टीकाकार दुर्गाचार्य कहते हैं—

"त्रिविधा हि शब्दव्यवस्था—प्रत्यक्षवृत्तयः, परोक्षवृत्तयः अतिपरोक्षवृत्तयश्च। तत्रोक्त क्रिया—प्रत्यक्षवृत्तयः, अन्तर्लीनक्रियापरोक्षवृत्तय अतिपरोक्षवृत्तिषु शब्देषु निर्वाचनाभ्यपायस्तस्मात् परोक्षवृत्तितामापद्य प्रत्यक्ष वृत्तिना शब्देन निर्व्वक्तव्यः।

ब्राह्मण ग्रन्थके समय जो व्याकरणके गभीरतत्त्वनिवहकी आलोचना हुई थी ऐसे एक एक शाब्दिकशास्त्र व्यवहृत गभीरार्थ मूलक शब्दका प्रयोग देख कर हम इस प्रकारका सिद्धान्त स्थिर कर सकते हैं। फलतः पाणिनिके पहले व्याकरणकी विपुल उन्नति हुए बिना कभी भी पाणिनिके व्याकरणकी तरह हठात् एक सर्वाङ्गसुन्दर व्याकरण रचा नहीं जाता।

भाष्यकार कहते हैं—

"रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्"

अर्थात् रक्षार्थ, उहार्थ, आगमार्थ, लघ्वर्थ और असन्देहार्थ व्याकरण शास्त्रका प्रयोजन है। भगवान् पतञ्जलिने उक्त वाक्यके प्रत्येक पदकी व्याख्या की है; उन सब व्याख्याओंका मर्म इस प्रकार है—

१। वेदरक्षार्थ व्याकरण अध्येय है। योगागमवर्ण विकारज्ञ व्यक्ति ही सम्यक्रूपसे वेदका परिपालन करनेमें समर्थ है।

२। उह अर्थमें अनुसंधान पूर्वक वेदार्थतात्पर्य प्रतिग्रहण। वैदिक मन्त्र सभी स्थलोंमें सर्वलिङ्ग और सर्वविभक्ति द्वारा अभिव्यक्त नहीं होते। याज्ञिकगण भिन्न भिन्न स्थलमें उसका भिन्न भिन्न अर्थ तात्पर्य ग्रहण करते हैं। व्याकरण जाने बिना ऐसे स्थलका अर्थ तात्पर्य ग्रहण करना असम्भव है, अतएव व्याकरण अवश्य पढ़ने योग्य है।

३। आगम—व्याकरण षड़ङ्गका प्रधान अङ्ग है। प्रधान विषयमें यत्न करनेसे वह यत्न अवश्य फलवान् होता है। विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये षड़ङ्ग अवश्य अध्येय है।

४। लघु उपायसे शब्दज्ञानके लिये व्याकरण अध्येय है। ब्राह्मणके लिये शब्दशास्त्र अवश्य जानने योग्य है। किन्तु बिना व्याकरणके अपार शब्द समुद्रकी अभिज्ञता लाभ करना बिलकुल असम्भव है। व्याकरण लघु उपायसे शब्दज्ञानके सम्बन्धमें शिक्षाप्रदान करता है। अतएव व्याकरण अवश्य अध्येय है।

५। असन्देहार्थ व्याकरण अध्येय है। व्याकरण नहीं पढ़नेसे वेदके अर्थमें जो संदेह होता है वह दूर नहीं हो सकता।

६। दुष्ट शब्द परिहार करनेके लिये भी व्याकरण अध्येय है। दुष्ट शब्दके व्यवहारसे म्लेच्छत्व उत्पन्न होता है। म्लेच्छ नहीं होनेके लिये भी व्याकरण अध्येय है।

७। यज्ञादिके मन्त्रमें दुष्ट शब्दके व्यवहारसे विपरीत फल होता है। अतएव वैसी विपद्का जिससे सामना न करना पड़े इसलिये भी व्याकरण अध्येय है। स्वरवर्णके व्यतिक्रमसे शब्द दुष्ट होता है। यथा—

"दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।"

स्वरवैषम्य "इन्द्रशत्रु" शब्द वृत्रकी हत्याका कारण हुआ था। अर्थात् किसी समय इन्द्रके विनाशके लिये वृत्रासुरने अभिचार आरम्भ किया। इस अभिचारमें 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' यह मन्त्र पढ़ा गया था। यहां पर "इन्द्रस्य शमयिता शातयिता वा भव" यही क्रियाशब्द है। यहां शत्रु शब्द आश्रित है, वह रूढ़ि शब्द नहीं। इस आश्रयके

कारण बहुव्रीहि और तत्पुरुषका अर्थभेद है। 'इन्द्र-शत्रुर्वर्धस्व" यह वाक्य इन्द्रशातनके लिये व्यवहृत होनेसे अन्त्यपदका उदात्त स्वरमें उच्चारित होना उचित है। किन्तु अज्ञ ऋत्विक्ने आद्यपदका उदात्त स्वरमें उच्चारण किया था। इससे इन्द्र आमन्त्रित हो कर वृत्रके शातयिता होनेका प्रार्थना ही सूचित हुई थी। अतएव वृत्रका अनुष्ठित अभिचार विपरीत फल प्रदान करके वृत्रके ही नाशका कारण हुआ। अतएव दुष्ट शब्दका व्यवहार छोड़नेके लिये व्याकरण अध्येय है।

८। फिर व्याकरण जाने विना मन्त्र पढ़नेसे क्रिया निष्फल होती है। यथा—

"यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्॥"

अतएव वैदिककार्य प्रतिशुद्धिके लिये व्याकरण पढ़ना जरूरी है।

इन सब श्रौत प्रमाणोंसे जाना जाता है, कि केवल व्याकरण ज्ञानके लिये ही व्याकरण नहीं पढ़ा जाता था। वैदिक आर्योंके कर्मकाण्डमें तथा बहुतसे व्यावहारिक कार्योंमें ही व्याकरण जाननेका प्रयोजन होता था। यहां तक कि वेदान्तज्ञानलाभके लिये भी वे लोग व्याकरणका आश्रय लेते थे।

प्राचीन कालमें उपनयनके बाद ही ब्राह्मणके लड़के व्याकरण पढ़ते थे। जब वे वर्णके स्थान, करण, नाद और अनुप्रदानके सम्बन्धमें जान लेते थे, तब उन्हें वैदिक शब्दका उपदेश दिया जाता था। बहुत दिन हुए, वह नियम अब दिखाई नहीं देता। महाभाष्यकारने व्याकरण अध्ययनकी एक आपत्तिको खड़ा कर उसकी मीमांसा की है। उन्होंने इस सम्बन्धमें जो लिखा है, उसका मर्म यह है, कि आज कल लोग जल्दीसे वेद पाठ करके वक्ता हो जाते हैं। वेदमें वैदिक और लौकिक शब्द चिरप्रसिद्ध है। अतएव वेद पाठ करने ही से जब शब्दशास्त्रका ज्ञान हो सकता है, तब व्याकरण पढ़नेकी जरूरत ही क्या? इस असत् आपत्तिके खण्डनार्थ उन्होंने कर्मधर्म वेदज्ञान, वेदाङ्गज्ञान और वेदान्त प्रतिपाद्य ब्रह्मज्ञानके लिये भी जो व्याकरण प्रयोजनीय है, उसके प्रमाणजनक पूर्वालोचित श्रौत प्रमाणों द्वारा व्याकरण पढ़नेका प्रयोजन दिखलाया है।

प्राचीन कालमें वेदाध्ययनके सहाय होनेके कारण व्याकरणका नाम वेदाङ्ग रखा गया था। किन्तु लौकिक शब्द साधनके लिये बनाये गये आधुनिक व्याकरण शास्त्र वेदाङ्ग कहने योग्य हैं वा नहीं, इस सम्बन्धमें कलापव्याकरणके वृत्तिकार व्याकरणकेशरी दुर्गसिंहने एक सुमीमांसा कर रखी है। वे कहते हैं—

"वैदिका लौकिकश्चैव ये यथोक्तास्तथैव ते।
निर्णीतार्थास्तु विज्ञेया लोकात्तेषामसंग्रहः॥"

इसकी पञ्जीमें श्रीमत् त्रिलोचनदासने लिखा है—

'लौकिकज्ञैः पुरुषैः ये वैदिकाः शब्दा यथा येन प्रकारेण प्रकृति-प्रत्यय-विभागेन उक्ता वेदे प्रतिपादिताः ते शब्दाः तथैव तेन प्रकारेणैव निर्णीतार्थाः प्रकृति-प्रत्यय विभागोहनद्वारेण निश्चितार्था विज्ञेया मन्तव्याः। एतदुक्तं भवती वेदे हि लौकिका एव शब्दा बहवः प्रयुज्यन्ते तेन तेषां व्युत्पत्त्यनुसारेण इतरेषामपि वैदिकानां लौकिकज्ञत्वात् प्रकृतिप्रत्यय विभागोहनसामर्थ्यैः शक्यते व्युत्पत्तिः कर्त्तुमिति। तर्हि लौकिका अपि सर्वे शब्दा लोकत एव विज्ञास्यन्ते किमनेनेत्याह लोकादिति। तु किन्तु लोकादवधेस्तेषां लौकिकानां शब्दानाम् असंग्रहः सम्यक् ग्रहणं न भवतीत्यर्थः। यस्मात् लौकिकानां शब्दानां व्याकरणमेव सम्प्रदायस्तदभावे बहुप्रक्रिया विषयाः शब्दाः कथमवधारयितुं शक्यन्त इति, वैदिकानां पुनः शब्दानां युगमन्वन्तरादिस्वपि अनवच्छिन्नक्रमेण सम्प्रदायत्वात् लौकिकज्ञैरवधारयितुं पार्यन्त इति॥'

इसका भावार्थ इस प्रकार है— लौकिक शब्दज्ञ पण्डित लौकिक शब्दोंको व्युत्पत्तिके अनुसार वृद्ध परम्पराक्रमसे वैदिक शब्दोंको जिस प्रकार प्रकृति प्रत्यय विभाग पूर्वक व्युत्पत्ति साधन करते आ रहे हैं, उसी प्रकार वे सब व्युत्पादित होंगे। किन्तु वैदिक शब्दकी तरह लौकिक शब्दोंकी व्युत्पत्ति केवल लौकिक व्यवहारके अनुसार असम्भव है। क्योंकि लौकिक शब्दोंकी साधन प्रणाली बहुत है। अतएव लौकिक शब्दोंके साधनके लिये व्याकरणका प्रयोजन है, यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। वेदमें लौकिक शब्द अधिक हैं। अतएव केवल लौकिक शब्दोंके साधनके लिये व्याकरण प्रयोजनीय है।

ऐसे व्याकरण द्वारा वेदके लौकिक शब्दोंका साधन होता है इसलिए इस श्रेणीके व्याकरणको वेदाङ्ग कह सकते हैं।

व्याकरणकी उत्पत्ति।

याज्ञिक क्रिया सम्पादनके लिये वैदिक मन्त्रोंको व्याख्या करना, शब्द धातु और प्रत्ययादिका विचार करना प्राचीनकालमें अति प्रयोजनीय हो गया था। भिन्न भिन्न शाखा प्रवर्त्तक वेदमन्त्रार्थ विचारकालमें शब्दादिके विचारमें प्रवृत्त होते थे। इस विचारके फलसे ही शिक्षा और प्रातिशाख्यादिकी उत्पत्ति हुई। अभी वेदके बहुत थोड़े प्रातिशाख्य मिलते हैं। मन्त्र सृष्टिके समय शब्दशास्त्रकी जो यथेष्ट आलोचना हुई थी, प्रणिधानके साथ मन्त्रादि पढ़नेसे ही वह समझा जाता है। परवर्त्तीकालमें निरुक्त यह शब्दशास्त्रका अतीत साक्ष्य वहन कर जनसमाजमें प्रचारित हुआ था। ऋग्वेद प्रातिशाख्य आज भी देखनेमें आता है। उसका चौदहवाँ अध्याय पढ़नेसे वैदिक व्याकरणके इतिहासका कुछ आभास जाना जा सकता है। इसके पहले श्रौतप्रमाणके द्वारा व्याकरणकी प्रयोजनीयता दिखलाई गई है। ये सब प्रमाण केवल वेदके प्रयोजनीयतासूचक हैं सो नहीं, उन्हें पढ़नेसे स्पष्ट ज्ञात होता है, कि तान्त्रिकयुगके किसी समय व्याकरणशास्त्रकी कुछ उन्नति हुई थी। यजुर्वेदके समय व्याकरणकी उन्नति, यहां तक, कि उसी समय जो "व्याकरण" नामकी उत्पत्ति हुई थी, इसके पहले यजुर्वेदसे उसका भो प्रमाण उद्धृत किया गया है। उसमें दिखलाया गया है, कि इन्द्र ही व्याकरणशास्त्रके आदि प्रवर्त्तक हैं। सारस्वत व्याकरणके भाष्यमें लिखा है—

"इन्द्रादयोऽपि यस्यान्तम् न ययुः शब्दवारिधेः
प्रक्रियान्तस्य कृत्स्नस्य क्षमो वक्तुं नरः कथम्।"

उत्तर बौद्ध ग्रन्थादिमें भी इन्द्र-व्याकरणका नाम देखनेमें आता हैं। अवदानशतक ग्रंथ पढ़नेसे जाना जाता है, कि शारिपुत्रने बाल्यकालमें इन्द्रव्याकरणका अध्ययन किया था। तिब्बतीय साहित्यमें भी इन्द्री व्याकरणका उल्लेख दिखाई देता है। बुस्तन (Buston) का कहना है, कि सर्वज्ञ (शिव)ने सबसे पहले व्याकरण रचा। किन्तु यह व्याकरण जम्बूद्वीपमें कभी भी भेजा नहीं गया। इसके बाद इन्द्रने व्याकरणकी रचना की और वृहस्पतिने उसका अध्ययन किया। इस व्याकरणका जम्बूद्वीपमें प्रचार हुआ। वृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागरमें लिखा है, कि पाणिनिके व्याकरण प्रचलनके बाद ही इन्द्रका व्याकरण विलुप्त हुआ। १६०८ ई०में तिब्बतीय ऐतिहासिक लामा तारनाथने 'भारतवर्षीय बौद्धधर्मका इतिहास' नामक एक ग्रंथ रचा। उसमें लिखा है, कि सप्तवर्मा (सर्ववर्मा) षड़ाननसे इन्द्रने व्याकरण सीखनेके लिये प्रार्थना की। उनकी प्रार्थना सुन कर कार्त्तिकेयने कहा,—

"सिद्धो वर्णसमाम्नायः।"

इतना कहते ही वे चुप हो गये। यह सूत्र सुनते ही सप्तवर्मा वा सर्ववर्माको व्याकरणका ज्ञान हो गया। यह सूत्र कलाप व्याकरणका प्रथम सूत्र है। कोई कोई कहते हैं, कि कलापव्याकरण इन्द्रव्याकरणके अन्तर्गत है। तारनाथका कहना है, कि सप्तवर्मा कालिदास और नागार्जुनके समयके हैं। यक्षवर्माने शाकटायन व्याकरणकी टीकामें आदि वैयाकरण इन्द्र और इन्द्रके व्याकरणका नमोल्लेख किया है।

ऋग्वेदभाष्यमें सायणाचार्यने भी इन्द्रको आदि वैयाकरण कहा है। वोपदेवके धातुपाठ कविकल्पद्रुममें भी आदि वैयाकरण इंद्रका नाम देखनेमें आता है। वह इस प्रकार है—

"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशालि-शाकटायन-
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥"

सिफनर (Schiefner) का कहना है, कि तिब्बतीय भाषामें आज भी चन्द्रव्याकरण सुरक्षित है। कोई कोई कहते हैं, कि कलापव्याकरण चंद्रव्याकरणके अनुगत इन्द्रव्याकरणके अनुगत नहीं है। इन्द्रव्याकरणका नाम केवल ग्रंथालोचनामें ही दिखाई देता है।

उपनिषद्में व्याकरण।

जो हो, हम संस्कृत भाषाके प्राचीनयुगसे ही व्याकरणका नाम सुनते हैं। यद्यपि पाणिनीय व्याकरणपरिवर्त्तनसे दूसरे दूसरे प्राचीन छोटे छोटे व्याकरण विलुप्त हो गये हैं, तो भी इसके पहले भी जो व्याकरणका बहुत प्रचार था उपनिषदादिमें भी उसका प्रमाण मिलता है। यथा—

"शिक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णाः स्वराः। मात्रा बलम्। सामसन्तानः (७।१।२) (११)।

(तैत्तिरीय आरण्यक)

इसमें वर्ण स्वर और मात्रा है तथा व्याकरणोक्त तीन परिभाषा मिलती है। छान्दोग्य उपनिषद्में स्पर्श स्वर और उष्म वर्णका उल्लेख है। (२।२२।३।५)। शतपथब्राह्मणके "नेऽदमेकवचनेन बहुवचनम् व्यवयामेऽति" इस वाक्यमें व्याकरणप्रोक्त एकवचन बहुवचनकी बात जानी जाती है। शतपथब्राह्मणकी रचनाके समय भू, अस् आदि धातुओंके रूपकी आलोचना हुई थी। ऐतरेयब्राह्मणमें मद् धातु (१।१० ; २।३ ; ३।२, २९) सुप्रासुहित (३।४६, १७) जनुंषि जातवत् (४।६, २९, ३२ ; ५।५) आदि धातुओंका उल्लेख है। इसके सिवा अक्षर, अक्षरपंक्ति, चतुरक्षर ; वर्ण और पद आदिका उल्लेख भी देखनेमें आता है। गोपथ-ब्राह्मणमें लिखा है—

"ओङ्कारं पृच्छामः को धातुः, किं प्रातिपदिकम् किम् नामाख्यातम्, किं लिङ्गं किं वचनम्, का विभक्तिः ; कः प्रत्ययः, कः स्वरः ; उपसर्गो निपातः, किं वै व्याकरणम्; को विकारः, को विकारी ; कति मात्राः ; कति वर्णाः; कत्यक्षराः, कति पदाः कः संयोगः ; किं स्थानानुप्रदानकरणम् ; शिक्षकाः किमुच्चारयन्ति, किं छन्दः को वर्ण इति पूर्वप्रश्नाः।" (गोपथब्रा० १।२४)

इसके सिवा सामवेदके ताण्ड्यब्राह्मण तथा अन्यान्य ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थमें व्याकरणकी परिभाषा का उल्लेख है।

शिक्षा।

शिक्षा वेदाङ्गके अन्तर्गत है। इसमें उच्चारणके नियमादि आलोचित हुए हैं। संप्रति जो शिक्षाग्रन्थ आविष्कृत हुए हैं उनमें निम्नलिखित ग्रन्थोंके नाम उल्लेखयोग्य हैं—केशवीशिक्षा, गोतमीशिक्षा, नारदशिक्षा, मण्डूकीशिक्षा, लोमशन्यांशिक्षा। शिक्षाग्रन्थकी अपेक्षा प्रातिशाख्यमें ही व्याकरणकी अधिक आलोचना दिखाई देती है।

मन्त्रयुगके समयसे इस प्रकार व्याकरण शास्त्रके अस्तित्वका परिचय मिलता है। किंतु पाणिनिके पहले पाणिनि जैसे सर्वाङ्गसुन्दर और सुवृहत् व्याकरणका कोई भी निदर्शन आज तक देखनेमें नहीं आया है। पाणिनिके समय व्याकरणशास्त्रकी जो उन्नति हुई थी, उनके पीछे संस्कृत व्याकरणकी कोई भी उन्नति दिखाई नहीं देती।

पाणिनि।

पाणिनि मुनिका व्याकरण पाणिनि वा अष्टाध्यायी वा 'अष्टकम् पाणिनीयम्' कहलाता है। पाणिनि देखो। इस व्याकरणमें आठ अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय चतुष्पादमें विभक्त है। सूत्रसंख्या ३९९६ है। यूरोपीय पण्डितोंमेंसे किसी किसीकी गणनामें सूत्रसंख्या ३८६३ है। जर्मन पण्डित बोटलिङ्क (Bohtlingk) का कहना है, कि अष्टाध्यायीके ४।१।१६६, १६७; ४।३।१३२; ५।१।३६, ६।१।६२; ६।१।१००, ६।१।१३७ ये जो सात सूत्र देखनेमें आते हैं वे यथार्थमें पाणिनीय सूत्र नहीं, कात्यायनके वार्त्तिक हैं। गोल्डस्टुकार कहते हैं, कि इन सात सूत्रोंमें ४।३।१३२, ५।१।३६, ६।१।६२ ये सूत्र तीन वार्त्तिक कह कर ही महाभाष्यमें उल्लिखित हुए हैं। अष्टाध्यायीमें सन्धि, सुबन्त, कृदन्त, उणादि, आख्यात, निपात, उपसंख्यान, स्वरविधि, शिक्षा और तद्धित आदि आलोचित हुए हैं। अष्टाध्यायीके पारिभाषिक शब्दोंमें ऐसे बहुतेरे शब्द हैं जो स्वयं पाणिनिके उद्भावित हैं, कुछ शब्द पूर्वकालसे ही प्रचलित थे। उन्होंने अपने उद्भावित शब्दोंकी व्याख्या की है। पूर्ववर्त्तियोंके व्यवहृत शब्दोंकी भी अभिनव व्याख्या करके उन्होंने उसका उत्कर्ष विधान किया है। प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अनुस्वार, अन्त, एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, उपसर्ग, निपात, धातु प्रत्यय, प्रदान, भविष्यत्काल, वर्त्तमान काल, ये सब शब्द उसके द्वारा व्याख्यात नहीं होते। अनुनासिक, आत्मनेपद, आमन्त्रित, उपधा, गुण, दीर्घ, पद, परस्मैपद, विभक्ति, वृद्धि, संयोग, सवर्ण, ह्रस्व इन तेरह शब्दोंकी नूतन व्याख्या की गई है। अष्टाध्यायीके भाष्यमें ये सब 'प्राञ्च' वैयाकरणोंके व्यवहृत शब्द कह कर अनेक बार आये हैं। पाणिनिने २।३।१३ सूत्रके 'चतुर्थी' शब्दकी व्याख्यामें "चतुर्थी संज्ञा प्राचाम्" ऐसा लिखा है। इससे साबित होता है, पाणिनिने पूर्वः

वैयाकरणोंसे ये सब ग्रहण किये थे। प्रातिशाख्यमें केवल ञ, ण, . को अनुनासिक कहा है। पाणिनिने उच्चारण स्थानकी ओर लक्ष्य रख कर लिखा है—

"मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः" (१।१।८)

कात्यायन-प्रातिशाख्यके १।३५ सूत्रमें, अथर्व प्रातिशाख्यके १।६२ सूत्रमें "उपधा"का उल्लेख देखनेमें आता है। कात्यायन कहते हैं "अन्त्यात् पूर्व उपधा" (२।१।११) किन्तु पाणिनिका सूत्र है 'अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा' (१।१।६५), पृथकता थोड़ी रहने पर भी उसमें यथेष्ट विशिष्टता है। पाणिनिने सिर्फ 'अलः' यह शब्द जोड़ दिया है। किन्तु यह निरर्थक नहीं है। महाभाष्यकारने इसकी व्याख्यामें लिखा है, "किमिदम् अल्ग्रहणम् अन्त्यविशेषणम् तथा भवितुमर्हति। उपधा संज्ञाया भन्त्यनिर्देशश्चेत् संघातप्रतिषेधः।" अर्थात् संघात प्रतिषेधके लिये ही 'अल्' शब्द ग्रहण किया गया। इस प्रकार बहुतसे छोटे छोटे विषयमें भी पाणिनिका सूक्ष्मदर्शिता, विचक्षणता और शाब्दिक पाण्डित्यका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। पाणिनिको बहुतेरे प्राचीन व्याकरणके संस्कारक मानते हैं। उनका कहना है,—

(१) पाणिनि द्वारा सबसे पहले शिवसूत्रका आविष्कार और प्रत्याहार द्वारा उसका प्रयोग हुआ।

(२) पाणिनिके उद्भावित अनुबन्ध पाणिनिके निजस्व हैं।

(३) कृत्, नदी, स्त्री, संख्या, घ (तर, तम); घि (इ और उ); घु (दा धा इत्यादि), टि तथा उ आदि पारिभाषिक शब्दके उद्भावन हैं।

(४) गणसमूहका उद्भावन।

पाणिनिके समय वैयाकरण सम्प्रदाय।

पाणिनिके समय दो श्रेणीके वैयाकरण थे, ऐसा बहुतों का अनुमान है। वे लोग कहते हैं कि एक श्रेणीके वैयाकरण पूर्वाञ्चलवासी और दूसरी श्रेणीके उत्तराञ्चलवासी थे। पाणिनिके व्याकरणमें भारतवर्षके उत्तरपश्चिम प्रदेशके बहुतसे स्थानोंके नाम हैं। उन स्थानोंके नाम ऋग्वेदमें भी देखनेमें आते हैं। उस समय पूर्वभारतमें भी जो एक सम्प्रदायके वैयाकरण थे, अनुसन्धान करनेसे वह भी जाना गया है।

पाणिनिका कालनिर्णय।

पाणिनिके काल निर्णयके सम्बन्धमें पाश्चात्य पण्डितोंने यथेष्ट कल्पना, जल्पना और गवेषणा की है। पण्डितप्रवर कोलब्रुकने पाणिनिके सम्बन्धमें उचित प्रबन्ध लिखा है सही, पर उन्होंने विवादजनक विषयमें हस्तक्षेप नहीं किया। इस विषयमें जर्मन पण्डित बोटलिङ्कका नाम ही सबसे पहले उल्लेख करने योग्य है। बोटलिङ्कने कथासरित्सागरकी कहानीकी आलोचना की है। उनका कहना है, कि ईसा जन्मसे ३५० वर्ष पहले पाणिनि आविर्भूत हुए थे। अध्यापक लासेन और बोटका भी यही अभिप्राय है। १८४६ ई०में रनाड (Ranaud) नामक एक ग्रन्थकारने भारतके सम्बन्धमें एक ग्रन्थ (Memoirs of India after Arab, Persian and Chinese Writers) लिखा। इनके ग्रन्थमें चीनके परिव्राजक अन् इयुयं चुयंगके (६२६-६४५) ग्रन्थसे अनेक बातें उद्धृत की गई हैं। उक्त परिव्राजकके मतसे इस देशमें दो पाणिनि हो गये हैं। प्रथम पाणिनि अतिप्राचीन हैं, उनके समयका पता लगाना कठिन है। द्वितीय पाणिनि बुद्धके ५०० सौ वर्ष पीछे प्रायः कनिष्कके समयमें जीवित थे। इन सब युक्तियोंको मान कर तथा पाणिनिके अष्टाध्यायी ग्रन्थमें 'यवनानी' शब्द देख कर पण्डितप्रवर वेबरकी धारणा है, कि अलेकसन्दरके भारत आक्रमणके बाद भी पाणिनि जीवित थे। वेबरका कहना है, कि १४० अब्दमें अर्थात् कनिष्कके एक सौ वर्ष बाद पाणिनि प्रादुर्भूत हुए थे। 'यवनानी' शब्दका अर्थ है यवनलिपि। किन्तु वेबरके खयालसे वह ग्रीकलिपि है। ग्रीकलिपि समझनेको कोई भी युक्ति देखनेमें नहीं आती। हिन्दू प्राचीनकालके पारसियोंको भी यवन कहा करते थे। हम लोगोंके इतिहास, पुराण, स्मृति, संहिता आदिमें भी इस विषयके काफी प्रमाण मिलते हैं। अतएव पण्डित वेबरका यह सिद्धान्त असमीचीन है।

१८५७ ई०में स्टैनिसलौस जुलियेन (Stanislaus Julien)ने युयंचुयङ्गके ग्रन्थका एक नया संस्करण निकाला। उनका कहना है, कि कनिष्कके समय पाणिनिके व्याकरणने सर्वत्र ख्याति और बहुल

विस्तृति लाभ की थी। मैक्समूलरने प्रथमतः कथा सरित्सागरकी आख्यायिकाका अनुसरण कर पाणिनि-को ईसा जन्मसे पहले ४थी सदीके लोग अर्थात् नन्द-राजके समसामयिक स्थिर किया है। इसके बाद 'षड्-दर्शनके इतिवृत्त' नामक ग्रन्थकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है, कि ईसा-जन्मसे छः सौ वर्ष पहले पाणिनि आविर्भूत हुए थे। गोल्डष्टुकरके मतसे ईसा जन्मसे पूर्व ७वीं सदीमें पाणिनि जीवित थे। गोल्डष्टुकरके मतको भी असमीचीन बता कर पण्डितसमाजने ग्रहण नहीं किया है। १८८५ ई०में अध्यापक पिशेल (Prof. Picsell)ने पाणिनिके कालसम्बन्धमें जो अभिप्राय प्रकट किया है उससे जाना जाता है, कि पाणिनि ईसा जन्मसे ६ सौ वर्ष पहलेके आदमी हैं। वैयाकरण पाणिनि जैसे एक दूसरे कवि पाणिनिका नाम भी सुना जाता है। पिटरसन और अफ्रेकट कवि और वैयाकरण पाणिनिको एक ही व्यक्ति बताते हैं।

१८९० ई०में सिलमेन लेभो (Sylven Levi)ने पाणिनिके सम्बन्धमें एक प्रबन्ध लिख कर कहा है, कि आम्भि, सौभूता और भगता गणपाठमें ये तीन नाम देखे जाते हैं। ग्रीक भाषामें भी Omphis, Sophytes और Phyeclas ये तीन शब्द हैं। पाणिनिने सम्भवतः ग्रीकोंसे ही ये तीनों शब्द ग्रहण किये हैं। यह कल्पना-का ही एक विचित्र खेल है।

डाक्टर लिबिक (Liebich)का कहना है, कि पाणिनि ईसा जन्मसे ३०० वर्ष पहले जीवित थे। वे कहते हैं, कि भगवद्गीता पाणिनिके पीछे रची गई, परन्तु ब्राह्मण और वृहदारण्यक पाणिनिके पूर्ववर्त्ती हैं।

तिब्बतीय लामा तारनाथने अपने बौद्धधर्मके इतिहास-में लिखा है, कि पाणिनि शेषाङ्कराजके अधीन रहते थे। उनके मतसे खृ० पू० ५०० अब्दमें पाणिनि आविर्भूत हुए थे। यह सिद्धान्त प्राय सर्वसम्मत है। सम्भवतः इसके भी बहुत पहले इन वैयाकरण-केशरीका प्रादुर्भाव हुआ था। जो हो, इस सम्बन्धमें ऐतिहासिक विशिष्ट प्रमाण दुर्लभ है। अनुमान द्वारा सूक्ष्मरूपसे काल-निर्णयके दुष्प्रयाससे कोई भी फल नहीं।

अन्यान्य विवरण पाणिनि शब्दमें देखो।

व्याड़ि।

पाणिनिके बाद व्याड़ि नामक एक वैयाकरणका नामोल्लेख देखनेमें आता है। नागेश भट्टने लिखा है, "संग्रहे व्याड़िकृतलक्षश्लोकग्रन्थ इति प्रसिद्धः" महा-भाष्यकारने व्याड़िको पाणिनिके परवर्त्ती वैयाकरण बताया है। यथा—

"आपिशल-पाणिनीय-व्याड़ीय गौतमीया एकं पदं वर्जयित्वा सर्वाणि पूर्वपदानि, तत्र न ज्ञायते कस्य पूर्व-पदस्य स्वरेण भवितव्यमिति (६।२।३६) महाभाष्यकारने वार्त्तिककारके 'अभ्यहितञ्च" (२।२।३४) इस सूत्रानु-सार पतञ्जलि, आपिशलि आदिको अपने अपने आचार्य-का पौर्वापर्यमूलक स्थिर किया है।

यास्क।

निरुक्तकार यास्क किसीके मतसे पाणिनिके पूर्व-वर्त्ती और किसीके मतसे उनके परवर्त्ती हैं। इस विषयका विचार पाणिनि शब्दमें किया गया है।

कात्यायन।

पाणिनीय सूत्रके वार्त्तिककार कात्यायन महाभाष्य-के पूर्ववर्त्ती हैं। कोई कोई कहते हैं, कि पाणिनीय व्याकरणके वार्त्तिककार पाणिनीयके समसामयिक तथा एक देशवासी थे तथा इन्होंने वाजसनेय-प्रातिशाख्यकी रचना की। कैयट और नागोजीभट्टका कहना है, कि ये कात्यायन भ्राजा नामक श्लोकके प्रणेता हैं। यथा—

"कः पुनरिदं पठितम्। भ्राजा नामश्लोकाः। कात्या-यनोपनिबद्धभ्राजाख्यश्लोकमध्यपठितस्य स्वस्य श्रुतिर-नुग्राहिकास्ति। एकः शब्दः सुज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति।" नागोजीभट्ट कहते हैं—"भ्राजा नाम कात्यायनप्रणीताः श्लोका इत्याहुः।"

पाणिनिसूत्रोंका-अर्थ और तात्पर्य परिस्फुट करने-के लिये कात्यायनने वार्त्तिककी रचना की। ये वार्त्तिक भी सूत्रकी तरह हैं। किन्तु भ्राजाश्लोक अनुष्टुप् छन्द में रचे गये हैं। कात्यायनरचित कर्मप्रदीप ग्रन्थ भी अनुष्टुप् छन्दमें लिखा गया है। षड्गुरु शिष्यका कहना है, कि कर्मप्रदीप ग्रन्थ कात्यायनका लिखा है। कथा-सरित्सागरमें कात्यायनके विषयमें एक गल्प इस तरह है—पार्वतीके शापसे वत्सराजकी राजधानी कौशाम्बीमें

कात्यायन-वररुचिका जन्म हुआ। बचपनमें ये अलौकिक प्रतिभासम्पन्न और असाधारण स्मृतिशक्तिविशिष्ट थे। नाटकादि एक बार सुन लेनेसे ही ये माताके निकट उसकी ठीक ठीक आवृत्ति कर देते थे। शैशवकालमें समस्त प्रातिशाख्य ग्रन्थ इन्हें अभ्यस्त हो गया था। इसके बाद इन्होंने वर्षके निकट विद्याभ्यास किया तथा व्याकरण शास्त्रमें पाणिनिको हराया। पाणिनिके साथ जब इसका विचार हुआ, तब महादेवके अनुग्रहसे उस विचारमें इनकी जीत हुई, पीछे शिवके आदेशसे इन्होंने पाणिनिका शिष्यत्व ग्रहण किया और पीछे उनके पाणिनि व्याकरणका वार्त्तिक ग्रन्थ रचा। कात्यायन नन्दराजके मन्त्री हुए थे। इन कात्यायनने परिभाषा नामक एक ग्रन्थकी रचना की। कोई कोई कहते हैं, कि कारिका भी कात्यायनकी बनाई हुई है।

पतञ्जलि।

पतञ्जलि पाणिनिसूत्रके महाभाष्यकार हैं। विशेष विवरण पतञ्जलि शब्दमें देखो। इस ग्रन्थकी विचारपद्धति और रचनाप्रणाली बड़ी अच्छी है। इसमें व्याकरणके कठिन कठिन विषय भी साधारण लौकिक उदाहरणकी सहायतासे व्याख्यात हुए हैं। व्याकरणके वैज्ञानिक व्याखानमें काव्यकी सरलता केवल महाभाष्यमें ही देखनेमें आती है। यथार्थमें महाभाष्य ग्रन्थ एक समादृत शब्दशास्त्र (Philology) है। इसमें वैज्ञानिक प्रणालीके अनुसार शब्दशास्त्रका विचार दिखाई देता है। इसके सिवा इस ग्रन्थके अभ्यन्तर ग्रन्थकारके आविर्भाव समयके आचार व्यवहार रीति नीतिके सम्बन्धमें बहुतसी कथाएं जानी जा सकती हैं। इस ग्रन्थकी भाषा अति प्राञ्जल है। उसके कारण सम्बन्धमें एक एक प्रवाद यों है—ये पाणिनिसूत्रके सम्बन्धमें प्रति दिन छात्रोंको उपदेश दिया करते थे तथा छात्रोंके जिज्ञास्य प्रश्नका उत्तर देते थे। उनके उपदेश और प्रश्नोत्तर ही महाभाष्यरूपमें परिणत हुए। अतएव महाभाष्यमें कथोपकथनकी भाषा है तथा उसी लिये यह प्राञ्जल है। प्राञ्जल होने पर भी इसकी विचारपद्धति बहुत कठिन है। कोई कोई कहते हैं, कि नव्य न्यायकी विचारपद्धति महाभाष्यके अनुकरण पर प्रचलित हुई है। महाभाष्यकार एक अह (अह्नि) अर्थात् एक दिनमें पुत्रोंको व्याकरणका जितना उपदेश देते थे उसीका आह्निक नाम रखा गया है। जैसे, पाणिनीय व्याकरणके प्रथम अध्यायका प्रथम पाद नौ आह्निकोंमें विभक्त हुआ है। बिना महाभाष्याध्ययनके पाणिनीय सूत्रका अध्ययन सम्पूर्ण रूपसे समाप्त हुआ न समझा जा सकता। महाभाष्यके टीकाकारोंके नाम पतञ्जलि शब्दमें लिखे जा चुके हैं।

काशिकावृत्तिकार।

पाणिनीय व्याकरणकी प्रधान और प्राचीन काशिकावृत्तिका नाम किसीसे भी छिपा नहीं है। वामन और जयादित्य काशिकावृत्तिके रचयिता कह कर प्रसिद्ध हैं। अध्यापक बोटलिङ्कने स्वप्रकाशित पाणिनि व्याकरणकी भूमिकामें लिखा है, कि आठवीं सदीमें यह काशिकावृत्ति रची गई। ये कहते हैं, कि राजतरङ्गिणी ग्रन्थमें इसका प्रमाण है। राजतरङ्गिणीकार कह्लन मिश्रका कहना है, कि काश्मीर राज्यके अधीश्वर जयापीड़ संस्कृत भाषाके अत्यन्त अनुरागी थे। उन्होंने अपने राज्यमें सबोंको व्याकरण पढ़ानेकी बड़ी कोशिश की थी। इनकी सभामें बहुतसे वैयाकरण पण्डित थे। यथा, क्षण (भ्रातुरङ्गिणीके प्रणेता) दामोदर गुप्त, मनोरम, शङ्खदत्त, चाटक, सन्धिमान और वामन। यही वामन काशिकावृत्तिके अन्यतर ग्रन्थकार हैं। जयापीड़ ८वीं सदीमें वर्त्तमान थे।

किन्तु यहां एक सोचनेकी बात है—यदि काशिकावृत्तिके प्रणेता वामन जयापीड़के सभा-पण्डित होते, तो कह्लन पण्डित क्या उस काशिकावृत्तिकी कथाका उल्लेख नहीं करते?

विलसनका कहना है, कि जयापीड़के सभापण्डित वामनने काव्यालङ्कार सूत्रवृत्तिकी रचना की थी। वामन कृत काव्यालङ्कार वृत्तिके प्रकाशक डाक्टर कप्पेलरने उस ग्रन्थकी भूमिकामें लिखा है, कि इस ग्रन्थमें मृच्छकटिककार शूद्रक, कालिदास, अमर, भवभूति, माघ, हरिप्रभ, कविराज, कामन्दकीनीति नाममाला आदि ग्रन्थकार और ग्रन्थके नाम देखे जाते हैं। यहां जिन कविराजका नाम लिखा गया, वे कविराज यदि राघवपाण्डवीयकार हों, तो वामन १०वीं सदीके आदमी होते हैं। डाक्टर

कप्पेलरके मतसे काव्यालङ्कारवृत्तिकार वामन १२वीं सदीके आदमी हैं।

यहां एक बात सोचनेकी है। काशिकावृत्ति क्या वामन और जयादित्य नामक दो पृथक् व्यक्तिकी रचित है अथवा वामनजयादित्य नामक किसी एक की? कोलब्रुकके मतसे वामनजयादित्य एक व्यक्ति हैं। काशीवासी सुविख्यात बालशास्त्रीने 'पण्डित' पत्रके १८७८ ई०के जूनमासकी संख्याके २०वें पृष्ठमें लिखा था, काशिकावृत्ति वामनजयादित्य नामक एक व्यक्तिकी रची हुई है। आज उनके इस अभिप्रायका परिवर्त्तन हुआ है। उन्होंने कहा है, कि काशिकावृत्ति वामन और जयादित्य नामक दो व्यक्तिकी रचित है। इस प्रकार मत-परिवर्त्तनका विशेष कारण है। भट्टोजी-दीक्षित-प्रणीत सिद्धान्तकौमुदीकी प्रौढ़मनोरमा नाम्नी टीकामें तद्धितप्रकरणके "बह्वल्पार्थात्" इस सूत्रकी व्याख्यामें लिखा है "एतत् सर्वं जयादित्यमतेनोक्तं वामनस्तु मन्यते इति"। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि जयादित्य और वामन ये दोनों ही काशिकावृत्तिकार हैं। प्रथम, द्वितीय, पञ्चम और षष्ठ अध्यायमें वामनकृतवृत्ति, अपरांश जयादित्यकृत है।

डाक्टर बुलरने काश्मीरमें जो हस्तलिखित काशिका वृत्ति पाई थी उसमें लिखा था, कि आदिके चार अध्याय जयादित्यके और अन्तके चार वामनके रचित हैं। शब्दकौस्तुभ और मनोरमामें लिखा है—

"वोपदेवमहाग्राहग्रस्तो वामनदिग्गजः।
कीर्तेरेव प्रसंगेन माधवेन विमोचितः॥"

'इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि काशिकाकार वामन वेदार्थप्रकाशक माधवके तथा माधवसे प्राचीन वोपदेवके भी पूर्ववर्त्ती हैं। किन्तु मैक्समूलरका कहना है, कि ऋग्भाष्यमें माधवने कहीं भी वोपदेवका नामोल्लेख नहीं किया है। सायणधातुवृत्तिमें भी वामन का नामोल्लेख है। १३४० अब्दमें माधव आविर्भूत हुए थे। १२वीं सदीमें वोपदेव वर्त्तमान थे ऐसा जाना जाता है। इससे साबित होता है, कि वामन १२वीं सदीके पहलेके आदमी हैं। सायणने हरदत्त और न्यासकारका नामोल्लेख किया है। ये हरदत्त 'पदमञ्जरी' नामक काशिकावृत्तिके व्याख्याकार और न्यासकार काशिकावृत्तिके पञ्जीप्रणेता हैं।

वोपदेवकृत 'काव्यकामधेनु' नामक व्याकरणमें काशिकावृत्तिपञ्जिकाकी बातें उद्धृत हुई हैं।

इन सब प्रमाणोंकी आलोचना करनेसे यह कहा जा सकता है, कि काशिकाकार अवश्य ही १२वीं सदीके पहलेके आदमी थे। किन्तु इनके ठीक ठीक समयका पता लगाना बहुत कठिन है।

यहां एक और प्रश्न यह होता है, कि वामन और जयादित्य किस धर्मके माननेवाले थे? ये हिन्दू थे, या बौद्ध अथवा जैन। हिन्दूगण ग्रन्थके प्रारंभमें आशीर्नमस्कारादिका उल्लेख करते हैं, किन्तु काशिकावृत्तिमें वैसा नहीं देखा जाता। बालशास्त्रीने प्रमाणित किया है, काशिकावृत्तिके दोनों ग्रन्थकार हिन्दू नहीं थे। इन लोगोंके समय जैन बौद्ध व्याकरणका यथेष्ट प्रचार था; जैसे न्यासकार जिनेन्द्रबुद्ध आदिके ग्रन्थ। इसके बाद हिन्दूवैयाकरणोंका प्रादुर्भाव हुआ। उस समय हम भट्टोजी दीक्षित, हरिदीक्षित और नागेशभट्ट आदिके नाम सुनते हैं। वामन और जयादित्य ये दोनों ही बौद्ध थे, यही बहुतोंकी धारणा है।

सुविख्यात चीन परिव्राजक इत्सिंने इस सम्बन्धमें जो कहा है वह भी आलोच्य है। ६३५ ई०में चीनदेशमें इत्सिंहका जन्म हुआ। इन्होंने ६७१ ई०में भारतकी और ६७३ ई०में तमलुककी यात्रा की।

अनन्तर नालन्दा-विहारमें जा कर इन्होंने बहुत-सी विद्या सीखी थी। ६९५ ई०में वे फिर चीनदेशको लौटे। ७१३ ई०में इनकी मृत्यु हुई। इनके भ्रमणवृत्तान्तमें भारतवर्षके अनेक तथ्य लिपिबद्ध हैं। इनके ग्रन्थके ३४वें अध्यायमें भारतीय शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें विविध आलोचना देखी जाती है। शब्दविद्याके सम्बन्धमें आप अनेक विषय लिख गये हैं।

इन्होंने लिखा है—छः वर्षका बालक पहले मूल-सिद्धान्त, पढ़ता था। 'सिद्धिरस्तु' ही मूल सिद्धान्त था। मूलसिद्धान्त वर्णपरिचय नामसे अभिहित हो सकता है। छः महीनेमें यह पढ़ना समाप्त होता था। इत्सिंका कहना है, कि यही माहेश्वरसूत्र है। किन्तु उन्होंने

लिखा है, कि सूलसिद्धान्तमें ४६ वर्ण, दश हजारसे ऊपर शब्द और ३०० श्लोक हैं। प्रति श्लोकमें ३२ अक्षर है।

द्वितीय व्याकरण शास्त्रपाणिनिसूत्र इसमें १०० सूत्र हैं। बालक अष्टम वर्षमें इस ग्रन्थका पढ़ना आरम्भ करते और आठ मासमें समाप्त करते थे।

तृतीय व्याकरण पुस्तक—धातु। इसमें १००० सूत्र हैं।

चतुर्थ ग्रन्थ—तीन भागोंमें विभक्त है—

(१) धातु, (२) मञ्जा और (३) उणादि। दश वर्षकी उमरसे आरम्भ करके तीन वर्षके भीतर यह ग्रन्थ समाप्त किया जाता था।

पञ्चम ग्रन्थ—पाणिनिसूत्रवृत्ति। इत्सिंका कहना है, कि यह वृत्ति ग्रन्थ अनेक व्याख्यासे श्रेष्ठ है। इस ग्रन्थके कर्त्ता जयादित्य हैं। इनकी प्रतिभा बड़ी ही तीक्ष्ण थी। इससे साबित होता है, कि ६६० ई० के पहले जयादित्य वर्त्तमान थे।

इत्सिंने वामनका नामोल्लेख नहीं किया है। इत्सिंके मतसे जयादित्य ७वीं सदीके आदमी हैं। किन्तु राजतरङ्गिणीके मतसे वामन राजा जयापीड़के सभापण्डित थे। जयापीड़ ८वीं सदीके मध्यभाग तक जीवित थे, इससे दोनों ग्रन्थकारके समयमें सौ वर्षका अन्तर दिखाई देता है। इसलिये इसकी अच्छी मीमांसा नहीं हुई। पर हां, इससे सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है, कि काशिकावृत्ति ८वीं सदीके पीछे और ७वीं सदीके पहले रची नहीं गई। इस समयके भीतर किसी भी समय काशिकावृत्ति रची गई होगी।

नीचे पाणिनिसे लेकर कुछ संस्कृत व्याकरण और उनकी टीकाका नामोल्लेख किया जाता है—

१। पाणिनीय सूत्र—यह अष्टाध्यायी नामसे भी परिचित है।

२। अष्टाध्यायीका वार्त्तिक-कात्यायन-प्रणीत।

३। पाणिनीय सूत्रका महाभाष्य—पतञ्जली मुनिप्रणीत।

४। महाभाष्यप्रदीप—कैयटप्रणीत—महाभाष्यकी टीका।

५। भाष्यप्रदीपोद्योत—नागोजी भट्ट प्रणीत कैयट प्रणीत महाभाष्यप्रदीपकी टीका।

६। काशिकावृत्ति—वामन जयादित्य प्रणीत—पाणिनीय सूत्रकी वृत्ति।

७। पदमञ्जरी—हरिदत्तप्रणीत काशिकावृत्तिकी टीका।

८। न्यास वा काशिकावृत्तिपञ्जिका-जिनेन्द्रकृत। (रक्षितकृत इसकी टीका है।)

९। वृत्ति-संग्रह—नागोजीभट्टप्रणीत पाणिनि-सूत्रकी संक्षिप्त टीका।

१०। भाषावृत्ति—पुरुषोत्तम-प्रणीत—वैदिक व्याकरणके अंशको छोड़ कर पाणिनीय सूत्रकी टीका।

११। भाषावृत्त्यर्थविवृति—सृष्टिधर-प्रणीत; (पुरुषोत्तम प्रणीत टीकाकी व्याख्या)

१२। शब्दकौस्तुभ—भट्टोजी दीक्षित प्रणीत—पाणिनीय सूत्रकी व्याख्या।

१३। प्रभा—वैद्यनाथ पायगुण्ड उर्फ बालम्भट्ट प्रणीत।

१४। प्रक्रियाकौमुदी—रामचंद्र आचार्य प्रणीत; यह पाणिनिके सूत्रावलम्बन पर रचित व्याकरण है। किंतु पाणिनिसूत्रकी प्रणाली इस ग्रंथमें परिवर्त्तित हुई है।

१५। प्रसाद—विट्ठल आचार्य प्रणीत प्रक्रियाकौमुदीकी टीका।

१६। तत्त्वचंद्र—जयंत रचित; यह भी प्रक्रियाकौमुदीकी टीका है। कृष्ण पण्डित नामक एक पण्डितने भी प्रक्रिया कौमुदीका एक संक्षिप्त टीकाग्रंथ प्रणयन किया।

१७। सिद्धांतकौमुदी—भट्टोजी दीक्षित कृत यह ग्रंथ भी प्रक्रियाकौमुदीकी प्रणालीसे लिखा गया है। किंतु प्रक्रियाकौमुदीकी प्रणालीकी अपेक्षा यह ग्रंथ अधिकतर विशुद्ध और सम्पूर्ण है। वर्त्तमान कालमें कई जगह पाणिनीय अष्टाध्यायीके पठन कार्यके सहायके कारण इसका आदर हुआ है।

१८। प्रौढ़मनोरमा—भट्टोजी दीक्षित कृत; यह सिद्धांत कौमुदीकी ही टीका है।

१९। तत्त्वबोधिनी—ज्ञानेन्द्र सरस्वती कृत। यह ग्रन्थ भट्टोजी दीक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदीटीका है।

२०। शब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथको संक्षिप्त टीका है।

२१। लघुशब्देन्दुशेखर—यह भी प्रागुक्त ग्रंथकी संक्षिप्त टीका है।

२२। चिद्‌हि माला—वैद्यनाथ पायगुण्ड विरचित। यह लघुशब्देन्दुशेखरकी टीका है।

२३। शब्दरत्न—हरिदीक्षित प्रणीत। नागोजी भट्टने मनोरमाकी जो टीका लिखी यही उनकी व्याख्या है।

२४। लघु शब्दरत्न—उक्त ग्रन्थका संक्षेप।

२५। भावप्रकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत। यह ग्रन्थ हरिदीक्षितके प्रणीत शब्दरत्नकी टीका है।

२६। मध्यकौमुदी—वरदराजकृत, सिद्धान्तकौमुदी-का संक्षेप करके वरदराजने इस ग्रन्थका प्रचार किया। इनका लिखा हुआ लघुकौमुदी ग्रन्थ भी है।

२७। परिभाषा—पाणिनिसूत्रव्याख्यार्थ वार्त्तिक और महाभाष्यसे उद्धृत नियमवचन।

२८। परिभाषावृत्ति—शिवदेव प्रणीत उपर्युक्त ग्रन्थकी टीका।

२९। लघु परिभाषावृत्ति—भास्करभट्ट प्रणीत उपर्युक्त परिभाषाग्रन्थकी संक्षिप्त टीका।

३०। परिभाषा ग्रन्थकी टीका।

३१। चन्द्रिका—स्वामी प्रकाशानन्द प्रणीत परिभाषार्थसंग्रह ग्रन्थकी व्याख्या।

३२। परिभाषेन्दुशेखर—नागेश भट्टकृत परिभाषा-ग्रन्थकी व्याख्या।

३३। परिभाषेन्दु शेखरकाशिका—वैद्यनाथ पायगुण्डकृत।

३४। कारिका—महाभाष्य और काशिकामें जो नियमश्लोक हैं, यह उन्हीं श्लोकोंका संग्रह ग्रन्थ है।

३५। वाक्यप्रदीप वा वाक्पदीय—भर्तृहरि प्रणीत। इसका दूसरा नाम हरिकारिका है।

३६। व्याकरणभूषण—कोण्डभट्ट प्रणीत। यह ग्रन्थ भी वाक्पदीयकी तरह संस्कृत व्याकरणका दार्शनिक ग्रन्थ है।

३७। भूषणसारदर्पण—हरिवल्लभ प्रणीत व्याकरण-भूषण ग्रन्थकी टीका।

३८। व्याकरणभूषणसार—व्याकरणभूषणकी टीका।

३९। व्याकरणसिद्धान्तमञ्जुषा—नागेश भट्ट रचित। यह ग्रंथ भी भर्तृहरिके वाक्पदीयकी तरह है।

४०। लघुभूषणकान्ति—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत।

४१। लघु व्याकरणसिद्धांतमञ्जुषा।

४२। कला—वैद्यनाथ पायगुण्ड प्रणीत। यह लघु व्याकरणसिद्धांतमञ्जुषाकी टीका है।

४३। गणपाठ।

४४। गणरत्नमहोदधि सटीक।

४५। पाणिनि-धातुपाठ।

४६। धातुप्रदीप वा तन्त्रप्रदीप मैत्रेय रक्षित कृत। इसमें उदाहरण और धातुरूपका उदाहरण दिया गया है।

४७। माधवीय वृत्ति—सायणाचार्य प्रणीत।

४८। पदचन्द्रिका—एक व्याकरण। इसमें पाणिनि-सूत्र यथेष्ट उद्धृत हुआ है।

पाणिनीय सूत्रके आधार पर ऐसे और भी अनेक ग्रन्थ हैं। इनके सिवा तर्कशास्त्रके साथ सम्बन्ध रखने-वाले और भी कितने व्याकरण देखे जाते हैं। वे सब ग्रन्थ व्याकरणशास्त्रके दर्शन नामसे पुकारे जा सकते हैं। नीचे और भी कई व्याकरणोंके नाम लिखे जाते हैं—

४९। सरस्वतीप्रक्रिया—अनुभूति स्वरूपाचार्य प्रणीत। इसमें सात सौ सूत्र हैं। ग्रंथकारने यह व्याकरण सरस्वती देवीके प्रसादसे प्राप्त किया था, ऐसा प्रवाद प्रचलित है। भारतवर्षमें इस व्याकरणका अधिक प्रचार है। इस व्याकरणके तीन टीकाग्रंथ देखनेमें आते हैं—एक पुञ्जराजकृत और बाकी महाभट्ट-प्रणीत है। इसके सिवा सिद्धान्तचन्द्रिका नामकी भी इसकी एक टीका है।

५०। शब्दानुशासन वा हैम व्याकरण—जैनाचार्य हेमचन्द्र सूरि द्वारा प्रणीत। जैन लोग इस व्याकरणको बड़े आदरसे पढ़ते हैं। कामधेनु नामक व्याकरण ग्रंथ-में अभिनव शाकटायन रचित एक और शब्दानुशासन ग्रन्थका नाम देखनेमें आता है।

५१। प्राकृत मनोरमा—वररुचि प्रणीत प्राकृत-चन्द्रिका ग्रन्थकी संक्षिप्त टीका। इसमें प्राकृत और संस्कृत व्याकरणका पार्थक्य दिखलाया गया है।

५२। कलापव्याकरण—इस व्याकरणका वङ्गदेशमें बहुत प्रचार है। इसका दूसरा नाम कातन्त्रव्याकरण है।

५३। दौर्गसिंही—दुर्गासिंह प्रणीत कलापव्याकरण की टीका।

५४। कातन्त्रवृत्तिटीका—दुर्गासिंह कृत।

५५। कातन्त्रविस्तार—वर्द्धमान मिश्रकृत।

५६। कातन्त्रपञ्जिका—कलापव्याकरणकी टीका, त्रिलोचन दास प्रणीत।

५७। कलापतत्त्वार्णव—रघुनन्दन आचार्यशिरोमणि कृत।

५८। कातन्त्रचन्द्रिका—कलापटीका।

५९। चैत्रकुटि—वररुचिकृत कलापटीका।

६०। व्याख्यासार—हरिराम चक्रवर्त्तिकृत कलापटीका।

६१। व्याख्यासार—रामदासकृत कलापटीका।

६२। कलापटीका—सुषेण कविराजकृत।

६३। „ रमानाथकृत।

६४। „ उमापतिकृत।

६५। „ कुलचन्द्रकृत।

६६। „ मुरारिकृत।

६७। „ विद्यासागरकृत।

६८। कातन्त्रपरिशिष्ट—श्रीपतिदत्तकृत।

६९। परिशिष्टप्रबोध—गोपीनाथकृत कातन्त्रपरिशिष्टटीका।

७०। परिशिष्टसिद्धान्तरत्नाकर—शिवरामचक्रवर्त्तिकृत कातन्त्रपरिशिष्टटीका।

७१। कातन्त्रगणधातु।

७२। मनोरमा—रमानाथकृत कातंत्रगणधातुकी टीका।

७३। कातन्त्रषट्कारक—महेशनन्दीकृत।

७४। कातंत्रउणादिवृत्ति—शिवदास प्रणीत।

७५। कातंत्रचतुष्टयप्रदीप।

७६। कातंत्र धातुघोष।

७७। कातंत्रशब्दमाला।

इनके सिवा कलापसूत्र और उसकी वृत्ति आदिके आधार पर और भी अनेक ग्रन्थ देखे जाते हैं।

७८। संक्षिप्तसार व्याकरण—क्रमदीश्वर प्रणीत। यह व्याकरण जुमारनन्दी द्वारा प्रतिसंस्कृत है। इस कारण इसका दूसरा नाम जौमार भी है।

७९। संक्षिप्तसारव्याकरणटीका—गोयीचन्द्रकृत।

८०। व्याकरणदीपिका—न्यायपञ्चाननकृत। यह ग्रन्थ गोयीचन्द्रकी संक्षिप्तसारव्याकरणटीकाकी व्याख्या है।

८१। दुर्घटघटना—संक्षिप्तसार व्याकरणकी टीका।

संक्षिप्तसारव्याकरणग्रन्थके आधार पर भी अनेक व्याकरण ग्रन्थ और टीका व्याख्या ग्रन्थ दिखाई देते हैं। गोपालचक्रवर्त्ती आदिने और भी इसकी बहुत-सी टीकाएं लिखी हैं। इस व्याकरणके आधार पर शब्दघोष और धातुघोष आदि नामका अनेक व्याकरणनिबन्ध है। यह व्याकरण वङ्गालके वर्द्धमान अञ्चलमें प्रचलित है।

८२। मुग्धबोध—वोपदेवकृत। यह व्याकरण भी वङ्गदेशमें पढ़ा जाता है। ग्रन्थकारने स्वयं इसकी वृत्ति की है।

८३। सुबोधिनी—दुर्गादासकृत मुग्धबोधटीका।

८४। छाटा—मिश्रकृत मुग्धबोध टीका।

८५। मुग्धबोध टीका—रामानन्दकृत।

८६। „ रामतर्कवागीशकृत।

८७। „ मधुसूदनकृत।

८८। „ देविदासकृत।

८९। „ रामभद्रकृत।

९०। „ रामप्रसाद तर्कवागीशकृत।

९१। „ श्रीवल्लभाचार्यकृत।

९२। „ दयाराम वाचस्पतिकृत।

९३। „ भोलानाथकृत।

९४। „ कान्तिकसिद्धान्तकृत।

९५। „ रतिकान्त तर्कवागीशकृत।

९६। मुग्धबोधटीका गोविन्दरामकृत।

इनके अतिरिक्त मुग्धबोध व्याकरणकी और भी अनेक टीकाएं हैं।

९७। मुग्धबोध परिशिष्ट—काशीश्वरकृत।

९८। „ नन्दीकेश्वरकृत।

९९। कविकल्पद्रुम—यह बोपदेवकृत गणपाठ।

१००। काव्यकामधेनु—बोपदेवकृत धातुपाठ और धात्वर्थ।

१०१। धातुदीपिका—दुर्गादासकृत।

१०२। कविकल्पद्रुमव्याख्या—रामन्यायालङ्कारकृत। रामन्यायालङ्कारने कविकल्पद्रुमकी और भी एक व्याख्या की है।

१०३। धातुरत्नावली—राधाकृष्ण प्रणीत।

१०४। कविरहस्य—हलायुधकृत। इसमें साधारण साधारण क्रियाके उदाहरण दिखलाये गये हैं। इस ग्रन्थकी एक टीका भी है।

उल्लिखित ग्रन्थ मुग्धबोधके आधार पर रचे गये हैं।

१०५। सुपद्मव्याकरण—महामहोपाध्याय पद्मनाभ दत्त प्रणीत। यशोर आदि अञ्चलोंमें यह व्याकरण पढ़ा जाता है।

१०६। मकरन्द—विष्णुमिश्रकृत सुपद्मव्याकरण-टीका।

१०७। सुपद्मव्याकरणटीका—कन्दर्पसिद्धान्त।

१०८। „ काशीश्वर।

१०९। „ श्रीधरचक्रवर्त्ती।

११०। „ रामचन्द्र।

इनके अलावा इस व्याकरणकी और भी एक टीका है।

१११। सुपद्मपरिशिष्ट।

११२। सुपद्मधातुपाठ—पद्मनाभदत्त प्रणीत। इसमें सुपद्मव्याकरणकी परिभाषा और उणादिवृत्ति भी है।

११३। काशीश्वरगण—काशीश्वर प्रणीत।

११४। काशीश्वरगणटीका—रामकान्तप्रणीत।

११५। रत्नमालाव्याकरण—पुरुषोत्तम प्रणीत। यह कामरूप और कोचविहार अञ्चलमें पढ़ा जाता है। इसकी भी तीन टीका है।

११६। द्रुतबोध—भरतमल्लप्रणीत सटीकव्याकरण। इस व्याकरणका तथा निम्नलिखित व्याकरणका उतना प्रचार नहीं है।

११७। शुद्धसुबोध—रामेश्वर प्रणीत। रामेश्वरका टीका सहित एक और भी व्याकरण है।

११८। हरिनामामृत व्याकरण—श्रीजीवगोस्वामि-प्रणीत। गौड़ीय वैष्णव इस व्याकरणका आदर करते हैं। इसमें व्याकरणके साथ भक्ति और भगवल्लीलाका उपदेश दिया गया है।

११९। चैतन्यामृत—यह भी गौड़ीय वैष्णवोंका प्रणीत है। इसकी टीका भी मिलती है।

१२०। कारिकावली—रामनारायणकृत। जह व्याकरण पद्यमें रचा गया है।

१२१। प्रबोधप्रकाशव्याकरण—बलरामपञ्चाननकृत।

१२२। रूपमालाव्याकरण—विमलासरस्वती प्रणीत।

१२३। ज्ञानामृतव्याकरण—काशीश्वर प्रणीत।

१२४। आशुबोधव्याकरण।

१२५। शीघ्रबोधव्याकरण।

१२६। लघुबोधव्याकरण।

१२७। सारामृतव्याकरण।

१२८। दिव्यव्याकरण।

१२९। पदावलीव्याकरण।

१३०। उत्कलव्याकरण आदि और भी कितने संस्कृत व्याकरण देखनेमें आते हैं। भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रदेशमें व्याकरण शिक्षाके लिये कितनी व्याकरणवृत्ति-टीका और पञ्जी आदि रची गई थी, उनकी गिनती लगाना कठिन है। जिन व्याकरणग्रन्थ और टीका-व्याख्याके नाम लिखे गये, वे सभी ग्रन्थ प्रसिद्ध तथा व्याकरण पढ़नेवालोंके सुपरिचित हैं फलतः संस्कृत-व्याकरणकी सर्वाङ्गसुन्दर तालिका बनाना सहज नहीं है।

इन सब ग्रन्थोंको छोड़ माधवीयवृत्तिमें और भी कितने वैयाकरणोंके नाम देखनेमें आते हैं यथा—

चन्द्र, आपिशलि, शाकटायन, आत्रेय, धनपाल,

कौशिक, पुरस्कार, सुधाकर, मधुसूदन, यादव, भागुरि, श्रीभद्र, शिवदेव, रामदेवमिश्र, देवनन्दो, राम, भोम, भोज, हेलाराज, सुभूतिचन्द्र, पूर्णचन्द्र, यज्ञनारायण, कण्वस्वामी, केशवस्वामी, शिवस्वामी, धूर्त्तस्वामी, क्षीरस्वामी (क्षीरतरङ्गिणीके प्रणेता) इत्यादि।

माधवीयधातुवृत्तिमें तरङ्गिणी, आभरण, शाकाभरण, सामन्त, प्रक्रियारत्न और प्रतीप आदि ग्रन्थोंके नाम हैं।

बहुतसे व्याकरणग्रंथोंमें व्याघ्रभूति और व्याघ्रपाद्के वार्त्तिकका नामोल्लेख देखा जाता है। धातुपारायण नामक एक बड़े ग्रंथका भी नाम सुननेमें आता है। यह धातुपरायण हेमचन्द्रकृत कह कर प्रसिद्ध है। दुर्गादास-रचित धातुदीपिका ग्रन्थमें भट्टमल्ल, गोविन्दभट्ट, चतुर्भुज, गदिसिंह, गोवर्द्धन तथा शरणदेव आदि वैयाकरणोंका नामोल्लेख है।

प्राकृतभाषाका व्याकरण।

प्राकृतभाषाके व्याकरणोंमें वररुचिके प्राकृतप्रकाशका नाम सबसे पहले उल्लेखयोग्य है। यह ग्रंथ वररुचि विरचित है। इस ग्रंथकी प्राकृत-मनोरमा वा प्राकृतचंद्रिका नामक एक वृत्तिग्रंथ भी है। भामह इसके रचयिता हैं। प्राकृतमञ्जरी नामक वृत्ति कात्यायन-कृत है तथा प्राकृतसञ्जीवनी नाम्नी टीका वसंतराज द्वारा रची गई है। इसके सिवा प्राकृत भाषाकी आलोचनाके लिये और भी अनेक व्याकरण रचे गये हैं। नीचे उनके नाम दिये जाते हैं—

प्राकृत-कल्पतरु—राम तर्कवागीश।

प्राकृत-कामधेनु—लङ्केश्वर। यह प्राकृतलङ्केश्वर नामसे भी मशहूर है।

प्राकृत कौमुदी—

प्राकृत-चंद्रिका—कृष्ण पण्डित; आप शेषकृष्ण नामसे भी परिचित थे।

प्राकृत-दीपिका—चण्डीदेव शर्मा। यह ग्रंथ संक्षिप्तसार व्याकरणके ८म अध्यायको टीका है।

प्राकृत-पाद—नारायण, इस ग्रंथका पूरा नाम संक्षिप्तसार प्राकृतपाद है।

प्राकृत-प्रक्रियावृत्ति—उदय सौभाग्यमणि। यह हेमचंद्रके प्राकृताध्यायकी टीका है। यह ग्रंथ व्युत्पत्तिदीपिका या प्राकृतवृत्तिढुण्ढिका नामसे भी प्रसिद्ध है।

प्राकृत-प्रदीपिका—

प्राकृत-प्रबोध—नरचंद्र; यह हेमचंद्र रचित प्राकृताध्यायकी दूसरी एक वृत्ति है।

प्राकृत-भाषान्तरविधान—चंद्र।

प्राकृत-रहस्य—यह षड्भाषावार्त्तिक नामसे भी विदित है।

प्राकृत-लक्षण—चण्ड।

प्राकृत-व्याकरण—समन्तभद्र।

प्राकृत-व्याकरण—हेमचन्द्र (शब्दानुशासन)।

प्राकृत-व्याकरणवृत्ति—त्रिविक्रमदेव।

प्राकृत-संस्कार।

प्राकृत-सर्वस्व—मार्कण्डेय कवीन्द्र।

प्राकृत-सूत्र—वाल्मीकि।

प्राकृताध्याय—हेमचन्द्र-कृत शब्दानुशासनका ८म अध्याय।

प्राकृतानन्द—रघुनाथ शर्मा।

प्राकृताष्टाध्यायी।

बङ्गभाषाका व्याकरण।

१७४३ ई०में पुर्त्तगीज भाषामें बङ्गला भाषाका आदि व्याकरण प्रकाशित हुआ।

पीछे हालहेड नामक एक सिविलियनने बङ्गलाव्याकरण रचा और उसका प्रचार किया। हालहेड बङ्गला भाषामें विशेष अभिज्ञ थे।

पादरी केरी साहबका व्याकरण १८०१ ई०में प्रचारित हुआ तथा १८५५ ई०के मध्य उसके चार संस्करण निकाले गये।

बङ्गालीप्रणीत प्रथम व्याकरण १८१६ ई०में रचा गया। गङ्गाकिशोर भट्टाचार्य इसके प्रणेता हैं।

हिन्दी-व्याकरण।

हिन्दीभाषा शुद्ध शुद्ध लिखने पढ़नेके लिये यों तो हिन्दीव्याकरण भी अनेक हैं, पर निम्नलिखित व्याकरण ग्रन्थ ही प्रसिद्ध और सर्वत्र प्रचलित हैं।

भाषाभास्कर—काशीनगरके पादरी एथरिंगन साहबकृत।

हिन्दीभाषाका व्याकरण—कामता प्रसाद गुरु—प्राफेसर हिन्दी युनिवर्सीटी बनारस।

हिन्दीकौमुदी—पं० अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, सम्पादक 'स्वतन्त्र'।

व्याकरणकौमुदी—रामदहिनमिश्र काव्यतीर्थ।

प्रभाकर—

व्याकरण-चन्द्रोदय—लहेरियासराय।

इनके सिवा निम्न कक्षामें पढ़ानेयोग्य और भी कितने हिन्दी-व्याकरण हैं।

व्याकरणकौण्डिन्य (सं० पु०) एक ब्राह्मण पण्डित।

व्याकर्त्ता (सं० त्रि०) जगत्स्रष्टा, सृष्टिकर्त्ता।

व्याकार (सं० पु०) १ व्याख्या, विवृत्ति। २ परिवर्त्तिताकार, किसी पदार्थका बिगड़ा या बदला हुआ आकार।

व्याकीर्ण (सं० त्रि०) वि-आ-कृ-क्त। विक्षिप्त, जो चारों ओर अच्छी तरह फैलाया गया हो।

व्याकुञ्चित (सं० त्रि०) विशेष आकुञ्चित।

व्याकुल (सं० त्रि०) विशेषेणाकुलः। १ शोकादि द्वारा इतिकर्त्तव्यताशून्य। जो भय या दुःखके कारण इतना घबरा गया हो कि कुछ समझ न सके। २ व्यापृत। ३ उत्कण्ठित। ४ कातर। ५ भयविधुर। ६ उपद्रुत।

व्याकुलता (सं० स्त्री०) व्याकुलस्य भावः तल्-टाप्। १ व्याकुल होनेका भाव, विकलता, घबराहट। २ कातरता।

व्याकुलध्रुव (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

व्याकुलात्मन् (सं० त्रि०) व्याकुलः आत्मा यस्य। शोकाभिहतचित्त, शोककातर।

व्याकुलितिन् (सं० त्रि०) व्याकुलित।

व्याकृति (सं० स्त्री०) विशिष्टा आकृतिः। छल, धोखा, फरेब।

व्याकृत (सं० त्रि०) वि-आ-कृ-क्त। १ प्रकाशित। २ व्याख्यात। ३ परिवर्त्तित, रूपान्तरित।

व्याकृति (सं० स्त्री०) वि-आ-कृ-क्तिन्। १ प्रकाशन। २ व्याख्यान। ३ परिवर्त्तन, रूपान्तर करना।

व्याकोप (सं० पु०) विशेष व्याप्ति। (कुसुमाञ्जलि ३।९)

व्याकोश (सं० पु०) व्याकुशयति प्रस्फुटतीति वि-आ-कुश-क। १ विकाश। २ स्फुटित होना, खिलना।

व्याकोप (सं० त्रि०) व्याकुष्णाति मुकुलीभावाद् वहिर्निःसरतीति वि-आ-कुष-क। प्रफुल्ल, प्रस्फुटित, विकशित। (भारत ७।३०।२२)

व्याक्रोश (सं० पु०) वि आ क्रुश-घञ्। १ किसीका तिरस्कार करते हुए कटूक्ति करना। २ चिल्लाना, चिल्लाहट।

व्याक्रोशक (सं० त्रि०) चीत्कारकारी, चिल्लानेवाला।

व्याक्षेप (सं० पु०) वि-आ-क्षिप्-घञ्। १ विलम्ब, देर। २ व्यासङ्ग अन्या सङ्ग। ३ आकुलता, घबराहट।

व्याख्या (सं० स्त्री०) व्याख्यानमिति वि-आ-ख्या। 'आतश्चोपसर्गे' इति अङ्, ततष्टाप्। १ वह वाक्य आदि जो किसी जटिल पद या वाक्य आदिका अर्थ स्पष्ट करता हो, टीका, व्याख्यान।

"न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान्नैवाभ्यसेद्बहून्।
न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत् क्वचित्॥"
(भागवत ७।१३।८)

व्याख्या शब्दसे साधारणतः टीका या अर्थप्रकाशक ग्रन्थका बोध होता है। सभी शास्त्रग्रन्थ प्रायः सूत्र या श्लोकके आकारमें निबद्ध हैं। सूत्र संक्षिप्त हैं, अतएव बिना व्याख्याके अर्थबोध होना कठिन है। इस कारण व्याख्याग्रन्थकी विशेष आवश्यकता है। शास्त्रोंके अनेक प्रकारके व्याख्या ग्रन्थ हैं। व्याख्याग्रन्थवृत्ति, भाष्य, वार्त्तिक, टीका, टिप्पनी आदि नाना शाखाओंमें विभक्त है।

इसके सिवा व्याख्याका एक साधारण लक्षण भी है। यथा—

"पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पञ्चलक्षणम्॥"

पदच्छेद—अर्थात् सूत्रमें कई पद हैं जिन्हें स्पष्ट रूपसे बता देना; पदार्थोक्ति—किस पदका क्या अर्थ है, उसे कहना; विग्रह—समस्त पदका व्यासवाक्य उपन्यास करना; वाक्ययोजना—समस्त वाक्य या सूत्रका अन्वय अर्थात् वाक्यघटक पदावलीके अर्थोंका परस्पर सम्बन्ध दिखलाना; आक्षेपका समाधान—सम्भावित आपत्ति या आशङ्काका समाधान या निरसन, व्याख्याके यही पांच लक्षण हैं। व्याख्याग्रन्थमें उक्त पांच विषय रहना उचित है। वेदमें भी पदच्छेद दिखानेके लिये पदपाठ, पदग्रन्थ और व्याख्याके लिये ब्राह्मण-ग्रन्थ विद्यमान हैं किंतु सभी व्याख्याग्रन्थोंमें सभी जगह उक्त पांच विषय

का समान भावसे वर्णन नहीं होगा। वाक्ययोजन द्वारा पदच्छेदका कार्यसम्पन्न होता है, इस कारण अनावश्यक विवेचनासे प्रायः सभी जगह पदच्छेद उपेक्षित हुए हैं। व्याख्याकर्त्ताओंने स्थलविशेषमें पदका अर्थ निर्देश किया है सही, पर अधिकांश स्थलोंमें ही पदका अर्थ निर्देश नहीं किया। आक्षेपके समाधानके लिये वे स्थलविशेषमें एकसे अधिक कल्प या प्रणाली निर्देश करते हैं। जहां अनेक कल्प निर्दिष्ट हैं, वहाँ साधारणतः शेष कल्प ही समीचीन हैं। पूर्व पूर्व कल्प कुछ दोषदुष्ट या आपत्तियोग्य हैं। अन्तिम कल्पका निर्देश करनेसे ही जब उत्तमरूपसे आक्षेपका समाधान होता है, तब असमीचीन पूर्व पूर्व कल्पोंके उपन्यासको अन्याय या अनावश्यक कहा जा सकता है। किन्तु व्याख्याकारने शिष्यबुद्धिके वैशद्य और परिचालनाके लिये या कौशलप्रदर्शन अभिप्रायसे नाना कल्पकी अवतारणा की है।

व्याख्या ग्रन्थकी भी वृत्ति, टीका आदि प्रकार भेद देखे जाते हैं। वृत्ति ग्रन्थ संक्षिप्त और उसकी रचना गाम्भीर्ययुक्त है। जिस ग्रन्थमें सूत्रानुसारिपदके द्वारा सूत्रका अर्थ वर्णित होता है और निजके प्रयुक्त पद अर्थात् वाक्य भी व्याख्यात होते हैं, उसका नाम भाष्य है। भाष्यकी रचना प्रगाढ़ है। भाष्यका अक्षरार्थ सहज है, तात्पर्यार्थ कुछ आसान है। कोई वृत्तिभाष्याकारमें और कोई कोई भाष्य भी व्याख्याकी प्रणालीमें रचित देखा जाता है। उसमें भाष्यका लक्षण बिलकुल नहीं है। जिस व्याख्या-ग्रन्थमें उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थ परित्यक्त होता है, उसका नाम वार्त्तिक है।

२ वह ग्रन्थ जिसमें इस प्रकार अर्थ-विस्तार किया गया हो। ३ वर्णन, कहना।

व्याख्यागम्य (सं० क्ली०) व्याख्यया गम्य-व्याख्यया विवरणेन गम्यते ज्ञायते यत्। १ उत्तराभासभेद, वादीके अभियोगका ठीक ठीक उत्तर न दे कर इधर उधरकी बातें कहना। (त्रि०) २ जो व्याख्या अथवा टीका आदिकी सहायतासे समझा जा सके।

व्याख्यात (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-क्त। विवृत, जिसकी व्याख्या की गई हो।

व्याख्यातव्य (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-तव्य। व्याख्यान योग्य, जो व्याख्या करनेके योग्य हो।

व्याख्यातृ (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-तृच्। १ व्याख्याकारक, जो किसी विषयकी व्याख्या करता हो। २ जो व्याख्यान देता हो, भाषण करनेवाला।

व्याख्यान (सं० क्ली०) वि आ ख्या-ल्युट्। १ किसी विषयकी व्याख्या या टीका करने अथवा विवरण बतलानेका काम। २ बोल कर कोई विषय समझानेका काम, भाषण। ३ वह जो कुछ व्याख्या रूपमें या समझानेके लिये कहा जाय, भाषण, वक्तृता।

व्याख्यानशाला (सं० स्त्री०) व्याख्यानस्य शाला। व्याख्यानगृह, वह स्थान जहां किसी प्रकारका व्याख्यान आदि होता हो।

व्याख्यास्वर (सं० पु०) १ व्याख्याके उपयुक्त स्वर। २ वह स्वर जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा, मध्यम स्वर। (आश्व० श्रौ० ८।१३।६)

व्याख्येय (सं० त्रि०) वि-आ-ख्या-यत् आकारस्य एकारः। व्याख्यार्ह, जो व्याख्या करनेके योग्य हो, वर्णन करने या समझाने लायक।

व्याघट्टन (सं० क्ली०) वि आ-घट्ट ल्युट्। १ सङ्घर्षण, अच्छी तरह रगड़नेका काम। २ आलोड़न, मथना, बिलोना।

व्याघात (सं० पु०) व्याहन्यतेऽनेनेति वि-आ-हन-घञ् नस्य त। १ विष्कम्भ आदि सत्ताईस योगोंमेंसे तेरहवाँ योग। ज्योतिषके मतसे यह योग शुभ नहीं है, इसमें किसी प्रकारका शुभ कार्य करना वर्जित है। पर कुछ लोगोंका मत है, कि इसके पहले छः दण्डोंको छोड़ कर शेष समयमें शुभ काम किये जा सकते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

कोष्ठीप्रदीपके मतानुसार इस योगमें जो बालक जन्मग्रहण करता है, वह साधुओंके काममें विघ्न करनेवाला, कठोर झूठा और निर्दय होता है। (कोष्ठीप्रदीप) २ अन्तराय, विघ्न। ३ प्रहार, आघात, मार। काव्यमें एक प्रकारका अलंकार। इसमें एक ही उपायके द्वारा अथवा एक ही साधनके द्वारा दो विरोधी कार्योंके होनेका वर्णन होता है।

व्याघारण (सं० क्ली०)जलसिञ्चनकार्य। (कात्यायनश्रौ० ५।२)
व्याघ्र (सं० पु०) व्याजिघ्रतीति वि-आ घ्रा-क। स्वनाम-ख्यात चतुष्पद जन्तुविशेष, बाघ। पर्याय—शार्दूल, द्वीपी, पृदाकु, वनश्व, चित्रक, पुण्डरीक, हंसपशु, व्याड़, हिंस्रक, हिंसारु, श्वापद, पञ्चनख, व्याल, गुहाशय, तीक्ष्णदंष्ट्रा, भीरु, नखायुध। इसके मांसका गुण—अर्शः, प्रमेह, जठरामय और जड़ता नाशक। व्याघ्र, सिंह आदि प्रहसन जातीय जन्तु है। अग्निपुराणमें लिखा है, कि कश्यपपत्नी दंष्ट्रा-के गर्भसे व्याघ्र, सिंह आदिकी उत्पत्ति हुई।

यह स्वनामप्रसिद्ध चतुष्पद जन्तु स्तन्यपायी है तथा अत्यन्त हिंस्र और मांसाशी समझे जाते हैं। भूख नहीं रहने पर भी यह सामने आये हुए शिकार को विना मारे नहीं छोड़ता। सुना जाता है, कि यह गाय, भैंस, यहाँ तक कि मनुष्यों पर भी अतर्कित भावमें टूट पड़ता है और मुंहसे पकड़ कर घने जङ्गल-में ले जाता है। वहाँ उसके प्राणवायुके निकल जाने पर उसे खाने लगता है। जब एक मनुष्य या पशु एक बारमें नहीं खा सकता, तब बाकीको दूसरे या तीसरेके लिये रख छोड़ता है। हम लोगोंके देश-में बिल्ली जिस प्रकार चूहेको पकड़ कर खेल करती हुई मारती है, बाघ भी उसी प्रकार अपने शिकारको जङ्गलमें छोड़ कर बहुत दूर चला जाता है। इस समय शिकार यदि भागनेकी कोशिश करता है, तो वह दूरसे उछलता हुआ उस पर टूट पड़ता है और उसे नोच कर या क्षतविक्षत कर किनारे दूर हट जाता है। इस प्रकार खेल करते समय वह बड़ा आनन्द प्रकट करता है। व्याघ्रसे आक्रान्त बहुतसे लोगोंने ऐसी अवस्थामें बाघके पंजेसे बचने-की आशासे वृक्ष पर चढ़ कर प्राण बचाये हैं।

शिकार ले कर क्रीड़ा और आमोद तथा बिल्लीके साथ बाघका आकृतिगत सादृश्य देख कर हम लोगों के देशमें बिड़ालको 'बाघकी मौसी' कहते हैं। प्राणि-तत्त्वविदोंने भी इसी कारणसे सिंह, व्याघ्र, लकड़-बघ्घा, बिड़ाल आदिको पशुजातिकी Felis शाखाके अन्तर्निविष्ट किया है। उनके मतसे व्याघ्रगण F lidae जातिकी Felinae श्रेणीभुक्त हैं। चीता बाघ उस जातिकी एक दूसरी शाखा (Felis Pardus) माना गया है। किन्तु लकड़बघ्घाकी जाति Can'dae अर्थात् कुत्ते जातिकी अन्तर्भुक्त है। क्योंकि, दाँत और मुखकी आकृति अच्छी तरह देखनेसे वह स्वभा-वतः ही कुत्ते जातिका मालूम होता है।

यह व्याघ्र जाति समस्त भारतवर्षके अर्थात् कुमारिका अन्तरीपसे ले कर हिमालय श्रेणीके ७ हजार फुटकी ऊंचाई तक विभिन्न स्थानके घने जङ्ग-लोंमें वास करती हैं। ब्रह्मराज्य, मलय प्रायोद्वीप, पश्चिम एसिया खण्ड और अफ्रिका महादेशके जङ्गलोंमें अथवा शर या तृणाच्छादित नदीके किनारे जहां अन्यान्य छोटे छोटे पशु जल पीनेके लिये आया करते हैं वैसे स्थानमें इन्हें विचरण करते देखा जाता है।

स्थान विशेषके जलवायुके तारतम्यानुसार व्याघ्र जातिका भी आकृतिगत अनेक वैषम्य हुआ करता है। इसी कारण हम विभिन्न स्थानमें विभिन्न प्रकार-के व्याघ्र भी देख पाते हैं। बङ्गालके पहाड़ी जङ्गलमें जो बड़ा बाघ दिखाई देता है वह यूरोपीय शिकारियों-के निकट Royal Bengal tiger नामसे प्रसिद्ध है। ऐसा बड़ा और बलिष्ठ बाघ संसार भरमें कहीं नहीं देखा जाता। यह प्रायः १२ फुट तक लम्बा होता है। सुन्दरवनके यात्री लकड़हारेके मुखसे इसकी हिंसा प्रकृतिकी अद्भुत गल्पें सुनी जाती हैं। पश्चिम बङ्गाल और मध्यभारतके पहाड़ी जङ्गलोंमें ऐसे लंबे बाघ देखे तो जाते हैं, पर वे बंगालके बाघ जैसे हिंस्रक नहीं हैं।

सुन्दरवनका बड़ा बाघ (Tigris regalis) और पश्चिम बंगालका मध्यमाकृति गो-बाघ भारतीय विभिन्न जातिकी भाषामें स्वतंत्र नामसे पुकारे जाते हैं। यूरोपीय शिकारीकी भाषामें वे Baffals tiger नामसे परिचित हैं। उत्तर-पश्चिम भारतमें बाघ और बाघिनी, शेर और शेरिनी कहलाती हैं। इसके सिवा यह विभिन्न देशमें विभिन्न नामसे परिचित हैं। यथा—महाराष्ट्रमें बु-हाग वा पटिबाघ; बुंदेलखण्ड और

मध्यभारतमें नाहर ; भागलपुरके पहाड़ी प्रदेशमें तुत् ; गोरखपुरमें नांगाचार ; तेलगू और तामिलमें पुलि, पेड्डपुलि ; मलयालम परैंपूलि ; कनाड़ी हुली, तिब्बतमें ताघ ; भूटान्तमें तुख, लेपछा सुहृतोङ्ग ; यवद्वीपमें माचाल ; सुमात्रा रिमास वा हरिमन ।

इस जातिके बाघका शरीर ललाई लिये पीला होता है। बीच बीचमें काली रेखा दिखाई देती है जो मेरुदण्डके पास मोटी और पेटकी ओर पतली चली गई है। पेटके निचले भागमें हरिद्राभ श्वेत लोम दिखाई देते हैं। चिताबाघके शरीरमें ऐसी काली रेखाएं नहीं रहतीं, गोल गोल चकत्ता दिखाई देता है। वर्ण भी वैसा गाढ़ा लाल नहीं, वरन् कुछ तरल हरिद्रावर्ण मालूम होता है। किसी किसी चिताजातिके बाघके गात्रलोम भी कुछ ललाई लिये पीले होते हैं। ये ऊपर कहे गये दो प्रकारके बाघोंसे बहुत छोटे होते हैं। चिताबाघ देखो।

वालटर एलियट, मेजर सर विन और सर्जन मेजर जार्डन आदि शिकारियोंने एक स्वरसे कहा है, कि उन्होंने जितने 'रायल बेङ्गाल टाइगर'का शिकार किया है, उनमेंसे कोई भी १०´३´´ इञ्चसे बड़ा नहीं है, परन्तु दो एक १२´ १३´ फुट बाघकी कथा जो किसी किसी शिकारीके वर्णनमें पाई जाती है वह सम्भवतः बाघके शरीरसे चमड़ेको अलग कर सुखानेके समय खींच कर नापा गया होगा।

दक्षिण भारतके व्याघ्रके स्वभावकी आलोचना कर शिकारी एलियटने लिखा है;—'ये स्वभावतः डरपोक होते हैं, किन्तु जब कोई इन्हें चिढ़ाता है अथवा किसी प्रकार चोट पहुंचाता है, तब वे कुपित हो कर आततायी पर टूट पड़ते हैं। साधारणतः पहाड़ी जंगलोंमें ये रहते हैं और मौका देख कर चुपकेसे समतल प्रांतरमें आते और शस्यपूर्णक्षेत्रमें छिप रहते हैं। अनेक स्थानोंमें ये शस्यादिको नष्ट कर कृषकोंका बड़ा नुकसान करते हैं। सुविधा और अकेला पा कर वह कृषकको ले जानेमें बाज नहीं आता। रातको गरमीकी मौसिममे जब ग्रामवासी अपने बरामदे या आंगनमें सोता है, मौका पा कर वह भीतर घुसता और उसे उठा ले जाता है। बाघिनियोंको दो चार तक बच्चा जनते देखा गया है। इनके गर्भाधानका कोई निर्दिष्ट समय नहीं है।

एलियटने खान्देशवासी भीलजातिके मुखसे सुना है कि, मौनसुन वायुके समय जब खाद्यका विशेष अभाव होता है, तब बाघ बेंग पकड़ कर जीवन धारण करते हैं। इस समय पेटकी ज्वालासे एक बाघने एक सजारुको निगलनेकी कोशिश की है; पर उसका एक कांटा गलेमें अटक गया और गला विद्ध हो गया, जिससे वह पीछे कोई वस्तु खा न सका। क्रमशः वह सूख कर मर गया था।'

मेजर सरविलने व्याघ्रतत्वकी पर्यालोचना कर लिखा है, कि बङ्गालके बाघोंके भी दोसे चार बच्चे होते हैं। जब तक बच्चे स्वयं शिकार करनेमें समर्थ नहीं होते, तब तक वे माताके पीछे पीछे घूमते हैं। जब वे शिकार करना शुरू कर देते हैं, तब एक साथ ४ ५ गाय मार डालते हैं। परन्तु बूढ़ा बाघ इस प्रकार कभी भी नुकसान नहीं करता। वह भूखके समय सिर्फ एक गाय मार कर अपने प्राणको ठंढा करता है। बूढ़ा बाघ इस प्रकार प्रायः प्रति सप्ताहमें एक एक गाय पकड़ कर ले जाता है। गाय पकड़नेके लिये वह घने जंगलसे निकल कर गांवके समीप एक झाड़ीमें छिप रहता है। और मौका पाते ही से गाय बैल या भैंस ले कर पुनः जंगलकी ओर चम्पत हो जाता है। वह जहां उस पशुको ले जाता है वहां दो तीन वा उससे अधिक दिन रह कर उसकी कुल हड्डियोंको चबा लेता और तब घने जंगलमें चला जाता है। इस कारण जब शिकारियोंको मालूम होता है, कि बाघ गायको पकड़ ले गया है तब वे उसका पीछा करते हुए जंगलमें जाते हैं। जब उन्हें मृत पशुका पता लग जाता है, तब वे पासवाले किसी पेड़ पर चढ़ कर उसकी प्रतीक्षा करते हैं। जब बाघ उस सड़े पचे मांस और हड्डीको खाने लगता है, तब शिकारी छिपे हुए स्थानसे गोली या तीर फेंक कर बाघको मार डालते हैं। जिस वनमें बाघ रहता है वहां एक विजातीय गंध पाई जाती है। उसी गंधसे लोग वहां बाघका रहना जान सकते हैं।

बाघिनी निविड़ वनमें, विशेषतः जहां सरकंडेका जंगल होता है वहीं अपने शावकको छिपा रखती है। उस शावकको यदि कोई उसकी अनुपस्थितमें उठा ले जाय, तो वह

उस स्थान पर आ कर दिन रात चीत्कार करती हैं।

साधारणतः हाथीको पीठ पर चढ़ कर ही बाघका शिकार किया जाता है; किन्तु शिक्षित शिकारी हौदेमें रह कर उस पर गोली चलाना अच्छा नहीं समझते, इससे उनको जान पर डर रहता है। वे पैदल ही वनमें घूम कर शिकार करना निरापद समझते हैं। कहीं कहीं जहां दूसरे बाघने पशुको मार कर रखा है, वहां किसी वृक्षके ऊपर मचान बना कर शिकारी बैठते हैं। ज्यों ही बाघ मांस खाने लगता है त्यों ही शिकारी गोली दाग उसके प्राण ले लेते हैं। कभी कभी तो वे वृक्षके नीचे गाय आदिको निरापद भावमें बांध रखते हैं। बाघ ज्यों ही उसे खानेके लालचसे वहां आता है त्यों ही शिकारी ऊपरसे गोली दागता है।

देशी शिकारी पहले एक जगह जालको फैला चले जाते हैं, पीछे जंगल घेर कर गोलाकार भावमें चारों ओरसे बाघको भगा कर जालके बीच लाते हैं। बाघ जब जालमें फंस जाते हैं, तब उन्हें धर लेते हैं अथवा बर्छेसे भोंक कर उनके प्राण ले लेते हैं। सिंहभूम, हजारीबाग आदि अञ्चलोंमें कोल जङ्गलसे बाघका शिकार कर उसके चमड़े और नाखून ला सरकारको देते और सरकारसे उन्हें पुरस्कार मिलता है। कभी कभी स्ट्रीकनिया खिला कर भी बाघकी हत्या की जाती है। प्रति वर्ष इस प्रकार कितने ही बाघ मारे जाते हैं। फिर भी इनकी संख्या कम हुई है, ऐसा मालूम नहीं होता।

बाघके नाखून बड़े कामकी चीज हैं। उनकी माला छोटे छोटे बच्चोंके गलेमें पहनानेसे कभी उन पर कुदृष्टि नहीं पड़ती। शिक्षितके निकट यह शोभाकी सामग्री है। कोई कोई आदमी चेनके लाकेट या गलेके नेकलेसमें बाघके नाखूनको सोनेसे मढ़वा कर गलेमें और कोई चांदीसे मढ़वा कर बलयाकारमें हाथमें पहनते हैं। अशिक्षित और कुसंस्कारावद्ध व्यक्ति बालरोगमें बच्चोंके गले या कमरमें बाघका नाखून पहना देते हैं। उनका विश्वास है, कि वह नख रहनेसे बालग्रहोंका प्रकोपजनित ज्वर या दृष्टि जाती रहती है। जिस स्त्रीको सन्तान हो कर थोड़े ही समयके बाद मर जाती है, उनके भी जात बालकके गलेमें व्याघ्र-नख लटका दिया जाता है। प्रवाद है, कि उसके बल बालक व्याघ्रको तरह बलिष्ठ और दीर्घजीवी होता है। व्याघ्रकी स्कन्धसन्धिमें जो कण्ठास्थि है वह अभिचार कार्यमें विशेष फलप्रद है। इनकी मूंछें या ओंठके रोएं भी वशीकरणमें विशेष सहायक हैं। यदि पुरुष उसका अधिकारी हो, तो वह आसानीसे अभिलषित कामिनीको वशमें ला सकता है। यदि वह स्त्रीके पास हो तो वह सहजमें पुरुषको वशमें ला सकती है।

दक्षिणभारतके निम्नश्रेणीके असभ्य लोग बाघका मांस खाते हैं।

प्राणितत्त्वविदोंका कहना है, कि यह बाघ पारस्य हो कर बुखारा और जर्जिया तक गया है। आमूर देश, अलटाई पर्वतश्रेणी और चीनदेशमें भी बहुतसे बाघ देखे जाते हैं। ब्रह्म और मलय-प्रायोद्वीपमें बहुतसे बाघ हैं, परन्तु सिंहलमें नहीं हैं। इन सब विभिन्न देशोंके व्याघ्रमें भी आकृतिगत सामान्य पार्थक्य है।

साधारण व्याघ्रकी अपेक्षा लकड़बग्घा अति हिंस्र है। अनेक जगह सुना गया है, कि चरवाहेने भैंसे गायको चराते समय भागते हुए बाघको मार कर उसके मुखमेंसे शिकारको छीन लिया है। एलियटने लिखा है, कि एक समय एक चरवाहेको बाघ उठा ले गया। यह देख दूसरे चरवाहोंने शोरगुल मचाया और गाय भैंसेको उसी ओर भगाया। भैंसोंने तेजीसे जा कर बाघ पर आक्रमण कर दिया। बाघ भयभीत हो कर अपने शिकारको छोड़ भागा। किन्तु इस पर भी उसने महिषके हाथसे परित्राण नहीं पाया। उन्होंने अपने सींगसे उसको पेट फाड़ दिया था।

लकड़बग्घोंकी प्रकृति सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। ये शिकारको बिलकुल नहीं छोड़ते। कभी कभी ये दो दिन तक शिकारके पीछे पड़े रहते हैं।

लकड़बग्घा देखो।

ऊपरमें गो-बाघा नामक जिस व्याघ्रका उल्लेख हो चुका है, वही Buffalo Tiger नामसे प्रसिद्ध है। इसकी

आकृति और प्रकृति प्रायः Bengal Tigerसे मिलती जुलती है। परंतु साधारणतः शेषोक्त जातिकी अपेक्षा यह कुछ छोटा होता है।

यह प्रायः जलाशयके किनारे नरकटके वनमें रहता है और मछली पक्षी आदि खा कर अपना पेट भरता है। हिमालयके पहाड़ी प्रदेशमें, नेपालके तराई प्रदेशमें, पूर्णिया जिलेमें तथा कलकत्तेके समीपवर्ती नाना स्थानोंमें ये दीख पड़ते हैं। रेवारेण्ड वेकारने कहा है, कि मलवार उपकूलका बाघ बहुत बलिष्ठ होता है। कभी कभी यह छोटे छोटे बच्चोंको उठा ले जाता है। बहुतोंने इसे बिल्ली जातिमें शामिल किया है। F. bengalensis और उसी प्रकारका एक और बाघ-बिड़ाल Leopard Cat है। इसकी देह २६ इञ्च और पूंछ प्रायः १२ इञ्च लम्बी होती है।

केंदुआ बाघको विहारमें चीता, तैलङ्गमें चीता-पुल्ली, कर्णाटमें चिर्चा और शिवूङ्गी तथा कहीं कहीं लघर कहते हैं। ये पोस मानते हैं, इस कारण शिकारी अनेक समय इन्हें कौशलसे पकड़ते हैं और उपयुक्त शिक्षा दे कर कुत्तोंकी तरह शिकारमें अपने साथ ले जाते हैं।

इसका शरीर उज्ज्वल रक्त और हरिद्रामिश्रित पाटल-वर्णके लोमोंसे ढका रहता है। बीच बीचमें काला धब्बा दिखाई देता है, किन्तु वह ऊपर कहे गये चिताके जैसा चक्राकार नहीं होता। चक्षुकोणसे दो काली रेखा मुख तक चली गई है। कान छोटे और गोल होते हैं। पूंछ छोटी होती और उसमें जगह जगह काला दाग रहता है। अगला भाग पतला और काले रोओंसे ढका रहता है। देहयष्टि शीर्ण और दीर्घ होती तथा कोमर ग्रे-हाउण्ड नामक शीर्णदेही कुत्ते सी होती है। आँखकी पुतलियां बिलकुल गोल होती हैं। शिरसे ले कर समूचा शरीर ४॥० फुट, पूंछ २॥० फुट और ऊंचो २॥०से २॥।० फुट होती है।

इस जातिके बाघको प्राचीनगण पहले चीता (Panther वा Leopardus) समझते थे। उत्तर अफ्रिका-वासी वर्त्तमान अरब जाति तथा उक्त प्राचीनोंका विश्वास है, कि सिंह और असल चीता (Pards) जातिके सहयोगसे इस जातिके चीताको उत्पत्ति हुई है। मध्य और दक्षिण भारतमें, पश्चिम और उत्तर भारतके खान्देश-से सिन्धु, राजपूताना और पञ्जाब प्रदेशमें अनेक केंदुआ देखनेमें आते हैं। सिंहल और बङ्गालमें भी केंदुआका अभाव नहीं है। ये नीलगाय, गोशावक, हरिण आदि-का शिकार करते हैं। जेर्दन साहबने लिखा है, कि उन्होंने जङ्गलमें शृगालके साथ केंदुआको एक साथ घूमते देखा है। उन्होंने नीलगायके पीछे पीछे केंदुआ-को छिपके दौड़ते हुए भी देखा था।

केंदुआके शावकको अच्छी तरह सिखाने पर भी वह शिकारके उपयुक्त नहीं होता। शैशवकालमें जब यह माता पितासे शिकार करनेका ढंग सीख लेता है, अर्थात् स्वयं शिकार करने लगता है; तब यदि उसे पकड़ कर पाला पोसा जाये, तो ग्रे-हाउण्ड कुत्तेसे भी बढ़ कर शिकारी निकलता है। महिसुरराज टीपू सुल-तानके ऐसे पांच पालतू शिकारी केंदुआ थे। श्रीरङ्ग-पत्तनमें अङ्गरेजी सेनाके अधिनायक सर अर्थर वेलेस्लीने टीपूके अधःपतनके बाद उन पांचों बाघको ले लिया था।

इस जातिके शिकारी बाघ साधारणतः ग्रे-हाउण्ड वा घुड़दौड़के घोड़ेसे भी तेज दौड़ कर शिकार पर टूट पड़ते हैं। यहां तक कि द्रुतगामी हरिणको ये दौड़नेमें मात कर देते हैं।

यह व्याघ्र शब्द नरादि शब्दके उत्तरस्थ अर्थात् बादमें रहनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होता है। जैसे,—पुरुषव्याघ्र अर्थात् पुरुषश्रेष्ठ।

"उपमेयं व्याघ्रादिभिः श्रेष्ठार्थे", व्याकरणके इस सूत्रानुसार उपमित कर्मधारय समास होता है। पुरुष-व्याघ्र—पुरुषः व्याघ्र इव। यहां श्रेष्ठार्थमें उपमित कर्मधारय समास हुआ।

२ रक्तैरण्ड, लाल रेंडी। ३ करञ्ज।

व्याघ्रक (सं० पु०) अनुकम्पितो व्याघ्राजिनः (अजिनान्तस्योत्तरपदलोपश्च। पा ५।३।८२) व्याघ्राजिन कन्, अजिनशब्दस्य लोपः। व्याघ्राजिन।

व्याघ्रकर (सं० पु०) रक्तैरण्ड वृक्ष, लाल रेंडका पेड़। (वैद्यकनि०)

व्याघ्रकेतु (सं० पु०) वासवदत्ता-वर्णित व्यक्तिभेद।

व्याघ्रखड्ग (सं० पु०) बाघ या शेरका नाखून जो प्रायः बालकोंके गलेमें उन्हें नजर लगनेसे बचानेके लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रग्रीव (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक प्राचीन देश का नाम। २ इस देशका निवासी। (मार्क०पु० ५८।१७)

व्याघ्रघण्टा (सं० क्ली०) किंकिणी या गोविन्दी नामकी लता। यह कोङ्कणप्रदेशमें अधिकतासे होती है। इसका गुण—पित्तवर्द्धक, उष्ण, रुचिकर, विष और कफनाशक। इसका फल—तिक्तोष्ण, विसूची, कफ और वातरोगनाशक तथा त्रिदोषविनाशक। (वैद्यकनि०)

व्याघ्रघण्टी (सं० स्त्री०) व्याघ्रघण्टा देखो।

व्याघ्रचर्मन् (सं० क्ली०) व्याघ्रस्य चर्म। बाघ या शेरकी खाल। इस पर प्रायः लोग बैठते हैं या यह शोभाके लिये कमरों आदिमें लटकाई जाती है।

व्याघ्रजम्भन (सं० क्ली०) व्याघ्रध्वंस। (अथर्व ४।३।७)

व्याघ्रतरु (सं० पु०) रक्तैरण्ड, लाल रेंड़। (वैद्यकनि०)

व्याघ्रतल (सं० पु०) १ व्याघ्रनख या नखी नामक गन्ध द्रव्य। २ रक्तैरण्ड, लाल रेंड़।

व्याघ्रतला (सं० स्त्री०) व्याघ्रनख या नखी नामक गन्धद्रव्य, बगनहा।

व्याघ्रता (सं० स्त्री०) व्याघ्रका भाव या धर्म।

व्याघ्रत्व (सं० क्ली०) व्याघ्रका भाव या धर्म।

व्याघ्रदंष्ट्र (सं० पु०) एक प्रकारका गुल्म।

व्याघ्रदत्त (सं० पु०) व्यक्तिभेद। (भारत द्रोणपर्व)

व्याघ्रदल (सं० पु०) १ व्याघ्रनख या नखी नामक गन्धद्रव्य, बगनहा। २ रक्तैरण्ड, लाल रेंड़।

व्याघ्रदला (सं० स्त्री०) व्याघ्रदल देखो।

व्याघ्रनख (सं० क्ली०) व्याघ्रस्य नखमिव। १ नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। महाराष्ट्र तथा उत्कलमें इसे बाघनखा कहते हैं। पर्याय—व्याघ्रायुध, करज, चक्रकारक, नखाङ्क, नखी, नख्य, व्याघ्रनखी। (शब्दरत्ना०) गुण—तिक्तोष्ण, कषाय, वात और कफनाशक, कण्डू, कुष्ठ और व्रणनाशक, सुगन्ध (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे यह ग्रहणी, श्लेष्मा, रक्तज्वर और कुष्ठरोगनाशक तथा लघु, उष्ण, शुक्रवर्द्धक, वर्णकर, स्वादु और विषनाशक, अलक्ष्मी और मुखदौर्गन्ध्यनाशक, पाक और रसमें कटु माना गया है। (भावप्र०) २ कन्दविशेष। ३ नखक्षतविशेष। (पु०) व्याघ्रस्य नखमिव कण्टकं यस्य। ४ स्नूहीवृक्ष, थूहरका पेड़। ५ व्यालनख। (राजनि०) ६ बाघ या शेरका नाखून जो प्रायः बच्चोंके गलेमें उन्हें नजरसे बचानेके लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रनखक (सं० क्ली०) व्याघ्रनखमेव स्वार्थे कन्। १ व्याघ्रनख। २ नखक्षत, नाखूनके द्वारा लगी हुई चोट।

व्याघ्रनखी (सं० स्त्री०) नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। विशेष विवरण नख शब्दमें देखो।

व्याघ्रनायक (सं० पु०) व्याघ्रस्य नायक इव। शृगाल, गीदड़।

व्याघ्रपद् (सं० पु०) १ एक प्रकारका गुल्म। २ वशिष्ठके गोत्रके एक प्राचीन ऋषि। ये ऋग्वेद ९।९७।१६-१८ मन्त्रके द्रष्टा थे। ३ एक वैयाकरण। बोपदेवने इनका उल्लेख किया है। ४ एक धर्मशास्त्रकार। ५ सुन्दरेश्वर स्तोत्रके प्रणेता।

व्याघ्रपद (सं० पु०) वृक्षविशेष। (बृहत्संहिता ५४।८८१)

व्याघ्रपद्य (सं० पु०) वैयाघ्रपद्यका प्रामादिक पाठ। (छान्दोग्य उपनिषद् ५।१६।१)

व्याघ्रपराक्रम (सं० पु०) व्याघ्रस्य पराक्रमः। १ व्याघ्रका पराक्रम। (त्रि०) व्याघ्रस्य पराक्रम इव पराक्रमो यस्य। २ व्याघ्रके समान पराक्रमविशिष्ट।

व्याघ्रपाद् (सं० पु०) व्याघ्रस्य पाद इव ग्रन्थियुक्तमूलानि यस्य। (पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः। पा ५।४।१३८) इत्यलोपः। १ विकङ्कत या कंटाई नामक वृक्ष। २ मुनिविशेष। ३ वैयाकरणभेद। व्याघ्रपद् देखो। (त्रि०) ४ व्याघ्रतुल्य चरण।

व्याघ्रपाद (सं० पु०) व्याघ्रस्य पादा इव मूलानि यस्य। १ विकङ्कत या कंटाई नामक वृक्ष। २ विकण्टक, गर्जाहुल। (राजनि०) ३ मुनिविशेष। ४ धर्मशास्त्रके प्रणेता एक मुनि। इनके चरण व्याघ्रके समान थे। (भारत १३।१४।१०९)

व्याघ्रपादपी (सं० स्त्री०) विकण्टक, गर्जाहुल।

व्याघ्रपुच्छ (सं० पु०) व्याघ्रस्य पुच्छमिव सवृन्तदलमस्य। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। २ व्याघ्रका लांगुल, बाघकी पूछ।

व्याघ्रपुर (सं० क्ली०) नगरभेद।

व्याघ्रपुष्प (सं० पु०) नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य।

व्याघ्रपुच्छ (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि।

व्याघ्रप्रतीक (सं० त्रि०) १ व्याघ्रशरीर। २ व्याघ्रके समान। (अथर्व ४।२७)

व्याघ्रबल (सं० पु०) राजभेद। (कथासरित्सागर १२०।७३)

व्याघ्रभट (सं० पु०) १ योद्धाका नाम। (कथासरित्सागर १०।२१) २ एक राक्षसका नाम। (४७।२०)

व्याघ्रभूति (सं० पु०) १ वैयाकरणभेद। २ धर्मशास्त्रकारभेद।

व्याघ्रमुख (सं० पु०) व्याघ्रस्य मुखमिव मुखं यस्य। १ विड़ाल, बिल्ली। २ पुराणानुसार एक पर्व्वत। (मार्क०पु० ५८।११) ३ वृहत्संहिताके अनुसार एक देशका नाम। ४ इस देशका निवासी। (वृ०स० १४।५) (क्ली०) ५ बाघका मुख।

व्याघ्रराज (सं० पु०) राजभेद।

व्याघ्ररूपा (सं० स्त्री०) वन्ध्या कर्कटी, बन ककोड़ा।

व्याघ्रलोम (सं० क्ली०) व्याघ्रस्य लोम। १ व्याघ्रका लोम। २ श्मश्रु, ऊपरी ओंठ परके बाल, मूंछ।

व्याघ्रवक्त्र (सं० पु०) व्याघ्रस्य वक्त्रमिव वक्त्रं यस्य १ बीड़ाल, बिल्ली। २ शिव। (हरिवंश १४।३ श्लो०) (क्ली०) ३ बाघका मुख। (त्रि०) ४ बाघके समान मुखवाला।

व्याघ्रश्वन् (सं० पु०) कुक्कुरभेद, एक प्रकारका कुत्ता।

व्याघ्रसेवक (सं० पु०) शृगाल, गीदड़।

व्याघ्रहस्त (सं० क्ली०) रक्त एरण्ड, लाल रेंड़।

व्याघ्राक्ष (सं० त्रि०) व्याघ्रस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्य, षच समासान्त। १ बाघके समान आंखवाला। (पु०) २ बाघकी आंख। ३ असुरविशेष। (हरिवंश १२८६८ श्लो०) ४ स्कन्दानुचर देवताभेद।

व्याघ्राजिन (सं० पु०) मुनिविशेष। (पा ५।३।८२)

व्याघ्राट (सं० पु०) व्याघ्र इव अटतीति अट गतौ पचाद्यच्। भरद्वाज पक्षी, लवा नामक चिड़िया। लवा देखो।

व्याघ्राण (सं० क्ली०) विशेषरूपसे आघ्राण।

व्याघ्रादनी (सं० स्त्री०) निसोथ।

व्याघ्रायुध (सं० क्ली०) व्याघ्रस्य आयुध। १ व्याघ्रनख, बाघका नाखून। नाखून ही इसका अस्त्र है। २ नख नामक गन्धद्रव्य।

व्याघ्रास्य (सं० पु०) व्याघ्रस्य आस्यमिव आस्यमस्य। १ बिड़ाल, बिल्ली। २ बौद्ध-देवताभेद। (क्ली०) ३ व्याघ्रमुख, बाघका मुंह। (त्रि०) ४ बाघके समान मुखवाला।

व्याघ्रिणी (सं० स्त्री०) बौद्धोंकी एक देवी।

व्याघ्री (सं० स्त्री०) व्याघ्र ङीष्। १ कण्टकारी, छोटी कंटाई। २ वराटिकाभेद, एक प्रकारकी कौड़ी। ३ नखी नामक गन्धद्रव्य। ४ व्याघ्रपत्नी, बाघिन।

व्याघ्रीयुग (सं० क्ली०) वृहती और कण्टकारी इन दोनोंका समूह।

व्याघ्रेश्वर (सं० क्ली०) शिवलिङ्गविशेष।

व्याघ्र्य (सं० त्रि०) व्याघ्रवत्, बाघके समान। (अथर्व ११।२।४)

व्याङ्गि (सं० पु०) व्यङ्गका गोत्रापत्य।

व्याचिख्यासु (सं० त्रि०) व्याख्यातुमिच्छुः वि-आ-ख्या-सन्, सनन्तादुप्रत्ययः। व्याख्या करनेमें इच्छुक।

व्याज (सं० पु०) व्यजति यथार्थव्यवहारादपगच्छती त्यनेनेति वि-अज-घञ्। १ कपट, छल, फरेब। २ बाधा, विघ्न, खलल। ३ विलम्ब, देर। व्याज देखो।

व्याजनिन्दा (सं० स्त्री०) व्याजेन निन्दा। १ वह निन्दा जो व्याज अर्थात् छल या कपटसे की जाय, ऐसी निन्दा जो ऊपरसे देखनेमें स्पष्ट निन्दा न जान पड़े। २ एक प्रकारका शब्दालङ्कार जिसमें इस प्रकार निन्दा की जाती है।

व्याजभानुजित् (सं० पु०) राजभेद।

व्याजमय (सं० त्रि०) व्याज स्वरूपे मयट्। व्याजस्वरूप, कपटसे भरा हुआ।

व्याजस्तुति (सं० स्त्री०) व्याजेन स्तुतिः। १ वह स्तुति जो व्याज अथवा किसी बहानेसे की जाय और ऊपरसे देखनेमें स्तुति न जान पड़े। २ एक प्रकारका शब्दालङ्कार जिसमें इस प्रकार स्तुति की जाती है। इसमें जो स्तुति की जाती है, वह ऊपरसे देखनेमें निन्दा-सी जान पड़ती है।

व्याजिह्म (सं० त्रि०) बड़ा कुटिल, वक्र।

व्याजी (सं० स्त्री०) बिक्रीमें माप या तौलके ऊपर कुछ थोड़ा-सा और देना, घाल, घलुवा।

व्याजीकरण (सं० क्ली०) वञ्चनीकरण, छलना करना।

व्याजोक्ति (सं० स्त्री०) व्याजेन उक्तिः। १ वह कथन जिसमें किसी प्रकारका छल हो, कपट भरी बात। २ एक प्रकारका अलंकार। इसमें किसी स्पष्ट या प्रकट बातको छिपानेके लिये किसी प्रकारका बहाना किया जाता है। छेकापह्नुतिसे इसमें यह अंतर है, कि छेकापह्नुतिमें निषेधपूर्वक बात छिपाई जाती है और इसमें बिना निषेध किये ही छिपाई जाती है

(साहित्यद० १०।७४६)

व्याड़ (सं० पु०) १ सर्प, सांप। २ व्याघ्र, शेर। ३ इन्द्र। (त्रि०) ४ वञ्चक धूर्त्त।

व्याड़रूव (सं० क्ली०) रक्तैरण्ड, लाल रेंड़।

व्याड़ायुध (सं० क्ली०) व्याड़स्य व्याघ्रस्य आयुधं नखमिव। नख नामक गन्धद्रव्य।

व्याड़ि (सं० पु०) १ कोष और व्याकरणकारक मुनिविशेष। पा १।२।६४ सूत्रके ४५ वार्त्तिकमें व्याड़िका उल्लेख मिलता है। २ कविभेद। ३ प्रातिशाख्यकारिका और संग्रह नामक ग्रन्थके प्रणेता। नागोजी भट्टने इनका नामोल्लेख किया है। पर्याय--विन्ध्यवासी, नन्दिनीतनय, विन्ध्यस्थ नन्दिनीसुत। (त्रिका०)

व्याड़ी (सं० स्त्री०) व्याड़ि-ष्यङ्-ततश्चाप्। व्याड़ीकी स्त्री। (पा ४।१।८०)

व्यात्त (सं० त्रि०) वि-आ-दा-क्त। १ प्रसारित। २ विस्तृत, प्रशस्त, लम्बा-चौड़ा।

व्यात्युक्षी (सं० स्त्री०) व्यतिहारेण उक्षणं वि आ-अति-उक्ष (कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियां। पा ३।३।४३) इति णच् ततः (णचः स्त्रियामञ्। पा ५।४।१४) इति अञ् (टिड्ढाणञिति। पा ४।१।१५) इति ङीप्। जल-क्रीड़ा।

व्यादान (सं० क्ली०) वि-आ-दा-ल्युट्। १ विस्तार, फैलाव। २ उद्घाटन, खोलना।

व्यादिश (सं० पु०) विशेषेणादिशति स्व स्व कर्मणि नियोजयति जगत् वि-आ-दिश-क। विष्णु।

व्यादीर्घ (सं० त्रि०) अति दीर्घ, बहुत लम्बा।

व्यादीर्ण (सं० त्रि०) विशेषरूपसे चिरा हुआ।

व्यादीर्णास्य (सं० पु०) सिंह।

व्यादेश (सं० पु०) विशेष आदेश।

व्याध (सं० पु०) विध्यति मृगादीन् व्यध (श्याद्व्यधेति। पा ३।१।४१) इति ण। १ वह जो जंगली वस्तुओं आदिको मार कर अपना निर्वाह करता हो, शिकारी। पर्याय—मृगवधाजीव, मृगयु, लुब्धक, मृगावित्, द्रोहाट, मृगजीवन, बलपांशुन। (शब्दरत्ना०) २ प्राचीन कालकी एक जाति। यह जंगली पशुओंको मार कर अपनी जीविका निर्वाह करती थी। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके अनुसार इसकी उत्पत्ति सर्वस्वी माता और क्षत्रिय पितासे है। ३ प्राचीन कालकी शवर नामक जाति। (त्रि०) ४ दुष्ट, पाजी, लुच्चा।

व्याधक (सं० पु०) व्याध-स्वार्थे कन्। व्याध देखो।

व्याधभीत (सं० पु०) व्याधाद्भीतः। १ मृग, हिरन। (त्रि०) २ व्याधसे भीत।

व्याधाम (सं० पु०) वज्र। (हेम)

व्याधि (सं० स्त्री०) विविधा आधयोऽस्मात् यद्वा वि-आ-धा (उपसर्गे घोः किः। पा ३।३।९२) इति कि। रोग, पीड़ा बीमारी।

पुरुषमें दुःखका योग होनेसे उसे व्याधि कहते हैं। पुरुष जो दुःख अनुभव करता है, वही व्याधिपदवाच्य है। यह व्याधि दो तरहकी है—शारीर और मानस। वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषमता निबन्धन शारीरव्याधि तथा काम, क्रोध, लोभ और मोहादि निबन्धन मानसव्याधि होती है।

शरीर और मन यह दोनों ही व्याधिसमूहका और आरोग्यका आश्रयस्थान है। वायु, पित्त और कफ ये तीन शारीर दोष तथा रजः और तमः ये दो मानस दोष कहे गये हैं। उक्त वायु पित्तादि दोष कुपित हो कर शारीरिक व्याधि तथा रजः और तमोदोषसे मानसिक व्याधि उत्पन्न होती हैं। बलि, होम और स्वस्त्ययनादि दैव आश्रय तथा संशोधन और संशमनादि युक्ति आश्रय कर इन दोनों द्वारा वातादि दोषकी शान्ति तथा ज्ञान, विज्ञान, धैर्य्य, स्मृति और समाधि द्वारा मानस व्याधिकी शान्ति होती है। (अग्निपुराण २०० अ०)

२ कुड़ या कुट नामकी ओषधि। ३ आफत, झंझट। ४ साहित्यमें एक संचारी भाव, विरह काम आदिके कारण शरीरमें किसी प्रकारका रोग होना।

व्याधिकाल (सं० पु०) रोगवृद्धि और हानिका हेतुभूत-काल। (माधव नि०)

व्याधिखड्ग (सं० पु०) नख नामक गन्धद्रव्य।

व्याधिघात (सं० पु०) व्याधेर्घातो यस्मात्। स्थूल आरग्वधवृक्ष, बड़ा अमलतासका पेड़। (राजनि०)

व्याधिघ्न (सं० पु०) व्याधिं हन्ति व्याध-हन्-टक्। १ आरग्वध, अमलतास। (त्रि०) २ व्याधिनाशक, जिससे किसी प्रकारकी व्याधिका नाश होता हो।

व्याधिजित् (सं० पु०) व्याधिं जयति जि-क्विप्-तुक् च। १ आरग्वध, अमलतास। (त्रि०) २ व्याधिजय-कारी, व्याधिको हरण करनेवाला।

व्याधित (सं० त्रि०) व्याधिः संजातोऽस्येति तारकादि-त्वादितच्। व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि हुई हो, रोगी, बीमारी।

व्याधिन् (सं० त्रि०) व्याध णिनि। १ व्याधियुक्त, जिसे किसी प्रकारकी व्याधि हुई हो। व्याध-णिन्। २ शत्रुवेधनशील, दुश्मनको मारनेवाला।

(शुक्लयजुः १६।१८)

व्याधिनाशन (सं० पु०) १ तीव-चीनी। (त्रि०) २ रोगनाशक।

व्याधिरिपु (सं० पु०) व्याधि एव रिपुः। १ व्याधिरूप शत्रु। २ अमलतास। ३ एक प्रकारका अमलतास जिसे कर्णिकार कहते हैं।

व्याधिविपरीत (सं० पु०) व्याधेर्विपरीतः। ऐसी औषध जो व्याधिके विपरीत गुण करनेवाली हो। जैसे—दस्त लानेके समय कब्जियत करनेवाली दवा।

(माधवनि०)

व्याधिस्थान (सं० क्ली०) शरीर, बदन, जिस्म।

व्याधिहन्तृ (सं० पु०) व्याधेर्हन्ता। १ वाराही कंद, शूकरकंद, गेंठी। (राजनि०) २ रोगनाशक, जिससे रोगका नाश हो।

व्याधिहर (सं० त्रि०) व्याधि-हृ-अप्। व्याधिनाशक, व्याधिको दूर करनेवाला।

व्याध्री (सं० स्त्री०) असुख, अशान्ति।

(अथर्व ७।११५।२) व्याधि देखो।

व्याधुत (सं० त्रि०) वि-आ-धु-क्त। कम्पित, काँपा हुआ। (शब्दरत्ना०)

व्याधूत (सं० पु०) वि-आ धू क्त। कम्पित, काँपा हुआ।

व्याध्य (सं० त्रि०) १ व्याध-सम्पर्कीय, व्याधिका। (पु०) २ शिव।

व्याडमल (सं० पु०) दामोदरकृत वैद्यक ग्रन्थ।

व्यान (सं० पु०) व्यानिति सर्वशरीरं व्याप्नोतीति वि-आ-अन-अच्। शरीरमें रहनेवाली पाँच वायुओंमें-से एक वायु। यह सारे शरीरमें संचार करनेवाली मानी जाती है। कहते हैं, कि इसीके द्वारा शरीरकी सब क्रियाएं होती हैं; सारे शरीरमें रस पहुंचता है, पसीना बहता है और खून चलता है, आदमी उठता, बैठता और चलता फिरता है और आँखें खोलता तथा बंद करता है। भावप्रकाशके मतसे जब यह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीरमें एक न एक रोग हो जाता है। (भावप्र०)

व्यानदा (सं० स्त्री०) व्यानं ददातीति दा-क, स्त्रियां टाप्। वह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है।

(शुक्लयजु० १७।१५)

व्यानशि (सं० त्रि०) व्यापनशील, व्यापक।

(ऋक् ३।५०।२)

व्यापक (सं० त्रि०) विशेषेणाप्नोति वि-आप-ण्वुल्। १ जो बहुत दूर तक व्याप्त हो, चारों ओर फैला हुआ। २ न्यायोक्तसाधिकरण वृत्त्यभावाप्रतियोगिपदार्थः, तन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगी। अत्यन्ताभावका जो प्रतियोगी अर्थात् अभाव है, वही व्यापक है। ३ आच्छादक, जो ऊपर या चारों ओरसे घेरे हुए हों।

व्यापकन्यास (सं० पु०) पूजाङ्गन्यासभेद। जिस देवताकी पूजा करनी होती है, उस देवताके मूलमन्त्रमें सिरसे पैर तक न्यास करनेका नाम व्यापकन्यास है।

व्यापत्ति (सं० स्त्री०) वि-आप-क्ति। मृत्यु, मौत।

व्यापद् (सं० स्त्री०) वि-आ पद-क्विप्। मृत्यु, मौत।

व्यापन (सं० क्ली०) वि-आप-ल्युट्। १ व्याप्ति, विस्तार,

फैलाव। २ आच्छादन करना, चारों ओरसे या ऊपरसे घेरना या ढकना।

व्यापनी (हिं० क्रि०) किसी चीजके अंदर फैलाना, व्याप्त होना।

व्यापनीय (सं० त्रि०) वि-आप-अनीयर्। १ व्यापन करनेके योग्य। २ आच्छादनीय।

व्यापन्न (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-क्त। १ मृत, मरा हुआ। २ विपन्न, जो किसी प्रकारकी विपत्तिमें पड़ा हुआ हो, आफतमें फंसा हुआ।

व्यापाद (सं० पु०) वि-आ-पद्-क्त। १ द्रोहचिन्तन, मनमें दूसरेके अपकारकी भावना करना, किसीकी बुराई सोचना। २ मारण, विनाश, वध। ३ नष्ट, बरबाद।

व्यापादक (सं० त्रि०) व्यापादयतीति वि आ पद णिच् ण्वुल्। १ जो दूसरोंकी बुराई करनेकी इच्छा रखता हो। २ जो हत्या या विनाश करता हो।

व्यापादन (सं० क्ली०) वि-आ-पद्-णिच्-ल्युट्। १ मार डालना, वध, हत्या। २ परानिष्ट चिन्तन, किसीको कष्ट पहुंचानेका उपाय सोचना। ३ नष्ट करना, बरबाद करना। (अमरटीकामें रामाश्रम)

व्यापादनीय (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-अनीयर्। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करने लायक।

व्यापादयितव्य (सं० त्रि०) वि-आ-पद्-णिच्-तव्य। व्यापादनयोग्य, मार डालने या नष्ट करनेलायक।

व्यापादित (सं० त्रि०) वि-आ पद्-णिच्-क्त। मारित, मारा हुआ।

व्यापार (सं० पु०) वि-आ पृ-घञ्। १ कर्म, कार्य, काम। २ साहाय्य, मदद। ३ नैयायिक मतसे करण-जन्य क्रियाजनक पदार्थ। जो पदार्थ करणजन्य क्रियाका जनक होता है, वही व्यापार है। विषयके साथ इन्द्रियका जो संयोग होता है, उसीका नाम व्यापार है। यह व्यापार छः प्रकारका है। ४ व्यवसाय, पदार्थों अथवा धनके बदलेमें पदार्थ लेना और देना।

व्यापारक (सं० पु०) व्यापार स्वार्थे कन्। व्यापार देखो।

"नियतविषयाभिमानव्यापारकोऽहङ्कारः स्वीकार्यः"

(कुसुमाञ्जलि)

अहंकारका कार्य ही नियत विषयाभिमान है।

व्यापारण (सं० क्ली०) १ आदेश, आज्ञा देना। २ नियोग, किसी काममें नियुक्त करना। (पा ८।२।१०४)

व्यापारवत्ता (सं० स्त्री०) व्यापारवतो भावः व्यापारवत् तल्-टाप्। व्यापारविशिष्टका भाव या धर्म, व्यापार।

व्यापारवत् (सं० त्रि०) व्यापारो विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। व्यापारविशिष्ट, व्यापारयुक्त।

व्यापारिन् (सं० त्रि०) व्यापारोऽस्त्या-स्तीति व्यापार-इनि। व्यापारी देखो।

व्यापारी (सं० त्रि०) १ जो किसी प्रकारका व्यापार करता हो। २ व्यवसाय या रोजगार करनेवाला, व्यवसायी, रोजगारी। ३ व्यापार-सम्बन्धी, व्यापारका।

व्यापित्व (सं० क्ली०) व्यापिनो भावः व्यापिन् त्व। व्यापीका भाव या धर्म, व्यापकका भाव या धर्म।

व्यापिन् (सं० पु०) व्याप्नोति सर्व-मिति वि-आप-णिनि। १ विष्णु। (भारत १३।१४९।६३) विष्णु चराचर सब जगह व्याप्त हैं इसलिये वे व्यापी कहलाते हैं। (त्रि०) २ व्यापक, जो व्याप्त हो।

व्यापीत (सं० त्रि०) सम्पूर्णरूपसे पीत।

व्यापृत (सं० पु०) वि-आ-पृ-क्त। १ कर्मसचिव, मंत्री, राजकर्मचारी। (त्रि०) २ व्यापारयुक्त, कार्यरत।

व्यापृति (सं० स्त्री०) वि-आ-पृ-क्तिन्। व्यापार।

व्याप्त (सं० त्रि०) वि आप-क्त। १ सम्पूर्ण। पर्याय—पूर्ण, आचित, छन्न, पूरित, भरित, निचित। २ ख्यात, मशहूर। ३ समाक्रांत। ४ स्थापित। ५ व्याप्तियुक्त। ६ वेष्टित, परिपूरित। ७ विस्तारित।

व्याप्ति (सं० स्त्री०) वि-आप-क्तिन्। १ व्यापन, चारों ओर या सब जगह फैला हुआ होना। २ लम्भन। हेमचन्द्र अभिधानमें लम्भकी जगह लम्भन ऐसा अर्थ देखनेमें आता है। ३ आठ प्रकारके ऐश्वर्यों मेंसे एक प्रकारका ऐश्वर्य।

अणिमा, लघिमा, व्याप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशिता, वशित्व और कामावसायिता यही आठ प्रकारके ऐश्वर्य हैं।

४ न्यायके अनुसार किसी एक पदार्थमें दूसरे पदार्थका पूर्णरूपसे मिला या फैला हुआ होना, एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अथवा उसके साथ सदा पाया जाना।

साध्यविशिष्टके अन्य विषयमें जो असम्बन्ध अर्थात् अवृत्तित्व हैं, वही व्याप्ति है। इसका तात्पर्य्य इस प्रकार है, 'वह्निमान् धूमात्' धूम हेतुक वह्नियुक्त, यहां वह्नि साध्य और महानसादि साध्यवान् है, चूल्हे आदिमें वह साध्य वह्नि है, इस कारण यह साध्यवान् है, तदन्य अर्थात् साध्यवानके अन्य जलहृदादि हैं; जलहृद आदिमें साध्यरूपवह्नि नहीं है। अतएव वह तदन्य है, उसमें अर्थात् जलहृदादिमें धूमका अवृत्तित्व असम्बन्ध है, जलहृद आदिमें धूमका कोई भी सम्बन्ध नहीं रह सकता, वही व्याप्ति है। अथवा हेतुमन्निष्ठ विरहका जो अप्रतियोगी साध्य है उसके साथ हेतुका जो ऐकाधिकरण्य है, उसका नाम व्याप्ति है।

नव्यन्यायमें व्याप्तिके लक्षण आलोचित हुए हैं।

व्याप्तिकर्म्मन् (सं० पु०) व्याप्तिविशिष्टं कर्म यस्य। व्यापनक्रियाविशिष्ट, वह जिसकी क्रिया तमाम व्याप्त हो। (वेदनि० २।१८ भ०)

व्याप्तिज्ञान (सं० पु०) न्यायके अनुसार वह ज्ञान जो साध्यको देख कर साध्यवानके अस्तित्वके सम्बन्धमें अथवा साध्यवानको देख कर साध्यके अस्तित्वके सम्बन्धमें होता है।

व्याप्तित्व (सं० क्ली०) व्याप्तिमतो भावः व्याप्तिमत् भावे त्व। व्याप्तिमत्का भाव या धर्म, व्याप्ति।

व्याप्तिमत् (सं० त्रि०) व्याप्ति विद्यतेऽस्य व्याप्तिमतुप्। व्याप्तिविशिष्ट, व्याप्तियुक्त।

व्याप्य (सं० क्ली०) व्याप्यते इति वि आप-ण्यत्। १ वह जिसके द्वारा कोई काम हो, साधन, हेतु। "व्याप्यं लिङ्गञ्च साधनं" (त्रिका०) व्याप्य द्वारा व्यापककी अनुमिति हुआ करती है। नैयायिक मतसे व्याप्तिके अनुयोगीका नाम व्याप्य है। २ व्याप्ति देखो। ३ कुट या कुड़ नामक ओषधि। (त्रि०) ४ व्यापनीय, व्याप्त करनेके योग्य।

व्याप्यवृत्ति (सं० त्रि०) अल्पदेशवृत्ति, जो अल्प पदार्थमें हो।

व्याप्रियमाण (सं० त्रि०) वि-आ पृ-शानच्। व्यापृत, नियुक्त।

व्याम (सं० पु०) विशेषेण अम्यतेऽनेनेति अम गतौ घञ्। परिमाणविशेष, लम्बाईकी एक नाप। दोनों हाथोंको जहां तक हो सके, दोनों बगलमें फैलाने पर एक हाथकी उंगलियोंके सिरेसे दूसरे हाथकी उंगलियोंके सिरे तक जितनी दूरी होती है वह व्याम कहलाती है।

व्यामिश्र (सं० त्रि०) वि आ-मिश्र-घञ्। संमिलित, दो प्रकारके पदार्थों या कार्योंको एकमें मिलानेकी क्रिया।

व्यामिश्रव्यूह (सं० पु०) मिला जुला व्यूह, वह व्यूह जिसमें पैदलके अतिरिक्त हाथी, घोड़े और रथ भी सम्मिलित हों। कौटिल्यने इसके दो भेद कहे हैं—मध्यभेदी और अन्तभेदी। मध्यभेदी वह है जिसके अन्तमें हाथी, इधर उधर घोड़े, मुख्य भाग या केन्द्रमें रथ तथा उरस्यमें हाथी और रथ हों। इससे भिन्न अन्तभेदी है।

व्यामिश्रासिद्धि (सं० स्त्री०) शत्रु और मित्र दोनोंकी स्थितिका अपने अनुकूल होना।

व्यामोह (सं० पु०) वि-आ-मुह-घञ्। मोह, अज्ञान।

व्याम्य (सं० त्रि०) १ विरुद्धगमन या नियम लङ्घनहेतु वाधित। २ त्रिविधरूपसे पीड़ित। (अथर्व ४।१६।८ भाष्य)

व्यायत (सं० त्रि०) विशेषणायतं। १ व्यापृत, दैर्घ्य। २ दृढ़। ३ अतिशय। ४ दूर। ५ व्याम।

व्यायतन (सं० क्ली०) आयतनविशिष्ट।

व्यायाम (सं० पु०) वि-आ-यम-घञ्। १ पौरुष। २ व्यापार, काम। ३ श्रम, मेहनत। ४ विषम। ५ व्याम। ६ दुर्गसञ्चार। ७ मल्लक्रीड़ा, कसरत, वह क्रिया जिससे शारीरिक परिश्रम होता है।

मनकी अनुकूल और देहकी बलवर्द्धक जो शारीरिक चेष्टा वा क्रिया है उसीको व्यायाम कहते हैं। यह व्यायाम उपयुक्त परिमाणमें करना होगा। उपयुक्त रूपमें व्यायाम करनेसे शरीरकी जड़ता दूर होती और बल धीरे धीरे बढ़ने लगता है। व्यायाम इस हिसाबसे करना चाहिये जिससे शरीर अत्यन्त क्लान्त न हो जाय। व्यायाम द्वारा देह लघु, कर्ममें सामर्थ्य, शरीर स्थिर

अर्थात् यौवनभावमें अवस्थान, क्लेशसहिष्णुता, वातादि-दोषको ह्रासवृद्धिका नाश और अग्निकी वृद्धि होती है।

जो नियमितरूपसे व्यायाम करते हैं, उनको अग्निकी वृद्धि होती है, अतएव विरुद्ध, अविरुद्ध, विदग्ध, अविदग्ध सभी प्रकारके खाद्य परिमित व्यायामशील व्यक्ति आसानीसे पचा लेता है। इससे अग्नि बढ़ती है, सुतरां उनके वातादिदोष कुपित नहीं हो सकते। अग्निवृद्धि होनेके कारण देहानुकूल व्यायाम द्वारा वातादिदोषको वृद्धि न हो कर वरं उनको समता ही होती है।

अतिशय व्यायाम शरीरके लिये हानिकारक है। इससे शरीरको ग्लानि, मनोग्लानि, धातुक्षय, तृष्णा, रक्तपित्त, श्वास, कास, ज्वर, वमि आदि उपद्रव होते अतएव यह अत्यन्त मात्रामें न करना चाहिये। हाथी जिस प्रकार अयथा वलसे सिंहको आक्रमण करने पर आप ही विनष्ट होता है उसी प्रकार अति मात्रामें व्यायामकारी व्यक्ति भो स्वयं विनष्ट होता है।

व्यायाम सुवह शाम करना चाहिये। दूसरे समयमें करना उचित नहीं, अन्य समय करनेसे शरीरका अपकार होता है।

८ युद्धकी तैयारी। ६ सेनाकी कवायत आदि। (चरकसूत्र स्थान० ७ अ०)

व्यायाममत् (सं० त्रि०) व्यायामो विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। व्यायामयुक्त, व्यायामविशिष्ट।

व्यायामयुद्ध (सं० पु०) आमने सामनेकी लड़ाई। चाणक्यका मत है, कि व्यायामयुद्ध अर्थात् आमने सामनेकी लड़ाईमें दोनों ही पक्षोंको बहुत हानि पहुंचती है। जो राजा जीत भी जाता है, वह भी इतना कमजोर हो जाता है, कि उसको एक प्रकारसे पराजित ही समझना चाहिए।

व्यायामिक (सं० त्रि०) व्यायामसम्बन्धी। "व्यायामिकीनां च विद्यानां ज्ञानम्।" यह चौसठ कलाविद्यामें एक है। भागवत १०।४५।३६ श्लोककी टीकामें श्रीधरस्वामीने इसका उल्लेख किया है। किसी किसी ग्रन्थमें 'व्यायामिकी' जगह "वैतालिकी" पाठ देखा जाता है।

व्यायामिन् (सं० त्रि०) व्यायाम अस्त्यर्थे इनि। १ व्यायामविशिष्ट, जो व्यायाम करता हो, कसरत करने वाला, कसरती। २ श्रमशील, जो बहुत परिश्रम करता हो, मेहनती।

व्याशुक (सं० त्रि०) तेज भागनेवाला। (काठक ३१।३)

व्यायुध (सं० त्रि०) आयुधहीन, निःशस्त्र। (भारत द्रोण०)

व्यायोग (सं० पु०) वि-आ युज-घञ्। साहित्यमें दश प्रकारके रूपकोंमेंसे एक प्रकारका रूपक या दृश्य काव्य। इसको कथावस्तु किसी ऐसे ग्रन्थसे ली जानी चाहिये जिससे सब लोग भली भांति परिचित हों। इसके पात्रोंमें स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक होते हैं। इसमें गर्भ, विमर्ष और सन्धि नहीं होती। इसमें एक ही अंक रहता है और कौशिकी वृत्तिका व्यवहार होता है। इसका नायक कोई प्रसिद्ध राजर्षि, दिव्य और धीरोद्धत होना चाहिये। इसमें शृंगार, हास्य और शान्तके सिवा और सब रसोंका वर्णन होता है।

व्यायोजिम (सं० पु०) स्थूलानुसम, विषमपालि। (सुश्रुत १।१६ अ०)

व्यारोष (सं० पु०) आक्रोश, गुस्सा।

व्याल (सं० पु०) विशेषेण आसमन्तात् अलतीति अल-पर्याप्तौ अच्। १ सर्प, सांप। २ दुष्ट गज, पाजी हाथी। ३ व्याघ्र, शेर। ४ वह बाघ जो शिकार करनेके लिये सधाया गया हो ५ राजा। ६ दण्डक छन्दका एक भेद। ७ कोई हिंसक जन्तु। ८ विष्णु। (त्रि) ६ शठ, धूर्त्त, क्रूर। १० अपकारी, दूसरोंका अपकार करनेवाला।

व्यालक (सं० पु०) व्याल एव स्वार्थे कन्। १ दुष्टगज, पाजी हाथी। पर्याय—गम्भीरवेदी, अङ्कुशदुर्द्धर, चालक। (त्रिका०) २ श्वापद, हिंस्रजन्तु। ३ व्याल देखो।

व्यालनख (सं० पु०) नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। (राजनि०)

व्यालखड्ग (सं० स्त्री०) व्यालस्येव गन्धो यस्याः। नाकुली नामक कंद।

व्यालग्राह (सं० पु०) व्यालं गृह्णातीति व्याल-ग्रह-अण्। व्यालग्राही, वह जो साँपोंको पकड़ता हो, सँपेरा।

व्यालग्राहिन् (सं० पु०) व्यालं गृह्णातीति ग्रह-णिनि। वह जो साँप पकड़नेका काम करता हो, सँपेरा। पर्याय—

अहितुण्डिक, जांगुलि, आहितुण्डिक, व्यालग्राह, गारुड़िक, विषवैद्य।

व्यालग्रीव (सं० पु०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देशका नाम। २ इस देशका निवासी। (वृ० सं० १४।६)

व्यालजिह्वा (सं० स्त्री०) व्यालस्य जिह्वेव आकृतिर्यस्याः। १ महासमङ्गा, कंगही या कंघो नामक पौधा। २ व्यालकी जिह्वा, साँप या हिंस्र जन्तुकी जीभ।

व्यालता (सं० स्त्री०) व्यालका भाव या धर्म, व्यालत्व।

व्यालत्व (सं० क्ली०) व्यालका भाव या धर्म, व्यालता।

व्यालदंष्ट्र (सं० पु०) व्यालस्य दंष्ट्रेव आकृतिर्यस्य। गोक्षुरक्षुप, गोखरूका पौधा।

व्यालद्रेक्काण (सं० पु०) सर्पद्रेक्काण। व्यालवर्ग देखो।

व्यालनख (सं० पु०) व्यालस्य नख इव आकृतिर्यस्य। नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। इसका गुण—तिक्त, उष्ण, कषाय, कफ, वात, कुष्ठ, कण्डू और व्रणनाशक, वर्णवर्द्धक तथा सौगन्धप्रद।

व्यालपत्र (सं० पु०) एर्व्वारुकलता, खेतपापड़ा।

व्यालपत्रा (सं० स्त्री०) व्यालानि तीक्ष्णानि पत्राणि यस्याः। एर्व्वारु, खेतपापड़ा।

व्यालपाणिज (सं० पु०) नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। (राजनि०)

व्यालप्रहरण (सं० पु०) नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। (वैद्यनि०)

व्यालवल (सं० पु०) नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य।

व्यालमृग (सं० पु०) व्यालो हिंस्रो मृगः पशुः। बाघ, शेर।

व्यालम्ब (सं० पु०) विशेषेण आलम्बते वि-आ-लम्ब-अच्। १ रक्तैरण्ड, लाल रेंड। (त्रि०) २ लम्बमान।

व्यालम्बिन् (सं० त्रि०) व्यालम्बते वि-आ लम्ब इनि। व्यालम्बयुक्त, विलम्बित।

व्यालवर्ग (सं० पु०) व्यालद्रेक्काण। कर्कट और वृश्चिकका प्रथम, द्वितीय, यहां दो दो द्रेक्काण तथा मीनका तृतीय द्रेक्काण, व्यालद्रेक्काण कहलाता है।

व्यालसूदन (सं० पु०) गरुड़।

व्यालायुध (सं० पु० क्ली०) व्यालस्य आयुधं नख इव आकृतिर्यस्य। १ नख या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। (अमरटीका मथुरेश) २ व्याघ्रनख, बाघका नाखून।

व्यालि (सं० पु०) व्याड़िः डस्य लः। व्याड़ि नामक एक प्राचीन ऋषि। इन्होंने एक व्याकरण बनाया था।

व्यालिक (सं० त्रि०) व्यालेन चरति व्याल (गर्गादिभ्यष्ठन्। पा ४।४।१०) इति ठन्। जो साँपोंको पकड़ कर अपनी जीविका चलाता हो, सँपेरा।

व्यालीढ़ (सं० क्ली०) साँपके काटनेका एक प्रकार, साँपका वह काटना जिसमें केवल एक या दो दाँत लगे हों और घावमेंसे खून न बहा हो।

व्यालुप्त (सं० क्ली०) साँपके काटनेका एक प्रकार, साँपका वह काटना जिसमें दो दाँत भरपूर बैठे हों और घावमेंसे खून भी निकला हो।

व्यालोल (सं० त्रि०) ईषत् कम्पित।

व्यावक्रोशी (सं० स्त्री०) वि-आ अव-क्रुश (कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियां। पा ३।३।४३) इति णच्, ततः (णचः स्त्रियामञ्। पा ५।४।१४) इति स्वार्थे अञ्, (न कर्मव्यतिहारे। पा ७।३।६) इति एडप्रतिषेधः, स्त्रियां ङीप्। परस्पर आक्रोशन, आपसमें क्रोध करना। (भरत)

व्यावभासी (सं० स्त्री०) वि-आ-अव भास-णच्, स्वार्थे अञ्, ङीप्। व्यावक्रोशी, आपसमें क्रोध करनेवाली।

व्यावर्ग (सं० पु०) विभाग करना, हिस्सा लगाना।

व्यावर्त्त (सं० पु०) वि-आ-वृत-अच्। १ नाभिकण्टक, आगेकी ओर निकली हुई नाभि। २ चक्रमर्द, चकवड़।

व्यावर्त्तक (सं० त्रि०) व्यावर्त्तयतीति वि-आ-वृत-णिच्-ण्वुल्। व्यावर्त्तनकारी, पीछेकी ओर लौटानेवाला।

व्यावर्त्तन (सं० क्ली०) वि-आ-वृत-णिच्-ल्युट्। १ परांमुखीकरण, जो परांमुख किया गया हो। २ पीछेकी ओर लौटाया या मोड़ा हुआ।

व्यावर्त्तित (सं० त्रि०) वि-आ-वृत-णिच्-क्त। पराङ्मुखी कृत, जो पराङ्मुख किया गया हो।

व्यावर्त्त्य (सं० त्रि०) व्यवर्त्तनके योग्य, त्यागके लायक।

व्यावहारिक (सं० त्रि०) व्यवहार-ख (विनयादिभ्यष्ठक्।

पा ५।४।३४) इति स्वार्थे ठक्। १ व्यवहार। व्यवहार-मित्याह व्यवहार-ठक् (स्वागतादीनाञ्च। पा ७।३।७) इति वृद्धिनिषेधः ऐचागमश्च न स्यात्। २ जो व्यवहार शास्त्रके अनुसार अभियोगोंका विचार करता हो, विचारक। ३ व्यवहार-सम्बन्धी। ४ धर्माधिकरण-सम्बन्धी। ५ राजाका वह अमात्य या मन्त्री जिसके अधिकारमें भीतरी और बाहरी सब तरहके काम हों।

व्यावहारिक ऋण (सं० पु०) वह ऋण जो किसी कारबारके सम्बन्धमें लिया गया हो।

व्यावहारिन् (सं० त्रि०) व्यवहारविशिष्ट, व्यवहार करनेवाला।

व्यावहारी (सं० स्त्री०) व्यवहार-ङीप्। १ परस्पर व्यवहार। २ परस्पर हरण। (वोपदेव ६।११०)

व्यावहार्य (सं० त्रि०) व्यवहार यत्। व्यवहारके योग्य, जो व्यवहार करने लायक हो।

व्यावहासी (सं० स्त्री०) वि-अव हस (कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियां। पा ३।३।४३) इति णच्, ततः (णचः स्त्रियामञ्। पा ७।३।६) इति वृद्धि प्रतिषेधः, स्त्रियां ङीप्। १ परस्पर हास्यकरण। २ परस्पर विचारणा।

व्यावृत् (सं० स्त्री०) १ विशेषत्व निर्देश। २ आद्योपान्त वर्णित।

व्यावृतत्व (सं० क्ली०) १ अनावृतत्व। २ गूढ़ाभिसन्धिता।

व्यावृत्त (सं० त्रि०) वि-आ-वृत्-क्त। १ निवृत्त, छुटा हुआ। २ निषिद्ध, मना किया हुआ। ३ खण्डित, टूटा हुआ। ४ पृथक्कृत, अलग किया हुआ। ५ मनोनीत, जो मनमें पसंद किया गया हो। ६ वेष्टित, चारों ओर से घेरा हुआ। ७ अंशीकृत, बांटा हुआ। ८ स्तुत, जिसकी प्रशंसा या स्तुति की गई हो। ९ निवारित। १० आच्छादित, ऊपरसे ढका हुआ।

व्यावृत्ति (सं० स्त्री०) वि आ-वृत-क्तिन्। १ खण्डन। २ आवृत्ति। ३ मनोनयन, मनसे चुनने या पसंद करने का काम। ४ वेष्टन, चारों ओरसे घेरना। ५ स्तुति, तारीफ। ६ निराकरण, निर्णय, मीमांसा। ७ निषेध, मनाही। ८ बाधा, खलल। ९ निवृत्ति। १० नियोग। ११ विपर्यास।

व्यावृत्सु (सं० स्त्री०) १ अनावृत रखनेमें इच्छुक। २ खोल कर रखनेमें इच्छुक।

व्याश्रय (सं० पु०) वि-आ-श्रि-घञ्। विभिन्न आश्रय। (पाणिनि ५।४।८)

व्यास (सं० पु०) वि-अस-घञ्। १ विस्तार, फैलाव। २ मानभेद। (शब्दरत्ना०) ३ पुराणादि पाठक ब्राह्मण, जो ब्राह्मण पुराणादि पाठ करते हैं, वे व्यास कहलाते हैं। ४ गोल वस्तुकी मध्य रेखा। अंगरेजीमें इसे Diameter कहते हैं। ५ समासविग्रह वाक्य। समास करनेके समय जो वाक्य किया जाता है, उसे व्यासवाक्य कहते हैं। जैसे,—'दर्भपाणिः' 'दर्भाः पाणौ यस्य सः दर्भपाणि' इसका नाम व्यासवाक्य है।

व्यास—१ कृच्छ्र चान्द्रायण लक्षण, पञ्चरत्न, गोलाध्याय, (व्याससिद्धान्त) तत्त्वबोध और उसकी टीका, तीर्थपरिभाषा, दत्तकदर्पण, प्रतिमालक्षण, बालकृष्णाष्टक, बृहत्-संहिता, ब्रह्मसूत्र महाभारत और पुराणनिचय, योगसूत्र भाष्य, वक्रतुण्डस्तोत्र, वक्रतुण्डाष्टक, विश्वनाथाष्टक, शिव तत्त्वविवेक और इतिहास नामके ग्रन्थादिके रचयिता। ये पुराणपाठकके निकट व्यासदेव या वेदव्यास नामसे परिचित हैं। वेदव्यास और व्यास शब्दमें देखो।

२ षड़ गुरुशिष्यके छः गुरुमेंसे एक। ३ श्रुतप्रकाशिकाके प्रणेता सुदर्शनाचार्यकी उपाधि। ४ तंत्रसार-टीकाके प्रणेता।

व्यास आचार्य—अष्टमहामन्त्रपद्धतिके प्रणेता।

व्यासकूट (सं० क्ली०) व्यासस्य कूटं। १ महाभारत-में आये हुए वेदव्यासके कूट श्लोक। जो सब श्लोक अति दुर्बोध तथा अस्पष्ट होते हैं, उन्हें व्यासकूट कहते हैं। २ वे कूटश्लोक जो सीताहरण होने पर रामचन्द्र जीके माल्यवान् पर्वत पर कहे गये थे और जिनसे उन्हें कुछ शान्ति मिली थी।

व्यासकेशव (सं० पु०) शब्दकल्पद्रुम नामक अभिधानके प्रणेता। केशवकृत "कल्पद्रुम" नामक एक अभिधान पाया जाता है। दोनों ग्रंथ और ग्रंथकार एक थे या नहीं कह नहीं सकते।

व्यासक्त (सं० त्रि०) वि-आ-सञ्ज-क्त। १ जो बहुत

अधिक आसक्त हुआ हो, जिसका मन बेतरह आ गया हो। २ उद्भ्रान्त, अभिभूत।

व्यास गणपति—वैद्यशास्त्रसंग्रहके सङ्कलयिता।

व्यासगिरि—शङ्करविजयके प्रणेता।

व्यासगीता (सं० स्त्री०) १ कूर्मपुराणका एक अंश। २ एक उपनिषद्।

व्यासङ्ग (सं० त्रि०) वि-आ-सञ्ज-घञ्। विशेषरूपसे आसङ्ग, बहुत अधिक आसक्ति या मनोयोग।

व्यासता (सं० स्त्री०) व्यासका भाव या धर्म, व्यासत्व।

व्यासतीर्थ—एक प्रसिद्ध यति लक्ष्मीनारायणतीर्थके निकट अध्ययन समाप्त कर इन्होंने पीछे ब्राह्मण्यतीर्थका शिष्यत्व ग्रहण किया। वेदेश भिक्षु इनके मन्त्रशिष्य थे। इन्होंने व्यासरायमठ स्थापन किया था। १३३६ ई०में इनका देहान्त हुआ। ये व्यासतीर्थ विन्दु, व्यास यति और व्यासराज नामसे भी परिचित थे। निम्नोक्त ग्रन्थ इन्हींके बनाये हुए हैं'—

अनुतयतीर्थविजय, जयतीर्थकृत कथालक्षण विवरणकी टीका, आनन्दतीर्थ कृत काठकोपनिषद्भाष्य, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य, बृहदारण्यकभाष्य, माण्डूक्योपनिषद्भाष्य, मुण्डकोपनिषद्भाष्य आदिकी टीका, तर्कताण्डव, आनन्दतीर्थकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यकी जयतीर्थकृत तत्त्वप्रकाशिनी नाम्नी टीकाकी तात्पर्यचन्द्रिका नाम्नी टिप्पन, न्यायामृत और कण्टकोद्धार नामकी उसकी टीका, जयतीर्थकृत प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानखण्डनविवरणकी भावप्रकाशिका नाम्नी टीका, भेदोज्जीवन और जयतीर्थकृत अन्यान्य ग्रंथटीकाके संक्षेप परिचय स्वरूप मन्दारमञ्जरी नामक टिप्पन।

व्यासदत्ति (सं० पु०) वररुचिके पुत्र।

व्यासदास (सं० पु०) क्षेमेन्द्रका एक नाम।

व्यासदेव—दायभागनिर्णय विवेकके प्रणेता।

व्यासदेव मिश्र—वृहच्छन्दरत्नटीकाके रचयिता।

व्यासपोपमजा (सं० स्त्री०) वन्ध्याकर्कटी, बनककड़ी। (वैद्यकनि०)

व्यासपद्मनाभ—वैष्णवोत्सव कार्यकर्त्ता।

व्यासपूजा (सं० स्त्री०) व्यासस्य पूजा। व्यासका पूजा, व्यासकी अर्चना।

व्यासवत्स—शिशु हितैषिणी नामकी कुमारसम्भव टीकाके प्रणेता।

व्यासविट्ठल आचार्य—शब्दचिन्तामणि नामक अभिधानके सङ्कलयिता।

व्यासभट्ट—श्रीरङ्गराजस्तव और सर्वार्थसिद्धि नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता।

व्यासमातृ (सं० स्त्री०) व्यासस्य माता। व्यासकी माता, वेदव्यासकी जननी। पर्याय - सत्यवती, वासवी, गन्धकालिका, योजनगन्धा, दासेया, शालङ्कायनजीवसू, किसी किसी ग्रन्थमें शालङ्कायनजा नाम भी देखा जाता है। काली, मत्स्योदरी, विचित्रवीर्यसू, चित्राङ्गदसू, योजनगन्धिका, गन्धकाली, सत्या, दासनन्दिनी। (शब्दरत्ना०)

व्यासमूर्त्ति (सं० पु०) व्यास एव मूर्त्तिर्यस्य। शिव, महादेव। (शिवपु०)

व्यासवन (सं० क्ली०) मुनिऋषिसेवित पवित्र वनभेद। (भारत वनपर्व)

व्यासवर्य्य (सं० पु०) एक पण्डित। ये वाक्यार्थदीपिकाके रचयिता हनूमदाचार्यके पिता थे।

व्याससदानन्दजा—सद्योबोधिनी-प्रक्रिया नामक व्याकरणके प्रणेता। ये स्तम्भतीर्थवासी थे।

व्याससमासिन् (सं० त्रि०) व्याससमासयुक्त, व्यासवाक्य और समस्तपदविशिष्ट।

व्याससूत्र (सं० क्ली०) व्यास प्रणीतं सूत्रं। व्यास प्रणीत सूत्र, वेदान्तसूत्र। वेदान्तदर्शनके सूत्र व्यासने प्रणयन किये थे। वेदान्त देखो।

व्यासस्थली (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन पवित्र तीर्थका नाम। (भारत वनपर्व)

व्यासाचल (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

व्यासाचार्य—एक प्रसिद्ध यति। इन्होंने पीछे वेदव्यासतीर्थ नाम ग्रहण किया था। १५६० ई०में ये मृत्यु मुखमें पतित हुए।

व्यासारण्य (सं० क्ली०) व्यासस्य अरण्यं। १ व्यासवन। व्यास जिस वनमें वास करते थे, उसे व्यासवन कहते हैं। २ एक प्रसिद्ध यति। ये विश्वेश्वरके गुरु थे। इन्होंने सुबोधिनीकी रचना की।

व्यासार्द्ध (सं० पु०) व्यासस्य अर्द्धः। व्यासका आधा भाग, किसी वृत्तके केन्द्रसे उसके छोर तकको रेखा।

व्यासाश्रम (सं० पु०) व्यासस्य आश्रमः। १ व्यास मुनिका आश्रम। २ वेदान्तकल्पतरुके प्रणेता अमलानन्दका एक नाम।

व्यासाष्टक (सं० क्ली०) व्यास-विरचित शिवस्तोत्र विशेष।

व्यासासन (सं० क्ली०) वह आसन जिस पर कथा कहनेवाले बैठ कर कथा कहते हैं।

व्यासिद्ध (सं० त्रि०) वि-आ-सिध क्त। १ निषिद्ध, मना किया हुआ। २ अवरुद्ध, रुका हुआ।

व्यासीय (सं० त्रि०) १ व्यास सम्बन्धी, व्यासका। (क्ली०) २ व्यासरचित ग्रन्थ।

व्यासुकी (सं० पु०) व्याड़िके गोत्रापत्य।

व्यासेध (सं० पु०) विघ्न, उत्पात।

व्यासेश्वर (सं० पु०) व्यासेन स्थापित ईश्वरः। शिवलिङ्ग विशेष, व्यास स्थापित शिवलिंग।

व्यासेश्वरतीर्थ (सं० पु०) शिवपुराणका एक अध्याय।

व्याहत (सं० त्रि०) वि आ-हन क्त। १ विशेष रूपसे आहत। २ व्यर्थ। ३ प्रतिबद्ध। ४ निषिद्ध, मना किया हुआ।

व्याहति (सं० स्त्री०) बाधा डालना, खलल पहुंचाना।

व्याहनस्य (सं० त्रि०) विशिष्ट मैथुनयुक्त या तदङ्गीभूत कार्य्य। (शुक्लयजुः ६।३६)

व्याहन्तव्य (सं० त्रि०) वि आ-हन तव्य। व्याहनन-योग्य।

व्याहन्यमान (सं० त्रि०) वि आ हन शानच्। प्रतिपिध्यमान।

व्याहरण (सं० क्ली०) वि-आ-हृ ल्युट्। कथन, उक्ति।

व्याहर्त्तव्य (सं० त्रि०) वर्णन करनेको योग्य, बोलने लायक।

व्याहार (सं० पु०) वि आ-हृ-घञ्। वाक्य, जुमला।

व्याहारमय (सं० त्रि०) वाक्यमय, वाक्य-स्वरूप।

व्याहारिन् (सं० त्रि०) वाक्यविशिष्ट।

व्याहृत (सं० त्रि०) वि-आ-हृ क्त। कथित, कहा हुआ।

व्याहृति (सं० स्त्री०) वि-आ-हृ-क्तिन्। १ व्यवहार, कथन, उक्ति। २ मन्त्रविशेष, ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ये मन्त्र।

पुराकालमें ये मन्त्र स्वयं उद्भूत हुए थे। ये सब अशुभनाशक; सत्त्व, रजः, तमः तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर स्वरूप हैं। यह व्याहृति ओंकार पूर्वक प्रयोग करनी होती है। व्याहृतिहोम करने पर इस मन्त्रसे होम समझना होगा। (ओं भूः, ओं भुवः, ओं स्वः) इन सबोंको महाव्याहृति कहते है।

(कूर्मपु० उपवि० १३ अ०)

जहां और कोई मन्त्र न हो, वहां इसी व्याहृति मंत्र से काम लेना चाहिये। (तैत्ति० उप० १।५।१)

३ सामभेद।

व्युच्छित्ति (सं० स्त्री०) वि-उत् छिद-क्तिन्। विनाश, बरबादी।

व्युच्छेत्तृ (सं० त्रि०) वि-उत्-छिद-तृच्। विनाशक, बरबाद करनेवाला।

व्युत (सं० त्रि०) वि-वे-क्त। स्यूत, बुना हुआ, सोया हुआ। (भरत द्विरूपकोष)

व्युति (सं० स्त्री०, वि-वे-क्तिन्। ऊति, तन्तु सन्तति। (भरत द्विरूपकोष०)

व्युत्क्रम (सं० पु०) वि-उत्-क्रम-घञ्। क्रमविपर्यय, क्रममें उलट फेर होना, गड़बड़ी।

व्युत्क्रमण (सं० क्ली०) वि-उत्-क्रम-ल्युट्। पृथक् अव स्थान, अलग रहना।

व्युत्क्रान्त (सं० त्रि०) अतिक्रान्त, गत। (स्त्री०) २ प्रहेलिका, पहेली।

व्युत्थातव्य (सं० त्रि०) विशेष रूपसे उत्थानके योग्य, विरुद्ध भावमें रखने लायक।

व्युत्थान (सं० क्ली०) वि-उत्-स्था-ल्युट्। १ स्वातन्त्र या स्वाधीन हो कर काम करना। २ विरोधाचरण, किसीके विरुद्ध आचरण करना, खिलाफ चलना। ३ प्रतिरोध, रुकावट डालना, रोकना। ४ समाधि। ५ नृत्यभेद। ६ विशेष रूपसे उत्थान। ७ योगके अनुसार चित्तकी अवस्था विशेष। क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ये पांच प्रकारकी चित्तकी अवस्थाएं

हैं। ये पांच प्रकारके चित्त भूमि पर क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त इन तीन प्रकारके चित्तकी अवस्थाओंको व्युत्थान कहते हैं। चित्तकी व्युत्थान अवस्थामें योग नहीं हो सकता। ये तीन अवस्थाएं अतिशय चञ्चल होती हैं, इसलिये इनमें मन किसी तरह स्थिर नहीं होता। एकाग्र और निरुद्ध ये दो अवस्थाएं योगको अनुकूल हैं, सुतरां इनमें योग करना उचित है।

"व्युत्थानं क्षिप्तमूढविक्षिप्ताख्यं भूमित्रयम्।"

(पातञ्जलभाष्य)

व्युत्पत्ति (सं० स्त्री०) वि-उत्-पद-क्तिन्। १ किसी पदार्थ आदिकी विशिष्ट उत्पत्ति, किसी चीजका मूल उद्गम या उत्पत्तिस्थान। २ संस्कार, शास्त्रमें विशेष संस्कार। शास्त्रादि अध्ययन करनेसे विशेष रूपसे उसका जो संस्कार होता है, उसको व्युत्पत्ति कहते हैं। ३ ज्ञानविशेष, शक्तिज्ञान। (आख्यातवाद माथुरीटीका)

व्युत्पन्न (सं० त्रि०) वि-उत्-पद-क्त। १ संस्कृत, जिसका संस्कार हो चुका हो। २ व्युत्पत्तियुक्त, जिसका विज्ञान या शास्त्रमें अच्छा प्रवेश हो, जो किसी शास्त्र आदिका अच्छा ज्ञाता हो।

व्युत्पादक (सं० त्रि०) विशेषेणोत्पादयति ज्ञानं वि-उत्-पद-ण्वुल्। व्युत्पत्तिजनक, उत्पन्न करनेवाला।

व्युत्पादन (सं० क्ली०) वि-उत्-पद णिच्-ल्युट्। व्युत्पत्ति।

व्युत्पादित (सं० त्रि०) वि-उत्-पद-णिच्-क्त। जो उत्पन्न किया गया हो।

व्युत्पाद्य (सं० त्रि०) वि-उत्-पद-णिच्-यत्। १ व्युत्पादनीय, व्युत्पत्तिके उपयुक्त। २ व्युत्पत्तिलभ्य।

व्युत्सर्ग (सं० पु०) विशेष व्याख्यान।

व्युद (सं० त्रि०) विगतं उदकं यत्र, उदकशब्दस्य उदादेशः। विगतोदक, जिसका जल बह गया हो। (भागवत १०।२५।२६)

व्युदक (सं० त्रि०) विगतोदक, जल रहित। (भागवत ५।१४।१३)

व्युदस्त (सं० त्रि०) वि-उत्-अस-क्त। १ निरस्त, निवारित। २ निराकृत। ३ मर्दित। ४ परित्यक्त। ५ परिक्षिप्त। ६ अवनत।

व्युदास (सं० पु०) वि-उत् अस-घञ्। १ निरास। २ परित्याग। ३ मर्द्दन। ४ निराकरण। ५ औदास्य, अवज्ञा।

व्युदूहन (सं० क्ली०) निरसन। (शतपथब्रा० ७।१।२।१७)

व्युद्ग्रन्थन (सं० क्ली०) ग्रन्थिमोचन।

व्युन्दन (सं० क्ली०) वि-उन्द-ल्युट्। विशेष रूपसे क्लेदन। (शुक्लयजु० २।२)

व्युन्मिश्र (सं० त्रि०) विशेष प्रकारसे मिश्रित।

व्युपकार (सं० पु०) वि-उप-कृ-घञ्। उपकारहीन, उपकार रहित।

व्युपजाप (सं० पु०) अनुच्चभाषण, आहिस्ते आहिस्ते बातें करना।

व्युपतोद (सं० पु०) १ उत्पीड़न। २ संवर्षण।

व्युपदेश (सं० पु०) प्रवञ्चना, छलना।

व्युपद्रव (सं० त्रि०) विगत उपद्रवो यत्र। विगतोपद्रव, उपद्रवरहित।

व्युपरत (सं० त्रि०) १ शान्तिप्राप्त। २ स्थित। ३ निवृत्त, स्थगित।

व्युपरम (सं० पु०) १ शान्ति। २ निवृत्ति। ३ स्थिति।

व्युपवीत (सं० त्रि०) उपवीतहीन, उपवीतवर्जित।

व्युपशम (सं० पु०) वि-उप-शम-अच्। अशान्ति।

व्युप्तकेश (सं० पु०) व्युप्ताः मुण्डिताः केशाः यस्य। मुण्डितमस्तक, जिसने अपना सिर मुड़वा दिया हो। (शुक्लयजु० १६।२६)

व्युष (सं० स्त्री०) सूर्यके उदय होनेका समय, प्रातःकाल, सवेरा।

व्युषस् (सं० स्त्री०) व्युष देखो।

व्युषिताश्व (सं० पु० महाभारतके अनुसार एक राजाका नाम। (भारत आदि)

व्युष्ट (सं० क्ली०) वि-वस-क्त। १ फल। २ दिन। ३ प्रभात। प्रभात इस अर्थमें कहीं कहीं यह शब्द पुंलिङ्ग देखा जाता है। भागवतमें व्युष्टको दोषाका पुत्र कहा है। प्रदोष, निशिथ और व्युष्ट ये तीन दोषाके पुत्र हैं। (त्रि) ४ उषित, बसा हुआ।

"सा व्युष्टा रजनीं तत्र पितुर्वेश्मविभाविनी ।"

(भारत ३।३६।२८)

५ दग्ध, जला या झुलसा हुआ । ६ पर्युषित, बासी ।

व्युष्टि (सं० स्त्री०) वि-वस-क्तिन् । १ फल । २ समृद्धि । ३ स्तुति । ४ प्रकाश । (ऋक् १।१७१।५) ५ दाह । ६ प्रभात । ७ इच्छा, कामना, ख्वाहिश ।

व्युष्टिमत् (सं० त्रि०) व्युष्टि विद्यतेऽस्य व्युष्टि-मतुप् । व्युष्टियुक्त, व्युष्टिविशिष्ट ।

व्यूक (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम । २ इस देशका निवासी ।

व्यूढ़ (सं० त्रि०) विशेषेण उह्यते स्म; वि-वह-क्त । १ विन्यस्त । २ संहत । ३ जो व्यूह बना कर खड़ा हो । ४ पृथुल, स्थूल, मोटा । ५ तुल्य, समान । ६ उत्तम, बढ़िया । ७ विवाहित, जिसका विवाह हो चुका हो । ८ परिहित । ९ दृढ़, मजबूत । १० स्फीत ।

व्यूढ़कङ्कट (सं० त्रि०) व्यूढ़ः कङ्कटः सन्नाहो येन । सन्नद्ध ।

व्यूढ़ि (सं० स्त्री०) वि-वह-क्तिन् । १ विन्यास, सजावट । २ संहति । ३ पृथुलता, मोटाई ।

व्यूत (सं० त्रि०) वि-वेञ्-क्त । ऊत, बुना हुआ ।

व्यूति (सं० स्त्री०) वि वे-क्तिन् (ऊति युति जुतीति । पा ३।३।९७) इति निपातितः । कपड़े आदि बुननेकी क्रिया, बुनाई ।

व्यूह (सं० पु०) वि-ऊह-घञ् । १ समूह, जमघट । २ निर्माण, रचना । ३ तर्क, विचार । ४ देह, शरीर । ५ सैन्य, सेना । ६ परिणाम, नतीजा । ७ शिश्न, लिङ्ग । ८ युद्धार्थ सैन्यरचना, लड़ाईके समय की जानेवाली सेनाकी स्थापना । पर्याय—बलविन्यास ।

युद्ध करनेके समय देश वा स्थानविशेषमें सेनाओं का विभाग कर दुर्लङ्घ्य भावमें जो स्थापन किया जाता है, उसका नाम व्यूह है । व्यूहके आकारमें सैन्य रचना करनेसे शत्रुपक्षीयगण शीघ्र उसे भेद नहीं कर सकते । यह व्यूह चार प्रकारका है,—दण्ड, भोग, मण्डल और असंहत । फिर इनके भी अनेक भेद हैं । तिर्य्यग्वृत्ति अर्थात् वक्रभावमें सैन्यसमावेश करनेसे उसको दण्डव्यूह, अन्वस्ति अर्थात् पश्चात् पश्चात् करके जो सैन्यसमावेश किया जाता है, उसे भोगव्यूह, सर्वतोवृत्ति अर्थात् चारों ओर घेरेकी तरह सैन्यस्थापन करनेको मण्डल तथा पृथक् पृथक् भावमें रखनेसे उसको असंहतव्यूह कहते हैं । इन चार प्रकारके व्यूहके फिर क्रौञ्च और चक्रादि भेदसे अनेक प्रकारके भेद हैं ।

(अमरटीका भरत)

मनुमें दण्ड, शकट, वराह, मकर, सूची, गरुड़, पद्म, वज्र आदि व्यूहोंका उल्लेख देखनेमें आता है ।

युद्धयात्रा करते समय यदि राजाको चारों ओरसे भय घेर ले, तो उन्हें चक्रव्यूहकी रचना कर यात्रा करनी चाहिये । पश्चाद् ओर यदि भयकी आशङ्का रहे, तो शकटव्यूह; दो ओर भय रहे, तो वराह वा मकरव्यूह; आगे या पीछे भयका कारण रहनेसे गरुड़व्यूह; यदि सिर्फ सामनेमें हो भय रहे, तो सूचीव्यूहकी रचना कर यात्रा करनी चाहिये । राजा जिस ओर भयकी आशङ्का करेंगे, उसी ओर सैन्य विस्तार करें और आप पद्मव्यूहकी रचना कर बीचमें रहें ।

नीतिमयूख ग्रन्थमें प्रधानतः छः व्यूहका उल्लेख देखनेमें आता है, यथा—मकर, श्येन, सूची, शकट, वज्र और सर्वतोभद्र । अग्निपुराणमें दश प्रधान व्यूहका विषय लिखा है । उनके नाम इस प्रकार हैं—गरुड़, मकर, श्येन, अर्द्धचन्द्र, वज्र, शकट, मण्डल, सर्वतोभद्र और सूची । ये दश प्रधान व्यूह हैं । इनके सिवा और भी अनेक प्रकारके व्यूह हैं । उक्त पुराणमें लिखा है, कि हाथी, घोड़ा, रथ, पदाति आदि सेनाओंको विशेष विशेष प्रणालीके अनुसार जो विन्यस्त वा सजाया जाता है, उसका नाम व्यूह है । यह व्यूह पहले दो प्रकारका है,—प्राण्यङ्गरूप और द्रव्यरूप अर्थात् किसी प्राणीकी आकृतिके अनुसार जो व्यूह रचा जाता है, उसको प्राण्यङ्ग और द्रव्यकी आकृतिके अनुसार जो व्यूहरचना होती है उसे द्रव्यरूप कहते हैं । ये सब व्यूह गरुड़ादि भेदसे दश प्रकारके हैं ।

इन सभी प्रकारके व्यूहमें सेनाओंको पांच भागमें विभक्त कर दो भाग पक्षमें, दो भाग अनुपक्षमें और एक भाग गुप्तभावमें रखें, इस तरह पांच विभाग करके उनमेंसे एक या दो भागसे युद्ध करे, बाकी तीन भागसे व्यूह-

की रक्षा करे। राजा स्वयं युद्धस्थलमें न रहें, एक कोस-की दूरी पर उन्हें रहना चाहिये। क्योंकि, मूलोच्छेद-से अर्थात् राजाको कोई अनिष्ट होनेसे सभी विनष्ट हो सकते हैं, इस कारण उन्हें दूरमें अर्थात् व्यूहके पश्चाद् भागमें रहना उचित है।

नीतिसारमें लिखा है, कि व्यूहके सामने नायक अर्थात् सेनापति शूरगण परिवृत्त हो अवस्थान करें; क्योंकि उनकी रक्षा करते हुए अन्यान्य सेनाओंसे युद्ध करना उचित है। चाहे जो कोई व्यूह क्यों न रचा जाय, उसके मध्यस्थलमें स्त्री, कोष, धनागार, राजा, फल्गु-सैन्य अर्थात् खाद्यद्रव्य तथा उसके रक्षकगण अवस्थान करें। व्यूहमें हाथी घोड़े रथ पदाति इस चतुरङ्गबल-को उक्त प्रकारसे सजाना होगा। व्यूहके दो पार्श्वोंमें अश्वारोही, अश्वारोहीके पार्श्वमें रथारोही और रथके पार्श्वमें पदाति सैन्यको सजाना होता है।

शुक्रनीतिमें लिखा है, कि व्यूह रचनाके लिये विशेष विशेष वाद्य और सङ्केतवाक्यकी कल्पना करना आव-श्यक है। इस सङ्केत वाक्य वा वाद्य द्वारा जो कोई व्यूह सजाना होगा, वह जाना जाता है। यह सङ्केत केवल सेनापति और सैन्यगणको ही मालूम रहे, दूसरे किसीको भी नहीं।

प्रधान सेनापतिके वह सङ्केत करनेसे सभी सेनाओंको उसी समय उनके पूर्वशिक्षानुसार कार्य करना होगा। इसमें क्षणकाल भी विलम्ब न करना चाहिये। सैन्य-गण उस सङ्केतवाक्यानुसार सम्मेलन, प्रसरण, प्रभ्र-मण, आकुञ्चन, यान, प्रयाण, अपयान, पर्यायरूपमें साम्मुख्य, समुत्थान, लुण्ठन, अष्टदलाकारमें अवस्थान, अथवा चक्राकारमें वेष्टन, सूचीतुल्य, शकटाकार, अर्द्ध-चक्राकार, परस्पर पृथक होना, थोड़ा थोड़ा करके वा पर्यायक्रमसे पंक्तिप्रवेश, भिन्न भिन्न प्र[illegible]रमें अस्त्रशस्त्रा-दिका धारण, संधान, लक्ष्यभेद, अस्त्र[illegible], शस्त्रनिपात, शीघ्र-सन्धान, अस्त्रादिग्रहण, अस्त्रनिप[illegible] और आत्म-रक्षा, शीघ्र अपनेको छिपा रखना। शत्रु[illegible] प्रति अस्त्र-क्षेप, एक एक[illegible] दो दो इत्यादि रूपसे एक साथ जाना, पीछेकी ओर [illegible]ा या सामने जाना, इत्यादि प्रकारके कार्य ही सङ्केत-वाद्य या ध्वनि द्वारा अनुष्ठान करें।

सेनाओंको इस प्रणालीसे व्यूहाकारमें अवस्थान कर विपक्षियोंके साथ युद्ध करना चाहिये। शुक्रनीति-में व्यूहरचना प्रणाली इस प्रकार लिखी है। यथा—

क्रौञ्चव्यूह—क्रौञ्च शब्दका अर्थ बगला है। आकाश-में बगला जिस प्रकार पंक्ति बांध कर उड़ते हैं, सेना-पति भी उसी प्रकार सेनाओंको बलाकाकार पद्धतिके अनुसार सजावें। इस व्यूहमें सैन्यसंख्याके परिमाणा-नुसार एक एक वा दो दो करके सजाना होता है।

श्येनव्यूह—श्येन पक्षीकी जैसी आकृति है, तदनुसार यह व्यूह सजाना होता है। अर्थात् इस व्यूहको सम्मुख भाग सूक्ष्म, शेष भाग मध्यम और दो पार्श्वदेश विस्तीर्ण करना होगा।

चक्रव्यूह—यह व्यूह चक्राकार अर्थात् गोल होता है। इसमें चक्राकारमें सैन्य समावेश करना होता है। इस व्यूहमें प्रवेशयोग्य सिर्फ एक पथ रहेगा तथा यह ८ कुण्डलाकृति पंक्ति द्वारा वेष्टित होगा। सर्वतोभद्र-व्यूह भी प्रायः इसी तरहका होता है। फर्क इतना ही है, कि चारों ओर ८ परिधि अर्थात् चक्राकारमें ८ भागमें सैन्यपरिवेष्टित रहेगी। इस व्यूहमें प्रवेशद्वार एक भी न रहेगा।

इसके सिवा शकटव्यूह—शकटाकार, व्यालव्यूह—व्यालाकार, इत्यादि रूपसे जानना होगा। किसी सेनाके बाद कौन सेना रहेगी, वह पहले ही लिखा जा चुका है।

महाभारतमें भी मकर, श्येन आदि अनेक प्रकारके व्यूहका उल्लेख है। सभी प्रकारके व्यूह नाम और संख्या होना असम्भव है, क्योंकि सेनापति युद्ध-सौकर्यके लिये द्रव्य वा प्राणीकी आकृतिके अनुसार व्यूह रचना करते हैं। महाभारत, अग्निपुराण, शुक्रनीति, नीतिमयूख, कामन्दकीयनीति, मनुसंहिता आदि ग्रन्थों-में इसका विशेष विवरण दिया गया है।

व्यूहन (सं० क्ली०) वि-ऊह-ल्युट्। १ सैन्य-संस्थान, युद्धके लिये भिन्न भिन्न स्थानों पर सैनिकोंको नियुक्ति करना, व्यूह। २ मेलन, मिलाना। (त्रि०) ३ क्षोभक।

व्यूहपार्ष्णि (सं० पु०) व्यूहस्य पार्ष्णिः। १ व्यूह-का पश्चाद्भाग। पर्याय—प्रत्यासार, प्रत्यासर। २ व्यूहमध्य। (शब्दरत्ना०)

व्यूहपृष्ठ (सं० क्ली०) व्यूहस्य पृष्ठं । व्यूहका पश्चाद्भाग ।

व्यूहमति (सं० पु०) ललितविस्तारोक्त देवपुत्रभेद । (ललितवि०)

व्यूहराज (सं० पु०) १ बोधिसत्त्वभेद । २ श्रेष्ठ व्यूह ।

व्यृद्ध (सं० त्रि०) १ धनहीन । २ फलहीन । (शतपथब्रा० ४।६।७।६)

व्यृद्धि (सं० स्त्री०) १ धनशून्यता । २ निष्फलता । (ऐतरेयब्रा० ७।२८)

व्येक (सं० त्रि०) एकोन, एक कम ।

व्येनस् (सं० त्रि०) १ पापमुक्त । २ दुर्भाग्यवर्जित । (ऋक् ३।३३।१३)

व्येणी (सं० स्त्री०) उज्ज्वल, अत्यन्त श्वेत । (ऋक् ५।८०।४ सायण)

व्योलव (सं० त्रि०) नाना शब्दकारी । (अथर्व १२।१।४१)

व्योकस् (सं० त्रि०) अलग या दूसरी जगह वास करनेवाला । (शतपथब्रा० ८।३।२।६)

व्योकार (सं० पु०) लौहकार ।

व्योदन (सं० पु०) विविध प्रकार अन्न । (ऋक् ८।५२।६)

व्योम (सं० पु०) १ दशार्हके एक पुत्रका नाम । (भागवत ६।२४।३) व्योमन् देखो ।

व्योमक (सं० पु०) अलङ्कार ।

व्योमकेश (सं० पु०) व्योम इव केशो यस्य विराट्मूर्त्तित्वादस्य तथात्वं । शिव, महादेव ।

व्योमकेशिन् (सं० पु०) गङ्गाधारणकाले व्योमव्यापिनः केशाः अस्य सन्तीति इनि । महादेव, शिव ।

व्योमग (सं० त्रि०) व्योम्नि गच्छतीति गम-ड । आकाशगामी, व्योमगत ।

व्योमगङ्गा (सं० स्त्री०) व्योम्निस्था गङ्गा । आकाशगङ्गा, मन्दाकिनी ।

व्योमगमन (सं० क्ली०) व्योम्नि गमनं । १ आकाशगमन । (त्रि०) २ व्योम्नि गमनो यस्य । २ आकाशगमनविशिष्ट ।

व्योमगमनी (सं० स्त्री०) विद्याभेद, वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य आकाशमें उड़ सकता हो, आसमानमें उड़नेकी विद्या ।

व्योमचर (सं० त्रि०) व्योम्नि चरतीति चर-ट । आकाशचारी, आकाशमें विचरण करनेवाला ।

व्योमचारिन् (सं० पु०) व्योम्नि चरतीति चर-णिनि । १ देवता । २ पक्षी, चिड़िया । ३ चिरजीवी । ४ द्विजात । (त्रि०) ५ आकाशचारिमात्र, जो आकाशमें विचरण करता हो ।

व्योमचारिपुर (सं० क्ली०) व्योमचारि आकाशगामिपुर । शौभपुर ।

व्योमधूम (सं० पु०) व्योम्नः धूमः । मेघ, बादल । (त्रिका०)

व्योमन् (सं० क्ली०) व्ये वृतौ (नामन् सीमन्निति । उणा् ४।१४।६) इति निपातनात् साधुः । १ अन्तरीक्ष, आकाश । पञ्चभूतोंमेंसे प्रथम भूत । वेदान्तके मतसे यह आत्मासे पहले उद्भूत हुआ । आत्मासे आकाश, आकाशसे अग्नि, अग्निसे वायु तथा वायुसे जल और जलसे पृथ्वी उत्पन्न हुई । २ जल, पानी । (मेदिनी) ३ अभ्रक, मेघ । (त्रिका०)

व्योमनासिका (सं० स्त्री०) भारती नामकी पक्षी । (त्रिका०)

व्योमपञ्चक (सं० क्ली०) पञ्चव्योम ।

व्योमपाद (सं० पु०) व्योम्नि पादो यस्य । विष्णु ।

व्योममञ्जर (सं० क्ली०) व्योम्न-मञ्जरमिव । पताका, झण्डा ।

व्योममण्डल (सं० क्ली०) व्योम्नः मण्डलम् । १ पताका, ध्वजा । २ आकाश, आसमान ।

व्योममाय (सं० त्रि०) आकाशके समान उच्च ।

व्योममुद्गर (सं० पु०) व्योम्नः मुद्गर इव । वह शब्द जो हवाके बहुत जोरसे चलनेसे होता है, झूका ।

व्योममृग (सं० पु०) चन्द्रमाके दशवें घोड़ेका नाम ।

व्योमयान (सं० क्ली०) व्योमगामि यानं । १ वह यान या सवारी जिस पर चढ़ कर मनुष्य आकाशमें उड़ सकता हो, विमान । २ हवाई जहाज ।

व्योमरत्न (सं० क्ली०) सूर्य ।

व्योमवल्लिका (सं० स्त्री०) आकाशवल्ली या अमरवेल नामकी लता ।

व्योमवल्ली (सं० स्त्री०) व्योमवल्लिका देखो ।

व्योमशिवाचार्य (सं० पु०) प्रशस्तपादभाष्यकी व्योमवती नामकी टीकाके प्रणेता ।

व्योमसद् (सं० पु०) १ देवता। २ गन्धर्व। ३ भूतयोनि।

व्योमसरित् (सं० स्त्री०) व्योम्नि या सरित्। व्योमगङ्गा, आकाशगंगा।

व्योमस्थली (सं० स्त्री०) व्योम्नः स्थली। १ नभःस्थल। २ पृथ्वी। (भूरिप्र०)

व्योमस्पृश् (सं० त्रि०) आकाशस्पर्शकारी, अत्युच्च।

व्योमाभ (सं० पु०) व्योम्ना शून्येन आभातीति आ-भा-क। १ बुद्धदेव। २ देवप्रतिम जैन साधुभेद।

व्योमारि (सं० पु०) विश्वदेवगण।

व्योमोदक (सं० क्ली०) व्योम्नः उदकम्। दिव्योदक, वर्षाका जल, बरसातका पानी।

व्योम्निक (सं० त्रि०) व्योमसम्बन्धी, व्योम या आकाशका।

व्योष (सं० क्ली०) विशेषेण ओषतीति उष दाहे पचाद्यच्। सोंठ, पीपल और मिर्च इन तीनोंका समूह; त्रिकटु।

व्र (सं० पु०) सङ्घीभूत, परस्परमें अनुराग।
(ऋक् १।१२६।५ सायण)

व्रज (सं० क्ली०) व्रजतीति व्रज-घ। १ व्रजन, गमन, जाना या चलना। (पु०) व्रज गतौ (गोचरसञ्चरेति। पा ३।३।११९) इति घ प्रत्ययेन निपातनात् साधुः। २ समूह, झुण्ड। ३ गोष्ठ। ४ मथुरा और वृन्दावनके आस-पासका प्रान्त। यह भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका लीलाक्षेत्र है और इसी कारण यह बहुत पवित्र माना जाता है।

पुराणों आदिके अनुसार मथुरासे चारों ओर ८४।८५ कोस तककी भूमि व्रजभूमि कही गई है। भगवान् श्रीकृष्णने यहाँ लीला की थी, इसीसे यह अत्यन्त पुण्यभूमि है। यदि कोई इस स्थानका प्रदक्षिण करे, तो उसे धनधान्य लाभ होता है। इस स्थानमें दान, पूजा वा वास करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। इस स्थानमें यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे अशेष पुण्य लाभ होता है और पीछे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। भगवान् श्रीकृष्णने यहां ढाई हजार तीर्थ प्रस्तुत किये थे। इस व्रजभूमिमें बारह बारह वन, उपवन, प्रतिवन और अधिवन देखे जाते हैं। इन ४८ वनोंके नाम नीचे लिखे जाते हैं।

बारह वन—१ महावन, २ काम्यवन, ३ कोकिलवन, ४ तालवन, ५ कुमुदवन, ६ भाण्डीरवन, ७ छत्रवन, ८ खदिरवन, ९ लोहजवन, १० भद्रवन, ११ बहुलवन, १२ बिल्ववन, ये सभी वन शुभ फलप्रद हैं।

बारह उपवन—१ ब्रह्मवन, २ अप्सरोवन, ३ विह्वलवन, ४ कदम्बवन, ५ स्वर्णवन, ६ सुरभिवन, ७ प्रेमवन, ८ मयूरवन, ९ मालेङ्गितवन, १० शेषशायिवन, ११ नारदवन, १२ परमानन्दवन।

बारह प्रतिवन—१ रङ्कवन, २ वार्त्तावन, ३ करहाख्यवन, ४ काम्यवन, ५ अञ्जनवन, ६ कर्णवन, ७ कृष्णाक्षिपलकवन, ८ नन्दप्रेक्षण कृष्णाख्यनन्दनवन, ९ इन्द्रवन, १० शिक्षावन, ११ चन्द्रावलीवन और १२ लोहवन।

बारह अधिवन—१ मथुरा, २ राधाकुण्ड, ३ नन्दग्राम, ४ गूढ़स्थान, ५ ललिताग्राम, ६ वृषभानुपुर, ७ गोकुल, ८ बलदेवक, ९ गोवर्द्धनवन, १० जावट, ११ वृन्दावन, १२ सङ्केतवटवन। मथुरा और वृन्दावन देखो।

व्रजक (सं० पु०) तपस्वी। (शब्दरत्ना०)

व्रजकिशोर (सं० पु०) व्रजस्य किशोरः। श्रीकृष्ण। श्रीकृष्ण व्रजभूमिके अधिष्ठात्री देवता हैं। व्रजभक्तिविलासमें व्रजकिशोरमन्त्र तथा उनके ध्यान और पूजादिका विषय लिखा है। द्वादशवनके मध्य ललितावनके अधिपति व्रजकिशोर हैं। 'ओं श्रीँ ललिताग्रा धिवनाधिपतये व्रजकिशोराय नमः' यह एक विंशाक्षर इसका मन्त्र है। उनका पूजन नारायण-पूजाविधिके अनुसार तथा उक्त मन्त्रसे प्राणायाम कर ऋष्यादिन्यास करना होता है। न्यास इस प्रकार है—अस्य मन्त्रस्य विभाण्डक ऋषि व्रजकिशोरदेवता गायत्रीछन्दः मम सकल पापक्षयद्वारा युगलकृष्णदर्शनार्थे विनियोगः, शिरसि विभाण्डक ऋषये नमः, मुखे व्रजकिशोराय नमः, हृदि गायत्रीच्छन्दसे नमः इस प्रकार न्यास करके ध्यान करना होता है। ध्यान इस प्रकार है—

"ललितासंयुतं कृष्णं सर्वैस्तु सखिभिर्युतम्।
ध्यायेत्त्रिवेणीकूपस्थं महारासकृतोत्सवम्॥"
(व्रजभक्तिविलास)

इस प्रकार ध्यान और पूजादि करके यथाशक्ति जपादि करने होते हैं। (व्रजभक्तिवि० १ अ०)

व्रजक्षित् (सं० त्रि०) व्रजे कूपे क्षियति निवसयति इति, व्रज-क्षि-क्विप्, "व्रज इति मेघनामसु (नि० १।१०।११) पठितं। अत्र तु उदकधारणसामर्थ्यात् कूप उच्यते।"

(शुक्लयजुः १०।४ महीधर)

व्रजन (सं० क्ली०) व्रज ल्युट्। गमन, चलना, जाना।

व्रजनाथ (सं० पु०) व्रजस्य नाथः। श्रीकृष्ण, व्रजभूमिके अधिपति।

व्रजनाथभट्ट—मरीचिका नाम्नी और ललितत्रिभङ्ग नामक वेदान्त ग्रन्थके रचयिता।

व्रजभक्तिविलास (सं० पु०) श्रीकृष्णके व्रजलीलाविषयक ग्रन्थविशेष।

व्रजभाषा—व्रजभूमिवासी जनसाधारण जिस भाषामें बातचीत करते हैं और जिस भाषामें काव्य रच कर भारतके अधिकांश कवि, जैसे सूर, तुलसी, विहारी आदि इतने यशस्वी हो गये हैं, वही व्रजभाषा है।

एक समय दिल्ली और आगरे जिलेके मध्यवर्त्ती सभी प्रदेश व्रजभूमि वा व्रजराज्य कहलाते थे। मथुरा इस राज्यकी राजधानी थी। वृन्दावन और गोकुल-नगरी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण एक समय सभी मनुष्य उसे पूज्यदृष्टिसे देखते थे तथा भगवान्के लीलागानके लिये इस स्थानकी भाषाको विशेष रुचिकर थी।

सुविस्तृत भरतपुरराज्य, वृन्दारण्यके अन्तर्गत गोवर्द्धनगिरिप्रदेश तथा गोपगिरिदुर्गाधिष्ठित सुप्राचीन ग्वालियर राज्यवासी सुशिक्षित हिन्दूगण भी व्रजभूमिके अधिवासियोंकी तरह परिष्कार और प्राञ्जलभावमें व्रजभाषाका व्यवहार करते थे। दिल्ली और आगरा प्रान्तवासी हिन्दू व्रजबोलीको छोड़ कर खड़ी और ठेठ हिन्दीमें बातचीत करते थे तथा मुसलमान लोग कुछ हिन्दी और रेख़ता (उर्दू) भाषाको काममें लाते थे। किंतु बैसवार, बुदावर, बुंदेलखण्ड और गङ्गाके अन्तर्वेदी प्रदेशमें व्रजभाषा कुछ मिश्रित भावमें प्रचलित थी। इससे जाना जाता है, कि किस प्रकार कथित भाषाके मिलनेसे व्रजभाषा बहुत दूर तक फैल गई थी। पाश्चात्य-साहित्यजगत्‌में सुपरिचित कृष्णकविके सतसई ग्रंथकी टीकासे हम इस विषयका कुछ आभास पाते हैं—

"पौरुष कविता त्रिविध है कवि सब कहत बखान।
प्रथम देववाणी बहुरि प्राकृति भाषा जान॥
देश देश तें होत सो भाषा बहुत प्रकार।
बरनत है तिन सबनमें ग्वालियरी रसवार॥"

उल्लिखित 'भाषा' व्रज और ग्वालियर प्रदेशकी चलित भाषा है, यह कविकी उक्तिसे ही जाना जाता है।

यह व्रजभाषा कबसे लिखित-भाषारूपमें प्रचलित होती आ रही है, उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता फिर भी इतना जरूर कहा जा सकता है, कि यह भाषा एक समय धीरे धीरे उक्त देशोंमें फैल गई थी तथा साधारणने विशेषतः कविता-रसास्वादी व्यक्तिमात्रने हो इस भाषाको कविताकलापके प्रियतम प्रवाहका पवित्र जल कह कर ग्रहण किया था। केवल भारतवर्ष हो नहीं एक समय सारे एशियाके क्या हिंदू क्या मुसलमान अनेक कवि ही इस व्रजभाषाकी कविता या गान रच गये हैं। यही कारण है, कि हम ख़ियाल, तुक, ध्रुपद, विष्णुपदस्तुति नाना प्रकारके गीत, कविता, छन्द, दोहा, छप्पई, सोरठा, कुण्डलिया आदि विभिन्न प्रकारके काव्य इसी भाषामें विरचित देखते हैं। इसमें संस्कृत भाषाकी बात रहने पर भी संस्कृतसे इसकी उत्पत्ति स्वीकार नहीं की जा सकती। परन्तु संस्कृत व्याकरणकी क्रिया और विशेष्य पदादिकी तरह इसमें भी पदादिके कर्त्ता कर्म वा कालभेदसे रूपांतर हुआ करता है। इस कारण बहुतेरे पण्डितोंने इस भाषाको संस्कृतकी तरह मधुर और सुश्राव्य बतलाया है। कविप्रियाग्रन्थमें कवि केसोदासने इस भाषाकी प्रधानता स्वीकार की है—

"भाषा बोलन जानई जिनके कुलको दास।
भाषाकविभौ मन्दमति तिहि कुल केसोदास॥"

सुविख्यात ब्राह्मणकवि कुलपतिमिश्र* तथा विहारीदास† दोनोंने ही व्रजभाषाकी श्रेष्ठताका वर्णन किया है।

---

* "जिती देववाणी प्रगट है कविताकी घात।
ते भाषामें होय तौ सब समवे रसवात॥" (कविरहस्य)

† "व्रजभाषा भाषत सकल सुरवाणी समतूल।
ताहि बखानत सकल कवि जान महारसमूल॥

उक्त गीत और कविताको छोड़ कर प्राचीन कालमें ब्रजभाषामें रचित और किसी पुस्तक विशेषका उल्लेख नहीं मिलता। १६वीं सदीमें मुगलसम्राट् अकबर शाहके शासनकालके पहले रचित 'पृथिराजरास' और 'हमीररास' उल्लेखनीय हैं। ये दोनों ग्रन्थ सुप्रसिद्ध चांदकविके बनाये हैं।¶ चांदकवि देखो।

किन्तु यथार्थमें सम्राट् अकबर शाहके शासनकाल और तत्परवर्त्ती समयसे ही ब्रजभाषामें अनेक ग्रन्थादि लिखे जाने लगे।

हिन्दी और ब्रजभाषामें जो अन्तर है उसे दिखलानेके लिये नीचे कुछ शब्दों और धातुओंका परिवर्त्तित रूप उद्धृत किया गया है। हिन्दीमें जिस प्रकार ड, ढ की जगह र उच्चारण करनेसे दोष नहीं होता तथा ष कभी ष, कभी ख की जगह उच्चारित होता है, ब्रजभाषामें कई जगह उसी प्रकार वर्णव्यतिक्रम दिखाई देता है। निम्नोक्त पदोंका भी ब्रजभाषामें परिवर्त्तन होता है।

लर। डर। वब। यज। शस। क्षछ। मव। भव। गघ। थत। तथ। वक। यऐ। येइ। अय। एख। होइ। भज।

फिर अनेक स्थलोंमें एक शब्दके एक अर्थमें दो तीन तरहका प्रयोग देखा जाता है। कभी ब्रजभाषाके दो एक शब्दोंमें देवनागरी अक्षरकी जगह कायथी हिन्दीके अ, ख, च, भ, र, आदि भी व्यवहृत हुए हैं। कभी श्रुतिमाधुर्यसम्पादनके लिये वर्गीय व अन्यस्थ ब रूपमें तथा ल र-में लिया गया है। जैसे—

जालो, जारो। थालो, थारो। घोड़ा, घोरा। घड़ा, घरा। वन, बन। वसुदेव, बसुदेव। यमुना, जमुना। यस, जस। शङ्ख, सङ्ख। शिशु, सिसु। अक्षर, अच्छर। लक्ष्मी, लछमी। गाँम, गाँव। नाँम, नाँव। इँमली, इँबली। कम, कब। कभी, कबी। पगड़ी, पघड़ी। पगा, पघा। रथ, रत। भरत, भरथ। योतिशी, योतिकी। योतिष, योतिक। यह, इह। आये, आए। लाये, लाए। किया, किआ। दिया, दिआ। षट, खट। षष्ठी, खष्ठी। येही, येई। तुही, तूई। तुझे, तुजे। तुझ, तुज।

हिन्दी (खड़ीबोली) भाषाकी 'होना' क्रियापद भाषामें किस प्रकार रूपान्तरित होता है, नीचे वही दिखलाया गया है—

हिन्दी		भाषा।
होना		होनौ-ह्वैबो
मैं हूं	१म पु० १ वच०	हौं-मैं-हों
तैं-तू है	२य पु० १ व०	तैं-तू है
वह है	३य पु० १व०	वह सो-है
हम हैं	१म पु० बहुव०	हम हैं
तुम हो	२य पु० ,,	तुम हौ
वे हैं	३य पु० ,,	वे तें हैं
होता था	१म पु० १ व०	होतुहो
होते थे	१म पु० २य पु० ३य पु० बहुवच०	होतिहे
होती थी (स्त्री)	,, १ वच०	होतिही
होती थीं	,, ,, १ बहुव०	होतिही

नीचे कुछ हिन्दी-पदोंका प्रयोग ब्रज बोलीमें दिया गया है—

हिन्दी	भाषा
मेरा	मेरौ
तेरा	तेरौ
तुमको	तोकौ
उसको	वा-ताकौ
इसका	याकौ
तिसका	ताकौ
मुझसे	मौ सौं ते
कुछ	कच्छु
तक	लौं

नीचे मिश्र हिन्दी खड़ीबोली और ब्रजभाषाका नमूना उद्धृत किया जाता है। थोड़ा गौर कर देखनेसे ही दोनोंमें क्या अन्तर है वह मालूम हो जायेगा।

ब्रजभाषा बरनी कवि न बहु विधिबुद्धिविलास।
सबको भूषण सतसैया करो विहारीदास॥"

¶ प्राचीन 'पृथ्विराजरास' ग्रन्थका बहुत कम प्रचार है। अभी जो कुछ मिला है वह १६वीं सदीका बनाया है। इस ग्रन्थको छोड़ कर ब्रजभाषामें रचित और कोई बड़ा ग्रन्थ नहीं।

खड़ीबोली

"क्या कुढब पड़ गया है उलझेड़ा।
हरिभजन बिन नहीं है सुलझेड़ा॥
नामवल्ली से पारहू पलमें।
कृष्णबिन मांझे धार है बेड़ी॥
लगके चरणों से कृष्णको यह कहूं।
कुञ्ज गलियोंमें हो जो मुठभेड़ा॥
दो मुझे ठौन वह अचल हरिजी।
जैसे ध्रू को दिया अटल खेड़ा।
तेरे मिलनेकी वाट है सीधी॥
यों हीं मारे हैं कितने भट मेड़ा।
कृष्णको रख गुपाल नित उठ भोग॥
मिसरी मक्खन मलाई और पेड़ा।" इत्यादि

भाषा दोहा

"सन बिन सब ऋतु फिर गई देख दिनके फेर।
जेठ भिजोई आंसु वनि सावन जारी घेर॥
गौन समें फेंटा गह्यौ सुन्दरि हित जिय जानि।
छूटत ही दोऊ छुटे फेंटा इत प्रानि॥
मन राखौं हो बरज के जिय राखौं समुझाय।
नैना बरजे तव नार हैं मिले आगउ हाय॥
जब बरजे तव नार हे गेय प्रेमरस लें।
बप बस तें परबस भये ये विसवासी नेन॥" इत्यादि

व्रजभू (सं० पु०) व्रजे भूरुत्पत्तिर्यस्य। १ केलिकदम्ब। (त्रि०) २ व्रजजात। भास्कर पण्डितके पुत्र नारायण भट्टने सुललित श्लोकावलीमें यह ग्रन्थ प्रणयन किया है। इसमें वृन्दावनके देवस्थानोंका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। (स्त्री०) ३ व्रजभूमि।

व्रजभूषण—१ गुणरत्नाकर नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता। २ तत्त्वविवेकसार नामक वेदान्त और भागवतपुराण-टीकाके रचयिता। ३ हठप्रदीपिका टीकाकार।

व्रजभूषण मिश्र—वेदान्तरत्नमालाके प्रणेता।

व्रजमण्डल (सं० क्ली०) व्रजस्य मण्डलम्। व्रजभूमि, व्रज और उसके आस-पासका प्रदेश।

व्रजमोहन (सं० पु०) व्रज व्रजवासिनो जनान् मोहयतीति मुह-णिच्-ण्वुल्। श्रीकृष्ण।

व्रजयुवति (सं० स्त्री०) व्रजानां युवतिः। व्रजकामिनी, व्रजाङ्गना।

व्रजराज (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

व्रजराज—१ उणादिवृत्तिके प्रणेता। २ कारिकावलीटीका नामक वैशेषिक-ग्रन्थके रचयिता। ३ शङ्करदिग्विजयसारके प्रणेता। ४ सम्वत्सरोत्सव-कल्पलताके रचयिता।

व्रजराज गोस्वामी—न्यायसारके प्रणेता।

व्रजराजदीक्षित—१ रसिकरञ्जन नामक रसमञ्जरीटीकाके प्रणेता। २ आर्यात्रिशतीमुक्तक या रसिकरञ्जन, वल्लभाख्यानटीका, शृङ्गारशतक और षड्‌ऋतुवर्णन नामक ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम था कामराज। तर्ककारिकाके प्रणेता जीवराज दीक्षित इनके पुत्र थे।

व्रजराज शुक्ल—अन्नपूर्णाकल्पलता, चण्डीविलास, छिन्नमस्तारहस्य, जैमिनीसूत्रटिप्पण, त्रिशतीटीका, नीतिविलास, दानमञ्जरी, रससुधानिधि (वैद्यक), श्यामादीपदान और सूर्यरहस्यके प्रणेता।

व्रजरामा (सं० स्त्री०) व्रजस्य रामा। व्रजवधू।

व्रजलाल (सं० पु०) १ नन्दलाल, श्रीकृष्ण। २ एक राजा। ये कामसूत्रटीकाके प्रणेता भास्करनृसिंहके प्रतिपालक थे। ३ सेवाविचारके रचयिता।

व्रजवधू (सं० स्त्री०) व्रजस्य वधूः। व्रजवनिता, व्रजाङ्गना।

व्रजवर (सं० पु०) व्रजे वरः श्रेष्ठः। श्रीकृष्ण। व्रजभक्तिविलासमें इनका मन्त्र और पूजा आदि इस प्रकार लिखा है। ये व्रजवर द्वादश अधिवनके अन्तर्गत जावट वनके अधिष्ठात्री देवता हैं। 'ओं ठः जाँ वटाधिवनाधिपतये व्रजवराय नमः' यह उन्नीस अक्षर इनका मन्त्र है। व्रजवरकी पूजा करनेमें सामान्य पूजाक्रमसे पूजा समाप्त कर इस मन्त्रसे प्राणायाम कर ऋषि आदिका न्यास करे।

व्रजवल्लभ (सं० पु०) व्रजानां व्रजवासिनां वल्लभः, प्रियः। श्रीकृष्ण।

व्रजसुन्दरी (सं० स्त्री०) व्रजस्य सुन्दरी। व्रजस्त्री, व्रजाङ्गना।

व्रजस्त्री (सं० स्त्री०) व्रजकामिनी।

व्रजस्पति (सं० पु०) व्रजस्य पतिः, सुड़ागमः। व्रजपति श्रीकृष्ण।

व्रजाङ्गना (सं० स्त्री०) व्रजस्य अङ्गना। व्रजस्त्री, गोपी।

व्रजावास (सं० पु०) व्रजे आवासः। १ व्रजमें अवस्थान। (त्रि०) व्रजे आवासो यस्य। २ व्रजनिवासी, जो व्रजमें अवस्थान करते हैं, व्रजवासी। ३ वृन्दा।

व्रजिन् (सं० त्रि०) पुञ्जीभूत, एकत्रीभूत।

व्रजिन (सं० क्ली०) कल्मष, पाप।

व्रजिनी (सं० स्त्री०) तमःपुञ्जवती, रात्रि।

(ऋक् ५।४५।१ सायण)

व्रजेन्द्र (सं० पु०) व्रजस्य इन्द्रः। १ व्रजके अधिपति नन्द। २ श्रीकृष्ण।

व्रजेश्वर (सं० पु०) व्रजस्य ईश्वरः। श्रीकृष्ण।

व्रजौकस् (सं० पु०) व्रजे ओकः अवस्थान येषां। व्रजवासी।

व्रज्य (सं० त्रि०) गो जात। व्रजे गोसमूहे भरो व्रज्यः तस्मैः। (शुक्लयजु १६।४४ महीधर)

व्रज्या (सं० स्त्री०) प्रजनमिति व्रज गतौ (व्रज यजोर्भावे क्यप्। पा ३।३।९८) इति क्यप। १ पर्यटन, घूमना फिरना। २ आक्रमण, चढ़ाई। ३ गमन, जाना। ४ एक ही तरहकी बहुत सी चीजें एक स्थान पर एकत्र करना। ५ रङ्ग। ६ रङ्गालय, नाट्यशाला। ७ दल।

व्रज्यावत् (सं० त्रि०) गजगमन सदृश। (भट्टि ७।७०)

व्रढ़िमन् (सं० पु०) व्रढ़-णिच् (पा ५।१।१२३) व्रढ़का भाव।

व्रण (सं० पु० क्ली०) व्रणयति गात्रमिति व्रण अङ्गचूर्णे पचादित्वादच्। १ क्षत, फोड़ा। पर्याय—ईर्म, अरु। २ स्वनामप्रसिद्ध रोग। शरीरमें जो क्षत होता है, वही व्रण या फोड़ा है। साधारणतः व्रण कहनेसे घ व या फोड़ेका बोध होता है। यह पहले दो प्रकारका है; शारीर और आगन्तु। जो व्रण वायु, पित्त, कफ, शोणित और सन्निपातसे होता है अर्थात् वायु, पित्त, कफ और कफादिके बिगड़नेसे जो व्रणरोग उत्पन्न होता है। उसे शारीर-व्रण कहते हैं। फिर जहां पुरुष, पशु, पक्षी, व्याल, सरीसृप, प्रपतन, पीड़न, प्रहार, अग्नि, क्षार, विष, तीक्ष्णौषध आदि द्वारा क्षत होता है उसे आगन्तु कहते हैं। (सुश्रुत)

चरकसंहितामें लिखा है, कि व्रणरोग दो प्रकारका है—निज और आगन्तु। शारीर दोष अर्थात् वायु, पित्त, कफ या सन्निपात (वायु), पित्त और कफके मिलनेसे जहां व्रणरोगकी उत्पत्ति होती है, वहां उसे निज व्रण कहते हैं। फिर बाह्यहेतु द्वारा अर्थात् वधाघात, पतन, दंशन आदि द्वारा जो व्रणरोग उत्पन्न होता है, उसका नाम आगन्तु है। निज व्रणमें वातादि दोषके कुपित होनेसे व्रणरोग होता है। आगन्तु व्रणरोगमें किसी बाह्य कारणसे क्षत हो पीछे वातादि दोष दूषित होता है।

उक्त शारीर और आगन्तु दोनों प्रकारके व्रण नानात्व भेदसे बीस प्रकारके हैं। उनमेंसे दुष्ट व्रण बारह प्रकारका, स्थान ८, गन्ध ८, स्राव १४, उपद्रव १६, दोष २४ और चिकित्सा क्रम ३६ प्रकारके हैं।

व्रणके ८ प्रकारके स्थान हैं। उन आठ स्थानोंमें साधारणतः व्रणोत्पत्ति हुआ करती है। यह स्थान यथा—१ त्वक्, २ शिरा, ३ मांस, ४ मेद, ५ अस्थि, ६ स्नायु, ७ मर्म, ८ अभ्यन्तर।

उक्त व्रणोंसे ८ प्रकारकी गन्ध निकलती है। इन सब गन्धोंका विषय इस प्रकार लिखा है—१ घृतवद्गन्ध, २ तेलवद्गन्ध, ३ वसावद्गन्ध, ४ पूयगंध, ५ रक्तगंध, ६ धूमगंध, ७ अम्लगंध और ८ पूतिगंध।

उक्त सभी प्रकारके व्रणसे १४ प्रकारका स्राव निकलता है। ये सब स्राव इस प्रकार हैं—१ लसीकास्राव, २ जलस्राव, ३ पूयस्राव, ४ रक्तवर्णस्राव, ५ हरिद्रावर्ण स्राव, ६ अरुणवर्ण, ७ पिङ्गलवर्ण, ८ कषाय अर्थात् वटपत्रादिके काढ़ेकी तरह, ९ नील वर्ण, १० हरिद्वर्ण, ११ स्निग्ध, १२ रुक्ष, १३ श्वेतवर्ण और १४ कृष्णवर्ण स्राव।

व्रणके १६ प्रकारके उपद्रव हैं—१ विसर्प, २ पक्षाघात, ३ शिरस्तम्भ, ४ अपतानक, ५ मोह, ६ उन्माद, ७ व्रणव्यथा, ८ ज्वर, ९ तृष्णा, १० हनूग्रह, ११ कास, १२ वमि, १३ अतिसार, १४ हिक्का, १५ श्वास और १६ कम्प।

व्रणरोगके २४ प्रकारके दोष हैं—१ स्नायुक्लेद, २ विलम्बसे छेद, ३ गभीरता, ४ क्रिमिकी उत्पत्ति और दंशन (अर्थात् घावमें कीड़ा पड़ना और खुजलाना) ५ अस्थिभेद, ६ सशल्यत्व, ७ सविषत्व, ८ परिसर्पण, ९ नखाघात, १० काष्ठाघात, ११ चर्मका अभिघट्टन, १२

लोमका अभिघट्टन, १३ अनुपयुक्त व्रणबन्धन, १४ अति स्नेहप्रयोग, १५ अतिभैषज्यकर्षण, १६ अजीर्ण, १७ अतिभोजन, १८ विरुद्धभोजन, १९ असात्म्यभोजन, २० शोक, २१ क्रोध, २२ दिवानिद्रा, २३ मैथुन और २४ क्षोभण, व्रणरोगमें यही २४ प्रकारके दोष हैं। जब ये सब दोष उपस्थित होते हैं, उस समय यदि अच्छी तरह चिकित्सा न की जाय, तो यह प्रशमित नहीं होता। व्रणमें परिस्राव दुर्गंध और बहुदोष होनेसे वह कृच्छ्र-साध्य होता है।

व्रणकी तीन परीक्षा है—दर्शन, प्रश्न और स्पर्शन। प्रथम दर्शन है। इस दर्शन द्वारा रोगीको वयस, व्रण के वर्ण, शरीर और इन्द्रियकी परीक्षा होती है। द्वितीय प्रश्न है, इससे रोगोत्पादक हेतु, उपस्थित पीड़ा और अग्निबलकी परीक्षा होती है। तृतीय स्पर्श है, व्रण स्पर्श करनेसे उसकी कठिनता, कोमलता, शीतलता और उष्णता आदिका अनुभव होता है। इस त्रिविध परीक्षा द्वारा परीक्षा करके व्रणरोगकी चिकित्सा करनी होती है।

यदि किसीका व्रणत्वक्, मांसका मर्म रहित स्थानमें उत्पन्न हो, बहुत दिनका न हो, तृष्णादि उपद्रवशून्य हो, रोगी युवक और हिताहितज्ञ हो तथा कालशुभ अर्थात् हेमन्तका शीतऋतुमें हो, तो यह अति शीघ्र आरोग्य होता है। इस प्रकारके व्रणके ही सुखसाध्य जानना होगा। फिर यदि इन सब गुणोंका कुछ भी अभाव हो, तो वह कष्टसाध्य है। इनमेंसे सबोंका अभाव होनेसे उसे असाध्य जानना चाहिये।

व्रणपीड़ित व्यक्तिके बलाबलका विचार कर वमन, विरेचन, अस्त्रप्रयोग वा वस्तिक्रिया द्वारा विशोधन करना कर्त्तव्य है। उक्त प्रकारसे विशुद्ध होने पर व्रण शीघ्र ही प्रशमित होता है।

व्रणके ३६ प्रकारके उपक्रम और ६ प्रकारकी शोथघ्न-क्रिया है अर्थात् व्रणका फूलना जिससे बंद हो जाय, उसके लिये ६ प्रकारकी क्रिया निर्दिष्ट है। शास्त्रकर्म, अवपीड़न, निर्वापण, संधान, स्वेद, शमन, शोधनकषाय, रोपणकषाय, शोधनप्रलेप, रोपणप्रलेप, शोधनतैल, रोपणतैल, शोधनघृत, रोपणघृत, शोधनपत्राच्छादन, रोपण-पत्राच्छादन, सठवबन्धन, दक्षिणबन्धन, खाद्य, उत्सादन, अवसादन, द्विविध दाह, धूप, मार्दवकरण, काठिन्यहर-लेपन, मार्दवकरलेपन, व्रणावचूर्णन, वर्ण्य, रोपन और रोमरोहण ये ३६ प्रकार व्रणके उपक्रम।

जहां व्रण निकलता है, वहां पहले सूजन पड़ जाती है। यही सूजन व्रणकी पूर्वलक्षण है। त्वक् आदि स्थानोंमें सूजन दिखाई देनेसे जानना चाहिये, कि वहां फोड़ा निकलेगा। इस शोथ या सूजनके दोषादिका विषय परीक्षा कर उसकी शान्ति करनी चाहिये। जिससे उस शोथमें व्रण न हो, उसके लिये पहले जोंकसे रक्तमोक्षण करना होता है। इससे व्रण निकलने नहीं पाता। किन्तु वह शोथ यदि बहुदोषयुक्त हो, तो वमन विरेचनादि शोधन और अल्प दोष दुष्ट होनेसे लङ्घनको व्यवस्था करनी होगी। शोथमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे पहले वातघ्नकषाय और घृत प्रयोग द्वारा उसकी शान्ति करनी होती है।

व्रणरोगकी चिकित्सा—व्रणकी शोथावस्थामें बट, पीपल, गूलर, पाकड़ और अम्लबेंत, इनकी छालको जलमें पीस कर घीके साथ प्रलेप देनेसे शोथ प्रशमित होता है। भांग, मुलेठी, क्षीरककोली, पद्ममूल, शतमूली, नीलोत्पल, नागकेशर और रक्तचन्दन इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी शोथ विनष्ट होता है। जौका सत्तू, मुलेठी, घी और चीनी इन सब द्रव्योंका प्रलेप तथा अविदाही अन्नभोजन व्रणशोथके लिये विशेष उपकारी है।

व्रणको शोथावस्थामें पहले इसी प्रकार प्रलेप दे। इससे यदि शोथ न दबे, उपनाह अर्थात् पुलटिस दे कर उसे पकाना होगा। पीछे उसके पक जाने पर शस्त्र-प्रयोग द्वारा उसे चीर देना होता है। चीर देने हीसे वह जल्द आरोग्य होता है। अतएव ऐसी अवस्थामें अस्त्र प्रयोग ही विशेष हितकर है।

फोड़ेको पकानेके लिये उक्त प्रकारसे पुलटिस देनी होगी। जौके सत्तूको जलमें पाक कर उसमें घी वा तेल अथवा घी तेल दोनों ही मिला कर गरम करे, पीछे गरम रहते ही उसकी पुलटिस दे। कृष्णतैल, तीसी, कुट और सैन्धव नमक मिला हुआ जौके सत्तूका गोला,

इन्हें खट्टे दहीमें घोल कर पुलटिस दे। इससे फोड़ा बहुत जल्द पक जाता है।

पुलटिस देनेसे जब व्रणशोथमें दाह, रक्तवर्णता, सूचीविद्धवत्, सब लक्षण उपस्थित हों, तो जानना चाहिये, कि वह शोथ पक गया है। शोथस्थल स्पर्श करनेसे यदि जलपूर्ण वस्तिकी तरह उसका स्पर्श हृ और उंगलीसे दावने पर यदि वह पहलेकी तरह उन्नत हो उठे, तो जानना चाहिये, कि वह व्रण अच्छी तरह पक गया है। व्रणके अच्छी तरह पक जाने पर उसे चीर फाड़ करना होता है। पक्वव्रणके लिये शस्त्रप्रयोग ही विशेष उपकारी है। यदि डरपोक आदमी चीरफाड़से भय खाता हो, तो तीसी, गुग्गुल, थूहरका दूध, कबूतरकी विष्ठा, पलाशका क्षार, स्वर्णक्षीरी वा दण्डी इन्हें पक्व व्रणके ऊपर देना होगा। ये सब द्रव्य पक्व व्रणके भेदक हैं अर्थात् इनसे पक्वव्रण फट जाता है।

व्रणमें शस्त्रकर्म ६ प्रकारके बताये गये हैं, यथा—पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन, प्रच्छन और सीवन।

जलोदर पक्वगुल्म और विसर्वपिड़कादि सभी रक्तज रोग व्यधनयोग्य हैं अर्थात् इन्हें विद्ध करना होता है। अर्श प्रभृति अधिमांसरोग छेदन अर्थात् काट कर फेंक देने योग्य हैं।

जिन सब व्रणमें अधिक मांस इकट्ठा हो जाता है तथा प्रान्तदेश स्थूल उन्नत और कठिन होता है वे सब व्रण लेखन है अर्थात् तेज औजारसे उसे चीर देना होता है। वातरक्त आदि प्रच्छन हैं अर्थात् कांटे आदिसे उसकी पीप निकाल देनी होती है।

जिन सब व्रणका मुख सूक्ष्म, पर मध्यस्थल कोषयुक्त है, उन्हें प्रपीड़न करना होता है। निम्नोक्तरूपसे व्रणको प्रपीड़न करनेकी विधि है। मसूर, मटर और गेहूं, ये सब प्रपीड़न द्रव्य हैं। इन सब वस्तुओंमेंसे कोई एक वस्तु ले कर अच्छी तरह पीसे। बादमें किसी तरहका स्नेहपदार्थ उसमें न मिला कर व्रणके ऊपर प्रलेप दे, तो व्रणकी पीप आपे आप बाहर निकल आयेगी।

सेमरकी छाल, बिजवंदका मूल और वटपल्लव इन सब द्रव्योंका परिषेक और प्रलेप देनेसे भी उपकार होता है। शतधौतघृत, दुग्ध वा यष्टिमधुके क्वाथका परिषेक तथा शैत्यक्रिया करनेसे रक्तपित्तोल्वण व्रण प्रशमित होता है। व्रणस्थानकी जलनको दूर करनेके लिये सेमरकी छालका प्रलेप वा परिषेक देना होता है। इससे यन्त्रणा शीघ्र नष्ट होती है।

व्रणको काटने पर यदि क्षतस्थलमें मांस लटक जाय, तो उस मांसको पहले जिस भावमें ला कर वहां घी और मधुका प्रलेप दे वस्त्रखण्ड द्वारा अच्छी तरह बांध दे। जब मालूम हो गया कि मांस जुड़ गया तब क्षतस्थलको भरनेके लिये प्रियङ्गु, लोध, कायफल, वराक्रान्ता और धवका फूल, इनका चूर्ण अथवा पञ्चवल्कलचूर्ण या शुक्तिचूर्ण इन्हें व्रणमें ठूस दे। इससे व्रणक्षत भर आयेगा। वातोल्वणव्रणमें यदि दाह और वेदना रहे, तो उस व्रणमें कृष्णतिल और तीसीको भुन कर दूधमें पीस प्रलेप दे। इससे दाह और वेदना विनष्ट होती है।

व्रणके क्षतस्थलमें यदि अत्यन्त शूल हो, तो सर्कराके विधानानुसार उसे प्रस्तुत कर व्रणमें प्रक्षेप दे। इससे वह शूल रह जाता है। दशमूलका काथ वा दहीका पानी अथवा कुछ गरम-तैलमिश्रित घृत, व्रणस्थलमें परिषेक करनेसे वातोल्वन व्रणका दाह और वेदना प्रशमित होती है।

साधारणतः व्रणका दाह और वेदना दूर करनेके लिये जौका चूर, मुलेठी और तिलक चूर, समान भाग ले कर जलमें पीसे। पीछे घी मिला कर कुछ गरम करके व्रणके ऊपर प्रलेप देनेसे व्रणका दाह और वेदना नष्ट होती है। समान परिमाणमें कृष्णतिल और मूंग दूधमें पका कर उसका उपनाह देनेसे भी व्रणका दाह और वेदना नष्ट होती।

जिन सब व्रणका मुख अति सूक्ष्म है तथा जिनसे पीप अधिक निकलती है, उन सब व्रणमें नाली है वा नहीं पहले उसका पता लगाना आवश्यक है। इस प्रकार पता लगानेका नाम एषणा है। किन्तु व्रण यदि मर्मस्थान जात हो तो एषणा उचित नहीं। उक्त व्रणकी नली कहां तक गई है, शलाका द्वारा वह स्थिर करना

होता है। यह एषणा दो प्रकारकी है—मृदु और कठिन। जहां उद्भिद्की मृदुनाल द्वारा एषणा होती हैं, उसे मृदु एषणा और जहाँ लौहशलाका द्वारा एषणा होती है, वहाँ उसे कठिन एषणा कहते हैं। मांसल प्रदेशमें व्रण गम्भीर होनेसे लौहशलाका द्वारा नलीका अनुसन्धान कर पाटन करना होता है। इसके विपरीत स्थलमें मृदु एषणा कर पाटन करे।

जिन सब व्रणसे अत्यन्त दुर्गन्ध निकलती है तथा जो विवर्ण, बहुस्रावयुक्त और वेदनान्वित है, वैसे व्रणको अशुद्ध जानना चाहिये। यह अशुद्ध व्रण शोधन-प्रणालीके अनुसार शुद्ध कर चिकित्सा करनी होगी।

निम्न व्रणका उत्सादन—स्तन्यजनक द्रव्य, वृंहणीय द्रव्य इन सब द्रव्योंका प्रलेपादि देनेसे निम्नव्रण ऊपरको उठता है। भोजपत्रकी गाँठ, पथरकुच्चा, हीराकसीस और गुग्गुल समान भाग ले कर लेप देनेसे व्रणका अवसादन अर्थात् उन्नत व्रण निम्न होता है। कबूतरकी विष्ठा लगानेसे भी व्रणका अवसादन होता है।

व्रणमें अग्निकर्म—रक्तके अतिस्रावमें, विद्धस्थानमें, छेदनाई स्थानमें, अधिक माँस-स्थलमें, गण्डमालामें, गंभीर-व्रणमें, स्थिरव्रणमें तथा स्पर्शरहित स्थानमें अग्निकर्म प्रशस्त है। मोम, तेल, मज्जा, मधु, चरबी, घी और शलाकादि विविध प्रकारके लौह-द्रव्यको अग्निमें उत्तप्त कर दाह करे। बालक, वृद्ध, दुर्बल व्यक्ति, गर्भिणी स्त्री, रक्तपित्त, तृष्णा और ज्वरपीड़ित रोगी, भीरु और विषण्ण व्यक्ति इनके लिये अग्निकर्म निषिद्ध है। स्नायुव्रणमें, मर्मव्रणमें, सविष वा सशल्य व्रणमें तथा नेत्र और कोष्ठ व्रणमें भी अग्निकर्म निषिद्ध बताया गया है।

व्रणके दोष और कालकी विवेचना कर सुनिपुण चिकित्सक शस्त्र और अग्निकर्मसाध्य व्रणमें क्षारका प्रयोग कर सकते हैं। श्वेतचन्दन वा गन्धकके धूपका प्रयोग करनेसे शिथिल व्रण कठिन हो जाता है। घृत, मज्जा, चरबी और तेलका धूप देनेसे कठिन व्रण शिथिल होता है। व्रणमें इस प्रकार धूप देनेसे व्रणकी वेदना, स्राव, गंध, कृमि, कठिनता और मृदुता प्रशमित होती है। लोध, वटशुङ्ग, खदिर, त्रिफला, इन सब द्रव्योंके कल्कको घृताक्त कर व्रणमें प्रलेप देनेसे व्रण शिथिल और मुलायम होता है।

अर्जुन, यज्ञडुमर, पीपल, लोध, जामुन और कायफल इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस कर घृत और मधुके साथ मिलावे और व्रणके ऊपर प्रलेप दे। इससे त्वग् विशुद्धि होती है। तगरपादुका, आमकी गुठलीका गूदा, नागेश्वर और लौहचूर्ण इन्हें गोबरके रसमें मर्दन कर व्रणस्थानमें प्रलेप देनेसे उस स्थानका रंग पहले जैसा हो जाता है। गन्ध, तृण, पीपल और हिज्जलमूल, लाक्षा, गेरूमिट्टी, नागेश्वर, गुलञ्च और हीराकसीस इन सब द्रव्योंका प्रलेप देनेसे भी व्रणस्थानका वर्ण गात्रके समान होता है। चौपाये जन्तुके चमड़े, रोएं, खुर, सींग और हड्डीको भस्म कर वह भस्म तेलके साथ व्रणस्थानमें लगानेसे वहां रोएं निकलते हैं।

व्रणरोगी लवण, अम्ल, कटु, उष्ण, विदाहि और गुरुपाक अन्नपान तथा मैथुन परित्याग करें। अति शीतल, स्निग्ध और अविदाही लघु अन्न और पान तथा दिनको नहीं सोना व्रणरोगीके लिये हितकर है।

(चरक चिकित्सितस्था० २५ अ०)

सुश्रुत, वाग्भट और भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें व्रणका विशेष विवरण दिया गया है।

व्रणकृत् (सं० पु०) व्रणं करोतीति कृ-क्विप् तुगागमश्च। १ भल्लातक, भिलावां। (त्रि०) २ क्षतकारक।

व्रणकेतुघ्नी (सं० स्त्री०) व्रणकेतु हन्तीति हन-टक-ङीप्। दुग्धफेणीक्षुप, दूधफेनीका पौधा।

व्रणग्रन्थि (सं० पु०) व्रणरोगभेद, वह गांठ जो फोड़ेके ऊपर हो जाती है। वैद्यकमें इसकी गणना रोगोंमें होती है।

व्रणजिता (सं० स्त्री०) गोरखमुण्डी। (वैद्यकनि०)

व्रणद्विष् (सं० पु०) व्रणस्य द्विट् शत्रुः। १ ब्राह्मणयष्टिका। (त्रि०) २ व्रणद्वेषक।

व्रणधूपन (सं० पु०) व्रणस्य धूपनं। व्रणको धूपदानविधि। व्रण शब्द देखो।

व्रणरोपण (सं० क्ली०) व्रणस्य रोपणं। व्रणका रोपण,

फोड़ेका घाव भरनेकी क्रिया। फोड़ेमेंसे दूषित मांस निकल जाने पर जो औषधादि द्वारा फोड़े या घाव भरा जाता है, उसे व्रणरोपण कहते हैं। भावप्रकाशमें लिखा है, कि दूषित मांस निकलने पर उस जगह मांस भरनेके लिये तिलका कल्क, घृत और मधु संयोगसे प्रयोग करना चाहिए। असगंध, कटकी, लोध, कायफल, इन सबोंको पीस मधके साथ प्रयोग करनेसे व्रणरोपण अर्थात् व्रणकी गम्भीरता पूरी होती है। व्रण शब्द देखो।

व्रणरोपणरस (सं० पु०) क्षुद्ररोगाधिकारकी एक औषध। बनानेकी तरकीब—रस, गंधक, अफीम, सौवर्च्चल और सेंधा नमक समान भाग ले कर जम्बीर, घृतकुमारी, नरमूत्र और चिताके रसमें तीन तीन दिन अलग रख भावना दे तैयार करे। मात्रा ६ रत्ती, अनुपान मधु है। (रसेन्द्रचिन्ता० क्षुद्ररोगाधि०)

व्रणवत् (सं० त्रि०) व्रण अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। व्रणविशिष्ट, व्रणरोगी।

व्रणशोथ (सं० पु०) व्रणस्य शोथः। व्रणका स्फीतताकारक रोगभेद। पृथक् या समस्त दोष दूषित हो कर छः प्रकार व्रणशोथ उत्पन्न करता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज और आगन्तुज। इसमें शोथके लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

व्रणशोधन (सं० पु०) कम्पिल्लक, कमीला। (वैद्यकनि०)

व्रणशोष (सं० पु०) व्रणस्य शोषः। क्षतजन्य शोषरोग, फोड़े या घाव आदिमें होनेवाला वह सूजन जिसके साथमें पीड़ा भी हो।

व्रणस्थान (सं० क्ली०) व्रणस्य स्थानं। व्रणका स्थान। चरक और सुश्रुतसंहितामें लिखा है, कि व्रणके आठ स्थान हैं,—त्वक्, मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि, कोष्ठ और मर्म। इन आठ स्थानोंमें दोषदुष्ट व्रण होता है। (सुश्रुत सू० २२ अ०)

व्रणस्राव (सं० पु०) व्रणस्य स्रावः। सुश्रुतोक्त व्रणरोगका पूयादि क्षरण।

व्रणह (सं० पु०) व्रणं हन्तीति हन-ड। १ एरण्डवृक्ष, रेंड़का पेड़। (त्रि०) २ व्रणघातक।

व्रणहरी (सं० स्त्री०) लाङ्गलिकौषधि, विषलांगुलिया। (वैद्यकनि०)

व्रणहा (सं० स्त्री०) व्रणं हन्तीति हन ड, स्त्रियां टाप्। गुड़ूची, गुड़ुच।

व्रणहृत् (सं० पु०) व्रणं हरतीति हृ-क्विप् तुक् च। कलिकारी या कलिहारी नामक पेड़। (राजनि०)

व्रणायाम (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका वातरोग। इसमें मर्मस्थानके फोड़ेमें सारे शरीरकी वायु एकत्र हो कर व्याप्त हो जाती है। यह रोग असाध्य माना जाता है।

व्रणारि (सं० पु०) व्रणस्य अरिः। १ बोल नामक गन्धद्रव्य। २ अगस्त नामक वृक्ष।

व्रणिन् (सं० त्रि०) व्रण अस्त्यर्थे इनि। व्रणरोगी, जिसे व्रण हुआ हो।

व्रणिल (सं० त्रि०) व्रणयुक्त, क्षतविशिष्ट।

व्रणीय (सं० त्रि०) व्रण-सम्बन्धी, व्रण या फोड़ेका।

व्रणोपक्रम (सं० पु०) व्रणस्य उपक्रमः। व्रणरोगकी चिकित्सा। सुश्रुत चिकित्सित स्थानमें १ अध्यायमें ६० प्रकार व्रणोपक्रम अर्थात् व्रणकी चिकित्सा वर्णित हुई हैं। "व्रणोपक्रमः षष्टिविधोऽपतर्पणादि भेदेन, यथा इत्यादि" (सुश्रुत चि० १ अ०)

ये ६० प्रकार जैसे—अपतर्पण, आलेप, परिषेक, अभ्यङ्ग, स्वेद, विम्लापन, उपनाह, पाचन, विस्रावण, स्नेह, वमन, विरेचन, छेदन, भेदन, दारण, लेखन, एषण, आहरण, व्यधन, सीवन, सन्धान, पीड़न, शोणितस्थापन, निर्वापन, उत्कारिका, कषाय, वर्त्ति, कल्क, सर्पि, तैल, रसक्रिया, अवचूर्णन, व्रणधूपन, अवगाहन, मृदुकर्म, दारणकर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, पाण्डुकर्म, प्रतिसारण, रोमसंजनन, लोमापहरण, वस्तिकर्म, उत्तर वस्तिकर्म, बन्ध, पत्रदान, कृमिघ्न, बृंहण, विषघ्न, शिरोविरेचन, नस्य, कवलधारण, धूम, मधुसर्पिः, यन्त्र, आहार तथा रक्षाविधान ये साठ प्रकार व्रणरोगके उपक्रम हैं।

व्रण्य (सं० त्रि०) व्रणोत्पादनयोग्य।

व्रत (सं० पु० क्ली०) व्रियते इति व्रञ् वरणे बाहुलकात् तच् स च कित्। १ भक्षण, भोजन करना। २ पुण्यजनक उपवासादि। किसी पुण्य तिथिमें पुण्य प्राप्तिके लिये उपवास आदि करनेका नाम व्रत है। जिन सब

उपवासादि कर्मानुष्ठान द्वारा पुण्य सञ्चय होता है, उसको व्रत कहते हैं। सम्यक् सङ्कल्पजनित अनुष्ठेय क्रियाविशेष रूपका नाम व्रत है। यह पहले दो प्रकारका प्रवृत्तिरूप और निवृत्तिरूप है। द्रव्य विशेष भोजन और पूजादि साध्य व्रतको प्रवृत्तिरूप और केवल उपवासादि साध्य व्रतको निवृत्तिरूप कहते हैं। इसके फिर तीन भेद हैं, नित्य, नैमित्तिक और काम्य। अकरणसे प्रत्यवाय होता है उसे नित्य कहते हैं। एकादशी आदि व्रत नित्य हैं। किसी निमित्त वशतः जो व्रत किया जाता है, उसका नाम नैमित्तिक है। पापक्षयके लिये चान्द्रायणादि व्रत नैमित्तिक है। तिथिविशेषमें कामना करके जो सब व्रत किये जाते हैं, उन्हें काम्य कहते हैं। जैसे, सावित्री आदि व्रत। ज्येष्ठमासकी कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें अवैधव्य-कामनासे सावित्री व्रत करना होता है, अतएव यह काम्य है। इस प्रकार कामना करके जो व्रत किया जाता है, वही काम्य है।

व्रतारम्भविधि—हेमाद्रिके व्रतखण्डमें लिखा है, कि अखण्डा तिथिमें व्रतारम्भ करना होता है। खण्डा तिथि व्रतारम्भमें निषिद्ध है अर्थात् इस तिथिमें व्रत नहीं करना चाहिये। गुरु शुक्रके बाल्य वृद्धास्तजनित अकाल और मलमासमें भी व्रतारम्भ निषिद्ध है।

जिस तिथि तक सूर्यदेव अवस्थान करते हैं, वही अखण्डा तिथि है। यह अखण्डा तिथि ही व्रतारम्भमें प्रशस्त है। अस्तगामिनी तिथिकी अपेक्षा उदयगामिनी तिथि ही श्रेष्ठ है। अतएव उदयगामिनी तिथिमें ही व्रतादि कार्य करने चाहिये।

व्रतके कायिक और मानसिक दो प्रकारके भेद कहे गये हैं। यथा—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अकल्मष, ये सब मानस व्रत हैं। इन सबका अनुष्ठान करनेसे मानस व्रतका फल होता है। कायिक व्रत—उपवास और अयाचित भावमें अवस्थान आदि अर्थात् दिनरात उपवास या अशक्त व्यक्तिके लिये रातको भोजन तथा किसीसे कुछ न माँगना, यही कायिक व्रत है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंमें स्त्री, पुरुष सभीको व्रतमें अधिकार है। ये सभी व्रतानुष्ठान द्वारा पापमुक्त हो श्रेष्ठगतिको पा सकते हैं। जो व्रतानुष्ठान करेंगे उनका कर्ममें अधिकार रहना आवश्यक है। इस अधिकारका विषय इस प्रकार लिखा है, कि जो वर्णानुसार अपने अपने आश्रमधर्मका प्रतिपालन करते हैं तथा विशुद्ध चित्त, अलुब्ध, सत्यवादी, सब भूतोंके हितकारी, श्रद्धायुक्त, मद और दम्भरहित तथा पहले शास्त्रार्थ निर्णय करके तदनुसार कार्यकारी, ये सब सद्गुणविशिष्ट व्यक्ति ही व्रतके अधिकारी हैं। अर्थात् जो धार्मिक हैं, वे ही व्रतानुष्ठान करेंगे और उन्हींको व्रत करनेका फल मिलेगा, दूसरेको नहीं। धार्मिक शब्दका अर्थ ऐसा लिखा है, कि पितरोंके उद्देशसे श्रद्धा, तपस्या, सत्य, अक्रोध, स्वदारमें सन्तोष, शौच, अनसूया, आत्मज्ञान, तितिक्षा, ये सब साधारण धर्म कहलाते हैं। इन सब साधारण धर्मके अनुसार जो विचरण करते हैं, वे धार्मिक व्यक्ति ही व्रतके अधिकारी हैं।

चारों वर्णकी स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार है। किन्तु उसके सम्बन्धमें कुछ विशेष विधि है, वह यह कि सधवा स्त्री स्वामीकी अनुमति ले कर व्रत करें। विना अनुमति लिये वह व्रत नहीं कर सकती हैं। क्योंकि, शास्त्रमें लिखा है, कि स्त्रियोंके लिये पृथक् यज्ञ, व्रत, उपवास आदि कुछ भी नहीं है। एकमात्र पतिशुश्रूषा ही उनका धर्म है। इसीसे वह उत्कृष्ट लोक पाती है।

अविवाहिता कन्या पिताकी, सधवा पतिकी और विधवा पुत्रकी अनुमति ले कर व्रताचरण करे।

कुमारी, सधवा और विधवा स्त्री मात्रको ही पिता, पति और पुत्रका आदेश ले कर व्रत करना चाहिये। अन्यथा वे व्रतकी फलभागिनी नहीं होंगी।

व्रताचरण करनेमें उसके पूर्व दिन संयत हो कर रहना पड़ता है। पीछे व्रतारम्भके दिन सङ्कल्प करके व्रत करना होता है। व्रतके पूर्व दिन धान, साठी, मूंग, उड़द, जल, दूध, साँवा, नीवार और गेहूं ये सब अन्न खा सकते हैं, किन्तु कुम्हड़ा, कद्दू, बैंगन, पालंकी साग, ज्योत्स्निका (सफेद फूलकी तरोई) ये सब वस्तु खाना निषिद्ध है।

चरु, शक्तु, शाक, दधि, घृत, मधु, श्यामाक, शालि, नीवार, मूल और फलादि भी भोजन कर सकते हैं। परन्तु मधु और मांस भोजन निषिद्ध है।

उस दिन ब्रह्मचर्यावलम्बन करके रहना होता है। ब्रह्मचर्य शब्दसे अष्टाङ्ग मैथुननिवृत्ति समझनी होगी। व्रत करनेवाले इस दिन सभी भूतोंके प्रति दया, शान्ति, अनसूया, शौच आदिका पालन करेंगे।

व्रतारंभके समय यदि अशौचादि हो गये, तो व्रत नहीं करना चाहिये। किन्तु व्रतारंभके बाद होनेसे व्रत किया जा सकता है, इसमें दोष नहीं होता। अर्थात् एक व्रत ७ वर्ष तक करना होता है, उनमेंसे जिस बारमें प्रथम व्रतारंभ होगा, उस बारमें यदि अशौचादि हो जाये, तो व्रत नहीं कर सकते। किन्तु दूसरे वर्ष यदि व्रतके समसमयमें अशौच या स्त्री रजस्वला हो, तो व्रतमें बाधा नहीं होगी, वह दूसरे द्वारा कराया जायेगा अर्थात् ब्राह्मण व्रत करेंगे, और उपवासादि स्वयं करना होगा। उपवासमें असमर्थ होने पर पुत्रादि प्रतिनिधि द्वारा उपवास करावे। स्वामीके व्रतमें स्त्री और स्त्रीके व्रतमें स्वामी प्रतिनिधि हो सकता है। यह यदि न हो, तो ब्राह्मणको भी प्रतिनिधि कर सकते हैं।

यथाविधान व्रतग्रहण करनेसे समाप्तिके बाद उस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होती है। व्रतविशेषमें ५, ७, १४ आदि वर्षमें उसकी प्रतिष्ठा कही गई है। यदि कोई व्रतका आरंभ कर व्रतके समाप्तिकाल तक न बचे, तो व्रतकी असमाप्तिके लिये दोष नहीं होगा। व्रत करनेवालेको उस व्रतका फल मिलेगा। किन्तु यदि कोई व्यक्ति लोभ, मोह, प्रमादवशतः व्रतभङ्ग कर दे, तो उसे प्रायश्चित्त करना होता है। प्रायश्चित्तानुष्ठानके बाद फिरसे वह व्रत करना होगा। प्रायश्चित्तके विषयमें लिखा है, कि तीन दिन उपवास और केशमुण्डन करे। केशमुण्डन यदि न करे, तो उसके मूल प्रायश्चित्तका दूना प्रायश्चित्त करना होगा। सधवा स्त्रीके सम्बन्धमें विशेषता यह है, कि वे केशमुण्डन न करावे, सिर्फ केशके अग्रभागसे दो उंगली केश माप कर उसे काट डाले। इस प्रकार प्रायश्चित्त करनेके बाद पुनः व्रत करना होगा। यदि कोई सङ्कल्प करके व्रतग्रहणपूर्वक वह व्रत न करे, तो वह जीवितावस्थामें चण्डालत्व और मरनेके बाद कुक्कुरयोनिको प्राप्त होता है।

व्रतग्रहणके विषयमें पूर्वाह्नकालमें सङ्कल्प करना होता है। पूर्व दिन संयतचित्त हो कर व्रतदिनमें सबेरे स्नान सन्ध्यादि करके आचमन, सूर्यार्घ्य, गणेश, शिवादि पञ्चदेवता, आदित्यादि नवग्रह और इन्द्रादि दशदिक्पाल आदिकी पूजा, सूर्य, सोम इत्यादि स्वस्तिवाचन करके संकल्प करे।

व्रत जितने दिनोंमें शेष होगा उतने दिनों तक एक ही नियमसे व्रतानुष्ठान करना होगा। नियमित समय पूरा होने पर विधिके अनुसार उस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होगी। प्रतिष्ठाकालमें यदि जन्म या मरणाशौच हो, तो भी पूर्व सङ्कल्पानुसार प्रतिष्ठाकार्य सिद्ध होगा, उसमें किसी तरहका दोष नहीं होता। किन्तु जिनका व्रत है, वे उपवासादि भिन्न और कुछ भी नहीं कर सकते।

यदि किसी विड़म्बनासे प्रतिष्ठा वर्षमें प्रतिष्ठा न हो, तो अशौच नहीं होगा। यदि उस वर्षमें गुरु शुक्रका बाल्य, अस्त और वृद्धजनित अकाल और मलमासादि हो, तो भी प्रतिष्ठा नहीं होगी। जिस वर्षमें अकाल, मलमास आदि न पड़े तथा अशौचादि न रहे, उसी वर्षमें प्रतिष्ठा होगी, किन्तु प्रतिष्ठा वर्षमें प्रतिष्ठा नहीं करनेसे पापभागी अवश्य होना पड़ेगा।

व्रतकारी व्रतानुष्ठानके बाद व्रतकथा श्रवण करें। व्रत-प्रतिष्ठा हो जाने पर फिर कथा सुननेकी जरूरत नहीं। किन्तु किसी किसी व्रतमें विशेषता यह है, कि प्रतिष्ठाके बाद भी कथाश्रवण और भोज्योत्सर्ग करना होता है। जैसे, कुक्कुटीसप्तमीव्रतमें प्रतिष्ठाके बाद ही यावज्जीवन व्रतकथा श्रवणका विधान है।

अकारादि क्रमसे कुछ व्रतोंके नाम नीचे दिये गये हैं। भविष्यपुराण, मत्स्यपुराण, पद्मपुराण आदिपुराणोंमें इन सब व्रतोंका विधान निर्दिष्ट हुआ है।

१। अक्षयतृतीया व्रत—इस व्रतका भविष्योत्तर पुराणमें वर्णन आया है। वैशाख मासकी चान्द्र शुक्ला तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है। इस तिथिमें स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, दान आदि जो कुछ किये जाते हैं, वे अक्षय होते हैं। यह तिथि सत्य युगाद्या

है। इस तिथिमें सभी फल अक्षय होते हैं, इस कारण इस तिथिका नाम अक्षया तृतीया हुआ है।

२। अक्षयफलाव्याप्तिफलकाख्य तृतीया व्रत—यह व्रत विष्णुधर्मोत्तरमें वर्णित है। अक्षयतृतीयाके दिन उपवास करके यह व्रत करना होता है।

३। अखण्डैकादशी व्रत—इस व्रतका विधान वामनपुराणमें लिखा है। आश्विन मासकी शुक्ला एकादशीके दिन यह व्रत करना होता है।

४। अग्निचतुर्थी व्रत—यह व्रत विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है। फाल्गुन मासकी शुक्लाचतुर्थीके दिन यह व्रत करना होता है।

५। अघोराख्यचतुर्दशी—भविष्योत्तरमें इस व्रतका विधान है। भाद्रमासकी कृष्णा चतुर्दशीका नाम अघोराख्य चतुर्दशी है। इस तिथिमें व्रत करना होता है। रघुनन्दनने तिथितत्त्वमें इस व्रतका विधान उल्लेख किया है।

६। अङ्गारचतुर्थी व्रत—मत्स्यपुराणमें इस व्रतका विधान है। जिस किसी मासके मङ्गलवारमें यदि चतुर्थी तिथि पड़े, तो उसी दिन यह व्रत करना होता है।

७। अचला सप्तमी व्रत—भविष्योत्तरमें इस व्रतका हाल लिखा गया है। माघ मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

८। अदारिद्र्यषष्ठी व्रत—स्कन्दपुराणमें यह व्रत उक्त हुआ है, प्रत्येक मासकी षष्ठी तिथिमें एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है।

९। अनघाष्टमी व्रत—भविष्योत्तरमें यह व्रत लिखा है। अग्रहायण मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह व्रत करनेको कहा गया है।

१०। अनङ्गत्रयोदशी व्रत—भविष्योत्तरमें इस व्रतका वर्णन है। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत एक वर्षमें शेष होता है।

११। अनङ्गत्रयोदशी व्रत—कालोत्तरमें यह व्रत विहित हुआ है। चैत्र मासकी शुक्ला त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१२। अनन्तचतुर्दशी व्रत—यह व्रत भविष्यपुराणमें निर्दिष्ट हुआ है। भाद्र मासकी शुक्ला चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत चौदह वर्ष करना होता है। व्रतारम्भके बाद चौदह वर्ष इस व्रतकी प्रतिष्ठा करनी होती है।

१३। अनन्त-तृतीया व्रत—इस व्रतका विधान पद्मपुराणमें लिखा है। निर्दिष्ट तृतीया तिथिमें व्रत करनेसे अनन्त फल लाभ होता है, इस कारण इसका नाम अनन्ततृतीया व्रत है। श्रावण, वैशाख वा अग्रहायण मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१४। अनन्तद्वादशी व्रत—विष्णुरहस्यमें इस व्रतका विषय लिखा है। भाद्र मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्षमें समाप्त होता है।

१५। अनन्तपञ्चमी व्रत—यह व्रत स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डमें वर्णित है। फाल्गुन मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६। अनन्तफलसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह भाद्र मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें किया जाता है।

१७। अनोदनसप्तमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें उपवास करके दूसरे दिन सप्तमीतिथिमें यह व्रत करना होता है।

१८। अपराजितासप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत, भाद्र मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह वर्ष साध्यव्रत है।

१९। अमावस्या व्रत—कूर्मपुराणोक्त व्रत। जिस किसी अमावस्या तिथिमें यह व्रत किया जाता है। अमावस्या तिथिमें महादेवके उद्देशसे यदि कोई वस्तु वेदविद् ब्राह्मणको दान की जाय, तो महादेव उस पर प्रसन्न होते हैं तथा उसी समय उसके सात जन्मका पाप विनष्ट होता है।

२०। अभीष्टसप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। जिस किसी सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२१। अमुक्तभरणसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२२। अरुन्धती व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। वसन्त ऋतुमें तृतीया तिथिको यह व्रत किया जाता है।

२३। अर्कव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत एक वर्षमें करना होता है। प्रत्येक मासके शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षकी षष्ठी और सप्तमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२४। अर्कसप्तमी व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त व्रत। यह व्रत दो वर्षमें होता है। फाल्गुन मासकी शुक्ला षष्ठीमें यह व्रत करना होता है।

२५। अर्कसम्पुटसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें सूर्यके उद्देशसे उपवासादि करके यह व्रत किया जाता है।

२६। अर्काष्टमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। जिस किसी मासके शुक्लपक्षमें रविवारको यदि अष्टमी तिथि पड़े, तो उस दिन यह व्रत करना होता है।

२७। अर्द्धश्रावणक व्रत—ब्रह्माण्डपुराणोक्त व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत होता है।

२८। अर्द्धोदय व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। जिस दिन अर्द्धोदय योग होता है, उस दिन यह करना होता है। माघ मासकी अमावस्याके दिन यदि रविवार, व्यतिपातयोग और श्रवणा नक्षत्र हो, तो उसे अर्द्धोदय कहते हैं। पहले वशिष्ठदेव, पीछे जामदग्न्य और सनकादि ऋषियोंने यह व्रत किया था।

२९। अलवणतृतीया व्रत—भविष्योक्त व्रत। यह व्रत यावज्जीवन करना होता है। द्वितीया तिथिमें उपवास करके तृतीयाके दिन लवण नहीं खाना चाहिये। प्रतिमास यह व्रत करना होता है। यह व्रत करनेसे पुरुष मनोरमा पत्नी तथा स्त्री मनोरम पति लाभ करती हैं।

३०। अविघ्न विनायक चतुर्थी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी विघ्न विनष्ट होता है।

३१। अवियोग तृतीया व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिमें उपवास और रात्रिमें चन्द्रदर्शन करके पायस भोजन तथा दूसरे दिन तृतीयाको यह व्रत स्त्रियोंको अवैधव्यकर है।

३२। अवियोग द्वादशी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशी तिथिको उपवास करके करना होता है।

३३। अव्यङ्गसप्तमी व्रत—भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है, श्रावणकी शुक्लसप्तमी तिथिमें यह व्रत समाप्त होता है।

३४। अशून्य-शयन द्वितीया व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। चातुर्मास्यमें अर्थात् श्रावण, भाद्र, आश्विन और कार्त्तिक इन चार महीनोंमें कृष्णपक्षकी द्वितीया तिथिको यह व्रत किया जाता है।

३५। अशोकत्रिरात्र व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण, ज्यैष्ठ और भाद्र इन तीन मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३६। अशोकपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनी पूर्णिमाका नाम अशोकपूर्णिमा है। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३७। अशोक-प्रतिपद व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। आश्विन मासकी शुक्ला प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत करनेसे पिता, भ्राता, पति, पुत्र, आदिको शोक नहीं होता।

३८। अशोकाष्टमी व्रत—लिङ्गपुराणोक्त व्रत। यह व्रत चैत्रमासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें करना होता है। इस दिन मन्त्रपाठ करके ८ अशोकपुष्पकी कली खानी पड़ती है। इस व्रतके फलसे शोक नहीं होता।

भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें और एक प्रकारका अशोकाष्टमी व्रत है।

३९। अहिंसा व्रत—पद्म-पुराणोक्त व्रत। अब्दान्तमें यह व्रत करना होता है।

४० आग्नेय व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। जिस किसी नवमी तिथिको यह व्रत किया जाता है।

४१। आज्ञासंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यह व्रत करना होता है। इसके फलसे आज्ञा अप्रतिहत होती है।

४२। आदित्य व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत एक वर्षमें करना होता है। जिस मासके रविवारको यह व्रत ग्रहण किया जाता है, उसके बारह मासके बाद यह व्रत शेष होगा।

४३। आदित्यशयन व्रत—आदित्यपुराणोक्त व्रत। यदि रविवारको या संक्रान्तिके दिन हस्ता नक्षत्र और सप्तमी तिथि पड़े, तो उसी दिन यह व्रत करना होता है।

४४। आदित्य-नन्दादि व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। रविवारको यदि द्वादशी तिथि और हस्ता नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

४५। आनन्दव्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। चैत्र माससे ले कर चार महीने तक यह व्रत करना होता है।

४६। आनन्द-पञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। नागपञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४७। आनन्दनवमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी शुक्ला नवमी तिथिको आनन्द-नवमी कहते हैं। यह व्रत करनेमें फाल्गुन मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें एक बार भोजन और षष्ठी तिथिमें रातको भोजन तथा सप्तमी तिथिमें अयाचित रूपसे भोजन और अष्टमीमें उपवास करके पीछे नवमी तिथिमें यह व्रत करे।

४८। आयुध व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह व्रत श्रावण, भाद्र, आश्विन और कार्त्तिक इन चार महीनोंकी रातको भोजन करके करना होता है।

४९। आरोग्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। भाद्र मासकी पूर्णिमाके बाद प्रतिपदसे आश्विनकी पूर्णिमा तक यह व्रत करना होता है।

वराहपुराणमें एक और आरोग्य व्रतका उल्लेख है। माघ मासकी सप्तमी तिथिमें यह व्र. किया जाता है।

५०। आरोग्य-दशमी व्रत—गरुड़पुराणोक्त व्रत। नवमी तिथिमें उपवास करके दशमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

५१। आयुः व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें संयत हो कर पूर्णिमाके दिन यह व्रत करना होता है।

५२। आयुःसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यह व्रत होता है।

५३। आशादित्य व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। आश्विन मासके मध्य रविवारके दिन यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

५४। आश्रमव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिको उपवास करके यह व्रत करना होता है।

५५। आषाढ़व्रत—महाभारतोक्त व्रत। आषाढ़ मास तक यह व्रत करना होता है। इस व्रतमें आषाढ़के प्रतिदिन एक बार भोजन और विष्णुपूजा करनी होती है।

५६। इन्द्रपौर्णमास व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत पूर्णिमाके दिन करना होता है। पूर्णिमाके दिन उपवास करके ३० दम्पतीको अलङ्कारादि द्वारा भूषित कर उनकी पूजा करे।

५७। ईशान व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें वृहस्पतिवार होनेसे यह व्रत किया जाता है।

५८। ईश्वर व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

५९। उदकसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत सप्तमी तिथिमें करना होता है।

६०। उदयद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत अग्रहायण माससे ले कर एक वर्ष तक करना होता है। महीनेकी दोनों एकादशीके दिन यह व्रत करना होता है।

६१। उभयनवमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत भी एक वर्ष तक करना होता है। मासकी दोनों नवमी तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान किया जाता है।

६२। उभयसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत भी एक वर्षमें शेष होता है। मासकी उभय-सप्तमीमें इसका अनुष्ठान करना होता है।

६३। उमामाहेश्वरतृतीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्लातृतीयातिथिमें यह व्रत करना होता है।

देवीपुराण, भृगुसंहिता और विष्णुधर्मोत्तरमें और भी तीन प्रकारका यह व्रत है।

६४। उल्कानवमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। आश्विन मासकी शुक्लानवमीका नाम उल्कानवमी है। इस तिथिमें यह व्रत करना होगा।

६५। ऋतु व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह व्रत

वसन्त ऋतुसे आरम्भ कर ६ ऋतुओंमें करना होता है।

६६। ऋषिपञ्चमी व्रत—ब्रह्माण्डपुराणोक्त व्रत। श्रावणकी शुक्लापञ्चमीका नाम ऋषिपञ्चमी है। इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

६७। एकभक्त व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासमें एक वार भोजन करके यह व्रत करना होता है।

६८। ऐश्वर्यतृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। तृतीया तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

६९। कदली व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत भाद्रमासकी शुक्लाचतुर्दशी तिथिमें करना होता है।

७०। कन्दुचतुर्थी व्रत—माघमासकी शुक्लाचतुर्थी। इस दिन यह व्रत करना होता है।

७१। कपिलाषष्ठी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासकी कृष्णाषष्ठीतिथिमें यदि व्यतीपातयोग और रोहिणी नक्षत्र हो, तो उसे कपिलाषष्ठी कहते हैं। इस षष्ठीमें यह व्रत करना होता है।

७२। करण व्रत—ब्रह्माण्डपुराणोक्त व्रत। माघमासके शुक्लपक्षमें जिस दिन ववकरण होता है, उसी दिन यह व्रत किया जाता है।

७३। कमलसप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी शुक्ला सप्तमीको कमलसप्तमी कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करनेको कहा गया है।

७४। कल्किद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

७५। कल्पवृक्ष व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। पयोव्रतके नियमानुसार तीन दिन अवस्थान और काञ्चनकल्पपादप प्रस्तुत करके यह व्रत करे।

७६। कल्याणसप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। रविवारको यदि शुक्लासप्तमी पड़े तो उसे कल्याण सप्तमी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

७७। काञ्चनपुरी व्रत—गरुड़पुराणोक्त व्रत। यह व्रत शुक्लातृतीया, कृष्णएकादशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, अमावस्या और अष्टमी इन सब पर्व दिनोंमें यह व्रत किया जाता है।

७८। कामव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत चैत्र मासकी त्रयोदशीतिथिमें करना होता है।

७९। कामदासप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनमासकी शुक्लासप्तमीका नाम कामदासप्तमी है। इस तिथिमें यह व्रत करनेको कहा गया है।

८०। कामदेव व्रत। यह व्रत वैशाखमासकी शुक्लात्रयोदशी तिथिमें आरम्भ करके चैत्रशुक्लात्रयोदशीमें समाप्त करना होगा।

८१। कामधेनु व्रत—वह्निपुराणोक्त व्रत। यह व्रत कार्त्तिक मासमें किया जाता है।

८२। काम व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। यह व्रत त्रयोदशी तिथिमें करते हैं।

८३। कामषष्ठी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। माघमासकी शुक्लाषष्ठी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्षमें समाप्त होता है।

८४। कामावाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। कृष्णाचतुर्दशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

८५। कार्त्तिकमास व्रत—नारदोक्त व्रत। कार्त्तिकमासमें यह व्रत होता है।

८६। कार्त्तिकेयषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अगहन महीनेकी शुक्लाषष्ठी तिथिको कार्त्तिकेयषष्ठी कहते हैं।

८७। कालरात्रि व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। आश्विनमासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

८८। कालाष्टमी व्रत—वामनपुराणोक्त व्रत। श्रावणकी कृष्णाष्टमीतिथिमें यदि मृगशिरा नक्षत्र हो, तो उसे कालाष्टमी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत किया जाता है।

८९। कीर्त्ति व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। यह व्रत अष्टमी तिथिमें करना होता है।

९०। कुक्कुटी व्रत—भविष्योक्त व्रत। यह व्रत भाद्रमासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें होता है।

९१। कुवेरतृतीया व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यह व्रत तृतीयातिथिमें करना होता है।

९२। कुमारषष्ठी व्रत—कालोत्तरोक्त व्रत। यह व्रत शुक्लाषष्ठीसे आरम्भ होता है।

९३। कुम्भी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक

मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

९४। कूर्मद्वादशी व्रत—भविष्योक्त व्रत। यह व्रत पौषमासकी शुक्लाद्वादशीमें किया जाता है।

९५। कृच्छ्र व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। यह व्रत कार्त्तिक मासकी शुक्ल एकादशीसे पूर्णिमा तक करना होता है।

९६। कृच्छ्रचतुर्थी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्लाचतुर्थी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

९७। कृत्तिका व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

९८। कृष्णचतुर्दशी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासकी कृष्णचतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे रातको यह व्रत करना होता है।

९९। कृष्णाद्वादशी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी कृष्णाद्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१००। कृष्णा व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। एकादशी तिथिमें श्रीकृष्णके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१०१। कृष्णषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत अग्रहायण मासकी कृष्णाषष्ठी तिथिमें किया जाता है।

१०२। कृष्णाष्टमी व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। अगहनमहीनेका कृष्णाष्टमी तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

१०३। कृष्णैकादशी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत—फाल्गुनमासकी कृष्णएकादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१०४। कोकिला व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। आषाढ़ पूर्णिमाके दिन आरम्भ करके श्रावण मासकी पूर्णिमा पर्य्यन्त यह व्रत किया जाता है।

१०५। कोटीश्वरीतृतीया व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी तृतीयातिथिमें यह व्रत आरम्भ करके ४ वर्षके बाद इसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। इस व्रतके फलसे दरिद्र भी कोटिपति होता है।

१०६। कौमुदी व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षको एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१०७। क्षेम व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चतुर्दशीमें यक्ष और रक्षोंकी पूजा करके यह व्रत किया जाता है।

१०८। गणपतिचतुर्थी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। गणपति चतुर्थीमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत २ वर्षमें समाप्त होता है। इससे गणपति संतुष्ट हो कर अभीष्ट फल प्रदान करते हैं।

१०९। गन्ध व्रत—शिवधर्मोक्त व्रत। पूर्णिमाके दिन उपवास करके महादेवके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्षसाध्य है।

११०। गलन्तिका व्रत—शिवरहस्योक्त व्रत। ग्रीष्मकालमें शिवजीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१११। गायत्रीव्रत—गरुड़पुराणोक्त व्रत। शुक्ला चतुर्दशी तिथिमें भगवान् सूर्यदेवके उदयके पहले गायत्रीजप द्वारा सूर्यके उद्देशसे यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी रोग नष्ट होते हैं।

११२। गुड़तृतीया व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्लतृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

११३। गुणवाप्तिव्रत—विष्णुपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत करना होता है।

११४। गुरु व्रत—भविष्योक्त व्रत। बृहस्पतिग्रहकी प्रीतिके लिये यह व्रत किया जाता है।

११५। गुर्वष्टमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यदि गुरुवार पड़े, तो यह व्रत किया जाता है।

११६। गुह्यद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। द्वादशी तिथिमें गुह्यकोंके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

११७। गृहपञ्चमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत पञ्चमी तिथिमें करना होता है।

११८। गोपद्मत्रिरात्र व्रत—भविष्योक्त व्रत। भाद्र मासके शुक्लपक्षकी तृतीया और चतुर्थी इन दो तिथियोंमें उक्त व्रत करना होता है।

११६। गोपालनवमी व्रत—गरुड़पुराणोक्त व्रत। नवमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१२०। गोमयादिसप्तमी-व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। सप्तमी तिथिमें यह व्रत करते हैं।

१२१। गौरीचतुर्थी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। माघ मासकी शुक्लाचतुर्थीका नाम उमाचतुर्थी है। इस चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१२२। गौरी व्रत—कालोत्तरोक्त व्रत। चैत्रशुक्ल-तृतीयामें यह व्रत होता है। यह व्रत स्त्रियोंका सौभाग्य-वर्द्धक है।

१२३। गोवत्सद्वादशीव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षको द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१२४। गोविन्दद्वादशी व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। गोविन्दद्वादशीमें विष्णुके उद्देशसे इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

१२५। चण्डिका व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। प्रति मासकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें चण्डिकादेवीके उद्देशसे यह व्रत एक वर्षमें करना होता है।

१२६। चतुर्दशी जागरण-व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्लाचतुर्दशी तिथिमें यह व्रत होता है।

१२७। चतुर्दशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। चतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१२८। चतुर्दश्यष्टमीनक्त व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत आरम्भ करके प्रति मासकी दो अष्टमी और दो चतुर्दशी तिथिमें शिवजीके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१२६। चतुर्मासी व्रत—इसे चातुर्मास्य व्रत भी कहते हैं। यह भविष्योत्तरोक्त व्रत है। आषाढ़ मासकी शुक्ला एकादशीसे आरम्भ कर कार्त्तिक मासकी शुक्ला एकादशी तक इन चार महीनोंमें करना होता है।

१३०। चतुर्मूर्त्तिचतुर्थी-व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१३१। चतुर्युग व्रत—विष्णुधर्मोक्त व्रत। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी प्रतिपद्से चतुर्थी पर्यन्त यह व्रत करना होता है।

१३२। चन्द्रव्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत पन्द्रह वर्षोंमें होता है।

१३३। चन्द्ररोहिणी-शयनव्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। सोमवारको यदि पूर्णिमा तिथि वा रोहिणी नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

१३४। चंद्रार्क व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। अमावस्या तिथिमें चंद्रसूर्य एक साथ रहते हैं, इस दिन दोनोंके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१३५। चम्पाषष्ठी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। भाद्र मासकी षष्ठीतिथिमें वैधृतियोग, विशाखा नक्षत्र, मङ्गल वार हो तो उसे चम्पाषष्ठी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत किया जाता है।

१३६। चान्द्रायण व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त व्रत। पौष मासकी शुक्लाचतुर्दशीमें पापमोचनके लिये यह व्रत करना होता है। शास्त्रमें एक और चान्द्रायण व्रतका विधान है। जिस प्रकार चन्द्रकी ह्रासवृद्धि होती है उसी प्रकार इस चान्द्रायणव्रतको आहारका ह्रासवृद्धि मूलक कहा गया है।

१३७। चित्रभानुसप्तमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। सप्तमीतिथिमें यदि चित्रानक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

१३८। चैत्रभाद्रमाघतृतीयाव्रत—भविष्योत्तरोक्त-व्रत। यह व्रत चैत्र, भाद्र और माघमासकी शुक्ला तृतीया-तिथिमें करना होता है।

१३६। चैत्रशुक्लप्रतिपद्विहिततिलक व्रत—भविष्य-पुराणोक्त व्रत। चैत्रशुक्ला प्रतिपदमें यह व्रत किया जाता है।

१४०। जयन्तीसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। माघमासकी शुक्लासप्तमीका नाम जयन्तीसप्तमी है। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

१४१। जयपौर्णमासी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होगा।

१४२। जयापञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्लापञ्चमीको जयापञ्चमी कहते हैं। इस पञ्चमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

१४३। जयावाप्तिव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। आश्विन मासकी पौर्णमासीके बाद प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ कर एक मास तक यह व्रत चलता है।

१४४। जयासप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। यदि शुक्लपक्षकी सप्तमीतिथिमें रोहिणी, अश्लेषा, मघा वा हस्तानक्षत्र हो, तो उसे जयासप्तमी कहते हैं। उसी दिन यह व्रत करना चाहिये।

१४५। जातित्रिरात्र व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। ज्यैष्ठ मासकी त्रयोदशीतिथिसे आरम्भ कर तीन दिन यह व्रत करना होता है।

१४६। जामदग्न्यद्वादशी व्रत—धरणीकथित व्रत। यह वैशाखमासकी द्वादशीमें होता है।

१४७। ज्ञानाप्याप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। समस्त वैशाख मासमें रातको भोजन करके यह व्रत किया जाता है।

१४८। ज्येष्ठा व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। भाद्र मासके शुक्लपक्षके जिस दिन ज्येष्ठा नक्षत्र पड़े उसी दिन यह व्रत करना होगा।

१४९। ज्यैष्ठ व्रत—महाभारतवर्णित व्रत। ज्यैष्ठ मासमें यह व्रत करना चाहिये।

१५०। तपश्चरणसप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी सप्तमीतिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१५१। तपो व्रत—पद्मपुराणवर्णित व्रत। माघ-मासकी सप्तमी तिथिमें आर्द्रवास हो कर यह व्रत करना होता है।

१५२। ताम्बूलसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणकथित व्रत। यह व्रत चैत्र संक्रान्तिमें आरम्भ करके एक वर्ष प्रति सक्रान्तिको करना होता है।

१५३। तारकाद्वादशी व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। अग्रहायण मासको शुक्ला द्वादशीको तारका द्वादशी कहते हैं। उस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१५४। तिथिनक्षत्रवार व्रत—कालोत्तर कथित व्रत। तिथि, नक्षत्र और वार विशेषका योग होनेसे उसी दिन यह करना होता है। बुधवार, रोहिणी नक्षत्र और अष्टमीतिथि तथा वृहस्पतिवार शुक्ला चतुर्दशी और पुष्यानक्षत्रयुक्त होनेसे यह व्रत होता है। इस प्रकार प्रायः सभी नक्षत्र, वार और तिथिविशेषके योगमें यह व्रत होगा।

१५५। तिथियुगल व्रत—यमस्मृत्युक्त व्रत। मास-की दो अष्टमी, दो चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा इन दो तिथियोंमें ही उक्त व्रत करना होता है।

१५६। तिन्दुकाष्टमी व्रत—भविष्यपुराणकथित व्रत। ज्यैष्ठमासकी शुक्लाष्टमी तिथिको तिन्दुकाष्टमी कहते हैं। उस दिन यह व्रत किया जाता है।

१५७। तिलदाही व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। पौष मासकी कृष्णा एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१५८। तिलद्वादशी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। माघमासके कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिमें यदि पूर्वाषाढ़ा या मूला नक्षत्र हो, तो उस दिन यह व्रत होगा।

१५९। तीव्र व्रत—सौरपुराणोक्त व्रत। शिवक्षेत्रमें अपने दोनों चरणोंको भेद कर यावज्जीवन अवस्थान करनेसे अन्तमें मुक्ति होती है।

१६०। तुरग-सप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। चैत्रमासकी शुक्लासप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६१। तुष्टिप्राप्तितृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। श्रावण मासकी कृष्णा तृतीया तिथिमें यदि श्रवणा नक्षत्र हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा। किन्तु श्रावणकी कृष्णा तृतीयाके दिन श्रवणा नक्षत्रका योग अति दुर्घट है।

१६२। तेजःसंक्रान्ति व्रत—स्कंदपुराणोक्त व्रत विशेष। यह व्रत चैत्र संक्रान्तिसे आरम्भ कर प्रति संक्राति-को करना होता है। एक वर्ष के बाद व्रत प्रतिष्ठा करनी होगी।

१६३। त्रयोदशद्रव्यसप्तमी व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। उत्तरायण बीतने पर शुक्लपक्ष रविवार सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६४। त्रिगतिसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें

कथित व्रत फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१६५। त्रिविक्रम तृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। ज्येष्ठ मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह करना होता है।

१६६। त्रिविक्रमत्रिरात्र-शत व्रत—विष्णुरहस्य-कथित व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें यह व्रत करना चाहिये।

१६७। त्रिविक्रम व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। कार्त्तिक माससे आरम्भ करके तीन मास पर्यन्त त्रिविक्रम विष्णुके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१६८। त्र्यम्बक व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। चतुर्दशी तिथिमें महादेवके उद्देशसे यह व्रत होगा।

१६६। दशादित्य व्रत—ब्रह्माण्डपुराणमें कथित व्रत। यह व्रत शुक्लपक्षके रविवारमें यदि दशमी तिथि पड़े, तो उस दिन भगवान् सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे सभी आपत्ति दूर होती है।

१७०। दशावतार व्रत—विष्णुपुराणमें लिखित व्रत। एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१७१। दाम्पत्याष्टमी व्रत—भविष्यपुराण कथित व्रत। कार्त्तिक मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१७२। दिवाकर व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। रविवारमें हस्ता नक्षत्र हो, तो उस दिन उक्त व्रत होगा।

१७३। दीप्ति व्रत—पद्मपुराण-वर्णित व्रत। इस व्रतमें शामको दीपदान करना होता है।

१७४। दुर्गन्धदौर्भाग्यनाशन-त्रयोदशी व्रत—भविष्य कथित व्रत। ज्यैष्ठ मासकी शुक्ला त्रयोदशीके दिन यह व्रत करना होता है।

१७५। दुर्गानवमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। भगवती दुर्गादेवीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

१७६। दुर्गा व्रत—देवी-पुराण-कथित व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत किया जाता है।

१७७। दुर्गागणपति चतुर्थी व्रत—सौरपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी शुक्ला चतुर्थी वा कार्त्तिक मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

१७८। दूर्वात्रिरात्र व्रत—पद्मपुराण-वर्णित व्रत। भाद्र मासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१७६। दूर्वाष्टमी व्रत – भविष्यपुराणमें कथित व्रत। भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत ८ वर्ष तक करके प्रतिष्ठा करनी होती है।

१८०। देवमूर्त्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। चैत्रमासकी शुक्ला प्रतिपदसे आरंभ करके चार दिन तक यह व्रत किया जाता है।

१८१। देव व्रत—पद्मपुराण-कथित व्रत। एक वर्ष तक रातको यह व्रत करना होता है। कालोत्तरोक्त व्रतभेद। चतुर्दशी तिथिमें बृहस्पतिवारको यह व्रत होता है।

१८२। देवीव्रत—पद्मपुराणकथित व्रत। पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है। इस प्रकार कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें भी देवीपुराणोक्त व्रत विशेषका विधान है।

१८३। द्वादशसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। माघ मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिसे आरंभ करके एक वर्ष पर्यन्त बारह मासकी १२ सप्तमी तिथिमें हो यह व्रत करना होगा। इस व्रतमें प्रतिमास भिन्न भिन्न विधि है।

१८४। द्वादशसाध्यतृतीया व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। यह व्रत तृतीया तिथिमें आरंभ करके बारह मासकी सभी तृतीयामें ही उपवास करके करना होता है। एक वर्षके बाद इसकी प्रतिष्ठा होगी।

१८५। द्वादशादित्य व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें उपवास करके १२ मासमें धाता आदि बारह आदित्योंके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१८६। द्वादशीव्रत—कूर्मपुराण-वर्णित व्रत। शुक्ल-

पक्षकी एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत करे।

१८७। द्वीपव्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। चैत्र शुक्लपक्षसे आरंभ करके ७ दिन जम्बू आदि सप्त द्वीपोंको पूजा करनी होगी।

१८८। धनसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। महाविषुव संक्रान्तिसे ले कर एक वर्ष प्रति संक्रान्तिको यह व्रत करना चाहिये। एक वर्ष पूरा होने पर प्रतिष्ठा विधेय है।

१८९। धनावाप्ति व्रत—धर्मोत्तरकथित व्रत। श्रावण पूर्णिमाके बाद प्रतिपद तिथिसे यह व्रत विहित हुआ है। इस व्रतके फलसे निर्धन धनवान् होता है।

१९०। धन्यव्रत—वराहपुराणमें कथित व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी प्रतिपद तिथिमें उपवास करके रातको यह व्रत करना होता है।

१९१। धरा व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। उत्तरायणमें शुभदिनमें काञ्चनमयी धरा प्रस्तुत करके यह व्रत करना होता है।

१९२। धर्म व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें धर्मराजके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१९३। धान्य व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। विषुवसंक्रान्तिमें सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

१९४। धान्यसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। शुक्ला सप्तमीमें यह व्रत किया जाता है;

१९५। धाम त्रिरात्र व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। फाल्गुन मासकी पूर्णिमासे तीन दिन यह व्रत करना होता है।

१९६। धारा व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। चैत्रमाससे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है।

१९७। ध्वजनवमी व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। पौष मासकी शुक्ला नवमीका नाम ध्वजनवमी है। इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

१९८। ध्वज व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। चैत्र माससे आरम्भ करके प्रतिदिन यह व्रत करना पड़ेगा। यह व्रत द्वादश वत्सरसाध्य है।

१९९। नक्तचतुर्थी व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। विनायकचतुर्थीमें यह व्रत किया जाता है।

२००। नक्षत्रपुरुष व्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। चैत्र मासमें यह व्रत करना होता है।

२०१। नक्षत्रार्थ व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। मृगशिरा नक्षत्रसे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है।

२०२। नदी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासके शुक्लपक्षसे ले कर ७ दिन यथाक्रम ह्रदिनी, ह्लादिनी, पावनी, सीता, इक्षु, सिन्धु और भागीरथी नदीकी पूजा करे।

२०३। नन्द व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करे।

२०४। नन्दादि व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। रविवारको यह व्रत करना चाहिये।

२०५। नन्दा व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। श्रावण मासमें यह व्रत किया जाता है।

२०६। नन्दासप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमीका नाम नन्दासप्तमी है। इस सप्तमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२०७। नयनप्रदसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यदि हस्ता नक्षत्रका योग हो, तो उसे नयनप्रदसप्तमी कहते हैं। इस सप्तमीमें व्रत करना होता है। यह व्रत वर्षसाध्य है।

२०८। नरकपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। पूर्णिमा तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष प्रति पूर्णिमाको यह व्रत किया जाता है;

२०९। नरसिंहचतुर्दशी व्रत—नरसिंहपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला चतुर्दशीको नरसिंहचतुर्दशी कहते हैं। इस चतुर्दशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है। यह व्रत प्रति वर्ष करनेका विधान है।

२१०। नरसिंहत्रयोदशी व्रत—नरसिंहपुराणमें कथित व्रत। वृहस्पतिवारको यदि त्रयोदशी तिथि हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

२११। नवम्याद्युपवास व्रत—मत्स्यपुराणमें कथित व्रत। नवमी, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी इन सब तिथियोंमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२१२। नवरात्रि व्रत—देवीपुराणमें कथित व्रत। देवीभागवत आदि पुराणोंमें भी इस व्रतका विशेष विधान है। आश्विन शुक्ला प्रतिपदसे भगवती दुर्गा देवीके प्रीतिकामनाके लिये नवमी पर्यन्त ९ दिन यह व्रत करना होता है।

२१३। नागदष्टोद्धरणपञ्चमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। भाद्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२१४। नागपञ्चमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। नागपञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२१५। नागव्रत—कूर्मपुराणमें कथित व्रत। कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षमें यह व्रत होता है।

२१६। नानाफलपूर्णिमा व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला पूर्णिमा तिथिमें नाना प्रकारके फल द्वारा यह व्रत करना होता है।

२१७। नामतृतीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह व्रत प्रति मासकी तृतीया तिथिमें करना होता है। यह वर्षसाध्य है।

२१८। नामद्वादशी व्रत—विष्णुरहस्योक्त व्रत। अग्रहायण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२१९। नामनवमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें भगवती दुर्गा-देवीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

२२०। नामसप्तमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिसे आरम्भ करके प्रति-मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होगा।

२२१। निक्षुभार्कसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। षष्ठी, सप्तमीतिथि, संक्रान्ति वा रविवारके दिन यह व्रत किया जाता है।

२२२। निर्जलैकादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। ज्यैष्ठ और आषाढ़ मासकी शुक्ला एकादशीके दिन निरम्बु उपवास करके यह व्रत करना होता है।

२२३। नीराजनद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वादशीको नीराजनद्वादशी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२२४। नृसिंहद्वादशी व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। फाल्गुन मासके कृष्णपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होगा।

२२५। पक्षसन्धि व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। पक्षसन्धि प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२२६। पञ्चघटपूर्णिमा व्रत—भविष्योत्तरमें कथित व्रत। पांच पूर्णिमा तिथि पांच घटदानरूप व्रत।

२२७। पञ्चपिण्डिकागौरी व्रत—स्कन्दपुराणके नागर-खण्डोक्त व्रत। श्रावण मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२२८। पञ्चमहापापनाशनद्वादशी व्रत—भविष्यपुराण-में वर्णित व्रत। श्रावण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथि से आरम्भ करके यह व्रत करे।

२२९। पञ्चमहाभूत पञ्चमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२३०। पञ्चमूर्त्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। यह चैत्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और पृथिवी इस पञ्चमूर्त्तिके उद्देशसे यह व्रत करना होगा।

२३१। पञ्चाग्निसाधनरम्भा तृतीया व्रत। भविष्यो-त्तरमें लिखित व्रत। ज्यैष्ठ मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें संयत हो कर यह व्रत करे।

२३२। पत्र व्रत—भविष्योत्तरमें कथित व्रत। यह ताम्बूल भक्षणके आदिमें करना होता है। यह व्रत एक वर्ष करके पीछे उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है।

२३३। पदार्थ व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

२३४। पद्मनाभ-द्वादशी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरमें कथित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२३५। पयोव्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। यह

व्रत अमावस्या तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

२३६। पर्वनक्त व्रत—भविष्यपुराणमें वर्णित व्रत। यह व्रत भी अमावस्याके दिन आरम्भ करके एक वर्ष पर्यन्त किया जाता है।

२३७। पर्वभोजन व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। पर्वके दिन पृथिवी पर अन्न रख कर भोजन करके यह व्रत करना होता है।

२३८। पाताल व्रत—विष्णुधर्मोत्तरमें कथित व्रत। चैत्र मासकी कृष्णा प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ करके प्रति दिन यह व्रत करना होता है।

२३९। पात्र व्रत—नरसिंहपुराणमें वर्णित व्रत। माघमासकी शुक्ला एकादशीसे आरम्भ करके पूर्णिमा पर्यन्त यह व्रत किया जाता है।

२४०। पापनाशनीसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि हस्तानक्षत्र हो तो उसे पापनाशिनी सप्तमी कहते हैं। इस सप्तमी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२४१। पापमोचन व्रत—सौरपुराणमें कथित व्रत। बिल्ववृक्षका आश्रय करके बारह दिन उपवास करके यह व्रत करना होता है। इस व्रतके फलसे भ्रूणहत्याका पाप विनष्ट होता है।

२४२। पापत्राणसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणमें वर्णित व्रत। संक्रान्तिमें पापमोचनके लिये यह व्रत करना होता है।

२४३। पाली चतुर्दशी व्रत—भविष्योत्तरमें कथित व्रत। भाद्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२४४। पाशुपत व्रत—वह्निपुराणमें कथित व्रत। द्वादशी तिथिमें एक बार भोजन, त्रयोदशीमें अयाचित भोजन और चतुर्दशीमें उपवास करके महादेवके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२४५। पितृ व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। यह चैत्र प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ होता है।

२४६। पिपीतकीद्वादशी व्रत—तिथितत्त्व धृत व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको पिपीतकी द्वादशी कहते हैं। इस द्वादशीमें उक्त व्रत करना होता है।

२४७। पुण्डरीकप्राप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तर कथित व्रत। द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२४८। पुत्रकाम व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें पुत्रकी कामना करके सपत्नीक यह व्रत करना होता है।

२४९। पुत्रप्राप्ति-षष्ठी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है। यह व्रत एक वर्ष तक चलता है।

२५०। पुत्रप्राप्ति व्रत—देवीपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२५१। पुत्रसप्तमी व्रत—वराहपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासकी शुक्लपक्षके सप्तमी तिथिमें उपवास रह कर पुत्रकामनाके लिये यह व्रत करना होता है।

२५२। पुत्रीयसप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। अग्रहायण मासके शुक्ल पक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२५३। पुत्रोत्पत्ति व्रत—आदित्यपुराणमें कथित व्रत। प्रत्येक श्रवणा नक्षत्रमें यह व्रत करना होता है।

२५४। पुरश्चरणसप्तमी व्रत—स्कन्दपुराणके नागरखण्डोक्त व्रत। माघ मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

२५५। पुष्पद्वितीया व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिमें यह व्रत करना होता है। यह व्रत एक वर्षमें होता है।

२५६। पूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित यह व्रत करना होता है। एतद्भिन्न अग्निपुराणमें श्रावणी पूर्णिमाके दिन और भी एक पूर्णिमाव्रतका विधान है।

२५७। पृथिवीपञ्चमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। शुक्लापञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

२५८। पौरन्दरपञ्चमी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। पञ्चमी तिथिमें इन्द्रके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२५९। प्रकृतिपुरुष द्वितीयाव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासकी शुक्लाद्वितीया तिथिमें उपवासी रह कर व्रत करना चाहिये।

२६० । प्रतिपत्क्षीरपान व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । कार्त्तिक वा वैशाख मासको प्रतिपद् तिथिमें करना होता है ।

२६१ । प्रतिमा व्रत—कालोत्तरोक्त व्रत । यह व्रत कार्त्तिकमासकी चतुर्दशी तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक प्रति मासकी चतुर्दशी तिथिमें करना चाहिये ।

२६२ । प्रदोष व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । त्रयोदशी तिथिमें प्रदोपकालमें यह व्रत करना होता है ।

२६३ । प्रभा व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । एक पक्ष तक उपवास करके कपिलाद्वय दानरूप व्रत है ।

२६४ । प्राजापत्य व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । एक वर्ष तक एक ग्राम भोजन करके यह व्रत करना होता है ।

२६५ । फल व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । विष्णु शयनसे उत्थान पर्यन्त चार मास तक यह व्रत करना होता है ।

२६६ । फलतृतीया व्रत—पद्मपुराणके प्रभासखण्डोक्त व्रत । शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत किया जाता है ।

२६७ । फलषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । माघमासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२६८ । फलसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत । महाविषुवसंक्रान्तिसे आरम्भ कर प्रति संक्रान्तिमें विभिन्न फलदान द्वारा यह व्रत किया जाता है । एक वर्षके बाद इसकी प्रतिष्ठा होगी ।

२६९ । फलसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । भाद्रमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२७० । फाल्गुन व्रत—महाभारतोक्त व्रत । फाल्गुन मासमें प्रतिदिन सिर्फ एक बार भोजन करके यह व्रत करना होता है ।

२७१ । वाणिज्यलाभ व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । वाणिज्य लाभकी कामनासे पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें यह व्रत करना होगा ।

२७२ । बुद्धद्वादशी व्रत—धरणीव्रतोक्त व्रत । श्रावण मासकी शुक्ला द्वादशीके दिन यह व्रत किया जाता है ।

२७३ । बुधव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । विशाखा नक्षत्रमें आरम्भ करके ७ दिन यह व्रत करना होता है ।

२७५ । बुधाष्टमी व्रत—शुक्लाष्टमी तिथिमें यदि बुधवार हो, तो उसी दिन यह व्रत करे ।

२७६ । ब्रह्मकूर्च व्रत—ब्रह्मपुराणोक्त व्रत । चतुर्दशी तिथिमें उपवास करके पूर्णिमामें यह व्रत करना होता है ।

२७७ । ब्रह्मण्यप्राप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । चैत्र मासकी शुक्ला प्रतिपद् तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत करना होता है ।

२७८ । ब्रह्मण्याव्याप्ति व्रत—प्रभास खण्डोक्त व्रत । यह ज्यैष्ठ मासकी पूर्णिमा तिथिमें होता है ।

२७९ । ब्रह्म व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । द्वितीया तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२८० । ब्रह्मसावित्री व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत । भाद्र मासकी त्रयोदशी तिथिसे आरंभ करके तीन दिन यह व्रत करना होता है ।

२८१ । भर्त्तृप्राप्ति व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है ।

२८२ । भद्रशाली व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत । कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिसे यह व्रत करना होता है ।

२८३ । भद्रचतुष्टय व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । अग्रहायण मासकी शुक्ला प्रतिपदसे पञ्चमी तिथि पर्यन्त यह व्रत किया जाता है ।

२८४ । भद्रातृतीया व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत । यह कार्त्तिक मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें करना होता है ।

२८५ । भद्रा सप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत । शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यदि हस्ता नक्षत्र हो, तो उसे भद्रासप्तमी कहते हैं । इस व्रतमें चतुर्थीके दिन एक बार भोजन, पञ्चमीमें रात्रि भोजन, षष्ठी तिथिमें अयाचित भोजन करके पीछे इस सप्तमी तिथिमें व्रताचरण करना होगा ।

२८६। भवानी तृतीया व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। तृतीया तिथिमें शिवालयमें भवानीदेवीके उद्देशसे यह व्रत करे।

२८७। भवानी व्रत—लिङ्गपुराणोक्त व्रत। अमावस्या और पूर्णिमा तिथिमें भवानीकी प्रीतिकामनासे व्रतानुष्ठान करना होता है।

२८८। भाद्रपद व्रत—महाभारतमें लिखित व्रत। समस्त भाद्रमासमें एकाहारी हो कर यह व्रत करना होता है।

२८९। भानुव्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। सप्तमी तिथिमें रातको भोजन करके सूर्यके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

२९०। भास्करव्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। षष्ठी तिथिमें उपवास करके सप्तमीको सूर्यकी प्रीति कामनासे यह व्रत किया जाता है।

२९१। भीमद्वादशी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। माघ मासकी शुक्ला द्वादशीको भीमद्वादशी कहते हैं। इस द्वादशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

२९२। भीम व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत, उपवास करके धनुर्दानरूप व्रत।

२९३। भीष्मपञ्चक व्रत—नारदपुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक शुक्ला एकादशीसे पूर्णिमा पर्यन्त तिथिको भीष्मपञ्चक कहते हैं। इस भीष्मपञ्चकमें व्रताचरण करना होता है।

२९४। भूभाजन व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। इस व्रतमें एक वर्ष तक मिट्टी पर अन्नादि रख कर भोजन करना होता है।

२९५। भूमि व्रत—कालोत्तरोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यदि शुक्ला चतुर्दशी हो, तो उसी दिन यह व्रत करना होगा।

२९६। भोगसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। संक्रान्तिमें यह व्रत किया जाता है।

२९७। भोगावाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। ज्यैष्ठी पूर्णिमाके बाद प्रतिपत् तिथिसे यह व्रत आरम्भ करना होगा।

२९८। भौमवार व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। मङ्गलवारको यह व्रत करना होता है।

२९९। भौम व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। मङ्गलवारको यदि स्वाति नक्षत्र पड़े, तो यह व्रत विधेय है।

३००। मङ्गला व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। आश्विन, माघ, चैत्र वा श्रावण मासकी कृष्णाष्टमीसे शुक्लाष्टमी पर्यन्त यह व्रत करना होता है।

३०१। मङ्गलसप्तमी व्रत। सप्तमी तिथिमें उपवासी रह कर यह व्रत करना होगा।

३०२। मत्स्यद्वादशी व्रत—धरणीव्रतोक्त व्रत। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३०३। मदनद्वादशी व्रत—मत्स्यपुराणोक्त व्रत। चैत्र शुक्लाद्वादशीको मदनद्वादशी कहते हैं। इस द्वादशी तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

३०४। मधुकतृतीया व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनकी शुक्ला तृतीयाका नाम मधुकतृतीया है। इस तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३०५। मनोरथद्वादशी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें करना होता है।

३०६। मनोरथपूर्णिमा व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिकमासकी पूर्णिमा तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत किया जाता है।

३०७। मनोरथसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। उत्तरायण-संक्रान्तिमें यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक करना होता है।

३०८। मन्दारषष्ठी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। माघमासके शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको मन्दारषष्ठी कहते हैं। इस षष्ठीतिथिमें उक्त व्रत करना होगा।

३०९। मन्दारसप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। माघमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३१०। मरीचसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३११। मरुत्सप्तमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३१२। मल्लद्वादशी व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। अग्र-

हायण मासकी द्वादशी तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष प्रति द्वादशीतिथिको यह व्रत करना होगा।

३१३। महाजया सप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। संक्रान्तिके दिन यदि शुक्लासप्तमी हो, तो उसी दिन यह व्रत होगा।

३१४। महातपो व्रत—महाभारतोक्त व्रत। प्रतिमासमें तीन दिन करके यह व्रत करना होता है। यह वर्ष एक वत्सरसाध्य है।

३१५। महाफलद्वादशी व्रत। विष्णुरहस्योक्त व्रत। पौष मासके कृष्णपक्षमें एकादशी तिथिको यदि विशाखा नक्षत्र हो, तो एकादशीमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें यह व्रत करें।

३१६। महाफल व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। यह व्रत प्रतिपदसे पूर्णिमा पर्यन्त करना होता है। इस व्रतमें भोजनके विषयमें विशेषता है। यथा—प्रतिपद्में क्षीरभोजन, द्वितीयामें पुष्पाहार, तृतीयामें लवणवर्जित भोजन, चतुर्थीमें तिल भोजन, पञ्चमीमें क्षीरभोजन, षष्ठीमें फल, सप्तमीमें शाक, अष्टमीमें विल्व, नवमीमें पिष्टक, दशमीमें अनग्निपकाहार, एकादशीमें उपवास, द्वादशीमें घृत, त्रयोदशीमें पायस, चतुर्दशीमें यावकाहार, पूर्णिमामें गोमूत्र और कुशोदक भोजन, ऐसे नियमसे यह व्रत करना होता है।

३१७। महत्तम व्रत—स्कन्दपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासकी शुक्ला प्रतिपत् तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३१८। महाराज व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। चतुर्दशी तिथिमें आर्द्रा वा भाद्रपद नक्षत्र होनेसे यह व्रत होगा।

३१९। महालक्ष्मी व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। भाद्र मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत होता है।

३२०। महा व्रत—कालिकापुराणोक्त व्रत। कार्त्तिक मासकी अमावस्या तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३२१। महासप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत होगा।

३२२। महेश्वर व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। फाल्गुनमासके शुक्लपक्षसे चतुर्दशी पर्यन्त उपवास करके महेश्वरके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

३२३। महेश्वराष्टमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत होता है।

३२४। महोत्सव व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। चैत्र मासमें महादेवके उद्देशसे बड़ी धूमधामसे यह व्रत होता है।

३२५। माघमास व्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। समूचे माघ महीना तक यह व्रत चलता है।

३२६। मातृनवमी व्रत—भविष्योत्तरकथित व्रत। आश्विन मासकी नवमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३२७। मातृ व्रत—वराहपुराणमें कथित व्रत। अष्टमी तिथिमें यह करना होता है।

३२८। मार्गशीर्ष व्रत—महाभारतमें वर्णित व्रत। समस्त अग्रहायण मासमें एक बार भोजन करके यह व्रत किया जाता है।

३२९। मार्त्तण्डसप्तमीव्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। पौष मासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको मार्त्तण्ड सप्तमी कहते हैं। इस सप्तमीमें सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

३३०। मास व्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। अग्रहायण माससे आरम्भ करके द्वादश मासमें द्वादश द्रव्यदानरूप व्रतभेद। यह संक्रान्तिमें करना होता है।

३३१। मासोपवास व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षको एकादशी तिथिमें उपवास करके यह व्रत एक मास तक किया जाता है।

३३२। मुक्तिद्वारसप्तमी व्रत—मत्स्यपुराणमें कथित व्रत। हस्तानक्षत्रयुक्त सप्तमी तिथिमें यह व्रत होगा।

३३३। मुख व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। एक वर्ष मुखवासका परित्याग कर यह व्रत करे। वर्षके बाद गोदान करना होता है।

३३४। मुनि व्रत—विष्णुधर्मोत्तरकथित व्रत। सप्तमी तिथिमें यह व्रत होता है।

३३५। मृगशीर्ष व्रत—पद्मपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी प्रतिपद् तिथिसे यह व्रत करना होता है।

३३६। मेघपाली तृतोया व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। आश्विन मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३३७। मौन व्रत—स्कन्दपुराणमें कथित व्रत। श्रावणी पूर्णिमा तिथिमें इस व्रतका विधान है।

३३८। यमचतुर्थी व्रत—कूर्मपुराणमें कथित व्रत। चतुर्थी तिथि और भरणी नक्षत्र होनेसे यह व्रत किया जाता है।

३३९। यमद्वितीया व्रत—भविष्योत्तर कथित व्रत। कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वितीयाको यमद्वितीया कहते हैं। इस दिन यह व्रत करना होता है।

३४०। यम व्रत—भविष्यपुराणमें कथित व्रत। दशमी तिथिमें रोगनाशकी कामनासे यमके उद्देशसे यह व्रत करे। इसके सिवा कूर्मपुराण, विष्णुधर्मोत्तर, महाभारत आदिमें भी एक और यमव्रतका विधान देखनेमें आता है।

३४१। यमादर्शनत्रयोदशी व्रत—यह भविष्योत्तरोक्त व्रत है। अग्रहायणमासकी त्रयोदशी तिथिमें यदि सोमवार हो, तो उस दिनसे आरम्भ करके लगातार एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है।

३४२। युगादि व्रत—यह आदिपुराणोक्त है। युगाद्या तिथिमें अर्थात् जिस प्रकार वैशाख मासकी शुक्ला तृतीया सत्ययुगाद्या है, उसी प्रकार सभी युगाद्या तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३४३। युगावतार व्रत—भविष्यपुराणोक्त व्रत। भाद्रमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३४४। भविष्योत्तरोक्त व्रत। विष्कम्भ योगसे आरम्भ करके यह व्रत करना होता है।

३४५। योगेश्वर द्वादशी व्रत—धरणीव्रतोक्त। कार्त्तिक मासकी एकादशी तिथिमें उपवास करके दूसरे दिन यह व्रत करना होगा।

३४६। रक्षाबन्धनपौर्णमासी—भविष्योत्तरोक्त। श्रावण मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३४७। रथनवमी—भविष्यपुराणोक्त। आश्विन मासकी कृष्णानवमी तिथिमें यह करना होता है।

३४८। रथसप्तमी—भविष्योत्तरोक्त व्रत। यह माघमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें करना होता है।

३४९। रथाङ्गसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त। यह व्रत माकरी सप्तमीमें किया जाता है।

३५०। रम्भात्रिरात—स्कन्दपुराणोक्त। ज्यैष्ठ मासके शुक्लपक्षमें त्रयोदशी तिथिसे तीन दिन तक यह व्रत करना होगा।

३५१। रवि व्रत—भविष्यपुराणोक्त। समस्त माघ मासमें भगवान् सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

३५२। रसकल्याणिनी तृतीया—ब्रह्मपुराणोक्त। माघमासकी शुक्ला तृतीया तिथिको रसकल्याणिनी तृतीया कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत एक वर्ष तक करना होता है।

३५३। राघवद्वादशी—धरणीव्रतोक्त। ज्यैष्ठ मासकी द्वादशीतिथिमें आरम्भ करके रामचन्द्रके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

३५४। राजराजेश्वर व्रत—कालोत्तरोक्त। बुधवारको स्वाति नक्षत्र और अष्टमी तिथि होनेसे उसी दिन यह करना होता है।

३५५। राज्यतृतोया—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। ज्यैष्ठमासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३५६। राज्यदद्वादशी—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें राज्यकी कामनासे यह व्रत किया जाता है।

३५७। राज्याप्तिदशमी—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। कार्त्तिक मासके शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें यह करनेका विधान है।

३५८। रामनवमी व्रत—अगस्त्यसंहितोक्त। चैत्रमासकी शुक्ला नवमीको रामनवमी कहते हैं। इस तिथिमें रामचन्द्रके उद्देशसे यह करना होता है।

३५९। राशि व्रत—भविष्यपुराणोक्त। कार्त्तिकी पूर्णिमा तिथिसे आरम्भ करके एक वर्ष तक यह व्रत करना चाहिये।

३६०। रुक्मिण्यष्टमी—स्कन्दपुराणोक्त। अग्रहायण मासकी कृष्णाष्टमीको रुक्मिण्यष्टमी कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३६१। रुद्र व्रत—पद्मपुराणोक्त। एक वर्ष तक प्रति दिन सिर्फ एक बार भोजन करके पाप और शोक नाशके लिये रुद्रदेवके उद्देशसे यह करना होता है।

३६२। रूपनवमी—भविष्यपुराणोक्त। पौषमासमें यह करना होता है।

३६३। रूपसत्र—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। फाल्गुनमासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

३६४। रूपसंक्रान्ति—स्कन्दपुराणोक्त। संक्रान्तिके दिन यह करना होगा।

३६५। रूपावाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। फाल्गुनी-पूर्णिमाके बाद प्रतिपदसे यह आरम्भ होता है।

३६६। रोहिणीद्वादशी—भविष्योत्तरोक्त। श्रावण मासकी कृष्णा द्वादशीको रोहिणीद्वादशी कहते हैं। इसी तिथिमें यह व्रत करना होगा।

३६७। रोहिणी व्रत—स्कन्दपुराणमें वर्णित व्रत। रोहिणी नक्षत्रमें यह किया जाता है।

३६८। लक्षणार्द्रा व्रत—मत्स्यपुराणमें कथित व्रत। श्रावण मासीय अष्टमी तिथिमें यदि आर्द्रा नक्षत्र हो, तो उमामहेश्वरके उद्देशसे यह करना होता है।

३६९। लक्ष्मीनारायण व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। फाल्गुन मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह किया जाता है।

३७०। लक्ष्मीपञ्चमी व्रत—यमपुराणमें कथित व्रत। पञ्चमी तिथिमें उपवास करके यह करना होता है। यह वर्षसाध्य व्रत है।

३७१। ललितातृतीया—भविष्योत्तरोक्त। मासके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिका नाम ललितातृतीया है। इस तिथिमें उक्त व्रत करना होता है।

३७२। ललिता व्रत स्कन्दपुराणोक्त। आश्विन शुक्लपक्षकी दशमी तिथिमें यह करना होगा।

३७३। ललिताषष्ठी—भविष्योत्तरोक्त। भाद्र मासकी शुक्लाषष्ठी तिथिमें यह किया जाता है।

३७४। लावण्यावाप्ति—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। कार्त्तिकी पूर्णिमाके बाद प्रतिपदसे यह करना होता है।

३७५। लोक व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपत् तिथिसे ७ दिन तक यह करना होता है।

३७६। वटसावित्री—स्कन्दपुराणोक्त। ज्यैष्ठ मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह किया जाता है।

३७७। वरचतुर्थी—अग्रहायण मासकी शुक्ला चतुर्थी तिथिको वरचतुर्थी कहते हैं। इस दिन उक्त व्रत करना होता है।

३७८। वरव्रत—पद्मपुराणोक्त। शुभदिनमें आरम्भ करके ७ दिन यह करना होगा।

३७९। वराटिकासप्तमी—भविष्यपुराणोक्त। जिस किसी सप्तमीतिथिमें यह किया जा सकता है।

३८०। वराहद्वादशी—धरणीव्रतोक्त। माघ मासकी शुक्ला द्वादशीको वराहद्वादशी कहते हैं। इस दिन उक्त व्रत करना चाहिये।

३८१। वरुणव्रत—पद्मपुराणोक्त। रात्रिकालमें जलमें अवस्थान कर प्रभातकालमें गोदानरूप व्रत।

३८२। वहुव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्रमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत किया जाता है।

३८३। वस्त्रत्रिरात्र व्रत—भविष्योत्तरोक्त। चैत्रमासमें तीन दिन रातको भोजन करके यह व्रत करना होता है।

३८४। वह्नि व्रत—विष्णुपुराणोक्त। चैत्रमासकी अमावस्याके दिन यह किया जाता है।

३८५। वामनद्वादशी व्रत—धरणीव्रतोक्त। चैत्रमासकी शुक्ला द्वादशीको वामनद्वादशी कहते हैं। इसी दिन उक्त व्रत करना होता है।

३८६। वायुव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। ज्यैष्ठमासकी शुक्ला चतुर्दशीसे आरम्भ करके यह करना होता है।

३८७। वारि व्रत—पद्मपुराणोक्त। चैत्रादि चार मास तक यह व्रत चलता है।

३८८। विजयाद्वादशी—आदित्यपुराणोक्त। शुक्ला द्वादशी तिथिमें पुष्यानक्षत्र होनेसे उसी दिन यही व्रत किया जाये, तो महापुण्य होता है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशी तिथिको एक और विजया द्वादशी व्रतका विधान है।

३९०। विजयासप्तमी—भविष्योत्तरोक्त शुक्ल पक्षकी

सप्तमी तिथिमें यदि रविवार पड़े, तो उसे विजयासप्तमी कहते हैं। इस सप्तमीमें उक्त व्रत करना होता है।

३९१। विजयासप्तमीसव्रत—भविष्यपुराणोक्त। संक्रांतिमें सप्तमी तिथि होनेसे उसी दिन यह व्रत किया जाता है।

३९२। विद्याप्रतिपद् व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौष मासकी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद् तिथिसे यह व्रत करना होता है।

३९३। विद्यावाप्तिव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौषी पूर्णिमाके बाद प्रतिपत् तिथिसे यह व्रत करना होता है।

३९४। विधानद्वादशसप्तमी व्रत—आदित्य पुराणोक्त। चैत्र मासकी शुक्लासप्तमी तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत समाप्त करना होता है। पीछे द्वादश मासकी सप्तमी तिथिमें एक ही नियमसे यह व्रत करना होगा। यथाविधान द्वादशसप्तमीमें यह व्रत किया जाता है, इसीसे इसको विधानद्वादशसप्तमी व्रत कहते हैं।

३९५। विभूतिद्वादशी—मत्स्यपुराणोक्त। कार्त्तिक, अग्रहायण, फाल्गुन, वैशाख वा आषाढ़ मासकी शुक्ला दशमी तिथिमें लघु भोजन तथा उसके बाद एकादशीके दिन यह व्रत करे।

३९६। विल्वत्रिरात्रव्रत—स्कन्दपुराणोक्त। ज्यैष्ठ मासकी पूर्णिमा तिथिमें ज्येष्ठा नक्षत्र होनेसे उसी दिन यह व्रत होगा।

३९७। विशोकद्वादशी—पद्मपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

३९८। विशोकषष्ठी—भविष्योत्तरोक्त। माघ मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें शोकनाशकी कामनासे यह व्रत करना होता है।

३९९। विशोकसंक्रान्ति—स्कन्दपुराणमें लिखित व्रत। विषुवसंक्रान्तिके दिन व्यतीपातयोग होनेसे उसी दिन यह व्रत करना होता है।

४००। विश्वव्रत—भविष्यपुराणोक्त। एकादशी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४०१। विश्वरूप व्रत—कालोत्तरोक्त। शुक्लाष्टमी तिथिमें यह व्रत करनेका विधान है।

४०२। विष्टिव्रत—भविष्योत्तरोक्त। जिस दिन विष्टिभद्रा तिथि होती है, उसी दिन यह व्रत करना होगा।

४०३। विष्णुदेवको व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। कार्त्तिक मासके प्रथम दिनसे यह व्रत आरम्भ होता है।

४०४। विष्णुव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त व्रत। आषाढ़ मास पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रसे आरम्भ करके यह व्रत करना होता है।

४०५। विष्णुप्राप्तिद्वादशी—भविष्यपुराणोक्त। द्वादशी तिथिमें उपवास करके विष्णुके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

४०६। विष्णुव्रत—भविष्यपुराणोक्त। यह व्रत भी द्वादशी तिथिमें होता है। पद्मपुराण और विष्णुधर्मोत्तर में भी इस विष्णुव्रतका विधान है। विष्णुधर्मोत्तरके मतसे पौष मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिसे आरम्भ करके यह व्रत करना ही कर्त्तव्य है।

४०७। वेदव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासके प्रथमसे आरम्भ करके ज्यैष्ठ मासके शेष पर्य्यन्त यह व्रत करना होता है।

४०८। वैतरणी व्रत—भविष्योत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी कृष्णा एकादशी तिथिको वैतरणी तिथि कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४०९। वैनायकचतुर्थी—भविष्योत्तरोक्त। चतुर्थी तिथिमें रात्रिभोजन करके यह व्रत करना होता है।

४१०। वैशाख व्रत—पद्मपुराणोक्त। वैशाख मासमें प्रति दिन एक बार भोजन करके यह करना होता है।

४११। वैश्वानर व्रत—पद्मपुराणोक्त। वर्षा ऋतुसे आरम्भ करके चार ऋतुमें काष्ठादि दानरूप व्रत।

४१२। वैष्णव व्रत—पद्मपुराणोक्त। आषाढ़से चार मास प्रातःस्नान करके यह व्रत करना उचित है।

४१३। व्यतीपात व्रत—वराहपुराणोक्त। व्यतीपातके दिन यह व्रत करना होगा।

४१४। व्योम व्रत—भविष्यपुराणोक्त। अगस्त्यको अर्घ्यदान करनेके बाद यह व्रत किया जाता है।

४१५। व्योमषष्ठी व्रत—भविष्यपुराणोक्त। षष्ठी तिथिमें व्योम प्रस्तुत करके उसमें सूर्यदेवके उद्देशसे यह व्रत करे।

४१६। व्रतराजतृतीया—देवीपुराणोक्त। शुक्ला तृतीया तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है।

४१७। शत्रुव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। आश्विन मासकी पूर्णिमा तिथिमें इन्द्रके उद्देशसे यह व्रत करना होता है। पद्मपुराणमें और भी एक शत्रुव्रतका विधान है।

४१८। शङ्करनारायणव्रत—देवीपुराणोक्त व्रत। शुभ दिनमें शङ्कर और नारायणके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

४१९। शङ्करार्क व्रत—कालिकापुराणोक्त। रवि-वारको अष्टमी तिथि पड़नेसे यह व्रत करे।

४२०। शनिव्रत—भविष्योत्तरोक्त व्रत। शनिवार के रोज शनिग्रहको प्रसन्न रखनेके लिये यह व्रत किया जाता है।

४२१। शर्करासप्तमी व्रत—पद्मपुराणोक्त व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिको इस व्रतका विधान है।

४२२। शाकसप्तमी—भविष्यपुराणोक्त। कार्त्तिक मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४२३। शान्ताचतुर्थी—भविष्यपुराणोक्त। माघ मासकी शुक्ला चतुर्थीका नाम शान्ता चतुर्थी है। उस दिन यह व्रत करना होता है।

४२४। शान्तितृतीया—गरुड़पुराणोक्त। तृतीया तिथिमें शान्तिकी कामनासे यह किया जाता है।

४२५। शान्तिपञ्चमी—भविष्यपुराणोक्त। भाद्र मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४२६। शान्तिव्रत—वराहपुराणोक्त। कार्त्तिक मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें शान्तिकी कामनासे यह व्रत अनुष्ठेय है।

४२७। शाम्भरायणीव्रत—भविष्योत्तरोक्त। प्रति मासमें विष्णुके उद्देशसे यह व्रत करना होता है।

४२८। शिलाचतुर्थी—भविष्योत्तरोक्त। चतुर्थी तिथिमें इस व्रतका विधान है।

४२९। शिवचतुर्दशी—मत्स्यपुराणोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला चतुर्दशीको शिव चतुर्दशी कहते हैं। इस तिथिमें उक्त व्रत किया जाता है।

४३०। शिवनक्त व्रत—भविष्यपुराणोक्त। कृष्णाष्टमी और कृष्णा चतुर्दशी तिथिमें रातको यह व्रत करना होता है।

४३१। शिवरथ व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। हेमन्त ऋतुमें प्रति दिन एक बार करके भोजन तथा माघ मासमें संयत हो फाल्गुन मासमें शिवके उद्देशसे रथ निर्माण कर यह व्रत करे।

४३२। शिवरात्रि—स्कन्दपुराणोक्त। माघ मासकी कृष्णा चतुर्दशीका नाम शिवचतुर्दशी है। इस तिथि-में शिवके उद्देशसे चण्डाल पर्यन्त यह व्रत कर सकता है।

४३३। शिवलिङ्ग व्रत—शिवधर्मोत्तरोक्त। अंगुष्ठ-मात्रपरिणाम शिवलिङ्ग बनाके पद्मके केशरके मध्य स्थापन करे। पीछे श्वेतचन्दन और पुष्पादि द्वारा उनकी पूजा करनी होती है।

४३४। शिव व्रत—कालोत्तरोक्त। पक्षको उभय अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें यह व्रत करनेका नियम है।

४३५। शिवाचतुर्थी। भविष्यपुराणोक्त। भाद्र मासकी शुक्ला चतुर्थीको शिवाचतुर्थी कहते हैं। इस तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४३६। शिवोपवीत व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। आषाढ़ मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत अनुष्ठेय है।

४३७। शीलतृतीया—पद्मपुराणोक्त। तृतीया तिथिमें अनग्निपक्व द्रव्य भोजन करके इस व्रतका अनु ष्ठान करे।

४३८। शीलावाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्र हायण मास बीतने पर एक मास पर्यन्त प्रति दिन यह व्रत करना होता है।

४३९। शुक्र व्रत—भविष्योत्तरोक्त शुक्रवारमें ज्येष्ठा नक्षत्र होनेसे यह करना कर्त्तव्य है।

४४०। शुद्धि व्रत—वह्निपुराणोक्त। द्वादश मासकी एकादशी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४४१। शुभद्वादशी—वराहपुराणोक्त। अग्रहायण मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४४२। शुभसप्तमी—पद्मपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें यह व्रत करनेका विधान है।

४४३। शूलदान—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। एक वर्ष पर्यन्त अमावस्याके दिन उपवास करके यह व्रत करे।

४४४। शैल व्रत—विष्णधर्मोत्तरोक्त। चैत्रमासके शुक्लपक्षसे आरम्भ करके ७ दिन पर्यन्त यह व्रत करनेका विधान है।

४४५। शैवनक्षत्रपुरुष व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें जिस दिन हस्तानक्षत्र होता है, उसी दिन यह व्रत होगा।

४४६। शैवमहाव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। पौष मासमें नक्त भोजन करके यह व्रत करना होता है।

४४७। शैवोपवास व्रत—भविष्यपुराणोक्त। दोनो पक्षकी अष्टमी और चतुर्दशी तिथिमें शिवके उद्देशसे उपवास करके यह व्रत किया जाता है।

४४८। शौर्यव्रत—वराहपुराणोक्त। आश्विन मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४४९। श्रद्धाव्रत—पद्मपुराणोक्त। शुभ दिनमें शम्भु वा केशवको पहले उपलेपन करके यह व्रत करे।

४५०। श्रवणा द्वादशी। भविष्योत्तरोक्त। शुक्ला एकादशी तिथिमें यदि श्रवणा नक्षत्र हो, तो उस एकादशीमें उपवास करके द्वादशी तिथिमें व्रत करे।

४५१। श्रीपञ्चमी—गरुड़पुराणोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला पञ्चमीको श्रीपञ्चमी कहते हैं। इस तिथिमें लक्ष्मीके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

४५२। श्रीप्राप्तिव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। वैशाखी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद्द तिथिसे यह व्रत करे।

४५३। श्रीवृक्षनवमी—भविष्योत्तरोक्त। भाद्र मासकी शुक्ला नवमी तिथिमें इस व्रतकी व्यवस्था है।

४५४। श्रीव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत शुक्ला पञ्चमीमें यह व्रत करना होता है।

४५५। षष्ठीव्रत—ब्रह्मपुराणोक्त। षष्ठी तिथिमें यह व्रत करना चाहिये।

४५६। संवत्सर व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासके शुक्लपक्षसे आरंभ करके एक वर्ष तक यह व्रत करना होता है।

४५७। सङ्कटक व्रत—वराहपुराणोक्त। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४५८। सन्तानद व्रत—भविष्योत्तरोक्त। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें उपवास करके यह व्रत करना होता है।

४५९। सन्तानाष्टमी व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासकी कृष्णाष्टमी तिथिमें यह व्रत किया जाता है।

४६०। सप्तर्षि व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्रशुक्ला प्रतिपद्से आरंभ करके सप्तमी पर्यन्त ७ दिन सप्तर्षियोंके उद्देशसे इस व्रतका अनुष्ठान करे।

४६१। सप्तसारस्वत व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। यह व्रत भी चैत्र मासकी शुक्ला प्रतिपद्से लगायत ७ दिन तक करनेका विधान है।

४६२। सप्तसुन्दरक व्रत—भविष्योत्तरोक्त। प्रतिदिन सिर्फ एक बार भोजन करके ७ दिन तक यह व्रत करना कर्त्तव्य है।

४६३। समुद्र व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। चैत्र मासके शुक्लपक्षसे आरंभ करके ७ दिन पर्यन्त इस व्रतका पालन करे।

४६४। सम्पूर्ण व्रत—भविष्यपुराणोक्त। शुभ दिनमें यथाविधान यह व्रत करना कर्त्तव्य है।

४६५। सम्भोग व्रत—भविष्यपुराणोक्त। मासकी दो पञ्चमी और प्रतिपद् तिथिमें यह व्रत करे।

४६६। सर्पपञ्चमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त। नागपंचमीमें यह व्रत करना होता है।

४६७। सर्पविषापहपंचमीव्रत—स्कन्दपुराणके प्रभासखण्डोक्त। श्रावण मासकी शुक्ला पञ्चमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४६८। सर्वकाम व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें उपवास करके एक वर्ष तक यह व्रत करे।

४६९। सर्वकामाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। कार्त्तिक मासकी पूर्णिमा तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४७०। सर्व व्रत—सौरपुराणोक्त। शनिवारमें शुक्लात्रयोदशी होनेसे उसी दिन यह व्रत आचरणीय है।

४७१। सर्वाप्तिसप्तमी व्रत—भविष्यपुराणोक्त। माघ मासके कृष्णपक्षकी सप्तमी तिथिमें यह व्रत करना होता है।

४७२। सर्षपसप्तमीव्रत—भविष्यपुराणोक्त। सप्तमी तिथिमें यह व्रत होता है।

४७३। सागर व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। श्रावणादि चार मासमें यह व्रत किया जाता है।

४७४। साध्यव्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। अग्रहायण मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह व्रत अनुष्ठेय है।

४७५। सारस्वतपञ्चमी—पद्मपुराणोक्त। शुक्लपक्षीय पञ्चमीमें शुक्लमाल्यानुलेपनादि द्वारा वीणाक्षमालादिधारिणी गायत्री देवीकी पूजा करनी होती है।

४७६। सारस्वत व्रत—प्रति दिन शामको एकाग्रचित्तसे इष्टका पूजन करना होता है। पीछे वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको घृतकुम्भ, वस्त्रयुग्म, तिल और घंटा दान करनेका नियम है। (पद्मपु०)

४७७। सार्वभौम व्रत—कार्त्तिकी शुक्ला दशमीमें नक्ताशी हो प्रत्येक दिशामें बलिका प्रयोग करे। (वराहपु०)

४७८। सितसप्तमी—अग्रहायण मासीय शुक्ला सप्तमीमें उपवासी रह कर श्वेतकमल या किसी दूसरे श्वेतपुष्प तथा श्वेतचन्दन और श्वेतवस्त्रादि द्वारा सूर्यदेवकी पूजा करे। (विष्णुधर्म०)

४७९। सिद्धार्थकादि सप्तमी अग्रहायण वा माघ मासकी शुक्ला सप्तमीसे आरम्भ कर क्रमागत उसी पक्षीय सात सप्तमी पर्यन्त सिद्धार्थक (श्वेतसर्षप) आदि द्वारा सूर्यदेवकी पूजा करनी होती है। (भविष्यपु०)

४८०। सिद्धिविनायकचतुर्थी—जिस किसी मासमें भक्तिके उदय होने पर उस मासकी शुक्ला चतुर्थीमें शुक्ल तिलादि द्वारा गणपतिकी पूजा करनी होती है। (स्कन्दपु०)

४८१। सुकलत्रप्राप्ति—प्रतिकामा कुमारीके उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढ़ा वा उत्तरभाद्रपद, इनमेंसे किसी एक नक्षत्रमें "माधवाय नमः" इस मन्त्रसे सर्वदा हरिकी आराधना करे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८२। सुकुलत्रिरात्र—त्रिरात्रोपवास पूर्वक अग्रहायण मासीय त्र्यहस्पर्श तिथिमें श्वेत, पीत और रक्त इन तीन वर्णोंके पुष्प द्वारा, त्रिविक्रमदेवकी पूजा करनी होती है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८३। सुकृतद्वादशी—फाल्गुनमासकी शुक्ला एकादशीमें उपवासी रह कर दूसरे दिन उसी अवस्थामें श्रीहरिकी अर्चना करे।

४८४। सुखव्रत—भविष्यपुराणके मतसे कृष्णा अष्टमी या सप्तमीमें अथवा मङ्गलवारको चतुर्थी तिथि होनेसे उसमें उपवास कर सारी रात इष्टदेवकी पूजा करनी होती है।

४८५। सुखषष्ठी व्रत—षष्ठीतिथिमें ऋषियोंकी यथायथ भावमें पूजा करनी चाहिये। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८६। सुखसुप्ति व्रत—कार्त्तिकी अमावस्यामें देवगण सुखनिद्रामें अभिभूत रहते हैं। इस दिन बालक तथा आतुर व्यक्तिको छोड़ सभी उपवासी रह कर प्रदोषके समय लक्ष्मी पूजा तथा देवगृह, चत्वर, चतुष्पथ आदि स्थानोंमें यथाशक्ति दीपमाला प्रदान करे। (आदित्यपु०)

४८७। सुगतिव्रत—अष्टमी तिथिमें नक्ताशी हो कर वर्षके बाद गोदान करना होता है। (पद्मपु०)

४८८। सुगतिद्वादशी—फाल्गुन मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें इष्टदेवकी अर्चना कर १०८ बार "कृष्ण" का नाम जपे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४८९। सुजन्मद्वादशी—पौष मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें ज्येष्ठा नक्षत्रका योग होनेसे उस दिन श्रीविष्णुकी अर्चना आरम्भ कर दे। पीछे एक वर्ष तक प्रतिमासकी उसी तिथिमें उपवास करनेके बाद विष्णुपूजा करके दानध्यानादि करे। (विष्णुधर्मोत्तर)

४९०। सुजन्मावाप्ति व्रत—रविके मेषसंक्रमण दिनमें उपवासी रह कर यथाविधि परशुरामकी पूजा करनी होती है। पीछे वृषसंक्रमणमें इसी प्रकार श्रीकृष्णकी,

मिथुन-संक्रमणमें श्रीविष्णुकी, कर्कट-संक्रान्तिमें वराह-देवताकी, सिंह-संक्रमणमें नरसिंहदेवकी, कन्यासंक्रमणमें वामनदेवकी, तुला-संक्रमणमें कूर्मावतारकी, वृश्चिकसंक्रमणमें कल्कीदेवकी, धनुःसंक्रमणमें बुद्धदेवकी, मकरसंक्रान्तिमें दाशरथि रामचन्द्रकी, कुम्भसंक्रमणमें बलरामदेवकी और मीनसंक्रमणमें मीनावतारकी अर्चना करनेका नियम है। (विष्णुधर्म)

४६१। सुदर्शनषष्ठी राजन्यगण षष्ठीतिथिमें उपवास करनेके बाद एक चक्राब्ज प्रस्तुत कर उसकी कर्णिकामें सुदर्शन और प्रतिदलमें अन्यान्य आयुधोंको यथाविधि पूजा करते हैं। (गरुड़पु०)

४६२। सुनामद्वादशी—अग्रहायण मासकी प्रथम द्वादशीको अव्यवहित पूर्ववर्त्ती दशमीके दिन एक वेला हविष्यान्न भोजन कर दूसरे दिन एकादशीमें निरम्बू उपवास करे। पीछे यथारीति जनार्दन विष्णुकी पूजा कर दूसरे दिन द्वादशीको भोजन करे। इसी प्रकार एक वर्ष तक करना होगा। (वह्निपु०)

४६३। सुरूपद्वादशी—पौषमासीय पुष्यानक्षत्र संयुक्त रात्रिमें संयतचित्तसे विष्णुका ध्यान करना होता है। पीछे निरवच्छिन्न श्वेतवर्ण गौकी गोमयाग्निमें तिल द्वारा एक सौ आठ बार आहुति देनी होती है। इसके बाद परवर्त्ती कृष्णा एकादशीमें उपवासी रह कर स्वर्ण वा रौप्यनिर्मित हरिमूर्त्तिको तिलपूर्ण पात्रके उपरिस्थ कुम्भके ऊपर रख यथाविधि उनकी अर्चना करनी होती है। (उमामहेश्वरस०)

४६४। सूर्यव्रत—रविवारको शुक्ला चतुर्दशी और अश्विनीनक्षत्रका योग होनेसे रोचना द्वारा परमात्मा शिवके अङ्गराग तथा रक्तपुष्प कपिला गायोंके दुग्ध और घृत आदि द्वारा उनकी अर्चना करे। (कालोत्तर)

एतद्भिन्न विष्णुधर्मोत्तर, पद्मपुराण, भविष्यपुराण आदिमें भी सूर्यव्रतका विवरण आया है।

४६५। सूर्यनक्त व्रत—प्रति रविवारको अथवा हस्तानक्षत्रयुक्त रविवारसे आरम्भ करके एक वर्ष तक दिनमें उपवासी रह कर सूर्यास्तकालमें रक्तचन्दन द्वारा द्वादशदल पद्म अङ्कित करके उसके ऊपर एकान्त मनसे सूर्यदेवको पूजा कर रातको हविष्यान्न भोजन करनेसे निश्चय ही सभी व्याधिसे मुक्तिलाभ किया जाता है। (मत्स्यपुराण)

४६६। सूर्यषष्ठी—भाद्र मासकी शुक्ला षष्ठी तिथिमें उपवासी रह कर सूर्यास्तकालमें रक्तचन्दनाङ्कितपद्मके ऊपर सूर्यमूर्त्ति स्थापन करे। पीछे पञ्चगव्यादि द्वारा स्नान और रक्तवस्त्र वा रक्तकरवीर पुष्प द्वारा उसकी पूजा करनेका नियम है। (भविष्योत्तर)

४६७। सूर्यसप्तमी व्रत—चैत्रमासकी शुक्लाषष्ठी तिथिमें उपवासी रह कर दूसरे दिन सप्तमीमें पञ्चवर्णकी गुड़िका द्वारा अङ्कित अष्टदल कमल पर देवदेवकी अर्चना करनी होती है। (विष्णुधर्मोत्तर)

४६८। सोमद्वितीया व्रत—शुक्ला द्वितीया तिथिमें ब्राह्मणको सैन्धवलवणके साथ भोज्यान्न देना होता है। (पद्मपु०)

४६६। सोमव्रत—वैशाखी पूर्णिमाके दिन जब सूर्यदेव पश्चिमदिशामें रहते हैं और सोमदेव पूर्वदिशामें उदय होते हैं, उस समय वारिपूर्ण ताम्रपात्रके भीतर चन्द्रचूड़मूर्त्ति संस्थापन कर यथाविधि उनकी पूजा करना कर्त्तव्य है। (भविष्यपु०)

इसके सिवा कालोत्तर और कालिकापुराणादिमें भी इस व्रतका उल्लेख है।

५००। सोमवार व्रत—पहले चित्रानक्षत्रयुक्त सोमवारको नक्तविधानानुसार सोमदेवकी पूजा करे। पीछे उससे सातवें सोमवारको चतुर्दशीस्थ महाराजव्रतोक्त रजतनिर्मित सोममूर्त्तिको कांसेके बरतनमें रख उनकी यथाविधि पूजा करनी होती है। (भविष्योत्तर)

५०१। सोमाष्टमी व्रत—दोनों पक्षके सोमवारको अष्टमी तिथिमें रातके समय हरगौरी मूर्त्तिकी यथाविधि पूजा करना कर्त्तव्य है। (स्कन्दपु०)

५०२। सौख्य व्रत—माघ मासको अष्टमी, एकादशी और चतुर्दशी तिथिमें एकाहारी हो कर अर्थिजनको श्वेतवस्त्र, उपानह, कम्बल आदि दान करने होते हैं।

५०३। सौगन्ध व्रत—हेमन्त और शिशिर ऋतुमें सुगन्धित पुष्पका परित्याग कर फाल्गुन मासमें यथाशक्ति काञ्चन निर्मित तीन पलका दान देना और यथा-

शक्ति हरिहर मूर्त्तिकी तुष्टि करना अवश्य कर्त्तव्य है।

(पद्मपु०)

५०४। सौभाग्य व्रत—फाल्गुन मासकी शुक्ला तृतीयाके दिन उपवासी रह कर लक्ष्मीनारायण वा हरपार्वती मूर्त्तिकी उपासना करनेके बाद हविष्यान्न भोजन करना होता है। (वराहपु०) गरुड़पुराणमें इस व्रतका उल्लेख है।

५०५। सौभाग्य व्रत—इस व्रतमें पौर्णमासी तिथिमें भक्तिपूर्वक सोमदेवकी पूजा करनी होती है।

(भविष्यपुराण)

५०६। सौभाग्यशयनव्रत—मत्स्यपुराणोक्त। चैत्र मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक इसका अनुष्ठान करना पड़ता है। प्रति मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें यथाविधान यह व्रत करना कर्त्तव्य है। इस व्रतमें प्रति मास एक एक द्रव्य भोजन करना होता है। चैत्रमासमें गोश्रृङ्गोदक, वैशाखमें गोमय, ज्यैष्ठमें मन्दारकुसुम, आषाढ़में विल्वपत्र, श्रावणमें दधि, भाद्रमें कुशोदक, आश्विनमें दुग्ध, कार्त्तिकमें दधिमिश्रित घृत, अग्रहायणमें गोमूत्र, पौषमें घृत, माघमें कृष्णतिल, फाल्गुनमें पञ्चगव्य, इस प्रकार बारह महीनेमें बारह वस्तु खानेका विधान है। इस व्रतके फलसे सभी कामना सिद्ध होती है।

५०७। सौभाग्यसंक्रान्ति व्रत—स्कन्दपुराणोक्त। विषुव-संक्रान्तिमें यह व्रत आरम्भ करके एक वर्ष तक इसका अनुष्ठान करना होता है।

५०८। सौभाग्यावाप्ति व्रत—विष्णुधर्मोत्तरोक्त। माघी पूर्णिमाके बाद प्रतिपद्‌से यह व्रत करना होता है।

५०९। सौरनक्त व्रत—नृसिंहपुराणोक्त। रविवारके दिन हस्ता नक्षत्र होनेसे उसी दिन यह व्रत किया जाता है।

५१०। सौर सप्तमी—पद्मपुराणोक्त। सप्तमी तिथिमें उपवास करके यह व्रत करे। यह एक वर्षमें समाप्त होता है।

५११। स्त्रीपुत्रकामावाप्ति व्रत—भविष्यपुराणोक्त। कार्त्तिक मासमें एक मास तक प्रति दिन एक बार भोजन और ब्रह्मचर्य्यका अवलम्बन कर यह व्रत करना कर्त्तव्य है।

५१२। स्नेह व्रत—पद्मपुराणोक्त। आषाढ़ माससे आरंभ करके आश्विनपर्य्यन्त चार मास यह व्रत करना होता है। इतने दिनों तक तेल लगाना मना है।

५१३। हरपञ्चमी—शालिहोत्रोक्त। चैत्रमासकी शुक्ला पञ्चमीमें यह व्रत किया जाता है।

५१४। हरतृतीया—स्कन्दपुराणोक्त। माघ मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें उपवासी रह कर यह व्रत करना उचित है।

५१५। हरव्रत—भविष्यपुराणोक्त। जिस किसी अष्टमी तिथिमें यह व्रत किया जा सकता है।

५१६। हरिव्रत—वराह पुराणोक्त। द्वादशी तिथिमें हरिके उद्देशसे यह व्रत किया जाता है।

५१७। हरिकाली व्रत—भविष्योत्तरोक्त। भाद्र मासकी शुक्ला तृतीया तिथिमें इस व्रतका अनुष्ठान होता है। इसके फलसे दुर्भाग्य नाश और स्वर्गलाभ होता है।

इन सब व्रतोंका विशेष विवरण उक्त पुराण या हेमाद्रिके व्रतखण्डमें विशेष रूपसे है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया।

यथाविधान व्रत करके पीछे विधिके अनुसार उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है।

महिलाव्रत।

ऊपर लिखे गये व्रतोंको छोड़ पयोसंक्रान्ति आदि अनेक प्रकारके योषिद् व्रत हैं, किन्तु उनके सम्बन्धमें शास्त्रीय कोई विशेष प्रमाण देखनेमें नहीं आता, केवल स्त्रियोंमें ही इसका प्रचलन देखा जाता है।

वङ्गदेशकी बालिका शैशवावस्थासे ले कर विवाहके पूर्व पर्य्यन्त पितालयमें तथा विवाहके बाद श्वशुरालयमें रहते समय भी ये सब व्रत किया करती हैं। उनमेंसे अधिकांश पुराणाख्यायिकाके आधार पर गठित नहीं होने पर बहुत कुछ पुराणके ढंग पर गुप्त भावमें मिश्रित देखा जाता है। उन सब व्रतोंका गल्पांश किसी साधुचरित्र पुरुष या सुशीला रमणी अथवा सर्वदा व्रत नियमपरायण और साधुसेवारत दम्पतीका कल्पित हुआ है। वे सब व्रत कथायें कहीं गद्यमें और कहीं पद्यमें लिखी गई हैं।

व्रतक (सं० क्ली०) व्रत देखो।

व्रतचर्या (सं० स्त्री०) व्रतस्य चर्या। व्रताचरण, व्रतानुष्ठान।

व्रतचारिता (सं० स्त्री०) व्रतचारिणो भावः तल्-टाप्। व्रतचारी होनेका भाव या धर्म।

व्रतचारिन् (सं० त्रि०) व्रतेन चरतीति चर णिनि। व्रताचरणकारी, व्रत करनेवाला।

व्रतति (सं० स्त्री०) प्र-तन विस्तारे-क्तिच, पृषोदरादित्वात् तस्य व। १ विस्तार, फैलाव। २ लता।

व्रतती (सं० स्त्री०) व्रतति-पक्षे-ङीप्। व्रतति देखो।

व्रतदण्डिन् (सं० त्रि०) व्रतजन्य दण्डधारी। (हरिवंश)

व्रतदान (सं० क्ली०) व्रतविषयक दान।

व्रतदुग्ध (सं० क्ली०) १ व्रतरूप दुग्ध। २ व्रतके निमित्त दुग्ध।

व्रतदुघा (सं० स्त्री०) व्रतदोहनकारिणी।

व्रतधर (सं० त्रि०) धरतीति धृ अच् धरः, व्रतस्य धरः व्रतधारी, जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो।

व्रतधारण (सं० क्ली०) व्रतस्य धारणं। व्रतचर्या, व्रतानुष्ठान, किसी प्रकारका व्रत करना।

व्रतनिमित्त (सं० त्रि०) व्रतका उद्देशभूत, व्रतके लिये।

व्रतनी (सं० स्त्री०) पयःप्रदान द्वारा कर्मकी नेत्री। (ऋक् १०।६५।६)

व्रतपक्ष (सं० क्ली०) १ सामभेद। (लाट्या० १।६।३३) (पु०) २ भाद्रमासके शुक्ल पक्षको व्रतपक्ष कहते हैं। इस व्रतमें अनेक व्रतोंका विधान है, इसलिये यह व्रतपक्ष नामसे अभिहित है।

व्रतपति (सं० पु०) व्रतस्य पतिः। व्रतपालक, वह जो अनुष्ठेय कर्मका पालन करता हो।

व्रतपत्नी (सं० स्त्री०) १ व्रतपतिकी स्त्री। २ अप्, जल, पानी।

व्रतपा (सं० त्रि०) व्रतं पाति पा-क्विप्। व्रतपालक। (शुक्लयजुः ५।६)

व्रतपारण (सं० क्ली०) व्रतस्य पारणं। वह पारण जो व्रतके अन्तमें किया जाता है। व्रतका अनुष्ठान कर ब्राह्मण और आत्मीयोंको खिला स्वयं पारण करना होता है।

व्रतप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) व्रत ग्रहणपूर्वक उसकी उद्यापन क्रिया।

व्रतप्रद (सं० त्रि०) व्रतफलप्रदानकारी पशु। (ऐतरेयब्रा० ७।१)

व्रतप्रदान (सं० क्ली०) व्रतपुञ्ज दान।

व्रतभङ्ग (सं० त्रि०) जो नियमपूर्वक व्रतपालन या उद्यापन करनेमें असमर्थ हो।

व्रतभिक्षा (सं० स्त्री०) उपनयनकालीन भिक्षा। उपनयन संस्कार होनेके बाद जो भिक्षा करनेका विधान है, उसे व्रत भिक्षा कहते हैं।

उपनयन संस्कारकालमें उपवीतग्रहणके बाद पहले माताके निकट, "भवति भिक्षां देहि" कह कर भिक्षा ग्रहण करे, पीछे भगिनी आदिसे भिक्षा कर, तब पिता और वहां जितने मनुष्य हों, उन सबोंसे भिक्षा लेनी होती है। भिक्षामें जो कुछ मिलता है, वह सब आचार्यको देना होता है।

व्रतभृत् (सं० त्रि०) व्रतं बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुक् च। व्रतग्रहणकारी, व्रतधारी।

व्रतलुप्त (सं० त्रि०) व्रत या उपवासादि-भ्रष्ट।

व्रतलोपन (सं० क्ली०) व्रतभङ्ग, व्रतको तोड़ना।

व्रतवत् (सं० त्रि०) व्रत अस्त्यर्थे-मतुप्, मस्य व। व्रतविशिष्ट, व्रतधारी।

व्रतवैकल्प (सं० त्रि०) व्रतोद्यापन न होना।

व्रतशय्या गृह (सं० क्ली०) व्रतानुष्ठान-स्थान।

व्रतश्रपण (सं० क्ली०) व्रतके लिये दूधमें आंच देना।

व्रतसंग्रह (सं० पु०) व्रतस्य संग्रहः। दीक्षा जो यज्ञोपवीतके समय गुरुसे ली जाती है।

व्रतस्थ (सं० त्रि०) व्रते तिष्ठतीति स्था-क। १ व्रतस्थित, व्रतधारी। २ ब्रह्मचारी। (मनु ३।२३४)

व्रतस्थित (सं० त्रि०) व्रते स्थितः। जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो, व्रतधारी।

व्रतस्नात (सं० त्रि०) व्रतैः स्नातः। व्रतस्नातक, ब्रह्मचारीभेद। विद्यास्नातक, व्रतस्नातक और विद्याव्रतस्नातक ये तीन प्रकारके ब्रह्मचारी हैं। जो ब्रह्मचारी गुरुके घर विद्या पीछे व्रत समापन कर वेद असमाप्त

रहनेमें समावर्त्तन करते हैं; वही व्रतस्नातक कहलाते हैं। (मनु ४।५१)

व्रतस्नातक (सं० पु०) व्रतस्नात। (पारस्करगृ० २.५)

व्रतस्नान (सं० क्ली०) व्रत समापन पूर्वक समावर्त्तन।

व्रतातिपत्ति (सं० स्त्री०) व्रतभङ्ग, व्याघातके लिये व्रतकी असमाप्ति।

व्रतादेश (सं० पु०) व्रतस्य आदेशः। उपनयन नामक संस्कार, यज्ञोपवीत।

व्रतादेशन (सं० क्ली०) व्रतस्य आदेशनं। वेदोंका वह उपदेश जो उपनयन संस्कारके बाद ब्रह्मचारीको दिया जाता है। (मनु २।१७३)

व्रतिक (सं० त्रि०) व्रतिन्-कन्। व्रतधारी, जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो।

व्रतिन् (सं० पु०) व्रतमस्यास्तीति व्रत इनि। १ मुनि विशेष। २ यजमान। ३ ब्रह्मचारी, यति। (मनु २।१८८) (त्रि०) ४ व्रतविशिष्ट, जिसने किसी प्रकारका व्रत धारण किया हो। (तिथितत्त्व)

व्रतेयु (सं० पु०) रौद्राश्वके एक पुत्रका नाम। (भागवत ६।२०।४)

व्रतेश (सं० पु०) शिव, महादेव।

व्रतोपनयन (सं० क्ली०) व्रतादेश, शिक्षाके लिये उपनयन।

व्रतोपह (सं० क्ली०) सामभेद।

व्रतोपायन (सं० क्ली०) व्रतार्थं प्रवेश। (शतपथब्रा० ४।१।१७।१)

व्रत्य (सं० पु०) १ व्रत कर्मपरायण, वह जिसने कोई व्रत धारण किया हो। २ ब्रह्मचारी। (ऋक् ८।४८।८)

व्रन्दिन् (सं० त्रि०) १ मृदुभावप्राप्त। २ समूहविशिष्ट। 'व्रन्दिनः मृदुभावः प्राप्तान् यद्वा समूहवतः।' (ऋक् १।५४।४ सायण)

व्रयस् (सं० क्ली०) वर्ज्जन। (ऋक् २।२३।१६ सायण)

व्रश्चन (सं० पु०) वृश्चत्यनेनेति व्रश्च करणे ल्युट्। १ सोना, चांदी आदि काटनेकी छेनी। पर्याय—पत्रपरशु, पत्रपर्शु। २ वह बुरादा जो लकड़ी आदि चीरने पर गिरता है। ३ कुठार, कुल्हाड़ी। (क्ली०) व्रश्च ल्युट्। ४ छेदने या काटनेकी क्रिया। (शत०ब्रा० ३।६।४।७)

व्रस्क (सं० त्रि०) कर्त्तक, छेदने या काटनेवाला।

व्रा (सं० स्त्री०) १ रात्रि। २ उषा। (ऋक् १।१२१।२ सायण) ३ समूह, दल। (निरुक्त ५।३)

व्राचड़ (सं० स्त्री०) १ अपभ्रंश भाषाका एक भेद। इसका व्यवहार आठवींसे ग्यारहवीं शताब्दी तक सिंध प्रान्तमें था। २ पैशाचिका भाषाका एक भेद।

व्राज (सं० पु०) १ कुत्ता। २ दल, समूह। (अथर्व० १।१६।१) ३ गमन, गति।

व्राजपति (सं० पु०) दल या समूहका नायक। (ऋक् १०।१७।२)

व्राजबाहु (सं० पु०) मृत्युका हस्तविस्तार। (शाङ्खायनब्रा० २।६)

व्राजि (सं० स्त्री०) व्रजति गच्छतीति व्रज गतौ (वसिवपियजीति। ४।१।२४) इति इञ्। वायु।

व्राजिन् (सं० त्रि०) स्थानस्थायी, जो गमनशील न हो। (शतपथब्रा० ५।५।१।१२)

व्रात (सं० पु०) १ समूह, दल। २ व्याधादि। ३ मनुष्य। (निघण्टु २।३) (क्ली०) ४ शरीरायासजीविकर्म, वह परिश्रम जो जीविकाके लिये किया जाय। (काशिका० ५।२।२१)

व्रातजीवन (सं० पु०) वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपना निर्वाह करता हो।

व्रातपति (सं० त्रि०) १ व्रतपति-सम्बन्धी। (पु०) २ दलपति। (शुक्लयजु० १६।२५)

व्रातसाह (सं० त्रि०) दलपति। (ऋक् ६।७५।६ सायण)

व्रातिक (सं० त्रि०) व्रत-सम्बन्धी। (गोभिल ३।१।१३)

व्रातीन (सं० पु०) शरीरायासेन ये जीवन्ति तेषां कर्म व्रातं तेन जीवतीति व्रात (व्रातेन जीवति। पा ५।२।२१) इति खञ्। सङ्घजीवि। (हेम)

व्रात्य (सं० पु०) व्रातो व्यालादिः स इव (शालादिभ्यो यत्। पा ५।३।१०३) इति यत्। १ व्रतसम्बन्धीय। (पञ्चविंशब्रा० १८।७।१३) २ दशसंस्काररहित। ३ उपनयन संस्काररहित। पर्याय—संस्कारहीन, सावित्रीपतित, वागदुष्ट, पुरुषोत्किक।

ब्राह्मणका १६ वर्षकी उमरमें, क्षत्रियका २२ वर्षमें और वैश्यका २४ वर्षमें उपनयन होना चाहिये।

इस समय यदि उपनयन-संस्कार न हो, तो इन्हें व्रात्य कहते हैं तथा ये आर्यविगर्हित हैं।

एक समय सावित्री-संस्कार या उपनयनहीन द्विज (ब्राह्मणादि तीनों वर्ण) मात्र ही व्रात्य कहलाते थे। किन्तु अथर्ववेदके १५।८।१ और १५।९।१ दोनों मन्त्रसे हम जान सकते हैं, कि व्रात्य देवप्रतिम हैं, यहां तक कि परम पिताके ही अनुकल्प हैं। इन्हींके द्वारा राजन्य और ब्राह्मणगण उत्पन्न हुए थे।

सावित्रीपतित उपनयनादि-संस्कारविहीन व्यक्ति ही व्रात्य कहलाते हैं। व्रात्यको यज्ञादि वेदविहित क्रियामें अधिकार नहीं है—व्रात्य व्यवहारयोग्य भी नहीं हैं। यही एक श्रेणीका शास्त्रसम्मत सिद्धान्त है; किन्तु अथर्ववेदका पन्द्रहवां काण्ड केवल व्रात्यमहिमासे परिपूर्ण है। व्रात्य वैदिक कार्यके अधिकारी हैं, व्रात्य महानुभव हैं, व्रात्य देवप्रिय हैं, व्रात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके पूज्य हैं और तो क्या, व्रात्य स्वयं देवादिदेव है। व्रात्य जहां जाते हैं, विश्वजगत् और विश्वदेव भी वहीं उनका अनुगमन करते हैं। वे जहां रहते हैं, विश्वदेवगण भी उसी स्थानमें रहते हैं। वहांसे उनके चले जाने पर वे भी उनके साथ साथ चले जाते हैं। अतएव वे जब जहां जाते हैं, तब राजाकी तरह वे भी साथ हो लेते हैं।

समूचे पन्द्रहवें काण्डमें केवल इसी प्रकारकी व्रात्य-महिमा देखनेमें आती है। अथर्ववेदका पञ्चदश काण्डोक्त व्रात्य वाच्य विषयमें धर्मसंहितोक्त व्रात्यसे एकदम स्वतन्त्र है। इन सभी व्रात्योंको वैदिक पुरुषसूक्तके पुरुष और पौराणिकोंके वर्णित विराट् पुरुष मानना चाहिये। यहां पर अथर्ववेदके पन्द्रहवें काण्डसे इस विषयके कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं।

"व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत्।
स प्रजापतिं सुवर्णमात्मन्नपश्यत् तत् प्राजनयत्॥
तदेकमभवत्, तल्ललाम अभवत, तन्महदभवत् तज्ज्येष्ठमभवत्
तद्ब्रह्माभवत् तत्तपोऽभवत् तत्सत्यमभवत् तेन प्राजाय।
सोऽवर्धत् स महानभवेत् स महादेवोऽभवत्।
स देवानामीशां पर्यैत् स ईशानोऽभवत्।
स एको व्रात्योऽभवत् स धनुरादत्त तदेवेन्द्रधनुः।

नीलमस्योदरं लोहितं पृष्ठम्।
नीलेनैवाप्रियं भ्रातृव्यं प्रोर्णोति लोहितेन द्विषन्तं
विध्यतीति ब्रह्मवादिनो वदन्ति। (१५।१।१-८)
स उदतिष्ठत् स प्राचीं दिशमनु व्यऽचलत्। १
तं बृहच्च रथन्तरं चादित्याश्च विश्वे च देवा अनुव्यऽचलन्।
बृहते च वै स रथन्तराय चादित्येभ्यश्च विश्वेभ्यश्च
देवेभ्य आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदति। ३
बृहतश्च वै स रथन्तरस्य चादित्यानाञ्च विश्वेषाञ्च
देवानां प्रियं धाम भवति तस्य प्राच्यां दिशि। ४
श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानं वासो
हरोष्णीषं रात्रीकेशा हरितौ प्रवर्त्तौ कल्मलिर्मणिः। ५
तं वै रूपञ्च वै राजं चापश्च वरुणश्च राजानुऽव्यचलन्।१०
वै रूपाय च वै स वै राजाय चाद्भ्यश्च वरुणाय च
राज्ञ आ वृश्चते य एवं विद्वांसं व्रात्यमुपवदन्ति॥ १७

इस पञ्चदश काण्डके प्रथम अनुवाकका सप्तम पर्यायसूक्त पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह व्रात्य पुरुष ही यज्ञ श्रद्धा प्रजापति परमेष्ठी पिता पितामह आदिके लक्ष्मीभूत विषय हैं। यथा—

"तं प्रजापतिश्च परमेष्ठी च पिता च पितामहश्चापश्च
श्रद्धा च वर्षं भूत्वानुव्यऽवर्त्तयन्त।" (१५।७।२)

द्वितीय अनुवाकका अष्टम पर्यायसूक्त पढ़नेसे ऐसी धारणा बलवती हो उठती है, कि व्रात्य पुरुषका ही नामान्तर है। यथा—

"व्रात्यस्य सप्तप्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः।
तस्य व्रात्यस्य योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्द्ध्वोनामायं स अग्निः।
द्वितीयः प्राणः प्रौढ़ो नामासौ स आदित्यः * *
तृतीयः प्राणोऽभ्यूढ़ो नामासौ चन्द्रमाः।
चतुर्थः प्राणोविभुर्नामायं स पवमानः।
पञ्चमः प्राणो योनि र्नाम ता इमा आपः।
षष्ठः प्राणः प्रियोनाम त इमे पशवः।
सप्तमः प्राणो परिमितो नाम ता इमाः प्रजाः।"

व्रात्यके अपान सम्बन्धमें भी इसी प्रकार लिखा है। यथा—

"तस्य व्रात्यस्य योऽस्य प्रथमोऽपानः सा पौर्णमासी"

इसी प्रकार द्वितीय अपान साष्टका, तृतीय अपान

अमावस्या, चतुर्थ अपान श्रद्धा, पञ्चम अपान दीक्षा और षष्ठ अपान यज्ञ है।

पञ्चदश काण्डके द्वितीय अनुवाकके नवम पर्याय सूक्तमें व्रात्यके व्यान सम्बन्धमें लिखा है।

व्रात्यका प्रथम व्यान भूमि, द्वितीय व्यान अन्तरीक्ष, तृतीय व्यान द्यौ, चतुर्थ व्यान नक्षत्र, पञ्चम व्यान ऋतु, षष्ठ व्यान आर्त्तव और सप्तम व्यान संवत्सर है।

इस काण्डके उपसंहारमें अर्थात् द्वितीय अनुवाकके एकादश पर्याय सूक्तमें लिखा है—

"तस्य व्रात्यस्य। यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः।

योऽस्य दक्षिणः कर्णोऽयं सोऽग्निर्योऽस्य सव्यः कर्णोऽयं स पवमानः। अहोरात्रे नासिके दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले संवत्सरः शिरः अह्ना प्रत्यङ् व्रात्यो रात्रा प्राङ् नमो व्रात्याय।"

पञ्चदश काण्डके प्रथम अनुवाक छठे पर्यायसूक्तके प्रथम सूक्तमें लिखा है—"समहिमा स द्रु भूं त्वा पृथिव्या अगच्छत् स समुद्रोऽभवत्॥"

हम ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें और भी देखते हैं—

"एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पुरुषः
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि"
१०।९०।३।

"तस्माद्विराड जायत विराजो अधिपुरुषः
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भुमिमथो पुरः।"
१०।९०।५।

"यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥"
१०।९०।६

"चन्द्रमा मनसो जात श्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत॥
नाभ्या आसीदन्तरीक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकां अकल्पयत्॥"

ऋग्वेदके इस पुरुष महिमाका सूक्त तथा अथर्ववेदकी व्रात्यमहिमाका सूक्त एक प्रकारका है तथा एकभाव-विशिष्ट है।

अथर्ववेदके पञ्चदश काण्ड द्वितीय अनुवाकके प्रथम पर्याय सूक्तमें जिस भावमें व्रात्यमहिमा गाई गई है, उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि प्राचीन वैदिककालमें एक श्रेणीके पुण्यवान् व्रतकर्मशील विद्वान् पुरुष ही किसी कारणवश व्रात्य कहलाते थे। व्रात्य अतिथिरूपमें जिसके घर रहते थे, उसे अशेषपुण्य होता था। यथा—

"तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्धे।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति येऽन्तरीक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्धे।" इत्यादि

इस प्रकार इस सूक्तमें प्रत्येक आतिथ्यप्रदानका फल लिखा गया है। उसे पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि व्रात्य-सम्भवतः साधु परिव्राजक हैं। किन्तु इस व्रात्य-महिमाका उपक्रमोपसंहार पढ़नेसे प्रतीत होता है, कि व्रात्य अनादिकारण पुरुष हैं, यहां जो व्रात्यको गृहमें आतिथ्यदानकी कथा लिखी है उसका तात्पर्य यह है, कि उस परम पुरुषको जो अपने हृदयमें स्थान देते हैं, उन्हें अशेष पुण्य होता है।

एक परम पुरुष ही जो वैदिक युगमें व्रात्य कहलाते थे, प्रश्नोपनिषद्में भी उसका प्रमाण है तथा उन्हें व्रात्य क्यों कहा जाता था उसका भी कारण उक्त ग्रन्थमें दिया गया है। यथा—

"व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वन॥"
(प्रश्नोपनिषत् २।११)

अर्थात् हे परम पुरुष! तुम्हारा जन्म पहले हुआ है, इससे तुम्हारा कोई भी सन्धारक न था, इस कारण तुम व्रात्य हो, किन्तु तुम अत्यन्त पवित्र हो। हे प्राण! तुम ही एकमात्र ऋषि हो, भोजक हो और सबोंके सत्पति हो। मैं तुम्हें आज्य देता हूं, तुम वायुके पिता हो।

प्रश्नोपनिषद्का यह व्रात्य और ऋग्वेदके पुरुषसूक्तका पुरुष तथा अथर्ववेदका व्रात्य ब्रह्मके अनुरूप पदार्थ हैं। (१७।१६ और २४।१८)

इसके सिवा सामवेदीय ताण्ड्य-ब्राह्मणमें हम

व्रात्य शब्दका एक दूसरा वाच्यविषय देखते हैं। उसे पढ़नेसे मालूम होता है, कि देवगण जब स्वर्ग गये, तब उनके सम्प्रदायमें कुछ व्यक्ति उनके साथ न जा कर इस मर्त्यलोकमें ही घूमने लगे। ये ही व्रात्य कहलाये। आखिर ये लोग स्वर्ग जानेकी इच्छासे भ्रमण करते करते पुनः स्वर्गके दरवाजे पर पहुंचे। किन्तु ये लोग वैदिक मन्त्र जानते न थे, इस कारण इनका उद्देश सिद्ध न हुआ। इनकी यह अवस्था देख स्वर्गगामी देवोंने मरुत्को इन्हें वेद पढ़ानेका भार दिया। मरुत्ने इन्हें अनुष्टुप छन्दमें "षोड़श" उपदेश दिये, पीछे ये स्वर्गको चले गये।

फिर कौषीतकी ताण्ड्य महाब्राह्मण भी व्रात्य नामसे अभिहित हुए हैं।

व्रात्यगण अनाहूत युद्धरथ चलानेका कार्य करते थे, धनु और वर्षा वहन करते थे, अपने शिर पर पगड़ी बांधते और लाल पाड़वाला वस्त्र पहनते थे। वे सब वस्त्र हवेकी झकोरसे हिलते थे। उनके नेतृगण कपिलवर्णका परिच्छद और रौप्यनिर्मित कण्ठाभरण व्यवहार करते थे। वे खेती बारी आदि नहीं करते थे। उनके शासनविधिकी भी श्रृङ्खला न थी। उनकी भाषा संस्कृत होने पर भी उच्चारणमें बहुत फर्क था। ताण्ड्य-ब्राह्मणके इन व्रात्यदेवोंका शायद पहले सम्मान होता होगा, पर पीछे वेद न जाननेके कारण वे समाजमें अनादृत हो गये। वस्तुतः प्राचीन आर्यसमाजमें सम्मानहीन ये व्रात्यगण यथार्थमें सावित्रीभ्रष्ट व्रात्य थे वा नहीं, कह नहीं सकते। फलतः हम वाजसनेय-संहितामें भी एक श्रेणीके व्यक्तिका व्रात्य नाम देखते हैं। (शुक्लयजुः ३०।८)

इसके सिवा लाट्यायन-श्रौतसूत्र (८।६।२,७,८) तथा कात्यायन-श्रौतसूत्रमें (२२।४।३) हम व्रात्य शब्दका उल्लेख पाते हैं। असवर्णगण ही श्रौतसूत्रमें व्रात्य कह कर उल्लिखित हुए हैं। किस प्रकार व्रात्य शब्दकी इस तरह अर्थावनति हुई, परब्रह्मका वाचक शब्द किस प्रकार मानव-समाजमें असम्मानित व्यक्तिके अर्थबोधक-रूपमें व्यवहृत हुआ, उसका भी पता लगाना जरूरी है। बौधायन-धर्मसूत्रमें लिखा है, कि ब्राह्मणके औरस और क्षत्रियाके गर्भसे जातसन्तान ब्राह्मण, वैश्याके गर्भसे जातसन्तान अम्बष्ठ, शूद्राके गर्भसे जातसन्तान निषाद वा पारशव हैं। क्षत्रियवैश्यासे जातसन्तान क्षत्रिय; क्षत्रियशूद्रासे जातसन्तान उग्र; वैश्यशूद्रासे जातसन्तान रथकार, शूद्रावैश्यासे मागध; वैश्यक्षत्रियासे आयोगव आदि हुए। ये सब असवर्ण जातसन्तान व्रात्य नामसे प्रसिद्ध हैं। (बौधायनधर्मसूत्र १।९।१६-१७)

मनुसंहितामें एक दूसरा कारण देखनेमें आता है। यथा—

"द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान।
तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्या इति विनिर्दिशत्॥"
(मनु १०।२० अ०)

अर्थात् द्विजातियोंकी सवर्णाभार्यासे उत्पन्न सन्तान सावित्रीभ्रष्ट होनेसे व्रात्य कहलाये। अतएव बौधायन धर्मसूत्रका व्रात्य और मनुसंहिताका व्रात्य सम्पूर्ण विभिन्न है। मनुसंहितामें हम ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके भेदसे तीन प्रकारके व्रात्य देखते हैं, अर्थात् ब्राह्मण व्रात्य, क्षत्रिय व्रात्य और वैश्य व्रात्य। देश-भेदसे ये फिर भिन्न भिन्न नामसे पुकारे जाते हैं। यथा—

"व्रात्यात् तु जायते विप्रात् पापात्मा भूर्जकण्टकः।
आवन्त्यवाटधानौ च पुष्पधः शैख एव च॥
झल्लो मल्लश्च राजन्याद् व्रात्यान्निच्छिविरेव च।
नटश्च करणश्चैव खसो द्रविड़ एव च॥
वैश्यात्तु जायते व्रात्यात् सुधन्वाचार्य एव च।
कारुषश्च विजन्मा च मैत्रः सात्वत एव च॥"
(मनु १०।२-१२३)

अर्थात् ब्राह्मण-व्रात्यसे भूर्जकण्टक, आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैख; क्षत्रिय व्रात्यसे झल्ल, मल्ल, निच्छिवि, नट, करण, खस और द्रविड़ तथा वैश्यव्रात्य-से सुधन्व, आचार्य, कारुष, विजन्मा, मैत्र और सात्वतोंकी उत्पत्ति हुई है।

श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धके प्रथम अध्यायमें भी हम व्रात्यका उल्लेख देखते हैं। यथा—

"सौराष्ट्रावन्त्याभीराश्च शूरा अर्बुदमालवाः।
व्रात्या द्विजा भविष्यन्ति शूद्रप्राया जनाधिप॥ ३६

सिन्धोस्तटं चन्द्रभागां कौन्ती काश्मीरमण्डलं ।
भोक्ष्यन्ति शूद्रा व्रात्याद्या म्लेच्छाश्चाब्रह्मवर्चसः ॥ ३७

श्रीधरस्वामीने इन दो श्लोकोंकी टीकामें लिखा है—"सौराष्ट्रादिदेशवर्त्तिनो द्विजा व्रात्या उपनयनरहिता भविष्यन्ति । अब्रह्मवर्चसः वेदाचारशून्याः ।" श्रीमद्वीर राघवाचार्यने भागवतचन्द्रिका नाम्नी टीकामें लिखा है, 'सौराष्ट्रादिदेशवर्त्तिनो द्विजा व्रात्या उपनयनादि-संस्काररहिता' अतएव शूद्रप्रायाः भविष्यन्ति जनाधिपेति सम्बोधनं । जनाधिपा इति पाठे ते शूद्रप्राया शूद्र-प्रचुरा भविष्यन्तित्यर्थः ।'

श्रीभागवतके सुविख्यात टीकाकार विजयध्वजने लिखा है—'सौराष्ट्राश्च आवन्त्याश्च आभीराश्च शूद्राश्च मालवाश्च व्रात्या संस्कारहीनाः द्विजाः शूद्रप्राया जनाधिपतयो भविष्यन्ति ।'

जो समझते हैं, कि व्रात्यगण शूद्र हैं—श्रीभागवतका यह श्लोक और सुप्रसिद्ध उक्त टीकाकारोंकी टीका पढ़ने होसे उनका भ्रम दूर हो जायेगा ।

व्रात्यप्रायश्चित्त ।

उपनयनादि संस्कार न होनेसे जो व्रात्यता दोष लगता है, प्रायश्चित्त द्वारा उन दोषदुष्ट व्यक्तियोंकी शुद्धिके लिये अनेक विधान शास्त्रमें देखे जाते हैं । यथा-कालमें उपनयन नहीं होनेसे व्रात्यता होती है। इस व्रात्यता दोषको दूर करनेके लिये धर्मसूत्रकार आपस्तम्ब ने जो प्रायश्चित्तकी व्यवस्था दी है, नीचे उसका उल्लेख किया जाता है। आपस्तम्बका कहना है—

१ । अतिक्रान्ते सावित्र्याः कालऋतुं त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत् ।

हरदत्त कृत उज्ज्वला-टीकानुसार इस सूत्रका मर्म यह है, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णोंमें जिसके लिये जो सावित्रीकाल कहा गया उसके बीत जाने पर त्रैविद्यक ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करना होगा। त्रैवि-द्यक शब्दकी व्याख्या इस प्रकार है—'त्रि-अवयवा विद्या त्रिविद्या ; तदधिकारभूत-विषया त्रैविद्या तत्सम्बन्धीयं' ऐसे अर्थसे त्रैविद्यक पद निष्पन्न हुआ है । अग्नि-परिचर्य्या, अध्ययन और गुरुशुश्रूषा ये तीनों विषय त्रैविद्यक ब्रह्मचर्य्य कहलाते हैं ।

२ । अथोपनयनम् ।

इस प्रकार त्रैविद्यक ब्रह्मचर्यानुष्ठानके बाद उपनयन संस्कार होता है।

३ । ततः संवत्सरमुदकोपस्पर्शनम् ।

अर्थात् उपनयनके बादसे यथारीति स्नान करना चाहिये । जो समर्थ हैं, वे त्रिसवर्ण स्नान करें । जो समर्थ नहीं हैं, उनके लिये यथाशक्ति स्नान उचित है।

४ । अथाध्याप्यः ।

अर्थात् इस प्रकारका अनुष्ठानके बाद संस्कृत व्यक्ति अध्यापनीय हैं ।

५ । अथ यस्य पितापितामह इत्यनुपेतौ स्यातां ते ब्रह्महसन् स्तुताः ।

अर्थात् जिसके पिता पितामह अनुपेत हैं, वे ब्रह्म-हसन् कहलाते हैं। "पिता पितामह" इस शब्द द्वारा प्रपि-तामह मातामह आदि तथा इनके भ्राताओंका भी बोध होगा ।

६ । तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत् ।

अर्थात् इनके साथ अभ्यागमन (गतागत व्यवहार), भोजन और विवाहादि व्यापार वर्जनीय है। अभ्या-गमन शब्दके अर्थसे मैत्रचेष्टा आलापादि भी समझा जायेगा ।

७ । तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तम् ।

अर्थात् इच्छाशील व्यक्तिगण ही प्रायश्चित्तके योग्य हैं, किन्तु अश्रद्धा पूर्वक परोपदेशसे बलात्कार करनेमें प्रायश्चित्त नहीं होता ।

८ । यथा प्रथमेतिक्रम ऋतुरेवं संवत्सरः ।

माणवकका उपनयनकाल बीत जाने पर एक ऋतु-काल और उसके पिताके अनुपनीत होनेसे एक वर्ष तक ब्रह्मचर्यका अवलम्बन करना चाहिये ।

९ । अथोपनयनं उदकोपस्पर्शनम् ।

इसके बाद उपनयन संस्कार देना होगा, पीछे उदकोपस्पर्शनकी व्यवस्था है ।

१० । प्रतिपुरुषं संख्याय संवत्सरान् यावन्तोऽनुपेताः स्युः ।

पिताके अनुपेत होनेसे एक वर्ष और पितामहके अनु-पेत रहनेसे दो वर्ष तक ब्रह्मचर्य्यका पालन करना होगा।

यह आपस्तम्बके टीकाकार हरदत्तका मत है। किन्तु पण्डितप्रवर राममिश्र शास्त्रीने लिखा है—"माणवकस्य पितामहमारभ्य स्वपर्यन्तं कालातिक्रमे पूर्णं संवत्सरं यावत् पूर्वोक्तरीत्या उपनयनस्वरूपयोग्य नौपयिकब्रह्मचर्यात्मकप्रायश्चित्तानुष्ठानमित्यर्थः।"

अर्थात् माणवकके पितामहसे ले कर निज पर्यन्त कालातिक्रमसे एक वर्ष तक पूर्वोक्त रीतिके अनुसार उपनयनका उपयोगी ब्रह्मचर्यात्मक प्रायश्चित्त करना कर्त्तव्य है।

उदकोपस्पर्शनके समय वैदिक मन्त्रका व्यवहार होता है। यथा—

(१) "सप्तभिः पावमानीभिः यदन्ति यच्चदूरके।"
(ऋग्वेदीय)

(२) "आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु" इत्यादि
(यजुर्वेदीय)

(३) "कया नश्चित्र आभुवत्" इत्यादि (सामवेदीय)

इस मन्त्रानुसार अपने शिर पर जलसेचन करना होता है।

११। अथ यस्य प्रपितामहादेर्नानुस्मर्यते उपनयनं ते श्मशानसंस्तुता।

जिस माणवकको प्रपितामहसे ले कर ऊर्द्ध्वतन पुरुषोंका उपनयन स्मरणमें नहीं आता अर्थात् प्रपितामहसे कितने पुरुष व्रात्यता दोष हुआ वह ठीक ठीक मालूम नहीं, वैसा माणवक श्मशानसंस्तुत है।

१२। तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति च वर्जयेत् तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविद्यकं चरेदथोपनयमं तत उदकोपस्पर्शनं पावमान्यादिभिः।

इनके साथ मैत्रालाप भोजन विवाहादि वर्जनीय है। ये यदि इच्छापूर्वक प्रायश्चित्त करके पुनः संस्कृत होना चाहें, तो द्वादशवर्षव्यापी त्रैविद्यक ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करें। इसके बाद पावमान्यादि मन्त्रसे उदकोपस्पर्शन करना होगा।

१३। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तम्।

अर्थात् इनमें जिनकी इच्छा हो, वे प्रायश्चित्त कर सकते हैं। यहां पर हरदत्त कहते हैं, कि 'तेषां' शब्दसे माणवक समझा जाता है। किन्तु "व्रात्यसंस्कारमीमांसा" नामक ग्रन्थमें पण्डितप्रवर राममिश्र शास्त्रीने हरदत्तको इस व्याख्याको युक्तितर्क पूर्ण विचारोंसे खण्डन किया है। उनका कहना है, कि यह प्रायश्चित्त पिता पितामह आदिके लिये ही कहागया है। आपस्तम्बसूत्रके उपक्रमोपसंहार समन्वय विचारमें यहां 'तेषां' शब्दका वाच्य माणवक है, यही हरदत्तका मत है। वे कहते हैं, कि इससे व्रात्यके अनुपवीत पिता पितामह आदिका प्रायश्चित्त व्यवस्थित नहीं हुआ है। किन्तु राममिश्र-शास्त्री महाशयने अति सूक्ष्म विचारसे इसको खंडन कर ताण्ड्य-महाब्राह्मणसे एक प्रमाण दिखलाते हुए अपने सिद्धान्तको मजबूत किया है। उनका कहना है, कि माणवकके अनुपवीत पितृपितामहादिको भी जो प्रायश्चित्तकी व्यवस्था है वह ताण्ड्यब्राह्मणमें भी दिखाई देती है—

अनुमोदितश्चायमर्थस्ताण्ड्य ब्राह्मणे सप्तदशाध्याये चतुर्थ खण्डे प्रथम ब्राह्मणे तद्यथा—"अथैष शमनीचामेढ्राणां स्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्तो व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन्।"

इसकी व्याख्या इस प्रकार है—"शमेन मनोनिग्रहेण मनोनिग्रहंश्चतुर्थ-वयसि प्रायः सम्भवात् यौवनावसानेन नीचं अनुद्धतं पुंव्यापारासमर्थं आसमन्तात् मेढ्रमुपस्थेन्द्रियं येषां ते ऽनेन व्रात्यस्तोमेन यजेरन्नित्युक्त्या वृद्धानमपि संस्कार्य्यत्वं सुव्यक्तम्।"

इसका मर्म इस प्रकार है—स्वभावतः ही इन्द्रिय व्यापारमें मनोनिग्रह होता है। यौवनके अवसान पर पुंव्यापारासमर्थ वृद्ध व्रात्योंको भी व्रात्यस्तोम यज्ञ द्वारा संस्कार करना उचित है। इससे वृद्ध व्रात्यगणका भी संस्कार कहा गया है।

महर्षि कात्यायनके सिद्धान्त द्वारा भी हरदत्तका अभिमत खण्डित होता है। इस सम्बन्धमें भी उन्होंने काण्डत्रयात्मक ग्रंथके द्वितीय काण्डमें लिखा है—

१। "त्रिपुरुषं पतित सावित्रीकाणां अपत्ये संस्कारो नाध्यापनञ्च।"

अर्थात् तीन पीढ़ी तक पतितसावित्रीक व्यक्तियोंके लिये अपत्य संबंधमें संस्कार या अध्यापना नहीं है।

२। "तेषां संस्कारेप्सु व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन् व्यवहार्या भवन्ति।"

इनके मध्य संस्काराभिलाषी प्राचीन व्रात्यगण व्रात्यस्तोम द्वारा व्यवहार्य होते हैं।

द्वादश वर्ष पर्यन्त त्रैविद्यक-ब्रह्मचर्यानुष्ठानके बाद उपनयनकी व्यवस्था है। उपनयन होने पर पावमान्यादि मन्त्र द्वारा उदकोपस्पर्शका विधान है। इन सब कार्यों द्वारा षाट्‌कौशिक देहारम्भक अवयव संस्कृत होते हैं। उदकस्पर्शके बाद आपस्तम्बने गृहमेधानुष्ठानका उपदेश दिया है। यथा—"अथ गृहमेधोपदेशनम्"

अर्थात् गृह्यकर्मके उपयोगी वेदका एकदेशमात्र अध्ययन करना होगा, किंतु निज शाखांतर्गत सरहस्य वेदका समूचा अंश पढ़नेका अधिकार उस समय भी नहीं है। क्योंकि, उसके बादके सूत्रमें ही लिखा है—"नाध्यापनम्"

अर्थात् निज शाखांतर्गत समग्र वेद अध्यापनीय नहीं है।

हरदत्तने कहा है—"नाध्यापनं कृत्स्नवेदस्य किंतु गृह्यमंत्राणामेव" अर्थात् समस्त वेद पढ़नेका अधिकार नहीं होने पर भी गृह्यमंत्र पढ़नेका अधिकार होगा।

इस प्रकार संस्कृत हो गृहस्थ होनेसे उनका व्रात्य दोष खण्डित होता है। इसके बाद ऐसे वंशमें फिर कोई व्रात्य होनेसे उसका संस्कार प्रथमातिक्रम जैसा होगा। अर्थात् ऋतुकाल ब्रह्मचर्यावलम्बनमें ही उसका प्रायश्चित होगा। यथा आपस्तम्बमें लिखा है—

"ततो यो निवर्त्तते तस्य संस्कारो प्रथमातिक्रमैः"

अर्थात् उक्त प्रकारसे प्रायश्चित्त करनेके बाद यदि गृहस्थ हो, तो उस वंशका व्रात्यदोष जाता रहता है। ऐसे वंशके किसी व्यक्तिका उपनयनकाल बीत जाने पर दो मास ब्रह्मचर्यका अनुष्ठान करनेसे ही फिर संस्कार प्राप्तिका अधिकार होता है। ऐसे उपनीत व्यक्तिसे जिस माणवकका जन्म होता है वही यथार्थमें उपनीत होता है अर्थात् उसे फिर कोई प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। इसी कारण आपस्तम्बने लिखा है—

"तत ऊर्द्ध्वं प्रकृतिवत्"

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंका उपनयनका जो काल निर्दिष्ट है, उसी कालमें प्रागुक्त उपनीत व्यक्तिके लड़केका उपनयन होगा।

आपस्तम्ब धर्मसूत्रानुसार कई पीढ़ी तक पतित सावित्रीक व्यक्तियोंका भी इसी प्रकार प्रायश्चित्त द्वारा पुनः संस्कार होगा। इस तरह प्रायश्चित्त द्वारा व्रात्यों-को त्रैवर्णिकोचित कार्य करनेमें अधिकार होता है। "तत ऊर्द्ध्वं प्रकृतिवत्" सूत्रकी व्याख्या हरदत्तकी उज्ज्वलटीकामें यों लिखी है—

"ततस्तु यो निवर्त्तते तस्य प्रकृतिवत् यथाप्राप्तमुप-नयनं कर्त्तव्यम्" इस वचन पर प्रतिवादयोग्य कोई आपत्ति उठ नहीं सकती। किन्तु पीछे उन्होंने लिखा है—

"यस्य तु प्रपितामहस्य पितुरारभ्य नानुस्मर्यते उपनयनं तस्य प्रायश्चित्तं नोक्तम्। धर्मज्ञैस्तूहि-तव्यम्।"

अर्थात् जिसके प्रपितामहके पितासे आरम्भ करके उपनयनसंस्कार नहीं हुआ है, उसका प्रायश्चित्त नहीं है। हरदत्त महाशयकी टीका जो समीचीन नहीं है, राममिश्र शास्त्री महाशयने अपने ग्रंथमें उसका यथेष्ट खण्डन किया है। उन्होंने ताण्ड्यब्राह्मण और कात्या-यनसूत्र उद्धृत कर इस सम्बन्धमें सुसिद्धांतपूर्ण विचार कर दिखलाया है, कि कई पीढ़ी तक पतित सावित्रीक व्यक्तिगण भी आपस्तम्बके धर्मसूत्रानुसार प्रायश्चित्त करके त्रैवर्णिकोचित कार्य करनेके अधिकारी होते हैं। यथा—

"ब्राह्मणक्षत्रियविशां य औपनायनिको मुख्यः प्राति-ष्ठिकः कालस्तस्मिन्नेव ते उपनेतव्यास्तेषां पूर्वपुरुषीय व्रात्यता प्रयुक्ता न कश्चिदधमो भावो, न चाप्यनुष्ठेयं किञ्चिदधिकमिति भावः। साधु तद्‌बहुपुरुषपतितसा-वित्रीकानामप्यापस्तम्बाद्युक्तैर्नोऽपनोदकदीर्घ-प्रायश्चि-त्तानुष्ठाने त्रैवर्णिकोचितकार्यकरणेऽधिकार इति सम-र्थितम्।"

पण्डितप्रवर राममिश्र शास्त्री महोदयने कात्यायन-सूत्रका वचन उद्धृत करके भी अपने मतका समर्थन किया है।

"आषोड़शाद्‌ब्राह्मणस्यानीतः कालो भवत्याद्वाविं-शाद्राजन्यस्याचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अत ऊर्द्ध्वं पतित सावित्रीका भवन्ति नानुपनयेयु र्नाध्यापयेयु र्नायाजयेयुः कालातिक्रमे नियतवत् त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकानाम-

पत्ये संस्कारो नाध्यापनं च तेषां संस्कारेप्सु व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काममधीयीरन् व्यवहार्या भवन्तीति श्रुतेः।"

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके उपनयनका मुख्य काल निर्देश करके पीछे आषोड़शादि द्वारा गौण कालका उल्लेख किया गया है। गौण कालका लङ्घन करने पर भी जो पातित्य होता है, वह कहा गया। ऐसी हालतमें उपनयन, अध्यापन और यजनादि व्यवहार तक निषिद्ध है।

इसके बाद सूत्रकारने कहा है,—"कालातिक्रमे नियतवत्"

उक्त सूत्रकी व्याख्यामें महामोहापाध्याय राममिश्र शास्त्रीने निम्नोक्त प्रकारसे अपना अभिमत व्यक्त कर लिखा है—"कालातिपाते यथा श्रौतेषु स्मार्त्तेषु च कर्मसु प्रायश्चित्त मनुष्ठाय प्रकृतिकर्मानुष्ठानं नियतं, न तु सर्वथा कर्मलोपः। काललोपमपेक्ष्य कर्मलोपस्यातिजघन्यत्वात् तथैवात्रापि प्रायश्चित्तमनुष्ठाय भवत्युपनयनार्हता।"

अर्थात् श्रौत और स्मार्त्त क्रियादि सम्बन्धमें समय बीत जाने पर जिस प्रकार श्रौत और स्मार्त्त कर्मोंमें प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करके पीछे प्रकृत कर्मानुष्ठान करना ही नियमसिद्ध है, किन्तु उस प्रकारका लोप करना किसी हालतसे उचित नहीं, क्योंकि काललोपकी अपेक्षा कर्मलोप अति जघन्य है। यहां पर भी उसी प्रकार काललोपके कारण व्रात्यदोष होनेसे उसके लिये प्रायश्चित्त करके फिरसे उपनयनार्हता उत्पन्न होती है, उसके बाद वैदिक कार्योंका अधिकार प्रदान करना ही शास्त्रीय विधि है। कात्यायनसूत्रका यही अभिप्राय है। आपस्तम्ब और कात्यायन इन दोनोंने ही बहुपुरुषपतित सावित्रीक व्यक्तियोंके प्रायश्चित्तके बाद उपनयनसंस्कारका अभिमत प्रदान किया है।

'पराशरमाधव' नामक माधवाचार्य रचित पराशरस्मृतिकी व्याख्यामें सब प्रकारका व्रात्यप्रायश्चित्त वर्णित है। उसे यहां पर विस्तृत भावमें उद्धृत करना आवश्यक है।

पराशरमाधवीय प्रायश्चित्त-काण्डोक्त व्रात्य-प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

"यस्य पित्रादयोऽप्यनुपनीताः तस्य आपस्तम्बोक्त द्रष्टव्यं।

यस्य पिता पितामह इत्युनुपनीतौ स्यातां ते ब्रह्मघ्नसंस्तुताः तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति वर्जयेत्। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं, यथा प्रथमे अतिक्रमे ऋतुः एवं सम्वत्सरः। अथ उपनयनं। ततः संवत्सरं उदकोपस्पर्शं प्रति-पुरुषं संख्याय संवत्सरान् यावन्तोऽनुपनीताः स्युः। सप्तभिः पावमानीभिः यदन्ति यच्च दूरक इत्येताभिः यजुःपवित्रेण आङ्गिरसेन इति अथवा व्याहृतिभिरेव। अथाध्याप्यः। यस्य प्रपितामहादे नं अनुस्मर्यते उपनयनं ते श्मशान-संस्तुताः। तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति वर्जयेत्। तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तं द्वादशवर्षाणि त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत्, अथ उपनयनं। ततः उदकोपस्पर्शनम्।"

पराशर-माधवीय प्रायश्चित्त-काण्डमें भी मनुके व्यवस्थित लिच्छवि और वशिष्ठके व्यवस्थापित उद्दालक व्रताचरणका विधान इसके पहले लिखा जा चुका है।

सामवेदीय ताण्ड्यब्राह्मणमें व्रात्य-प्रायश्चित्तका जो विधान देखनेमें आता है वह व्रात्यस्तोमके नामसे प्रसिद्ध है। व्रात्यस्तोमके अनेक भेद हैं। यहां सिर्फ "हीनव्रात्य" और "गरगिर" व्रात्यस्तोमकी बातें लिखी जाती हैं। महामहोपाध्याय राममिश्रने अपने व्रात्यसंस्कार-मीमांसा ग्रन्थके १०५ से कई पृष्ठोंमें इस विषयकी आलोचना की है। हम उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत करते हैं—

'किञ्च वृद्धव्रात्यानामपि संस्कारो भवति वेदानुमतो यथा ताण्ड्य-ब्राह्मण सप्तदश अध्याये चतुर्थखण्डे "अथैष शमनीचामेढ्राणां स्तोमो ये ज्येष्ठाः सन्त व्रात्यां प्रवसेयुस्त एतेन यजेरन्" तदर्थश्च—अथ पूर्वोक्त कनीयसां व्रात्यानां संस्कारविधानान्तरम् एष वक्ष्यमाणो यज्ञः शमनीचामेढ्राणाम्—शमेन यौवनोपरमेण नीचमनुद्धतं मेढ्रेन्द्रियं येषां ते तथाविधाः स्थाविर्याद्विनष्टवीर्या इत्यर्थः तेषां स्तोमस्तैरनुष्ठेय इत्यर्थः। तस्माद् ये ज्येष्ठा वृद्धतमा सन्तोऽपि व्रात्यास्तेषामपि व्रात्यस्तोमाधिकारित्वं सिध्यति, ततश्च व्रात्यस्तोमानुष्ठानेन

उपनयनाध्ययनाधिकारिता सिद्धिरिति न पाणिपिहितम्। न च संस्कारोत्तरं केनापि कारणेन पतितानां वृद्धव्रात्यानां संस्कार्यत्वं ततः सिध्यति पुनरोवालमसंस्कृतानां जातापत्यानां संस्कार्यताऽपि ततः सेद्धुमर्हति। तस्मात् पूर्वोक्तश्रुतिन त्वदभिमतार्थसाधिकेति वाच्यम्।'

फिर ताण्ड्यमहाब्राह्मणके सत्तरहवें अध्यायमें—"हीना वा एते हीयन्त ये व्रात्यां प्रसवन्ति नहि ब्रह्मचर्यं चरन्ति। न कृषिं न वणिज्यां षोड़श वा एतत् स्तोमः समाप्तुमर्हति। इत्युक्तया जातापत्यानामपि वृद्धव्रात्यानां संस्कार्यतयास्ततः सिद्धेः।"

इससे स्पष्ट प्रतिपन्न होता है, कि वृद्ध व्रात्योंको भी संस्कार करनेका विधान है। "अथैष शमनीचामेढ्राणाम्" इत्यादि श्रुतिवाक्यकी व्याख्या इसके पहले लिखी जा चुकी है। अभी हीन व्रात्योंकी बात लिखी जाती है। व्रात्य साधारणतः चार प्रकारका है—निन्दित, कनिष्ठ, ज्येष्ठ और हीन। सभी व्रात्य संस्कारार्ह है।

निन्दित व्रात्य—जो अनध्याप्य, अनध्यापक, भृतकाध्यापक, अयाज्ययाजक हैं, वे ही निन्दित व्रात्य हैं।

कनिष्ठ व्रात्य—जिनके मातापिता संस्कृत हैं किन्तु स्वयं सावित्रीपतित हैं, वे ही कनिष्ठ व्रात्य है।

वृद्ध वा ज्येष्ठ व्रात्य—जिनका यथाकालमें उपनयन नहीं होता और इसी अवस्थामें वे बूढ़े हो गये हैं, वे ही वृद्ध व्रात्य हैं।

हीन व्रात्य—जिनके मातापिताका संस्कार नहीं हुआ, स्वयं भी अनुपेत हैं, इसी अवस्थामें जिनका विवाह सन्तानोत्पादनादि हुए हैं, वे ही हीन व्रात्य हैं।

उक्त ताण्ड्यश्रुतिका मर्मानुवाद यह है, कि हीन व्रात्योंका ब्रह्मचर्याभ्यास नहीं है, ये लोग कृषिवाणिज्य आदि कोई आश्रमाचार भी नहीं करते।

इन चार प्रकारके व्रात्योंकी जो बात कही गई, ताण्ड्य-महाब्राह्मणकी उक्तिके अनुसार ये सभी व्रात्यस्तोम-प्रायश्चित्तार्ह हैं। उस प्रायश्चित्तके बाद इन्हें ब्रह्मचर्याश्रमादिमें प्रवेश करनेका अधिकार होता है। इन सबोंके लिये ही 'चतुःषोड़शी' प्रायश्चित्त व्यवस्थित हुआ है।

उक्त ताण्ड्य ब्राह्मणके सत्तरहवें अध्यायमें और भी लिखा है—"गरगिरो वा एते ये ब्रह्माद्यजन्यमन्नमदन्त्यदुरुक्त वाक्यं दुरुक्तमाहुरदण्ड्यं दण्डेन घ्नन्तश्चरन्त्य दीक्षितादीक्षितवाचं वदन्ति षोड़शधा एतेषां स्तामः पापमानं निर्हन्तुमर्हति यदेते चत्वारः षोड़शा भवन्ति तेन पाप्मनोऽधि निर्मुच्यन्ते।"

विषभक्षणकारी "गरगिरः" कहलाते हैं। विषभक्षण करनेसे जिस प्रकार मोहाक्रान्त होता है, पापनिषेवण द्वारा भी मनुष्य उसी प्रकार मोहाक्रान्त हो कर्त्तव्याकर्त्तव्य ज्ञानसे परिभ्रष्ट होते हैं। अतएव पापाचारी व्यक्ति भी 'गरगिर' कहलाते हैं। ये गरगिर व्रात्यगण असंस्कृत अनुपेत ब्राह्मण हो कर भी वेदपारग ब्राह्मणादिके अदनीय अन्न भक्षण करते हैं।

व्रात्यस्तोमकारीको निम्नोक्त द्रव्यसे प्रायश्चित्त करना होगा; यथा—

"उष्णीषश्च प्रतोदश्च ज्याहृलोड़श्च विपथश्च फलकास्तीर्णः कृष्णशं वासः कृष्णवलक्षे अजीने रजतो निष्कस्तद् गृहपतेः"। (ताण्ड्यब्राह्मण १७।१।१४) "वलूकान्तानि दामतूषाणीतरेषां द्वे द्वे दामनी द्वे द्वे उपानहौ द्विषं हितानि अजिनानि।" (१७।७।१५) 'तद् गृहपतेरित्येतत् सर्वं गृहपतिराहरेत् त्रयस्त्रिंशतश्च।'

अर्थात् उष्णीष, प्रतोद, वाणहीन क्षुद्रधनु, फलकास्तीर्ण रथ, विपथ, कृष्णवर्ण दशाविशिष्ट वस्त्र, दो कृष्ण शुक्लवर्ण अजीन, रौप्यतूषा, लाल पाड़वाला कपड़ा और एक जोड़ जूता।

लाट्यायनसूत्रमें लिखा है—"व्रात्येभ्यो व्रात्यधनानि ये व्रात्यचर्याया अविरताः स्युः ब्रह्मबन्धवे वा मगधदेशीयाय यस्मा एतद्ददति तस्मिन्नेव मृजाना यन्तीति ह्याह।" (लाट्या० श्रौतसू० ८।५)

अर्थात् व्रात्यस्तोम यज्ञ होनेके बाद ये सब द्रव्य और धनादि व्रात्य अथवा मगधदेशीय हीन ब्राह्मण या ब्रह्मबन्धुओंको दान करने होंगे।

अभी प्रश्न हो सकता है, कि अनुपनीत अथच विवाहित वृद्ध वात्योंका कुछ प्रायश्चित्त होना प्रयोजनीय है। इनके मातापिताका असंस्कार एक पाप, स्वयं असंस्कृत द्वितीय पाप, ब्रह्मचर्यभ्रंशनिमित्त तृतीय पाप, ब्रह्म-

चर्याश्रम और गृहस्थाश्रमका विपर्याय निमित्त चतुर्थ पाप और अनुपनीत विवाहादि कर्म करके पुत्रादि उत्पादन पञ्चम पाप है। प्रत्येक पापके लिये पृथक् पृथक् प्राय श्चित्त करना आवश्यक है वा नहीं? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा, कि गुरुलघुपातकमें गुरुपातकके प्रायश्चित्त द्वारा ही लघुपातककी निवृत्ति हुआ करती है। अतएव व्रात्यस्तोम प्रायश्चित्त द्वारा ही सभी प्रकारके पापोंकी निवृत्ति होती है।

मत्स्यसूक्तमें भी प्रायश्चित्तका विषय लिखा है। व्रात्यस्तोम द्वारा उसकी विशुद्धि होती है। यज्ञ करनेमें अशक्त होने पर औद्दालिकव्रतका आचरण करे। इसमें दो मास तक जौ खा कर, एक मास दूध पी कर, एक पक्ष दही, ७ दिन घी, अयाचित भावमें ८ दिन, तीन दिन केवल जल पी कर और एक अहोरात्र उपवास करके रहना पड़ता है। इसके बाद उसका संस्कार कार्य किया जाता है। प्रायश्चित्त इस प्रकार है—

शिखाके साथ केश वपन कार्य करके अर्थात् समूचा शिर मुड़वा कर समाहित चित्तसे व्रतानुष्ठान करे। ५ या ७ ब्राह्मणको हविष्यान्न भोजन कराना होगा तथा स्वयं २१ दिन प्रसृति परिमाणमें (पसर भर) जौ खा कर रहे। इस प्रकार जौ द्वारा विशुद्ध होने पर उसका उपनयन संस्कार होगा। ऐसा व्रत करनेमें जो अशक्त हैं, वे तीन तीन चान्द्रायणानुष्ठान करके उपनयन संस्कार ग्रहण कर सकते हैं।

सुप्रसिद्ध स्वामी राममिश्र शास्त्री महाशयने इस सम्बन्धमें जो व्यवस्था की है, वह इस प्रकार है—

द्वादश वर्ष ब्रह्मचर्य महाव्रत जो नहीं कर सकते हैं, उन्हें उसके प्रत्याम्नायस्वरूप ३६० गोप्रदान करना होगा। गोका निष्क्रयमान रजतमान, ताम्रमान, कपर्दिकामान भेदसे तीन प्रकारका होगा। जिसकी जैसी शक्ति है उसे उसीके अनुसार करना होगा। धनि, धीर, दरिद्र, अति दरिद्र भेदसे प्रायश्चित्तका अधिक और सङ्कोच करना होगा। अर्थात् धनीके लिये गोका मूल्य, मूल्यके बदलेमें ३६० रु०, दरिद्रके लिये ३६० पैसे और अति दरिद्रके लिये ३६० कौड़ी देने होसे काम चलेगा।

देशकालादि विपर्ययमें जिसकी सावित्री पतित होती है, वे एक चान्द्रायण करके उपनीत हो सकते हैं।

व्रात्य और वृषलत्व एक नहीं है। अभी बहुतोंकी धारणा है, कि जो व्रात्यताप्राप्त हैं वे ही वृषल हैं, अतएव उसका पातित्य अवश्यम्भावी है तथा वे प्रायश्चित्तके योग्य नहीं हैं। सच पूछिये तो यह बात ठीक नहीं, थोड़ा विचार कर देखनेसे ही इस विषम सङ्कटका एक विशद तात्पर्यार्थ लाभ होगा। मनुके मतसे पतित सावित्रीक व्रात्य-प्रायश्चित्तके योग्य हैं, किन्तु सर्व क्रिया-लोपी वृषलका कोई प्रायश्चित्त है ही नहीं।

"शनैकस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥" (मनु १०।४३)

कुल्लूकमें भी लिखा है, कि उपनयनादि सब प्रकारके क्रियालोपके कारण क्षत्रियादिका तथा याजनाध्यापनादि नहीं करनेसे ब्राह्मण धीरे धीरे शूद्रत्वको प्राप्त होते हैं।

ऊपरकी टीकासे स्पष्ट जाना जाता है, कि एकमात्र उपनयनसंस्काररहित होनेसे ही जातिभ्रंश नहीं होता। पुत्रपौत्रादि क्रमसे इस प्रकार यदि सभी क्रियाओं और संस्कारोंका लोप हो, तो वे वृषल कहलाते हैं। ब्राह्मणके लिये याजनाध्यापन, वेदविहित कर्मातिक्रम, शास्त्रार्थमें संशय और प्रायश्चित्तमें अनास्था ही वृषलत्व है।

व्रात्यता (सं० स्त्री०) व्रात्यस्य भावः धर्मो वा, तल्-टाप्। व्रात्यका भाव या धर्म, व्रात्यत्व।

व्रात्यत्व (सं० क्ली०) व्रात्यका भाव या धर्म, व्रात्यता।

व्रात्यब्रुव (सं० पु०) वह जो अपनेको व्रात्य कह कर घोषित करता हो। (अथर्व १५।१३।६)

व्रात्ययाजक (सं० पु०) व्रात्यका यजनकारी, वह जो व्रात्योंका यज्ञ करता हो।

व्रात्यस्तोम (सं० पु०) व्रात्ययोग्यः स्तोमः। यज्ञभेद। कात्यायनश्रौतसूत्रमें इसके चार भेद देखे जाते हैं, यथाक्रम उनका विवरण नीचे दिया जाता है,—

साधारणतः त्रिपुरुष पतितसावित्रिकोंको व्रात्य कहते हैं। इनके प्रायश्चित्तके लिये लौकिकाग्नि ही ग्रहणीय है। इसमें आधानाग्निकी कोई जरूरत नहीं होती, क्योंकि यह तदङ्गीभूत क्रिया नहीं है।

"व्रात्यस्तोमश्चत्वारः"

'व्रात्यस्तोमसंज्ञकाश्चत्वारः क्रतवो भवन्ति व्रात्याः प्रसिद्धा एव त्रिपुरुषं पतितसावित्रीकाः। प्रायश्चित्तार्थत्वाच्च लौकिकेऽग्नौ भवन्ति नाह्यतैराधानं प्रयुज्यते अतदङ्गत्वात्। (कात्या० श्रौतसूत्रभाष्य)

"द्वितीयः उकथः"

"व्रात्यगणस्य ये सम्पादयेयुस्ते प्रथमेन यजेरन्" सू०

ये व्रात्या नृत्यगीतवाद्यशस्त्रधारणादौ स्वयं प्रवीणाः सन्तउपदेष्टारो भूत्वा स्वां विद्यां व्रात्यसमूहस्य सम्पादयेयुः शिक्षेयुः पाठयेयुः ते प्रथमेन यजेरन्'

द्वितीय उकथ—

जो सब व्रात्य नृत्य, गीत, वाद्य और शास्त्रधारण आदि कार्यों में सम्यक् पाण्डित्य लाभ कर अपनी अपनी विद्या दूसरे व्रात्योंको सिखाते हैं, वे प्रथम प्रकार यज्ञ सम्पन्न करें।

"द्वितोयेन निन्दिता नृशंसाः"

'ये नृशंसा निन्दिता नृभिर्मनुष्यैरभिशंसनेन पापाध्यारोपणेन निन्दिताः गर्हिताः ज्ञातिभिर्बहिष्कृताः ते द्वितीयेन यजेरन्। (कर्क०)

जो सब नृशंस व्यक्ति मनुष्यके निकट पापी होनेसे निन्दित तथा स्वजातिसे च्युत हैं, उन्हें प्रायश्चित्तके लिये द्वितीय प्रकारका यज्ञ करना चाहिये।

"तृतीयेन कनिष्ठाः" 'कनिष्ठाः लघवः'.

"ज्येष्ठाश्चतुर्थेन"

'ज्येष्ठशब्दार्थमाह—अपेत प्रजननाः स्थविरास्तदाह्यास्तेषां यो नृशंसतमः स्याद्द्रव्यवत्तमो वानूचानतमो वातस्य गार्हपत्ये दीक्षेरन्।'

कनिष्ठ अर्थात् जो नितान्त लघु हैं, उन्हें तृतीय प्रकारका यज्ञ करना कर्त्तव्य है।

ज्येष्ठ अर्थात् जवानी जाने पर वीर्यहीनताप्रयुक्त प्रजनना समर्थ वृद्धोंमें जो अत्यन्त क्रूरकर्मा हैं तथा जो द्रव्यवत्तम अर्थात् द्रव्य संग्रह करनेमें समर्थ हैं अथवा जो अनुचानतम अर्थात् शिक्षादि षडङ्गवेदाध्ययनमें पारदर्शी हैं, उनके लिये गार्हपत्य (गृहपति वा गृहस्थ कर्त्तृक यावज्जीवनस्थायी संस्कृत) अग्निमें चतुर्थ प्रकारका यज्ञानुष्ठान विधेय है।

व्राधनतम (सं० त्रि०) प्रवृद्धतम। (ऋक् १।१५०।३)

व्रिश् (सं० स्त्री०) १ अंगुलीसमूह। (निघण्टु २।१) २ परस्परविश्लिष्ट।

व्रीड़ (सं० पु०) व्रीड़ भावे घञ्। लज्जा, शरम।

व्रीड़न (सं० क्ली०) व्रीड़-ल्युट्। लज्जा, शरम।

व्रीड़ा (सं० स्त्री०) व्रीड (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०२) इति अ-टाप्। लज्जा, शरम।

व्रीहि (सं० पु०) वर्हति वृद्धिं गच्छतीति वृह-वृद्धौ (इगुपधात् कित्। उण् ४।११९) इति इन् पृषोदरादित्वात् साधुः। धान्य मात्र। धानका साधारण नाम व्रीहि है।

वर्षाकालमें जो धान होता है, उसका नाम व्रीहि है। यह धान्य चिरपाकी है अर्थात् देरीसे पकता है। यह कृष्णव्रीहि, पाटल, कुक्कुटाण्डक, शाखामुख और जतुमुखके भेदसे नाना प्रकारका होता है। जिस धानकी भूसी और चावल काला होता है,उसे कृष्णव्रीहि, जिसका वर्ण पाटल पुष्प जैसा होता है, उसे पाटल और जिसकी आकृति मुर्गेके अंडे-सी होती है, उसे कुक्कुटाण्डक और जिसका मुख लाहके जैसा लाल होता है, उसे जतुमुख व्रीहि कहते हैं। गुण—मधुर, विपाक, शीतवीर्य, ईषत् अभिष्यन्दी, मलरोधक तथा साठी धानके गुण सदृश होता है। इन सब धान्योंमें कृष्णव्रीहि सबसे गुणयुक्त होता है। (भावप्र०)

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि शरत्कालमें जो धान पकता है, उसे व्रीहि कहते हैं। पक्व व्रीहि धान्य द्वारा यज्ञ करना होता है। धान्य पकने पर उससे पहले नवान्न श्राद्ध करके ब्राह्मण और बन्धुबांधवोंको भोज देनेके बाद स्वयं भोजन करना होता है। व्रीहि धान्यका अभाव होनेसे शालि धान्य द्वारा वे सब श्राद्ध कर सकते हैं। विशेष विवरण धान शब्दमें देखो।

व्रीहिक (सं० त्रि०) व्रीहिरस्यास्तीति व्रीहि (व्रीह्यादिभ्यश्च। पा ५।२।११६) इति ठन्। धान्यविशिष्ट।

व्रीहिकाञ्चन (सं० पु०) व्रीहिः काञ्चनमिव अभिधानात् पुंस्त्वम्। मसूर।

व्रीहितुण्डिका (सं० स्त्री०) देवधान्य। (वैद्यकनि०)

व्रीहिद्रोण (सं० पु०) गुल्मभेद।

व्रीहिद्रौणिक (सं० त्रि०) १ व्रीहिद्रोणसम्बन्धी। २ व्रीहिद्रोण-व्यवसायी।

व्रीहिन् (सं० त्रि०) व्रीहिरस्यास्तीति व्रीहि (व्रीह्यादिभ्यश्च। पा ५।२।११६) इति इनि। व्रीहियुक्त क्षेत्रादि।

व्रीहिपर्णिका (सं० स्त्री०) व्रीहेः पर्णमिव पर्णमस्याः ङीष्। शालपर्णी। (राजनि०)

व्रीहिपर्णी (सं० स्त्री०) व्रीहिपर्णिका देखो।

व्रीहिभेद (सं० पु०) व्रीहिर्भेदः। धान्यविशेष, चेना धान।

व्रीहिमत् (सं० त्रि०) व्रीहि अस्त्यर्थे मतुप्। व्रीहि विशिष्ट।

व्रीहिमत (सं० पु०) अनियतवृत्तिजीवी सम्प्रदायविशेष। (पा ५।३।११३)

व्रीहिमय (सं० पु०) व्रीहेः पुरोडाशः व्रीहिः (व्रहेः पुरोडाशे। पा ४।३।१४८) इति मयट्। १ व्रीहिनिर्मित पुरोडाश, चावलका पीठा। (त्रि०) २ व्रीह्यात्मक, व्रीहिस्वरूप।

व्रीहिमुख (सं० क्ली०) व्रीहिमुखमिव मुखं यस्य। सुश्रुतके अनुसार प्राचीन कालका एक प्रकारका शस्त्र। इसका व्यवहार शस्त्रचिकित्सामें होता था।

व्रीहिराजक (सं० पु०) व्रीहीणां राजा टच् समासान्तः, ततः कन्। कङ्गुधान्य, चेना धान। (मेदिनी)

व्रीहिराजिक (सं० पु०) कङ्गुधान्य, चेना धान।

व्रीहिल (सं० त्रि०) व्रीहि-इलच् मत्वर्थे। व्रीहिविशिष्ट। (पा ५।२।११७)

व्रीहिवेला (सं० स्त्री०) शरत्काल। (लाट्या० ८।३।७)

व्रीहिश्रेष्ठ (सं० पु०) व्रीहिषु श्रेष्ठं। शालिधान्य। (राजनि०)

व्रीही (सं० पु०) व्रीहिन् देखो।

व्रीह्यपूप (सं० पु०) व्रीहिनिर्मितः अपूपः। व्रीहिनिर्मित पिष्टक, प्राचीन कालका एक प्रकारका पूआ जो चावलको पीस कर बनाया जाता था।

व्रीह्याग्रयण (सं० क्ली०) प्रथमोद्गत व्रीहिशीर्ष देवार्थमें अर्पण। (कात्या० श्रौ० १।८।६)

व्रीह्यागार (सं० क्ली०) व्रीहिनामगारम्। धान्यगृह, वह स्थान जहां पर बहुत सा धान रखा जाता हो, धानका गोदाम। पर्याय—कुसूल। (त्रिका०)

व्रीह्युर्वरा (सं० स्त्री०) धान्यक्षेत्र। (लाट्यायन ८।३।४)

व्रूस (सं० स्त्री०) वध, हिंसा।

व्रैशी (सं० स्त्री०) गमनशील मेघोदरस्थित जल। (शुक्लयजु० ८।४८)

व्रैह (सं० त्रि०) व्रीहेरवयवो विकारो वा (व्रीहिबिल्वादिभ्यो अण्। ४।३।१३६) इत्यण्। व्रीहिनिर्मित।

व्रैहिमत्य (सं० पु०) अनियत वृत्तिजीवी जातिविशेष। (पा ५।३।११३)

व्रैहेय (सं० त्रि०) व्रीहीनां भवनं क्षेत्रं व्रीहि (व्रीहिशाल्योर्ढक्। पा ५।२।२) इति ढक्। आशुधान्योपयुक्त भूम्यादि।

———:०:———

श

श—हिन्दी वर्णमालामें व्यञ्जनका तीसवां वर्ण। इसका उच्चारण प्रधानतया तालूकी सहायतासे होता है इससे इसको तालव्य श कहते हैं। यह महाप्राण है और इसके उच्चारणमें एक प्रकारका घर्षण होता है, इसलिये इसे ऊष्म भी कहते हैं। अभ्यन्तर प्रयत्नके विचारसे यह ईषत् स्पष्ट है और इसमें वाह्य प्रयत्न श्वास और घोष होता है।

मातृकान्यासमें हृदादि दक्ष करमें इस वर्णका न्यास करना होता है।

"शं हृदादि दक्ष करे" (तन्त्रसार)

काव्यके आदिमें इस शब्दका प्रयोग करनेसे सुख होता है।

"शं सुखं सन्तु खेदम्" (वृत्तरत्ना० टीका)

श (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ शस्त्र, हथियार। (क्ली०) ३ शुभ, कल्याण, मङ्गल।

शं (सं० पु०) १ कल्याण, मङ्गल। २ शास्त्र। (शब्दरत्ना०) ३ सुख। ४ शान्ति। ५ रागका अभाव, वाह्य वस्तुओंसे वैराग्य। (त्रि०) ६ शुभ।

शंगर (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत ऊँचा वृक्ष। यह मद्रास और सुन्दरवनमें होता है। इसकी लकड़ी लाल और मजबूत होती है और मकान या गाड़ी आदि बनानेके काममें आती है। इसके पत्तोंसे रङ्ग भी निकाला जाता है।

शंय (सं० पु०) सामभेद।

शंयु (सं० त्रि०) शं शुभमस्यास्तीति (कंशंभ्यां वभयुस्तितुतयसः। पा ५।२।१३८) इति युस्। १ शुभान्वित, शुभयुक्त। (पु०) २ वृहस्पतिके अपत्य एक ऋषिका नाम। ये ऋग्वेदके ६।४४-४६ और ४८ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे। ३ सर्पभेद, एक प्रकारका साँप। ४ वृहस्पतिके पुत्र अग्नि। (भारत ३।२१८।२)

शंयुवाक (सं० पु०) १ प्रतिकृति, प्रतिच्छवि, अविकल गठन। २ पशुहननरूप यागभेद। (आश्व० श्रौ० १।५।२६)

शंयोर्वाक (सं० पु०) पवित्र मूर्त्ति गठन।

शंव (सं० त्रि०) शं (कंशंभ्यामिति। पा ५।२।१३८) इति व। १ शुभान्वित। (त्रि० पु०) २ मुषलाग्रस्थित लौहमण्डलक। ३ वज्र। (धरणि०)

शंवद (सं० पु०) शं वदतीति (शमि धातोः संज्ञायां। पा ३।२।१४) शं-वद-अच्। कल्याणवादी, शुभवादी।

शंवर (सं० क्ली०) शं वृणोतीति वृ-अच्। जल।

शंवूक (सं० पु०) शम्बूक, घोंघा।

शंसथ (सं० पु०) संभाषण। (पार० गृ० ३।१३)

शंसन (सं० क्ली०) शंस ल्युट्। १ हिंसन। २ कथन। ३ प्रार्थना।

शंसनीय (सं० त्रि०) शंस अनीयर्। १ हिंसनीय। २ कथनीय। ३ प्रार्थनीय।

शंसा (सं० स्त्री०) शंस-अ-स्त्रियां टाप्। १ वाक्य। २ वाञ्छा। (मेदिनी) ३ प्रशंसा। (शब्दरत्ना०)

शंसित (सं० त्रि०) शंस-क्त। १ निश्चित। (हलायुध) २ हिंसित। ३ स्तुत। ४ सूचित। ५ वाञ्छित। ६ अनुष्ठित।

शंसिन् (सं० त्रि०) शंस-इनि। १ सूचक। २ ज्ञापक, ज्ञापनकारक। ३ कथक। यह प्रायः ही उपपद पूर्वक व्यवहृत हुआ करता है। जैसे—शुभशंसी।

शंस्तृ (सं० पु०) शंस (तृण-तृचौ शंसिक्षदादिभ्यः संज्ञायां चानिटौ। उण् २।९४) इति तृण्, यद्वा छन्दसि (प्रसितस्कभितस्तभितेति। पा ७।२।३४) इति निपातनात् साधुः। १ स्तोता। २ होता। ३ प्रशस्ता।

(ऋक् १।१६२।५)

शंस्तव्य (सं० त्रि०) मङ्गलार्थ स्तवनीय, वह स्तव जो मङ्गलकामनासे किया जाता है।

शंस्थ (सं० त्रि०) शं शुभे तिष्ठतीति शंस्था-क। (स्थः क च। पा ३।२।७७) शुभान्वित।

शंस्था (सं० स्त्री०) शंस्था क्विप्। शुभयुक्त, शुभान्वित।

शंस्य (सं० त्रि०) शंस-ण्यत् (ईड़वन्दवृशंसदुहां ण्यतः। पा ६।१।२१४) इत्याद्युदात्तः। १ हिंस्य, हिंसा करनेके योग्य। २ स्तुत्य, स्तुति करने लायक।

शअबान (अ० पु०) अरबी आठवां महीना। इसकी चौदहवीं तारीखको मुसलमानोंका शब्बरात नामक त्योहार होता है। यह रजबके बाद आता है।

शऊर (अ० पु०) १ किसी चीजकी पहचान या जानकारी। २ काम करनेकी योग्यता, ढंग। ३ बुद्धि, अक्ल।

शऊरदार (फा० पु०) जिसमें शऊर हो, काम करनेकी योग्यता रखनेवाला, हुनरमंद।

शक (सं० पु०) शक अच्। १ जातिभेद, शकजाति। भारतवर्ष शब्दमें शकाधिकार और शाक शब्द देखो। २ नृपभेद, वह राजा या शासक जिसके नामसे कोई संवत् चले। ३ म्लेच्छजातिविशेष। पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें सगरने शकराजके आधा मस्तक मुण्डन कर वेदवाह्यत्व किया

था, इसलिए वे म्लेच्छ हुए थे। उनके वंशधरगण म्लेच्छ जातिमें गिने गये थे। (पद्मपु० स्वर्गख० १५ अ०)

४ राजा शालिवाहनका चलाया हुआ संवत् जो ईसाके ७८ वर्ष पश्चात् आरम्भ हुआ था। ५ संवत् ६ तातार देश। ७ जल। ८ मल। ९ एक प्रकारका पशु। १० संदेह, आशंका। ११ भय, त्रास, डर।

शक (अ० पु०) शंका, संदेह, द्विविधा।

शककारक (सं० पु०) वह जिसने कोई नया संवत् या शक चलाया हो, संवत्का प्रवर्त्तक।

शकचेल—एक प्राचीन कवि।

शकट (सं० पु० क्ली०) शक्नोति भारं वोढुमिति शक (शकादिभ्योऽटन्। उण् ४।८१) इति अटन्। १ यान विशेष, बैलगाड़ी। पर्याय—अन, अक्ष। (शब्दरत्ना०) २ असुरविशेष, शकटासुर। भगवान् श्रीकृष्णने इस असुरको मारा था। यह असुर शकटाकृति था, इससे इसका नाम शकटासुर हुआ था।

(भागवत १०।७ अ०)

३ दो हजार पलकी तौल। पर्याय—भार, आचित, शाकटीन, शलाट। ४ तिनिश वृक्ष। ५ धवका वृक्ष, धौ। ६ शरीर, देह। ७ रोहिणी नक्षत्र। इसकी आकृति शकट या छकड़ेके समान है। (वृहत्सं० २४।३०)

शकटकर्म (सं० पु०) १ गाड़ी या और कोई सवारी हाँकनेका काम। २ गाड़ी आदि सवारियोंकी सामग्री बनाने और बेचनेका काम।

शकटधूम (सं० पु०) १ गोवर या उपले आदिका धूआँ। २ एक नक्षत्रका नाम।

शकटबिल (सं० पु०) जलकुक्कुटभेद।

शकटव्यूह (सं० पु०) १ शकटके आकारका सेनाका निवेश, सेनाको इस प्रकार रखना कि उसके आगेका भाग पतला और पीछेका मोटा हो और वह देखनेमें शकटके आकारका जान पड़े। २ वह भोग व्यूह जिसके अंदर उरस्थमें दोहरी पंक्तियाँ हों और पक्ष स्थिर हो।

शकटहन् (सं० पु०) शकटं हन्तीति हन-क्विप्। श्रीकृष्ण-ने शकटासुरको मारा था, इस लिये इनका शकटहा नाम पड़ा। (भागवत १०।७ अ०)

शकटाक्ष (सं० पु०) गाड़ीका धुरा।

शकटाङ्गज—शाकटायनका एक नाम।

शकटाख्य (सं० पु०) धव या धौका वृक्ष।

शकटाख्यक (सं० पु०) शकटाख्य देखो।

शकटार (सं० पु०) राजा महानन्दका प्रधान मन्त्री। इसने अपने अपमानका बदला चुकानेके लिये चाणक्यसे मिल कर षड़यन्त्र रचा था और इस प्रकार नंदवंशका नाश किया था। २ एक प्रकारकी शिकारी चिड़िया।

शकटारि (सं० पु०) शकट दैत्यके शत्रु, श्रीकृष्ण।

शकटाल (सं० पु०) शकटार देखो।

शकटाविल (सं० पु०) जलचरपक्षीभेद।

शकटासुर (सं० पु०) एक दैत्य। इसे कंसने कृष्णको मारनेके लिये भेजा था और यह स्वयं ही कृष्ण द्वारा मारा गया था।

शकटाह्वा (सं० स्त्री०) शकटमिति आह्वा यस्याः। रोहिणी नक्षत्र। इस नक्षत्रका आकार शकटके समान है।

शकटि (सं० स्त्री०) छोटी गाड़ी।

शकटिक (सं० त्रि०) शकट-सम्बन्धी।

शकटिका (सं० स्त्री०) १ क्षुद्र शकट, छोटी बैलगाड़ी। २ बच्चोंके खेलनेकी गाड़ी।

शकटिन् (सं० त्रि०) शकटाधिकारी, शकटवान्, गाड़ी-वाला।

शकटी (सं० स्त्री०) छोटी गाड़ी।

शकटीय शवर—एक प्राचीन कवि।

शकट्या (सं० स्त्री०) शकटानां समूहः (पाशादिभ्यो यः। पा ४।२।४९१) इति शकट-य-टाप्। शकटोंका समूह।

शकठ (सं० पु०) मचान।

शकधूम (सं० पु०) गोवर या उपले आदिका धूआँ।

शकन् (सं० क्ली०) शकृत्, विष्ठा।

शकनि (सं० पु०) शकारिलिपि, विक्रमादित्यानुमो-दित ताम्रशासन, शिलालिपि आदि।

शकन्धि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शकन्धु (सं० पु०) शकानां अन्धुः शकन्ध्वादित्वात् अकारलोपः। शकोंका कूप या कुआँ।

शकपिण्ड (सं० पु०) शकस्य पिण्डः। विष्ठाका पिण्ड, गोवरका पिण्ड।

शकपूण (सं० पु०) एक ऋषिका नाम ।

शकपूत (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम । ये ऋग्वेदके १० वे मण्डलके १३२ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे । २ गोमय द्वारा पवित्र ।

शकम् (सं० अव्य०) सुखरूप ।

शकमय (सं० त्रि०) १ गोमययुक्त । २ गोमयसंभूत ।

शकम्भर (सं० पु०) गोमयपूर्ण द्रव्य, वह चीज जिसमें गोवर रखा जाता है ।

शकर (सं० क्ली०) शकल, कच्ची चीनी, शक्कर ।

शकरकन्द (हिं० पु०) एक प्रकारका प्रसिद्ध कन्द । इसकी खेती प्रायः सारे भारतमें होती है। यह साधारणतः सूखी जमीनमें बोया जाता है। इसका कन्द दो प्रकारका होता है—एक लाल और दूसरा सफेद। लाल शकरकंद रतालू वा पिण्डालू कहलाता है और सफेदको शकरकन्द या कंदा कहते हैं। यह भून कर या उवाल कर खाया जाता है। प्रायः हिन्दू लोग व्रतके दिन फलाहार रूपमें इसका व्यवहार करते हैं। यह कंद वहुत मीठा होता है और इसमेंसे एक प्रकारकी चीनी निकलती है। अनेक पाश्चात्य देशोंमें इससे चीनी निकाली भी जाती है और इसीलिये इसकी वहुत अधिक खेती होती है। वनस्पतिशास्त्रके आधुनिक विद्वानोंका अनुमान है, कि यह मूलतः अमेरिकाका कंद है और वहींसे सारे संसारमें फैला है।

शकरखोरा (फा० पु०) एक प्रकारका छोटा सुन्दर पक्षी। इसकी ऊंचाई प्रायः एक वालिश्तसे भी कम होती है। यह भारत, पारस तथा चीनमें पाया जाता है। इसका रङ्ग नीला और चोंच काली होती है और वह पेड़ोंमें लटकता हुआ घोंसला वनाता है। यह प्रायः खेतोंमें रहता है और खेतोंको हानि पहुंचानेवाले कीड़े मकोड़े आदि खाता है। यह सफेद रङ्गके दो या तीन अंडे एक साथ देता है पर इसके अंडा देनेका कोई निश्चित समय नहीं है।

शकरपारा (फा० पु०) १ एक प्रकारका फल । यह नींबूसे कुछ वड़ा होता है। इसका वृक्ष नीबूके वृक्षके समान होता है, पर पत्ते नीवूसे कुछ वड़े होते हैं। फूल लाल रङ्गके होते हैं। फल सुगन्धित और खट्टा मीठा होता है। २ एक प्रकारका प्रसिद्ध पकवान जो वरफीकी तरह चौकोर कटा हुआ होता है। यह मीठा भी वनता है और नमकीन भी। इसके वनानेके लिये पहले मैदेमें मोयन डाल कर उसे दूध या पानीसे गूंधते हैं और तव उसे मोटी रोटीकी तरह वेल कर छुरी आदिसे छोटे छोटे चौकोर टुकड़ोंमें काट कर घीमें तल लेते हैं। यदि नमकीन वनाना होता है, तो मैदा गूंधते समय ही उसमें नमक, अजवायन आदि डाल देते हैं और यदि मीठा वनाना होता है, तो कटी हुई टुकड़ियोंको तलनेके वाद चीनीके शीरेमें पाग लेते हैं। ३ सूईदार कपड़े परकी एक प्रकारकी सिलाई जो शकरपारेके आकारकी चौकोर होती है।

शकरपाला (फा० पु०) शकरपारा देखो ।

शकरपीटन (हिं० पु०) एक प्रकारको कंटीली भाड़ी। यह हिमालय पर्वतकी पथरीली और सूखी जमीनमें कुमायूं और उसके पश्चिम ओर पाई जाती है। यह थूहड़का ही भेद है, पर साधारण सेंहुड़ या थूहड़के वृक्षसे कुछ भिन्न होता है।

शकरवादाम (फा० पु०) खूवानी या जर्द आलू नामक फल जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्तमें होता है।

शकरी (फा० पु०) फालसा नामक फल ।

शकल (सं० क्ली०) शक्नोतीति शक (शकिशम्योर्नित् । उण् १।१११) इति कल । १ त्वक्, चमड़ा । २ खण्ड, टुकड़ा । ३ वल्कल, छाल । ४ शकर, खांड़ । ५ आँवला । ६ कमलकी नाल, कमल-दण्ड । ७ दालचीनी । (पु०) ८ मनुके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम । (मनु ३।१२८)

शकल (अ० स्त्री०) १ मुखकी वनावट, आकृति, चेहरा । २ मुखका भाव, चेष्टा । ३ किसी चीजका वनाया हुआ आकार, आकृति, स्वरूप । ४ किसी चीजकी वनावट, गढ़न, ढाँचा । ५ मूर्त्ति । ६ उपाय, तरकीव, ढब ।

शकलिन् (सं० पु०) शकलमस्यास्तीति इनि । मत्स्यभेद, सकुची मछली ।

शकलेन्दु (सं० पु०) अपूर्णेन्दु ।

शकलोष्ट (सं० पु०) गोमयगोलक, गोवरका पिण्ड ।

शकल्येषिन् (सं० त्रि०) काष्ठखण्ड प्राप्तेच्छु। (अथर्व १।२५।५)

शकव (सं० पु०) राजहंस ।

शकसंवत् (सं० पु०) संवत् देखो।

शकाकुल (अ० पु०) शतावरकी जातिकी एक प्रकारकी वनस्पति। यह प्रायः मिस्र देशमें अधिकतासे होती है और भारतके भी कुछ स्थानों विशेषतः काश्मीर और अफगानिस्तानमें पाई जाती है। यह प्रायः नर्म जमीनमें वृक्षोंके नीचे उगती है। यह बारहो मास रहती है। इसके डंठल डेढ़ दो हाथ ऊंचे होते हैं। इसके पत्ते प्रायः तीन अंगुल चौड़े और एक बालिश्त लम्बे होते हैं। इसके पौधेकी प्रत्येक गांठ पर पत्ते होते हैं। इसमें नीले या लाल रंगके छोटे छोटे फूल गुच्छोंमें और काले रंगके फल लगते हैं। इसकी जड़ कंदके रूपमें होती है और बाजारमें प्रायः शकाकुल मिस्रीके नामसे मिलती है। यह जड़ कामोद्दीपक तथा स्नायुओंके लिये बलकारक मानी जाती है और विविध प्रकारकी पौष्टिक औषधोंमें डाली जाती है। कंधारमें इसके बीज ओषधिके काममें आते हैं। इसकी राखका क्षार (नमक) अर्शरोगमें लाभदायक समझा जाता है। यह जड़ प्रायः काबुलसे आती है और वही सबसे अच्छी भी होती है। इसे धुधली या दुधली भी कहते हैं।

शकादित्य (सं० पु०) राजभेद, शालिवाहन राजा।

शकान्तक (सं० पु०) शकस्य जातिविशेषस्य अन्तकः। शक जातिका अन्त करनेवाला, विक्रमादित्य।

शकाब्द (सं० पु०) राजा शालिवाहनका चलाया हुआ संवत्, शक-संवत्। ईस्वी संवत्में से ७८, ७९ घटानेसे शकाब्द निकल आता है। विशेष विवरण संवत्सर शब्दमें देखो।

शकार (सं० पु०) १ संस्कृत नाटकोंकी परिभाषामें राजाका वह साला जो नीच जातिका हो। नाटकमें इस पात्रको बेवकूफ, चंचल, घमंडी, नीच तथा कठोर हृदयवाला दिखलाया जाता है। जैसे—मृच्छकटिकमें संस्थानक। (साहित्यद० ३।८४-८५)

श स्वरूप कार। २ श स्वरूप वर्ण शकार।

शकारि (सं० पु०) शकस्य म्लेच्छजातिविशेषस्य अरिः। शक जातिका शत्रु, विक्रमादित्य।

'साहसांकः शकारिः स्याद्विक्रमादित्य इत्यपि' (जटाधर)

शकारिलिपि (सं० पु०) भारतकी प्राचीन एक लिपि।

शकील (फा० वि०) अच्छी शक्लवाला, खूबसूरत, सुन्दर।

शकुन (सं० क्ली०) शक्नोति शुभाशुभं विज्ञातुमनेनेति शक (शके रुनोन्तोन्त्यनयः। उण् ३।४९) इति उण्। शुभाशुभसूचक लक्षण, शुभशंसिनिमित्त। जो चिह्न देखनेसे शुभ या अशुभ जाना जा सके उसे शकुन कहते हैं, यथा बाहुस्पन्दन या काकोलूकादि। शकुनशास्त्रमें लिखा है—दक्षिणबाहु स्पन्दित होनेसे स्त्री-लाभ होता है, सुतरां दाहिने बाहुका फड़कना शुभ शकुन है। इस प्रकार जिस निमित्त द्वारा शुभविषय जाना जाता है, उसे शुभशकुन और जिस निमित्त द्वारा अशुभ विषय जाना जाता है, उसे अशुभशकुन कहते हैं। किसी कार्यमें जानेके समय या कोई कार्य करनेके समय शुभाशुभ शकुन जान कर वह करना आवश्यक है।

वसन्तराजशाकुनमें शुभाशुभ शकुनका विषय इस प्रकार लिखा है—

शुभशकुन—दधि, घृत, दूर्वा, आतप तण्डुल, पूर्णकुम्भ, सिद्धान्न, श्वेतसर्षप, चन्दन, दर्पण, शङ्ख, मांस, मत्स्य, मृत्तिका, गोरोचन, गोधूलि, देवमूर्त्ति, वीणा, फल, भद्रासन, पुष्प, अञ्जन, अलङ्कार, अस्त्र, ताम्बूल, यान, आसन, शराव, ध्वज, छत्र, व्यञ्जन, वस्त्र, पद्म, भृङ्गार, प्रज्वलित वह्नि, हस्ती, छाग, कुशा, चामर, रत्न, सुवर्ण, रूप्य, ताम्र, वङ्ग, मेष, ओषधि, मद्य और नूतन पल्लव ये ५० द्रव्य देख या छू कर गमन करनेसे शुभ होता है। यात्रा करके गमनकालमें दाहिनी ओर ये सब द्रव्य देखनेसे यात्रामें शुभ होता है। अतएव यह शुभशकुन है।

यात्राकालमें यदि गान्धार और षड्ज आदि रागोंमें और गम्भीर मनोहर स्वरोंमें वाद्यमान वादित्र, वेदध्वनि, नृत्यगीत आदि सुने जांये तो शुभ होता है। गमन कालमें यदि कोई खाली कलसी ले कर पथिकके साथ जाये और वह कलसी भर कर लौटे, तो पथिक भी कृतकार्य हो निर्विघ्नपूर्वक पुनरागमन करता है। यात्राकालमें चुल्लू भर जलसे कुल्ली करने पर यदि अकस्मात् कुछ जल गलेके भीतर अर्थात् पेटमें चला जाय

तो अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होती है तथा सुख लाभ होता है।

अशुभशकुन—अङ्गार, भस्म, काष्ठ, रज्जु, कर्दम, पिण्याक, कार्पास, तुष, अस्थि, विष्ठा, मलिनव्यक्ति, लौह, आवर्जनाराशि, कृष्णधान्य, प्रस्तर, केश, सर्प, औषध, तेल, गुड़, चमड़ा, चरबी, खाली घड़ा, लवण, तृण, तक्र, अर्गल, शृङ्खल, वृष्टि और वायु ये ३० द्रव्य यात्राकालमें अप्रशस्त हैं। ये सब द्रव्य देख कर गमन करनेसे अशुभ होता है।

यदि यात्रा करके गाड़ी पर चढ़ते समय पैर फिसल जाये अथवा गाड़ी भाग जाये अथवा बाहर निकलते समय द्वार पर अभिघात हो, तो यात्रामें विघ्न उपस्थित होता है। मार्जारयुद्ध, मार्जारशब्द, कुटुम्बका परस्पर विवाद, यात्राकालमें ये सब देख कर यात्रा न करे। नये घरमें प्रवेश करते समय शवदर्शन होनेसे मृत्यु अथवा बड़ा रोग होता है। किन्तु यात्राकालमें रोदन शब्द-हीन शवदर्शन होनेसे उस यात्रामें सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

जाते अथवा आते समय यदि अत्यन्त सुन्दर, शुक्ल वस्त्र और शुक्ल माल्यधारी पुरुष या स्त्रीके दर्शन हों, तो कार्य सिद्ध होता है। राजा, हृष्ट ब्राह्मण, वेश्या, कुमारी, बन्धु, सुन्दर केशवाला मनुष्य, अश्वारूढ़ या गजारूढ़ व्यक्ति यात्राकालमें देखनेसे शुभ होता है। श्वेतवस्त्र-धारिणी, श्वेतचंदनलिप्ता तथा शिर पर सफेद माला पहनी हुई स्त्री और संतुष्टचित्ता तथा गौरवर्णा नारी यात्राकालमें देखनेसे अभीष्ट कार्य सिद्ध होता है। छत्र-धारी, शुक्लवस्त्रपरिधारी, पुष्प और चन्दनादि द्वारा चर्चि-ताङ्ग भोजनकार्यमें नियुक्त और पाठनिरत ब्राह्मणके यात्राकालमें दर्शन करनेसे सभी कार्य सिद्ध होते हैं। जिसके जाते समय नर या नारी फल हाथमें लिये सामनेसे निकल जाय, उसका अभिलषित कार्य अति शीघ्र सिद्ध होता है।

यात्राकालमें हतगर्व, अपमानित, अङ्गहीन, नग्न, अन्त्यज, तैलप्रलिप्त, रजस्वला, गर्भवती, रोदनकारिणी, मलिनवेशधारी, उन्मत्त, विधवा, दीन, शत्रु, मुक्तकेश, उष्ट्र या गर्दभस्थित संन्यासी और नपुंसक ये सब देखनेसे दुःख और अभिलषित कार्यकी सिद्धि होती है। कृष्णवस्त्रधारिणी, कृष्णानुलेपनयुक्ता और कृष्णवर्णकी माला शिर पर पहनी हुई स्त्री अथवा कृष्णवर्णा कुपिता रमणी यात्रा-कालमें दीखनेसे यात्रामें विपद होती है।

जिसके जाते समय पीछेसे अथवा सामने खड़े को ही दूसरा व्यक्ति 'जाओ' ऐसा वाक्य कहे, तो उस व्यक्तिका सभी प्रकारका मङ्गल, सन्तोष और विजय लाभ होता है। शत्रुवधके लिये यात्राकालमें यदि 'मार, काट, भेद कर इत्यादि शब्द हो, तो कार्य सिद्धि होती तथा यात्राकालमें 'कहाँ जाते हो ? मत जाओ' इत्यादि शब्द सुने जायें, तो उस यात्रामें विपद होती है। यात्राकालमें लाभ, जय, मङ्गल और अमङ्गल इत्यादि सूचक वाक्य द्वारा उस उस फलका शुभाशुभ स्थिर करना होगा।

यात्राकालमें सामने यदि रोदनध्वनि सुनाई दे, तो उपद्रव, अग्निकोणमें भय, और नैऋत कोणमें युद्धके समय विपद् और वायुकोणमें रोदन सुनाई देनेसे समृद्धि लाभ होती है। पीछेमें यदि रोदन सुनाई दे, तो सन्तानवाश, रोदनध्वनिकी निवृत्ति होनेसे लाभ तथा शत्रुकी क्रन्दन-ध्वनि सुननेसे कार्य सिद्धि होती है। जो हाथी ऊपर-की ओर सूंड़ उठा कर अथवा दाहिने दांत पर सूंड़का अगला भाग रख कर खड़ा रहे, या जोरसे चिंघाड़ मार कर चारों ओर घूमे, ऐसे हाथीको देख यात्रा करनेसे सभी मनोरथ सिद्ध होता है। यात्राकालमें शब्दहीन शृगाल देखनेसे उसी समय कोई अनिष्ट होगा ऐसा जानना चाहिये। वामभागमें शृगालकी गति देखनेसे शुभ और रात्रिकालमें बहुतसे शृगाल एकत्र हो कर बाईं ओर शब्द करें, तो भी शुभ जानना होगा।

यदि शृगाल पहले 'हुआ हुआ' शब्द करके पीछे 'टटा' ऐसा शब्द करे, तो शुभ और अन्य प्रकारका शब्द करनेसे अशुभ होता है। रात्रिकालमें जिस घरके पश्चिम ओर शृगाल शब्द करे, उसके मालिकका उच्चा-टन, पूर्व ओर शब्द होनेसे भय, उत्तर और दक्षिण ओर शब्द करनेसे शुभ होता है।

यदि भ्रमर बाईं ओर गुन गुन शब्द कर किसी स्थानमें ठहर जाय अथवा भ्रमण करता रहे, तो यात्रा-

कालमें ऐसा भ्रमर देखनेसे शुभ होता है। गोक्षुर, कृष्णसर्प आदि स्वाभाविक अति भयङ्कर यात्रा या किसी कार्यारम्भ कालमें सर्प देखनेसे वह कार्य या यात्रा बन्द कर देना उचित है, क्योंकि इससे विघ्न होता है। इसमें कुछ विशेषता है। वह यह कि यात्रा कालमें सर्पदर्शन होनेसे पाषाण या कण्टकमें पादस्पर्श कर यात्रा करनेसे समस्त विघ्न विनष्ट होता है। यात्राकालमें सर्प अथवा पञ्चनखी यदि वामभागमें दिखाई दे, तो शुभ और अर्द्धपथमें उन्नतमस्तक सर्प दिखाई देनेसे राज्यलाभकी सम्भावना रहने पर भी गमन न करना चाहिये।

यात्राकालमें छींक होने, छिपकली देखने और कौवे का शब्द सुननेसे निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार शुभाशुभ स्थिर किया जा सकता है। जिस वारमे यात्रा करनी होगी, उस वारको पहले पूर्वकी ओर रख कर दक्षिणावर्त्त क्रमसे उसके बादके वारोंको तथा राहुग्रहको परवर्त्ती दिशाओंमें विन्यस्त करे। किन्तु शनिग्रहके बाद राहुग्रह स्थापन करना होता है। इसके बाद देखना होगा, कि जिस किसी ओर छींक, छिपकली या कौवेका शब्द हुआ है, उस ओर पूर्वोक्त वार स्थापन क्रमसे कौन ग्रह पतित हुआ है, वह जानना होगा। यदि उस ओर रवि पतित हो, तो जिस कार्यके लिये यात्रा की गई है उसमें भय, सोम होनेसे कर्मका शुभ, मङ्गल होनेसे उत्पात, बुधमें शुभ, वृहस्पतिमें सर्वसिद्धि, शुभ होनेसे ईप्सलाभ, शनि होनेसे वह कार्य उसी समय नाश तथा राहु होनेसे भी उस कार्यका नाश जानना होगा।

अङ्गस्पन्दन होनेसे निम्नरूपसे शुभाशुभ स्थिर करना होता है। अङ्गका दक्षिण भाग स्पन्दित होनेसे शुभ तथा पृष्ठ और हृदयके वामभागका स्फुरण होनेसे अशुभ होता है। मस्तकस्पन्दन होनेसे स्थानवृद्धि तथा भ्रू और नासास्पन्दनसे प्रियसङ्गम होता है। चक्षुःस्पन्दनसे भृत्यलाभ, चक्षुके उपान्त देशके स्पन्दनसे अर्थप्राप्ति तथा चक्षुके मध्यदेशके स्पन्दनसे उद्वेग और मृत्यु होती है। युद्धके समय और निमीलन अवस्थामें चक्षुःस्पन्दन होनेसे शीघ्र जयलाभ, अपाङ्ग देशके स्पन्दनसे स्त्रीलाभ और कर्णके प्रान्तभागके स्पन्दनसे प्रिय संवाद लाभ होता है। नासिकास्पन्दनसे प्रणय और बंधुता, अधर और ओष्ठदेश-स्पन्दनसे अभीष्ट विषय लाभ, कण्ठदेश स्पन्दनसे सुख, बाहुस्पन्दनसे मित्रस्नेह, स्कन्धदेश-स्पन्दनसे सुख, हस्तस्पन्दनसे धनलोभ, पृष्ठदेश स्पन्दनसे युद्धमें पराजय तथा वक्षःस्थल स्पन्दनसे जयलाभ होता है। कुक्षिदेशके स्पन्दनसे प्रीति, स्त्रियोंके स्तन स्पन्दनसे सन्तानोत्पत्ति, नाभिस्पन्दनसे स्थानच्युति, अन्त्र स्पन्दनसे अर्थलाभ, जानुसन्धि अर्थात् घुटनेके स्पन्दनसे शत्रुके साथ सन्धि, जङ्घा स्पन्दनसे किसी न किसीका नाश, चरणस्पन्दनसे स्थानप्राप्ति और पदतल स्पन्दनसे पथभ्रमण होता है।

स्त्रीपुरुषके सम्बन्धमें ये सब शुभाशुभ विपरीत भावमें जानने होंगे अर्थात् पुरुषके दक्षिण भाग और स्त्रीके वाम भागमें शुभ तथा इसके विपरीत भागमें अशुभ जानना होगा। (शाकुनदीपिका)

(पु०) २ पक्षिमात्र, पक्षीका साधारण नाम शकुन है। ३ पक्षिविशेष, गृध्र। कश्यपपत्नी ताम्राके गर्भसे गृध्रकी उत्पत्ति हुई। (भागवत)

गृध्र यदि वाम, दक्षिण, पूर्व और पश्चाद्भागमें रह कर शब्द करे, तो अमंगल होता है। (वसन्तराजशा)

४ विप्रभेद। ५ गीतविशेष। उत्सवादिमें मङ्गलार्थ यह गीत गाया जाता है।

शकुनक (सं० पु०) शकुन-स्वार्थे-कन्। शकुन देखो।

शकुनज्ञ (सं० त्रि०) शकुनं जानातीति ज्ञा-क। शकुनज्ञाता, जो शकुनोंका शुभशुभ फल जानता हो।

शकुनज्ञा (सं० स्त्री०) गृधगोधा, गिरगिट।

शकुनज्ञान (सं० क्ली०) शकुनस्य शुभाशुभनिमित्तस्य ज्ञानं। शुभाशुभ निमित्तका ज्ञान।

शकुनद्वार (सं० पु०) शकुनविषयक संज्ञाविशेष। यदि दो शकुन यथाभागमें अवस्थित रह शांतभावसे शब्द और चेष्टा प्रदर्शन करते हैं, तो उसे शकुनद्वार कहते हैं। यह शकुनद्वार शुभसूचक है। यात्रा आदिके समय ऐसा शकुनद्वार देखनेसे शुभ होता है। किसी किसीका कहना है, कि एक जातीय

शान्तचेष्ट और शब्दरहित शकुनद्वार दोनों पार्श्वमें होनेसे शुभ होता है। (बृहत्संहिता ८६।५२-५३)

शकुनशास्त्र (सं० क्ली०) शकुनविषयक शास्त्र। वह शास्त्र जिसमें शकुनोंके शुभ और अशुभ फलोंका विवेचन हो, शकुन बतलानेवाला शास्त्र।

शकुनसूक्त (सं० क्ली०) सूक्तमन्त्रभेद। मृगपक्षीके विकारमें यह सूक्त जपना पड़ता है। इसको शाकुनसूक्त भी कहते हैं।

'सुदेवा इति चैकेन देया: गावश्च दक्षिणा।
जपेच्छाकुनसूक्तं वा मनोवेदशिरांसि च ॥"

(बृहत्सं० ४६।७३।

शकुनाशा (सं० स्त्री०) गुल्माकार वृक्षभेद।

शकुनाहृत (सं० पु०) १ बालरोगविशेष। २ शकुनि ग्रह। ३ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली। ४ शालि धान्यभेद, एक प्रकारका चावल जिसे हांऊदखानी कहते हैं। (भावप्र०)

शकुनाहृता (सं० स्त्री०) १ चिड़ियों द्वारा लाई हुई वस्तु। २ एक प्रकारका चावल।

शकुनि (सं० पु०) शक्नोति उन्नेतुमात्मानमिति शक (शकेरुनोन्तोनयः। उण् ३।४९) इति उनि। १ पक्षी मात्र। २ गृध्र, गिद्ध। ३ कौरव या दुर्योधनादिका मामा। यह सुबलराजाका लड़का था, इससे इसका नाम सौबल हुआ यह दुर्योधनका मन्त्री था। राजा दुर्योधन जब पाण्डवों का ऐश्वर्य देख नितान्त व्यथित हुए, तब इसी शकुनिके परामर्श और सहायतासे कपटद्यूतमें पाण्डवोंको हराया। पाण्डव पराजित हो कर वनमें चले गये। शकुनिकी परामर्शमूलक यह कपटद्यूतक्रीड़ा ही कुरुकुलध्वंसकी एक मात्र कारण थी। सहदेव द्वारा पुत्रसहित शकुनि मारा गया। महाभारतके सभा और शल्य पर्वमें इसका विस्तृत विवरण है।

४ बव प्रभृति ग्यारह करणोंके अन्तर्गत अष्टम करण। इस करणमें किसी बालकके जन्म लेनेसे वह परधनहारी, वञ्चक, क्रूरचेष्ट, कृतघ्न, अतिशय परदारासक्त, क्रोधी और शीघ्रकर्मा होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

५ दुःसहपुत्र। दुःसहके औरस और निर्माष्टिके गर्भसे दन्ताकृष्टि और शकुनि आदि ८ पुत्र तथा ८ कन्या उत्पन्न हुई। ये सभी अत्यन्त पापाचारी थे। शकुनिके श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक नामक पांच पुत्र थे। (मार्कण्डेयपु०)

६ विकुक्षिपुत्र। वैवस्वत मन्वन्तरमें इक्ष्वाकु नामक एक राजा थे। उनके सौ पुत्र थे। बड़ेका नाम विकुक्षि था। ये विकुक्षि अयोध्याके राजा थे। इनके शकुन आदि पन्द्रह पुत्र हुए।

(अग्निपु० सगरोपाख्यान-नामाध्याय.)

शकुनि—स्वनामप्रसिद्ध पक्षीविशेष। संस्कृत पर्याय—गृध्र। यह मांस खानेवाला पक्षी है, सड़ा पचा मुर्दा ही इसका एकमात्र खाद्य है। मैदानके कीड़े मकोड़ेको भी यह खाता है। बाहरी गठन देख कर इसे चिल्ल जातिके पक्षियोंमें शामिल किया जा सकता है। प्राणितत्त्वविदोंने भिन्न भिन्न देशमें भिन्न भिन्न प्रकारका शकुनि देख कर उन्हें विशेष विशेष श्रेणीमें विभाग किया है। Jerdon साहबने प्रकृत शकुनियोंको Vulturinae शाखाके अन्तर्भुक्त किया है। वाबुन शकुनि (Valture monachns) कृष्णशकुनि (Olygyps Calvus', श्वेतपृष्ठ शकुनि (G, fulvus), वृहदाकृति ताम्रवर्ण शकुनि (G, fulvas) दीर्घचञ्चु कपित्थ शकुनि (G. Indicus) आदिको इसी शाखाके अन्तर्भुक्त किया जाता है। एतद्भिन्न विभिन्न देशमें इस श्रेणीके जो सब पक्षी हैं उनके Neophroninae Gypaetinae, Sarcaramphinae, American Valture और Gypohiera cinae (Angola Vulture) आदि दलोंमें विभक्त किया जाता है। Neophron percnopterus पक्षी हम लोगोंके देशमें काला मुर्गा वा काली मुर्गी नामसे परिचित है। जिन सब शकुनियोंकी निम्न चोंचके नीचे दाढ़ीकी तरह लाल मांसकी कलेजी रहती है, वे ही Gypaetus Barbatey नामसे प्रसिद्ध है। इन्हें पाश्चात्य भाषामें Lammergeyers कहते हैं।

मिस्र देशका शकुनि एशिया, अफ्रिका और पूर्व यूरोपमें प्रायः देखनेमें आता है। यही हम लोगोंके देशकी काली मुर्गी (Neophron perenopterus) और बाइबिल ग्रन्थका "Pharaoh's chicken"।

हिमालयके नातिशीतोष्ण देशमें मनुष्यजातिकी

वासभूमिके सन्निहित प्रदेशमें भी ये देखनेमें आते हैं। भारतके समतल प्रान्तमें भी इस दुबले और कुरूप पक्षि-जातिका वास है। पूर्वाञ्चलमें जितने प्रकारके शकुनि हैं, उनमें उक्त जाति ही छोटी है। चोंचसे ले कर पूंछ तक इसकी लम्बाई २६ इञ्चसे बड़ी नहीं होती। १८६६ ई०में अम्बाला शहरमें एक बड़ा भूरे रङ्गका शकुनि गोलीसे मारा गया था। दोनों डैनेका विस्तार ८ फुट २ इञ्च और मांसपिण्ड १७ पौंड था।

शकुनिका (सं० स्त्री०) शकुनि कन् टाप्। १ शकुनि। २ पुराणानुसार स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

शकुनिग्रह (सं० पु०) पुराणानुसार स्कन्दके एक अनुचरका नाम।

शकुनिप्रपा (सं० स्त्री०) शकुनीनां पक्षिणां पानार्थं या प्रपा। पक्षियोंकी पानीयशाला। पर्याय—श्रीग्रह। (हारावली)

शकुनिवाद (सं० पु०) उषा कालके समय चिड़ियोंका चहचहाना।

शकुनिसवन (सं० क्ली०) शकुनयज्ञ।

शकुनिसाद (सं० पु०) पक्षीके समान जाना। (शुक्लयजुः २५।३)

शकुनी (सं० स्त्री०) शकुन-ङीष्। १ श्यामापक्षी। २ गौरैया पक्षीका मादा। ३ एक पूतनाका नाम। यह बहुत क्रूर और भयङ्कर कही गई है। (हरिवं० ६२।१-२) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बालग्रह। कहते हैं, कि जिस बालक पर इसका आक्रमण होता है, उसके अंग शिथिल पड़ जाते हैं, शरीरमें जलन होती है, फोड़े फुंसियां आदि निकल आती हैं, शरीरसे पक्षियोंकी-सी गन्ध आने लगती है और वह रह रह कर चौंक उठता है। (सुश्रुत उत्तरत० २७ अ०)

शकुनी (हिं० पु०) वह जो शकुनोंका शुभ और अशुभ फल जानता हो, शकुनज्ञ।

शकुनी-मातृका (सं० स्त्री०) बालकोंकी एक प्रकारकी व्याधि। यह उनके जन्मसे छठे दिन, छठे मास या छठे वर्ष होती है और इसमें उन्हें ज्वर तथा कंप होती है, दृष्टि ऊर्द्ध्व हो जाती है और हरदम बहुत कष्ट बना रहता है।

शकुनीश्वर (सं० पु०) शकुनीनां पक्षिणामीश्वरः। पक्षियोंका स्वामी, गरुड़।

शकुनोपदेश (सं० पु०) शकुनशास्त्र।

शकुन्त (सं० पु०) शक्नोति उत्पतितुमिति शक (शकेरुनोन्तोन्त्यनयः उण् ३।४९) इति उन्त। १ पक्षी, चिड़िया। २ कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। ३ भास पक्षी। ४ काकभेद, एक प्रकारका कौआ। ५ कुक्कुटभेद। ६ विश्वामित्रके पुत्रका नाम।

शकुन्तक (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

शकुन्तला (सं० स्त्री०) शकुन्तैः पक्षिभिर्लाल्यते पाल्यते इति ला-घञर्थे क, स्त्रियामाप्। मेनका नामकी अप्सराके गर्भसे और विश्वामित्रके औरससे उत्पन्न कन्या। यह कन्या निर्जन वनमें शकुन्त या गिद्ध द्वारा रक्षित हुई थी इसीसे इसका नाम शकुन्तला हुआ।

"निर्जने तु वने यस्मात् शकुन्तैः परिरक्षिता।
शकुन्तलेति नामास्याः कृतञ्चापि ततो मया॥"
(महाभारत १।७२।१५)

राजा दुष्मन्तके साथ इसका विवाह हुआ तथा उन्हींके औरस तथा गर्भमें भरतने जन्म ग्रहण किया। इस भरतसे ही भारतवर्ष नाम हुआ है।

महाभारतमें लिखा है, कि एक दिन दुष्मन्त सैनाओंके साथ आखेटको निकले। आखेटके बाद वे हठात् अकेले ही कण्वमुनिके आश्रममें जा पहुंचे। इस समय कण्व वहां नहीं थे। शकुन्तलाके ऊपर ही आश्रमरक्षाका भार था। इस कारण शकुन्तलाने ही आसन, पाद्य और अर्घ्य आदि द्वारा राजाकी अर्चना की तथा कुशल-क्षेम पूछा। राजा दुष्मन्तने तापसी स्वरूपा परमवेशधारिणी साक्षात् लक्ष्मीकी तरह रूपवती कन्यासे कहा 'मैं भगवान् कण्वकी पूजा करने आश्रममें आया हूं। वे कहां हैं?' शकुन्तलाने उत्तर दिया, 'पिता फल लानेके लिये गये हैं, कुछ समय ठहरिये' उनके दर्शन हो जायेंगे।'

अनन्तर राजाने थोड़ा विश्राम कर फिरसे पूछा 'भगवान् कण्व ऊर्द्ध्वरेता हैं, अतएव तुम किस प्रकार उनकी कन्या हुई? मुझे इस विषयमें संदेह है, इसलिये मेरा संदेह दूर करो।'

राजाके इस वचन पर शकुन्तलाने कहा,—मैंने

पिताले सुना है, कि विश्वामित्र नामक एक महातपस्वी ऋषि हिमालयके प्रान्तमें कठोर तपस्या करते थे। इन्द्रने उनकी तपस्यासे भय खा कर तपोभङ्ग करनेके लिये मेनका नाम्नी अप्सराको भेजा। मेनका द्वारा उनका तपोभङ्ग हुआ। उसी जगह दोनोंके संयोगसे मेरा जन्म हुआ।

प्रसवके बाद ही मेनका मुझे सिंहव्याघ्रसे समाकुल विजनवनमें छोड़ गई। शकुन्तोंने सिंहव्याघ्रादिसे मेरी रक्षा की थी, इस कारण मेरा नाम शकुन्तला हुआ। पिता कण्व मुझे उस अवस्थामें देख आश्रम उठा लाये और लालनपालन करने लगे। इसीसे वे मेरे पिता हैं।

राजा दुष्मन्तने शकुन्तलाका जन्म वृत्तान्त सुन कर कहा, 'तुम राजाकी कन्या हो, इससे मुझसे विवाह करने योग्य हो, गांधर्व-विधानसे मुझे वरमाला पहनाओ, यही मेरी एकान्त अभिलाषा है।' इस पर शकुन्तला बोली, 'राजन्! मेरे पिता अभी आयेंगे। आप थोड़ी देर ठहरिये। वे आते ही मुझे आपके हाथ समर्पण कर देंगे।' राजाने कहा, मेरी इच्छा है, कि तुम स्वयं मेरी भजन करो, मैं तुम्हारे लिये ही यहां आया हूं। मेरा हृदय तुम पर अत्यन्त आसक्त हो गया है, क्षत्रियके लिये गान्धर्व विवाह ही सबसे श्रेष्ठ है, इसमें जरा भी धर्महानि न होगी।

शकुन्तला बोली, 'हे पौरव! यदि यह धर्म-पथानुसारी हो और आत्मसमर्पण विषयमें मेरा प्रभुत्व रहे, तो मेरा एक पण है वह सुनिये। आप मुझसे यह प्रतिज्ञा कीजिये, कि मेरे गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा, वह युवराज और आपका उत्तराधिकारी होगा। यदि आप यह प्रतिज्ञा करें, तो मैं आपसे विवाह कर सकती हूं।'

मन्मथके बाणसे नितान्त व्यथित राजा बिना सोचे विचारे ही शकुन्तलाकी बात पर सम्मत हो गये। इसके बाद यथाविधान पाणिग्रहण करके उसके साथ सुख सम्भोग किया। कुछ समय प्रणयालापके बाद राजाने कहा, 'मैं राजधानी जा कर ही तुम्हें वहां ले जाऊंगा। इस प्रकार आश्वासवाक्यसे शकुन्तलाको प्रसन्न किया तथा महर्षि कण्व आश्रममें आ कर इसे अनुमोदन करेंगे या नहीं यह सोचते सोचते वे आश्रमसे निकल पड़े।

थोड़ी देर बाद महर्षि कण्व आश्रममें आये और दिव्यज्ञानसे सारी बातें जान कर शकुन्तलासे कहा, 'भद्रे! आज तुमने मेरी अपेक्षा न करके जो पुरुष संसर्ग किया है, उससे तुम्हारी धर्महानि न हुई। तुमने उन्हें अपना पति बना कर उनके साथ संसर्ग किया है। इससे तुम्हारे गर्भसे एक महाबलिष्ठ पुत्र जन्म लेगा तथा वही पुत्र सागर पर्यन्त सभी भूभागका अधिपति होगा। यात्राकालमें उसका रथचक्र कहीं भी न रुक सकेगा।'

राजा दुष्मन्तके अपनी राजधानी लौटनेके तीन वर्ष बाद शकुन्तलाने एक कुमार प्रसव किया। वह पुत्र दिनों दिन बढ़ने लगा। महर्षिने बालकका जातकर्मादि संस्कार किया। वह बालक सभी प्राणियोंका दमन करता था, इस कारण उसका नाम 'सर्वदमन' हुआ। महर्षिने उस बालकका असाधारण बल और कार्यकलाप देख कर शकुन्तलासे कहा, 'इस बालकके यौवराज्यके अभिषेकका समय पहुंच गया। इसलिये तुम इन शिष्योंके साथ अपने स्वामीके पास जाओ, स्त्रियोंको सदा पिताके घर रहना उचित नहीं है।'

शकुन्तला महर्षिके आदेशसे शिष्योंके साथ राजाके समीप गई। शकुन्तलाने राजाका यथायोग्य सत्कार कर कहा, 'राजन्! देवतुल्य यह पुत्र आपके हो औरससे उत्पन्न हुआ है, इसे आप युवराज बनाइये। आपने पहले जैसी प्रतिज्ञा की थी, अभी उसका पालन कीजिये। यही मेरा अभिलाष है।'

शकुन्तलाकी यह बात सुन कर राजाको पूर्वकृत सभी कार्य स्मरण हो आया। किंतु फिर भी उन्होंने शकुन्तलासे कहा, 'दुष्ट तापसि! तुम किसकी भार्या हो? तुम्हारे साथ मेरा धर्म, अर्थ और काम विषयमें कोई सम्बंध है, स्मरण नहीं होता, अतएव यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो जा सकती हो अथवा यहां ठहरनेमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

तपस्विनी शकुन्तला लज्जासे अभिभूता और अचैतन्यकी तरह हो गई। पीछे वह दुःख, अभिमान और अमर्षके बल राजासे कहने लगी, 'महाराज! आपको सभी विषय मालूम रहने पर भी क्या कारण है, कि

सामान्य पुरुषके लिये निःशङ्कचित्तसे 'नहीं जानता हूं' ऐसी बात कहते हैं। यह सत्य है या असत्य, आपका अन्तःकरण ही जानता है। आप राजा हैं, धर्मके प्रति लक्ष्य करके अन्याय आचरण न करें। आपने क्या यह समझ रखा है, कि मैंने अकेले निर्जनमें यह काम किया है, साथमें कोई न था, कौन जान सकेगा? क्या आपको यह मालूम नहीं, कि परमात्मा परमेश्वर सबोंके हृदयमें जागरूक हैं, उनसे पापकर्म छिपा नहीं रहता। आपने इन्होंके सामने यह पापकर्म किया है। मनुष्य पापकर्म करके समझते हैं, कि कोई इसे जान न सकेगा। आदित्य, चन्द्र, अनिल, आकाश, भूमि, जल, दिवा, रात्रि, संध्या और यम आदि सभी लोगोंके चरित्र जानते हैं। मैं पतिव्रता स्वयं उपस्थित हुई हूं, ऐसा समझ अवज्ञा न करें। मैं आपकी आदरणीया भार्या हूं, मुझे आदरपूर्वक ग्रहण करना उचित है। मैंने ऐसा कौन-सा पाप किया है, मालूम नहीं। बचपनमें पिता माताने मुझे छोड़ दिया, अभी आप भी छोड़ते हैं, किंतु यह बालक आपका है, इसे छोड़ना आपको कदापि उचित नहीं।'

शकुन्तलाकी बात सुन कर दुष्मन्त बोले, 'शकुन्तले! यह बालक मेरा पुत्र है या नहीं सो मैं नहीं जानता। तुम्हारी बात पर किस प्रकार विश्वास करूं, स्त्रियां प्रायः झूठ बोला करती हैं। विशेषतः तुम्हारी माता व्यभिचारिणी दयाहीना मेनकाने निर्माल्य त्यागकी तरह हिमालयपृष्ठ पर तुम्हारा परित्याग किया था तथा क्षत्रियकुलोद्भव ब्राह्मणत्वलुब्ध निर्दयी विश्वामित्र भी कामके वशवर्ती हो तुम्हारे जनक हुए थे। इसलिये तुम्हारा असत्य बोलना असम्भव नहीं। मेरे सामने मुझे मिथ्यावादी बतानेमें तुझे जरा भी लज्जा न हुई? तुमसे और अधिक मैं बोलना नहीं चाहता। अभी तुम्हारी जो इच्छा हो, कर सकती हो।'

इस पर शकुन्तलाने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर राजासे कहा, 'राजन्! आप धर्मके नियन्ता हो कर धर्मका अतिक्रम न करें। मैं अभी जाती हूं, आपसे मेरा कोई सरोकार नहीं। आप यह निश्चय जानें, कि आपके मुझे ग्रहण नहीं करने पर भी मेरा यह पुत्र ससागरा धरणीका अधीश्वर होगा।'

शकुन्तला इत्यादि प्रकारसे नाना प्रकारके न्याय और धर्मसङ्गत वाक्यसे राजाको तिरस्कार कर चली गई। उस समय राजाके प्रति यह दैववाणी हुई, 'दुष्मन्त! माता चर्मकोषस्वरूपा है। उसमें पिता आप ही पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करते हैं। अतएव पुत्रका भरण पोषण करो, शकुन्तलाकी अवज्ञा न करो। शकुन्तलाने जो कुछ कहा है, वह सभी सत्य है। मेरे वचनानुसार तुम्हें इस पुत्रका भरण करना होगा और इसी कारण इसका नाम भरत होगा।'

राजा दुष्मन्तने यह दैववाणी सुन कर अमात्य आदिसे कहा, 'आप लोग इस देवदूतका वाक्य श्रवण कीजिये तथा मैं भी यह अच्छी तरह जानता हूं। किन्तु यह जानते हुए भी यदि मैं इस पुत्रको ग्रहण करता, तो प्रजा मुझ पर संदेह करती।'

अनन्तर राजाने हृष्टचित्तसे सबोंके सामने शकुन्तला और उसके पुत्रको आनन्दके साथ ग्रहण कर उसका भरत नाम रखा तथा शीघ्र ही उसे युवराज बनाया।

(महाभारत आदिप० ६८-७४ अ०)

पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें १मसे ५म अध्यायमें शकुन्तलाका विस्तृत विवरण वर्णित हुआ है। इस पुराणके मतसे दुष्मन्त जब कण्वाश्रम छोड़ रहे थे उस समय यादगारीके लिये उन्होंने शकुन्तलाको एक अंगूठी दी थी। पतिके घर जाते समय दैवक्रमसे वह अंगूठी नदीमें गिर पड़ी। कोई स्मरणचिह्न दिखा न सकनेके कारण दुष्मन्त शकुन्तलाको पहचान न सके। आखिर एक धीवरके जालमें पकड़ी हुई मछलीके पेटसे वह अंगूठी निकली। वह अंगूठी देखते ही दुष्मन्तकी पूर्वस्मृति जग उठी। पीछे हिमालय प्रदेशमें भरतकी शूरवीरताका परिचय पा कर उन्होंने भरतको अपना पुत्र समझा और बड़े आदरसे पुत्र सहित शकुन्तलाको ग्रहण किया। महाकवि कालिदासने यह उपाख्यान ले कर ही अभिज्ञान-शकुन्तला नामक नाटक प्रणयन किया है। यह संस्कृत नाटकमें सर्वश्रेष्ठ है।

शकुन्तलात्मज (सं० पु०) शकुन्तलायाः आत्मजः पुत्रः। भरतराज।

शकुन्ति (सं० पु०) शक्नोति उत्पतितुमिति शक-उन्ति। पक्षी, चिड़िया।

शकुन्तिका (सं० स्त्री०) १ छोटो चिड़िया। २ रिआया, प्रजा।

शकुन्द (सं० पु०) सफेद कनेर।

शकुल (सं० पु०) शक्नोति गन्तुं वेगेनेति शक (मद्-गुरा-दयश्च। उण् १।४२) इति उरच्, रस्य ल। मत्स्य-विशेष, सौरी मछली। इसका गुण—मधुर, रुक्ष, ग्राही, पित्त और आमनाशक तथा गुरु माना गया है। (राजनि०)

शकुलगण्ड (सं० पु०) शकुलस्य गण्ड इव गण्डो यस्य। मत्स्यविशेष, सौरी मछली।

शकुला (सं० स्त्री०) कुटकी, कटुकी।

शकलाक्ष (सं० पु०) १ श्वेत दूर्वा, सफेद दूब। २ गण्डदूर्वा, गाँडर दूब।

शकलाक्षक (सं० पु०) शकुलाक्ष देखो।

शकुलाक्षा (सं० स्त्री०) शकुलाक्ष देखो।

शकुलाक्षी (सं० स्त्री०) गण्ड दूर्वा, गाँडर दूब।

शकुलाद (सं० पु०) १ शकुल मत्स्याशी। २ जाति-विशेष।

शकुलादनी (सं० स्त्री०) शकुलानामदनं यस्याः ङीष्। १ चक्राङ्गी, कुटकी। २ कञ्चटशाक, जल चौलाई। ३ जटामांसी, बालछड़। ४ गजपिप्पली, गजपीपल। ५ कटफल, कायफल। ६ गण्डदूर्वा, गाँडर दूब। ७ गण्डूपद, केंचुआ। ८ जलपिप्पली, जलपीपल।

शकुलार्भक (सं० पु०) शकुलस्य अर्भक इव। गड़क मत्स्य, गड़ूई मछली।

शकुलाहनी (सं० स्त्री०) जलपिप्पली, जलपीपल।

शकुली (सं० स्त्री०) शकुल-ङीष्। १ मत्स्यविशेष, सकुची मछली। यह पाकमें गुरु, मधुर, मेदक और दोषवर्द्धक मानी गई है। (राजवल्लभ) २ पुराणानुसार एक नदीका नाम। (मार्क०पु० ५७।२३)

शकृत् (सं० क्ली०) शक्नोति सक्तुमिति शक (शको ऋ तिन्। उण् ४।५८) इति ऋतिन्। १ विष्ठा, गुह। २ गोवर।

शकृत्करि (सं० पु० स्त्री०) शकृत् करोतीति शकृत् कृ (स्तम्ब शकृतोरिन्। पा ३।२।२४) इति इन्। गोवत्स, गायका बछड़ा।

शकृत्कार (सं० त्रि०) शकृत् करोतीति शकृत्-कृ-अण्। मलत्यागकारक, मलत्याग करनेवाला।

शकृद्देश (सं० पु०) मलद्वार, गुदा।

शकृद्द्वार (सं० क्ली०) शकृतो द्वार। मलद्वार, गुदा। पर्याय—अपान, पायु, गुदा, च्युति, अधोमर्म्म, त्रिवलीक, वली। (हेम)

शक्कर (सं० पु०) वृष, बैल।

शक्कर (फा० स्त्री०) १ चीनी। २ कच्ची चीनी, खाँड़।

शक्करि (सं० पु०) वृष, बैल। (त्रिका०)

शक्करी (सं० स्त्री०) १ एक प्राचीन नदीका नाम। २ मेखला। ३ वर्णवृत्तके अन्तर्गत चौदह अक्षरोंवाले छंदोंकी संज्ञा। इनके नाम इस प्रकार हैं—वसंतिलका, असंबाधा, अपराजिता, प्रहणकलिका, वासन्ती, मञ्जरी, कुटिल, इन्दुवदना, चक्र, नान्दीमुख, लाली और आनन्द। इनमेंसे वसन्ततिलका सबसे अधिक प्रसिद्ध है। (छन्दोमञ्जरी)

शक्की (अ० वि०) जिसे हर बातमें संदेह होता हो, सदा शक करनेवाला।

शक्त (सं० त्रि०) शक क्त। १ शक्तिविशिष्ट, समर्थ, ताकतवर। पर्याय—सह, क्षम, प्रभु, उष्णु। २ प्रियंवद, जो प्रिय बातें कहता हो, मिष्टभाषी।

शक्तरूप (सं० त्रि०) दृढ़रूप।

शक्तव (सं० पु०) भूमा, भुने हुए अनाजका आटा, सत्तू।

"धाना भ्रष्टयवे भूम्नि स्त्रियां पुंभूम्नि शक्तवः।
केचित्तु शक्तुरस्त्रीति वन्धुरा भूमनि स्त्रियाम्॥"
(जटाधर)

शक्तसिंह—मेवाड़-पति राणा प्रतापसिंहके भाई। आपसमें विरोध हो जानेके कारण इन्होंने पहले मुगल-सम्राट् अकबर शाहका पक्ष अवलम्बन किया, पीछे भाईकी राजपूतोचित वीरता पर मुग्ध हो पुनः उनके शरणापन्न हुए। प्रतापसिंह, राणा देखो।

शक्ति (सं० स्त्री०) शक-क्तिन्। १ सामर्थ्य, बल, ताकत। पर्याय—द्रविण, तर, बल, शौर्य्य, स्थाम, शुष्म, पराक्रम,

प्राण, सहम्, ऊर्ज । (जटाधर) २ कार्यजननसामर्थ्य । (नागोजी भट्ट) 'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता' (देवीमाहात्म्य)

शक्यते जेतुमनया शक-क्तिन् । जिसके द्वारा शत्रु-को पराजय किया जाये, ऐसा कार्योत्पादनयोग्य धर्म-विशेष । राजाओंकी तीन प्रकारकी शक्ति है—प्रभु-शक्ति, मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति । कोष और दण्डके विषयमें सर्वतोमुखी क्षमताका नाम प्रभुशक्ति, विक्रमप्रकाशपूर्वक स्वशक्ति द्वारा विस्फुरणका नाम उत्साहशक्ति तथा सन्धि, विग्रह आदि और सामदानादि विषयमें यथारूपसे अवस्थानका नाम मन्त्रशक्ति है। राजा इस त्रिशक्तियुक्त हो कर अवस्थान करें ।

३ स्त्रीदेवता, देवीमूर्त्ति । ४ गौरी । ५ लक्ष्मी । (शब्दमाला)

यह देवीशक्ति तीन प्रकारकी है—सात्त्विकी, राजसी और तामसी । श्वेतवर्णा ब्रह्मसंस्थिता सात्त्विकी शक्ति, रक्तवर्णा वैष्णवी राजसीशक्ति और कृष्णवर्णा तामसी रौद्रीशक्ति है। एक परम देवता ही प्रयोजना-नुसार त्रिशक्तिरूपमें विभक्त हुए हैं ।

(वराहपु० त्रिशक्तिनामाध्याय)

विन्दु शिवस्वरूप और वीज शक्तिस्वरूप है। इन दोनोंके एकत्र संयोगसे नाद होता है। इस नादसे फिर त्रिशक्तिकी उत्पत्ति है । यह इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति नामसे कथित तथा यह त्रिशक्ति यथाक्रम गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी शक्तिके भेदसे परिचित है ।

इसके अलावा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें अष्टशक्तिका उल्लेख है। यथा—इन्द्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, वाराही, माहेश्वरी और भैरवी ।

(श्रीकृष्णजन्मख० १६६ अ०)

वाणयुद्धकालमें ये सब शक्तियां सहर्ष रथारोहण करके युद्ध-स्थल गई थी ।

दूसरी जगह नौ शक्तिका परिचय देखनेमें आता है, यथा—वैष्णवी, ब्रह्माणी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी, कार्त्तिकी और सर्वमङ्गला । इन सब शक्तियोंकी यथायोग्य पूजा करनी होती है ।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ६१ अ०)

एतद्भिन्न पुराण और तन्त्रादिमें और भी अनेक शक्ति-योंका उल्लेख है। नीचे ५० विष्णुशक्ति और ५० रुद्र-शक्तिके नाम लिखे गये हैं—

पचास विष्णुशक्ति, यथा—कीर्त्ति, कान्ति, तुष्टि, पुष्टि, धृति, शान्ति, क्रिया, दया, मेधा, श्रद्धा, लज्जा, लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति, रीति, रमा, जया, दुर्गा, प्रभा, सत्या, चण्डा, वाणी, विलासिनी, विरजा, विजया, विश्वा, विनदा, सुनदा, स्मृति, ऋद्धि, समृद्धि, शुद्धि, भक्ति, मुक्ति, मति, क्षमा, रमा, उमा, क्लेदिनी, क्लिन्ना, वसुधा, सूक्ष्मा, सन्ध्या, प्रज्ञा, निशा, अमोघा, विद्युता, परा और परायणा ।

पचास रुद्रशक्ति, यथा—गुणोदरी, विरजा, शाल्मली, लोलाक्षी, वर्त्तुलाक्षी, दीर्घघोणा, सुदीर्घमुखा, गोमुखी, दीर्घजिह्वा, कुण्डोदरी, ऊर्द्ध्वकेशी, विकृतमुखी, ज्वाला-मुखी, उल्कमुखी, सुश्रीमुखी, विद्यामुखी, महाकाली, सर-स्वती, गौरी, लम्बोदरी, द्रावणी, नागरी, खेचरी, मञ्जरी, रूपिणी, चित्रिणी, काकोदरी, पूतना, भद्रकाली, योगिनी, शङ्खिनी, गर्जिनी, कुञ्जिनी, कपर्दिनी, जया, रेवती, माधवी, वारुणी, वार्णवी, कालरात्रि, वज्रा, सुमुखेश्वरी और लक्ष्मी आदि। (प्रपञ्चसार)

तन्त्रके मतसे पीठाधिष्ठात्री स्त्रीदेवता मात्र ही शक्ति नामसे अभिहित है। यह शक्ति जिनकी अभीष्ट देवी है, उन्हें शाक्त कहते हैं। शाक्त शब्द देखो।

रेवतीतन्त्रमें नटी, कापालिकी आदि चौंसठ प्रकारकी कुलशक्तियोंका उल्लेख है।

गुप्तसाधनतन्त्रके १म पटलमें लिखा है, कि रूप-यौवनसम्पन्ना और शीलसौभाग्यशालिनी नटी, कापा-लिकी, वेश्या, रजकी, नापिताङ्गना, ब्राह्मणी, शूद्रकन्या तथा गोपालक और मालाकारकन्या, इन सब कुल-शक्तियोंको पञ्चोपचारसे पूजा करनेसे निश्चय ही सिद्धिलाभ होता है।

शक्तिकागमसर्वस्वमें स्वयं महादेवने शक्तिकी प्रधानताका उल्लेख कर कहा है, "शक्तियुक्त होनेसे ही मैं सर्वकाम फलप्रद शिवत्वको प्राप्त होता हूं, नहीं तो शवरूपमें अवस्थान करता हूं।" अतएव शक्तियुक्त हो कर ही सर्वदा मन्त्रजप करना एकांत कर्त्तव्य है। ब्रह्माने

सावित्रीके साथ इष्ट मन्त्रका जप करके ही सिद्धिलाभ किया था। शक्तिको अपनी इष्टदेवीकी तरह जान कर पान भोजन करावे। तेरह वर्षसे लगायत पचीस वर्ष तककी अप्रसूता कामिनी ही शक्तिकार्यकी विशेष उपयोगिनी है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें स्वयं नारायणने कहा है, कि सत्य और नित्य पदार्थ तथा मुझे छोड़ ब्रह्मासे तृण पर्यन्त सभी प्राकृतिक जगत् है। इनके उत्पत्तिकालमें मेरी इच्छासे मुझसे जो शक्ति उत्पन्न हो कर इन सबमें आविर्भूत होती है तथा सृष्टिसंहरणकालमें उन्हींसे तिरोहित हो कर फिरसे मुझमें ही आ कर लीन होती है। जिस प्रकार कुम्हार विना मिट्टीके और सोनार विना सोनाके घट और कुण्डल नहीं बना सकता, मैं भी उसी तरह विना शक्तिके जागतिक सृष्टिविषयमें असमर्थ हूं। इस कारण सृष्टि-सम्बन्धमें शक्तिको ही सर्वप्रधान मानना होगा। सृष्टिकालमें राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गा और सरस्वती, ये पांच शक्तियां आविर्भूत हुईं। श्रीकृष्णके प्राणसे भी अधिक प्रियतमा शक्तिका नाम राधा तथा ऐश्वर्याधिष्ठात्री सर्वमङ्गल-प्रदायिनी परमानन्दस्वरूपा शक्तिका नाम लक्ष्मी, परमेश्वरकी विद्याधिष्ठात्री और वेदशास्त्रयोगमातास्वरूपा शक्तिका नाम सावित्री तथा बुद्ध्यधिष्ठात्री सर्वशक्तिस्वरूपिणी सर्वज्ञानात्मिका और दुर्गतिनाशिनी शक्तिका नाम दुर्गा है तथा जो शक्ति रागरागिणी आदिकी अधिष्ठात्री देवी और शास्त्रज्ञानप्रदायिनी और कृष्ण-कण्ठोद्भवा हैं, वे ही सरस्वती हैं। इन पांच शक्तिको ही मूल प्रकृति जानना होगा, किन्तु सृष्टिके क्रमानुसार ये फिर अनेक अंशोंमें विभक्त हैं। फलतः सभी स्त्रीजाति इस प्रकृति या शक्तिकी अंश है तथा पुरुष परम्परा सभी पुरुषका अंश कह कर विख्यात है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणेशख०)

ब्रह्माणी शक्त्युत्पत्ति—रुरुयुद्धमें ब्रह्मा आदि देवगण अपनी पराजयकी आशङ्का कर बड़े भयभीत हुए। पीछे ब्रह्माने बड़ी चिन्ता करके स्वयं ही स्त्रीरूपको धारण किया और महादेवकी सहायताके लिये वे रणमें अवतीर्ण हुए। यह हंसस्यन्दन-समारूढ़ा ललनाकारा ब्रह्मरूप धारिणी प्रतिपक्षजयकारिणी अपराजिता शक्ति ही ब्रह्माणी-शक्ति कहलाती है। (देवीपुराण)

देवीपुराणके नन्दाकुण्ड-प्रवेशाध्यायमें लिखा है, कि देवशक्तियोंके मन्त्रका कोई विचार नहीं करना होता। क्योंकि, सभी शक्ति अनादि मध्यान्त शिवशक्तिमय परमेश्वरकी परमानन्दस्वरूपिणी है और इन सबोंके प्रभावसे तपयज्ञ आदिका फल प्राप्त होता है। (देवीपुराण)

शक्तिपूजामें व्यवहार करनेयोग्य पुष्पादि—पद्म, दो प्रकारके करवीर, कुसुम्भ, दो प्रकारकी तुलसी, जाति, अशोक, केतकी, चम्पक, नील पद्म, कुन्द, मन्दार, पुन्नाग, पाटलपुष्प, नागचम्पक, कर्णिकार, नवमल्लिका, पलाश, अमलतास, सम्हालू, अपामार्ग, दमनक या दौना फूल, गन्धतुलसी, लवङ्ग, जनकपूर, तगरपुष्प, जवापुष्प, द्रोणपुष्प तथा इस प्रकार अन्यान्य वनज, स्थलज, जलज और गिरिज अनेक प्रकारके पुष्पादि शक्तिपूजामें व्यवहार किये जा सकते हैं। (प्रपञ्चसार)

६ प्रकृति। पर्याय—प्रधान, नित्या, अविकृति। यह प्रकृति वा शक्ति पुरुषको आश्रय कर जगदुत्पत्तिका कारण होती है। सत्त्व, रजः और तमः ये तीन इसके गुण हैं। (भावप्रकाश)

७ द्रव्यगुणक्रियानिष्ठ वस्त्वन्तरविशेष। इन तीन पदार्थोंकी शक्ति प्रत्येकमें विभिन्नाकारसे दिखाई देने पर भी उसकी किसी शक्तिका विकाश करनेमें आपसकी सहायता आवश्यक है। जैसे, वह्निसंयोजन क्रियाके विना इन्धनमें उसकी दाहिका शक्तिका विकाश नहीं हो सकता, कटुरस किसी द्रव्यके साथ संयुक्त नहीं होनेसे अपनी ज्वलनशक्तिका विकाश नहीं कर सकता। उत्क्षेपणावक्षेपण क्रिया जब तक किसी दो पदार्थके ऊपर रखी न जायेगी, तब तक वह उन्हें अवचूर्णन करनेकी शक्तिको विकाश नहीं कर सकती।

८ अर्थबोधानुकूल पदपदार्थ सम्बन्धरूप वृत्तिभेदविशेष। अर्थात् "यह पद अमुक अर्थका बोधक हो" वा "इस शब्दसे ऐसे अर्थका परिग्रह होना कर्त्तव्य है" इस प्रकारका जो इच्छात्मक सङ्केत कल्पित होता है, वह भी एक प्रकारकी शक्ति है। शाब्दिकगण इस शक्तिको तीन भागोंमें विभक्त करते हैं, यथा रूढ़ि, यौगिक

और योगरूढ़ि। रूढ़ि, जैसे वर; यौगिक पाचक, योगरूढ़ि पङ्कज। इसके सिवा लक्षणा व्यञ्जना आदि शक्ति द्वारा भी शब्दादिका बोध होता है। विस्तृत विवरण शब्दशक्ति, शक्तिग्रह और सङ्केत शब्दमें देखो।

दार्शनिक और वैज्ञानिकगण शक्ति सम्बन्धमें यथेष्ट पर्यालोचना कर गये हैं। शक्ति शब्दका व्युत्पत्तिगत अर्थ सामर्थ्यवाची है। शक् धातुके उत्तर क्तिन् प्रत्यय करके शक्तिपद निष्पन्न हुआ है। संस्कृत भाषाके व्युत्पादनके अनुसार शक्ति शब्दका अर्थ बहुत भावगर्भ है। जिसके द्वारा कोई कार्य सम्पन्न होता है,—अथवा जो कार्यरूपमें परिणत होने योग्य है,—जो किसी प्रकार परिवर्त्तनका साधक है,—जो योग्यताविशिष्ट धर्मी है या जो किसी द्रव्यका धर्म है,—अथवा जो कारणका आत्मभूत है, वही शक्ति है।

अभिधानमें शक्तिके उत्साह, बल, सामर्थ्यादि अर्थका व्यवहार है। निघण्टुकारका कहना है, कि शक्ति शब्दका अर्थ कर्म है। वे यह भी कहते हैं, कि जिसके द्वारा कर्म सम्पन्न होता है अथवा जिसके द्वारा परलोक जीता जाता है, वही शक्ति है। "शक्नोतेः स्त्रियां क्तिन्। शक्यते वानया परलोकं जेतुम्।"

ब्रह्मसूत्रभाष्यमें श्रीमच्छङ्कराचार्यने लिखा है—

"कारणस्यात्मभूता शक्तिः शक्तेश्चात्मभूतं कार्यम्।"

अर्थात् कारणका जो आत्मभूत है, वही शक्ति है तथा शक्तिका जो आत्मभूत है, वही कार्य है।

श्रीमच्छङ्कराचार्यकी यह उक्ति दर्शन और विज्ञान-सम्मत है।

हम अतिप्राचीन ऋक्‌मन्त्रमें भी यह शक्ति शब्द इसी अर्थमें प्रयुक्त देख पाते हैं। यथा—

"स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभिरोदसि प्राम्।
तमु अकृण्वन्त्रेधाभुवे कंस ओषधीः पचति विश्वरूपाः।"

(१०।८८।१०)

निरुक्तकारने इसकी व्याख्या यह की है—

"स्तोमेन हि यं दिवि देवा अग्निमजीजनञ्छक्तिभिः कर्मभिर्द्यावापृथिव्योः पूरणं तमकुर्वंस्त्रेधा भावय पृथिव्यामन्तरीक्षे दिविति शाकपूणिर्यदस्य दिवि तृतीयं तदसावादित्ये इति ब्राह्मणम्।"

उक्त ऋक्‌का अर्थ यह है, कि देवताओंने स्तुति द्वारा जिस त्रिलोकव्यापक सूर्यात्मक अग्निको द्युलोकमें उत्पन्न किया है, उसी अग्निको जगत्‌की कार्यसिद्धिके लिये अग्नि, विद्युत् और आदित्य इन त्रिविधरूपोंमें विभक्त किया है। यह सर्वव्यापक अग्नि जगत्‌की भलाईके लिये सभी ओषधियोंका यथाविधि परिपाककार्य सम्पन्न करती है। अग्नि द्वारा ही जगत्‌के सभी कार्य होते हैं।

श्वेताश्वतर पढ़नेसे जाना जाता है, कि सत्त्व, रजः और तमः यह त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही शक्ति कहलाती है। यह शक्ति वा प्रकृति परमेश्वरमें प्रतिष्ठित है तथा उससे अभिन्न है। यही शक्ति विश्वकी सृष्टिस्थिति और लयकारिणी है।

हम योगवाशिष्ठमें भी शक्तिका सूक्ष्मतत्त्व देख पाते हैं।

अप्रमेय, शान्त, चिन्मात्र निराकार और मङ्गलस्वरूप परमात्माकी पहले इच्छाशक्तिकी शरण होती है, पीछे व्योमसत्ता, कालसत्ता और नियतिसत्ताकी यथाक्रम अभिव्यक्ति होती है। इच्छासत्तादिकी अनुगतासत्ता महासत्ता कहलाती है। इच्छादि सत्ता ही ऐशीशक्ति है। ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति, कर्तृत्वशक्ति, अकर्त्तृत्वशक्ति इत्यादि नामक परमेश्वरकी अनेक शक्तियां है। ये सब शक्तियां शक्तिमान् परमेश्वरसे अभिन्न हैं—"शक्तिः शक्तिमतो रभेदात्"।

शक्तिमान्‌से शक्ति भिन्न है। किंतु टीकाकारने लिखा है—"माया हि स्वरूपतोऽनन्तं शिवं गुणतः शक्तितः कार्यतश्चानन्तं कुर्वाणा तस्यानन्त्यं वद्धयतीव नतु विहन्तीति भावः मनागपि विकल्पनाद्विभिन्ना न वस्तुत इत्यर्थः।"

अर्थात् उस शिवसे शक्ति जो भिन्नरूपमें कल्पित होती है, वह विकल्पमात्र है, वस्तुतः भिन्न नहीं है।

करण, योग्यता वा शक्यता तथा उपादान कारण समझानेमें ही सांख्यदर्शनमें शक्ति शब्दका प्रयोग दिखाई देता है, यथा—

"शक्त्युद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः।" (१।११)

पदार्थका धर्मत्व कभी भी अपनोदित नहीं होता है

अर्थात् स्वभाव जरा भी विध्वस्त नहीं होता। आपत्ति हो सकती है, कि अङ्कुरोत्पादन ही बीजका स्वभाव है, किन्तु बीजके दग्ध होनेसे उसका यह स्वभाव विध्वस्त होता है। कपिलदेवने इस आपत्तिका खण्डन करनेके लिये कहा है, कि इस दृष्टान्त द्वारा शक्तिका अत्यन्त उच्छेद प्रमाणित नहीं होता। इस व्यापारमें शक्तिका केवल क्षणिक तिरोभाव ही प्रमाणित होता है, किन्तु अत्यन्त विनाश इस उदाहरणसे प्रमाणित नहीं होता।

विज्ञान भिक्षुका कहना है, कि कार्य्यकी अनागत अवस्था ही शक्ति है।

पातञ्जलदर्शनमें भी शक्तिशब्दका प्रयोग देखनेमें आता है। वहां भी इसको योग्यता और सामर्थ्य आदि अर्थोंमें ही व्यवहार हुआ है। पूर्वमीमांसा और उत्तर-मीमांसामें भी योग्यता और सामर्थ्य अर्थमें शक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है।

भर्तृहरि कृत वाक्यपदीप ग्रन्थमें भी हम शक्ति शब्दका एक विशिष्ट व्यवहार देखते हैं। यथा—

"एकमेव यदाम्नातं भिन्नं शक्तिव्यपाश्रयात्।
अपृथक्त्वेऽपि शक्तिभ्यः पृथक्त्वेनेव वर्त्तते॥"

अर्थात् शब्दब्रह्ममें एकत्वको अविरोधिनी, परस्पर पृथक् आत्मभूता शक्तियां विराजमान हैं। इन सब शक्तियोंके भेदारोपके लिये शक्तिसमूहसे यद्यपि ब्रह्म मूलतः पृथक् नहीं है, तथापि ब्रह्मका पृथक्त्व आरोप होता है।

वाक्यपदीयकारने और भी लिखा है,—

"निश्चिते शक्तेर्द्रव्यस्य तां सामर्थ्यक्रियां प्रति।
विशिष्ट द्रव्यसम्बन्धे सा शक्तिः प्रतिबध्यते॥"

प्रत्यक्ष प्रमाणादि द्वारा निश्चितरूपसे ज्ञात द्रव्य-शक्तिविशिष्ट द्रव्य सम्बन्धविशिष्ट होनेसे उसको अपने धर्मानुसार कार्य्य नहीं कर सकता, कई जगह ऐसा देखा जाता है। रसायणविज्ञान और पदार्थविज्ञानमें हम भी इस शक्तिप्रतिबाधा (Counteraction or Neutralisation of forces)के अनेक दृष्टान्त देख सकते हैं।

प्राचीन प्राभाकरोंने जो आठ प्रकारके पदार्थ स्वीकार किये हैं, उनमें शक्ति भी एक पदार्थ है। यथा—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, पारतन्त्र्य, शक्ति और नियोग। मीमांसकगण भी अन्य प्रकारके आठ पदार्थ स्वीकार करते हैं। यथा—

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति और सादृश्य।

प्राभाकरोंके मतसे ईश्वरास्तित्वानुमानकी तरह शक्ति और शक्तिकार्य्य अनुमानसिद्ध है।

आपत्ति हो सकती है, कि द्रव्य, गुण और कर्ममें शक्ति रहती है, सुतरां शक्ति पदार्थ इन्हींके अन्तर्भुक्त है, किन्तु प्राभाकरोंका कहना है, अनुमान द्वारा जाना जा सकता है, कि शक्ति द्रव्य, गुण, कर्म, समवाय आदि-से स्वतन्त्र पदार्थ है। शक्ति सामान्यादिकी तरह नित्य वा स्थिर पदार्थ नहीं है। प्राभाकरोंकी युक्ति यह है, कि जिसके द्वारा जो कार्य्य निष्पन्न होता है, वही वह कार्य्यसाधिका शक्ति है। कार्य्यसाधन-योग्यताविशिष्ट धर्मविशेष ही शक्ति शब्दवाच्य है। स्थलविशेषमें ऐसा भी देखा जाता है, कि प्रत्यक्ष प्रमाणादि द्वारा सुनिश्चित वस्तुशक्ति कई जगह यथायोग्य कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं होती। अनलकी दाहिकाशक्ति, विषका प्रभाव, बीजकी अंकुरोत्पादिका शक्ति सभी जगह क्रिया प्रकाशमें समर्थ नहीं होती। जिसके अभावमें ही कार्य्य-का अभाव होता है, वही द्रव्यनिष्ठ धर्म है; किन्तु द्रव्यादि पदार्थ छोड़ कर भी शक्ति स्वतन्त्र पदार्थरूपमें परि-कीर्त्तित है।

न्यायकुसुमाञ्जलिकार उदयनाचार्य्यका कहना है, कि न्यायदर्शनमें भी शक्ति पदार्थको अस्वीकार नहीं किया गया है। कारणत्वको ही न्यायदर्शनमें शक्ति कहा है। यथा—

सप्तपदार्थी संहितामें शिवादित्यने द्रव्यादि स्वरूपका ही शक्ति नाम रखा है।

हम प्रकृतिको भी शक्ति कह सकते हैं। क्योंकि, जिसके द्वारा कोई कर्म निष्पन्न होता है, जिसमें कार्य्य-साधनकी योग्यता है, वही शक्ति है। प्रकृति शब्दके व्युत्पत्तिसाधनमें भी हम यही अर्थ पाते हैं। प्र उपसर्ग पूर्वक कृ धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमें क्तिन् प्रत्यय करके प्रकृति पद सिद्ध होता है। जो कुछ उत्पादन किया

जाता है या प्रकृष्ट रूपसे कोई कार्य्य होता है, वही प्रकृति है। विज्ञानभिक्षुका कहना है, कि साक्षात् वा परम्परा भावमें प्रकृति ही सब प्रकारका परिणाम साधन करती है। इसी कारण इसका प्रकृति नाम रखा गया है और इसी कारण प्रकृतिका दूसरा पर्याय शक्ति है। यह प्रकृति अजा, शक्ति, प्रधान, अव्यक्त, माया, तमः और अविद्या आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।

पाणिनिके मतसे उपादानकारण ही प्रकृति है।

"जनिकर्त्तुः प्रकृतिः।" (पा १।४।३०)

पतञ्जलि, कैयट, जयादित्य और नागेश आदिने प्रकृतिको उपादानकारणरूपमें ही समझा है। नैयायिकोंने जो कारणत्वको ही शक्ति कहा है, पाणिनिके अभिप्रायानुसार प्रकृतिको ही उस शक्तिका प्रतिनिधि वा पर्याय कहा जा सकता है।

वशिष्ठदेवका कहना है, "वामन रूप विनिर्मुक्त जगत् जिस पर अवस्थान करता है उसे कोई प्रकृति, कोई माया, कोई अणु इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं।" श्रीमद्भागवतसे जाना जाता है, कि प्रकृति पुरुष और काल ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। पुरुष और काल ब्रह्मकी ही अवस्थाविशेष है। प्रकृति ब्रह्मकी ही शक्ति है। मायावादी प्रकृतिको ही माया कहते हैं।

हम योगवाशिष्ठ-रामायणमें देखते हैं, कि परिच्छिन्न और अपरिच्छिन्न सारी सत्ता ही शक्ति है। इससे जाना जाता है, कि पदार्थमात्र ही शक्ति है। शक्ति ही द्रव्य गुण कर्म आदि विविध नामोंसे परिचित है। भिन्न भिन्न पदार्थशक्तिकी ही भिन्न भिन्न अवस्थाविशेष है। आकाश, देश, काल, दिक्, परमाणु, मन, बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, इच्छा, प्रयत्न—ये सभी शक्तिविशेष है।

वैशेषिकदर्शनमें उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन यह जो पांच प्रकारके कर्मोंकी बात कही गई है, यह पञ्चकर्म भी शक्ति व्यतीत और कुछ भी नहीं है।

हम ऋग्वेद पढ़नेसे समझ सकते हैं, कि यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड श्रीभगवान्‌की इच्छासे उत्पन्न हुआ है। वेदान्त पढ़नेसे जाना जाता है, कि परमेश्वरने मायाशक्ति द्वारा इस जगत्‌की सृष्टि की है। पण्डितवर वालेशने इच्छाशक्तिको ही जगत्‌की मूलशक्ति कहा है।

हम वाह्य जगत्‌में ताप, तड़ित्, चुम्बुकाकर्षण, माध्याकर्षण, आलोक, रासायनिक आकर्षण आदि शक्तिकी विविध लीला देखते हैं। ये सब शक्तियां श्रीभगवान्‌की ही इच्छाशक्ति-प्रणोदित हैं तथा मूलतः एक हैं। यद्यपि हम शक्तिके भिन्न भिन्न प्रकाश देखते हैं, किन्तु ताप, तड़ित् और आलोक आदि एकमात्र शक्तिका ही भिन्न भिन्न प्रकाश मात्र है। ऋग्वेदमें लिखा है—

"अग्ने यत्ते दिवि वर्च्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र।
येनान्तरिक्ष मुर्व्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः॥"

(ऋक् ३।२२।२)

अर्थात् हे परमदेव! द्युलोकमें जो तेजःशक्ति विद्यमान है वह तुम्हारी ही ज्योतिः है, पृथिवी पर दाह पाकादि क्रियानिष्पादक रूपमें जो जो तेज देखनेमें आते हैं, वह भी तुम्हारे ही तेज हैं, वृक्षादिमें जो तेज विद्यमान है, वनस्पति आदिमें जो सामान्य तेज है, जलमें जो उर्व तेज है, वह भी तुम्हारे ही तेज हैं। तुम ही वायुरूपमें समग्र आकाशमें तेजस्वरूप वर्त्तमान हो।

एक ही परमतत्त्वकी शक्ति कहीं अग्निरूपमें, कहीं तड़ित् रूपमें, कहीं आदित्यरूपमें और सभी जगह वायुरूपमें प्रतिष्ठित हैं। अग्नि, वायु, आदित्य ये त्रिलोकमें वर्त्तमान हैं। ये कभी चेतनरूप धारण करते और कभी अचेतन रूपमें अवस्थान करते हैं। निरुक्तकारने लिखा है—

"इतरेतरो जन्मानो भवन्तीतरेतरो प्रकृतयः।"

ऋग्वेदमें अग्निकी प्रार्थनामें लिखा है—

"अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे। गर्भे सञ्जायसे पुनः।" (ऋक् ८।४३।९)

अर्थात् हे अग्ने! तुम ही जलमें प्रवेश करते हो, तुम ही ओषधियोंकी सृष्टि करके उनके गर्भमें प्रविष्ट हो कर रहते हो, वही तुम फिर इनके अपत्यरूपमें उत्पन्न हुए हो।

अथर्ववेदमें कहा है—"दिवं पृथिवीमन्तरीक्षं ये विद्युतमनुसञ्चरन्ति। ये दिक्ष्वन्तर्ये वाते अन्तस्तेभ्योऽग्निभ्योहुतमस्त्वेतत्।" (अथर्व वेद ३।२१।७)

अर्थात् द्यु लोकमें भूलोकमें तथा इन दोनोंके मध्यवर्त्ती अन्तरीक्ष लोकमें जो प्रवेश कर सञ्चरण करते हैं, जो तड़ित्के आकारमें प्रकाशित होते हैं, जो ज्योतिश्चक्रमें सञ्चरण करते हैं, जो त्रिलोकव्यापी दिक्में फैले हुए हैं, जो सर्वजगत्के आधार हैं, जो सूत्रात्मरूपमें वायुमें विद्यमान हैं, हम विश्व जगत्के अनुग्राहक उसी अग्निका होम करते हैं।

श्रुतिके ये सब प्रमाण पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि जगत्की आदिसभ्य आर्यजातिने जगत्के प्राचीनतम साहित्य ऋग्वेदमें शक्तिके एकत्व (Unity of forces) सम्बन्धमें स्पष्ट व्यक्त कर रखा है। हम वेदके ये सब प्रमाण पढ़नेसे और भी समझ सकते हैं, कि ऋषिगण एक ही शक्तिके भिन्न भिन्न प्रकाशके विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। जो शक्ति इस विशाल विश्वप्रपञ्चके दृश्यादृश्य सब प्रकारके पदार्थों में विद्यमान है, वही शक्ति हम लोगोंकी आत्माके अन्तस्तल प्रदेशमें रह कर हम लोगोंके सभी प्रकारके कार्योंका नियमन करती है। फिर यही शक्ति कभी ताप, कभी तड़ित्, कभी आलोक, कभी अग्नि, कभी वायु, कभी जल, कभी शून्य आदिके तेजके आकारमें प्रकाश पाती है। शक्तिका एकत्व (Unity of forces) और शक्तिका पृथक् प्रकटन (Transformation of forces) आधुनिक विज्ञानका एक विशिष्ट सिद्धान्त है। अति प्राचीन ऋग्वेदके समय भी हिन्दूके हृदयमें यह सिद्धान्त उद्भासित हुआ था।

हम देवीमाहात्म्य या चण्डी पाठ करके भी शक्तिके अति सूक्ष्म दार्शनिक और वैज्ञानिक तत्वको जान सकते हैं। विज्ञानविद्गण जिसे विश्वशक्ति (Cosmo-physical Energy) कहते हैं, ईश्वर-विश्वासी दार्शनिकगण जिन्हें विश्वप्राणशक्ति (Cosmopsychical Energy) नामसे पुकारते हैं तथा सुपण्डित हारवर्ट स्पेन्सर जिन्हें इस विशाल विश्वप्रसविनी अज्ञेय महाशक्ति (Inscrutable Power) नामसे अभिहित करते हैं, मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवीमाहात्म्यमें उन चिन्मयी जगन्मयी अज्ञेय महाशक्तिकी अति सुन्दर प्रतिच्छवि अङ्कित हुई है। शक्तिका ऐसा सूक्ष्मतत्त्व अन्यत्र दुर्लभ है। पाश्चात्य विज्ञानमें 'पावर' (Power), 'फोर्स' (Force) और 'एनर्जी' (Energy) ये तीन शब्द ही शक्ति शब्दके प्रतिनिधिरूपमें व्यवहृत होते हैं। गैनो (Ganot) का कहना है, कि जिसके द्वारा स्थितिशील पदार्थ गतिविशिष्ट होता है तथा गतिशील पदार्थकी गति संरुद्ध होती है, या जिसके द्वारा किसी भी प्रकारका परिवर्त्तन साधित होता है, वही 'फोर्स' या शक्ति है। जिस शक्ति द्वारा गति प्रवर्त्तित होती है, उसका नाम एक्सिलारेटिंग फोर्स (Accelerating Force) है। जो शक्ति गतिकी प्रतिबंधक है, उसका नाम Retarding Force है।

वैज्ञानिक पण्डित एस, एल, नली एम० ए० महोदयकी शक्तिके सम्बन्धमें संज्ञा भी गैनोकी संज्ञा जैसी है।

प्रोफेसर हालमैन (Halman)ने गति-शक्ति (Energy of motion), क्रियामाण शक्ति (Kinetic Energy), माध्याकर्षण शक्ति (Energy of Gravitation), ताप (Heat), स्थितिस्थापकता शक्ति (Energy of Elasticity), योगाकर्षण वा संघातशक्ति (Cohersion Energy), ताड़ितशक्ति (Electrical Energy) इन्हें शक्तिरूपसे वर्णन किया है। हालमैनकी 'फोर्स' और 'एनर्जी'की संज्ञा पूर्वप्रदर्शित शक्ति संज्ञाकी ही अनुरूप है*।

प्रोफेसर ग्राण्ट एलेन (Grant Allen) ने शक्तिको समझानेमें केवल 'पावर' (Power) शब्दका ही प्रयोग किया है। उनके मतसे यह पावर दो प्रकारका है—फोर्स और एनर्जी। इन्होंने फोर्स और एनर्जीका भिन्न भिन्न नाम रखा है, उनका कहना है, कि इस 'पावरके' और भी कई भेद हैं। यथा—Aggregative Power वा योगाकर्षणशक्ति, Separative Power या विप्रकर्षणशक्ति, Molar Power या संस्थानिक शक्ति, Molecular Power या आणविक शक्ति, Atomic या पारमाणविकशक्ति, Electric या ताड़ित

---

* Force is anything which changes or tends to change the state of rest or of uniform motion of Body.

शक्ति, Gravitation या माध्याकर्षण शक्ति, Chemical affinity या रासायनिक शक्ति।*

उधर पण्डितप्रवर हार्वर्ट स्पेन्सरने Force को ही शक्ति शब्दके प्रतिनिधिरूपमें व्यवहृत किया है। हार्वर्ट स्पेन्सर अज्ञेयतावादी थे। उनके मतसे शक्तितत्त्व भी अज्ञेय है। शक्ति नापनेका कोई उपाय नहीं है। वे कहते हैं,—

"Force, as we know it, can be regarded only as certain conditioned effect of the unconditioned cause."

अर्थात् शक्तिके मूलतत्त्व सम्बन्धमें हम कुछ भी नहीं जानते, पर हां इतना जरूर है, कि यह किसी अपरिच्छिन्न कारणका एक निर्दिष्ट कार्यफलमात्र है। हार्वर्ट स्पेन्सरका शक्तितत्त्व भी सूक्ष्म दार्शनिकता और वैज्ञानिकताका परिचायक है। स्पेन्सरने शक्तिकी नित्यता (Persistence of Force) को स्वीकार किया है। उनका कहना है, कि आद्या शक्ति नित्या और सर्वव्यापिनी है। यह शक्ति अनादि और अनन्त है,—यथा—

"By persistence of force we really mean the persistence of some cause which transcends over knowledge and conception. In asserting it, we assert an unconditioned reality without beginning or end."

जो आद्य कारण हम लोगोंके ज्ञान और धारणाके अतीत है, शक्तिका सातत्य स्वीकार कर हम यथार्थमें उस दुर्ज्ञेय कारणका अस्तित्व स्वीकार करते हैं। वह आद्य कारण ही आद्यन्तरहित एक अपरिच्छिन्न सत्ताविशेष है।

हार्वर्ट स्पेन्सरने इसी शक्तिका Mysterious और Inscrutable Force नाम रखा है। उनके मतसे यह महाशक्ति ही इस विशाल विश्वब्रह्माण्डको प्रसविती है। हम लोगोंके मार्कण्डेयोक्त चण्डी वा देवीमाहात्म्यमें वही एक तत्त्व 'सैव विश्वं प्रसूयते" वाक्यमें सूचित है। इस शक्तिका विषय सोचनेसे बुद्धि ठिकाने नहीं रहती—ज्ञान अनन्तमें डूब जाती है।

चुम्बक-शक्ति या Magnetic force के सम्बन्धमें शक्तिविज्ञानमें यथेष्ट आलोचना देखी जाती है। शक्तिवादी वैज्ञानिक पण्डितोंने Kinetic तथा *P*otential *E*nergy के सम्बंधमें भी यथेष्ट आन्दोलन किया है। व्यवहारिक विज्ञानमें इन दोनों प्रकारके 'एनर्जी'का यथेष्ट प्रयोजन दिखाई देता है। Dynamics नामक शक्तिविज्ञानमें इस विषय पर विशद आलोचना की गई है। वाह्य वेगादि प्राप्त शक्ति ही साधारणतः Kinetic Energy कहलाती है। फिर द्रव्यादिके अभ्यन्तर जो शक्ति है, वही *P*otential Energy है। अधःपतनशील द्रव्य, चलनात्मक गोला, काइनेटिक एनर्जीका उदाहरण है। फिर उधर स्थितिस्थापक द्रव्यके अभ्यन्तर जो धर्म अवस्थान करके स्थितिस्थापकता-शक्ति प्रकाश करता है, उसको Potential Energy का उदाहरण कहते हैं। जैसे—एक वेंतको झुका कर छोड़ देनेसे वह पीछे अपनी भीतरी शक्तिके बल आपे आप पूर्ववत् सरलभाव धारण करता है। ये दोनों शब्द क्रियामाण

---

motion of bodies. Energy is power to change the state of motion of a body.

* एलेन साहबके एक ग्रन्थका नाम "Force and energy" है। उसमें लिखा है, A Power is that which initiates or terminates, accelerates or retards motion in one or more particles of ponderable matter or of the ethereal medium.

Allen साहबने 'फोर्स' और 'एनर्जी'-का जो नाम रखा है, यहां वह भी उल्लेखयोग्य है। जैसे—A Force is a power which intiates or accelerates aggregative motion, while it resists or retards separative motion in two or more particles of ponderable matter.

An Energy is a Power which resists or retards aggregative motion while it initiates or accelerates separative motion in two or more particles of ponderable or of the Ethereal medium.

या उदित Kinetic वा शांत Potential नामसे अभिहित हो सकते हैं।

हम पातञ्जलदर्शनमें भी ये दो शब्द देखते हैं। वैशेषिक-दर्शनमें भी संस्कार, वेग, नोदन इत्यादिकी आलोचना है। ये सब विषय भी प्राचीन हिन्दुओंके शक्तिविज्ञानके आलोच्य विषय समझे जाते थे।

भारतीय शास्त्रादिकी पर्यालोचना करनेसे देखा जाता है, कि शक्तिविज्ञानके सम्बंधमें अनेक सूक्ष्मतत्त्वके सूत्र वेदमें, उपनिषद्में, दार्शनिकशास्त्रमें, धर्मविज्ञानमें और पुराणादिमें लिपिबद्ध हुए हैं। आधुनिक पाश्चात्य-विज्ञान जड़विज्ञानके उन्नति-साधनमें चेष्टा कर जिस सूक्ष्म-सिद्धांत पर पहुंचे हैं, वह सिद्धांत क्रमशः भारतीय ऋषियोंके सिद्धांतका निकटवर्त्ती होता है। ये लोग अभी कहते हैं, Matter is force and conversely force is matter अर्थात् जड़ ही शक्ति है और शक्ति ही जड़ है। हमलोगोंके धर्मशास्त्रका कहना है, "सर्वं शक्तिमयं जगत्"। श्रीचण्डीमें लिखा है, "नित्यैव सा जगन्मूर्त्तिस्तया व्याप्तमिदं जगत्"। दार्शनिकोंने बहुत पहले कह रखा है, 'शक्ति शक्तिमतोरभेदात्।' आधुनिक विज्ञानने जड़पदार्थके क्षुद्रतम अंशका 'इलेक् ट्रन' नाम रखा है, यह भी शक्तिकी अवस्थाविशेष है।

शक्तिक (सं० पु०) १ शक्ति देखो। २ गंधक।

शक्तिकर (सं० त्रि०) शक्तिप्रद, बलकर।

शक्तिकुमार (सं० पु०) १ एक कवि। २ एक श्रेष्ठिपुत्र। (दशकुमारच०)

शक्तिग्रह (सं० पु०) शक्तिं गृह्णातीति शक्तिग्रह (शक्तिलांगुलाङ्कुशेति। पा ३।२।९) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या अच्। १ शिव, महादेव। २ कार्त्तिकेय। शक्तेः ग्रहः ग्रहणं। ३ शक्तिका अर्थ बतलानेवाली, शक्ति या वृत्तिका ज्ञान। ४ वह जो भाला या बरछी चलाता हो, भालाबरदार। (त्रि०) ५ शक्तिको ग्रहण करनेवाला।

शक्तिग्राहक (सं० पु०) शक्तिं गृह्णाति ग्राहयति च शक्ति-ग्रह-णिच्-ण्वुल्। १ शक्तिग्रहीता। २ शब्दका शक्तिबोधक हेतु, शब्दशक्तिज्ञान।

पहले वृद्धके व्यवहारानुसार सकेतका ग्रहण, पीछे उपवासादि द्वारा शक्तिज्ञान होता है। शब्दशक्ति देखो।

शक्तिजागर (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

शक्तिज्ञ (सं० त्रि०) शक्तिं जानातीति ज्ञा क। शक्तिज्ञाता, जो शक्ति जानते हों।

शक्तितन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद, शक्तिविषयक तन्त्र।

शक्तितस् (सं० अव्य०) शक्ति-तसिल्। शक्तिके अनुसार, यथाशक्ति।

शक्तिता (सं० स्त्री०) शक्तेः भावः तल् टाप्। शक्तिका भाव या धर्म, शक्तित्व।

शक्तिदास—मायाबीजकल्पके प्रणेता।

शक्तिदेव (सं० पु०) एक शाक्ततन्त्रके रचयिता।

शक्तिधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, शक्तेर्धरः। १ कार्त्तिकेय। (त्रि०) २ शक्तिधारक, ताकतवर।

शक्तिध्वज (सं० पु०) कार्त्तिकेय, स्कन्द।

शक्तिन (सं० पु०) वशिष्ठके एक पुत्रका नाम। शक्ति देखो।

शक्तिनाथ (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद।

शक्तिन्यास (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

शक्तिपर्ण (सं० पु०) सप्तपर्ण वृक्ष, छतिवन।

शक्तिपाणि (सं० पु०) शक्तिरस्त्रविशेषः पाणौ यस्य। कार्त्तिकेय, स्कन्द। (हलायुध)

शक्तिपूजक (सं० पु०) शक्तेः पूजकः। १ वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, शाक्त। २ तान्त्रिक, वाममार्गी।

शक्तिपूजा (सं० स्त्री०) शक्तेः पूजा। १ शक्तिका शाक्त द्वारा होनेवाला पूजन। २ तन्त्रभेद।

शक्तिपूर्व (सं० पु०) पराशर, शक्तिके पुत्र।

शक्तिबोध (सं० पु०) शब्देर्बोधः। १ शब्दशक्तिका ज्ञान, शब्दके अर्थका बोध। २ तन्त्रभेद।

शक्तिभद्र—चूड़ामणि नामक ग्रंथके रचयिता।

शक्तिभृत् (सं० पु०) शक्तिं बिभर्त्तीति भृ-क्विप् तुक् च। १ कार्त्तिकेय, स्कन्द। (त्रि०) २ शक्ति नामक अस्त्रधारी।

शक्तिभैरव (सं० क्ली०) तंत्रभेद।

शक्तिमत् (सं० त्रि०) शक्तिः विद्यतेऽस्य शक्ति-मतुप्। शक्तिविशिष्ट, शक्तियुक्त, ताकतवर।

शक्तिमत्ता (सं० स्त्री०) शक्तिमान् होनेका भाव या धर्म।

शक्तिमत्व (सं० क्ली०) शक्तिमतो भावः शक्तिमत् भावे त्व। शक्तिमान्‌का भाव या धर्म, शक्ति।

शक्तिमन्त्र (सं० क्ली०) शक्तिदेवताका मन्त्र, वह मन्त्र जो शक्तिके उपासक ग्रहण करते हैं।

शक्तिमय (सं० त्रि०) शक्तिस्वरूपार्थे मयट्। शक्ति स्वरूप।

शक्तिमान् (सं० त्रि०) शक्तिमत् देखो।

शक्तियशस् (सं० स्त्री०) विद्याधरीभेद।
(कथासरित्सा० ५६।११)

शक्तियामल (सं० क्ली०) यामल तन्त्रभेद। इसमें शक्ति माहात्म्य विस्तृत रूपसे वर्णित है।

शक्तिरक्षित (सं० पु०) किरातराजपुत्रभेद।
(कथासरित्सा० ७६।१६)

शक्तिरत्नाकर—तन्त्रभेद।

शक्तिवन—वनतीर्थभेद। भविष्योत्तरपुराणमें इस वनका माहात्म्य कीर्त्तित है।

शक्तिवल्लभ—रसकौमुदीके रचयिता।

शक्तिवर (सं० पु०) एक योद्धा।

शक्तिवादी (सं० पु०) वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, शाक्त।

शक्तिवीर (सं० पु०) वह जो शक्तिकी उपासना करता हो, वाममार्गी।

शक्तिवेग (सं० पु०) विद्याधरभेद।
(कथासरित्सा० २४।११)

शक्तिवैकल्य (सं० क्ली०) १ शक्तिका नाश, कमजोरी। २ असमर्थता।

शक्तिशोधन (सं० पु०) शाक्तोंका एक संस्कार। इसमें वे किसी स्त्रीको शक्तिको प्रतिनिधि बनानेसे पहले कुछ विशिष्ट क्रियाएं करके उसे शुद्ध करते हैं।

शक्तिष्ठ (सं० त्रि०) जिसमें शक्ति हो, शक्तिशाली, ताकतवर।

शक्तिसङ्गमतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रग्रन्थभेद।

शक्तिसङ्गमामृत (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

शक्तिसम्पन्न (सं० त्रि०) शक्तिसे युक्त, बलवान्, ताकतवर।

शक्तिसाधन (सं० क्ली०) शक्तिपूजाके समय स्त्रीसह शाक्तोंकी उपासना-प्रक्रियाविशेष।

शक्तिसिंह (सं० पु०) एक राजाका नाम। ये मदनरत्नके प्रणेता मदनसिंहके पिता थे।

शक्तिसेन (सं० पु०) काश्मीरके एक धनाढ्य व्यक्ति।
(राजतर० ६।२१६)

शक्तिस्वामी—कर्कोट वंशोद्भव राजा मुक्तापीड़के मन्त्री। इनके पिताका नाम था मित्र। (राजतर०)

शक्तिहर (सं० त्रि०) बलनाशकारी, बलहारक।

शक्तिहस्त (सं० पु०) स्कन्दभेद।

शक्तिहीन (सं० त्रि०) १ जिसमें शक्तिका अभाव हो, निर्बल, नाताकत। २ हीजड़ा, नामर्द, नपुंसक।

शक्तिहेतिक (सं० त्रि०) शक्तिर्हेति प्रहरणास्त्रं यस्य। शक्तिअस्त्रधारी योद्धा, जो शक्तिअस्त्र धारण करते हैं। पर्याय—शाक्तिक, लक्ष्यायुधधर। (शब्दरत्ना०)

शक्ती (सं० पु०) १ एक प्रकारके मात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १८ मात्राएं होती हैं और इसकी रचना ३+३+४+३+५ होती है। अन्तमें सगण, रगण या नगणमेंसे कोई एक और आदिमें एक लघु होना चाहिए। इसकी १, ६, ११ और १६वीं मात्रा लघु रहती है। यह छन्द भुजङ्गी और चन्द्रिका वृत्तकी चाल पर होता है। अन्तर यह है, कि वे गणबद्ध होते हैं और यह स्वतंत्र है। यह छन्द फारसीके 'करीमा वबख-शाय वर हाल मा। कि हस्तम् असीरे कमंदे हवा'-की बहरसे मिलता है। २ शक्तिवाला, शक्तिशाली, बलवान्।

शक्तीवत् (सं० त्रि०) शक्तियुक्त, बलवान्।

शक्तु (सं० पु० क्ली०) शक-बाहुलकात् तुन्। भर्ज्जित यवादिचूर्ण, भुने हुए जौ, चने आदिका आटा, सत्तू।

भुननेके बरतनमें पहले उसे भुन कर भूसी अलग कर ले, पीछे जांतेमें पीसे। इस प्रकार जो वस्तु तैयार होती है उसे सक्तु या सत्तू कहते हैं। यह सत्तू धान, जौ और चने आदिका होता है। इनमेंसे प्रत्येकका गुण भिन्न भिन्न है।

जौके सत्तूका गुण—शीतवीर्य्य, अग्निप्रदीपक, लघु, सारक, कफ और पित्तनाशक, रूक्ष और लेखन गुणयुक्त। यह सत्तू पानीमें या और किसी तरल पदार्थमें

घोल कर पीनेसे बलदायक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, भेदक, तृप्तिकारक, मधुररस और उत्तरोत्तर बलवर्द्धनशील तथा कफ, पित्त, श्रान्ति, क्षुधा, पिपासा, व्रण और नेत्ररोगविनाशक होता है। यह रौद्र, दाह, पथपर्यटन और व्यायामपरिपीड़ित व्यक्तियोंके लिये विशेष उपकारी है।

चने और जौका सत्तू—चना और जौ समान भाग ले कर पूर्वोक्त प्रकारसे जो सत्तू बनता है, उसे चने जौका सत्तू कहते हैं। यह सत्तू ग्रीष्मकालमें घी और चीनोके साथ मिला कर खानेसे विशेष उपकार होता है।

धानका सत्तू—धानको भून कर उक्त प्रकारसे सत्तू तैयार करनेसे उसे धानका सत्तू कहते हैं। यह सत्तू अग्निकारक, लघु, शीतवीर्य, मधुररस, ग्राही, रुचिकारक, हितजनक, बलप्रदायक और शुक्रवर्द्धक होता है।

वैद्यकशास्त्रमें सत्तू खाना समय-विशेषमें निषिद्ध बताया है। खानेके बाद सत्तू खाना मना है। सत्तूको दांतसे चबा कर या रातको नहीं खाना चाहिए। अधिक परिमाणमें सत्तू खाना मना है, जलमें घोल कर ही सत्तू खाना चाहिये दूसरेमें नहीं। सत्तू खानेके समय जल न पीना चाहिये। भक्षणकालमें पुनर्दत्त सत्तू खाना भी निषिद्ध है। दूसरे द्रव्यके साथ मिला कर सत्तू सेवन करे और उसके ऊपर दूसरा सत्तू डाल दे, तो उसे पुनर्दत्त सत्तू कहते हैं। मांसादि आमिष द्रव्य या दूधके साथ सत्तू खाना मना है। गरम सत्तू खाना भी हानिकारक है।

ज्योतिषमें लिखा है, कि जन्मतिथिके दिन जन्मतिथिकी पूजादि करके सत्तू भोजन करे। उस दिन सत्तू खानेसे रिपु विनष्ट होता है तथा निरामिष भोजनसे दूसरे जन्ममें पाण्डित्यलाभ होता है।

मेष-संक्रान्तिमें देवता और पितरोंके उद्देशसे जलपूर्णघटके साथ ब्राह्मणको शक्तुदान करनेकी विधि है। जो इस दिन शक्तु-दान करते हैं, वे सभी पापोंसे विमुक्त होते हैं।

चातुर्मास्य व्रतमें प्रातःस्नानके बाद घृतशक्तु दक्षिणा देनेकी विधि है।

शक्तुक (सं० पु०) भावप्रकाशके मतसे एक प्रकारका बहुत तीव्र और उग्र विष जो भसींड़के समान होता है। पीसनेसे यह सहज हीमें पिस कर सत्तूके समान हो जाता है।

शक्तुफला (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष, सफेद कीकर। (अमर०)

शक्तुफलिका (सं० स्त्री०) शक्तुफली देखो।

शक्तुफली (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष, सफेद कीकर। (शब्दरत्ना०)

शक्त्यर्द्ध (सं० पु०) शक्तेरर्द्धः। शक्तिका अर्द्ध परिमाण। श्रमसे जब कुक्षि, ललाट और ग्रीवासे पसीना निकले और दीर्घ निश्वास बहे, तो समझना चाहिये शक्तिका आधा प्रयोग हुआ है।

शक्त्रि (सं० पु०) वशिष्ठमुनिके ज्येष्ठ पुत्र। एक दिन इक्ष्वाकु वंशीय राजा कल्माषपाद आखेटको गये थे। वहां क्षुधा तृष्णासे अति कातर हो वनमें जाते जाते एक व्यक्तिके जाने लायक एक सङ्कीर्ण पथ पर पहुंचे। उसी पथसे उन्होंने शक्त्रिको आते देखा। राजाने शक्त्रिको रास्तेसे हट जाने कहा। इस पर शक्त्रिने उत्तर दिया, 'यह मेरा पथ है। राजगण ब्राह्मणको पथप्रदान करेंगे, यही सनातनधर्म है, अतएव पथसे मैं हट नहीं सकता।' इस प्रकार दोनोंमें झगड़ा खड़ा हो गया। पीछे राजाने मोहवशतः उन्हें चाबुकसे मारा। इस पर मुनिश्रेष्ठ शक्त्रिने क्रुद्ध हो कर राजाको शाप दिया, 'मैं तपस्वी हूं, तुमने मुझसे राक्षसकी तरह पीटा, इस कारण आजसे तुम राक्षस हो कर रहोगे।' राजा मुनिके शापसे राक्षसत्वको प्राप्त हुए तथा संयोग पा कर पहले उन्होंने इसी शक्त्रिका भक्षण किया। (भारत १।१७७ अ०)

शक्न (सं० त्रि०) प्रियंवद, प्रियवादी। (अमरटीका भरत)

शक्नु (सं० त्रि०) प्रियंवद, प्रियवादी।

शक्मन् (सं० पु०) शक (अशिशकिभ्यां छन्दसि। उण् ४।१४६) इति मनिन्। १ शक्ति। २ इन्द्र। (उज्ज्वल) (क्ली०) ३ कर्म। (ऋक् ६।३४।३)

शक्य (सं० त्रि०) शक (शकिसहोश्च। पा ३।१।९९) इति यत्। १ समर्थनीय, किया जाने योग्य, जो किया जा सके, क्रियासम्भव। २ शक्तियुक्त, जिसमें शक्ति हो।

३ शक्याश्रय, शक्तिका आश्रय। (पु०) ४ शब्दशक्तिके द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। अभिधा, लक्षण और व्यञ्जना तीन शब्दकी वृत्ति है, जहां शब्दका अर्थबोध होता है, उसे शक्य कहते हैं। शब्दका शक्ति द्वारा अर्थ बोधपद शक्य है। शक्तिवादमें लिखा है, कि ईश्वरकी इच्छाका नाम संकेत है, यही संकेत शक्ति है, इच्छा द्वारा अर्थबोधक जो पद है, उसे वाचक या शक्य कहते हैं।

शब्दशक्ति देखो।

शक्यता (सं० स्त्री०) शक्य होनेका भाव या धर्म, क्रियात्मकता।

शक्यतावच्छेदक (सं० त्रि०) शक्यताया अवच्छेदकं। शक्यांशमें भासमान धर्म। शक्य पदार्थके असाधारण धर्म है, जिस धर्म द्वारा अर्थकी शब्दसङ्केतविषयता बोधगम्य होती है, वही धर्म है।

शक्यप्राप्ति (सं० स्त्री०) न्यायदर्शनके अनुसार प्रमाताके वे प्रमाण जिनसे प्रमेद सिद्ध होता है।

शक्र (सं० पु०) शक्नोति दैत्यान् नाशयितुं शक (स्फायितंचीति। उण् २।१३) इति रक्। १ दैत्यों का नाश करनेवाले, इन्द्र। २ कुटजवृक्ष, कोरैया। ३ अर्जुनवृक्ष, कोह वृक्ष। ४ इन्द्रयव, इन्द्रजौ। ५ ज्येष्ठा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता इंद्र हैं। इन्द्र देखो। ६ रगणके चौथे भेद अर्थात् (ऽ।।ऽ) की संज्ञा जिसमें छः मात्राएं होती हैं। (त्रि०) ७ समर्थ, योग्य। (ऋक् ४।१६।६)

शक्रकार्मुक (सं० क्ली०) शक्रस्य इंद्रस्य कार्मुकं। इंद्र-धनुष।

शक्रकुमारिका (सं० स्त्री०) शक्रस्य कुमारिका, शक्रकुमारी, शक्रध्वजयष्टिविशेष। शक्रमातृका देखो।

शक्रकेतु (सं० पु०) शक्रस्य केतुः। इन्द्रध्वज।

शक्रक्रीड़ाचल (सं० पु०) शक्रस्य क्रीड़ाचलः क्रीड़ापर्वतः। सुमेरु पर्वत। इन्द्र इस पर्वत पर क्रीड़ा करते हैं, इस लिये इसको शक्रक्रीड़ाचल कहते हैं।

शक्रगोप (सं० पु०) इन्द्रगोप नामक कीड़ा। वीरवहूटी।

शक्रचाप (सं० क्ली०) इन्द्रधनुष।

शक्रज (सं० पु०) शक्राज्जायते इति जन-ड। १ काक, कौआ। (त्रि०) २ इन्द्रजातमात्र।

शक्रजा (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी लता, इन्द्रायण, इनारुन।

शक्रजात (सं० पु०) शक्राज्जातः। शक्रज देखो।

शक्रजानु (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक वानरका नाम। (रामायण ६।७५।६१)

शक्रजाल (सं० क्ली०) इंद्रजाल।

शक्रजित् (सं० पु०) शक्रं जितवान् जि-क्विप् तुक् च। १ इंद्रविजयी रावणके पुत्र मेघनाद। (त्रि०) २ इंद्र-जेता, इंद्रको जीतनेवाला।

शक्रतरु (सं० पु०) भांगका पेड़।

शक्रत्व (सं० क्ली०) शक्रस्य भावः त्व। शक्रका भाव या धर्म, इंद्रत्व।

शक्रदिश् (सं० स्त्री०) शक्रस्य दिक्। पूर्व दिशा। इस दिशाके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रदेव (सं० पु०) १ इंद्र। २ कलिङ्गके एक राजाका नाम। (भारत भीष्मपर्व) ३ हरिवंशके अनुसार शृगालके एक पुत्रका नाम।

शक्रदेवता (सं० पु०) इंद्रदेवता।

शक्रदैवत (सं० क्ली०) ज्येष्ठा नक्षत्र। इसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं। (बृहत्स० ७।१२)

शक्रद्रुम (सं० पु०) शक्रस्य द्रुमः। १ देवदारु। २ वकुल-वृक्ष, मौलसिरी।

शक्रधनु (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

शक्रधनुस् (सं० क्ली०) शक्रस्य धनुः। इंद्रधनुष।

आकाशमें यह धनुष दिखाई देनेसे शुभाशुभ कैसा फल होता है, वृहत्संहितामें वह विषय इस प्रकार लिखा है—

सूर्यकी नाना प्रकारकी वर्णयुक्त किरण वायु द्वारा विघटित हो कर मेघयुक्त आकाशमें जो धनुषका आकार दिखाई देता है, उसको शक्रधनुः कहते हैं। किसी किसी आचार्यका कहना है, कि अनन्त नामक कुलनागके निश्वाससे इस इंद्रधनुषकी उत्पत्ति होती है। आकाशमें इंद्रधनुष दिखाई देनेके समय राजा यदि उसकी ओर युद्धयात्रा करे, तो उन्हें युद्धमें पराजय होती है। इस धनुषके अच्छिन्न, अनतिगाढ़, ज्योतिःविशिष्ट, स्निग्ध, विविध वर्णयुक्त, दो बार उदित या अनुलोम होनेसे शुभ

होता है। ईशान, अग्नि, नैर्ऋत और वायु इन चार कोनोंमें यदि इंद्रधनुष उठे, तो उस स्थानके राजाका विनाश होता है। मेघशून्य आकाशमें यदि इंद्रधनुष दिखाई दे, तो भीषण महामारी उपस्थित होती है। इंद्रधनुष जलमें दिखाई देनेसे अनावृष्टि, पृथिवी पर दिखाई देनेसे शस्यहानि, वृक्ष पर दिखाई देनेसे व्याधि, वल्मीकमें दिखाई देनेसे शत्रुभय और रातको दिखाई देनेसे सचिवका विनाश होता है। अनावृष्टिके समय यह धनुष यदि पूर्वकी ओर दिखाई दे, तो अत्यन्त जलवर्षण तथा वृष्टिके समय दिखाई देनेसे जलनिवारण होता है। पश्चिमकी ओर यह धनुष उगनेसे सर्वदा वृष्टि होती है। रातको यदि पूर्वकी ओर यह दिखाई दे, तो राजाका अमङ्गल तथा दक्षिण, पश्चिम और उत्तरकी ओर दिखाई देनेसे यथाक्रम सेनापति, नायक और मंत्रीका अमङ्गल होता है। रात्रिकालमें इस धनुषके श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्ण होनेसे यथाक्रम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका अमङ्गल होता है। (वृहत्स० ३५ अ०)

शक्रध्वज (सं० पु०) शक्रस्य ध्वजः। इंद्रध्वज, भाद्रमासकी शुक्लाद्वादशी तिथिमें पूजनीय इंद्रदैवत ध्वजाकार पदार्थ। एक ध्वजाकार पदार्थ प्रस्तुत कर इंद्रदेवके उद्देश्यसे भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें पूजादि कर बड़े समारोहसे उत्सव करना होता है। (देवीपु० २१ अ०) इन्द्रध्वज देखो।

शक्रनन्दन (सं० पु०) शक्रस्य नन्दनः। १ इंद्रके पुत्र अर्थात् अर्जुन। २ इंद्रपुत्रमात्र। शक्रं नन्दयतीति नन्दि-ल्यु। (त्रि०) ३ इंद्रानन्दकारक।

शक्रनेमी (सं० पु०) १ देवदारका वृक्ष। २ मेषशृङ्गी, मेढ़ासिंगी। ३ कुटजवृक्ष, कोरैया।

शक्रपर्याय (सं० पु०) शक्रस्य पर्यायो नाम यस्य। १ कुटजवृक्ष, कोरैया। २ इंद्रवाचक।

शक्रपादप (सं० पु०) शक्रस्य पादपः। १ देवदारका पेड़। २ कुटजवृक्ष, कोरैया।

शक्रपुर (सं० क्ली०) शक्रस्य पुरं। इंद्रपुर, अमरावती।

शक्रपुष्पिका (सं० स्त्री०) शक्रपुष्पी स्वार्थे कन् ततष्टाप्, अत इत्वं। १ अग्निशिखा नामका वृक्ष। २ कलिहारी, लाङ्गली। ३ नागदमनी, नागदौना।

शक्रपुष्पी (सं० स्त्री०) शक्रपुष्पिका देखो।

शक्रप्रस्थ (सं० क्ली०) इंद्रप्रस्थ, इसको पाण्डवोंने खाण्डववन जला कर बसाया था। (भागवत १०।७१।२२)

शक्रबाणासन (सं० क्ली०) इंद्रधनुष। (रामायण ४।३१।११)

शक्रबीज (सं० क्ली०) इंद्रयव, इंद्राजौ। (राजनि०)

शक्रभवन (सं० क्ली०) शक्रस्य भवनं। स्वर्ग। (त्रिका०)

शक्रभिद् (सं० पु०) शक्रं भिनत्तीति भिद् क्विप्। इन्द्रको दबानेवाला, मेघनाद।

शक्रभूभवा (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी नामको लता, इन्द्रायण।

शक्रभूरुह (सं० पु०) कुटजवृक्ष, कुड़ा, कोरैया। अङ्गरेजीमें इसे Wrightia antidysenterica कहते हैं।

शक्रमातृ (सं० स्त्री०) शक्रस्य मातेव। इन्द्रकी माता अर्थात् भार्गी।

शक्रमातृका (सं० स्त्री०) शक्रस्य मातृकेव। १ इन्द्रध्वज। २ शक्रजननी, भार्गी। (कालिकापु०)

शक्रमूर्द्धन् (सं० पु०) शक्रस्येव मूर्द्धा यस्य। वल्मीक, बाँबी। (त्रिका०)

शक्रयव (सं० क्ली०) शक्रबीज, इन्द्रजौ। (राजनि०)

शक्रलोक (सं० पु०) शक्रस्य लोकः। इन्द्रलोक, स्वर्ग।

शक्रवल्ली (सं० स्त्री०) शक्रप्रिया वल्ली। इन्द्रवारुणी नामको लता, इंद्रायण।

शक्रवापी (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक नागका नाम। (भारत सभापर्व)

शक्रवाहन (सं० पु०) शक्रं वाहयतीति वह-णिच्-ल्यु। इंद्रका वाहन अर्थात् मेघ, बादल।

शक्रवृक्ष (सं० पु०) कुटज वृक्ष, कोरैया।

शक्रशरासन (सं० क्ली०) शक्रस्य शरासनं। इंद्रधनुष। (हलायुध)

शक्रशाखिन् (सं० पु०) शक्र नामकः शाखी। कुटजवृक्ष, कोरैया। (भावप्र०)

शक्रशाला (सं० स्त्री०) १ यज्ञभूमिमें वह स्थान जहां इंद्रके उद्देश्यसे बलि दी जाती हो। २ प्रतिश्रय।

शक्रशिरस् (सं० क्ली०) शक्रस्य शिर इव। १ वल्मीक, बाँबी। २ इंद्रमस्तक।

शक्रसारथि (सं० पु०) शक्रस्य सारथि। इन्द्रके सारथी अर्थात् मातलि।

शक्रसुत (सं० पु०) शक्रस्य सुतः। इन्द्रका पुत्र वालि जिसे रामने मारा था।

शक्रसुधा (सं० स्त्री०) शक्रस्य सुधेव। कुंदरू, गुंदवरोसा।

शक्रसृष्टा (सं० स्त्री०) शक्रेण सृष्टा। हरीतकी, हरें। (त्रिका०)

शक्राख्य (सं० पु०) शक्रस्य आख्या यस्य। १ पेचक, उल्लू। (त्रिका०) (लि०) २ इंद्रनामक।

शक्राग्नी (सं० पु०) शक्रश्च अग्निश्च दैवते द्वंद्वे इकारस्य दीर्घः। विशाखा नक्षत्र। इस नक्षत्रके अधिष्ठात्री देवता इंद्र और अग्नि माने जाते हैं। (बृहत्संहिता ९८।४)

शक्राणी (सं० स्त्री०) शक्रस्य पत्नी ङीष्, आनुक्। १ इंद्रकी पत्नी, शची। २ निर्गुण्डी, शेफालिका।

शक्रात्मज (सं० पु०) शक्रस्य आत्मजः। अर्जुन।

शक्रादन (सं० क्ली०) शक्रेण अद्यते अद्-ल्युट्। शक्रतरु, विजया, भाँग।

शक्रादित्य (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

शक्रानलाख्य (सं० लि०) इंद्र और अग्नि-सम्बंधी।

शक्रानिल (सं० पु०) ज्योतिषमें प्रभव आदि साठ संवत्सरोंके बराह युगोंमेंसे दशवें युगके अधिपति। इनके युगमें ये पांच संवत्सर होते हैं,—परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस और अनल।

शक्राभिलग्नरत्न (सं० क्ली०) मूल्यवान् प्रस्तरविशेष।

शक्रायुध (सं० क्ली०) शक्रस्य आयुध, इंद्रधनुष।

शक्रारि (सं० पु०) शक्रस्य अरिः। इंद्रका शत्रु।

शक्रावर्त्त (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम। (भारत वनपर्व)

शक्राशन (सं० क्ली०) शक्रेण अश्यते इति अश-ल्युट्। १ विजया, भाँग। कहते हैं—श्रीरामचंद्रकी जब बंदरसेना लंकाकी लड़ाईमें मारी गई, तब इंद्रने अमृतसिञ्चन द्वारा उन्हें पुनर्जीवित किया। बंदरोंको गात्रच्युत भूमिपतित अमृतकणासे विजयाकी उत्पत्ति हुई। वैद्यकशास्त्रके मतसे यह तीक्ष्ण, उष्ण, मोहकारक, बल, मेधा और अग्निवर्द्धक, श्लेष्मनाशक और रसायन माना गया है। २ कुटज, कोरैया। ३ कटजबोज, इंद्रजौ।

शक्रासन (सं० क्ली०) १ इंद्रका आसन। २ सिंहासन।

शक्राह्व (सं० पु०) शक्रस्य आह्वा यस्य। १ कुटज बीज, इन्द्रजौ। २ कुटज वृक्ष। ३ शक्रतरु, भाँग। (लि०) ४ इन्द्रनामक।

शक्राह्वा (सं० स्त्री०) शक्राह्व देखो।

शक्रि (सं० पु०) शक्र-बाहुलकात्-क्रिन्। १ मेघ, बादल। २ वज्र। ३ हस्ती, हाथी। ४ पर्वत, पहाड़। (संक्षिप्तसार उणादि)

शक्रेन्द्र (सं० पु०) बीरबहूटी या इंद्रगोप नामका कीड़ा।

शक्रोत्थान (सं० क्ली०) शक्रस्य शक्रध्वजस्य उत्थानम्। शक्रध्वजोत्सव। भाद्र मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें यह उत्सव करना होता है। रघुनंदनने तिथितत्त्वमें द्वादशीकृत्यके मध्य इसका विधान यों किया है—

सूर्यके सिंह राशिमें रहते समय द्वादशी तिथिमें सर्वविघ्नविनाशके लिये इस उत्सवका अनुष्ठान करना होता है। पुराकालमें राजा उपरिचर वसुने इस शक्रोत्थानोत्सवका विवरण इस प्रकार कहा था। यथा—भाद्र मासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें नाना प्रकारके उत्सवोंके साथ इन्द्रध्वजके लिये वृक्ष ला कर उसे वर्द्धित करे। एक वर्ष तक यह वृक्ष बढ़ेगा। पीछे इन्द्रध्वजके लिये माङ्गलिक उत्सवका अनुष्ठान करना होगा। वृक्षके सम्बन्धमें भी विशेष नियम हैं। उद्यान, देवगृह, श्मशान और रास्ते पर जो वृक्ष उत्पन्न होते हैं, वे सब वृक्ष इन्द्रध्वजके लिये ग्रहण नहीं करने चाहिये। पक्षियोंके कुलायसंकुल, बहु कोटरयुक्त और अग्निदग्धवृक्ष निन्दनीय है। स्त्री नामसे अभिहित, ह्रस्व अथवा कृश वृक्ष भी निषिद्ध है। अर्जुन, अश्वकर्ण, प्रियक, उदुम्बर और वट ये पांच प्रकारके वृक्ष प्रशस्त हैं। इनके अतिरिक्त देवदारु और शाल आदि वृक्ष भी ग्रहण किये जा सकते हैं। किन्तु अप्रशस्त वृक्ष कदापि ग्रहण न करे।

दूसरे दिन सबेरे उस वृक्षको काट डाले। पीछे मूलसे आठ अंगुल काट कर जलमें डाल दे। पीछे

उस वृक्षको पुरद्वार पर ला कर उसी जगह ध्वज निर्माण करे। भाद्रमासके शुक्ल पक्षकी अष्टमी तिथिमें उक्त ध्वजको वेदी पर रखना होता है। ५२ हाथका ध्वज श्रेष्ठ और ३२ हाथका अधम माना गया है। इस उत्सवमें शाल काष्ठकी ५ कुमारी और इन्द्रमाता बनानी होती है। ध्वजके बाद परिमाणमें इन्द्रकी पञ्च कन्या बनावे। मातृकाका आधा या दो हाथका यन्त्र निर्माण करे। इसी प्रकार कुमारी, मातृका और केतु निर्माण कर शुक्लपक्षकी एकादशी तिथिमें इनका अधिवास करना होता है। 'गन्धद्वारा दुराधर्षा' इत्यादि मन्त्र-से मही, गन्ध, शिला, धान्य आदि अधिवास द्रव्य द्वारा उस ध्वजका अधिवास करना कर्त्तव्य है। इस प्रकार अधिवास शेष होने पर अति विस्तृत वासव-मण्डल निर्माण करना उचित है। इसके बाद पहले आदिदेव विष्णुकी पूजा कर स्वर्ण या पित्तलादि धातु, दारुवा मृत्तिका द्वारा इन्द्रकी प्रतिमूर्त्ति निर्माण करे। पीछे मण्डलके बीचमें उस मूर्त्तिको रख कर यथाविधान पूजा करे। पूजा शेष होने पर ध्वजा उठा कर मन्त्र पढ़े।

पहलेकी तरह विधानानुसार उस ध्वजमें शची, मातलि, कुमार, जयन्त, वज्र, ऐरावत, ग्रहगण, दिक्-पाल, देवसमूह तथा सभी गणदेवताकी पूजा और अपूप, पायस आदि नैवेद्य द्वारा अर्चना होती है। इसके बाद पूजित देवताओंके उद्देशसे होम करना होता है। होमके बाद इन्द्रके उद्देशसे बलि दे और पीछे ब्राह्मण-भोजन करावे। इस विधानसे ७ दिन पूजा करनी होती है।

राजा स्वयं 'त्रातारं' इत्यादि इन्द्रके प्रिय मन्त्रसे श्रवणानक्षत्रयुक्त द्वादशीके दिन शक्रोत्थापन करे। पीछे भरणीके अन्त्यपादमें रातको राजा तथा अन्यान्य सभी लोगोंकी निद्रित अवस्थामें प्रतिमा विसर्जन करने-का विधान है। इस समय राजा यदि प्रतिमाके दर्शन करें, तो छः मासमें उनकी मृत्यु होती है। अतएव उनके असाक्षात्में विसर्जन करना नितान्त कर्त्तव्य है।

जो इस विधिके अनुसार इन्द्रकी पूजा करते हैं, वे इस लोकमें आधिपत्य लाभ कर अंतमें इन्द्रलोक जाते हैं। उनके राज्यमें दुर्भिक्ष, शस्यविघ्नकर ६ प्रकारकी ईति और प्रजागण अधार्मिक नहीं होती तथा किसीकी अकालमृत्यु भी नहीं होती। इस उत्सवसे राज्यमें शांति विराजती है, इस कारण यह उत्सव राजाको अवश्य करना चाहिये।

वृहत्संहितामें शक्रध्वजका विषय इस प्रकार लिखा है—देवगण जब युद्धमें असुरोंसे हार गये, तब उन्हें जय करनेके लिये उन्होंने ब्रह्माकी शरण ली। ब्रह्माने उन्हें क्षीरोद समुद्रके किनारे विष्णुके पास जाने कहा। तद-नुसार देवताओंने विष्णुके पास जा कर उनका स्तव किया। विष्णुने संतुष्ट हो कर असुरवधके लिये इंद्रको एक ध्वजा दी। इन्द्रने वह ध्वजा पा कर युद्धमें असुरों-का संहार किया।

अनन्तर इन्द्रने चेदिपति उपरिचर वसुके प्रति सन्तुष्ट हो कर उन्हें यह ध्वजा दे दिया। राजाने विधि-पूर्वक इस ध्वजाकी पूजा करके विविध उत्सव किया। इन्द्रने इस उत्सवसे प्रसन्न हो कर कहा था, कि जो राजा यह उत्सव करेंगे, वे इन वसुकी तरह वसुमान् हो कर विचरण करेंगे। उनकी प्रजा सन्तुष्ट, भयरोगविव-र्जित और प्रभूतान्नयुक्त होगी तथा यह ध्वज भी सत् और असत् निमित्त द्वारा शुभाशुभ फल प्रकाश करेगा। तभीसे विविध उत्सवके साथ राजे महाराजे इस ध्वज-की पूजा करते आ रहे हैं।

हम रामायणके अयोध्याकाण्डमें भी इन्द्रध्वजके गौरववर्द्धक श्लोकका उल्लेख पाते हैं—

"महेन्द्रध्वजसंकाश वत्स मे मनुजध्वजः।"

उस समय यह उत्सव राजाओंका अशेष कल्याण-कर और अभीष्ट सिद्धिप्रद समझा जाता था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

शक्रोत्सव (सं० पु०) शक्रस्य उत्सवः। इन्द्रका उत्सव। शक्रोत्थान देखो।

शक्रु (सं० पु०) शक (मृड् शक्यविभ्यः क्लः। उण् ४।१०८) इति क्र। प्रियंवद, प्रियवादी। शकल देखो।

शक्वन् (सं० पु०) शक्नोतीति शक-वनिप् (स्नामदि-पदीति। उण् ४।११२) १ हस्ती, हाथी। (उज्ज्वल) २ शक्तिमान् पुरुष।

शक्वर (सं० पु०) शक्वन्-रच् । वृष, बैल । २ आकाश । (शुक्लयजु० ५।५)

शक्वरी (सं० स्त्री०) शक्नोति कर्माणि कर्त्तुमिति शक-वनिप् (स्यामदि पदीति। उर्ण् ४।११२) (वनो रच्। पा ४।१।७) ततो ङीप् च । १ अङ्गुलि, उंगली। २ नदीविशेष । ३ मेखला । ४ छन्दोभेद, चतुर्दशाक्षरपादक छन्दः। जैसे—असंबाधा, वसन्ततिलक, सिंहोद्धता, अपराजिता, प्रहरणकलिका, वासन्ती, लोला और नांदीमुखी आदि। ५ ऋक्। (ऋक् १०।७१।११) ६ गाभी, गाय। (निघण्टु २।११)

शक्का (सं० पु०) शक्वन् देखो।

शख्स (अ० पु०) शख्स देखो।

शख्स (अ० पु०) व्यक्ति, जन, मनुष्य ।

शख्सियत (अ० स्त्री०) शख्सका भाव या धर्म, व्यक्तिता, व्यक्तित्व ।

शख्सी (अ० वि०) शख्सका, मनुष्यका, व्यक्तिगत ।

शगल (अ० पु०) १ व्यापार, काम-धंधा । २ वह काम जो यों ही समय बिताने या मन बहलानेके लिये किया जाय, मनोविनोद ।

शगुन (हिं० पु०) १ किसी कामके समय होनेवाले लक्षणोंका शुभाशुभ विचार, शकुन। विशेष विवरण शकुन शब्दमें देखो। २ किसी कामके आरम्भमें होनेवाले शुभ लक्षण। ३ नजराना, भेंट। ४ एक प्रकारकी रकम जो विवाहकी बातचीत पक्की होने पर होती है। इसमें कन्यापक्षके लोग वरपक्षके यहां कुछ मिठाई और नगद आदि भेजते हैं। इसे तिलक या टीका भी कहते हैं। ५ बहलीमें वह स्थान जहां बैल हांकनेवाला बैठता है।

शगुनियां (हिं० पु०) वह जो ज्योतिष या रमल आदिके द्वारा शुभाशुभ शगुनों आदिका विचार करता हो, साधारण कोटिका ज्योतिषी।

शगून (हिं० पु०) शगुन देखो।

शगूनियां (हिं० पु०) शगुनियां देखो।

शगूफा (फा० पु०) १ बिना खिला हुआ फूल, कली। २ पुष्प, फूल। ३ कोई नई और विलक्षण घटना।

शग्म (सं० क्ली०) सुख। (शुक्लयजु० ३।४३)

शग्मन् (सं० क्ली) शग्मन् देखो।

शग्मिय (सं० त्रि०) सुखविशिष्ट। (शाङ्खा० ब्रा० ११)

शङ्कु (सं० पु०) १ बैल जो छकड़ा खींचता है। २ भय, डर, आशंका।

शङ्कन (सं० पु०) १ राजभेद। २ शङ्काकर।

शङ्कनीय (सं० त्रि०) शङ्क-अनीयर्। शङ्का करनेयोग्य, भयके योग्य।

शङ्कर (सं० पु०) शं कल्याणं करोतीति शम् कृ (शमि धातोः संज्ञायां। पा ३।२।१४) इति अच्। १ शिव, महादेव। ये सर्वोंका मङ्गल करते हैं, इस कारण ये शङ्कर नामसे ख्यात हैं। स्कन्दपुराणमें स्वयं शिवने अपने इस नामकी उत्पत्ति इस तरह की है,—भक्तोंके सर्वदा ध्यानमें तुष्ट हो उन्हें पवन अर्थात् पवित्र तथा निरामय करनेके कारण मेरा शङ्कर और भूतनाथ नाम हुआ है। २ शङ्कराचार्य। बहुतोंका विश्वास है, कि ये शङ्करके अवतार हैं। ३ श्वेतार्क, श्वेत अकवन। ४ भीमसेनी कपूर। ५ कपोत, कबूतर। (वैद्यकनि०) ६ एक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १६ और १० के विश्राम से २६ मात्राएं होती हैं और अन्तमें गुरु लघु होता है। ७ एक राग। यह मेघरागका आठवां पुत्र कहा गया है। कहते हैं, कि इसका रङ्ग गोरा है, श्वेत वस्त्र-धारण किये हुए है, तीक्ष्ण त्रिशूल इसके हाथमें है, पान खाये और अरगजा लगाये स्त्रीके साथ विहार करता है। शास्त्रोंमें यह सम्पूर्ण जातिका कहा गया है। रात्रिका प्रथम पहर इसके गानेका समय है और यों रात्रिमें किसी समय गाया जा सकता है। (त्रि०) ८ मङ्गल करनेवाला। ९ शुभ। १० लाभदायक।

शङ्कर—१ विल्वलके उदयचन्द्रने (ईस्वी सन् ७६५) इनके साथ नेलवेलीमें युद्ध किया। ये शङ्करसेनापति नामसे प्रसिद्ध थे। २ 'गीतगोविन्दतिलकोत्तम' नामक ग्रन्थमें कालिदासके पुत्र। हृदयाभरण और देवदासके भाई कह कर इनका परिचय मिलता है। ३ दामोदरके पिता तथा सत्कारदामोदरमयूखके प्रणेता सिद्धेश्वरके पितामह। ४ 'ओगेण्टि' वंशमें उत्पन्न होनेके कारण इनका दूसरा नाम ओगेण्टि शङ्करभट्ट था। इनके पुत्र सीतारामविहारके प्रणेता लक्ष्मण सोमयाजी थे। ५ भास्वतीकरणके प्रणेता शतानन्दके

(ईस्वी सन् ११००) पिता। शङ्करकी पत्नीका नाम था सरस्वती। ६ एक ज्योतिःशास्त्रज्ञ पण्डित। ये शङ्करभट्ट नामसे विख्यात थे। भट्टोत्पलने वृहज्जातकमें इनका उल्लेख किया है। ७ अध्यात्मरामायणके टीकाकार। ८ 'आराधन-रत्नमाला'के प्रणेता। ये शङ्कर पण्डित नामसे परिचित थे। ९ एक कात्यायन-श्रौतसूत्रके टीकाकार। प्रयोगसार नामक पुस्तकमें देवभद्रने इनका उल्लेख किया है। १० कृष्णकर्णामृत-टीकाकार। ११ गायत्रीपुरश्चरणके प्रणेता। १२ गोरक्षशतकटीका तथा योगसूत्रटीकाकार। १३ जगन्नाथ-स्तोत्र और जगन्नाथाष्टकके प्रणेता। १४ तिथि-निर्णयव्याख्याकार। ये आचार्य- उपाधिसे परिचित थे। १५ त्रिपुरसुन्दरीमानसपूजाके रचयिता। इनकी उपाधि भट्ट थी। १६ दशास्फुटमाला और पञ्चपक्षी नामक दो ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ये एक मशहूर ज्योतिषी थे। १७ रामार्याकाव्यके लेखक। १८ विश्वेश्वरमाहात्म्यके प्रणेता। १९ शङ्करविजयविलासके प्रणेता। ये शङ्करदेशिकेन्द्र नामसे विदित थे। २० शारदातिलकभाणके प्रणेता। २१ सदाचारविवरणके प्रणेता। २२ सन्न्यासपद्धतिके प्रणेता। २३ सिद्धविद्यादीपिकाके प्रणेता। ये जगन्नाथके शिष्य थे। २४ अनन्तभट्टके पुत्र। जयसिंहके पुत्र राजारामसिंहके आदेशानुसार इन्होंने 'विद्याविनोद' नामक ग्रन्थ रचा। इनका लिखा 'शङ्कराख्य' नामक एक और वैद्यक ग्रन्थ मिलता है। २५ वैद्य त्रिमल्लभट्टके पुत्र। इन्होंने रसप्रदीप नामक ग्रन्थ लिखा। साधारणमें ये शङ्कर भट्ट नामसे परिचित थे। २६ नारदके पुत्र तथा मानव-शुल्वसूत्रभाष्यकार। २७ शङ्कर आचार्य वङ्गमें वास करनेके कारण ये गौड़ उपाधिसे सर्वत्र परिचित थे ये कमलाकरके पुत्र तथा लम्बोदरके पौत्र थे। इनका रचित तारारहस्यवृत्तिका, शिवमानसपूजा, शिवाचरण-रत्न और षट्चक्रभेदटिप्पनीग्रन्थ मिलता है। २८ पुण्गाकरके पुत्र। इन्होंने दुर्गचरितसङ्केत नामकी टीका रची। २९ वल्लालके पुत्र। इन्होंने तीर्थकौमुदी, प्रतिष्ठाकौमुदी, व्रतकौमुदी तथा व्रतोद्यापनकौमुदीकी रचना की। ३० गोविन्दके शिष्य और अयधारात्मज रुद्रतनय वासुदेवके पुत्र तथा रसचन्द्रिका नामकी अभिज्ञान-शकुन्तलटीकाके प्रणेता। ३१ शङ्कर या ओड़ाशङ्कर नामसे ख्यात। ये शुचिकरके पौत्र तथा सुधाकरके पुत्र थे। इन्होंने ग्रंथविधान-धर्मकुसुम और स्मृति-सुधाकर प्रणयन किया। ३२ दुर्गरत्नके शिष्य तथा हरिहरके पुत्र। (?) इन्होंने करणकुतूहलोदाहरण (ईस्वी सन् १६११में), करणवैष्णव या वैष्णवकरण, ज्योतिष केरलीय तथा केशव और श्रीपति रचित पद्धति की टीका प्रणयन की। ३३ 'जागदीशी'के 'पञ्चलक्षी क्रोड़' नामक ग्रंथके रचयिता। ३४ हरिराम तर्कवागीशके 'अनुमिति-परामर्श-विचार' नामक नैयायिक ग्रंथकी एक व्याख्यापुस्तकके प्रणेता। इनकी पुस्तकका नाम 'शङ्करक्रोड़' था। ३५ मीमांसा नौ-विवेक नामक मीमांसासूत्र-भाष्यकी एक मीमांसा-नौविवेक-शङ्का-दीपिका या न्यायविवेक शङ्का-दीपिका नामकी टीकाके रचयिता। इस टीकामें लिखा है, कि ये रामार्य और गोविन्द उपाध्यायके शिष्य थे। ३६ विधि-रसायन दूषण नामक ग्रंथके प्रणेता। यह ग्रंथ अप्पय्यदीक्षितका बनाया हुआ विधिरसायन नामक ग्रंथका प्रतिवाद है। अप्पय्यदीक्षितने इस ग्रंथमें भट्टकुमारिलकृत मीमांसावार्त्तिकका प्रतिवाद किया है। ३७ एक हिन्दू राजा। इनके राजत्वकाल (१०६९ ई०) में 'धर्मपत्रिका' नामक योगशास्त्रीय ग्रंथ लिखा गया। ३८ देवगिरिके प्रथम 'जैतुगी'के अधीन तद्वाड़ी प्रदेशके शासनकर्त्ता। (इस्वी सन् ११९९) ३९ देवगिरिके राजा रामदेव जब १२९४ ई०में अलाउद्दीन द्वारा अवरुद्ध हो आत्म- समर्पण करने पर उद्यत हुए थे, तब उनके ज्येष्ठ पुत्र शङ्कर पिताको छुड़ानेके लिये अग्रसर हुए। युद्धमें इनकी भी हार हुई।' ऐसा कहा जाता है। शङ्कर १३१२ खृष्टाब्द तक पिताके सिंहासन पर अधिरूढ़ थे। इनके दिल्लीके राजाको राजत्व देनेमें अस्वीकार करने पर मालिक काफूरने इनके विरुद्ध युद्ध कर समूचे महाराष्ट्रको भारत राज्यमें मिला लिया। ४० द्वादशाहपद्धतिके प्रणेता। इनके पिता वाचस्पति नामसे प्रसिद्ध थे। ४१ सांख्यप्रवचनसूत्रभाष्यके प्रणेता। ४२ वास्तुशिरोमणि नामक ग्रन्थके रचयिता। ये मानतरेन्द्रके पुत्र महाराज

श्यामशाहके गुरु थे। ४३ गङ्गावतारचम्पू, प्रद्युम्न-विजय नाटक और शङ्करचेतोविलासके रचयिता। ये दीक्षित बालकृष्णके पुत्र तथा दीक्षित दुण्डिराजके पौत्र थे। भूम्यधिकारी राजा चैतसिंहके आदेशसे इन्होंने चेतोविलास ग्रन्थ १८वीं सदीके शेषमें लिखा था। ४४ वैद्यविनोद ग्रन्थकार।

शङ्कर आचार्य—१ भावाध्याय नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। २ सुजनोक्ति नामक ज्योतिषशास्त्रके रचयिता।

शङ्कर कण्ठ—१ स्तुतिकुसुमाञ्जलिके टीकाकार रत्नकण्ठके पिता तथा अवतारके पुत्र। २ शिवप्रसादसुन्दर-स्तवके प्रणेता।

शङ्कर कवि—पद्यावलीधृत एक प्राचीन कवि। वररुचिने इनका उल्लेख किया है। इनके ग्रन्थमें भोजराजका उल्लेख है।

शङ्करका फूल (सं० पु०) शङ्खोद्वरी, गुलपरी।

शङ्करकिङ्कर—अक्षपाददर्शनके एक छन्दोबद्ध ग्रन्थके रचयिता।

शङ्करगण—१ एक हिन्दू नरपति। ये हैहयराज १म कोकलके तथा चन्देल्लराज वल्लभराजके समसामयिक थे। २ कलचूड़ीराज लक्ष्मणराजके पुत्र तथा २य कोकल के चचा।

शङ्करगीता (सं० स्त्री०) देवीपुराणका ७म अध्याय।

शङ्करगौरीत् (सं० पु०) देवतीर्थभेद। (राजतर० ५।१५७)

शङ्करचूर (सं० पु०) एक प्रकारका सर्प। कहते हैं, कि इसकी उत्पत्ति पातराज और दूधराज सर्पके जोड़से होती है। यह कभी कभी ६।१० हाथ लम्बा होता है। इसके जहरके दांत बड़े होते हैं, इसीसे इसका काटना सांघातिक होता है। यह बहुत कम देखनेमें आता है और बङ्गदेशमें केवल सुन्दरवनमें होता है। यह बहुत भयंकर होता है और इसका पकड़ना बड़ा कठिन है।

शङ्करजटा (सं० स्त्री०) १ रुद्रजटा, जटाधारी। २ सागूदाना, साबूदाना। ३ एक प्रकारकी पिठवन।

शङ्करजित्—संक्षेपतिथिनिर्णयसारके (ईस्वीसन् १६३२) प्रणेता। ये गोकुलजित् और श्यामजित्के भाई तथा हरिजित्के पुत्र थे।

शङ्करजी—वेदान्तसार-टिप्पनके रचयिता।

शङ्कर ताल (सं० पु०) संगीतमें एक प्रकारका ताल। इसमें ११ मात्राएं होती हैं, जिसमें ।६ आघात और २ खाली होते हैं।

शङ्करतीर्थ (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम।

शङ्करदत्त—पवमानसोमयज्ञ और रुद्रविधानके प्रणेता।

शङ्करदयालु—वृत्तप्रत्यय तथा सम्मितवर्णा नामक उसकी टीकाके प्रणेता।

शङ्करदास—हठसङ्केतचन्द्रिकाकार। ये १८७६ ई०में जीवित थे।

शङ्करदीक्षित—लक्ष्मणके पिता तथा मृच्छकटिकटीकाके प्रणेता लल्लादीक्षितके पितामह।

शङ्करदेव—बहुतेरे प्राचीन संस्कृत कवियोंके नाम।

शङ्करदेव—नेपालके लिच्छवी या सूर्यवंशी मानदेवके पितामह। मानदेवका समय ईस्वी सन् ७०५ था। शङ्करदेव भ्रुवदेवके (ईस्वी सन ६५४ ?) पौत्र वृषदेवके पुत्र थे। फ्लीट साहबने नेपालराज वंशावलीके अनुसार स्थिर किया है, कि वृषदेव ६३०-६५५ ईस्वीसन्में जीवित थे।

शङ्करदेव—नेपालके नवाकोटके ठाकुरीवंशोद्भव। ये प्रद्युम्नकामदेव या पद्मदेव नामसे भी परिचित थे। (ईस्वी सन् १०७५)

शङ्करदैवज्ञ—१ गोत्रप्रवरमञ्जरीसारोद्धार नामक ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका नाम था शिव। २ शालग्राम-परीक्षाके प्रणेता।

शङ्करद्रविड़ाचार्य—शाकामोदतन्त्रके रचयिता।

शङ्करनारायण—रसिकामृत-नाटकके रचयिता।

शङ्करनारायण—दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध देवतीर्थ। यह दो घाटपर्वतमालाके बीच कुन्दपुर नामक समतल देशमें अवस्थित है।

शङ्कर पण्डित—मतोद्धार नामक धर्मग्रन्थके प्रणेता।

शङ्करप्रिय (सं० पु०) शङ्करस्य प्रियः। १ तीतर पक्षी। २ द्रोणपुष्पी, गूमा, गोम। (पर्यायमु०) ३ धतूरा।

शङ्करभट्ट—पार्थसारथि मिश्र रचित 'शास्त्रदीपिका' के टीकाकार। टीकाका नाम शास्त्रदीपिकाप्रकाश है।

थे भट्ट नारायण और पार्वतीके पुत्र तथा रामेश्वरके पौत्र थे। स्वरचित मीमांसाबालप्रकाश ग्रन्थमें शङ्करभट्टने सोमेश्वर भट्ट, विज्ञानेश्वर, हेमाद्रि और माधवाचार्यका नामोल्लेख किया है। शास्त्रदीपिकाकी टीकाके सिवा सर्व-धर्मप्रकाश नामक संक्षिप्त व्यवहारशास्त्र, स्मृत्यर्थसार, कालादर्श, त्रिस्थलीसेतु, मीमांसाबालप्रकाश, विधिरसायनदूषण, व्रतमयूख, शास्त्रदीपिका प्रकाश, निर्णयचन्द्रिका, धर्मद्वैतनिर्णय, श्राद्धकल्पसार और उसकी टीका इत्यादि शङ्कर-रचित और भी बहुतसे ग्रन्थ हैं। इन सब ग्रन्थोंसे रङ्गभट्ट, नीलकण्ठ, दामोदर और नृसिंह नामक उनके चार पुत्रोंका उल्लेख मिलता है। उनके भतीजे दिवाकर तथा पोते शङ्करभट्ट भी पण्डित कह कर विख्यात थे। ये काशीनिवासी थे।

शङ्करभट्ट—कुण्डमण्डपनिर्णय, कुण्डभास्कर नामक कुण्डोद्योतटीका, सदाचारसंग्रह, कुण्डार्क, कुण्डोद्योतदर्शन, संस्कारमयूख, व्रतार्क और कर्मविपाक नामक ग्रंथके रचयिता।* ये काशी-निवासी तथा कुण्डोद्योतके प्रणेता नीलकण्ठ भट्टके पुत्र थे। शङ्कर-भट्ट मीमांसक थे। महादेव भट्टात्मज दिवाकर भट्ट सम्भवतः इनके चचा थे। शङ्करने कर्मविपाकमें अपने पितामहके रचे हुए धर्मद्वैतनिर्णय ग्रंथका उल्लेख किया है। १६७१ ई०में इन्होंने कुण्डोद्योतदर्शनकी रचना की।

शङ्करभट्ट—१ मीमांसा-सारसंग्रह नामक एक सहस्र 'मीमांसा' विषयसंवलित ग्रंथके रचयिता। २ "नद्व-समर्थनखण्डन"के प्रणेता। ३ प्रतिष्ठापद्धतिकार। ४ पञ्चसार नामक वेदान्तग्रंथके प्रणेता। ५ परिभाषेन्दु शेखरटीका और शब्देन्दुशेखरटीकाके रचयिता।

शङ्करभारतीतीर्थ—नृसिंहभारती तीर्थके शिष्य तथा असङ्गात्मप्रकरणके प्रणेता।

शङ्करभाष्य (सं० क्ली०) शङ्करकृत भाष्य। शङ्कराचार्यने व्यासकृत वेदांतसूत्र उपनिषदों और गीताका जो भाष्य प्रणयन किया, वही शङ्करभाष्य नामसे अभिहित है।

शङ्करमत्त (सं० पु०) एक प्रकारका लोहा। इसे शंकर लोह भी कहते हैं।

शङ्करमिश्र—पद्यामृततरङ्गिणोधृत एक कवि।

शङ्करमिश्र—रसमञ्जरी नामकी गीतगोविन्दकी टीकाके प्रणेता। ये दिनेश्वर मिश्रके पुत्र थे। इन्होंने शालिनाथके अनुरोधसे इस ग्रंथकी रचना की।

शङ्करमिश्र (महामहोपाध्याय)—वैशेषिक सूत्रोपस्कार, न्यायलीलावतीकण्ठाभरण, आत्मतत्वविवेककल्पलता और भेदप्रकाशकार। इनके सिवा इन्होंने खण्डन-खण्डखाद्य-ग्रंथकी 'शङ्करी' नाम्नी टीका, कणादरहस्य, छन्दोगाह्निकोद्धार, प्रायश्चित्तप्रदीप, श्राद्धपद्धति आदि ग्रंथ लिखे हैं। शङ्करमिश्र भवनाथ महामहोपाध्यायके पुत्र तथा जीवनाथ महामहोपाध्यायके भ्रातृपुत्र थे। जीवनाथ भवनाथके गुरु थे तथा शङ्करने भवनाथके निकट ही शिक्षा लाभ किया। इन्होंने गौरीदिगम्बर नाटक तथा सामान्यनिरुक्तिक्रोड़ नामक और भी दो ग्रंथ लिखे थे। इनके अलावे इनके लिखे शङ्करक्रोड़, गदाधरटीका, जागदीशीटीका, अनुमितिटीका, अवच्छेदकत्वनिरुक्तिटीका, असिद्धपूर्वपक्ष ग्रंथटीका, असिद्धसिद्धांतग्रंथटीका, उदाहरणलक्षणटीका, उपाधिदूषकतावीजटीका, उपाधिपूर्वपक्षटीका, उपाधिसिद्धान्त ग्रंथटीका, कूटघटितलक्षणटीका, कूटाघटितलक्षणटीका, केवलान्वयी ग्रंथटीका, तर्कग्रंथटीका, तृतीयमिश्रलक्षणटीका, द्वितीयमिश्रलक्षणटीका, पक्षताटीका, पक्षतासिद्धांतग्रंथटीका, पञ्चलक्षणीक्रोड़, पञ्चलक्षणटीका, परामर्शपूर्वपक्षग्रंथटीका, परामर्शसिद्धांतग्रंथटीका, पुच्छलक्षणटीका, प्रतिज्ञालक्षणटीका, प्रथमचक्रवर्त्तिलक्षणटीका, प्रथममिश्रलक्षणटीका, बाधपूर्वपक्षग्रंथटीका, बाधसिद्धांतग्रंथटीका, विरुद्धपूर्वपक्षग्रंथटीका, विशेषनिरुक्तिटीका, सत्प्रतिपक्षक्रोड़, सत्प्रतिपक्षसिद्धांतग्रंथटीका, सव्यभिचारपूर्वपक्ष ग्रंथटीका, सामान्यनिरुक्तिक्रोड़, सामान्यनिरुक्तिटीका, सामान्यनिरुक्तिपत्र, सामान्यलक्षणटीका, हेतुलक्षणटीका, शङ्करभट्टिय, शङ्करपत्र और शङ्करी नामक बहुत-से न्यायग्रंथ मिलते हैं।

शङ्करलाल—लिपिविवेकके प्रणेता भूधरके पुत्र क्षेमेन्द्रके पृष्ठपोषक। ये पितृलादके शासनकर्त्ता थे।

---

* 'कुण्डग्रन्थावली विंशति'के अन्तर्गत करके मुद्रित हुआ है।

शङ्करवर्मा—एक प्राचीन कवि।

शङ्करवाणी (सं० स्त्री०) शङ्करका वाक्य अर्थात् ब्रह्म-वाक्य जिसका सत्य होना परम निश्चित माना जाता है, सदा ठीक घटनेवाली बात।

शङ्करविन्दु—'चिन्त्य-संग्रह' या चिन्त्यसंहवाद नामक मीमांसाग्रन्थके रचयिता। ये भट्टशङ्करविन्दु नामसे परिचित थे।

शङ्करशर्मा—१ त्रिकाण्डकोषदीपिकाकार। २ कातन्त्र-परिशिष्ट प्रबोधप्रकाशिकाके प्रणेता। ३ देवीमाहात्म्य-टीकाकार। ४ वृत्तमुक्तावलीके रचयिता।

शङ्करशुक्र (सं० क्ली०) पारद, पारा।

शङ्करशुक्ल—मीमांसार्थ-प्रदीप नामक वेद-सम्बन्धी ग्रन्थके प्रणेता। इसमें ८०० अनुष्टुप् श्लोक हैं।

शङ्करशैल (सं० पु०) महादेवजीका पर्वत, कैलास।

शङ्करसेन—नाड़ीप्रकाश नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता।

शङ्करस्वामी—शङ्कराचार्य देखो।

शङ्करस्वेद (सं० पु०) १ आमवातरोगाधिकारोक्त स्वेद विशेष। व्यवहारप्रणाली—कपासकी ढोंढी, कुलथी-कलाय, तिल, जौ, लाल भेरेण्डका मूल, तीसी, पुनर्णवा, शणबीज, इन सब द्रव्योंमें यदि सभी न मिले, तो जो कुछ मिलता हो, उसीको ले कर एक साथ कूटे और कांजीमें सिक्त करे तथा उससे दो पोटली बांधे। पीछे प्रज्वलित अग्निमय चुल्हेके ऊपर कांजीसे भरी एक हण्डी रख कर उसके मुंह पर अनेक छेदवाला एक ढक्कन रख दे। बादमें हण्डी और ढक्कनके मुंहको कीचड़से बन्द कर दे। इसके बाद उस ढक्कनके ऊपर पूर्वोक्त दो पोटलीको एक एक कर उष्ण करे तथा उसीसे क्रमशः स्वेद दे। इस प्रकार बार बार करना होगा। (भैषज्यरत्ना०)

चरकमें लिखा है, कि उच्चोक्त औषधको वस्त्रखण्डमें पोटली बांध कर अथवा अच्छी तरह कूटी हुई औषधको उष्ण और पिण्डीकृत करके उसीसे जो स्वेद दिया जाता है, उसको शङ्करस्वेद कहते हैं।

(चरकस्वेदाध्याय)

२ गो, महिष और अश्व, इनकी अग्निसन्तप्त विष्ठा द्वारा प्रदत्त स्वेद। (वयदत्त १८ अ०)

शङ्करा (सं० स्त्री०) १ शमीवृक्ष, सफेद कीकर। (राजनि०) २ मञ्जिष्ठा, मजीठ। (शब्दर०) ३ शङ्करकी भार्या, शिवानी, भवानी। ४ एक प्रकारका राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगाते हैं। यह दीपक रागका पुत्र माना जाता है। विशेष विवरण शङ्कर और शङ्कराभरण शब्दमें देखो। (त्रि०) ५ शुभदायिनी, मंगल करनेवाली।

शङ्कराचारी (सं० पु०) श्रीशङ्कराचार्य द्वारा संस्थापित शैव धर्मका अनुयायी।

शङ्करादि (सं० पु०) शुक्लार्क वृक्ष, सफेद मदारका पेड़। (राजनि०)

शङ्करानन्द (सं० पु०) १ श्रुतिगीताटीकाकार। २ ब्रह्मसूत्रप्रदीपके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता आनन्दात्माके शिष्य।

शङ्कराचार्य—भारतवर्षके अद्वितीय दार्शनिक, सुप्रसिद्ध अद्वैतवादके प्रवर्त्तक तथा वेदान्त और उपनिषद्भाष्यकार। इनकी अत्युज्ज्वल और असाधारण प्रतिभा देख कर पण्डित समाजने इन्हें 'शङ्करावतार' माना है। भारतके सभी प्रधान स्थानोंमें शङ्करका पदार्पण होने तथा सभी स्थान उनके अनुरक्त भक्त और शिष्यानुशिष्यसे परिव्याप्त रहने पर भी आचार्य-प्रवरकी असल जीवनी नहीं मिलती। परवर्त्तीकालमें कुछ चरिताख्यायिका रची गई सही, पर उनसे इनकी प्रकृत जीवनी निर्द्धारण करना कठिन है। जो हो, आज तक शङ्करका जीवनवृत्तान्त ले कर जितनी जीवनी पुस्तक रची गई हैं, उनमें आनन्दगिरिकृत शङ्करदिग्विजय, चिद्विलास यतिविरचित शङ्करविजय तथा माधवाचार्यकृत संक्षेप-शङ्करजय नामक ग्रन्थ ही प्रधान और उल्लेखयोग्य हैं। इनके सिवा नीलकण्ठ, सदानन्द, परमहंस बालकृष्ण और ब्रह्मानन्द विरचित लघु शङ्कर-विजय, तिरुमल्ल दीक्षितका शंकराभ्युदय और पुरुषोत्तम भारतीकृत शंकर-विजयसंग्रह भी विशेष प्रयोजनीय ग्रन्थ हैं।

माधवाचार्यका संक्षेप शंकरजय या "शंकरविजय।"

माधवके शंकरविजय ग्रन्थमें लिखा है, कि शंकराचार्यने मलवरके अन्तर्गत कालादि नामक स्थानमें शिवगुरुके औरससे और सती देवीके गर्भसे जन्मग्रहण किया।

उनके जन्मकालमें मेषमें रवि, तुलामें शनि और मकरमें मङ्गल संस्थित था।(१) वृहस्पति केन्द्र में अवस्थित थे, इस प्रकार लिखे रहनेसे ऐसा अर्थ हो सकता है, कि वृहस्पति लग्नमें थे, अथवा उस चिह्नसे ४थे, ७वें या १०वें घरमें थे ; शङ्करके जन्मकालमें अन्यान्य ग्रह-संस्थानोंका इसमें उल्लेख नहीं है। पीछे आठवें वर्षमें गृहत्याग कर वे उत्तर गये (२) तथा नर्मदाके किनारे गोविन्द योगी (गोविन्दाचार्य) के साथ साक्षात् कर उनका इस प्रकार आह्वान करने लगे (३)—

"आप पहले आदिशेष थे, पीछे पतञ्जलिरूपमें अवतीर्ण हुए तथा अभी आप गोविन्दयोगी हैं।"

इसके बाद (४) उन्होंने नीलकण्ठ, हरदत्त और भट्ट भास्करको तर्कमें परास्त किया तथा उनके भाष्यको भी यथेष्ट निन्दा की। पीछे (५) उन्होंने वाण, दण्डी और मयूरके साथ भेंट कर उन्हें अपने दर्शनके विषयमें उपदेश दिया। (६) उन्होंने खण्डन-खण्ड-खाद्यके रचयिता हर्ष (७), अभिनव गुप्त (८), मुरारिमिश्र (९), उदयनाचार्य (१०), कुमारिल (११), मण्डन मिश्र और (१२) प्रभाकरको तर्कमें परास्त किया था। पीछे इस नश्वर-देहका त्याग कर ये कैलासमें शिवके साथ मिले।

उक्त ग्रंथ माधवाचार्य-विरचित कह कर प्रसिद्ध है। किन्तु सायणाचार्यके भाई माधवाचार्य इसके रचयिता हैं या नहीं इस विषयमें दो एक संदेह भी विद्यमान हैं। माधवाचार्यके सभी ग्रंथोंके प्रारम्भमें या शेषमें अपना परिचय, अपने गुरुका नाम इत्यादि लिखे हैं, किंतु संक्षेप-शङ्करजयमें उसका व्यतिक्रम देख कर ऐसा प्रतीत होता है, कि यह माधवाचार्यनामा एक दूसरे शृङ्गेरी-मठावलम्बी आधुनिक व्यक्तिका रचा है। इसके बाद इस पुस्तककी रचनाप्रणाली माधवाचार्यकी अन्यान्य रचनापद्धतिसे बिलकुल पृथक् है। इस ग्रन्थके लेखकने लिखा है, कि उन्होंने यह पुस्तक पूर्ववर्त्ती किसी 'शङ्करविजय'-के आधार पर रची है। किंतु दुःखका विषय है, कि शङ्करजन्मके संबंधमें शङ्करविजयके किसी समयको बात इसमें उद्धृत या लिखी नहीं है। ग्रंथनिहित व्यक्तियोंके नामसे भी ग्रंथका आधुनिकत्व प्रमाणित किया जा सकता है, अतएव इस पुस्तकका मत कई जगह ग्राह्य नहीं है।

चिद्विलास यतिका शङ्करविजय।

इस ग्रंथमें शङ्कराचार्यका जो परिचय दिया गया है, वह इस प्रकार है। केरल देशान्तर्गत कालादि नामक स्थानमें शिवगुरुके औरस और आर्याम्बाके गर्भसे वसन्त ऋतुके मध्याह्नकालमें अभिजित् मुहूर्त्तके समय भद्रानक्षत्रमें शङ्कराचार्यने जन्मग्रहण किया। उनके जन्मकालमें पांच ग्रह तुङ्गस्थानमें थे। उन पांचों ग्रहोंके नाम ग्रंथमें लिखे नहीं हैं। पांच वर्षकी उमरमें शङ्करका उपनयन हुआ। पीछे एक दिन नदीमें स्नान करते समय कुम्भीरने उन्हें पकड़ा, किंतु बड़े कौशलसे ये बच गये। इसके बाद संन्यासावलंबन कर हिमालय पर्वत पर जा कर वदरिकाश्रमका आश्रय लिया। वहां ये तपोनिरत गोविंदपादके शिष्य बन कर उनके उपदेशानुसार यथाविधि संन्यासाश्रममें प्रविष्ट हुए। पीछे ये भट्टपाद (कुमारिल)-के साथ मिले और काश्मीर जा कर उन्होंने मण्डनमिश्रके साथ तर्कयुद्ध किया। अनन्तर शङ्कराचार्यने शृङ्गगिरि और जगन्नाथमें दो मठ स्थापन कर सुरेश्वर और पद्मपादको मठकी रक्षामें नियुक्त किया। इसके बाद इन्होंने गुर्जरके अंतर्गत द्वारकामें मठ खोल कर हस्तामलकको तथा वदरिकाश्रममें एक दूसरा मठ खोल कर तोटकाचार्यको वहांके आचार्य-पद पर नियुक्त किया था। आखिर शङ्कराचार्यके वदरिकाश्रममें रहते समय विष्णुके छठें अवतार दत्तात्रेय शङ्करके पास गये और उनका हाथ पकड़ कर हिमालय-गह्वरमें घुसे। इसी स्थानसे शङ्कर शिवके साथ मिलनेके लिये कैलास गये थे।

आनन्द गिरिकी शङ्कर-दिग्विजय।

आनन्दगिरिकी लिखित पुस्तकमें शङ्करके पूर्व विवरणके सम्बन्धमें ऐसा लिखा है, कि सवज्ञ नामक एक ब्राह्मण कामाक्षी नाम्नी अपनी पत्नीके साथ चिदम्बरमें

(१) २।५।७१। (२) २य सर्ग। (३) ५।५।९५। (४) १५।५।५३, ४९, ६०। (५) १५।५।१०१। (६) १५।५।१५६। (७) १५।५।१५७। (८) १५।५।१५८। (९) १५।५।१६९। (१०) २य सर्ग। (११) १०म सर्ग। (१२) १२।५।४३।

रहते थे। विशिष्टा नामकी उन्हें एक परमा सुन्दरी कन्या थी जिसका विवाह विश्वजित् नामक एक ब्राह्मणके साथ हुआ था। विश्वजित् कुछ समय घरमें रह कर वैरागी हो गये और वन जा कर वहां तपस्या करने लगे। इधर विशिष्टा बड़ी दुःखित हो कर चिदम्बरेश्वर महादेवकी सेवामें नियुक्त हुई। महादेवकी कृपासे विशिष्टाने एक पुत्ररत्न प्रसव किया। वही पुत्र पीछे शङ्कराचार्य नामसे प्रसिद्ध हुए। इस पुस्तकमें एक जगह लिखा है, कि लक्ष्मण और हस्तामलकको शङ्करने वैष्णवमत प्रचार करनेका हुकुम दिया। तदनुसार काञ्चीपुरसे एक पूर्वकी और दूसरे उत्तरकी ओर चले गये। उन्होंने वैष्णवधर्म और द्वैतवादका प्रचार कर वेदांतभाष्यका प्रणयन किया। इस ग्रंथमें एक और जगह लिखा है, कि शङ्करने इंद्र, वरुण, यम और चंद्रका मत खण्डन कर अपना मत स्थापन किया।

लघु शङ्करविजय।

बालकृष्ण ब्रह्मानन्द विरचित—(महिसुरमें प्रचलित १७२८ शकमें लिखित) लघुशङ्करविजयके मतसे शङ्करका अभ्युदयकाल ७८८ ई० दिया गया है।

सदानंन्द।

सदानन्दकी पुस्तकमें शङ्करका काल इस प्रकार लिखा है। युधिष्ठिराब्द २७२२, सर्वजित् नामक संवत्सरमें शुभलग्नमें पांच ग्रहतुङ्गी होती हैं। इसी समय शङ्करका जन्म हुआ अर्थात् ३७६ ई० सन्‌के पहले शङ्कर आविर्भूत हुए। किंतु पण्डित गुरुनाथका आविष्कृत सदानन्द विरचित "शङ्करविजयसार" ग्रंथका पाठ कुछ स्वतंत्र है। पण्डित गुरुनाथका पाठ नीचे दिया गया है—

"प्रासूततिष्यशरदामतियातवत्या-
मेकादशाधिकशतोनचतुः सहस्र्याम्।
संवत्सरे विभवनाम्नि शुभे मुहूर्त्ते
राधे सिते शिवगुरो गृहिणी दशास्था ॥"

अर्थात् ४०००—१११ = ३८८९ कलिगतवर्षमें विभव नामक शुभ मुहूर्त्तमें जन्म हुआ।

शङ्करके सम्बन्धमें इसी प्रकार अनेक ग्रन्थोंमें मतभेद देखा जाता है।

कालनिर्णयके सम्बन्धमें पाश्चात्य मत।

शङ्कराचार्यके आविर्भावकालके सम्बन्धमें पाश्चात्य और तदनुवर्त्ती प्राच्य दोनों स्थानके पण्डितोंमें बहुत मतभेद देखा जाता है। उनमेंसे जिन्होंने शङ्करके कालनिर्णयके सम्बंधमें गहरी आलोचना की है, उनमें हू ह विलसन (१), विण्डिष्‌मान (२), टेलर (३), लासेन (४), वेबेर (५), मानिङ्ग (६), कोलब्रुक (७), राईस (८), बुर्नेल (९), वर्थ (१०), के बी पाठक (११), कावेल (१२), गाफ (१३), अक्षयकुमारदत्त (१४), काशीनाथ त्रिम्बक तेलाङ्ग (१५), मोक्षमूलर

(१) Sanskrit Dictionary, Preface, p. xvii; Essays, Vol. I. p. 194.

(२) Windischmann's Sankara, I, p, 42,

(३) Journal Asiatic Society of Bengal, VII, (1). 512

(४) Indische Alterthumskunde, IV.

(५) History of Indian Literature, 1882, p, 57 and foot-note.

(६) Ancient and Mediæval India, by Mrs Manning, Vol. I. p, 210

(७) Colebrooke's Miscellaneous Essays, Vol, I, p, 298 foot note.

(८) Mysore Gazetteer (Revised ed. 1897) Vol, I, p, 471

(९) South Indian Palaeography, p, 37 foot-note; and Samavidhana-brahmana, Vol, I, p. 17

(१०) The Religion of India, p, 87

(११) Indian Antiquary, vol. xi.

(१२) Sarvadarsana-Sangraha. preface, p. viii,

(१३) Philosophy of Upanishads.

(१४) उपासक सम्प्रदाय, १य भाग १६३ पृष्ठ।

(१५) Indian Antiquary, vol. xiii p, 95-103.

(१६), टील (१७), रेवरेण्ड फुलकस (१८), फ्लीट (१६), लोगन (२०), एन भाष्याचार्य (२१), मणियर विलियम (२२), निखिलनाथराय (२३), आदके नाम उल्लेख किये जा सकते है । इनके अधिकांशके मतसे शङ्कराचार्य ८वीं या ९वीं सदीमें आविर्भूत हुए थे । केवल निखिलबाबूने सारदा मठकी गुरुपरम्पराकी सहायतासे २६३१ युधिष्ठिर शकमें या खृष्ट पूर्व ४७६ अब्दमें* शङ्करका जन्म बताया है। एन भाष्याचार्यने बहु गवेषणा द्वारा यह दिखानेकी चेष्टा की है, कि शङ्कर छठी सदीके शेष भागके बाद उत्पन्न नहीं हुए।

शङ्करका प्रकृत आविर्भाव काल।

ईसा जन्मके पहले ५ वीं सदीसे आरम्भ कर कौन समय शंकरका आविर्भावकाल है, उसे स्थिर करना कठिन है। किन्तु इस सम्बन्धमें देशी और विदेशी पण्डितोंने इतनी आलोचना की है, कि एक सत्यानुसन्धित्सुके लिये सत्यनिर्द्धारण सहज हो गया है।

प्रथमतः शंकर और शंकरके शिष्य सुरेश्वरने अपने अपने ग्रन्थमें धर्मकीर्त्तिके नाम और वाक्य तथा कुमारिलके नाम और वाक्य उद्धृत किये हैं। यथा—

शङ्करकृत उपदेशसहस्रीभाष्य (श्लोक १४२, शाङ्करभाष्य)—

"अभिन्नोऽपि हि बुद्धात्मविपर्यासितदर्शनैः।
ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते॥"

आनन्दज्ञानभाष्य—"कीर्त्ति वाक्यमुदाहरति।
अभिन्नोऽपि हि बुद्धात्मा" इत्यादि।

कुमारिलका उल्लेख—उपदेश-साहस्री १०६-१४० श्लोक।

सुरेश्वर—बृहदारण्यकवार्त्तिक ६ष्ठ अध्यायमें धर्मकीर्त्तिका उल्लेख किया है—

"तिप्येव त्वविनाभावादि यद्धर्मकीर्त्तिना॥" इत्यादि

द्वितीयतः—कुमारिलने अपने ग्रन्थमें दो बार भर्तृहरिके 'वाक्यपदीय' से श्लोक उद्धृत किये है—

"अस्त्यर्थः सर्वशब्दानामितिप्रत्याय्यलक्षणम्।
अपूर्वदेवतास्वर्गैः सममाहुर्गवादिषु॥"

एक वाक्यपदीयके (१८८७ ई०में काशीधामसे प्रकाशित) १२३ पृष्ठमें द्वितीय काण्डके १२७ श्लोक और कुमारिलके 'तन्त्रवार्त्तिक' के (काशीसे प्रकाशित) २५१ और २५४ पृष्ठको मिला कर देखिये।

तृतीयतः—इत्-सिङ्ग अपने ग्रंथमें धर्मकीर्त्तिको अपने समसामयिक व्यक्ति बतला गये हैं तथा भर्तृहरिको उन्होंने अपनेसे ४० वर्ष पहलेके स्वीकार किया है। इत्-सिङ्गका समय ६६४ ई० है। अतएव भर्तृहरिका समय ६५४ ई० होता है।

उल्लिखित उक्तियोंमें जरा भी संदेह नहीं रह सकता ये सब शंकरके समयकी पुस्तकादि हैं, प्रवाद नहीं है, किसीका भी मतामत नहीं है। इनमें कल्पना का लेशमात्र भी नहीं है। अतएव इनसे जो सत्य निकलेगा, उसे ध्रुव मान सकते हैं। उल्लिखित तीन उक्तियोंसे हमें मालूम हुआ कि,

(१) शङ्करका ३२ वर्ष जीवन है। वे धर्मकीर्त्ति, कुमारिल और भर्तृहरिके पहलेके नहीं हैं। और

(२) इत्-सिङ्गका समय ६६४ से ४० वर्ष पहले

(१६) India, what can it teach us, p, 354-60

(१७) Prof. Tiele's History of Ancient Religion, 1877,

(१८) Rev T, Foulkes in Journal R, A, S, (N, S,) vol, xvii

(१६) Indian Antiquary, vol. xvi, January,

(२०) W. Lagan's Indian Antiquary, vol, xvi, May,

(२१) Theosophist, Nov, 1887, Jan, Feb, 1890,

(२२) Brahmanism and Hinduism, p, 15 ; and Indian Wisdom, p, 48.

(२३) साहित्य, १३०६, चैत्रसंख्या।

* १८९८ ई०की २६वीं अप्रैलको पूनाकी 'केशरी' पत्रिकामें "पिनाकी" नाम चिह्नित एक पत्रमें द्वारावतीमठमें लब्ध प्राचीन वृत्तान्त प्रकाशित हुआ है। उसमें भी "युधिष्ठिरशके २६३१ वैशाख शुक्लपञ्चम्यां श्रीमच्छङ्करावतारः" इत्यादि उक्ति देखी जाती है।

एकके जीवितकाल परिमित समयके पहले नहीं है।

इसके बाद द्वितीय प्रमाणका उल्लेख करते हैं। दिगम्बर जैनोंमें जिनसेन नामक एक पण्डित विद्यमान थे। उनका समय ७०५ शकाब्द या ७८३ ई० है।* उन्होंने 'आदिपुराण' नामक एक पुस्तक रची है। उनकी उस पुस्तकमें श्रीपालका नाम है। श्रीपालने जिनसेनको उक्त पुस्तककी टीकामें अपना समय ६५९ शकाब्द (या ७३७ ई०) लिखा है।¶ अतएव श्रीपाल और जिनसेनको समसामयिक कहनेमें कोई आपत्ति नहीं रह सकती। फिर ७३७ से ७८३ ई०के मध्य जो ४६ वर्षका अन्तर है, उसका अधिकांश समय जो दोनों जीवित थे, उसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता।

इन जिनसेनने—अकलङ्क, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र पण्डितके नाम अपने ग्रन्थमें लिखे हैं। यथा,—

"भट्टाकलङ्कश्रीपालपात्रकेशरिणाम् गुणाः।
विदुषां हृदयारूढ़ा हारयन्तेति निर्म्मलाः॥" (आदिपुराण)

किन्तु ये लोग उनके समसामयिक थे, इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। अथवा अकलंक, विद्यानन्द या प्रभाचन्द्र, इन लोगोंने अपने अपने ग्रन्थमें जिनसेन या श्रीपालका नामोल्लेख भी नहीं किया है। अतएव सिद्ध हो सकता है, कि ये लोग जिनसेनके पहले वर्त्तमान थे, पर हां, कितने पहले थे उसका पता नहीं।

अकलङ्क, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र ये तीन व्यक्ति समसामयिक थे। प्रभाचन्द्र अकलङ्कके शिष्य थे, यह हम प्रभाचन्द्रके *न्यायकुमुदचन्द्रोदय* ग्रन्थमें ही देखते हैं।

फिर इधर विद्यानन्दका नाम प्रभाचन्द्रके ग्रन्थमें दिखाई देता है। (प्रमेय-मार्त्तण्ड, पृ० ११६)

फिर विद्यानन्दने अकलंकका नाम अपने अष्टसाहस्री ग्रन्थके १६वें अध्यायमें उल्लेख किया है।

माणिक्यनन्दीने अकलंकका नामोल्लेख किया है। यथा—

"सिद्धं सर्वजनप्रबोधजननंसद्योऽकलंकाश्रयं।
विद्यानन्दसमन्तभद्रो गुणतो नित्यं मनुनन्दनम्।"

प्रभाचन्द्रने माणिक्यनन्दीके ग्रंथकी टीका लिखी है। प्रभाचंद्र अकलङ्कके शिष्य थे। विद्यानंदने अकलङ्कका, प्रभाचंद्रने विद्यानंदका और माणिक्यनंदीने अकलङ्क और विद्यानंदका नामोल्लेख किया है।

अतएव यह स्वयंसिद्ध है, कि अकलङ्क, विद्यानंद और प्रभाचंद्र ये तीनों ही समसामयिक थे। इसके बाद देखनेमें आता है, कि मीमांसा-श्लोकवार्त्तिक ग्रंथमें कुमारिलने अकलङ्क पर आक्रमण किया है।

फिर विद्यानंदने कुमारिल पर आक्रमण किया है। सुतरां यह कहना होगा, कि कुमारिल अकलङ्क और विद्यानंदके समसामयिक थे।

विद्यानंदने सुरेश्वराचार्यके बृहदारण्यकभाष्यवार्त्तिक ग्रंथसे श्लोक उद्धृत किया है। अतएव विद्यानंद सुरेश्वरके पूर्ववर्त्ती नहीं हो सकते। इधर सुरेश्वर शङ्करके शिष्य थे। सुतरां शंकर भी विद्यानंदके पीछे नहीं हो सकते। पहले ही कहा जा चुका है, कि शङ्करने कुमारिलका नाम और वाक्य उद्धृत किया है अर्थात् शङ्कर कुमारिलके पूर्ववर्त्ती नहीं हैं। अतएव यह स्थिर किया जा सकता है, कि शंकर, सुरेश्वर, कुमारिल, अकलंक, विद्यानन्द और प्रभाचन्द्र ये छः व्यक्ति ही समसामयिक थे। यह उनकी अपनी अपनी पुस्तकसे प्रमाणित है। इससे और पक्का प्रमाण क्या हो सकता? केवल ग्रन्थका श्लोक देख कर यह सिद्ध है सो नहीं। इसमें एकने दूसरेका नामोल्लेख भी किया है। समसामयिक नहीं होनेसे एक दूसरेका नाम उल्लेख नहीं कर सकते थे। अभी हमें क्या मालूम हुआ, वही देखना चाहिये। इधर देखते हैं, कि दसिङ् भर्त्तृहरिका मृत्युकाल अपने ग्रंथमें लिख गये हैं, जिससे भर्त्तृहरिका समय ६५० ई० होता है। कुमारिलने जो भर्त्तृहरिका वाक्य उद्धृत किया है, इससे कुमारिल

---

* "शाकेष्वब्दशतेषु सप्तसु दिशं पञ्चोत्तरेषूत्तरं याम्
* * * *
प्राप्तः श्रीजिनसेनकविना लाभाय बोधः पुनः॥"
(जैन हरिवंश)

¶ 'एकोनषष्टिसमधिकषट्शतानब्देषु शकनरेन्द्रस्य।
समतीतेषु समाप्ता जयधवलटीका प्राभृतव्याख्या।
* * * श्रीपाल सम्पादिता जयधवलाटीका॥"

६४० ई०के पूर्ववर्त्ती नहीं हैं, यह भी सिद्ध हुआ। फिर हम देखते हैं, कि अकलङ्क, विद्यानंद आदि जिनसेनके परवर्त्ती नहीं हैं और जिनसेनका समय ७८३ ई० होनेके कारण उन्हें ७८३ ई०के पहलेके नहीं कह सकते। अतएव यह देखा गया है, कि ६५० ई०से ७८३के मध्य ये सब व्यक्ति एक समय आविर्भूत हुए थे। अभी प्रायः १३३ वर्षका अन्तर रहा। हमें पण्डित के. बी. पाठककी प्रबंधावलोसे पूर्वोक्त श्लोक मिलते हैं। उन श्लोकोंको संग्रह करनेमें उन्हें कितना परिश्रम उठाना पड़ा था, वह चिन्ताशील व्यक्ति मात्र ही समझ सकते हैं। किन्तु उन्होंने उल्लिखित उपकरण पा कर भी थोड़ा अन्याय किया है। उन्होंने शङ्करको ७८८ ई०का अग्रिम बताया है। परन्तु यह उनकी भूल है। कुमारिलको अकलङ्क और विद्यानन्दके समसामयिक मानते हुए भी शङ्करको कुमारिलसे आध सदी पीछेका आदमी माना है। उनकी युक्ति यह है, कि कुमारिलने प्रसिद्धि लाभ नहीं की, इसीलिये तो शङ्करने उनका वाक्य उद्धृत नहीं किया। अतएव कुमारिलके ५० वर्ष पीछे शङ्करका काल अनुमान करना उचित है। पाठक निर्दिष्ट द्वितीय कारण यह है— कथासरित्सागरमें लिखा है, कि अकलङ्क कृष्णराजके समसामयिक थे। दन्तिदुर्गकी शिलालिपिमें कृष्णराजका समय ७५३ ई०के पीछे और ७८३ ई०के पहले मिलता है, इत्यादि। किंतु इस सम्बन्धमें हमारा कहना है, कि दूसरे ग्रंथकी तुलनामें कथासरित्सागर अति आधुनिक पुस्तक है। आधुनिक पुस्तककी बात पर ऐसे सिद्धांतको अन्यथा करना उचित नहीं। शङ्करने कुमारिलका खण्डन किया है, इससे यदि कुमारिल शङ्करके ५० वर्ष पहलेके हों, तो विद्यानन्दने जो सुरेश्वरका वाक्य उद्धृत किया, इससे सुरेश्वर, विद्यानन्दसे ५० वर्ष पहलेके आदमी क्यों न होंगे? हमारे ख्यालसे पण्डित पाठककी युक्तिका यह दुर्बल अंश है। जो हो, पूर्व सिद्धांतको ही ग्रहण करनेके लिये बाध्य हैं, कि शङ्कर, कुमारिल और अकलङ्क ये समसामयिक थे। यहां पर यह कह देना उचित है, कि हम लोगोंकी पूर्वोक्त घटनाको छोड़ जो कुछ आज तक पाया गया है तथा जिन युक्तियोंका हमने प्रसङ्गान्तरमें उल्लेख किया है, उनमेंसे कोई शङ्कर जिस समय हुए हैं, उस समयकी पुस्तकादिसे नहीं ली गई है अथवा वे युक्तियां लेखकों- के अपने अपने अनुमानसे मुक्त नहीं हैं। अतएव शङ्करका कालनिर्णय करनेमें हमने उनकी जरा भी आलोचना नहीं की। अपने सिद्धांतके अनुकूल हम प्रधानतः तीन युक्तियां देखते हैं। एक एक कर तीनों युक्तियोंका उल्लेख नीचे किया गया है।

प्रथम। भवभूतिका समय स्थिर हो चुका है। वे ६६३-७२६ ई०के मध्य भी विद्यमान थे, यह सर्ववादि-सम्मत है। शङ्कर पाण्डुरङ्ग पण्डितने एक अति प्राचीन कालके लिखित 'मालतीमाधव' के ग्रंथमें तीन वचन पाये हैं। तत्प्रकाशित वाक्पतिकृत 'गौड़वह' नामक पुस्तकके संस्करणमें उन्होंने लिखा है, कि इन्दोर- के महादेव वङ्कटेश लेनसे उन्होंने इस ग्रंथका विवरण पाया है। इसमें—

(१) इति श्रीभट्टकुमारिलशिष्यकृते मालतीमाधव तृतीयाङ्कः।

(२) इति श्रीकुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव-श्रीमदुम्बेकाचार्य्य विरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽङ्क।

(३) इति श्रीभवभूतिविरचिते मालतीमाधवे दश-मोऽङ्कः।

अर्थात् कुमारिलशिष्यकृत, कुमारिलशिष्य उम्बेका-चार्य्यकृत और भवभूति विरचित ये तीन पृथक् पृथक् वचन तीन पृथक् पृथक् अध्यायके अंतमें पाये गये हैं। शङ्कर विजयमें शङ्करशिष्य मण्डनमिश्र या सुरेश्वरका नाम उम्बेकाचार्य्य कह कर उल्लिखित है। अतएव यह कहना होगा, कि शंकर ६६३-७२६ ई०में उक्त भव-भूतिके समय विद्यमान थे। 'मालतीमाधव' भवभूति द्वारा समाप्त हुआ, इसी कारण वह भवभूतिके नामसे प्रचलित हुआ होगा। उम्बेकाचार्य्यने इसका आरम्भ किया। इस प्रकार अनुमान करनेका कारण यह है, कि उक्त ग्रन्थके तृतीय अङ्कमें कुमारिलशिष्य कृत, छठे अंकमें उम्बेकाचार्य कृत और दशम अंकमें भवभूति कृत लिखा है। इससे यहां तक कहा जा सकता है, कि शंकरका ३२ वर्ष जीवन सातवीं शताब्दीके शेषसे आठवीं शताब्दीके प्रथम पादमें समाप्त हुआ।

द्वितीय। शृङ्गेरीमठकी गुरुपरम्परामें देखा जाता

है, कि शंकरने १४ विक्रमार्काब्दमें जन्मग्रहण किया। फिर यह भी देखा जाता है, कि सुरेश्वरशिष्य सर्वज्ञात्ममुनिने संक्षेपशारीरकके अन्तमें लिखा है, कि मनुकुलके आदित्यराजके समय उन्होंने पुस्तकको रचना की। इन दोनों उक्तियोंको एकत्र कर देखनेसे अवश्य कहना होगा, कि शंकरका उक्त समय अर्थात् १४ विक्रमार्काब्द चालुक्यवंशीय प्रथम विक्रमार्कका समय है; क्योंकि राजा आदित्य प्रथम विक्रमादित्यके भाई थे। उक्त विक्रमादित्य ६७० ई०से राज्य करने लगे थे। इसमें पूर्वका १४ विक्रमार्काब्द जोड़ देनेसे ६८४ होता है। सुतरां यह कहा जा सकता है, कि शंकरने ६८४ ई०में जन्मग्रहण किया था।

तृतीय। माधवाचार्य एक अद्वितीय व्यक्ति थे। उनका परिचय देना निष्प्रयोजन है। उन्होंने शंकरका एक ग्रहसंस्थापन दिया है। इसमें सिर्फ ४ ग्रह अपने तुङ्ग और केन्द्रमें अवस्थित थे, ऐसा लिखा है। माधव ज्योतिष शास्त्रमें भी सुपण्डित थे। किंतु फिर भी उनके इस प्रकार ग्रहसंस्थापनके वर्णनको हम लोग कविकल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं कह सकते। क्योंकि यदि यह यथार्थ ज्योतिषिक वर्णन होता, तो माधवाचार्य जन्मकाल तथा अन्यान्यग्रहस्थिति कहनेमें कदापि नहीं भूलते। जो हो, हम यहां तक कह सकते हैं, कि उक्त चार ग्रहोंको उक्त स्थितिमें जो जो होना उचित है वह शंकरके प्रकृत जीवनमें अथवा उसके साथ शंकरके जीवनकी एकता होना आवश्यक है। श्रीयुक्त राजेन्द्रनाथ घोषमहाशयने ऐसे अनुमानके वशवर्त्ती हो कर उक्त प्रकारका ग्रहसंस्थापन किस समय हुआ था उसे निकालनेकी चेष्टा की। इस उद्देशसे उन्होंने शंकरके जन्मज्ञापक सभी प्रवादोंकी एक एक कोष्ठी तैयार की। किन्तु किसो भी कोष्ठीसे वे माधववर्णित योग निकाल न सके। पर हां उन्होंने जिन सोलह कोष्ठीको ले कर अटूट परिश्रम किया है उनमेंसे ६८६ ई०में जो कोष्ठी तैयार की गई है, उसे देखनेसे अच्छी तरह मालूम होता है, कि उस कोष्ठीमें शंकर जैसे एक पराक्रमशाली व्यक्ति उत्पन्न हो सकता है। बाकी सभी कोष्ठीमें वैसा नहीं है। इसमें वेदान्ताब्धियोग, युक्तिसमन्वित वाग्मियोग, तर्कयुक्तिपरायणयोग, न्यायशास्त्रविद्‌योग, ग्रन्थकर्तृयोग, मुक्तियोग, भगन्दरयोग, अल्पायुयोग, जनकजननीवियोगयोग आदि शंकरके जीवनके अनुकूल सभी योग मिलते हैं। इसमें माधव-कथित तीन ग्रहमें मेल है केवल एकमें मेल नहीं है। अतएव देखा जाता है, कि हम लोगोंके निरूपित समयके साथ ज्योतिशास्त्रको भी सहायता है।

अभी हमें देखना चाहिये, कि शङ्करके समयके सम्बन्धमें प्रचलित मत ७८८ ई० तथा हमारे निरूपित ६८४ वा ६८६ ई० इन दो समयके साथ स्थिर की हुई ऐतिहासिक घटनाको कैसी एकता है।

१। जो कहते हैं, कि यूएनचुयंग (Yuan-Chuang) और इत्सिङ् (I-tsing) ये दो चीनपरिव्राजक शङ्करके पहलेके हैं, वे हमारे निरूपित सिद्धान्त पर आपत्ति नहीं कर सकते; क्योंकि, इत्सिङ् जिस समय भारतवर्ष आये थे, उस समय शङ्कर बालक थे। सुतरां इत्सिङ्का शङ्कर नामोल्लेख करना किस प्रकार सम्भव हो सकता?

२। पूर्णवर्मा यूयनचुवङ्गके समकालवर्त्ती थे तथा शङ्करने जिस भावमें पूर्णवर्माका नामोल्लेख किया है, उससे यह मालूम नहीं होता, कि पूर्णवर्मा शङ्करके बहुत पहले हो गये हैं। ७८८ ई० से और भी ९०० वर्षका अन्तर होता है।

३। काश्मीरका राजतरङ्गिणी-वर्णित ललितादित्यके समयको गौड़ीय या बङ्गीय ब्राह्मणोंके शारदामन्दिरमें शास्त्रवाद कर्निंहम साहबने शङ्कर कर्त्तृक स्थिर किया है। ६८६ ई० होनेसे वह उचित हो सकता है, ७८८ ई० होनेसे बिलकुल नहीं हो सकता।

४। कोङ्गुदेशराजकालके मतसे बुर्नेलने जो कहा है, ६८६ ई० होनेसे वह मिलता है (Sewell's, S. I. D.) ७८८ ई० होनेसे बहुत अन्तर पड़ जाता है।

५। माधवोक्त शङ्कर प्रतिपक्षके मध्य श्रीहर्ष, उदयन, अभिनवगुप्त आदिको छोड़ बहुतोंके साथ शंकरका साक्षात्कार ६८६ ई० होनेसे सङ्गत होता है, किन्तु

७८८ होनेसे किसीके भी साथ साक्षात्कार सङ्गत नहीं होता।

६। सर्वज्ञात्मकथित आदित्य राजाको ६८६ ई० होनेसे पाया जाता है,—७८८ ई० होनेसे नहीं पाया जाता।

७। शृङ्गेरी-मठमें सुरेश्वरका जो समय दिया गया है, ६८६ होनेसे वह मिलता है, किन्तु ७८८ ई० होनेसे नहीं मिलता।

८। ६८६ ई० होनेसे औफ्रेक्ट साहबोक्त वङ्गीय शंकराचार्यको शंकरसे पृथक् करना नहीं होता। इन वङ्गीय शंकरके समय शशांकराजने बौद्धोंको मार भगाया था।

९। भाण्डारकारने अनेक युक्तियां दिखलाते हुए शंकरका समय ६८० स्थिर किया है। हम लोगोंका निरूपित ६८६ भाण्डारकारके निरूपित समयसे बहुत नजदीक पड़ता है।

१०। ६८६ ई० होनेसे शुङ्गपाटलिपुत्रसंक्रांत कथन मिलता है। ७८८ ई० होनेसे नहीं मिलता। इस कारण ६८६ ई०में शंकरका आविर्भावकाल माना जा सकता है।

शाङ्करग्रन्थ।

शङ्कराचार्यके बनाये हुए अनेक ग्रन्थ मिलते हैं, नीचे अकारादि क्रमसे उनके नाम दिये गये हैं—

अच्युताष्टक, अजपागायत्री, पुरश्चरणपद्धति, अज्ञान बोधिनी नाम्नी आत्मबोधटीका, अथर्ववेदान्तर्गतोपनिषद्भाष्य, अद्वैतपञ्चपदी, अध्यात्मप्रकाश, अध्यात्मबोध, अध्यात्मविद्योपदेश, अध्यासभाष्य, अनुभवपञ्चरत्न, अनुस्मृति, अन्नपूर्णानवरत्नमालिका, अपराधक्षमास्तोत्र, अपराधसुन्दरस्तोत्र, अपराधस्तोत्र, अपरोक्षानुभूति, अमरुशतकटीका, अम्बाष्टक, अर्द्धनारीश्वराष्टक, अवधूतषट्क, अष्टाङ्गयोग, आगमशास्त्रविवरण, आञ्जनेयस्तोत्र, आत्मज्ञानोपदेशप्रकरण, आत्मनिरूपण, आत्मपञ्चक, आत्मबोध, आत्मषट्क, आत्मानात्मविवेक, आत्मोपदेशविधि, आनन्दलहरीस्तोत्र, आर्या, आर्यास्तति, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, उत्तरगीताव्याख्या, उपदेशपञ्चक, उपदेशसाहस्री, एकश्लोक्युपदेश, ऐतरेयोपनिषद्भाष्य, कनकधारास्तोत्र, कपिकरपट्टी, काठकोपनिषद्भाष्य, कादिक्रमस्तुति, कामाक्षीस्तोत्र, कारणप्रकरण, कालभैरवाष्टक, कालिकास्तोत्र, काशीपञ्चक, कृष्णदिव्यस्तोत्र, कृष्णविजय, कृष्णस्तोत्र, कृष्णाष्टक, केनोपनिषद्भाष्य, कैवल्योपनिषद्भाष्य, कौपीनपञ्चक, कौषीतकोपनिषद्भाष्य, क्षमाष्टक, गङ्गाष्टक, गणेशभुजंगस्तोत्र, गणेशाष्टक, गण्डकीभुजंगस्तोत्र, गायत्रीभाष्य, गिरिजादशक, गुरुं प्रातःस्मरामि, गुरुस्तोत्र, गुर्वष्टक, गोपालतापनीयोपनिषद्भाष्य, गोविन्ददामोदरस्तोत्र, गोविन्दभजनस्तोत्र, गोविन्दाष्टक और तद्भाष्य, गौड़पादीयभाष्य, गौरीदशक, चक्रपाणिस्तोत्र, चतुर्दशमनविवेक, चतुर्विधसंशयोच्छेद, चर्पटपञ्जरिका, चिदानन्दस्तवराज, चिदानन्दाष्टक, चिन्तामणिस्तोत्र, छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, जगन्नाथस्तोत्र, जगन्नाथाष्टक, ज्ञानगीता, ज्ञानतमोदीपिका, ज्ञाननौका (विज्ञाननौका), ज्ञानप्रदीप, ज्ञानसंन्यास, ज्ञानोपदेश, तत्त्वसंग्रह, तत्त्वसार, तन्त्रसार, तारापञ्झटिका, तारारहस्य, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य, त्रिपुटीप्रकरण या त्रिपुर्युपनिषद्, त्रिपुरसुन्दरीस्तोत्र, त्रिवेणीस्तोत्र, त्रिशतीनामार्थप्रकाशिका, दक्षिणामूर्त्तिकल्प, दक्षिणामूर्त्तिमन्त्रार्णव, दक्षिणामूर्त्तिस्तोत्र, दक्षिणामूर्त्त्यष्टक और टीका, दत्तभुजंगस्तोत्र, दत्तमहिमाख्यस्तोत्र, दशरत्नाभिधान, दशश्लोकी, दशावतारमूर्त्तिस्तोत्र, दृग्दृश्यप्रकरण, देवीपञ्चरत्न, देवीभुजंग, देवीमानसपूजाविधि, देवीस्तुति, देव्यपराधक्षमार्पण स्तोत्र, द्वादशपंजरिकास्तोत्र, द्वादशमंजरी, द्वादश महावाक्यविवरण, द्वादशमहावाक्यसिद्धान्तनिरूपण, द्वादशलिंगस्तोत्र, धन्यस्तोत्र, नर्मदाष्टक, नवरत्नमालिका, नारायणस्तोत्र, नारायणोपनिषद्भाष्य, निजानन्दानुभूतिप्रकरण, निरंजनाष्टक, निर्वाणषट्क, नृसिंहतापनीयोपनिषद्भाष्य, नृसिंहपञ्चरत्नमाला, पञ्चचामरस्तोत्र, पञ्चप्रकरणी और टीका, पञ्चरत्न, पंचचक्रस्तोत्र, पंचीकरणप्रक्रिया और टीका, पञ्चीकरणमहावाक्यार्थ, पदकारिकारत्नमाला, पद्मपुष्पाञ्जलिस्तोत्र, परमहंसोपनिषद्धृदय, परापूजा, पाण्डुरंगाष्टक, पाषण्डमुखचपेटिका, पूर्णतापनीयोपनिषद्भाष्य, प्रपञ्चसार, प्रबोधसुधाकर, प्रश्नोत्तरमालिका, प्रश्नोत्तररत्नमाला,

प्रश्नोपनिषद्भाष्य, बालकृष्णाष्टक, बालबोधसंग्रह बालबोधिनी, बालापञ्चरत्न, बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य, ब्रह्मगीताटीका, ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मनामावली, ब्रह्मभावस्तोत्र, ब्रह्मसूत्रभाष्य या शारीरिक-मीमांसाभाष्य, ब्रह्मानन्दस्तव, भगवद्गीताभाष्य, भगवन्मानसपूजा, भट्टिकाव्यटीका, भवानीभुजंग, भवान्यष्टक, भवानीभुजङ्गप्रयात, भृगुवल्युपनिषद्भाष्य, भैरवाष्टक, भ्रमराम्बाष्टक, मणिकर्णिकास्तोत्र, मणिरत्नमाला, मनीषापञ्चक, मरुकरोय, महाकरणप्रकरण, महापुरुषस्तोत्र' महावाक्यपञ्चीकरण, महावाक्यविवरण, महावाक्यविवेक, महावाक्यसिद्धान्त, महावाक्यार्थ, महावेदान्तषट्क, माण्डुक्योपनिषद्भाष्य, मानसपूजाविधि, मीनाक्षीस्तोत्र, मुकुन्दचतुर्दश, मुण्डकोपनिषद्भाष्य, मैत्रायणीयोपनिषद्भाष्य, मोहमुद्गर, यतिस्वधर्मभिक्षाविधि, यमुनाष्टक, योगतारावली, रागद्वेषप्रकरण, राघवाष्टक, रामभुजङ्ग, रामसप्तरत्न, रामाष्टक, लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्र, लघुवाक्यवृत्ति और टीका, ललितात्रिशतीभाष्य, ललितासहस्रनामभाष्य, वज्रसूच्युपनिषद् और टीका, वरदगणेशस्तोत्र, वाक्यवृत्ति, वाक्यसुधा, विवेकचूड़ामणि वा वेदान्तविवेकचूड़ामणि, विश्वनाथनगरीस्तोत्र, विष्णुपादादिकेशान्तस्तुति, विष्णुभुजङ्ग, विष्णुषट्पदी, विष्णुसहस्रनामभाष्य, विष्णुस्तोत्र, वृद्धब्राह्मणोपनिषद्भाष्य, वेदसारशिवसहस्रनामन्, वेदसारशिवस्तव, वेदान्तप्रक्रिया, वेदांतमंत्रविश्राम, वेदांतशास्त्र, वेदांतशास्त्रसंक्षिप्तप्रक्रिया, वेदांतसार, वेदांतसिद्धांतदीपिका, वैराग्यशतक, शतश्लोकी, और टीका, शरभहृदय, शाकटायनोपनिषद्भाष्य, शास्त्रदर्पण, शिक्षापञ्चक, शिवकेशादिपादांतवर्णनस्तोत्र, शिवगीताव्याख्या, शिवदशक, शिवनामावली, शिवपञ्चवदनस्तोत्र, शिवपञ्चाक्षरस्तोत्र, शिवपादादिकेशान्तवर्णनस्तोत्र, शिवभक्तानन्दकारिका, शिवभुजङ्ग या शिवभुजङ्गप्रयातस्तोत्र, शिवभुजङ्गाष्टक, शिवानंदलहरी, शिवाष्टक, शिवस्तोत्र, श्यामलानवरत्न, श्यामामानसार्चन, श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य, षट्पदीस्तोत्र, षडक्षरस्तोत्र, संयमिनाममालिका, सगुणवती, संक्षेपशारीरकभाष्य, सच्चिदानन्दानुभवदीपिका नाम्नी पञ्चपदीप्रकरणटीका, सत्यसूत्र, सदाचारप्रकरण, सनत्सुजातीय विवरण, संध्याभाष्य, संन्यासग्रहणपद्धति, सप्तमठाम्नायदशनामाभिधान, सप्तसूत्र, सम्बंधदीपिका, सहजाष्टक, साधनपञ्चक, सिद्धांतबिन्दु, सुखबोधिनी, सूतसंहिताभाष्य, स्तोत्रपाठ, स्वरूपनिरूपण, स्वरूपनिर्णय, स्वात्मनिरूपण या स्वात्मानन्दप्रकाश, स्वात्मपूजा, स्वात्मप्रबोध, स्वाराज्यसिद्धि, हरिनाममाला, हरिमीड़ेस्तोत्र या हरिस्तोत्र, हरिहरस्तोत्र, हस्तामलकस्तोत्र या हस्तामलकसंवाद और उसकी टीका और हालास्याष्टक।

उक्त सभी ग्रन्थ सुप्रसिद्ध दार्शनिक और उपनिषद्-भाष्यकार शङ्कराचार्यके रचित नहीं हैं। अनेक ग्रन्थोंकी भाषा, शब्दविन्यास और उद्देश्यकी आलोचना करनेसे ही यह मालूम होता है। सनातन हिन्दू धर्मके पुनः प्रतिष्ठाता शङ्करके नामसे स्वरचित ग्रन्थ या कविताकी ख्याति फैलानेके अभिप्रायसे कोई कोई महात्मा और कवि शंकराचार्यके नाम पर अपना अपना ग्रन्थ चला गये हैं। इसके सिवा आदिगुरु शङ्कराचार्यके मठाधिकारी महन्तगण भी शङ्कराचार्यकी उपाधि धारण करते आ रहे हैं। उन लोगोंके ग्रन्थमें भी शङ्कराचार्यकी भणिता है। एतद्भिन्न शङ्कर नामसे कुछ आचार्य भी ग्रन्थकी रचना कर गये हैं, उसीमें हमने एकसे अधिक शङ्कराचार्यके रचित अनेक ग्रंथ पाये हैं। दुःखका विषय है, कि उनमेंसे प्रत्येकको पृथकरूपसे निर्वाचित करनेमें हमारी सामर्थ्य नहीं। पर हां, इतना अवश्य कह सकते हैं, कि आदि शङ्करने कुछ उपनिषद्भाष्य, गीता और वेदान्तविषयक ग्रंथोंको छोड़ और किसी भी ग्रंथकी रचना नहीं की। यहां तक कि उनके नाम पर प्रचलित अनेक उपनिषद्भाष्य और वेदांतग्रंथ हैं जिन्हें उनके रचित कहनेमें हमें संदेह होता है। अवशिष्ट अन्यान्य ग्रंथ निःसन्देह एकसे अधिक शङ्कराचार्यके रचित माने जाते हैं।

शङ्कराचार्यका दार्शनिक सिद्धान्त।

श्रीशंकराचार्यने केवलाद्वैतवादका प्रचार किया। यह वाद मायावाद नामसे भी प्रसिद्ध है। इसके संक्षिप्त सारमर्मके सम्बन्धमें प्राचीन उक्ति इस प्रकार है—

"श्लोकार्द्धेन प्रवक्ष्यामि भदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः
ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥"

अर्थात् अनेक ग्रन्थोंमें शंकराचार्यके दार्शनिक तत्त्व-सम्बन्धमें जो सब सिद्धांत प्रकाशित हुए हैं, वह श्लोकार्द्धमें दिखलाये जाते हैं। वह सिद्धांत यह है, कि ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, जीव ब्रह्मसे अभिन्न हैं।

फलतः शंकरका दार्शनिक अभिमत इन तीन विषयोंकी प्रगाढ़ आलोचना पर ही पर्यवसित हुआ है। किंतु एकमात्र ब्रह्म ही मूलतत्त्व है। ब्रह्म मनोवाक्यके अगोचर, अप्रतर्क्य, अविज्ञेय, एक, अद्वितीय, और चित्यात्र हैं। शंकरका कहना है कि यह विचित्र विशाल विश्वब्रह्माण्ड सृष्टिके पहले एकमात्र चिन्मात्र परमब्रह्म विद्यमान थे। यह परमब्रह्म एक और अद्वितीय हैं। ब्रह्म सत् और सृष्टि जगत् असत् है। माध्यमिक बौद्धोंका सिद्धान्त यह है, कि सृष्टिके पहले कुछ भी न था। श्रीपाद शंकराचार्यने माध्यमिक बौद्धोंके इस सिद्धान्तको खण्डन कर वैदिक मन्त्रको भित्ति और तर्कयुक्तिके बल पर उन लोगोंका विपरीत सिद्धांत संस्थापन किया है। वे कहते हैं, कि असत्‌से सत्‌की उत्पत्ति असम्भव है।

माध्यमिक बौद्धगण शून्यवादी हैं। वे कहते हैं—

"रूपाणि रूपी पश्यति शून्यम्।
विज्ञान्त्यायतनं पश्यति शून्यम्।"

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"शून्यमाध्यात्मिकं पश्य पश्य शून्यं वहिर्गतम्।"
(माध्यमिक सू० १८ अ०)

इस प्रकार शून्यवाद ऋषिप्रणीत ग्रंथमें नहीं है सो नहीं। हम श्रीभागवतमें देखते हैं—

"तत्र शब्दपदं चित्तमाकृष्य व्योम्नि धारयेत्।
तच्च त्यक्त्वा मदारोहो न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥"(११।१४)

फिर दूसरी जगह लिखा है—

"खमध्ये कुरु चात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु।
आत्मानं खमयं कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥"

ये सब उक्तियां शून्यवादको पोषक हैं। श्रीमच्छङ्कराचार्यने ब्रह्मतत्त्वका निरूपण करते हुए मायावादकी सहायतासे इस विचित्र विश्वप्रपञ्चको कार्यतः शून्यमें परिणत किया है। उन्होंने ब्रह्मका जैसा स्वरूप निर्देश किया है वह व्यवहारिक विचारसे एक प्रकार शून्यवादका अपर पृष्ठ समझा जाता है। किंतु ब्रह्मसूत्रके द्वितीय अध्याय द्वितीय पादके २८वें सूत्रके 'नाभाव उपलब्धेः' भाष्यमें शङ्करने दूसरी तरहसे शून्यवादका खण्डन किया है। शङ्करका ब्रह्म 'चिन्मात्र' होने पर भी वह पूर्ण और सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप कह कर प्रसिद्ध है। बृहदारण्यक उपनिषद्भाष्यमें उन्होंने ब्रह्मका पूर्ण नाम रखा है। यथा—

"न वयमुपहितेन रूपेण पूर्णतां वदामः किंतु केवलेन स्वरूपेण।" (बृहदारण्यक उपनिषद् ४।१)

शंकरका ब्रह्म निर्गुण चिन्मात्र होने पर भी वह पूर्ण और विभु है।

ब्रह्म केवल पूर्ण और विभु नहीं है, वे स्वप्रकाश हैं।

जगदुत्पत्तिका विषय शंकरने ईश्वरका अनुमान किया है। उन्होंने ब्रह्मसूत्रभाष्यमें प्रथम अध्यायके प्रथम पादमें द्वितीय सूत्रभाष्यमें लिखा है—

"न यथोक्तविशेषणस्य जगतो यथोक्तविशेषणमीश्वरं मुक्त्वान्यतः प्रधानादचेतनादणुभ्यो वा भावाद्वा संसारिणो वा उत्पत्त्यादि संभावयितुं शक्यम्।"

अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ईश्वर वा सगुण ब्रह्मव्यतीत शून्य या अतीव अणुसे अथवा जड़स्वभाव प्रकृतिसे अथवा परमाणुसे, जन्म अथवा मरणवान् संसारी जीवसे इस विचित्र जगत्‌का इस प्रकार सृष्टि-स्थिति-प्रलय होना किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता। शंकर भावपदार्थके पूर्ण विश्वासी थे। परंतु उनका स्वीकृत भावपदार्थ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव है। यह भावपदार्थ चिदेकमात्र है।

तैत्तिरीय उपनिषद्के भाष्यमें शंकरने लिखा है—
"आत्मनः स्वरूपं ज्ञप्तिर्न ततो व्यतिरिच्यते अतो नित्यैव। प्राप्तमन्तवत्त्वं लौकिकस्य ज्ञानस्य अन्तवत्त्वदर्शनात् अत एतन्निवृत्त्यर्थं।" (२।१)

अर्थात् चिन्मात्र ही आत्माका स्वरूप है। यह ज्ञान उसके स्वरूपसे किसी प्रकार भिन्न नहीं है। अतएव यह नित्य है। किन्तु लौकिक ज्ञानकी सीमा है, ज्ञानस्वरूप आत्माका अन्तर्गत नहीं है, वह असीम और

अनन्त हैं। सचेतन जीवोंमें हम जो ज्ञान देखते हैं, वह तुरीय ब्रह्मचैतन्यसे उपलब्ध है। कठोपनिषद्भाष्यमें शंकरने लिखा है—

"आत्मचैतन्यनिमित्तमेव च चेतयितृत्वमन्येषाम्" इत्यादि।
(२।१।१३)

अन्यान्य उपनिषद्भाष्य और सूत्रभाष्यसे शंकर-दर्शनका यह प्रधानतम एक सिद्धांत विवृतरूपमें और विशदरूपमें आलोचित हो सकता है। आत्मा जो चिन्मात्र या केवल ज्ञानरूप है, शङ्कराचार्यने इस सिद्धांतका अच्छी तरह विवृत किया है।

निर्विशेष ब्रह्म।

शंकरके मतसे ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय हैं। वे स्थूल नहीं हैं, सत् नहीं हैं, असत् नहीं हैं, कार्य नहीं हैं, कारण भी नहीं हैं, ब्रह्म इन्द्रियातीत हैं। सुतरां वे वाक्यमनके अगोचर हैं, वहां चक्षु नहीं जा सकता, मन नहीं जा सकता, वाक्य भी उन्हें आयत्त नहीं कर सकता। वे ज्ञाता नहीं हैं और न ज्ञेय ही हैं, वे ज्ञानके अतीत और क्रियाके भी अतीत हैं।

श्रीशंकराचार्यने वेदांतसूत्रभाष्यमें, गीताभाष्यमें, बृहदारण्यक तथा अनेक उपनिषद्भाष्यमें निर्विशेष ब्रह्मके वाचक हैं, ऐसे प्रमाणका उल्लेख कर अपने सिद्धांतको संस्थापित किया है।

सविशेष या सगुण ब्रह्मको भी शंकरने अस्वीकार नहीं किया है। शंकरका कहना है, कि ईश्वर ही सगुण ब्रह्म हैं। मायाके सम्बन्धमें ब्रह्म ही सगुण ब्रह्म हैं। शंकराचार्यके सिद्धान्तानुसार सगुणब्रह्म मायिक है, अतएव ब्रह्मकी गुणमय अभिव्यक्ति अनित्य है। गुण जिस प्रकार अनित्य ब्रह्मका सगुण है, अभिव्यक्ति भी उसी प्रकार अनित्य है। श्रुतिमें सविशेष और सगुण ब्रह्मका उल्लेख है। शंकराचार्यको ये सब श्रुतिवाक्य स्वीकार करने पड़े हैं। किन्तु शंकरके मायावादके ऐन्द्रजालिक प्रभावसे श्रुतिके सगुण ब्रह्म अनित्य और मिथ्यारूपमें कल्पित हुए हैं। शंकरने इस सगुण ब्रह्ममें ही शक्ति और गुणादिका अस्तित्व स्वीकार किया है। किन्तु यह सगुण ब्रह्म जब अनित्य और मायिक है, तब शक्ति भी मायिक है। सुतरां शंकराचार्य यथार्थमें शक्तिवादी नहीं हैं तथा किसी भी प्रकार शक्तिके पारमार्थिकत्वको स्वीकार नहीं करते।

शङ्करका कहना है, कि व्यवहारिक भावमें ही ये सगुण ब्रह्म स्वीकृत हुए हैं। जगत्‌की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय आदिका कारण भी यही सगुण ब्रह्म है। किन्तु आत्मज्ञानके विमल आलोकसे जब मायाका अन्धकार दूर होता है, तब फिर इस सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् ब्रह्मका अस्तित्व नहीं रहता। निर्विशेष ब्रह्म ही एकमात्र सार और पारमार्थिक तत्त्व है। शास्त्र और व्यवहारके अनुरोधसे शंकरने इस सगुण ब्रह्मको स्वीकार किया है, नहीं तो निर्विशेषमें परब्रह्म ही उनके ब्रह्मतत्त्वका चरम सिद्धान्त है।

अभेदवाद वा अद्वैतवाद।

कोई कोई समझते हैं, कि अभेदवाद वा अद्वैतवाद शंकराचार्यका प्रवर्त्तित है, किन्तु ध्यानपूर्वक वेदान्तसूत्र पढ़नेसे सभी जान सकते हैं, कि वेदान्तसूत्र रचे जानेके बहुत पहले इस देशके ऋषियोंमें ये सब वाद लेकर यथेष्ट वाद्‌विसंवाद चलता था। आश्मरथ्य, औडुलोमि, बादरायण, आत्रेयो, काशकृत्स्न और जैमिनि आदि ऋषिगण ब्रह्म और जीवो शब्दमें भिन्न भिन्न अभिमत पोषण करते थे। शंकराचार्यने बादरि और काशकृत्स्नका मत समर्थन करके ही "ब्रह्म और जीव अभिन्न" यह मत प्रचार किया है। केवल माया द्वारा ही जीव और ब्रह्मका पार्थक्य सूचित होता है। ज्ञानके साधनसे जब माया तिरोहित होती है, तब जीव और ब्रह्ममें कोई भी भेद नहीं रहता। यह विचित्र विश्वब्रह्माण्ड केवल मायाकी ही लीला है। यह असत् और मायाविजृम्भित मात्र है। एकमात्र ब्रह्म ही सत् और नित्य है। यह ब्रह्म एक और अद्वितीय है। ब्रह्म और जीवमें कोई पृथकता नहीं है। मायावशतः विभिन्नता दिखाई देने पर भी मूलतः दोनों ही एक हैं। ज्ञान ब्रह्मका गुण नहीं है, ब्रह्म चिदेकमात्र और विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

ब्रह्म निर्गुण अर्थात् गुणगन्धविवर्जित हैं। यदि कहा जाये, कि यह जो परिदृश्यमान विचित्र विशाल विश्वब्रह्माण्ड दिखाई देता है, वह क्या अवान्तर है? अभेदवादी शंकरने इसके उत्तरमें कहा है, कि पारमा-

थिंक हिसाबसे यह विश्व ब्रह्माण्ड अलीक और अवान्तर नहीं है, तो क्या है ? सगुण ब्रह्मके मायागुणसे ही जगत्प्रपञ्चका अस्तित्व प्रतिभात होता है। यह जगत् एक इन्द्रजाल मात्र है। यह माया अविद्या नामसे भी पुकारी जाती है। यह माया सत् भी नहीं है और न असत् ही है। तत्वज्ञानके निकट यह माया असत् और व्यवहारिक ज्ञानके सामने सत् मानी जाती है। यह माया सदसदात्मिका और अनिर्वचनीय माया ही जगत् को उपादान है। मायागुणसमन्वित ब्रह्म ही ईश्वर है। ईश्वर मायाशक्तिके इन्द्रजालमें ऐन्द्रजालिककी तरह यह जगत् मायाधीन जीवको प्रत्यक्ष दिखलाता है। माया ही भेदज्ञानका कारण है। यह जो अनन्त जीव प्रत्यक्ष दिखाई देता है, इनकी पृथक्ता केवल माया होकी क्रीड़ा मात्र है। नहीं तो एक अखण्ड अद्वितोय ब्रह्मको छोड़ और सभी मायाके इन्द्रजालमात्र हैं। मायाबद्ध व्यक्तिके जो पार्थक्य-ज्ञान है, वह भी मिथ्या है। बद्ध जीव मायाका मोह आवरण भेद कर परमतत्त्व देख नहीं सकता, अतएव मायाबद्ध जीवके 'अहं ब्रह्म' ऐसा ज्ञान नहीं होता। जीव अपनेको ब्रह्म न समझ कर मायाकी उपाधिको ही अहं समझता है। मायोपहित देही जीव अहं समझ कर भ्रान्तिकूपमें गोता खाते हैं, सुविशाल ब्रह्म-सागरकी आनन्दलीलालहरी फिर उसके ज्ञाननेत्रका गोचर नहीं होती। आत्मा विशुद्ध ज्ञानस्वरूप निष्क्रिय और अनन्त है, जीवको यह ज्ञान नहीं रहता। जीवका ज्ञान अपनी देहमें सीमाबद्ध रहती है। इस समय जीव अपने कृतकर्मके फलसे सुकृति दुष्कृति अर्जन करता है। इस कारण जीवको सुख दुःख का भोग करना होता है तथा जन्म-मरण-प्रवाहरूप यातना सह्य करनी होती है। ईश्वर जीवोंको दुष्कृति और सुकृतिका फल देता है। कल्पके अन्तमें जगत्का प्रलय होता है। उस समय यह विचित्र विश्वब्रह्माण्ड मायामें विलीन हो जाता है। जीवको फिर कोई उपाधि नहीं रहती। किन्तु फिर भी जब तक उनके कृतकर्मका प्रायश्चित्त नहीं होता, तब तक वे कर्मानुसार जन्मग्रहण करते हैं। इस प्रकार मायाबद्ध जीव अनन्त संसार-प्रवाहमें भ्रमण करते हैं।

मुक्तिका उपाय।

शंकरका कहना है, कि इस अनन्त संसार-प्रवाहसे जीव किस प्रकार विमुक्त हो सकता है, उसका विधान वेदमें देखनेमें आता है। कर्मकाण्डमें यागयज्ञ आदि क्रियादिकी व्यवस्था है। किन्तु इससे जीव मुक्तिलाभ नहीं करता। स्वर्गादिके लिये कितने भी यज्ञका अनुष्ठान क्यों न किया जाये, उससे जीवकी मुक्ति नहीं हो सकती। वैदिक ज्ञानकाण्डकी पर्यालोचनासे दो प्रकार ब्रह्मके विषय जाने गये हैं—एक सगुण ब्रह्म और दूसरा निर्गुण ब्रह्म। सगुण ब्रह्मका ईश्वर नाम रखा गया है। जागतिक क्रियादि इस सगुण ब्रह्मका कार्य है। सगुण ब्रह्मके साथ ही इस जगत्प्रपञ्चका सम्बन्ध है। परम ब्रह्म निर्गुण और निष्क्रिय है। उनके साथ मायिक जगत्का कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वे परमात्मा हैं। सगुण ब्रह्मकी उपासनासे मुक्तिलाभ नहीं होता। पर ब्रह्मका ज्ञान नहीं होनेसे संसारदुःखसे जीव मुक्ति लाभ नहीं कर सकता। "तत्त्वमसि" महावाक्यके अनुष्ठानसे जीव और ब्रह्मका भिन्न ज्ञान जब तिरोहित होता है, तभी जीव मुक्तिलाभ कर अपने स्वरूपको प्राप्त होता है। शंकरके सिद्धान्तका यही सारगर्भसंक्षिप्त मर्म है। वेदान्त शब्द देखो।

शङ्करादि (सं० पु०) शुक्लार्कवृक्ष, सफेद मदारका पेड़। (राजनि०)

शङ्करानन्द (सं० पु०) १ श्रुतिगीताटीकाकार। २ ब्रह्मसूत्रप्रदीपके रचयिता। ३ विवेकसारके प्रणेता, आनन्दात्माके शिष्य।

शङ्करानन्द—वाञ्छेश और तेंकटाम्बाके पुत्र। ये सायण और पञ्चदशीकार माधवाचार्यके गुरु थे। शंकरानन्द आनन्दात्म मुनिके शिष्य थे। इन्होंने आत्मपुराण* नामक वेदांतिक ग्रन्थकी रचना की। इनके रचित दूसरे ग्रन्थ ये सब हैं—भगवद्गीतातात्पर्यबोधिनी, शिवसहस्रनामटीका, सर्वपुराणसार, यत्यनुष्ठानपद्धति। इन्होंने निम्नलिखित उपनिषद्की दीपिका रची—अथर्व-

* "उपनिषद्-रत्न" इसका दूसरा नाम है। इसमें श्लोकके आकारके बहुत-सी उपनिषद्के विवरण लिपिबद्ध है।"

शिखा, अथर्वशिरः, अमृतबिन्दु, आरुणी, ईशावास्य, ऐतरेय, काठक अथर्वशीर्ष, अमृतनाद केनोपित, कैवल्य, कौषीतक, गर्भ, छान्दोग्य, जावाल, तैत्तिरीय, नारायण, नृसिंहतापनीय, परमहंस, प्रश्न, ब्रह्म, ब्रह्मवल्ली, महोपनिषद्, माण्डुक्य, मुण्डक, श्वेताश्वतर और हंस।

शङ्करानन्दतीर्थ—शिवनारायणानन्दतीर्थके शिष्य। इन्होंने पद्पदीमञ्जरीकी रचना की।

शङ्करानन्दनाथ—त्रिपुरासुन्दरी महोदयके रचयिता। ये रामानन्दनाथके शिष्य थे। इन्होंने अपने ग्रन्थमें मन्त्रमहोदधिका उल्लेख किया है।

शङ्कराभरण (सं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक प्रकारका राग। यह नरनारायण रागका पुत्र माना जाता है। इसके गानेका समय प्रभात है और किसीके मतसे सायंकालमें १६ दण्ड से २० दण्ड तक भी गाया जा सकता है।

शङ्करालय (सं० पु०) शङ्करका अवस्थितिस्थान, कैलास।

शङ्करावास (सं० पु०) १ महादेवका आवास-स्थान, कैलास। २ भीमसेन कर्पूर, बरास। (राजनि०)

शङ्कराह्वया (सं० स्त्री०) शमीका वृक्ष।

शङ्करी (सं० स्त्री०) १ शिवकी पत्नी पार्वती। २ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ३ शमीका वृक्ष। ४ एक रागिणी जो मालकोशकी सहचरी मानी जाती है। (त्रि०) ५ कल्याण करनेवाली, मङ्गल करनेवाली।

शङ्करीय (सं० त्रि०) शङ्करसम्बन्धी। (पा ४।२।६०)

शङ्कर्षण (सं० पु०) १ विष्णु। (भा०१३।१४ ना ७२) २ रोहिणीके पुत्रका नाम।

शङ्कव (सं० स्त्री०) सकुची मछली।

शङ्कव्य (सं० त्रि०) शङ्कवे हितं शङ्कु यत्। शंकुकरणमें उपयुक्त।

शङ्का (सं० स्त्री०) १ मनमें होनेवाला अनिष्टका भय, डर, खौफ। २ किसी विषयकी सत्यता या असत्यताके सम्बन्धमें होनेवाला संदेह, आशंका, संशय, शक। ३ साहित्यके अनुसार एक संचारी भाव, अपने किसी अनुचित व्यवहार अथवा किसी और कारणसे होनेवाली इष्ट हानिकी चिन्ता।

शङ्का अतिचार (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार एक प्रकारका पाप या अतिचार जो जिन-वचनमें शंका करनेसे होता है।

शङ्कामय (सं० त्रि०) शङ्का-मयट्। शङ्कायुक्त। (रामायण २।२२।६)

शङ्कित (सं० त्रि०) शङ्का जाता अस्य शङ्का-इतच्। १ भीत, डरा हुआ। (त्रिका०) २ सन्दिग्ध, जिसमें संदेह हुआ हो। ३ संदेहयुक्त, अनिश्चित। (पु०) ४ चोरक या भटेउर नामका गन्धद्रव्य। (राजनि०)।

शङ्कितवर्णक (सं० पु०) शङ्कितं अत्र कोऽप्यस्ति नास्तीत्यादिकं वा वर्णयति तर्कयति इति वर्णि ण्वुल्। तस्कर, चोर।

शङ्कितव्य (सं० त्रि०) शङ्क तव्यत्। शंकाके योग्य, भयके उपयुक्त।

शङ्किन् (सं० त्रि०) शङ्का विद्यतेऽस्य। शंकान्वित, भययुक्त।

शङ्कु (सं० पु०) शङ्कतेऽस्मादिति शङ्क (खरु शङ्कु पीयु नीलङ्गु लिगु। उण् १।३७) इति कुप्रत्ययेन निपातनात् साधु। १ कोई नुकीली वस्तु। २ गांसी, फल। ३ भाला, बरछा। ४ खूंटी। ५ मेख, कील। ६ कामदेव। ७ शिव। ८ राक्षस। ९ विष। १० हंस। ११ एक प्रकारकी मछली। १२ लीलावतीके अनुसार दश लक्ष कोटिकी एक संख्या, शंख। १३ प्राचीन कालका एक प्रकारका बाजा। १४ वल्मीक, बाँबी। १५ कलुष, पाप। १६ पुराणानुसार उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्यके नवरत्न पण्डितोंमेंसे एक। १७ उग्रसेनका एक पुत्र। (भागवत ९।२४।२४) १८ शिवके अनुचर एक गन्धर्वका नाम। १९ लिङ्ग। २० पत्तोंकी नसें। २१ वृक्षोंमेंकी रस खींचनेकी शक्ति। २२ बारह अंगुलकी एक खूंटी। इसका व्यवहार प्राचीन कालमें सूर्य या दीपकी छाया आदि नापनेमें होता था। २३ बारह अङ्गुलकी एक नाप। २४ गावदुम लम्बा जिसके ऊपरका हिस्सा नुकीला और नीचेका मोटा हो। २५ नखी नामक गन्धद्रव्य। २६ दाँव।

शङ्कुक—१ भुवनाभ्युदयकाव्यके प्रणेता। इनके रचे अलंकार ग्रन्थका परिचय काव्यप्रकाशमें पाया जाता है। २ एक कवि। ये मयूरके पुत्र थे।

शङ्कुकर्ण (सं० पु०) शंकु इव कर्णौ यस्य। १ गर्दभ, गदहा। (त्रिका०) २ दानवविशेष। (हरिवंश ३।८१) ३ नागविशेष। (भारत १।५७।१५) ४ शंकु सदृश कर्णविशिष्ट, वह जिसके कान शंकुके समान लम्बे और नुकीले हों।

शङ्कुकर्णी (सं० पु०) शिव, महादेव।

शङ्कुकर्णेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद। (भारत वनपर्व)

शङ्कुचि (सं० पु०) शंकुमत्स्य, सकुची मछली। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुच्छाया (सं० स्त्री०) प्राचीन कालकी बारह अंगुल की एक नुकीली खूंटी। इसका ऊपरी भाग नुकीला होता था। इसकी छायासे समयका परिमाण मालूम किया जाता था।

शङ्कुजिह्वा (सं० स्त्री०) ज्योतिषके अनुसार एक गणित (Gnomon-sine)।

शङ्कुतरु (सं० पु०) शंकुरिव तरुः। शालका वृक्ष। (शब्दरत्ना०)

शङ्कुद्वार (सं० पु०) गुजरातके समीपके एक छोटे टापूका नाम। यहां शंकु नारायणकी मूर्त्ति है।

शङ्कुनारायण (सं० पु०) नारायणकी वह मूर्त्ति जो शंकुद्वार टापूमें है।

शङ्कुपथ (सं० पु०) पथभेद। (पा ५।१।७७)

शङ्कुपुच्छ (सं० क्ली०) जिसकी पूंछमें डंक हो। (राजतर० ३।३६६)

शङ्कुफणिन् (सं० पु०) जलमें होनेवाला जन्तु, जलचर। (हेम)

शङ्कुफलिका (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुफली (सं० स्त्री०) सफेद कीकर।

शङ्कुमत् (सं० त्रि०) शंकु अस्त्यर्थे मतुप्। शंकुविशिष्ट, शंकुयुक्त।

शङ्कुमती (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द। इसके पहले पादमें पाँच और शेष तीनोंमें छः छः या दशसे कुछ न्यूनाधिक वर्ण होते हैं।

शङ्कुमुख (सं० त्रि०) १ शंकुके समान मुखवाला। (पु०) २ कुम्भीर, मगर। ३ चूहा, बिल्ली आदि।

शङ्कुमुखी (सं० स्त्री०) जलौका, जोंक।

शङ्कुर (सं० त्रि०) शंक्यतेऽस्मादिति शंक बाहुलकादुरच्। १ त्रासदायी, भीषण, भयंकर। (हेम) २ पुराणानुसार एक दानवका नाम। (विष्णुपु०)

शङ्कुला (सं० स्त्री०) शंकु पूर्वात् लातेः (आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) इति कप्रत्यये शंकुला, (उण् १।३७) शङ्कुपूर्वाल्लातेर्घञर्थे कविधानमिति वा क प्रत्ययः। (काशिका ६।२।६) १ उत्पलपत्रिका। २ पूगकर्त्तनी, सुपारी काटनेका सरौता।

शङ्कुलाखण्ड (सं० क्ली०) वह वस्तु जो सरौतेसे दो खण्ड की गई हो।

शङ्कुवृक्ष (सं० पु०) शंकुरिव वृक्षः। शालका पेड़। (रत्नमाला)

शङ्कुशिरस् (सं० पु०) असुरविशेष। (भागवत ६।६।३०)

शङ्कुश्रवणा (सं० त्रि०) शङ्कुरिव श्रवणौ यस्य। शंकुके समान कर्णविशिष्ट, जिसके कान शंकुके समान हों। शङ्कुके समान कान होनेसे राजा होता है।

शङ्कुष्ठ (सं० त्रि०) शङ्कु-स्था-क, सस्य षः। (पा ८।३।९७) शङ्कुमें अवस्थित।

शङ्कुत् (सं० त्रि०) शम्-कृ-क्विप्। मङ्गलकारी।

शङ्कोच (सं० पु०) शङ्कुमत्स्य, सकुची मछली। (जटाधर)

शङ्कोचि (सं० पु०) शङ्कोच देखो।

शङ्केशिक (सं० त्रि०) नैमित्तिक।

शङ्ख (सं० पु० क्ली०) शाम्यति अशुभमस्मादिति शम-ख (शमेः खः। उण् १।१०४) समुद्रोद्भव जन्तु विशेष, एक प्रकारका बड़ा घोंघा जो समुद्रमें पाया जाता है। पर्याय—कम्बु, कम्बोज, अब्ज, जलज, अर्णोभव, पावनध्वनि, अन्तःकुटिल, महानाद, श्वेत, पूत, मुखर, दीर्घनाद, बहुनाद, हरिप्रिय। गुण—कटुरस, पुष्टिवर्द्धक, वीर्य और बलप्रद, गुल्म, शूल, कफ, श्वास, और विषदोषनाशक।

भावप्रकाशमें लिखा है—शंख, नाभिशंख, भिनुक, शम्बूक और कर्कट आदि कोषस्थ जीव मधुर, स्निग्ध, वातपित्तहर, हिम, पुष्टिद, मलकारक, शुक्रल और बलवर्द्धक होता है।

राजवल्लभमें कहा है, कि शंख और समुद्रफेन शीतवीर्य, कषायरसविशिष्ट और अति वह्निमलनिःसारक है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें शंखोत्पत्तिविवरण इस प्रकार लिखा है—देवादिदेव महादेवका मध्याह्न कालके मार्त्तण्ड सदृश देदीप्यमान शूल जब दानवप्रवीर शंखचूड़के ऊपर गिरा तब उसकी देह भस्म हो गई। इस पर महादेव बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी हड्डियोंको लवणाम्बुमें फेंक दिया। उन्हीं सब हड्डियोंसे नाना प्रकारके शंखकी उत्पत्ति हुई। (ब्रह्मवै० प्रकृतिख० १८ अ०)

शंखका माहात्म्य—देवतादिकी पूजामें शंख अति पवित्र पदार्थ है। उसका जल तीर्थजल सदृश तथा देवताओंका अत्यन्त प्रीतिपद है। शंखकी ध्वनि जहां तक जाती है, वहां लक्ष्मीदेवी स्थिरभावसे अवस्थान करती हैं। शंखमें सर्वदा हरि वास करते हैं, अतएव जहां शंख रहता है, लक्ष्मीजनार्द्दन वहांका कुल अमङ्गल दूर कर सर्वदा उस स्थानमें वास करते हैं। किन्तु यदि किसी स्त्रीशूद्र द्वारा वह शंख बजाया जाय, तो लक्ष्मी भयभीत और अप्रसन्न हो कर वहांसे दूसरी जगह चली जाती हैं। (ब्रह्मवै०) शंखमें कपिला गायका दूध भर कर उससे नारायणको स्नान करानेसे अयुतसहस्र यज्ञका फल लाभ होता है। जिस किसी गायका दूध शंखमें भर कर नारायणको स्नान करानेसे ब्रह्मपद लाभ होता। शंखस्थ गङ्गाजल द्वारा 'नमो नारायणाय' कह कर विष्णुको स्नान करानेसे जीव योनिसङ्कट से मुक्त होता है। शंखसंलग्न विष्णुपादोदकमें तिल या तुलसी मिला कर भक्त वैष्णवोंको देनेसे चान्द्रायणव्रतका फललाभ होता है। नदी, तड़ाग, कूप, सरोवर, ह्रद आदि जिस किसी जलाशयका जल क्यों न हो, वह शंखमें डालनेसे गङ्गाजलके समान हो जाता है। जो वैष्णव शंखस्थ विष्णुपादाम्बुको मस्तक पर धारण कर नित्य वहन करता है, उसकी गिनती श्रेष्ठ तपस्वीमें होती है। त्रिभुवनमें जितने तीर्थ हैं वासुदेवकी आज्ञासे वे सभी शंखके भीतर अधिष्ठित हैं, इस कारण "त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे। नमितः सर्व्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते।" इस मन्त्रसे सर्व्वदा शंखकी अर्च्चना करना कर्त्तव्य है। फलपुष्प चन्दनादि द्वारा जो वासुदेवके सामने शंखकी अर्च्चना करते हैं, लक्ष्मी उन पर सदा प्रसन्न रहती हैं। शंखकी अर्च्चना करना तो दूर रहे, शंख दर्शन मात्रसे ही सूर्योदय होने पर शिशिरविन्दुकी तरह पापराशि विलुप्त हो जाती है। पाञ्चजन्य शंखके नादसे असुर पत्नियोंके गर्भ सहस्र भागोंमें विभक्त हो विनष्ट होते हैं। यमदूत, पिशाच, उरग, राक्षस आदि जिस व्यक्तिको शिर पर शंखोदक दे, उसे देख भयभीत हो दूर भागते हैं। नित्य, नैमित्तिक और काम्य स्नानार्च्चन विलेपनादिसे जो शंखकी अर्च्चना करते हैं, श्वेतद्वीपमें उनकी गति होती है। (पद्मोत्तरख० १२६ अ०)

दक्षिणावर्त्तशंखमाहात्म्य—पूर्वदिग्गामिनी नदीके किनारे जा कर दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा विधिवत् अभिषेक करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। तिल और जल संस्पृष्ट दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा उक्त प्रकारकी पूर्वदिग्गामिनी नदीके गर्भमें नाभि पर्यन्त निमज्जित कर यथाविधि अभिषेक करनेसे जीवन भरका किया हुआ पाप उसी समय नष्ट होता है। दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा परिशोधित जल हृष्टचित्तसे मस्तक पर धारण करनेसे जन्मार्जित पाप उसी समय जाते रहते हैं। इससे कभी भी मछली या शूकरको नहीं मारना चाहिये। इस शंखमें जलपान करना सर्वदा निषिद्ध है। (वराहपु०)

दक्षिणावर्त्तशंख साधारणतः दुष्प्राप्य है। इस कारण इसका मूल्य भी अधिक है। एक दक्षिणावर्त्त-शंख गुणानुसार ४००) ५००) रुपयेमें बिकता है। वामावर्त्तशंखमें जहां हम मुंह लगा कर शंखनाद करते हैं, दक्षिणावर्त्तका वह मुख कानमें लगानेसे अपूर्व मधुरध्वनि कर्णकुहरमें प्रवेश करती है। इस महार्घके कारण यह एक रत्नमें गिना जाता है।

आह्निकाचारतत्त्वमें लिखा है, कि दक्षिणावर्त्तशंख द्वारा हरिकी अर्चना करनेसे सप्त जन्मकृत पाप नष्ट होते हैं।

युक्तिकल्पतरु आदिमें शंखको रत्नविशेषमें गिना गया है। यह शंख क्षीरोदोपकूलमें सुराष्ट्र देशमें या तद्भिन्न अन्यान्य स्थलोंमें भी पाया जाता है। इसका वर्ण तरुण सूर्यकी तरह या शशिशुभ्र होता है। मुख बहुत सूक्ष्म और यह बहुत भारी तथा बड़ा होता है। वाम और दक्षिणावर्त्त भेदसे यह दो प्रकारका है। उनमेंसे दक्षिणावर्त्त आयु, यशः और धनवर्द्धक है।

जो इस शंखसे श्रद्धापूर्वक जल ग्रहण करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो पुण्यलोकको जाते हैं। वृत्ताकार भाव, स्निग्धता और निर्मलता ये तीन शंखके गुण हैं। इस शंखमें यदि आवर्त्तभङ्गरूप कोई दोष हो, तो सुवर्ण संयोग द्वारा उस दोषकी शान्ति हो सकती है। ये शंख फिर ब्राह्मणक्षत्रियादिभेदसे चार वर्णोंमें विभक्त हैं।

देवपूजाकालके बजानेके लिये जिस प्रकार शंखकी आवश्यकता होती है, आरात्रिकादिमें भी उसी प्रकार 'पाणि-शंख' की प्रयोजनीयता देखी जाती है।

शंख शम्बूक जाति (Mollusca)के अन्तर्गत तथा एक स्वतंत्र पर्यायभुक्त हैं। पाश्चात्य पण्डितोंने शंख शब्द या उसकी वाद्यध्वनिसे ही इसका Conch-shell वा Chank-shell नाम रखा है। इस जातिके जीवका वैज्ञानिक नाम Turbinelle pyrum है। एकमात्र भारत-महासागर और बङ्गोपसागरमें शंख जातिका शम्बुक पाया जाता है।

प्राचीन हिन्दुओंके निकट शंखवाद्य परम पवित्र है। स्वयं विष्णु शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी हैं। युद्धमें प्रधान प्रधान रथी तथा सेनादल भी शंखनिनादसे धरातलको कंपा देते थे, यह उस समय तुरीभेरीसे अधिक प्रचलित था। प्रत्येक रथीको अपना अपना शंख रहता था। यथा—श्रीकृष्णका पाञ्चजन्य, अर्जुनका देवदत्त, भीमका पौण्ड्र, युधिष्ठिरका अनन्तविजय, नकुलका सुघोष, सहदेवका मणिपुष्पक इत्यादि। (गीता)

प्रति हिन्दूमन्दिरमें पूजाके समय अथवा संध्याकालमें शंखनाद होता है। किसी किसी स्थानमें अन्त्येष्टिक्रियाके लिये जाते समय और श्राद्धादि समयमें भी शंख बजाते देखा जाता है। अष्ट्रेलेसिया और पोलिनेसिया द्वीपवासी Triton tritonis नामक शम्बूक काट कर ऐसे शंखके बदलेमें व्यवहार करते हैं। पाश्चात्य सभ्य जातिमें भी इस प्रकार Buccinum whelk नामक शम्बूक बजानेकी प्रथा है। लाटिन भाषाका Buccina शब्द ही उसका साक्ष्य देता है।

बङ्गालके ढाका अञ्चलके शंखवणिक् शंख काट कर अच्छी अच्छी चूड़ी, बाला, बटन आदि बनाते हैं। छोटे शंखकी अपेक्षा बड़े शंखका आदर अधिक है। क्योंकि उसमें तरह तरहकी कारीगरी दिखलाई जा सकती है। भारतकी सभ्य और असभ्य जातिमें शंखका अलङ्कार पहननेकी रीति है। किसी किसी देवमन्दिरमें शंखके प्रदीपमें घी डाल कर रोशनी की जाती है।

शंखको विधिपूर्वक शुद्ध कर भस्म बना कर काममें लाते हैं। यह भस्म सब प्रकारके ज्वर, सब प्रकारकी खांसी, श्वास, अतिसार आदि रोगोंमें उचित अनुपानसे अत्यन्त लाभकारी है। यह स्तम्भक और बाजीकरण भी है। इसकी मात्रा चार रत्तीसे डेढ़ माशे तक है।

एक समय मन्नारके उपसागरमें प्रायः ४० लाख शंख पाये गये थे जो लाखसे अधिक रुपयेमें बिके थे।

शङ्खका अपरापर विवरण शम्बूक शब्दमें देखो।

२ रणवाद्यविशेष। पर्याय—भक्ततूर्य, गन्धतूर्य, रणतूर्य, महास्वन, संग्रामपटह, अभयडिण्डिम, महाढक्क, नृपाभीरु, भीरु, कोलाहल। (शब्दरत्ना०)

३ ललाटास्थि, कपालकी हड्डी। ४ कुबेरकी निधिविशेष। (भारत २।१०।३६)

मार्कण्डपुराणमें लिखा है—८ प्रकारकी निधियोंमें शंख अष्टम निधि है। यह रजः और तमोगुणविशिष्ट है, इस कारण इसके अधीश्वर भी वही सब गुण पाते हैं। जो शंखनिधिके अधिपति हैं, वे सर्वदा केवल आत्मपरिपोषणमें ही रत रहते हैं, यहां तक कि सुहृद्, भार्या, भ्राता, पुत्र, पुत्रवधू आदि स्वजनोंके अन्न वस्त्रादिके उत्कृष्टापकृष्टत्वके प्रति भी दृष्टिपात नहीं करते, सदा आत्मपरितुष्टिके लिये ही व्यस्त रहते हैं।

५ नखी नामक गंधद्रव्यविशेष। (सुश्रुत ६।१७) ६ कर्णके निकटवर्त्ती अस्थिभेद, कनपटी। ७ अष्टनागनायकान्तर्गत नागविशेष। ८ हस्तिदंतका मध्यभाग, हाथीका गण्डस्थल। ९ दश निखर्वको एक संख्या, एक लाख करोड़। १० धर्मशास्त्रप्रयोजक मुनिविशेष। ११ चरणचिह्न। १२ एक दैत्यका नाम जो देवताओंको जीत कर वेदोंको चुरा ले गया था और जिसके हाथोंसे वेदोंका उद्धार करनेके लिये भगवान्को मत्स्यावतार धारण करना पड़ा था। १३ राजा विराट्का पुत्र।

१४ एक राजमन्त्रीका नाम। १५ चम्पकपुरीके राजा हंसध्वजका पुरोहित और लिखितका भाई। १६ धारा नगरके राजा, गन्धर्वसेनका बड़ा लड़का और राजा विक्रमादित्यका बड़ा भाई। इसे मार कर विक्रमसे गद्दी पाई थी। १७ छप्पयके ७१ भेदोंमेंसे एक भेद। इसमें १५२ मात्राएं या १४६ वर्ण होते हैं। इनमें ३ गुरु और शेष १४६ लघु होते हैं। १८ दण्डकवृत्तके अन्तर्गत प्रचित्तका एक भेद। इसमें दो नगण और चौदह रगण होते हैं। १६ पवनके चलनेसे होनेवाला शब्द।

शङ्खक (सं० पु० क्लो०) शंख स्वार्थे कन्। १ कम्बु, शंख। २ वलय, कङ्कण। ३ वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका रोग। इसमें बहुत गरमी होती है और त्रिदोष बिगड़नेसे कनपटीमें दाह सहित लाल रंगकी गिल्टी निकल आती है जिससे सिर और गला जकड़ जाता है। कहते हैं, कि यह असाध्य रोग है और तीन दिनके अंदर इसका इलाज सम्भव है, इसके बाद नहीं। ४ हवाके चलनेका शब्द। ५ हीराकसीस। (वैद्यकनि०) ६ मस्तक, माथा। ७ नौ निधियोंमेंसे एक निधि।

शङ्खकन्द (सं० पु०) शंखालु, साँक। (पर्यायमु०)

शङ्खकर्ण (सं० पु०) शिवानुचर गणभेद।

शङ्खकार (सं० पु०) शंखं करोतीति शंख कृ-अण्। पुराणानुसार एक वर्णसंकर जाति। इसकी उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पितासे मानी गई है। इस जातिके लोग शंखकी चीजें बनानेका काम करते हैं। (ब्रह्मवैवर्त्तपुराण) पर्याय—शांखिक, काम्बोजक, शाम्बविक।

शङ्खकुम्भश्रवस् (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ९ पर्व)

शङ्खकुसुमा (सं० स्त्री०) १ शंखपुष्पी। २ सफेद अपराजिता, सफेद कोयल।

शङ्खकूट (सं० पु०) १ पर्वतभेद। (मार्क०पु० ५५।१२) २ नागभेद। (हेम)

शङ्खक्षीर (सं० पु०) शंखका दूध अर्थात् कोई असम्भव और अनहोनी बात।

शङ्खचरी (सं० स्त्री०) शंखे ललाटास्थिः चरतीति चर-ट, स्त्रियां ङीप्। १ ललाट, मस्तक, भाल। २ चन्दनका तिलक।

शङ्खचर्ची (सं० स्त्री०) शङ्खचरी देखो।

शङ्खचूड़ (सं० पु०) दैत्यभेद, तुलसीका स्वामी। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें शंखचूड़का विषय इस प्रकार लिखा है—सुदामा नामक गोप श्रीमती राधिकाके शापसे दैत्यवंशमें जन्म ले कर शंखचूड़ नामसे विख्यात हुआ था। यह तपस्या द्वारा एक कवच पा कर देवताओंसे अजय हो गया। इसका विवाह तुलसीसे हुआ था। देवताओंको राज्यच्युत कर इसने स्वर्गका आधिपत्य लाभ किया। पीछे एक मन्वन्तर तक यह देव, दानव, असुर, गन्धर्व आदि पर शासन करता रहा। देवगण अपने अधिकारसे च्युत हो भिक्षुककी तरह विचरण करने लगे। पीछे उन्होंने ब्रह्माकी शरण ली। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो ब्रह्मा महादेव और देवताओंके साथ गोलोक गये और वहां विष्णुसे उन्होंने कुल वृत्तांत कह सुनाया।

भगवान् विष्णुने देवताओंका वृत्तांत सुन कर कहा, 'मन्वंतरकाल बीत गया, शंखचूड़के शापकी अवधि पूरी हो गई। महादेव यह शूल लें और इसी शूलसे दानवका संहार करें। शंखचूड़ मेरा ही सर्वमङ्गल कर मङ्गल कवच धारण कर सबोंसे अजेय हो गया है। उस कवचके उसके कण्ठमें रहते कोई भी उसे मार न सकेगा। इस कारण मैं ब्राह्मण रूप धारण कर वह कवच मांग लूंगा और तुमने भी उसे वर दिया है, कि जब उसकी स्त्रीका सतीत्व विनष्ट होगा उसी समय उसकी मृत्यु होगी। अतएव इस विषयमें कुछ उपाय सोचना आवश्यक है।'

पीछे देवताओंने शंखचूड़के साथ स्वर्गराज्यके लिये युद्ध ठान दिया। भगवान् विष्णुने ब्राह्मण बन कर कवच उससे मांग लिया और शंखचूड़का रूप धारण कर उसकी पत्नी तुलसीका सतीत्व नाश किया। इस प्रकार कवच लिये जाने और पत्नीका सतीत्व विनष्ट होने पर महादेवने शूल द्वारा उसका संहार किया।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख०) तुलसी शब्द देखो।

२ कुबेरके दूत और सखाका नाम। ३ एक यक्षका नाम। ४ पुराणानुसार द्वारका-निवासी एक गृहस्थका नाम। इसके पुत्र उत्पन्न हो कर अदृश्य हो जाते थे। ५ एक नागका नाम। ६ एक तीर्थस्थान।

शङ्खचूड़क (सं० पु०) नागभेद। (हेम)

शङ्खचूड़ेश्वरतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

शङ्खचूर्ण (सं० क्ली०) शंखस्य चूर्णम्। शंखजातचूर्ण। गुण—कटु, क्षार, उष्ण, और क्रिमिनाशक।

शङ्खज (सं० पु०) शंखाज्जायते इति जन-ड। १ मुक्ताभेद, बड़ा मोती जो शंखसे निकलता है। (त्रि०) २ शंखजात।

शङ्खजाती (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद। (तारनाथ)

शङ्खजीरा (सं० पु०) संग जराहत।

शङ्खण (सं० पु०) १ कल्माषपादके एक पुत्रका नाम। (रामा० १।७०।३९) २ वज्रनाभके पुत्र। इसका दूसरा नाम था शंखनाभ।

शङ्खतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

शङ्खदत्त (सं० पु०) एक कवि। ये काश्मीरराज जयापीड़की सभामें विद्यमान थे। (राजतर० ४।४९६)

शङ्खदारक (सं० पु०) शङ्खकार देखो।

शङ्खद्रावक (सं० पु०) शंखं द्रावयतीति द्रु-णिच्-ण्वुल्। औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अकवनकी छाल, थूहरका मूल, इमलीकी छाल, तिलकाष्ठ, अमलतासकी छाल, चिता, अपाङ्ग, इन सब द्रव्योंको भस्म समान भाग ले कर जलमें घोले और पीछे छान ले। वह क्षारजल जब तक खारा न हो जाय, तब तक उसे मीठी आंचमें पकाना होगा। इसके बाद वह लवणरस ४ तोला, यवक्षार, साचिक्षार, सोहागा, समुद्रफेन, गोदन्ती, हरिताल, हीराकसीस और सोरा प्रत्येक ४ तोला, पञ्चलवण प्रत्येक ८ तोला, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर खट्टेके साथ कांचकी कुप्पीमें ७ दिन छोड़ दे। बादमें शंखचूर्ण ८ तोला उसमें मिला कर वारुणीयन्त्रमें चुआ लेनेसे द्रावक प्रस्तुत होता है। इस द्रावकमें कौड़ी और शंख आदि गल जाते हैं। इसका सेवन करनेसे प्लीहा यकृत् आदि उदररोग अतिशीघ्र विनष्ट होते हैं।
(भैषज्यरत्ना० प्लीहयकृदधि०)

शङ्खद्रावकरस (सं० पु०) औषधविशेष। यह शंखद्रावकरस और महाशंखद्रावकरस भेदसे दो प्रकार है।

शङ्खद्राविन् (सं० पु०) शंखं द्रावतीति द्रु-णिच्-णिनि। अम्लवेतस, अमलवेत। अङ्गरेजीमें इसे Rumex Vesicarius कहते हैं। (राजनि०)

शङ्खद्वीप (सं० पु०) द्वीपभेद। (विष्णुपुराण)

शङ्खधर (सं० पु०) १ शंखको धारण करनेवाले अर्थात् विष्णु। २ श्रीकृष्ण।

शङ्खधर—१ एक धर्मशास्त्रके प्रणेता। इन्होंने स्मृतिचन्द्रिकाके बाद ग्रंथ रचना की। हेमाद्रि, रघुनन्दन, कमलाकर आदिने इनका मत उद्धृत किया है। २ कविकर्णटिका नामक अलंकार और लटकमेलन नामक प्रहसनके रचयिता।

शङ्खधरा (सं० स्त्री०) धरतीति धृ-अच्, टाप् शंखस्य धरा। हिलमोचिका, हुरहुरका साग। (रत्नमाला)

शङ्खधवला (सं० स्त्री०) १ शुक्लयूथिका, सफेद जूही। (वैद्यकनि०) २ शंखके समान सफेद।

शङ्खध्म (सं० पु०) शंख धमतीति ध्मा-क। शंखवादक, वह जो शंख बजाते हों। पर्याय—शांखिक।
(जटाधर)

शङ्खध्मा (सं० पु०) शंख धमतीति ध्मा-क्विप्। शंखवादक।

शङ्खन (सं० पु०) १ अयोध्याके राजा कल्माषपादके एक पुत्रका नाम। २ वज्रनाभके पुत्रका नाम।

शङ्खनख (सं० पु०) १ क्षुद्रशंख, छोटा शंख, घोंघा। २ व्याघ्रनख, नखी नामक गंधद्रव्य। (शब्दरत्ना०)

शङ्खनखा (सं० स्त्री०) १ क्षुद्र शंख, घोंघा। २ नखी नामक गंधद्रव्य।

शङ्खनाभ (सं० पु०) वज्रनाभके एक पुत्रका नाम।
शङ्खण देखो।

शङ्खनाभि (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारका शंख। २ एक प्रकार गंधद्रव्य।

शङ्खनाम्नी (सं० स्त्री०) शंखपुष्पी नामक लताविशेष।

शङ्खनारी (सं० स्त्री०) एक नृत्तका नाम। इसमें छः वर्ण होते हैं। यह दो यगणका वृत्त है। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

शङ्खनी (सं० स्त्री०) शङ्खिनी देखो।

शङ्खपद (सं० पु०) १ विश्वदेव भेद। २ कर्द्दमके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु० १।२२)

शङ्खपलीता (हि० पु०) एक प्रकारका रेशेदार खनिज पदार्थ। यह ज्वालामुखी पर्वतोंसे निकलता है।

इसका रङ्ग सफेद या हरा होता है और इसमें रेशमकी चमक होती है। इसका विशेष गुण यह है, कि यह जल्दी जलता नहीं, इसीलिये गैसके भट्ठे बनानेमें इसका बहुत उपयोग होता है। आगसे न जलनेवाले कपड़े तैयार करनेमें भी यह काममें लाया जाता है। गरमी और बिजलीका प्रवेश इसमें बहुत कम होता है, इससे यह बिजलीके तार आदि लपेटनेमें भी काम आता है। इञ्जिनोंके जोड़ इसीसे भरे या बन्द किये जाते हैं। यह कारसिका, स्काटलैण्ड, कनाडा, इटली आदि देशोंमें अधिक मिलता है।

शङ्खपाणि (सं० पु०) शंखं पाणौ यस्य। हाथमें शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शङ्खपात्र (सं० पु०) शंखका बना हुआ पात्र या तलवारकी मूंठ। (रामा० १।७३।२१)

शङ्खपाद (सं० पु०) कर्द्दम राजपुत्र। ये शंखपाल नामसे भी परिचित थे।

शङ्खपाल (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद। २ स्वनामप्रसिद्ध दंशीकर महासर्प। ३ पातालस्थ नागभेद। (सुश्रुत-कल्प ४ अ०) ४ सूर्यका एक नाम। ५ शकरपारा नामकी मिठाई। शकरपारा देखो।

शङ्खपाषाण (सं० पु०) संखिया।

शङ्खपिण्ड (सं० पु०) पातालस्थ नागभेद।

शङ्खपुर (सं० क्लो०) नागभेद।

(कथासरित्सा० १०४।८४)

शङ्खपुरिणी (सं० स्त्री०) शंखनिर्मित हस्त और पदालङ्कारधारिणी।

शङ्खपुष्पिका (सं० स्त्री०) १ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता। २ श्वेत यूथिका, सफेद जूही।

शङ्खपुष्पी (सं० स्त्री०) शंखवत् पुष्पं यस्याः ङीप्। १ कम्बुपुष्पी, (Andropogon aciculartum, or conscora decussata) शंखाहुली। पर्याय—सुपुष्पा, शंखाह्वा, कम्बुमालिनी, पीतपुष्पी, कम्बुपुष्पी, मेध्या, मलविनाशिनी, किरिटी, शंखकुसुमा, भूलग्ना, शंखमालिनी। गुण—शीतल, तिक्त, मेधा और सुस्वर जनक, ग्रहभूतादि दोषनाशक, वशीकरण और सिद्धिदायक।

भावप्रकाशके मतसे मेध्य, वृष्य, मानस रोगनाशक, रसायन, कषाय, उष्ण, स्मृति, कान्ति, बल और अग्निवर्द्धक, दोष, अपस्मार, रक्तदोष, कुष्ठ, कृमि और विषदोषनाशक। २ श्वेतापराजिता, सफेद अपराजिता। ३ श्वेतयूथिका, सफेद जूही।

शङ्खप्रणाद (सं० क्लो०) शंखका नाद या शब्द।

शङ्खप्रवर (सं० त्रि०) वृहत् या श्रेष्ठ शंख।

शङ्खप्रस्थ (सं० पु०) चन्द्रका कलंक।

शङ्खभस्म (सं० पु०) चूना।

शङ्खभिन्न (सं० पु०) जिसका शंख अर्थात् ललाटसन्धि भिन्न हुआ हो। स्त्रियां ङीप्। (पा ४।१।५२)

शङ्खभृत (सं० पु०) शंखं बिभर्त्तीति भृ-क्विप् तुक् च। शंखधारण करनेवाले, विष्णु।

शङ्खमालिनी (सं० स्त्री०) शंखपुष्पी, शंखाहुल। विशेष विवरण शङ्खपुष्पी शब्दमें देखो।

शङ्खमित्र (सं० पु०) ऋषिभेद।

शङ्खमुक्ता (सं० स्त्री०) शंखजाता मुक्ता शंखज नामका बड़ा मोती। जो मुक्ता शंखसे उत्पन्न होती है, उसे शंखमुक्ता कहते हैं। वृहत्संहितामें लिखा है, कि हस्ती, भुजङ्ग, शुक्ति, शंख और अभ्र आदिसे मुक्ता निकलती है। यह मुक्ता अतिशय गुणविशिष्ट होती है, इसलिये इसका मूल्य शास्त्रमें निर्दिष्ट नहीं हुआ। इसको धारण करनेसे पुत्र, अर्थ, सौभाग्यलाभ तथा रोगशोक नाश होता है। (वृहत्सं० ८१ अ०) मुक्ता देखो।

शङ्खमुख (सं० पु०) शंखवत् मुखं यस्य। १ कुम्भीर, घड़ियाल। २ नागविशेष। (भारत १।३५।११)

शङ्खमुद्रा (सं० स्त्री०) मुद्राभेद। उंगलियोंको शंखाकृति करनेसे यह मुद्रा होती है। (तन्त्रसार) मुद्रा शब्द देखो।

शङ्खमूल (सं० क्लो०) शंखवत् शुक्लं क्रमसूक्ष्मं वा मूलं यस्य। १ मूलक, मूली। (राजनि०) २ शंखका मूल, शंखका अग्रभाग।

शङ्खमूलक (सं० क्लो०) शङ्खमूल देखो।

शङ्खमेखल (सं० पु०) मुनिविशेष। (भारत आदिपर्व)

शङ्खमौक्तिक (सं० पु०) शंखोत्पन्न मुक्ता।

शङ्खयूथिका (सं० स्त्री०) शुक्लयूथिका, सफेद जूही। (वैद्यकनि०)

शङ्खरसगुटिका (सं० स्त्री०) औषधविशेष। परिणाम-शूलमें यह औषध प्रयोग करनेसे बड़ा फायदा पहुंचता है।

शङ्खराज (सं० पु०) १ श्रेष्ठ शंख। २ राजभेद। (राजतर० ८।३७६)

शङ्खरावित (सं० क्ली०) शंखनिनाद।

शङ्खरी (सं० पु०) वह जो शंखकी चूड़ी बनानेका व्यवसाय करता हो।

शङ्खरोमन् (सं० पु०) पातालस्थ नागभेद। (हरिवंश)

शङ्खलिका (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचरमातृभेद। (भारत ६ पर्व)

शङ्खलिखित (सं० त्रि०) १ निर्दोष, दोषरहित, बे-ऐब। (पु०) २ न्यायशील राजा। ३ शंख और लिखित नामके दो ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई थी। (स्त्री०) ४ शंख और लिखित ऋषियों द्वारा लिखी हुई स्मृति।

शङ्खलिखितप्रिय (सं० त्रि०) जो न्याय विचारके अनुरागी हो।

शङ्खवटी (सं० स्त्री०) अग्निमान्द्य रोगाधिकारोक्त औषध विशेष। इसके दो भेद हैं—शंखवटी और महाशंखवटी। शंखवटीकी प्रस्तुत प्रणाली—शंखभस्म, पञ्चलवण, इमलीकी छलका क्षार, त्रिकटु, हींग, विष, पारा, गन्धक, समान भाग ले कर एक साथ मिलावे, पीछे अपाङ्ग और चितामूलके काढ़े में नीबूके रसमें और अम्लवर्ग द्वारा भावना दे।

जंबीरी नीबू, बिजोरा, चुकापालङ्ग, वीजपूरक, अमरुल, इमली और कुलकरञ्ज इन आठ द्रव्योंको अम्लवर्ग कहते हैं। भावना इस प्रकार देनी होगी जिससे औषध अम्लरसविशिष्ट हो जावे। इस औषधके साथ रांगा और लोहा मिलानेसे उसको महाशंखवटी कहते हैं। २ रत्ती भर गोली बनानी होगी। प्रातःकाल उष्ण जलके साथ इस औषधको सेवन करना चाहिये। इसके सेवनसे अजीर्ण, अर्श, पाण्डु और शूल आदि नाना प्रकारके रोग जाते रहते है। भर पेट खा कर भी इस औषधके सेवनसे उसी समय सभी पच जाता है। अग्निमान्द्याधिकारमें यह अति उत्कृष्ट और परीक्षित औषध है।

दूसरा तरीका—इमलीके छिलकेकी भस्म १ पल, पञ्चलवण मिश्रित १ पल, शंखभस्म १ पल, हींङ्ग, सोंठ, पीपर और मिर्च मिला कर १ पल, पारा, गन्धक और विष प्रत्येक आध तोला, इन्हें नीबूके रसमें घोंट कर २ रत्तीको गोली बनावे। इसके सेवनसे भी अग्निमान्द्य और शूल आदि विविध रोग शीघ्र प्रशमित होते हैं।

शङ्खवटी रस (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारकी वटी या गोली। यह शूलरोगको तत्काल दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके प्रस्तुत करनेकी विधि यह है। बड़े शंखको तपा तपा कर ग्यारह बार नीबूके रसमें बुझावे और इस शंखके चूर्णमें टके भर इमलीका खार, ५ टंक सांचर नमक, टके भर सेंधा नमक, टके भर साँभर नमक, टके भर कच नोन, टके भर विड़ नोन, ६ माशे सोंठ, ६ माशे काली मिर्च, ६ माशे पिप्पली, टके भर सेंकी हीङ्ग, टके भर शुद्ध गन्धक, टके भर शुद्ध पारा, १ टंक शुद्ध सिङ्गी मुहरा, इन सबको मिला कर जलके साथ घोंट कर छोटे बेरके बराबर गोलियाँ बना ले। शूलरोगके लिये यह रामवाण है।

शङ्खवत् (सं० त्रि०) १ शंखयुक्त। २ शंखके समान।

शङ्खवात (सं० पु०) सिरको पीड़ा। शङ्खक देखो।

शङ्खविष (सं० क्ली०) विषभेद, संखिया।

शङ्खवेलान्याय (सं० पु०) एक प्रकारका न्याय। इसमें किसी एक कार्यके होनेसे किसी दूसरी बातका वैसे ही ज्ञात होता है। जैसे शंख बजनेसे समयका ज्ञान होता है।

शङ्खशिरस् (सं० पु०) पातालस्थ नगरभेद। (भारत १म पर्व)

शङ्खशिला (सं० स्त्री०) शंखमुक्ता।

शङ्खशीर्ष (सं० पु०) पातालस्थ नागभेद। (भारत ५ पर्व)

शङ्खशुक्तिका (सं० स्त्री०) सीप।

शङ्खस (सं० पु०) शंखकी चूड़ी या कड़ा।

शङ्खसङ्काश (सं० पु०) शंखालु, सफेद शंखकन्द। (वैद्यकनि०)

शङ्खह्रद (सं० पु०) शंखादि निधियुक्त ह्रद, वह ह्रद जिसमें शंख आदिकी निधि हो।

शङ्खाख्य (सं० पु०) शंख इति आख्या यस्य। नूहन्नखो या बगनखा नामक गंधद्रव्य।

शङ्खान्तर (सं० क्लो०) कपाल, दो शंखके बीचका स्थान।

शङ्खारु (सं० पु०) शंखालुक, शंखकन्द, सफेद शकरकन्द।

शङ्खालु (सं० पु०) शङ्खारु देखो।

शङ्खालुक (सं० पु०) शंखालु, सफेद शकरकन्द।

शङ्खावती (सं० स्त्री०) नदीविशेष। (मार्क०पु० ५७।७)

शङ्खावर्त्त (सं० पु०) एक प्रकारका भगन्दर रोग। इसे शम्बुकावर्त्त भी कहते हैं। शम्बूकावर्त्त देखो।

शङ्खासुर—एक दैत्य। १ यह ब्रह्माके पाससे वेद चुरा कर समुद्रके गर्भमें जा छिपा था। इसीको मारनेके लिये विष्णुने मत्स्यावतार धारण किया था। २ मुर दैत्यका पिता।

शङ्खास्थि (सं० स्त्री०) १ सिरकी हड्डी। (चिरक शा० ७ अ०) २ पीठकी हड्डी। (राजनि०)

शङ्खाहत (सं० क्ली०) गवामय यज्ञका कृत्यभेद। (लाट्यायन ४।५।५)

शङ्खाहुलि (सं० स्त्री०) १ शंखपुष्पी, संखाहुलि। २ श्वेतापराजिता, सफेद कोयल।

शङ्खाहोली (सं० स्त्री०) शंखपुष्पी, कौड़ियाला, कौड़ेना।

शङ्खाह्वा (सं० स्त्री०) शंख इति आह्वा नाम यस्याः। शंखपुष्पी, कौड़ियाला)

शङ्खिक (सं० पु०) बौद्धभेद। (तारनाथ)

शङ्खिका (सं० स्त्री०) शंखवत् पुष्पमस्त्यस्याः शङ्ख-ठन्, अत इत्वं टाप्। अन्धाहुली, चोरपुष्पी।

शङ्खिन् (सं० पु०) शंखोऽस्यास्तीति शंख इनि। १ विष्णु। २ समुद्र। (मेदिनी) ३ शांखिक। ४ एक प्रकारका सांप। (त्रि०) ५ शंखविशिष्ट। ६ शंखनिधियुक्त।

शङ्खिन (सं० पु०) शिरीष वृक्ष, सिरस। (वैद्यकनि०)

शङ्खिनिका (सं० स्त्री०) ग्रन्थिपर्णी, गठिवन। (वैद्यकनि०)

शङ्खिनी (सं० स्त्री०) शंख वत् पुष्पमस्त्यस्याः शङ्ख-इनि। १ एक प्रकारकी वनौषधि। इसकी लता और फल शिवलिङ्गीके समान होते हैं। अन्तर केवल यही है, शिवलिङ्गीके फल पर सफेद छींटे होते हैं जो शंखिनीके फल पर नहीं होते। इसकी बीज शंखके समान होते हैं जिनका तेल निकलता है। वैद्यकमें यह चरपरी, स्निग्ध, कड़वी, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निदीपक, बलकारक, रुचिकारक और विषविकार, आम-दोष, क्षय, रुधिर-विकार तथा उदर दोष आदिको शान्त करनेवाली मानी जाती है। इसका संस्कृत पर्याय—यवन्तिका, महातिक्ता, भद्रतिक्ता, सूक्ष्मपुष्पी, दृढ़पादा, विसर्पिणी, नाकुली, नेत्रमीला, अक्षपीड़ा, माहेश्वरी, तिक्ता, यावी। २ बुद्धशक्तिभेद। ३ शंखाहुली। ४ गुदा द्वारकी नस। ५ मुंहकी नाड़ी। ६ एक देवी। ७ सीप। ८ एक तीर्थस्थान। ९ एक प्रकारकी अप्सरा। १० चार प्रकारकी स्त्री जातिमेंसे एक स्त्रीजाति। पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी और हस्तिनी ये चार प्रकारकी स्त्रीजाति है। शश, मृग, वृषभ और अश्व ये चार प्रकारके पुरुष हैं। इनमें शश जातीय पुरुष पद्मिनीसे, मृग चित्रिणीसे, वृषभ शङ्खिनीसे तथा अश्व हस्तिनीसे तुष्ट रहते हैं। कहते हैं, कि ऐसी स्त्री कोपशील, कोविद, सलोम शरीरवाली, बड़ी बड़ी और सजल आंखोंवाली, देखनेमें सुन्दर, लज्जा और शंकारहित, अधीर, रतिप्रिय, क्षार गंधयुक्त और अरुण नखवाली होती है। (रसमञ्जरी)

शङ्खिनी डंकिनी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका उन्माद। इसके लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—सर्वांगमें पीड़ा होना, नेत्र बहुत दुखना, मूर्च्छा होना, शरीर कांपना, रोना, हंसना, बकना, भोजनमें अरुचि, गला बैठना, शरीरके बल तथा भूखका नाश, ज्वर चढ़ना और सिरमें चक्कर आना।

शङ्खिनीफल (सं० पु०) शंखिन्याः फलमिव फलं यस्य। शिरीस वृक्ष।

शङ्खिनीवास (सं० पु०) शंखिन्या वासः आश्रयस्थानः। शाखोट वृक्ष, सहोरा। कहते हैं, कि इस वृक्ष पर भूत, प्रेत और शंखिनी आदि वास करती है।

शङ्खी (सं० पु०) शङ्खिन् देखो।

शङ्खोदधिमल (सं० पु०) समुद्रफेन।

शङ्खोदरी (सं० स्त्री०) मध्य आकारका एक प्रकारका वृक्ष। यह बागोंमें शोभाके लिये लगाया जाता है। इसके पत्ते चकवंड़के पत्तोंके समान होते हैं। पीले और लाल फूलोंके भेदसे यह वृक्ष दो प्रकारका होता है। इसकी कलियां उंगलीके समान मोटी, चिपटी तथा चार पांच अङ्गुल लम्बी होती हैं और इसमें

७, ८ दाने होते हैं। इसके फूल गुच्छोंमें लगते हैं, जो बारहों महीने रहते हैं, परन्तु और महीनोंकी अपेक्षा आषाढ़में अधिक फूल लगते हैं। फूलोंमें गन्ध नहीं होती। इसकी लकड़ी मजबूत होती है, इसके वृक्ष बीज और कलम दोनोंसे ही लगते हैं। कई प्रकारके रोगोंमें इसका क्वाथ भी दिया जाता है। वैद्यकके अनुसार यह गरम, कफ, वात, शूल, आमवात और नेत्ररोगको दूर करनेवाली है। इसे गुलपरी, गुलतुरी भी कहते हैं।

शङ्खोद्धार (सं० क्ली०) तीर्थभेद। (हरिवंश)

शङ्ग (सं० त्रि०) शङ्गु देखो। (तैत्तिरीय ४।५।८।१)

शङ्गय (सं० त्रि०) सुखालय। (ऋक् २।१।६ सायण) स्त्रियां ङीप्। (ऋक् ६।६७।१७)

शङ्गवी (सं० स्त्री०) गवादिका मङ्गलभूत।
(शतपथब्रा० १।९।१।८)

शङ्गु (सं० त्रि०) १ सुखप्रापक। २ जिसका वेदरूप वाक्य हो। (शुक्लयजु० १६।४०)

शचि (सं० स्त्री०) शच कचि। (सर्वधातुभ्य इन्। उणा् ४।११३) शची देखो।

शचिका (सं० स्त्री०) शची, इन्द्रकी पत्नी।

शचिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशय प्राज्ञ। (ऋक् ४।२०।६)

शची (सं० स्त्री०) शचि कृदिकारादिति ङीष्। १ इन्द्रकी पत्नी, इन्द्राणी। जो दानवराज पुलोमाकी कन्या थी। पर्याय—पुलोमजा, शचि, सचि, पूतक्रतायी, पौलोमी, माहेन्द्री, जयवाहिनी, ऐन्द्री, शतावरी। (शब्दरत्ना०) २ शतमूली, सतावर। ३ स्त्रीकरणान्तर। कोई कोई विष्किरणको शची कहते हैं। ४ कर्म। (निघण्टु २।१) ५ प्रज्ञा, बुद्धि, अक्ल। (निघण्टु ३।६) ६ वाक्य। (निघण्टु १।११) ७ स्पृक्का, असबरग।

शचीतीर्थ (सं० पु०) तीर्थभेद।

शचीनर (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (राजतर० १।९६)

शचीपति (सं० पु०) शच्याः पतिः। १ शचीके पति, इन्द्र। (त्रि०) २ कर्मपालक। (ऋक् ७।६७।५)

शचीपती (सं० पु०) सत्कर्मके पति, अश्विनीकुमारद्वय।

शचीवल (सं० पु०) नाटकमें वह पात्र जो इन्द्रके समान वेश भूषा धारण करता हो।

शचीवत् (सं० त्रि०) १ कर्मवत्। २ प्राज्ञवत्। ३ शक्तिमान्।

शचीवसु (सं० त्रि०) १ कर्मधन, यज्ञादि द्वारा धनवान्। २ बल या धनयुक्त। (ऋक् १।१३९।५,७।७४।१)

शचीश (सं० पु०) शच्याः ईशः। शचीपति, इन्द्र।

शजर (अ० पु०) दरख्त, वृक्ष, पेड़।

शजरा (अ० पु०) १ वह कागज जिसमें किसीकी वंशपरम्परा लिखी हो, वंशवृक्ष, पुश्तनामा, कुर्सीनामा। २ वृक्ष, पौधा। ३ पटवारीका तैयार किया हुआ खेतोंका नकशा।

शट (सं० त्रि०) शट-अच्। १ अम्ल, खट्टा। (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम।

शटा (सं० स्त्री०) शट-अच् टाप्। सटा, जटा।
(अमरटीका)

शटि (सं० स्त्री०) शट इन्। शटी देखो।

शटी (सं० स्त्री०) शटि वा ङीष्। स्वनामप्रसिद्ध ओषधि, कचूर। बम्बई—कचोरा, कापूर, काचरी; तैलङ्ग—किचलि, पगङ्गल। संस्कृत पर्याय—गन्धमूली, षड्ग्रन्थिका, कर्चूर, सुगन्धा, सटि, शटि, गन्धमूला, गन्धोलि, गन्ध मूलक, गन्धसटा, वधू, गन्धमूल, जीमूतमूल, कच्छोर, हिमजा, हैमी, षड्ग्रन्थि, सुव्रता, गन्धोली, पलाशा, हिमा, षड्ग्रन्था, आम्लनिशा, सुगन्धमूला, गंधाली, शटीका, पलाशिका, सुभद्रा, तृणी, दूर्वा, गंधा, पृथु पलाशिका, सौम्या, हिमोद्भवा, गन्धवधू। गुण—तिक्त, अम्लरस, लघु, उष्ण, रुचिकारक, ज्वर, कफ, अस्र, कण्ड, व्रणदोष और रक्तामयनाशक। (राजनि०)

शटी उत्तमरूपसे चूर्ण करके वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा एक प्रकारका खाद्य प्रस्तुत होता है, जो उदरामय रोगग्रस्त बालकबालिकाओंके लिये बड़ा फायदामंद होता है। आरारोट, बार्लि आदि जिस प्रकार गरम जलमें सिद्ध कर रोगीको दिया जाता है, उसी प्रकार इसकाभी व्यवहार करना होता है। इससे अबीर भी बनता है।

शट्टक (सं० क्ली०) घी और पानीमें सना हुआ चावलका आटा। इसका व्यवहार वैद्यकमें होता है।

शठ (सं० क्ली०) शठ-अच्। १ तगरका फूल। २ इस्पात, फौलाद। ३ लोहा। ४ कुङ्कुम, केसर, जाफरान।

(राजनि०) (पु०) ५ धुस्तूरवृक्ष, धतूरेका पेड़। ६ चित्रक, चीता। ७ तालवृक्ष। ८ अमलाका वृक्ष। ९ मध्यस्थ, वह जो दो आदमियोंके बीचमें पड़ कर उनके झगड़ेका निपटारा करता हो। १० जड़बुद्धि, बेवकूफ। ११ आलसी। १२ वृष्णिवंशीय विशेष। (हरिवंश २।३) १३ साहित्यमें पांच प्रकारके पतियों या नायकोंमेंसे एक प्रकारका पति या नायक, वह नायक जो छलपूर्वक अपना अपराध छिपानेमें चतुर हो और किसी दूसरी स्त्रीके साथ प्रेम करते हुए भी अपनी स्त्रीसे प्रेम प्रदर्शित करनेका बहाना करता हो।

(साहित्यद० ३।७४)

रसमञ्जरीके मतसे पांच प्रकारके पतियोंमें पति विशेष। ये कामिनीविषयक कपटवचनमें पटु होते हैं।

(त्रि०) १४ धूर्त्त, चालाक। १५ पाजी, लुच्चा, बदमाश। मनुने लिखा है, कि जो शठ है, उसके साथ वाक्यालाप करना उचित नहीं।

"प्रियं व्यक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम्।
व्यक्तापराधचेष्टश्च शठोऽयं कथितो बुधैः॥"

(विष्णुपु० ३।१८।२१ श्लोक टीका)

जो समक्षमें मीठी मीठी बात बोले और असमक्षमें निन्दा करे, वही शठ कहलाता है।

शठता (सं० स्त्री०) शठस्य भावः 'तलौ भावे' इति तल्टाप्। १ शठका भाव या धर्म, धूर्त्तता। २ बदमाशी, पाजीपन। पर्याय—माया, शाठ्य, कुसृति, निकृति। (हेम)

शठत्व (सं० क्ली०) शठ भावे त्व। शाठ्य, शठता।

शठाङ्गा (सं० स्त्री०) शठाम्बा देखो।

शठाम्बा (सं० स्त्री०) ब्राह्मणीलता, अम्बष्ठा। (राजनि०)

शठारिमुनि—प्रमाणसारके रचयिता। ये शिवकोपमुनिके गुरु थे।

शठिका (सं० स्त्री०) शठी देखो।

शठी (सं० स्त्री०) १ कचूर। २ गन्धपलाशी, कपूर कचरी। ३ वन अदरक, पेऊ।

शठीरूपा (सं० स्त्री०) कन्दगुडूची, कन्दगिलोय। (वैद्यकनि०)

शठोदर (सं० त्रि०) धूर्त्त, धोखेबाज।

शठ्यादि (सं० पु०) त्रिदोषघ्न कषायविशेष, ज्वरनाशक पाचनविशेष। इसके बनानेका तरीका—कचूर, कुट, बरंगी, कर्कटश्रृङ्गी, दुरालभा, गुड़ूची, सोंठ, आकनादि, चिरैता और कटकी, इन सबका एक एक तोला ले कर आध सेर पानीमें सिद्ध करे। जब सिद्ध करके आध पाव पानी रह जाय, तो नीचे उतार ले। कुछ गरम रहते ही इसका सेवन करनेसे त्रिदोषको शमता तथा ज्वर विनष्ट होता है।

शठ्यादिक्वाथ (सं० पु०) क्वाथौषधविशेष।

(भावप्रकाश ज्वराधि०)

शण (सं० क्ली०) शण-अच्। १ क्षुपविशेष। पर्याय—भङ्गा, मातुलानी। (पु०) २ स्वनामख्यात क्षुप, शण। (Crotalaria juncea, Indian hemp) इसे तैलङ्गमें शण, मनुवेल, जेनपनर, रेल्लचेट्ट, और तामिलमें जेनप्पनर कहते हैं। संस्कृत पर्याय—माल्यपुष्प, वमन, कटुतिक्तक, निशावन, दीर्घशाख, त्वकसार, दीर्घपल्लव। गुण—अम्ल, कषाय, मल, गर्भ और अस्रपातन तथा रतिकारक, पित्त, कफ और तीव्र अङ्गमर्द नाशक। (राजनि०)

यह तीन साढ़े तीन हाथ ऊंचा होता है और इसका काण्ड सीधी छड़ीकी तरह दूर तक ऊपर जाता है। फूल पीले रंगके होते हैं। कुवारी फसलके साथ यह खेतोंमें बोया जाता है और भादों कुआरमें तय्यार हो जाता है। रेशेदार छिलका अलग करनेके लिये इसके डंठल पानीमें डाल कर सड़ाए जाते हैं। रेशेसे मजबूत रस्सियाँ आदि बनती हैं, इसीसे यह भारतीय वाणिज्यका एक मूल्यवान् उपकरण समझा गया है। यूरोपमें इस जातिके पौधेसे जो सन उत्पन्न होता है, वही प्रकृत शन कहलाता है। इसके छिलकेसे जो रेशे निकलते हैं, वे बहुत मजबूत होते तथा कपड़े बुनने या रस्सी बनानेके काममें आते हैं। उद्भिद्वित् विलडोना, ग्मेलिन और थुनवर्गने यथाक्रम, पारस्य, तातार और जापानमें यह वृक्ष देख कर अनुमान किया है, कि वे सब देश ही इस पौधेके आदिस्थान हैं। हिरोदोतस इस पौधेको शाकद्वीपका पौधा बतला गये हैं। विवार्ष्टिनने काकेसस पर्वतके निकटवर्त्ती देशोंमें तथा तौरियामें इस

वृक्षको देखो है। चीनदेशमें हो-मा, थ-स, य-म और छङ्ग-म नामके भी कई प्रकारके शन उत्पन्न होते हैं। वे वस्तुतः एक नहीं हैं, भिन्न भिन्न जातिके हैं, किन्तु कार्यतः प्रायः संमगुणसम्पन्न हैं। यह प्रकृत शनकी तरह मजबूत जटिल और पिच्छिल होता है तथा उसमें रेशे भी बहुत होते हैं। भारतमें इस श्रेणीका जो पौधा उत्पन्न होता है उसे Canabis Indica कहते हैं। बोखारा, पारस्य और भारतमें सभी जगह विशेषतः १० हजार फुटकी ऊंचाई हिमालयपृष्ठ पर इस जातिका वृक्ष उत्पन्न होता है। प्रधानतः यूरोपमें केवलमात्र तन्तुके लिये ही इस वृक्षका आदर है। क्योंकि उससे तरह तरहकी रस्सी और एक प्रकारका मोटा कपड़ा तैयार होता है। प्राच्यभूखण्ड अर्थात् भारत, पारस्य आदि स्थानोंमें एकमात्र गाँजा और सिद्धिके लिये ही इसकी खेती होती है। रस्सी बनानेके लिये इसकी उतनी खेती नहीं होती। इसके राल जैसे पदार्थसे चरस नामक मादक द्रव्य बनता है। ये सब भिन्न भिन्न पदार्थ उत्पन्न करनेमें एक ही पौधा भिन्न भिन्न प्रकारकी खेतीका प्रयोजक होता है। गाँजा और चरसके उत्पादनके लिये इस पौधेमें धूप, हवा और रोशनीकी विशेष आवश्यकता होती है। इस कारण इसे पतला करके रोपनेके बाद दूसरी जगह रोपा जाता है। रस्सीके लिये इसकी खेती करनेमें बीया खूब घना कर बुना जाता है। रस्सीके लिये पौधेमें धूप अधिक नहीं लगती, छाया और जलसिक्त मिट्टीकी ही विशेष आवश्यकता होती है।

Crotalaria Juncea नामक वृक्षसे भारतीय सन, Hibiscus Cannabinus वृक्षसे दक्षिणी या अम्बरी शण, Musa textilis नामक वृक्षसे मानिली सन उत्पन्न होता है। जब्बलपुरमें एक प्रकारका सन उत्पन्न होता है जो यूरोपीय वाणिज्यमें Jubbalpur hemp नामसे प्रसिद्ध है। इङ्गलैण्ड राज्यमें उसका आदर सबसे अधिक है।

शणई (हिं० स्त्री०) सन देखो।

शणक (सं० पु०) ऋषिभेद। (पा ६।२।३।६)

शणकन्द (सं० पु०) चर्मकषा नामका सुगन्धि द्रव्य।

शणकन्दा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका थूहड़ जिसे सातला कहते हैं।

शणघण्टा (सं० क्ली०) शणघण्टिका देखो।

शणघण्टिका (सं० स्त्री०) शणस्य घण्टेव तत्तुल्यशब्दकारिफलवत्त्वात्, इवार्थे कन् टापि अत इत्वं। शणपुष्पी नामकी लता। (राजनि०)

शणचूर्ण (सं० क्ली०) सनईका वह बचा हुआ भाग जो उसे कूट कर सन निकाल देनेके बाद रह जाता है।

शणपर्णी (सं० स्त्री०) शणस्य पर्णमिव पर्णमस्याः ङीप्। अशनपर्णी।

शणपुष्पिका (सं० स्त्री०) शणपुष्पी स्वार्थे कन् अत इत्वं। घण्टारवा, वनसनई।

शणपुष्पी (सं० स्त्री०) शणस्य पुष्पमिव पुष्पमस्याः। १ एक प्रकारकी वनस्पति जो साधारण वनसनई कहलाती है। यह छोटी और बड़ी दो प्रकारकी होती है। छोटी शणपुष्पी प्रायः सब प्रान्तोंमें पाई जाती है। इसका क्षुप, पत्ते, फूल इत्यादि सनके ही समान होते हैं, किन्तु क्षुप सबसे छोटा होता है। फूल पीले, फलियाँ मटरके समान गोल और लम्बी होती हैं। यह कड़वी, वमनकारक और पारेको बांधनेवाली कही गई है। इसके फल सूख जाने पर अन्दरके बीजोंके कारण झन झन शब्द करते हैं, इसीसे इसे झुनझुनियाँ कहते हैं। बड़ी शणपुष्पी प्रायः वाटिकाओंमें लगाते हैं। इसका क्षुप, पत्ते आदि छोटी शणपुष्पीसे बड़े होते हैं। फूल सफेद रंगके होते हैं। यह कसैली, गरम और पारेको बाँधनेवाली कही गई है और मोहन, स्तम्भन आदिमें व्यवहार की जाती है। इसका संस्कृत पर्याय—बृहत्पुष्पी, शणिका, शणघण्टिका, पीतपुष्पी, स्थूलफला, लोमशा, माल्यपुष्पिका। २ अरहर।

शणफला (सं० स्त्री०) शणफलजातीया।

शणमय (सं० त्रि०) शणविशिष्ट। स्त्रियां ङीप्। (कात्या० श्रौ० ७।३।२६)

शणमूल (सं० क्ली०) शणस्य मूलम्। सनकी शिफा, शणका मूल।

शणशिफा (सं० स्त्री०) शणमूल, सनई या सनकी जड़।

शणसमा (सं० स्त्री०) शणपुष्पी, बनसनई।

शणसूत्र (सं० क्ली०) शणस्य सूत्रम्। कुश आदिकी बनी हुई पवित्री जो श्राद्ध, तर्पण आदि कृत्योंके समय कनिष्ठिकाकी बगलवाली उंगलीमें पहनी जाती है; पवित्रक। (मनु २।४४)

शणाल (सं० पु०) शणालुक देखो।

शणालुक (सं० पु०) शणालुरेव स्वार्थे कन्। आरेवत वृक्ष, अमलतासका पेड़।

शणिका (सं० स्त्री०) शण स्त्रियां टाप् कन् अत इत्वं। शणपुष्पी, बनसनई।

शणीर (सं० क्ली०) १ सोन नदीके मध्यका उपजाऊ स्थल। २ सयू नदीकी शाखाओंसे घिरा हुआ छपरेके समीपका एक द्वीप, दर्दरी तट।

शण्ड (सं० क्ली०) १ पद्मिनी, कमलिनी। (पु०) २ नपुंसक, हीजड़ा। ३ वह पुरुष जिसे सन्तान न होती हो, वन्ध्या पुरुष। ४ उन्मत्त, पागल। ५ गोपति, साँड़। (भरतधृत द्विरूपको०)

शण्डता (सं० स्त्री०) शण्डस्य भावः तल टाप्। शण्डका भाव या धर्म, नपुंसकत्व, हीजड़ापन।

शण्डा (सं० पु०) १ फटा हुआ खट्टा दूध अथवा दही। २ एक पक्षका नाम।

शण्डाकी (सं० स्त्री०) शिण्डाकी देखो।

शण्डाकी मद्य (सं० स्त्री०) अर्कप्रकाशके अनुसार एक प्रकारकी शराब। यह राई, मूली और सरसोंके पत्तोंका रस चावलोंकी पीठीमें मिला कर अर्क निकालनेसे तैयार होती है।

शण्डामर्क (सं० पु०) शण्ड और मर्क नामके दो दैत्य जिनका नाम साथ ही साथ लिया जाता है।

शण्डिक (सं० पु०) शुक्राचार्यका पुत्र जो असुरोंका पुरोहित था।

शण्डिल (सं० पु०) शडि रुजायां (सलिकल्यनिमहिभडिभायडशयडीति। उण् २।५५) इति इलच्। एक प्राचीन गोत्रकार ऋषि। इनके गोत्रके लोग शाण्डिल्य कहलाते हैं।

शण्ढ (सं० पु०) शाम्यति ग्राम्यधर्मात् शम (शमेढ। उण् १।१३१) इति ढ। १ अन्तर्महलिक, खोजा। ये लोग राजाओंके अन्दर महलमें रहते और स्त्रियोंकी रक्षा करते हैं। इन्हें वर्षवर भी कहते हैं। २ नपुंसक, हीजड़ा। ३ गोपति, साँड़। ४ वन्ध्य पुरुष। ५ उन्मत्त। (धनञ्जय) ६ मूर्ख, बेवकूफ।

शत (सं० क्लि०) दश दशतः परिमाणमस्येति (पङ्क्तिविंशति त्रिंशदिति। पा ५।१।५९) इति तु दशानां शभावश्च निपात्यते। १ दशका दश गुना, सौ। शतवाचक शब्द धार्त्तराष्ट्र, शतभिषातारा, पुरुषायुष, रावणांगुलि, पद्मदल, इन्द्रयज्ञ, अब्धियोजन। (कविकल्पलता) २ बहु। (ऋक् ८।१।५) (क्ली०) ३ सौकी संख्या, दशकी दशगुनी संख्या जो इस प्रकारकी लिखी जाती है—१००।

शतक (सं० पु०) शतं परिमाणमस्य। शत (संख्याया अतिदशन्तायाः कन्। पा ५।१।२२) इति कन्। १ सौका समूह। २ एक ही तरहकी सौ चीजोंका संग्रह। ३ वह जिसमें सौ भाग या अवयव हों। ४ सौ वर्षोंका समूह, शताब्दी। ५ विष्णु।

शतकपालेश (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद। (राजतर० १।३३७)

शतकर्मा (सं० पु०) शनिग्रह। (हेम)

शतकिरण (सं० पु०) एक प्रकारकी समाधि।

शतकीर्त्ति (सं० पु०) जैन पुराणानुसार एक भावी अर्हत्का नाम। (हेम)

शतकुन्त (सं० पु०) शतकुन्द देखो।

शतकुन्द (सं० पु०) शतं कुन्दा यस्य। करवीर, सफेद कनेर।

शतकुम्भ (सं० पु०) १ एक प्राचीन पर्वत। २ करवीर, सफेद कनेर। ३ सुवर्ण, सोना।

शतकुम्भा (सं० स्त्री०) नदीतीर्थविशेष। इस नदीमें स्नान करनेसे स्वर्गलाभ होता है। (भारत ३।८४।१०)

शतकुलीरक (सं० पु०) सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका कीड़ा। (सुश्रुत कल्प० ८ अ०)

शतकुसुमा (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, सौंफ।

शतकृत्वस् (सं० अव्य०) शतवार, सौ दफे।

शतकृष्णल (सं० त्रि०) शतसंख्यक कृष्णलपरिमित। (तैत्तिरीयस० २।३।२।१,

शतकेसर (सं० पु०) भागवतके अनुसार एक वर्ष पर्वतका नाम। (भागवत ५।२०।२६)

शतकोटि (सं० पु०) शतं कोटयोऽग्राः शिखा यस्य।

१ इन्द्रका वज्र। २ हीरक, हीरा। ३ अर्बुद, सौ करोड़की संख्या। (लीलावती)

शतकौम्भ (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना। (वैद्यकनि०)

शतकौम्भक (सं० क्ली०) शतकौम्भ देखो।

शतक्रतु (सं० पु०) शतं क्रतवो यस्य। १ इन्द्र। २ बहुकर्मा। ३ बहुप्रज्ञ। (ऋक् १०।१०।१)

शतक्रतुद्रुम (सं० पु०) कृष्णकुटज वृक्ष, काली कुड़ाका पेड़। (वैद्यकनि०)

शतक्रतुप्रस्थ (सं० क्ली०) इन्द्रप्रस्थ। (भारत)

शतक्रतुयव (सं० पु०) इन्द्रयव, कुटज बीज। (वैद्यकनि०)

शतक्री (सं० त्रि०) सौ द्वारा खरीदा हुआ। (लाट्यायन ६।४।१५)

शतखण्ड (सं० क्ली०) १ सुवर्ण, सोना। २ सोनेकी बनी हुई कोई चीज।

शतखण्डमय (सं० त्रि०) शतखण्ड-मयट् स्वरूपार्थे। १ सुवर्णमय। २ शतभाग स्वरूप।

शतगु (सं० त्रि०) गोशत परिमाण धनविशिष्ट; सौ गौओंका स्वामी, सौ गायोंका रखनेवाला। (मनु ११।१४)

शतगुण (सं० त्रि०) सौ गुना।

शतगुप्ता (सं० स्त्री०) पेपण। (Euphorbia antiquorum)

शतग्रन्थि (सं० स्त्री०) शतं ग्रन्थयो यस्याः। १ दूर्वा, सफेद दूब। २ नीली दूब। (राजनि०)

शतग्रीव (सं० पु०) भूतयोनिविशेष।

शतग्व (सं० त्रि०) शतसंख्यक, सौ।

शतग्विन् (सं० त्रि०) शतसंख्यक गवादि विशिष्ट, सौ गायोंका रखनेवाला। (ऋक् १।१५२।५ सायण)

शतघ्नी (सं० स्त्री०) शतं हन्तीति शत-टक्-ङीप्। शस्त्रविशेष; एक प्रकारका शस्त्र। यह किसी बड़े पत्थर या लकड़ीके कुंदेमें बहुतसे नील कांटे ठोंक कर लगाया जाता है और इसका व्यवहार युद्धके समय शत्रुओं पर फेंकनेमें होता है। यह शस्त्र दुर्गके चारों ओर रखना होता है।

"दुर्गञ्च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम्।
शतघ्नी यन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्॥"
(मत्स्यपु० १६ अ०)

२ वृश्चिकाली, विछाती। ३ करञ्ज या कञ्जेका पेड़। (मेदिनी) ४ भावप्रकाशके अनुसार गलेमें होनेवाला एक प्रकारका रोग। इसमें त्रिदोषके कारण गलेमें वत्तीके समान लम्बी और मोटी तथा कण्ठको रोकनेवाली, मांसके अंकुरोंसे भरी हुई और बहुत पीड़ा देनेवाली सूजन हो आती है। यह रोग बड़ा कष्टदायक तथा असाध्य है। इसमें रोगीके प्राणनाशका डर रहता है। गलरोग देखो।

शतचक्र (सं० त्रि०) शतकरणसाधन, बहु योगनिष्पादन। (ऋक् १०।१४४।४)

शतचण्डी (सं० स्त्री०) शतरूपी चण्डीपाठ।

शतचन्द्र (सं० त्रि०) एक शतचन्द्र तुल्य, सौ चन्द्रमाके समान।

शतचन्द्रित (सं० त्रि०) शतचन्द्रयुक्त।

शतचर्मन् (सं० त्रि०) शतचर्मसूत्र विनिर्मित। (भारत आदिपर्व)

शतच्छद (सं० पु०) शतं छदा यस्य। १ काष्ठकुट्ट पक्षी, कठफोड़वा या काठ-ठोंका नामक चिड़िया। (त्रिकां०) २ शतदल पद्म, सौ पत्तोंवाली कमल।

शतजटा (सं० स्त्री०) शतमूली, सतावर।

शतजित् (सं० पु०) १ विष्णु। २ रजके पुत्र। (विष्णुपु०) विराजके पुत्र। (भागवत ५।१५।१३) ४ सहस्रजित्के पुत्र। (भाग० ९।२३।२०) ५ भजमानके पुत्र। (भाग० ९।२४।८) ६ यक्षभेद। (भाग० १२।११।४३)

शतजिह्व (सं० त्रि०) शिव, महादेव। (भारत १२ पर्व)

शतजीविन् (सं० त्रि०) शतं जीवति जीव-णिनि। सौ वर्ष जीनेवाला।

शतज्योतिस् (सं० पु०) सुभ्राजके पुत्र। (भारत १।४४)

शततन्ति (सं० स्त्री०) शततन्त्री।

शततम (सं० त्रि०) शत-तमप् पूरणार्थे। शतसंख्याका पूरण।

शततर्द (सं० पु०) शतछिद्रा, सौ छेद।

शततारा (सं० स्त्री०) शतं तारा यस्यां। शतभिषा नक्षत्र। इस नक्षत्रमें सौ तारे हैं।

शततिन् (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (विष्णुपु० २।१।४१)

शततेजस् (सं० पु०) व्यासका एक नाम ।

शतद (सं० त्रि०) शतं ददाति दा-क । शतसंख्यक दानकारी, सौ दान करनेवाला ।

शतदक्षिण (सं० त्रि०) शतदक्षिणायुक्त, सौ दक्षिणासे युक्त ।

शतदत् (सं० त्रि०) शतदन्तविशिष्ट, चिरुणी ।

शतदन्तिका (सं० स्त्री०) नागदन्ती, नखी नामक गन्धद्रव्य, हाथीशुंडी । (राजनि०)

शतदल (सं० क्ली०) शतं दलानि यस्य । पद्म, कमल ।

शतदलमल्लिका (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात पुष्पक्षुप । (पर्यायमु०)

शतदला (सं० स्त्री०) १ शतपत्री, सेवती । २ गुलाब ।

शतदा (सं० त्रि०) शत-दा-क्विप् । शतदानकारी, सौ दान करनेवाला ।

शतदातु (सं० त्रि०) शतसंख्यक, सौ ।

शतदाय (सं० त्रि०) १ प्रचुर धनयुक्त, काफी धनवाला । २ शतदानपटु ।

शतदारुक (सं० पु०) कोटविशेष । (सुश्रुत)

शतद्युम्न (सं० पु०) १ एक ऋषि । (तैत्तिरीयब्रा० १।५।२।१) २ राजभेद । (भारत १० पर्व) ३ चाक्षुष मनुके एक पुत्रका नाम । (मार्कण्डेयपु० ७६।५५) ४ भानुमतका पुत्र । (भागवत ६।१३।२१)

शतद्रु (सं० स्त्री०) शतधा द्रवतीति शत-द्रु (शेते च । उण् १।३६) इति कु । नदीविशेष । पर्याय—शितद्रु, शुतुद्रि, शतद्रू । (अमर) इसकी नामनिरुक्ति । "शतधा विद्रुता यस्माच्छतद्रुरिति विश्रुता ।" (भारत १।१७८६) यह नदी शतभागमें विद्रुता हुई थी, इसलिये इसका नाम शतद्रु हुआ है । महाभारतमें इस नदीका विषय यों लिखा है—पुत्रशोकातुर वशिष्ठ हिमालयसे उत्पन्न एक खरस्रोता नदी देख उसमें प्राण विसर्जन करनेके अभिप्रायसे गिरे । वह नदी विप्रको अग्नितुल्य जान शतधा हो कर विद्रुता हुई, इस कारण यह नदी तभीसे शतद्रु नामसे विख्यात हुई है । (भारत १।१७८ अ०) ऋग्वेदमें इस नदीका नाम शुतुद्रि है ।

इस नदीके जलका गुण—शीतल, लघु, स्वादु, सर्वामयनाशक, निर्मल, दीपन, पाचन, बल, बुद्धि, मेधा और आयुर्जनक । (राजनि०)

शतद्रु पञ्जाबकी एक प्रसिद्ध नदी है । यह हिमालय पर्वतसे निकल कर पञ्जाबके दक्षिण-पश्चिमी भागमें बहती हुई व्यास या विपासासे मिल कर मुलतानके दक्षिण ओर सिन्धुमें मिलती है । पुराणादि पढ़नेसे पता चलता है, कि मानस-सरोवरसे ही शतद्रु निकली है—फिर किसी और पौराणिक वृत्तान्तसे मालूम होता है, कि शतद्रु नदी रावणह्रदसे निकलती है । रावणह्रद मानस-सरोवरसे पश्चिम है । ब्रह्मपुत्र और सिन्धु जहांसे निकली है, उसके पास होसे शतद्रु उत्पन्न हुई है । मानस-सरोवर और रावणह्रद दोनों आस-पास ही है । शतद्रुके उत्पत्तिस्थानको ले कर भिन्न भिन्न मतोंका सामञ्जस्य करना उतना कठिन नहीं है । ब्रह्मपुत्र पूर्वकी ओर, सिन्धु पश्चिमकी ओर तथा शतद्रु दक्षिण-पश्चिमकी ओर बहती है । इसका उत्पत्तिस्थान हमारे इस समतल भूखण्डसे १५२०० फीट ऊर्ध्वमें अवस्थित है। यह पहाड़ी प्रदेश शतद्रु नदीके जिस स्थानमें प्रथमतः समतल-भूमिमें निपतित है, उस भूखण्डका नाम है गञ्ज । इस समतल भूमिमें इसकी गहराई प्रायः चार हजार फुट है। चीन देशके पुलिस स्टेशन सिपकी नामक स्थानसे शतद्रु सीधे दक्षिणकी ओर बह चली है। हिमालयके पथरीले प्रदेशसे हो कर यहां शतद्रु जैसी बहती है, भ्रमणकारी उसका विवरण थोड़ा बहुत संग्रह कर प्रकाश कर गये हैं। हिमालयके मध्य हो कर शतद्रु बहती है। यहां शतद्रुके पथरीले किनारेकी ऊंचाई करीब बीस हजार फुट है । सिपकीमें भी समुद्र-तटसे ऊंचाई दश हजार फुटसे कम नहीं है । हिमालयके प्रान्त भागसे शतद्रु बसहर-स्टेट और विलासपुरके मध्य होती हुई बह चली है। विलासपुर समतल भूमिखण्डसे प्रायः तीन हजार फुट ऊंचा है ।

विलासपुरकी सीमाको छोड़ शतद्रु वृटिश राज्यमें आ गिरी है। दो सौ मील तक निर्जन पहाड़ी प्रदेश हो कर बहती हुई लिवा स्पिति नदीमें मिल गई है। यहांसे दोनों प्रवाह एकत्र मिल कर दक्षिण-पश्चिमकी ओर बसाहर और सिमला पहाड़ पथसे होसियारी हो कर बह चली है । यहांसे शतद्रु शिवालिक पर्वतमाला-को घेरती हुई दक्षिणकी ओर बह चली है। शतद्रु

द्वारा होसियारपुर और अम्बाला विभक्त हुआ है। इसके बाद शतद्रु प्रवाह उत्तरमें जालन्धर तथा अम्बाला, लुधियाना और फिरोजपुर, दक्षिणमें रख कपूरतलाके बीच हो कर प्रवाहित है। कपूरतलाके दक्षिण-पश्चिम कोन पर शतद्रु नदीमें विपस नद आ मिला है। यह सम्मिलित जलप्रवाह इस स्थानसे बराबर दक्षिण-पश्चिमकी ओर प्रवाहित होता है। इसके दक्षिण-पूर्व तट पर फिरोजपुर, सिर्सा और बहवलपुर अवस्थित हैं। उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें वारीदोआब, लाहोरका कुछ अंश, मण्टेगूमारी और मुलतान जिला है। दोनों किनारेके हरे भरे क्षेत्रोंकी शोभा देखते ही बन पड़ती है। दोनों किनारा बहुत ऊंचा है। किन्तु नीचे राजपुताना अञ्चलमें तटके आस पासकी भूमि उतनी उर्वरा नहीं है। मदवालाके समीप शतद्रु लिमाव नदके साथ मिल गई है। यहां नदियाँ पञ्चनद नामसे ख्यात हैं।

शतद्रु ६०० मील पथ घूमती घूमती मिथुनकोटके पास सिन्धुनदमें मिल गई है। मिथुनकोट सामुद्र समतल भूमिसे २५८ फुट ऊद्दुर्ध्वमें अवस्थित है। जून, जुलाई और अगस्त इन तीन महीनेमें वर्षाके कारण नदी भरी रहती है। फिलोरके पास शतद्रुके वक्षमें एक रेलवे पुल तथा बहवलपुरके पास भी और एक पुल है। वर्षाकालमें फिरोजपुर तक स्टीमर जा सकता है।

शतद्रुका (सं० स्त्री०) शतद्रु-स्वार्थे कन् टाप्। शतद्रु नदी।

शतद्रुज (सं० पु०) शतद्रु तीरवासी। (मार्क०पु० ५७।३७)

शतद्रुति (सं० स्त्री०) समुद्रकी कन्या और बर्हिषदकी पत्नी। (भाग० ४।१०।१३)

शतद्वसु (सं० त्रि०) शतसंख्यक धनयुक्त।

शतद्वार (सं० त्रि०) शतं द्वाराणि यस्य। शतद्वारविशिष्ट, जिसमें सौ प्रवेशपथ हों।

शतधनुस् (सं० पु०) यदुवंशीय राजभेद, हृदिक राजपुत्र। (भागवत ६।२४।२७)

शतधन्य (सं० त्रि०) सौ बार धन्यवादके पात्र।

शतधन्वा (सं० पु०) १ एक योद्धा जिसे कृष्णने सत्राजित्के मारनेके अपराधमें मारा था। २ राजभेद। (हरिवंश) ३ ऋषिभेद। (पा ५।१।१३३)

शतधर (सं० पु०) राजभेद। (वायुपुराण)

शतधा (सं० अव्य०) शत प्रकारे धाच्। १ शत प्रकार, सौ किस्म। (स्त्री०) २ दूर्वा, दूब। (शब्दच०)

शतधामन् (सं० पु०) शतं धामानि वर्चांसि यस्य। विष्णु। (जटाधर)

शतधार (सं० क्ली०) शतं धाराः कोणा यस्य। १ वज्र। (त्रिका०) (त्रि०) २ शत धारायुक्त, जिसमें सौ धारा हो।

शतधारवन (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

शतधृति (सं० पु०) १ इन्द्र। २ ब्रह्मा। (मेदिनी) ३ स्वर्ग। (विश्व)

शतधेनुतन्त्र (सं० क्ली०) तन्त्रभेद।

शतधौत (सं० त्रि०) शतधा धौत, जो एक सौ बार धोया गया हो।

शतनिर्ह्राद (सं० पु०) बहुभीषण शब्दयुक्त, भयङ्कर शब्दवाला। स्त्रियां टाप्। (भारत ५ पर्व)

शतनेत्रिका (सं० स्त्री०) शतावरी। (राजनि०)

शतपति (सं० पु०) सौ मनुष्योंका मालिक या सरदार। (पा ४।१।४)

शतपत्र (सं० क्ली०) शतं पत्राणि यस्य। १ पद्म, कमल। (अमर) (पु०) शतं पत्राणि पक्षा यस्य। २ मयूर, मोर। ३ सारस। ४ शारिका, मैना। ५ कठफोड़वा पक्षी। ६ शतपत्री, सेवती। ७ वृहस्पति। (त्रि०) ८ सौ दलों या पत्तोंवाला। ९ सौ पंखोंवाला।

शतपत्रक (सं० पु०) शतपत्र स्वार्थे कन्। १ कठफोड़वा नामका पक्षी। २ एक प्रकारका विषैला कीड़ा। ३ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

शतपत्रनिवास (सं० पु०) शतपत्रं निवासो यस्य। १ ब्रह्मा। (कविकल्पलता) (त्रि०) २ पद्मस्थ।

शतपत्रभेदन्याय (सं० पु०) न्याय देखो।

शतपत्रयोनि (सं० पु०) शतपत्रं योनिः उत्पत्तिस्थानं यस्य। ब्रह्मयोनि, ब्रह्मा।

शतपत्रा (सं० स्त्री०) दूर्वा, दूब।

शतपत्रिका (सं० स्त्री०) शतपत्र कन् टाप् अत इत्वं। शतपत्री।

शतपत्री (सं० स्त्री०) शतं पत्राणि यस्याः ङीप्। पुष्पविशेष, एक प्रकारका गुलाब। कलिङ्ग—सेम्वतिगे, तैलङ्ग—चेमन्ति चेट्टु। पर्याय—सुमनाः, सुशीता, शिववल्लभा, सौम्यगन्धो, शतदला, सुवृत्ता, शतपत्रिका। गुण—शीतल, तिक्त, कषाय, कुष्ठ, मुखरोग, स्फोटक, पित्त और दाहनाशक, रुचिकर और सुरभि। (राजनि०)

शतपत्रीकेसर (सं० पु०) गुलाबका जीरा, गुलाब, केसर।

शतपथ (सं० त्रि०) १ असंख्य मार्गोंवाला। २ बहुतसी शाखाओंवाला।

शतपथब्राह्मण (सं० पु०) यजुर्वेदका एक ब्राह्मण। इसके कर्त्ता महर्षि याज्ञवल्क्य माने जाते हैं। इसकी माध्यन्दिन और काण्व शाखाएं मिलती हैं। इनमेंसे पहलीकी विशेष प्रतिष्ठा है। एक प्रणालीके अनुसार इसमें ६८ प्रपाठक हैं और दूसरीके अनुसार यह १४ काण्डों और १०० अध्यायोंमें विभक्त है। चारों ब्राह्मणोंमेंसे यह अधिक क्रमपूर्ण और रोचक हैं। इसमें अग्निहोत्रसे ले कर अश्वमेध पर्यन्त कर्मकाण्डका बड़ा ही विशद और सुन्दर वर्णन है। वेद देखो।

शतपथिक (सं० त्रि०) शतपथमधोते तद्वेद इति वा (शतषष्टेः षिकन् पथो बहुलम्। पा ४।२।६०) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या शत शब्दोत्तर पथिन् शब्दात् षिकन्। १ बहुतसे मतोंका अनुयायो। २ शतपथब्राह्मणका जानने या पढ़नेवाला।

शतपथीय (सं० त्रि०) शतपथब्राह्मण-सम्बन्धी।

शतपद् (सं० त्रि०) शतपदविशिष्ट।

(ऋक् १।११६।४।२)

शतपद (सं० क्लो०) १ कनखजूरा, गोजर। २ च्यूँटी।

शतपदचक्र (सं० क्ली०) शतं पदानि कोष्ठा यस्य तच्चक्रञ्चेति। ज्योतिषमें सौ कोष्ठोंवाला एक प्रकारका चक्र। इस चक्रके अनुसार नाम रखनेसे जातकके नामके आदि अक्षर द्वारा उसका जन्म नक्षत्र तथा उस नक्षत्रका पाद ज्ञान और उसके अनुसार बालकका राशिज्ञान होता है।

शतपदी (सं० स्त्री०) शतं पादा यस्याः ङीप्। १ कनखजूरा, गोजर। पर्याय—कर्णजलौका, कर्णकीटो, भीरु, शतपादिका, कर्णजलूका, शतपोत्, शतपादो। (जटाधर) यह कीट आठ प्रकारका होता है, जैसे—परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपिलिका, पित्तिका, रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा। इसके दंशन करनेसे उस जगह शोथ, हृदयमें दाह और वेदना होती है। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०) २ शतमूली, सतावर। (राजनि०) ३ नीली कोयल नामकी लता। ४ मरसेकी जातिका एक पौधा। इसके ऊपर कलगीके आकारके लाल फूल लगते हैं।

शतपद्म (सं० क्लो०) श्वेतपद्म, सफेद कमल।

शतपयस् (सं० त्रि०) शतसंख्यक पयोविशिष्ट।

(शुक्लयजुः १७।५६ महीधर)

शतपरिवार (सं० पु०) समाधिका एक भेद।

शतपर्ण (सं० पु०) एक ऋषि। इनके अपत्य शातपर्णेय कहलाते हैं।

शतपर्व्वक (सं० त्रि०) १ शतपर्व्वविशिष्ट। २ शतपर्व्वा, दूब।

शतपर्व्वधृक् (सं० पु०) वज्रधारी इन्द्र।

(भागवत ३।१४।४१)

शतपर्व्वन् (सं० पु०) शतं पर्व्वाणि यस्य। १ वंश, बाँस। २ इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख। ३ शतपर्व्वविशिष्ट वज्र, वह वज्र जिसमें सौ पर्व्व हों।

(ऋक् १।८०।६)

शतपर्व्वा (सं० स्त्री०) शतं पर्व्वाणि यस्याः। १ दूर्वा, दूब। २ वचा, वच। ३ भार्गवकी पत्नी। (भारत ५।११७।१३) ४ कोजागर पूर्णिमा। (शब्दरत्ना०) ५ कटुकी। ६ श्वेतदूर्वा, सफेद दूब। ७ नीलदूर्वा। ८ फलभी शाक, करेमूका साग। (भावप्र०) ९ सुगन्धि द्रव्य। १० पौंढ़ा, गन्ना, केतारा।

शतपर्व्विका (सं० स्त्री०) शतपर्व्वा कन्-टापि अत इत्वं। १ दूर्वा, दूब। २ वचा, वच। (मेदिनी) ३ यव, जौ।

(शब्दरत्ना०)

शतपर्व्वेश (सं० पु०) शत पर्व्वणां ईशः। शुक्रग्रह।

(त्रिका०)

शतपवित्र (सं० त्रि०) बहुपवित्र रूपविशिष्ट। स्त्रियां

टाप्। (शतं बहूनि पवित्राणि पावनानि रूपाणि यासामृताः। ऋक् ७।४७।३ सायण)

शतपात् (सं० स्त्री०) शतं पादा यस्याः पादस्य पात्। कर्णजलौका, गोजर।

शतपादक (सं० पु०) अग्निप्रकृति कीटविशेष।

शतपादिका (सं० स्त्री०) शतपाद स्वार्थे कन् टाप् अत इत्वं। १ काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। २ कर्णजलौका, गोजर।

शतपादी (सं० स्त्री०) १ श्वेतकटभीवृक्ष। २ नीली अपराजिता। (वैद्यकनि०)

शतपाल (सं० पु०) शतं पालयति पाल अच्। शतपालक, वह जो सौका पालन करता हो।

शतपुत्र (सं० त्रि०) शतं पुत्रा यस्य। शतपुत्रविशिष्ट, जिसे सौ पुत्र हो।

शतपुत्री (सं० स्त्री०) १ शतावरी, सतावर। २ सतपुतिया तरोई।

शतपुष्प (सं० पु०) १ किरातार्जुनीय ग्रन्थकर्त्ता भारवि नामक कवि। २ यष्टिक शालिधान्य, साठी धान।

शतपुष्पा (सं० स्त्री०) शतं पुष्पाणि यस्याः। १ शाकविशेष, सोआ नामका साग। अंगरेजीमें इसे Peucedanum Sowa P. Graveolens कहते हैं। संस्कृत पर्याय—सितछत्रा, अतिछत्रा, मधुरा, मिसि, अवाक्पुष्पी, कारवी, शताक्षी, शतपुष्पिका, मधुरिका, शताह्वा, छत्रा, मिशी, माधवी, घोषा। गुण—मधुर, वातपित्तहर, गुरु। (राजव०) २ क्षुपविशेष, सौंफ। पर्याय—शताह्वा, मिसि, घोषा, पोतिका, अतिछत्रा, अवाकपुष्पी, माधवी, कारवी, शिफा, संघातपत्रिका, छत्रा, वज्रपुष्पा, सुपुष्पिका, शतप्रसूना, वहला, पुष्पाह्वा, शतपत्रिका, वनपुष्पा, भूरिपुष्पा, सुगन्धा, सूक्ष्मपत्रिका, मधुरिका, अतिछत्रा। गुण—कटु, तिक्त, स्निग्ध, श्लेष्मा, अतिसार, ज्वर, नेत्ररोग और व्रणनाशक तथा वस्तिकार्यमें प्रशस्त। इसका दलगुण—उष्ण, मधुर, गुल्म, शूल और वातनाशक; दीपन, पथ्य, पित्तहारक और रुचिदायक। (राजनि०) ३ गवेधुक।

शतपुष्पादल (सं० पु०) १ सौंफका साग। २ शताह्वा।

शतपुष्पिका (सं० स्त्री०) शतपुष्पा, स्वार्थे कन् टापि अत इत्वं। शतपुष्पा देखो।

शतपोद (सं० पु०) १ एक प्रकारका वातजन्य भगन्दर। इसमें गुदाके समीप फोड़ा उत्पन्न होता है, जिसके पकने पर बहुतसे छेद हो जाते है और उनमेंसे मल, मूत्र यथा वीर्य निकलता है। २ एक प्रकारका रोग जिसमें वात और रक्तके कुपित होनेसे लिङ्ग पर अनेक छेद हो जाते हैं।

शतपोदक (सं० पु०) शतपोद देखो।

शतपोनक (सं० पु०) शतपोद देखो।

शतपोर (सं० पु०) इक्षुविशेष, पौंढ़ा, गन्ना। इसका गुण—कुछ उष्ण, वातशान्तिकर। (सुश्रुत सूत्र ४५ अ०)

शतपौर (सं० पु०) शतपोर देखो।

शतप्रद (सं० त्रि०) शतदानशील। (निरु० ११।३१)

शतप्रभेदन (सं० पु०) एक ऋषि। ये ऋक् १०।११३ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा तथा वैरूप गोत्रीय थे।

शतप्रसव (सं० पु०) कम्बलवर्हिके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश)

शतप्रसूति (सं० पु०) शतप्रसव देखो।

शतप्रसूना (सं० स्त्री०) शतं प्रसूनानि पुष्पाणि यस्याः। शतपुष्पा देखो।

शतप्रास (सं० पु०) शतं प्रासा इव फलानि यस्य। करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़।

शतफल (सं० पु०) वंश, बांस।

शतवला (सं० स्त्री०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। (भारत भीष्मपर्व)

शतवलाक (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य। (वायुपु०)

शतवलाक्ष (सं० पु०) मौद्गल्य गोत्रसम्भूत एक वैयाकरण। (निरुक्त ११।६)

शतवलि (सं० पु०) १ मत्स्य, मछली। (आपस्तम्ब २।१७) २ रामायणके अनुसार एक बन्दरका नाम। (रामायण ४।३३।१४)

शतबाहु (सं० पु०) १ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका कीड़ा। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०) २ असुरभेद (भाग० ७।२।४) ३ मारका पुत्र। (ललितविस्तर) (त्रि०) ४ शतबाहुविशिष्ट, सौ भुजावाला। (तैत्तिरीय आर० १०।१) (स्त्री०) ५ देवताविशेष।

शतबुद्धि (सं० त्रि०) १ बहुबुद्धिधारी, बड़ा बुद्धिमान्। (पु०) २ पञ्चतन्त्रोक्त मत्स्यविशेष।

शतभिष (सं० पु०) शतभिषा नक्षत्र।

शतभिषज् (सं० स्त्री०) शतं भिषज इव तारा यत्र। १ शतभिषा नक्षत्र। (पु०) २ वह व्यक्ति जिसका जन्म शतभिषा नक्षत्रमें हुआ हो। (पाणिनि ४।३।३६)

शतभिषा (सं० स्त्री०) अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रोंमेंसे चौबीसवाँ नक्षत्र। यह सौ तारोंका समूह है और इसकी आकृति मण्डलाकार है। इसके अधिष्ठाता देवता वरुण कहे गये हैं और यह ऊर्द्ध्वमुख माना गया है। कहते हैं, कि जो बालक इस नक्षत्रमें जन्म लेता है, वह साहसी, निष्ठुर, चतुर और अपने वैरीका नाश करनेवाला होता है।

शतभिषा नक्षत्रयुक्त रवि, शनि या मङ्गलवारमें रोगोत्पन्न होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

अष्टोत्तरी मतसे शतभिषा नक्षत्रमें जन्म लेनेसे राहुकी दशा होती है। अगर यह नक्षत्र समूचा पड़े, तो चार वर्ष भोग होता है, साधारणतः ६० दण्ड नक्षत्रमान रहनेसे नक्षत्रके प्रतिपदमें एक वर्ष, प्रति दण्डमें २४ दिन तथा प्रतिपदमें २४ दण्ड करके भोग जानना होगा। किन्तु सूक्ष्म हिसाब करनेसे नक्षत्रमान जितना दण्ड होगा, उन्हीं दण्डोंमें ४ वर्ष भोग होगा। विंशोत्तरी मतसे भी शतभिषा नक्षत्रमें राहुकी दशा हुआ करती है।

शतभीरु (सं० स्त्री०) शतं बहवो वियोगिनो भीरवोऽस्याः। मल्लिका पुष्पवृक्ष, चमेलीका पेड़।

शतभुजि (सं० त्रि०) १ अत्यन्त विस्तीर्ण। २ शतगुण। ३ बहुसंख्यक भुज अर्थात् प्राचीरादि वेष्टित। ४ असंख्यजात भोगवत्। (ऋक् १।१६६।८ सायण)

शतभृष्टि (सं० स्त्री०) अतिशय तीक्ष्ण या तेज।

(तैत्ति० स० २।६।४।१)

शतमख (सं० पु०) शतं मखा यज्ञा यस्य। १ इन्द्र, शतक्रतु। (हलायुध) २ कौशिक, उल्लू।

शतमन्यु (सं० पु०) शतं मन्यवो क्रतवो यस्य। १ इन्द्र। २ कौशिक, उल्लू। (त्रि०) ३ शतयज्ञकारी, सौ यज्ञ करनेवाला। ४ क्रोधी, गुस्सावर। ५ उत्साही।

शतमन्युकण्ठिन् (सं० पु०) वृक्षभेद।

शतमय (सं० त्रि०) शत स्वरूपे मयट्। शत स्वरूप, सौ।

शतमयूख (सं० त्रि०) १ बहुरश्मिविशिष्ट। (पु०) २ चन्द्रमा।

शतमल्ल (सं० पु०) संखिया नामक विष।

शतमाण्टि (सं० पु०) माण्टि नामधारी वैदिक आचार्यकी वंशपरम्परा।

शतमान (सं० पु० क्ली०) १ सुवर्णकी कोई वस्तु जो तौलमें सौ मानकी हो। २ सोना या चाँदी तौलनेके लिये सौ मानकी तौल या बाट। ३ चाँदीका पल। ४ आढ़क नामकी प्राचीन कालकी तौल जो प्रायः पौने चार सेरकी होती थी। ५ रूपामाखी या तार-माक्षिक नामकी उपधातु। (त्रि०) ६ शतलोकपूज्य, जगत्पूज्य।

(शुक्लयजु १९।९३)

शतमाय (सं० त्रि०) बहुमायावित्।

शतमार्ज (सं० पु०) शतं शतवारं मार्जयति शस्त्राणीति मृज शुद्धौ णिच् अच्। वह जो अस्त्र आदि बनाता या उन्हें ठीक करता हो। कोई कोई इसे शास्त्रमार्ज भी कहते हैं।

शतमारिन् (सं० पु०) १ वैद्य, उत्तम चिकित्सक। २ शत शत्रुहन्ता, वह जिसने सौ शत्रुको मारा हो।

शतमुख (सं० पु०) १ असुरभेद। (भारत १३ पर्व) २ शिवगणभेद। (हरिवंश)

शतमुखी (सं० स्त्री०) दुर्गा। (हेम)

शतमूति (सं० त्रि०) बहुविध रक्षणोपेत।

(ऋक् १।१०२।६ सायण)

शतमूला (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः। १ दूर्वा, दूब। २ वचा, वच। ३ बड़ी सतावर।

शतमूलिका (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः ततः स्वार्थे कन्। १ द्रवन्ती, बड़ी दन्ती, बंगरेड़ा। २ आखुकर्णी नामकी लता।

शतमूली (सं० स्त्री०) शतं मूलानि यस्याः (पाककर्णेति। पा ४।१।६४) इति ङीप्। १ शतावरी नामकी ओषधि। पर्याय—बहुसुता, अभीरु, इन्दीवरी, वरी, ऋष्यप्रोक्ता, भीरुपत्री, नारायणी, शतावरी, अहेरु, रङ्गिणी, शची,

द्विपिशक्र, ऋष्यगता, शतपदी, पीवरी, धीवरी, वृष्या, दिव्या, दीपिका, दरकण्ठिका, सूक्ष्मपत्ता, सुपत्ता, बहुमूला, शताह्वया, स्वादुरसा, शताह्वा, लघुपर्णिका, आत्मगुप्ता, जटा, मूला, शतवीर्या, महौषधी, मधुरा, शतमूला, केशिका, शतपत्रिका, विश्वस्था, वैष्णवी, पार्ष्णी, वासुदेवप्रियङ्करी, दुर्मना, तैळवल्ली। गुण—वृष्य, मधुर, शीतल, मेद, कफ, वात और पित्तनाशक, तीता और रसायन। (राजनि०)

२ तालमूली, मूसली। ३ वचा, वच।

शतमूल्यादिलौह—रक्तपित्तरोगमें फलप्रद औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शतमूली, चीनी, धनियाँ, नागेश्वर, रक्तचन्दन, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद, विडङ्गी, मोथा, चितामूल और कृष्णतिल; इनका एक भाग, सबके बराबर समान लौह। इन सब द्रव्योंको एकत्र पीस लेना होगा। मात्रा १ माशा और अनुपान मधु है। इसका सेवन करनेसे तृष्णा, दाह, ज्वर, वमि और रक्तपित्त उपशमित होता है।

शतयज्ञोपलक्षित (सं० पु०) इन्द्र।

शतयज्वन् (सं० त्रि०) १ शतयज्ञकारी, सौ यज्ञ करने वाला। (पु०) २ शतक्रतु, इन्द्र।

शतयष्टिक (सं० पु०) शतं यष्टयो गुच्छ यस्य। शत लतिकहार, वह हार जिसमें सौ लड़ हों। पर्याय—देवच्छंद।

शतयाजम् (सं० अव्य०) शत यज्ञान्तर्निविष्ट। (अथर्व ६।४।१८)

शतयातु (सं० पु०) ऋषिभेद। (ऋक् ७।१८।२१)

शतयामन् (सं० त्रि०) बहुपथविशिष्ट। (ऋक् १।५६।१६)

शतयूप (सं० पु०) राजर्षिभेद। (भारत १५ पर्व)

शतयोजन (सं० क्ली०) एक शतयोजनपरिमित दूरविस्तृति।

शतयोजनपर्वत (सं० पु०) पर्वतभेद।

शतयोनि (सं० त्रि०) १ बहु आवासविशिष्ट। २ बहु नीड़। (अथर्व ७।४१।२)

शतयोजनयायिन् (सं० त्रि०) बहुदूरगामी।

शतरंज (फा० पु०) एक प्रकारका प्रसिद्ध खेल। यह चौंसठ खानोंकी बिसात पर खेला जाता है। यह खेल दो आदमी खेलते हैं। जिनमेंसे प्रत्येकके पास १६-१६ मुहरे रहते हैं। इन सोलह मुहरोंमें एक बादशाह, एक वजीर, दो ऊँट, दो घोड़े, दो हाथी या किश्तियाँ तथा आठ प्यादे होते हैं। इनमेंसे प्रत्येक मुहरेकी कुछ विशिष्ट चाल होती है अर्थात् उसके चलनेके कुछ विशिष्ट नियम होते हैं। उन्हीं नियमोंके अनुसार विपक्षीके मुहरे मारे जाते हैं। जब बादशाह किसी ऐसे घरमें पहुँच जाता है, जहांसे उसके चलनेकी जगह नहीं रहती, तब बाजी मात समझी जाती है। इसकी बिसातमें आठ आठ खानोंकी आठ पंक्तियां होती हैं।

विशेष विवरण चतुरङ्ग शब्दमें देखो।

शतरंजबाज (सं० पु०) शतरंजका खिलाड़ी, शातिर।

शतरंजबाजी (फा० स्त्री०) १ शतरंज खेलनेका व्यसन। २ शतरंज खेलनेका काम या भाव।

शतरंजी (फा० स्त्री०) १ वह दरी जो कई प्रकारके रंग बिरंगे सूतोंसे बनी हो। २ वह जो शतरंजका अच्छा खिलाड़ी हो। ३ शतरंज खेलनेकी बिसात। ४ वह रोटी जो कई प्रकारके अनाजोंको मिला कर बनाई गई हो, मिस्सी रोटी।

शतरथ (सं० पु०) राजभेद। (भारत आदिपर्व)

शतरा (सं० पु०) १ बहुधनविशिष्ट, बड़ा दौलतमंद। २ इन्द्रियप्रसन्नता-दानकारी, सुख। (ऋक् १०।६।५ सायण)

शतरात्र (सं० पु०) शतरात्रव्याप्य सत्रविशेष, एक प्रकारका यज्ञ जो सौ रातोंमें समाप्त होता था। (पञ्चब्रा०)

शतरुद्र (सं० पु०) १ रुद्रका एक रूप जिसके सौ मुँह माने जाते हैं। २ शैवदर्शनके अनुसार एक शक्ति जो आत्माकी उत्पादक कही गई है।

शतरुद्रा (सं० स्त्री०) हिमालयकी एक नदीका नाम।

शतरुद्रिय (सं० स्त्री०) शतरुद्रीय देखो।

शतरुद्रीय (सं० स्त्री०) शतं रुद्रा देवता अस्य, शतरुद्र (शतरुद्राच्छश्च घश्च। पा ४।२।२८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या घः पक्षे छश्च। १ यज्ञकी हवि। (क्लो०) २ यजुर्वेदान्तर्गत रुद्रस्तवविषयक ग्रन्थविशेष। (वाजसनेयस० १६।१।६६)

यह स्तोत्र पाठ करनेसे शतशीर्ष रुद्रदेव परितृप्त होते हैं। स्थलविशेषमें शमन्त करके शान्तरुद्रीय शब्दके बदले शतरुद्रीय पद होता है। वाजसनेयसंहिताके १६वें अध्यायमें बहु मन्त्र द्वारा स्तुत शतरुद्रीय होमकी विधि है। (ऋक् १०।१०६।५ सायण)

शतरूप (सं० त्रि०) १ बहुरूपविशिष्ट। (पु०) २ मुनि-विशेष।

शतरूपा (सं० स्त्री०) शतं रूपाणि यस्याः। ब्रह्माकी मानसी कन्या और पत्नी। इन्हींके गर्भसे स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति हुई थी। (मत्स्यपु० ३ अ०)

विष्णुपुराणके मतसे यह स्वायम्भुव मनुकी पत्नी थी। (विष्णुपु० १।७।१४-१६) मनु (१।३२)-में शत-रूपाका तो कोई उल्लेख नहीं है, पर पुराणवर्णित इस उपाख्यानका सारांश निम्नोक्तरूपसे उल्लिखित हुआ है। ब्रह्माने अपनी इच्छासे देह दो खण्ड कर अर्द्धनारीश्वर मूर्त्ति धारण की। पीछे स्वयं उस रमणीमें विराट्को उत्पन्न किया।

शतवर्चस् (सं० त्रि०) शतविध तेजःविशिष्ट, बहुत प्रकार-का तेजवाला। (ऋक् ७।१००।३ सायण)

शतर्चिन् (सं० पु०) ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंकी उपाधि। (ऋग्वेद अनुक्रमणिकामें षड्गुरुशिष्य)

शतलक्ष (सं० क्ली०) कोटिसंख्या, करोड़।

शतलुम्प (सं० पु०) भारविनामा कवि। स्वार्थे कन्। शतलुम्पक।

शतलोचन (सं० त्रि०) १ सौ नेत्रोंवाला। (पु०) २ स्कन्दानुचरभेद (भारत ६ पर्व) ३ असुरभेद। (हरिवंश)

शतवक्त्र (सं० पु०) मन्त्रास्त्रविशेष। (रामा० १।३०।५)

शतवत् (सं० त्रि०) शत अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शत-विशिष्ट।

शतवनि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषि। इनकी सन्तान आदि शातवनेय कहलाती है।

शतवपुस् (सं० पु०) उशनाके एक पुत्रका नाम। (विष्णुपु०)

शतवर्ष (सं० पु०) १ शतसंख्यक वर्षव्याप्य काल, शताब्दी २ शताब्द प्राचीन।

शतवल (सं० त्रि०) बहु वलधारी, बड़ा ताकतवर।

शतवल्ली (सं० स्त्री०) १ नीली दूब। २ काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शतवल्श (सं० त्रि०) बहुशाखाविशिष्ट।

शतवाज (सं० त्रि०) प्रभूत शक्तिसम्पन्न। (ऋक् ८।८१।१०)

शतवादन (सं० क्ली०) बहुतसे बाजोंका एक साथ बजना।

शतवार (सं० पु०) कवचविशेष। (अथर्व १६।३६।१)

शतवार्षिक (सं० त्रि०) शतवर्षभव, प्रति सौ वर्ष पर होनेवाला।

शतवार्षिकी (सं० स्त्री०) अनावृष्टि, पानी न बरसना।

शतवाही (सं० स्त्री०) १ शतवहनकारिणी। २ वह स्त्री जो मैकेसे बहुत-सा धन साथ ले कर ससुराल आई हो।

शतविचक्षण (सं० त्रि०) बहुदर्शन। (ऋक् १०।६७।१८)

शतवीर (सं० पु०) विष्णुका एक नाम। (हेम)

शतवीर्य (सं० त्रि०) श्रोत्रेन्द्रियसम्बन्धीय प्रभूत शक्ति सम्पन्न। (अथर्व ३।११।३)

शतवीर्या (सं० स्त्री०) शतं वीर्याणि यस्याः। १ श्वेत-दूर्वा, सफेद दूब। २ शतावरी, शतमूली। ३ कपिल-द्राक्षा, मुनक्का। ४ सफेद मूसली। ५ किशमिश।

शतवृषभ (सं० पु०) ज्योतिषमें एक मुहूर्त्तका नाम।

शतवेधिन् (सं० पु०) शतं विधतीति विध णिनि। १ अम्ल-वेतस, अमलबेंत। २ चुक्रिका या चूका नामक साग।

शतवेधिनी (सं० स्त्री०) चुक्रिका या चूका नामक साग।

शतशलाका (सं० स्त्री०) छत्र। (दिव्या० ५१३.२०)

शतशस् (सं० अव्य०) शत चशस् वारार्थे। शत बार, सौ दफे।

शतशाख (सं० त्रि०) बहु शाखा-प्रशाखा-विशिष्ट। (अथर्व ४।१६।५)

शतशाखत्व (सं० क्ली०) १ बहु शाखाविशिष्टका भाव। २ बहुत्वका निदानभूत।

शतशारद (सं० त्रि०) शत सम्वत्सर।

शतशीर्ष (सं० पु०) १ विष्णुका एक नाम। २ रामायण-के अनुसार एक प्रकारका अभिमन्त्रित अस्त्र। (रामा० १।३।१६)

शतशीर्षा (सं० स्त्री०) वासुकी देवी। (भारत उद्योगपर्व)

शतशृङ्ग (सं० पु०) एक पर्वत। (भाग० ५।२०।१०)

यह महाभद्रके उत्तरमें अवस्थित है। (लिङ्गपु० ४९।५५) अनुमान है, कि यह वर्त्तमान मैसूर राज्यके एक पर्वतका प्राचीन नाम है। इस पर्वतकी देवकीर्त्तिका विषय शतशृङ्गमाहात्म्यमें वर्णित है।

शतश्लोकी—मधुसूदन सरस्वतीकृत ब्रह्मसूत्रकी व्याख्याके आधार पर उत्तमश्लोकतीर्थ-विरचित एक वेदान्त ग्रन्थ। यह श्लोकके आकारमें लिखा गया है।

शतसंख्य (सं० त्रि०) शतं संख्या यस्य। १ शतसंख्यक, सौ। (पु०) २ पुराणानुसार दशवें मन्वन्तरके एक देवता। (विष्णुपु०)

शतसंवत्सर (सं० पु०) शत वत्सर, सौ वर्ष।

शतसङ्ख्शस् (सं० अव्य०) शत शत संख्यक।

शतसनि (सं० त्रि०) शतसंख्याविशिष्ट, सौ।

शतसहस्र (सं० क्ली०) शतगुणित सहस्रं। शतगुणित सहस्र, एक लाख।

शतसहस्रक (सं० क्ली०) तीर्थभेद। (भारत वनपर्व)

शतसहस्रधा (सं० अव्य०) शतसहस्र प्रकारार्थे धाच्। शतसहस्र प्रकार।

शतसहस्रपत्र (सं० पु०) पुष्प, फूल।

शतसहस्रशस् (सं० अव्य०) शतसहस्र प्रकारार्थे चशस्। शतसहस्र प्रकार। (भाग० ५।१६।१६)

शतसहस्रांशु (सं० पु०) चन्द्रमा। (भारत आदिपर्व)

शतसहस्रान्त (सं० पु०) चंद्रमा। (नीलकण्ठ)

शतसा (सं० त्रि०) शतदाता, शतशनि।

शतसाहस्र (सं० त्रि०) बहु संख्यक।

शतसाहस्रक (सं० क्ली०) तीर्थभेद।

शतसाहस्रिक (सं० त्रि०) शत सहस्र संख्याविशिष्ट।

शतसुता (सं० स्त्री०) शतमूली, सतावर।

शतसू (सं० त्रि०) १ शतप्रसवकारी, सौ प्रसव करनेवाला। २ बहु धनानयनकारी, बहुत धन लानेवाला।

शतसेय (सं० क्ली०) अपरिमिति धनपर्यवसान। (ऋक् ३।१८।३)

शतस्विन् (सं० त्रि०) शतसंख्योपेत धनवान्। (ऋक् ७।५८।४ सायण)

शतहन् (सं० त्रि०) शतं हन्ति. हन्-क्विप्। शतहन्ता, सौको मारनेवाला। (पु०) २ शतघ्नी नामक एक प्रकारका शस्त्र। शतघ्नी देखो।

शतहस्त (सं० त्रि०) शतं हस्ता यस्य। शतहस्तविशिष्ट, जिसे सौ हाथ हो, एक सौ हाथका।

शतहिम (सं० त्रि०) शतसम्वत्सर। (ऋक् ६।४।८)

शतहुत (सं० त्रि०) सौ वार जिस होममें आहुति दी गई हो। (षड्विंश ब्रा० ४।१)

शतह्रद (सं० पु०) असुरभेद। (हरिवंश)

शतह्रदा (सं० स्त्री०) शत ह्रदा अच्चांषि यस्याः यद्वा शतं ह्रादाः शब्दाः यस्याः निपातनात् ह्रस्वः। १ विद्युत्, बिजली। २ वज्र। ३ दक्षकी एक कन्या जो बाहुपुत्रकी स्त्री थी। (अग्निपुराण) ४ विराध राक्षसकी माता। (रामा० ३।७।२०)

शतांश (सं० पु०) सौ भागोंमेंसे एक भाग, १००वाँ हिस्सा।

शता (सं० स्त्री०) शतावरी। (वैद्यकनि०)

शताकरा (सं० स्त्री०) एक किन्नरीका नाम।

शताकारा (सं० स्त्री०) एक गंधर्व स्त्रीका नाम।

शताक्ष (सं० पु०) एक दानवका नाम। (हरिवंश)

शताक्षी (सं० स्त्री०) १ रात्रि, रात। २ शतपुष्पा नामक वनस्पति, सौंफ। ३ पार्वती। ४ दुर्गा। भगवती दुर्गा सौ नेत्रोंसे मुनियोंके दर्शन करती हैं, इसलिये लोग उन्हें शताक्षी कहते हैं।

शताग्रमहिषी (सं० स्त्री०) एक प्रधान राजमहिषी। (मार्क० पु० ७४।२१)

शताङ्ग (सं० पु०) शतं अङ्गानि अवयवा यस्य। १ रथ। (अमर) २ तिनिस, तिरिछ वृक्ष। ३ दानवविशेष। (हरिवंश २३२।२२) (त्रि०) ४ शतावयवविशिष्ट, सौ अंगों या अवयवोंवाला। (भारत १।१६८।२२)

शताङ्गुल (सं० पु०) तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

शताजित् (सं० पु०) सात्वत राजभेद। (भागवत ६।२४।८)

शतातृण (सं० त्रि०) बहु छिद्रविशिष्ट, बहुत छेदवाला। (तैत्तिरीयब्रा० १।८।६।४)

शतात्मन् (सं० त्रि०) नानारूपविशिष्ट। (ऋक् १।१४६।३)

शताधिक (सं० त्रि०) सौसे अधिक।

शताधिपति (सं० पु०) शतस्य अधिपतिः। १ शतका अधिपति, शतस्वामी। २ शतवर्ष वयस्क, वह जिसकी उम्र सौ वर्ष हो।

शतानक (सं० क्ली०) श्मशान, मरघट। (त्रिका०)

शतानन (सं० पु०) विल्व, बेल।

शतानना (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम।

शतानन्द (सं० पु०) शत बहुलः आनन्दो यस्य। १ गौतम मुनिका पुत्र। ये जनक राजाके पुरोहित थे। २ देवकीनन्दन। ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। (भारत १३।१४९।७६) ५ गौतममुनिका पुत्र जो अहल्याके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। ६ विष्णुरथ।

शतानन्द—१ कार्त्तिकमाहात्म्यसंग्रहके प्रणेता। २ तिथ्यधिकारटीका-कर्त्ता। ३ रत्नमाला नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। रघुनन्दनने ज्योतिस्तत्त्वमें इनका मत उद्धृत किया है। ४ भास्वतीकरण और भास्वती नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने ११०० ई०में प्रथमोक्त ग्रन्थ लिखा। इनके पिताका नाम था शङ्कर तथा माताका नाम सरस्वती। ५ एक प्राचीन कवि।

शतानन्दा (सं० स्त्री०) शतानन्द-टाप्। १ स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ९ पर्व) २ नदीभेद। (कालिकापु० ७८।२१)

शतानीक (सं० पु०) शतं अनीकानि यस्य। १ वृद्ध पुरुष, बूढ़ा आदमी। २ एक मुनि जो व्यासके शिष्य थे। ३ पुराणानुसार चौथे युगमें चन्द्रवंशका द्वितीय राजा। इसका पिता जनमेजय और पुत्र सहस्रानीक था। ४ भागवतके अनुसार सुदास राजाका पुत्र। (भागवत ९।२२ अ०) ५ नकुलके एक पुत्रका नाम जो द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। (भारत १।२३४।१०) ६ एक असुरका नाम। ७ सौ सिपाहियोंका नायक।

शताब्ज (सं० क्ली०) शतपद्म।

शताब्द (सं० त्रि०) १ सौ वर्षवाला। (पु०) २ सौ वर्ष, शताब्दी, सदी।

शताब्दी (सं० स्त्री०) १ सौ वर्षोंका समय। २ किसी संवत्में सैकड़ेके अनुसार एकसे सौ वर्ष तकका समय। जैसे,—ईस्वी पाँचवीं शताब्दी अर्थात्, ई० सन् ४०१से ५०० तकका समय।

शतामघ (सं० पु०) १ शतधन। (ऋक् ८।१।५ सायण) २ इन्द्र।

शतायु (सं० पु०) शतायुस् देखो।

शतायुध (सं० त्रि०) शत अस्त्रधारी, जो सौ अस्त्र धारण करता हो। (तैत्तिरीयस० ५।७।२।३)

शतायुधा (सं० स्त्री०) एक किन्नरीका नाम।

शतायुस् (सं० पु०) शतं आयुर्यस्य। १ वह जिसकी आयु सौ वर्षोंकी हो। पुरुषकी पूर्ण आयु सौ वर्ष है। "शतायुर्वै पुरुषः" (श्रुति) २ पुरुरवाके एक पुत्रका नाम। (भारत आदिपर्व) ३ चिरायुका पुत्र। (कथासरित्सा० ४१।५८) ४ उशनाका पुत्र। (विष्णुपु०)

शतार (सं० क्ली०) शतं आराणि यस्य। १ वज्र। २ सुदर्शनचक्र।

शतारु (सं० क्ली०) एक प्रकारका कोढ़। इस रोगमें खाल पर लाल, काली और दाहयुक्त फुंसियाँ हो जाती हैं।

शतारुक (सं० पु०) शतारु देखो।

शतारुण (सं० पु०) राजभेद। (कौषीतकी ११।६)

शतारुषी (सं० स्त्री०) शतारु देखो।

शतारुस् (सं० क्ली०) शतारु देखो।

शतार्घ (सं० त्रि०) बहुमूल्य।

शतार्णा (सं० स्त्री०) एक प्रकारका वृक्ष। (Anethum Sowa)

शतार्द्ध (सं० क्ली०) पञ्चाशत् संख्या, पचास।

शतार्ह (सं० त्रि०) शतार्घ, बहुमूल्य।

शतावधान (सं० पु०) १ राघवेन्द्र भट्टाचार्यकी उपाधि। २ श्रुतिधर, वह मनुष्य जो एक साथ बहुत-सी बातें सुन कर उन्हें सिलसिलेवार याद रख सकता हो। कुछ मेधावी लोग ऐसे होते हैं जो एक साथ बहुत-से काम करनेका अभ्यास करते हैं। जैसे—एक आदमी रह रह कर कुछ संख्या या अंकोंका नाम लेता है। दूसरा आदमी रह रह कर घड़ियाल बजाता है। तीसरा आदमी किसी ऐसी भाषाके वाक्यके शब्द बोलता है जिससे शतावधान करनेवाला मनुष्य अपरिचित होता है। एक आदमी पूर्त्तिके लिये कोई समस्या देता है। एक ओर शतरंजका खेल होता रहता है। शतावधानका यह कर्त्तव्य होता है, कि वह संख्याओं और अपरिचित भाषाके

वाक्यके शब्द याद रखे, समस्याकी पूर्त्ति करे और शतरंज खेलता चले और इसी प्रकार और जितने काम होते हों, उन सबमें सम्मिलित रहे और अन्तमें सबका ठीक ठीक उत्तर दे और सब काम ठीक ठीक पूरे उतारे। ३ शतावधानका काम।

शतावधानी (सं० पु०) १ शतावधान देखो। (स्त्री०) २ शतावधानका काम।

शतावर (सं० पु०) सतावर नामकी ओषधि, सफेद मूसली।

शतावरी (सं० स्त्री०) शतमावृणोतीति आ-वृ अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ शतमूली, सतावर, सफेद मूसली। (Asparagus racemosus or asparagus sarmentosus) २ इन्द्रकी भार्या, इन्द्राणी। ३ शटी, कचूर।

शतावरीघृत—अम्लपित्तरोगमें उपकारक घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर, कल्कार्थ शतमूलीकी जड़ १ सेर, जल ४ सेर, दूध १६ सेर, धीमी आंचमें पाक करे। इसे पीनेसे अम्लपित्त, वातपित्तोत्पन्न नाना रोग, रक्तपित्त, तृष्णा, मूर्च्छा, श्वास और सन्ताप निवारित होता है।

शतावरीमहाचैतस—औषधविशेष। (चिकित्सासा०)

शतावरीमण्डूर—शूलरोगाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शोधित मण्डूरचूर्ण ८ पल, शतावरी रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, घी ८ पल, इन सबों को एक साथ पाक करे। पीछे पिण्डके समान हो जाने पर उतार ले। यह भोजनके पहले, भीतर और अन्तमें सेवनीय है। इसका सेवन करनेसे वातिक, पैत्तिक, और परिणामज शूल विनष्ट होता है।

शतवर्यादि—मूत्रकृच्छ्ररोगकी एक औषध। इसके बनाने की तरकीब—शतमूली, कासमूल, कुशमूल, गोक्षुर, भूमिकुष्माण्ड, शालितण्डुल, कृष्णेक्षुमूल और केशुरके क्वाथ में मधु और चीनी डालकर सुशीतल करे। इसके सेवन से पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र नाश होता है।

शतावर्त्त (सं० पु०) १ विष्णु। २ महादेव। (भारत १२।२८४।६)

शतावर्त्तवन (सं० क्लो०) एक पवित्र वन। (हरिवंश)

शतावर्त्तिन् (सं० क्लो०) शतेन प्राणरूपेण नाड़ीशतेन वर्त्तते वृत णिनि। विष्णु। (त्रिका०)

शताश्रि (सं० पु०) वज्र। (ऋक् ६।१७।१०)

शताश्व (सं० त्रि०) बहु अश्वयुक्त। (ऋक् ८।४।१६)

शताष्टक (सं० क्लो०) अष्टोत्तर शत।

शताह्वया (सं० स्त्री०) १ सौंफ। २ मधूरिका, सोआ। ३ शतावरी, सतावर।

शताह्वा (सं० स्त्री०) शतं आह्वा यस्याः। १ शतपुष्प। २ शतावरी, सतावर। ३ सौंफ। ४ एक प्राचीन नदी। ५ एक तीर्थका नाम।

शतिक (सं० त्रि०) शत) शताच्च ठन् यतावशते। पा ५।१।२१) इति ठन्। १ शत द्वारा क्रीत, जो सौसे खरीदा गया हो। २ शत-सम्बन्ध, सौका। (सिद्धान्तकौ०)

शतिन् (सं० त्रि०) शतमस्यास्तीति शत इनि। शत-संख्याविशिष्ट, सौ। (ऋक् १।१०।१०)

शतेध्म (सं० क्लो०) बहु काष्ठ। (काठक ३६।६)

शतेन्द्रिय (सं० त्रि०) प्रभूत इन्द्रियशक्तिविशिष्ट। (ऐतरेयब्रा० २।१७)

शतेपञ्चाशन्न्याय (सं० पु०) न्यायसूत्रविशेष। (तैत्तिरीय प्राति० २।२५)

शतेर (सं० पु०) शद शातने (शदेस्त च। उण् १।६१) इति एरक्, तकारान्तादेशश्च। १ शत्रु, दुश्मन। २ हिंसा। ३ घाव, जख्म।

शतेश (सं० पु०) शतस्य ईशः। शताधिपति, सौ ग्रामका अधिपति। (मनु ६।११५)

शतैकशीर्षन् (सं० त्रि०) शत संख्यक श्रेष्ठ शिरःसमन्वित, सौ सिरवाला।

शतैकीय (सं० त्रि०) शतसंख्याविशिष्ट, सौ। (राज तर० ८।१२।७४)

शतोक्थ्य (सं० त्रि०) शत उक्थका समयविशिष्ट। (शतपथब्रा० ११।५।५।२)

शतोति (सं० त्रि०) १ बहुरक्षक। २ बहुगमन। (ऋक् ६।६३।५ सायण)

शतोदर (सं० त्रि०) १ शत उदरविशिष्ट, जिसे सौ उदर या पेट हो। (पु०) २ शिव, महादेव। (भारत १२ पर्व) ३ अस्त्रविशेष। (रामा० १।३०।५) ४ शिवगणभेद। (हरिवंश)

शतोदरी (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचरमातृभेद। (भारत ९ पर्व)

शतोलुखलमेखला (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद। (भारत ६ पर्व)

शतौदना (सं० स्त्री०) यज्ञकर्मविशेष, यज्ञमें होनेवाला एक प्रकारका कृत्य। (अथर्व १०।९।१)

शत्य (सं० त्रि०) शत (शताच्च ठन् यतावशते। पा ५।१।२१) इति यत्। १ शतका विकार। २ शत द्वारा क्रीत, सौसे खरीदा हुआ। ३ शतिक। ४ धनपतिसंयोग।

शत्यञ्जय (सं० पु०) कर्ममासका १३वां दिन।

शत्र (सं० क्ली०) बल। (निघ०)

शत्रि (सं० पु०) शद् (रा शदिभ्यां त्रिप्। उण् ४।६७) इति त्रिप्। १ हस्ती, हाथी। २ एक राजर्षिका नाम। (ऋक् ६।४।९) ३ बल, ताकत।

शत्रु (सं० पु०) शद शातने (रुशादिभ्यां क्रुन्। उण् ४।१०३) इति क्रुन्। १ वह जिसके साथ भारी विरोध या वैमनस्य हो, दुश्मन। पर्याय—रिपु, वैरि, सपत्न, अरि, द्विश, द्वेषण, दुर्हृद्, द्विष, विपक्ष, अहित, अमित्र, दस्यु, शात्रव, अभिघाती, पर, अराति, प्रत्यर्थी, परिपन्थिन, वृष, प्रतिपक्ष, द्विपद्, घातक, द्वेषिन्, विद्विष, हिंसक, अप्रिय, अभिघातिन, अहित, दौर्हृद्। (शब्दरत्ना०) २ एक असुरका नाम। ३ नाग-दमन या मारछोवा नामकी वनस्पति।

शत्रुंसह (सं० त्रि०) शत्रु सहनशील, जो शत्रुको सहन कर सके। (पा ३।२।४६)

शत्रुक (सं० पु०) स्वार्थे कन्। शत्रु, दुश्मन।

शत्रुकण्टक (सं० पु०) पुंगीफल, सुपारी।

शत्रुकण्टका (सं० स्त्री०) सुपारी।

शत्रुघ (सं० त्रि०) शत्रुनाशकारी, शत्रुका नाश करनेवाला।

शत्रुघात (सं० त्रि०) शत्रुं हन्तीति शत्रु-हन-घञ्। शत्रुविनाशकारी, शत्रुका नाश करनेवाला।

शत्रुघातिन् (सं० पु०) शत्रुघ्नके एक पुत्रका नाम। (रघु १५।३६)

शत्रुघ्न (सं० पु०) शत्रून् हन्तीति हन, मूलविभुजा-दित्वात् क, यद्वा अमनुष्यकर्तृकेऽपि चेत्यपि शब्दात् कृतघ्नशत्रुघ्नादयः सिद्धा इति दुर्गसिंहः। १ रामचंद्रके भाई। पर्याय—शत्रुमर्द्दन। (शब्दरत्ना०) राजा दशरथकी तृतीया पत्नी सुमित्राके पुत्रेष्टि यज्ञके हुतावशिष्ट चरु खाने पर उनके गर्भसे इनका जन्म हुआ। इन्होंने मधुपुरनिवासी लवणाख्य असुरका वध किया था। इनका भरतके साथ वैसा ही प्रेम था जैसा लक्ष्मणका रामके साथ। (रामायण)

२ देवश्रवाके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) ३ शत्रु-हन्ता, शत्रुको मारनेवाला।

शत्रुघ्न शर्म्मन्—मन्त्रार्थदीपिका, रुद्रजपभाष्य और वेद-विलासिनी नामक तीन ग्रन्थके रचयिता। केशवमिश्रने स्वरचित द्वैतपरिशिष्टमें इनका विषय उल्लेख किया है।

शत्रुघ्नजननी (सं० स्त्री०) शत्रुघ्नस्य जननी, सुमित्रा। (शब्दरत्ना०)

शत्रुघ्नी (सं० स्त्री०) हथियार।

शत्रुजित् (सं० पु०) शत्रून् जयतीति जि-क्विप् तत-स्तुक् (ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्। पा ६।१।७१) १ एक राजाका नाम। इनके पुत्रका नाम ऋतध्वज था। ये साधारणमें कुव-लयाश्व नामसे परिचित थे। (मार्क०पु०) २ शिव। (त्रि०) ३ शत्रुको जीतनेवाला।

शत्रुञ्जय (सं० पु०) १ काठियावाड़ प्रांतका एक प्रसिद्ध पर्वत जो विमलाद्रि भी कहलाता है। यह जैनियोंका एक प्रसिद्ध तीर्थ है। शत्रुञ्जयशैल देखो। (दिग्वि० प्र० ४६।२।१) २ रामायणके अनुसार एक नागका नाम। (रामायण २।३२।१०) ३ एक पाण्ड्यवंशीय राजा। ४ एक नदी। भौगोलिक टलेमीने इसे 'Sodrana' शब्द-में उल्लेख किया है। (त्रि०) शत्रुं जयतीति जि-खच् ततो मुम्। (संज्ञायां भृतृवृजीति। पा ३।२।४६) ५ शत्रु-जयकारी, शत्रुविजेता, शत्रुको जीतनेवाला।

शत्रुञ्जयशैल—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभाग-के गोहेलवाड़ प्रान्तका एक पर्वत और उसके ऊपरका नगर। आज कल यह पालिताना कहलाता है। पालिताना देखो।

यह स्थान जैन-सम्प्रदायका एक पवित्र तीर्थ है। तीर्थङ्करके शिष्य जैनधर्मकी प्रतिष्ठाके समयसे ही इस पवित्र स्थानको भक्तिकी दृष्टिसे देखते आ रहे हैं। काठि-यावाड़से दक्षिण पूर्व अवस्थित पालिताना राजधानीके निकट प्रान्तरमें यह बड़ा शैल है। यहां जानेमें उतनी

सुविधा नहीं है। जो गंदा पथ है भी, वह बड़ा कठिन है। पर्वत पर चढ़नेके लिये सीढ़ियां लगी हैं। बीच बीचमें आराम करनेके लिये चौमुहानी काट कर छत और पुष्करिणी निकाली गई है। इसके चारों ओर चहार-दीवारी है। उसके ऊपर स्थापित जो दो चार कमान हैं, वे आज भी प्राचीन समृद्धिका परिचय देती हैं। किन्तु दुःखका विषय है, कि यहां अब कोई वास नहीं करते। सिर्फ बहुत थोड़े यति और पुरोहित देवताकी अर्चनाके लिये यहां रहते हैं। यात्री सुबहको पर्वत पर देवदर्शनको चढ़ते तथा शामको पुनः नगरको लौट आते हैं।

धर्मप्राण एकमात्र जैन-सम्प्रदायके यत्न, अध्यवसाय तथा अमितव्ययसे ही आज भी मन्दिर सुरक्षित हैं। कौन सबसे पुराना है, यह बतलाना कठिन है। सभी जीर्ण संस्कारमें नवकलेवर धारण किये हुए हैं। लेकिन मंदिरगात्रके शिलाफलक देखनेसे अनुमान होता है, कि ११ वीं १२ वीं सदीसे वर्त्तमान १६ वीं सदी तक ये मंदिर रक्षित हैं। एक एक मंदिरका सोलह बार तक उद्धार या जीर्ण-संस्कार हो चुका है।

यहांके मन्दिरोंकी विशेषता यह है, कि सभी मन्दिर सफेद चकमक चूनेकी पालिश किये हैं। जिससे देखनेमें बड़े चमकीले मालूम होते हैं, मानो मर्मरपत्थरके बने हों। रास्तेके किनारे किनारे छोटे छोटे मन्दिर हैं, वे भी उक्त मन्दिर जैसे बने हैं। प्रत्येक मन्दिरके लिये सम्पत्ति दे दी गई है। धनाढ्य व्यक्तियों द्वारा ये सब मन्दिर बने हैं तथा उनकी ही प्रदत्त देवोत्तर सम्पत्ति और जनोंकी वदान्यतासे परिचालित होते हैं। मन्दिरके बाहर जिस प्रकार शिल्पनैपुण्यका परिचय है, भीतर भी उसी प्रकार नाना पौराणिक चित्र अंकित है। इन्हीं सब कारणोंसे इन मन्दिरों द्वारा प्रत्नतत्त्वविदोंको खासी मदद पहुंचाती है।

इस तीर्थमें जो सब प्रधान प्रधान जैन मन्दिर हैं, नीचे उनके नाम दिये जाते हैं,—

१ श्रीआदीश्वर, भगवान् या श्रीमूलनायक आदीश्वर, इस मन्दिरमें २७४ प्रतिमूर्त्ति है, रङ्ग-मण्डप और गम्भीरा प्रतिष्ठित हैं। २ स्वयम्भवनाथजी, ३ श्रीपद्मप्रभुजी, ४ श्रीशान्तिनाथजी। श्रीवासुपूज्य, ६ श्रीमहावीरजी, ७ श्रीआदिनाथ, ८ श्रीधर्मनाथजी, ९ श्रीअभिनन्दजी, १० नेमिनाथजी, ११ श्रीपार्श्वनाथजी, १२ श्रीअजितनाथजी, १३ श्रीसुमतिनाथजी, १४ श्रीचन्द्र-प्रभुजी, १५ श्रीपुण्डरीकजी या पुण्डरीकनाथ, १६ श्रीऋषभदेव, १७ श्रीसमेतशिखरजी और १८ श्री-विमलनाथजी।

इनके सिवा और भी विभिन्न आदिनाथ, श्रीनन्दी-श्वर, द्वीप, महावीर स्वामी, शीतलनाथजी, सुपार्श्वनाथ-जी आदिको ले कर यहां कुल करीब ५१३ छोटे बड़े मन्दिर हैं। मन्दिर-प्राचीरमें भी छोटे छोटे घरमें, कुलुङ्गी-में, भित्तिमें और गोकलमें अनेक मूर्त्ति और तीर्थङ्करोंके पादचिह्न स्थापित हैं। अधिक हो जानेके भयसे सबों-का विवरण नहीं दिया गया।

शत्रुता (सं० स्त्री०) शत्रुका भाव या धर्म, बैर भाव, दुश्मनी।

शत्रुतापन (सं० त्रि०) १ शत्रुन्तप, शत्रुका ताप कारी। (पु०) २ सह्याद्रिवर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० ३३।२८) ३ एक दैत्यका नाम। कहते हैं, कि यह रोग फैलाता है।

शत्रुतूर्य (सं० त्रि०) शत्रुतारण, शत्रुको त्राण करने वाला। (ऋक् ६।२२।१०)

शत्रुत्व (सं० क्ली०) शत्रुता, शत्रुका भाव या धर्म। (ऋक् ८।४५।५)

शत्रुदमन (सं० त्रि०) १ शत्रुविमर्द्दन, दुश्मनोंको दमन करनेवाला। (पु०) २ दशरथके पुत्र शत्रुघ्नका एक नाम।

शत्रुद्रुम (सं० पु०) अम्लवेतस, अमलबेंत।

शत्रुनिकाय (सं० पु०) शत्रुसङ्घ, विपक्षका दल।

शत्रुनिवर्हण (सं० क्ली०) शत्रुताड़न, शत्रुका नाश।

शत्रुनिलय (सं० पु०) शत्रुकी वासभूमि।

शत्रुन्तप (सं० त्रि०) शत्रुं तपति तापयति वा तप-खच्, ततो मुम् (संज्ञायां भृतॄवृजीति। पा ३।२।४६) शत्रु-जयकारी, दुश्मनको जीतनेवाला।

शत्रुन्दम (सं० त्रि०) १ शत्रुदमनकारी, शत्रुविमर्दी। (पु०) २ शिव, महादेव।

शत्रुपक्ष (सं० पु०) विपक्ष।

शत्रुबाधक (सं० त्रि०) शत्रुपीड़नकारी, दुश्मनको पीड़ा देनेवाला।

शत्रुभङ्ग (सं० पु०) मूंज नामक तृण। (वैद्यकनिघ०)

शत्रुभट (सं० पु०) असुरविशेष। (कथासरित्सा० ४७।२०)

शत्रुभूमिज (सं० पु०) नीलाञ्जन, आंखोंमें लगानेका सुरमा। (वैद्यकनिघ०)

शत्रुमर्द्दन (सं० पु०) शत्रुं मृद्नातीति मृद ल्यु। १ शत्रुघ्न। २ कुवलयाश्वका पुत्र। (त्रि०) ३ शत्रुहन्ता, शत्रुओंका नाश करनेवाला। (कथासरित्सा० ४२।१२५)

शत्रुमिलन (सं० क्ली०) शत्रु वा विपक्षके साथ सद्भावस्थापन।

शत्रुलाव (सं० त्रि०) शत्रुच्छेदन करनेवाला, शत्रुको मारनेवाला।

शत्रुवत् (सं० त्रि०) १ शत्रुसदृश। (अव्य०) २ शत्रुतुल्य, शत्रुके समान।

शत्रुवल (सं० त्रि०) शत्रुर्विद्यतेऽस्य शत्रु-वलच्। (अन्येभ्योऽपि दृश्यते। पा ५।२।११२ वार्त्तिक) १ जिसका शत्रु विद्यमान हो। (क्ली०) शत्रो र्बलम्। २ शत्रुका सैन्य।

शत्रुविग्रह (सं० पु०) शत्रुतापूर्वक युद्ध, शत्रुभावसे आक्रमण।

शत्रुविनाशन (सं० पु०) शिव, महादेव।

शत्रुसात् (सं० त्रि०) १ शत्रुरूपमें परिणत। २ विपक्षसात्, विपक्षका हस्तगत। (महाभारत)

शत्रुसाल (हिं० वि०) शत्रुके हृदयमें शूल उत्पन्न करनेवाला।

शत्रुसाह (सं० त्रि०) शत्रुका विक्रमसहनशील या सहाकारी।

शत्रुह (सं० त्रि०) शत्रुं वध्यात् शत्रु-हन-ड। (आशिषि हनः। पा ३।२।४९) जो शत्रुवध करे या शत्रुवध करनेके उपयुक्त हो इस प्रकार आशीर्वाद देना। (अथर्व १।२९।५)

शत्रुहत्या (सं० स्त्री०) शत्रु-हन-क्यप्। शत्रुवध, शत्रुका हनन या नाश करना।

शत्रुहन् (सं० त्रि०) १ शत्रुहन्ता, शत्रुओंका नाश करनेवाला। (ऋक् १०।१५६।३) (पु०) २ श्वफल्कके एक पुत्रका नाम। ३ दशरथके पुत्र शत्रुघ्नका एक नाम।

शत्रुहन्तृ (सं० त्रि०) शत्रु-हन-तृच्। १ शत्रुहननकारी, शत्रुका नाश करनेवाला। (पु०) २ शम्बरके एक मन्त्रीका नाम। (हरिवंश)

शत्रूपजाप (सं० पु०) शत्रुका कुपरामर्श।

शत्वरी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात। (त्रिकाण्डशेष)

शद (सं० पु०) शद-अच्। १ फल मूलादि। २ कर, लगान। ३ तरकारी।

शदक (सं० पु०) वह अनाज जिसकी भूसी न निकाली गई हो।

शदीद (अ० वि०) बहुत ज्यादह, जोरका, भारी।

शदेवी (सं० स्त्री०) सहदेवा देखो।

शद्रि (सं० पु०) शीयते इति शद (अदि शदि भूशुभिभ्यः क्रिन्। उण ४।६५) इति क्रिन्। १ मेघ, बादल। २ विष्णु। ३ हस्ती, हाथी। (स्त्री०) ४ विद्युत, बिजली। ५ खण्ड, टुकड़ा।

शद्रु (सं० त्रि०) शद-शाते (दाधेट् सि शद सदोरुः। पा ३।२।१५९) इति रु। १ पतनकर्त्ता, गिरानेवाला। (पु०) २ विष्णु। ३ गण्डा।

शद्रुला (सं० स्त्री०) नदीभेद। (शत्रुञ्जयमाहात्म्य ११५५)

शन (सं० पु०) १ शान्ति। २ चुप्पी, खामोशी। ३ शण देखो।

शनक (सं० पु०) शम्बरके एक पुत्रका नाम।

शकावलि (सं० स्त्री०) गजपिप्पली, गजपीपल।

शनकैस् (सं० अव्य०) शनैस्-स्वार्थे कन्। शनैः, थोड़ा थोड़ा, क्रम क्रमसे।

शनपर्णी (सं० स्त्री०) शणस्येव पर्णान्यस्याः ङीष्, पृषोदरादित्वात् णत्व न। कटुकी नामकी ओषधि।

शनपुष्पी (सं० स्त्री०) वन-सनई।

शनहुली (सं० स्त्री०) शनपुष्पी देखो।

शनि (सं० पु०) रवि आदि ग्रहके अन्तर्गत सप्तमग्रह। संस्कृत पर्याय—सौरि, शनैश्चर, नीलवासस, मन्द, छायात्मज, पातङ्गि, ग्रहनायक, छायासुत, भास्करि, नीलाम्बर, आर, क्रोड़, वक्र, कोल, सप्तांशु, पंगु, काल

सूर्यपुत्र, असित । इसका वर्ण कृष्ण है । ये पश्चिमदिग्वली, नपुंसक, अन्त्यजजाति, तमोगुणयुक्त, कषायरसाधिपति और तत्प्रिय, मकर और कुम्भराशिके अधिपति, नीलकान्तमणि और सौराष्ट्रदेशके अधिपति, कश्यपमुनिके पुत्र, शूद्रवर्ण, सूर्दमुख और चार अंगुल परिमाणके हैं। इनका वस्त्र कृष्ण और वाहन गृध्र है। ये सूर्यपुत्र, चतुर्भुज हैं, चारों हाथोंमें भल्ल, वाण, शूल और धनु ये चारो शोभित हैं। इसके अधिष्ठात्री देवता यम और प्रत्यधिदेवता प्रजापति हैं।

(ग्रहयागतत्त्व और बृहज्जातक)

पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें शनिग्रहकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—मरीचिसे कश्यपने जन्मग्रहण किया। कश्यपके पुत्र विभावसु हुए। त्वष्टृ प्रजापतिकी संज्ञा नाम्नी कन्याके साथ विभावसुका विवाह हुआ। संज्ञा सूर्यग्रहमें जा कर उनका तेज सहन न कर सकी, इस कारण उसने आत्मसदृशी मायामयी छायाको निर्माण किया तथा उससे कहा, कि तुम निःशङ्कचित्तसे यहां रहो और मैं अपने पिताके घर जाती हूं। इतना कह कर संज्ञा पिताके घर चली गई। सूर्यसे छायाके सावर्णि मनु और शनि नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। (पद्मपु० स्वर्गख० ११ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें शनिकी क्रूर दृष्टि होनेका कारण इस प्रकार लिखा है देव गणपतिके जन्म लेने पर एक दिन शनि, विष्णु आदि देवगण गणेशको देखने गये। शनि जब दरवाजे पर पहुंचे, तब उन्होंने द्वारपालको दरवाजा खोल देने कहा। द्वारपालने भगवती दुर्गाके आदेशसे दरवाजा खोल दिया और शनिने भीतर घुस कर भगवतीको प्रणाम किया। इस पर पार्वतीने उनसे कहा, 'शनि! तुम्हारा मुख झुका क्यों है, उठता क्यों नहीं? तुम इस वालकको तथा मुझे क्यों नहीं देखते?' शनिने कहा, 'मातः! सभी अपने अपने कर्मवशतः अपना अपना फल भोग करते हैं, मैं भी अपने किये हुए कर्मका फल भोगता हूं। मेरा मुख झुका क्यों है, इसका कारण अपनी मातासे तो नहीं कहता। पर आपसे कहता हूं। मैं बचपनसे ही कृष्णभक्त था तथा सर्वदा तपोनिरत और ध्यानस्थ रहा करता था। चित्ररथकी कन्याके साथ मेरा विवाह हुआ। पत्नी भी पतिव्रता और तपोनिरता थीं। एक दिन मेरी स्त्री ऋतुस्नान कर मेरे पास आई और अपना मनोभाव प्रकट किया। उस समय मैं वाह्यज्ञानशून्य हो भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न था। इस पर अपनी ऋतु[illegible]न हुई देख उसने मुझे शाप दिया कि, तुमने मुझे नहीं देखा और न ऋतुकी रक्षा ही की, इस कारण तुम जिसकी ओर दृष्टि डालोगे, वही विनष्ट हो जायेगा। इसके बाद मैंने ध्यानसे विरत हो कर उसे प्रसन्न किया, पर वह शाप मोचन करनेमें समर्थ न हुई। यही कारण है, कि मैं अपने चक्षुसे कोई वस्तु नहीं देखता तथा तभीसे प्राणिहिंसाभयसे मैं अपना मुख झुकाये रखता हूं।'

पार्वतीने यह सुन कर भी कौतुकवशतः पुत्रको देखनेके लिये कहा। शनिने दुःखित चित्तसे वालक गणेशको देखा और उसी समय गणेशका मस्तक छिन्न हो गया। पुत्रको मस्तकहीन देख पार्वतीने भी शनिको शाप दिया। गणेश देखो।

इस प्रकार शनि पत्नीके शापसे खरदृष्टिको प्राप्त तथा पार्वतीके शापसे खञ्ज हुए थे।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणेशख० १२ १३ अ०)

शनिग्रहके सम्बन्धमें हमारे देशमें जैसा पौराणिक आख्यान है, यूरोपीय साहित्यमें भी शनिके सम्बन्धमें वैसी ही कथा देखनेमें आती है। इटालीयगण शनिको सातरण (Saturn) देवता कह उनका मान्य करते थे। प्राचीन और आधुनिक रोमक इस Saturn वा शनिको ग्रीस देशीय पौराणिक देवता क्रोणास (Cronus) कहते हैं। ग्रीसदेशीय पौराणिक कहानी पढ़नेसे जाना जाता है, कि आकाशके औरस और पृथ्वीके गर्भसे अनेक संतानोंने जन्मग्रहण किया था। ग्रीस भाषामें आकाशको उरनस (Uranus) और पृथिवीको जिआ (Gaea) कहते हैं। हमारे वेदमें भी आकाश आदिको देवता ही कहा है। जो हो, आकाशके औरस और पृथ्वीके गर्भसे जो सब सन्तान उत्पन्न हुई थीं वे साधारणतः टीटान (Titan) कहलाती थीं। क्रोणस वा शनिग्रह इन टिटानोंके सबसे

छोटे भाई हैं। टिटानोंको छोड़ आकाश और पृथ्वीके साइक्लप्स् (Cyclops) तथा शतहस्त (Hundr d Handers) नामक और भी सन्तान थीं। इन साइक्लप्स् और शतहस्तोंको जब आकाशने अत्यन्त विरक्तिजनक समझा, तब उन्हें फिरसे पृथ्वीके गर्भमें प्रविष्ट करा दिया। आकाशके इस कार्यसे पृथ्वी बड़ी दुःखित और क्रोधित हुई। उसने अपने पुत्रोंको आह्वान किया और कहा, कि यदि तुम लोग मेरे पुत्र हो, तो इस कार्यका प्रतिशोध अपने पितासे लेना होगा। माताका यह वचन सुन कर क्रोनस् या शनिको छोड़ और किसी भी पुत्रने पिताके विरुद्ध युद्ध करनेका साहस न किया। क्रोनस् या शनिग्रहने एक दिन एक हँसियेसे अपने पिता आकाशका अङ्ग काट डाला। उस समय आकाशके शरीरसे जो रक्तपात हुआ था, उससे क्रोधित दैत्यों और असुरोंकी उत्पत्ति हुई। इस समय क्रोनस् या शनिग्रह पिताके प्रासादमें रह कर पितृराज्यका शासन करने लगे। शनिग्रहने अपनी बहन रिआ (Rhea) देवीसे विवाह किया था। क्रोनसको अपने मातापिताने कह रखा था, कि क्रोनस अपने किसी पुत्र द्वारा मारा जायेगा। कंशराजको जिस प्रकार आकाशवाणी द्वारा मालूम हुआ था, कि वह अपने भांजेसे मारा जायेगा, क्रोनस भी उसी प्रकार पितामाताके मुखसे दैववाणी सुन डर गये थे।

उस समयसे उसके जो पुत्र जन्म लेता था, उसे वे खा डालते थे। इस प्रकार क्रोनसकी पांच सन्तान हुई थी, पांचोंको उन्होंने एक एक कर मार डाला था। इन सब सन्तानोंके नाम थे—हेष्टिया, डिमिटर, हेरा, हेडस् और पसिडन। इस प्रकार पांचों सन्तानोंको निहत होते देख रिआदेवीके दुःखकी अवधि न रही। उसने समझा कि इससे गर्भ न रहे वह बल्कि अच्छा पर सन्तानके जन्म लेने पर उसकी अकालमृत्यु होना अच्छा नहीं और यह शोक वह बरदास्त नहीं कर सकती। किन्तु कालधर्मसे उसके फिर गर्भ रह गया और यथा—समय उसने एक पुत्र प्रसव किया। उस सन्तानका नाम जियस (Zeus) रखा गया। इस बार स्नेहमयी माताने पुत्रको छिपा रखा और पुत्रके बदलेमें एक पत्थरको रक्ताक्त वस्त्रसे लपेट कर क्रोनसके निकट समर्पण किया। क्रोनस् पुत्रके भ्रमसे पत्थरको ही निगल गये। इधर क्रीटद्वीपमें जियस छिपा कर रखा गया था। जियस् क्रमशः बड़ा हुआ। एक दिन जियसने अपने पिताको वमनकारक एक औषध खानेको दिया। उस औषधके सेवनसे क्रोनसको भयानक वमि हुई। पहले ही वमिके साथ साथ पत्थरका टुकड़ा निकल आया। इसके बाद जियसके सभी भाई भी निकले। यह पत्थर डेल्फीनगरमें रखा गया था। प्राचीन ग्रीकगण प्रति दिन तेलसे इसका गात्र अभिषिक्त करते थे।

कालक्रमसे जियस् और उसके भाइयोंने मिल कर अपने पिताके विरुद्ध युद्ध ठान दिया। दश वर्ष भीषण युद्धके बाद क्रोनस् तरतरस नामक स्थानमें फेंक दिये गये। कोई कोई कहते हैं, कि Island of the Blest नामक स्थानमें रखा गया था। वहां ये युद्धमें पराजित और निहत वीरोंके आत्माओंके ऊपर कर्तृत्व और विचार करते थे। ग्रीस देशकी प्राचीन कहानी पढ़नेसे मालूम पड़ता है, कि क्रोनस जिस समय राज्यशासन करते थे, उस समय देशकी अवस्था सुधर गई थी। उनके शासनाधीन लोग देवताकी तरह स्वाधीनता भोग करते थे। उन्हें किसी प्रकारका दुःखभोग करना नहीं होता था। जीविकानिर्वाहके लिये उन्हें परिश्रम नहीं करना पड़ता था। बुढ़ापेमें वे कमजोर भी नहीं होते थे। विना जोते जमीनमें फसल होती थी। ग्रीकदेशमें आज भी क्रोनसकी उपासनाकी प्रथा कुछ कुछ देखनेमें आती है। पसनियसने लिखा है कि आथेन्समें एकपालिस पर्वतके पाददेशमें आज भी क्रोनस या शनिग्रहका एक मन्दिर विद्यमान है। यहां प्रति वर्ष उत्सव होता है। अलिम्पियामें एक पर्वत क्रोनस पर्वत कहलाता है। प्रतिवर्ष यहां शनिग्रहके नाम पर वार्षिक उत्सव होता है।

क्रोनस कालदेवता माने जाते हैं। यह धारणा किस प्रकार ग्रीसवासियोंमें उत्पन्न हुई, इस सम्बन्धमें एक आलोचना देखी जाती है। ग्रीक-पण्डित कारटियसका कहना है, कि क्रोनसको कालदेवता माननेका

कारण यह है, कि क्रोणसको जनसाधारण Chronus समझते हैं। पीछेका लिखा क्रोणस शब्द क्रा धातुसे निकला है। क्रा धातुका अर्थ सम्पन्न करना है। क्रोणस एक श्रेणीकी असभ्य जातिके लोगोंके देवता हैं। इस असभ्य जाति प्राचीन ग्रीकों द्वारा परास्त हुई थी। कार्टियसका कहना है, कि क्रोणसके पुत्र-भक्षणकी कहानीका भाव वुसमेन, काफेर, वासतु, गिणियावासी और स्कुइमो आदि लोगोंमें प्रचलित है।

सातर्नके सम्बन्धमें इटलीमें और भी एक प्रकारका पौराणिक वृत्तान्त सुना जाता है। सातर्न इटलियोंके पूज्य देवता हैं। इनकी स्त्रीका नाम ओप्स है। रोम नगरकी सृष्टिके वहुत पहले इस देवताकी कहानी प्रचलित है। ये कृषिकार्यके देवता हैं। Serere धातुसे सातर्ण शब्दकी उत्पत्ति हुई है। इस धातुका अर्थ कृषि कार्य करना है। इस कहानीके अनुसार भी क्रोणस जियस या जुपिटर द्वारा भगाये जाने पर इटलीमें भ्रमण करने लगे। इटलीमें राजा हो कर इन्होंने राज्यशासन करना आरंभ कर दिया। इन्होंने अपने शासित भूखण्डलका Saturnia नाम रखा। इटलीके अन्यतम प्राचीन देवता सातर्णकी अभ्यर्थना कर उन्हें रोमदेशमें ले गये थे। इस देवताका नाम जेनस है। इस जेनस ने रोमदेशके कपिटल पर्वतके पाददेशमें सातर्नको प्रतिष्ठित किया। इसी पौराणिक वृत्तांतके अनुसार कपिटल पर्वत 'सातर्निपन' नामसे अभिहित होता आ रहा है। इस सातर्नियन पर्वतके पाददेशमें आज भी शनिमंदिरका भग्नावशेष दिखाई देता है। इस मंदिरमें उनकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। उनके दोनों पैर समूचा वर्ष पशमसे बाँध कर रखे जाते हैं। केवल वार्षिक उत्सव सतार्नेलियाके समय वह बंधन खोल दिया जाता है। प्राचीन कालमें सातर्नके निकट नरवलि दी जाती थी। किन्तु हारक्युलिजने इस जघन्य प्रथाको उठा दिया।

इटलीमें सातर्नके अनेक मन्दिर हैं। वहांके कितने शहर और पर्वत भी सातर्न कहलाते हैं। पूर्व कालमें इटलीमें एक तरहकी कविता रची जाती थी, वे सब कविताएं सातर्नियन भर्स कहलाती थीं। अन्यान्य देवताओंकी तरह सातर्न भी पृथिवीसे अन्तर्हित हुए थे। इंसिया सातर्नका चिह्नस्वरूप है। सातर्नकी स्त्रीका नाम ओप्स है। ओप्सका अर्थ प्राचुर्य है। ओप्स देवी पृथिवी मूर्त्ति है। शस्यश्यामला वसुन्धरा लक्ष्मीकी ही मूर्त्तिस्वरूपा है। सातर्नकी एक और स्त्री है जिसका नाम लुया है। यह लुया अलक्ष्मी विशेष है।

आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान पढ़नेसे जाना जाता है, कि समस्त सौर जगत्में सिर्फ एक जुपिटर (वृहस्पति) को छोड़ शनिग्रह ही सबसे बड़े हैं। अन्यान्य सभी ग्रहोंके एकत्र करनेसे उनका परिमाण जितना होता है, शनिग्रह उस परिमाणसे तिगुने बड़े हैं, अन्यान्य ग्रहोंका सूर्यसे दूरत्व निर्णय करनेमें शनिग्रहका स्थान छठा आया है। प्राचीन ज्योतिर्विदोंकी धारणा थी, कि शनिग्रह ही सूर्यसे अधिक दूर हैं। फलतः सूर्यसे ८७२१३७००० मील दूर रह कर यह ग्रह सूर्यका प्रदक्षिण करता है। जब सूर्यसे यह ग्रह अधिक दूरमें रहता है, तब उसकी दूरताका परिमाण ९२०९७३००० मील और उससे सबसे कम दूरताका परिमाण ८१३३१००० मील है। इसकी कक्षाकी उत्केन्द्रता (Eccentricity of orbit) ०'०५५९९६ तथा धरातलके क्रान्तिवृत्तकी ओर इसका पातकोण (inclination to the plane of celiptic) २°२९´ २८´´ है। शनिग्रह उनतीस वर्ष एक सौ सड़सठ दिनमें अपनी कक्षका परिभ्रमण करता है। उसका युति-संक्रान्त (Synodical revolution) परिभ्रमण काल ३९८००७० दिन है। इसके व्यासका परिमाण ७०००० मील तथा विषुव प्रदेशस्थ व्यासका परिमाण ७५३०० मील है। इसके मेरुदेशस्थ व्यासका परिमाण ६६५०० मील है। शनिग्रह पृथिवीसे सात गुना बड़ा है, तथा वजनमें नब्बे गुना भारी है। पृथिवीकी अपेक्षा शनिग्रहका घनत्व कम है अर्थात् पृथिवीका घनत्व एक सौ मान लेनेसे शनिग्रहका घनत्व १३से ज्यादा नहीं। शनिग्रह साढ़े दश घण्टेमें अपने कक्षमें (Axis) परिभ्रमण करता है।

दूरवीक्षणकी सहायतासे देखा गया है, कि शनिकक्ष ज्योतिर्मय वलय (Ring) द्वारा परिवेष्टित है। गालिलियोने सबसे पहले शनिग्रहका यह वलय देखा था।

उन्होंने यह भी देखा था, कि यह ग्रह तीन भागोंमें विभक्त है अर्थात् दो वलयके मध्य एक पिण्डवत् पदार्थ सबसे पहले उनके दृष्टिगोचर हुआ। उन्होंने किसी किसी समय इस वलयवत् पदार्थको अत्यन्त वृहदाकार धारण करते और कभी बिलकुल गायब होते देखा था। उस समय अन्यान्य ग्रहोंके साथ आकाशमें शनिग्रहकी कोई पृथकता दिखाई नहीं देती थी। हाइगेन्स्ने (Huyghens) सबसे पहले इस बातको सूचित किया, कि शनिग्रहके विषुव प्रदेशमें एक ज्योतिर्मय वलयवत् पदार्थ स्वतन्त्र भावसे विद्यमान है। यह पदार्थ शनिग्रहका सहचर होने पर भी उक्त ग्रहसे बहुत दूरमें अवस्थित है।

शनिग्रहके वलय पर सूर्यकिरण पड़नेसे वह चमक उठता है। सूर्य और पृथ्वी जब दोनों उसके एक पार्श्वमें रहते हैं, तब ही यह दिखाई देता है। जब एक ओर सूर्य और दूसरी ओर पृथिवी तथा बीचमें शनिग्रह रहता है, तब यह वलय फिर दिखाई नहीं देता।

डबल्यु बन और जे बन इन दोनों भाइयोंने शनिग्रहके सम्बन्धमें यथेष्ट गवेषणा कर स्थिर किया है, कि यह वलय दो समकेन्द्रिक (Concentric) निम्नभागके वलयसे बहुत बड़ा है। कासिनी (Cassini) का कहना है, कि शनिग्रहका निर्माणोपादान जैसा घना है, उसके वलयका उपादान उससे कम घना नहीं है। शनिग्रहकी अपेक्षा उसके वलयकी ज्योति अधिक उज्ज्वल है। ऊपरके वलयसे नीचेका वलय ही बहुत साफ है। ज्योतिर्विदोंने अच्छे दूरवीक्षणकी सहायतासे इस वलयके ऊपर बहुत-सी समकेन्द्रकी काली रेखाएं देखी हैं।

हारसेलका कथन है, कि शनिका वलय अपने प्लेनमें (Plane) १० घंटा ३२ मिनिट १५ सेकेण्डमें परिक्रमण करता है। लापलस्का भी यही सिद्धान्त है। १८५० ई०के पहले शनिके वलयके सम्बन्धमें ज्योतिर्विदोंके ग्रन्थादिमें कोई भी उल्लेख दिखाई नहीं देता। परन्तु एक ज्योतिर्विद्ने इसका उल्लेख किया था। उनका नाम डाक्टर गल (Gall) था। ये बार्लिनके रहनेवाले थे। इन्होंने १८८८ ई०में शनिग्रहका वलय यन्त्रकी सहायतासे देखा था।

१८५० ई०में युनाइटेड् स्टेटस् के कैमब्रिज विश्वविद्यालयके प्राफेसर उण्ड और मिः डज इन दोनोंने ही शनिग्रहका वलय देखा था। अच्छे दूरवीक्षणकी सहायतासे अभ्यस्त नेत्रोंको यह वलय दिखाई देना अभी उतना कष्टकर नहीं है। मिः डजने इस वलयको साफ तौरसे प्रत्यक्ष कर इसका विशद विवरण लिखा है।

मन्द्राज मानमन्दिरसे कप्तान जेकबने यह वलय देखा था। एम ओटो ष्ट्रुभ (M otto Stuve)-का कहना है, कि शनिग्रहका यह वलय तथा उत्पन्न नहीं हुआ है। यह वलय क्रमशः शनिग्रहके निकटवर्त्ती होता है और उसका घनत्व धीरे धीरे बढ़ता है।

आधुनिक वैज्ञानिक ज्योतिर्विदोंका कहना है, कि यह वलय और कुछ नहीं है, छोटे छोटे ग्रहोंकी समष्टि है। ये सब उपग्रह वाष्पके साथ संमिश्रित हैं। यह वलय असङ्गभावमें शनिग्रहके साथ परिभ्रमण करता है।

शनिग्रहके आठ उपग्रह (Satellites) हैं। सबोंके बहिःस्थ उपग्रहकी विस्तृति चालीस लाख मील है। यह हम लोगोंके चन्द्रसे भी कहीं बड़ा है। छठा उपग्रह, टिटान (Titan) मार्कुरीके समान है।

फल—ग्रहगण राशिविशेषमें रह कर विशेष विशेष फल देते हैं। शनिग्रहके फलविषयमें ऐसा लिखा है, कि शनि पापग्रह है, अतएव अशुभफल देनेवाला है, किन्तु राशि और स्थानविशेषमें शुभफल भी देता है। यहां तक, कि शनि और मङ्गल ये दो ग्रह स्थानविशेषमें रह कर राजयोगकारक भी होते हैं।

शनिका स्थान—शनि शुभस्थानमें रह कर राज्य, दास, दासी, वाहन और स्मरणशक्ति प्रदान करता है। किन्तु अशुभ स्थानमें रहनेसे वह अनिष्ट और विनाशकारक होता है। इसको संन्यासी, प्राचीन व्यक्ति, भृत्य और नीच मनुष्य माना जाता है।

शनिग्रह भारतवर्षस्थित सूरतदेशका अधिपति तथा पश्चिम दिग्बली है। मनुष्यके शरीरमें शनिका भाग अधिक होनेसे रूक्षकेश, कृश और दीर्घदेह, पीनलनासिका, अधर ओष्ठ स्थूल, नेत्र छोटे और कान बड़े होते हैं।

स्वभाव—जन्मके समय शनिके अनुकूल रहनेसे जातक गभीर बुद्धिशक्तिसम्पन्न, मितभाषी, धैर्यशाली,

परिश्रमी, सम्पत्ति उपार्जनमें यत्नवान्, क्लेशसहिष्णु और दूरदर्शी होता है।

शनिके त्रिगुण होनेसे मानव मलिन, हिंस्र, द्वेषी, लोभी, भीरु, नीचाशय, सन्दिग्ध, अपवित्र, अशुचि, नीचकर्मरत, मिथ्यावादी और विश्वासघातक होते हैं।

व्याधि—शनिके विगुण होनेसे बधिरता, पदविकलता, प्लीहा, पक्षाघात, शरीर कम्पन, उदरी, वात, वायुरोग, श्वासरोग और यक्ष्मरोग होता है।

कार्य—शनिग्रहके अनुकूल होनेसे मानव राजा, खनिके अधिपति, उर्णा और काष्ठव्यवसायी तथा कृषी होते हैं। शनिके प्रतिकूल होनेसे जातक भारवाहक, शकटचालक, कुम्भकार, भूमिखननकारी, भृत्य, पशुरक्षक, डोम और चण्डाल आदि नीच जाति होता है।

उष्ट्र, गर्दभ, उल्लूक, महिष, भेक, सर्प, कूर्म, गृध्र, वादुर आदि पक्षी शनिके प्रिय हैं।

विजत्रंद, शमी, ताल, खजूर, शाल, समस्त विपाक्त तरुलता तथा लौह, सीसक और इन्द्रनील रत्न शनिके अत्यन्त प्रिय हैं। शनिके विरुद्ध होनेसे लौह और सीसेका दान तथा धारण या इन्द्रनील मणि धारण करनेसे शुभ होता है।

शनिग्रह ढाई वर्ष तक एक एक राशिका भोग करता है, अतएव समस्त राशिचक्र भ्रमण करनेमें उसे ३० वर्ष लगता है। शनि जन्मराशिसे अवस्थान कर विशेष विशेष फल देता है।

गोचरफल—शनिके जन्मराशिमें रहनेसे दीर्घकालस्थायी श्लेष्मा, अथवा वायुजनित पीड़ा, कम्प, संक्रामक या त्र्याहिक ज्वर, पक्षाघात, उदरी, वात आदि रोग होनेकी सम्भावना, नाना प्रकारकी मनोवेदना, अर्थहानि, अपवाद, माता, पुत्र और कलत्रादिकी पीड़ा या वियोग जनित शोक होता है। द्वितीयमें मनःक्लेश और अर्थक्षति; तृतीयमें शत्रुनाश, क्षमता वृद्धि और सौभाग्यलाभ होता है। किन्तु शनि यदि इस स्थानमें नीचस्थ हो, तो उक्त फलका ह्रास होता है। चतुर्थमें बन्धुनाश, शत्रु वृद्धि, पिताको पीड़ा और स्थानभ्रंश; पञ्चममें सन्तानादिका अमङ्गल, बुद्धिनाश और विविध प्रकारका मानसिक क्लेश; षष्ठमें शत्रुनाश, आरोग्यलाभ, अर्थागम और कार्य सफल होता है। किन्तु नीचस्थ होनेसे इस फलका ह्रास होता है। सप्तममें स्त्रीकी पीड़ा या विनाश, विरोध, यात्रादिमें अमङ्गल और नाना प्रकारका अनिष्ट होता है। अष्टममें पीड़ाक्रान्त और विपदापन्न होना पड़ता है। नवममें वाणिज्यमें क्षति, मनःक्लेश तथा अर्थ और कार्यहानि होती है। दशममें प्राज्ञता, अर्थ और वाहनादि लाभ तथा द्वादशमें शोक, वधबन्धन, भय, ऋण और शत्रुवृद्धि होती है।

शनि जन्मके समय जिस राशिमें था, गोचरमें उसी राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे मानवको नाना प्रकारके विघ्नका सामना करना पड़ता है। मङ्गलका राशि भोगकाल थोड़ा है, किन्तु शनिका प्रायः ढाई वर्ष है तथा उसका फल भी दीर्घस्थायी है। अतएव गोचरफलका विचार करनेमें पहले यह देखना चाहिये, कि शनि जन्मके समय जिस राशिमें था, उस राशिमें अथवा उसके सप्तममें पहुंचा है वा नहीं? क्योंकि गोचरमें शुभ होने पर भी उक्त दो स्थानोंमें वह विशेष अशुभ फलप्रद होता है। जन्मकालसे प्रायः १५ वर्षमें शनि अपने सप्तममें उपस्थित होता है तथा ३० वर्षमें अपनी अधिष्ठित राशिमें लौटता है। अतएव कमसे कम १५ वर्षमें मानव अत्यन्त शारीरिक और मानसिक क्लेशमें निमग्न रहते हैं। उस समय उस ग्रहके जन्मकर्मादि पणाड़ीस्थ होनेसे उक्त फल अवश्य फलता है। इसके सिवा शनि जन्मकालीन रविभाग्य राशिमें अथवा उसके सप्तममें उपस्थित होनेसे जातकके पिताका अनिष्ट, शत्रुभय, बंधुनाश और मानहानि तथा रविके आयुर्दाता होनेसे प्राणनाशका डर रहता है। शनिके जन्मलग्नमें आनेसे जातव्यक्ति और उसकी संतानादिको पीड़ा, धनलग्नमें अर्थात् लग्नसे दशम स्थानमें उपस्थित होनेसे कार्यहानि, अपमान और नाना प्रकारका उद्वेग होता है।

बारहवीं राशिमें शनिके रहनेसे उक्त प्रकारका फल प्राप्त होता है। मेष राशिमें शनि रहनेसे व्यसन और परिश्रमकातर, कृतघ्न, निष्ठुर, निन्दित और निर्धन होता है।

वृषराशिमें शनि रहनेसे अर्थहीन, भृत्य, मिथ्याकर्म-

नियुक्त, वाक्यचोर, वृद्धा या कुत्सितस्त्रीरत, स्त्रियोंका भृत्य, निकृष्टस्थानवासी और दुष्टस्वभाव होता है।

मिथुनमें शनि रहनेसे बन्धनयुक्त, श्रमातुर, दाम्भिक, मन्त्रणानिपुण, सर्वदा पाठरत, उत्तमशिल्पी और वाक्यवीर; कर्कटमें शनि रहनेसे उत्तम भाग्ययुक्त, दरिद्र, बाल्यकालमें रोगपीड़ित, पण्डित, जननीहीन, अति मृदु, श्रमातुर, बन्धुयुक्त, मध्यावस्थामें नरपति तुल्य और भोगमें वर्ज्जित ; सिंहराशिमें रहनेसे लिपिपाठक और पुराणवेत्ता, निन्दिताचारयुक्त, दुःशील, स्त्रीविजित, चिन्ता और भ्रमणशील ; कन्याराशिमें रहनेसे षण्ढकी तरह आकृति, अतिशठ, परान्नभोजी, वेश्यासक्त, आलसी, अशुचि और परोपकारी ; तुलाराशिमें रहनेसे मानी, आलसी, विदेश भ्रमणमें रत, राजा, तपस्वी, स्वपक्षरक्षक, शिराल, बन्धुओंका श्रेष्ठ, साधु, कुलटा, नट और वैश्यस्त्रीरमणशील; वृश्चिकमें रहनेसे विद्वेष्टा, विषमस्वभाव, विष और अस्त्रवेत्ता, प्रचण्डकोपी, लोभी, दर्पयुक्त, परधन हरणमें पारग, नृशंसकर्मकारक, अनेक कष्टसहिष्णु, क्षय, व्यय और विविध व्याधियुक्त ; धनुमें रहनेसे व्यवहारज्ञ, विद्वान्, विख्यातपुत्र, स्वधर्मपरायण, सुशील, वृद्धावस्थामें श्रीभोगी, अतिशय सम्मानी, अल्पवाक्यभाषी, बहुसङ्गविशिष्ट और मृदु स्वभावसम्पन्न; मकर राशिमें रहनेसे परयोषित् और परक्षेत्रका अधिपति, शास्त्रज्ञ, शिल्पवेत्ता, सद्वंशोत्पन्न, विख्यात, प्रवासशील, सरलताविहीन और शौर्य्ययुक्त; कुम्भराशिमें रहनेसे मिथ्यावादी, सुमिष्टभाषी, स्त्री और व्यसनासक्त, धूर्त्त, वञ्चनाकुशल, कुमित्रयुक्त और सहजमें कार्य्यसिद्धि तथा मीनराशिमें रहनेसे यज्ञप्रिय, शिल्पविद्यासम्पन्न, स्वीयबंधु और सुहृदोंका प्रधान, शान्तस्वभाव, विनयी और धार्मिक होता है।

अष्टोत्तरीके मतसे शनिकी दशा दश वर्ष है। अनुराधा, ज्येष्ठा और मूला इन तीन नक्षत्रोंमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इसके प्रति नक्षत्रमें ३ वर्ष ४ मास तथा नक्षत्रके प्रतिपादमें १० मास और प्रति दण्डमें २० दिन तथा प्रति पलमें २० दण्ड होता है।

शनिकी स्थूलदशा दश वर्ष होने पर भी प्रत्येक ग्रहको अन्तर्द्दशा और प्रत्यन्तर्द्दशा विभाग है। साधारणतः दश और अन्तर्द्दशानुसार फलविचार करना होता है। ग्रहोंके शुभ ग्रहमें अवस्थान आदि द्वारा दशाकालमें फलके शुभाशुभकी कल्पना करनी होती है।

शनिका निज अन्तर ०।११।३।२० दण्ड।
शनि वृहस्पति १।६।३।२० दण्ड।
शनि राहु १।१।१० दिन।
शनि शुक्र १।११।१० दिन।
शनि रवि ०।६।२० दिन।
शनि चन्द्र १।४।२० दिन।
शनि मङ्गल ०।८।२६।४० दण्ड।
शनि बुध १।६।२६।४० दण्ड।

विंशोत्तरीके मतसे शनिकी दशा १९ वर्ष है। पुष्या, अनुराधा और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें जन्म होनेसे शनिकी दशा होती है। इस दशाके नियमानुसार प्रत्येक नक्षत्रमें ही १९ वर्ष भोग होता है। परन्तु नक्षत्रका जितना दण्ड भोग हुआ है, दशा भी उतनी ही भुक्त हुई है, ऐसा जानना होगा। इस दशाकी भी पहलेकी तरह अन्तर्द्दशा और प्रत्यन्तर्द्दशा है, उसका विभाग इस प्रकार है—

निज शनि	३।०।३ दिन।
शनि बुध	२।८।९ दिन।
शनि केतु	१।१।९ दिन।
शनि शुक्र	३।२।० दिन।
शनि रवि	०।११।१२ दिन।
शनि चन्द्र	१।७।० दिन।
शनि मंगल	१।१।९ दिन।
शनि राहु	२।१०।६ दिन।
शनि वृहस्पति	२।६।१२ दिन।

विंशोत्तरीके मतसे उक्त रूपसे १९ वर्ष भोग होता है। विंशोत्तरीमतसे पराशरने विशेषरूपसे दशाफलका विचार किया है। विस्तार हो जानेके भयसे उसका यहां पर उल्लेख नहीं किया गया।

शनिग्रह जन्मकालमें शयनादि द्वादशभावके किस भावमें रहता है, उसे स्थिर करके पीछे फलनिर्णय करना आवश्यक है। ग्रहका स्फुट, भाव, बल और सन्धिका निर्णय करके भी फल स्थिर करना होता है। ग्रहगण

जन्मकालमें, गोचर आदिमें यदि विरुद्ध रहे, तो उसको शान्ति करना कर्त्तव्य है। शान्ति करनेसे वह ग्रह शुभ-फलदाता होता है।

ग्रहशान्तिके सम्बन्धमें गुल्म लतादिका मूल, धातु, रत्नधारण तथा दान, उस ग्रहके अधिष्ठात्री देवताकी पूजा, स्तव और कवचादि धारण उचित है। शनिग्रह-का दान—उड़द, तैल, इन्द्रनील, मणि अर्थात् पन्ना, कृष्णतिल, कुलथी, महिष अभावमें मूल्य, लौह ये सब द्रव्य सवस्त्र और दक्षिणाके साथ दान करने होते हैं।

शनिग्रहकी अधिष्ठात्री देवी दक्षिणाकाली है। अत एव कालीपूजा करनेसे भी शुभ होता है।

शनिग्रहका स्तव इस प्रकार है—

"नीलाञ्जनचयप्रख्यं रविसूनुः महाग्रहम्।
छायाया गर्भसम्भूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरम्॥"

शनिचक्र (सं० क्ली०) शनेश्चक्रं। मानवका शुभाशुभ जाननेके लिये चक्रभेद। इस चक्र द्वारा शनिभोग्य नक्षत्रसे आरम्भ कर २७ नक्षत्र विन्यासपूर्वक शुभाशुभ फल निर्णय करना होता है। ज्योतिस्तत्त्वमें इस चक्रका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले एक नराकार पुरुष अङ्कित करना होगा। पीछे शनि जिस नक्षत्रमें रहते हैं, वह नक्षत्र उसीके मुख पर विन्यास करे। बादमें उस नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्र उक्त स्थलमें लिखने होते हैं। इस पुरुषके दाहिने हाथमें ४, दोनों पैरमें ६, हृदयमें ५, बायें हाथमें ४, मस्तक पर ३, दोनों नेत्रमें २ और गुह्यमें २, इस प्रकार सभी नक्षत्र रख कर फलनिरूपण करने होते हैं। मुखमें हानि, दाहिने हाथमें जय, पैरमें भ्रम, हृदयमें लक्ष्मीलाभ, बायें हाथमें भय, मस्तक पर राज्य, नेत्रमें सुख और गुह्यमें मरण होता है। जिसका जन्मनक्षत्र उन सब दुःस्थानोंमें रहता है, उनका अमङ्गल और शुभस्थानमें रहनेसे शुभ होता है। जिस समय शनि ४, ८, १२ नक्षत्रमें रह कर अमङ्गलप्रद होता है, उस समय वपुः, हृदय, शीर्ष, दक्षनेत्रस्थ शनि सुखदायक होते हैं। जिस समय शनि तृतीय, एकादश और षष्ठमें रहते हैं, उस समय सुखदायक तथा गुह्य, वक्त्र और वामचरणस्थ होनेसे अशुभजनक होते हैं। इस प्रकार शनि अशुभ होनेसे इसकी शान्तिका विधान लिखा है। यह चक्र कृष्ण द्रव्य द्वारा लिख कर तेलमें डाल पीछे जमीन पर रख दे। बादमें कृष्ण पुष्प द्वारा इसको पूजा करे। इस प्रकार पूजा करनेसे शनि शुभप्रद होते हैं। (ज्योतिस्तत्त्व)

शनिज (सं० पु०) काली मिर्च।

शनिप्रदोष (सं० पु०) एक प्रकारका प्रदोष या पर्व। यह शनिवारके दिन किसी मासके कृष्ण पक्षकी त्रयो-दशी पड़ने पर होता है। इस दिन व्रत रखा और शिवका पूजन किया जाता है।

शनिप्रसू (सं० स्त्री०) शनेः प्रसूर्ज्जननी। छाया, सूर्य-की पत्नी।

शनिप्रिय (सं० क्ली०) शनेः प्रियम्। नीलमणि, नीलम्।

शनिरुह (सं० पु०) महिष, भैंस।

शनिवार (सं० पु०) शनभोग्यः शनेर्वा वारः। वह वार जो रविवारसे पहले और शुक्रवारके बाद पड़ता है। सावन गणनामें उक्त है, कि रवि आदि सात ग्रह यथा क्रमसे जो जिस दिनके अधिपति होंगे, वही उनके योग्य दिन तथा वही उनके वार होगा।

स्कन्दपुराणमें लिखा है, कि चैत्रमासकी शुक्लात्रयो-दशी तिथिमें शनिवार और शतभिषा नक्षत्रका योग होनेसे महावारुणी होती है। इस दिन गंगास्नान करनेसे सौ सूर्यग्रहणमें स्नान करनेका फल होता है।

कोष्ठीप्रदीपमें लिखा है, कि जो बालक शनिवारको जन्म लेगा, वह अतिशय कृश, हमेशा रोगी, अङ्गहीन, कुवेशधारी, मध्यधनी, कुलकीर्त्तिविहीन, तमोगुण-विशिष्ट तथा यावतीय लोगोंका क्लेशप्रद होगा।

"ज्योतिस्तत्त्वानुसारे शनिवारे यात्रादि निषिद्ध।
सन्त्यजेद्दिवसे यात्रां सूर्यारार्कीन्दुवक्रियाम्॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

शनिश्चर (सं० पु०) शनि देखो।

शनैः (सं० अव्य०) १ धीरे, अहिस्ता, हौले। (ऋक् ८।४५।११) (पु०) २ शनैश्चर, शनि।

शनैःप्रमेह (सं० पु०) एक प्रकारका प्रमेहरोग। इस प्रमेहमें रोगीको धीरे धीरे, थम कर और बहुत पतली धारमें थोड़ा थोड़ा पेशाब आता है।

शनैर्मेह (सं० पु०) शनैःप्रमेह देखो।

शनैर्मेही (सं० पु०) वह रोगी जिसे शनैःप्रमेहका रोग हो।

शनैश्चर (सं० पु०) शनैर्मन्दं मन्दं चरतीति चर गतौ पचाद्यच्। शनि। व्यासदेवके नवग्रहस्तोत्रमें लिखा है, कि सूर्यके औरस तथा छायाके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई।

"नीलाञ्जनचयप्रख्यं रविसुनुं महाग्रहम्।
छायाया गर्भसम्भूतं वन्दे भक्त्या शनैश्चरम्॥"
(व्यासस्तोत्र)

शन्त (सं० त्रि०) शं सुखं विद्यतेऽस्य शम्-त मत्वर्थे। (शंभा कं म्यां-व-यु-स्ति-तुत यसः। पा ५।२।१३८) सुखी।

शन्तनु (सं० त्रि०) शं मङ्गलात्मकस्तनुर्यस्य। १ श्रेयःपूर्ण देहविशिष्ट, सुन्दर शरीरवाला। (पु०) २ द्वापरयुगमें उत्पन्नराजभेद, भीष्मके पिता। ये प्रतीपके औरस और शैवराजनन्दिनी सुनन्दाके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। महाभारतमें लिखा है, इक्ष्वाकुवंशीय महाभिष नामक एक राजाने हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करके ब्रह्मलोकको पाया। एक दिन देवताओंसे समावृत ब्रह्माके समीप बहुत-से राजर्षि और राजा महाभिष खड़े थे। उसी समय सुधाधवलित वसन परिहिता गङ्गादेवी वहां पहुंची। हवा जोरोंसे बह रही थी जिससे गङ्गादेवी बेपर्द हो गईं। यह देख सबोंने लज्जावशतः शिर झुका लिया, किन्तु राजा महाभिष अशङ्कित चित्तसे उस ओर दृष्टिपात करते ही रहे। इस पर ब्रह्मा बड़े क्रुद्ध हुए और राजाको श्राप दिया कि 'तुम मर्त्यलोकमें जन्म लोगे।' इस प्रकार अभिशप्त महाभिषने प्रतीपके औरससे जन्म लेनेकी इच्छा प्रकट की।

जिस समय राजा महाभिष गङ्गाकी ओर टक लगाये रहे थे, उस समय गङ्गा भी अपनेको संभाल न सकी थीं। जब वे वहांसे चलीं, तब राहमें भी उनकी प्रकृति राजाकी ओरसे हटी न थी। इसी समय वसुओंके साथ उनकी भेंट हो गई। संध्योपासनानिरत वशिष्ठदेवने उन्हें नरयोनिमें जन्मलेनेका श्राप दिया था। वसुओंने गङ्गासे अनुरोध किया, कि आप मानवीरूपमें हम लोगोंको गर्भमें धारण कर उद्धार कीजिये। हम लोग सामान्य मानवोंके गर्भमें जन्म लेना नहीं चाहते। त्रिलोकख्यात प्रतीपपुत्र राजा शन्तनुके औरससे जन्म लेनेकी हमारी इच्छा है। गङ्गादेवीने उनकी प्रार्थनाके साथ अपनी वर्त्तमान प्रवृत्तिके परिणाम फलका सामञ्जस्य समझ कर उनके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया।

एक दिन जब राजा प्रतीप गङ्गाके किनारे बहुवर्षव्यापी जपतप कर रहे थे, तब अतिशय प्रलोभनीया दिव्यस्त्रीमूर्त्तिधारिणी सुमुखी गङ्गा जलसे निकली और तपोनिरत राजर्षिको भजनेके इच्छासे उनके शालस्तम्भ सदृश दक्षिण ऊरु पर बैठ गई। राजाने उनका अभिप्राय सुन कर अस्वीकार किया। इस पर गङ्गाने एकांत कामाभिलाषिणीको निराश लौटा देनेके सम्बन्धमें विविध भीति और नीति प्रदर्शन की। अन्तमें राजाने एक युक्ति निकाल कर कहा, 'तुमने जब स्वयं ही प्रणयिनीभोग्य वाम ऊरुका परित्याग कर कन्या स्नुषा आदि वात्सल्योपयुक्त पात्रियोंके स्थान दक्षिण ऊरुका अवलम्बन किया है। तब मैं तुम्हें स्नुषा कह कर ग्रहण कर सकता हूं; अतएव तुम मेरी स्नुषा हो।' गङ्गाने भी इसे स्वीकार कर लिया।

इस प्रस्तावके बाद कुरुकुलप्रदीप प्रतीपने स्त्रीके साथ पुत्रप्राप्तिकी कामनासे तपस्या आरम्भ कर दी। पीछे दम्पतीकी वृद्धावस्थामें उसी शापभ्रष्ट महात्मा महाभिषने जन्मग्रहण किया। मङ्गलमय देह होनेके कारण किसीने इनका नाम शन्तनु रखा और जराग्रस्तको भी स्पर्श करनेसे यह शन्तनु (स्थिरतनु या स्थिरयौवन) लाभ करता था, इस प्रवादके अनुसार किसी किसीने शान्तनु नाम रखा। क्रमशः जब शन्तनु बड़े हुए, तब एक दिन वृद्ध पिताने उनसे कहा, 'वत्स! यदि कोई वरवर्णिनी रूपवती दिव्ययुवती पुत्रकी कामनासे निर्जन स्थानमें तुम्हारे पास आवे, तो उससे कोई परिचय दिन पूछ कर मेरे आदेशानुसार तुम उसकी मनःकामना पूर्ण करना।

इसके बाद प्रतीपने शान्तनुको राज्यमें अभिषिक्त कर वानप्रस्थका अवलम्बन किया। राजा शन्तनु एक

दिन शिकार खेलते खेलते गङ्गाके किनारे आये। इस समय इन्होंने साक्षात् लक्ष्मीकी तरह कांतिमती दिव्याभरणभूषिता परम रमणीया एक रमणी मूर्त्ति देख स्तम्भित और विस्मित हो कर उनसे कहा, 'शोभने! तुम देवी दानवी अप्सरी किन्नरी पन्नगी मानवी कोई भी क्यों न हो मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं। अत एव मेरा अभिलाष पूर्ण कर मुझे वाधित करो।'

राजाके इस प्रकार आग्रहान्वित मनोमोहन मृदु मधुर मनोहर वचन सुन कर दिव्यमूर्त्तिधारिणी गङ्गा वसुओं-का विवरण स्मरण करती हुई मुस्कुराई और बड़ी प्रसन्न हो कर उन्होंने राजासे कहा, 'महीपाल! मैं तुम्हारी महिषी और वशवर्त्तिनी हूंगी, किन्तु आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी, वह यह कि यदि मैं किसी प्रकारका शुभ या अशुभ कार्य्य करूं, तो आप मुझे रोक नहीं सकते और न कोई कटु वचन ही कह सकते हैं। यदि कहेंगे, तो उसी समय मैं आपको छोड़ चली जाऊंगी।' राजाने यह प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली। इस प्रकार दोनों चैनसे दिन काटने लगे। दोनोंकी प्रीति दिनो दिन बढ़ने लगी। नवपरिणीता भार्याके औदार्य्य गुण और निर्जन परिचर्यासे राजा परितुष्ट रहा करते थे।

इस प्रकार वर्षों सुखसम्भोगके बाद उन्हें आठ सन्तान उत्पन्न हुई। वसुओंके साथ नियम था, कि जन्म लेते ही जलमें फेंक देना होगा। तदनुसार एकसे सात सन्तान तक जलमें फेंक कर गङ्गा देवीने अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका पालन किया। गङ्गाके इस प्रकार बार बार कठोर व्यवहारसे राजा इतने दुःखित हुए थे, कि आठवें पुत्रके जन्म लेते ही वे अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग किये विना रह न सके। ज्यों ही गङ्गादेवी इस आठवें पुत्रको भी जलमें फेंकने जा रही थी, त्यों ही राजाने उन्हें रोका और कहा, 'तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? किस लिये पुत्रवध करती हो?' राजाकी इस उक्ति पर गङ्गा निरस्त हो बोली, 'हे पुत्रकाम! मैं तुम्हारे इस पुत्रको बध न करूंगी। किन्तु तुमने नियम भंग किया, इसलिये अब मैं तुम्हारे पास नहीं रह सकती। मैं महर्षिगणनिषेविता जह्नुतनया गङ्गा हूं। देवकार्य्यकी सिद्धिके लिये मैंने तुम्हारे साथ सहवास किया था। तुम्हारे पुत्र महातेजस्वी अष्टवसु हैं। वशिष्ठके शापसे वे मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए हैं। इस मर्त्यलोकमें तुम्हारे सिवा और कोई भी जनक और मेरे सिवा जननी होनेको उपयुक्त नहीं हैं। अभी तुमने अष्टवसुको जन्म दे कर अक्षयलोक अधिकार किया। वसुओंके साथ मेरी शर्त्त थी, कि उनके जन्मसे उन्हें मुक्त करूंगी। इसी कारण प्रसवके बादमें उन्हें जलमें फेंक आती थी। किन्तु यह पुत्र तुम्हारे लिये ही मैंने वसुओंसे मांगा था। यह कुमार प्रत्येक वसुके अष्टमांसके मेलसे उत्पन्न हुआ है। अभी तुम इसका पालनपोषण करो। तुम्हारा कल्याण हो, मैं चलती हूं।" इतना कह कर वह उस कुमारको ले यथाभिलषित स्थानमें अन्तर्हित हो गई। यही कुमार स्वर्गीय द्यु नामक वसु हैं, मर्त्यलोकमें शन्तनुके पुत्र हो कर देवव्रत और गाङ्गेय नामसे विख्यात हुए। ये ही कुरुक्षेत्र युद्धके प्रथम और प्रधान सेनापति परम धनुर्द्धर महाबलिष्ठ भीष्म थे।

गङ्गादेवीके अन्तर्धानके बाद राजा शन्तनु बड़े दुःखित हुए। कुछ समय बाद एक दिन वे एक बाण-विद्ध मृगका अनुसरण करते हुए गङ्गाके किनारे आये। वहां वे एक सुन्दर कुमारको शरजाल द्वारा गङ्गाका स्रोत रोकते देख बड़े विस्मित हुए और गङ्गासे उन्होंने इसका परिचय पूछा। गङ्गाने कहा, 'राजन्! पहले तुमने जो मेरे गर्भसे अष्टमपुत्र लाभ किया था, वह यही पुत्र है। अस्त्र, शस्त्र, शास्त्र, वेद, वेदाङ्ग आदि सभी विद्याओंमें पारदर्शी हो गया है। अब तुम इसे अपने घर ले जाओ।' राजाने गङ्गाप्रदत्त उस पुत्रको ला कर युवराज बनाया।

इन सब घटनाओंके बाद किसी एक दिन राजा शन्तनु यमुनाके किनारे वनमें भ्रमण कर रहे थे। इसी समय उन्होंने एक सद्‌गन्ध आघ्राण कर उसी ओर कदम बढ़ाया और एक देवरूपिणी कन्याको देख उसका परिचय पूछा। कन्याने कहा, 'मैं वसुराज (दाशराज) की कन्या हूं, सत्यवती मेरा नाम है। पिताकी आज्ञासे यहां नाव खेने आई हूं।' शन्तनुने उस परम रूपवती कन्याके रूप पर मोहित हो कर उसे ब्याहनेकी इच्छा

प्रकट की। परन्तु सत्यवतीका पिता उनसे सम्मत नहीं हुआ। पीछेसे उसने कहा, 'यदि आप सत्यवतीके पुत्रको राज्य देना स्वीकार करें, तो मैं अपनी कन्या ब्याह दूं।

तीव्र मनोज-वेदनासे दह्यमान होते हुए भी राजा शांतनुको साहस न हुआ, कि वे दाशराजको बात पूरी कर सकें। अतः वे कामबाणसे पीड़ित हो हस्तिनापुर लौटे। वहां वे बड़ी उदासीनतासे दिन बिताने लगे। विपुलबुद्धि देवव्रत पिताको इस प्रकार उदास देख बड़े दुःखित हुए और मंत्रीसे इसका कारण पूछा। कुल बात मालूम होने पर देवव्रत दाशराजके समीप गये और पिताके लिये उन्होंने कन्या प्रार्थना की। दाशराजने उत्तर दिया, कि कन्याका पिता साक्षात् इंद्र होने पर भी यदि वह ऐसे श्लाघ्य और एकांत प्रार्थनीय सम्बंधका परित्याग करे, तो उसे अंतमें अवश्य पश्चात्ताप करना पड़ेगा। परंतु इसमें एकमात्र सापत्न्यदोष पर ही मुझे संदेह होता है। क्योंकि आप जिसके सपत्न हैं, वह देव, नर, गंधर्व या असुर भी क्यों न हो, तो भी आपके क्रोध करने पर वह कभी नहीं रह सकता। इसके सिवा देनलेनके विषयमें और कोई वक्तव्य नहीं है।

अनंतर गङ्गापुत्र देवव्रतने पिताको संतुष्ट करनेके लिये क्षत्रियमण्डलीके समीप दाशराजके सामने इस प्रकार प्रतिज्ञा की, "आपकी कन्याके गर्भसे उत्पन्न बालक ही मेरा राज्याधिकारी होगा और अन्तमें कहीं मेरी सन्ततिसे विवाद भी खड़ा न हो जाय, इसलिये मैंने चिरब्रह्मचर्य अवलम्बन किया।" इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध हो देवव्रत उस योजनगन्धा दाशराजकन्या सत्यवतीको अपने घर ले आये। इस प्रकार भीषण प्रतिज्ञा करनेके कारण देवताओं और ऋषियोंने उनका 'भीष्म' नाम रखा।

इसके बाद समय पा कर शन्तनुके औरस और सत्यवतीके गर्भसे चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो वीर्यवान् महाधनुर्द्धर पुत्र उत्पन्न हुए। विचित्रवीर्य वयःप्राप्त होनेसे पहले ही शन्तनु परलोकको सिधारे। पीछे महामति भीष्मने सत्यवतीके मतावलम्बी हो कर अकपटचित्तसे अरिन्दम चित्राङ्गदको यथासमय राज्याभिषिक्त किया।

२ राजभेद। (ऋक् १०।९८।१) ४ वृष्टिकाम। (ऋक् १०।९८।३) ५ कौरव्य। (ऋक् १०।९८।७)

शन्तनुत्व (सं० क्ली०) १ शान्तिमय देहका भाव। २ शन्तनुका धर्मविशिष्ट।

शन्तम (सं० पु०) अतिशय सुखकर स्तोत्र। (ऋक् १।४३।१)

शन्ताति (सं० त्रि०) सुखकर्त्ता। (ऋक् १।११२।२०)

शन्तातीय (सं० त्रि०) शान्तिसूचक स्तोत्रसम्बन्धी। (ऋक् ७।३५।१०।१३)

शन्ति (सं० त्रि०) शमस्यास्तीति शम् (कंशम्भ्यां वभयुस्तितु तयसः। पा ५।२।१३८) इति ति। मङ्गलयुक्त, कल्याणविशिष्ट।

शन्तिव (सं० त्रि०) सुखयुक्त। (अथर्व ३।३०।२ सायण)

शन्तु (सं० त्रि०) शम् मत्वर्थे (कंशम्भ्यामिति। पा ५।२।१३८) इति तु। शान्त, मङ्गलयुक्त।

शन्त्व (सं० क्ली०) सुखका भाव या धर्म। (तैत्तिरीयस० ५।१।६।२)

शन्ध (सं० पु०) षण्ढ, हीजड़ा।

शप (सं० पु०) शप-अच्। १ शपथ, कसम। २ निर्भर्त्सन, गाली देना। (अ०प०) ३ स्वीकार, मंजूर।

शपथ (सं० पु०) शप क्रोशे (शीङ् शपि-रु-शमीति। उण् ३।११३) इति अथ। १ वह कथन जिसके अनुसार कहनेवाला इस बातकी प्रतिज्ञा करता है, कि यदि मेरा कथन असत्य हो, मैंने अमुक काम किया हो, मैं अमुक काम करूं या न करूं इत्यादि, तो मुझ पर अमुक देवताका शाप पड़े अथवा मैं अमुक पापका भागी होऊं आदि, कसम, दिव्य, सौगन्द। संस्कृत पर्याय—शपन, शप, सत्य, समय, शाप, प्रत्यय, अभिषङ्ग। (जटाधर)

आपसमें लड़नेवाले वादी और प्रतिवादी इन दो पक्षोंका यदि कोई साक्षी न रहे, तो विचारक दोनों पक्षको शपथ खिला कर सत्यनिरूपण करे। महर्षियों और देवताओंने आत्मशुद्धिके लिये पहले शपथ की थी। वशिष्ठऋषिने भी पिजवनके पुत्र सुदासराजाके निकट शपथ खाई थी। ज्ञानियोंको वृथा शपथ न खानी चाहिये। जो वृथा शपथ खाते हैं, उन्हें इस लोकमें

अकीर्त्ति और परलोकमें नरक होता है। शपथके विषयमें इस प्रकार प्रतिप्रसव लिखा है—

"कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम्॥"

(मनु ८।११२)

तुम मेरी अतिशय प्रियतमा हो, दूसरेकी मुझे याद नहीं है, इस प्रकार सुरतलाभके लिये स्त्रीविषयमें मिथ्या शपथ खानेसे उसमें पाप नहीं होता। विवाह, गोके लिये भक्ष्यद्रव्य संग्रह, होम काष्ठ लाना और ब्राह्मणरक्षा इन सब विषयोंमें भी यदि मिथ्या शपथ खाई जाय, तो पाप नहीं होता।

विचारकालमें ब्राह्मणको सत्य द्वारा शपथ करानी होगी। क्षत्रियको उसके हस्त्यश्व या आयुध द्वारा, वैश्यको उसकी गो या काञ्चन द्वारा तथा शूद्रको सभी पातक द्वारा शपथ करानी होती है। अथवा शूद्रको अग्नि वा जल परीक्षा किंवा स्त्रीपुत्रादिका शिर छुवा कर परीक्षा करावे। इस परीक्षा विषयमें अग्नि जिसे दग्ध न करे, जल जिसे जल्द न भंसावे तथा स्त्रीपुत्रादिका मस्तक छूनेसे शीघ्र यदि पीड़ा न हो तो जानना चाहिये कि वह विशुद्ध है। (मनु०)

विष्णुसंहितामें लिखा है, कि राजद्रोह तथा साहस अर्थात् दस्युता आदि कार्यमें इच्छानुसार शपथ करानी होगी। गच्छित तथा चौर्यमें गच्छित और अपहृत धन पर प्रमाण देते हुए शपथ खानी होती है। जिस वस्तुके लिये शपथ होगी उसके मूल्यके बराबर सुवर्ण रख कर शपथ खाना कर्त्तव्य है। इसमें विशेषता यह है, कि कृष्णल (सुवर्ण परिमाणविशेष)से कम होने पर शूद्रके हाथमें दूर्वा दे कर उसे शपथ खिलावे। दो कृष्णलसे कम होने पर हाथमें तिल दे कर, तीन कृष्णलसे कम होने पर हाथमें हलसे उखाड़ी हुई मिट्टी दे कर शपथ खिलानी होगी। सुवर्णार्द्धके कम होने पर शूद्रको कोष (दिव्यविशेष) प्रदान करे। उससे ऊपर होने पर पात्रानुसार तुला, अग्नि, जल और विषादि द्वारा दिव्य करावे। पहलेसे दुना अर्थ होने पर वैश्यको भी शपथ खिलाना कर्त्तव्य है। तिगुना होनेसे क्षत्रियको, चौगुना होने पर ब्राह्मणको शपथ खानी चाहिये। शपथ खानेमें पूर्वदिन उपवास करना होता है। दूसरे दिन सवेरे सूर्योदय कालमें स्नान कर शपथ करे। (विष्णुसंहिता ९ अ०)

देवता और ब्राह्मणादिके चरण, पुत्र और स्त्री आदिके मस्तक स्पर्श कर अल्पकारणमें शपथ खानेसे शुद्धिलाभ होता है। किन्तु साहस और अभिशाप आदिमें तुला, जल, अग्नि आदि दिव्य द्वारा शुद्धि होती है। व्यवहारतत्त्व, विष्णुसंहिता आदिमें विशेष विवरण दिया गया है।

शपथपत्र (सं० क्ली०) वह शपथ जो कागज पर लिख कर दिया जाता है। अदालतमें हाकिमके सामने पत्र लिख कर जो affidavids किया जाता है, उसे शपथपत्र कहते हैं।

शपथयावन (सं० त्रि०) आक्रोशनाशक। (अथर्व० ४।१७।२)

शपथयावन (सं० त्रि०) शाप निवारण। (अथर्व० २।७।१)

शपथेय्य (सं० पु०) शपथकारी, सौगन्ध देनेवाला। (अथर्व० ५।३१।१२)

शपथ्य (सं० त्रि०) शपथ प्रवत्। शपथसम्भव, शपथसे उत्पन्न। "मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो" (ऋक् १०।९७।१६) 'शपथ्यात् शपथसंजातात्'। (सायण)

शपन (सं० क्ली०) शप-क्रोशे ल्युट्। १ शपथ, कसम। २ कुवाच्य, गाली।

शपनतर (सं० त्रि०) आक्रोशशील। (शतपथब्रा० ६।१।३)

शप्त (सं० पु०) शप-क्त। १ उलूक अथवा उलप नामक तृण। २ वह व्यक्ति जिसे शाप दिया गया हो।

शप्तृ (सं० त्रि०) शापकर्त्ता, शाप देनेवाला।

शप्य (सं० त्रि०) शाप देनेके उपयुक्त, जो शाप देनेके योग्य हो।

शफ (सं० क्ली०) १ पशुओंका खुर। २ नखी या बगनहा नामक गन्धद्रव्य। ३ वृक्षकी जड़।

शफक (सं० पु०) शफ-स्वार्थे कन्। १ गायका खुर। २ शफाकार जलोत्पन्न द्रव्यविशेष। (अथर्व ४।३४।५)

शफक (अ० स्त्री०) प्रातःकाल या सायंकालके समय आकाशमें दिखाई पड़नेवाली ललाई। विशेषतः सन्ध्याके

के समय दिखाई पड़नेवाली लालिमा जो बहुत ही मनोहर होती है।

शफ़कृत (अ० स्त्री०) १ कृपा, दया, मेहरबानी । २ प्यार, मुहब्बत ।

शफ़गोल (फा० स्त्री०) इसबगोल देखो ।

शफच्युत (सं० त्रि०) १ खुरभ्रष्ट, जिसका खुर नष्ट हो गया हो। (ऋक् १।३३।१४ सायण) २ खुरहीन ।

शफतालू (फा० पु०) एक प्रकारका बड़ा आड़ू । इसे सतालुक या सतालू भी कहते हैं। सतालू देखो।

शफर (सं० पु० स्त्री०) मत्स्यविशेष, पोठी या पोठिया नामकी मछली ।

शफराधिप (सं० पु०) शफराणां अधिपः। इलीश मत्स्य, हिलसा मछली। पर्याय—इलीश, वारिकपूर, गाङ्गेर, जमताल ।

शफरी (सं० स्त्री०) १ अम्ललोणिका शाक, अमलोनी नामक साग। (भावप्र०) २ प्रोष्ठी मत्स्य, पोठी या पोठिया नामकी मछली ।

शफरीय (सं० त्रि०) शफर सम्बन्धी ।

शफरूक (सं० पु०) १ संदूक, बक्स । २ पात्र, बरतन ।

शफवत् (सं० त्रि०) शफ अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व । शफ-विशिष्ट, शफयुक्त, खुरवाला। (ऋक् ३।३९।६)

शफशस् (सं० अव्य०) खुर खुरमें ।

शफा (अ० स्त्री०) शरीरका स्वस्थ होना, नीरोगता, तंदु रुस्ती ।

शफाक्ष (सं० पु०) ऋषिभेद ।

शफाखाना (फा० पु०) वह स्थान जहां रोगियोंकी चिकित्सा होती हो, चिकित्सालय, अस्पताल ।

शफारुज (सं० पु०) सामनेमें परवल हननकारी ।

शफोरु (सं० त्रि०) १ जिसकी जांघ गायके खुरके समान हो। (स्त्री०) २ गायके खुरके जङ्घावाली स्त्री ।

शब (फा० स्त्री०) रात्रि, रात, निशा ।

शबनम (फा० स्त्री०) १ तुषार, ओस । २ एक प्रकार-का सफेद रङ्गका बहुत ही बारीक कपड़ा ।

शबनमी (फा० स्त्री०) चारपाईके ऊपरका वह ढांचा जिस पर रातके समय ओससे बचनेके लिये मसहरी टांगी जाती है, मसहरी, छपरखट ।

शब्बरात (फा० स्त्री०) मुसलमानोंके आठवें मासकी चौदहवीं अथवा पन्द्रहवीं रात। इस रातको मुसल-मानोंके विश्वासके अनुसार फरिश्ते परमात्माकी आज्ञासे भोजन बांटते और आयुका हिसाब लगाते हैं। इस दिन मुसलमान अपने मृत पूर्वजोंके उद्देश्यसे प्रार्थना करते, हलुआ पूरी बांटते, रोशनी करते और आतिशबाजी छोड़ते हैं।

शबर (सं० पु०) शर (ऋच्छेररः। उण् ११३१) इति अर। जातिविशेष। भारतवासी आदिम असभ्यजाति। इनमेंसे बहुतोंने यद्यपि आज कल राजधानीके निकट-वर्ती स्थानोंमें रह कर सभ्यजातिके आचार व्यवहारका अनुकरण कर लिया है, तो भी ये अब तक पूर्ण सभ्य न हो सके हैं। आज भी उड़ीसा और मध्यभारतके नाना स्थानोंमें पार्वत्य वन्यप्रदेशमें शबर जातिका वास है। ये लोग जङ्गलकी लकड़ी काट कर या जङ्गली चीज संग्रह कर निकटवर्ती नगर या ग्राममें आ कर बेचते हैं। यही इन लोगोंकी प्रधान उपजीविका है।

यह जाति बहु प्राचीन कालसे ही भारतमें अपने अस्तित्वका परिचय देती आ रही है। ऐतरेय-ब्राह्मण ७।१८ मन्त्रमें इन्हें विश्वामित्र ऋषिकी किसी अभिशप्त सन्तानका वंशधर कहा गया है। शाङ्खायन-श्रौतसूत्र १५।२६।६ सूत्रमें भी शबरोंका उल्लेख है। महाभारतके आदि, भीष्म, शान्ति और अनुशासन पर्वमें शबर जातिका परिचय दिया गया है। शेषोक्त पर्वमें इन्हें "मध्यदेशवहिष्कृत" कहा है। भागवत (२।७।४६) में ये लोग पापजीवी कह कर वर्णित हैं। भौगो-लिक टलेमीने इन्हें Sabarae और प्लिनिने इन्हें Suari शब्दमें उस जातिका उल्लेख किया है। एक समय शबरोंने जगन्नाथ देवकी रक्षा की थी। जन-साधारणका विश्वास है, कि आज भी शबर लोग ही जग-न्नाथ देवकी पाचकता करते हैं। जगन्नाथ देखो। वाक्-पतिका गौड़वध काव्य पढ़नेसे जाना जाता है, कि ८वीं सदीमें ये लोग नरबलि दे कर विन्ध्यवासिनीकी पूजा करते थे। इन्हींकी एक शाखा राज्यलाभ कर अपनेको सोमवंशी बतलाती है तथा आर्यसमाजभुक्त हो जाती। मध्य प्रदेशके श्रीपुरसे इस राजवंशकी शिलालिपि आवि-ष्कृत हुई है।

उड़ीसा प्रान्तमें पर्णशवर नामक इस जातिको एक शाखाका वास देखा जाता है। ये लोग अत्यन्त दुर्द्धर्ष और जंगली स्वभावके होते हैं। आज तक भी इन्होंने कपड़ा पहनना सीखा नहीं है। शहरके निकटवर्ती स्थानवासीको छोड़ सभी वनवासी शवर आज भी पर्णाच्छादन द्वारा अपनी लज्जा निवारण करते हैं। ग्वालियर राज्यवासी शवरी या शहरिया कोटा सीमांतस्थ जंगलमें रहते हैं। पश्चिम मारवाड़ और गुणा पर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें इनका वास है।

दक्षिण भारतके पूर्वघाट पर्वतमाला पर शूयर या शूरा नामकी जो अद्धसभ्य वन्य जाति रहती है, वह भी शवर कहलाती है। शवर शब्दके अपभ्रंशसे शूयर या शूरा हो गया है। ये लोग अभी जिस जिस स्थानमें वास करते हैं, उस उस स्थानकी सभ्य और इतर जातियां इन्हें चेञ्चुकुलमू, चेञ्चवार और चेनशूयर नामसे पुकारती है। ये लोग साधारणतः पूर्वघाट पर्वतमालाके पश्चिम शैलसे ले कर कृष्णा और पेन्नर नदीके मध्यवर्त्ती नल्लमलय और लङ्कामलय नामक स्थान तक वास करते हैं। अफ्रिका, निकोबर द्वीप और पशियोनेसियावासी असभ्य जिस तरह घर बना कर रहते हैं, ये लोग उसी तरह वन काट कर एक स्थान परिष्कार करते और वहीं मधु-चक्रकी तरह घर बना कर रहते हैं।

घरकी दीवाल बांसकी टट्टरियोंकी और छाजन घासका होता है। घरकी ऊंचाई सिर्फ ३ फुट होती है। पुरुष प्रायः नंगे रहते हैं, लज्जानिवारणके लिये सामान्य एक वस्त्रखण्ड पहन लेते हैं। स्त्रियां एक वस्त्रखण्ड कमरमें बांध लेती हैं सही, पर अनेक स्थलोंमें ही उनका वक्षस्थल खुला रहता है।

ये कदमें छोटे पर मजबूत होते हैं। हनुकी हड्डी चौड़ी और ऊंची, नाक चिपटी, नाकके छेद चौड़े, आंखकी पुतली घोर काली और दृष्टि तीक्ष्ण होती है। ये लोग निकटवर्त्ती अन्यान्य सभ्य इतर जातिके कुछ छोटे हैं सही, पर बलवीर्यमें उनसे कहीं बढ़े चढ़े हैं। ये लोग किसी प्रकारकी देवमूर्त्तिकी पूजा नहीं करते। सभी प्रायः बड़े बड़े कुत्ते पालते हैं। पार्वत्य जंगल रक्षाके लिये गवर्मेंटने इन्हें वहां नियुक्त किया है।

ये लोग बहु विवाह करते हैं। शवदाह साधारणतः प्रचलित है। किंतु कभी कभी देहसमाधिकालमें ये लोग मृतका तीर धनुष ला कर उसके साथ गाड़ या जला देते हैं। ये लोग बरछा, कुठार और बंदूक भी रखते हैं। किसी भी प्रकारके शिल्पवाणिज्य या वस्त्रवयन कार्यको ये घृणित समझते हैं। ये लोग धीर और नम्र होते हैं।

शवरक (सं० पु०) जङ्गली, वहशी।

शवरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन। यह लाल और सफेद दोनों मिले हुए रङ्गोंका होता है। वैद्यकके अनुसार यह शीतल तथा कड़ुवा और वात, पित्त, कफ, विस्फोटक, खुजली, कुष्ठ, मोहादिको नष्ट करनेवाला माना जाता है।

शवरजम्बु (सं० क्ली०) नगरभेद।

शवरभाष्य (सं० क्ली०) शवरस्वामीकृत वेदान्त वा मीमांसासूत्रका प्रसिद्ध भाष्य।

शवरलोध्र (सं० क्ली०) श्वेत लोध्र, सफेद लोध। (राजनि०)

शवरसिंह (सं० पु०) राजभेद।

शवरस्वामिन्—१ एक प्रसिद्ध मीमांसक। इन्होंने मीमांसा सूत्रभाष्य और शवरकौस्तुभ नामक दो ग्रन्थ लिखे। इन दोनों ग्रन्थोंमें इनकी विज्ञवत्ताका विशेष परिचय है। २ भट्टदीप्तस्वामीके पुत्र। ये हर्षवर्द्धन कृत लिङ्गानुशासनके रचयिता थे। उज्ज्वलदत्तने इनका नामोल्लेख किया है।

शवल (सं० त्रि०) शव आक्रोशे (शपेर्वश्च। उण् १।१०७) इति वल; वश्चादेशः। १ कर्बूरवर्ण, चितकबरा। २ चित्र विचित्र, विरङ्ग। (पु०) ३ एक नागका नाम। ४ गन्ध तृण, अगिया घास। ५ चित्रक, चितउर वृक्ष। ६ बौद्धोंका एक प्रकारका धार्मिक कृत्य।

शवलक (सं० त्रि०) १ चितकबरा। २ चित्र विचित्र, रङ्ग विरङ्ग।

शवलचेतन (सं० पु०) वह जो किसी प्रकारकी पीड़ा या

कष्ट आदिके कारण घबराया हुआ हो, वह जो संतप्त या व्यथित होनेके कारण अन्यमनस्क हो।

शबलता (सं॰ स्त्री॰) शबलस्य भावः तल्-टाप्। १ शबलत्व, शबलका भाव या धर्म। २ रङ्ग विरङ्गापन। ३ मिलावट।

शबलत्व (सं॰ क्ली॰) शबलता देखो।

शबला (सं॰ स्त्री॰) शबलः स्त्रियां टाप्। १ शबलवर्णा गाभी, चितकबरी गौ। २ कामधेनु।

शबलाक्ष (सं॰ पु॰) महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम। (भारत १३ पर्व)

शबलाश्व (सं॰ पु॰) १ एक ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय) २ अविक्षित्के पुत्र। ३ दक्षसे पाञ्चजन्या गर्भजात पुत्र। (भागवत ६।५।२४) ४ हरिवंशके अनुसार वैरणीका गर्भजात।

शबलिका (सं॰ स्त्री) एक प्रकारका पक्षी।

शबलित (सं॰ त्रि॰) कर्बूर वर्णयुक्त, चितकबरा। (राजतर॰ २।१६७)

शबली (सं॰ स्त्री॰) शबल-ङीष्। १ शबलवर्णा गाभी, चितकबरी गाय। २ कामधेनु।

शबाब (अ॰ पु॰) १ यौवनकाल, जवानी। २ किसी वस्तुको वह मध्यकी अवस्था जिसमें वह बहुत अच्छा या सुन्दर जान पड़े। ३ बहुत अधिक सौन्दर्य।

शबाहत (अ॰ स्त्री॰) १ समानता, अनुरूपता। २ आकृति, सूरत, शक्ल।

शबीह (अ॰ स्त्री॰) १ वह चित्र जो किसी व्यक्तिकी सूरत शकके ठीक अनुरूप बना हो। २ समानता, अनुरूपता।

शबोरोज (फा॰ अव्य॰) रात दिन, हर समय, हर दम।

शब्द (सं॰ पु॰) शब्द-घञ् भावे यद्वा शप आक्रोशे (शाशपिभ्यां ददनौ। उण् ४।९७) इति दन् पकारस्य बकारः श्रोत्रग्राह्य गुणपदार्थविशेष, वायुमें होनेवाला वह कम्प जो किसी पदार्थ पर आघात पड़नेके कारण उत्पन्न हो कर कान या श्रवणेन्द्रिय तक पहुंचता और उसमें एक विशेष प्रकारका क्षोभ उत्पन्न करता है, पर्याय—निनाद, निनद, निःस्वन, ध्वनि, ध्वान, रव, स्वन, स्वान, निर्घोष, निर्ह्राद, नाद, निःस्वान, निःस्वन, आरव, आराव, संराव, विराव, (अमर) संरव, राव, (शब्दच॰) घोष।

ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक भेदसे शब्द दो प्रकार का है। मृदङ्गादिके शब्दको ध्वन्यात्मक और कण्ठताल्वभिघातजन्य क, ख इत्यादि शब्दको वर्णात्मक कहते हैं। दोनों प्रकारके शब्द आकाशसे उत्पन्न होते हैं तथा जब श्रोत्रेन्द्रियके साथ उसका अभियोग होता है, तब अविकृत श्रोत्रेन्द्रियवान् जीवमात्र ही उसका अर्थबोध कर सके या न कर सके, पर शब्द अवश्य अनुभव कर सकता है। फलतः जब तक शब्दके साथ श्रोत्रेन्द्रियका अभिषङ्ग नहीं होता, तब तक उसकी उपलब्धि नहीं होती; यही कारण है, कि हम बहुत दूरका शब्द नहीं सुन सकते। किन्तु वर्त्तमान पाश्चात्य विज्ञानवित् पण्डितोंकी कृपासे 'टेलीफोन' आदि यन्त्र द्वारा दूरसे दूर शब्द भी हम अभी सुन सकते हैं।

श्रोत्रेन्द्रियमें शब्दके विकाश सम्बन्धमें नैयायिक लोग कहते हैं—मृदङ्गादि वा कण्ठताल्वादिमें अभिघात लगनेसे वहांके नभःप्रदेशमें उत्पन्न शब्द वीचितरङ्गन्यायमें अर्थात् जिस प्रकार किसी स्थानके जलमें वायु द्वारा एक तरङ्ग उत्पन्न होनेसे क्रमशः उसीके घात प्रतिघात द्वारा बहुत दूर तक तरङ्ग बढ़ती जाती है, मृदङ्गादिमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय इत्यादि आघातजन्य उत्पन्न शब्द भी वायु द्वारा क्रमशः उत्तरोत्तर उक्त प्रकारके तरङ्गाकारमें श्रवणेन्द्रिय पर्यन्त पहुंच कर उसमें प्रतिहत होनेसे वहां उसका विकाश होता है।

किसी किसीके मतसे कदम्बगोलकन्यायमें अर्थात् मृदङ्गादिमें प्रथम द्वितीय आदि आघातजन्य क्रमशः उत्पन्न शब्दोंकी उस प्रथम उत्पत्तिस्थानको ही कदम्बपुष्पकी तरह गोलाकार वस्तुके केन्द्रस्वरूप तथा उसके केशरोंकी तरह उक्त केन्द्रोत्पन्न शब्द या उनकी गति व्यासार्द्ध स्वरूप चारों ओर विक्षिप्त होती है, इस विक्षेपकालमें जहां जहां उस शब्द या उसकी गतिके साथ श्रोत्रसंयोग होता है। उन्हीं सब स्थानोंमें उनका विकाश दिखाई देता है।

"शब्दो नित्यः" इस श्रुतिके मर्म पर कोई कोई कहते हैं, "श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते" "उत्पन्नःको विनष्टः कः" 'क' उत्पन्न हुआ है 'क' विनष्ट हुआ है; ये सब प्रयोग किस प्रकार सम्भव होते हैं अर्थात् शब्दमात्र ही जब नित्य

है, तब उनकी उत्पत्ति वा विनाश कदापि नहीं हो सकता। परंतु जहां ऐसा व्यवहार देखा जाता है, वहां अनित्यता बुद्धिसे ही होता है। फिर प्रत्यभिज्ञास्थलमें जो "सोऽयं कः" है वह यही 'क' इस प्रकार व्यवहृत होता है, वहां केवल 'यह वही औषध है' (अर्थात् मैंने जिस औषधका व्यवहार किया था, यह वही स्वजातीय औषध है) इस प्रकार साजात्य अवलम्बन करके ही उसकी अर्थनिष्पत्ति करनी होती है। वस्तुतः 'वह यही क है' 'वह यही औषध है' इत्यादि स्थानोंमें क्रमसे क्रम शब्दका नित्यत्व प्रतीत होने पर भी प्रत्यभिज्ञाकालमें सजातीयत्व ही गृहीत होगा, उससे व्यक्तिकी (पूर्वोच्चारित 'क' या पूर्व व्यवहृत औषधकी) अभिन्नता समझी न जायेगी।

चरकके विमानस्थानमें वर्णात्मक शब्दको चार भागोंमें विभक्त किया गया है। यथा—दृष्टार्थ, अदृष्टार्थ, सत्य और अनृत।

दृष्टार्थ शब्द—असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध और परिणाम इन तीन कारणोंसे वातादि दोषका प्रकोप होता है तथा लङ्घन वृंहणादि प्रक्रिया द्वारा ये सब दोष शमताको प्राप्त होते हैं। इस उक्तिका फल सर्वदा देखा जाता है, इसी कारण उन्हें दृष्टार्थशब्द कहते हैं।

अदृष्टार्थ शब्द—जिसका फल अदृष्ट है अर्थात् चक्षुगोचर नहीं होता, वही अदृष्टार्थ शब्द है, जैसे पुनर्जन्म है, मोक्ष है।

सत्यशब्द—जो विश्वासयोग्य है, वही सत्य है; जैसे सिद्धिका उपाय है, अर्थात् कायमनोवाक्य द्वारा क्रिया करनेसे सिद्धिलाभ किया जाता है, चिकित्सा करनेसे साध्य रोग आरोग्य होता है, इत्यादि। किन्तु जहां भ्रम विश्वास होगा, वह सत्य कदापि नहीं है।

अनृत शब्द—जो सत्यका विपरीत है, वही अनृत अर्थात् मिथ्या शब्द है; जैसे ईश्वर नहीं है, आत्मा नहीं है, कर्मफल नहीं है, पुनर्जन्म नहीं है, इत्यादि।

(चरक विमानस्थान ८म अध्याय)

महाभारतके अश्वमेधपर्वमें षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद, धैवत, इष्ट और संहतके भेदसे शब्दको दश भागोंमें विभक्त किया गया है।

विशेष विशेष शब्दका विशेष विशेष नाम है, यथा—गुण और अनुरागसे उत्पन्न शब्दका नाम शब्द है। शीतकृत अर्थात् रतिकालमें स्त्रियोंके मुखसे निकले हुए अव्यक्त इस इस वा शिस देनेकी तरह शब्दका नाम प्रणाद; मलद्वारोत्थित शब्दका नाम पर्द्दन (पाद); कुक्षिगत शब्द अर्थात् पेट बोलनेका नाम कर्दन; युद्धकालीन वीरोंकी चीत्कार ध्वनिका नाम सिंहनाद या क्ष्वेड़; कलकल शब्दका नाम कोलाहल; व्याकुल या हठात् विपद्ग्रस्त अवस्थाके रवका नाम तुमुल; वस्त्र और वृक्षपत्रादिका मर्मर (फरफर); अलङ्कारकी झंकारका शिञ्जित; गोध्वनिका हम्भा, रम्भा और रेभण; अश्वका रव हेषा और ह्रेषा; गजका गर्ज और वृंहित, धनुकका शब्द विस्फार; मेघका स्तनित, गर्जित, गर्जि, स्वनित और रसित; विहङ्गोंका कूजित, पशुपक्षी आदि साधारण तिर्यग् जातिके शब्दका नाम रुत और वाशित; लकड़बग्घाकी बोलीका नाम रेषण; कुक्कुरादिका शब्द बुक्कन और भषण; किसी भी कारणसे पीड़ित व्यक्तिकी कातरोक्तिका नाम कणित; चुम्बन और रतिकालके अव्यक्त शब्दका नाम मणित; तन्त्रीके स्वरका नाम प्रक्वाण और प्रक्वण; मादलका गुंदन और भेरीके स्वरका दुद्दुर; सच्छिद्र-वंशकी ध्वनिका क्षीजन; अत्युच्च शब्दका तार; गम्भीर ध्वनिका मन्द्र, मधुरध्वनिका कल; सूक्ष्म मधुरध्वनिका काकली; लयसङ्गत ध्वनिका एकताल और सहज स्वरको व्यङ्ग करके इच्छाक्रमसे विकृतभावमें उच्चारण करनेका नाम काकु और धनुषकी डोरीके शब्दका नाम टङ्कार है।

कविकल्पलतामें उद्धृत निम्नलिखित शब्दोंको अनुलोम या विलोम जिस किसी भावमें पढ़ा क्यों न जाये, उसमें उनके उच्चारण वा अर्थगत कोई वैषम्य दिखाई नहीं देता था। यथा—

नयन, नर्त्तन, कनक, कटक, महिम, कालिका, सरस, सहास, मध्यम, तावता, तारता, विभवि, करक, कम्बूक, काञ्चिका, नन्दन, दंतद, लगुल, तुततनु, हावबहा, पदपातप, वरभैरव, कलपुलक, वरकैरव, वरकौरव, वरपौरव, तरुणीरुत, रदसोदर, नदभेदन, लङ्काकङ्काल, माधवबल्लभवधमा, नन्दनन्दन, तद्धित, समास, कारिका, जलज, कटक, नाना, मम।

कविकल्पलतामें निम्नोक्त शब्दोंका अनुलोमभावमें उच्चारण और अर्थ एक प्रकारका है और विलोमभावमें अन्य प्रकारका है, यथा—

देवे, लेख, विभु, वद, यम, राधा, सुनामा, नन्दक, मालिका, कालिनी, करका, दीनरक्षा, सदालिका, यमराज, नन्दनवन, नलकूवर, सहसानुत, नवतम, संमद, मार, वत, युवा, सदा, वशि, लता, नुत, लव, विमा।

उक्त ग्रन्थमें लिखित वक्ष्यमाण शब्दोंका संस्कृत, प्राकृत हिंदी सभी भाषाओंमें पुंलिङ्गमें व्यवहार होता है, यथा—

आहार, हार, विहार, सार, सम्भोग, रोग, असुर, संहार, अमर, मार, वारण, गण, मार, आकर, लोन, उल्लेख, विलास, वायस, हर, अहङ्कार, हीर, अंकुर, नीहार, उरग, राग, भाल, तरल, गोविन्द, कन्द, उदर, तरुण, तरुणि, दास, मोर, सन्दोह, मास, खुर, तर, मल, सङ्गर, आरम्भ, हास, कर, करि, किरि, कीर, कील, कन्दोल, धीर, मल, मलय, करीर, वामदेव, असि, वीर, नर, नरक, करङ्क, दण्ड, चण्डाल, रङ्ग, दर, सरल, कलङ्क, कम्बल, आकार, पङ्क, खल, वहुल, करङ्ग, देह, सन्देह, सङ्ग, पर, कुरव, चारु, सञ्चार, भङ्ग, अरि, हरि, परिणाह, कण्ठ, अहि, दाह, परिसर, रवि, हाहा, मञ्जु, मञ्जीर, वाह, अचल, कुल, कुमार, कुम्भ, कुम्भीर, सार, विरल, कमल, जार, कन्दर, उदार, पार, जम्बीर, केशरि, वराह, मुरारि, काल, काकोल, कुन्तल, चमूरु, विराम, वाल, आलोल, वाहु, रण, सङ्गर, चोल, भार, संसार, केरल, समीरण, टङ्क, ताल, आसार, चामर, कुलीर, तुरङ्ग, सूर, कङ्काल, कन्दल, कराल, विकास, पूर, हेरम्ब, कम्बु, विधु, सिंधु, बुध, अनुबन्ध, कुन्द, इन्दु, मन्दर, समीर, समूह, गंध, भीम, अङ्क, सङ्कर, किरोट, तमाल, गुञ्ज, हिन्ताल, तोमर, महीरुह, विम्ब, पुञ्ज, हिण्डीर, पिण्ड, वर, संवर, कोण, काण, संरंभ, सोम, परिरम्भ, विकार, वाण, वसंत, आसव, वैसन्त, वास, वासव, वासर, कासार, सरस, अरुण।

निम्नोद्धृत शब्द पूर्वोक्त सभी भाषाओंमें स्त्रीलिङ्गमें व्यवहृत होते हैं, यथा—

हेला, गेला, कला, माला, रसाला, काहला, अचला, कीला, लीला, वला, वाला, लीला, दोला, अलसा, मसी धरणी, धारणी, गोपी, रोहिणी, रमणी, मणी, वीणा, वाणी, वसा, वेणी, रीढ़ा, गङ्गा, तरङ्गिणी, कन्दला, लहरी, नारी, रामी, भेरी, वसुन्धरा, काली, कराली, चामुण्डा, चण्डा, रण्डा, तुला, मही।

पूर्वोक्त प्रकारसे व्यवहृत क्लीवलिङ्ग शब्द, यथा—

जाल, फल, पल, मूल, वारि, कीलाल, कुल, वल, पलल, दुकूल, लिङ्ग, गम्भीर, कमल, सलिल, चोर, तुच्छ, राजीव, नीर, हल, रजत, कुटीर, दारु, लाल, पटीर, कारण, रोहण, चेल, कुहर, अम्बर, मंदिर, कुटल, मण्डल, तामरस, कुण्डल, अङ्गद, पुर, अरविन्द, लोह, अङ्ग, तड़ाग, करण, कूल, तोरण, मरण, तुङ्ग, अलम्, आगार, भासुर।

इन सब भाषाओंमें व्यवहृत एकार्थबोधक क्रियापद; यथा—भाण, देहि, गच्छ, संहर, कुरु, चोरय, मारय, अवगच्छ, अवलोकय, अवचिन्तय, खाद।

नोचे कुछ ओष्ठवर्णवर्जित पुलिङ्ग शब्द दिखलाये गये हैं, यथा—

नीहार, हार, हरिण, अङ्क, हर, अट्टहास, कैलास, कास, रद, नारद, सिंह, इन्द्र, शङ्ख, शेष, अहि, हंस, घनसार, हलि, नाग, हिण्डीर, निर्झर, शरद्घन, चन्द्रकांत, शृङ्गार, सागर, तड़ाग, जलाशय, अग, हर्य्यक्ष, तक्षक, नख, क्षत, दीक्षित, अक्ष, नाराच, काच, कच, कीचक, चञ्चरीक, चाणक्य, चारण, गण, चण, काण, शोण, संहार, सारस, रस, अरि, रसाल, साल, कङ्काल, काल, कलि, शैल, खल, अनल, अर्क, किञ्जल्क, कल्क, कर, शङ्कर, कीर, हीर, लङ्केश, केश, गर, केशव, देश, लेश, आनन्द, नन्दन, धनञ्जय, झञ्झरीट, कीट, अग्नि, कण्टक, कटाह, कटाक्ष, यक्ष, दक्ष, अङ्ग, यज्ञ, जनक, अञ्जलि, यन्त्र, यत्न, रत्नाकर, अन्धक, धरार, घोर, शीर, नासीर, नारायण, कृष्ण और हृषीकेश।

ओष्ठवर्णरहित स्त्रीलिङ्ग शब्द—गङ्गा, गीता, सती, सीता, सिद्धि, संध्या, गदा, गया, आशीः, काशी, निशा, नासा, कांति, दया, रसा, आर्द्रा, निद्रा, हरिद्रा, द्रक्, द्राक्षा, लाक्षा, धृति, छाया, जाया, कथा, कांता, धात्री, रति, गति, कंधरा, धारणा, धारा, तारा, कारा, जरा,

आजि, राजि, रजनी, अर्चि, कोर्चि, कन्था, तटी, नटी, नारी, सारी, दरी, दासी, घटिका, खटिका जटा, कक्षा, रक्षा, शिखा; संध्या, कालिंदी, कलिका, कला, काली, कराली और दुर्गा।

ओष्ठवर्णविवर्जित क्लीबलिङ्ग—चरण, करण, चक्र-क्षत्र, नक्षत्र; तक्र, रजत, शत, शरीर, क्षीर, नीर, अक्षि, तीर धन, कनक, निधान, ध्यान, संधान, दान, नलिन, नगर, गात्र, छत्र, नेत्र, अस्थि, दात्र, आलिङ्गन, स्थान, शिरः, चरित्र, जल, स्थल, स्थान, कलत्र, चित्र, कीलान, जाल, अलक, नाल, दैन्य, लिङ्ग, अङ्ग, लावण्य, हिरण्य, सैन्य, अन्न, अजिन, यान, असृक, काञ्चन; आनन, कानन, हाटक, नाटक, नाट्य, तैल, रसातल, अदन, सदन, ज्ञान, निदान, दधि, चंदन, अक्षर, लक्षण, लक्ष, शस्त्र, शास्त्र, दल और हल। (कविकल्पलता १म स्तबक २य कुसुम)

२ वह स्वतंत्र, व्यक्त और सार्थक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोगसे कण्ठ और तालु आदिके द्वारा उत्पन्न हो और जिससे सुननेवालेको किसी पदार्थ, कार्य या भाव आदिका बोध हो, लफ्ज।

३ अमृतोपनिषद्‌के अनुसार 'ओऽम्' जो परमात्मा-का मुख्य नाम है। ४ किसी साधु या महात्माके बनाये हुए पद या गीत आदि।

शब्दकर्मन् (सं० त्रि०) शब्द जिसका कर्म अर्थात् जो क्रियापदका कर्मपद शब्द अर्थात् किसी प्रकारकी ध्वनि। (पा १।४।५२) जैसे—"स्वरान् विकुरुते" स्वरको विकृत करता है; यहां 'विकुरुते' क्रियाका कर्म स्वर अर्थात् शब्द किसी प्रकारकी ध्वनि होनेसे 'विकुरुते' पदको शब्दकर्मा क्रियापद कहते हैं।

शब्दकार (सं० त्रि०) शब्दं करोतीति कृ-अण्। (न शब्दश्लोककलहगाथेति। पा ३।२।२४) १ वह जो सार्थक शब्द प्रस्तुत या संग्रह करे, शब्दकर्त्ता। २ ध्वनिकारक।

शब्दकारिन् (सं० त्रि०) शब्द कृ णिनि। शब्दकार, शब्द करनेवाला।

शब्दक्रिय (सं० त्रि०) शब्दः क्रिया कर्म यस्य। शब्द कर्मक। शब्दकर्मन् देखो।

शब्दग (सं० त्रि०) शब्दं गच्छति प्राप्नोतीति शब्द-गम-ड। १ श्रोत्र। शब्दो गच्छति येन करणेन। २ वायु।

शब्दगति (सं० स्त्री०) १ शब्दस्रोत। २ गति। (त्रि०) ३ शब्दग देखो।

शब्दगोचर (सं० पु०) वेदांतवेद्य, वेदांत द्वारा ज्ञातव्य।

शब्दग्रह (सं० पु०) शब्दं गृह्णात्यनेनेति ग्रह अप्। (ग्रह वृहनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) १ कर्ण, कान। २ एक प्रकारका काल्पनिक वाण। (त्रि०) ३ शब्दको ग्रहण करनेवाला।

शब्दग्राम (सं० पु०) शब्दसमूह, स्वरग्राम।

शब्दचातुर्य (सं० पु०) शब्दोंके प्रयोग करनेकी चतुरता, बोलचालकी प्रवीणता, वाग्मिता।

शब्दचालि (सं० स्त्री०) एक प्रकारका नृत्य।

शब्दचित्र (सं० पु०) अनुप्रास नामक अलङ्कार।

शब्दत्व (सं० क्ली०) शब्दका भाव या धर्म, शब्दता।

शब्दन (सं० त्रि०) शब्दं कर्त्तुं शीलमस्य शब्द-युच्। (चलनशब्दार्थादकर्मकाद्-युच्। पा ३।२।१४९) इति तच्छीले युच्। १ शब्दकर्त्ता। पर्याय—वरण। (क्ली०) शब्द भावे ल्युट्। २ शब्दमात्र।

शब्दनिर्णय (सं० पु०) १ अभिधान। २ स्वरनिर्द्धारण।

शब्दनृत्य (सं० पु०) एक प्रकारका नृत्य।

शब्दपति (सं० पु०) नाम मात्रका नेता, वह नेता जिसके अनुयायी न हों। (रघु ८।५२)

शब्दपात (सं० त्रि०) शब्दस्य पातो यत्र शब्दस्येव पातो यत्र वा। १ जहां तक शब्दपतन हो सके। २ शब्दकी तरह पतनशील अर्थात् शब्दकी गतिके समान गति जिसकी। (भट्टि ५।१०० भरत)

शब्दपातिन् (सं० त्रि०) १ शब्दकी सहायतासे गमन-कारी। २ शब्दके साथ निपतित।

शब्दप्रकाश (सं० पु०) शब्दोत्थान, शब्दका उद्बोधन।

शब्दप्रभेद (सं० पु०) शब्दकी विभिन्नता।

शब्दप्रमाण (सं० क्ली०) १ मौखिकप्रमाण, वह प्रमाण जो किसीके केवल शब्दों या कथनके ही आधार पर हो, आप्त या विश्वासपात्र पुरुषकी बात जो प्रमाण स्वरूप मानी जाती है। विशेष विवरण प्रमाण शब्दमें देखो।

शब्दप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दस्य प्रवृत्तिरुत्पत्तिः। वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती और सूक्ष्मा चार प्रकारकी वाङ्‌निष्पत्ति।

शब्दप्राच्छ (सं० त्रि०) शब्दं पृच्छति प्रच्छ-क्विप् (क्विप्वचि प्रच्छ्याय तस्तुकटप्रु जुश्रीणां दीर्घोऽसम्प्रसारणञ्च । पा ३।२।१७८ वार्त्तिक) शब्दजिज्ञासु, जो शब्द पूछते हों।

शब्दप्रामाण्यवाद (सं० पु०) शब्दविचार सम्बन्धी न्यायग्रन्थभेद।

शब्दप्राश (सं० पु०) शब्दके अर्थोंका अनुसंधान, शब्दार्थकी जिज्ञासा।

शब्दविरोध (सं० पु०) वह विरोध जो वास्तविक या भावमें न हो बल्कि केवल शब्दोंमें जान पड़ता हो।

शब्दविशेषण (सं० क्ली०) शब्द एव विशेषणम्। विशेषण शब्द।

शब्दबोध (सं० पु०) शाब्दिक साक्षो द्वारा प्राप्त ज्ञान, वह ज्ञान जो जबानी गवाहीसे प्राप्त हो।

शब्दब्रह्मन् (सं० क्ली०) शब्द एव ब्रह्म। १ शब्दात्मक ब्रह्म, ओंकारादि। वेदादि शास्त्रमें नादविन्दुसम्वलित ओंकार आदि शब्दब्रह्म कह कर वर्णित है।

मैत्रेयोपनिषद्में शब्दब्रह्म और परब्रह्म भेदसे ब्रह्मके दो भेद कल्पित हुए हैं। शब्दब्रह्मसे उत्तीर्ण होने अर्थात् ओंकारादि शब्दसे यथार्थज्ञान उत्पन्न होने पर परब्रह्ममें अधिष्ठित हो जाता है।

"द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्दब्रह्म परञ्च यत्।
शब्दब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥"
(मैत्रेय उप० ६।२२)

२ वेद, श्रुति। ३ स्फोटात्मक शब्द, उच्चारित वर्ण या जो कोई शब्द।

शब्दब्रह्ममय (सं० त्रि०) शब्दब्रह्मके स्वरूप।

शब्दभिद् (सं० स्त्री०) शब्दस्य भित् भेदः। शब्दकी अन्यथा व्याख्या अर्थात् प्रकृत व्याख्या न करके छलपूर्वक शब्दका वैयर्थ्य सम्पादन करना। जैसे, 'दशावरान् भोजयेत्' यहां 'दश एव अवराः निम्नसंख्याः येषां तान्' दश ही अवर अर्थात् न्यून या निम्न संख्या जिसकी तिसको भोजन करायगो, दशसे कम भोजन नहीं करायगो, ऐसा सदर्थ न कर, 'दशभ्योऽवरान्' दशसे भी कम ऐसा असदर्थ व्यवहार करनेसे शब्दका अन्यथा व्यवहार किया जाता है।

शब्दभृत् (सं० त्रि०) शब्दं बिभर्त्तीति शब्द-भृ-क्विप्। शब्द मात्र पालन, धर्मार्थ सिर्फ शब्द धारण।

शब्दभेद (सं० पु०) शब्दकी विभिन्नता।

शब्दभेदिन् (सं० त्रि०) शब्दमनुसृत्य भेत्तुं शीलमस्य भिद्-णिनि। १ शब्दवेधिन देखो। (स्त्री०) २ मलद्वार, गुदा। (पु०) ३ बाणविशेष। रामायणमें लिखा है, कि दशरथने शब्दभेदी बाण द्वारा अन्धकमुनिके पुत्र सिन्धुको मारा था।

शब्दमय (सं० त्रि०) शब्दयुक्त, शब्दविशिष्ट।

शब्दमहेश्वर (सं० पु०) शिव। कहते हैं, कि पाणिनिको व्याकरणका आदेश शिवने ही किया था, इसीसे उनका यह नाम पड़ा।

शब्दमात्र (सं० क्ली०) केवल शब्द।

शब्दमाल (सं० पु०) रन्ध्रवंश, पोला बांस।

शब्दमाला (सं० स्त्री०) १ शब्दसमूह। २ रामेश्वरशर्म विरचित अभिधान।

शब्दयोनि (सं० स्त्री०) शब्दस्य योनिमुत्पत्तिस्थानम्। १ शब्दकी उत्पत्ति। २ वह शब्द जो अपने मूल अथवा प्रारम्भिक रूपमें हो। ३ मूल, जड़।

शब्दरहित (सं० त्रि०) निःशब्द, शब्दशून्य।

शब्दराशिमहेश्वर (सं० पु०) शिव।

शब्दरोचन (सं० क्ली०) तृणभेद, एक प्रकारकी घास।

शब्दवज्रा (सं० स्त्री०) एक देवीका नाम।
(कालचक्र ३।१४४)

शब्दवत् (सं० त्रि०) शब्दो विद्यतेऽस्य शब्द-मतुप् मस्य व। १ शब्दशाली, शब्दविशिष्ट, जिसमें शब्द हो। (अव्य०) शब्देन तुल्यः। शब्दवति (पा ५।१।११५) २ शब्दकी तरह, शब्दके समान।

शब्दवारिधि (सं० पु०) शब्दोंका समूह।

शब्दविद्या (सं० स्त्री०) शब्दविषयक शास्त्र। व्याकरण आदि।

शब्दविज्ञान—जिस वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा शब्दविषयक तत्त्वनिचय जाना जाता है, उसे शब्दविज्ञान कहते हैं। श्रवणेन्द्रिय द्वारा हमें जो वस्तुविषयमें ज्ञान लाभ होता है, वही शब्द है। शब्दसे ध्वनि मात्रका हो बोध होता है। व्यक्त और अव्यक्तके भेदसे यह दो प्रकारका है। जिन सब शब्दोंका अर्थ है और जो वर्ण द्वारा प्रकाश किया जा सकता है, उसका नाम है व्यक्त और जिसका

अर्थ नहीं है अथवा वर्णविशेष द्वारा जो प्रकाशित नहीं होता ऐसी ध्वनिको ही अव्यक्त कहते हैं। मनुष्यके कण्ठ, तालु आदिके अभिघातसे जो नाद या स्वर उत्पन्न होता है, वह आहत या व्यक्तस्वर है, किन्तु शैशवावस्थामें सन्तानादिके मुखसे जो शब्द सुना जाता है, उसको अस्फुट या अव्यक्त कहते हैं। फिर भिन्न वस्तुके परस्पर आघातसे जो शब्द उत्पन्न होता है, वह अनाहत या अव्यक्त ध्वनि है।

यह व्यक्त और अव्यक्त ध्वनि फिर मधुर और कठोरके भेदसे दो प्रकारकी है। निर्दिष्ट समयके मध्य नियमित अनुरणन परम्परा द्वारा मनुष्य कण्ठसे जो श्रुतिमधुर स्निग्ध मञ्जुल ध्वनि उच्चारित या अनुकृत होती है, उसका नाम मधुर है और अनियमित कालके मध्य अनियमित संख्यक अनुरणन परम्परा द्वारा माधुर्यगुणविहीन जो कर्कश शब्द निकाला जाता है, वह श्रुतिसुख उत्पादन न करनेके कारण अतिकठोर कहलाता है। सङ्गीतमें ही एकमात्र ऐसा शब्दविपर्यय होते देखा जाता है।

जड़ द्रव्योंके अणुओंके विकम्पनके कारण ही शब्द उत्पन्न होता है। शितार आदि यन्त्रोंकी तन्त्रीमें आघात करनेसे तार आन्दोलित होता है और पीछे उसका वेग क्रमशः धीर होता आता है। तारके कम्पनकी वृद्धि और उसके क्रमिक ह्राससे शब्दकी भी उन्नति या अवनतिका क्रम अनुभूत होता है। शब्दायमान द्रव्योंके अणु सभी स्थलोंमें आन्दोलित नहीं होते। एक धातु निर्मित थालीके ऊपर कुछ बालू रख कर उसके साथ बालुकणा भी कम्पित होती देखी जाती है। थालीके अणु आन्दोलित नहीं होनेसे बालुकाकणा कभी भी प्रकम्पित नहीं हो सकती। शब्दायमान द्रव्यके अणुओंका आन्दोलन ही शब्दज्ञानका एकमात्र कारण है ऐसा नहीं कह सकते। शब्दायमान द्रव्यकी सन्निहित वायुराशिमें अणुओंकी आन्दोलन सञ्चारित एक तरंग उपस्थित होती है। वह तरङ्ग आ कर जब कर्णपटह पर आघात करती, तभी शब्दज्ञान होता है।

शब्दकर द्रव्यके अणुओंके कम्पनसे पहले उसमें संसृष्ट वायुकणा प्रकम्पित होती है, उस विकम्पनसे तत्संलग्न वायुकणा धीरे धीरे कम्पित हो कर जब कर्णकुहरमें आ पटह पर आघात होती है, तब शब्दका ज्ञान होता है। शब्दायमान द्रव्य और कर्णपटहकी मध्यवर्त्ती वायुमें एक शब्द तरङ्ग वायुकणाओंको स्थानच्युत न करके जो आन्दोलित करती जाती है, वह सहज ही अनुमेय है। वायु द्वारा शब्द परिचालित होता है, यह वैज्ञानिक परीक्षासे स्थिर हुआ है। वायु निकालनेवाले मन्त्रकी सहायतासे किसी गोल कांचके बरतनकी भीतरी वायु निकालते समय यदि उसमें स्थित एक घण्टा बजाया जाय, तो वायुके निष्काशनके अनुसार वह शब्द धीरे धीरे मन्द होता आता है और उस बरतनकी वायु बिलकुल निकाल देने पर फिर शब्द सुनाई नहीं देता। वायु द्वारा जो शब्द चालित होता है उसके और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं। जलमें गोता मारनेसे शब्द सुनाई देता है। वायुकी अपेक्षा काष्ठमें शब्द परिचालकता गुण अधिक है। एक बड़े चौकोर काष्ठके एक प्रान्तमें उंगलीका आघात करनेसे वह उसके दूसरे प्रान्तमें सुनाई देता है। अनेक समय बालक ताम्रकूटसेवनकी कलिकाके ऊपर एक पतला चमड़ा मढ़ कर उसके बीचसे एक पतली सनकी रस्सी बहुत दूर ले जा कर दूसरा प्रांत बांध देते और आपसमें बातचीत करते हैं। इससे यद्यपि स्पष्ट भावमें शब्द सुनाई नहीं देता तो फिर भी कुछ अस्पष्ट शब्द कर्णकुहरमें प्रविष्ट होते हैं। वर्त्तमान Telephone और Telegraph यन्त्रकी सहायतासे इसी प्रकार तांबेके तार बांध कर बातचीत चलती है। पृथिवी द्वारा भी शब्द परिचलित होता है। रातको पृथ्वीमें कान सटा कर ध्यानपूर्वक सुननेसे दौड़ते हुए घोड़ेके टापका शब्द सुनाई देता है। आज कल कलकत्ता म्युनिस्पलिटीके अधिकारी रातको गृहस्थगण कलका जल फजूल खर्च करते हैं या नहीं अथवा जलका लौहनल मोरचा लग कर खराब तो नहीं हो गया है, इसकी परीक्षा करनेके लिये नलमें एक लौहदण्ड लगा कर उसके प्रान्त भागको कानमें सटा जल निकलनेके शब्दका लक्ष्य करते हैं।

परीक्षा द्वारा जाना गया है, कि शब्द वायुतरङ्ग द्वारा प्रति सेकण्डमें १११८ फुट दौड़ता है। दो वा

तीन सेकण्डके पीछे वह शब्द उससे दुनी या तिगुनी दूरीके फासले पर सुनाई देता है। यही कारण है, कि दूरमें किसी वस्तुके शब्द होनेसे वह सहजमें सुनते हैं। वायुकी अपेक्षा जलका वेग अधिक है। जलमें शब्दतरङ्ग प्रति सेकण्डमें ४७०८ फुट चलती है। इस कारण नदीतटकी तोप या वनका शब्द बड़ी दूर तक चला जाता है। लौह द्वारा शब्द प्रति सेकण्डमें १६८०० फुट, ताम्र द्वारा ११६०० फुट और किसी किसी काष्ठ द्वारा १५००० फुट तक दौड़ता है।

शब्दायमान द्रव्यका अणु जितना ही आन्दोलित होता है, शब्द भी उतना ही अधिक होता है। जहां आन्दोलन कालमें अणु अल्प उन्नत और अवनत होता है, वहां शब्दकी भी स्वल्पता होती है। फिर शब्द वह वायुका घनत्व जहां जितना अधिक होता है, वहां शब्द भी अधिकतर गभीर होता है। पर्वतादिकी ऊपरी वायु नीचेकी वायुसे बहुत पतली है, इस कारण अनेक समय गिरिसङ्कटादिमें जब तक जोरसे नहीं कहा जायेगा, तब तक दूरके आदमी उसे नहीं सुन सकते। यदि शब्दायमान द्रव्यकी ओरसे वायु श्रोताकी ओर बहे, तो शब्द जैसा गभीरतर सुनाई देता है, विपरीत ओर बहनेसे वैसा सुनाई नहीं देता। दुर्गकी तोपध्वनि उसका प्रमाण है। ग्रीष्मकालमें दक्षिणी वायु उस शब्दको उत्तरकी ओर तथा शीतकी उत्तरी वायु उसे दक्षिणकी ओर ले जाती है। वह शब्द फिर दूरत्वके वर्गानुसार क्रमशः मन्दीभूत होता है। १०० हाथ दूरमें घंटा बजानेसे जैसा शब्द सुनाई देता है, ५० हाथ दूरमें वह यदि उसी तरह जोरसे बजाया जाय, तो पूर्वोक्त ध्वनिसे चार गुणा शब्द सुनाई देगा। फिर ५० हाथकी दूरी पर घंटा बजानेसे जो शब्द सुना जाता है, १०० हाथकी दूरी पर वह शब्द सुननेमें उसी तरह वैसे चार घण्टे बजाने होंगे। इससे जाना जाता है, कि दूरी दुनी होनेसे शब्दका परिमाण चौगुनी कम होती है।

किसी उच्च प्राचीर, घरकी दीवाल, अट्टालिका या पर्वतादिसे शब्द टकरा कर जब लौटता है, तब प्रतिध्वनि होती है। कोई कोई शब्द ४५ फुट दूरमें अड़चन पा कर लौटते समय प्रतिध्वनित होता है। मनुष्यका शब्द यदि ११२ फुट दूरमें प्रतिबन्धक पा कर प्रतिफलित हो, तो स्पष्ट प्रतिध्वनि सुननेमें आती है। कभी कभी एक शब्द ही समान्तराल पदार्थोंसे बार बार प्रतिस्खलित हो कर पुनः पुनः प्रतिध्वनि उत्पन्न करता है।

शब्दविरोध (सं० पु०) १ शब्दवैकल्य। २ विरुद्ध शब्दका व्यवहार।

शब्दविशेष (सं० पु०) विशिष्ट-शब्द। बहुवचन विभिन्न शब्द जाना जाता है। सांख्यकारका कहना है, कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित् तथा षड्ज, ऋषभ, गांधार मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद स्वरग्राम शब्दविशेष कहा गया है।

शब्दवृत्ति (सं० स्त्री०) शब्दका कार्य। (अलङ्कारशास्त्र)

शब्दवेध (सं० पु०) शब्द सुन कर उसी शब्दके अनुसार शब्दकारी अदृश्य वस्तुको विद्ध करना।

शब्दवेधित्व (सं० क्ली०) श्रुत शब्दानुसरण द्वारा वेधनका भाव या कार्य।

शब्दवेधिन् (सं० पु०) शब्दमनुसृत्य वेद्धुं शीलमस्य विध-णिनि। १ वह मनुष्य जो आंखोंसे विना देखे हुए केवल शब्दसे दिशाका ज्ञान करके किसी व्यक्ति या वस्तुको वाणसे मारता हो। हमारे यहां प्राचीन कालमें ऐसे धनुर्धर हुआ करते थे जो आंख पर पट्टी बांध कर किसी व्यक्तिका शब्द सुन कर या लक्ष्य पर की हुई टंकार सुन कर ही यह समझ लेते थे कि यह व्यक्ति अथवा वस्तु अमुक ओर है और तब ठीक उसी पर वाण चलाते थे। २ अर्जुन, धनञ्जय। ३ वाणविशेष। ४ दशरथ।

शब्दवेध्य (सं० त्रि०) शब्दानुसरणपूर्वक वेधके योग्य, सिर्फ शब्द अनुसरण कर जिसे विद्ध किया जाय।

शब्दशासन (सं० क्ली०) व्याकरणके नियम आदि।

शब्दशक्ति (सं० स्त्री०) शब्दस्य शक्तिः सामर्थ्यं अर्थात् शब्दादयमर्थोवोद्धव्यः इतीश्वरेच्छा शक्तिः। शब्दकी वह शक्ति जिसके द्वारा उसका कोई विशेष भाव प्रदर्शित होता है। व्याकरण, अभिधान, उपमान, आप्तवाक्य और लौकिक व्यवहारसे शब्दकी इस शक्तिकी उपलब्धि होती है।

व्याकरण।

व्याकरणोक्त सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त, समास

और तद्धितांत शब्दोंकी शक्ति या अर्थ निम्नलिखित प्रकार से जाना जाता है। क्रमशः उदाहरण द्वारा दिखलाया जाता है। यथा—'गामानय' इस शब्दके उच्चारित होते ही प्रथमतः (गो—अम्+आ—नी—हि) गो अर्थात् गलकम्बलादि विशिष्ट जंतुविशेषकी अनुभूति हो कर पीछे 'गो' और 'अम्' इस प्रकृति प्रत्ययके योगसे उत्पन्न 'गाम' शब्द और उसके अर्थसे 'गलकम्बलादिविशिष्ट किसी जंतुका' बोध होगा। आ=वैपरीत्य, नी=ले जाना; लोट हि=अनुज्ञा, प्रकाश करना, इन तीनोंके (उपसर्ग, प्रकृति और प्रत्यय) योगसे उत्पन्न 'आनय' शब्द द्वारा ले जानेका विपरीत भाव अर्थात् लाना सम्बंधीय अज्ञा दी जाती है, ऐसा अर्थ समझा जायेगा। अधिकंतु मध्यम पुरुषीय प्रत्यय 'हि' व्यवहृत होनेके कारण 'त्वं' तुम लाओ, ऐसा ही अर्थ करना चाहिये। अभी स्पष्ट देखा जाता है, कि 'गामानय' ऐसा शब्द उच्चारित होनेसे उक्त प्रकारसे उसके अंतर्भुक्त पृथक् पृथक् वर्ण या शब्दके प्रत्येकगत अर्थके साथ स्थूल अर्थ 'त्वं गां आनय' तुम गलकम्बलादि विशिष्ट कोई जंतु अर्थात् गायको लाओ, ऐसा जाना जायेगा। व्याकरणानभिज्ञ स्थूलदर्शी व्यक्ति या अश्रुतपूर्वशब्द बालकके सम्बंधमें उक्त 'गामानय' शब्दका और तरहसे शब्दबोध हो सकता है, यथा—स्थूलदर्शी व्यक्ति किसी अभिज्ञके मुखसे तथा बालक किसी वयोवृद्धके मुखसे 'गामानय' शब्द सुननेके बाद यदि उसी कथनानुसार किसी दूसरे व्यक्तिको एक गौ लाते देखे और इस प्रकार बार बार देखे, तो आगे चल कर यदि कोई उनके ऊपर ही लक्ष्य कर 'गामानय' ऐसी उक्ति करे, तो वे भी उस समय एक गौ ले आवेंगे। इसमें सन्देह नहीं; क्योंकि यह भी एक ईश्वरेच्छाशक्ति है। कृदन्त—'पाचक' (पच णक्) शब्द द्वारा पहले पच=पाक करना या पाक क्रिया, पीछे उस धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमें णक प्रत्यय होनेसे उसका (पाकक्रिया) आश्रय अर्थात् कर्त्ता समझा जाता है; अतएव धातु और प्रत्ययके योगसे उत्पन्न 'पाचक' शब्दमें पाकक्रियावान् पुरुषका बोध होगा। इस प्रकार कर्म प्रभृति किसी वाच्यमें प्रत्यय करनेसे भी तत्-प्रत्ययान्तर तदाश्रित कह कर निर्दिष्ट होता है। समास—'नीलघटः' (नीलः नीलाभिन्नः नीलगुणविशिष्ट इति घटः) नीलघट कहनेसे उस घट वा घटीय सभी परमाणुओंको ही नीलगुणयुक्त समझना होगा; क्योंकि, शुक्लादिगुण, गुण और गुणी इन दोनोंका बोध कराता है। विशेषतः यहां नील और घट ये दो विशेष्य और विशेषण कर्मधारय समास हुए हैं, ऐसा शब्दबोध होता है। फलतः जहां कर्मधारय समास होगा वहां विशेष्य और विशेषण पदकी अभिन्नता या एकाधिकरणवृत्तित्व समझा जायेगा। फिर जहां उन दोनोंका एकाधिकरणवृत्तित्व या अभिन्नता न समझी जायेगी, वहां समास न होगा; जैसे 'नीलेन घटः' नीलवर्ण द्वारा चिह्नित घट; यहां घट नीलवर्ण द्वारा चिह्नित है, केवल यही समझा जायेगा अर्थात् इस घटके बहिर्भागको छोड़ उसके अभ्यन्तर भागमें नीलवर्णका कुछ भी संस्रव नहीं है, ऐसा जानना होगा। इस प्रकार प्रत्येक समासके सम्बन्धमें ही अवस्था जान कर उस उस समासान्त पदका शब्दग्रह करना होगा। तद्धित—'पाञ्चालः' (पञ्चालानां राजा अपत्यं वा पञ्चाल-अण्) पञ्चाल ऐसा शब्द उच्चारित होनेसे पहले पञ्चालदेश या वहांके अधिवासीका, पीछे अण् प्रत्ययको लक्ष्य कर उनकी राज-सन्तानका बोध होता है।

अभिधान।

अभिधानका अर्थ कथन या शब्दकोष है, यदि कोई महाकवि किसी स्थानमें व्याकरणविरुद्ध कोई प्रयोग कर गये हों या कोई कोषकार अपने संग्रहमें ऐसा शब्द उद्धृत करते हों, तो उससे भी शब्दग्रह होता है, यथा—'अस्' धातुके उत्तर लिट् विभक्तिका णल् प्रत्यय करनेसे व्याकरणमतानुसार अस् धातुकी जगह 'भू' आदेश हो कर 'बभूव' ऐसा पद बनता है तथा यह सर्व वैयाकरण सम्मत है, किंतु महाकवि कालिदास "तेनास लोकः पितृमान् विनेत्रा तेनैव शोकापनुदेन पुत्री" रघुके इस श्लोकमें अस+अ (णल्)=आस; ऐसा प्रयोग कर गये हैं, इस कारण वह व्याकरणविरुद्ध होने पर भी अभिधान अर्थात् महाकविका कथन होनेसे उससे भी शब्दग्रह होगा। क्योंकि कहा है, कि—अभिधान ही कृत्, तद्धित, समास आदिका प्रकृत व्यवस्थापक है;

लक्षण अर्थात् व्याकरणादिका अनुशासन केवल अनभिज्ञों के ज्ञानका प्रथम पथदर्शक है।

उपमान।

उपमान द्वारा भी शाब्दबोध होता है; जैसे, जिस व्यक्तिने किसी दिन 'गवय' नामक जन्तुको नहीं देखा उसे यदि कहा जाय, कि 'गौरिव गवयः' गवय नामक जो जंतु है, वह ठीक गायकी तरह है, तो वह अदृष्टगवयः व्यक्ति इस उक्ति द्वारा निश्चय ही गवय समझ सकेगा। उस व्यक्तिको गौ सम्बंधीय ज्ञान रहना आवश्यक है।

आप्तवाक्य।

आप्त अर्थात् जो जगत्के सभी पदार्थों के प्रकृत तत्त्व से अवगत हैं, उनके कहनेसे भी शब्दकी यथार्थ शक्ति निरूपित नहीं हो सकती। जैसे यदि कोई भ्रमप्रमादरहित मनुष्य कहे "विषस्य विषमौषधम्" विष प्रयोग करनेसे विषाक्त व्यक्ति आरोग्यलाभ कर सकता है, तो यद्यपि कमसे कम देखा जाता है, कि एक विष देहमें प्रविष्ट हो कर उसको विषक्रियाके फलसे रोगी मर जाता है। ऐसी अवस्थामें पुनः उस पर विषप्रयुक्त होनेसे वह किस प्रकार बच सकेगा? तो भी उक्त अभ्रान्त व्यक्तिकी बात पर इतना विश्वास है, कि वह इस असम्भवनीय विषयको हीं सम्पूर्ण सम्भवनीय समझने लगेगा।

लौकिक शब्द।

लौकिक अर्थात् जो किसी वेदपुराणादिमें व्यवहृत नहीं होता, केवल देशीय लोग अपने अपने कार्यसौकर्यार्थ अपने अपने देशमें व्यवहारके लिये कुछ शब्दोंकी सृष्टि कर गये हैं और करते हैं, उससे भी शब्दार्थको अवगति हो सकती है।

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्यार्थके भेदसे शब्दकी शक्ति तीन प्रकारकी है, उनमेंसे 'गामानय' आदि दृष्टान्त द्वारा वाच्यार्थका उल्लेख किया गया है। लक्ष्य अर्थात् लक्षण द्वारा तथा व्यङ्ग अर्थात् व्यञ्जना द्वारा शक्तिका निरूपण होता है।

किसी जगह यदि शब्दका प्रकृत अर्थ जाननेमें बाध अर्थात् विघ्न या असङ्गत मालूम हो, तो प्रसिद्धि या प्रयोजन हेतुक जिसके द्वारा शब्दके अर्थान्तरकी प्रतीति होती है वह अर्पिता है अर्थात् स्वाभाविकसे इतर या ईश्वरानुद्भाविता शक्ति ही शब्दकी लक्षणा शक्ति है; जैसे, 'कलिङ्गः साहसिकः' कलिङ्ग साहसी यह कहनेसे कलिङ्ग शब्दका प्रकृत अर्थ यदि कलिङ्गदेश माना जाय, तो उससे किसी प्रकारका अर्थबोध करना एकदम कठिन हो जाता है; क्योंकि चेतनधर्म साहसिकता अचेतन देशादिमें कदापि सम्भव नहीं, अतएव प्रसिद्धि हेतुक लक्षणा शक्ति द्वारा कलिङ्ग शब्दमें उस देशके पुरुषादिकी प्रतीति हो 'कलिङ्गवासी साहसी' होते हैं, ऐसा अर्थ करना चाहिये। फिर 'गङ्गायां घोषः प्रतिवसति' घोष गङ्गामें वास करता है, इत्यादि स्थानोंमें गङ्गारूप जलमय स्थानमें वास करना असंभव होनेसे शैत्य-संप्लव या पावनत्वरूप प्रयोजन हेतुक लक्षणा शक्ति द्वारा गङ्गा शब्दसे उसके तटका बोध हो कर 'घोष शैत्यसंप्लव या पावनके लिये गङ्गातट पर वास करता है' ऐसा अर्थ समझा जायगा।

उक्त लक्षणा शक्तिके जहत्स्वार्था, अजहत्स्वार्था, उपादानलक्षणा, लक्षणलक्षणा इत्यादि भेद, तद्भेद रूप परम्परासे अस्सी प्रकारके भेद कल्पित हुए हैं।

शब्दकी जिस शक्ति द्वारा उसके वाच्यार्थका बोध करा कर पीछे उससे यदि कोई दूसरा समझा जाय, तो उसे व्यञ्जना कहते हैं। यह अविधामूलक और लक्षणामूलकके भेदसे प्रथमतः दो भागोंमें विभक्त है।

अनेकार्थ शब्द निम्नोक्त संयोगादि कारण द्वारा एक अर्थमें नियन्त्रित अर्थात् विधिवद्ध होने पर भी यदि वह उसके अन्यान्य अर्थोंका बोध करावे, तो उसे अविधामूला व्यञ्जना कहते हैं। अर्थात् जहां संयोगादि द्वारा नियन्त्रित नहीं होनेसे वहां शब्दके सभी अर्थ समझ जायेंगे।

संयोग या सङ्ग—"सशङ्खचक्रो हरिः" यहां शङ्ख और चक्रके साथ वर्त्तमान हरि कहनेमें (हरिमें शङ्ख और चक्रका संयोग रहनेसे) हरि शब्दके अन्य किसी अर्थकी उपलब्धि न हो कर उससे केवल विष्णुका ही बोध होता है।

विप्रयोग या वियोग—"अशङ्खचक्रो हरिः" यहां शङ्खचक्र परित्यक्त होने पर भी हरि शब्दसे विष्णुको छोड़ और किसीका अर्थ न होगा।

साहचर्य—"भीमार्जुनौ" अर्जुन शब्दसे कार्त्त-

वीर्यादिका बोध होने पर भी यहां भीम शब्दकी साहचर्य-प्रयुक्त व्यञ्जनाशक्ति द्वारा पार्थका ही बोध होगा।

विरोधिता—"कर्णार्जुनौ" कर्ण शब्दसे श्रोत्रादि समझे जाने पर भी अर्जुनके साथ वैरिताप्रयुक्त व्यञ्जनाशक्ति द्वारा कुन्तीपुत्र ही समझा जायेगा।

प्रयोजन—"स्थाणु वन्दे" भवबन्धनसे मुक्तिके लिये शिवकी वन्दना करता हूं ; यहां पर भवबन्धनसे मुक्तिलाभ प्रयोजन होनेके कारण व्यञ्जनाशक्ति द्वारा स्थाणु शब्दसे शाखापल्लवरहित शुष्क तरुकाण्डका बोध न हो कर शिवका ही बोध होगा। क्योंकि सामान्य तरुकाण्डको मुक्तिदानकी क्षमता नहीं है।

प्रकरण या प्रस्ताव—प्रस्तावानुसार भी बह्वर्थ शब्द एकार्थमें प्रयुक्त होता है। जैसे, नाटकादिमें राजा आदिके प्रति कहा जाता है, "सर्व जानाति देव" आप सब कुछ जानते हैं ; यहां प्रस्तावानुसार देव शब्दसे राजाको छोड़ अन्य किसी देवताका बोध न होगा।

चिह्न—"कुपितो मकरध्वजः" कोपचिह्नयुक्त मकरध्वज कहनेसे, मकरध्वज शब्दसे कामदेवका ही बोध होगा ; क्योंकि चेतनधर्म कोप अचेतन समुद्रार्थक मकरध्वजमें सम्भव नहीं है।

सन्निधि—शब्दान्तरके सान्निध्यप्रयुक्त अनेकार्थ शब्दसे एकार्थका बोध होता है, जैसे—"देवः पुरारिः" पुरारि शिव हैं; यहां पुरारि शब्दके सान्निध्यप्रयुक्त देव शब्दसे शिवको छोड़ अन्य किसी देवताका बोध न होगा ; क्योंकि शिव ही पुरासुरके शत्रु और हन्तारक हैं।

सामर्थ्य—"मधुना मत्तः पिकः" वसंत कर्तृक अर्थात् वसन्तकालमें कोकिल मत्त हो जाता है; कोकिलको मत्त करनेकी क्षमता एक वसन्तकालमें ही है इस कारण यहां मधु शब्दसे मद्यादिका बोध न हो कर केवल वसन्तकालका ही बोध होता है।

औचित्य—"पातु वो दयितामुखम्" अपनी दयिताकी ओर गमन करे; यहां गमन करनेमें दयिताओंके मुखके ऊपर गमन करना उचित या सम्भव नहीं होता ; सुतरां मुख शब्दके अभिमुखार्थ ग्रहण करना ही कर्त्तव्य है।

देश—देश अर्थात् स्थानके निर्दिष्टप्रयुक्त शब्दकी एकार्थताकी उपलब्धि होती है ; जैसे, "विभाति गगने चन्द्रः" आकाशमें चन्द्रमा चमकते हैं यहां आकाश चन्द्रका निर्दिष्ट स्थान होनेके कारण चन्द्र शब्दसे कर्पूरादि न समझा जायेगा।

काल—कालानुसार भी अनेकार्थ शब्दके सिर्फ एकार्थका बोध होता है, जैसे—"निशि चित्रभानुः" रात्रिमें वह्नि धधकती है; चित्रभानु शब्दसे सूर्यका बोध होने पर भी रात्रिकालमें उनका दर्शन असम्भव है, इसलिये यहां वह्निका ही बोध होता है।

व्यक्ति या पुंस्त्वादि—कोई कोई अनेकार्थ शब्द पृथक् पृथक् लिङ्गमें पृथक् पृथक् अर्थ प्रकाश करता है; जैसे, रथाङ्ग शब्द नपुंसक लिङ्गमें चक्रको ही व्यक्त करता है; चक्रवाकादि अर्थमें उसका व्यवहार नहीं होता।

स्वर—उच्चारणके तारतम्यानुसार भी भिन्न भिन्न रूपमें शब्दार्थकी प्रतीति होती है। वेदमें लिखा है, "इन्द्रशत्रुर्विवर्द्धस्व" यहां इन्द्रशत्रु शब्दको बहुव्रीहि समासान्तरकी तरह उच्चारण करनेसे इन्द्र विवर्द्धित हों ऐसा अर्थ प्रकट करता है; किन्तु वही शब्द फिर तत्पुरुष समासांतकी तरह उच्चारित होनेसे उनका शत्रु वृत्र विवर्द्धित हो, इस अर्थकी अभिव्यक्ति होती है। इसके सिवा सचराचर भाषामें भी काकु अर्थात् स्वरविकृति द्वारा सहज शब्दका अर्थवैलक्षण्य होता है; जैसे कोई युवती अपनी सखीसे कहती है, कि "सखि! प्रियतम पति पराधीनताप्रयुक्त कार्यवशतः दूर देश गये हैं, किन्तु इस अलिकुलगुञ्जित कोकिलकूजित सुरभि समयमें क्या वे आवेंगे नहीं?' यहां 'वे आयेंगे नहीं' यह सहज उक्ति है, पूछनेके बहाने उच्चारित होनेके कारण इससे उनका आना नहीं होगा, ऐसे अर्थकी अभिव्यक्ति न हो कर उसके विपरीत अर्थका विकाश होता है, कि यद्यपि वे कार्यानुसार विदेश गये हैं, फिर भी क्या इस वसन्त समयमें वे एक बार नहीं आयेंगे? अर्थात् अवश्य आयेंगे।

आकाङ्क्षा, योग्यता और आसक्ति आदि द्वारा भी वाक्य या शब्दोंका शक्तिग्रह होता है।

वाक्य और महावाक्य शब्द देखो।

शब्दशास्त्र (सं० क्लो०) वह शास्त्र जिसमें भाषाके भिन्न भिन्न अङ्गों और स्वरूपोंका विवेचन तथा निरूपण किया जाय, व्याकरण ।

शब्दशेष (सं० लि०) शब्दका शेषांश ।

शब्दश्लेष (सं० पु०) अलङ्कारविशेष । इसमें एक शब्द द्वारा श्लेषोक्ति प्रकाश की जाती है । अङ्गरेजीमें इसे Punning कहते हैं ।

शब्दसंज्ञा (सं० स्त्री०) शब्दका एक पर्यायक नाम । (पा १।१।६८)

शब्दसम्भव (सं० पु०) शब्दानां सम्भवः उत्पत्तिर्यस्मात् । वायु जो शब्दकी उत्पत्तिका कारण है अथवा जिससे शब्दका अस्तित्व सम्भव होता है ।

शब्दसाधन (सं० पु०) व्याकरणका वह अङ्ग जिसमें शब्दोंकी व्युत्पत्ति, भेद और रूपान्तर आदिका विवेचन होता है । शब्दोंके संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रिया-विशेषण, सर्वनाम आदि जो भेद होते हैं, वे भी इसीके अन्तर्गत हैं ।

शब्दसाह (सं० लि०) १ शब्दवेधि । २ शब्दबाधा-निवारक । (भारत ३।२२।५)

शब्दसिद्धि (सं० स्त्री०) १ शब्दका पूर्ण व्यवहार । २ काव्यकल्पलतावृत्तिपरिमल नामक ग्रन्थका एकांश ।

शब्दसौन्दर्य (सं० पु०) शब्दोंके उच्चारणकी सुगमता ।

शब्दसौष्ठव (सं० पु०) किसी लेख या शैली आदिमें प्रयुक्त किये हुए शब्दोंकी कोमलता या सुन्दरता ।

शब्दस्फोट (सं० पु०) वाक्यस्फोट, वह्वाडम्बर ।

शब्दस्मृति (सं० स्त्री०) शब्दका स्मरण ।

शब्दहीन (सं० क्ली०) शब्दोंका वह रूप या प्रयोग जिसे आचार्योंने न प्रयुक्त किया हो ।

शब्दाकर (सं० पु०) शब्दानां आकरः । शब्दकी मूल या प्रकृति, शब्दोंका उत्पत्तिस्थान ।

शब्दाक्षर (सं० क्ली०) १ शब्द और अक्षर । २ शब्द ज्ञापक अक्षर । ३ ओंम शब्द ।

शब्दाख्येय (सं० लि०) ओरसे या चिल्ला कर कहा जाने-वाला शब्द ।

शब्दाडम्बर (सं० पु०) बड़े बड़े शब्दोंका ऐसा प्रयोग जिसमें भावको बहुत ही न्यूनता हो, केवल शब्दोंकी सहायतासे खड़ा किया जानेवाला आडम्बर, शब्दजाल ।

शब्दाढ्य (सं० क्लो०) काँसा नामकी धातु ।

शब्दातिग (सं० पु०) विष्णु । (भारत १३।१४९।११०)

शब्दातीत (सं० पु०) वह जो शब्दसे परे हो अर्थात् ईश्वर ।

शब्दाधिष्ठान (सं० क्ली०) शब्दस्य अधिष्ठानं आश्रय-स्थानम् । कर्ण, कान ।

शब्दाध्याहार (सं० क्लो०) वाक्यको पूरा करनेके लिये उसमें अपनी ओरसे और शब्दका जोड़ना ।

शब्दानुकरण (सं० क्लो०) शब्दका अनुकरण, शब्द नकल करना ।

शब्दानुकृति (सं० स्त्री०) शब्दानुकरण ।

शब्दानुशासन (सं० क्ली०) शब्दस्य अनुशासनं प्रकृति-प्रत्ययादिना व्युत्पादनं यत्र । व्याकरण ।

शब्दानुसृष्टि (सं० स्त्री०) शब्दानुशासन ।

शब्दाभिवह (सं० लि०) शब्दवाही, शब्दवहनकारी शिरा आदि । (सुश्रुत)

शब्दायमान (सं० लि०) शब्दित, शब्दविशिष्ट ।

शब्दार्थ (सं० पु०) १ शब्दका अर्थ अर्थात् अभिधेय या वाच्य । २ शब्द तथा अर्थ । (पा २।२।३१)

शब्दालङ्कार (सं० पु०) साहित्यमें वह अलंकार जिसमें केवल शब्दों या वर्णोंके विन्याससे भाषामें लालित्य उत्पन्न किया जाय । जैसे,—अनुप्रास आदि ।

शब्दित (सं० लि०) ध्वनित, शब्द किया हुआ, आहूत ।

शब्दिन् (सं० लि०) शब्दविशिष्ट ।

शब्देन्द्रिय (सं० क्ली०) कर्ण, कान ।

शम (सं० पु०) शम्यत इति शम-घञ । (हलश्च । पा ३।३।१२१) १ शान्ति । (अमर) २ मोक्ष । (त्रिकाण्डशेष) ३ पाणि, हाथ । (रामाश्रम) ४ उपचार । (राजनि०) ५ अन्तरिन्द्रियनिग्रह । (वेदान्तसार) ६ वाह्यन्द्रिय निग्रह । (भाग० ३।३२।३३) ७ सर्वकर्मनिवृत्ति । (गीता ६।३) ८ शान्त रसका स्थायी भाव । (साहित्यद० ३।२३८) ९ निवृत्ति । (राजतर० २।५६) १० मनः-संयम । ११ क्षमा । १२ तिरस्कार ।

शमक (सं० लि०) शामयतीति शम-णिच्-ण्वुल् नोदात्तोप-देशस्येति न दीर्घः, (पा ७।३।३४) शान्तिकारक, शान्ति करनेवाला ।

शमकृत् (सं० त्रि०) शमक, प्रशमकारी।

शमगिर (सं० स्त्री०) शान्तिकथा, प्रशमोक्ति, जो वाक्य सुननेसे अन्तरमें शान्तभावका उदय हो।

शमठ (सं० पु०) शम-अठ वाहुलकात् (जृशमोरप्यठः। उण् १।१०१) १ महाभारतके अनुसार एक ब्राह्मण। (महाभारत वनपर्व) २ गंडीर नामक शाक। ३ तूदभेद, एक प्रकारका तूत या शहतूत।

शमता (सं० स्त्री०) शान्ति, उपशम, निवृत्ति।

शमथ (सं० पु०) शम-अथ वाहुलकात् (इशमिदमिभ्यश्च। उण् ३।११४) १ शान्ति। (अमर) २ मन्त्री। (मेदिनी)

शमन (सं० क्ली०) शम ल्युट्। १ यज्ञार्थ पशुहनन, यज्ञके लिये होनेवाला पशुओंका वलिदान। २ शान्ति। ३ मनकी स्थिरता। ४ निवृत्ति, रोकना। ५ उपशम, कम होना। ६ चर्वण, चवाना। ७ हिंसा। ८ प्रतिसंहार, प्रतिनिवृत्ति। (मार्क०पु० ७८।१३) ९ निवारक।

(पु०) शमयति पापिनां कर्म आलोचयतीति कर्त्तरि ल्यु। १० यम। ११ मृगभेद। १२ अन्न। १३ मटर। १४ तिरस्कार, शाप। १५ आघात, चोट। १६ दमन। १७ एक प्रकारका वस्तिकर्म जो मोथा, प्रियङ्गु, मुलेठी और रसाञ्जन आदि मिले हुए दूधसे किया जाता है। यह वस्तिप्रयोग करनेसे सभी दोषोंका उपशम होता है।

१८ धूमपानभेद। इसमें इलायची, तगर, कुड़ा, जटामांसी, गंधतृण, दालचोनी, तेजपत्र, नागकेशर, रेणुका, व्याघ्रनखी, नखी, सरल, वाला, गुग्गुल, धूना, शिलारस, अगुरु, पृक, खसकी जड़, भद्रदारु, कुङ्कुम, केशर और पुन्नाग इन कई औषधियोंका धूआं चालीस उंगली लंबी नली या सटक आदिके द्वारा पीते हैं इससे वात आदि दोषोंका नाश होना माना जाता है।

भावप्रकाशके मतसे नल वनानेका नियम इस प्रकार है,—नलको तीन खण्ड और तीन गांठका कर लेना होगा। यह नल कनिष्ठ अङ्गुलीके समान और भोतरका छेद उड़दके वरावर होगा। इसकी लम्वाई रोगीकी उंगलीसे ४० उंगली होगो। ऐसे नल द्वारा शमनधूमपान करना होता है।

(स्त्री०) १९ शमनी, रात्रि, रात। २० कषायभेद। जिन सव कषाय अर्थात् क्वाथादि द्वारा वमनादि पञ्चकर्मके विना भी वातादि दोषोंका नाश होता है, उसीका नाम शमनी है।

२१ वस्तिभेद, शमन नामक निरुहवस्ति। प्रियङ्गु, मुठेली, मोथा और रसाञ्जन इन्हें दूधके साथ मिला कर जो वस्ति-प्रयोग किया जाता है, उसे शमनवस्ति कहते हैं।

वारह उंगली लम्वा एक सरकंडा ले कर उसके चारों ओर ८ उंगली तक २ तोला एलादिगणका कल्क लेप कर छायामें सुखाना होगा। जव अच्छी तरह सूख जाय, तव सरकंडेको धीरे धीरे अलग करना होता है। वादमें उस कल्कवर्त्तिको स्नेहाक्त कर उसके अगले भागको अङ्गारकी आगसे जलाना होगा। पीछे नलका दूसरा भाग मुखमें लगा कर धूमपान करे और मुखसे ही वह धूम निकाले। इसके वाद नाकसे धूम ग्रहण कर वह धूम मुखसे निकालना होगा। (भावप्रकाश)

२२ सम, उद्धत और विषम वातपित्तादि दोनोंको समान करनेवाला। २३ अरुण, लाल।

शमनस्वसृ (सं० स्त्री०) शमनस्य यमस्य स्वसा। यमकी भगिनी अर्थात् यमुना। (अमर)

शमनी (सं० स्त्री०) शमयति नृणां व्यापारान् शम ल्यु, स्त्रियां ङीष्। १ रात्रि, रात। शम्यतेऽनेन इत्यर्थे करणे ल्युट्-ङीष्। २ शान्तिकारयित्री। (भाग० ३।२४।३६) शमन देखो।

शमनीय (सं० त्रि०) शम-अनीयर्। शमन करने योग्य, दवाने या शांत करने योग्य।

शमनीषद् (सं० पु०) शमन्यां रात्रौ सीदन्ति सद्-क्विप्, षत्वं। निशाचर, राक्षस। (त्रिका०)

शमयितृ (सं० त्रि०) शम-णिच्-तृच्। शमनकारक, शांतिकारक, निवारक।

शमल (सं० क्ली०) शम (शाकशम्योर्णित्। उण् १।१११) इति कल। १ विष्ठा, गुह। २ पाप, गुनाह। (संक्षिप्तसार उणा०)

शमवत् (सं० त्रि०) शम अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य व। शमगुणविशिष्ट।

शमशम (सं० त्रि०) १ सुखशांतिविशिष्ट। (पु०) २ शिवका एक नाम। (भारत १२ पर्व)

शमशेर (फा० स्त्री०) १ वह हथियार जो शेरकी पूंछ अथवा नखके समान हो अर्थात् तलवार, खड्ग आदि। २ तलवार।

शमा (अ० स्त्री०) १ मोम। २ मोम या चर्बीकी बनी हुई बत्ती जो जलानेके काममें आती है, मोमबत्ती।

शमादान (फा० पु०) वह आधार जिसमें मोमकी बत्ती लगा कर जलाते हैं। यह प्रायः धातुका बना हुआ और अनेक आकार प्रकारका होता है।

शमान्तक (सं० पु०) शमस्य शान्तेरन्तकः। कामदेव।

शमाला (सं० स्त्री०) राजदत्त ब्राह्मण-शासनभेद। (राजतर० ७।१५६)

शमि (सं० स्त्री०) १ शिम्बिधान्य। मूंग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया आदिको शिम्बी धान्य कहते हैं। २ शमीवृक्ष, सफेद कीकर। शमी देखो। (पु०) ३ अन्धकके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश) ४ उशीनरके एक पुत्रका नाम। (भाग० ९।२३।२१) ५ यज्ञ या यज्ञरूप कर्म। (ऋक् ३।५५।२)

शमिक (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। (पा ४।१।१०४)

शमिका (सं० स्त्री०) शमीवृक्ष।

शमिज (सं० पु०) लाल कुलथी।

शमिजा (सं० स्त्री०) १ लाल कुलथी। २ शिम्बी धान्य।

शमित (सं० त्रि०) शम-क्त। १ जिसका शमन किया गया हो। २ शान्त, ठहरा हुआ।

शमितृ (सं० त्रि०) शम तृच्। १ निवारक, शान्तिकारक। २ यज्ञमें पशुका बलिदान करनेवाला।

शमिन् (सं० त्रि०) शमो विद्यतेऽस्य शम-इनि। शान्त, शमगुणविशिष्ट।

शमिपत्र (सं० क्ली०) पानीमें होनेवाली लजालू नामकी लता।

शमिपत्रा (सं० स्त्री०) शमिपत्र देखो।

शमिर (सं० पु०) १ शमीवृक्ष। २ सोमराजी, बकुची।

शमिरोह (सं० पु०) शिव, महादेव।

शमिला (सं० स्त्री०) चमेलीकी जातिका एक प्रकारका पौधा।

शमिष्ठ (सं० त्रि०) अयमनयोरतिशयेन शमः। दो या बहुतोंमें जो बड़ा शान्त हो।

शमिष्ठल (सं० क्ली०) एक स्थानका नाम

शमी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात सकण्टक वृक्ष, छिकुर, छोंकर। इसे महाराष्ट्रमें शमी, खैरी; कलिङ्गमें वणि, कावणि और उत्कलमें शुमी कहते हैं। संस्कृत पर्याय—शक्तफला, शिवा, शक्तफली, शांता, तुङ्गा, कचरिपुफला, केशमथनी, ईशानी, लक्ष्मी, तपनतनया, इष्टा, शुभकरी, हविर्गन्धा, मेध्या, दुरितदमनी, शक्तफलिका, समुद्रा, मङ्गल्या, सुरभि, पापशमनी, भद्रा, शङ्करी, केशहन्त्री, शिवाफला, सुपत्रा, सुखदा। यह छोटी और बड़ीके भेदसे दो प्रकारकी है।

यह बङ्गाल और बिहारमें सर्वत्र, प्रायोद्वीपके पश्चिम, जावा (ब्रह्म) और सिंहलमें बहुत पाई जाती हैं। इसकी लकड़ी बहुत कुछ खैरकी लकड़ीसे मिलती जुलती है, किंतु इसमें बहुतसे छोटे छोटे छेद होते हैं। इसकी डालसे खैरकी तरह एक प्रकारका लासा पाया जाता है। इस जातिके लाल पत्तेवाले वृक्ष अग्निगर्भा कहलाते हैं।

एक और प्रकारकी शमी है जिसे अङ्गरेजीमें Proso pis spicigera कहते हैं। इसका आकार मंझोला होता है और डालियां कटोली होती हैं। पंजाब, सिन्धु, राजपूताना, गुजरात, बुन्देलखण्ड और दाक्षिणात्यकी प्रान्तरभूमिके जिस स्थानकी मिट्टी जलहीन और कठिन होती है, वहां यह वृक्ष उत्पन्न होते देखा जाता है। बीज अथवा उसकी डाल काट कर गाड़ देनेसे पेड़ लगता है। पेड़की जड़ बहुत लम्बी होती है। १७७८ ई०में पेरिस नगरकी विख्यात प्रदर्शनीमें इस जातिके एक प्रकारके पेड़की ८६ फुट लम्बी जड़ दिखलाई गई थी। वह ठीक समान भावमें ६४ फुट मिट्टी छेद कर नीचे जाती है।

इसके तनेको छिल देने अथवा छोटी छोटी डाल काट देनेसे वहां एक तरहका लासा निकलता है। Pharmacographia Indica ग्रन्थके रचयिताने रासायनिक परीक्षा द्वारा इसको मेक्सिकोके Mozquit gum नामक द्रव्यके समान गुणविशिष्ट निरूपण किया है।

इसकी छाल चमड़ा साफ करने और रंगनेके काममें आती है। इसकी छेमी पञ्जावमें औषधार्थ व्यवहृत होती है। इसके छिलकेमें कीटविशेष द्वारा बड़े बड़े स्पञ्जकी तरह एक प्रकारकी गांठ उत्पन्न होती है। वह बाजारमें "खरनाकी हिन्दी" नामसे परिचित है। यह सङ्कोचन गुणविशिष्ट है। पेड़का छिलका पीस कर वातव्याधिपीड़ित ग्रन्थिमें प्रलेप देनेसे बहुत लाभ पहुंचता है।

छेमीका बीज पकने पर सभी लोग खाते हैं। कच्ची छेमीमें घी, प्याज और नमक डाल कर गरीब आदमी तरकारी बना कर खाते हैं। कभी कभी उसमें दही मिला कर खाते हुए भी देखा गया है। १८६८-६६ ई०में राजपूतानाके दुर्भिक्षमें इसकी कच्ची तथा सूखी छाल के चूरकी पीठी बना कर लोगोंने प्राणरक्षा की थी। पेड़की पत्तियां समेत छोटी डाल और छीमी ऊंट, गाय भैंसे, बकरे, भेड़ें आदि पालतू पशुकी प्रधान खाद्य है। डेरा इस्माइल खाँ और सिन्धुनदके पश्चिम पारस्थ देशों में शीतके समय तृणादि न मिलनेके कारण इसकी सूखी पत्तियां ही साधारणतः पालतू पशुके लिये व्यवहृत होती हैं। इसके एक क्युबिक फुट काष्ठका वजन ५८ पौंड होता है। इससे गाड़ी और घरके सामान तैयार होते हैं। इसमें ज्वलनशक्ति अधिक है। इस कारण बहुतेरे जलावनमें शमीकाष्ठका ही व्यवहार करते हैं। ब्राण्डिस साहबका कहना है, कि १३७४ पौण्ड शमीकाष्ठ, १३८८ पौण्ड बाटलाकाष्ठ और १६२७ पौण्ड इमलीका काष्ठ एक ही समयमें समपरिमाण जलको उबालता है।

पञ्जाबवासी साधुओंके समाधिस्थलमें समीवृक्षको गाड़ देते हैं। राजपूतानेमें वर्षमें एक बार राजा, महाराज, सामन्त, ठाकुर और प्रजावर्ग बड़ी धूमधामसे शमीवृक्षकी पूजा करते हैं। वहां पूजाके लिये एक स्वतन्त्र शमीवृक्ष निर्दिष्ट रहता है। हिन्दूमात्र ही शमीवृक्षको सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। व्रतराज नामक व्रतविषयक ग्रन्थमें लिखा है, कि आश्विन शुक्लपक्षीय दशमी तिथिमें शमीपूजा करनी होती है। विराटनगरमें अज्ञातवासके समय पाण्डवोंने शमीवृक्ष पर ही अस्त्रादि रखे थे। वे सब अस्त्र सर्पके रूपमें उस वृक्ष पर थे। जनसाधारणका विश्वास है, कि शमी भगवतीरूपमें उत्पन्न हुई है। शमीकाष्ठ समिधरूपमें तथा पत्र गणपतिकी पूजामें व्यवहृत होते हैं। गणेशपुराणमें शमी-माहात्म्य वर्णित है।

वैद्यकमतसे इसका गुण—रूक्ष, कषाय, रक्त, पित्त और अतिसारनाशक। फलका गुण—गुरु, स्वादिष्ट, उष्ण और केशनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—तिक्त, कटु, शीतल, कषाय, रेचक, लघु, कम्प, कास, श्रम, श्वास, कुष्ठ, अर्श और कृमिनाशक। (भावप्र०) इसकी लकड़ी बहुत मजबूत और कठिन होती है। प्राचीनोंका विश्वास है, कि सूखी लकड़ोमें अग्नि गुप्तभावमें रहती है। (मनु ८।२४७, रघु ३।६) वैदिकयुगमें शमीकाष्ठ घिस कर अग्नि उत्पादन की जाती थी। इस सम्बन्धमें एक व्याख्यान भी प्रचलित है कि पुरूरवाने अश्वत्थ और शमीवृक्षकी शाखा रगड़ कर जगत्‌में सबसे पहले अग्नि उत्पन्न की थी।

२ शिम्ब, सेम। ३ सोमराजी। ४ कर्म। (ऋक् ६।२।२)

शमी—बम्बई प्रेसिडेन्सीके राधनपुर सामन्त राज्यका एक नगर। यह अक्षा० २३° ४१' १५" उ० तथा देशा० ७१° ५०' पू० सरस्वती नदीके किनारे अवस्थित है।

शमीक (सं० पु०) एक प्रसिद्ध क्षमाशील ऋषि। कहते हैं, कि परिक्षितने इनके गलेमें एक बार मरा हुआ सांप डाल दिया परन्तु ये कुछ न बोले। इनके लड़के शृंगी ऋषिने अपने पिताकी दुर्दशा देख कर क्रुद्ध हो शाप दिया कि आजके सातवें दिन मेरे पिताके गलेमें सर्प डालनेवालेको तक्षक डसेगा। कहा जाता है, कि इसी शापके द्वारा तक्षकके काटनेसे राजा परिक्षितकी मृत्यु हुई थी। (भाग० १।१८ अ०)

शमीकुण (सं० पु०) शमी-कुण। (पा ५।२।२४) पका हुआ शमी फल।

शमीगर्भ (सं० पु०) शम्या गर्भः। १ ब्राह्मण। २ अग्नि।

शमीजात (सं० त्रि०) शमीगर्भ। (हरिवंश)

शमीधान (सं० क्ली०) शमीधान्य देखो।

शमीधान्य (सं० क्ली०) शमी यज्ञादिकर्म, तदर्थं धान्यं। शिम्बी धान्य। मूंग, राजमाष, तिल और

कुलथी आदिको शमीधान्य कहते हैं। पर्याय—शमीज, शिम्बिज, शिम्बातर, सूपा, वैदल। गुण—मधुर, रूक्ष, कषायरस, कटुपाकी, वातवर्द्धक, कफपित्तनाशक, मलमूत्रवर्द्धक और शैत्यगुणविशिष्ट। शमीधान्यमें मूंग और मसूर कुछ आध्मानकारक है, इसके सिवा और सभी अधिक परिमाणमें आध्मान उत्पन्न करते। (भावप्रकाश)

राजवल्लभ नामक वैद्यक ग्रन्थमें लिखा है, कि एक वर्षका शमीधान्य सबसे उत्तम, उससे ऊपरका वातवर्द्धक और रूक्ष तथा नया शमीधान्य प्रायः गुरु होता है। किन्तु इनमें जौ, गेहूं, उड़द और नया तिल ही प्रशस्त है। वह जितना ही पुराना होगा उतना ही विरस, रूक्ष और गुणभ्रष्ट होता है। विभिन्न ऋतुज, व्याधिविपन्न, असम्यक्‌परिपुष्ट, अनाकर्षित या कदर्य्य स्थानमें जात और अभिनव धान्यादि वैसा गुणशाली नहीं होता।

शमीनहुषी (सं० स्त्री०) द्यावा पृथ्वी, स्वर्गमर्त्य। (ऋक् १०।६२।१२)

शमीपत्रा (सं० स्त्री०) शम्याः पत्राणीव पत्राणि यस्याः। लज्जालुलता, लज्जावती नामकी लता।

शमीप्रस्थ (सं० पु०) स्थानभेद। (पा ६।२।८७)

शमीमय (सं० त्रि०) शमीविशिष्ट, शमीनिर्मित।

शमीर (सं० पु०) ह्रस्व शमी। (कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः। पा ५।३।८८) इति रः। शमी वृक्ष।

शमीरकन्द (सं० पु०) वाराहीकन्द, चमार आलू।

शमीवत् (सं० पु०) ऋषिभेद। (पा ५।३।११८)

शमीमन्दार (सं० क्ली०) शमी और मन्दारवृक्ष। पूर्वकालमें शमी और मन्दार वृक्षका बड़ा आदर था। ऋषियोंने इसका माहात्म्य कीर्त्तन किया है। गणेशपुराणके क्रीड़ाखण्डके ३७ अध्यायमें इसका विषय सविस्तार वर्णित है।

शमेश्वरी (सोमेश्वरी)—आसाम प्रदेशके गारो पहाड़ जिलेमें प्रवाहित एक नदी। तुरा नामक शैलावासके पाससे निकल कर धीरे धीरे पूर्वको ओर घूम तुरा शैलके उत्तर चली गई है, झरनोंसे मिल कर मैमनसिंह जिलेको समतल भूमि पर आई है। इसके बाद धीर मन्थर गतिसे वह सुसङ्ग परगनेको कङ्कनदीमें मिली है। गारो पहाड़ पर शमेश्वरी जैसी बड़ी और जनसमाजकी उपयोगिनी नदी और कोई नहीं है। इस नदीसे गारोपर्वतके अधित्यकादेशके सिजू पर्यन्त जाया जा सकता, उसके बाद आगे बढ़नेका कोई उपाय नहीं है। यहां एक दानेदार पत्थरका स्तर रहनेसे नदी जल प्रतिहत हो कर प्रपाताकारमें गिरता है। इस प्रपातको पार कर फिरसे छोटी छोटी नाव पर चढ़ उक्त नदीसे बहुत दूर चले जाते हैं। शमेश्वर उपत्यकाका अन्वेषण कर पत्थरके नीचे कोयलेकी खान पाई गई है। नदीतीरवर्त्ती स्थानमें बढ़िया चूनापत्थर मिलता है। वहां चूना-पत्थरके स्तरमें बड़ी बड़ी गुहा देखी जाती है। सिजूके पास भी ऐसी एक गुहा है जिसके भीतरसे एक छोटा पहाड़ी झरना निकला है।

इस नदीमें बड़ी बड़ी मछली पाई जाती है, जिसे गारोजाति बड़े चावसे खाती है।

शम्मोप्य (सं० क्ली०) संवपन अथवा सम्यक् प्रकारसे भूमि पर पतन। (अथर्व ११।४।३)

शम्पक (सं० पु०) शाक्यभेद।

शम्पका (सं० स्त्री०) वृद्धि नामकी ओषधि।

शम्पा (सं० स्त्री०) विद्युत, बिजली।

शम्पाक (सं० पु०) १ आरग्वध, अमलतास। इसका फल स्वादुपाक, अग्निवलकारक, स्निग्ध और वातपित्तहर होता है। (सुश्रुतसू०) २ विपाक। ३ यावक, अलक्तक, आलता। ४ रन्धन। ५ हस्तिनापुरवासी एक ब्राह्मण। (महाभारत)

शम्पात (सं० पु०) १ आरग्वध, अमलतास। २ अभिशम्पात।

शम्ब (सं० पु०) शम्-वन् (शमेर्वन्। उण् ४।९४) यद्वा शमस्त्यस्येति शं-व, (शंकम्भ्यां वभयुस्तितुतयसः। पा ५।२।१३८) १ इन्द्रका वज्र। (ऋक् १०।४२।७) २ लोहेकी जंजीर जो कमरके चारों तरफ पहनी जाय। ३ प्राचीन कालकी नापनेकी एक माप। ४ नियमित रूपसे हल जोतनेकी क्रिया। ५ दरिद्र। (त्रि०) ६ भाग्यवान्।

शम्बर (सं० क्ली०) १ सलिल, जल। २ व्रत। ३ वित्त।

(नानार्थरत्नमाला) ४ चित्र। ५ बौद्ध व्रतविशेष। (हेम और शिव) ६ मेघ, बादल। (पु०) ७ मृगविशेष, शम्बर मृग। ८ दैत्यविशेष।

ऋग्वेदके १म और २य मण्डलमें लिखा है, कि जब इन्द्रने शुष्ण, पिप्रु, कुयव और वृत्र इन चार असुरोंको संग्राममें मारा, उस समय उन्होंने शम्बरासुरकी पुरीको भी तहस-नहस कर डाला था। इस दुर्घटनाके बाद शम्बर इन्द्रके भयसे डर गया और बहुत दिनों तक पर्वत गुहामें छिपा रहा। ४० वर्ष तलाश करनेके बाद इन्द्रने उसे पकड़ा और मार डाला।

भागवतमें लिखा है, कि रुक्मिणीगर्भज सद्यःप्रसूत श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नको शम्बरासुरने चुरा कर समुद्रमें फेंक दिया। वहां एक मछली उस बालकको निगल गई। कुछ समय बाद एक धीवरने उस मछलीको पकड़ा और शम्बरासुरको उपहारस्वरूप दे दिया। पाचकोंने मछलीके पेटमें दिव्य-बालमूर्त्ति देख एक दूसरी पाचिका मायावतीको इस बातकी खबर दी। यह मायावती कामपत्नी रति थी, रुद्रकोपसे दग्ध पतिकी पुनः-प्राप्तिकी प्रतीक्षामें उस रुद्रके कथनानुसार ही वर्त्तमान शम्बरके घर सूपकार्यमें नियुक्त थी। मायावतीने जब पाचकोंके मुखसे सुना, कि मछलीके पेटसे बालक निकला है, तब वह नारदके पास गई और उनसे कुल वृत्तान्त कह सुनाया। तुम्हारा पति कामदेव ही प्रद्युम्नरूपमें जन्म ले कर चिरशत्रु शम्बरके षड़यन्त्रसे ऐसी हालतको प्राप्त हुआ है। यह सुन कर मायावती बड़े यत्नसे उसका लालन पालन करने लगी। बालक जब बड़ा हुआ, तब मायावतीने उसका तथा अपना पूर्ववृत्तान्त और शम्बरके निष्ठुर व्यवहारका हाल शुरूसे आखिर तक कह सुनाया। पीछे उसने उस बालकसे यह भी कहा, कि ऐसे परम दुराचार दुर्जय दुर्द्धर्ष शत्रुको क्षण भरके लिये भी इस संसारमें रहने देना उचित नहीं। अतएव मुझसे सर्वमायाविनाशिनी मायाविद्या ले कर शम्बरको मारनेका उपाय सोचो।

मायावतीकी प्ररोचनासे युवकने वैसा ही करनेकी प्रतिज्ञा की। एक दिन वह शम्बरके पास हठात् जा पहुंचा और उसको खूब फटकारा। शम्बरने क्रुद्ध हो उस पर गदा चलाई, इस प्रकार दोनोंमें घोर युद्ध चला। पीछे उस युवकने एक तेज तलवार उठाई और किरीट तथा कुण्डलके साथ शम्बरका शिर काट डाला। (भागवत १०।५५)

९ मत्स्यविशेष। १० शैवविशेष। ११ जिनभेद। १२ युद्ध। १३ श्रेष्ठ। १४ चित्रक वृक्ष। १५ लोध। १६ अर्जुनवृक्ष। १७ तालवृक्ष। १८ पर्वतभेद।

शम्बर (शम्भर) राजपूतानेके अन्तर्गत एक बड़ा ह्रद। यह अक्षा० २६°५२´ तथा देशा० ७४°५७´ से ७५°१६´ पू० के मध्य अवस्थित है। अजमीर राज्यसे ४० मील उत्तर-पश्चिम जहां आरावल्ली गिरिश्रेणीकी उत्तरदिग्वाहिनी शाखाओंमें एक बड़ी अववाहिकाकी सृष्टि की है, ठीक उसी गर्भसे इस ह्रदकी उत्पत्ति है। इससे जल निकलनेका रास्ता नहीं है। वर्षा ऋतुमें जब यह भरा रहता है, उस समय इसकी लम्बाई २० मील और चौड़ाई ३से १० मील तक होती है। उस समय कहीं कहीं १से ४ फुट जल गहरा देखा जाता है। वर्षाके बाद भाद्र और आश्विन माससे ही इसका जल सूखने लगता है। कार्त्तिकसे वैशाख तक एकदम सूख जाता है। केवल एक मील लंबे और आध मील चौड़े स्थानमें जल रहता है। ह्रदका मध्यस्थल पार्श्ववर्त्ती स्थानोंसे कुछ अधिक गहरा है, इस कारण यहांका जल कभी भी नहीं सूखता। यहांके लोग इसे 'धनभण्डार' कहते हैं। यही विपरीत और 'माता-की देवी' नामक एक पर्वतशिखरके दक्षिण किनारेको भेद कर ह्रदगर्भकी ओर दौड़ गया है। यह धनभाण्डार पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है।

ह्रद चारों ओर चूनपत्थर और लवण पर्वतसे घिरा है, इस कारण इस स्थानकी भूमि अनुर्वर तथा वृक्षलतादि परिशून्य मरुस्थली सदृश हैं। इसके बीच बीचमें पार्मीय स्तर (Permain system) का पत्थर दिखाई देता है। जनसाधारणका विश्वास है, कि लवणमय पथरीला जलप्रवाहसे विधौत हो कर ह्रदके जलको लवणाक्त बनाता है। ह्रदकी मिट्टी काली है।

ग्रीष्मऋतुमें ह्रदका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही मनोहर और विस्मयोद्दीपक है। दक्षिणदिशाके अववाहिका देशमें जो सब छोटी छोटी बालूकी भीत दिखाई देती

है, उनमेंसे किसी एकके ऊपर खड़ा हो कर चारों ओर देखनेसे आगे और पीछे विस्तीर्ण तुषारावृत स्थान सा नजर आता है। केवल खण्ड खण्ड जलराशि और उन सब स्थानोंमें उतरनेके रास्तेको छोड़ और कुछ भी उस रजतधवल प्रान्तरकी एकाग्रताको भङ्ग करनेमें समर्थ नहीं है। यथार्थमें वह स्थान तुषारमण्डित नहीं है, मिट्टीके ऊपर नमकके पड़ जानेसे ऐसा सफेद फूलके विछावनकी तरह दिखाई देता है।

इस स्थानसे नमक उत्पन्न होता है, इस कारण बहुत पहले हीसे हिन्दू और मुसलमान राजे इस मूल्यवान् सम्पत्तिको अधिकार करनेकी कोशिश करते आ रहे थे। मुगल सम्राट् अकबरशाह और उनके वंशधरोंके शासनकालसे ले कर अहम्मदशाहके दिल्ली सिंहासनाधिकार तक किसी राजदरबारकी देखरेखमें यह नमक बनानेका कारखाना खुला था। आखिर वह जयपुर और जोधपुरके राजपूत राजाओंके हाथ आया। १८३५ ई०से १८४४ ई० तक राजपूतोंने अङ्गरेजी राज्यसीमाको अतिक्रम कर नाना स्थानोंमें उपद्रव मचाया। डकैतोंके अत्याचारका दमन करनेके लिये इस समय वृटिश-सरकारको बहुत क्षतिग्रस्त होना पड़ा था। उस क्षतिपूर्त्तिके लिये भारत सरकारने लवण बनानेका भार अपने हाथ ले लिया। किन्तु १७वीं सदीसे जयपुर और जोधपुरकी राजसरकार जिस तरह लवण बनाती आ रही थी, १८७० ई० तक वह उसी तरह बनाती रही। पीछे अंगरेज सरकारने उक्त दोनों राजाओंसे एक स्वतन्त्र सन्धि कर ली और उसी सन्धिके अनुसार वह स्थान इजारा ले लिया। इस हृदका पूर्वी किनारा और दक्षिणका कुछ अंश जयपुर और जोधपुरकी मिलित सम्पत्ति है, किन्तु बाकी सभी जयपुराधिपके अधिकृत है।

मिट्टीके ऊपर नमक फुट जानेसे मजूर टोकरी ले कर हृदके किनारे आते और नमककी पपड़ीको टोकरीमें भर कर कारखाना ले जाते हैं। वह नमक स्थानके गुणानुसार तथा द्रव्यविशेषके आणविक संमिश्रणके कारण लाल नील वर्ण धारण करता है। कभी छिछले लोहेके कड़ाहमें और कभी गहरे चहबच्चेमें नमकका पानी डाल कर नमक बनाते हैं। इसे जनसाधारण शम्बर या साँभर नमक कहते हैं। पंजाब, युक्तप्रदेश और मध्यभारतके हिन्दू प्रधान देशोंमें यह लवण प्रधानतः प्रचलित है। जयपुर और जोधपुरके मिलित शासनाधिकारमें स्थापित शम्बर नगर और हृदके दूसरे किनारेमें अवस्थित जोधपुराधिकृत नवा और गुधा नगरके साथ राजपूताना-मालव रेलवेका संयोग होनेके कारण यहांका नमक दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी भेजा जाने लगा है।

१८वीं सदीके आरम्भमें जो सब विदेशी भ्रमणकारी और देशीय तीर्थयात्री शम्बर हृद देख गये थे, उनके विवरणमें लिखा है, कि वह हृद लम्बाईमें ५० मील और चौड़ाईमें १० मील था। अभी उसका आकार बहुत छोटा हो गया है।

शम्बर—राजपूतानेके शम्बरहृदके किनारे अवस्थित एक नगर। यह जयपुर और जोधपुरराजके अधीन है। जयपुरनगरसे यह ३६ मील दक्षिण-पश्चिममें पड़ता है। यहां राजपूताना-मालव रेलवेकी शम्बर शाखाका एक स्टेशन है।

शम्बरकन्द (सं० पु०) शम्बरः नामकः कन्दः। वाराहीकन्द, शूकरकन्द।

शम्बरचन्दन (सं० क्ली०) एक प्रकारका चन्दन जो शम्बर पर्वत पर होता है। इसे शवर या बर्बर चन्दन भी कहते हैं। पर्याय—कैरात, बहलगंध, वल्य, गन्धकाष्ठ, कैरातक, तैलगंध। गुण—शीतल, तिक्त, उष्ण तथा वात, श्लेष्म, श्रम, पित्त, विस्फोटक, पामादिकुष्ठ, तृष्णा, ताप और मोहनाशक। (राजनि०)

शम्बरदेशज (सं० पु०) शुक्लरोध्र, सफेद लोध। (वैद्यकनिघ०)

शम्बरपादप (सं० पु०) शुक्लरोध्र, सफेद लोध।

शम्बरमाया (सं० स्त्री०) १ इन्द्रजाल, जादू। २ शक्ति।

शम्बरसूदन (सं० पु०) शम्बरं सूदयति सूद-ल्यु। कामदेव।

शम्बरहत्य (सं० क्ली०) शंबर-हन क्यप्। शंबरहनन, शंबरवध। (ऋक् १।११२।१४)

शम्बरारि (सं० पु०) शंबरस्यारिः। १ शंबरका शत्रु

अर्थात् कामदेव, मदन। २ प्रद्युम्न जो कामदेवके अवतार कहे जाते हैं।

शम्बराहार (सं० पु०) वनवदर, झरबेरी।

शम्बरी (सं० स्त्री०) १ आखुपर्णी लता, मूसाकानी। २ माया। ३ श्रुतश्रेणीक्षुप। ४ द्रवन्तीक्षुप, बड़ी दन्ती, वगरेंड़ा।

शम्बरीगन्धा (सं० स्त्री०) वनतुलसी, वर्वरी।

शम्बरोद्भव (सं० पु०) शुक्लरोध्र, सफेद लोध। (वाभट उत्तरस्थान)

शम्बल (सं० पु० क्ली०) शम्ब-कलच् (उण् १।१०८) १ कुल। २ यात्राके समय रास्तेके लिये भोजन-सामग्री, पाथेय। ३ तट, किनारा। ४ ईर्ष्या, द्वेष। ५ शम्बर देखो।

शम्बलपुर (सम्बलपुर)—विहार और उड़ीसेका एक जिला। यह अक्षा० २०°४५' से २१°५७' उ० तथा देशा० ८२°३८' से ८४°२६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३७७३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें छोटानागपुर, पूर्व और दक्षिणमें कटक जिला तथा पश्चिममें विलासपुर और रायपुर जिला है। यह छत्तीसगढ़ विभागकी पूर्वसीमा पर अवस्थित था। शम्बलपुर शहरमें जिलेका विचार-सदर प्रतिष्ठित है।

पहले यह छत्तीसगढ विभागके अन्तर्भुक्त था, किन्तु प्राकृतिक, भौगोलिक या ऐतिहासिक संस्रव ले कर गणना करनेसे उसे छत्तीसगढ़के सीमाबद्ध नहीं कर सकते। खालसा या गवर्मेण्टके अधिकृत जिलेका अंश महानदीके उपत्यकादेशमें फैला हुआ है तथा यह वामड़ा, करोण्ड, पटना, रायगढ़, रैराखोल और शारणगढ़, शोनपुर इन सात सामन्तराज्योंके केन्द्ररूपमें गिना जाता है।

इस जिले सर्वत्र गण्डशैलमाला दिखाई देती है। पर्वतोंके नीचे भी ऊंची नीची जमीन है। यहांका 'बड़ा पहाड़' ३५० वर्गमील विस्तृत एक गिरिश्रेणी है। देवीगढ़ इसकी सबसे ऊंची चोटी है। समतलक्षेत्रसे इसकी ऊंचाई प्रायः २२६७ फुट है।

ऊपर जिन सब गण्डशैलमालाओंका उल्लेख किया गया, उनका अधिकांश महानदीकी मोड़ पर अवस्थित है; मानो वह नदी पर्वतोंको चारों ओरके घेरे हुई है। किन्तु दक्षिण-पश्चिमकी ओर एक शैलश्रेणी ३० मील तक जा कर सिंघोड़ाघाट नामक गिरिसङ्कट तक चली आई है। इस स्थानसे रायपुरसे शंवलपुर जानेका रास्ता घूम गया है। सिंघोड़ाघाटसे गिरिश्रेणी दक्षिण जा कर फुलझरसे पुनः पश्चिमकी ओर घमी है। इस फुलझरमें ही विख्यात गोंड़ डकैतोंका वास है। सिंघोड़ासङ्कटमें छत्तीसगढ़के सभ्यसेनादलके साथ असभ्य गोंड़सरदारोंका कई बार युद्ध हुआ था। १८५७ के गदरके समय शम्बलपुरमें शांतिस्थापनके लिये अङ्गरेज-सेनापति कप्तान उड, मेजर सेक्सपियर और लेफ्टेनाण्ट राइवोत् दलबलके साथ इसी राहसे गये थे। दुर्द्धर्ष विद्रोहियोंने इस गिरिसङ्कटमें अङ्गरेजीसेनादलको अच्छी तरह परास्त किया था। इसके सिवा झाड़घाटीकी गिरिमाला भी विशेष उल्लेखयोग्य है। यह संवलपुर नगरसे १० कोस उत्तर छोटा नागपुर जानेके रास्तेको पार कर गई है। इस शैल पर भी उस समय विद्रोहिदलने एक दुर्भेद्य व्यूह रचा था। इसका सर्वोच्चशिखर १६६३ फुट ऊंचा है। दक्षिणको ओर महानदीको एक सीधमें कुछ गण्डशैल खण्ड खण्ड भावमें ३० मील तक फैले हुए हैं। उनमेंसे मन्धर १५६३ फुट और वोदापाली २३३१ फुट ऊंचे हैं। जिलेमें जो सब खण्डशैल विराजित हैं, उनमें सुनारि १५४६ फुट, वेला १४५० फुट और रसोड़ा १६४६ फुट ऊंचे हैं।

किंवदन्ती है, कि राजा नरसिंहदेवके भाई बलरामदेव शम्बलपुरके प्रथम राजा थे। महाराज नरसिंहदेव पटनाके १२ वें राजा थे। वे उस समय गढ़जात राज्योंमें प्रधान थे। पटना देखो।

राजा बलरामने अपने भाईसे महानदीकी उक्त शाखाके दूसरे किनारे अवस्थित जङ्गलप्रदेश जागीरस्वरूप पाया था। उस जङ्गलको काट कर उन्होंने वहां एक छोटा राज्य बसाया तथा अपने बाहुबलसे सरगुजा, गङ्गपुर, वोनाई और वामड़ा-राजाओंको युद्धमें परास्त कर अपनी राज्यसीमा बढ़ाई थी। उनके बड़े लड़के हरिनारायण देव १४६३ ई०को पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए।

उन्होंने छोटे लड़के मदनपालको वर्त्तमान शोनपुरराज्य दे दिया था। उन्हींके वंशधर आज भी उस सम्पत्तिका भोग कर रहे हैं।

हरिनारायणके बाद दो सदी तक शम्बलपुर राज्यकी खूब श्रीवृद्धि हुई तथा उसके साथ ही साथ पटनाका प्रभूत प्रभाव जाता रहा। शंबलपुर-राजशक्तिने इस समय बलवीर्यमें पुष्ट हो सामन्तराज्योंमें शीर्ष-स्थान अधिकार कर लिया था। १७३२ ई०में राजा अभयसिंह शम्बलपुर-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। सर्व-ग्रासी महाराष्ट्रशक्ति जब इस सामन्तराजपुञ्जके राज्य पर चढ़ाई करनेके लिये तय्यार हुई, तब राजा अभयसिंह ने महाराष्ट्रीय सेनाके विरुद्ध हथियार उठाया और परास्त किया। इस समय मराठा-सरदारने कुछ बड़ी कमानें कटकसे महानदीके रास्ते नागपुर भेज दी। शंबलपुर-राजमन्त्री अकबररायने यह संवाद पा कर कमान दखल करनेका संकल्प किया। उन्होंने चुपकेसे षड़यन्त्र करके नाविकोंके द्वारा नावकी पेंदीको कटवा दिया जिससे कमानके साथ कमानवाही सेना गभीर जलमें डूब गया। पीछे अकबर रायने कमानोंको समुद्रमेंसे निकाल कर शंबलपुर दुर्गमें स्थापित किया। नाग-पुरपतिको जब यह समाचार मिला, तब उन्होंने शंबल-पुरपतिको दण्ड देने तथा कमानोंको फिरसे दखल करनेके लिये मराठी सेना भेजी थी। दुःखका विषय है, कि शंबरपुरमें आ कर सभी युद्धमें खेत रहे। जो बच गये थे, उन्होंने नागपुरमें भाग कर प्राणरक्षा की थी।

१७६७ ई०में अभयसिंहके वंशधर जेठसिंहके शासन-कालमें फिरसे महाराष्ट्रदलके साथ शंबलपुरराजका विवाद खड़ा हुआ। इस समय नागपुरराजके आत्मीय नानासाहब दलबलके साथ जगन्नाथदेवके दर्शनके लिये पुरीधाम आते। सारनगढ़, शंबलपुर, शोनपुर और बउदके अधिवासियोंने इसी मौकेमें नानासाहब पर आक्रमण कर दिया। नानासाहब जरा भी न डरे और सम्मुख युद्धमें डट गये। विपक्ष दलकी गतिविधि देख कर वे कटकसे लौट आये थे। यहां कुछ मराठी सेना को अपने दलमें मिला कर वे दूने उत्साहसे सामन्त सरदारोंको आक्रमण करने अग्रसर हुए। दोनों दलमें कई बार घमसान युद्धके बाद नानासाहबने शोनपुर-सरदार पृथ्वीसिंह और बउदके सरदारको कैद कर लिया। इस समय वृष्टिकी मूषलाधारसे सेनादलको भारी कष्ट भोगना पड़ा था। महाराष्ट्र सेनाको इस कारण आगे बढ़नेका साहस न हुआ। वर्षाके बाद नानासाहब नव-बलसे बलवान् हो शम्बलपुर राजधानीके सामने आ धमके और महाराष्ट्रसेना द्वारा नगरका अवरोध किया।

इधर राजा जेठसिंहने पूर्वाह्नकालमें महाराष्ट्रसेना-का आगमन संवाद पा कर दुर्गको अच्छी तरह सुरक्षित कर लिया। पांच मास अवरोधके बाद नाना साहबने दीवालको लांघ और सलमाईका द्वार तोड़ दुर्गमें प्रवेश किया। यहां दोनों दलमें घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। युद्धमें शंबलपुरराज पराजित हुए। दुर्ग मराठोंके हाथ लगा। राजा जेठसिंह और उनके पुत्र महाराज शा बन्दी हो कर नागपुरमें लाये गये।

इस समय नागपुरराजकी ओरसे भूपसिंह नामक एक मराठा जमींदारने शंबलपुरका शासनभार अपने हाथ लिया। मौका देख कर उन्होंने अपनेको स्वाधीन राज कह कर घोषित कर दिया। नागपुरपति इस पर बड़े बिगड़े और उन्हें दण्ड देनेके लिये महाराष्ट्रसेना-को भेजा। भूपसिंहने कोई उपाय न देख सामन्तराजकी शरण ली और उनकी सहायतासे सिंघोड़ा-सङ्कटमें महा-राष्ट्र दलको परास्त किया। नागपुरमें यह संवाद पहुं-चते ही नागपुरपतिने चामरा गांवधिया नामक एक महाराष्ट्रसेनापतिके अधीन फिरसे एक दल सेना भेजी। भूपसिंहने पहले गांवधियाका ग्राम जला दिया था। यह ले कर दोनोंमें कट्टर दुश्मनी थी। गांवधियाने दल-बलके साथ आ कर सिंघोड़ा-सङ्कटको अधिकार कर लिया और भूपसिंहको हटाया। युद्धमें हार खा कर भूपसिंह शंबलपुर भाग आये। यहांसे वे राजा जेठसिंहकी रानीको ले कर कोलाबोराकी ओर भागे और महाराष्ट्रक्रोधसे आत्मरक्षा करनेकी कोशिश की। इसके बाद उन्होंने रानीकी ओरसे अंगरेजोंकी सहायता मांगी। १८०४ ई०में रामगढ़के राज-सैन्यके साथ अंग-रेज सेनापति कप्तान राफसेज शंबलपुर भेजे गये। नाग-पुरराज रघुजी भोंसलेने अंगरेजोंके इस व्यवहार पर

विरक्त हो अंगरेज गवर्मेण्टको सूचित कर दिया, "मेरे लब्ध राज्यमें अंगरेजोंकी प्रतिपक्षता करनेकी कोई जरूरत नहीं।" अंगरेज गवर्मेण्टने पूर्वस्वीकृत सन्धिके अनुसार नागपुरपतिको शम्बलपुर छोड़ दिया।

इस समयसे शम्बलपुर जिला कई वर्षों के लिये मराठोंके शासनाधीन रहा। राजा जेठसिंह और उनके लड़के उस समय चंदामें बंदी थे। किन्तु मेजर राफसेजने शंबलपुरसे आ कर जेठसिंहकी अवस्थाका वर्णन करते हुए अंगरेज गवर्मेण्टसे इस बातका निवेदन किया, कि शम्बलपुर राज्य जेठसिंहको मिलना चाहिये। फलतः १८१७ ई०में जेठसिंह पुनः शंबलपुरके सिंहासन पर बैठे, किन्तु एक वर्ष बाद ही जेठसिंहकी मृत्यु हुई। कई मास तक शम्बलपुरराज्य राजशून्य रहा तथा अंगरेज गवर्मेण्टने उसका शासनकार्य परिदर्शन किया। आखिर अंगरेज गवर्मेण्टके अनुग्रहसे महाराज शाह सिंहासन पर बैठे, किन्तु उन्होंने अपने पूर्वपुरुषोंकी तरह सामन्त राजाओंमें फिर शीर्षस्थान नहीं पाया। इस समय मेजर राफसेज अंगरेज गवर्मेण्टकी ओरसे शम्बलपुरमें असिष्टाण्ट एजेण्टरूपमें नियुक्त हुए। १८२७ ई०में महाराज शाहकी मृत्यु हुई। पीछे उनकी विधवा रानी मोहनकुमारी राजसिंहासन पर बैठी।

इस समय सुरेन्द्र शाह और गोविन्द सिंह नामक दो चौहान वीरने अपनेको सामन्तपदके प्रकृत उत्तराधिकारी बता कर गद्दी पर बैठनेकी चेष्टा की। इस सूत्रसे राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। विप्लवकारियोंने राजशक्तिकी अवमानना कर शम्बलपुर राजधानीके निकटवर्त्ती ग्रामोंको लूटा। इस पर एजेण्ट निश्चिन्त न रह सके। लेफटेनाण्ट हिगिन्स द्वारा विद्रोही दल भगाये जाने पर भी उन्होंने हजारीबागसे कप्तान विलकिन्सनको शंबलपुरमें बुलाया। विलकिन्सनने कई विद्रोहियोंको फांसी पर लटका दिया। इसके बाद उन्होंने रानीको राज्यच्युत करके उनकी जगह पर नारायण सिंह नामक एक व्यक्तिको शंबलपुरके सिंहासन पर बैठाया। यह व्यक्ति शंबलपुरके तृतीय राजा बालियार सिंहके औरस और किसी नीच जातिकी रमणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था।

नारायणको इच्छा नहीं रहते हुए भी उसने राज्यपद ग्रहण किया। क्योंकि वह जानता था, कि अंगरेजी सेनाके बाद ही उस पर विपद्का पहाड़ टूट पड़ेगा। आखिर हुआ भी वही। लखनपुरके गोंड़ सरदार बलभद्र शाहने पहले ही शंबलपुरराजके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। आखिर वह बड़पहाड़ शैल पर मारा गया।

१८३६ ई०में मेजर उसले शंबलपुरके असिष्टाण्ट एजेण्ट नियुक्त हुए। इस समय पूर्वोक्त सुरेन्द्र शाहने फिरसे शंबलपुर राज्य पानेकी आशासे अपनेको ४र्थ राजा मधुकर शा वंशोद्भव कह कर घोषित किया। इस सूत्रसे राज्यमें एक घोर विप्लव खड़ा हुआ। १८४० ई०में अपने दो आत्मीयकी सहायतासे रामपुरराज दरियाव सिंहके पिता और पुत्रको मार डाला। इस अपराध पर वे जीवन भरके लिये छोटानागपुर जेलमें बन्दी हुए थे।

१८४६ ई०में नारायणसिंहकी मृत्यु हुई तथा शंबलपुर अङ्गरेज गवर्मेण्टके हाथ आया। अङ्गरेज गवर्मेण्टने शंबलपुरकी सम्पत्ति हाथमें ले कर ही चार आना राजस्व बढ़ा दिया तथा राजदत्त देवोत्तर या ब्रह्मोत्तर निष्कर जमीन जब्त कर ली। इससे ब्राह्मणप्रधान शंबलपुरमें लोगोंको भारी असन्तोष हो गया। १८५४ ई०में फिरसे चार आना कर बढ़ाया गया। इससे विरक्त हो स्थानीय ब्राह्मणोंने रांचीमें इस विषयके प्रतिकारार्थ आवेदन किया। किन्तु कोई फल न होनेसे धुंआती आग धीरे धीरे धधक उठी। १८५७ ई०के गदरमें उस वह्निकी प्रदीप्त शिखाने शंबलपुरके शासनकेन्द्रको जला डालनेकी कोशिश की। सिपाहियोंने जेलखानेसे सुरेन्द्रशाह और उनके भाइयोंको मुक्त कर दिया। पिंजड़ेसे खुले हुए सिंहकी तरह सुरेन्द्रशाह उसी समय शंबलपुर आ धमके। उनके प्रतिद्वन्द्वी राज्यापहारी गोविन्दसिंहको छोड़ अन्यान्य सभी सरदारोंने उस विप्लवमें उनका साथ दिया था।

सुरेन्द्रशाहने काफी सेना संग्रह कर अपनेको शंबलपुरका अधीश्वर कह कर घोषित किया। प्राचीन भग्नदुर्ग उनके प्रासादरूपमें परिणत हुआ। विपक्ष अङ्गरेजको उन्हें दण्ड देनेके लिये अग्रसर होते देख वे निरुपाय

हो गये और सबोंके परामर्शसे वे अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करेंगे, ऐसा स्थिर हुआ। किन्तु अकस्मात् उनकी बुद्धि पलट गई। मौका देख कर उन्होंने दुर्गको छोड़ जङ्गलावृत पहाड़ीदेशमें आश्रय लिया तथा विद्रोहियोंसे मिल कर अंगरेजोंके साथ युद्ध करने लगे। १८६० ई० तक इसी तरह चलता रहा। अंगरेज गवमेंण्ट वृथा चेष्टा करके उनके पीछे पड़ी, किन्तु कहीं भी उनका पता न चला। उनके अधीनस्थ दलबल अंग्रेजोंके विरुद्ध मनमाना अत्याचार करने लगे। जिन सब ग्रामवासियोंने गवमेंण्टका पक्ष लिया था, दुर्वृत्तोंने वे सब गांव लूट कर जला दिये थे। यूरोपीय कर्मचारी डा० मूर मारा गया। बड़पहाड़के समीप विद्रोहिदल लेफटेनाण्ट उड ब्रिजको मार उसका शिर काट ले गया। राजद्रोहीके प्रति क्षमासूचक घोषणापत्र (*Proclamation of amnesty*) जारी किया गया, फिर भी विद्रोही दल शान्त न हुआ। १८६१ ई०में मेजर इम्पे अङ्गरेजी एजेण्ट हो कर शंबलपुर आये। उन्होंने विद्रोहियोंके विरुद्ध कठोर शासन दण्ड चलाया और प्रजावर्गकी प्रतिप्रद शासननीतिका अवलंबन करनेके लिये संकल्प किया। उन्होंने पहले सामन्तोंको यथेष्ट पुरस्कारका लोभ दे कर वशीभूत कर लिया। उन लोगोंके अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण करने पर महामति इम्पे उनकी सहायतासे विद्रोहदमन करनेमें समर्थ हुए थे। १८६२ ई०में विद्रोह जड़से उखाड़ दिया गया। सुरेन्द्रशाहने स्वयं अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया।

दूसरे वर्ष फिरसे विप्लवका सूत्रपात हुआ था। किंतु इस बार उसने भीषण रूप धारण नहीं किया। शासनशृङ्खला स्थापित करनेके लिये अंग्रेज गवमेंण्टने शंबलपुर जिला मध्य प्रदेशमें मिला लिया। उस समयके चीफ कमिश्नर मि० टेम्पल जब पहले इस स्थानको देखने आये, तब स्थानीय अधिवासियोंने सुरेंद्रशाहको अपना राजा बनाना चाहा और उन्हींके हाथ राज्य-शासनभार देनेका अनुरोध किया। इसके बाद ही कमलसिंहके अधीन विद्रोहिदलने फिरसे विद्रोहवह्नि प्रज्वलित की। कमलसिंह पूर्व विद्रोहमें सुरेंद्रशाहके सेनापति थे। इस घटनाके बादसे ही विद्रोहिदल बार बार अत्याचार और उत्पीड़न करने लगा। अङ्गरेज गवमेंण्टने सुरेंद्रशाहको उत्तेजनाकारी समझ कर १८६४ ई०में उन्हें कैद कर लिया। किंतु वे विद्रोहियोंके साथ षड्यंत्रमें लिप्त थे, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला, फिर भी अङ्गरेज-गवमेंण्टने उन्हें नैतिक अपराधमें अपराधी करार कर आत्मीय और अनुचरोंके साथ जीवन भरके लिये कैदमें रखा। तभीसे शंबलपुरमें शांति विराजने लगी। १९०६ ई०में एक स्वतंत्र शासनकर्त्ता नियुक्त करनेकी व्यवस्था हुई, बङ्गदेशके कुछ जिलोंको आसाम प्रदेशमें मिला कर 'पूर्वबङ्ग और आसाम' नामक स्वतंत्र शासनकर्त्ताके अधीन किया गया। इस समय शंबलपुर जिलेको मध्यप्रदेशसे अलग कर उड़ीसाकी शासन सीमामें मिला दिया गया।

इस जिलेमें १ शहर और १९३८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े छः लाखके करीब है। यहांके प्रधान अधिवासी गोंड, कोल्ता, शबर और अहीर हैं। कृषिजीवीकी संख्या ही अधिक है। व्यवसाय-वाणिज्यका उतना आदर नहीं है। कोष्ठी एक प्रकारका बढ़िया कपड़ा तैयार करते हैं। कामवार कांसे और पीतलके बरतन बनाते हैं। प्रायः प्रत्येक गांवमें स्थानीय लोगोंके व्यवहार्य मोटा सूती कपड़ा बुना जाता है। यहांसे चावल, तेलहन, अपरिष्कृत चीनी, लाख, टसर, रूई और लोहेकी विभिन्न स्थानोंमें रफ्तनी होती तथा लवण, परिस्कृत चीनी, विलायती कपड़े, नारियल, मसलिन, बढ़िया देशी कपड़े और अनेक प्रकारकी धातुकी आमदनी होती है। कटक और मिर्जापुरके साथ यहांका साधारणतः वाणिज्य चलता है। रायपुर, शङ्करा, राइरांखोल, अङ्गुल, पद्मपुर, चन्द्रपुर, विङ्का, रांची और बिलासपुर आदि स्थानोंमें बैलगाड़ी द्वारा वाणिज्यका माल भेजा जाता है। महानदीसे भी ६० मील तक माल आता जाता है।

यहांका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं है। ज्वरका प्रकोप सभी समय देखा जाता है। नया आदमी यहां आते ही ज्वरसे भारी कष्ट पाता है, यहां तक कि वह

कभी कभी मारात्मक हो जाता है। उदरामय रोगसे लोग अक्सर पीड़ित रहते हैं। ग्रीष्मके समय वह विसूचिकामें परिणत हो कर लोगोंका प्राणनाशक होता है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये यह जिला दो तहसीलमें विभक्त है, शंबलपुर और बड़गढ़। डिप्टी कमिश्नर और उनके तीन सहकारी डिपटी कलकृर और एक सबडिपटी कलक्टर द्वारा शासनकार्य परिचालित होता है। दीवानी विभागमें हरएक तहसीलमें एक डिष्ट्रिक्ट जज, दो सबोर्डिनेट जज और एक मुनसफ रहते है।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पिछड़ा हुआ है। शंबलपुर शहरमें एक हाई-स्कूल, एक मिडिल इंगलिश स्कूल; ६ वर्नाकुलर मिडिल स्कूल और १२० प्राइमरी स्कूल हैं। इनके सिवा जिले भरमें छः सरकारी-बालिका स्कूल हैं। उक्त सभी स्कूलोंमें उड़िया भाषा सिखाई जाती है। अभी लोगोंका ध्यान विद्या-शिक्षाकी ओर गया है और नये नये स्कूल भी प्रतिवर्ष खोले जा रहे हैं। स्कूलके सिवा सात चिकित्सालय भी हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१°१८ से २१°५७´ उ० तथा देशा० ८३°२६´ से ८४°२६´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २ हजार और जनसंख्या ४ लाखके करीब है। इसमें एक शहर और ७६६ ग्राम लगते हैं। इस तहसीलमें ५ दीवानी और ७ फौजदारी अदालत तथा सात सामन्त राज्य हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार सदर। यह अक्षा० २१°२८´ उ० तथा देशा० ८३°५८´ पू०के मध्य महानदीके उत्तरी किनारे अवस्थित हैं। जनसंख्या प्रायः १२८७० है। वर्षाऋतुमें महानदीका पाट १ मील तक फैल जाता है, किन्तु अन्यान्य ऋतुओंमें जल घटता है। नदीका विस्तार उस समय सिर्फ १०० हाथ रह जाता है। नगरके दूसरे किनारे घना झाऊका जङ्गल दिखाई देता है। वर्षाकालमें उस झाऊवनके बीचसे कल कल नाद करती हुई महानदी प्रबल वेगसे बहती है, तब नगर और नदीकूलकी शोभा बड़ी रमणीय हो जाती है। नदीके किनारे जो विस्तृत आम्रादि फलका बाग है, वह अधिवासीकी सुखसमृद्धिका परिचय देता है। नगरके दक्षिणांशमें उच्च गिरिमाला नगरपृष्ठकी रक्षाके लिये खड़ी है।

पहले इस नगरकी अवस्था उतनी अच्छी न थी। १८६४ ई०से संस्कार आरंभ हुआ। इसके पहले नगरके प्रधान प्रधान रास्तेसे बैलगाड़ी बड़ी मुश्किलसे आती थी। नगरके उत्तर-पश्चिम अंशमें प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष दिखाई देता है। नदीके किनारे टूटी फूटी दीवाल और कई वप्र आज भी विद्यमान हैं। चारों ओरकी गड़खाई आज भी पूर्वस्मृति याद दिलाती है सही; पर उसमें पहलेकी तरह जल नहीं रहता। दुर्गमें किसी जगह प्रवेशद्वार नहीं है। केवल शामलाई देवीमन्दिरके सम्मुखस्थ शामलाई द्वारका कुछ अंश आज भी दृष्टिगोचर होता है। शामलाई देवीका शंबलपुरकी अधिष्ठात्री देवीरूपमें पूजन होता है। इसके सिवा दुर्गसीमाके भीतरी भागमें और भी कितने मन्दिर हैं, जिनमें पद्मेश्वरीदेवी, बूढ़ा जगन्नाथ और अनन्तशायीके मन्दिर प्रधान हैं। वे सब मन्दिर १६वीं सदीके बने हैं और सबोंकी बनावट एक-सी है। उनमें उतनी कारीगरी देखी नहीं जाती। उक्त दुर्गके पास ही 'बड़ा-बाजार' नामक ग्राम है। यहां नदीके किनारे अदालत और सबडिविजनल आफिसरकी कचहरीके अलावा दो सराय, जेलखाना, हाइ-स्कूल, बालिकास्कूल और अस्पताल है।

शम्बली (सं० स्त्री०) कुट्टिनी, कुटनी।

शम्बसादन (सं० पु०) वाल्मीकीय रामायणके अनुसार एक दैत्य। इसे केशरीवानरने मारा था।

शम्बा (अ० पु०) शनिवार, शनैश्चरवार।

शम्बाकृत (सं० त्रि०) शम्बं कृष्टमप्यनुलोममाकृष्यते शंब-डा-च्-कृ-क्त। (द्वितीय तृतीयशम्बबीजात् कृषौ। पा ५।४।५८) दो बार आकृष्ट क्षेत्र, वह खेत या जमीन जो दो बार उपजाई गई हो। पर्याय—द्विगुणाकृत, द्वितीयाकृत, द्विहल्य, द्विसीत्य। (अमर)

शम्बु (सं० पु० स्त्री०) शंब-उण् कु वा। शंबुक, घोंघा, सीप।

शम्बुक (सं० पु० स्त्री०) शंब कन् स्वार्थे, शम ऊक -बुगागमश्च (उण् ४।४१) १ जलजन्तुविशेष, घोंघा,

सीप। पर्याय—जलशुक्ति, शम्बुका, शंबूक्व, शाम्बूक, शंबू, शांबुक्व, जलडिम्ब, दुश्चर, पङ्कमण्डूक।

(पु०) २ गजकुम्भका अग्रभाग, हाथीके सूंडका अगला भाग। ३ एक शूद्र तपस्वी। इसकी तपस्या-के कारण त्रेतायुगमें रामराज्यमें एक ब्राह्मणका पुत्र अकाल मृत्युको प्राप्त हुआ था, अतः इसे रामने मार कर मृत ब्राह्मण-पुत्रको पुनरुज्जीवित किया था। ४ दैत्यविशेष। ५ शङ्ख। ६ क्षुद्र शङ्ख, छोटा शंख। ७ प्राणनाशक कीट विशेष। (सुश्रुत)

शम्बू (सं० पु०) शम्बु देखो।

शम्बूक (सं० पु०) शम्बुक देखो।

शम्बूकपुष्पी (सं० स्त्री०) शङ्खपुष्पी देखो।

शम्बूका (सं० स्त्री०) शंबूक टाप्। शम्बुक देखो।

शम्बूकाद्यतैल (सं० क्ली०) कर्णरोगाधिकारोक्त तैलौ-षध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कटुतैलमें शंबूकका मांस भून कर वह तैल कर्णगत नाड़ीरोगमें डालनेसे विशेष उपकार होता है।

बृहत् शंबूकाद्यतैल—शंबूक मांस २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, कटुतैल ४ सेर, कुट, केशराज, क्षेत्रपर्पटी, अडूसकी छाल, अकवनका पत्ता, थूहरका दूध, मोथा, बिल्वमूल, शालिञ्चपत्र, किशमिश, अतीस, मुलेठी, कचूर, रेंड़ीका मूल और कपासका फल, प्रत्येक दो तोला तथा भृङ्गराज और नागकेशर ४ तोला, इनका कल्क ले कर तेलमें पाक करे। वह तेल कानमें भर देनेसे नाड़ीव्रण अति शीघ्र प्रशमित होता है।

(रत्नाकर)

शम्बूकावर्त्त (सं० पु०) सन्निपातज भगन्दररोग। इस रोगमें गोस्तन सदृश भिन्न भिन्न रंगके फोड़े निकलते हैं। ये फोड़े वेदनाविशिष्ट और स्रावयुक्त होते हैं। इसमें जो नाड़ीव्रण देखा जाता है, वह शंबूकके आवर्त्त की तरह होता है, इसीलिये इसका नाम शंबूकावर्त्त रखा गया है।

शम्म (सं० त्रि०) शमस्त्यस्य शं-भ (पा ५।२।१३८) कल्याणयुक्त, मङ्गलविशिष्ट।

शम्मर (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शम्भल (सं० पु०) ग्रामविशेष। (भारत वनपर्व) इसका वर्त्तमान नाम शंवलपुर है। यह किसीके मतसे मोएडवानाके और किसीके मतसे मुरादाबादके अन्तर्गत है। भागवतके मतसे (१२।२।१८) इस ग्राममें भगवान् कल्कि अवतीर्ण होंगे। कल्किपुराणमें लिखा है, कि यहां ६० तीर्थ हैं तथा कलिकलुषमोचनार्थ भगवान् कल्किरूपमें अवतीर्ण हो कर बन्धुबांधवोंके साथ हजार वर्ष तक अवस्थान करेंगे।

स्कन्दपुराणके शंभलग्राममाहात्म्यमें उन सब तीर्थों-का परिचय दिया गया है।

शम्भल—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २८° २०´से २८° ४६´ उ० तथा देशा० ७८° २४´से ७८° ४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४६१ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ४६६ ग्राम लगते हैं। सोत और गङ्गानदीका मध्यवर्त्ती समतलक्षेत्र ले कर यह विभाग संगठित है। यह लम्बाईमें ३२ मील है। गेहूं और ईख यहांकी मुख्य उपज है।

२ उक्त तहसीलका एक परगना।

३ उक्त जिलेके अन्तर्गत एक नगर और तहसीलका विचार सदर। यह अक्षा० २८° ३५´ उ० तथा देशा० ७८°३४´ पू०के मध्य विस्तृत है। यह सोत नदीसे ४ मील पश्चिम और मुरादाबाद सदरसे २३ मील दक्षिण-पश्चिम अलीगढ़के रास्ते पर अवस्थित है। नगर विस्तृत श्यामल शस्यक्षेत्र और वनमालाविभूषित प्रान्तरमें बसा हुआ है। महाभारतीय युगमें यह नगर विशेष समृद्धिशाली था, अभी वह समृद्धि बिलकुल जाती रही है। प्राचीन ध्वस्तकीर्त्तिस्तूपके ऊपर वर्त्तमान नगर खड़ा है। भालेश्वर और विश्वेश्वर नामक दो बड़े स्तूप आज भी नगर प्राचीरके उपरिस्थ वप्रयोंका स्मृतिचिह्न रक्षा करते हैं।

मुसलमान अभ्युदयके प्रारम्भसे ही शासनकर्त्ता इसी नगरमें राजधानी उठा लाये। मुगल-बादशाह अकबरके राज्यकालमें यहां एक सरकारका विचारकेन्द्र प्रतिष्ठित था तथा तभीसे यह मुगलराज्यकी राजधानी-रूपमें गिना जाने लगा।

नगर छोटा होने पर भी सुन्दर है। यहां म्युनिस्प-लिटी है। नगर और उसके उपकण्ठके रास्ते पक्के हैं।

इसके सिवा इस नगरसे मुरादाबाद, बिलारी, अमरोहा, चन्दौसी, वहजोई और हसनपुर आदि स्थानोंमें जाने आनेकी सुविधाके लिये और भी कितने कच्चे रास्ते हैं। नगरकी सौधमाला प्रायः पक्के और ईंटकी हैं।

कहते हैं, कि दिल्लीके पृथ्वीराजने कन्नौजके जयचन्दको शम्भलके पास ही युद्धमें पराहत किया था। इसके भी पहले दिल्लीके राजा और सईद सलारके बीच यहां मुठभेड़ हुई थी। कुतुबुद्दीन ऐबकने इसके आस पासके स्थानको तहस नहस कर डाला था, लेकिन कतेरियोंने बार बार आक्रमण करके मुसलमान राजाओंको तङ्ग तङ्ग कर दिया। यहां मुसलमान राजाओं द्वारा नियुक्त एक शासनकर्त्ता १३४६ ई०में बागी हो गये, पर शीघ्र ही उसका दमन किया गया।

फिरोजशाह ३यने शम्भलमें १३८० ई०को एक अफगान नियुक्त किया। उसे हुकुम दिया गया था, कि जब तक हिन्दू-सरदार खरगू जिससे कई एक सैयदोंको मार डाला है, आत्मसमर्पण न कर ले तब तक वह कतेरियों पर चढ़ाई करना और आस पास देशोंको वन्द न करे। १५वीं सदीमें शंभलमें दिल्लीके सम्राटों और जौनपुरके राजाओंमें घोर संघर्ष हुआ। जौनपुरके राजाओंके अधःपतन पर सिकन्दर लोदीने कुछ वर्षों तक कचहरी की थी। बावरने अपने लड़के हुमायूंको यहांका शासक बनाया था।

शहरमें कलकृरी कचहरी और जज-अदालत, पुलिस फाँड़ी, पोष्ट आफिस, साधारण औषधालय, गिरजा-घर, गवर्मेण्ट और म्युनिस्पलिटीके साहाय्यप्राप्त विद्यालय, सराय आदि हैं।

यहां परिष्कृत चीनी तैयार होती है। चीनीके वाणिज्यसे ही यहांकी प्रसिद्धि है। इसके सिवा यहांसे गेहूं और अन्यान्य शस्य, घृत और सूखे चमड़ेकी रफ्तनी होती है। यहाँ जो सुती कपड़ा तैयार होता है, वह स्थानीय अधिवासियोंके काममें आता है।

शम्भली (सं० स्त्री०) कुट्टिनी, कुटनी।

शम्भलीय (सं० त्रि०) कुट्टिनी-संबन्धी, कुटनीका।

शम्भलेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद।

शम्भव (सं० त्रि०) शं-भू-अच् (शमिधातोः संज्ञायां। पा ३।२।१४) १ जिनसे मङ्गल हो। २ सुखरूप संसार या मुक्तिरूप भव अर्थात् परम शिव। "नमः शम्भवाय" (शुक्लयजु० १६।४१)

शम्भविष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन शंभुः शंभुइष्ठन् (पा ५।३।५५) जो सर्वापेक्षा मङ्गल करता हो।

शम्भु (सं० पु०) शं मङ्गलं भवत्यस्मादिति शं-भू-डु। (मितद्रवादिभ्य उपसंख्यानम्। पा ३।२।१८० वार्त्तिक) १ शिव, महादेव। २ ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक। (विष्णु पु० १।५।१२३ १२४) ३ ब्रह्मा। (महाभारत) ४ बुद्ध। (मेदिनी) ५ विष्णु। (हलायुध) ६ सिद्धि। (शब्दरत्ना०) ७ श्वेतार्क, सफेद आक। ८ अग्नि। (महाभारत) ९ पारद, पारा। १० एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १९ वर्ण होते हैं। (त्रि०) ११ सुखसंवर्द्धनाकारी, सुखको भावयिता अर्थात् संवर्द्धयिता या वृद्धिकारक। (ऋक् ३।४६।१३)

शम्भु—१ काश्मीरके एक कवि। ये श्रीकण्ठचरित-प्रणेता आनन्द वैद्यके पिता थे। इन्होंने ज्योतिर्मुक्तालता और राजेन्द्रकर्णपुर नामक ग्रन्थ लिखे। पद्यावलीमें इनके रचे अनेक श्लोक देखे जाते हैं। २ कामधेनु नामक एक दीधितिके रचयिता। हेमाद्रिने परिशेषखण्डमें इनका मत उद्धृत किया है। ३ हैहयेन्द्र काव्यटीकाके प्रणेता। ४ एक प्राचीन पण्डित। ये परिभाषेन्दुटीकाके प्रणेता गोपालदेव तथा कृष्णदेवके पिता थे।

शम्भुकान्ता (सं० स्त्री०) १ शंभुकी स्त्री, पार्वती। २ दुर्गा।

शम्भुकालिदास—रामचन्द्रकाव्यके रचयिता।

शम्भुकेतन (सं० पु०) पीतशाल। (वैद्यकनि०)

शम्भुगञ्ज—मैमनसिंह जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह नशिराबादसे तीन मील पूर्वमें अवस्थित है। यहां स्थानीय उत्पन्न द्रव्यकी एक छोटी हाट लगती है। इस हाटमें प्रति दिन बहुत रुपयेके मालकी खपत होती है। इसे जिलेका एक वाणिज्य-केंद्र कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी। यहांसे कलकत्तेको हर साल प्रायः ७५ हजार मन पाट, ३० हजार मन चावल तथा १० हजार मन सरसों भेजी जाती है।

शम्भुगिरि (सं० पु०) शम्भुका पर्वत, कैलास। यह एक तीर्थ है। स्कन्दपुराणान्तर्गत शम्भुगिरिमाहात्म्यमें इसका विषय सविस्तार वर्णित है।

शम्भुचन्द्र—१ रङ्गपुर जिलेके काकिनीवाके जमींदार। इन्होंने १६वीं सदीके प्रारम्भमें ग्रन्थ लिखा। २ नवद्वीपके अधिपति महाराज कृष्णचन्द्रके वंशधर। ये बहुकीर्तिशाली और ज्ञानशील थे।

शम्भूजी—छत्रपति शिवाजीके ज्येष्ठ पुत्र। १६५८ ई०में इनका जन्म हुआ था। दिल्लीके बादशाह औरङ्गजेबकी चालाकीसे शिवाजी जब दिल्लीमें कैद हुए, उस समय पिताके साथ ये भी भाग गये। शिवाजीकी मृत्युके बाद १६८० ई०से १६८९ ई० तक इन्होंने राज्य किया। तदनन्तर मुगल-सेना इनको कैद कर दिल्ली ले आई और दिल्लीमें औरङ्गजेबने बड़ी निर्दयतासे इन्हें मार डाला। ये विषयासक्त और मद्यप थे।

शम्भुतनय (सं० पु०) शम्भोस्तनयः। १ गणेश। २ कार्त्तिकेय। ३ शम्भुके पुत्र।

शम्भुतेजस् (सं० क्ली०) पारद, पारा। (रसेन्द्रसार०)

शम्भुदास—गणितपञ्चविंशटीकाकार।

शम्भुदेव—प्रशस्तिप्रकाशिकाके प्रणेता। ये ब्रह्मानन्दके शिष्य थे।

शम्भुनन्दन (सं० पु०) शंभो नन्दनः। १ कार्त्तिकेय। २ गणेश।

शम्भुनाथ (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ नेपालका विख्यात शैवतीर्थ। नेपाल देखो।

शम्भुनाथ—१ भुवनेश्वरीस्तोत्रके रचयिता पृथ्वीधरके गुरु। २ कालज्ञान और सन्निपातकलिका नामक दो वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता। ३ गणितसारके रचयिता। ४ जातकभूषणके प्रणेता। ५ शंभुतत्त्वानुसन्धान नामक ग्रन्थके रचयिता।

शम्भुनाथ आचार्य—सङ्केतकौमदी नामक ज्योतिग्रन्थके रचयिता।

शम्भुनाथ कवि—भाषाके कवि वन्दीजन। ये संवत् १७९८ में उत्पन्न हुए थे। 'रामविलास' नामक एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ इन्होंने बनाया है। इस ग्रन्थमें अनेक छन्द हैं।

शम्भुनाथ त्रिपाठी—एक भाषा-कवि। ये डौंड़ियाखेराके रहनेवाले थे। इनका जन्म संवत् १८०६ में हुआ था। ये राजा अचलसिंहके दरबारी कवि थे। इन्होंने राव रघुनाथसिंहके नामसे बेतालपचीसीको संस्कृतसे हिन्दी भाषामें अनूदित किया है। मुहूर्त्तचिन्तामणिका भी नाना छन्दोंमें इन्होंने भाषानुवाद किया है।

शम्भुनाथ पण्डित—कलकत्ता हाईकोर्टके सर्वप्रथम देशी जज। शंभुनाथ कश्मीरी ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम था सदाशिव पण्डित। सन् १८२० ई०में कलकत्तेमें शंभुनाथका जन्म हुआ। इनके चचा कलकत्तेकी सदर अदालतमें पेशकार थे। चचाके कोई पुत्र न था। इस कारण उन्होंने बड़े भाईकी सम्मतिसे शंभुनाथको दत्तकग्रहण किया। कलकत्तेमें शंभुनाथका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था। इस कारण ये लखनऊ पढ़नेके लिये भेज दिये गये। वहाँ कुछ उर्दू और फारसी पढ़ कर अङ्गरेजी पढ़नेके लिये ये काशी गये। काशीसे कलकत्ते आ कर ये ओरियन्टल सेमिनरीमें भर्त्ती हुए। इस समय इनकी अवस्था सिर्फ १४ वर्षकी थी। यहां इन्होंने अङ्गरेजी-साहित्यमें विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया। १८४१ ई०में सदर अदालतमें २०) मासिक पर ये क्लर्क बहाल हुए। १८४६ ई०में ये डिगरी जारी करानेके मुहर्रिर हुए। इसी समय इन्होंने डिगरी जारी करानेके संबन्धमें एक ग्रन्थ लिखा, जिसके कारण जजोंने इनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। १८४८ ई०में इन्होंने वकालतकी परीक्षा दी और उसमें ये उत्तीर्ण हुए। इसी वर्ष नवम्बर महीनेसे ये वकालत करने लगे। थोड़े ही दिनोंमें फौजदारी मुकदमेमें इनका बड़ा नाम हुआ। १८५५ ई०में ये जुनियर सरकारी वकील नियुक्त हुए। इसी समय ४००) मासिक वेतन पर ये प्रेसिडेन्सी कालेजमें कानूनके अध्यापक हुए। इसके थोड़े दिनोंके बाद ही ये हाईकोर्टके जज हो गये। १८६७ ई०में पिड़की रोगसे इनकी मृत्यु हुई। ये स्त्री-शिक्षाके पक्षपाती थे। सबसे पहले इन्होंने ही अपनी कन्याको बेथून कालेजमें पढ़नेके लिये भेजा था। इन्होंने भवानीपुरमें एक अस्पताल बनवाया है, जो शंभुनाथ पण्डित हास्पिटलके नामसे प्रसिद्ध है। भवानीपुरमें इनके नाम पर एक स्ट्रीट भी है।

शम्भुनाथ मिश्र—१ भाषाके एक कवि। इनका जन्म १८०३ सम्वत्में हुआ था। ये भगवन्तराय खीचीके यहां असोथरमें रहते थे। ये अनेक शिष्योंको कवि बना गये हैं। "रसकल्लोल", "रसतरङ्गिणी" और "अलङ्कारदीपक" नामक तीन ग्रन्थ इन्होंने लिखे हैं।

२ बैसवारेके रहनेवाले एक भाषा-कवि। संवत् १९०१में इन्होंने जन्म ग्रहण किया। ये राना यदुनाथ सिंह कजूर गांवके यहां रहते थे। थोड़ी ही अवस्थामें ये करालकालके गालमें पतित हुए। वैसवंशावली और शिवपुराणके चतुर्थ खण्डका इन्होंने भाषान्तर किया।

शम्भुनाथसिंह—सीतारागढ़के रहनेवाले एक सोलङ्की क्षत्रिय। सं० १७३८में इनकी उत्पत्ति हुई। ये मतिराय त्रिपाठीके बड़े मित्र थे। इनके यहां कवियोंका बड़ा आदर था। इन्होंने नायिकाभेदका कोई ग्रन्थ भी बनाया है। (शिवसिंहसरोज)

शम्भुनाथसिद्धान्तवागीश—दिनभास्कर, दुर्गोत्सवकौमुदी, देवीपूजनभास्कर, अकालभास्कर और वर्षभास्कर नामक ग्रन्थके रचयिता। शेषोक्त दो ग्रन्थ इन्होंने अपने प्रतिपालक राजा धर्मदेवकी आज्ञासे लिखे थे। १७१५ ई०में अकालभास्कर लिखा गया था।

शम्भुनाथार्चन—एक तन्त्र।

शम्भुप्रसाद कवि—एक भाषा-कवि। इनकी शृङ्गाररस-सम्बन्धी कविता उत्तम होती थी। (शिवसिंहसरोज)

शम्भुप्रिया (सं० स्त्री०) शम्भोः प्रिया। १ दुर्गा। २ आमलकी, आँवला। (शब्दरत्ना०)

शम्भुबीज (सं० पु०) पारद, पारा।

शम्भुभट्ट—कालतत्त्वविवेचनसारसंग्रह, त्रिंशच्छ्लोकी विवरणसारोद्धार (यह ग्रंथ रघुनाथकृत त्रिंशच्छ्लोकी वृहद्विवरण ग्रन्थकी टीका), पाकयज्ञप्रयोग और भट्टदीपिका-प्रभावली नामक ग्रंथके प्रणेता। शेषोक्त ग्रंथ १७०८ ई०में रचा गया। इनके पिताका नाम बालकृष्ण भट्ट तथा गुरुका नाम खण्डदेव था। ये मण्डल शंभुभट्ट नामसे भी विदित थे। शम्भुभट्टीय नामके न्यायग्रंथ इनके लिखे थे वा नहीं कह नहीं सकते।

शम्भुभूषण (सं० पु०) महादेवजीका भूषण, चंद्रमा।

शम्भुमनु (सं० पु०) स्वायम्भुव मन्वन्तर जो सबसे पहला मन्वन्तर है।

विशेष विवरण स्वायम्भुव और मनु शब्दमें देखो।

शम्भुमहादेवक्षेत्र—एक शैवतीर्थ। स्कन्दपुराणान्तर्गत शंभुमहादेवक्षेत्रमाहात्म्यमें इसका विवरण सविस्तार वर्णित है।

शम्भुराज—नीतिमञ्जरीके प्रणेता।

शम्भुराम—१आत्मविद्याविलासके प्रणेता। २ छन्दोमुक्तावलीके रचयिता। ३ ताजिकालङ्कारके प्रणेता। १७२० ई०में यह ग्रन्थ रचा गया। इनके पिताका नाम गोकुल था।

शम्भुलोक (सं० पु०) महादेवजीका लोक, कैलास।

शम्भुवल्लभ (सं० क्ली०) शंभोर्वल्लभम्। १ श्वेतकमल, सफेद पद्म। (पु०) २ शंभुकी प्रिय वस्तु।

शम्भुसिंह—मेवाड़के महाराणा। इनके पिताका नाम था शार्दूलसिंह। महाराणा स्वरूपसिंहकी मृत्यु होने पर उनके भतीजे शंभुसिंह मेवाड़की राजगद्दी पर बैठे। १८६१ ई०में इनका राज्याभिषेक हुआ था। उस समय ये बालक थे, इस कारण एक शासक-समिति स्थापित की गई और वही शासन करने लगी। परन्तु उस शासक-समितिके सदस्य मनमाने व्यवहार करने लगे। इस हेतु गवर्नमेण्टको दूसरी व्यवस्था करनी पड़ी। अबकी बार तीन आदमियोंकी एक समिति कायम हुई और इसके सभापति हुए स्वयं पोलिटीकल एजेण्ट साहब।

महाराणा शंभुसिंहको १८६५ ई०के नवम्बर महीनेमें शासनका अधिकार मिला। परन्तु दुःखका विषय है, कि महाराणा शंभुसिंहका अधिकार मेवाड़ पर बहुत दिनों तक नहीं रहा। बहुत थोड़े ही दिनोंमें सन् १८७४के अक्टूबर महीनेकी ७वींको २७ वर्षकी अवस्थामें इनका परलोक वास हो गया। प्रजाने सोचा था, कि महाराणा शंभुसिंहके शासनमें सुखसे समय बीतेगा, किन्तु उनकी वह मधुर आशा ज्योंकी त्यों रह गई।

शम्भू (सं० पु०) शं-भू-क्विप् (भुवः संज्ञान्तरयोः। पा ३।२।१७९) शम्भु देखो।

शम्भूनाथ (सं० पु०) शम्भुनाथ देखो।
शम्मद्ग (सं० पु०) आङ्गिरसभेद।
(पञ्चविंशब्रा० १५।५।११)
शम्या (सं० स्त्री०) शम्यतेऽनया शम यत्-टाप्। १ युगकीलक, वह लड़की या खूंटा जो वम और जुएके मिले छेदोंमें डाला जाता है, सैल, सैला। (ऋक् ३।३३।१३) २ लकुट, यष्टि, दण्ड। (अथर्व ३।२१।१०) ३ अश्वत्थगर्भा शमी। (ऋक् १०।३१।१०) ४ दक्षिण-हस्तगृहीत तालविशेष। (सङ्गीतदामोदर)
शम्याक (सं० पु०) आरग्वध, अमलतास।
शम्याक्षेप (सं० पु०) शम्यायाः क्षेपो यत्र। १ साति-शय भ्रमित यष्टि उसी अवस्थामें सवेग निक्षिप्त हो जहां तक पहुंचे अर्थात् जहां जा कर यह यष्टि गिरे निक्षेप स्थानसे उतनी दूर परिमित भूमि। २ यज्ञविशेष।
शम्याताल (सं० पु०) दक्षिणहस्तगृहीत तालविशेष।
(सङ्गीतदामोदर)
शय (सं० त्रि०) शेते सर्वमस्मिन्निति प्रायो वस्तुनः करा-धीनत्वात्। शी-घ (पा ३।३।११८) १ हस्त, हाथ। २ शय्या। ३ सर्प, सांप। ४ निद्रा, नींद। ५ पण। (त्रि०) ६ शयनकारी, सोनेवाला। ७ अवस्थानकारी, रहने-वाला।
शय (अ० स्त्री०) १ वस्तु, पदार्थ, चीज। २ भूत, प्रेत। ३ शह देखो।
शयण्ड (सं० पु०) शी-अण्डन् (उण् १।१२८) १ एक प्राचीन जनपदका नाम। २ इस देशका निवासी। ३ निद्रालु, वह जिसे नींद आई हो।
शयण्डक (सं० पु०) शयण्ड स्वार्थे कन्। १ शयण्ड देखो। २ कृकलास, गिरगिट।
शयत (सं० पु०) निद्रालु, वह जिसे नींद आई हो।
(संक्षिप्तसारोणादि०)
शयतान (अ० पु०) शैतान देखो।
शयतानी (अ० स्त्री०) शैतानी देखो।
शयथ (सं० पु०) शेते इति शी-अथ (शीङ्शपीति। उण् ३।११३) १ अजगर, सर्प। २ मृत्यु, मौत। ३ वराह, शूकर, सूअर। ४ मत्स्य, मछली। (संक्षिप्तसारोणादि) ५ गाढ़ी नींद। ६ यम।

शयन (सं० क्ली०) शी-ल्युट्। १ निद्रा। २ शय्या। ३ स्त्रीसङ्ग, मैथुन। ४ सर्वदेव शयनकाल अर्थात् आषाढ़ी शुक्ला एकादशीसे ले कर कार्त्तिकी शुक्ला एकादशी तकका समय। इस समय पहले हरि और पीछे एक एक कर सभी देव, यक्ष, नाग और गन्धर्व्वगण कुछ समयके लिये सुखशय्या पर सोते हैं। वामनपुराणमें लिखा है, कि सूर्यदेवके मिथुनराशिमें जानेके बाद शुक्ल-पक्षीय एकादशीमें वासुकीके फण पर सोपवीतक जगत्-पति श्रीहरिके शयनकी कल्पना कर पहले उनकी पूजा पीछे ब्राह्मणोंकी। अनन्तर दूसरे दिन द्वादशीको उन सब ब्राह्मणोंकी अनुमति ले कर भगवान्‌को सुलावे। सवेरे त्रयोदशीको सुकोमल सुगन्धित कदम्बकुसुमशय्या पर कामदेव, दूसरे दिन चतुर्दशी तिथिको सुवर्णपङ्कजके ऊपर यक्षगण, पौर्णमासीको व्याघ्रचर्म पर पिनाकी निद्रितावस्थामें रहते हैं।

इसके बाद सूर्यदेव जब कर्कट राशिमें जाते हैं, तब कृष्ण प्रतिपत् तिथिको नीलोत्पलदलशय्या पर ब्रह्मा, द्वितीयाको विश्वकर्मा, तृतीयाको गिरिसुता, चतुर्थीको गणपति, पञ्चमीको धर्मराज, षष्ठीको कार्त्तिकेय, सप्तमीको सूर्यदेव, अष्टमीको भगवती कात्या-यनी, नवमीको कमलालया लक्ष्मी, दशमीको नागराज-गण और एकादशीको साध्यागण कुछ समयके लिये सुखशय्या पर शयन करते हैं।

उक्त प्रकारसे देवताओंकी शयनक्रिया सम्पन्न होते न होते प्रावृट् काल आ पहुंचता है। इस समय कङ्कगृध्रवलाका आदि पक्षीगण सुखनिद्रासे समय वितानेके लिये पर्वत पर चढ़ जाते हैं। वहां वायस और यथाकालमें गर्भभाराक्रान्त वायसी घोसला बना कर वहां सुखसे सोती है।

जिस द्वितीयामें विश्वकर्माके शयनका विषय लिखा है, उस तिथिमें गन्धपुष्पादि द्वारा लक्ष्मीके साथ पर्य-ङ्कस्थ श्रीवत्सलाञ्छन चतुर्भुजमूर्त्ति हरिकी अभ्यर्च्चना करके स्वादिष्ट और सुगन्धित फल चढ़ाके उनकी शय्या पर रख देना होगा। तथा—

"यथाहि लक्ष्म्या न वियुज्यसे त्वं त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास।
तथा त्वशून्यं शयनं सदैव अस्माकमेवेह तव प्रसादात्॥

तदा त्वशून्यं तव देव तल्पं स्वयं हि लक्ष्म्या शयने सुरेश।
सत्येन तेनामितवीर्य विष्णोगार्हस्थ्यरागो मम चास्तु देव॥"

इस मन्त्रसे भगवान्‌को प्रणाम तथा उन्हें प्रसन्न करनेके लिये बार बार यथेष्ट चेष्टा करे। इस अर्चनाके दिन व्रतीको चाहिये, कि वह तैलक्षारविवर्जित उपवास और अर्चनाके बाद रातको हविष्यान्न भोजन करे। दूसरे दिन 'लक्ष्मीधर प्रीयतां मे' इस मन्त्रसे फल चढ़ा कर किसी सत्‌शील ब्राह्मणको दान करना होगा। इस प्रकार चातुर्मास्य व्रतका प्रतिपालन करना कर्त्तव्य है।

इसके बाद दिवाकरके वृश्चिक राशिस्थ होनेसे उक्त सुषुप्त सुरगण क्रमशः प्रबुद्ध होते हैं।

भाद्रमासकी मृगशिरा नक्षत्रयुक्त कृष्णाष्टमी तिथिका नाम कामाष्टमी है। इस तिथिमें जगत्‌के सभी लिङ्गोंमें शिव शयन करते हैं, अतएव इसमें जिस दिन लिङ्गके समीप पूजादि करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। (वामनपु०)

भविष्य और नारदीयपुराणमें निम्नोक्त रूपसे हरिशयनादिकी व्यवस्था है—अनुराधाके आद्यपादमें श्री विष्णुका शयन, श्रवणाके मध्यपादमें उनका पार्श्वपरिवर्त्तन और रेवतीके अन्त्यपादमें उत्थान कल्पित होता है। इन सब नक्षत्रोंके यथानिर्दिष्ट पादोंका संघटन यथाक्रम आषाढ़, भाद्र और कार्त्तिक मासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें तथा उन सब दिनोंके निशा, संध्या और दिवा भागमें होनेसे वह अवश्य फलप्रद होता है। किन्तु यदि ऐसा न हो, तो उस द्वादशीमें यथाक्रम शयनादि कार्य्य निर्वाह करना होगा।

वराहपुराणमें स्वयं भगवान्‌ने इस सम्बन्धमें कहा है, कि आषाढ़ शुक्लद्वादशीमें कदम्ब, कुटज, धवक और अर्जुन आदिके पुष्प द्वारा पहले यथाविधि मेरी अभ्यर्चना कर पीछे 'नमो नारायणाय' कह जो विधिपूर्वक मन्त्र पढ़ते हैं, वे किसी भी युगमें अधःपतित नहीं होंगे।

इसके बाद भाद्रमासकी शुक्ला एकादशी तिथिमें भगवान्‌के पार्श्वपरिवर्त्तनके उपलक्षमें यथाविधि उनकी पूजा शेष करे।

कामरूपीय निबन्धमें लिखा है, कि भाद्रमासकी शुक्ला द्वादशी तिथिमें निम्नोक्त मन्त्रसे श्रीहरिका पार्श्वपरिवर्त्तन करना कर्त्तव्य है।

"वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव।
पार्श्वेन परिवर्त्तस्व सुखं स्वपिहि माधव॥
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत् सर्वं चराचरम्॥"

इसके बाद उत्थानके सम्बन्धमें ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

"एकादश्यास्तु शुक्लायां कार्त्तिके मासि केशवम्।
प्रसुप्तं बोधयेद्रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः॥"
"कृत्वा वै मम कर्माणि द्वादश्यां मत्परो नरः।
ममैव बोधनार्थाय इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥"

दोनों श्लोकोंमें तिथिघटित संशय होनेसे कहा जाता है, कि एकादशीकी रातको प्रसुप्त केशवके अर्चनादि कार्य्य समाप्त करके दूसरे दिन द्वादशीको मेरे प्रबोधके लिये मन्त्रका पाठ करे।

वाचस्पति मिश्र कहते हैं, कि उक्त दोनों मन्त्र पढ़नेके बाद निम्नोद्धृत मन्त्र भी पढ़ना कर्त्तव्य है। यथा—

"उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्॥"

कल्पतरु आदि ग्रन्थलिखित संवादानुसार गुरुचरण आदिने शयनोत्थान सम्बन्धीय मन्त्रकी इस प्रकार मीमांसा की है—द्वादशी या एकादशी इसके जिस जिस दिनमें रेवती नक्षत्रके अन्त्यपादका योग होगा, उस दिन दिवा भागमें उत्थानक्रिया करे और यदि किसी भी दिन नक्षत्रका योग न हो, तो द्वादशीमें ही उक्त क्रिया करनी होगी।

जीमूतवाहनने स्पष्ट कहा है, कि आषाढ़, भाद्र और कार्त्तिक मासकी शुक्ला द्वादशीमें ही यदि यथाक्रम अनुराधाके आद्य, श्रवणाके मध्य और रेवतीके अन्त्यपादका योग हो, तो उन सब द्वादशियोंमें ही यथाक्रम भगवान्‌को शयन, पार्श्वपरिवर्त्तन और उत्थानक्रिया करना ही सर्वश्रेष्ठ कल्प है।

श्रीहरिके शयनादि सम्बन्धमें चार प्रकारकी नियमविधि है, यथा—

(१) द्वादशीकी रातको नक्षत्रका योग होनेसे उसी दिन शयनादिक्रिया कर्त्तव्य है।

(२) उक्त प्रकारसे नक्षत्रका योग नहीं होने पर जिस तिथिमें यथोक्त समय उनका पादयोग होगा, उसी दिन शयनादि कर्त्तव्य है।

(३) यदि उक्त दोनों प्रकारसे तिथि नक्षत्रका समावेश न हो, तो जिस तिथिमें सन्धिकालमें अर्थात् शाम या सुबह नक्षत्रका योग होगा उसी दिन यथासमय क्रियादि करनी होगी।

(४) यदि इस तरह किसी प्रकार तिथिनक्षत्रका योगायोग न हो, तो द्वादशीकी सायंसंधिमें शयनक्रिया और प्रातःसन्धिमें प्रबोधनक्रिया सम्पन्न करे। फिर पार्श्वपरिवर्त्तनक्रिया जिस प्रकार संधिमें की जाती है, तदनुसार ही करनी होगी।

यमस्मृतिमें लिखा है, कि आषाढ़ी शुक्ला एकादशीसे ले कर पौर्णमासी पर्यन्त श्रीहरिका निद्राग्रहणरूप शयनकाल है, इस कारण ब्रह्मपुराणमें भी पहले एकादशीमें शयनका उल्लेख करके उस दिनसे ले कर पांच दिन तक वह कर्म करनेका विषय कहा गया है।

शयन, उत्थान और पार्श्वपरिवर्त्तनघटित एकादशीमें प्रत्येक आदमीको अनशन रहना कर्त्तव्य है। इस संबन्धमें स्वयं भगवान्ने कहा है, कि मेरे शयन, उत्थान और पार्श्वपरिवर्त्तनके दिन फल, मूल या जलाहारी व्यक्ति मेरे हृदयमें शेल (बरछा) मारते हैं अर्थात् उस दिन फल, मूल या जल विन्दुमात्र भी ग्रहण करनेसे शल्यविद्धवत् मुझे वेदना होती है।

"मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्त्तने।
फलमूलजलहारी हृदि शल्यं समार्पयेत्॥" (एकादशीतत्त्व)

मर्त्यगणका शयनविधि-निषेध।

वह्निपुराणमें लिखा है, कि सायंसन्ध्यावन्दनादि करके अग्निमें आहुति दे और उसकी उपासना करे। पीछे भृत्यादि परिवारोंके साथ लघुभोजन करे इसके बाद गोबरसे लिपे हुए निर्जन पवित्र प्रदेशमें शयन करना कर्त्तव्य है। शयनकालमें निम्नलिखित नियम पालन करने होते हैं। यथा—ज्ञानियोंको चाहिये, कि जिस घरके उत्तर और पूरब क्रमशः निम्न रहता है, वहीं स्थान शयनके लिये चुने। शयनकालमें सर्वदा पूर्व और दक्षिणकी ओर सिरहाना रहना उचित है, उत्तर और पश्चिमकी ओर सिरहाना कदापि न रखना चाहिये। एक दूसरेसे सट कर या तिर्यक् भावमें सोना कदापि उचित नहीं। शून्यालयमें अर्थात् परित्यक्त घरमें, श्मशानमें, एक वृक्षके नीचे, चौराहे पर, शिवालयमें, यक्षनागायतनमें अर्थात् जिन सब स्थानोंमें यक्ष स्कन्द आदि ग्रह वा सर्पादि रहते हैं वहां, धान्यगृहमें, गुरुजन या विप्रोंके अवस्थितिस्थानसे ऊपरमें, अशुचिस्थानमें, तृणपत्रादि परिपूर्ण स्थानमें, स्वयं अशुचि, शिखारहित या उलङ्ग अवस्थामें, दिनमें, संध्याकालमें, पर्वत पर, शून्य स्थानमें, देवाश्रित वृक्ष पर, जलक्लिन्न द्वारयुक्त गृहमें अर्थात् जिस घरका दरवाजा जल और कीचड़से भरा रहता है उस घरमें, आर्द्रपद या अधौत पदमें, पलाशकाष्ठ निर्मित खट्वादि पर, बहुविदीर्ण स्थानमें, विद्युत् या अग्निदग्ध स्थानमें, जलके ऊपर और शरके आसन पर शयन करना निषिद्ध है। अतएव इसका किसी प्रकार उल्लङ्घन करनेसे लोग इस लोकमें दुःखी और परलोकमें निरयगामी होते हैं। (वह्निपुराण)

स्मृत्यादिके मतसे सूर्यके रहते शयनशय्याको बिछाना और उठाना निषिद्ध है अर्थात् प्रति दिन सूर्यास्तके बाद बिछौना बिछाना और सूर्यदेवके उदयके पहले उसे उठाना उचित है।

व्यासका कहना है, कि शयनकालमें सिरहानेके पास ही एक माङ्गल्य पूर्णकुम्भ वैदिक गरुड़ मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्थापन कर शयन करना चाहिये।

गर्गने कहा है, कि अपने घरमें दक्षिण या पूर्व ओर तथा परदेशमें पश्चिम ओर सिरहाना कर सोनेसे आयुकी वृद्धि होती है। किन्तु उत्तर ओर मस्तक कर कदापि सोना न चाहिये।

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि पूर्व ओर मस्तक रख कर शयन करनेसे धन लाभ, दक्षिण ओर आयुर्वृद्धि, पश्चिम ओर प्रबल चिन्ता और उत्तर ओर मस्तक रख कर सोनेसे हानि और मृत्यु होती है। फिर प्रति दिन रातको विष्णुको प्रणाम कर समाधिस्थ हो शयन करे। शून्यगृहमें, श्मशानमें, एक वृक्ष पर, चौराहे पर, शिवालयमें, ढेले या पूल पर, धान, गाय, विप्र, देवता और गुरु-

जनसे उच्चासन पर, भग्न शय्या पर, अपवित्र शय्या पर, स्वयं अपवित्र अवस्थामें, आर्द्र वस्त्रसे उलङ्गावस्थामें, उत्तर और पश्चिमको ओर मस्तक रख कर शून्य या अनावृत्ति स्थानमें तथा देवताश्रित वृक्ष पर शयन न करना चाहिये।

मत्स्यसूक्तके ४वें पटलमें लिखा है—गृही व्यक्तिको सन्ध्याके बाद यथोक्त समयमें खा पी कर पैर हाथ धो कर यथाविधि मन्त्रोच्चारण कर बिछावन पर जाना चाहिये। किन्तु शाल्मली, कदम्ब, मन्दार, पलाश और वट आदि लकड़ीके बने हुए तथा कुशमय शय्या पर कभी सोना न चाहिये, सोनेसे पापभागी होना पड़ता है। इसके सिवा वृक्षादिके नीचे, पाट, शण आदि सूतके ऊपर, शूकादि द्वारा अपवित्र शय्या पर, खड़ तृण आदिके ऊपर, निरवच्छिन्न मिट्टीके ऊपर तथा पट्टवस्त्र और कलङ्की अर्थात् किसी प्रकारके दागवाले कम्बल पर सोना निषिद्ध है। गृहीके लिये तुला निर्मित शय्या या शुद्ध वस्त्रके ऊपर सोनेकी व्यवस्था है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि सूर्यके उदय होने तक तथा उनके अस्त होते ही पीड़ित व्यक्तिको छोड़ जो निद्रादेवीकी गोदमें पड़े रहते हैं, वे अवश्य ही प्रायश्चित्त के योग्य हैं।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि खानेके बाद धीरे धीरे सौ कदम चल कर पीछे शयन करनेसे शरीरको पुष्टि होती है।

"भुक्तोपविशतस्तुन्दं शयानस्य तु पुष्टिता।
आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावति धावतः॥"

उक्त शयनकी व्यवस्था इस प्रकार है—

अष्टश्वास परिमित काल तक चित हो कर, उससे दूना दाहिनी करवटसे और उससे भी दूना अर्थात् जितनी देरमें (८×२×२) ३२ बार श्वास निकाल सके उतनी देर तक बाईं करवटसे सोवे। उसके बाद जिस ओर इच्छा हो, सो सकते हैं। जन्तुओंके वाम पार्श्वमें नाभिके ऊपर पाचकाग्निका अधिष्ठान है, अतएव खाई वस्तु जिससे अच्छी तरह पच जाय उसके लिये खानेके बाद बाईं करवटसे सोना ही कर्त्तव्य है।

खट्वादि शय्या पर शयनगुण।

खट्वा अर्थात् खाट पर सोनेसे त्रिदोषकी शमता होती है; तुलानिर्मित शय्या पर सोना वातश्लेष्मनाशक है; भूशय्या शरीरको उपचयकारक और शुक्रजनक तथा काष्ठपीठकी शय्या वायुवर्द्धक है।

किसी किसीके मतसे भूशय्या अत्यन्त वायुवर्द्धक, रुक्ष और रक्तपित्तनाशक है।

सुशय्या अर्थात् खूब साफ सुथरे दूधकी तरह सफेद शय्या पर सोनेसे अन्तःकरणकी स्फूर्त्ति, शरीरकी पुष्टिता, सहजमें निद्राकर्षण, धारणशक्तिकी वृद्धि, श्रमनाश और वायु प्रशमित होती है। निकृष्ट शय्या इसका विपरीत गुणवाली है, अतएव उस पर कभी सोना न चाहिये।

५ ग्रहोंके बारह भावोंमेंसे एक भाव या अवस्था, ग्रहोंका भाव या अवस्थाविशेष। नीचे प्रत्येक ग्रहको शयन भाव और उस भावापन्न ग्रहका फल लिखा जाता है—

ग्रहोंका शयनादि भाव जाननेमें जातकके जन्मकालमें ग्रहगण किस किस नक्षत्रमें रहते थे, सबसे पहले उसीका निर्णय करना होता है। पीछे उस ग्रहाधिष्ठित नक्षत्र संख्या द्वारा उस संख्याको गुना करे। बादमें ग्रहगण अपनी अधिष्ठित राशिके जिस नवांशमें रहते हैं, उस नवांश परिमित अङ्क द्वारा उस गुणनफलको फिरसे गुना करना होता है। अब ग्रहोंका अपना जन्मनक्षत्र, उस जातकका जन्मलग्नसंख्यक अङ्क और उदयसे जितने दण्डमें उसका जन्म हुआ है, वह दण्ड पूर्वोक्त गुणनफलमें योग कर उसे १२से भाग दे। यदि भागशेष एक रह जाय, तो उसे ग्रहका शयनभाव जानना होगा। इस प्रकार दो रहनेसे उपवेशन, इत्यादि।

ग्रहोंका जन्मनक्षत्र, यथा—रविका जन्मनक्षत्र १६ विशाखा, चन्द्रका ३ कृत्तिका, मङ्गलका २० पूर्वाषाढ़ा, बुधका २२ श्रवणा, बृहस्पतिका ११ पूर्वफल्गुनी, शुक्रका ८ पुष्या, शनिका २७ रेवती, राहुका २ भरणी, केतुका ६ अश्लेषा।

कोई पापग्रह शयन या निद्रित अवस्थामें किसी दूसरे पापग्रह कर्त्तृक दृष्ट न हो कर सप्तम अर्थात् जायास्थानमें रहे, तो जातकका शुभफल होता है। रिपुदृष्ट

और रिपुगृहागत पापग्रह उक्त अवस्थापन्न हो कर सप्तममें रहे, तो पत्नीके साथ जातककी मृत्यु होती है। ऐसा अवस्थापन्न शुभग्रह शुभाशुभग्रह कर्त्तृक दृष्ट होनेसे सिर्फ जातककी प्रथम पत्नीका वियोग होता है।

उक्त भावद्वयापन्न पापग्रहके सुत या पञ्चम स्थानमें रहनेसे जगत्का शुभ होता है। वह ग्रह यदि अपने उच्च मूलत्रिकोणस्थ हो, तो सन्तानकी हानि होती है। उस अवस्थाका शुभग्रह यदि शुभग्रह दृष्ट हो कर सुतस्थानमें रहे, तो जातककी प्रथम सन्तानका अनिष्ट होता है।

मृत्यु या अष्टम स्थानमें उक्त अवस्थाद्वयसम्पन्न पापग्रहके रहनेसे राजा या किसी शत्रुके हाथ जातककी अपमृत्यु होती है। किन्तु वह पापग्रह शुभदृष्ट होनेसे तो निःसन्देह गङ्गाके किनारे उसकी मृत्यु होगी। शत्रु या पापग्रहदृष्ट शुभग्रह शयन भावमें मृत्युस्थानमें रहनेसे शिरश्छेद होता है; विशेषतः शनि, मङ्गल या राहुके उसी भावमें उसी स्थानमें रहनेसे अपमृत्यु या शिरश्छेद अनिवार्य है।

कर्म अर्थात् दशम स्थानमें शयन या भोजनभावापन्न पापग्रह रहनेसे जातक दरिद्रताके कारण इस पृथ्वी पर भटकता रहता है।

रविके शयनभावमें किसी स्थानमें रहनेसे जातक मन्दाग्नि, पित्तशूल, श्लीपद और गुह्यरोगसे आक्रान्त होता है।

चन्द्रमाके शयनभावापन्न होनेसे जातक क्रोधी, दरिद्र, अतिशय लम्पट और गुह्यरोगी होता है। यहां तक, कि वह हमेशा अस्वस्थ रहा करता है। चन्द्रके लग्नस्थ हो कर शयनावस्थापन्न होनेसे भी जातकके सब रोग अधिक होते हैं, अन्य स्थानस्थ होनेसे उतने नहीं होते।

शयनावस्थापन्न बुधके लग्नमें रहनेसे वालक धनवान्, सर्वदा क्षुधित और खञ्ज होता है। अन्य स्थानमें इसी भावमें रहनेसे वह दरिद्र और भारी लंपट होता है।

बृहस्पतिके शयनावस्थामें किसी स्थानमें रहनेसे मानव विद्याबुद्धिसमन्वित, नाना गुणयुक्त, दाता और सुखी होता है।

सप्तम अथवा एकादश स्थानमें शुक्रकी शयनावस्था होनेसे बालक कभी भी दरिद्र नहीं होता, हमेशा सुखी रहता है तथा कम होने पर भी उसे सात पुत्र और पांच कन्या होती है। परन्तु ग्रहका बलाबल समझ कर कमी वेशी भी हो सकती है। उस अवस्थामें रहनेसे जातक धनवान्, धार्मिक और सुखी होता है, किन्तु उसका पुत्रनाश अनिवार्य है।

मङ्गलके शयन भावमें किसी स्थानमें रहनेसे जातक लम्पट, कृपण, सुखी, महाक्रोधी, महादक्ष और पण्डित होता है, किन्तु उसी भावमें पञ्चम और सप्तम स्थानमें रहनेसे यथाक्रम उसकी पहली सन्तान और पहली स्त्री विनष्ट होती है। शत्रुगृहस्थ मङ्गल रिपु द्वारा देखे जाने पर जातकके कर्णनासादि वा भुजच्छेद और वहां रह कर शनि और राहुयुक्त होनेसे शिरश्छेद होता है। शयनभावापन्न मङ्गल यदि लग्नमें रहे, तो जातक हमेशा रोगी रहता तथा दद्रु, कुष्ठ, विचर्चिका आदि द्वारा उसका शरीरभङ्ग होता है।

शनिके शयनभावमें रहनेसे जातक क्षुधित, विकलाङ्ग और गुह्यरोगी होता है तथा उसके कोपकी वृद्धि होती है। लग्न, षष्ठ और अष्टममें रहनेसे मानव चिरप्रवासी, दरिद्र और अतिशय विकलाङ्ग होता है। पञ्चम, नवम, दशम और सप्तममें यदि उसका शयनभाव देखा जाय, तो जातक पुत्रवान् और सब प्रकारसे सुखी होता है।

जिसके जन्मकालमें राहुकी शयन अवस्था होती है, उसे नाना प्रकारका क्लेश होता तथा वह हमेशा दुःखी और श्लीपदरोगग्रस्त रहता है। राजाका भी इस अवस्थामें जन्म होनेसे उसके धनकी हानि होती है। किंतु वृष, मिथुन, सिंह और कन्या राशिमें रह कर शयनभावग्रस्त होनेसे मनुष्य सभी सुखोंके अधिकारी होते हैं।

शयन आरती (सं० स्त्री०) देवताओंकी वह आरती जो रातको सोनेके समय होती है।

शयनकक्ष (सं० पु०) सोनेका कमरा या घर, शयनागार।

शयनगृह (सं० क्ली०) शयनमन्दिर, सोनेका स्थान, शयनागार।

शयनप्रकोष्ठ (सं० पु०) शयनगृह, शयनमन्दिर।

शयनबोधनी (सं० स्त्री०) अगहन मासके कृष्ण पक्षकी एकादशी।

शयनभूमि (सं० स्त्री०) शयनस्थान, सोनेकी जगह।

शयनमन्दिर (सं० क्ली०) शयनगृह, सोनेका घर, शयनागार।

शयनमहल (सं० क्ली०) शयनागार

शयनवासस् (सं० क्ली०) वे कपड़े जो सोनेके समय पहने जांय।

शयनस्थान (सं० क्ली०) शयनभूमि, सोनेकी जगह।

शयनागार (सं० पु०) शयनमन्दिर, शयनगृह, सोनेका स्थान।

शयनावास (सं० पु०) सोनेका घर।

शयनास्पद (सं० क्ली०) बिछौना।

शयनीय (सं० क्ली०) शेतेऽस्मिन्निति शी-अनीयर् अधिकरणे। १ शय्या, बिछौना। (त्रि०) २ शयनयोग्य, सोनेके लायक। (रामायण २।७२।११)

शयनीयक (सं० क्ली०) शयनीयमेव स्वार्थे कन्। शय्या, बिछौना। (कथासरित्सागर ३३।१७७)

शयनीयगृह (सं० क्ली०) सोनेका घर।

शयनीयवास (सं० पु०) वे कपड़े जो सोनेके समय पहने जांय।

शयनैकादशी (सं० स्त्री०) शयनाय शयनस्य वा एकादशी। आषाढ़ मासके शुक्लपक्षकी एकादशी। विष्णु भगवान्‌के शयनका प्रारम्भ इसी दिनसे माना जाता है।

विस्तृत विवरण शयन और हरिशयन शब्दोंमें देखो।

शयाण्ड (सं० पु०) १ एक प्राचीन देश या जनपदका नाम। २ इस देशका निवासी।

शयाण्डक (सं० पु०) कृकलास, गिरगिट।

(शुक्लयजुः २४।३३)

शयाण्डभक्त (सं० पु०) शयाण्डानां विषयो देशः। शयाण्ड नामक जनपद-वासियोंका विषय या देश।

(पा ४।२।५४)

शयान (सं० पु० क्ली०) निद्रित, वह जो सोया हो।

शयानक (सं० पु०) शी-शानच्, ततः कन् यद्वा 'आनकः शोङ् भियः इति आनक्।' (उणादिकोष) १ सर्प, सांप। २ कृकलास, गिरगिट।

शयामूत (सं० क्ली०) शय्यामूत, बिछौने पर पेशाब करना।

शयालु (सं० त्रि०) शी-आलुच् (आलुचि शीङो ग्रहणं कर्त्तव्यम्। पा ३।२।१५८) १ निद्राशील, वह जिसे नींद आई हो। (माघ २।८०) २ अजगर, सर्प। ३ कृकलास, गिरगिट। ४ कुक्कुर, कुत्ता। ५ शृगाल, सियार, गीदड़।

शयित (सं० त्रि०) शी क्त। १ कृतशयन, सोया हुआ। (कथासरित्सा० ५६।१८७) २ निद्रालु, जिसे नींद आई हो। (क्ली०) ३ शयन, सोना। ४ श्लेष्मान्तक, लिसोड़ा। ५ अजगर।

शयितवत् (सं० त्रि०) शी-क्त-वतु। निद्रालु, जिसे नींद आई हो।

शयितव्य (सं० त्रि०) सोने लायक। (कथासरित्सा० १४।४८)

शयितृ (सं० त्रि०) शी-तृच्। पा ४।२।१५) शयनकारी, सोनेवाला।

शयु (सं० पु०) शी-उ। १ अजगर। २ एक प्राचीन वैदिक ऋषिका नाम। (ऋक् १।११२।१६) (त्रि०) ३ शयान, सोया हुआ। (ऋक् ४।१८।१२)

शयुत्रा (सं० पु०) १ शयन। २ शयु नामक ऋषिके त्राणकर्त्ता। (ऋक् १।११७।१२)

शयुन (सं० पु०) शी-उनन् (उणादिकोष)। अजगर।

शय्यम्भद्र (सं० पु०) जैनोंके छः श्रुतकेवलीमेंसे एक। संभवतः इसका दूसरा नाम शय्यम्भव है।

शय्यम्भव (सं० पु०) जैनोंके छः श्रुतकेवलीमेंसे एक।

शय्या (सं० स्त्री०) शी-क्यप् संज्ञायां समजेति (पा ३।३।९९) १ गुम्फन, गूंथना, गांथना। शेरते यत्र सा। २ बिछौना, जिस पर शयन किया जाय।

शय्या और आसनादि कुसुमसुकोमल होना उचित है। ऐसी शय्या पर सोनेसे निद्रा, पुष्टि और धृतिशक्तिकी वृद्धि होती है तथा श्रमजन्य प्रकुपित वायु विनष्ट होती है। इसकी विपरीत अर्थात् कदर्य शय्या पर सोनेसे विपरीत फल होता है। भू-शय्या वातपित्तप्रशमनी, बृहणी और शुक्रवर्द्धिनी होती है। खट्वा वातविवर्द्धिनी तथा पट्टशय्या अति रुक्षतमा और अतिशय वातप्रकोपणी है। (राजवल्लभ)

किसी किसीके मतसे खट्वा त्रिदोषशमनी; तूलिका-शय्या वातकफापहारिणी; भूशय्या बृंहणी और शुक्रला; काष्ठ और पट्टशय्या वातला है।

भावप्रकाशमें लिखा है, कि भूशय्या अत्यन्त वातला, रुक्ष और रक्तपित्तविनाशिनी है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि गृहस्थ सायंकालीन भोजनके बाद हाथ पैर धो कर अस्फुटित दारुनिर्मित सुप्रशस्त अभग्न समतल अत्यन्त परिष्कार परिच्छन्न शय्या पर सोवे ; अविस्तृत या किसी जन्तुमयी शय्या पर कदापि सोना न चाहिये।

(विष्णुपु० ३य अंश ११ अ०)

शय्यादानफल।

शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि गृह, धान्य, हरीतकी, पादुका, छत्र, माल्य, चन्दनादि अनुलेपनद्रव्य, शकटादि यान, वृक्ष, शय्या और जिसके लिये जो वस्तु अत्यन्त प्रिय है वह वस्तु दान करनेसे सुखसम्भोग होता है। विशेषतः सामर्थ्य रहते हुए शय्यादिदानमें कभी भी किसीको प्रत्याख्यान करना कर्त्तव्य नहीं ; क्योंकि याज्ञवल्क्यने कहा है, कि कुश, शाक, दुग्ध, मत्स्य, गंधद्रव्य, पुष्प, दधि, क्षिति, मांस, शय्या, आसन, यान और जल इन सब द्रव्यदानमें कभी किसीको प्रत्याख्यान न करे।

(याज्ञवल्क्य)

ब्रह्मपुराणमें लिखा है, कि मृतव्यक्तिके उद्देशसे जो सब शय्यादि दान की जाती है वह तथा मुमूर्षु या मृतव्यक्तिकी उद्धार कामनासे जो सब तिल और धेनु दान किया जाता है, वह जो व्यक्ति दान लेता है, वह कभी नरकसे छुटकारा नहीं पा सकता। परन्तु औत्तानाङ्गिरस देवताके उद्देशसे जो सब छत्र, कृष्णाजिन, शय्या, रथ, आसन, पादुका, शकटादि यान और प्राणवर्जित जो कोई दान किया जाता है, मनुष्य उसे ग्रहण कर सकते हैं।

देवीपुराणके पुष्पाभिषेक नामक अध्यायमें शय्यापट्टक अर्थात् पीठशय्याका विषय इस प्रकार लिखा है, यथा—दो हाथ लम्बा, हाथ भर चौड़ा, दश उंगली ऊंचा रत्नालङ्कार द्वारा सुशोभित पीठक बैठनेके लिये प्रस्तुत करे, स्नानके लिये यदि बनाना हो, तो उसे डेढ़ हाथ घेरेका वृत्ताकारमें बनाना होगा ; शयनके लिये व्यवहार करनेमें उसे चार हाथ लंबा बनाना कर्त्तव्य है।

(देवीपुराण पुष्पाभिषेक)

शय्यागत (सं० त्रि०) १ शय्याशायी, बिछौने पर सोनेवाला। २ जो बीमार होनेके कारण खाट पर पड़ा हो, पीड़ित।

शय्यागृह (सं० क्ली०) शयनगृह, सोनेका घर।

शय्याच्छादन (सं० क्ली०) आस्तरण, पलङ्ग पर बिछानेकी चादर।

शय्यादान (सं० पु०) मृत्युके अनन्तर मृतकके संबन्धियोंका महापात्रको चारपाई बिछावन आदि दान देना, सज्जादान।

शय्याध्यक्ष (सं० पु०) शय्यापाल।

शय्यापतित (सं० त्रि०) शय्यागत देखो।

शय्यापाल (सं० पु०) वह जो राजाओंके शयनागारकी व्यवस्था करता हो।

शय्यापालक (सं० पु०) शय्यापाल।

शय्यामूत्र (सं० क्ली०) एक रोग जो प्रायः बालकोंको होता है। इसमें उन्हें निद्रावस्थामें ही शय्या पर पड़े पड़े पेशाब हो जाता है।

शय्यावासवेश्मन् (सं० क्ली०) शयनगृह, सोनेका घर।

(कथासरित्सा० ४६।१९०)

शय्यावेश्मन् (सं० क्ली०) शय्यागृह, सोनेका घर।

शय्योत्सङ्ग (सं० पु०) शय्याका पार्श्वदेश, मतान्तरसे शय्याका मध्यस्थान।

शय्योत्थायस् (सं० अव्य०) बिछौना छोड़नेका समय, प्रातःकाल, सुबह।

शर (सं० पु०) शृणात्यनेनेति शृ-हिंसे (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) इति अप्। स्वनामख्यात तृणभेद, सरकण्डा, नरकट। पर्याय—इषु, काण्ड, बाण, मुक्त, तेजन, गुन्द्रक, उत्कट, शायक, क्षुर, इक्षुभ, क्षुरिका, पत्र, विशिख। वैद्यकके मतसे गुण—मधुर, तिक्त, कुछ उष्ण, कफ, श्रम और मत्तताना‌शक, बलवीर्य्यकारक, प्रति दिन सेवन करनेसे वातवर्द्धक। (राजनि०)

यह बहुत बड़ा होता और अनेक कामोंमें आता है। उद्भिद्विदोंने देशभेदसे पार्थक्य निरूपण कर इसका भिन्न भिन्न नाम रखा है ; यथा—रक्सवर्ग Saccharum sara और S Munja तथा एण्डर्सन Care ; किंतु यथार्थमें यह तृणजाति एक है। नामभेद होने पर

भी उनमें कोई विशेष प्रभेद नहीं है। देशभेदसे भी यह विभिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। हिन्दी—शर, सरकण्डा, शर्करा, सरपत, शरपत्र, रामशर, मुञ्जा ; बङ्गला—शर ; संथाल—शर; युक्तप्रदेशके पूर्वांशमें—पातावर, पश्चिमांशमें—इकर, शरहर, शरकाण्ड ; अयोध्या—पालवा ; पञ्जाब—खड़काना, काण्ड, सर्जावर, शर्कर ; अजमीर—शर, सरपत; सिन्धुदेश—शर, सिन्धुके पश्चिम—दगा, साचा, कड़े ; तैलङ्ग—गुन्द्रा, पोणिका ; अङ्गरेजी—Pen-reed grass.

उत्तर-पश्चिम भारत और पंजाबके समतल प्रांतरमें यह तृण बहुतायतसे उपजता है। यह देखनेमें लंबा और सुन्दर होता है। साधारणतः ८ से १२ फुट तक इसकी ऊंचाई होती है। कभी कभी नदीतीरस्थ जमीन अथवा जो सब निम्न भूमि नदीकी बाढ़से डूब जाया करती है, वैसी जमीनके अड्डेके ऊपर यह घास गाड़ कर बाहरसे घेरा दे दिया जाता है। ऐसी जल सिक्त जमीन पर वह जल्द बढ़ता है तथा अन्यान्य उच्च स्थानजात तृणकी अपेक्षा इसका आकृतिगत अनेक परिवर्त्तन होता है। इसके काण्डावरक पत्रवृन्त से जो रेशे निकलते हैं, उनसे अच्छी रस्सी तय्यार होती है। वर्षाऋतुके बाद इसमें फूल लगते हैं। Erianithus R, vennae नामक तृणविशेषके साथ इसका आकृतिगत और स्वभावगत अनेक सौसादृश्य है। बहुतेरे दोनों तृणको देख कर भ्रममें पड़ जाते हैं, किन्तु इनके पुष्पोद्गमकालकी पृथकता है। शेषोक्त तृणके पुष्प निकलनेके बहुत पीछे प्रथमोक्त तृण पुष्पित होता है।

पञ्जाबमें इसका मूल 'गर्भगंध' नामसे बिकता है। यह प्रसूतिका एक उपकारी औषध है। संतानके जन्म लेने पर यह गर्भगन्ध प्रसूतिके सामने जलाया जाता है। इसका धूम अग्निदग्ध या क्षत स्थानके लिये विशेष उपकारी है। इसका मुञ्ज बहुत दृढ़ होता है और जलमें जल्दी सड़ता नहीं। इलाहाबाद और मिर्जापुरके मांझी शरमुञ्जके रस्सेसे नाव खींचते हैं। यह टेबिल, टोकरे, पर्दे, धान आदिके गोले तथा घर छानेके काममें आता है। १८८३-८४ ई०में कलकत्तेमें जब आन्तर्जातिक प्रदर्शनी खोली गई, तब बहुतसे शरके घर किलामैदानमें बनाये गये थे।

इसकी कच्ची कच्ची पत्तियां गवादिके खाद्यरूपमें व्यवहृत होते हैं। शीतकालमें पंजाबवासी गवादिको सूखी पत्तियां, भूसी और चनेके साथ खिलाते हैं, इसके डंठलसे लिखनेकी कलम भी बनाई जाती है। अरबी, फारसी और भारतकी विभिन्न जातियोंकी भाषालिपि शरकी कलमसे ही लिखी जाती है। पूर्व समयमें योद्धा लोग शरसे बाण तैयार करते थे। आज भी संथाल, भील आदि असभ्य जातियां शरका बाण बनाती हैं। सरस्वतीपूजाके समय देवीके सामने शरकी कलमसे पूजा की जाती है।

शरकाण्ड (S, arundinaceum या S. procerum) जातिकी एक और श्रेणी है। पर्वतादिके बालुकामय शृङ्गदेश पर तथा समतल क्षेत्रमें यह तृण उपजता है। यह भारतवर्षमें प्रायः २० फुट ऊंचा होता है। कार्त्तिक मासमें ये सब तृण पुष्पके भारसे झुक कर अत्यन्त सुन्दर दृश्य धारण करते हैं। यह देखनेमें प्रायः ईख (S, officinarum)की तरह होता है, किन्तु बाह्य दृश्यमें उससे कहीं सुन्दर दिखाई देता है। इससे भी उक्त शरकी तरह नाना प्रकारकी चीजें बनती हैं। इस शरके पुष्पयुक्त अग्रभागसे टोकरी, पंखे, चलनी आदि बनते हैं।

२ बाण, तीर। ३ दध्यग्रभाग, दहीकी मलाई। पर्याय—दधिसार, दधिस्नेह। कट्टर। ४ दूधकी मलाई। ५ उशीर, खस। ६ महापिण्डी, भाला। ७ हिंसा। ८ ज्योतिषोक्त पञ्चमाङ्क, पांचकी संख्या। इससे कामदेवके पञ्चबाणका भी बोध होता है। ९ असुरभेद। १० ऋचत्कके पुत्र। (ऋक् ५।१।११६।२३) ११ शिव। १२ जल। १३ वृत्तांशकी शिञ्जिनी (Sine of an arc)।

शरअ (अ० स्त्री०) १ वह सीधा रास्ता जो ईश्वरने भक्तोंके लिये बतलाया हो। २ मुसलमानोंका धर्मशास्त्र। ३ दस्तूर, तौर, तरीका। ४ कुरानमें दी हुई आज्ञा। ५ दीन, मजहब, धर्म।

शरई (अ० वि०) १ शरअके अनुसार, मुसलमानी धर्मके अनुसार। (पु०) २ शरअ पर चलनेवाला मनुष्य।

शरक (सं० त्रि०) शरतृणभव। (पा ४।२।८०)

शरकाण्ड (सं० पु०) शरदण्ड, शरकंडा, सरपत।

शरकार (सं० पु०) वह जो तीर बनाता हो।

शरकुण्डेशय (सं० त्रि०) शरकुण्डमें अवस्थानकारी।

शरकूप (सं० पु०) प्रस्रवणभेद। (ललितविस्तर)

शरखड्ग (सं० पु०) उलूक तृण, उलप।

शरगुल्म (सं० पु०) १ शरतृण, सरकंडा। २ रामायणके अनुसार एक यूथपति बंदरका नाम।

(रामायण ४।४१।३)

शरघात (सं० पु०) शर-हन् घञ्। शराहत, शराघात।

शरच्चन्द्र (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा।

शरच्छशिन् (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा।

शरच्छालि (सं० पु०) शारदीय धान्य।

शरच्छिखिन् (सं० पु०) मयूर, मोर।

(भारत शान्ति०)

शरज (सं० क्ली०) शरात् जायते जन-ड। १ हैयङ्गवीन, नवनीत, मक्खन। (हेम) (त्रि०) २ शरजात, सरकंडेसे उत्पन्न या बना हुआ।

शरजन्मन् (सं० पु०) शरे शरवने जन्म यस्य। कार्त्तिकेय।

शरज्योत्स्ना (सं० स्त्री०) शरत्कालकी चन्द्रिका।

शरट (सं० पु०) शॄ-शकादित्वादटन्। १ कुसुम्भ नामक साग। २ कृकलास, गिरगिट। ३ करञ्ज।

शरटी (सं० स्त्री०) लज्जालुक, लाजवन्ती, लजाधुर।

शरण (सं० क्ली०) शृणाति दुःखमनेनेति शॄ ल्युट्। १ गृह, घर, मकान। २ रक्षा, आड़, आश्रय, पनाह। ३ आश्रयका स्थान, बचावकी जगह। ४ वध, जो शरणमें आवे उसके वैरीको मारना। ५ अधीन, मातहत। ६ एक कवि। गीतगोविन्दमें जयदेवने इसका उल्लेख किया है। प्रवाद है, कि इनका दूसरा नाम शरणदत्त था। लक्ष्मणसेनकी सभामें ये विद्यमान थे। ७ शाहाबादके उत्तर सारन नामक जिला।

शरणद (सं० त्रि०) शरण देनेवाला, रक्षा करनेवाला।

शरणदेव—एक कवि। शरण देखो।

शरणा (सं० स्त्री०) गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता।

(शब्दरत्ना०)

शरणाकुरु (सं० पु०) अन्नभेद। 'वाग्रातेन वा स्वयं वा पक्वतया फलानां अधःपतनेन विशरणं शरणा तत्प्रधानाः कुरवोऽन्नानि शरणाकुरवः। शॄ-विशरणेऽस्मात् भावे ल्युः। कुरुर्द्वीपान्तरे भक्त इति मेदिनी। भक्त ओदनः।'

(भारत १३ पर्व नीलकण्ठ)

शरणागत (सं० त्रि०) शरणमागतः प्राप्तः। शरणापन्न, शरणमें आया हुआ। पर्याय—शरणार्थक, अभिपन्न, शरणार्थी। जो व्यक्ति शरणागत व्यक्तिकी रक्षा नहीं करता, वह एक युग तक कुम्भीपाक नरकमें वास करता है। शरणागतकी रक्षा करनेसे सौ राजसूययज्ञका फल और परम ऐश्वर्य लाभ होता है।

"अङ्गहीनञ्च भीतञ्च दीनञ्च शरणागतम्।
यो न रक्षत्यधर्मिष्ठः कुम्भीपाके वसेद्युगम्॥
राजसूयशतानाञ्च रक्षिता लभते फलम्।
परमैश्वर्ययुक्तश्च धर्मेण स भवेदिह॥"

(ब्रह्मवैवर्त्त प्रकृतिख० ५५ अ०)

पद्मपुराणमें क्रियायोगसारमें लिखा है, जो व्यक्ति धन या प्राण द्वारा शरणागत व्यक्तिकी रक्षा करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो अन्तमें मोक्ष पाता है।

"शरणागत रक्षां यः प्राणैरपि धनैरपि।
कुरुते मानवो ज्ञानी तस्य पुण्यं निशामय॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्महत्यामुखैरपि।
आयुषोऽन्ते व्रजेन्मोक्षं योगिनामपि दुर्लभम्॥"

(पद्मपु० क्रियायोग० ८ अ०)

अग्निपुराणमें लिखा है, कि जो लोभ, द्वेष और भयसे शरणागतकी रक्षा नहीं करता, उसे ब्रह्महत्याके समान पाप होता है। महापातकियोंके भी पापकी निष्कृति है, किन्तु शरणागत व्यक्तिको त्याग करनेवाले पापका निस्तार नहीं है।

"लोभाद्द्वेषाद्भयाद्वापि यस्त्यजेत् शरणागतम्।
ब्रह्महत्यासमं तस्य पापमाहुर्मनीषिणः॥
शास्त्रेषु निष्कृतिर्दृष्टा महापातकिनामपि।
शरणागतहन्तुस्तु न दृष्टा निष्कृतिः क्वचित्॥"

(अग्निपु०)

शरणापन्न (सं० त्रि०) शरणागत, शरणमें आया हुआ।

शरणार्थिन् (सं० त्रि०) शरणं अर्थयते इति अर्थ-णिनि। शरणप्रार्थी, आश्रय चाहनेवाला।

शरणार्पक (सं० त्रि०) शरार्थमर्पयति आत्मानमिति अर्प-ण्वुल्। शरणापन्न, शरणमें आया हुआ।

शरणालय (सं० पु०) आश्रयस्थान।

शरणि (सं० स्त्री०) १ पन्था, मार्ग, पथ। "सरन्त्यनयेति सरणिः नाम्नीति अनिः इदन्तात् पक्षे ईपि सरणी च। सरणि श्रोणिवर्त्मनोविति दन्त्यादौ रसमः। शॄ, स्वॄ, गि हिंसने इत्यस्मात् पूर्ववदनौ शरणिस्तालव्यादिश्च। शुभं शुभे प्रदीप्ते च शरणिः पथि चावनौ। इति तालव्यादावजयः।" (अमरटीकामें भरत) २ पृथ्वी, जमीन। ३ हिंसा। (ऋक् १।३१।१६)

शरणी (सं० स्त्री०) शरणि वाहु ङीष्। १ पन्था, मार्ग, रास्ता। २ गन्ध-प्रसारिणी नामकी लता। ३ जयन्ती। (त्रि०) ४ शरणदेनेवाली।

शरणैषिन् (सं० त्रि०) शरणप्रार्थी, शरण चाहनेवाला।

शरण्ड (सं० पु०) १ पक्षी, विहंग, चिड़िया। २ कामुक। ३ धूर्त्त, चालाक। ४ शरठ। ५ कृकलास, गिरगिट। ६ भूषणभेद, एक प्रकारका गहना। ७ छिपकली।

शरण्य (सं० त्रि०) शृणाति भयमिति शॄ-हिंसायां (शॄरम्योश्च। उण् ३।१०१) इति अन्य यद्वा शरणमिव (शाखादिभ्यो यः। पा ५।३।१०३) इति य। शरणागतरक्षक, शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाला।

शरण्यता (सं० स्त्री०) शरणस्य भावः तल्-टाप्। शरण्यका भाव या धर्म।

शरण्या (सं० स्त्री०) शरण्य-टाप्। दुर्गा। विष, अग्नि आदि भय उपस्थित होने पर भगवती दुर्गादेवीका स्मरण करनेसे वे रक्षा करती हैं, इसलिये वे शरण्या नामसे ख्यात हैं।

शरण्यु (सं० स्त्री०) १ सूर्यकी पत्नी आप्या योषा। सरण्यु देखो। (पु०) २ मेघ, बादल। ३ वायु, हवा।

शरत (सं० स्त्री०) शरत् देखो।

शरत (अ० स्त्री०) शर्त्त देखो।

शरतिया (अ० क्रि० वि०) शर्त्तिया देखो।

शरत् (सं० स्त्री०) शॄ-हिंसायां (शृ दृ भसोऽदि। उण् १।१२६) इति अदि। १ वत्सर, वर्ष, साल। २ ऋतु-विशेष, शरत्ऋतु। पर्याय—शारदा, कालप्रभात, वर्षावसान, मेघान्त, प्रावृडत्यय। आज कल आश्विन और कार्त्तिक मासमें शरत् ऋतु मानी जाती है, वैदिक कालमें कार्त्तिक और अग्रहायण मासमें मानी जाती थी।

किसीके मतसे भाद्र और आश्विन या आश्विन और कार्त्तिक मास शरत्काल है। यह काल उष्ण, पित्त-वर्द्धक और मानवोंके लिये बलप्रद है। शरत् कालमें वायु प्रशमित और पित्त प्रकुपित होता है।

जिस प्रकार वर्षमें ६ ऋतु होती हैं, उसी प्रकार प्रतिदिन भी ६ ऋतुका आविर्भाव हुआ करता है। प्रातःकालमें वसन्त ऋतु, मध्याह्नमें ग्रीष्म, अपराह्णमें वर्षा, अर्द्धरातमें शरत् इत्यादि प्रकारसे ऋतुओंका आविर्भाव होता है।

शरत्ऋतुमें इक्षु विकार गुड़ चीनी आदि, शालिधान्य, मुद्ग, सरोवर जल, क्वथित दुग्ध और प्रदोष कालमें चन्द्रकिरणका सेवन प्रशस्त है। (भावप्र०)

कविकल्पलतामें लिखा है, कि शरत्कालमें यह सब वर्णन करना होता है;—चंद्रपटुता, रविपटुता, जलशुष्कता, वकपुष्प, हंस, वृष, सर्प, सप्तच्छद, पद्म, श्वेतमेघ, धान्य, शिखिपक्ष। ज्योतिषमें लिखा है, कि शरत्कालमें जन्म होनेसे मानव उत्तम कर्मकारी, तेजस्वी, शुचि, सुशील, गुणवान्, सम्मानी और धनी होता है।

"नरः शरत्संज्ञकलब्धजन्मा भवेत् सुकर्मा मनुजस्तपस्वी।
शुचिः सुशीलो गुणवान् सुमानी धनान्वितो राजकुलप्रपन्नः॥"
(कोष्ठीप्रदीप)

शरत्कामिन् (सं० पु०) शरदि शरत्काले कामयते कुक्कुरीमिति कम 'कमेर्णिङ्' इति णिङ्, ततः णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

शरत्काल (सं० पु०) कन्या-संक्रान्तिसे तुला-संक्रान्ति तकका अथवा आश्विन और कार्त्तिकका समय, शरत् ऋतु।

शरत्काण्ड (सं० क्ली०) शरत्काल।

शरत्पद्म (सं० क्ली०) शरदः पद्मम्। सिताम्भोज, श्वेत-पद्म। (राजनि०)

शरत्पर्व्वन् (सं० क्ली०) शरदः पर्व्व। कोजागर पूर्णिमा, आश्विन मासकी पूर्णिमा।

शरत्पुष्प (सं० क्ली०) शरदः पुष्पं। १ आहुल्य क्षुप। २ शरत्कालोद्भव कुसुम, वह सब फूल जो शरत्कालमें हो।

शरत्समय (सं० पु०) शरत्काल।

शरद् (सं० स्त्री०) शॄ-अदि। (उण् १।१२६) १ शरत् ऋतु। २ राजपत्नीभेद। (राजत० ८।१-२५)

शरदई (हिं० स्त्री०) सरदई देखो।

शरदक्ष (सं० पु०) स्मृतिशास्त्रके रचयिता एक आचार्यका नाम।

शरदण्ड (सं० पु०) १ शरयष्टि, सरकंडा। २ चाबुक। "शरदण्डः सार प्रकाण्डइव अनुदण्डिः पृष्ठवंशो येषां सितगौरपृष्ठा (हयाः) इत्यर्थः।" (भारत द्रोणपर्वटीका-में नीलकण्ठ)

शरदण्डा (सं० स्त्री०) १ प्राचीन नदीका नाम। २ एक प्राचीन देशका नाम।

शरदन्त (सं० पु०) शरदः तदाख्य ऋतोरन्तो यस्मात्। शरत्ऋतुका अन्त अर्थात् हेमन्त ऋतु।

शरदपूर्णिमा (सं० पु०) कुआर मासकी पूर्णिमासी, शरत् पूनो।

शरदसिंहदेव (सं० पु०) राजभेद।

शरदा (सं० स्त्री०) १ शरत् ऋतु। २ वर्ष, साल।

शरदिज (सं० त्रि०) शरदि जायते इति जन-ड (प्रावृट् शरत्कालदिवां जे। पा ६।३।१५) इति सप्तम्या अलुक्। शरत् कालजात, जो शरत् ऋतुमें उत्पन्न हो।

शरदिन्दु (सं० पु०) शरच्चन्द्र, शरतऋतुका चन्द्रमा।

शरदुदाशय (सं० क्ली०) शरत्कालका सरोवर।

शरदुद्भव (सं० पु०) क्षुपलशाक विशेष।

शरदेन—एक प्राचीन कवि।

शरद्गत (सं० त्रि०) शरदं गतः। शरत्कालप्राप्त।

शरद्धिमरुचि (सं० पु०) शरत्कालका चन्द्रमा।

शरद्ह्रद (सं० पु०) शरत्कालीनो ह्रदः। शरत्कालका जलाशय।

शरद्वत् (सं० पु०) १ शरत्काल। २ विशीर्ण कार्म्मुक। ३ बहुसंवत्सरयुक्त अथवा पुरातन या नित्यवस्तु। ४ एक प्राचीन ऋषि। (पा ४।१।१०२) ५ गौतमके वंशधर, शारद्वत ऋषि। (हरिवंश)

शरद्वसु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि।

शरद्विहार (सं० पु०) शरत्कालका आमोद-प्रमोद।

शरद्वीप (सं० पु०) पुराणानुसार एक द्वीपका नाम जो जलद्वीप भी कहलाता है।

शरधान (सं० पु०) १ वृहत्संहिताके अनुसार एक देश। २ इस देशका निवासी।

शरधि (सं० पु०) शरा धीयन्तेऽस्मिन्निति शर-धा-(कर्म्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) इति कि। तूण, तीर रखने-का चोंगा, तरकश।

शरनिवास (सं० पु०) शरवनमें वास करनेवाला। (पा ८।४।३६)

शरन्मेघ (सं० पु०) शरत्कालीनो मेघः। शरत्कालको मेघ।

शरपङ्क (सं० पु०) जवासा, हिंगुआ, धमासा।

शरपञ्जर (सं० क्ली०) शरशय्या।

शरपट्टा (हिं० पु०) एक प्रकारका शस्त्र।

शरपर्णी (सं० स्त्री०) वृक्षभेद, एक प्रकारका पौधा। (पा ४।१।६४)

शरपुङ्ख (सं० पु०) शरस्य पुङ्ख आकृतिर्यस्य। १ स्वनाम-ख्यात क्षुपविशेष, नीलकी तरहका एक प्रकारका पौधा, सरफोका। (Sephrosia purpures) बम्बई—कुलथि। कलिङ्ग—येरबु कोगगि। महाराष्ट्र—उन्हालि। तैलङ्ग—तेलवेपलिल चेट्टू। तामिल—कोल्लुक यवेल रचि। संस्कृत पर्याय—काण्डपुङ्खा, वाणपुङ्खा, इषुपुङ्खिका, शायकपुङ्खा, इषुपुङ्खा। गुण—कटु, उष्ण, कृमि और वात-नाशक। सफेद शरपुङ्ख बड़ा फायदेमंद होता है। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे तिक्त, और कषाय; यकृत्, प्लीहा, गुल्म, व्रण और विष, कास, अस्रज्वर और श्वासनाशक। (भावप्रकाश)

२ वाण या तीरमें लगा हुआ पंख। (क्ली०) ३ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका यन्त्र।

शरपुङ्खा (सं० स्त्री०) शरपुङ्ख देखो।

शरबत (अ० पु०) १ पीनेकी मीठी वस्तु, रस। २ चीनी आदिमें पका हुआ किसी ओषधिका अर्क जो दवाके

काममें आता है। जैसे,—शरबत बनफशा, शरबत अनार। ३ पानीमें घोली हुई शक्कर या खाँड़। ४ मुसलमानोंका एक रस्म जो विवाहके पश्चात् शरबत पिला कर पूरीकी जाती है और उसके बदलेमें वधूके पक्षवालोंको कुछ धन दिया जाता है। ५ सगाईकी रस्म।

शरबत पिलाई (हिं० स्त्री०) वह धन जो वर और कन्या-पक्षके लोग एक दूसरेको शरबत पिला कर देते हैं।

शरबती (हिं० पु०) १ एक प्रकारका हलका पीला रङ्ग जिसमें साधारण लाली भी होती है। यह प्रायः हर-सिंगारके फूल और शहाब मिला कर बनाया जाता है। २ एक प्रकारका नीबू। इसे मीठा भी कहते हैं। ज्वर-में लोग प्रायः इसका रस चूसते हैं। पर्याय—चकोतरा, मधुकर्कटी। ३ एक प्रकारका फालसा जो बड़ा और मीठा होता है। ४ एक प्रकारका नगीना जो पीलापन लिये लाल रङ्गका होता है। ५ एक प्रकारका बढ़िया कपड़ा। यह तनजेबसे कुछ मोटा और अद्धीसे कुछ पतला होता है। (वि०) ६ रसदार, रसीला।

शरबती नीबू (हिं० पु०) १ चकोतरा। २ गलगल। ३ जम्बीरी, मीठा नीबू।

शरबन्ध (सं० पु०) शरयोजन।

शरबान (सं० पु०) भूतृण, अगिया घास।

शरबीज (सं० पु०) १ चारुक, सरपत्तके बीज। २ भद्रमुञ्ज।

शरभ (सं० पु०) शृणाति हिनस्तीति शृ हिंसायां (कृ श शलिकलिगर्दिभ्योऽभच्। उण् ३।१२२) इति अभच्। १ मृगेन्द्रविशेष। पर्याय—महामृग, महास्कन्धो, महामनाः, अष्टपाद, महासिंह, मनस्वी, पर्वताश्रय।

इस मृगके आठ पैर होते हैं। कहते हैं, कि यह सिंह से भी अधिक बलवान् होता है। २ टिड्डी। ३ राम-की सेनाका एक यूथपति बन्दर। ४ उष्ट्र, ऊंट। ५ विष्णु। (भारत १३।१४९।५२) ६ हाथीका बच्चा। ७ एक प्रकारका पक्षी। ८ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें ४ नगण और १ सगण होता है। इसे 'शशिकला' और 'मणिगुण' भी कहते हैं। ९ दोहेका एक भेद। इसमें बीस गुरु और आठ लघु मात्राएं होती हैं। १० शेर, सिंह। ११ दनुजके एक पुत्रका नाम। (भारत १।६५।२६) १२ महाभारतके अनुसार एक नाग। (भारत १।५७।११)

शरभकेतु (सं० पु०) वासवदत्तावर्णित नायकभेद। (वासवदत्ता ५३।२)

शरभङ्ग—एक महर्षि। ये दक्षिणमें रहते थे। वनवास-के समय रामचन्द्र इनका दर्शन करने गये थे। ये उन महर्षियोंमेंसे एक हैं, जिन लोगोंने आरण्यानी परिवृत दक्षिण देशमें आर्यसभ्यताका विस्तार किया था। (रामायण १।१।४०)

शरभता (सं० स्त्री०) शरभस्य भावः तल्-टाप्। शरभ-का भाव या धर्म।

शरभा (सं० स्त्री०) १ शुष्क अवयवों वाली और विवाह-के अयोग्य कन्या। २ लकड़ीका एक प्रकारका यन्त्र।

शरभानना (सं० स्त्री०) ऐन्द्रजालिक रमणीभेद। (कथासरित्सा० ४८।१२२)

शरभू (सं० पु०) शरे शरवणे भूरुत्पत्तिर्यस्य। कार्त्तिकेय।

शरभृष्टि (सं० स्त्री०) शराग्र। (शतपथब्रा० १४।१।६।११)

शरभेश्वर (सं० पु०) शिवलिङ्गभेद। महाकालभैरव-कल्पमें लिखा है, कि शरभेश्वरकवच धारण करनेसे कासरोग जाता रहता है।

शरभोजी—दक्षिण-भारतके तञ्जोर राज्यके एक राजा। १७७८ ई०में इनका जन्म हुआ। १७९८ से १८३३ ई० तक इन्होंने राज्य किया। राघवचरित, व्यवहारप्रकाश, व्यवहारार्थस्मृतिसारसमुच्चय और एक जातक ग्रन्थ इनके लिखे हैं। पण्डित अनन्तनारायणने अपने लिखे शर-भोजिराजचरित ग्रंथमें इनकी जीवनी प्रकाश की है।

शरम (फा० स्त्री०) १ लज्जा, हया, गैरत। २ लिहाज, संकोच। ३ प्रतिष्ठा, इज्जत।

शरमय (सं० त्रि०) शरस्य विकारोऽवयवो वा शर (नित्यं वृद्धशरादिभ्यः। पा ४।३।१४४) इति मयट्। शरनिर्मित।

शरमल्ल (सं० पु०) शरे शरवणे मल्ल इव। १ शारिका पक्षी, मैना। शरे बाणनिक्षेपादौ मल्लः। २ बाणयोद्धा, वह जो तीर चलानेमें निपुण हो, धनु-र्धारी।

शरमसार (अ० वि०) १ जिसे शरम हो, लज्जावाला। २ लज्जित, शरमिंदा।

शरम हुजूरी (फा० स्त्री०) ऐसी लज्जा या मुहब्बत जो वास्तविक न हो, केवल किसीके सामने आ जानेसे उत्पन्न हो, मुंह देखेकी लाज।

शरमसारी (फा० स्त्री०) १ लज्जा, शरमिंदगी। (पु०) २ वह जो वास्तवमें लज्जा या मुरव्वत न करता हो, केवल किसीके सामने आ जाने पर लज्जा या मुरव्वत करता हो, मुंह देखेकी लज्जा करनेवाला।

शरमाऊ (फा० वि०) जिसे बहुत लज्जा मालूम होती हो, शरमीला।

शरमाना (अ० क्रि०) १ शरमिंदा होना, लज्जित होना, दया करना। २ शरमिंदा करना, लज्जित करना।

शरमा शरमी (फा० क्रि० वि०) लज्जाके कारण, शरमिंदा हो कर।

शरमिंदगी (फा० स्त्री०) शरमिंदा या लज्जित होनेका भाव या धर्म, नदामत, झेंप।

शरमिंदा (फा० वि०) जिसे शरम या लज्जा आई हो, लज्जित।

शरमीला (फा० वि०) जिसे जल्दी शरम या लज्जा आवे, शरम करनेवाला, लज्जालु।

शरमुख (सं० क्ली०) वाणका अग या मुख, तीरका फल।

शरयु (सं० स्त्री०) नदीविशेष। (द्विरूपकोे०) वह नदी जिसमें रामलक्ष्मणादिने आत्मविसर्जन किया था। (राम.यया) यह घर्घरा नदीका एक शाखा है।

(घर्घरा और सरयू देखो।)

शरयू (सं० स्त्री०) शरयु देखो।

शरल (सं० त्रि०) १ विनीत, नम्र। २ स्वच्छ हृदय, सरल। (पु०) ३ एक प्रकारका वृक्ष।

(सारस्वताभिधान)

शरलक (सं० क्ली०) जल, पानी।

शरलोमन (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषि। इन्होंने कई ऋषियोंके साथ भारद्वाजजीसे आयुर्वेदसंहिता जानेके लिये प्रार्थना की थी।

शरवण (सं० क्ली०) शरस्य वनं वनशब्दस्य णत्वं। शरका वन।

शरवणोद्भव (सं० पु०) शरवणे उद्भवो यस्य। कार्त्तिकेय।

शरवत् (सं० त्रि०) १ वाणविशिष्ट। २ शरतुल्य।

शरवाणि (सं० स्त्री०) १ शरका अगला भाग, तीरका फल। (पु०) २ पदाति, पैदल सिपाही। ३ वह जो शर चला कर जीविका निर्वाह करता हो, तीर चलानेवाला सिपाही।

शरवान—अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २६°३६´ उ० तथा देशा० ८०° ५६´ पू०के मध्य उन्नाव नगरसे २६ मील पूर्व और पूर्वानगरसे ६ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यह ग्राम अति प्राचीन है। यहां एक प्राचीन शिवमन्दिर विद्यमान है। उस लिङ्गके सम्बन्धमें एक किंवदन्ती इस प्रकार सुनी जाती है—अयोध्यापति राजा दशरथ एक दिन उस शिवलिङ्गकी पूजा करनेकी इच्छासे यहां आये। इसके आसपास के वनोंमें शिकार खेलते खेलते थक गये। शर्वारा नामक स्थानमें एक डिग्गी थी, उसीके किनारे राजाने पड़ाव डाला। इसी समय अयोध्याके निकटवर्त्ती चौसा नामक स्थानसे एक पवित्रात्मा ऋषि जिनका नाम शरवान् था तीर्थयात्राके लिये निकले और रातको राजा दशरथके शिविरके पास आये। ऋषिवर अपने वृद्ध माता पिताको दो टोकरेमें बैठा कर कंधे पर लटकाये ले जा रहे थे। शिविरके पास सरोवर देख कर पिपासातुर शरवान् प्यास बुझानेके लिये पिता-माताको किनारे रख आप जल पीनेके लिये सरोवरमें उतरे। मुनिने सरोवर जलको जो हिलोरा उससे रातके समय एक गंभीर शब्द सुनाई दिया। पुष्करणीमें कोई जंगली जानवर जल पीनेके लिये आया है, सम्भव कर राजा दशरथने शब्दभेदी वाण चलाया। वाण शब्दानुसरण द्वारा ऋषिपुत्रके शरीरमें चुभ गया और वे पञ्चत्वको प्राप्त हुए। अन्ध माता पिता पुत्रके करुण रोदनसे उत्कण्ठित हो गये और पुत्रकी मृत्यु हुई जान कर उन्होंने कातरकण्ठ और शोकार्त्त हृदयसे इस प्रकार शाप दिया, "जो मेरे जैसे नेत्रका नेत्र स्वरूप था, मेरा

एकमात्र सहारा आनन्दवर्द्धक पुत्र था, वैसे पुत्रको जिसने इस प्रकार मारा है और जिसके लिये हमारे प्राण दारुण यन्त्रणासे निकल रहे हैं; वह व्यक्ति भी निश्चय ही पुत्रके कारण शोक सन्तप्त हृदयसे देह विसर्जन करेगा।" इतना कह कर ऋषि और ऋषिपत्नीने इस धराधामका परित्याग किया। उस घटनाका स्मरण करनेके लिये यहां शरवान्नगर बसाया गया सही, पर किसी भी धर्मप्राण क्षत्रियसंतानने उस ब्रह्मशापदग्ध स्थानमें बसना न चाहा। बहुतेरोंने वहां घर बना कर रहनेकी कोशिश की थी, पर उन्हें साहस न हुआ।

वह पुष्करिणी आज भी विद्यमान है। उसके किनारे एक वृक्षके नीचे शरवान्ऋषिकी प्रस्तरमयी मूर्त्ति आज भी देखी जाती है। ऋषिकुमारने जिस प्रकार अतृप्त-पिपासु हो कर प्राणत्याग किया, उसी घटनाके संस्थापनार्थ वह मूर्त्ति भी बनाई गई है, कि मूर्त्तिके नाभिमूलमें जितना ही जल क्यों न ढालें, पर वह पूर्ण नहीं होगा।

शरवारण (सं० क्ली०) ढाल, जिससे तीरोंकी बौछार रोकी जाती है।

शरवृष्टि (सं० स्त्री०) शरस्य वृष्टिः। १ शर वर्षण, वाणकी वर्षा। २ मरुत्वत्‌भेद। (हरिवंश)

शरवेग (सं० पु०) शरस्य वेगः। वाणका वेग।

शरव्य (सं० क्ली०) शरवे हिंसायै वाणशिक्षायै वा साधुः शरु (उगवादिभ्यो यत्। पा ५।१।२) इति यत्; यद्वा शरान् व्ययति व्ये ड। लक्ष्य, वह जिस पर शरका संधान किया जाय, वह जो तीरका निशाना बनाया जाय।

शरव्यक (सं० क्ली०) शरव्य स्वार्थे कन्। शरव्य, लक्ष्य, निशाना।

शरशय्या (सं० स्त्री०) शरनिर्मिता शय्या। शर या वाण की बनी हुई शय्या। भीष्म पितामहने शरशय्या पर शयन कर देहत्याग किया था। भीष्म देखो।

शरस (सं० क्ली०) १ सारप्रचयभावापन्न। (ऐतरेयब्रा० ३५।६) २ शर, वाण।

शरस्तम्ब (सं० पु०) शरस्य स्तम्बः। १ शरका झाड़। (भागवत १।६।१३) २ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन स्थानका नाम। (भारत अनुशासन) ३ एक प्राचीन प्रवरकार ऋषिका नाम। (प्रवराध्याय)

शरह (अ० स्त्री०) १ वह कथन या वर्णन जो किसी बातको स्पष्ट करनेके लिये किया जाय। २ दर, भाव। ३ टीका, भाष्य, व्याख्या। ४ शरह लगान देखो।

शरह लगान (हिं० स्त्री०) भूकरकी दर, जमीनकी पड़ती, बिघौती।

शरा (अ० स्त्री०) शरअ देखो।

शराक (सं० पु०) १ संकर जातीय पशु। २ एक जाति। सराक देखो।

शराकत (फा० स्त्री०) १ शरीक या सम्मिलित होनेका भाव। २ साझा, हिस्सेदारी।

शराग्नि (सं० पु०) पञ्चाग्नि। (नीलकण्ठ)

शराघात (सं० पु०) शरस्य आघातः। वाणाघात। पर्याय—प्रचलाक। (जटाधर)

शराटि (सं० पु०) शरं जलं प्राप्नोतीति शर-इन्। शरालि पक्षी, टिटिहरी।

शराटिका (सं० स्त्री०) १ शरालि पक्षी, टिटिहरी। २ लज्जालुक, लजालू, लाजवन्ती।

शराड़ि (सं० पु०) शराटि देखो।

शराति (सं० पु०) शराटि देखो।

शरादिप मूल (सं० क्ली) शरादिपञ्चद्रव्यकृत कषाय। शर, इक्षु, दर्भ, काश और शालिधान्य इन पांचों द्रव्योंकी जड़ एकत्र कर यह प्रस्तुत करना होता है। (चक्रद० अश्मरीरो०

शरादिपञ्चमूलाद्यघृत (सं० क्ली०) घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शरादिपञ्चमूलके कषायमें चार सेर घृत और एक सेर गोक्षुर कल्कके साथ पाक करे। पाक होने पर उसमें थोड़ा शक्कर डाल कर उतार ले। इस घृतका सेवन करनेसे अश्मरी रोग आराम होता है। (चक्रदत्त अश्मरीचि०)

शरापना (हिं० क्ली०) किसीको शाप देना, सरापना।

शराभ्यास (सं० पु०) शराणामभ्यासः। वाणशिक्षा। पर्याय—उपासन, विकर्षण, शस्त्राभ्यास। (शब्दरत्ना०)

शराफ (अ० पु०) सराफ देखो।

शराफत (अ० स्त्री०) शराफ या सज्जन होनेका भाव, भलमनसी, सज्जनता।

शराफा (अ० पु०) सराफा देखो।

शराफी (अ० स्त्री०) सराफी देखो।

शराब (अ० स्त्री०) १ मदिरा, सुरा, मद्य। विशेष विवरण मदिरा शब्दमें देखो। २ हकीमोंकी परिभाषामें शरबत। जैसे—शराब बनफशा।

शराबखाना (फा० पु०) शराब बनने तथा बिकनेकी जगह, वह स्थान जहां शराब मिलती हो।

शराबखोरी (फा० स्त्री०) १ शराब पीनेका कृत्य, मदिरा पान। २ शराब पीनेकी लत।

शराबख्वार (फा० पु०) वह जो शराब पीता हो, मदिरा पोनेवाला, शराबी।

शराबी (अ० पु०) वह जो शराब पीता हो, शराब पोनेवाला।

शराबोर (फा० वि०) जल आदिसे बिलकुल भींगा हुआ, लथपथ, तरबतर। जैसे,—रंगसे शराबोर, पानीसे शराबोर।

शरारत (अ० स्त्री०) शरीर या पाजी होनेका भाव, पाजीपन, बदमाशी।

शरारि (सं० पु०) शरं जलं ऋच्छतीति ऋ गतौ इ। १ स्वनामख्यात प्लवजातीय पक्षी, टिटिहरी। पर्याय—आटि, आड़ि, आड़ी, शराड़ी, आड़िका, शराली, शरालि, शराटि, शरालिका। इसके मांसका गुण वायुदोषनाशक, स्निग्ध, बलकारक, सूक्ष्मलत्व, वातरक्तनाशक और शीतल माना गया है। (राजव०) २ रामकी सेनाका एक यूथपति बंदर।

शरारिमुख (सं० पु०) १ शरारि पक्षी, टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया जो जलाशयोंके पास रहती है। (क्ली०) २ सुश्रुतोक्त शरारि पक्षीके मुखके समान अस्त्र। यह पीब आदि निकालनेमें व्यवहृत होता है। (सुश्रुत सूत्र० ८ अ०)

शरारी (सं० स्त्री०) टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया।

शरारु (सं० त्रि०) शृणोतीति शृ (शृवन्द्योरारुः। पा ३।२।१७३) इति आरु। हिंस्र।

शरारोप (सं० पु०) शरस्य आरोपो यस्मिन्। धनुष, जिस पर शर चढ़ाया जाता है, कमान।

शरार्चिस् (सं० पु०) रामकी सेनाका एक यूथपति बंदर। (रामा० ४।४१।३)

शरार्व्यास्य (सं० पु०) शरारि पक्षीके मुखके समान विस्रावणास्त्रभेद।

शरालि (सं० स्त्री०) शरारि पक्षी, टिटिहरी।

शरालिका (सं० स्त्री०) टिटिहरी।

शराली (सं० स्त्री०) शरालि देखो।

शराव (सं० पु० क्ली०) शरं जलं अवति रक्षतीति अव रक्षणे अण्। १ मृत्पात्रविशेष, मिट्टीका एक प्रकारका पुरवा, कुल्हड़। पर्याय—वर्द्धमानक, मार्त्तिक, सराव, शाराजिर, पार्थिव, मृत्कांस। (शब्दरत्ना०)

२ वैद्यकमें एक प्रकारका परिमाण या तौल जो चौंसठ तोले या एक सेरको होती है। वैद्यकमें सेर चौंसठ तोलेका ही माना जाता है।

शरावक (सं० पु०) शराव-स्वार्थे कन्। शराव देखो।

शरावक—पूर्वभारतीय द्वीपपुञ्जके बोर्नियो द्वीपस्थ एक जनपद। यह पायेण्ट-आपि नामक अन्तरीपके पूर्वस्थित उपसागरके किनारे गिरिपादके नीचे अवस्थित है। यह पर्वतमाला १५००से ३००० फुट तक ऊंची तथा बोर्नियोद्वीपके मध्यदेश तक विस्तृत है। दातु अन्तरीपसे बड़म नदी पर्यन्त स्थान शरावकराजके अधिकारमें है। यहां शरावक नामक नदीके किनारे लीची, जामुन, सुपारी आदि उत्कृष्ट और सुमिष्ट फलके पेड़ देखे जाते हैं। बड़ी वटाङ्गलुपा नदीके मुहानेके निकटवर्त्ती एक शाखाके लिङ्गा नामक स्थानमें एक प्रकारका उज्ज्वल बालुकामिश्रित प्रस्तरखण्ड पड़ा हुआ है। इसका वर्ण पुष्पराग (Topaz) वा बैंगनी पत्थरविशेष (Amethyst)की तरह होता है। मुका नामक स्थानमें सागू और बसाई नगरके समीप रसाञ्जन मिलता है।

शरावकुद्द (सं० पु०) वायव्यकीटविशेष। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

शरावती (सं० स्त्री०) शरा तृणविशेषाः सन्त्यस्यामिति शर मतुप् (शरादीनाञ्च। पा ६।३।१२०) इति दीर्घः। १ एक नदी जो आज कल बाणगङ्गा कहलाती है। टलेमीने इसको Sarabas शब्दमें उल्लेख किया है। इसके पास ही होनावर राज्य अवस्थित है। २ एक प्राचीन नगरी, जो लवकी राजधानी थी। कुशावती

और शरावती यह दो नगरी यथाक्रम कुश तथा लवकी राजधानी थी।

शरावर (सं० क्ली०) १ ढाल। २ वर्म, कवच। ३ कटाहादि।

शरावरण (सं० क्ली०) ढाल जिससे तीरका वार रोकते हैं।

शरावान्—बेलुचिस्तानके अन्तर्गत एक प्रदेश। यह बेलुचिस्तानके मध्यस्थित सुविस्तृत पार्वत्य अधित्यकाभूमि पर है। शरावान्, झालावान् और लुस प्रदेश ले कर उक्त अधित्यका विभक्त है।

शरावाप (सं० पु०) धनुष, कमान।

शरावार्द्ध (सं० क्ली०) शरावस्य अर्द्ध। कुडवपरिमाण, शरावका आधा परिमाण, ३२ तोला। (वैद्यकपरि०)

शरावि (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शराविका (सं० स्त्री०) १ वह फुंसी जो ऊपरसे ऊंची और बीचमें गहरी हो। २ एक प्रकारका कोढ़।

शरावी—एक भारतीय मुसलमान सम्प्रदाय। ये फकीरी वेशमें द्वार द्वार भीख मांगते फिरते हैं।

शराश्रय (सं० पु०) शरणामाश्रयः। तूण, तरकश।

शरास (सं० पु०) शर-अस-घञ्। शरासन। (भाग० ४।१०।२२)

शरासन (सं० क्ली०) शरा अस्यन्ते क्षिप्यन्तेऽनेनेति अस-करणे-ल्युट्। १ धनुष, कमान, चाप। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १।११७।४)

शरासनिन् (सं० त्रि०) शरासनयुक्त, धनुर्व्वाणधारी। (भारत उद्योग)

शरास्य (सं० क्ली०) शराऽस्यन्तेऽनेनेति अस-ण्यत्। धनुष, कमान।

शरि (सं० त्रि०) हिंस्र। (उण् ४।१२७)

शरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका प्रासाद।

शरिन् (सं० त्रि०) बाणविशिष्ट। (भारत सभापर्व)

शरिमन् (सं० पु०) शृणाति यौवनमिति शॄ-इमन् (हृ भृ धृ सृ स्तृ शृभ्य इमनिच। उण् ४।१४७) प्रसव। (उज्ज्वल)

शरिया—मुजफ्फरपुर जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह मुजफ्फरपुर नगरसे १८ मील दक्षिण-पश्चिम बया नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ नदीके ऊपर शिल्पनैपुण्यके परिचायक तीन गुम्बजदार पुल हैं। इस पुलके ऊपरसे छपरा-रोड गई है। शरियासे कुछ दूर 'भीमसिंहकी लाठी या गदा' नामक एकखण्ड पत्थरका एक स्तम्भ है। उस स्तम्भके ऊपर सिंहमूर्त्ति खोदी हुई है। जमीनकी सतहसे स्तम्भ प्रायः ३० फुट ऊंचा है। ऊपरका सिंह और उसका आसन तथा नीचेका स्तंभ मूल छोड़ कर स्तंभदण्ड २४ फुट ऊंचा है। स्तंभ मूलके नीचे वह प्रस्तरखण्ड जमीनके भीतर कहां तक गया है, वह आज भी निरूपित नहीं हुआ है। जिस ब्राह्मणके गृहप्राङ्गणमें यह स्तंभ खड़ा है, वहांके कितने लोगोंने उसकी नींव देखनेकी इच्छासे उसे कोड़ा है। कई फुट कोड़नेके बाद भी उन्हें उसका तलदेश देखनेमें न आया। स्तंभगात्रमें बहुतसे नाम खोदे हुए हैं। यह स्तंभ किसी प्राचीन राजाकी कीर्त्ति है, इसमें सन्देह नहीं। चाहे जिस कारणसे हो, वह इसी भावमें छोड़ दिया गया है। उसका इतिहास जाननेकी किसीने विशेष चेष्टा नहीं की। इसकी बगलमें एक बहुत बड़ा कूप है। जिस ब्राह्मणकी जमीनमें यह स्तंभ खड़ा है, उसका कहना है, कि उसके निम्नभागमें प्रचुर धनरत्न है, उसीको निकालनेके लिये यह कूप खोदा गया था।

शरी (सं० स्त्री०) एरका या मोथा नामका तृण।

शरीअत (अ० स्त्री०) १ मुसलमानोंके अनुसार वह पथ जो परमात्माने अपने भक्तोंके लिये निश्चित किया हो। २ धर्मशास्त्र। (भारत सभापर्व)

शरीक (अ० वि०) १ शामिल, सम्मिलित, मिला हुआ। (पु०) २ वह जो किसी बातमें साथ रहता हो, साथी। ३ साझी, हिस्सेदार, पट्टीदार। ४ रिश्तेदार, संबन्धी। ५ सहायक, मददगार।

शरीफ (अ० पु०) १ ऊंचे घरानेका व्यक्ति, कुलीन मनुष्य। २ सभ्य पुरुष, भला मानुस। ३ मक्केके प्रधान अधिकारीकी उपाधि। (वि०) ४ पाक, पवित्र। जैसे,—मिजाज शरीफ, कुरान शरीफ।

शरीफ (अ० पु०) कलकत्ते, बंबई और मद्रासमें सरकारकी ओरसे नियुक्त किये जानेवाले एक प्रकारके

अवैतनिक अधिकारी। इनके सपुर्द शान्ति-रक्षा तथा इसी प्रकारके और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगरके बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समयके लिये शरीफ बनाये जाते हैं। यूरोप और अमेरिका आदिमें भी इस प्रकारके अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं जिन्हें कुछ शासन-संबन्धी कार्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकारी प्रायः मजिष्ट्रेटोंसे कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीफा (हि० पु०) १ मझोले आकारका एक प्रकारका प्रसिद्ध वृक्ष। यह प्रायः सारे भारतवर्षमें फलके लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारतके जङ्गली देशोंमें बहुत अधिकतासे पाया जाता है। कहते हैं, कि यह वृक्ष वेस्ट इंडिजसे यहां आया है। इस वृक्षकी छाल पतली और खाकी रंगकी और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिये सफेद रंगकी होती है। इसके पत्ते अमरूदके फलके सदृश, अण्डाकार तथा अनीदार होते हैं। इसमें एक प्रकारके त्रिदल फूल लगते हैं जो नीचेकी ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनानेके काममें आते हैं। यह वृक्ष गरमीके दिनोंमें फूलता है और कार्त्तिक अगहनमें इसमें अमरूदके आकारके खाकी रंगके गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजोंसे उगता है और बहुत जल्दी बढ कर फूलने फलने लगता है। इसके पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़ कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीजमेंसे एक प्रकारका तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरहके गोंद भी लगते हैं। २ इस वृक्षका फल जो अमरूदके सदृश गोल और खाकी रंगका होता है। इसके तल पर आंखके आकारके बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अन्दर सफेद गूदेमें लिपटे हुए काले लम्बोतरे बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है और इसीके लिये यह फल खाया जाता है। अकालके दिनोंमें गरीब लोग प्रायः जङ्गली शरीफेके फल खा कर निर्वाह करते हैं। वैद्यकमें इसे मधुर, हृदयके लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्तपित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदिके लिये लाभदायक माना है। इसे श्रीफल या सीताफल भी कहते हैं।

शरीर (सं० क्ली०) शृ-ईरन् (कॄ-शॄ-पॄ कटि पटि शौटिभ्य ईरन्। उण् ४।३०) देह, यह रोगादि द्वारा शीर्ण होती है इसीसे इसका शरीर नाम पड़ा है। पर्याय—कलेवर, गात्र, वपुः, संहनन, वर्ष्म, विग्रह, काय, देह, मूर्त्ति, तनु, तनू, क्षेत्र, पुर, घन, अङ्ग, पिण्ड, भूतात्मा, स्वर्गलोकेश, स्कन्ध, पञ्जर, कुल, बल, आत्मा, इन्द्रियायतन, मूर्त्तिमत्, करण, बेर, सञ्चय, बंध, पुद्गल। (हेम)

कविकल्पलतामें स्त्रीपुरुषका सर्वाङ्ग इस प्रकार वर्णित है—प्रपद, अंघ्रि, गुल्फ, पार्ष्णि, जङ्घा, जानु, ऊरु, वङ्क्षण, कटि, त्रिक, नितम्ब, स्फिक्, वस्ति, उपस्थ, ककुन्दर, जघन, जठर, नाभि, वलि, स्तन, चूचुक, क्रोड़, रोम, कक्ष, अंश, वक्षः, दोः, पार्श्व, प्रपण्ड, कूर्पर, हस्त, प्रकोष्ठ, मणिबन्ध, अंगुलि, अंगुष्ठ, करभ, नख, पर्व, चपेटक, कण्ठ, शिरोधि, श्मश्रु, मुख, ओष्ठ, चिबुक, हनू, सृक्क, तालु, रद, जिह्वा, नासा, भ्रू, गण्ड, लोचन, अपाङ्ग, तारा, कर्ण, भाल, मस्तक, केश। (कविकल्पलता)

सांख्यदर्शनकी टीकामें वाचस्पति मिश्रने लिखा है, कि शरीर दो प्रकारका है, स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर। बुद्धि, अहङ्कार, मन, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, पञ्चकर्मेन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन अठारह अवयवोंका नाम सूक्ष्म या लिङ्गशरीर है। यह लिङ्गशरीर सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न और महाप्रलयमें विलीन होता है। महाप्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि आरम्भ होती है, तब अन्य लिङ्गशरीर उत्पन्न होता है। विशेष इन्द्रिय द्वारा संगठित है, इसलिये लिङ्गशरीरको विशेष भी कहते हैं। स्थूलशरीर माता-पितृज है। यह मातापितृज शरीर कुछ समय बाद चाहे मिट्टीमें मिलता, चाहे अग्निमें जलता, चाहे पशुपक्षीका पेट भरता है।

परलोकगत लिङ्गशरीर इस लोकमें लौट कर अनाजमें मिल जाता है। पीछे भोजनके साथ वह अदृष्टानुसार पितृदेहमें प्रविष्ट होता है। अनन्तर वह पितृशुक्रका आश्रय लेता है और तब मातृजरायुमें

प्रविष्ट हो कर शुक्रशोणितमिश्रणसम्भूत क्रमोत्पन्न देह-कोषमें आवद्ध होता है। इसके बाद वह भूमिष्ठ होता है। पितासे स्नायु, अस्थि और मज्जा तथा मातासे लोम, लोहित और मांस लाभ होता है, इस कारण इसको पाट्‌कौषिक शरीर कहते हैं। यह पाट्‌कौषिक शरीर पानेके बाद अदृष्टानुसार भोग और पीछे उसका नाश होता है। इस प्रकार लिङ्गशरीरका बार बार जन्म और मरण होता है।

पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुआ है। इस पञ्चमहाभूतमें कोई सुखकर और लघु, कोई दुःखकर और चञ्चल, कोई विषादकर या गुरु है। अतएव यह शास्त्रमें विशेष नामसे निर्दिष्ट हुआ है। सभी विशेष तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं, सूक्ष्मशरीर, मातापितृज वा स्थूलशरीर और तदतिरिक्त महाभूत। महत्तत्व, अहङ्कार, एकादश इन्द्रिय और पञ्चतन्मात्र इन सबोंको समष्टि सूक्ष्मशरीर है। इन्द्रियां शांत, घोर और मूढ़ात्मक होती हैं, अतएव वे भी विशेष हैं। सूक्ष्म शरीर इन्द्रियघटित है, अतएव वह भी विशेषमें गिना जाता है। एक एक पुरुषका एक एक सूक्ष्मशरीर पहले ही प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। वह महाप्रलयपर्यन्त स्थायी है। यह सूक्ष्मशरीर पूर्वगृहीत स्थूल देहको त्याग और अभिनव स्थूल देहको ग्रहण करता है, इसीका नाम संसार है। मित्र जिस प्रकार आश्रयके विना नहीं रह सकता, उसी प्रकार लिङ्गशरीरका आश्रयस्वरूप स्थूल शरीर है।

सांख्यदर्शनके भाष्यकार विज्ञानभिक्षुने जो तीन तीन शरीर स्वीकार किये हैं, वे सूक्ष्मशरीर, अधिष्ठान-शरीर और स्थूलशरीर हैं। उनके मतसे स्थूलशरीर परित्यागके बाद लिङ्गशरीरका जो लोकान्तर गमन होता है, वह इसी अधिष्ठान शरीरके आश्रयमें होता है। उनका कहना है, कि सूक्ष्मशरीर कभी भी विना आश्रयके रह नहीं सकता। स्थूलभूतका सूक्ष्म अंश ही अधिष्ठान-शरीर कहलाता है। इस अधिष्ठान-शरीरका दूसरा नाम आतिवाहिक शरीर है। सूक्ष्मशरीर धर्माधर्मादि निमित्तके अनुसार नाना प्रकारका स्थूलशरीर धारण करता है। धर्मादि किसीका स्वाभाविक और किसीका उपायानुष्ठानसाध्य है। जब तक मुक्ति न होगी, तब तक उक्त सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीरको ग्रहण और अदृष्टानुसार सुखदुःखादि भोग कर उसे त्याग करता है। (सांख्यद०)

आयुर्वेदके मतसे शुक्र और शोणितके संयोगके बाद एक मास तक गर्भ कुछ तरल अवस्थामें रहता है, द्वितीय मासमें गर्भसम्पादक महाभूतगण शीत, उष्मा और अनिलके संयोगसे परिणाम प्राप्त होनेसे संहत और घनीभूत होता है। इस अवस्थामें गर्भ पिण्डाकृति होनेसे पुरुष, दीर्घाकृति होनेसे कन्या और अर्बुदाकृति होनेसे नपुंसक सन्तान जन्म लेती है। तृतीय मासमें दो हाथ, दो पैर और शिर, ये पांच पिण्डाकारमें तथा छाती, पीठ आदि अंग और नाक, दाढ़ी आदि प्रत्यङ्ग सूक्ष्मभावमें उत्पन्न होता है। चतुर्थ मासमें समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गका विभाग अधिकतर व्यक्त हो जाता है तथा गर्भहृदयकी प्रव्यक्तताके कारण वहां चेतनाधातुकी अभिव्यक्ति होती है; क्योंकि हृदय ही चेतनाधातुका स्थान है। इस समय गर्भविषयमें अभिलाष होता है, इसी कारण उस समय गर्भिणीको द्विहृदया या दौहृदिनी कहते हैं। दौहृदकी अवमानना करनेसे गर्भिणी कुब्ज, कुणि, खञ्ज, जड़, वामन, विकृताक्ष और हीनाङ्ग सन्तान प्रसव करती है, अतएव गर्भिणीकी उस समय जो कुछ अभिलाषा हो, उसे पूर्ण करना कर्त्तव्य है। पञ्चममासमें मनकी बोधशक्ति अधिक बढ़ती है; षष्ठ मासमें बुद्धिशक्तिका आविर्भाव होता है। सप्तम मासमें अङ्ग-प्रत्यङ्गका विभाग स्फुटतर होता है। अष्टम मासमें गर्भका ओजो धातु स्थिर नहीं होता अर्थात् उस समय ओजो नामक धातु अस्थिरभावमें, कभी मातृहृदयमें, कभी शिशु-हृदयमें अवस्थान करता है। इसी कारण मातृहृदयमें ओजो धातुके रहते समय प्रसूत होनेसे शिशु जीवित नहीं रह सकता; क्योंकि ओजो धातु ही जीवका एक तरहका जीवन और बल है; अतएव ओजो धातुका नाश होनेसे उसके साथ ही साथ प्राण या बलका भी नाश होता है। उक्त ओजो धातुके शिशुहृदयमें रहते समय प्रसूत होनेसे उसे बचनेकी संभावना रहती है। नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासमें ही किसी मासमें गर्भ भूमिष्ठ होनेका प्रकृत काल है। इसको अन्यथा होनेसे गर्भ विकृतिको प्राप्त होता है।

गर्भकी नाभीनाड़ी माताकी रसवहा नाड़ीमें सम्बद्ध रह कर उसके आहार-रसवीर्यको गर्भशरीरमें ले जाती है, इस कारण माताके उस उपस्नेह द्वारा क्रमशः गर्भकी अभिवृद्धि होती है। योनिमें शुक्रका जब तक निषेचन नहीं होता, तब तक गर्भका अङ्गप्रत्यङ्ग अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होता, तब तक माताके सर्वशरीरावयवगामिनी रसवहा तिर्यग्गत धमनियोंके उपस्नेह उसे जीवित रखते और परिपुष्ट करते हैं।

गर्भके केश, श्मश्रु, लोम, अस्थि, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी, रेत आदि स्थिर अङ्ग पितृज तथा मांस, शोणित, मेद, मज्जा, हृदय, नाभि, यकृत्, प्लीहा, अन्त्र, गुद आदि कोमलाङ्ग मातृज हैं। उसके शरीरकी पुष्टि, बल, वर्ण, स्थिति और हानि रसज, इन्द्रियां, ज्ञान, विज्ञान, आयु और सुख-दुःखादि आत्मज तथा वीर्य, आरोग्य, बल, वर्ण और मेधा सात्म्यज हैं। इनके सिवा कितने सत्त्वज लक्षण भी उसके शरीरमें देखे जाते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि शुक्रार्त्तवके संयोगसे गर्भकी उत्पत्ति होती है; किन्तु जिस प्रकार ऋतु, क्षेत्र, जल और बीजकी समग्रता नहीं होनेसे अङ्कुरोत्पत्ति नहीं होती, उसी प्रकार ऋतु, क्षेत्र, आहारकृत रस और बीजकी समग्रता हुए विना सन्तानोत्पत्ति नहीं होती। इसलिये सन्तानकामी नरनारीको चाहिये, कि वे यथाविधान शुक्रशोणित परिशुद्धि विषयमें सर्वदा सचेष्ट रहें। ऐसा करनेसे यथासमय दोनोंके संयोग होनेसे रूपगुणसम्पन्न महाबलिष्ठ सन्तान उत्पन्न होती है।

यमजादिका उत्पत्ति-विवरण।

घृतपिण्ड जिस प्रकार अग्निका आश्रय करनेसे गल जाता है, उसी प्रकार नारीका आर्त्तव पुरुष-समागमसे गल कर विसर्पित होता है तथा शुक्रके साथ मिल कर जब गर्भोत्पत्ति करता है, तब वह शुक्र आर्त्तवके साथ सम्मिलित होनेके प्राक्कालमें यदि किसी कारणसे वायु द्वारा दो भागोंमें विभक्त हो जाय, तो उसीसे अदृष्ट कारणवशतः दो जीव आश्रय ले-कर यमज सन्तान उत्पादन करता है। यमज अधर्मको सामने करके ही अवतीर्ण होता है अर्थात् अधर्मकारी ही यमज हो कर जन्म लेते हैं। माता-पिताकी अल्प शुक्रताके कारण आसेक्य (शिथिल शेफ) नामक पुरुष उत्पन्न होता है। जो सन्तान पूतियोनिमें जन्म लेती है उसे सौगन्धिक कहते हैं। पुरुषकी तरह स्त्रियोंके पायुमें गमनकारी अजितेन्द्रिय जातकका नाम कुम्भीक; दूसरेका व्यवाय देख कर जिसे व्यवाय प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम ईर्षक है; पुरुष यदि मोहवशतः उत्तानभावसे सो कर अपनी चेष्टासे स्त्रीमें वीर्याधान करे तो उस गर्भमें षण्ड नामक सन्तान जन्म लेती है तथा उसका आकार प्रकार और चेष्टादि स्त्रीकी तरह होती है। फिर यदि उक्त अवस्थापन्न पुरुषसे स्त्री अपनी चेष्टा द्वारा वीर्य ग्रहण करे और उससे सन्तान जन्म ले, तो उसकी चेष्टादि पुरुषकी तरह होती है। उक्त षण्डके शरीरमें शुक्रका भाग नहीं रहता। दो नारी रमणेच्छुक हो कर परस्पर गमन करनेसे यदि परस्पर शुक्रमोचन करें, तो अस्थिहीन सन्तान उत्पन्न होती है। ऋतुस्नाता स्त्री यदि स्वप्नमें मैथुनाचरण करे, तो भी उससे सन्तानोत्पत्ति होती है। किन्तु वह गर्भ पितृजदेहवर्जित होता है अर्थात् उसके केश, श्मश्रु, लोम, नख, दन्त, शिरा, स्नायु, धमनी और रेत आदि नहीं होते। अत्यन्त पापकृत गर्भ सर्प, वृश्चिक, कुष्माण्ड आदिकी तरह विकृताकारमें प्रसूत होता है। दौहृदकी अवमानना करनेसे गर्भकी जो अवस्था होती है, वह पहले ही कहा जा चुका है। कहनेका तात्पर्य्य यह, कि माता-पिताकी नास्तिकता, पूर्वजन्मकृत अशुभ और वातादिके प्रकोपवशतः गर्भ नाना प्रकारकी विकृतिको प्राप्त होता है।

माताके निःश्वासप्रश्वास-संक्षोभ और निद्रासे गर्भस्थ शिशुके निःश्वास प्रश्वास-संक्षोभ और निद्रा होती है; किन्तु मलकी अल्पताके कारण तथा वायु और पक्वाशयके अयोगके कारण अर्थात् उनकी प्रकृतावस्थाकी अप्राप्तिके कारण उस शिशुके वात, मूत्र और पुरीष नहीं निकलता, फिर यदि उसका मुख जरायु द्वारा आच्छन्न तथा कण्ठ कफवेष्टित और उसका वायुमार्ग प्रतिरुद्ध रहे, तो उक्त शिशु रोदन करनेमें असमर्थ होता है।

शरीर चय।

अग्नि, सोम, वायु, सत्त्व रजः, तमः, पञ्चेन्द्रिय और भूतात्मा (कर्मपुरुष) ये सब प्राण हैं। जिस प्रकार

दुग्ध पच्यमान होनेसे उससे सर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार शुक्र और शोणित, अग्नि आदि प्राण द्वारा अधिष्ठित हो कर पच्यमान होनेसे उससे सात त्वक् उत्पन्न होते हैं। यथा—

१म अवभासिनी—यह त्वक् सर्व्ववर्णका व्यञ्जक और पञ्चभूतात्मक कान्तिका प्रकाशक है। उसकी मोटाई एक धानके अठारहवें भागके समान होती है।

२य लोहिता—यह अवभासिनीके कुछ नीचे तथा एक धानके सोलहवें भागके बराबर होती है।

३य श्वेता—इसका परिमाण धानके बारहवें भागके समान है।

४र्थ ताम्रा—यह एक धानके आठवें भागके बराबर है।

५म वेदिनी—एक धानका पांचवाँ भाग ही इसका परिमाण है।

६ष्ठ रोहिणी—इसकी मोटाई एक धानके समान है।

७म मांसधरा—इसका परिमाण दो धानकी मोटाईके समान है।

उक्त सप्त त्वक्की स्थूलताकी समष्टि एक अंगुष्ठोदर है। किन्तु त्वकोंके प्रत्यक्गत और समुदयकी समष्टिका जो परिमाण कहा गया, वह शरीरके मांसलप्रदेशके सम्बन्धमें ही जानना होगा, ललाटादि अस्थिमय स्थानके त्वक्के सम्बन्धमें नहीं।

शरीरके अभ्यन्तरस्थ धातु और आशयोंके परस्परके मध्यवर्त्ती सीमास्वरूप, स्नायुमें समाच्छन्न और जरायु नामक सूक्ष्म चर्माकृति पदार्थ द्वारा सन्तत तथा श्लेष्मा द्वारा परिवेष्टित पदार्थका नाम कला है। यह कला भी शरीरके भीतर सात है, यथा—

१म मांसधराकला—यह मांसको घिरे रहती है अर्थात् दूसरे धातुसे मांसको व्यवच्छिन्न कर रखती है तथा पङ्क मिले हुए जलमें बिस-मृणाल जिस प्रकार इधर उधर विवर्द्धित होता है, उसी प्रकार शिरा, स्नायु, धमनी और स्रोत इसमें प्रतानभावसे अवस्थित रह कर मांसके साथ सम्बद्ध रहता है।

२य रक्तधरा—यह मांसके अभ्यन्तरस्थ रक्तको वेष्टन किये रहता है। इसके सिवा रक्तवहा शिरा, प्लीहा और यकृत्को भी रक्तधरा कला कहते हैं।

३य मेदोधरा—मेद प्रधानतः सब जीवोंके उदरमें ही रहता है; परंतु सूक्ष्म और महदस्थिके मध्य जो मेद है उसे मज्जा कहते हैं।

४र्थ श्लेष्मधरा—यह प्राणियोंकी सर्व्वसन्धिमें अवस्थित है। जिस प्रकार चक्रके छिद्रांतर्गत काष्ठ स्नेहाभ्यक्त होनेसे अच्छी तरह चलता है उसी प्रकार सन्धियां श्लेष्माश्रित होनेसे सम्यक्रूपसे सञ्चालित होती हैं।

५म पुरीषधरा—यह पक्वाशयमें अवस्थित है तथा निम्न कोष्ठके अभ्यंतरस्थ अर्थात् उण्डुकस्थ मलकी अन्य पदार्थसे स्वतंत्र रक्षा करता है। उक्त पक्वाशय या क्षुद्रांत्र नाभिके निम्न प्रदेशसे आरम्भ कर कुक्षिमें जटिलभावसे दाहिनी ओरकी कुचकिके पास तक आ कर समाप्त हुआ है। यहां एक थैली है जिसमें विष्ठा जमा रहती है। इसीका नाम उण्डुक है। यही उण्डुक स्थूलांत्रकी प्रथम सीमा है। यहांसे स्थूलांत्र क्रमशः ऊपरकी ओर जा कर यकृत् और आमाशयको वेष्टन कर फुसफुसके नीचेसे प्लीहा तक आया है। पीछे वह नीचे मलद्वार तक चला गया है। मलधरा कला उक्त छोटी आंतमें रह कर ही वहांके दूसरे पदार्थसे उण्डुकस्थ मलको पृथक् रूपसे विभक्त करती है।

"यकृत् समन्तात् कोष्ठञ्च यथान्त्राणि समाश्रिता।
उण्डुकस्थं विभजते मलं मलधरा कला॥"

(सुश्रुत शरीरस्थान)

६ष्ठ पित्तधरा—इसका नाम ग्रहणी नाड़ी या पच्यमानाशय है। इसमें चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय ये चार प्रकारके अन्नपान आमाशय या पाकस्थलीसे च्युत हो कर इस स्थानमें आते और स्थानीय पाचकनामा पित्तके तेजसे शोषित हो कर यथाकालमें जीर्ण होते हैं, तथा पक्वाशयमें जानेके लिये तैयार रहते हैं।

७म शुक्रधरा—जिस प्रकार दुग्धमें घृत और इक्षुरसमें गुड़ रहता है, उसी प्रकार प्राणियोंके सारे शरीरमें शुक्र वर्त्तमान रहता है। जब पुरुष प्रसन्न हो कर स्त्रीमें रत होता है, तब हर्षवशतः शरीरमें उत्तेजित हो कर यह पुरुषके वस्तिद्वारसे दो अंगुल दक्षिण पार्श्वमें नीचेकी ओर मूत्रस्रोतके पथसे निकलता है। सर्व्वदेह-

गत इस शुक्रको दूसरे धातुसे पृथक् भावमें बचाये रखता है, इसलिये इसको शुक्रधरा-कला कहते हैं।

अङ्ग छः हैं जिनके नाम पहले लिखे जा चुके हैं। प्रत्यङ्ग चौबीस हैं जिनके नाम ये हैं—मस्तक, उदर, पृष्ठ, नाभि, ललाट, नासा, चिबुक, वस्ति, ग्रीवा, कर्ण, नेत्र, भ्रू, शङ्ख, अंस, गण्ड, कक्ष, स्तन, वृषण, पार्श्व, स्फिक्, जानु, बाहु, ऊरु और अंगुलि।

सुश्रुतके मतसे त्वक् ७, कला ७, आशय ७, शिरा ७ सौ, पेशी ५ सौ, स्नायु ९ सौ, अस्थि ३ सौ, सन्धि २ सौ दश, मर्म १ सौ सात, धमनी २४, दोष या मल ३ और स्रोत ९ है। विस्तार हो जानेके भयसे प्रत्येकका यथायथ विवरण यहां नहीं किया गया।

शरीर (अ० वि०) दुष्ट, पाजी, नटखट।

शरीरक (सं० क्ली०) शरीर स्वार्थे कन्। शरीर देखो।

शरीरकर्त्तृ (सं० त्रि०) शरीरनिर्माता, शरीरको बनानेवाला, सृष्टिकर्त्ता।

शरीरकृत् (सं० त्रि०) शरीरकारी, शरीरकर्त्ता।

शरीरज (सं० पु०) शरीरात् जायते इति जन-ड। १ रोग, बीमारी। २ कामदेव, मनसिज। (महाभारत १०।१००।५९) ३ पुत्र। (महाभारत १३।२५।४) (त्रि०) ४ देहजात, शरीरसे उत्पन्न।

शरीरता (सं० स्त्री०) शरीरका भाव या धर्म।

शरीरत्याग (सं० पु०) देहत्याग, मृत्यु।

शरीरत्व (सं० स्त्री०) शरीरका भाव या धर्म, शरीरता।

शरीरदण्ड (सं० पु०) शारीरिक दण्ड।

(भाग० ५।२६।१६)

शरीरधातु (सं० पु०) रस, रक्त और मांस।

शरीरपण (सं० क्ली०) शरीरक्षय, शरीरपाक।

शरीरपतन (सं० क्ली०) १ मृत्यु, मौत। २ शरीरका क्रमिक क्षय, धीरे धीरे शरीरका अपचय।

शरीरपाक (सं० पु०) शरीरक्षय, शरीरका क्रमिक अपचय।

शरीरपात (सं० पु०) शरीरपतन, शरीरका नाश, देहावसान।

शरीरप्रभ (सं० पु०) प्रभवत्यस्मात् प्रभवः। शरीरकृत्, शरीरोत्पादक।

शरीरबन्ध (सं० पु०) १ शरीरयोग, देहसंस्रव। (भागवत ५।५।५) २ शारीरिक क्रियायोग। (रघु १६।२३)

शरीरबन्धक (सं० पु०) जमीन्दार, जो किसी अपरिचित या अविश्वस्त व्यक्तिके विश्वासार्थ राजद्वार आदिमें स्वयं अङ्गीकारवद्ध रहे।

शरीरभाज् (सं० त्रि०) शरीरं भजतीति भज णिव (भजो णिवः। पा ३।२।६२) १ शरीरधारी, प्राणी। (भागवत १।६।४२) (पु०) २ देही, जीवात्मा।

शरीरभृत् (सं० त्रि०) १ देहधारी, जो शरीर धारण किये हो, शरीरी। (पु०) २ विष्णु। (भागवत १३।१४६।५१) ३ जीवात्मा।

शरीररक्षक (सं० पु०) देहरक्षी, वह जो राजा आदिके साथ उसके शरीरकी रक्षा करनेके लिये रहता हो। अंगरेजीमें इसे Body-guard कहते हैं।

शरीरवत्त्व (सं० क्ली०) शरीर युक्तका भाव या धर्म।

(सर्वद०)

शरीरवत् (सं० त्रि०) देहधारी, शरीरवाला।

शरीरवृत्त (सं० पु०) वे पदार्थ जो शरीरका सौन्दर्य बढ़ानेके लिये आवश्यक हों।

शरीरवृत्ति (सं० स्त्री०) जीवन-निर्वाह करनेकी वृत्ति, जीविका। (रघु २।४५)

शरीरशास्त्र (सं० पु०) वह शास्त्र जिसमें शरीरके सब अवयवों, नसों, नाड़ियों आदिका विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है, कि शरीरका कौन-सा अंग कैसा है और क्या काम करता है; शरीर विज्ञान।

शरीरशुश्रूषा (सं० स्त्री०) देहकी सेवा। (मनु ६।८६)

शरीरशोधन (सं० पु०) वह औषध जो कुपित मल, पित्त तथा कफको हटा कर ऊर्द्ध्व अथवा अधोमार्गसे निकाल दे।

शरीरशोषण (सं० क्ली०) देहका क्षय।

शरीरसंस्कार (सं० पु०) १ गर्भाधानसे ले कर अन्त्येष्टि तकके मनुष्यके वेदविहित सोलह संस्कार। २ शरीरको शोभा तथा मार्जन।

शरीरसन्धि (सं० स्त्री०) शरीरग्रन्थि, शरीरके प्रत्येक

त्वक्‌मांस शिरा स्नायु अस्थि आदिका परस्पर मिलन-स्थान। (भाग० ३।१३।४८)

शरीरस्थ (सं० त्रि०) १ शरीरमें रहनेवाला। २ जीवित, जीता हुआ।

शरीरस्थान (सं० क्लो०) शरीरस्थान।

शरीरान्त (सं० पु०) देहका अन्त अथवा नाश, मृत्यु, मौत।

शरीरार्पण (सं० पु०) किसी कार्यके निमित्त अपने शरीरको इस प्रकार लगा देना मानो उस पर अपना कोई स्वत्व ही न हो।

शरीरावयव (सं० पु०) अङ्गप्रत्यङ्ग।

शरीरावरण (सं० क्लो०) शरीरस्य आवरणं। १ चर्म, चमड़ा, खाल। २ चर्म, ढाल। (महाभारत) ३ कायवेष्टन, शरीरको ढकनेकी कोई चीज। भावे ल्युट्। ४ देहाच्छादन, शरीरको ढकना।

शरीरास्थि (सं० क्लो०) कङ्काल, पिंजर।

शरीरिन् (सं० पु०) शरीरमस्यास्तीति शरीर इनि। १ देही, शरीरविशिष्ट, अवयवसमष्टियुक्त। पर्याय—भव, उद्भव, प्राणी, जन्यु, जन्तु, प्राणभृत्, चेतन, जन्मी।

वैद्यकशास्त्रमें शरीरीका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—

गर्भाशयसमधिष्ठित शुक्र, शोणित, जीव अर्थात् चैतन्य और सविकार अर्थात् महत्, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्र, मनके साथ एकादश इन्द्रिय और पञ्चमहाभूत ये सब विकार प्रकृति हैं, इनका साधारण नाम गर्भ है। यह गर्भ जब समय पा कर दो हाथ, दो पैर, मस्तक और मध्यदेह, षडङ्ग, दो जङ्घापिण्डिका, दो ऊरुपिण्डिका, दो स्फिक्, दो वृषण और लिङ्ग इत्यादि ५६ प्रत्यङ्ग, नाभि, हृदय, क्लोम, यकृत् और प्लीहा इत्यादि १५ कोष्ठाङ्ग, चेतनाधिष्ठान एक, इन्द्रियाधिष्ठान १०, प्राणायतन १०, कुल मिला कर ३६० अस्थि, ९०० स्नायु, ७०० शिरा, २०० धमनी, ५०० पेशी, १०७ मर्म और २०० सन्धिसे समायुक्त पूर्णावयवको प्राप्त होता है, तब उसे शरीरी कहते हैं। अङ्गप्रत्यङ्गादिका विस्तृत विवरण शरीर शब्दमें लिखा जा चुका है। शरीर देखो।

२ क्षेत्रज्ञ, जीवात्मा। (मनु १।५३) ३ देहावच्छिन्न आत्मा, आत्मा जब तक देहमें रहती है, तब तक उसे शरीरी कहते हैं। ४ जीव, जन्तु, प्राणी।

शरीष्ट (सं० क्ली०) आमका पेड़।

शरु (सं० पु०) शृ हिंसायां शृ-उ (शॄस्वृ स्निहित्रप्यसीति। उण् १।११) १ क्रोध, गुस्सा। २ वज्र। ३ वाण, तीर। ४ आयुध, शस्त्र, हथियार। (सिद्धान्तकौ०) ५ हिंसा। (ऋक् ६।२७।६) ६ गन्धर्वविशेष। (महाभारत १।१२३।५५) (त्रि०) ७ हिंसक, हिंसा करनेवाला। ८ बहुत पतला। ९ जिसका अगला भाग बहुत ही छोटा या नुकीला हो।

शरुमत् (सं० त्रि०) आयुधविशिष्ट, हथियारवन्द। (ऋक् १०।८६।५ सायण)

शरेज (सं० पु०) शरे शवणे जायते जन-ड (विभाषा वर्षक्षरशरवरात्। पा ६।३।१५) इति विकल्पे सप्तम्या अलुक्। कार्त्तिकेय।

शरेष्ट (सं० पु०) आम्र, आम।

शर्क (सं० पु०) दस्युविशेष। (अथर्व ८।६।१२)

शर्कर (सं० पु०) १ कङ्कर, कंकड़। २ वालुका कण। ३ जलज जीवभेद, जलमें उत्पन्न होनेवाला एक प्रकारका प्राणी। (पञ्चविंशब्रा० १४।५।१५) ४ पुराणानुसार एक देशका नाम। ५ इस देशका निवासी। (मार्क० ५८।३५)

शर्करक (सं० पु०) शर्कार (वुञ्छ्याकठेति। पा ४।२।८०) इत्यनेन कः। मधुर जम्बीर, शरवती नीबू। (राजनि०)

शर्करकन्द (सं० पु०) शकरकन्द देखो।

शर्करजा (सं० स्त्री०) शर्कराज्जायते इति जन ड स्त्रियां टाप्। सिताखण्ड, चीनी।

शर्करा (सं० स्त्री०) १ खण्डविकार, शक्कर, खांड़। पर्याय—सिता, शुक्लोपला, शुक्ला, सितोपला, मीनाण्डी, श्वेता, मत्स्यण्डिका, अहिच्छत्रा, सुसिकता, गुड़ोद्भवा। गुण—मधुर, शीतल, पित्त, दाह, श्रम, रक्तदोष, भ्रान्ति और कृमिकोपनाशक। (राजनि०)

गुड़से चीनी बनती है। साधारणतः खजूर, ईख और ताड़के रससे ही चीनी प्रस्तुत हो कर व्यवहृत होती है। आज कल बिट्से तैयार की हुई चीनीका ही विशेष प्रचार है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि सफेद और बालू जैसे खण्ड (खांड़)को शर्करा या सिता कहते हैं। यह

अत्यन्त मधुररस, रुचिकारक, शीतवीर्य्य, शुक्रवर्द्धक तथा वायु, रक्त, पित्त, दाह, मूर्च्छा, वमि और ज्वरनाशक, मानी गई है।

पुष्पशर्करा—शीतवीर्य्य, रक्तपित्तनाशक, लघु, कषायरस, शीतवीर्य्य तथा कफ, पित्त, वमि, अतीसार, पिपासा, तृष्णा, दाह और रक्तदोषनाशक है। यह जितनी ही मधुर होगी, उतना ही उसमें मधुर, स्निग्ध, लघु, शीतल और सारक गुण होगा। (भावप्रकाश) विशेष विवरण चीनी शब्दमें देखो।

२ उपला, कण्डा। ३ कंकड़। ४ ठीकरा। ५ पथरी नामक रोग। ६ वालुका, वालू। ७ पुराणानुसार एक देशका नाम जो कूर्मचक्रके पुच्छ भागमें है। (मार्क०पु० ५८।३५) ८ एक प्रकारका रोग, शर्करा रोग।

शुक्राश्मरी रोगमें रोगीके मूत्राशयमें वेदना होती, कष्टसे पेशाब उतरता और दोनों अण्डकोष सूज जाते हैं। इस रोगके उत्पन्न होते ही शुक्र गिरने लगता है, किन्तु लिङ्ग और मुष्कके मध्यभागमें दर्द होनेसे अश्मरी भीतरमें लीन हो जाती है। यह अश्मरी जब वायु द्वारा भिन्न अर्थात् चीनीकणकी तरह होती है, तब उसे शर्करा कहते हैं। शर्करा और सिकतामें प्रभेद यह है, कि शर्करासे सिकताकी रेणु सूक्ष्म होती है। वायु द्वारा प्रभिन्न शर्करा और सिकतारोगमें यदि वायु स्वपथगामी हो, तो मूत्रके साथ रेणु निकल आती है तथा वायुके विपथगामी होनेसे उनका निकलना बन्द हो जाता है और मूत्रस्रोतके साथ संलग्न हो कर विविध उपद्रव उत्पन्न करती है। दुर्बलता, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, कुक्षि, शूल, अरुचि, पाण्डु, मूत्राघात, पिपासा, हृद्रोग और वमि ये सब उपद्रव होते हैं। (भावप्र०) अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र शब्द देखो।

शर्कराक्ष (सं० पु०) चरकके अनुसार एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शर्कराचल (सं० पु०) शर्करामयो अचलः। दानार्थ कृत्रिम शर्करामय पर्वतविशेष, चीनीका वह पहाड़ जो दान करनेके लिये लगाया जाता है। (हेमाद्रि दानख०)

शर्कराधेनु (सं० स्त्री०) शर्करामिर्निर्मिता धेनुः। दानार्थ शर्करा निर्मित धेनु, चीनीकी वह गौ जो दान करनेके लिये बनाई जाती है। वराहपुराणमें इस धेनुदानका विधान है। चीनीकी सवत्सा धेनु बना कर यथाविधान दान करना होता है। जो दक्षिणाके साथ यह दान करते हैं, वे सभी पातकोंसे मुक्त हो अन्तमें विष्णुलोकको जाते हैं।

शर्कराप्रभा (सं० स्त्री०) शर्करेव प्रभा यस्याः। जैनोंके अनुसार एक नरक।

शर्कराप्रमेह (सं० पु०) एक प्रकारका प्रमेह। इसमें मूत्रका रंग मिस्रीका-सा होता है और उसके साथ शरीरकी शर्करा निकलती है।

शर्करार्बुद (सं० पु० क्ली०) शर्करावदर्बुदः। क्षुद्ररोगाधिकारोक्त रोगविशेष। इसका लक्षण—जिस रोगमें कफ वायुके प्रकोपके कारण मांस, स्नायु और मेद दूषित हो कर ग्रन्थि उत्पन्न होती है, उस ग्रन्थिसे मधु, घृत या चर्वीकी तरह स्राव निकलता है और अधिक स्रावके कारण वायु फिरसे बढ़ कर मांसको सुखाती है और शर्कराकी तरह कठिन गाँठ उत्पन्न हो कर उसमेंकी शिराओं द्वारा नाना प्रकारका वर्णविशिष्ट अत्यन्त दुर्गन्धित क्लेद निकलता है, कभी उससे रक्तस्राव भी होता है. उसीको शर्करार्बुद कहते हैं। यह रोग होने पर मेदजन्य अर्बुद रोगकी तरह चिकित्सा करनी होगी। (भावप्र० क्षुद्ररोगाधि०)

शर्करालेह (सं० पु०) रसायनाधिकारोक्त लेहविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, यष्टिमधु, प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, ५ माशा ५ रत्ती; कुशमूल, काशमूल, उलुमूल, शरमूल और इक्षु मूल प्रत्येक ३ पल, जल ३२ सेर; इन्हें अग्निमें पाक कर शेष ८ सेर, नारियल जल १२ सेर, घृत ४ पल, यथानियम पाक कर १६ पल शर्करा देनी होगी। पीछे पाक सिद्ध होने पर इलायची, तेजपत्र, धनिया, जीरा, दारचीनी, मङ्गरैला, वंशलोचन और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला करके प्रक्षेप दे कर उतारना होगा। यह लेह श्रेष्ठ रसायन है।

शर्करावत् (सं० पु०) शरबत।

शर्करासप्तमी (सं० स्त्री०) शर्कराया दानविधायिका सप्तमी। वैशाखी शुक्ला सप्तमी। मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि वैशाखी शुक्ला सप्तमी तिथिमें प्रातःस्नानके बाद कुङ्कुम द्वारा स्थण्डिलके मध्य सकर्णिक पद्म अङ्कित कर शुक्ल तिल और शुक्ल माल्यानुलेपनके साथ 'तस्मै सवित्रे नमः' इस मन्त्रसे गन्धपुष्प चढ़ावे। पीछे इसके ऊपर शर्करापात्र संयुत उदकुम्भ स्थापन करे। इस कुम्भका शुक्ल वस्त्र, माल्य और अनुलेपन द्वारा अलंकृत सुवर्णाश्वके सामने रख कर यथाविहित मन्त्रसे पूजन करना होगा।

अमृतपायी सूर्यके मुखसे निकला हुआ अमृतविन्दु ही शालि, मुद्ग और इक्षु कहलाता है तथा उस अमृतात्मक इक्षुका सारभाग ही शर्करा है। अतएव वह शर्करा सूर्यदेवको अतिप्रिय वस्तु है। इस कारण शर्करासप्तमीमें शर्करासंसृष्ट उपकरण द्वारा पूर्वोक्त प्रकारसे सुवर्णाश्वकी पूजा और सौरसूक्ति स्मरणादि करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है तथा अन्तमें ब्रह्मपद लाभ होता है। (मत्स्यपु० ७२ अ०)

शर्करासव (सं० पु०) एक प्रकारका मद्य या शराब जो चीनीसे तैयार की जाती है। गुण—मुखप्रिय, सुखमादक, सुगन्धि, वस्तिरोगनाशक और पाचक, यह पुराना होनेसे हृद्य और वर्णकर होता है। (चरकसू० २७ अ०)

शर्करासुरभि (सं० पु०) शर्करासव देखो।

शर्करिक (सं० त्रि०) शर्करा विद्यतेऽस्मिन् शर्करा ठक् (कुञ्जनकठजिलेति. कुमुदादित्वात् ठक्। पा ४।२।८०) शर्करावान्। (सिद्धान्तकौमुदी)

शर्करिल (सं० त्रि०) शर्करा विद्यतेऽस्मिन् शर्करा-इलच् (देशे लुबिलचौ च। पा ४।२।१०५) शर्करावान्। (अमर)

शर्करी (सं० स्त्री०) १ वर्णवृत्तके अन्तर्गत चौदह अक्षरोंकी एक वृत्ति। इसके कुल १६३८४ भेद होते हैं जिनमेंसे १३ मुख्य हैं। २ नदी, दरिया। ३ मेखला। ४ लेखनी, लिखनेकी कलम।

शर्करीय (सं० त्रि०) शर्करासम्बन्धी, चीनीका।

शर्करोदक (सं० क्ली०) १ चीनी घोला हुआ पानी, शरबत। वह शरबत जिसमें इलाइची, लौंग, कपूर और गोलमिर्च मिली हो। वैद्यकमें इसे बलवर्द्धक, रुचिकारक, वायु, पित्त तथा रक्तदोषनाशक और वमन, मूर्च्छा, दाह और तृष्णा आदिको शमन करनेवाला माना है।

शर्कार (सं० पु०) वस्तुविशेष। गौरादि ङीप्। (पा ४।१।४१)

शर्कोट (सं० पु०) सर्प, सांप।

शर्ट (अं० स्त्री०) कमीज नामका पहननेका कपड़ा।

शर्णाचापिलि (सं० पु०) एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

शर्त्त (अ० स्त्री०) १ दो व्यक्तियों या दलोंमें होनेवाली ऐसी प्रतिज्ञा कि अमुक बात होने या न होने पर हम तुमको इतना धन देंगे अथवा तुमसे इतना धन लेंगे, बाजी जिसमें हार जीतके अनुसार कुछ लेन देन भी हो, दांव। २ किसी कार्यकी सिद्धिके लिये आवश्यक या अपेक्षित होनेवाली बात या कार्य जिसके न होनेसे उस काममें बाधा उपस्थित न हो।

शर्त्तिया (अ० क्रि० वि०) १ शर्त्त, बदकर, बहुत ही निश्चय या दृढ़तापूर्वक। (वि०) २ बिलकुल ठीक, निश्चित।

शर्त्तों (अ० क्रि० वि०) शर्त्तिया देखो।

शर्दि (सं० क्ली०) वैदिक कालके एक प्राचीन नगरका नाम। "सर्दिर्नो अविरप्रमीन्नभोभिः" (अथर्व १८।३।१६)

शर्द्ध (सं० पु०) शृधु शब्दकुत्सायाञ्च शृधु-घञ्। १ अपान वायुका त्याग, पादना। २ तेज। (ऋक् ४।१।१२) ३ समूह। (ऋक् १।६४।१) (क्ली०) ४ आर्द्रत्व, गीलापन। (त्रि०) ५ प्रसहनशील। (ऋक् १।३७।४)

शर्द्धञ्जह (सं० पु०) शर्द्धं जहातीति शर्द्ध-हा-खश् (वातशुनीतिल शर्द्धेष्विति। पा ३।२।२८) १ माष, शिम्ब्यादि। (त्रि०) २ मलद्वार हो कर वायु निकालनेवाला, पादनेवाला।

शर्द्धन (सं० क्ली०) शर्द्ध-ल्युट्। १ अधोवायु, पाद। (मनु ८।२८२ कुल्लूक) २ आर्द्रता, गीलापन।

शर्द्धनीति (सं० त्रि०) प्रवृद्धकर्मा। (ऋक् ३।३४।३)

शर्द्धस् (सं० त्रि०) १ अभिभविता, पराभवकारी। २ बलवान्, ताकतवर। (ऋक् १।१२२।१०) (क्ली०) ३ बल, ताकत। (ऋक् १।१०६।१)

शर्द्धिन् (सं० त्रि०) स्पर्द्धायुक्त, गर्व्वित।

शर्द्ध्य (सं० पु० क्ली०) प्राप्य, लक्ष्य। (ऋक् १।१११।५)

शर्बत (अ० पु०) शरबत देखो।

शर्बती (अ० पु०) शरबती देखो।

शर्व—१ हिंसा। २ गति।

शर्म (फा० स्त्री०) शरम देखो।

शर्म (सं० क्ली०) शर्म्मन् देखो।

शर्म्मक (सं० पु०) १ एक देशका नाम। २ इस देश-की एक जाति। (भारत सभापर्व)

शर्म्मकृत् (सं० त्रि०) मङ्गलकारी। (भागवत ७।११।३१)

शर्म्मणी (सं० स्त्री०) ब्राह्मीक्षुप। (वैद्यकनि०)

शर्म्मण्य (सं० त्रि०) १ सुखके योग्य। २ आश्रयके योग्य।

शर्म्मद (सं० त्रि०) १ सुखदायक, आनन्द देनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

शर्म्मन् (सं० क्ली०) शृ-मनिन् (सर्व्वधातुभ्यो मनिन्। उणा् ४।१४) १ सुख, आनन्द। (ऋक् ४।२५।४) २ गृह, घर। (ऋक् ६।१३।४) (त्रि०) ३ सुखी। (पु०) ४ ब्राह्मणोंकी उपाधि।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि बालकके जन्मदिनसे दश दिन बीत जाने पर पिता उसका नामकरण करें। नामकरणके समय नामके बाद देव शब्द तथा पीछे शर्म्मवर्म्मादि शब्दकी योजना करनी होती है अर्थात् ब्राह्मणके नामके बाद शर्म्म तथा क्षत्रियके नामके बाद वर्म्म इत्यादि।

५ विष्णु। (भारत १३।१४९।२३)

शर्म्मन्—वर्षकृत्य नामक दीधितिके प्रणेता। ये चम्प हट्ट वंशीय तथा श्रीशर्म्म नामसे भी परिचित थे।

शर्म्मर (सं० पु०) १ एक प्रकारका वस्त्र। (त्रि०) २ सुखदायक, आनन्द देनेवाला।

शर्म्मरी (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

शर्म्मरी (सं० स्त्री०) दारुहरिद्रा, दारुहल्दी।

शर्म्मवत् (सं० त्रि०) १ सुखयुक्त, सुखी। २ शर्म्म नाम-युक्त। (मनु २।३२)

शर्म्मसद् (सं० त्रि०) घरमें रहनेवाला। (ऋक् ३।५५।२१)

शर्म्मा (सं० पु०) शर्म्मन् देखो।

शर्म्माख्य (सं० पु०) मसूर। (पर्यायमुक्ता)

शर्म्माना (अ० क्रि० वि०) शरमाना देखो।

शर्मिंदगी (अ० स्त्री०) शरमिंदगी देखो।

शर्मिंदा (अ० वि०) शरमिंदा देखो।

शर्मिला (सं० स्त्री०) पाण्डु, शर्मिला शब्दसे पञ्च-पाण्डवकी पत्नी द्रौपदीका बोध होता है।

शर्म्मिष्ठा (सं० स्त्री०) वृषपर्वा नामक असुरराजकी कन्या। महाभारतमें लिखा है, कि एक दिन दैत्यगुरु शुक्राचार्य्यकी कन्या देवयानी और शर्मिष्ठा अपनी सहे-लियोंके साथ स्नान कर रही थी। वायुके चलनेसे तट पर रखे हुए सभीके वस्त्र मिल गये। स्नानके अन्तमें शर्मिष्ठाने देवयानीका वस्त्र पहन लिया। फिर क्या था दोनोंमें कलह होने लगा। शर्म्मिष्ठाने देवयानीके पिताको असुरोंका भाट बतलाया और देवयानीको कुएं-में गिरवा कर वह स्वयं घर चली गई। संयोगवश राजा ययाति वहां पहुंच गये। राजा ययाति रमणीका आर्त्तनाद सुन कर उस कुएंके पास गये और देवयानी-को निकाला। कुएंसे निकल कर देवयानी अपने घर नहीं गई। उन्होंने किसीके द्वारा अपने पिताको अपनी दुर्दशाका हाल और अपना संकल्प कहला भेजा। दैत्यगुरुने अपना अभिप्राय दैत्यराज वृषपर्वासे कहा। वृषपर्वाने उनसे अपना अभिप्राय बदल देनेके लिये कहा। इस पर शुक्राचार्य बोले, 'तुम देवयानीको प्रसन्न करो, यदि वह तुम्हारे नगरमें रहना स्वीकार करे, तो मुझे भी स्वीकार है।' वृषपर्वा देवयानीके समीप जा कर उसका अनुनय करने लगा। देवयानी बोली, 'यदि तुम्हारी कन्या शर्म्मिष्ठा हजार दासियोंके साथ मेरी दासी होना स्वीकार करे और हमारे ब्याहके बाद भी हमारे पतिके घर दासी बन कर ही जाय, तो मैं सङ्कल्प छोड़ सकती हूं।' दैत्यराजने देवयानीका कहना स्वीकार किया।

देवयानी घर लौट आई, शर्मिष्ठा भी हजार दासियों को ले कर शुक्राचार्यके घर देवयानीकी सेवा करनेके लिये गई। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन नव यौवनसम्पन्ना सद्य ऋतुस्नाता शर्मिष्ठा निर्जनमें राजा ययातिको पा कर उनके पास गई और अति विनीत भावसे ऋतुरक्षा करनेके लिये प्रार्थना की। राजाको पहले देवयानीके भयसे शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूरी करनेका साहस न हुआ, किन्तु पीछे जब उन्होंने देखा, कि एकान्त कायमनोवाक्यसे आत्मसमर्पणकारीको लौटानेसे नरकगामी होना पड़ेगा, तब उन्होंने शर्मिष्ठाकी प्रार्थना पूरी की। यथासमय शर्मिष्ठाके गर्भसे द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

कुछ समय बाद देवयानीको जब यह हाल मालूम हुआ, तब वह राजा और शर्मिष्ठा पर बड़ी बिगड़ी और पिताके पास जा कर कुल वृत्तान्त कह सुनाया। दैत्यगुरु शुक्रने राजाको 'तुम जराग्रस्त हो' कह कर शाप दिया। पीछे शुक्रने राजाको दूसरेके ऊपर जराभार देने और उससे यौवन लेनेका हुकुम दिया। राजाने देवयानी और शर्मिष्ठा दोनोंके ही पुत्रोंको बुलाया और जराभार लेनेके लिये कहा। इस पर शर्मिष्ठाके पुत्र पुरुको छोड़ और कोई भी जरा लेनेसे राजी न हुआ। अनन्तर राजा ययातिने पुरुके ऊपर ही जराभार सौंप हजार वर्ष तक यौवनका उपभोग किया एक हजार वर्ष बीतने पर भी जब राजा तृप्त न हुए, तब उन्होंने पुरुको बुला कर कहा, 'मैंने हजार वर्ष तक विषय सुख भोगे, परन्तु मेरी तृप्ति नहीं हो सकती। अतएव अब विषय सुख भोगना व्यर्थ है।' यह कह कर ययातिने पुत्रको यौवन लौटा दिया और वे स्वयं वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके कठिन तपस्या करने लगे।

शर्म्मीला (अ० वि०) शरमीला देखो।

शर्य्या (सं० पु०) १ योद्धा। (ऋक् १।११९।१०) २ इषु, वाण। (ऋक् १।१४८।४) ३ अंगुलि, उंगली। (ऋक् ६।११०।५)

शर्य्यण (सं० पु०) कुरुक्षेत्रान्तर्गत जनपदविशेष। (ऋक् ८।६।३९)

शर्य्यणावत् (सं० पु०) शर्य्यण नामक जनपदके पासका एक प्राचीन सरोवर जो तीर्थ माना जाता था। (ऋक् ८।६।३९ सायण)

शर्य्यहन् (सं० पु०) वाण द्वारा शत्रुहननकारी, वह जो वाणसे शत्रुको मारता हो। (ऋक् ६।१६।३९)

शर्य्या (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

शर्य्याण (सं० पु०) शर्य्यण देखो।

शर्य्यात (सं० पु०) मानव, मनुष्य। (ऋक् १।११२।१७)

शर्य्याति (सं० पु०) १ एक राजाका नाम जिसकी कन्या "सुकन्या" महर्षि च्यवनको व्याही गई थी। २ वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम। (भागवत ८।१३।२)

शर्व (सं० पु०) शृणाति सर्व्वाः प्रजाः संहरति प्रलये, संहारयति वा भक्तानां पापानि शॄ-व (कॄ-गॄ शॄ-दृभ्यो वः। उण् १।१५५) १ शिव, शंकर, महादेव। (रघु ११।९३) २ विष्णु। (भारत १३।१४९।१७)

शर्वक (सं० पु०) मुनिविशेष।

शर्वट (सं० पु०) १ काश्मीरके एक व्यक्तिका नाम। २ एक कवि। (राजत० ५।४।१३)

शर्वगुप्त—एक कवि। ये राजा दुर्गा द्वारा झालरापत्तनमें उत्कीर्ण शिलाफलकके रचयिता हैं।

शर्वदत्त (सं० पु०) गार्ग्यगोत्रीय वैदिक आचार्यका नाम।

शर्वन् (सं० त्रि०) शर्वर देखो।

शर्वनाग—१ कोटा प्रदेशके एक सामन्तराज। ये बौद्धधर्मावलम्बी थे। २ महाराज स्कन्दगुप्तके अधीनस्थ एक मित्रराज। ये अन्तर्वेदीके विषयपति थे।

शर्वनाथ—उच्छकल्पके एक सरदार। ये महाराज उपाधिसे भूषित थे। इनके पिताका नाम जयनाथ तथा माताका मुरुण्डदेवी था।

शर्वपत्नी (सं० स्त्री०) १ पार्वती। (कथासरित्सा० ५३।१५) २ लक्ष्मी।

शर्वपर्वत (सं० पु०) कैलास।

शर्ववर्मन्—१ एक प्राचीन कवि। २ कातन्त्रसूत्र और धातुपाठ नामक व्याकरणके रचयिता।

शर्ववर्मान्—१ मगधके एक गुप्तवंशीय राजा। महाराज २य जीवितगुप्तदेवकी शिलालिपिमें इनका नाम

पाया जाता है। २ एक मौखरिराज। ये उपगुप्तके पुत्र ईशान देवात्मज थे। इनकी माताका नाम लक्ष्मीवती था। ३ एक सामन्त-सरदार। ये गुप्तराजाओंके अधीन महासामन्त महाराज समुद्रसेनके पूर्वपुरुष थे।

शर्वर (सं० क्ली०) १ तमः, अंधकार, अंधेरा। २ कन्दर्प, कामदेव। (संक्षिप्तसारोणादि) ३ सन्ध्या। ४ नारीजाति।

शर्वरिन् (सं० पु०) वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे चौंतीसवाँ संवत्सर। कहते हैं, कि इस संवत्सरमें दुर्भिक्षका भय होता है।

शर्वरी (सं० स्त्री०) शृणाति चेष्टामिति शृ-ष्वरच् षित्वात् ङीष्। १ रात्रि, रात, निशा। (ऋक् ६।५२।३) २ योषित्, नारी, स्त्री। (मेदिनी) ३ हरिद्रा, हल्दी। (विश्व) ४ सन्ध्या, साँझ, शाम। (संक्षिप्तसारोणादि) ५ वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे आठवाँ वर्ष।

शर्वरीक (सं० त्रि०) क्षतिकर, हानिकारक, नुकशान करनेवाला।

शर्वरीकर (सं० पु०) विष्णु।

(भारत १३।१४६।११०)

शर्वरीदीपक (सं० पु०) चन्द्रमा।

शर्वरीद्वय (सं० क्ली०) हरिद्रा और दारुहरिद्रा इन दोनोंका समूह।

शर्वरीपति (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ शिव।

शर्वरीश (सं० पु०) चन्द्रमा। (राजतर० ३।३८७)

शर्वला (सं० स्त्री०) तोमराख्य अस्त्र। (रायमुकुट)

शर्वाक्ष (सं० पु०) रुद्राक्ष, शिवाक्ष।

शर्वाचल (सं० पु०) कैलास।

(कथासरित्सा० १०६।१५१)

शर्वाणी (सं० स्त्री०) शर्वस्य भार्या इन्द्रवरुणभवेति। ङीष् (पा ४।१।४९) पार्वती।

शर्विलक (सं० पु०) नायकभेद। (मृच्छकटिक ३५।२१)

शर्शरीक (सं० पु) शृ-ईकन् शृ पृ-वृञां द्वे रुक् चाभ्यासस्य। (उणा् ४।१६) १ हिंस्रक। २ खल, दुष्ट, पाजी। (उणादिकोष) ३ अश्व, घोड़ा। ४ मङ्गलाभरण। ५ अग्नि। (संक्षिप्त सारोणादि)

शर्षीका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका छन्द।

शलंदा (हिं० पु०) पाताल गारुड़ी, जल जमुनी, छिरहटा।

शल (सं० क्ली०) शल ण (ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः। पा ३।१।१४०) १ शल्लकीलोम, साहीका कांटा। पर्याय—शलली, शलल। (पु०) २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ भृङ्गी। ४ छेत्रभेद। ५ ब्रह्मा। (मेदिनी) ६ कुन्तास्त्र, भाला। (त्रिकाण्डशेष) ७ उष्ट्र, ऊंट। ८ वासुकीवंशीय सर्पविशेष। (महाभारत १।५७।५) ९ शन्तनु राजाका पुत्र। (भागवत ६।२२।१८) १० शल्यराज। (भागवत १।१५।१६) ११ कंसके मन्त्री। (भागवत १०।३६।२१) १२ धृतराष्ट्रका पुत्र। (भारत १।१२७।४) १३ शिवानुचर भृङ्गी। १४ सोमदत्तका पुत्र। (भारत)

शलक (सं० पु०) १ लूता, मकड़ी। २ तालवृक्ष, ताड़का पेड़। ३ शल्लकी कण्टक, साहीका काँटा।

शलकर (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

शलगम (फा० पु०) शलजम देखो।

शलङ्कट (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। (पा २।४।६९)

शलङ्कु (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। शालङ्कायन आदि इनके वंशसम्भूत हैं।

शलङ्ग (सं० पु०) १ लोकपाल। २ लवणविशेष, एक प्रकारका नमक। (उणादिकोष)

शलजम (फा० पु०) गाजरकी तरहका एक प्रकारका कन्द। यह प्रायः सारे भारतमें जाड़ेके दिनोंमें होता है। यह कन्द गाजरसे कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और तरकारी, अचार और मुरब्बे आदि बनानेके काममें आता है। यूरोपमें इससे चीनी भी निकाली जाती है।

शलपुत्र (सं० पु०) बौद्ध-यतिभेद, सम्भवतः शालिपुत्र। (तारनाथ)

शलभ (सं० पु०) शल-अभच्। (कृशृशलिकलिगर्दिभ्योऽभच्। उणा् ३।१२२) १ कीटविशेष, पतङ्ग, फतिंगा। २ शरभ, टीड़ी, टिड्डी। ३ छप्पयके ३१वें भेदका नाम। इसमें ४० गुरु और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। ४ असुरविशेष। (हरिवंश ३।८८)

शलभता (सं० स्त्री०) शलभका भाव या धर्म।

(कुमारसम्भव ४।४०)

शलभोलि (सं० पु०) उष्ट्र, ऊँट।

शलल (सं० क्ली०) शल चलनसंवरणयोः शल कल, वृषादित्वात्। साहीका काँटा।

शललचञ्चु (सं० पु०) साहीका कांटा।

शललित (सं० त्रि०) १ शलल कण्टविशिष्ट। २ कण्टकयुक्त।

शलली (सं० स्त्री०) शलल-गौरादित्वाज्जातित्वाद्वा ङीष्। १ शल देखो। २ शली या शलाका। (राजनि०)

शललीपिशङ्ग (सं० त्रि०) १ शललकण्टकवद्ध। (पु०) २ नवरात्रभेद (आश्व० श्रौ० १०।४।२७)

शलाक (सं० पु०) शलाका पदार्थ।

शलाकधूर्त्त (सं० पु०) वह जो शलाकाओं आदिकी सहायतासे पक्षियोंको पकड़ता हो, चिड़ीमार, बहेलिया। "शलाकया पाशादिना वा शकुनादिकयुक्त्वा योऽन्यान्वञ्चयति।" (भारत उद्योग० नीलक०)

शलाकला (सं० स्त्री०) शलाका।

शलाका (सं० स्त्री०) शल-आक (बलाकादयश्च। उण् ४।१४) स्त्रियां टाप्। १ शल्य, लोहे या लकड़ी आदिकी लंबी सलाई, सीख। २ मदनवृक्ष, मैनफल। ३ शारिका, मैना। ४ शल्लकी, सलई। ५ छत्रादिकी काठी, छाताकी कमानी। ६ वह सलाई जिससे घावकी गहराई आदि नापी जाती है। ७ शर, वाण। ८ आलेख्यकूर्चिका, चित्रकरकी कुची। ६ अस्थि, हड्डी। १० नेत्राञ्जनसाधनकोष्ठीका, आंखमें सुरमा लगानेकी सलाई। यह हड्डी अथवा धातुकी होती है। इसकी लम्बाई दश अंगुल परिणाह मटर उड़द सदृश और मुख पुष्पकी कलीके समान बनाना उचित है। लिखने अथवा घावका मवाद बाहर निकालनेके लिये यह लोहे, ताँबे या पत्थर आदिकी होनी चाहिये। सोने या चांदीकी बनी शलाकाके व्यवहार करनेकी भी विधि है। (वृद्धसुश्रुत) ११ तृण, तिनका। १२ जूआ खेलनेका पासा। १३ वचा, वच। १४ तलास्थि, तलीकी हड्डी। १५ नगरविशेष। (रामायण ४।४३।८३) १६ दीयासलाई।

शलाकाधिष्ठानास्थि (सं० स्त्री०) हाथ और पैरकी शलाका अस्थिकी आधारभूत एक अस्थि।

(चरक शारीरस्थान ७ अ०)

शलाकापरि (सं० अव्य०) शलाकाक्रीड़ायां पराजयः (अक्षशलाकासंख्याः परिणा। पा २।१।१०) द्यूतव्यवहारे पराजये एवायं समासः, अक्षे विपरीतं वृत्तम् अक्षपरि एवं शलाकापरि। (इति सिद्धान्तकौमुदी) शलाका या अक्षक्रीड़ामें पराजय।

शलाकापुरुष (सं० पु०) जैनोंके तिरसठ दैवपुरुषोंमेंसे एक दैवपुरुष। इन तिरसठोंके भीतर फिर श्रेणीविभाग हैं; यथा—१२ चक्रवर्त्ती, २४ जिन, ६ वासुदेव, ६ बलदेव और ६ प्रतिवासुदेव।

शलाकाभ्रू (सं० स्त्री०) एक रमणी। (पा ४।१।१२३)

शलाकायन्त्र (सं० क्ली०) एक प्रकारका यन्त्र जो शरीरके नाना स्थानोंमें बद्ध शल्योंके निकालनेमें व्यवहृत होता है। यह अट्ठाईस प्रकारका है जिनमें नाड़ी व्रणादिकी गति जाननेके लिये जो दो प्रकारकी शलाका व्यवहृत होती है उनका मुख गण्डूपद है। शल्यादिको ऊपर उठा कर पकड़नेके लिये और भी दो शलाका हैं जिनका मुख शरपुङ्ख जैसा होता है। जो शलाका चालनकार्यमें व्यवहृत होती है उनका मुख सर्पफणा-सा और जो दो शल्योद्धारार्थ होती हैं उनका मुख वंशी जैसा होता है। उनमेंसे स्रोतोगतशल्य अर्थात् कर्णमल आदि निकालनेके लिये जो दो शल्य व्यवहृत होते हैं उनका मुख निस्तुष मसूरके अर्द्धखण्डके समान; जो छः प्रकारकी शलाका व्रणादिकी मार्जनक्रियामें व्यवहृत होती हैं उनका माथा रूईसे मढ़ा रहता है। तीन प्रकारकी शलाकाका आकार दर्वी या खंती सरीखा होता है। दर्वीकी तरह आकारवाले शलाकायन्त्रके मुख पर जो थोड़ा गड्ढा रहता है, उसमें क्षार औषध रख कर क्षतस्थानमें प्रयोग किया जाता है। अन्य तीन प्रकारकी शलाकाका मुख जम्बूफलकी तरह और तीनका मुख अङ्कुशकी तरह होता है। यही छः प्रकारकी शलाका अग्निकर्मके लिये निर्दिष्ट है। एक प्रकारकी शलाका नासार्बुद हरणार्थ व्यवहृत होती है। उसके मुखका प्रमाण बेरकी आंठीके आधे खण्डके समान होता है। उसके मत्थे पर खलकी तरह गड्ढा और वह गड्ढा चौधार होता है। आँखमें अञ्जन देनेके लिये एक प्रकारकी शलाका व्यवहृत होती है। उसके दोनों ओरका अग्रभाग देखने-

में पुष्पकी कलीकी तरह और उड़दके समान मोटा होता है। मूत्रमार्ग शोधनार्थ एक प्रकारकी शलाकाका व्यवहार किया जाता है। उसके अग्रभागकी स्थूलता मालतीपुष्पके वृन्त सदृश होती है।

शलाकावत् (सं० त्रि०) शलाका-मतुप्। (चतुर्थ्यर्थेषु। पा ४।२।८६) शलाका नामक नगरके समीप होनेवाला।

शलाकिका (सं० स्त्री०) शलाका।

शलाकिन् (सं० त्रि०) शलाकायुक्त। (भारतकर्णपर्व)

शलाकिर (सं० पु०) वीरमित्रोदय-वर्णित एक व्यक्ति।

शलाख (फा० पु०) सलाख देखो।

शलाट (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार दो हजार पलका परिमाण, शकट।

शलाटु (सं० पु०) १ अपक्व फल, कच्चा फल। २ मूल विशेष। (उणादिकोष) ३ बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

शलातुर (सं० पु०) प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनिकी वासभूमि, इस कारण शालातुरीय नामसे ख्यात है। (पा ४।३।९४)

शलाथल (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। इनके वंशधरगण शालाथलेय नामसे अभिहित हैं।

शलाभोलि (सं० पु०) उष्ट्र, ऊंट।

शलालु (सं० क्ली०) एक प्रकार सुगन्धि द्रव्य। (सिद्धान्तकौमुदी)

शलालुक (सं० त्रि०) शलालु पण्यमस्य शलालु-ठन्। (शलालुनोऽन्यतरस्याम्। पा ४।४।५४) शलालु अर्थात् सुगन्धि द्रव्य द्वारा खरीदी हुई वस्तु। (सिद्धान्तकौमुदी)

शलावत् (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। इनके वंशधर शालावत् कहलाते हैं। (छान्दोग्य उप० १।८।१)

शलिता (हिं० पु०) सलीता देखो।

शली (सं० स्त्री०) शलं शल्लकीलोम अस्त्यस्या इति शल अच ङीष्। स्वल्प शल्यक, साही नामक जन्तु जिसके सारे शरीर पर कांटे होते हैं। पर्याय—शलली, श्वावित्। इसके मांसका गुण—गुरु, स्निग्ध, शीतल और कफपित्तनाशक। (राजनि०)

शलुन (सं० पु०) कीटभेद, एक प्रकारका कीड़ा। (अथर्व २।३१।३)

शलूका (फा० पु०) आधी बांहकी एक प्रकारकी कुरती जो प्रायः स्त्रियां पहना करती हैं।

शल्क (सं० क्ली०) शल कन्। (इण्भीका पाशल्यति-मर्च्चिभ्य-कन्। उण् ३।४३) १ खण्ड, टुकड़ा। २ वल्कल, छिलका। ३ मत्स्यत्वक्, मछलीके ऊपरका छिलका।

शल्कम (सं० त्रि०) वल्कलविशिष्ट, जिसमें छिलका हो।

शल्कल (सं० क्ली०) शल-कलच्। (सिद्धांतकौमुदी) १ मत्स्यवल्कल, मछलीका छिलका। २ वृक्षत्वक्, वृक्षकी छाल।

शल्कलिन् (सं० त्रि०) १ वल्कलविशिष्ट, छिलकावाला। (पु०) २ मत्स्य, मछली।

शल्प (हिं० पु०) १ बाढ़। २ बौछार, भरमार। ३ धड़ाका, कड़ाका।

शल्पदा (सं० स्त्री०) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शल्पपर्णिका (सं० स्त्री०) शल्पदा देखो।

शल्मकी (सं० स्त्री०) शल्लकी देखो।

शल्मलि (सं० पु०) शाल्मली वृक्ष, सेमल।

शल्मली (सं० पु०) शाल्मलि देखो।

शल्य (सं० क्ली०) शलति चलतीति शल-य। (सानसि-वर्णसि-पर्णसीति निपातनात् साधुः। उण् ४।१०७) १ क्ष्वेड़, अव्यक्त शब्द या ध्वनि। २ इषु, बाण। (रघु ६।७५) ३ तोमर, भालेके आकारका एक प्रकारका अस्त्र। ४ वंशकम्बिका। ५ दुःसह। ६ दुर्वाक्य। ७ पाप। ८ अस्थिविशेष, मिट्टीमें गड़ी हुई बिल्ली, वानर आदिकी हड्डी। घर बनाते समय वास्तुभूमिका अनुसंधान करने पर यदि मालूम हो जाय कि नीचे किसी प्रकारका शल्य है, तो उसे निकाल कर घर बनाना कर्त्तव्य है, नहीं तो निश्चय ही भावी अशुभ होगा।

जहां घर बनानेका इरादा किया है, पहले वहांकी मिट्टी तब तक खोदनी होगी, जब तक जल दिखाई न दे। पीछे उस निकाली हुई मिट्टीमें यदि अच्छी तरह खोज करने पर अस्थि पाई जाय, तो उसे फेंक कर उस मिट्टीसे फिर गड्ढा भर दे। बादमें उसके ऊपर घर बनाना कर्त्तव्य है। यदि जल तक खोदना नितान्त दुःसाध्य हो जाय, तो एक मर्द खोदनेसे भी काम चल सकता है

अथवा गृहस्वामी स्वयं शुचि अवस्थामें दूर्वा, प्रवाल, आतपतण्डुल और पुष्पको हाथमें ले कर विनीत-भावसे किसी मधुर स्वरसे पवित्रात्मा दैवज्ञसे शल्यविषयक प्रश्न करे। पीछे उसका यथार्थ तत्त्व जान कर यथा-यथभावसे शल्योद्धार करना आवश्यक है।

प्रश्नानुसार शल्यनिर्णयादि।

प्रश्नकर्त्ता प्रश्नका आदि अक्षर यत्नपूर्वक सन्धारण करें अर्थात् ब्राह्मण प्रश्नकर्त्तासे पुष्प, क्षत्रियसे नदी, वैश्यसे देवता और शूद्रसे फलका नाम सुन कर उसका आदि अक्षर ग्रहण करे। इसके बाद निम्नलिखित प्रकारसे शल्यनिर्णय करना होता है। यथा—

प्रश्न या पुष्पादि के नामोंका आदि अक्षर	शल्यास्थिका जाति-निर्णय	किस ओर शल्यकी अवस्थिति है	शल्यावस्थानका फल
व	मानवास्थि	पूर्व	मरक
क	गर्द्दभास्थि	अग्निकोण	राजदण्ड या सर्पाघातसे मृत्यु
च	वानरास्थि	दक्षिण	गृहस्वामीका नाश
त	कुक्कुरास्थि	नैऋतकोण	महद्भय
प	वालकास्थि	पश्चिम	विदेशसे आ कर घरमें मृत्यु
ह	नराकृति अर्थात् पूर्णावयवविशिष्ट मानवास्थि	वायुकोण	दारिद्र्य और मित्रक्षय
श	विप्रास्थि	उत्तर	वित्तक्षय
प	भल्लूकास्थि	ईशानकोण	कुलनाश

प्रकारान्तर यथा—

अ	डेढ़ हाथ मिट्टीके नीचे मानवास्थि	पूर्व	मृत्यु
क	दो हाथ मिट्टीके नीचे गदहेकी अस्थि	अग्निकोण	राजदण्ड, भय
च	कटि पर्यन्त मिट्टीके नीचे मानवास्थि	दक्षिण	चिररोगी हो कर मृत्यु
ट	डेढ़ हाथ मिट्टीके नीचे कुत्तेकी हड्डी	नैऋत कोण	वालक की मृत्यु
त	डेढ़ हाथ मिट्टीके नीचे वालककी हड्डी	पश्चिम	चिरप्रवासी
प	चार हाथ मिट्टीके नीचे कोयलेकी भस्म	वायुकोण	दुःस्वप्न और मित्र नाश
ष	एक हाथ मिट्टीके नीचे ब्राह्मणकी अस्थि	उत्तर	निर्धन
श	डेढ़ हाथ मिट्टीके नीचे गोकी अस्थि	ईशान-कोण	गोधन-नाश
ह	छाती भर मिट्टीके नीचे मनुष्यके शिरकी खोपड़ी, भस्म या लौह	घरके नीचे	कुल नाश

६ शरीरके दुःखोत्पादक सभी भाव, विविध तृण, काष्ठ, पाषाण, पांशु, लौह, लोष्ट्र, अस्थि, केश, नख, पूय, गास्राव, गर्भ, प्रभृति।

सुश्रुतमें लिखा है, कि शरीर और आगन्तुके भेदसे शल्य दो प्रकारका है। लोम और नखादि, धातुसमूह, अन्न, मल और वातपित्तादि दोष जब दूषित हो कर पीड़ाकर होते हैं, तब उन्हें शरीर-शल्य कहते हैं। इसके सिवा दूसरे जितने प्रकारके द्रव्य शरीरमें क्लेश उत्पन्न करते हैं उनका नाम आगन्तुकपद-शल्य है। इसमें लौह, वेणु, काष्ठ, तृण, शृङ्ग और अस्थिमय शल्य ही विशेष उल्लेखयोग्य हैं। उनमें फिर लौहका ही अधिक प्राधान्य है, क्योंकि वह शस्त्ररूपमें गृहीत हो कर सर्वदा मारणकार्यमें प्रयुक्त होता है।

सभी शल्य वेगक्षय या प्रतिघातवशतः त्वगादिके अभ्यन्तर क्षत होनेके उपयुक्त स्थानोंमें अथवा धमनी, स्रोत, अस्थि, अस्थिविवर और पेशी या शरीरके अन्यान्य प्रदेशोंमें रहते हैं। किस स्थानमें रहनेसे कैसा लक्षण दिखाई देता है, नीचे उसका उल्लेख किया जाता है—

सामान्य और विशेषभेदसे शल्य-लक्षण दो प्रकारका है, जिनमेंसे व्रण या क्षत श्याववर्ण, पीड़काव्याप्त, शोक और वेदनाविशिष्ट, मुहुर्मुहुः शोणितस्रावी, बुद्बुदकी तरह उन्नत और मृदुमांसयुक्त होनेसे शल्यका सामान्य लक्षण जानना होगा। शल्यका विशेष लक्षण नीचे लिखा जाता है; यथा—

१ त्वक्गत शल्यका लक्षण—शल्यनिबद्ध स्थान विवर्ण शोथयुक्त, आयत और कठिन होता है।

२ मांसगत—शोथकी अतिवृद्धि, शल्यमार्गका अप्रसंरोह अर्थात् व्रणमुख प्रायः भर जाता है, दावनेसे दर्द करता है तथा दाह और पाक होता है।

पेशीगत—दाह और शोथको छोड़ मांसगत सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

शिरागत—शिरामें आध्मान, शूल और शोथ होता है।

स्नायुगत—स्नायुजाल उत्क्षिप्त तथा शोथ और उग्र वेदना होती है।

धमनीगत—वायु फेनयुक्त रक्तके साथ शब्द करती हुई निकलती है तथा अङ्गमर्द, पिपासा और हृल्लास होता है।

अस्थिगत—विविध वेदनाका प्रादुर्भाव और शोथ होता है।

अस्थिविवरप्रविष्ट—अस्थिका पूर्णतावोध, अस्थिमें सूचीभेदवत् पीड़ा और अत्यन्त संहर्ष होता है।

संधिगत—अस्थिगतकी तरह लक्षण और चेष्टाका उपरम अर्थात् सन्धिकी क्रियाहानि वा निश्चेष्टता होती है।

कोष्ठगत—आटोप अर्थात् पेटके भीतर गुड़गुड़ शब्द, आनाह अर्थात् बंधनवत् पीड़न और व्रणमुखसे मूत्र, पुरीष या आहार दिखाई देता है।

मर्मगत—मर्मविद्धके समान लक्षण दिखाई देते हैं।

इस प्रकार भी त्वगादिके अभ्यन्तरस्थ शल्यका हाल जाना जाता है;—

त्वक्‌गत—त्वक्‌में स्निग्धस्वेद दे कर मिट्टी, उड़द, जौ, गेहूं या गोवरके साथ मर्दन करनेसे यहां शोथ या वेदना होती है, वहां शल्य है, ऐसा जानना होगा। अथवा गाढ़े घी, मिट्टी और चन्दनकल्कका लेपन करनेसे त्वक्‌के जिस स्थानका घृत उष्मा द्वारा गल जाता है या क्रमशः सूख जाता है वहां शल्य है, ऐसा जानना होगा।

मांसगत शल्य मांसके मध्य गुप्तभावसे रहने पर पहले स्नेहस्वेदादि भिन्न भिन्न क्रियायोगसे भी अविरुद्ध भावसे रोगीको उपपन्न करें, ऐसा करनेसे शल्य शिथिल और अवद्ध हो कर सञ्चालित होगा तथा जहां शोथ या वेदना मालूम होगी, वहां शल्य है, ऐसा जानना होगा।

कोष्ठ, अस्थि, सन्धि, पेशी और अस्थिविवरमें अवस्थित शल्यकी भी इसी प्रकार परीक्षा करनी होती है।

शल्य यदि शिरा, धमनी, स्रोत या स्नायुके मध्य गुप्तभावसे रहे, तो रोगीको भग्नचक्रसंयुक्त यान पर चढ़ा कर उच्च नीच पथसे ले जावे। उसके जिस स्थान पर शोथ या वेदना होगी, वहां शल्य है, ऐसा जानना चाहिये।

अस्थिगत—शल्य अस्थिके मध्य गुप्त होनेसे अस्थिको स्नेहस्वेदोपपन्न कर बंधन और पीड़न करे। ऐसा करनेसे जहां शोथ या वेदना होगी, वहीं शल्य है, ऐसा जाने।

मर्मगत—शल्य जिस अवयवके अन्तर्गत मर्ममें निहित होगा, उसी असङ्गत शल्यके लक्षणकी तरह मर्मगत शल्यका लक्षण होगा। (इससे समझा जायेगा, कि शरीरके प्रायः प्रत्येक अवयवमें ही दो एक कर मर्म हैं)।

दतुवनकी लकड़ीका अगला हिस्सा चबानेसे जब वह कोमल होगा, तब उससे भी पूर्वोक्त प्रकारका कण्ठगत शल्य अन्तःप्रविष्ट या वहिर्निःसारित किया जा सकता है।

जलमग्न व्यक्तिका उदर जलपूर्ण होनेसे उसको औंधे मुंह करके राखकी ढेरमें रखे अथवा उसी अवस्थामें उसको दृढ़रूपसे कम्पित करे या उसके पीड़न अर्थात् धीरे धीरे दवाव दे।

मुंहमें भात जाने पर अशङ्कित या अतर्कितभावसे उसके कंधे पर मुष्टि द्वारा आघात करे, अथवा स्नेह, मद्य या जल पिलावे।

बाहु, रज्जु, लता या पाशरूप शल्यसे कण्ठ पीड़ित होने पर वायु प्रकुपित होती है। तथा श्लेष्माको कुपित कर स्रोत रोक देती है। इससे लालास्राव, फेनोद्गम और संज्ञानाश होता है, इस प्रकार रोगीको स्नेहाभ्यक्त और स्विन्न करके तीक्ष्ण शिरोविरेचन तथा वातघ्न मांसरस पथ्य दे।

(पु०) १० मदनवृक्ष, मैनका पेड़।

११ नृपभेद। ये वाह्लिक राजाके लड़के तथा मद्र-देशके अधिपति थे। पाण्डुपत्नी माद्री इनकी बहन थीं। महाभारत पढ़नेसे जाना जाता है, कि पाण्डु-नन्दन नकुल और सहदेव इनके भांजे होने पर भी कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें उन्होंने पाण्डवोंका पक्ष नहीं लिया था। क्योंकि, दूतोंके मुखसे संवाद पा कर मद्रराजने जब बहुत-सी सेनाओंके साथ पाण्डवोंके निकट यात्रा की, तब दुर्योधनने यह संवाद पा कर रास्तेमें उनके विश्रामके लिये बहुत-से शिल्पदक्ष किङ्करों द्वारा रत्ननिचयखचित सुसज्जित सभागृह बनवाया और वहां तरह तरहके खाद्य पदार्थ, उत्कृष्ट मांसादि, सुरुचिके गन्धमाल्य तथा चित्त प्रफुल्लक विविध आकारके कूप, वापो आदि प्रस्तुत कराये। घटनाक्रमसे मद्रपतिने भी वहां आ कर विश्राम लिया। उस विश्राम सुखसे अति आह्लादित हो इन्होंने सन्तुष्ट हो कर कहा, 'युधिष्ठिरके किस आदमीने इस सभागृहको बनाया है? मैं पुरस्कारस्वरूप कुन्तीपुत्रको कुछ प्रसाद दूंगा।' यह सुनते ही वहां जो अन्य भृत्य खड़े थे, वे तुरन्त दुर्योधनके पास दौड़े और सारी बातें कह दीं। दुर्योधन बड़े व्यग्रचित्तसे शल्यके पास आया और उन्होंने अपना परिचय दिया। मद्रराज उन्हें देख तथा समस्त सभा निर्माणादि विषयमें उन्हींका प्रयत्न जान कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें आलिङ्गन कर कहा, 'वत्स! तुम्हारी जो इच्छा हो, हमसे मांगो।' शल्यका यह आशातीत आश्वस्त वचन सुन कर दुर्योधनके आनन्दका पारावार न रहा और उन्होने शल्यसे प्रार्थना की। 'आप मेरी सारी सेनाका अधिनायक बनें।' शल्यने इसे स्वीकार करनेमें जरा भी संकोच न किया और हृष्टचित्तसे दुर्योधनसे कहा, 'तुम निश्चिन्त मनसे घर लौट जाओ, मैं युधिष्ठिरके साथ भेंट करके जल्द तुम्हारे पास जाता हूं।'

शल्यकी आज्ञासे दुर्योधन अपने घर लौट गये। पीछे मद्रपतिने पाण्डवसदनमें जा कर सभी वृत्तान्त राजा युधिष्ठिरसे कह सुनाया। इस पर युधिष्ठिर जरा भी क्षुब्ध या दुःखित न हुए, वरं प्रसन्न चित्तसे बोले, "आपने यह अच्छा काम किया है, परन्तु आसन्न संग्राममें किसी तरह हमारा कुछ उपकार जरूर करना होगा। जब कर्ण और अर्जुन दोनों युद्धमें प्रवृत्त होंगे, तब यह निश्चय है, कि आप ही कर्णका सारथी बनेंगे। अतएव हे राजसत्तम! यदि मेरी भलाई चाहते हों, तो उस समय आप अर्जुनकी रक्षा करेंगे तथा वाक्यकौशलसे सूतपुत्रके तेजकी हानि कर जिससे हमारी जय हो सके, उस विषयमें आपको ध्यान रखना होगा।" शल्य युधिष्ठिरकी यह प्रार्थना भी पूरी करनेमें सहमत हुए और उन्हें तरह तरहके प्रबोध वाक्यसे संतुष्ट कर वहांसे चल दिये।

भारतयुद्धमें असीम वीरता दिखलानेके बाद शल्यराज युधिष्ठिरके हाथ मारे गये।

शल्यक (सं० पु०) शल्य इव शल्य इवार्थे कन्। १ मदन वृक्ष, मैनफल। २ शल्लकी, साही नामक जन्तु। ३ मत्स्य-भेद, एक प्रकारकी मछली। ४ लोधवृक्ष। ५ विल्व, बेल। ५ श्वेत खदिर, सफेद खैर। ६ रक्तखदिर, लाल खैर।

शल्यकण्ठ (सं० पु०) शल्यं तद्वल्लोम कण्ठे यस्य। शल्लकी, साही नामक जन्तु।

शल्यकर्त्तन (सं० पु०) जनपदभेद। (रामा० २।७१।३)

शल्यकर्त्तृ (सं० पु०) शल्योद्धारकारी, वह जो शस्त्र चिकित्सा करता हो, चीरफाड़का इलाज करनेवाला।

शल्यवत् (सं० त्रि०) १ शल्यकयुक्त। (पु०) २ आखुर, चूहा। (भारत उद्योगपर्व)

शल्यकी (सं० स्त्री०) साही नामक जन्तु।

शल्यकृन्त (सं० पु०) शस्त्रचिकित्सक, चीरफाड़का इलाज करनेवाला। (आपस्तम्ब १।१६।१५)

शल्यकैरर्थ्या (सं० पु०) मदनवृक्ष, मैनफल।

शल्यक्रिया (सं० स्त्री०) शस्त्रचिकित्सा, चीरफाड़का इलाज।

शल्यजनाड़ीव्रण (सं० पु०) नाड़ीमें होनेवाला एक प्रकारका व्रण या घाव। जब किसी घावमें कांटा या कङ्कड़ आदि पड़ कर किसी नाड़ीमें पहुंच जाता और वहीं रह जाता है, तब जो व्रण होता है, वह शल्यज नाड़ीव्रण कहलाता है। इसमें घावमेंसे गरम खूनके साथ मवाद निकलता है।

शल्यतन्त्र (सं० क्ली०) सुश्रुतके अनुसार आठ प्रकारके

तन्त्रोंमेंसे एक तन्त्र । "शल्य" नाम विविध तृणकाष्ठपाषाणपांशुलोहलोष्टास्थिवालनखपूयास्रावान्तर्गर्भशल्योद्धारार्थं यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानव्रणविनिश्चयार्थञ्च" । (सुश्रुत १अ०)

विविध प्रकारकी घास, लड़की, पत्थर, लोहे, ईंटके टुकड़े, हड्डी, नाखून आदिके किसी कारण शरीरमें गड़ जानेसे मवाद और खून आदि विकृत हो कर अति उत्कट यन्त्रणा होती है। इन्हें शरीरसे बाहर निकाल कर यन्त्रणा दूर करनेके लिये जिस तन्त्रमें यन्त्र, शस्त्र, क्षार और अग्निकर्म आदिका प्रस्तुत और प्रयोग करनेका विधान है, उसीको शल्यतन्त्र कहते हैं । सुश्रुतके मतसे आठ प्रकारके तन्त्रोंमेंसे शल्य तन्त्र ही सबोंसे श्रेष्ठ है, कारण इससे शीघ्र ही फायदा पहुंच जाता है। इस शल्यतन्त्रमें निपुणता रहने पर पुण्य, स्वर्ग, यश, अर्थ और आयु प्राप्त होती है। (सुश्रुत १ अ०)

अष्टाङ्गहृदयसंहिता नामक वैद्यकग्रन्थके उत्तरखण्डका २५से ३४ अध्याय शल्यतन्त्र कहलाता है।

शल्यदा (सं० स्त्री०) मेदा नामकी ओषधि। वैद्यकमें लिखा है, कि इसके अभावमें असगन्ध औषधमें देना होता है । (राजनि०)

शल्यपर्णिका (सं० स्त्री०) मेदा नामकी ओषधि ।

शल्यपर्णी (सं० स्त्री०) शल्यपर्णिका देखो ।

शल्यपर्व—महाभारतका ६वां पर्व। इस पर्वमें शल्य राजाका कर्णसारथ्य, सेनापत्य, भीमके साथ गदायुद्ध और युधिष्ठिरके हाथ मृत्युकी बात लिखी है ।

शल्यलोमन् (सं० क्ली०) शल्लवत् लोम। शलली, साही नामक जन्तुका कांटा ।

शल्यवत् (सं० त्रि०) शरयुक्त, बाणविशिष्ट ।

शल्यवारङ्ग (सं० क्ली०) बाण या अन्यान्य शल्यका पश्चाद्भाग ।

शल्यशालक (सं० पु०) फोड़ों आदिकी चीरफाड़का काम ।

शल्यशास्त्र (सं० पु०) चिकित्साशास्त्रका वह अङ्ग जिसमें शरीरमें गड़े हुए कांटों आदिके निकालनेका विधान रहता है ।

शल्यस्रंसन (सं० क्ली०) शल्यनिष्काशन, कांटा निकालना । (कौषितकी० ३३)

शल्यहृत् (सं० पु०) शल्योद्धारकर्त्ता, वह जो कांटा निकालता हो । (रामा० ५।२८।६)

शल्यहृत (सं० पु०) शल्यहरणकारी । (बृहत्स० ५।८०)

शल्या (सं० स्त्री०) १ मेदा । २ त्रिकङ्कत वृक्ष । ३ नागवल्ली नामकी लता ।

शल्यारि (सं० पु०) शल्यस्य अरिः तन्नाशकत्वात् । शल्यको मारनेवाले, युधिष्ठिर ।

शल्योद्धरण (सं० क्ली०) शल्यस्य उद्धरणं ।

शल्योद्धार देखो ।

शल्योद्धार (सं० पु०) १ शरीरमें लगे हुए बाण या कांटे आदि निकालनेकी क्रिया । २ वास्तुविद्याके अनुसार नया मकान बनवानेके समय जमीनको साफ कराना और उसमें हड्डियां आदि निकलवा कर फेंकवाना ।

शल्ल (सं० क्ली०) १ त्वक्, चमड़ा । २ वृक्षकी छाल । (पु०) ३ भेक, मेढ़क ।

शल्ल (अ० वि०) जो दुर्बलता या थकावट आदिके कारण बिलकुल सुस्त वा सुन्न हो गया हो ।

शल्लक (सं० क्ली०) शल्लमेव स्वार्थे कन् । १ त्वक्, चमड़ा । (पु०) २ शोण वृक्ष, सलई । ३ शल्लकी, साही नामक जन्तु ।

शल्लकी (सं० स्त्री०) १ पशुविशेष, साही नामक जन्तु । बम्बई—शालयधूर्प । तामिल—कुंलि । संस्कृत पर्याय — श्वावित्, शलका, शलय, क्रकचपाद, छेदार, शलयक, शल्यमृग, वज्रशल्य, विलेशय । इसके मांसका गुण—गुरु, स्निग्ध, शीतल तथा कफपित्तनाशक। साही पञ्चनखके मध्य हैं, इसलिये इसका मांस भक्षणीय है।

(याज्ञवल्क्य १।१७७)

२ वृक्षविशेष, सलईका पेड़ । (Boswellia serrata Indian olibanum)

शल्लकीत्वच (सं० स्त्री०) सलई वृक्षको छाल।

(चरक सू० ४ अ०)

शल्लकीद्रव (सं० पु०) सिह्लक, शिलारस (जटाधर)

शल्लकीरस (सं० पु०) सिह्लक, शिलारस ।

शल्लिका (सं० स्त्री०) नौका, नाव ।

शल्ली (सं० स्त्री०) १ शल्लकी वृक्ष, सलई । २ शल्लकी, साही नामक जन्तु ।

शल्व (सं० पु०) शाल्व देखो।

शव (सं० क्लो०) शवति गच्छतीति शव-अच्। १ जल, पानी। (पु० क्ली०) शवति दर्शनेन चित्तं वि-करोतीति शव विकारे अच्। २ मृत शरीर, लाश, मुर्दा। पर्याय—कुणप, क्षितिवर्द्धन, मृतक। देहसे प्राणके निकल जाने पर उसे शव कहते हैं। शास्त्रमें शवदाह करनेका विधान है। दो वर्षसे कम उमरवाले बालक या बालिकाकी मृत्यु होने पर उसका शव गाड़ना तथा दो वर्षसे ऊपर होने पर जलाना होता है।

शवका अनुगमन करनेसे एक दिन अशौच रहता है। जो शवदहन या वहन करते, उन्हें भी एक दिन अशौच होगा। वे शवदाहादि करके जलमें अवगाहन स्नान, अग्निस्पर्श और घृतभोजन करके शुद्धिलाभ करें। जल उठा कर स्नान करनेसे शुद्धि लाभ नहीं होती, जलमें अवगाहन करके स्नान करना होता है।

ब्राह्मणादिका शव ब्राह्मणादि ही दहन और वहन करें, अन्य वर्ण दहन और वहन करे तो उसे पाप होता है। शूद्रके वहन करनेसे उसे नरककी गति होती है।

"मृतब्राह्मणदेहांश्च दैवात् शूद्रा वहन्ति चेत्।
पदप्रमाणवर्षाश्च तेषाञ्च नरके स्थितिः॥"

(शुद्धितत्त्व)

वापी, कूप, तड़ाग आदिमें जिसका मांस अभक्ष्य है, ऐसा यदि कोई जन्तु मरे, तो उसका जल खराब हो जाता है। फिरसे शास्त्रानुसार उक्त जलाशयको शोधन कर लेनेसे उसके जल द्वारा दैव या पैत्र कर्म किया जाता है। नहीं तो उस जलसे कोई क्रिया नहीं होती। वापी आदिके जलमें मनुष्यकी मृत्यु होने पर भी उसका जल दुष्ट होगा।

मरनेसे कुछ पहले हो घरसे बाहर करना होता है। यदि बाहर न किया जाये और घरमें ही मृत्यु हो, वह घर दुष्ट हो जायगा।

महापातकी या अतिपातकीका शवदहन या वहन नहीं करना चाहिये। मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी आदि रोगग्रस्तको महापातकी और अर्श रोगीको अतिपातकी कहते हैं। किन्तु इनका प्रायश्चित्त द्वारा पाप क्षय होने पर शवदाह होगा। आत्मघातीका भी शवदाह नहीं करना चाहिये। जो यह शवदाह करते हैं, उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है। अन्त्येष्टि और शवदाह देखो।

शवकाम्य (सं० पु०) शवः काम्यो यस्य। कुक्कुर, कुत्ता।

शवकृत् (सं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम।

(पद्मरत्न ४।८।१०६)

शवग्राम—चम्पारण्यके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

(भविष्यब्र० ख० ४२।२०,२।१२)

शवदाह (सं० पु०) मनुष्यके मृत शरीरको जलानेकी क्रिया या भाव। इसीको अन्त्येष्टिकृत्य कहते हैं। केवल भारतवर्षमें ही नहीं, सारे संसारमें विभिन्न समयमें विभिन्न सम्प्रदायके मध्य विभिन्न प्रकारकी सत्कार-प्रथा प्रवर्त्तित हुई थी। उन सबका विवरण नीचे लिखा जाता है—

पाश्चात्य जगत्के अन्यान्य स्थानोंमें बहुत पहले भी शवदाह प्रथा प्रचलित थी। प्राचीन ग्रन्थप्रमाणसे दाहप्रथा ही प्रधानतः प्राचीन समझी जाती है। क्योंकि सल (Saul) नामक राजाकी देहको दाह कर अस्थि आदि गाड़ दी गई थी। आशा (Asa) मृत्युके बाद स्वरचित शय्या पर गन्धद्रव्यादिके साथ दग्धीभूत हुए थे। इस समय अन्यान्य स्थानोंमें गाड़ने, नदी जलमें बहा देने और निर्जन स्थानमें शवको फेंक देनेकी प्रथा भी प्रचलित थी। निमरूदके ध्वस्तनिदर्शनसे जो सब समाधि दृष्टिगोचर होती है उनमें तरह तरहके पात्र, माल्य और अलङ्कारादि पाये गये हैं। मिश्रकी कुछ समाधिमें भी उसी तरहके अलङ्कार और पात्रादि देखनेसे मालूम होता है, कि इस युगमें दोनों ही देशमें शवसत्कारकी इस प्रकारकी प्रथा अवलम्बित हुई थी। प्रत्नतत्त्वविद् लेयार्डने इन सब समाधियोंमें असीरिया देशका जल देख कर अनुमान किया है, कि ये सब पात्र प्राचीन पारसिकोंके अनुकरण पर बनाई गई हैं। थियोफ्राष्टसके वर्णनसे जाना जाता है, कि पारस्यपति दरायुसको मिश्रदेशजात टब (alabaster) में और काइरसको लकड़ीकी डोंगीमें रख कर दफनाया गया था।

प्राचीन पारसिकोंकी तरह आसीरीयगण भी शव गाड़ते थे। कभी कभी वे मधु या मोमसे देहरक्षा भी

करते थे। (Herod, lib, I. C, 140, Arian de Bello Alex, Theoph, de Lapid C, XV) इलियनने लिखा है, कि राजा जरक्षेशने जब वेलुसकी कब्र खोदी, तब उन्होंने शवसिन्धुकको तैलविशेषसे एकदम परिपूर्ण देखा था। इस शवसिन्धुकका वर्णन देख कर मि० लेयार्डने अपना अभिप्राय प्रकट किया है, कि आसीरियाके प्राचीनतम प्रासादादि बनाये जानेके बाद तथा अपेक्षाकृत आधुनिक अट्टालिकादि गठनके पहले आसीरियाके राज्यमें जिस जाति या जनसम्प्रदायने वास किया था, वह शवसमाधि उसी मध्य युगकी प्रथा है।

सुप्राचीन निनिभे राज्यवासी जनसाधारणके नाना समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होने पर भी निनिभिवृगण किस उपायसे शवका सत्कार करते थे, उसका कुछ भी निदर्शन नहीं मिलता। केवल वाविलोनिया राज्यमें प्राप्त कुछ अस्थिभस्माधारसे (Sepulchral) से जली मिट्टीका जलपात्र, खाद्य भाण्ड, मृत्युकी मिती लिखी हुई मृत्खण्ड, मस्तकके अस्थिसमाधानार्थ काटी हुई ईंटें पाई गई हैं। बुशायाकी राजधानीके निकट इसी प्रकारके एक भस्मभाण्डमें वालुकायोगसे एक पूर्णावयव मनुष्यकी देहास्थि पाई गई है। वह भाण्ड मिट्टीका बना है। उसकी लंबाई ३'४" और उसके मध्य स्थानकी परिधि ५' ६" इञ्च तथा ऊंचाई एक इञ्चका तृतीयांश होगी। भाण्डके ऊपरकी दोनों बगलमें दो टोंस शृङ्गवत् दण्ड है। उसके ऊपर पृथग्भावमें दो पात्र सजाये हुए हैं। पात्रका भीतरी भाग मिट्टीके तेलकी तरह एक प्रकारके तेलसे संपृक्त देखा जाता है। भाण्डमें ऐसा कोई चिह्न नहीं जिससे इनके समयका पता लगाया जा सके। कालदीयगण उस प्राचीन समयमें मिट्टीसे एक प्रकारका शवाधार बनाते थे। उनमेंसे बहुतोंकी आकृति डिसकी तरह छिछली होती थी। वे लोग उसमें शवको, शवके आगे पात्रके साथ खाद्य और जल तथा मस्तकरक्षाके लिये सूर्यपक्व इष्टकको रख कर समाधिस्थ करते थे। कहीं कहीं मर्तबानके आकारमें शवाधार देखा जाता है। मालूम होता है, कि उस भाण्डमें शवको रख कर ऊपरसे स्तूपाकारमें मिट्टी भर देते थे।

कालदीय जातिके अभ्युत्थान कालमें प्रकृत कालदीया (Chaldae proper) को छोड़ उत्तर बाबिलोनिया या आसीरिया राज्यमें और कहीं भी ऐसी प्राचीन कब्र नहीं दिखाई देती। रेवरेण्ड जो० रलिन्सनने अपने ग्रन्थमें लिखा है, कि पारसिक लोग जिस प्रकार मृतदेहको करवला या मेशेद अली नामक स्थानमें ले जा कर दफनाना गौरवजनक समझते हैं, भारतवासी हिन्दू जिस प्रकार दूर देशमें मृत व्यक्तिके शव या अस्थिको वाराणसी, चक्रदह आदि गङ्गातीरवर्त्ती नगरमें ला कर फिर दाह करना मुक्तिप्रद समझते हैं, एक दिन कालदीयावासी भी कालदीयाके पवित्र क्षेत्रमें अपनेको समाधिस्थ करना सम्मानजनक समझते थे।

प्राचीन रोमक भी शवदाहके पक्षपाती थे। किन्तु वे लोग भी रोगविशेषमें मृतको दफनाते थे। बचपनमें बालक-बालिकाकी मृत्यु होने पर उसे जन्मभूमिसे दूरमें गाड़ दिया जाता था। इस जातिके मध्य भस्मास्थिको भाण्डमें रख कर गाड़नेकी व्यवस्था थी। भूपृष्ठसे २ फुट नीचे उस भाण्डको रख कर ऊपरसे स्मृतिस्तम्भ खड़ा किया जाता था। इस जातिकी प्राचीन कब्रमें जो सब शवाधार पाये गये हैं, वे पत्थरके बने हैं और भिन्न भिन्न आकृतिके हैं। अन्त्येष्टिक्रिया करनेके लिये रोमकगण शववहनकालमें रास्तेसे शोकसूचक ध्वनि करते करते जाते थे। चुल्लीमें शवस्थापनके बाद उसमें आग लगा दी जाती थी तथा उसके ऊपर मृतका वस्त्रालङ्कारादि और प्रियतम भोग्य पशु मार कर उसका मांस फेंक दिया जाता था।

प्राचीन ग्रीकजातिकी शवसत्कारप्रणाली बहुत कुछ भारतीय आर्यों-सी है। वे लोग वैतरणी (Styx और Acheron) नामक स्वर्गस्थ नदी पार करनेकी कामनासे शवके मुखमें एक मुद्रा डाल देते थे तथा सरमा (Cerberus)को प्रसन्न करनेके लिये गेहूंका चूर्ण और मधुमिश्रित पिष्टक पिण्ड देते थे। मृतके उद्देशसे मस्तकमुण्डनका आभास भी ग्रीक लोगोंके मध्य दिखाई देता है। किसी निकट आत्मीयके मरने पर ग्रीक लोग शोकचिह्नस्वरूप शिर मुंडवा लेते थे। इलियाड (Iliad xxiii) में लिखा है, कि पट्रोक्लासकी अन्त्येष्टिक्रियाके समय एकिलिसके बंधुबांधवोंने अपने अपने शिरके बाल कटवा

कर शवके ऊपर फेंक दिये थे। फिर ग्रीकके अन्यान्य स्थानोंके अधिवासी मृतके लिये शोकचिह्नस्वरूप केश रढ़ाते तथा आलुलायित केशोंको देख उनके शोककी मात्रा अवधारण की जाती थी।

लुरिस्थानवासी स्त्रियां स्वामीकी मृत्यु पर मस्तक मुड़ा लेतीं और उन केशोंको कब्रके चारों ओर लटका देती हैं। डेलस द्वीपकी युवक-युवतियां विवाहबन्धन में आवद्ध होनेके पहले अपने अपने केशगुच्छको ले कर उत्तर देशसे आई हुई कुमारियोंके समाधिस्तम्भके ऊपर रख कर सम्मान प्रदर्शन करती हैं।

भूमध्यसागरसे प्रशान्त महासागर तक विस्तीर्ण मध्यएशियावासी विभिन्न जातियोंमें पहले और आज भी ऊपरसे मृतपिण्ड दाब कर शवरक्षाकी व्यवस्था थी और है। बाइबलमें देखा जाता है, कि राजा आइयसुआ द्वारा मारे जाने पर नगरद्वार पर दफनाये गये थे तथा उस शवके ऊपर एक बड़ा भारी मीनार खड़ा किया गया था। (Joshua) हिरोदोतसने लिखा है, कि लिडियाराज अलयत्तेशके शवके ऊपर जो मिट्टीका मीनार खड़ा किया था, उसका घेरा प्रायः १ मील और विस्तार १३०० फुट है। वर्त्तमान भ्रमणकारियोंके यत्नसे वह स्थान आविष्कृत हुआ है।

ट्युटन जातिमें भी शवके ऊपर मिट्टीका मीनार खड़ा करना गौरव समझा जाता था। प्राचीन सक्सन चर्मकोष या प्रस्तरपेटिकामें शवदेह रख कर ऊपरसे मिट्टी ढक देते थे। मध्यएशियाके देशोंमें बलशाली और धनशाली व्यक्तिकी कब्रके ऊपर मीनार (Tumuli) खड़ा करनेकी प्रथा प्रचलित थी।

हिरोदोतसके विवरणसे जाना जाता है, कि प्राचीन शाकद्वीपीयों (Scythians) का शवसत्कार इसी तरह किया जाता था। वर्त्तमान समयमें कर करैल्ला नामक देशमें और किर्घजजातिकी वासभूमि 'स्टेपी' प्रान्तमें इसी प्रकारकी अनेक शवसमाधि देखी जाती है। बाइबलमें लिखा है, कि किसी किसी देशमें मृत सरदारोंके दफनाते समय उसके अनुगत लोगोंको मार कर उसी कब्रमें गाड़नेकी रीति है। (Ezekiel) हिरोदोतसने लिखा है, कि जब किसी राजाकी मृत्यु होती है, तब उसकी शवदेह तैलसिक्त और मोमावृत की जाती है तथा उस देहको रथ पर चढ़ा कर बड़ी धूमधामसे समाधिक्षेत्रमें लाया जाता है। शवकी रक्षाके लिये समाधिक्षेत्रमें एक बड़ा गड्ढा बनाया जाता है। उसके भीतर खड़ बिछा कर ऊपरमें शव रख लकड़ीसे ढक दिया जाता है। शवके सम्मानार्थ देहके दोनों बगलमें बर्छा कतारसे गाड़ देते हैं। इसके बाद राजाकी एक पत्नीको बलपूर्वक मार कर उस गड्ढेके दूसरे अंशमें गाड़ते हैं। उसके साथ राजाका ताम्बूलकरङ्कवाही पाचक, प्रिय अनुचर, मन्त्री, दूत और अश्वादि तथा पानार्थ स्वर्णपात्रादि गाड़ देते हैं। उनका विश्वास है, कि राजाके परलोकयात्रा करने पर ये सब वस्तु नहीं रहनेसे उन्हें भारी कष्ट होगा। उक्त वस्तुएं गाड़नेके बाद शववहनकारी मिट्टीसे वह गड्ढा भर कर वहां एक बड़ा मीनार खड़ा कर देते हैं। वर्षके अन्तमें फिरसे राजाके ५ विश्वस्त अनुचरों और ५० अश्वोंको मार कर तथा घोड़ेकी पीठ पर अनुचरोंको बैठा कर उक्त समाधि स्तूपके चारों बगलमें गाड़ दिया जाता था।

मुगलसरदार चेङ्गिज खाँकी जब मृत्यु हुई तब उनकी कब्र पर एक बड़ा मीनार खड़ा किया था। वह मीनार इतना विस्तृत था, कि उसके ऊपर मनुष्य विचरण करते थे। इस कारण उनके मुगल अनुचरोंने उस पर वृक्षादि रोप कर उसे जङ्गल बना दिया था। कर्नल टाड कृत राजस्थानके इतिहासमें भी हम मृतस्तूप या समाधिस्तम्भ देखते हैं। जो सब राजपूत रणक्षेत्रमें प्राण विसर्जन करते थे उनके शवके ऊपर जो सब समाधिस्तम्भ है उस पर सशस्त्र अश्वारोही वीरमूर्त्ति और उसकी बगलमें उनकी स्त्रीका सहमरणचिह्न तथा दोनोंकी बगलमें चन्द्र और सूर्यमूर्त्ति राजपूत-वीरके अक्षय यशकी घोषणा करती है। (Tod's Rajasthan I, p 54)

प्राचीन सौराष्ट्रजनपदवासी काठी, कोमानी, बलऊ आदि शक जातिमें भी इसी प्रकार शवके ऊपर 'झुझर' (समाधिस्तम्भ) खड़ा करनेकी रीति थी। प्रत्येक नगर प्राचीरके मूलमें आज भी इस तरहकी ध्वस्तप्राय स्तंभावली इधर उधर पड़ी देखी जाती है। उन

स्तम्भोंके ऊपर अस्पष्ट आकारमें मृत्युकी अवस्थाद्योतक वीरमूर्त्ति अङ्कित है। अधिकांश मूर्त्ति ही अश्वारोही हैं।

पञ्जावके नाना स्थानोंमें, वामियानप्रदेशमें, अफगानिस्तानमें और काबुलके समीप इस प्रकारके अनेक समाधिस्तूप विद्यमान हैं। भारतवर्षके स्थान स्थानमें बुद्धके अङ्गविशेषके ऊपर जो इष्टकस्तूप खड़ा किया गया था, वह उसीका रूपान्तरमात्र है। किन्तु इन समाधियोंमें केवल एक व्यक्तिकी अस्थि या भस्म रखी हुई है। उनकी वनावट ग्रीक देशीय स्थापत्यशिल्पकी तरह है। मनिकैल नगरीके पास ८० फुट ऊंचाई और ३,० फुट घेरेका वैसा ही एक स्तूप देखनेमें आता है। उसके मध्यभागमें स्वर्ण रौप्य और ताम्रपात्रादि तथा रोमक और वाह्निकयवनोंकी मुद्रा पाई गई है। भीतर ६० फुट गहरा जो घर है उसमें ताम्रनिर्मित सिन्धुकके मध्य पशुकी अस्थि रखी हुई है।

डा० कनिंहमने दाक्षिणात्यकी शवसमाधि और स्तूपनिर्माणप्रथा देख कर कहा है, कि इङ्गलैण्डकी आदिम अधिवासी केल्टजातिके समाधिप्रस्तरादि (Cairns, cromlechs, kistvaens and circles of upright loose stones)से नीलगिरिवासी असभ्य जातीयके समाधिप्रस्तरके साथ बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। उन सब समाधियोंमें विविधपात्र, भस्मभाण्ड, नरास्थि और भस्म, उज्ज्वल मिट्टीके पात्र आदि रखे रहते हैं। बम्बई प्रेसिडेन्सी, दक्षिण-भारतके नागपुरसे ले कर मदुरा तकके स्थानोंमें तथा कोयम्बतोरके दक्षिणस्थ अनमलय शैलपृष्ठ पर अनेक समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं। नीलगिरिमें जो समाधिस्तम्भ दृष्टिगोचर होते हैं, उनसे ये सब स्तम्भ विगत सभ्ययुगके आदर्श समझे जाते हैं। रूसराज्यमें तथा सार्केसियामें इसी ढंगकी अनेक कब्र देखनेमें आती हैं। अरबके दक्षिणोपकूलदेशमें तथा अफ्रिका देशके सोमाली राज्यमें प्रस्तरस्तम्भसे परिवृत अनेक कब्रस्तान विद्यमान हैं। मेजर कनग्रीभने बड़े ध्यानसे नीलगिरिका शवस्थान पर्यवेक्षण किया है। कप्तान मिडोस टेलरने राजनकुलुर, शोरापुर, शिरवाजी, फिरोजाबाद और भोमातीरस्थ स्थानोंके शवस्थानकी परीक्षा कर तथा इङ्गलैण्डके इसी प्रकारके शवक्षेत्रके साथ उसकी तुलना कर कहा है, कि ये सब Scytho-celtic या Scytho Druidical हैं।

उक्त स्थानकी तोडा, कुरुवर आदि पहाड़ी जातियां तथा निकटवर्त्ती आर्य हिन्दू इन सब शवक्षेत्रोंके किसी भी तत्त्वसे अवगत नहीं हैं। संस्कृतसाहित्यमें अथवा द्राविड़ीय लिपिमालामें उसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। तामिल भाषामें उन्हें पाण्डु-कुड़ि कहते हैं। तामिल भाषाके कुड़ि शब्दका अर्थ है कब्र या गर्त्त। इस कारण बहुतेरे उसे पाण्डव-समाधि कह कर घोषणा करना चाहते हैं, पर यथार्थमें ऐसा नहीं है। दक्षिण-भारतमें द्राविड़ जातिके आनेके पहले यहां बहुत सम्भव है, कि भ्रमणकारी राखालदलका वास था। द्राविड़ जातिके आने तथा उनसे दलित या विताड़ित होने अथवा उनके साथ मिल जानेसे वह जाति विप्लुप्तप्राय हो गई है। उस जातिकी धर्मबुद्धिका एकमात्र परिचय यह अन्त्येष्टिक्रिया ही होती है।

हैदराबादराज्यमें तथा बलराम और सिकन्दराबाद नगरके चारों ओर इस प्रकार प्रस्तरस्तम्भवेष्टित अनेक समाधिक्षेत्र दिखाई देते हैं। सिकन्दराबादसे २० मील पूर्व-दक्षिणमें एक बहुत बड़ा समाधिक्षेत्र है। उसे देखनेसे मालूम होता है, कि यहां सैकड़ों वर्षसे शव दफनाये जा रहे हैं। जिस जातिकी यह कीर्त्ति है उनका चिह्नमात्र भी न रह गया है। इन सब कब्रोंका पर्यवेक्षण करनेसे देखा जाता है, कि प्रत्येक वृहत् प्रस्तरखण्डके नीचे एक एक गर्त्त है। उसके मध्यस्थलमें शवास्थि और भस्मभाण्ड हैं तथा ऊपर और नीचे मृतके व्यवहार्य धनुर्बाण और पात्रादि रखे हुए हैं। पीछे उस समाधिके चारों ओर गोल पत्थर सजाये गये हैं। किसी किसीकी परिधि प्रायः ४ सौ हाथ है।

ये सब समाधिक्षेत्र किसी प्राचीन भ्रमणशील जातिकी कीर्त्ति है। इसमें सन्देह नहीं। क्योंकि इसके पास ही नोमादोंके अधिकृत एक नगर-प्राचीरका निदर्शन दिखाई देता है। नोमाद लोग साधारणतः तंबूमें रहते थे, इसी कारण वहां अट्टालिकादिके चिह्नस्वरूप

कोई ईंट पत्थर या मिट्टीका स्तूप देखनेमें नहीं आता, जिससे उनके वासभवनके अस्तित्वकी कल्पना की जा सके। वह कब्रिस्तान देखनेसे मालूम होता है, कि इस जातिमें भी सरदारोंकी मृत्युके बाद उसके साथ उसकी स्त्री और अनुचरोंको मार कर दफनाया जाता था। बालफोर साहबका अनुमान है, कि हिन्दू और राजपूत जातिमें जो सहमरणप्रथा प्रचलित थी, वह प्राचीन शकजातिकी अनुमरण-सत्कारपद्धतिकी क्षीण स्मृतिमात्र है।

खृष्टान जगत्के विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न प्रणालीसे शव सत्कार होता है। इटली और जर्मनवासी रोमानिष्ट और प्रोटेष्टाण्टदलका समाधिक्षेत्र निरीक्षण करनेसे मालूम होता है, कि दोनोंके आचार व्यवहार पृथक् पृथक् हैं। जर्मन लोग शवसत्कारके समय जैसी कोमलता और गम्भीरता दिखलाते हैं, इटलीवासी उसका ठीक विपरीतभाव प्रदर्शन करते हैं। नेपलस राजधानीमें दो कब्रिस्तान हैं जहां वर्षके प्रत्येक दिनके लिये एक एक गर्त्त खोदा जाता है। वहां सामान्य अवस्थाका शव लाये जाने पर कब्रिस्तानके लोग (Cemetry assistants) पहले ही उसका वस्त्र उतार लेते हैं। पीछे याजक आ कर शवके कुछ भजनपाठ करते हैं। पाठ समाप्त होते ही कब्रिस्तानके नौकर नाना प्रकारका विद्रूप परिहास करते करते उस मृतदेहको गड्ढेमें डाल देते हैं। प्रतिदिन जितने शव लाये जाते हैं, उन्हें एक एक गढ़ेमें डाल कर ऊपरसे मिट्टी ढक दी जाती है। किसी धनवान् व्यक्तिके शवके लिये स्वतन्त्र नियम है। समाधिक्षेत्रमें शव लाये जाने पर वस्त्र उन्मोचनके बाद उस नग्नदेहको शुष्क वालुकाक्षेत्रमें सुला दिया जाता है। जब चर्ममांस धीरे धीरे विशीर्ण होने लगता, तब उसे पुनः वस्त्रादि पहना कर काचकूप (Glass-case)में सजा कर रख देते हैं। किन्तु जर्मन जातियां बड़ी धूमधामसे शव-सत्कार करती हैं और जहां तक सकती हैं कब्रिस्तान और प्रत्येक कब्रको परिच्छन्न रखनेकी कोशिश करती हैं। इस स्थानको वे लोग देवक्षेत्र (Gotts Aker) कहते हैं। दुःखका विषय इतना ही है, कि कुछ वर्षके बाद वे फिरसे हल द्वारा शवकी हड्डियोंको उखाड़ कर अन्यत्र फेंक देते तथा वहां फिरसे शवाधान करते हैं।

सिंहलद्वीपमें काण्डीराजवंशमें एक अपूर्व सत्कारपद्धति प्रचलित है। काण्डी राजाके देहत्याग करने पर राजपुरवासिगण पहले उस देहको दाह करनेके लिये नदीके किनारे ले गये। दाहसंस्कारके बाद एक आदमी काले कपड़ेसे अपनेको ढक कर राजदेहभस्म लिये नाव पर चढ़ा और महावलीगङ्गाकी बीच धारमें गया। उस गभीर प्रवाहमें उसने नाव खड़ी कर भीमभाण्डको अपने हाथ लिया और तलवारसे उसे दो खण्ड कर जलमें गिरा दिया। पीछे वह भी नाव परसे कूद पड़ा और तैरता हुआ नदीके दूसरे किनारे जा वनमें भाग गया। प्रवाद है, कि उस आदमीने फिर कभी भी लोकसमाजमें मुंह नहीं दिखलाया। शवके साथ जो सब हाथी घोड़े आदि श्मशान घाट आये थे, वे छोड़ दिये गये तथा वे वनभूममें स्वाधीनभावसे विचरण करने लगे। जिन सब राजान्तःपुरकामिनियोंने राजाकी मृतदेहके ऊपर चावल छिड़का था, वे भी नदीके दूसरे किनारे भेज दी गईं तथा उन्हें कभी भी राजपुरमें आने न दिया गया।

खृष्टधर्मके प्राचीन ग्रन्थमें (Old Testament) आर्य्य जातिके प्रसिद्ध कुछ आचारोंका उल्लेख देखनेमें आता है। वे सब एक समय उस देशमें प्रचलित थे, निम्नोक्त उक्ति ही उसका प्रमाण है—

(१) Neither shall men lament for them, nor cut themselves (Jeremiah XVI. 6)

हिन्दुओंमें आत्मीयकी मृत्यु पर हृदयभेदी आर्त्तनाद शोकप्रकाश तथा शिर पटकने और छाती पीटनेकी रीति है।

(२) They shall come at no dead person to defile themselves, (Ezekial XLIV. 25)

हिन्दू शव छूनेसे अपवित्र होते हैं तथा स्नानके बाद शुद्ध हो जाते हैं।

(३) The rich man shall lie down but shall not be gathered. (Job xxvii 19)

हिन्दुओंका विश्वास है, कि मृत्युके बाद जिनकी अन्त्येष्टि क्रिया शास्त्रानुसार नहीं होती, उनकी प्रेतात्मा इधर उधर गश्त लगाती है, उसे कहीं भी शान्ति नहीं

मिलती इस कारण गया क्षेत्रमें पिण्डदानकी व्यवस्था है।

(४) So shall they burn odours for thee. (Jeremiah, xxxiv. 5)

हिन्दुओंकी शवदाहके समय चन्दनकाष्ठ, धूना और घृत जलानेकी रीति है।

(५) Rachel weeping for children and would not be comforted, because they are not, (Mathew II, 18)

पुत्रकी मृत्यु होने पर माताका हृदयविदारक क्रन्दनध्वनि करना स्वभाव है। युद्धमें निहत पुत्रोंके लिये उनकी माताओंकी समवेत क्रन्दनध्वनि जो शोकजनक कोलाहल उत्पन्न करता है, वह स्वभावतः ही मर्मभेदी है। लङ्का-ध्वंसके बाद तथा कुरुक्षेत्र-युद्धके बाद रामचन्द्र और पाण्डवोंने ऐसा ही भीषण शोक प्रकट किया था।

प्राचीन कालमें वैदिक आर्यसमाजमें शवसत्कारकी एक और पद्धति प्रचलित थी। किसी आदमीके मरने पर उसके आत्मीय बैल-गाड़ी पर शव लाद कर श्मशान ले जाते थे, कभी उसके अनुचर उसे ढोते थे। मृतका निकट आत्मीय या कोई वयःवृद्ध व्यक्ति उस शवयात्राका नायक बन कर जाता था। साथमें एक काली बूढ़ी गायको मार कर वे लोग मांस चर्बी आदि शवके ऊपर रखते और उस गोचर्मसे शवदेह ढक देते थे। इसके बाद मृतकी पत्नी शवके ऊपर सुलाई जाती थी। कभी कभी मृतका छोटा भाई, सतीर्थ या कोई अनुचर उस विधवाको व्याहना स्वीकार कर उसे साथ लाता था। ३य, ५म, ७म या १०म दिनमें शोककारी मृतका शव गाड़ कर उसके चारों ओर प्रस्तरशलाका गाड़ते तथा अशौचग्रहणकारीके घरमें आ कर सत्तू और बकरेका मांस खाते थे।

हिन्दू वैष्णव शवदाह करके भस्म गाड़ देते थे। मृत्यु निकटस्थ होने पर वे लोग सिरहानेमें दीप जलाते तथा कपूर और नारियलसे होम करते हैं। मृत्यु होने पर तुलसीपत्रसे मृतके मुखमें पञ्चगव्य देते हैं। इसके बाद दो तीन घण्टेमें शवको बाहर ला कर सत्कारके लिये श्मशान ले जाते हैं। स्थानविशेषमें काष्ठ या शुष्क गोमयके चूल्हेसे शवदाह किया जाता है। उसके ऊपर शव रख कर तुलसीपत्र देते और पिण्डदान करते हैं। दाहके दूसरे दिन वे अस्थि और करोटीको संग्रह कर उसमें जल देते हैं। पीछे एक पात्रमें उन हड्डियोंको रख नदी या समुद्रके जलमें फेंक देते हैं।

आसाममें हिन्दू लोग घरमें किसीको भी मरने नहीं देते। क्योंकि, इससे घर अपवित्र हो जाता है तथा कोई भी उस अपवित्र घरमें भोजनादि नहीं करते। इस कारण मृत्युके कुछ पहले वे लोग पीड़ितको घरके आंगनमें उठा लाते हैं। कोई कोई इस समय उसे रखनेके लिये एक स्वतन्त्र गृह बना रखता है। कई जगह मृतकी इच्छानुसार उसका सत्कारकार्य होता है। सिन्धुदेशमें भी बिछौने पर मरने नहीं देते। वे मृत्युके पहले शवको बाहर ला कर गोमयलिप्त स्थानमें सुलाते हैं। घरमें मरने पर जो अशौच होता है, उसके लिये घरके मालिकको धारातीर्थ या कच्छके अन्तर्गत नारायण-सरोवरमें आना पड़ता है, नहीं आनेसे गृहाशौच निवृत्त नहीं होता।

तिब्बतीय बौद्धोंका शव ढोनेका चित्र अद्भुत है। वे लोग शवदेहको रज्जुसे बांध कर घरसे दूर ले जाते हैं और पर्वत परके वनप्रदेशमें छोड़ आते हैं। कभी तो वे देहको दाह करते, कभी जलमें बहा देते और कभी टुकड़े टुकड़े कर कुत्तेको खिला देते हैं। दरिद्रका शव कुत्तोंको खिलाया जाता है। धनी आदमी इसीलिये कुत्तेको पोसते हैं। राजा और बड़े लामा स्वतन्त्र स्थानमें गाड़े और निम्न श्रेणीके लामा जलाये जाते हैं।

ब्रह्मदेशवासी फुङ्गी नामक बौद्धपति शवदेहको एक वर्ष तक मधुमें डुबो रखते हैं। इसके बाद बाजे गाजेके साथ वे शवको बाहर कर दाह करने ले जाते हैं। दाहके समय वे लोग तरह तरहकी आतशबाजी करते हैं। चीन-देशवासी मृत व्यक्तिका अच्छी तरह सम्मान करते हैं तथा अपने अपने पूर्वपुरुषके समाधिस्थलमें वे तीर्थ करने जाते हैं। वहां शवदेहको एक काठके बक्समें बन्द कर एक जगह रखा जाता है तथा प्राचीन यहूदी जातिकी तरह वे उस शवदेह पर एक घर खड़ा करते हैं।

धनशाली चीनवासी उन बक्सोंको नाना शिल्प-नैपुण्य खचित कर रखते हैं। कभी कभी वे लोग अपनी मृत्युके पहले ही शवदेह रखनेके लिये अपनी इच्छानुसार बक्स तैयार करते हैं।

दक्षिण-भारतके शैव सम्प्रदायभुक्त हिन्दू, अङ्गम, लिङ्गायत, परिया नामक जाति, अन्यान्य अनार्य्य जाति और पञ्च प्रधान शिल्पजीवी शवदेहको गड्ढेमें उत्तरमुख सुला कर गाड़ते हैं। कहीं कहीं लिङ्गायत खाटके बदले कुर्सी पर बैठा कर शवको समाधिस्थलमें ले जाते हैं। भारतीय वैष्णव शवदेहको साधारणतः दाह करते हैं। उत्तर-भारतवासी और महाराष्ट्र-देशवासी उच्च श्रेणीके हिन्दू और राजपूत जातिमें शवदाह करनेकी ही विधि है। उन सब स्थानोंमें स्वामीकी मृत्युके बाद उसके साथ सतीदाहकी व्यवस्था थी। अङ्गरेजी अमलदारीमें वह प्रथा उठा दी गई है। वैष्णवोंमें जो सामान्य रोगसे मरता, दाहके बाद उसकी भस्म गाड़ी जाती है। किन्तु विसूचिका, वसन्त या किसी प्रकारके संक्रामक रोगसे अथवा अविवाहित अवस्थामें मरने पर शवको गाड़ देते हैं। वालिद्वीपके किसी प्रधान सरदारकी मृत्यु होने पर जब उसका शवदाह होता, तब उसकी विधवा पत्नियां और दासदासियां भी चितामें प्राण-विसर्जन करती हैं। यवद्वीपमें एक भारतीय उपनिवेश है। यहां शवदाहप्रथा तथा नदी या समुद्रके जलमें बहाना अथवा वृक्षमें शवदेह लटका कर पशु पक्षी द्वारा खिलानेकी प्रथा प्रचलित है।

दक्षिण-अफ्रिकाकी वालोन्दा जातिमें ऐसी एक रीति है, कि जिस स्थानमें उनका स्त्रीवियोग होता है, उस स्थानको वे छोड़ दूर देश चले जाते हैं, कभी भी वह स्थान देखने नहीं आते। प्राचीन मिश्रवासी शवदेहका किस प्रकार संस्कार करते थे, वह ठीक ठीक नहीं कह सकते। वे लोग प्राचीन राजाओंकी मृत देहको परिष्कृत और तैलसिक्त (Embalm) कर वस्त्रसे ढक रखते थे। आज भी वे सब रक्षित शवदेह पिरामी नामक कीर्त्तिस्तूपके गृह-गह्वरमें जिसे Mummy कहते हैं, रखी हुई हैं। धीरे धीरे वहांके लोगोंने जब इस प्रथाको उचित न समझा, तब वे शवदेहको जलाने लगे, कभी कभी पशु पक्षी द्वारा खिलाने लगे और निर्जन स्थानमें फेंक कीड़ोंका खाद्य बनाने लगे। नील-नदतीरस्थ सुवृहत् शवखात (Catacombs) उसका प्रकृष्ट प्रमाण है। इस समय वहांके लोगोंने प्रत्येक जनसाधारणके लिये स्वतन्त्र समाधिस्थान बनाना सीखा नहीं था।

पाश्चात्य जगत्‌में भी आज कल शवदाहकी व्यवस्था देखनेमें आती है। वैज्ञानिक फरासियोंने भारतीय विज्ञानके वशवर्त्ती हो समाधि (कब्र) की अपेक्षा शव-दाहको ही श्रेष्ठ समझ रखा है। अमेरिका महादेशके स्थान स्थानमें भी शवदाहकी व्यवस्था है, पर वह आज भी पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त न कर सकी है। हिन्दू लोग जिस प्रकार श्मशानमें शव ले जा कर स्नानके बाद मुखाग्नि दे दाहसंस्कार करते हैं, वे लोग उस प्रकार नहीं करते। वे केवल कोयले या लकड़ीकी आगमें दग्ध करते हैं। ईसाई और मुसलमान यद्यपि शवको दफनाते हैं, फिर भी वे कब्रिस्तान ले जानेके पहले उसे स्नान कराते और पीछे पोंछ लेते हैं। धनी ईसाई साधारणतः गाड़ी पर लाद कर शव ले जाते हैं। वह शव ले जानेके लिये एक एक दल रहता है जिसे Under taker कहते हैं। समाधिक्षेत्रमें शव गाड़नेके लिये स्थान खरीदना पड़ता है। शव ले जाना, स्थान खरीदना और समाधिमन्दिर बनाना ये सब कार्य्य उक्त अण्डरटेकर दलके हाथ रहते हैं। पीछे वे लोग मृतके निकट आत्मीयसे वह खर्चा वसूल करते हैं। इन लोगोंके भी शवानुगमन है। निकट आत्मीय और बंधुओंकी मृत्यु तथा शव ले जानेका संवाद पत्र द्वारा ही दिया जाता है। वह पत्र पानेसे सभी निर्दिष्ट समयमें मृत आत्मीयके घर जाते और गाड़ीके पीछे पीछे चलते हैं। ये लोग शवदेहको काठके बक्स (Coffin)में रख कर फूलसे सजाते हैं।

दरिद्र ईसाई जो गाड़ी आदिका खर्चा वहन नहीं कर सकते, कंधे पर ही शवदेहको ढोते हैं। इनकी शवयात्रा उतनी धूमधामसे नहीं होती।

मुसलमानोंका शव कंधे पर ही ढोया जाता है। उनका शव ढोनेके लिये काठकी बनी एक स्वतन्त्र खाट

रहती है। किसी व्यक्तिके मरने पर शव ढोनेवालोंको खबर देनी पड़ती है। खबर पाते ही वे शव ढोनेके उद्देशसे रखी हुई खाटको सजा कर लाते हैं। शवके पीछे पीछे चलनेके लिये मुसलमान सम्प्रदायमें संवाद देनेकी विशेष व्यवस्था नहीं है; निकट आत्मीय मृत्युके कुछ पहले या पीछे संवाद पाते हैं। वे ही शववाहीके पीछे पीछे जाते हैं। कब्रिस्तानमें जा कर सभी फतीहा पाठके बाद मृतकी समाधिके ऊपर एक एक मुट्ठी मिट्टी फेंक घर लौटते हैं। मुसलमान देखो।

मृत्युके पूर्व पीड़ितको कुरान पढ़ कर सुनाया जाता है। मृत्यु होने पर शवको स्नान कराया जाता है। ऊपर कही हुई प्रथासे मिट्टी देनेके बाद कब्रके ऊपर मिट्टीका टीला और कभी कभी बड़ा बड़ा महल भी बनाया जाता है। आगरेका ताजमहल, फतेपुर शिकरीकी आकबर शाहकी समाधि, औरङ्गाबादकी औरङ्गजेब-कन्याकी समाधि, दाक्षिणात्य-कुलवर्गा, गोलकुंडा और बीजापुर आदि स्थानोंमें आदिलशाही, कुतबशाही और बाह्मणी राजवंशधरोंके समाधिमन्दिर इस विषयके उत्कृष्ट दृष्टान्त हैं।

असभ्य अनार्य जातिमें भी दफनानेकी प्रथा है। वे लोग शव ले कर अपने अपने घरसे दूर वन या स्थान-विशेषमें गड्ढा बना कर शव गाड़ते तथा शवके सामने खाद्यादि रखते और दीप बाल देते हैं। पीछे उसके ऊपर मिट्टी ढक दी जाती है। कोई कोई शवको वनमें छोड़ आता है। उन लोगोंका विश्वास है, कि जंगली जन्तुसे उसकी देह खाई जाने पर परलोकमें उसे सुख-शान्ति मिलती है। आर्य हिन्दुओंमें भी शव-समाधि प्रचलित है। किसी किसी दशनामी संन्यासीको दफनानेके समय उसके शरीरमें तमाम लवण दे दिया जाता है। किसीको जलमें बहा दिया जाता। उन लोगोंकी धारणा है, मत्स्यादि जलज जीव द्वारा वह मांस खाये जाने पर अशेष पुण्य होता है।

कुटीचक, बहूदक आदि देखो।

पारसी लोग जरथुस्त्रके प्रवर्त्तित अग्न्युपासक हैं। पूर्वमें होकांङ्गसे पश्चिममें इङ्गलैण्ड तक सुदूर स्थानोंमें इन लोगोंके दो एक घरोंका वास है। किन्तु बम्बई प्रदेशमें ही ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। इनमें नेसुस-सालर नामक एक निकृष्ट श्रेणी है जो शव वहन करती है। ये लोग शुभ्र वस्त्र पहन कर शवदेहको दोखमामें (Power of silence) ले जाते हैं। उस दोखमामें छत नहीं होती, चारों ओर ऊंची दीवार खड़ी रहती है। बीचमें एक ऊंचा ढालुवां चबूतरा रहता है। उसी चबूतरे पर वे शव रख कर चले आते हैं। दोखमाके जिस चबूतरे पर शव रखा जाता है, उसके मध्यस्थलमें एक कूप है। उस चबूतरेसे गलित शवदेहके रसादि नली द्वारा कूपमें गिरता है। जब वह कूआ भर जाता है, तब भीतरकी अस्थि और रस निकाल कर दोखमाको बाहर गाड़ दिया जाता है।

मृतके प्रेतकी मङ्गल कामनाके लिये पारसियोंके अग्न्युपासक एक पुरोहित रहता है। उसे माहवारी या सालानेके हिसाबसे तनखाह मिलती है। इसके अतिरिक्त वह प्रति वार्षिक भजनके लिये भी कुछ पाता है।

पीड़ित व्यक्तिकी मृत्युके बाद तथा शव दोखमामें ले जानेके पहले पारसी लोग एक कुत्तेको ला कर शवदर्शन कराते हैं। इसे सगदिट्ठ या कुत्तेकी दृष्टि कहते हैं। उनका विश्वास है, कि कुत्तेकी सुदृष्टि शवके ऊपर पड़नेसे उसकी प्रेतात्मा आसानीसे स्वर्गस्थ चिणवत् पुलको पार कर सकेगी।

पश्चिम भारतवासी पारसी जातिमें शवदेह पक्षी आदिको खिलानेकी व्यवस्था है। इस कारण वे शव रखनेके लिये एक ऊंची इमारत बनवाते हैं। उस इमारतका नाम है Tower of silence। बम्बई नगरके पास ऐसी ही एक ऊंची मन्दिरवाटिका है। पारसी लोग उसी घरके मध्यस्थानमें शव रख आते हैं। शकुनि, गृध्रिनी आदि पक्षी बड़े चावसे वह शवदेह खाते हैं। शवकी गंधसे नगरवासीका स्वास्थ्य खराब न हो जाय, इस कारण उसकी दीवार ऊंची की जाती है। वायु सञ्चालनसे वह गंध बहुत दूर चली जाती है, नगरवासी उसका कुछ भी अनुभव नहीं कर सकते।

बम्बई देखो।

पहले लिखा जा चुका है, कि अंगरेजाधिकृत भारत-

वर्षमें प्रायः दो करोड़से अधिक असभ्य जातिका वास है। उनमें गौड़, कोल, भील, सानर जातिकी संख्या ही अधिक है। इनको छोड़ अन्यान्य वनचारी जातिकी संख्या थोड़ी हैं। इनमेंसे दाक्षिणात्यके सरकार प्रदेश को पर्वतवासी शोरा जाति, श्रीकाकोल, कालहस्ती और वृद्धाचलम् नामक स्थानवासी असभ्य जातियां तातार जातिकी तरह अस्त्र शस्त्रादिके साथ शवदेहको गाड़ती हैं। नल्ल मलय नामक वनवासी चेंचवार कभी शवदाह करते और कभी उसके व्यवहारार्थ अस्त्र शस्त्रके साथ जमीनमें गाड़ते हैं।

आसामकी कुकी जातियां किसी सरदारके मरने पर उसकी देहके धुएंमें पका कर दो मास तक घरमें रखती हैं। उनका यह भी विश्वास है, कि इस समय प्रेत और पितरोंको प्रसन्न करनेके लिये नरमुण्ड तर्पण करना होता है। इस कारण वे १९ वीं सदीके प्रारम्भमें एक रातमें पचाससे अधिक नरमुण्ड ले जाते थे। किसी सरदारके रणक्षेत्रमें मर जाने पर उसी समय कुकी समतल प्रान्तरमें आ कर नरमुण्ड संग्रह करते थे। ग्राममें आ कर वे बड़ी धूमधामसे नाचते गाते और भोजनके बाद संगृहीत मुण्डोंको अस्त्रसे खण्ड खण्ड करते तथा उसका एक एक खण्ड गांवमें भेज देते थे। खासिया पर्वतके ४००० से ६००० फुट ऊंचे पर्वत पर भी पर्वतवासीका कब्रिस्तान देखा जाता है। वह साधारणतः चार छोटे छोटे पत्थरके खंभोंके नीचे है। वहां एक सुदीर्घ प्रस्तरस्तम्भ (Menhir) विराजित एक और प्रकारकी कब्र है। उसका प्रस्तरखण्ड भूपृष्ठसे ३० फुट ऊंचा, ६ फुट चौड़ा और २॥ फुट मोटा है। इनमेंसे हर एक Dolmen या Cromlech की तरह बड़े बड़े प्रस्तरखण्डसे सजा है। मङ्गोल (Mongol) जातियां कभी कभी शवको दफनाती हैं, किन्तु वे लोग साधारणतः शवको शवाधार पर रख कर बाहर फेंक देते हैं, कभी कभी उसके ऊपर एक पत्थर दाब चले जाते हैं। वे लोग लामासे मृतकी जन्मराशि, उमर और मृत्युकी तिथि मिला कर उसीके अनुसार शवसमाधिस्थ करते हैं। छोटे बच्चेके मरने पर मातापिता उसे रास्ते पर फेंक देते हैं। शवदेहको जलाने या वन्य पशुपक्षी द्वारा खिलानेकी भी इन लोगोंमें प्रथा है।

उत्तर-पश्चिम हिमालयशृङ्गके स्पिति नामक स्थानवासी शवदाह करते हैं। कभी कभी उन्हें शवदेहको दफनाते, जलमें बहाते अथवा खण्ड खण्ड कर जलाते हुए भी देखा जाता है।

ब्रह्मवासी बौद्धोंका शवसत्कार बड़ा ही आश्चर्यजनक है। ये लोग मृतकी आत्माके निर्वाणकामी हो कर कभी भी शोक प्रकट नहीं करते। फुंगियोंकी देहको अवस्थानुसार मधुमें भिगो कर सात दिन, एक मास या दो वर्ष तक भी रखते देखा जाता है। इस समय वे लोग शवके अन्त्रादिको बाहर कर मसाला लगा देते हैं। पीछे देहको मधुसे निकाल कर उसमें अन्त्रादि भर मोमसे ढक रखते हैं और लाहके आच्छादनसे स्वर्णपात मढ़ देते हैं। इसके बाद एक मचान पर श्वेतछत्रके नीचे उस देहको सुखाते हैं। अनन्तर कागज या लकड़ीकी एक उपविष्ट हाथीकी मूर्त्ति बना कर उसीमें शव रखते हैं। बौद्ध पुरोहितके शवदाहका दिन स्थिर कर देने पर सैकड़ों बौद्ध उस दिन शव ले जानेके लिये इकट्ठे होते हैं। जिस गाड़ी पर शव रखा जाता है, उसके आगे पीछे रस्सी बांधी जाती है। वह रस्सी पकड़ कर अगला दल श्मशानकी ओर और पिछला घरकी ओर खींचाखींची करता है। इस समय सभी बड़े हुल्लाससे चित्कार करते और बाजे बजाते शवको श्मशानमें लाते हैं।

दोनों दल जो रस्सी खींचते हैं, इससे अनुमान होता है, कि पौराणिक किंवदन्तीके अनुसार देवदूत और यमदूत शव ले जानेके लिये रास्तेमें युद्ध करते हैं, किन्तु इस संस्कारका असल तात्पर्य्य क्या है, ठीक ठीक नहीं कह सकते।

१८६० ई०में ब्रह्मराजकी माताका शवदाह राजप्रासादमें ही किया गया था। उस सत्कारकार्य्यमें रानीकी सपत्नियां तथा अन्यान्य राजकुलललनायें भी शामिल हुई थीं। दाह हो जाने पर एक आदमी भस्मभाण्ड ले कर नाव पर चढ़ा और बीच नदीमें गया। वहां वह भाण्डके साथ नदीमें कूद पड़ा और उसी भाण्डके बल तैरता रहा। पीछे एक दूसरा आदमी जा कर उसे किनारे ले आया।

साधारण ब्रह्मवासीकी मृत्युके बाद शवदेह जलाई जाती है। पीछे उसके दोनों हाथके अंगूठेको रस्सीसे बांध कर मुंहमें स्वर्ण या रौप्यमुद्रा दी जाती है। यही उसका 'कादोयका' या वैतरणी पार होनेका खरच है। एक या दो दिन पीछे कुछ युवक उसे खाट पर रख कब्रिस्तानमें लाते और दफनाते हैं। १५ वर्षसे कम उमरवाली बालकबालिका तथा कलेरा, वसन्त आदि रोगोंसे मृत व्यक्तियोंको भी दफनाया जाता है।

ब्रह्मको करेण जाति शवदाहके बाद हड्डियोंको उठा रखती है तथा वार्षिक उत्सवके समय उन्हें 'आगोतौङ्ग' नामक अस्थिपर्वत पर जा गाड़ आती है।

श्यामदेशवासी दरिद्र व्यक्ति शवदेहको गाड़ते हैं; किन्तु जो धनी हैं, उनका शव अन्तर्धौतिके बाद शवाधारमें रख ऊपरसे लाहका लेप और स्वर्णपातसे मढ़ दिया जाता है। पीछे शववाही श्वेत वस्त्र पहन कर उस देहको श्मशानमें ले जा कर दाहसंस्कार करते हैं।

जापानी शवदेहके प्रति विशेष सम्मान दिखलाते हैं। वे लोग पहले एक चौकोन नलमें शवदेहको बैठाते हैं। कठिन शवदेह जिससे सरल भावमें बैठ सके, इसलिये वे शवके मुंहमें दोसियो नामक एक प्रकारका चूर डाल देते हैं। इसके बाद उसे एक तख्ती या कुरसी पर बैठा कर शववहन करनेवाले कंधे पर ले जाते हैं। नाना वेशभूषासे भूषित हो कुछ रमणियां और पुरुष उसके पीछे पीछे जाते हैं। दाहमें पुरोहित भी शामिल होता है, तरह तरहके बाजे भी बजते हैं। इस समय सभी बड़े हुल्लाससे निकटवर्त्ती मन्दिरमें प्रवेश करते हैं तथा शवदेहको मन्दिरका प्रदक्षिण करा कर एक जगह रखते हैं। वहां उसके मस्तकके ऊपर पाठ पढ़ा जाता है। इसके बाद दाहके लिये शवको श्मशान ले जाते हैं।

अन्त्येष्टिक्रिया और अनुमरण शब्दमें साधारण हिन्दूके शवसत्कारका विषय लिपिबद्ध हुआ है। सुप्राचीन हिन्दू जातिमें भी शवानुगमनकी प्रथा बहुत दिनोंसे प्रचलित है। किन्तु हिन्दू शास्त्रानुसार शवानुगमनकारीके भी अशौच होता है। ब्राह्मण शवके अनुगमनकारी ब्राह्मणोंकी सचेल स्नान, अग्निस्पर्श और घृतप्राशनसे शुद्धि होती है। इसी प्रकार क्षत्रिय शवके एक दिन, वैश्यके दो दिन और शूद्रके तीन दिन अशौच होता है। भूलसे अथवा और किसी कारणसे यदि कोई उच्चवर्ण शूद्र शवका अनुगमन करे, तो जलावगाहन, अग्निस्पर्श और घृतप्राशनसे ही उसकी शुद्धि होती है। धर्मबुद्धिके बल यदि कोई अनाथ ब्राह्मणका दहन वहनादि करे, तो स्नान और घृतप्राशन द्वारा उसका सद्यशौच निवृत्त होता है। लोभवशतः यदि कोई सजातीयका दाह करे, तो उसे स्वजातीयकी तरह अशौच होता है। असजातीय शवके दहन, वहन वा स्पर्शसे शव जिस जातिका होगा, उसी जातिकी तरह अशौच होता है।

अशौच और शुद्धि शब्द देखो।

शवधान (सं० पु०) पुराणानुसार एक देशका नाम इसे शरधान भी कहते हैं। (मार्क० पु० ५८।४४)

शवभस्म (सं० पु०) चिताका भस्म, मरघटकी राख।

शवमन्दिर (सं० क्ली०) श्मशान, मरघट।
(मार्कण्डेयपु० ८।१०६)

शवयान (सं० क्ली०) शवस्य यानं। अरथी जिस पर शव ले जाते हैं, टिकठी। (शब्दरत्ना०)

शवर (सं० पु०) शव बाहुलकादर यद्वा शरं राति गृह्णातीति रा-क। १ एक पहाड़ी जंगली जाति। इस जातिके लोग मोरपंखसे अपने आपको सजाते हैं। ये लोग अब तक मध्यप्रदेश और हजारीबाग आदि जिलोंमें रहते और "सौर" कहलाते हैं। २ पानीय। ३ शिव, महादेव। ४ शास्त्रविशेष। ५ हस्त, हाथी।

विशेष विवरण वर्गीय शवर शब्दमें देखो।

शवरथ (सं० पु०) शवस्य रथः। शवयान, अरथी, टिकठी।

शवरलोध्र (सं० पु०) श्वेतलोध्र, सफेद लोध।

शवरहद—जौनपुर जिलेकी खुटाहन तहसीलके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २६° १' १०" उ० तथा देशा० ८२° ४४' २१" पू० खुटाहन नगरसे ४ कोस पर अवस्थित है। यहांके सभी अधिवासी मुसलमान हैं। हर मंगल और शनिवारको यहां हाट लगती है जिसमें आस-पासके देशोंके उत्पन्न द्रव्यादि यहां खरीद-बिक्रीको आते हैं।

शवरालय (सं० पु०) शवरस्यालयः। शवरगृह।

पर्याय—पक्कण, शवरावास। जगन्नाथ शब्द देखो।

शवरावास (सं० पु०) शवरस्यावासः। शवरालय।

शवरी—१ जयपुर राज्यमें प्रवाहित एक नदी। पूर्णघाट पर्वतमालासे निकल कर यह पर्वतवक्षमें आ गिरी है। वहांसे फिर तीव्र गतिसे मध्यप्रदेशके उत्तर गोदावरी जिलेके समतल प्रान्तरमें बह चली है। यहां प्रायः २५ मील पथ बिना किसी बाधाके नदीकी गति मन्द हो गई है। यह अक्षा० १७° ३५´ उ० तथा देशा० ८१° १८´ पू० गोदावरी नदीमें मिलती है। २ शवर जातिकी श्रमणा नामकी एक तपस्विनी। सीताजीको ढूंढ़ते हुए रामचन्द्र इस तापसीके आश्रममें पहुंचे थे। इसने रामकी अभ्यर्थना की थी और उन्हींकी अनुमतिसे उनके सामने ही चितामें प्रविष्ट हो कर यह स्वर्गको सिधारी थी। ३ शवर जातिकी स्त्री।

शवरीपुर—एक प्राचीन नगर। प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमके मतसे यह नगर बिहार प्रदेशके कासिम जिलेमें है। शवरीपुरसे यह क्रमशः शिरपुर या शेरपुर हुआ है। यह स्थान जैन-सम्प्रदायका एक पवित्र तीर्थक्षेत्र है। यहां पार्श्वनाथकी एक मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। शिरपुर देखो।

शवर्त्त (सं० पु०) कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा।
(अथर्व० ६।४।१६)

शवल (सं० पु०) शप आक्रोशे (शपेर्वश्च। उण् १।१०७) इति कल वश्चान्तादेशः। १ चित्रक, चीता। २ जल, पानी। (त्रि०) ३ कर्व्बुर वर्णविशिष्ट, चितकबरा।

शवला (सं० स्त्री०) शवल-स्त्रियां टाप्। १ शवलवर्णा गाभी, चितकबरी गाय। (त्रि०) २ शवलवर्णा, चितकबरी।

शवलित (सं० त्रि०) मिश्रित, मिला हुआ।

शवली (सं० स्त्री०) शवल-ङीष्। शवलवर्णा गाभी, चितकबरी गाय।

शववाह (सं० पु०) शवं वहति शव-वह-ण। शव-वाहक, वह जो मुर्दा ढोता हो।

शववाहक (सं० पु०) शववाह देखो।

शवशयन (सं० क्ली०) श्मशान, मरघट।
(भागवत ४।७।३३)

शवस् (सं० क्ली०) शव असुन्। बल।

शवसाधन (सं० क्ली०) श्मशानमें शवके ऊपर बैठ कर तन्त्रोक्त साधनभेद। अभी यह साधन उतना प्रचलित नहीं रहने पर भी एक समय तान्त्रिक समाजमें उसका विशेष प्रचार था। किस प्रकार यह शवसाधन होता था संक्षेपमें उसकी प्रणाली नीचे लिखी गई है—

शवसाधन और काल - वीरतन्त्रमें लिखा है, कि कृष्ण अथवा शुक्लपक्षकी अष्टमी या चतुर्दशी तिथिमें वीर-साधन करे। परन्तु कृष्णपक्षमें ही विशेष भावसे वीर-साधन कर्त्तव्य है। डेढ़ पहर रात बीत जाने पर साधक हृष्टचित्तसे चिताख्यानमें जा एक शव ला मन्त्रध्यान-परायण हो अपने हितके लिये कार्य करे। इस समय कभी भी डरना, हंसना और ताकना न चाहिये, केवल मन्त्र जप करते रहना चाहिये।

भावचूड़ामणितन्त्रमें लिखा है, कि शून्यगृहमें, नदीके किनारे, निर्जन स्थानमें, बिल्ववृक्षके नीचे, श्मशान या उसके निकटवर्त्ती वनमें, कृष्ण और शुक्लपक्षकी अष्टमी या चतुर्दशी तिथिमें मङ्गलवार दो पहर रातको उत्तम सिद्धिके लिये शवसाधन करे।

साधनयोग्य शव—भैरवतन्त्रमें लिखा है, कि लाठी आदिके आघातसे मृत या जलमें मृत, ऐसे व्यक्तिका शव लेना ही कर्त्तव्य है। स्वेच्छामत स्त्रीके वशीभूत, पतित, अस्पृश्य, न्यायपथभ्रष्ट, श्मश्रु विहीन, क्लीव, कुष्ठ-रोगी, वृद्ध, दुर्भिक्षमें मृत या सड़ा शव ग्राह्य नहीं है। स्त्री या स्त्रीकी तरह जिसका रूप है वैसा शव भी सर्वथा परित्याग करना चाहिये।

भावचूड़ामणिमें लिखा है, कि जो व्यक्ति लाठी, शूल या खड्गके आघातसे या जलमें डूब कर मरा है, वज्रपात या सांपके काटनेसे जिसके प्राण गये हैं तथा चाण्डालका शव, तरुण, सुन्दर, वीर, युद्धमें निहत, समुज्ज्वल और सम्मुख युद्धसे जो भागा नहीं, ऐसे मृत व्यक्तिका शव ही प्रशस्त है।

कालीतन्त्रके मतसे चण्डालका शव ही महाशव कहलाता है। सभी सिद्धि-कार्योंमें यही महाशव प्रशस्त है।

अधिकारी—सभी व्यक्ति शवसाधनमें अधिकारी

नहीं है। तन्त्रके मतसे महाबलिष्ठ, अति बुद्धिमान्, महासाहसिक, पवित्रचेता, महास्वच्छ, दयालु और सर्वभूतके हितमें रत, ऐसा व्यक्ति ही शवसाधनके योग्य है।

साधनविधि—बलिके लिये उड़द, भात, तिल, कुश, सरसों और धूप दीपादि पूजाके उपकरणको आवश्यक है। ये सब वस्तु ले कर पूर्वनिर्दिष्ट किसी स्थानमें जावे। पहले सामान्य अर्घ्य स्थापन कर याग स्थान अभ्युक्षण करे। पीछे पूर्वकी ओर गुरु, दक्षिणमें गणेश, पश्चिममें बटुकभैरव और उत्तरमें ६४ योगिनियोंकी पूजा करके जमीन पर वीराद्द्न मन्त्र लिखना होगा। वीराद्द्न मन्त्र इस प्रकार है—

"हूं हूं ह्रीं ह्रीं कालिके घोरदंष्ट्रे प्रचण्डे चण्डनायिके दानवान् दारय हन हन शव शरीरे महाविघ्नं छेदय छेदय स्वाहा हूं फट्"। इसके बाद—

"ये चात्र संस्थिता देवा राक्षसाश्च भयानकाः।
पिशाचा सिद्धयो यक्षा गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥
योगिन्यो मातरो भूताः सर्वाश्च खेचरा स्त्रियः।
सिद्धिदास्ता भवन्त्वत्र तथा च मम रक्षकाः॥"

इत्यादि मन्त्रोच्चारण कर ३ वार पुष्पाञ्जलि दे। पीछे पूर्व दिशामें श्मशानाधिपति, भैरव, कालभैरव और महाकालकी पञ्चोपचारसे पूजा कर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ बलि देनी होगी—

"ओं हूं श्मशानाधिप इमं सामिषान्न बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय विघ्न निवारणं कुरु सिद्धिं मम प्रयच्छ स्वाहा।" इस मन्त्रसे श्मशानाधिपको तथा 'ओं हूं भैरव भयानक इमं सामिषान्नमित्यादि' मन्त्रसे भैरव, कालभैरव और महाकालको बलि देनी होगी। इसके बाद—"ओं ह्रीं स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर घोर घोरतर तनुरूप चट चट प्रचट प्रचट कह कह वम वम बन्ध बन्ध घातय घातय हूं फट् सहस्रारे हूं फट्" इस अघोर सुदर्शन मंत्रके अंतमें शिखाबंधन कर और छाती पर हाथ रख "आत्मानं रक्ष रक्ष" इत्यादि मन्त्रोंसे आत्मरक्षा करे।

पीछे भूतशुद्धि और न्यास जाल करके "ओं दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा" यह जयदुर्गा मन्त्र उच्चारण कर चारों ओर सर्षप तथा—

"ओं तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवस्तुण्टिकारकः।
पितॄणां स्वर्गदाता त्वं मर्त्यानां मम रक्षकः॥
भूतप्रेतपिशाचानां विघ्नेषु शान्तिकारकः।"

यह मन्त्र उच्चारण कर चारों ओर तिल छिड़क कर विहित शवके समीप उपस्थित होवे। शवके पास बैठ कर 'हूं फट्' इस मन्त्रसे शवके ऊपर अभ्युक्षण करे। पीछे 'ओं हूं मृतकाय नमः फट्' इस मन्त्रसे तीन बार पुष्पाञ्जलि दे शव स्पर्श कर नमस्कार करे। प्रणाम-मन्त्र इस प्रकार है—

"वीरेश परमानन्द शिवानन्द कुलेश्वर।
आनन्दभैरवाकार देवीपर्यङ्क शङ्कर॥
वीरोऽहं त्वां प्रपद्यामि उत्तिष्ठ चण्डिकार्च्चने॥"

प्रणामके बाद 'ओं हूं मृतकाय नमः' इस मन्त्रसे शवका प्रक्षालन और सुगन्धित जलसे स्नान करा कर कपड़ेसे पोंछ डाले। पीछे धूप जला कर शवदेहमें चन्दनादि लगावे। शव यदि रक्त वर्ण हो जाय, तो वह साधकको खा डालता है। इसके बाद शवके मुंहमें जायफल, खीर, अदरक और पान भर कर उसे औंधे मुंह कर रखे। शवपृष्ठ पर चन्दनादि लेप कर बाहुमूलसे कटि पर्यन्त चौकोन मण्डल बनावे। चौकोनके मध्य अष्टदल पद्म और चतुर्द्वार अंकित कर पद्ममें 'ओं ह्रीं फट्' यह मन्त्र और उसके साथ करशोक पीठमन्त्र लिखे। बादमें उसके ऊपर कम्बलादि आसन बिछा दे।

शवका कटिदेश पकड़ कर पूजास्थानमें लाना होता है। लाते समय यदि किसी प्रकारका उपद्रव करे, तो शवको थुकथुका दे तथा फिरसे प्रक्षालन कर जपस्थानमें लावे। इसके बाद द्वादशांगुल यज्ञकाष्ठ जपस्थानके दशों दिशाओंमें रख यथाक्रम इन्द्रादि दशदिक्पालकी पूजा करनी होती है। "ओं लां इन्द्राय सुराधिपतये ऐरावतवाहनाय वज्रहस्ताय स्वशक्तिपारिषदाय सपरिवाराय नमः" इस मन्त्रसे पाद्य तथा "ओं लां इन्द्राय सुराधिपतये इमं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय विघ्न निवारणं कृत्वा मम सिद्धिं प्रयच्छ स्वाहा।" इस मन्त्रसे उड़द भातकी बलि दे कर 'ओं लां इन्द्राय स्वाहा' उच्चारण करे।

•अग्निकी पूजा और बलिमन्त्र—"ओं रां अग्नये

तेजोऽधिपतये मेषवाहनाय सपरिवाराय शक्तिहस्ताय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूर्ववत् पूजा और 'ओं रां अग्नये तेजोधिपतये इमं वलिं गृह्ण गृह्ण' इत्यादि पूर्ववत् वलि दे।

यमका मन्त्र—"ओं मां यमाय प्रेताधिपतये दण्डहस्ताय महिषवाहनाय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा और 'ओं मां यमाय प्रेताधिपतये इमं वलिं' इत्यादि मन्त्रसे पूर्ववत् वलि चढ़ावे।

निऋतिका मन्त्र—"ओं क्षां निऋतये रक्षोऽधिपतये असिहस्तायाश्ववाहनाय सपरिवाराय नमः" इस मन्त्रसे पूजा और 'ओं क्षां निऋतये रक्षोऽधिपतये" इत्यादि पूर्ववत्।

वरुणका मन्त्र—"ओं वां वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकरवाहनाय सायुधाय नमः" इस मन्त्रसे पूजा तथा 'ओं वां वरुणाय जलाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

वायुका मंत्र—'ओं यां वायवे प्राणाधिपतये हरिणवाहनाय अंकुशहस्ताय नमः' और 'ओं यां वायवे प्राणाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

कुवेरका मंत्र—'ओं कुवेराय यक्षाधिपतये गदाहस्ताय नरवाहनाय सपरिवाराय नमः' और 'ओं कुवेराय यक्षाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

ईशानका मन्त्र—'ओं हां ईशानाय भूताधिपतये शूलहस्ताय वृषवाहनाय सपरिवाराय नमः' और 'ओं हां ईशानाय भूताधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

ब्रह्माका मन्त्र—'ओं इन्द्रेशानयोर्मध्ये आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये हंसवाहनाय पद्महस्ताय सपरिवाराय सायुधाय नमः और 'ओं आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

अनंतका मंत्र—'ओं नैऋतवरुणयोर्मध्ये ओं ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये चक्रहस्ताय रथवाहनाय सपरिवाराय सायुधाय नमः' और 'ओं ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये' इत्यादि पूर्ववत्।

दश दिक्पालके उद्देशसे पूजा वलि देनेके बाद सर्वभूतके उद्देशसे वलि दे। सभी जगह सामिषान्न वलि देनेकी विधि है। इसके बाद अधिष्ठात्री देवता, चौसठ योगिनी और डाकिनियोंके उद्देशसे भी वलि देनी होती है।

इसके बाद साधक अपने पास पूजाद्रव्य और कुछ दूरमें उत्तरसाधकको रख 'ओं ह्रीं फट् शवासनाय नमः' इस मन्त्रसे शवकी पूजा करे। पीछे 'ह्रीं फट्' यह मंत्र पढ़ कर अश्वारोहणक्रमसे शवपृष्ठ पर वैठ कर अपने पैरके नीचे कुछ कुश रखे तथा शवके केशको फैला, जूड़ा वांध गुरु, गणपति और देवीको प्रणाम करे। इसके वाद प्राणायाम और षड़ङ्गन्यास कर पूर्वोक्त वीरार्दनमंत्र पढ़ दशों दिशाओंमें ढेले फेंक सङ्कल्प करें। यथा 'अद्येत्यादि अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुक देवतायाः सन्दर्शनकामः अमुकमन्त्रस्यामुकसंख्यजपमहं करिष्ये' संकल्पके वाद 'ओं ह्रीं आधारशक्ति कमलासनाय नमः' इस मन्त्रसे आसनकी पूजा कर अपने वामभागमें शवके निकट अर्घ्य रख कर पूजा करे। पीछे साधक यथाशक्ति षोड़शोपचार, दशोपचार अथवा पञ्चोपचारसे देवीकी पूजा कर शवके मुखमें सुगन्धित जलसे तर्पण करे; इसके वाद उठ कर शवके सामने खड़े हो यह मंत्र पढ़े—

'ओं वशो मे भव देवेश मम वीर सिद्धिं देहि देहि महाभाग कृताश्रयपरायण'।

अनंतर पाटके सूतसे शवके दोनों पैर वांध मूलमंत्रसे शव देहको मजबूतीसे वांध रखे। मंत्र इस प्रकार है—

"ओं मद्वशो भव देवेश वीरसिद्धिकृतास्पद।
ओं भीम भीरु भयाभाव भवमोचन भावुक।
त्राहि मां देवदेवेश शवानामधिपाधिप॥"

यह मंत्र पढ़नेके वाद शवके पादमूलमें त्रिकोण मन्त्र अङ्कित करे। शवके ऊपर वैठ उसके दोनों हाथ फैला उस पर कुश विछा दे। उस कुशके ऊपर साधक पैर रख कर फिरसे तीन वार प्रणाम करे और शिरःस्थित पद्मसे गुरुदेवका तथा अपने हृदयमें देवीका ध्यान करते करते दोनों ओंठ संपुटकी तरह कर निर्भय हृदयसे मौनभावमें विहित माला ले श्मशानसाधनके क्रमानुसार जप करे। इस प्रकार जप करनेसे भी यदि आधी रात तक कुछ दिखाई न पड़े, तो फिरसे पूर्ववत् सरसों और तिल फेंक कर उपविष्ट स्थानसे सात

कदम आगे जा पुनः जप करे। जप कालमें शवके हिलने पर डरना न चाहिये। यदि डर मालूम हो, तो इस प्रकार कहे, "दिनान्तरे कुञ्जरादिकं दास्यामि मम स्थाने स्वनाम कथय" अर्थात् दूसरे दिन गजादि दूंगा, तुम कौन हो, तुम्हारा नाम क्या है। साफ साफ कहो। इस प्रकार संस्कृतमें कह कर फिरसे निर्भय हो जप शुरू कर दे। मधुर वाक्यसे यदि शव अपना नाम बतावे, तो साधकको भी फिर इस प्रकार कहना चाहिये। 'प्रतिज्ञा करो, कि तुम मुझे वर दोगे' इस प्रकार प्रतिज्ञा-बद्ध कर साधक वर मांगे। यदि प्रतिज्ञा न करे और वर भी न दे, तो ऐकान्तिक मनसे फिर जप करे। किन्तु प्रतिज्ञा करके वर देनेमें राजी होने पर फिर जपकी जरूरत नहीं। ऐसी हालतमें अभीष्ट वर ले कर कार्य्य सिद्ध हुआ समझना चाहिये। पीछे शवका जूरा खोल उसे धो डाले और दूसरी जगह रख शवके पैर भी खोल दे। इसके बाद पूजोपकरणको जलमें फेंक तथा शवको भी जल या गर्त्तमें डाल साधक स्नान करे।

साधक घर आ कर शवकी प्रार्थनानुसार दूसरे दिन प्रतिश्रुत हाथी, घोड़े, आदमी या सूअरकी पिष्टमय वलि चढ़ा कर उपवास करे। वलिमन्त्र इस प्रकार है—

"अग्निमदात्री येषां यजमानोऽहं ते गृह्णन्त्विमं वलिं।"

दूसरे दिन साधक प्रातःकृत्यादि नित्यक्रिया करके पञ्चगव्य पान करे और २५ ब्राह्मण भोजन करावे। अक्षम होने पर शक्तिके अनुसार ब्राह्मण भोजन करानेमें भी दोष नहीं। ब्राह्मण भोजन हो जाने पर साधक स्नान करे, बादमें भोजन कर उत्तम आसन पर बैठे। मन्त्रसिद्धिके बाद तीन या नौ रात तक उसे गोपन रखे। किसीको भी मन्त्रसिद्धिकी बात न कहे। मन्त्रसिद्धिके बाद स्त्री-शय्या पर जानेसे व्याधिग्रस्त, गीत सुननेसे बधिर, नाच देखनेसे अंध और दिनको बोलनेसे साधक मूक होता है। पांच दिन तक साधकको सभी कामकाज छोड़ देना होगा। इस समय साधकके शरीरमें देवी वास करती है। एक पक्ष तक साधक गंधपुष्प न ले, बाहर जानेका यदि मौका हो, तो परिधेय वस्त्र छोड़ दूसरा वस्त्र पहने। गोब्राह्मणकी निन्दा, अथवा दुर्जन, पतित और क्लीवको भी स्पर्श न करे। सवेरे नित्यकर्मके बाद विल्वपत्रोदक पान करे। सोलहवें दिन गंगास्नान कर स्वाहान्त मन्त्र उच्चारण कर तीन सौ बार जलसे देवताओंका तर्पण करे। तर्पणके अन्तमें नमः कहना होता है। स्नान और पितृतर्पण किये विना देवतर्पण न करना चाहिये। अनन्तर दक्षिणा दे कर अच्छिद्रावधारण करना होता है। उक्त प्रकारसे शवसाधन करने पर साधक सिद्धि लाभ करते हैं तथा इस लोकमें उत्कृष्ट भोग कर अन्तमें हरिपद पाते हैं।

(आगमतत्त्वविलास)

शवसान (सं० पु०) शव-औणादिक सानच्। पथिक, यात्री। यह शब्द वैदिक है अर्थात् वेदमें ही इस शब्दका प्रयोग देखा जाता है।

शवसावत् (सं० त्रि०) बलवत्, शक्तिविशिष्ट, ताकतवर। (ऋक् १।६२।११)

शवसिन् (सं० त्रि०) बलयुक्त, ताकतवर। (ऋक् ७।२८।२)

शवाग्नि (सं० पु०) शवदाहकी अग्नि। (ऐत० ब्रा० ७।७)

शवान्न (सं० क्ली०) १ वह अन्न जो बिलकुल खराब हो गया हो और किसी कामका न हो। २ मनुष्यके शव या मृत शरीरका मांस। (पार०गृ० ३।८)

शवाश (सं० पु०) शवं अश्नाति अश-अण्। शवभक्षक, वह जो मुर्दा खाता हो।

शविष्ठ (सं० त्रि०) बलवत्तम, जो सबोंमें अधिक बलवान् हो। (ऋक् ६।१९।६)

शवीर (सं० त्रि०) गतियुक्त। (ऋक् १।३।१२)

शवोद्वह (सं० पु०) शववाही। (शत०ब्रा० १२।५।२।१४)

शव्य (सं० क्ली०) वह कृत्य या उत्सव जो शवको अन्त्येष्टिक्रियाके लिये ले जानेके समय होता है।

(छान्दो० उप० १।५।५)

शव्वाल (अ० पु०) मुसलमानोंका दशवां महीना।

शश (सं० पु०) शशति प्लवेन गच्छतीति शश् अच्। १ मृगविशेष, खरगोश, खरहा। महाराष्ट्र—खरहा, तैलङ्ग—चेवुलपिल्लि। इसके मांसका गुण—स्वादु, कषाय, मलवद्धकारक, शीतल, लघु, शोथ, अतीसार, पित्त और रक्तनाशक तथा रुक्ष। (राजवल्लभ)

राजनिर्घण्टके मतसे इसका मांस त्रिदोषनाशक, दीपन, श्वास और कासनाशक है।

श्राद्धतत्त्वमें लिखा है, कि श्राद्धमें इसका मांस दिया जा सकता है। इसके मांससे पितृगण परितृप्त होते हैं।

एकादशीतत्त्वमें लिखा है, कि विष्णुको भी इसका मांस दिया जा सकता है।

२ चन्द्रमाका लाञ्छन या कलंक। (धरणि) ३ बोल नामक गंधद्रव्य, गंधरस। ४ लोध्र, लोध। ५ कामशास्त्रके अनुसार मनुष्यके चार भेदोंमेंसे एक भेद। जो मनुष्य मृदु वचन बोलता हो, सुशील, कोमलाङ्ग, सत्यवादी और सकल गुणनिधान हो, वह शशजातिका माना जाता है। इस मनुष्यसे पद्मिनी स्त्री वशीभूता होती है। (रसमञ्जरी)

शशक (सं० पु०) शश-स्वार्थे कन्। स्वनामप्रसिद्ध चतुष्पद जन्तुविशेष, खरगोश। यह चूहेकी जातिका, पर उससे कुछ बड़े आकारका होता है। इसके कान लंबे, मुंह और सिर गोल, चमड़ा नरम और रोएंदार पूंछ, छोटी और पिछली टांगें अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं।

शशक पञ्चनखमें गिना जाता है, अतः इसका मांस खाया जा सकता है।

"शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मश्च पञ्चमः।
भक्ष्याः पञ्चनखेष्वेते न भक्ष्यास्त्वान्यजातयः॥"

(स्मृति)

यह संसारके प्रायः सभी उत्तरी भागोंमें भिन्न भिन्न आकार और वर्णका पाया जाता है। जहां जाड़ा बहुत पड़ता है, वहां भी यह जीवित रहता है। वैज्ञानिक भाषामें खरगोशको Leporidae जातिमें शामिल किया और Lepus इसका नाम रखा गया है। अङ्गरेजीमें इसे Hare कहते हैं। एतद्भिन्न जर्मन—Hase, फरासी—Lievre, हिब्रू—अर्णेवेथ, इटली—Lepre, स्पेन—Lievre, अरब—आर्णाव, तुर्क—तावसेन, तिब्बत-आर्जहोङ्ग आदि भिन्न भिन्न भाषामें यह भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है।

भारतवर्ष और पूर्वद्वीपपुञ्जमें साधारणतः पांच प्रकारके खरगोश देखनेमें आते हैं। इनमेंसे L. rafi-candatu भारतवर्षमें प्रायः सभी जगह देखनेमें आता है। हिमालय प्रदेशमें, पञ्जाब और आसामसे दक्षिण गोदावरीतट और मलवार उपकूल तक इस श्रेणीका शशक है। यही प्राणिवित् हजसन कथित L, Indicus और L, macrotus है। अङ्गरेजीमें यह Common Indian hare नामसे उल्लिखित है। हिंदीमें इसे चौगुड़ा और खरहा भी कहते हैं।

आराकान, तेनासेरिम प्रदेश, समस्त मलय प्रायोद्वीप और पूर्वद्वीपपुञ्जमें खरगोश नहीं मिलता। केवल यवद्वीपमें L. nigrieollis श्रेणीका खरगोश देखनेमें आता है। अधिक सम्भव है, कि दक्षिण भारत और सिंहलसे यहां और पीछे मोरिसस द्वीपमें शशक लाया गया था। भारत-संस्पृष्ट चीन राज्यमें, यहां तक कि सुदूर कोचिन चीनमें भी एक जातिका खरगोश है।

मिश्रराज्यमें जो खरगोश देखा जाता है, उसे अङ्गरेजीमें Egyptian hare कहते हैं।

यूरोप महादेशमें जो छोटा खरगोश (L. cuniculus) देखनेमें आता है, वह बेलजियम और हालैण्ड राज्यमें Konyn konin, डेनमार्क—Kanine, जर्मन—Kaninchen, इटली—coniglio, पुर्त्तगाल—Coelho, स्पेन—Conejo, स्विजरलैण्ड—Kanin, वेलस—Cednigen, इङ्गलैण्ड—Coney या Rabbit नामसे प्रसिद्ध है।

यह जंगलों और देहातोंमें जमीनके अन्दर बिल खोद कर झुण्डमें रहता है और रातके समय आसपासके खेतों विशेषतः ऊखके खेतोंको बहुत हानि पहुंचता है। यह बहुत अधिक डरपोक और जरासे आघातसे मर जाता है। यह छलांगें मारता हुआ बहुत तेज दौड़ता है। इसके दांत बड़े तेज होते हैं। खरही छः मासको होने पर गर्भवती हो जाती है और एक मास पीछे सात आठ बच्चे देती है। दश पन्द्रह दिन पीछे यह फिर गर्भवती हो जाती है और इसी प्रकार बराबर गर्भवती होती है। इसके छः स्तन होते हैं जिनमेंसे दोमें दूध नहीं पाया जाता। जंगलमें एकमात्र मूल और वृक्षकी छाल खा कर ही यह जीवन धारण करता है। प्रकृतिने भक्ष्य द्रव्यके अनुसार ही इसका शरीर बनाया है और बल दिया है। नासाग्रसे ले कर पुच्छमूल तक इसकी लम्बाई

१९॥० इञ्च होती है। खरही वजनमें ५॥० पौंड और खरहेसे एक आध इञ्च छोटी होती है, किन्तु दोनोंकी पीठ पर १२ इञ्च लंबा एक दाग रहता है। खरहेसे खरहीकी पूंछ बड़ी होती है। तुरतके जन्मे बच्चेके शरीरमें लोम नहीं होते तथा आंखें भी नहीं फूटती हैं। टोपी पर खोंसनेके लिये यूरोपमें इसके लोम अधिक दाममें बिकते हैं। चांदीकी तरह सफेद लोमविशिष्ट चर्म एक समय प्रति ३ शिलिङ्गमें बिका था। वहांके लोग अपने अपने कुरतेके किनारे उस चमड़ेको काट कर सिलाई कर देते थे।

हिमालयके पादमूलस्थ शालवनमें और उसके आसपास स्थानोंमें गोरखपुरसे पूर्व त्रिपुराराज्य तकके स्थानोंमें और शिलिगोड़ीके तराई देशमें L. hispidas जातिका शशक देखनेमें आता है। दक्षिण-भारतमें L, migricollis या कृष्णग्रीव शशक तथा हिन्दुस्तानमें लोहितपुच्छ (L. ruficandata) शशक जाति जिस प्रकार तमाम फैली हुई है, इस मलेरियापूर्ण हिमालय पादस्थ वनभागमें भी Hispid hare नामक शशजाति उसी प्रकार प्रबल है। ये सब कभी भी समतल क्षेत्रमें नहीं आते और न हिमालयके पार्वत्य पृष्ठ पर चढ़ते ही हैं। इस कारण इनका स्वभाव पर्यवेक्षण करनेका उतना मौका नहीं मिलता।

हिमालयपृष्ठ और नेपाल राज्यमें L. Macrotus श्रेणीका खरगोश है। यह दक्षिण-भारतके कृष्णग्रीव शशजातिसे बहुत बड़ा होता है। L. nigricollis या कृष्णग्रीव शशक किसी किसी ग्रन्थमें L. malunanchen नामसे वर्णित हुआ है। दक्षिणभारत, सिंहल और यवद्वीपमें इस जातिके खरगोश अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। सिन्धुप्रदेश और पंजाबमें भी इनका अभाव नहीं है। तिब्बत और नेपालके पर्वतपृष्ठस्थ नील खरगोश L. diostolus या L. Pallipes नामसे वर्णित हैं। इनकी दोनों टांगें सफेद तथा पृष्ठ और देह बहुत कुछ स्लेट पत्थरकी तरह घोर काली होती है। इनके साथ यूरोपके पार्वत्य शशक (alpine hare) का बहुत कुछ सौसादृश्य है।

ब्रह्मराज्यमें जो शशजाति (L, peguensis) देखनेमें आती है, वह भारतवर्षको लोहितपुच्छ शशजातिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। उत्तर-भारतमें, आसाम प्रदेशमें और उत्तर-ब्रह्ममें प्रधानतः यह शशजाति विचरण करती है। बङ्गालके खरगोशकी तरह इनका गात्रवर्ण कुछ धूसर होता है, परन्तु पेट बिलकुल सफेद दिखाई देता है। पूंछका ऊपरी भाग भी काला है।

L. sinensis जातिके साथ L. raficandata श्रेणीके शशककी समता दिखाई देती है। केवल गात्रवर्णका पार्थक्य ही एकमात्र विशेषत्व है, इनके पंजेका निचला भाग काला, पर ऊपरी भाग लाल होता है। पूंछका अगला हिस्सा काला, पर मूलभाग अपेक्षाकृत सफेद होता है। इनके दोनों पंजरे तथा पेटके लोम लोहितपुच्छ शशकके पृष्ठलोमकी तरह वर्णविशिष्ट हैं। किन्तु पीठका रंग ललाई लिये कुछ काला भी होता है।

शशकर्ण (सं० पु०) १ एक ऋषिका नाम। ये ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके नवम सूक्तके मन्त्रद्रष्टा हैं। २ सामभेद।

शशकविषाण (सं० क्ली०) शशकस्य विषाणं। शशकशृङ्ग; मिथ्या, आकाशकुसुम कहनेसे जिस प्रकार कुछ भी नहीं समझा जाता, शशविषाण शब्दसे भी उसी प्रकार जानना होगा अर्थात् कुछ भी नहीं।

शशकाद्यघृत—नेत्ररोगनाशक घृतौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत आध सेर, क्वाथार्थ शशकका मांस १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, बकरीका दूध २ सेर। कल्क—यष्टिमधु और पुण्डरीया प्रत्येक ४ तोला। इन्हें आंखमें भर कर देनेसे शुक्र और अजकारोग नाश होते हैं।

शशगानी (फा० पु०) चांदीका एक प्रकारका सिक्का जो फीरोजशाहके राज्यमें प्रचलित था। यह लगभग दुअन्नीके बराबर होता था।

शशघातक (सं० पु०) बाज या श्येन नामक पक्षी, हरगोला।

शशघातिन् (सं० पु०) शशघातक देखो।

शशघ्न (सं० पु०) बाज या श्येन नामक पक्षी, हरगोला। (बृहत्स० ८८।१)

शशधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच् धरः शशस्य धरः। १ चन्द्रमा। २ कपूर, कपूर।

शशधर—१ किरणावली नामक अलंकारग्रन्थके प्रणेता। २ राघवपाण्डवीय टीकाके रचयिता। इनके पितामहका नाम था रुद्रसिंह।

शशधर आचार्य—शशधरीय या न्यायसिद्धांतदीपन्याय नय, न्यायमीमांसाप्रकरण, न्यायरत्नप्रकरण और शशधरमाला नामक न्यायविषयक ग्रंथोंके रचयिता।

शशधरीय (सं० त्रि०) १ शशधर-सम्बंधी। (पु०) २ शशधरकृत ग्रंथ।

शशधर्मन् (सं० पु०) राजभेद। (विष्णु पु०)

शशप्लुतक (सं० क्ली०) नखाघात। (शब्दमाला)

शशबिन्दु (सं० पु०) १ विष्णु। २ चित्ररथके एक पुत्रका नाम।

शशभृत् (सं० पु०) शशं बिभर्त्तीति भृ-क्विप्। १ चन्द्रमा। २ कपूर, कपूर।

शशभृद्भृत् (सं० पु०) शशभृतं चन्द्रं बिभर्त्तीति भृ-क्विप् तुकच। शिव।

शशमाही (फा० वि०) हर छः महीने पर होनेवाला, छःमाही, अर्द्धवार्षिक।

शशमुण्डरस (सं० पु०) रसौषधविशेष।
(शार्ङ्गधरस० २ १।१६)

शशमौलि (सं० पु०) शिव।

शशय (सं० त्रि०) शयान, सोया हुआ।
(ऋक् १।१६४।४६)

शशयान (सं० क्ली०) महाभारतके अनुसार एक तीर्थका नाम। (भारत वनपर्व)

शशयु (सं० त्रि०) शयनशील, सोनेवाला।

शशलक्षण (सं० पु०) शशलक्षणं चिह्नं यस्य। चन्द्रमा।

शशलक्ष्मन् (सं० पु०) शश लक्ष्म चिह्नं यस्य। १ चन्द्रमा। (क्ली०) २ शशचिह्न।

शशलाञ्छन (सं० पु०) शशः लांछनं चिह्नं यस्य। चन्द्रमा।

शशलोमन् (सं० क्ली०) शशस्य लोम। १ शशकका रोम। पर्याय—शशोर्ण। (पु०) २ तन्नामक राजभेद।

शशविषाण (सं० क्ली०) शशस्य विषाणं। शशशृङ्ग देखो।

शशशिम्बिका (सं० स्त्री०) जीवन्तीलता, डोडी।

शशशृङ्ग (सं० क्ली०) कोई असम्भव और अनहोनी बात, वैसा हो असम्भव कार्य जैसा खरगोशको सींग होना होता है, आकाशकुसुमकी सी असम्भव बात।

शशस्थली (सं० स्त्री०) गङ्गा और यमुनाके मध्यका प्रदेश, दोआब।

शशा (सं० पु०) शश देखो।

शशाङ्क (सं० पु०) शशोऽङ्कश्चिह्नं अङ्के क्रोड़े वा यस्य। १ चन्द्रमा। २ कपूर, कपूर। (राजनि०) ३ प्राच्य भारतके एक पराक्रान्त हिन्दू राजा। ये सातवीं सदीमें विद्यमान थे। वङ्गदेश देखो।

शशाङ्ककुल (सं० क्ली०) शशाङ्कस्य कुलं। चन्द्रमाका कुल।

शशाङ्कज (सं० पु०) शशाङ्काज्जायते जन-ड। बुध जो चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है। (बृहत्सं० ४।२६)

शशाङ्कतनय (सं० पु०) शशाङ्कस्य तनयः। बुध।

शशाङ्कदेव—देववंशीय एक पराक्रान्त प्राच्य भूपति। रोहतसगढ़ (रोहतासगढ़) दुर्गमें इनकी जो मोहराङ्कित मुद्रा पाई गई है, उसकी वर्णमाला विचार कर प्रत्नतत्त्वविदोंने इन्हें चीनपरिव्राजक वर्णित कर्णसुवर्णाधिपति शशाङ्क माना है। इन्होंने बौद्धधर्मद्वेषी कन्नौजराज राज्यवर्द्धनको पराजित और निहत किया था। पीछे ये सम्राट् हर्षवर्द्धन द्वारा पराजित हुए।
वङ्गदेश देखो।

शशाङ्कधर (भट्ट)—एक प्राचीन वैयाकरण। क्षीरतरङ्गिणी ग्रन्थमें क्षीरस्वामीने इनका उल्लेख किया है।

शशाङ्कपुर (सं० क्ली०) शशाङ्कस्य पुरं शशाङ्क पूर्णं पुरं। चन्द्रमाका पुर।

शशाङ्कमुकुट (सं० पु०) शशाङ्कः मुकुटे मौलौ यस्य। शशाङ्कशेखर, शिव।

शशाङ्कवती (सं० स्त्री०) कथासरित्सागर वर्णित एक राजकन्याका नाम।

शशाङ्कशेखर (सं० पु०) शशाङ्कशेखरः यस्य। शिव, महादेव। (भाग० ४।६।४१)

शशाङ्कसुत (सं० पु०) शशाङ्कस्य सुतः। बुध ग्रह, जो शशाङ्क या चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है।
(बृहत्सं० ५।२)

शशाङ्कार्द्ध (सं० पु०) शशाङ्कस्य अर्द्धः । १ अर्द्ध चन्द्र । २ शिव, महादेव ।

शशाङ्कोपल (सं० पु०) चन्द्रकान्तोपल, चन्द्रकान्त मणि ।

शशाण्डुलि (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात फलशाकविशेष, कड़वी ककड़ी । पर्याय—बहुफला, तण्डुली, क्षेत्रसम्भवा, क्षुद्राम्ला, लोमशफला, धूम्रा, वृत्तफला । गुण—तिक्त, कटु, कोमल, कटु और अम्लगुणविशिष्ट, मधुर, कफनाशक, पाकमें अम्लयुक्त, मधुर, दाहकारक, कफशोषक, रुचिकर और दीपन । (राजनि०)

शशाद (सं० पु०) शशमत्तीति अद्-अच् । १ श्येन पक्षी, बाज । २ इक्ष्वाकुका पुत्र । इसका नाम विकुक्षि था । भागवतके नवम स्कन्धके छठे अध्यायमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है—एक दिन इक्ष्वाकुने इसे श्राद्धके लिये मांस लानेको कहा। पिताके आज्ञानुसार वन जा कर इसने बहुत-से मृग आदि मारे। मृगया करनेके कारण अतिशय श्रान्त हो इसने वहीं एक शश भक्षण किया, इसीसे इसका नाम शशाद हुआ। विष्णुपुराणके ४।२ अध्यायमें इसका विवरण है।

शशादन (सं० पु०) शशमत्तीति अद्-ल्यु । श्येनपक्षी, बाज ।

शशि (सं० पु०) शशिन् देखो ।

शशिक (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन जनपदका नाम । २ इस जनपदमें रहनेवाली जाति । (भारत भीष्मपर्व ६।४६)

शशिकर (सं० पु०) चन्द्रमाकी रश्मि या किरण ।

शशिकला (सं० स्त्री०) शशिनः कला। १ चन्द्रमाकी कला । २ एक प्रकारका वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें चार नगण और एक सगण होता है। इसको 'मणिगुण' और 'शरभ' भी कहते हैं। (छन्दोमञ्जरी)

शशिकान्त (सं० क्ली०) शशीकान्तो यस्य । १ कुमुद, कोई, बघोला । (पु०) २ चन्द्रकान्तमणि।

शशिकुल (सं० पु०) चन्द्रवंश ।

शशिकेतु (सं० पु०) बुद्धभेद ।

शशिखण्ड (सं० पु० क्ली०) १ शिव, महादेव । २ विद्याधरभेद । ३ चन्द्रमाकी कला ।

शशिखण्डपद (सं० पु०) विद्याधरभेद । (कथासरित्सा० २६।२८१)

शशिखण्डिक (सं० पु०) पुराणानुसार एक देशका नाम। Periplus ने इसे Sasikrienai नामसे उल्लेख किया है। वामनपुराणमें शिशिराद्रिक पाठ है। (वामनपु० १३।५७)

शशिगच्छ (सं० पु०) शशिकुल। (शत्रुञ्जयमा० १४।२८३)

शशिगुह्या (सं० स्त्री०) यष्टिमधु, मुलेठी।

शशिग्रह (सं० पु०) चन्द्रग्रह ।

शशिज (सं० पु०) शशिनो जायते जन-ड । चन्द्रका पुत्र, बुधग्रह ।

शशितनय (सं० पु०) चन्द्रमाका पुत्र, बुधग्रह ।

शशितिथि (सं० स्त्री०) पूर्णिमा, पूर्णमासी ।

शशितेजस् (सं० पु०) १ विद्याधरभेद । २ नागभेद ।

शशिदेव (सं० पु०) राजभेद, रन्तिदेवका एक नाम । (शब्दरत्ना०)

शशिदेव—व्याख्यानप्रक्रियानामक व्याकरणके प्रणेता ।

शशिदैव (सं० क्ली०) शशी देवताऽस्य अण् । मृगशिरा नक्षत्र । इसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा माने जाते हैं, इसलिये इसको शशिदैव कहते हैं। (बृहत्संहिता० ७।६)

शशिधर (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ एक प्राचीन नगरका नाम ।

शशिधर—एक राजकवि । ये कलचुरिराज नरसिंह देवकी सभामें (११५५-११६५ ई०) विद्यमान थे। इनके पिताका नाम था धरणीधर । राजाके आदेशसे शशिधरने कई एक शिलालिपिकी रचना की थी।

शशिध्वज (सं० पु०) शशी ध्वजे यस्य । १ भल्लाटपुरराज। (कल्किपु० २५ अ०) २ असुरभेद ।

शशिन् (सं० पु०) शशोऽस्यास्तीति शश-इनि । १ चन्द्रमा, इन्दु । २ छप्पयके ५४वें भेदका नाम । इसमें १७ गुरु और ११८ लघु, कुल १३५ वर्ण या १५२ मात्राएं होती हैं। ३ रगणके दूसरे भेदकी संज्ञा । ४ छःकी संख्या । ५ मोती ।

शशिपर्ण (सं० पु०) पटोल, परवल।

शशिपुत्र (सं० पु०) शशिनः पुत्रः । बुधग्रह जो चन्द्रमाका पुत्र माना जाता है।

शशिपुर—विन्ध्यशैल पार्श्वस्थ एक गांव । (भविष्य ब्र०ख० ८।६५)

शशिपुष्प (सं० पु०) पद्म, कमल।

शशिपोषक (सं० पु०) चन्द्रमाका पोषण करनेवाला, शुक्लपक्ष।

शशिप्रभ (सं० क्ली०) शशिनः प्रभेव प्रभा यस्य। १ कुमुद, कोईं। २ मुक्ता, मोती। (त्रि०) ३ चन्द्रमाके सदृश जिसकी प्रभा हो।

शशिप्रभा (सं० स्त्री०) शशिनः प्रभा। ज्योत्स्ना, चांदनी।

शशिप्रभा—एक नागराजकन्याका नाम। नर्मदातीर-स्थित रत्नावतीवासी वज्रांकुश देवको मार कर सिन्धुराजने इनका पाणिग्रहण किया।

शशिप्रिय (सं० पु०) १ कुमुद, कोईं। २ मुक्ता, मोती।

शशिप्रिया (सं० स्त्री०) शशिनः प्रिया। सत्ताइसों नक्षत्र जो चन्द्रमाकी पत्नियां माने जाते हैं।

शशिभागा (सं० स्त्री०) राजा मुचाकुन्दको कन्याका नाम।

शशिभाल (सं० पु०) मस्तक पर चन्द्रमा धारण करनेवाले, शिव, महादेव।

शशिभूषण (सं० पु०) शशी भूषणं यस्य। शिव, महादेव।

शशिभृत् (सं० पु०) शशिनं बिभर्त्तीति भृ-क्विप् तुक् च। शिव, महादेव।

शशिमणि (सं० पु०) चंद्रकान्त मणि।

शशिमण्डल (सं० पु०) चंद्रमाका मण्डल या घेरा, चन्द्रमण्डल।

शशिमत् (सं० त्रि०) शशो विद्यतेऽस्य मतुप्। चन्द्रयुक्त।

शशिमुख (सं० त्रि०) जिसका मुख चन्द्रमाके सदृश हो, अति सुन्दर।

शशिमौलि (सं० पु०) शशी मौलौ यस्य। शिव, महादेव।

शशिरस (सं० पु०) अमृत।

शशिरेखा (सं० स्त्री०) शशिलेखा, चान्द्रमाकी एक कला।

शशिलेखा (सं० स्त्री०) शशिनो लेखा। १ चान्द्रलेखा, चान्द्रमाकी कला। २ गुडूची, गुरुच। ३ सोमराजी, बकुली। ४ एक प्रकारका वृत्त। इस छन्दके प्रति चारणमें १५ करके अक्षर रहते हैं जिनमेंसे ५, १० और १३ वां अक्षर लघु तथा बाकी वर्ण गुरु होते हैं। इस छन्दके ७ और ८वें अक्षरमें यति होती है। ५ षड्क्षरपादक एक प्रकारका छन्द। इस छन्दके प्रथम चार वर्ण लघु और बाकी दो गुरु होते हैं।

शशिवंश (सं० पु०) चन्द्रवंश।

शशिवदन (सं० त्रि०) शशीव आह्लादजनकत्वात् वदनं यस्य। चन्द्रवदन, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाला।

शशिवदना (सं० स्त्री०) १ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण और एक यगण होता है। इसे चौवंसा, चण्डरसा और पादांकुलक भी कहते हैं। (त्रि०) २ चन्द्रमुखी, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखवाली।

शशिवर्द्धन (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

शशिवाटिका (सं० स्त्री०) पुनर्नवा, गदहपूरना।

शशिविमल (सं० त्रि०) चन्द्रमाके समान विमल या स्वच्छ।

शशिशाला (सं० स्त्री०) वह घर जो बहुतसे शीशोंका बना हुआ हो या जिसमें बहुत-से शीशे लगे हुए हों, शीशमहल।

शशिशिखामणि (सं० पु०) शिव, महादेव।
(राजतरङ्गिणी १।२८२)

शशिशेखर (सं० पु०) शशी शेखरे यस्य। १ शिव, महादेव। (हलायुध) २ एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हेरुक, चक्रसम्बर, देव, वज्रकमाली, निशुम्भी, वज्रटीक। (त्रिका०)

शशिशोषक (सं० पु०) चन्द्रमाको क्षीण करनेवाला, कृष्णपक्ष।

शशिसुत (सं० पु०) शशिनः सुतः। चन्द्रमाका पुत्र, बुध ग्रह।

शशिहीरा (हिं० पु०) चन्द्रकान्तमणि।

शशीकर (सं० पु०) चन्द्रमाकी किरण।

शशीयस् (सं० त्रि०) उत्प्लवमान। (ऋक् ४।३२।३)

शशीश (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ स्कन्दभेद।
(किराता० १५।५)

शशोर्ण (सं० क्ली०) शशस्य उर्णा, अभिधानात् क्लीवत्वं शशलोम, खरहेका रोआं।

शशोलुकमुखी (सं० स्त्री०) स्कन्दानुचर मातृभेद।

शश्वत् (सं० त्रि०) १ शाश्वत, जो सदा स्थायी रहे। (ऋक् १।२६।६) २ बहु, ज्यादा। (ऋक् १.११३।८)

शश्वत् (सं० अव्य०) शश-बाहुलकात् वत्। पुनः पुनः, बारंबार, सदा।

शष्कण्डी (सं० स्त्री०) १ वृक्षविशेष, एक प्रकारका पेड़। २ इस पेड़का फल।

शष्कुल (सं० पु०) करंज।

शष्कुली (सं० स्त्री०) शष्कुल गौरादित्वात् ङीष्। १ तिलतण्डुलमाष मिश्रित यवागु। २ कर्णरन्ध्र, कानका छेद। ३ मत्स्यभेद, सौरी मछली। इसका गुण हृद्य, मधुर और तुरव माना गया है। (भावप्र०) ३ पूरी पक्वान्न आदि।

शष्प (सं० क्ली०) शप हिंसायां (खष्पशिल्पशष्पवाष्परूपपर्प-तल्पाः। उण् ३।२८) इति पत्वं निपात्यते। १ बालतृण, नई घास। २ नीलदूर्वा, नीली दूब। ३ विश्वासहानि।

शष्पभुज् (सं० पु०) शष्प भुज-क्विप्। बालतृणभोजनकारी, वह जो नई घास खाता हो।

शष्पभोजन (सं० पु०) नवतृणभोजन, नई घास खाना।

शष्पवत् (सं० त्रि०) शष्प अस्त्यर्थे मतुप् मस्य वः। शष्पविशिष्ट। (शुक्ल यजु० १९।४२)

शष्पिञ्जर (सं० त्रि०) बालतृणकी तरह शीत रक्तवर्ण।

शसन (सं० क्ली०) शस-ल्युट्। १ यज्ञार्थ पशुहनन, यज्ञके लिये पशुओंकी हत्या करना। (रामाश्रम) शस्यते हन्यतेऽत्र इत्यधिकरणे ल्युट्। २ हत्यास्थान, वह स्थान जहां पशुओंका बलिदान होता हो।

शस्त (सं० क्ली०) शस क्त। १ कल्याण, मंगल, भलाई। २ शरीर, वदन, जिस्म। (त्रि०) ३ कल्याणयुक्त, मंगलयुक्त। ४ स्तुत, जिसकी प्रशंसा की गई हो। ५ प्रशस्त, उत्तम। ६ निहत, जो मार डाला गया हो।

शस्त (फा० पु०) १ वह हड्डी या धातुओंका छल्ला जो तीर चलानेके समय अंगूठेमें पहना जाता है। २ वह जिस पर तीर या गोली आदि चलाई जाती है, लक्ष्य, निशाना। ३ मछली पकड़नेका कांटा। ४ जमीनकी पैमाइश करनेवालोंकी दूरबीनके आकारका वह यन्त्र जिसकी सहायतासे जमीनकी सीध देखी जाती है।

शस्तक (सं० क्ली०) अङ्गुलित्राण, हाथमें पहननेका चमड़ेका दास्ताना।

शस्तकेशक (सं० त्रि०) शस्ताः केशो यस्य कन्। प्रशस्त केशयुक्त। (शब्दरत्ना०)

शस्तता (सं० स्त्री०) शस्तस्य भावः तल्-टाप्। शस्तका भाव या धर्म, प्रशस्तता।

शस्ति (सं० स्त्री०) शस-क्तिन्। स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

शस्तृ (सं० त्रि०) प्रशास्ता (ऋक् १।१६२।५)

शस्तोक्थ (सं० त्रि०) प्रशस्त शस्त्रविशिष्ट।
(शुक्लयजु० ८।१२)

शस्त्र (सं० क्ली०) शस्यते हिंस्यतेऽनेन (अभिचिमिदिशसिभ्य क्त्रः। उण् ४।१६३) इति क्त्र यद्वा (दाम्नीशसयुयुजे। पा ३।२।१८२) इति ष्ट्रन्। १ लौह, लोहा। २ अस्त्र, हथियार। अस्त्र और शस्त्रमें प्रभेद—जो हाथसे पकड़ कर चलाया जाता है, उसे शस्त्र, जैसे खड्ग आदि और जो फेंक कर चलाया जाता है उसे अस्त्र कहते हैं, जैसे तीर आदि।

विष्णुपुराणकी टीकामें लिखा है, कि मन्त्रपूत होनेसे उसे अस्त्र और तद्भिन्न होनेसे उसे शस्त्र कहते हैं।

३ खड्ग, तलवार। वैद्यकमें शस्त्र और उसके प्रयोगका विशेष विवरण लिखा है। सुश्रुतमें बीस प्रकारके शस्त्रोंके नाम देखनेमें आते हैं। यथा—मण्डलाग्र, करपत्र, वृद्धिपत्र, नखशस्त्र, मुद्रिका, उत्पलपत्र, अर्द्धधार, सूची, कुशपत्र, आटीमुख, शरारीमुख, अन्तर्मुख, त्रिकूर्चक, कुठारिका, व्रीहिमुख, आरा, वेतसपत्रक, बडिश, दन्तशंकु और एषणी यही बीस प्रकारके शस्त्र हैं। बुद्धिमान् चिकित्सकको चाहिए, कि वे विशुद्ध लौहके कर्मठ लोहार द्वारा ये सब शस्त्र बनवा लें। शस्त्रचिकित्साके शिक्षाकालमें शस्त्रचिकित्सामें पारदर्शी वैद्यसे पहले कोंहड़ा, लौकी, तरबूज, खीरा और ककड़ी आदि काटनेयोग्य द्रव्य सीख कर पीछे शस्त्र कार्य करना होता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ८ अ०)

शस्त्रक (सं० क्ली०) शस्त्रमेव स्वार्थे कन्। लौह, लोहा।

शस्त्रकर्मन् (सं० क्ली०) शस्त्रस्य कर्म। घाव या फोड़ेमें नश्तर लगाना, फोड़ों आदिके चीरफाड़का काम। सुश्रुतमें यह आठ प्रकारका कहा गया है, जैसे,—छेदन,

लेखन, भेदन, विश्रावण, व्यधन, आहरण, एषण्येषण और सेवन वीस प्रकारके शस्त्रों द्वारा इन आठ प्रकारके शस्त्रोंका काम करना होता है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ८ अ०)

शस्त्रकलि (सं० पु०) शस्त्रयुद्ध। (कथासरित्सा० ७१।३००)

शस्त्रकेतु (सं० पु०) एक प्रकारका केतु। यह पूर्वमें उदय होता है। कहते हैं, कि इसके उदय होने पर महामारी फैलती है।

शस्त्रकोप (सं० पु०) शस्त्रस्य कोपः। शस्त्रका प्रकोप।

शस्त्रकोशतरु (सं० पु०) शस्त्रस्य खड्गस्य कोशाइव तरुः। महापिण्डी तरु, बड़ा मैनफल।

शस्त्रक्रिया (सं० स्त्री०) फोड़ो आदिकी चीर-फाड़, नश्तर लगानेकी क्रिया।

शस्त्रगृह (सं० पु०) वह स्थान जहां अनेक प्रकारके शस्त्र आदि रहते हों, शस्त्रशाला, हथियार घर, सिलहखाना।

शस्त्रचूर्ण (सं० क्ली०) शस्त्रस्य चूर्णं। लौहकिट्ट, लौहमल, मण्डूर। (वैद्यकनि०)

शस्त्रजीविन् (सं० त्रि०) शस्त्रेण जीवतीति जीव णिनि। शस्त्राजीव, योद्धा, सैनिक। (वृहत्संहिता १७।२४)

शस्त्रदेवता (सं० स्त्री०) युद्धकी अधिष्ठात्री देवी।

शस्त्रधर (सं० पु०) योद्धा, सैनिक, सिपाही।

शस्त्रधारण (सं० क्ली०) शस्त्रस्य धारणं। शस्त्रग्रहण, हथियार लेना।

शस्त्रधारणजीवक (सं० त्रि०) शस्त्रधारणेन जीवतीति जीव-ण्वुल्। शस्त्राजीव, सैनिक।

शस्त्रधारिन् (सं० त्रि०) १ शस्त्रधारण करनेवाला, हथियारबंद। (पु०) २ योद्धा, सैनिक। ३ एक प्रकारका जन्तु जिसे सिलहपोश भी कहते हैं। ४ एक प्राचीन देशका नाम।

शस्त्रपाणि (सं० पु०) शस्त्रं पाणौ यस्य। शस्त्रहस्त, वह जिसके हाथमें तलवार आदि अस्त्र हो।

शस्त्रपान (सं० क्ली०) शस्त्रस्य पानं। शस्त्रका पानी या आब। (वृहत्संहिता ५०।२२)

शस्त्रप्रकोप (सं० पु०) शस्त्रस्य प्रकोपः। शस्त्रका कोप।

शस्त्रप्रहार (सं० पु०) शस्त्रस्य प्रहारः। शस्त्रका प्रहार, खड्ग आदि शस्त्रका आघात।

शस्त्रबन्ध (सं० पु०) शस्त्र द्वारा बन्धन।

शस्त्रभृत् (सं० त्रि०) शस्त्रं बिभर्त्तीति भृ क्विप् तुक् च। शस्त्रधारी, हथियारबंद।

शस्त्रमय (सं० त्रि०) शस्त्र-मयट्। शस्त्रस्वरूप।

शस्त्रमार्ज (सं० पु०) शस्त्राणि मार्ष्टीति मृज-अण्। शस्त्रमार्ज्जनकर्त्ता। पर्याय—असिधावक, अस्त्रमार्ज्ज, असिधाव, शाणाजीव, भ्रमासक्त। (हेम)

शस्त्रवत् (सं० त्रि०) शस्त्रेण इव इवार्थे वति। १ शस्त्र-तुल्य, शस्त्रके सदृश। २ शस्त्रविशिष्ट, हथियारबंद।

शस्त्रवार्त्त (सं० त्रि०) १ शस्त्रधारी, शस्त्रजीवी। (वृहत्संहिता ५।३३) (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम।

शस्त्रविद्या (सं० स्त्री०) १ हथियार चलानेकी क्रिया। यजुर्वेदका उपभेद, धनुर्वेद जिसमें सब प्रकारके अस्त्र चलानेकी विधियों और लड़ाईके सम्पूर्ण भेदोंका वर्णन दिया गया है।

शस्त्रवृत्ति (सं० त्रि०) शस्त्रं वृत्तिर्यस्य। शस्त्राजीव, शस्त्र ही जिसकी जीविका हो।

शस्त्रशाला (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां बहुतसे शस्त्र आदि रखे हों, शस्त्रगृह, शस्त्रागार।

शस्त्रशास्त्र (सं० पु०) १ यह शास्त्र जिसमें हथियार चलाने आदिका निरूपण हो। २ धनुर्वेद।

शस्त्रशिक्षा (सं० स्त्री०) शस्त्रस्य शिक्षा। शस्त्राभ्यास, हथियार चलानेकी शिक्षा।

शस्त्रहत (सं० त्रि०) शस्त्रेण हतः। शस्त्राघात द्वारा मृत, शस्त्रके आघातसे जिसकी मृत्यु हुई हो। शस्त्राघातसे मृत्यु होने पर उसके अशौचके विषयमें शुद्धितत्त्वमें लिखा है, कि शस्त्रद्वारा हत व्यक्तिका सद्यःशौच और उसकी दाहादि क्रिया होगी।

क्षत हो कर यदि ७ दिनमें मृत्यु हो, तो त्रिरात्र और यदि ७ दिनके बाद हो, तो दश दिन अशौच होता है। किन्तु शस्त्राघातजन्य क्षतसे तीन दिनके बाद मृत्यु होने पर जिस वर्णका जैसा अशौच है, उसके लिये भी वैसा ही अशौच होगा। इस शस्त्राघात शब्दसे क्षतसे इतर शस्त्राघात समझा जायेगा। पारिभाषिक शस्त्राघातको छोड़ समझना होगा। पारिभाषिक शस्त्राघातका

अर्थ इस प्रकार लिखा है, कि पशु, मत्स्य, मृग, दंष्ट्री, शृङ्गी, नख द्वारा हत, उच्चस्थानसे पतन, अनशन, वज्र, अग्नि, विष, बन्धन और जलप्रवेशादि द्वारा जिनकी मृत्यु हुई है, उन्हें भी शस्त्रहत कहते हैं।

शस्त्रहतचतुर्दशी (सं० स्त्री०) शस्त्रहतानां चतुर्दशी युद्धादि हतानां श्राद्धादिकर्माणि प्रशस्तयास्यस्तथात्वं। गौण आश्विनकृष्णाचतुर्दशी, गौणकार्त्तिककृष्णाचतुर्दशी इन दो चतुर्दशी और तिथियोंमें शस्त्रहत व्यक्तियोंका श्राद्ध प्रशस्त है। इसी कारण इन दोनों तिथियोंका नाम शस्त्रहतचतुर्दशी पड़ा है। (श्राद्धविवेक)

शस्त्रहस्त (सं० पु०) शस्त्रं हस्ते यस्य। शस्त्रपाणि, अस्त्रधारी पुरुष, सैनिक।

शस्त्राख्य (सं० पु०) १ केतुभेद। (वृहत्सं ११।३०) २ शस्त्रसंज्ञक।

शस्त्रागार (सं० पु०) शस्त्रशाला, सिलहखाना।

शस्त्राङ्गा (सं० स्त्री०) चाङ्गेरी, खट्टी लोनी या अम्ल-लोनी जिसका साग होता है।

शस्त्राजीव (सं० त्रि०) शस्त्रेण आजीवतीति आ-जीव-अच्। १ शस्त्र द्वारा जो जीविका निर्वाह करता हो, असिजीवी। पर्याय—कान्तपृष्ठ, आयुधीय, आयुधिक, कान्तस्पृष्ठ, कान्तपृष्ठ, शस्त्रधारणजीवक। स्त्रियां ङीप्। २ शाक्तोंके आठ अकुलोंमेंसे एक।

शस्त्राभ्यास (सं० पु०) शस्त्राणां अभ्यासः। अस्त्र-शिक्षा।

शस्त्रायस (सं० क्ली०) शस्त्रार्थं यदायसम्। वह लोहा जिससे अस्त्र बनाये जाते हैं।

शस्त्रायुध (सं० त्रि०) शस्त्र आयुधो यस्य। शस्त्र-विशिष्ट, शस्त्रधारी।

शस्त्रिन् (सं० त्रि०) शस्त्र अस्त्यर्थे इनि। १ शस्त्र-विशिष्ट, जिसके पास शस्त्र हो। २ जो शस्त्र आदि चलाना जानता हो।

शस्त्री (सं० स्त्री०) शस् ष्ट्रन् स्त्रियां ङीप्। छुरिका, छूरी।

शस्त्रोपजीविन् (सं० त्रि०) शस्त्रेण उपजीवतीति जीव-णिनि। जो शस्त्र द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

शस्य (सं० क्ली०) शस (तकिशसिचतियतीति। पा ३।१।९७) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या यत्। १ वृक्षादि-निष्पन्न, फल। वृक्षादिके फलको शस्य कहते हैं। साधारणतः कृषिकार्य्य द्वारा उत्पन्न धान्यादि ही शस्य कहलाता है। अमरटीकामें भरतने लिखा है, कि वृक्ष और लतादिका फल ही शस्य है।

हेमचन्द्रने शस्य शब्दसे धान्यका अर्थ लगाया है। स्मृतिमें लिखा है, कि क्षेत्रोत्पन्न वस्तुका नाम शस्य है।

ग्राम्यशस्य—धान, जौ, गेहूं, चना, तिल, प्रियंगु, दीर्घशालि, कोद्रव और चीना, इन सबको ग्राम्यशस्य कहते हैं। उड़द, मूंग, मसूर, निष्पाव, कुलथी, अरहर, चना और शाण ये भी ग्राम्यशस्य कहलाते हैं।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि ग्राम्य और आरण्य शस्य चौदह प्रकारका है। यथा—धान, जौ, उड़द, गेहूं, चना, तिल, प्रियंगु, ये सात ग्राम्य शस्य और कुलथी, साँवाँ, नीवार, वनतिलवा, कौड़िल्ला, वंशलोचन और महुआ ये सात आरण्य शस्य हैं।

नया शस्य उत्पन्न होने पर विशुद्ध दिन देख भोजन करना होता है तथा भोजनके पहले देवताको निवेदन और पितरोंके उद्देशसे श्राद्ध कर भोजन करना उचित है। मलमासतत्त्वमें इसकी व्यवस्था लिखी है। नव-शस्य भोजनमें ये सब नक्षत्र प्रशस्त कहे गये हैं। यथा—अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, मघा, पुष्या, श्रवणा, पुनर्वसु, और रोहिणी। शरत् या वसन्तकालमें विशुद्ध दिन नवशस्य द्वारा पार्वण विधिके अनुसार श्राद्ध करके नवशस्य भोजन करना होता है।

२ बालतृण। ३ प्रतिभाहानि। ४ फलका सारांश, गूदा। ५ सद्गुण। (त्रि०) शन्स क्यप्। ६ प्रशंसनीय।

शस्यक (सं० पु०) एक प्रकारका रत्न।

शस्यघ्नी (सं० स्त्री०) चोरपुष्पी, चोरहुली।

शस्यध्वंसिन् (सं० पु०) शस्यानि ध्वंसयतीति ध्वंस-णिनि। १ तूर्ण वृक्ष, तून। (त्रि०) २ शस्यनाशक, जिससे शस्यका नाश हो।

शस्यमञ्जरी (सं० स्त्री०) शस्यस्य मञ्जरी। अभिनव,

निर्गत धान्यादि शीर्षक, नई निकली हुई धानकी वाल या सींक। पर्याय—कणिश, कणिष।

शस्यशूक (सं० क्ली०) शस्यस्य शूकं। शस्यका तीक्ष्णाग्र, शस्यकी तीखी वाल या सींक। पर्याय—किंशारु।

शस्यसम्बर (सं० पु०) १ शाल वृक्ष। २ अश्वकर्ण वृक्ष।

शस्याद् (सं० त्रि०) शस्यं अद्-अद्-क्विप्। शस्य-भक्षक। (मुग्धबोधव्या०)

शस्यारु (सं० पु०) क्षुद्र शमीवृक्ष, छोटी शमी।

शहंशाह (फा० पु०) बादशाहोंका बादशाह, महाराजाधिराज, शाहंशाह।

शहंशाही (फा० वि०) १ शाहोंका-सा, शाही, राजसी। (स्त्री०) २ शाहंशाहका भाव या धर्म। ३ शाहंशाहका पद। ४ लेने देनेमें खरापन।

शह (फा० पु०) १ बहुत बड़ा राजा, बादशाह। २ वर, दूल्हा। (वि०) ३ बढ़ा चढ़ा, श्रेष्ठतर। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनानेके समय उसके आरम्भमें होता है। जैसे—शहजोर, शहबाज, शहसवार। (स्त्री०) ४ शतरंजके खेलमें कोई मुहरा किसी ऐसे स्थान पर रखना जहांसे बादशाह उसकी घातमें पड़ता हो, किश्त। ५ गुप्तरूपसे किसीके भड़काने या उभारनेकी क्रिया या भाव। ६ गुड्डी, पतंग या कनकौवे आदिको धीरे धीरे डोर ढीली करते हुए आगे बढ़ानेकी क्रिया या भाव।

शहचाल (हिं० स्त्री०) शतरंजमें बादशाहका वह चाल जो और मोहरोंकी मारी जाने पर चली जाती है।

शहजादा (फा० पु०) १ राजपुत्र, राजकुमार। २ राज्यका उत्तराधिकारी, युवराज।

शहजोर (फा० वि०) वली, बलवान्, ताकतवर।

शहजोरी (फा० स्त्री०) १ बल, ताकत। २ जबरदस्ती।

शहत (अ० पु०) शहद देखो।

शहतीर (फा० पु०) लकड़ीका चीरा हुआ बहुत बड़ा और लम्बा लट्ठा जो प्रायः इमारतके काममें आता है।

शहतूत (फा० पु०) तूत नामका पेड़ और उसका फल। विशेष विवरण तूत शब्दमें देखो।

शहद (अ० पु०) शीरेकी तरहका एक बहुत प्रसिद्ध मीठा, गाढ़ा तरल पदार्थ। यह कई प्रकारके कीड़े और विशेषतः मधुमक्खियां अनेक प्रकारके फूलोंके मकरन्दसे संग्रह करके अपने छत्तोंमें रखती हैं। जब यह अपने शुद्ध रूपमें रहता है, तब इसका रङ्ग सफेदी लिये कुछ लाल या पीला होता है। यह पानीमें सहजमें घुल जाता है। यह बहुत बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः औषधोंके साथ दूधमें मिला कर अथवा यों ही खाया जाता है। इसमें फल आदि भी रक्षित रखे जाते हैं अथवा मुरब्बा डाला जाता है। कभी कभी ऐसा शहद भी मिलता है जो मादक या विष होता है। वैद्यकमें यह शीतवीर्य, लघु, रूक्ष, धारक, आंखोंके लिये हितकारी, अग्निदीपक, स्वास्थ्यवर्द्धक, वर्णप्रसादक, चित्तको प्रसन्न करनेवाला, मेधा और वीर्य बढ़ानेवाला, रुचिकारक और कोढ़, ववासीर, खांसी, कफ, प्रमेह, प्यास, कै, हिचकी, अतीसार, मलरोध और दाहको दूर करनेवाला माना गया है। इसका दूसरा नाम मधु है। मधु देखो।

शहनगी (अ० पु०) १ शस्य-रक्षकका कार्य। २ वह धन जो चौकीदारको देनेके लिये असामियोंसे वसूल किया जाता है, चौकीदारी।

शहना (अ० पु०) १ खेतकी चौकसी करनेवाला, शस्य-रक्षक। २ कोतवाल, नगर-रक्षक। ३ वह व्यक्ति जो जमींदारकी ओरसे असामियोंको विना पोत दिये खेतकी उपज उठानेसे रोकने और उसकी रक्षाके लिये नियुक्त किया जाता है।

शहनाई (फा० स्त्री०) १ बांसुरी या अलगोजेके आकारका पर उससे कुछ बड़ा मुंहसे फूंक कर बजाया जानेवाला एक प्रकारका बाजा जो रोशनचौकीके साथ बजाया जाता है, नफीरी। २ रोशनचौकी देखो।

शहबाला (फा० पु०) वह छोटा बालक जो विवाहके समय दूल्हेके साथ पालकी पर अथवा उसके पीछे घोड़े पर बैठ कर जाता है। यह प्रायः वरका छोटा भाई या उसका कोई निकट सम्बन्धी हुआ करता है।

शहबुलबुल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी बुलबुल। इसका सारा शरीर लाल होता है, केवल कण्ठ काला होता है और सिर पर सुनहले रङ्गकी चोटी होती है।

शहमात (फा० स्त्री०) शतरंजके खेलमें एक प्रकारकी मात। इसमें बादशाहको केवल शह या किश्त दे कर इस प्रकार मात किया जाता है, कि बादशाहके चलनेके लिये और कोई घर ही नहीं रह जाता।

शहर (फा० पु०) मनुष्यकी वह बड़ी बस्ती जो कसबेसे बहुत बड़ी हो, जहां हर पेशेके लोग रहते हों और जिसमें अधिकतर पक्के मकान हों। नगर देखो।

शहरपनाह (फा० स्त्री०) नगरके चारों ओर बनी हुई पक्की दीवार, वह दीवार जो किसी नगरके चारों ओर रक्षाके लिये बनाई जाय, शहरकी चार-दीवारी।

शहरी (फा० वि०) १ शहरसे सम्बन्ध रखनेवाला, शहरका। २ शहरका रहनेवाला, नगर-निवासी, नागरिक।

शहवत (अ० स्त्री०) १ कामातुरता, कामका उद्रेक। २ भोग विलास, विषय; मैथुन।

शहसवार (फा० पु०) वह जो घोड़े पर अच्छी तरह सवारी कर सकता हो, अच्छा सवार।

शहादत (अ० स्त्री०) १ गवाही, साक्ष्य। २ सबूत, प्रमाण। ३ धर्मके लिये लड़ाई आदिमें मारा जाना, शहीद होना।

शहाना (हिं० पु०) १ सम्पूर्ण जातिका एक राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह राग फरोदस्त और कान्हड़ाको मिला कर बनाया जाता है और इसका व्यवहार प्रायः उत्सवों तथा धर्म सम्बन्धी कार्यों में होता है। शास्त्रके अनुसार यह मालकोश रागकी रागिणी है। गानेका समय ११ दण्डसे १५ दण्ड तक है। २ वह जोड़ा जो विवाहके समय दूल्हेको पहनाया जाता है। (वि०) ३ शाहों या बादशाहोंका-सा, राजाओंके योग्य, राजा-सी। ४ बहुत बढ़िया, उत्तम।

शहाना कान्हड़ा (हिं० पु०) सम्पूर्ण जातिका एक प्रकारका कान्हड़ा राग। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

शहाब (फा० पु०) एक प्रकारका गहरा लाल रङ्ग। यह कुसुमके खूब अच्छे और लाल रंगमें आम या इमलीकी छाल मिला कर बनाया जाता है।

शहाबा (हिं० पु०) अगिया बैताल देखो।

शहाबी (हिं० वि०) शहाबके रङ्गका, गहरा लाल।

शहीद (अ० पु०) वह व्यक्ति जो धर्म या इसी प्रकारके और किसी शुभ कार्यके लिये युद्ध आदिमें मारा गया हो, न्यौछावर या बलिदान होनेवाला व्यक्ति।

शांवत्य (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद, शंवत्स्यऋषिके गोत्रापत्य। (आश्व० गृ० ४।८।२६)

शांशप (सं० पु०) शिंशपाया विकारः (पलाशादिभ्यो वा। पा ४।३।१०१) इति अण्। शिंशपाविकार, चमस। यह यज्ञ आदिमें व्यवहृत होता है।

शांशपक (सं० त्रि०) शिंशपाका निकटवर्ती स्थान।

शांशपायन (सं० पु०) मुनिविशेष। (विष्णुपु० ३।६।१६)

शांशपायनक (सं० त्रि०) शांशपायन-सम्बन्धी।

शांशपास्थल (सं० त्रि०) शिंशपास्थल-सम्बन्धी। (पा ७।३।१)

शाइस्तगी (फा० स्त्री०) १ शिष्टता, सभ्यता, तहज़ीब। २ भलमनसी, आदमीयत।

शाइस्ता (फा० वि०) १ शिष्ट, सभ्य, तहजीबवाला। २ विनती, नम्र। ३ जो अच्छी चाल सीखा हो, अदब कायदा जाननेवाला।

शाक (सं० पु० क्ली०) शक्यते भोक्तुमिति शक-घञ्। पत्रपुष्पादि, भाजी, तरकारी, साग। पर्याय—हरितक, शिग्रु, सिग्रु, हारितक। (शब्दरत्ना०)

पत्र, पुष्प, फल, नाल (डंटा) कन्द और स्वेदज अर्थात् छत्राक आदि ये छः प्रकारके शाक कहे गये हैं। ये यथाक्रम उत्तरोत्तर गुरु होते अर्थात् पत्रसे पुष्प गुरु और पुष्पसे फल और फलसे नाल इस प्रकार जानना होगा।

गुण—शाक मात्र ही विष्टम्भी, गुरु, रूक्ष, अतिशय मलवर्द्धक और मलमूत्रनिःसारक। शाकका सेवन करनेसे शरीरको अस्थि, नेत्र, बल, रक्त, शुक्र, बुद्धि, स्मृति और गति विनष्ट होती है तथा अकालमें केश पकता है। शाकमें सभी रोग अवस्थित है अर्थात् शाक भोजन करनेसे सभी रोग होते हैं। इसलिये रोगमात्रमें ही शाकभोजन निषिद्ध है।

प्रवाद है, कि मांससे मांसकी और शाकसे मलकी वृद्धि होती है। शाक भोजन करनेसे केवल मलवृद्धि ही हुआ करती है। भावप्रकाश, सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें शाकवर्गमें शाकोंके नाम, पर्याय और गुण सविस्तार लिखे हैं। यहाँ केवल नाम दिये जाते हैं। गुण और पर्याय आदिका विषय इन्हों सब शब्दोंको देखनेसे मालूम होगा।

शाकसमूहके नाम—वास्तुक, पोतकी, श्वेतमरुषा, लोहित मरुषा, तण्डुलीय, जलतण्डुलीय, पालङ्क, नाड़िक, कालशाक, पट्टशाक, कलम्बी, लोणी, वृहल्लोणी, चाङ्गेरी, चुक्रा, चिञ्चा, हिलमोचिका, शितिवार, मूलपत्रक, द्रोणपुष्पी, यवानी, चक्रवड़, सेहुण्ड, पर्पट, गोजिह्वा, पटोलपत्र, गुड़ची, कासमर्द, चणकशाक, कलायशाक, सार्षपशाक, पुष्पशाक, कदलीपुष्प, शीमाञ्जन पुष्प, शाल्मलीपुष्प, सिमूलपुष्प।

कुष्माण्ड अलाबू आदिको फलशाक कहते हैं। इनका गुण—कुष्माण्ड, कुष्माण्डी, अलाबू, ? तुम्बी, कर्कटी, चिचिण्ड, करेला, महाकोशातकी, पटोल, विम्बि, शिम्बि, कोलशिम्बि, शोभाञ्जन, वृन्ताक, डिण्डिश, पिण्डार' कर्कोटकी, डोडिका और कण्टकारी ये सब फलशाक हैं। नालशाक सर्षपनाल है।

कन्दशाक—शूरण अर्थात् आल आदिको कन्दशाक कहते हैं। यह शाकवर्ग इस प्रकार है—शूरण, आलुक, (यह काष्ठालुक, शङ्खालुक और पिण्डालुक आदि अनेक प्रकारका है) लघुमूलक, गाँजर, कदलीकन्द, मानकन्द, वाराहीकन्द, हस्तिकर्ण, केसुक, कसेरु (केशर), शालूक, ये सब शाकवर्ग हैं। हालका उत्पन्न, अकालमें उत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीटोंसे खाया और अग्नि जलादि द्वारा दूषित किया हुआ शाक वर्जनीय है। ये सब शाक कदापि खाने न चाहिये।

फिर अतिशय जीर्ण अर्थात् पुरातन, रूक्ष, सिद्ध अर्थात् तैलादि स्नेह भिन्न सिद्ध, कुस्थानमें उत्पन्न, कर्कश, अति कोमल, अथवा शीत और व्यालादि कर्तृक दूषित तथा शुष्क, ये सब दोषदुष्ट शाक भी वर्जनीय हैं। इसमें विशेषता यह है, कि मूलक शुष्क होनेसे वह अहित कर नहीं होता।

भूमि, गोमय, काष्ठ और वृक्षादि पर स्वेदज शाक उत्पन्न होता है। सभी प्रकारके स्वेदज शाक शीतवीर्य, त्रिदोषजनक, पिच्छिल, गुरु तथा वमि, अतीसार, ज्वर और कफरोगजनक है। (भावप्र०)

सुश्रुतमें शाकवर्गमें शाकोंके नाम इस प्रकार लिखे हैं—पुष्पफल, कुम्हड़ा, लौकी, तरबूज आदिको शाकवर्ग कहते हैं। यथा—

कुष्माण्ड, कालीन्दक, त्रपुस, एर्वारुक, कर्कारु, शीर्णवृन्त, पिप्पली, मिर्च, सोंठ, अदरक, हींग, जीरा, कुस्तुम्बुरु, जाम्बरी, सुरसा, सुमुख, अर्जक, भूस्तृण, सुगन्ध, कासमर्द, कालमान कुठेरक, क्षवक, खरपुष्प, शिग्रु, मधुशिग्रु, फणिज्झक, सर्षप, राजिका, कुलाहल, वेणु, गण्डिर, तिलपर्णिका, वर्षाभू, चित्रक, मूलकपोतिका लहसुन, प्याज, कलायशाक, जम्बीर, चुचुच, जीवन्ती, तण्डुलीयक, उपोदिका, विम्बीतिका, नन्दी, भल्लातक, छागलान्त्री, वृक्षादनी, फञ्जी, शाल्मली, शेलु, वनस्पति प्रसव, शण, कर्बुदार, कोविदार, पुनर्णवा, वरुण, तर्कारी, उरुवुक, गुलञ्च, विल्वशाक, पुह, मेथी, पालङ्क, वेतशाक, चिल्लिशाक, मण्डूकपर्णी, सप्तला, सुपुणि, सुवर्चला, ब्रह्मसुवर्च्चला, गोजिह्व, मकोय, चकवंड़, वृहती, कण्टकारी, पटोल, वार्त्ताकु, कारवेल्लक, कटकी, मारसा, केवुक, पर्पटक, किराततिक्त, कर्कोटक, निम्ब, कोशातकी, वेत्र, अड़ूस, अर्कपुष्प आदि शाकवर्ग है।

(सुश्रुत सूत्रस्था०)

राजवल्लभमें लिखा है, कि पटोल, वास्तूक, मकोय और पुनर्णवाको छोड़ सभी शाक अपकारी हैं।

(पु०) २ वृक्षविशेष, सागौनका पेड़। पर्याय—शाकवृक्ष, शाकाख्य, खरपत्र, अर्जुनोपम, ककचपत्र, शरपत्र, अतिपत्र, महीरुह, श्रेष्ठकाष्ठ, स्थिरसार, गृहद्रुम। गुण—सारक, पित्तदाह और श्रमनाशक। वल्कगुण—कफनाशक, मधुर, रूक्ष, कषाय। ३ शक्ति, बल, ताकत। ४ शिरीष वृक्ष, सिरिसका पेड़। ५ नृपभेद। ६ द्वीपविशेष, सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। ७ युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहनादि शकराजका संवत्। ८ कर्म, काम। (त्रि०) ९ समर्थ। १० शक जाति-सम्बन्धी। ११ शक राजाका।

शाक (अ० वि०) १ भारी, कठिन। २ दुःख देनेवाला, कड़ा।

शाककलम्बक (सं० पु०) १ प्याज। २ लहसुन।

शाकचुक्रिका (सं० स्त्री०) चिञ्चा, इमली। २ अमलोनीका साग, नोनिया।

शाकजग्ध (सं० त्रि०) शाकभक्षक। (पा ४।१।५२)

शाकजम्बु (सं० क्ली०) जनपदविशेष।

शाकट (सं० त्रि०) शकटस्येदं अण्। १ शकट-सम्बन्धी, गाड़ीका। (पु०) शकटं वहतीति शकट-(शकटादण्। पा ४।४।८०) इत्यण्। २ गाड़ीका बैल या जानवर। ३ गाड़ीका बोझ। ४ खेत। ५ धववृक्ष, धौका पेड़। ६ लिसोड़ा, लभेरा।

शाकटपोतिका (सं० स्त्री०) पोय या पोईका पौधा।

शाकटमुख (सं० क्ली०) पटवास, गन्धचूर्ण। (वैद्यकनि०)

शाकटाख्य (सं० पु०) शाकट-इति आख्या यस्य। धव-वृक्ष, धौका पेड़।

शाकटायन (सं० पु०) शकटस्यापत्यं पुमान्, शकट (नड़ादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति फक्। आठ शाब्दिकोंमेंसे एक शाब्दिक।

"इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादि शाब्दिकाः॥"
(कविकल्पद्रुम)

शाकटायनि (सं० पु०) शाकटायन। (हेम)

शाकटिक (सं० त्रि०) शकटेन गच्छतीति शकट-ठक्। १ शकटगामी, गाड़ीवान। २ गाड़ीवाला। (सिद्धान्तकौ०)

शाकटिकर्ण (सं० पु०) शकटिकर्णका निकटवर्ती स्थान।

शाकटीन (सं० पु०) १ गाड़ीका बोझ। २ प्राचीनकाल की एक तौल जो बीस तुला या दो सहस्र पलकी होती थी। पर्याय—भार, आचित, शकट, शलाट।

शाकतरु (सं० पु०) शाकाख्यः तरुः। शाकवृक्ष, सागोन-का पेड़।

शाकदास (सं० पु०) भार्गितायनके अपत्य एक वैदिक आचार्यका नाम।

शाकद्रुम (सं० पु०) १ वरुण वृक्ष। २ शाक वृक्ष, सागोनका पेड़।

शाकद्वीप (सं० पु०) सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीप। इसके विषयमें महाभारतमें इस प्रकार लिखा है—

जम्बूद्वीपका जैसा विस्तार कहा गया है, शाकद्वीप-का विस्तार उससे दूना है। यह द्वीप क्षीरसमुद्रसे परि-वेष्टित है। वहां बहुतसे पवित्र देश अवस्थित हैं। मानव-गण कभी भी कालग्रासमें पतित नहीं होते अर्थात् उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती। वे सभी तेजस्वी और क्षमता-शाली हैं। वहां दुर्भिक्ष कभी भी नहीं पड़ता। मणि-विभूषित सात पर्वत और अनेक रत्नोंकी आकर नदियां बहती हैं। अति पवित्र देवर्षिगणसेवित महागिरि मेरु ही सर्वप्रधान हैं। इसके पश्चिममें मलयपर्वत विस्तृत है जहांसे मेघ सञ्चालित हो कर सर्वत्र प्रवर्त्तित होते हैं। उसके पूर्व भागमें जलधार नामक एक बड़ा पर्वत खड़ा है। देवराज इन्द्र वहांसे जल ले कर वर्षाकालमें वर्षण करते हैं। उसके बाद अति उन्नत रैवत पर्वत है। भगवान् ब्रह्माके आदेशानुसार रैवती वहां वास करती हैं। सुमेरुके उत्तर अति उन्नत नवीन जलधारकी तरह श्यामल, उज्ज्वल कान्तिसम्पन्न श्यामगिरि प्रतिष्ठित है। मनुष्यगण उस गिरिसे श्यामलत्वको प्राप्त हुए हैं। सभी द्वीपोंमें ब्राह्मण गौरवर्ण, क्षत्रिय लोहित, वैश्य पीत और शूद्र कृष्णवर्णके होते हैं। एक वर्णका कोई नहीं होता, परन्तु श्यामगिरिमें सभी मनुष्य सांवले होते हैं।

श्यामगिरिके बाद अति उन्नत दुर्गशैल है। वहां केशरसम्पन्न सिंह और समीरण पाये जाते हैं। उन पर्वतोंका विस्तार उत्तरोत्तर द्विगुण हैं। उन सब पर्वतों पर महामेरु, महाकाश, जलद, कुमुद, उत्तर, जल धार और सुकुमार ये सात वर्ष हैं। रैवत पर्वतका कौमार वर्ष, श्यामगिरिका मणिकाञ्चन वर्ष और केशर पर्वतका मौदाकी वर्ष है। उसके बाद महापुमान् नामक एक पर्वत है जिसका परिमाण जम्बुद्वीपके समान है। यह महागिरि शाकद्वीपसे घिरा है। वहां शाक नामक एक महाद्रुम अवस्थित है। प्रजा उसकी अनुगामिनी है। उस पर्वत पर अनेक पवित्र जनपद हैं। वहांके लोग भगवान् शङ्करकी आराधना करते हैं। सिद्ध, चारण और देवगण वहां हमेशा जाया करते हैं। प्रजा चार वर्णमें विभक्त है। वे दीर्घजीवी और अपने अपने धर्ममें एकान्त अनुरक्त हैं। वहां चोरका भय नहीं है, जरा मृत्युका अधिकार नहीं है, जिस प्रकार वर्षाकालमें नदियां परिवर्द्धित होती हैं, प्रजागण भी उसी प्रकार धीरे धीरे परिवर्द्धित होती हैं। वहां अनेक शाखाओंमें विभक्त गङ्गा, सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला और चक्षुर्वर्द्धनिका नदी बहती है। इनके सिवा और भी हजारों झरने बहते हैं। इन्द्र उनका जल ले कर वर्षा करते हैं। उन सब नदियोंका नाम और संख्या बतलाना बहुत कठिन है।

मत्स्यपुराणमें भी महाभारतकी अपेक्षा शाकद्वीपका सविस्तर वर्णन और उसके अन्तर्गत अनेक जनपदादिका उल्लेख है* । श्रीमद्भागवत और देवीभागवतोक्त शाकद्वीप आपसमें मिलनेपर भी महाभारत अथवा किसी दूसरे पुराणके साथ उसका मेल नहीं खाता† । किस किस पुराणमें शाकद्वीपका कैसा वर्षविभाग है, उसीकी एक तालिका नीचे दी गयी है।

	मात्स्यमत	विष्णुपुराण	गारुड़	ब्रह्माण्ड	भागवत	देवीभागवत
१म	जलधार या गतभय	जलद	जलद	जलधार	पुरोजव	पुरोजव
२य	सुकुमार या शैशिर	कुमार	कुमार	सुकुमार	मनोजव	मनोजव
३य	कौमार या सुखोदय	सुकुमार	सुकुमार	कौमार	वेपमान	पवमानक
४र्थ	मणीचक या आनन्दक	मणीचक	मणीचक	मणीचक	धूम्रानीक	धूम्रानीक
५म	कुसुमोत्कर या सोमक	कुसुमोद	कुसुमोद	कुसुमोत्तर	चित्ररेफ	चित्ररेफ
६ष्ठ	मैनाक या क्षेमक	मौदाकि	मौदाकि	मौदाक	बहुरूप	बहुरूप
७म	ध्रुव या विभ्राज	महाद्रुम	महाद्रुम	महाद्रुम	विश्वाधार	विश्वधृक्

कोई कोई कहते है, कि कल्पभेदसे नामभेद हुआ है। जो हो, प्राचीन नाम विलुप्त होनेसे अभी शाकद्वीपकी वर्त्तमान अवस्थितिका निरूपण करना कठिन हो गया है। भिन्न भिन्न पुराणमें शाकद्वीपके सम्बन्धमें नाना मत दिखाई देने पर भी मत्स्यपुराण और महाभारतका मत एक सा रहनेसे दोनों ही मत ग्रहण करने योग्य हैं।

मत्स्य और महाभारतके मतसे जम्बूद्वीप (जिसका अधिकांश ले कर ही भारतवर्ष बना है) के बाद ही शाकद्वीप है, मेरु या सुमेरु इसकी एक सीमा है। ग्रीक-ऐतिहासिक हिरोदोतसने भी लिखा है,—हिन्दुस्तान (India proper) और सिकदिया (Scythia) के मध्य हिमदेश (Hemodes या Hemodus) नामक महागिरि पड़ता है। वर्त्तमान मध्यएशियाका पामीर नामक गिरि ही पुराणोक्त मेरु या सुमेरुका दक्षिणांश समझा जाता है।

ग्रीक लोगोंके मतसे हिमदेशमें (Hemodes) देवताओं का वास था। पुराणके मतसे भी मेरु या सुमेरु-शिखर पर देवगण रहते हैं। अतः पामीर और तत्-संलग्न तुर्किस्तान तक विस्तृत पर्वतमालाको ही जम्बूद्वीप और शाकद्वीपका व्यवधान मानना होगा। अति पूर्वकालमें इस दुर्गम प्रदेशमें आसानीसे कोई भी नहीं जा सकता था और दोनों देशके लोगोंके साथ परस्पर सम्बन्ध रहनेसे अनेक कल्पित आख्यान प्रचलित हुए होंगे।

पारस्य देशीय पूर्वतन राजाओंको प्राचीनतम शिला-लिपिमें शक वा शकजातिका उल्लेख है। भारतीय शक कुशनोंकी मुद्रामें भी 'शाक' नाम पाया जाता है। इस शक या शाकका दियोदोरस, ष्ट्राबो आदि पाश्चात्य ऐतिहासिक और भौगोलिकोंने सिकदोय¶ (Scythian) या साकितइ (Sakitai) नामसे उल्लेख किया है।

ष्ट्राबोने लिखा है,—कास्पीयसागरकी पूर्वाञ्चलवासी सभी जातियां सिकदी कहलाती हैं। सागरके ठीक पार्श्वमें ही दहो (Dahae) है। इससे कुछ पूरब मस्सगेतइ (Massagetai) और साकीका वास है।

* मत्स्यपुराण १२२ अध्याय द्रष्टव्य।

† भागवत ५म स्कन्ध २० अध्याय, देवीभागवत ८ स्कन्ध १३ अ० द्रष्टव्य।

¶ Scythae = शाकद्वीपी।

किन्तु इन सब जातियोंका विशेष विशेष नाम है। ये लोग एक जगह स्थायी भावसे नहीं रहते। इन लोगोंमें असि (Asi), पसियानी (Pasiani), तोचारी और सकरवलोका नाम प्रसिद्ध है। इन लोगोंने ग्रीकोंसे वक्त्रिया (Bactria)* जीता था। सार लोगोंने (Sacae) एशियामें प्रवेश कर किमेरी (Cimmerae) लोगोंकी तरह वक्त्रिया और अर्मेनियाके प्रधान देशोंको अधिकार किया था तथा उनके नामानुसार वह स्थान शाकसेनी (Sacasenae) नामसे प्रसिद्ध हुआ¶।

दियोदोरसने लिखा है,—"शाक (Sacae or Scythian) लोगोंका आदि वासस्थान अरक्षेसके ऊपर था। एल्ला (Ella=इला) नामकी पृथ्वीजाता एक कुमारीसे यह जाति उत्पन्न हुई है। इस कुमारीकी कमरसे ऊपर नारी सी और नीचे सर्प सी आकृति थी। जुपिटरके औरससे उस कुमारीके गर्भसे सिकदिस् (Scythes) वा शाक नामक एक पुत्रने जन्मग्रहण किया। इसके दो पुत्र थे, पालि (Palis) और नाप (Napas), दोनों ही महावीर समझे जाते थे। उनके नामानुसार पालिया और नापिया जातिका नामकरण हुआ है। उन्होंने बहुदूरवर्ती इजिप्टदेशमें नीलनद तक अधिकार किया था तथा अनेक जातियोंको हराया था। उनके प्रभावसे शाकराज्य पूर्वसागरसे कास्पीय और मेवती (Maeotis) हृद तक फैल गया था। इस जातिके अनेक राजे राज्य कर गये हैं। उनके वंशसे शाक (Sacae), मस्सग (Massagetai), अरिअस्प (Arlaspa)† आदि अनेक श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई है। उन्होंने बहुतेरे साम्राज्योंको विपर्यस्त कर आसिरीय और मिदीयको जीता था तथा सौरमतीय (Sauromatae) लोगोंको अरक्षेसके किनारे बसाया था।"+

पूर्वतन ग्रीक ऐतिहासिकोंके वर्णनानुसार वर्त्तमान यूरोपीय पुराविदोंने स्थिर किया है, कि वर्त्तमान तातार, एशियाटिक रूसिया, साइबेरिया, मस्कोरी, क्रिमिया, पोलण्ड, हुङ्गेरीका कुछ अंश, लिथुयनिया, जर्मनीका उत्तरांश, स्वीडेन, नारवे आदि देशोंको ले कर प्राचीन सिकदिया (या शाकद्वीप*) विस्तृत था।

शाकद्वीपमें वर्ण-विभाग।

अभी देखा जाता है, कि शाकद्वीप जम्बूद्वीपके बाद ही हुआ। वर्त्तमान तुर्किस्तान, साइबेरिया, एशियास्थ रूस, पोलण्ड आदि शाकद्वीपके मध्य ठहराया गया। किन्तु इन सब स्थानोंमें वर्ण-विभाग प्रचलित था, इस भारतकी तरह वहां आर्य्यसमाज था, इसका प्रमाण ही क्या है?

बहुतेरे शाकद्वीपको म्लेच्छदेश बतलाते हैं, पर हमें जो प्राचीन प्रमाण मिला है, उससे जाना जाता है, कि शाकद्वीप पूर्वकालमें कभी भी म्लेच्छदेश नहीं समझा जाता था। पूर्ववर्णित महाभारतके वर्णनसे ही वह बहुत कुछ प्रमाणित होता है। अब देखना चाहिये, कि शाकद्वीपमें वर्णविभाग किस प्रकार प्रचलित था?

महाभारतमें लिखा है—उस शाकद्वीपमें पुण्यप्रद लोकप्रसिद्ध चार जनपद हैं, यथा—मग, मशक, मानस और मन्दग। मग-विभागमें स्वकर्मनिरत श्रेष्ठ मग ब्राह्मणोंका वास, मशक-विभागमें धार्मिक और सर्वकामप्रद मशक नामक क्षत्रियोंका वास, मानस-विभागमें सर्वकामसम्पन्न, धर्मार्थतत्पर और शूर मानस नामक वैश्य धार्मिकोंका वास तथा मन्दग-विभागमें नित्यधर्मनिरत मन्दग नामक शूद्रोंका वास है। वहां राजा नहीं हैं या दण्डधारी भी नहीं है। वे धार्मिक मनुष्य अपने धर्मके प्रभावसे एक दूसरेकी रक्षा किया करते हैं।

(भीष्मपर्व ११ अध्याय)

विष्णुपुराण (२।४।६९-७१)में भी लिखा है—मग,

---

* पौराणिक नाम वाह्लिक।

¶ Strabo, lib, xi

† अरि-अस्प=आर्याश्व (संस्कृत)

+ Diodorus Siculus, Book II.

* कोई कोई कह सकते हैं, कि महाभारत और मात्स्यके मतसे जब शाकद्वीप क्षीरोदसागरवेष्टित है, तब हम किस प्रकार उक्त विस्तृत भूभागको शाकद्वीप मान सकते हैं। जिस भूभागके दो ओर जल है, पुराणमें उसीको द्वीप कहा है। पूर्वोक्त भूभागके दो ओर जो जल है उसे सब कोई स्वीकार करेंगे।

मागध, मानस और मन्दग ये चार वर्ण हैं। मगगण सर्वब्राह्मणश्रेष्ठ, मागधगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दगगण शूद्र हैं। इस शाकद्वीपमें सूर्यरूपधारी विष्णु वास करते हैं।

भविष्यपुराण और साम्बपुराणमें भी ठीक वैसा ही लिखा है,—जम्बूद्वीपके बाद विख्यात शाकद्वीप है। वहां चातुर्वर्ण्यसमायुक्त जनपद हैं। उस जनपद (और वहां बसनेवाली चार जाति)-का नाम मग, मसग, मानस और मन्दग या मन्दस है। मगगण ब्राह्मण, मसगगण क्षत्रिय, मानसगण वैश्य और मन्दसगण शूद्र समझे जाते हैं। उनमें सङ्कर वर्ण नहीं है। सभी धर्माश्रित हैं। धर्मका किसी प्रकारका व्यभिचार न रहनेसे प्रजा एकान्त सुखी हैं। मेरे (अर्थात् सूर्यके) तेज द्वारा वे विश्वकर्मासे सृष्ट हुए हैं। उनके लिये वेदोक्त विविध स्तोत्र और गुह्य विषय द्वारा मैंने चार वेद प्रकाश किये हैं।

उपरोक्त पौराणिक प्रमाणसे शाकद्वीपमें जो चार वर्ण थे उसे अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। महाभारतकी 'मशक' और भविष्योक्त 'मसग' नामक क्षत्रिय जाति है जो ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतस और ष्ट्राबो प्रभृति द्वारा Massagetae अर्थात् मस्‌ सग नामसे वर्णित हुई है, उसमें अब कोई सन्देह रह नहीं जाता। साकितई या शाकद्वीपमें* इस मसगके अलावा दूसरी जातिका वास था, यह भी ग्रीक ऐतिहासिकगण लिपिबद्ध कर गये हैं। दियोदोरसने और भी लिखा है, कि उस मसग आदि वीर जातिने ही असुर (Assyria) और मद्र (Media)को जीत कर अरक्षसके किनारे¶ 'सौरमतीय' (Sauromatian = सूर्योपासक मग?)

लोगोंको प्रतिष्ठित किया था। भागवतादि किसी किसी पुराणमें लिखा है, कि प्रियव्रतके पुत्र मेधातिथि शाकद्वीपके अधीश्वर हुए थे। अतएव अतिप्राचीन कालमें आर्यप्रभाव-विस्तारके साथ वहां भी जो चातुर्वर्ण-समाज सङ्गठित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

बहुतोंका विश्वास है, कि मध्य एशियावासी प्राचीनतम आर्यसन्तानोंने भारतमें आ कर उपनिवेश बसानेके पीछे यहांके ब्रह्मावर्त्त-प्रदेशमें चातुर्वर्ण्य समाज सङ्गठित किया था। किन्तु अभी वे सब बातें सत्य प्रतीत नहीं होंगी। वैदिक आर्योंके समयसे जो चार वर्ण स्थिर हुए थे, मध्य-एशियासे ही जो वर्ण-विभागकी सृष्टि हुई थी, वह अभी बिलकुल असत्य प्रतीत नहीं होता। इराणीय (आर्य) और तुराणीय दोनों प्राचीन समाजोंमें ही वर्णभेद हुआ था, यह पुराणाख्यानसे बहुत कुछ जाना जाता है।

जो प्रचलित पुराणोंके आख्यानोंको अतिप्राचीन नहीं मानते, उन्हें विश्वास दिलानेके लिये अपने ऋग्वेदोक्त चार वर्णविभाग और प्राचीन पारसिकोंके आदि धर्मशास्त्र जन्द अवस्ताका उल्लेख कर सकते हैं। जन्द अवस्ताके अन्तर्गत 'यश्न' नामक विभागमें १ आथ्रव, २ रथएताव, ३ वाशत्रियफसुयन्त्र और ४ हुइति इन चार वर्णोंका उल्लेख है। (यश्न १९।४६) यश्नके संस्कृत टीकाकार नेरियोसिंहने उन चार शब्दोंका यथाक्रम इस प्रकार अर्थ लगाया है, १ आचार्य, २ क्षत्रिय, ३ कुटुम्बिन् और ४ प्रकृतिकर्मन्। इन चार प्रकारके लोगोंके उल्लेखके पहले ही यश्नमें (१९।४४) देखा जाता है, "यह जो आदेश अहुरमजद कहते हैं, उसे चार पित्र वा श्रेणी ही मानो।" इसके सिवा यश्नकी दूसरी जगहमें भी (१४।६) लिखा है—आथ्रव (वा आचार्य) रथएस्ताओ (रथस्थ या क्षत्रिय) और वाशत्रियफसुयन्ट (कुटुम्बी अर्थात् वैश्य) ये तीन श्रेणी ही मज्दीय धर्मकी शक्तिस्वरूप है। इस भारतमें भी जैसे प्रथम त्रिवर्णको ही सर्वश्रेष्ठ और आर्यसमाजकी शक्तिस्वरूपा बताया है अग्निपूजक इराणियोंके सुप्राचीन धर्मग्रन्थोंमें भी वैसा ही देखा जाता है। अवस्ता शास्त्रके श्रेणीको आलोचना कर पाश्चात्य पण्डित कार्णसाहबने लिखा है,—

---

* Vide Pinkerton's Researches on Goth, vol. 11 and Tod's Rajasthan, vol, I. 57-61,

¶ वर्त्तमान नाम आकसस, महाभारतोक्त चक्षु। टाडने उद्धृत किया है, "Sakitai, a region at the fountain of the Oxus and Jaxartes, Styled Sakiti from the Sacoe,

See D, Anville's Anc, Geog,

"It is thus established that according to the Zend Avesta the first class (pishtra) consists of teachers or priests, of Brahmans, the second of knights, Kshatriyas, exactly in India consequently a division of the nobility into Brahmans and Kshatriyas, and the precedence of the former over all the classes, is not the work of the Indian Brahmans"

शाकद्वीपका जो स्थान निर्देश किया गया है, उसमें वर्त्तमान पारस्यदेशके उत्तरांशमें ही शाकद्वीपकी सीमा आरम्भ है। अवस्ता पारसियोंका प्राचीनतम धर्मशास्त्र है। इस अवस्तामें जब (आस्तिक धर्मप्रवर्त्तक जरथुस्त्रके समय) चार वर्णोंका प्रसङ्ग मिलता है, तब शाकद्वीपके चार वर्णोंके सम्बन्धमें और कोई संदेह नहीं रह जाता।

पारस्य राज्यके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि खृष्ट-पूर्व छठी और ७ वीं सदीमें सिकदीय या शाकद्वीपीयगण अत्यन्त प्रबल हो उठे थे। पारस्यसम्राट् दरायुस देश जीतनेकी आशासे ५१५ ई०सन्‌के पहले पुल द्वारा वासफोरस प्रणाली और दानियुव नदी पार कर शकोंके राज्यमें घुसे; किन्तु विफल-मनोरथ हो उन्हें लौट आना पड़ा था। फिर यह भी जाना जाता है, कि उत्तरमद्र (Media) के राजाओंने ही सबसे पहले आस्तिक जरथुस्त्र-धर्मका प्रचार किया था। हिरोदोतसने लिखा है, कि पारस्य सम्राट्‌गण उत्तरमद्रोंमें (Medians) से ही पूर्वतन पारसिक पुरोहित निर्वाचित करते थे। वे सब अग्निपूजक पुरोहितगण मग या मगर नामसे प्रसिद्ध थे।

प्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंमेंसे बहुतोंने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंने (Scythians) समस्त उत्तरमद्र पर आधिपत्य फैलाया और सौरमतियोंको प्रतिष्ठित किया था। सौरमतीय या सूर्योपासकगण पारसिकोंके निकट मगुस या मग, हिन्दूपुराणमें 'मग' या 'मगस' और प्राचीन ग्रीकोंके निकट 'मगी' नामसे ख्यात हुए थे।

कालक्रमसे उन मग पुरोहितोंका प्रभाव समस्त सभ्य जगत्‌में फैल गया था। बहुत दिनों तक पारस्यके प्रतापशाली सम्राट्‌गण इन मगपुरोहितोंका प्राधान्य और शिष्यत्व स्वीकार कर गये हैं। इस मग-पुरोहित वंशके सुप्रसिद्ध जरथुस्त्रने अग्निपूजाका प्रचार किया। इस उपलक्षमें वे अवस्ता शास्त्रका प्रचार कर बुद्ध, ईसाई, चैतन्यादिकी तरह सभ्य जगत्‌में अविनश्वर नाम छोड़ गये हैं।

पाश्चात्य-मत।

वर्त्तमान पुरातत्त्वविद् और भौगोलिकोंने विशेष अनुसन्धान द्वारा ग्रीक इतिहासोक्त स्किदीय जातिके (Scythian) वासस्थान स्किदियाको ही (Scythia) प्राचीन शाकद्वीप बताया है। सभ्यता और ज्ञानमार्गमें अग्रसर हो कर ग्रीक लोगोंने नाना स्थानोंमें जा उपनिवेश बसानेकी चेष्टा की। खृष्टपूर्व ७ वीं सदीके मध्यभागमें एक दल ग्रीक कृष्णसागरके उत्तरी किनारे बस गये। उस समय उन लोगोंने रूस राज्यके दक्षिणस्थ तृणाच्छादित ष्टेपी नामक प्रान्तर भागमें स्कोलोटी (Scoloti) नामकी जातिको वास करते देखा था। उस स्कोलोटी जातिका प्रकृत नामसे वर्णन न करके ग्रीकोंने उनका नाम स्किदीय रखा है। तभीसे शाकद्वीपी लोग प्राच्यतत्त्व अधिवासोंके इतिहासमें स्किदीय नामसे प्रसिद्ध हैं।

हेसियडमें (Strabo vii p. 300) ८०० ई० सन्‌के पहले और हेरोदोतस (Herod iv 15) के वर्णनमें ६८६ ई० सन्‌के पहले शाकद्वीपवासीके वाणिज्य प्रभावका परिचय है। ग्रोकनिससवासोके अरिष्टियस स्किदियोंके मध्य एशियाके वाणिज्य विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। हिरोदोतस और हिपोक्रेटिसकी लिखित विवरणी पर अच्छी तरह विचार करनेसे मालूम होता है, कि स्किदीय जातिकी वासभूमि बहुत दिनों तक यूरोपके दक्षिण पूर्वांशमें ही थी तथा उसके पास ही शर्मशीय, बुदनो, गेलिनी, थाइसापेटी, और आइर्यकि आदि अनेक भिन्न भिन्न जातियां रहती थीं। स्किदीय लोगोंका इनके साथ वाणिज्य-सम्बन्धमें इतना घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था, कि आपसमें आचार-व्यवहारमें बहुत कुछ सदृशता भी दिखाई देती थी। इस कारण ग्रीकोंने उन लोगोंको भी स्किदीय कह कर घोषित किया।

हिरोदोतस (iv. 101) ने लिखा है, कि स्किदिय, प्रदेशका भूपरिमाण ४००० वर्ग ष्टाडिया तथा यह इस्टरसे पलासमियोटिस और समुद्रतटसे मेलाञ्चलिनो तक विस्तृत था। किन्तु उनकी इस उक्तिसे स्किदीया-प्रदेशकी प्रकृत सीमा निर्देश नहीं हो सकती। परन्तु इतना जरूर कहा जायेगा, कि वह यूरोपके दक्षिणपूर्वांश में कार्पेथियन पर्वतमाला और दनाई (डन) नदोके मध्यस्थलमें अवस्थित था। उन्होंने यह भी कहा है, कि इस स्किदीय वा शकजातिका आदिवास एशिया भूभागमें था। ये लोग मङ्गोल जातिके ही एक अंश हो सकते हैं। मसग (Massagetae) जाति द्वारा जन्मभूमिसे भगाये जाने पर ये आराक्सस (Araskes) नदी पार कर उत्तरी पथसे यूरोप आये और वहांके किमेरिय (Cimmerians) लोगोंको भगा कर वहीं रहने लगे। शकलोगोंकी वासभूमि पीछे शाकीयसे स्काइथी (Scythae) कहलाने लगी। किसी समय शाकद्वीपवासी शकोंने यूरोपमें जा कर उपनिवेश बसाया था, उसका पता लगाना कठिन है। पर हां, यदि राजा आर्डिसके राजत्वकालमें ६४० ई० सनके पहले किमारियोंका लिडया-लुण्ठन शकजाति कर्तृक पराभवका परवर्त्ती कारण माना जाय, तो उसके पहले ही यूरोपमें शकजातिका अभ्युदय हुआ था, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है।

यूरोपमें आ कर शकगण जो केवल रूसके दक्षिणस्थ विस्तीर्ण ष्टेपीप्रान्तरमें आबद्ध थे, सो नहीं कृषिकार्यके लिये उस प्राचीन तृणभूमिका परित्याग कर उन लोगोंने धीरे धीरे नदीतीरवर्त्ती स्थानोंको अधिकार किया था। अलूता और दानिउब (Atlas and Ister) नदीके मध्यवर्त्ती ग्रेट-वालाचिया प्रदेश भी उनके हाथ लगा था। उसके उत्तर ट्रान्सिलभानिया देशमें अगथासियन जातिका उपनिवेश था। वे लोग आर्यवंश सम्भूत और थ्रेसियोंके आचारसम्पन्न थे। निष्टर (Dniester) नदी-तट पार कर ग्रीक लोग जहां तक आनेमें समर्थ हुए थे, वहां तक उन्होंने शकजातिका वास देखा था। वागनदीके किनारे उन लोगोंने यवनभावापन्न कालिपिडि नामक एक शकजातिको (Graeco-Scythian Callipidae) और उत्तर नदीके एकसहिपयस नामकी पूर्वशाखाके किनारे कृषिकर्मनिरत एक दूसरा शक उपनिवेश देखा था। वे लोग शस्यादिकी रफ्तनी करते थे। निपर नदीके बांए किनारे अवस्थित 'वनभूमि' को पार कर शकजातिका एक दूसरा उपनिवेश मिलता है। ये लोग बोरिस्थिनियन नामसे प्रसिद्ध थे। गेरहु या कनस्कामें नदीसीमा तक पूर्वांशमें कृषिजीवी और भ्रमणशील शकजातिका वास था। वे लोग हिपाकाइरिस या मोलोच्छनाके नदी सैकतवर्त्ती उर्वर-प्रदेशमें ही रहते थे। गेड्हू नदीके पूरब क्रिमिया पर्यन्त राज-शकोंका (Royal horde of Scythians) अधिकार विस्तृत हुआ था। इसके दक्षिण पार्वत्य टौरीय जातिका वास था। आजफसागरके उपकूलसे ले कर कोमिन और डान नदी तक फिरसे शकराजोंका अधिकार फैल गया। यहांसे ष्टेपीकी ओर २० दिनका रास्ता तै करने पर मेलाञ्चलेनो जातिकी वासभूमि देखी जाती है।

ऊपरमें जो शकजातिके उपनिवेशका विषय कहा गया, उससे जाना जाता है, कि शक लोगोंने यूरोपमें आ कर विभिन्न स्थानमें भ्रमणशील जातिकी तरह वास किया था। उस समय उन्होंने प्राचीन शकजातिको योद्धृप्रकृतिका कुछ भी परिचय न दिया। हिपोक्रेटिसके समय तक (Ed, Littri ii 22) शक लोग अन्यान्य वर्वरजातिकी तरह विशेष बलिष्ठ और वीरचेता समझे न जाते थे। दृढ़काय, मांसल और रक्ताभवर्णविशिष्ट स्वास्थ्यवान् पुरुष समझे जाने पर भी उन्होंने साहसिकताका उतना परिचय नहीं दिया था। आमरक्त और वातकी पीड़ासे तथा ध्वजभङ्ग और वंध्यारोगसे शक लोग बहुत कष्ट पाते थे।

हिपोक्रेटिसका वर्णन पढ़नेसे जाना जाता है, कि यह शकजाति मङ्गोलीय वंशसे उत्पन्न हुई है। अध्यापक A, Von, Gutschmid-का कहना है, कि आकृतिगत सदृशता देख कर शकोंको मङ्गोल जातीय कहना समीचीन नहीं है। क्योंकि, उस तृणप्रान्तरके अधिवासीमात्रका ही दैहिकगठन ऐसा ही देखा जाता है। ज्युस (Zeuss)ने शकजातिकी भाषा पर्यालोचना

कर प्रमाणित किया है, कि यह जाति आर्य और औप-निवेशिक इरानियोंकी एक शाखामात्र है। किन्तु इस विषयमें हिरोदोतसकी उक्ति ही अखण्डनीय प्रमाण है। उनका कहना है, कि शक और शर्मतीय जातिकी भाषा परस्पर अनुरूप है। शर्मतीय जाति निःसन्देह आर्य-समाजभुक्त है तथा एक मद्र उपनिवेश कह कर स्वीकृत हुआ है। इससे मालूम होता है, कि उस समय अक्षु और जक्षर्तेश इन दोनों नदियोंके अववाहिकाभुक्त तृण मय प्रान्तरसे ले कर हुंगेरी राज्यके पुगृतास तक विस्तीर्ण भूभाग भ्रमणशील आर्य जातियोंके अधिकारमें था।

शकजातिके देववृन्दका जैसा वर्ण कहा गया है, वह एकमात्र आर्य देवतामें ही दिखाई देता है। उनकी रन्धनशालाकी प्रधान अधिष्ठात्री देवीका नाम तविती है। ये ही देवताओंकी सर्वश्रेष्ठा हैं। उसके बाद स्वर्गपति पापियुस और उसकी पत्नी पृथ्वीदेवी आपिया सूर्यदेव इतोसिरस है। अरिम्पासा उन लोगोंकी प्रजननदेवी हैं। ये ही फिर स्वर्गकी रानी मानी जाती हैं। हिरोदोतसने 'हिराक्लिस' और 'अोरेरस' इस ग्रीक नामसे दो शक देवताओंका उल्लेख किया है। ये दो देवता सभी सम्प्रदायके शकोंमें देखे जाते हैं। राज-शकोंमे थमिमासद्स नामक एक देवता हैं। समुद्रदेव कह कर इनका उल्लेख किया गया है। इन सब देवताओं-को वे प्रकृत इराणीय पद्धतिके अनुसार मूर्त्तिप्रतिष्ठा-पूर्वक अलङ्कारादि द्वारा सजाते नहीं थे तथा उनके लिये वेदी और मन्दिर भी नहीं बनवाते थे। केवल एक वेदीके ऊपर कटे वृक्षको डालियोंको स्तूपाकारमें रख उसमें एक तलवार ऊर्द्ध्वमुखसे खड़ी कर आरेरस मूर्त्तिकी कल्पना होती थी।

ग्रीक ऐतिहासिक हिरोदोतसने पारस्यपति दरायुस-के पहले सात शाकपतिका उल्लेख किया है, यथा— स्पर्गपीठ, लियक, नूर, सौलिक और इदन्थुरस। स्वर्ग-पीठके समय (६४६ ई० सन्के पहले) ओलवीय शहर प्रतिष्ठित हुआ तथा इदन्थुरसके समय (५१३ ई० सन्के पहले) दरायुसके साथ शाक लोगोंको लड़ाई छिड़ी तथा पारस्यपतिके हाथसे ही शकोंका मान मर्द्दन हुआ।

यूरोपके दक्षिणांशस्थित पारस्याधिपके नष्टाधिकार-भुक्त जनपद जब यवनविप्लवसे तहस नहस हो गया, उसी समय शाकोंने थे सको जीता था। उनके आक्र-मणसे भयभीत हो मिलतियादिस (४९५ ई० सन्के पहले) राज्य छोड़ भाग गया था। इस समय शाक लोग कहीं एशिया पर भी न चढ़ाई कर दें, इस आशङ्का-से दरायुसने आबिदस नगरोंको जला डाला। (Strabo xiii, p. 591) शाक लोगोंने भी इस समय एशिया विजय-में सहायता पानेकी आशासे क्लिओमेनेसके पास स्पार्टा-में दूत भेजा था। (Herod, VI 84) शाकपति स्काईलेस के समयसे ही यूरोपीय शाकोंके जातीय चरित्र परि-वर्त्तन और अधोगतिका सूत्रपात हुआ। उक्त शाकपति ग्रीक रीतिके अवलम्बन करने तथा बाकस उत्सवमें शामिल होनेसे मार डाले गये।

इसीके बाद शाकजातिकी पालि नामक एक शाखाने डान नदी पार कर पूर्वदिशासे आ 'नाप' नामक एक दूसरी शाखाको परास्त किया। इस समयसे ही इस जातिमें अन्तर्विप्लवका सूत्रपात हुआ। पेरिप्लुसके वर्णनसे जाना जाता है, कि हिरोदोतसके समय शाक-लोगोंका जैसा विस्तृत अधिकार था, इस समय भी (३४६ ई० सन्के पहले) उसका व्यतिक्रम नहीं हुआ, केवल पूर्वकी ओर सामान्य परिवर्त्तन हुआ था। इसके पहले ही सौरमतीयगण डान नदी तक अधिकार कर चुके थे। अतिस (Ateas) उस समय भी पूर्वसीमा-वद्ध स्किदीय राज्यका शासन कर रहे थे। ३३६ ई० सन्के पहले माकिदनपति फिलिपने दानियुवके निकट अतिसको परास्त किया। दियोदोरसने लिखा है, कि सौरमतीय लोगोंने ही स्किदीयाके अधिवासियोंको (३४६ से ३३६ खृष्ट पूर्वके मध्य) जड़से उखाड़ दिया था। जो हो, माकिदनके अभ्युदयके साथ साथ पाश्चात्य जगत्से शाकोंका प्रभाव विलुप्त हुआ। १०० ई० सन्के पीछे पाश्चात्य इतिहासमें इस पराक्रान्त वीर जातिका कोई सन्धान नहीं मिलता।

पाश्चात्य जगत्में इस जातिका प्रभाव विलुप्त होने पर भी प्राच्य जगतमें इनका प्रभाव अक्षुण्ण रहा। भारतवर्षमें प्रवेश करके यह जाति प्रबल प्रतापसे राज्य-

शासन कर गई है। भोजक ब्राह्मण शब्द और भारतवर्ष शब्द में शकाधिकार प्रसङ्ग देखो।

माकिदनवीर अलेकसन्दरने पंजाबमें जिस पराक्रान्त वीर जातिका मुकावला किया था, वे सभी शाकजातिकी किसो न किसी शाखाके अन्तर्भुक्त थे। केवल पंजाबमें ही क्यों, एक समय भारतवर्षके पूर्वांशमें भी शाक लोगोंने अपना प्रभाव फैलाया था। जिस वंशमें बुद्ध शाक्यसिंहका अवतार हुआ, उस शाक्यवंशको भी बहुतेरे शाकद्वीपी समझते हैं। शाक्य वंश और शाकद्वीपीयकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जो पौराणिक आख्यायिका प्रचलित है, उसमें उतना भेद नहीं है ; दोनोंका ही शाकवृक्ष आश्रय है, इस कारण दोनों ही शाक या शाक्य नामसे परिचित हैं। फेरिस्ता और रियाज उस सलातिन नामक मुसलमान इतिहाससे भी हमें मालूम होता है, कि ई० सन्से सात सदा पहले पारस्यके उत्तर शाकद्वीपसे पराक्रान्त शाक जातिने आ कर गौड़राज्यको अधिकार किया था। उनके बहुत पहले शाकद्वीपी मग ब्राह्मणोंने भारतमें उपनिवेश बसाया था ; पर इसका भी प्रमाण नहीं मिलता। भोजक ब्राह्मण देखो। ई०सन्के पहले १से ४र्थ शताब्दी पर्यन्त एक तरहसे समस्त भारतमें शकका अधिकार फैला हुआ था। शकसंवत् या शकाब्द इस जातिके प्रभावका परिचय आज भी भारतवर्षके घर घरमें उज्ज्वल किये हुए है। उक्त शक या शाक जातिसे ही नाग, हूण आदि जातियाँ उत्पन्न हुई हैं तथा उनके वंशधर विभिन्न नामोंसे अभी राजपूत और जाट समाजमें विराज कर रहे हैं।

शाकद्वीपीय (सं० त्रि०) १ शाकद्वीपका रहनेवाला। (पु०) २ ब्राह्मणोंका एक भेद, मग ब्राह्मण। विशेष विवरण शाकद्वीप और भोजक ब्राह्मणमें देखो।

शाकन्धव्य (सं० पु०) शकंधु (कुर्वादिभ्योः यय) इति यय। शकंधुका गोत्रापत्य।

शाकन्धेय (सं० पु०) शकंध (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शकंधिका गोत्रापत्य।

शाकपत्र (सं० पु०) शिग्रु वृक्ष, सहिंजन।

शाकपार्थिव (सं० पु०) शाकप्रियः पार्थिवः, मध्यपद लोपि कर्मधा०। शाकप्रिय पार्थिव। जहां मध्यपदलोपि कर्मधारय समास होता है; वहां शाकपार्थिववद् समास कहलाता है।

शाकपूणि (सं० पु०) शकपूणके अपत्य एक ऋषिका नाम। थे वैदिक व्याकरणकार और आचार्य थे। (निरुक्त ५।११)

शाकपूत (सं० क्ली०) सामभेद।

शाकपोत (सं० पु०) पर्वतविशेष। (मार्कण्डेयपु० ५६।१४)

शाकफल (सं० क्ली०) शाकस्य फलं। शाकवृक्षफल, सागौन फल। (सुश्रुत सूत्रस्था० ३८ अ०)

शाकवालेय (सं० पु०) ब्रह्मयष्टि, भारंगी।

शाकविल्व (सं० पु०) शाके विल्वइव। वार्त्ताकु, बैंगन।

शाकविल्वक (सं० पु०) शाकविल्व देखो।

शाकभक्ष (सं० त्रि०) मांस न खानेवाला, शाकाहारी।

शाकभव (सं० पु०) प्लक्षद्वीपके अंतर्गत वर्षभेद। (मार्क०पु० ५३।६)

शाकमत्स्य (सं० क्ली०) मत्स्यव्यञ्जनविशेष।

शाकम्पूत (सं० पु०) एक ऋषिका नाम। शकपूत देखो।

शाकम्भरी (सं० स्त्री०) शाकेन बिभर्त्ति भृ-खश् मुमागमः ङीप्। १ भगवती दुर्गा, शाकजातिकी इष्टदेवी। (मार्क० पु० चण्डी) २ नगरविशेष। कोई कोई इसे सांभर या शम्बर नगर कहते हैं।

शाकम्भरीभव (सं० क्ली०) लवणभेद, सांभर नमक। (भावप्र०)

शाकम्भरीय (सं० त्रि०) १ सांभर झीलसे उत्पन्न। (क्ली०) २ सांभर नमक। गुण—वातनाशक, अत्युष्ण, भेदक, पित्तवर्द्धक, तीक्ष्ण, व्यवायी, अभिष्यंदी और कटुपाकयुक्त। (भावप्र०) शम्बर देखो।

शाकयोग्य (सं० पु०) शाकस्य योग्यः। धान्यक, धनिया।

शाकरस (सं० पु०) शाकस्य रसः। शाकका रस।

शाकराज (सं० पु०) शाकानां राजा निर्दोषत्वात् (राजाहस्सखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ वास्तूक शाक, बथुआ। निर्दोष होनेके कारण बथुआ शाकोंका राजा कहा गया है। २ शकाब्द प्रवर्त्तक एक राजाका नाम।

शाकरी (सं० स्त्री०) शाकारी देखो।

शाकल (सं० त्रि०) शकलेन प्रोक्तमधीयते शाकलास्तेषां सङ्घोऽङ्को घोषो वा (शाकलाद्वा। पा ४।३।१२८) इति अण्। १ शकल नामक द्रव्यसे रंगा हुआ। २ खण्ड या अंश सम्बन्धी। (पु०) ३ खण्ड, टुकड़ा, चिप्पड़। ४ एक प्रकारका सांप। ५ लकड़ीका बना हुआ तावीज। ६ मद्रदेशका एक नगर। ७ वाहीक (पञ्जाब) देशका एक ग्राम। ८ उक्त ग्राम या नगरका निवासी। ९ हवनकी सामग्री जिसमें जौ, तिल, घी, मधु, आदिका मेल होता रहता है। १० ऋग्वेदकी एक शाखा या संहिता।

शाकलशाखा (सं० स्त्री०) ऋग्वेदकी वह शाखा या संहिता जो शाकल्य ऋषिके गोत्रजोंमें चली। ऋग्वेदकी यही शाखा आज कल मिलती और प्रचलित है।

शाकलहोमीय (सं० त्रि०) शाकल होम सम्बन्धी मन्त्र। (मनु ११।२५७)

शाकलिक (सं० त्रि०) शकल (कलकद्र्दमाभ्यामुपसंख्यान'। पा ४।२।२) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या शाकलिकः कार्द्दमिकः। शकल-सम्बन्धी। (सिद्धान्तकौ०)

शाकली (सं० पु०) एक प्रकारकी मछली।

शाकल्य (सं० पु०) शकल (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति अपत्यार्थे यञ्। एक बहुत प्राचीन ऋषि। ये ऋग्वेदकी एक शाखाके प्रचारक थे और इन्होंने पहले पहल उसका पदपाठ ठीक किया था।

शाकल्यायनी (सं० स्त्री०) शाकल्य (लोहितादिकतन्तेभ्यः। पा ४।१।१८) इति ष्फ, ङीष्। शाकल्यकी पत्नी।

शाकवर (सं० पु०) जीवशाक। (पर्य्यायमुक्ता०)

शाकवरा (सं० स्त्री०) जीवन्ती या डोडी नामक लता। (वैद्यकनि०)

शाकवल्ली (सं० स्त्री०) लताकरञ्ज, सागरगोटा।

शाकवाट (सं० पु०) शाकका बाग, सागसब्जीका बगीचा।

शाकवाटिका (सं० स्त्री०) शाकवाट देखो।

शाकवालेय (सं० पु०) ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी, बभनेटी।

शाकविन्दक (सं० पु०) बिल्ववृक्ष, बेलका पेड़।

शाकबिल्वक (सं० पु०) १ वार्त्ताकु, बैंगन, भंटा। (त्रिका०) २ जीवन्ती शाक।

शाकबीज (सं० क्ली०) शाकस्य बीजं। १ शाकतरुका बीज, सागोनका बीया। २ सागका बीया।

शाकवीर (सं० पु०) १ वास्तूकशाक, बथुआ। २ पुनर्नवा, गदहपूरना। ३ जीवशाक।

शाकवृक्ष (सं० पु०) शाकाख्यो वृक्षः। वृक्षविशेष, सागोनका पेड़।

शाकशाकट (सं० क्ली०) शाकानां भवनं क्षेत्रं शाक 'भवने क्षेत्रे शाकटशाकिणौ' इति शाकट। शाकक्षेत्र, सागका बगान।

शाकशाकिन (सं० क्ली०) शाकक्षेत्रार्थे शाकिन। शाकक्षेत्र।

शाकशाल (सं० पु०) महानिम्ब, बकायन।

शाकश्रेष्ठ (सं० पु०) शाकेषु श्रेष्ठः। १ वास्तुकशाक, बथुआ।

शाकश्रेष्ठा (सं० स्त्री०) १ लघु जीवन्ती लता, डोडी शाक। २ लता बृहती। ३ वार्त्ताकु, बैंगन। ४ कुष्माण्ड लता,कुम्हड़ाकी लता। ५ तरम्बूज, तरबूज। ६ पेठा, भतुआ। (वैद्यकनि०)

शाका (सं० स्त्री०) हरीतकी, हर्रे।

शाकाख्य (सं० स्त्री०) शाक इति आख्या यस्य। १ पत्र पुष्पादि। व्यञ्जनयोग्य पत्र पुष्पादिको शाक कहते हैं। अमरटीकामें भरतने शाक शब्दकी व्युत्पत्ति यों की है—जो भोजन करतेमें शक्त हो जाता है, वही शाक है। यह शाक दश प्रकारका है, जैसे—१ मूल, २ पत्र, ३ करीर, ४ अग्र, ५ फल, ६ काण्ड, ७ अधिरूढ़क, ८ त्वक्, ९ पुष्प, १० करक। इन दश प्रकारके लक्षण ऐसे हैं,—मूलक आदि वस्तु-मूल, पटोल प्रभृति पत्र, वंशाङ्कुरादि करीर, वेत्रादि अग्र, कुष्माण्डादि फल, उत्पल आदिकी नाड़ी काण्ड, तालास्थि आदिकी मज्जा अधिरूढ़, मातुलुङ्गादि त्वक्, कोविदार प्रभृति पुष्प, छत्रिका आदिको करक कहते हैं। ये ही दश प्रकारके शाक हैं। ये सभी वस्तु खाई जाती है, इसलिये इनका नाम शाक पड़ा है। (भरत)

२ शाकवृक्ष, सागोनका पेड़। ३ शाक देखो।

शाकाङ्ग (सं० क्ली०) शाकस्य अङ्गमिव। मरीच, मिर्च।

शाकाद (सं० पु०) शाकं अत्ति अण्। शाकभक्षण, शाकभोजी।

शाकान्न (सं० क्ली०) शाकयुक्तमन्नं, मध्यपदलोपि कर्मधारयः। शाकयुक्त अन्न, साग मिला हुआ भात। यह लेखन, उष्ण, रुक्ष और दोषवर्द्धक माना गया है।

शाकाम्ल (सं० क्ली०) शाके अम्लो यस्य। १ वृक्षाम्ल, महादा। २ इमली।

शाकाम्लभेदन (सं० क्ली०) शाकाम्लं भेदनञ्च। चुक, चूक।

शाकायन (सं० पु०) शाकस्य गोत्रापत्यं शाक (गोत्रे कुञ्जादिभ्योस्फञ्। पा ४।१।९८) इति अपत्यार्थे फञ्। शाकका गोत्रापत्य।

शाकायनिन् (सं० पु०) शाकका गोत्रापत्य। (पा ४।१।९८) शाकायनका शिष्यसमूह।

शाकायन्य (सं० पु०) शाकका गोत्रापत्य। (पा ४।१।९८)

शाकारिकी (सं० स्त्री०) नाटकमें राजाके सालेको शकार कहते हैं, शकार जो अपभाषा बोलते हैं, वही शाकारिकी कहलाती है।

शाकारी (सं० स्त्री०) शकों अथवा शकारोंकी भाषा जो प्राकृतका एक भेद है।

शाकालाबु (सं० स्त्री०) राजालाबु, बड़ा कद्दू।

शाकाष्टका (सं० स्त्री०) शाका अष्टौ प्रदेया यत्र। शाकोपकरणक श्राद्धार्ह अष्टमी। शाक, माँस, अपूप आदि द्वारा पितरोंके उद्देशसे अष्टमी तिथिमें श्राद्ध करना होता है। ये सब श्राद्ध शाकाष्टका, मांसाष्टका और अपूपाष्टका कहलाते हैं। गौण फाल्गुन और मुख्यचान्द्र माघमासकी कृष्णाष्टमी तिथिको शाकाष्टका श्राद्ध करना होता है। इस तिथिमें शाकाष्टका श्राद्धका विधान है, इसलिये यह तिथि शाकाष्टका कहलाती है।

शाकाष्टमी (सं० स्त्री०) शाकाष्टका देखो।

शाकाहार (सं० पु०) अनाज अथवा फल फूल पत्ते आदिका भोजन, मांसाहारका उलटा।

शाकाहारिणी (सं० स्त्री०) केवल अनाज या साग भाजी खानेवाली।

शाकाहारी (सं० त्रि०) केवल अनाज या साग भाजी खानेवाला, मांस न खानेवाला।

शाकिन् (सं० त्रि०) १ शक्तियुक्त, बलवान्, ताकतवर। २ शिकायत करनेवाला। ३ नालिश करनेवाला। ४ चुगली खानेवाला।

शाकिनिका (सं० स्त्री०) शाकिनी।

शाकिनी (सं० स्त्री०) शाकोऽस्त्यत्रेति शाक-इनि, स्त्रियां ङीप्। १ शाकयुक्ता भूमि, वह भूमि जिसमें शाक बोया हुआ हो, सागकी क्यारी। २ एक पिशाची या देवी जो दुर्गाके गणोंमें समझी जाती है, डाइन, चुड़ैल।

तन्त्रसारमें भी शाकिनीकी पूजा आदिका विषय लिखा है। तारादेवीके न्यासस्थलमें लिखा है, कि षट्चक्रके मध्य विशुद्धाख्य महाचक्रमें शाकिनीके साथ सदाशिवको अकारादि षोड़श स्वर संयुक्त कर न्यास करना होता है।

शाकिनीत्व (सं० क्ली०) शाकिन्याः भावः त्व। शाकिनी का भाव या धर्म, शाकिनीका कार्य।

शाकिर (अ० वि०) १ कृतज्ञता प्रकाशित करनेवाला, शुक्रगुजार। २ सन्तोष रखनेवाला।

शाकी (सं० त्रि०) १ शाकिन् देखो। (स्त्री०) २ शाकक्षेत्र, सागकी क्यारी।

शाकीय (सं० त्रि०) शाकका अदूरभव स्थान। (पा ४।२।९०)

शाकुण (सं० त्रि०) १ परोत्तापी, दूसरेको दुःख देनेवाला। २ पक्षि सम्बन्धी, चिड़ियोंका।

शाकुन (सं० पु०) शकुनमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शकुन-अण्। १ पशुपक्षी आदि द्वारा मनुष्यका शुभाशुभ निर्णायक ग्रन्थ, शाकुनशास्त्र, काकचरित्र, जिस शास्त्र द्वारा वायस आदि पंक्षीके और शृगाल आदि जन्तुके शब्दादि द्वारा मानवोंके शुभाशुभ ज्ञात हो जाता है, उसे शाकुनशास्त्र कहते हैं।

वसन्तराजशाकुनमें तथा बृहत्संहितामें इस शाकुन या सगुनका विशेष विवरण दिया हुआ है। बृहत्संहितामें लिखा है, कि गमनकालमें शकुन या पक्षी आदि मानवोंके जन्मान्तरकृत शुभाशुभ कर्म प्रकाश करता है,

वही शाकुन कहलाता है। प्राचीन कालमें शुक्र, इन्द्र, वृहस्पति, कपिञ्जल आदिने इस शास्त्रका उपदेश दिया था। पीछे वराहमिहिरने उनका मत जान यह शास्त्र प्रणयन किया। (वृहत्सं० ८६ अ०)

वृहत्संहितामें ८६ अध्यायसे ९६ अध्याय तक शाकुनका विशेष विवरण दिया हुआ है। शकुन शब्द देखो।

२ चिड़िया पकड़नेवाला, बहेलिया। (त्रि०) ३ पक्षी-सम्बन्धी, चिड़ियोंका। ४ शुभाशुभ लक्षण सम्बन्धी, सगुनवाला।

शाकुनसूक्त (सं० क्ली) मन्त्रविशेष। वृहत्संहितामें लिखा है, कि मृग पक्षी आदिसे उपद्रव खड़ा होने पर सदक्षिण होम और शाकुनसूक्त आदिका जप करे।

शाकुनि (सं० पु०) बहेलिया।

शाकुनिक (सं० पु०) शाकुनान् हन्तीति शकुन (पक्षिमत्स्यमृगान हन्ति। पा ४।४।३५) इति ठक्। पक्षिहन्ता, बहेलिया।

शाकुनिन् (सं० पु०) १ शाकुनिक, बहेलिया। २ मछवाहा, मछली पकड़नेवाला। ३ सगुन विचारनेवाला। ४ एक प्रकारका प्रेत।

शाकुनेय (सं० पु०) शकुनेरपत्यं शकुनि (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) १ डुण्डुल पक्षी, एक प्रकारका छोटा उल्लू। २ बकासुर नामक दैत्य। (भागवत १०।८८।२६) ३ एक मुनिका नाम। (त्रि०) ४ पक्षी सम्बन्धी।

शाकुन्तकि (सं० पु०) १ योद्धाका एक जाति। (पा ५।३।११६) २ देशभेद।

शाकुन्तकीय (सं० पु०) शाकुन्तकि देशका राजा।

शाकुन्तल (सं० पु०) शकुन्तलाका पुत्र, भरत।

शाकुन्तलेय (सं० पु०) शकुंतलाया अपत्यमिति शकुन्तला (स्त्रीभ्यो ढक्। पा ४।१।१२०) इति ढक्। १ शकुन्तलाका पुत्र, भरतराज। (त्रि०) २ शकुंतलासम्बंधी, शकुंतलाका।

शाकुन्तिक (सं० पु०) बहेलिया, चिड़ीमार।

शाकुलादिक (सं० पु०) शकुलाद ऋषिका गोत्रापत्य। (पा ४।२।११६)

शाकुलिक (सं० पु०) शकुलान् हन्ति यः शकुल (पक्षिमांसमृगान् हन्ति। पा ४।४।३५) इति ठक्। १ शकुलहन्ता, मछवाहा। २ मछलियोंका समूह।

शाकेक्षु (सं० पु०) इक्षुविशेष, ईखका एक भेद।

शाकृत्क (सं० त्रि०) शकृत्-सम्बंधी। (पा ७।३।५१)

शाकेय (सं० पु०) वैदिक शाखाभेद।

शाकेश्वर (सं० पु०) वह राजा जिसके नामसे संवत् चले। जैसे,—युधिष्ठिर, विक्रमादित्य, शालिवाहन।

शाकोल (सं० पु०) एक प्रकारकी लता।

शाक्कर (सं० पु०) शक्कर एव स्वार्थे अण्। वृष, बैल।

शाक्री (सं० स्त्री०) पांच विभागोंमेंसे एक।

शाक्त (सं० पु) शक्तिर्देवताऽस्य-शक्ति (साऽस्य देवता। पा ४।२।२४) शक्तिके उपासक, तन्त्रोक्त शक्तिमंत्रोपासक, जो काली, तारा आदि शक्तिमंत्रकी उपासना करते हैं, उन्हें शाक्त कहते हैं।

मुण्डमालातंत्रमें शिवजी देवीसे कहते हैं,—हमारे अर्थात् शिवके अंशसे उत्पन्न मनुष्य मात्र ही निःसंदेह शैव और तुमसे अर्थात् देवी आद्याशक्तिके अंशसम्भव मात्र ही प्रकृत शक्ति हैं। शैवगण क्यों साधनाके बाद शाक्त हो सकते हैं। किन्तु जिस किसी कुलसे उत्पन्न शाक्त हों, इच्छा करनेसे ही शैव हो सकते हैं। ब्राह्मण से ले कर चण्डाल पर्यन्त शाक्त मात्रको ही कभी सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। चर्मचक्षु द्वारा भले ही उन्हें साधारण मनुष्य समझ सकते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जिस किसी जातिके शाक्त हों, वामाचार प्रभावसे उन्हें जपपूजा करना कर्त्तव्य है। ब्राह्मण हों, क्षत्रिय, हों, वैश्य हों, चाहे शूद्र हों, शाक्तमात्रको ही ब्राह्मण समझना चाहिये। ये शाक्तरूपी ब्राह्मणगण ही साक्षात् शिव त्रिनेत्र हैं, चन्द्रशेखर हैं।

निर्वाणतंत्रमें लिखा है (३य पटल)—परमाक्षरी देवी गायत्रीकी उपासना करती हैं, इस कारण सभी द्विज शक्ति हैं, शैव या वैष्णव नहीं हैं।

मुण्डमालातंत्र २य पटलमें लिखा है—सौर, गाणपत्य और वैष्णव इन तीन प्रकारके आचारोंमें सिद्ध होनेके बाद शाक्त हो सकते हैं। शाक्तसे बढ़ कर और कुछ भी नहीं है। शाक्त ही शिव है, साक्षात् परब्रह्म

स्वरूप है। काली, तारा, त्रिभुवनेश्वरी, षोड़शी, मातङ्गी, छिन्नमस्ता, बगलामुखी आदि जिनके निकट उपासित हैं, वे ही शाक्त शिव हैं, इसमें संदेह नहीं। शाक्तगण-का परम पद अतिगोपनीय है। उन लोगोंका कहना है, कि शक्ति ही शिव है, शिव ही शक्ति हैं, ब्रह्मा विष्णु भी शक्ति हैं, इंद्र सूर्य देवगण भी शक्ति हैं, चंद्रादि ग्रहगण भी निश्चय शक्ति हैं, यह सारा संसार शक्तिका विकाश है, जो शाक्त यह नहीं जानता, वह नारकी है।

विना शक्तिके इस सम्प्रदायकी पूजा या कोई धर्म कर्म नहीं हो सकता, इसलिये भी ये शाक्त कहलाते हैं। तन्त्र शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

शाक्तसम्प्रदायका आविर्भावकालनिर्णय।

भारतवर्षमें किस समय शाक्त सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई उसका निर्णय करना कठिन है। तंत्रकी उत्पत्तिके साथ जो शाक्तमत प्रचलित हुआ वह बहुत कुछ ठीक है। विश्वकोषमें तंत्र शब्दमें लिखा है, कि ७वीं सदीके बाद तथा ९वीं सदीके पहले तंत्रशास्त्रका प्रचार हुआ था। किंतु पीछे आलोचना द्वारा प्रमाणित हुआ है, कि तंत्र उससे अपेक्षा बहु प्राचीन है। अथर्ववेदमें ही जो तंत्रशास्त्रका सूत्र प्रकाशित है उसे पाश्चात्य पण्डित भी स्वीकार करते हैं।* जापानके होरिउजी मठसे 'उष्णीषविजयधारणी' नामक तालपत्रमें लिखित एक तांत्रिक ग्रंथ निकला है। वह ग्रन्थ ६ठी सदीमें जापानमें लाया गया था, सुतरां मूलग्रन्थ उससे भी बहुत पहले लिखा गया, इसमें जरा भी संदेह नहीं। ५वीं सदीमें शक्तिपूजा भारतवर्षमें सर्वत्र प्रचलित थी, उसका यथेष्ट प्रमाण पाया गया है। दाक्षिणात्यके पूर्वतन कदम्बवंश सप्तमातृकाके विशेष उपासक थे।† सप्तमातृका ही पूर्वतन चालुक्य राजाओंकी अधिष्ठात्री देवी कह कर परिचित थीं।¶

* Dr. Bloomfield's Atharvaveda.

† Indian Antiquary, Vol, vi. p, 27.

¶ Indian Antiquary, vol xii, p, 162, xiii p, 137,

मालवपति विश्ववर्माके ४८० संवत्में (४२३-२४ ई०में) उत्कीर्ण शिलालिपिमें लिखा है—

"मातृणाञ्च प्रमुदितघनात्यर्थनिर्ह्रादिनीनाम्।
तन्त्रोद्भूतप्रबलपवनोद्वर्त्तिताम्भोनिधीनाम्॥
* * * गतमिदं डाकिनीसंप्रकीर्णम्।
वेश्मात्युग्रं नृपतिसचिवो कारयेत् पुण्यहेतुः॥"*

अर्थात् पुण्यलाभके लिये (उक्त) राजाके सचिवने डाकिनियोंसे पूर्ण जलदनिनादिनी तन्त्रोद्भूत-प्रबल-जलनिधिविक्षोभकारिणी मातृकाओंका मन्दिर बनवाया है।

उक्त प्रमाणसे मध्यभारतमें भी तन्त्रके प्रभाव और शक्तिकी उपासनाका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। यहां तक, कि गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्त मातृकाभक्त वा शाक्त थे, यह भी उनकी शिलालिपिसे जाना गया है।¶ अतएव शाक्तधर्मकी उत्पत्ति उससे भी बहुत पहले हुई है, इसे सभी स्वीकार करेंगे। मृच्छकटिक नाटकके प्रारम्भमें जिस प्रकार शिवशक्तिकी स्तुति है, उसमें भी हम १ली सदीके पहले शिवशक्तिसाधनमूलक (तांत्रिक) प्रेमालिङ्गन-चित्रका ही बहुत कुछ आभास पाते हैं। यथा—

"पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः।
गौरी भुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते॥"

इस प्रकार हरपार्वतीकी प्राचीनमूर्त्ति भारतवर्षके नाना स्थानोंमें विद्यमान है। मथुरा और सारनाथके नाना स्थानोंमें विद्यमान है। इस हिसाबसे शकाधिकारकालमें शक्तिपूजा प्रचलित थी, यह असम्भव नहीं है।

किसी किसीका मत है, कि बौद्धाचार्य नागार्जुनने जो संशोधित महायानमत प्रचार किया, उसीमें शाक्त धर्मका बीज निहित है। उन्हींकी चेष्टासे बौद्ध शक्तिमूर्त्ति महायान-समाजमें प्रकाशित हुई थी। किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि उनके यत्नसे महायान बौद्धसमाजमें तांत्रिक देवदेवी या शक्तिपूजा प्रचलित होने पर भी

* Dr. Fleet's Gupta Inscriptions,

¶ Dr. Fleet's Gupta Inscriptions, p, 48.

सौर और शैव-समाजमें उसके पहले ही शक्तिपूजा प्रचलित थी। महाभारतके उद्‌योगपर्वमें "ह्रीं श्रीं गार्गी-श्च गान्धारी योगिनां योगदां सदा" इत्यादि देवीस्तोत्रमें अति प्राचीन कालसे ही शक्तिमन्त्रका प्रच्छन्न आभास मिलने पर भी उस समय शाक्त सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई थी अथवा नाना शक्तिमूर्त्तिकी पूजा होती थी वा नहीं, इस विषयमें सन्देह है। ललितविस्तरमें कुछ देव-प्रतिमाका उल्लेख है—

"शिवस्कन्दनारायण-कुवेरचन्द्रसूर्यवैश्रवणशक्रब्रह्मलोकपालप्रभृतयः प्रतिमा।"

अर्थात् बुद्धदेवके जन्मके बाद उन्हें शिव, कार्त्तिक, नारायण, कुवेर, चन्द्र, सूर्य, वैश्रवण, इन्द्र और ब्रह्मादि लोकपालोंकी प्रतिमा दिखलाई गई थी। बुद्धके समय किसी प्रकारकी शक्तिप्रतिमा रहने पर ललितविस्तरमें उसका आभास अवश्य रहता। इससे कोई कोई समझते हैं, कि बुद्धके समय सप्तमातृका या शक्तिमूर्त्ति प्रचलित न थी। फिर कोई कोई ललित-विस्तरके (२४ अध्यायमें)

"पूर्वस्मिन् वै दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः॥
जयन्ती विजयन्ती च सिद्धार्था अपराजिता।
नन्दोत्तरा नन्दिसेना नन्दिनी नन्दवर्द्धनी॥
तापि व अधिपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च॥"
"दक्षिणस्यां दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः।
श्रियामती यशोमती यशःप्राप्ता यशोधरा॥
सुउत्थिता सुप्रथमा सुप्रवुद्धा सुखावहा।
तापि व अधिपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च॥"
"पश्चिमेऽस्मिन् दिशो भागे अष्टौ देवकुमारिकाः।
अलम्बुषा मिश्रकेशी पुण्डरीका तथाऽरुणा॥
एकादशा नवनामिका सीता कृष्णा च द्रौपदी।
तापि व अधिपालेन्तु आरोग्येण शिवेन च॥"
(ललितविस्तर ५०२-५०७ पृ०)

उद्धृत प्रमाणके अनुसार कोई कोई चारों दिशाओंमें चार श्रेणीकी अष्टनायिका या अष्टशक्तिका अस्तित्व स्वीकार करते हैं।

शक्तिप्रधान तन्त्रोंमें वेदकी प्रधानताका अस्वीकार, अवैदिकाचार और जगह जगह वेदनिन्दा रहनेसे बहुतेरे अनुमान करते हैं, कि तान्त्रिक या शाक्तमत वैदिकनिष्ठ भारतीय ब्राह्मण सम्प्रदायका उद्भावित नहीं है। डेढ़ हजार वर्ष पहले लिखित कुलालिकाम्नाय या कुब्जिकामततन्त्र-में लिखा है—

"गच्छ त्वं भारते वर्षेऽधिकाराय सर्वतः।
पीठोपपीठक्षत्रेषु कुरु सृष्टिरनेकधा॥
गच्छ त्वं भारते वर्षे कुरु सृष्टिस्त्वमीदृशः।
पञ्चवेदाः पञ्चैव योगिनः पीठपञ्चकं॥
एतानि भारते वर्षे यावत् पीठास्थाप्यते।
तावत् न मे त्वया सार्द्धं सङ्गमञ्च प्रजायते॥"

हे देवि! सर्वत्र अधिकारार्थ भारतवर्षमें जाओ, पीठ, उपपीठ और क्षेत्रोंमें बहुतोंका सृष्टि करो। भारत-वर्षमें भी जाओ, वहां जा कर पञ्च वेद, पञ्च योगी और पञ्च पीठकी सृष्टि करो। जब तक भारतवर्षमें इस प्रकार पीठादि प्रतिष्ठित नहीं होते, तब तक तुम्हारे साथ मेरा सङ्गम नहीं होगा।

उक्त प्रमाणसे जाना जाता है, कि इस मतका उत्पत्तिस्थान भारतवर्षके बाहर है। यथार्थमें हिन्दू और बौद्ध दोनों शाक्त समाजकी प्रधान आराध्या तारा या आद्याशक्ति हैं। पूजा-प्रचारके प्रसङ्गमें चीनाचार-आदि तन्त्रोंमें लिखा है, कि वशिष्ठ देवने चीन देशमें जा कर बुद्धके उपदेशसे ताराका दर्शन किया था। इससे भी एक प्रकारसे स्वीकृत हुआ है, कि हिमालयके बाहर उत्तरदेशसे ही तारारूपा आद्याशक्तिकी पूजाका प्रचार हुआ है। उक्त सुप्राचीन कुलालिकाम्नायतन्त्रमें मगों-को ब्राह्मण स्वीकार किया गया है। मग या शाक-द्वीपी ब्राह्मणोंने ही इस देशमें सूर्यमूर्त्तिपूजाका प्रचार किया। पीछे उन्हींके यत्नसे शिवशक्ति मूर्त्तिगठित और उनकी पूजा भी प्रचारित हुई होगी। मग लोग ही आदि सूर्यपूजक हैं। इस कारण प्राचीन हिन्दू और बौद्धतन्त्रमें शिवशक्ति अथवा बोधिसत्त्वशक्तिके साधन-प्रसङ्गमें पहले सूर्यमूर्त्तिभावनाका प्रसङ्ग है। वह जो आदि सौरप्रभावका निदर्शन है उसमें जरा भी सन्देह नहीं। कोई कोई आज भी समझते हैं, कि सुप्राचीन ग्रीक ऐतिहासिकोंने जिस प्रकार Sakitai नामसे शाक जातिका उल्लेख किया है, उसी प्रकार शाक लोगों-

की एक शाखाके शक्तिपूजकगण भारतमें 'शाक' नामसे परिचित हुए थे। शाक-जातिके आचार-व्यवहारके इतिहासकी आलोचना करनेसे भी जाना जाता है, कि वे लोग मद्यमांसादि पञ्चमकारकी सेवामें सिद्ध थे। उनके गुरुस्थानीय मगाचार्यगण बहुत कुछ उन्नत होने पर भी अन्यान्य साधारण व्यक्ति वीराचारी थे, इस कारण भारतमें उनके प्रभाव विस्तारके साथ अवैदिक शाक्तमत सर्वत्र प्रचारित और दूसरे समाजमें भी गृहीत हुआ था। शाकाधिप कनिष्कके समय महायानमत प्रचारित हुआ। उत्तरमें मङ्गोलिया, दक्षिणमें विन्ध्या-चल, पूर्वमें बङ्गोपसागर और पश्चिममें पारस्य पर्य्यन्त इन्हीं शाकराजके शासनाधीन था। उनके यत्नके समस्त एशियाखण्डमें महायान मत प्रचारित और गृहीत हुआ। महायान लोगोंने ही सर्वत्र शक्तिपूजाका प्रचार किया था।* कितनी शक्तिमूर्त्तियां जो हिमालय-के उत्तरसे भारतमें लाई गई थीं, उनका भी उल्लेख मिलता है। रुद्रयामलादि हिन्दूतन्त्रोंमें, जिस प्रकार चीनसे वशिष्ठ द्वारा तारातत्त्व लाये जानेका संवाद है, उसी प्रकार नेपाली बौद्धोंके साधनमालातन्त्रमें एक जटासाधन प्रसङ्गमें लिखा है—

"आर्य्यनागार्जुनपादैर्भोटेसु मुद्धृता इति"

अर्थात् एकजटा नाम्नी तारा देवीकी विभिन्न मूर्त्ति महायानमतके प्रतिष्ठाता आर्य्यनागार्जुन भोटदेशसे उद्धार कर लाये थे। स्वतन्त्रतन्त्रमें भी लिखा है—

"मेरोः पश्चिमकूले तु चोलनाख्यो ह्रदो महान्।
तत्र यज्ञे स्वयं तारा देवी नीलसरस्वती॥"

कुलालिकाम्नायमें जिन पञ्च वेद, पञ्च योगी और पञ्च पीठोंका उल्लेख है, वह उक्त तन्त्रानुसार १ उत्तरा-म्नाय, २ दक्षिणाम्नाय, ३ पूर्वाम्नाय, ४ पश्चिमाम्नाय और ५ ऊर्ध्वाम्नाय ये पञ्चाम्नाय, पञ्च महेश्वर या पञ्च ध्यानीबुद्ध तथा १ उड्डियान (उत्कलमें), २ जाल (जाल-न्धरमें), ३ पूर्ण (महाराष्ट्रमें), ४ मतङ्ग (श्रीशैल पर) और ५ कामाख्या ये पञ्चपीठ हैं। परवर्त्ती कालमें ५१ पीठों-की उत्पत्ति होने पर भी उक्त पांच ही शाक्तोंके आदि पीठ या केन्द्रस्थान हैं। अवैदिक शाक्त मतको पहले वेदमार्गपरायण ब्राह्मणोंने ग्रहण नहीं किया, किन्तु जब भारतमें सर्वत्र इस मतका आदर होने लगा, तब उनमें भी कोई कोई शाक्त तन्त्रमें दीक्षित हुए। उन लोगोंने पहले अष्टमातृकाकी पूजा ग्रहण की। वराहमिहिरकी वृहत्संहितामें ये सब ब्राह्मण "मातृकामण्डलवित्" कह कर परिचित थे। चक्र, मण्डल या यन्त्रके विना शक्तिपूजा नहीं होती शायद इसी कारण शाक्तब्राह्मण 'मातृकामण्डलवित्' कह कर परिचित होंगे। चक्र, मण्डल, यन्त्र, मन्त्र और तन्त्र शब्द देखो। इन्हींकी चेष्टासे शक्तिपूजामें वैदिक क्रियाकाण्डमूलक कुछ मन्त्र प्रविष्ट हुए। इन्हीं लोगोंको हमने हिन्दू शाक्त बताया है। ये लोग दक्षिणा-चारी हैं। इनके अलावा कुलालिकाम्नाय नामक उक्त सुप्राचीन तन्त्रसे हमें मालूम होता है कि शाक्तोंमें देवयान, पितृयान और महायानके तीन सम्प्रदाय हुए थे।

"दक्षिणे देवयानन्तु पितृयाणन्तु उत्तरे।
मध्यमे तु महायानं शिवसंज्ञा प्रगीयते॥"
(कुलालिकाम्नाय)

दक्षिणमें देवयान, उत्तरमें पितृयान और मध्यदेशमें महायान प्रचलित थे। इन तीन यानोंमें विशेषता क्या है, ठीक ठीक मालूम नहीं। परन्तु महायानोंमें श्रेष्ठ तन्त्र तथागतगुह्यक पढ़नेसे मालूम होगा, कि रुद्रयाम-लादि तन्त्रमें जिसे वामाचार या कौलाचार कहा है, वही महायान तान्त्रिकगणका अनुष्ठेय आचार है। इसी सम्प्रदायसे कालचक्रयान या कालोत्तर महायान तथा वज्रयानकी उत्पत्ति हुई है। नेपालके सभी शाक्त बौद्ध वज्रयान सम्प्रदायभुक्त हैं।

नेपालमें लक्षश्लोकात्मक शक्तिसङ्गमतन्त्र प्रचलित है। इस महातन्त्रमें शाक्त सम्प्रदायका सविस्तार परि-चय मिलता है। इस तन्त्रमें शाक्त मतकी उत्पत्तिके

---

* नेपालमें महायानेकिं जो ६ प्रधान शास्त्र प्रचलित हैं तथा नेपाली बौद्धाचार्यगण आज भी जिन ६ शास्त्रोंकी पूजा करते हैं, उनमें 'तथागतगुह्यक' नामका एक बहुत बड़ा बौद्धतन्त्र है। उस तन्त्रमें देखा जाता है—

"स सिद्धिं विपुलां गच्छेन्महायानाग्रधर्मेषु।"
(एशियाटिक सोसाइटीका गून्थ १५ पृ०)

सम्बन्धमें ऐसा आभास पाया जाता है—

"संसारोत्पत्तिकार्यार्थं प्रपञ्चोयं विनिर्मितम् ।
शाक्तं शैवं गाणपत्यं वैष्णवं सौरबौद्धकं ॥ ३
एवं क्रमेण देवेशि मतमेतद्विनिर्मितम् ।
मतानि बहुसंख्यानि तदारभ्य महेश्वरि ॥७
संजातानि महेशानि प्रपञ्चार्थं हि निश्चितम् ।
अम्भोधि जलधिश्चैव समुद्रः सागरो यथा ॥८
यथा एतेतु पर्याया तथैतानि मतानि च ।
वैदिके शक्तिनिन्दा च चीने जैनस्य निन्दनम् ॥९
सौरे चान्द्रस्य निन्दाच चान्द्र बौद्धस्य निन्दनम् ।
स्वायम्भुवस्य निन्दा च बौद्धमार्गे महेश्वरि ॥१०
पौराणे जैननिन्दा च जैने पौराणनिन्दनम् ।
पौराणे तन्त्रशास्त्रस्य निन्दनं परमेश्वरि ॥११
एवं भिन्नमतान्येव संजातानि महेश्वरि ।
वेदानां शाखाबाहुल्यं प्रपञ्चार्थं महेश्वरि ।
एवं निन्दासमापन्ने भेदे जाते महेश्वरि ।
नैकत्र तु मनो लग्नं कस्यचित् परमेश्वरि ॥१३
सर्वत्रान्योन्यनिन्दा च तदैक्यञ्च प्रजायते ।
तदैक्यस्य सुसिद्धयर्थं प्रपञ्चार्थं प्रकीर्त्तितम् ॥१४
भिन्नाः भिन्नं प्रशंसन्ति निन्दन्ति च परस्परम् ।
न विद्या सिद्धिमाप्नोति मंत्रमस्ति पिशाचवत् ॥
अन्योन्य यदि निन्दा च तदैक्यञ्च प्रजायते ।
तदैक्यस्य सुसिद्धयर्थं कालिकां तारिणीं यजेत् ॥
सुन्दरक्रूरयोर्युग्मे रूपा संविभ्रतो शिवा ।
रूपमेतत् प्रपञ्चार्थं कीर्त्तितन्तु मया तव ॥
पुराणं न्यायमीमांसा सांख्यपातञ्जले तथा ॥
वेदांतो व्याहृति देवि धर्मशास्त्राङ्गमिश्रता ।
छन्दोज्योतिर्वेदसाङ्गविद्या एताश्चतुर्दश ।
प्रपञ्चार्थं मया प्रोक्तं एकत्वं परिणामजे ॥
प्रकृतं कथ्यते देवि शृणु सावहिता भव ॥
चतुर्वेद त्रयी प्रोक्ता श्रीमहाभवतारिणी ।
अथर्ववेदाधिष्ठात्री श्रीमहाकालिका परा ॥
विना कालीं विना तारां नाथर्वणो विधि क्वचित् ।
केरले कालिका प्रोक्ता काश्मीरे त्रिपुरा मता ॥
गौड़े तारेति संप्रोक्ता सैव कालोत्तरा भवेत् ।
अविच्छिन्ना सदा सा वै चतुःशङ्करयोगतः ॥
तदन्यः सम्प्रदायो हि भविष्यति महेश्वरि ।
केरलश्चैव काश्मीरो गौड़श्चैव तृतीयकः ॥"

(शक्तिसङ्गम उत्तरभाग १म खण्ड ८म प०)

"केरलश्चैव काश्मीरो गौड़श्चैवः तृतीयकः ।
केरलाख्य मते देवि बलिपातं तु दक्षिणे ।
काश्मीरतर्पणे भेदो गौड़े वामकरे भवेत् ॥"

(„ ४र्थ पटल)

संसारसृष्टिकी सुविधाके लिये यह प्रपञ्च बनाया गया है। शाक्त, शैव, गाणपत्य, वैष्णव, सौर और बौद्ध इत्यादि संप्रदाय धीरे धीरे अनेक मतोंकी सृष्टि हुई है। किंतु अम्भोधि वा जलधि तथा समुद्र सागर कहनेसे जिस प्रकार एक ही वस्तुका बोध होता है, विभिन्न नाम होने पर भी जिस प्रकार एक होका पर्याय हैं, उसी प्रकार संप्रदायभेदसे विभिन्न नाम होने पर भी सौर बौद्धादि एक ही वस्तु है, केवल मतभेदसे पर्याय शब्द मात्र हैं। वैदिकमें शक्ति-निंदा, चीन या बौद्धमें जैन-निंदा, चांद्रमें बौद्धकी निंदा, बौद्धमार्गमें शैवको निन्दा, पौराणिकमें जैन-निंदा, जैनमें पौराणिककी निंदा इस प्रकार विद्वेष भावमें नाना मत उत्पन्न हुए हैं। इस तरह प्रपञ्चके लिये ही वेदको अनेक शाखाएं हो गई हैं। ऐसी परस्पर निंदासे भेद हुआ है, एकत्र होनेके लिये किसी-की इच्छा नहीं होती। सभी जगह परस्पर निंदा अर्थात् एक शास्त्रमें दूसरे शास्त्रको निन्दा देखनेमें आती है। किंतु सभी मतका ऐक्य है। इस ऐक्य सिद्धिके लिये प्रपञ्चार्थ कहा गया है। भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न भिन्न विषयकी प्रशंसा वा निन्दा करते हैं, उनकी विद्या सिद्ध नहीं होती तथा मंत्र पिशाचवत् होता है। परस्परकी यदि निन्दा न की गई हो, तो उनका एकत्व निश्चय किया जाता है। इस प्रकार परस्परकी ऐक्य सिद्धिके लिये काली वा ताराकी उपासना प्रवर्त्तित हुई है। सुन्दर और क्रूर अर्थात् भला और बुरा इन दोनोंको ही शिवा (शक्ति) धारण करते हैं। यह मत प्रकाश करने-के लिये ही मैंने शास्त्र कीर्त्तन किया है। पुराण, न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातञ्जल, वेदान्त, वेद, धर्मशास्त्र, छन्दः, ज्योतिष आदि चौदह विद्या परिणाममें एकत्व प्रतिपा-दनके लिये मैंने ही (शक्तितत्त्व) उपदेश दिया है। प्रकृत

विषय इस प्रकार है—भवतारिणी देवी चतुर्वेदमयी, कालिकादेवी अथर्ववेदाधिष्ठात्री, काली और ताराके बिना आथर्वण-क्रिया अर्थात् अथर्ववेदविहित कोई भी क्रिया नहीं हो सकती। केरल देशमें कालिका देवी, काश्मीर देशमें त्रिपुरा और गौड़ देशमें तारा तथा ये ही पीछे काली रूपमें उपास्या होती हैं। सभी समय ये चतुःशङ्कर योगसे अवच्छिन्न अर्थात् भिन्न भिन्न होती हैं। हे महेश्वरि! इसके सिवा अन्य सम्प्रदाय भी होगा। केरल, काश्मीर और गौड़ इन तीन स्थानोंमें यथाक्रम त्रिपुरा, काली और तारा ये तीन भेद होते हैं।

शक्तिसङ्गमतन्त्रके उक्त वचनसे मालूम होता है, कि पूर्ववर्त्ती साम्प्रदायिकोंका मत सामंजस्य करनेके लिये ही तांत्रिक या शाक्त धर्म प्रचारित हुआ था। यथार्थमें देखा जाता है, कि परवर्त्ती कालमें क्या बौद्ध, क्या ब्राह्मण आदि विभिन्न सांप्रदायिकोंने अपने अपने उपास्यकी एक एक शक्ति स्वीकार कर ली थी। परन्तु किसीने अल्प और किसीने बहुसंख्यक शक्ति स्वीकार की है। इसी कारण मालूम होता है, कि क्या हिन्दू क्या बौद्ध दोनों शाक्त-समाजमें ही बहुत कुछ साम्यभाव विद्यमान था। इसी कारण बौद्धतन्त्रमें हिन्दुओंकी शक्ति तथा हिन्दूतंत्रमें बौद्धशक्तियोंकी पूजा पद्धति देखी जाती है।

इसके अलावा परवर्त्ती तंत्रोंमें १ वेदाचार, २ वैष्णवाचार, ३ शैवाचार, ४ दक्षिणाचार, ५ वामाचार, ६ सिद्धान्ताचार और ७ कुलाचार या कौल इन सात प्रकारके आचारका उल्लेख है। ये सप्ताचार उक्त त्रियानके अंतर्गत ही मालूम होते हैं। तन्त्र शब्द देखो।

महाराष्ट्रमें वैदिकोंके मध्य वेदाचार, रामानुज और गौड़ीय वैष्णवोंके मध्य वैष्णवाचार, दाक्षिणात्यमें शङ्कर संप्रदायभुक्त शैवोंके मध्य दक्षिणाचार, दाक्षिणात्यमें वीरशैव या लिङ्गायतोंमें शैवाचार और वीराचार, केरल, गौड़, नेपाल और कामरूपके शाक्त-समाजमें वीराचार, वामाचार, सिद्धान्ताचार और कौलाचार ये चार प्रकारके आचार ही देखे जाते हैं। प्रथम तीन आचारके तांत्रिक ग्रन्थ उतने अधिक नहीं हैं, शेषोक्त चार आचारोंके तांत्रिक ग्रंथ असंख्य हैं।

उक्त विभिन्न आचारके ग्रंथोंमें विशेषता यह है—वेदाचार, वैष्णवाचार और दक्षिणाचारमूलक तंत्रोंमें वीराचार या कौलाचारकी निंदा है, किंतु अपरापर आचारमूलक तांत्रिक ग्रंथोंमें वीराचार या कौलाचारकी विशेष सुख्याति दिखाई देती है।

अभी भारतवर्षमें शाक्तकी संख्या थोड़ी नहीं है। प्रधानतः रक्त चांदनका तिलक शाक्तनिर्देशक है, किन्तु शाक्त धर्म अति गुह्य होनेके कारण जनसाधारण उसे सहजमें समझ नहीं सकते, इस कारण तांत्रिक निबंधकारोंने लिखा है—

"अन्तः शाक्ताः बहिः शैवाः सभायां वैष्णवा मताः।
नाना रूपधराः कौलाः विचरन्ति महीतले॥"

वर्त्तमान शाक्तोंमें पशु, वीर और दिव्य ये तीन भाव प्रचलित हैं। इस सम्बंधमें रुद्रयामलका प्रमाण उद्धृत कर शाक्तोंने दिखलाया है—

"शक्तिप्रधानं भावानां तयाणां साधकस्य च।
दिव्यवीरपशूनाञ्च भावत्रयमुदाहृतम्॥
पशुभावे ज्ञानसिद्धिः पश्वाचारनिरूपणम्।
वीरभावे क्रियासिद्धिः साक्षात् रुद्रो न संशयः।
दिव्यभावे देवताया दर्शनं परिकीर्त्तितम्।
ज्ञानी भूत्वा पशोर्भावे वीराचारं ततः परम्।
वीराचाराद्भवेद्रुद्रोऽन्यथा नैव च नैव च॥
भावद्वयस्थितो मंत्री दिव्यभावं विचारयेत्।
सदा शुचिर्दिव्यभावमाचरेत् सुसमाहितः।
देवतायाः प्रियार्थञ्च सर्वकर्म कुलेश्वर॥
देवतातुल्यभावश्च देवतायाः क्रियापरः।
तद्विद्धि देवताभावं सुदिव्यभाक् प्रकीर्त्तितम्।
सर्वेषां भाववर्गानां शक्तिमूलं न संशयः॥"

(रुद्रयामल १ अ०)

साधकोंके लिये दिव्य, वीर और पशु (तन्त्रमें) जो त्रिविध भावोंका प्रसङ्ग है, वही शक्तिप्रधान है अर्थात् शक्तिसाधक इन्हीं तीन भावोंका आश्रय करें। जिस भावसे ज्ञानसिद्ध होता है, वही पश्वाचार है, जिस वीरभावसे क्रियासिद्धि होती है अर्थात् साधक साक्षात् रुद्र होते हैं, उसीका नाम वीराचार है। जिस दिव्यभावसे देवताओंका साक्षात्लाभ होता है, वही दिव्याचार है।

साधक पहले पशुभावमें ज्ञानी हो कर पीछे वीराचार अवलम्बन करे। वीराचारसे ही केवल रुद्रत्वलाभ होता है, दूसरे किसी प्रकारसे रुद्रत्वलाभ नहीं होता। पशु और वीर इन दोनों भावोंमें सिद्ध होनेके बाद दिव्यभावकी आलोचना करे। इस दिव्य भावके द्वारा देवताके समान भाव और देवताकी तरह क्रियाशील होता है, इसी कारण इसको श्रेष्ठ दिव्यज्ञान या देवता-भाव कहा है। इन सब भावोंका मूल ही निःसन्देह शक्ति है।

शाक्ताचार।

श्यामारहस्यमें शाक्तोंके आचार-विषयमें इस प्रकार लिखा है—सर्वदा सभी प्राणियोंकी भलाईमें रत तथा विहित आचारपरायण होवें। अनित्य कर्मका परित्याग कर नित्यकर्मके अनुष्ठानमें लगे रहें तथा इष्टदेवताके प्रति सभी कर्म निवेदन करें। इष्टदेवताके मंत्रको छोड़ अन्य मन्त्रार्चानसे श्रद्धा, अन्य मन्त्रकी पूजा, कुलस्त्री और वीरनिन्दा, उसी स्थलमें वेश्योपाहरण, स्त्रियोंके प्रति प्रहार और उनके प्रति क्रोधका परित्याग करें। क्योंकि समस्त जगत् स्त्रीमय है तथा शाक्त स्वयं अपनेको भी स्त्रीरूप समझें। स्त्रियोंकी पूजा करनी होती है, इस कारण साधकको स्त्रीद्वेष परित्याग करना उचित है।

शाक्तसाधक जपके समय जपस्थानमें महाशङ्ख स्थापन कर शुभा और कुलजाता शक्तिमें गमन तथा उसे दर्शन और स्पर्शन; मत्स्य, मांस आदि यथारुचि द्रव्य भक्षण और ताम्बूल सेवन कर मत्स्य, मांस, दधि, मधु, दुग्धादि तथा नाना प्रकारके भोज्य इष्टदेवताके उद्देशसे निवेदन कर जपविधानानुसार जप करें।

शाक्तसाधक सिद्धिके लिये जब जप करेंगे, तब उनके लिये दिक्, काल और स्थित्यादिका कोई नियम नहीं है, अर्थात् उन्हें किस दिन किस समय अवस्थान कर पूजाजपादि करने होंगे, उसका कोई विशेष नियम नहीं है। वलि और पूजादि वे इच्छानुसार कर सकेंगे। किंतु इसमें कुछ विशेषता है, वह यह कि साधक जहां महामंत्रका साधन करेंगे, वहां स्वेच्छानियम नहीं चलेगा। पर हां, उसका यथाविधान पूजन और जपादि अवश्य करना होगा। इस समय वस्त्र, आसन, स्थानादि सभी नियमानुसार करने होंगे।

साधक साधनकालमें मनको निर्विकल्प अर्थात् स्थिर करें। उस समय सुगन्धित श्वेत और लौहित्य कुसुम और बिल्वपत्रादि द्वारा इष्टदेवताकी अर्चना करना उचित है। अर्चना अर्थात् पूजा और जपके बाद पेय, चर्व्य, चोष्य, भोक्ष्य, भोग, गृह, सुख इन सबोंकी युवतीरूपमें चिन्ता करें। इस प्रकार चिंताके बाद कुलजा शक्तिका दर्शन कर समाहित चित्तसे उन्हें प्रणाम करें। ऐसा करनेसे यदि साधकको भाग्यवशतः, कुलदृष्टि उत्पन्न हो जाये, तो वे मानसी पूजाके अधिकारी होंगे। मानसीपूजा करके वे बाला, यौवनोन्मत्ता, वृद्धा, सुन्दरी, कुत्सिता और महादुष्टा इन्हें प्रणाम कर स्मरण करें। ये सब स्त्रियोंके प्रहार हैं, इनकी निन्दा या इनके प्रति कौटिल्याचरण वा अप्रियभाषणका परित्याग करना होगा, क्योंकि ऐसा करनेसे सिद्धिमें बाधा पहुंचती है। स्त्रीशक्तिगण ही एकमात्र देवता, प्राण और विभूषण स्वरूप हैं। सभी समय स्त्रीके साथ रहना होगा।

"स्त्रीसङ्गिना सदा भाव्यमन्यथा स्वस्त्रियामपि।
विपरीतरता सा तु भवितां हृदयोपरि॥
नाधर्मो जायते सुभ्रू किन्त्र धर्मो महान् भवेत्।
स्वेच्छाचारोऽत्र गदितः प्रचरेत् हृष्टमानसः॥"

(श्यामारहस्य ८ प०)

शाक्त साधकको इस प्रकार आचारयुक्त हो कर पूजा और जपादिका अनुष्ठान करना चाहिये। कुलस्त्रियोंके साथ उक्त प्रकारसे पानभोजनादि करके पूजा-जपादि करनेसे मंत्र सिद्ध होता है।

कौलतंत्रमें लिखा है, कि पानमें जिसको भ्रांति है, रक्तरेतमें जिसको घृणा है, शुद्धिमें अशुद्धताभ्रम है और मैथुनमें पापशंका है, वह भ्रष्ट है, भ्रष्ट व्यक्ति किस प्रकार चण्डीमंत्र साधन कर सकेगा? वह भ्रष्टव्यक्ति इस जन्ममें रोग और शोकका भोग कर अंत कालमें रौरव नरकका भोग करता है। शाक्तोंके लिये पञ्चमकार ही सुख और मोक्षका एकमात्र श्रेष्ठसाधन है। शक्तिदेवी भावरूपा हैं तथा वे रेतः द्वारा प्रसन्न होती हैं। रेतः

द्वारा उनका तर्पण मद्य और मांसके समान है। केवल पञ्चमकार द्वारा ही साधक सिद्धिलाभ करते हैं।

"केवलैः पञ्चमैर्देवि सिद्धो भवति साधकः।
ध्यात्वा कुण्डलिनीं शक्तिं रमन् रेतो विमुञ्चेत्॥"

यदि शक्तिसाधनमें अमन्त्रा नारी लाभ हो, तो उसे आत्मदेहस्वरूप समझ कर उसके कानमें मन्त्र प्रदान करें। ऐसा करनेसे हो वे भुक्ति और मुक्तिप्रदायिनी शक्ति होगी। रम्भा और उर्वशी आदि स्वर्गोंमें तथा इस लोकमें जो सर्वश्रेष्ठा स्त्री हैं, उनका नाथ होनेसे वे शाक्त या कौलिक कहलाते हैं।

साधक गुरुपत्नी आदिको शक्ति बना सकते हैं। क्योंकि गुरु साक्षात् शिवस्वरूप है, उनकी पत्नी परमेश्वरी हैं,—

"गुरोः स्नुषा गुरोः कन्या तथा च मन्त्रपुत्रिका।
एतस्या मरणं वर्ज्जं ब्रह्मघ्नं मानसेऽपि च॥
कौलिकस्य च पत्नी च सा साक्षादीश्वरी शिवे।
तस्या रमणमात्रेण कौलिको नारकी भवेत्॥
मातापि गौरवाद्वर्ज्या अन्या वा विहिताः स्त्रियः।
भूतीयागे च कर्त्तव्यो विचारो मन्त्रवित्तमैः॥"

शिवहीन जो शक्ति है उसे बिलकुल परित्याग करना होता है। साधक पञ्चमकारके प्रथम द्वारा भैरव, द्वितीय द्वारा ब्रह्मरूपभाक्, तृतीय द्वारा महाभैरव, चतुर्थ द्वारा पूज्यैकनायक और पञ्चम द्वारा शिवतुल्य होते हैं।

साधक कुलाचार्य गृहमें जा कर पापविशुद्धिके लिये अमृतके लिये प्रार्थना करें, यदि अमृत न मिले, तो जल पान करें। कुलाचार्य जिस भावमें पात्र दें, उसे भक्ति पूर्वक नमस्कार कर ग्रहण करना होगा।

ज्ञानवान् साधक द्यूतक्रीड़ादि द्वारा वृथा समय नष्ट न करें। देवपूजा, जप, यज्ञ और स्तवपाठादि द्वारा समय बितावें। सर्वदा गुरुके साथ शास्त्रालाप, गुरुदर्शन, गुरुप्रणाम और गुरुपूजादि करें। गुरुके आगे पृथक् पूजा और औद्धत्य, दीक्षा, व्याख्या और प्रभुत्वका परित्याग करना उचित है। गुरुकी शय्या, आसन, यान, पादुका, स्नानोदक और छाया इन सबका लङ्घन न करें। गुरुका नाम भी लेना मना है। कायमनोवाक्यसे गुरुका अनुगामी हो गुरुके प्रति भक्ति रख कर साधक साधना करें।

शाक्तगण सभी पदार्थोंको शक्तिरूपमें अवलोकन करें। शक्ति ही शिव है, शिव ही शक्ति है, ब्रह्म, विष्णु, इन्द्र, रवि, चन्द्र और ग्रहगण आदि सभी शक्तिस्वरूप हैं। और तो क्या, यह समस्त निखिल ब्रह्माण्ड शक्तिस्वरूप है। जो इस निखिल जगत्को शक्तिरूपमें नहीं देख सकते, वे निरयगामी होते हैं। (श्यामारहस्य)

वर्त्तमान शाक्ताचारके सम्बन्धमें असंख्य तान्त्रिक निबन्ध हैं जिनमें लक्ष्मण देशिकका शारदातिलक, राघवभट्टकृत शारदातिलककी टीका, ब्रह्मानन्दगिरिकी शाक्तानन्दतरङ्गिणी, गौड़ीय शङ्कराचार्यका तारारहस्य, ज्ञानानन्दका कौलावलीतन्त्र और कृष्णानन्द आगमवागीशका तन्त्रसार, इन सब ग्रन्थोंमें सभी बातें संक्षेपसे लिखी गई हैं।

२ शक्तिमान्, बलवान्। (ऋक् ७।१०३।५)

शाक्तागम (सं० पु०) तन्त्रशास्त्र।

शाक्तानन्दतरङ्गिणी (सं० स्त्री०) तन्त्रभेद।

शाक्तिक (सं० पु०) शक्त्या जीवति शक्ति (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्, आद्यचो वृद्धिः। १ शक्ति-उपासक, शाक्त। २ भाला चलानेवाला।

शाक्तीक (सं० पु०) शक्तिप्रहरणमस्य शक्ति (शक्तियष्ट्यो रीकक्। पा ४।४।५९) इति ईकक्। १ शक्ति या भाला सम्बन्धी। २ भाला चलानेवाला।

शाक्तेय (सं० त्रि०) १ शक्ति-सम्बन्धी। २ शक्तिका उपासक, शाक्त। ३ शक्तिका पुत्र पराशर।

शाक्त्य (सं० पु०) शक्ति ष्यञ्। १ शक्तिका उपासक, शाक्त। २ वैदिक गौरिवीति ऋषिका गोत्रापत्य। ३ पराशर।

शाक्त्यायन (सं० पु०) शाक्त्य ऋषिका गोत्रापत्य।

शाक्मन् (सं० क्लो०) बल। (ऋक् १०।५६।६)

शाक्य (सं० पु०) शकोऽभिधानमस्येति (शण्डिकादिभ्योञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। १ बुद्धदेव।

२ एक प्राचीन क्षत्रिय जाति। ये लोग अपनेको सूर्यवंशीय इक्ष्वाकु वंशोद्भव बतलाते हैं। एक समय शाक्य लोगोंने अपने बलवीर्य प्रभावसे विशेष

प्रतिष्ठा लाभ की तथा स्वयं भगवान् बुद्धने इस वंशमें अवतीर्ण हो कर शाक्यजातिका गौरव बढ़ाया।

जिस समय मगधाधिप बिम्बिसार राजगृहमें, अङ्गाधिपति चम्पा नगरमें, लिच्छवी वैशालीमें और साकेतपुरी परित्यागके बाद जब कोशलपति प्रसेनजित् उत्तर-श्रावस्तिनगरमें बड़े गौरवसे राज्यशासन कर रहे थे, उस समय कोशलराज्यके पूर्वभागमें रोहिणी नदीके किनारे शाक्य और कोलि नामक दो क्षत्रिय शाखा धीरे धीरे अपना मस्तक उठानेकी कोशिश कर रही थी। इस समय मगधाधीश्वर और कोशलपति एक दूसरेका दुश्मन बन कर राज्यसीमा बढ़ानेकी इच्छासे युद्धविग्रहमें लिप्त थे। इसी मौकेमें रोहिणी नदीके एक किनारे शाक्योंने और दूसरे किनारे कोलियोंने अपनेको स्वाधीन घोषित कर दिया। कपिलवास्तुमें शाक्य राजधानी प्रतिष्ठित हुई। शाक्य और कोलियोंने आपसमें आत्मीयता सूत्रसे बद्ध हो बड़े आनन्दसे कुछ समय शान्ति सुखभोग किया था। शाक्यपति शुद्धोदनने दो कोलीय राजकुमारियोंका पाणिग्रहण किया। इन दोनों राजकुमारियोंसे कोई पुत्र उत्पन्न न होनेके कारण राजा शुद्धोदन बड़े चिन्तित रहा करते थे। कुछ समय बाद बड़ी रानीको गर्भका लक्षण दिखाई दिया। प्राचीन प्रथानुसार राजनन्दिनी सन्तान प्रसव करनेके लिये पितालय चली। किन्तु राहमें ही उन्होंने लुम्बिनी उद्यानमें एक पुत्र प्रसव किया। नवजात कुमार और प्रसूतिको उसी समय कपिलवास्तुमें लौटा लाया गया। सात दिनके बाद सूतिकागारमें ही माताका देहान्त हुआ। अब छोटी रानी ही राजकुमारका लालन पालन करने लगी। यह बालक शाक्यवंशकेतु होनेके कारण शाक्यसिंह नामसे प्रसिद्ध हुआ। आगे चल कर कोलिय-राजकन्या यशोधरा या सुभद्राके साथ उसका विवाह हुआ। बुद्ध देखो।

जिस शाक्यवंशमें शाक्यसिंहने जन्मग्रहण किया, उस ऐक्ष्वाक वंशधरोंने किस प्रकार शाक्य नामसे प्रथित हो अपना आधिपत्य फैलाया था, उसका संक्षिप्त विवरण बौद्ध ग्रन्थावलीमें लिखा है। वे सब ग्रन्थ पढ़नेसे प्रवर्द्धित शाक्य जातिकी संख्या और उनका प्रभाव तथा बौद्धमतसे उनके विराग और अनुरक्तिका यथायथ इतिहास संग्रह किया जा सकता है।

तिब्बत देशीय दुल्व या विनयपिटक ग्रन्थमें लिखा है, कि वाराणसीपति महेश्वरसेनके वंशधर कुशीनगर और पोतलमें राज्य करते थे। उस वंशमें पोतल नामक एक राजा थे। गौतम और भरद्वाज नामक उनके दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ गौतम पिताकी अनुमति ले कर पोतलके प्रान्तदेशमें तपस्या करने चले गये। कनिष्ठ भरद्वाज कर्णिककी मृत्युके बाद राजा हुए। भरद्वाजके कोई पुत्र सन्तान न रहनेके कारण दुःखित अन्तःकरणसे एक दिन गौतमने अपने गुरु ऋषि कनकवर्णसे कहा, 'प्रभो! पोतलराजवंश लोप होना चाहता है, आप ऐसा कोई रास्ता निकाल दीजिये जिससे लोप न हो।' प्रिय शिष्यका ऐसा वचन सुन कर ऋषिने योगबलसे गौतमके शरीरमें वृष्टिपात कराया जिससे उन्हें दिव्य शक्तिके सञ्चारके साथ दिव्य ज्ञान उत्पन्न हो आया। पीछे उन्हींकी देहसे निःसृत दो रक्तमिश्रित बिंदु कुछ समय सूर्यके उत्तापमें रह कर अण्डेमें परिणत हो गया। उत्तरोत्तर सूर्यके उत्तापसे वे दोनों अण्डे फूट गये और दिव्यकांतियुक्त दो नवकुमार भीतरसे निकले और पार्श्ववर्त्ती ईखके खेतमें चले गये। उस प्रकर तापसे दोनों बालककी उत्पत्ति हुई सही, पर :नष्टवीर्य गौतम दिन पर दिन कमजोर होते गये। ऋषि कनकवर्ण उन दोनों संतानोंको गौतमके पुत्र जान कर घर लाये और उनका लालन पालन करने लगे। सूर्योदयके साथ जन्म होनेसे वे सूर्यवंशी, गौतमके अङ्गजात होनेसे आङ्गिरस और इक्षु-क्षेत्रमें प्राप्त होनेसे इक्ष्वाकु या ऐक्ष्वाक नामसे परिचित हुए।

भरद्वाजकी मृत्युके बाद मन्त्रिदलने ऋषिके साथ सलाह करके गौतमके बड़े लड़केको राजा बनाया। कुछ समय राज्य करके वे अपुत्रक अवस्थामें पञ्चत्वको प्राप्त हुए। पीछे छोटे लड़के इक्ष्वाकु नाम धारण कर राजसिंहासन पर बैठे। इसके बाद उनके सात वंशधरोंने एक एक कर पोतल राजधानीमें राज्य किया। उस वंशके अन्तिम राजा इक्ष्वाकु विरुधक थे। उनके उल्कामुख, करकर्ण, हस्तिनाजक और नूपुर नामक चार

पुत्र थे। किन्तु राजाने एक परमसुन्दरी नारीके रूप पर मुग्ध हो उससे इस शर्त पर विवाह कर लिया, कि उसके गर्भसे जो पुत्र जन्म लेगा, वही सिंहासनाधिकारी होगा। कुछ समय बाद उस रमणीके गर्भसे राज्यानन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजाने पूर्व वचनानुसार उसीको राजा बनाया और चारों लड़कोंको देशसे निकाल दिया। चारों राजकुमार आत्मीय और अनुचरोंसे परिवृत्त हो हिमालयको पार कर भागीरथीके किनारे कपिलमुनिके आश्रममें पहुंचे। यहां ऋषि-आश्रमके समीप उन्होंने कुटी बनाई। ऋषिके आदेशानुसार वे लोग अपनी स्वजातीय बहनोंसे ही विवाह कर अनेक सन्तान संतति उत्पादन करनेमें बाध्य हुए।

इस प्रकार दलपुष्ट हो कर उन्होंने ऋषिप्रदर्शित आश्रमभागमें एक नगर बसाया। ऋषिके नामानुसार उस नगरका नाम कपिलवास्तु रखा गया। यहां धीरे धीरे उनकी संख्या बढ़ने लगी। पीछे वे लोग देवदह नामक नगर स्थापन कर वहां रहने लगे। इस समय "शाक्यगण स्वजातीयको छोड़ किसी रमणीका पाणिग्रहण नहीं कर सकते" ऐसी विवाह पद्धति लिपिबद्ध हुई।

इधर एक दिन राजा विरूढ़कने अपने प्रथम चार पुत्रोंकी याद कर राजसभामें उनकी बात उठाई। राजमंत्रियोंने कहा, 'महाराज! आपके पुत्रगण अपने अदृष्ट और शक्तिके बलसे इस प्रकार लब्धप्रतिष्ठ हो कर राज्येश्वर हो गये हैं।' इस पर राजाने पुत्रोंकी अलौकिक कीर्त्तिकहानी सुन कर कहा, 'मेरे कुमार साहसी और शक्तिमान् हैं। तभीसे वे लोग शाक्य नामसे परिचित हुए। किसी दूसरेका कहना है, कि इनके पूर्वपुरुषोंने शाकवृक्षका आश्रय लिया था और ये लोग इनके वंशधर होनेके कारण 'शाक्य' कहलाये।

विरूढ़ककी मृत्युके बाद उनके सबसे छोटे लड़के राजा हुए। इनके कोई सन्तानादि न रहनेसे पीछे उल्कामुखने ही राजसिंहासनको सुशोभित किया। अनंतर यथाक्रम करकर्ण, हस्तिनाजक और नूपुर राजा हुए। नूपुरके पुत्र वशिष्ठ, पीछे उस वंशमें कई राजाओंके बाद धन्वदुर्ग कपिलवास्तुके अधीश्वर हुए। इनके सिंह-हनु और सिंहनाद नामक दो पुत्र थे। सिंह-हनुके शुद्धोदन, शुक्लोदन, द्रोणोदन और अमृतोदन नामक चार पुत्र तथा शुद्धा, शुक्ला, द्रोणा और अमृता नामकी चार कन्याएं उत्पन्न हुईं। शुद्धोदनके पुत्र सिद्धार्थ और आयुष्मत नन्द; शुक्लोदनके पुत्र आयुष्मत् जिन और शाक्य राजभद्र (भल्लिक), द्रोणोदनके पुत्र महानाम और आयुष्मत् अनिरुद्ध; अमृतोदनके पुत्र आनन्द और देवदत्त; शुद्धाके सुप्रबुद्ध, शुक्लाके मल्लिक, द्रोणाके सुलभ, अमृताके कल्याणवर्द्धन और सिद्धार्थके राहुल नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इन सब शाक्यकुलरथियोंसे बौद्धधर्मकी पुष्टि और प्रचार हुआ।*

सिद्धार्थके बुद्धत्वप्राप्ति और तन्मतप्रचारके पहले शाक्यगण शिव और शक्तिके उपासक थे, उसका आभास ललितविस्तारादि ग्रंथमें यथेष्ट मिलता है। इस समय संख्यावृद्धिके साथ शाक्योंका प्रभाव बहुत कुछ बढ़ गया था। पूर्वोक्त कोशलराज प्रसेनजित्के पुत्र विरूढ़क या विरूधक पिताको राज्यच्युत कर स्वयं कोशलके राजा हुए। पीछे उन्होंने कपिलवास्तुके शाक्यकुलको निर्मूल किया था। जातिगत और धर्मगतविद्वेष ही इसका एकमात्र कारण था।

शाक्यगण जो बुद्धधर्म ग्रहण कर बौद्ध हुए थे, उसका परिचय बौद्धधर्म विकाशके इतिहासमें अच्छी तरह दिया गया है। आनन्द, काश्यप प्रभृति सिद्धार्थके सभी अनुचरगण शाक्यवंशोद्भव थे। धर्मके आच्छादनसे सामाजिक आवरण हट गया, शाक्यगण तब बौद्ध यति या श्रमण नामसे परिचित हुए, शिलालिपिसे शाक्य भिक्षु और भिक्षुणीका परिचय पाया जाता है, वे लोग ५वीं छठी शताब्दीमें भी विद्यमान थे। उनमेंसे ५वीं सदीमें उत्कीर्ण शाक्यभिक्षु बोधिधर्मकी मूर्त्तिलिपि, यशोविहारकी बौद्ध भिक्षुणी जयभट्टारिकाकी मूर्त्तिलिपि, शाक्यराज महानामकी बोधगयास्थ लिपि, गोसूरसिंह-

* ऊपर जो उपाख्यान दिया गया है, वह बहुत कुछ रामायणकी छायाके आधार पर रचित मालूम होता है। जो हो, उसमें मूल इतिहासकी कुछ छाया भी प्रतिफलित दिखायी देती है।

वलके पुत्र विहारस्वामी रुद्रकी लिपि, शाक्यपति धर्मदासकी साञ्चीलिपि और तिष्याम्रतीर्थनिवासी शाक्य-भिक्षु धर्मगुप्त और दंष्ट्रसेनको बोधगयास्थ लिपि उसका प्रकृष्ट प्रमाण है।

शाक्यपाल (सं० पु०) राजभेद। (राजतर० ८।१३२६)

शाक्यपुङ्गव (सं० पु०) शाक्ये शाक्यवंशे पुङ्गवः श्रेष्ठः। शाक्यसिंह, शाक्यमुनि।

शाक्यप्रभ (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद। (तारनाथ)

शाक्यबुद्ध (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यमुनि।

शाक्यबुद्धि (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद, शाक्यबोधका एक नाम।

शाक्यबुद्धोपजीविन् (सं० त्रि०) शाक्यबुद्धं बुद्धमतं उपजीवति जीव-णिनि। शाक्यबुद्ध-मतावलम्बी।

शाक्यबोधिसत्व (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यमुनि।

शाक्यभिक्षु (सं० पु०) बुद्धधर्मावलम्बी। मनुटीकाकार कुल्लूकने शाक्य भिक्षुओंको पाषण्डी बताया है।

'पाषण्डिनः वेदवाह्यव्रतलिङ्गधारिणः शाक्यभिक्षु क्षपणकादयः' (कुल्लूक)

शाक्यभिक्षुकी (सं० स्त्री०) बौद्ध-भिक्षु रमणी। (दशकुमारच०)

शाक्यमति (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद। (तारनाथ)

शाक्यमहाबल (सं० पु०) बौद्धराजभेद।

शाक्यमित्र (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद।

शाक्यमुनि (सं० पु०) बुद्धदेव, शाक्यवंशावतंस बुद्ध, मुनिविशेष। पर्याय—स्वजित श्वेतकेतु, धर्मकेतु, महामुनि, पञ्चज्ञान, सर्वदर्शी महाबोध, महाबल, बहुक्षम, त्रिमूर्त्ति, सिद्धार्थ, शक। (शब्दरत्ना०)

अमरटीकाकार भरतने इस शब्दकी व्युत्पत्ति इस-प्रकार की है,—बुद्धदेव शाक्यवंशमें उत्पन्न हुए थे, इसलिये शाक्य तथा मुनिकी तरह आचरण करते थे, सुतरां शाक्यमुनि कहलाये। शाक शब्दसे वृक्षका बोध होता है। वृक्षके नीचे वे रहते थे; इस कारण शाक्य नामसे अभिहित हुए। इक्ष्वाकुवंशीय बहुतेरे व्यक्ति पिताके शापसे गौतम वंशीय कपिल मुनिके आश्रममें शाक-वृक्षके नीचे वास करते थे, अतएव उनका शाक्य नाम पड़ा।

'शाक्यवंशत्वात् शाक्यः शाक्यश्चासौ मुनिश्चेति शाक्यमुनिः तथाहि शाको वृक्षविशेषस्तत्रभवा विद्यमानाः शाक्याः। पितुः शापेन केचिदिक्ष्वाकुवंश्या गौतमवंशजकपिलमुनेराश्रमे शाकवृक्षे कृतवासाश्च शाक्या उच्यन्ते।' तदुक्तं।

"शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वास यस्मात् प्रचक्रिरे।
तस्मादिक्ष्वाकुवंशास्ते भुवि शाक्या इति श्रुताः।"
(अमरटी० भरत)

शाक्यवर्द्ध (सं० पु०) शाक्यकुलदेवताविशेष।

शाक्यश्री (सं० पु०) बौद्धाचार्यविशेष।

शाक्यसिंह (सं० पु०) शाक्यः सिंह इव। शाक्य-मुनि। (अमर)

शाक्र (सं० त्रि०) शक्र-अण्। १ शक्रसम्बन्धी। (पु०) ज्येष्ठा नक्षत्र। इसके अधिपति इन्द्र हैं।

शाक्री (सं० स्त्री०) १ दुर्गा। २ शक्रपत्नी, इन्द्राणी।

शाक्रीय (सं० त्रि०) शक्र-सम्बन्धी।

शाक्वर (सं० त्रि० १ शक्तिशाली, पराक्रमी, बलवान्। (पु०) २ शाकोद्भव वायु, सृष्टिसे पहले आत्मासे आकाश निकला, पीछे इस आकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई। ३ इन्द्र। ४ इन्द्रका वज्र। ५ बैल, सांड़। ६ प्राचीन कालकी एक रीति या संस्कार।

शाक्वरवर्ण (सं० क्ली०) सामभेद। (लाट्या० ७।२।१।६)

शाक्वर्य (सं० क्ली०) शाक्वरका कार्य।

शाख (सं० पु०) १ कृत्तिकाका पुत्र, कार्त्तिकेय। २ करञ्ज। ३ भाग।

शाख (फा० स्त्री०) १ टहनी, डाल, डाली। २ लगा हुआ टुकड़ा, खंड, फांक। ३ नदी आदिकी बड़ी धारामेंसे निकली हुई छोटी धारा। ४ सींग।

शाखदार (फा० वि०) १ जिसमें बहुत-सी शाखाएं हों, टहनीदार। २ सींगवाला, सींगदार।

शाखा (सं० स्त्री०) शाखति गगनं व्याप्नोतीति शाख-अच्-टाप्। १ वृक्षाङ्गविशेष, पेड़के धड़से चारो ओर निकली हुई लकड़ी या छड़, डाल, टहनी। पर्याय—लता, लङ्का, शिखा। (भरतधृत मेदिनी) २ शरीरका अवयव, हाथ और पैर। ३ बाहु। ४ चौखट। ५ घरका पाखा। ६ उंगली। ७ अवयव, अङ्ग। ८ प्रकार, किसी मूल वस्तुसे निकले हुए उसके भेद।

(गीता २।४१) ६ विभाग, हिस्सा। १० अंतिक, समीप। ११ किसी शास्त्र या विद्याके अंतर्गत उसका कोई भेद। १२ वेदकी संहिताओंके पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियोंने अपने गोत्र या शिष्यपरम्परामें चलाये। शौनकने अपने 'चरणव्यूह'-में वेदोंकी जो शाखाएं गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेदकी पांच शाखाएं हैं, शाकल्य, बाष्कल, आश्वलायन, शाखायन और माण्डूकेय। वायुपुराणमें यजुर्वेदकी ८६ शाखाएं कही गई हैं जिनमें ४२के नाम चरणव्यूहमें आये हैं। इन ४२में माध्यन्दिन और कण्वको ले कर १७ शाखाएं वाजसनेयीके अन्तर्गत हैं। सामवेदकी सहस्र शाखाएं कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं। इसी प्रकार अथर्ववेदकी भी बहुत-सी शाखाओंमेंसे पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं।

शाखाकण्ट (सं० पु०) शाखायां कण्टो यस्य। स्नूही वृक्ष, थूहर। इस वृक्षकी प्रत्येक शाखामें कांटा होता है, इसलिये इसका नाम शाखाकण्ट हुआ है। (राजनि०)

शाखाङ्ग (सं० क्ली०) अङ्गस्य शाखा पूर्वनिपातः। शरीरका अवयव, हाथ और पैर।

शाखाग्र (सं० क्ली०) शाखाया अग्रं। १ विटपाग्र, शाखाका अगला हिस्सा। २ अङ्गुली, उंगली।

शाखा चङ्क्रमण (सं० पु०) १ एक डाल परसे दूसरी डाल पर कूद जाना। २ कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यह थोड़ा वह पढ़ना, ३ एक विषय अधूरा छोड़ कर दूसरा विषय हाथमें लेना, एक विषय पर स्थिर न रहना।

शाखा चन्द्रन्याय (सं० पुं०) एक न्याय या कहावत जो ऐसी बातके सम्बन्धमें कही जाती है जो केवल देखनेमें ज्ञान पड़ती है, वास्तवमें नहीं होती। चंद्रमा कभी कभी देखनेमें ऐसा ज्ञान पड़ता है मानो पेड़की डाल पर है।

शाखाद (सं० पु०) पेड़ोंकी डाल या टहनी खानेवाला पशु। जैसे—गौ, बकरी, हाथी।

शाखादण्ड (सं० पु०) शाखारण्ड देखो।

शाखानगर (सं० क्ली०) शाखेव नगरं। नगरका प्रान्तवर्त्ती छोटा नगर, उपनगर। अमरटीकामें भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है—नगरमें अपरिमित लोगोंका स्थान न होनेसे उन सब लोगोंके रहनेके लिये उसके समीप जो नगर स्थापित होता है, उसे शाखानगर कहते हैं। अंगरेजीमें इसका नाम है Suburb।

शब्दरत्नावलीमें लिखा है, कि मूल नगरसे आरम्भ करके दूसरा जो नगर बसाया जाता है, उसे शाखानगर कहते हैं।

शाखान्तर (सं० क्ली०) शाखाया अन्तरं। अन्य शाखा, दूसरी शाखा।

शाखापशु (सं० पु०) यूपवद्ध पशु। (कात्या० गृह्य० १।१०)

शाखापित्त (सं० क्ली०) एक रोग। इसमें हाथ पैरमें जलन और सूजन होती है।

शाखापुर (सं० क्ली०) पुरस्य शाखा अभिधानात् पूर्व निपातः, शाखेव पुरमिति वा। शाखानगर, किसी नगरके आस-पास फैली हुई बस्ती। (हेम)

शाखाप्रकृति (सं० स्त्री०) अपने राज्यके कुछ दूर परके आठ प्रकारके राजा। इनका विचार किसी राजाको युद्धके समय रखना चाहिये। (मनु ७।१५६)

शाखाभृत् (सं० पु०) शाखां बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुक्। वृक्ष, पेड़।

शाखामृग (सं० पु०) शाखायां मृगः। १ वानर, बंदर। २ गिलहरी।

शाखाम्ल (सं० पु०) जलबेंत।

शाखाम्ला (सं० स्त्री०) तिन्तिड़ी वृक्ष, इमलीका पेड़।

शाखारण्ड (सं० पु०) वह ब्राह्मण जो अपनी शाखाको छोड़ कर दूसरी शाखाका अध्ययन करे, शाखादण्ड। पर्याय—अन्यशाखक। (हेम)

शाखारथ्या (सं० स्त्री०) सोलह हाथ चौड़ा रास्ता।

शाखारोग (सं० पु०) रोगविशेष। रक्तादि धातु कुपित हो कर त्वगजात वीसर्प और गुल्मादि रोग पैदा करता है। (चरक सूत्रस्था० ११ अ०)

शाखाल (सं० पु०) शाखां लाति आश्रयतीति ला-क। वानीर वृक्ष, जलबेंत।

शाखावात (सं० पु०) हाथ पैरमें होनेवाला वातरोग। हाथ और पैरको देहकी शाखा कहते हैं, यहां वात मिलनेसे यह शाखावात कहलाया। (सुश्रुत)

शाखाशिफा (सं० स्त्री०) शाखायाः शिफा । वह डाल जो नीचेकी ओर बढ़ कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़के धड़को रूपमें हो जाय । जैसे,—बटकी जटा या बरोह ।

शाखास्थि (सं० क्ली०) हाथकी हड्डी ।

शाखि (सं० पु०) तुर्किस्तान ।

शाखिन् (सं० पु०) शाखाऽस्त्यस्येति शाखा-इनि । १ वृक्ष, पेड़ । २ वेद । ३ वेदकी किसी शाखाका अनुयायी । ४ पीलूका पेड़ । ५ तुर्किस्तानका निवासी । (त्रि०) ६ शाखाविशिष्ट, शाखाओंसे युक्त ।

शाखिमूल (सं० पु०) रम्घि वृक्ष ।

शाखिल (सं० पु०) व्यक्तिविशेष । (कथासरित्सा० ४७।८५)

शाखो (सं० पु०) शाखिन् देखो ।

शाखीय (सं० त्रि०) शाखा-संबन्धी ।

शाखोच्चार (सं० पु०) विवाहके समय वंशावलीका कथन ।

शाखोट (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्षविशेष, सिहोरका पेड़ । कलिङ्ग—अखोड़मरणु, महाराष्ट्र—साहोड़, तैलङ्ग - भारणिकेचेट्टु, रवन्की, बम्बई—सहोड़ा । संस्कृत पर्याय—विशाचद्रु, पीतफल, कर्कशच्छद, भूतवृक्ष, सकट, अक्षधर, गवाक्षी, धूकावास, रुक्षपत्र, पीत, कैशिकयोज, क्षीरनाशन । गुण—तिक्त, उष्ण, पित्तवर्द्धक और वातनाशक । (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—रक्तपित्त, अर्श, वातश्लेष्म और अतिसारनाशक । (भावप्रकाश) श्वित्र (सफेद कोढ) रोगमें इसका बीज बाँट कर प्रलेप देनेसे आरोग्य होता है ।

शाख्य (सं० त्रि०) शाखा ष्यञ् । शाखा-सम्बन्धी ।

शागिर्द (फा० पु०) किसीसे विद्याप्राप्त करनेका संबंध रखनेवाला, शिष्य, चेला ।

शागिर्दपेशा (फा० पु०) १ मातहत । २ अहलकार, कर्मचारी । ३ खिदमतगार, सेवक । ४ बड़ी कोठीके पास नौकरोंके लिये अलग बने हुए घर ।

शागिर्दी (फा० स्त्री०) १ शिक्षाप्राप्त करनेके लिये किसी गुरुके अधीन रहनेका भाव, शिष्यता । २ सेवा टहल ।

शागलि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम ।

शाङ्कर (सं० क्ली०) शङ्कर-अण् । १ एक छन्दका नाम । इसका रूपान्तर शाकर या शार्कर ऐसा देखा जाता है । शङ्करो देवताऽस्य अण् । २ रुद्रदैवतक नक्षत्र, आर्द्रा नक्षत्र । इस नक्षत्रके अधिष्ठाता देवता शङ्कर हैं, इसलिये इसका नाम शाङ्कर है ।

(पु०) शङ्करस्यायं वाहनत्वात् शङ्कर अण् । ३ बलीवर्द, साँड़ । (मेदिनी) ४ शङ्कराचार्यका अनुयायी । ५ सोमलताका एक भेद । (त्रि०) ६ शङ्कर-सम्बन्धी । ७ शङ्कराचार्यका । जैसे,—शाङ्करभाष्य, शाङ्करमत ।

शाङ्करभाष्य (सं० क्ली०) शङ्कराचार्य-प्रणीत भाष्य । वेदान्तदर्शन, गीता और उपनिषदोंके जिस भाष्यको शङ्कराचार्यने प्रणयन किया, उसे शाङ्करभाष्य कहते हैं ।

शाङ्करि (सं० पु०) शङ्करस्यापत्यं पुमान् शङ्कर-इञ् । १ शिवके पुत्र, गणेश । २ कार्त्तिकेय । ३ अग्नि । ४ एक मुनिका नाम । ५ शमीका पेड़ ।

शाङ्करी (सं० स्त्री०) शिव द्वारा निर्धारित अक्षरोंका क्रम, शिवसूत्र ।

शाङ्कव्य (सं० पु०) शङ्कोर्गोत्रापत्यं शंकु (गर्गादिभ्यो यञ् । पा ४।१।१०५) इति यञ् । शंकुका गोत्रापत्य ।

शाङ्कव्यायनी (सं० स्त्री०) शाङ्कव्य ष्फ, ङीष् । शाङ्कव्यकी स्त्री । (पा ४।१।१८)

शाङ्कित (सं० पु०) चोरक नामक गन्धद्रव्य ।

शाङ्कुक (सं० पु०) राजतरङ्गिणीके अनुसार एक कवि । इन्होंने भुवनाभ्युदय नामक एक काव्य रचा ।

(राजतरङ्गिणी ६।७०४)

शाङ्कुची (सं० स्त्री०) शकुचि मछली ।

शाङ्कुपथिक (सं० त्रि०) शंकुपथेन आहृतं गच्छतीति वा । शंकुपथ (उत्तरपथेनाहृतञ्च । पा ५।१।७७) इति ठञ्, आद्यचो वृद्धिः । १ शंकुपथ द्वारा आहृत । २ शंकुपथ द्वारा गमनकारी ।

शाङ्कुर (सं० त्रि०) १ शंकु-सम्बन्धी । (पु०) २ लिङ्गभेद ।

(अथर्व० ७,६०।३)

शाङ्ख (सं० त्रि०) शङ्खस्येदं अण् । १ शङ्ख-सम्बन्धी, शंखका बना हुआ । (पु०) २ शंखकी ध्वनि ।

शाङ्खमित्र (सं० पु०) शंखमित्रका गोत्रापत्य ।

शाङ्खमिति (सं० पु०) १ अथर्वप्रातिशाख्यका एक वृत्तिकार। २ शंखमित्रका गोत्रापत्य।

शाङ्खलिखित (सं० पु०) शंख और लिखित ऋषिका धर्मशास्त्र-सम्बन्धी।

शाङ्खायन (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (अश्वादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) इति फञ्। एक गृह्य और श्रौत-सूत्रकार ऋषि। इनका कौशीतकीब्राह्मण भी है।

शाङ्खायन्य (सं० पु०) शाङ्खायनस्य गोत्रापत्यं शाङ्खायन (गोत्रे कुञ्जादिभ्य स्फञ्। पा ४।१।९८) इति च्फञ्। शाङ्खायनका गोत्रापत्य।

शाङ्खारि (सं० पु०) शङ्ख बेचनेवाली जाति।

शाङ्खिक (सं० पु०) शङ्खकरणं शिल्पमस्य इति शङ्ख-ठक्। १ शङ्ख बनाने और बेचनेवाला। पर्याय—काम्बविक, शङ्खकार, काम्बजक। २ शङ्खवादक, शङ्ख बजानेवाला। पर्याय—शङ्खध्मा। (जटाधर)

(त्रि०) ३ शङ्ख-सम्बन्धी। ४ शङ्खका बना हुआ।

शाङ्खिन (सं० पु०) शङ्खिनोरपत्यं शङ्खिन् (संयोगादिभ्यश्च। पा ६।४।१६६) इति अण्। शङ्खीका अपत्य।

शाङ्ख्य (सं० पु०) शङ्खस्य गोत्रापत्यं शङ्ख (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति अण्। १ शङ्खका गोत्रापत्य। (त्रि०) २ शङ्ख-सम्बन्धी, शङ्खका बना हुआ।

शाङ्गुष्ठा (सं० स्त्री०) साङ्गुष्ठा देखो।

शाचि (सं० पु०) १ सक्तु। २ शक। ३ प्रख्यात। (ऋक् ८।१७।१२)

शाचिगु (सं० त्रि०) १ शक्त गाभीयुक्त, जिसकी गाय सब काममें समर्थ हो। २ विख्यात गाभीयुक्त। (ऋक् ८।१८।१२)

शाञ्चो (सं० स्त्री०) शालिञ्च शाक, एक प्रकारका साग। (रसचि० ६ अ०)

शाट (सं० पु०) १ वस्त्रभेद, वह कपड़ा जो कमरमें लपेट कर पहना जा सके, धोती। २ कपड़ेका टुकड़ा। ३ एक प्रकारकी कुरती। ४ ढीला ढाला पहनावा।

शाटक (सं० पु० क्ली०) शाट स्वार्थे-कन्। १ पट, वस्त्र। २ नाटकभेद। (अमर)

शाटिका (सं० स्त्री०) १ साड़ी, धोती। २ कचूर।

शाटी (सं० स्त्री०) साड़ी, धोती।

शाठ्य (सं० त्रि०) शठोऽभिजनोऽस्य शठ (शन्तिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। १ जिसका शठ अभिजन हो। (पु०) २ शठका गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।१।१०५)

शाट्यायन (सं० क्ली०) १ होमभेद, शाट्यायनहोम, प्रकृतिकर्म वैगुण्य प्रशमनार्थ होमविशेष। विवाह और व्रतप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें जो होम करनेको कहा गया है, उसे प्रकृतकर्म कहते हैं। प्रकृत कर्म करनेमें यदि भ्रम और प्रमादवशतः कोई त्रुटि हो जाय, तो उस त्रुटिको दूर करनेके लिये जो होम करना होता है उसे शाट्यायनहोम कहते हैं। भवदेवभट्टने प्रकृतधर्मके वैगुण्य समाधानके लिये यह होम करने कहा है। किन्तु इसे भट्टनारायण आदि स्वीकार नहीं करते। उन लोगोंका कहना है, कि प्रायश्चित्तके लिये यह होम करना होता है। प्रकृत कर्ममें यदि भ्रम हो जाय, तो उसके प्रायश्चित्तके लिये यह होम करे।

(पु०) २ मुनिविशेष।

शाट्यायनक (सं० क्ली०) शाट्यायनहोमकर्म।

शाट्यायनि (सं० पु०) शाट्यायनस्य गोत्रापत्यं शाट्यायन (तिकादिभ्यः फिञ्। पा ४।१।१५४) इति फिञ्। शाट्यमुनिका गोत्रापत्य। (शतपथब्रा० ८।१।४।६)

शाट्यायनिन् (सं० पु०) शाट्यायनेन यत् प्रोक्तं शाट्यायन (पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पा ४।३।१०५) इति णिनि। शाट्यायनप्रोक्त एक उपनिषद्।

शाठायन (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य।

शाठायन्य (सं० पु०) शठका गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।१।९८)

शाठ्य (सं० क्ली०) शठस्य भावः शठ ष्यञ्। शठता, धूर्त्तता, कपटता, बदमाशी। पर्याय—कपट, व्याज, दम्भ, उपाधि, छद्म, कैतव, कुसृति, निकृति इन नौ अयथार्थ व्यवहारको शाठ्य कहते हैं। अमरटोकामें भरतने लिखा है,—पूर्वोक्त पर्यायोंमेंसे कपट आदि छः छद्मार्थमें तथा कुसृति आदि तीन चित्तकौटिल्यमें व्यवहार होता है। यह बात कोई कोई कहते हैं। इनमें भेद यह है, कि कपट, व्याज आदि छः वञ्चनमात्रफल तथा कुसृति आदि तीन

हिंसामात्र फल है; किन्तु बहुतोंका मत है, कि ये नौ एक अर्थमें व्यवहृत होते हैं।

चाणक्यपण्डितने चाणक्यश्लोकमें लिखा है, कि जो शठ है, उसके प्रति शठताचरण करना ही युक्तियुक्त है। कुटिल व्यक्तिके प्रति सरलतानीति शास्त्रविगर्हित है।

"शठे शाठ्यं समाचरेत्" (चाणक्य)

शाठ्यवत् (सं० त्रि०) शाठ्यं विद्यते ऽस्य मतुप् मस्य व। शाठ्ययुक्त, शठताविशिष्ट, शठ, धूर्त्त।

(बृहत्संहिता ६८।५५)

शाड्वल (सं० पु०) शाद्वल देखो।

शाण (सं० क्ली०) शणेन निर्मितमिति शण-अण्। १ शाणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, भँगरा।

(पु०) २ शण्यते ज्ञायते गुणादिरनेति शण घञ्। २ कषपट्टिका, कसौटी। पर्याय—निकष, कष, शान, निकस, कस, आकष। ३ हथियारोंकी धार तेज करनेका पत्थर, सान। ४ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल। (भावप्रकाश) (त्रि०) ५ सनके पौधेसे सम्बन्ध रखनेवाला। ६ सनका बना हुआ।

शाणक (सं० पु०) शण-अण् स्वार्थे कन्। शणनिर्मित वस्त्र, सनके रेशेका बना हुआ कपड़ा, भँगरा।

शाणकशास (सं० पु०) शाणक देखो।

शाणपाद (सं० पु०) १ पर्वतविशेष। (हरिवंश) २ परिमाणविशेष, चार माशेकी एक तौल।

शाणवत्य (सं० पु०) जनपदविशेष। (भारत)

शाणवास (सं० पु०) १ वह जो सनका बुना हुआ वस्त्र पहने। २ एक अर्हत्का नाम।

शाणाजीव (सं० पु०) शाणेन आजीवतीति आ-जीव-अच्। अस्त्रमार्जक, वह जो हथियारोंमें सान देनेका काम करता हो।

शाणि (सं० पु०) पट्टवृक्ष, पटुआ।

शाणिक (सं० त्रि०) राजाओंका सम्बन्धी।

शाणित (सं० त्रि०) शाण इतच्। १ सान रखा हुआ, तीखा या तेज किया हुआ। २ कसौटी पर घसा हुआ।

शाणी (सं० स्त्री०) शाणस्य विकारः शण-अण-ङीप्। १ शणसूत्रमयी पट्टिका, सनके रेशोंसे बुना हुआ कपड़ा, भँगरा। २ वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीतके समय ब्रह्मचारीको पहननेके लिये दिया जाता है। ३ छिन्नवस्त्र; फटाहुआ कपड़ा, चीथड़ा। ४ सान। ५ कसौटी। ६ छोटा खेमा या पर्दा।

शाणीर (सं० क्ली०) शोणनद मध्यस्थित तट, वहांरी नदीका किनारा।

शाणोत्तरीय (सं० पु०) पाणिनि मुनिका एक नाम।

शालातुरीय देखो।

शाण्ड—एक राजा। "शाण्डो दाद्धिरणिनः" (ऋक् ६।६३।९) 'शाण्डः राजा'। (सायण)

शाण्डदूर्वा (सं० स्त्री०) पाकदूर्वा, एक प्रकारकी दूब।

शाण्डाकी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका पशु।

शाण्डिक (सं० पु०) माँदमें रहनेवाला साँडा नामक जन्तु।

शाण्डिक्य (सं० त्रि०) शाण्डिकोऽभिजनोऽस्य शाण्डिक (शण्डिकादिभ्यो ञ्यः। पा ४।३।९२) इति ञ्य। जिसका शाण्डिक अभिजन हो, शाण्डिक देशवासी।

शाण्डिल (शाण्डिल्य)—१ अयोध्या प्रदेशके हर्दोई जिलान्तर्गत एक तहसील या उपविभाग। यह अक्षा० २६° ५३′ से ले कर २७° २१′ उ० तथा देशा० ८०° १८′ से ले कर ५०′ के बीच पड़ता है। भू परिमाण ५५७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें हर्दोई और मिश्रिख, पूर्वमें महमूदाबाद, दक्षिणमें मालिहाबाद और मोहन तथा पश्चिममें विलग्राम तहसील है। शाण्डिल, कल्याणमल, बालामौ और गुन्दावा परगना ले कर यह उपविभाग गठित है। यहां चार दीवानी और छः फौजदारी अदालत और चार थाने हैं।

२ उक्त विभागका एक परगना। भू-परिमाण ३२९ वर्गमील है। यहांका अधिकांश स्थान ही जङ्गल और बालुकामय प्रान्तरसे पूर्ण है। सिर्फ १७० वर्गमील स्थान आबाद है। जौ, गेहूं, बाजरा, चना, अरहर, उड़द, ज्वार, रूई, ईख, पोस्ता, तमाकू, नील और चावल यहांकी प्रधान उपज है। इस परगनेमें २१३ गाँव लगते हैं जिनमें ८२ गाँव राजपूतके अधिकारमें, ८१ मुसलमानके और ४१ गांव कायस्थके अधिकारमें हैं।

३ उक्त जिलेका एक नगर तथा शाण्डिल उपविभागका

विचार-सदर। यह अक्षा० २७° ४′ १५″ उ० तथा देशा० ८०° ३३′ २०″ पू० लखनऊ शहरसे ३२ मील उत्तर-पश्चिममें तथा हर्दोईसे ३४ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां म्युनिसपलिटि है। श्रीसमृद्धिमें इस नगरने हर्दोई जिलेका द्वितीय तथा समग्र अयोध्याप्रदेशका चतुर्थ स्थान अधिकार किया है। यहां प्रत्नतत्त्वके आदरकी कोई भी वस्तु नहीं हैं। प्रायः दो सौ वर्ष हुए यहां "बारह खम्भा" अर्थात् बारह स्तम्भ सम्वलित एक पत्थरका घर बना था। विख्यात सिपाहीयुद्धके समय यहां १८५८ ई०की ६ठी और ७वीं अक्टूबरको दो तुमुल युद्ध हुए।

यहां सप्ताहमें दो दिन हाट लगती है। इस हाटमें पान और घीकी काफी बिक्री होती है। अवध-रोहिलखण्ड रेलपथका यहां एक स्टेशन रहनेसे उक्त द्रव्यादिकी रफ्तनीमें बड़ी ही सुविधा हुई है।

शाण्डिली (सं० स्त्री०) एक ब्राह्मणी जो अग्निकी माता मान कर पूजी जाती थी। (महाभारत)

शाण्डिल्य (सं० पु०) शाण्डिलस्य मुनेर्गोत्रापत्यं शंडिल (गर्गादिभ्यो यञ्। पा ४।१।१०५) इति यञ्। १ शांडिल मुनिके कुलमें उत्पन्न पुरुष। २ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। ३ सरयूपारी ब्राह्मणोंके तीन प्रधान गोत्रोंमेंसे एक गोत्र। ४ एक मुनि। इनकी रची एक स्मृति है और यह भक्तिसूत्रके कर्त्ता माने जाते हैं। ५ श्रीफल, बेल। ६ अग्नि।

शाण्डिल्य—१ एक प्राचीन कवि। २ शूरसेनवासी एक सुपण्डित। लाड़मके पुत्र गोविन्दने ११६० ई०में इनके रचे एक ग्रन्थकी बालबोध नाम्नी टीका लिखी। ३ महाभारतकी टीकाके प्रणेता। ये शाण्डिल्य-लक्ष्मण नामसे परिचित थे। ४ शाण्डिल्यसूत्र या भक्तिमीमांसासूत्रके प्रणेता एक ऋषि। शाण्डिल्योपनिषद् और शाण्डिल्यस्मृति नामक दो ग्रन्थ इसी नामके किसी ऋषि द्वारा सङ्कलित थे।

शाण्डिल्यलक्षण (सं० पु०) एक प्रसिद्ध टीकाकार।

शाण्डिल्यायन (सं० पु०) शाण्डिल्य मुनिका गोत्रापत्य। (शत० ब्रा० ६।५।१।६४)

शाण्डिल्यायनक (सं० त्रि०) शाण्डिल्य मुनिका अदूरभव स्थान आदि।

शाण्य (सं० त्रि०) शाण-यत्। शाण-सम्बन्धी।

शात (सं० क्ली०) शो क्त, (शाच्छोरन्यतरस्यां। पा ७।४।४१) इति पक्षे इत्वाभावः। १ सुख। २ धुस्तूर वृक्ष, धतूरेका पेड़। (त्रि०) ३ सुखी, सुखयुक्त। ४ विनाश। (सुश्रुत ४।१) ४ पातन, पतन, शाणित, सान रखा हुआ, तेज किया हुआ। ५ दुर्व्वल, कृश। ६ सुन्दर। ७ प्रभावशील, दीप्तिमान्।

शातक (सं० पु०) १ राजभेद। (मार्कण्डेयपु० ५८।४६) (त्रि०) शातक-अण्। २ शातक-सम्बन्धी।

शातकर्णि (सं० पु०) १ मुनिविशेष, शातकर्णिका गोत्रापत्य। (विष्णुपु० ४।२४।१२) २ एक आलङ्कारिक। शङ्करने इनका वचन उद्धृत किया है।

शातकर्णि—दाक्षिणात्यके अन्ध्रभृत्यवंशीय कई एक राजे। पहले राजा श्रीशातकर्णि या श्रीशान्तकर्णि, दूसरे शातकर्णि, तीसरे सुन्दर शातकर्णि या सुनन्द, चौथे चकोर शातकर्णि, पाँचवें शिवश्री शातकर्णि या शिवस्कन्द शातकर्णि, छठे यज्ञश्री शातकर्णि तथा सातवें चन्द्रश्री या दन्तश्री शातकर्णि नामसे विख्यात थे। विष्णु, वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड और भागवतपुराणमें इन राजाओंके नाम कुछ परिवर्त्तित भावमें देखे जाते हैं। ये सातवाहनवंशीय कहलाते हैं। नानाघाटकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि राजा १म शातकर्णि खृष्टपूर्व २री सदीमें अर्थात् १८०से १६३ खृष्टपूर्वाब्दमें जीवित थे। इनकी महिषीका नाम था नायनिका। हातीगुफामें जो शिलाफलक मिला है, उसमें लिखा है, कि कलिङ्गराज खारवेलने अपने राज्यकालके दूसरे वर्ष अन्ध्रराज शातकर्णिसे राजकर वसूल किया था। भारतवर्ष देखो।

शातकुम्भ (सं० क्ली०) शतकुम्भे पर्व्वते भवं शतकुम्भ-अण्। १ काञ्चन, सुवर्ण, सोना। (पु०) २ धुस्तूर वृक्ष, धतूरेका पेड़। ३ करवीर वृक्ष, कनेरका पेड़। ४ कचनार वृक्ष।

शातकुम्भमय (सं० पु०) शातकुम्भस्य विकारः, विकारे मयट्। सुवर्णविकार, सोनेका बना हुआ अलङ्कार आदि।

शातकौम्भ (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) २ सोनेका बना हुआ।

शातक्रतव (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

शातद्वारेय (सं० पु०) शतद्वारस्य गोत्रापत्यं शतद्वार (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति ढक्। शतद्वारका गोत्रापत्य।

शातन (सं० क्ली०) १ सान पर धार तेज करना, चोखा करना। २ काटना, तराशना, छीलना। ३ पेड़ आदि कटवाना। ४ सतह बराबर करना, रौंदना। ५ नष्ट करना। (त्रि०) ६ छेदक, काटनेवाला। (रघु ३।४२)

शातपत (सं० पु०) शतपति (अश्वपत्यादिभ्यश्च। पा ४।१।८४) इति अण्। शतपतिका अपत्यादि।

शातपत्र (सं० क्ली०) शतपत्रमिव शतपत्र (शर्करादिभ्योऽण्। पा ५।३।१०७) इति अण्। शतपत्रके समान, पद्मतुल्य, पद्मसदृश।

शातपत्रक (सं० पु०) शातपत्रं पद्ममिव कन्। चन्द्रिका, चाँदनी।

शातपथ (सं० त्रि०) शतपथ-अण्। शतपथब्राह्मणसम्बन्धी। (बृहदारण्यकउप० २।४।७)

शातपथिक (सं० पु०) शतपथब्राह्मणके अध्येता।

शातपर्णेय (सं० पु०) शतपर्णका गोत्रापत्य।

शातपुत्रक (सं० क्ली०) शतपुत्रस्य भावः कर्म्म वा, शतपुत्र (द्वन्द्वमनोज्ञादिभ्यश्च। पा ५।१।१३३) इति वुञ्। शतपुत्रका भाव या कर्म।

शातपुरशैल (सतपुरा पर्वत)—मध्यभारतकी एक गिरिश्रेणी। यह नर्मदा और ताप्ती नदियोंके मध्यदेशमें अवस्थित है। यह विस्तीर्ण अधित्यका-भूमि पूर्वमें अमरकण्टकसे आरम्भ हो कर मध्यप्रदेशके बीचसे होती हुई पश्चिममें सौराष्ट्रोपकूल तक फैल गई है। पहले यह शैल विन्ध्यगिरिका अंश समझा जाता था। पीछे नर्मदा और ताप्ती उपत्यकाका विभागकारी पर्वतांश शातपुराके नामसे विख्यात हुआ। किन्तु नर्मदाके उत्तरस्थ विन्ध्यपर्वतकी गठन और बेलपत्थर स्तरराजी एवं महादेवपर्वत प्रभृति स्थानोंकी (सतपुरा पर्वतके विभिन्न अंशोंकी) स्तरगठन पर्य्यवेक्षण करनेसे देखा जाता है, कि इन दोनों पर्वतोंका प्राकृतिक स्तरविन्यास सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। दो बड़ी बड़ी नदियों द्वारा यह पार्वत्य अधित्यका-भूमि सम्पूर्ण पृथक् सीमामें आबद्ध रहने पर भी उनकी पारस्परिक स्वतन्त्रता सूचित होती है।

अमरकण्टकको सतपुराकी पूर्व सीमा मान लेने पर समस्त पर्वत पूर्व-पश्चिममें पांच सौ मीलकी लम्बाईमें फैला हुआ दिखाई पड़ता है। उत्तर-दक्षिणमें उसकी चौड़ाई कहीं एक सौ मील है। अमरकण्टकके निकट यह पर्वत समुद्रपृष्ठसे ३३२८ फीट ऊंचा है। यहांसे एक शाखा दक्षिण-पश्चिमकी ओर १०० मील विस्तृत हो भण्डारा जिलेके साले-तेकी पर्वतमें आ कर मिल गई है। यह पर्वतांश मैकालगिरिश्रेणीके नामसे वर्णित है और इस पार्वत्यत्रिकोण अधित्यकाका मूलदेश कहलाता है। यहांसे सतपुरा पर्वतश्रेणी क्रमशः संकुचित हो कर दो समान्तराल सूक्ष्मकाय पर्वतशाखाके रूपमें पश्चिमकी ओर चली गई है। ये दोनों पर्वतशाखाएं ताप्ती उपत्यकाकी सीमा कहलाती हैं।

आशीरगढ़के पूर्वांशमें यह पर्वतपृष्ठ अपेक्षाकृत निम्न रहनेके कारण इस रास्तेसे ग्रेट-इण्डियन-पेनिन्सुला रेलवेकी परिचालनाकी बड़ी सुविधा हुई है। इस पथसे जब्बलपुरसे खान्देश होती हुई बम्बईशहर पर्य्यन्त मोटर गाड़ी आती जाती है। इस आशीरगढ़ नगर तक ही सतपुराकी प्रोक्त सीमा है।

इस पर्वतकी गठनप्रणाली अत्यन्त विचित्र है। उत्तरमें विन्ध्यश्रेणी जिस तरह अपनी उच्च चूड़ासे सुन्दर विस्तृत अधित्यकामें अववाहिका विस्तार करती है, उसी तरह यह पर्वतश्रेणी भी खण्ड खण्ड अधित्यकाएं तथा उपत्यकाएं ले कर अपनी अववाहिकाओं द्वारा नर्मदा तथा ताप्ती नदियोंके कलेवरको पुष्ट करती है। मण्डला जिलेमें उत्तरकी ओर ही यह पर्वत अधिक ढालवां है। यहां पर्वतपृष्ठ पर चार प्रधान उपत्यकाएं हैं। इन चारों उपत्यकाओंसे चार नदियां पार्वत्य अववाहिकाओंका जल ले कर नर्मदामें मिलती है। पश्चिमांशकी उपत्यकाओंकी अपेक्षा पूर्वांशकी उपत्यकाएं कुछ ऊंची हैं, इस कारण शेषोक्त स्थानकी जलराशिका वेग कुछ अधिक है और उसीसे स्रोतका वेग भी तीव्र हो जाता है। ब्यारमेर और बुढ़नेर नामक दो शाखा नदियोंका पर्वतांश वृक्षलतारहित एवं सुविस्तृत

प्रस्तरस्तूपमण्डित है। उसे देखनेसे ही मालूम पड़ता है, कि ज्वालामुखो पर्वतकी अग्न्युत्पातक्रिया द्वारा ही वह इस तरह गठित हुआ है। क्योंकि, उसके चूड़ादेशमें केवल वेसाल्ट और लेटाराइट प्रस्तरस्तर ही दीख पड़ते हैं। चौड़ादादर नामकी अधित्यका-भूमि समुद्रपृष्ठसे ३३१० फीट ऊंची और पांच वर्गमील विस्तृत है।

शिवनी जिलेमें इस पर्वतपृष्ठ पर शिवनी और लक्षणादोन नामकी दो अधित्यकाएं हैं। वे १८००से २२२० फीट पर्यन्त ऊंची हैं। इस देशभागमें पर्वत उत्तरसे दक्षिणकी ओर ढालू हो गया है। इसकी दो अववाहिकाओंकी मध्यवर्त्ती निम्नभूमिसे वेणगंगा नदी निकल है। छिन्दवाड़ा जिलेमें भी पर्वत दक्षिणकी ओर ढालवां है। यहां पेंच और कोलवीड़ा नदीको पार्वत्य उपत्यका है। यह समुद्रकी सतहसे २२०० फीट ऊंची है। किन्तु मोतूकी अधित्यका ३५०० फीट ऊंची है। वेतूल जिलेमें भी यह क्रमसे दक्षिणकी ओर ढालवां है। यहांसे ताप्ती नदी निकली है। इसके बाद उस पार्वत्यवक्षको पार कर ताप्ती नदी प्रखर स्रोतसे वहती है। इस जिलेके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें खामला पर्वत है जो समुद्रपृष्ठसे ३७०० फुट ऊंचा है। उत्तर शातपुराकी कई एक शाखाएं हुसंगावाद जिलेके अधिकांश स्थानोंमें फैली हुई हैं। धूपगढ़ (४४५४ फुट) यहांका सबसे ऊंचा शिखर है। पांचमाड़ी नामक अधित्यका-भूमि समुद्रपृष्ठसे ३४८१ फीट ऊंची एवं प्रायः १२ वर्गमोलमें फैली हुई है। यह पर्वतांशके प्राकृतिक सौन्दर्यसे परिपूर्ण है।

हुसंगावादके दक्षिण वेलपाथर और अवुगोर्ण प्रस्तरीभूत स्तर (Metamorphic rocks) दृष्टिगोचर होता है। वह क्रमसे बेतूल और पांचमाड़ी पर्वतमाला पर्य्यन्त विस्तृत है। इसके पूर्व Trap नामक पत्थर दिखाई पड़ता है। निमार जिलेमें यह पर्वत ताप्ती और नर्मदा नदीकी उपत्यकाको विभक्त करता है। इस स्थान पर यह १८ मील चौड़ा है। यहांके पर्वत पर वृक्षलतादि दृष्टिगोचर नहीं होती। इस पर्वतांशके सर्वोच्च शृंग पर विख्यात आशोरगढ़ दुर्ग अवस्थित है। आशोरगढ़में सतपुरा पर्वत खण्ड खण्डमें जिस भावमें खड़ा है, उसे ताप्तीके दक्षिणी किनारे खड़े हो कर देखनेसे अनुमान होता है, मानो रणकुशल योद्धृवृन्द रणकी प्रतिक्षामें गम्भीर भावसे श्रेणीवद्ध हो कर खड़े हों। दक्षिणमें ताप्ती नदी 'कलकल' शब्द करती हुई तीव्रगतिसे प्रवाहित हो रही है। उसे पार कर दाक्षिणात्यमें प्रवेश करना कष्टकर समझ कर ही मानो सतपुरा पर्वत फिर दक्षिणको ओर अग्रसर नहीं हुआ। ताप्तीके उत्तरीय किनारेसे एक एक करके शृंगसमूह क्रमशः २००० फीट ऊंचा हो गया है। इस पर्वतके सबसे पश्चिमके प्रान्तमें बम्बईसे आगरा जानेका रास्ता है। वह बम्बई आगरा ट्रांकरोडके नामसे विख्यात है।

इस पर्वत पर ३०००से ले कर ३८०० फीट तक जितने ऊंचे शिखर हैं, उनमें तुरणमलय सबसे अधिक रमणीय है। यह अधित्यका अधिक दूरव्यापी न होने पर भी लंबाईमें प्रायः १६ वर्गमील तक फैली हुई है। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे ३३०० फीट ऊंचा है। तुरणमलयके पश्चिम पर्वतशृंग फिर सजी हुई सेनाको तरह नर्मदा और ताप्तीके सामने खड़ा है।

नर्मदा और ताप्ती नदीके तीर तथा उनके पासवाली पर्वतश्रेणी देवमण्डलीकी विहारभूमि कहलानेसे विन्ध्यशैलका यह अंश शातपुर (सतपुरा) नामसे भी लिखा जाता है। विन्ध्यपर्वत देखो।

मध्यप्रदेशके शिवनी, छिन्दवाड़ा और नागपुर जिलेमें शातपुरा पर्वतका जो दक्षिण ढालवां प्रदेश फैला हुआ है, उसके ऊपरके जङ्गलकी रक्षा गवर्नमेण्ट द्वारा होती है एवं कागजपत्रोंमें उसका नाम 'शातपुरावनमाला' लिखा जाता है। इसका भूपरिमाण १००० वर्गमील है। साल और सागवान् वृक्ष यहां बहुत मिलते हैं। बड़े बड़े शाल वृक्ष काट लिये गये हैं और छोटे छोटे पेड़ोंको खबरगिरी की जाती है। सोताझरी और सुकाटा नामक स्थानमें शालकी नई खेती होने लगी है।

शातभिष (सं० त्रि०) शतभिषा अण्। शतभिषा नक्षत्र सम्बन्धी। (पा ४।३।८)

शातभिषज (सं० त्रि०) शतभिषक्जात।

(पाणिनि ४।३।३६)

शातभीरु (सं० पु०) भद्रवल्ली, मदनमालो।

शातमन्यव (सं० त्रि०) शतमन्यु-अण्। शतमन्यु सम्बन्धी, इन्द्र-सम्बन्धी।

शातमान (सं० त्रि०) शतमानेन क्रीतं शतमान (शतमान-विंशतिकेति। पा ५।१।२७) इति अण्। शतमान द्वारा क्रीत, सौ दे कर जो खरीदा गया हो।

शातरात्रिक (सं० त्रि०) शतरात्रभव, सौ रातमें होने वाला। (कात्यायनश्रौ० २२।१।१४)

शातला (सं० स्त्री०) शातं छेदं लातीति, ला-क। शातला देखो।

शातलेय (सं० पु०) शतल-ढक्। शतलका गोत्रापत्य। (पा ४।१।१२३)

शातवनेय (सं० पु०) सौ यज्ञ करनेवालेका पुत्र। जो सौ यज्ञ करते हैं, वे शतवनि कहलाते हैं। शतवनिका अपत्य शातवनेय है। "शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुनीथे" (ऋक् १।५९।७) 'शातवनेये शतसंख्यकान् क्रतून् वनति सम्भजत इति शतवनिः तस्य पुत्रः शातवनेयः।' (सायण)

शातवाहन (सं० पु०) एक राजाका नाम। शालिवाहन देखो।

शातशूर्प (सं० पु०) एक आयुर्वेदाचार्यका नाम।

शातशृङ्गिन् (सं० पु०) मेरुके उत्तर अवस्थित एक पर्वत। (मार्क०पु० ५५।१३)

शातह्रद (सं० त्रि०) विद्युत सम्बन्धी, बिजलीका।

शातातप (सं० पु०) एक संहिताकार ऋषिका नाम।

"शातातपो वशिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः।" (श्राद्धतत्त्व)

शातातप आदि ऋषि धर्मशास्त्रप्रयोजक हैं। श्राद्धमें पिण्ड देनेके समय इनका नाम लेना होता है। शातातप ऋषिने जो धर्मशास्त्र लिखा, उसका नाम शातातप-संहिता है। यह संहिता छः अध्यायमें सम्पूर्ण है। स्वयं याज्ञवल्क्यने इसका उल्लेख किया है। हेमाद्रि और विज्ञानेश्वरके ग्रन्थमें भी शातातपस्मृतिका वचन उद्धृत है। वृद्ध शातातपके वचन भी हलायुध, हेमाद्रि आदि उद्धृत कर गये हैं।

शातातपीय (सं० त्रि०) शातातप-सम्बन्धी, शातातप-प्रणीत कर्मविपाक। कौन कर्म करनेसे कैसा नरक तथा नरक भोग करनेके बाद कौन कौन रोग और जन्म होता है, शातातपीय कर्मविपाकमें इसका विशेष रूपसे वर्णन है। कर्मविपाक देखो।

शाताहर (सं० पु०) शताहरका गोत्रापत्य। (पा ४।१।१२३)

शाताहरेय (सं० पु०) शाताहरका गोत्रापत्य।

शातिन् (सं० त्रि०) छेदक, काटनेवाला। (रघु ३।४३)

शातिर (अ० वि०) १ चालाक, चतुर, उस्ताद। २ निपुण, दक्ष। (पु०) ३ दूत। ४ शतरंजका खिलाड़ी।

शातोदर (सं० त्रि०) १ पतली कमरवाला। २ क्षीण, पतला।

शातोदरी (सं० स्त्री०) १ पतली कमरवाली। २ क्षीण, पतली।

शात्रव (सं० क्ली०) शत्रोर्भावः समूहो वा शत्रु अण्। १ शत्रुत्व, शत्रुता। २ शत्रुसंहति, शत्रुओंका समूह। (पु०) शत्रुरेव स्वार्थे अण्। ३ शत्रु, दुश्मन। (त्रि०) ४ शत्रुसम्बन्धी। (रघु ४।४२)

शात्रुन्तपि (सं० पु०) शत्रुन्तप जनपदवासिभेद।

शात्रुन्तपीय (सं० पु०) शात्रुन्तपि जनपदका राजा।

शाद (सं० पु०) शो तनूकरणे (शाशपिभ्यां ददनौ। उण् ४।९७) इति-द। १ कर्दम, कीचड़। २ दूब, घास।

शाद (फा० वि०) १ खुश, प्रसन्न। २ परिपूर्ण, भरापूरा।

शादन (सं० पु०) पतन, गिरना, पड़ना।

शादमान (फा० वि०) प्रसन्न, खुश।

शादमान खाँ—एक गक्कर सरदार।

शादमानी (फा० स्त्री०) प्रसन्नता, खुशी।

शादहरित (सं० त्रि०) शादैः शष्पैः हरितः। शाद्वल, हरित तृण या दूर्वासे युक्त, हराभरा।

शादा (सं० स्त्री०) ईंट।

शादाब (फा० वि०) हराभरा, सरसब्ज, तरोताजा।

शादियाना (फा० पु०) आनन्द मंगलसूचक वाद्य, खुशीका बाजा। २ बधावा, बधाई। ३ वह धन जो किसान जमींदारको ब्याहके अवसर पर देते हैं।

शादी (फा० स्त्री०) १ खुशी, प्रसन्नता, आनन्द। २ आनन्दोत्सव। ३ विवाह, ब्याह।

शादी (सादी)—स्वनामप्रसिद्ध एक पारसी कवि। ये कवि-जगत्‌में उच्च आसन प्राप्त करने पर भी हाफिजका मुकावला न कर सके। इनका असल नाम था शेख मसालह-उद्दीन। ११६४ ई०में सिराज नगरमें इनका जन्म और १२६२ ई०में मृत्यु हुई। पारस्यराज शादुविन जंगीके राज्यकालमें ये मौजूद थे। राजाके नामकी सार्थकता रखनेके लिये इन्हें शादी उपाधि दी गई।

वचपनसे शादीने उपयुक्त ज्ञान हासिल किया। ज्ञान-लाभके साथ साथ इनके हृदयमें दया और धर्म की प्रवल बाढ़ उमड़ आई। इस कारण इन्होंने दरवेशके वेशमें जीवनका अधिकांश समय विताया था तथा प्रायः चौदह बार मक्काकी यात्रा की। हाफिज देखो।

शादी खाँ—एक अफगान-सरदार। मुगल-सम्राट् अकवर शाहके सेनापति अलीकुली खाँके साथ इनकी लड़ाई हुई थी।

शादी वे उजवक—अकवरशाहका एक सेनापति। पातशा नामामें इसका नाम शादी खाँ शादीवेग और एक हजारी सेनानायक है। इसके पिताका नाम था नजर वे उजवक। इसने मतलव खाँके अधीन तारिखोंके विरुद्ध युद्ध कर वड़ा नाम कमाया।

शादीवेग सुजायत् खाँ—वादशाह शाहजहांका एक सेनापति। इसके पिताका नाम जानिस वहादुर था। शाहजहांके राज्यकालके ७वें वर्षमें शादी खाँ उपाधिके साथ इसने एकहजारी पद पाया। १२वें वर्षमें यह वाह्लिकराज नजर महम्मद खाँके पास भारतसम्राट्‌के दूत रूपमें गया। १४वें वर्षमें यह डेढ़ हजारी पद पर और भक्करका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ। इसके कुछ समय वाद घैरात खाँकी मृत्यु होने पर यह दोहजारी मनसवदार और ठाठाका शासनकर्त्ता नियुक्त हुआ था। १६वें वर्षमें इसने राजकुमार मुरादवक्सके साथ वाह्लिक और वदकसानकी ओर युद्ध-यात्रा की। २१वें वर्षमें जव राजा शिवरामकी पदच्युति हुई, तव इसे कावुलका शासनकर्त्ता वनाया गया। दूसरे वर्ष यह राजपुत्र औरङ्गजेवके साथ कंधहार और वस्त जीतनेके लिये गया था। २३वें वर्षमें यह तीन हजारी पदातिक और ढाई हजारी अश्वारोही सेनानायक हुआ तथा इसे मर्यादा-सूचक पताका और ढक्का मिला। इसके दो वर्ष वाद अर्थात् सम्राट् शाहजहांके राज्यकालके ४५वें वर्षमें यह फिरसे कंधहार जीतनेको गया। सम्राट् शाहजहांने इसकी युद्धनिपुणता पर विमुग्ध हो कावुल आ इसे साढ़े तीन हजारी पदातिक और तीन हजार अश्वारोही सेनाका नायक वनाया। इस समय उन्होंने शादीवेगको सुजायत् खाँकी उपाधिसे भूषित किया था इसने फिरसे सम्राट्‌के २६वें वर्षमें दारासिकोके साथ कंधहार और रुस्तम खाँके साथ वस्तकी ओर युद्धयात्रा की। इसके कुछ समय वाद ही इसकी मृत्यु हुई।

शाद्वल (सं० त्रि०) शाद (नड़शादाड्ड्वलच्। पा ४।२।८८) इति ड्वलच्। १ हरित तृण या दूर्वासे युक्त, हरीभरी घाससे ढका हुआ, हराभरा। भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है,—शादका अर्थ है नई घास। नई घास जहां रहती है, वही स्थान शाद्वल कहलाता है। "शादो नवतृणं विद्यतेऽत्र शाद्वलः, शष्पवाचिन एव शाद शब्दाड्ड्वलः स्यात् न तु पङ्कवाचिनोऽनभिधानात्" (भरत)

(पु०) २ दूव, हरी घास। ३ वैल, साँड़।

शाद्वलवत् (सं० त्रि०) शाद्वल अस्त्यर्थे मतुप् मस्य व। शाद्वलविशिष्ट, हराभरा। (पार० गृह्य ३।१)

शाद्वलाभ (सं० पु०) शाद्वलस्य आभाइव आभा यस्य। मन्दविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका हरा कीड़ा। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

शाद्वलित (सं० क्ली०) शाद्वल-इतच्। शाद्वलरूपता. हरा।

शाद्वलिन् (सं० त्रि०) शाद्वल अस्त्यर्थे इनि। शाद्वल-विशिष्ट, हराभरा। (रामायण ४।५।१६)

शान (सं० पु०) शाण, सान।

शान (अ० स्त्री०) १ तड़क भड़क, ठाट वाट, सजावट। २ चमत्कार, विशालता, भव्यता। ३ प्रतिष्ठा, इज्जत, मानमर्यादा। ४ गर्वीली चेष्टा, ठसक। ५ शक्ति, करामात, एश्वर्य।

शान—ब्रह्मराज्यवासी जातिविशेष। ये लोग तै या खै नामसे भी परिचित हैं। ङ्गिन्दूखोन कह कर भी इनकी प्रसिद्धि है। उत्तर चीन और तिब्बत प्रान्तमें विशेषतः

२५॥ अक्षांशसे श्याम-उपसागरके उपकूल पर्य्यन्त १३॥० अक्षांशमें इनका वास देखा जाता है। मणिपुर नदीकी उपत्यकाभूमि, खेन्दवेन, इरावती, शालविन् और मेनम नदीकी शाखाप्रशाखाके किनारे इस जातिका वास है। श्यामदेशीय भाषामें इन्हें खै कहते हैं तथा लेयस, शान, आहोम और खामती नामक चार प्रधान विभागोंमें ये लोग विभक्त हैं। कहीं कहीं ये छोटी छोटी शाखामें विभक्त हो कर एक एक क्षुद्रवंशरूपमें गिने गये हैं। आज भी इरावतीके किनारेसे ले कर आनमराज्यकी पर्वतमाला पर्य्यन्त समस्त भूभाग शानजातिके अधिकृत है। चीनसीमासे श्यामोपसागर तीर पर्य्यन्त भूखण्डवासी समस्त शलजातिको यदि एकत्र सन्निवेशित किया जाय, तो पूर्व-एशियाकी एक बड़ी शक्तिमें इनकी गिनती हो सकती है।

ब्रह्मवासीको मध्यमें रख उत्तर पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण-पश्चिममें परिक्रम करनेसे आसाम और ब्रह्मपुत्रकी तीरभूमि, मणिपुरराज्य, यूनानप्रदेश, वाङ्कक और कम्बोज आदि स्थानोंमें बहुसंख्यक शानजातिका वास देखा जाता है। ये लोग सबके सब बौद्धधर्मावलम्बी हैं, सभी बहुत कुछ सुसभ्य हैं, भाषा सबोंकी प्रायः एक-सी है। परन्तु स्थानभेदसे भाषामें कुछ पृथक्ता देखी जाती है।

श्यामवासी शानजातिकी तरह अन्यान्य स्थानवासी शानजातिमें भी किंवदन्ती है, कि वे लोग किसी समय एक बलशाली जाति समझे जाते थे। ब्रह्मराज्यके उत्तर उनका राज्य भी था, किन्तु दैवदुर्विपाकसे ये लोग उस राज्यसे परिभ्रष्ट हो नाना स्थानोंमें खण्ड खण्ड भावमें विच्छिन्न हो गये हैं। कालधर्मसे मानो किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक विभागमें एक एक सरदार है तथा कोई कोई राज्य सामन्तराजके अधीन हो गया है। एकमात्र श्यामराज्य ही शानजातिकी अतीत स्वाधीनताकी रक्षा करता आ रहा है। उत्तरमें जितने सामन्तसरदार हैं, वे सभी इस समय अङ्गरेजराजके अधीन हैं। तुङ-यु चे, मुये लात्, मोने, लेग्या, येचिन्ने, मोरमियेत्, थुङ् वेन, कैङ्गमा मैङ्ग मैङ्ग, मैङ्ग, लेङ्ग-च्ये, कैङ्ग हुङ्ग, कैङ्ग-तुङ्ग और कैङ्ग खेन नामक स्थानवासी शान-सामन्त ब्रह्मराजको कर देते थे। उक्त स्थानोंमेंसे कुछ शालविन नदीके पूरबी और पश्चिमी किनारे अवस्थित हैं। कुबो—उपत्यका, नामकाथे या मणिपुर नदीतट, इरावतीके दक्षिण तीरस्थ भामो नामक स्थानमें मेनाम नदीके किनारे शानराज्य है। ये सब राज्य पर्वतके गभीर अङ्गलमें अवस्थित हैं तथा सहजमें इन पर आक्रमण नहीं किया जा सकता। मणिपुरीभाषामें शानजातिको कुबो या कबु कहते हैं।

श्यामराज्यका लेउसविभागमें एक शानराज्य है। यहांके अधिवासी उत्तर इरावतीके किनारे बसनेवाली सिंगफो नामक ब्रह्मजातिसे मिश्रित हैं, फिर भी दक्षिणके शानगण आज भी अपनेको छोट तै बतला कर गौरव प्रकट करते हैं। वे लोग प्रकृत लेउसवासी शानोंको बड़-तै मानते हैं। पहले ये लोग कम्बोजपतिके अधीन थे, पर १३५० ई०में स्वाधीन हो गये।

१३वीं सदीमें उत्तर-इरावती देशमें लौ नामकी एक जातिने अपनी प्रतिभासे नाना देशोंको फतह किया। मुङ्ग-मौङ्ग नगरमें उनकी राजधानी थी। १२२४ ई०में उन लोगोंने आसामको जीत कर आहोम राजवंशकी प्रतिष्ठा की थी। मेइकोङ्ग और मेनम नदीके मुहाने पर तथा यूनान प्रदेशके कुछ अंशोंमें इन आहोमोंका आदिवास था। मतान्तरसे उत्तर-पश्चिम भागके आहोम १२वीं सदीमें आसाम आये। इसी समय श्यामवासी श्यामराज्यमें चले गये। १२२८ ई०में पोङ्गराज चुकाफाने सबसे पहले आहोमकी उपाधि ग्रहण की। पीछे उन लोगोंने दलबलके साथ आ कर उपत्यकाको जीता और खामतीमें राजधानी बसाई। इसी समयसे आहोमोंका प्रभाव बढ़ता गया तथा वे आहोम नामसे प्रसिद्ध हुए। आहोम देखो।

भामो नगरके उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें जो सब शान जातियां रहती हैं उनकी तथा चीनसीमान्तस्थित लौ जातिकी भाषाके साथ श्याम भाषाका बहुत कुछ संश्रव देखा जाता है। किन्तु यूनानकी चीनभाषाके साथ लौ लोगोंकी भाषा नहीं मिलती। विस्तृत विवरण श्याम शब्दमें देखो।

शानजाति कर्मठ और बलवान् तथा इनकी नाक

चिपटी होती है। ये लोग चांदीके तथा नाना शिल्पपूर्ण पात्र बनाना जानते हैं। मन्दालयके दक्षिण-पश्चिमस्थ शानप्रदेशमें टीन मिलता है। यहां तथा पागान जिलेमें लोहा भी पाया गया है।

शानदार (फा० वि०) १ भड़कीला, तड़क भड़कवाला, ठाट बाटका। २ चमत्कारपूर्ण, विशाल, भव्य। ३ गर्वीली चेष्टासे युक्त, ठसकवाला। ४ ऐश्वर्य्ययुक्त, वैभवपूर्ण।

शानपाद (सं० पु०) १ पारिपात्रपर्व्वत। इस पर्व्वतका विवरण हरिवंशके १३१ अध्यायमें विशेष रूपसे वर्णित है। २ चन्दन घिसनेका पत्थर।

शानवती—प्राचीन जनपदभेद। (भारत २।५२।१६)

शानम्पुड़ि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके नेल्लूर जिलेमें कन्दुकूर तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। ग्रामके पूरब नदीके किनारे सोमेश्वर स्वामोका प्राचीन मन्दिर है। पश्चिममें एक पर्व्वत पर बहुतेरी पत्थरकी मूर्त्तियां इधर उधर पड़ी हैं।

शानशिला (सं० स्त्री०) शानार्थ शिला। वह पत्थर जिस पर सान दिया जाता है।

शानशौकत (अ० स्त्री०) तड़क-भड़क, ठाट-बाट।

शानष्टेट—अंगरेजाधिकृत ब्रह्मराज्यका एक प्रदेश।

शाना (फा० पु०) १ कंघा, कंघी। २ मोढ़ा, खवा।

शानाम—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीमें रहनेवाली एक इतर जाति। ये लोग ताड़ी लगानेका काम करते हैं। ये अपदेवताको पूजा करते हैं।

शानी (सं० स्त्री०) इन्द्रवारुणी, इनारुन।

शानैश्चर (सं० त्रि) शनैश्चर अण्। शनैश्चर अथवा शनिग्रह-सम्बन्धी।

शान्त (सं० त्रि०) शन-क्त (वा दान्तशान्तेति। पा ७।२।२७) इति निपातितः। १ उपशमप्रापित, जिसमें वेग, क्षोभ या क्रिया न हो, ठहरा हुआ, बंद। २ प्राप्तोपशम, कोई पीड़ा, रोग, मानसिक वेग आदि जो जारी न हो; बंद, मिटा हुआ। पर्याय—शमित, श्रान्त, जितेन्द्रिय। ३ जिसमें क्रोध आदिका वेग न रह गया हो, जिसमें जोश न रह गया हो, स्थिर। ४ जिसमें जीवनकी चेष्टा न रह गई हो, मृत, मरा हुआ। ५ जो चंचल न हो, धीर, सौम्य, गम्भीर। ६ मौन, चुप, खामोश। ७ जिसने मन और इन्द्रियोंके वेगको रोका हो, मनोविकाररहित, रागादि शून्य, जितेन्द्रिय। ८ उत्साह या तत्परतारहित, जिसमें कुछ करनेकी उमंग न रह गई हो, शिथिल, ढीला। ९ श्रान्त, थका हुआ। १० जो जलता या उद्दीप्त न हो। ११ विघ्नबाधारहित। १२ जिसकी घबराहट दूर हो गई हो। १३ अप्रभावित, जिस पर असर न पड़ा हो। १४ कृश, दुबला, पतला।

(पु०) १५ काव्यके नौ रसोंमेंसे एक रस। इसका स्थायिभाव सम है, नायक उत्तम प्रकृतिका और कुन्देदु सुन्दरछाय अर्थात् सुन्दर आकृतिका है। नारायण इसके अधिष्ठात्री देवता हैं। इस रसमें संसारकी अनित्यता, दुःख पूर्णता, असारता आदिका ज्ञान अथवा परमात्माका स्वरूप आलम्बन होता है, तपोवन, ऋषि आश्रम, रमणीय, तीर्थादि, साधुओंका सत्संग आदि उद्दीपन, रोमाञ्च आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि संचारी भाव होते हैं। शान्तको रस कहनेमें यह बाधा उपस्थित की जाती है, कि यदि सब मनोविकारोंका शमन ही शान्त है, तो विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा उसकी निष्पत्ति कैसे हो सकती है? इसका उत्तर यह दिया जाता है, कि शान्त दशामें जो सुखादिका अभाव कहा गया है, वह विषयजन्य सुखका है। योगियोंको एक अलौकिक प्रकारका आनन्द होता है जिसमें संचारी आदि भावोंकी स्थिति हो सकती है। नाटकमें आठ ही रस माने जाते हैं, शान्तरस नहीं माना जाता। इसका कारण यह कि नाटकमें अभिनय क्रिया ही मुख्य है, अतः उसमें 'शान्त'-का समावेश नहीं हो सकता।

जहां सुख या दुःख राग या द्वेष, प्रिय या अप्रिय इत्यादि किसी भी तरहकी इच्छा नहीं रहती है तथा शमप्रधान होता है, वहां शान्तरस होगा। इस रसमें शान्तिप्रियता ही प्रधान कार्य है।

(साहित्यदर्पण ३य परि०)

साहित्यदर्पणमें देवविषयक रतिका एक उदाहरण दिया गया है। यथा—"तत्र देवविषया रतिर्यथा—

"कदा वाराणस्यामिह सुरधुनी रोधसि वसन्।
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम्॥

अये गौरीनाथ त्रिपुरहर शम्भो त्रिनयन।
प्रसीदेति क्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥"
(साहित्यदर्पण ३ परि०)

कब मैं वाराणसीमें गङ्गाके किनारे कौपीनवास पहन कर मस्तकमें अञ्जलिपुटसे 'हे महादेव! मेरे प्रति प्रसन्न हों' कहते कहते सारा दिन निमिष कालकी तरह व्यतीत करूंगा।

१६ सह्याद्रिवर्णित राजभेद। (सह्या० ३४।२२)

शान्तक (सं० त्रि०) शम-क्त, स्वार्थे क। १ शान्त। २ शमताकारी। (पु०) ३ सारण जिलेमें सेवान तह-सीलके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

शान्तकर्ण (सं० पु०) आन्ध्रवंशीय एक राजा। शतकर्णि देखो।

शान्तगतिका (सं० स्त्री०) बौद्ध रमणीभेद। (प्रज्ञापारमिता)

शान्तगुण (सं० त्रि०) शमगुणविशिष्ट।

शान्तता (सं० स्त्री०) शान्तस्य भावः तल्-टाप्। १ शांतका भाव या धर्म, शांति, शमन। २ नीरवता; खामोशी। ३ उपद्रव आदिका अभाव, हलचलका न होना। ४ रागादिका अभाव, विराग।

शान्तनव (सं० पु०) शन्तनोरपत्यं पुमान्, शांतनु-अण्। १ राजा शांतनुके पुत्र भीष्म। २ मेधातिथिका पुत्र।

शान्तनव आचार्य—उणादिसूत्र और फिट्सूत्रवृत्ति नामक व्याकरणके रचयिता।

शान्तनु (सं० पु०) द्वापर युगके इक्कीसवें चन्द्रवंशी राजा। ये प्रतीपके पुत्र और महाभारत-युद्धके प्रसिद्ध योद्धा भीष्म पितामहके पिता थे। शान्तनुकी स्त्री गङ्गादेवीके गर्भसे (गांगेय) की उत्पत्ति हुई थी। पर्याय—महाभीष्म, प्रातीप, प्रतीप, प्रतिप। (शब्दरत्ना०) विशेष विवरण शन्तनु शब्दमें देखो।

भागवतमें शान्तनु नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—जराजीर्ण व्यक्तिको हाथसे छूनेसे वह जवान हो जाता और बड़ी शान्ति पाता था, इसलिये उसका नाम शान्तनु हुआ।

२ क्षुधान्यविशेष। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) ३ ककंटिका, ककड़ी।

शान्तपल्लि (शैन्तापिल्ली)—मन्द्राजप्रेसिडेन्सीके विजगा-पट्टम जिलांतर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १८° २ ३०'' उ० तथा देशा० ७३° ४२' पू० समुद्रतीरवर्त्ती कोनाड़ ग्रामसे ५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक गण्डशैलशृङ्ग पर शांतपल्लो आलोकवाटिका है जो १८४७ ई० की बनी है। समुद्रके किनारेसे साढ़े छः मीलकी दूरी पर रहनेसे भी समुद्रपृष्ठस्थ चौदह मील दूरवर्त्ती जहाजसे यह आलो या रोशनी दिखाई पड़ती है।

शान्तप्रकृति (सं० त्रि०) शांता प्रकृतिर्यस्य। शांत-स्वभावका।

शान्तभय—प्लक्षद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष। (लिङ्गपु० ४६।४३)

शान्तमति (सं० पु०) १ देवपुत्रके एक पुत्रका नाम। (त्रि०) शांता मति र्यस्य। २ शांतबुद्धि, शिष्ट-प्रकृति।

शान्तरय (सं० पु०) यदुवंशीय एक राजा। ये धर्म-सारथिके पुत्र थे। इनका दूसरा नाम शांतरज था। (भाग० ६।१७।१२)

शान्तरूप (सं० त्रि०) शांतप्रकृति, सरल स्वभावका।

शान्तवीर देशिकेन्द्र—एकाक्षरनिघण्टुके प्रणेता।

शान्तल देवी—होयसलवंशीय राजा विष्णुवर्द्धन (दूसरा नाम वीरगङ्ग)-की महिषी। इनका दूसरा नाम था लक्ष्मा देवी।

शान्तश्री (सं० पु०) प्रचण्डदेवका एक नाम। (ललितविस्तर)

शान्तसुमति (सं० पु०) देवपुत्रके एक पुत्रका नाम। (ललितविस्तर)

शान्तसूरि (सं० पु०) १ एक जैन-टीकाकार। २ जातक-सारके रचयिता।

शान्तसेन (सं० पु०) यदुवंशीय एक राजा। ये सुबाहु-के पुत्र थे। (भाग० १०।६०।६८)

शान्ता (सं० स्त्री०) १ अयोध्याके राजा दशरथकी कन्या और महर्षि ऋष्यशृङ्गकी पत्नी। दशरथने अपने मित्र अङ्गदेशके राजा लोमपादको अपनी कन्या शांता पोष्य-पुत्रिकाके रूपमें दी थी। २ रेणुका। ३ शमी, छिक्कर। पर्याय—शुभा, भद्रा, अपराजिता, जया,

विजया। ४ आमलकी, आंवला। ५ दूर्वा, दूव। ६ दक्षिण-भारतमें प्रवाहित एक नदी। यह तासी नदीमें आ कर मिली है। (तापीखण्ड) ७ एक गण्डग्राम। (दिग्विजयप्रकाश) ८ संगीतमें एक श्रुति।

शान्तात्मन् (सं० त्रि०) शांति आत्मा स्वभावो यस्य। शांतस्वभाव शिष्ट, साधुप्रकृति।

शान्तानु—सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्य० ३३।६७)

शान्ताशान्ति—चम्पारण्यके अंतर्गत एक ग्राम।

(भविष्यब्र० ख० ४२।२०)

शान्ति (सं० स्त्री०) शम क्तिन्। १ कामक्रोधादि प्रशम, चित्तोपशम। नागोजीभट्टने शान्ति शब्दका अर्थ इस प्रकार किया है—विषयसे इन्द्रियका उपरम; शब्द स्पर्श आदि विषय इन्द्रियसे उपरत होने पर जो अवस्था होती है, उसे शान्ति कहते हैं। पर्याय—शमथ, शम, प्रशम, उपशम, प्रशान्ति, तृष्णाक्षय। क्रियायोगसारमें इसका लक्षण यों लिखा है—

"यत् किञ्चिद्वस्तु संप्राप्य स्वल्पं वा यदि वा बहु।
या तुष्टिर्जायते चित्ते शान्तिः सा गद्यते बुधैः॥"

(पद्मपु० क्रियायोगसा० १५ अ०)

अति अल्प या बहुत जिस किसी सामान्य वस्तुमें चित्तका जो परितोष होता है, उसे शान्ति कहते हैं। अधिक मिलने पर आनन्द नहीं और कम मिलने पर भी दुःख नहीं, चित्तका इस प्रकारका जो परितोष है, उसीका नाम शान्ति है।

गीतामें लिखा है—

"आपूर्य्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत् कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥"

(गीता २।७०)

जल जिस प्रकार सर्वदा परिपूर्ण और अचल भावमें अवस्थित महासमुद्रमें प्रवेश करके विलीन हो जाता है, उसी प्रकार जब कामना सभी पुरुषोंके हृदयमें प्रवेश कर वलीन होती है, तब वे शान्ति लाभ कर सकते हैं। कामकामी अर्थात् कामनापूर्ण व्यक्ति शान्तिकी सुकोमल छायाको कभी नहीं पाते। चित्त जब कामनाशून्य होता है, क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त आदि दूर होते हैं, तब शान्ति मिलती है। विषयासक्तचित्तको शान्ति नहीं मिल सकती। जिसे शान्ति नहीं है, उसे सुख भी नहीं।

जब तक इंद्रियां विजित नहीं होतीं, तब तक आत्मविषयिणी बुद्धि उत्पन्न नहीं होती। इस आत्मज्ञानके उत्पन्न हुए विना शान्तिलाभ नहीं होता। अशान्त व्यक्तिको सुखकी सम्भावना नहीं। जो शान्तिप्रयासी हैं, वे यदि पहले इन्द्रियसंयम कर भगवदुपासनामें चित्त निविष्ट करें, तो उन्हें सहजमें शान्तिलाभ होगा।

शङ्कराचार्यने अपने गीताभाष्यमें शान्ति शब्दका मोक्ष अर्थ स्थिर किया है।

२ धर्म द्वारा ग्रहदौःस्थ दुःस्वप्नादिसूचित ऐहिक अनिष्ट हेतु दुरित निवृत्ति। ग्रहादिके विगुण होनेसे जहां अनिष्ट होता है, वहां किसी दैव कर्मके अनुष्ठान द्वारा उस अनिष्टकी निवृत्ति होनेसे उसको शान्ति कहते हैं। ग्रहविरुद्ध होनेसे ग्रहोंकी पूजा, दान, स्तव, कवच, होम आदि द्वारा या तदधिष्ठात्री देवताकी पूजा और चण्डीपाठ तथा नारायणको तुलसी आदि दान करनेसे वैगुण्य शान्ति होती है। साधारणतः यह शान्ति स्वस्त्ययन नामसे प्रसिद्ध है। जिस प्रकार शरीरमें कवच धारण करनेसे शस्त्रका वाधक होता है, उसी प्रकार दैवापघात व्यक्तिकी शान्ति ही वारक है अर्थात् दैवविरुद्ध होने पर शान्ति करनेसे उसका प्रशमन होता है।

शान्तिकर्म विशुद्ध दिनमें करना होता है। किंतु जहां ग्रहादिके प्रबल प्रकोपवशतः कठिन पीड़ादि होती है, वहां मलमासमें भी शांतिकर्म कर सकते हैं। किन्तु मलमास होने पर भी विशुद्ध दिन देख कर शांति कर्म करना उचित है। यथाविहित शान्तिकर्मका अनुष्ठान करनेसे वालग्रह, भूतग्रह, राजभय, प्रवलतर शत्रु, दुःसह रोगाभिभव, दुःस्वप्न, ग्रहविरुद्ध आदि अति शीघ्र प्रशमित होते हैं। अतएव ग्रहादि विगुण होने पर यत्नपूर्वक उसकी शांति करना कर्त्तव्य है।

रघुनन्दनने कृत्यतत्त्वमें अद्भुत शांतिविधानका उल्लेख किया है। उन्होंने कहा है, कि प्रकृतिविरुद्धका नाम अद्भुत है अर्थात् जो अस्वाभाविक है, वही अद्भुत शब्दवाच्य है; यदि हठात् एक काक आ कर शरीर पर

बैठ जाय, गृहमें पेचकादि प्रवेश करे, गंधर्वनगरादिके दर्शन हो, तो उसे अद्भुत कहते हैं। देवगण मानवको अशुभ भाव अवगत करानेके लिये इसी प्रकार दिखलाया करते हैं। मानव उक्त सभी उत्पात देख कर अपना भावी अनिष्ट समझ आथर्व्वण विधिके अनुसार शांति करें। विधिविधानसे शांति करने पर भावी अनिष्टका भय नहीं रहता।

रजस्वला स्त्रीगमन, गो, अश्व और भार्याका यमज संतान प्रसव या विजातीय प्रसव, काक, कङ्क, गृध्र, श्येन, वनकुक्कुट, रक्तपाद और वनकपोतका गृहप्रवेश अथवा मनुष्यका परिपतन, श्वेतवर्ण, इंद्रायुध वा रात्रिकालमें इंद्रायुध, उल्कापात, दिग्दाह, सूर्योपमण्डल, चन्द्रोपमण्डल, गंधर्वनगरदर्शन, भूकम्प, धूमकेतु ; रक्त, शस्त्र, वसा, अस्थि आदिका पतन, पेचक और वानरादिका गृहमें प्रवेश और अकालमें फल पुष्पादिका उद्गम और सात दिन तक वृष्टि होनेसे छन्दोगपरिशिष्टोक्त विधिके अनुसार शांत करना कर्त्तव्य है।

यदि इस प्रकार अद्भुत विपद् पर शांति न की जाय, तो गृहपतिकी मृत्यु या सर्वस्व नाश होता है। इस शांतिके विधानमें लिखा है, कि विपद् उपस्थित होने पर विशुद्ध दिनमें देवपूजादि समाप्त कर स्वस्तिवाचन और पीछे सङ्कल्प करे।

सङ्कल्प-सूक्तपाठ और स्वगृह्योक्त विधिके अनुसार अग्निस्थापन कर पीछे वरद नामक अग्नि स्थापनपूर्वक घृत द्वारा इस प्रकार होम करे, अद्भुताग्नये स्वाहा, ओं सोमाय स्वाहा, ओं विष्णवे स्वाहा, ओं वायवे स्वाहा, ओं रुद्राय स्वाहा, ओं वसवे स्वाहा, ओं मृत्यवे स्वाहा, विश्वेभ्यो देवेभ्यो स्वाहा। पीछे चरु द्वारा इनका फिरसे होम करना होता है। इस प्रकार होम हो जाने पर घृतपायसादि भोजन द्वारा ब्राह्मणोंको दक्षिणाके साथ परितोष करे।

दुःस्वप्न और अनिष्ट देखनेसे भी ब्राह्मणको घृत और काञ्चन दान तथा ब्राह्मण और ज्ञातिभोजन करानेसे शांति होती है। (कृत्यतत्त्व)

वैष्णवामृतमें व्यासवचनमें लिखा है, 'नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा', इस मन्त्रसे भगवान् नारायणको तुलसी देनेसे सभी शान्ति होती है। तुलसी द्वारा नारायणकी पूजा ही महाशान्ति है। इससे सभी प्रकारकी विपद् दूर होती है। ग्रहयज्ञ और शान्तिक आदि कर्मोकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। एकमात्र तुलसी दानसे ही सभी शांति होती है।

यह जो शान्तिका विषय कहा गया, वह वैदिक शांति है। इसके सिवा तंत्रशास्त्रमें भी शांतिका उल्लेख देखनेमें आता है। तंत्रमें षट्कर्मस्थलमें शांतिका विधान है। वहां शांतिकर्मके लक्षणके सम्बन्धमें लिखा है, कि जिस कर्म द्वारा रोग, कुकृत्या और ग्रहदोष निवारण होता है, उसे शांतिकर्म कहते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि ज्योतिषोक्त शुभ दिन देख कर शांति कर्मका अनुष्ठान करना होता है। शुभ दिन ये सब हैं—रवि, सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्र तथा उत्तराषाढ़ा, उत्तरफल्गुनी, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी, चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, पुष्या, अश्विनी और हस्ता ये सब नक्षत्रयुक्त तथा रिक्ता भिन्न तिथिमें शुभलग्नमें चंद्र और ताराशुद्धि होनेसे शांतिकर्म करे।

आपत्कालमें चण्डीपाठ, बटुकभैरवादि स्तोत्रपाठ, स्वस्त्ययन, होम आदिसे जिस प्रकार ग्रहवैगुण्य शांति होती है, उसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्रमें भी रोगादि शांतिके लिये ग्रहशांति, कवच धारण, तुलसीदान आदिकी व्यवस्था देखी जाती है। इसके सिवा ग्रहशांतिके लिये मौतिकाचारकी भी व्यवस्था है। सांपकी कैंचुल, लहसुन, मुर्गामूल, सरसों, निम्बपत्र, बिड़ालकी विष्ठा, छागलोम, मेषपुच्छ, वच और मधु इनके धूपसे ग्रहशांति होती है तथा बालरोग दूर होता है।

३ भद्र, मङ्गल। ४ गोपीविशेष। (ब्रह्मवैवर्त्त-पु० प्रकृतिख० ६ अ०) (पु०) ५ वृक्षाई विशेष। ६ जिन चक्रवर्त्तीविशेष। ७ दशम मन्वन्तरीय चंद्र। (गरुड़पु० ८७ अ०) ८ देवपूजा आदिके बाद मंत्रपाठपूर्वक यजमानको पुष्पादि द्वारा जो आशीर्वाद दिया जाता है, उसे शान्ति कहते हैं।

देवपूजाके बाद शांति, तिलक और पीछे दक्षिणान्त करना होता है। शान्तोदकदान देखो।

९ षोड़शमातृकाविशेष। कुलकी रक्षा करनेवाली १६

मातृकादेवी हैं। नान्दीमुखश्राद्धमें पहले इनकी पूजा करके पीछे श्राद्ध करना होता है।

शान्तिक (सं० त्रि०) १ शान्ति-सम्बंधी, शांतिका। (पु०) २ शांतिकर्म।

शान्तिकर (सं० पु०) करोतीति कृ-ट, करः। शांति कारक, शांति करनेवाला। (भाग० ५।२२।१६)

शान्तिकरण (सं० क्ली०) शांतेव करणं। शांतिकर्म, शांतिकार्य्य। (कात्या० श्र० २६।७।५८)

शान्तिकर्मन् (सं० क्ली०) शांतार्थं कर्म। बुरे ग्रह, प्रेत-बाधा, पाप आदि द्वारा देनेवाले अमंगलके निवारणका उपचार। (आश्व० श्र० २६।७।५८)

शान्तिकलामल—सह्याद्रि-वर्णित एक राजा।
(सह्या० ३१।२८)

शान्तिकल्प (सं० पु०) अथर्ववेदका पांचवां कल्प।

शान्तिकाम (सं० त्रि०) शांतिं कामयते इति कम-णिङ्-अच्। शान्त्यभिलाषी, शांतिकी कामना करनेवाला। संस्कारतत्त्वमें लिखा है, कि जो श्री और शांतिकी कामना करते हैं, उन्हें ग्रहयज्ञ करना चाहिए।

शान्तिकुम्भ (सं० पु०) वह घट या घड़ा जो देवपूजादि-में प्रतिमाके सामने रखा जाता है। देवपूजादिके बाद इस कुम्भका जल ले कर शांति देनी होती है, इसलिये इसको शांतिकुम्भ या शांतिकलस कहते हैं।

शान्तिकृत् (सं० त्रि०) शांति करोतीति-कृ क्विप्-तुक् च। शांतिकारक।

शान्तिगुप्त (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य्यका नाम।
(तारनाथ)

शान्तिगुरु (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य्यका नाम।

शान्तिगृह (सं० क्ली०) शान्तेंगृहं। यज्ञके अंतमें पाप तथा अशुभ आदिका शांतिके लिये स्नान करनेका स्नानागार।

शान्तिजल (सं० क्ली०) शांत्यर्थं जलं। शांतिनिमित्त जल, वह जल जिससे पूजादिके बाद शांति की जाती है।

शान्तिद (सं० त्रि०) शांतिं ददातीति दा-क। १ शांति-दायक, शांति देनेवाला। (वृहत्संहिता ५८।३३) (पु०) २ विष्णु।

शान्तिदाता (सं० त्रि०) शांति देनेवाला।

शान्तिदायक (सं० त्रि०) शांति देनेवाला।

शान्तिदायिन् (सं० त्रि०) शांतिदेनेवाला।

शान्तिदेव (सं० पु०) एक बौद्धयतिका नाम।

शान्तिदेवा (सं० स्त्री०) वासुदेवकी पत्नी देवककी कन्या।
(भागव० १।२४।२२)

शान्तिनाथ (सं० पु०) जैनोंके एक तीर्थंकर या अर्हत्। जैन शब्द देखो।

हेमचंद्रके गुरु देवसूरिने शांतिनाथचरित नामक एक ग्रन्थ लिखा। उसके पीछे देवसूरिने प्राकृतसे संस्कृत भाषामें अनुवाद किया। शांतिनाथपुराणमें भी शांतिनाथका चरित्र वर्णित है।

शान्तिपर्व्व—महाभारतका बारहवां और सबसे बड़ा पर्व्व। इसमें युद्धके उपरांत युधिष्ठिरकी चित्त-शांतिके लिये कही हुई बहुत-सी कथाएं, उपदेश और ज्ञानचर्चा हैं।

शान्तिपात्र (सं० पु०) वह पात्र जिसमें ग्रह, पाप आदि-की शांतिके लिये जल रखा जाय।

शान्तिपाल—सह्याद्रि-वर्णित एक राजा। (सह्या० ३२।५१)

शान्तिपुर (सं० क्ली०) १ शांतिनिकेतन। २ नगरविशेष।

बङ्गालके नदिया जिलांतर्गत एक प्रसिद्ध नगर। यह अक्षा० २३° २५' उ० तथा देशा० ८८° ३०' पू०के मध्य श्रीचैतन्यचंद्रके लीलाक्षेत्र नवद्वीपधामसे दक्षिण भागी-रथीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ३० हजारसे ऊपर है।

बहुत पहले इस नगरने वस्त्रवाणिज्यमें प्रसिद्धि लाभ की थी। आज भी शांतिपुरकी धोती सर्वत्र प्रसिद्ध है। बङ्गाली बालक-बालिका रेशमपाड़की शांतिपुरी साड़ी पहनना बहुत पसंद करती हैं। पहले नदिया जिलेके प्रायः सभी स्थानोंमें यह कपड़ा तैयार हो कर शांतिपुर-की हाटमें बिकता था। इष्ट-इण्डिया-कम्पनीके शान्ति पुरमें कोठी खोलनेसे यह नगर वस्त्रवाणिज्यके केन्द्ररूपमें परिणत हुआ तथा जुलाहे शांतिपुरमें आ कर वस्त्र बिनने लगे।

श्रीचैतन्य महाप्रभु जब नवद्वीपमें वैष्णव धर्मका प्रचार कर रहे थे। उस समय वैष्णवाचार्य्य श्रीमद्-द्वैत गोस्वामी शान्तिपुरमें गङ्गाके किनारे वास करते थे। महाप्रभु उन पूज्यपाद गोस्वामीके दर्शन करनेकी

इच्छासे शान्तिपुर आये। वैष्णवग्रन्थमें लिखा है, कि अद्वैत गोस्वामीके साथ रह कर महाप्रभु यहां हरिनाम संकीर्त्तनमें मत्त रहते थे। रासयात्राके उपलक्षमें शान्तिपुरमें आज भी उस धर्मप्रचारकी स्मृति अक्षुण्ण है। कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन शान्तिपुरके घर घरमें रासोत्सव होता है। मेला तीन दिन रहता है। बङ्गालके नाना स्थानोंके वैष्णव और अन्यान्य मनुष्य इस मेलेमें आते हैं। अद्वैत प्रभुकी वासभूमि होनेके कारण यह स्थान गौड़ीय वैष्णवोंके निकट एक तीर्थरूपमें गिना गया है। यहां गङ्गास्नान महापुण्यजनक है।

शान्तिपुराण—जैनपुराणभेद, सकलकीर्त्ति रचित शांतिनाथ पुराण।

शान्तिप्रद (सं० त्रि०) शांति देनेवाला।

शान्तिप्रभ (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य। (तारनाथ)

शान्तिमन्त्र (सं० पु०) १ मंत्रविशेष, शांतिदानका मंत्र, इस मंत्रमें शांतिजल दिया जाता है। शान्त्युदकमान देखो। २ तन्त्रोक्त मंत्रविशेष। तंत्रसारमें यह मंत्र इस प्रकार लिखा है, यथा—अथ शांति मन्त्रः।

"इमं पुत्रं कामयतः कामजानामिहैव हि।

"देवेभ्यः पुष्णाति सर्वमिदं नज्ञानं शिवशान्तिस्ताराये वेशवेभ्यस्ताराये रुद्रेभ्यः उमायैः शिवाय शिवयशने। इत्यनेन कुशोदकेन शान्तिं कुर्यात्।" (तन्त्रसार)

इस मंत्रसे कुशोदक द्वारा शान्ति करनी होती है।

शान्तिमय (सं० त्रि०) शांतिसे पूर्ण, शांतिसे भरा हुआ।

शान्तिरक्षित (सं० पु०) एक बौद्धाचार्य। (तारनाथ)

शान्तिवर्मा—कादम्बवंशीय दो नरपति। शांतिवर्मा १म राजा २य नागवर्माके बाद सिंहासन पर बैठे। राजा २य शान्तिवर्मा १०७५ ई०में विद्यमान थे। ये राजा २य जयवर्माके पुत्र थे, किंतु राजा जयवर्माके पौत्र २य कोत्तिवर्माके बाद सिंहासनके अधिकारी हुए। हांगले में इन लोगोंकी राजधानी थी। राजा २य शांतिवर्मा पश्चिम चालुक्य वंशीय राजा २य सोमेश्वर तथा ६ष्ठ विक्रमादित्यके अधीन मित्रराजरूपमें गिने जाते थे। उन्होंने पाण्ड्यवंशीय श्रियादेवीको ब्याहा था।

शान्तिवर्मा—सौन्दत्तोके रट्टवंशीय एक सामन्त राजा। ये राजा पिट्टुगके पुत्र थे। पिताके मरने पर ये सम्भवतः ६८० ई०में पिताके सिंहासन पर बैठे। पश्चिम चालुक्यराज २य तैलपके अधीन इन्होंने बड़ी वीरता दिखाई थी।

शान्तिवाचन (सं० क्ली०) ग्रह, प्रेतबाधा, पाप आदिसे होनेवाला अमंगलको दूर करनेके लिये मन्त्रपाठ।

शान्तिवाचनीय (सं० त्रि०) शांतिवाचनप्रयोजनमस्य (अनुप्रवचनादिभ्यश्छः। पा ५।१।१११) इति छ। शांतिवाचन जिसे प्रयोजन हो, उसे शांतिवाचनीय कहते हैं।

शान्तिवाहन (सं० पु०) एक बौद्धराज। (तारनाथ)

शान्तिव्रत (सं० पु०) एक व्रत। (वराहपु०)

शान्तिशतक (सं० क्ली०) शिह्लन कविकृत श्लोकशतक। इसमें शांतिविषयक एक सौ श्लोक हैं।

शान्तिसद्मन् (सं० क्ली०) शान्तिगृह देखो।

शान्तिषेण—एक विख्यात जैनसूरि। ये दुर्लभसेनसूरिके पुत्र, कुलभूषणके पौत्र और गुरुदेवसेनके प्रपौत्र थे। ये लोग लाटवागटोंके अंतर्भुक्त थे। राजा भोजदेवको सभामें अम्बरसेनको और अन्यान्य तर्कयुद्धमें बुलाये गये पण्डितोंको शांतिषेणने परास्त किया था। इनके पुत्र विजयकीर्त्ति कच्छपघातवंशीय महाराजाधिराज विक्रमसिंहके सभापण्डित थे (११४५ सम्वत्)।

शान्तिसूक्त (सं० क्ली०) वैदिक मंत्रविशेष। महावामदेव्य ऋषि आदि वैदिक मंत्रको शांतिसूक्त कहते हैं। इस सूक्तमें शांतिजल देना होता है।

शान्तिसूरि (सं० पु०) एक प्रसिद्ध जैनग्रंथकार। इन्होंने उत्तराध्ययनसूत्रटीका और मानाङ्क विरचित वृन्दावनयमककी टीका लिखी। इनका दूसरा नाम था वादिवेताल और ये थारापद्रगच्छभुक्त थे। १०९६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

शान्तिहोम (सं० पु०) शान्त्यर्थं होमः। वह होम जो शांतिके लिये किया जाता है। (मनु ४।१५०)

मनुमें लिखा है, कि अमावस्या पूर्णिमा आदि पर्व दिनमें अनिष्ट निवृत्तिके लिये शांति होम करे।

शान्त्युदकदान (सं० क्ली०) शान्त्युदकस्य दानं। शांति जल देना। पूजा और होमादिके बाद शांतिमन्त्र पढ़ कर यजमानके ऊपर जो जल छिड़का जाता है उसे शांत्यु

दन दान कहते हैं। यह वैदिक और तान्त्रिक इन दोनों मन्त्रों से दिया जाता है। किन्तु अनेक स्थलों में तांत्रिक मन्त्रसे ही शान्ति दी जाती है।

वैदिक शान्ति देनेके समय सामवेदी, यजुर्वेदी और ऋग्वेदीके पृथक् पृथक् मन्त्र हैं; महावामदेव्य ऋषि आदि सामवेदियोंका और 'ऋचं वाचं प्रपद्ये' आदि मन्त्र यजुर्वेदियोंका जानना होगा। किन्तु तान्त्रिक शान्तिमें सभी वेदियोंका एक ही मंत्र कहा गया है। यह मन्त्र इस प्रकार है—

"सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवंतु विजयाय ते।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहिता ह्येते दिक्पालाः पान्तु वः सदा॥
कीर्त्तिर्लक्ष्मी धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्षमा मतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्माया निद्रा च भावना॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु देवपत्न्यः समागताः।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधो जीवसितार्कजाः॥
एते त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः।
देवदानवगंधर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः॥
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च।
देवपत्न्यो ध्रुवा नागा दैत्याश्चाप्सरसोऽङ्गनाः॥
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मकामार्थसिद्धये॥"

(तन्त्रसा०)

यह मंत्र पढ़ कर शांतिकलससे शांतिजल देना होता है।

शान्त्व (सं० क्ली०) सान्त्व, अति मधुर।

(अमरटीका सारसु०)

शान्त्वति (सं० स्त्री०) ब्राह्मणयष्टिका, भारंगी।

शाप (सं० पु०) शपनमिति शप-घञ्। १ आक्रोश, अहितकामनासूचक शब्द, बददुआ। पर्याय—अकरणि, अजीवनि, अजननि, अवग्रह, निग्रह, अभिसम्पात। २ धिक्कार, फटकार, भर्त्सना। ३ ऐसी शपथ जिसके न पालन करनेका कोई अनिष्ट परिणाम कहा जाय, बुरी कसम। ४ उपद्रव। (रामा० ११२६।३५) 'मुक्त-शापं अपगतोपद्रवं' (टीका) ५ जल। "प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति" (ऋक् १०।२८।४) 'प्रतीपं प्रतिकूलं शापं उदकं' (सायण)

शापग्रस्त (सं० त्रि०) शापेन ग्रस्तः। अभिशप्त, जिसे शाप दिया गया हो।

शापज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ोंके शापके कारण कहा गया है।

शापठिक (सं० पु०) मयूर, मोर।

शापनाशन (सं० पु०) मुनिभेद।

शापवचन (सं० क्ली०) शापवाक्य।

शापभ्रष्ट (सं० पु०) शापेन भ्रष्टः। शाप द्वारा भ्रष्ट, वह जो शाप देनेसे नष्ट हो गया हो।

शापमुक्त (सं० त्रि०) जिसका शाप छूट गया हो; जिसके ऊपरसे शापका बुरा प्रभाव हट गया हो।

शापाम्बु (सं० पु०) वह जल जिसे हाथमें ले कर शाप दिया जाय।

शापायन (सं० पु०) शप-अश्वादित्वात् फञ् (पा ४।१।११०) मुनिविशेष, शाप ऋषिका गोत्रापत्य।

शापास्त्र (सं० पु०) शाप एव अस्त्रं यस्य। १ वह व्यक्ति जिसके पास अस्त्रोंके स्थान पर शाप ही हो। २ एक मुनिका नाम।

शापित (सं० त्रि०) शाप-ग्रस्त, जिसे शाप दिया गया हो।

शापेट (सं० पु०) कुशजातीय तृणभेद। "नाव्याया दक्षिणावर्त्ते शापेटं निखनेत्।" (कौशिकसू० १८)

शापेय (सं० पु०) २ एक वैदिक आचार्य। ३ उनको प्रवर्त्तित एक शाखा।

शापेयिन् (सं० पु०) १ शापेय शाखाध्यायी। २ याज्ञ-वल्क्यके एक शिष्यका नाम। (ब्रह्माण्डपुराण)

शापोत्सर्ग (सं० पु०) शापका उच्चारण, शाप छोड़ना, शाप देना।

शापोद्धार (सं० पु०) शापमुक्ति, शाप या उसके प्रभावसे छुटकारा।

शाफरिक (सं० पु०) शफरान् हन्तीति शफर (पक्षिमत्स्य-मृगान् हन्ति । पा ४।४।३५) इति ठक् । मत्स्यधारक, मछुआ, धीवर ।

शाफाक्षि (सं० पु०) शाफाक्षका गोत्रापत्य ।

शाफेय (सं० पु०) यजुर्वेदकी एक शाखा ।

शाबर (सं० पु०) शबरस्यापत्यं शबर (ऋष्यन्धकवृष्णि विदादिभ्योऽञ् । पा ४।१।१०४) इति अञ् । १ शबरका गोत्रापत्य । २ शिवकृत तंत्रविशेष । ३ शबरस्वामि कृत भाष्यविशेष । शबराणामयं । ४ पाप, अपराध । ५ ताम्र, ताँबा । ६ अधिकार । ७ एक प्रकारका चंदन । ८ बुराई, हानि, दुःख । ९ लोध्र वृक्ष, लोधका पेड़ । (त्रि०) १० दुष्ट, पाजी ।

शाबरजम्बुक (सं० त्रि०) शबरजम्बु (ओर्देशे ठञ् । पा ४।२।११९) इति ठञ् । शबरजम्बुदेश-सम्बन्धी ।

शाबरभाष्य (सं० क्ली०) शाबरेण कृतं भाष्यं । शबर-स्वामी कृत भाष्य । जैमिनिकृत मीमांसादर्शनके शबर-स्वामीने जो भाष्य प्रणयन किया है, उसका नाम शाबर-भाष्य है ।

शाबरभेदाख्य (सं० पु०) ताम्र, ताँबा ।

शाबरायण (सं० पु०) शबरस्य गोत्रापत्यं शबर (अश्वादिभ्यः फञ् । पा ४।१।११०) इति फञ् । शबरके गोत्रापत्य ।

शाबरि (सं० पु०) एक बौद्धयति । (तारनाथ) ।

शाबरिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी जोंक ।

शाबरी (सं० पु०) शबरोंकी भाषा, एक प्रकारकी प्राकृत भाषा ।

शाबरोत्सव (सं० पु०) शाबराणामुत्सवः । शबरजातिकृत उत्सवविशेष । कालिकापुराणमें लिखा है, कि महा-ष्टमीके दिन तथा नवमी तिथिको भवानी दुर्गादेवीकी पूजा कर श्रवणा नक्षत्रयुक्त दशमी तिथिमें शाबरोत्सव द्वारा भवानीको विसर्जन करे ।

चण्डालादि नीच जाति अश्लील वाक्यादिका प्रयोग कर जो उत्सव करती है, वही शाबरोत्सव है । किस प्रकार शाबरोत्सव करना होता है, उसका विधान भी है—रागनिपुणा कुमारी और वेश्या तथा नर्त्तकोंको साथ ले कर शङ्ख, तुरी, मृदङ्ग और पटहका शब्द करते करते विभिन्न वस्त्रोंकी ध्वजा फहराती होगी तथा लावा और फूल, धूल और कीचड़ फेंक कर भगलिङ्गादि वाचक ग्राम्य शब्द उच्चारण और वैसे ही शब्दोंका गान तथा अश्लील वाक्योंका प्रयोग करते करते नाना प्रकार-का उत्सव करे । ऐसे उत्सवका नाम ही शाबरोत्सव है । (कालिकापु० ६ अ०)

शाबल (सं० क्ली०) शङ्कर ।

शाबलीय (सं० पु०) शङ्करजन ।

शाबल्य (सं० क्ली०) १ शाङ्कर्य ।

"व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ।"

(भाग० १०।२०।३४)

'शाबल्यं साङ्कर्य' । (स्वामी) २ कई रंगोंका मेल, शबलता, चितकबरापन । ३ एक साथ भिन्न भिन्न कई वस्तुओंका मेल ।

शाबल्या (सं० स्त्री०) कर्बूरवर्ण, चितकबरी । "हसाय कारिं यादसे शाबल्यां" (शुक्लयजुः ३०।२०) 'शाबल्यां शबलः कर्बूरवर्णः तदपत्यभूतां स्त्रियां' (महीधर)

शाबस्त (सं० पु०) राजा युवनाश्वका एक पुत्र । इसने शाबस्ती या श्रावस्ती नगरी बसाई थी ।

(भागवत ९।६।२१)

शाबस्ती (सं० स्त्री०) श्रावस्ती देखो ।

शाबाश (फा० अव्य०) एक प्रशंसा-सूचक शब्द, खुश रहो, वाह वाह, क्या कहना ।

शाबाशी (फा० स्त्री०) किसी कार्यके करने पर प्रशंसा, वाह वाही ।

शाब्द (सं० त्रि०) शब्दस्यायमिति शब्द-अण् । १ शब्द-सम्बन्धी, शब्दका । "एको शाब्दोऽपरश्चार्थः" (दाय-भाग २ शब्दमय, शब्दस्वरूप ।

"शब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था

यन्नामभिर्ध्यायति धीर पार्थैः ।" (भाग० २।२।२)

३ शब्दशास्त्री, वैयाकरण ।

शाब्दत्व (सं० क्ली०) शब्दस्य भावः त्व । शब्दका भाव या धर्म, शब्दसम्बन्धीयत्व ।

"आरोप्यमाणामशेषाणां शाब्दत्वे प्रथमं मतम् ।"

(साहित्यद० १०।६७३)

शाब्दबोध (सं० पु०) शाब्दः शब्दसम्बंधी बोधः ।

१ शब्दार्थज्ञान। शब्दके उच्चारणसे जो अर्थबोध होता है, उसे शाब्दबोध या शब्दार्थज्ञान कहते हैं। न्यायके मतसे पदार्थज्ञान जन्य ज्ञान है। नैयायिकोंके मतसे शब्दार्थज्ञान स्थलमें पहले पदज्ञान, पीछे पदशक्ति ज्ञान और उसके बाद शाब्दबोध अर्थात् पदार्थज्ञान जन्य ज्ञान होता है। कहीं कहीं लक्षणाशक्ति द्वारा भी शब्दार्थज्ञान हुआ करता है।

पदज्ञान करण, पदार्थज्ञान उसका द्वार, शाब्दबोध फल और शक्तिधी सहकारिणी है। पहले एक पद सुननेसे पद जन्य पदार्थका स्मरण होता है। पद जन्य पदार्थका स्मरण होनेसे शब्दार्थका बोध होता है। शब्दशक्तिप्रकाशिका आदि न्याय ग्रंथोंमें इस शब्दबोधका विषय विशेष रूपसे आलोचित हुआ है।

शब्दशक्ति देखो।

शाब्दिक (सं० पु०) शब्दं करोतीति शब्द (शब्द दर्दुरं करोति। पा४।४।३४) इति ठक्। १ शब्द शास्त्रवेत्ता, वैयाकरण। कविकल्पद्रुममें इन्द्र, चन्द्र आदि आठ आदि-शाब्दिक कहे गये है।

(त्रि०) २ शब्द-संबंधी, शब्दका।

शाब्दी (सं० वि० स्त्री०) १ शब्द संबंधिनी। २ केवल शब्दविशेष पर निर्भर रहनेवाली। (स्त्री०) ३ सरस्वती।

शाब्दीव्यञ्जना (सं० स्त्री०) साहित्यमें व्यञ्जनाके दो भेदोंमेंसे एक, वह व्यञ्जना जो शब्द विशेषके प्रयोग पर ही निर्भर हो अर्थात् उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर न रह जाय।

शाम (सं० त्रि०) शम-अण्। शम-संबंधी, शमका।

शाम (हिं० स्त्री०) १ लोहे, पीतल आदि धातुका बना हुआ वह छल्ला जो हाथमें ली जानेवाली लकड़ियों या छड़ियोंके विचले भागमें अथवा औजारोंके दस्तेमें लकड़ीको घिसने छीजनेसे या बचानेके लिये लगाया जाता है। (पु०) २ एक प्रसिद्ध प्राचीन देश। यह अरबके उत्तरमें है। कहते हैं, कि यह देश हजरत नूहके पुत्र शामने बसाया था। इसकी राजधानीका नाम दमिश्क है। आज कल यह प्रदेश सिरीया कहलाता है।

शाम (फा० स्त्री०) सूर्य अस्त होनेका समय, रात्रि और दिवसके मिलनेका समय, साँझ।

शामकरण (हिं० पु०) वह घोड़ा जिसके कान श्याम रङ्गके हों।

शामत (अ० स्त्री०) १ बदकिस्मती, दुर्भाग्य। २ विपत्ति, आफत। ३ दुर्दशा, दुरवस्था।

शामतज़दा (फा० वि०) कमबख्त, बदनसीब, अभागा।

शामती (अ० वि०) जिसकी शामत आई हो, जिसकी दुर्दशा होनेको हो।

शामन् (सं० क्ली०) सामगान।

(अमरटीकामें सारसुन्दरी)

शामन (सं० क्ली०) शमनमेव अण्। १ मारण, हत्या करना। २ शान्ति। (पु०) शमण-प्रज्ञादित्वादण्। ३ शमन, यम।

शामनगर—बङ्गालके चौबीस परगनेके अन्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। श्यामनगर देखो।

शामनी (सं० स्त्री०) शमनस्य यमस्येयमिति शमण अण्-ङीप्। १ दक्षिणदिक्, दक्षिण दिशा। इस दिशाके अधिपति यम माने गये हैं। २ शान्ति, स्तब्धता। ३ वध, हत्या। ४ समाप्ति, अन्त।

शामराज—सह्याद्रिवर्णित दो राजे। (सह्या० ३१।९।३३,४९)

शामल—सह्याद्रि वर्णित एक राजा। (सह्या० ३३।५६)

शामली—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलेकी एक तहसील। भू-परिमाण ४६१ वर्गमील है। शामली, थाना भावान, झनझाना, कैराना और बिदौली परगने ले कर यह उपविभाग गठित है। शामली सदरमें एक दीवानी और दो फौजदारी अदालत हैं। यमुना नदीकी पूर्व खाल इस उपविभागके बीच हो कर बह चली है।

शामा (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। इसकी पत्तियां और जड़ कोढ़ रोगके लिये लाभदायक मानी जाती हैं।

श्यामा देखो।

शामिक (सं० पु०) शमिक अपत्यार्थे अण्। शमिकका गोत्रापत्य। (पाणिनि ४।१।१०४)

शामित्र (सं० स्त्री०) १ यज्ञमें मांस पकानेके निमित्त प्रज्वलित की हुई अग्नि। २ वह स्थान जहां ऐसी अग्नि प्रज्वलित की जाय। ३ यज्ञके लिये पशुकी हिंसा। ४ यज्ञपात्र। ५ यज्ञ।

शामियाना (फा० पु०) एक प्रकारका बड़ा तम्बू। इसमें

प्रायः ऊपरकी ओर लंबा चौड़ा कपड़ा होता है जो बाँसों पर तना रहता है। इसके नीचे चारों ओर प्रायः खुला ही रहता है, पर कभी कभी इसके चारों ओर कनात भी खड़ी की जाती है।

शामिल (फा० वि०) जो साथमें हो, मिला हुआ, सम्मिलित।

शामिल हाल (अ० पु०) जो दुःख सुख आदि सब अवस्थाओंमें साथ रहे, साथी, शरीक।

शामिलात (अ० स्त्री०) हिस्सेदार, साझा। शामिल देखो।

शामी (हिं० स्त्री०) १ लोहे या पीतलका वह छल्ला जो लकड़ियों या छड़ियों आदिके नीचेके भागमें अथवा औजारोंके दस्तेके सिरे पर उसकी रक्षाके लिये लगाया जाता है। इसे शाम भी कहते हैं। (वि०) २ शामदेश सम्बन्धी, शामदेशका।

शामीकबाव (हिं० पु०) एक प्रकारका कबाब जो मांसको मसालेके साथ कूटनेके उपरांत पोस कर गोलियां या टिकियोंके रूपमें बनाया जाता है।

शामील (सं० क्ली०) शम्याः विकारः (शम्याष्टलच्। पा ४।३।१४२) इति टलच्। भस्म, खाक, राख।

शामीली (सं० स्त्री०) स्रुक्, माला।

शामीवत (सं० स्त्री०) शमीवत् अपत्यार्थे अण्। शमीवतका गोत्रापत्य। (पाणिनि ५।३।११८)

शामीवत्य (सं० पु०) शमीवत् अपत्यार्थे यञ्। शमीवतका गोत्रापत्य। (पाणिनि ५।३।११८)

शामुल्य (सं० क्ली०) शरीरावच्छिन्न मलधारकवस्त्र, गलेमें पहननेका कोई कपड़ा। "पुराधेहि शामुल्य" (ऋक् १०।८५।२९) 'शामुल्यं शामलमित्यर्थः, शमलं शारीरं मलं शरीरावच्छिन्नस्य मलस्य धारकं वस्त्रं परा देहि परात्यज। (सायण)

शामूल (सं० क्ली०) पशमी वस्त्र, ऊनी कपड़ा।

शामेय (सं० पु०) एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिका नाम।

शाम्ब—भगवान् श्रीकृष्णके पौत्र। ये श्रीकृष्णके शापसे कुष्ठरोगग्रस्त हुए थे। पीछे भगवान्‌के आदेशसे जब शाकद्वीपसे ब्राह्मण ला कर सूर्यकी पूजा कराई, तब ये मुक्त हुए। (वराहपु०)

शाम्बर (सं० त्रि०) शम्बर अण्। १ शम्बर नामक दैत्यसे आगत। "रविः शाम्बरं वसु प्रत्यग्र सीत्म" (ऋक् ६।४७।२२) 'शाम्बरं शम्बरादसुरादागतं शाम्बरं हत्वा त्वया दत्तं।' (सायण) २ शम्बरसंबन्धी। ३ साँभर मृगका (पु०) ४ लोध्र वृक्ष, लोध।

शाम्बरशिल्प (सं० पु०) इन्द्रजाल, जादू।

शाम्बरिक (सं० पु०) जादूगर, मायावी।

शाम्बरिन् (सं० पु०) १ एक प्रकारका चन्दन। २ लोध, लोध। ३ मूषाकानी नामकी लता।

शाम्बरी (सं० स्त्री०) शम्बर-अण् ङीप्। १ माया, इन्द्रजाल। कहते हैं, कि शम्बर दैत्यने पहले पहल इसका प्रयोग किया था, इसी कारण इसका नाम शांबरी पड़ा। २ मायाविनी, जादूगरनी।

शाम्बविक (सं० पु०) शङ्खका व्यवसाय करनेवाला।

शाम्बुक (सं० पु०) शम्बुक, घोंघा। (शब्दरत्ना०)

शाम्बूक (सं० पु०) घोंघा।

शाम्भर (सं० स्त्री०) १ राजपूतानेकी एक झील जिसमें सांभर नमक होता है, सांभर झील। (पु०) २ सांभर नमक। ३ शम्भर ऋषिका अपत्य। ४ हरिणभेद। हरिण देखो।

शाम्भरायणी (सं० स्त्री०) शम्भर ऋषिकी अपत्य स्त्री।

शाम्भव (सं० क्ली०) शम्भोरुपदेशाय इदं अण्। १ देवदारु। २ कर्पूर, कपूर। ३ शिवमल्ली, वसु। ४ गुग्गुलु, गुग्गुल। ५ एक प्रकारका विष। ६ शिवका पुत्र। ७ शैव, शिवोपासक। (त्रि०) ८ शम्भुसंबन्धी, शिवका।

शाम्भवक्षेत्र—उत्कलके अन्तर्गत एक शैवतीर्थ। सम्भवतः एकाम्रक्षेत्र ही शाम्भवक्षेत्र कहलाता है। (उत्कलख० ४५।२।६) भुवनेश्वर देखो।

शाम्भवदेव (सं० पु०) एक प्राचीन संस्कृत कवि।

शाम्भवहि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषि।

शाम्भवी (सं० स्त्री०) १ दुर्गा देवी। २ नील दूर्वा, नीली दूब।

शाम्मद (सं० क्ली०) साममेद।

शाम्य (सं० क्ली०) शाम-यत्। १ शमका भाव। २ बन्धुत्व, भाईचारा। ३ शान्ति।

शाम्यप्रास (सं० क्लो०) यज्ञकी दलि। (दिव्या० ६।३४।७)
शाम्याक (सं० त्रि०) शम्याक-सम्बन्धी।
शाय (सं० त्रि०) निद्रित, सोया हुआ।
शायक (सं० पु०) शाययति शत्रून्-शी-णिच् ण्वुल्, यद्वा शेते तुणीरे इति-शी-ण्वुल्। १ वाण, तीर, शर। २ खड्ग, तलवार। (अमरटोकामें स्वामी)
शायक (अ० वि०) १ शौक करने या रखनेवाला, शौकीन। २ इच्छुक, खाहिशमंद।
शायण्डायन (सं० पु०) १ एक ऋषि। २ उनकी बनाई हुई शाखा।
शायद (फा० अव्य) कदाचित्, सम्भव है।
शायर (अ० पु०) वह जो शेर आदि बनाता हो, काव्य करनेवाला, कवि।
शायरा (अ० स्त्री०) काव्य करनेवाली।
शायरी (अ० स्त्री०) १ कविता करनेका कार्य या भाव। २ काव्य, कविता।
शार्यस्थ (सं० पु०) एक वैदिक आचार्य।
शाया (अ० वि०) १ प्रकट, जाहिर। २ प्रकाशित, छपा हुआ।
शायिक (सं० पु०) वह जो शय्याके द्वारा अपनी जीविकाका निर्वाह करता हो।
शायित (सं० त्रि०) शी-णिच्-क्त। १ सुलाया या लेटाया हुआ। २ पतित, गिरा हुआ।
शायिता (सं० स्त्री०) शायिनो भावः शायिन् तल-टाप्। शयन, सोना।
शायिन् (सं० त्रि०) शेते इति शी-णिनि। शयनकारी, सोनेवाला। यह शब्द प्रायः उपपदपूर्वक व्यवहार होता है। जैसे—प्रासादशायी, शय्याशायी, इत्यादि।
शायिक (सं० त्रि०) शय्याया जीवति (वेतनादिभ्यो जीवति। पा ४।४।१२) इति ठक्। जो शय्याके द्वारा अपनी जीविकाका निर्वाह करता हो।
शार (सं० त्रि०) शृ-घञ्। १ कपूरवर्ण, चितकवरा। २ पीत, पीला। ३ नीले, पीले और हरे रंगका। (पु०) २ वायु, हवा। ३ हिंसन, हिंसा। ४ एक प्रकारका पांसा। ५ अक्षर उपकरण। (स्त्री०) ६ कुश।
शारङ्ग (सं० पु०) शीर्यते आतपैः शृ (तात्यादिभ्यश्च उण्। १।११६) इति अङ्गच्। १ चातक। २ हरिण। (शकुन्तला १ अ०) ३ हस्ती, हाथी। ४ भृङ्ग। ५ मयूर। (त्रि०) ६ कर्बूरवर्णविशिष्ट, चितकबरा।
शारङ्गक (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।
शारङ्गधनुष (सं० पु०) १ शारङ्ग नामक धनुषसे सुशोभित अर्थात् विष्णु। २ कृष्ण।
शारङ्गपाणि (सं० पु०) १ हाथमें शारङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। २ कृष्ण। ३ राम।
शारङ्गपानि (हिं० पु०) शारङ्गपाणि देखो।
शारङ्गभृत (सं० पु०) १ शारङ्ग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। २ कृष्ण।
शारङ्गवत (सं० पु०) कुरुवर्ष नामक देश।
शारङ्गष्टा (सं० स्त्री०) १ काकजंघा। २ करजनी, गुंजा, चोंटली। ३ मकोय।
शारङ्गाष्ठा (सं० स्त्री०) १ मकोय। २ लताकरञ्ज, कठ करंज।
शारङ्गी (सं० स्त्री०) शारङ्ग-ङीष्। वाद्ययन्त्रविशेष, सारंगी नामक बाजा। विशेष विवरण सारङ्गी शब्दमें देखो।
शारङ्गीहर—वैष्णव-सम्प्रदायविशेष। वैष्णव-सम्प्रदाय देखो।
शारङ्गेष्टा (सं० स्त्री०) शारङ्गाष्ठा देखो।
शारणिक (सं० पु०) रक्षाकर्त्ता, वह जो शरणमें आये हुए की रक्षा करता हो।
शारतल्पिक (सं० त्रि०) शरशायी, वह जो शरशय्या पर शयन करता हो।
शारदक (सं० त्रि०) शरदमधीते वेद या शरत्। वसन्तादिभ्य ष्ठक्। पा ४।२।६३) इति ठक्। शरत् कालमें आध्ययनकारी।
शारद (सं० क्लो०) शरदु भवं शरदु (सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्। पा ४।३।१६)इति अण्। १ श्वेत कमल, सफेद पद्म। २ शस्य। (पु०) ३ कास। ४ वकुल, मौलसिरीका वृक्ष। ५ हरिद्वर्ण मुद्ग, हरी मूंग। ६ पीत मुद्ग, पीली मूंग। ७ वत्सर, वर्ष, साल। ८ एक प्रकारका रोग। ९ मेघ, बादल। (त्रि०) १० शरत्काल सम्बन्धी, शरत्काल-का। ११ नूतन, नया। १२ अप्रतिम। १३ शालीन, लज्जावान्।

शारदण्डायनी (सं० स्त्री०) शारदण्डायन ऋषिकी भार्या।

शारदजल (सं० क्ली०) शारदं शरत्कालोद्भवं जलम्। शरत्कालका जल।

शारदमल्लिका (सं० स्त्री०) शरत्कालभव। मल्लिका (रत्नमा०)

शारदमुद्ग (सं० पु०) हरित्मुद्ग, हरी मूंग।

शारदयावनाल (सं० पु०) शरत्कालभव यावनाल-विशेष। गुण—श्लेष्मकर, विच्छिल, गुरु, शीतल, मधुर, वृष्य और वलपुष्टिदायक। (राजनि०)

शारदसिंह—कच्छपघातवंशीय एक राजा। ये बारहवीं सदीमें विद्यमान थे।

शारदा (सं० स्त्री०) शरद् अण्-टाप्। १ सरस्वती। २ दुर्गा, भगवती।

"शरत्काले पुरा यस्मात् नवम्यां बोधिता सुरैः।
शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च नामतः॥"
(तिथितत्त्व)

देवताओंने पहले शरत्कालमें नवमी तिथिको देवी भगवतीका बोधन किया था, इसलिये वे शारदा नामसे विख्यात हुई। ५ शारिवा, अनन्तमूल। ६ प्राचीन कालकी एक प्रकारकी लिपि। त्रिगर्त्तराज जयचन्द्रके राज्यकालमें कटिग्रामके राजानक लक्ष्मणचन्द्रने अपने राज्यके वैजनाथ मन्दिरमें इस लिपिमें एक प्रशस्ति उत्कीर्ण की थी।

शारदाम्बा (सं० स्त्री०) सरस्वती।

शारदिक (सं० क्ली०) शरद् (श्राद्धे शरदः। पा ४।३।१२) इति ठञ्। १ श्राद्ध। (पु०) शरद्। विभाषा रोगातपयोः। पा ४।३।१३) इति ठञ्। २ रोग, बीमारी। ३ आतप, शरत् ऋतुमें होनेवाला ज्वर। (वि० की०)

शारदिन् (सं० पु०) १ सप्तपर्णवृक्ष, छतिवन। २ कञ्चट शाक। ३ अपराजिता। ४ अन्न या फल आदि।

शारदी (सं० स्त्री०) शारद ङीप्। १ तोयपिप्पली, जलपीपल। २ सप्तपर्ण, छतिवन। ३ कोजागर-पूर्णिमा। चान्द्राश्विन पूर्णिमाको शारदी पूर्णिमा कहते हैं। इस पूर्णिमा तिथिको कोजागरी लक्ष्मी-पूजा करनी होती है। (त्रि०) ४ शरत्कालीन, शरत् कालका।

शरत्कालभव दुर्गापूजा सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे तीन प्रकारकी है। दुर्गा शब्द देखो। ५ संवत्सरसम्बन्धिनी। 'यदिन्द्रशारदीरवातिरः'। (ऋक् १।१२१।४)

शारदीयमहापूजा (सं० स्त्री०) शारदीया महापूजा, शरत्कालीन दुर्गापूजा। शरत् और वसंत इन दोनों ऋतुमें दुर्गापूजा होती है। किंतु शरत्कालमें जो दुर्गापूजन होता है, उसे महापूजा कहते हैं। यह पूजा चतुःकर्ममयी है अर्थात् स्तवन, पूजन, होम और बलिदान पूजाका अङ्ग है। चान्द्राश्विनके शुक्लपक्षमें सप्तमी, अष्टमी और नवमी इन तीन तिथियोंमें उक्त पूजाका विधान है।

देवीपुराण, कालिकापुराण, बृहन्नन्दिकेश्वरपुराण आदिमें इस पूजाका विशेष विवरण आया है।

दुर्गोत्सव देखो।

शारद्य (सं० त्रि०) शरत्कालका, शरत् ऋतु-सम्बन्धी।

शारद्वत (सं० पु०) शरद्वत्-अपत्यार्थे अञ्। (पा ४।१।१०४) शरद्वतका गोत्रापत्य, कृप। (भारत)

शारद्वतायन (सं० पु०) शारद्वतका गोत्रापत्य।

शारभ (सं० त्रि०) शरभ-अण्। शरभ-संबन्धी।

शारस्वर (सं० क्ली०) जनपदभेद। (राजतर० ८।१८७८)

शाराव (सं० त्रि०) शरावे उद्धृतः शाराव (तत्रोद्धृतममत्रेभ्यः। पा ४।२।१४) इति अण्। शरावमें उद्धृत अन्न। 'शरावे उद्धृतः शारावो भुक्तोच्छिष्ट ओदनं' (सिद्धान्तकौमु०)

शारि (सं० पु०) शृ हिंसायां इञ्। १ अक्षोपकरण, पासा आदि खेलनेकी गोटी। पर्याय—गुटिका, शार, खेलनी। (स्त्री०) (शः शकुनौ। उण् ४।१२७) इति इञ्। २ शकुनिकाभेद। ३ युद्धार्थ गजपर्याण, लड़ाईके लिये हाथीकी पीठ परका हौदा। ४ व्यवहारान्तर, व्यवहारविशेष। ५ कपट, छल, धोखा। ६ एक प्रकारका गीत। ७ मैना।

शारिका (सं० स्त्री०) शारिरेव स्वार्थे कन्। १ पक्षि-विशेष, मैना नामकी चिड़िया। पर्याय—पीतपादा, गोराटी, गो किराटिका, सारिका, शारी, चित्रलोचना, शारि, मदनशारिका, शलाका। मैना देखो। २ वीणा

या सारंगी बजानेकी क्रिया। ३ सारंगी आदि बजानेकी कमानी। ४ दुर्गा देवी। ५ शारि देखो।

शारिका कवच (सं० पु०) दुर्गाका एक कवच जो रुद्रयामल तन्त्रमें है।

शारित (सं० त्रि०) चित्र विचित्र, रंगीन।

शारिपट्ट (सं० पु०) शतरंज या चौसर आदि खेलनेकी बिसात।

शारिप्रस्तर (सं० पु०) खेलनेका एक पत्थर।

शारिफल (सं० पु० क्ली०) शारीणां खेलनीनां फलम्। शारिपट्ट, शतरंज या चौसर खेलनेकी बिसात। पर्याय—अष्टापद, फलक, आकर्ष, शारिफलक, विन्दुतन्त्र, अक्षपीठी। जटाधर

शारिवा (सं० स्त्री०) १ श्यामलता, अनन्तमूल, सालसा। इसके पत्ते जामुनके पत्ते जैसे होते हैं। इसमें दूधके समान सफेद दूध होते हैं। यह दो प्रकारकी होती है, सफेद और काली। उत्कल—गुयापान मूल। संस्कृत पर्याय—गोपी, श्यामा, अनन्ता, उत्पलशारिवा। अमरटीकामें भरतने लिखा है, पञ्चश्यामलता। किसी किसीके मतसे नागजिह्वा, गोपी आदि तीन तथा अनन्तादि दो, यह पाँच श्यामलता है। किसीके मतसे अनन्तमूल।

पञ्च श्यामलतायां नागजिह्वायामिति। केचित् गोप्यादित्रयं श्यामलताया अनन्तादि द्वयं अनन्तमूले इति केचित्। गुपू रक्षणे। (भरत)

"गोपी श्यामा गोपपत्नी गोपा गोपालिकापि च।" इति वाचस्पतिः। एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्।' (वैद्यक)

गुण—स्वादु, स्निग्ध, शुक्रवर्द्धक, गुरु, अग्निमान्द्य और अरुचिनाशक, श्वास, कास, वमि और तृष्णानाशक त्रिदोषघ्न, रक्तप्रदर और ज्वरातिसार नाशक। २ जवासा, धमासा।

शारिशाका (सं० स्त्री०) सहस्रशः वर्द्धमान प्राणिविशेष। (अथर्व ३।१४।५)

शारिशृङ्खला (सं० स्त्री०) शारीणां शृङ्खला यत्र। पाशकविशेष, जूआ खेलनेका एक प्रकारका पासा या गोटी। (शब्दरत्नावली)

शारिशृङ्ग (सं० पु०) जूआ खेलनेका एक प्रकारका पासा या गोटी।

शारी (सं० स्त्री०) शृ-इञ्, वा ङीष्। १ कुशा नामकी घास। २ शकुनिकाभेद, एक प्रकारका पक्षी। ३ मुञ्ज, काँडा। (पु०) ४ शतरंजकी गोट, गेंद।

शारीटक (सं० पु०) एक गाँवका नाम। (राजतर० ३।३४६)

शारीर (सं० क्ली०) १ वृष, बैल। शरीरे भवः शरीर-अण्। (त्रि०) २ शरीरजात, शरीरदण्ड। वधदण्डको भी शारीर कहते हैं। व्यवहारशास्त्रमें विशेष अपराध पर शरीरदण्डका विधान है।

शास्त्रमें ब्राह्मणको शारीरदण्डका विधान नहीं है। ब्राह्मणको शारीर भिन्न अन्य दण्ड देना होता है।

२ शरीर-सम्बन्धीय दुःख। दुःख तीन प्रकारका है, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। यह आध्यात्मिक दुःख फिर दो प्रकारका है; शारीर और मानस। वायु, पित्त और श्लेष्माकी विषमतासे जो दुःख होता है, उसे शारीरदुःख कहते हैं। अर्थात् रोग जन्य जो दुःख होता है, उसका नाम शारीर है।

शारीर दुःख ज्वर आदि रोगभेदसे अनेक प्रकारका है। जितने प्रकारके रोग हैं, सभी शारीर हैं।

सुश्रुतादि वैद्यकसंहिताओंमें 'शरीरविषय अधिकार करके कृत शरीर वृत्तान्तव्याख्यान रूप अन्यतम स्थान। अर्थात् सुश्रुतादि वैद्यक ग्रन्थोंमें शरीर सम्बन्धीय सभी विषय जहां कहे गये हैं, वहां उसे शारीरस्थान कहते हैं। शरीरसम्बन्धीय तपस्या।

देवता, ब्राह्मण, गुरु और प्राज्ञ व्यक्तियोंकी पूजा, शौच, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इन सबोंका नाम शारीरतप है।

शारीरक (सं० क्ली०) शरीरमेव शारीरं कुत्सितत्वात् तन्निवासी शारीरको जीवस्तमधिकृत्य कृतोग्रन्थः शारीरक-अण्। १ वेदव्यासने जो वेदान्त प्रणयन किया है उसको शारीरकासूत्र कहते हैं। जीवका अधिष्ठान शरीर है, जीव इस शरीरमें रह कर नाना प्रकारका दुःख भोगता है, इसी कारण यह अति निन्दित है। शरीराधिष्ठित जीव शारीरक कहलाता है। यह शारीरक

सम्बन्धीय ग्रन्थ होनेके कारण इसका शारीरकसूत्र नाम हुआ है। इस सूत्रमें जीवके अधिष्ठानभूत शरीरको जिससे निवृत्ति हो, उसका विषय विशेष रूपसे वर्णित हुआ है। विशेषविवरण वेदान्त दर्शन शब्दमें देखो।

शरीरमेव शरीरकं तत्र भवं शरीरक-अण्। (त्रि०) २ शरीरभव, शरीरसे उत्पन्न।

शारीरकन्यायरक्षामणि (सं० पु०) शारीरक मीमांसाका एक भाष्य। यह शंकराचार्यका किया हुआ है।

शारीरकभाष्य—शङ्कराचार्यका किया हुआ ब्रह्मसूत्रका भाष्य।

शारीरकभाष्यवार्त्तिक (सं० क्ली०) वेदान्तसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकभाष्यविभाग (सं० पु०) शारीरकसूत्रका एक भाष्य।

शारीरकमीमांसा (सं० स्त्री०) उत्तरमीमांसा, ब्रह्ममीमांसा, वेदान्तसूत्र।

शारीरकशास्त्रदर्पण (सं० पु०) वेदान्तदर्शनका एक भाष्य।

शारीरकसूत्र (सं० पु०) वेदव्यासका किया हुआ वेदांन्त-सूत्र।

शारीरकोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्।

शारीरतत्त्व (सं० क्ली०) शारीरस्य तत्त्वं। शारीरस्थान, वह शास्त्र जिसमें शरीरके तत्वों और रचना आदिका विवेचन होता है।

शारीरविधान (सं० क्ली०) १ वह शास्त्र जिसमें इस बातका विवेचन होता है, कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। २ वह शास्त्र जिसमें जीवोंके शरीर के भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्यों का विवेचन होता है।

शारीरव्रण (सं० पु०) एक प्रकारका रोग। यह वात, पित्त, कफ और रक्तसे उत्पन्न होता है। परन्तु रक्तके सम्बन्धसे द्विदोषज और त्रिदोषज होनेके कारण आठ प्रकारका हो जाता है—(१) वातव्रण, (२) पित्तव्रण, (३) कफव्रण, (४) रक्तव्रण, (५) वातपित्तजव्रण, (६) वातकफजव्रण, (७) कफपित्तजव्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीरशास्त्र (सं० क्ली०) शारीरविधान देखो।

शारीरिक (सं० त्रि०) शरीर-ठक्। शरीर-सम्बन्धी, जिस्मानी। पर्याय—कालेवरिक, गात्रिक, वापुषिक, सांहननिक, वार्ष्मिक, वैग्रहिक, कायिक, दैहिक, मौर्त्तिक, तानविक।

शारुक (सं० त्रि०) शृणातीति शॄ (लषपतपदस्थेति। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। १ हिंसक, हिंस्र, हत्या या नाश करनेवाला। २ कष्ट देनेवाला।

शार्क (सं० पु०) १ शर्करा, चीनी। २ एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषिका नाम। (नागरखण्ड)

शार्कक (सं० पु०) दुग्धफेन, दूधका फेन। २ शर्करा पिण्ड, चीनीका ढेला। ३ गोश्तका टुकड़ा।

शार्कर (सं० पु०) शर्करास्त्यत्रेति शर्करा: (दाशे लुविल-ची च। पा ५।२।१०५) इति अण्। १ शर्करान्वित देश, वह देश जहां चीनी बहुत होती हो। २ वह स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो, कंकरीली या पथरीली जगह। ३ दुग्धफेन, दूधका फेन। शिकता (शर्कराभ्याश्च। पा ५।२।१०४) इति अणि शर्कराविशिष्टश्च। (कालिका०) ४ लोध्रवृक्ष, लोधका पेड़। (त्रि०) ५ शर्करा-संबंधी। शर्कारेव (शर्करादिभ्योऽण्। पा ५।३।१०७) इति अण्। ६ शर्करा सदृश। ७ शर्करायुक्त, शर्कराविशिष्ट।

शार्करक (सं० पु०) १ वह स्थान जो कङ्करों और पत्थरोंसे भरा हो, कङ्करीली या पथरीली जगह। २ वह स्थान जहां चीनी बहुत होती हो। (त्रि०) ३ कङ्करीला, पथरीला।

शार्करमद्य (सं० क्ली०) प्राचीन कालका एक प्रकारका मद्य जो चीनी और धौसे बनाया जाता था।

"शर्कराधातकीतोयकथितैः शार्करो मता।"

इस मद्यका गुण—शीत, हृद्य, दीपन और मोहजनक (राजनि०) अन्य प्रकार शर्कराजात मद्यका गुण—मधुर, रुचिकर, दीपन और वस्तिशोधन।

(सुश्रुत सूत्रस्था ४५ अ०)

शार्कराक्ष (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्कराक्षि (सं० पु०) शर्कराक्षका प्रवर्त्तित गोत्र।

शार्कराक्ष्य (सं० पु०) शर्कराक्षका गोत्रापत्य।

शार्करिक (सं० पु०) १ शर्कराबहुल देश, वह देश जहां

चीनी बहुत होती है। २ वह देश या स्थान जो कंकरों और पत्थरोंसे भरा हो।

शार्करिल (सं० त्रि०) शर्करान्वित भूमिज, जो कंकरीली जमीन पर पैदा हुआ हो।

शार्करीधान (सं० पु०) प्राचीन कालका एक देश जो उत्तर दिशामें था।

शार्करीय (सं० पु०) शर्करायुक्त देश।

शार्कोट (सं० त्रि०) विष-सम्बन्धी। (अथर्व ७।५६।७

शार्ङ्खलतोदि (सं० पु०) शृंखलतोदिन् (बाह्वादिभ्यश्च। पा ४।१।९६) इति अपत्यार्थे इञ्। शृङ्खलतोदिका गोत्रापत्य।

शार्ङ्ग (सं० क्ली०) शृङ्गस्य विकार शृङ्ग-अण्। १ विष्णुधनु, विष्णुके हाथमें रहनेवाला धनुष। २ धनुष, कमान। ३ आर्द्रक; अदरक, आदी। ४ सामभेद, एक प्रकारका साम। (लाट्या० १।६।६३) ४ सह्याद्रि-खण्डवर्णित एक राजाका नाम। (सह्याद्रि ३६।३९) (त्रि०) ५ शृङ्ग-सम्बंधी, शृङ्गका।

शार्ङ्गक (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

शार्ङ्गदत्त—धनुर्वेदके रचयिता।

शार्ङ्गदेव—संगीतरत्नाकरके प्रणेता। काश्मीरमें इनका आदि वास था। ये सोढ़लके पुत्र और भास्करके पौत्र थे।

शार्ङ्गदेव—गुजरातके अणहिलवाड़के वाघेलवंशीय एक चौलुक्य राजा। ये अर्जुनदेवके पुत्र तथा २य कर्ण-देवके पिता थे। १२७४ ई०में ये सिंहासन पर बैठे और १२९६ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

शार्ङ्गधन्वन् (सं० पु०) शार्ङ्गं धनुर्यस्य 'धनुर्धन्वम् वान्यनाम्नि इति धन्वादेशः।' १ विष्णु। २ श्रीकृष्ण। ३ वह जो धनुष धारण करता हो, कमनैत।

शार्ङ्गधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच् शार्ङ्गस्य धरः। १ शार्ङ्गभृत्, विष्णु। २ श्रीकृष्ण। ३ स्वनाम-ख्यात चिकित्सासंग्रहकार।

शार्ङ्गधर—१ छन्दोमालाके प्रणेता। २ वीरचिन्तामणि, शार्ङ्गधर-पद्धति और शार्ङ्गधरसंहिता नामक सुप्रसिद्ध वैद्यकग्रंथके रचयिता। ये दामोदर (किसी किसीके मतसे सोमदेव)के पुत्र और राघवदेवके पौत्र थे। चौहान-राज हम्मीरकी सभामें ये विद्यमान थे। ३ वैद्यवल्लभ या त्रिशती नामक ग्रंथके प्रणेता। ये देवराजके पुत्र और वैकुण्ठाश्रमके शिष्य थे।

शार्ङ्गधर मिश्र—प्रश्नप्रकाश और विवाहपटल नामक ग्रंथके प्रणेता। इनके सिवा इनके रचे और भी कई ज्योतिग्रंथके वचन निर्णयसिंधु, संस्कारकौस्तुभ, अहल्याकामधेनु आदि ग्रंथमें उद्धृत देखे जाते हैं।

शार्ङ्गधर (शेष)—लक्षणावलीविवृति नामकी न्यायमुक्तावलीकी टीका तथा सप्तपदार्थव्याख्या नामकी पदार्थ-चंद्रिकाकी टीकाके रचयिता।

शार्ङ्गपाणि (सं० पु०) शार्ङ्गं पाणौ यस्य। १ धनु-र्धारी। २ विष्णु। ३ श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गपुर—गुजरात प्रांतस्थ मालवराज्यके अंतर्गत एक नगर। मालिक शारङ्गने यह नगर बसाया था। १४३७ ई०में गुर्ज्जरपति १म अहमद शाहके पुत्र महम्मद खांने शार्ङ्गपुरको अपने कब्जेमें किया। १८३८ ई०में मालव-पति महमूद खिलजीने रणक्षेत्रमें सेनापति उमार खांको मार कर अपने बाहुबलसे शार्ङ्गपुरका पुनः उद्धार किया।

शार्ङ्गभृत् (सं० पु०) शार्ङ्गं धनुः बिभर्त्ति भृ-क्विप् तुकच्। १ धनुर्धारी। २ विष्णु। ३ श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गरव (सं० पु०) शृङ्गरवका गोत्रापत्य। कालिदासने शकुन्तलाग्रंथमें लिखा है, कि शकुंतलाके साथ जो दो ऋषिकुमार राजा दुष्यंतकी सभामें आये थे, उनका नाम शार्ङ्गरव और शारद्वतमिश्र था।

शार्ङ्गरविन् (सं० पु०) शार्ङ्गरवेण प्रोक्तमधीते या शार्ङ्ग-रव (शौनकादिभ्यश्छन्दसि। पा ४।३।१०६) इति णिनि। शार्ङ्गरवप्रोक्त छन्दोऽध्येता।

शार्ङ्गरवी (सं० स्त्री०) शार्ङ्गरवकी स्त्री। (पाणिनि ४।३।१०६)

शार्ङ्गवैरिक (सं० पु०) शुण्ठी समानवर्ण स्थावरविशेष, एक प्रकारका स्थावरविष जो देखनेमें सोंठके समान होता है।

शार्ङ्गष्टा (सं० स्त्री०) १ काकजङ्घा। २ घुंघची।

शार्ङ्गष्ठा (सं० स्त्री०) १ महाकरञ्ज। २ लताकरञ्ज।

शार्ङ्गायुध (सं० पु०) शार्ङ्गं आयुधो यस्य। १ श्रीकृष्ण।

२ विष्णु । ३ वह जो धनुष धारण करता हो, कमनैत ।

शार्ङ्गिक (सं० पु०) शार्ङ्गक नामक पक्षिविशेष ।

शार्ङ्गिन् (सं० पु०) शार्ङ्गमस्यास्तीति शार्ङ्ग-इनि । १ विष्णु । २ श्रीकृष्ण ।

"स सेतुं बन्धयामास प्लवगैर्लवणाम्भसि ।
रसातलादिवोन्मग्नं शेषं स्वप्नाय शार्ङ्गिणः ॥"

(रघु १२।७०)

३ धनुर्धारी, कमनैत ।

शार्दूल (सं० पु०) शॄ-हिंसायां (शर्लिपिंजादिभ्य ऊरो लचौ । उण् ४।९०) इति ऊलच् प्रत्ययेन साधुः । १ व्याघ्र, चीता, बाघ । २ राक्षस । ३ शरभ नामक जन्तु । ४ एक प्रकारका पक्षी । ५ चित्रकवृक्ष, चीता नामक पेड़ । ६ सह्याद्रिखण्डवर्णित एक राजाका नाम । (सह्या० २७।४५) ७ यजुर्वेदकी एक शाखा । ८ दोहेका एक भेद । इसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएं होती हैं । ९ सिंह । (त्रि०) १० सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम । इस अर्थमें इसका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनानेमें उनके अन्तमें होता है । जैसे - नरशार्दूल, मुनिशार्दूल ।

शार्दूलकन्द (सं० पु०) जङ्गली प्याज ।

शार्दूलकर्ण (सं० पु०) त्रिशङ्कुका पुत्र ।

शार्दूलललित (सं० क्ली०) एक प्रकारका वर्णवृत्त । इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरोंका होता है और उनका क्रम इस प्रकार है म+स+ज+स+त+स । इसका दूसरा नाम शार्दूललसित भी है ।

(छन्दोमंजरी २ स्त०)

शार्दूललसित (सं० क्ली०) शार्दूलललित देखो ।

शार्दूलवर्मन् (सं० पु०) मौखरिवंशीय एक राजा ।

शार्दूलवाहन (सं० पु०) जैनियोंके अनुसार पचीस पूर्व जिनोंमेंसे एक जिनका नाम ।

शार्दूलविक्रीडित (सं० क्ली०) १ एक प्रकारका वर्णवृत्त । इसका प्रत्येक चरण उन्नीस अक्षरोंका होता है और उनका क्रम इस प्रकार है म+स+ज+स+त+त+एक गुरु । (छन्दोमंजरी २ स्त०)

शार्दूलस्य विक्रीडितं । २ शार्दूलका विक्रीड़ित, बाघका खेल ।

शार्यात (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन राजर्षिका नाम । "आ स्मा रथं वृष पाणेषु तिष्ठति शार्यातस्य" (ऋक् १।५१।१२) 'शार्यातस्य शार्यातनाम्नो राजर्षे' (सायण) (क्ली०) २ सामभेद ।

शार्व्व (सं० त्रि०) शर्व्व-अण् । शिव-सम्बन्धी, शिवका ।

शार्व्वर (सं० क्ली०) १ अन्धतमस, घोर अंधकार । (त्रि०) शर्व्वर्या इदं शर्व्वरी-अण् । २ शर्व्वरी-सम्बन्धी, रातका । ३ घातुक ।

शार्व्वरिन् (सं० पु०) वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमेंसे चौंतीसवाँ संवत्सर ।

शार्व्वरी (सं० स्त्री०) रात्रि, रात ।

(भरतधृत वाचस्पति)

शार्व्ववर्म्मिक (सं० त्रि०) शर्व्ववर्म्मा-सम्बंधी ।

शाल (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी ऊनी या रेशमी चादर । इसके किनारे पर प्रायः बेल बूटे आदि बने होते हैं । इसका दूसरा नाम दुशाला है । विशेष विवरण नीचे देखो ।

शाल (सं० पु०) शल्यते प्रशंस्यते इति शाल-घञ् । १ मत्स्यभेद, एक प्रकारकी मछली । २ प्रकार, भेद । ३ एक नदीका नाम । ४ राजा शालिवाहनका एक नाम । ५ नृकके एक पुत्रका नाम । ६ धूना, राल । ७ स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष (Shorea robusta) शालका पेड़ । संस्कृत पर्याय—सर्ज, कार्श्य, अश्वकर्णक, शस्यसम्बर, शङ्कुवृक्ष । (रत्नमाला) भारतके प्रायः सभी स्थानोंमें यह वृक्ष पैदा होते देखा जाता है । हिमालय पर्वतके पादमूलमें शतद्रु से ले कर आसाम तक प्रायः सभी जगहोंमें, पश्चिमी बंगालमें, छोटानागपुर विभाग तथा मध्यभारतमें शालवृक्षके घने जङ्गल हैं । ये सभी शालवन अधिकतर पार्वत्यप्रदेशमें ही हैं । समतलक्षेत्रमें भी कहीं कहीं विक्षिप्तभावमें शालवन दिखाई पड़ते हैं । कहीं कहीं शालवृक्ष आबाद हो कर निविड़ जङ्गलमें परिणत हो गये हैं । यह वृक्ष बहुत बड़ा होता है । यहां तक कि, कोई कोई वृक्ष तो इतना बड़ा होता है, कि वह ५०से ले कर १०० रुपये तकके मोलमें बिकता है । इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है, इसलिये इससे मनुष्यसमाजका बड़ा उपकार होता है ।

भारतके विभिन्न स्थानोंमें यह वृक्ष विभिन्न नामसे परिचित है। हिन्दुस्तानमें—शाल, साल; शालवा, शाखुशखेर, धूना, डामर, (रजन=राल); बंगालमें—शाल, साल; कोल—सर्ज्जम, मेकुरा; संथाल—सर्ज्जोम; भूमिज—शर्नि; गारो—बोल-शाल; नेपाल—शकवा; लेपाछा—तेतुराल; उड़िष्या—शाल, शोरिंगी; मध्यप्रदेश—शाल, सावह, रिञाल; उत्तर पश्चिमप्रदेश—शाल, काण्डार, शाखू, कोरीन; अयोध्या—कोर्सो, पंजाब—साल, सेराल, (रजन=राल जर्द)-राल-सफेद, राल काला), धूना; बम्बई—शाल, (रजन=राल'; कणाड़ि—कब्बू, (रजन—गुग्गल); ब्रह्म—पलख्येन, शिंगापुर—(रजन=दम्मल), तामिल—र्ंगिलियम्, तेलगू—गुगिग्लम्, (रजन—गुगाल)—अरब; कैरूहर; पारस—लाले मोयाबबाकड़ी।

शालवृक्षकी छालमें छिद्र कर देनेसे एक प्रकारका लासा निकलता है, वही लासा बाजारमें धूना वा गुग्गुलके नामसे बिकता है। जिस समय वह दूधके रूपमें छालसे बाहर निकलता है, उस समय उसका रंग सफेद रहता है; फिर पीछे क्रमशः सूख जाने पर वह ईषत् पाटल-धूसरवर्ण धारण करता है। देशी लोग गुग्गुल संग्रह करनेके अभिप्रायसे इस वृक्षकी जड़से ३।४ फीट ऊपर वृक्षत्वकमें चार पांच आघात करते हैं। पेड़के बड़े हो जाने पर उससे अधिक आघात करने पर भी वृक्षकी उतनी क्षति नहीं होती। जेठके महीनेमें साधारण पेड़की छालमें छिद्र किया जाता है। १०।१२ दिन बाद जब वे सभी छिद्र लासेसे परिपूर्ण हो जाते हैं, तब लोग उसे निकाल लेते हैं और फिर उन गर्त्तोंको लासेसे परिपूर्ण होनेके लिये कुछ दिनों तक चुपचाप छोड़ देते हैं, उसके बाद धूना संग्रह करते हैं। इस तरह एक वृक्षसे सालमें सिर्फ तीन बार गुग्गुल संग्रह किया जाता है। तीनों बारमें करीब पांच सेर गुग्गुल निकलता है। दूसरी बार कार्त्तिक मासमें और तीसरी बार पौषके शेष वा माघ मासके प्रथम भागमें एक गर्त्तसे ही लासा निकाला जाता है। पहली बारका लासा अधिक सुन्दर होता है तथा अधिक परिमाणमें निकलता भी है। पिछली बारका लासा अच्छा नहीं होता और निकलता भी है बहुत कम। मध्य-भारतके गुग्गुल संग्रह करनेवाले नित्य ही वृक्षमें छिद्र कर देते थे और दूसरे दिन ही उन छिद्रोंसे लासा संग्रह कर लाते थे। इस तरह नित्य लासा संग्रह करनेसे जंगल वृक्षशून्य होने लगा था। इससे देशी राजाओंकी भयंकर क्षतिकी सम्भावना देख कर अंग्रेज गवर्मेण्टने वनविभागीय कानून पास कर उन सभी जंगलोंकी रक्षा करनेमें विशेष ध्यान दिया है। इससे भारतवर्षमें लकड़ीका व्यापार सुरक्षित होने पर भी धूनेका व्यापार बिलकुल ही नष्ट हो गया है। इस समय शिंगापुरसे ही बम्बई तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें धूनेकी आमदनी होती है। भारतके सुविस्तृत वनभागमें और कहीं भी धूनेकी खेती नहीं होती। पहले उत्तरभारतमें अधिकाधिक गुग्गुल प्राप्त होता है। गाम्बल साहबकी विवरणीसे जाना जाता है, कि त्रिस्रोता नदीके उत्तरस्थ शालवनके वृक्षोंकी जड़में एक एक खण्ड धूना वा गुग्गुल ३० से ले कर ४० क्यूबिक इञ्च तक पड़ गया है। वर्त्तमान समयमें जो गुग्गुल इस देशमें आता है, वह छोटे छोटे टुकड़ोंमें विभक्त रहता है और उतना साफ नहीं होता। उनका गुरुत्व प्रायः १०९७ से ले कर ११२३ तक रहता है। इसमें किसी प्रकारका स्वाद नहीं होता। अग्नि-संयोगसे वह गल उठता है। एलकोहल और इथरमें यह सामान्य भावसे गलता है, किन्तु तारपीनके तेलमें रखनेसे तो पूरी मात्रामें गल जाता है। सालफ्यूरिक एसिडमें भी यह गल जाता है, किन्तु मिश्रित पदार्थ कुछ लाल दिखाई पड़ता है।

चमड़ेको साफ करने तथा रंगनेमें इसकी छाल बहुत व्यवहृत होती है। छोटानागपुरवासी और संथालवासी इसकी छालके काढ़ेसे एक प्रकारका लाल और काल रंग तैयार करते हैं। अयोध्या विभागके वनपरिदर्शक कप्तान ई० एस० उड्ने शाल गाछकी छालसे रंग तैयार करनेकी प्रणाली लिखी है। जिस चूल्हेमें काढ़ा उबाला जाता है, वह गोण्डप्रदेशके खाद्य प्रस्तुत करनेवाले कारीगरोंके चूल्हेके समान होता है अथवा हम लोगोंके देशमें जिस तरह ईखका रस उबाल कर गुड़ बनाया जाता है, ठीक उसी प्रकार इन वकलोंको उबाल कर रंग तैयार किया जाता है। इसका चूल्हा भी ठीक ईखका रस उबालनेके चुल्हे जैसा होता है। चूल्हेके एक ओरके

छिद्रसे जलावनकी लकड़ी भीतरमें झोंकी जाती है और दूसरी ओरके छिद्रसे राख बाहर निकाली जाती है। ऊपरमें छालसे रस निकालनेके लिये हंडी रखी जाती है। उस चूल्हेके चारों ओर ही छाल और जलसे हंडियाँ भर दी जाती हैं। प्रायः डेढ़ घंटे तक उबाले जाने पर पानी लाल एवं गाढ़ा हो जाता है। इस प्रकार तीन हंडियोंका उबाला हुआ जल छान कर चौथी हंडी में फिरसे औंटा जाता है। पीछे इस शेषोक्त हंडीका जल लासाके समान गाढ़ा हो जाने पर हंडी उतार ली जाती है। इस तरह प्रायः १ मन छालमें ३।० सेर रंगका काढ़ा तैयार होता है।

शाल वृक्षमें छोटे छोटे पुष्प गुच्छोंमें लगते हैं। वैशाखके दारुण ग्रीष्ममें पार्वत्य प्रदेशमें इसकी गन्ध बहुत ही मनोरम होती है। कोल-रमणियाँ सन्ध्या समय अपने अपने जूड़ेमें शालपुष्प खोंस कर बड़े आनन्दसे गान गाती रास्ता चलती हैं। उस समय वायुके मधुर सुगन्धित सुमनोंकी मीठी सुगंध चारों ओर उड़ उड़ कर उस पथके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंको आमोदित कर देती है। शालवृक्षके बीजमें भी एक प्रकारका तेल पाया जाता है। इन बीजोंसे तेल चुआनेमें अधिक कठिनता नहीं होती। आंच लगा कर बीजको सिद्ध कर देनेसे ही तेल बाहर निकल आता है।

वैद्यक शास्त्रमें धूनेको अजीर्ण और प्रमेहरोगमें विशेष उपकारी बताया है। धूनेके गुणोंका वर्णन यथास्थानमें किया गया है, इसलिये वह यहां नहीं लिखा गया आगमें जलानेसे दुर्गन्धिका नाश होता है एवं उस स्थानकी वायु साफ हो जाती है। इसलिये जिस घरमें रोगी रहता है, उस घरमें धूने जलानेकी व्यवस्था है। भैषज्यतत्त्वमें धूने मिला कर प्रलेप देनेकी विधि देखी जाती है। काष्ठके ऊपर धूना और लासा अच्छी तरह मल कर एक प्रकार की पालिश दी जाती है; इससे अति निकृष्ट काष्ठ भी देवदारु-सा प्रतीत होता है। संथालवासी औषधके लिये शालके पत्तोंका रस निचोड़ कर पीते हैं। सर्ज्जन मेजर टमसन एम डीका कहना है, कि धूनेमें कामोद्दीपनशक्ति है। कहते हैं—दो औंस धूना अच्छी तरह पीस कर गायके घीमें दश मिनट तक भूने। पीछे उस शीतल जलपूर्ण पात्रमें धीरे धीरे ढाले। उक्त जलके स्पर्शसे घृतमिश्रित धूनेका जो अंश जलके ऊपर तैरने लगे, उसे उंगलीसे निकाल कर एक दूसरे पात्रमें रखे। इसके बाद फिर उसमें जल दे कर उंगलीसे मथ कर साफ करे, इससे वह बिलकुल मुलायम हो जायगा। इस तरह बराबर एक घण्टे तक जल बदल बदल कर मथनेसे उक्त मिश्र पदार्थ मखनकी तरह वर्णयुक्त तथा मुलायम हो जायगा। उस घीका दिनमें दो बार एक सुपारीके परिमाणमें सेवन करना चाहिये। डाक्टर डबल्यू० एफ्० टामसका कहना है, कि २० ग्रेन धूनाचूर्ण एक पाइंट उबाले हुए दूधमें मिला कर तथा उस दूधको कपड़ेमें छान कर पीनेसे शरीरमें कामशक्तिकी उद्दीपना होती है।

संथाल और छोटानागपुरवासी निम्न श्रेणीके लोग शालका बीज खाते हैं। पहले वे लोग इन बीजोंमें जली लकड़ीकी राख लगा २।३ घण्टे तक अच्छी तरह सिद्ध करते हैं। इसके बाद उन बीजोंको साफ जलमें अच्छी तरह धो कर महुआ फूलके साथ कुट देते हैं। अनन्तर उसे जलमें सिद्ध करते हैं। इस प्रकार वे एक ही दिनमें इतना खाद्य पदार्थ तैयार कर लेते हैं जो तीन चार दिन तक चलता है।

छालकी नीचेवाली शालकी लकड़ी उतनी मजबूत नहीं होती। वह दीर्घकाल स्थायी न हो कर शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। किंतु भीतरका सार भाग अत्यंत मजबूत और भारी होता है। वह सहजमें नष्ट नहीं होता, किंतु इस लकड़ीमें घून लगता है। शालकाष्ठकी छप्परकी कड़ियां आदि बनती हैं। इसकी लकड़ी चीर कर तख्ता, खिड़की, किवाड़ प्रभृति तैयार किये जाते हैं। छोटे छोटे शाल वृक्षोंके खम्भे पर्णकुटियोंमें लगाये जाते हैं। पके शाल चकोरके एक क्यूबिक फीटका वजन ५५ पौंडके बराबर होता है। जलमें कुछ दिनों तक डुबो रखनेके उपरांत सुखा लेनेसे इसका काष्ठ सुदृढ बन जाता है। स्वर्णकार और चर्मकार अपनी भट्टीमें शालवृक्षके कोयले जलाते हैं।

धूना प्रत्येक हिंदू गृहस्थोंके लिये बहुत ही आदर-

णीय और प्रयोजनीय वस्तु है। नाविक लोग इसे नावके छिद्रोंमें लगाते हैं। धूनेसे फूटी हुई हण्डो, कलसी प्रभृति भी जोड़ी जाती है। कई जगहोंमें लोग शालवृक्षके पत्तोंका पत्तल बना कर उस पर खाना खाते हैं। शाल पत्तोंके दोनेमें तरल पदार्थ भी रखो जा सकती है। कलकत्तेकी दूकानोंमें शालवृक्षके पत्तोंके दोनेका व्यवहार है।

शालका दूसरा नाम अश्वकर्ण है, यह बौद्धोंका बड़ा ही आदरणीय है। कारण, शाक्य बुद्धकी माताने शाक्यसिंहके जन्मके समय एक पत्रयुक्त शालदण्ड धारण किया था। इस उपाख्यानके संबंधमें चित्रादि देखे जाते हैं। स्वयं भगवान् बुद्धदेवने शालवृक्षके नीचे निर्वाण लाभ किया था। कोई कोई ग्रामवासी शाल पत्र पर प्रतिवेशिनी रमणियोंके नाम लिख जलमें डुबो देते हैं। फिर ४॥ घण्टेके बाद उस डालीको जलसे बाहर निकाल कर जब किसी पत्रको नीचे झुके हुए देखते हैं, तब वे उसी पत्ते पर लिखे हुए नामकी स्त्रीको डायन साबित करते हैं।

८ शाल—पशमनिर्म्मित सुप्रसिद्ध शीतवस्त्र विशेष। गुजराती, हिन्दी; पारसी और बंगला भाषामें यह शीतवस्त्र शाल नामसे ही विख्यात है। उत्तर-भारतका काश्मीर राज्य ही शालके व्यापारका आदिस्थान है। पशमसे शाल तैयार कर उसके ऊपर शिल्पमय रेशमी पाड़ जोड़ कर सभ्य जगत्‌के सभी स्थानोंमें भेजा जाता है। संसारके प्राच्य तथा प्रतीच्य बहुतसे देशोंमें प्राचीन कालसे ही शालका व्यवहार होता आ रहा है भिन्न भिन्न भाषाओंमें शाल शब्द भी भिन्न भिन्न आकार में गृहीत होता है। यथा—फरासी—Chals, Chales, जर्मन—Schalen, इटालीय—Shanali, मालय—काइन रामबुन, पुर्त्तगाल—Chalesha, स्पेनिस—Schanalos, तामिल - शालु वैगल एवं तेलेगू—शालु वलु।

सर्दीसे शरीरकी रक्षा करनेके लिये शालका व्यवहार होता है। दक्षिण एशियावासियोंमें जिस तरह शाल व्यवहारका अधिक प्रचलन देखा जाता है, यूरोप खंडमें उतना नहीं देखा जाता।

विदेशमें जिन जिन स्थानोंमें शाल भेजे जाते हैं, युक्तप्रदेश, स्वेज, अरब और पारस्यमें प्रायः सैकड़े ८० भाग प्रेरित होते हैं। इनके अलावे दूसरे २० भाग अमेरिका, फ्रान्स और चीनदेशमें भेजे जाते हैं। फरासी लोग भारतीय शालके बड़े पक्षपाती थे। फ्रान्स-प्रुसिययुद्धके बादसे फ्रांसमें शालका प्रचलन बहुत कम गया। इस समय यूरोप और अमेरिकामें भी शालका व्यवहार बहुत कम गया है।

काश्मीरमें जिस समय शाल व्यवसायी उन्नतिकी पराकाष्ठा दिखा रहे थे, यूरोपमें उस समय भी शाल-व्यवहारके निमित्त जनसाधारणका अनुराग परिलक्षित होता था। पैजली (Paisly) नगरमें काश्मीरी शालका अनुकरण करके शाल तैयार किया जाता है। ३०।४० वर्ष पहले स्काटलैंडमें विवाहके समय कन्याको शाल ओढ़ा दिया जाता था। क्रमसे विवाहमें शालका व्यवहार विवाहकी एक प्रथामें परिणत हो गया। पैजलीमें कल द्वारा शाल तैयार किया जाता है। इससे यूरोपमें काश्मीरी शालका आदर और आमदनी बहुत कम गई है।

भारतवर्षमें शालका व्यवहार प्राचीनकालसे है। सम्भ्रांत और धनी लोग शालकी सम्पत्तिकी तरह रक्षा करते हैं। इस समय भी सम्भ्रांत राजा महाराजाओंके महलमें प्राचीन कालके बहुमूल्य शाल देखे जाते हैं। वैसा शाल इस समय तैयार नहीं होता। एक शाल १००००) रु०से अधिक दाममें भी बिकता था। दिल्लीके मुगल बादशाह तथा बंगालके नवाब अपने अधीनस्थ कर्म्मचारियोंको कृतकार्य्य होने पर पुरस्कारमें शालशिरोपा देते थे।

इस देशमें बहुत पहलेसे शालका व्यापार होता आ रहा है। औसतसे प्रतिवर्ष प्रायः २० लाख रुपयेके शाल बिकते हैं।

वस्त्र बुननेमें यूरोप यद्यपि इस समय अत्यन्त दक्षता दिखा रहा है, तथापि वस्त्रशिल्पमें भारतवासियोंका अब भी जो गौरव है, विज्ञानबलसे बलिष्ठ यूरोपीय लोग इस विषयमें आज तक भी वैसा गौरव प्राप्त नहीं कर सके। भारतवर्षमें जैसा सुन्दर शाल तैयार होता है, यूरोपके शिल्पियोंको अभी तक भी वैसा शाल तैयार

करनेकी योग्यता प्राप्त नहीं हुई। आधुनिक यूरोपीय वस्त्रशिल्पीयोंने विज्ञानके बलसे एवं नाना प्रकारके यन्त्रोंकी सहायतासे वस्त्रशिल्पकी जो उन्नति की है, कई सहस्र वर्ष पहले इस देशके निरक्षर या अल्पज्ञ जुलाहोंने उसकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर दिखाई थी। इस सम्बन्धमें पाश्चात्य लेखकोंने कई जगहों पर इस देशके शिल्पियोंकी प्रशंसा की है। केवल शाल बुननेमें ही इन लोगोंने यश प्राप्त किया था, ऐसा नहीं। वर्णसौंदर्य एवं कलानैपुण्य प्रभृतिमें भी इन शिल्पियोंने बड़ी कुशलता दिखाई थी, यूरोपीय लेखक इसे भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हैं। यद्यपि यूरोपीय शिल्पी अच्छा शाल तैयार करने लगे हैं, तथापि काश्मीरी शालके समान सुन्दर शाल सारी दुनियेमें और कहीं तैयार नहीं होता*।

आइन अकबरीके पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है, सम्राट् अकबर शाल तैयार करनेके कार्य्य यथेष्ट उत्साह दिखाते थे। यहां तक, कि वे आप भी कभी कभी नमूना दिखा देते थे वे शालका व्यवहार करना पसन्द करते थे तथा चार प्रकारके शाल तैयार कराते थे। प्रथमतः तुज् आस्-शाल—यह धूसर वा उजला होता था। यह जैसा कोमल, वैसा ही नरम और वारीक होता था। इस श्रेणीके शालमें शिल्पी लोग पहले रङ्ग नहीं दे सकते थे। किन्तु सम्राट् अकबर बहुत चेष्टा करनेके उपरांत इस श्रेणीके शालको भी रङ्गीन बनानेमें समर्थ हुए थे। द्वितीय श्रेणीके शालका नाम सफेद आलचे था, इसे लोग तेढ़ेदार भी कहते थे। सफेद और काले पशमोंसे दोनों रङ्गमें ही इस श्रेणीका शाल तैयार होता था। शिल्पी लोग इससे एक प्रकारका धूसर वर्णका शाल तैयार करते थे। अकबरके समयसे पहले तीन वा चार रङ्गके शाल प्रस्तुत होते थे। इससे अधिक रङ्गोंका शाल नहीं देखा जाता था। किंतु अकबरके समयसे नाना प्रकारके रङ्गीन शाल तैयार होने लगे। तृतीय श्रेणीके शालके नाम जरदी, गुला-बातान, काशादी, कालघाई, बुन्धनमा छिट, आलचे और परजदार थे। इन सभी शालोंकी सृष्टि अकबरने ही की थी। चतुर्थ—कुरतेके लिये एक प्रकारका सुदीर्घ शाल तैयार होता था। अकबरने जोड़ा शाल व्यवहार करनेकी प्रथा चलाई।

आइन अकबरीके पढ़नेसे और भी पता चलता है, कि सम्राट्के उत्साहसे उस समय लाहोरमें प्रायः हजारसे भी अधिक तंतुशालाएं थीं। वहां जुलाहे लोग शालनिर्माण कार्य्यमें नियुक्त रहते थे। वे मयान् नामक एक प्रकारका नकली शाल तैयार करते थे। मयान् शाल रेशम और पशमसे तैयार होता था।

इस समय भी काश्मीरी शाल इस देशमें सुविख्यात है। १८२० ई०के पहले पञ्जाबके बहुत-से स्थानोंमें शाल तैयार होता था, किंतु उसके बादसे काश्मीर ही शालनिर्म्माणका सुप्रसिद्ध स्थान गिना जाता है। १८१६ ई०में काश्मीरमें भयानक दुर्भिक्ष पड़ा। उसी दुर्भिक्षसे पीड़ित हो कर शाल-बुननेवाले कारीगर लोग काश्मीर छोड़ कर अमृतसर, नूरपुर, दीननगर, त्रिलोकनाथ, जलालपुर, लुधियाना प्रभृति स्थानोंमें जा कर बस गये। अब भी इन सभी स्थानोंमें बहुतायतसे शाल तैयार होते हैं। पञ्जाबमें जितने प्रकारके शाल तैयार किये जाते हैं, उनमें अमृतसरी शाल सबसे अच्छा होता है। किंतु काश्मीरी शालके साथ अमृतसरी शालकी तुलना नहीं हो सकती। इसका प्रधान कारण यह है, कि पञ्जाबी शाल-बुननेवाले वैसा पशम संग्रह नहीं कर सकते, द्वितीयतः काश्मीरकी तरह अमृतसरमें शाल पर रङ्ग भी नहीं जमता। किसी किसीका कहना है—काश्मीरमें वहांके जलके किसी विशिष्ट रासायनिक गुणसे ही शाल पर ऐसा सुन्दर रङ्ग धरता है।

शालनिर्म्माणके सम्बन्धमें कोई बात कहनेके पहले

* "From the neck and underpart of the body of the wool-goat is taken the fine flossy silk-like wool which is worked up into those beautiful shawls with an exquisite taste and skill, which all the mechanical ingenuity of Europe has never been able to imitate with more than partial success".

(The Cyclopaedia of India)

शालकी जड़ पशमकी बात ही कहनेकी आवश्यकता है। उत्तर पश्चिमाञ्चलकी भिन्न भिन्न भेड़ोंके रोएं ही शालकी जड़ हैं। तिब्बत और स्पिति में एक प्रकारका भेड़ होती है, वहां उसी भेड़के रोएंसे शाल तैयार किया जाता है। स्पितिकी भेड़के रोएंकी अपेक्षा तिब्बतकी भेड़के रोएं अच्छे होते हैं। काश्मीरके लादक विभागमें शालके पशमके लिये भेड़ पाली जाती हैं। ये भेड़ दो श्रेणीमें विभक्त हैं। एक प्रकारकी भेड़का आकार बहुत बड़ा होता है। उसके बड़े बड़े शृंग होते हैं। इस श्रेणीकी भेड़ राप्पूके नामसे विख्यात है। छोटी छोटी भेड़ तिल्लूके नामसे पुकारी जाती हैं। ये सब भेड़ पार्वत्य प्रदेशमें देखी जाती हैं। तिब्बतके जुम्रा, जालन्धर एवं राकचू प्रभृति स्थानोंमें इस प्रकारकी बहुत-सी भेड़ देखी जाती हैं। वर्त्तमान समयमें रुकण नगर नामक स्थानमें साधारणतः उत्तम पशम होता है। खोतानका दक्षिणाञ्चल उत्तम पशमके लिये विख्यात है। एक वर्णमें सिर्फ एक बार पशम संग्रह किया जाता है। इन सभी भेड़ोंके रोएं पशम ही नहीं है। गर्दन और निम्न भागके पशमसे ही शाल तैयार किये जाते हैं। मोटे मोटे रोएंसे सूक्ष्म लोम अलग करके शालकरोंके पास भेजे जाते हैं। मोटे रोएंसे कम्बल तैयार होता है। तिब्बतसे पशम काश्मीर, नूरपुर, अमृतसर, लाहोर, लुधियाना, अम्बाला, शतद्रु-तटवर्त्ती रायपुर और नेपाल प्रभृति स्थानोंमें भेजा जाता है। उत्तम पशम 'लेना' एवं साधारण पशम 'वाल' कहलाता है।

काश्मीरमें पहले २॥ सेर पशम बिकता था। लादकसे काश्मीरमें प्रति वर्ष प्रायः तीन मन पशम आता है। प्रत्येक भेड़से प्रति वर्ष प्रायः आध सेर पशम प्राप्त होता है। लादकमें करीब ८०००० भेड़ पाली जाती हैं। प्रत्येक भेड़का मूल्य ४) रु० है। एक काश्मीरमें ही प्रायः ६० लाख रुपयेके शाल तैयार होते हैं। सिन्धु और साइफुक नदीके मध्यवर्त्ती उच्च स्थानोंमें भी पशम-उपयोगी भेड़ पाली जाती है।

शालनिर्माणके पहले पशम साफ किया जाता है। स्त्रियां ही साधारणतः पशम परिष्कार करती हैं। मैदेके साथ पशम मिला कर और उसे खूब मसल कर झाड़ देनेसे पशम बिल्कुल साफ हो जाता है। इसके बाद उस परिष्कृत पशमसे केशादि चुन कर अलग कर दिये जाते हैं; इससे शाल बहुत ही उत्तम बनता है और अधिक दाममें बिकता है। तत्पश्चात् चर्खे द्वारा पशमका सूता तैयार किया जाता है। सादा विशुद्ध पशम-सूतके आध सेरका दाम ४०) रु०से कम नहीं होता।

इकरंगा शाल तांत (करघे) में तैयार किया जाता है। किन्तु नाना प्रकारके रंगोंसे रंगे हुए विचित्र शाल सूई दे कर बुने जाते हैं।

जो शाल तांतसे तैयार होते हैं, वे ही तिलिवाला, तिलिकार, कानिकार वा बिनौटके नामसे विख्यात है। सूई द्वारा काम किया हुआ शाल साधारणतः 'अमलीकर' कहलाता है। इसके अलावे दुशाला, रुमाल प्रभृति नामक शालके और भी भेद हैं। कुरते बनानेवाला शाल नाना प्रकारके रंगोंमें रंगा रहता है। शालका किनारा (पाड़) तैयार करनेमें भी एक विपुल व्यवसाय चलता है। कालीकार और अमलीकर शाल काश्मीरमें यथेष्ट तैयार होते हैं।

शाल प्रस्तुत करनेके समय कई श्रेणीके लोग कार्यमें नियुक्त रहते हैं। जैसे—नकाश, तारागुरु, तालीम गुरु इत्यादि। नकाशी शालका नमूना दिखाते हैं। तारा गुरु रंग और रंगीन सूतादिका परिमाण निर्देश करते हैं। तालीम गुरु ये सब विषय सांकेतिक भावमें लिख कर जुलाहोंको दे देते हैं, वे उसीके अनुसार शाल बुनते हैं।

शालनिर्माण करनेमें जो काष्ठसूची व्यवहृत होती है, वह तोजी कहलाती है। तोजीमें चार ग्रेन रंगीन सूता लगा रहता है।

दुशाला—दुशाले कई तरहके देखे जाते हैं। यथा—सफेद दुशाला, रंगीन किनारीदार, बीचमें फूलदार, कुंजदार। जिस शालकी लम्बाईके पाड़से चौड़ाईका पाड़ खड़ा रहता है, उसे 'शाहपसन्द' और जिसके चारों पाड़ समान होते हैं, उसे 'दरदार' कहते हैं। जिस शालका दोनों किनारा सूईसे काम किया रहता है, वह 'दुरूखा' कहलाता है।

साधारणतः सफेद, मुश्की (काला), गुलालार (Crimson), खाफिजि (Scarlet), उदा (Purple), फेरोजी, जिंगारी एवं जर्द (पीत) रङ्गके शाल देखनेमें आते हैं।

इनके अलावे रूसवा, चादर और रूमाल भी यथेष्ट परिमाणमें निर्म्माण किये जाते हैं। यूरोपीय लोग इस श्रेणीके शालका बड़ा आदर करते हैं। वे पूराशाल व्यवहार करनेके पक्षपाती नहीं हैं, वे सिर्फ रूमाल ही अधिक पसन्द करते हैं। रूमालको छोड़ कर एक प्रकारका अर्द्ध परिमित शाल भी तैयार होता है जो आधावत् वा 'पसि' कहलाता है। यह शाल भी दो प्रकारका होता है। जैसे—तेहरीवेल और दोहरीवेल। रामपुरी चादर आदि भी यूरोपमें शालके नामसे विख्यात है।

श्रीनगरके म्यूजियममें एक शाल है, जिसका दाम २२००० रु० हैं। इसके अतिरिक्त ३०००से ले कर १०००० रुपये तक के मूल्यवान् शाल देखे जाते हैं।

१९०२-३ ई०में दिल्ली नगरमें जो शिल्प-सम्बन्धी प्रदर्शनी हुई थी, उसी प्रदर्शनीमें मेजर स्टूयार्ट पेच गड़फ्रेने एक शाल दिया था। उस शालमें श्रीनगरके महल,-जनसाधारण, हृद, नदी, पर्वत और वृक्षादिके चित्र अंकित थे। प्रत्येक दृश्यके नीचे उसका परिचय सूचीकार्यमें लिखा था। महाराज सर रणवीर सिंहके समय उनके (राजाके) आदेशसे ही यह शाल तैयार किया गया था। वर्त्तमान भारत-सम्राट् जब श्रीनगर परिदर्शन करने गये थे, शायद उन्हींको उपहार देनेके लिये ही यह शाल तैयार कराया गया था। इस शालमें श्रीनगरका मानचित्र दिखलाया गया है, जिसे देख कर आसानीसे वे स्थान दिखाये जा सकते हैं।

शालक (सं० क्ली०) १ नाड़ीशाक, पटुआ। २ मसखरा दिल्लगीबाज, भांड़।

शालकटङ्कट (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक राक्षसका नाम। इसे घटोत्कचने मारा था। २ शाल और कटङ्कटमन्त्रविशेष।

शालकल्याणी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका साग। १६

चरकके अनुसार गुरु, रूक्ष, मधुर, विष्टम्भी, शीतवीर्य्य और पुरीषभेदक होता है। (चरक सूत्रस्था० २७ अ०)

शालग्राम (सं० पु०) विष्णुमूर्त्तिविशेष। गण्डकीसे उत्पन्न वज्रकीट कृत चक्रयुक्त शिला। गण्डकी नदीमें उत्पन्न वज्रकीट कर्त्तृक चक्रयुक्त जो शिलाखण्ड मिलता है, उसे शालग्राम शिला कहते हैं। इसके सिवा द्वारकोद्भव शिला भी शालग्राम-शिला कहलाती है। इस शिलामें भगवान् विष्णुकी पूजा करनी होती है। अन्य देवमूर्त्तिकी जिस प्रकार प्रतिष्ठा की जाती है, उस प्रकार इस शालग्राम-शिलाकी प्रतिष्ठा नहीं होती। इस शिलाका अभिषेक करके ही पूजन करना उचित है। शिलाके चक्रके लक्षणानुसार इस शिलाका भिन्न भिन्न नाम है। शालिग्राम-शिलामें सभी देवताओंकी पूजा होती है। इस शिलामें भगवान् विष्णु सर्वदा विराज करते हैं, इस कारण इसमें देवताका आवाहन और विसर्जन नहीं है।

शालग्रामकी उपासना भारतमें बहुत दिनोंसे चली आती है। भगवान्‌विष्णु शिलाचक्ररूपमें जगत् प्रकट हुए थे, यही पौराणिक उक्ति है। गण्डकीतीर या चक्रतीर्थ और द्वारका ही भगवान्‌की चक्ररूपी लीलाका उत्तम स्थान है। किस प्रकार भगवान् हरि इन दोनों क्षेत्रोंमें आविर्भूत हुए थे, उसका विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके जन्मखण्डमें इस प्रकारलिखा है,—

भगवान् हरिने छलसे शङ्खचूड़को मार कर शङ्खचूड़के वेशमें तुलसीके साथ सम्भोग किया। इस पर तुलसीने पीछे भगवान्‌को शाप दिया, 'हे नाथ! आप पाषाणहृदय और दयाहीन हैं, अतएव पाषाण सदृश हो कर इस पृथिवी पर अवस्थान करें।' तुलसीका यह वाक्य सुन कर नारायणने कहा, 'साध्वि! तुम्हारे शापका पालन करनेके लिये मैं गण्डकीके समीप शिलारूपी हो कर अनुष्ठान करूंगा। वज्रकीट, कृमि और दंष्ट्रगण वहां शिलाकुहरमें मेरा चक्र काटेंगे।

धर्मसंहितामें शालग्राम-शिलाकी उत्पत्तिका विषय अन्य प्रकारसे लिखा है,—भगवान् हिरण्यगर्भ स्वयं नारायण हैं। वे आदिमें वज्रकीटरूप धारण कर पृथिवी

पर भ्रमण करते थे। उन्हें सुवर्ण भ्रमररूपमें भ्रमण करते देख देवगण भ्रमररूप धारण कर उनके समीप गये। उस समय समस्त चराचर षड़ङ्घ्रिदलमें परिव्याप्त हो गया। हिरण्यगर्भने इस प्रकार भ्रमणशील भ्रमरोंसे विभ्रान्त हो वैनतेयासन जगत्पति विष्णुको देखनेके लिये शैलरूपमें जगत्के मङ्गलविधाता हरिको रोका। इस पर सहसा निरुद्धवेग हो कर वे एक बृहत् गर्त्तमें घुस गये। उन्हें इस प्रकार गर्त्तमें प्रवेश करते देख भ्रमरोंने भी उनका अनुसरण किया, वे भी उस गर्त्तमें घुस गये। उसीसे शङ्खवत् वेश्मके साथ चक्राकार शिला उत्पन्न हुई।

मेरुतन्त्र ५म पटलमें शालग्रामोत्पत्ति प्रसङ्गक्रममें शालग्राम, शिलानिर्णय और माहात्म्य कीर्त्तित है। पुराकालमें गण्डकीने 'देवगण मेरे पुत्र हों' इस आकाङ्क्षासे तपस्या ठान दी। उनकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर ब्रह्मा विष्णु महेश्वर वर देनेके लिये उनके पास आये। गण्डकीने उन्हें अपने पुत्ररूपमें पानेके लिये प्रार्थना की। त्रिदेवके इस प्रकार वर देनेमें अशक्त होने पर गण्डकी क्रुद्ध हो बोली, "तुम लोगोंने मेरी बार बार प्रतारणा की, इस कारण यहां कीटयोनि लाभ कर अवस्थान करो।" गण्डकीका इस प्रकार वाक्य सुन कर देवताओंने कहा, 'तुमने जिस प्रकार तपोबलसे उद्धत हो बिना विचारे हम लोगोंको शाप दिया, उसी प्रकार कर्मविपाकसे तुम भी जड़ प्रकृति कृष्णा नदी हो।' आपसके अभिशापसे वहां एक बड़ा कोलाहल पैदा हुआ। देवगण और गण्डकी सबके सब काँपने लगे और उन्होंने ब्रह्माको सम्बोधन कर कहा, 'ब्रह्मन्! क्रोधके आवेशमें आ कर परस्पर महाशापसे हम लोग पतित हो गये हैं। इसलिए इससे परित्राण पानेका उपाय कृपया बतला दीजिये।' ब्रह्माने देवताओंके ये वचन सुन कर शङ्करसे कहा। शङ्करने जवाब दिया, "मैं संहारकारक हूं, तुम सृष्टिकर्त्ता हो और विष्णु सर्वजीवपालक हैं। विष्णु ही हम लोगोंमें अधिक बुद्धिमान् हैं। उन्हींसे पूछो, इस विषयमें वे क्या कहते हैं?"

महेश्वरकी यह उक्ति सुन कर विष्णुने कहा, 'गजानन! तुम सभी ध्यान दे कर सुनो। यहां मेरे गणसमूह, ब्राह्मण गण और गजमातङ्गरूपधारी शापग्रस्तगण यदि कार्यवशतः आ जायं, तो उन्हें मोक्षकी प्राप्ति होगी तथा वे दिव्यकलेवर धारण करेंगे। फिर उनकी मेदमज्जसम्भव स्थूलदेह शीर्ण हो कर पाषाणान्तर्गत वज्रकीट प्रसव करेगी। आजसे गण्डकी पुण्यतोया और गङ्गाकी समान हुई। गिरिराजके दक्षिण गण्डकी पर्यन्त दशयोजन विस्तीर्ण भूमि धरातलमें महापुण्यक्षेत्र हुई। यही त्रिलोकप्रसिद्ध चक्रतीर्थ है। इस चक्रतीर्थके अन्तर्गत शालग्रामगत देवगण अथवा द्वारावतीगत देवता जहां मिलेंगे, वहां मुक्ति अवश्य ही करतलगत होगी। इस भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी सर्वदेव-प्रातिकरा गण्डकीका गर्भज पाषाण खण्ड और उसके अन्तर्गत वज्रकीट ही उनका पार्थिव सुरपुत्र हैं।' इसके बाद ब्रह्माके कहनेसे विष्णु गण्डकीका माहात्म्य कीर्त्तन करते करते पूज्य शिलाका नाम निर्देश करने लगे। इसका साथ उन्होंने त्याज्य शिलाका भी वर्णादि भेद निरूपण कर दिया। (मेरुतन्त्र ५ पटल)

पूज्यशिला।

पद्मपुराण (पातालखण्ड १० अ०)में शालग्रामशिलार्च्चनप्रसङ्गमें विशेष विशेष रेखाविशिष्ट शिलाकी पूजार्हता उल्लिखित हुई है। वे सब शिलाएं स्वतन्त्र नामसे भी पुकारी जाती हैं।

मेरुतन्त्रमें भी पूज्य शालग्राम-शिलाका विषय वर्णित देखा जाता है—स्वीय वर्णा, अर्थात् शिलाका जो वर्ण तादृशी वर्णविशिष्टा शिला हैं, उसकी ब्राह्मणादि वर्ण सुख लाभके लिये पूजा करे। स्निग्ध और रूक्षवर्ण शिला पूजनीय है। इस शिलाका पूजन करनेसे सिद्धिलाभ होता है। पीतवर्ण शिलाका पूजन करनेसे पुत्रकी प्राप्ति होती है। नीलवर्णशिलाके पूजनसे लक्ष्मीलाभ और समशिला सर्वार्थसाधिका होती है।

जिस शालग्रामशिला पर पद्मके साथ चक्र विद्यमान रहता है अथवा केवल वनमाला चिह्न पाया जाता है, उसका नाम लक्ष्मीहरि है। वह शिला गृहस्थोंको अभीष्ट फल देनेवाली है। जिस शालग्रामके चक्रयुक्त दो द्वार रहते

है अथवा जो शिला श्वेतवर्ण और दो समान चक्रविशिष्ट है, वह वासुदेव कहलाती है, यह शिला पापनाशक है। पूर्व और पश्चाद्भागमें दो चक्र रहनेसे वह शिला सङ्कर्षण नामसे पूजित होती है। यह रत्न स्वरूप और सुशोभन है। गृही व्यक्ति यदि इस शिलाकी पूजा करे, तो अभीष्टलाभ होता है।

जिस शालग्राम शिलाका चक्र सूक्ष्म तथा छिद्र दीर्घ और विचलित है, अन्तः और वहिर्देश छिद्रयुक्त, वह प्रद्युम्न कहलाती है। यह पीतवर्ण और इष्टप्रदायक है। जो शिला नीलाभ, वर्त्तुल और अति सुन्दर होती, जिसके द्वारदेश पर दो रेखा रहती तथा पृष्ठदेश पद्मलांछित होता है, उसे अनिरुद्ध शिला कहते हैं। शिलाके पूर्व या पश्चाद्भागमें एक या दो चक्र रहनेसे वह शिला केशव कहलाती है। यह चतुष्कोण है। इस शिलाकी पूजा करनेसे सौभाग्यकी वृद्धि होती है। श्यामवर्ण, उन्नत चक्रविशिष्ट और दीर्घ रेखायुक्त तथा दक्षिणदेश पृथु शुषिर अर्थात् स्थूल गह्वरसमन्वित शिलाको नारायण कहते हैं।

जिस शिलाके ऊर्द्ध्वदेशमें स्थापित अथच शिलाका तरह हरिद्वार दिखाई देता है, उसका नाम हरि है। यह शिलाचक्र भुक्ति और मुक्तिप्रद है। जो शिला पद्म और चक्रयुक्त, विल्वफलकी तरह आकृतिविशिष्ट, शुक्राभ और पृष्ठदेशमें वृहत् शुषिर अर्थात् गर्त्तविशिष्ट है, वह परमेष्ठी कहलाती है। कृष्णवर्ण, सुशोभन दो चक्रयुक्त, मध्यदेशसे द्वारके ऊपर एक रेखासम्वलित शिलाका नाम विष्णु है।

नृसिंहलक्षणयुक्त शिला यदि गुड़ या लाक्षा सदृश वर्णविशिष्ट हो, उसमें स्थूल चक्र और द्वार पर सुशोभना रेखा रहे, उसे महानृसिंह कहते हैं। पूर्वोक्त लक्षणयुक्त शिला वनमालाविराजित, चार चक्र और विन्दुयुक्त होनेसे लक्ष्मीनृसिंह कहलाती है। यह शुभप्रद है।

पूर्वोक्त वराहलक्षणयुक्त शिला भी इन्द्रनीलसदृश स्थूल, तीन रेखायुक्त तथा शक्ति, लिङ्ग और चक्र विषम हो, तो वह पृथ्वी-वाराह कहलाती है। यह यदि अभुग्ना और एक रेखायुक्त हो, तो वह गतराज्यप्रद होती है।

वर्ण स्वर्णसदृश, दीर्घाकृति, तीन विन्दु विभूषित और कांसासे भी अधिक भारविशिष्ट है, वही मत्स्यशिला नामसे पुकारी जाती है। इस शिलाका पूजन करनेसे भुक्ति और मुक्ति लाभ होती है।

जिस शिलाका पृष्ठदेश वर्त्तुल और उन्नत तथा कौस्तुभ चिह्नित और हरिद्वर्णा होती है, वही कूर्माख्य शिला है। कूर्माकार, चक्रान्वित और वृत्तयुक्त शिला भी कूर्मशिला कहलाती है। यह शिलाचक्र अभीष्टफलप्रद है।

चक्रके समीप अंकुशाकार रेखा और वहु विन्दु विद्यमान तथा पृष्ठदेश नीरद नीलवर्ण है, वह हयग्रीव कहलाती है। जो शिला हयग्रीवसदृश और दीर्घरेखायुक्त है, उसे सौम्य हयग्रीव कहते हैं।

मुख हयाकृति या पद्माकृति तथा मस्तक अक्षमालायुक्त होनेसे उसको हयशीर्ष कहते हैं।

तिलवर्णाभ तथा एक चक्रयुक्त, ध्वजचिह्नित, द्वारके ऊपर सुशोभन रेखाविशिष्ट शिला वैकुण्ठ कहलाती है।

जो शिला वनमाला चिह्नित, कदम्बकुसुमाकार, रेखा पञ्चक शोभित होती है, उसका नाम श्रीधर है। अति ह्रस्व, वर्त्तुल, अतसीकुसुम सदृश वर्ण तथा विंदुयुक्त शिला वामन है। अति ह्रस्व तथा ऊर्द्ध्व और अधोदेश चक्रसंयुक्त और महाद्युतिविशिष्ट शिला दधिवामन कहलाती है। यह शिला विशेष मङ्गलदायक है।

जो शिला श्यामवर्ण, महाद्युति है, जिसके वामपार्श्वमें चक्रविशिष्ट और दक्षिणमें एक रेखा रहती है, उसे सुदर्शन कहते हैं।

जो शिला नाना रेखायुक्त तथा जिसकी यन्त्रपंक्ति चक्राकार होती है, उसका नाम सहस्रार्जुन है। इसका पूजन करनेसे मङ्गल होता है। जिसके मध्यचक्र प्रतिष्ठित है, जिसका वर्ण दूर्वा जैसा और द्वारदेश सङ्कीर्ण होता तथा जिसमें अनेक पीत रेखाएं होती हैं, उसे दामोदर कहते हैं। इस शिलाका पूजन करनेसे मंगल होता है। जिस शिलाके दो चक्र होते तथा विवर सूक्ष्म होता

वह भी दामोदर कहलाती है। दामोदर-शिलाके ऊद्दर्ध्व और आधोदेशमें चक्रवत् गर्त्त रहने तथा मुख नातिदीर्घ और लम्ब रेखायुक्त होनेसे उसको राधा दामोदर कहते हैं।

बहुवर्ण नाग-भोग-चिह्नित तथा अनेक चक्रयुक्त होनेसे उसे अनन्त कहते हैं। इसकी पूजा करनेसे समस्त अभीष्ट सिद्ध होता है। जिस शिलाके सभी ओर ऊद्दर्ध्व आस्य दिखाई देता है, उसका नाम पुरुषोत्तम है। यह भी विशेष मंगलदायक है। जिस शिला पर शिरोगत लिंग रहता है, उसका नाम योगेश्वर है। इसकी पूजासे ब्रह्महत्यादि पापनाश और योग सिद्ध होता है।

पद्म और छत्र चिह्नयुक्त शिलाका नाम पद्मनाभ है। इसकी पूजा करनेसे दरिद्र धनवान् होता है। जिसके मध्यदेशमें दो पक्षके चिह्न होते और जिसमें एक सुदीर्घ रेखा होती, उसे गरुड़ कहते हैं।

जिस शिलाके उदरमें चार प्रस्फुट चक्र होते, वह जनार्दन है। जिसका उदर वनमाला चिह्नित तथा सूक्ष्म चार चक्रयुक्त होता है, उसका नाम लक्ष्मीनारायण है। शिला अर्द्धचन्द्राकृति होनेसे वह हृषीकेश है। इस शिलाकी पूजा करनेसे अभीष्ट और स्वर्गलाभ होता है।

कृष्णवर्ण, विन्दुयुक्त और वाम पार्श्वमें दो चक्रयुक्त शिलाका नाम भी लक्ष्मीनारायण है। यह शिला गृहस्थोंकी अभीष्टदायक है। श्यामवर्ण, महाद्युति, वाम पार्श्वमें दो चक्र और दक्षिण पार्श्वमें एक रेखा रहनेसे उसे त्रिविक्रम कहते हैं।

कृष्णवर्णकी शिला यदि चक्रयुक्त या चक्रशून्य हो तथा उसमें यदि प्रदक्षिणावर्त्तरूपमें वनमाला चिह्न रहे, तो उसे कृष्ण कहते हैं। शिलाके मध्यदेशमें दो चक्र तथा पार्श्वदेशमें चार रेखा होनेसे वह चतुर्मुख कहलाती है। (मेरुतन्त्र)

त्याज्यशिला।

प्रयोगपारिजातमें त्याज्यशिलाकी आकृति कही गई है। पूजाकामी निम्नलिखित लक्षण देख कर उसे अग्राह्य कर दें। तिर्य्यक्चक्रा, बद्धचक्रा, क्रूरा, स्फोटविशिष्टा, रूक्षा, कुरूपा, विदरा, मनास्या, कराला, विकरालिका, कपिला, विषमावर्त्ता, व्यालास्या, कोटरयुक्ता, भग्ना, महास्थूला, रुधिरानना, एकचक्रयुता, दर्दुरा, बहुचक्रा, अधोमुखी, लग्नचक्रा या चक्रद्वारा आवृतचक्रा, बहुरेखा समायुक्ता, भग्नचक्रा, दीर्घचक्रा, पंक्तिचक्रा, मस्तकास्या और अचिह्ना शिला सर्वतोभावमें वर्जनीया है।

इसके सिवा मेरुतन्त्रमें और भी कई निन्दित शिलाका परिचय पाया जाता है। धौत अंगारवत् शिलाको मेचकी कहते हैं। इसकी पूजा करनेसे यशकी हानि होती है। पाण्डु और मलिनवर्ण शिला निन्दनीया है। आर-वर्णशिलाका पूजन करनेसे पुत्रहानि, धूमाभ शिलासे बुद्धिहानि, रक्तवर्ण रोगदायिनी, वक्रशिला, दारिद्र कारिणी, स्थूलशिला आयुनाशिका और सिन्दुराभा शिला निन्दिता है, इस कारण उनका त्याग कर देना चाहिये।

चक्रादि चिह्नित शिला ही पूजामें प्रशस्त है। लांछन अर्थात् चिह्न व्यतीत शिलाको पूजा करनेसे कोई फल नहीं होता। भग्नशिलाकी पूजा करनेसे विपत्ति, बहुचक्रयुक्त शिलाको पूजा करनेसे अपमान, लक्षणहीन शिला पूजनेसे वियोग, बृहन्मुखयुक्त शिलापूजनेसे कलत्रनाश और बृहच्चक्रयुक्त शिलासे पुत्रनाश, संलग्न चक्रयुक्त शिलासे असुख, बद्धचक्रयुक्त शिलासे पीड़ा, भग्नचक्र शिलासे दारिद्र्य, अधोमुखयुक्त शिलासे सर्वनाश, व्यालमुखयुक्त शिलासे कुष्ठादि रोग, विषम शिलासे विविध प्रकारको आपद्, विकृतावर्त्तनाभि अर्थात् जिस शालग्राम शिला पर चक्रका आवर्त्त है और नाभि विकृत हो गई है, वैसी शिलाका पूजन करनेसे अनेक प्रकारका विकार होता है।

कपिल वर्ण, स्थूल चक्र और बृहन्मुखयुक्त शिला तथा जिस शिला पर तीन या पांच विन्दु होते हैं, उसे नृसिंह कहते हैं। यह शिला गृहस्थोंके लिये मंगलदायक नहीं है। इस शिलाका पूजन करनेसे गृहस्थ विपद्में पड़ता है। (मेरुतन्त्र)

उक्त जिन सब शिलाओंका लक्षण और पूजाफल कहा गया, उसको अपेक्षा और भी अनेक प्रकारकी शालग्राम-शिला दृष्टिगोचर होती है। ये द्वादश चक्रवर्गमें विभक्त हैं अर्थात् जो शिलाएं एकचक्रविशिष्ट है,

वे एकचक्रक, जिनके दो चक्र हैं, वे द्विचक्रक हैं। एतद्भिन्न जिनके भीतर तीनसे बारह तक चक्र देखनेमें आते हैं, उन्हें पर्यायक्रमसे उसी उसी संख्यक वर्गमें सन्निवेशित किया गया है। इस प्रकार एकचक्रवर्गमें १६ प्रकार, द्विचक्रवर्गमें ८८ प्रकार, त्रिचक्रवर्गमें ११ प्रकार, चतुश्चक्रवर्गमें १६ प्रकार, पञ्चचक्रवर्गमें ६ प्रकार, षट्चक्रवर्गमें ७ प्रकार, सप्तचक्रवर्गमें ६ प्रकार, अष्टचक्र वर्गमें ४ प्रकार, नवचक्रवर्गमें १ प्रकार, दशमचक्रवर्गमें ३ प्रकार, एकादशचक्रवर्गमें २ प्रकार, द्वादशचक्रवर्गमें १ प्रकार, और बहुचक्रवर्गमें और भी ८ प्रकारके शालग्राम निर्दिष्ट हैं। पुराणादिमें उन सब शालग्रामोंका लक्षण और नाम हैं। यहां एकचक्र क्रमसे उनका विवरण दिया जाता है—

१। वैकुण्ठ, मधुसूदन, सुदर्शन, सहस्रार्जुन, नरमूर्त्ति, राममूर्त्ति, लक्ष्मीनारायण, वीरनारायण, क्षीराब्धिशयन, माधव, हयग्रीव, परमेष्ठी, विष्वक्सेन, विष्णुपञ्जर, गरुड़, बुद्ध, हिरण्यगर्भ, पीताम्बर और पद्मनाभ नामधेय शिलाएं एकचक्राङ्कित हैं।

नीलवर्णाभ, ध्वजयुक्त, द्वारोपरि और पूर्वभागमें सर्पाकार, सुशोभन रेखा-विलम्बित शिला ही वैकुण्ठ कहलाती है। दूसरे पुराणमें शुक्लवर्णाभ, गुञ्जाकार और पुच्छरेखक शिलाको भी वैकुण्ठ कहा है। महाद्युतिमान् और महातेजशाली सर्ववर्णसमायुक्त शिला मधुसूदन पदवाच्य है। चक्रविवेक नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि रक्त या कृष्णवर्ण स्थूल अथच छिद्रयुक्त शिला भी मधुसूदन है। यह सर्वसौभाग्यदायक है। शिरोदेशमें एकचक्र और मुखमें कृष्णवर्ण शिला सुदर्शन कहलाती है। किसी दूसरेका कहना है, कि श्यामवर्ण, वामपार्श्वमें गदा और चक्र तथा दक्षिणपार्श्वमें एक रेखा रहनेसे उसे सुदर्शन शिला कहते हैं। चक्रविवेकके मतसे वनमाला द्वारा वेष्टित, कदम्ब कुसुमाकार, पञ्च रेखासमन्वित, विन्दुत्रयसमायुक्त, चारुवर्ण और सुशोभन शिला ही सुदर्शन है। नाना रेखामय शिला सहस्रार्जुन कहलाती है। इसकी पूजा करनेसे नष्ट द्रव्य फिरसे मिल जाता है। तीसी फूलकी तरह वर्णविशिष्ट तथा पार्श्वदेशमें अक्षसूत्र अर्थात् जपमालाचिह्नयुक्त जो शिला हैं वह नरमूर्त्ति कहलाती है। तन्त्रमें उसका प्रकार बताया है। यथा—

"गोपुच्छसदृशी माला यद्वा सर्पाकृतिः शुभा।"

वदनमें चक्र और कृष्णवर्ण शिला राममूर्त्ति कहलाती है। यह पूजकको कवित्व दान करती है। एकचक्र, चतुर्वक्त्र वर्त्तुल, श्यामवर्ण, ध्वजवज्राङ्कुश चिह्नधारी, मालायुक्त विन्दुविशिष्ट, समुन्नतपृष्ठ और स्थूल शिला ही लक्ष्मीनारायण है। इस शिलाके दर्शन करते ही अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। कौस्तुभशोभन, वनमालाविभूषित, पाञ्चजन्य, गदा, पद्म और चक्रयुक्त, दीर्घ त्रिरेखाविशिष्ट तथा स्वर्णविलेपितगात्र शिलाचक्र ही वीरनारायण कहलाती है। वदनमें एक चक्रचिह्न, गात्रमें पञ्चायुध रेखा, चक्रके दोनों पार्श्वमें फणि और पङ्कज रेखा, सुवर्त्तुल, सुस्निग्ध और क्षीरसदृश कान्तिसमन्वित शिला ही क्षीराब्धिशयन नामसे प्रसिद्ध है। नाभिचक्र उन्नत और उज्ज्वल दो रेखा अथवा पद्मचिह्नयुक्त तथा वनमालाविभूषित होनेसे वह माधव कहलाती है। वैश्वानर-संहितामें लिखा है,—मधुवर्ण, गदाकृत्युविलक्षित, सूक्ष्म और मध्यमें शोभनचक्रविशिष्ट होनेसे उसे माधवशिला कहते हैं। यह शिलाचक्र सौभाग्य और मोक्षदायक है। अङ्कुशाकार, कृष्णवर्ण, रेखासमन्वित अथवा श्याम दूर्वादलाकार, वर्मोन्नत और कपिल होनेसे वह हयग्रीव कहलाती है। साब्जचक्र, पृष्ठछिद्र और विन्दुमान्, पद्मवत् चक्रशाली तथा शुक्लाभ अथवा लोहिताभ होनेसे उसको परमेष्ठिशिला कहते हैं। विष्वक्सेन शिला अति स्थूल होती है। इसका दूसरा नाम दामोदर भी है। दीर्घकाय, कृष्णवर्ण और पंजराकृतिरूपलांछनविशिष्ट शिला ही विष्णुपंजर कहलाती है। यह सर्वकामप्रद है। श्याम, नील अथवा सितवर्ण स्वर्णवर्णकी दो तीन या चार लम्बी रेखा जिसमें रहती है, वह शिला गरुड़ नामसे पूजित होती है। अणुगह्वरसंयुक्त और चक्रहीन शिला निर्वात बुद्ध कहलाती है। इसको पूजा करनेसे परम पद लाभ होता है। ईषत् दीर्घ, मनोज्ञ, स्निग्ध और मधुपिङ्गलविग्रह हिरण्यगर्भ नामसे प्रसिद्ध है। इसके ऊपर स्फटिककी तरह दीप्तिविशिष्ट अनेक स्वर्णरेखाएं भी रहती हैं। एतद्भिन्न

पृष्ठ पार्श्वमें श्रीवत्साकार लांछन जो शिलामें है, वैसी वर्त्तुल और कृष्णवर्णकी शिलाको हिरण्यगर्भ कहते हैं। ऊद्‌र्ध्वचक्र अम्बुज द्वादशमुख, पीताभ और द्वार देश रेखात्रयविभूषित अथवा सचक्र, गोस्तनाकार और वर्त्तुल शिलाचक्र पी' म्बर देव कह कर पूजित होते हैं। आरक्तवर्ण, पद्मयुक्त, निष्केशबद्धचक्र, अर्द्धचन्द्र-युक्त, वनमालाङ्कित और कण्ठमें श्रीवत्साङ्कित रहनेसे वह पद्मनाभ कहलाती है। इस शिलाकी प्रतिदिन तुलसीपत्र द्वारा पूजा करनेसे अति दरिद्रको भी राज्य-लाभ होता है।

२य वा द्विचक्र।—गण्डकी नदीमें दो चक्रयुक्त जो सब शिलाएं पाई गई हैं उनकी संख्या सबसे अधिक है तथा साधारणतः पूजित होती हैं। वे सब शिला मत्स्य-कूर्मादि नामसे जनसाधारणमें परिचित हैं। नीचे उन सब शिलाओंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

मत्स्याकृतिकी तरह मुख और मुखकी तरह चक्रवि-शिष्ट, श्रीवत्स विन्दु और मालायुक्त, दीर्घाकार, कृष्ण मूर्त्तिको ही मत्स्य कहते हैं। (वराहपुराण) ब्रह्म और पद्मपुराणके मतसे श्याम अथवा काञ्चनवर्ण, विन्दुत्रयविभूषित, मत्स्यरूप, दीर्घ अथवा वामभागमें मत्स्यचिह्न रहनेसे वह मत्स्यमूर्त्ति कहलाती है। अग्नि-पुराण, ब्रह्माण्डपुराण और मत्स्य-सूक्तमें इसका प्रका-रभेद कहा गया है। पृष्ठभाग कूर्मकी तरह उन्नत वर्त्तुल, हरिद्वर्ण समाकीर्ण और कौस्तुभभूषित शिला ही कूर्ममूर्त्ति है। उन्नतपृष्ठ, पीतवर्ण, अति स्निग्ध, अधश्चक्र और द्वारदेशमें चक्रसमन्वित होनेसे वह वराह-मूर्त्ति कहलाती है। मतान्तरसे विषमस्थित चक्र, इन्द्र नीलनिभ वर्णविशिष्ट, स्थूल, त्रिरेखालांछित, अथवा अतसीकुसुमप्रख्य या नीलोत्पलनिभ, दीर्घाकार, दीर्घ-द्वारयुक्त, अजर्जरतनु, पृष्ठोन्नत, दीर्घास्य, वामभागमें उन्नत चक्र, पृष्ठ पर रेखायुक्त और वराहाकार शिलाको वराहमूर्त्ति कहते हैं। अधश्चक्र, अतिकलस, स्वर्ण दंष्ट्र और अंकुशाकार वदन होनेसे वह भूवराह होगी। पीताभ, सूक्ष्मरन्ध्र, चक्रसमन्वित सुन्दर दन्तसहित शिलाका नाम धरणीधर वाहर है। चक्र समन्वित और दक्षिण भागमें गोष्पद चिह्न रहनेसे उसे लक्ष्मीवराह जानना होगा। अतिविकृतास्य, द्विचक्रविशिष्ट और विकट मूर्त्ति नृसिंह कहलाती है। इस प्रकार लक्षणयुक्त दीर्घ मुखी और केशराकार रेखायुक्त शिला भी नरसिंह नामसे पुकारी जाती है। पृथुचक्र, महामुख, त्रि वा पञ्चविन्दुयुक्त अथवा स्थूलचक्र, गुड़ लाक्षावर्ण, द्वारोपरि सुशोभन युग्मरेखा विशिष्ट होनेसे उसे कपिलनरसिंह कहते हैं। द्वारभाग पीतवर्ण और स्वर्णरेखायुक्त तथा मुखके समीप चक्र रहनेसे वह योगिनृसिंह शिला कहलाती है। दन्तशोभित दीर्घकन्दरविशिष्ट, अण्डवत् चन्द्रयुक्त दक्षिणोन्नत मस्तक होनेसे उसे विदारनृसिंह कहते हैं। महोदर तथा मध्यस्थ चक्र उन्नत और समभावापन्न होनेसे उसे आकाशनरसिंह जानना होगा। वहुछिद्र, भीमवक्त्र और स्वर्णवर्णका चक्र जिसमें रहता है, उसका नाम राक्षस नृसिंह है। इस शिलाको घरमें रखनेसे निश्चय ही अग्नि द्वारा गृहभस्म होगा। दो चक्र और दो मुख, द्वारा ऊद्‌र्ध्वाकृति तथा स्थूलदेह होनेसे उसको जिह्वा-नृसिंह जानना चाहिये। रन्ध्र सूक्ष्म, चक्र दो और वनमालाविभूषित होनेसे उसे ज्वालानृसिंह कहते हैं। जिस शिलामें दो स्थूल चक्रके मध्य रेखा रहती है तथा गालमें भी सुशोभन रेखा दिखाई देती है, फिर जिसमें कपिल-नरसिंहके लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं वह शिला महानृसिंह कहलाती है। विकृतास्य, वनमाला विभू-षित, वाम पार्श्वमें चक्र, कृष्णवर्ण और विन्दुयुक्त होने से उसको लक्ष्मीनृसिंह कहते हैं। शिलागात्र कर्णांश और पृष्ठदेश सप्तफणाङ्कित रहनेसे वह अनन्तनृसिंह समझी जाती है।

इन्द्रनील सदृशाकार, वनमाला और अम्बुज द्वारा उज्ज्वल, ह्रस्व एवं वर्त्तुलाकृति शिला वामन कहलाती है। यह वामन मूर्त्ति तीसी फूलकी तरह और कुछ उन्नतमस्तकवाली होती है तथा उसका चक्र कुछ अस्पष्ट रहता है। यह कामप्रद है। रन्ध्र सूक्ष्म तथा कुक्षि बड़ी होती है। यह वामन दुर्लभ है। मता-न्तरसे स्पष्ट चक्र, दीर्घास्य, वृहद्गह्वर, वर्त्तुल, शिलाका मुख उन्नत या उच्च अवस्थित, नाभि उन्नत और फुटन्त

रेखा द्वारा वेष्टित, फिर चक्रके दोनों पार्श्वमें स्तनूदी पुष्पाकृति आदि चिह्न दिखाई देनेसे उसे वामन-शिला जानना होगा। वामन मूर्त्तिश्वेतबिन्दुयुक्त अथवा उज्ज्वल बिन्दु द्वारा भूषित, अतसी कुसुमसदृश वर्णविशिष्ट वा नीलरक्ताभ होनेसे उसको दधिवामन कहते हैं। पीतवर्ण तथा परशु, कोदण्ड और लाङ्गल चिह्न समन्वित शिला राममूर्त्ति है। इस राममूर्त्तिके फिर अनेक भेद देखे जाते हैं। परशु समन्वित, दूर्वादलकी तरह श्यामवर्ण, उन्नत तथा मध्यदेशमें चक्र रहनेसे वह परशुराम है। यह मूर्त्ति पीत चिह्नयुक्त वाम या दक्षिणमें चक्रयुक्त तथा पृष्ठ या पार्श्व भागमें दन्ताकार रेखा दिखाई देने पर भी वह जामदग्न्य कहलाती है। धनुर्वाणकी तरह रेखाकार अथवा दीर्घ, विन्दुयुक्त और नाभिचक्रमें बहु छिद्र रहनेसे उसे दाशरथि राम-शिला जानना चाहिये। जिसके ऊद्ध्र्वदेशमें चक्र, तूण, शार्ङ्ग धनु और शरचिह्न रहता है। उसका नाम कौशल्यानन्दन राम है। स्निग्ध, दूर्वाभ, चक्रशोभन तथा वह चक्र वाण, तूण और कार्मुक समायुक्त अथवा पृष्ठदेशमें दन्त और पार्श्वमें दो रेखा दिखाई देनेसे उसको रामचन्द्र कहते हैं। श्यामल और वर्त्तुलाकार शिला ही वालयराम-शिला है, वाणतूणीर और ज्याशोभित तथा कुण्डल और माल्यसमाहित शिला वीरराम कहलाती है। पृष्ठ भाग पर पांच रेखा तथा पार्श्वदेशमें धनुर्वाणचिह्नयुक्त बिल्वफल सदृश शिला पुलद राम कहलाती है।

रक्त विन्दुयुक्त चक्रशोभित, दिव्याम्बरधारी, चाप और तूणीर संयुक्त और करालवदन शिलाका नाम विजयराम है। वर्त्तुल अथवा कुछ अयत तथा एक धनुर्युक्त और नीलाम्बुद प्रभाविशिष्ट शिलाको कोदण्ड राम कहते हैं। मूर्द्धदेशमें मालाचिह्न धनुर्वाण और पार्श्वमें खुरयुत शिला ही हृष्टराम है। मुर्गेके अंडेकी तरह आभाविशिष्ट, श्यामल और उन्नत पृष्ठ तथा दो रेखासे युक्त और कोदण्डी लक्षण होने पर भी उसे हृष्टराम कहेंगे। मुर्गेके अंडेकी तरह आकार, अधोवक्त्र, कुण्डलयुक्त द्वारदेशमें समान दो चक्र और कल्पवृक्षचिह्नत शिला सीताराम कहलाती है। मध्यमाकृति, वर्त्तुलाकार, शरतूणीरसमन्वित और वाणविक्षत तथा दूर्वादलश्यामव विग्रह रणराम नामसे परिचित है। मस्तक या जानुमें धनुर्वाणका चिह्न, पार्श्वमें खुर और नीलाम्बुद समप्रभ होनेसे उसको दुष्टराम कहते हैं। पृष्ठ भागमें पञ्चरेखा दोनों पार्श्वमें धनुर्वाण चिह्नित स्थूलअङ्ग, हरिलोचनसन्निभगात्र अथवा दीर्घाकार, वृहद्द्वार, श्वेतलाङ्गल चिह्नित, पृष्ठ पर मुषलचिह्न नीलवर्ण उज्ज्वल प्रभाशाली और पृथुवक्त्र शिला बलराम कहलाती है। हल और मुषलरेखाङ्कित, शुक्लाभ, वनमालायुक्त, मधुवर्ण विन्दुविशिष्ट शिलाका नाम सङ्कर्षण-राम है। जिसके पृष्ठभाग पर पुष्कर चिह्न, इस प्रकार एकलग्न शिला अथवा जिसके सभी ओर ऊद्ध्र्वमुख देखा जाता है, वही शिला पुरुषोत्तम है। जिस शिलाकी देह चापाकृति है और जो विविध वर्णोंसे शोभित है, वही शिला महीधर कहलाती है। कृष्णवर्ण, पीत चिह्नयुक्त, कृशदेह, पार्श्वमें विन्दुयुक्त, द्वारतुल्य नाभिदेश, पृष्ठ कूर्माकार और दीर्घाकृति होनेसे वह शिला कृष्णमूर्त्ति नामसे पूजित होती है। उन्नतदेह, कृष्णाभ, निम्न और आधोदेश विन्दुयुक्त तथा दीर्घास्य होनेसे उस शिलाको बालकृष्ण कहते हैं। श्यामवर्ण, अति स्निग्ध, छत्राकार, सूक्ष्मद्वार, विन्दुयुक्त रक्तवर्ण रेखाविशिष्ट और शिर पर पद्मचिह्न रहनेसे वह गोपल मूर्त्ति नामसे प्रसिद्ध है। यह गोपालमूर्त्ति नातिस्थूल, नातिकृष्ण, वनमालायुत, श्रीवत्सलाञ्छन, दीर्घशङ्खविशिष्ट और पार्श्वमें वेणुचिह्नाङ्कित होनेसे वह भूमि, धान्य और धनप्रद होती है।

अर्द्धश्याम और अर्द्धरक्ताकार, शङ्खचक्र धनु और शर चिह्न विशिष्ट तथा दीर्घ और शुषिरयुक्त होनेसे वह मदनगोपाल कहलाती है। जिस मदनगोपाल शिलाके वामपार्श्वमें पद्म तथा माला और कुण्डलादि चिह्न रहता है, वह मूर्त्ति पुत्र पौत्र और धन ऐश्वर्य देती है। उक्त प्रकारकी लक्षणाक्रान्त मूर्त्ति दीर्घाकार और सुरेखाविशिष्ट होनेसे उसको गोपाल जानना होगा। यदि शिला वर्त्तुल, मस्तक निम्नमुखी, दोनों पार्श्व रजतविन्दुयुक्त तथा दण्ड स्रक् और वेणु शोभित हो, तो वह गोवर्द्धन-गोपाल कहलाती है।

वंशीचिह्नसमायुक्त, स्निग्धगात्र, श्याम अथवा नाना

वर्ण समायुक्त और वनमालाविभूषित होनेसे उसको वंशीवदन वा वंशी-गोपाल कहते हैं। अर्द्धचन्द्र-निभानन, कृष्णवर्ण और दीर्घाकार शिलाही सन्तान-गोपाल कहलाती है। मुर्गेके अंडेकी तरह, वनमाला भूषित, श्रीधरमूर्त्तितुल्य तथा लाङ्गल, वेणु और कुण्डल चिह्नाकान्त शिला ही लक्ष्मीगोपाल है। द्वारदेश पर दो चक्र और लक्ष्मीसमन्वित, अथवा पञ्चायुध रेखा विशिष्ट हिमांशुसदृश वर्ण और नाभिदेशमें चक्र रहनेसे वह शिला वासुदेव कहलाती है। सुवर्णवर्णारेखा और विन्दुत्रयसमन्वित तथा हिरण्यवर्ण पद्मयुक्त होनेसे कालीयदमन कहते हैं। चक्र भाग अति शोभाशाली, असितवर्ण, नातिस्थूल, वनमालापरिवृत और पृष्ठदेशमें श्रीवत्सलाञ्छन रहनेसे वह स्यमन्तहारी है। रक्तवर्ण विन्दुद्वययुक्त, श्यामवर्ण, दन्तिभूतोपम शिला ही चानूर मर्द्दन कहलाती है। कृष्ण और नीलाम्बुद वर्णविशिष्ट शिलाका नाम कंसमर्द्दन है। वद्धचक्र होनेसे बुद्ध मूर्त्तिके साथ इसका सादृश्य है। अति रक्तवर्ण सूक्ष्मगर्त्त, स्पष्टचक्र, स्थिरासन, द्वारके ऊपर और पृष्ठ भाग पर कपालाकृति रेखा रहनेसे वह कल्किमूर्त्ति कह-लाती है। वराहपुराणके मतसे यह मूर्त्ति इन्द्रनील-निभ दीर्घाकार, वनमालाविभूषित और अङ्कुशाकारवदन, कृष्णवर्ण स्थूलचक्र, द्वारके ऊपर अथवा पृष्ठ भाग पर गदाकृति रेखायुक्त होनेसे उसको विष्णुमूर्त्ति कहते हैं। वराहपुराणमें अपराजित पुष्पकी तरह वर्णविशिष्ट, वनमाला और पद्मचिह्नयुक्त तथा पञ्चायुधधर शिलाको विष्णुलक्षण कहा गया है।

सुदर्शनमूर्त्तिको लक्षणाक्रान्त अथच दो चक्रयुक्त शिला लक्ष्मीनारायण कहलाती है। नारायण शिला श्यामवर्ण, नाभिचक्र उन्नत, दीर्घ तीन रेखायुक्त, दक्षिणमें क्षुद्र छिद्र, एक पद्माङ्कित और दक्षिणावर्त्त तथा चतुर्ल्लाञ्छनयुक्त होती है। मुषल, आयुध,माला, शङ्ख, चक्र और गदाङ्कित शिला कपिनारायण कहलाती है। तमालदलसङ्काश और स्वर्णवर्णलिप्त तथा शोणचक्र समन्वित शिलाको नरनारायण कहते हैं। वर्त्तुल मूर्त्ति, रेखावृत, नीलरेखायुक्त, दीर्घास्य और पृथुचक्र होनेसे उसको स्वयम्भू शिला कहा गया है। मेघवर्ण, गोष्पदचिह्नशाली, छत्राकार, द्विचक्रविशिष्ट और मध्यमाकार शिला मधुसूदन नामसे प्रसिद्ध है। हयग्रीवसदृश, अङ्कुशाकार, चक्रके समीप रेखायुक्त, वहुविन्दुसमन्वित तथा पृष्ठ पर नीरदनील-द्युतिविशिष्ट द्विचक्र शिला भी हयग्रीव कहलाती है। केशव लक्षण शिला चतुष्कोण, श्यामवर्ण, वनमालान्वित सूक्ष्मचक्र और स्वर्णवर्ण विन्दु विशिष्ट होती है। सूक्ष्मचक्र, पीतवर्ण वा नीलाम्बुजनिभ शिला प्रद्युम्न कह कर पूजित होती है। ब्रह्मपुराणके मतसे यह नवीन नीरदप्रभ है।

ललाटदेश श्वेतनाग चिह्न और काञ्चनवर्ण ऊर्द्ध्वरेखा-समन्वित तप्त काञ्चनवर्णाभ शिला लक्ष्मीप्रद्युम्न कहलाती है। वराहपुराणमें लिखा है, कि जवाकुसुमसङ्काश, वन-मालाधर और धनुर्वाण तथा अजिन चिह्नयुक्त शिलाको भी लक्ष्मीप्रद्युम्न कहते हैं। इस प्रकार सूक्ष्मचक्रशाली तथा स्वर्ण और रौप्यरेखाविशिष्ट होनेसे वह अनिरुद्ध कहलाती है। यह अनिरुद्ध विग्रह पीताभ, वर्त्तुल, रेखात्रयपरिवृत, पद्मलाञ्छित अथवा पीताभ होती है। गोपीनाथ शिला वर्त्तुल, वकुलाकृति, वीरासनस्थ अथवा कृष्णवर्ण पुष्करयुक्त होती है। श्रीयुक्त, सूक्ष्मगह्वरविशिष्ट, श्यामलाभ निम्नाकृति शिरः, निम्नदन्त और वर्त्तुल शिलाको श्रीधर कहते हैं। मध्यदेशमें चक्र, स्थूल, दूर्वाभ, सङ्कीर्णद्वार और पीतरेखायुत शिला दामोदर कह-लाती है। ऊपर और नीचेकी ओर चक्रवत् गर्त्त, मुख उतना बड़ा नहीं और मध्यमें लम्बरेखा रहनेसे उसको राधा-दामोदर कहते हैं। मुख और पृष्ठदेश मयूरके गलेकी तरह वर्ण, स्थूलचक्र, वृहदास्य और मालाचिह्नाङ्कित शिला लक्ष्मीपति कहलाती है। यह लक्ष्मी और सम्पत्ति-दायक है। वर्त्तुल, वहुचिह्नयुक्त, ह्रस्वचक्र, लोलस्तन सन्निभ शिलाको चक्रपाणि कहते हैं। द्वारदेश पर चक्र और रक्तवर्ण शिला जगद्योनि कहलाती है। पीत और रक्त रेखाविमिश्रित, द्वार और वामभागमें चक्र, दक्षिण भागमें माला र नेसे उसको यज्ञमूर्त्ति कहते हैं। पार्श्व वा पृष्ठ पर दो नयनचिह्न दिखाई देनेसे उसको पुण्डरी-काक्ष शिला कहते हैं। इस शिलाको पूजा करनेसे सभी लोग वशीभूत होते हैं। अतिशय कृष्ण और

रक्तवर्ण रेखा द्वारा आवृतदेह, चक्रविशिष्ट, किञ्चित् कपिल तथा सूक्ष्म अथवा स्थूल शिलाका नाम अधोक्षज शिला है। शालग्रामके शिखर या ऊपरमें शिवलिङ्गाकार चिह्न रहनेसे योगेश्वर मूर्त्ति नामसे उनकी पूजा होती है। एकचक्रादि शिला मूर्त्तिमें भी यदि यह लिङ्गचिह्न रहे, तो शिलाचक्र योगेश्वर कहलाता है। इसकी पूजा करनेसे ब्रह्महत्यापातक दूर होता है। इन्द्रनीलाभ, वृत्तचक्र, महाविल और सर्पफणा तथा पार्श्वरेखासमन्वित शिला उपेन्द्र कहलाती है। श्यामल, स्वल्पद्वार, चक्रसमन्वित ऊर्द्धमुख और अधोदेश विन्दुयुक्त होनेसे उसको हरिमूर्त्तिशिला कहते हैं। यह कामद, मोक्षद और अन्नद तथा सर्वपापनाशिनी है। केवल वनमाला, पद्म और चक्र चिह्न रहनेसे उसको लक्ष्मीहरि कहते हैं।

जिस शिलाके सर्वाङ्गमें स्वर्णावर्ण विन्दु रहता है, वह यदि वर्त्तुल और ह्रस्वचक्र हो, तो उसे सप्तवीरश्रवस् कहते हैं। सुवर्णशृङ्गकी तरह द्युतिविशिष्ट, वर्त्तुल, स्निग्ध, केशर मध्यगत चक्र तथा पृष्ठरेखा और विंदुभूषित होनेसे गरुड़ध्वज कहलाती है। दो रंध्रविशिष्ट विषमस्थ, समचक्र तथा दो पक्ष द्वारा शोभित होनेसे वह गरुड़शिला नामसे पूजित होती है। जो शिला स्थूल चिह्न तथा कलस द्वारा शोभित है, उसे वैनतेय कहते हैं। जिसका पृष्ठदेश सित, अरुण और असिताभ वर्णविशिष्ट है तथा जिस पर अक्षमालाकृति चिह्न दिखाई देता है, उस शिलाका नाम दत्तात्रेय है। जिस शिलाके पृष्ठसे कण्ठ पर्यंत एक दो चार या पांच वलयाकार स्वर्ण रेखा रहती है तथा वह यदि श्याम, नील वा कृष्णवर्णकी हो, अथवा उसमें कुण्डलीकृत सर्पफणाका चिह्न दिखाई दे, तो वह शिला शेषमूर्त्ति कहलाती है। जिस शिलाके पार्श्व और समीपमें चार रेखा तथा मध्यदेशमें दो चक्र रहते हैं, उसका नाम चतुर्मुख शिला है। धनुषकी तरह आकारविशिष्ट, चक्र और पद्मसमन्वित तथा नील और श्वेतवर्ण मिश्रित होनेसे उसको हंसमूर्त्ति कहते हैं। मयूरके गलेके सदृश वर्णविशिष्ट, स्निग्ध, वर्त्तुलाकार द्वारयुत, विलके मध्य चक्र, चक्रके दक्षिण पार्श्वमें भास्करमूर्त्ति तथा वराहरेखासमन्वित शिला परहंस नामसे प्रसिद्ध है। शरीरमें सर्पफणाचिह्न, एकचक्र और उसमें दो समान चक्र, दक्षिणकी ओर पद्मपत्रसदृश चिह्न तथा हेमवर्ण कला जिस शिलामें विद्यमान रहती है, वह शिला हैहयमूर्त्ति कह कर विदित है।

३। त्रिचक्रसमन्वित ग्यारह प्रकारकी शालग्राम शिला पाई जाती है। वे पुरुषोत्तम, शिशुमार, त्रिविक्रम, मत्स्यमूर्त्ति, अधोमुख, नृसिंह, बुद्ध, अच्युत, कल्कि, त्रिलोचन, लक्ष्मीनारायण और अनिरुद्ध नामसे प्रसिद्ध है। ऊपर इन नामोंसे वर्णित द्विचक्र शिलासे इनका लक्षण स्वतन्त्र है।

मध्यमें स्वर्णवर्णचक्र तथा मस्तकदेशमें वृहत् चक्रसमन्वित और अतसी कुसुमकी तरह विन्दुशोभित शिला पुरुषोत्तम कहलाती है। दीर्घकाय ईषत् गह्वर, सम्मुख भागमें दो और पृष्ठभागमें एक चक्र रहनेसे वह शिशुमार कहलाती है। गह्वरमें दो तथा उन्नतपुच्छ एक चक्रविशिष्ट शिलाका नाम भी शिशुमार है। त्रिकोणाकार और चक्रत्रय भूषित शिलाको त्रिविक्रम कहते हैं। यह भ्रमराञ्जन सङ्काश ईषत् दीर्घ होती और पार्श्वमें कोदण्डलाञ्छन होता है। इसमें अश्वचक्र, विशालाकी तरह वर्णविशिष्ट मूर्द्धचक्र और गर्त्तमें चक्र रहता है। कांस्य सदृश वर्ण, तीन परस्पर विच्छिन्न दीर्घरेखायुत, द्वारके मध्य दो चक्र तथा पुच्छभागमें एक चक्र, दक्षिणमें शकटाकृति चिह्न और वाममें रेखा रहनेसे मत्स्यमूर्त्ति जानी जाती है। सम्मुख, पार्श्व और पृष्ठमें जिस शिलाके तीन चक्र देखे जायंगे, वही अधोमुखनृसिंह कहलाती है। जिस शिलाके दोनों चक्षु गह्वर दो चक्रसे अङ्कित तथा शिर पुच्छ वा ऊर्द्धभागमें सिर्फ एक चक्र रहता है, उसको बुद्धमूर्त्ति कहते हैं। नीचेकी ओर दो और वहिर्देशमें एक चक्र और सूक्ष्म गह्वरविशिष्ट सुशीतल शिला ही अच्युत नामसे प्रसिद्ध है। हयाकार और त्रिचक्रलाञ्छित शिला कल्किमूर्त्ति है। एकद्वार और त्रिचक्रयुक्त शिला त्रिलोचन है। इसी प्रकार त्रिचक्रशोभित एक और प्रकारकी शिला है जिसे लक्ष्मीनारायण कहते हैं। कृष्णवर्ण, नाभिसमीपगत समद्वार चक्र, ऊर्द्धमें सूक्ष्म चक्र और पार्श्वमें पुष्प चिह्न प्रकाशक चक्र रहनेसे वह अनिरुद्धशिला कहलाती है।

४र्थ वा चतुश्चक्र—ये शालग्राम शिलाएं चार चक्राङ्कित हैं। लक्षणका व्यतिक्रम रहने पर भी इनके नाममें विशेष पृथक्ता नहीं है।

केशराकार रेखासमन्वित, दीर्घमुख, वनमाला विराजित तथा विन्दुयुक्त और चार चक्रविशिष्ट शिला लक्ष्मीनृसिंह कहलाती है। द्विचक्रवर्गमें महानृसिंह शिलाके दूसरे जो जो लक्षण हैं, इसमें भी वही लक्षण देखे जाते हैं। शिवनाभियुत मस्तक वा पृष्ठदेश दो तथा दो या तीन और एक या चार चक्र रहनेसे वह हरिहर कहलाती है। यह शिला सुख और सौभाग्यदायक है। कोदण्डधारी, कुक्कुट अण्डके सदृश आभाशाली, श्यामल, उन्नतपृष्ठ, द्वारदेश पर नागेश्वर चिह्न, रेखाद्वययुक्त तथा पार्श्वदेशमें धनुषकी तरह आकृति दिखाई देनेसे वह दशकण्ठकुलान्तक राम नामसे प्रसिद्ध होगी। बहुदन्तयुक्त, एक वदनशाली और उसमें चार चिह्नसन्निविष्ट, अम्बुदप्रभ, धनुर्वाणांकुश छत्रचामर-चिह्नसंयुक्त, वामोन्नत और वनमाला चिह्नधारी शिला सीताराम कहलाती है। चार चक्रविशिष्ट तथा तूण पूरित वाणचिह्नधारी शिलाका नाम रामचन्द्र है। एक द्वार या दो द्वारमें चार चिह्न और गोष्पदचिह्न रहनेसे अथच वनमाला चिह्न नहीं दिखाई देनेसे उस शिलाको रघुनाथ शिला कहते हैं। पूर्वभाग और पश्चात् भागमें एक एक वदन तथा मध्यभागमें चार चक्रचिह्न, वनमालाविभूषित, नीलवर्ण शिलाको जनार्दन कहते हैं। नवीननीरदोपम, वनमालारहित तथा एक द्वारमें चार चक्र, ऐसी शिलाका नाम लक्ष्मीजनार्दन है। दूसरी जगह कण्ठदेश श्रीवत्स-चिह्नशोभित, वनमालान्वित, दक्षिणभागमें चार चक्र और गोष्पदचिह्न सम्वलित शिला लक्ष्मीजनार्दन कहलाती है। चतुर्भुज, मण्डलाकार, चतुश्चक्र चिह्नशाली और नवमेघसदृश द्युतिविशिष्ट शिलाका नाम चतुर्भुज मूर्त्ति है। चतुर्वक्त्र शिला चतुश्चक्र-समन्वित होनेसे पितामह कहलाती है। एकद्वारविशिष्ट, चतुश्चक्रयुक्त और छत्राकार शिला पुरुषोत्तम है तथा जिस शिलाके अर्द्धभागमें विवर और सुन्दर चक्र रहते हैं, उसे हरिब्रह्म मूर्त्ति जानना होगा। वदनमें दो चक्र और गह्वरमें दो, इस प्रकार चार चक्रान्वित शिलाके ऊपर यदि दो रेखा और उसके मध्य पद्म और छत्र चिह्न रहे तथा मूषल, असि, धनु, माला, शङ्ख, चक्र और गदाचिह्न दिखाई दे तो उसे लक्ष्मीनारायण कहेंगे। वाम और दक्षिण पार्श्वमें दो दो करके चक्र, मुखमें रक्तवर्ण दो कुण्डल, शङ्ख चक्र, गदा, शार्ङ्ग, वाण और कुमुदधारी तथा मूषल, ध्वज, श्वेतवर्ण छत्र एवं रक्तांशुकधारी शिला अच्युत नामसे परिचित है। वर्त्तुलाकार, क्षीर और ताम्र सवर्ण अथवा नील और श्वेत मिश्रित वर्णके वदनमें एक और मध्यदेशमें चार चक्र और त्रिविन्दु तथा चक्रके वाममें शंख और दक्षिणमें पद्मचिह्न रहनेसे वह वटपत्रशायी नारायण शिला कहलाती है। शिवनाभियुत तथा पार्श्वमें, वाम या दक्षिणमें दो दो करके चक्र रहनेसे उसे शङ्करनारायण कहेंगे। इसका पूर्वार्द्ध शंख सदृश श्वेतवर्ण तथा पश्चिमार्द्ध श्यामल, अधोदेश रक्त विन्दुयुक्त पद्मपुटसदृशचक्र और मस्तक पर शररेखा दिखाई देती है। इस शेषोक्त शिलाकी पञ्चचक्रवर्गके अन्तर्गत गणना करनेसे कोई दोष नहीं होता।

५म या पञ्चचक्र। जिस शिलाके दोनों द्वार पर चार चक्र तथा वाममें एक चक्र रहे तथा उसमें वाण, तूणीर, चाप और मालाचिह्न दिखाई दे, तो उसे सीताराम कहेंगे। वनमालाङ्कित अथच पञ्चचक्रयुक्त शिला श्रीसहाय नामसे परिचित है। लक्ष्मीनारायण शिलाके दो द्वारके वाम और दक्षिण ओर चार चक्र रहते हैं तथा वह श्रीवत्सशंखचक्राढ्य और पार्श्व चम्पकपुष्पयुक्त होता है। कृष्णवर्ण, पञ्चचक्र, नातिस्थूल, वृहद्द्वार, उन्नत तथा मध्यभाग निम्न और पञ्चचक्रयुक्त होनेसे वह गोविन्द कहलाती है। पूर्व और पार्श्व भागमें एक एक वदन तथा कृष्ण और नीलाम्बुद वर्णविशिष्ट, मध्यदेशमें एक चक्र तथा वाकी चार चक्र विन्दुयुक्त होनेसे उसको कंसमर्दन जानना होगा। द्विचक्रवर्गोक्त वासुदेव लक्षणाक्रान्त विन्दुयुक्त शिला पञ्च चक्रान्वित होने पर भी वह वासुदेव कहलाती है। अग्निपुराणके मतसे चतुश्चक्रान्वित जनार्दन लक्षणाक्रान्त शिला पञ्च चक्रविशिष्ट होने पर भी उसको वासुदेव कहते हैं।

६ष्ठ या षट्चक्र। निम्नलिखित शालग्राम शिला पर छः चक्र देखे जाते हैं। उनके चक्रविन्यासका कोई

विशेष नियम निर्देश नहीं किया जाता। वर्ण, चक्र और अन्यान्य लक्षणोंसे ये शिलाएं श्रीमूर्त्ति, तारक-ब्रह्मसीताराम, राजराजेश्वर, रामचन्द्र, कल्किमूर्त्ति, प्रद्युम्न और अनन्तपुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध है।

७म या सप्तचक्र। पट्टाभिराम, राजराजेश्वर, सर्वतोमुख नृसिंह, गदाधर, अनन्त और बलराम नामाभिधेय ६ प्रकारकी शिलाएं सात चक्रयुक्त होती हैं। ये राज्य, सुख और सौभाग्यप्रद हैं।

८म वा अष्टचक्र। नारायण चक्रपाणि पितामह पुरुषोत्तम तथा नवचक्रवर्णमें नराधिप शिला अति दुर्लभ हैं। एतद्भिन्न दशचक्रवर्णमें हृषीकेश, अनन्त विश्वरूप-गोविन्द और दशावतार शिला; एकादशमें अनिरुद्ध तथा द्वादशमें सूर्य या द्वादशात्ममूर्त्ति शिला पाई जाती है।

इसके बाद बहुचक्रविशिष्ट शिलाका विषय लिखा जाता है। इन सब शिलाओंमें साधारणतः तेरहसे इक्कीस चक्र देखे जाते हैं। ऐसी बहुचक्रान्वित शिलाकी पूजा करनेसे गृहस्थका अशेष मङ्गल तथा चतुर्वर्ग फल लाभ होता है। इस वर्गमें उक्त अनन्त नाना वर्णयुत होते हैं, कभी कृष्णवर्ण, कभी नवीन नीरदप्रभ नीलसन्निभ वर्णविशिष्ट पाई जाती है। इसमें चौदहसे बीस चक्र-चिह्न रहते हैं तथा बहुत-सी मूर्त्तियां सर्पफणा और वनमाला चिह्नयुक्त दक्षिणावर्त्त दिखाई देती है। अङ्कुशाकार, चक्र समोपगत रेखाविशिष्ट तथा पृष्ठदेश नीरद सदृश नीलवर्ण और बहुचक्रसमायुक्त होनेसे उसे हयग्रीव कहते हैं। जिस शिलाके बहुचक्र, बहुद्वार और बहुवर्ण देखे जाते हैं तथा जिसका उदर बड़ा होता है, वह शिला पातालनरसिंह कहलाती है। इसके तृतीय चक्रसे आरम्भ कर पार्श्वदेशमें क्रमशः दश चक्र विद्यमान रहते हैं। बहुचक्र, बहुद्वार और बहुरेखाविशिष्ट, बहुउदरयुक्त शिलाके अभ्यन्तरभागमें एक बड़ा चक्र रहनेसे वह बहुरूपी शिला कहलाती है। जिस शिलाके पुरोभागमें, पार्श्व और पृष्ठमें अनेक चक्र रहते हैं, उसे अधोमुख चक्र-शिला कहते हैं। बहु चक्राङ्कित, अनेक मूर्त्तिसमन्वित, पञ्चवक्त्र और स्थूलगात्र शिलाका नाम विश्वरूप है। इसके दो भेद हैं। शुक्लादि वर्ण शोभित तथा बहु गदा और चक्र द्वारा चिह्नित शिला पद्मनाभ कहलाती है। बीस या इक्कीस चक्र जिस शिलामें रहते हैं, उसका नाम विश्वम्भर है।

ऊपरमें वर्णित शिलाओंको छोड़ द्वारावती-शैलभव चक्र शिला या द्वारकाचक्र नाना वर्णोंका होता है। उनमेंसे कुछ पूज्य और कुछ त्याज्य है।

शालग्राम शिलाके पूजा-कालमें द्वारकाचक्र पूजाकी भी विधि है। इन दो शिलाओंका जहां एकत्र पूजन होता है, वहां मुक्ति अवश्यम्भावी है। गृही व्यक्ति वृद्धिकी कामनासे कभी भी एक शालग्राम शिलाकी पूजा न करें। एकचक्राशिला पूजा भी निषिद्ध है। दो चक्रयुक्त शिला ही पूजनीय है। ऐसी शिलाके साथ यदि द्वारावतीभव शिलाकी पूजा की जाय, तो पापमुक्ति होती है।

ऊपर शालग्राम शिलास्थित शिवलिङ्ग चिह्नका विषय कहा गया है। वे सब शिलास्थ लिङ्ग शिवनाभि, सद्योजात, वामदेव, ईशान, तत्पुरुष, सदाशिव, हरिहारात्मक, शिवनाभि, त्र्यम्बक, धूर्जटी, शम्भु, ईश्वर, मृत्युञ्जय, चन्द्रशेखर, और रुद्र नामसे परिचित है। इनके सिवा शालग्राम शिलामें श्रीविद्या, महाकाली और गौरी नाम्नी शक्तिके लक्षण तथा रवि और चन्द्रादि ग्रहलक्षण विद्यमान हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उनका विवरण यहां पर नहीं दिया गया।

शालग्राम-शिलापूजाविधि।

शालग्राम शिलाकी प्रतिदिन पूजा करनी होती है। शालग्रामकी पूजा करनेसे सभी देवताओंकी ही पूजा होती है। स्नान और सन्ध्यादि समाप्त करके आसन पर बैठ आचमन करना होगा।

आचमनके विधानानुसार "ओं विष्णुः ओं विष्णुः ओं विष्णुः" इस मन्त्रसे तीन बार थोड़ा जल मुखमें डाल कर "ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततं" इस मन्त्रसे चक्षु, कर्ण, नासिका आदि स्पर्श करे। आचमनके बाद सामान्यार्घ्य स्थापन करना होता है।

बाईं ओर जमीन पर एक चतुष्कोण रेखा खींच कर उसमें वृत्त बनाने तथा उसके मध्य त्रिकोण मण्डल

अङ्कित करे। पीछे "एते गन्धपुष्पे ओं आधारशक्तये नमः, एते गन्धपुष्पे ओं कूर्माय नमः, एते गन्धपुष्पे ओं अनन्ताय नमः, एते गन्धपुष्पे ओं पृथिव्यै नमः" इन चार मन्त्रोंसे गन्धपुष्प द्वारा पूजा करनी होगी।

पुष्प नहीं रहनेसे गन्ध और आतप तण्डुल ले कर "एते गन्धाक्षते ओं आधारशक्तये नमः" इत्यादि रूपसे पूजा करे। पीछे "फट्" इस मन्त्रसे कोशा (पंचपात्र) को प्रक्षालन कर जिन त्रिकोणमण्डलको अङ्कित कर उसकी पूजा की गई है, उसके ऊपर स्थापन करना होगा। पीछे नमः इस मन्त्रसे कोशामें जल तथा उसके अग्रभागमें गन्धपुष्प, विल्वपत्र और गर्भशून्य त्रिपत्र दूर्वाके अर्घ्य स्थापन कर पूजा करनी होगी। "मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं सूर्य्यमण्डलाय द्वादश कलात्मने नमः; ओं सोममण्डलाय षोड़श कलात्मने नमः" इस मन्त्र द्वारा अर्घ्यसे पूजा करनी होती है। इसके वाद जलशुद्धि करनी होगी। वादमें तर्जनीके अग्र द्वारा अङ्कुश मुद्रायोगसे वह जल आलोड़न कर,—

"ओं गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन सन्निधिं कुरु॥"

इस मन्त्रसे तीर्थका आवाहन करे। अनन्तर गन्धपुष्पसे "ओं जलाय नमः" इस मन्त्रसे जलमें गन्धपुष्प देना होता है। वादमें वं इस मन्त्रसे धेनुमुद्रा प्रदर्शन करे और मत्स्यमुद्रा द्वारा वह जल आच्छादन कर उसके ऊपर दश या आठ वार प्रणवमन्त्र जप करना होगा। पीछे तीन वार उस जलको जमीन पर फेंक कर अपने मस्तक और सभी पूजोपकरण पर कुछ कुछ छिड़क देना होगा।

इस प्रकार जल शोधन करके आसनशुद्धि करनी होगी। आसनके नीचे त्रिकोणमण्डल वना कर आसनके ऊपर 'ओं ह्रीं आधारशक्ति कमलासनाय नमः' इस मन्त्रसे चन्दनयुक्त पुष्प रख दे। पुष्पके अभावमें "एते गन्धाक्षते" कह कर सचन्दन आतप तण्डुल दे। पीछे आसन पर हाथ रख कर यह मन्त्र पढ़ना होता है। यथा—

'ओं आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनोपवेशने विनियोगः।';

"ओं पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥"

आसनशुद्धिके वाद कृताञ्जलि हो वाममें 'ओं गुरुभ्यो नमः, 'ओं परम गुरुभ्यो नमः ओं परापरगुरुभ्यो नमः, दक्षिणमें ओं गणेशाय नमः, ऊर्द्ध्वमें ओं ब्रह्मणे नमः; अधः ओं अनन्ताय नमः, मध्यमें ओं नारायणाय नमः' इस मन्त्रसे नमस्कार करे।

इसके वाद भगवान् सूर्य्यदेवको अर्घ्य देना होता है। रक्त पुष्प, विल्वपत्र, दूर्वा और आतप तण्डुल तथा रक्त चन्दन इन्हें कुशीमें ले कर 'ओं नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे जगत्सवित्रे सूचये सवित्रे कर्मदायिने इदमर्घ्यं ओं श्रीसूर्याय नमः।' यह कह कर सूर्यके उद्देशसे अर्घ्य देना होता है। पीछे इस मन्त्रसे सूर्यको प्रणाम करनेकी विधि है—

"ओं जवाकुसुमसङ्काशं काश्यपेयं महाद्युतिम्।
ध्वान्तारिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम्॥"

इसके वाद विघ्नापसरण करना होता है। यथा 'ओं नमः नारायण' इस मन्त्रसे चारों ओर दृष्टिपात करके ऊपरकी ओर ऊर्द्ध्वभागस्थ, 'अस्त्राय फट्' मन्त्रसे दक्षिण हस्त द्वारा मस्तकके ऊपर जल प्रोक्षण करके नभोमार्गस्थ तथा वामपादके गुल्फ द्वारा वाईं ओर जमीन पर तीन वार आघात करके भूतलस्थित सभी विघ्न दूर करे। इसके वाद ऊर्द्ध्व, अधः और मध्यस्थित सभी विघ्न दूर हो गये हैं, ऐसा समझना होता है। इसके वाद गन्ध और अक्षत नाराचमुद्रा द्वारा ग्रहण कर निम्न मन्त्र पाठ कर जमीन पर फेंक देना होगा—

"ओं अपसर्पन्तु ते भूताये भूता भुवि संस्थिता।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥"

पीछे मन ही-मन इस प्रकार चिन्ता करे, कि गृहमध्यस्थित सभी विघ्न दूर हो गये हैं।

इसके वाद गन्धादिकी पूजा करनी होती है। क्योंकि किसी द्रव्यकी पूजा न करके देवताको अर्पण करनेसे देवता उसे ग्रहण नहीं करते, वह असुरोंका भोग्य होता है। पहले 'वं एतेभ्यो गन्धादिभ्यो नमः' इस मन्त्रसे तीन वार जल प्रोक्षण करे। इसके वाद गन्धपुष्प ले

कर 'एते गन्धपुष्पे ओं' एतदधिपतये विष्णवे नमः, एते गन्धपुष्पे ओं एतद् सम्प्रदानेभ्यो नारायणादिभ्यो नमः, ओं एते गन्धपुष्पे ओं एतेभ्यो गन्धादिभ्यो नमः' इस मन्त्रसे एक एक गन्धपुष्प देना होगा।

इसके बाद शालग्रामशिलाको स्नान कराना होता है। शालग्राम-शिलामें घृत लगा कर ताम्रपात्रके ऊपर रख घण्टा बजाते बजाते इस मन्त्रसे स्नान कराना होगा।

"ओं सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात।
स भूमिं सर्वतः स्पृष्ट्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥"

इसके सिवा वेदादि चतुष्टय मन्त्र, पुरुषसूक्त और श्रीसूक्त पाठ करके भी स्नान कराया जा सकता है। एतद् स्नानीयोदक' 'ओं नारायणाय नमः' यह कह कर जल देना होगा। पीछे नारायणको जलसे निकाल कर गमछेसे अच्छी तरह पोंछ बादमें ऊपर और नीचे एक एक सचन्दन तुलसी दे कर उन्हें पूजा स्थानमें रखना होगा।

इसके बाद पुष्प शोधन करके पूजा करनी होती है। पुष्पके ऊपर हाथ रख कर 'ओं पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते, पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' इस मन्त्रसे पुष्प शोधन करना होता है। भूतशुद्धि, मातृकान्यास, पीठन्यास आदि इसी समय करने होते हैं। किन्तु पूजास्थलमें ये सब न्यासादि नहीं करने होते, अगर किये जांय तो अच्छा ही होता है। क्योंकि शास्त्रमें लिखा है, कि भूतशुद्धिके विना पूजा निष्फल होती है।

अनन्तर गणेशपूजा करनी होती है, क्योंकि पहले गणेशपूजा किये विना दूसरेकी पूजा नहीं करनी चाहिये। पहले गां, गीं, गुं, गें, गैं, गों, गः, इस मन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास करके पूजा करनी होती है; यथा—गां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, गीं तर्ज्जनीभ्यां स्वाहा, इत्यादि। इसके बाद कूर्मामुद्राके योगसे एक पुष्प ले कर ध्यान करना होता है। ध्यान-मन्त्र इस प्रकार है—

"खर्वं स्थूलतनुं गजेन्द्रवदनं लम्बोदरं सुन्दरं
प्रस्यन्दन्मदगन्धलुब्धमधुपव्यालोलगण्डस्थलम्।
दन्ताघातविदारितारिरुधिरैः सिन्दूरशोभाकरं
वन्दे शैलसुतासुतं गणपतिं सिद्धिप्रदं कर्मसु ॥"

इस मन्त्रसे ध्यान करके वह पुष्प अपने मस्तक पर रखना होगा। पीछे मानस उपचार द्वारा मन ही मन पूजा करके पहलेकी तरह कर और अङ्गन्यास कर फिरसे ध्यान पाठ करे और तब नारायणके मस्तक पर यह फूल चढ़ा दे। इसके बाद दशोपचारसे उसकी पूजा करनी होती है। 'एतद्पाद्यं ओं गणेशाय नमः' इस प्रकार अर्घ्य, मधुपर्क, आचमनीय, स्नानीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इस दशोपचारसे पूजा करनी होती है। इसमें अशक्त होने पर गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य इस दशोपचारसे भी पूजा की जा सकती है।

अनन्तर ओं गणेशाय नमः यह मन्त्र दश बार जप कर—

"ओं गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत् कृतं जपं।
सिद्धिर्भवतु तत्सर्वं त्वत्प्रसादात् सुरेश्वर ॥"

इस प्रकार जप समाप्त करके निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करे।

"ओं देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणाः।
विघ्नं हरन्तु हेरम्बचरणाम्बुजरेणवः ॥"

इसके बाद 'ओं शिवादिपञ्चदेवताभ्यो नमः, ओं आदित्यादि नवग्रहेभ्यो नमः' ओं इन्द्रादि दशदिक्पालेभ्यो नमः, ओं मत्स्यादि दशावतारेभ्यो नमः' इन सब देवताओंको दशोपचार, पञ्चोपचार या केवल गन्धपुष्प द्वारा पूजा करके सूर्यपूजा करनी होगी। 'ओं श्रीसूर्याय नमः' इस मन्त्रसे पूजा करनी है। ध्यान इस प्रकार है—

"रक्ताम्बुजासनमशेषगुणैकसिन्धुं
भानुं समस्तजगतामधिपं भजामि।
पद्मद्वयाभयवरान् दधतं कराब्जै
र्माणिक्यमौलिमरुणाङ्गरुचिं त्रिनेत्रम् ॥"

पूजाके बाद सूर्यदेवको पूर्वोक्त मन्त्रसे अर्घ्य दे कर प्रणाम करना होता है।

इसके बाद मूलपूजा अर्थात् नारायणपूजा करनी होगी। पहले नां नीं नूं नैं नौं नः इस मन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास कर कूर्ममुद्रा द्वारा एक पुष्प ले कर इस मन्त्रसे नारायणका ध्यान करना होता है। ध्यानमन्त्र इस प्रकार है—

"ओं ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् कनककुण्डलवान् किरीटी-
हारी हिरन्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः।"

इस मन्त्रसे ध्यान करके वह पुष्प मस्तक पर रखे और जपके बाद मानसपूजा करे। मानसपूजाके बाद फिरसे कर और अङ्गन्यास कर ध्यान करे और पुष्पको नारायणके मस्तक पर चढ़ावे। पीछे नारायणकी पूजा करनी होती है, "एतद्पाद्यं ओं नारायणाय नमः, इदमर्घ्यं ओं नारायणाय नमः, इदमाचनीयं ओं नारायणाय नमः, इदं स्नानीयोदकं ओं नारायणाय नमः, एषः गन्धः ओं नारायणाय नमः, एतद् सचन्दनपुष्पं ओं नारायणाय नमः, एतद् सचन्दनतुलसीपत्रं ओं नमस्तेबहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा ओं नारायणाय नमः एष धूपः ओं नारायणाय नमः एषः दीपः ओं नारायणाय नमः, एतद् नैवेद्यं ओं नारायणाय नमः।"

पाद्यादि नारायणाय नमः न कह कर विष्णवे नमः कहनेसे भी पूजा होगी। इसके बाद ओं नारायणाय नमः यह मन्त्र १० या १०८ बार जप कर गुह्याति मन्त्रसे जप विसर्जन करे। पीछे निम्नलिखित मन्त्रसे प्रणाम करना होता है—

"ओं ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्त्तिदं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दं।
त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्य्यवचसा यदगादरण्यं।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
ओं पापोहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व्वपापहरो हरिः॥
ओं नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥"

इसके बाद लक्ष्मी और सरस्वतोकी पूजा करनी होती है। ध्यान और प्रणामको छोड़ और सभी देवताओंकी पूजा एक-सी है। लक्ष्मी और सरस्वती पूजाके बाद इच्छानुसार सभी देवताओंकी पूजा की जा सकती है। क्योंकि शालग्राम शिलामें सभी देवताओं की पूजा होती है।

अनन्तर ओं कुलदेवतायै नमः, ओं सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, ओं सर्वाभ्यो देवीभ्यो नमः, इस मन्त्रसे सभी देव और देवीके उद्देशसे पूजा कर कृताञ्जलि हो निम्नोक्त मन्त्रपाठ कर भगवान् विष्णुके उद्देशसे कर्म समर्पण करना होता है। मन्त्र इस प्रकार है—

"यत्किञ्चित् क्रियते देव मया सुकृतदुष्कृतं।
तत् सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तं करोम्यहम्॥"

इसके बाद—

"ओं मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन।
यत् पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥"

इस प्रकार प्रार्थना कर नारायणके उद्देशसे प्रणाम करनेके बाद पूजा समाप्त करनी होती है।

पूजाके बाद निर्माल्य-धारण और नारायण-चरणामृत पान करना कर्त्तव्य है। नारायणको अन्नादि भोग तथा रातको आरति करके शीतली देनी होती है। प्रति दिन उक्त नियमसे शालग्राम शिला पूजन करना होता है।

शालग्राम-पूजामहात्म्य।

शालग्राम पूजा करनेसे माधव प्रसन्न होते हैं। उसके फलसे कोटियज्ञ या कोटिगोदान करनेका फल लाभ हो कर कोटि पाप विनष्ट होते हैं। यहां तक, कि शालग्राममूर्त्ति स्मरण, तन्नामकीर्त्तन या दर्शन करनेसे भी पापमुक्ति होती है। एक वर्ष तक जो व्यक्ति शालग्रामपूजा, स्पर्श और दर्शन करता है, सांख्ययोगके विना ही वह मोक्ष पाता है।

शालग्राम शिलाके सामने श्राद्ध, होम, दान आदि कार्यानुष्ठान सुप्रशस्त है। इस कारण सभी कृत्य शालग्राम शिलाके सामने किये जाते हैं। और तो क्या, शालग्राम शिलाके सामने देहत्याग करनेसे प्रेतात्मा विष्णुलोकको जाती है।

शालग्राम शिलाका नैवेद्य भक्षण प्रशस्त और पुण्यप्रद है। स्त्री, बालक और शूद्रको शालग्राम शिलाका स्पर्श नहीं करना चाहिये। यदि वह भूलसे स्पर्श कर ले, तो पञ्चगव्य, पञ्चामृत आदि द्वारा नारायणका अभिषेक और पूजन करना होता है।

शालग्रामगिरि (सं० पु०) शालग्रामस्य गिरिः। शालग्रामोत्पादक पर्वत। इस पर्वत पर शालग्रामशिला मिलती है, इस कारण इसको शालग्रामगिरि कहते हैं। वराहपुराणमें लिखा है, कि वराहदेवने कहा था, "शालग्राम पर्वत पर देव हर मेरे साथ मिल कर शिलारूपमें अवस्थान करते हैं तथा मैं भी वहां पर्वतरूपमें अवस्थित हूं। अतएव इस स्थानकी सभी शिलाओंको मेरा स्वरूप जानना होगा। अतएव यहां चक्रचिह्नादिकी कोई आवश्यकता नहीं। सभी शिलाओंकी यत्नपूर्वक पूजा करनी होगी।" (वराहपु० गोमेश्वरादि लिङ्ग महिमाध्याय) शालग्राम शब्द देखो।

शालङ्कटङ्कट (सं० पु०) सुकेशी राक्षसका एक नाम। विद्युत्केशीकी भार्या शालङ्कटङ्कटाके गर्भसे इसका जन्म हुआ। (वामनपु०)

शालङ्कायन (सं० पु०) शलङ्कस्यापत्यं शलङ्कु (नड़ादिभ्यः फक्। पा ४।१।९९) इति फक्। १ विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। २ नन्दी।

शालङ्कायनक (सं० पु०) शालङ्कायनानां विषयो देशः। (राजन्यादिभ्यो वुञ्। पा ४।२।५३) इति वुञ्। १ शालङ्कायन मुनियोंके रहनेका देश। २ शालङ्कायन।

शालङ्कायनजा (सं० स्त्री०) शालङ्कायनकी पुत्री सत्यवती जो व्यासकी माता थी।

शालङ्कायनजीवसू (सं० स्त्री०) सत्यवती, व्यासकी माता।

शालङ्कायनि (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम।

शालङ्कायनिन् (सं० पु०) शालङ्कायन प्रवर्त्तित शाखायुक्त शिष्य।

शालङ्कि (सं० पु०) पाणिनि ऋषिका एक नाम।

शालङ्की (सं० पु०) १ गुड़िया। २ कठपुतली।

शालज (सं० पु०) शालाज्जायते जन-ड। शालमत्स्य, एक प्रकारकी मछली।

शालदोज (फा० पु०) वह जो शालके किनारे पर बेल बूटे आदि बनाता हो।

शालद्वय (सं० क्ली०) शाला और पीतशाल।

शालन (सं० क्ली०) १ हरितक, साकसब्जी। (पु०) २ सह्याद्रिखण्डवर्णित राजभेद। (सह्या० ३१।२९)

शालनदी—उड़ीसा विभागमें प्रवाहित एक नदी। यह मयूरभञ्ज राज्यके मेघासनी पर्वतके दक्षिण ढालू प्रदेशसे निकली है। शालवन हो कर यह बहती है। इसलिये इसका नाम शाल नदी या शालकी हुआ है। इसके बाद यह टेढ़ी मेढ़ी हो ४२ धामराई नदीके मुहानेके पास आ मिली है।

शालनिर्यास (सं० पु०) १ राल, धूना। २ शाल या सर्ज नामका वृक्ष।

शालपत्रसमपत्री (सं० स्त्री०) शालपर्णी। (पर्यायमुक्ता०)

शालपर्णिका (सं० स्त्री०) १ मुरा नामक गन्धद्रव्य। २ एकाङ्गी नामकी ओषधि।

शालपर्णी (सं० स्त्री०) शालस्य पर्णवत् पर्णमस्याः ङीष्। स्वनामख्यात क्षुपविशेष, सरिवन नामक वृक्ष (Desmodium Gangeticum) पर्याय—सुदला, सुपत्री, स्थिरा, सौम्या, कुमुदा, गुहा, ध्रुवा, विदारिगन्धा, अंशुमती, सुपर्णिका दीर्घमूला, दीर्घपत्रिका, वातघ्नी, पोतिनी, तन्वी, सुधा, सर्व्वानुकारिणी, शाकघ्नी, सुभगा, देवी, निश्चला, व्रीहिपर्णिका, सुमूला, सुरूपा, शुभपत्रिका, सुपत्री, शालिपत्री, शालिदला, विदारी, सालपर्णी। (अमरटीका भरत) इसका गुण—ग्राहक, कफ और पित्तनाशक, गुरु, उष्ण, वातदोष, विषम ज्वर, मेह, शोफ और सन्तापननाशक। (राजनि०)

शालपर्ण्यादि (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार शालपर्णी आदि द्रव्य। जैसे—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बोजवन्द और बेलसोंठ, इन चार द्रव्योंका नाम शालपर्ण्यादि है। (चक्रदत्त) पित्त, श्लेष्मा और अतिसार रोगमें यह बड़ा फायदा पहुंचाता है।

शालपुष्प (सं० क्ली०) शालका फूल।

शालपुष्पभञ्जिका (सं० स्त्री०) क्रीड़ाद्रव्यविशेष, खेलनेकी एक चीज।

शालबाफ (फा० पु०) १ वह जो शाल या दुशाले आदि बुनता हो, शाल बुननेवाला। २ एक प्रकारका रेशमी कपड़ा जो लाल रङ्गका होता है।

शालबाफी (फा० स्त्री०) दुशाले बुननेका काम, शालबाफका काम।

शालभ (सं० क्ली०) १ बिना सोचे विचारे उसी प्रकार आपत्तिमें कूद पड़ना जिस प्रकार पतङ्ग आग या दीपक पर कूद पड़ता है । (त्रि०) २ शलभ-सम्बन्धी, पतिंगों के सम्बंधका ।

शालभञ्जिका (सं० स्त्री०) शालेन भज्यते निर्मीयते इति भन्ज (क्वुन् शिल्पिसंज्ञयोरपूर्वस्यापि । उण् २।३२) इति क्वुन् टापि अत इत्वं । १ काष्ठादि निर्मित पुत्तिका, कठपुतली । (राजतर० २।१६६) २ वेश्या, रंडी । (जटाधर) ३ क्रीड़ाविशेष, एक प्रकारका खेल ।

शालभञ्जी (सं० स्त्री०) काष्ठादि निर्मित पुत्तिका, कठपुतली ।

शालमत्स्य (सं० पु०) शिलिन्द नामक मछली ।

शालमय (सं० त्रि०) शाल-मयट् । शालविकार, शालस्वरूप ।

शालमर्कट (सं० पु०) दाड़िम वृक्ष, अनारका पेड़ ।

शालमर्कटक (सं० पु०) शालमर्कट देखो ।

शालयुग्म (सं० पु०) दोनों प्रकारके शाल अर्थात् सर्ज वृक्ष और विजयसार ।

शालरस (सं० पु०) शालस्य रसः । सर्जरस, राल, धूना ।

शालव (सं० पु०) लोध्र, लोध ।

शालवदन (सं० पु०) पुराणानुसार एक असुर । यह कालवदन और शृगाल-वदन भी कहलाता है ।

शालवरी—बम्बई-प्रेसिडेन्सीके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक नगर । यह धारवाड़से १६ कोस पूर्व-उत्तरमें स्थित है ।

शालवन्दी—मध्यप्रदेशके बेरार राज्यान्तर्गत एक शैल । इसका कुछ अंश इलिचपुर जिलेमें कुछ बेतुलजिलेमें पड़ा है । पर्वतकी तराईमें माघनदीके तट पर शालवन्दी ग्राम है । यह अक्षा० २१° २६´ उ० तथा देशा० ७७° ५६´ पू०के बीच पड़ता है । यहां एक ठण्ढे जलकी और एक गरम जलकी दो झीलें हैं । कहते हैं, कि यहां लवकुशका जन्म हुआ था ।

शालवाई—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक बड़ा गांव । अङ्गरेजोंके साथ मराठोंकी सन्धिके लिये यह प्रसिद्ध है । सालबाई देखो ।

शालवानक (सं० पु०) १ विष्णुपुराणके अनुसार एक देशका नाम । २ इस देशका निवासी ।

शालवाह—एक प्राचीन कवि ।

शालवाहन—बाघेल वंशीय एक राजा ।

शालवीन—दक्षिण-ब्रह्मके तानासारिमविभागके अन्तर्गत अङ्गरेजाधिकृत एक जिला । यह शालवीन पार्वत्य प्रदेश कहलाता है । पहले जब तक उत्तर-ब्रह्म अंगरेजराजके राज्यसीमाभुक्त नहीं हुआ था, तब तक यह उत्तरमें ब्रह्म सीमांतसे ले कर दक्षिण शालविन् नदी तक विस्तृत था । इसकी पूर्वी सीमामें शालवीन नदी और पश्चिमी सीमामें पौङ्गलौङ्ग पर्वतमाला विद्यमान है । सारा ब्रह्मराज्य अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद इस जिलेका बहुत हेर-फेर हुआ है । शालविन्, त्रिलिन और युन-जा लिन नामकी तीन नदियां इस पहाड़ी अधित्यका भूमि हो कर बह गई हैं । शेषोक्त नदीके किनारे जिलेका सदर पा पुन नगरी अवस्थित है । इस नदी और जिलेका विस्तृत विवरण सालविन शब्दमें देखो ।

शालवेत—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़ विभागका एक छोटा द्वीप । यह समुद्रतटसे २ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । मोवा अन्तरोपसे इसकी दूरी १७ मील और जाफराबादसे ८ मील उत्तर है । इस द्वीपकी लंबाई तीन पाव और चौड़ाई एक पाव होगी । यह जाफराबाद सामन्त राज्यके शासनभुक्त है । इसके दक्षिण और उत्तर दुर्गवाटिकाकी तरह प्राचीरादिके चिह्न आज भी दिखाई देते हैं । उन्हें देखनेसे मालूम होता है, कि पश्चिम भारतके विख्यात जल-डाकुओंने एक समय यहां दुर्ग बना कर आत्मरक्षाका उपाय निर्द्धारण किया था । अधिक सम्भव है, कि पुर्त्तगीजोंने द्वीउ नगर अधिकारके बाद शालवेतको जीता और उत्तरकी ओर अपना प्रभाव फैलानेकी चेष्टा की । पीछे १७३९ ई०में बसई नगरके अधःपतनके साथ पुर्त्तगीजोंका उत्तरी अंशसे प्रभाव जाता रहा और उस समय वे शालवेतका परित्याग कर दीउकी रक्षामें लग गये ।

शालवेष्ट (सं० पु०) शालस्य वेष्टो निर्यासः । शालनिर्यास, धूना ।

शालशाक (सं० क्ली०) नाड़ो शाक, पटुआ ।

शालशृङ्ग (सं० क्ली०) दीवारका ऊपरी भाग, दीवारकी चोटी ।

शालसार (सं० पु०) शालस्य सारः। १ द्रुम, वृक्ष, पेड़। २ हिंगु, हींग। ३ राल, धूना। ४ शाल साखू नामक वृक्ष।

शालसारादि (सं० पु०) वैद्यकोक्त शालादि द्रव्यगण। गण यथा,—शाल और पेशाशाल, दो प्रकारका करञ्ज, खदिर तथा दो प्रकारका चन्दन, आदि अर्ज्जुन, भूर्ज्ज, लोध्रयुग्म अर्थात् श्वेत और रक्तवर्ण लोध, शिरीष, अगुरु, कालीय, पूग, पूतिक और कर्कट ये सब द्रव्य शालसारादिगण हैं। ये गण श्लेष्मदोषनाशक हैं। (सारकौमुदी)

शालसेट—बम्बई नगरके उत्तरमें स्थित एक द्वीप। यह बम्बई प्रेसिडेन्सीके थाना जिलेके उपविभागरूपमें परिगणित है। भूपरिमाण २४१ वर्गमील है। यहां बहुत-से गुहामन्दिर, चैत्य और बौद्ध विहारके निदर्शन पाये जाते हैं। सालसेट देखो।

शाला (सं० स्त्री०) शो (बाहुलकात् श्यते रपि काळन्। उण् १।११७) इति उज्ज्वलदत्तोक्त्या काळन्। १ गृह, घर। २ शाखा, डाल। ३ स्थल, जगह। जैसे—पाठशाला, गोशाला। ४ इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राके योगसे बननेवाले सोलह प्रकारके वृत्तोंमेंसे एक वृत्त। इसका तीसरा चरण उपेन्द्रवज्राका और शेष तीनों चरण इन्द्र वज्राके होते हैं।

शालाक (सं० पु०) १ झाड़, झंखाड़। २ वह अग्नि जो झाड़ झंखाड़ जला कर उत्पन्न की जाय। (शतपथब्रा० ३।६।२।१६)

शालाकाभ्रेय (सं० पु०) शालकाभ्रु (शुभ्रादिभ्यश्च। पा ४।१।१२३) इति अपत्यार्थे ढक्। शालकाभ्रुका गोत्रापत्य।

शालाकिन् (सं० पु०) १ अस्त्रवैद्य, वह जो अस्त्र चिकित्सा करता हो। २ नापित, नाऊ, हज्जाम। ३ भाला-बरदार।

शालाक्य (सं० पु०) शलाका (कुर्व्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति अपत्यार्थे ण्य। १ शलाकाका गोत्रापत्य। २ वह चिकित्सक जो आँख, नाक, कान, मुंह आदिके रोगोंकी चिकित्सा करता हो। (क्ली०) ३ आयुर्वेदके अन्तर्गत आठ प्रकारके तन्त्रोंमेंसे एक। इसमें कान, आँख, नाक, जीभ, होंठ, मुंह आदिके रोगों और उनकी चिकित्साका विवरण है। (वैद्यकसंहिता २ अ०)

शालाक्यशास्त्र (सं० क्ली०) शालाक्य देखो।

शालाक्ष (सं० पु०) वैदिक कालके एक प्राचीन ऋषिका नाम। (आश्व० श्रौ० १२।१४।६)

शालाग्नि (सं० पु०) शालास्थित अग्नि, घरकी आग। (आश्व० श्रौ० ३।३।५)

शालाङ्की (सं० स्त्री०) पुत्तलिका, पुतली, गुड़िया।

शालाङ्गार (सं० पु०) १ कर्म्मकार, शालाग्नि। २ साखूकी लकड़ीका अंगार।

शालाजिर (सं० पु०) शराव, मिट्टीकी तश्तरी या प्याली आदि।

शालाञ्चि (सं० स्त्री०) शाकभेद, शान्ति नामक साग।

शालातुरीय (सं० पु०) मुनिभेद, पाणिनि मुनिका एक नाम।

शालात्व (सं० क्ली०) शाला भावे त्व। शालाका भाव या धर्म।

शालाथल (सं० पु०) शालाथल ऋषिका गोत्रापत्य।

शालाथलेय (सं० पु०) शालाथल शुभ्रादित्वात् अपत्यार्थे ढक्। शालाथलका गोत्रापत्य। (पा ४।१।१२३)

शालाद्वार (सं० क्ली०) शालायाः द्वारं। घरका दरवाजा।

शालाद्वार्य (सं० त्रि०) गृह-द्वार-सम्बन्धी, घरके दरवाजेका।

शालानी (सं० स्त्री०) विदारी, शालपर्णी, सरिवन।

शालापति (सं० पु०) शालायाः पतिः। गृहपति, घरका मालिक।

शालामर्कटक (सं० क्ली०) १ चाणक्यमूल, बड़ी मूली। २ बालमूलक। (भावप्र०)

शालामुख (सं० पु०) १ धान्यविशेष, एक प्रकारका धान। २ घरका सामना, घरका अगला भाग।

शालामुखीय (सं० त्रि०) १ शालामुख-सम्बन्धी। २ गृह-द्वार सम्बन्धी। (शाङ्ख्य० श्रौ० ५।४।६)

शालामृग (सं० पु०) शालाया मृगः। १ शृगाल, सियार, गीदड़। २ कुक्कुर, कुत्ता।

शालार (सं० क्ली०) शालां ऋच्छतीति ऋ-अण्। १ हस्तिनख, हाथीका नाखून। २ सोपान, सीढ़ी।

३ पक्षिपञ्जर, पक्षियोंके रहनेका पिंजड़ा। ४ दीवारमें लगी हुई खूंटी।

शालालुक (सं० पु०) शलालु (पर्ययमस्य शालालुनोऽन्यतरस्यां। पा ४।४।५) इति ठन्। शलालु, एक प्रकारको गन्धद्रव्य।

शालावत् (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

शालावत (सं० पु०) शालावतका गोत्रापत्य।

शालावती (सं० स्त्री०) हरिवंशके अनुसार विश्वामित्रकी कन्याका नाम।

शालावृक (सं० पु० शालायां गृहे शाखायां वा वृक इव। १ वानर, बंदर। २ कुक्कुर, कुत्ता। ३ शृगाल, सियार। ४ मृग, हरिन। ५ बिड़ाल, बिल्ली।

शालास्थलि (सं० स्त्री०) शालस्थलवासी रमणी।

शालि (सं० पु० क्लो०) शृणातीति शृ-बाहुलकात् इञ्, रस्य लत्वं। कलमादि धान्य, षष्टिकादि धान्य। देशभेदसे इसके अनेक भेद हैं। वैद्यकमें इसके नाम और लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है—

शालिधान्य, व्रीहिधान्य, शूकधान्य, शिम्बिधान्य और क्षुद्रधान्य ये पांच प्रकारके धान्य हैं। इन सब धान्योंमें जो सब धान्य हेमन्तकालमें उत्पन्न होते हैं तथा कण्डन अर्थात् बिना छांटनेसे ही श्वेत वर्णके होते हैं, उन्हें शालिधान्य कहते हैं। इस शालिधान्यके नाम ये हैं—रक्तशालि, कलम, पाण्डुक, शकुनाहृत, सुगन्धक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पाण्डक, महिषमस्तक, दीर्घशूक, काञ्चनक, हायन और लोध्रपुष्पक आदि। देशभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारके शालिधान्य हैं।

संस्कृत पर्याय—मधुर, रुच्य, व्रीहिश्रेष्ठ, नृपप्रिय, धान्योत्तम, केदार, सुकुमारक। किसी किसी पुस्तकमें मधुर स्थानमें कलम पाठ देखा जाता है। गुण—मधुर, कषायरस, स्निग्ध, बलकारक, मलकाठिन्य और मलका अल्पताकारक, लघुपाक, रुचिकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, शरीरका उपचयकारक, ईषत् वायु और कफ वर्द्धक, शीतवीर्य्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

स्थानविशेषमें उत्पन्न शालिधान्यका गुण भी भिन्न भिन्न प्रकारका होता है। दग्धभूमिजात शालि—कषाय रस, लघुपाक, मलमूत्रनिःसारक, रूक्ष और कफनाशक। खेत जोत कर धान रोपनेसे जो धान उत्पन्न होता है, वह वायु और पित्तनाशक, गुरु, कफ और शुक्रवर्द्धक, मलका अल्पताकारक, मेधाजनक और बलवर्द्धक होता है। बिना जोते हुए खेतमें जो धान आपे-आप उत्पन्न होता है, उसका गुण कुछ तिक्त, मधुर, कषायरस, पित्तघ्न, कफनाशक, वायु और अग्निवर्द्धक तथा कटु और विपाक माना गया है।

वापितशालि—जो शालिधान्य एक खेतसे उखाड़ कर फिर दूसरे खेतमें रोपा जाता है, उसे वापितशालि कहते हैं। यह धान्य मधुर, कषायरस, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, पित्तघ्न, कफवर्द्धक, मलका अल्पताकारक, गुरु और शीतवीर्य्य होता है।

अवापित शालिमें वापित शालिकी अपेक्षा कुछ कम गुण होता है। रोपितशालि—बोए हुए धानको उखाड़ कर रोपनेसे जो धान होता है, उसे रोपितशालि कहते हैं। यह नई अवस्थामें शुक्रवर्द्धक और पुरानी अवस्थामें लघु होता है। अतिरोप्याशालि—रोप्याशालिको उखाड़ कर रोपनेसे जो धान होता है, उसका नाम अतिरोप्याशालि है। यह रोप्याशालिको अपेक्षा अधिक गुणयुक्त और लघुपाक होता है।

छिन्नरूढाशालि—शीतवीर्य्य, रूक्ष, बलकारक, कफनाशक, मलरोधक, ईषत् तिक्तसंयुक्त, कषाय रस और लघु होता है। शालि धान्योंमें रक्तशालि सबसे श्रेष्ठ है। यह धान्य बलकारक, त्रिदोषनाशक, चक्षु-हितकर, मूत्रवर्द्धक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, अग्निकारक, पुष्टिजनक, पिपासा, ज्वर, व्रण, श्वास, कास और दाहनाशक माना गया है। महाशालि आदि रक्तशालिकी अपेक्षा अल्प गुणयुक्त होता है। (भावप्रकाश)

वाभटके मतसे—शालिधान्यके भिन्न भिन्न नाम हैं, यथा,—शालि, महाशालि, कलम, तूर्णक, शकुनाहृत, सारामुख, दीर्घशूक, रोध्रशूक, सुगन्धक, पतंग और तपनीय। ये शालि निर्दोष हैं। गुण—स्निग्ध, बलकर, कषाय, लघु, पथ्य, शीतल और मूत्रवर्द्धक। (वाभट सूत्रस्था० ६ अ०) सुश्रुतके मतसे नाम—शालि, कलम, सुगन्धक, शकुनाहृत, महाशालि, शीतभीरुक, रोध्रपुष्पक, महिषमस्तक, कर्दमक, पाण्डुक,

महादूषक, पुष्पाण्डक, पुण्डरीक काञ्चनक, दीर्घशूक, हायनक, दूषक, महादूषक। (सुश्रुत सूत्रस्था० ४६ अ०) राजनिघण्टके मतसे शालिधान्य दश प्रकारका है। धान्य शब्दमें विशेष विवरण देखो।

२ गंधमृग, गंधविलाव। ३ रसालेक्षु, अत्यन्त रसयुक्त ईख। ४ कृष्णजीरक, काला जीरा। ५ पक्षी, चिड़िया। ६ वासमती चावल। ७ एक यक्षका नाम।

शालिक आचार्य—एक दार्शनिक। ये न्यायामृततरङ्गिणीके प्रणेता रामाचार्यके गुरु थे।

शालिकनाथ—एक प्राचीन कवि।

शालिकनाथ मिश्र—नवरत्न, प्रकरणपञ्चिका, प्रशस्तपादभाष्यव्याख्या और शवरभाष्यटीका नामक चार मीमांसा तत्त्वविषयक ग्रन्थके प्रणेता। ये प्रभाकरगुरुके शिष्य थे। चित्सुखने अपने मानसनयनप्रसादनी ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

ये महामहोपाध्याय उपाधिसे भूषित थे। प्रमाणपरायण नामक इनका लिखा एक और ग्रन्थ मिलता है।

शालिका (सं० स्त्री०) शालिरेव स्वार्थे कन्। १ विदारी कन्द। २ शारिका, मैना। ३ शालपर्णी। ४ घर, मकान।

शालिखा—कलकत्तेके दूसरे पारमें गङ्गाके किनारे अवस्थित एक नगर। यह कलकत्तेका ही अंश समझा जाता है; किन्तु हावड़ा इसका विचार-सदर है। यहां म्युनिसिपलिटी है। यह वाणिज्यका प्रधानस्थान है। यहां बहुत-से कल कारखाने और जहाज बनानेके डक हैं।

शालिगोत्र (सं० पु०) वैदिकाचार्यभेद, सम्भवतः शालिहोत्र।

शालिगोप (सं० पु०) धान्यक्षेत्ररक्षी, वह जो खेतोंकी विशेषतः धानके खेतोंकी रखवाली करता हो।

(रघु ४।२०)

शालिञ्च (सं० पु०) शाकविशेष, एक प्रकारका साग पर्याय—शालञ्च, शितसार, पटुकेट, लौहसारक। वैद्यकके अनुसार यह चरपरा, दीपन तथा प्लीहा, ववासीर और कफपित्तका नाश करनेवाला माना गया है।

शालिञ्ची (सं० स्त्री०) शालिञ्च स्त्रियां ङीष्।

शालिञ्च देखो।

शालित (सं० त्रि०) शालयुक्त, शालिन्।

शालित्व (सं० क्ली०) १ युक्तत्व। २ शालियुक्तत्व।

शालिधान (हिं० पु०) वासमती चावल। यह धान जेठ मासमें बोया जाता है और अगहनके अन्त और पूसके आरम्भमें पक कर तैयार हो जाता है। इसे अगहनी या हैमन्तिक शालिधान्य भी कहते हैं। इसका पौधा मिट्टी तथा देशके अनुसार दो हाथसे ले कर तीन हाथ तक ऊंचा होता है। इसके पत्ते साधारण धानके समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकारका होता है। भेद सिर्फ इतना ही है, कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देरमें। यह धान बिना कुटे हुए ही सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुन्दर होता है। चावलोंमें यह सबसे उत्तम माना जाता है।

विशेष विवरण शालि शब्दमें देखो।

शालिन् (सं० त्रि०) शालास्यास्तीति इनि। १ शालविशिष्ट। पदके अन्तमें यह शब्द होनेसे युक्तवाचक होता है। (जयदेव) २ श्लाघ्य, सराहने योग्य।

(भागवत ३।२४।१)

शालिनाथ—१ रसमञ्जरी नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये वैद्यनाथके पुत्र थे। २ गीतगोविन्दटीकाके रचयिता।

शालिनी (सं० स्त्री०) १ ग्यारह अक्षरोंका एक वृत्त। इसमें क्रमसे एक मगण, दो तगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। दूसरा लक्षण—"मात्तौ गौ चेत् शालिनी वेदलोकैः।"

यह शब्द भी पहले अन्तमें होनेसे युक्त अर्थ समझा जाता है। यथा—गुणशालिनी, गुणविशिष्टा स्त्री।

२ पद्मकन्द, भसींड़। ३ मेथिका, मेथी।

शालिनीकरण (सं० क्ली०) न्यग्भावन, तिरस्कार, भर्त्सना। (सिका०)

शालिपर्णिका (सं० स्त्री०) शालपर्णी देखो।

शालिपर्णी (सं० स्त्री०) शालेरिव पर्णानि यस्याः ङीष्। १ पृश्नपर्णी, पिठवन। २ मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। ३ माषपर्णी, वन उरदी। ४ शालपर्णी, सरिवन।

शालिपिण्ड (सं० पु०) नागभेद। (भारत आदिपर्व)

शालिपिष्ट (सं० पु०) शाले पिष्टमिव शुभ्रत्वात् , स्फटिक, बिल्लौर पत्थर।

शालिभद्र—१ एक जैनाचार्य। ये जिनभद्र मुनि (११४८ ई०) के गुरु थे। २ काव्यालङ्कारटीकाके प्रणेता नमि (१०६३ ई०) के गुरु।

शालिमञ्जरी (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

शालिमूल (सं० क्ली०) हैमन्तिक धान्यमूल। (चरक)

शालिराट् (सं० पु०) हंसराज चावल।

शालिवह (सं० त्रि०) १ शाखावहनकारी। २ धान्यवहन कारी।

शालिवाह (सं० पु०) धान्यवहनकारी वृष, वह बैल जो धान ढोता हो, लदनाका बैल। (रामा० २।३२।२०)

शालिवाहन (सं० पु०) शक जातिका एक प्रसिद्ध राजा। इसने 'शक' नामक सम्वत् चलाया था। टाडराजस्थानमें लिखा है, कि यह गजनीके राजा 'गज'का पुत्र था। पिताके मारे जाने पर यह पञ्जाब चला आया और उस पर अपना अधिकार जमा लिया। इसने शालिवाहनपुर नामक नगर भी बसाया था। इसकी राजधानी गोदावरीके किनारे प्रतिष्ठानपुरमें थी। कहीं कहीं इसका नाम सातवाहन भी मिलता है। कथासरित्सागरमें लिखा है, कि इसे सात नामक गुह्यक उठा कर ले चला करता था, इसीसे इसका नाम सातवाहन पड़ा। सातवाहन देखो।

शालिशक्तू (सं० पु०) शालिधान्यकृत शक्तु, वह सत्तू जो वासमती चावलका बनता है। इसका गुण—मधुर, लघु, शीतल, ग्राही, रक्तपित्तनाशक, तृष्णा, छर्दि और ज्वरनाशक माना गया है।

(चरक सूत्र २७ अ०)

शालिसूर्य (सं० क्ली०) एक गाँवका नाम। (भारत वनपर्व)

शालिहोत्र (सं० पु०) १ घोटक, घोड़ा। २ पुराणानुसार गोत्रप्रवर्त्तक एक ऋषिका नाम। (क्ली०) ३ नकुलकृत अश्ववैद्यक, नकुलका बनाया हुआ घोड़ों और पशुओं आदिकी चिकित्साका शास्त्र। ४ भोजकृत अश्ववैद्यक।

शालिहोत्रमुनि—रैवतस्तोत्र और सिद्धयोगसंग्रहके रचयिता।

शालिहोत्रायण (सं० पु०) शालिहोत्रका गोत्रापत्य।

शालिहोत्री (सं० पु०) अश्ववैद्य, वह जो पशुओं और विशेषतः घोड़ों आदिकी चिकित्सा करता हो।

शाली (सं० स्त्री०) १ कृष्णजीरक, काला जीरा। २ मेथिका, मेथी। ३ शालपर्णी। ४ दुरालभा। ५ बंगालमें प्रवाहित एक छोटी नदी।

शालीकि—एक प्राचीन आचार्य। बौधायनश्रौतसूत्रमें इनका उल्लेख देखनेमें आता है।

शालीक्षुमत् (सं० पु०) शालि और इक्षुयुक्त क्षेत्र, वह खेत जिसमें शालि और ईख हो। (बृहत्सं० १६।१६)

शालीग्रामी (शालग्रामी)—गण्डकी नदीके स्थानविशेषका नाम।

शालीन (सं० त्रि०) शालाप्रवेशनमर्हतीति शाला (शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः। पा ५।२।२०) इति खञ् प्रत्ययेन निपातनात् सिद्धं। १ जो धृष्ट या उद्दण्ड न हो, विनीत। (मार्कण्डेयपु० ४१।६) २ सलज्ज, लज्जालु, जिसे लज्जा आती हो। ३ सदृश, समान, तुल्य। ४ शाला-सम्बन्धी, शालाका। ५ सम्पत्तिशाली, धनवान्, अमीर। ६ अच्छे आचार-विचारवाला। ७ जो व्यवहारमें कुशल हो, दक्ष, चतुर। (पु०) ८ उत्कृष्ट धान्य, बढ़िया धान। (दिव्या ५५६।८)

शालीनता (सं० स्त्री०) शालीनस्य भावः तल्-टाप्। १ शालीन होनेका भाव या धर्म। २ लज्जा, लाज, शरम। ३ अधीनता। ४ नम्रता।

शालीनत्व (सं० क्ली०) शालीनस्य भावः त्व। १ शालीन होनेका भाव या धर्म, अधृष्टता। २ शतपुष्पा, सौंफ। ३ सोआ नामक साग।

शालीनीकरण (सं० क्ली०) शालीन कृ-अभूततद्भावे च्वि। नम्रीकरण।

शालीना (सं० स्त्री०) मिश्रेयाख्य क्षुप, सौंफका पौधा।

शालीन्य (सं० पु०) शालीन (कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति अपत्यार्थे ण्य। शालीनका गोत्रापत्य।

शालीपुर—विशाल राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन गांव।

(भविष्यब्रह्मख०)

शालीय (सं० त्रि०) १ शाला या गृह-सम्बन्धी। २ शाल

अर्थात् शाल वृक्ष सम्बन्धी। (पु०) २ एक वैदिक आचार्यका नाम।

शालु (सं० क्ली०) शृणाति शीतागमे शॄ वाहुलकात् ञुण्, रस्य लत्वं। (उण् १।५) १ कमलकन्द, भसींड़। (पु०) २ कषाय द्रव्य। ३ चोरक या भटेउर नामक ओषधि। ४ भेक, मेढक। ५ एक प्रकारका फल।

शालुक (सं० क्ली०) १ कुमुदादि मूल, भसींड़। २ जायफल।

शालुम्ब्रा—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यहां चन्द्रावत राजपूतोंकी राजधानी थी। सालुम्ब्रा देखो।

शालूक (सं० क्ली०) शल (शलिमपिढभ्योमूकण्। उण् ४।४२) इति ऊकण्। १ कुमुदादि मूल, भसींड़। तैलङ्ग—जाजिकाय। संस्कृत पर्याय—पद्मशूरण, शालु। गुण—शीतल, बलकर, पित्त; दाह और रक्तदोषनाशक, गुरु, दुर्जर, स्वादुपाक, स्तन्य, वात और कफवर्द्धक, संग्राही, मधुर और रुचिकर। (राजनि०)

भावप्रकाशके मतसे यह शीतवीर्य, शुक्रजनक, पित्तघ्न, दाहनाशक, रक्तदोषापहारक, गुरु, दुष्पाच्य, मधुर विपाक, स्तन्यजनक, वायुवर्द्धक, कफप्रदायक, धारक, मधुर रस तथा रूक्ष होता है। शालूक मूल भी इसी प्रकारका गुणयुक्त है।

अल्पदिनोत्पन्न, अकालोत्पन्न, जीर्ण, व्याधियुक्त, कीट द्वारा भक्षित और अग्निजलादि द्वारा दूषित शालूक वर्जनीय है। (भावप्र०) २ मण्डूक, मेढक। ३ जातीफल, जायफल। (राजनि०) ४ एक प्रकारका रोग।

शालूकिनी (सं० स्त्री०) शालूक अस्त्यर्थे इनि। १ शालूकयुक्त भूमि। २ एक गाँवका नाम। (पा २।४।७) ३ एक तीर्थका नाम। (भारत वनप०)

शालूकेय (सं० पु०) शालूकका गोत्रापत्य।

(पा ४।१।१२३)

शालूर (सं० पु०) शलति प्लवेन गच्छतीति शल (खर्जिपिञ्जादिभ्यः ऊरोलचौ। उण् ४।९०) इति ऊर। भेक, मेढक।

शालूरक (सं० पु०) एक प्रकारका कीटाणु जो अंतड़ियोंमें पीड़ा उत्पन्न करता है।

शालेममिश्री—काबुल और काश्मीर आदि प्रदेशोंके वृक्षोंका गोंद या आटा। यह बड़ा कड़ा होता है। यह गरम जलमें गल जाता है। गुण—उष्ण, गुरु, आग्नेय, रूक्ष, शुक्रवर्द्धक, वर्णका औज्ज्वल्यकारक, कामवर्द्धक, धातुपोषक, मेध्य, हृद्य, कफ, यक्ष्मा, कास, श्वास, स्वरभेद, दुर्बल, उन्माद, अपस्मार, ऊरुस्तम्भ, शूल, मूत्ररोग, प्रमेह, उदरी, शोथ, वृद्धि, गलरोग, ग्रन्थि, अर्बुद, श्लीपद, विद्रधि, व्रण, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट, मुख, कर्ण, नेत्र, शिर, योनि और सूतिका इन सब रोगोंका नाशक। मतान्तरसे स्निग्धकारक, बालकका हितकर और पथ्य। (द्रव्यगुण)

शालेय (सं० पु०) शालीनां क्षेत्रं शालि (व्रीहिशाल्योर्ढक। पा ५।२।२) इति ढक्। १ शाल्युद्भव क्षेत्र, शालि धानका खेत। २ मधुरिका, सौंफ। ३ मूली। (त्रि०) ४ शालसम्बन्धी, शाल वृक्षका। ५ शाला-सम्बन्धी, घरका।

शालेया (सं० स्त्री०) शालेय-टाप्। १ मिश्रेया, मेथी। २ सोआ।

शालै—एक जाति।

शालोत्तरीय (सं० पु०) शालोत्तरे ग्रामे भवः शालोत्तर-छ। पाणिनि मुनि, शालातुरीय। (त्रिका०)

शालोन—युक्तप्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक नगर।

शाल्मल (सं० पु०) १ शाल्मलि वृक्ष, सेमलका पेड़। २ सात द्वीपोंमेंसे एक, शाल्मलि द्वीप। यह द्वीप क्रौञ्चद्वीपसे दूना है। (मत्स्यपु० १०० अ०) ३ मोचरस। ४ शाल्मलि देखो।

शाल्मलि (सं० पु० स्त्री०) स्वनामख्यात महातरु, सेमलका पेड़ (Bombax malabaricum) उत्कल—बोनरो, तामिल—पुला, महाराष्ट्र—शाम्वरी। संस्कृत पर्याय—पिच्छिला, पूरणी, मोचा, स्थिरायु, दुरारोहा, शाल्मलिनी, शाल्मल, तुलिनी, कुक्कुटा, रक्तपुष्पा, कण्टकारी, मोचनी, चिरजीवी, पिच्छिल, रक्तपुष्पक, तूलवृक्ष, मोचाख्य, कण्टकद्रुम, रक्तोत्पल, रम्यपुष्प, बहुवीर्या, यमद्रुम, दीर्घद्रुम, स्थूलफल, दीर्घायु, कण्टकाष्ठ।

(भावप्रकाश)

इसके धड़ और डालियां कण्टकाकीर्ण होती हैं। इसकी लम्बी लम्बी डांड़ीमें पंजेकी तरह पांच पांच या छः छः पत्ते लगे रहते हैं। फूल मोटे मोटे दलोंसे गठित बड़े बड़े और गहरे लाल होते हैं। फूलोंमें पांच दल होते हैं

और उनका घेरा बहुत बड़ा होता है। फाल्गुनके महीने में इस पेड़के सारे पत्ते झड़ जाते हैं। उस समय यह इन्हीं लाल लाल फूलोंसे आच्छादित रहता है। जब फूलोंके दल भी झड़ जाते हैं, तब केवल ढोडा या फल रह जाते हैं। उन फलोंके अन्दर अत्यन्त मुलायम रेशमकी तरह रूई होती है। उस रूईमें बिनौलेके-से बीज होते हैं। सेमलके ढोडे या फलोंकी निस्सारता भारतीय कवि परम्परामें बहुत पहलेसे प्रसिद्ध है। 'सेमर सेई सुवा पछताने' यह एक कहावत सी हो गई है। सेमलकी रूईका सूत तैयार नहीं किया जा सकता, इसलिये लोग इसे गद्दों तथा तकियोंमें भरते हैं। इसकी लकड़ी पानीमें खूब ठहरती है और नाव बनानेके काममें आती है। आयुर्वेदमें सेमल बहुत उपकारी ओषधि मानी गई है। यह मधुर, कसैला, शीतल, हलका, स्निग्ध, पिच्छिल तथा शुक्र और कफको बढ़ानेवाला कहा गया है। सेमलकी छाल कसैली और कफनाशक; फूल शीतल, कड़वा, भारी, कसैला, वातकारक, मलरोधक, रूखा तथा कफ, पित्त और रक्तविकारको शान्त करता है। फलके गुण फूल हीके समान हैं। सेमलके नये पौधेकी जड़को सेमलका मूसला कहते हैं। कारण, कामोद्दीपक और नपुंसकताको दूर करनेवाला माना जाता है। सेमलका गोंद मोचरस कहलाता है। यह अतिसारको दूर करता है और बलको बढ़ाता है। इसके बीज स्निग्धताकारक और मदकारी होते हैं तथा कांटेमें फोड़े, फुंसी, घाव, छीप आदि दूर करनेका गुण होता है।

फूलोंके रङ्गके भेदसे सेमल तीन प्रकारका है—पहला साधारण लाल फूलोंवाला, दूसरा सफेद फूलोंका और तीसरा पीले फूलोंका। इनमेंसे पीले फूलोंका सेमल कहीं देखनेमें नहीं आता। सेमल भारतवर्षके गरम जंगलोंमें तथा बरमा, सिंहल और मलयमें अधिकतासे होता है।

शाल्मलिक (सं० पु०) शाल्मलि (बुञ्छणकठजिलेति। पा ४।२।८०) इति कुमुदादित्वात् ठक्। रोहितक वृक्ष, रोहिड़ा।

शाल्मलिद्वीप—सात द्वीपोंमेंसे एक द्वीपका नाम। ब्रह्माण्डपुराण पढ़नेसे जाना जाता है, कि इस द्वीपमें बहुत-से शाल्मलिवृक्ष थे; इसीलिये यह शाल्मलिद्वीपके नामसे विख्यात हुआ है। इसी द्वीपके द्वारा इक्षुसमुद्र परिवेष्टित है। यहां श्वेत वर्णमें कुमुदपर्वत, लोहितवर्णमें उत्तमपर्वत, जीमूतवर्णमें बलाहकपर्वत, हरितवर्णमें द्रोणपर्वत, वैद्यु तवर्णमें कङ्कपर्वत, मानसवर्णमें महिषपर्वत एवं सुप्रभवर्णमें ककुदपर्वत विद्यमान है। इन सप्तवर्षोंमें योनी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचनी और निवृत्ति नामक सात प्रधान नदियां प्रवाहित होती हैं। इन सब नदियोंसे असंख्य शाखा-प्रशाखा नदियाँ निकली हैं। इसका आकार प्लक्षद्वीपसे दूना है।

(ब्रह्माण्डपु० अनुषंग ५२ अ०)

शाल्मलिन् (सं० पु०) शाल्मल आश्रयत्वेनास्त्यस्येति इनि। गरुड़। (त्रिका०)

शाल्मलिनी (स्त्री०) शाल्मलि वृक्ष, सेमलका पेड़।

शाल्मलिपत्रक (सं० पु०) शाल्मलिपत्रमिव पत्रं यस्य। सप्तच्छद वृक्ष, सतिवन। (राजनि०)

शाल्मलिस्थ (सं० पु०) शाल्मली वृक्षे तिष्ठतीति स्थाक। गरुड़।

शाल्मली (सं० पु०) एक राजाका नाम।

(सह्या० ३३।१६०)

शाल्मली (सं० स्त्री०) शाल्मलि कृदिकारादिति ङीष्। शाल्मलि वृक्ष, सेमलका पेड़। अमरटीकामें भरतने इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की है, 'शलति दैर्घ्यात् दूरं गच्छति शाल्मलिः शल ज गतौ नाम्नीति मलिन् वृद्धिः। द्वयोरित्युक्ते स्त्रीपक्षे पाच्छोणादीति ङीपि शल्मली च शाल्मलिश्चेति केचित् तन्मते विभाषया वृद्धिः।' (भरत)

शाल्मलीकण्टक (सं० पु०) स्वनामप्रसिद्ध कण्टकविशेष, सेमलका काँटा। यह व्यङ्गरोगनाशक होता है।

(वाभट उत्तर० ३२ अ०)

शाल्मलीकन्द (सं० पु०) शाल्मल्याः कन्दः। शाल्मलीकी जड़। पर्याय—विलुल, वैनवासक, वनवासी, मलघ्न, मलहन्ता। इसका गुण—मधुर, मलसंग्रह, रोध और जयकारक, शीतल, पित्त, दाह, शोक और सन्तापनाशक।

(राजनि०)

शाल्मलीकल्प (सं० पु०) वैद्यशास्त्रके अन्तर्गत चिकित्साकल्पभेद। (जयदत्त)

शाल्मलीफल (सं० पु०) शाल्मल्याः फलमिव फलं यस्य। १ तेजवल या तेजफल नामका वृक्ष। (क्ली०) २ सेमलका फल।

शाल्मलीफलक (सं० क्ली०) सुश्रुतके अनुसार काठकी वह पट्टी जिस पर रगड़ कर छुरे आदिकी धार तेज की जाती है। (सुश्रुत सूत्रस्था० ८, ६ अ०)

शाल्मलीवेष्ट (सं० पु०) शाल्मल्या वेष्टः। शाल्मली-निर्यास, सेमलका गोंद। पर्याय—पिच्छा, मोचरस, शाल्मलीवेष्टक, मोचस्राव, मोचनिर्यास; इसका गुण—शीतल, ग्राहक, स्निग्ध, बलकर, कषाय, प्रवाहिका, अति सार, आम, कफ, पित्त, रक्तदोष और दाहनाशक।

(भावप्र०)

शाल्मलीवेष्टक (सं० पु०) शाल्मलीवेष्ट देखो।

शाल्मलीसत्त्वनिर्यास (सं० पु०) मोचरस।

(भैषज्यरत्ना०)

शाल्मलीस्थल (सं० क्ली०) शाल्मली द्वीप।

शाल्मलिद्वीप देखो।

शाल्मल्या (सं० स्त्री०) शाल्मलिकी स्त्री अपत्य।

शाल्यपति (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

(संस्कारकौ०)

शाल्व (सं० पु०) १ देशविशेष, शाल्वदेश। २ राजविशेष, एक राजाका नाम। ये सौभ राज्यके अधिपति थे। महाभारतमें लिखा है, कि जिस समय काशिराजकी लड़कियोंका स्वयम्बर हो रहा था, उस समय भीष्मने राजाको कन्याओंको उनसे जबर्दस्ती छीन लाये थे। शाल्वराजने भीष्मके साथ युद्ध किया था; किंतु वे युद्धमें पराजित हुए। युद्धविजयके बाद काशिराजकी बड़ी लड़कीने कहा—"मैं पहले ही सौभराज्यके अधिपति शाल्वराजको अपना पति कर चुकी हूं, वे भी मनही मन मुझे स्त्रीरूपमें ग्रहण कर चुके हैं। मेरे पिताकी भी यही अभिलाषा थी। मैंने स्वयंवरमें उन्हींके गलेमें माला डाली। आप धर्मज्ञ हैं, इस समय सोच विचार कर धर्मानुसार कार्य करें।

भीष्मने उसका अभिप्राय समझ कर शाल्वराजके साथ उसका विवाह कर दिया।

(भारत आदिप० १०२।३ अ०)

शिशुपालके साथ शाल्वकी विशेष आत्मीयता थी। जब श्रीकृष्णने शिशुपालका वध किया, तब श्रीकृष्णको मार डालनेके अभिप्रायसे शाल्वराजने द्वारिकापुरीको घेर लिया। प्रद्युम्न प्रभृति यादवोंके साथ इसका घोर युद्ध हुआ। आखिर श्रीकृष्णने उसे यमपुर भेज दिया।

(भारत वनप० १५-२० अ०)

शाल्वक (सं० त्रि०) शाल्वदेशभव।

शाल्वकिनी (सं० स्त्री०) रामायणके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। (रामा० ६।१०६।४६)

शाल्वगिरि (सं० पु०) एक प्राचीन पर्वतका नाम।

(पा ६।३।११७)

शाल्वण (सं० पु०) १ वह लेप जो फोड़ेको पकानेके लिये उस पर चढ़ाया जाता है, पुलटिस। २ चोखा, भरता।

शाल्वसेनि (सं० पु०) शाल्वसेनी देखो।

शाल्वसेनी (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन देशका नाम। (भारत ६।६।६०) यह जनपद गोदावरी नदीके पश्चिममें अवस्थित था। पाश्चात्य भौगोलिकोंने इसे Salakenoi शब्दमें उल्लेख किया है। २ इस देशका निवासी।

शाल्वायन (सं० पु०) शाल्व राजाके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

शाल्विक (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी जिसे क्षुद्रचूड़ भी कहते हैं।

शाल्वेय (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी। ३ इस देशका अधिपति।

शाल्वेयक (सं० पु०) शाल्वेय जनपदका रहनेवाला।

शाव (सं० पु०) शव्यते प्राप्यते इति शव-गतौ घञ्। १ शिशु, बच्चा, विशेषतः पशुओं आदिका बच्चा। २ श्मशान, मरघट। ३ मृतक, मुरदा। ४ भूरा रङ्ग। ५ सूतक जो किसीके मर जाने पर उसके सम्बन्धियोंको लगता है। (त्रि०) ६ शव-सम्बन्धी, शवका।

(विधितत्त्व)

शावक (सं० पु०) शाव एव स्वार्थे कन्। शाव, बच्चा, विशेषतः पशुओं आदिका बच्चा।

शावता (सं० स्त्री०) शावस्य भावः तल्-टाप्। १ शाव-

का भाव या धर्म, शावत्व, बच्चापन। २ श्यामता।
शावर (सं० पु०) शवर-अण्। १ पाप, गुनाह। २ अपराध, कसूर। ३ लोध्र वृक्ष, लोधका पेड़। ४ शवर-स्वामिकृत भाष्य, मीमांसाभाष्य। ५ शिवकृत तन्त्र विशेष। (त्रि०) ६ शवर-सम्बन्धी, शवरका।
शावरकरोध्र (सं० पु०) अक्षिभेषजापरसंज्ञक स्वनाम-ख्यात लोध्र, पठानी लोध। (वाभट)
शावरचन्दन (सं० पु०) एक प्रकारका चन्दन।
शावरभेदाक्ष (सं० क्ली०) ताम्र, ताँबा।
शावरी (सं० स्त्री०) शूकशिम्बी, केवाँच।
शावशायन (सं० पु०) शवसका गोत्रापत्य।
शाश (सं० त्रि०) शश-अण्। शश सम्बन्धी।
(याज्ञवल्क्य १।१५८)
शाशक (सं० त्रि०) शशकस्येदं शशक-अण्। शशक-सम्बन्धी।
शाशविन्दव (सं० त्रि०) शशविन्दुका अपत्य।
शाशविन्दवी (सं० स्त्री०) शशविन्दुकी लड़की।
शाशादनक (सं० त्रि०) शशादन (धूमादिभ्यश्च। पा ४।२।१२७) इति वुञ्। शशादन-देशवासी।
शाशिक (सं० पु०) १ एक प्राचीन देशका नाम। २ इस देशका निवासी।
शाश्वत् (सं० पु०) शाश्वत, नित्य, स्थायी।
शाश्वत (सं० त्रि०) शश्वद्भवं, शाश्वत्-अण्। १ चिर-स्थायी, जो सदा स्थायी रहे, कभी नष्ट न होनेवाला, नित्य।
"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।"
(रामायण १।२।१५)
पारिभाषिक शाश्वत यथा—देवपूजा प्रभृति, ब्राह्मणों-के उद्देशसे दान, सगुणविद्या, सुहृद् और मित्र इन सबों को पारिभाषिक शाश्वत कहते हैं॥
(गरुड़पु० नीतिसा० ११६ अ०)
(पु०) २ वेदव्यास। ३ शिव। (भारत १३।१७।३२) ४ स्वर्ग। ५ अन्तरिक्ष।
शाश्वतिक (सं० त्रि०) शाश्वत, नित्य, स्थायी।
शाश्वती (सं० स्त्री०) पृथ्वी।
शाषमान (सं० पु०) एक वैद्यकशास्त्रके वेत्ता।

शाष्कुल (सं० त्रि०) मांसाशी, मांस या मछली खाने-वाला, गोश्तखोर।
शाष्कुलिक (सं० क्ली०) शष्कुल समूहार्थे ठक्। शष्कुली-समूह।
शाष्पक (सं० त्रि०) शष्प (धूमादिभ्यश्च। पा ४।२।१२७) इति वुञ्। १ शष्पबहुल देश। २ शष्पबहुल देशस्थित।
शाष्पेय (सं० पु०) एक वैदिक आचार्यका नाम।
(पा ४।३।१०६)
शाष्पेयिन् (सं० पु०) शाष्पेय शाखाध्यायी।
शास् (सं० स्त्री०) १ शासन। २ आयुधविशेष।
"तं विद्धि पूर्वीरभिसन्धि शासा" (ऋक् ७।४८।३)
'शासा शासनेन स्वकीयया क्षया यद्वा विशस्यते हिंस्यते-ऽनेनेति शास् शब्द आयुधवाची तेन' (सायण)
शास (सं० पु०) शास घञ्। १ अनुशासन। २ स्तव, स्तुति।
"रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति" (ऋक् १।५४।७)
'शासं इन्द्रकर्त्तृकमनुशासनं यद्वा तस्य स्तुतिं शासु अनुशिष्टावित्यस्माद्भावे घञ्' (सायण)
शासक (सं० पु०) शास-ण्वुल्। १ शासनकर्त्ता, वह जो शासन करता हो। २ वह जिसके हाथमें किसी नगर, प्रान्त या देश आदिकी राजकीय व्यवस्था हो; हाकिम।
शासन (सं० क्ली०) शास ल्युट्। १ आज्ञा, हुक्म। पर्याय—अववाद, निर्देश, शिष्टि, शास्ति, आदेश, आदे-शन, शास्त्र। (जटाधर)
"कुर्व्वीत शासनं राजा सम्यकसारापराधतः।"
(मनु ६।२६२)
कुल्लूकने शासन शब्दका अर्थ दण्ड किया है, चोरी आदि कोई पाप करने पर राजा धर्मानुसार उसको शासन अर्थात् दण्ड दें।
२ राजदत्त भूमि, मुआफ़ी। ३ लिखित प्रतिज्ञा, पट्टा, ठीका। ४ शास्त्र। शास्त्र द्वारा सभी लोग शासित होता है, इसीसे इसे शासन कहते हैं। ५ शास्ति, दण्ड, सजा। ६ इन्द्रिय-निग्रह। ७ किसी नगर, प्रान्त या देश आदिकी राजकीय व्यवस्था करनेका काम; हुकूमत। ८ वह परमाना या फरमान जिसके द्वारा किसी व्यक्तिको

कोई अधिकार दिया जाय। ९ किसीके कार्यों आदिका नियंत्रण करना। १० किसीको अपने अधिकार या वशमें रखना।

शासनदेवता (सं० स्त्री०) जैनियोंकी एक देवी। (हेम)

शासनदेवी (सं० स्त्री०) जैनियोंकी एक देवी। (शब्दरत्नमा०)

शासनधर (सं० पु०) धरतीति धरः शासनस्य धरः। १ राजदूत, एलची। २ शासक।

शासनपत्र (सं० क्ली०) वह ताम्रपत्र या शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी या खोदी हुई हो।

शासनवाहक (सं० पु०) १ राजदूत, एलची। २ आज्ञा-वाहक, वह जो राजाकी आज्ञा लोगोंके पास पहुंचाता हो। (कामन्दकीय १२।३)

शासनशिला (सं० स्त्री०) वह शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी हो।

शासनहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्, शासनस्य हरः। १ राजदूत, एलची। २ आज्ञावाहक, वह जो आज्ञाकी आज्ञा लोगों तक पहुंचाता हो।

शासनहारक (सं० पु०) १ राजदूत, एलची। (कामन्दकीय नीति १२।३)

२ आज्ञावाहक, वह जो राजाकी आज्ञा लोगों तक पहुं-चाता हो।

शासनहारिन् (सं० पु०) राजदूत, एलची। (रघु० ३।६८)

शासनी (सं० स्त्री०) शासन स्त्रियां ङीष्। धर्मोपदेश-कर्त्री, वह स्त्री जो लोगोंको धर्मका उपदेश करती हो।
"अकृपयन् मनुष्यस्याशासनी" (ऋक् १।३१।११)

शासनीय (सं० त्रि०) शास-अनीयर्। १ शासनार्ह, शासन करनेके योग्य। २ सुधारनेके योग्य। ३ दण्ड देनेके योग्य, सजा देनेके लायक।

शासित (सं० त्रि०) शास-क्त। १ कृतशासन, जिसका शासन किया जाय, शासन किया हुआ। २ दण्डित, जिसे दण्ड दिया जाय। (पु०) ३ प्रजा। ४ निग्रह, संयम।

शासितृ (सं० पु०) शास्-तृच्। १ शास्ता, शासन-कर्त्ता। (मनु ७।१७) २ व्याख्याता। (मनु २।१५०)

शासिन् (सं० पु०) शास-णिनि। शासक, शासन-करनेवाला। इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनानेमें, उसके अन्तमें किया जाता है।

शास्तृ (सं० पु०) शासक।

शास्ति (सं० स्त्री०) शास-बाहुलकात् ति। (उणा् ४।१७६) १ शासन। २ दण्ड, सजा।

शास्तृ (सं० पु०) शासु (तृनतृचौ शंसीति। उणा् २।९४) इति असंज्ञायामपि तृन् सच अनिट्। १ शासनकर्त्ता, शासक। पर्याय—देशक, शासिता।
"द्वौ शास्तारौ त्रिलोकेऽस्मिन् धर्माधर्मौ प्रकीर्त्तितौ॥"
(अग्निपु० गयाभेदनामाध्याय)

२ बुद्ध (अमर) ३ उपाध्याय, गुरु। ४ राजा। ५ पिता। (संक्षिप्तसार उणादि)

शास्तृत्व (सं० क्ली०) शास्तु र्भावः त्व। शास्ताका भाव या धर्म, शास्ताका कार्य, शासन, शास्ति।

शास्त्र (सं० क्ली०) शिष्यतेऽनेन शास (सर्वधातुभ्यष्ट्रन्। उणा् ४।१५८) १ हिन्दुओंके अनुसार ऋषियों और मुनियों आदिके बनाए हुए वे प्राचीन ग्रन्थ जिनमें लोगों-के हितके लिये अनेक प्रकारके कर्त्तव्य बताए गये हैं और अनुचित कृत्योंका निषेध किया गया है अर्थात् वे धार्मिक ग्रन्थ जो लोगोंके हित और अनुशासनके लिये बनाये गये हैं।

हमारे यहां वे ही ग्रन्थ शास्त्र माने गए हैं जो वेद-मूलक हैं। इनकी संख्या १८ कही गई है और नाम इस प्रकार दिये गये हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। इन अठारहों शास्त्रोंको अठारह विद्याएं भी कहते हैं।

मत्स्यपुराणमें शास्त्रकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—पहले देवताओंके पितामहने कठोर तपस्या आरंभ कर दी। उससे साङ्गोपाङ्ग वेद आदि शास्त्र आविर्भूत हुए। (मत्स्यपु० ३ अ०)

शास्त्रमें जो सब विधि और निषेध हैं, उनके अनुसार आचरण करना सबोंका कर्त्तव्य है। शास्त्रोक्त कर्म ही

विधेय है, शास्त्रनिषिद्ध कर्म सर्वतोभावसे वर्जनीय है। गीतामें लिखा है, कि जो शास्त्र-विधिका परित्याग कर अपने इच्छानुसार कर्म करते हैं, वे सिद्धि और सुख कुछ भी नहीं पाते।

पद्मपुराणमें भी लिखा है, कि सर्वदा श्रुति, स्मृति और सदाचारविहित कर्मका आचरण करे। जो इसका अन्यथाचरण करते हैं, उन्हें नरक होता है। अतएव जो सब शास्त्र वेदविरुद्ध हैं, उनमें जो सब विधि कही गयी है, उसका परित्याग करना उचित है। स्वबुद्धिरचित शास्त्रमें मूर्खोंको प्रतारित किया गया है। वे इस असच्छास्त्रानुसार कर्म कर श्रेष्ठ मार्गसे भ्रष्ट और पीछे विनष्ट होते हैं। सुतरां असच्छास्त्र लोकनाशका कारण है। वेदविरुद्ध जो शास्त्र है, वही असच्छास्त्र है।

(उत्तरख० १७ अ०)

२ किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ समूहके संबंधका वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रमसे संग्रह करके रखा गया हो, विज्ञान।

शास्त्रकार (सं० पु०) शास्त्रं करोतीति कृ 'कर्मण्युपपदे' इति अण्। शास्त्रकर्त्ता, वह जिसने शास्त्रोंका प्रणयन या रचना की हो।

शास्त्रकृत् (सं० पु०) शास्त्रं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च। १ ऋषि। २ आचार्य। (त्रिका०) ३ शास्त्रकर्त्ता, शास्त्रप्रणेता।

शास्त्रगञ्ज (सं० पु०) कथासरित्सागर वर्णित शास्त्रज्ञ तोता पक्षी। (कथासरित्सा० ५६।२८)

शास्त्रगण्ड (सं० पु०) प्रघटावित्। (त्रिका०) हारा वलीमें इसका पाठान्तर छात्रगण्ड है।

शास्त्रचक्षुस् (सं० क्ली०) शास्त्रेषु चक्षुरिव। १ शास्त्रकी आंख अर्थात् व्याकरण। व्याकरण शास्त्रमें व्युत्पत्ति नहीं होनेसे किसी शास्त्रमें अधिकार नहीं होता, इसलिये व्याकरणको शास्त्रचक्षु कहते हैं। शास्त्रमेव चक्षुः रूपकर्मधारयः। २ शास्त्ररूप चक्षु। (त्रि०) शास्त्रं चक्षुर्यस्य। ३ जिसे शास्त्ररूपी नेत्र प्राप्त हो, ज्ञानी, पण्डित।

शास्त्रचारण (सं० त्रि०) शास्त्रं चारयति प्रचारयति चार-णिच् ल्यु। शास्त्रदर्शी, जो शास्त्रोंका अच्छा ज्ञाता हो।

शास्त्रचिन्तक (सं० पु०) शास्त्रं चिन्तयतीति चिन्ति-ण्वुल्। शास्त्रचिन्ताकारी, वह जो शास्त्रकी आलोचना करता हो।

शास्त्रचौर (सं० पु०) शास्त्रज्ञ आचार्य।

शास्त्रज्ञ (सं० पु०) शास्त्रं जानातीति ज्ञा क। शास्त्रवेत्ता, वह जो शास्त्रका ज्ञाता हो।

शास्त्रतत्त्वज्ञ (सं० त्रि०) शास्त्रस्य तत्त्वं जानातीति ज्ञा-क। १ शास्त्रार्थदर्शी, जो शास्त्रके तत्त्वोंका अच्छा ज्ञाता हो। (पु०) २ गणक, ज्योतिषी।

शास्त्रतस् (सं० अव्य०) शास्त्र तसिल्। १ शास्त्रानुसार, शास्त्रके मोताबिक। २ शास्त्रसे। पञ्चमी या सप्तमीका अर्थ होनेसे तसिल् प्रत्यय होता है।

शास्त्रत्व (सं० क्ली०) शास्त्रस्य भावः त्व। शास्त्रका भाव या धर्म।

शास्त्रदर्शिन् (सं० त्रि०) शास्त्रं द्रष्टुं शीलमस्य दृश-इनि। शास्त्रज्ञ, जिसे शास्त्रोंका अच्छा ज्ञान हो।

शास्त्रदृष्ट (सं० त्रि०) शास्त्रे दृष्टः। जो शास्त्रमें दृष्ट हुआ हो।

"प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः।" (मनु ८।३)

शास्त्रदृष्टि (सं० पु०) शास्त्रमेव दृष्टिर्यस्य। १ वह जो शास्त्रोंका ज्ञाता हो, शास्त्रज्ञ।

"दिनं लग्नञ्च होराञ्च नविदुः शास्त्रदृष्टयः॥"

(मार्कपु० १०६।३६)

(स्त्री०) २ शास्त्ररूप दृष्टि।

शास्त्रनेत्र (सं० त्रि०) शास्त्रमेव नेत्रं यस्य। शास्त्रचक्षुः।

शास्त्रवक्तृ (सं० त्रि०) शास्त्रस्य वक्ता। शास्त्रोपदेष्टा, शास्त्रोंका उपदेश देनेवाला।

शास्त्रबुद्धि (सं० त्रि०) शास्त्रे बुद्धिर्यस्य। १ जिसकी शास्त्रविषयक बुद्धि हो, शास्त्र जाननेवाला। (स्त्री०) २ शास्त्रविषयिणी बुद्धि। जो बुद्धि रहनेसे शास्त्र समझा जाता है, वही शास्त्रबुद्धि है।

शास्त्रमति (सं० त्रि०) शास्त्रे मतिर्यस्य। शास्त्रबुद्धि।

शास्त्रवत् (सं० अव्य०) शास्त्रतः, शास्त्रके अनुसार।

शास्त्रविद् (सं० त्रि०) शास्त्रं वेत्तीति विद्-क्विप्। शास्त्रदर्शी, शास्त्रोंका जाननेवाला।

शास्त्रविप्रतिषिद्ध (सं० त्रि०) शास्त्रेण विप्रतिषिद्धः। शास्त्रनिषिद्ध, जो शास्त्रमें निषिद्ध बताया गया हो।

शास्त्रशिल्पिन् (सं० पु०) शास्त्रं शिल्पमस्यास्तीति इनि। १ काश्मीरदेश। २ उस देशका निवासी। ३ भूमि, जमीन। (त्रिका०)

शास्त्रावर्त्तलिपि (सं० स्त्री०) ललितविस्तरके अनुसार प्राचीन कालकी एक प्रकारकी लिपि।

शास्त्रित (सं० त्रि०) शास्त्रमस्यास्तीति शास्त्र तारकादित्वादितच् (पा ५।२।३६)। शास्त्रयुक्त।

शास्त्रिन (सं० त्रि०) शास्त्रं वेत्ति शास्त्र-इन्। १ शास्त्रवेत्ता, शास्त्रज्ञ। (पु०) २ एक उपाधि जो कुछ विश्वविद्यालयों आदिमें इसी नामकी परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर प्राप्त होती है।

शास्त्रीय (सं० त्रि०) शास्त्र सम्बन्धी, शास्त्रका।

शास्त्रोक्त (सं० त्रि०) जो शास्त्रमें लिखे या कहेके अनुसार हो, शास्त्रोंमें कहा हुआ।

शास्य (सं० त्रि०) शास-ण्यत्। १ शासनीय, शासन करनेके योग्य। (मनु ८।१६१) २ शिक्षणीय, सुधारने योग्य। (ऋक् १।१८२।७) ३ दण्डनीय, दण्ड देनेके योग्य।

शाहंशाह (फा० पु०) बादशाहोंका बादशाह, बहुत बड़ा बादशाह, महाराजाधिराज।

शाहंशाही (फा० स्त्री०) १ शाहंशाहका कार्य या भाव, बादशाही। २ व्यवहारका खरापन।

शाह (फा० पु०) १ बहुत बड़ा राजा या महाराज। बादशाह देखो। २ मुसलमान फकीरोंकी उपाधि। (त्रि०) ३ बड़ा, भारी, महान्। इस अर्थमें इस शब्दका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनानेमें उनके आदिमें होता है।

शाह अब्बास (१म)—१ पारस्यके शाफई-वंशके सप्तम राजा। ये सुलतान सिकन्दर शाहके पुत्र थे। १५७१ ई०की २१वों जनवरी सोमवारको इनका जन्म हुआ था। सोलह वर्षकी अवस्थामें १५८८ ई०में ये अपने पिताकी जीवितावस्थामें ही खुरासानके राजसामन्तों द्वारा राजसिंहासन पर बैठाये गये। सबने पहले इन्होंने हो इस्पहान नगरमें पारस्यकी राजधानी स्थापित की। शाह अब्बासने शौर्य्यमें, वीर्य्यमें तथा शासनगौरवमें यथेष्ट प्रतिपत्ति लाभ की थी। इन्होंने अपने असाधारण प्रतापसे राज्यकी सीमाका विस्तार किया था। १६२२ ई०में इन्होंने अंग्रेजी सेनाके साथ मिल कर अरमस् द्वीप पर अपना अधिकार जमाया! यह अरमस् द्वीप १२२ वर्ष तक पुर्त्तगीजोंके अधीनमें रहा। शाह अब्बास अकबर और जहाँगीरके समकालीन व्यक्ति थे। ४४ वर्ष राज्य करनेके बाद १६२६ ई०को ८वीं जनवरीको ये स्वर्गवासी हो गये। इनके बाद इनका पौत्र शाहसुफी गद्दी पर बैठे। शाह अब्बास कट्टर शिया थे।

२ उक्त १म अब्बासके प्रपौत्र भी शाह अब्बासके नामसे विख्यात हुए। १६४२ ई०के मई महीनेमें ये गद्दीके उत्तराधिकारी हुए। इस समय इनकी अवस्था प्रायः दश वर्षकी थी। इनके पिताके समय कन्दहार शहर इन लोगोंके हाथसे निकल गया था। द्वितीय शाह अब्बासने उस नगर पर फिर अपना अधिकार जमा लिया। इस समय इनकी अवस्था सिर्फ १६ वर्ष की थी। शाहजहांने इस शहर पर फिरसे अपना अधिकार जमानेकी बड़ी चेष्टा की, किन्तु उनका सारा प्रयास व्यर्थ हुआ। शाह अब्बासने प्रायः २५ वर्ष तक राज्य किया था। करीब ३४।३५ वर्षकी अवस्थामें १६६६ ई०की २६वीं अगस्त (पाँचवीं रबि-उल् अव्वल, १०७७ हि:)को इनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद इनका पुत्र सफी मिर्ज्जा (शाह सुलेमान) अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ।

शाह आलम—दिल्लीके मुगल-सम्राट्। ये अली गौहरके नामसे विख्यात थे। इनके पिताका नाम सम्राट् आलमगीर (२य) और माताका नाम जिन्नतमहल उर्फ विनान-कुनवार था। १७२८ ई०की १५वीं जून (१७ जिकदा ११४० हि०)को इनका जन्म हुआ था। शाह आलम पितृविद्वेषी थे। पोछे अपने पिताके मन्त्री इमाद उल-मल्लिक गाजी द्वारा कारारुद्ध होनेके भयसे ये १७५८ ई०में दिल्ली छोड़ मुर्शिदाबाद चले गये। इस समय सिराजुद्दौलाका सौभाग्यरवि सदाके लिये अस्त हो गया था। मीरजाफरने सिराजुद्दौलाके सिंहासन पर अपना अधिकार जमा लिया था। शाह आलम मुर्शिदाबादसे विहार प्रदेशमें जा कर रहने लगे। उसी

समय उनके पिता शत्रु द्वारा मारे गये। यह सम्वाद पा कर शाह आलमने तुरत दिल्ली जा कर अपने पिताके सिंहासन पर अधिकार जमा लिया। १७५६ ई०की २५वीं दिसम्बरको वे गद्दी पर बैठे। इस समय उन्होंने शाह आलमकी उपाधि प्राप्त की। १७६४ ई०की २३ वीं अक्टूबरको बक्सरके युद्धमें शाह आलमके प्रधान मन्त्री सुजाउद्दौला हार खा कर भाग गये। शाह आलमने निरुपाय हो कर अंग्रेजोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। १७६५ ई०की १२वीं अगस्तको अहमदाबाद आ कर इन्होंने इष्ट-इण्डिया कम्पनीको वङ्गदेशकी दीवानीका भार सौंप एक सनद लिख दी। इस समय वङ्ग, विहार और उड़िसाके करस्वरूप इनको इष्ट-इण्डिया कम्पनीसे वार्षिक सिर्फ २२ लाख रुपये मिलते थे। लार्ड क्लाइवने प्रति वर्ष सिर्फ २२ लाख रुपये कर देना स्वीकार कर इतने बड़े प्रदेशकी दीवानीकी सनद पाई थी। लार्ड क्लाइव जेनरल स्मिथको दिल्लीमें छोड़ कलकत्ता चले गये। शाह आलम केवल नामके लिये सम्राट् थे। ये जेनरल स्मिथके हाथकी पुतलीकी तरह सिंहासन पर बैठे थे। वास्तवमें जेनरल स्मिथ ही शासनकर्त्ता थे। शाह आलम अहमदाबाद नगरमें और जेनरल स्मिथ सिन्नी गढ़में रहते थे। सम्राट्के राजभवनमें पूर्व प्रथाके अनुसार नौबत बाजा बजता था। उस नौबतकी आवाज जेनरल स्मिथको न सुहाती थी; इसलिये उन्होंने नौबत बजाना निषेध कर दिया। सम्राट् शाह आलमको बिना किसी आपत्तिके नौबत बजाना बन्द कर देना पड़ा, अतएव शाह आलम सिर्फ नामके लिये बादशाह थे। वे घरेलू दुश्मनोंके डरसे इलाहाबाद शहरमें अंग्रेजोंकी शरणमें जीवनकी घड़ियाँ बिता रहे थे। किन्तु इस तरह इलाहाबादमें जीवन बिताना उन्हें बुरा मालूम पड़ने लगा; इसलिये वे फिर १७७८ ई०में दिल्ली चले आये। इसके थोड़े ही दिनके बाद सहसा गुलाम कादिर खाँ नामक एक प्रबल पराक्रमी शत्रु द्वारा बन्दी हुए। गुलाम कादिर खाँने उनकी आंखें निकाल लीं। १८०६ ई०की १९वीं नवम्बरको शाह आलमकी मृत्यु हुई। शाह आलम एक अच्छे कवि थे। उनके काव्यग्रन्थमें उनके नामकी कविताएं "आफताब" के नामसे उल्लिखित हैं। कुतुब शाहकी दरगाहके निकटवर्ती मोती मसजिदके पास बहादुर शाहकी समाधिके निकट शाह आलमकी समाधि है।

शाह आलम—कुतुब आलम नामक एक साधु फकीरका लड़का। इनका पहला नाम कुतुबुद्दीन सैयद बराउद्दीन था। इन्होंने भी पिताकी तरह फकीरी धारण कर पूरा यश कमाया था। इनके पितामहका नाम मुकद्दम जहानियन सैयद जनाम कयाबी था। कुतब गुजरातमें रहते थे। वे १४५३ ई०की ६ वीं दिसंबरको स्वर्गवासी हुए। अहमदाबादसे ६ मील दूर आज भी उनकी समाधि विद्यमान है। शाह आलम भी गुजरातमें ही वास करते थे। यहां उनकी भी समाधि है।

शाह अली महम्मद—"ताज्जनियात् रहमानी" नामक ग्रन्थके लेखक। इस ग्रन्थमें सुफीके धर्म एवं तत्संक्रांत रहस्यपूर्ण पदादिकी व्याख्या है।

शाह अली हजरत्—एक सैयदवंशीय धार्म्मिक मुसलमान। इन्होंने पारसी, अरबी और गुजराती भाषामें कई धर्मग्रंथोंकी रचना की। १५६५ ई०में अहमदाबादमें इनका स्वर्गवास हुआ।

शाह करक—एक प्रसिद्ध मुसलमान फकीर। इलाहाबादके अन्तर्गत करा नामक स्थानमें ये समाधिस्थ हुए। मुसलमान लोग इस फकीरके समाधिमन्दिरको अभी भी एक पवित्र स्थान मानते हैं। फिरिस्ता नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि १२९६ ई०में सुलतान जलालुद्दीन फिरोजकी गुप्तहत्याके एक दिन पहले सुलतान अल्लाउद्दीनने इस फकीरके साथ भेंट की थी। फकीरने उस समय एक श्लोक बनाया था। उस श्लोकका अभिप्राय यह है—

"जो तुम्हारा शत्रु बन कर आयेगा, वह नौकाके ऊपर ही अपना मस्तक खो बैठेगा और उसके शरीरका अवशिष्टांश गंगाके गर्भमें चला जायगा।" फकीरकी यह भविष्यवाणी कुछ ही घंटेके अन्दर सत्य निकली। जिस राजाने अल्लाउद्दीनके विरुद्ध यात्रा की थी, उस राजाकी मृत्यु फकीरके कथनानुसार ही हुई। १२९६से १३१६ ई०के मध्य शाह करकका लोकान्तर हुआ।

शाह कासिम—एक सुशिक्षित मुसलमान साधु। १५८४ ई०में इनका परलोकवास हुआ। ख्वाजा अबदुल रेजर-

की लिखी हुई विवरणीमें इनकी धार्मिक जीवनी लिखी है।

शाह कुली खाँ महरम—सम्राट् अकबर शाहके एक समर-सचिव। १५६८ ई०में उदयपुरके अधीनस्थ अमीरोंका दमन करनेके लिये ५००० सेनाका नायक बन कर सलीम और मानसिंहके साथ इन्होंने अजमेरकी यात्रा की थी। जहांगीर बादशाहने अपने ग्रंथमें एक जगह लिखा है, कि उनके राजत्वकालमें मिर्जा हाम्दोलकी सुलताना बेगम नाम्नी एक कन्याके साथ शाह कुली खाँ महरमका विवाह हुआ था। किन्तु मसिर उल् उमराव नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि १६०० ई०में कुली खाँ महरम कराल कालके गालमें समा गये।

शाह कुदरत्-उल्ला—दिल्लीके एक सुप्रसिद्ध कवि। पारसी और उर्दू भाषामें इनके रचे हुए कई काव्यग्रंथ हैं। इन सब काव्य ग्रन्थोंमें "नट्टए चाउल आफ़कार" और "दीवान" नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। १७८२ ई०में ये मुर्शिदाबादमें आ कर बस गये। उक्त दीवान ग्रन्थमें २० हजार कविताएं हैं। १७९१ ई०में मुर्शिदाबाद नगरमें इनकी मानवलीला समाप्त हो गई।

शाहगञ्ज—१ युक्तप्रदेशके अन्तर्गत जौनपुर जिलेके खुताहन तालुकके अधीन एक शहर। यह अक्षा० २६° ३´ उ० एवं देशा० ८२° ४३´ पू०के मध्य विस्तृत है। फैजाबादकी पक्की सड़कके किनारे खुताहन शहरसे ८ मील उत्तर-पूर्वमें यह शहर अवस्थित है। अयोध्याके नवाब वजीर सुजाउद्दौलाने इस शहरको बसाया था। उनके प्रयत्नसे सबसे पहले यहां एक बाजार और प्रसिद्ध फकीर शाह हजरत् अलीकी यादगारीके लिये एक मसजिद स्थापित हुई। शाहगंज इस अंचलके वाणिज्यका एक प्रधान केन्द्रस्थान है। जौनपुर जिलेमें सदरके सिवाय शाहगंजकी तरह सुप्रसिद्ध और कोई वाणिज्य-स्थल नहीं है। जौनपुर जिलेमें सदरके सिवाय शाहगंजकी तरह सुप्रसिद्ध और कोई वाणिज्य स्थल नहीं है। यह स्थान रूईकी आमदनीके लिये प्रसिद्ध है। यहां मंगलवार और शनिवारको हाट लगती है। यहां स्कूल, डाकघर, पुलिसस्टेशन, डिस्पेन्सरी और अयोध्या-रोहिलखण्ड रेलवेका स्टेशन है।

२ फैजाबाद जिलेमें और एक शाहगंज नामक शहर। यह शहर फैजाबादसे दश मील दूर मुगल सम्राट् द्वारा बसाया गया था। १८५७ ई०में राजा दर्शनसिंहने इस नगर पर अधिकार जमा कर यहां अपना दुर्ग और वासस्थान निर्माण किया था। इसका दूसरा नाम मकिमपुर है।

शाहगढ़—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत सागर जिलेकी बान्दा तहसीलके अधीन शाहगढ़ नामक भूखण्डका प्रधान नगर। यह सागर शहरसे ४० मील उत्तर-पूर्वमें, अक्षा० २४° १६´ एवं देशा० ७९° पू०के बीच अवस्थित है। यह स्थान मण्डलके गौड़राजके अधीन था। १८५७ ई० तक यहां उक्त राजवंश रहते थे। यह शहर उच्च पर्वतश्रेणीके नीचे अवस्थित है। इसके चारों ओर हरे-भरे जंगल हैं, जो इसकी प्राकृतिक शोभा बढ़ा रहे हैं। नगरके पूर्व भागमें एक दुर्गके ध्वंसावशेषके मध्य इस समय भी प्राचीन राजप्रासाद दिखाई देता है। इस शहरके उत्तरांशमें बारेज, अमरमऊ, हीरापुर और टिगड़ामें लोहेकी खान तथा कारखाना है। यहांसे लोहे गला कर कानपुर भेजे जाते हैं। यहां मंगलवार और शनिवारको हाट लगती है।

शाह जमाल—काबुल और कन्दहारके प्रसिद्ध राजा। इनके पिताका नाम तैमूर शाह था। सुप्रसिद्ध शाह अबदली इनके पितामह थे। पिताकी मृत्युके बाद १७९३ ई०में ये काबुलके सिंहासन पर बैठे। १७९६ ई०में दिल्ली पर चढ़ाई करनेका इरादा कर ये लाहोर आये, पर इधर इनके राज्य हीमें इनका भाई विद्रोही हो उठा, इसलिये लाचार हो कर इन्हें अपने देशको लौट जाना पड़ा। १८०० ई०में किरातनिवासी इनके भाई महम्मद-शाहने इन्हें अंधा कर बालाहिसाके जेलमें बन्द कर दिया। १८३९ ई०में जब वृटिश गवर्नमेण्टने शाह सुजाको काबुलकी गद्दी पर बिठाया, तब अफगानियोंने इसका खूब ही विरोध किया और शाह जमालको ही अपना राजा माना।

शाह जलाल—श्रीहट्टके एक विख्यात फकीर। श्रीहट्टमें इस समय भी इनकी समाधि और दरगाह है। कितने ही मुसलमान मौलवी इस दरगाहमें रहते हैं और नित्य

नैमित्तिक कार्यादि करते हैं। कपोत तथा और और कई प्रकारके पक्षी इस दरगाहमें वास करते हैं। मक्कामसजिद के पक्षी भी मुसलमान-समाजमें पवित्र माने जाते हैं।

शाहजहान्—दिल्लीके प्रसिद्ध सम्राट्। इनका दूसरा नाम शाहबुद्दीन महम्मद साहिब किरान सानी था। ये सम्राट् जहांगीरके तृतीय पुत्र थे। १५९२ ई०की ५वीं जनवरीको लाहोरमें इनका जन्म हुआ। बाल्यावस्थामें ये मिर्जा खुर्रमके नामसे पुकारे जाते थे। इनकी माताका नाम वालमती था। बालमती राजा उदय-सिंहकी लड़की तथा जोधपुरके राजा मालदेवकी पोती थी। राजा सूरज सिंह इनके सहोदर भाई थे। शाहजहाँ अपने पिताकी मृत्युके समय दाक्षिणात्यमें वास करते थे। अपने ससुर आसफ खांकी चेष्टासे ये राजसिंहासन पर बैठे। १६२८ ई०की ५वीं फरवरीसे इन्होंने राज्य करना आरम्भ किया। भारतवर्षमें मुसलमान बादशाहोंके बीच इन्होंने वाह्याडम्बर प्रभृतिमें सबसे ऊंचा स्थान प्राप्त किया था। मयूरसिंहासनका निर्माण शाहजहाँने ही किया था। इसके तैयार करनेमें जो मरकत आदि अमूल्य माणिक व्यवहार-में लाये गये थे, इस समय वैसे मणिमाणिक बिल्कुल ही नहीं पाये जाते। मणितत्त्ववित् सुविख्यात पर्यटक टाभरनेयर कहते हैं, कि मयूरसिंहासनका मूल्य ६५ लाख पाउंडसे किसो प्रकार कम नहीं हो सकता। इन्होंने दिल्लीमें शाह-जहानाबाद नामक एक नगर बसाया था। आगरेका ताजमहल भी इन्हींकी विश्वविख्यात प्रधानतम कीर्त्ति है। सारे यूरोप और एशियामें ऐसा महल और कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। ताजमहल मोम् ताजमहल नामका अपभ्रंश है। मोम्-ताजमहल शाहजहाँकी प्यारी स्त्रीका नाम था। उसीके नाम पर यह महल बनवाया गया था। शाहजहाँने तीस वर्ष तक राज्य किया। १६५८ ई०की ८वीं जूनको इनके पुत्र आलमगीर औरंगजेबने आगरेके किलेमें इन्हें कैद कर लिया। ७ वर्ष ६ महीने कारागार वास करनेके बाद १६६६ ई०की २३वीं जनवरी सोमवारकी रातको इन्होंने अपनी मानवलीला शेष की। ताजमहलमें इनकी स्त्रीके मकबरेके पास ही इनकी देह दफनाई गई। मृत्युके समय इनकी अवस्था ७६ वर्ष ३ महीने १७ दिनकी थी। इनके चार लड़के और चार लड़कियां थीं। पुत्रोंके नाम दारासिकोह, सुलतान सुजा, आलमगीर और मुरादवक्स थे। आलमगीरने अपने भाई दारा और मुरादको मार डाला था। सुलतान-सुजा आराकान चले गये और वहांके राजा द्वारा मार डाले गये। शाहजहांको पुत्रियोंके नाम अर्जुमन-आरा, गैति-आरा, जहानारा और रोशन-आरा थे।

द्वाविंश भाग सम्पूर्ण